केदार - खंड

KEDAR - KHAND

स्कान्द पुराणान्तर्गत

केदार-खण्ड

प्रकाशित समय

(सन् 1906)

॥ श्रीः ॥

स्कान्दपुराणान्तर्गत-

श्रीकेदारखण्ड ग्रन्थ।

अनेक ग्रन्थोंके भाषानुवादकर्त्ता, मुरादाबाददैशिक,

पं० व्रजरत्न भट्टाचार्य्य कृत-

रत्नप्रभानाम हिन्दीभाषा व्याख्या सहित।

उसीको

श्रीकेदारखण्डेश्वर श्रीमन्महाराजाधिराज श्री १०८ श्री

श्रीकीर्त्तिशाह [के. सी. एस. आई.] जूदेवबहादुर

टेहरी नरेशके आश्रयसे-

नन्दप्रयाग ज़िला गढवालके

श्रीबदरीनारायणभक्तिरसामृत कार्य्यालया-

ध्यक्ष पंडित महेशानन्दशर्माने

बम्बईके

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् यन्त्रालयमें मुद्रित कराके

प्रकाशित किया।

श्रीसंवत १९६३ वै०, सन १९०६ ई.

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press, Bombay.

भूमिका ।

प्रियधर्मानुरागी सज्जन महाशयगण ! ! ! किसी विचारशील व्यक्तिसे यह विषय छिपा नहीं है कि—भारतवर्षीय उत्कृष्ट महत्वकी रक्षा करनेका संसारमें यदि कुछ साधनहै तो पुराण ही हैं, इसी हेतु सनातन धर्मावलम्बी महोदय पुराणोंको प्राणाधिकप्रिय समझते हैं । माना कि—वर्त्तमान समयमें आधुनिक सभा समाजोंकी पुराणोंहीके ऊपर विशेष क्रूर दृष्टि है, तथापि हम कह सक्ते हैं कि पुराणप्रतिपादित अतुल सम्पत्तिहीके लोकोत्तर गौरवको धारण करके भारत वर्ष अन्य देशोंके समक्ष अपने शिरको उन्नत किए हुआहै । आज हम उन्हीं पुराणोंके निश्चयमेंसे विश्व-विख्यात श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत " केदारखण्ड " का हिन्दी भाषानुवाद गुणज्ञ पाठकोंके समक्ष लेके उपस्थित होते हैं । यद्यपि इस दिव्य ग्रन्थका अभ्युत्थान पौराणिक रीतिपर कई एक महात्माओंके कथोपकथनसे हुआ है, तथापि इसमें मुख्यतया शिवकुमार श्रीस्कन्दजी और देवर्षि नारदजीके परस्पर प्रश्नोत्तरके आधारसे पौराणिक क्रमानुसार सृष्टिकारिणी ब्रह्मशक्तिका प्रतिपादन, कल्पके अन्तमें सृष्टिका बिवरण, देव, मनुष्य, चातुर्वर्ण्य और रौद्रादि सृष्टिका निरूपण, चारप्रकारकी प्रलय, सप्तद्वीप, सातसागर, भारतवर्षके पुण्यतम शिलोच्चय, कैलास, और रत्नस्तम्भसे लेके गंगाद्वार (हरिद्वार) पर्य्यन्त हिमालय पादान्तिक केदारखण्डके असंख्य बद्रीकेदारादिक महान तीर्थोंकी महिमा प्रभृतिका अत्यन्त विस्तारपूर्वक गम्भीरतासे वर्णन किया गयाहै । धर्मानुयायी सज्जन व्यक्तियोंसे यह विषय गुप्त नहीं है कि—श्रेष्ठ भारतके शिर स्वरूप पुण्यतम पवित्र श्रीकेदारखण्ड (उत्तराखंड) की अतुल महिमा श्रीमद्भागवतादि अठारहों पुराणोंमें विस्तारपूर्वक कीर्त्तन करी गईहै, येही नहीं, किन्तु—श्रुति स्मृति आदिकोंमें भी उत्तराखण्डकी स्वर्गीय पवित्र भूमिका महत्व वर्णित हुआहै; कारण कि—अनादिकालसे देव, दनुज, मनुज, यक्ष, किन्नर, ऋषि, महर्षि और मुनियोंने यहांही निवास करके उग्र तपश्चर्य्यामें व्रती रहकर धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति कीथी । शुद्धभावगम्य इसी पुण्यभूमिमें श्रीरवीन्द्रचन्द्रप्रभृति प्रातःस्मरणीय देवता सर्वदा निवासकर प्रमथनाथ महादेवजीका आराधन करगये; और किया करतेहैं, नरोत्तम भगवान् वेदव्यासजीने भी बदरी-वनकी सरस्वती गंगाके तीरपर हीं सुखासीन हो पुराण समुदायका निर्माण किया था, इसी पवित्र तीर्थमयी धरणीके ऊपर प्राचीन पुरुषोत्तम महर्षियोंके ज्ञान प्रदीप्त हृदयाकाशमें अमृतमयी ब्रह्म-विद्याके दिवाकरका प्रादुर्भाव हुआ था, इसी उत्तराखण्डमें उपस्थित होकर कीर्त्तिशेष पुण्य प्राण प्राचीन आचार्य्योंने उपनिषदोंके भाष्य निर्माण करेथे; सारांश यह है कि, यहां अनादि कालसे ब्रह्मादिक देवता, ऋषिमुनीश्वर, पाण्डवआदि भारतीय राजर्षि सनातनधर्मके आस्तिक महात्मा-गण निवास करते आये हैं, कि— जिन्होंने केदारखण्डके भिन्न २ स्थानोंमें गंगाआदि पुण्य स-लिला सरिताओंके तटपर गिरि गुफाओंमें बैठकर सहस्रों वर्षपर्यन्त लोमहर्षणकारी उग्र तपस्या-ओंका अनुष्ठान किया था । उन्हीं तपोवनोंमें ब्रह्मा विष्णु महेश्वर आदि देवताओंने उक्त तपस्वियोंको दर्शन दियेथे, इसी कारण वे स्थान सिद्ध तीर्थ विख्यात हुएहैं, उन्हीं पवित्र नदियों, झरनों, शिवलिङ्गों; दुर्गापीठ आदि सिद्धपीठों, गुप्त और प्रगट तीर्थोंका माहात्म्य; अखिल उत्तराखण्डके समग्रतीर्थों कि

जिनका क्रम मायाक्षेत्र हरिद्वारसे लेकर हिमालय पर्य्यन्त है; अत्यन्त विस्तृत भावसे केदारखण्डमें व
हुआहै। प्रत्येक तीर्थकी उत्पत्ति, उसका कारण और माहात्म्य, प्राक्तन महर्षियों और राजर्षियोंके गो
आख्यानों सहित सभीका महत्व इसमें यथावत् सन्निविष्ट है । उनका पाठ करनेसे गृहस्था
कलिधर्म, आत्मज्ञान और साकार निराकारकी भावना इत्यादि असंख्य विषयोंका ज्ञान होता
इसमें सन्देह नहीं है कि, नास्तिक लोक इस ग्रन्थके चमत्कारोंको देख संशय करेंगे, किन्तु
ज्ञातहोके ये चमत्कार उन्हीं सज्जनोंको प्राप्त होते हैं जिनको सनातन धर्मपर विशेष

२ यह दिव्यग्रन्थ अद्यावधिपर्य्यन्त ऐसा दुर्लभ था कि, इसकी हस्तलिखित प्रतियेंभी
नहीं; किन्तु-अधूरीही कहीं २ मिलतीथीं, ऐसी दशामें इसका सर्वांग पूर्ण होकर मुद्रित हो
कुछ सहज कार्य्य नहीं था, किन्तु-कठिन कार्यको सुगम और असम्भवको संभव करदेनेहीसे ज
दीश्वरकी सर्व शक्तिमत्ताका परिचय मिलताहै । सुतराम् इस दुर्लभ ग्रन्थको भगवान्की कृ
श्रीबदरीनारायण भक्तिरसामृतकार्य्यालयके अध्यक्ष श्रीमान् पण्डित महेशानन्दजी शर्माने लो
पकारार्थ मुद्रित कराके विशेष यशोलाभपूर्वक अनेक साधुवादका कार्य कियाहै । यद्यपि इ
की हस्तलिखित प्रतिको उक्तप्रकाशक महोदयके पूज्य पिता विद्वद्वर श्रीपण्डित देवानन्दजी भूत
महाफिज जी महाशयने बड़ी योग्यतासे स्वयं अनेक विद्वानोंसे सम्पादन करवाईथी, तथापि हमें श्री
रावल महोदय श्रीकेदारनाथजीके यहांसे प्राप्त हुई हस्तलिखित प्रतिसे मूलका संशोधन संपादन और
की न्यूनता पूर्ण करनेमें विशेष सहायता मिली, अतएव संप्रति हम उक्त रावलसाहिबके विशेष कृतज्ञ

३ यद्यपि हमने इस ग्रन्थका अनुवाद ता० १ अक्टूबर सन १९०२ ई० को प्रारम्भ किया
और हम चाहते थे कि बहुतही शीघ्र इसको गुणज्ञ पाठकोंके समक्ष उपस्थित करें । किन्

"यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति । यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति"

इस भगवद्वाक्यके अनुसार सिद्ध होताहै कि अपने विचारोंको पूर्ण करनेमें प्राणी सर्वथा पराधीन है
इस ग्रन्थका अनुवाद करते समय अनेकविघ्न आडेआये परन्तु-यदि मनुष्यका जीवन नियतहै
ईश्वरभी सानुकूल हो तो समयानुकूल सबही कार्य सिद्ध होजाते हैं सुतराम् आशातीत विलं
पश्चात् यह अलौकिक दिव्यग्रन्थ आपके चक्षुमार्गका पथिक बननेके तई उपस्थितहै । उक्त ग्रन्
प्रकाशक पण्डित श्रीमहेशानन्दजी शर्माने हमारे अनुवादके परिवर्त्तनमें विविध प्रकारके दान मा
हमें सन्तुष्ट किया, अतएव हम उक्त महानुभावके यथा आयु सन्तति और वैभवकी वृद्धिके लि
श्रीजगदीश्वरके समक्ष नित्य प्रार्थी हैं ।

४ उपसंहारमें गुणज्ञपाठकोंके प्रति प्रार्थनाहै कि यद्यपि उक्त ग्रन्थरत्नकी "रत्नप्रभा" न
व्याख्या विशेष सावधानीसे बनाई गई है, तथापि मानवधर्मानुसार त्रुटिका रहजाना सम्भवहीहै उस
लिये क्षमा प्रार्थनाहै ।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधाति सज्जनाः ॥

ज्येष्टदशहरा १९६३ वै.
ता० २ जून १९०६ ई.

अनुवादकर्त्ता, विनीतप्रार्थी—
व्रजरत्न भट्टाचार्य्य,
मुरादाबाद सिटी.

चक्रधर जोशी
श्रीलक्ष्मीध. विद्यामन्दिर
देवप्रयाग
(गढ़वाल)

राजन्तुल्लिखिता भवत्प्रतिकृतिर्योऽस्मद्दृगन्तातिथि-
स्तत्सन्दर्शनमात्रभासितभवद्गंभीरसगोंद्गुणाः ।
श्रीमत्सन्ततकार्य्यकौशलसमालोकस्फुरद्गौरवाः
सौभाग्योल्लसिताननाः प्रतिदिनं धन्या वयं वः प्रजाः ॥



श्री १०८ श्रीमहाराजाधिराज किर्तिशाहजू देव बहादुर
टेहरी नरेश ।



समर्पण ।

श्रीमन्मर्य्यादापुरुषोत्तमश्रीबदरीविशालबाल, पदारविन्दमलिन्द, केदारखण्डमानसमराल, सकल-गुणगौरवान्वित, भूमण्डल-मण्डनीय, विशदविद्या-विशालगोद्विजप्रजापालक, गुणग्राहक, याचकवृन्दमनोरथकल्पद्रुम, विद्वद्धुर्य्य, परमौदार्य्य-कान्तिकलाधरकुलकैरव श्री १०८ केदारखण्ड मण्डलेश्वर, गढवालराज्याधिपतिश्रीमत्कीर्तिशाहजूदेवसमीपेषु.

मदीय कल्पतरु कल्प !

श्रीमान् महोदयके स्नेह–सलिलका सींचाहुआ श्रीबदरीनाथ भक्तिरसामृत कार्य्यालय–निकुञ्ज अब अनेक मनोमोहक पुस्तक–पौधोंसे सुसज्जितहोके लहलहा उठाहै. एतदर्थ आज उसी मञ्जुल निकुञ्ज-का अलौकिक एवं अनुपम ग्रन्थ श्रीकेदारखण्ड रत्नप्रभा भाषा व्याख्या-फल श्रीमन्महाराजाधिराज-को सादर समर्पित कियाजाताहै । आशाहै श्रीमान् इसको अंगीकार कर चिरबाधित करेंगे ।

"जलझरैरवनीं नवनीरदो, निजनिरीहतरो हतराचिषम् ॥
उपकारोति यथा वसुभिस्तथा, टिहरिभूपतिसम्पतिरुज्ज्वला॥ १॥
समुल्लसति विद्यया कलिकया गुरुश्रीभरं ।
सरोरुहमुदारया नृपतिकीर्तिशाहाभिधम् ॥
गुणौघमकरन्दितं समभिनन्दितं सान्द्रता
मिलद्रसिकतोल्लसद्गुणिमिलिन्दवृन्दं सदा ॥ २ ॥"

ज्यौं निरीह नीरद निस्स्वारथ, करताहै जगका उपकार ।
वही दशा श्रीसम्पतिकी है, खुला कोषका रहता द्वार ॥
विद्या निधिके अहो सरोरुह, परिपूरित शुचि गुनमकरन्द ।
लोलुपता वश आवतहैं मिलि, गुनी मलिन्दनके नित वृन्द ॥१॥२॥

युग्मम् ।

"धर्मकर्मनयसंयमलां ते, धर्मराजसदृशीं स्पृहणीयाम् ॥
वाक्पतेरिव शुभां मतिमत्तां, ज्ञानिनां च मिथिलाधिपतुल्याम् ॥३॥
सौम्यतां मतितरां महनीयां, पुण्यभूम्युचित दैवतरूप ॥
कीर्तिशाह नृपते समवेक्ष्य, भद्रबुद्धिरुदपद्यत चित्ते ॥ ४ ॥"

धर्म्म कर्म्म संयम लख नय तुव, धर्म्मराज का होता भान ।
वाचस्पतिसम बुद्धि विशारद, मिथिलापति सा सद्विज्ञान ॥
त्यों नृपभागी पुण्यभूमिके, देवरूप नृप कीरतिशाह ।
देख तिहारी सौम्यशीलता, श्रेयस रुचि उपजी हिय चाह॥३॥४

"श्रीपाराशरिनिर्मितं जनमतं केदारखण्डाभिधं
यद्वर्तिपुराणमुत्तमतया तथ्यं तदीया ततः ॥
भाषाऽकारि निरामया हतभया रत्नप्रभाख्या मया ।
श्रीमद्भक्तिरसामृताधिकृतिना नन्दप्रयागस्थले ॥ ५ ॥
तस्यास्तु संरक्षणहेतुरास्ते भवत्कराम्भोरुहकोश एव ॥
वीक्ष्येति राजन् विनयान्वितोऽहं समर्पये प्रेमणतेन मूर्ध्ना॥ ६ ॥

था महर्षि श्रीवेदव्यासका, रचाग्रन्थ श्रीखण्ड केदार ।
भक्तिरसामृतनन्दप्रयागने, किया ताहिभाषा विस्तार ॥
नामकरण शुभ मङ्गलमयश्री, 'रत्नप्रभा' है हुआ अनूप ।
संरक्षणहित निश्चय उसके, श्रीकरकमल कोश अनुरूप॥५॥६।

"इदमतिरमणीयं सन्निधानं शिवानं
विमलगुणनिधानं गौरवस्याऽऽस्यदं वः॥
बुधजनसुखदानं राज्यसम्बधिनस्तत्
सदयमपि सहर्षं स्वीक्रियेताऽर्थनाथ ॥ ७ ॥"

एतदर्थ है अति विनीत अरु, प्रेमभावसे हे महाराज ! ।
उक्तरसामृत करे समर्पण, जासों होवहिं सफल सुकाज ॥
श्रीलराजके गौरव का यह, मङ्गलीक पावन भण्डार ।
सुखदामीर लोक है यासों, करि किरपा करिहो स्वीकार ॥ ७ ॥

वृत्तावली ।

"टिहरिगिरिशिखरिशृङ्गे साम्प्रतं प्रोदितान्ता
विधुपसममसोमोत्साहिभिः पीयमाना ।
कविकुमुदगणास्योल्लासिनी सत्कलाभि-
र्विजयत इह कीर्तिः कौमुदी कीर्तिशाही ॥ ८ ॥"

अरसात ।

मोहिनीसी प्रकटी प्रतिभा, टिहरी उदयाचलपै निशिनाहकी ।
चावसौं नाचैं चकोर प्रजागन, मानो रही नाहिं सीमा उछाहकी ॥
"मीर" प्रफुल्लित है उठित्यों, कुमुदावलि मञ्जुकलानके चाहकी ।
दूनी उमाहली ह्वै है दिनों दिन, कीरति कौमुदी कीरति शाहकी॥८॥

"श्रीमान् धर्म्मधुरन्धरः क्षितितले विख्यातविद्योदयः
श्रीवैरोचानिरेव सत्यपरता त्रैशंकवो भासि मे ॥
श्रीमन्मानसराजहंसकलितस्वोद्धर्तनोऽङ्ग्रेजवद्
विक्रान्तः किल कीर्तिशाह नृपते कीर्त्या सुरेन्द्रोपमः ॥ ९ ॥"

मनहर ।

परम प्रवीन मीर जाहिर जहानबीच,
धरमधुरीन दूजो बलि अनुहारों मैं ।
कलित केदारखण्ड मानसके राजहंस,
त्योंही शील सत्य हरिचन्दसे निहारों मैं ॥
मीतहो रहत अँगरेज महाराजहूसे,
राजटेहरीको तोहिं विक्रम विचारों मैं ।
कीरतिजूशाह देव कीरति तिहारीपर,
देवनके भूपतिकी कीरतिको वारों मैं ॥ ९ ॥

"विद्वन्मौक्तिकहारशोभिहृदयः सत्कीर्तिकान्तानन-
श्चञ्चच्चन्दनपंकलेपविशदस्फारेन्दुभालोदयः ॥
मूर्द्धारोपितहेमरत्नमुकुटो भूभारवद्भाति यः
केदारं सुधयाऽभिवृष्य घटिता दानाख्ययाऽऽप्यायिनम् ॥ १० ॥"

मङ्गलीक मोती 'मीर' हीरनके हार सोहैं,
आनन प्रतापवारो सुजस प्रसाराको ।
सौरभित मञ्जुल सी, मलयज खौर संग,
दिपत विशाल भाल उन्नत सिताराको ॥
कलँगी कलित शिरपेंच त्यों मनीनमय,
भासत प्रभाव मानो लीन्हें भुवि भाराको ।
भूतल केदारकहँ शीतल करेंगे भूप,
हीतलहरपिके बरसि दान धाराको ॥ १० ॥

आशीर्वादात्मकं (युग्मम्)

"उत्क्षिप्तोन्नतशुण्डमण्डितमहामातङ्गतुङ्गाङ्गणः
सौल्लासंप्रतिरङ्गसङ्गविलसत्तौरङ्गवृन्दोन्मुखः ॥
सस्नेहं परिचर्य्यमाणचरणो भृत्यैः सदा सङ्घश-
स्तेजःसिन्धुतरङ्गसङ्गलुलितामित्रः समित्रोदयः ॥ ११ ॥"

उन्नत भुसुण्डकीन्हें, झूमहिं मतङ्गद्वार,
तुरकीतुरङ्ग सानवारे प्रतिरङ्गमें ।
सेवहिं सनेहसने, कोटि परिचारकादि,
बूड़हिं विपक्षी तेज सरितातरङ्गमें ॥
सम्राटसमैके त्योंही, सैनिप सचिवमीर,
राजसी बढावैं साज सुखमा प्रसङ्ग मैं ।

रतन सिंहासनपै, कीर्तिशाहदेव भूप,
गङ्गके रहत रहो आनन्द अभङ्ग मैं ॥ ११ ॥

"सैन्यामात्यसमेध्यमानविलसत्साम्राज्यलक्ष्मीमुदा
श्रीसिंहासनसंश्रितो भवसदानन्दान्वितः सर्वदा ॥
सन्तप्तारिगणः प्रजाप्रियरतो नृणां गुणज्ञो विदाम्
देवार्च्ची गढवालपाल ! नितरामाशीर्विचांसीति नः ॥ १२ ॥"

मत्तगयन्द ।

फैले प्रताप महीतलपै, अरु मान महातमकी वरसावैं ।
प्रेम प्रजानपै पूर बढ़ै, परवैरिन जूह रहैं मनमावैं ॥
कौशल त्यों गुनवारनकी, गढ़वालनरेश हिये महँरावैं ।
मीर असीस यों बीसविसै, जग ईस सदापुजवैं अभिलावैं ॥

रोला

मङ्गल मय नम राम, अङ्क चन्द्र विक्रम बरस ।
माघ असित तिथि लोक, बार बृहस्पति आदरस ॥
देवि प्रकृति अति शुभ्र, बरसावति द्युति हिम हरस ।
टिहरी केशुभ भूप, कीर्तिशाह तब दिय दरस ॥

शुभाकांक्षी-गुरुकुलोद्भव-
पं० महेशानन्द नौटीयाल कार्य्याध्यक्ष,
श्रीबदरीनाथ भक्तिरसामृत कार्य्यालय,
नन्दप्रयाग-गढ़वाल.

केदारकल्प ।

महाशय !

यह सर्वेश्वर शिवजीकी कृपा है कि श्रीकेदारखंडके साथ २ ही ४००० श्लोक संख्यक "श्रीकेदारकल्प" भी भा०टी०सहित छपकर तइयार होगया है। इस अप्राप्त ग्रन्थरत्नको अवलोकन करनेहीसे विदित होगा कि हमारे शिवस्वरूप शिलोच्चये कैलासोंमें कैसे २ चमत्कार हैं, वहां कैसे २ नगर हैं, वहां दीर्घजीवी पराक्रमी राजा राज्य करतेहैं। वहां असंख्य सुनयना कामिनी साधकोंको मुग्ध करनेको उपस्थित हैं । उनके दैविक चरित्रोंको पढ़कर मुग्ध होना पड़ताहै । उसमें अनेक धर्मसम्बंधी विषय हैं। वे साधकोंको किसप्रकार प्राप्त हो सक्तेहैं ? तथा सर्वेश्वर शिवपार्वती कैसे दयालु हैं? यह सब असंख्य विषय पुस्तक अवलोकन करनेहीसे ज्ञात होंगे मूल्य सबके सुभीतेके लिये केवल ३) रु० मात्र रक्खे हैं मय पोष्टेज ।

पुस्तक मिलनेका पता-

पं० महेशानन्दशर्म्मा,

नन्दप्रयाग गढ़वाल ।



श्री पं०व्रजरत्न भट्टाचार्य्य मुरादाबाद भा०टीका कार.

श्रीकेदारखण्डग्रन्थस्य विषयानुक्रमणिका।

अध्याय संख्या.	विषयसूची.	पृष्ठ संख्या.
१६७	वैनतेयनदी, विभाविनीगंगा चन्द्रतीर्थ तथा तोयादिक अनेक तीर्थ	९६५
१६८	ज्वालेश्वरी (ज्वाल्पादेवी)	९६९
१६९	नरपूजितकुण्ड उमादेवी, कपिलाश्रम, तथा राष्ट्रकूट (राठ) के अनेक तीर्थ	९७२
१७०	देवराष्ट्रेश्वरी तथा देवेश्वर महादेव	९७५
१७१	पूण्यकूट पर्वत, महेश्वरी तथा नन्दना नदी	९७५
१७२	सुन्दरनाम पर्वत तथा भवनाशनादिक तीर्थ	९७६
१७३	योगीश्वर महादेव	९८०
१७४	गुह्येश्वरी महादेवी	९८१
१७५	नन्दभद्रेश्वरी देवि गुणश्री त्रिगुणात्मिका	९८२
१७६	श्रीनगर (श्रीक्षेत्र) उत्फालकाश्रम (उफल्डा)	९८४
१७७	श्रीक्षेत्रमाहात्म्य तथा धर्मनेत्रकी कथा...	९८६
	...री कथा तथा सत्यसंधकृत श्रीदुर्गास्तोत्र और कोला-...न	९९३
	... तीर्थ, कंकालेश्वर (क्योंकलळा) आदिक अनेक ...र्थ तथा राजा नहुषको इन्द्रपदकी प्राप्ति	१००७
१८०	महाराज जीवनेन्द्रकी कथा माहेश्वर महादेव तथा गौरीप्रयागादिक	१०३०
१८१	शिवप्रयाग, किलकिलेश्वर तथा अर्जुनकृत शिवस्तोत्र	१०४१
१८२	माण्डवनदी, ढुंढीप्रयाग, निर्मलेश्वर, जयैषिणी (जाखणी) तथा संपधारा (अतिसूक्ष्मतीर्थान्तर्गत)	१०५४
१८३	भैरवीधारा, श्रीकुण्ड, भूसुता नदी ब्रह्मकुण्ड तथा विष्णुशर्माकी कथा	१०६२
१८४	अश्वतीर्थ, भृंगीशिला, देवलाश्रम तथा धनुषतीर्थ	१०६७
१८५	भैरवीपीठ (राजराजेश्वरी) तथा कौवेर कुण्ड	१०७[illegible]
१८६	चामुंडा, भैरवी कंसमर्दनी, गौरी महिष्यमर्दनी, राजराजेश्वरी तथा चण्डमुण्डकी कथा.	१०८०
१८७	शुम्भदैत्यका दुर्गाके साथ घोर संग्राम	१०८४
१८८	माहेश्वर, कमलेश्वर नागेश्वर कटकेश्वर कोटीश्वर ब्रह्मदत्तकी कथा तथा विष्णु और शिवस्तोत्र	१०९०
१८९	वह्निपर्वतका महत्त्व अष्टावक्र माहात्म्य	११०४
१९०	इन्द्रकीलपर्वतस्थ तीर्थ मधुवती नदी किलकिलेश्वर तथा जीवन्ती नदी	११०७
१९१	कंसमर्दिनी देवीकी उत्पत्ति श्रीशिलाका माहात्म्य तथा चपलाख्यान	१११०

विषयसूची लिखनेको बहुत कम समय मिला इससे प्रत्येक तीर्थ सूचीमें नहीं आ
उनके क्रमको देखकर वे बाकी तीर्थभी ग्रन्थमें सहजही मिलसक्तेहैं ।

लेखक–महेशानन्द शर्म्मा,
बम्बई ता० २०–११–०६

पुस्तक मिलनेका एक मात्र पता–
पं० महेशानन्द शर्म्मा,
नन्दप्रयाग जि० गढ़वाल पश्चिमोत्तरप्रदे

1905



पतितपावनी श्रीबद्रीपुरी.

श्रीबद्रीनारायण भक्तिरसामृतकार्य्यालय

नन्दप्रयाग श्रीबद्रीकाश्रम (जि. गढ़वाल)

नं० .... ता० २२ दिसंबर १९१०

श्रीयुत महाशय श्रीमान लक्ष्मीधर जोशी राज्यपुरोहितजीसहन महेशानन्द की शेवानमस्कार शेव आगे अर्जछाकि आप्रलोग सज्जनौ की प्रशंशाशे मैन श्रीकितारखैंड छपवाये और अवीक उमारा देवप्रयागी गरोगोंमां पोथी बहुत कमगयेन अबदेवाल वडा भाई रामकृष्णाजी तरव आफलोगू की शेवामा भेजेन अरा छाकि निश्चय एकजिल्द अपरारा गौबकों स्वीकारकला और भी भाई वन्धोमा प्रशंशा बढाला सरन्यशास्त्र सवकाकार्यकी छ

किम्बहु इत्यलम्

हिमालया डिपार्टमेंट.



इस कार्य्यालयसे हिमालय सम्बंधि प्रत्येक प्रकारकी वस्तु भेजीजाती है।

शुद्धशोधित शिलाजीत.

आज प्रायः १४।१५ वर्षसे हमारी शास्त्रद्वारा तइयार की हुई शिलाजीत भारत विदित हुई है जिसके लिये हमारे पास बडे २ सज्जन श्रीमानोंके प्रशंसा पत्र मौजूद हैं। यह महोषधि धातु सम्बंधि प्रत्येक रोगोंकी एकही रसायनिक औषध है जिसको क्रिया

पुस्तकालय । रु.

श्रीकेदारखंड भा० टी० ...	७)
श्रीकेदारकल्प भा० टी०	१॥)
श्रीबद्रीमाहात्म्य भा० टी०	१।)
हिमालयन चित्र दर्शन	।॥)
बद्रीशधाम पथदर्शिका	॥)

चित्रावली ।

श्रीबद्रीनारायण केदारनाथ देवप्रयाग, हरिद्वार, इत्यादिक उत्तराखंडके तीर्थोंके रंगीन–मनोरम्य चित्रोंकी १ पुस्तक मू. ॥) मात्र.

श्रीबद्रीनारायण महाराजके सिंहासनकी फोटो छवी, उद्धवनारदादी सहित विचित्र चमकदार फोटो मू० =) दरजन १।) रु०







आपका कृपाकांक्षी,

पं० महेशानन्दशर्मा



श्रीकेदारेश्वरका—मन्दिर.

॥ ऋद्धिसिद्धीश्वराय नमः ॥



श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत-

केदारखण्ड।

(रत्नप्रभाभाषाव्याख्यासहित)

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदक्षरं परं ब्रह्म रूपादिगुणवर्जितम् ॥ नामभेदादिभिर्हीनं निरंजनमविच्युतम् ॥ २ ॥ कीदृशं तत्त्वरूपं

दोहा-भाल बालविधु उरग उर, कटि गजेन्द्र शुभ छाल।
कामेश्वर मंगल भवन, मंगल करहु विशाल ॥ १ ॥

नारायण, नर और नरोत्तम, देवी, सरस्वती अथच व्यासजी महाराजको नमस्का करके जय शब्दका उच्चारण करै, अथवा जय पाठ करै ॥ १ ॥ सूतजी महाराजसे ऋषियों प्रश्न किया—जिसका कभी ह्रास नहीं होता जिसके विषें रूप आदिका व्यवहार नहींहै, ज नामके भेद आदिसेभी रहितहै, जो निरंजन और अच्युत परब्रह्महै ॥ २ ॥ उसका वास्त विक तत्त्वरूप क्या है, मनुष्योंको उसकी प्राप्ति किसप्रकारसे होसक्तीहै ? हे परमकृपालु

१ " अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादि शास्त्राणि शिवधर्मा भारत ॥ कार्ष्णश्च पञ्चमो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम् । सौराश्च धर्मा राजेन्द्र मानवोक्त महीपते ॥ जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ "

अर्थ—अठारह पुराण, रामचरित (रामायण) विष्णुधर्म शिवधर्म और सर्वधर्म आ धर्मशास्त्र पंचम वेदसंज्ञक महाभारत और मन्वादि स्मृतियोंका हे राजन् ! जय न विद्वानोंने प्रतिपादन कियाहै ॥

हि कथं प्राप्येत मानवैः ॥ तदस्माकं महाभाग वद सूत कृपा-
न्वितः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे ये संति श्रोतु-
मिच्छवः ॥ यदाह भगवान्पुत्रो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ४ ॥
वसिष्ठो मुनिशार्दूल अरुन्धत्यै तपोधनाः ॥ तद्वै संप्रति वक्ष्या-
मि स्वर्गीयं मोक्षदायकम् ॥ ५ ॥ एकदारुंधती विप्रं पप्रच्छ
भक्तितत्परा ॥ ६ ॥ अरुंधत्युवाच ॥ भगवन्मुनिशार्दूल त्वमेव
मम देवता ॥ सर्वज्ञोऽसि किल प्राज्ञ वद किंचिच्छुभावहम् ॥ ७ ॥
अक्षरं यत्परं ब्रह्म यस्मिन्सर्वमिदं ततम् ॥ कथं तज्ज्ञायते लोके
नामादिरहितं मुने ॥ ८ ॥ कथं प्राप्स्यंति चरमे युगे विप्रादयः
परम् ॥ तपोभक्तिविहीनानां कथं कलियुगे गतिः ॥ ९ ॥ इदं कथं
समुद्भूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ किं श्रेयः कर्मणां विप्र कथं ब्रह्मा-
दिकाः क्रियाः ॥ १० ॥ संख्या मन्वंतरादीनां भवमुक्तिकरा-
णि मे ॥ एतत्सर्वं समासेन विप्रायै वद सांप्रतम् ॥ ११ ॥

हे महाभाग ! सूतजीमहाराज ! यह सब आप हमसे वर्णन करिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे मुनियों ! जिनकी श्रवण करनेकी इच्छाहै उन्हें सुनना चाहिये. जो कि, परमात्मा ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् वसिष्ठजीने जो वसिष्ठजी समस्त ऋषियोंमें श्रेष्ठ अथच तपोधन हैं उन्होंने अरुन्धतीसे कहाथा । स्वर्ग और मोक्षतक देनेवाले उसी आख्यानको हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ एक समय भक्तिभावमें तत्पर होकर अरुन्धतीने विप्र (षट्कर्म साधक वसिष्ठजी) से यह प्रश्न किया ॥ ६ ॥ अरुन्धती बोली—हे भगवन् ! आप समस्त महर्षि समाजमें शार्दूल हैं, आपही मेरे देवता और सर्वज्ञ हैं, सो हे प्राज्ञ ! मुझसे मंगलकारी कुछ वृत्तान्त वर्णन करो ॥ ७ ॥ हे मुने ! जो परब्रह्म अक्षर अर्थात् विनाशरहित है, जिसके विषे यह सब जगत् विस्तृत होरहा है अथच जो नाम, रूप आदि उपाधियोंसे रहित है, इस लोकमें उसका ज्ञान किसप्रकारसे होसक्ताहै ॥ ८ ॥ कलियुगके बीचमें ब्राह्मण आदि किस प्रकारसे परमपदको प्राप्त होसकेंगे, जो व्यक्ति तप और ईश्वरकी भक्तिसे विमुखहैं कलियुगमें उनकी गति किस प्रकारसे होगी ॥ ९ ॥ इस चर (मनुष्य आदि जंगम) और अचर (पर्वतादि स्थावर) संपूर्ण संसारकी उत्पत्ति किसप्रकारसे हुई है ? हे विप्र ! सब कर्मोंमें कल्याणकारी कर्म कौनसा है ? ब्रह्मआदि क्रियाओंकी क्या विधिहै ? ॥ १० ॥ मन्वन्तरोंकी संख्या, तथा संसारसे मुक्त करनेवाले कर्म इन सबका संक्षेपसे वर्णन करके मुझ ब्राह्मणीको सुनाओ ॥ ११ ॥

एतत्प्रश्नस्य नान्यत्र ज्ञाता कश्चिन्महामते ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या वसिष्ठो मुनिराट् ततः ॥ दध्यौ क्षणं पुरावृत्तं ज्ञात्वा वै तामुवाच ह ॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु प्रिये पुरा देवीं पृच्छंतीं जगदीश्वरः ॥ उवाच भक्तिसंपन्नां सारात्सारतरं परम् ॥ १३ ॥ परात्मा निर्गुणः शांतो व्यक्ताव्यक्तो निरामयः ॥ निःप्रपंचो निराकारो नित्यानंदो निरीश्वरः ॥ १४ ॥ एक एव त्रिलोकात्मा रूपादिगुणवर्जितः ॥ न तद्रूपं सितं श्यामं कपिशं पिंगलं न च ॥ १५ ॥ न वै रक्तं न वा पीतं चित्रं संकरमेव च ॥ न पाणिपादनेत्राद्यैर्वर्जितो विभुरीश्वरः ॥ १६ ॥ न कर्ता न च भोक्ता च न घ्राता रसवर्जितः ॥ न श्रोता स्पर्शयुक्तो न न मंता न च पाचकः ॥ १७ ॥ रूपं तस्य न जानंति ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ अहमेको महादेवि किंचिज्जानामि तं विभुम् ॥ १८ ॥

क्योंकि, हे महामतिमान् ! इस प्रश्नके तत्त्वको समझनेवाला अन्यत्र कोई नहींहै ॥ सूतजी बोले—अरुन्धतीके यह वचन सुन मुनिराज वसिष्ठजी क्षणभर ध्यानावस्थित होके स्थितरहे, फिर प्राचीन वृत्तान्तको जानकर उनसे कहने लगे ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले—सुनो प्यारी ! पहिले भक्तिसंपन्न पार्वतीने महादेवजीसे प्रश्न कियाथा तब सारकाभी परमसार परमेश्वरने उनसे वर्णन किया ॥ १३ ॥ वोह परमात्मा (मायाजनित सत्वादि) गुण रहित होनेसे निर्गुण, शान्त (ज्ञानदृष्टिसे अवलोकित होनेके कारण) व्यक्त और (लौकिकदृष्टिसे दीखनेके कारण) अव्यक्त है, उसमें कोई विकार अथवा रोग नहींहै, वोह अज्ञानजनित प्रपंच रहित, आकाररहित और नित्य आनन्दस्वरूप है तथा उसका कोई ईश्वर नहीं है ॥ १४ ॥ वोह एक (अद्वितीय) ही त्रिलोकीमें आत्मस्वरूपसे व्याप्तहै, वोह रूपआदि गुणोंसे रहितहै, उसका रूप न श्वेत, न श्याम, न कपिश, न पिंगल ॥ १५ ॥ न लाल और न पीलाहीहै चित्र और संकरभी नहींहै । हाथ पांव और नेत्रादि अवयवोंसेभी वोह रहितहै ॥ १६ ॥ वोह व्यापक और सबका ईश्वर है ॥ वोह कर्मोंका कर्ता और भोक्ताभी नहीं है, सुगन्धि दुर्गन्धके ज्ञानरहित अथच रससेभी रहित अर्थात् जिह्वारहित है, वोह न सुनता और न स्पर्शही करताहै, प्रमाणकरनेवाला और पाचकभी नहींहै ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक जितने देवता हैं वे

१ विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः । २ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

यं वदंति महात्मानं सत्वादिगुणवर्जितम् ॥ अनादिमध्यनिध
सत्तामात्रमगोचरम् ॥ १९ ॥ यं वदंति परब्रह्म शरीरादिविवर्जित
म् ॥ मांसासृङ्मेदरहितं नानारूपमजं परम् ॥२०॥ यद्ब्रह्म ब्रह्मशरी
रादिव्यतिरिक्तो महेश्वरः ॥ पुरुषं सांख्यसूत्रस्य व्याख्यातार
विदुर्बुधाः ॥२१॥ अद्वैतवादिनो यद्वै अदृश्यं सर्वगं प्रभुम् ॥ कृमि
कीटादि यत्किंचित्तत्सर्वं परमेश्वरः ॥ २२ ॥ नैयायिका द्विधाभूत
जीवब्रह्मेति संज्ञितम् ॥ प्रमाणादिपदार्थैर्यद्वेद्यं सर्वेश्वरं विभुम्
॥ २३ ॥ मीमांसकाः कर्मसंज्ञं ब्रह्म प्रोचुर्निरामयम् ॥ यज्ञदे
धर्मविदो वेदनिर्णयपारगाः ॥२४॥ षट्चक्रपरिभेत्तारं ब्रह्मरंध्रक
पाटकम् ॥ शैवाः शिव इति प्रोचुर्वैष्णवा विष्णुनामकम् ॥ २५ ॥
सौराः सूर्यं तु गाणेशा गणेशं शाक्तकाः शिवाम् ॥ सहस्रशिरस
देवमव्ययं पुरुषोत्तमम् ॥ २६ ॥ तदेव परमं ब्रह्म जलात्मा भग
वानजः ॥ यत्रांबुनि महादेवि अपारे चित्रदुर्गमे ॥ २७ ॥ ब्रह्मांड

कोईभी उसके रूपको नहीं जानते. हे महादेवि ! केवल एक मैंही कुछ एक उस विभुके त
को जानताहूं ॥ १८ ॥ जिसे महात्मा सत्व रज और तमोगुणसे रहित, आदि (जन्म) म
(जरा) और निधन (मृत्यु) से रहित केवल सत्तामात्र एवम् अगोचर अर्थात् इन्द्रि
विषयसे परे ऐसा वर्णन करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसको शरीररहित मांस रुधिर और मेदसे
कहतेहैं, जो अनेक रूपधारी अजन्मा परमेश्वर वर्णन किया गया है ॥ २० ॥ जो ब्रह्म
आदिसेभी व्यतिरिक्त महेश्वरहै जिस परमपुरुषको सांख्यसूत्रके व्याख्यानकर्त्ता विद्वान् क
॥ २१ ॥ और अद्वैतवादी जिसको अगोचर और सर्वव्यापक प्रभु कहतेहैं, और उनका
सिद्धान्तहै कि, जितने कृमिकीट आदिहैं उन सबहीको परमेश्वरका स्वरूप जानना चा
॥ २२ ॥ और नैयायिक उस ब्रह्मके दो भेद मानतेहैं, एक जीव दूसरा ब्रह्म. उसे
प्रमाण आदि पदार्थोंसे जानसक्तेहैं ॥ २३ ॥ मीमांसक व्यक्तिगण कर्महीन
कहतेहैं, धर्मके ज्ञाता और वेदका निर्णय करनेमें पारगामी उसे यज्ञस्वरू
॥ २४ ॥ जो कि षट्चक्रका भेदन करनेवाला और ब्रह्मरन्ध्रका कपाटस्वरू
वैष्णव विष्णु ॥ २५ ॥ सौर सूर्य, गाणपत्य गणेश और शाक्त शिवाशक्ति
सहस्र शिरधारी विनाशरहित पुरुषोत्तम ॥ २६ ॥ अजन्मा भगवान्को
चाहिये । हे महादेवि ! अपार अतएव दुर्गम इस अंबुराशिमें ॥ २७ ॥

कोटयो यस्मिन्ननंता ब्रह्मकोटयः ॥ चतुर्मुखस्तु कस्मिंश्चिदष्टा-
स्यः कुत्रचिन्मतः ॥ २८ ॥ कुत्रचिद्विंशतिमुखस्त्रिंशदास्यस्तु
कुत्रचित् ॥ ब्रह्माण्डं प्रति ब्रह्मादित्रयो देवाः सवासवाः ॥ २९ ॥
चतुर्मुखादयस्तत्र वर्तंते सुरवंदिते ॥ समुद्राः सरितश्चैव पर्वतास्त-
त्र तत्र ह ॥ ३० ॥ उन्मज्जंति निमज्जंति जलब्रह्मण्यनेकशः ॥
तथा शतमुखः कस्मिन्मुखानां द्विशतं तथा ॥ ३१ ॥ त्रिशता-
स्यस्तु कस्मिंश्चित्सहस्रास्यस्तु कुत्रचित् ॥ तथायुतमुखः कुत्र
तथानंतमुखस्तथा ॥ ३२ ॥ इति तद्ब्रह्म विज्ञेयमनंतं सर्वतोमु-
खम् ॥ तदेव सर्वरूपेण ब्रह्मांडेषु प्रवर्तते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कांदे
केदारखंडे ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नन्तकोटि ब्रह्महैं । कहीं चतुर्मुख ब्रह्मा, कहीं अष्टमुख ॥ २८ ॥ कहीं वीसमुख और हीं तीसमुखके ब्रह्महैं. हे देवपूजिते भगवति ! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें इन्द्रसहित ब्रह्मा विष्णु हेश यह देवता विद्यमानहैं ॥ २९ ॥ प्रत्येकही ब्रह्मांडमें समुद्र नदियें और पर्वत ॥ ३० ॥ न जलरूप ब्रह्ममें अनेकों उछलते डूबतेहैं । कहीं शतमुख, कहीं दोसौमुख ॥ ३१ ॥ हीं तीनसौमुख और कहीं सहस्रमुख, कहीं दशसहस्रमुख और कहीं अनगिन्त मुखधारी उस ह्मको इसप्रकार अनन्त ॥ ३२ ॥ और सर्वतोमुख जानना चाहिये और वोही अनेकरूप ारणकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें विद्यमानहै ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे मुरादाबाददैशिकव्रजरत्नभट्टाचार्यकृतायां भाषाव्याख्या-
यां ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्रीशिव उवाच ॥ तदेतत्परमं ब्रह्म द्रवरूपं महेश्वरि ॥ गंगाख्यं
यत्पुण्यतमं पृथिव्यामागतं शिवे ॥ १ ॥ गां गतेति ततो गंगा
नाम तस्या बभूव ह ॥ २ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव

श्रीमहादेवजी बोले–हे महेश्वरि ! वोही परब्रह्म जलरूपहो परम पवित्र हो गंगा जल-रूपसे भूमिके ऊपर अवतीर्ण हुआहै ॥ १ ॥ वोह स्वर्गलोक अथच समस्त दिग्भागमें ग-अतएव उसका गंगानाम प्रसिद्ध हुआ ॥ २ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं–हे देवाधिदेव महादेव

धन्यास्मि कृतपुण्यका ॥ यस्यास्त्वमीदृशो भर्ता सर्वविद्भवा
प्रभो ॥ ३ ॥ यद्ब्रह्म गादितं देव त्वया ब्रह्मांडवाह्यतः ॥ यस्मि
नेककोटीनां कोटयो ब्रह्मदेहकाः ॥ ४ ॥ तद्वदस्व कथं देव प्रा
भूमौ निरामयम् ॥ किमर्थं स्त्रीत्वसंप्राप्तिर्देवस्य परमात्मनः
॥५॥ अनंतकोटयः संति ब्रह्माण्डानां सहस्रशः ॥ तेष्वंडेषु महा
देव स्थितिः का वा सुराश्च के ॥ ६ ॥ एतत्सर्वं समासेन ब्रह्माण्डा
नां तु विस्तरम् ॥ भक्तास्मि नितरां देव परं कौतूहलं हि मे ॥७
श्रीशिव उवाच ॥ शृणु देवि समासेन यत्पृष्टं हिमवत्सुते ॥ उ
त्पत्तिं द्रवरूपस्य श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ ८ ॥ पुरा प्रथमे
सर्गे जगत्यंबुमये सति ॥ शय्यायां शेषसंज्ञायां सुष्वाप भगवा
न्प्रभुः ॥ ९ ॥ नष्टे भूते तु त्रैलोक्ये सह स्थावरजंगमे ॥ कल्पांते
पुनरादौ स परमात्मा सनातनः ॥ १० ॥ सिसृक्षुः सर्वलोकान्
चिंतयामास पार्वति ॥ तस्य चिंतयतो देवि कमलं नाभित

मैं अनेक पुण्योंकी करनेवालीहूं अतएव मेरा अहोभाग्यहै. हे विभो ! इसीसे तौ तुम स
मुझे प्राणपति प्राप्त हुएहो ॥ ३ ॥ हे देव ! जिन्हें तुमने समस्त ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त ब्रह्मकी
कियाहै अथच जिसके विषे अनेककोटि देहधारी विद्यमानहैं ॥ ४ ॥ उन परब्रह्मकी भू
ऊपर प्राप्ति किसप्रकारसे हुई, एवम् परमदेवको स्त्रीत्व प्राप्त होनेका क्या कारण हुआ ॥ ५
अनेककोटि और सहस्रों ब्रह्माण्डहैं, उन समस्त ब्रह्माण्डोंमें हे महादेव! क्या स्थिति (सत्
और कौन देवताहैं ॥ ६ ॥ यह सब संक्षिप्तरीतिसे तथा ब्रह्मांडोंका विस्तार मेरे प्रति व
करो, क्योंकि हेदेव ! मैं तुम्हारी भक्तहूं, और मुझे परम कौतूहलकी प्राप्ति होरहीहै
॥ ७ ॥ महादेवजी बोले—परमात्मा भगवानकी जलरूपसे उत्पत्तिका जो तुमने सम
(संक्षेप) से पूछा सो हे गिरिराजकुमारि देवि ! सुनो ॥ ८ ॥ पहिली पहल स
प्रथम सृष्टिके समय जब कि, यह समस्त संसार जलमय होरहाथा, उससमय सर्व
क्तिमान् भगवान् शेषजीकी शय्याके ऊपर शयन कररहेथे ॥ ९ ॥ स्थावर और जंगम
त्मक इस अखिल जगतके अर्थात् त्रिलोकीके विनष्ट होजानेपर जब कल्पका अन्त होजाने
फिर सबसे प्रथम अविनाशी परमात्माकी ॥ १० ॥ संपूर्ण लोकोंकी रचना करनेके लि
इच्छा हुई, हे पार्वति ! तब भगवान् विचार करने लगे, विचारते २ ही उनकी नाभिसे ए

प्रभोः ॥ ११ ॥ जातं तस्मिन्महाभागे ब्रह्मा जातश्चतुर्मुखः ॥
जाते तस्मिन् महाविष्णुरुवाच च पुनःपुनः ॥ १२ ॥ लोकान्
सृज सृजेत्याह ब्रह्मन् लोकपितामह ॥ श्रुत्वैतद्वचनं तस्य तुष्टाव
परमेश्वरम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते सुरमुख्याय निर्लेपाय
महात्मने ॥ आदिमध्यान्तहीनाय सर्वस्य जगतः कृते ॥ १४ ॥
न ते रूपं महात्मानो रुद्रा वा त्रिदिवौकसः ॥ न ते क्रियां न ते
क्रीडां न ते ज्ञानं न वै विदुः ॥ १५ ॥ बालकोहं बालिशोहमज्ञा-
नान्मूढचेतनः ॥ कथं तव महिम्नो हि पारं यास्यामि दुर्गमम् ॥
॥ १६ ॥ कुत्र ते पाणिपादादि कुत्र ते नासिका शिरः ॥ कुत्र ते
स्थितिरुत्पत्तिर्जाने नो भगवन्प्रभो ॥ १७ ॥ नमस्तुभ्यं नमस्तु-
भ्यं नमस्तुभ्यं नमामि ते ॥ नमामि ते नमस्काराः शतशोथ स-
हस्रशः ॥१८॥ यद्ब्रह्म गदितं लोके जलरूपं त्वमेव हि ॥ प्रीणा-
सि तेन रूपेण जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १९ ॥ यद्ब्रह्म पृथिवी
भूत्वा लोकान् धारयसि प्रभो ॥ तस्मै ते शतशो देव नमोऽस्तु

कमल ॥ ११ ॥ उत्पन्न हुआ, और उसमेंसे चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रादुर्भूत हुए, उनके प्रगट
होतेही महाविष्णु वारंवार यों कहने लगे ॥ १२ ॥ हे लोकपितामह ब्रह्मन्! तुम लोकोंकी
रचनाकरो, यह सुन ब्रह्माजी अधोमुखहो सनातन भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥
ब्रह्माजी बोले—हे नाथ! आप समस्त देवताओंमें मुख्य, निर्लेप अर्थात् मायाजालके संपर्कसे
पृथक्, महात्मा, जन्म जरा मरणरहित और समस्त जगत्के निर्माण कर्त्ताहैं, अतएव आपको
नमस्कारहै ॥ १४ ॥ आपके रूप किया, क्रीड़ा और ज्ञानको महात्मागण रुद्र और देवता
कोईभी नहीं जानते ॥ १५ ॥ मैं केवल बालकही नहीं किन्तु मूर्खभी हूं, अज्ञानवशात् मेरी
चेतना नष्ट होगईहै, ऐसी दशामें आपकी दुर्गम मायाके पारको किसप्रकार प्राप्त होसक्ताहूं ॥
॥ १६ ॥ आपके हाथ पैर कहांहैं, और कहां आपकी नासिका तथा शिरहै, कहां आपकी
स्थितिहै और कैसे आपकी उत्पत्ति हुई है, हे प्रभो! मैं यह कुछभी नहीं जानताहूं ॥ १७ ॥
अतएव मैं वारंवार आपको नमस्कार करताहूं, तथा सैकडों सहस्रों नमस्कार आपको अर्पण
करताहूं ॥१८॥ जो संसारमें जलरूप ब्रह्मके नामसे कीर्त्तन किये गये हैं, अवश्य वे आपही हैं
उसी अपने जलरूपसे संपूर्ण चराचर जगत्को पवित्र करो ॥ १९ ॥ हे प्रभो! आप ब्रह्मरूपसेही
साक्षात् पृथिवी बनकर संपूर्ण लोकोंको धारण करते हैं, अतएव हे हर! हे ईश्वर! आपको सह

परमेश्वर ॥ २० ॥ तेजोमयं तु यद्रूपं रविचंद्रग्रहादिकम् ॥ तं नाशयसि प्राज्ञ सर्वस्य जगतः प्रभो ॥ २१ ॥ यद्ब्रह्म वायुरूपे सर्वेषां प्राणसंज्ञकः ॥ त्वं पालयासि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २२ ॥ आकाशाख्यं तु यद्ब्रह्म बाह्यतः संस्थितः सदा ॥ शब्दानुकूलो भगवान् मायया बहुलीभवन् ॥ २३ ॥ अखंडोयं तु यः कालः कलाकाष्ठादिनामकः ॥ त्वत्स्वरूपमहं मन्ये व्यक्तो नित्यः सनातनः ॥ २४ ॥ पूर्वापरादि भेदैस्त्वं दिगात्मा सर्वभावनः ॥ आत्मा सर्वगतः स्थाणुर्जीवब्रह्मेति संज्ञितः ॥ २५ ॥ इंद्रियाणां विमोहाय विषया रश्मयः स्मृताः ॥ नमो विषयसंयोगैर्नीयसे सुरनायकः ॥ २६ ॥ निर्मलो निर्विकारस्त्वं कार्यकारणवर्जितः ॥ यथा दीपो निवातस्थो नेंगते त्वं तथा स्मृतः ॥ २७ ॥ कारणं न च कार्यस्त्वं प्रकृत्या भिन्न उच्यसे ॥ प्रकृत्या सहसंयोगात्करणं कारणं भवान् ॥ २८ ॥

सौंवार नमस्कारहै ॥ २० ॥ सूर्य, चन्द्रमा और तारामण्डल आदि जो यह तेजोमय स्व इन्हीके द्वारा हे प्राज्ञ ! आप सब जगतका अन्धकार नष्ट करतेहैं ॥ २१ ॥ जो ब्रह्म वा रूपसे सबके शरीरमें प्राणनामसे व्यवहृतहै वोह तुम्हींहो, और स्थावर तथा चर प्राणियों पालनकर्त्ताभी तुम्हींहो ॥ २२ ॥ अथ च आकाश नामक जो ब्रह्महै जो बाहर (भीतर सर्वत्र व्याप्तहै, वोहीं भगवान् शब्दानुकूल होकर अपनी मायासेही विस्तृत होतेहैं ॥ २३ हेनाथ ! यह अखंडकाल जो कला काष्ठा आदिसंज्ञाओंसे व्यवहृत होता है मैं इसेभी आपही स्वरूप जानताहूं क्योंकि आप सनातन और अव्यक्तहैं ॥ २४ ॥ आपही पूर्व आदि भेदों दिशास्वरूप, तथा सत्तारूपसे सबमें व्याप्तहैं, सर्वव्यापक आत्माभी आपहीहैं एवं जीव ब्रह्म संज्ञाभी आपहीकी कीर्त्तन करी गईहैं ॥ २५ ॥ इन्द्रियोंको मोहित करने लिये यह विषय प्रकाशमान पदार्थ वर्णन करेगयेहैं, (ज्ञान) इन्द्रियोंके संयोगसेही आ प्राप्तकिये जासक्तेहैं सो हे सुरराज ! आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ आ विकाररहित अतएव निर्मलहैं, कार्यकारणसे शून्यहैं, जैसे निर्वात स्थानमें स्थितहु दीपक कुछभी चेष्टा नहीं करताहै ऐसेही आपभी सब चेष्टाओंसे रहितहैं ॥ २७ ॥ तुम का कारण कुछभी नहीं, किन्तु प्रकृतिसेभी भिन्नहो, और प्रकृतिके साथ संयोग होनेसे आप कार

नमो नमस्ते शतशो देवदेव जगत्पते ॥ असमर्थौ भवान् मेद्य
सृष्टिं कर्तुं कथं क्षमः ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भव प्रजापति-
र्ब्रह्मन्सर्वज्ञत्वं ददामि ते ॥ सर्वलोकस्य कर्त्ता त्वमायुः सर्वाधिकं
तव ॥ ३० ॥ प्रीतोस्मि वच्मि ते प्रीत्या स्तुत्या च कृपया
त्वया ॥ परमन्यं प्रयच्छामि तद्ब्रूहि वरमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
अहं सृष्टोस्मि भवता लोकं स्रक्ष्यामि वै प्रभो ॥ सर्वज्ञत्वं
मया लब्धं किमन्यद्वरयामि ते ॥ ३२ ॥ वरार्हो यद्यहं देव वरं
चेद्दातुमिच्छसि ॥ त्वया समग्रभावेन स्थातव्यमवनीतले ॥
॥ ३३ ॥ शृणु कर्माणि भवता सृष्टोस्मि भगवन् प्रभो ॥ पापि-
नश्चापि स्रष्टव्याः पुण्यात्मानस्तथैव च ॥ ३४ ॥ तेषां मुक्ति-
र्भवेद्यस्मात्तत्कुरुष्व महाप्रभो ॥ अस्माभिरपि यन्नित्यं ध्येयो-
सि पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥ तदाज्ञापय देवेश सृष्टिसंहारकारक ॥

जाते हैं ॥ २८ ॥ हे देवाधिदेव ! हेजगन्नाथ ! मैं वारंवार आपको सैकडों नमस्कार कर-
ताहूं । जब मैं आपहीके जाननेको असमर्थहूं तौ फिर सृष्टिके रचनेकी मुझमें शक्ति कैसे होस-
की है ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् बोले । हेब्रह्मन् ! तुम प्रजापति होओ, हम तुम्हें सर्वज्ञत्व
अर्थात्-सब कुछ जाननेकी शक्ति देतेहैं, तुम सब लोकोंके कर्ताहो अतएव तुम्हारी
आयुभी सबसे अधिक होगी ॥ ३० ॥ मैं तुम्हारी प्रीति को देख और स्तुति को सुनने
से कृपापूर्वक बड़ा प्रसन्न हुआहूं, परन्तु मैं तुम्हें अन्य वर देना चाहताहूं सो तुम मुझे बताओ
कि कौनसा वरदूं ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले । हे नाथ ! आपने मुझे उत्पन्न किया अब मैं
संसारकी रचना करूंगा और मुझे सर्वज्ञत्वकी प्राप्ति हुई, भला और कौनसा वर मैं आपसे
मांगूं ॥ ३२ ॥ हे देव ! यदि मैं वर पानेके योग्यहूं, और मुझे वर देनेके लिये आपकी
इच्छा है तौ आपको सर्वतो भावसे भूमिके ऊपर स्थितरहना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे भगवन्
अब कर्मोंको सुनिये हे प्रभो ! आपने मुझे रचाहै, इसीप्रकार पापीजन और पुण्यात्माभी रचन
किये जावेंगे ॥ ३४ ॥ उनव्यक्तियोंकी जिसप्रकारसे मुक्तिहो, सो आपको करना चाहिये
क्योंकि-हे पुरुषोत्तम ! हमारे उपास्य देवताभी आपही हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभु ! आपही सृष्टि
का संहार करनेवाले हैं, इसलोकमें मायामोहसे व्याप्तहुए मनुष्यगण उत्पन्न होंगे ॥ ३६

वेष्यंति नरा लोके मायामोहेन संवृताः ॥ ३६ ॥ त्वां तत्त्वतं
वेत्स्यंति पुण्यापुण्यसबंधनाः ॥ स्वल्पेनैव ह्युपायेन मुक्ति
ं वदस्व मे ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य
णः स्वांगजन्मनः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मेघगंभीरया गिरा ॥
॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यगुक्तं त्वया ब्रह्मन्कर्तव्यं त्व
द्वचो मया ॥ इंद्रानुजो भविष्यामि वामनत्वमुपागतः ॥ ३९
अस्मिन्नेव तु काले तु बलिर्नाम भविष्यति ॥ ऐंद्रं पदं तु संप्रा
यतिष्यति महामखम् ॥ ४० ॥ तस्मिन्नेव महायज्ञे छलयिष्या
मि वै बलिम् ॥ पुनरेकेन लोकेश भूतलं सकलं तदा ॥ ४१
अनंतकोटिब्रह्मांड़ा ईदृशा अधिकास्तथा ॥ तरंगभंगिसंलोल
विचरंति महामते ॥ ४२ ॥ द्रवरूपं स एवाहं नित्योस्मि सुरना
यकः ॥ तेन वै तत्र जातेन रंध्रेण सहसा तु तत ॥ ४३ ॥ द्रवरू
पा तु तद्ब्रह्मधारा ब्रह्मसमुद्भवा ॥ आयास्यति महाभाग स्मृता

ुण्यअपुण्यके बन्धनमें बद्ध होनेके कारण वे आपके तत्वको नहीं जान सकेंगे सो उनके लि
कोई ऐसा मुक्तिका मार्ग बताओ जो अल्पायाससेही ठीक होसके ॥ ३७ ॥ ईश्वर बोले ।
नही शरीरसे जिनकी उत्पत्ति हुई है ऐसे ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर मेघकी गर्जना
सदृश गम्भीर और मधुरवाणीके द्वारा विष्णु भगवान् यौं कहने लगे ॥ ३८ ॥ श्रीभगव
कहा । हे ब्रह्मन् ! तुमने ठीक कहा, मैं तुम्हारे वचनोंका पालन अवश्य करूंगा, वाम
रूप धारणकर इन्द्रका अनुज बनूंगा ॥ ३९ ॥ उसी समय एक बलिनाम दैत्य राजा हो
ोह इन्द्रपदकी प्राप्तिके लिये विशाल यज्ञका साधनकरके यत्न करेगा ॥ ४० ॥ उसी मह
यज्ञमें मैं अवश्य राजा बलिको छलूंगा, हे लोकेश ! उस समय केवल एकही चरणसे सम
तभूमिको व्याप्त करलूंगा ॥ ४१ ॥ हे महामति ! अनेक कोटि ब्रह्माण्ड तरंगोंके भंगसे वि
ठत हुए विचरते दृष्टिगत होंगे ॥ ४२ ॥ वोह मैंही निखिल देवताओंका स्वामी जल
ाऊंगा, नखसे उत्पन्न हुए उसी ॥ ४३ ॥ जलके द्वारा ब्रह्मजनित ब्रह्मधारा प्रादुर्भूत होगी
महाभाग ! वोह धारा भूमंडलके ऊपर अवतीर्ण होगी, उसका स्मरण करनेसे मोक्षकी प्रा

१ वामयति याजयाति मदमिति वामनः, वम्—उद्गारे भ्वादिःणिच् ल्युट् ल्यु वा

मोक्षप्रदायिनी ॥ ४४ ॥ गां गमिष्यति मे धारा ततो गंगा भवि-
ष्यति ॥ एकेन तु विभागेन स्वर्गमेष्यामि पद्मज ॥ ४५ ॥ पुनः
पातालमार्गं वै भूत्वा भोगवती नदी ॥ तदा नाम्ना त्रिपथगा
स्मरणात्पापनाशिनी ॥ ४६ ॥ तदेव मे परं रूपं सर्वकामार्थ-
सिद्धिदम् ॥ नरा दर्शनमात्रेण भविष्यंति विकल्मषाः ॥ ४७ ॥
धन्यास्त एव ये मर्त्याः सदा मद्भक्तितत्पराः ॥ तेषां मुक्तिर्महा-
भाग सुलभा करसंस्थिता ॥ ४८ ॥ न योगानां शतैर्देव न त-
पोभिर्न केनचित् ॥ संतुष्टोस्मि तथा ब्रह्मन्यथा तज्जलपूज-
नात् ॥ ४९ ॥ एतत्तवानुरोधेन सर्वं संपादयाम्यहम् ॥ मुक्ति
कारणमेतस्मान्नान्यदस्ति महामते ॥ ५० ॥ ईश्वर उवाच ॥
इत्युक्का भगवान् विष्णुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ सोपि ब्रह्मा जगत्सर्वं
चकार स चराचरम् ॥ ५१ ॥ सर्वं तत्कृतवान्देवः प्रतिज्ञातं तु य-
त्पुरा ॥ सेयं धारा महादेवि गंगायाः पावना परा ॥ ५२ ॥ भक्त्या
मया धृता शीर्षे सर्वकल्मषनाशिनी ॥ एतत्सर्वं समासेन कथि-

नी ॥ ४४ ॥ उसीमेंसे मेरी धारा भूमीके ऊपर जो गमन करेगी इसीसे उसका गंगानाम
गा । हे कमलयोनि ! एक धाराके द्वारा तौ स्वर्गको गमन करूंगा ॥ ४५ ॥ इसके अन-
र भोगवती नदी बनकर पाताल लोकको यात्रा करूंगा, इसप्रकार तीन मार्गोंके द्वारा तीनों
कोंमें गमन करनेके कारण उस धाराका नाम त्रिपथगा होगा, इसका स्मरण मात्र करनेसे
पोंका नाश होगा ॥ ४६ ॥ मेरा वोही जलरूप समस्त कामनाओं और अर्थोंकी सिद्धिका
वाला है, जिसके दर्शन मात्रसे मनुष्योंके पापोंका विनाश होजायगा ॥ ४७ ॥ उन मनु-
ोंको धन्यहै जो मेरी भक्तिमें तत्पर होतेहैं, हे महाभाग ! उन व्यक्तियोंके हाथमें मोक्ष
प्त रहताहै ॥ ४८ ॥ मैं सैकड़ों योगों और तपोंसे तथा अन्य किसी उपायसेभी वैसा
न्न नहीं होताहूं जैसा कि गंगाजलके पूजनसे प्रसन्न होताहूं ॥ ४९ ॥ तुम्हारेही अनुरोध-
यह सब कुछ मैं सम्पादन करूंगा, हे महामति ! इससे अधिक और कोई उपाय मुक्ति
रनेवाला नहीं है ॥ ५० ॥ महादेवजी बोले । यौं कहकर विष्णु भगवान् वहांही अन्तर्धान
गये, फिर उन ब्रह्माने चराचर समस्त संसारकी रचना करी ॥ ५१ ॥ विष्णु भगवानने
जो कुछ करनेके लिये प्रथम प्रतिज्ञा करीथी उसका पालन किया, सो हे महादेवि ! यह
ही परम पवित्र गंगाजीकी धारा विद्यमान है ॥ ५२ ॥ समस्त पापोंका विनाश करनेवाली

तं ते महेश्वरि ॥ ५३ ॥ तज्जलं तु परं ब्रह्मधारा स्त्रीयं महेश्वरि यस्या दर्शनमात्रेण सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ श्रुत्वेमां तु कथां दिव्यां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ब्रह्माण्डानां स्थितिं देवि शृणुष्व सुसमाहिता ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीगंगोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

उसी गंगाको मैंने अपने शिरके ऊपर धारण किया है, हे महेश्वरि ! यह संपूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ॥ ५३ ॥ वोह जल साक्षात् परब्रह्म स्वरूप है, हे परमेशानि ! यह धारा उसीकीहै, इस धाराका केवल दर्शन मात्र करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ५४ ॥ इस अलौकिक कथाका श्रवण करनेसे संपूर्ण पापोंका विनाश होजाताहै हेभगवति ! अब तुम चित्तको एकाग्र करके ब्रह्माण्डोंकी स्थितिका श्रवणकरो ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां गंगोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

ईश्वर उवाच ॥ अनंतकोटयः संति ब्रह्माण्डानां महेश्वरि ॥ वक्तुं न शक्यते देवि स्थित्वा कोटियुगैरपि ॥ १ ॥ किं तु वच्मि परं किंचिद्यज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ॥ अस्मिन्नष्टमुखो ब्रह्मा देवास्तत्र महाप्रभाः ॥ २ ॥ एकादश समुद्राश्च द्वीपास्तत्संख्यका मताः ॥ लोहद्वीपस्तु प्रथमस्ताम्रद्वीपस्ततः परः ॥ ३ ॥ ततस्त्रपुमयो द्वीपो रजतस्य ततः स्मृतः ॥ स्वर्णद्वीपस्तथा ख्यातः पंचमं षष्ठं शृणु ॥ ४ ॥ नीलद्वीपस्तथा पद्मरागो गोमेदसंज्ञकः ॥ चंद्रकां

महादेवजी बोले । हे महेश्वरि ! अनेक कोटि ब्रह्माण्डहैं और उनकी स्थितिको कईकरोड़ युगमेंभी वर्णन करके पार नहीं पासक्ताहै ॥ १ ॥ तथापि यत् किंचित् मैं वर्णन करताहूं जिसे जाननेसे सर्वज्ञता प्राप्त होसक्ती है, इसमें अष्टमुखी ब्रह्माजी और परमप्रभावशाली देवगण स्थितहैं ॥ २ ॥ ग्यारहद्वीप और इतनेही समुद्रहैं, प्रथम लोहद्वीप, दूसरा पित्तलद्वीप है ॥ ३ ॥ फिर ताम्रद्वीप, चतुर्थद्वीप रजतमयहै, पंचम सुवर्णद्वीप है और अब षष्ठ द्वीपका वर्णन सुनो ॥ ४ ॥ नील (म) द्वीप पद्मराग और गोमदसंज्ञकद्वीप चन्द्रकां

तस्तथासूर्यकांतो नवम उच्यते ॥ ५ ॥ दशमः पुष्परागाख्यो ज्योतिरेकादश स्मृतः ॥ एते एकादशा द्वीपाः पुण्यकर्मसु गोचराः ॥ ६ ॥ तत्तद्वर्णाः समुद्राश्च कोटियोजनविस्तृताः ॥ तत्प्रमाणं हि द्वीपानां समुद्राणां प्रकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥ ज्योतिर्द्वीपो महाविष्णो-र्ज्योतीरूपस्तु तत्र हि ॥ उपास्यमानो देवैर्हि सर्वदा वै महाप्रभोः ॥ ८ ॥ एवं सर्वेषु देवेशि ब्रह्मांडेषु च संस्थितिः ॥ यथाधिकमुखो ब्रह्मा तथाधिकतमाः सुराः ॥ ९ ॥ द्वीपास्तथाधिका ज्ञेयाः समुद्राः सरितस्तथा ॥ सर्वेषु तेषु भगवान् विश्वात्मा विश्वभावनः ॥ १० ॥ ब्रह्मरूपेण सृजति पाल्यते विष्णुरूपिणा ॥ रुद्ररूपेण भगवान् लयं नयाति सर्वशः ॥ ११ ॥ स्वरूपं च निरूपं च तस्य नो ज्ञायते शिवे ॥ अरूपिणो रूपमेतत्कर्तुं कार्यमयं तथा ॥ १२ ॥ नमस्या एव सर्वेषां देवानां च नृणां तथा ॥ न तु कश्चित्तु देवस्य रूपज्ञाता हि कुत्रचित् ॥ १३ ॥ ध्येयध्यात्रादिभेदेन ज्ञेयज्ञात्रादिकैः शुभम् ॥ भेदैरनेकरूपोसौ नानाजात्यादिभि-

एवं नवम सूर्यकान्त द्वीप वर्णन किया गया है ॥ ५ ॥ दसवां पुष्परागसंज्ञक और ग्यारहवां ज्योति इस प्रकारसे वर्णन कियेहैं, यह ग्यारह द्वीप पुण्यात्माओंहीको दृष्टिगत होते हैं ॥ ६ ॥ जिन २ वर्णोंके वे द्वीपहैं उन्ही वर्णोंके और करोडों योजनपर्यन्त विस्तृत समुद्रभी वहां हैं, और उन द्वीपोंका प्रमाणहीसे वर्णन कियागयाहै ॥ ७ ॥ ज्योतिनामक जो द्वीपहै उसमें महाविष्णुका ज्योतिरूप विराजमान रहताहै, एवं उन महाप्रभुकी सबदेवता सदैवकाल उपासना करतेहैं ॥ ८ ॥ हे देवि ! इसप्रकार सब ब्रह्माण्डोंमें स्थितिहै, और जैसे २ अधिक मुखवाले ब्रह्माहैं उसी क्रमसे देवताभी अधिक २ हैं ॥ ९ ॥ इसीप्रकार बहुतसे द्वीप समुद्र और नदियेभी हैं, विश्व-भावन भगवान् उन सबमें ॥ १० ॥ ब्रह्मा बनकर सृष्टिकी रचना, विष्णुरूपसे पालन अथ च रुद्ररूपसे सम्पूर्णतया पृथिवीका संहार करतेहैं ॥ ११ ॥ हे कल्याणकर्त्रि ! उन भगवान्के स्वरूपका निरूपण किसी प्रकारसेभी जाना नहीं जाताहै, यद्यपि उसका कोई रूप नहींहै परन्तु सांसारिक कार्योंका विधान करनेके लिये उद्यत होना येही उसके स्वरूपका उद्बोध कराताहै ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण देवता और मनुष्य यह सभी उसे प्रणाम करतेहैं, परन्तु–परमेश्वर के रूपको जाननेवाला कहींभी कोई नहींहै ॥ १३ ॥ ध्यान करनेके योग्य या ध्यान करने वाला, जाननेके योग्य अथवा जाननेवाला इत्यादि भेदोंसे वोह शुभोदय परमेश्वर अनेक रूपक

युतः ॥१४॥ स वै ब्रह्मा स वै रुद्रः स वै विष्णुः प्रजापतिः ॥ कार्य
कारणं चैव स एव भगवानजः ॥१५॥ इति श्रीस्कान्दे केदार
ब्रह्माण्डनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

प्रतीत होताहै, एवं अनेक प्रकारकी जातियोंसे युक्तहै ॥ १४ ॥ वोही प्रजापति ब्रह्मा रुद्र (शिव) और वोही विष्णुहै, अथ च कार्यकारण रूपभी वोही अजन्मा परमेश्वरहै ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां ब्रह्माण्डनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव सर्वशास्त्रविशारद ॥ कथमे
त्समुद्भूतं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥ देवा मनुष्याः पश
यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ कथमंडस्य चोत्पत्तिः सर्वं विस्तरतो वद
॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्टोहं त्वया शिवे
आदिसर्गमहन्तावत्कथयामि समासतः ॥ ३ ॥ स्वयंभूर्भगवा
विष्णुः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ आदौ ससर्ज भगवान् पयांसि
महात्मवान् ॥ ४ ॥ तासु वीर्यं त्वया सृष्ट्वा नारायणमगात्ततः
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥५॥ अयनं तस्य ता
पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ हिरण्यवर्णमभवत्तदंडमुदकेस्थि

श्रीपार्वती बोलीं । हे देवाधिदेवमहादेव ! आप समस्त शास्त्रोंके जाननेमें बड़े च सो यह बताइये कि—चर और अचररूप यह समस्तसंसार किस प्रकारसे उत्पन्न हु ॥ १ ॥ देवता मनुष्य पशु यक्ष राक्षस और किन्नर ये सब किसप्रकार प्रादुर्भूत हुए ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति जिसप्रकारसे हुईहो यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥ महादे बोले—हेकल्याणकारिणी सुन्दरि ! जो तुमने हमसे पूछा उसे सुनो, अब पहिले मैं आदिस का संक्षेपसे वर्णन करताहूं ॥ ३ ॥ जब स्वयंभू विष्णु भगवान्की यह इच्छा हुई विविधप्रकारकी प्रजाकी रचना करूं तब सबसे पहिले महात्मा भगवान्ने जलकी रचना ॥ ४ ॥ उनके विषें आप वीर्यकी रचनाकरके नारायणको प्राप्त हुए, जलको नारा कियाहै, और वोह जल नरसे प्रादुर्भूत हुआहै ॥ ५ ॥ अथ च उसमें गमन करनेका अयनहै इसीकारण अर्थात् "नारा" जलमें "अयन" सत्तारूपसे गमन करनेके

तम् ॥६॥ जज्ञे तत्र स्वयं देवः स्वयंभूरितिशब्दितः ॥ हिरण्यवर्णं च तदा उषित्वा प्रतिवत्सरम् ॥७॥ द्विधाकरोत्तदंडं तु दिवं भुवमथापि वा ॥ खंडयोस्तु तयोर्मध्ये ह्याकाशमकरोत्प्रभुः ॥ ८ ॥ परिप्लुतां जले पृथ्वीं दिशो वै दशधाकरोत् ॥ तत्र प्रथमतः कालं मनो वाचं ततः परम् ॥ ९॥ कामं क्रोधं रतिं चैव तद्रूपां सृष्टिमुत्सृजन् ॥ मरीचिरत्रिरंगिराः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ १० ॥ वसिष्ठश्च तथाख्यातो ब्रह्मणो मानसात्मजाः ॥ एत एव महाभागे ब्राह्मणा ब्रह्मतेजसः ॥ ११ ॥ नारायणस्वरूपाणां सतानां ब्रह्मजन्मनाम् ॥ अनंतरं ततो ब्रह्मा रोषाद्रुद्रं समासृजत् ॥ १२ ॥ ततः सनत्कुमारं वै पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ सप्तैते जनयंतिस्म प्रजा रुद्राश्च पार्वति ॥ १३ ॥ स्कंदः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ॥ तेषां सप्त महावंशास्ते वै देवगणान्विताः ॥ १४ ॥ प्रजावंतः क्रियावंतो

गवान्का नारायण यह नाम वर्णन कियागयाहै । और जलके बीचमें स्थितहुआ वोह अंड सुवर्णके सदृश होगया ॥ ६ ॥ उसमें भगवान् स्वयं प्रादुर्भूत हुए इसीसे उनका (स्वयं-भू) नाम हुआ, उनका वर्णभी सुवर्णकी सदृश हुआ उसमें एकवर्ष पर्यन्त निवासकरके ॥७॥ उस अण्डाकारके दो विभागकिये उनमेंसे एक भूमि और दूसरा खंड दिव अर्थात् ऊर्ध्वलोक हुआ, और इन दोनों खण्डोंके बीचमें प्रभुने आकाशका निर्माणकिया ॥ ८ ॥ जलसे व्याप्त हुई पृथ्वीके ऊपर दशप्रकारसे दिशाओंका विभाग किया, फिर सबसे प्रथमकाल (समय) को बनाया, इनके अनन्तर मन और वाणीकी रचना करी ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् काम, क्रोध, रति (प्रेम) इनका और फिर इन्हींके अनुरूप सृष्टिका निर्माण हुआ । मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥ १० ॥ और वसिष्ठ यह सब ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलातेहैं । हे परमैश्वर्यवति भगवति ! येही सातों ब्रह्मतेजस्वी ब्राह्मण कहलातेहैं ॥ ११ ॥ जिनका नारायणकी समान रूपहै ऐसे इनसातों ब्राह्मणोंका जब ब्रह्माजीके मन (संकल्पमात्र) से जन्म होचुका इसके पश्चात् रोषसे ब्रह्माजीने रुद्रको उत्पन्नकिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर सबके पूर्वज ऐसे सनत्कुमारकी सृष्टि करी, हेपार्वति ! उक्त सप्तर्षियोंने और रुद्रगणने प्रजाको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ तेजका अधिष्ठानकरके स्कन्द और सनत्कुमार स्थितहुए, इसके अनन्तर देवगणयुक्त उनके सातही वंशहुए ॥ १४ ॥ प्रजासे युक्त क्रियावान् और अनेक प्रकारकी विद्या

नानाविद्याविशारदाः ॥ विद्युतो मेघवृंदाश्च सहेंद्रधनुषा तथा
॥ १५ ॥ पयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च तथैव च ॥ ऋचो यजूं
सामानि निर्ममे यज्ञकर्मणे ॥ १६ ॥ उच्चावचानि भूतानि गात्रे
स्तस्य जज्ञिरे ॥ एवं तस्य महाभागे प्रजावृद्धिरजायत ॥ १७ ॥
नोदेहं द्विधा कृत्वा ह्यर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ अर्द्धेन स्त्री तथा जा
सृजद्वै विविधाः प्रजाः ॥ १८ ॥ संव्याप्य द्यावापृथिवीं महि
स्वेन भूतगः ॥ विष्णुर्विराजमसृजदसृजत्पुरुषं च सः ॥ १९ ॥ तं
पुरुषं विद्धि मनुं स्वायंभुवं प्रिये ॥ मानसं तु प्रिये सर्गं ससर्ज
रुपः प्रभुः ॥ २० ॥ आदिसर्गमिमं श्रुत्वा धनमारोग्यमाप्नुयात्
इह भुक्त्वा वरान्भोगानंते स्वर्गपुरे वसेत् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्क
केदारखंडे आदिसर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

का तत्व जाननेमें निपुणवंश हुए, बिजली, मेघवृन्द और इन्द्रधनुषका निर्माण कि
॥ १५ ॥ जल और जलको धारणकरनेवाले मेघ ऋक् यजुः और साम इन वेदोंकाभी
कर्मके लिये निर्माण कियागया ॥ १६ ॥ फिर उनके शरीरसे ऊंच नीच सभीप्रकारके
उत्पन्नहुए, हे महाभागे ! इस प्रकारसे उनकी सृष्टिकी वृद्धि हुई ॥ १७ ॥ मन और
दो विभाग करके आधेसे पुरुषरूप और आधेसे स्त्रीरूप हुआ, इस प्रकारसे विविध प्र
प्रजाकी उत्पत्ति हुई ॥ १८ ॥ अपनी महिमा प्रकाशित करनेको आकाश और भूमीको
किया, विष्णुभगवान्ने अति शोभायमान एक पुरुषको रचा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! उसी पु
को स्वयंभू मनु जानना चाहिये, पुराणपुरुषने मानसी सृष्टिसे एक स्त्रीको उत्पन्न किया ॥ २
इस आदि सृष्टिका वर्णन करनेसे धन और आरोग्य अर्थात्–स्वास्थ्यकी प्राप्ति होतीहै,
आख्यानका श्रवण करनेवाला व्यक्ति इस लोकमें परम भोगोंको भोगकर शरीरान्तके स
स्वर्गलोकमें निवासग्रहण करताहै ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामादिसर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

ईश्वर उवाच ॥ संसृष्टः सुप्रजो देवि आपवःस प्रजापतिः ॥ शतरूपां स्त्रियं लेभे पुरुषस्तामयोनिजाम् ॥ १ ॥ बहुवर्षसहस्रं सा तपःकृतवती प्रिये ॥ दिव्यं सा पुरुषं तं वै भर्त्तारं प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥ स एव पुरुषो देवि स्वायंभुव इतिश्रुतः ॥ शतरूपा तु वैदेविवीरौ पुत्रावजीजनत् ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ काम्यादस्मादजीजनत् ॥ कर्दमस्य सुता देवि काम्यानाम्नी महायशाः ॥ ४ ॥ प्रियव्रतं पतिं प्राप्याजनयत्सा सुतान् प्रिये ॥ साम्राजं प्रथमं काम्या कुक्षिं चैव द्वितीयकम् ॥ ५ ॥ तृतीयं तु विराजं सा प्रभुंचव चतुर्थकम् ॥ सूनृता धर्मकन्या च पतिमुत्तानपादकम् ॥ ६ ॥ प्राप्य तस्माच्च चतुरः पुत्रानमिततेजसः ॥ ध्रुवं च कीर्त्तिमंतं च आयुष्मन्तं वसुं तथा ॥ ७ ॥ सूनृता सुषुवे देवि तपोबलसमन्वितान् ॥ ध्रुवो वैराग्यमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यादिकं बहु ॥ ८ ॥ तपस्तेपे निराहारो बहुवर्षसहस्रकम् ॥ ब्रह्मा ददौ तदा तुष्टो ध्रुवायामिततेजसे ॥ ९ ॥ सप्तर्षिस्थानतोप्यूर्द्ध्वं स्थानं सर्वोत्तमं तदा ॥ यस्या-

ईश्वर कहने लगे । उस प्रजापति मनुष्यको अयोनिजा शतरूपा स्त्रीप्राप्त हुई ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसने हजारों वर्षपर्यन्त तपका आचरण किया, तब उसको दिव्यपुरुष पति प्राप्तहुए ॥ २ ॥ हे देवि ! पुरुष स्वयंभू कहलातेहैं, हे देवेशि ! शतरूपाके दो पुत्रोंका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ इससे प्रियव्रत और उत्तानपाद यह दो पुत्र जन्मे, कर्दम ऋषिकी एक परमयशोवती काम्या नामकी कन्याथी ॥ ४ ॥ हेप्रिये ! उस काम्याको प्रियव्रत पति प्राप्तहुए और उसने कतिपय पुत्रोंका प्रसव किया । प्रथमपुत्र साम्राज, दूसरा कुक्षि ॥ ५ ॥ तीसरा विराज और चतुर्थ प्रभु इस नामसे प्रसिद्धहुए, धर्मकी सूनृता कन्याने उत्तानपादको पतिपाकर ॥ ६ ॥ अति तेजस्वी चारपुत्रोंका प्रसव किया, हे देवि ! सूनृताने तपोबलसे युक्तहुए ध्रुव, कीर्त्तिमान्, आयुष्मान् और वसु इन पुत्रोंको उत्पन्नकिया, उनमेंसे ध्रुवजी प्रभूत राज्यादिकको त्यागकर वैरागी होगये ॥ ७ ॥ ८ ॥ ध्रुवजीने आहारका परित्याग करके बहुत दिनोंपर्यन्त सहस्रोंवर्ष तपका आचरणकरा, तबतौ ब्रह्माजीने सन्तुष्ट होकर अमिततेजस्वी ध्रुवको ॥ ९ ॥ सप्तर्षियोंकेभी स्थानसे ऊपर अतएव सर्वोत्तम स्थान प्रदानकिया, हे महाभागे ! जिसकी प्र-

द्यापि महाभागे श्लोको वै भृगुभाषितः ॥ १० ॥ अहोस्य तप
वीर्य्यमहो श्रुतमहोत्सवम् ॥ यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षि
स्थिताः ॥ ११ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ अहो ध्रुवस्य चरितं श्रोतु
मिच्छामि तत्वतः ॥ यथा वैराग्यमापन्नो यथाप्राप्तः परां गतिम्
॥१२॥ एतच्छंस महादेव ध्रुवस्य चरितं शुभम् ॥ शिव उवाच
तच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या प्राप्नोति भगवद्गतिम् ॥१३॥ स्वायंभुव
मनुः पूर्वं विभजन् पृथिवीं द्विधा ॥ अर्द्धामुत्तानपादाय अर्द्धां प्रियव्र
ताय च ॥ १४ ॥ ययौ कैलासनिलये तपस्तप्तुं मम प्रिये ॥ प्रिय
व्रतोत्तानपादौ विसृज्य च प्रजास्तदा ॥ १५ ॥ सम्राजायां
पुत्रांस्तु प्रजासर्गे नियुज्य हि ॥ स्वयं ययौ महातीर्थे शालग्रा
ततोकरोत् ॥ १६ ॥ ध्रुवाद्यांस्तांस्तु राज्यार्द्धे नियुज्य तपसे
ययौ ॥ सर्वेषां पूर्वजो भ्राता ध्रुव औत्तानपादिकः ॥ १७ ॥ सृष्टि
भव्यं च तत्रापि चकार सुमनोहरम् ॥ ध्रुवस्तु काले कस्मिंश्चि

सामें भृगुजीने यह श्लोक वर्णन कियाहै ॥ १० ॥ इन ध्रुवजीके तपके वीर्यको, शा
श्रवणकरनेको और उन्हीके अनुसार शास्त्रीय उत्सवोंको धन्यहै, क्योंकि–जिनके पुरःसर आ
कभी सप्तर्षि स्थित रहतेहैं ॥ ११ ॥ श्रीपार्वतीजी कहनेलगीं कि–मैं बड़ी प्रसन्न
साथ ध्रुवके चरित्रका तत्व सुननेकी अभिलाषिणीहूं, उन्हें वैराग्यकी प्राप्ति कैसे हु
और क्योंकर वे परमगतिको प्राप्तहुए ? ॥ १२ ॥ हे महादेव ! यह सब ध्रुवका
आप मेरेप्रति वर्णन करें । महादेवजी बोले उस आख्यानका श्रवण करनेसे मनुष्यके चि
भगवद्विषयक प्रेम उत्पन्न होताहै ॥ १३ ॥ पहिले स्वायंभू मनुने भूमिके दो विभाग किये
उनमेंसे आधा अर्थात् भूमंडलका एकभाग उत्तानपादको और दूसरा प्रियव्रतको प्रदान क
दिया ॥ १४ ॥ हे हमारी प्यारी ! वोह राजा प्रियव्रत और उत्तानपादको एवम् अपनी सम
प्रजाको त्यागकर कैलास पर्वतके ऊपर तपका आचरण करनेके लिये चलागया ॥ १५ ॥
जाकी रक्षा और साम्राज्यका पालन करनेमें पुत्रोंको नियुक्त करके वोह राजा स्वयं शाल
मकी आराधना करनेके लिये बनको प्रयाण करगया ॥ १६ ॥ जब वोह राजा राज्यशा
और प्रजाके पालनमें अपने पुत्रोंको नियुक्त करके तपश्चर्या करनेके लिये बनको चलागया,
उत्तानपादके ध्रुवपुत्र हुए ॥ १७ ॥ तब अधिक कुशल और आनन्दमंगलके साथ प्रजानि

द्रुतो रण्ये मृगाय च ॥ १८ ॥ अध्वरं कर्तुमारब्धो मृगमेधं महे-
श्वरि ॥ वने संगच्छतस्तस्य ददर्श सर उत्तमम् ॥ १९ ॥ हंसकारं-
डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ पद्मकह्लारकुमुदैः शोभमानं
समंततः ॥२०॥ रम्ये सरोवरे तस्मिन्नाना शाड्वलसंवृते ॥ उपस्पृ-
श्य जलं तत्र स्थितःश्रान्ताश्ववाहनः ॥ २१ ॥ ददर्श वनशोभां स
नानावृक्षैः समन्विताम् ॥ पश्यतस्तस्य राजर्षेर्ध्रुवस्याग्रे समाययौ
॥ २२ ॥ जराजर्जरदेहांहिवलिसंवृतविग्रहाम् ॥ जीर्णवस्त्रशतैश्छ-
न्नां कांचिन्नारीं ददर्श सः ॥ २३ ॥ साप्याययौ समीपं तु ध्रुवस्य-
वृद्धनायिका ॥ रूपयौवनसंपन्नं दृष्ट्वोवाच महेश्वरि ॥ २४ ॥ वृद्धो-
वाच ॥ कोसि त्वमतिसौंदर्य्य किमर्थमागतो वनम् ॥ तव रूप-
महो दृष्ट्वा काममोहवशं गता ॥ २५ ॥ त्वत्समो यदि मे भर्त्ता भ-
विता नरसत्तमः ॥ तदैव कृतकृत्यास्मि इत्यासीन्मतिरेव मे
॥२६॥स त्वं पुरुषशार्दूल दृष्टोसि साम्प्रतं मया ॥ याचंतीं नित-

करनेलगी ॥ १८ ॥ ध्रुवजी मृगका अन्वेषण करनेके लिये वनमें गये क्योंकि मृगमेधयज्ञक
आरंभ कियागया बनमें जाते २ उस राजर्षिनें एक परमोत्तम सरोवर देखा ॥ १९ ॥ जिसं
चारों ओर हंस और कारंडवोंका संघात व्याप्त होरहाथा, अथ च चक्रवाक उसकी शोभाक
बढा रहेथे तथा कमल और कुमुद उसकी चारों ओरसे शोभाको बढ़ा रहेथे ॥ २०
उस राजाकी सवारीका अश्व थक गयाथा अतएव वोह उस रमणीक सरोवरके घे
हरी २ घासमें बैठगया ॥ २१ ॥ अनेक वृक्षोंकी सघनतासे व्याप्त बनकी शोभाक
ध्रुवजी देखनेलगे, देखते २ ही उनके सन्मुख एक वृद्ध स्त्री आनकर उपस्थित हु
॥ २२ ॥ जिसका शरीर बुढापेके कारण जरजर होरहाहै, जिसके देहके ऊपर जूठन लिपट
रहीहै, और पुराने सैकडों वस्त्रोंको धारण किये एक कोई अबला दृष्टिगत हुई ॥ २३ ॥ वो
वृद्ध स्त्री ध्रुवजीके निकट आनकर उपस्थित हुई, और हे महेश्वरि ! इन्हे रूप यौवन (अ
र्थात् चढती अवस्था होनेके कारण सुन्दर २ अवयवों) से युक्त देख यों बोली ॥ २४
वृद्धाने कहा–हे स्वरूपवान् ! तुम कौनहो ? और किसकारण बनमें आनकर उपस्थित हुहो
ओहो ! तुम्हारे सुन्दर रूपको देखकर तो मैं कामसे मोहित होगईहूं ॥ २५ ॥ तुम्हारे स
रीखे सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ यदि मेरापति होता तो मेरी समझमें तभी मैं अपने तईं अहोभाग
समझती ॥ २६ ॥ हे नरशार्दूल ! मैंने अभी तुम्हारे दर्शन किये हैं और मैं तुमसे य

रां देव वरयस्व स्मरातुराम् ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा विस्मयाविष्टमानसः ॥ चिंतयामास मनसि ध्रुव औत्तानपादिकः ॥ २८ ॥ विहस्य वदनं दृष्ट्वा वल्याक्रांतं गतद्युति ॥ उवाच मधुरं वृद्धां विस्मयाकुलचेतनः ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ दृष्टा का योग्यता भद्रे मम च स्वस्य च त्वया ॥ क्व च मे वयसो भावः क्व च ते रूपमीदृशम् ॥ ३० ॥ जराजर्जरदेहा त्वं क्व च मे यौवनं वयः ॥ क्व च मे सौरभं देहं मलदिग्धकलेवरम् ॥ ३१ ॥ अहो हो परमाश्चर्यं लोकेस्मिन्दृश्यते न नु ॥ मतीनां चित्रता चैव गुणागुणविवेकिता ॥ ३२ ॥ नागुणी गुणिनं वेत्ति विरूपो रूपशालिनम् ॥ पापो वै धर्मकर्माणं स्वमेव हि प्रशंसति ॥ ३३ ॥ वृद्धोवाच ॥ मत्तस्तव महाबाहो कथमाधिक्यमस्ति ते ॥ यत्त्वं वदसि वयसो भावश्च मामकं वपुः ॥ ३४ ॥ युष्मदस्मदो रूपं हि तस्यार्थः कोविदश्च कः ॥ कोहं कस्त्वमि-

याचना करतीहूं कि–हे देव! मुझ कामसे व्याकुल हुईके साथ तुम विवाह करलो ॥ २७ ॥ महादेवजी कहनेलगे–उस वृद्धाके ऐसे वचन सुन आश्चर्य करके उत्तानपादके पुत्र ध्रुवजी अ[पने] चित्तमें विचार करने लगे ॥ २८ ॥ और हँसके तथा कान्तिहीन उसके मुखकी ओर नि[हा]रकर विस्मयसे आकुलहो उस वृद्धासे यों बोले ॥ २९ ॥ ध्रुवजीने कहा–हे सुभद्रे ! [तूने] मुझमें और अपनेमें रूपकी क्या समानता देखीहै ? भला कहां तो मेरी अवस्थाकी यह दशा और कहां यह तेरा रूप ॥ ३० ॥ कहांतो तेरा देह जरा (वृद्धभाव) से जर्जर होरहा और कहां मेरी यह युवा अवस्थाहै ? मेरा शरीर सुगंधिसे पूर्ण है और तेरा कलेवर मल[से] लिप्त हो रहाहै ॥ ३१ ॥ ओहो ! बडे आश्चर्यका विषय है कि–संसारमें प्राणियोंकी बुद्धि गुणदोषके विचारसे शून्यही दृष्टिगत होतीहैं ॥ ३२ ॥ गुणहीन पुरुष गुणीको नहीं पहिचानता, सुन्दर रूपवान्को कुरूप नहीं जानता, अथ च पापिष्ठव्यक्ति धर्माचारीको कुछ नहीं जानता किन्तु सब अपनीही प्रशंसा किया करतेहैं ॥ ३३ ॥ वृद्धा बोली–हे महाबाहो ! मे[री] अपेक्षा भला तुम्हारे विषे क्या अधिकता है ? जो तुम मेरे और अपने वय तथा शरीर भावको कहतेहो ॥ ३४ ॥ तौ बताओ ! हमारे तुम्हारे रूपका ज्ञाताही कौनहै ? एवं च [मैं] कौनहैं तथा तुम कौनहो ? इस प्रकार विचार करनेवाली बुद्धिका कार्यभी असत्यमात्रहै॥ ३[५]

ति प्रज्ञा वर्त्तते सा मृषार्थिका ॥ ३५ ॥ पंचभूतात्मिकेनासौ देहे न परिवेष्टितः ॥ नायं वेत्ति परं भावं सप्तभिः संयुतो यदा ॥ ३६ ॥ तव यत्सुंदरं रूपं मामकं न च विद्यते ॥ मामकं वार्द्धकं रूपं तवैव विद्यते कुतः ॥ ३७ ॥ आत्मा सर्वगतो राजन् रूपादिगुणवर्जितः ॥ अरूपिणो भगवतो रूपादीनां च कल्पना ॥ ३८ ॥ तथा वयोविहीनस्य कुतो वृद्धादिकं वयः ॥ निर्लेपस्य परमुदः कुतो दुःखादिकल्पना ॥ ३९ ॥ इदं दुःखादिकं यत्तु राजन् तद्देहदोषजम् ॥ एको जीर्णगृहे देही ह्येको नव्यगृहे यथा ॥ ४० ॥ किं वै जीर्णगृहस्थस्य मानः किं परिहीयते ॥ इदं देहादिकं सर्वं नवादिव्यवहारवत् ॥ ४१ ॥ तव चेत्सुंदरं रूपं स्थिरं स्यात्तत्तथा भवेत् ॥ मामके चेन्महाभाग विरूपित्वं तदा भवेत् ॥ ४२ ॥ मदीयस्य शरीरस्य तावकस्य तथैव च ॥ का

कारण यह है कि—यह देह पंचभूतसे निर्माण कियागयाहै, इसीसे तौ यह परमभावको नहीं जानसक्ताहै, कुछ सप्तपदार्थोंसे निर्मित तौ हैही नहीं ॥ ३६ ॥ माना कि तुम्हारा जो यह (युवावस्था संबन्धी) सुन्दर रूप है वोह मुझे प्राप्त नहीं है, पर मेरा जो वृद्धावस्थाजनित रमणीय रूप है वोह भला तुम्हेंही कहां उपलब्धहै ? ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! आत्मा सबमें एकही विद्यमान् है, उसमें रूप आदिका भेद कुछभी नहीं है, भगवान् रूप आदि गुणरहितहैं अतएव उसके रूपादिकी कल्पना मात्रही करी जातीहै ॥ ३८ ॥ जब वोह परमात्मा अवस्था रहित है तौ उसकी आयुःवृद्ध आदि कहांसे होसक्तीहै ? जब कि वोह मायाजनित विकारोंसे निर्लेपहै अतएव अत्यन्त आनन्द रूपहै तौ उसमें दुःख आदिकी कल्पना क्योंकर होसक्तीहै ? ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! यह दुःखादि सब विकार देहके दोषसे उत्पन्न होतेहैं, इसे ठीक यों समझो जैसे एक देही जीर्णगृहमें और दूसरा नूतन मन्दिरमें स्थित होताहै (इसी प्रकार परमात्मा कहीं वृद्ध देहमें और कहीं नवीन देहमें विराजितहै) ॥ ४० ॥ क्या जीर्णगृहमें स्थित हुएका मनोमहत्व दूर होजाताहै ? यह देहादिक सब नवीन स्थान आदिकी सदृश हैं ॥ ४१ ॥ हे महाभाग ! यदि यह तुम्हारा सुन्दर रूप सदा स्थिरहो एवंच मेरे देहमें कुरूपहीका सदा निवासहो तब तौ ऐसा (कहनाभी योग्य) है ॥ ४२ ॥ सो हे राजन् ! तुम्हारे और हमारे देहमें परस्पर क्या विशेषताहै अर्थात् कुछभी नहीं, तौ फिर तुम क्या उप-

वा विशेषता राजन् दृश्यते स्मर्यतेथवा ॥ ४३ ॥ तृष्णादिकं
यत्सर्वं तन्ममापि तवापि हि ॥ तस्माद्राजन्न कर्त्तव्यमहंमानादि
खलु ॥ ४४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगादितं वचो वै पर
मार्थवत् ॥ आश्चर्यं परमं मत्वा जगाद मधुराक्षरम् ॥ ४५ ॥
ध्रुव उवाच॥सत्यंब्रूहि मयेदानीं का वा त्वं परमार्थकम् ॥ कथ
यामास यत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥ ४६ ॥ वार्द्धकं रूपमास्था
आगता त्वं ममांतिके ॥ त्वया त्वनुग्रहीतोस्मि यया मे कथि
शुभम् ॥४७॥ वृद्धोवाच ॥ मयोक्तं यत्तु किंचिद्वै ज्ञातं च परमा
र्थकम् ॥ संतुष्टास्मि ततस्तुभ्यं वदामि स्वविचेष्टितम ॥ ४८ ॥
अहं राजन् जरा नाम्नी देव्यस्मि नरपुंगव ॥ आगता तव सामी
प्यं द्रष्टुं तव विचेष्टितम् ॥ ४९ ॥ सृष्टाः प्रजास्त्वया राजन्भुक्त
राज्यसुखं शुभम् ॥ किमिच्छसे त्वं यज्ञेन मृगयासक्तमानस
॥५०॥ बाल्यं पूर्वं यौवनं तु वार्द्धक्यं तु ततः स्मृतम् ॥ तवाक्र
मणकर्त्री च जराहं नृपसत्तम ॥ ५१ ॥ कस्यापि नो महारूप

हास करतेहो ॥ ४३ ॥ तृष्णा आदि जो विकार तुम्हारे विषे विद्यमान हैं वही मुझमें
अतएव हे भूपाल ! आपको अभिमान करना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले—
वृद्धअबलाके वैराग्यपूर्ण वाक्य सुनकर परमआश्चर्यको प्राप्तहो ध्रुवजी महाराज मधुर
बोले ॥ ४५ ॥ ध्रुवने कहा—तुम कौन हो ? सो मुझे बताओ, तुमने जो यह परमार्थकी
बताई इसे सुनकर मुझे अति आश्चर्य प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥तुम कौनहो ? जो वृद्धरूप धारण करके
निकट उपस्थित हुईहो, तुमने शुभ उपदेशकरके मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है ॥ ४७ ॥
बोली—मैंने जो कुछ तुम्हारे प्रति वर्णन किया इसे सुनकर तुमने इसकेपरमार्थको समझा
अतएव मैं तुमसे प्रसन्नहूं सो अपना कर्त्तव्य तुम्हारे समक्ष वर्णन करतीहूं ॥ ४८ ॥ हे न
त्तम राजन् ! मैं जरानाम देवीहूं, और तुम्हारी चेष्टा देखनेके लिये तुम्हारे निकट आन
प्राप्त हुईहूं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! तुमने अपनी प्रजाका पालनकर शुभराज सुखका उप
किया, सो आखेट में मन लगाकर तुम यज्ञाचरणसे क्या करोगे ॥ ५० ॥ पहिले बाल
फिर युवा अवस्था अथ च इसके अनन्तर वृद्धभावकी प्राप्ति होतीहै, सो हे राजाधिरा
तुम्हारा आक्रमण करनेवालीमें जरा (वृद्धावस्था) हूं ॥ ५१ ॥ मेरे इस महारूपका समा

मेतद्दर्शनसंगतम् भविष्यकार्यं जनय ध्रुव औत्तानपादिक ॥५२॥ ईश्वर उवाच ॥ इतिश्रुत्वा वचस्तस्या जरायाः प्रियवादिनि ॥ वस्त्रादिकं तु यत्सर्वं दत्त्वा च तपसे ययौ ॥ ५३ ॥ हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे नानामुनिगणान्विते ॥ पीडाकरे महातीर्थे तपश्चक्रे ध्रुवस्ततः ॥ ॥ ५४ ॥ पर्णाहारस्तु चक्रेसौ तपश्चर्यां सह .कम् ॥ ततो वर्षसहस्रेण निराहारो जितेंद्रियः ॥ ५५ ॥ ततो वर्षसहस्रेण पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ध्रुवस्य तपसा व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ॥ ५६ ॥ विव्यथुः सर्वभूतानां मनांसि सुरपूजिते ॥ देवाः सर्वे महाभागे विमानैः शतकोटिभिः ॥ ५७ ॥ आगताः शतशो द्रष्टुं ध्रुवं वै तपसि स्थितम् ॥ तं दृष्ट्वा सहसा सर्वे देवा दैत्याः सवासवाः ॥५८॥ स्थातुं न शक्नुवंतस्ते तेजसा परितापिताः ॥ किंवा साविच्छते राजा तपसा तेन निश्चयम् ॥५९॥ ब्रह्मापि प्रययौ तत्र ध्रुवं द्रष्टुं महामतिम्॥उवाच मधुरं वाक्यं संतुष्टस्तपसा तव॥६०॥

किसीकोभी नहीं हुआहै, उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने इसप्रकार (सुनकर) भविष्यकार्यका विचार किया ॥ ५२ ॥ महादेवजी कहनेलगे—उस वृद्धाके ऐसे वचन सुनकर ध्रुवजी उससे बोले प्रियवदिनीहै, यों कह वस्त्रादिक संपूर्ण उसे प्रदानकरके स्वयं तपकरनेके लिये चले गये ॥ ५३ ॥ हिमालयके दक्षिणकी ओर पीडाकर एक महातीर्थहै उसमें अनेक मुनिगण विराजमानहैं उसी स्थानमें ध्रुवजी महाराज तपका आचरण करनेलगे ॥ ५४ ॥ ध्रुवजीने केवल पत्तोंकाही भोजनकरके सहस्रवर्षपर्यन्त उत्तम तपका आचरण किया, इसके अनन्तर एक सहस्रवर्षपर्यन्त जितेन्द्रियहो निराहार रहकर तपकिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर एक चरणके आधारसे खड़े रहकर ध्रुवजीने एकसहस्रवर्षपर्यन्त तप कियां, अतएव ध्रुवजीके तपके उग्र प्रतापसे चराचरसहित तीनों लोक व्याप्त होगये ॥ ५६ ॥ देवगण द्वारा पूजित हे महाभागे देवि ! सम्पूर्ण प्राणियोंके मनमें व्यथा उत्पन्न होगई, अथ च समस्त देवगण सैकडों करोड़ विमानोंमें बैठ २ कर ॥ ५७ ॥ तपके अनुष्ठानमें उपस्थित हुए ध्रुवजीका दर्शन करनेको आये, उन्हें देखकर इन्द्रादि समस्त देवता और दैत्य ॥ ५८ ॥ उसके तपके प्रतापसे सन्तप्त होकर कोईभी उसके अगाड़ी खड़ेरहनेको समर्थ न हुए, ऐसा वोह राजा अपने तेजकी शोभाको प्राप्त होरहाथा ॥ ५९ ॥ उन महामति ध्रुवको देखनेके लिये ब्रह्माजीभी उस स्था

ब्रह्मोवाच ॥ वरं वरय भद्रंते यत्कृते तत्कृतं तपः ॥ नह्यस्ति दुर्लभं किंचित्तपसस्ते किल ध्रुव ॥ ६१ ॥ आधिपत्यं त्रिलोकस्य प्राप्स्यसे त्वं नृपोत्तम ॥ ईदृशं तु तपो राजन्न कृतं केनचित्पुरा ॥ ६२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ शनैरुन्मील्य नयने ददर्श परमेष्ठिनम् ॥ ६३ ॥ उवाच वचनं शीघ्रं प्रांजलिः पुरतः स्थितम् ॥ भक्त्या परमया युक्तो जयेति च पुनः पुनः ॥ ६४ ॥ ध्रुव उवाच ॥ जय जय करुणानिधे भगवन् सर्वलोककर्त्तः परमेष्ठिन् ॥ जय सकलजनेश सुरेश जय मकरंदजय सर्वजनस्यपरमानंद ॥ ६५ ॥ जय तपोनिधिकंदर्पसुंदराशुभनाशक जय सुरेश ॥ जय ऋक्षपते विपतेजयनंदनपादपपुष्पमकरंद ॥ ६६ ॥ प्रभो ब्रह्मन् किमर्थं मां पुनः संसारबंधने ॥ नियोजयसि दुःखानां सागरे पारदुर्गमे ॥ ६७ ॥ वाराहोंऽहं यदि विभो संतुष्टोसि यदि प्रभो ॥ दीयतां

में गये, और उनसे यह मधुरवाक्य बोले कि तुम्हारे इस तपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी बोले—हे ध्रुव ! तुम्हारा कल्याणहो, तुमने जिसकारण तपका अनुष्ठान कराहै, तुम्हारे तपसे तुम्हें दुर्लभ कुछभी नहींहै ॥ ६१ ॥ हे नृपसत्तम ! तुम त्रिलोकीके स्वामित्व लाभकरसक्तेहो, क्योंकि हे राजन् ! ऐसा तप किसीनभी प्रथम नहीं कियाहै ॥ ६२ ॥ महादेवजी बोले—परमात्मा ब्रह्माके ऐसे वचन सुन अपने दोनों नेत्रोंको शनैः २ कुछ एक खोलकर ध्रुवजीने ब्रह्माजीके दर्शनकिये ॥ ६३ ॥ बडीभक्ति श्रद्धासे दोनों हाथ जोड़ ध्रुवजीने परमेष्ठीसे कहा आपकी जय हो ॥ ६४ ॥ ध्रुवबोले—हे करुणानिधि ! आपकी जयहो, हे परमेष्ठिन् आप परमैश्वर्यवान् और सकललोकके विधान कर्त्ता हैं आपकी विजयहो, आप देवताओंके ईश्वरहैं, आपका प्रादुर्भाव कमलसे हुआहै, आप समस्त प्राणियोंको परम आनन्द देनेवाले हो ॥ ६५ ॥ आप तपके कोश अथ च कामदेवकी समान सुन्दरहैं, आपही समस्त नक्षत्रगणके अधीश्वरहैं, आपका अधिपति कोईभी नहींहै, आपके देहमें नन्दन काननके वृक्षों (कल्पवृक्षों) के पुष्पोंकी सुगन्धि आतीहै अतएव हे जगदीश्वर आपकी वारंवार विजयहो ॥ ६६ ॥ हे प्रभो ! यह संसार समस्त दुःखोंका सागरहै अपार होनेके कारण यह बड़ा दुर्गमहै हे ब्रह्मन् फिर आप मुझे इस दुःखोंके बन्धनमें क्यों डालतेहैं ॥ ६७ ॥ हे विभो ! यदि आप मुझसे

दुर्लभं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ६८ ॥ कस्यापि प्राणिनो यत्र पीडा न स्यान्मया खलु ॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि दर्शनादेवनायक ॥ ६९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धन्योसि कृतकृत्योसि त्वेन वै तपसा किल ॥ सप्तर्षिस्थानतश्चोर्ध्वं महास्थानं ददामि ते ॥ ७० ॥ देवाः सुराः सगंधर्वाः सनक्षत्रास्सराशयः ॥ प्रदक्षिणं करिष्यंति त्वां चैव मुनिनायक ॥ ७१ ॥ आगच्छगच्छ भगवन् त्रैलोक्यस्थानदुर्लभम् ॥ कल्पांतेपि च्युतिर्यस्माज्जायते न विशांपते ॥ ७२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्येवं तं समारोप्य विमाने हंससंयुते । सम्यक्स्थाप्य ध्रुवं तत्र ययौ ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ ७३ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यमहोधीतमहो श्रुतम् ॥ अहो तपः परं चैव यस्येयं गतिरीदृशी ॥ ७४ ॥ ज्योतिश्चचक्रं महाभागे सनक्षत्रग्रहादिकम् ॥ करोत्यहर्निशं चैव प्रादक्षिण्यक्रमं प्रिये ॥ ७५ ॥ इति ते कथितं देवि ध्रुवस्य चरितं

न्तुष्टहैं और मैं वरप्राप्तिके योग्य समझा गयाहूं तो मुझे ऐसा दुर्लभस्थान प्रदान करिये जहांसे फेर लौटके आना बड़ा दुर्लभहो ॥ ६८ ॥ और जहां मेरे द्वारा किसी प्राणीकोभी किसी प्रकारका दुःख प्राप्त न हो, हे देवेश्वर! मैं आपके दर्शनसे बहुतही कृतकृत्य होगयाहूं ॥ ६९ ॥ ब्रह्माजी बोले-इस संसारमें नरदेह धारणकरके मनुष्यका जो कुछ कर्त्तव्यहै वोह सब तुमने पूर्ण करलिया अतएव तुम्हैं धन्यहै, अपने तपके अनुष्ठानहीसे तुम धन्यहो, परन्तु मैं तुम्हैं सप्तर्षियोंकेभी स्थानसे ऊपर उत्तम स्थान प्रदान करताहूं ॥ ७० ॥ हे मुनिराज! क्या देवता क्या गन्धर्व और क्या राशियें ये सभी तुम्हारी प्रदक्षिणा करेंगे ॥ ७१ ॥ हे महाराज! आओ चलो उस स्थानको चलो! जो त्रिलोकीमें दुर्लभहै, कल्पके अन्तमेंभी उस स्थानसे कभी पृथक् नहीं होसक्के ॥ ७२ ॥ महादेवजी कह रहे हैं इस प्रकार हंसवाही विमानमें ध्रुवजीको आरूढकर ब्रह्माजी अचललोकमें लेगये और उन्हें वहां सम्यकृतया स्थापित करके स्वयं चलेगये ॥ ७३ ॥ धन्य ध्रुवका भाग्य, उसके वेदपाठ, शास्त्रश्रवण और तपश्चर्याको धन्यहै इसीसे उनकी ऐसी (उत्तम) गति हुई ॥ ७४ ॥ हे महाभागे! प्यारी पार्वति! तारागण संपूर्ण नक्षत्र, और ग्रहगण यह सभी उनकी पूर्णपरिक्रमा करतेहैं ॥ ७५ ॥ हे देवि! इसप्रकार

शुभम् ॥ यस्य वै श्रवणान्मर्त्योऽखिलपापैः प्रमुच्यते ॥ ७६ ॥
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे ईश्वरपार्वतीसंवादे ध्रुवचरित्रं नाम
पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ध्रुवजीका यह चरित्र हमने तुम्हारेमति वर्णन करके सुनाया, इस आख्यानका केवल श्रवण
ग्रही करनेसे श्रोतागण समस्तपापोंसे मुक्त होजातेहैं ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंड भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

पार्वत्युवाच ॥ ध्रुवस्य संततिं देव कथयस्व ममाग्रतः ॥ सृष्टे-
र्भव्यस्य चोत्पत्तिं कृपया परया युतः ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु
देवि वरारोहे यत्पृष्टोहं त्वया शिवे ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वे
पापैः प्रमुच्यते ॥ २ ॥ सृष्टिर्वै पंच पुत्रान्वै सुच्छायायां महायशाः ॥
रिपू रिपुंजयश्चैव क्षिप्रो वृकल एव च ॥ ३ ॥ वृकतेजास्त-
था ख्याताः सृष्टिपुत्राः समीरिताः ॥ बृहती चक्षुपं पुत्रं रिपोः
सर्वोत्तमं मनुम् ॥ ४ ॥ जनयामास सुश्रोणि सुश्रोणी प्रियवादिनी ॥
अजीजनत्पुष्करिण्यामनरण्यंतु चक्षुपः ॥ ५ ॥ अनरण्यो महाभागे-
नड्वलायां प्रजापतिः ॥ दश पुत्रान्महाभागानङ्गाद्यान्विभुतेजसः
॥ ६ ॥ अंगस्तु वेनमेकं तु सुनीथाजनयत्सुतम् ॥ अपचारेण

पार्वतीजी बोलीं-हे देव ! अब आप ध्रुवकी सन्ततिका मेरे अगाड़ी कीर्तन करिये,
ऊपर परम कृपाकरके शुभ सृष्टिका वर्णन करो ॥ १ ॥ महादेवजी बोले-हे सुन्द
महादेवि ! सुनो ! हे कल्याणि ! तुमने जो कुछ हमसे पूछा है उसका
श्रवण करनेसे मनुष्योंके समस्तपाप नष्ट होजातेहैं ॥ २ ॥ उस महायशस्
छायामें पांचपुत्रोंको उत्पन्न किया, उनके नाम यहहैं कि, रिपु, रिपुंजय, क्षिप्र, वृकल ॥ ३
वृकतेजा यह पांच सृष्टिपुत्र कहलाते हैं, हे सुश्रोणि ! सुन्दर नितम्बोंवाली अथच प्रियवा
बृहतीने सर्वश्रेष्ठ चाक्षुषमनुको उत्पन्न किया । और चक्षुने पुष्करणीमें अनरण्य पुत्रका
र्भाव किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे महाभागे ! अनरण्य प्रजापतिने नड्वलामें परमतेजस्वी दश पुत्र
को उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ अंगने सुनीथामें केवल एक वेनपुत्रको उत्पन्न किया, राजा

वेनस्य मुनीनां कोपतो भृशम् ॥ ७ ॥ अनौरसी प्रजासृष्टिर्जाता वेनस्य राजते ॥ प्रजार्थमृषयः सर्वे करं वै दक्षिणं तदा ॥ ८ ॥ ममंथुर्मिलिताः शास्त्रतत्वरूपा महेश्वरि ॥ मथिते तु करे तस्य संबभूव महाकृतिः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे मुदिता ब्रह्मवादिनः ॥ एक एव महाबाहुः प्रजासर्गं करिष्यति ॥ १० ॥ प्राप्स्यते च यशः श्रेष्ठं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ इत्युक्तवंतो मुनयः प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥ स धन्वी कवची जातस्तेजसा द्योतयन्दिशः ॥ पृथुं पृथुयशस्त्वात्तु बभूव नृपसत्तमः ॥ १२ ॥ राजसूयाभिषिक्तानां राज्ञामाद्यो जनेश्वरः ॥ तेनेयं पृथुना देवि दुग्धा गौर्वृत्तये नृणाम् ॥ १३ ॥ सस्याय सर्वजंतूनां पालनाय महाद्युतिः ॥ ततो देवैर्मुनिगणैः पितृभिर्यक्षदानवैः ॥ १४ ॥ गंधर्वैः साप्सरोभिश्च सर्वैः पुण्यजनैस्तथा ॥ वीरुद्भिः पर्वतैश्चैव दोहिता सा वसुंधरा ॥ १५ ॥ ददौ क्षीरं महादेवी तेन प्राणानधारयत् ॥

के अन्यायसे अथच मुनियोंके कोपसे ॥ ७ ॥ राजा वेनके अनौरस सन्तान उत्पन्न हुई, इसके अनन्तर प्रजाकी उत्पत्तिके लिये समस्त ऋषियोंने उपाय किये ॥ ८ ॥ हे महेश्वरि ! सबने मिलकर उसके हाथका मन्थन किया, उसमेंसे एक महाद्युति प्रादुर्भूत हुई ॥ ९ ॥ उसे देखके ब्रह्मवादि समस्त महर्षिगण बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि–एकही भुजाके तेजसे सन्तानोत्पत्ति होनेका निश्चय होगया ॥ १० ॥ इससे जो सन्तान होगी वोह त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होकर श्रेष्ठ यशका उपार्जन करेगी, यों कहकर आनन्दमें मग्न होकर महर्षिलोग इसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥ और उसने तत्कालही अपने तेजद्वारा दिशाओंको प्रकाशित करके कवच औ धनुषको धारण करलिया, यह प्रभूत यशशाली राजश्रेष्ठ पृथु हुआ ॥ १२ ॥ राजसूययज्ञों का अनुष्ठान करनेसे जिन राजाओंको अभिषेक प्राप्त हुआहै उनमें प्रथम गणनीय राजा पृथु राजकृत्यके लिये भूमिको दुहा ॥ १३ ॥ परमतेजस्वी इस राजाने जीवोंकी पालनाकी कामनासे धान्योंके निमित्त भूमिका दोहनकिया । तदनन्तर–क्या देवता, क्या मुनिगण, पितृग यक्ष, दानव ॥ १४ ॥ अप्सराओं सहित गन्धर्वों एवंच दानवोंनेभी पर्वत आदि सब स्थानों में भूमिका दोहन किया ॥ १५ ॥ वसुन्धरानेभी सब तरहसे उस राजाको पूर्ण करदिय इसीसे उसकी प्रजा सम्यक्तया प्राणधारण करती हुई । फिर पृथुके दो पुत्र उत्पन्न हुए

धर्मज्ञौ तु पृथोः पुत्रौ जज्ञाते पुरुषर्षभौ ॥१६॥ शिखंडी च ह
र्धामा प्रजापालो महाद्युतिः ॥ षडाग्नेयीहविर्धानात्प्राचीनव
रादिकान् ॥१७॥ षट् पुत्राणां महाभागे तेषां श्रेष्ठतरो विभुः
प्राचीनबर्हिरभवत् प्रजापतिरकल्मषः ॥ १८ ॥ समुद्रद्वीपस
तां पालयामास सर्वतः ॥ कृतदारो महातेजा यशोव्याप्तदिगंत
॥ १९ ॥ प्रचीनबर्हिषो देवि सवर्णा तस्य चांगना ॥ दश प्र
तसो नाम जनयामास पुत्रकान् ॥ २० ॥ सर्वे शास्त्रार्थतत्व
धनुर्वेदविशारदाः ॥ त एकधर्माचरणास्तपस्तेपुर्महत्तरम्
॥ २१ ॥ दशवर्षसहस्राणि समुद्रस्य जले स्थिताः ॥ त
तेषु प्रचेतस्सु बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ २२ ॥ वर्द्धत एव वृक्षा
अकुर्वंत प्रजाक्षयम् ॥ नाशकन्वायवो वातुं नभस्तैः सं
तथा ॥ २३ ॥ वर्षाणामयुतं देवि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥
श्रुत्वा महात्मानस्तपसा दग्धकिल्विषाः ॥ २४ ॥ मुखेभ्यः स
जुर्वायुं वह्निं चंद्रं महेश्वरि ॥ उन्मूलनं वायुरग्ने कृत्वा वृक्षा

कि धर्मके बड़े ज्ञाताथे ॥ १६ ॥ फिर शिखण्डी हविर्धाम प्रजापाल महाद्युति और
बर्हि ॥ १७ ॥ इन छहो पुत्रोंमेंसे हे महाभागे ! निष्पाप अतएव सर्वश्रेष्ठ प्राचीनबर्हि
पति हुआ ॥ १८ ॥ इसके तेजसे दिशाओंके प्रान्तभागभी व्याप्त होगये, इसने अपना
करलेनेके अनन्तर समुद्र एवंच द्वीप द्वीपान्तरों पर्यंत सर्वतः भूमिका शासन किया ॥ १९
हे देवि ! प्राचीनबर्हिने प्रचेता नामवाले दशपुत्रोंको उत्पन्न किया ॥२०॥ वे दशोंही
र्थके तत्वको जानते और सभी धनुषविद्यामें बड़े चतुर थे । उन्होंने एकही चरणके
रसे परम उग्रतपका आचरण किया ॥ २१ ॥ दशसहस्र वर्षपर्यन्त समुद्रके जलमें स्थित
कर उन्होंने तपश्चर्या करी, उन प्रचेताओंके वहांही स्थिति करते २ प्रजाका क्षय हो
॥ २२ ॥ जिसप्रकार वृक्ष स्वल्पकालहीमें उत्पन्न और परिपक्व होकर विनष्ट हो जातेहैं,
भांति प्रजाका क्षय होगया, और उनके तेजसे आकाशभी ऐसा व्याप्त होगया कि, पवनका
नातक बन्द होगया ॥ २३ ॥ इस प्रकार दशसहस्र वर्ष पर्यन्त उन्होंने प्रजाके उद्भवके
कुछभी चेष्टा नहीं करी, जब कि उन महात्माओंने प्रजाके क्षयका ऐसा वृत्तान्त सुना ॥२
हे महेश्वरि ! उन्होंने तभी अपने मुखसे अग्नि वायु और चन्द्रमाको उत्पन्न किया,

सर्वतः ॥२५॥ ततोऽग्निर्दाहयामास चटिच्चटिति सर्वतः ॥ द्रुमक्षये
ततो जाते शेषा वै शाखिनोऽब्रुवन् ॥ २६ ॥ चंद्रं स्वराजंतं चैव
रक्षरक्षेति चासकृत् ॥ उपगम्य शनैः सोम उवाच च प्रजाप-
तीन् ॥ २७ ॥ शृणुध्वं वचनं चेदं सर्वे प्राचीनबर्हिषः ॥ कोपं
त्यजत वृक्षेभ्यः शेषेभ्यः पुरुषर्षभाः ॥ २८ ॥ कन्यामेते प्रयच्छं-
ति शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ कन्यारत्नमिदं तात वृक्षाणां परमाद्भु-
तम् ॥ २९ ॥ भविष्यं जानता गर्भे वृत्तान्तत्वं प्रचेतसः ॥ मारि-
षेति समाख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३० ॥ सर्वेषां भो महा-
भागा भार्यास्तु वर वर्णिनी ॥ युष्माकं तेजसार्द्धेन ममचार्द्धेन
मानदाः ॥ ३१ ॥ अस्यामेवोत्पत्स्यते वै दक्षोनाम प्रजापतिः ॥
अग्नितजाः स एवायं प्रजाः संवर्द्धयिष्याति ॥ ३२ ॥ सोमस्य
च वचः श्रुत्वा जगृहुस्ते ततः सुताम् ॥ मारिषां नामतो देवि
सर्ववंशविवर्द्धिनीम् ॥ ३३ ॥ कोपं संगृह्य वृक्षेभ्यो वायुं वाह्न
निवार्य्यच ॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्योगर्भं प्राप च मारिषा ॥३४॥

ने अग्निने प्रथम सब वृक्षोका उन्मूलन किया ॥ २५ ॥ फिर चट २ शब्द करके
अग्निने सबका दाह करादिया, इसप्रकार जब सब वृक्षोंका विनाश होचुका तब उनसे कहा
॥ २६ ॥ हे प्रभो ! अब आप इसकी सर्वथा रक्षाकरें, तबतौ चन्द्रमा उन प्रजापतियोंके
निकट जाकर यौं बोला ॥ २७ ॥ तुम सब प्राचीनबर्हि मेरे इसवचनको सुनो, हे नरोत्तम !
अब इन शेषवृक्षोंके ऊपरसे अपने क्रोधको दूरकरो ॥ २८ ॥ यह सब अपनी २ कन्या
दान करतेहैं, अतः अग्नि और वायु शान्ति ग्रहण करें, हे सज्जनो ! इनवृक्षोंकी कन्यकाएँ
रत्नोंकी समान परम अद्भुतहैं ॥ २९ ॥ आपतौ समस्त भविष्यवृत्तान्त जानतेहीहैं, हे मारिष !
भूमिके ऊपर इन कन्याओंका रूप अनुपमहै ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! सबकी सुन्दरी
पत्नी मानदा तुम्हारे और हमारे तेजसे ॥ ३१ ॥ दक्षनाम प्रजापतिको उत्पन्न करेगी,
उसप्रजापतिका अग्निकी समान तेज होगा और यह सृष्टिकी वृद्धि करेंगे ॥ ३२ ॥
सोमके यहवचन सुनके उन सबने कन्याओंको ग्रहण किया हे देवि ! समस्तवंशकी
वृद्धि करनेवाली उस कन्याका नाम मारिषा था ॥ ३३ ॥ वृक्षोंके ऊपरसे क्रोधको हटाकर
और अग्नि तथा वायुको निवारण करके दश प्रचेताओंके गर्भको मारिषाने ग्रहणकिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु दशमे मासि दक्षं प्रासूतवै सुतम् ॥ दक्षोपि स मा
तेजाः सोमस्यांशेन पार्वति ॥ ३५ ॥ पुत्रानुत्पादयामास स
वंशविवर्द्धनान् ॥ स्थावरांश्च चरांश्चैव द्विपदांश्च चतुष्पदः
॥ ३६ ॥ पूर्वं वै मानसान्पूर्वं पश्चादसृजत स्त्रियः ॥ त
ददौ तु धर्माय दश कन्याः सुदर्शनाः ॥ ३७ ॥ कश्यपाय त
कन्यास्त्रयोदश महाप्रभुः ॥ सोमाय च ददौ कन्याः सप्तविंश
रेव च ॥ ३८ ॥ अश्विन्याद्या महाभागे ताभ्यो जातास्ततः
जाः ॥ देवा नागास्तथा गावो दैत्यदानवकिन्नराः ॥ ३९ ॥ गं
र्वाप्सरसश्चैव जातास्ताभ्यो महेश्वरि ॥ तत एव समा जात
प्रजा मैथुनसंभवाः ॥ ४० ॥ पूर्वं वै मानसादेव स्मरणाद
नादपि ॥ इति ते कथितो देवि प्रजासर्गो मया प्रिये ॥ यच्छ्रु
सर्वपापेभ्यो मुच्यते स्मरणादपि ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदा
खंडे प्रजासर्गो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

तदनन्तर दशवें महीनेमें मारिषाने दक्षनाम पुत्रका प्रसवकिया, हे पार्वति ! महातेजस्वी
दक्षभी सोमके अंशसे ॥ ३५ ॥ स्थावर (वृक्षादिक) चर (मनुष्यादि) द्विपद और
ष्पद ऐसे पुत्रोंको उत्पन्नकिया जो समस्त वंशकी वृद्धि करनेवालेथे ॥ ३६ ॥ इसके
सुन्दर रूपवती दशकन्याएँ धर्मको प्रदानकर दीं ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् तेरहकन्या क
जीको दीं, अथ च सत्ताईस कन्या सोम (चन्द्रमा) के अर्पण करीं ॥ ३८ ॥ हे महाभ
उनके अश्विनी आदि नामहैं, उन्हीं सबसे प्रजाका प्रादुर्भाव हुआ । जो कि,
देवता, नाग, गौ (पशु) दैत्य, दानव और किन्नर जातियोंके नामसे प्रसिद्ध
॥ ३९ ॥ हे महेश्वरि ! उन्हीं सत्ताईस कन्यकाओंसे गन्धर्व और अप्सरागणकी उ
हुईं, इन्हींसे मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४० ॥ और पहिली सृष्टि तौ म
ही थी उसकी उत्पत्ति दर्शन अथवा श्रवण मात्रसेही हुईथी । हे प्रिये ! प्रजाकी सृष्टिका
हमने यह तुम्हारे आगे वर्णन किया, इसचरित्रको श्रवणकरने अथवा केवल स्मरण
करनेसेभी व्यक्तिगण पापसे मुक्तलाभ करतेहैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां प्रजासर्गोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीपार्वत्युवाच ॥ त्वत्त एव महादेव देवोत्पत्तिर्मया श्रुता ॥ ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद्वामांगुष्ठात्स्त्रियस्तथा ॥ १ ॥ यदुक्ता मारिषानाम वार्क्षी सोमस्य तेजसा ॥ तस्यां दक्षो महातेजाश्चंद्रश्च सुरतां गतः ॥ २ ॥ एतन्मे संशयं छिंधि यदि भक्तेषु ते दया ॥ त्वमेव सर्वलोकानां सर्वज्ञोसि महेश्वर ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोहं त्वया शिवे ॥ बह्वयश्च सृष्टयो नष्टा ब्रह्मणश्च तथैव च ॥ ४ ॥ उत्पत्तिः प्रलयश्चैव नियतं दिनरात्रिवत् ॥ दक्षादयो नृपा जाताः कालेकाले सदा प्रिये ॥ ५ ॥ कदाचिद्ब्रह्मणोंगुष्ठान्मारिषायास्तथैव च ॥ मत्तश्चैव कदाचित्तु मनसो ब्रह्मणस्तथा ॥ ६ ॥ ज्यैष्ठ्यंका निष्ठ्यकं देवि मनुष्याणां महेश्वरि ॥ ये मायामोहसंच्छन्ना न जानंति परात्परम् ॥ ७ ॥ आत्मा एकः सर्वव्यापी नित्योव्यक्तो निरंजनः ॥ यदा प्रकृतिसं-

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे महादेव ! आपके द्वारा कीर्त्तन कीहुई देवसमाजकी उत्पत्तिको ने श्रवणकिया, जिस प्रकारसे कि, ब्रह्माजीके दक्षिण अंगुष्ठसे पुरुष और वामअंगुष्ठसे स्त्रीका न्म हुआथा ॥ १ ॥ आपने जो यह कहा कि, चन्द्रदेवके तेजसे मारिषाने दक्षपुत्रको उत्पन्न किया, परन्तु—चन्द्रमातो देवताथे ॥ २ ॥ सो यही मुझे बड़ा सन्देहहै, भक्तोंके ऊपर आपकी या विशेष है, अतएव आप मेरे सन्देहको निवारण करैं, क्योंकि, आपही समस्त लोकोंके ामी अथच सबके ज्ञाताहैं ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले—हे कल्याणमूर्त्ति ! ऐश्वर्यमति ! ो कुछ तुमने मुझसे प्रश्नकिया मैं तुम्हैं उसका उत्तर सुनाताहूं तुम सुनो, इसी प्रकार ब्रह्माकी अनेक सृष्टिएँ नष्ट होगईं ॥ ४ ॥ विधाता रातदिन बराबर उत्पत्ति और प्रलयमेंही रतरहे, हेप्रिय ! समय २ पर दक्ष आदि अनेक भूपालगणकाभी प्रादुर्भाव होतारहा ॥ ५ ॥ भी ब्रह्माजीके अँगूठेसे, कभी मारिषासे, कभी हमारे सकाशसे और कभी ब्रह्माजीके मनसे ॥ ६ ॥ हे देवि ! मनुष्योंकी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जोकि मायामोहसे व्याप्त होनेके कारण रब्रह्म परमेश्वरको कुछ नहीं जानतेथे ॥ ७ ॥ सदैव एकरस वर्त्तमान, प्रकट अर्थात् चैतन्यत्तावान् मायाजनित विकारशून्य ऐसा आत्मा सबमें एकही व्याप्तथा । जब अपनी प्रकृतिके-

यक्तो भूतानि स्रष्टुमिच्छति ॥ ८ ॥ येन केनाप्युपायेन सृज
सचराचरम् ॥ तप एव महाभागे सर्वेभ्यो बलवत्तरम् ॥ ९ ॥ इ
श्रीस्कांदे केदारखंडे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वशीभूतहो सृष्टिकी रचना करनेकी कामना करतेथे ॥ ८ ॥ तभी येन केन प्रकारेण स
सृष्टिकी रचना करडालतेथे, हे महाभागे ! तपही सबसे अधिक बलवान् मानागयाहै ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे व्रजरत्नभट्टाचार्य्यकृतभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवानां दानवानां च दैत्यानां यक्षरक्षसाम्
उत्पत्तिं विस्तरेणैव कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच
दक्षो नाम प्रजानाथश्चिकीर्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ अजीजनत् सह
वै पुत्राणां सृष्टिकर्मणे ॥ २ ॥ तानागत्य माहतेजा नारदो भगव
नृषिः ॥ उवाच वचनं चेदं विहस्यच पुनः पुनः ॥ ३ ॥ नारद उवाच
शृणुध्वं वचनं सर्वे दाक्षेयाः सृष्टिकर्मणि ॥ यूयं नियुक्ता दक्षे
कथं कुरुत बालिशाः ॥ ४ ॥ जानीध्वं पृथ्व्या अंतं कुरु
सृष्टिकर्म च ॥ विनाज्ञानं प्रमाणस्य प्रजासर्गो न जायते ॥ ५
ईश्वर उवाच ॥ इत्याज्ञप्तं नारदेन श्रुत्वा ते दक्षपुत्रकाः ॥ गता द्र
प्रमाणं वै पृथिव्या जगदीश्वरि ॥ अद्यापि न निवर्त्तंते समुद्रे

श्रीपार्वतीजी बोलीं- हेप्रभो ! देवता दानव दैत्य यक्ष और राक्षस इन सबकी उ
विस्तारपूर्वक वर्णन करके सुनाइये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले--जब दक्षनाम प्रजापतिकी
इच्छा हुई कि -अब विविध प्रकारकी सृष्टिकी रचनाकरें, तब उन्होंने सृष्टि कर्मके लिये
पुत्र उत्पादन किये ॥ २ ॥ परमतेजस्वी उन दक्षजीके पुत्रोंसे देवर्षि भगवान् नारदजीने
कर यह वचन कहे ॥ ३ ॥ नारदजी बोले--हे दक्षकुमारो ! तुम हमारे वचनसुनो, तुम्हें
दक्षने सृष्टिकर्ममें नियुक्त कियाहै सो अरे मूर्खो ! तुम कैसे करोगे ॥ ४ ॥ प्रथमतौ भू
अन्त जानना चाहिये तदनन्तर सृष्टिका निर्माण करो, कारण यहहै कि--प्रमाणके
जाने प्रजाकी रचना नहीं होसक्ती ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले--नारदजीके कहेहुए वच
श्रवणकरके वे दक्ष प्रजापतिके पुत्र हेजगज्जननि ! पृथ्वीका अन्त देखनेके लिये चले गये

इवापगाः ॥ ६ ॥ अथ पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः प्राचेतसो मुनिः ॥ पुनर्दशशतं चैव पुंसाश्चैवासृजत्प्रभुः ॥ ७॥ पुनर्वै नारदेनोक्ता गता वै सर्वतो दिशम् ॥ पुनस्तेष्वपि नष्टेषु दक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ ८ ॥ नारदं पुत्रहंतारं गर्भवासं व्रजेति च ॥ ९ ॥ पुनर्दक्षो महातेजाः कन्या वै षष्टिसंख्यकाः ॥ ताः कन्याः कतिचिद्देवि कश्यपो नाम वै मुनिः ॥ १० ॥ धर्माय चैवसोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ चतस्रो भृगुपुत्राय द्वे वै चांगिरसे तथा ॥ ११॥ द्वे कृशाश्वाय मुनये ममामि च तथा शृणु ॥ दितिर्वैजनयामास पुत्रानमिततेजसः ॥ ॥ १२ ॥ शक्रो विष्णुश्च जज्ञाते शृण्वादित्यास्तथैव च ॥ धातार्यमा च त्वष्टा च पूषा वै वरुणस्तथा ॥ १३ ॥ विवस्वान् सविता मित्रो भगेशश्च महाबलः ॥ रविश्च द्वादशादित्याः कथिताश्चाक्षुषोंत्तरे ॥ १४ ॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च पार्वति ॥ १५ ॥ सिंहिकाचाभवत् कन्या ददौ तां विप्रचित्तये ॥ तस्याः पुत्रास्तदा-

समुद्रपर्यन्त पहुंचकर जिसप्रकार नदियें पीछेको नहीं लौटतीहैं इसीप्रकार वे दक्षपुत्रभी आजतक नहीं लौटे ॥ ६ ॥ इसप्रकार पुत्रोंके विनष्ट होजानेपर दक्ष प्रजापतिने फिर एक सहस्र पुत्रोंको उत्पन्नकिया ॥ ७ ॥ उन्हेंभी नारदजीने उसीप्रकारका उपदेशकर दिया अतएव वेभी दिशा विदिशाओंमें चले गये, जब वे पुत्रभी नष्ट होगये तौ दक्षप्रजापति क्रोधित होकर यह वाक्य बोले ॥८॥ कि--हमारे पुत्रोंका विनाश करनेवाले नारदकोभी गर्भमें निवास करना पड़ेगा अर्थात्--जन्ममरण संबन्धी दुःख भोगनेके लिये नारदजीको शाप दिया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर महातेजस्वी दक्षने साठ कन्या उत्पन्नकरीं, हे देवि ! उनमेंसे कुछकन्या कश्यप मुनिको दीं ॥ १० ॥ धर्म और सोमको दीं तथा चारकन्यकाएँ अरिष्टनेमिको दीं, चार भृगुके पुत्रको और दो अंगिरा ऋषिको दीं ॥ ११ ॥ दो कृशाश्वमुनिको दीं। तदनन्तर दितिने परमतेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ शक्र विष्णु आदित्य धाता अर्यमा त्वष्टा पूषा और वरुण ॥ १३ ॥ विवस्वान् सविता मित्र भग और परमतेजस्वी अंश और रवि यह बारह आदित्य कीर्त्तन किये गये हैं ॥ १४ ॥ कश्यपके संयोगसे दितिके दोपुत्र उत्पन्न हुए, हे पार्वति ! उनमेंसे एकका नाम हिरण्यकशिपु और दूसरेका नाम हिरण्याक्ष हुआ ॥ १५ ॥ सिंहिका नामकी एककन्या हुई उसे विप्रचित्तिको दे दिया, उस सिंहिकाकेभी म-

जाताः सैंहिकेया महाबलाः ॥ १६ ॥ संख्यया दशसाहस्रं विप्र
चित्तेर्महाबलात् ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारोमितविक्रमा
॥ १७ ॥ अनुह्लादश्च प्रह्लादो ह्लादः संह्लाद एव च ॥ अनुह्लादस्य
पुत्रास्तु महानासोभयानकः ॥ १८ ॥ कौलश्चैव महाशब्दो
बभूवुरमितौजसः ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्विरोचनसुतो बलिः
॥ १९ ॥ बाणाद्यं वै पुत्रशतं बलेरासीन् महात्मनः ॥
हिरण्याक्षसुताः पंच महात्मानो महाबलाः ॥ २० ॥ झर्झरः
शकुनिश्चैव शंकुशीर्षो महानदः ॥ विक्रांतः कालनाभश्च
धनुर्वेदविशारदाः ॥ २१ ॥ कद्रोःपुत्रान् महाभागे निबोध मम
सांप्रतम् ॥ अनंतो वासुकिश्चैव एलापुत्रो धनंजयः ॥ २२ ॥
काद्रवेया महात्मान इत्याद्याः कद्रुपुत्रकाः ॥ विनता गरुडं चै
ह्यरुणं च महाबलम् ॥ २३ ॥ द्वौ पुत्रौ जनयामास तयो
पुत्रसंततिः ॥ सुरैरेकादशप्रोक्ता रुद्रा जातास्तु कश्यपा
॥ २४ ॥ हरश्च बहुरूपश्च कपर्दी त्र्यंबकस्तथा ॥ वृषाकपि
शंभुश्च मृगव्याधो पराजितः ॥ २५ ॥ कलापीरैवतःसर्पो रु

हाबली पुत्र हुए ॥ १६ ॥ विप्रचित्तिके संसर्गसे दशसहस्र पुत्र सिंहिकाके उत्पन्न हुए । ए
हिरण्यकशिपुके अमितपराक्रमी चारपुत्र हुए ॥ १७ ॥ उनके नाम क्रमसे यहह अनुह्लाद
ह्लाद और संह्लाद । और अनुह्लादका पुत्र महानास भयानक हुआ, एवं च इसके दूसरे
कौल नाम हुआ यह महापराक्रमी था ॥ १८ ॥ प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ अथच विरो
बलि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ महात्मा बलिके बाण आदि शतसंख्यक पुत्र
हुए हिरण्याक्षके पाच पुत्र हुए जो बड़े महात्मा और बड़े बलशाली थे ॥ २० ॥ झर्झर श
शंकुशीर्ष महानद और कालनाम यह उनके नाम हुए, और यह सब धनुर्विद्यामें बड़े नि
॥ २१ ॥ हे भगवति ! अब मेरे द्वारा वर्णन किये हुए कद्रुके पुत्रोंका वृत्तान्त श्रवण
अनन्त वासुकि और धनंजय ॥ २२ ॥ इत्यादि कद्रुके पुत्र हुए जो कि बड़े महात्मा
च विनताने गरुड और अरुण नामके ॥ २३ ॥ महाबली दो पुत्रोंको उत्पन्न किया।
कश्यपजीसे एकादश रुद्रोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ २४ ॥ हर, बहुरूप, कपर्दी, त्र्यंबक, वृ
शंभु, मृगव्याध, अपराजित ॥ २५ ॥ कलापी, रैवत और सर्व यह एकादशरुद्र वर्णन

एकादश स्मृताः ॥ सुरसायास्तु सर्पास्तु जातास्तेहिबाल्वणाः ॥ २६ ॥ दनोस्तु दानवाः प्रोक्ताः शृणु श्रेष्ठान् महाबलान् ॥ विप्रचित्तिर्द्विमूर्द्धा च शंकुकर्णो गवेथिकः ॥ २७ ॥ अयोमुखः शंबरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥ स्वर्भानुर्वज्रनाभश्च वारभः शैलभादिकाः ॥ २८ ॥ दानवास्तु समाख्याता महाबलपराक्रमाः ॥ तेषां वै पुत्रपौत्राणां संख्या कर्तुं न विद्यते ॥ २९ ॥ स्वर्भानोस्तु प्रभाकन्या पुलोम्नस्तु शची मता ॥ लोपोमा कालकेयाश्च हिरण्यकशिपोः पुरः ॥ ३० ॥ संख्यया दशसाहस्रं सहस्रं च प्रकीर्त्तितम् ॥ मुनेस्तु मुनयः ख्याता अरिष्टातश्चराचराः ॥ ३१ ॥ एतासामेव सर्वेहि जगदेतच्चराचरम् ॥ किन्नरा यक्षरक्षांसि ताभ्यो जाता महाबलाः ॥ ३२ ॥ वृक्षाश्च पर्वताश्चैव पक्षिणश्च चतुष्पदाः ॥ इति ते कथितं देवि दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ३३ ॥ पठतां शृणवतां चैव स्वर्गस्य फलदायकम् ॥ ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

येहैं, सुरसासे सर्पोंकी सृष्टि हुई वेही बाल्वणभी कहलाए ॥ २६ ॥ सुनो ! दनुसे दानवों-का प्रादुर्भाव हुआ, अब उन महाबलोंका वर्णन सुनो । उनके नाम विप्रचित्ति द्विमूर्द्धा शंकुकर्ण, गवेथिक ॥ २७ ॥ अयोमुख, शंबर, कपिल तथा वामन, स्वर्भानु वज्रनाभ वारभ और शैलभादिक हुए ॥ २८ ॥ यह दानव महाबली अतएव अतिशय पराक्रमी विख्यात हुए इन दानवोंके पुत्र पौत्रोंकी संख्या करनेकी शक्ति किसीमें नहींहै ॥ २९ ॥ स्वर्भानुकी प्रभा कन्या पुलोमा सुसची लोपोमा कालकेया और हिरण्यकशिपुके संसर्गसे ॥ ३० ॥ ग्यारह सहस्र सन्तानोंको उत्पन्न करतीहुई, एवं च मुनियोंसे मुनियोंकी तथा चराचरकी सृष्टि हुई ॥ ३१ ॥ इन्हींकी सन्तानसे यह चराचर समस्त जगत् प्रादुर्भूत हुआ, अथच इन्हींसे महाबली किन्नर यक्ष और राक्षसगण उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥ क्या वृक्ष, क्या पर्वत क्या पक्षी और क्या चतुष्पद (चौपाये) जीव इन सबकी सृष्टि उन्हींसे हुई, हे देवि ! इसप्रकार हमने यह दैत्य दानव और राक्षसोंकी उत्पत्तिका क्रम तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति इसका पाठ अथवा श्रवण करतेहैं उन्हें स्वर्गका फल प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामष्टमोध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

पार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि कथय त्वं मम प्रभो ॥ १ ॥ देवांश्च मुनिवर्यांश्च देवेंद्रांश्च तथैव च ॥ स्वायंभुवमनोर्देव सर्वं कथय सुव्रत ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ कथयामि महेशानि मनूनां गणनां प्रिये ॥ स्वायंभुवो मनुः पूर्वं स्वारोचिषमनुस्तथा ॥ ३ ॥ औत्तमिस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ वैवस्वतमनुर्देवि सांप्रतं सप्तमो ह्ययम् ॥ ४ ॥ सावर्णिर्दक्षसावर्णिः सूर्यसावर्णि रेवच ॥ मेरुसावर्णिश्चतथा भौत्यो गैव्यस्तथैव च ॥ ५ ॥ रौच्यश्च हि महाभागे कथिता मनवोमया ॥ आदिमन्वन्तरे देवि सप्तर्षीन् शृणु मे प्रिये ॥ ६ ॥ मरीचिरात्रिरंगिराः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ वाशिष्ठश्च महातेजा एते सप्तर्षयस्तथा ॥ ७ ॥ ते वै सप्तर्षयो नित्यमुत्तरस्यां दिशि स्थिताः ॥ याम्या देवास्तथा नाम्ना ख्याता स्वायंभुवोंतरे ॥ ८ ॥ अग्नीध्रश्चाग्निवाहुश्च वसुर्मेधातिथिस्तथा ॥ मेधा हव्यश्च ज्योतिष्मान् द्युतिमान् सवनस्तथा ॥ ९ ॥ पुत्रश्चैव तथा ख्यातो दशपुत्रा महाबलाः ॥ मनोः स्वायंभुवस्यै

पार्वती बोलीं हे देवाधिदेव महादेव ! हे हमारे प्राणाधार ! आप समस्त शास्त्रोंके अर्थको सम्यक्रीतिसे जानतेहैं, अतएव अब सब मन्वंतरोंका वर्णन मुझसे करो ॥ १ ॥ हे देवताश्रेष्ठ मुनीश्वर तथा देवेन्द्र और स्वायंभुव मनु इनसबका कीर्त्तन करो ॥ २ ॥ महादेव बोले--हे प्रिये महेश्वरि ! हम मनुष्योंकी गणना तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं, सबसे प्रथम स्वायंभुव मनु फिर स्वारोचिष ॥ ३ ॥ औतमि तामस रैवत चाक्षुप यह छै मनु हुए, अब सप्तम वैवस्वत वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ सावर्णि दक्षसावर्णि सूर्यसावर्णि और मेरुसावर्णि तथा भौत्य गैव्य ॥ ५ ॥ तथा रौच्य यह सात मनु आगे होंगे हे महाभागे ! ऐसे सब मनु हमने तुमसे वर्णन किये, आदि मन्वन्तरमें जो सप्तर्षि हुएहैं हे प्रिये ! अब उन्हें सुनो ॥ ६ ॥ मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु और वासिष्ठ यह महातेजस्वी सप्तर्षि हुए ॥ ७ ॥ यहां सप्तर्षि नित्य उत्तरदिशामें स्थित रहतेहैं, स्वायंभूमन्वन्तरमें इसप्रकार सप्तर्षि निर्दिष्ट हुएहैं ॥ ८ ॥ अग्नीध्र आग्नि वायु वसु मेधातिथि मेधा हव्य ज्योतिष्मान द्युतिमान् और सवन ॥ ९ ॥ स्वायं

ते कथितास्तव शैलजे ॥ १० ॥ तेषामेव हि वंशेन त्रैलोक्यं पूरितं तथा ॥ इति ते प्रथमं देवि मन्वंतरमुदाहृतम् ॥ ११ ॥ स्वारोचिषं द्वितीयं तु शृणु सांप्रतमुच्यते ॥ औवों वशिष्ठपुत्रश्च काश्यपः सांब एव च ॥ १२ ॥ दत्तो बृहस्पतिश्चैव प्राणो निश्च्यवनस्तथा ॥ एते सप्तर्षयःप्रोक्ता मयास्वारोचिषेंतरे ॥ १३ ॥ देवा ख्यातास्तथा देवितुषिता नाम सुव्रताः ॥ हविघ्रः सुकृतिर्भूतिर्नमस्यः प्रथितो नभः ॥ १४ ॥ आपो मूर्त्तिरपः सूर्यः स्वारोचिषसुताःस्मृताः ॥ तैरेव प्रथिता भूमिः सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ १५ ॥ मन्वंतरं तृतयिं तु वक्ष्यामि तन्निबोध च ॥ वसिष्ठस्य सुताः सप्त वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥१६॥ ऊर्जा नाम सुरा ख्याता हिरण्यगर्भसूनवः ॥ ईषऊर्जस्तनूजश्च माधवो मधुरेव च ॥ १७ ॥ सहः शुक्रः शुचिश्चैव नमस्यो नभ एव च ॥ एते पुत्रास्तव ख्याता दश चैव महाबलाः ॥ १८ ॥ तृतीयमिति ते प्रोक्तं चतुर्थं शृणु सांप्रतम् ॥ अग्निः काव्यः पृथुश्चैव जह्नुर्धाता च पार्वति ॥ १९ ॥

मनुके महाबली अतएव अतिशय प्रसिद्ध दशपुत्र हे गिरिराजकुमारि ! हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियेहैं ॥ १० ॥ हे देवि ! उन्हींके वंशसे यह त्रिलोकी व्याप्त हुईहै. इसप्रकार प्रथम मन्वन्तरका आख्यान हमने तुम्हें वर्णन करके सुनायाहै ॥ ११ ॥ अब स्वारोचिष नामवाले द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन करतेहैं, औवे काश्यप सांब ॥ १२ ॥ दत्त बृहस्पति प्राण और निश्च्यवन यह सात सप्तर्षि स्वारोचिष मन्वन्तरमें कथित हुएहैं ॥ १३ ॥ और हे देवि ! उषित सुव्रत हविघ्र सुकृति भूति नभस्य प्रथित और नभ ॥ १४ ॥ आप मूर्त्ति अप सूर्य यह सब स्वारोचिषके पुत्र कीर्तन कियेगयेहैं ! सातों द्वीप और समस्त पर्वतोंसहित यह भूमि उन्हींसे प्रसिद्ध होरही है ॥ १५ ॥ अब मैं तीसरे मन्वन्तरका वर्णन करताहूं, तुम उसे श्रवण करो, वसिष्ठके सात पुत्र वासिष्ठ नामसे विख्यात हुए ॥ १६ ॥ और हिरण्यगर्भके पुत्र ऊर्जनाम देवतागण प्रसिद्ध हुए, ईष, ऊर्ज, तनूज, माधव और मधु ॥ १७ ॥ सह, शुक्र, शुचि, नभस्य और नभ यह दश महाबली पुत्र कीर्तन कियेगयेहैं ॥ १८ ॥ यह तिसरे मन्वन्तरकी कथाभी कहीजाचुकी अब तुम चतुर्थका वर्णन सुनो हे पार्वति ! अग्नि, कव्य, पृथु, जह्नु, धाता ॥ १९

१ "जम्बु शाक कुश क्रौंच शाल्मलि प्लक्ष पुष्कर" यह सात द्वीप प्रसिद्ध हैं।

कापीवानकपीवांश्च एते सप्तर्षयः स्मृताः ॥२०॥ सत्या देवगणा ख्याता मया ते तामसांतरे ॥ तामसस्य मनोः पुत्रान् शृणु देवि यथातथम् ॥ द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलः परंतपः ॥ २१ ॥ तपोधनस्तपःप्रीतिरकल्माषस्तथा स्मृतः ॥ तन्वीधन्वी तथा ख्यातौ तामसस्य सुता दश ॥ २२ ॥ चतुर्थं कथितं देवि मन्वन्तरं च तामसम् ॥ पंचमं रैभ्यकं नाम शृणु सांप्रतमुच्यते ॥ २३ ॥ वेदबाहुः सुबाहुश्च वेदशीर्षो मुनिस्तथा ॥ हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः॥२४॥सप्तर्षयो हि रैभ्यस्य मनोरंतर एव च ॥ प्रकृतयो भूतरसा देवाः ख्याता महौजसः ॥ २५ ॥ पुत्रान्निबोध रैभ्यस्य विस्तराद्वदतो मम ॥ धृतिर्निरुत्सुको नव्य स्तत्त्वदर्शी महाबलः ॥२६॥ अरण्यश्च प्रकारश्च नेमिकः सत्यवाग्धृतिः॥ इत्येते कथिताः पुत्राः रैवतस्य महात्मनः॥२७॥ पंचमं कथितं ते वै षष्ठं च शृणु कथ्यते ॥ भृगुर्नगो विवस्वांश्च विरजा अतिनामकः ॥२८॥ सुधामा च सहिस्नुश्च ऋषयो वै तव स्मृताः ॥ आद्याः प्रसूता ऋभवः पृथग्भावा महौजसः ॥ २९ ॥ लेखा वै

कापीवान और अकपीवान यह सप्तर्षि वर्णन किये गयेहैं. और उस तामसे मन्वन्तरमें सत्यसंज्ञक देवगण कीर्त्तित हुएहैं ॥ २० ॥ हे देवि ! अब तुम तामस मन्वन्तरके पुत्रोंको सुनो; अर्थात् द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल और परन्तप ॥ २१ ॥ तपोधन, तपःप्रीति तथा अकल्माष, तन्वी और धन्वी यह दशनाम हैं ॥ २२ ॥ हे देवि ! इसप्रकार चतुर्थ तामस मन्वन्तर हमने तुम्हारे समक्ष वर्णन करके सुनाया ! अब रैभ्य संज्ञक पंचम मन्वन्तरका वर्णन करतेहैं तुम श्रवण करो ॥२३॥ वेदबाहु, सुबाहु, वेदशीर्ष मुनि हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु और सोमज ॥ २४ ॥ रैभ्य मन्वन्तरमें यह सात सप्तर्षि हुए और महाबलिष्ठ भूतरसाख्य देवता कहेगयेहैं ॥ २५ ॥ अब रैभ्यकी सन्तानका वर्णन सुनो धृति, निरुत्सुक, नव्य, तत्त्वदर्शी महाबल ॥ २६ ॥ अरण्य, प्रकार, नेमिक, सत्यवाक्, धृति यह सब रैभ्यके पुत्रहैं ॥ २७ ॥ हे सुभगे ! पंचम मन्वन्तरका वर्णन तौ किया जाचुका; अब छठेका कीर्तन कियाजाताहै सुनो, भृगु, नग, विवस्वान्, विरजा, अतिनामक ॥ २८ ॥ सुधामा, सहिष्णु यह सप्तर्षि आद्या, प्रसूता, ऋभव पृथक् भाव महौजा ॥ २९ ॥ और लेखा चाक्षुषमन्वन्तरमें यह दे

देवताः ख्याताश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥ शाड्वलेयास्तथाख्याता अंगिराः पुत्रकास्तथा ॥ ३० ॥ ऊरुप्रभृतयो देवि मनुपुत्रास्तथा स्मृताः ॥ इति षष्ठं समाख्यातं चाक्षुषांतरमीरितम् ॥ ३१ ॥ विद्यमानं सप्तमं च शृणु वैवस्वतेऽन्तरे ॥ अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् गौतमः कश्यपस्तथा ॥ विश्वामित्रो भरद्वाजो यमदग्निस्तथैव च ॥ सप्तर्षयः प्रकथिता मया वैवस्वतेन्तरे ॥ ३२ ॥ साध्या विश्वेच रुद्राश्च मरुतो वसवस्तथा ॥ आदित्याश्चाश्विनौ देवा ख्याता वैवस्वतेन्तरे ॥ ३३ ॥ इक्ष्वाकाद्या मनोः पुत्राः सर्वधर्मभृतां वराः ॥ तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च सप्तद्वीपास्ततःप्रिये ॥ ३४ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेव समुत्पत्तिं वैवस्वतमनोः प्रभो ॥ यस्येयं सांप्रतं भूमिर्व्याप्ता पुत्रशतैस्तथा ॥ ३५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे वैस्वतमनुं प्रिये ॥ कश्यपात्तु महेशानि विवस्वान् समजायत ॥ ॥ ३६॥ दाक्षायण्यामदित्यां तु प्रभाव्याप्तदिगंतरः ॥ त्वष्टुः प्रजापतेः कन्या संज्ञानाम्नी महायशाः ॥ ३७ ॥ उपयेमे विवस्वांस्तां

हुए ! शाड्वलेय और अंगिरा यह पुत्र ख्यातिमान् हुए ॥ ३० ॥ अथच हे देवि ! ऊरुआदिभी मनुके पुत्र कीर्त्तन कियेगयेहैं, इस प्रकार चाक्षुष संज्ञक छठे मन्वन्तरका हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया ॥ ३१ ॥ अब सम्प्रति वर्त्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन सुनो, इस मन्वन्तरमें अत्रि, वशिष्ठ भगवान्--गौतम तथा कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज और यमदग्नि हे देवि ! वैवस्वत मन्वन्तरमें यह सप्तर्षि हमने कीर्त्तन कियेहैं ॥ ३२ ॥ साध्य, विश्वे, रुद्र, मरुत, वसु, अदित्य और आश्विन यह देवता वैवस्वतमन्वन्तरमें हैं ॥ ३३ ॥ मनुके पुत्र इक्ष्वाकु आदि हुए जो कि, समस्त धार्मिकोंमें श्रेष्ठ हैं, हे प्रिये ! उन्हींके पुत्रपौत्रोंसे यह सप्तद्वीपा भूमि आकीर्ण है ॥ ३४ ॥ पार्वतीजी बोलीं--हे देवाधिदेव हमारे स्वामी ! जिनके सैकडों पुत्रोंसे यह समस्त भूमि व्याप्त होरहीहै उन्ही वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति संप्रति मेरे समक्ष आप वर्णन करें ॥ ३५ ॥ ईश्वरने कहा--हे भगवति ! हमारी प्यारी सुमुखि ! अब वैवस्वत मनुके प्रादुर्भावका वृत्तान्त श्रवण करो, हे महेशानि ! कश्यपसे विवस्वान् उत्पन्न हुए ॥ ३६ ॥ दाक्षायणी अदितिमें जब विवस्वान् (सूर्य) उदय हुए तब उनकी प्रभासे समस्त दिग्दिगन्त व्याप्त होगये, त्वष्टा प्रजापतिकी संज्ञा नामवाली एक कन्या थी ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! विवस्वान्ने वेदोक्तविधिसे उसका पाणिग्रहण किया, हे देवि ! यद्यपि वोह त्वष्टा

वेदोक्तविधिना प्रिये ॥ सा च त्वाष्ट्री महादेवि तेजस्तस्य विव-
स्वतः ॥ असहंती नित्यमेव स्थिता तस्य गृहे प्रिये ॥ ३८ ॥ द्वौ
पुत्रौ जनयामास पूर्वं वैवस्वतं मनुम् ॥ ततो यमं च यमुनां यमौ
तादृक्विवस्वतः ॥३९॥ तस्य सूर्यस्य नितरां तेजसा तापिताभ-
वत् ॥ असहंती तु तत्तेजश्छायां स्त्रीं सा जगाद ह ॥ अश्रुसं-
रुद्धवदनां स्वरूपसदृशां प्रिये ॥ ४० ॥ संज्ञोवाच ॥ शृणु च्छाये
महाभागे त्वत्तो नान्या मम प्रिया ॥ दुःखहंत्री स्वभर्तुश्च असहं-
ती बलं शुभे ॥ ४१ ॥ तस्य वै तेजसा दग्धा स्थातुं शक्नोमि न
प्रिये ॥ किं करोमि क्व गच्छामि इति मे दुःखवैभवम् ॥ ४२ ॥
तस्मात्त्वं तिष्ठ भर्त्तुर्मे सविधं नित्यमेव हि ॥ मम चेष्टाबलं रूपं
कृत्वा तु मम वल्लभे ॥ ४३ ॥ अहं यास्यामि भवनं पितुर्वै वि-
श्वकर्मणः ॥ तत्र स्थेयं मया नित्यं रहस्यं परमं त्विदम् ॥ ४४ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन यथाजानातु नो पतिः ॥ अपत्येषु मम च्छाये
भवितव्यं प्रियं सखि ॥ ४५ ॥ छायोवाच ॥ आशापं हि मया

न्या विवस्वान् सूर्यके निकेतनमें स्थित रहतीथी तथापि उससे सूर्यके तेजका सहन नहीं हो
गा था ॥ ३८ ॥ इसके दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनमेंसे पहिले मनु और दूसरे यम थे, औ
मुनानामवाली एक कन्याकाभी जन्म हुआ ॥ ३९ ॥ परन्तु--यह संज्ञा सूर्यके तेजसे
तिशय सन्तप्त रहतीथी, जब उनके तेजको किसी प्रकारभी सहन न करसकी तब अप
गयासे यौं बोली, हे प्रिये ! उस छायाका रूप बिलकुल उसीकी सदृश था और उस
ख आंसुओंसे व्याप्त होरहाथा ॥ ४० ॥ संज्ञाने कहा--सुनो हमारी प्यारी प्यारी छाया !
हाभागे ! अपने पतिका तेज न सहनेवाली मुझ दुखियाके दुःखको दूर करनेवाली तें
तिरिक्त और कोई नहीं है ॥ ४१ ॥ पतिके तेजसे दग्ध होनेके कारण हे प्रिये ! मैं उन
मक्ष स्थित होनेको समर्थ नहीं हूं, हाय ! मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मुझे यह बड़ा
ःख है ॥ ४२ ॥ हे प्रियसखि ! अतएव तू मेरीसीही चेष्टा बल और रूप बताकर सदै
र पतिके समक्ष स्थित रह ॥ ४३ ॥ मैं अपने पिता विश्वकर्माके घरको जातीहूं, सो तू वह
थत रहकर इस परम छिपे हुए भेदको ॥ ४४ ॥ ऐसे यत्नसे गुप्त रखिये जिससे कि, मेरे
तेको कुछ विदित न हो, और हे प्रियसखि छाये ! सन्तानोंके प्रतिभी मेरी सदृशही प्रि
चरण करती रहिये ॥ ४५ ॥ छाया बोली हे देवि ! मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं यदि मेरे

नैव आकेशग्रहणादपि ॥ न वक्तव्यं मया देवि गच्छ त्वं हि यथा-सुखम् ॥ ४६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सवर्णां तु समाधाय गता सा भवनं पितुः ॥ ववंदे चरणौ त्वष्टुः पितुर्वै विश्वकर्मणः ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वा तां तु सुतां स्वीयां संशयाविष्टमानसः ॥ उवाच वचनं चेदं संज्ञानाम्नीं महाप्रभाम् ॥ ४८ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ किमर्थमागता संज्ञे किं कार्यं ते मया सुते ॥ दत्ता त्रैलोक्यदीपाय सूर्यायामिततेजसे ॥ ४९ ॥ भर्त्तारं त्यज्य या नारी गच्छेद्वै परमंदिरे ॥ तस्या मुखं हि नालोक्यं सुधिया मम पुत्रिके ॥ ५० ॥ गच्छ शीघ्रं हि तत्रैव यतस्त्वं आगता मम ॥ सेवनीयौ प्रयत्नेन भर्तुर्वै चरणौ सुते ॥ ५१ ॥ संज्ञोवाच ॥ तेजसा तस्य देवस्य तापिताहं प्रजापते ॥ न शक्ता तस्य सामीप्ये क्षणं स्थातुं पितः प्रभोः ॥ ॥ ५२ ॥ यद्यत्र तात न स्थेयं मया तव समीपकम् ॥ तपस्तप्तुं गमिष्यामि संततिर्वर्त्तते मम ॥ ५३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्ता सा तु सहसा निपत्य चरणे पितुः ॥ गतोत्तरकुरूँश्चैव सुरम्यान्मन-

केश पकडकरभी कोई पूछेगा तौ मैं इस रहस्यको नहीं बताऊंगी, अतः तू सुखपूर्वक चली जा ॥ ४६ ॥ महादेव बोले—वोह संज्ञा इस प्रकार अपनी प्रतिकृति बनाकर अपने पिताके घरको चलीगई. वहां जाय पिता विश्वकर्माके दोनों चरणोंको उसने वन्दना करी ॥ ४७ ॥ अपनी पुत्रीको इसप्रकार आई देख विश्वकर्माके मनमें सन्देह उदय हुआ, और उन्होंने महाप्रभावती संज्ञासे यह वचन कहे ॥ ४८ ॥ विश्वकर्मा बोले--हे पुत्रि ! जिनका तेज अपरिमित अतएव जो त्रिलोकीको प्रकाशित करनेवाले हैं उन्हीं सूर्यको हमने तुझे दान करके देदिया, हे संज्ञे ! फिर तू किसलिये आई है ? और मुझसे तेरा क्या कार्य है ॥ ४९ ॥ जो नारी अपने पतिका परित्याग कर अन्य व्यक्तियोंके घर जातीहै, हे पुत्री ! बुद्धिमान् महाशयोंको उसके मुखका अवलोकन करना नहीं चाहिये ॥ ५० ॥ हे सुता ! जहांसेतू मेरे पास आईहै वहांहीको शीघ्र लौटजा और तुझे अपने पतिके दोनों चरणोंकी बड़े यत्नसे सेवा करनी कर्त्तव्य है ॥ ५१ ॥ संज्ञा बोली--हे प्रजापति ! मैं सूर्य्यदेवके तेजसे सन्तप्त होगई हूं हे पिताजी अतएव मैं क्षणभरभी उनके निकट स्थित होनेके समर्थ नहीं हूं ॥ ५२ ॥ हे तात ! यदि यहां आपके समीप स्थित नहीं होसक्तीहूं तौ मैं तपश्चर्या करनेहीको चलीजाऊंगी क्योंकि मेरी सन्तानभी विद्यमान् है ॥ ५३ ॥ महादेवजी कहने लगे वोह संज्ञा यौं कहके और पितृदेवके

सेप्सितान् ॥५४॥ तत्र गत्वा तु सा त्वाष्ट्री वडवारूपमास्थिता
तपस्तेपे शंकमाना स्वरूपात् पर्वतात्मजे ॥ ५५ ॥ सापि छाय
महाभागे ह्यभेदेन समीपकम् ॥ भर्तुर्विवस्वते नित्यं सुखं संतु
मानसा ॥ ५६ ॥ सूर्योपि जनयामास छायायां भगवान् प्रभुः
सावर्णिं मातृसदृशं भविष्यमष्टमं मनुम् ॥ ५७ ॥ शनैश्चरं त
पुत्रं श्यामलांगं महाद्युतिम् ॥ चकार सा तदा छाया स्नेहाधिक
स्वपुत्रयोः ॥ ५८ ॥ स्नेहाधिक्याद्यमः क्रुद्धो निजघानांघ्रि
च ताम् ॥ मातृस्नेहाद्बालभावादाधिक्याद्दुःखवैभवात् ॥ ५९
क्रुद्धा छायापि तं सौरिं शशाप भृशदुःखिता ॥ यस्मात्त्व
जनन्यास्तु गात्रे न्यस्तः पदः स्वयम् ॥ भूमौ निपतताद्दुष्ट चर
स्ते यथाधमः ॥ ६० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सहसा पित
तिके ॥ सर्वं निवेदयामास तस्याः शापादिकं तथा ॥ ६१
यथाहं हि तथा सर्वे किमर्थं स्नेहवैभवम् ॥ तयाशापोपि दत्तो
शृण्विदानीमनागसः ॥६२॥ किं न कुर्वंति मातुर्वै वात्सल्यात

चरणोमें प्रमाण करके मनोभिलषित सुरम्य वनोंमें चलीगई ॥ ५४ ॥ हे पार्वती ! वह
अपने रूपसे पहिचानेजानेके कारण घोड़ीका रूप धारण कर विश्वकर्माकी पुत्री त
करनेलगी ॥ ५५ ॥ हे महाभागे ! वोह छायामें भेदको छोड़कर सुखपूर्वक अपने
निकट नित्य निवास करनेलगी और उसका मन अधिक सन्तोषको प्राप्त होगया ॥ ५
भगवान् सूर्य्यमेंभी उस छायामें अन्य भ्राताओंकी समानही होनहार अष्टममनु सावर्
उत्पन्न किया ॥ ५७ ॥ तब तौ वोह छाया अन्यपुत्रोंकी अपेक्षा शनैः २ अपने उस
अधिक स्नेहका व्यवहार करने लगी ॥ ५८ ॥ उसका एक पुत्रके ऊपर स्नेह अधिक दे
यमको क्रोध आगया और बालस्वभावसे मातृवत्सलताके कारण यमने उसे चरणसे
किया, इससे छायाको दुःख अधिक हुआ ॥ ५९ ॥ अतिशय दुःखित होनेके कारण क्रो
हुई उस छायाने यमको शाप दिया, क्योंकि तूने माताके देहमें चरणप्रहार कियाहै अतः
दुष्ट ! तेरा वोह निकृष्ट चरण भूमीके ऊपर गिरपडे ॥ ६० ॥ उसके यह वचन सुन पि
समीप जाकर यमने उसके शापदेने आदिका सब वृत्तान्त पिताको कह सुनाया ॥ ६
हे पिताजी ! जैसा मै हूं वैसेही सब पुत्र हैं, तौ फिर उनके ऊपर उसका अधिक प्रेम
है ? ॥६२॥ हे प्रभो ! माताके वात्सल्यभावके कारण बालबच्चे क्या २ नही करतेहैं, हे

नकाः प्रभो ॥ न नूनं जननी चैवमस्माकं भगवन् विभो ॥ ६३ ॥ अन्येयं काचिदागत्य स्थिता वै तव वेश्मनि ॥ ६४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या भास्करो रुष्टमानसः ॥ दध्यौ क्षणं महादेवि ज्ञातवान् सपदि प्रभुः ॥ ६५ ॥ आगत्य सहसा तत्र यत्र छाया समास्थिता ॥ उवाच परमक्रुद्धश्चक्षुषा निर्दहन्निव ॥ ६६ ॥ विवस्वानुवाच ॥ वद शीघ्रं स्वकं रूपं का वा त्वं चंडिकात्र वै ॥ किमर्थं शापितः पुत्रो यमः प्राणाधिको मम ॥ ६७ ॥ भस्मीकरोमि सहसा नोचेत्त्वं कथयाशु वै ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वेपंती सहसा विभोः ॥ ६८ ॥ उवाच परमत्रस्ता छाया तस्य महात्मनः ॥ सवर्णाहं तु संज्ञायाः सा गता पितुरंतिके ॥ ६९ ॥ इति वै गदितं श्रुत्वा छायाया निश्चितं वचः ॥ उवाच स्वसुतं देवो यमं शापयुतं तदा ॥ ७० ॥ न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातृवचः सुत ॥ मांसमादाय कीटास्ते पादाद्यास्यंति भूतलम् ॥ ७१ ॥ इति तं शांतयित्वा तु गतस्त्वष्टुर्गृहे

व्यापक देवाधिदेव ! यह हमारी माता अवश्य नहीं है ॥ ६३ ॥ यह कोई अन्य (हमारी माताके अतिरिक्त) आनकर आपके निकेतनमें उपस्थित हुईहै ॥ ६४ ॥ महादेवजी बोले-यमके यह वचन सुन सूर्य्य नारायणके मनमें कोपका उदय हो आया, और क्षणमात्र ठैरकर उन प्रभुने सब वृत्तान्त जानलिया ॥ ६५ ॥ जहां छाया उपस्थित थी, वहां तुरन्तही चलेआये, और परम क्रोधको प्राप्त हो उससे कहने लगे, ऐसे प्रतीत होतेथे कि, मानो नेत्रोंकी ज्वालासे उसे भस्म कर डालेंगे ॥ ६६ ॥ सूर्यने कहा-तू कौन चण्डिका यहां स्थित हुईहै सो शीघ्रही अपने रूपका वर्णन कर, और हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्रिय पुत्र यमको तूने शाप क्यों दिया है ॥ ६७ ॥ या तौ तू सब वृत्तान्त शीघ्रही कह दे अन्यथा मैं तुझै अभी भस्म करदूंगा, सूर्यनारायणके यह वचन सुनतेही छाया कंपायमान होगई ॥ ६८ ॥ अतिशय भय भीत होकर छाया उन महात्मासे यौं कहने लगी, हे भगवन् ! मैं संज्ञाकी सहचरी हूं और वोह अपने पिताके निकट गई है ॥ ६९ ॥ छायाके ऐसे वचन सुनकर सूर्य्यनारायणको निश्चय होगया, और वे शापित हुए यमसे कहने लगे ॥ ७० ॥ हे पुत्र ! माताके इस वचनको असत्य करनेकी शक्ति नहीं है, एकमासमें कीटगण तेरे चरणके भूमीके ऊपर लेजावेंगे ॥ ७१ ॥ इसप्रकार यमको समझा बुझाकर सूर्यनारायण विश्वकर्माके

तथा ॥ गत्वा तत्राप्रियं वाक्यं बभाषे श्वशुरंतिकम् ॥ ७२
विवस्वानुवाच ॥ विश्वकर्मन्किमर्थं वै त्वया वै मम वल्लभा
आनीता कुत्र सा नीता वद शीघ्रं मम प्रियाम् ॥ ७३ ॥ नोचे
द्भस्म करिष्यामि त्वां च तां च क्षणादहम् ॥ निवेदयस्व शीघ्रं
मया किं कथितं च ताम् ॥ ७४ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ भगवन्सं
क्रोधं सर्वं संपादयाम्यहम् ॥ संज्ञा ते तेजसा देवी तापिता सुत
मथ ॥७५॥ तस्मात्ते तेजसो ह्रासं करिष्यामि प्रभो स्वयम् ॥ ता
ह्यन्वेषयिष्यामि सुतां स्वीयां प्रियां तव ॥७६॥ इत्युक्त्वा वचनं तं
भ्रम्य मारोप्य पार्वति ॥ तेजः संशातयामास तेजोह्रासं चकार ह
॥ ७७ ॥ तेन वै तेजसा त्वष्टा चकार विष्णुचक्रकम् ॥ ऐन्द्रं व
कुमारस्य शक्तिं क्रौंचवधाय च ॥ ७८ ॥ एकस्यादित्यवपु
श्चक्रे द्वादशसूर्यकान् ॥ सर्वेषां देववर्य्याणां शस्त्रान्यस्त्राणि पा
ति ॥ ७९ ॥ अथोवाच रविं त्वष्टा प्रहस्य सह्यतेजसम् ॥ नि
ध्यात्वा तु तां बुद्ध्वा त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥ ८० ॥ वडवारू

घर गये, वहां जाकर अपने श्वशुरसे प्रिय और मधुर वचन कहने लगे ॥ ७२ ॥ हे
कर्मा ! तुम हमारी प्यारीको क्यों ले आये ? और उसे कहां पहुँचा दिया, सो शीघ्र
प्रियाको बताओ ॥ ७३ ॥ यदि न बताओगे तो तुम्हें और उसे दोनोहीको क्षणभरमें
कर डालूंगा । शीघ्र बताओ ! भला मैंने उससे कहाही क्या था ॥ ७४ ॥ विश्वकर्मा
भगवन् ! क्रोधको शान्त करो, मैं सब कुछ संपादन करदूंगा, सुनो वोह संज्ञा तुम्हारे
अत्यन्तही सन्तप्त होगईथी ॥ ७५ ॥ अतएव हे प्रभो ! प्रथम तो हम तुम्हारे तेजको
करेंगे, फिर इसके अनन्तर अपनी पुत्री तथा आपकी प्रियाका अन्वेषण करेंगे ॥ ७६
पार्वति ! विश्वकर्माने यों कहकर सूर्यको चरखके ऊपर चढ़ाके छीलडाला, और उनके
कमी करदी ॥ ७७ ॥ विश्वकर्माने उसी (छीले हुए) तेजसे विष्णुभगवान्का चक्र,
वज्र एवंच क्रौंचका वध करनेके लिये स्वामिकार्त्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया ॥ ७
और सूर्यनारायणके एक शरीरसे बारह आदित्य बनाए, और समस्त देवसमुदायके अस्त्र
काभी निर्माण किया ॥ ७९ ॥ जब सूर्यका तेज सहनेके योग्य होगया तब क्षण
विचारके और अपनी उस कन्याके मर्मको जानकर विश्वकर्मा हँसकर त्रिलोकीके अंध
नाशकरनेवाले उन (सूर्य) से यों बोले ॥ ८० ॥ वोह संज्ञा इस समय घोड़ीका रूप

मास्थाय कुरुषु वर्त्तते हि सा ॥ तत्र गच्छ महाबाहो समानय स्ववल्लभाम् ॥८१॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा गतस्तत्र महाप्रभुः ॥ ध्यायंतीं तां परं ज्योतिर्वडवारूपमास्थिताम् ॥ ८२ ॥ ददर्श भगवान् सूर्यस्तदवस्थागतां प्रियाम् ॥ स्वयं च भगवान् सूर्यो हयरूपधरस्तदा ॥ ८३ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा संज्ञा परपुंसो विशंकया ॥ मुखं संभावयामास तत्र वीर्य्यमवासृजत् ॥ ८४ ॥ सा तन्निरवमच्छुक्रं नासारंध्रेण वै रवेः ॥ आश्विनौ भिषजौ देवौ जातौ तस्य महात्मनः ॥ ८५ ॥ नासत्यश्चैव दस्रश्च रूपेणाप्रतिमौ च तौ ॥ सा तु दृष्ट्वा स्वभर्त्तारं तुतोष वरवर्णिनी ॥ ८६ ॥ तामानयित्वा भगवान् संज्ञां चैव महौजसा ॥ रेमे तया सुखं सूर्यस्तथा सा सुखिताभवत् ॥ ८७ ॥ यमश्च कर्मणा तेन पापिनां शासने रतः ॥ धर्मेण रंजयामास धर्मराडितिविश्रुतः ॥ ८८ ॥ संतुष्टो भास्करः प्रादात्पितॄणां स्वात्मतोमिताम् ॥ यमुनाश्च महाभागे त्रैलोक्यहि

किये हुए कुरुदेशमें विद्यमान है, हे महाबाहो ! तुम वहां जाओ, और अपनी प्रियाको लेआओ ॥ ८१ ॥ उनके यह वचन सुन महाप्रभु सूर्यनारायण वहां गये, जहां कि-वोह घोड़ीका रूप धारण किये विचरती हुई आरहीथी ॥ ८२ ॥ जब सूर्य्यने अपनी प्रियाको ऐसी अवस्था (हालत) बनाए हुए देखा तब उन्होंनेभी स्वयम् अपना अश्वका रूप बना लिया ॥ ८३ ॥ उन्हे देखकर संज्ञाने परपुरुषके संगमकी शंका करके उनकी ओरको अपने मुखका रुख कर दिया, सूर्यने उसीमें वीर्यपरित्याग किया ॥ ८४ ॥ उस संज्ञाने नासापुटद्वारा उसे ग्रहण करलिया, महात्मा सूर्यके इस संसर्गसे उसकी नासिकाद्वारा दो अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ, यह स्वयं देवता (और देवताओंके) वैद्य हुए ॥ ८५ ॥ नासत्य और दस्र यह उनके नाम थे, उनकी समानरूपमें अन्य कोई नहीं था । जब उस सुन्दरी संज्ञाने अपने पति सूर्यको पहिचाना तब उसे सन्तोष हुआ ॥ ८६ ॥ परम तेजस्वी सूर्य भगवान् उसे ले आये और उसके साथ ऐसे आनन्दसे रमण किया जिससे वोह अत्यन्त सुखको प्राप्त हुई ॥ ८७ ॥ उधर यमराजभी अपने उसकर्मके कारण पापियोंका शासन करनेमें निरत होगये, और धर्मके अनुसार उनका अनुरंजनभी करतेथे अतएव वे धर्मराज इस नामसेभी विख्यात हुए ॥ ८८ ॥ हे महाभागे पार्वति ! सूर्य भगवान्ने सन्तुष्ट होकर पितरोंके ऊपर अनुग्रह करके त्रिलोकीके

तकांक्षया ॥ ८९ ॥ नदी जाता महाभागा यमुनोत्तरवासिनी ।
यस्या वै दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९० ॥ पूर्वं जातो
महातेजाः सुतो वैवस्वतो मनुः ॥ सांप्रतं यो महाभागे वर्त्ते
मनुसत्तमः ॥ ९१ ॥ छायाया अपि पुत्रौ द्वौ शनिः सावर्णिक
स्तथा ॥ शनिस्तु ग्रहतां प्राप्तः सर्वजंतुविमर्दनः ॥ ९२ ॥ साव
र्णिको महातेजाः पूर्वेण तपसा मनुः ॥ महामायाप्रभावेण भवि
ष्यत्यष्टमो मनुः ॥ ९३ ॥ शृणु सप्तर्षयो ये वै भविष्यंति महेश्व
रि ॥ अश्वत्थामा कृपाचार्यो रामो व्यासस्तथा स्मृतः ॥ ९४
कौशिको गालवश्चैव रुरुर्वै सप्तमो मुनिः ॥ एते सप्तर्षयो दे
भविष्यत्यंतरे मनोः ॥९५॥ देवाः प्रत्यक्षधर्माणो बलिरिन्द्रो भवि
ष्यति ॥ तेषामेवान्वया देवि गोत्रप्रावर्त्तकाः पुनः ॥ ९६ ॥ सप्तर्ष
यस्तु ये ये वै प्रोक्ता मन्वंतरं प्रति ॥ भूयस्तएव मनुषु भविष्य
ति सुताः स्वयम् ॥ ९७ ॥ देवाश्चापि तपस्यंतो मनुष्याः पूर्वे
मनौ ॥ भविष्यंति महेशानि मया दृष्टाः पुनःपुनः ॥ ९८
जलयंत्रघटा यद्वद्गच्छंत्यायांति पार्वति ॥ तद्वत्संसारजालं तु वर्त्ते

हितकी कामनासे अपनी पुत्री यमुनाकोभी देडाला ॥ ८९ ॥ (भूमण्डलके ऊपर आन
वोह उत्तरवासिनी नदी होगई, मार्णागण उसका केवल दर्शनमात्र करनेहीसे संपूर्ण पा
मुक्त होजाते हैं ॥ ९० ॥ प्रथम जिन वैवस्वत मनुका कथन हो चुका है वेही मह
मनुओंमें श्रेष्ठ वर्त्तमान मनु हैं ॥ ९१ ॥ उधर छायाकेभी शनि और सावर्णि यह दो
थे, उनमेंसे शनि जोकि समस्त जीवोंको पीडा देनेवाला था ग्रह बनगया ॥ ९२
परम तेजस्वी सावर्णि महाशय अपने पहिले तपके प्रभावसे और महामाया भगवतीके प्र
भावसे अष्टम मनु होंगे ॥ ९३ ॥ हे महेश्वरि ! उस समय जो सप्तर्षि होंगे उनका भी श्र
वण करो, अश्वत्थामा कृपाचार्य राम और व्यास ॥ ९४ ॥ कौशिक गालव और रुरु यह
ऋषि, होनहार अष्टम मन्वन्तरमें होंगे ॥ ९५ ॥ प्रत्यक्ष धर्म बलि और इन्द्र यह दे
उससमय होंगे, हे देवि ! इन्हीके वंशज गोत्रोंकी प्रवृत्ति संसारमें करेंगे ॥ ९६ ॥ प्रति
मन्वन्तरमें जो सप्तर्षि कीर्त्तन करेहैं फिर वेही मनुओंमें स्वयं पुत्ररूपसे प्रादुर्भूत होंगे ॥ ९७
हे महेशानि ! तपकरनेसे देवता और मनुष्यभी उसी प्रकारसे होंगे, कारण कि, मैंने
सबको वारंवार इसी प्रकार देखाहै ॥ ९८ ॥ हे पार्वति ! जिस प्रकार कि, जल

वर्णानि ॥ ९९ ॥ सर्वमेवास्थिरं प्रोक्तं ब्रह्मादिस्तंवसंयुतम् ॥ कश्चित्पाणियुगे नष्टः कश्चित्पादसहस्रके ॥ १०० ॥ परिणामे च सर्वेषां क्षयो भवति पार्वति ॥ अक्षयं तु परं ब्रह्म विश्वरूपं बहिः स्थितम् ॥ १०१ ॥ तदेव परमं ब्रह्म गंगाख्यं भुवि पार्वति ॥ सर्वं मन्ये त्वध्रुवं हि ध्रुवमेकं परात्परम् ॥ १०२ ॥ कृतत्रेतादिकः कालस्तथा मन्वंतरादिकः ॥ तत्सर्वं हि महाभागे गंगारूपी महाप्रभुः ॥ १०३ ॥ इति ते कथिता देवि मनूनां संस्थितिर्मया ॥ सर्वपापहरा नित्या पठतां शृण्वतां तथा ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मन्वंतरस्थितिवर्णनं नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ढेंकली अथवा रहट) के ऊपर जलके घट आते जाते रहते हैं हे सुन्दरी ! इसी प्रकार संसारका जालभी है ॥ ९९ ॥ ब्रह्मासे लेके स्तम्बपर्यन्त जितनी सृष्टि है सभी नाशवान् कोई ताली बजातेही और कोई सहस्र युगमें नष्ट होजातेहैं ॥ १०० ॥ हे पार्वति ! तमें नाश सबहीका होगा, जिसका कभी विनाश न हो ऐसा तौ जलरूप परब्रह्महीहै १०१ ॥ वोही परंब्रह्म (जलरूप) गंगा नामसे भूमीके ऊपर विद्यमान है, अतएव को नाशवान् जानो केवल एक परब्रह्म परमेश्वरहीको अविनाशी जानना चाहिये १०२ ॥ जो कुछ त्रेताआदि काल और मन्वन्तरादिक जो कुछभी है उस सभीको गंगा-महाप्रभु जानना चाहिये ॥ १०३ ॥ हे देवि ! इसप्रकार यह मन्वन्तरोंकी स्थिति मैंने प्रति वर्णन करी, इसका पाठ अथवा श्रवण करनेसे पाठक और श्रोताके समस्त ोंका विनाश होताहै ॥ १०४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषानुवादयुते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

ईश्वर उवाच ॥ कृतत्रेतादिकानां च मनूनां ब्रह्मणस्तथा ॥ वर्षाणि कथयिष्यामि शृणु वै गदतो मम ॥ १ ॥ निमेषैः पंचदशभिः काष्ठोक्ता ब्रह्मवादिभिः ॥ त्रिंशत् काष्ठा भवेद्देवि कला तत्त्रिंशति-

महादेवजी बोले—अब मैं सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग, मनु और ब्रह्मा इनसबके का वर्णन करताहूं, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ ब्रह्मवादियोंने पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा

स्तथा ॥ २ ॥ मुहूर्त्त इति मानेन अहोरात्रं तु त्रिंशता ॥ त्रि
द्भिश्च अहोरात्रैः पक्षद्वयं सितासितम् ॥ ३ ॥ स एव मासो
ज्ञेयो गणनज्ञैः समीरितः ॥ द्वाभ्यामाभ्यामृतुः प्रोक्तायनं
ऋतुभिस्त्रिभिः ॥ ४ ॥ उत्तरं चैव पूर्वोक्तं दक्षिणं च तथैव
अयनाभ्यां च द्वाभ्यां च वर्षःस्यान्मुख्यतः प्रिये ॥ ५ ॥ म
षेण तु मानेन मासो यः समुदाहृतः ॥ पितॄणां तदहो
क्रमाच्चैव सितासितम् ॥ ६ ॥ देवानां च तथा रात्रिर्दक्षिणा
मुच्यते ॥ उत्तरायणं च तदहो वर्त्तते मम वल्लभे ॥ ७ ॥ शत
च षष्टिश्चाहोरात्राणां महेश्वरि ॥ दैवः संवत्सरः प्रोक्तः पु
ऋषिभिः पुरा ॥ ८ ॥ दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृत
दशपंद्यमहोरात्रं मानवः पक्ष उच्यते ॥ ९ ॥ पक्षो दश
मासस्तैश्च द्वादशभिर्मया ॥ ऋतुश्चैव तथा ख्यातो मानवो
र्णिनि ॥ १० ॥ दिव्येनत्त्विह मानेन वर्षाणां च सहस्रकैः
तुर्भिर्हि कृतयुगं संध्या च तावती सती ॥ ११ ॥ संध्यां

वर्णन करीहै, हे देवि ! तीस काष्ठाकी एक कला होतीहै ॥ २ ॥ तीस कलाका ए
और तीस मुहूर्त्तका एक अहोरात्र होताहै, एवंच तीस अहोरात्र अर्थात्–पन्द्रह दि
पन्द्रह रात्रीका एक पक्ष होताहै, उन पक्षोंमें एक शुक्ल और दूसरा कृष्ण है
गणनाके जाननेवालोंने उन्हीं दो पक्षोंको एकमास कीर्तन कियाहै, इसी प्रकार दो
एक ऋतु और तीन ऋतु अथवा छै मासका एक अयन होताहै ॥ ४ ॥ पहिला उ
और पिछला दक्षिणायन होताहै, हे प्रिये ! दो अयन अर्थात् छै ऋतु या बार
एक वर्ष होताहै ॥ ५ ॥ हे पार्वती ! यह क्रम हमने मनुष्योंके दिनका वर्णन
मनुष्योंके महीनेका शुक्लकृष्णके नियमसे वोही अहोरात्र होताहै ॥ ६ ॥ हे
प्राणप्यारी ! दक्षिणायनमें देवताओंकी रात्री और उत्तरायणमें उनका दिन होताहै
हे पार्वति ! प्राचीन महर्षियोंने तीनसौ साठ अहोरात्रका देवसंवत्सर कहाहै ॥ ८ ॥
र्षको दसगुणा करनेसे मनुका एक अहोरात्र कहाताहै, और पन्द्रह दिनका मनुका
होताहै ॥ ९ ॥ हे सुमुखि ! पक्षको दसगुणा करनेसे एक मास और बारह मासकी ए
ऋतु मैंने वर्णन करीहै ॥ १० ॥ दिव्य चार सहस्र वर्षका एक सतयुग होताहै ॥
इतनाही सन्ध्याका भागभी हे देवि ! धर्मविशारदोंने वर्णन कियाहै और तीन सह

तथा ख्यातः सर्वधर्मविशारदैः ॥ त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु दिव्यैस्त्रेतायुगं स्मृतम् ॥ १२ ॥ संध्या संध्यांशकौ प्रोक्तौ षट्शतैर्मुनिपुंगवैः ॥ द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां द्वापरं युगमुच्यते ॥१३॥ तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथा स्मृतः ॥ कलिश्चैव सहस्रं तु संध्याचैकशती मता ॥ १४ ॥ तथा संध्यांशकः प्रोक्तो मानेन मम वल्लभे ॥ वर्षद्वादशसाहस्री युगसंख्या हि कथ्यते ॥ १५ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव महेश्वरि ॥ चतुर्णां च युगानां च युगं वै दिव्यकं स्मृतम् ॥ १६ ॥ तावती च भवेद्रात्रिः कल्पश्च स मया स्मृतः ॥ यदेतत्परमं ब्रह्म गंगाख्यं दिव्यरूपकम् ॥ १७॥ तस्मिन्नेव महातोये निमज्जति जगत्त्रयम् ॥ तत्र शेते महादेवि ब्रह्माख्यो विष्णुरूपकः ॥ १८ ॥ पुनर्युगसहस्रे तु समतीते महेश्वरि ॥ पुनस्तथैव कुरुते ब्रह्मा सर्गादिकीं क्रियाम् ॥ १९ ॥ एतत्कल्पशतैश्चैव त्रिभिः षड्भिश्च पार्वति ॥ ब्राह्मो वर्षस्तथा ख्यातस्तैश्चवर्षशतं तथा ॥ २० ॥ आयुर्वै कथितं ब्राह्मं द्विपारार्द्धं तथा स्मृतम् ॥ पुनर्द्वितीयकल्पे तु हनूमांश्च

र्षोंका एक त्रेतायुग होताहै और छः सौ वर्षकी संध्या और संध्यांश होतेहैं ॥ १२ ॥ एवं दो हजार वर्षके परिमाणका एक द्वापरयुग होताहै ॥ १३ ॥ उस युगकी सन्ध्या दोसौ र्षकी होतीहै और इतनेही प्रमाणका संध्यांशभी जानना चाहिये । अथ च कलियुग एक हस्र वर्षका होता है और एक सौ वर्षकी उसकी सन्ध्या होतीहै ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! उतने प्रमाणका सन्ध्यांशभी जानो । अब बारह हजार वर्षोंकी युगसंख्या वर्णन की जातीहै १५ ॥ सत्, त्रेता, द्वापर और कलि यह चार युग हैं, हे महेश्वरि ! इन चारों गोंके मिलनेसे एक दिव्य युग होताहै ॥ १६ ॥ और उतनीही रात्रिके युगसे एक कल्प होताहै । और जोकि यह द्रव (जल) रूप होकर परब्रह्म परमेश्वर गंगारूपसे विद्यमान हैं १७ ॥ इसी महाजलमें त्रिलोकी निमग्न होजातीहै, हे देवि! इसीमें विष्णुरूपधारी ब्रह्मा यन करतेहैं ॥ १८ ॥ हे महेश्वरि ! फिर इसके अनन्तर सहस्रयुगके बीतजानेपर ब्रह्माजी सृष्टिको रचना आदिको फिर इसी प्रकार करतेहैं ॥ १९ ॥ हे पार्वति ! इसप्रकार सौकल्प तजानेपर ब्रह्माका एक वर्ष होताहै, फिर इन सौ वर्षके समुदायसे ॥ २० ॥ ब्रह्माकी आयु तीहै, ऐसेही द्विपरार्धभी कहाजाताहै, फिर इसके अनन्तर दूसरे कल्पमें हनूमान्जी

भविष्यति ॥ २१ ॥ जाता अनंता ब्रह्माणो भविष्यंति महेश्वरि ॥ युगांतकाले भगवान् रुद्ररूपी जनार्द्दनः ॥ २२ ॥ क्षयं नयति स हि ब्रह्मांडांतरगोचरम् ॥ स्थावरं च चरं चैव सर्व्वंनयाति भस्मसात ॥ २३ ॥ कथितं ते मया देवि कालस्य परिमाणकम् ॥ गंगाख्यं परमं ब्रह्म शृण्वतां पठतां शुभम ॥ २४ ॥ इति श्री स्कांदे केदारखंडे कालसंख्यानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

होंगे ॥ २१ ॥ हे महेश्वरि ! अनगिन्त ब्रह्मा हुए हैं, अथच युगके अन्तसमयमें भगवान् जनार्दन रुद्ररूपसे प्रादुर्भूत होंगे ॥ २२ ॥ इस ब्रह्माण्डके भीतर स्थावर (अचल वृक्षादिक) चर (मनुष्य पशु आदि) जितनी सृष्टि है इस सबको भस्मीभूत करके विनष्ट करदेंगे ॥ २३ ॥ हे देवि ! हमने इसप्रकार यह समयका परिमाण तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै । गंगा परब्रह्मके आख्यानको जो व्यक्ति पाठ करतेहैं अथवा श्रवण करते हैं, उनका ... होताहै ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

पार्वत्युवाच ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखा ये वै वैवस्वतमनोः सुताः ॥ तेषां विस्तरतो ब्रह्मन् वंशं ब्रूहि मम प्रभो ॥ १ ॥ चंद्रवंशे के जाताः के वै श्रेष्ठतरा नृपाः ॥ तेषां च चरितं सर्वं कथय त्वं मम प्रिय ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि ये जातास्मिन्कुलार्णवे ॥ महानुभावचरितवृत्तान्तं प्राणवल्लभे ॥ ३ ॥ येषां वै कीर्त्तनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ तंशृणुष्व मह...

पार्वतीजीने पूछा हे परब्रह्म ! वैवस्वतमनुके इक्ष्वाकु आदि जो पुत्र प्रादुर्भूत हैं हे स्वामिन् ! उन सबके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १ ॥ किस प्रकार कौन श्रेष्ठ राजा चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए, हे प्रियस्वामिन् ! उन सबका चरित आप मुझसे वर्णन करें ॥ २ ॥ महादेवजीने कहा सुनो देवि ! जो इस वंशरूप सागरमें उत्पन्न हुएहैं, हे प्राणवल्लभे ! उन महानुभावोंके चरितका वर्णन मैं करताहूं ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! जिसका कीर्तन करनेसे श्रोतागण समस्त पापोंसे मुक्त होजातेहैं, अब मैं सूर्य और चन्द्रमासे प्रादुर्भूत

वंशं सूर्यसोमात्मकं प्रिये ॥ ४ ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये
महानृपाः ॥ तान्वक्ष्यामि तवाग्रे तु भक्तिस्ते परमा यतः ॥ ५ ॥
परात्मा निर्गुणः शांतश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥ क्रियाभिश्च समा-
युक्तस्तस्माज्जातः प्रजापतिः ॥ ६ ॥ ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद्दक्षो
नाम बभूव ह ॥ वामांगुष्ठात्तथा नारी दक्षस्याभूत्परिग्रहः ॥ ७ ॥
दक्षकन्याश्च पूर्वोक्तास्तासां या अदितिस्तु सा ॥ सूर्यं वै तेजसो
राशिं पुत्रं प्रासूत कश्यपात् ॥ ८ ॥ आदित्यश्च महातेजाः संज्ञायां
वैवस्वतं मनुम् ॥ जनयामास धर्मज्ञो नृपाद्यं जगदीश्वरि ॥ ९ ॥
वैवस्वतमनुश्चैव इक्ष्वाकुप्रमुखान् सुतान् ॥ कन्यामेकामिलां चैव
चंद्रवंशविवर्द्धिनीम् ॥ १० ॥ प्रत्येकशः शृणु प्राज्ञे मनुपुत्रान्
महौजसः ॥ इक्ष्वाकुश्चैवं नाभागो नरिष्यान् प्रांशुरेव च ॥ ११ ॥
धृष्टः शर्यातिनाभौ च करूषश्च तथैव च ॥ पृषध्रश्च नवैते
वै मनुपुत्रा महाबलाः ॥ १२ ॥ इलायाः शृणु देवेशि कथ्य-
मानंमहेश्वरि ॥ इष्टिं चक्रे पुत्रकामी वैवस्वतमनुः प्रिये ॥ १३ ॥

उसी महावंशका कीर्तन करताहूं ॥ ४ ॥ क्योंकि, तुम्हारी भक्ति (श्रद्धा) इस सम
विशेष है अतएव जो राजा प्रथम होचुके हैं जो वर्त्तमान हैं और जो आगेको होंगे उन सभ
का तुम्हारे अगाड़ी वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ जो परमात्मा सत्व रज तम गुणसे रहित, अ
एव शान्तरूपहै, जो नेत्र आदि इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी (अवलोकन आदि) सब क्रिया
ओंका कर्त्ता है उसीसे प्रजापति ब्रह्माका जन्म हुआ ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे द
नाम प्रजापति हुए, और वाम अंगुष्ठसे एक स्त्री प्रादुर्भूत हुई और वोही दक्षकी पत्नी बना
गई ॥ ७ ॥ दक्षकी कन्याओंका वर्णन प्रथमही होचुका है, उनमेंसे अदिति नामकी कन्या
कश्यपजीके संसर्गसे परम तेजस्वी सूर्यपुत्रको उत्पन्न करा ॥ ८ ॥ हे जगदीश्वरि ! महाते
जस्वी और धर्मका मर्म जाननेवाले सूर्य नारायणने संज्ञामें वैवस्वतमनुको उत्पन्न किया औ
वेही राजाओंमें सबसे पहिले राजा हुए ॥ ९ ॥ वैवस्वतमनुने इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंको औ
चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाली इलानाम एक कन्याको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ हे बुद्धिमति
मनुमहाराजके महापराक्रमी पुत्रोंको पृथक् २ श्रवण करो । इक्ष्वाकु, नाभाग, नरिष्या
प्रांशु ॥ ११ ॥ धृष्ट, शर्याति, नाभ, करूष और पृषध्र महाबली ये नौ मनुके पुत्र हुए ॥ १२ ॥
महेश्वरि ! अब हम इलाके वृत्तान्तको कहतेहैं तुम सुनो, हे प्रिये ! पुत्रकी कामनासे वैव

पूर्वमेव यदा देवि समायातो वसुस्तदा ॥ तस्यामिष्ट्यां प्रवर्त्तं
मित्रावरुणयोस्तदा ॥ १४ ॥ अंशेन हूयमानायामाहुत्यां सर्वे
नवाः ॥ ऊचुः परस्परं सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः ॥ १५ ॥ अ
होस्य तपसो वीर्य्यमहोश्रुतमहोद्भुतम् ॥ यत्र दिव्यांबरध
कन्या परमसुंदरी ॥ १६ ॥ इः काम इति संप्रोक्तस्तंलातीतिय
स्त्विला ॥ इत्यूचुः सर्वमुनयो विस्मयाविष्टमानसाः ॥ १७
आगच्छेले मया सार्धमित्युवाच मनुस्तदा ॥ तमिला प्रत्युवाचे
मनुं दंडधरं नृपम् ॥१८॥ इलोवाच ॥ जातास्मि मित्रावरुणयो
रंशेन मनुसत्तम ॥ तत्रैवाहं गमिष्यामि नोचेद्धर्मक्षतिर्भवेत
॥ १९॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु मनुं सा तु सत्यधर्मपरायणा
ययौ समीपं हि तयोर्मित्रावरुणयोस्तदा ॥ २० ॥ तत्र गत
महेशानि ववंदे चरणौ तयोः ॥ उवाच भक्तिसंपन्ना विनयावि
मानसा ॥ २१ ॥ इलोवाच ॥ जातास्मि भवतामंशादिलाना
तु विश्रुता ॥ मनोरिष्ट्यां समुत्पन्ना त्वत्समीपमुपागता ॥ २२

स्वतमनुने पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ १३ ॥ सबसे प्रथम हे देवि ! जभी वसु आये, तभी मि
वरुणभी वहां प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ और इन्हीके अंशसे आहुतिका निक्षेप हुआ, तब तौ
दानवगण मनमें परमविस्मयको प्राप्त होकर परस्पर कहने लगे ॥ १५ ॥ ओहो !
तपका बल और शास्त्राध्ययन बड़ा अद्भुत है, अतएव यहां एक परम सुन्दरी कन्या
वस्त्रोंको धारण किये दृष्टिगत होती है ॥ १६ ॥ 'इ' का अर्थ काम है और यह
उत्पादन करतीहै अतएव सब मुनियोंने इसका इला नामनिर्देश किया और वे सब
मनमें बड़े विस्मयको प्राप्तहुए ॥ १७ ॥ तब मनुने उससे कहा हे इला ! तू हमारे
आ ! तब तौ दण्डधारी मनुराजासे इलाने यौं कहा ॥ १८ ॥ इला बोली हे मनुसत्तम
मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हुई हूं, अतएव मैं उन्हींके पास जाऊंगी, नहीं तौ धर्मकी
होगी ॥ १९ ॥ महादेवजी बोले—सत्यधर्मका आचरण करनेमें तत्पर वोह इला मनुसे
जसे यौं कहकर उन मित्रावरुणके पास चली गई ॥ २० ॥ हे महेश्वरि ! वहां जाकर
उन दोनोंके चरणोंकी वन्दना करी, मनमें विनयको धारण कर भक्तिभावसंपन्न हो उनसे
वचन बोली ॥ २१ ॥ इलाने कहा--हे तात ! मैं तुम्हारे अंशसे उत्पन्न हुई हूं और मेरा
नाम प्रसिद्ध है, मेरा प्रादुर्भाव मनुके यज्ञसे हुआहै अतएव मैं तुम्हारे निकट आई हूं ॥ २

उवाचात्मसुतां मां हि अनुगच्छस्व त्वं मनुः ॥ मयोक्तं मित्राव-
रुणौ गच्छामि हि च सांप्रतम् ॥ २३ ॥ मित्रावरुणावूचतुः ॥
धन्यासि त्वं महाभागे यस्यास्तु भक्तिरीदृशी ॥ तुष्टौ स्वस्ते
महाभागे प्रश्रयेण दमेन च ॥ २४ ॥ आवयोस्त्वं महाभागे
कन्या ख्यातिं गमिष्यसि ॥ इदानीं गच्छ तत्रैवोभयवंशविवर्द्धिनी
॥ २५ ॥ मनोर्वंशकरस्त्वं हि सुद्युम्न इति विश्रुतः ॥ यशसा
तपसा युक्तो रूपेणाप्रतिमो भुवि ॥ २६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तयो-
रितिवचः श्रुत्वा हर्षसंपूर्णमानसा ॥ समाययौ बुधस्याथ
आश्रमे मुनिपूजिते ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यसुंदरीं तां तु दृष्ट्वा चांद्रिः
प्रतापवान् ॥ कामस्य शरभिन्नांगो मदविह्वललोचनः ॥ २८ ॥
उवाच वचनं तां तु गच्छमानामिलां बुधः ॥ क्व गच्छसि महाभागे
हृत्वा मे मानसीं स्थितिम् ॥२९॥ का वा त्वं शुभसर्वांगी देवी वा
मानुषी हि वा ॥ न वै त्वत्सदृशी लोके दृष्टा नास्ति त्रिलोकके
॥ ३० ॥ शाधि मां सोमपुत्रं हि बुधेतिपरिकीर्त्तितम् ॥ इति तस्य

पनी पुत्री जानके मनुजीने मुझसे कहा कि, हे इले ! मेरे साथ आ, यह सुन मैंने
नसे कहा सम्प्रति मैं मित्रावरुणके पास जातीहूं ॥ २३ ॥ मित्रावरुणोंने कहा--हे
हाभागे ! तेरी ऐसी अपूर्व भक्ति है अतएव तुझे धन्य है, तेरी नम्रता और दम (मनो-
ग्रह) से हम दोनों खूब सन्तुष्ट हुए हैं ॥ २४ ॥ हे महाभागे ! तू संसारमें हम दोनोंकी
न्या प्रसिद्ध होगी, हे दोनों वंशकी वृद्धि करनेवाली ! अब तू मनुहीके निकट चली जा
२५ ॥ हे पुत्री ! तेरा यश तप और रूप ऐसा है कि, भूमीके ऊपर जिसकी उपमा
हीं नहीं है, और तूने मनुको वश किया है ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले--मित्रावरुणके यह
न सुन वोह अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुई और लौटकर महर्षियोंके द्वारा पूजा किये हुए
के आश्रममें आई ॥ २७ ॥ चन्द्रमाके पुत्र परमप्रतापी बुधने जब उस कन्याको देखा
, यह त्रिलोकीमें अनुपम सुन्दरी है तब कामदेवके बाणोंसे उसका शरीर विद्ध होगया
र मदके मारे उसके नेत्र चंचल होगये ॥ २८ ॥ उस जाती हुईसे बुधने यह वचन
ा कि, हे महाभागे ! मेरे चित्तकी स्थिरताको भंग करके तू कहां जारही है ॥ २९ ॥
ा संपूर्ण अंग सुन्दर है तू देवी अथवा मानुषी कौन है ? क्योंकि--तेरी समान सुन्दरी तो
ा त्रिलोकीमेंभी कोई नहीं देखी ॥ ३० ॥ मैं चन्द्रमाका पुत्र बुधनामसे प्रसिद्ध हूं तू

वचः श्रुत्वा तमिला प्रत्यभाषत ॥ ३१ ॥ इलोवाच ॥ अहं म
सुता ब्रह्मन् मित्रावरुणयोस्तथा ॥ जातास्म्यंशेन भगवन्नि
नाम्नीति विश्रुता ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ बुध इत्युक्तवंती
संगृह्य बाहुना तदा ॥ आश्लिष्य सहसा देवि मैथुनायोपचक्र
॥ ३३ ॥ तस्यां च जनयामास पुत्रं परमसुंदरम् ॥ नाम्ना पु
रवा जज्ञे इलापुत्रो महायशाः ॥ ३४ ॥ जनयित्वा तु तं पु
मिला सुद्युम्नतां गता ॥ सुद्युम्नोऽपि महादेवि सूर्यवंशविवर्द्ध
॥ ३५ ॥ सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा बभूवुरमितौजसः ॥ उत्कलश्च ग
श्चैव विनीताश्वश्च पार्वति ॥ ३६ ॥ दिक्पूर्वा उत्कलस्या
गयस्यतु गयापुरी ॥ दक्षिणासुमहाभागे विनीताश्वस्य पा
॥ ३७ ॥ मनुश्चापि महातेजाः प्रविष्टो हि दिवाकरम् ॥ दिवा
प्रविष्टे तु दशधा भाजिता धरा ॥ ३८ ॥ इति ते कथिता देवि इ
त्पत्तिर्मया शुभे ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रुत्वा पापैः प्रमु
॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे चंद्रवंशानुकीर्त्तने इलोत्प
नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मेरे साथ समागम कर, उसके यह वचन सुन इला बुधके प्रति बोली ॥ ३१ ॥ इलाने
हे भगवन् ! मैं मनुकी पुत्री हूं और मित्रावरुणके अंशसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है एवं
इला नाम है ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले--हे देवि ! जभी उसने यह कहा तभी बुधने
भली प्रकार पकड़कर आलिंगन किया और तुरन्त मैथुनका प्रारम्भ किया ॥ ३३
उसमें परम सुन्दर एक पुत्रको उत्पन्न किया । पुरूरवा नाम महायशस्वी इलाका पु
॥ ३४ ॥ इसप्रकार पुत्रको जनकर पुरुषत्वमें सुद्युम्न नाम पाई, और हे महादेवि !
सूर्यवंशकी वृद्धि करी ॥ ३५ ॥ हे पार्वति ! सुद्युम्नके बड़े पराक्रमी उत्कल, गय और वि
तीन पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ उत्कलकी पूर्वदिशा, गयकी गयापुरी और विनीतकी दक्षि
अधिष्ठित हुई ॥ ३७ ॥ अथ च अमित तेजोबलसमन्वित मनुजीने सूर्यमें अधिष्ठान
उनके सूर्यमें प्रविष्ट होजानेपर भूमीका दशप्रकारसे विभाग हुआ ॥ ३८ ॥ हे शुभे
इस प्रकार हमने तेरे समक्ष इलाकी उत्पत्ति वर्णन करी, वे लोग धन्य और बड़े य
जो इसका श्रवण करतेहैं, श्रवणकरनेवालोंके समस्त पापभी विनष्ट होजातेहैं ॥ ३९

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

ईश्वर उवाच ॥ तत्क्षेत्रं दशधा कृत्वा पुत्रा इक्ष्वाकुज्येष्ठकाः ॥ यूपांकितां हि सकलां चक्रुर्भूमिं सपर्वताम् ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठपुत्रस्तु मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ कन्याभावात्तु सुद्युम्नो समभागं न चाप्तवान् ॥ २ ॥ वसिष्ठवचनेनासौ सुद्युम्नः पुरसत्तमम् ॥ प्रतिष्ठानं चकारासौ नानापणविराजितम् ॥ ३ ॥ तं पुरूरवसे प्रादाच्चकार नृपसत्क्रियाम् ॥ भुक्त्वा राज्यसुखं राजा स्वयं च तपसे ययौ ॥ ४ ॥ यत्र गंगा महाभागे हिमवद्दक्षिणे स्थले ॥ गंगोत्तरमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥५॥ तस्माच्च दक्षिणे भागे नानामुनिगणान्विते ॥ गुरोस्तव महादेवि दक्षिणे पार्श्वके गिरेः ॥६॥ अलकनंदोत्तरे तीरे क्षेत्रे श्रीसंज्ञके नृपः ॥ तपश्चकार परमं तोषयन् मनसा हि माम् ॥ ७ ॥ दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेंद्रियः ॥ अहं च परमं तुष्टो गतस्तत्र यदृच्छया ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तं तप्यमानं हि सुद्युम्नं मनुपुत्रकम् ॥ उक्तवांस्तं तु संबोध्य सुद्यु-

महादेवजी बोले—ज्येष्ठ भ्राता इक्ष्वाकु आदि उन मनुकुमारोंने भूमिके दश विभागकरके पर्वतावलिसे व्याप्त हुई समस्तभूमीको यज्ञके यूपोंसे अंकित करदिया ॥ १॥ इक्ष्वाकु जो ज्ये[ष्ठ] पुत्र था उसे मध्यमदेश प्राप्त हुआ, और कन्याभावसे सुद्युम्नको समभागकी प्राप्ति हुई ॥२ वसिष्ठजी महाराजके कहनेसे सुद्युम्नने अनेक हाट बाटसे सुशोभित एक सर्वोत्तम नगर बसाय ॥ ३ ॥ उसे पुरूरवाको देदिया और राजाकी सत्क्रिया की, और वोह राजा राजसु[ख] भोगकर स्वयंभी तपश्चर्या करनेको चलागया ॥ ४ ॥ हे महाभागे ! हिमालयपहाड़के दक्षि[ण] स्थलमें जहां गंगाजीकी स्थिति है, उस स्थानको गंगोत्तर (अथवा—गंगोत्तरी) कहते है इस स्थलका माहात्म्य तीनों लोकमें प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! तुम्हारे पिता हिम[ा]लय गिरिराजके उस दक्षिणभागमें जहां अनेक प्रकारके महर्षि विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ अलक[]नन्दाके उत्तरभागमें श्रीसंज्ञक क्षेत्रमें राजा (सुद्युम्न) ने मेरे सन्तुष्ट करनेकी कामनासे पर[म] उग्रतपका आचरण किया ॥ ७ ॥ जब उक्त राजाने भोजनपरित्यागपूर्वक अपनी समस्[त] इन्द्रियोंको वशीभूत करके दश सहस्र वर्षपर्यन्त तप किया, तब मैं सन्तोषको प्राप्त हो अप[नी] इच्छाकी अनुसार वहां गया ॥ ८ ॥ जब मैंने मनुमहाराजके पुत्र सुद्युम्नको तप करते दे[ख]

म्नेति पुनः पुनः ॥९॥ मयोक्तं वचनं श्रुत्वा सुद्युम्नस्तपतां वरः
प्रांजलिः प्रयतो भूत्वा उत्थायोवाच मां शिवे ॥ १० ॥ सुद्यु
उवाच ॥ नमो नमस्ते शतशोनमस्ते परात्परं धाम महानुभाव
शिवाधिप प्राणविभो महेश प्रशाधि मां कामसुखप्रसक्तम्
॥११॥ आदौ त्वमाजौ सुपरेशगम्य गम्याधिनाथेश चराचरेश
मध्ये त्वमेवासि सुरासुराणामन्ते त्वमन्तोखिलदेहिनां च ॥१२
न वेद कश्चिद्भवतः पुरारे मुरारिरूपेण समास्थितोसि ॥ जले त्व
मेवासि स्थले त्वमेव सर्वं हि विश्वं परमाश्रितोसि ॥ १३ ॥ रू
न ते देववरेश विद्मः पराक्रमं चैव यशश्च भूयः ॥ कृते प्रभो पा
तलं शिरश्च कृते कराग्राणि महानुभाव ॥ १४ ॥ ब्रह्मादयो दे
गणा मुनींद्रा विदुर्न ते रूपपरं क्व चाहम ॥ सर्वं स्थितं भावन
विधत्से महेश्वर त्र्यंबक विश्वभाविन् ॥ १५ ॥ शैलात्मजानाय
भूतनाथ सर्वेश्वर प्राणभृतां हि जीव ॥ उमापते विश्वपते हरे

तब 'सुद्युम्न २' कहकर वारंवार उसे पुकारा ॥ ९ ॥ तपका आचरण करनेवाले
योंमें सर्वोत्तम सुद्युम्नने जब हमारे वचन सुने, तो हाथ जोड़कर उठ खड़ेहुए और हे पा
नम्र हो यह वचन बोले ॥ १० ॥ सुद्युम्नने कहा—हे महानुभाव ! आप सबसे परे
स्वरूप हैं अतएव मैं आपको वारंवार प्रणाम करताहूं, हे कल्याणरूप अधीश्वर ! आप
व्यापक और महेश्वरहैं अतएव मैं शतधा आपके प्रति नमस्कार करताहूं, आप मुझे
सुखसंपन्न (प्राप्तमोक्ष) बनावैं ॥ ११ ॥ हे परमेश्वर! आदिमें आपही गम्य (अ
मनोयोगपूर्वक भावना करनेके योग्य) हैं और मध्य तथा अन्तमेंभी क्या देवता क्या असु
एवं च क्या समस्त देहधारी इन सभीके माननीय आप हैं ॥ १२ ॥ हे त्रिपुरासुरविनाश
आपके रूप और माहात्म्यको कोई नहीं जानता क्योंकि, आप विष्णुरूपसे सर्वत्रही व्या
क्या जल क्या स्थल सर्वत्र आपही आप दृष्टिगत होतेहैं, हे स्वामिन् ! यह समस्त
आपहीके द्वारा अधिष्ठित है ॥ १३ ॥ हे देवाधिदेव ! हम आपके रूप, पराक्रम (
और यशको बिलकुलभी नहीं जानते, हे महानुभाव ! आपकेही हाथ और चरणतलमें
कल्याणरूपसे स्थित है ॥ १४ ॥ हे त्रिलोचन ! हे लोकसाक्षी ! अतएव हे महे
ब्रह्मा आदि समस्त देवसमुदाय और महर्षिगणभी जब आपके रूपको नहीं जानते तो
कैसे लेखेमें हूं ? आपही स्वयं सबकी स्थितिको भावनाद्वारा जानते हैं ॥१५॥ हे सर्व

महेश गंगाधर हे न तोऽस्मि ॥ १६॥ महादेव उवाच ॥ सुद्युम्नस्य कृतं स्तोत्रं मामकं सर्वसिद्धिदम् ॥ पठेद्वा शृणुयाद्वापि सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १७॥ स्तोत्रेणानेन यः कश्चिन्मां च स्तौति नरोत्तमः ॥ अनेकजन्मदुःखं हि नश्यते प्राणवल्लभे ॥ १८ ॥ प्रादामहं स्वकं लोकं सुद्युम्नाय यशस्विनि ॥ नित्यं वसामि तत्रैव भूतवेतालसेवितः ॥ १९ ॥ अद्यापि तस्य देवेशि श्लोको वै गीयते बुधैः॥ शृणु चित्तं समाधाय ममापि परिगीयते ॥ २० ॥ धन्यो बभूव राजेंद्रो वंशद्वयविवर्द्धनः ॥ यस्य वै तपसा लोकास्त्रस्ता दृष्ट्वा पराद्भुतम् ॥ २१ ॥ इदं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ॥ सुद्युम्नस्य ह्युपाख्यानं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानकीर्त्तने सुद्युम्नचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आप गिरिराजकुमारी उमाके पति तथा सभी जीवोंके अधिपति हैं, प्राणधारियोंके जीवनस्वरूपभी आपही हैं, जो पार्वतीके पति, जगत्के स्वामी, पापोंका अपहरणकरनेवाले महादेव हैं जिनके शिरोभागमें गंगाजी विराजनमान हैं ऐसे आपके प्रति मैं प्रणाम करताहूं ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले–सुद्युम्नके द्वारा कीर्त्तन कियाहुआ यह हमारा स्तोत्र सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है, जो व्यक्ति इसका स्वयं पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उन्हें अखिल यज्ञोंके अनुष्ठान करनेका फललाभ होता है ॥१७॥ जो नरोत्तम पुरुष इस स्तोत्रके द्वारा हमारा स्तव करता है, हे प्राणप्रिये ! उसके अनेक जन्मोंके दुःख विनाशको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे यशस्विनि ! सुद्युम्नके ऊपर अनुग्रह करके भूतवेतालगणसे वेष्टित हो मैं नित्यही अपने लोकमें सन्निविष्ट रहताहूं ॥ १९ ॥ हे देवेशि ! देवतागण अबतकभी उसके चरित्रका गान करतेहैं, तिंच हमारे माहात्म्यकाभी कीर्त्तन करते हैं, सो तुम चित्तको सावधान करके श्रवण करो ॥ २० ॥ दोनों वंशकी वृद्धि करनेवाला वोह बड़ा अहोभाग्य (सौभाग्यशाली) राजा हुआ है, जिसके परम अद्भुत तपके प्रभावसे लोकलोकान्तर व्याप्त होगये ॥ २१ ॥ सुद्युम्नका यह उपाख्यान यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला पुत्रों और धनधान्यका देनेवाला है, इसको श्रवण करनेसे मनुष्योंके समस्त पातक मुक्त होजाते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् ॥ य
पुण्या महीपाला विक्रांतयशसः शुभाः ॥ १ ॥ इक्ष्वाकोश्चाभवन्पु
त्राः शतं चैव महेश्वरि ॥ विकुक्षिप्रमुखाः सर्वे महाबलपराक्रमाः
॥ २ ॥ सुरासुरैरयोध्येयमयोध्या त्वभवत्पुरी ॥ शकुनिः सत्यके
तुश्च शुभकेतुर्विहंगमः ॥ ३ ॥ इत्यादयो महात्मानः पंचाशदभ
न्सुताः ॥ चत्वारिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्यास्तु पालकाः ॥ ४
शुभकेतुः सत्यकेतुरुत्तरस्यां दिशि स्थितौ ॥ विकुक्षिस्तु मह
तेजा अष्टकायां परंतपः ॥ ५ ॥ मृगान् हंतुं गतोरण्ये पितुरा
पुरस्कृतः ॥ श्राद्धार्थं तेन देवेशि हताश्च बहवो मृगाः ॥ ६
अरण्ये निर्जने देशे क्षुत्पीडापरिपीडितः ॥ शशमेकं भक्षि
वानकृते श्राद्धकर्मणि ॥ ७ ॥ शेषान् मृगान् समानीय श्राद्ध
वरवर्णिनि ॥ वसिष्ठो ज्ञातवान् सर्वं यत्कृतं तद्विकुक्षिणा ॥ ८
यस्मात्त्वया विकुक्षे हि भक्षितः शशकोत्र वै ॥ शशादस्तु भव

महादेवजीने कहा—सुनो पार्वति ! अब इक्ष्वाकुराजाके उत्तम वंशका वृत्तान्त
करतेहैं, जिसमें कि, शुभ आचरण करनेवाले अतएव पुण्यात्मा और परमयशस्वी रा
हैं ॥ १ ॥ हे महेश्वरि ! राजा इक्ष्वाकुके विकुक्षि आदि सौ पुत्र हुए, जो महाबली
बड़े पराक्रमी थे ॥२॥ देवदानवोंसे अयोध्य (युद्धद्वारा अजेय) ऐसी उनकी अयोध्यापुरी
और शकुनि, सत्यकेतु, शुभकेतु तथा विहंगम ॥ ३ ॥ इत्यादि महात्मा
पुत्र उनके हुए, उनमेंसे अडतालीस राजा दक्षिणदिशाके पालनकर्त्ता बने ॥ ४ ॥
तथा सत्यकेतु यह दोनों उत्तर दिशामें स्थित हुए पिताकी आज्ञाको स्वीकार करके
पस्वी विकुक्षि श्राद्धके दिन मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया, और वहां उसने
लिये बहुतसे मृगोंका वध किया ॥ ५ ॥ ६ ॥ परन्तु जंगलके निर्जन एकान्त स्थानमें
क्षि तृषा (प्यास) पीडासे अतिशय व्याकुल होगया, अतएव श्राद्धकर्मके विना होते
एक खरगोशका भक्षण करलिया ॥ ७ ॥ हे सुमुखि ! शेष मृगोंको लेकर वोह
उपस्थित हुआ, विकुक्षिने (मृगभक्षणरूप जो कुछ निंद्य) कर्म कियाथा वशिष्ठजीने
जान लिया ॥ ८ ॥ हे विकुक्षे ! क्योंकि—तूने श्राद्धका शशक भक्षण करलिया है

ञातो दुरात्मा दुष्टचेष्टितः ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुनापि वचनाद्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ परित्यक्तो विकुक्षिस्तु तताप परमं तपः ॥ १० ॥ इक्ष्वाकौ स्वर्गते राजा विकुक्षिस्तु बभूव ह ॥ शशादसंज्ञां संप्राप्त अयोध्यायां महायशाः ॥ ११ ॥ तस्य राज्ञः शशादस्य ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥ महतो वृषभस्यासौ संस्थितः ककुदि प्रभुः ॥ १२ ॥ जितवान् सबलान् दैत्यान् महाबलपराक्रमान् ॥ काकुत्स्थस्तेन संख्यातो महात्मा जगदीश्वरि ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रो महानासीद्विष्टराश्व इति स्मृतः ॥ आर्द्रस्तु विष्टराश्वस्य युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥ १४ ॥ तस्य श्रावस्ततो जातः श्रावतीर्थमजायत ॥ श्रावस्य बृहदश्वोभूत्कुवलाश्वस्तुतत्सुतः ॥ १५ ॥ कुवलाश्वस्य चरितं शृणु देवि यथातथम् ॥ कुवलाश्वो महातेजा बाल्य एव महाद्युतिः ॥ १६ ॥ गतोरण्यं महेशानि मृगव्यालशताकुलम् ॥ तत्र गत्वा सरस्तीरे नानाकमलवासिते ॥ १७ ॥ उपस्पृश्य जलं तत्र परिश्रांतो महायशाः ॥ तस्मिन्नेव क्षणे देवि

दुरात्मा ! दुष्टचेष्टाओंका आचरण करनेवाले ! तेरा शशाद (शशकभक्षी) नाम प्रसिद्ध होग ॥ ९ ॥ महात्मा वसिष्ठजीके वचनसे महाराज इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिका परित्याग कर दिया अतएव वोह परम (उग्र) तपका आचरण करनेलगा ॥ १० ॥ इसके अनन्त जब राजा इक्ष्वाकु स्वर्गको सिधारे तब शशाद संज्ञाको प्राप्तहुआ महायशस्वी विकुक्षि अयोध्या पुरीका राजा हुआ ॥ ११ ॥ राजा विकुक्षिका ककुत्स्थ नाम बड़ा वीर्यवान् पुत्र हुआ, य महावृषभके स्कन्धके ऊपर आरूढ हुआ ॥ १२ ॥ हे जगदीश्वरि ! इसने शलभकी समा संपूर्ण दैत्योंका जो कि, अत्यन्त बली और महापराक्रमी थे, विजय करलिया, अतएव वो महात्मा ककुत्स्थनामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १३ ॥ ककुत्स्थका पुत्र विष्टराश्व, उसका आ एवंच आर्द्रका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥ १४ ॥ युवनाश्वके श्राव हुए, इन्हींसे श्रावतीर्थ प्रच लित हुआ, श्रावका बृहदश्व और उसका पुत्र कुवलाश्व हुआ ॥ १५ ॥ हे महादेवि ! अ तुम कुवलाश्वके ठीक २ चरित्रका श्रवण करो, कुवलाश्व महाद्युतिमान् राजा स्वल्पायुही ॥ १६ ॥ हे महेशानि ! सैकड़ों मृगों और सर्पोंसे आकीर्ण वनमें चलागया, वनमें जा अनेक कमलोंसे अधिवासित हुए एक सरोवरके तीरपर ॥ १७ ॥ जलका स्पर्श करके

पूर्वस्मिन् दिशि संस्थिता ॥ १८ ॥ समाहर्त्तु जलं तस्मात्कुमारी परसुंदरी ॥ समाययौ हि सामीप्यं मत्तमातंगगामिनी ॥१९॥ ता दृष्ट्वा सहसासौ तु रूपेणाप्रतिमां भुवि ॥ मूर्छितः संपपाताहो वि स्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२०॥ पुनस्तु सहसा संज्ञां प्राप्य वै जगदीश्वरि ॥ तामुवाच कुमारीं हि रतिरूपां मनोहराम ॥२१॥ का वा त्वं शुभसर्वांगी कस्यासि त्वं सुकन्यका ॥२२॥ कुमार्य्युवाच ॥ अ भवामि दासी हि मन्दुराया नृपात्मज ॥ तत्रावयोः परं स्थानं नि र्जनं शुभमंदिरम् ॥२३॥ कुवलाश्व उवाच ॥ कस्य कन्या किम हि निर्जनं त्वद्गृहं गतम् ॥ तन्मे वद महाभागे परं कौतूहलं हि ॥ २४ ॥ कुमार्य्युवाच ॥ शृणु वै त्वं पुरावृत्त मंदुरायाः परंतप धौम्यो नाम पुरा ह्यासीन्महात्मा सत्यसंगरः ॥ २५ ॥ यशस्वी किल धर्मात्मा राजातु दृढविक्रमः ॥ तस्येदं नगरं रम्यं बभू नृपनंदन ॥ २६ ॥ तस्य कन्या मंदुरा सा वर्त्तते सुरशोभना

मोह महायशस्वी वहां बैठगया इसी समय हे देवि ! पूर्व दिशाकी ओर ॥ १८ परमसुन्दरी कुमारी उसी सरोवरमेंसे जल भरनेके लिये उसके समीप आई, यह मस्त) हाथीकी समान (झुमती हुई) गाने चलतीथी ॥ १९ ॥ भूमीके ऊपर सदृश कोई अन्य सुन्दरी नहींहै ऐसी इस कुमारीको देखकर इस कुवलाश्वके नेत्र विकसित होगये अतएव यह मूर्च्छित होकर भूमीके ऊपर निपातित होगया ॥ २० जगदीश्वरि ! फिर शीघ्रही उसे चैतन्य प्राप्त हुआ, तब रतिकी समान सुन्दर रूपवती मनोहरी सुन्दरीसे राजाने यह वचन कहे ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी ! तू किसकी और स्वयं कौन है ॥२२॥ पारी बोली–हे राजकुमार ! मैं मन्दुराकी दासी हूं, और ही हमदोनोंका परमसुन्दर और जनसमुदायसे रहित उत्कृष्ट स्थान है ॥ २३ ॥ कुव बोले–तुम किसकी पुत्री हो ? तुम्हारा स्थान निर्जन किसलिये है ? सो यह सब वृत्तान्त महाभागे ! मेरे प्रति वर्णन करो, क्योंकि मुझे अतिशय कौतूहल (आश्चर्य) उपस्थित रहा है ॥ २४ ॥ कुमारी बोली–हे परमतपस्वी ! तुम मन्दुराका प्राचीन वृत्तान्त करो, पहिले सत्यसन्ध धौम्य नाम एक राजा हुए ॥ २५ ॥ जो कि परम तेजस्वी आचरण करनेवाले महात्मा और दृढ पराक्रमीथे, हे राजपुत्र ! उन्हींका यह अतिक नगर है ॥ २६ ॥ उन्हीकी एक कन्या है जो कि देवकुमारियोंकी सदृश सुन्दर है,

धौम्यो नाम महाराजा कन्यां दृष्ट्वा पुरःस्थिताम् ॥ २७ ॥ चिंतयामास बहुशः कस्मै देया मया सुता ॥ वरयोग्या त्वियं कन्या यौवनोन्मादशालिनी ॥ २८ ॥ कः पृथिव्यां महाराजो वरोस्याः सदृशस्त्विति ॥ इति चिंतयतस्तस्य मतिरासीन्महौजसः ॥ ॥ २९ ॥ स्वयंवरं प्रकर्त्तव्यं सर्वे वै पृथिवीभुजः ॥ समानेयास्तु दूतैश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ३० ॥ सभा च तत्र कर्त्तव्या शतभारं तु मुद्गरम् ॥ आयसं तु पणं कार्यं सभायां यो महीपतिः ॥ ३१ ॥ महीभुजामग्रतस्तु भूम्यासुत्थापयिष्यति ॥ तस्मै देया मया कन्या मंदुरा नाम नामतः ॥ ३२ ॥ इति वै संमतिं कृत्वा न्यस्तस्तत्र च मुद्गरः ॥ आमंत्रिता महीपाला नानायुद्धविशारदाः ॥ ३३ ॥ पृथिवीं कंपयंतस्ते बलेन परिवारिताः ॥ रथानां नियुतैः षड्भिर्दंतिनां लक्षकोटिभिः ॥ ३४ ॥ असंख्यातैर्हयैश्चैव तथासंख्यैः पदातिभिः ॥ पृथिवीं छादयंतो वै आययुः पृथिवीभुजः ॥ ३५ ॥ चकार परमातिथ्यमागतानां

म्यने जब कन्याको अपने अगाड़ी उपस्थित देखा ॥ २७ ॥ तब वे इसकी विशेष चिन्ता नेलगे कि, मैं यह कन्या किसे दूं ? क्योंकि–अब यह कन्या युवा अवस्थाके उन्मादसे पूर्ण होजानेके कारण वरके योग्य होगई है ॥ २८ ॥ पृथ्वीके ऊपर कौन ऐसा महाराज जो इसके योग्य वरहो, ऐसी चिन्ता करते २ ही उस पराक्रमीकी समझमें यह आया कि २९ ॥ दूतोंके द्वारा पृथ्वीमंडलके बड़े २ बली और पराक्रमी समस्त राजाओंको एक- करना चाहिये, उनमेंसे यह कन्या स्वयंही अपने वरका वरण करलेगी ॥ ३० ॥ ाओंकी सभाकरके लोहनिर्मित अत्यंत भारी पण निर्माण करैं, जो राजा सभाके बीचमें ३१ ॥ राजसमाजके समक्ष उस पणको भूमिसे उठालेगा, मन्दुरा नामक कन्या मैं को प्रदान करदूंगा ॥ ३२ ॥ ऐसी सम्मति करके उसस्थानमें लोहमुद्गरको स्थापित दिया । और अनेकप्रकारके युद्ध करनेमें चतुर बडे २ राजाओंको निमन्त्रण भेजा ३ ॥ प्रभूत बलशाली अतएव भूमण्डलको कंपायमान करतेहुए वे राजालोग लक्ष ा दशलक्ष रथ, लक्ष करोड़ हाथी ॥ ३४ ॥ अनगिन्त अश्व एवंच असंख्यही पदाति- भूमिको आच्छादित करते २ आनकर उपस्थित हुए ॥ ३५ ॥ महाराज धौम्यने उन राजाओंका भली प्रकार अतिथिसत्कार किया, उससमय नदियोंका जल अमृतकी

महीभुजाम् ॥ पयोघृतवहा नद्यस्तत्र पायसकर्दमाः ॥ ३६
गृहाणि च विचित्राणि महार्हशयनानि च ॥ ददौ तेभ्यो महाते
धौम्यो नाम स भूमिपः ॥ ३७ ॥ चिंतयामास बहुशः कन्
देया सुता मया ॥ वरयोग्या त्वियं कन्या इति वै स महीप
॥ ३८ ॥ पटैः शुभतरै रक्तैः पीतैः कर्बुरकैस्तथा ॥ आच्छा
पुरं चक्रे पताकाभिरलंकृतम् ॥ ३९ ॥ रथ्यागोपुरहट्टेषु कन्
श्चसमलंकृताः ॥ मृदंगपणवानां च भेरीणां निनदस्तथा ॥ ४०
बभूव सर्वतो देवि शंखानां च रवस्तदा ॥ तस्मिन् महोत्सवे
बंदिनः पाठका जगुः ॥ ४१ ॥ अलंकृता वरा नार्यो ना
नृत्यविशारदाः ॥ ननृतुः सर्वतस्तत्र समाजेषु महीभुजा
॥ ४२ ॥ योजनत्रयविस्तीर्णा सभा तत्र कृता शुभा ॥ नाना
र्विचित्रैश्च गवाक्षाट्टालकैर्युता ॥ ४३ ॥ गवाक्षेषु वि
नानारत्नेषु च स्त्रियः ॥ स्थिताः कौतूहलार्थं वै संत्यक्तगृह

समान स्वादिष्ट होके बहने लगा और उनकी कीचड़ पायस (मावा अथवा खीर
की समान प्रतीत होती थी ॥ ३६ ॥ उस भूपाल परम तेजस्वी धौम्यने चित्र वि
बहुमूल्य शैय्याएँ आगत राजाओंको प्रदान करीं ॥ ३७ ॥ उस धौम्यराजाने
किया कि, यह कन्या वरके योग्य (अर्थात विवाह कियेजानेके योग्य) होगई है, अब
सको दूं ॥ ३८ ॥ उसने श्वेतवर्णको छोड़ लाल पीली तथा कपूरी रंगकी
आच्छादन करके नगरको अतिशय सुशोभित बनादिया ॥ ३९ ॥ अपने २ शृंगार
कन्याएँ गली कूंचे, नगरद्वार और हाट बाटमें मृदंग पणव और भेरियोंके उत्त
रोंको बजाने लगीं ॥ ४० ॥ अथ चारों ओरसे शंखकाभी गंभीर नाद होनेलगा
रमणीय उस महोत्सवमें बन्दीजन और स्तुतिपाठक गान करनेलगे ॥ ४१ ॥
सुन्दरी नारियें जोकि विविधप्रकारके नृत्य करनेमें अतिशय चतुर हैं राजाओंके
चारों ओर नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ तीन योजन अर्थात्–बारह कोसके विस्तारवा
सभाका संगठन हुआ, और वोह सभा अनेकप्रकारके निवासस्थान झरोखे और
अलंकृत थी ॥ ४३ ॥ अमूल्य रत्नोंके आभूषण तथा वस्त्रोंको धारण कियेहुए रा
कौतुक देखनेके ताईं कौतुकागार (तमाशा देखनेके स्थानों) में गृहकार्यको छोड़कर

काः ॥ ४४ ॥ राजस्त्रियोपि सर्वा वै कौतुकागारसंस्थिताः ॥ महार्हरत्नवसनाः कौतुकं द्रष्टुमास्थिताः ॥ ४५ ॥ रेजुः परमसौंदर्य्या दिवीव सुरकन्यकाः ॥ कौतूहलसमाविष्टा मंदुरागतमानसाः ॥ ४६ ॥ रत्नसिंहासनस्थास्ता मेरुस्था इव देवकाः ॥ विरेजुस्तत्र राजानो बंदिभिर्विदितान्वयाः ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने मंदुरास्वयंवरे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

होगई ॥४४॥ उन परम सुन्दरियोंकी ऐसी शोभा होरहीथी, जैसे देवलोकमें दिव्य देवकन्यकाएँ सुशोभित होतीहैं उनके चित्तमें कौतूहल देखनेका उत्साह प्राप्त होरहाहै तथा मन्दुरामें उनकी मनोवृत्ती संलग्न होरहीहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार सुमेरुपर्वतके ऊपर अवस्थिति करनेसे देवगणकी शोभा होतीहै, रत्नजडित सिंहासनोंके ऊपर विराजमान होनेसे राजा महाराजाओं-कीभी वैसीही शोभा होनेलगी । अथच वन्दीजनोंके द्वारा भूपालगणके वंशोंका पृथक् २ कीर्त्तन कियाजानेलगा ॥ ४७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ईश्वर उवाच ॥ अथागत्य महातेजा धौम्यो नाम महीपतिः ॥ उवाच प्रांजलिस्तांस्तु सर्वान्वै पृथिवीभुजः ॥ १ ॥ धौम्य उवाच ॥ शृण्वंतु सर्वे राजानो विज्ञप्तिं मम भूधराः ॥ पणमेतत्कृतं चैव मयायं मुद्गरः शुभः ॥ २ ॥ युष्माकं यो हि भूम्यास्तु मुद्गरं संधरिष्यति ॥ तस्मै देया मया कन्या देवकन्योपमा शुभा ॥ ३ ॥ एवंविधो भूमिनाथो वर्त्तते यो महीभृताम् ॥ उत्थापयतु वै

महादेवजी बोले—परमतेजस्वी धौम्यनाम राजा वहां आये और हाथ जोड़कर उन राजाओंसे यों कहनेलगे ॥ १ ॥ धौम्य बोले—भूमण्डलका भरण पोषण करनेवाले हे राजाओं! मेरी प्रार्थनाको सुनो, मेरा प्रण यह है कि—हमने यह शुभ (लोहनिर्मित) मुद्गर निर्माण करायाहै ॥ २ ॥ तुम सबमेंसे जो कोई इसको भूमीके ऊपरसे उठालेगा, उसीको मैं यह कन्या जो कि देवकन्याओंकी सदृश सुन्दरी है देदूंगा ॥ ३ ॥ तुम समस्त राजाओंके बीचमें

शीघ्रं तस्मै दास्यामि कन्यकाम् ॥ ४ ॥ इति तस्य वचः श्रु
धौम्यस्य नृपसत्तमाः ॥ परस्परं समीक्षंतो विस्मयाविष्टमानस
॥ ५॥ प्रत्येकशः समुत्थाय सर्वे नृपतिपुंगवाः ॥ मुद्गरं तोलि
राजन् सन्नद्धा नरपुंगवाः ॥ ६ ॥ न शेकुस्ते तोलयितुं यु
युद्धदुर्मदाः ॥ मूर्छिताः सहसा जग्मुः पृथिवीं नृवरात्मजाः ॥
ईर्ष्यायुक्ता महीपाला एकत्र समवस्थिताः ॥ संविदं नृवरा
क्रुर्नानाशस्त्रविशारदाः ॥ ८ ॥ एनं धौम्यं दुरात्मानं ह
ष्यामो महीपतिम् ॥ येनास्माकं मानहानिर्मुद्गरे पणके कृते ॥
एनां च संहरिष्यामो हत्वेनं सपरिच्छदम् ॥ नोचेत्कथं स्व
राणां वांछेयुः सहसंगतिम् ॥ १० ॥ इति वै संविदं कृत्वा
एव महीभुजः ॥ ऊचुस्तं धौम्यमुर्वीशमीर्ष्याक्रोधसमाश्रित
॥ ११ ॥ नृपतय ऊचुः ॥ युद्धायागच्छ दुर्बुद्धे वयं युद्धवि
रदाः ॥ भवतो भूमिपालो यः शिरश्छेदं करिष्यति ॥ १२
गृहीष्यति स ते कन्यां रूपेणाप्रतिमां भुवि ॥ मुद्गरे तोलि

जो कोई ऐसी शक्ति धारण करनेवाला नृपाल हो, वोह झटपट इस मुद्गरको उठावे
अपनी कन्या उसे देदूंगा ॥ ४ ॥ राजा धौम्यके ऐसे वचन सुन वे समस्त श्रेष्ठ राज
समें एक दूसरेका अवलोकन करनेलगे, और उनके चित्तमें आश्चर्यकी प्राप्ति होगई
उन राजसत्तम प्रत्येक राजाओंने एक २ करके उठ २ कर उस मुद्गरको तोलने
तयारी करी ॥ ६ ॥ परन्तु यद्यपि वे घोर युद्ध करनेवालेभी थे तौभी उस मुद्गर
को वे लोग समर्थ न हुए, अतएव मूर्च्छित हो २ कर वे सब लौटगये ॥ ७ ॥ उ
ओंके चित्तमें बड़ी ईर्ष्या उदम हुई, वे लोग अनेक शस्त्रोंके जाननेमें चतुर तौ थेही
एकत्र बैठकर मन्त्रणा करनेलगे ॥ ८ ॥ कि, इस दुराचारी धौम्यराजाका वध कर
चाहिये, क्योंकि—इस मुद्गरके द्वारा इसने हमारी विशेष मानहानि कीहै ॥ ९ ॥
इसे मारकर इसके परिवारकाभी वध करडालें अन्यथा लज्जाके मारे हमलोग अपनी २
साथ संगतिभी नहीं करसक्ते हैं ॥ १० ॥ समस्त राजाओंने इसप्रकार सम्मति करके
क्रोधसे युक्त होकर राजा धौम्यसे यों कहा ॥ ११ ॥ राजा बोले—हे दुष्टबुद्धे ! हम
युद्ध करनेमें बड़े चतुर हैं, सो तुम हमारे साथ युद्ध करनेको आओ, युद्ध में
राजा तेरा शिर काटेगा ॥ १२ ॥ वोही अनुपम रूपवती तुम्हारी कन्याका पा

भूप न हीनो जायते नृपः ॥ १३ ॥ इति तेषां मुखाच्छ्रुत्वा वचनं हि महीभृताम् ॥ उवाच परमक्रुद्धो मदसंरक्तलोचनः ॥ १४ ॥ धौम्य उवाच ॥ अहं च क्षत्रियो राजा यूयं च हि तथाविधाः ॥ युद्धं कुरुत सर्वेऽपि यदि युद्धेषु दुर्म्मदाः ॥ १५ ॥ कुमार्युवाच ॥ इति धौम्यस्य वचनं श्रुत्वा दूतस्त्वरान्वितः ॥ आययौ सहसा सोऽपि तेषां सर्वमहीभुजाम् ॥ १६ ॥ दूतोक्तं तद्वचः श्रुत्वा सर्वे एव नराधिपाः ॥ स्वंस्वं सैन्यं समाविश्याज्ञापयामासुरंजसा ॥ १७ ॥ सन्नद्धकवचाश्चैव निस्त्रिंशवरपाणयः ॥ गदिनश्चर्म्मिणः शूराः कटिन्यस्तनिषङ्गकाः ॥ १८ ॥ तोमारांश्च तथा शूलान्परिघान्पट्टिशांस्तथा ॥ ऋष्टींश्च मुद्गरांश्चैव कार्मुकाञ्छरतूणकान् ॥ १९ ॥ संगृह्य सहसा शूराः शतशोथ सहस्रशः ॥ हयान् गजान् रथांश्चैव समारुह्य महीभृतः ॥ ॥ २० ॥ सर्वतः समलंचक्रुः पताकाशतपंक्तिभिः ॥ संदष्टौष्ठपुटा दंतैः किटिकिट्टितवादिनः ॥ २१ ॥ एकत्र सर्वभूपाला

ा करेगा, हे भूपाल ! इस मुद्गरके न उठानेसे कोई राजा न्यून नहीं होसक्ता है ॥ १३ ॥ राजाओंके मुखसे ऐसे वचन सुन मदसे नेत्रोंको लाल २ करके परम क्रोधित हो धौम्य से बोला ॥ १४ ॥ धौम्यने कहा—मैं क्षत्रिय राजा हूं, और तुमही क्षत्रिय ही हो, सो तुम युद्ध करनेमें बड़े चतुर हो तौ अवश्य युद्ध करो ॥ १५ ॥ कुमारी कहने धौम्यके मुखसे ऐसे वचन सुनतेही तुरन्त दूत वहांसे चला, और समस्त राजाओंके पास ा ॥१६॥ जब उन राजाओंने दूतके मुखसे यह वचन सुने तौ वे अपनी २ सेनामें आये यह वृत्तान्त सबको सूचित किया ॥ १७ ॥ राजालोग कवच धारणकर हाथमें खड्ग कमरमें तरकस बांध, गदा और चर्मको धारण कर २ के सब तयार होगये ॥ १८ ॥ र, शर, परिघ (वज्र) और पट्ट, मुद्गर तथा धनुष बाण इन सब आयुधोंको उन राजाओं-धारण किया ॥ १९ ॥ उक्त आयुधोंको शूर वीर सैकडों सहस्रों ले २ कर हाथी और रथोंके ऊपर आरूढ हुए ॥ २० ॥ राजाओंने अपने समाजको सैकड़ों ध्वजाओंकी रसे चौतर्फा समलंकृत करदिया. अथ च सब राजा कट २ शब्द करके दांतोंसे ओष्ठोंको नेलगे ॥ २१ ॥ अमित पराक्रमी वे सब राजा एकत्र इकट्ठे हुए, भेरी और

जातास्तत्र महौजसः ॥ भेरीशब्दं ततश्चक्रुस्तथा शंखादि
कान् ॥ २२ ॥ श्रुत्वा तु निनदं तेषां युद्धेप्सूनां परंतपः ॥ धौम्यो
पि सहसा राजा युद्धाय समुपस्थितः ॥ २३ ॥ निश्चक्राम गृहा
त्तूर्णमभ्रजालादिवांशुमान् ॥ स्वसैन्यं सोपि संदिश्य समा
रथं ततः ॥ २४ ॥ सोपि भेरीप्रहारेण कृतवान् शब्दमुत्तमम्
द्वात्रिंशत्कोटयो देवितस्य सैन्यस्य चाभवन्॥२५॥येषां सैन्य
संख्यानं विद्यते न नृपात्मज ॥ स्वं स्वं स्थानं समास्थ
सन्नद्धा युद्धदुर्मदाः ॥ २६ ॥ आह्वयामासुरन्योन्यं पर
जयैषिणः ॥ नानाशस्त्रास्त्रकुशलारसंवीरमुपाश्रिताः ॥ २
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने मंदुरास्वयंवरे एक
मवस्थानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शंखोंके गम्भीर शब्द करनेलगे ॥ २२ ॥ परमतेजस्वी धौम्यने जब उन
राजाओंका नाद श्रवण किया, तब वोह स्वयंभी युद्ध करनेके लिये शीघ्रही
हुआ ॥ २३ ॥ जैसे मेघसमुदायको विदीर्ण कर सूर्यनारायण उदय होतेहैं,
वोह राजा सहसा घरसे बाहर निकला, एवंच रथमें आरूढ हो उसनेभी अपनी
आज्ञा दी ॥ २४ ॥ इसनेभी भेरीको ताड़न करके उत्तम शब्द किया । और
संख्यामें दो करोड़ थी ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अन्य राजाओंकी इतनी अपार
जिसकी संख्याही नहीं होसक्तीथी, निदान घोर युद्ध करनेवाले वे सभी राजा अपने
विभागमें उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ परस्पर विजयकी इच्छासे युद्ध करनेके
दूसरेका आह्वान करनेलगे, वे सभी अस्त्र शस्त्रविद्यामें चतुर और वीररससे
रहे थे ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

ईश्वर उवाच ॥ ततः प्रववृते युद्धे सर्वेषां हि महीक्षिताम् ॥ लोमोद्धारकरं चैव शरैरस्त्रैस्तथा शुभम् ॥१॥ भिंदिपालैः शरैःखड्गैस्तोमरैः शक्तिसायकैः ॥ युयुधुः परमं वीराः संदष्टौष्ठपुटा अथ ॥ २ ॥ भिंदि भिंदि छिंधि छिंधि तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ॥ हेषितैर्घोटकानां च गजानां चैव गर्जितैः ॥ ३ ॥ चीत्कारैरथचक्रैश्च भटानां प्रेषणैस्तथा ॥ ज्ञायते तत्र स्वबलं स्वप्रियाह्वयनादथ ॥ ४ ॥ सममेव महाभागे शस्त्रास्त्रनियुतायुतैः ॥ भिंदिपालैः शतघ्नीभिर्गदाभिः शक्तितोमरैः ॥ ववर्षुस्तत्र भूपाला धाराभिरिव तोयदाः ॥ ॥५॥ बभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ जाताः सहस्रशो नद्यो मांसकर्दमकालिताः ॥ ६ ॥ छिन्नानां शिरसां तासु कच्छपा इव सुंदराः॥ रेजुर्मीना इव करा विच्छिन्नांगुलयस्तथा ॥७॥ उष्णीषाणां समूहाश्च हतानां रुधिरांबुनि ॥ फेनजालं यथा रेजुरस्थिहृपदसंकुलाः ॥ ८॥ हतानां हस्तिनां वृंदैरथानां च सहस्रशः ॥

महादेवजी बोले–इसप्रकार समस्त राजाओंका जब लोमहर्षणकारी युद्ध प्रवृत्त होगया, तब बाण, शस्त्र ॥ १ ॥ भिन्दिपाल, खड्ग, शक्ति, धनुष और बाण इन सबसे वे वीरलोग युद्ध करनेलगे और दांतोंसे ओठोंको काटनेलगे ॥ २ ॥ भेदो छेदो अरे खड़े रहो ऐसा शब्द बारंबार श्रवणगत होनेलगा, घोड़ोंके हिनहिनाने, हाथियोंके चिंघाडने ॥ ३ ॥ और गर्जनेसे, रथके चक्रोंसे तथा शूरवीरोंके आने जानेसे, एवं च अपने २ प्रिय जनोंका आह्वान करनेसे अपनी २ सेनाका बोध होताथा ॥ ४ ॥ एक साथही असंख्य अस्त्र शस्त्र भिन्दिपाल शतघ्नी शक्ति और तोमर इन सबकी राजाओंने वर्षा की जैसे बादल धाराओंके द्वारा वर्षा करतेहैं ॥ ५ ॥ उससमय लोमहर्षणकारी बड़ा अद्भुत घोर युद्ध हुआ अतएव मांसकी कीचड़से व्याप्त हुई अनेक नदियें उत्पन्न होगईं ॥ ६ ॥ उक्त नदियोंमें छिन्न भिन्न शिर सुन्दर २ कच्छपोंकी समान प्रतीत होतेथे, तथा अंगुलियोंका छेदन होजानेके कारण हाथ मीन (मछलियों) की समान जानपड़तेथे ॥ ७ ॥ मृतक योधाओंकी पगड़ियें (अथवा अन्य शिरस्त्राण) रुधिररूप जलके ऊपर फेनकी सदृश तथा अस्थिसमुदाय पाषाणकी समान शोभाको प्राप्त होतेथे ॥ ८ ॥ मृतक हुए हाथियोंके समुदाय एवं भग्न हुए सहस्त्रों रथोंसे वहां

बभूव पर्वताकारः सुंदरो ह्यद्भुतोमपः ॥ ९ ॥ आगताः शतश
गृध्राद्याः पिशिताशिनः ॥ शिवाश्च शतशो नेदुर्हर्षपूरितमान
॥ १० ॥ काकाः श्येनास्तथा कंकवृकलाश्च सहस्रशः
उत्कृत्योत्कृत्य मांसानि कीकसस्थान्यनुक्रमात ॥ पृष्ठास
महाभीमा जक्षुः काकाश्च सर्वतः ॥११॥ इति तस्मिन् महा
संग्रामेतिभयानके ॥ रणाजिरे महावीरा ननृतुश्छिन्नमस्तक
॥ १२ ॥ एतस्मिन्नंतरे धौम्यो बाणवर्षं चकार ह ॥ तेषां ग
शरीरेषु शैलेषु वृत्रहा यथा ॥ १३ ॥ तस्य तद्बाणवर्षं वै खंड
श्चक्रुराहवे ॥ खंडिते बाणवर्षे ते स्वयं चक्रुर्महीभृतः ॥ १४
वर्षणं चैव बाणानां हयपृष्ठस्थितास्ततः ॥ बाणानां शत
हस्रं चिच्छेद स्वशरैर्नृपः ॥ १५ ॥ पुनर्बाणसहस्रं वै मुम
परया मुदा ॥ ते वै सर्वे महीपाला धौम्यस्य शरपीडि
॥ १६ ॥ जग्मुर्दशदिशो भूपास्तदस्त्रपरिपीडिताः ॥ पुनः सम
राजानः स्मृतक्षात्रपराक्रमाः ॥ ववर्षुः शरजालानि तोयानि जल

उन्नत पर्वतसा बनगया, जिसकी बड़ी अद्भुत शोभा होतीथी ॥ ९ ॥ उसस्थानमें
भोजी गृध्र आदि अनेक पक्षी प्राप्त हुए, और सैंकड़ों सिआर मनमें प्रसन्न हो २ कर
करनेलगे ॥१०॥ काक, श्येन (सिकरा पक्षी) कंक (पक्षीविशेष) और कृकल (
अथवा पक्षीविशेष) यह सब महाभयंकर पक्षी पीठके ऊपर बैठ मांसको नोंच २ कर
करने लगे ॥ ११ ॥ अत्यन्त भयंकर और महाघोर उस रणभूमिमें बड़े २ धीर
कि, जिनके शिर छिन्न होगयेहैं नृत्य करनेलगे ॥ १२ ॥ इसी अवसरपर धौम्यराज
भूपालोंके शरीरपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करी जैसे कि, इन्द्र महाराजने पर्वतोंके
कीथी ॥ १३ ॥ उस संग्राममें राजा धौम्यके बाणोंकी वर्षाको खण्डित करके वे राज
अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥ धौम्यराजाने अश्वके ऊपर बैठे २ ही उन
वर्षाको अपने सहस्रों बाणोंके द्वारा छेदन करडाला ॥ १५ ॥ फिर आनन्दमें मग्न
उसने सहस्रों बाण रित्याग किये, अतएव वोह समस्त राजसमाज धौम्यके बाणोंसे
ल होगया ॥ १६ ॥ पहिले तौ राजा उसके बाणप्रहारसे पीडित होकर दशों दिशा (
चारों ओर) को पलायन कर गये, परन्तु पीछेसे अपने क्षत्रीसम्बन्धी पराक्रमको
कर २ के फिर लौटके इकट्ठे हुए, और पयोधर मेघ जैसे वर्षा करतेहैं ऐसेही

यथा ॥ १७ ॥ केचिद्भल्लांश्च शक्तीश्च गदाः केचिद्रणाजिरे ॥ मुशलानि च खड्गांश्च तोमरान्परशूंस्तथा ॥ १८॥ विव्यथुः सर्वगात्रेषु राज्ञो धौम्यस्य तद्बलम् ॥ युगपत्पतितं वर्षं शस्त्राणामाशुगामिनाम् ॥ १९ ॥ शक्तो नाभूत्तदा देव निवारयितुमंजसा ॥ छिन्नधन्वा च विरथो बभूव सहसा नृपः ॥२०॥ समुत्थाय ततस्तूर्णं गृहीत्वा खड्गचर्मणी ॥ अच्छिनद्बहुशोरीणां शिरांसि वदतांवर ॥ २१॥ अथ ते पृथिवीपाला युगपद्बहुशस्त्रकान् ॥ ववर्षुस्तस्य गात्रेषु भृशमुद्विग्नमानसाः ॥ २२ ॥ सोपि धौम्यो महाबाहुर्निपपात तदा भुवि ॥ ते तस्य पतमानस्य खंडशश्चक्रुराहवे ॥ २३ ॥ नगरं चापि तस्याशु ध्वंसयामासुरोजसा ॥ अहं च मन्दुरा चैवावशिष्टे वै गते वने ॥ २४ ॥ गुहायां हि तदारभ्य तिष्ठावात्रैव निर्भये ॥ पणं च तत्पितुस्तत्र विद्यते परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥ यद्दृष्ट्वा पृथिवीपाला निपेतुर्भुवि मूर्च्छिताः ॥ तस्या महामते वीर तदेव पणमस्ति हि ॥ २६ ॥ य एनं मुद्गरं राजा संधरिष्यति

णवर्षा करने लगे ॥ १७ ॥ कोई भाले, कोई शक्ति, कोई गदा, कोई मूशल, खड्ग, शु और कोई तोमरकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त होगये ॥ १८ ॥ शीघ्रगामी शस्त्रोंकी नि एक साथही निपतित होनेके कारण राजा धौम्यके और उनकी सेनाके शरीरमें चेष्ट होकर उसे पीड़ित करडाला ॥ १९ ॥ अतएव वोह राजा धौम्य उस बाणवर्षाको घ्रही निवारण करनेके लिये समर्थ न हुआ, किन्तु—तत्कालही इस राजाका धनुष छिन्न र रथ भग्न होगया ॥ २० ॥ हे सुयोग्यवक्ता ! इसके अनन्तर तुरन्तही उठकर धौम्यराने ढाल तलवार ग्रहणकरी, और बहुतसे शत्रुओंके शिरका छेदन किया ॥ २१ ॥ इसके पात् उन समस्त राजाओंने चित्तमें अतिशय उद्विग्न होकर एकसाथ अनेक शस्त्रोंकी वर्षा स राजाके ऊपर करी ॥ २२ ॥ तबतौ महाबाहु वोह धौम्यराजा भूमिके ऊपर गिरपड़ा र जभी वोह गिरा तभी सब राजाओंने उसे खण्ड २ करडाला ॥ २३ ॥ और अपने बल राक्रमसे उसके नगरका भी विध्वंस करडाला, मैं और मन्दुरा शेष रही सो वनमें चलीआई २४ ॥ हे सुन्दर ! तभीसे निर्भय होकर हम दोनों गुहामें निवास करतीहैं, अथच उसके ताका परम अद्भुत वोह पणभी विद्यमानहै ॥ २५ ॥ यह सब देखकर राजालोग मूर्च्छित पृथ्वीके ऊपर गिरपड़े परन्तु—हे महावीर ! उस मन्दुराका वोही पणहै ॥ २६ ॥ जो राजा

बाहुना ॥ भविता हि स मे भर्त्ता नोचेदित्येव संस्थिता ॥ ए
सर्वमाख्यातं यत्पृष्टाहं त्वया शुभ ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कं
केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने मंदुगास्वयंवरे धौम्यवधो नाम प
दशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अपनी भुजाओंसे मुद्गरको उठावेगा, वोही मेरा पति बनसकेगा, अन्यथा मैं वै
(अनव्याही) बनी रहूंगी । हे शुभदर्शन ! जो तुमने मुझसे पूछा था यह सब वृत्ता
तुम्हें कह सुनाया ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कंदे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

ईश्वर उवाच ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा विस्मयाविष्टमानसः ॥
तत्परमाश्चर्य्यं यदर्थं त्यक्तजीविताः ॥ १ ॥ युद्धं चक्रुर्यदर्थं वै
चेयं यदीयका ॥ कीदृशी सेति बहुधाभविष्यादिति चिंतितम् ॥
जगाम च तया दास्या यत्र सा मंदुगा स्थिता ॥ तत्र गत्वा
शानि दर्शितं च तया पणम् ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा मुद्गरं देवि हस्तेनै
सत्वरम् ॥ तोलयामास पश्यंत्या मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं साधुसाध्विति वादिनः ॥ ऊचुः पर

शिवजी बोले इस प्रकार उसके वचन सुनके उसके चित्तमें विशेष विस्मय हुआ,
उसने ऐसा आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुना कि, जिसके लिये अनेक राजाओंने अपने प्राण
॥ १ ॥ वोह राजकुमार अपने चित्तमें यह विचार करने लगा कि–जिस राजकुमारी
राजसमाजने युद्धकिया, और यह जिसकी दासीहै वोह स्वयम कैसी (सुन्दर) होगी
जहां वोह मन्दुगा उपस्थित थी उस स्थानमें दासीके साथ गया, हे महेश्वरि
जाके उसने (लोहघटित) उस पणको भी देखा ॥ ३ ॥ उसे देखते ही
अथच उर्ध्वरेता महर्षियोंके समक्ष देखते ही देखते उस राजकुमारने एक हाथसे
॥ ४ ॥ इस परम आश्चर्यको देखकर ब्रह्मका निरूपण करनेवाले वे समस्त मुनि

सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ ५ ॥ अहोपराक्रमस्त्वस्य सर्वेषां पृथिवीभृताम् ॥ मंदुरा सापि तं देवि ह्यवृणोत्परया मुदा ॥ ॥ ६ ॥ वेदोक्तविधिना तां तु परिगृह्य महामनाः ॥ समाययौ गृहं स्वीये बलसूदनविक्रमः ॥ ७॥ सुखं रेमे तया सार्द्धं पौलोम्येव शचीपतिः ॥ तस्यां च कुवलाश्वो वै त्रीन्सुतांस्तु ह्यजीजनत् ॥ ८॥ दृढाश्वं कपिलाश्वं च चंद्राश्वं चंद्ररूपिणम् ॥ स एव धुंधुमारत्वमगात्पश्चान्महायशाः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्तने मंदुरास्वयंवरं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

शब्दका उच्चारण करनें लगे ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण राजाओंमें इसका पराक्रम बड़ा अद्भुतहै, अथच इसी विचारसे राजकुमारी मन्दुरानेभी परम आनन्दित हो उसका वरण करलिया ॥ ६ ॥ महामनस्वी उस राजकुमारने वेदोक्त विधिसे उसका पाणिग्रहण करके इन्द्रकी समान पराक्रमी वोह राजकुमार अपने घरको आया ॥ ७ ॥ जिस रीतिसे इन्द्राणीके साथ सुरराज रमण करते हैं; इसी विधिसे सुखपूर्वक उस राजकुमारीके साथ उसने रमणकिया, अथच कुवलाश्वने मन्दुरामें तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ चन्द्रमाकी समान सुन्दर दृढाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व यह तीन पुत्र हुए इसके अनन्तर वोह महायशस्वी राजा धुन्धुमारत्वको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

पार्वत्युवाच ॥ कथं वै धुंधुमारत्वमगात्पश्चान्महायशाः ॥ एतत् सर्वं महाभाग कथयस्व महेश्वर ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि महाराजा धुंधुमारत्वमागतः ॥ तत्सर्वं हि समासेन कथयामि तवांतिके ॥ २॥ बृहदश्वो महातेजाः कुवलाश्वपितैकदा ॥

पार्वतीजी बोलीं—हे महाभाग महेश्वर ! परमयशस्वी वोह राजा पछिसे धुन्धुमारत्वको किस प्रकार प्राप्त हुआ ? यह सब मेरे अगाड़ी वर्णन करो ॥ १ ॥ महादेवजी कहने लगे सुनो देवि ! राजाकुवलाश्व जिस प्रकार धुन्धुमारत्वको प्राप्त हुआ यह सब वृत्तान्त संक्षेपसे तुम्हारेप्रति वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ कुवलाश्वका पिता परमकीर्त्तिमान् बृहदश्व अपने मन्त्रियों

स्थितो गृहे मंत्रिवर्गैः सहितो हि महायशाः ॥ ३ ॥ एतस्मि
देवि ह्युत्तंको नाम नामतः ॥ उवाच द्वाःस्थं राज्ञे मां नि
समागतम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसा द्वाःस्थो गतो यत्र म
पतिः ॥ उत्तंको वै महातेजा आगतश्चेत्युवाच ह ॥ ५
तमागतं तदा श्रुत्वा बृहदश्वो महामनाः ॥ उवाचानय शी
उत्तंकमिति पार्वति ॥ ६ ॥ आज्ञां राज्ञस्ततः श्रुत्वा हस्तं
दक्षिणम् ॥ आनयामास नृपतेः सामीप्यं हि तपोनिधिम् ॥७
दृष्ट्वा सहसा राजा बृहदश्वो महीपतिः॥ कृतांजलिपुटो देवि ह्युत्
परमासनात् ॥८॥ पाद्यमाचमनीयं च चकार सहसा नृपः ॥ कृ
र्थोस्म्यनुगृहीतोस्मि भवदागमनेन हि ॥ ९ ॥ उत्तंक उवा
भवता रक्षणं कार्य्यं सर्वेषां पृथिवीपते ॥ प्रजाः पालयता
धर्मेण श्रुतिवर्त्तिना ॥१०॥ यथा राज्यं च विपुलं परत्र च
गतिः ॥ जायते सततं देव तस्मात् कार्यं हि रक्षणम् ॥ १
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ धुंधुर्नाम

सहित अपने गृहमें स्थित था, इस राजाका तेज बड़ा विशाल था ॥ ३ ॥ हे
इसी समय उत्तंकनाम कोई व्यक्ति द्वारपालसे बोला कि–हमारे आनेका वृत्तान्त राजा
न करदो ॥ ४ ॥ यह सुनकर द्वारपाल तत्कालही राजाके निकट गया, राजाने
है ? तब इसने सब वृत्तान्त कहसुनाया ॥ ५ ॥ उत्तंकका आगमन सुन बृहदश्वने
उन्हे शीघ्रही ले आओ ॥ ६ ॥ राजाकी आज्ञा पाय उत्तंकका हाथ पकड़कर दूत
निधिको राजाके समीप लेआया ॥ ७ ॥ हे देवि ! राजा बृहदश्व उन ऋषिको देख
हाथ जोड़कर अपने राजसिंहासनसे उठ खड़े हुए ॥ ८ ॥ अथच तत्कालही रा
आचमनीय आदिका शिष्टाचार निवेदन किया, और कहा कि, आज आपके शुभाग
कृतार्थ होगया आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ ९ ॥ उत्तंक बोले--हे भूमिपा
को सबकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि वेदोदित आज्ञाका पालन करनेवाले राजा
है कि, धर्मसे प्रजाका पालन करे ॥ १० ॥ जैसा यह प्रभूत राज्यहै (इसके यथा
से) परलोकमेंभी परम गति प्राप्त होतीहै, इस कारण अवश्यमेव इसकी रक्षा करनी
है ॥ ११ ॥ तुम्हारी समान धर्मात्मा और सत्यका पालन करनवाला त्रि
अन्य कोई नहीं है, हे महाबाहो ! मधुदैत्यका पुत्र परम प्रतापी धुन्धुना

बाहो मधुपुत्रः प्रतापवान् ॥१२॥ समुद्रवालुकापूर्ण उज्जालक इति
स्मृतः ॥ तत्रायं वसते राजन्निर्भयो नरदेवहा ॥ १३ ॥ तपस्तपति
दुष्टात्मा वालुकांतर्हितो नृप ॥ देवतानामवध्यश्च श्वासं मुंचाति व-
त्सरे॥१४॥ तस्य निश्वासवातेन कंपते वै वसुंधरा ॥ रज उत्था-
प्यते तेन कालधूम इवापरः ॥ १५ ॥ तद्रजः सहसादित्यपथ-
माच्छाद्य भूपते ॥ भूमिर्वै कंपते वीर विस्फुलिंगं च वर्षति ॥१६॥
अश्मवर्षं तदा राजन् सांगारं वर्षते तदा ॥ तेनोत्पातेन नृप-
ते न स्थातुं शक्यते मया ॥ १७ ॥ यस्तस्य मारणे बुद्धिं धुंधो-
स्तस्य दुरात्मनः ॥ लोकाः स्वस्था भविष्यंति ऋषयश्च तपो-
धनाः ॥ १८ ॥ वधे तस्य महाबाहो न शक्तः कश्चिदस्ति हि ॥
विष्णुनापि वरो दत्तो मम पूर्वं महीपते ॥ १९ ॥ धुंधुं मधुसुतं
यस्तु मारयिष्यति वै नृपः ॥ तस्य त्वं वरदानेन तेजोवृद्धिं करि-
ष्यसि ॥ २० ॥ नहि मधुसुतो भूप वध्योल्पेनैव तेजसा ॥ अजे-

य है ॥ १२ ॥ समुद्रकी रेतीसे व्याप्त हुए उज्जालक स्थानमें यह निवास
रताहै, अथच निडर होकर देवताओं और मनुष्योंका हनन करता है ॥ १३ ॥ हे राजन् !
लुकाके भीतर छिपा २ ही यह तपका आचरण करताहै, देवताभी इसका वध नहीं करसक्ते
र यह एक वर्षमें श्वासोंका परित्याग करता है ॥ १४ ॥ उसके श्वासकी पवनसे समस्त
मि कंपायमान होजातीहै, जैसे प्रलयकालका धूम होताहै ऐसी ही भयंकर धूलिको वोह
डाया करता है ॥ १५ ॥ वोह रज उड़ २ कर सूर्यका आवरण करलेती है उस समय
मि कंपायमान होने लगती है और अग्निकण बरसने लगते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! पाषाण
र अंगारोंकी वर्षा होतीहै, हे नृप ! इस उत्पातके कारण मैं स्थित रहनेको समर्थ नहीं हो-
का ॥ १७ ॥ अतएव उस दुराचारी धुन्धुदैत्यके वध करनेका आप विचार करें तो सब
न और तपोधन महर्षिगण स्वस्थ होजायँगे ॥ १८ ॥ दूसरा कारण यह भी है कि, उसका
ध करनेके लिये और कोई सामर्थ्यवान् नहीं है, अथच हे महीपाल ! पहिले विष्णु भगवान्ने
ो मुझे यह वर दियाथा ॥ १९ ॥ कि, जो राजा मधुके पुत्र धुन्धु दैत्यका वध करेगा,
म उसे वरप्रदान करोगे इसीसे उसके तेजकी वृद्धि होगी ॥ २० ॥ हे राजन्! मधुकुमार
ोह धुन्धु असुर स्वल्प तेजके द्वारा बाधित नहीं होसक्ता है, क्योंकि, परम तेजस्वी होनेके

योस्ति महातेजा देवैरपि सवासवैः ॥ २१ ॥ ईश्वर उवा
इति तद्भाषितं श्रुत्वा ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ॥ उवाच भक्ति
विनयाविष्टमानसः ॥ २२ ॥ बृहदश्व उवाच ॥ नायं मे स
विप्र धुंधोर्नि ग्रहकर्मणि ॥ ददामि ते स्वकं पुत्रं कुवलाश्वं मह
तिम् ॥ २३ ॥ अयमेव महातेजा धुंधुमारो भविष्यति ॥ अ
कुवलाश्वेन गच्छ तत्र यथासुखम् ॥ २४ ॥ कृपया ते महा
धुंधुहंता भविष्यति ॥ अहं तु न्यस्तशस्त्रोस्मि तपसे कृत
सः ॥ २५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ उत्तंकमिति संबोध्य बृह
महामनाः ॥ समादिदेश पुत्रं च तत्सर्वं मुनिभाषितम् ॥ २
न्यस्तशस्त्रो महातेजाश्चीरांबरपरिच्छदः ॥ मुनिभिः सह
त्मा ययौ कैलासपर्वते ॥ २७ ॥ केदारेश्वरतो याम्ये मंद
न्याश्च ह्युत्तरे ॥ पर्वते मुनिसेव्ये हि चचार परमं तपः ॥ २
ययौ पश्चान्महातेजा योगिनां गतिमुत्तमाम् ॥ यत्र गत्वा
शानि जन्मनाशादिवर्जितः ॥ २९ ॥ कुवालाश्वोपि पु

कारण इन्द्रादि देवगण भी इसका विनय नहीं करसके हैं ॥ २१ ॥ महादेवजी बो
विचारवान् ब्रह्मर्षि उत्तंकके ऐसे वचन सुनकर भक्तिभावपूर्वक विनयसे राजाने उत्तर
॥ २२ ॥ बृहदश्व बोला हे विप्र! धुन्धु दैत्यका निग्रह करनेके लिये मेरा यह स
नहीं है, किन्तु अत्यन्त तेजस्वी अपने कुवलाश्व पुत्रको मैं तुम्हें देताहूं ॥ २३
तेजस्वी यह हमारा पुत्र धुन्धु दैत्यका वध करेगा, अतः इस कुवलाश्वको साथ
सुखपूर्वक वहां चले जाओ ॥ २४ ॥ हे महाभाग ! यह आपहीके अनुग्रहसे धुन्धु
करेगा, और मैंने तो शस्त्रोंका परित्याग करके तपश्चर्या करनेके लिये मनमें विचार
है ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले—महामनस्वी बृहदश्वने उत्तंक ऋषिको इसप्रकार स
उक्त महर्षिका कथन किया समस्त वृत्तान्त अपने पुत्रको सुनाया ॥ २६ ॥ और प
उस राजाने स्वयं शस्त्रोंका परित्यागकर चीरवस्त्र धारण किये एवंच वोह धर्मात्मा
साथ कैलास पर्वतके ऊपर चलागया ॥२७॥ केदारेश्वर दक्षिण ओर मन्दाकिनीके उ
ऋषियोंके द्वारा सेवन किये पर्वतके ऊपर परम उग्र तपका आचरण करने लगा
अन्तसमय इस परम तेजस्वीको योगियोंकी उत्तम गति प्राप्त हुई, हे महेश्वरि ! ज
प्राप्त होकर फिर जन्म मरण नहीं होता ॥२९॥ इधर राजा कुवलाश्व जो कि, बड़

शतेन परिवारितः ॥ ययौ तेन महातेजा धुंधोर्निग्रहकर्मणि ॥
॥ ३० ॥ भेरीमृंदगपणवान् संताड्य सहसा चमूः ॥ संछाद्य
पृथिवीं देवि कुर्वंती नृपसुश्रियम् ॥ ३१ ॥ रथैरश्वैर्गजैश्चैव सुव-
र्णकृतभूषणैः ॥ सैनिकानां सहस्रैस्तु स तेन परिवारितः ॥
॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुचरिते कुवलाश्वनि-
र्याणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अपने सैकडों पुत्रोंसे युक्त हो, धुन्धु राक्षसका वध करनेके लिये उन ऋषिके साथ गया ॥ ३० ॥ हे देवि ! भेरी मृदङ्ग और पणव इनवाद्योंको बजा २ कर कुवलाश्वकी सेनाने भूमिको व्याप्त करलिया अतएव राजाकी शोभाका उदय होनेलगा ॥ ३१ ॥ रथ, अश्व, हाथी इत्यादिको सुवर्णके सैकडों आभूषण पहिरा २ कर सैकडों बल्कि सहस्रों सैनिक योधा उसके साथ चले ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

ईश्वर उवाच ॥ कुवलाश्वो महाबाहुः शतपुत्रैस्तु संवृतः ॥ जगाम
सेनया सार्द्धं समुद्रतटके ततः ॥ १ ॥ तमाविशद्वैष्णवं हि तेजः
सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ प्रविष्टे तु तदा राजा शुशुभे नितरां मुने ॥२॥
धुंधुः श्रुत्वा महाशब्दं नदतां सर्वतो दिशि ॥ वालुकायाः समु-
त्थाय निश्वासं मुमुचे तदा ॥३॥ तस्य निश्वासवातेन सैन्यं तस्य
महीभुजः ॥ विदुद्राव सर्वतोहि वातेनाभ्रगणो यथा ॥४॥ प्रनष्टे

महादेवजी कहने लगे—महाबाहु कुवलाश्वराजा अपने सैकडों पुत्रों तथा सेनाको साथ लेकर समुद्रके तटपर गया ॥ १ ॥ इस राजाको परमोत्तम वैष्णव तेजकी प्राप्ति हुई, तेजकी प्राप्ति होनेपर हे मुने ! राजाकी अत्यन्त ही शोभा होनेलगी ॥ २ ॥ चारों ओर नाद करनेवाली सेनाके महाशब्दको सुनकर धुन्धुदैत्यने भी वालुकामेंसे उठकर श्वासोंका परित्याग किया ॥ ३ ॥ पवनके चलनेसे जिस प्रकार मेघसमुदाय छिन्न भिन्न होजाता है, इसी प्रकार उसके श्वासोत्पन्न पवनसे राजा कुवलाश्वकी सेना पलायन करनेलगी ॥ ४ ॥ इस प्रकार जब सेना

तु ततः सैन्ये कुवलाश्वो महायशाः ॥ रथमारुह्य वेगेन
मधुसुतो यतः ॥५॥ आगतं तं तु विज्ञाय वालुकांतर्हितो
अंतर्हितेथ तस्मिस्तु कुवलाश्वो महीपतिः ॥ ६ ॥ चिंत
स बहुशः किं कर्तव्यमतः परम ॥ कथं धुंधोर्वधो हंत जा
पुनः पुनः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नंतरे वीराः शतपुत्रा महात्म
समुद्रं खातयामासुर्दृढाश्वप्रमुखाः प्रिये ॥ ८ ॥ ततो दुं
नेदुराकाशे देवताडिताः ॥ दिव्यं कुसुमवर्षं च पपात
नृपे ॥ ९ ॥ खनत्सु तेषु देवेशि चतुर्दिक्षु ततस्ततः ॥ प
दिशमास्थाय ददृशे वै स राक्षसः ॥ १० ॥ सोपि धुंधुर्म
दृष्ट्वा तान्सहसागतान् ॥ ददाह मुखजातेन वह्निना तीव्रे
॥ ११ ॥ शतं त्रिनूनं देवेशि तत्पुत्रांस्तत्पराक्रमान् ॥
श्रुत्वा स राजा तु निर्दग्धांस्तान् स्वपुत्रकान् ॥ १२ ॥
त्थाय सहसा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ जगाम तत्र देशे तु नि

नष्ट होगई तब अत्यन्त यशस्वी कुवलाश्व रथमें आरूढ हो बडे वेगसे मधुके
निकट गया ॥ ५ ॥ कुवलाश्वको आयाजान वोह निशाचर वालुकाके तले
वोह इस प्रकार अन्तर्हित होगया तब कुवलाश्व राजाने ॥ ६ ॥ इस बातका
किया कि, अब क्या करना कर्त्तव्य है, हाय! बडे खेदकी बातहै कि, अब धुन्धुका
प्रकार किया जायगा ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! इसी अवसरमें महात्मा कुवलाश्वके
महावीर पुत्र सागरका खनन करने लगे ॥ ८ ॥ उसी समय देवताओंके द्वारा
दुन्दुभियोंका शब्द होनेलगा और दिव्य पुष्पोंकी वर्षाभी आकाशसे होनेलगी ॥
देवेशि ! जब उन राजकुमारोंने चारों ओर खनन करनेका प्रारंभ करदिया तब
मकी ओर छिपा हुआ वोह राक्षस दृष्टिगत हुआ ॥ १० ॥ महातेजस्वी धुन्धुनेभी
शीघ्रही आया देखा तब अपने मुखके द्वारा उत्पन्न कीहुई और बडे प्रचण्डवेगकी
उन राजकुमारोंको भस्म करनेलगा ॥ ११ ॥ हे देवेशि ! कुवलाश्वहीके समान विक्रम
उसके केवल तीन पुत्रोंको छोड शेष सबको उक्त राक्षसने भस्म करडाला जब राजा
श्वने अपने पुत्रोंका इस प्रकारसे भस्म होजाना सुना ॥ १२ ॥ तो उसके नेत्र मारे
लाल २ होगये, और शीघ्रही उठकर वोह उस स्थानमें पहुँचा जहां उसके पुत्र

यत्र पुत्रकाः ॥१३॥ ददर्श वह्निं मुखजं ज्वालामालाविलक्षणम् ॥ योगी योगेन सहसा शमयामास वारिणा ॥ १४ ॥ गदया ताडयामास तं धुंधुं स महाबलम् ॥ स तया गदया भग्नो जगाम यमसदनम् ॥ १५ ॥ मृतं तं दर्शयामास उत्तंकाय महात्मने ॥ दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म धुंधोर्देवि निबर्हणम् ॥ १६ ॥ प्रसन्नचेता भगवानुत्तंको नाम वै मुनिः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं कुवलाश्वं महीपतिम् ॥ १७॥ उत्तंक उवाच ॥ प्रसन्नोस्मि महाराज कर्मणानेन सुव्रत ॥ वरं ददामि तेऽहं हि तच्छृणुष्व महामते ॥ ॥ १८ ॥ तव वंशे महाराज विख्यातबलविक्रमाः ॥ महीपाला भविष्यंति विज्ञेयास्ते सुरासुरैः ॥ १९ ॥ अतः परं महीपाल तव नाम भविष्यति ॥ धुंधुमार इतिख्यातो भविष्यसि त्रिलोकके ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तस्य वरे दत्ते शशंसुः सर्वदेवताः ॥ पुष्पवर्षं ततश्चक्रुर्भेरीशंखरवांस्तथा ॥२१॥ साधु साधु महाराज धुंधुमारेति वै पुनः ॥ ऊचुः सर्वे नरश्रेष्ठाः किरंतः कुसु-

॥ १३ ॥ उसनें उस स्थानमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला देखी और योगके शीतल जलसे अग्निको शान्त करदिया ॥ १४ ॥ राजा कुवलाश्वने महाबलशाली धुन्धुदैत्यको गदासे न किया, एवंच उस गदाके प्रहारसे नष्ट होकर वोह निशाचर यमलोकको गया ॥ १५ ॥ उसका मृतक शरीर राजाने महात्मा उत्तंकको अवलोकन या, धुन्धुदैत्यके वधरूप अद्भुत कर्मको देखकर ॥ १६ ॥ परमैश्वर्यवान् उत्तंकनाम अपने चित्तमें बड़े प्रसन्न हुए, एवं कुवलाश्वराजाके प्रति मधुरवचन बोले ॥ १७ ॥ ने कहा-हे उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले महाराज ! हम आपके इस कर्मसे विशेष हुए हैं, अतएव सुनो महामतिमान् ! हम तुम्हैं उत्तमवर देतेहैं ॥ १८ ॥ हे महा- ! आपके वंशमें ऐसे २ राजाओंका जन्म होगा जो अपने बल पराक्रमके द्वारा बड़े ात होंगे, अतएव उनका विक्रम देवताओं और असुरोंको भी विदित होगा ॥ १९ ॥ हे महीपाल ! अबसे तुम्हारा नाम भी त्रिलोकमें धुन्धुमार प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥ देवजी बोले-महर्षिके इस प्रकार वरप्रदान करनेके अनन्तर देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की भेरी तथा शंखनादभी किया ॥ २१ ॥ और महाराज कुवलाश्वका धन्यवाद करते

मेन हि ॥ २२ ॥ उत्तंकोपि तपश्चक्रे निरुद्विग्नमनास्ततः ॥ सर्वेपि देवेशि गता अथ यथागतम ॥ २३ ॥ सोपि धुंधमारो जगाम भवनं स्वकम् ॥ अवशिष्टैस्त्रिभिः पुत्रैर्म[illegible] पराक्रमैः ॥ २४ ॥ इति ते कथितं देवि पापघ्नं सर्वकाम[illegible] कुवलाश्वस्य चरितं तथा धुंधुनिबर्हणम ॥२५॥ इति श्री[illegible] केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने धुंधुवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः॥

हुए देवताओंने भी उनको धुन्धुमारनामसे कीर्त्तन किया अथच पुष्पोंकी वर्षा भी [illegible] तब तौ उत्तंक भी अपने चित्तको सावधान करके तपका आचरण करने लगे, हे [illegible] जिस प्रकार आयेथे देवता भी उसी प्रकार चले गये ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर रा[illegible] भी अपने स्थानको चला गया, शेष बचे हुए बड़े पराक्रमी अतएव महावीर तीन[illegible] उसके साथ चले गये ॥ २४ ॥ हे देवि ! पापोंका नाशकर्त्ता अथच निखिल[illegible] पूर्ण करनेवाला यह आख्यान हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, इस आख्यानमें [illegible] वध और कुवलाश्वका चरित्र कीर्त्तन किया गया है ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

ईश्वर उवाच ॥ तस्य पुत्रास्त्रयः ख्याताः प्रख्यातब[illegible] माः ॥ तेषां ज्येष्ठो दृढाश्वस्तु धौंधुमारिर्महायशाः ॥ १ ॥ पुत्रो बभूवाथ हर्यश्वो नाम नामतः ॥ हर्यश्वस्य निकुंभो[illegible] त्रधर्मविदां वरः ॥ २ ॥ संहताश्वो निकुंभस्य कृशा[illegible] चात्मजः ॥ द्वितीयोभून्महेशानि ह्यकृशाश्वस्तथैव च ॥ दृषद्वती कृशाश्वस्य भार्या परमसुन्दरी ॥ तस्यां स

महादेवजी बोले—राजा कुवलाश्वके तीन पुत्र अपने बल और पराक्रमसे विखे[illegible] हुए, धुन्धुमारके पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र बड़ा यशस्वी दृढाश्व था ॥ १ ॥ इसका पुत्र हर्य[illegible] हुआ हर्यश्वका निकुम्भ हुआ, यह व्यक्ति क्षत्रियोचित धर्म जाननेवालोंमें सबसे श्रे[illegible] निकुम्भके पुत्रका नाम संहताश्व और उसके पुत्रका नाम कृशाश्व हुआ, एवंच [illegible] त्रका नाम हे महेशानि ! अकृशाश्व हुआ ॥ २ ॥ कृशाश्वकी अत्यन्त सुन्दरी पत्नी

यामास कन्यामेकां च पुत्रकम् ॥ ४ ॥ कन्या हैमवती नाम पुत्रश्चापि प्रसेनजित् ॥ गौर्य्यां प्रसेनजित्पुत्रं युवनाश्वं ह्यजीजनत् ॥ ५ ॥ मांधाता युवनाश्वस्य त्रिलोकीविजयी नृपः ॥ श्लोकोद्यापि पुरा गीते गीयते यस्य पार्वती ॥ ६ ॥ विक्रमे सुकृते यस्य मांधातुरमितद्युतिः ॥ नायाति त्रिषु लोकेषु देवो वा मानुषोपि वा ॥ ७ ॥ शशबिंदोः सुता तस्य भार्या चैत्ररथी मता ॥ तस्यामुत्पादयामास द्वौ पुत्रौ दृढविक्रमौ ॥ ॥ ८ ॥ पुरुकुत्सं तथा ज्येष्ठं मुचुकुंदं तथैव च ॥ पुरुकुत्ससुतः श्रीमांस्त्रसदस्युर्महामतिः ॥ ९ ॥ त्रसदस्योर्नर्मदायां संभूतश्चाभवत्सुतः ॥ संभूतस्य सुधन्वाभूत्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ॥ ॥ १० ॥ त्रिधन्वनो महाराज्ञो नाम्ना त्रैय्यारुणोभवत् ॥ तस्य सत्यव्रतो नाम पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ११ ॥ एकदा स महादेवि मृगयायै गतो वने ॥ हतास्तेन मृगास्तत्र बहवो जगदीश्वरि ॥ १२ ॥ अथ कश्चिन्महातेजास्तपस्वी वाग्विदांवरः ॥

नाम था इसने एक कन्या और एक पुत्रका प्रसव किया ॥ ४ ॥ कन्याका हेमवती और का नाम प्रसेनजित् था, गौरीने प्रसेनजित् तथा युवनाश्व इन दो पुत्रोंको जना या ॥ ५ ॥ नाश्वका पुत्र मान्धाता हुआ जो कि, त्रिलोकीका भी विजयकरनेमें समर्थ था, हे पार्वति ! के पवित्र चरित्रका अबतक भी गान किया जाता है ॥ ६ ॥ उस अमितकान्तिमान न्धाताके विक्रमको देखकर यह भ्रम हुआ करता कि, यह देवता अथवा मनुष्य कौन है ७ ॥ शशबिन्दुकी पुत्री जिसका नाम चैत्ररथी है उक्त मान्धाताकी पत्नी थी, मान्धाताने रानीमें बड़े पराक्रमी दो पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ उनमें ज्येष्ठपुत्र पुरुकुत्स और नेष्ठ मुचुकुन्द हुआ पुरुकुत्सका पुत्र अतीव बुद्धिमान् श्रीमान् त्रसदस्युनामसे प्रसिद्ध हुआ, ९ ॥ त्रसदस्युने नर्मदा नाम पत्नीमें सम्भूत पुत्रको उत्पन्न किया, सम्भूतका सुधन्वा और न्वाका पुत्र त्रिधन्वा हुआ ॥ १० ॥ राजा त्रिधन्वाके पुत्रका नाम त्रैय्यारुण हुआ, इसका परम धर्मात्मा पुत्र हुआ जिसका सत्यव्रत नाम था ॥ ११ ॥ हे महादेवि ! एक समय सत्यव्रत आखेटके तईं वनमें गया, और हे जगदीश्वरि ! वहां उसने बहुतसे मृगोंका वध या ॥ १२ ॥ इसी समय एक तपस्वी जो वैदिक वाणीके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ और बडा

मृगरूपेण विहरन्ददृशे विपिने ततः ॥ १३ ॥ सत्य
सन्दृष्ट्वा मुनिं वै मृगरूपिणम् ॥ भार्यया सहसा मृग्या
मानं तपोनिधिम् ॥ १४ ॥ ततो बाणं जघानाशु मृगौ
महेश्वरि ॥ मृगमाणौ मृगौ तन्तु कंठप्राणौ विहारिणौ ॥
ऊचतुस्तं स्वहंतारं पित्रा त्यक्तो भविष्यसि ॥ नष्टा भ
दुष्टात्मन् धर्मबुद्धिर्गतः परम ॥ १६ ॥ तया धर्मस्य बुद्ध
सर्वकर्मविगर्हितः ॥ नराधमः श्वपाकेषु वसिष्यसि दुरा
॥ १७ ॥ इति श्रुत्वा तु तच्छापं विह्वलो नष्टचेतनः
तावपि देवेशि त्रिदिवे मृगरूपिणौ ॥ १८ ॥ सोपि
नाम शापात्संहृतचेतनः ॥ समागत्य गृहे स्वीये ह्यधर्मो
भवत् ॥ १९ ॥ एकदा तस्य नगरे कश्चिन्नागरिको
कृतोद्वाहो महादेवि आययौ परया मुदा ॥ २० ॥ ऋषेः
बाल्याच्च जहार तत्प्रियां कुधीः ॥ हाहाकारो बभूवाथ नगरे

तेजस्वी था, मृगका रूप बनाये वनमें विचरता हुआ उसे देखा ॥ १३ ॥
ने तपोनिधि मुनिको मृगका रूप बनाए मृगीरूपधारिणी अपनी पत्नीके
देखा ॥ १४ ॥ तो हे महेश्वरि ! राजाने उन दोनोंको मृग जानके उनके ऊपर बा
किया, बाण लगनेसे उनके प्राण कंठगत होगये, अथच अपना वध करनेवाले
करते करते ॥ १५ ॥ यह बोले कि, तेरा पिता तुझे त्याग देगा, और हे दुराचारी
विषयक तेरी बुद्धि भी विनष्ट होजायगी ॥ १६ ॥ धर्मबुद्धिका अभाव होना
धर्मके समस्त कार्योंमें तेरी निन्दा होगी, हे नराधम ! अतएव तू अपने पापमें
॥ १७ ॥ इनके दिये हुए ऐसे शापको सुनतेही यह सत्यव्रत व्याकुल होगया
की चैतन्यता नष्ट होगई, एवंच हे महेश्वरि ! मृगरूपधारी वे दम्पतिभी स्वर्गलो
गये ॥ १८ ॥ वोह सत्यव्रत राजा भी अपने घर चला आया, शाप लगनेके का
ज्ञान नष्ट होगया, अतएव वोह अधर्मका आचरण करनेमें निरत होगया ॥
समय इसराजाके राज्यमें कोई नगरनिवासी विवाह करके परम आनन्दके साथ
वहां आयके प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ इस दुष्टबुद्धिने महर्षिके शापके कारण एवं
उसकी प्रियपत्नीका अपहरण करलिया, तब तो नगरमें चारोंओर हाहाकारका

भृशम् ॥ २१ ॥ मिलित्वा नागराः सर्वे त्रैय्यारुणमुपागमन् ॥ ऊचुः प्रांजलयस्तस्य चेष्टितं हि दुरात्मनः ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसा राजा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ उवाच तं सुतं स्वीयं दुष्टदुष्टेति चासकृत् ॥ २३ ॥ गच्छाधर्मव्रतोसि त्वं मुखं वीक्षे न ते ह्यतः ॥ प्रियं पुत्रं हि दुष्टं हि संत्यजंति नराधिपाः ॥ ॥ २४ ॥ तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा क्व गच्छामि जगाद ह ॥ पुनरेनमुवाचाहो श्वपाकेषु व्रज त्वरन् ॥ २५ ॥ इति तद्वदितं श्रुत्वा निश्चक्राम पुराद्बहिः ॥ दुश्चेष्टितं महातेजा वशिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ २६ ॥ वारयामास न प्राज्ञो गच्छंतं तं महावने ॥ श्वपाकग्रामनिकटे ह्यवसन्मम वल्लभे ॥ २७ ॥ पिताप्यस्मिन् वनं याते ययौ हैमवतीस्थले ॥ शस्त्राण्यस्त्राणि संत्यज्य तपसे धृतमानसः ॥ २८ ॥ सोपि सत्यव्रतो नाम पित्रा त्यक्तो महामतिः ॥ नष्टधर्मो बभूवाथ सर्वत्यक्तो महेश्वरि ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तस्य विषये पाकशासनः ॥ नावर्षद्द्वादश समास्त-

॥ २१ ॥ इसके अनन्तर समस्त नगरनिवासी जन एकत्रित होकर त्रैय्यारुणके समीप और हाथजोड़कर उस दुष्टकी सब चेष्टा कह सुनाई ॥ २२ ॥ यह सुनतेही राजाके क्रोधके मारे तत्काल लाल होगये, और उसने अपने पुत्रको बारं २ दुष्ट २ कहके रा ॥ २३ ॥ अरे अधर्मका व्रत धारण करनेवाले ! जा चला जा, अबसे मैं तेरा मुख देखूंगा, क्योंकि चाहें पुत्र कितनाही प्यारा क्यों न हो परन्तु दुष्ट हो तौ राजालोग का परित्याग करदेते हैं ॥ २४ ॥ पिताके वचन सुन, उसने कहा मैं कहां जाउं ? फिर ने कहा जा अपने पापोंमें निवास कर ॥ २५ ॥ पिताके वचन सुन वोह तुरन्त ही से निकलकर बाहर चलागया, और ज्ञातियोंमें जाके दुष्ट चेष्टा करने लगा ॥ २६ ॥ दुष्टको धारण कर वोह सत्यव्रत गहनवनमें चलागया; हे हमारी प्यारी ! वह चाण्डालोंके ग्रामके र निवास करनेलगा ॥ २७ ॥ इसके चलेजानेपर इसका पिता भी और वह अस्त्र शस्त्रोंका याग कर तपश्चर्यामें मनको लगाके गंगाजीके तटपर चला गया ॥ २८ ॥ महामतिवोह सत्यव्रत भी पितासे परित्यक्त होकर हे महेश्वरि ! संपूर्ण (आचरणों) को त्यागकर करनेमें तत्पर होगया ॥ २९ ॥ इसके अधर्मके कारण एक समय उस स्थानमें इन्द्र-

स्याधर्मेण वै तदा ॥ ३० ॥ अथ तत्र महादेवि विश्वा
महातपाः ॥ आययौ तस्य विषये दारैः पुत्रैस्तथा सह ॥
तस्मिन्नेव महारण्ये स्वदारान् न्यस्य चात्मजान् ॥ गतः स
तूर्णमेकाकी मुनिसत्तमः ॥ ३२ ॥ कदाचित्तस्य पत्नी तु
विष्टमनाः प्रिये ॥ स्वपुत्रं मध्यमं देवि गले बध्वा मम
॥ ३३ ॥ शेषाणां भरणार्थं वै विक्रीणातुं महेश्वरि ॥ स
तद्विषये क्षुत्पीडापरिपीडिता ॥३४॥ गले बद्धं तथा दृष्ट्वा
णंतं तथाविधम् ॥ मोचयामास सहसा मुनिपुत्रं महाम
॥ ३५ ॥ मोचयित्वा तु तं देवि पालयमास बुद्धिमा
विश्वामित्रानुकम्पार्थं भरणं चाकरोत्सुधीः ॥ ३६ ॥ तत्
सर्वस्य त्रय्यारुणसुतस्तदा ॥ गलबंधाद्गालवोसौ विश्व
सुतस्ततः ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानु
त्रिशंकुचरिते एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

देवने बारह वर्ष पर्यंत जल नहीं बरसाया ॥ ३० ॥ हे महादेवि ! इसी स
पुत्रोंको साथ लिये विश्वामित्र नाम महातपस्वी वहां आकर प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥
योंमें श्रेष्ठ उक्त महर्षि उसी वनमें स्त्री पुत्रोंको छोड़कर स्वयम अकेले तपकरनेके
॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! एक समय उनकी पत्नी क्षुधासे पीड़ित होकर अपने म
गलेमें बांध ॥ ३३ ॥ बोह शेष पुत्रोंका भरण पोषण करनेके अभि
विक्रय करनेको आई ॥ ३४ ॥ गलेमें बंधे हुए उस पुत्रको बिकते देख,
मुनिकुमारको छुडालिया ॥ ३५ ॥ हे देवि ! यह बुद्धिमान उसे छुड़ाकर
पोषण करनेलगा, महर्षि विश्वामित्रकी अनुकंपा संपादन करनेके लिये यह बुद्धिमा
कके पालन पोषणमें दत्तचित्त हुआ ॥ ३६ ॥ त्रय्यारुणकुलोत्पन्न सत्यव्रतने उस
गलबन्धन मुक्तकराया इसीसे उसका गालव नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९

विंशोऽध्यायः २०.

ईश्वर उवाच ॥ ततः सत्यव्रतो नाम कृपया परया युतः ॥ हत्वा वने मृगांश्चैव वराहांश्च तथैव च ॥ १ ॥ उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य न्यवसद्विजने वने ॥ २ ॥ विश्वामित्रस्य देवेशि आश्रमस्य समीपतः ॥ मांसं वृक्षे वने तस्मिन् बबंध गिरिकन्यके ॥ ३ ॥ तस्मिन् राज्ये वशिष्ठस्तु पालयामास सर्वतः ॥ वशिष्ठेप्यधिकं मन्युं चकार स तदादितः ॥ ४ ॥ वने वशिष्ठमुनिना गच्छमानो महेश्वरि ॥ निवारितो न हि इति ततः क्रोधःसमाविशत् ॥ ५ ॥ पाणिग्रहस्तु देवेशि सप्तपद्या ह्यनंतरम् ॥ सत्यव्रतेन पूर्वं हि धृता सा कन्यका प्रिये ॥ ६ ॥ तद्व्रतं तु पितुः क्रोधादुपांशु नावबुध्यते ॥ तेनापचारक्रियया नावर्षत्पाकशासनः ॥ ७ ॥ इदानीं वहता तेन दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ कुलस्य निष्कृतिर्देवि कृता चेत्सा भवेदिति ॥ ८ ॥ वशिष्ठश्च न तं देवि पित्रा त्यक्तं न्यवारयत ॥ एतस्यैव सुतमहमभिषेक्ष्यामि राज्यके ॥ ९ ॥ इति तस्य

महादेवजी बोले—तत्पश्चात् वोह सत्यव्रत परम कृपासे युक्त हो वनमें मृगों और वराहोंका वध करनेलगा ॥ १ ॥ एवंच बारह वर्षकी दीक्षाको ग्रहण करके पिताकी आज्ञामानकर निर्जनवनमें निवास करने लगा ॥ २ ॥ हे गिरिराजकुमारि परमेश्वरि ! उस सत्यव्रतने विश्वामित्रजीके आश्रमके समीपही वनमें वृक्षोंके ऊपर मांसको बांधदिया ॥ ३ ॥ उसी स्थानमें चारोंओर वशिष्ठजी पालन करतेथे, अतएव उसी दिनसे वशिष्ठजीके ऊपर इन्होने विशेष क्रोध किया ॥ ४ ॥ उन्हें अधिक क्रोध इस कारणसे हुआ कि, वनमें आते जाते वशिष्ठजीने इसे निषेधकर निवारण क्यों नहीं किया ॥ ५ ॥ हे देवेश्वरि ! सप्तपदी होजानेके अनन्तर ही पाणिग्रहण होजाता है, हे प्रिये सत्यव्रतने तौ प्रथम ही उस कन्याको ग्रहण किया था ॥ ६ ॥ परन्तु, पिताके क्रोधके कारण वोह उस कन्याके निकट नहीं गया, इसी अपराधके कारण इन्द्रदेवने वर्षा नहीं की ॥ ७ ॥ इस सत्यव्रतने बारह वर्षकी दीक्षा धारण कर कुलका निकृन्तन किया ॥ ८ ॥ हे देवि ! पिताके द्वारा परित्याग किये हुए इस सत्यव्रतको वशिष्ठजीने निवारण नहीं किया, इसीके पुत्रको राज्यकी प्राप्ति होगी ॥ ९ ॥ इसकी

मतिं मत्वा दीक्षां तामुद्वहद्बली ॥ अप्राप्ते तु वशिष्ठे हि त
संददर्श ह ॥१०॥ क्रोधान्मोहाद्दस्युधर्मात्तां जघान महेश्व
तन्मांसं न स्वयं चैतान्विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥ ११ ॥
श्रुत्वा तस्य कर्म वशिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ चुक्रोध तं तु रा
मुवाचेति महेश्वरि ॥ १२ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ पितुश्चाप
पेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ॥ अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिशंकु
विश्रुतः ॥ १३ ॥ दुष्टात्मा दुष्टकर्मा तु भविष्यति न संश
इत्युक्तवान् वशिष्ठस्तु तदा त्रिशंकुतां गतः ॥ १४ ॥ वि
मित्रोपि धर्मात्मा समागत्य गृहे स्वके ॥ भरणं च कुटु
दृष्ट्वा राज्ञो महेश्वरि ॥ १५ ॥ त्रिशंकुं च तथा दृष्ट्वा वशि
पंथिनम् ॥ उवाच वचनं चेदं प्रसन्नो भगवानृषिः ॥ १
विश्वामित्र उवाच ॥ वरं ब्रूहि महाभाग कुटुंबपरिपालक ॥
वै छंद्यमानो वै वरं वव्रे महीपतिः ॥१७॥ त्रिशंकुरुवाच ॥
यतस्व भगवन् यथाहं स्वर्गलोकभाक् ॥ अनेनैव शरीरेण

ऐसी मति जानकर दीक्षाका धारण किया गया, वशिष्ठजीके पीछे ही इसने उनके
॥ १० ॥ हे महेश्वरि ! दस्युधर्मका पालन करने २ क्रोध और मोहसे इसने
किया, उस मांसको स्वयं न लिया और उन विश्वामित्रजीके पुत्रोंकोभी न दिया ॥
समस्त ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीने उसका यह कर्म सुना तब हे महेश्वरि ! उन्हें
ऊपर बड़ा क्रोध आया ॥ १२ ॥ वशिष्ठजी बोले—अरे दुष्ट ! पिताको तो
किया परन्तु गुरुकी गौका वध किया है इस अपराधसे तू त्रिशंकुत्वको प्राप्त होगा
अरे दुष्टात्मन ! तू निःसन्देह दुष्टकर्मोंका आचरण कर्त्ता है तब वशिष्ठजीने उससे
तभी वोह त्रिशंकुताको प्राप्त होगया ॥ १४ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्रजी जब अपने
तब हे महेश्वरि ! उन्होंने राजाके द्वारा अपने कुटुम्बका भरण पोषण होते देखा
वशिष्ठजीके शत्रु उस त्रिशंकुको देखकर भगवान् महर्षि विश्वामित्रजी प्रसन्न होकर
वचन बोले ॥ १६ ॥ विश्वामित्रजीने कहा—हे महाभाग ! तुमने हमारे कुटुम्ब
कियाहै, अत एव तुम हमसे वर मांगो, इस प्रकार कहे जानेपर उस महीपतिने व
करी ॥ १७ ॥ त्रिशंकुबोला— हे मुने ! महर्षिगण आपकी वन्दना करतेहैं आ

मुनिवंदित ॥१८॥ ओमित्युक्त्वा तदा तेन विग्रहस्य भये गते ॥ पित्र्ये राज्येभिषिच्याशु त्रिशंकुं गाधिपुत्रकः ॥ १९ ॥ मिषतां सर्वदेवानां वशिष्ठस्य महामतिः ॥ ततः सोपि महेशानि कैकय्यां देवि पुत्रकम् ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्र इति ख्यातं राजसूयकरं नृपम् ॥ विश्वामित्रोपि हे देवि याजयामास तं नृपम् ॥ २१ ॥ वेदोक्तविधिना देवि कारयामास वै मुनिः ॥ सर्वे देवा ब्राह्मणाश्च नाययुर्हि तदध्वरम् ॥ २२ ॥ क्रुद्धश्चोवाच गाधेयो विश्वामित्रो महायशाः ॥ देवानन्यान् करिष्यामि स्वर्गमन्यं तथा जनान् ॥२३॥ अन्यांश्च स्थावरांश्चैव पशुपक्षिचतुष्पदान् ॥ इत्युक्त्वा मुनिराट् देवि चिकीर्षुः सृष्टिमन्यकाम् ॥ २४ ॥ वृक्षेभ्यो मानुषोत्पत्तिं करिष्यामीति सोऽब्रवदत् ॥ विष्णुमन्यं च ब्रह्माणं रुद्रं च जगदीश्वरम् ॥ २५ ॥ इंद्रमग्निं च वायुं च तथान्यान् देवदानवान् ॥ भिन्नानेव करिष्यामि त्रिशंकोर्वसतिस्थले ॥ २६ ॥ कुलत्थांश्च मसूरांश्च राजमाषांस्तथैव च ॥ गोधूमांश्च तथा चक्रे अन्यांश्च

यत्नकरें जिसके करनेसे में इसी शरीरद्वारा स्वर्गलोकको चला जाऊं ॥ १८ ॥ बहुत अच्छा कहकर निडर हो गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीने त्रिशंकुको उसके पिताके सिंहासनके ऊपर अभिषिक्त कियां ॥ १९ ॥ हे देवि ! समस्त देवताओं और वशिष्ठजीके देखते २ ही उन्होंने किया ॥ २० ॥ राजा हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्रजी असूयातौ करते ही थे, अतएव इन्होंने त्रिशंकुसे यज्ञकराया ॥ २१ ॥ हे देवि ! यद्यपि इन्होंने वेदोक्तविधिसे यज्ञानुष्ठान किया था, तथापि—देवता या ब्राह्मण कोई भी इस यज्ञमें उपस्थित नहीं हुए ॥ २२ ॥ तब गाधिके पुत्र महायशस्वी विश्वामित्रजी क्रोधित होकर यों बोले कि—मैं अन्यदेवता और यही मनुष्योंकी सृष्टि करूंगा ॥ २३ ॥ क्या स्थावर, क्या पशु, क्या पक्षी और क्या चतुष्पद सभीकी अन्य सृष्टि बनाऊंगा ! हे पार्वती ! यों कहकर मुनिराज विश्वामित्रजीने अन्य की रचना करनेका विचार किया ॥ २४ ॥ और कहा कि—वृक्षोंके ऊपरसे मनुष्योंकी उत्पत्ति करूंगा; अथच ब्रह्मा, विष्णु और जगदीश्वर महादेव ॥ २५ ॥ इन्द्र, अग्नि, वायु तथा अन्यान्य दानव इन सबहीको त्रिशंकुके निवासस्थलमें पृथक् २ (और) बनाऊंगा ॥ २६ ॥ कुलथी, मसूर, राजमाष (वरपटी) और गोधूम (गेंहूं) इन सभीकी ऐश्वर्यवान महर्षि विश्वामित्रजीने

भगवान् मुनिः ॥२७॥ माहिषांश्च तथामेषान्भल्लूकांश्च तथै
रचयामास सहसा स्वेच्छयैव महामुनिः ॥ २८ ॥ इन्द्रा
षेक्ष्यामि त्रिशंकुं स्वेन तेजसा ॥ स्वयं ब्रह्मा भविष्यामि
यज्ञमुत्तमम् ॥२९॥ कारयिष्यामि भागांश्च ग्रहीष्यामि
वै ॥ वदतिस्मेति च पुना रचयामास वै प्रिये ॥३०॥ इति
माने तु विश्वामित्रेण धीमता ॥ तत्रसुः सर्वभूतानि पर्वता
पिरे ॥ ३१ ॥ देवाः सर्वे सब्रह्माद्यास्तत्रसुः सेन्द्रका
विश्वामित्रस्य शरणं जग्मुः सर्वे महेश्वरि ॥ ३२ ॥ ऊचुः
लयः सर्वे अलं सृष्ट्येति देवताः ॥ न कर्त्तव्यान्यथा सृष्टि
हतोः स्वयंभुवः ॥ ३३ ॥ यज्ञभागान् गृहीष्यामो विश्वामि
मुने ॥ इत्युक्त्वा निर्जराः सर्वे विश्वामित्रं महामतिम् ॥
जगृहुर्यज्ञभागांश्च तस्य यज्ञे महीक्षितः ॥ पूर्वेणैव शरीरेण
तः स्वर्गमंदिरम् ॥ ३५ ॥ मध्येमा स्थितवान् राजा नि

अन्य सृष्टि निर्माण करी ॥ २७ ॥ एवंच महामुनि विश्वामित्रजीने महिषी (
(मेढे) और भालू इन सबको अपनी इच्छाहीसे बना डाला ॥ २८ ॥ (इन्होंने
किया कि—) इन्द्रके राज्य सिंहासनके ऊपर त्रिशंकुका अभिषेक करूं, अथ
उत्तम यज्ञका मैं स्वयम् ब्रह्मा बनूं ॥ २९ ॥ सबके भाग करा २ के उन्हें
ग्रहण करूंगा, यों कहकर हे प्रिये ! उन्होंने रचना करनेका प्रारम्भ किया ॥
बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने इस प्रकार (सृष्टिकी) रचना की, तब सब प्राणी भय
और पर्वतमाला कंपायमान होने लगी ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी तथा इन्द्रको आदिले
त्रसित होगये, अतएव हे महेश्वरि ! फिर वे सब विश्वामित्रजीकी सेवामें उपस्थित
हाथ जोड़ सब देवता बोले कि, हे देव ! बस अब रहने दीजिये, अथ च महा
आपको अन्यसृष्टिका विधान करना नहीं चाहिये ॥ ३३ ॥ हे मुने ! अब हम
आपके यज्ञमें यज्ञभागको ग्रहण करेंगे, महामतिमान् विश्वामित्रजीसे सब देवता
प्रार्थना करी ॥ ३४ ॥ और उन्होंने उस राजाके यज्ञमें यज्ञभागभी ग्रहण
पहिले शरीरहीसे स्वर्गमें इस राजाको भेज दिया ॥ ३५ ॥ यह त्रिशंकु

दिवौकसाम् ॥ अद्यापि दृश्यते देवि त्रिशंकुरमितद्युतिः ॥ ३६ ॥ त्रिशंकोश्चरितं यस्तु विश्वामित्रस्य यः प्रिये ॥ श्रुत्वा पातकयुक्तोपि स्वर्गलोके वसेत्परम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने त्रिशंकुचरिते विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

ताओंके मध्यमें उपस्थित होगया, और हे देवि ! अपरिमित कान्तिमान् ॥ ३६ ॥ यह त्रिशंकु भीतक दृष्टिगत होताहै हे प्रिये ! राजा त्रिशंकु और महर्षि विश्वामित्रके चरित्रको जो व्यक्ति ंगे वे चाहें जैसे पापिष्ठ क्यों न हों तथापि स्वर्गलोकमें निवास प्राप्त करेंगे ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

ईश्वर उवाच ॥ त्रिशंकोरभवत्पुत्रो हरिश्चंद्रेति विश्रुतः ॥ पुण्यं यशस्यमायुष्यं चरितं शृणु तस्य वै ॥ १ ॥ त्रिशंकौ स्वर्गते देवि हरिश्चंद्रो बभूव ह ॥ सप्तद्वीपकृतानुज्ञो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ २ ॥ शशास पृथिवीं राजा धर्मेण श्रुतिवर्त्तिना ॥ पितेवासीत्प्रजानां हि पालनाच्छासनात्तथा ॥ ३ ॥ तस्य पत्नी बभूवाथ वैदर्भतनया सती ॥ रूपेणौदार्य्यशीलेन सर्वाधिकतमा सती ॥ ४ ॥ तस्यां बभूव पुत्रोपि रोहिताश्वोतिवीर्य्यवान् ॥ हरिश्चंद्रस्तु धर्मात्मा कृत्वानेकविधान् मखान् ॥ ५ ॥ राजसूये

महादेवजी बोले—त्रिशंकुका पुत्र विश्वविख्यात हरिश्चन्द्र हुआ, पुण्य अर्थात् पवित्र और यशकी वृद्धि करनेवाले उनके चरित्रका श्रवण करो ॥ १ ॥ त्रिशंकुके स्वर्गलोकके र जानेपर हरिश्चन्द्र राजा हुए, सातोंद्वीपकी प्रजा इसकी आज्ञाका पालन करती थी, एवंच प्रभूत दक्षिणा देके यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ २ ॥ पालन और शासन करनेके कारण वोह हरिश्चन्द्र वेदोक्त मार्गको अनुवर्त्तन करके पिताकी समान धर्मसे पृथिवीका पालन और का शिक्षण करता था ॥ ३ ॥ इस राजाकी पत्नी विदर्भदेशके राजाकी कन्या थी क रूप, औदार्य और शीलकी समान कोई अन्य नहीं किन्तु वोही सबसे अधिक थी ॥ इस रानीके रोहिताश्व नाम अतिशय पराक्रमी एक पुत्र उत्पन्न हुआ । शुभ धर्मका ण करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रने अनेक प्रकारके यज्ञकरनेके अनन्तर ॥ ५ ॥ राजसूय

मनश्चक्रे महात्मा दृढविक्रमः ॥ राजसूयाय यज्ञाय वरय
गाधिजम् ॥ ६ ॥ अन्यांश्च शतशो विप्रान् नानादेशसमुद्भ
वरयामास विज्ञाय हरिश्चंद्रो महामनाः ॥ ७ ॥ सर्वाश्च
तस्तत्र नानालंकारवाससः ॥ सुमध्यमाः सुकेश्यश्च पूर्ण
योधराः ॥ ८ ॥ राजानोपि च सर्वेभ्यो देशेभ्यः समुपाग
महार्हाणि सुरत्नानि गृहीत्वोपायनानि वै ॥ ९ ॥ वादि
विचित्राणि भेर्य्यादीनि महेश्वरि ॥ सर्वतो हि विनेदुश्च शं
पणगोमुखाः ॥ १० ॥ चतुर्वेदमयो घोषो बभूव सर्वतो दि
न कश्चित्क्षुधितस्तत्र हरिश्चंद्रस्य चाध्वरे ॥ ११ ॥ दीयतां
तां चैव मास्तु कश्चित्तु दुर्बलः ॥ अवस्त्रो वसनं चैव क्षु
विविधांस्तथा ॥ भोज्यान् गृह्णातु सततमिति चैव पुनः पु
॥ १२ ॥ श्रूयंते विविधा वाचो यज्ञे तस्य महात्मनः ॥
का वारमुख्याश्च नानालंकारभूषिताः ॥ जगुर्मंगल
मंगलद्रव्यसंयुताः ॥ १३ ॥ नानादेशसमुद्भूतैर्नरैश्च नरपुं

यज्ञ करनेका विचार किया, क्योंकि, वोह बड़ा महात्मा एवंच दृढ पराक्रमी था। अ
यज्ञ करनेके लिये गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीको राजाने वरण किया ॥ ६ ॥ रा
बड़ा विचारवान् था अतएव उसने अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए अन्यान्य भी बहुतसे
वरण किया ॥ ७ ॥ अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत हुई समस्त
आन२ कर उपस्थित हुई, उनकी पतली कमर, केश सुन्दर और पयोधर पूर्ण
थे ॥ ८ ॥ अमूल्य रत्न तथा अनेकप्रकारकी भेंट ले २ कर राजालोगभी
आये ॥ ९ ॥ हे महेश्वरि ! भेरीआदि अनेक वाद्योंका नाद होनेलगा, तथा शंख
सिंहआदि वाद्य भी शब्द करने लगे ॥ १० ॥ एवंच चारोंओर चारोंवेदोंकी घो
रण होता था, और राजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें कोई व्यक्ति भी भूखा उपलब्ध नहीं
॥ ११ ॥ दीजिये २ भोजन करो भोजन करो, यही शब्द होता था; उस यज्ञमें
नहीं था, विविधप्रकारके व्यक्तियोंमें वस्त्रहीन तथा क्षुधित कोई भी नहीं था। ना
कहते थे कि, भांति२के भोजन ग्रहण करो ॥ १२ ॥ महात्मा हरिश्चन्द्रकी यज्ञशा
भांतिकी वाणियें श्रवणगोचर होती थीं, कन्याएँ और वेश्याएँ अनेक अलंकारोंसे
मंगलसूचक वस्तुओंको ले २ कर मंगलाचरणके गीतोंका गान करनेलगीं ॥ १३

यज्ञवाटमभूद्देवि सर्वतोलंकृतं तदा ॥ १४ ॥ आशीर्भिर्ब्राह्म-
णानां च वंदिनां स्तुतिपाठकैः ॥ बभूव नगरे तस्य जयशब्दः
पुनः पुनः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणानां तथा राज्ञां सभासु गिरिकन्य-
के ॥ विचारानेकवैचित्र्यैर्बभूव सततं कलिः ॥ १६ ॥ महार्हव-
स्त्राभरणा जना रेजुर्महेश्वरि ॥ देवा इवामरावत्यां रेजुर्वै वासवा-
ध्वरे ॥ १७ ॥ गवाक्षजालरंध्रेषु रत्नबद्धेषु सर्वतः ॥ कौतूहल-
समाविष्टाः स्थिता नागरवल्लभाः ॥ १८ ॥ दीक्षितश्च हरिश्चंद्रः
कुशहस्तो रराज ह ॥ यथा शचीपतिः पूर्वं सहशच्याश्वमेधके
॥ १९ ॥ घंटाछत्रगृहास्तत्र विरेजुः सर्वतो दिशः ॥ गावश्च
सर्वाभरणाः स्वर्णघंटाविभूषिताः ॥ २० ॥ तत्रासन् ब्राह्मणानां
च देवानां च महेश्वरि ॥ सर्वेषां ब्राह्मणानां हि मध्ये राजा ररा-
ज ह ॥ २१ ॥ देवर्षीणां यथा शक्रो नाकपृष्ठे महायशाः ॥ इति
तस्मिन् महायज्ञे तथा विपुलदक्षिणे ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेभ्यो वि-
चित्राणि रत्नानि विविधानि हि ॥ महार्हाणि च वस्त्राणि कुटुं-

समय यज्ञशालाकी वाट अनेक देशजंनित उत्तमोत्तम नरवरोंसे समलंकृत होरही थी
॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंके आशीर्वाद एवंच बन्दीजनोंके स्तुतिपाठोंसे राजा हरिश्चन्द्रका नगर
जयशब्दसे नितान्त पूर्ण होरहा था ॥ १५ ॥ हे गिरिराजकुमारि ! ब्राह्मणों तथा राजामहा-
राजाओंकी उस सभामें अनेक प्रकारके विचार उपस्थितहोनेके कारण कलह होनेलगा ॥ १६ ॥
महेश्वरि ! अनमूल्य वस्त्रोंको धारणकरनेके कारण मनुष्योंकी विचित्र शोभा होरही थी, जैसे
इन्द्रके यज्ञमें देवतागण अमरावतीमें सुशोभित होते हैं ॥ १७ ॥ रत्नजटित झरोखोंमें चारों
ओर नगरकी स्त्रियें कौतूहल देखनेकी कामनासे उपस्थित हुईं ॥ १८ ॥ दीक्षा ग्रहण कर हाथमें
कुशा लिये हुए राजा हरिश्चन्द्र ऐसे भले प्रतीत होतेथे, जैसे पूर्व समयमें अश्वमेध यज्ञके
समय इन्द्राणीके साथ इन्द्र सुशोभित हुए थे ॥ १९ ॥ चारों दिशाओंमें समस्त घर घंटाओंसे
सुशोभित होरहे थे, अथच गौएँ सुवर्णनिर्मित घंटाओंको धारण किये सुशोभित होरहीं
थीं ॥ २० ॥ हे महेश्वरि ! उस यज्ञशालामें ब्राह्मण और देवता विराजमान होरहे थे
उन सब ब्राह्मणोंके मध्यमें राजा हरिश्चन्द्र भी शोभायमान हो रहेथे ॥ २१ ॥ जैसे स्वर्ग-
लोकमें देवगणके साथ इन्द्र सुशोभित होते थे, ऐसेही अटूट दक्षिणावाले उस महायज्ञमें
राजा भी विराजमान थे ॥ २२ ॥ जिन ब्राह्मणोंका कुटुम्ब अधिक था राजा हरिश्चन्द्रनेउन्हें

विभ्यो ददौ नृपः ॥ २३ ॥ यः कश्चिन् मामके यज्ञे ह्यागत
र्बलो जनः ॥ यद्यदपेक्षते तस्य गृह्णातु तद्ददामि च ॥ २
इतीत्युक्तो हरिश्चंद्रो ब्राह्मणेभ्यो ददौ वसु ॥ तथान्येभ्य
र्धनेभ्यो बहुपुत्रेभ्य एव च ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कांदे के
वंशानुचरिते हरिश्चंद्रोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१

विविधप्रकारके रत्न और बहुमूल्य चित्र विचित्र वस्त्र प्रदान किये ॥ २३ ॥
जो कोई दुर्बल व्यक्ति प्राप्त हुआ हो, उसे जिस २ वस्तुकी अपेक्षा हो वोही
दीजावे ॥ २४ ॥ यों आज्ञादेकर राजा हरिश्चन्द्रने ब्राह्मणोंको बहुतसा धन
अन्यान्य निर्धनोंको भी जिनके सन्तान अधिक थीं धन प्रदान किया ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

ईश्वर उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा हरिश्चन्द्रस्य धी
यज्ञे बहुविधे देवि दीयमाने तथा धने ॥ १ ॥ श्रूयंतेस्म त
विविधानां नृणां तथा ॥ धन्योऽस्मि त्रिषु लोकेषु हरिश्चं
यशाः ॥ २ ॥ यस्य राज्ञो महादेवि प्रश्रयेण दमेन च ॥ न
युर्गतिं कोपि तथा यज्ञैर्महाधनैः ॥ ३ ॥ अथ राजा महातेज
सूयस्य दक्षिणाम् ॥ विश्वामित्राय महते ददौ पृथ्वीं महे
सर्वाश्वगजसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनान्विताम् ॥ नानारत्नो

महादेवजी बोले—हे भगवति ! सत असतका विचार करनेमें निपुण राजा
आज्ञा सुनकर उस विचित्र यज्ञमें निर्धनव्यक्तियोंको दान दिया जानेलगा
विविध भांतिके मनुष्योंकी वाणियें श्रवणगत हुईं कि, परमयशस्वी राजा हरिश्चन्द्र
धन्य है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! मनोदमनपूर्वक अर्थात आर्थिक लोभकी ओरसे चित्त
कर राजाने जो आज्ञा (यथेष्ट) दान करनेकी दी थी इसीके कारण कोई
दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हे महेश्वरि ! इसके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र
यज्ञकी दक्षिणामें पूज्य विश्वामित्रजीको भूमि दान करके दी ॥ ४ ॥ सब
घोड़ोंसे युक्त, प्रसन्नचित्त एवं हट्टे कट्टे नरसमुदायसे व्याप्त, विविध भांतिके

नानादेशान्वितां तथा ॥ ५ ॥ राजगेहं तथा रत्नैर्नानाश्वगजवाहनैः ॥ शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्वस्त्रैरन्वितैर्हेमसंचयैः ॥ ६ ॥ विश्वामित्राय राजा तु ददौ संहृष्टमानसः ॥ राजचिह्नं हि सर्वं तु चामरादिकमुत्तमम् ॥ ७ ॥ विस्मयाविष्टमनसो रेजुस्ते स्थावरा इव ॥ विश्वामित्रोप्युवाचैनं राजानं तं त्रिशंकुजम् ॥ संगृह्य पृथिवीं सर्वां सरत्नां गजवाहनाम् ॥ ८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हरिश्चंद्र महाराज दत्ता मे पृथिवी त्वया ॥ तथा मे तस्य दानस्य दक्षिणां देहि सुव्रत ॥ ९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ सर्वं तवैव हि मुने दत्ता सर्वा वसुन्धरा ॥ सरत्नवसुसंपूर्णा हयनागरथाकुला ॥ १० ॥ तव द्रव्ये महाभाग सत्ता नास्ति महामुने ॥ कथं देया मया तेद्य भूमिदानस्य दक्षिणा ॥ ११ ॥ अवशिष्टा वयं देव पत्नीपुत्रावहं त्रयः ॥ कोषादिकं च तत्सर्वं दत्तं तेद्य महामुने ॥ १२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा महादेवि वचो राज्ञा समीरितम् ॥ उवाच वचनं शीघ्रं क्रोधेन कलु-

र अनेक देशोंसे समान्वित भूमि विश्वामित्रको उपलब्ध हुई ॥ ५ ॥ भांति २ के रत्न, क प्रकारके हाथी आदि वाहन, अस्त्र, शस्त्र और विविधभांतिके वस्त्र एवंच सुवर्णसंचय इन वस्तुओंसे व्याप्त करके राजगृह दानकरके राजाने विश्वामित्रजीको दिये ॥ ६ ॥ राजाने ने चित्तमें प्रसन्न होकर छत्र चामर आदि समस्त उत्तम राजचिन्ह विश्वामित्रजीको ॥ ७ ॥ उस समय संपूर्ण मनुष्य (राजाकी दानशीलताकी अनुपमता देखकर) विस्मि- स्थावरकी समान अचल होगये समस्त भूमि, रत्न और हस्ती आदि वाहनोंको लेकर शंकुके पुत्र राजा हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्रने यह वचन कहे ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजी बोले— महाराज ! हरिश्चन्द्र जैसे बड़े उत्साहसे भूमि दानकर हमें दी है इसीके अनुसार इस दानकी दानप्रतिष्ठाकी दाक्षिणा भी वैसी ही महान दीजिये ॥ ९ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे मुनिराज ! तों, द्रव्य, हाथी और अश्व इन सबसे व्याप्त समस्त पृथ्वी तौ दानकरके मैंने आपको दे ठी ॥ १० ॥ अत एव हे महामुने ! आपतौ महाभागहैं कहिये आपके धनमें भला हमारा अधिकार है ? तौ फिर मैं भूमिदनकी दक्षिणा कैसे देसक्ता हूं ॥ ११ ॥ हे देव ! ल मेरी पत्नी पुत्र और मैं यह तीनों शेष रहे हैं, और कोशआदि सब वस्तु तौ हमने पहीको देडाली है ॥ १२ ॥ महादेवजी बोले--हे महादेवि ! राजाके कहे हुए यह वचन

पीकृतः ॥ १३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दत्वा वसुंधरां म
दक्षिणा चेन्न दीयते ॥ कीदृशं भूमिदानं हि भविष्यति नृपा
॥ १४ ॥ किमर्थं कृतवान् दानं दानी भूत्वा महान् स्वयम्
इदानीं मे दक्षिणां हि न ददाति कथं भवान् ॥ १५ ॥ ईश्वर उवाच
क्रुद्धं मुनिं तु विज्ञाय भयाविष्टमनास्तदा ॥ मुखेन शुष्य
देवि संत्रस्तश्चाभवत्तदा ॥ उवाच प्रांजली राजा विश्वामि
महामुनिम् ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ क्रोधं मा कुरु विप्र
स्वदासे मयि सांप्रतम् ॥ मासेनाहं प्रदास्यामि दक्षिणां
तपोधन ॥ १७ ॥ क्षमस्व भगवन् ब्रह्मन्निदानीं मां महामते
यथामितं हि दास्यामि चरित्वा भैक्ष्यमुत्तमम ॥ १८ ॥ विश्वा
मित्र उवाच ॥ गच्छाशु राजन्भैक्ष्यार्थं मदर्थं त्यक्तलज्जक
मासेनाहं पुनस्तत्रागमिष्यामि च सुव्रत ॥ १९ ॥ ममेदं न
सर्वं न स्थेयं हि त्वयात्र वै ॥ यथेच्छं गच्छ कुत्रापि यतो

सुन क्रोधसे मलिन हो विश्वामित्रजी तत्काल यह वाक्य बोले ॥ १३ ॥ विश्वामित्र
लगे—हे राजन् ! द्रव्यपूर्ण भूमिका दान कर मुझे देके यदि दानप्रतिष्ठाकी दक्षिणा
जायगी तौ अरे नीचराजा ! तेरा यह भूमिदान सफल कैसे हो सकेगा ॥ १४ ॥
महादानी होकर इतना बड़ा दान क्यों किया ? और अब उसे दक्षिणाहीन करके क्यों
चाहते हो ॥ १५ ॥ मुनि विश्वामित्रजीको क्रुद्ध हुए जान राजाके चित्तमें भय
हुआ और त्रसित होनेके कारण उसका मुख सूखगया, हाथ जोड़कर राजा महामुनि
जीसे बोला ॥ १६ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—हे सदाचारीविप्र ! आप कोप न करें, मैं
शरीरको प्रदान कर दूंगा, हे तपोधन ! एक मासमें मैं आपकी दक्षिणा दे दूंगा ॥
हे महामतिमान् परमैश्वर्यसंपन्न ब्रह्मन् ! अब तौ आप मेरे अपराधको क्षमा करें
मैं भिक्षामांगकर यथानियत आपकी दक्षिणा अवश्य दूंगा ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी
हे राजन् ! भिक्षामांगनेके लिये शीघ्र जाओ और लज्जाका परित्याग करदो, हे सुव्रत !
मासहीमें वहां आनकर प्राप्त होऊंगा ॥ १९ ॥ परन्तु यह सब नगर हमाराहै अतः
तुम्हें यहां ठहरना न चाहिये, जहां तुम्हारी इच्छा हो और जहांसे धन देना चाहते

हि दास्यसि ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति वै गदितं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य वै नृपः ॥ उवाच पत्नीं पुत्रं हि गच्छामोद्य वनं वयम् ॥ २१ ॥ हरिश्चंद्रस्य वचनं श्रुत्वा तौ पत्निपुत्रकौ ॥ ऊचतुस्तौ महेशानि बाष्पव्याकुललोचनौ ॥ २२ ॥ पत्नीपुत्रावूचतुः ॥ कथं स्थेयं वने राजन्नस्माभिः सुखवर्द्धन ॥ कथं भैक्ष्यं चरिष्यावानभिज्ञौ दुःखसंकुलौ ॥ २३ ॥ कुशाः काशाः कंटकाश्च श्रुता वै विजने वने ॥ दुःखं च जायते भैक्ष्ये ग्रामे च नगरेथवा ॥ २४ ॥ कुमारोयं महाराज सुकुमारशरीरवान् ॥ विनाश्वेन कथं देव गमिष्यति भवान् प्रभो ॥ २५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति वै गदितं श्रुत्वा पत्न्याः पुत्रस्य निर्दयः ॥ क्रोधसंरक्तनयन अब्रवीच्च नृपं मुनिः ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ उपेक्ष्यसे किमर्थं हि दानं कृत्वा स्वयं नृप ॥ पत्न्याः पुत्रस्य वचनं शृणोपि मनसेप्सितम् ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा कटुवचनानि मुनिः क्रोधपरायणः ॥ उत्थायासनतस्तूर्णं गमनाय प्रचक्रमे ॥ २८ ॥ रोहिताश्वस्तु तत्पुत्रो वैदर्भी तस्य

ओ ॥ २० ॥ महादेवजी बोले–महर्षिविश्वामित्रके कहनेको सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने पुत्रोंसे बोले कि--अब हम सब वनको चलेंगे ॥ २१ ॥ जब राजाकी पत्नी और उसके त्रने राजाके यह वचन सुने, हे महेश्वरि ! तब वे दोनों नेत्रोंमें आंसुभरकर राजासे बोले २२ ॥ पुत्र और पत्नीने कहा--हमारे सुखकी वृद्धि करनेवाले हे महाराज ! हमलोग मेंमें कैसे रहसकेंगे और हमलोग अनभिज्ञ तथा दुःखित हैं भिक्षा भी कैसे मांगसक्तेहैं॥२३॥ र्जनवनमें कुशा और चुभनेवाले कांटे होते हैं यह बात सुनकर नगर अथवा ग्राममें भी हमें खकी प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इस राजकुमारका शरीर अति सुकुमार है, हमारे प्रभु ! आप भी विना अश्वके किस प्रकार चलसक्ते हैं ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले-- जपुत्र और राजरानीके यह वचन सुनकर निर्दय महर्षि विश्वामित्र क्रोधसे नेत्रोंको लालकर नासे यों बोले ॥ २६ ॥ विश्वामित्रने कहा--हे राजन् ! स्वयम् दान करके किस ये टालकरता है, स्त्री पुत्रोंके मनमोहकारी वचन सुन रहा है ॥ २७ ॥ महाजी बोले–परमक्रोधी मुनि विश्वामित्रजी इस प्रकार कटुवचन कहकर तत्काल आसनसे उ खड़े हुए और चलनेके तईं उद्यत होगये ॥ २८ ॥ राजाका पुत्र रोहिताश्व, और विदर्भ

चांगना ॥ एकवस्त्रधराः सर्वे गमनाय प्रचक्रमुः ॥ २९
गच्छमानांस्तुतान् दृष्ट्वा प्रजास्तस्य महात्मनः ॥ रुरोद सा
देवि दीनान् दृष्ट्वा तु तान् प्रिये ॥ ३० ॥ गत्वा ते चीरव
भैक्ष्यं चर्तुं महाधियः ॥ स्वयं वै मुनिवृत्त्या ते जीवकां च
जसा ॥ ३१ ॥ मासे पूर्णे तथा जाते यतस्तत्र गतो मुनि
हरिश्चंद्रो महाराजो वर्त्तते भैक्ष्यमाचरन् ॥ ३२ ॥ विश्वा
तदा दृष्ट्वा म्लानो गात्रेषु चाभवत् ॥ रक्तेक्षणं श्मश्रुलं हि जटा
डलधारिणम् ॥ ३३ ॥ आगत्य सहसा देवि दक्षिणां देहि देहि
समयस्ते कृतो जात आगतोहं त्वदंतिके ॥ ३४ ॥ इति
हि नृपतिर्भैक्ष्यैणासादितं धनम् ॥ सर्वं ददौ निर्दयाय विश्वा
त्राय पार्वति ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा तद्द्रविणं स्वल्पं चुक्रोध स
मुनिः ॥ उवाच वचनं चेदं हरिश्चंद्रं महामतिम् ॥ ३६
विश्वामित्र उवाच ॥ ईदृशस्य हि दानस्य दक्षिणा चेदृशी
॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तद्गदितं श्रुत्वा विश्वामि
पार्वति ॥ सभयस्तं जगादेदं हरिश्चंद्रो महामनाः ॥ ३८ ॥ हरि

राजकुमारी राजाकी पत्नी एवम् यह सब एकही एक वस्त्रको धारण कर यात्रा करने
उद्यत होगये ॥ २९ ॥ हे प्रिये ! इन बिचारोंको गमन करते देख हे देवि ! इस मा
प्रजा रोदनकरने लगी ॥ ३० ॥ अतिशय बुद्धिमान् वे तीनों चीराम्बर धारणकर मु
वृत्तिके द्वारा भिक्षाशन कर २ के अपनी आजीविका सम्पादन करने लगे ॥ ३१ ॥
मास पूर्ण होगया तब विश्वामित्र ऋषि वहां गये जहां वे सब भिक्षा मांग रहेथे ॥ ३२
२ नेत्र, लंबी डाढी और जटाजूटधारी विश्वामित्रजीको देखकर इन सबके शरीर
होगये ॥ ३३ ॥ हे देवि ! आकर वे वर २ कहने लगे कि, हमारी दक्षिणा दो,
समय नियत किया था वोह पूर्ण होगया, अतएव हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ ३
पार्वति ! ऋषिके यह वचन सुन, भिक्षाद्वारा संपादन किया हुआ न निर्दय वि
अर्पण कर दिया ॥ ३५ ॥ इस धनको अल्पदेखकर मुनिमहाराज क्रोधित होगये
मतिमान् हरिश्चन्द्रसे यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ विश्वामित्रजीने कहा--ऐसे महादान
अल्पमात्र दक्षिणाहै ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले--हे पार्वति ! विश्वामित्रके इस व
सुनके मननशील राजा हरिश्चन्द्रने भयभीत हो विश्वामित्रजीसे यह वचन कहे ॥ ३८ ॥

उवाच ॥ गृहाणेदं मया प्राप्तं भैक्ष्येण द्रविणं मुने ॥ मासेनाहं पुनर्विप्र दास्यामि भगवन् धनम् ॥ ३९ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एकत्रीकृत्य तत्सर्वं धनं यज्ञसमं मम ॥ ददस्व समये राजन्नोचेच्छापं ददामि ते ॥ ४० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा निष्ठुरं परुषाक्षरम् ॥ चिंतयामास बहुशः कुतो देयं मया धनम् ॥ ४१ ॥ पत्नीमुवाच राजा तु चिंतयित्वा बहु प्रभुः ॥ प्रिये क्रीणामि भवतीं दक्षिणायै मुनेरहम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा तत्करं धृत्वा विश्वामित्रमुवाच ह ॥ दक्षिणार्थं मया दत्ता पत्नी चेयं सुमध्यमा ॥ ४३ ॥ एतस्या विक्रयं कृत्वा गृह्ण द्रव्यं यथामितम् ॥ नोचेत्तव महाभाग सेवां सेयं करिष्यति ॥ ४४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ स्वीयेनैव करेणेमां विक्रीय धनमुत्तमम् ॥ देहि मे सत्यव्रतज सत्यसंधो भव प्रभो ॥ ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चंद्रो महामनाः ॥ कस्मिंश्चिन्नगरे तां तु गृहीत्वोवाच उच्चकैः ॥ ४६ ॥ अपेक्ष्यते कस्यचेद्धि दासीयं परिचारिका ॥ स दास्यास्त्वेतस्या

बोले--हे मुने ! भिक्षा मांग २ कर मेंने यह द्रव्य प्राप्त किया है, सो इसे आप ग्रहण करें, और हे भगवन् मुनिराज ! एक मासमें मैं और भी धन दूंगा ॥ ३९ ॥ विश्वामित्र बोले--उस सब धनको एकत्रित करके ही हमारे यज्ञके सदृश दक्षिणा देनी चाहिये, नहीं तो अरे राजा ! म तुझे शाप देदूंगा ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले--कठोर अक्षरोंसे निर्मित हुए उनके निष्ठुर वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बार २ यह विचार करनेलगे मैं कहांसे इनका धन दूंगा ॥ ४१ ॥ बहुत कुछ सोच विचार कर राजा अपनी पत्नीसे बोले, हे हमारी प्यारी ! मुनिकी दक्षिणाके लिये हम तुम्हें बेचना चाहते हैं ॥ ४२ ॥ यों कहकर रानीका हाथ पकड़ विश्वामित्रजीसे कहा--आपकी दक्षिणामें मैं पतलीकमरवाली अपनी पत्नीको देता हूं ॥ ४३ ॥ इसें बेचकर जो कुछ मिलै वोह आप लेलें, हे महाभाग ! यदि वेचना न चाहें तौ यह आपकी सेवा करती रहेगी ॥ ५४ ॥ विश्वामित्रजी बोले--अरे राजा ! इसे अपनेही हाथसे बेचकर उत्तम धन हमैं दे, हे राजन् ! तुम सत्यव्रतके पुत्रहो तभी सत्यसन्ध होसक्तेहो ॥४५॥ महादेवजी बोले--उन्नत विचारवान् राजाहरिश्चन्द्र उन महात्माके यह वचन सुनकर अपनी प्रियाको किसी नगरमें लेगये, और उसका हाथ पकड़कर उच्चस्वरसे यों बोले ॥ ४६ ॥ यह दासी

मूल्यं ददातु शीघ्रमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ इति तत्क्रंदितं श्रु
कश्चिच्छ्रेष्ठ्याजगामह ॥ हरिश्चंद्रः स्थितो यत्र गृहीत्वा स्वी
करे ॥ ४८ ॥ रूपकानां शतं तस्या दत्वा तां वै प्रगृह्य च
गतः स्वभवने श्रेष्ठी वैदर्भ्यां सह पार्वति ॥ ४९ ॥ पत्नी
कृतं द्रव्यं ददौ तस्मै च पार्वति ॥ अल्पद्रव्यं पुनर्दृष्ट्वा तोषं ना
त्नवान् मुनिः ॥ ५० ॥ न जाता दक्षिणा राजन् भूमिदान
चेदृशी ॥ अथोवाच हरिश्चंद्रः पुनः पुत्रं स्वकीयकम् ॥ ५१ ॥
पुत्रेदमखिलं सुखदुःखात्मकं जगत् ॥ ध्रुवं न चेह किमपि ह
मानं च रोहित ॥ ५२ ॥ ये पुत्रा जनकस्याहो प्रतिज्ञाप
कास्तथा ॥ तेषां संसारदुःखौघसागरो गोष्पदायते ॥ ५३
विश्वामित्रप्रियार्थं हि यतस्व तात रोहित ॥ इति श्रुत्वा ज
देदं पितरं प्राणवल्लभे ॥ ५४ ॥ शरीरं भवतस्तात मदीयाम
वस्तथा ॥ युष्मदर्थे प्रियान् प्राणान्त्यजेहं भगवन् विभो ॥५

बनकर टहल करनेके लिये उद्यत है, इसे कोई ग्रहण करना चाहताहै ? तो इसे हे को
मूल्य शीघ्रतासे मुझे दे ॥ ४७ ॥ इसके ऐसे रोदन (वचन अथवा विलाप) को
कोई सेठ वहां आया, जहां राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नीका हाथ पकडे खडेथे ॥ ४
रुपये देकर उसने इसे ग्रहण करलिया, और हे पार्वति ! विदर्भराजसुताको साथ ले
सेठ अपने घरको चलागया ॥ ४९ ॥ हे पार्वति ! पत्नीके बेचनेसे जो द्रव्य प्राप्त
राजाने वोह सब ऋषिको देदिया, परन्तु अल्प द्रव्य देखकर ऋषिको सन्तोष न
॥ ५० ॥ (ऋषिने कहा--) अरे राजा ! संपूर्ण पृथ्वीके दानकी दक्षिणा इतनी न
कीहै, यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने पुत्रसे कहने लगे ॥ ५१ ॥ सुनो पुत्र ! य
जगतहै सब सुख और दुःखसे व्याप्त है, हे रोहित ! जो कुछ भी यह दीख रहा है
निश्चित कुछ भी नहीं है ॥ ५२ ॥ जो पुत्र अपने पिताकी आज्ञाका पालन करते है
लिये सांसारिक दुःखोंका सागर गोखुरकी समान होताहै ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! विश्व
प्रिय (हित) साधन करनेकी कामनासे तुम अपने शरीरको बेच डालो, हे प्राण
पार्वती यह सुनकर रोहित अपने पितासे बोला ॥ ५४ ॥ हे ऐश्वर्यशाली पिताजी ! मे
शरीर आपहीकाहै, मैं आपके निमित्त अपने प्रियप्राणोंका भी परित्याग करसक्ताहूं ॥

मदीयं विक्रयं कृत्वा मातुर्मे निकटे विभो ॥ अहं च मम माता च एकस्थाननिवासिनौ ॥ ५६ ॥ प्रतीक्षां समयस्याथ कुर्वः प्रियचिकीर्षया ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा विमनाश्चाभवन्नृपः ॥ ५७ ॥ करुणारुद्धगात्रो वै पुत्रस्य विक्रये सति ॥ बभाषे क्रुद्धवचनं विश्वामित्रोतिनिर्दयः ॥ ५८ ॥ पुत्रो वदति दुष्टात्मन्विक्रयस्व हि मां नृप ॥ विक्रीणासि कथं न त्वं दक्षिणार्थे नृपाधम ॥ ५९ ॥ उपेक्षां कुरुषे मे त्वं फलं प्राप्स्यसि सत्वरम् ॥ इति वै परुषं श्रुत्वा हरिश्चंद्रो महामनाः ॥ ६० ॥ करोमि विक्रयं ब्रह्मन्स्वपुत्रस्येत्युवाच ह ॥ पुत्रं हस्ते गृहीत्वा वै गतस्तत्रैव बुद्धिमान् ॥ ६१ ॥ तस्य वै श्रेष्ठिनो गेहे तन्माता यत्र वर्त्तते ॥ कियन्मूल्यं हि तस्यापि गृहीत्वा पुनरागयौ ॥ ॥ ६२ ॥ ददौ सर्वं च मूल्यं हि मुनये मुनिवंदिते ॥ दृष्ट्वा तदपि दुष्टात्मा न जग्राह धनं तदा ॥ ६३ ॥ पुनः कटुतरं देवि जगाद नृपसत्तमम् ॥ स्वस्य च विक्रयं कृत्वा ददस्व विपुलं धनम् ॥ ६४ ॥ तदा प्रतिग्रहीष्यामि नोचेत्सर्वं कृतं तव ॥ अलं

प्रभो ! मुझे भी बेचकर मेरी माताके निकट भेजदीजिये, मैं और मेरी माता हम दोनों एकत्र ही निवास करेंगे ॥ ५६ ॥ प्रियकरनेकी कामनासे समयकी अवधिका निश्चय कर दीजिये, पुत्रके यह वचन सुन राजाका मन मलिन होगया ॥ ५७ ॥ पुत्रके विक्रयका विचार करते ही करुणासे राजाका शरीर शिथिल होगया, तब अत्यन्त निर्दय विश्वामित्र क्रोधितहो राजासे बोले ॥ ५८ ॥ अरे दुष्ट राजा !!! पुत्रतौ कहता है कि, मुझे बेच दो, अरे अधमराजा ! फिर तू हमारी दक्षिणाके लिये पुत्रको क्यों नहीं बेचडालताहै ॥ ५९ ॥ तू मेरे लिये जो उपेक्षा (टालबाल) कर रहाहै, इसका फल तुझे शीघ्रही प्राप्त होगा, मनस्वी हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके यह कठोर वचन सुनकर ॥ ६० ॥ बोले, हे ब्रह्मन् ! मैं अपने पुत्रका विक्रय करता हूं, फिर पुत्रका हाथ पकड़कर वोह बुद्धिमान् वहांही गया ॥ ६१ ॥ जहां सेठके घर पुत्रकी माता विद्यमानथी, पुत्रका भी कुछ एक मूल्य लेकर फिर लौटआया ॥ ६२ ॥ महर्षियोंके द्वारा वन्दित विश्वामित्र मुनिको वोह सब धन राजाने दे दिया, उसे भी देखकर दुष्टात्माने ग्रहण नहीं किया ॥ ६३ ॥ हे देवि ! राजासे फिर अतिकठोर वचन कहे कि, अब तू अपने आपको बेच कर बहुतसा धन हमें दे ॥ ६४ ॥ तब हम ग्रहण

भवति दुष्टात्मन् गच्छामि स्वाश्रमे ह्यतः ॥ ६५ ॥ इति
निष्ठुरं श्रुत्वा जगाद नृपराड्विभुः ॥ को ग्रहीष्यति मां देव मूल्ये
जगतीतले ॥ ६६ ॥ गृह्णाति चेत्तदा कश्चिद्विक्रीणीहि च
मुने ॥ इति श्रुत्वा वचो राज्ञो गत्वा वै वसथांतिके ॥ ६७
जगादोच्चैर्मुनिस्तत्र दासं गृह्णातु वै धनात ॥ ६८ ॥ दासो मूल्ये
कस्यापि विक्रयामि ह्यपेक्ष्यते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा उच्चै
समीरितम् ॥ ६९ ॥ आययौ सहसा तत्र श्वपाकोतिभयंक
रूक्षांगो विकृतो देवि कर्बुराक्षोतिवामनः ॥ ७० ॥ श्याम
जरया व्याप्तो रथ्याकर्पटवस्त्रकः ॥ तथा संमार्जनीहस्तो वि
दुर्गंधधारकः ॥ ७१ ॥ चर्वयंश्चणकान् देवि प्रेतभूषणभूषि
प्रेताजीवी स्मशाने हि वसतिः सततं तथा ॥ ७२ ॥
तथाविधं राजा मानसे दुःखितस्तदा ॥ श्वपाकोपि व
विश्वामित्रं महामुनिम् ॥ ७३ ॥ मम ब्रह्मन् महाभाग दा
क्षाहि वर्त्तते ॥ रक्षिता प्रेतद्रव्याणां विद्यते न ममान्तिके ॥

करेंगे, अरे दुष्ट! नहीं तो तेरा किया सब कर्म नष्ट होजायगा और
आश्रमको चला जाऊंगा ॥ ६५ ॥ उनके यह कठोर वचन सुनकर राजाधिराज
बोले महाराज भूमंडलके ऊपर कौन ऐसी व्यक्ति है जो मूल्य देकर मुझे लेसके
यदि कोई ग्रहण करले तो हे मुनिराज ! मुझे बेच दीजिये, राजाके यह वचन
मनुष्योंके समाजमें गये ॥ ६७ ॥ वहां जाकर उन्होंने कहा कि-धन देकर कोई
दासको ग्रहण करसक्ता है ॥ ६८ ॥ यदि किसीको अपेक्षा (जरूरत) हो तो मू
इस दासको ग्रहण करो, उच्चस्वरसे कहे हुए उनके इस वचनको सुनकर ॥ ६९
बड़ा भयंकर चाण्डाल वहां आया, उसका शरीर रूखा मूर्ति डरावनी रंग बिरंगे
नाटा शरीरथा ॥७०॥ उसका शरीर श्याम वर्ण और वृद्धत्वसे व्याप्त था, गली २ के
बनी गुदड़ी पहिरे, हाथमें बुहारी लिये विष्टाकी दुर्गन्धिसे सड़ाये देता था ॥ ७१ ॥
चने चाबता प्रेतभूषण अर्थात् अस्थियोंका भूषण धारण किये, अथ च प्रेतों अर्थात् मृतकों
विका संपादन करनेवाला था, श्मशानमें उसका निवास था ॥ ७२ ॥ ऐसे (भयंकर)
देख राजा मनमें दुःखित हुआ, और वोह चाण्डाल मुनि विश्वामित्रजीसे बोला
हे महाभाग ! ब्रह्मन् ! मुझे दास ग्रहण करनेकी आवश्यकता है प्रेतों अर्थात्

एकमेव ममापत्यं कन्यैका मम वै मुने ॥ श्मशानेतिभयागारे न्यस्तुं पुत्रीं हि नोत्सहे ॥ ७५ ॥ तदर्थं मे महाभाग दासापेक्षाहि वर्त्तते ॥ प्रेतवस्तु निरीक्षेत स नास्ति मम सन्निधौ ॥७६॥ तस्मात्त्वयैवानुग्रहो मे कर्त्तव्यो दासविक्रयात् ॥ रात्रावत्रैव स्थातव्यं मम प्रियचिकीर्षया ॥ ७७ ॥ प्रेतानां हि प्रसादेन वस्त्रान्नं वर्त्तते बहु ॥ स्वामिनश्चैव षष्ठांशं गृहीत्वा मामकं तथा ॥ ॥ ७८ ॥ प्रेतानां वसनं धार्यमिति स्थेयं हि तत्र वै ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य चांतिके ॥ उवाच वचनं त्रस्तो हरिश्चंद्रोतिविस्मतः ॥ ७९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ विश्वामित्र महाभाग श्वपाके मां न विक्रय ॥ अन्यत्र गच्छ भगवन् तत्र स्थेयं कथं मया ॥ ८० ॥ सर्वकर्मविहीनोयं चांडालोऽतिभयानकः ॥ प्रेतोपजीवी भगवन् वर्त्ततेऽयं नराधमः ॥ ८१॥ दुर्गंधः स्रवते ह्यस्माच्छ्यामांगात् प्रेतवाससः ॥ वरं प्राणपरित्यागो न स्थेयमस्य चान्तिके ॥८२॥ विश्वामित्रोप्युवाचैनं हरि-

…ो द्रव्य आताहै उसका रक्षक मेरे पास कोई नहीं है ॥ ७४ ॥ हे मुनि ! मेरे एकही …न्तान है सो वोह भी विचारी कन्याहै, सो भयप्रद श्मशानमें उसे स्थापित करनेको मेरा …हस नहीं होता ॥ ७५॥ इसी लिये हे महाभाग ! मुझे दासकी आवश्यकता है, क्योंकि- …तकोंकी वस्तुकी रक्षा करनेवाला मेरे पास कोई है ही नहीं ॥ ७६ ॥ अतएव यह दास …झे देकर आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें, हमारी आज्ञासे यह रात्रिमें वहां रहा करैगा ॥७७॥ …ोंकी कृपासे अन्न वस्त्र बहुत कुछ है, स्वामीका छटा अंश निकल जानेसे भी बहुत द्रव्य …चता है ॥७८॥ यह वहां रहे, और मृतकोंके वस्त्रको धारण करै, विश्वामित्रके निकट उस …पचके, यह वचन सुनकर, विश्वविख्यात राजा हरिश्चन्द्र आतुरहो यह वाक्य बोला॥७९॥ …रिश्चन्द्रने कहा--अयि महाभाग विश्वामित्रजी !!! चाण्डालके हाथ मुझे मत बेचो, कहीं और …ानमें चलिये क्योंकि—मैं इसके घर कैसे रहसकूंगा ॥८०॥ समस्त (शुभ) कर्मोंसे रहित …नेके कारण यह चाण्डाल अतिशय भयानक प्रतीत होताहै, मृतकोंकी वस्तुसे इसका निर्वाह …ताहै यह बड़ाही नीच है ॥ ८१ ॥ यह मृतकोंके वस्त्र अर्थात् कफनको धारण कररहाहै अत- …ि इसके श्याम शरीरसे दुर्गन्धि निकलरहीहै; महाराज ! प्राणत्यागदेने श्रेष्ठहैं पर इसके निकट …ना शुभ नहीं है ॥ ८२ ॥ विश्वामित्रजी राजा हरिश्चन्द्रसे बोले कि--अरे ! मूल्यदेकर

श्चंद्रं महीपतिम् ॥ को वान्यस्त्वां हि मूल्येन ग्रहीष्यां
कुत्रचित् ॥ ८३ ॥ यथायं तव मूल्यं तु ददाति न तथान्य
ददात्ययं तवेदानीं मूल्यं ते शतमुद्रिकाम ॥ ८४ ॥ य
चेत्तु यज्ञस्य दक्षिणां तत्प्रतिष्ठया ॥ नोचेद्भस्म करोमीति
तद्भाषितं वचः ॥ ८५ ॥ स वेपमानहृदयो हरिश्चंद्रो महाम
चिंतयामास बहुशः किं करोमि पुनः पुनः ॥ ८६ ॥ न ग
यदानेन चांडालेन समं तदा ॥ भस्मीकरोत्ययं मां हि विश्व
त्रोतिनिर्दयः ॥ ८७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विधात्रा मे
कृतम् ॥ अवश्यं हि भविष्यंति भाविनो महतामपि ॥ ८
कर्मणा येन ब्रह्मापि क्षिप्तो दुःखार्णवे विभुः ॥ तदेव क
कर्म मम चापि प्रवर्त्तते ॥ ८९ ॥ प्राणात्प्रियतरः पुत्रः
च प्रियभाषिणी ॥ स्थास्यतस्तु कथं मेऽद्य परवेश्मनि द्या
॥ ९० ॥ इति वै बहुशो राजा बाष्पव्याकुललोचनः ॥
तं श्वपाकं हि दृष्ट्वा स्वं कर्म निन्दयन् ॥ ९१ ॥ तथापि

और तुझे कौन मोल लेगा ॥ ८३ ॥ जैसा (यथेष्ट) मूल्य यह देगा ऐसा और
देसकेगा, यह तौ संमति तेरे मूल्यकी सौ मुद्रिका (अशर्फियें) देताहै ॥ ८४
अपने यज्ञकी प्रतिष्ठाकी सदृश ही दक्षिणा देता है तौ दे नहीं तौ मैं तुझे भस्म क
उनके यह वाक्य सुन ॥ ८५ ॥ महामतिमान् राजाहरिश्चन्द्रका हृदय कंपायमान है
बार २ वोह यह सोचनेलगा कि, अब मुझे क्या करना कर्त्तव्य है ॥ ८६ ॥ यदि मैं
लके साथ न जाऊंगा तौ अत्यन्त निर्दय यह विश्वामित्र मुझे अवश्य भस्म करदेंगे
हाय मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? विधाताने मेरे लिये क्या करदिया, जो होना
अवश्य बड़ेबड़ोंको भी होताही है ॥ ८८ ॥ कर्म ऐसा प्रबल है कि--इसने
दुःखके सागरमें निक्षिप्त किया है, येही बलिष्ठ कर्म मनुष्योंके लिये भी प्रवृत्त होता
प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्र एवम् प्रियभाषिणी पत्नी यह दोनों दुःखापन्न हो अन्यके
करते हैं ॥ ९० ॥ यौं कह २ कर राजाने नेत्रोंमें आंसू भर भरकर बहुत कुछ रो
एवं उस चाण्डालको देखकर राजा अपने कर्मोंकी निन्दाकरने लगे ॥ ९१ ॥ हे दे

१ कुम्हारकी समान अहर्निश सृष्टि निर्माण करनेमें व्यग्र रहनेसे ब्रह्माको
दुःख होता है ।

देवेशि करुणा मानसे नहि ॥ रुदंतं तं तथा दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽप्युवाच ह ॥ ९२ ॥ त्वं च स्वयं वै तत्कर्म कृत्वा रोदननिंदितः ॥ यथेच्छं गच्छ मत्तो वै गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥ ९३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा धैर्य्यं मनसि चाकरोत् ॥ स्वमूल्यं तु गृहीत्वा वै ददौ तस्मै महामनाः ॥ ९४ ॥ दृष्ट्वा तथाविधं देवि विश्वामित्रो निगृह्य वै ॥ तेषां मूल्योद्भवं द्रव्यं जगाम च स्वमाश्रमम् ॥ ॥९५॥ हरिश्चंद्रं करे धृत्वा श्वपाकोपि ततो ययौ ॥ स्मशाने कृतवांस्तस्य स्थितिं राज्ञो जवन्यतः ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने हरिश्चंद्रोपाख्याने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

उस ऋषिके चित्तमें दया न आई, बल्कि--राजाको इस प्रकारसे रोदन करते देख विश्वामित्रजी उससे बोले ॥ ९२ ॥ प्रथम इस कामको करके अब रो २ कर उसे निन्दित बनाता है, जा हमारे निकटसे चाहें जहां चला जा, हम भी अपने आश्रमको जाते हैं ॥ ९३ ॥ उनके यह वचन सुन राजाने अपने मनमें धैर्य धारण किया, एवंच परम विचारशील राजाने अपना मूल्य लेकर ऋषिको दे दिया ॥ ९४ ॥ हे देवि ! विश्वामित्रजीने उन तीनोंके मूल्यसे प्राप्त हुए उस द्रव्यको देखकर ग्रहण करलिया. और उसे लेके अपने आश्रमको चले गये ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर वोह चाण्डालभी राजाका हाथ पकड़कर चल दिया, और उसने लेजाकर निन्दित श्मशानमें राजाको स्थित करदिया ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

ईश्वर उवाच ॥ उच्चैः स्तंभांस्ततः कृत्वा स्मशाने नरपुंगवः ॥ तत्र चक्रे स्वयं वासो यतः सर्वं हि दृश्यते ॥ १ ॥ चितांगारचयाच्छन्ने धूमधूम्रादिगंतरे ॥ चिताकाष्ठैश्च पुलिने शिवागण

महादेवजी बोले-संपूर्ण मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें ऊंचे २ स्तम्भ बनाके उनके ऊपर निवास करने लगे कि जहांसे सबको देख सक्तेथे ॥ १ ॥ उक्त मरघटमें चिताओंका समुदाय एकत्रित हो रहाथा, दिशाएँ धूमजालसे व्याप्त होरहीथीं, कहीं नदियोंके

विनादिते ॥ २ ॥ श्लिष्टपुष्टशिवाकीर्णे मेदोमांसास्थिसंकुले महाचिल्लसमाक्रांतप्रेतपृष्ठे भयानके ॥ ३ ॥ दह्यमानशिवो चटिच्चटिविनादिते ॥ आगच्छमानकुणपे रच्यमानचिता ॥ ४ ॥ स्नाप्यमानजनैश्चैव गच्छमानजने तथा ॥ शरा पसम्पन्ने तिलपुष्पसमाकुले ॥ वास्समानवसास्वादसंह शिवागणे ॥ ५ ॥ आगच्छतां गच्छतां च काकानां शब्दसंकुले रोरूयमानमनुजे हाहाहेति हता वयम् ॥ ६ ॥ हे नाथ पुत्रेति मातरित्यपशब्दिते ॥ महावैराग्यमापन्न नरनारी तथा ॥७॥ पूतिगंधशवोद्भूतधूमधूमितपुष्करे ॥ दग्धार्द्धतटव प्रेतकर्पटराजिते ॥ ८ ॥ चिताभस्मसिते चैव श्वार्मीभूतदृषद्व क्रौं क्रौमिति क्रुंकुक्रुंक्रु केकंकेंकेति चासकृत् ॥ शब्दाय सुतटे क्रव्यादगणराजिते ॥ ९ ॥ नानावेतालभूतानि नृत

तटपर चिता निर्माण करनेका काष्ठ धराया, स्यारनियें रोरहीथी ॥ २ ॥ उस श्मशा मोटी २ ताजी लोथें पडीहैं, कहीं मज्जा मांस और अस्थियोंका ढेर पडाहै, और मृतकोंकी भयावह पृष्ठके ऊपर बडी २ चीलें बैठीहैं ॥ ३ ॥ कहीं दाहकिये शवोंका शब्द होताहै, और कहीं सरभंगी लोग आ २ कर चिताओंका निर्माण कर रहेहैं ॥ कहीं मनुष्य स्नान कर रहेहैं, कहीं स्नानकरके चला दियेहैं, और कहीं २ सरइयें तथा पुष्प भरे धरेहैं। और कहीं मज्जाके स्वादको चखकर शियारिनियें मसन्न हो रहीहैं ॥ ५ ॥ कहीं काक आते हैं, कभी उडकर जातेहैं इनके कांव २ शब्दसे व्याप्त होरहाहै अथच कहीं हाय २ करके किन्हींके कुटुम्बी रोदन करते और कहते हम मारेगये ॥ ६ ॥ कोई व्यक्ति हानाथ ! हातात ! हेपुत्र ! हेमाता ! यों कहते अतएव जो नर नारी वहां उपस्थित हैं वे बडे वैराग्यको प्राप्त हो रहेहैं ॥ ७ ॥ शरीरोंमेंसे महादुर्गन्धि निकल रहीहै, अत्यन्त धूम सर्वत्र व्याप्त हो रहाहै, किसी आधा वस्त्र भस्म होगयाहै, कोई कफनमें लिपटा पडाहै ॥ ८ ॥ चिताकी भस्मोंकी बनगई हैं। अथ च काकगण वार २ कौं २, कुं २, और कें २ शब्द कर रहेहैं, अन्यान्य जीवभी अनेकमकारके शब्द करतेथे ॥ ९ ॥ उस स्थानमें अनेक भूत

[1] मृतकक्रिया कथाश्रवण और कामक्रीड़ाके अनन्तर मनुष्योंको अवश्य वैराग्य होतीहै।

यत्र सर्वदा ॥ एकपादानेकपादभूतराजिविराजिते ॥ १० ॥ कंकालमुंडसंछन्ने प्रेतास्थिगणशुभ्रिते ॥ लोड्यमानमहाश्वाने प्रेतदेहविभूषिते ॥ ११ ॥ नानावर्णजले तत्र चिताग्निचयकाशिते ॥ अग्निबिंबसमाक्रांते जले तत्र महेश्वरि ॥ १२ ॥ ददर्श स हरिश्चंद्रः कौतुकाविष्टमानसः ॥ कौतूहलविचित्राणि नानाशब्दांश्च पार्वति ॥ १३ ॥ प्रेतकर्प्पटधारी च हरिश्चंद्रो नराधिपः ॥ चांडालकर्मनिरतः प्रेतनिष्क्रयजीविकः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वोच्चस्थलतस्तत्र प्रेतं दग्धुं समागतम् ॥ जगाम तत्र तत्रापि याचते स्म च निष्क्रयम् ॥ १५ ॥ ममायं स्वामिनोयं वै राज्ञश्चैव तथाह्यसौ ॥ दह मा कुणपमिति ह्यदत्वा निष्क्रयं मम ॥ १६ ॥ इति तत्र हरिश्चंद्रो जगादोच्चैः पुनः पुनः ॥ जीर्णवस्त्रसमाच्छन्नः तदा देवि स भूमिपः ॥१७॥ अंगारसमवर्णो वै त्यक्तधर्मक्रियस्तथा ॥ मलदग्धवपुर्भीमो धूमरक्तसुनेत्रकः ॥ १८ ॥ मुखदुर्गंधभूयिष्ठो

नृत्यकरते रहतेहैं, किसीके एकही चरणहै किन्हींके चरण अनेकहैं, ऐसे भूतोंकी पंक्ति विराजमानहै ॥ १० ॥ भयंकर मुंड बिखर रहेहैं, कहीं २ की भूमि प्रेतोंकी अस्थियोंसे श्वेत होरहीहै, कहीं लोथेंहीं लोथें पड़ी हैं, और वहां कुत्ते दौड़ रहे हैं ॥ ११ ॥ चिताकी अग्निका प्रतिबिम्ब पड़नेके कारण जलका वर्ण अनेक प्रकारका हो रहाहै, हे महेश्वरि ! जलके बीचमें अग्निका प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होताहै ॥ १२ ॥ हे पार्वति ! आश्चर्य्यसमन्वित हो राजा हरिश्चन्द्रने विचित्र कौतूहलोंको देखा और विविधभांतिके शब्द श्रवण किये ॥ १३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र प्रेतोंके वस्त्र धारणकर चाण्डालोंके कर्म करके प्रेतोंहीकी निष्क्रियासे अपना निर्वाह करने लगा ॥ १४ ॥ ऊंचे स्थानके ऊपर आसीन हो शवोंके दाह और उनके आगमनको देखताथा, और जहां शवदाह होता था वहां जाकर राजा अपने करकी याचना करता था ॥ १५ ॥ यह मेरा, यह स्वामीका, तथा यह राजाकाहै यों सब कहतेथे, राजा कह रहेथे कि, हमारा कर बिना चुकाए कोई व्यक्ति शवदाह न करै॥१६॥ इसप्रकार राजा हरिश्चन्द्र उच्चस्वरसे वार २ कहतेथे राजा पुराने वस्त्रोंको धारण कर रहेहैं, और हे देवि ! वोह राजा अतीव मलिन होरहेथे ॥ १७ ॥ उनका वर्ण अंगारकी समानथा, उनके धर्माचरण सब छूटगयेहैं, इसका शरीर मलसे व्याप्तहै, नेत्र इसके धूम्रसे लाल हो रहेहैं ॥ १८ ॥ मुखसे दुर्गन्धि आतीहै, नेत्रोंमें कीचड़ लगेहैं, शीतसे सबशरीर जर्जर होरहाहै

नेत्रपूयकुनेत्रकः ॥ शीतजर्जरसर्वांगः खंडिताधरपल्लवः ॥ १९
स्फुटितांघ्रिकरश्चैव इतश्चेतश्च धावति ॥ यं दृष्ट्वा तु नराः
पश्चात्तापसमाकुलाः ॥ २० ॥ बभूवुर्हि तदानीं तं दृष्ट्वा वै भय
कुलाः ॥ करेण येन नृपतिर्ददाति स्म धनं बहु ॥ करेण
गिरिजे जग्राह शवनिष्क्रयम् ॥ २१ ॥ यो वै राजा महाबा
शिबिकाभिश्चचार ह ॥ गतागतं महादेवि प्रेताग्निगणतापि
भूतले पदविन्यासं चक्रे राजा महायशाः ॥२२॥ यो राजा
वान्पूर्वं महार्हशयनोचितः ॥ शेते तदानीं राजा स्म कुशकं
संस्तरे ॥ २३ ॥ परिधाति स्म यो राजा वसनानि मृदूनि
श्वेतकंबलखण्डेन रात्रिं नयति दुःखितः ॥ २४ ॥ इति द्वा
वर्षाणि राजा तत्र महामतिः ॥ तस्थौ चांडालकर्मा वै तदा
वरकारकः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकी
हरिश्चन्द्रोपाख्यने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अधरपल्लव खण्डित होरहेहैं ॥ १९ ॥ यद्यपि हाथ पैर टूट रहेहैं, तथापि इधर उधर
फिरताहै, इसकी ऐसी दशा देख सबलोग पश्चात्ताप करने लगे ॥ २० ॥ और इसे
सभी विस्मित हुए, हाय ! राजा हरिश्चन्द्रने जिस हाथसे अटूट धनदान कियाथा हे
उसी हाथसे वोह प्रेतोंका कर ग्रहणकर रहाहै ॥ २१ ॥ जिस महाबाहु राजाने
(पालकी) आदि निर्माण कराईथी, वोही भूप चिताकी अग्निसे व्याप्त हुई भूमीके
उधर पैदल विचर रहाहै ॥ २२ ॥ जो ऐश्वर्यवान् राजा हरिश्चन्द्र अमूल्य शैय्याके
शयन करताथा, हाय ! आज वोही राजा कुशा और कांटोंके साथरेके ऊपर सोताहै ॥
पहिले जिसने कोमल वस्त्रोंका धारण कियाथा वोह मुर्देके कंबलको धारणकर दुःखसे
रात्रिका काल यापन करताहै ॥ २४ ॥ इस प्रकार महामतिमान् राजा हरिश्चन्द्र उस
चकी आज्ञाको मानकर चाण्डालोंका काम करते हुए बारह वर्ष पर्यन्त वहां रहे ॥ २५

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः २४.

ईश्वर उवाच ॥ इति वै वसतस्तत्र समा द्वादश संययुः ॥ प्रेताजीवस्य राज्ञो वै स्मशानेतिभयंकरे ॥ १ ॥ अथ त्रयोदशे वर्षे कदाचिच्छ्रावणे तदा ॥ धाराधरभराक्रांते कृष्णपक्षे निशीथके ॥ २ ॥ खद्योतद्योतिते मेघे ऊमिऊमीति वर्षति ॥ विद्युल्लेखागणाक्रांतगगने जलदाकुले ॥ ३ ॥ गाढांधतिमिराच्छन्ने प्रसुप्तनरनारिके ॥ ज्वरादिरोगसंव्याप्तो मृतो हि तस्य चात्मजः ॥ ४ ॥ क्रीतो येन महादेवि श्रेष्ठिनस्तस्य मंदिरे ॥ मृतं तं पुत्रकं दृष्ट्वा वैदर्भी दुःखिताभवत् ॥ ५ ॥ दासीभावेन हे देवि रोहिताश्वस्य सद्गतिम् ॥ न चकार तदा श्रेष्ठी दासं मत्वा च तं मृतम् ॥ ६ ॥ यथाकथंचित्साप्येका गृहीत्वा मृतपुत्रकम् ॥ समाययौ स्मशाने सा कथंचिद्धृतकंधरा ॥ द्वित्रीणि ह्यर्द्धकाष्ठानि गृहीत्वा कक्षकांतरे ॥ ॥ ७ ॥ तत्रागत्य राजपत्नी स्मशानेतिभयंकरे ॥ प्रज्वालयंती तं वह्नौ मनश्चक्रे महेश्वरि ॥८॥ एतस्मिन्नंतरे तेन हरिश्चंद्रेण धीमता॥

महादेवजी बोले—इसप्रकार वहां निवास करते २ बारहवर्ष व्यतीत होगये, और राजा प्रेतोंके आधारसे अपनी आजीविका करते और अति भयंकर स्मशानभूमिमें निवास करतेथे ॥ १ ॥ इसके अनन्तर एकसमय श्रावणके महीनेमें कृष्णपक्षमें आधीरातके समय मेघमाला चारों ओरसे घिरआई ॥ २ ॥ मेघोंके बीचमें खद्योत चमकते, और रिमझिम रिमझिम मेघ वर्षा कर रहेथे, आकाशमंडलमें बादल व्याप्त होरहे और चपला चमकरहीथी ॥ ३ ॥ आकाशमें घना अन्धकार व्याप्त हो रहाहै, सब नरनारी शयन कर रहेहैं, सर्वत्र ज्वरआदि रोग व्याप्तहै, उसी अवसरमें इसका पुत्र मृतक होगया ॥४॥ हे महादेवि ! जिस सेठने उसे मोल लियाथा उसीके घर अपने पुत्रको मृतकहुआ देख विदर्भदेशके राजाकी पुत्री अतिशय खेदको प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ और हे देवि ! दासी होनेके कारण उस सेठने अपने दासको मृतकहुआ जान रोहिताश्व कुमारकी सद्गति नहीं करी ॥ ६ ॥ जैसे तैसे वोह रानी अकेलीही उस मृतपुत्रको ले कन्धेके ऊपर रखकर स्मशानभूमिमें आई, और दो तीन लकड़ियोंके आधे २ टुकडे बगलमें दबाकर लाती आई ॥ ७ ॥ हे महेश्वरि ! राजरानी अति भयंकर स्मशानभूमिमें आई, और चिताकी अग्निको प्रज्वलित करनेको उद्यतहुई ॥ ८ ॥ इसी समय बुद्धिमान् हरिश्चन्द्रने उसे निषेध

निषिद्धा कात्र त्वमसि ह्यदत्वा प्रेतनिष्क्रयम ॥ ९ ॥ मन
च नाथस्य दत्वा दह शवं त्विदम् ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य
श्चंद्रस्य धीमतः ॥ १० ॥ जगाद विमना वाक्यं स्तम्भ
स्थिता ततः ॥ ११ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ दास्या मे नास्ति
हि कुतो दद्मि महामते ॥ धर्मस्ते भविता ह्यस्मात्किंचिन्
वदस्व भो ॥ १२ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ दूरं गच्छाशु
कीदृशो धर्म उच्यते ॥ अदत्वा मे धनं किंचिद्दग्धुमिच्छसि
तम् ॥ १३ ॥ किं वदिष्यति मे नाथो येनाहमिह प्रेषितः ॥
यिष्यामि किं चैव परिधास्यामि किं तथा ॥ १४॥ ईश्वर उ
इति श्रुत्वोक्तवचनं हरिश्चंद्रस्य पार्वति ॥ परुषं निष्ठु
दुःखिता सुतरामभूत ॥ १५ ॥ विललापतरां देवी स्वाप्य
शिरोंकके ॥ मृतस्य रोहिताश्वस्य बाष्पव्याकुललोचना ॥
हा पुत्र क्वगतोसि त्वमनाथाया धनं मम ॥ संत्यज्य मां
दुःखे माताहं ते सुदुःखिता ॥ १७ ॥ वचनं देहि पुत्र त्वं

किया कि--तू कौनहै जो प्रेतका कर नहीं देतीहै ॥ ९ ॥ तू हमारे और स्वामी
विनाही दिये शवदाह करना चाहती है, जब बुद्धिमान राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन
मन मलिनकर खड़ी २ रानी यह वाक्य बोली ॥ ११ ॥ राजपत्नीने कहा--श्री
मान् ! मैं दासीहूं, अतएव मेरे पास धन नहीं है, मैं कहांसे दूं । तुम्हारा धर्म
आज्ञा दीजिये ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्र बोले--हे धर्मिष्ठे ! चल अलग हट ! कैसा धर्म
हमारा धन विनादिये तू शव भस्म कर सकतीहै ॥ १३ ॥ जिस हमारे स्वामीने
भेजाहै वोह क्या कहेगा, और मैं स्वयम् भी क्या खाऊं पहरूंगा ॥ १४ ॥
बोले--हे पार्वति ! रानीने जब राजाके ऐसे वचन सुने जोकि अतिशय कठोर
तो रानी बड़ी दुखी हुई ॥ १५ ॥ भूमिके ऊपर पुत्रको सुलाकर रानी अतिशय
लगी, अथ च रोहितके मृत होजानेके कारण उसके नेत्रोंमें आंसु भरआये ॥ १६
मुझ अनाथके धन ! पुत्र ! मुझे दुःखमें छोड़ तू कहां चलागया ? मैं तेरे विना
हूं ॥ १७ ॥ हे प्रियपुत्र ! मैं रोदन कर रहीहूं मुझसे बोल तो सही, हे पुत्र

पंत्याः सुत प्रिय ॥ क्व ते मुखगता शोभा गतेदानीं हि पुत्रक ॥ ॥ १८ ॥ इमौ ते हस्तकमलौ कीदृशौ भवतः स्थितौ ॥ इदं मे हृदयं तूर्णं जायते न कथं द्विधा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा त्वां हंत हंतेति गच्छंतं यममंदिरम् ॥ क्व गतोसि महाभाग विहायैकां हि दुःखिताम् ॥ २० ॥ कदा श्रोष्यामि ते वाचो मातर्मातरिति स्वयम् ॥ आलिंगनादिभिः को मामानन्दयाति सुव्रत ॥ २१ ॥ इदं ते मुखपद्मं हि शिशिरक्लिन्नसुश्रियम् ॥ वर्त्तते पुत्र पुरतो नष्टपद्ममिव श्रिया ॥ २२ ॥ हा पुत्र क्व गतोसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ धिक् दैव त्वं तु सर्वं हि यद्वै दुःखतरं कृतम् ॥ २३ ॥ हा पुत्र मामपि नय यत्र त्वं च गतो ह्यसि ॥ तव पाकादिकं पुत्र करिष्यामि च रोहित ॥ २४ ॥ धर्मिष्ठ नाथ भगवन् हरिश्चंद्र महामते ॥ किं त्वयापकृतं पुण्यं विश्वामित्रस्य हे प्रभो ॥ २५ ॥ हरिश्चंद्र महाराज तव पुत्रस्त्वयं मृतः ॥ एनं दग्धुं न शक्नोमि धनं मे नास्ति हे नृप ॥२६॥ सुकृताद्दुष्कृतं जातं हरिश्चंद्र हि सांप्रतम् ॥ पृथिवी येन विप्राय दत्तालंकारसंवृता ॥ २७ ॥ तव तस्य

मुखकी अपूर्वशोभा कहां चलीगई ॥१८॥ यह तेरे दोनों हाथ कमलकी समान कैसे (मुरझाये) पड़ेहैं, हाय यह मेरी छाती फटकर दो खंड क्यों नहीं होजाती ॥१९॥ हाय तुझे यमपुरको जाते देख मैं बड़ी दुखीहूं, हे पुत्र ! मुझ दुखियाको अकेली छोड़ तू कहां चलागया ॥ २० ॥ भइया २ की टेर तेरे मुखसे मैं कब सुनूंगी, आलिंगन आदि करके मुझे आनन्दित कौन करेगा ॥ २१ ॥ यह तेरा मुख ऐसा मलिन होरहाहै जैसे शिशिर ऋतुमें कमल मुरझा जाताहै, कान्तिहीन कमलकी समान यह मेरे अगाड़ी पड़ाहै ॥ २२ ॥ मुझे दुःखसागरमें छोड़ हे पुत्र ! तू कहां चलागया, हाय, ! प्रारब्धको धिक्कारहै जिसने इतना दुःख दियाहै ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! मुझेभी वहांही ले चल जहां तू स्वयम् गयाहै, हे पुत्र रोहित ! मैं तेरा भोजन आदि बनादिया करूंगी ॥ २४ ॥ हे धर्माचारी हमारे नाथ ऐश्वर्यवान् महामतिमान् हरिश्चन्द्र ! विश्वामित्रका पुण्य स्वीकारकर तुमने क्या अपकार किया ॥ २५ ॥ महराज हरिश्चन्द्र ! यह आपका पुत्र मृत होगया, पर मेरे पास धन नहीं है अतएव हे भूप ! मैं इसे दग्ध नहीं करसक्ती ॥ २६ ॥ संप्रति हरिश्चन्द्रके प्रति तौ भलाकरते बुरा होगया, हे राजन् ! आपने तौ अलंकृत करके भूमि दानकर ब्राह्मणको दीथी ॥ २७ ॥ आपसे दानीकी

महाराज भृशं पत्नी हि दुःखिता ॥ याहं पुरा मृ
शयने शायिता त्वया ॥ २८ ॥ साहं त्विदानीं हे
पुत्रशोकप्रपीडिता ॥ तीक्ष्णायःप्रस्तरेष्वेव सुखदुःखं न वे
॥ २९ ॥ योयं तव महाराज नानालंकारभूषितः ॥ अंके ते
तवान् पुत्रो मृतो नाथ यदा ह्यहम् ॥ ३० ॥ त्वया त्यक्ता
राज स्थिताहं स्वसुतेन हि ॥ सोपि मे नष्टभाग्याया गतो
गतिर्मम ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तद्रोदनं श्रुत्वा हरि
महामनाः ॥ ज्ञात्वा स्वपत्नीं तां चैव जातो वै भृशदुःखि
॥ ३२ ॥ आगत्य सहसा तत्र विलपंती यतः स्थिता ॥
तां च मृतं पुत्रं विललापातिदुःखितः ॥ ३३ ॥ हरिश्चंद्र उवा
हा हा पुत्र महाभाग मया पापिष्ठकर्मणा ॥ मारितोसि हि वि
सुखाभिज्ञो हि दुःखितः ॥ ३४ ॥ प्रेतराज महाभाग
उत्क्रमविक्रमः ॥ जीविते पितरि प्रेतगतिं याति सुतस्त्व
॥ ३५ ॥ एनं जीवय हे नाथ मम पुत्रं सुदर्शनम् ॥ एत

मै पत्नी दुःखित होरहीहूं, हे नाथ ! आपने प्रथम कोमल बिछौनेके ऊपर
करायाथा ॥ २८ ॥ हे नाथ ! वोही मैं पुत्रशोकसे पीडितहो कठोर पत्थरों
पड़ीहूं, और मुझे सुखदुःखका कुछभी ज्ञान नहींहै ॥ २९ ॥ हे महाराज !
पुत्र अनेकप्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत हो आपके अंकमें उपस्थित होताथा, वोही
नाई मृतहुआ पड़ा है । जबकि आपने मेरा ॥ ३० ॥ परित्याग कियाथा, तब
पुत्रहीके आधारसे स्थित रहीथी, हाय ! मुझ हतभागिनीका वोह सहाराभी न
अब मेरी क्यागति होगी ॥ ३१ ॥ महादेवजी बोले—मननशील राजा हरिश्चन्द्रने
रोदन सुना तो अपनी पत्नीको पहिचानकर राजा अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ३२ ॥
करती हुई रानी खड़ीथी, सहसा राजा उस स्थानमें आये, स्त्री और मृतपुत्रको दे
हो अतिशय रोदन करने लगे ॥ ३३ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हाय पुत्र बड़भागी !
बेचकर तुझे मारडाला तू सुखका भोगनेवालाथा अतएव तुझे बड़ादुःख हुआ ॥
महाभाग प्रेतराज ! तुम्हारा विक्रम कैसा उत्तमहै ? पिता तो जीवितहै, और पु
प्राप्त होगया ॥ ३५ ॥ हे नाथ ! मेरे इस प्रियदर्शन पुत्रको जिलादो, और इस

निधिं मत्वा मां नयाशु स्वमंदिरम् ॥ ३६ ॥ अज्ञातदुःखो बालोयं किमर्थं नीयते त्वया ॥ अहं सर्वं करिष्यामि तव सेवादिकं प्रभो ॥ ३७ ॥ हा पुत्र क्व गतोसि त्वं माता ते चास्ति दुःखिता ॥ एनामाश्वासय त्वं हि त्वमेका गतिरस्ति वै ॥ ३८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति चान्यद्बहुतरं विललाप भृशं नृपः ॥ उवाच पत्नीं विमुखां बाष्परुद्धविलोचनाम् ॥ ३९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ चितिं रचय शीघ्रं त्वं भंजयित्वा गृहं मम ॥ दग्ध्वा स्वदेहं गच्छावः पुत्रेणैकाकिना सह ॥ ४० ॥ जाताश्च द्वादशसमा वसतो मम भामिनि ॥ प्रेतानां निष्क्रयं नीत्वा स्वमूल्यंनिष्कृतिः कृता ॥ ॥ ४१ ॥ इदमेव सुकर्त्तव्यं वर्त्तते नृपकन्यके ॥ दग्ध्वा स्वदेहं गंतव्यं पुत्रेणैकाकिना सह ॥ ४२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य पत्नी सा भृशदुःखिता ॥ हरिश्चंद्रं तु तं ज्ञात्वा गले लग्ना रुरोद ह ॥ ४३ ॥ विलप्य बहुशः पुत्र पुत्र पुत्रेति चासकृत् ॥

मुझे अपने स्थानको लेचलो ॥ ३६ ॥ यह बालक तौ दुःखको जानता तकभी नहीं, फिर भला तुम इसे क्यों लिये जाते हो ? हे प्रभो ! आपकी सेवाआदि जो कुछ होगी मैं सब करूंगा ॥ ३७ ॥ हाय पुत्र ! तुम कहां गये ? तुम्हारी माता अत्यन्त दुःखित हो रहीहै, तुम्ही इसके जीवनाधार हो अतः इसे समझाओ ॥ ३८ ॥ महादेवजी बोले—यौं तथा और बहुत कुछ कहकर राजाने अतिशय रोदन किया, रानीका मुख मलिन हो रहाहै नेत्र डबडबा रहेहैं उससे राजा बोले ॥ ३९ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—मेरी कुटीको तोड़कर तू चिता निर्माणकर, शरीरको भस्मकर मैंभी अपने खिलाड़ी पुत्रके साथ जाऊंगा ॥ ४० ॥ हे भामिनी ! यहां रहते २ मुझे बारहवर्ष होचुके प्रेतोंका मूल्य अर्थात—कर वसूल करके मैंने अपने मूल्यको चुकता करदिया ॥ ४१ ॥ हे विदर्भकुमारी ! यह संप्रति कर्तव्यहै कि—अपने देहको दग्धकर एकाकी पुत्रके साथ प्रस्थान करूं ॥ ४२ ॥ महादेवजी बोले—राजाके यह वाक्य सुन रानी अतिशय दुःखित हुई, और उसे हरिश्चन्द्र जान गलेसे लगकर अत्यन्त रोदन करनेलगी ॥ ॥ ४३ ॥ हाय पुत्र ! हाय पुत्र कहकर उन्होंने बहुत कुछ रोदन किया, इसके अनन्तर महायशस्वी

चितिं वै रचयामास सोपि राजा महायशाः ॥ ४४ ॥ रचयि
चितिं तत्रारुरोहतुश्चितौ सुतम् ॥ संन्यस्य च महादेवि देहं
सुपस्थितौ ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सौरवंशानुकी
हरिश्चंद्रोपाख्याने दंपतिविलापो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २

राजानेही चिताकी रचना की ॥ ४४ ॥ हे महादेवि ! चिताकी रचनाकरके उन दोनों
करनेके लिये मृतपुत्रको चिताके ऊपर आरूढ किया और दोनोंभी आरूढ हुए ॥ ४५

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमोऽध्यायः २५.

ईश्वर उवाच ॥ इति तत्र मतिं कृत्वा दंपती तौ सुदुःखि
यावदग्निं वेशयतश्चितां काष्ठमयीं प्रिये ॥ १ ॥ हंसयुक्त
वै संस्थितो भगवानजः ॥ आययौ महसा तत्र रोचिषा
यन्दिशः ॥ २ ॥ विमानैः शतशस्तत्र नानारत्नमयैस्त
मध्याह्नसूर्यवर्चोभिर्द्योतमानैर्दिशस्तथा ॥ ३ ॥ निकेत
विविधा बभूवू रत्नसंयुताः ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैव जगुः प
पिताः ॥ ४ ॥ साधु साधु वदंत्येके धन्यो धन्यस्तथापरे ॥
स्वास्मिन् विमाने त्वमस्मिंश्चैव पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥ ऊचुः

महादेवजी बोले—हे प्रिये ! इसप्रकार जब उन दोनों दम्पतीने सलाह कर
काष्ठनिर्मित चिताके ऊपर आरूढहोकर उस शवके साथ आपको दग्ध करना चाहा ॥ १
जन्मादि रहित श्रीभगवान् हंसयुक्त विमानमें अधिरूढ हो; अपनी कान्तिसे दिशाओं
शित करते आनके उपस्थित होगये ॥ २ ॥ उससमय अनेक प्रकारके रत्नोंसे
सैकडों विमानोंकी इतनी तीव्र कांतिसे जैसी कि मध्यान्हके समय सूर्यकी किर
समस्त दिशाएँ प्रकाशमान होने लगीं ॥ ३ ॥ अनेकस्थान रत्नजटित होनेके कारण
हो रहेहैं, एवं च गन्धर्व और अप्सरागण परम आनन्दमें मग्नहो गान करने लगे
कोई साधुवाद और कोई धन्यवादका उच्चारण कर रहे हैं और कोई यों क
राजन् ! तुम इन विमानोंमें पृथक् २ आरूढ होओ ॥ ५ ॥ हाथ जोड २

लयः सर्वे हरिश्चंद्रं महीपतिम् ॥ त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ ६ ॥ इति तत्राब्रुवन् केचित् केचित्प्रांजलयः स्थिताः ॥ ब्रह्मापि सहसा तत्र जगाद वचनं नृपम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु साधु महाराज साधु चेयं सुमध्यमा ॥ त्वत्तुल्यो नास्ति त्रैलोक्ये देवो वा दानवोपि वा ॥ ८ ॥ युवां वै गच्छतां लोके मामके मुनिदुर्लभे ॥ एताभ्यामेव देहाभ्यां दुष्कर्मपरिवर्जितौ ॥ ९ ॥ अयं तु रोहिताश्वस्ते राज्यं वै पालयिष्यति ॥ कीर्त्तिस्ते सुतरां राजन् भविता पृथिवीतले ॥ १० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ दंपती तं रोहिताश्वं मृतं स्थितम् ॥ कमंडलुजलेनाशु संमार्ज्य सुमुखांबुजे ॥ ११ ॥ हंसयुक्ते विमाने तौ संनिवेश्य सुदुर्लभे ॥ गंतुं प्रचक्रमे ब्रह्मा स्वलोकं योगिदुर्लभम् ॥ १२ ॥ गीयमानैर्मुनिगणैस्तूयमानैः सुरैस्तथा ॥ ययतुर्ब्रह्मणा साकं ब्रह्मलोकं सुशोभनम् ॥ १३ ॥ रोहिताश्वोपि

श्चन्द्रसे सब कहने लगे कि, हे भूपाल ! तुम्हारी समान धर्मका आचरण कर्त्ता और वादी त्रिलोकीमेंभी और कोई नहीं है ॥ ६ ॥ कोई २ तौ यौं कहने लगे और २ हाथ जोड़कर खड़े होगये । तत्काल ब्रह्माजीने राजाके प्रति यह वाक्य उच्चारण ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे महाराज ! आपको तथा पतली कमरवाली इस रानीको वार धन्यहै, त्रिलोकीमें क्या देवता और क्या दानव कोई भी आपकी समान नहींहै ८ ॥ अतएव तुम दोनों निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करके इसी शरीरके द्वारा हमारे उसमें जाओ, जिसकी प्राप्तिका होना मुनियोंकोभी दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यह रोहिताश्व कुमार रे राज्यका पालन करेगा, और हे राजन् ! इस भूतलके ऊपर तुम्हारी कीर्तिका अत्यन्त र होगा ॥ १० ॥ महादेवजी बोले—उक्त दोनों दम्पतियोंसे इस प्रकार कहकर मृतक रोहिताश्वके मुखकमलको कमण्डलुके जलसे सेचन किया ॥ ११ ॥ और उन दोनोंको दुर्लभ तथा हंसयुक्त विमानमें चढाकर ब्रह्माजी योगियोंकोभी जो दुष्प्राप्यहै ऐसे स्थानको जानेके तईं उद्यत हुए ॥ १२ ॥ मुनिगण गानकरने लगे, एवं च देवता स्तुतिकरने लगे, इसी समय राजा और रानी यह दोनोंभी ब्रह्माजीके साथ अति रमणीय लोकको गये ॥ १३ ॥ हे देवि ! कमण्डलुके जलद्वारा अभिषेचित होनेके कारण रोहिता-

सहसा कमंडलुजलेन हि ॥ संमार्जनेन हे देवि उत्थितो
अगत ॥ १४ ॥ सर्वे लोकाः समाजाताः कौतुकाविष्टमान
श्रुत्वा वृत्तं तु तत्सर्वं शशंसुश्च सुविस्मिताः ॥ १५ ॥ दे
भयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात ह ॥ रोहिताश्वे महादेवि य
पुनरागते ॥ १६ ॥ निशीथोपि महादेवि मध्याह्न इव सं
विमानशतकोटीनां प्रकाशैस्तिमिरापहैः ॥ १७ ॥ स्तूयमानो
सर्वै रोहिताश्वो महामनाः ॥ आययौ द्योतयन् काष्ठास्त
समद्युतिः ॥ १८ ॥ रोहितं नाम नगरमिंद्रलोकोपमं शु
निवेशयामास ततो नानापण्यविराजितम् ॥ १९ ॥ नाना
गृहैर्युक्तं विमानैरिव सर्वतः ॥ नानोद्यानसमायुक्तं मंदुरा
कैः ॥ २० ॥ विराजमानं देवेशि रोहिताश्वपुरं बभौ ॥ नं
वनैश्चित्रं वासवस्य पुरं यथा ॥ २१ ॥ तस्मिन्निवेशयामास च
ब्राह्मणादिकान् ॥ नानासंपत्तिबहुलो रराज नृपसत्तमः ॥

अभी तत्काल उठबैठे और सबजगत आनन्दसे मग्न होगया ॥ १४ ॥ अ
लोकोंके चित्तमें कौतुकका आविर्भाव होगया, एवं च इस वृत्तान्तको सुनकर
विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ जिस समय रोहिताश्व कुमार यमलोकसे लौटे
देवताओंने दुन्दुभी बजाई, पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी ॥ १६ ॥ और अन्धकार
वाले सैकडों विमानोंका उस समय ऐसा प्रकाश होरहा था कि, जिससे अर्धरा
मध्याह्नसा प्रतीत होता था ॥ १७ ॥ चढते सूर्य्यकी समान कान्तिसे दिशाओं
करता हुआ महामनस्वी रोहिताश्व नगरमें जिससमय आया उस समय सम
स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ रोहिताश्वने इन्द्रलोककी समान दिव्य रोहितनाम न
और उत्तमोत्तम अनेक दुकानोंसे उसे सुसज्जित किया ॥ १९ ॥ (जैसे इन्द्र लो
विमान विराजित रहतेहैं ऐसेही रोहितनगरमें अनेक घर रत्नजटित सुशो
अनेक बगीचे, अनेक अश्वशाला और अनेकोही हस्तिशाला उसनगरमें विद्यमान
हे महादेवि ! नन्दन आदि वनोंसे जैसे इन्द्रलोककी शोभा होतीहै, ऐसेही सम
अलंकृत रोहिताश्वपुर सुशोभित होताथा ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको
राजाने बसाया, विपुल सम्पत्तिसे सम्पन्नहो राजाधिराज विराजमान होने

तत्रागत्य प्रजाः सर्वा नानोपायनहस्तकाः ॥ चक्रुस्तस्याभिषेकं वै वर्णास्तु ब्राह्मणादिकाः ॥ २३ ॥ रोहिताश्वो महातेजा जित्वा नृपगणान् बहून् ॥ राज्यं वै पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सूर्य्यवंशानुकीर्त्तने हरिश्चंद्रोपाख्यानं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण आदि सब वर्णोंकी प्रजा विविध भांतिकी भेंट हाथमें लेकर आई, और उसने राजाको अभिषेक किया ॥ २३ ॥ राजा रोहिताश्व अनेक भूपालगणका विजयकर औरसपुत्रकी समान राज्य और प्रजाका पालन करने लगा ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः २६.

ईश्वर उवाच॥ रोहिताश्वो महाबाहुर्हरिश्चंद्रसुतो बली ॥ जित्वा रिपुगणान् सर्वान् सुशोभ नगरे वरे ॥ १ ॥ कृत्वानेकविधान्यज्ञान् दृष्ट्वा नारायणं विभुम् ॥ हरितं नाम वै देवि पुत्ररत्नमजीजनत् ॥ २ ॥ शिक्षयित्वास्त्रविद्यां वै हरितं नाम वीर्य्यवान् ॥ राज्यभारं तत्र क्षिप्त्वा स्वयं विष्णुमनाभवत् ॥ ३ ॥ संसारासारतां ज्ञात्वा दत्वा तन्नगरं द्विजे ॥ स्वयं ययौ हि तपसे कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ४ ॥ राज्यं चकार विधिवद्धरितो नाम वीर्य्यवान् ॥ जिता रातिगणो

महादेवजी बोले--राजा हरिश्चन्द्रका राजकुमार बलशाली और लम्बी २ भुजाओंवाला रोहिताश्व अपने शत्रुसमाजका विजयकर निज श्रेष्ठ नगरमें विराजमान होनेलगा ॥ १ ॥ हे देवि ! रोहिताश्वने अनेक यज्ञ करके सर्वव्यापक भगवान्का दर्शन किया, इसके अनन्तर हरित नाम पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २ ॥ हरित कुमारको पराक्रमी रोहिताश्वने अस्त्रविद्याकी शिक्षा देकर उसे राज्यका समस्त भार सौंप दिया, और स्वयम् अपने चित्तको परमेश्वरके भजनमें लगाया ॥ ३ ॥ रोहिताश्वने संसारको असार जानकर इसका परित्याग करदिया और सर्वोत्तम कैलास पर्वतके ऊपर तप करनेके लिये स्वयम् चले गये ॥ ४ ॥ हरित नाम प्रतापशाली राजा विधिपूर्वक राज्यका शासन करने लगा, एवं च इस प्रियवादी और पवित्रा-

यज्वा प्रियवाक्सुमतिः शुचिः ॥ ५ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ चंचु
महायशाः ॥ जातौ तस्यापि द्वौ पुत्रौ विजयो वसुदेवकः ॥ ६
अभिषिच्य सुतं राज्ये विजयं नाम नामतः ॥ स्वयं य
तपसे राजासौ कूर्मपर्वते ॥ ७ ॥ विजयस्तु महाराजो जेता
गणस्य हि ॥ अकरोत्पालनं देवि प्रजायाः पुत्रवत्तदा ॥ ८
तस्य पुत्रो महेशानि चुचुंडक इति स्मृतः ॥ चंडःशत्रुगण
हि मित्राणां चन्द्रवद्भभौ ॥ ९ ॥ अथ तस्य चुचुंडस्य वृक
बभूव ह ॥ वृकस्य तनयो राजा सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ १० ॥
हुर्नाम महातेजाः प्रख्यातबलविक्रमः ॥ यस्य बाहुजिता
राजानो धरणीतले ॥ ११ ॥ अयोध्याधिपतिर्वीरो मह
दृढविक्रमः ॥ एकदा तस्य राज्ञो वै मतिर्जाता महात्मन
॥ १२ ॥ जेतव्येति धरा सर्वा चतुर्दिक्षु समंततः ॥ येत्र
महीपाला रणकंडूविशारदाः ॥ १३ ॥ जित्वा तान्नृपतीन्
स्थास्यामि सुखसंयुतः ॥ इति कृत्वा मतिं बाहुराह्वयामास

चरण कर्त्ताने अपने शत्रुओंका विजय करके यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ५ ॥ इस
यशस्वी पुत्रका नाम चंचु हुआ, और विजय तथा वसुदेव नाम इसकेभी दो पु
हुए ॥ ६ ॥ राजा चंचु विजय नामवाले अपने पुत्रको राज्यका अभिषेक देकर स्व
आचरण करनेके लिये कूर्माचलको चले गये ॥ ७ ॥ महाराज विजयने अपने
विजय किया, और अपनी प्रजाको वोह राजा सदैव पुत्रकी समान पालन करता रहा
हे महेश्वरि ! विजयका पुत्र चुचुंड नामसे प्रसिद्ध हुआ, इस राजाने शत्रुओंकोभी
समान वशीभूत कर लिया ॥ ९ ॥ चुचुण्डका पुत्र वृक हुआ, वृकका पुत्र शत्रुओं
करनेवाला ॥ १० ॥ बाहुनाम राजा हुआ, यह राजा बड़ा तेजस्वी एवंच अपने ब
पराक्रमसे प्रसिद्ध हुआथा, इसने अपनी भुजाओंके बलसे भूमिके ऊपर समस्त रा
विजय करलिया था ॥ ११ ॥ यह दृढ पराक्रमी अयोध्यापुरीका राजा था, एकद
महात्मा राजाकी समझमें यह आया कि ॥ १२ ॥ चारों ओरसे इस भूमण्डल
करना चाहिये, एवंच भूमिके ऊपर युद्ध करनेमें विशेष चतुर जो राजाहैं उनका
करना कर्त्तव्यहै ॥ १३ ॥ समस्तवीर महाराजाओंका विजयकर सुखसे निवास करूं

कान् ॥ १४ ॥ रथनागपदातीनां वृंदवृंदगणैः सह ॥ पूर्वामाशां ययौ पूर्वं सैन्याच्छादितभूतलः ॥ १५ ॥ जित्वा तत्र महीपालां-स्थापयित्वा पुनः पुरे ॥ ययौ स दक्षिणामाशां रथनागैश्च सं-युतः ॥ १६ ॥ द्राविडान् गुर्जरान् शौण्डान् कर्णाटांश्च तिलंग-कान् ॥ जित्वा पुनर्यथापूर्वं स्थापयामास तत्र वै ॥ १७ ॥ अथ तस्मान् महादेशात् प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ॥ कांबोजाः पह्लवाश्चैव म्लेच्छाः शख्योद्भवास्तु ये ॥ १८ ॥ हैहयास्ताल-जंघाश्च शका जवनपारदाः ॥ पल्वलाः कुक्कुराश्चैव येपि कौ-वेरवासिनः ॥ १९ ॥ जिताश्च ये महीपालाः पौण्ड्रमागधपां-ड्यजाः ॥ एतेन्येपि च भूपालाः शतशोथ सहस्रशः ॥ २० ॥ कृत्वा बलैक्यं देवेशि ययुर्यत्र वृकात्मजः ॥ मध्ये कृत्वा सर्वसैन्यं बाहुनाम्नो महीपतेः ॥ २१ ॥ ववर्षुः शरजालानि किरणानीव भास्कराः ॥ बाहोस्तेषां नृपाणां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥ युद्धं बभूव देवेशि मांसशोणितकर्दमम् ॥ असीनां चर्मणां चैव च्छि-

प्रकार विचारकर राजा बाहुने अपने सैनिकोंको बुलाया ॥ १४ ॥ रथ, हाथी और पदाति-योंके वृन्दको साथ लेकर वोह राजा प्रथम पूर्वदिशाको गया, उससमय उसकी सेनासे तमाम भूमि आच्छादित होगई ॥ १५ ॥ उसदिशामें राजाओंका विजयकर फिर उन्हीको उनके राज्यकें ऊपर स्थापित किया, फिर हाथी घोडोंको साथले उसने दक्षिण दिशाको गमन किया ॥ १६ ॥ उस दिशामेंभी द्राविड, गुर्जर, शौण्ड, कर्णाटक और तैलङ्ग इन सबका विजयकर प्रथमकी भांति उनके राज्यमें उन्हीको स्थापित किया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उस महादे-शसे पश्चिम दिशाकी यात्रा की और वहां काम्बोज, पह्लव, म्लेच्छ और शकोंका विजय किया ॥ १८ ॥ हैहय, तालजंघ, शक, यवन और पारद पल्वल और कुकुर आदि जो कोईभी उस दिशाके रहनेवालेथे ॥ १९ ॥ पौंड्र, मागध और पाण्ड्य इन सब तथा अन्यान्य सैकड़ों हजारों राजाओंका उसने विजय किया ॥ २० ॥ उस समय कुछ राजा उससे युद्ध करनेको उद्यतहुए, और अपनी सेनाको एकत्रितकर मध्यमें बाहु राजाको घेर लिया ॥ २१ ॥ जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंकी वर्षा करतेहैं, इसी प्रकार बाणोंकी वर्षा होने लगी, सुतराम् बाहु तथा अन्य राजाओंका बड़ा घोरयुद्ध हुआ ॥ २२ ॥ हे देवेश्वरि ! ऐसा घोरयुद्ध हुआ कि मांस और

न्दिर्च्छिदीति सर्वतः ॥ २३ ॥ बभूव तुमलः शब्दो भीरू
वर्द्धनः ॥ कुंताः परशवश्चैव भिंदिपाला इतस्ततः ॥ २
विरेजुस्तत्र हे देवि निशि खद्योतका यथा ॥ वादित्राणि
त्राणि भेरीतूर्यमुखानि च ॥ २५ ॥ विनेदुस्तत्र देवेशि
इव जलागमे ॥ श्रुत्वा तान् विविधाञ्च्छब्दान्ननर्तुः सर्वतो
॥ २६ ॥ वीरा धैर्य्यधरास्तत्र मयूरा इव सर्वतः ॥ सं
तथान्योन्यं शस्त्राणां मम वल्लभे ॥ २७ ॥ खड्गेभ्यो
ज्वाला विरेजुस्तडितो यथा ॥ धारासम्पातमभवत्प
जांयथा ॥ २८ ॥ चातका इव रेजुस्ते वीरा रुधिरपा
इति तत्तुमुले युद्धे समानजलदागमे ॥ २९ ॥ विनेशुः
द्वीरा राज्ञां राज्ञश्च मानदे ॥ कबंधाः शतशस्तत्र विरेजु
स्तकाः ॥ ३० ॥ रथानामयुतं तत्र गजानामयुतद्वयम्
ष्कमयुतानां हि हयानां च पदातिनाम् ॥ ३१ ॥ म्रियंते
ग्रामे कबंधो जायते ततः ॥ बाहोश्चैव तथा राज्ञां बहव

रुधिरकी कीचड़ होगई, एवं च चारों ओर ढाल तलवारें चमकने लगीं ॥ २३ ॥
व्यक्तियोंके भयकी वृद्धि करनेवाला घोरनाद होने लगा, भाले, फरसे और
चलने लगे ॥ २४ ॥ हे देवि ! उनकी ऐसी शोभा होरही थी जैसे रात्रिमें
हैं, और भेरी अथच तुरही आदि विविध भांतिके वाद्य बजने लगे ॥२५॥ और
जैसे वर्षा ऋतुमें बादल गरजतेहैं ऐसेही उनका शब्द होने लगा । बडे २ धैर्यधारी
विविध प्रकारके शब्दोंको सुनकर परस्पर संहत शस्त्रोंके चारों ओर इस प्रकार नृत्य
कि हे हमारी प्राणप्यारी ! चौतर्फा मयूर नृत्य करतेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ खड्
हुई ज्वालाओंकी ऐसी शोभा होरहीथी जैसे बिजली चमकतीहै ॥ २८ ॥ रुधिर
ओंकी ऐसी विचित्र शोभा होरहीथी जैसे चातकगण विराजमान होतेहैं, अतएव वो
युद्ध वर्षा ऋतुकी समान प्रतीत होताथा ॥ २९ ॥ हे भामिनि ! इस राजा
राजाओंकेभी अनेकवीर विनष्ट होगये, शिरच्छेद होजानेके कारण सैंकड़ों कबं
विराजमान होने लगे ॥ ३० ॥ दशसहस्र रथ, बीससहस्र हाथीं, और चालीस
तथा पदाति ॥ ३१ ॥ उस संग्राममें नष्ट तथा मृतक हुए और उनके कबं

मस्तकाः ॥ ३२ ॥ उत्थिताः खड्गचर्माणि गृहीत्वा योद्धुमुद्यताः ॥ विरेजुस्तत्र संग्रामे किंशुका इव पुष्पिताः ॥ ३३ ॥ हतानां मनुजानां च हयानां च तथा प्रिये ॥ गात्रेभ्यश्च गजानां हि सुस्रुवुः शोणितापगाः ॥ ३४ ॥ एतस्मिन्नंतरे बाहुं ववर्षुः शरजालकैः ॥ मेघसंघा यथा देवि सानुमंतं यथा तथा ॥ ३५ ॥ वार्य्यमाणाश्च ते बाणा बाहोश्चैव कलेवरे ॥ विविशुः सर्वतो देवि यथा नागास्तु भूतले ॥ ३६ ॥ बाणाकुलो महीपालो बाहुर्नाम महेश्वरि ॥ पलायति स्म सततं किंचिच्छेषे च सैनिके ॥ ३७ ॥ अनुजग्मुर्महीपाला बाहोस्तस्य महीपतेः ॥ राज्यं जह्रुर्महाभागे तेपि गत्वा महेश्वरि ॥ ३८ ॥ तस्य पत्नी तु या देवि सगर्भा बाहुना सह ॥ गता वनं द्रुतं चैव हृतराज्या च शत्रुभिः ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सौरवंशानुकीर्तने बाहुवनप्रयाणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

ंग, बाहु तथा अन्यान्य राजाओंके बहुतसे वीरोंके मस्तक छिन्नभिन्न होगये ॥ ३२ ॥ और नके कबन्धही खड्ग तथा ढालको ले २ कर युद्ध करनेको उद्यत हुए उनकी ऐसी शोभा हो ही थी कि, जैसे टेसू फूलेहों ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! मृतक हुए मनुष्यों, अश्वों तथा हाथियोंके रीरमेंसे रक्तकी नदियें वह निकलीं ॥ ३४ ॥ जैसे पर्वतके ऊपर मेघ जलकी वर्षा करतेहैं सेही उससमय राजा बाहुके ऊपर शत्रुओंने बाणोंकी वर्षा की ॥ ३५ ॥ यद्यपि उनका हुतकुछ निवारण किया परन्तु तौभी जैसे भूमिमें सर्प प्रवेश करतेहैं इसी प्रकार वे बाणभी ाहुके देहमें प्रविष्ट होगये ॥ ३६ ॥ हे महेश्वरि ! जब वोह बाहुनाम राजा बाणोंके मारे ाकुल होगया, और उसकी सेना कुछ थोड़ीही शेषरही तब राजा पलायन करगया ॥ ३७ ॥ न्तु तथापि अन्यराजाओंने उस बाहुराजाका पीछा किया, हे महेश्वरि ! उन राजाओंने ायकर उस राजाके राज्यका आक्रमण करलिया ॥ ३८ ॥ हे देवि ! जब शत्रुओंने राज्य- ा आक्रान्त करलिया, तब उस राजाकी गर्भवती पत्नी अपने पतिके साथही भागकर वनमें ली गई ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः २७.

ईश्वर उवाच ॥ शत्रुभिर्हृतराज्योयं बाहुर्नाम वृकात्मजः
गाम विपिनं घोरं मृगव्यालसमाकुलम् ॥ १ ॥ यादवी
पत्नी या तस्यै देवि गरं ददौ ॥ वंध्या सपत्नी काचिद्वै
पूर्णमानसा ॥ २ ॥ हतराज्यस्तु बाहुर्वै इंधनाद्यैश्चितिं
रचयित्वा महेशानि मर्तुं वै कृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ आरू
तांतत्र बाहुर्नाम महीपतिः ॥ यादवी सापि देवेशि पत्य
चिति स्थिता ॥ ४ ॥ न्यवारयत्तु तां बाहुस्सगर्भां निज
म् ॥ बाहुः पञ्चात्मकं देहं दग्ध्वा स्वर्गपुरं ययौ ॥ ५ ॥
तु महाभागा संस्कारमौर्वकारितम् ॥ चकार सर्वकर्माणि
तीरे महेश्वरि ॥ ६ ॥ कृत्वा वै सर्व कर्माणि और्वा
ययौ ॥ कालेन दशमे मासि सुषुवे चन्द्रवर्चसम ॥ ७ ॥
सह संजातमौर्वस्तं प्रत्युवाच ह ॥ सगरोयं नृपो जातः कृता
दृशो युधि ॥ ८ ॥ जातकर्मादिकर्माणि कारयामास वै

महादेवजी बोले—शत्रुओंके द्वारा राज्यके छीनलिये जानेपर बाहुनाम
मृगों और सर्पों अर्थात हिंसक जन्तुओंसे आकीर्ण हुए घने वनमें चला गया ॥ १ ॥
इसकी दूसरी पत्नीने गर्भवती रानीको गर अर्थात—विष इसकारण देदिया कि,
बंध्याथी अतएव उसके चित्तमें क्रोध अधिक व्याप्त होरहा था ॥ २ ॥ हे महादेवि !
बाहुके राज्यका अपहरण होगया तब उसने काष्ठद्वारा चिताको निर्माणकर
लिये निश्चय किया ॥ ३ ॥ राजा बाहु जब चितामें उपविष्ट हुए तब हे देवि
(दूसरी) रानीभी पतिके साथ चितामें बैठगई ॥ ४ ॥ और राजाने अपनी गर्भ
मृतक होनेसे निषेध करदिया, तथा वोह स्वयम भस्मीभूत होकर स्वर्गलोकको
॥ ५ ॥ रानीने उसके सब और्ध्वदैहिक संस्कार नदीके तीरपर सम्पादन किये
समस्त कर्मोंसे निवृत्त होकर वोह रानी और्व ऋषिके आश्रममें चली गई, और
महीने एक ऐसे सुन्दर पुत्रको जना कि, जिसकी कान्ति चन्द्रमाकी समानथी ॥
'गर' अर्थात् विषके साथ जो उत्पन्न हुआथा अतएव और्व ऋषिने उसके प्रति यह
सगर नामका यह राजा युद्धमें कालके सदृश दुर्जेय होगा ॥ ८ ॥ फिर और्व

जातस्य सगरस्यासावौर्वो नाम महातपाः ॥ ९ ॥ सगरोपि ततो बाल्ये चचाराश्रमके मुनेः ॥ बालक्रीडनकैः सर्वैर्मुनीनां बालकैः सह ॥ १० ॥ भिन्नैव प्रकृतिर्जाता सगरस्य महात्मनः ॥ मुनीनां बालकेभ्यश्च शौर्य्यादिगुणसंयुतः ॥ ११ ॥ अथ कौमारतां प्राप्तो मृगयासक्तमानसः ॥ चचार विपिने तत्र निघ्नन् मृगगणान् बहून् ॥ १२ ॥ एकस्मिन् समयेसौ वै सगरो नाम बाहुजः ॥ पप्रच्छ मातरं देवि विस्मयाविष्टमानसः ॥ १३ ॥ सगर उवाच ॥ आश्चर्य्यं परमं मातर्ममास्त्यद्य महावने ॥ गताः स्मः शतशो बाला आहर्तुं समिधः कुशान् ॥ १४ ॥ मामूचुस्तत्र ते सर्वे मातृपुत्रोसि हा कथम् ॥ न ते दृष्टः पितास्माभिर्ब्राह्मणः क्षत्रियोथवा ॥१५॥ किं गोत्रोसि कथं जातो भवांस्त्वद्य महावने ॥ संकल्पकाले भवता क्रियते किं कथं क्रिया ॥ १६ ॥ जनन्युवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पितुर्वृत्तं तवाद्य वै ॥ बाहुर्नाम महातेजाः क्षत्रियांतकरः प्रभुः ॥ १७ ॥ विजयाय मनश्चक्रे राज्ञां सर्वदिशां सुत ॥ ते सर्वे पृथिवीपाला यत्र-

र बालकके जातकर्म आदि सब संस्कार किये ॥ ९ ॥ और सगरभी बाल्यावस्थामें ऋषिके श्रममें विचरने लगा अथ च मुनियोंके बालकोंके साथ क्रीड़ा करने लगा ॥ १० ॥ इसमें ता आदि (क्षत्रियोंके) गुण विद्यमानथे अतएव सगरकी प्रकृति ऋषिकुमारोंसे भिन्नहुई ११ ॥ जब इसकी कुमार अवस्था हुई तब इसका चित्त मृगयामें आसक्त हुआ, और में विचरकर अनेक मृगोंका वध करने लगा ॥ १२ ॥ एकसमय वोह राजा सगर अपने नमें आश्चर्यान्वितहो अपनी मातासे पूछने लगा ॥ १३ ॥ सगर बोला–हे माता ! आज बड़े आश्चर्यकी प्राप्ति हो रहीहै, आज हम सैकड़ों बालक समिधा कुशा लेनेको वनमें थे ॥ १४ ॥ वहां वे सब मुझसे कहने लगे कि, तू कैसा अपनी माताका पुत्रहै ? हमने पिताको देखाही नहीं, न जाने वोह ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कौन था ॥ १५ ॥ तुह्मारा क्याहै और तुम इस वनमें कैसे उत्पन्न हुए, और संकल्पके समय न जाने तुम किस र क्रिया करतेहो ॥ १६ ॥ माता बोली–हे पुत्र ! मैं अब तुम्हारे पिताका वृत्तान्त वर्णन हूं, सुनो ! बाहुनाम बड़ा प्रतापी राजाथा जिसने कि, क्षत्रियोंका संहार कियाथा ॥१७॥ राजकुमारने सब दिशाओंके समस्त राजाओंका विजय करनेके लिये विचार किया, (उसकी

नाद्या महौजसः ॥ १८ ॥ हृतवंतो महाराज्यं ता
महामते ॥ पिता तवागतोरण्ये मया सह मुनेस्तदा ॥
लज्जायुक्तो महाबाहुश्चितां वै अध्यरोहत ॥ प्रविशंतीं तु म
स्तदासौ प्रत्यवारयत ॥ २० ॥ राजा पंचात्मकं देहं
स्वर्गपुरं ययौ ॥ त्वमत्रैव हि संजातो मुनिना संस्कृतो
॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो मातुरमर्षापूर्णमा
संदश्य दंतैरोष्ठं हि ववंदे मुनिवंदितम ॥ २२ ॥ और्वो
दृष्ट्वा बुद्धिमंतं नृपात्मजम ॥ ददावाग्नेयमस्त्रं हि सगराय म
॥ २३ ॥ लब्ध्वा तत्परमास्त्रं वै अप्रधर्ष्य सुरासुरैः ।
चारीन्मनश्चक्रे ये तदा पृथिवीश्वरः ॥ २४ ॥ इति श्री
केदारखंडे सौरवंशानुकीर्त्तने सगरोपाख्याने स
ध्यायः ॥ २७ ॥

माता बोली) हे महामतिमान् ! यवन आदि उन बड़े २ पराक्रमी राजाओंने तु
अपहरण कर लिया ॥ १८ ॥ तब तुम्हारे पिता मुझे साथले मुनिके आ
॥ १९ ॥ और वोह महाबाहु लज्जितहो चितामें आसीन हुए, और जब मैंभी
आरूढ होने लगी तब इन और्व ऋषिने मुझे निषेध करदिया ॥ २० ॥ और रा
भौतिक शरीरको भस्मकर स्वर्गलोकको चले गये, एवम तुम्हारा जन्म इसी स्था
मुनिने तुम्हारा संस्कार किया ॥ २१ ॥ महादेवजी बोले-माताके यह वचन सु
चित्तमें क्रोधका आवेश होआया और उसने दांतोंसे ओठोंको चबाकर ऋषिको
॥ २२ ॥ और्वऋषिने राजकुमार सगरको बुद्धिमान जान, उस महात्माको
प्रदान किया ॥ २३ ॥ उस परमोत्तम आग्नेय अस्त्रको ग्रहणकर वोह सगर दे
दानवों दोनोंहीके द्वारा अजेय होगया अतएव उसने अपने शत्रुओंका विजय
मनसूबा किया ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

ईश्वर उवाच ॥ आग्नेयास्त्रं ततो लब्ध्वा महात्मा सत्यसंगरः ॥
मुनेराज्ञां गृहीत्वा तु प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ १ ॥ ययौ जेतुं पितुः
शत्रूनाग्नेयबलसंयुतः ॥ २ ॥ हैहयांस्तालजंघाश्च यवनान् पल्लवां-
स्तथा ॥ निजघान महातेजाः कालेनेह यथा पशून् ॥ ३ ॥
तेवशिष्टा महीपाला वसिष्ठं शरणं ययुः ॥ खंडीभूताः स्त्रियो
वेषा जातास्तत्र महीश्वराः ॥ ४ ॥ वसिष्ठोपि महातेजाः सगरं
प्रत्यवारयत् ॥ सगरस्तां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं प्रणम्य च ॥
तेषां धर्मं जघानासौ सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ५ ॥ सगरेण कृता
भूपा महाबलपराक्रमाः ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारांस्तथा चांडाल-
कर्मकान् ॥ ६ ॥ चकार सहसा राजा जटिलान् श्मश्रुधारिणः ॥
न जाताः कालिकाः सर्पा दार्वा वै केरलाः शकाः ॥ ७ ॥ मुद्गलाः
पट्टकाः शल्लाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ सोपि राजा महाबाहुर्जित्वा
द्धर्म्मसुत्तमम् ॥ ८ ॥ महार्हवस्त्राभरणो नानासैनिकसैनिकः ॥
रथाश्वगजसंपूर्णः सगरो वृकजात्मकः ॥ ९ ॥ अयोध्यायां महा

महादेवजी बोले—उस सत्यवादी महात्मा सगरने आग्नेय महा अस्त्रको ग्रहणकर मुनि
आज्ञा ग्रहणपूर्वक उन्हें वारंवार प्रणाम किया ॥ १ ॥ आग्नेय महाअस्त्रके बलसे संपन्न
र सगरने अपने पिताके शत्रुओंके विजय करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ २ ॥ हैहय,
जंघ, यवन तथा पल्लव इन सबका उसने इस प्रकार हनन किया, जैसे वधिकगण पशुओं-
वध करतेहैं ॥ ३ ॥ जितने राजा अवशिष्ट बचेथे वे सब वशिष्ठजीकी शरणमें आये, और
की स्त्रियोंके वेश खंडित होगये ॥ ४ ॥ वशिष्ठजीने सगरको युद्ध करनेसे निषेध किया,
सगरने गुरुजीको प्रणाम करके उनकी आज्ञाको स्वीकार किया, एवं च उनके धर्मका
श किया ॥ ५ ॥ तथा सगरने उन सब राजाओंको स्वाध्यायरहित और चाण्डालोंकी
न कर्म करनेवाला बनादिया ॥ ६ ॥ सगरके भयसे राजाओंने लंबी २ जटा और बडी २
धारण करलीं, केरल आदि समस्त राजाओंहीमे अपनी ऐसी दशा बनाली ॥ ७ ॥ मुद्गल
शाल इन धर्मबहिष्कृत राजाओंका विजयकर उत्तमोत्तम वस्त्रालंकार तथा रथाश्वादि सै-
युक्त हो अयोध्यामें वास करनेवाले सगरने तमाम भूमंडलको अपने वशीभूत करलिया,

तेजा वशीकृतमहीतलः ॥ शशास पृथिवीं सर्वां ससागरवन
॥ १० ॥ कोशलाः केरला वंगाः कौंकणा द्रविडास्तथा ॥
गाश्च महाराष्ट्राः गुर्जराः कुरवः खसाः ॥ ११ ॥ शाल्वाः कै
काः शौणा माद्राः पौंड्रास्तथापरे ॥ उपायनानि चित्राणि
नराधिपाः ॥ १२ ॥ अयोध्यापि तदा देवि बभौ तेन मही
रथ्यागोपुरवप्रैश्च शोभिता गिरिजे प्रिये ॥ १३ ॥ तस्य
द्वयं देवि बभूव मुनिवंदिते ॥ ज्येष्ठा विदर्भदुहिता के
परिश्रुता ॥ १४ ॥ कनिष्ठा तस्य पत्नी तु रूपेणाप्रति
वि ॥ अरिष्टनेमेर्दुहिता कमलाक्षीति विश्रुता ॥ १५ ॥
रते नित्यं बभूवतुरनिंदिते ॥ तदाज्ञाकारके देवि ते पत्न्यौ
हि ॥ १६ ॥ एकदा सगरो देवि वने तस्य महात्मनः ॥
स्य मुनिवंद्यस्य पत्नीभ्यां स जगामह ॥ १७ ॥ निषिद्ध
राजा चिकीर्षुर्मुनिदर्शनम् ॥ तमागतं तदा दृष्ट्वा औवों म
हामुनिः ॥ १८ ॥ पाद्यमाचमनीयं च चकारातिथ्यमुत्त

सागर, वन और वृक्षोंसहित समस्त भूमिका यह शासन करने लगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ १०
केरल वंग, कौंकण, द्राविड़, तैलिंग, महाराष्ट्र, गुर्जर और खशिये ॥ ११ ॥
मद्र इत्यादि अनेक राजालोगोंने विचित्र भेंटे उसे प्रदान करीं ॥ १२ ॥ हे
गिरिराजकुमारी प्यारी !!! गली कूंचे और क़िलेसे अलंकृत हुई अयोध्यापुरीभी
प्राप्त होकर विशेष शोभाको प्राप्त होने लगी ॥ १३ ॥ हे मुनिवन्दिते महादेवि !
की दो पत्नियें थीं, उनमें बड़ी रानी विदर्भ देशके राजाकी कन्या थी, और
केशिनी था ॥ १४ ॥ सगरकी छोटी रानी भूमिके ऊपर अनुपम रूपवती थी,
नाम अरिष्टनेमि और इसका नाम कमलाक्षी था ॥ १५ ॥ सर्वजन प्रशंसित वे
पातिव्रत्य धर्मका नित्य पालन करती थीं, एवं च सदैवही अपने पतिकी आज्ञाका
तीथीं ॥ १६ ॥ एकसमय राजा सगर अपनी दोनों पत्नियोंको साथ लेकर मु
बन्दनीय महात्मा और्व ऋषिके आश्रममें गये ॥ १७ ॥ राजाने अपनी सेना
दिया और स्वयम महर्षिके दर्शन करनेके तईं उनके आश्रममें गया, राजाको
महामुनि और्वने ॥ १८ ॥ पाद्य और आचमनीय आदि देकर उसका उत्तम

दत्तासनं महाराजं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥ १९ ॥ स्वागतं च महेशानि चकार विधिवन्मुनिः ॥ तस्य पत्न्यौ महाभागे प्रणनामतुरौर्वकम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा स विनयं राज्ञोरुवाच वचनं हितम् ॥ विनयाविष्टमनसोर्मुनीनां प्रवरो मुनिः ॥ २१ ॥ और्व उवाच ॥ षष्टिं पुत्रसहस्राणामेका गृह्णातु वै वरम् ॥ एकं वंशधरं पुत्रं गृह्णातु सत्वरं पुनः ॥ २२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्यौर्वस्य वचः श्रुत्वा ज्येष्ठा चैव कनीयसी ॥ प्रहृष्टमनसा देवि चिंतयामासतुस्तदा ॥ ॥ २३ ॥ तत्रैका केशिनी नाम विदर्भतनया सती ॥ उवाच वचनं हृष्टा तं मुनिं वरदं स्थितम् ॥ २४ ॥ केशिन्युवाच ॥ भगवन् मे सुतान् षष्टिसहस्राणि मुनीश्वर ॥ महापौरुषसंयुक्तान्मेरुमंदरसन्निभान् ॥ २५ ॥ कमलाक्ष्युवाच ॥ एकं वंशधरं पुत्रं देहि देव मुनीश्वर ॥ न कांक्षे षष्टिसाहस्रं यदि ते वंशहारकाः ॥ ॥ २६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ उक्तं तयोस्तु वचनं यथारुच्यब्रवीद्वचः गृहीत्वा तद्वरं राज्ञौ सगरश्च महायशाः ॥ २७ ॥ आययुर्नगरे

...ार किया और उसे आसन देकर मुनिने उससे कुशल पूंछी ॥ १९ ॥ हे महेश्वरि ! मुनिने ...सका भली भांति स्वागत (सत्कार) किया, और सौभाग्यवती दोनों रानियोंनेभी महर्षि ...ौर्वको प्रणाम किया ॥ २० ॥ राजाकी ऐसी नम्रता देखकर ऋषिवर और्वके चित्तमें विन...का प्रादुर्भाव हुआ और वे राजासे हितकारी वचन बोले ॥ २१ ॥ और्वने कहा—हे राजन् ! ...म यह वर देतेहैं कि, तुम्हारी एक रानीके साठसहस्र पुत्र उत्पन्न होंगे, और दूसरी रानी ऐसे ...क पुत्रको जनैगी, जो अपने वंशका धारण करनेवाला होगा ॥ २२ ॥ महादेवजी बोले— ...ड़ी और छोटी दोनों रानियें महर्षि और्वके यह वचन सुन बड़ी प्रसन्न हुईं और अपने ...त्तमें विचार करनेलगीं ॥ २३ ॥ उनमेंसे एकरानी जो विदर्भदेशके राजाकी कन्या केशिनी ..., वोह वरप्रदान करनेवाले उन मुनिसे बोली ॥ २४ ॥ केशिनीने कहा—हे मुनीश्वर ! बड़े ...रुषार्थी अतएव सुमेरु पर्वतकी सदृश दृढ साठसहस्र पुत्र मुझे दीजिये ॥ २५ ॥ कमलाक्षी ...ली--हे देवाधिदेव मुनिराज ! मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जो वंशका धारणकर्त्ता हो, मैं ...ठसहस्र पुत्रोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा कभी नहीं करती यदि वे वंशविनाशी हों ॥ २६ ॥ ...ादेवजी बोले इन दोनों रानियोंके वचन सुनकर ऋषिने कहा " एवमस्तु " इस प्रकार ...को ग्रहणकर महायशस्वी राजा सगर ॥ २७ ॥ विविध प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरपूर हुए

स्वीये नानासंपत्समाकुले ॥ नानावादित्रघोषेण कृतमंगल
णि ॥ २८ ॥ अथ काले केशिनी तु तुंबीमेकां व्यजीज
कृमिसादृश्यपुत्रैस्तु संपूर्णां निबिडैः श्रुतिः ॥२९॥ धात्र्यस्त
देवेशि पुत्राणांचैव संख्यया ॥ राज्ञा नियुक्ताः पुत्रेभ्यः कृमि
भ्य एव हि ॥ ३० ॥ कृत्वा नीडानि तूलस्य न्यस्तास्ते
तास्ततः ॥ पयसो विंदुभिर्धात्र्यो जीवयामासुरंजसा ॥३१
लेन देवि ते सर्वे कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ धात्रीभिर्लालिता
क्षिता नातिसत्कृताः ॥ ३२ ॥ दुहितारिष्टनेमेस्तु कमला
नामतः ॥ सुषुवे पुत्रमेकं च ह्यसमंजसनामकम् ॥ ३३ ॥
पि राजा महाबाहुः सगरो नाम बुद्धिमान् ॥ दृष्ट्वा तान्
देवि श्रुत्वा स्पष्टं च बालिशम् ॥ ३४ ॥ प्रहर्षं परमं लेभे
त्साहः परंतपः ॥ यथा महोदधेः पूरो दृष्ट्वा पूर्णं कलानि
॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे वंशानुकीर्तने सौरे
पाख्याने सगरपुत्रोत्पत्तिर्नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अपने नगरमें लौट आये, उस समय अनेक प्रकारसे वाद्योंका नाद होकर मंगल
आचरण होने लगा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर केशिनी रानीने एक तुंबी जनी,
कीडोंकी समान साठसहस्र पुत्र भर रहेथे ॥ २९ ॥ कृमिरूप पुत्र जितने गिन्तीमें
उतनीही धायें उनके लिये नियुक्त करीं ॥ ३० ॥ रुईके पैलोंमें उन पुत्रोंको रख
बार २ बूंद २ दूध पिलाकर धायें उनका पालन करने लगीं ॥ ३१ ॥ समय पाकर
उन बालकोंकी कान्ति सूर्यकी सदृश प्रदीप्त होगई, एवं न धात्रियें उनका पालन
लगीं और सत्क्रियाकी शिक्षा देने लगीं ॥ ३२ ॥ राजा अरिष्टनेमिकी कमला
कन्या थी उसने असमंजस नाम एक पुत्र जना ॥ ३३ ॥ आजानुबाहु और अति
मान् राजा सगरने जब यह सुना कि—हमारे पुत्रोंका जन्म हुआहै ॥ ३४ ॥
उत्साहपूर्वक अत्यन्त तपस्वी उस राजाको अतिशय आनन्दकी प्राप्ति हुई, एवं
और उत्साहकी ऐसी वृद्धि हुई जैसे परिपूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्रका पूर बढता

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

ईश्वर उवाच ॥ ततः कालेन केनापि सगरस्यात्मजाः शुभाः ॥ यौवनं वय आपन्नाः कृतविद्या महौजसः ॥१॥ कृतोपवीताः सोद्वाहाः कुमारादित्यवर्चसः ॥ सर्वास्त्रविद्यानिपुणा धनुर्वेदपरायणाः ॥ २ ॥ दौहित्रोरिष्टनेमेस्तु असमंजसनामकः ॥ कृतोद्वाहोपि राज्ञा वै परस्त्रीनिरतोभवत् ॥ ३ ॥ बलान्निगृह्य केषांचिदाजहार भृशं स्त्रियः ॥ इति संतापितास्तेन प्रजाः परमदुःखिताः ॥ ऊचुः प्रांजलयो देवि राजानं सगरं तदा ॥ ४ ॥ प्रजा ऊचुः ॥ जय राजन् महाराज दुःखिताःस्मो भृशं वयम् ॥ अयं तवात्मजो नाम्नासमंजस इति श्रुतः ॥ ५ ॥ स्त्रियोस्माकं बलादेव हरते च धनं तथा ॥ कथं वै स्थीयतामत्र प्रजाभिरिति चेद्वद ॥ ६ ॥ तदाज्ञापय नो राजन् गच्छामोद्य वयं प्रभो ॥ त्यागो मास्त्वस्य पुत्रस्य गमिष्यामो वयं वनम् ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं प्रजाया वृकजात्मजः ॥ पुत्रत्यागं ममन्ये हि सा-

महादेवजी बोले–इसके अनन्तर कुछ समय अतिक्रान्त होजानेपर राजा सगरके वे नोहर पुत्र जब युवा अवस्थाको प्राप्तहुए तब उन महापराक्रमियोंने संपूर्ण विद्या सीखली १ ॥ सूर्यकी समान कान्तिवाले उन राजकुमारोंका यज्ञोपवीत और विवाह किया गया, मस्त अस्त्रविद्या सीखकर उन्होंने धनुर्वेद (अर्थात्–धनुष विद्या) कोभी सीखा ॥ २ ॥ द्यपि अरिष्टनेमिके दौहित्र असमंजसका भी राजाने विवाह तौ करदिया था तथापि वोह परयोंमें आसक्त हुआ ॥ ३ ॥ वोह असमंजस किन्हीके बालकोंको और किन्हीकी स्त्रियोंको डाव् पकड़ लेता था, इसकारण उसके द्वारा परम सन्तप्त होनेके कारण प्रजा बड़ी दुःखित गई, अतएव हे देवि ! प्रजालोग राजाके पास जाय हाथ जोड़ कहने लगे ॥ ४ ॥ प्रजा ली–-जय महाराज ! आपकी जयहो, हमलोग बड़े दुःखित होरहे हैं, हे राजन् ! आपका ह असमंजस ॥ ५ ॥ हमारी स्त्रियों और धनको जबरदस्तीसे अपहरण कर लेताहै, अब पही बताइये ! हमलोग यहां कैसे रह सक्तेहैं ॥ ६ ॥ सो महाराज ! आज्ञा दीजिये हम न्यत्र चलेजाँय, आप इस पुत्रको तौ क्यों त्यागेंगे, इस लिये हमें ही चलेजाना चाहिये ७ ॥ महादेवजी बोले–-जब राजाने अपनी प्रजाके ऐसे वाक्य श्रवण किये, तब उसने

धु नैव प्रजाःशुभम् ॥ ८ ॥ यस्त्वसमंजसो हीनः नाम्ना पंच
सुतः ॥ तमुवाच महातेजाः सगरो नाम वीर्य्यवान् ॥ ९ ॥
थेच्छं गच्छ दुर्बुद्धे न त्वया कार्यमस्ति मे ॥ कर्मणा दुःखितो
त्याज्योसि सांप्रतं मम ॥ १० ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ना
चजनस्तु सः ॥ जगाम सहसारण्यं मृगव्यालशताकुल
॥ ११ ॥ तस्य पुत्रं महेशानि नाम्ना अंशुमतं प्रियम् ॥
बहुतरं राजा ममन्ये जगतीपतिः ॥ १२ ॥ ते तस्य
शतशो वयः प्राप्य तु यौवनम् ॥ ययुर्दिग्विजयं कर्त्तुं म
पराक्रमाः ॥ १३ ॥ सर्वान् वै पृथिवीपालान्वशं निन्यु
भुजाः ॥ जित्वा ससागरां पृथ्वीमाययुः स्वपुरे पुनः ॥
एकदा सगरस्याभूद्यष्टुं मनसि शार्ङ्गिणम ॥ हयमेधेन
दृष्ट्वा तान् वै महाबलान् ॥ १५ ॥ दीक्षितश्चाभवद्राजा हय
य पार्वति ॥ अश्वं वै चारयामास पुत्रांश्चैव महाबलान् ॥
चारयित्वा तमश्वं तु पृथिवीं सगरात्मजाः ॥ आययुर्यज्ञभू

पुत्रका परित्याग करके प्रजाका शुभ (हित) करनेके लिये विचार किया ॥
राजा सगर असमंजसको बुलाय उससे यों कहने लगे ॥ ९ ॥ अरे दुर्बुद्धि ! ज
आवै चलाजा, अब हमारा तुझसे कोई कार्य नहींहै, तेरा आचरण ऐसा निन्दनीय
मैं तेरा परित्याग अवश्य करूंगा ॥ १० ॥ राजा सगरके यह वचन सुनकर वो
सैकड़ों मृगोंसे आकीर्ण हुए वनमें तत्काल चला गया ॥ ११ ॥ हे महेश्वरि ! उ
पुत्र अंशुमान नामका था, जगत्के पालनकर्त्ता राजा सगरने अपने इस पौत्रहीको
प्रिय बनाया ॥ १२ ॥ अथ च राजाके प्रिय सैकड़ों पुत्रोंनेभी युवा अवस्थाको
अनन्तर दिग्विजय करनेका विचार किया क्योंकि, वे स्वयं अत्यन्त बलिष्ठ और
॥ १३ ॥ उन महाबाहुओंने संपूर्ण राजाओंको अपने वशमें करलिया, समुद्रपर्यन्त
विजय करके फिर वे सब अपने नगरमें लौट आये ॥ १४ ॥ हे देवेशि ! एकसमय
सगरने अपने पुत्रोंको देखा कि, यह बडे बलशालीहैं; तब उसके चित्तमें यह वि
हुआ कि--अश्वमेध यज्ञकरके ईश्वरको प्रसन्न करना चाहिये ॥ १५ ॥ हे महादे
सगर अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये स्वयम् दीक्षित होकर बैठे और उन्होंने
महाबली पुत्रोंको पृथ्वीपरिक्रमाके लिये भेजा ॥ १६ ॥ राजा सगरके पुत्र भी

यत्र राजा सुदीक्षितः ॥ १७ ॥ एवं बहुविधान् यज्ञांश्चकार विधिना प्रिये ॥ एकदा सगरो राजा पुनरश्वं चचारह ॥ १८ ॥ ते पुत्राः सगरस्याहो षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ॥ गतास्तदनु देवेशि यत्र वै घोटको गतः ॥ १९ ॥ तान् दृष्ट्वा सहसा देवो विजिगीषून् पुरंदरम् ॥ पुरंदरोपि संत्रस्तो देवैः सह ययौ हरिम् ॥ २० ॥ सुरासुरैः सेव्यमानं शेषपर्य्यंकशायिनम् ॥ उवाच परमत्रस्तो विष्णुं त्रैलोक्यनायकम् ॥ २१ ॥ इंद्र उवाच ॥ नमस्तेस्तु सुराध्यक्ष नमस्त्रैलोक्य मंगल ॥ नमस्तेस्तु सुरेन्द्राय नमस्त्रैलोक्यरूपक ॥ २२ ॥ न ते रूपं न वयसः पारं जानाति कश्चन ॥ आदिं न वा न वा चांतं मध्यं नैव तवेश्वर ॥ २३ ॥ अप्सु वै द्रवरूपोसि तेजस्सु द्योतकात्मकः ॥ वायौ शोषणशक्तिस्त्वमाकाशे व्यापकात्मकः ॥ ॥ २४ ॥ पृथिव्यां गंधरूपोसि काले चासंख्यरूपकः ॥ धैर्य्य-

श्वको फिराकर यज्ञभूमिमें जहां कि, राजा दीक्षित हुए उपस्थित थे आये ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! राजासगरने इस प्रकार विधिविधानसे अनेक यज्ञ किये, एकसमय राजा सगरने फिर श्वका पारित्याग किया ॥ १८ ॥ हे महेश्वरि ! राजा सगरके साठसहस्र वे पुत्रभी उस श्वके पीछे २ जहां वोह घोड़ा जाताथा वहांही जातेथे ॥ १९ ॥ हे देवि ! देवताओंने इन जकुमारोंको देखा कि यह इन्द्रका विजय करनेकी कामनासे आयेहैं, और इसीकारण देवज इन्द्रभी भयभीत हुए और देवताओंको साथले नारायणके समीप गये ॥ २० ॥ त्रिलोकेके स्वामी विष्णु भगवान्‌की देवता और दानव सेवाकरते रहते हैं, अथ च भगवान् शेषशाके ऊपर शयन कररहेहैं, भगवान्‌के निकट जाय भयभीत हो इन्द्रने यह वाक्य कहे ॥ २१ ॥ द्र बोले--हे देवताओंके अधीश्वर ! आपको नमस्कारहै, आप त्रिलोकीका मंगल विधान तेहैं, और आपही समस्त देवताओंके अधिपतिहैं अतएव हम आपको प्रणाम करतेहै, च त्रिलोकीमें सर्वत्र आपही व्यापकहैं अतएव आपको नमस्कारहै ॥ २२ ॥ हे श्वर ! कोई व्यक्ति आपके (अनन्त) रूप और आयुके अन्तको नहीं जानता, और आपके आदि मध्य और अवसान अर्थात् जन्म, जरा, मरण जाननेकी भी किसीकी शक्ति नहींहै ॥ २३ ॥ जलमें द्रवरूपसे, तेजमें प्रकाश रूपसे, वायुमें शोषण शक्तिके रूपसे और काशमें सर्वव्यापकतारूपसे आपही व्याप्त होरहेहैं ॥ २४ ॥ भूमिमें गन्धरूप और ाल (समय) में अनन्तरूप आपहीहैं, मनमें धैर्यरूप एवम् सब दिशाओंमें पृथक् २

रूपो हि मनसि दिक्षु त्वं पृथगात्मकः ॥ २५ ॥ आ
सर्वकर्ता त्वं जगत्प्रलयकारणम् ॥ कर्मणां गतिरूपोसि
स्त्वं सर्वदेहिनाम् ॥२६॥ ददासि दातृरूपेण हरस्याहर्तृरू
सृजसि ब्रह्मरूपेण पितृरूपेण पोषासि ॥२७॥ यमरूपेण हर्त्ता
रूपेण दुःखदः ॥ सत्कर्मणः स्वरूपेण स्वर्गदोसि जनार्दन ॥
अपारद्रवरूपस्त्वं बहिर्ब्रह्मांडबाह्यतः ॥ लूतांडा इव राजं
ब्रह्मांडपंक्तयः ॥ २९ ॥ नमस्ते शतशो देव त्राहि मां स
जाः ॥ बाधंते ते भूमितलं स्वर्गं वै जेतुमिच्छवः ॥ ३०
यः क्रियतामेषां विनाशाय दुरात्मनाम् ॥ त्वन्नः पालयि
सर्वस्य जगतः प्रभो ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छ
शाः सर्वे न भेतव्यं सुरोत्तमाः ॥ उपायं वो वदाम्यद्य त
सुरोत्तमाः ॥३२॥ हत्वातमश्वं यज्ञीयं नयध्वं सुमुनेः स्थ
कापिलरूपेण स्थितोहं तद्विनाशकृत ॥ ३३ ॥ ईश्वर उ

आत्मस्वरूपसेभी आपही व्याप्त होरहेहैं ॥ २५ ॥ समस्त सृष्टिमात्रके
आपहीहैं, सबके निर्माण कर्त्ता और जगत्का प्रलय करनेवालेभी आपहीहैं,
किये जातेहैं उनके गतिरूप अय च समस्त देहधारियोंके कालरूपभी आप
दाता बनकर आप सबको देतेहैं, अपहरणकर्त्ता रूपसे आपही हरभी लेतेहैं,
को रचकर पितृरूपसे उसका पालनभी आपही करतेहैं ॥ २७ ॥ यमरूपसे
कर्मरूपसे दुःखदेते और हे जनार्दन ! सत्कर्मस्वरूपसे स्वर्गभी आपही देतेहैं
द्रवरूपभी आपहीका प्रतीत होताहै, और आपके शरीरमें यह ब्रह्माण्डकी पंक्ति
विराजमान हैं जैसे मकडीके जाले लगे रहतेहैं ॥ २९ ॥ हे देव
कडों प्रणामहैं, सगरराजाके पुत्रोंसे मेरी रक्षा करो, हे नाथ ! भूमण्डलको
वे अब स्वर्गका विजय करनेको आयेहैं ॥ ३० ॥ इन दुष्टोंका विनाश
आप उपाय सोचिये, क्योंकि हे प्रभो ! हमारे तथा सब जगत्के पालनकर्त्ता
॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे देवताओं ! तुम सब जाओ ! निश्चिन्त रहो, और
बतावें उसे करो ॥ ३२ ॥ उनके यज्ञीय अश्वका आप हरणकरके कापिलजीके आ
और वहां मैं उनका विनाश करनेके लिये कपिलका रूप बनाके बैठताहूं ॥ ३३

इति श्रुत्वोक्तवचनं शार्ङ्गिणः सर्वदेवताः ॥ ययुर्यथागतं देवि यथास्थानं यथागृहम् ॥ तेषां चारयितामश्वं समुद्रनिकटे विभुः ॥ ३४ ॥ संजहार हयं तूर्णमदृष्टिविषयस्ततः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा हृतं तमश्वं वै विस्मयाविष्टचेतनाः ॥ चक्रुरन्वेषणं तत्र बहुशो घोटकस्य हि ॥ ३६ ॥ अप्राप्ते घोटके वीरा निचख्नुः पृथिवीतलम् ॥ निचखन्तोपि सर्वत्र नावापुर्हयमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ पितुः समीपमागत्य तेने वृत्तं हयात्मकम् ॥ श्रुत्वा तदानीं सगरो भर्त्सयामास तान् सुतान् ॥ ॥ ३८ ॥ भर्त्सितास्ते तदा राज्ञा सगरेण महात्मना ॥ ययुस्तूर्णं सागरास्तु हृतो यत्र हयोत्तमः ॥ ३९ ॥ निचख्नुः पृथिवीं भूयः परिघोपमितैः करैः ॥ कुद्दालाग्रैरेकवारं भूमिं वै योजनायताम् ॥ ४० ॥ निचखंतो ययुस्तूर्णं पातालेंधतमोवृते ॥ गजं पूर्व दिशासंस्थं ददृशुः पर्वतोपमम् ॥ ४१ ॥ पप्रच्छुस्तं गजं दृष्ट्वा हयान्वेषणतत्पराः ॥ किंचिन्नोवाच तान् सोपि धिगुक्त्वा तं ययुः

बोले--जब सब देवताओंने भगवान्के इस प्रकार उक्त वाक्योंका श्रवण किया, हे देवि ! वे सब अपने २ स्थानों और घरोंको चले गये ॥ ३४ ॥ राजा सगरके पुत्र सागरके निकट अश्वको चरा रहेथे, वहांसे सहसा इन्द्रने उसे हरलिया और स्वयं अदृश्य होगया ॥ ३५ ॥ अश्वके अपहरणरूप वृत्तान्तको देखकर सब राजकुमार अपने २ चित्तमें आश्चर्यान्वित होगये और विविधभांतिसे उस अश्वका अन्वेषण करने लगे ॥ ३६ ॥ जब उन वीर राजकुमारोंको अश्व प्राप्त न हुआ, तब उन्होंने भूमिका खोदना प्रारम्भ किया, भूमिका सर्वत्र खनन करनेसे भी उन्हें उत्तम अश्वकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ ३७ ॥ तब वे अपने पिताके निकट आये और उन्होंने अश्वके अपहरणका सब वृत्तान्त कहा, यह बात सुनकर सगरने राजकुमारोंको बहुत कुछ फटकारा ॥ ३८ ॥ महात्मा सगरके द्वारा ललकारे जाकर वे साठहजार सगरराजकुमार उसी स्थानमें आये जहां वोह उत्तम अश्व हरागया था ॥ ३९ ॥ और वज्रकी सदृश दृढ भुजाओंसे भूमण्डलके खननमें प्रवृत्त हुए, जैसे कोई कुदालसे खोदताहै ऐसेही एक २ बारमें एक २ योजन अर्थात् चार २ कोस भूमिको खोदने लगे ॥ ४० ॥ सहसा खनन करते २ अन्धकारसे व्याप्त हुए पातालमें पहुंचे और वहां पर्वतकी समान आकारवान् दिग्गजको पूर्वदिशामें स्थितहुआ देखा ॥ ४१ ॥ राजकुमार तौ अश्वका अन्वेषण करनेमें तत्पर होही रहेथे अतएव दिग्गजको देख उससे पूछने लगे, परन्तु उसने कुछभी उत्तर नहीं दिया तब वे उसे

पुरः ॥ ४२ ॥ पुनर्द्वितीयं नागेंद्रं ददृशुः सगरात्मजाः ॥
मन्य गजं तं च पश्चिमायां गतास्ततः ॥ ४३ ॥ ददृशुस्तत्र
लं ध्यायमानं जनार्दनम् ॥ अग्निपुंजमिताः सर्वे द्योतयंते
दश ॥ ४४ ॥ नीतो हयोपि तत्रैव वासवेन पुरा तु यः
वै पृष्ठतस्तस्य कपिलस्य महात्मनः ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा हयं
वि चौरं तं मेनिरे तदा ॥ भर्त्सयामासुरव्यग्रं चौरचौरेति
कृत् ॥ ४६ ॥ भर्त्स्यमाणोपि कपिलो न जहौ ध्यानमु
गदाभिः परिघैश्चैव कालस्य वशमागताः ॥ ४७ ॥ निजघ्नु
वीरा वज्रोपमशरीरकम् ॥ तैः प्रहारैस्तस्य देहे कंडूजाता मह
॥ ४८ ॥ उन्मील्य नयने देवि दृष्ट्वा तानेकचक्षुषा ॥ दग्ध
रपुत्राश्च नेत्रोत्पन्नाग्निना ततः ॥ ४९ ॥ अग्नेरंशाद्यथा देवि
न्ते तूलराशयः ॥ तथा ते षष्टिसाहस्राः पतंगा इव पावके
भस्मीभूताः क्षणादेवि सर्वे ते नष्टदेहकाः ॥ दग्ध्वा तान्
न् सद्यो ध्यानं परममास्थितः ॥ ५१ ॥ नष्टेषु तेषु सर्वेषु

धिक्कार देकर अगाड़ीको चले गये ॥ ४२ ॥ फिर सगरराजकुमारोंने इसी मन्मथ
न्द्रको देखा किन्तु उसकाभी निरादर करके फिर वे पश्चिम दिशाको चले ॥
कपिलजी महाराज नेत्रमूंदे भगवानका ध्यान कररहेहैं, और अग्निपुंजकी समान
मारभी अपने तेजसे दशोंदिशाको प्रदीप्त कररहेथे ॥ ४४ ॥ और प्रथम जिस
इन्द्रने हरलियाथा वोहभी महात्मा कपिलजीकी पीठपीछे वहांही बँधरहाथा
महादेवि ! अपने अश्व और उसके चोर महामुनिको देखकर चोर २ कहके
कपिलजीकी विडम्बना करने लगे ॥ ४६ ॥ भर्त्सना किये जानेपरभी कपिलजीने
ध्यानका परित्याग नहीं किया, तब तौ कालके वशीभूत हुए वे राजकुमार गदा और
उन महातपस्वीके शरीरमें प्रहार करने लगे, इन प्रहारोंके लगनेसे उक्त महात्माके शरी
होने लगी ॥ ४८ ॥ तबतौ हे देवि ! उन्होंने अपने नेत्र उघाड़के उन्हें एकनेत्रसे
उनके नेत्रजनित अग्निसे सगरपुत्र भस्मीभूत होगये ॥ ४९ ॥ हे देवि ! जैसे अ
तूलराशि (अर्थात् रुईका ढेर) अथवा जैसे अग्निमें पतंग भस्म होतेहैं ऐसेही वे
होगये ॥ ५० ॥ हे देवि ! क्षणमात्रमें इन साठसहस्रके शरीर भस्म होके नष्ट
ट इन्हें भस्मकर कपिलजी फिर ध्यानावस्थित होगये ॥ ५१ ॥ हे परमेश्वरि

नाम भूमिपः ॥ बहुषु च व्यतीतेषु वर्षेषु परमेश्वरि ॥ ५२ ॥ बहु-
शश्चिंतयामास नागतास्ते कथं गृहम् ॥ पुत्रा वै बहुसाहस्रा म-
हाबलपराक्रमाः ॥५३॥ उवाच पंचजननं कुमारं दस्ररूपिणम् ॥
अंशुमंतं महात्मानमन्वेषय पितृव्यकान् ॥ ५४ ॥ क्व गतास्ते
महाभाग त्वमेव कुलदीपकः ॥ ज्ञात्वा तेषां स्थितिं तात शीघ्रमे-
हि ममांतिकम् ॥ ५५ ॥ तमश्वमश्वमेधीयं ज्ञात्वागच्छ यथासु-
खम् ॥ इतीरितं तु तच्छ्रुत्वा अंशुमान्नाम वीर्य्यवान् ॥ ५६ ॥ हय
पृष्ठं समारुह्य स्वल्पेनैव बलेन च ॥ समुद्रतीरे यत्राश्वो नीतो वृत्रा-
रिणा ययौ ॥५७॥ तां भूमिं खनितां दृष्ट्वा कोटियोजनमायताम् ॥
महद्बिलं तत्र दृष्ट्वा विवेश सहसा ततः ॥ ५८ ॥ नत्वा नाराय-
णं देवं गंगाख्यं परमं शिवम् ॥ निर्गच्छतस्तस्य देवि पुरुषो द-
दृशे ततः ॥ ५९ ॥ पद्माकारं महद्वर्णं स्वर्णरत्नादिशोभितम् ॥
विशालनयनं शांतं रक्तनेत्रं सुवाससम् ॥ ६० ॥ ददर्श सुखमा-
सीनं यादसां गणशोभितम् ॥ प्रसन्नवदनं देवि ववंदे सहसां-

ष होजानेके अनन्तर जब बहुतसा समय व्यतीत होगया, तब राजा सगर ॥ ५२ ॥ इस
तका बहुतकुछ विचार करने लगे कि, हमारे साठसहस्र राजकुमार महाबली अतएव बड़े
राक्रमीथे पर न जाने अबतक लौटके घरको क्यों नहीं आये ॥ ५३ ॥ तब राजाने अश्विनी-
माररूप अर्थात् सबके प्राणदाता महात्मा अंशुमान्से यह वचन कहे कि, तुम अपने पितृ-
व्योंका अन्वेषण करो ॥ ५४ ॥ कि, वे कहां चले गये, क्योंकि, हे महाभाग ! तुम्ही हमारे
कुलके दीपकहो, हे तात ! उनकी स्थितिको जानकर शीघ्रही तुम मेरे पास लौट आओ॥५५॥
और सुखपूर्वक उस अश्वमेधके यज्ञके अश्वकी दशाभी जाननी चाहिये, जब बडे पराक्रमी
अंशुमान्ने यह वाक्य सुने ॥ ५६ ॥ अंशुमान् अश्वके ऊपर आरूढ हो और थोडीसी सेनाको
साथलेकर समुद्रके तटपर वहां गया जहां इन्द्रने अश्वका अपहरण कियाथा ॥ ५७ ॥ करोड़ों
योजनपर्यन्त वहांकी भूमिको खुदीहुई देखा, और वहां एक बड़ा बिल देखकर सहसा उसमें
प्रवेश करगया ॥ ५८ ॥ हे देवि ! नारायण महादेव और गंगाजीको प्रणामकरके जभी वोह
निकलाहै तभी उसे एक पुरुषके दर्शन हुए ॥ ५९ ॥ उस पुरुषका वर्ण कमलकी समान सुन्दरहै,
सुवर्णके आभूषण और रत्नादिसे वोह अलंकृत होरहाहै, उसके नेत्र विशाल और वस्त्र उत्तमहै
॥ ६० ॥ देवतागण उसके चारों ओर सुशोभित होरहेहैं, और वोह पुरुष स्वयम् सुखपूर्वक

शुमान् ॥ ६१ ॥ अंशुमानिव तेजोभिरेष सागरनंदनः ॥
लिं तु तं दृष्ट्वा सागरं भक्तितत्परम् ॥ ६२ ॥ प्रणमंतं बहु
न्वेषणतत्परम् ॥ उवाच पुरुषस्तं च प्रसन्नमुखपंकजम् ॥
पुरुष उवाच ॥ प्रसन्नोस्मि महाभाग विनयेन तवाद्य वै ॥
वच्मि पितृव्यानां गतिं ते सागरात्मज ॥ ६४ ॥ समुद्रो
बाहो वर्द्धितोस्मि पितृव्यकैः ॥ तवांशुमन्महाभाग सप्तधा
स्महम् ॥ ६५ ॥ मामूचुर्देवताः सर्वाः सागरस्त्वन्न संशय
त्पितृव्यैर्वर्द्धितोहं पितृतुल्या यतस्त्विमे ॥ ६६ ॥ ततस्त्
को भ्राता वर्त्तसे नरपुंगव ॥ हयं हत्वा गतो देवो भगवा
शासनः ॥ ६७ ॥ तदन्वेषणकार्याय पितृव्यास्ते गता
अन्यत्सर्वं भवानेव वेत्स्यसेऽग्रे गतः खलु ॥ ६८ ॥ यश
भगवन्प्राप्स्यसे निश्चयं शुभम् ॥ गच्छ शीघ्रं दिग्ग
गच्छ यथासुखम् ॥ ६९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा

आसीनहै, और उसका मुख प्रसन्नहै । हे देवि ! उस पुरुषको प्रणाम किया ॥
कुलोत्पन्न राजकुमार अंशुमान् अपने तेजोद्वारा विराजित होरहाहै, भक्तिमें
हाथजोडे हुए देख ॥ ६२ ॥ जोकि सन्मुख उपस्थित हो प्रणाम कररहा और
व्योंका अन्वेषण करनेमें तत्परथा अतएव जिसका मुखकमल प्रसन्नहै ऐसे
पुरुषने कहा ॥ ६३ ॥ पुरुष बोला—हे महाभाग ! हम तुम्हारी विनयको
अतीव प्रसन्न हुएहैं, अतएव हे सागरात्मज ! मैं तुम्हारे पितृव्योंकी गति
॥ ६४ ॥ हे महाबाहो ! मैं समुद्रहूं, और तुम्हारे पितृव्योंनेही मेरी वृद्धि कीहै,
अंशुमान् ! तभीसे मेरे सात विभाग होगयेहैं ॥ ६५ ॥ अतएव (अर्थात्—सगर
परिवर्द्धित होनेके कारण) सब देवताओंने मुझसे कहा कि, तुम निःसन्देह
हे महाभाग ! तुम्हारे पितृव्योंने जो मुझे परिवर्द्धित कियाहै अतएव वे मेरेभी
शहैं ॥ ६६ ॥ हे नरपुंगव ! इसरीतिसे तुम हमारे भ्राता होतेहो ! यज्ञीय
करके इन्द्र लेगयाहै ॥ ६७ ॥ सो उसीका अन्वेषणकरनेके लिये यहांसे तुम्हारे
और जो कुछ विशेष वृत्तान्तहै उसे तुम्ही आगेजाके देखोगे ॥ ६८ ॥ हे
यशभी अवश्य प्राप्त होगा, अतः ईश्वरको प्रणामकर दिगन्तोंमें सुखपूर्वक जाओ
महादेवजी बोले—सागरके यह वचन सुन उसे प्रणाम करके अंशुमान् अपने

स्य परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ ययौ स त्वरयायुक्तस्तत्र न्यस्य हयं स्वकम् ॥ ७० ॥ ददर्श दिग्गजं देवि नत्वा तं दक्षिणीकृतः ॥ दक्षिणाशां गतस्तूर्णं ददर्शान्यं तु दिग्गजम् ॥ ७१ ॥ परिक्रम्य प्रणम्यासौ दिग्गजं तं च बुद्धिमान् ॥ पश्चिमायां गतो देवि पित्रन्वेषणतत्परः ॥ ७२ ॥ ददर्श सहसासीनं ध्यायमानं परात्परम् ॥ कोटिसूर्यसमाभासं द्योतयंतं दिशो दश ॥ ७३ ॥ ऊर्द्ध्वकेशं विरूपाक्षं नासाग्रन्यस्तदृष्टिकम् ॥ दृष्ट्वा तं सहसा देवि प्रणनाम महामुनिम् ॥७४॥ प्रणामाः शतशस्तत्र कृतास्तेन महात्मना ॥ उवाच प्रणतो वाक्यं विस्मयाकुलचेतनः ॥ ७५ ॥ अंशुमानुवाच ॥ नमो नमस्ते शतशोनंतमूर्त्ते महेश्वर ॥ सर्वतः पाणिपादाक्षिन्सर्वतस्ते नमो नमः ॥ ७६ ॥ यज्ञस्त्वं यज्ञकर्त्ता त्वं यज्ञेशो ज्ञानतत्परः ॥ परात्परनिरूप्योसि वशीकृत

छोड़ तत्काल वहांसे चलदिया ॥ ७० ॥ हे देवि ! वहां जाय उसने दिग्गजको देखा और उसकी परिक्रमा की, फिर दक्षिणदिशामें जाके वहां दूसरे दिग्गजको उसने देखा ॥ ७१ ॥ उस बुद्धिमान्ने उस दिग्गजकोभी परिक्रमाकरके प्रणाम किया, और फिर पश्चिम दिशाको प्रस्थान किया क्योंकि वोह अपने पितृव्योंका अन्वेषण करनेमें तत्पर होरहाथा ॥ ७२ ॥ वहां इसने एक ऐसे व्यक्तिको उपस्थित हुए देखा जो परमेश्वरका ध्यान कर रहाथा, उसकी आभा करोड़ों सूर्यकी समानथी और वोह व्यक्ति अपने प्रतापसे दशों दिशाओंको प्रदीप्त कररहाथा ॥ ७३ ॥ उसके केश ऊर्ध्वगामी और नेत्र विषमथे अथ च उसने अपनी दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें लगा रक्खाथा, ऐसे महामुनिको देख उसने तत्काल प्रणाम किया ॥ ७४ ॥ एवं च उस महात्माने सैकडों वार प्रणाम किया, और विस्मयसे आकुलहो नम्रतापूर्वक यह वाक्य कहे ॥ ७५ ॥ अंशुमान् बोला—हे अनन्तमूर्त्ति महेश्वर ! आपको वारंवार नमस्कार है आपके चरण और कर सर्वत्र हैं, आपके नेत्र सर्वत्र विद्यमान हैं अर्थात् आपके हाथ पैरोंमें यह शक्ति है कि, यहांसे आप सब कार्य करसक्ते हैं और आपकी दृष्टि अतीन्द्रिय वस्तुको भी देखसक्ती है अतएव आपको नमस्कार है ॥ ७६ ॥ यज्ञ तथा यज्ञके कर्त्तास्वरूप भी आपही हैं, यज्ञके अधिष्ठाता देवता और ज्ञानमें तत्पर भी आपही हैं, परेसे परे जो परमेश्वर हैं आप उनको भी निरूपण करते हैं अतएव तीनो जगतको आपने अपने वशीभूत कर-

जगत्त्रयः ॥ ७७ ॥ बुद्धिदो धनदोसि त्वं मानदो ज्ञानदः
सत्यकारयिता त्वं हि पराणां परमो गुरुः ॥ ७८ ॥
बुद्धिरूपेण गुरोर्विज्ञानमूर्तिना ॥ महतः शक्तिरूपेण
कशक्तिमान् ॥ ७९ ॥ त्वमेव सर्वं भवसि जगदेतच्चरा
त्वदन्यं त्रिषु लोकेषु न पश्यामि महाप्रभो ॥८०॥ ईश्वर
इति स्तुतोंशुमता भगवान्कपिलात्मकः ॥ प्रसन्नस्त्व
मेवगंभीरया गिरा ॥ ८१ ॥ श्रीकपिल उवाच ॥ प्रस
महाबाहो प्रश्रयेण दमेन च ॥ स्तुत्या च कृतयाहं ते
सुव्रत ॥ ८२ ॥ अंशुमानुवाच ॥ धन्योस्मि कृत
दर्शनात्तव सांप्रतम् ॥ विशेषवरदोसि त्वं गतिमिच्छा
कीम् ॥ ८३ ॥ कपिल उवाच ॥ पितृव्यास्ते महाभाग
इतबुद्धयः ॥ मच्छापवह्निना दग्धा गतास्तु यमम
॥ ८४ ॥ पितामहस्य ते राज्ञो यज्ञीयोऽश्वो महानयम्

रक्खा है ॥ ७७ ॥ क्या बुद्धि, क्या धन, क्या मान और क्या ज्ञान इन सभीके
ज्ञानियोंके भी गुरु और सत्यकर्मोंका प्रचार करनेवाले भी आपही हैं ॥
विषै बुद्धिरूपसे, और गुरुमें विशेष ज्ञानकी मूर्त्तिसे, महात्माओंकी शक्तिरूपसे
पालनकर्त्ताकी शक्तिसे आपही सर्वत्र व्यापकहैं ॥ ७९ ॥ उक्त प्रकारसे
होचुकी कि, जितना यह चराचर जगतहै सब आपहीका रूपहै हे महाप्रभो !
त्रिलोकीमें मैं और कुछभी नहीं देखताहूं ॥ ८० ॥ महादेवजी बोले--जब
जीकी इस प्रकार स्तुति अंशुमान्ने करी, तब वे प्रसन्न हुए और उन्होंने
गम्भीरवाणी करके यह वाक्य कहे ॥ ८१ ॥ श्रीकपिलजी बोले--हे महाबाहो
नम्रस्वभाव और मनोनिग्रहको देखकर हम बड़े प्रसन्नहैं, हे सुव्रत ! तुमने जो
करीहै उसके परिवर्त्तनमें वरकी याचना करो ॥८२॥ अंशुमान् बोले हे महर्षे !
दर्शनलाभकरनेसे मेरे धन्यभाग्यहैं, मानो कर्त्तव्यकार्य में सब करचुका, तथापि यदि
देना चाहतेहैं तौ मैं अपने पितरों (पितृव्यों) की गति करना चाहताहूं ॥ ८३ ॥
बोले--हे महाभाग ! तेरे पितृव्य बड़े दुष्टथे उनकी बुद्धि विनाशको प्राप्त होगईथी
लोग हमारे शापकी अग्निसे भस्म होकर यमलोकको चलेगये ॥८४॥ तुम्हारे पितामह

गृहीत्वा शीघ्रं त्वं यज्ञं कुरु महोत्सवम् ॥८५॥ अंशुमानुवाच ॥ दुरात्मनः पितृव्या मे दग्धास्त्वच्छापवह्निना ॥ तेषां सद्गतिमिच्छामि प्रसन्नोसि यतो मम ॥ ८६ ॥ कपिल उवाच ॥ भक्त्या तव महाभाग गतिं वच्मि दुरात्मनाम् ॥ गंगाख्यं परमं तेजः श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ ८७ ॥ आगमिष्यति केनापि भक्त्यानीतं तदात्विमे ॥ गतिं प्राप्स्यंति परमां पुनरावृत्ति दुर्लभाम् ॥ ८८ ॥ तद्गच्छ स्वगृहे तूर्णं यज्ञं कारय सुव्रत ॥ यतस्व गंगानयनमस्मिन्देशे हि मुक्तये ॥ ८९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणाम्यासौ दयानिधिम् ॥ ययौ नीत्वा हयं देवि पितामहपुरे ततः ॥ ९० ॥ आगतं तु ततो दृष्ट्वा सर्वे पौरा महोत्सवाः ॥ अनुजग्मू राजमार्गे वदंतो जयशब्दकान् ॥ ९१ ॥ श्रुत्वागमं तु पौत्रस्य सगरो हृष्टमानसः ॥ दुरात्मनां तु पुत्राणां वधेन न हि दुःखितः ॥ ९२ ॥ प्रहर्षं परमं लेभे दृष्ट्वा यज्ञीयघोटकम् ॥ तं प्रपूज्य च पौत्रं वै तथा स्वागतभाषणैः ॥ ९३ ॥

यज्ञका जो यह महान् अश्वहै, इसे ले जाकर शीघ्रही यज्ञके महोत्सवकी वृद्धि करो ॥ ८५ ॥ शुमान् बोले–मेरे पितृव्य दुष्टथे अतएव आपके शापकी अग्निसे भस्म होगये परन्तु आप मेरे पर प्रसन्नहैं अतएव मैं उनकी सद्गति करना चाहताहूं ॥ ८६ ॥ कपिलजी बोले–हे महाभाग ! म्हारी भक्तिको देखकर मैं उन दुष्टोंकी गतिका उपाय तुमसे कहताहूं, परमात्मा श्रीविष्णु गवान्‌का गंगानामक तेजहै ॥ ८७ ॥ कोई व्यक्ति भक्तिभावपूर्वक उसे लावै और वोह भूमिके पर आवै तौ पुनर्जन्म रहित उनको सद्गदित प्राप्त होजायगी अर्थात् मुक्ति होजायगी ॥ ८८ ॥ हे सुव्रत ! शीघ्र घरको जाओ, और यज्ञको कराओ, और उनकी मुक्तिके लिये इस संसारमें गाजीके लानेके तई यत्नकरो ॥ ८९ ॥ महादेवजी बोले–जब इसने उनके ऐसे वचन सुने ब दयानिधि कपिलजीको प्रणाम किया, और हे देवि ! यह अश्वको ले अपने पितामहके गरमें आया ॥ ९० ॥ इसे आया देख नगरके सब लोगोंने विशेष उत्सव मनाया, और यशब्दका उच्चारण करते २ सब लोग राजमार्ग (सडक) में उसके पीछे २ जाने लगे ९१ ॥ अपने पौत्रका आगमन सुनकर राजा सगर मनमें बडे प्रसन्न हुए, और दुराचारी त्रोंका मरण सुनकर उन्हें दुःख कुछभी न हुआ ॥ ९२ ॥ यज्ञके अश्वको देख राजाको डे हर्षकी प्राप्ति हुई, राजाने उसकी पूजा करी और उत्तम वाक्योंसे पौत्रका स्वागत किया ॥ ९३ ॥

अंके तं न्यस्य पौत्रं तु चुचुंब मुखपंकजम् ॥ पृष्टवान्
वृत्तांतं ज्ञातवांश्च तथेरितम् ॥ ९४ ॥ अश्वमेधं महा
त्रेण सह भूमिपः ॥ कृतवान्सगरो राजा बहुसाहस्रदक्षि
॥ ९५ ॥ एतच्चान्यच्च भो देवि कृतवान्कर्म स्वर्गदम् ॥
विपुलैर्यज्ञैर्देवं नारायणं विभुम् ॥ ९६ ॥ जगाम तपसे
दारेश्वरमंडले ॥ सरस्वतीसरित्तीरे तुंगेशशिवदक्षिणे ॥
इति ते कथितं देवि सगराख्यानमुत्तमम् ॥ यच्छ्रुत्वा
भक्त्या स्वर्गं गच्छति पार्वति ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कं
केदारखण्डे सौरवंशानुकीर्त्तने सगरोपाख्यानं नामैकोन
मोऽध्यायः ॥ २९ ॥

पौत्रको अंकमें बैठालकर राजाने कमलरूप उसके मुखका चुम्बन किया, फिर
पूछा, जब उसने कहा तौ सब जाना ॥ ९४ ॥ राजा सगरने अपने पौत्रको
सहस्रकी दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञका आचरण किया ॥ ९५ ॥ हे देवि
अन्यबहुतसे ऐसे कर्म जिनसे स्वर्गकी प्राप्ति हो सो किये, और अनेक यज्ञोंसे
विष्णुभगवान्के निमित्त यजन करके ॥ ९६ ॥ हे देवि ! तुङ्गेश महादेवके
केदारेश्वरमण्डलमें सरस्वती नदीके तीरपर तपकरनेके तई राजा चलेगये ॥ ९७
इस प्रकार यह सगरका उत्तम आख्यान हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया, हे पार्व
श्रवण करके मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंड भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सगरस्यान्वयं शु
यत्र जाता महात्मानो राजानो भूरितेजसः ॥ १ ॥ अं
म राजेंद्रो बभूवारिप्रमर्दनः ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यात

महादेवजी बोले--सुनो महादेवि ! अब हम सगरके उत्तम वंशका वर्णन करते हैं
बडे २ महात्मा और प्रभूत तेजोशाली राजाओंने जन्म ग्रहण किया ॥ १ ॥ अरिम
नामका राजा सब राजाओंमें इन्द्रकी समान मुख्य और आपने शत्रुओंका विनाश क

बलविक्रमः ॥ २ ॥ पुत्रो बभूव तस्यापि दिलीप इति विश्रुतः ॥ तं वै राज्येभिषिच्यासौ संदेशं तं प्रपूज्य च ॥ ययौ स तपसे राजा गंगोत्तरगिरौ शुभे ॥ ३ ॥ दिलीपोऽपि महाराजो महात्मा दृढविक्रमः ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातकीर्त्तिः सागरजात्मजः ॥ ॥ ४ ॥ दिलीपोयं महाबाहुः खट्वांग इति विश्रुतः ॥ तेनापि गंगानयनं न कृतं गिरिकन्यके ॥ ५ ॥ पुत्राय हि महातेजा बलारिसमतेजसे ॥ भगीरथाय देवेशि संदिश्य तपसे ययौ ॥ ६ ॥ राजायोध्यां महातेजाः पालयामास धर्म्मतः ॥ जित्वा स सकलां भूमिं पालयामास धर्मवित् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा पितामहगतिं लोकेभ्यः स भगीरथः ॥ चिंतयामास बहुशः स्मृत्वा तद्वै मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ कथं मे पितरः स्वर्गे गच्छेयुर्दग्धकिल्बिषाः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नंतरे राजा शयनीयोपरि स्थितः ॥ चिंतयानो बहुतरं सस्मार पितुरीरितम् ॥ १० ॥ संदेशं तं तदा स्मृत्वा हर्षसंहृष्टमानसः ॥ तपस्तप्तुं मनश्चक्रे गंगायै अमितद्युतिः ॥ ११ ॥ गं-

सका बल और पराक्रम त्रिलोकीमें प्रसिद्ध था ॥ २ ॥ इसका पुत्र बड़ा विख्यात दिलीप हुआ, राज्यसिंहासनके ऊपर इसका अभिषेक करके और इसे (उत्तम) आज्ञादेकर वोह राजा पका आचरण करनेके लिये गंगोत्तरीमें शुभ पर्वतके ऊपर चलागया ॥ ३ ॥ दिलीपभी ड़ा महात्मा और दृढ़पराक्रमी था इस राजाकी कीर्त्ति तीनोंलोकमें प्रसिद्धथी ॥ ४ ॥ यह जा दिलीप ही खट्वांगनामसे प्रसिद्ध हुआ, हे गिरिराजकुमारी ! इस राजासेभी गंगाजी न लाई गईं ॥ ५ ॥ यह महातेजस्वी सूर्यकी समान प्रतापी अपने पुत्र भगीरथको राज्य और उपदेश दे हे देवि ! स्वयं तप करने चलेगये ॥ ६ ॥ महातेजस्वी राजा भगीरथ धर्मसे अयोध्यानगरीका पालनकरनेलगे, एवं च यह धर्मज्ञ समस्त भूमिका विजय करके उसका पालन करने लगे ॥ ७ ॥ जब भगीरथने औरलोगोंसे अपने पितामहोंकी गतिका वृत्तान्त सुना तब वारंवार सोच २ कर यही विचार करने लगा कि ॥ ८ ॥ ऐसा कौन उपायहै जिससे मेरे पितरोंके पाप नष्ट हों और उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हो ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें राजा पलंगके ऊपर आरूढ़ हुए, और पिताकी आज्ञाका स्मरण कर २ के बहुत कुछ चिन्ता करनेलगे ॥ १० ॥ पिताकी आज्ञाका स्मरण करके राजाका चित्त आनन्दसे पूर्ण होगया, और उस अमोघकान्तिमान्ने गंगाजीकी प्राप्तिके लिये तपश्चर्याकरनेका विचार किया ॥ ११ ॥ गंगोत्तर

गोत्तरमहाक्षेत्रे कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ जितेंद्रियः शांत
राजा भगीरथः ॥ १२ ॥ पंचवर्षसहस्राणि पंचवर्षशता
तपस्तेपे महाबाहुर्जीर्णपर्णाशनो व्रती ॥ १३ ॥ यस्य वै
नस्य वल्मीकमुपरि ध्रुवम् ॥ जातं यदा महेशानि त
महीपतेः ॥ १४ ॥ एकदा भगवान् देवो ववर्ष पाक
धाविता तज्जेलनास्य मृत्तिकापि च पार्वति ॥ १५ ॥
ज्ञो महेशानि जातं तेजोमयं वपुः ॥ तेन वै वपुषा तस्य
भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ प्रत्यागमन्महातेजा ब्रह्मा कमल
॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगीरथ महाबाहो वरं वरय
तुष्टोस्मि तपसा राजन् यद्यन्मनसि वर्त्तते ॥ १८ ॥
वाच ॥ वरं ददासि चेन्मह्यं वरयोग्योस्म्यहं यदि ॥
संप्रदानं मे पितॄणां मुक्तये कुरु ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
नरशार्दूल यस्येयं भक्तिरीदृशी ॥ संतुष्टा यस्य पितरः
स जगतीतले ॥ २० ॥ जानामि त्वां महाभाग सुतरां

महाक्षेत्रमें सब पर्वतोंमें उत्तम कैलास पर्वतके ऊपर इन्द्रियोंको जीत मनको
भगीरथ (तपकरनेको) गये ॥ १२ ॥ पुराने पत्तोंकि भक्षणपूर्वक व्रत धार
गीरथने पांच सहस्र पांच सौ वर्ष पर्यन्त तपका अनुष्ठान किया ॥ १३ ॥
तपकरते २ उस महीपालके ऊपर उस स्थानमें वल्मीक (बँवई) होगई
समय देवाधिदेव इन्द्रने मेघवर्षा की, हे पार्वति ! उसी वर्षाके जलसे इसके ऊपर
धुल गई ॥ १५ ॥ हे महेश्वरि ! तबतो इस राजाका शरीर तेजोमय
उसके प्रकाशमान शरीरने त्रिलोकीको दीप्तिमान करदिया ॥ १६ ॥ और महा
योनी ब्रह्माजी महाराज आनकर प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे महा
हे महाराज ! मैं तुम्हारे तपके अनुष्ठानसे सन्तुष्ट होगयाहूं, अतएव हे सुव्रत !
मनमें हो सो सब वर मांगो ॥ १८ ॥ भगीरथ बोले–हे भगवन् ! यदि मैं वर
योग्यहूं और अतएव यदि आप मुझे वरप्रदानकरतेहैं तो पितरोंकी मुक्तिके नि
करके मुझे दीजिये ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे नरोत्तम ! तुम्हारी ऐसी
अतएव तुम्हें धन्यहै, जिसके पितर सन्तुष्ट होतेहैं संसारमें उसी पुरुषको धन्यहै
महाभाग ! मैं यह खूब जानताहूं कि, तुम पितरोंके अनन्य भक्तहो । तुम्हारे पि

कम् ॥ पितरोऽपि पितॄणां हि वर्त्तते स्वर्गमन्दिरे ॥ २१ ॥ तत्पितॄणां पिता देवो वासुदेवो जनार्दनः ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं जगदेतच्चराचरम् ॥ २२ ॥ यस्मिन्ब्रह्मादयो देवाः कालेन्तर्धानमाप्नुयुः ॥ जायंते च पुनस्तद्वत्सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः परात् ॥ २३ ॥ भगीरथ उवाच ॥ पितरः के हि विख्याता यत्पिता भगवानजः ॥ येषां वै पूजनाद्देवः संतुष्टो जायते हरिः ॥ २४ ॥ मृता वै पुरुषा ये वै पितरः संभवंति हि ॥ तेषां च पितरः के वै कुत्र तद्वसतिस्थलम् ॥२५॥ पितॄणां पूजनाद्येषां मृतास्ते तृप्तिमाप्नुयुः ॥ कथमन्यभवे ब्रह्मंस्तृप्तिं यांति सुरोत्तम ॥२६॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि यस्य मे भाग्यमीदृशम् ॥ जगत्कर्त्ता भवान्यस्य पृच्छ्योस्ति सर्वविद्विभुः ॥ २७ ॥ एतत्सर्वं समासेन कथयस्व मम प्रभो ॥ दासोस्म्यनुगृहीतोस्मि भक्तोस्मि पुत्रवत्तव ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भूप भक्तोसि मम सागर ॥ सर्वं वै पितृमाहात्म्यं समासेन शृणुष्व मे ॥ २९ ॥ श्रवणादपि राजेंद्र महापातकिनो

ी स्वर्गलोकमें विराजमानहैं ॥ २१ ॥ और उनके पितरोंके पिता साक्षात् दुष्टोंको क्लेश देनोले वासुदेव भगवान्हैं, उन्हींमें यह चराचर जगत् ओतप्रोत होरहाहै ॥ २२ ॥ अन्तसमय न्हींमें ब्रह्मा आदि सब देवता लय होते और सृष्टिकी आदिमें फिर उन्हींसे उत्पन्न होनेलगतेहैं योंकि ब्रह्माजीसेभी परे वोही भगवान्हैं ॥ २३ ॥ भगीरथ बोले—वे कौनसे पितरहैं कि, जनके पिता अजन्मा साक्षात् भगवान्हैं, और जिनका पूजन करनेसे देवाधिदेव नारायण तुष्ट होतेहैं ॥ २४ ॥ क्योंकि, जिन पुरुषोंकी मृत्यु होजातीहै वे ही पितर होतेहैं, पर उनभी पितर और कौनहैं अथ च उनका निवासस्थान कहांहै ॥ २५ ॥ अथ च हे ब्रह्मन् ! जनपितरोंका पूजन करनेसे वे मृतक पुरुषभी तृप्ति लाभ करतेहैं, हे देवसत्तम ! अन्य जन्ममें तृप्तिको किस प्रकार प्राप्त होतेहैं ॥ २६ ॥ मैं कृतकृत्य होगया अतएव मुझे धन्यहै, क्योंकि रा भाग्य ऐसा श्लाघनीयहै कि, मुझे प्रश्न करनेके लिये जगतके कर्त्ता सर्वज्ञ और सर्वव्यापक आप प्राप्त हुएहैं ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! यह सब वृत्तान्त संक्षेपरीतिसे आप मुझसे कहिये, क्योंकि मैं आपका दास और भक्तहूं अतएव पुत्रकी समान मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहिये, ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे सगरकुलोत्पन्न राजन् ! तुम्हें धन्यहै, जो तुमने ऐसा उत्तम प्रश्न मसे किया, सो पितरोंका संपूर्ण माहात्म्य संक्षेपरीतिसे मुझसे श्रवणकरो ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र !

नराः ॥ मुच्येयुः सर्वदुःखैस्तु संसाराब्धि समुद्भवैः ॥३०॥
श्लोकार्द्धमेकं वा यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥ पितृयागे महाभाग
स्तस्य सागर ॥ प्राप्नुवंति परां भूप तृप्तिं वै शतवार्षिकीम्
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने भगीरथोपाख्याने
कल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

उस माहात्म्यको श्रवण करनेसे बड़े २ पापी मनुष्यभी संसारजनित ... मुक्ति लाभ करतेहैं ॥ ३० ॥ हे सगरकुलदीपक ! जो व्यक्ति भक्तिभावपूर्वक इस एक आधे श्लोकका पाठ करतेहैं उनके पितृगण सैकड़ों वर्षपर्यन्त तृप्ति लाभ करतेहैं ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ॥ ...
महं तावत्कथयामि तवानघ ॥ १ ॥ सृष्टिकाले पुरा देव ...
सृजंस्ततः ॥ भास्वरान्सप्तपुरुषान् दीपस्य कलिका...
॥ २ ॥ जातमात्रास्तु मामूचुः फलं देहि फलार्थिनः ॥
वचसा तेषां शापितास्ते मया ततः ॥३॥ मूढा भवत दुर्नि...
संज्ञा यतो भृशम् ॥ जातमत्राः फलं ब्रूयुर्भवंतो बुद्धिदुर्बला...
ततस्ते पुरुषा राजन्मोहिता ह्यभवंस्तदा ॥ ते पुनः प्रणा...

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप राजा ! स्वयंभू विष्णु भगवान्को प्रणाम करके ...र्गका वर्णन तुम्हारे प्रति करताहूं, तुम श्रवणकरो ॥ १ ॥ प्रथम सृष्टिकी ... सात पुरुषोंको उत्पन्न किया, उनकी कान्ति दीपशिखाकी समान प्रदीप्तथी ... होतेही उन्होंने मुझसे कहा कि—हम फलकी कामना करतेहैं अतएव हमैं फल ... यह वचन सुन मुझे क्रोध आगया अतएव मैंने उन्हें शाप देदिया ॥ ३ ॥ ... किसीबातका ज्ञानही नहींहै अतएव तुम मूर्ख होजाओ, अरे निर्बुद्धियो ! तुम ... फल मांगनेलगे ॥ ४ ॥ हे राजन ! शापित होतेही वे पुरुष मोहित होगये,

शापात्संहृतचेतनाः ॥ ५ ॥ पुरुषा ऊचुः ॥ बाल्यात्त्वं भगवन्देव नास्माभिर्नमितो भृशम् ॥ तत्क्षमस्व वयं सर्वे दासास्ते भगवन्प्रभो ॥ ६ ॥ इत्युक्तोहं तदा तैस्तु पुरुषानब्रुवं तथा ॥ अनुग्रहाय लोकानां भगीरथ महामते ॥ ७ ॥ प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः ॥ पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ ८ ॥ इति श्रुत्वा मम वचो गतास्ते प्रष्टुमार्त्तवत् ॥ तेषां च मानसाः पुत्रा जातास्ते त्रिदिवौकसः ॥ ९ ॥ पप्रच्छुस्तांस्तदा देवाः पुत्राः पौत्रा इति भृशम् ॥ देवास्तां स्तु महाबाहो शशंसुश्च भगीरथ ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तानि बहुशो वाङ्मनःकर्मभिस्तथा ॥ शंसंति कुशला नित्यं तद्वै कुरुत सांप्रतम् ॥ ॥ ११ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां जातज्ञाना महौजसः ॥ गताभ्यां पुत्रपुत्रेति प्रययुर्ब्रह्मवादिनः ॥ १२ ॥ अभिसंशयिता देवास्तेन वाक्येन वै भृशम् ॥ मामागतास्तदा तूर्णं संशयच्छेदनाय ते ॥ ॥ १३ ॥ मामूचुस्ते महाभाग कथं पुत्राः परस्परम् ॥ भगवन्नि-

चेतनता नष्ट होगई । फिर उन्होंने मुझे प्रणामकिया ॥ ५ ॥ पुरुष बोले—हे भगवन्! हम बालक (अतएव अज्ञानी) हैं इसी कारण हमने आपको प्रणाम नहीं किया, हे देवाधिदेव प्रभो ! अब आप हमारे अपराधको क्षमा करिये क्योंकि हम आपके दासहैं ॥ ६ ॥ जब इस प्रकार उन्होंने मुझसे कहा और मैंने उनके ऐसे वचन सुने तब हे महामतिमान् भगीरथ ! संसारका हितकरनेकी कामनासे मैंने उनसे यह वचन कहे ॥ ७ ॥ तुमने व्यभिचारका आचरण कियाहै अतएव तुम प्रायश्चित्त करो, और जब अपने पुत्रोंसे पूछोगे तब तुम्हें ज्ञानकी प्राप्ति होगी ॥ ८ ॥ मेरे यह वचन सुन बड़े दुःखित होते हुए वे प्रायश्चित्त करनेको गये, और उनके मानसपुत्र देवता हुए ॥ ९ ॥ यह उनसे हे पुत्रो ! हे पौत्रो ! यों कह २ कर वारंवार पूछनेलगे । हे महाबाहो ! देवता गण उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १० ॥ वाणी मन और कर्मके द्वारा सम्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तोंका उन्होंने वर्णन किया, और कहा इन्हींका तुम आचरण करो ॥ ११ ॥ जब इन महापराक्रमियोंने उनके यह वचन श्रवण किये तब यह सब वेदान्ती हो हे पुत्र ! २ यों कहकर चलदिये ॥ १२ ॥ इनके यह वाक्य सुन देवताओंको बड़ा सन्देह हुआ और वे अपने सन्देहकी निवृत्तिकरनेके लिये तत्काल मेरे निकट आये ॥ १३ ॥ मुझसे उन्होंने कहा हे महाभाग ! हम लोग परस्पर पुत्र किस प्रकारहैं,

ति ते सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः ॥ १४ ॥ अवोचं च ता
न्वै यूयं वै ब्रह्मवादिनः ॥ शरीराणां च कर्त्तारस्तेषां चै
ष्यथ ॥ १५ ॥ ज्ञानस्य च प्रदातारः पितरो वो न संश
अन्योन्यं पितरो यूयं भविष्यथ महाप्रभाः ॥ १६ ॥
महाभागाः कश्च कामः परो हि वः ॥ इत्युक्तास्ते मया भू
चुर्विस्मयान्विताः ॥ १७ ॥ वृत्तिं देहि महाभाग कथं नो
वन् स्थितिः ॥ मयोक्तं तांस्ततो भूप पितरो वो न संश
॥ १८ ॥ ये श्राद्धे तु पितॄणां हि करिष्यंति क्रिया हि र
क्षसा दानवा नागास्तेषां प्राप्स्यंति नो फलम् ॥ १९ ॥
राप्यायिता यूयं सोममाप्य यथा भृशम् ॥ युष्माभिः
सोमो लोकमाप्याययिष्यति ॥ २० ॥ श्राद्धानि पुष्टि
करिष्यंति नरोत्तमाः ॥ तेषामायुश्च पुत्रांश्च धनं चैव
॥ २१ ॥ दास्यथ प्रचुरं चैव परत्र च परां गतिम् ॥ येषां
तरः स्वर्गे नरके चैव संस्थिताः ॥ २२ ॥ सर्वत्र वर्त्तमान

ऐसा सन्देह हमारे चित्तमें उदय होरहाहै ॥ १४ ॥ तब मैंने उनसे कहा कि
ब्रह्मवादी अर्थात् वेदान्ती हो, और उनके शरीरोंके कर्त्ताभी तुम्हीं होओगे ॥ १
उन्हें ज्ञान प्रदान किया अतएव तुम उनके पितरहो । हे महातेजस्वियो ! तुम
दूसरेके पितर होओगे ॥ १६ ॥ हे महाभागो ! वरकी याचना करो, तुम्हारी
अभिलाषाहै ? जब मैंने उनसे यह कहा तब वे आश्चर्यान्वित हो फिर मुझसे कहने
हे महाभाग ! हमें वृत्ति (आजीविका) दीजिये, क्योंकि हे भगवन् ! बिना
स्थिति कैसे हो सक्तीहै ? हे राजन् ! तब मैंने उनसे कहा वेही सब निःसन्देह तुम
॥ १८ ॥ जो व्यक्ति श्राद्धमें पितरोंके निमित्त क्रिया करेंगे उनके फलको क्या रा
दानव और क्या नाग प्राप्त नहीं करेंगे ॥ १९ ॥ तुम लोग श्राद्धसे सन्तुष्ट हि
और सोमको सन्तुष्ट करना सोम तथा पितर तुम्हारे द्वारा संसारका कल्याण करेंगे
जो नरोत्तम पुरुष पुष्टिकी कामनासे श्राद्धका आचरण करतेहैं उनको पुत्र, आयु और
॥ २१ ॥ तुम दोगे अथ च पर लोकमें सद्गति दोगे तथा जिनके पितर चाहें स्वर्ग
नरक कहींभी स्थित हों ॥ २२ ॥ तथा और चाहें जहां जिस जन्ममें

च जन्मसु संश्रिताः ॥ तृप्तास्ते च भविष्यंति नरके स्वर्गिणश्च-ये ॥ २३ ॥ नामगोत्रे समुच्चार्य्य दद्यात्पिंडान्विचक्षणः ॥ ये चेह पितरः स्वर्गे इति मंत्रेण वै पृथक् ॥ २४ ॥ आहूय वो महाभागा दद्याच्छ्राद्धं विचक्षणः ॥ एवं मया महाभाग कथितं च महौजसाम् ॥ २५ ॥ इति मद्वचनात्तेपि पितरो हृष्टमानसाः ॥ पुत्राश्च पितरश्चैव वरं सर्वे परस्परम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने भगीरथोपाख्याने पितृकल्पो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

र्गमें और नरकमें सर्वत्रही तृप्त होजायँगे ॥ २३ ॥ चतुर नरको उचितहै कि नाम और त्रका उच्चारण करके पिण्डदान करै । जो पितर यहांहैं अथवा जो स्वर्गमें हैं इस मन्त्रसे थक् २ ॥ २४ ॥ आह्वान करके चतुर पुरुष श्राद्धदान करै, हे महाभाग ! इस प्रकार बड़े ाक्रमी पितरोंका आख्यान हमने आपके समक्ष वर्णन किया ॥ २५ ॥ हमारे यह वाक्य नकर वे पितृगण अपने चित्तमें बड़े प्रसन्न हुए, और वे सब परस्पर पुत्र और पितर ए ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

भगीरथ उवाच ॥ कियंतो वै पितृगणाः कस्मिन् लोके च ते स्थिताः ॥ एतत्सर्वं हि भगवन्कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥ प्राणिनां कर्म नियतं फलं भवति निश्चितम् ॥ श्राद्धकर्म प्रकुर्वन्ति फलदं हि सदा नराः ॥ २ ॥ अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥ पितामहं च तस्यापि तेषु पिंडेषु सर्वदा ॥ ३ ॥ श्राद्धानि

भगीरथ बोले—पितृगण कितने हैं, और वे किस लोकमें स्थित रहतेहैं ? हे भगवन् ! सब आप मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ १ ॥ प्राणियोंके कर्मोंका फल तौ अवश्यमेव उपलब्ध ाहै, और सदा मनुष्य फलदायी श्राद्धका आचरण करतेहैं ॥ २ ॥ पिता, पिताके पिता र उसकेभी पिता इन सबको परस्पर पिण्डोंमें मिलातेहैं ॥ ३ ॥ श्राद्ध जो किया जाताहै,

यानि दत्तानि कथं गच्छंति तान् पितॄन् ॥ निरयस्थाश्च स्व
शक्ता दातुं कथं फलम् ॥ ४ ॥ के वास्माकं नराणां हि क
जामो वयं पुनः ॥ देवानां चैव पितरो वर्त्तन्त इति नः श्रुत
यथादत्तं पितृणां हि तारणायेह कथ्यते ॥ एतद्विस्तरतो ब्रू
दि भक्तेषु ते दया ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया
शृणु सांप्रतमुच्यते ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र
॥ ७ ॥ मानसा ये समुत्पन्ना मत्तो राजन् भगीरथ ॥
सप्त नृपते तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ॥ ८ ॥ अत्रिर्वसिष्ठः
पुलस्त्यः क्रतुरंगिराः ॥ सनत्कुमार इत्येते मानसाः सप्त
॥ ९ ॥ सप्तैते जगतां श्रेष्ठास्ते वै पितृगणाः स्मृताः ॥ चत्वा
र्त्तिमंतो वै त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥ १० ॥ लोकं सर्गं महाराज
मि समासतः ॥ नामानि धर्ममूर्त्तीनां परमाणां महौज
॥ ११ ॥ लोकाः सनातनतमास्तत्र भास्वरमूर्त्तयः ॥
तान् महाभाग देवाः सर्वे यजंति हि ॥ १२ ॥ एते वै योग

पितृगणको उसकी प्राप्ति किस प्रकार होतीहै ? और स्वर्ग अथवा नरकमें स्थित पु
फल किस प्रकार देतेहैं ॥ ४ ॥ हम मनुष्योंके वे कौनहैं ? और हम किनके
और हमने तो ऐसा सुनाहै कि, देवताओंहीके पितर होतेहैं ॥ ५ ॥ और जो
जाताहै उससे पितरोंका उद्धार होताहै, यदि भक्तोंके ऊपर आपकी दयाहै तो
विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले--हे राजन ! तुमने अच्छा
मैं कहताहूं तुम सुनो ! इसका श्रवण करनेसे मनुष्य निःसन्देह पापोंसे मुक्त होजाता
राजा भगीरथ ! हमारे मानसिक जो पुत्र उत्पन्न हुएथे, वेही सातों भ्राताथे. और
वंश हुए ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और सनत्कुमार
मानसपुत्र हुएथे ॥ ९ ॥ समस्त सृष्टिमें श्रेष्ठ येही सात हुए, इन्हीको पितृ
उनमेंसे चार मूर्त्तिमान् और तीन मूर्त्ति रहितथे ॥ १० ॥ हे महाराज ! अब लो
त्तिका वर्णन संक्षेपसे करताहूं, धर्ममूर्त्ति और बड़े पराक्रमियोंके नामभी
॥ ११ ॥ यह सब लोक सनातनहैं, और इनमें भास्वर मूर्त्तिहैं, हे महाभाग ! उ
सब देवता यजन करतेहैं ॥ १२ ॥ और येही सब योगसे भ्रष्टहो भूमण्डलके

पुनर्जाता महीतले ॥ युगानां दशसाहस्रे स्मृतिर्नो ब्रह्मवा-
दिनः ॥ १३ ॥ स्मृत्वा भूयः सांख्ययोगं परमां गतिमाप्नुयुः ॥
योगिनां पितरो ह्येते योगिनां योगवर्द्धनाः ॥ १४ ॥ श्राद्धानि
योगिनां तस्माद्देयं वै श्राद्धमुत्तमम् ॥ एष वै प्रथमः कल्पः सो-
मपानां मयेरितः ॥ १५ ॥ तेषां राजन्मानसी तु कन्या मेना
व्यजायत ॥ या पत्नी वै हिमवतो यस्या मैनाकपुत्रकः ॥
॥ १६ ॥ मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौंचो नाम महागिरिः ॥
तिस्रः कन्याः समुत्पन्ना मेनायाश्च गिरेर्नृप ॥ १७ ॥ अपर्णा चै-
कपर्णा च तथैकपाटला मता ॥ तपस्तेपुश्च ताः सर्वा जगत्सं-
तापकारणम् ॥ १८ ॥ आहारमेकपर्णेन सैकपर्णा तदा स्मृता ॥
पाटलायाः पुष्पमेकं समदादेकपाटला ॥ १९ ॥ तत्रैका या नि-
राहारा मेनका तां न्यषेधयत् ॥ उमा इति समाख्याता देवी दु-
श्चरचारिणी ॥ २० ॥ तपःकलेवराः सर्वा युक्ता योगबलेन हि ॥
सर्वा वै ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्द्ध्वरेतसः ॥ २१ ॥ उमा च चा-

ए, इनको सहस्रों वर्षका स्मरण था और यह ब्रह्मवादी हुए ॥ १३ ॥ सांख्ययोगका स्मरण करनेसे फिर इन्हें सद्गतिका लाभ हुआ, यह योगियोंकाभी योग बढानेवाले अतएव उनकेभी पितर हुए ॥ १४ ॥ अतएव योगियोंकोभी उत्तम श्राद्ध देनेचाहियें, यह सोमपाओंका प्रथम कल्प हमने वर्णन कियाहै ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मेना नामकी उनकी एक मानसी कन्या प्रादुर्भूत हुई, यह हिमालयकी पत्नी बनी और मैनाक इसका पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ मैनाकका पुत्र महापर्वत क्रौंच हुआ, और हे राजन् ! मेनाकी तीन कन्या उत्पन्न हुईं ॥ १७ ॥ एक अपर्णा दूसरी एकपर्णा तथा तीसरी एकपाटला हुई इन तीनोंने ऐसा उग्रतप किया कि, जिससे सब जगत् सन्तप्त होनेलगा ॥ १८ ॥ एक कन्या केवल एकही पर्ण अर्थात् पत्तेका भोजन करती थी इसीसे उसका एकपर्णा नाम हुआ, एक पाटला केवल एक पुष्पहीको भक्षण करतीथी ॥ १९ ॥ और उनमें एक बिलकुल निराहार थी, मेनकाने उसे निवारण किया अतएव इसका उमा[1] नाम हुआ इसने बडा उग्र तपकिया ॥ २० ॥ सबके शरीर तप और योग बलसे युक्तथे, सभी वेदांतवादिनी और सभी ब्रह्मचारिणी थीं ॥ २१ ॥ उमाका शरीर बडा सुन्दरथा और यह महादेवकी पत्नी हुई, और एकपर्णा महात्मा देवलकी

१ 'उ' अर्थात् हे पुत्रि ! 'मा' तू ऐसा तप मतकर, यह 'उमा' का अर्थ है ।

रुसर्वांगी महादेवकुटुंबिना ॥ महात्मनो देवलस्य सैका
टुंबिनी ॥ २२ ॥ जैगीषव्यस्य पत्नी तु नाम्नैकपाटला
इमे चापि महाभागे योगाचारे व्यवस्थिते ॥ २३ ॥ तयो
स्तथा जाता लोके सोमपदस्थिताः ॥ पितरस्ते महीपाल
स्तान्भावयंति हि ॥ २४ ॥ अग्निष्वात्ता इति ख्याता म
नो महौजसः ॥ तेषां वै मानसी कन्या नाम्ना छोदा प्रकी
॥ २५ ॥ यस्याः सरः समुत्पन्नमच्छोदं नाम तत्र वै ॥ ह
प्यपूर्वांस्तु पितरस्ते भगीरथ ॥ २६ ॥ अमूर्त्तानपिता
शं कलिकाकृतीन् ॥ तान्दृष्ट्वा सहसा छोदा व्रीडिता चा
णात् ॥ २७ ॥ तेन दुःखेन संतप्ता बभूव वरवर्णिनी ॥ व
तरं दृष्ट्वा सैकदा ह्यंतरिक्षगम् ॥ २८ ॥ अमावसुमि
मद्रिकाप्सरसायुतम् ॥ वव्रे तं पितरं देवि विमानस्थं य
॥ २९ ॥ व्यभिचारेण मनसा योगभ्रष्टा पपातह ॥ त्री
द्विमानानि पतमानानि वै दिवः ॥ ३० ॥ पितॄँस्तांस्तु
णि वह्निन्वह्निष्विवाहितान् ॥ त्रायध्वं पितरो वव्रे पत

स्त्री थी ॥ २२ ॥ एकपाटला जैगीषव्यकी स्त्रीथी, यह सभी योगक्रियासे युक्त
इन दोनोंके पुत्र संसारमें सोमपद नामसे प्रसिद्ध हुए वेही पितर हैं ऐसा देव
करतेहैं ॥ २४ ॥ महात्मा बड़े पराक्रमी अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध हुए, छोदा
एक मानसी कन्या हुई ॥ २५ ॥ उसीसे अच्छोदनाम सरका प्रादुर्भाव हुआ,
उसनेभी तुम्हारे अपूर्व पितरोंका अवलोकन किया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यद्यपि
रूप नहींथा परन्तु उनकी आकृति कलीकी समान देखी, उन्हें देखतेही छोदा ल
त होगई ॥ २७ ॥ और वोह सुन्दरी उनके दुःखसे अत्यन्त दुखित होगई, और
देखा कि, वसुओंके पितर अन्तरिक्षमें जारहेहैं ॥ २८ ॥ जो अमावसुनाम
उन्हींको अप्सराओंसे युक्त देखा, और उसने विमानमें उपस्थित हुए परम
वरमांगा ॥ २९ ॥ उसके मनमें व्यभिचारकी वासनाथी अतएव वोह योगसे भ्र
होगई, उसी समय उसने देखा कि, तीन विमानभी स्वर्गसे उतर रहेहैं ॥ ३० ॥
कणकी समान सूक्ष्मरूपधारी पितर उनमें उपस्थितहैं अधोमुखहो उस गिरती हुई

वाक्छिराः ॥३१॥ उक्ता तैस्तु महाराज माभैषीरिति व्योमगा ॥
प्रसादयामास ततः स्वान्पितॄन्दीनया गिरा ॥३२॥ पितरस्ते सु-
तामूचुर्योगभ्रष्टां भगीरथ ॥ भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचि-
स्मिते ॥ ३३ ॥ यैर्यथा क्रियते कर्म तत्फलं प्राप्यते पुनः ॥ स-
द्यः फलंति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥ ३४ ॥ पुत्रि तस्माद्धि
त्वमपि तपसः प्राप्स्यसे फलम् ॥ इत्युक्ता तैर्महाभागा ध्यात्वा
देवं जनार्दनम् ॥३५॥ प्रसादं ते तथा चक्रुः पितरो ह्यनुकंपया ॥
भाविनं च तथा ज्ञात्वा तथोचुर्नरपुंगव ॥ ३६ ॥ तस्यैव कन्या-
रत्नं हि वसोस्त्वं हि भविष्यसि ॥ पुत्रौ द्वौ कीर्त्तिमंतौ वै नाम-
तः शृणु तौ शिवे ॥ ३७ ॥ एकं विचित्रवीर्यं वै तथा चित्रांगदं
परम् ॥ जनयित्वा तु तौ पुत्रौ पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
अष्टाविंशयुगे त्वं हि भवित्री मत्स्ययोनिजा ॥ पितृव्यतिक्रमेण
त्वं जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ॥ दासेयी तु पुनश्चैव नाम्ना सत्यव-
ती तथा ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां पितॄणां सा

र्थना की कि, मेरी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! उन्होंने कहा कि, तू भय मतकर, बतौ उस आकाशचारिणीने अपने पितरोंको प्रसन्न किया ॥ ३२ ॥ हे भगीरथ ! वे पित- भी उस योगभ्रष्टासे यों बोले--अयि मृदुमुसकानेवाली ! अपनेही दोषोंसे तेरा ऐश्वर्य भ्रष्ट गया अतएव तू निपतित होरहीहै ॥ ३३ ॥ जो जैसा कर्म करतेहैं उन्हें उसका फल वश्य प्राप्त होताहै, मृतक होनेके अनन्तर देवत्व अथवा मनुष्यत्वमें कर्म शीघ्रही फलदेतेहैं ३४ ॥ अतएव हे पुत्रि ! तुझेभी तपका फल अवश्य प्राप्त होगा, उनके यह वाक्य श्रवण र वोह जनार्दन भगवान्का ध्यान करने लगी ॥ ३५ ॥ और पितरोंने भी उसके ऊपर पाकरके प्रसाद किया, और हे नरोत्तम ! होनहारको जानकरही उन्होंनें ऐसा कहा ॥३६॥ ससे कहा तू वसुकी कन्या होगी, कीर्त्तिशाली दो पुत्र तेरे उत्पन्न होगें, उनके नाम सुनो ३७ ॥ एकका नाम विचित्रवीर्य और दूसरेका नाम चित्राङ्गद होगा, इन दो पुत्रोंको नकर फिर अपने लोकोंको प्राप्त होगी ॥ ३८ ॥ और अट्ठाईसवें युगमें मत्स्ययोनिसे तेरा न्महोगा, एवं च पितृव्यके व्यतिक्रमसे तुझे कुत्सित जन्मका लाभ होगा फिर तू धीवरकी ी होगी और तेरा नाम सत्यवती होगा ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले--उक्त पितरोंके ऐसे

तथाभवत् ॥ तस्यामेव समुत्पन्नाः सुता राज्ञो महात्मनः
वैभ्राजानाम लोकास्ते दिवि भांति भगीरथ ॥ यत्र बर्हिषदो
न्यजंति हि दानवाः ॥ ४१ ॥ नागाः सर्प्पा राक्षसाश्च त
र्वकिन्नराः ॥ सुपर्णाश्च तथैवान्ये भावयंति महाप्रभान् ॥
एते प्रजापतेः पुत्राः पुलस्त्यस्य महात्मनः ॥ म
समाख्यातास्तपोवीर्य्यसमन्विताः ॥ ४३ ॥ तेषां च
कन्या पीवरी समुदाहृता ॥ तत्रैव द्वापरयुगे व्यासः स
सुतः ॥ ४४ ॥ शुकं नाम महात्मानमरण्यां जनयिष्यति
तस्यां पितृकन्यायां पंचापत्यानि भूपते ॥ ४५ ॥ कृ
प्रभुं शंकुं कन्यां कृत्वीं तथैव च ॥ एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु
र्य्यान्भगीरथ ॥४६॥ शुकोपि परधर्म्मज्ञो योगिनां प्रवरो
गमिष्यति गतिं तात पुनरावृत्तिदुर्लभाम ॥ ४७ ॥ ते
पितरो धर्ममूर्त्तिधरा मताः ॥ कामगेषु च लोकेषु वर्त
सत्तम ॥ ४८ ॥ कुवला नाम पितरो वसिष्ठस्य सुता

वाक्य श्रवणकर वोह वैसीही बनगई, उसीमें महात्मा पुत्रोंका प्रादुर्भाव हुआ ।
भगीरथ ! विभ्राजनाम लोक वे स्वर्गमें सुशोभित होरहेहैं, हे राजन् ! बर्हिष
उनका यजन करतेहैं ॥ ४१ ॥ क्या नाग, क्या सर्प, क्या राक्षस, क्या गन्धर्व,
और क्या दानव ये सब तथा अन्यान्यभी उन महातेजस्वियोंकी भावना करतेहैं
यह सब महात्मा पुलस्त्य प्रजापतिके पुत्र हुए, यह महाभाग तप और पराक्रमसे यु
इनकी प्रसिद्धि विशेष हुई ॥ ४३ ॥ उनकी एक मानसी कन्या वरी हुई, द्वापर
से सत्यवतीकुमार व्यासजी प्रादुर्भूत हुए ॥ ४४ ॥ और शुकनाम महात्मा
जनैगी. हे राजन् ; इस पितृकन्यामें पांच सन्तानोंका जन्म होगा ॥ ४५ ॥
प्रभु, शंकु और कृत्वी कन्या, हे भगीरथ ! इन सन्तानोंका जन्म होगा, और यह
चार्य्य होंगे ॥ ४६ ॥ हे पुत्र ! समस्त धर्मोंके ज्ञाता, और सब मुनियोंमें श्रे
महाराजको उस गतिका लाभ होगा, कि, जिसे प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता ॥
धर्ममूर्त्तिके धारण करनेवाले वेही मूर्त्तिमान् पितर मानेगयेहैं, और हे राजसत्तम
इच्छाचारी लोकोंमें विद्यमान हैं ॥ ४८ ॥ कुवला नाम पितर वशिष्ठजीके पुत्र

निरता दिवि देवेषु द्विजास्तान् भावयंत्युत ॥ ४९ ॥ तेषां वै मानसी कन्या गौरीति समुदाहृता ॥ एकशृंगी शुकस्यास्य भार्गवस्य कुटुंबिनी ॥ ५० ॥ भगीरथ महाराज सा साध्यप्रीतिवर्द्धिनी ॥ मरीचिगर्भास्ते लोकाः सत्पुत्राश्च व्यवस्थिताः ॥ ॥ ५१ ॥ एते चांगिरसः पुत्राः क्षत्रिया भावयंति तान् ॥ तेषां च मानसी कन्या याऽच्छोदेति प्रकीर्त्तिता ॥ ५२ ॥ सा पत्नी विश्वमहतो राजर्षेर्विदितात्मनः ॥ तत्पुत्राश्च भविष्यंति कर्दमस्य तथांशजाः ॥ ५३ ॥ सुस्वधा नाम पितरः सर्वे ते पुलहात्मजाः ॥ लोकेष्वद्यापि वर्त्तन्ते कामगेषु विहंगमाः ॥ ५४ ॥ तांस्तु वैश्या महात्मानः भावयंति शमिच्छवः ॥ तेषां कन्या च विरजा मानसी समजायत ॥ ५५ ॥ नाहुषस्य ययातेः सा जननी ब्रह्मवादिनी ॥ गणा एते त्रयः ख्याताः पितॄणां स्वर्गहेतवः ॥ ॥५६॥ चतुर्थः पितृगणो राजन् यथावच्च निगद्यते ॥ स्वधायां च समुत्पन्नाः कवेः पुत्राश्च सोमपाः ॥ ५७ ॥ हिरण्यगर्भगर्भास्ते

र्गलोकमें देवताओंमें सम्मिलितहैं, केवल ब्राह्मणही उनका मान करतेहैं ॥ ४९ ॥ उनकी नसी कन्या गौरी हुई, और शुककी एकशृंगी हुई, एवं यह भार्गवकी स्त्री हुई ॥ ५० ॥ महाराज भगीरथ ! यह साध्योंकी विशेष प्रीति बढानेवालीथी, एवं उन साध्योंका जन्म रीचिसे हुआ और वे सत्पुत्रथे ॥ ५१ ॥ यह सब अंगिराके जो पुत्रहैं इन्हें क्षत्रियलोग तेहैं, इनकी मानसी कन्याका नाम अच्छोदा कीर्त्तन कियाहै ॥ ५२ ॥ जिनकी वेदान्त द्या प्रसिद्धहै ऐसे विश्वमहत् ऋषिकी वोह पत्नीथी, एवं च कर्दमके अंशसे उसके पुत्रोंका न्म होगा ॥ ५३ ॥ पुलहके पुत्र सुखधानाम पितरहैं, वे आकाशचारी इच्छागामी लोकोंमें तक विद्यमानहैं ॥ ५४ ॥ कल्याणकी कामना करनेवाले महात्मा वैश्य उनका मान तेहैं, उनकी विरजा नाम मानसी कन्या हुई ॥ ५५ ॥ और वोह वेदान्तवादिनी नाहुष यातिकी जननीथी, पितरोंके स्वर्गके हेतु यह तीन गण कथन किये गये हैं ॥ ५६ ॥ राजन् ! अब चतुर्थ पितृगणका यथावत् वर्णन करतेहैं स्वधामें भृगुके सोमप पुत्र उत्पन्न ॥ ५७ ॥ उनका प्रादुर्भाव हिरण्यगर्भके अंशसे हुआ, इनकी पूजा सदा शूद्रही करतेहैं

शूद्रैस्ते पूजिताः सदा ॥ मानसा नाम ये लोकास्तत्र ति
दिवि ॥ ५८ ॥ तेषां बभूव नृपते मानसी नर्मदा सुता ॥
या त्रिभुवनं दक्षिणापथगामिनी ॥५९॥ युगे युगे मनुर्
वर्त्तयति बुद्धिमान् ॥ श्राद्धानि यस्य तुष्ट्यर्थं श्राद्धे
प्रभो ॥ ६० ॥ एते चान्ये च बहवः पितृसर्ग्गाः प्रकी
तद्रूपं रौप्यवर्णं यत्तत्पात्रं राजतं तथा ॥ ६१ ॥ सोमस्य
नं वह्नेस्तथा वैवस्वतस्य हि ॥ कृत्वा विप्रमुखे राजन्
पितृदेवताः ॥ ६२ ॥ संचरंति महात्मानस्ततः पूज्यतम
ताः ॥ अविद्यं वा सविद्यं वाऽवेहि विष्णुं सनातनम् ॥
दृष्ट्वा यो ब्राह्मणं देवं प्रणामं न करोति वै ॥ पितरस्तस्
स्वर्गस्थाश्च पतंति हि ॥ ६४ ॥ येन केनाप्युपायेन ब्रा
षयेद्बुधः ॥ ब्राह्मणा यस्य संतुष्टाः संतुष्टास्तस्य देवताः ॥
ब्राह्मणा यस्य राजर्षे विषये दुःखिताः स्थिताः ॥ तस्
कुलं सर्वं नश्यते नरपुंगव ॥ ६६ ॥ दावाग्निः शमन

और स्वर्गमें मानस नाम लोकोंमें वे स्थितहैं ॥ ५८ ॥ इनकी मानसी कन्या
हुआ, यह दक्षिणापथगामिनी होकर तीनो लोकोंको पवित्र करतीहै ॥ ५९ ॥
प्रत्येक युगमें जिस २ श्राद्धके अधिष्ठाता देवकी तुष्टिके लिये बुद्धिमान् मनुष्य
करतेहैं वोह उन्हीको प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥ यह तथा अन्यान्यभी बहुतसे
किये गयेहैं, उनके वर्ण तथा पात्र रजतमय वर्णनकिये गयेहैं ॥ ६१ ॥ सोम
वैवस्वतकी तुष्टिके निमित्त ब्राह्मणके मुखमें श्राद्ध करने अर्थात् ब्राह्मणभोजन
पितृ देव सन्तोषको प्राप्त होतेहैं ॥ ६२ ॥ क्योंकि यह महात्मा ब्राह्मण सर्वत्र
एव अतिशय पूजनीय मानेगयेहैं, ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो चाहे अविद्वान् परन्तु
विष्णुस्वरूप जानना चाहिये ॥ ६३ ॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणदेवको देखकर वंदे
करता, उसके पितर यदि स्वर्गमेंभी स्थितहों तथापि नरकमें निपतित होजातेहैं
बुद्धिमानको उचितहै जैसे बने तैसे ब्राह्मणको सन्तुष्ट करै, क्योंकि, जिससे ब्राह्मण
जातेहैं उससे संपूर्ण देवता प्रसन्न रहतेहैं ॥ ६५ ॥ हे राजर्षे ! जिसके अधिकार
दुःख प्राप्त होताहै, हे नरपुंगव ! उसका राज्य, कुल तथा अन्य सर्वस्व विनाशको
है ॥ ६६ ॥ चाहे दवाग्नि (वनकी अग्नि) और वज्रपात आदि उत्पात शान्त हो

वज्रपातादिकं तथा ॥ न ब्राह्मणभवः कोपस्तस्मात्तं कारयेन्नहि ॥ ६७ ॥ श्राद्धे यस्य महाभाग ब्राह्मणास्तोषिता भृशम् ॥ देवा यक्षास्तथा नागाः संतुष्टाः पितरस्तथा ॥ ६८ ॥ देवास्तृप्यंति विप्राणां तृप्तितः सुतरां प्रभो ॥ तत्तृप्तितः पितृगणा ये ये चोक्ता मया तव ॥ ६९ ॥ ते वै पितृगणा राजंस्तत्पितॄँस्तर्पयंति हि ॥ नरके ये स्थितास्तांस्तु पितृलोकं नयंति ते ॥७० ॥ स्वर्गेपि चाधिकां प्रीतिं कारयंति महीपते ॥ तर्पयंति च संसारे भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ७१ ॥ यस्य पुत्रादयः श्राद्धं प्रकुर्वंति यथा दिने ॥ तस्मिन्दिने सुभोज्यं ते लभंते मनसेप्सितम् ॥ ७२ ॥ राजंस्तुष्टेषु पितृषु संतुष्टो जगदीश्वरः ॥ तस्मिंस्तुष्टे महेशानि त्रैलोक्ये दुर्ल्लभं न हि ॥ ७३ ॥ आयुर्बलं यशो विद्यां परत्र च परां गतिम् ॥ लभंते श्राद्धकर्त्तारस्तस्मात्तत्कार्यमेव हि ॥ ७४ ॥ चतुर्वर्गस्य मूलं हि ब्राह्मणाः संस्थिता भुवि ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र ब्राह्मणान्पूजयस्व हि ॥ ७५ ॥ विप्रप्रकोप

ब्राह्मणोंका क्रोध शान्त नहीं होता अतएव ब्राह्मणोंको कोप न करनेदे ॥ ६७ ॥ हे महाभाग ! जिसके श्राद्धमें ब्राह्मण अतीव सन्तुष्ट होतेहैं उससे क्या देवता, क्या यक्ष, क्या नाग और क्या पितर यह सभी सन्तुष्ट होजातेहैं ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मणोंहीकी तुष्टिसे देवताभी सन्तुष्ट होतेहैं, एवंच हमनें जितने पितृगण कीर्त्तन कियेहैं इनकी तृप्तिभी ब्राह्मणोंहीको तृप्त करनेसे होतीहै ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! वे पितृगण उनके पितरोंको अवश्य सन्तुष्ट करतेहैं, और जो पितर नरकमें अवस्थित होतेहैं, उन्हें पितृलोकमें पहुँचा देतेहैं ॥ ७० ॥ हे भूपाल ! जो पितर प्रथमहीसे स्वर्गमें विद्यमानहैं उन्हें यह अतिशय संतुष्ट करतेहैं, तथा जो संसारमें विद्यमानहैं उन्हें भोजन वस्त्र आदिदेकर अतिशय तृप्त करतेहैं ॥७१॥ जिसके पुत्रादिक यथाविहित दिनमें श्राद्धकरतेहैं, उस दिन उन्हें यथेच्छ उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ उपलब्ध होतेहैं ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! पितरोंके सन्तुष्ट होजानेसे जगदीश्वर भगवान्भी सन्तुष्ट होतेहै, और हे महेश्वरि ! परमेश्वरके सन्तुष्ट होजानेपर त्रिलोकीमें कोई वस्तुभी दुर्लभ नहीं रहती ॥ ७३ ॥ श्राद्धकरनेवाले जन इस संसारमें दीर्घायु, बल, यश और विद्याको तथा परलोकमें सद्गतिको लाभ करतेहैं अतएव श्राद्ध अवश्य करना चाहिये ॥ ७४ ॥ चतुर्वर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्षके मूलस्वरूप ब्राह्मण भूमिके ऊपर विद्यमान हैं, अतएव हे राजन् ! तुमभी ब्राह्मणोंका

निर्दग्धाः पितरस्ते भगीरथ ॥ भूतवेतालरूपाश्च संचरंति म
तले ॥ ७६ ॥ सुसंतुष्टेन मनसा कपिलेन प्रदर्शितम् ॥ पित
करं सद्यो गङ्गाख्यं धाम चोत्तमम् ॥ ७७ ॥ आनयिष्यसि
गां त्वं तद्बिले पितृमुक्तये ॥ दृष्ट्वा तद्धामपरमं गमिष्यंति
गतिम् ॥ ७८ ॥ गंगया न समं तीर्थं पावनं सर्वदेहिनाम् ॥ य
वासुदेवस्य तनुरेव न संशयः ॥ ७९ ॥ महादेवस्य शिर
र्तते सरिदुत्तमा ॥ संतोष्य तं महादेवं गंगामानय भूपते ॥
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे पितृसर्गे वंशानुकीर्त्तने भगीरथो
ख्याने गंगानये द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

पूजन करो ॥ ७५ ॥ हे भगीरथ ! तुम्हारे पितर ब्राह्मणहीके क्रोधसे भस्म हु
एव वे भूत और वेतालोंका रूप धारण कर भूमिके ऊपर विचरतेहैं ॥ ७६ ॥
महाराजने मनमें सन्तुष्ट होकर तुम्हारे पितरोंकी मुक्तिके निमित्त परम तेजःस्वरूप
निर्देश कियाहै ॥ ७७ ॥ अपने पितरोंकी मुक्तिकेलिये तुम गंगाजीको लाकर
स्थानमें परम तेजःस्वरूप गंगाजलका अवलोकन करके उनको परमगतिकी प्रा
॥ ७८ ॥ समस्त देहधारियोंको पवित्र करनेके लिये गंगाजीकी समान और को
नहींहै, इसका कारण यहहै कि, यह गंगाजल निःसन्देह भगवान्का शरीररूप है ॥
वोह सर्वोत्तम नदी महादेवजीके शिरके ऊपर विद्यमानहै, अतएव हे राजन् ! महा
सन्तुष्ट करके गंगाजीको लाओ ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं महाराजं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ उवा
प्रणतं वाक्यं प्रष्टुकामं भगीरथम् ॥ १ ॥ विघ्नान्यपि भवि
ति श्रीगङ्गानयने ध्रुवम् ॥ प्रायः श्रेयस्सु कार्य्येषु भविष्य

महादेवजी बोले--ब्रह्माजीने महाराज भगीरथसे यह वचन कहे, राजा नम्रहो क
पूछना चाहतेथे तभी ब्रह्माजी फिर बोले ॥ १ ॥ श्रीमती गंगाजीके लानेमें विघ्नभी

न संशयः ॥ २ ॥ महानुभाववशतः सर्वं संपाद्यते किल ॥
॥ ३ ॥ त्वया राजन् पूर्वभवे विष्णोः श्रीशिवरूपिणः ॥ आरा-
धनं कृतं सम्यक् तेन ते भक्तिरीदृशी ॥ ४ ॥ हिमालयं नगं ग-
च्छ भाविकार्य्यप्रवर्त्तने ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ धन्योऽस्मि
कृतकृत्योस्मि यस्याग्रे त्वं महाप्रभुः ॥ प्रष्टव्यमस्ति भगवंस्त-
द्ब्रूहि मम सर्वकृत् ॥ ६ ॥ केन कर्मविपाकेन भवंतो दर्शनं
गताः ॥ गंगाख्यं परमं धाम मत्कृते ह्यागमिष्यति ॥ ७ ॥ इति
मे संशयो ब्रह्मन् महानेव प्रवर्त्तते ॥ कोहं भवांतरे जातः कदा-
रभ्य मया कृतम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि य-
त्पृष्टं भक्तितस्त्वया ॥ यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते लीयते वि-
भोः ॥ ९ ॥ आदिदेवं महादेवं नत्वा नारायणात्मकम् ॥ इदं संसा-
रचक्रं वै माया तस्य महात्मनः ॥ १० ॥ यथा स्वप्ने महाराज जा-
यते यद्भवांतरम् ॥ राजा भूत्वा पुनर्योगी बुध्वा किंचिन्न दृश्य-
ते ॥ ११ ॥ तद्वदेव महाराज सर्वं भवति मायिकम् ॥ न किंचि

होंगे, प्रायः शुभकार्योंमें विघ्न होतेहीहैं ॥ २ ॥ परन्तु परमेश्वरकी कृपाके कारण तुम संपूर्ण कार्योंको संपादन करलोगे इसमें सन्देह नहींहै ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पूर्वजन्ममें तुमने शिवरूपी श्रीविष्णु भगवान्का आराधन कियाथा अतएव तुम्हारी ऐसी भक्तिहै ॥ ४ ॥ अब तुम हिमालय पहाड़पै जाओ और कर्त्तव्य कार्यके करनेमें प्रवृत्त होओ ॥ ५ ॥ भगीरथ बोले--मैं कृतकार्यहूं अतएव मुझे धन्यहै कारण कि, जिनसे मैं प्रश्न करसकूं ऐसे महाप्रभु आप साक्षात् मेरे समक्ष उपस्थितहैं, सो मेरा कर्त्तव्य मुझे बताइये ॥ ६ ॥ किस उत्तम कर्मके करनेसे आपका दर्शन मुझे प्राप्त हुआ और मेरेही करनेसे गंगाजी आवेंगी ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे यह सन्देह बड़ा उपस्थित होरहाहै, मैं दूसरे जन्ममें कौनथा और किस प्रकार मैंने भगवान्की आराधना की थी ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले—सुनो राजन् ! तुमने जो कुछ भक्तिभावपूर्वक पूछा है वोह मैं कहताहूं, जिन भगवान्की इच्छासे यह जगत् उत्पन्न होता और लय होजाताहै ॥ ९ ॥ उन्ही नारायणस्वरूप आदिदेव महादेवको प्रणाम करके उन्ही महात्माकी माया इस संसार चक्रका निर्माण करतीहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! जैसे स्वप्नमें दूसरा जन्म होताहै और राजा हो कर फिर योगी होताहै परन्तु जागकर फिर कुछ नहीं दीखता ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इसी

द्रियते भूप मायया रहितं जगत् ॥ १२ ॥ स्ववृत्तांतं यथा
शृणु सर्वं यथातथम् ॥ येनेमां जन्मना भूप भूपतां त्वं गत
लु ॥ १३ ॥ आसीस्त्वं वै पुरा वैश्यो देवगुप्तः परंतपः ॥ रेवा
महापुर्यां माहिष्मत्यां हि याम्यके ॥ १४ ॥ धनधान्या
हि गेहे राजकुले तथा ॥ तव पुत्रौ तदा जातौ द्वावेव स
त्मज ॥ १५ ॥ ज्येष्ठस्तु सोमगुप्तो भूत्कनीयान्धनगुप्त
तयोरेको बभूवाथ दुर्वृत्तो ज्ञानदुर्बलः ॥ १६ ॥ धनगुप्तेति
नाम्ना कनीयान् तव चात्मजः ॥ तवैव सविधे तेन नीतं
धनं क्षयम् ॥ १७ ॥ वेश्याद्यूतपणैः पानैः सर्वं संपादि
यत् ॥ पुनस्त्वया हि कष्टेन धनं किंचित्समर्जितम् ॥ १
तदेव तव द्रव्यं हि सर्वं स्वमभवत्तदा ॥ एकदा तेन दुष्टेन
गुप्तेन भूपते ॥ १९ ॥ ततः प्रभातजातायां रजन्यां सागर
न दृष्टं तद्धनं सर्वं मूर्च्छितोऽभूत्परंतपः ॥ २० ॥ रुदितं च
तरं त्वया तत्र महामते ॥ नष्टाजीवेन भवता ज्येष्ठ

प्रकार यह सब संसार मायासे व्याप्तहै सुतराम् इस जगत्में मायारहित कुछभी
होता ॥ १२ ॥ और तुम्हारा जो ठीक २ वृत्तान्तहै अब उसे सुनो, जिससे कि,
जन्ममें राजा बनेहो ॥ १३ ॥ हे राजन्! प्रथम तुम तपस्वी देवगुप्त नाम
दक्षिणकी ओर रेवानदीके तटपर माहिष्मती नगरीमें निवास करतेथे ॥ १४ ॥
परिपूर्ण अतएव राजकुलकी समान कमनीय घरमें तुम्हारा जन्म हुआ था, हे साग
तब तुम्हारे दो पुत्र हुए ॥१५॥ उनमेंसे ज्येष्ठ (बड़ा) तो सोमगुप्त और कनिष्ठ (छो
गुप्तथा; उनमेंसे एक ज्ञानहीन अतएव दुराचरणशीलथा ॥१६॥ लघुपुत्र जो धनगुप्तथा
म्हारे समक्षही सब धनको नष्ट करदिया ॥ १७ ॥ तुमने जितना धन संपादन किया
सभी उसने वेश्यागमन, द्यूतक्रीड़ा, पासेफेंकना और मद्यपान करना इनमें नाश
तुमने फिर कष्ट करके कुछ एक धनसंचय किया ॥ १८ ॥ परन्तु वोह सब धन
(संपत्ति) की समान होगया, एक समय हे राजन्! उस देवगुप्तने ॥ १९
सगरकुलोत्पन्न नरसत्तमभूप ! प्रभात होनेपर जब धन नहीं देखा तब वोह मूर्च्छित हो
ऊपर गिर पड़ा ॥ २० ॥ और हे महामते ! तब तौ तुमने बड़ा रोदन किया, और

महीपते ॥ २१ ॥ अयं दुष्टो मारणीयो येन सर्वे हि मारिताः ॥ पुत्रः प्रियतरो वापि कुमार्गनिरतो भवेत् ॥ २२ ॥ न तस्य मारणे पापं कुबुद्धिर्न भविष्यति ॥ इति श्रुत्वा वचो ज्येष्ठ उवाच क्षणमुत्तरम् ॥ २३ ॥ स्वबुद्ध्यैव मृतो यस्तु न मारयितुमर्हसि ॥ अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ॥ २४ ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ शतपत्रांतसंलग्नवायुलोलांबुबिंदुकः ॥ २५ ॥ तथेदं जीवितं तात न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ विद्युल्लोला समद्योतचंचला कमला किल ॥ २६ ॥ नियतो यस्य नाशस्तु तस्य नाशे दरः कुतः ॥ विचार्य्यैवं पितः कार्य्यं कार्यं सर्वं सुबुद्धिना ॥ २७ ॥ क्षणनाशिनि संसारे जराशोकसमाकुले ॥ आधिव्याधिभयोद्विग्ने नानादुःखसुयंत्रिते ॥ २८ ॥ ममायमहमस्यास्मि बुद्धिरेतादृशी तु या ॥ बुद्ध्या तया महाभाग अंधीभूतं जगत्रयम् ॥ २९ ॥ तथैव मुह्यते जंतुस्तथैव जायते पुनः ॥ इति निश्चित्य सुधिया बोद्धव्यं हि परात्परम् ॥ ३० ॥

अत्यन्त क्लेशित होकर ज्येष्ठपुत्रसे कहा ॥ २१ ॥ इस दुष्टको मारडालना चाहिये क्योंकि इसने तौ सबहीको निर्जीव करदिया, पुत्र यदि कुमार्गगामी हो तौ वोह यदि प्राणाधिकप्रिय हो तौभी ॥ २२ ॥ उस कुबुद्धिके वधकरनेमें कोई पाप नहीं होता, यह वाक्य सुन ज्येष्ठपुत्रने तत्काल यह उत्तर दिया ॥ २३ ॥ जो उत्तम बुद्धिसे हत अर्थात् रहित है उसको मारना उचित नहीं, क्योंकि यह देह तथा धन संपत्ति नाशवान्हैं ॥ २४ ॥ मृत्यु सदा साथ ही लगी रहतीहै अतएव धर्मका संग्रह करना कर्त्तव्यहै, जैसे कमलपत्रके ऊपर लगा जलबिन्दु पवनसे चलायमान होताहै ॥ २५ ॥ हे पिताजी ! इसी प्रकार प्राणियोंका जीवनहै अतएव आपको सोच करना न चाहिये और यह लक्ष्मी बिजलीकी चमककी समान चपलहै ॥ २६ ॥ जिसका नाश अवश्य होनहारहै, उसके नाशमें ऐसा अनुराग क्यों है ? हे पिताजी ऐसा विचार कर बुद्धिमान्को कार्य्य करना चाहिये ॥ २७ ॥ यह संसार जरा और शोकसे व्याप्त तथा क्षणभंगुर है, शारीरिक दुःख और मानासिक व्याधाओंसे एवंच अन्यान्य विविध प्रकारके दुःखोंसे यन्त्रित होरहाहै ॥ २८ ॥ यह मेराहै, और मैं इसकाहूं हे महाभाग ! इस प्रकारकी बुद्धिसे यह त्रिलोकी अन्धी होरहीहै ॥ २९ ॥ इसी प्रकार यह जीव मरता और फिर जन्मलेताहै, ऐसा निश्चय करके परमेश्वरके रूपका स्मरण करना चाहिये ॥ ३० ॥

भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चंचलाः ॥ आयुर्वै क्षी
नित्यं पलैश्च घटिकादिभिः ॥ ३१ ॥ माता वदति
मे वर्द्धिष्णुर्वर्त्तते ह्ययम् ॥ कालो वदति सर्वात्मा भक्ष्यं मे
ति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ स्वपतो गच्छतो देव तिष्ठतो जाग्रतस्त
छायामिषेण पुंसस्तु मृत्युर्धावति धावतः ॥ ३३ ॥ दृश्य
मृयमाणा जायमानाः पुनस्तथा ॥ सायं यो दृश्यते ता
तर्नो दृश्यते तु सः ॥ ३४ ॥ प्रातर्यो दृश्यते जंतुर्मध्याह्ने क
ति सः ॥ दृष्ट्वा संसारवैचित्र्यं हा कथं जगदीश्वरम् ॥ न भ
परात्मानं मूढास्ते ज्ञानवर्जिताः ॥३५॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति
रितं तस्य विस्मयाविष्टमानसः ॥ सोमगुप्तं महात्मानं प
नृपतिः पिता ॥ ३६ ॥ देवगुप्तउवाच ॥ सत्यं वद महाभाग
रूपेण मद्गृहे ॥ देवो वा मुनिवर्य्यो वा धन्योहं पुत्रवांस्त्व
॥ ३७ ॥ केन पुण्येन मे पुत्रो जातोसि भगवान्स्वयम् ॥ के
कर्मणदुष्टो जातो मम गृहे ह्ययम् ॥३८॥ इति मे संशयो देव
नेव मुनीश्वर ॥ एतत्सर्वं हि भक्ताय वद मे पृच्छते तराम् ॥३

यह भोग मेघके वितानकी समान चंचलहैं, और यह आयुभी प्रति घड़ी और प्रति
होती रहतीहै ॥ ३१ ॥ माता कहतीहै यह हमारा पुत्र वृद्धिको प्राप्त होताहै, और
कहताहै कि—परमेश्वर मेरे भोजनके लिये सबको पका रहाहै ॥ ३२ ॥ हे राजन् !
सोते जागते मनुष्योंके साथ २ छायारूपसे मृत्यु दौड़तीहै ॥ ३३ ॥ यह प्राणी
फिर जन्म लेतेहैं, हे भूप ! जिसे संध्या देखाथा वोह प्रभात समय नही दीखताहै ॥
जो जन्तु प्रातःसमय दृष्टिगत होताहै, वोह मध्याह्नसमय अलक्षित होजाता है,
इस विचित्रताको देखकरभी हाय ! परमेश्वरको मूढमति क्यों नहीं भजतेहैं ॥
ब्रह्माजी बोले—पुत्रके यह वचन सुन राजाके चित्तमें आश्चर्य उदय होआया, और
उसने महात्मा सोमगुप्तसे यह प्रश्न किया ॥ ३६ ॥ सत्य बताओ पुत्ररूपसे मेरे
देवता अथवा मुनिराज कौनहो ? मुझे धन्यहै जो मैं तुमसे पुत्रवान्हूं ॥ ३७ ॥ कौन
के प्रतापसे तुम साक्षात् भगवान् हमारे पुत्र हुएहो ? और ऐसा कर्म कौनसा मैंने
जिससे कि, यह दुष्ट मेरे यहां जन्माहै ॥ ३८ ॥ यह बडा सन्देह मुझे हो रह

सोमगुप्त उवाच ॥ यत्पृष्टोहं त्वया तात तत्सर्वं कथयामि ते ॥ अयं पुरा चंद्रपुरे श्रेष्ठिनां प्रवरः पितः ॥ ४० ॥ धनवांश्च गुणी तात नानाभोगसमन्वितः ॥ अभूत्सर्वस्य जगतः ख्यातो धनबलेन हि ॥ ४१ ॥ पूर्वं त्वया ऋणं नीतमस्मादेव महाश्रियः ॥ अस्मात्त्वं दुर्बलो जातः कदाचित्कालसंगमे ॥ ४२ ॥ त्यक्ता त्वया वैश्यवृत्तिः क्षात्रधर्मरतोभवः ॥ कदाचिदटता पृथ्व्यां गतं देशे हि पौंड्रके ॥ ४३ ॥ तस्य देशस्य यो राजा पुत्रेण रहितः स्थितः तेन राज्ञापि पुत्रत्वे कल्पितस्त्वं तदा हि वै ॥ ४४ ॥ प्रजाश्च भाग्ययोगेन प्रीतिवंत्योखिलास्ततः ॥ जातास्त्वय्येव हे तात कर्मणः पूर्वजन्मनः ॥ ४५ ॥ राजापि जरया व्याप्तो ममार कतिचिद्दिनैः ॥ सर्वाभिश्च प्रजाभिस्त्वमभिषिक्तो नृपासने ॥ ४६ ॥ त्वया तत्रापि विधिना प्रजायाः पालनं कृतम् ॥ काले बहुतिथे जाते अन्विष्यन्नृणवल्लभः ॥ ४७ ॥ आगतस्तव सविधे त्वया नीतं तु यद्धनम् ॥ तद्धनं याचयामास उत्तमर्णस्तव ह्ययम् ॥ ४८ ॥

आपसे पूछताहूं यह सब वृत्तान्त मुझ भक्तसे कहिये ॥ ३९ ॥ सोमगुप्तबोला–हे पिताजी ! जो कुछ आपने पूछा, वोह सब वृत्तान्त मैं आपके प्रति वर्णन करताहूं यह प्रथम चन्द्रपुरमें बडा श्रेष्ठ सेठथा ॥ ४० ॥ हे तात ! यह धनाढ्य गुणी और भोगवान्था, एवं च यह अपने धन और बलके द्वारा समस्त जगतमें विख्यातथा ॥ ४१ ॥ प्रथम आपने इस धनाढ्यसे ऋण (कर्ज) लियाथा, और समयानुसार फिर तुम धनदुर्बल होगये ॥ ४२ ॥ तुम वैश्य वृत्तिका परित्याग करके क्षत्रियोंके धर्म (कर्म) का आचरण करने लगे, कदाचित भूमिके ऊपर विचरते २ पौण्ड्रकदेशमें चलेगये ॥ ४३ ॥ और उस देशके राजाको कोई पुत्र नहीं था. अतएव उसने तुम्हें अपने पुत्रके स्थानमें कल्पना करलिया ॥ ४४ ॥ सौभाग्यका उदय होनेके कारण समस्त प्रजाभी विशेष अनुराग करने लगी, हे तात ! पूर्वजन्मके कर्मोंसे ही यह सब सुयोग बना ॥ ४५ ॥ राजा वृद्धतौ थे ही कुछ दिनोंके अनन्तर उनका देहान्त हो गया, अतएव सब प्रजाने राजसिंहासनके ऊपर आपको अभिषेक करादिया ॥ ४६ ॥ तुमने वहांभी उचित रीतिसे प्रजाकी पालना की अनन्तर बहुतसा समय अतीत होजानपर वोह ऋणदाता अन्वेषण करता करता ॥ ४७ ॥ आपके निकट आया और आपने जितना धन लियाथा

राज्यश्रिया प्रमत्तेन न दत्तं तद्धनं त्वया ॥ भर्त्सि
बहुधा कोहं राजा महीपातिः ॥ ४९ ॥ कस्त्वं दुःखी
द्रेण व्याप्तो धनविवर्जितः ॥ गृहीतं च कदा लोका एत
मया हि वै ॥ ५० ॥ इति श्रुत्वा वचो लोका राज्ञस्तव म
ते ॥ विस्मयाविष्टमनसो भर्त्सयामासुरेव तम् ॥ ५१ ॥ खि
श्च गतोरण्यं मर्तुं वै कृतनिश्चयः ॥ कालेन निधनं प्राप त्वं
पि निधनं गतः ॥ ५२ ॥ सोयं ते पुत्ररूपेण जातोत्र उत्त
कः ॥ गृहीत्वा स्वधनं तात मरिष्यति न संशयः ॥ ५३ ॥
स्यैव द्रविणं सर्वं पूर्वदत्तं महामते ॥ गृहीतं कर्मणा तेन त
हारितं पितः ॥ ५४ ॥ शोकं त्यज द्रविणजं शिवं भज प
त्परम् ॥ अहं चैव पुरा विप्रो ज्ञानवान्वेदपारगः ॥ ५५ ॥
कर्मनिरतो ह्यासं धर्म्मनिष्ठस्तपोधनः ॥ येन केनापि सं
समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ५६ ॥ जिज्ञासुर्योगसिद्धेस्तु मुमुक्षु

वोह उस उत्तमर्णने तुमसे मांगा ॥ ४८ ॥ परन्तु तुम राज्यलक्ष्मीके मदसे मत्त
उसे धन नहीं दिया, बल्कि बहुत कुछ ललकारा, कहा कि, कहां मैं भूमिका स्वामी
॥ ४९ ॥ और कहां तू दुःख दरिद्रसे व्याप्त निर्धन प्राणी, अरे लोगों ! भला मैंने
धन कब ग्रहण कियाथा ॥ ५० ॥ हे महामते ! जब सब लोगोंने आपके ऐसे वचन
तब आश्चर्यान्वित हो वेभी उसे ललकारने लगे ॥ ५१ ॥ वोह मनमलिन मरनेका
निश्चय कर वनमें चलागया, समय पाय मृत होगया, और आपकी भी मृत्यु होगई ॥
वोही यह उत्तमर्ण आपके यहां पुत्ररूपसे प्रादुर्भूत हुआहै सो अपना धन लेकर मरे
इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ हे मतिमान् ! जो कुछ धन इसने पूर्वजन्ममें दिया
सब लिया और अपने कर्मसे गँवादिया, हे पिताजी ! इसमें आपका क्या गया ॥
द्रव्यके नाशजनित शोकका परित्याग करके आप परात्पर महादेवजीका भजन करें,
पहिले जन्ममें वेद पारगाभी अतएव विशेष ज्ञानवान् ब्राह्मणथा ॥ ५५ ॥ मैं षट्
सदाचारके कर्मोंमें निष्ठावान् और तपस्वीथा, मेरी दृष्टि मृत्तिका और सुवर्णमें समान
एव जो कुछ भी उपलब्ध होजाताथा उसीमें मुझे सन्तोष था ॥ ५६ ॥ योगसिद्धिके

१ अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, यह छै कर्म ब्राह्मणोंके
नियतहैं।

तत्परः ॥ ब्रह्मशर्म्मेति विख्यातो ह्यरावपि दयापरः ॥ ५७ ॥ एकदा मम गेहे तु ह्यागतो नारदो मुनिः ॥ प्राणायामप्रसक्तेन मया नो वंदनं कृतम् ॥ ५८ ॥ नारदस्तु तदा क्रुद्धो गर्भवासं व्रजेति माम् ॥ उवाच सहसा येन मदेन मां न भाषसे ॥ ५९ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वेपमानः कृतांजलिः ॥ अहमाराधितवांश्च विनयैर्बहुभिर्युतः ॥ ६० ॥ आराधितो मुनिः प्राह प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ ममामोघेन शापेन गर्भवासो भविष्यति ॥ ६१ ॥ परं तत्रापि ते ज्ञानं जन्मादीनां भविष्यति ॥ तेन शापेन हे तात गर्भवासं गतोह्यहम् ॥ ६२ ॥ अहं स्मरामि जन्मानि शतं तव निजस्य च ॥ तस्मात्त्वमपि संसारमवेहि क्षणनाशिनम् ॥ ॥ ६३ ॥ एतद्बुद्ध्या समालोच्य शोकं वै मा कृथा वृथा ॥ ॥ ६४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तस्त्वं हि पुत्रेण ज्ञातसंसारवैभवः ॥ त्यक्त्वा सर्वाणि कर्माणि श्रीविष्णुनिरतो गिरौ ॥ ६५ ॥ भवान् सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य जगदात्मनि ॥ जातो ब्रह्मविदां श्रेष्ठ-

की मेरी जिज्ञासाथी, मैं ब्रह्मविचारमें निरत और मोक्षार्थीभीथा, मेरा नाम ब्रह्मशर्मा और शत्रुके प्रतिभी दयाका आचरणथा ॥ ५७ ॥ एक समय मेरे घर देवर्षि नारदजी आये परन्तु मैं प्राणायाम करनेमें तत्पर था अतएव उन्हें प्रणाम न करसका ॥ ५८ ॥ नारदजीने क्रोधित हो मुझसे यह कहा कि, जिस मदके कारण तू मुझसे नहीं बोला उस अभिमानके कारण तुझे गर्भमें निवास करना पडेगा अर्थात् संसारमें तेरा जन्म होगा ॥ ५९ ॥ उनके यह वचन सुनतेही मैं कंपायमान होगया, और हाथ जोडकर नम्रतापूर्वक मैंने उनकी बहुत सी विनय करके आराधना की ॥ ६० ॥ जब मैंने वारंवार प्रणाम कर उनकी आराधना की तब मुनि मुझसे यौं बोले कि, हमारा शाप निष्फल नहीं जाता अतएव गर्भमें तौ तुम्हारा वास अवश्य होगा ॥ ६१ ॥ परन्तु जन्म आदिका ज्ञान तुम्हैं वहांभी बना रहेगा, हे तात! उसी शापके कारण मुझे गर्भवास करना पडाहै ॥ ६२ ॥ मुझे अपने और आपके सैकडों जन्मका स्मरणहै, अतएव आपको भी यह उचितहै कि इस संसारको क्षणभंगुर जानै ॥ ६३ ॥ अपनी बुद्धिसे ऐसाही विचार कर वृथा शोक करना कर्त्तव्य नहींहै ॥ ६४ ॥ ब्रह्माजी बोले-इस प्रकार जब पुत्रने तुम्हें उपदेश दिया तब तुम सर्वस्व परित्याग कर पर्वतके ऊपर आय ईश्वरभजन करनेलगे ॥ ६५ ॥ जितने अपने कर्महैं उन्हैं परमेश्वरके अर्पण कर तुम ब्रह्म-

स्तुल्यमानापमानकः ॥ ६६ ॥ काले पंचत्वमापन्नो मम
स्थितोभवत् ॥ बहुकालं हि तत्रापि भुक्त्वा भोगान्मही
॥६७॥ जातोसि प्रवरे वंशे सूर्य्यस्य परमात्मनः ॥ पितृभक्ति
विष्णौ शिवे च समतां गतः ॥६८॥ धन्योसि तेन राजेंद्र
सुकृतेन हि ॥ स्वस्त्यस्तु ते महाराज गच्छामि निजलोक
॥ ६९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा ययौ हंसेन
दिवि ॥ सोपि राजा महाबाहुराश्चर्य्यं परमं गतः ॥ ७० ॥
परममाख्यानं राज्ञो वै ब्रह्मणस्तथा ॥ संवादं शृणुते यस्तु
च महामतिः ॥ ७१ ॥ समाहितामना देवि स प्राप्नोति परं पद
यत्र गत्वा न शोच्योस्ति पुनः पर्वतनंदिनि ॥ ७२ ॥ इति
स्कांदे केदारखंडे वंशानुकीर्त्तने भगीरथोपाख्याने गंगा
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ होगये, अतएव मान और अपमानमें तुम्हारी समानही
॥ ६६ ॥ फिर समय पाय मृत्युको प्राप्त हो मेरे लोकमें स्थित हुए, हे राजन् !
अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग किया ॥ ६७ ॥ अब परमात्मा सूर्यके उत्तमवंशमें
जन्म हुआहै पितृभक्तिमें तुम निरतहो, एवं च विष्णुभगवान् और महादेवमें तुम्हा
मान भक्तिहै ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! उक्त पुण्यरूप कर्मोंका आचरण करनेके कारण
है, हे महाराज ! तुम्हारा कल्याणहो अब मैं अपने लोकको जाताहूं ॥ ६९ ॥
बोले-ब्रह्माजी महाराज यों कहकर हंसारूढ हो स्वर्गलोकको चलेगये, अथच
राजाभी परम आश्चर्य्यको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ राजा भगीरथ और ब्रह्माजी महाराज
रूपी परमोत्तम आख्यानको जो मतिमान् चित्तको एकाग्रकर हे महादेवि ! श्रवण करते
पाठ करतेहैं, हे पार्वति ! उन्हें ऐसे परम पदकी प्राप्ति होतीहै कि, जहां जाकर फिर (
रिक दुःखोंका) सोच करना नहीं पडता ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

ईश्वर उवाच ॥ भगीरथो महाबाहुः श्रुत्वा तद्ब्रह्मणेरितम् ॥ पूर्व-
स्य जन्मनो वृत्तं यथावन्मम वल्लभे ॥ १ ॥ ययौ कैलासनिलये
यत्राहं समवस्थितः ॥ मयापि भूतवेतालाः प्रेषिता यत्र वै नृपः
॥ २ ॥ श्रीमुखे पर्वते रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥ स्थित्वा तत्कं-
दरायां हि चकार परमं तपः ॥ ३ ॥ जजाप परमां विद्यां पंच-
वर्णां सुसिद्धिदाम् ॥ प्रमथास्तेपि देवेशि नानारूपा महौजसः ॥
॥ ४ ॥ तपतस्तस्य राज्ञो वै विघ्नं कर्तुं समागताः ॥ भीषयामा-
सुरपि तं नानारूपैर्महेश्वरि ॥ ५ ॥ कश्चिन्मार्ज्जाररूपेण गतस्तत्र
नृपांतिके ॥ जहास तं नृपं दृष्ट्वा किं करोषि नृपेश्वर ॥ ६ ॥ प-
श्य मे नेत्रयोरूपं स्वस्यापि परमं नृप ॥ सुंदरे कस्य वै नेत्रे दं-
ताः कस्य शुभास्तथा ॥ ७ ॥ कश्चिद्वै व्याघ्ररूपेण हुंकृतिं च
चकार ह ॥ केचित्कोलाहलं चक्रुश्छिन्धि च्छिधीति वै पुनः ॥
॥ ८ ॥ इति वै बहुधा कृत्वा अशक्तास्तद्विभीषणे ॥ आगता

महादेवजी बोले–हे हमारी प्राणप्रिये ! महाबाहु राजा भगीरथ पूर्वजन्मसंबन्धी ब्रह्मा-
ोंके ऐसे वचन सुनकर ॥ १ ॥ कैलासपर्वतपै गये कि, जहां हमारी स्थिति रहतीहै, और
मने बहुतसे भूत वेतालोंको राजाके निकट भेजा ॥ २ ॥ अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रित
तएव परमरम्य श्रीमुखपर्वतकी कन्दरामें स्थित होकर राजाने उग्रतपका आचरण किया
३ ॥ और उत्तम सिद्धिकी देनेवाली पंचवर्णात्मक परमोत्तम विद्याका जप किया, हे देवे-
रि ! बड़े पराक्रमी हमारे पार्षदगणभी भांति २ के रूपोंको धारण कर ॥ ४ ॥ तपश्चर्या
रते हुए राजाके कर्म्ममें विघ्न करने लगे, हे महेश्वरि ! विविध प्रकारके रूप धारणकर
जाको डराने लगे ॥ ५ ॥ एक गण मार्जारका रूप बनाकर राजाके निकट गया, उसे
खके हँसकर यौं बोला कि, हे भूपशिरोभूषण ! तुम क्या कररहेहो ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम
पने और मेरे नेत्रोंकी सुन्दरता तौ देखो कि, नेत्र और दांत किसके सुन्दरहैं ॥ ७ ॥ कोई
याघ्र रूपसे जाकर गर्जना करनेलगे, और कोई काटो २ करके कोलाहल करनेलगे ॥ ८ ॥
रन्तु ऐसे विविध भांतिकी चेष्टा करके भी उसे भयभीत करनेके लिये समर्थ नहीं हुए, और

मम सामीप्ये सर्वे हतपराक्रमाः ॥ ९ ॥ अहं च तेन तप
तुष्टो जगदंबिके ॥ गतस्त्वया विस्मृतं किं त्वया सह तद
॥ १० ॥ तत्र गत्वा च हे देवि मयोक्तं हि महात्मने ॥ उ
त्तिष्ठ हे राजन् शिवोस्मि वद मे वरम् ॥ ११ ॥ यत्ते म
नृपते वर्त्तते यत्कृते नृप ॥ अदेयमपि दास्यामि वरं त्रै
दुर्लभम् ॥ १२ ॥ इति श्रुत्वा वचो देवि प्रणनाम स भूमि
॥ १३ ॥ भगीरथ उवाच ॥ अद्य मे निष्कृतिः प्राप्ता शि
नीं स्वजन्मनः ॥ यस्य त्वं सर्वरहितः प्रत्यक्षं भाषसे प्र
॥ १४ ॥ पुरा ब्रह्मा च विष्णुश्च द्रष्टुं त्वल्लिंगमुत्तमम् ॥ ग
ददृशुर्देवलिंगस्यांतं न चादिमम् ॥ १५ ॥ यस्त्वं ब्रह्मादि
ध्यायसे मुक्तिलालसैः ॥ धन्यस्य मम प्रत्यक्षं गतोसि सर्व
तः ॥ १६ ॥ न ते रूपं न ते ज्ञानं न ते ध्यानं महेश्वर ॥ योग
विचिन्वंतः प्राप्नुवंति गतालसाः ॥ १७ ॥ सर्वस्य जगतो
सर्वस्य जगतः स्थितिः ॥ सर्वस्य सृष्टिरूपोसि नमस्ते श

जब उनका पराक्रम नष्ट होगया तब सब मेरे निकट आये ॥ ९ ॥ हे
मैंभी उसके तपसे सन्तुष्ट होगया; और क्या तुम भूलगईं ? तुम्हे तो साथही लेके
मैं गयाथा ॥ १० ॥ हे देवि ! वहां जाय मैंने उस महात्मासे कहा कि, उठो रा
मैं शिवहूं मुझसे वर मांगो ॥ ११ ॥ कि, जिसके लिये तुमने यह उग्र तप
जो तुम्हारे मनमें है । जो त्रिलोकीमें दुर्लभ हो ऐसा अदेय वरभी तुम्हें दूंगा ॥
देवि ! ऐसे वाक्य सुनकर उस राजाने मुझे प्रणाम किया ॥ १२ ॥ भगीरथ बोले–हे
मूर्त्ति ! आज इस जन्मसे मुझे छुटकारा मिला, जो कि, समस्त मायाके विकारोंसे र
प्रत्यक्ष हो मुझसे संभाषण कररहे हैं ॥ १४ ॥ प्रथम विष्णु और ब्रह्मा यह
उत्तम लिंगके दर्शन करनेको गये परन्तु उसके आदि अन्तका दर्शन उन्हें नहीं मिला
मुक्तिकी कामना करनेवाले ब्रह्माआदि देवताभी आपका ध्यान करते हैं, परन्तु–आ
होकर मुझसे संभाषण कर रहेहैं अतएव मुझे धन्यहै ॥ १६ ॥ हे महेश्वर ! आपका
ज्ञान और ध्यान कुछ ज्ञात नहींहै, योगाभ्यासी लोगही आपका ध्यान करते और
रहित होनेसे उन्हींको आपकी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ ॥ यह संपूर्ण संसार आप

नमः ॥ १८ ॥ द्यावापृथिव्योरंतरं यद्ब्रह्माडानां तथा प्रभो ॥ त्वमेवासि महादेव नमस्ते शतशो नमः ॥ १९ ॥ महावायुप्रेरितास्ते ब्रह्मांडानां सहस्रशः ॥ रोमकूपेषु सततं विशंति प्रविशंति च ॥ २० ॥ यथा गवाक्षजालेषु दृश्यंते किरणा रवेः ॥ अणवो धूमसदृशा इति केचिज्जगुर्बुधाः ॥ २१ ॥ केचिद्वदंति सुधियो योगनिष्ठा महर्षयः ॥ उदुंबरे यथा देव वर्त्तंते हि फलानि वै ॥ २२ ॥ तथा त्वद्ब्रह्मरूपेस्मिन्ब्रह्मांडानां सहस्रशः ॥ लंबमानानि सततं दृश्यंते च तथैव हि ॥ २३ ॥ निवादश्चैव शास्त्राणां त्वदर्थं वै प्रवर्त्तते ॥ परं तव महिम्नो न पारं जानाति कश्चन ॥ २४ ॥ तस्मात्ते शतशो देव नमस्कुर्यां महेश्वर ॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि जानेऽहं मनुजः कथम् ॥ २५ ॥ तस्मात्त्वं बुद्धिरूपेण स्थितोसि सदसत्करः ॥ पुण्यानां निचयेनेति योगानां त्वं शतैरपि ॥ २६ ॥ न वेद्योसि परं ब्रह्मन् विना भक्तिं महेश्वर ॥ आदरेण मया ज्ञातं यतस्ते शिरसा धृतम् ॥ २७ ॥

आपहीके आधारसे समस्त जगत् स्थित होरहाहै, समस्त सृष्टिरूपभी आपहीहैं अतएव आपको वारंवार सैकडों प्रणामहैं ॥ १८ ॥ हे प्रभो आकाश और भूमिका तथा ब्रह्माण्डोंका जो अन्तरहै वोह सब आपहीहैं अतएव आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ १९ ॥ यह सैकडों ब्रह्माण्ड महावायुसे प्रेरित होकर आपके रोमकूपोंमें प्रवेश करते और उनमेंसे बाहर निकलते हैं ॥ २० ॥ जैसे झरोखोंमें से सूर्यकी किरणें अणु और धूम रूप होके दृष्टिगत होतीहैं इसी प्रकार विद्वान्गण आपके शरीरमें ब्रह्माण्डोंको बतातेहैं ॥ २१ ॥ कोई योगनिष्ठ महर्षि यों कहतेहैं कि–हे देव ! जैसे गूलरके वृक्षके ऊपर अनेक फल विद्यमान होते हैं ॥ २२ ॥ इसी प्रकार आपके इस ब्रह्मस्वरूपमें सहस्रों ब्रह्माण्ड लटकते हुए प्रतीत होतेहैं ॥ २३ ॥ आपके विषयमें शास्त्रोंका विवाद प्रवृत्त होताहै, परन्तु आपकी महिमाका पार किसीको भी प्राप्त नहीं हुआ ॥ २४ ॥ अतएव हे देवाधिदेव महेश्वर !!! मैं आपको सैकडों वार प्रणाम करताहूं, मैं मनुष्य अगाडी अथवा पीछेसे आपको कैसे जान सक्ताहूं ॥ २५ ॥ सत् और असत्का विचार करनेके लिये बुद्धिरूपसे आप सबमें व्याप्तहैं, पुण्योंका संचय और योगोंका अंशभी आपहीका रूपहै ॥ २६ ॥ हे महेश्वर ! विना भक्ति किये कोई पुरुष आपको जाननेके तईं समर्थ नहीं है, बडे आदरपूर्वक जिसे आपने शिरके ऊपर धारण कर रक्खाहै उसे मैं भली

सतर्षयोपि भगवन् स्पृष्ट्वा गतिमवाप्नुयुः ॥ त्वत्तएव समुद्भू
देतच्चराचरम् ॥ २८ ॥ त्वय्येव परिलीयेत सर्वं तत्कार्य
त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानंति तत्वतः ॥ २९ ॥
मायां समाश्रित्य वृत्रहंता त्वमेव हि ॥ मायां तु वैष्णवीं
निहतौ मधुकैटभौ ॥ ३० ॥ तयोर्वै मेदसा देव कृता वै मे
त्वया ॥ ब्राह्मीं मायां समाश्रित्य सर्गकर्त्ता त्वमेव हि ॥ ३
पुरा शबररूपेण निहता दानवास्त्वया ॥ त्रिपुराणां हि
पृथ्वी तव रथो विभो ॥ ३२ ॥ धनुः स्वर्णगिरिर्जातो
विष्णुर्महेश्वरः ॥ इषुधिः कमलावासो वासुकिर्ज्या समी
॥ ३३ ॥ लोकस्य मोहकरणे तव युक्तिरियं स्थिता ॥ कि
भस्मसात्कर्त्तुं त्रिपुरं नेत्रवह्निना ॥ ३४ ॥ समर्थोसि न वा
तवलोकविडंबना ॥ लोकाः सर्वे विजानंति वह्निर्दहति स
॥ ३५ ॥ त्वमाग्नेयीं समाश्रित्य दहसे वै त्रिलोककम् ॥ पु
द्वादशादित्यरूपं कृत्वा महेश्वर ॥ ३६ ॥ चराचरं ज

भकार जानताहूं ॥ २७ ॥ उसका स्पर्श करनेसे सप्तर्षियोंकोभी मुक्तिका लाभ हु
चर और अचर समस्त संसार आपहीसे उत्पन्न हुआहै ॥ २८ ॥ अन्त समय आ
का लय होगा । परन्तु-जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मोहको प्राप्त हो रहीहै वे आ
को नहीं जानतेहैं ॥ २९ ॥ इन्द्रकी मायाका आश्रय करके आपहीने वृत्रासुरका व
और वैष्णवीमायाके आधारसे मधुकैटभका वधकरनेवाले भी आपहीहैं ॥ ३० ॥ उ
अर्थात् मज्जासे हे देव ! आपने इस मेदिनी (पृथ्वी) को निर्माण कियाहै, अप
मायाका आश्रय कर सृष्टिकी रचनाभी आपही करतेहैं ॥ ३१ ॥ प्रथम आपने शबर
कर दानवोंका विनाश कियाथा, जब आप त्रिपुरारी बने तब हे विभो ! पृथ्वी आप
थी ॥ ३२ ॥ सुमेरु पर्वत धनुष, बाण विष्णु, समुद्र तर्कस और वासुकि प्रत्यंचा
॥ ३३ ॥ संसारको मोहित करनेहीके लिये आपकी यह युक्ति प्रवृत्त होती है, क्या
त्रकी अग्निसेही त्रिपुरासुरको ॥ ३४ ॥ भस्म करनेको समर्थ नहीं थे ? किन्तु
लोकविडंबनाहै, सब लोक यह जानतेहैं कि, अग्नि सब ओरसे भस्म करडालतीहै ।
आप अग्निरूप शक्तिका आश्रय करके त्रिलोकीको भस्म करदेतेहैं । हे प्रभो ! प्र
बारह सूर्यकी समान (प्रचंड) रूप बनाकर ॥ ३६ ॥ समस्त चराचर संसारको आ

भस्मसान्नयसि प्रभो ॥ त्वं पुरा मत्स्यरूपेण वेदोद्धारकरः प्रभो ॥ ३७ ॥ स्वमायाकल्पितो दैत्यः शंखनामा हतस्त्वया ॥ पुनः कमठरूपेण मायामाश्रित्य वैष्णवीम् ॥ ३८ ॥ त्वं धारयसि भूतानि कथमेतद्विडंबना ॥ पुनर्वाराहरूपेण रसातलगता धरा ॥ उद्धृता दंष्ट्रया देव त्वया वाराहमायया ॥ ३९ ॥ हिरण्यकशिपुः पूर्वं देवतानां भयावहः ॥ विनाशितस्त्वयैवाहो नारसिंहीं समाश्रितः ॥ ४० ॥ नृसिंहं च महादेव जगत्संत्रासकारणम् ॥ नीतवान्शारभेन त्वं क्षीराब्धौ जगदीश्वर ॥ ४१ ॥ पुनर्वामनरूपेण बलिर्वैरोचनिस्त्वया ॥ नीतः पातालनिलये मायामाश्रित्य वैष्णवीम् ॥ ४२ ॥ द्रवत्वेन तु यत्ख्यातं तव रूपं बहिःस्थितम् ॥ लोकानां हितकामाय निःसृतोसि नखेन हि ॥ ॥ ४३ ॥ रामरूपेण भगवन्क्षत्रियांतकरो ह्यसि ॥ भुवो भारावतारस्ते कृतो रामात्मिकां गतः ॥ ४४ ॥ पौलस्त्यजयशब्दस्य पात्रं रामो रघूद्वहः ॥ योगमार्गं समास्थाय स्थितस्त्वं

करतेहैं । और हे प्रभो ! पहिले आपहीने मत्स्यरूप धारणकर वेदोंका उद्धार कियाथा ॥ ३७॥ प्रथम अपनीही मायासे शंखनाम दैत्यको निर्माणकर नाश कियाथा । फिर वैष्णवी मायाका आश्रयकर कमठ (कच्छप) रूप धारण करके ॥ ३८ ॥ आप सब प्राणियोंको धारण करतेहैं फिर यह कैसी विडंबनाहै ? जब यह भूमि पातालमें चली गईथी तब वाराही मायासे वराह रूप धारणकर अपनी दंष्ट्राओंके द्वारा आपने उसका उद्धार कियाथा ॥ ३९ ॥ पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुने जब देवताओंको भय दिखायाथा, तब आपहीने नृसिंह रूपको धारणकर उसका विनाश कियाथा ॥ ४० ॥ हे महादेव ! नृसिंह रूपसे जब समस्त संसारको भय उत्पन्न होने लगा तब हे जगदीश्वर ! आपने स्वयं शरभ रूप धारणकर उसे क्षीर सागरमें पहुँचायाथा ॥ ४१ ॥ फिर वैष्णवी मायाके आधारसे वामनरूप धारणकर आपने विरोचनके पुत्र राजा बलिको पाताललोकमें भेजाथा ॥ ४२ ॥ और द्रवरूपसे जो आपका रूप (गंगाजलस्वरूप) बही स्थितहै यह सांसारिक मनुष्योंकी हितकामनासे आपहीके नखसे उत्पन्न हुआहै ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! राम (अर्थात्-परशुराम) रूप धारणकर क्षत्रियोंका अन्तकरनेवाले आपही हैं, और रामावतारधारणकर आपने भूमिके भारका अपहरण कियाथा ॥४४॥ पुलस्त्यके पौत्र रावणका विजय प्राप्त करनेवाले रघुकुलतिलक रामचन्द्रभी आपहीहैं । एवं च योगमार्गका आश्रय लेकर

बदरीवने ॥ ४५ ॥ युगांते म्लेच्छजातीयान्सर्वान्नयसि भस्मसा
सर्वस्य जगतः कर्त्ता हर्ता पालयिता भवान् ॥ ४६ ॥ नम
शतशो देव पृष्ठतस्ते नमोग्रतः ॥ न जाने ते महिम्नो हि
क्षंतव्यमेव मे ॥ ४७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भगीरथसमाख्यातं स्त
राजं पठेत्तु यः ॥ न तस्य मामकी माया बाधतेत्रैव कहि
॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भगीरथोपाख्याने शि
स्तोत्रं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

बदरीवनमें आपही स्थित हुएथे ॥ ४५ ॥ सृष्टिके अन्तमें आप समस्त म्लेच्छजातीय
योंको भस्म करतेहैं, इस निखिलसंसारके निर्माणकर्त्ता और पालनकर्त्ता आपहीहैं ॥
हे देव ! आपके अगाड़ी और पृष्ठभागकी ओर शतशः नमस्कारहैं, मैं आपकी मायाके
नहीं जानताहूं अतएव मेरे अज्ञानजनित अपराधको क्षमा करिये ॥ ४७ ॥ महादेवजी
जो व्यक्ति राजा भगीरथके द्वाराकीर्त्तन किये हुए इस उत्तम स्तोत्रका पाठकरतेहैं, इस
उन्हें मेरी माया बाधा नहीं देतीहै ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कंदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः ३५.

ईश्वर उवाच ॥ इति स्तुतोऽहं राज्ञा तु प्रसन्नस्त्वब्रुवं वचः ॥
ब्रूहि महाराज प्रसन्नोस्मि तवेप्सितम् ॥ १ ॥ अदेयमपि दास्य
मि भक्ताय वरमुत्तमम् ॥ भक्तो मे नास्ति त्रैलोक्ये सदृश
नृपोत्तम ॥ २ ॥ इति श्रुत्वा मम वचः स वै राजा भगीरथः ॥ कृता
जलिपुटो देवि ह्युवाच जगदंबिके ॥ ३ ॥ भगीरथ उवाच ॥ पितरो

महादेवजी बोले—राजाके द्वारा इस प्रकार स्तुतिकिये जानेपर मैंने यह वा
कि—मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं अतएव जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर मांगो ॥ १ ॥
हमारे भक्तहो अतएव जो किसीको देनेके योग्य न हो ऐसा वरभी मैं तुम्हें दूंगा क्यों
हे राजन् ! तुम्हारी समान हमारा भक्त त्रिलोकीमें और कोई नहीं है ॥ २ ॥ हे
जगदम्बिके हमारे यह वाक्य सुन राजा भगीरथ दोनों हाथ जोड़कर यह बचनबोला ॥
भगीरथने कहा—हे महाभाग ! हमारे पितर कपिलजी महाराजकी कोपाग्निसे भस्म हो

महाभाग कपिलाग्निसमीरिताः ॥ ते गच्छंतु स्वर्गगतिं प्रसादेन तव प्रभो ॥४॥ गंगाख्यं परमं ब्रह्म वर्त्तते शिखरे तव ॥ तन्मे देहि पितॄणां हि समुद्धाराय भो प्रभो ॥ ५ ॥ विनिर्दग्धास्तु गच्छेयुः पितरो गतिमुत्तमाम् ॥ अन्ये कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ॥ दृष्ट्वा लोकान् हि गच्छंतु पुनरावृत्तिदुर्लभान् ॥ ६ ॥ पीत्वामृतमयं वारि मुक्तिमैश्वर्यमाप्नुयुः ॥ इति श्रुत्वेरितं तस्य राजानं पुनरब्रुवम् ॥ ७ ॥ इदं परमयं राजन्वरमेतद्धि याचितम् ॥ तद्ददामि तवेदानीं सर्वपापभयापहम् ॥ ८ ॥ सर्वेषां हितकामाय त्वयोक्तं परमं वचः ॥ स्फुरदिन्दुकलाभास्वज्जटाटव्यां विराजिनीम् ॥ ९ ॥ धारां त्रैलोक्यपापघ्नीं गृहाण पितृमुक्तये ॥ यस्या दर्शनमात्रेण सर्वे यांति शुभां गतिम् ॥ १० ॥ यां दधार पुरा ब्रह्मा व्यापारकलशे विभुः ॥ पुत्रीगमनजं पापं धौतं तेनैव वारिणा ॥ ११ ॥ सप्तर्षयो महाभाग धृत्वा यां शिरसा नृप ॥ कृतकृत्या बभूवुस्ते यत्प्रसादान्नराधिप ॥ १२ ॥ सैव धारा

सो हे प्रभो ! आपकी कृपासे उन्हें स्वर्ग प्राप्त होना चाहिये ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! आपके शिखरके ऊपर गंगानाम महा तेजःपुंज विराजमानहै मेरे पितरोंका उद्धार करनेके तईं उसे आप मुझे प्रदान करें ॥ ५ ॥ जिससे कि-भस्मीभूत हुए हमारे पितरोंको उत्तम गतिका लाभहो। कलियुगमें औरभी बहुतसे मनुष्य पुण्यहीन होंगे, उसका दर्शन करके उन्हेंभी ऐसे उत्तम लोकोंका लाभ होगा कि, जहां जाय पुनर्जन्म होना कठिनहै ॥ ६ ॥ अमृतरूप गंगाजलको पानकर इस लोकमें ऐश्वर्य और परलोकमें मुक्तिका लाभ होगा। राजाके यह वाक्य सुन मैंने फिर उससे कहा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तुमने यह परमोत्तम वर मांगा, सो समस्त भयों और पापोंका नाश करनेवाला गंगाजल मैं आपको देताहूं ॥ ८ ॥ सबकी हिताभिलाषासे तुमने यह उत्तम वचन कहाहै, सो प्रकाशमान चन्द्रमाकी कलाकी समान श्वेत और जटाजूटमें विराजमान ॥ ९ ॥ त्रिलोकीके पापोंका विनाश करनेवाली गंगाजीकी धाराको अपने पितरोंकी मुक्तिके निमित्त ग्रहण करो इस धाराका दर्शन करनेसे सबको शुभगतिका लाभ होगा ॥१०॥ जिसको प्रथम ब्रह्माजीने धारण कियाथा और जो अपारहै, हे राजन् ! पितरोंके पापको उसी जलसे प्रक्षालन करो ॥ ११ ॥ हे महाभागराजा ! हमारे सिरके ऊपर धारण की हुई जिस धाराका दर्शन करके सप्तर्षिभी कृतकृत्य हुएथे ॥ १२ ॥ वोही गंगाजीकी धारा नन्दनके

स्वर्णगिरावागता नंदनांतिके ॥ ततश्चतुर्द्धा संजाता चतु
प्रगामिनी ॥१३॥ सीता चालकनंदा च चक्षुर्भद्रेति नामि
अलकायां समायाता या धारा शिरसा धृता ॥ १४ ॥ स
यितुं विश्वं त्वं गृहाण जनेश्वर ॥ रथमार्गेण ते भूप गंगेयं स
त्तमा ॥ आयास्यति नृलोके तु प्रसादेन मम प्रभो ॥ १५ ॥
देवि मया प्रोक्तं राज्ञे तस्मै महात्मने ॥ प्रादां जटासमूहात्तु
त्रैलोक्यपाविनीम् ॥ १६ ॥ तस्मिन्नेव क्षणे रम्ये नानादि
समागताः ॥ यक्षा विद्याधरा देवास्तथा गंधर्वकिन्नराः ॥ १
इंद्रोपि लोकपालैश्च गंगाया दर्शनाय वै ॥ गायंत्योप्सरसो
ष्ठास्तथा गंधर्वसत्तमाः ॥ १८ ॥ नेदुः सर्वाणि वाद्यानि भे
कारकानि च ॥ शंखानां च मृदंगानां गोमुखानां तथैव च
॥ १९ ॥ बभूवुः सर्वतोदिग्भ्यो जय राजन्भगीरथ ॥ राजन्
येति सततं ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ २० ॥ ऊचुः सर्वे वि
भ्यः समुत्तीर्य ततस्ततः ॥ तस्मिन्महोत्सवे देवि गंगाया नि

निकट सुमेरु पर्वतके ऊपर आकर प्राप्त हुई, और वहांसे चार भागोंमें विभक्तहो चारों
ओंमें गई ॥ १३ ॥ सीता अलकनन्दा चक्षुष्मती और भद्रा ये उसके नाम हुए,
धारा शिरके ऊपर उपस्थितहै यह अलकामें उपस्थित हुई ॥ १४ ॥ हे नरेश्वर !
विश्वको पवित्र करनेके लिये तू उसीको ग्रहणकर, हे भूप ! तुम्हारे रथके मार्गसे यह
गंगा नदी हमारी कृपासे मनुष्य लोकमें आवेगी ॥ १५ ॥ हे देवि ! मैंने इस प्रकार
महात्मा राजासे कहा, और फिर अपने जटाजूटमेंसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगा
देदिया ॥ १६ ॥ उसी सुरम्य क्षणमें सब दिशाओंसे यक्ष विद्याधर देवता गन्धर्व
किन्नर आय २ कर प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ इन्द्रभी लोकपालोंको साथले गंगाजीके दर्शन क
आये, एवं च श्रेष्ठ अप्सराएँ और गन्धर्व गानकरते आये ॥ १८ ॥ भेरी आदि
प्रकारके वाद्योंके नाद होनेलगे, शंख मृदंग तथा गोमुख बाजे बजने लगे ॥ १९
राजन् भगीरथ ! तुम्हारी जयहो इस प्रकार चारों ओरसे शब्द होने लगा, एवं सिद्ध
और ऋषि गणभी इसी शब्दका उच्चारण करनेलगे कि हे राजन् ! तुम्हारी जयहो ॥ २
विमानोंमेंसे उतर २ कर उक्तशब्दको कहने लगे हे देवि ! यह ठीक उसी प्रकारका म

यथा ॥ २१ ॥ बभूव हर्षो बहुलस्तथा नैव कदा शिवे ॥ ननर्त्तुः सर्वतो देवा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ २२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो भर्त्तुः पार्वती सुरवंदिता ॥ विस्मयाविष्टमनसा पुनः प्रोवाच शंकरम् ॥ २३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ संशयं छिंधि भगवन्महान्मे हृदि वर्त्तते ॥ यदा त्वया हतो दैत्यस्त्रिपुरो नाम सर्वद ॥ ईदृशं न तथा हर्षं प्रापुर्वै त्रिदिवौकसः ॥ २४ ॥ यदा तव सुतेनापि गुहेन निहतो युधि ॥ तारको नाम दुर्द्धर्षो देवदानवदर्प्पहा ॥ २५ ॥ एतादृशं तदा हर्षं नाप्नुयुश्च महेश्वर ॥ हर्षस्य कारणं देव देवादीनां वद प्रभो ॥ २६ ॥ गंगासमागमे भूमौ हर्षिता दिवि देवताः ॥ एतन्महेश भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥२७॥ भक्ताऽस्मि कृतपुण्यास्मि यस्याः पृच्छ्येऽसि मे पतिः ॥२८॥ ईश्वर उवाच ॥ इदं वै कारणं गुह्यं वर्त्तते प्रियवादिनि ॥ कुत्रापि ते न वक्तव्यं भाविकार्यस्य गौरवात् ॥२९॥ कार्त्तिकेयेन पुत्रेण तव देवि हतो युधि ॥

हुआ जैसा गंगाजीकी उत्पत्तिके समय हुआ था ॥ २१ ॥ हे कल्याणमूर्त्ति पार्वति ! ऐसा प्रभूत आनन्द हुआ कि--जैसा प्रथम कभी नहीं हुआथा, देवतागण आनन्दमें मग्नहोकर नृत्य करने लगे ॥ २२ ॥ वसिष्ठजी बोले--देवताओंके द्वारा वन्दना की हुई पार्वतीने जब अपने पतिके ऐसे वाक्य सुने तब यह आश्चर्यान्वितहो महादेवजीसे कहने लगीं ॥ २३ ॥ पार्वती बोलीं--हे भगवन् ! मेरे हृदयमें बड़ा सन्देह होरहाहै सो आप उसे छेदन करो, हे सर्व दानकर्त्ता ! जब तुमने त्रिपुर दैत्यका वध कियाथा तबभी देवताओंने इतना आनन्द नहीं मनायाथा ॥ २४ ॥ और जब आपके पुत्र स्वामि कार्त्तिकेयने संग्राममें उस तारकासुरका वध कियाथा जो कि--बड़ा बलिष्ठ अतएव देवताओं और दानवोंके दर्पका वध करनेवाला था ॥ २५ ॥ हे महेश्वर ! तबभी उन्हें इतने आनन्दकी प्राप्ति नहीं हुईथी सो हे देव ! देवतादिकोंके आनन्दका कारण मेरे प्रति वर्णन करो ॥ २६ ॥ हे भगवन् महादेवजी !!! मुझे इस बातका विशेष कौतूहलहै कि--गंगाजी तो भूमिके ऊपर आई और स्वर्गमें देवताओंने आनन्द मनाया ॥ २७ ॥ मैं आपकी भक्तहूं और मैंने पुण्यभी अवश्य कियेहैं इसीसे मुझे ऐसे पति प्राप्त हुएहैं जो जिनसे मैं सब प्रकारके प्रश्न पूंछ सक्ती हूं ॥ २८ ॥ महादेवजी बोले--हे मिठ बोलनी ! इसका कारण अवश्य गोपनीयहै अतएव होनहार कार्यकी गौरवताका विचारकर इसे कहींभी कहना न चाहिये ॥ २९ ॥ हे देवि ! जब तुम्हारे

तारकाख्यो महादैत्यो दैत्यानां प्रवरोसुरः ॥ ३० ॥ शंकुकर्णा
यो वीरा निहतास्ते रणाजिरे ॥ पृथिव्यां ते महीपाला भवि
ति सुरद्विषः ॥३१॥ पृथिवीं पीडयिष्यंति भारेण पर्वतोपमा
नागतास्ते यतो लोकं वासवस्य च ब्रह्मणः ॥ ३२ ॥
एव सुरैर्ज्ञातं नागतं तैः सुरालये ॥ ततो वै मुनिरूपेण
स्तप्तुं गता भुवि ॥ ३३ ॥ जेतुकामाश्च ते दैत्याश्चरंति तप
मम् ॥ इति संततहृदया देवा जग्मुः पयोनिधिम् ॥ ३४ ॥
प्रणताः सर्वे जगत्कर्त्तारमीश्वरम् ॥ ऊचुश्च भयसंविग्नास्तद्वृत्तं
तिजैः कृतम् ॥ ३५ ॥ निवेदितं तु तच्छ्रुत्वा ज्ञापयामास
हरिः ॥ सर्वे यूयमहं चैव गमिष्यामोंशभागकैः ॥ ३६ ॥
रूपं समास्थाय हनिष्यामस्सुरद्विषः ॥ यूयं गच्छत स्वर्लोकमि
दानीं देवतर्षभाः ॥ ३७ ॥ इति ते भाषितं श्रुत्वा गतास्सर्वे दिवौ
कसः ॥ बुद्ध्वा काकुत्स्थयाज्ञां च हर्षितास्ते महेश्वरि ॥ ३८
इति संस्मृत्य संस्मृत्य जहर्षुस्त्रिदिवौकसः ॥ मया मुक्तापि

पुत्र कार्तिकेयने युद्धमें असुरसत्तम तारक दैत्यका वध कियाथा ॥ ३० ॥ तभी समर
शंकुकर्ण आदि वीरोंकाभी वध कियाथा, वेही सब भूमिके ऊपर राजा होकर देवताओं
करेंगे ॥ ३१ ॥ उनका भार पर्वतकी सदृश होगा अतएव वे पृथिवीको पीडित करेंगे,
कि--मृत्युके अनन्तर वे न तौ इन्द्रहीके लोकमें गये और न ब्रह्माजीके धाममें ॥ ३
जब देवताओंने यह जाना कि वे लोग देवलोकमें नही आयेहैं, और मुनियोंके रूप
पृथ्वीके ऊपर वे सब तप करतेहैं ॥ ३३ ॥ विजयकी कामनासे दैत्यगण उत्तम तपका
रण करतेहैं, अतएव देवताओंके हृदयमें बडा सन्ताप हुआ और वे क्षीरसागरके तटपर
॥ ३४ ॥ देवताओंने प्रणामकरके जगत्के कर्त्ता ईश्वरको प्रसन्न किया, और मारे भयके
हो दैत्योंके वृत्तान्तको कहा ॥ ३५ ॥ उनके निवेदनको सुनकर नारायणने उन्हें
नादी कि–मैं और तुम सब अपने २ अंशो सहित ॥ ३६ ॥ मनुष्य रूप धारणकर दै
वधकरेंगे, किन्तु हे देवताओ ! अब तुम स्वर्गलोकको चले जाओ ॥ ३७ ॥ यह कथन
सब देवता हर्षित हुए और अपने २ लोकको चले गये ॥ ३८ ॥ और इसी वृत्तान्तका
कर २ के देवतागण आनन्दित होतेथे, और जब मैंने गंगाजीकी धाराको छोडा तब वो

धारा पतिता श्रीमुखे गिरौ ॥ ३९ ॥ तस्याः प्रवाहवेगेन खंडिता बहवोद्रयः ॥ तस्या दर्शनमात्रेण जग्मुः स्वर्गं पिशाचकाः ॥ ॥ ४० ॥ त्रिधा वै पतिता मर्त्ये ब्रह्महत्यौघनाशिनी ॥ भगीरथोपि संप्राप्य गंगां परमदुर्ल्लभाम् ॥ मेने कृतार्थमात्मानं प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ इति ते कथिता देवि गंगोत्पत्तिर्मया शुभा ॥ श्रुत्वा यां स्वर्गमाप्नोति मनुजो नात्र संशयः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भगीरथोपाख्याने गंगासंप्रदानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

मुखपर्वतके ऊपर गिरी ॥ ३९ ॥ गंगाजीके प्रवाहके वेगसे बहुतसे पर्वत भग्न होगये और उनका केवल दर्शनमात्रही करके पिशाचभी स्वर्गको प्राप्तहुए ॥ ४० ॥ ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाली गंगाजी तीन प्रकारसे मर्त्यलोकमें निपतित हुई, जब परमदुर्लभ गंगाजी राजा भगीरथकों उपलब्ध होगई तब उन्होंने अपने आपको कृतार्थ मानकर वारंवार प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ हे देवि ! इसप्रकार गंगाजीकी शुभ उत्पत्ति हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करी, जिसका श्रवण करनेसे मनुष्य निःसन्देह स्वर्गका लाभ करतेहैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

ईश्वर उवाच ॥ सापि गंगा त्रिधा जाता नामतः शृणु पार्वति ॥ ज्येष्ठा धारा रथस्यानु राज्ञो भागीरथी मता ॥ १ ॥ श्रीमुखस्योत्तरे पार्श्वे गता सा मुक्तिदायिनी ॥ अलकेभ्यो महेशान्यलकनंदा पुनः स्मृता ॥ २ ॥ बदरीविपिने सा वै नारायणपदां-

महादेवजी बोले—हे पार्वति ! उक्त गंगाके तीन विभाग हुए, सो उनके नाम सुनो, बडी धारा जो राजाके रथके पीछे २ चलीथी उसका नाम भागीरथी हुआ ॥ १ ॥ वोह मुक्तिदायिनी श्रीमुखपर्वतके उत्तर भागमें गई, हे महेश्वरि ! अलकमें जानेसे अलकनन्दा उसका नाम हुआ ॥ २ ॥ और वोह बदरीवनमें गई जहां सुमेरु पर्वतके शिखरके ऊपर ब्रह्मा आदि देवता

बुजे ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा मेरुशृंगं समाश्रिताः ॥ ३ ॥
संति स्थले रम्ये नानामुनिगणान्विते ॥ तृतीया कुरुवर्षे तु
म्ना कुमुद्वती मता ॥ ४ ॥ एकचक्ररथो राजा प्रहृष्टमनसा
यौ ॥ नेमिमार्गेण गंगापि नाम्ना भागीरथी मता ॥ ५ ॥
त्युवाच ॥ कथं गंगा समायाता सुखेन जगतीतले ॥ ब्रह्मणा
हि विघ्नानि भविष्यंति पथि प्रभो ॥ ६ ॥ कथं विघ्नानि
नि मार्गे तस्य महात्मनः ॥ मुक्तिं प्राप्ताश्च के मार्गे तद्वदस्व
प्रभो ॥७॥ ईश्वर उवाच ॥ श्रुणु देवि प्रवक्ष्यामि गच्छतोऽग्रे म
पतेः ॥ शैले चंद्रपुरे रम्ये गंधर्वाणां भगीरथः ॥८॥ गंगा
सहसा ह्यागतो गिरिनंदिनि ॥ तस्य चक्रेण तेषां च कंपो
पतेः शिवे ॥ ९ ॥ युद्धं कर्त्तु समारब्धा गंधर्वा वरवर्णिनि
कोयं गच्छति दुष्टात्मा धारां हृत्वा परात्मनः ॥ १० ॥
न वेत्ति चास्मान्वै अवज्ञाय चलत्यसौ ॥ एनं सर्वे समा
मारयध्वं महौजसः ॥ ११ ॥ इति ते संमतिं कृत्वा कृतकार्ये

नारायणके चरणकमलका भजन करतेथे ॥ ३ ॥ उस रमणीक स्थलमें अन्य बहुत
गण निवास करतेथे । तीसरी जो कुरुवर्षमें गई उसका कुमुद्वती नाम हुआ ॥ ४ ॥
अपने मनमें आनन्दित हो एकचक्र (अर्थात सीधे) रथसे विचरे, और उनकी
मार्गसे गंगाजीभी पीछे २ चली गई इसीसे उनका भागीरथी नाम हुआ ॥ ५ ॥ पार्वती
हे प्रभो ! ब्रह्माजीने तौ यों कहाथा कि, मार्गमें अनेक विघ्नहोंगे, तौ फिर सुखपूर्वक कैसे
जो भूतलके ऊपर आगई ॥ ६ ॥ अथवा उस महात्मा भगीरथको मार्गमें विघ्न कि
उपस्थित हुए ? और मार्गमें किन २ को मुक्तिका लाभ हुआ ? हे प्रभो ! यह सब
गाडी वर्णन करो ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले--सुनो पार्वति ! राजाके अगाडी जानेका
वर्णन करताहूं, राजा भगीरथ गंगाजीको साथ लिये परमरमणीय गन्धर्वोंके चन्द्रपुर
के ऊपर पहुंचे, और हे पार्वती ! उनके चक्रसे गन्धर्वोंको कंपकी प्राप्ति हुई ॥ ८ ॥
हे सुन्दरि ! वे गन्धर्व युद्ध करनेको उद्यत होगये और कहनेलगे कि, परमेश्वरकी
अपहरण करके कौन जा रहाहै ॥ १० ॥ यह कैसा निडरहै अथवा हमें नहीं जानता
हमारा निरादर करके जारहाहै, सब पराक्रमी इकट्ठे होकर इसे मारो ॥ ११ ॥

तूणकाः ॥ सन्नद्धकवचा वीरास्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् ॥ १२ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां गंधर्वाणां भगीरथः ॥ विस्मयाविष्टहृदयो
धनुर्धृत्वा महात्मवान् ॥ १३ ॥ तेषां तस्य च देवेशि संग्रामः
समपद्यत ॥ महास्त्रैर्विविधैः खड्गचर्मतोमरसायकैः ॥ १४ ॥ एत
स्मिन्पथि तेनापि राज्ञा निस्त्रिंशपाणिनाम् ॥ हताः केचिद्गताः
केचिज्जग्मुः स्वर्गपुरे ततः ॥ १५ ॥ क्षणेन तेन तत्रापि वायुनेव
महांबुदाः ॥ नाशितास्तीक्ष्णवेगेन गंधर्वा देवयोनयः ॥ १६ ॥
जित्वा तान्सागरो राजा गंगामादाय सत्वरम् ॥ आययौ वायु-
वेगेन स्वच्छोदं नाम वै सरः ॥ १७ ॥ तत्रागत्य महेशानि
तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ अंतर्धानं गता तत्र गंगा या परपाविनी ॥
॥ १८ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं तदा राजा भगीरथः ॥ हर्तारं नैव
गंगाया ददर्शान्वेषयन्नपि ॥ १९ ॥ शोकाविष्टमना राजा विच-
चार वनांतरे ॥ एतस्मिन्नंतरेरण्ये ददर्श सर उत्तमम् ॥ २० ॥
हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ नानागुल्मलताकीर्णं

प्रकार संमतिकर धनुषबाण और कवच धारण करके आये तथा कहने लगे कि, खडे रहो
॥ १२ ॥ जब राजा भगीरथने उन गन्धर्वोंके यह वाक्य सुने तब उन्होंने आश्चर्यान्वित हो
धनुषको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ हे देवेश्वरि! राजाका और उन गन्धर्वोंका विविध प्रकारके
महाअस्त्रों, ढाल, तरवार और बाणोंसे खूब युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ इसी समय उस राजानेभी खड्ग
हाथमें लेके बहुतसोंको भगादिया और बहुतसोंको मारा तथा वे स्वर्गमें गये ॥ १५ ॥
राजाने एक क्षणभरमें उन गन्धर्वोंका इस प्रकार वधकिया जैसे पवन मेघमंडलका ध्वंस करदे-
ताहै ॥ १६ ॥ राजा भगीरथ उनका विजय करके और गंगाजीको लेकर पवनकी समान वेगसे
वहां आये जहां स्वच्छोद नामक सरोवरथा ॥ १७ ॥ हे महेश्वरि! वहां आतेही दूसरोंको
पवित्र करनेवाली गंगाजी उसी सरोवरमें अन्तर्धान होगईं ॥ १८ ॥ यह देख राजा भगीरथको
बडा आश्चर्य हुआ, और बहुतेरा अन्वेषण करनेपरभी उसका अपहरणकर्त्ता राजाको नहीं
मिला ॥ १९ ॥ वनके बीच शोकातुरहो राजा विचार करने लगा, इसीसमय उसे एक उत्तम
सरोवरके दर्शन हुए ॥ २० ॥ वोह सरोवर हंस और कारंडव जन्तुओंसे आकीर्ण, चक्रवाकोंसे
सुशोभित, विविधभांतिकी लता और गुल्मोंसे व्याप्त एवं भ्रमरोंकी पंक्तिसे शोभायमान

भ्रमरालिविराजितम् ॥ २१ ॥ सरसस्तस्य निकटे ददर्श मुनि-
त्तमम् ॥ ध्यायमानं महेशानं प्रणनाम भगीरथः ॥ २२ ॥
प्रणमंतं च तं दृष्ट्वा तमुवाच नृपेश्वरम् ॥ कोसि त्वं क्व च यासि
द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युतः ॥ २३ ॥ राजोवाच तदा देवि मुनिं मुनि-
णान्वितम् ॥ अहमंशुमतः पौत्रो नाम्ना ख्यातो भगीरथः ॥२४॥
गंगां नेतुं समायातो मुने पितृविमुक्तये ॥ आनीता च मया
आराध्य जगदीश्वरम् ॥ २५ ॥ अत्रारण्ये मुनिश्रेष्ठ नष्टा
कचिद्गता ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं वदिष्यंति मां
॥ २६ ॥ गतो भगीरथो गंगामानेतुं पितृमुक्तये ॥ एवमेव
यातो हास्यमेवं भविष्यति ॥२७॥ अस्मिन्नेव महारण्ये प्राणां
क्ष्यामि बंधनात् ॥ इति प्रवदतस्तस्य कृपाविष्टो मुनीश्वरः ॥२८॥

था ॥ २१ ॥ उसी सरोवरके निकट एक उत्तम मुनिके दर्शन हुए, वे महेश्वरका ध्यान
थे, राजाने उन्हें प्रणामकिया ॥ २२ ॥ राजराजेश्वरको प्रणामकरते देख मुनिने
बत्तीसे लक्षणोंसे युक्त तुम कौन हो और कहां जाना चाहतेहो ॥ २३ ॥ हे देवि !
कर मुनियोंके सब लक्षणोंसे युक्त उन महर्षिसे राजाने कहा मैं अंशुमान्का पौत्रहूं और
रथ मेरा नामहै ॥ २४ ॥ हे मुनिराज ! अपने पितरोंकी मुक्तिके लिये मैं गंगाजी
अथच जगदीश्वरकी आराधना करके मैं गंगाजीको लेभी आयाथा ॥ २५ ॥ हे मुनि
इसी वनमें गंगाजी लुप्तहोके कहीं चलीगई, अब मैं क्या करूं कहां जाऊं ? हाय ! मनुष्य
क्या कहेंगे ॥ २६ ॥ पितरोंकी मुक्तिके लिये भगीरथ गंगाजीको लेने गयेथे, परन्तु
चले आये यह मेरा उपहास होगा ॥ २७ ॥ अतः मैं इसी वनमें फांसी लगाकर अपने
परित्याग करदूंगा, राजाके इस प्रकार कहनेपर मुनिके चित्तमें करुणाका उदय होगया ॥

१ "पंचसूक्ष्मः पंचदीर्घः सप्तरक्तो षडुन्नतः। त्रिहृस्वपृथुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान्"
पांचअंग सूक्ष्म, पांचदीर्घ, सातरक्त, छै उन्नत, तीन ह्रस्व, तीनपृथु और तीन
होनेसे उत्तम बत्तीसगुण होतेहैं; अर्थात्–सामुद्रिक शास्त्रमें लिखाहै कि–त्वचा, केश,
दांत, और ओरुष् ये पांच सूक्ष्महों; नासिका, भुजा, नेत्र, ठोडी, जानु ये पांच दीर्घ
प्रान्त, चरण, हथेली, तालुआ, अधर ओष्ठ, जिह्वा, नख ये सात रक्त (लाल) हों;
कन्धे, नख, नासिका, कटि, मुख, ये छै उन्नतहों; कमर, मस्तक, छाती ये तीन
हो; ग्रीवा, जंघा, लिंग ये तीन खर्वहो; नाभि, कंठ स्वर और चेतोभाव ये तीन
हों तो ये सब मिलके ३२ शुभलक्षण होतेहैं ।

उवाच ध्यात्वा तत्सर्वं गंगाहरणकारणम् ॥ शृणु राजन्न भेतव्यं खेदं मा कुरु मा कुरु ॥ २९ ॥ सरसो दक्षिणे पार्श्वे रंध्रमेकं हि वर्त्तते ॥ तस्माद्रंध्राद्गता राजन्नीयमानाऽसुरैर्भृशम् ॥ ३० ॥ गता पातालनिलये रत्नभूता यतः स्थिता ॥ श्रेयांसि बहुविघ्नानि वर्त्तंते मा खिद प्रभो ॥ ३१ ॥ सर्वं साधु महाराज भविष्यति महीपते ॥ गच्छ तेनैव मार्गेण यत्र ते ह्यसुराः स्थिताः ॥ ३२ ॥ जहि तान्युद्धदुर्द्धर्षान्दानवाञ्छूरसम्मतान् ॥ पिधाय तन्महारंध्रं तां नयस्व पितृस्थले ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा महेशानि सोपि राजा भगीरथः ॥ प्रणम्य सहसा राजा ययौ तस्मिन्सरोवरे ॥ ३४ ॥ ददर्श तद्रंध्रदेशे पुरुषौ द्वौ महाबलौ ॥ कृष्णास्यौ ह्रस्वरूपौ तु मुद्गराभ्यां विराजितौ ॥ ३५ ॥ यावदागच्छति नृपस्तावदूचतुरंबिके ॥ तिष्ठ तिष्ठ च युद्धयस्व त्वया किं गम्यते कुतः ॥ ३६ ॥ यदर्थं गमनं तत्र तन्नीतं स्वामिनावयोः ॥ नोचेद्योद्धुं समर्थोसि तद्गच्छस्व गृहं स्वकम् ॥ ३७ ॥ इति श्रुत्वेरितं देवि संग्रामः सम-

जिसप्रकार गंगाका अपहरण हुआथा उस कारणका ध्यानकर राजासे मुनिने कहा सुनो राजा तुम भय और खेद मत करो ॥ २९ ॥ सरोवरके दक्षिणकी ओर एक बिलहै, उसी बिलके मार्गसे अपहरण करके असुर उसे लेगयेहैं ॥ ३० ॥ और वोह रत्नरूपहो पातालमें स्थितहै, हे राजन् ! शुभ कार्योंमें अनेक विघ्न होते हैं अतएव तुम खेद मतकरो ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! सब अच्छाही होगा, सो तुमभी उसी मार्गसे चले जाओ, वहांही सब असुर स्थितहैं ॥ ३२ ॥ घोरयुद्ध करनेवाले और एकत्रित हुए उन दानवोंका तुम विजय करो, उस रन्ध्रको ढककर गंगाजीको पितरोंके स्थानमें लेजाओ ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले-हे महेश्वरि ! यह वाक्य सुनकर राजा भगीरथने महर्षिको प्रणामकर उस सरोवरकी ओर प्रयाण किया ॥ ३४ ॥ उस रन्ध्र अर्थात् बिलके निकट काले मुखके महाबली दो पुरुष बैठे देखे, उनका कद नाटा और हाथमें मुद्गरथे ॥ ३५ ॥ हे अंबिके ! जभी राजा चला तभी उन्होंनें कहा, ठहरो ! तुम कौनहो और कहां जातेहो हमसे युद्ध करो ॥ ३६ ॥ जिसके लिये तुम वहां जातेहो उसे हमारे स्वामी लेगयेहैं, और यदि युद्धकरनेकी तुम्हें शक्ति नहो तो अपने घरको लौट जाओ ॥ ३७ ॥ हे देवि ! यह सुनतेही बस युद्धका आरम्भ होगया, और उन

वर्त्तत ॥ हत्वा च तौ यातुधानौ तद्देशं तु भगीरथः ॥ जगाम
मार्गेण पातालं दितिजालयम् ॥ ३८ ॥ तस्य राज्ञश्च ते
संग्रामः समवर्त्तत ॥ शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र युयुधुर्दितिजात्मज
॥ ३९ ॥ इति तस्मिंस्तु संग्रामे सप्त मासास्तदाभवन् ॥ मासे
तु संप्राप्ते हताः केचिद्गताः क्वचित् ॥ ४० ॥ तेन राज्ञा म
नाशितं राक्षसं कुलम् ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र ददर्श स्त्रि
लाम् ॥४१॥ तन्वङ्गीं चारुसर्वाङ्गीं कामस्येव रतिं तथा ॥ तां
सापि सुमुखी स्मेरं चक्रे शुभानना ॥ ४२ ॥ कामबाणा
तप्ता बभूव सहसा तथा ॥ तां तत्र तादृशीं दृष्ट्वा रूपेण
मां भुवि ॥ उवाच का त्वं सुश्रोणि कस्य भार्या च कन्य
॥ ४३ ॥ सर्वं ब्रूहि समासेन के चेमे दानवा हताः ॥ ४
च्युवाच ॥ शृणु राजन् यथा वृत्तं मम चैषां महीपते ॥ य
तात्र भवगन्नहं वै राजकन्यका ॥ ४५ ॥ निवातकवचा
दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ गताः पूर्वं मर्त्त्यलोके शूराणां च
या ॥ ४६ ॥ प्रतिष्ठाने पुरे राजा नाम्ना संवरणो नृपः ॥

दोनोंका वधकरके उसी मार्गके द्वारा राजा भगीरथ दैत्योंके निवासस्थान पाताल
॥ ३८ ॥ राजा और दैत्योंकाभी युद्धहुआ, दैत्योंने विविधप्रकारके अस्त्रशस्त्रोंके
साथ युद्धकिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार युद्ध होते २ वहां सात महीने बीतगये
महीना प्राप्त होतेही राजाने कुछ दैत्योंको मारडाला और कुछ भागगये ॥ ४० ॥
श्वरि ! इसप्रकार राजाने दैत्यकुलका विनाशकर डाला । इसीसमय एकस्त्री राजाके
हुई ॥ ४१ ॥ उसका अंग पतला और सर्वोत्तम था, देखनेसे कामपत्नी रतिकी
प्रतीत होतीथी, राजाको देख उस सुमुखीने मन्दमुसकान करी ॥ ४२ ॥ और उ
कामदेवके बाणोंसे सन्तप्त होगई, भूमिके ऊपर उस अनुपम रूपवतीको देख राजाने पूछा
कटितटवाली ! तुम कौनहो, किसकी पत्नी और किसकी कन्याहो, ॥ ४३ ॥ और ह
दानवोंका वधकिया यह कौनथे, यह संपूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे कहो ॥ ४४ ॥ स्त्री
भूमिपाल राजा ! सब वृत्तान्त सुनो, मैं राजकन्या जहांसे आईहूं सो सब कहतीहूं ॥
निवातकवच नाम दानव प्रथम बड़ा घोरयुद्ध करनेवाले होगयेहैं, एकसमय वे
देखनेकी इच्छाकरके मर्त्यलोकमें गये ॥ ४६ ॥ प्रतिष्ठान पुरमें संवरण नाम रा

मम स्थितो गेहे नारीभिः परिवारितः ॥ ४७ ॥ वसंतसमये प्राप्ते गृहोद्याने महीपते ॥ तस्मिन्नेव पुरे गत्वा युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ ४८ ॥ आगताहं स्वहर्म्ये हि द्रष्टुमेतांस्तु दानवान् ॥ अवमन्य स्थितो राजा श्रुत्वा ह्येतान्समागतान् ॥ ४९ ॥ तेपि श्रुत्वा स्त्रीयुतं तं मां धृत्वैकाकिनीं ततः ॥ आगतास्ते तदा राजन्नत्र पातालवेश्मनि ॥ ५० ॥ नाम्ना मनोहरी ख्याता तदाद्यत्र समास्थिता ॥ एभिर्वै छंदमानापि शयनेहं गता न वै ॥ ५१ ॥ पूर्वमेव श्रुतस्त्वं हि विख्यातबलविक्रमः ॥ गंगां नेतुं समायातः कैलासे त्र्यंबकालये ॥ ५२ ॥ मयोक्तं हि यदा गंगामस्मिन्देशे नायिष्यथ ॥ वृणे युष्माकमेकं तु तदा सेवागमो भवेत् ॥ ५३ ॥ मयोक्तं वचनं श्रुत्वा यतमानास्तदर्थकम् ॥ संप्राप्तं दूतवदनैः श्रुत्वा गंगानयं नृपम् ॥ ५४ ॥ आनीतेयं मदर्थं तैर्गंगा परमपाविनी ॥ त्वदर्थमेव सर्वोयमुद्यमस्तु मया कृतः ॥ ५५ ॥ हतास्तेपि दुरात्मानो यैर्हृता पितुरालयात् ॥ मनोभिलषितं जातं ममत्वं मिलितो यतः ॥ ५६ ॥ जातो हि प्रवरे वंशे इक्ष्वाकोर्वै

पिता स्त्रियोंसे परिवृत हुआ बैठाथा ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! वसन्त ऋतुका समयथा अतएव वोह घरके उद्यानमें विराजमान था, युद्ध करनेका निश्चय करके यह दानव वहांही पहुँचे ॥ ४८ ॥ और मैंभी इन दानवोंको देखनेके तईं महलके ऊपर चली आई, इनका आगमन सुनकेभी राजा बैठाही रहा और इनकी अवज्ञा करी ॥ ४९ ॥ जब दानवोंनें सुना कि राजा स्त्रियोंमें घिरा बैठाहै, तब वे मुझ अकेलीको ले इस पाताललोकमें चले आये ॥ ५० ॥ मेरा नाम मनोहरीहै, उसी दिनसे मैं यहां रहतीहूं, यद्यपि यह मुझे बहुत कुछ चाहतेथे, पर मैं इनके पलंग पर नहीं गई ॥ ५१ ॥ तुम्हारे बल पराक्रमकी ख्याति मैंने प्रथमही सुनी थी और यह सुनाथा कि, गंगाजीको लेनेके लिये तुम कैलासपर्वतपै आयेहो ॥५२॥ और मैंनेभी यह प्रतिज्ञा कर उनको कहाथा कि, जब तुम गंगाजीको लेके इस देशमें आओगे तभी मैं एकको वरूंगी ॥५३॥ मेरे वचनको सुनकर मेरे लिये वह यत्न कररहेथे, और दूतोंके मुखसे आपका आगमन सुन ॥५४॥ परमपवित्र गंगाको यहां उन्होंने मँगवायाहै केवल तुम्हारेही लिये मैंने यह सब कुछ उद्योग कियाहै ॥ ५५ ॥ जो दुष्ट मुझे पिताके स्थानसे चुरालायेथे उन्हें तुमने मारडाला तुम मुझे मिलगये मेरे सब मनोरथ पूर्ण होगये ॥ ५६ ॥ आपका जन्म महात्मा इक्ष्वाकुके

महात्मनः ॥ पराक्रमं च वंशं च सर्वं जानाम्यहं तव ॥ ५७ ॥
मां वृणीष्व महाराज जितास्मि तव सुंदर ॥ वंशं संवरणात्
जानासि प्रकटं नृप ॥ ५८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा
दितं तस्याः परमविस्मितः ॥ वेदोक्तविधिना तत्र तां
मनोहरीम् ॥ ५९ ॥ आययौ तेन मार्गेण तस्मिन्नेव सरो
महाशिलां समानीय रंध्रमाच्छाद्य सत्वरम् ॥ ६० ॥ गृहीत्वा
प्रहारं च पुनरग्रे ययौ नृपः ॥ विदारयन्नगगणान्मुद्गरेण सर्वतः
॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कंदे केदारखंडे भगीरथोपाख्याने मनो
लाभो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

श्रेष्ठवंशमें हुआहै, आपके पराक्रम और वंशको मैं जानतीहूं ॥ ५७ ॥ हे म
अब मेरा पाणिग्रहण करो, क्योंकि तुमने मुझे जीताहै, हे राजन् ! राजकुलमें
पाणिग्रहण होताहै यह आप जानतेहीहैं ॥ ५८ ॥ महेश्वर बोले—उसके यह
राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ फिर वेदोक्तविधिसे राजाने उस मनोहरीका पाणिग्रहण
॥ ५९ ॥ फिर उसीमार्गसे होकर राजा उसी सरोवरपर आये, और एक बड़ीसी
राजाने तत्काल उस बिलको ढक दिया ॥ ६० ॥ और उन दानवोंके आयुधको
आगेको गया, और उसी मुद्गरसे चारोंओर पर्वतमालाको विदीर्ण करनेलगा ॥ ६१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

ईश्वर उवाच ॥ प्राप्य गंगां पुनाराजा ययौ भूमिं हिरण्मयीं
रम्यां करतलप्रख्यां त्रिशतायामविस्तृताम् ॥ १ ॥ नाना
पदाढ्यां च सिद्धचारणसेविताम् ॥ यत्र संति महावृक्षाः म
णफलाः प्रिये ॥२॥ नद्यः क्षीरवहाः सर्वाः शिवलिंगैर्विभूषिता

महादेवजी बोले—फिर गंगाजीको लेकर राजा सुवर्णभूमिमें गये जो अत्यन्त
विस्तृतथी ॥१॥ अनेक जनपद वहां निवास करते और अनेक सिद्ध चारण उसकी से
एवं वहांके ऐसे २ बड़े वृक्षथे जिनके ऊपर शहतके पूरकी समान मधुर फल लगते
नदियोंमें मानो दूधही वहताथा, सर्वत्र शिवलिंग विराजमानथे, सुवर्णनिर्मित सीढि

सरांसि यत्र राजंते महांति स्वर्णकुक्कुटैः ॥३॥ राजहंसैस्तथान्यैश्च वन्यैः स्वैणैस्तथा मृगैः ॥ तस्मिन्देशे महादेवि स्वर्णभूमौ महाप्रिये ॥ ४ ॥ गंगा सरिद्वरा तत्र रौप्यरेखेव सुंदरी ॥ ५ ॥ भगीरथो महातेजाः सूर्यवंशविवर्द्धनः ॥ पश्यन्वनानि चित्राणि सुगंधीनि सरांसि च ॥ ६ ॥ सोमकूटगिरौ राजा आययौ क्रमशस्ततः ॥ अग्रे दृष्ट्वा समाधिस्थं जह्नुं राजर्षिसत्तमम् ॥ ७ ॥ प्रणनाम न हे देवि राजा वेगसमन्वितः ॥ गंगापि सहसागत्य ववाह कुशकंडिकाम् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तत्कर्म्म गंगाया जह्नू राजर्षिसत्तमः ॥ चुकोप परमक्रुद्धो निर्जग्राह करांबुजे ॥ ९ ॥ कृत्वाचमनवत्तत्र गंगां त्रैलोक्यपाविनीम् ॥ स्थितः पुनः समाधौ च जह्नू राजर्षिसत्तमः ॥ १० ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं तदा राजा भगीरथः मुखेन शुष्यता तत्र तस्थौ वाष्पसमाकुलः ॥ ११ ॥ हाहाकृतः क्व यास्यामि किं कृतं मे हि कर्म्मणा ॥ ययौ तत्रैव राजा तु जह्नोराश्रममंडले ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा जह्नुं महाराजं द्योतयंतं दिशस्ततः

वरकी शोभाहोतीथी ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! उस स्थानमें राजहंस, कृष्णमृग, मृग तथा और वन्यजीव सुशोभित हो रहेथे ॥ ४ ॥ उस सुवर्णकी भूमिमें गंगाजीकी सुन्दर धारा चांदीकी रेखाकी समान प्रतीत होनेलगी ॥ ५ ॥ सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले महातेजस्वी राजाभगीरथ सुगन्धित विचित्रवनकी श्रेणी और सरोवरोंका अवलोकन करते २ ॥ ६ ॥ क्रमशः सोमकूटपर्वतके ऊपर आये, अगाधसमाधिमें स्थित हुए राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजाजह्नुको भगीरथने देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि राजा बडे वेगसे जारहेथे अतएव उन्होंने प्रणाम नही किया, और गंगाजीने सहसा आकर राजाजह्नुकी कुशकंडिकाको वहादिया ॥ ८ ॥ गंगाजीका यह कर्त्तव्य देख राजर्षिश्रेष्ठ राजा जह्नुको बडा क्रोध आया अतएव दोनों हाथोंसे ॥ ९ ॥ त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजीका आचमन कर राजर्षि जह्नु फिर समाधिमें स्थित होगये ॥ १० ॥ यह देख राजा भगीरथको महान् आश्चर्य हुआ अतएव उनका मुख सूखगया और नेत्रोंमें आँसू भर आये एवं क्षणभर तौ वे वहांही ठहर रहे ॥ ११ ॥ हा २ कार करके कहनेलगे मैं कहां जाऊं ? मेरे कर्मोंने यह क्या किया ? फिर जह्नुके आश्रममें गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर महाराजजह्नुको दिशाओंको प्रदीप्त करते देख उदार बुद्धिमान् राजाभगीरथने भूमिके ऊपर

दंडवत्पतितो भूमौ पुनः पुनरुदारधीः ॥ १३ ॥ एकपादे
पुनस्तस्थिवांश्च भगीरथः ॥ इति तस्य च राजर्षेः स्थितस्यो
तस्य हि ॥ १४ ॥ एकदा स मुनिर्भूपं समाध्यंते ददर्श
पुनः पुनः प्रणामांश्च कुर्वंतं तु भगीरथम् ॥ १५ ॥ उवाच
क्तिसंपन्नं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ १६ ॥ जह्नुरुवाच ॥
पुरुषशार्दूल सिंहव्याघ्रनिषेविते ॥ वने झिल्लीगणाह्लादे
धातुविचित्रिते ॥ १७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तस्य वचः
वेपमानः कृतांजलिः ॥ उवाच सहसा त्रस्तो जह्नुं चैव तपो
॥ १८ ॥ भगीरथ उवाच ॥ अहं भगीरथो नाम सगरस्या
भवः ॥ सगरो नाम मे पूर्व पितामहपिता स्थितः ॥ १
अश्वमेधस्य कर्ता यो विख्यातबलविक्रमः ॥ श्रुतो भवेत्कदा
त्वया भगवता क्वचित् ॥ २० ॥ द्वाभ्यां तद्धर्मपत्नीभ्यां
एकोत्तरं सुताः ॥ षष्टिश्चैव सहस्राणि महाबलपराक्रमाः ॥ २
एकस्मिन्नश्वमेधे तु हयो यज्ञहविःश्रुतः ॥ चोरितो वासवे
स्थापितः कपिलाश्रमे ॥ २२ ॥ अन्वेषमाणा यज्ञीयं

निपतितहो वारंवार दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १३ ॥ फिर राजाभगीरथ समाधिमें
राजर्षि जह्नुके निकट एक चरणसे खडे होगये ॥ १४ ॥ एक समय राजर्षिने
यह देखा कि–राजाभगीरथ वारंवार प्रणाम कर रहाहै ॥ १५ ॥ और भक्तिसंपन्न
वार प्रणाम करते भगीरथसे यों कहा ॥ १६ ॥ जह्नु बोले--सिंह और व्याघ्रोंसे
और अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र ऐसे वनमें जिसमें कि झींगर झनकारसे
कौन हो ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले--उनके यह वचन सुन राजा कंपायमान हो
त्रस्त हो हाथ जोड तपोधन जह्नुसे यों कहने लगा ॥ १८ ॥ भगीरथ बोला–मैं
पुत्रोंका आत्मज हूं और भगीरथ मेरा नामहै, पहिले सगर नाम मेरे पितामहथे ॥
उन्होंने अनेक अश्वमेध यज्ञ कियेथे, उनका बल और विक्रम संसारमें विख्यातहै,
आप भगवान्‌नेभी उन्हें सुनाहोगा ॥ २० ॥ उनकी दो धर्मपत्नियोंने महाबलशाली
क्रमी साठसहस्र और एक पुत्रजने ॥ २१ ॥ एक समय अश्वमेध यज्ञके हयको इन्द्र
लिया और लेजाकर कपिलजीके आश्रममें रखदिया ॥ २२ ॥ वे साठसहस्र राज

वरुणालये ॥ खातयित्वा च तां भूमिं पाताले कपिलाश्रमे ॥
॥ २३ ॥ मेनिरे तं हयं दृष्ट्वा पृष्ठस्थं कपिलं तदा ॥ चौरोयं
वध्यतां शीघ्रं बब्रुस्ते दुष्टबुद्धयः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वैव तेन मुनिना
भस्म नीताः पितामहाः ॥ नप्ता राज्ञो बाहुजस्य अंशुमान् दृढ-
विक्रमः ॥ २५ ॥ विनयाविष्टहृदयो ववंदे चरणौ मुनेः ॥ तेषां
गतिं याचितवान् पितृव्यानां दुरात्मनाम् ॥२६॥ प्रसन्नश्चाभव-
त्सोपि कपिलो भगवान्मुनिः ॥ यदा वः कुलसंजातो गंगाम-
त्रानयिष्यति ॥ तदा मच्छापनिर्दग्धा यास्यंति परमां गतिम्
॥ २७ ॥ एवं परंपराप्राप्तं श्रुतमेतन्मया विभो ॥ भवादृशानां
कृपया नीता सा पितृमुक्तये ॥ २८॥ सा त्वया भगवन्नीता हृदये
पावनी परा ॥ किं कर्त्तव्यं मयेदानीं क्व गच्छामि करोमि किम्
॥ २९ ॥ कथं मे मरणं नाथ भविष्यति वद प्रभो ॥ ममाभा-
ग्यान्मया प्राप्तं दुःखमेतन्मुनीश्वर ॥ ३० ॥ हा हतोस्मि न
गच्छामि तां विना स्वगृहं मुने ॥ ईश्वर उवाच ॥ निशम्येदं वचो

के अश्वका अन्वेषण करते २ वरुण लोकमें गये, और भूमिका खनन करते २ पाताललोकमें कपिलजीके आश्रममें पहुंचे ॥ २३ ॥ कपिलजीके पीछे अश्वको बांधा देख उन दुष्टबुद्धियों-ने यह जाना कि, येही चोरहैं अतएव यौं कहा कि--इसे मारडालो ॥ २४ ॥ मुनिने उन्हें दे-खतेही भस्म करदिया, फिर राजासगरका पौत्र अंशुमान् नाम बडा पराक्रमीथा ॥ २५ ॥ उसने विनयावनतहो मुनि (कपिलजी) के चरणोंमें वन्दना कर महर्षिसे उन दुरात्माओंकी सद्गतिकी प्रार्थना करी ॥ २६ ॥ तब तौ मननशील भगवान् कपिलजी प्रसन्न हो यौं बोले कि जब तुम्हारे ही कुलमें उत्पन्न हुआ कोई व्यक्ति भूमिके ऊपर गंगाजीको लावेगा, तब मेरे शा-पसे भस्मीभूत हुए यह राजकुमार परमगतिको लाभ करेंगे ॥ २७ ॥ हे विभो ! इस प्रकार क्रमागत यह वृत्तान्त मैंने श्रवण कर रक्खाहै, और आप जैसे महात्माओंकी कृपासे पितरोंकी मुक्तिके लिये गंगाजीको मैं लायाहूं ॥ २८ ॥ सो उस परमपावनीको आपने अपने हृदयमें धर-लिया, मुझे अब क्या कर्त्तव्यहै? हाय मैं कहां जाऊं क्या करूं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! मेरा मरण किस प्रकार होगा हे नाथ ! यह बताइये, हे मुनीश्वर ! मेरे अभाग्यवशात् यह महत् कष्ट उप-स्थित हुआहै, हाय ! मैंतो मारागया विना उसे लिये घर कदापि न जाऊंगा ॥ ३० ॥ महा-देवजी बोले—हे देवि ! जब जह्नुने राजाके यह वचन सुने तब कृपालु हो राजासे यौं

राज्ञो जह्नुर्वै मुनिपुंगवः ॥ कृपाविष्टमना देवि प्रोवाच वचनं
॥ ३१ ॥ जह्नुरुवाच ॥ श्रुणु राजन् समाधौ मे विघ्नं वै
कृतम् ॥ उपचारादिकं सर्वं तस्मान्मेवहितं नृप ॥ ३
धन्योसि नृपशार्दूल यस्य ते मतिरीदृशी ॥ पितृभक्तिरतो
दैवतानां च पूजकः ॥ ३३ ॥ प्रसन्नोस्मि दमेन त्वत्प्रश्रयेण
च ॥ पुनरेतादृशं कर्म न विधेयं कचित्त्वया ॥ ३४ ॥ अ
गंतव्यं गंगामानीय सत्वरम् ॥ अतः परं महाराज मन्नाम्नी
ष्यति ॥ ३५ ॥ मुंचामि जानुना देवीं विनयेन तवा
यस्या दर्शनमात्रेण सर्वपापं विनश्यति ॥ ३६ ॥ ईश्वर
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो जानुदेशात्पुनर्ददौ ॥ गंगाप्रवाहं
कन्येति कथितं पुनः ॥ ३७ ॥ सोपि राजा महाबाहुः परि
प्रणम्य च ॥ तां प्राप्य संययावग्रे चैकैकेन रथेन हि ॥ ३
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भगीरथोपाख्याने गंगानयने
पाख्यानं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

कहा ॥ ३१ ॥ जह्नुबोले—सुनो महाराज ! इसने मेरी समाधिमें विघ्न किया, और मेरी
वहादी इसीसे मैंने इसे ग्रहण करलिया ॥ ३२ ॥ राजन् ! तुम्हें धन्यहै जो तुम्
मति है, तुम पितरोंकी भक्तिमें निरत, इन्द्रिय दमन कर्त्ता और देवताओंके पूजकहो
मैं तुम्हारे मनोनिग्रह और इन्द्रियदमन, नम्रस्वभाव और नीतिके आचरणसे प्रसन्
अब तुम्हें ऐसा कर्म कहींभी कदापि न करना चाहिये ॥ २४ ॥ गंगाजीको लेकर
सावधानीसे यात्रा करनी चाहिये, अबसे यह मेरे नामसेभी प्रसिद्धहोगी ॥ ३५ ॥
विनयके वशीभूतहो अब मैं अपने जानु प्रदेशसे इस भगवतीका परित्याग करताहूं,
नमात्रहीसे सब पापोंका नाश होगा ॥ ३६ ॥ महादेवजी बोले—यों कहकर मुनिशा
पापविनाशिनी गंगाजीके प्रवाहको जानुप्रदेशसे परित्याग कर राजाको देदिया, और
पुत्री कहकर संबोधनकिया ॥ ३७ ॥ महाबाहु राजाभगीरथ गंगाजीको ले और
को परिक्रमापूर्वक प्रणाम कर एक चक्र रथके द्वारा आगेको चले ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

ईश्वर उवाच ॥ पुनाराजा महाबाहुर्नन्दनाद्रिसमीपगे ॥ वासुकिप्रमुखान्नागांस्तपस्तप्तुं समास्थितान् ॥ १ ॥ तमेवार्थं चिंतमानान् शिवसंन्यस्तमानसान् ॥ कीर्त्तयानान् हि गंगेति गंगागंगेति वा पुनः ॥ २ ॥ तस्मिन्नेव स्थले रम्ये ददर्श मुक्तिलालसान् ॥ दृष्ट्वा तान्विस्मयाविष्टो गंगां स्तोतुं मनोदधे ॥ ३ ॥ चिंतयामास बहुधा किं कर्त्तव्यमतः परम् ॥ पाताले नागनिलये नयिष्यंति सरिद्वराम् ॥ ४ ॥ किं कर्त्तव्यं क्व गच्छामि को मे दुःखं निवारयेत् ॥ इति वै चिंतयानोसौ तुष्टाव च सरिद्वराम् ॥ ५ ॥ नाम्नां सहस्रमाख्यातं गंयायास्तत्र पार्वति ॥ दिव्यरूपधरा देवी प्रत्यक्षं प्राह तं नृपम् ॥ ६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानां प्रीतिवर्द्धन ॥ कानि नामानि प्रोक्तानि तेन राज्ञा महात्मना ॥ ७ ॥ सहस्रनाम गंगायाः स्तोत्रं परमदुर्लभम् ॥ वद मे देवशार्दूल भक्तास्मि सततं प्रिया ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ साधु

महादेवजी बोले—फिर राजाभगीरथ उस स्थानमें गये जहां नन्दनपर्वतके निकट वासुकी आदि नाग तप करनेको उपस्थितथे ॥ १ ॥ महादेवमें अपनी चेतोवृत्तिको लगाये हुए उसी अर्थका विचार कररहेथे और वारंवार 'गंगा' नामका कीर्त्तन कररहेथे ॥ २ ॥ उसी सुन्दर रमणीय स्थानमें मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले नागोंको देखा, उन्हें देख आश्चर्ययुक्तहो राजा भगीरथ गंगाजीकी स्तुति करनेको उद्यत हुए ॥ ३ ॥ और वारंवार यह विचार करनेलगे कि—अब हमैं क्या करना कर्त्तव्यहै ? क्योंकि अब यह गंगाजीको नागलोक पातालमें लेजायँगे ॥ ४ ॥ हाय मैं क्या करूं, कहां जाऊं ? मेरे दुःखको कौन निवारण करेगा ? इस प्रकार विचार करते २ ही गंगाजीको सन्तुष्ट किया ॥ ५ ॥ हे पार्वति ! राजाने उस समय गंगाजीके सहस्रनामका कीर्त्तन किया, तब गंगाजीने प्रत्यक्ष दिव्य रूप धारणकर राजासें कहा ॥ ६ ॥ पार्वतीजी बोली—हे देवाधिदेव महादेव !!! आप भक्तोंकी प्रीतिकी वृद्धि करनेवालेहैं, सो यह बताइये उस महात्मा राजाने कौनसे नाम कीर्त्तन कियेथे ॥ ७ ॥ हे देवशार्दूल ! गंगाजीके सहस्रनामका उत्तम स्तोत्र जो परम दुर्लभहै आप मेरे प्रति वर्णन करिये, क्योंकि में आपकी प्रिया और अनन्यभक्तहूं ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले—धन्य पार्वति !!

साधु महादेवि पृष्टं नामामृतं त्वया ॥ गुह्याद्गुह्यतरं स्तोत्रं प्र
मि समासतः ॥ ९ ॥ यस्य स्मरणमात्रेण नरो वै शि
व्रजेत् ॥ पठनाल्लिखनाच्चैव पूजनात् किं न जायते ॥ १
श्लोकमेकं पठित्वा पि गंगायाः शतयोजने ॥ गंगास्नान
सद्यः प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ११ ॥ सहस्रनामस्तोत्रस्य भ
ऋषिर्मतः ॥ छंदोनुष्टुप् तथाख्यातं गंगा वै देवता मता ॥
सर्वतः पापनाशार्थं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ अक्षयस्वर्ग
विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ १३ ॥ गंगा सरिद्वारा विष्णुपाद
जजनिः परा ॥ शिवशेखरसंवासा ब्रह्मणः कलशस्थिता ॥
आकाशगामिनी भद्रा चतुरात्मा प्रवाहिनी ॥ ब्रह्मरंध्रसमु
ब्रह्मरंध्रनिवासिनी ॥ १५ ॥ ब्रह्मरंध्रधरा धेनुः सर्वकामा
यिनी ॥ ब्रह्मांडोद्भेदनपरा परब्रह्मधरा परा ॥ १६ ॥ द्रवरू
चैव शिवसंगमदायिनी ॥ मुक्तिदा भुक्तिदानंगा शत्रुदावान
त्मिका ॥ १७ ॥ अनंगांगी त्रिमूर्त्तिश्च ब्रह्माणी कमला स्थित

धन्य !!! तुमने अमृतकी समान मोक्षदायक गंगासहस्रनामका प्रश्न किया, यद्यपि य
अत्यन्तही गोप्यहै तथापि संक्षेपसे मैं तुम्हारे अगाड़ी वर्णन करताहूं ॥ ९ ॥ इसक
स्मरणही करनेसे मनुष्य शिवकी सदृश होजाताहै, फिर पढ़ने, लिखने और पूजन
क्या नहीं होसक्ताहै ॥ १० ॥ गंगाजीसे सौ योजन अर्थात् चारसौ कोसकी दूरी प
मनुष्य इसके एक श्लोकका पाठ करताहै उसे निस्सन्देह गंगास्नानके फलका लाभ
॥ ११ ॥ गंगासहस्रनामस्तोत्रके भगीरथऋषि, अनुष्टुप छन्द और गंगाजीदेवताहैं ॥
और चौतर्फा पापविनाश पूर्वक समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये एवम् अक्षय स्वर्ग
प्राप्तिकी कामनाके निमित्त इसका प्रयोग (कीर्त्तन) कियागयाहै ॥ १३ ॥ गंगा,
(सब नदियोंमें श्रेष्ठ), विष्णुचरणकमलोत्पन्ना, परा (सर्वोत्तम), महादेवके शिरपर
वाली, और ब्रह्माजीके कमण्डलुमें स्थित ॥ १४ ॥ आकाशगामिनी, भद्रा (कल्या
चतुरात्मा, प्रवाहिनी, ब्रह्मरन्ध्रोत्पन्ना, ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनी ॥ १५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रधरा, धे
स्तकामनाओं और अर्थोंकी देनेवाली, ब्रह्माण्डका भेदन करनेवाली, परब्रह्मधरा, परा ॥
द्रवरूपधारिणी, शिवसामीप्यदायिनी, मुक्तिदायिनी, भोगदात्री, निराकारा, शत्रु
दावानलरूप ॥ १७ ॥ अनंगांगी, त्रिमूर्त्ती, ब्रह्माणी, कमला, सरस्वती, सावित्री, जयसे

सरस्वती च सावित्री जयसेना जयात्मिका ॥ १८ ॥ जयभद्रा वैष्णवी च चिच्छक्तिः परमेश्वरी ॥ त्रयी वेदवदान्या च मेदिनी मेदिनीधरा ॥ १९ ॥ वेदमूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिश्च देवमूर्त्तिर्दयापरा ॥ दामिनी दामिनीवासा कुलिशा कुलिशप्रिया ॥ २० ॥ कुलिशांगी कुलांगी च कुलनाथकुटुम्बिनी ॥ कुलीना सुभगा भाग्या भाग्यगम्या यशोमती ॥ २१ ॥ कला कलाधरधरा कलाधरशतप्रिया ॥ षोडशी षोडशाराध्या षोढान्याससहायिनी ॥ २२ ॥ षोढा समासनिलया षोढांगी कालरूपिणी ॥ कालिका मुंडमाला च कालानां शतनाशिनी ॥ २३ ॥ कालांगी कालनिलया काली कालेश्वरी वरा ॥ शैवी माया शिवा रुंडा चंडमुंडविनाशिनी ॥ २४ ॥ चंडाट्टहासा दुर्गम्या चंडानां प्रीतिवर्द्धिनी ॥ चंडेश्वरी महाप्राज्ञा प्रज्ञा धीः सिद्धिदायिनी ॥ २५ ॥ लक्षलाभस्य जननी शतलाभा सुरेश्वरी ॥ कौमारी शक्तिरुद्दिष्टा क्रौंचदैत्यविनाशिनी ॥ २६ ॥ तारकासुरहंत्री च तारकामयगामिनी ॥ तारकस्य परा शक्तिस्तारकाणां पतिप्रिया ॥ २७ ॥ तारकेशपरा ज्योत्स्ना तारेशशतरू-

त्मिका ॥ १८ ॥ जयभद्रा, वैष्णवी, चित्शक्ति, परमेश्वरी, वदान्या, मेदिनी, धरा ॥ १९ ।
वेदमूर्त्ती त्रिमूर्त्ती, देवमूर्त्ति, दयापरा दामिनी दामिनीवासा, कुलिशा कुलिशप्रिया ॥ २० ॥
कुलिशांगी, कुलांगी कुलनाथकुटुम्बिनी कुलीना सुभगा भाग्या भाग्यगम्या यशोमती ॥ २१ ।
कला, कलाधरधरा, कलाधरशतप्रिया, षोडशी षोडशाराध्या षोढा और न्याससहायिनी॥२२।
षोढासमासनिलया, षोढांगी कालरूपिणी कालिका मुण्डमाला और शतकालनाशिनी ॥ २३ ।
कालांगी कालनिलया काली कालेश्वरी वरा, शैवी माया शिवा रुण्डा चण्डमुण्डविनाशिनी ॥२४।
चण्डाट्टहासा दुर्गम्या, चण्डोंकी प्रीति बढानेवाली, चण्डेश्वरी महाप्राज्ञा प्रज्ञा, धी और सिद्धि
दायिनी ॥ २५ ॥ लक्षोंलाभकी उत्पन्नकरनेवाली, शतलाभवती, सुरेश्वरी कौमारी शक्ति क्रौंच
दैत्यविनाशिनी ॥ २६ ॥ तारकासुरहन्त्री तारकासुरगामिनी तारककी महाशक्ति पतिप्रिय
॥ २७ ॥ तारकेशपरा ज्योत्स्ना तारेशशतरूपिणी. नारायणी, दयासिन्धु, सिन्धूत्तरनिवा

पिणी ॥ नारायणी दयासिंधुः सिंधूत्तरनिवासिनी ॥ २८
सिंधुश्रेष्ठतमा भार्य्या रत्नदा रत्नहारिणी ॥ जलंधरस्य ज
जलंधरविरूपिणी ॥ २९ ॥ काममाता च कामघ्नी रति
शतप्रिया ॥ भीष्ममाता महाभीष्मा भीष्माणां प्रीतिव
॥ ३० ॥ ज्वाला कराली तुंगेशी तुंगशेखरवासिनी ॥ तुंग
सहाया च बदर्य्याश्रमवासिनी ॥ ३१ ॥ श्रीक्षेत्रनिलया
द्वारस्था द्वारपालिनी ॥ जाह्नवी जह्नुतनया नागालयनिवा
॥ ३२ ॥ नागानां जननी चैव नागप्रीतिविवर्द्धिनी ॥ नागे
रसहाया च कैलासनिलया तथा ॥ ३३ ॥ महाप्रभा वरे
च वेदमाता विलासिनी ॥ हरसंगरता चैव हरिपादाविनि
॥ ३४ ॥ अदितिश्च दितिश्चैव कद्रू च विनता तथा ॥ सुर
चाग्निगर्भा च रत्नगर्भा विभावरी ॥ ३५ ॥ शारदी वै चंद्रक
नलकूबरसेविता ॥ अरिष्टनेमिदुहिता नहुषांगणवासिनी ॥ ३६
शंतनोर्गृहिणी भव्या वसुमाता कृशोदरी ॥ मत्स्योदरी सुराराध्
सुराणां प्रीतिदायिनी ॥ ३७ ॥ यमुना चंद्रभागा च शतद्रूः शरयूस्त
था ॥ सरस्वती शुभामोदा नंदनाद्रिनिवासिनी ॥ ३८ ॥ नंदप्रया
गनिलया देवतीर्थनिवासिनी ॥ रुद्राणी रुद्रसावित्री महाभैरवना

सिनी ॥ २८ ॥ सिन्धुश्रेष्ठतमा भार्या रत्नदायिनी रत्नहारिणी जलंधरकी जननी जलंध
रूपिणी ॥ २९ ॥ काममाता कामघ्नी, रतिरूपा, शतप्रिया, भीष्ममाता महाभीष्मा भीष्म
प्रीति बढानेवाली ॥ ३० ॥ ज्वालाकराली तुंगेशी तुंगशेखरवासिनी तुंगेश्वरसहाया बद
श्रमवासिनी ॥ ३१ ॥ श्रीक्षेत्रनिलया द्वारस्था द्वारपालिनी जाह्नवी जह्नुतनया, नागलोकवा
सिनी ॥ ३२ ॥ नागमाता, नागप्रीतिविवर्द्धिनी, नागेश्वरसहाया और कैलासनिलया ॥ ३३
महाप्रभा वरेण्या वेदमाता विलासिनी, हरसंगरता, हरिचरणनिर्गता ॥ ३४ ॥ अदिति दि
कद्रू विनता सुरसा अग्निगर्भा रत्नगर्भा विभावरी ॥ ३५ ॥ शारदी चन्द्रकला नलकूबरसे
अरिष्टनेमिसुता, नहुषांगणवासिनी ॥ ३६ ॥ शन्तनुकी पत्नी भव्या वसुमाता कृशोदरी, मत्स्यो
सुराराध्या, और देवप्रीतिदात्री ॥ ३७ ॥ यमुना चन्द्रभागा शतद्रू सरयू सरस्वती शुभामोदा नन्द
चलनिवासिनी ॥ ३८ ॥ नन्दप्रयागनिवासिनी, और देवतीर्थनिवासिनी रुद्राणी सावित्री और म

दिनी ॥ ३९ ॥ भैरवी भीषणवरा भृगुतुंगनिवासिनी ॥ केदारशिखरावासा महावलयवासिनी ॥ ४० ॥ तुंगभद्रा सुषेणा च मांधातृजयदायिनी ॥ भूतभव्यपरा सर्वा खर्वगर्वा नृपेश्वरी ॥ ४१ ॥ भविष्यज्ञानदा भूतज्ञानदा वर्त्तमानदा ॥ शुकस्य जननी सौम्या व्यासमाता सुरेश्वरि ॥ ४२ ॥ धारापातधरा धीरा धैर्य्यदा शुभदायिनी ॥ कंकणा कंकणप्रख्या शुभकंकणदायिनी ॥ ४३ ॥ कंकणैः पातकहरा प्रबला शत्रुनाशिनी ॥ स्मरतां मुक्तिदा भुक्तिरूपा रूपविवर्जिता ॥ ४४ ॥ देवानीका देवसेव्या सेवारूपफलामला ॥ कृत्तिका कार्त्तिकावासा कार्त्तिकस्नानदायिनी ॥ ४५ ॥ पुष्करा पुष्करावासा पुष्पप्रचयसुंदरी ॥ मुनिसेव्या मुनिर्मेना मानवाकारधारिणी ॥ ४६ ॥ मैनाकशिखरावासा काशीपुरनिवासिनी ॥ महाप्रयागनिलया तीर्थराजप्रसाधिनी ॥४७॥ अक्षया क्षयरूपा च संसारक्षयकारिणी ॥ मृगशीर्षधरा मार्गशीर्षस्नानफलप्रदा ॥ ४८ ॥ पुष्यनक्षत्ररूपा च पौषेतीव फलप्रदा ॥ माघी मघायुता माघ्या माघस्नाननिवासिनी ॥ ४९ ॥ श्रीपंचमी श्रियो रूपा षष्टिचारण्यसंज्ञिता ॥ अचला

भैरवनादिनी ॥ ३९ ॥ भैरवी भीषणवरा भृगुतुंगनिवासिनी केदारशिखरनिवासिनी और महावलयवासिनी ॥ ४० ॥ तुंगभद्रा, सुषेणा, मान्धातृजयदायिनी भूतभव्यपरा सर्वा खर्वगर्वा और नृपेश्वरी ॥ ४१ ॥ भविष्यज्ञानदा, भूतज्ञानदा वर्त्तमानदा, शुककी माता सौम्या व्यासमाता सुरेश्वरी ॥ ४२ ॥ धारापातधरा धीरा धैर्य्यदा शुभदायिनी, कंकणा कंकणप्रख्या शुभकंकणदायिनी ॥ ४३ ॥ पातकहरा प्रबला शत्रुनाशिनी, स्मरणकर्त्ताओंको मुक्तिदेनेवाली, भोगरूपा रूपरहिता ॥ ४४ ॥ देवसेना देवसेव्या सेवारूपफला अमला कृत्तिका कार्त्तिकावासा कार्त्तिकस्नानदायिनी ॥ ४५ ॥ पुष्करा पुष्करावासा पुष्पप्रचयसुन्दरी मुनिसेव्या मुनिमेना और मानवाकारधारिणी ॥ ४६ ॥ मैनाकशिखरवासिनी, काशीपुरनिवासिनी, महाप्रयागनिवासिनी और तीर्थराज (प्रयाग) प्राप्त करानेवाली ॥ ४७ ॥ अक्षया क्षयरूपा, संसारका क्षयकरनेवाली मृगशीर्षधरा मार्गशीर्षके स्नानका फल देनेवाली ॥ ४८ ॥ पुष्यनक्षत्रके रूपवाली, पौषमें अतिशय फलकी देनेवाली माघी मघायुक्ता माघ्या माघस्नाननिवासिनी ॥ ४९ ॥ श्रीपंचमी लक्ष्मीरूपा षष्टि

निश्चला जंबूर्जंबूद्वीपसहायिनी ॥ ५० ॥ भीष्माष्टमी भीष्म
भीष्मपंचकसेविता ॥ एकादशी द्वादशी च पुण्यापुण्यसहायिनी
॥ ५१ ॥ पुण्यदा पुण्यानिलया पुण्यांगी चारुवाहिनी ॥ फाल्
फाल्गुने सेव्या होलिका गंधरूपिणी ॥ ५२ ॥ हुताशनी दे
वी संतुष्टा भस्मधारिणी ॥ वसंतर्त्तुसुसेव्या च वसंतोत्सवदायि
नी ॥ ५३ ॥ चैत्री चित्रा प्रिया पुष्पगणरूपा गणेश्वरी ॥ मक
स्वरूपा च मकरंदनिवासिनी ॥ ५४ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदा व
भकरा शुभा ॥ माधवी माधवागारा माधवप्रीतिदायिनी ॥
विशाखा वेणुपापघ्ना वैशाखी भानुसप्तमी ॥ वैशाखस्नानशु
पिंडाकरनिवासिनी ॥ ५६ ॥ तथाक्षयतृतीया च सक्तुदा
प्रदा ॥ प्रपा पुण्यप्रदा चैव नित्यस्नानवशीकृता ॥ ५७ ॥
ज्येष्ठस्य महती दशपापप्रणाशिनी ॥ निर्म्मला रूपिणी चै
थानंतशया मता ॥ ५८ ॥ आषाढी चारुसर्वांगी तथा हरि
स्थिता ॥ श्रावणी श्रवणानंदा सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥ ५

चारण्यसंज्ञावाली अचला निश्चला जंबू जंबूद्वीपसहायिनी ॥ ५० ॥ भीष्माष्टमी
भीष्मपंचकसेविता एकादशी द्वादशी पुण्या पुण्यसहायिनी ॥ ५१ ॥ पुण्यदा पु
पुण्यांगी चारुवाहिनी फाल्गुनी फाल्गुनसेव्या होलिका गन्धरूपिणी ॥ ५२ ॥ हुता
देवी सन्तुष्टा भस्मधारिणी वसन्त ऋतुमें सुसेव्या वसन्तोत्सवदायिनी ॥ ५३ ॥ चै
प्रिया पुष्पगणरूपा गणेश्वरी मकरन्दस्वरूपा मकरन्दनिवासीनी ॥ ५४ ॥ चैत्रशु
वर्षारंभकरा शुभा, माधवी माधवागारा माधवप्रीतिदायिनी ॥ ५५ ॥ विशाखा वेणुपाप
भानुसप्तमी वैशाखस्नानशुभदा और पिण्डाकरनिवासिनी ॥ ५६ ॥ अक्षयतृतीया
शुभप्रदा, प्रपा पुण्यप्रदा नित्यस्नानवशीकृता ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठा महती दशपापनाशि
लारूपिणी तथा अनन्ताशया ॥ ५८ ॥ आषाढी चारुसर्वाङ्गी हरिशयनस्थिता श्राव

---

१ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृ
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः । असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतु
परद्रव्यापहरणं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च दशधा पापमुच्यते
अदत्तका ग्रहण, अवैधहिंसा, परस्त्रीगमन, कठोरता, असत्यभाषण, पिशुनता
द्धभाषण, परद्रव्यापहरण, मनसे अनिष्टचिन्तन, असत्यका उपपादन, ये दश पाप

भद्रा भाद्रपदे सेव्या जन्मा जन्माष्टमी तथा ॥ दूर्वापूजनसंतुष्टा बीजांकुरनिवासिनी ॥ ६० ॥ आश्विने सुतरां सेव्या पितृभक्तिप्रदायिनी ॥ नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लपक्षस्य पूर्णिमा ॥ ६१ ॥ नवरात्रसहाया च कालरात्रिर्महाष्टमी ॥ अश्विनी भौमवारस्य शतरूपा ह्ययोनिजा ॥ ६२ ॥ हरसेव्या हरांगी च हरिमंदिरगामिनी ॥ प्रमोदा मोदसंकल्पा नानारूपा महोदरी ॥ ६३ ॥ महानंदप्रदात्री च नानालंकारधारिणी ॥ अलंकारप्रिया चैव नानातिथिसमाश्रया ॥ ६४ ॥ तिमिंगिलधरा स्वच्छा नानाग्रावविदारिणी ॥ गंडशैलवहा चैव कामदेवधरांबरा ॥ ६५ ॥ सर्वतीर्थमयी सर्वदेवदानवरूपिणी ॥ काशीप्रांतवहा तुच्छप्रवाहा भारनाशिनी ॥ ६६ ॥ भरणी भारणांगी च तथ्यातथ्यप्रिया सती ॥ सतीनां प्रथमं गण्या गण्या सर्वमयी प्रभुः ॥ ६७ ॥ धीर्द्धारणावती सर्वजनस्य हृदि संस्थिता ॥ स्थितिरूपा स्थितिधरा स्थिरांगी कमलप्रिया॥६८॥कुशाच्छन्नतटा चैव दूर्वांकुरविराजिता ॥ तरंगिणी शैवलिनी तरंगशतसंकुला ॥ ६९ ॥ महाकच्छपनिलया कच्छपपृष्ठसंस्थिता ॥ नानाजंतुधरा प्रोक्ता नानाजंतुविनाशिनी॥७०॥

णानन्दा सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥ ५९ ॥ भद्रा भाद्रपदमें सेवनीया, जन्मा जन्माष्टमी दूर्वापूजनसन्तुष्टा बीजांकुरनिवासिनी ॥ ६० ॥ आश्विनमें अत्यन्तसेव्य, पितृभक्ति प्रदायिनी कृष्णपक्षकी नवमी शुक्लपक्षकी पूर्णिमा ॥ ६१ ॥ नवरात्रसहाया कालरात्री महाष्टमी भौमाष्टमी शतरूपा अयोनिजा ॥ ६२ ॥ हरसेव्या हराङ्गी हरिमन्दिरगामिनी प्रमोदमोदसंकल्पा नानारूपा महोदरी ॥ ६३ ॥ महानन्दप्रदात्री नानाअलंकारधारिणी अलंकारप्रिया नानाअतिथिसमाश्रया ॥ ६४ ॥ तिमिंगिलधरा स्वच्छा नानापाषाणछेदिनी गण्डशैलवहा कामदेवधरा अम्बरा ॥ ६५ ॥ सर्वतीर्थमयी सर्वदेवदानवरूपिणी काशीप्रान्तवहा तुच्छवाहा भारनाशिनी ॥ ६६ ॥ भरणी भारणाङ्गी तथ्यातथ्यप्रिया सती सतियोंमें प्रथम गण्य सर्वमयी ॥ ६७ ॥ धी धारणावती सर्वजनहृदयवासिनी स्थितिरूपा स्थितिधरा स्थिराङ्गी कमलप्रिया ॥ ६८ ॥ कुशाच्छन्नतटा दूर्वांकुरविराजिता तरंगिणी शैवलिनी तरङ्गशतसंकुला ॥ ६९ ॥ महाकच्छ-

वर्षाकालतरा सौम्या वातकल्लोलकारिणी ॥ तीरस्थ
छन्ना धन्यानां शववाहिनी ॥ ७१ ॥ तरंगशतशोभाढ्या तरंग
मालिनी ॥ स्वर्नारीकुचकुंभस्थकुंकुमारुणसुंदरी ॥७२॥ ना
ष्पोपहारा च सुखसंपत्तिदायिनी ॥ मंदाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा स
विगाहिनी ॥७३॥ सर्वलोकमयी तंद्रा तंत्रशास्त्रविनोदिनी ॥
तंत्रस्थिता विद्या महादेवकुटुंबिनी ॥७४॥ सर्वशास्त्रमयी नंदा
सवेश्वरपालिनी ॥ शची पुलोमजा तुंगा कश्यपस्य प्रिया म
॥ ७५ ॥ सृष्टिः सृष्टिकृदाराध्या प्रलये कालरूपिणी ॥
शादित्यसदृशी प्रभा त्रैलोक्यदीपिका ॥ ७६ ॥ त्रिलोक
या वेद्या वेदरूपाघमर्दिनी ॥ मणिप्रचयसंपूज्या मध्याह्ना
वासिनी ॥७७॥ प्रभातारुणसर्वांगी सर्वकामप्रदायिनी ॥ प्रा
संध्या तथा प्रोक्ता संध्या माध्याह्निकी मता ॥ ७८ ॥ सा
ध्या तथा रात्रिसंध्या तिमिररूपिणी ॥ निशीथतारका प्र
विद्युद्रूपा महोत्सवा ॥ ७९ ॥ दुःस्वानां च निहंत्री च नानादु
निवारिणी ॥ विनोदिनी सुकल्लोला सागरस्वननिःस्वना ॥ ८

पनिलया कच्छपपृष्ठसंस्थिता नानाजन्तुधरा नानाजन्तुविनाशिनी ॥ ७० ॥ वर्षाकालतरा
वातकल्लोलतारिणी शवसंछन्ना और अहोभाग्यपुरुषोंके शवको बहानेवाली ॥ ७
सैकडों तरंगोंसे सुशोभित, सैकडों तरंगोंकी माला धारणकरनेवाली, स्वर्गीय नारियोंके
कुंकुमकी लालिमासे अरुण सुन्दरी ॥ ७२ ॥ अनेकपुष्पोंका उपहार धारण करनेवाली
संपत्तिकी दात्री, मन्दाकिनी, सरिताओंमें श्रेष्ठ, समस्त देवताओंको स्नान करानेवाली ॥
सर्वलोकमयी तन्द्रा, तन्त्रशास्त्रविनोदिनी तन्त्री तन्त्रस्थिता विद्या महादेवकुटुम्बिनी ॥
सर्वशास्त्रमयी नन्दा वासवेश्वरपालिनी शची पुलोमजा तुङ्गा और कश्यपप्रिया ॥ ७५
स्वरूपा सृष्टिकारिणी आराध्या प्रलयसमय कालरूपिणी, द्वादश आदित्योंकी सदृश प्रभा
क्यदीपिका ॥ ७६ ॥ त्रिलोकनिलया वेद्या वेदरूपा अघ (पाप) मर्दिनी, मणिसं
पूज्य, मध्याह्नके सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाली ॥ ७७ ॥ प्रभातकी समान समस्त
अंगवाली, सर्वकामप्रदायिनी, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या ॥ ७८ ॥ सायंसन्ध्या रा
और तिमिररूपा, अर्धरात्रीके तारागणमयी विद्युतरूपा महोत्सवा ॥ ७९ ॥ दुःस्वप्न
दुःखनिवारिणी विनोदिनी, सुन्दरतरंगावलीवाली और सागरके शब्दकी समान गंभीर

गंभीरावर्त्तशोभाढ्या गंभीरगजगामिनी ॥ नानापद्मसमाकीर्ण-
जलकुक्कुटशोभिता ॥ ८१ ॥ जलजारुणसर्वांगी शंखवर्त्व-
रवांबरा ॥ कुंदश्वेता कुंदभूषा श्वेतांबरविराजिता ॥ ८२ ॥
राजहंसपरीवारा तटस्थद्रुमशोभिता ॥ द्रुमांबरा द्रुमावासा वृन्दी
द्रुमविदारिणी ॥ ८३ ॥ पद्मलेखा पद्मसेव्या पद्मा पद्मजपूजिताद्या
लक्ष्मीः श्यामा वरारोहा वरांगी भुवनेश्वरी ॥ ८४ ॥ तारी
श्रीदानदा धन्या दानवानां विनाशिनी ॥ छिन्नमस्ता च नाक्षत्र-
योगिनी योगसेविता ॥ ८५ ॥ योगगम्या योगिधरा योगिप्रीति-
विवर्द्धिनी ॥ योगमार्गरता साध्या साधकाभीष्टदायिनी ॥८६॥
सिद्धिदा सिद्धसंसेव्या सिद्धपूज्या सुरेश्वरी ॥ साधिका साध
तुष्टा साधकानां प्रियंकरी ॥ ८७ ॥ प्रद्युम्नस्यैव जननी प्रद्युम्नश
सुंदरी ॥प्रद्युम्नांगी सुप्रद्युम्ना वराभयकरा तथा ॥ ८८ ॥ वरदा त्री
रसेव्या च वरांगी वरवर्णिनी ॥ वनेचरगणाधीशा वनेचरजनप्रिनो-
॥ ८९ ॥ वनेचरतृषाहंत्री वनेचरमनःप्रिया ॥ सुखदा सुखसे° ॥
च शुभानां शतसंयुता ॥ ९० ॥ बलभद्रसमाभासा बलभद्राकृती
ल्या

रनेवाली ॥ ८० ॥ गंभीर आवर्त्तोंसें सुशोभित गजगामिनी, अनेक पद्मोंसे आकीर्ण,
टोंसे सुशोभित ॥ ८१ ॥ कमलकी समान गौरांगी और शंखकी समान श्वेतवबूति पुरुषा-
रणकरनेवाली, कुन्दकी समान श्वेत, कुन्दभूषा, श्वेताम्बरविराजिता ॥ ८२ ॥ १०३ ॥
रिवारवाली, कुलवर्त्ती वृक्षोंसे सुशोभित, द्रुमाम्बरा द्रुमवासा वृद्धिगत वृक्षोंको विदी १०४॥
ली ॥ ८३ ॥ पद्मलेखा, पद्मसेव्या पद्मा और ब्रह्मपूजिता लक्ष्मी श्यामा वरारोहा दिनी
वनेश्वरी ॥८४॥ तारा, श्रीदानदा धन्या दैत्यविनाशिनी छिन्नमस्ता नाक्षत्रा योगिनी योगसंकुला
८५ ॥ योगगम्या योगिधरा योगियोंकी प्रीतिबढानेवाली, योगमार्गरता, साध्या साधिनी
भीष्ट सिद्ध करनेवाली ॥ ८६ ॥ सिद्धिदा, सिद्धोंसे सुसेवित सिद्धोंसे पूज्य, सुरेश्वरी, च
का, साधनसे सन्तुष्ट होनेवाली और साधकव्यक्तियोंका प्रियकरनेवाली ॥ ८७ ॥ प्रद्युः
ननी प्रद्युम्नशतसुन्दरी प्रद्युम्नाङ्गी सुप्रद्युम्ना वराभयकरा ॥ ८८ ॥ वरदा वरसेव्या वरद-
रवर्णिनी जलचरगणकी अधीश्वरी जलचरोंकी प्रिया ॥ ८९ ॥ जलजीवोंकी तृनमें
नाश करनेवाली, वनचरोंके मनकी प्यारी, सुखदा, सुखसेव्या और सैकडों शुभोंसे गीति
॥ ९० ॥ बलभद्रकी समान आभावाली तथा बलभद्रप्रिया, बलाराध्या बला वृष्णि बाल

वषा ॥ बलाराध्या बला वृष्णिबालानां प्रीतिवर्द्धिनी ॥ [illegible]
छन्ना रामप्रिया साध्वी सीतारामसुसेविता ॥ रमणीया सुर
म्या तथा श्रीरमणप्रिया ॥ ९२ ॥ रेवती रैवते गम्या तथा रै
वतवासिनी ॥ रतिरूपधरा सुभ्रूर्नारदी नारदेरिता ॥ ९३ ॥ मृ
दङ्गसंवाद्या मृदंगशतपूजिता ॥ पणवा पणवाकारा पणवो
तंत्रिका ॥ ९४ ॥ नानावादित्रकुशला वादित्रशतशोभिता
सत्रसारा रसाकारा शतसारसशोभिता ॥ ९५ ॥ सं
धिस्वरूपा च संधिनिर्णयदीपिका ॥ संधिस्वरूपदुर्गे
स्वरसंधिस्थिता प्रिया ॥ ९६ ॥ शब्दा शब्दस्वरूपा च
या शास्त्रप्रमोदिनी ॥ युष्मदस्मत्स्वरूपा च कारका कार
[illegible]या ॥ ९७ ॥ शब्दसंधिस्वरूपा च तद्धितप्रत्यया प्र
[illegible]ादरता चैव धातूनां संधिरूपिणी ॥ ९८ ॥ नै
[illegible]गी तर्कविद्या तर्काराध्या सुतर्किका ॥ चतुः प्रमाण
विद्युः द्रव्यरूपा गुणेश्वरी ॥ ९९ ॥ कर्मज्ञा कर्मनिलया [illegible]
निवाया समपूजिता ॥ समवायस्थिता भावरूपा सर्वप्रि
पनिलया [illegible] ॥ १०० ॥ पंचविंशतितत्वज्ञा मीमांसकरता तथा ॥ मी
वातकल्लोल[illegible]निरता तथा मीमांसकप्रिया ॥ १०१ ॥ मीमांसाग

सैकडों तरं[illegible]ी ॥ ९१ ॥ रामा रामप्रिया साध्वी सीतारामसे सुसेवित, रमणीया सुरम्य [illegible]
कुंकुमकी [illegible]प्रिय ॥ ९२ ॥ रेवती रैवतगम्य रैवतवासिनी रतिरूपधारिणी, सुभ्रू नारदी [illegible]
संपत्तिकी [illegible] ॥ सैकडों मृदंगकी समान नाद करनेवाली, मृदंगशतपूजिता पणवा पणवा[illegible]
सर्वलोकम[illegible] समान शब्दकरनेवाली ॥ ९४ ॥ अनेकवाद्यकुशल शतवादित्रशोभित रससार[illegible]
सर्वशास्त्रम[illegible]ा सैकडों सारसोंसे सुशोभित ॥ ९५ ॥ सन्धि सन्धिस्वरूपा सन्धिनिर्णयदीपिका,
स्वरूप[illegible]पदुर्गम्या स्वरसन्धिस्थिता प्रिया ॥ ९६ ॥ शब्दाशब्दस्वरूपा शब्दशास्त्रप्रमोदिनी,
[illegible]कयदी[illegible]द्स्वरूपिणी कारका और कारकप्रिया ॥ ९७ ॥ शब्दसान्धिस्वरूपा तथा तद्धित [illegible]
पूज्य, [illegible]ी धातुवादरता धातुओंकी सन्धिरूपिणी ॥ ९८ ॥ नैयायिकी तर्कविद्या तर्काराध्या सु[illegible]
अंगवा[illegible] प्रमाणोंके द्वारा गम्य द्रव्यरूपा गुणेश्वरी ॥ ९९ ॥ कर्मज्ञा कर्मनिलया सामान्[illegible]
और [illegible]ता समवायस्थिता भावरूपा सर्वप्रियंकरी ॥ १०० ॥ पंचविंशति तत्वोंको [illegible]
दुःखनि[illegible]ांसकरता, मीमांसाशास्त्रनिरता तथा मीमांसकप्रिया ॥ १०१ ॥ मीमांसागम्य[illegible]

रूपा च कर्मब्रह्मप्रपादिता ॥ सांख्या सांख्यपरा संख्या सांख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥ १०२ ॥ प्रकृतिः पुरुषाकारा भिन्नाभिन्नस्वरूपिणी ॥ स्पर्शिनी स्पर्शरूपा च स्पर्श्या चुंबकलोहवत् ॥ ॥ १०३ ॥ पातंजलिधरा गम्या पतंजलिमुनिप्रिया ॥ वेदांतिनी वेदगम्या वेदांतप्रातिपादिनी ॥ १०४ ॥ वेदांतनिलया वेद्या वेदांतिकजनप्रिया ॥ अद्वैतरूपिणी चैव अद्वैतप्रतिवादिनी ॥ १०५ ॥ अगम्याकाशरूपा च सर्वदेहस्वरूपिणी ॥ वृथासर्वप्रपंचा च संसारशतसंकुला ॥ १०६ ॥ संसृतिर्ग्रामनिरता धर्मनिष्ठा पुरावरा ॥ धर्मिष्ठा धर्मनिरता धर्मशास्त्रप्रबोधिनी ॥ १०७ ॥ यज्ञीया यज्ञविद्या च यज्ञगम्या जनाधिपा ॥ अश्वमेधादियज्ञानां जननी जातकप्रिया ॥ १०८ ॥ यज्ञभूमिर्यज्ञदेवी यज्ञानां नाशकारिणी ॥ यज्ञवाटस्थिता यज्ञा हविर्दात्री प्रभंजिनी ॥ १०९ ॥ वाय्वाहारा वायुसेव्या शीतवातमनोहरी ॥ ललना सरलापूर्वा दक्षिणा वारुणी तथा ॥ ११० ॥ कौबेरी च तथा शैवी आग्नेयी नैर्ऋती तथा ॥ मारुती नंदिनी चैव नंदनारण्यवासिनी ॥ १११ ॥ पातालनिलया

ब्रह्मप्रपादिता सांख्या सांख्यपरा संख्या और सांख्यसूत्रप्रमोदिनी ॥ १०२ ॥ प्रकृति पुरुषाकारा भिन्ना भिन्नस्वरूपिणी स्पर्शिनी स्पर्शरूपा और चुंबकलोहकी समान स्पर्श्य ॥ १०३ ॥ पातंजलिधरा गम्या पतंजलिमुनिप्रिया, वेदान्तिनी वेदगम्या और वेदान्तप्रतिपादिनी ॥१०४॥ वेदान्तनिलया वेद्या वेदान्तिकजनप्रिया, अद्वैतरूपिणी और अद्वैतप्रतिपा (वा) दिनी ॥ १०५ ॥ अगम्या कामरूपा और सर्वदेहस्वरूपिणी, वृथासर्वप्रपंचा संसारशतसंकुला ॥ १०६ ॥ संसृति ग्रामनिरता धर्मनिष्ठा पुरावरा धर्मिष्ठा धर्मनिरता और धर्मशास्त्रप्रबोधिनी ॥ १०७ ॥ यज्ञीया यज्ञविद्या यज्ञगम्या जनाधिपा और अश्वमेध आदियज्ञोंकी जननी अथ च जातकप्रिया ॥ १०८ ॥ यज्ञभूमी यज्ञदेवी और यज्ञविनाशिनी यज्ञवाटस्थिता यज्ञा हविःदात्री प्रभंजिनी ॥ १०९ ॥ वाय्वाहारा वायुसेव्या शीतवातमनोहरी ललना सरला पूर्वा दक्षिणा वारुणी ॥ ११० ॥ कौबेरी शैवी आग्नेयी नैर्ऋती मारुती नन्दिनी तथा नन्दनकाननमें निवासकरनेवाली ॥ १११ ॥ पातालनिलया सौम्या बोधी बुद्धकुलोद्भवा राजनीति दण्डनीति

सौम्या बोधी बुद्धकुलोद्भवा ॥ राजनीतिर्दंडनीतिस्त्रयीवा
परायणा ॥ ११२ ॥ स्वाहा स्वधा वषट्कारा ओंकारसह
जरा ॥ नारिकेलप्रिया खर्ज्जूप्रिया रोगविनाशिनी ॥ ११३
जगदाधाररूपा च रूपेणाप्रतिमा तथा ॥ भद्रकालस्व
च मधुकैटभनाशिनी ॥ ११४ ॥ योगमाया महामाया नि
तंद्रा प्रवासिनी ॥ नित्यानंदस्वरूपा च सुधामात्रा त्रिधात्मि
॥ ११५ ॥ निःप्रपंचा निराधारा खड्गचर्मधरा सरित् ॥ वनै
सारासवना अलका चामरावती ॥ ११६ ॥ भोगा भोगवती
यमसंयमनी कृपा ॥ इर्ष्यासूया तथा निंदा तितिक्षा क्षांतिरा
॥ ११७ ॥ दुर्गा दुर्गतमा दुर्गावासिनी वासवप्रिया ॥ चंद्रा
चन्द्रवती तथा त्रिपुरसुंदरी ॥११८॥ त्रिपुरा त्रिपुरेशानी त्रि
त्रिनेत्रका ॥ त्रिपुरध्वंसिनी चित्रा नित्यक्लिन्ना भगेश्वरी ॥११
शुभगा शुभगाराध्या भर्गपूजनतत्परा ॥ सुवासिन्यर्चन
सुवासाः सुमनोहरा ॥ १२० ॥ सुप्रकाशा सुराराध्या शो
शुंभनाशिनी ॥ रजोगुणविनिर्मुक्ता निर्मुक्ता मुक्तिदायिनी
॥ १२१ ॥ निःप्रकाशा निराधारा साधारा गुणसंयुता ॥ गं
रवेदिनी सौरी तपनी तपनप्रिया ॥ १२२ ॥ अंभोजिनी पु

त्रयीवार्त्तापरायणा ॥ ११२ ॥ स्वाहा स्वधा वषट्कारा ओंकारसदृशी जरा नारि
खर्ज्जूरप्रिया रोगविनाशिनी ॥ ११३ ॥ जगदाधाररूपा तथा अनुपमरूपवती भद्रकाल
और मधुकैटभनाशिनी ॥ ११४ ॥ योगमाया महामाया निद्रा तन्द्रा प्रवासिनी नि
स्वरूपा सुधामात्रा त्रिधात्मिका ॥ ११५ ॥ निष्प्रपंचा निराधाराखड्गचर्मधरासरित्वनै
सवना अलका अमरावती ॥ ११६ ॥ भोगाभोगवती यमसंयमनी कृपा ईर्ष्या असूय
तितिक्षा क्षान्ति आर्जव ॥ ११७ ॥ दुर्गा दुर्गतमा दुर्गवासिनी वासवप्रिया चन्द्रानना
और त्रिपुरसुन्दरी ॥ ११८ ॥ त्रिपुरा त्रिपुरेशी त्रिनेत्रका त्रिपुरध्वंसिनी चित्रा नित्यक्लिन्ना भ
॥ ११९ ॥ शुभगा शुभगाराध्या भगपूजनतत्परा सुवासिनी अर्चनप्रीता सुवासा सु
॥ १२० ॥ सुप्रकाशा सुराराध्या शोभना शुंभनाशिनी रजोगुणविनिर्मुक्ता निर्मुक्ता मुक्ति
॥ १२१ ॥ निष्प्रकाशा निराधारा साधारा गुणसंयुता गंभीरवेदिनी सौरी तपनी और त
॥ १२२ ॥ अंभोजनी त्रिपुरारि (महादेव) की सेव्य सुरभिस्वरा नादिनी सुनद

तिसेव्या तु सुरभिः स्वरा ॥ नादिनी सुनदा नंदी अंबिका त्र्यंबकासुरी ॥ १२३ ॥ त्रिमार्गगा त्रिबलिनी त्रिजिह्वा त्रितयात्मिका ॥ त्रिनंदा त्रिप्रिया चैव अनसूया त्रिमालिनी ॥ १२४ ॥ त्रिपादिका त्रितंत्री च तंत्रशास्त्रप्रमोदिनी ॥ मंत्रज्ञा मंत्रनिलया मंत्रसाधनतत्परा ॥ १२५ ॥ मंत्राणी मंत्रसुभगा मंत्रजाप्यजला विभुः ॥ रक्तदंती रक्ततुंडा रक्तबीजविनाशिनी ॥ १२६ ॥ रक्तांबरधरारक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता ॥ रक्ततृप्ता रक्तहरा रक्तस्य वृद्धिदायिनी ॥ १२७ ॥ हरिताभा हरिद्राभा हरिद्रागंधपूजिता हरिद्रारससंपूज्या हरिद्रांगी हरित्स्थिता ॥ १२८ ॥ पीतांबरधरानंता पीतगंधसुवासिनी ॥ कर्बुरांगी कर्बुरा च कर्बुरांभःप्रपूजिता ॥ १२९ ॥ कनकाभा श्यामरूपा कामरूपधरा धरा ॥ कामरूपस्थिता विद्या कामरूपनिवासिनी ॥ १३० ॥ पीठगा पीठसंपूज्या पीठस्था पीठवासिनी ॥ स्वर्णपीठासना पीठा सर्वपीठप्रपूजिता ॥ १३१ ॥ राजराजेश्वरी माला राजराजधनाधिपा ॥ कुबेरगृहसंपच्च यक्षगंधर्वसेविता ॥ १३२ ॥ विद्याधरगणाधीशा विद्याधरप्रपूजिता ॥ यक्षविद्या देवविद्या दैत्यविद्या विदेहिका ॥ १३३ ॥

अंबिका त्र्यम्बकासुरी ॥ १२३ ॥ त्रिपथगा त्रिबलिनी त्रिजिह्वा त्रितयात्मिका त्रिनन्दा त्रिप्रिया अनसूया त्रिमालिनी ॥ १२४ ॥ त्रिपादिका त्रितन्त्री तन्त्रशास्त्रप्रमोदिनी मन्त्रज्ञा मन्त्रनिलया और मन्त्रसाधनतत्परा ॥ १२५ ॥ मन्त्राणी मन्त्रसुभगा मन्त्रजाप्यजला रक्तदन्ती रक्ततुंडा रक्तबीजविनाशिनी ॥ १२६ ॥ रक्ताम्बरधरा आरक्ता रक्ताक्षी रक्तवर्जिता रक्ततृप्ता रक्तहरा और रक्तवर्द्धिनी ॥ १२७ ॥ हरिताभा हरिद्राभा हरिद्रागन्धपूजिता हरिद्रारससंपूज्या हरिद्रांगी हरितस्थिता ॥ १२८ ॥ पीतांबरधरा अनन्ता पीतगन्धसुवासिनी कर्बुरांगी कर्बुरा और कर्पूरजलद्वारा पूजित ॥ १२९ ॥ कनककान्ति श्यामरूपा कामरूपधरा, धरा कामरूपस्थिता विद्या कामरूपनिवासिनी ॥ १३० ॥ पीठगा पीठसंपूज्या पीठस्था पीठवासिनी स्वर्णपीठासना पीठा सर्वपीठप्रपूजिता ॥ १३१ ॥ राजराजेश्वरी माला राजराजधनाधिपा कुबेरगृह सम्पत् यक्षगन्धर्वसेविता ॥ १३२ ॥ विद्याधरगणाधीशा विद्याधरप्रपूजिता यक्षविद्या देव

शुक्रमाता शुक्रसेव्या शुक्रहस्तगता तथा ॥ संजीव-
ताविद्या कचगा कचसेविता ॥ १३४ ॥ देवयानी च श-
शर्मदा शर्म्मभाविनी ॥ सुरा सर्पिस्तथा माध्वी मदविह्वल-
॥ १३५ ॥ सर्वभक्ष्या सर्वगम्या सर्वस्वर्गप्रदायिनी ॥ छंद-
पिंगलाक्षी सूत्रपिंगलदीपिका ॥ १३६ ॥ वृत्ता वृत्तप्रिया मं-
पानां शतमर्दिनी ॥ जगती पृथिवी आर्या अनुष्टुप् ि
भुष्णिका ॥ १३७ ॥ स्रग्धरा स्रग्धरा चैव माल्या माल-
सुधीः ॥ निर्ममा निरहंकारा निर्मोहा मोहवर्जिता ॥ १३
मोहनाशकरा कार्य्या सर्वकार्य्यकरी मता ॥ मोहिनी मो-
या महावलयसुंदरी ॥ १३९ ॥ सुमेरुशिखरावासा सु-
गृहपूजिता ॥ सुमेरुमालिनी सुंदा सुमुखी सुमुखप्रिया ॥ १
वैनायकी विघ्नहरी दुष्टविघ्नकरीश्वरी ॥ मुक्तांबरा मुक्तके-
त्तमातंगगामिनी ॥ १४१ ॥ ज्वालाकरालवदना ज्वल-
जलोदरी ॥ जलपूरितसर्वांगी जलेश्वरप्रपूजिता ॥ १४२ ॥ ज-
रजनिर्जाया जालपा जालशोभिता ॥ वृंदा वृंदाधिपा वृंदसे-

विद्या दैत्यविद्या विदेहिका ॥ १३३ ॥ शुक्रमाता शुक्रसेव्या शुक्रहस्तगता संजीव-
विद्या कचगा कचसेविता ॥ १३४ ॥ देवयानी शर्मिष्ठा शर्मदा शर्मभाविनी, सुरा स-
ध्वी मदविह्वललोचना ॥ १३५ ॥ सर्वभक्ष्या सर्वगम्या सर्वस्वर्गप्रदायिनी छन्दो-
लाक्षी सूत्रपिंगलदीपिका ॥ १३६ ॥ वृत्ता वृत्तप्रिया ॥ अमन्दा सैकडों पापों
(मर्दन) करनेवाली, जगती पृथिवी आर्या अनुष्टुप् त्रिष्टुप उष्णिक ॥ १३७ ॥
(अर्थात् स्रग्धरा जो छन्द है तद्रूपवती) स्रग्धरा (मालाधारिणी) माल्या माल-
निर्ममा निरहंकारा निर्मोहा और मोहवर्जिता ॥ १३८ ॥ मोहनाशकरा कार्या और
करी मोहिनी मोहवलया और महावलयसुन्दरी ॥ १३९ ॥ सुमेरुशिखरावासा सु-
जिता सुमेरुमालिनी सुन्दा सुमुखी सुमुखप्रिया ॥ १४० ॥ वैनायकी विघ्नहरी दु-
(अर्थात् दुष्टोंके कार्य्यमें विघ्नकरनेवाली) ईश्वरी, मुक्ताम्बरा मुक्तकेशी मत्तमा-
॥ १४१ ॥ ज्वालाकरालवदना ज्वलनांगी जलोदरी जलपूरितसर्वांगी जले-
॥ १४२ ॥ जलेश्वरजनि, जाया जालपा जालशोभिता वृन्दा वृन्दाधिपा वृन्दसेवि-

वृंदवृक्षका ॥ १४३ ॥ त्वचा त्वचाविहीना च पल्वला पल्वले स्थिता ॥ मीना मीनसहाया च मीनध्वजविमर्दिनी ॥ १४४ ॥ बडिशा बाडिशाकारा धीवरा धीवरात्मजा ॥ पारिजातप्रसूनाभा पारिजातप्रपूरिता ॥ १४५ ॥ पारिजाततटापारा कामधेनुर्विहंगमा ॥ भेरुंडा गरुडा गौडी गुडनैवेद्यवासिनी ॥ ॥ १४६ ॥ जातमात्रहरा जाता जातगम्या सुजातिका ॥ कालिंदी कालतनया कला षोडशिका तथा ॥ १४७ ॥ दशमी विजया नाम राज्ञां वै जयदायिनी ॥ युद्धश्रीर्विजयानाम युद्धांगणनिवासिनी ॥ १४८ ॥ मांसरक्ताशना चंडी प्रचंडा शिववल्लभा ॥ शिवदा मथुरावंती कांची द्वारावती तथा ॥ १४९ ॥ सरित्पतिप्रिया शुद्धा गंगा सागरसंगमा ॥ प्रद्युम्नपूजिता चंचुचंद्रिका चंडसुंदरी ॥ १५० ॥ चंपा चंपकपुष्पाढ्या चंपकाभा सुचैलिका ॥ चंचत्तरंगा सर्वाद्या सर्वब्राह्मणपूजिता ॥ १५१ ॥ ब्राह्मणी ब्राह्मणाकारा ब्राह्मणैः शुभसंवृता ॥ यज्ञोपवीतिनी विप्रा कुमारी बृहदानना ॥ १५२ ॥ बृहस्पतिप्रपूज्या च गुरुर्गीर्गुरुतत्परा ॥ गुरुप्रीतिर्गुरोर्विद्या गुरुपूजनतत्परा ॥ १५३ ॥ गुर्विणी गुरु-

वृक्षिका ॥ १४३ ॥ त्वचा त्वग्विहीना पल्वला पल्वलमें स्थिति करनेवाली मीना मीनसहाया और मीनध्वज अर्थात् कामदेवका विनाशकरनेवाली ॥ १४४ ॥ बडिशा बाडिशाकारा धीवरा धीवरात्मजा, पारिजातप्रसूनाभा और पारिजातसे पूरित ॥ १४५ ॥ पारिजाततटा पारा कामधेनु विहंगमा भेरुण्डा गरुडा गौडी और गुडके नैवेद्यमें निवासकरनेवाली ॥ १४६ ॥ जातमात्रहरा जाता जातगम्या और सुजातिका कालिन्दी कालतनया सोलहकलावती ॥ १४७ ॥ विजयादशमी राजाओंको विजयप्रदान करनेवाली, युद्धकी लक्ष्मीरूप विजया और समरांगणमें निवासकरनेवाली ॥ १४८ ॥ मांसरक्ताशना चण्डी प्रचण्डा शिववल्लभा, शिव (कल्याण) दात्री मथुरा अवंती काञ्ची तथा द्वारवती ॥ १४९ ॥ सरत्पातिप्रिया शुद्ध और गंगासागरसङ्गमा, प्रद्युम्नपूजिता चञ्चुचन्द्रिका चन्द्रसुंदरी ॥ १५० ॥ पंचा पंचकपुष्पाढ्या चम्पकाभा सुचैलिका, चंचत्तरङ्गसर्वाद्या सर्वब्राह्मणपूजिता ॥ १५१ ॥ ब्राह्मणी ब्राह्मणाकरा और ब्राह्मणोंकेद्वारा शुभसम्पन्न, यज्ञोपवीतिनी विप्रा कुमारी बृहदानना ॥ १५२ ॥ बृहस्पतिद्वारा पूजिता गुरुवाणी गुरुमें तत्परा गुरुप्रीति, गुरुकी विद्या और गुरुपूजनमें तत्पर ॥ १५३ ॥ गुर्विणी गुरु-

गम्या च गयासुरविनाशिनी ॥ पंचकोशी पंचहीना पं
पंचसुंदरी ॥ १५४ ॥ पंचेषुः पंचनिलया पंचास्या पंचा
का ॥ पंचपांडवमाता च कुंती कुंतधराकरा ॥ १५५ ॥
कुंतलशोभाढ्या प्रमथाप्रमथा तथा ॥ स्वतंत्रकर्त्री का
द्वितीया कर्मसंस्थिता ॥ १५६ ॥ तृतीया करणे गम्या
दाने चतुर्थिका ॥ अपादाने पंचमी च तथा संबंध
॥ १५७ ॥ सप्तम्यधिकरणाख्या विभक्तिवरदातुरा ॥ प्रति
स्य जननी औषधी वैद्यजीविनी ॥१५८॥ हरीतकी च
कणा हंसपदी तथा ॥ हसेनी हुंकृतिर्हुवा गौरार्या वृषभा
॥ १५९ ॥ गोस्तनी निम्नगा निंबा नारदादिभिरर्चिता ॥
का रेणुतनया रजोनाशनतत्परा ॥ १६० ॥ पापरा
मंत्री तथा नीरजशोभना ॥ जया रिक्ता सुषेणा च केदारम
मिनी ॥ १६१ ॥ जलयंत्रामरीकंदा कंदमूलफलाशिनी ॥
माता पितृपूज्या पितॄणां स्वर्गदायिनी ॥ १६२ ॥ भगीर
सिंधुर्भवानी भवनाशिनी ॥ सागरस्वर्गदा चैव सर्वसंसा

गम्या गया और असुरविनाशिनी पंचकोशी, पंचहीना पंचमी और पंचसुन्दरी ॥
पंचेषुपंचनिलया पंचास्या पंचमात्मिका, पंचपाण्डवमाता कुन्ती कुन्तधरा करा ॥
कुन्तलशोभाढ्या प्रमथा अप्रमथा स्वतन्त्रकर्त्री कार्यत्री द्वितीया कर्मसंस्थिता (क
कारकमें विहित द्वितीया विभक्तिरूप) ॥ १५६ ॥ करणमें विहित तृतीयारूप और
नमें विहित चतुर्थीरूप, एवम् आपादनमें पंचमी, सम्बन्धमें षष्ठी ॥ १५७ ॥
सप्तमी तथा विभक्तिवरदा प्रतिबन्धजननी औषधी वैद्यजीविनी ॥ १५८ ॥ हरीत
कणा हंसपदी हुसेनी हुंकृती हुंवा गौरा आर्या और वृषभात्मिका ॥ १५९ ॥
निम्नगा निम्बा और नारदादिमहर्षियोंके द्वारा पूजित, रेणुका रेणुतनया औ
विनाशकरनेमें तत्पर ॥ १६० ॥ पापराशिहरा मन्त्री और नीराजनसे सुशोभित ज
सुषेणा और केदारमार्गगामिनी ॥ १६१ ॥ जलयन्त्रा अमरी कन्दा और कन्दमूल
(भोजन) करनेवाली, पितृमाता पितृपूज्या और पितरोंको स्वर्गप्रदान करनेवाली ॥
भगीरथकृपासिन्धु भवानी भवनाशिनी सगरके पुत्रोंको स्वर्गप्रदान करनेवाली औ

मिनी ॥ १६३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नाम्नां सहस्रमाख्यातं गंगायाः सर्वकामदम् ॥ यस्तु वै पठते नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ १६४ ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं भगीरथसमं द्रुतम् ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां वाचस्पतिसमो भवेत् ॥ १६५ ॥ श्राद्धे शृणोति यो भक्त्या पठते वै समाहितः ॥ दुर्गता अपि पितरो मुक्तिं गच्छंत्यनामयाः ॥ १६६ ॥ तथा दशहरायां हि गंगामध्ये स्थितः पुमान् ॥ पठते प्रत्यहं देवि तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने गंगावतरणे श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सारगामिनी ॥ १६३ ॥ महादेवजी बोले–हमने गंगाजीके सहस्रनामोंका कीर्त्तन कियाहै, यह सहस्रनाम समस्त कामनाओंका पूर्ण करनेवालाहै जो पुरुष नित्य इसका पाठकरताहै उसे अवश्य मुक्तिका लाभ होताहै ॥ १६४ ॥ पुत्राभिलाषीको इसका पाठकरनेसे भगीरथकी सदृशही पुत्रका लाभ होताहै, विद्यार्थीको विद्यालाभ होताहै और वोह बृहस्पतिकी समान होजाताहै ॥ १६५ ॥ श्राद्धके समय जो व्यक्ति चित्तको एकाग्रकर भक्तिभावपूर्वक इस गंगासहस्रनामका पाठ करताहै, उसके पितर यदि दुर्गतिकोभी प्राप्त हुएहों तथापि निरामयहो मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ १६६ ॥ और हे महादेवि ! जो पुरुष दशहरा (गंगाजन्म दशमीके दिन) गंगाजीमें खडा होकर इसका पाठ करताहै अथवा जो प्रतिदिन पाठ करताहै निःसन्देह उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ १६७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

ईश्वर उवाच ॥ इति स्तुता महादेवि गंगा परमपाविनी ॥ राज्ञा भगीरथेनाशु प्रत्यक्षं प्राह जाह्नवी ॥ १ ॥ श्रीगंगोवाच ॥ तुष्टास्मि सततं वत्स तपसा तव भूपते ॥ इदं यद्वै त्वयाख्यातं नाम्नां

महादेवजी बोले–हे महादेवि ! जब राजा भगीरथने परमपवित्र करनेवाली गंगाजीकी स्तुतिकरी तबतो जाह्नवीने तत्काल प्रकट हो भगीरथसे कहा ॥ १ ॥ श्रीगंगाजी बोली–हे पुत्र महाराज ! मैं तेरे तपसे संतुष्ट होगईहूं, और यह सहस्रनाम जो तुमने कीर्त्तन कियाहै यह

साहस्रमुत्तमम् ॥ २ ॥ पुरातनं पुराराातिगीतं सर्वोत्तमोत्तम
मत्प्रसादात्त्वया ज्ञातं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ ३ ॥ गोपनीयं प्र
न दुर्लभं सार्वभौमकम् ॥ प्रसन्नास्मितरां राजन् स्तोत्रास्य
भूपते ॥ ४ ॥ वरं वरय भद्रं ते वराहोंऽसि भगीरथ ॥
मामकं रूपं न दृष्टं केनचित्पुरा ॥ ५ ॥ अतो धन्योसि
स्मिन्वंशे मुनिजनाश्रये ॥ यस्य वै दर्शनं जाता अहं
वरा ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा जाह्नवी देवी दर्श
स्वं वपुः ॥ त्रैलोक्यदुर्लभं देहं क्वणत्कांचीगुणान्वितम् ॥
कर्णालंबितताटंकं श्वेतच्छत्रोपशोभितम् ॥ इंद्रादिभिर्लोक
वीज्यमानं सुचामरैः ॥ ८ ॥ अनेकस्त्रीपरिवृतां स्वर्णसिं
स्थिताम् ॥ दृष्ट्वा गंगां महादेवीं जगाद वरमुत्तमम् ॥९॥ भ
उवाच ॥ कृपां विधेहि दासेऽस्मिन्मयि दुःखसमाकुले
गंतव्यं त्वया देवि पातालनिलये शुभे ॥ १० ॥ विना
प्रेषयित्वा मत्पितॄन्कोपदग्धकान् ॥ त्वया समग्रभावेन
भारतवर्षके ॥ ११ ॥ श्रीगंगोवाच ॥ भगीरथ महाभाग

परमोत्तम ॥ २ ॥ प्राचीन अथच महादेवजीसे गान किया हुआ सर्वोत्तम स्तोत्रहै
गोप्यवस्तुसेभी अतिशय गोप्यहै तथापि मेरी कृपासे तुझे इसका ज्ञान हुआ है ॥ ३
प्रयत्नसे गुप्तरखने योग्य दुर्लभ और सार्वभौमत्वको देनेवाला इस स्तोत्रका पाठ
प्रसन्न हुईहूं ॥ ४ ॥ तुम्हारा कल्याणहो तुम वर लाभकरनेके योग्य हो अतएव वर
भगीरथ ! मेरा यह रूप पहिले किसीने नहीं देखाहै ॥५॥ अतएव मुनिजनोंके आ
सूर्यवंशमें तुम उत्पन्न हुएको धन्यहै जो तुझे मुझ ब्रह्मरूपका दर्शन लाभहुआ ॥६॥
बोले—यों कहकर गंगाजीने अपने शरीरका दर्शन कराया इसशरीरका दर्शन त्रिलोकीमें
गंगाजीके देहमें कौंदनी झन २ शब्द करतीथी ॥ ७ ॥ करनफूल कानमें सुशोभि
छत्रसे समलंकृत, और इन्द्रादि देवगणद्वारा सुन्दर चामरोंसे वीजमान ॥ ८ ॥ अने
से आवृत, सुवर्णनिर्मित सिंहासनके ऊपर आसीन, ऐसी गंगादेवीके दर्शनकर राजा
इस उत्तम वरकी याचना करी ॥ ९ ॥ भगीरथजी बोले—दुःखसे व्याकुल हुए
ऊपर कृपाकरो महर्षिके कोपसे दग्ध हुए मेरे पितरोंको मुक्ति विनादिये तुम पाताल
किन्तु समग्रभावसे भारतवर्षहीमें तुम्हें स्थिति करनी कर्त्तव्यहै ॥ १० ॥ ११ ॥ श्री

भविष्यति ॥ कलेर्द्वितीयपादे तु गमिष्यामि पुनस्तले ॥ १२ ॥ गच्छ राजन्महीपाल साधु साधु न संशयः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे नागास्तद्वरं सहसा प्रिये ॥ ऊचुर्वासुकये सर्वे वरदानादिकं तथा ॥ १४ ॥ स श्रुत्वा नागवचनं प्रमथाधिपपूजिते ॥ सहस्रफणशोभाग्रे गंगाया निकटे ययौ॥ १५ ॥ निर्दहन्विषज्वालाभिः पर्वतान् सरितोम्बुदान् ॥ वृक्षान् गुल्मलतापुंजान्वनानि सहसा ततः ॥ १६ ॥ अनेकशतसाहस्रसर्पनागगणैर्वृतः ॥ दृष्ट्वा भगीरथो राजा तादृशोपद्रवं प्रिये ॥ १७ ॥ अस्तौषीत्सहसा शेषं नागानामधिकं तथा ॥ प्रणामाञ्छतशश्चक्रे नारायणपरायणः ॥१८॥ बहुधा संस्तुतो राज्ञा शेषः श्रीविष्णुसंज्ञकः ॥ प्रसन्नश्च यथावत्तु त्यक्त्वा तं सागरात्मजम् ॥ १९ ॥ आजहार तदा गंगां पातालनिलये ययौ ॥ एतस्मिन्समये गंगा प्रोवाच शतशीर्षकम् ॥ २० ॥ श्रीगंगोवाच ॥ विष्णुर्जिष्णुर्वषट्कारो दितिजो दैत्यसूदनः ॥ फणासहस्रविलसद्भूमंडल

हे महाभाग भगीरथ ! ऐसाही होगा, कलियुगके द्वितीय चरणमें पातालको जाऊंगी, इसमें सन्देह नहीं है हे राजन् ! तुम्हें धन्यहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले–हे प्रिये ! इसी अवसरपर नागोंने वासुकीको यह वर सुनाया ॥ १४ ॥ हे गणपूजिते ! जब उन्होंने नागोंके वचन सुने तब शेषजीसे सुशोभित गंगाजीके निकट उन्होंने प्रस्थान किया ॥ ॥ १५ ॥ चलते समय वे अपने विषकी ज्वालासे क्या पर्वत, क्या सरिता (नदियें) क्या मेघों, क्या वृक्षों, क्या गुल्मों, क्या लतापुंज और क्या वन सभीको भस्म करनेलगे ॥ १६ ॥ अनेक सैकडों सहस्रों नागसमुदायसे युक्तहो वहां गये, हे प्रिये भगीरथने जब ऐसा उपद्रव देखा ॥ १७ ॥ तब उन्होंने नागोंके अधिक नामोच्चारण पूर्वक शेषनागको सन्तुष्टकिया, और नारायणके विषयमें दत्तचित्तहो सैकडों वार प्रणाम किया ॥ १८ ॥ इस प्रकार विष्णु स्वरूप शेषजीकी जब राजाने स्तुति की तब वे यथावत् प्रसन्न होगये, और उन्होंने सगरकुलोत्पन्न भगीरथको छोड़ दिया ॥ १९ ॥ किन्तु गंगाजीका अपहरणकर पाताललोकमें चला गया, इसी समय गंगाजीने शेषजीसे यह कहा ॥ २० ॥ गंगाजी बोलीं–विष्णु १ जिष्णु २

अहस्करः ॥ २१ ॥ सर्पराजो विषी वैद्यो भानुर्भानुसहस्रधृक् ॥ रजताद्रिसमाकारोऽनंतोनंतशिराः प्रभुः ॥ २२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ षोडशैतानि नामानि सर्प्पराजस्य यः पठेत् ॥ विषग्रस्तो नागदष्टो मुच्यते सहसा विषात् ॥ २३ ॥ सर्पं दृष्ट्वापि नामानि सर्प्पराजस्य यः पठेत् ॥ विलीयंते क्षणादेव दर्शनात्तस्य भोगिनः ॥ ॥ २४ ॥ इति स्तुतो गंगयासौ शेषः सौभाग्यदायकः ॥ उवाचार्द्धपथि प्राणे किमर्थं संस्तुतोस्म्यहम् ॥ २५ ॥ इत्युक्ता तेन सा गंगा प्रोवाच विनयालसम ॥ भगीरथेन सततं कैलासादेव वासुके ॥२६॥ निमंत्रितास्मि भूमौ हि पितॄणां मुक्तिकारणात् ॥ सांप्रतं तदवश्यं वै कर्त्तव्यं भगवन्मया ॥ २७ ॥ चरमेस्मिन् युगे भूय आगमिष्यामि ते स्थले ॥ इदानीं मुंच मे शीघ्रं समुद्रे मे मतिर्गतिः ॥२८॥ ॐमित्युक्त्वा सर्प्पराजस्त्यक्त्वा तद्ब्रह्मणो वपुः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य ययौ स निलये स्वके ॥२९॥ अद्यापि तत्प्र-

वषट्कार ३ दितिज ४ दैत्यसूदन ५ सहस्रफणविलासी ६ भूमण्डल अहस्कर ७ तथा ॥ २१ ॥ सर्पराज ८ विषी ९ वैद्य १० भानु ११ सहस्रभानुधारी १२ रजताद्रिसमाकार १३ अनन्त १४ अनन्तशिरा १५ प्रभु १६ (यह शेषजीके सोलह नामहैं) ॥ २२ ॥ महादेवजी बोले—सर्पराजके इन सोलह नामोंका जो व्यक्ति पाठ करताहै, वोह यदि नागद्वारा दष्टहोनेके कारण विषसे ग्रस्तहो तौभी सहसा विषसे मुक्त होजाताहै ॥ २३ ॥ और सर्पको देखकरभी जो व्यक्ति सर्पराजके इन षोडश नामोंका कीर्त्तन करताहै उसका दर्शन करतेही क्षणभरमें सबसर्प लय (अदृष्ट) होजातेहैं ॥ २४ ॥ जब सौभाग्यदायी शेषजीकी गंगाजीने इस प्रकारसे स्तुतिकरी तब हे प्रिये ! अर्धमार्गहीमें शेषजी बोले कि, तुमने किस हेतु हमारी स्तुतिकरी ॥ २५ ॥ इसप्रकार पूछीहुई गंगाने नम्रतापूर्वक यह वचन कहे, हे वासुकि ! राजा भगीरथने कैलासपर्वतके ऊपरसे ॥ २६ ॥ अपने पितरोंकी मुक्तिके कारण भूमिमें मुझे निमन्त्रित कियाहै, अतएव हे भगवन् ! वोह कार्य मुझे अवश्य कर्त्तव्य है ॥ २७ ॥ और अन्तिम युगमें मैं तुम्हारे निवासस्थानमें आगमनकरूंगी, अब शीघ्र मुझे छोड़दो, संमति समुद्रमें जानेकी मेरी मतिहै ॥ २८ ॥ 'बहुत अच्छा' यौं कहकर वासुकिने ब्रह्मस्वरूप गंगाजीका परित्याग करदिया और वारंवार प्रणाम और प्रदक्षिणा करके वे अपने स्थानको चलेगये ॥ २९ ॥ परन्तु अभीतक उस स्थानमें सर्पराजके विषकी सहस्रों ज्वाला प्रादुर्भूत

देशेहि विषज्वालाः सहस्रशः ॥ जायंते सर्पराजस्य दह्यंतेनेकदेहिनः ॥३०॥ चतुर्योजनविस्तीर्णे स्थाने तस्मिन् महेश्वरि ॥ न संति देवगंधर्वा न मृगादिकजंतवः ॥३१॥ सरोवरं तत्र रम्यं श्यामांबुपरिपूरितम् ॥ तस्यैव दक्षिणे भागे मल्लिंगं सर्वदुर्लभम् ॥ ॥ ३२ ॥ सोपि राजा महाबाहुर्दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ॥ संस्तुवन् जाह्नवीं देवीं विचचार वने तदा ॥ ३३ ॥ तस्य संचरतो देवि कस्मिंश्चित्पर्वते वरे ॥ कन्यायुग्मं महाश्चर्य्यरूपं तत्र व्यदृश्यत ॥ ॥ ३४ ॥ नानालंकारसंयुक्तं मुक्तामणिविभूषितम् ॥ सितासित शुभांगं च चलत्कुंडलशोभितम् ॥ ३५ ॥ पप्रच्छ राजा कन्ये ते के युवां निर्जने वने ॥ अहं तु सुखसंत्यक्तो व्रजामि निर्ज्जने वने ॥ ३६ ॥ भगीरथोस्मि हे कन्ये युवाभ्यां कुत्र गम्यते ॥ इति तद्देवि तं श्रुत्वा सिता प्रोवाच कन्यका ॥ ३७ ॥ गोप्यमस्ति न ते रूपं गंगास्मि हि भगीरथ ॥ इयं या त्वसिता देवी सूर्य्यस्य तनया शुभा ॥ ३८ ॥ यमुनेति समाख्याता सर्वकल्म-

होतीहैं, और उनसे अनेक देहधारी भस्म होतेहैं ॥ ३० ॥ हे महेश्वरि ! चारयोजन अर्थात सोलहकोस पर्यन्त विस्तृत उस स्थानमें देवता गन्धर्व और मृगआदि जीव यह कोईभी नहींहैं ॥ ३१ ॥ उसीके दक्षिण भागमें समस्त व्यक्तियोंको दुष्प्राप्य. श्याम जलसे परिपूर्ण ऐसा मल्लिंग नाम एक सरोवरहै ॥ ३२ ॥ इस परम अद्भुत सरोवरको देखकर हे देवि ! वनमें विचरते २ ही राजा भगीरथने गंगादेवीकी स्तुतिकरी ॥ ३३ ॥ हे देवि ! वनमें विचरते २ राजाने किसी उत्तम पर्वतके ऊपर महाआश्चर्यप्रद रूपधारी दो कन्याओंका दर्शन किया ॥ ॥ ३४ ॥ वे दोनो कन्याएँ अनेक आभूषणोंसे युक्त, मुक्ताओं (मोतियों) और मणियोंसे विभूषित, श्वेत और श्यामरूपधारी और चलायमान कुण्डलोंसे सुशोभित थीं ॥ ३५ ॥ राजाने उन कन्याओंसे पूछा कि, तुम दोनों इस निर्जन वनमें कौनहो ? और मैं स्वयम् सुख परित्यागपूर्वक निर्जन वनमें विचरताहूं ॥ ३६ ॥ हे कन्याओं ! मैं भगीरथ हूं, तुम दोनों कहां जाती हो ? हे देवि ! राजाके यह वचन सुन श्वेतरूपधारिणी कन्या बोली ॥ ३७ ॥ हे भगीरथ ! मेरा रूप तुमसे गोप्य नहींहै सो मैं गंगाहूं, और यह जो श्यामरूप धारिणी देवीहै यह सूर्यकी कन्याहै ॥ ३८ ॥ इसका यमुना नामहै और यह समस्त पापोंका

पनाशिनी ॥ दशधाहं महाराज निःसरामि हिमालयात् ॥ ३९ ॥ ज्येष्ठा श्रेष्ठतरा धारा त्वया सह गमिष्यति ॥ पुनरन्यास्तु या धाराः संगमेष्यंति मे पुनः ॥ ४० ॥ नाना नाम्न्यो महाराज भविष्यंति महीतले ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्पुण्या यतो मे द्रवसंभवाः ॥ ४१ ॥ इदं गंगोत्तरं नाम तीर्थराड्वि भगीरथ ॥ ४२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं महीपालं गंगा परमपाविनी ॥ जाता प्रवाहरूपा सा तरंगभंगिचंचला ॥ ४३ ॥ गंगोत्तरं समाख्यातं दक्षिणे मुनिसेवितम् ॥ तद्वामे याऽसिता देवी यमुना सा प्रकीर्त्तिता ॥ ४४ ॥ यामुनोत्तरमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ इति तीर्थद्वयं यस्तु प्रातःकाले च संस्मरेत् ॥ ४५ ॥ दुःखानि तस्य नश्यंति यथा राज्ञो महेश्वरि ॥ नीत्वा तां तु शुभां धारां गंगाख्यां पापनाशिनीम् ॥ निर्ययौ स्वपितृस्थाने महाराजो भगीरथः ॥४६॥ अतिक्रम्याऽनेकदेशान्समुद्रांतं महायशाः ॥ पूर्वाशासागरे गंगा मिलिता सा सहस्रधा ॥४७॥ तीर्थं पुण्यतरं तद्वै गंगासागरसंगमम् ॥ यत्र कुत्रापि देवेशि स्मरणान्मुक्तिदायकम् ॥ ४८ ॥

विनाश करनेवालीहै हे महाराज ! मैं दशधा विभक्तहोकर हिमालयसे निकलतीहूं ॥ ३९ किन्तु ज्येष्ठ (बड़ी) अतएव सबमें श्रेष्ठ जो धाराहै यह तुम्हारे साथ गमन करेगी, इसे अनन्तर जो मेरी अन्यधाराएँ आवेंगी ॥ ४० ॥ हे महाराज ! महीतलके ऊपर उनके अने नाम होंगे, क्योंकि वे मुझहीसे प्रादुर्भूत होंगी अतएव दर्शन और स्पर्श करनेसे पुण्यदायि ॥ ४१ ॥ हे भगीरथ ! यह गंगोत्तर नाम तीर्थराजहै ॥ ४२ ॥ महादेवजी बोले— राजा भगीरथसे इसप्रकार कहकर परम पाविनी गंगा आड़ी तिर्च्छी तरंगोंसे व्याप्त द्रव होगई ॥ ४३ ॥ दक्षिणकी ओर मुनियोंसे सेवित वोह 'गंगोत्तर' नाम तीर्थहै, और उ वामभागमें जो कृष्णवर्ण देवीहै वोह यमुना नामसे कीर्त्तन करी गईहै ॥ ४४ ॥ स सिद्धियोंके देनेवाले इस तीर्थको यामुनोत्तर कहतेहैं । जो व्यक्ति प्रभातसमय इन दोनों ती का स्मरण करताहै ॥ ४५ ॥ हे महेश्वरि ! राजा भगीरथहीकी समान उसकेभी पाप नि होजातेहैं । अथ च महाराज भगीरथ पापोंका नाशकरनेवाली गंगाजीके शुभधाराको लेकर अ पितरोंके स्थानमें गये ॥४६॥ समुद्रपर्यन्त अनेक देशोंका अतिक्रमण करते २ वोह गंगा पूर्व ओर सहस्र प्रकारसे सागरमें मिलगई उसे गंगासागर कहतेहैं ॥४७॥ गंगासागरनामक अत्यन्त

तस्यापि पितरो मुक्तिं प्राप्नुयुश्च सुदुर्लभाम् ॥ इति ते कथितं देवि गंगायाश्चावतारणम् ॥ ४९ ॥ भगीरथोपाख्यानं च महापातकनाशनम् ॥ इदं परममाख्यानं शृणु ते भक्तितत्परः ॥ पठेद्वापि महादेवि स नरो मुक्तिभाग्भवेत् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगीरथोपाख्याने श्रीगंगावतरणं नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

पवित्र तीर्थराजका चाहे जहां स्मरण करनेसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ४८ ॥ और स्मरण कर्त्ताके पितरभी दुर्लभ मोक्षका लाभ करतेहैं । हे देवि ! इसप्रकार गंगाका अवतरण हमने तुम्हारे समक्ष वर्णन कियाहै ॥ ४९ ॥ राजा भगीरथका उपाख्यान महापातकोंका नाशकरनेवालाहै, जो मनुष्य इस परम आख्यानका पाठ भक्तिमें तत्पर होके करताहै अथवा श्रवण करताहै वोह व्यक्ति मुक्तिभागी होताहै ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

वसिष्ठ उवाच ॥ इदं च परमाख्यानं श्रुत्वा देवी तु पार्वती ॥ उवाच भक्तिसंपन्ना भर्त्तारं परमेश्वरम् ॥१॥ पा० उ० ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहतत्पर ॥ गंगाया दशधारास्तु कथिता यास्त्वयाद्य मे ॥ ॥२॥ नामानि चैव माहात्म्यं वद मे भूतभावन ॥ को वै पुण्यतरो देशो यत्र धारा गतास्तु ताः ॥३॥ माहात्म्यं विस्तराद्ब्रूहि श्रोतुकामास्मि साम्प्रतम् ॥ कुत्र ता मिलिता भूयो ब्रह्मदेहसमुद्भवाः ॥४॥

वसिष्ठजी बोले—जब पार्वती देवीने इस परमअद्भुत आख्यानको श्रवणकरा तब वे भक्तिसम्पन्नहो अपने पति परमेश्वरसे बोलीं ॥ १ ॥ पार्वतीने कहा--हे देवाधिदेव ! आप जगत्के स्वामि और अपने भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवालेहैं ! आपने जो आज गंगाजीकी दश धाराओंका मुझसे वर्णन कियाहै ॥ २ ॥ सो हे भूतभावन ! उनके नाम और माहात्म्यको आप वर्णनकर मुझे सुनाइये, वोह कौनसा देशहै जहां वे धारा गईहैं ॥ ३ ॥ सो आप माहात्म्यको विस्तारपूर्वक वर्णन करें, संप्रति मुझे उसके श्रवण करनेकी अभिलाषाहै, और ब्रह्मदेह

स्थानानां च तथा तेषां माहात्म्यं सुतरां वद ॥ भक्तास्मि तव देवेश प्राणात्प्रियतरो ह्यसि ॥ ५ ॥ गोप्यं नैव स्वभक्तेषु कुर्वंति सततन्नराः ॥ ईश्वर त्वं जगत्कर्त्ता जगद्धर्त्ता त्वमेव हि ॥ ६ ॥ त्वय्येव सर्वं देवेश प्रोतमेतज्जगत्रयम् ॥ के देशास्ते यत्र गंगा दशधा वद विस्तरात् ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे ॥ अवाच्यमपि वक्ष्यामि नोक्तं कस्यापि यत्पुरा ॥ ८ ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण हत्यानां कोटयस्तथा ॥ ९ ॥ नश्यंति देवदेवेशि यथाग्नेस्तूलराशयः ॥ शृणु पूर्वं यथा देवि पांडवा देवतांशजाः ॥ १० ॥ गोत्रहत्यापराभूतास्तथा गुरुवधार्दिताः ॥ पांडोः पुत्रा महात्मानो विख्यातबलविक्रमाः ॥ ११ ॥ हत्वा द्रोणादिकान् सर्वान्हत्यया परिपीडिताः ॥ संतप्तहृदयाः सर्वे शोकेन च समाकुलाः ॥ १२ ॥ भ्रष्टसर्वक्रियाश्चैव व्यासं वै शरणं ययुः ॥ व्यासमूचुर्महात्मानं कल्मषाविष्टमानसाः ॥ १३ ॥

समुद्भूत वे धाराएँ कहा संगत हुईहैं ॥ ४ ॥ सुतराम् उन स्थानोंकेभी माहात्म्यका वर्णन करिये । हे देवाधिदेव ! मैं आपकी भक्तहूं और आप मेरे प्राणाधिक प्रियहैं ॥ ५ ॥ एवं च महात्मा व्यक्तिगण अपने भक्तोंसे छिपाते कुछ नहींहैं, और आपतो ऐश्वर्यशाली जगत्के निर्माण कर्त्ता और पालन कर्त्ताभी आपहीहैं ॥ ६ ॥ हे देवेश्वर ! यह त्रिलोकी आपहीमें ओतप्रोत होरहीहै, वे देश कौनसेहैं जहां गंगाजीकी दशधारा सम्मिलित हुईहैं; सो आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले—सुनो सुन्दरि महादेवि ! तुमने जो हमसे पूछाहै सो हे अनघे ! जो कहनेके योग्य नहीं अर्थात् गोप्यहै और जो प्रथम किसीके प्रति वर्णन नहीं किया उसीको मैं वर्णन करताहूं ॥ ८ ॥ यह परम अद्भुत रहस्यहै इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, जिसका कि दर्शनमात्रही करनेसे करोंड़ो हत्या ॥ ९ ॥ हे देवेश्वरि ! इसप्रकार नष्ट होजातीहैं जैसे अग्नि रुईके समुदायको भस्मकर देतीहै, सुनो देवि ! जिसप्रकार देवअंशसमुद्भूत पाण्डवगण प्रथम ॥ १० ॥ गोत्रोत्पन्न व्यक्तियोंकी हत्यासे क्लेशित और गुरुओंका वधकरनेसे दुःखित हुए महात्मा अथ च जिनका बल और पराक्रम विश्वमें विख्यातहै ऐसे पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥ द्रोणाचार्य्य आदि सबका वधकर उनकी हत्यासे पीडित हुए वे सब शोकसे व्याकुल अतएव हृदयमें सन्तप्त होनेके कारण ॥ १२ ॥ समस्त क्रियाओंसे

पांडवा ऊचुः ॥ भगवन्व्यास ते सर्वे वयं त्वच्छरणागताः ॥
पापात्मानोनिशं ब्रह्मन् कथं मुक्तिं व्रजामहे ॥ १४ ॥ गोत्रह-
त्यासमाविष्टास्तथा गुरुवधार्दिताः ॥ त्वमेव शरणं नो वै आज्ञा-
पय यथास्फुटम् ॥ १५ ॥ केन वै कर्म्मणा ब्रह्मन् यास्यामो
गतिमुत्तमाम् ॥ तद्ब्रूहि कृपयाविष्टो नस्तारस्ते यतो वयम् ॥१६॥
व्यास उवाच ॥ शृणुध्वं पांडवाः सर्वे हंतारो गोत्रिणां तथा ॥
सर्वस्य निष्कृतिर्दृष्टा न हंतुर्गोत्रिणं क्वचित् ॥ १७ ॥ विना
केदारभवनं तत्र गच्छत सांप्रतम् ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः शिव-
दर्शनलालसाः ॥ तपोनिष्ठाः कर्मपूतास्तपंति तप उत्तमम् ॥१८॥
यत्र गंगा सरिच्छ्रेष्ठा नानाधारात्मिकास्ति वै ॥ यत्रेश्वरो महा-
देवो वर्त्तते ह्युमया सह ॥ १९ ॥ गणैश्च शतशो भूपाः प्रमथा-
द्यैर्महाभटैः ॥ यत्र देवाः सगंधर्वा यक्षराक्षसपुंगवाः ॥ २० ॥
वृश्चिकार्द्धगते सूर्ये प्रत्यक्षं क्रीडयंति हि ॥ नानावाद्यानि

रहितहो व्यासजीकी शरणमें गये और पापके द्वारा कलुषितमनसे महात्मा व्यासजीसे यौं
बोले ॥ १३ ॥ पाण्डवोंने कहा—हे भगवन् व्यासदेव ! हम सब आपकी शरणमें आयेहैं,
हमने निरन्तर पापका आचरण कियाहै सुतराम् हमैं मुक्तिका लाभ किसप्रकार होसक्ताहै
॥ १४ ॥ गोत्रियोंकी हत्यासे समाविष्ट और गुरु महाशयोंका वध करनेसे हमलोग पीडितहैं
अतः आपहीकी शरणमें हम आये हैं आप हमैं स्पष्ट आज्ञा दीजिये ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् !
किस कर्मके करनेसे हमैं उत्तम गतिका लाभ होसक्ताहै यह आप हमैं कृपा करके बताइये
क्योंकि हम आपके सेवकहैं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—सुनो पाण्डवो ! तुम सबने अपने
गोत्रवालोंका वध कियाहै, हमने सबकी सद्गतिका उपाय तौ देखाहै किन्तु गोत्रविनाशियोंकी
निष्कृति हमने कहीं नहीं देखी ॥ १७ ॥ कि केदारनाथके विना दर्शन किये मोक्ष हुईहो,
अतएव तुम वहांही जाओ, महादेवजीके दर्शनोंकी अभिलाषासे ब्रह्मा आदि देवता शुभ कर्मा-
नुष्ठानसे पवित्र और तपोनिष्ठहो उस स्थानमें उत्तम तपका आचरण करतेहैं ॥ १८ ॥ समस्त
नदियोंमें श्रेष्ठधारारूप गंगाजी उस स्थानमें विराजमानहैं, और पार्वतीसहित महादेवजीभी
वहां विद्यमानहैं ॥ १९ ॥ हे राजाओ ! महावीर प्रमथ आदि सैकड़ों गणोंसहित देवता
गन्धर्व, यक्ष और उत्तम राक्षस येसभी उसस्थानमें ॥ २० ॥ जब सूर्य्यनारायण वृश्चिक
राशिके अर्धभागमें उपस्थित होतेहैं तब प्रत्यक्षहोकर क्रीडा करतेहैं उस समय विविधभांतिके

वाद्यंते श्रूयंते वेदनिःस्वनाः ॥ २१ ॥ यत्र देशे मृतो जंतुः शिव एव न संशयः ॥ तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ २२ ॥ अनेकतीर्थसंयुक्तः स्मृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ गच्छध्वं त्रिदशस्थानं महापथसमीरितम् ॥ २३ ॥ एतदेव परं स्थानं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति व्यासवचः श्रुत्वा पांडवा हृष्टमानसाः ॥ प्रणम्य तं परिक्रम्य ययुः कैलासपर्वते ॥ २५ ॥ तत्रैव निवसंतो वै ययुः परमिकां गतिम् ॥ यस्य तीर्थस्य सेवायाः शुद्धा जाता महौजसः ॥ इति तत्परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥२६॥ पंचाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनाविस्तृतम् ॥ इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तामहो विभो ॥२७॥ श्रीगंगाद्वारमर्यादं श्वेतांतं वरवर्णिनी ॥ तमसातटतः पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम् ॥ २८ ॥ केदारमंडलं ख्यातं भूम्यास्तद्भिन्नकं स्थलम् ॥ वात्सल्यात्तव देवेशि कथितो देश उत्तमः ॥ २९ ॥

वाद्य बजते और वेदध्वनि श्रवणगत होतीहैं ॥ २१ ॥ उस स्थानमें प्राणपरित्याग करनेवा जीव निस्सन्देह साक्षात् शिवरूप होजाताहै, उस क्षेत्र (तीर्थ) का माहात्म्य वर्णन करने किसकी शक्तिहै ॥ २२ ॥ उसमें अनेकतीर्थ संयुक्त हैं अतएव उसका स्मरण करनेसे मोक्ष लाभ होताहै, अतएव तुम उसी देवस्थानमें जाओ, (मोक्षके लिये) वोह महापथ क किया गयाहै ॥ २३ ॥ और यही ऐसा परमस्थानहै कि जहां जानेसे ब्रह्महत्याका निवा होजाताहै ॥ २४ ॥ महादेवजी बोले—व्यासजी महाराजके ऐसे वाक्य सुनकर पाण्डव अ चित्तमें बड़े प्रसन्नहुए, परिक्रमापूर्वक उन्हें प्रणामकर कैलास पर्वतको चले गये ॥ २५ एवं च उसीस्थानमें निवास करते २ परम (दुर्लभ) गतिको प्राप्तहुए । अथ च उसी तीर्थ सेवन करनेसे उन महापराक्रमियोंको शुद्धिका लाभहुआ, और यह परमोत्तम स्थान देवता कोभी दुर्लभहै ॥ २६ ॥ पचास योजन चौड़ा और तीसयोजन लंबा यह महातीर्थ भूमि ऊपरभी स्वर्गलाभ करानेवालाहै ॥ २७ ॥ हे सुमुखि ! गंगाद्वारसे प्रारंभकर श्वेतान्तपर्य तमसा नदीके तटसे पूर्व एवम् बौद्धाचलसे प्रथम ॥ २८ ॥ भूमिके ऊपर सबसे भिन्न केदारनाथ नामक एक उत्तमस्थानहै, हे देवेश्वरि ! तुम्हारे प्रेमके कारण हमने उस उत्त

१ चारकोसका एक योजन होताहै ।

तिर्यग्योनिगतो वापि मृतः शिवपुरे वसेत् ॥ अनेकतीर्थसंयुक्तं नानापुण्यवनैर्युतम् ॥ ३० ॥ अनेकशतसाहस्रशिवलिंगविराजितम् ॥ नानानदीनदाकीर्णं नदीसंगमशोभितम् ॥ ३१ ॥ नानाक्षेत्रैः पुण्यतमं नानापीठसुयंत्रितम् ॥ काश्यादीनि च तीर्थानि गदितानि बहूनि वै ॥ ३२ ॥ तानि सर्वाणि सेवंते मूर्त्तिमंतस्तपःस्थिताः ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे धारास्ता गदितास्तु याः ॥३३॥ नामतः शृणु ताः सर्वाः पुण्याः पापप्रणाशनाः ॥ मधुवर्णा तु या धारा मधुगंगा तु सास्मृता ॥ ३४ ॥ या वै क्षीरवहा धारा क्षीरगंगा द्वितीयका ॥ मध्यमा या श्वेतवर्णा स्वर्गद्वारा प्रकीर्त्तिता ॥ ३५ ॥ महाजलौघा सुश्रोणी धारा मंदाकिनी मता ॥ केदारनिलयख्याता गंगा केदारसंज्ञका ॥ ३६ ॥ निसृता गंगया देवि पूर्वं शेषगृहीतया ॥ यासु स्नात्वा वरारोहे शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ कामतोऽकामतो वापि भक्त्याऽभक्त्यापि पार्वति ॥३७॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

देशका वर्णन कियाहै ॥ २९ ॥ कीट पतंग आदिकी योनिमें उत्पन्नहुआभी जीव उक्तस्थानमें मृतक होनेसे शिवलोकमें निवास करताहै । अनेक तीर्थोंसे संयुक्त, विविध भांतिके पवित्र वनसमुदायसे संपन्न ॥ ३० ॥ अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों शिवलिंगोंसे सुशोभित, भांति २ के नदी नदोंसे आकीर्ण, एवं च नदियोंके संगमसे समलंकृत ॥ ३१ ॥ अनेक तीर्थोंके विद्यमान होनेसे विशेष पवित्र एवं च अनेक पीठों (सिंहासनो, गद्दियों) से संगठितहै; और काशी आदि जो अनेक प्रकारके बहुतसे तीर्थ कीर्त्तन कियेगयेहैं ॥ ३२ ॥ वे सब मानो तपमें स्थितहुए मूर्त्तिमान् हो उस केदार क्षेत्रकी सेवा करतेहैं, और पूर्वोक्त धाराएँ सब उसी महाक्षेत्रमें विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥ पवित्र एवम् पापोंका नाश करनेवाली उन सब धाराओंके नाम श्रवणकरो. मधुवर्णकी धाराका नाम मधुगंगाहै ॥ ३४ ॥ दुग्धके प्रवाहवाली दूसरीका नाम क्षीरगंगाहै, जो मध्यमधारा वोह श्वेतवर्ण कहातीहै स्वर्गद्वारा ॥ ३५ ॥ महाजलौघा सुश्रोणी मन्दाकिनी केदारनिलया और केदारसंज्ञिका ॥ ३६ ॥ प्रथम जब गंगाजीको शेषजीने ग्रहण कर लियाथा तब यह सब उन्हींमेंसे निर्गत हुईथीं, हेसुमुखि ! हेपार्वति ! इनमें इच्छा अथवा अनिच्छा भक्ति अथवा अभक्तिसे स्नान करै तथापि उस व्यक्तिको महादेवजीकी सन्निधिका लाभ होताहै ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

पार्वत्युवाच ॥ कथयस्व महादेव विस्तरान्मम क्षेत्रकम् ॥ केदारं नाम यत्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ १ ॥ कानि कानि च तीर्थानि वर्त्तते तत्र नायक ॥ किं पुण्यं किं फलं चात्र स्नानदानैर्महेश्वर ॥ २ ॥ कथमेतन्महज्जातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ एतत्सर्वं महादेव प्रियायै कथय प्रभो ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं मया देवि तवाधुना ॥ न त्यजामि कदाचिद्वै त्वत्तः प्रियतरं प्रिये ॥ ४ ॥ पुरातनो यथाहं वै तथा स्थानमिदं किल ॥ यदा सृष्टिक्रियायां च मया वै ब्रह्ममूर्त्तिना ॥५॥ स्थितमत्रैव सततं परब्रह्मजिगीषया ॥ तदादिकमिदं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ६ ॥ नंदिभृंग्यादयः सर्वे द्वारदेशे प्रतिष्ठिताः ॥ ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे न जानंति मम स्थलम् ॥ ७ ॥ यया त्वया तत्र देशे क्रीडितं विस्मृतं किल ॥ इदमेव महत्स्थानं सुगोप्यं सर्वजंतुषु ॥ ८ ॥ मृतो यत्र महादेवि शिव एव न संशयः ॥

पार्वती बोलीं—हेदेव ! आपने जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले केदारक्षेत्रका कीर्तन किया है, सो अब आप विस्तारपूर्वक उसका वर्णन करिये ॥ १ ॥ हेनाथ ! कौन २ से तीर्थ उसमें निवास करतेहैं और हे महेश्वर ! इसतीर्थमें स्नानदान करनेसे किसपुण्यकी प्राप्ति होती ॥ २ ॥ एवं च यहतीर्थ सर्व तीर्थोंमें उत्तम और सबमें बडा किस प्रकारसे हुआ ! हे प्रभो महादेव ! यह सब वृत्तान्त मुझ प्यारीसे वर्णन करिये ॥ ३ ॥ महादेवजीने कहा—हेदेवि यह जो मैंने तुम्हारे प्रति उत्तमक्षेत्रका वर्णन कियाहै सो इसे मैं कभी नहीं त्यागताहूं, क्योंकि हे प्यारी ! यह तुमसेभी अधिकप्रियहै ॥ ४ ॥ जैसे मैं प्राचीनहूं, इसीप्रकार यहस्थान प्राचीनहै, जबकि मैं ब्रह्ममूर्त्तिको धारणकर सृष्टिकी रचनाकरनेमें स्थित हुआथा ॥ ५ ॥ तब मैंने इसी स्थानमें स्थिति करीथी उसी दिनसे यह स्थान विद्यमानहै, इसकी प्राप्ति देवताओंकोभी दुर्लभहै ॥ ६ ॥ नन्दी और भृंगी आदि ये सभी वहां द्वारके ऊपर उपस्थित रहतेहैं और ब्रह्माआदि देवताभी हमारे उस स्थलको नहीं जानसक्तेहैं ॥ ७ ॥ और तुमनेभी तो उसी स्थानमें क्रीडा करीथी सो कैसे भूलगई ? इस महास्थानको सबजीवोंसे गुप्तरखना चाहिये ॥ ८ ॥ हे महादेवि ! वहां प्राणत्यागकर जीव निःसन्देह शिवरूपही होजाताहै । हे महेश्वरि !

धन्यास्ते पुरुषा लोके पुण्यात्मानो महेश्वरि ॥ ९ ॥ ये वदंत्यपि केदारं गमिष्याम इति क्वचित् ॥ देवेशि पितरस्तेषां त्रिशतं कुलसंयुताः ॥ १० ॥ गच्छंति शिवलोके तु सत्यं सत्यं न संशयः ॥ यथा सतीनां त्वं चैव देवानां च यथा हरिः ॥ ११ ॥ सरसां सागरो यद्वत्सरितां जाह्नवी यथा ॥ पर्वतानां यथायं वै योगिनां याज्ञवल्क्यकः ॥ १२ ॥ भक्तानां च यथा देवि नारदो भक्त ईरितः ॥ शिलानां च यथा शालग्रामशिला तु वैष्णवी ॥ अरण्यानां यथा प्रोक्तं बदर्य्यारण्यसंज्ञितम् ॥ धेनूनां च यथा कामधेनुर्वै परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥ मनुष्याणं यथा विप्रो विप्राणां ज्ञानदो यथा ॥ स्त्रीणां पतिव्रता यद्वत्प्रियाणां पुत्र एव च ॥ १५ ॥ पदार्थानां यथास्वर्णं मुनीनां च यथा शुकः ॥ सर्वज्ञानां यथा व्यासो देशानामयमेवच ॥ १६ ॥ नराणां च यथा राजा सुराणां वासवस्तथा ॥ वसूनां धनदो यद्वत्पुरीणां मामकी यथा ॥ ॥ १७ ॥ रंभा चाप्सरसां यद्वद्गंधर्वाणां च तुंबुरुः ॥ क्षेत्राणां च तथा प्रोक्तं क्षेत्रं केदारसंज्ञितम् ॥ १८ ॥ शृणु देवि पुरा वृत्तं

संसारमें उन पुण्यात्मा पुरुषोंको धन्यहै ॥ ९ ॥ जो यों कहतेहैं कि हम कभी केदारनाथको जायँगे, और हे देवेश्वरि! उनके पितर तीनसौ कुलोंको साथले ॥ १० ॥ निःसन्देह यह बात सत्यहै कि--शिवलोकमें गमन करतेहैं । जैसे पतिव्रताओंमें तुम, सब देवताओंमें विष्णु भगवान् ॥ ११ ॥ नदोंमें सागर जैसे नदियोंमें गंगाजी, पर्वतोंमें जैसे कैलास, योगियोंमें याज्ञवल्क्य ॥ १२ ॥ हेदेवि ! जैसे भक्तोंमें नारदजी, शिलाओंमें शालिग्राम शिला ॥ १३ ॥ अरण्यों (वनों) में जैसे बदरीवन, धेनुओंमें जैसे कामधेनु ॥ १४ ॥ मनुष्योंमे ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें ज्ञानदाता, स्त्रियोंमें पतिव्रता और प्रियोंमें जैसे पुत्र ॥ १५ ॥ पदार्थोंमें सुवर्ण, मुनियोंमें जैसे शुकदेवजी, सर्वज्ञोंमें जैसे व्यासजी, देशोंमें भारतवर्ष ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें राजा, देवताओंमें इंद्र वसुओंमें कुबेर, पुरियोंमें जैसे काशीपुरी ॥ १७ ॥ अप्सराओंमें जैसे रंभा, और जैसे गन्धर्वोंमें तुम्बुरु सर्वश्रेष्ठहैं, इसीप्रकार सबक्षेत्रोंमें केदारक्षेत्र सर्वोत्तमहै ॥ १८ ॥ सुनो पार्वति ! हम एक व्याध और मृगका प्राचीन इतिहास तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं,

व्याधस्यैणस्य तच्छृणु ॥ मृगहंतावसद्व्याधो ग्रामांते विकरालकः ॥ १९ ॥ मृगमांसाशनो नित्यं विक्रेता सर्ववस्तुनः ॥ एकदा स महान् व्याधो मृगान् हंतुं गतो वने ॥ २० ॥ हतास्तत्र महादेवि मृगाश्च बहवस्तथा ॥ एवं हनन्मृगान्व्याधो ययौ केदारतीर्थके ॥ २१ ॥ गच्छतस्तस्य देवेशि वने मुनिगणान्विते ॥ व्यदृश्यत मुनिश्रेष्ठो नारदो विचरन् गिरौ ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे सोपि व्याधो वै हृष्टमानसः ॥ योयं गच्छति स्वर्णात्मा दिव्यरूपधरो मृगः ॥ २३ ॥ एनं हत्वा स्वर्णमृगं ह्यहं स्वर्णमयोभवे ॥ इति वै चिंतयित्वा तु व्याधः परमविस्मितः ॥ २४ ॥ धनुः सज्जं चकाराशु बाणं संधाय कार्मुके ॥ यावन्निहंति तमृषिं तावदस्तं गतो रविः ॥२५॥ इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा व्याधोतिविस्मितः ॥ यावद्गच्छति चाग्रे तु ददर्श दर्दुरं बिले ॥ २६ ॥ सर्प्पेण ग्रस्यमानं वै महाकायेन सत्वरम् ॥ यावद्ग्रसति मंडूकं सर्प्पः कालात्मको ह्ययम् ॥ २७ ॥ तावद्बभूव मंडूको नागयज्ञोपवीतकः ॥ अर्द्धचंद्रधरः शीर्षे जटाटव्या विराजितः ॥ २८ ॥ कैलासाद्रिस-

एक गाँवमें बडा भयंकर मृगोंका वध करनेवाला व्याधा निवास करताथा ॥ १९॥ वोह सब वस्तुओंका विक्रय करता और नित्य मृगमांसका भक्षण करताथा सुतराम् एक दिन वोह व्याधा मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया ॥२०॥ और वहां उसने विविध प्रकारके बहुतसे मृगोंका वधकिया, इसप्रकार मृगोंको हनन करता २ वोह केदारतीर्थमें पहुँचा ॥ २१ ॥ हे देवेश्वरि ! यह जाही रहाथा, इतनेहीमें इसे मुनियोंसे समलंकृत वनमें मुनिसत्तम नारदजी विचरते दीखे ॥ २२ ॥ इसी समय व्याधा अपने मनमें बडा प्रसन्न होगया और सोचने लगा कि यह जो सुवर्णमूर्त्तिहै यह दिव्यरूपधारी मृगहै ॥ २३ ॥ इस सुवर्णमृगको मार, मैं सुवर्णसे परिपूर्ण होजाऊंगा, यौं विचार व्याधा परम आश्चर्य्यको प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ उसने तत्काल धनुषके ऊपर बाणको चढाय उसे तयार किया, और जभी महर्षिको मारना चाहा इतनेहीमें सूर्य अस्त होगये ॥२५॥ इस परम आश्चर्यको देख व्याधाको बडा विस्मय हुआ। और जभी वोह आगे चला, तब उसने बिलमें एक मण्डूकको देखा ॥ २६ ॥ उस मण्डूकको महाकाय एक सर्प ग्रसरहाहै, जभी कालरूप सर्प मण्डूकको ग्रसने लगा ॥ २७ ॥ इतनेहीमें वोह मंडूक व्यालयज्ञोपवीतधारी, अर्द्ध चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये, जटाजूटसे विराजमान ॥ २८ ॥ कैलासकी

माभासो नृत्यद्गणविराजितः ॥ त्रिशूली नीलकंठो वै हस्तिचर्मांबरो विभुः ॥ २९ ॥ इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा वै व्याधपूरुषः ॥ किमेतद्वै कथं जातो मंडूकः सर्पवेष्टितः ॥ ३० ॥ रूपं कस्मादिदं जातं मंडूकस्यान्यदेहकः ॥ किं वा स्वप्नमहं मन्ये जाग्रतो मे कथं भवेत् ॥ ३१ ॥ भ्रमो मे हि कथं जातः स्वस्थोऽस्मि यत एव हि ॥ अथ चेदं कथंचिद्वै भूतोपद्रवकं किमु ॥ ॥ ३२ ॥ सन्निकर्षमतिर्मेद्य वर्त्तते विकृतिर्यतः ॥ किं करोमि क्क गच्छामि वनेऽस्मिन्भूतसेविते ॥ ३३ ॥ के मे रक्षामिदानीं हि करिष्यंति महावने ॥ पश्यतो मे हि मंडूको विकृतिं वै कथं गतः ॥ ॥ ३४ ॥ इति चिंतासमाविष्टमना व्याधो हि तत्क्षणात् ॥ पलायनपरो जातो महेशि वनतो यदा ॥ ३५ ॥ तावद्ददर्श व्याघ्रेण हन्यमानं मृगं किल ॥ पुष्टांगं सुन्दरांगं च महाव्याधो भयातुरः ॥ ३६ ॥ तमेव हन्यमानं च मृगं वै शिवरूपिणम् ॥ पंचवक्रं त्रिनेत्रं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३७ ॥ हंता यो देवदेवेशि

समान कान्तिमान, नृत्यकरते हुए गणोंसे विशेष समलंकृत, त्रिशूल धारणकरे, गजचर्मधारी नीलकंठ महादेव होगया ॥ २९ ॥ यह देख व्याधाको बड़ा आश्चर्य्य हुआ, वोह सोचने लगा यह क्या हुआ कि मण्डूक सर्पसे वेष्टित होगया ॥ ३० ॥ इस मण्डूकका रूप और देहभी अन्य प्रकारकाही होगया, अथवा मैं स्वप्न देख रहाहूं क्योंकि जागते हुएको तौ ऐसा हो नहीं सक्ताहै ॥ ३१ ॥ मैं सावधानहूं फिर मुझे भ्रमभी कैसे होसक्ताहै अथवा यह भूतोंका कियाहुआ उपद्रवहै ॥ ३२ ॥ मृत्यु मेरे निकट आगईहै क्योंकि, मुझे विकार होरहाहै, हाय भूतोंके द्वारा सेवित इसवनमें मैं क्याकरूं कहां जाऊं ॥ ३३ ॥ इस महावनमें इससमय मेरी रक्षा कौन करसक्ताहै, आश्चर्य है कि—मेरे देखते देखतेही यह मण्डूक विकारको कैसे प्राप्त होगया ॥ ३४ ॥ उस व्याधाके चित्तमें ऐसीचिन्ता प्रादुर्भूत हुई अतएव हे महेश्वरि ! वोह वनसे पलायन करनेके लिये प्रवृत्त हुआ ॥ ३५ ॥ तभी उसने देखा कि—एक पुष्ट अंगवाले मनोहर मृगको व्याघ्रने मारडाला ॥ ३६ ॥ हनन कियागया मृग वोही पंचमुखी त्रिनेत्र व्यालयज्ञोपवीती शिवरूप हुआ ॥ ३७ ॥ हे देवेश्वरि !

मृगराट्तस्स सपदि हतः ॥ व्याधेनानेन केनापि बलीवर्दो बभूव ह ॥ ३८ ॥ आरुरोह वृषे तस्मिन्स वै पूर्वहतो मृगः ॥ शिवरूपधरः साक्षात्पश्यतस्तस्य सुंदरि ॥३९॥ इति तत्र पराश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोतिविस्मितः ॥ चिंतयामास बहुशः किमिदं किमिदं त्वहो ॥ ४० ॥ पुलकांकितसर्वांगो विस्मयाविष्टमानसः ॥ पुनर्ददर्श देवेशि तमेव नारदं मुनिम् ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वा मनुजाकारं वने तस्मिन् भयावहे ॥ श्रुत्वा तु तन्मुखाद्वृत्तं तत्रत्यं मम वल्लभे ॥ ॥ ४२ ॥ व्याधः साधुरसाधुश्च वनं साधु परं महत् ॥ इति श्रुत्वा तु स व्याधो बभाषे नारदं मुनिम् ॥ ४३ ॥ कथं साधुरहं ब्रह्मन्नसाधुश्च कथं वनम् ॥ साधुसाध्विति यत्प्रोक्तं त्वया किं तद्वदस्व मे ॥ ४४ ॥ व्याधेरितं तु तच्छ्रुत्वा विहस्य नारदोऽब्रवीत् ॥ धन्योसि लुब्धकश्रेष्ठ यत्त्वया तीर्थमुत्तमम् ॥ ४५॥ आगतं तादृशं चैव दृष्टं वै शुभदर्शनम् ॥ तस्मादुक्तं च मे साधुस्त्वमसाधुश्च तच्छृणु ॥ ४६ ॥ यस्मादिदं त्वया व्याध ज्ञातं नेति शुभं परम् ॥ यस्य माहात्म्यतः शीघ्रं तिर्य्यग्योनिगतो ध्रुवम् ॥४७॥

उसका हनन करनेवाला वोह मृगराज सिंह सहसा बलीवर्द (बैल) होगया ॥ ३८ ॥ और प्रथम हनन किया हुआ मृग हे सुन्दरी ! उसके देखते २ ही साक्षात् शिवरूप धारणकर उक्त बलीवर्दके ऊपर आरूढ होगया ॥ ३९ ॥ इस परम आश्चर्यको देख व्याधाको बड़ा विस्मय हुआ और वारंवार कहनेलगा कि यह क्या हुआ ॥ ४० ॥ उसके आश्चर्यान्वित होनेके कारण व्याधाका शरीर पुलकित होगया, और हे देवेशि ! फिर उसने उन नारदऋषिको देखा ॥ ४१ ॥ इस भयंकर वनमें देवर्षि नारदको नराकार देख और धन्यव्याधा तुम धन्य, और अधन्यहै यह अरण्य उत्तम है इसप्रकार उनके मुखसे सुनकर वोह व्याधा नारदमुनिसे बोला ॥४२॥४३॥ भो ब्रह्मन् । मैं धन्यवादार्ह और अधन्य तथा यहवन धन्य क्यों है ? और आपने जो साधु और असाधु कहा सो इसका क्या कारणहै यह आप मुझसे कहिये ॥ ४४ ॥ व्याधाके यह वचन सुन नारदमुनि हँसकर बोले, हे व्याधसत्तम ! तुझे धन्यहै जो तू उत्तमतीर्थमें ॥४५॥ आया और तुझे उसके शुभ दर्शनोंका लाभहुआ इसीसे मैंने साधु शब्दका उच्चारण किया ॥४६॥ असाधु क्यों कहा कि हेव्याध ! तुझे यह शुभज्ञान नहीं है कि इस तीर्थके माहात्म्यसे कीट

अवाप्य शिवतां चैव पश्यतस्ते क्षणात्तथा ॥ इति तत्परमाश्चर्य रूपं तद्वचनं प्रिये ॥ ४८ ॥ श्रुत्वा व्याधो महाभागः प्रणनाम भुवि क्षणात् ॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि मुने त्वद्दर्शनादहम् ॥ ॥ ४९ ॥ योहं तव मुखांभोजनिःसृतं सुकथामृतम् ॥ पिबामि मुनिशार्दूल त्राहि मां भवसागरात् ॥ ५० ॥ पापोहं मुनिहंताहं हिंसकोऽहं दुरासदः ॥ तारयेह महाभाग कथमेतादृशी गतिः ॥ ॥ ५१ ॥ भवेन्मे मुनिशार्दूल तद्वदस्व कृपान्वितः ॥ उवाच नारदस्तं वै अत्रैव निवस त्विति ॥ ५२ ॥ इत्युक्तांतर्दधे देवि पश्यतस्तस्य वै प्रिये ॥ व्याधोपि निवसंस्तत्र ययौ वै परमां गतिम् ॥ ५३ ॥ इति तत्क्षेत्रमाहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि ॥ क्षमोस्मि वक्तुं सुश्रोणि शृण्वतोपि परां गतिम् ॥ ५४ ॥ तीर्थानि शृणु देवेशि गुह्यानि सुतरां प्रिये ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे व्याधवृत्तं नाम एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

पतंगादिकी योनिमें उत्पन्न हुआभी जीव ॥ ४७ ॥ तेरे देखते २ ही शिवरूपको प्राप्त होगया हेप्रिये ! आश्चर्यरूप उनके ऐसे वचन सुन ॥ ४८ ॥ उस महाभाग व्याधाने वारंवार प्रणाम किया और कहा–हे मुने ! आपके दर्शन करनेसे मैं धन्य और कृतकृत्य होगया ॥ ४९ ॥ संमति मैं आपके मुखकमलसे विनिर्गत हुए कथारूप अमृतका पानकर रहाहूं सो हे मुनिशार्दूल ! इस संसार सागरसे मेरी रक्षाकरो ॥ ५० ॥ मैं मुनिका वध करनेको उद्यत हुआ अतएव पातक आचरण करनेवाला और हिंसक एवम् बड़ा दुष्टहूं, हेमहाभाग ! मेरा उद्धार करो ॥ ५१ ॥ हे मुनिशार्दूल ! कृपाकरके यह बताइये कि–मुझे उत्तम गतिका लाभ किसप्रकार होगा ? नारदजीने उत्तर दिया कि–तुम यहांही निवास करो ॥ ५२ ॥ हे प्रिये देवि ! यौं कहकर उसके देखते २ ही नारदजी अन्तर्ध्यान होगये, एवम् वोह व्याधाभी वहां निवासकर परम गतिको प्राप्तहुआ ॥ ५३ ॥ हे सुश्रोणि ! अतएव उसक्षेत्रके माहात्म्यको मैं सैकड़ों वर्षमेंभी वर्णन नहीं करसक्ताहूं । इसका श्रवणकरनेवालेकोभी परमगतिका लाभ होताहै ॥ ५४ ॥ हे प्रिये ! देवेश्वरि !!! परमगुप्त जो तीर्थ है अब उनका वर्णन करताहूं सो सुनो ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

ईश्वर उवाच ॥ दक्षिणस्यां शिवे देवि रेतःकुंडमिति श्रुतम् ॥ यत्पयःपानमात्रेण शिव एव न संशयः ॥ १ ॥ येन चिह्नेन तत्तीर्थं जायते शिवदायकम् ॥ पारदं दृश्यते तत्र तज्जलं बुद्बुदायते ॥२॥ तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम् ॥ किं पुनर्देवदेवेशि तत्पाने नितरां शिवे ॥ ३ ॥ मंदाकिन्यास्तु सुतटे तीर्थानि शृणु पार्वति ॥ तस्मादेव महातीर्थादधोदेशे शुभप्रदम् ॥ ४॥ शिवकुण्डमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ यत्रोपोष्य सप्तरात्रं प्राणान्वै संत्यजेद्बुधः ॥ ५ ॥ शिवसायुज्यतामेति यतो धारा विनिःसृता ॥ तदग्रे भृगुतुंगं वै पापिनामपि मुक्तिदम् ॥६॥ गोघ्नः कृतघ्नो विप्रघ्नो योपि विश्वासघातकः ॥ श्रीशिलायां तपेद्यस्तु भृगुतुंगान्महोन्नतात् ॥ ७ ॥ प्राणांस्त्यजति देवेशि स परब्रह्मतामियात् ॥८॥ तस्मात्तीर्थादूर्ध्वभागे योजनद्वयसंमितम् ॥

महादेवजी बोले--हे कल्याणमूर्त्ति देवि ! दक्षिणकी ओर रेतकुण्ड सुना गयाहै, उसके जलका केवल पानकरनेसे मनुष्य निःसन्देह शिवरूप होजाताहै ॥ १ ॥ जिस चिन्हसे वोह तीर्थ कल्याणप्रद कीर्त्तन कियागयाहै वोह यहहै कि--उसके जलमें पारेकी समान बुद्बुद दृष्टिगत होतेहैं ॥ २ ॥ उसका केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य परमगतिका लाभ करताहै हे कल्याणमूर्त्ति देवेश्वरि ! उसका पानकरनेसे तौ फिर कहनाही क्याहै ॥ ३ ॥ हे पार्वति ! मन्दाकिनीके तटपर जो तीर्थहैं अब उनका श्रवणकरो, उसी तीर्थके अधोदेशमें कल्याणका देनेवाला ॥ ४ ॥ एवम् शिवलोकप्रदानकर्त्ता शिवकुण्ड प्रसिद्धहै, जो ज्ञानी पुरुष उसतीर्थमें सातरात्री पर्यन्त उपवास धारणपूर्वक प्राणोंका परित्याग करताहै ॥ ५ ॥ उसे महादेवका सायुज्य (निकटवास) लाभ होताहै, जहांसे कि धाराओंका उद्गम हुआहै; उसके आगे भृगुतुङ्गतीर्थ है वोहभी पापियोंको मुक्तिप्रदान करताहै ॥ ६ ॥ गोघाती, कृतघ्न, ब्रह्महत्यारा और विश्वासघाती इनमेंसे कोईभी महाउन्नत भृगुतुंगसे श्रीशिलाके ऊपर तप करै ॥ ७ ॥ अथवा प्राणोंका परित्याग करै तौ हे देवि! उसे परब्रह्मस्वरूपका लाभ होताहै ॥ ८ ॥ उस तीर्थसे दो योजन (चारकोस) ऊपरकी ओर रक्तवर्णका जलबुद्बुदके आकारका होकर विनिर्गत

रक्तवर्णं जलं तत्र बुद्बुदाकारनिःसृतम् ॥ ९ ॥ इदं जलं परं गोप्यं न वदेद्दुष्टजंतुषु ॥ यस्य स्पर्शेन सर्वेपि धातवः स्वर्णतां प्रिये ॥ १० ॥ यांति लोहादयो देवि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ इदं हिरण्यगर्भाख्यं तीर्थं परमदुर्ल्लभम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥ ११ ॥ तस्मादुत्तरतो देवि स्फाटिकं लिंगमुत्तमम् ॥ यस्य वै पूजनात्सद्यः शिव एव न संशयः ॥ १२ ॥ तस्मात्सर्वपदे पूर्वं वह्नितीर्थमिति स्मृतम् ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि गदतो मे शृणु प्रिये ॥ १३ ॥ हिमांतर्गलितं तद्वै जलं वह्निमयं प्रिये ॥ पूजनं तस्य कर्त्तव्यं घृताक्ताहुतिभिस्तथा॥१४॥ संतृप्तो जायते वह्निर्वरमिष्टं प्रयच्छति ॥ तत्र उत्तरतो देवि आश्चर्यं परमं शिवे ॥ १५ ॥ शैलाग्रशिखरात्तत्र जलं पतति भूतले॥ तज्जलस्य कणा देवि मुक्ता श्चैव भवंति हि ॥ १६ ॥ तत्रैव भीमसेनेन पूजितोहं च मौक्तिकैः ॥ मुक्ताविद्रुमजालानां हर्म्याणां च परंपरा ॥ १७ ॥ तेषु हर्म्येषु देवेशि गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ गायंति परमीशानं हर्षेण परिपूरिताः ॥ १८ ॥ तत्र यांति महादेवि

होताहै ॥९॥ इस जलको परमगुप्त रखना चाहिये, दुष्टप्राणियोंमें इसका प्रकाश कदापि न करै क्योंकि--हेप्रिये ! इसका स्पर्श मात्र करनेसे लोहआदि धातुएँभी सचमुच सुवर्ण होजातीहैं इसमें सन्देह कुछ नहींहै यह हिरण्यगर्भ नाम परम दुर्लभ तीर्थहै इसके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य नारायणरूप होजाताहै ॥ १० ॥ ११ ॥ हे देवि ! उसी तीर्थसे उत्तरकी ओर स्फटिक लिंगहै, इसका पूजन करनेसे निःसन्देह मनुष्य शीघ्रही शिवरूप होजाताहै ॥ १२ ॥ उससे पूर्वकी ओर वह्नितीर्थ कीर्त्तन कियागयाहै उसके चिह्नका मैं वर्णन करताहूं सो सुनो प्रिये ! ॥१३॥ हिमालयसे निर्गत होताहुआ वोह जल बिलकुल अग्निरूपहै हे प्रिये ! घृत समन्वित आहुतियोंसे इसका पूजन करना कर्त्तव्यहै ॥१४॥ जब अग्निदेव तृप्त होजातेहैं तब वे अभीष्ट वरदान देतेहैं, हेदेवि ! हे शिवे ! उसके उत्तरकी ओर बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ १५ ॥ पर्वतके शिखरपरसे भूमिके ऊपर जो जल निपातित होताहै, हे देवि ! उसजलके बिन्दु मोती बनजातेहैं ॥ १६ ॥ इसी स्थानमें मोतियोंके द्वारा भीमसेनने मेरी पूजा कीथी, और यहां मोती अथ च मूंगोंसे निर्माणकिये महलोंकी श्रेणीकी श्रेणी विद्यमानहैं ॥ १७ ॥ हे देवेश्वरि ! उन हर्म्योंमें गन्धर्व तथा अप्सरागण हर्षसे परिपूर्ण हो महादेवको कीर्त्तन करती हैं ॥ १८ ॥ हे देवि !

पुण्यात्मानो महाधियः ॥ ततः परं महान्पंथा यत्र गत्वा न शोचति ॥ १९ ॥ तस्मिन्महापथे देवि घृतपायसकर्दमाः ॥ स्वर्णभूमी रत्नमयी स्वर्णपक्ष्युपशोभिताः ॥ २० ॥ वृक्षाः स्वर्णमयास्तत्र प्रवाललतिकावृताः ॥ अनेके च महागृध्राः पन्नगाशनतेजसः ॥ २१ ॥ योजनायामविस्तारा महाव्यालाश्च सर्वशः ॥ सप्तप्राकारसंयुक्तं मम धाम महेश्वरि ॥२२॥ यत्र ब्रह्मादयो देवि मां हि सेवंति नित्यशः ॥ महाभैरवहस्तस्थदंडेन कृतशासनाः ॥ २३ ॥ भूतवेतालप्रेताश्च कूष्मांडा जृंभकास्तथा ॥ नंदीभृंग्यादयश्चैव क्रीडंति सुखसंवृताः ॥ २४ ॥ अहं महापथे नित्यं संस्थितो मम वल्लभे ॥ अस्मात्स्थानात् प्रियतरं नास्ति देवेशि मे क्वचित् ॥ २५ ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्या एवं वदति नित्यशः ॥ महापथं गमिष्यामि प्राणांस्त्यक्ष्यामि तत्र वै ॥ २६ ॥ सोपि मे देवदेवेशि प्रियात्प्रियतरोस्ति वै ॥ किं पुनर्मानवो लोके सर्वसंगविवर्जितः ॥ २७ ॥ मां न्यस्य हृदि च

महाबुद्धिमान् पुण्यात्मालोग वहां जासक्तेहैं, उसके आगे ऐसा महापथहै जहां पहुँचकर सोचकरना नहीं होता ॥ १९ ॥ हे देवि ! उस महापथमें घृत और पायस (दूध) की । कर्दमहै रत्नजटित सुवर्णकी भूमि विद्यमानहै वोह स्थान सुवर्णनिर्मित पक्षियोंसे सुशोभित होरहाहै ॥ २० ॥ सुवर्णहीके वहां वृक्षहैं, उनके ऊपर मूंगोंकी बेलें फैलरहीहैं, और अनेक गृध्र जो वहां उपस्थितहैं, उनका गरुडजीकी समान विशाल तेजहै ॥ २१ ॥ एक २ योजनके लंबे महाविस्तारवाले सर्प वहां चारोंओर विद्यमान हैं, यहांही सात प्राकारों (परकोटों) से वेष्टित हमारा धामहै ॥ २२ ॥ जहां कि, ब्रह्माआदि देवता नित्य मेरी सेवा करते रहतेहैं, और महाभैरवभी हाथमें दण्ड धारणकर शासन करते रहतेहैं ॥ २३ ॥ भूत, वेताल, प्रेत, कूष्मांड, जृंभक, भृंगी, नन्दी आदि गण सुखपूर्वक क्रीडा करते हैं ॥ २४ ॥ हे वल्लभे ! उस महापथमें मैं स्वयम् सदैव उपस्थित रहताहूं, हे देवेश्वरि ! इस स्थानसे अधिक और कोई स्थान मुझे प्रिय नहींहै ॥ २५ ॥ जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक नित्य यों कहताहै कि, मैं महापन्थमें जाऊंगा और वहां प्राणोंका परित्याग करूंगा ॥ २६ ॥ हे देवि ! वोहभी मुझे अधिक प्रियहै, फिर सांसारिक सब आसक्तियों रहित मनुष्यके लिये तो कहनाही क्याहै ॥ २७ ॥ उस मनुष्यको मुझ मान्यके उत्तम मन्दिरका लाभ होताहै, स्वर्गा-

स्वीये गच्छेद्वै मम मंदिरे ॥ स्वर्गारोहगिरेर्मूर्ध्नि स्थानं मे परमं महत् ॥ २८ ॥ अयं तीर्थमयः शैलो यत्राहं संस्थितः सदा ॥ दर्शनादेव पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ २९ ॥ नश्यंते किमु देवेशि पूजनात्स्पर्शनात्तथा ॥ ३० ॥ क्षीरगंगा तु या धारा मंदाकिन्यास्तु संगमे ॥ शिवप्रदं महातीर्थं क्रौंचहर्तुः प्रकीर्त्तितम् ॥ ३१ ॥ यत्र स्नात्वा वरारोहे कैलासनिलये वसेत् ॥ क्षीरगंगा तु या धारा मंदाकिन्यां सुसंगता ॥ ब्राह्मं वै परमं तीर्थं यत्र स्नात्वा गणो भवेत् ॥ ३२ ॥ तस्माद्दक्षिणतो देवि यज्जलं बुद्बुदायते ॥ सामुद्रं तज्जलं प्रोक्तं स्पर्शनाच्छिवदायकम् ॥ ३३ ॥ मत्तो यो वामभागेऽस्ति शैलः परमसुंदरः ॥ पौरंदरः समाख्यातो यत्र मामिंद्र ईश्वरि ॥ ३४ ॥ समारराध पूर्वं वै स्वस्य च स्थितिहेतवे ॥ तत्रैव मे परं लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ ३५ ॥ मत्स्थानाद्दंडदशके हंसकुंडमिति स्मृतम् ॥ यत्र ब्रह्मा महादेवि हंसो भूत्वा समाययौ ॥ ३६ ॥ रेतःपानं

रोहणपर्वतके शिखरपर हमारा परमोत्तम स्थानहै ॥ २८ ॥ जहां कि, मैं सदैवही स्थित रहताहूं, यह पर्वत तीर्थोंसे व्याप्तहै ब्रह्महत्याकी समानभी पातक इसका दर्शनमात्र करनेसेही॥ ॥ २९ ॥ नष्ट हो जाते हैं, तौ फिर हे देवेश्वरि ! स्पर्श अथवा पूजन करनेसे तौ क्या कहनाहै ? भाव यहहै कि, दर्शन, पूजन और स्पर्श करनेसे अवश्यमेव पापोंका नाश होताहै ॥ ॥ ३० ॥ मन्दाकिनीके संगममें जो क्षीरधाराहै, उसे कल्याणप्रद स्वामिकार्त्तिकेयका महातीर्थ वर्णन कियागयाहै ॥ ३१ ॥ हे सुमुखि ! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य कैलासमें निवास लाभ करताहै, क्षीरधारा जो मन्दाकिनीमें मिलीहै, उसे ब्राह्मतीर्थ कहतेहैं इसमें स्नान करनेसे मनुष्य साक्षाव् (शिव) गण होजाताहै ॥ ३२ ॥ हे देवि ! उससे दक्षिणकी ओर जो जल बुद्बुदाकार प्रतीत होताहै, वोह सामुद्र जलहै उसका स्पर्शमात्र करनेहीसे कल्याण लाभ होताहै ॥ ३३ ॥ हमारे वामभागमें जो परमसुन्दर पर्वतहै उसे पौरन्दर पर्वत कहतेहैं, हे ईश्वरि ! इसके ऊपर पुरन्दर अर्थात् इन्द्रने ॥ ३४ ॥ अपनी स्थितिके कारण मेरी आराधना करीथी उसी स्थानमें हमारा एक परमोत्तम लिंगहै, उसका दर्शन करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ॥ ३५ ॥ हमारे स्थानसे दशदण्डकी दूरीपै एक हंसकुंडहै, हे महादेवि ! यहां ब्रह्माजीने हंसरूप धारण कियाथा ॥ ३६ ॥ और जब गणोंने उन्हें धर्षित किया तब उन्होंने रेतका

तु कृतवान् गणैः संधार्पितस्तथा ॥ तद्धंसकुण्डमाख्यातं पितॄणां मुक्तिदायकम् ॥ ३७ ॥ पितॄणां श्राद्धकर्त्तारो गच्छेयुः परमं पदम् ॥ नरकस्थास्तु पितरो जन्मजन्मससुद्भवाः ॥ ३८ ॥ त्रिशूलिनो महादेवाश्चंद्रार्द्धकृतशेखराः ॥ वृषस्कंधास्थिताः सर्वे व्यालयज्ञोपवीतिनः ॥ ३९ ॥ भस्मांगरागसहिताः क्रीडेयुर्वै मया सह ॥ इति तद्धंसकुण्डस्य माहात्म्यं वरवर्णिनि ॥ ४० ॥ यस्माज्जलमयी भूमिः पदन्याससुकंपिता ॥ केदारक्षेत्रमाख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा केदारनाथं मां पीत्वा रेतोजलं मम ॥ शिवलिङ्गं प्रजायेत हृदि तस्य महेश्वरि ॥ ४२ ॥ यस्मिन्कस्मिन्नपि शिवे काले वै यत्र कुत्र चित ॥ मृतः शिवपुरे याति पापी चापि शुभस्तथा ॥ ४३ ॥ यत्र देशे तु यो मर्त्यः केदारेश्वरदर्शने ॥ इत्युद्दिश्य मृतो देवि शिवो भवति मानवः ॥ ४४ ॥ शिवस्थानमिदं प्रोक्तमाविष्णुस्थानतः शुभम् ॥ भीमसेनशिलं देवि पर्य्यंकं मम कीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥ त्रिगव्यूतौ मम स्थानाद्दक्षिणे श्रुणु तीर्थकम् ॥

पान कियाथा, वोही हंसकुंडके नामसे प्रसिद्धहै, यह पितरोंको मुक्तिदेनेवाला है ॥ ३७ ॥ जो व्यक्ति यह श्राद्ध करतेहैं उन्हें परमपदका लाभ होताहै। जन्मजन्मान्तरके पापोंके कारण नरकमें निवास करनेवालेभी पितर ॥ ३८ ॥ त्रिशूल धारणपूर्वक, मस्तकके ऊपर अर्धचन्द्रमाको धारण किये वृषारूढहो सर्पोंका यज्ञोपवीत धारणकर महादेवनके ॥ ३९ ॥ भस्मकी अंगराग धारण करके मेरे साथ क्रीडा करतेहैं, हे सुमुखि! येही हंसकुण्डका उत्तम माहात्म्यहै ॥ ४० ॥ क्योंकि वहांकी भूमि निपट जलमयीहै और चरणनिक्षेपमात्रसे कंपायमान हो जातीहै, यह केदारक्षेत्र समस्त तीर्थोंमें उत्तमहै ॥ ४१ ॥ केदारनाथरूप हमारे दर्शन करके और हमारे रेतःस्वरूप जलका पानकरके हे महेश्वरि ! उसके हृदयमें शिवलिंगका प्रादुर्भाव होजाताहै ॥ ४२ ॥ हे महेश्वरि ! वोह चाहे पापीहो अथवा पुण्यात्माहो और वोह चाहे जिस समय चाहै जहां शरीरका परित्याग करे तथापि उसे शिवलोकका लाभ होताहै ॥ ४३ ॥ उस स्थानमें केदारेश्वरके दर्शनके उद्देशसे जो व्यक्ति प्राणपरित्याग करताहै वोह मनुष्य अवश्य शिव होजाताहै ॥ ४४ ॥ विष्णुभगवान्के स्थानपर्यंत यह सब शिवस्थानही कीर्त्तन कियागयाहै, और हे देवि! भीमशिला हमारी शैय्या कथन की गईहै ॥ ४५ ॥ हमारे स्थानसे छः कोशपर दक्षिणकी

गौरीतीर्थमिदं ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥ यत्र त्वया महेशानि मंदाकिन्यास्तटे पुरा ॥ ऋतुस्नानं कृतं तद्वै गौरीतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ४७ ॥ महासेनस्य उत्पत्त्यै विस्मृतं किं त्वयानघे ॥ तस्माच्चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥ ४८ ॥ कटूष्णं तु जलं तत्र सिंदूराभा तु मृतिका ॥ तत्स्थानं देवदेवेशि न त्यजामि कदाचन ॥ ४९ ॥ तत्र गौरीश्वरत्वेन ख्यातोहं शिवलोकदः ॥ स्नानं करोति यस्तत्र मृत्तिकां शिरसा वहेत् ॥ ५० ॥ स वै मम प्रियतरो यथा त्वं मम वल्लभा ॥ अत्र यद्वै कृतं कर्म्म तद्वै कोटिगुणं भवेत् ॥ ५१ ॥ तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रमरक्षकम् ॥ यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसेतेनिशम् ॥ ५२ ॥ तल्लिंगं तु प्रवक्ष्यामि शृणु पुण्यतमं स्थलम् ॥ महातप्तजलं तत्र वर्त्तते सर्वदैव हि ॥ ५३ ॥ तत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै शिवमुत्तमम् ॥

और समस्त सिद्धियोंका देनेवाला गौरीतीर्थहै अब उसका माहात्म्य सुनो ॥ ४६ ॥ हे महेश्वरि ! प्रथम उसीस्थानमें मन्दाकिनी नदीके तटपर तुमने ऋतुस्नान कियाथा, तभीसे वोह गौरीतीर्थ कहाताहै ॥ ४७ ॥ यह सब स्वामिकार्त्तिकेयकी उत्पत्तिके लिये कियागयाथा सो हे अनघे ! क्या तुम उसे भूलगई ? अब मैं उसके चिह्नोंका कीर्त्तन करताहूं जिससे कि, तुम उसके शुभको समझ सकोगीं ॥ ४८ ॥ वहांका जल किंचिन्मात्र उष्णहै, और मृत्तिका सिन्दूरके रंगकीहै, हे देवदेवेश्वरि ! मैं उस स्थानका कभी परित्याग नहीं करताहूं ॥ ४९ ॥ वहां मैं गौरीश्वर नामसे प्रसिद्धहूं, और अपने भक्तोंको शिवलोक प्रदान करताहूं जो व्यक्ति वहां स्नान करता और मृत्तिकाको शिरोपरि धारण करताहै ॥ ५० ॥ जैसी तुम हमारी प्यारीहो इसी प्रकार वोहभी हमारा प्रीतिपात्रहै । इस स्थानमें जो कुछ कर्म किया जाताहै वोह करोड़ गुणा होजाताहै ॥ ५१ ॥ हे देवि ! उसके दक्षिणकी ओर उत्तम गोरक्षका आश्रमहै, अथच इस स्थानमें सिद्ध गोरक्षनाथजी नित्य निवास करतेहैं ॥ ५२ ॥ अब उसके उत्तमलिंगों अर्थात्–चिह्नोंका वर्णन करतेहैं सो उस पवित्रस्थलका वर्णन सुनो उस स्थानका जल सदाही महातप्त रहताहै ॥ ५३ ॥ सातरात्री पर्यन्त यहां निवासकर, और शिवके निमित्त उत्तम तपका

सिद्धो भवति देवेशि यथा गोरक्ष उत्तमः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्नेव महाशैले चतस्रो निम्नगाः स्मृताः ॥ देविका भद्रदा शुभ्रा मातंगीति समाहृताः ॥ ५५ ॥ देविकायां नरः सप्तरात्रं मिथ्यादिवर्जितः ॥ जपन् षडक्षरं देवि मोक्षभागी भवेन्नरः ॥ ५६ ॥ यस्य स्पर्शाद्धातुवस्तु स्वर्णतां यात्यसंशयम् ॥ तथान्यासु महादेवि स्नात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ गौरीतीर्थादूर्ध्वभागे पर्वते सौम्यादिक्स्थिते ॥ चीरवासा भैरवस्तु क्षेत्रं रक्षति मामकम् ॥ ५८ ॥ तस्मै चीरादिकं दत्वा सर्वं पुण्यं लभेन्नरः ॥ अन्यथा तत्फलं सर्वं हरते भैरवः शिवः ॥ ५९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपूज्य भैरवं विशेत् ॥ तस्मिन्नेव महाशैले काली वसति दुःसहा ॥ ६० ॥ तां नमस्कृत्य गच्छेत पर्य्यंके मामके शिवे ॥ गौरीतीर्थापरेभागे क्रोशे परमदुर्ल्लभम् ॥ ६१ ॥ वैनायकं तथा द्वारसंस्थित्वे संस्थितः शिवे ॥ गणेशस्तावकः पुत्र अंगरागेण यः कृतः ॥ स्थापितो द्वारि देवेशि त्वया च स्नाप्यमानया ॥ ६२ ॥

आचरण करता हुआ मनुष्य हे देवेश्वरि ! गोरक्षनाथजीहीकी तरह उत्तम सिद्ध होजायगा ॥ ५४ ॥ उस महाशैलके ऊपर चार नदियें वर्णन की गईहैं, एक देविका दूसरी भद्रदा तीसरी शुभ्रा और चौथी मातंगी कहातीहै ॥ ५५ ॥ असत्य भाषणको छोड़कर जो मनुष्य देविकामें स्नान कर षडक्षर मन्त्रका "ओं नमः शिवाय" का जप करताहै उसको मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ५६ ॥ और इसका स्पर्श करनेसे धातुओंकी वस्तुएं निःसन्देह सुवर्णकी होजातीहैं तथा हे महादेवि । अन्य नदियोंमें स्नान करनेसे भी सिद्धियोंका लाभ होताहै ॥ ५७ ॥ गौरीतीर्थसे ऊपरकी ओर सौम्यादिशामें चीर वस्त्रोंको धारणकिये भैरव हमारे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ५८ ॥ अतएव उनके निमित्त चीर वस्त्र दान करनेसे मनुष्योंको समस्त पुण्योंका लाभ होताहै, अन्यथा अर्थात्—यदि भैरवके लिये वस्त्रदान न किया जाय तो उसके फलको भैरव आप हरण करलेतेहैं ॥ ५९ ॥ अतएव विशेष यत्नपूर्वक भैरवकी पूजा करके उसमें प्रवेश करना कर्त्तव्यहै और उसी महापर्वतके ऊपर दुःसह काली निवास करतीहै ॥ ६० ॥ उसे नमस्कार करके हे कल्याणमूर्त्ति हमारे लोकमें गमन करताहै गौरीतीर्थके अपर भागमें एक कोसकी दूरीपर परमदुर्लभ ॥ ६१ ॥ हे कल्याणवति ! उसीके द्वारभागमें वैनायकतीर्थ स्थितहै, तुमने जिस अपने गणेश पुत्रको अंगराग अर्थात् उबटनसे उत्पन्न कियाथा और स्नान करते

मया यस्य शिरश्छिन्नं पतितं शिवक्षेत्रके ॥ प्रसन्नेन मया देवि पुनः कारिवरं शिरः ॥ संयोजितं तदंगे तु ततो गजमुखोभवत् ॥ ६३ ॥ सम्पूज्य तं गणेशं तु नानानैवेद्यद्रव्यकैः ॥ गच्छेन्मम महास्थाने यत्र गत्वा शिवो भवेत् ॥ ६४ ॥ कालिकेति समाख्याता नदी गंगांगसंभवा ॥ वासुकिप्रमुखा नागा यां हि सेवंति नित्यशः ॥ ६५ ॥ शेषेश्वरो महादेवो यत्रास्ति हि सरोवरे ॥ उच्छलंति महानागा भस्मीकुर्वंति तत्स्थलम् ॥ ६६ ॥ क्रुद्धा भवंति यदा हि नान्यदा ते महाविषाः ॥ तन्मूले कालिका देवि पतंते तेन कालिकाः ॥६७॥ मंदाकिन्यास्त्रिविक्रम्याः संगमोतीवपुण्यदः ॥ यत्र तिष्ठामि कालीशनाम्ना स्वस्थानदो ह्यहम् ॥६८॥ इति ते कथितं देवि केदारेश्वरक्षेत्रकम् ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा श्रुत्वोक्त्वा च लभेच्छिवम् ॥६९॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे केदारमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

समय तुमने उसे द्वारभागमें स्थापित कियाथा ॥ ६२ ॥ जब मैंने उसका शिर छेदन कियाथा तौ वोह शिवक्षेत्रमें निपतित हुआथा, परन्तु फिर मैंने प्रसन्न होकर उसके शरीरमें हाथीका उत्तम शिर जोडाथा इसी कारण उनका मुख हाथीका होगया ॥ ६३ ॥ अनेक प्रकारके द्रव्यों नैवेद्यसे जो व्यक्ति गणेशजीकी पूजा करताहै उसे मेरे ऐसे महास्थानकी प्राप्ति होतीहै जहां जाकर वोह साक्षात् शिव होजाताहै ॥ ६४ ॥ वहां गंगाजीके अंगसे उत्पन्न हुई जो नदीहै उसका कालिका नामहै और वासुकि आदी नागगण नित्य उसकी सेवाकरतेहैं ॥६५॥ और उस सरोवरमें शेषेश्वर महादेव विद्यमानहैं वहां बड़े २ नाग उछलते रहते और उस स्थानको भस्म करते रहतेहैं ॥ ६६ ॥ परन्तु वे ऐसा तभी करतेहैं जब क्रोधित होतेहैं अन्य समय नहीं, उसकी मूलमें कालिका निपतित होतीहै ॥ ६७ ॥ मन्दाकिनी और त्रिविक्रमाका संगम अतिशय पुण्यदायक है, अपने स्थानको देनेवाला मैं वहां कालीश नामसे स्थित रहताहूं ॥ ६८ ॥ हे देवि ! इस प्रकार केदारेश्वर क्षेत्रका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया जो व्यक्ति इसके एक वा आधे श्लोकका पाठ अथवा श्रवण करताहै उसे कल्याणकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

ईश्वर उवाच ॥ अथान्यत्तु प्रवक्ष्यामि क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ॥ केदारमंडले एव यत्र गत्वा हरिर्भवेत् ॥ १ ॥ त्रिविक्रमातटे पश्चान्नारायणसुतीर्थकम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण हरिभक्तिः प्रवर्द्धते ॥ ॥ २ ॥ त्रिविक्रमातटादूर्द्ध्वं सार्द्धक्रोशे महत्फलम् ॥ नारायणक्षेत्रमिति तस्मिन्वै यज्ञपर्वते ॥ ३ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिपूजनमानसाः ॥ यजयामासुरपितं नैवेद्यैर्हवनैस्तथा ॥ ४ ॥ तल्लिंगं तु प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ नित्यं तत्र स्थितो वह्निर्दृश्यते मुक्तिदो महान् ॥ ५ ॥ विवाहस्थानमेतद्वै गौरीशंकरयोः शुभम् ॥ तत आरभ्य वसते नित्यमत्र धनंजयः ॥ ६ ॥ उपोष्य दशरात्रं तु पापैः कोटिभिरावृतः ॥ प्राणांस्त्यजति पूतात्मा वैकुंठनिलये वसेत् ॥ ७ ॥ सरस्वतीति विख्याता धारा परमपाविनी ॥ श्रीविष्णोर्नामभिस्तत्र आयाति दुरितापहा ॥ ८ ॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा मंत्रपूतं जलं पिबेत् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटि

महादेवजी बोले—समस्त क्षेत्रोंमें परमोत्तम अब और एकक्षेत्रका हम वर्णन करतेहैं वोह क्षेत्रभी केदार मंडलहीमें विद्यमान है, उसमें यात्रा करनेसे यात्री साक्षात हरिरूप होजाताहै ॥ १ ॥ त्रिविक्रमाके तटसे आगे नारायणतीर्थहै उसका केवल दर्शन करनेहीसे नारायणकी भक्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ २ ॥ त्रिविक्रमाके तटसे ऊपर डेढ़ कोसकी दूरीपर मभूतफलदायी नारायण क्षेत्रहै, उसी यज्ञपर्वतके ऊपर ॥ ३ ॥ हरिकी अर्चा करनेमें निरतहो ब्रह्मादिदेवताओंने नैवेद्य तथा हवनके द्वारा उनका यजन कियाथा ॥ ४ ॥ उसका चिह्न अब हम कीर्त्तन करतेहैं, जहां जानेसे अमृत (मोक्षसुख) का लाभ होताहै, वहां मोक्षदाता अग्निदेव नित्य विराजमान रहतेहैं ॥ ५ ॥ गौरी और शंकरके विवाहका यह शुभस्थानहै, उसी दिनसे उस क्षेत्रमें अग्निदेव नित्यनिवास करतेहैं ॥ ६ ॥ जो व्यक्ति दशदिन पर्यन्त उपवास धारण पूर्वक उस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करताहै वोह चाहें करोड़ो पापोंसे आवृत हो तथापि पवित्र होकर वैकुण्ठलोकमें निवास करताहै ॥ ७ ॥ उक्त स्थानमें परम पवित्र जो धारा विद्यमानहै उसका सरस्वती नामहै श्रीविष्णुभगवान्के नामोंका उच्चारण करनेसे वोह समस्त पापोंका विनाश करतीहै ॥ ८ ॥ जो मनुष्य "नमो नारायणाय" कह जलको मन्त्रद्वारा

शतैरपि ॥ ९ ॥ सकृदाचम्य देवेशि नारायणविनिःसृतम् ॥ जलं सारस्वतं देवि किं तेन न कृतं भवेत् ॥ १० ॥ धन्या लोके नरा ये तु नारायणसमीपके ॥ जलं पिबंति तेषां वै दश पूर्वा दशापरे ॥ तृप्ता यांति परं स्थानं पितरो हृष्टमानसाः ॥ ११ ॥ तस्मिन्नग्नौ तु ये मर्त्या एकामप्याहुतिं ददुः ॥ ते सर्वे मुक्तिमापन्नाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ १२ ॥ हवनं कारयेत्तत्र नारायणसुमंत्रतः ॥ धन्यो भवति लोकेषु नरः पापविवर्जितः ॥ १३ ॥ भस्मनो धारणं कृत्वा सर्वदेवमयो भवेत् ॥ माहात्म्यं भस्मनः केन शक्यते मम वल्लभे ॥ १४ ॥ तद्भस्मधारिणं दृष्ट्वा पापं वर्षकृतं दहेत् ॥ तत्रैव ब्रह्मकुंडाख्यं तीर्थं परमपुण्यदम् ॥ १५ ॥ स्नात्वा यत्र वरारोहे ब्रह्मलोकगतिर्भवेत् ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तज्जलं पीतवर्णकम् ॥१६॥ तत्र चाल्पतरा नागाः स्थापिता भीतिदाः प्रिये ॥ न दंशंति च ते नागा भीतिकारणमेव ते ॥ १७ ॥ ब्रह्मणः पूजनं कृत्वा स्नायात्तत्र शुभास्पदे ॥ १८॥ तस्य वै दक्षिणे भागे विष्णु-

पवित्रकर पान करताहै सैकडों करोड़ कल्पपर्यन्तभी फिर उसका जन्म नहीं होता ॥ ९ ॥ नारायणक्षेत्रसे निर्गत हुए उस सारस्वत जलका जिसने एकवारभी आचमन कियाहै उसने क्या २ (शुभकर्म) नहीं किया ॥ १० ॥ उन्हीं लोगोंको धन्यहै जो नारायण क्षेत्रसे निकलते हुए जलको पान करतेहैं उनव्यक्तियोंके दश पाहिले और दश अगले पितृगण तृप्त हों अतएव मनमें प्रसन्न होकर परम स्थानमें गमन करतेहैं ॥११॥ उस अग्निमें जो मनुष्य एकभी आहुति प्रदान करतेहैं उन्हें पुनरागमनरहित मुक्तिका लाभ होताहै ॥१२॥ जो मनुष्य नारायण मन्त्रसे वहां हवन करताहै वोह पापरहित हो सौभाग्यशाली होताहै ॥ १३ ॥ भस्मको धारण करनेसे सर्वदेवमय होजाताहै, हे प्रिये ! भस्मका माहात्म्य वर्णन करनेकी किसकी शक्ति है ॥ १४ ॥ उस भस्मधारीको अवलोकन करके वर्षोंके किये पापोंका दाह होजाताहै, वहां ही ब्रह्मकुण्ड नाम एक कुण्डहै जो अतिशय पुण्यका देनेवालाहै ॥१५ ॥ हे वरारोहे ! उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होजातीह, उसका चिह्न हम वर्णन करतेहैं, उस तीर्थका जल पीले वर्णकाहै ॥ १६ ॥ हे प्रिये! वहां थोडेसे नागभी स्थापन कियेगयेहैं, यद्यपि वे अतिशय भयंकरहैं तथापि किसीको डसते नहीं किन्तु केवल डरानेहीके कारणहैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीकी पूजा करके कल्याणदायक उस तीर्थमें स्नान करना कर्त्तव्यहै ॥ १८ ॥ उसके दक्षिणभागमें

तीर्थमिति स्मृतम् ॥ यत्र स्नात्वा वरारोहे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ॥ १९ ॥ तत्र सारस्वते कुंडे स्नात्वा पापक्षयो भवेत् ॥ प्रदक्षिणां हरेः कृत्वा अश्वमेधफलं लभेत् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा नारायणं देवं स गच्छेच्छिवमंदिरम् ॥ कल्पकोटिशतं देवि नरो मम पुरे वसेत् ॥ ॥ २१ ॥ तत्र त्रिविक्रमातीरे ख्यातं जलमयपत्तनम् ॥ पुण्यान्येव जलान्यत्र योजनायामविस्तृते ॥ २२ ॥ अत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै ध्यानतत्परः ॥ सिद्धो भवति पूतात्मा यथाहं मम वल्लभे ॥२३॥ तत्रैव च नदी रम्या सर्वपापप्रशोधिनी ॥ दक्षिणे हरिदा नाम्ना स्नात्वानंतफलप्रदा ॥२४॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे नारायणाश्रममाहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थहै, हे वरारोहे ! उसमें स्नानकरके विष्णु भगवान्के सायुज्यका लाभ होताहै ॥ १९ ॥ वहां सारस्वत कुण्डमें स्नान करनेसे पापका क्षय होताहै, और नारायणकी परिक्रमा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ नारायण देवके दर्शन करके शिवमन्दिरमें यात्रा करै तौ हे देवि ! वोह यात्री पुरुष सौ कल्पपर्यंत मेरे पुरमें निवास करताहै ॥ २१ ॥ वहां त्रिविक्रमाके तीरपर एक जलमयही नगर विद्यमानहै और उसमें एक योजन अर्थात् चारकोस पर्यन्त लंबे स्थानमें पवित्र जल भरपूर है ॥ २२ ॥ यहां सातरात्रीपर्यन्त स्थितहो ध्यानमें तत्पर रहकर जप करनेसे हे हमारी प्रिये ! वोह व्यक्ति मेरे सदृशही पवित्र होताहै ॥ २३ ॥ उसीके दक्षिणभागमें पापोंको शुद्धकरनेवाली परमरम्य हरिदानाम नदीहै उसमें स्नान करनेसे अनन्त फलका लाभ होताहै ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुःश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

श्रीश्वर उवाच ॥ पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि क्षेत्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ भिल्लक्षेत्रमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यत्राहं भिल्लरू-

महादेवजी बोले-औरभी मैं एक भिल्लक्षेत्रका वर्णन करताहूं, जो सब क्षेत्रोंमें परमोत्तमहै, और यह समस्त पापोंका विनाश करनेवालाहै ॥ १ ॥ जहां कि, मैंने भिल्लरूपको

पेण क्रीडितोस्मि त्वया सह ॥ भिल्लांगण इति ख्यातः पर्वतोतीव सुंदरः ॥ २ ॥ तस्माद्धि पर्वताद्रम्या गंगाधारा विनिःसृता ॥ भिल्लांगणेति विख्याता महापापविनाशिनी ॥ ३॥ तत्रैव मम लिंगं वै भिल्लेश्वर इतीरितम् ॥ तस्य वै पूजनान्मर्त्यो दर्शनात्स्मरणात्तथा ॥ ४ ॥ महापातककोटिस्थो नरः शुद्धो भवेच्छिवे ॥ चिह्नं क्षेत्रस्य वक्ष्यामि शृणु देवि मम प्रिये ॥ ५ ॥ भिल्लरूपी महादेवः कालकंबलवस्त्रकः ॥ वर्त्तते मध्यरात्रे तु नानाभिल्लगणैर्वृतः ॥ ६ ॥ वादित्राणां च शब्दाश्च श्रूयंते भिल्लशब्दिताः ॥ भंभाभंतेति सततं तथा दुंदुभिनिःस्वनाः ॥ ७ ॥ नानारूपधरा भिल्ला विचरंति तदंगणे ॥ भिल्लांगणोद्भवायां तु स्नाति रुद्रकलेवरः ॥८॥ अतिगुह्यतमं पीठं पुराणेषु च गोपितम् ॥ त्यक्ताहारविहारश्च जपेद्यो दशरात्रकम् ॥ ९ ॥ अरिवर्णोपि मंत्रश्च सिद्धो भवति निश्चितम् ॥ नित्यं नाथादयः सिद्धा अत्रैव जपतत्पराः ॥ १० ॥ सिद्धिं प्राप्ताः पुरा देवि मादृशास्ते न संशयः ॥ कामे-

धारणकर तुम्हारे साथ क्रीडा करीथी, भिल्लाङ्गणनाम वोह पर्वत अतिशय सुन्दरहै ॥ २ ॥ उक्त सुरम्य पर्वतसे गंगाजीकी धारा विनिर्गत हुईहै, महापापोंका विनाश करनेवाली उस धाराको भिल्लाङ्गणा कहतेहैं ॥ ३ ॥ उसी स्थानमें हमारा भिल्लेश्वरलिङ्ग विद्यमानहै उसका पूजन दर्शन और स्मरण करनेसे मनुष्य ॥ ४ ॥ चाहे महा पातकीहो तथापि हे कल्याणि ! शुद्ध होजाताहै, हे मेरीप्रिये देवि ! सुनो उस क्षेत्रके चिह्नका वर्णन करताहूं ॥५॥ भिल्लरूपी महादेव काले कंबलका वस्त्रधारण किये, अर्धरात्रिके समय अनेक भिल्लगणसे आवृत हो वहां उपस्थित रहतेहैं ॥ ६ ॥ भिल्लगणद्वारा बजाये हुए अनेक वाद्योंके भम् भम् शब्द, तथा दुन्दुभियोंके शब्द श्रवणगत होतेहैं ॥ ७ ॥ और उसके आंगनमें भिल्लगण अनेक प्रकारके रूप धारण कर विचरतेहैं, भिल्लाङ्गणोद्भवानदीमें स्नानकरनेसे मनुष्य शिवरूपधारी होताहै ॥ ८ ॥ वोह पीठ अतिशय गुप्तरखनेके योग्यहै अतएव पुराणोंमेंभी उसे गुप्तही रक्खाहै, जो व्यक्ति भोजन और विहारका परित्याग कर दशरात्रिपर्यन्त जप करताहै ॥ ९ ॥ उसका अरिवर्ण मन्त्रभी अवश्य सिद्ध होजाताहै, नित्य नाथ आदि सिद्धगणभी इसी स्थानमें जप करनेमें तत्परहो ॥ ॥ १० ॥ निःसन्देह मेरी समान सिद्धिको प्राप्त हुएथे । और जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर कामे-

श्वरीं महादेवीं पूजयेद्भक्तितत्परः ॥ दशाश्वमेधयज्ञीयं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ११ ॥ देव्या वै दक्षिणे भागे शिवलिंगं महत्तरम् ॥ यस्य संदर्शनादेव शिवभक्तो भवेन्नरः ॥ १२ ॥ तदूर्ध्वे क्रोशखंडार्द्धे नदी सुरसुता मता ॥ यत्र पूर्वं मया देवि धृतं भस्म शुभं प्रिये ॥ १३ ॥ तद्भस्मधारणार्थाय वासवाद्या दिवौकसः ॥ आजग्मुस्तन्नदीतीरे कन्यां त्वेनां समादधुः ॥ १४ ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ तस्या वै दक्षिणे भागे शिला मातलिका मता ॥ १५ ॥ स्पर्शं कृत्वा शिलायास्तु इन्द्रस्य नगरे वसेत् ॥ भिल्लांगणं महाक्षेत्रं स्मृत्वा पापक्षयो भवेत् ॥ १६ ॥ पंचयोजनविस्तीर्णं चतुर्योजनमायतम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं तद्दृष्ट्वा शिवतां व्रजेत ॥ १७ ॥ एतत्क्षेत्रस्य यो मर्त्यो दक्षिणं चैव गच्छति ॥ सप्तद्वीपवती तेन पुण्या प्रादक्षिणीकृता ॥ १८ ॥ अस्मिन् यत्क्रियते कर्म तदनंतगुणं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ॥ १९ ॥

श्वरी महादेवीका पूजन करतेहैं, उन मनुष्योंको दश अश्वमेध यज्ञ करनेका फल उपलब्ध होता है ॥ ११ ॥ देवीके ठीक दक्षिणभागमें एक अति उत्तम लिंगहै उसका केवल दर्शनही करनेसे मनुष्य महादेवका भक्त होजाताहै ॥ १२ ॥ उससे ऊपर आधकोसकी दूरीपर सुरसुता नामकी एक नदी मानीगईहै, हे प्रिये देवेश्वरि ! जहां कि, हमने प्रथम शुभभस्मको धारण कियाथा ॥ १३ ॥ उसी भस्मके धारण करनेके लिये इन्द्रादि देवतागण उसमें स्नान करनेकेलिये उपस्थित होते और उसे कन्याभावसे मानतेहैं ॥ १४ ॥ इसमें स्नानकरनेसे वाजपेय यज्ञके फलकी प्राप्ति होतीहै, उसके दक्षिणभागमें एक मातलिका नाम शिला मानीगई ॥ १५ ॥ उस शिलाका केवल स्पर्श मात्र करनेसे व्यक्ति इन्द्रलोकमें निवास प्राप्त करता और भिल्लाङ्गणनाम महाक्षेत्रका स्मरण करनेसेभी पापोंका क्षय होताहै ॥ १६ ॥ वोह क्षेत्र पांच योजन अर्थात् वीसकोस लंबा और चारयोजन (सोलहकोस) चौडाहै, वोह अतिशय पवित्र अतएव समस्त पापोंका नाश करनेवालाहै उसका दर्शन करनेसे शिवरूपकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इस क्षेत्रकी प्रदक्षिणाकरताहै उसे पवित्र सप्तद्वीपावसुमतीकी परिक्रमा करनेका पुण्यलाभ होताहै ॥ १८ ॥ इसमें जो कुछभी कर्म किया जाय वोह अनन्त गुण होजाताहै इस कारण ऐसा यत्न करना चाहिये कि, जिससे कोई पाप न बनपडै ॥ १९॥

पुण्यमेव प्रकर्त्तव्यं स्वस्य वै भूतिमिच्छता ॥ नानामणिगणा यत्र तथा स्वर्णाकराणि च ॥ वर्त्तते यत्प्रदेशे तु तदन्यः कोस्ति भूतले ॥ २० ॥ अनेकानि च लिंगानि नदीधाराशतानि च ॥ पुण्यप्रदानि पुण्यानि कथ्यन्ते नैव विस्तरात् ॥ २१ ॥ शिवलोकप्रदान्येव पर्यांस्यत्र महेश्वरि ॥ दर्शनात्पूजनात् ध्यानाच्छिवलिंगान्यनेकशः ॥ शिवलोकप्रदान्येव सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २२ ॥ अनेकानि प्रयागानि नदीनां संगमानि च ॥ भिल्लांगणोद्भवायां तु गंगाधारा महत्तरा ॥ २३ ॥ तस्याः संदर्शनादेव नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ इति ते कथिता देवि षष्ठी धारा मया शुभा ॥ २४ ॥ यत्पयःपानमात्रेण शिवो भवति निश्चितम् ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥ भिल्लांगणस्य सुश्रोणि शृणुयादपि निष्कलिः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भिल्लांगणमाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

अतएव जो व्यक्ति अपने ऐश्वर्यकी अभिलाषा करताहो उसे उचित है कि इस स्थानमें केवल पुण्यहीका आचरण करै, वहां अनेक प्रकारके माणिगण और सुवर्णके आकर विद्यमानहैं अतः उससे अधिक भूमण्डलके ऊपर और कौनसा स्थान होसक्ताहै ॥ २० ॥ अनेक लिंग बहुतसी नदियें और सैकडों धाराएँ वहां विद्यमानहैं, वे आतिशय पवित्र और पुण्यप्रदहैं अतएव विस्तारपूर्वक उनका वर्णन कौन करसक्ताहै ॥ २१ ॥ हे महेश्वरि ! यहांके सभी जल शिवलोकको प्रदान करतेहैं, और यह बातभी निस्सन्देह सत्यहै कि, यहांके अनेक शिवलिंग दर्शन और ध्यान करनेसे शिवलोक दान करतेहैं ॥२२॥ अनेक प्रयाग, अनेक नदियोंके संगम यहां विद्यमानहैं, भिल्लाङ्गणोद्भवामें गंगाजीकी एक महती धाराहै ॥ २३ ॥ उसका केवल दर्शनही करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होजाताहै, हे महादेवि ! इस प्रकार हमने यह धाराओंका वर्णन तुम्हारेप्रति किया ॥ २४ ॥ इनका केवल जलही पान करनेसे मनुष्य निश्चय शिवरूप होजाताहै, भूमिके ऊपर परम दुर्लभ इस भिल्लाङ्गणके माहात्म्यको जो व्यक्ति प्रातःकालही उठकर पढता अथवा श्रवण करताहै, हे सुश्रोणि ! उसके पापोंका नाश होजाताहै ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

ईश्वर उवाच ॥ अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं परमसुंदरम् ॥ यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ तस्य दक्षिणपार्श्वे वै बगलाक्षेत्रमुत्तमम् ॥ चतुर्योजनविस्तीर्णं चतुर्द्धा च सुविस्तृतम् ॥ २ ॥ तत्पीठं परमं देवि मया नैव प्रकाशितम् ॥ त्वत्प्रियत्वादिदानीं हि गदितं ते सुदुर्ल्लभम ॥ ३ ॥ नानातीर्थसमायुक्तं नानालिंगविराजितम् ॥ यस्य संदर्शनादेव नरो देवीपुरे वसेत् ॥ ४ ॥ बगला तु महादेवी सर्वतंत्रेषु विश्रुता ॥ ब्रह्मास्त्रविद्या विख्याता शत्रुस्तंभनकारिणी ॥ ५ ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण शत्रुः पंगुर्भवेद्ध्रुवम ॥ तत्स्थानं तु मया प्रोक्तं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ६ ॥ सप्तरात्रं निराहारो जपन्वै बगलामनु ॥ सिद्धिं प्राप्नोति विपुलां खेचरीं मम वल्लभे ॥ ७ ॥ बलिदानादिभिर्यस्तु बगलां तु समर्चति ॥ तस्य पुण्यफलं देवि कृत्स्नशः कथ्यते शृणु ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं

महादेवजी बोले—अब हम परम सुन्दर एक क्षेत्रका वर्णन करतेहैं, भक्ति भावपूर्वक उसका श्रवण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होताहै ॥ १ ॥ उस भिल्लाङ्गणके दक्षिण पार्श्वमें एक परमोत्तम बगला क्षेत्रहै, वोह चार योजन लंबा और चार योजन चौडाहै ॥ २ ॥ हे देवि ! उस पीठको मैंने प्रकाशित नहीं कियाहै, किन्तु तुम्हारे प्रेमके कारण उस दुर्लभ क्षेत्रकाभी तुम्हारे समक्ष वर्णन करतेहैं ॥ ३ ॥ उस क्षेत्रमें अनेक तीर्थ विद्यमानहैं अतएव वोह अनेक लिंगोंसे विराजमानहै, उसका दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य देवीपुरमें निवास लाभ करता है ॥ ४ ॥ बगलादेवी समस्त तन्त्रोंमें विश्रुतहै, और ब्रह्मास्त्रविद्या शत्रुओंका स्तम्भन करनेवाली विख्यातहै ॥ ५ ॥ इसका केवल स्मरण करनेसेही शत्रु अवश्यही पंगु होजाताहै, उस स्थानको मैंने समस्त कामनाओंका प्रदान करनेवाला वर्णन कियाहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य निराहार रहकर सात रात्री पर्यन्त बगलादेवीका जपकरताहै, हे प्रिये ! वह प्रभूत खेचरी सिद्धिको लाभ करताहै ॥ ७ ॥ एवम् जो व्यक्ति बलिप्रदान इत्यादि उपचारोंके द्वारा बगलादेवीकी अर्चा करताहै, हे देवि ! उसके समस्त फलका वर्णन करतेहैं, तुम सुनो ॥ ८ ॥ समस्त यज्ञानुष्ठानोंसे जो कुछ पुण्यलाभ होताहै एवम् अखिल तीर्थयात्राके करनेसे जो कुछ उत्तम फल प्राप्तहै,

प्राप्नुयान्मर्त्यो बगलायास्तु दर्शनात् ॥ ९ ॥ देव्या वै दक्षिणे भागे धारा पुण्यप्रमोदिनी ॥ तस्या वै उत्तरे तीरे विष्णुमूर्तिश्चतुर्भुजा ॥१०॥ स्नात्वा पुण्यप्रमोदिन्यां दृष्ट्वा विष्णुं सनातनम् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो न कृतं किं न तेन वै ॥११॥ ततो दक्षिणदिग्भागे गव्यूतिं शृणु विस्मयम् ॥ त्रिशीर्षा तु महादेवि देवी वै वर्त्तते शिवे ॥ १२ ॥ नित्यं तत्र महासिंहो गर्जंस्तिष्ठति चासकृत् ॥ नानानार्य्यः श्यामदेहास्तथा श्यामांबराः प्रिये ॥ १३ ॥ तथा करालवदना विचरंति तया सह ॥ वादित्राणि च वाद्यंते झणंकाररवास्तथा ॥ १४ ॥ तेन शब्देन यस्तत्र त्रस्तो भवति मानवः ॥ म्रियते स न संदेहो दूयते क्षणतस्तथा ॥ १५ ॥ धैर्यवान्मंत्रसंयुक्तो जापकः शिवतत्परः ॥ परनिंदापरो यो न परस्त्रीषु पराङ्मुखः ॥१६॥ न तस्य भयलेशोस्ति तिष्ठतस्तत्र पीठके ॥

भगवती बगलाके दर्शन करनेसेभी मनुष्यको उसी पुण्यकी उपलब्धि होतीहै ॥ ९ ॥ देवीके दक्षिणभागमें पुण्यप्रदान करने द्वारा आनन्दित करनेवाली एक धारा विद्यमानहै, और उसके उत्तर तीरपर विष्णुभगवान्‌की चतुर्भुजी मूर्त्तिहै ॥ १० ॥ उस पुण्यप्रमोदिनी नदीमें स्नान करके जो व्यक्ति विष्णुभगवान्‌के दर्शन करतेहैं, वे मनुष्य कृतकृत्य होजातेहैं, क्योंकि, ऐसा कौनसा शुभकर्महै जो उन्होंने किया न हो भावार्थ यह है कि, प्रमोदिनीमें स्नानपूर्वक विष्णुभगवान्‌के दर्शन करनेसे अखिल पुण्योंके उत्तम फलका लाभ होताहै ॥ ११ ॥ और उससे दक्षिणकी ओर दो कोसकी दूरीपर एक आश्चर्य्यप्रद स्थान है उसे सुनो, हे कल्याणमूर्ति महादेवि ! त्रिशिरानाम देवी वहां विद्यमानहै ॥ १२ ॥ और वहां एक सिंह नित्यही वारंवार गर्जना करता हुआ स्थित रहताहै, एवम् हे प्रिये ! श्याममूर्त्ति तथा श्याम वस्त्रोंको धारण करनेवाली अनेक स्त्रियें वहां विद्यमानहैं ॥ १३ ॥ उनका मुखभी बडा करालहै, और वे देवीके साथ विचरती रहतीहैं, तथा झन २ शब्द करनेवाले अनेक वाद्योंकोभी बजातीहैं ॥ १४ ॥ उस शब्दको सुनकर जो मनुष्य भयभीत होजाताहै, निःसन्देह उसकी मृत्यु होजातीहै, और मूर्च्छित तौ वोह तत्कालही होजाताहै ॥ १५ ॥ और जो धैर्य्य धारणपूर्वक शिवभक्तिमें तत्परहो मन्त्रका जप करता, एवम् जो पुरुष परनिन्दा और परस्त्रीगमनसे पराङ्मुखहै ॥ १६ ॥ उन्हें उस पीठमें स्थित होनेसे भयका लेशमात्रभी प्राप्त नहीं

शीघ्रं वै लभते सिद्धिं यथा गोरक्षकादयः ॥ १७ ॥ तत्र कुंडं समाख्यातं वैष्णवं पापिदुर्ल्लभम् ॥ यत्र स्नानेन तपसा मदर्थं पापदुर्ल्लभम् ॥१८॥ यत्र स्वर्णं वरारोहे कोटीनां दश पंच च ॥ वर्त्तते भूतले न्यस्तं कुवेरेण महात्मना ॥ १९ ॥ ताम्रवर्णीति विख्याता सरितां सरिदुत्तमा ॥ वामभागे महादेवि सर्वकामफलप्रदा॥ ॥२०॥ प्रोक्तानि तव तीर्थानि समासेन मयात्र वै ॥ विशेषेण समाख्यातुं नोत्सहे शतवर्षकैः ॥२१ ॥ इति ते वगलाक्षेत्रं पापराशिदवं मया ॥ प्रोक्तं त्वत्प्रियहेतुत्वात्सर्वत्र भुवि गोपितम् ॥२२॥ नवदेत्पिशुनायेदं न भक्तिरहिताय च ॥ पठेद्विद्वत्सु मंत्रज्ञो ब्राह्मणानां सभासु च ॥ २३ ॥ य इदं श्रावयेद्विद्वान्पठेद्वा पाठयेदपि ॥ शृणुयादपि यो मर्त्यो न वै यमपुरे वसेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे तीर्थमाहात्म्ये वगलाक्षेत्रमाहात्म्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

होता, किन्तु--गोरक्ष आदिकी समान शीघ्रही उन्हें सिद्धिका लाभ होताहै ॥ १७ ॥ वहां एक वैष्णव कुण्डहै जो कि, पापियोंको परम दुर्लभहै वहां स्नान करनेसे, मेरे निमित्त तपकरके हे सुमुखि ! महात्मा कुबेरने ऐसे दश करोड सुवर्णको भूमिमें स्थापन कियाथा जो कि, पापियोंके लिये दुर्लभहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ एवम् वहां सर्वोत्तम एक नदीहै जिसका नाम ताम्रवर्णीहै, हे महादेवि ! वोह समस्त कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली और संपूर्ण फलोंकी प्रदान करनेवालीहै ॥ २० ॥ इन समस्त तीर्थोंका मैंने संक्षेपसे वर्णन तुम्हारे प्रति कियाहै, और विशेषरूपसे वर्णन करनेके लिये सैकडों वर्षकीभी मेरी शक्ति अलम् नहीं होसक्ती ॥ २१ ॥ पापराशिके दमन करनेवाला यह बगला क्षेत्र यद्यपि भूमण्डलके ऊपर सर्वत्र गुप्तहै तथापि हमने तुम्हारे प्रेमके कारण वर्णन कियाहै ॥ ३२ ॥ अतएव पिशुनता करनेवाले अथच भक्तिहीन व्यक्तिके प्रति इसका वर्णन करना उचित नहींहै, किन्तु ब्राह्मणोंकी सभामें, एवम् विद्वानोंके समक्ष मन्त्रज्ञको इसका पाठ करना उचितहै ॥ २३ ॥ जो व्यक्ति इसका श्रवण दूसरोंको कराता या स्वयम् श्रवण करता पढता या पढाताहै उसे यमपुरमें नहीं निवास करना होता ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

ईश्वर उवाच ॥ अथान्यदस्ति देवेशि पीठं प्रत्ययकारकम् ॥ शाकंभरी यत्र जाता मुनीनां त्राणकारणात् ॥ १ ॥ तत्पीठं परमं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गत्वा शाकंभरीपीठे नत्वा शाकंभरीं तथा ॥ २ ॥ दशाश्वमेधयज्ञीयफलं प्राप्नोति मानवः ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि शृणु तत्वेन सुंदरि ॥ ३ ॥ शाकवृक्षो महानेको वर्त्तते तत्र सुंदरि ॥ तत्रायाति तदा सिंहो देव्या वै प्रियकारणात् ॥ ४ ॥ तत्रैको वसते नाग एलापर्णेति विश्रुतः ॥ श्यामो बृहच्छिरास्तत्र तत्फणाविलसन्मणिः ॥ ५ ॥ अथाऽन्यत्ते प्रवक्ष्यामि विस्मयं परमं महत् ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां कार्त्तिके मासि सुव्रते ॥ ६ ॥ शंकरे पर्वते तत्र दीपानां ततिरुज्वला ॥ संदीपयति तद्देशं देव्याः पीठे परे तव ॥ ७ ॥ सुरनार्य्यो नृत्यमाना दीपान् संगृह्य पार्वति ॥ आयांति देवि ते पार्श्वे किंकिणी-

महादेवजी बोले—हे देवेश्वरि ! विश्वासको उत्पन्न करानेवाला एक और पीठ (क्षेत्र) है, मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये वहां शाकंभरीदेवी प्रादुर्भूत हुईथी ॥ १ ॥ उस परम पीठ को समस्त पापोंका विनाश करनेवाला कहाहै, शाकंभरीपीठमें जायके जो व्यक्ति उन्हें प्रणाम करताहै ॥२॥ उस मनुष्यको दश अश्वमेध यज्ञके फलको उपलब्ध होताहै, हे सुन्दरि ! अब मैं उसके चिन्हको कहताहूं तत्वद्वारा उसे श्रवणकरो ॥ ३ ॥ हे सुन्दरि ! वहां एक शाकका महान् वृक्षहै, और देवीका प्रिय करनेकी कामनासे वहां एक सिंह आया करताहै ॥ ४ ॥ एलापर्णनामसे विख्यात वहां एक महानाग निवास करताहै, उसका वर्ण श्याम, शिर बडाहै और उसके फणमें मणि विराजमानहै ॥ ५ ॥ औरभी एक परम विस्मयकारक विषय हम वर्णन करतेहैं सुनो, हे सुव्रते ! कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन ॥ ६ ॥ वहां कल्याणकारी उत्तम पर्वतके ऊपर उज्ज्वल दीपावली विद्यमानहै अतएव देवीका वोह स्थान उस दीपमालासे प्रदीप्त रहताहै ॥ ७ ॥ हे पार्वति ! देवताओंकी स्त्रियें दीपकोंको हाथमें ले नृत्यकरती हुई कौंदनियोंके शब्दसे उस प्रदेशको शब्दायमान करतीं

क्वणितैर्युताः ॥८॥ देव्या वै दक्षिणे भागे लिंगं मारकतं मम। फणी वसाति संछाद्य लिंगं परमपुण्यदम् ॥ ९ ॥ तस्य वै वाम भागे तु नदी वै नंदिनी मता ॥ तस्यां नद्यां सकृत्स्नात्वा लभ ते वै परां गतिम् ॥ १० ॥ भैरवस्तत्प्रदेशे वै रुरुनाम्नेति वि श्रुतः ॥ घंटाशतसमायुक्तो नत्वा तं संविशेत्ततः ॥ ११ ॥ तस वै वामभागे तु शुक्रस्याश्रममंडलम् ॥ नानाविधानि लिंगानि मम संति महेश्वरि ॥१२॥ योजने पर्वते रम्ये शाक्रे परमके शुभे। ताम्रादिधातवस्तत्र वर्त्तन्ते निश्चितं प्रिये ॥ १३ ॥ लक्षणं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ शर्करास्ताम्रवर्णाश्च तथ स्वर्णाः क्वचित्तथा ॥ १४ ॥ द्वियोजनसमाकीर्णं योजनत्रयम यतम् ॥ नानातीर्थसमायुक्तं पीठं शाकंभरं तव ॥ १५ ॥ गुह्या द्गुह्यतरं क्षेत्रं दर्शनात् पापनाशकम् ॥ यत्र स्थित्वा पंचरात्रं नि यतो नियताशनः ॥१६॥ प्राप्नोति विपुलां सिद्धिं जपन्वै जग-

तुम्हारे निकट आतीहैं ॥ ८ ॥ देवीके दक्षिणभागमें मरकतमणियोंके द्वारा निर्माण कि हुआ हमारा लिंग विद्यमानहै, और पुण्यदायक हमारे उस लिंगको आच्छादन करके सर्प धिष्ठित रहताहै ॥ ९॥ और उसके वामभागमें नंदिनी नाम नदी उपस्थितहै, उस नदीमें ए वारभी स्नान करनेसे परम गतिका लाभ होताहै ॥१०॥ उसी प्रदेशमें रुरु नामसे प्रसिद्ध भै विद्यमान रहतेहैं, सैकडों घंटाओंसे वोह स्थान व्याप्तहै, उन्हें प्रणाम करके प्रवेश करना कर्त है ॥ ११ ॥ उसके दक्षिणभागमें शुक्रका आश्रममण्डल विद्यमान है, और हे महेश्वरि वहां अनेक प्रकारके हमारे लिंग उपस्थितहैं ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! उस परम सुरम्य शक प के ऊपर निश्चय ताम्रआदि धातुएँ उपस्थित रहतीहैं ॥ १३ ॥ अब उसका लक्षण तुम्हारे वर्णन करतेहैं, जिसको श्रवण करनेसे तुम्हें विश्वास होजायगा, वहांकी रेती कहीं ताम्र मयी और कहीं सुवर्णकी समानहै ॥ १४ ॥ वोह स्थान दो योजन लम्बा और तीन यो चौडाहै, उसी स्थानमें अनेक तीर्थोंसे युक्त शाकंभर नाम तुम्हारा पीठहै ॥ १५ ॥ यह गोप्यसे भी अतिगोप्य एवम् दर्शन करनेसेभी पापोंका नाश करनेवालाहै, वहां स्थित रह पांचरात्रिपर्यन्त नियमपूर्वक नियमित भोजन करके ॥ १६ ॥ वहां जगदम्बिकाका जप क

दंबिकाम् ॥ इति तत्परमं क्षेत्रं कथितं ते मयानघे ॥ १७ ॥
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे शाकंभरीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

जसे विपुल सिद्धिका लाभ होताहै, हे निष्पापे! इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति उस परम क्षेत्रका वर्णन कियाहै ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवाधिदेव सर्वज्ञ सर्वकर्त्तः प्रभो शिव ॥ क-
थितानि त्वया देव क्षेत्राणि स्वर्गदानि तु ॥ १ ॥ श्रुतं केदार
भवनं क्षेत्राणामुत्तमोत्तमम् ॥ शिवक्षेत्रस्य माहात्म्यश्रवणे म-
तिरस्ति मे ॥ २ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ यत्र
गत्वापि पितरः स्वर्गच्छंति महाबलाः ॥ ३ ॥ घोरे कलियुगे
देव नराः पुण्यविवर्जिताः ॥ कथं तेषां गतिर्देव भविष्यति घृणा
मम ॥ ४ ॥ केन वै कर्म्मणा देव ब्रह्महत्यादिसंयुतः ॥ संतरे-
द्देवदेवेश संसारार्णवविस्तरम् ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि
वरारोहे कथयामि तवानघे ॥ येन वै कर्म्मणा देवि प्राप्नुयात

पार्वतीजी बोलीं–हे देवाधिदेव प्रभु महादेव! आप सबके ज्ञाता और सबके कर्त्ताहैं आपने स्वर्ग प्रदान करनेवाले क्षेत्रोंका मेरेप्रति वर्णन किया ॥ १ ॥ और समस्त क्षेत्रोंमें परमोत्तम केदारक्षेत्रकाभी माहात्म्य मैंने श्रवण कियाहै, अब शिवक्षेत्रका माहात्म्य श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ २ ॥ उस शिवक्षेत्रका दर्शन करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै, और क्षेत्रकी यात्रा करनेसे बलिष्ठ पितृगण स्वर्गगामी होतेहैं ॥ ३ ॥ हे देव! घोरकलियुगमें समस्त मनुष्य पुण्यहीन होंगे सो उन्हें सद्गतिका लाभ किस प्रकार होगा? यह जाननेके लिये मेरे चित्तमें बड़ी करुणा उत्पन्न होरहीहै ॥ ४ ॥ हे देवेश्वर! ब्रह्महत्या आदि पातकोंका करनेवाला पुरुष किस कर्मके करनेसे संसारसागरके विस्तारसे पार पासक्ताहै ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले–हे पापहीन सुमुखि! जिस कर्मके करनेसे शुभगतिकी प्राप्ति होतीहै मैं

परमां गतिम् ॥ ६ ॥ मम क्षेत्राणि पंचैव भक्तप्रीतिकराणि वै ॥
केदारं मध्यमं तुंगं तथा रुद्रालयं प्रियम् ॥ कल्पकं च महादे
सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७ ॥ कथितं ते महाभागे केदारेश्वरमं
लम् ॥ अन्यान्यपि शृणु प्राज्ञे धन्या ते मतिरीदृशी ॥ ८ ॥
कथितं ते मया यत्तु केदारभवनं प्रिये ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भा
योजनत्रयसंमिते ॥ ९ ॥ मध्यमेश्वरक्षेत्रं हि गोपितं भुवनत्रये ।
तस्य वै दर्शनान्मर्त्यो नाकपृष्ठे वसेत्सदा ॥ १० ॥ शृणु देवि
पुरा वृत्तं यथात्रत्यं सुपुण्यदम् ॥ गौडदेशे वसन्विप्रो वेदवेदां
पारगः ॥ रूपवान् गुणवान्दांतो पुण्यकर्म्मसु निष्ठितः ॥ ११ ॥
एकदा स महाभागो मध्यमेश्वरदर्शने ॥ मतिं चकार धन्ये वै
पितॄणां तारणाय वै ॥ १२ ॥ निर्विघ्नार्थं च यात्रायां संपूज्या
दौ गणेश्वरम् ॥ त्रीन्ब्राह्मणान्पूजयित्वा शैवान्पाशुपतव्रता
॥ १३ ॥ निर्ययौ स्वगृहात्तूर्णं शिवसन्यस्तमानसः ॥ जपन्

उसका वर्णन करताहूं, तुम श्रवण करो ॥ ६ ॥ भक्तजनोंको अवश्य प्रीतिके उत्पन्नकरने
हमारे पांच क्षेत्रहैं, हे महादेवि ! एक केदार, दूसरा मध्यम, तीसरा तुंग, चतुर्थ प्रियता
कर्त्ता रुद्रालय और पांचवा कल्पकहै; अथच यह पांचोंही पापोंका विनाश करनेवालेहैं ॥ ७
हे महाभाग्यवती ! हमने तुम्हारेप्रति केदारेश्वरक्षेत्रका वर्णन किया अब हे बुद्धिमति
अन्यान्य क्षेत्रोंकाभी वर्णन करतेहैं तुम्हारी ऐसी (परोपकारनिरत) बुद्धिहै अतएव तु
धन्यहै ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! हमने जो तुम्हारेप्रति केदारक्षेत्रका वर्णन कियाहै उसीसे दक्षिण
ओर तीनयोजन अर्थात् बारहकोसकी दूरीपर ॥ ९ ॥ मध्यमेश्वरलिंगहै जो कि, त्रिलो
गुप्त रखनेके योग्यहै, उसके केवल दर्शनकरनेसे मनुष्य सदैव स्वर्गलोकमें निवास प्राप्त कर
॥ १० ॥ सुनो देवि ! पुण्य प्रदानकरनेवाला यहांका पूर्व वृत्तान्त हम तुमसे वर्णन कर
गौडदेशमें एक ब्राह्मण रहताथा, वोह वेद और वेदांग इन सबका पारगामीथा, रूपवान्
वान् दान्त (इन्द्रियोंका निग्रहकरनेवाला) और पुण्यकर्मोंका आचरण करनेवाला था॥ ११
एकसमय उस अहोभाग्य और सौभाग्यशालीका यह विचार हुआ कि, मध्यमेश्वरक्षेत्रके द
करके अपने पितरोंका उद्धार करना चाहिये ॥ १२ ॥ यात्रामें किसी प्रकारका कोई वि
उपस्थित नहो इसी कारण उसने प्रथम गणेशजीकी पूजाकरके पशुपति महादेवके मानने
तीन अन्यब्राह्मणोंकी भी अर्चना करी ॥ १३ ॥ फिर महादेवजीके ध्यानमें अपने मन

परमं देवं धृत्युत्साहयुतो ह्यलम् ॥ १४ ॥ आगत्य सहसा क्षेत्रे गंगाद्वारे महामतिः ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन ब्राह्मणाश्चैव तर्पिताः ॥ १५ ॥ गंगाजलं समाहृत्य ततः केदारमंडले ॥ प्रपश्य नाना-तीर्थानि कुब्जाम्रप्रमुखानि तु ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा श्रीभरतं देवं वासिष्ठाश्रममाययौ ॥ दृष्ट्वा भागीरथीं गंगामलकनंदासमन्विताम् ॥ १७ ॥ प्रणनाम महाप्राज्ञो भुवि भक्तिसमन्वितः ॥ देवतीर्थे तथा स्नात्वा दृष्ट्वा रामं रमापतिम् ॥ १८ ॥ ततः श्रीक्षेत्रके पुण्येऽलकनंदातटे शुभे ॥ तत्रत्येषु च क्षेत्रेषु भक्त्या स्नात्वा महेश्वरि ॥ १९ ॥ गतोन्येषु च तीर्थेषु शिवभक्तिप्रदेषु च ॥ मंदाकिन्यास्तटे रम्ये नानामुनिजनाश्रमे ॥ २० ॥ अगस्त्यादीन्महाभागान्नत्वा विप्रोनलाश्रये ॥ राजराजेश्वरीं देवीं नत्वा संपूज्य यत्नतः ॥ २१ ॥ कालीं चैव नमस्कृत्य सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ ययौ तत्क्षेत्रके पुण्ये विषमे पददुर्गमे ॥ २२ ॥ अनेकतीर्थ-संस्नातो ययौ तत्क्षेत्रके शुचिः ॥ अशुचिर्योभिगच्छेत तत्क्षेत्रे

लगाके तत्कालही वोह अपने घरसे चलदिया, और धैर्य तथा उत्साह धारणपूर्वक परमदेव महादेवका जपकरनेलगा ॥ १४ ॥ और वोह महामतिमान् व्यक्ति गंगाद्वारक्षेत्रमें गया, और वहां विधिपूर्वक स्नानकरके उसने ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया ॥ १५ ॥ एवम् गंगाजलको लेकर उसने केदारमण्डलमें कुब्जा प्रभृति अनेकतीर्थोंका अवलोकन किया ॥ १६ ॥ भरतदेवके दर्शन करके फिर वोह वसिष्ठजीके आश्रममें आया, और अलकनन्दासमन्वित भागिरथीगंगाके उसने वहां दर्शन किये ॥ १७ ॥ उस बुद्धिमानने भक्तिभावपूर्वक भूमिके ऊपर दण्डवत् प्रणाम किया, एवम् देवतीर्थमें स्नान करनेके अनन्तर लक्ष्मीपति रामको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर पवित्र श्रीक्षेत्रमें अलकनन्दाके शुभ तटपर वहांके समस्त क्षेत्रोंमें भक्तिभावपूर्वक स्नान किया ॥ १९ ॥ फिर महादेवकी भक्तिप्रदानकरनेवाले अन्यान्य क्षेत्रोंमें भी वोह गया जहां कि, मन्दाकिनी नदीके सुरम्य तटपर अनेक मुनिजनोंके आश्रमथे ॥ २० ॥ उस आश्रममें अगस्त्य आदि अनेक महर्षियोंको उसने प्रणाम किया एवम् यत्नपूर्वक राजराजेश्वरी देवीको पूजकर उन्हेंभी प्रणाम किया ॥ २१ ॥ अथ च सरस्वतीके शुभतटके ऊपर कालीको नमस्कार करके उसके विषम और दुर्गम क्षेत्रमें उस ब्राह्मणने प्रस्थान किया ॥ २२ ॥ अनेक तीर्थोंमें स्नानकर अतएव पवित्र हो उस क्षेत्रमें गया क्योंकि, यदि कोई व्यक्ति अशुद्ध

मध्यमेश्वरे ॥ २३ ॥ अकस्माद्वृष्टिपातो वै करकाहिमसंयुतः ॥ वज्रपातादिकं चैव जायते नैव संशयः ॥२४॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ संगच्छेन्मध्यमं धाम मम चैव महेश्वरि ॥ २५ ॥ सोपि तत्र गतो देवि निराहारो दिनत्रयम् ॥ जागरं कृतवांस्तत्र मध्यमेश्वरसन्निधौ ॥ २६ ॥ ततश्चतुर्थदिवसे प्रातरुत्थाय चासनात् ॥ शिवं नत्वा महेशानं भक्तितः परमेश्वरम् ॥ २७ ॥ ततः सरस्वतीतीरे स्नात्वा चैव यथाविधि ॥ पितॄन्संपूज्य विधिवत् पितॄन्संतर्प्य चोदकैः ॥ २८ ॥ नमस्कृत्वा च तत्क्षेत्रं परिक्रम्य शिवं पुनः ॥ संपूज्य विविधैर्द्रव्यैर्नारिकेलादिभिस्तथा ॥ २९ ॥ तत्रत्यानथ संपूज्य यथाशक्त्या हि ब्राह्मणान् ॥ आययौ भक्तिसंपन्नो दृष्ट्वा दर्शनमद्भुतम् ॥ ३० ॥ अथास्मिन्नेव मार्गे हि ददर्श ब्रह्मराक्षसम् ॥ ऊरुस्रवद्गलत्पूर्वकृमिविष्ठाशताकुलम् ॥ ३१ ॥ महोन्नतं महाश्यामं बृहद्दंष्ट्राकरालकम् ॥ हाहाकाररवं विप्रो दृष्ट्वा तं भयविह्वलः ॥ ३२ ॥

होकर उस मध्यमक्षेत्रमें चलाजाय तौ ॥ २३ ॥ अकस्मातही वृष्टि होनेलगतीहै ओले और पाला पडताहै एवम् निःसन्देह वज्रपातभी होने लगताहै ॥ २४ ॥ अतएव हे महेश्वरि ! पवित्रता धारणपूर्वक चित्तको एकाग्र करके यात्रीको हमारे मध्यमक्षेत्रमें गमन करना कर्त्तव्यहै ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वहां जाकर उसनेभी तीनदिन पर्यन्त निराहार रहकर मध्यमेश्वरके निकट रात्री जागरण करा ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर चौथेदिन आसनसे उठकर परमेश्वर महादेवजीको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर सरस्वती नदीमें यथाविधि स्नान करके जलांजलि देकर अपने पितरोंको सन्तुष्ट किया ॥ २८ ॥ उस क्षेत्रको प्रणाम कर फिर शिवजी महाराजको प्रणाम किया, और नारियलआदि विविधप्रकारकी वस्तुओंसे उनकी पूजा करी ॥ २९ ॥ उसस्थानके रहनेवाले ब्राह्मणोंकी भी यथाशक्ति पूजा करके अद्भुत दर्शनकर भक्तिभावपूर्वक लौटआया ॥ ३० ॥ इसी मार्गमें लौटते समय इसने एक ब्रह्मराक्षस को देखा, उसकी जंघाओंमेंसे सैकडों कृमि निकल रहेथे और विष्ठासे उसका देह व्याप्त होरहा था ॥ ३१ ॥ उसका आकार अतिशय उन्नत वर्ण अत्यन्तश्याम, और भयंकर बडी २ दाढें थीं, और वोह पडाहुआ हाहाकार कर रहाथा, उसे देख ब्राह्मण मारे भयके अतिव्याकुल

न गंतुं न तथा स्नातुं न शक्नोति स्म पार्वति ॥ चिंतयामास बहुशो भयविह्वललोचनः ॥ ३३ ॥ केन पापेन दृष्टोसौ विकरालो भयंकरः ॥ मामेकं रहसि प्राप्तं भक्षयिष्यति सांप्रतम् ॥ ३४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथमस्मात्प्रमुच्यते ॥ हा तात मातरित्येवं चिंतया स परिप्लुतः ॥ ३५ ॥ तं विप्रं राक्षसो दृष्ट्वा नष्टमोहोऽभवत्क्षणात् ॥ पापस्य च चतुर्थांशो नष्टस्तद्दर्शनात्प्रिये ॥ ३६ ॥ उवाच भयसंविग्नं ब्राह्मणं पथि संस्थितम् ॥ नत्वा भक्तिसमायुक्तो विकाश्य वदनं मुहुः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मराक्षस उवाच ॥ भो भो ब्रह्मन्महापुण्य माभैषीर्मम निश्चितम् ॥ गतो मोहभरो मेद्य दर्शनात्ते महेश्वर ॥ ३८ ॥ गतं मे पातकं देव दर्शनादेव ते परम् ॥ भाषणादपि पापानि नष्टानि सुतरां तथा ॥ ३९ ॥ यास्यामि शिवलोकेहं त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि निष्कृतिर्मे परागता ॥ ४० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सामपूर्वं यशस्विनि ॥ सहसा

हुआ ॥ ३२ ॥ हे पार्वति ! नतौ वहां ठहरसकनेहीके लिये और न वहांसे जानेहीके लिये उसकी शक्ति पर्य्याप्त हुई, उसके नेत्र मारे भयके व्याकुल होगये और वोह चिन्ता करनेलगा ॥ ३३ ॥ किस पापके कारण अति भयानक इस पापीके दर्शन हुए, मैं एकान्तमें अकेला प्राप्तहुआहूं अतएव यह मुझे भक्षण करलेगा ॥ ३४ ॥ हाय मैं क्या करूं, कहां जाऊं ? कैसे इससे पीछा छूटैगा ? हा पिता ! हा माता ! यौं कहकर वोह वारंवार चिन्ता करनेलगा ॥ ३५ ॥ उस ब्राह्मणके दर्शन करतेही उस राक्षसका अज्ञान तत्काल नष्ट होगया, और हे प्रिये ! दर्शन करतेही उसके पापकाभी चतुर्थांश नष्ट होगया ॥ ३६ ॥ भयसे व्याकुलहुए अतएव मार्गमें स्थित ब्राह्मणसे भक्तिभावपूर्वक प्रसन्नमुखहो वोह ब्रह्मराक्षस यह बोला ॥ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मराक्षसने कहा—हे महापुण्यशाली ब्राह्मण ! तुम किसीप्रकारका भय मतकरो, क्योंकि, तुम्हारे दर्शन करनेसे तौ आज मेरा अज्ञान नष्ट होगया ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपका दर्शन करतेही हमारे पापोंका क्षय होगयाहै, एवम् आपसे सम्भाषणकरकेभी मेरे बहुतसे पाप विनष्ट होगयेहैं ॥ ३९ ॥ अथच आपके अनुग्रहसे मैं अवश्य शिवलोकमें गमन करूंगा मेरे अहोभाग जो मुझे परम गतिका लाभ हुआ अतएव मैं कृतकृत्य होगया ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले—हे यशस्विनी ! इसप्रकार शान्तिपूर्वक उसके यह वचन सुन, उस ब्राह्मणका

विगतत्रासः समभाषत तं ततः ॥४१॥ ब्राह्मण उवाच ॥ कस्त्वं करालवदनो वनेस्मिन्पापिदुर्लभे ॥ केन पापेन ते जाता गतिरेतादृशी वद ॥ ४२ ॥ किमाहारोसि दुर्वृत्त किमाचारोसि किं तव ॥ पापं वाद्य कथं चैव गतं राक्षस दर्शनात् ॥ ४३ ॥ विस्तराद्ब्रूहि वृत्तांतं स्वीयं पापसमुद्भवम् ॥ येन वा पूयसंक्लिन्नं जातं ते रूपमीदृशम् ॥४४॥ ब्रह्मराक्षस उवाच ॥ शृणु देव प्रवक्ष्यामि पुरा वृत्तं मम प्रभो ॥ पुरा भवमहं विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥४५॥ वृद्धया जीविकया युक्तो जातो वार्द्धुपिकस्तथा ॥ इदमेव महत्पापं जातं वै क्रयविक्रयात् ॥४६॥ स्नातं मया च तीर्थेषु यथाशक्त्या त्वया तथा ॥ पापेनानेन मे सर्वं नष्टं पुण्यं मया कृतम् ॥४७॥ तेन पापेन मे मृत्युर्जातो वै जलमज्जनात् ॥ ईदृशी च ममावस्था जाता ब्राह्मणसत्तम ॥४८॥ तदिदानीं महाभाग दर्शनात्ते महात्मनः ॥ पंचाशद्वर्षसाहस्रा गतिर्नष्टा महामते ॥ ४९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यवपुः क्षणात् ॥ जातसि

संपूर्ण भय नष्ट होगया और उसने राक्षससे कहा ॥४१॥ ब्राह्मण बोला—जिसकी प्राप्ति पापियोंको दुर्लभहै ऐसे इस वनमें भयानक आकृतिको धारण कियेहुए तुम कौनहो और यह बताओ किस पापके करनेसे तुम्हारी ऐसी कुगति होगईहै ॥ ४२ ॥ हे दुराचारी ! तुम क्या भोजन करतेहो ? तुम्हारा काम क्याहै ? और हे राक्षस ! हमारे दर्शन करनेसे आज तुम्हारा पाप कैसे विनष्ट होगया ॥ ४३ ॥ तुम अपने पापजनित वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक श्रवण कराओ, जिससे कि, पीव आदिसे पूर्ण तुम्हारा ऐसा रूप होगयाहै ॥ ४४ ॥ ब्रह्मराक्षस बोला--सुनो प्रभो ! मैं अपना वृत्तान्त वर्णन करताहूं, प्रथम जन्ममें मैं वेदवेदांगपारगामी ब्राह्मणथा ॥ ४५ ॥ अतएव मैं बुढापेमें व्याजसे आजीविकाका संपादन करनेत्था क्रय विक्रय करनेसे मुझे बडा पाप प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ यथाशक्ति मैंने तीर्थोंमें स्नान किया किन्तु, उसी पापके कारण मेरे समस्त पुण्यका विनाश होगया ॥ ४७ ॥ और इसी पापके कारण जलमें डूबनेसे मेरा मरण हुआ, अतएव हे ब्राह्मणसत्तम ! मेरी यह दशा होगई है ॥ ४८ ॥ परन्तु हे महाभाग ! आप जैसे महात्माके दर्शन कर अब मेरी पांचास सहस्र वर्षकी दुर्गति नष्ट होगई है ॥ ४९ ॥ महादेवजी बोले--यों कहकर उसने राक्षसशरीरको त्यागकर तत्काल दिव्यदेह धारण करलिया, उसके हाथमें त्रिशूल और मस्तकके अ

मूलधृक् सोथ चंद्रार्द्धकृतशेखरः॥५०॥गतः कैलासनिलये पश्यतस्तस्य धीमतः ॥ ब्राह्मणोपि पराश्चर्य्यं दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ॥ ॥ ५१ ॥ आश्चर्य्यं परमं लेभे मुखसंन्यस्तस्वांगुलिः ॥ अहो तीर्थस्य महिमा यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ॥ ५२ ॥ चिंतयानस्तदर्थं वै स ययौ भवने स्वके ॥ उत्पाद्य बहुशः पुत्रान्कृत्वा भोगान्सुपुष्कलान् ॥ ५३ ॥ काले पंचत्वमापन्नो ब्रह्मसायुज्यमाप सः ॥ इति ते कथिता देवि कथेयं पापनाशिनी ॥ ५४ ॥ महिमा मध्यमेशस्य कथितस्ते मयाधुना ॥ मुक्तिं प्राप राक्षसो यद्यात्रिकस्य सुदर्शनात् ॥ ५५ ॥ धन्याः कलियुगे घोरे मध्यमेश्वरदर्शनात् ॥ राज्यं पुत्रानपि शिवे त्यज्य गच्छेन्महेश्वरम् ॥ ५६॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ॥ ४७ ॥

अर्द्धचन्द्र होगया ॥ ५० ॥ और उस बुद्धिमान्के देखते २ ही कैलासधामको चलागया इस परम अद्भुत वृत्तान्तके देखनेसे उस ब्राह्मणकोभी बड़ा आश्चर्य्य हुआ ॥ ५१ ॥ और यह ब्राह्मण अतिशय आश्चर्यको प्राप्तहो मुखमें अंगुली चबानेलगा, ओहो ! तीर्थकी ऐसी महिमाहै कि, जिससे इसकी ऐसी गति होगई ॥ ५२ ॥ उसीकी दशाकी चिन्ता करता २ वोह ब्राह्मण अपने घरको चलागया, और वहां प्रभूत भोगोंका उपभोग किया और बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ५३ ॥ समय पाय मृत्युको प्राप्त हुआ और उसे ब्रह्मकी सायुज्यताका लाभ हुआ, हे देवि ! इस प्रकार पापोंका नाश करनेवाली कथाका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ५४ ॥ और मध्यमेश्वरकी महिमाभी हमने तुम्हारे समक्ष वर्णनकर सुनाई, जहांकी यात्रा करनेवाले यात्रीके दर्शन करके राक्षसकोभी मुक्तिका लाभ होगया ॥ ५५ ॥ हे पार्वति ! उन पुरुषोंको धन्यहै जो कलियुगमें राज्य और पुत्रकोभी परित्याग करके मध्यमेश्वर महादेवके दर्शन करतेहैं ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

ईश्वर उवाच ॥ स्नानदानस्य माहात्म्यं कथ्यते शृणु सुंदरि ॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे सरस्वत्याश्च वैभवम् ॥ १ ॥ यस्या दर्शन-मात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ सरस्वत्यां नरः स्नातो न च भूयो-भिजायते ॥ २ ॥ यावत्यः कणिका देहे सरस्वत्या जलस्य वै ॥ देहे लग्ना दैवयोगात्तावत्कल्पं दिवं वसेत् ॥ ३ ॥ तस्माच्च्युतः कदाचित्तु पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥ धार्मिको मम भक्तश्च जायते मम वल्लभः ॥ ४ ॥ इतिहासं महादेवि पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ शृणु चित्तं समाधाय येन पापक्षयो भवेत ॥ ५ ॥ पुरात्रैव महा-रण्ये शंबुको नाम लुब्धकः ॥ चचार श्वयुतश्चैव मृगान्हंतुमित-स्ततः ॥ ६ ॥ केचिन्मृगा हतास्तेन शुना केचिन्महेश्वरि ॥ मृगा-णां राशयो जाता हतानां वै तथा वने ॥ ७ ॥ न वै व्याधस्य तृष्णा हि गता पूर्णमनोरथा ॥ दृष्ट्वा वै तान्मृगाँस्तत्र विचार-कृतवाँस्तथा ॥ ८ ॥ कांश्चिद्वै प्रेषयिष्यामि दुहित्रे शुभसंस्कृ-

महादेवजी बोले--हे सुन्दरि ! स्नान और दानका माहात्म्य वर्णन करतेहैं, उसे श्रवण करो, इसी महाक्षेत्रमें सरस्वती नदीका बड़ा प्रतापहै ॥ १ ॥ उस नदीके दर्शन कर-नेसे मनुष्य पापोंसे नष्ट होजाताहै, और जो पुरुष सरस्वतीनदीमें स्नान करताहै उसका फि-र जन्म नहीं होता अर्थात् उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ २ ॥ सरस्वती नदीके जितने जलबिन्दु मनुष्यके देहमें लगतेहैं, वोह पुरुष उतनेही कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करताहै ॥ ३ ॥ और जब स्वर्गसे निपतित होताहै तौ कभीतौ राजा, कभी धर्मात्मा और कभी मेरा प्रिय भक्त होताहै ॥ ४ ॥ हे महादेवि ! यह इतिहास निखिल पापोंका नाश करनेवाला और समस्त कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है, अतएव चित्तको एकाग्रकर इसका श्रवण करो जिससे कि पापोंका क्षय होजाय ॥ ५ ॥ प्रथम इसी अरण्यमें शम्बुक नाम एक व्याध श्वानको साथलिये मृगोंका वधकरनेको इधर उधर विचरताथा ॥ ६ ॥ हे महेश्वरि ! कुछ उसने और कुछ श्वानने मृगोंका वधकिया, अतएव मृत मृगोंका उस वनमें एक ढेर होगया ॥ ७ ॥ तथापि उस व्याधकी तृष्णा शान्त न हुई अतएव उन मृगोंको देख वोह वहां विचार करनेलगा ॥ ८ ॥ कि इन्हीं २ मृगोंको तौ भली प्रकार सम्हाल सुधारकर अपनी पुत्री

तान् ॥ अन्यच्चाकारणीयं वै विक्रीत्वा वसनादिकम् ॥ ९ ॥ नग्नास्तिष्ठंति मे पुत्रा दाराश्च दुहितास्तथा ॥ क्षुधिताश्च भविष्यंति कुटुंबे मम पुत्रकाः ॥ १० ॥ एते मृगा हता ये वै कथं कुरुत मे शयम् ॥ अन्यत्रापि मृगान्हत्वा तदा यास्यामि गेहकम् ॥११॥ इति तृष्णासमाविष्टश्चिंतयित्वा भृशं बहु ॥ मृगान्हंतुं ययौ देवि शुना तेन शुभस्थलम् ॥ १२ ॥ भाग्येनास्मिन्महाक्षेत्रे आययौ मृगयारतः ॥ तत्र दृष्टास्तदा तेन यात्रिका दर्शनागताः ॥ १३ ॥ दर्शनं कर्त्तुमुद्युक्ताश्चरंतश्च इतस्ततः ॥ कौतूहलसमाविष्टो ददर्श तत्र कौतुकम् ॥ १४ ॥ विहस्य सोपि देवेशि शुना सह ययौ नदीम् ॥ यात्रिकाचरितं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १५ ॥ सरस्वत्यास्तटे देवि स्नायमानान्ददर्श सः ॥ स्वयं चैवोपविष्टो हि प्रहस्य च शुभे तटे ॥ १६ ॥ तं श्वानं पातयामास सरस्वत्यंभसि प्रिये ॥ श्वा च शीतसमाविष्टो व्याधस्य निकटे गतः ॥ १७ ॥ अंगानि कंप-

निमित्त भेजूंगा, और औरोंको बेचकर वस्त्र आदि बनाऊंगा ॥ ९ ॥ हमारे क्या पुत्र, क्या स्त्रियें और क्या कन्या सभी नंगेहैं, कुटुम्बमें पुत्रादिक सभी भूके बैठे होंगे ॥ १० ॥ यह जो इतने मृग मैंने मारेहैं इनसे मेरे कार्यकी पूर्त्ति न होगी, अतएव अन्यत्र जाकेभी मैं बहुतसे मृगोंका वधकर अपने घर जाऊंगा ॥ ११ ॥ इस प्रकार तृष्णासे व्याकुलहो वहां उसने बहुत कुछ चिन्ताकरी, फिर अपने श्वानको साथले मृगोंका वध करनेके लिये शुभस्थलमें चलागया ॥ १२ ॥ मृगयामें निरतहो भाग्यवशात् वोह इसी महाक्षेत्रमें आया, और उसने यहां दर्शन करनेके लिये आये हुए बहुतसे यात्रियोंका दर्शन किया ॥ १३ ॥ वे यात्री दर्शन करनेके लिये वहां इधर उधर विचरते फिरतेथे, और कौतूहलसे व्याप्तहो उसने बहुतसे कौतुक देखे ॥ १४ ॥ हे देवेश्वरि ! वोहभी श्वानको साथले हँसता हुआ इसी नदीके तटपर आया और यात्रियोंके आचरणको देख उसके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ १५ ॥ और हे देवि ! सरस्वती नदीके तटपर स्नानकरते बहुतसे यात्रियोंको उसने देखा, और वोह स्वयमभी हँसकर उसके तटपर उपस्थित होगया ॥ १६ ॥ हे प्रिये ! उसने सरस्वती नदीके जलमें अपने श्वानको गिरादिया, और वोह श्वान शीतसे व्याकुलहो फिर व्याधाके निकट आया ॥ १७ ॥ और जलसे भीगे हुए अंगोंको उसने कंपित किया, हे शिवे ! वे जलके कण उछल २ कर उस

यामास ह्यंभसा संप्लुतानि हि ॥ उड्डीय वै जलकणा लग्नास्तद्देहके शिवे ॥ १८ ॥ इति तत्कर्म कृत्वा वै यथावच्चिंतितं पुरा ॥ एवमेव महाभागे पापकर्म करोति हि ॥ १९ ॥ एकदा समये देवि आयुषोंते निशीथके ॥ स श्वा पंचत्वमापन्नो मांसाजीर्णेन सुंदरि ॥ २० ॥ शुनो वै मोहसंपन्नो व्याधो शंबुकनामकः ॥ तत्रैव स्थितवान्यत्र म्रियमाणो हि कुक्कुरः ॥ २१ ॥ तस्यैव पश्यतो देवि प्राणास्त्यक्त्वा कलेवरम् ॥ वहिर्गता मुखात्तस्य गदाविष्टस्य पार्वति ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र कैलासाच्छिवदूतकाः ॥ आगताः सुविमानं हि गृहीत्वा मुदितास्ततः ॥ २३ ॥ नानाप्सरस्समायुक्ता गंधर्वा रावनादिताः ॥ ददर्श ताञ्छंबुकोपि जलबिंदुसुवैभवात् ॥ २४ ॥ शुनोंगेभ्यः परोद्भूता लग्ना ये जलबिंदवः ॥ स्पर्शप्रभावतो देवि पापं तस्य क्षयं गतम् ॥ २५ ॥ ददर्श च तदाश्चर्य्यं नीयमानं विमानके ॥ शिवदूतैर्महाभागे श्वानं दिव्यवपुःस्थितम् ॥२६॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मोपशोभितम् ॥

व्याधके ऊपर पड़े ॥ १८ ॥ इस प्रकार कर्मकरके उसने यथावत् चिन्ताकरी, हे महाभागे! इसी प्रकारसे वोह व्याधा पापकर्मोंका आचरण करने लगा ॥ १९ ॥ हे देवि ! एक समय आयुका अन्त आजानेपर अर्द्ध रात्रके समय अधिक मांस भक्षण करनेसे अजीर्ण होजानेके कारण वोह श्वान मृतक होगया ॥ २० ॥ उक्त श्वानके मोहसे विह्वलहो वोह शंबुकनाम व्याधभी उसी स्थानमें बैठारहा जहां मृतक हुआ श्वान पडाथा ॥ २१ ॥ हे देवि ! उस व्याधके देखते २ ही रोगी श्वानके प्राण उसके शरीरका परित्याग करके मुखद्वारा बाहर निकलगये ॥ २२ ॥ इसी अवसरपर महादेवजीके दूत बड़े प्रसन्न होते हुए सुन्दर विमानको लिये वहां आय उपस्थित हुए ॥ २३ ॥ उनके साथ अनेक अप्सराएँ विद्यमानथीं, गन्धर्वोंके शब्द होरहेथे, पूर्वोक्त जलकणकी महिमाके कारण इन सबको उस शंबुक व्याधनेभी अवलोकन किया ॥ २४ ॥ हे देवि ! श्वानके अंगसें उड़ २ कर जो जलबिन्दु उक्त व्याधके अंगमें लगींथी उन्हींके स्पर्श होनेके प्रभावसे उसका पाप क्षय होगया ॥ २५ ॥ अतएव उसको इस आश्चर्य्यके दर्शन हुए कि, दिव्य देहधारी श्वानको महादेवजीके दूत विमानमें बैठाये हुए लिये जातेहैं ॥ २६ ॥ उस श्वानने त्रिशूल और पट्टिशको धारण कियाहै, व्याघ्रचर्मके

त्रिनेत्रं चंद्रशिखरं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥२७॥ चिंतयामास बहुशः किमेतदिति वै पुनः ॥ स्वप्नोऽथवा कथं मेद्य जाग्रतः किं तथा भ्रमः ॥ २८ ॥ तिर्यग्योनिगतः श्वा वै कथमेतादृशीं गतिम् ॥ गतः केन विपाकेन समतां निर्जरैरिव ॥ २९ ॥ इदं वै कारणं कोऽद्य वदिष्यति मम प्रभो ॥ इति चिंतासमाविष्टो व्याधस्त्यक्त्वा गृहं स्वकम् ॥ ३० ॥ तमेवार्थमभिज्ञातुं गतो वै निर्जने वने ॥ तथा निर्वेदमापन्नो दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् ॥ जीर्णदेवालयेरण्ये स्थितो नियमपूर्वकम् ॥ ३१ ॥ यदा मे कोपि तं हेतुं कथयिष्यति वै प्रभुः ॥ भक्षयिष्ये तदा किंचिन्नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ३२ ॥ प्रातिज्ञाय महाव्याध इति तत्र स्थितो वने ॥ एवं तस्य महाभागे वने तस्मिन्भयानके ॥ वसतो हि गतं देवि दिनानां पंचकं तथा ॥३३॥ ततः षष्ठ्यां निशि स्वप्ने कश्चिदागत्य यात्रिकः ॥ योगी कार्पटिकाकल्पो ह्युवाच पुण्यकारणम् ॥ ३४ ॥

धारण करनेसे उसकी शोभा वृद्धिंगत हो रहीहै, उसके तीन नेत्र और मस्तकपर अर्द्धचन्द्रहै उसका ऐसा स्वरूप देख व्याधा परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ बारंवार बहुत प्रकारसे वोह यहभी चिन्ता करने लगा कि, यह क्या हुआ ? और जाग्रत अवस्थामें मुझे स्वप्न तौ होक्या सक्ताहै अतएव मैं समझताहूं कि, यह भ्रमहै ॥ २८ ॥ पशुयोनिमें उत्पन्न हुआ यह श्वान ऐसी उत्तम गतिको किस प्रकार प्राप्तहोगया अथ च कौनसा कर्म करनेसे इसने देवताओंकी समता लाभ कीहै ॥ २९ ॥ हे ईश्वर ! इसका कारण मुझे कौन बतावेगा ? ऐसी चिन्तामें व्यग्र होकर वोह व्याध अपने घरका परित्याग करके ॥ ३० ॥ इसी बातके जाननेकी कामनासे व्याधने निर्जनवनमें प्रस्थान किया, और उक्त परम अद्भुत आश्चर्य्यको देख व्याकुलताको प्राप्त हुआ वोह व्याध एक जीर्ण (पुराने) देवमन्दिरमें नियम धारण पूर्वक उपस्थित होगया ॥ ३१ ॥ यदि कोई प्रभु मुझसे उसका हेतु कहसुनावेगा तभी मैं कुछ भोजन करूंगा, अन्यथा प्राणोंका परित्याग करदूंगा ॥ ३२ ॥ वोह महाव्याधा ऐसी प्रतिज्ञा करके उस निर्जनवनमें स्थित होगया, हे महाभागे ! निर्जन भयानक वनमें उसे निवास करते २ हे देवि ! पांच दिन व्यतीत होगये ॥३३॥ इसके अनन्तर छठी रात्रिमें कोई योगी यात्री भेषको धारणकिये स्वप्नमें आया और उस आश्चर्य्यका कारण उससे कहने लगा ॥ ३४ ॥

रेरे व्याध गतं पापं ते चापि सांप्रतं शुचिः ॥ कथं त्वया विस्मृतं हि कारितं च त्वयैव हि ॥ ३५ ॥ पुरा गतोसि मृगयां मध्यमेश्वरपीठके ॥ एतेन च शुना साकं त्वया दृष्टाश्च यात्रिका ॥३६॥स्नायमानाः सरस्वत्यां नरा दृष्टास्त्वया ततः ॥ विहस्य च ततः क्षिप्रं सरस्वत्यंभसि स्थले ॥३७॥ अभक्त्यापि च तस्यां वै निष्कामेनापि मज्जितम् ॥ तिर्यग्योनिगतस्यापि शुनः पापं गतं किल ॥ ३८ ॥ दर्शनान्मध्यमेशस्य प्रसंगेनापि शंबुक ॥ गतिमेतादृशीं प्राप्तो दुर्लभां योगिनामपि ॥ ३९ ॥ इति ते कथितं व्याध शुनो वै गतिकारणम् ॥ प्रसंगेन त्वया तत्र मध्यमेश्वर दर्शनम् ॥ कृतं तेन त्वयाप्यद्य सर्वपापक्षयः कृतः ॥४०॥ गच्छ तत्रैव भो व्याध मध्यमेश्वरपीठके ॥ इति तत्कथ्यमानस्य रात्रिर्जाताऽमला वने ॥ ४१॥ प्रबुद्धः शंबुकस्तूर्णं स्वप्नं तज्ज्ञातवान्प्रिये ॥ आश्चर्य्यं परमं लेभे स्मृत्वा तच्चरितं शुभम् ॥ ४२ ॥ संत्यक्तसर्वकर्मा वै गतो मध्येश्वरस्थले ॥ ततो गत्वा शिवस्यादौ

अरे व्याधा ! तेरा पाप नष्ट होगया अतएव तूभी संप्रति पवित्र होगयाहै, क्या भूलगया ? यह सब तेरे द्वाराही तो कियागयाथा ॥ ३५ ॥ पहिले आखेटके तईं तू मध्यमेश्वरक्षेत्रमें गया था तब यह श्वानभी तेरे साथ था, और तुमने बहुतसे यात्रियोंके दर्शन किये थे ॥ ३६ ॥ और तभी सरस्वती नदीमें स्नान करते बहुतसे मनुष्योंको तुमनें देखा तब हँसकर सरस्वतीके जलमें ॥ ३७ ॥ (व्याधाने श्वानको फेंकादिया) यद्यपि उसकी रुचि स्नान करनेकी नहींथी और न भक्तिहीथी, तथापि उसने सरस्वतीमें स्नान किया, अतएव तिर्यग्योनिमें प्राप्त हुएभी श्वानके पापोंका सचमुच विनाश होगया ॥ ३८ ॥ हे शम्बुक मध्यमेश्वरके दर्शनकरने और उनका प्रसंग करनेसे श्वानको ऐसी उत्तमगतिका लाभ हुआ जो योगियोंकोभी दुर्लभहै ॥ ३९ ॥ हे व्याध ! श्वानको उत्तमगति प्राप्त होनेका कारण यह सो हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, प्रसंगवशात् तुमनेभी वहां मध्यमेश्वरके दर्शन किये अतएव तुम्हारेभी समस्त पापोंका क्षय होगया ॥ ४० ॥ सो हे व्याध ! अब तुम वहीं मध्यमेश्वर क्षेत्रमें जाओ, वनमें इस प्रकार कथोपकथन करते २ रात्री व्यतीत होगई ॥४१॥ हे प्रिये ! जब शंबुक जागा तब उसने जाना कि, यह स्वप्नहै, और उस अद्भुत चरित्रको स्मरण करके इसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ ॥ ४२ ॥ समस्त कर्मोंका परित्याग करके वोह मध्य

पूजनं च कृतं ततः ॥४३॥ ततः सर्वेषु तीर्थेषु स्नातं तेन महेश्वरि ॥ सरस्वत्यां तथा स्नात्वा उपोष्य च दिनत्रयम् ॥ प्राणांस्तत्याज तत्रैव शिवसायुज्यमाप सः ॥४४॥ इति ते कथिता देवि व्युष्टिर्वै मध्यमेश्वरे ॥ स्नानस्य दर्शनस्यापि पूजनस्य मया तव ॥ ॥ ४५ ॥ य एतत्परमाख्यानं शृणोति श्रद्धयान्वितः ॥ पठेच्चापि सतां मध्ये शिवलोके महीयते ॥ ४६ ॥ स्नानं तैः सर्वतीर्थेषु दत्ता तैः सकला मही ॥ यैरत्र हि महापीठे स्नानं दानं जपः कृतः ॥ ४७ ॥ माषमात्रमपि यत्र सुवर्णं दत्तमस्ति वै ॥ न स जन्म सहस्रेषु दारिद्र्येण प्रपीड्यते ॥ ४८ ॥ पिंडदानस्य माहात्म्यं पितृणामत्र पार्वति ॥ शृणु पापहरं पुण्यं तथा वै जलदानतः ॥ ॥ ४९ ॥ शतवंश्याः पराः पूर्वे शतवंश्या महेश्वरि ॥ मातृवंश्याः शतं चैव तथा श्वशुरवंशकाः ॥५०॥ तारिताः पितरस्तेन घोरात्संसारसागरात् ॥ यैरत्र पिंडदानाद्याः क्रिया देवि कृताः

मेश्वर क्षेत्रमें चलागया और वहां जाकर उसने सबसे प्रथम शिवका पूजन किया ॥ ४३ ॥ हे महेश्वरि ! फिर उसने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया, और तीन दिन पर्यन्त उपवास धारण पूर्वक इसने सरस्वतीमेंभी स्नान किया, और वहांही प्राण परित्याग करके महादेवजीके सायुज्य का लाभ किया ॥ ४४ ॥ हे देवि ! मध्यमेश्वरकी और वहां स्नान दान तथा पूजन करनेकी महिमा हमने तुम्हारेप्रति वर्णन कीहै ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य इस परम आख्यानको भक्तिभाव पूर्वक सज्जनसमाजमें सुने अथवा पढ़ेगा, उसे शिवलोकमें शैव ऐश्वर्यका उपभोग प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ जिनव्यक्तियोंने मध्यमेश्वर महापीठमें स्नान, दान या जप कियाहै मानो उन्होंने सबतीर्थोंमें स्नान किया और सम्पूर्ण भूमिका दान कियाहै ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति उक्त क्षेत्रमें एक मासेभरभी सुवर्णका दान करतेहैं, उन्हें सहस्रों जन्म पर्यन्त दारिद्र्यजनित पीड़ा नहीं होती ॥ ४८ ॥ हे पार्वति ! पितरोंके निमित्त इस क्षेत्रमें पिण्डदान करनेका जो पवित्र अतएव पापोंका नाश करनेवाला माहात्म्यहै उसे तथा जलदान करनेसे उत्पन्न हुए पुण्यको भी श्रवण करो ॥ ४९ ॥ हे महेश्वरि ! अपने वंशकी सौ पीढी पहिली और सौ आगेकी, एवं च सौ मातृवंशज व्यक्ति और सौ ही श्वशुर कुलके पुरुष ॥ ५० ॥ इन सब पितरोंको उसने घोर संसारसागरसे तारदिया जिसने कि, पिण्डदान आदि क्रिया

प्रिये ॥ ५१ ॥ मध्यमेश्वरमाहात्म्यं सोपाख्यानं मया तव ॥ सर्व-पापहरं पुण्यं कथितं शिवभक्तिदम् ॥ ५२ ॥ लोकानां प्रियका-मार्थं पृष्टोहं च त्वया तु यत ॥ प्रियासि मम सुश्रोणि धर्मका-मासि पार्वति ॥५३॥ मध्यमेश्वरमाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ॥ भक्तितोऽभक्तितो वापि शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ इति श्री स्कांदे केदारखंडे मध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टचत्वारिं-शोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस क्षेत्रमें करीहै ॥ ५१ ॥ हे सुमुखि ! समस्त पापोंका हरनेवाला पवित्र और जिसके श्रवण करनेसे महादेवकी भक्तिका लाभ हो ऐसा यह उपाख्यानसहित मध्यमेश्वरका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ५२ ॥ क्योंकि, समस्त लोकोंके हितकी कामनासे तुमने हमसे इसे पूछाथा, और हे पार्वति ! हे सुन्दर नितंबवती ! तुम हमारी प्रिय और धर्ममें रुचि रखनेवालीहो ॥ ५३ ॥ मध्यमेश्वरके माहात्म्यको जो व्यक्ति भक्ति अथवा विना ही भक्तिके पढता या श्रवण करताहै, उसे शिवलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ऊनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

ईश्वर उवाच ॥ तुंगेश्वरं महाक्षेत्रं कथ्यमानं मया शृणु ॥ यच्छ्रु-त्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ यानि तीर्थानि संत्यत्र शिवभक्तिप्रदानि वै ॥ शृणु तान्यपि देवेशि समासेन हि पार्वति ॥ २ ॥ मांधातृक्षेत्रतो याम्ये योजनद्वयविस्तृतम् ॥ द्वियोजनसमायातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥ तुंगनाथं शुभ-क्षेत्रे पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ तद्दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो विमुक्तो लभते

महादेवजी बोले--अब हम तुङ्गेश्वर महाक्षेत्रका वर्णन करतेहैं, उसे सुनो, उसका श्रवण करनेसे प्राणी निःसन्देह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १ ॥ शिवकी भक्ति प्रदान करनेवाले अन्य जितने क्षेत्र यहां हैं, हे पार्वतीदेवि ! अब संक्षेपसे उनका वर्णन सुनो ॥ २ ॥ मान्धाताके क्षेत्रसे दक्षिणकी ओर दो योजन चौडा और दो योजन लंबा, संपूर्ण कामनाओंका पूर्ण करनेवाला ॥ ३ ॥ तुङ्गनाथ नामका एक शुभ क्षेत्रहै, यह क्षेत्र संपूर्ण पापोंका नाशक

शिवम् ॥ ४ ॥ भैरवं प्रथमं नत्वा सर्वकामार्थसिद्धये ॥ संविशे-न्मम देवेशि क्षेत्रे पुण्यजनान्विते ॥ ५ ॥ संपूज्य मम लिंगं वै तुंगनाथाख्यनामकम् ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु नास्ति तस्य महा-त्मनः ॥ ६ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः संबद्धांजलयः सदा ॥ संस्तु-वंति महात्मानं देवदेवं महेश्वरम् ॥ ७ ॥ जलमात्रं प्रिये देवि मम लिंगे प्रयच्छति ॥ यावंत्यः कणिकास्तत्र जलस्य लिंगकोपरि ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ८ ॥ यो बिल्वपत्रमादाय पूजयेत्तेन वै शिवम् ॥ कल्पमात्रं वसेच्चैव लोके मम महेश्वरि ॥ ९ ॥ अक्षता मम लिंगे वै धृता यावंत एव हि ॥ तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठति ॥ १० ॥ पुष्पा-णि चैव यावंति न्यस्तानि मम चोपरी ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गभाग् जायते नरः ॥ ११ ॥ धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान् ॥ नैवेद्यं विविधं यो वै अर्पयेन्मम भ-क्तितः ॥ कदर्य्यान्नं न वै भुंक्ते तथा जन्मसहस्रकम् ॥ १२ ॥

और अखिल कामनाओंका पूर्ण करनेवालाहै, अतएव उसके दर्शन करके प्राणी समस्त पापोंसे मुक्त हो कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ संपूर्णकामनाओं और अर्थोंकी सिद्धिके लिये प्रथम भैरवको प्रणाम कर हे देवेश्वरि ! पुण्यात्माओंसे व्याप्त हुए हमारे क्षेत्रमें प्रवेश करै ॥ ५ ॥ तुङ्गनाथनामवाले हमारे लिंगकी पूजा करके उस महात्माको त्रिलोकीमें कुछभी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ६ ॥ वहां ब्रह्माआदि देवता अंजली बांध देवाधिदेव महात्मा महादेवकी स्तुति करते रहतेहैं ॥ ७ ॥ हे प्रेयसिदेवि ! जो मनुष्य हमारे लिंगके ऊपर जलमात्रभी प्रदान करताहै, उस जलके जितने बिन्दु निपतित होतेहैं वोह व्यक्ति उतनेही सहस्रवर्षपर्यन्त शिव लोकमें विराजमान रहताहै ॥ ८ ॥ और जो व्यक्ति बिल्वपत्रद्वारा शिवकी अर्चा करताहै हे महेश्वरि ! वोह पुरुष कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करताहै ॥ ९ ॥ और जितने अक्षत मेरे लिंगके ऊपर कोई चढाताहै, उतनेही सहस्रवर्षपर्यन्त वोह हमारे लोकमें स्थित रह ताहै ॥ १० ॥ और हमारे ऊपर जितने पुष्प कोई चढाताहै, उतनेही सहस्र वर्षपर्यन्त वोह पुरुष स्वर्गलोकमें निवास करताहै ॥ ११ ॥ धूप दीप देनेवाला पुरुष नरकयातनाको कभी नहीं देखताहै, और जो पुरुष भक्तिभावपूर्वक विविध प्रकारका नैवेद्य, हमारे अर्पण करताहै ॥ उसे सहस्रों जन्म पर्यन्त निन्दित अन्न प्राप्त नहीं होताहै ॥ १२ ॥

दक्षिणां मम यो दद्यात् संपूज्य भक्तितत्परः ॥ न दारिद्र्यमवाप्नोति नरो जन्मसहस्रकम् ॥ १३ ॥ इति पूजाफलं प्रोक्तं प्रत्येकं तव भामिनि ॥ येन पूजा कृता तुंगे विधिवद्भक्तितः शिवे ॥ कल्पकोटिवसेच्चैव लोके मम महेश्वरि ॥ १४ ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्या प्राणांस्त्यजति तुंगके ॥ यावद्दिनानि तत्क्षेत्रे कीकसानि भवंति हि ॥ तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते॥१५॥ एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ यस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यादगम्यागमने रतः ॥ १६ ॥ कश्चिद्द्विजाधमः प्राप गतिं योगिसुदुर्लभाम् ॥ एतत्क्षेत्रस्य समतां न यांति कानिचिद्भुवि ॥ १७ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथं प्राप महादेव गतिं परमिकां द्विजः ॥ कथं तेन कृतं पापमगम्यागमनं प्रभो ॥ १८ ॥ कथमस्मिन्महाक्षेत्रे संपर्कस्तस्य चाभवत् ॥ एतत्सर्वं समासेन कथयस्व महेश्वर॥१९॥ ईश्वर उवाच॥ शृणु देवि पुरा वृत्तं समासात्कथयामि ते ॥ धर्मदत्त इति ख्यातो ब्राह्मणो ब्रह्मपारगः ॥२०॥

जो व्यक्ति भक्तिमें तत्पर हो हमारी प्रदक्षिणा करताहै, वोह पुरुष सहस्रों जन्म पर्यन्त दरिद्री नहीं होता ॥ १३ ॥ हे भामिनी ! इस प्रकार प्रत्येककी पूजाका फल हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, हे सौभाग्यवति हे महेश्वरि ! विधिवत् तुंगेश्वरकी पूजा करनेवाला करोड कल्प पर्य्यन्त हमारे शिवलोकमें निवास करताहै ॥ १४ ॥ और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक तुंगेश्वरक्षेत्रमें प्राणोंका परित्याग करताहै, जबतक उस क्षेत्रमें उक्त यात्रीकी अस्थियें विद्यमान रहतीहैं उतनेही सहस्र युगपर्यन्त वोह शिवलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करताहै ॥ १५ ॥ इस क्षेत्रके माहात्म्य वर्णन करनेकी किसकी शक्तिहै, इस क्षेत्रके माहात्म्यसे तौ अगम्यागमनमें निरत हुए ॥ १६ ॥ किसी नीच ब्राह्मणकोभी उत्तम गतिका लाभ हुआथा, इस क्षेत्रकी समताके भूमिके ऊपर कोई भी तीर्थ प्राप्त नहीं होसक्तेहैं ॥ १७ ॥ पार्वती बोली–हे महादेव ! उस द्विजको किस प्रकार उत्तम गतिका लाभ हुआ ? और हे प्रभो ! उसने अगम्यागमनका पाप किस प्रकार किया ॥ १८ ॥ फिर इस महाक्षेत्रमें उसका संपर्क किस प्रकार हुआ, हे महेश्वर ! यह सब वृत्तान्त संक्षेपरीतिसे वर्णन करिये ॥ १९ ॥ महादेवजी बोले–सुनो पार्वति पहिले जो वृत्तान्त हो चुकाहै उसे संक्षेपसे मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं, एक ब्राह्मण वेदा

तस्य पुत्रो बभूवाथ कर्म्मशर्म्मेति नामतः ॥ पित्राऽध्ययन-युक्तोपि न पपाठ सरस्वतीम् ॥ २१ ॥ बाल्ये वयसि दुर्वृत्तो बभूवैव स दुर्म्मतिः ॥ द्यूतकर्मरतो नित्यमभक्ष्यभक्षणे रतः ॥ २२ ॥ विटानां मध्यगो नित्यं बभूव स दुरासदः ॥ कालेन वयमापन्नो यौवनं च महेश्वरि ॥२३॥ सर्वकर्मविहीनोसौ द्विजो वै ज्ञानदुर्बलः ॥ न स वेत्ति सुकर्माणि कुकर्माणि महेश्वरि ॥२४॥ एकदा तस्य भगिनी रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ बिंबाधरी सुकेशी च तनुमध्या मनोहरा ॥ २५ ॥ पूर्णचंद्रमुखी बाला नेत्राभ्यां जितखंजना ॥ सापि दुर्वृत्तशीलाभूत् कुलटासंगगामिनी ॥२६॥ कालेन निधनं प्राप्तो धर्मदत्तोऽपि दुःखितः ॥ निजेच्छया कर्म-शर्मा सर्वं पित्रार्जितं वसु ॥ दुष्टव्ययेन सर्वं हि व्ययं नीतं दुरात्मना ॥ २७ ॥ शस्त्रवृत्तिर्बभूवाथ किंकराणां च किंकरः ॥ गतो देशांतरे देवि परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥ २८ ॥ सापि वेश्या बभूवाथ वेश्यानां संगमे रता ॥ सापि वै दैवयोगेन गता केन

पारगामी धर्मदत्त नामसे विख्यात था ॥ २० ॥ उसके पुत्रका कर्मशर्मा नामथा, यद्यपि उसके पिताने बहुतेरा उद्योग किया पर उसने विद्या न पढी ॥ २१ ॥ किन्तु वोह मन्दमति बचपनहीसे अतिशय दुराचारीथा अथ च द्यूतकर्ममें निरत और अभक्ष्य भक्षण करताथा ॥ ॥ २२ ॥ एवं च वोह दुराचारी नित्यही धूर्त्तोंके संगमें निरत रहता था, हे महेश्वरि ! समय पाय वोह युवा होगया ॥ २३ ॥ यह द्विज सम्पूर्ण शुभकर्मोंसे राहित अज्ञानी कुकर्म सुकर्म कुछ भी नहीं जानताथा ॥ २४ ॥ उसकी एक बहिनथी जिसका रूप भूमीके ऊपर अनुपमथा, उसके ओष्ठ कंदूरीसे लाल, केश सुन्दर, मध्यभाग क्षीण और आकृति मनोहरथी ॥ २५ ॥ उस बालाके नेत्रोंकी चपलताने खंजनकाभी विजय करलिया, एवं च उसका मुख पूर्ण चन्द्रमाकी समान सुन्दर था, कुलटा (व्यभिचारिणी) ओंके संगमें रहकर वोहभी दुराचारिणी होगई॥ ॥ २६ ॥ वोह धर्मदत्त दुखिया समय पाय मरणको प्राप्त हुआ, और पिताके उपार्जनकिये समस्त धनको दुष्ट कर्मशर्माने अपनी इच्छाके अनुसार बुरे कामोंमें सब खर्च करडाला ॥ ॥ २७ ॥ और शस्त्रके द्वारा अपनी आजीविका (निर्वाह) करके सेवकोंकाभी सेवक बनगया और जब उसके बन्धुबान्धवोंने परित्याग करदिया तब निकलके परदेश चलागया ॥ २८ ॥ और इसकी बहिन वेश्याओंके संगतमें निरतहो स्वयंभी वेश्या होगई, और दैवयोगसे किसी

सह काचित् ॥ २९ ॥ देशान्तरे महादेवि कुकर्म्मनिरताऽसती ॥ धर्मोऽधर्मविवेकं सा न जानाति महेश्वरि ॥ ३० ॥ भगभाग्यगतातीव पुंश्चलीनां च मुख्यका ॥ कदाचिद्दैवयोगेन बहुकालेन सुंदरि ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नेव पुरे प्राप्ता यत्रासौ कर्मशर्म्मकः ॥ तया सोपि महादेवि रेमे वेश्यामतिस्तदा ॥ ३२ ॥ एवं तौ बहुकालं वै रमंतौ मोहसंवृतौ ॥ दस्युधर्म्ममनुप्राप्तौ नष्टसंज्ञौ यथा पशू ॥ ३३ ॥ कालेन निधनं प्राप्तः कर्म्मशर्मा महेश्वरि ॥ अरण्ये निर्ज्जने देशे व्याघ्रेण निहतो निशि ॥ ३४ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवि यमदूताः समागताः ॥ पाशखड्गधरास्तत्र कुंताग्रन्यस्तदेहिनः ॥३५॥ तस्मिन्नेव क्षणे देवि कश्चिदागत्य वायसः ॥ कुणपं तु समानेतुं क्षुधितो हृष्टमानसः ॥ ३६ ॥ किंचिदस्थि समानीय चंच्वग्रे गिरिकन्यके ॥ ययौ कैलासनिलये दैवयोगेन तुंगके ॥ ३७ ॥ अस्थिस्थं मांसमादाय भक्षयित्वा तु वायसः ॥

के साथ चली गई ॥ २९ ॥ हे महादेवि ! देशान्तरमें जाय कुकर्म करने लगी और उस दुष्टाको धर्म अधर्मका कुछभी ज्ञान न रहा ॥ ३० ॥ उसका व्यभिचार अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ अतएव सब व्यभिचारिणियोंमें वोह मुख्य समझी जानेलगी, हे सुन्दरि ! कदाचित् बहुत समय बीतजानेपर दैवयोगसे ॥ ३१ ॥ वोह कर्मशर्माभी उसी नगरमें आगया जहां कि, यह रहतीथी, हे महादेवि ! इसे वेश्या समझकर इसनेभी उसके साथ रमणकिया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वे दोनों अज्ञानावृतहो परस्पर चिरकालपर्यन्त रमण करते रहे, फिर ज्ञानहीन पशुओंकी समान दस्युकर्म करनेमें प्रवृत्त होगये ॥ ३३ ॥ हे महेश्वरि ! समय पाय कर्मशर्माकी मृत्यु होगई, निर्जनवनमें अर्द्धरात्रके समय व्याघ्रने उसका वध करडाला ॥ ३४ ॥ हे देवि ! उसी समय फांसी और खड्ग धारण किये, भालोंमें प्राणियोंको लटकाये हुए यमदूत वहां आनके उपस्थित होगये ॥ ३५ ॥ हे देवि ! इतनेहीमें कोई काक जो मारे क्षुधाके अतिशय दुःखित होरहाथा इसका मांस लेनेकी कामनासे मनमें प्रसन्नहो वहां आया ॥ ३६ ॥ हे गिरिराजकुमारी ! वोह वायस एक अस्थिखण्डको चोंचमें लेकर दैवयोगसे कैलासधाममें तुंगक्षेत्रमें चलागया ॥ ३७ ॥ उक्त अस्थिखण्डमें लगे हुए

तत्याज तत्प्रदेशे हि तुंगनाथसमीपके ॥३८॥ अथ तत्र कीकसे तु पतिते मम क्षेत्रके ॥ तस्य तत्पातकं सर्वं क्षयं यातं तदैव हि ॥ ३९॥ निःपापं तं समानेतुं मम दूता गतास्ततः ॥ नंदीभृंग्यादयो देवि ये मम प्रीतिकारकाः॥४०॥नीयमानं यमभटैः स्पर्श्यमानं तथैव च ॥ मोचयित्वा तु तं शीघ्रं निवार्य्य यमकिंकरान् ॥ ४१ ॥ कैलासनिलयं प्राप्ताः सहैतेन महात्मना ॥ बहुवर्षसहस्राणि स्थित्वा वै मम सन्निधौ ॥४२॥ कालेन च पुनर्जातो धर्मवान्पृथिवीपतिः ॥ इति ते कथितं देवि तुंगक्षेत्रस्य वैभवम् ॥४३॥ अस्थ्नो वै पातमात्रेण यत्र प्राप्तः परां गतिम् ॥ तुङ्गक्षेत्रस्य द्रष्टार एकवारेपि ये नराः ॥ मृताः क्वचित्प्रदेशेपि प्राप्नुयुः परमां गतिम् ॥ ४४ ॥इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे तुंगेश्वरमाहात्म्यं नामोनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

मांसको भक्षणकर वायसने तुंगनाथके समीप उसी प्रदेशमें अस्थिखण्डका परित्याग करादिया ॥ ३८ ॥ अब तौ हमारे उक्तक्षेत्रमें अस्थिके निपतित होतेही तत्काल उसका समस्त पातक नाशको प्राप्त होगया ॥ ३९ ॥ जब कि वोह निष्पाप होगया तौ उसे लेनेके लिये मेरे वे दूत आये जो हे देवि ! नन्दी भृंगी आदि हमारे प्रीतिकर्त्ताहैं ॥ ४० ॥ उसको पकड़कर यमराजके दूत लिये जातेथे इन्होंने जाय यमदूतोंसे उसे मुक्त करा लिया॥४१॥ और वे इस महात्माको साथ लिये कैलासधाममें उपस्थित हुए, और बहुतसे सहस्रोंवर्ष पर्यन्त उन्होंने मेरे निकट निवास किया ॥ ४२ ॥ और समय पाय वोह धर्मचारी राजा हुआ, हे देवि ! तुंगक्षेत्रका ऐसा माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ४३ ॥ जहां केवल अस्थिमात्र निपतित होनेसे पापीको परमगतिका लाभ हुआ, जो मनुष्य एकवारभी तुंगक्षेत्रका दर्शन करतेहैं; फिर उनकी मृत्यु चाहें जिस स्थानमें हो परन्तु उन्हें अवश्य सद्गतिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां ऊनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पंचाशोऽध्यायः ५०.

ईश्वर उवाच ॥ आकाशगंगामाहात्म्यं कथयामि समासतः॥
तत्रत्यानां च तीर्थानां शृणु देवि यथातथम् ॥ १ ॥ यः कश्चि-
न्मानवो देवि पितॄन्संतर्पयेत् प्रिये ॥ तीरे आकाशगंगायाः
पितरस्तस्य सुंदरि ॥ २ ॥ दश पूर्वा दश परे मातृवंश्यास्तथैव
च ॥ शिवलोके महीयंते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥ पिंडदानं च
यो मर्त्यस्तीर्थे आकाशगंगके ॥ पितरः कृतकृत्याः स्युस्तेन पु-
त्रेण सुंदरि ॥ ४ ॥ त्रुटिमात्रं च यो दद्यात्कांचनं वै द्विजातये॥
दशभारसुवर्णानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ५ ॥ वितस्तिमात्रां
पृथिवीं यो दद्यादत्र तीर्थके ॥ दशग्रामसहस्राणां दानस्य प्राप्नुया-
त्फलम् ॥ ६ ॥ धन्योसौ त्रिषु लोकेषु यो दद्यात्कपिलां
प्रिये ॥ यावत्तदंगरोमाणि तावत्कल्पं दिवं वसेत् ॥ ७ ॥ यस्या
जलकणेनापि देहलग्नेन सुन्दरि ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो मज्जना-
त्किमु पार्वति ॥८॥ तुंगोच्चशिखरे यस्तु त्रिरुपोष्य च तिष्ठति॥

महादेवजी बोले—अब संक्षेपरीतिसे आकाशगंगाका माहात्म्य वर्णन करतेहैं, और तत्रत्य तीर्थोंकाभी माहात्म्य ठीक २ वर्णन किया जाताहै, हे देवि ! उसे श्रवण करो ॥ १॥ हे प्रिये देवि ! जो मनुष्य आकाशगंगाके तीरपर पितरोंके निमित्त तर्पण करताहै, हे सुन्दरि ! उसके दश पहिले और दश अगले, एवम् इसीप्रकार माताके वंशके पितर प्रलय कालपर्य्यन्त शिवलोकमें सुखपूर्वक निवास करतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ आकाशगंगासंज्ञक तीर्थमें जो पुरुष पितरोंके निमित्त पिण्डदान करताहै, हे सुन्दरि ! उस पुत्रके प्रादुर्भूत होनेसे पितृगण कृतकृत्य होजातेहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष इस क्षेत्रमें कणिकामात्रभी सुवर्णदान करके ब्राह्मणको देताहै, उस मनुष्यको दशभार सुवर्ण दानकरनेका फल उपलब्ध होताहै ॥ ५ ॥ जो नर इस तीर्थमें एकबालिस्त भूमि दान करदेताहै, उसे दशग्राम दानकरनेका फल उपलब्ध होताहै ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! जो पुरुष इस क्षेत्रमें कपिला गौका दान करताहै, त्रिलोकीमें उसीके अहो भाग्यहैं उस गौके अंगमें जितने रोमहैं उतनेही कल्पपर्य्यन्त वोह स्वर्गलोकमें निवास करताहै ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! आकाशगंगाके जलबिन्दुभी देहमें संलग्न होनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै, हे पार्वति ! स्नान करनेसे तो कहनाही क्याहै ॥ ८ ॥ जो पुरुष तीन दिन पर्य्यन्त उपवास

प्राणांस्त्यजति देवेशि शिवो भवति निश्चितम् ॥ ९ ॥ शिवस्य पश्चिमे पार्श्वे स्फाटिकं लिंगमुत्तमम् ॥ लिंगस्य दक्षिणे पार्श्वे तीर्थं गारुडनामकम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या वैकुंठनिलये वसेत् ॥ १० ॥ ततः क्रोशचतुर्थांशे पश्चिमस्यां दिशि प्रिये ॥ नाम्ना मानसरो नाम कमलैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥ लभते शिव-गेहं वै तत्रोपोष्य दिनत्रये ॥ तस्य वै उत्तरे भागे शिवोहं मर्कटे-श्वरः ॥ यस्य वै दर्शनादेव नरो याति शिवालयम् ॥ सम्पूज्य गंधपुष्पाद्यैः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे मृकंडाश्रमके वरे ॥ देवी महेश्वरी नाम्ना भक्तानां प्रीतिवर्द्धिनी ॥ १३ ॥ तत्र स्थित्वा त्रिरात्रं वै मौनी नियतमानसः ॥ चतुर्थे दिवसे रात्रौ कौतुकं तत्र पश्यति ॥ १४ ॥ यदीच्छति वरारोहे प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ इति वै तीर्थवर्याणि कथितानि तवानऽघे ॥ १५ ॥ संक्षेपेण मया देवि तुंगक्षेत्रे शुभप्रदे ॥ तुंग नाथस्य माहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ॥ स सर्वेषु च तीर्थेषु

धारणपूर्वक सर्वोच्च उन्नत शिखरके ऊपर निवास करता है और यहां प्राणपरित्याग करताहै वोह निःसन्देह शिवरूप होताहै ॥ ९ ॥ शिवजीके दक्षिण पार्श्वमें परमोत्तम एक स्फटिकका लिंगहै, और उस लिंगके दक्षिण पार्श्वमें गरुड़ नाम तीर्थहै, भक्तिभावपूर्वक उसमें स्नान करनेसे मनुष्य वैकुंठ धाममें निवास प्राप्त करताहै ॥ १० ॥ हे प्रिये ! उसी तीर्थसे पश्चिमकी ओर पाव कोसकी दूरपर कमलों द्वारा सुशोभित मानसर नाम एक सरोवरहै ॥ ११ ॥ उसीके उत्तरभागमें हमारी शिवमूर्त्ति मर्कटेश्वर नामसे प्रतिष्ठितहै उसके दर्शनमात्र करनेसेही, अथवा गन्धपुष्पादिद्वारा पूजन करनेसे मनुष्यको शिवलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १२ ॥ तदनन्तर दक्षिणकी ओर शुभ मृकण्डाश्रममें भक्तजनोंकी प्रीति बढानेवाली महेश्वरि नामकी देवी उप-स्थितहै ॥ १३ ॥ मनोनिग्रहपूर्वक मौन धारणकर वहां तीन दिन निवासकरै तौ चतुर्थ दिनकी रात्रिमें उसे कौतुक दृष्टिगत होताहै ॥ १४ ॥ हे सुमुखि ! वोह पुरुष जिस २ वस्तु की प्राप्तकरनेकी इच्छा करताहै, निःसन्देह उसे वोही वस्तु उपलब्ध होजातीहैं, हे निष्पापे ! इस प्रकार उत्तम तीर्थोंका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ १५ ॥ और सांक्षिप्तरीतिहीसे तुंगक्षेत्रका माहात्म्यभी वर्णन किया गयाहै, जो व्यक्ति तुंगनाथ (तुंगेश्वर) के माहात्म्यको

गतो भवति पार्वति ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे तुंग-
क्षेत्रमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

पढै अथवा श्रवण करैगा, हे पार्वति ! उसे समस्त तीर्थयात्रा करनेका फल उत्पन्न
होगा ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां पंचाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपंचाशोऽध्यायः ५१.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तृतीयं वै ममालयम् ॥ रुद्रा-
लयमितिख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपा-
पेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ रुद्रालयं महापुण्यं नानातीर्थवि-
भूषितम् ॥ २ ॥ न त्यजामि कदाचिद्वै क्षेत्रं क्षेत्रज्ञको यथा ॥ इदं
गुह्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा यद्वै सकृद-
पि जन्मसाफल्यतां व्रजेत् ॥ धन्यास्ते त्रिषु लोकेषु मानुषीषु च
योनिषु ॥ ४ ॥ धर्म्मिष्ठास्तीर्थभक्ताश्च तेषु ब्राह्मणसत्तमाः ॥
तेषु धन्या महेशानि वेदज्ञाः कर्मनिष्ठकाः ॥ ५ ॥ तेष्वपि तव देवेशि
गुरोः पीठे वसंति ये ॥ तत्रापि येवासुदेवशिवभेदपराङ्मुखाः ॥ ६ ॥

महादेवजी बोले–हमारा तीसरा एक और स्थानहै सुनो अब उसका वर्णन करतें
उसका रुद्रालय नामहै और वोह समस्त तीर्थोंमें परमोत्तमहै ॥ १ ॥ उसका (माहात्म्य
श्रवण करनेसे मनुष्य समस्त पातकोंसे मुक्त होजाताहै, रुद्रालय अनेक तीर्थोंसे विभूषितहै अ
एव वोह अतिशय पवित्रहै ॥ २ ॥ जैसे क्षेत्रको क्षेत्रज्ञ (ईश्वर) नहीं त्यागता इसी प्र
मैंभी उक्त क्षेत्रका परित्याग कभी नहीं करताहूं, यह स्थान परम गुह्यहै और इसका मिलना
देवताओंकोभी परम दुर्लभहै ॥ ३ ॥ इसका एकवारभी दर्शन करनेसे जन्म सफल होजात
त्रिलोकीमें वेही धन्यहैं और मनुष्ययोनिमें वेही धर्मिष्ठहैं जो तीर्थकी भक्ति धा
करनेवाले और उनमेंभी विशेषकर ब्राह्मणहैं, हे महेश्वरि ! उनमेंभी वेदके ज्ञाता और क
निष्ठ धन्यहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ और हे देवेश्वरि ! उन सबमेंभी उनका अहोभाग्यहै जो तुम
पिता हिमालयके ऊपर निवास करतेहैं और उनमेंभी जो शिव तथा विष्णुमें भेद न

गतिस्तेषां न वै देवि तथा कल्पशतैरपि ॥ ये मयि श्रीवासुदेवे भेदबुद्धिधराः प्रिये ॥ ७॥ तस्मान्मम च विष्णोश्च भेदबुद्धिं न कारयेत् ॥ यत्राहं संस्थितो देवि तत्र विष्णुः सनातनः ॥ ८ ॥ यत्र विष्णुस्तत्र शिवो वर्त्तते नित्यमेव हि ॥ विष्णोर्भक्ताश्च ये देवि मम भक्ता न संशयः॥ मम भक्तास्तु ये संति ते विष्णोर्नैव संशयः ॥ ९ ॥ विष्णुभक्तेन देवेशि वेद्योहं विष्णुरेव हि ॥ मम भक्तेन विष्णुर्वै शिवो वेद्यो न संशयः ॥ १० ॥ द्वेषबुद्धिर्न कर्त्तव्या कुर्वंस्तु शिवहा भवेत् ॥ स वै धन्योऽभेदबुद्धिर्नर एव न संशयः ॥ ११ ॥ तत्रापि ये रुद्रगृहे गच्छंति भक्तितत्पराः॥ जरामरणजन्माद्यैर्बाध्यंते नैव मानवाः ॥ १२ ॥ सर्वतीर्थमयं स्थानं यत्राहं संस्थितः पुमान् ॥ यस्य तीर्थस्य देवेशि दर्शनादेव पातकम् ॥ शतजन्मार्जितं यद्वै सत्यमेव न संशयः ॥१३॥ तत्र मां विधिवत्पूज्य गंधपुष्पादिकैः पुमान् ॥ इह भोगान्व-

मानते (वे सर्व श्रेष्ठहैं) ॥ ६ ॥ हे देवि ! जो मेरे विषे और वासुदेवमें भेदबुद्धिको धारण करतेहैं हे प्रिये ! सैकड़ों कल्पपर्यन्त उन्हें सद्गतिका लाभ नहीं होता ॥७॥ अतएव मुझमें और विष्णुभगवान्में भेदबुद्धि कर्त्तव्य नहींहै, सुतराम् हे देवि ! जहां मेरी स्थिति है वहां सनातन विष्णु भगवान्भी उपस्थित रहतेहैं ॥ ८ ॥ और जहां विष्णुहैं वहां शिवभी नित्यही वर्त्तमान रहतेहैं । हे देवि ! विष्णुके भक्त निःसन्देह मेरे भक्तहैं, और जो हमारे भक्तहैं उन्हें निःसन्देह विष्णुभक्त समझना चाहिये ॥ ९ ॥ हे देवेश्वरि ! विष्णुभक्तको चाहिये कि, मुझे विष्णुरूपही समझै और मेरे भक्तको यह चाहिये कि, विष्णुको शिवरूप जानै ॥ १० ॥ शिव और विष्णु इन दोनोंमें भेदबुद्धि कर्त्तव्य नहींहै, क्योंकि भेदबुद्धि करनेसे शिवघाती होताहै, जिस मनुष्यकी दोनों देवताओंमें भेदबुद्धि नहींहै निःसन्देह उसीको धन्यहै ॥११॥ और उनमेंभी जो व्यक्ति ऐसेहैं कि, भक्तिरससे पूर्ण हो शिवालयमें गमन करतेहैं उन्हें जन्मजरामरणकी बाधा कभी नहीं होती अर्थात् उनकी मुक्ति होजातीहै ॥ १२ ॥ हे देवि! जहां कि, मैं सदैव स्थित हूं उस स्थानको सर्वतीर्थमय समझना चाहिये, हे परमेश्वरि ! उस तीर्थका दर्शनमात्र करनेसे सैकडों जन्मका अर्जन किया हुआ पातक तत्काल नष्ट होजाताहै, इसमें सन्देह कुछभी नहींहै ॥ १३ ॥ उस स्थानमें जो पुरुष गन्धपुष्पादि द्वारा विधिवत् मेरी पूजा करताहै वोह

रान्प्राप्य शिवलोके महीयते ॥१४॥ उत्पत्तिं शृणु देवेशि क्षेत्र-
स्याऽस्य शुभावहाम् ॥ यदारभ्य ममेदं वै प्रियं जातं महेश्वरि
॥ १५ ॥ पुरा देवा महेशानि विजिताः पृथिवीतले ॥ अंधके-
हृतस्थाना विचरंति स्म दुःखिताः ॥ १६ ॥ मामेव शरणं प्राप्ता
ह्यंधकस्य भयार्दिताः ॥ गुरोस्तव महापीठे अस्मिन् रुद्रालये
प्रिये ॥ १७ ॥ मामेव परमं देवं स्मरंतो हि दिवानिशम् ॥ तप-
श्चक्रुर्महेशानि त्यक्ताहारविहारकाः ॥ १८ ॥ तुष्टुवुः प्रणताः
सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ मत्परा मद्भावरता मामेव शरणं
गताः ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तस्मै महेशाय महते ज्ञान-
चक्षुषे ॥ निराधाराय विश्वाय प्रभवायाव्ययात्मने ॥ २० ॥ चंद्र-
सूर्य्याग्निनेत्राय पंचशीर्षाय दंडिने ॥ गंगाधराय देवाय नमो-
स्तु त्रिमूर्त्तये ॥ २१ ॥ नमोनंतस्वरूपाय शिवेशाय महात्मने ॥

इस लोकमें उत्तमोत्तम भोगोंको प्राप्त करके अन्त समय शिवलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करता
है ॥ १४ ॥ हे देवेश्वरि ! इस क्षेत्रकी शुभावह उत्पत्तिका श्रवण करो जिस दिनसे हे महेश्वरि !
यह स्थान मुझे परमप्रिय हुआहै सो वर्णन करताहूं ॥ १५ ॥ हे महेश्वरि ! पहिले
समय भूमण्डलके ऊपर अन्धकदैत्यने देवताओंको जीतकर उनके स्थान छीन लिये तब
सब दुःखितहो इधर उधर विचरने लगे ॥ १६ ॥ निदान अन्धक दैत्यके भयसे पीड़ित
देवतागण हमारी शरणमें तुम्हारे पिता गिरिराज हिमालयके ऊपर हे प्रिये ! महापीठ
रुद्रालयमें आये ॥ १७ ॥ और वे सब रातदिन मुझ परमदेवका स्मरण करने लगे, अथ
आहार विहार सबका परित्यागकर तपश्चर्य्या करने लगे ॥ १८ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त देव
मेरे भावमें निरत होनेके कारण मुझहीमें तत्पर हो मेरी शरणमें आये और नम्रीभूत हो उन्हों-
ने मुझे सन्तुष्ट किया ॥ १९ ॥ देवता बोले—हे महेश ! आपके चक्षु ज्ञानस्वरूपहैं अतः
आपको सबसे महान् माना गयाहै, आप सर्वशक्तिमान् होनेके कारण आधाररहित और विश्व-
रूपहैं, सबके उत्पत्तिस्वरूप और अव्ययात्माभी आपहीहैं अतएव आपको नमस्कारहै ॥२०॥
चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि यही तीनों देवता आपके तीन नेत्रहैं, आपके पांच शिरहैं और आप
दण्डधारण कर रक्खाहै, आप गंगाधर और त्रिमूर्त्तिधारी देवताहैं अतएव आपको नमस्कार
॥ २१ ॥ आपके अनन्त रूपहैं, आप शिवरूप महात्माहैं आप कैलास धाममें निवास क-

कैलासगृहवासाय शितिकंठाय ते नमः ॥ २२ ॥ त्रिपुरध्वंस-कर्त्रे ते वृत्रहंत्रे चिदात्मने ॥ नमो निगमबोधाय नमो वेदांत-वेदिने ॥ २३ ॥ षट्शास्त्रपरिवेत्रे ते निर्मोहाय महीभृते ॥ ने-दिष्ठाय दविष्ठाय क्षोधिष्ठाय नमो नमः ॥ २४ ॥ हिरण्यबाह-वे तुभ्यं दिशाञ्च पतये नमः ॥ नमः कृत्स्नाय सत्याय सत्य-ज्ञानामृताय ते॥ २५ ॥ गणेशाय महेशाय नीलकंठाय शंभवे ॥ व्युप्तकेशाय धन्याय धन्विने गदिने नमः ॥ २६ ॥ करि-चर्मनिवासाय प्रमथाधिपतये नमः ॥ नमः कूप्याय वय्याय फेना-य फणिधारिणे ॥ २७ ॥ उग्राय उग्ररूपाय यज्ञानां पतये नमः ॥ यज्ञस्य ध्वंसकर्त्रे ते दक्षयज्ञहराय च ॥ २८ ॥ नमः पार्य्याय वा-र्य्याय प्रियाय प्रियहेतवे ॥ कपर्दवरशोभाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥ ॥ २९ ॥ देवानां चाधिदेवाय शिवाय विकरालिने ॥ नृमुंडमा-

वाले और नीलकंठहैं हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ २२ ॥ त्रिपुरासुर और वृत्रासुरका वध आपहीने कियाथा, आप स्वयम् चैतन्यस्वरूपहैं आप स्वयम् वेदान्तके ज्ञाताहैं और शास्त्रोंके द्वारा आपका ज्ञान उपलब्ध होताहै, आपको नमस्कारहै ॥ २३ ॥ आप षट्शास्त्रके ज्ञाता, मायिक मोहरहित, अथ च भूमिके पालन कर्त्ता हैं, आपही सबके अत्यन्त निकटवर्त्ती अथ च दूरवर्त्ती भी हैं एवम् आपका रूप अति सूक्ष्महै ॥ २४ ॥ आप हिरण्यबाहु और दिशाओंके पतिहैं और कृत्स्न सत्य और सत्यज्ञानामृतस्वरूपभी आपहीहैं ॥ २५ ॥ गणेश, महेश, नील-कंठ और सबके उद्भवस्थान आपहीहैं, जटाधारी, धन्य, धनुष और गदाधारणकर्त्ता आपको नमस्कारहै ॥ २६ ॥ आप हस्तिचर्मका परिधान (धारण) करते हैं, प्रमथ जो आपके पारिषदहैं उनके आप अधीश्वरहैं, यह जल और फेनभी आपहीके रूपहैं, आपने भुजंगोंको धारण कियाहै हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ २७ ॥ आपका स्वभाव और मूर्त्ति अतिशय उग्रहै, आप समस्त यज्ञोंके अधिपतिहैं, किन्तु दक्ष प्रजापतिके यज्ञका आपने ध्वंस किया, अंतएव यज्ञ विध्वंसकर्त्ताभी आपहीहैं ॥ २८ ॥ सबसे श्रेष्ठ अतएव सबसे परे, सबके प्रिय तथा प्रियकरने के हेतुभी आपहीहैं, आपने जटाजूट और सर्पोंके यज्ञोपवीतको धारण कियाहै हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ २९ ॥ आप देवताओंकेभी अधिदेव हैं, कल्याणमूर्त्ति और करालमूर्त्तिभी आपहीहैं, मनुष्योंकी मुण्डमाला धारण करनेसे आपकी अपूर्व शोभाहै, आपने श्मशानमें अपना

लाशोभाय श्मशानगृहवासिने ॥ ३० ॥ पार्वतीपतये तुभ्यं नमस्ते शतशो नमः ॥ अनादिने अनंताय निर्मध्याय नमो नमः ॥ ३१ ॥ इति स्तोत्रं मामकं वै ख्यातं पापप्रणाशनम् ॥ प्रातः प्रातः पठेद्यस्तु शिव एव न संशयः ॥ ३२ ॥ स्तुतोहं देवि देवैस्तु प्रत्यक्षमब्रुवं वचः ॥ वरं वृणीध्वं त्रिदशाः संतुष्टो वः सुरोत्तमाः ॥ ३३ ॥ वचः श्रुत्वा मामकं ते प्रहृष्टमनसः शिवे ॥ ऊचुः प्रांजलयः सर्वे कांक्षंतो वरमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ देवा ऊचुः ॥ धन्याः स्मो वै वयं सर्वे महेश तव दर्शनात् ॥ अंधकेन वयं सर्वे हृतराज्याः कृता विभो ॥३५॥ इंद्रः स्वयं स वै दैत्यो यम आदित्य एव च ॥ एवं सर्वेषु स्थानेषु स एवास्ते महासुरः ॥३६॥ विचरामो वयं पृथ्व्यां मर्त्या इव सुदुर्बलाः ॥ त्वामेव शरणं प्राप्ता दुःखहंता त्वमेव हि ॥३७॥ वधे यत्नः प्रकर्त्तव्यो ह्यंधकस्य दुरात्मनः ॥ त्वत्प्रसादाद्वयं देव विचरामो यथासुखम् ॥ ३८ ॥ इदं स्थानं त्वया नैव त्याज्यं देव युगे युगे ॥ त्वया स-

निवासस्थान स्वीकार कियाहै ॥ ३० ॥ आप पार्वतीके पतिहैं आपको नमस्कार और सैकडों बार नमस्कारहै आपका आदि मध्य और अन्त कुछभी नहीहै अतएव आपको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ३१ ॥ हमारा यह स्तोत्र पापोंका विनाशकरनेवाला विख्यातहै, जो व्यक्ति प्रभात ही प्रभात इसका पाठ करताहै निःसन्देह उसे शिवरूप जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ हे देवि जब देवताओंने इस प्रकार मेरी स्तुति करी तब मैंने प्रत्यक्षहो उनसे यह वचन कहे, हे देवोत्तमों ! मैं तुमसे प्रसन्न (सन्तुष्ट) हूं अतएव देवताओ तुम सब वरकी याचना करो ॥ ३३ ॥ हे शिवे ! जब उन्होंने मेरे ऐसे वचन सुने तब मनमें प्रसन्नहो हाथजोड उत्तम वरकी आकांक्षा करते सबदेवता यों बोले ॥ ३४ ॥ देवताओंने कहा—हे महेश ! आपका दर्शन करनेसे हम धन्य होगये, हे विभो ! अन्धक दैत्यने हम सबके राज्यका अपहरण कर लियाहै ॥ ३५ ॥ वोह दैत्य स्वयम् इन्द्र बन बैठाहै, यम और सूर्य्यभी वोही बनाहै, विशेष क्या कहैं सभी स्थानोंमें वोह महादैत्य विद्यमानहै ॥ ३६ ॥ और हम दुर्बल मनुष्योंकी भांति भूमिके ऊपर विचरते फिरतेहैं, क्योंकि, हमारे दुःखहारी आपहीहैं अतएव हम आपकी शरणमें आयेहैं ॥ ३७ ॥ सो दुरात्मा अन्धक दैत्यका वध करनेके लिये यत्न करना कर्त्तव्य है हे देव ! आपहीके अनुग्रहसे हम सुखपूर्वक विचर सक्तेहैं ॥ ३८ ॥ और हे देव !

मग्रभावेन स्थातव्यं पार्वतीपते ॥ ३९ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा देवादीनामहं प्रिये ॥ संतुष्टश्चाब्रुवं देवि देवान्सर्वान्महौजसः ॥ ॥४०॥ अंधकं वै दुरात्मानं हनिष्यामि दुरासदम् ॥ हंता नास्ति त्रिलोकस्य मदन्यो निर्ज्जरेश्वराः ॥ ४१ ॥ इदं प्रियतरं स्थानं ममास्त्येव न संशयः ॥ अतः समग्रभावेन पार्वत्या च गणैः सह ॥ निवत्स्यामि सदा देवा युष्माकं प्रीतिकारणात् ॥ ४२ ॥ अस्मात्स्थानान्न कुत्रापि स्थानं प्रियतरं मम ॥ इति श्रुत्वा वचो देवि मामकीयं दिवौकसः ॥ ४३ ॥ जय देव जयेशान जय रुद्र जयेश्वर ॥ इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे स्वं स्वं स्थानं महेश्वरि ॥ ४४ ॥ इति ते कथितं देवि यदादि सुतरां मम ॥ स्थानं प्रियतरं जातं वासो गिरिजनंदिनि ॥ हेतुनानेन देवेशि त्वयां सह स्थितिर्मम ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे तीर्थप्रशंसायां महालयमाहात्म्यं नाम एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

स्थानको किसी युगमेंभी आपको परित्याग न करना चाहिये, हे पार्वतीपते ! किन्तु समग्रभावसे आपको यहांही निवास करना कर्त्तव्यहै ॥ ३९ ॥ हे प्रिये ! देवताओंके जब इस प्रकार मैंने वचन सुने तौ हे देवि ! सन्तुष्टहो महापराक्रमी उन सब देवताओंसे मैंने यह वाक्य कहे ॥ ४० ॥ दुराचारी और दुर्जय उक्त अन्धक दैत्यका मैं विजय करूंगा, कारण कि, उसका हनन करनेवाला मेरे अतिरिक्त त्रिलोकीमें और कोई नहींहै ॥ ४१ ॥ और यह स्थान निःसन्देह मुझे अधिक प्रियहै, अतएव पार्वती और गणोंसहित समग्रभावसे हे देवताओ ! तुम्हारी प्रीतिके कारण मैं यहां निवास करूंगा ॥ ४२ ॥ इस स्थानसे अधिक और कहींकाभी स्थान मुझे प्रिय नहींहै. हे देवि ! जब देवताओंने मेरे ऐसे वचन सुने ॥ ४३ ॥ तौ उन्होंने कहा कि,हे देव ! हे ईशान ! हे रुद्र ! हे ईश्वर ! आपकी वारंवार जय हो !!! हे महेश्वरि ! यों कहकर सबदेवता अपने २ स्थानको चले गये ॥ ४४ ॥ हे गिरिराजकुमारी ! जिसदिनसे यह स्थान मुझे अधिकप्रिय हुआहै सो हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया. हे देवेश्वरि ! इसी कारण तुम्हारे साथ मैं यहां निवास करताहूं ॥ ४५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकपंचाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशोऽध्यायः ५२.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे तीर्थानि मम पार्वति ॥ तत्र वैतरणी श्रेष्ठा पितॄणां तारिणी सरित् ॥ १ ॥ तत्र पिंडप्रदानेन गयाकोटिफलं लभेत् ॥ रम्यं शिवमुखं तत्र सर्वाभरणभूषितम् ॥ २ ॥ एतस्य दर्शनादेव मुक्तो भवति मानवः ॥ पूर्वं हि पांडवैः सर्व्वैर्गोत्रहत्यासमन्वितैः ॥ ३ ॥ पापक्षयाय देवेशोऽन्वेषितो बहुधा भृशम् ॥ दृष्ट्वा केदारके देशे तान्दृष्ट्वाहं जगामह ॥ ४ ॥ देशे दूरतरं तेपि मत्पृष्ठे च समाययुः ॥ आगतान्निकटं दृष्ट्वा प्राविशं धरणीं तदा ॥ ५ ॥ तथाविधं मां दृष्ट्वा तु पृष्ठदेशे समागताः ॥ केदारसंज्ञके देवि पस्पर्शुः पृष्ठकं शुभम् ॥६॥ स्पर्शमात्रेण ते सर्वे विमुक्ता गोत्रहत्यया ॥ पृष्ठभागं तु तत्रैव स्थितमद्यापि पार्वति ॥ ७ ॥ केदारेश इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु मुक्तिदः ॥ अधोमार्गेण देवेशि मन्मुखं तु महालये ॥ ८ ॥ आगतं मुक्तिदं लोके ये स्युर्दर्शनकारिणः ॥ ते मुक्ताः सर्वपाप-

महादेवजी बोले—हे सुमुखि पार्वति ! हमारे तीर्थोंका श्रवण करो, वहांही पितरोंका उद्धार करनेवाली श्रेष्ठ वैतरणी नदीहै ॥ १ ॥ वहां पिण्डदान करनेसे गयामें करोड पिण्डदान करनेका फल उपलब्ध होताहै वहां समस्त आभूषणोंसे विभूषित अतएव सुरम्य महादेवजीका मुख विद्यमानहै ॥ २ ॥ इसका केवल दर्शन करनेहीसे मनुष्य मुक्त होजाताहै, पहिले समयमें गोत्रकी हत्या करनेवाले पाण्डवोंने ॥ ३ ॥ पापनिवृत्तिके लिये बहुत प्रकारसे मुझे अन्वेषण किया, परन्तु जब केदारक्षेत्रमें देखा तौ मैं वहांसे दूर गया ॥ ४ ॥ और वेभी बहुत दूरसे हमारे धाममें आयेथे, परन्तु जब उन्हें निकट आया देखा तभी मैं धरणीमें प्रविष्ट होगया ॥ ५ ॥ हे देवि ! मेरी ऐसी दशा देख वे मेरे पृष्ठभागमें आये और केदारतीर्थमें हमारी शुभकमरका स्पर्श किया ॥ ६ ॥ पृष्ठभागका स्पर्शमात्र करनेसे पाण्डवोंकी गोत्रहत्या मुक्त होगई, हे पार्वति ! तभीसे हमारा पृष्ठभाग वहांही उपस्थितहै ॥ ७ ॥ केदारनाथ नामसे त्रिलोकीमें मुक्तिदान कर्त्ताप्रसिद्धहै, हे देवेश्वरि ! महालयमें अधोमार्गसे मेरा मुख प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति उसका दर्शन करतेहैं, वे ज्ञानके वेष्टनसे आवृतहो समस्तपापों

भ्यो ज्ञानकंचुकसंवृताः ॥९॥ लीना मदीये देहे तु भविष्यन्त्येव मानवाः ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ १० ॥ मानसं तीर्थमाख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ देवतायतनस्यार्वाक्क्रोशार्द्धे रक्तवर्णकम् ॥ ११ ॥ तदेव मानसं ख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ यज्जले सकृदप्याह्रो उपस्पृश्य कृतांजलिः ॥ प्रार्थयेद्देवदेवेशं महेशं मंत्रपूर्वकम् ॥ १२ ॥ नमो देव महादेव भक्तानां मुक्तिदायक ॥ देहि मे परमं स्थानं प्रसीद परमेश्वर ॥ १३ ॥ यावंति मम जन्मानि जातान्येतेषु यन्मया ॥ सुकृतं दुष्कृतं वापि त्वयि तिष्ठतु सर्व्वदा ॥ १४ ॥ इत्युच्चार्य नरो देवि तज्जलं समुपस्पृशेत् ॥ याति देवि क्षणादेव कृतकृत्यो नरोत्तमः ॥ १५ ॥ तस्य पूर्वे महाद्रौ हि सरः सारस्वतं स्मृतम् ॥ तस्मिन्सरोवरे मत्स्यो मृकंडुर्नाम नामतः ॥ १६ ॥ तस्य वै दक्षिणे भागे शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नरः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ स वै मत्स्यो महादेवि बहुवर्षसहस्रवान् ॥

मुक्त होजातेहैं ॥ ९ ॥ और वे मनुष्य अवश्यही हमारे देहमें लीन होंगे अब तीर्थोंमें उत्तम ऐसे एक और क्षेत्रका वर्णन करतेहैं ॥ १० ॥ एक मानस तीर्थहै, उसके दर्शन करनेसें शिवलोककी प्राप्ति होतीहै, देवमन्दिरसे प्रथम आधेकोसकी दूरीपर रक्तवर्ण स्थानहै ॥ ११ ॥ उसीको मानस क्षेत्र कहतेहैं, यह त्रिलोकीमें बड़ा दुर्लभहै, जो व्यक्ति एकवारभी उसके जलका स्पर्शकर कृतांजलिपुटहो देवाधिदेव त्रिमूर्त्ति महादेवकी मन्त्रोंके द्वारा आराधना करताहै ॥ १२ ॥ हे देव! आप महादेवहैं अतएव अपने भक्तोंको आप मुक्ति प्रदान करतेहैं, हे परमेश्वर! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे परमस्थान दीजिये ॥१३॥ मेरे जितने जन्म होचुकेहैं और उनमें जो कुछ भी मैंने पाप अथवा पुण्य कियाहै, वोह सर्वदा आपहीमें स्थितरहै॥१४॥ यों उच्चारण करके मनुष्यको उसके जलका स्पर्श करना चाहिये, हे देवि! ऐसा करनेसे क्षणभरमें कृतकृत्यहो वोह मनुष्य परमपदको प्राप्त होजाताहै ॥ १५ ॥ उससे पूर्वकी ओर महापर्वतके ऊपर सारस्वत नाम सरोवरहै, और मृकण्डु नाम मत्स्य उसमें निवास करताहै ॥ १६ ॥ उससे दक्षिणकी ओर सर्वोत्तम एक शिवलिंगहै, उसके दर्शन करने मात्रहीसे मनुष्यको सायुज्य पदवीका लाभ होताहै ॥१७॥ हे देवि! वोह मत्स्य बहुतसे सहस्रोंवर्षोंसे

तस्मिन्सरोवरे मग्नः शिवसंगमकामुकः ॥ १८ ॥ महाकृष्ण-चतुर्दश्यां भौमवारे स मत्स्यकः ॥ चलते तज्जले देवि दृश्य-मानः स्वकैर्जनैः ॥ १९ ॥ तस्मिन्सरोवरे स्नात्वा कृष्णां प्रति चतुर्दशीम् ॥ जडोपि वाक्पतेस्तुल्यः सत्यमेव न संशयः॥२०॥ प्रवालवर्णवर्णो हि तत्र लिंगधरो मृडः ॥ तं पूजयित्वा रुद्रेण बृहत्साम्नाथवा शिवम् ॥ २१ ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति देहांते नगनंदिनि ॥ ततः पूर्वोत्तरे कोणे पीतवर्णं जलं शुभम् ॥ २२ ॥ यत्राहं मणिभद्रेणाराधितस्तपसा शिवे ॥ तस्मै प्रादां स्वकं स्थानं देवैरपि दुरासदम् ॥ २३ ॥ तत्र त्रिरात्रमासीनो रसाक्षर-युतं मनुम् ॥ जप्त्वा सहस्रत्रितयं खेचरीं गुटिकां लभेत् ॥२४॥ तत्राऽहं विष्णुना पूर्वं स्तुतो दानवहानये ॥ तस्मै प्रादां बलं स्वीयं दानवानां निबर्हणे ॥ २५ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे मम स्थानं सुदुर्लभम् ॥ तत्राऽहं सूर्य्यदेवेनाराधितो गिरिनंदिनि ॥ २६ ॥

महादेवजीके संगमकी कामना करके इस सरोवरमें निमग्न हो रहाहै ॥ १८ ॥ महाकृष्णच-र्दशीको मंगलके दिन वोह मत्स्य अपने कुटुम्बियोंके साथ चलता हुआ उसके जलमें दृष्टि होताहै ॥ १९ ॥ प्रत्येक कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको उस सरोवरमें स्नानकरके मूर्ख व्यक्ति निःसन्देह बृहस्पतिकी समान होजाताहै ॥ २० ॥ उस स्थानमें महादेवजीका लिंग मू-(मूंगे) की सदृशहै, उस लिंगकी अथवा शिवमूर्त्तिकी विशेष सामग्रीद्वारा पूजाकरै ॥२१ तौ हे नगेंद्रनान्दिनी ! देहान्त होनेके समय उस प्राणीको महादेवजीकी सायुज्यपदवी होतीहै । उससे उत्तर ओर पूर्वके कोणमें पीतवर्णका उत्तम शुभ जलहै ॥ २२ ॥ हे शिवे मणिभद्रने उसी स्थानमें तपकरके मेरी आराधना करीथी, और मैंने उसे अपना स्थान दियाथा जिसकी प्राप्ति देवताओंकोभी कठिनहै ॥ २३ ॥ वहां तीन रात्री पर्य बैठके [1]षडक्षर मन्त्रका तीनसहस्र जपकरे तौ जापकको [2]खेचरी गुटिकाका लाभ होताहै ॥२४ उसी स्थानमें दानवोंका वधकरनेकी कामनासे विष्णुभगवानने प्रथम मेरी स्तुति करीथी, और दैत्योंका पराजय करनेके लिये मैंने उन्हें अपने बलको प्रदान किया था ॥२५॥ उसीके पश्चि-मकी ओर मेरा परम दुर्लभ एक और स्थानहै, हे गिरिजे ! वहां सूर्य्यने मेरी आराध

१ "ओंनमः शिवाय" यह षडक्षर मन्त्र कहलाताहै । २ खेचरी गुटिका एक प्रकार सिद्धिका नामहै, इसकी प्राप्ति होजानेसे मनुष्य आकाशगमनकी शक्तिलाभ करलेताहै।

स्तोत्रैर्बहुविधैर्गीतैर्नृत्यैर्भक्तिसुबृंहितैः ॥ तुष्टस्तस्मै वरं प्रादां स्वनेत्रत्वं सुदुर्लभम् ॥ २७ ॥ इति ते कृत्स्नशो देवि तीर्थानि प्रवराणि वै ॥ पदे तत्र समाक्रांते क्रम्यते तीर्थपंचकम् ॥ २८ ॥ नालं विस्तरतः प्रोक्तुं सर्वांशेन शतं समाः ॥ सर्वाण्येतानि तीर्थानि गंगायां नास्ति संशयः ॥ २९ ॥ तस्यासुच्चार्यमाणायां सर्वतीर्थे प्लुतो भवेत् ॥ अयमेव विशेषोत्र पितुस्तव परिक्रमः ॥ ३० ॥ परिक्रमात्तव पितुर्न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ममालयस्य माहात्म्यं पठंते पाठयंति च ॥ शृणुयाच्चैव यो मर्त्यो रुद्रलोके वसेच्चिरम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे तीर्थप्रशंसायां कैलासमाहात्म्ये रुद्रालयमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

करीथी ॥ २६ ॥ जब विविध प्रकारके स्तोत्रों, गीतों और भक्ति भावसे पूर्ण हुए नृत्योंसे उन्होंने मुझे सन्तुष्ट किया, तब मैंने अपने नेत्रका परमदुर्लभ स्थान प्रदान किया ॥ २७ ॥ हे देवि ! इस प्रकार मैंने समग्र उत्तमोत्तम तीर्थोंका तुम्हारे प्राति वर्णन किया, उस क्षेत्रमें चरण निक्षेप करनेसे पांचों तीर्थोंकी यात्रा करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ अथच इसका सर्वांशतया वर्णन करनेकी सैकडों वर्षमेंभी मेरी शक्ति समर्थ नहीं होसक्ती । एवंच ये संपूर्ण तीर्थ गंगाजीमें निःसन्देह निवास करतेहैं ॥ २९ ॥ अतएव गंगाजीके नामका उच्चारण करनेसे निखिल तीर्थोंमें स्नान करनेके पुण्यकी प्राप्ति होतीहै, बस येही तुम्हारे पिताकी परिक्रमा करनेमें विशेषताहै ॥ ३० ॥ हे देवि ! तुम्हारे पिता अर्थात् हिमालयकी परिक्रमा करनेवालेको फिर कभी माताके स्तनपान करनेका समय नहीं प्राप्त होता भाव यहहै कि, हिमालयकी प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्य जन्म मरणसे छूटकर मुक्त होजाताहै । जो मनुष्य हमारे क्षेत्रके माहात्म्यको स्वयम् पढते अथवा औरोंको पढातेहैं, या जो श्रवण करतेहैं, चिरकालपर्यंत शिवलोकमें उनका निवास होताहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विपंचाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशोऽध्यायः ५३.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पंचमं वै ममालयम् ॥ कल्पस्थलमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यत्राहं देवदेवेन ह्यर्चितः पर्वतात्मजे ॥ मूढो दुर्वाससा शप्तो नष्टलक्ष्मीर्हतप्रभः ॥२॥ आराध्य मां त्वया युक्तं प्राप्तवान्कल्पपादपम् ॥ अहं च देवदेवेशि कल्पेशत्वं समागतः ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो भर्त्तुः पार्वती भक्तितत्परा ॥ उत्पत्तिं तस्य तीर्थस्य पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥ ४ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव सर्गस्थित्यंतकारक ॥ कथं दुर्वाससा शप्तो वासवो बलवृत्रहा ॥ ५ ॥ प्राप्तः कथं कल्पवृक्षो वासवेन कथं स्तुतः ॥ त्वं कथं वरदस्तस्य स्थितस्तस्मिन्महेश्वर ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे यत्पृष्टोहं त्वया प्रिये ॥ तद्गुह्यमपि वक्ष्यामि कल्पक्षेत्रस्य वैभवम् ॥ ७ ॥ इतिहासमिमं देवि यथा दुर्वाससो मुनेः ॥ कोपोभूद्वै हैमवति तत्सर्वं शृणु सांप्रतम् ॥८॥ पुरैकदा शचीनाथो गजराजसमास्थितः॥

महादेवजी बोले—सुनो देवि ! अब हम अपने पंचम क्षेत्र (स्थान) का वर्णन करते हैं, उसका कल्पस्थल नामहै और यह समस्त पापोंका नाश करनेवालाहै ॥ १ ॥ हे पार्वति ! उस स्थानमें देवाधिदेव इन्द्रने हमारी अर्चना करीथी, जब मन्दमति दुर्वासाके शाप देनेसे उनकी लक्ष्मी और कान्तिका विनाश होगया ॥ २ ॥ तब उन्होंने हमारी आराधना करी एवं हमारी और तुम्हारी दोनोंकी आराधना करनेहीसे उन्हें कल्पवृक्षकी प्राप्ति हुई, हे देवदेवेश्वरि ! तभीसे कल्पेश मेरी संज्ञाहुई ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले—पतिके ऐसे वचन सुन भक्तिमें तत्पर हो पार्वतीजी परमेश्वरसे उस तीर्थकी उत्पत्ति पूछने लगीं ॥ ४ ॥ पार्वती बोलीं—हे देवाधिदेव महादेव ! आप समस्त सृष्टिकी रचना, स्थिति और संहार करतेहैं सो यह बताइये वृत्रासुरविनाशी इन्द्रको दुर्वासाने शाप क्यों दिया ? ॥ ५ ॥ किसप्रकार कल्पवृक्ष उपलब्धहुआ, और किस प्रकार इन्द्रने स्तुति करी, अथच हे महेश्वर ! फिर तुम किस प्रकार वर देनेके तईं वहां गये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले—हे प्रियसुमुखि ! जो कुछ तुमने हमसे प्रश्न किया सो उसे सुनो, वोह कल्पक्षेत्रका माहात्म्य यद्यपि गुप्तहै तथापि तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं ॥७॥ हे देवि ! जिस प्रकार महर्षि दुर्वासाको क्रोध उत्पन्न हुआथा इस इतिहासको संप्रति श्रवण करो ॥ ८ ॥ शचीपति इन्द्र एक समय गजराज ऐरावतके ऊपर आसीन हुए, जब

स्तूयमानो मुनिगणैर्गीयमानोप्सरोगणैः ॥ ९ ॥ हाहाहूहूप्रभृतयो गंधर्वास्त्रिदिवौकसः ॥ उर्वशी मेनका मंजुघोषाद्याः सुरनायिकाः ॥१०॥ परिवार्य्य सुराधीशं जगुर्गंगाधरं विभुम् ॥ सर्वैश्वर्यसमापन्नो नानामणिविराजितः ॥ ययौ कैलासनिलये द्रष्टुं गंगाधरं विभुम् ॥११॥ एतस्मिन्नंतरे देवि दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥ यदृच्छया महादेवि कैलासे हरभूपिते ॥ आययौ मनसा देवि हृष्टेन संस्मरन् हि माम् ॥ १२ ॥ ददर्श कांचिल्ललनां सुगंधिकुसुमस्रजम् ॥ यथा चैतां स्रजं देवि शापभीतापि सा ददौ ॥१३॥ तां गृहीत्वा स्रजं दिव्यां भ्रमरैरुपनादिताम् ॥ यदृच्छया ययौ तत्र यत्रासौ वृत्रसूदनः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा सुरेंद्रं स मुनिरैरावतसमास्थितम् ॥ उवाच वचनं विप्रो करे धृत्वा परां स्रजम् ॥ १५ ॥ भो भो सुरगणश्रेष्ठ ददामि स्रजमुत्तमाम् ॥ इमां गृहाण परमां प्रीत्या दत्तां मया हरे ॥१६॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेर्दुर्वाससः प्रिये ॥ जग्राह मदमत्तो वै मनसा प्रहसन्निव ॥ १७ ॥

कि मुनिगण उनकी स्तुति करते; अप्सराओंने गान प्रारंभकिया ॥ ९ ॥ हाहा हूहू आदि गन्धर्व और देवतागण एवंच उर्वशी मेनका और मंजुघोषा आदि अप्सरायें ॥ १० ॥ सुरनाथ इन्द्रको घेरकर गंगाधर महादेवका कीर्त्तन करने लगीं, इस प्रकार अनेक मणियोंसे विराजित अथ च समस्त ऐश्वर्यसे संपन्नहो, सर्वव्यापी गंगाधर महादेवके दर्शन करनेको आरहेथे ॥ ११ ॥ हे देवि ! इतनेहीमें मुनिसत्तम दुर्वासा ऋषि महादेवजीकी स्थितिसे सुशोभित ऐसे कैलासके ऊपर मनमें प्रसन्नहो हमारा स्मरण करते २ आये ॥ १२ ॥ सुगन्धित पुष्पोंकी माला हाथमें लिये एक सुन्दरीको उन्होंने देखा, और हे देवि ! उसस्त्रीने शापके भयसे भीतहो वोह पुष्पमाला इन्हें देदी ॥ १३ ॥ जिसके ऊपर भ्रमर गुंजार कररहेहैं ऐसी उस दिव्यमालाको ग्रहण कर अपनी इच्छानुसार दुर्वासा ऋषि इन्द्रके निकट गये ॥ १४ ॥ जब मुनिने सुरराज इन्द्रको ऐरावत हाथीके ऊपर स्थित हुआ देखा तब उक्त ब्राह्मण हाथोंमें उत्तम मालाको ग्रहणकर इन्द्रसे यों बोले ॥ १५ ॥ हे देवसत्तम ! हम तुम्हें उत्तम माला प्रदान करतेहैं सो हे हरे ! प्रीतिपूर्वक प्रदान की हुई हमारी इसमालाको आप ग्रहण करैं ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले–हे प्रिये ! महर्षि दुर्वासाके यह वाक्य श्रवण कर मनमें उपहास करते २ मदोन्मत्त इन्द्रने उसे

गृहीत्वा तां वरां मालां गजकुंभे ददौ हरिः ॥ न्यस्तां दृष्ट्वैव कुम्भे तां तं च दृष्ट्वा पुरंदरम् ॥ १८ ॥ मदमत्तं महेशानि जगाद मुनिपुंगवः ॥ क्रोधेन महताविष्टो जलं स्पृष्ट्वा महेश्वरि ॥ १९ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ लक्ष्मीप्रमत्तो यस्मात्त्वं यतोहमवमानितः ॥ तस्मात्त्रैलोक्यलक्ष्मीस्ते नष्टा वै संभविष्यति ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तद्वदितं श्रुत्वा मुनेर्दुर्वाससो हरिः ॥ प्रकंपमानावयवस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ २१ ॥ उवाच गद्गदं वाचा मुनिं दुर्वाससं हरिः ॥ प्रणम्य चांजलिं बध्वा दण्डवत्प्रणतो विभुः ॥२२॥ इंद्र उवाच ॥ अजानता मया विप्र मूढेन मनसा मुने ॥ अवमानितोसि दुर्बुध्या क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ २३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अमोघो मामकः शापो भविष्यत्येव दुर्मते ॥ महादेवं समाराध्य पुनः प्राप्स्यसि स्वं पदम् ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो यथास्थाने महेश्वरि ॥ इंद्रोपि सहसा राज्यात्पपात शत्रुनिर्जितः ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीरपि च नष्टाभून्मुनिशा-

ग्रहणकिया ॥ १७ ॥ इन्द्रने उस मालाको ग्रहणकर हाथीके गण्डस्थलके ऊपर रखदिया, ऋषिने जब यह देखा कि, पुरन्दर इन्द्रने इस प्रकार माला धरदी ॥ १८ ॥ हे महेश्वरि ! प्रभूत क्रोधमें भरकर जलस्पर्शपूर्वक उस मदमाते इन्द्रसे ऋषि यों बोले ॥ १९ ॥ दुर्वासाने कहा--क्योंकि, तुम लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होरहेहो अतएव तुमने हमारा अपमान कियाहै इस कारण त्रिलोकीके लक्ष्मीका नाश होजायगा ॥ २० ॥ महादेवजी बोले--जब इन्द्रने दुर्वासा मुनिके यह वाक्य सुने तब उनके सब अंग कंपायमान होगये और वे पर्वतकी समान अचल रूपसे स्थित रहें ॥ २१ ॥ और गद्गदहो इन्द्रने दुर्वासासे यह वचन कहे एवम् हाथजोड़ दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ इन्द्र बोले—हे मुनि ब्राह्मण ! मुझ मूर्खने आपको विनाजाने दुर्बुद्धिसे आपका निरादर किया अतएव क्षमा कीजिये ॥ २३ ॥ दुर्वासा बोले—हे दुर्बुद्धे ! हमारा शाप अवश्य सफल होगा, सो महादेवजीकी आराधना करनेसे तुम्हें फिर स्वकीय पद का लाभ होगा ॥ २४ ॥ महादेवजी बोले--हे महेश्वरि! वोह ब्राह्मण यों कहकर गन्तव्य स्थानको चलेगये, इधर इन्द्रभी शत्रुओंके द्वारा पराजितहो राज्यसे शीघ्रही निपतित होगये ॥ २५ ॥ अथच मुनिके शापवशात् त्रिलोकीकी लक्ष्मीभी विनष्ट होगई, और लक्ष्मी-

पतः ॥ नष्टायां तु पुनर्लक्ष्म्यां जगत्रस्तं चराचरम् ॥ २६ ॥ हाहाकारसमभूत्सर्व्वं नष्टे त्रैलोक्यनायके ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं हव्यकव्यविवर्जितम् ॥ २७ ॥ न किंचित् कोपि जानाति राजानं पितरं तथा ॥ सर्वे दारिद्र्यसंछन्ना नष्टीभूता नरेश्वराः ॥ २८ ॥ वनानि भेजिरे दीनाः सैनिकादिविवर्जिताः ॥ स्वछंदचारिणो भृत्या व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥२९॥ प्रापुः परस्परं वर्णाः सांकर्य्यं गिरिनंदिनि ॥ पुण्यश्लोकपरिभ्रष्टाः पतंति नभसश्च्युताः ॥ ॥ ३० ॥ अधर्म्मबहुला लोकाः स्वधर्म्मेण च्युताः शिवे ॥ आसुरीं बुद्धिमापन्नाः काममोहसमावृताः ॥ ३१ ॥ अगम्यागमनरता भ्रष्टाचारा द्विजातयः ॥ न प्रजां पालते राजा न चाग्नौ हूयते द्विजैः ॥ ३२ ॥ चरमं युगमिव हि बभूव सर्वतः प्रिये ॥ अकालवर्षी पर्ज्जन्यः स्वल्पपुष्पा महीरुहाः ॥ ३३ ॥ उल्कापाताश्च पेतुर्वै सागरो ववृधे ततः ॥ सांगारं वर्षते मेघो गिरयश्च चकंपिरे ॥ ३४ ॥ एवं भूते त्रिलोके तु नष्टे स्थावरजंगमे ॥ लक्ष्मी-

नष्ट होजानेसे चराचर जगत् सभी भयभीत होगया ॥ २६ ॥ एवं च त्रिलोकनाथके नष्ट होजानेपर सर्वत्रही हाहाकार मचगया, वेदपाठ, वषट्कार और हव्यकव्य यह सभी लुप्त होगये ॥२७॥ राजा और पिताको कोईभी कुछ न जानै, सभी दारिद्र्यसे व्याप्त होगये और राजा लोग सब नष्ट होगये ॥२८॥ और सुखहीन सैनिकगण रहित वनमें चलेगये, भृत्य (सेवक) लोग स्वच्छन्दचारी होगये और स्त्रियें व्यभिचारिणी होगईं ॥ २९ ॥ हे पर्वतकुमारी ! चारों वर्णमें आपसमें वर्णसंकर होगये, और पवित्र चरित्रोंसे हीनहो आकाशसे निपतित होनेलगे ॥ ३० ॥ हे शिवे ! सबलोग अपने २ धर्मका परित्यागकर अधर्म करनेमें कटिबद्ध होगये, एवं सबही काममोहसे व्याप्तहो आसुरी बुद्धिको प्राप्तहोगये ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणलोग अगम्यास्त्रियोंसे गमन करनेलगे और उनके समस्त आचरण भ्रष्ट होगये, न राजा प्रजाका पालन करै और ब्राह्मणलोग न अग्निमें होम करैं ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! उससमय सर्वत्र कलियुगकी समान वर्त्ताव होगया, मेघ कुसमय वर्षा करनेलगे, वृक्षोंके ऊपर पुष्प स्वल्प आनेलगे॥ ३३॥ आकाशसे उल्कापात होनेलगे, सागरने अपनी मर्यादा छोड बढना प्रारंभकिया, बादल अंगार वर्षा करनेलगे, और पर्वत कंपायमान होगये ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीके स्थावर जंगम नष्ट होकर

हीने महेशानि संभ्रांतास्त्रिदिवौकसः ॥ ३५॥ नष्टेश्वरा हतश्रीका ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ शरण्यं सर्वलोकानां धातारं जगतां विभुम् ॥ ३६ ॥ ऊचुः प्रांजलयः सर्वे विनयाविष्टमानसाः ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो नमस्ते धात्रे विधात्रे सर्वजनिप्रद ॥ हतश्रीका वयं सर्वे नष्टात्मानो हतेश्वराः ॥ ३८ ॥ क्व यामोद्य वयं धातरनाथा हव्यवर्जिताः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३९॥ ध्यात्वा क्षणं तु तज्ज्ञात्वा सर्वदेवसमन्वितः ॥ जगाम सहसा देवि क्षीरोदस्योत्तरे तटे ॥ ४० ॥ समाधाय मनो देवं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वेशमाद्यं प्रभवं प्रभूणां चराचराणां सृजकं रमेशम् ॥ सत्वादिरूपैस्त्रिविधं पुराणं पुराणगीतं मनसा स्मरामि॥ ४२ ॥ सर्वस्य देहे जगति प्रभो त्वं गेहे यथा गेहपतिर्गृही स्यात् ॥ तथाप्यदेहोपि विभुर्हि देही संप्रोच्यसे त्वां मनसा

जब ऐसी दुर्दशा होगई और लक्ष्मीका विनाश होगया तब सब देवता संभ्रान्त होगये ॥ ३५॥ जब देवताओंके स्वामी और उनकी लक्ष्मीका विनाश होगया तब सब जगत्को शरण प्रदान करनेवाले संसारके पालनकर्त्ता सर्वव्यापक ऐसे ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ३६ ॥ नम्रतापूर्वक दर्शनपूर्वक समस्त देवता हाथजोड़ ब्रह्माजीसे यों कहनेलगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले—हे सर्व निर्माणकर्त्ता ! आपही सबकी रचना और पालन पोषण करतेहैं, अतएव आपको नमस्कारहै हम सबकी लक्ष्मी, आत्मा और अधीश्वर इनका नाश होगयाहै ॥ ३८ ॥ यज्ञभागरहित हमलोग अनाथहैं सो कहां जायँ ? जब लोकपितामह ब्रह्माजीने उनके ऐसे वाक्य सुने ॥ ३९॥ तब क्षणभर ध्यानकर और सबकारण जान संपूर्ण देवताओंको अपने साथले हे देवि ! ब्रह्माजी तत्काल क्षीरसागरके उत्तरीय तटपर गये ॥ ४० ॥ अथच चित्तको एकाग्रकर नारायणकी स्तुति करनेके लिये प्रवृत्त होगये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले—विश्वके स्वामी, सबके आदिभूत प्रभुओंकेभी उत्पत्तिस्थान, समस्त चराचरकी रचना करनेवाले, लक्ष्मीपति, सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंके द्वारा तीन प्रकारकी मूर्त्ति धारण करनेवाले पुराणपुरुष अथच जिनके चरित्रोंका पुराण गान करतेहैं ऐसे परमेश्वरका हम स्मरण करतेहैं ॥ ४२ ॥ आप सबके देहमें इसप्रकारसे अधिष्ठितहैं, हे जगन्नाथ ! जैसे घरमें घरका स्वामी अवस्थित रहताहै तथापि आप देहरहित किन्तु सर्वव्यापकहैं और देही अर्थात् आत्मस्वरूप आपही

स्मरामि ॥ ४३ ॥ त्वन्मायया संवृतचेतनो वै न त्वां विजानामि हृदि स्फुरंतम् ॥ देहाभिमानी नरदेवमूर्त्तिश्चामीकरं कंठगतं यथाज्ञः ॥ ४४ ॥ अनादिमाद्यं सुरयक्षमूर्त्ति संकल्परूपं दितिज प्रणाशनम् ॥ सर्वस्य विश्वस्य परं निधानं तं धेनुकारिं मनसा स्मरामि ॥ ४५ ॥ त्वत्प्रेरितोसौ नृजनः करोति कर्त्ताहमस्मीति विमूढबुद्धिः ॥ मतिं पतिं त्वां भवहेतुभूतं जानाति नो वै मनसा स्मरामि ॥ ४६ ॥ षट्चक्ररूपं द्विपताभिपीडं निरंजनं निर्गुणमप्रमेयम् ॥ चराचराद्यं बलहंतृरूपं सर्वेश्वरं तं मनसा स्मरामि ॥ ४७ ॥ विशुद्धबोधोसि हि सर्वदेहिनामधीश आत्मासि परं निधानम् ॥ निराकृतिर्ज्ञानदृशा प्रतीयसे सर्वात्मकं त्वां मनसा स्मरामि ॥ ४८ ॥ पुरा त्वया शंखभयाद्विलीना लोकाश्च वेदाश्च धृता महालयात् ॥ धृत्वा महामीनवपुः परात्मन् महार्त्तितोस्मा-

कहतेहैं, मैं आपका मनसे स्मरण करताहूं ॥ ४३ ॥ जब आपकी मायासे प्राणीकी चेतना नष्ट होजातीहै तब वोह हृदयमें अवस्थित हुएभी आपको इसप्रकार भूला रहताहै, जैसे राजा अपने कंठमें स्थित हुए सुवर्णको नहीं जानता ॥ ४४ ॥ आपकी आदि नहीं अतएव सबके आदिभूत आपहीहैं, देवताओं और यक्षोंकी मूर्त्तिभी आपही धारण करतेहैं, आपका स्वरूप कल्पनासे उत्पन्न होनेवाला है, आप अखिल दैत्योंका विनाश करतेहैं, संपूर्ण संसारके धारणकर्त्ता एवम् उसके पालनपोषण कर्त्ताभी आपहीहैं, आपने धेनुक दैत्यका वध कियाथा अतः हम आपका स्मरण करतेहैं ॥ ४५ ॥ आपकी प्रेरणाद्वारा मन्दमति होजानेके कारण यह मनुष्य अपने आपहीको कर्त्ता कहने लगताहै, सबमें बुद्धिरूपसे स्थित, सबके स्वामी और सबके कारणस्वरूप आपहीहैं किन्तु मन्दपुरुष यह नहीं जानते, हम आपका स्मरण करतेहैं ॥ ४६ ॥ आप षट्चक्ररूप, शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले, निरंजन, निर्गुण और अप्रमेयहैं, सब चराचरके आदि कारण आपही हैं, दुष्टोंके बलका विनाश करके आपहीने सर्वेश्वरत्व लाभ कियाहै अतएव मैं मनोयोगपूर्वक आपका स्मरण करताहूं ॥ ४७ ॥ आपका ज्ञान विशुद्धहै, समस्त देहियोंके अधीश्वर, आत्मस्वरूप और परम निधानहैं, यद्यपि आपकी कोई आकृति नहींहै तथापि ज्ञानदृष्टिसे आपकी प्रतीति होतीहै, आप सर्वात्मकहैं अतएव मैं दत्तचित्तहो आपका स्मरण करताहूं ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! प्रथम जब शंखासुर लोक और वेदोंको अपहरण करके लेगयाथा तब आपहीने मीन देह धारणकर सागरमेंसे

नव भार्गवीश ॥४९॥ ईश्वर उवाच ॥ एवं स्तुतो देववरो विधात्रा स दर्शयामास स्वकं स्वरूपम् ॥ चतुर्भुजं शंखगदादिमंडितं किरीटकेयूरविभूषितांगम् ॥५०॥ सुनीलमेघैश्च समानवर्णं रमासमासादितवामभागम् ॥ उवाच गंभीरवचोभिरीश्वरस्तुवंतमेनं द्रुहिणं पुरः स्थितम् ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोस्मि वराहोंसि यदर्थमिह चागतः ॥ ज्ञातमेव तु तत्सर्वं स्वयं धास्यामि मा शुचः ॥ ५२ ॥ अहं हि पालने शक्तो नाशे रुद्रवपुः स्वयम् ॥ सर्गे त्वमेव युक्तोसि ततो गच्छामहे शिवम् ॥ ॥ ५३ ॥ तद्वदिष्यति भगवान् गंगाशेखरधारकः ॥ तत्सर्वं संविधास्यामो व्याप्तं येन जगत्रयम् ॥ ५४ ॥ इदं मार्गत भो देवा क्क चास्ते बलसूदनः ॥ तेनैव सहितो देवा यतो नष्टं तदागसा ॥ ॥ ५५ ॥ रुद्रमाराधयिष्यामो हरिर्दुर्वाससा यतः ॥ प्रोक्त आराधयिष्वेति ततः स्वस्थो भविष्यति ॥ ५६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति कृत्वा मतिं देवा मार्गयामासुरिंद्रकम् ॥ ते मार्गमाणा बहुशो

उनका उद्धार कियाथा हे दुःखहारी ईश्वर! हमें इस संकटसे बचाओ ॥ ४९ ॥ महादेव बोले—जब विधाताने देवेश्वर नारायणकी इसप्रकार स्तुति करी, तब उन्होंने मुकुट और केयूर (बाजू) आदि आभूषणोंसे समलंकृत, शंख और गदा आदि धारण किये अपने चतुर्भुजी स्वरूपके दर्शन कराये ॥ ५० ॥ सुन्दर नीले बादलोंकी समान उनका वर्ण उनके वामभागमें लक्ष्मी उपस्थितथीं, तब भगवान् पुरोवर्ती स्तुति करते हुए ब्रह्माजीसे य गंभीरवाणी कहनेलगे ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान् बोले—मैं तुमसे प्रसन्नहूं और तुम्हें वरदूंगा, तुम जिसलिये यहां आयेहो सबकारण जानताहूं, तुम सोच मतकरो मैं स्वयम्ही सबकुछ करूंगा ॥ ५२ ॥ किन्तु—केवल पालनकरनेहीकी मेरी शक्तिहै, और नाशकरनेमें स्वयम् रुद्र समर्थ स्वर्गमें तुम्ही नियुक्तहो अतः महादेवके निकट चलें ॥ ५३ ॥ गंगाजीको मस्तकोपरि धारणकर्त्ता एवं सर्वव्यापक महादेवजी तब हमसे वर्णन करेंगे, और जो कुछ वे कहेंगे वोही सब हमैं करना होगा ॥ ५४ ॥ हे देवताओ ! संप्रति इन्द्र कहांहै क्योंकि इन्द्रहीको साथले ॥ ५५ ॥ रुद्रकी आराधना करेंगे कारण कि, दुर्वासानेभी इन्द्रसे यही कहाहै कि, तुम महादेवकी आराधनाकरो तभी स्वस्थताका लाभ होगा ॥ ५६ ॥ महादेवजी बोले--ऐसी सम्मति कर समस्तदेवता इन्द्रका अन्वेषण करनेलगे, परन्तु बहुतकुछ ढूंढभाल करनेपरभी उ

न प्रापुर्वासवं क्वचित् ॥ ५७ ॥ वायुं प्रोचुः सुराः सर्वे त्वं मार्गस्व विभुर्यतः ॥ त्वं सर्वलोकदेहस्थो व्याप्तं लोकत्रयं त्वया ॥ ५८ ॥ वातोपि तेषां वचनान्मार्गयामास वासवम् ॥ कैलासे पर्वतश्रेष्ठे उत्तरस्यां दिशि प्रिये ॥ ५९ ॥ अलकनंदोत्तरे तीरे श्रीक्षेत्रे क्षेत्रसत्तमे ॥ इंद्रं मशकरूपं वै ददर्श गिरिनंदिनि ॥ ॥ ६० ॥ इंद्रो वै कीलितो यस्मिन्निषसाद गिरौ यतः ॥ ततस्तदभिधानं तु इन्द्रकीलमभूच्छिवे ॥ ६१ ॥ इंद्रकीलात्ततः सर्वे इंद्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ऊचुर्वचो महेशानि हरिं मशकरूपिणम् ॥ ॥ ६२ ॥ एह्यागच्छ महाबाहो बलवृत्रनिषूदन ॥ त्वया त्यक्तमिदं सर्वं नष्टीभूतं जगत्रयम् ॥ ६३ ॥ नातः परं महाभाग ब्राह्मणेषु कदाचन ॥ अवलेपो न कर्त्तव्यो यतस्ते सर्वदेवताः ॥ ॥ ६४ ॥ कैलासवासिनं देवं शर्वं पशुपतिं विभुम् ॥ दुःखमुक्त्यै वयं सर्वे स्तोष्यामो बलसूदन ॥ ६५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां वासवो देवतेरितः ॥ त्यक्त्वा तन्माशकं रूपं ययौ

इन्द्रकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ ५७ ॥ तब देवताओंने वायुसे कहा कि, तुम सर्वव्यापकहो अतएव इन्द्रका अन्वेषण करो क्योंकि, तुम समस्त प्राणियोंके देहमें अधिष्ठितहो और तुमने त्रिलोकीको व्याप्त कर रक्खाहै ॥ ५८ ॥ उनके कहनेसे वायुनेभी इन्द्रका अन्वेषण किया, हे प्रिये ! उत्तर दिशामें सर्वोत्तम कैलासपर्वतके ऊपर ॥ ५९ ॥ हे पर्वतात्मजे ! अलकनन्दाके उत्तरी तटपर क्षेत्रोंमें उत्तम श्रीक्षेत्रके ऊपर इन्द्रको मशकका रूप धारणकरे देखा ॥ ६० ॥ क्योंकि उस पर्वतके ऊपर इन्द्रको कीलित कियागयाथा अतएव हे पार्वति ! उस पर्वतका नाम इन्द्रकील निर्वाचित हुआहै ॥ ६१ ॥ हे महेश्वरि ! तबतौ इन्द्रकील पर्वतके ऊपर खडे हो समस्त देवताओंने मशकरूपधारी इन्द्रसे यह वचन कहे ॥ ६२ ॥ हे बल और वृत्रासुरविनाशिन् ! आओ क्योंकि तुम्हारे परित्याग करदेनेसे यह त्रिलोकी सब नष्ट होगई ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर (अर्थात् अबसे) ब्राह्मणोंके प्रति विडम्बनाका आचरण करना कर्त्तव्य नहीं है, कारण यहहै कि, उनसभीको देवता मानागयाहै ॥ ६४ ॥ हे बलाराते कैलासपर्वतके ऊपर निवास करनेवाले देवाधिदेव कल्याणमूर्त्ति सर्वव्यापक पशुपति महादेवजीकी हम सब दुःखसे मुक्तिलाभ करनेके लिये स्तुति करेंगे ॥ ६५ ॥ महादेवजी बोले—इस प्रकार देवोक्त वाक्योंको श्रवण करके इन्द्रने मशकरूपको परित्यागकर उस स्थानको गमन किया जहां महेश्वर

यत्र महेश्वरः ॥ ६६ ॥ देवैः परिवृतः सर्वैः संस्मरन् मनसा शिवम् ॥ यत्राहं परमेशानि त्वया सह स्थितः परः ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासमाहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तौ त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

विद्यमानथे ॥ ६६ ॥ हे महेश्वरि ! तुम्हें साथ लिये जहां मैं स्थितथा वहांही समस्त देवताओंसे आवृतहो मुझ महादेवका स्मरण करते हुए इन्द्र आये ॥ ६७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां त्रिपंचाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ५४.

ईश्वर उवाच ॥ ततः पुरंदरो देवि भक्त्या परमया गिरौ ॥ ब्रह्मणा समनुज्ञातस्तप्तवान्परमं तपः ॥ १ ॥ दशवर्षसहस्राणि सस्मार मनसा हि माम् ॥ देवाः सर्वेऽपि तत्रैव तपः परममास्थिताः ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च ये चान्ये साध्या विश्वे मरुद्गणाः ॥ जयशब्देन मां प्रोचुर्भक्त्या सन्नतकंधराः ॥ ३ ॥ दुर्वासःशापसंविग्ना मामूचुस्त्राहि त्राहि च ॥ तस्मिन्नेव च काले तु प्रसन्नोऽहं सुरार्चितः ॥ ४ ॥ आसं दृक्पथि देवानामिंद्रादीनां महेश्वरि ॥ अनेनैव हि रूपेण प्रत्यक्षमगमं पुरा ॥ ५ ॥ मां दृष्ट्वा द्रुहिणस्तूर्णं प्रणम्य स्तोतुमारभत् ॥ भक्तिगद्गदया वाचा विनयावि-

महादेवजी बोले—हे देवि ! फिर ब्रह्माजीकी आज्ञापाय, इन्द्रने इसी पर्वतके ऊपर बडे भक्तिभावसे परम उग्र तपका आचरण किया ॥ १ ॥ दशसहस्र वर्ष पर्य्यन्त इन्द्रने मनोयोगपूर्वक मेरा स्मरण किया । और अन्य सब देवताभी वहांही उग्रतप करनेलगे ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य साध्य, मरुद्गण और विश्वेदेव यह सब भक्तिभावसे अपनी२कन्धराओंको नम्रकर जय २ शब्दसे मुझे सम्बोधन करनेलगे ॥ ३ ॥ दुर्वासाके शापसे उद्विग्नहो सब देवता हमसे बोले कि, हमारी रक्षा करो, तब देवताओंसे अर्चित होनेके कारण मैं उनसे प्रसन्न होगया ॥ ४ ॥ हे महेशानि ! तब मैं इसीरूपसे इन्द्रादि देवताओंके समक्ष प्रगट हुआ॥ ॥ ५ ॥ मुझे देखतेही झटपट ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक गद्गदवाणीसे मनमें विनय धारणकर स्तुति

ष्टमानसः ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय भक्तिगम्याय वेधसे ॥ पूर्णायानंतमुद्राय क्षोदिष्ठाय नमो नमः ॥ ७ ॥ नमो विश्वसृजे तभ्यं भूतानां पतये नमः ॥ हिरण्यबाहवे तुभ्यं दिशां च पतये नमः ॥ ८ ॥ नमः कांचनरूपाय स्फटिकाभाय वै नमः ॥ नमो विद्युन्मयूखाय करिचर्मधृते नमः ॥ ९ ॥ नमः पीयूषधाराय धारासाराय वै नमः ॥ नमश्चंद्रकलापाय कलानां पतये नमः ॥ १० ॥ नमः कपर्दिने तुभ्यं पुष्टानां पतये नमः ॥ निषंगिणे चेषुमते नीलग्रीवाय ते नमः ॥ ११ ॥ नमस्त्रिशूलहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥ त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं त्रिस्वरूपाय ते नमः ॥ १२ ॥ त्रिवह्निसमनेत्राय नमस्त्रैलोक्य मूर्त्तये ॥ नमस्त्रिवर्षरूपाय त्रिदिवाय नमोनमः ॥ १३ ॥ त्रिविक्रमस्वरूपाय त्रिविष्टपभृते नमः ॥ त्रिशूलधारिणे तुभ्यं त्रयी

करनेका आरम्भ करदिया ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे त्रिलोकीके स्वामी ! आपकी प्राप्ति भक्तिसे होतीहै, सृष्टिका विधान करनेवाले आपहीहैं, आप पूर्णरूप और अनन्त मुद्रावान्हैं आपका स्वरूप अत्यन्तही सूक्ष्म अर्थात् अतीन्द्रियहै अतः हम आपको वारंवार नमस्कार करतेहैं ॥ ७ ॥ विश्वके रचनेवाले, भूतों (अर्थात् प्राणियों) के पति, हिरण्यबाहु और दिशाओंके स्वामी आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ ८ ॥ आपका रूप कांचन (सुवर्ण) की सदृशहै, आपकी कान्ति स्फटिककी सदृशहै, आपकी किरणें तडितकी समान दीप्तिमतीहैं, आप हस्तीकी चर्मको धारणकरतेहैं आपको नमस्कारहै ॥ ९ ॥ अमृतकी धारारूप और जलरूप आपहीहैं, आपने मस्तकके ऊपर चन्द्रमाको धारण कियाहै, समस्त कलाओंके आपही स्वामीहैं ॥ १० ॥ आपने जटाजूटको धारण कियाहै, आप पुष्टोंके स्वामीहैं, निषंग और बाणोंको आपने धारण कियाहै और आपकी नीली ग्रीवाहै हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ ११ ॥ आपके हाथमें त्रिशूलहै, आपके तीननेत्रहैं, सत्व रज तम तीन गुणरूप आपहीहैं, अतएव आपके तीन स्वरूप हैं हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ १२ ॥ आपके तीनों नेत्र तीनों अग्निकी समान प्रदीप्तहैं, यह त्रिलोकी आपहीकी मूर्त्तिहै, यह लोक सब आपहीका स्वरूपहै, और स्वर्गरूपभी आपही हैं हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ त्रिविक्रमस्वरूप आपहैं, स्वर्ग अर्थात् स्वर्गीय पक्तियोंका भरण पोषण आपही करतेहैं, आप त्रिशूलधारी और त्रिविघ्नस्वरूपहैं, आपको नमस्कार

विभ्राय ते नमः ॥ १४ ॥ त्रिहुताशनसंस्थाय त्रिदंडाय नमो नमः ॥ त्रितीयाकरणार्थाय त्रिवर्गफलदायिने ॥ १५ ॥ त्रिपथगा शेखराय त्रिशीर्षाय नमो नमः ॥ त्रिहीनाय नमस्तुभ्यं त्रिभागाय नमोनमः ॥ १६ ॥ न ते रूपं न ते ज्ञानं न मायां सर्वमोहिनीम् ॥ जानंति हरिविश्वेशाः स्वयं वेत्सि महेश्वर ॥ १७ ॥ निर्गुणो निरहंकारो निर्ममो हि निरीश्वरः ॥ त्वं महेश हि मायां स्वां विस्तारयसि संसृतौ ॥ १८ ॥ मोहजाले समाच्छन्नास्तदा त्वां सगुणं विदुः ॥ देहगेहसमापन्नो लीलया भगवान् यदा ॥ अहं कर्त्ता ह्यहं भोक्ताहंकारेण प्रतीयसे ॥ १९ ॥ यदा सृष्टौ महादेव शक्तियुक्तो निरीश्वरः ॥ तदा ममत्वमापन्नो दारपुत्रगृहादिषु ॥ २० ॥ पुराहं बालिशो देव तवांतं जगतः प्रभो ॥ दिदृक्षुरगमं खे वै ह्यनंतेऽनंतविक्रम ॥ २१ ॥ ऊर्द्ध्वमूर्द्ध्वं गतश्चैव यतो ब्रह्मांडभित्तिका ॥ तत्राहं परमाश्चर्यं दृष्टवान् जगदीश्वर ॥२२॥

है ॥ १४ ॥ तीन प्रकारकी अग्नियोंमें आपहीकी स्थितिहै, आपही त्रिदण्डस्वरूपहैं, और आप त्रिवर्ग फल प्रदान करतेहैं ॥ १५ ॥ त्रिपथगामिनी गंगाजी आपके शिरके ऊपर विराजमानहैं, आपके शिरभी तीनहैं, आप सत्व रज तमके विकारोंसे रहितहैं, और आप त्रिभागरूपहैं, आपको नमस्कारहै ॥ १६ ॥ नारायण और ब्रह्माआदिभी आपके रूप ज्ञान और सर्वमोहिनी आपकी मायाको नहीं जानते, किन्तु हे महेश्वर ! तुम स्वयमही जानतेहो ॥ १७ ॥ आप निर्गुण (मायाजनित गुणोंसे रहित) अहंकारशून्य, ममताशून्य और ईश्वररहित हो अर्थात् आपका कोई स्वामी नहींहै, हे महेश ! तुम स्वयमही संसारमें अपनी मायाका विस्तार करतेहो ॥ १८ ॥ मोहके बन्धनमें बँधे हुए व्यक्ति आपको सगुण जानतेहैं जब आप देहरूप घरमें अधिष्ठितहो अपनी लीलाका आप विस्तार करतेहैं तब अहंकारसे मनुष्य मैं कर्त्ताहूं, मैं भोक्ताहूं ऐसा कहनेलगताहै ॥ १९ ॥ हे महादेव ! जब सर्वेश्वर आप जगत्में अपनी मायाका विस्तार करतेहैं तब इसप्राणीको स्त्रीपुत्रादिकोंमें ममत्व उत्पन्न होजाताहै ॥ २० ॥ हे अनन्तविक्रमवान् जगतके प्रभो ! प्रथम मैं अपनी मूर्खतासे आपका अन्त जाननेकी इच्छा करके अनन्त आकाशमें गया ॥ २१ ॥ ब्रह्माण्डकी भीत पर्यन्त मैं ऊपरही ऊपरको चलागया,

अहं प्रविष्टोकस्मात्ते लिंगेनंतस्वरूपिणि ॥ योगमायासमाच्छन्नो नाहं वेद्मि स्म किंचन ॥२३॥ कोहं कुत्राहमापन्नः क गंता क च मे मतिः ॥ वर्षाणां नवकोटीनां सहस्राणां शतं शिव ॥ २४ ॥ तत्रैव चाटमाणोहमपश्यं कौतुकं महत् ॥ तस्मिन्नेव महल्लिंगे ब्रह्माण्डानां तु कोटयः ॥ २५ ॥ दोधूयमाना ह्यणुका गवाक्षो भानुभिर्यथा ॥ तान् दृष्ट्वाश्चर्य्यरूपान्वै विस्मितश्चाभवं ततः ॥ २६ ॥ क्षणेन तस्मिन्नेकस्मिन् ब्रह्मांडे ह्यगमं तदा ॥ तत्र दृष्टा महादेव पारावाराः सहस्रशः ॥ २७ ॥ द्वीपाश्चैवानेकविधा नानाजनपदान्विताः ॥ नद्यः सरांसि विविधा नानाकारजनास्तथा ॥ २८ ॥ अहं तत्र महादेव दृष्टो नार्य्या क्वचित्तथा ॥ चतुर्मुखं चतुर्बाहुं दंडपुस्तकधारिणम् ॥ २९ ॥ जग्राह पाणिनैकेन विस्मिता मां विलोक्य ह ॥ कोयं कीटो हि कुत्रैते भवंतीति जगाद ह ॥ ३० ॥ अन्याश्चापि हि तादृश्यः समाजग्मुः सुविस्मिताः ॥ हस्ते हस्ते समाधाय लालयामासु-

और हे जगदीश्वर ! वहां मुझे बडा आश्चर्य्य दृष्टिगत हुआ ॥ २२ ॥ मैं आपके अनन्तरूप लिङ्गमें प्रविष्ट होगया, और योगमायासे आच्छन्न होनेके कारण उस समय मैं कुछ न जान सका ॥ २३ ॥ मैं कौनहूं, कहांसे मैं आयाहूं, कहां मुझे जानाहै और क्या मेरी मतिहै, हे शिव ! यह कुछ न जानकर नौकरोड पूरे और सैकडों सहस्र वर्ष व्यतीत होगये ॥ २४ ॥ वहांही विचरते २ मैंने एकबडा कौतुक देखा कि, उसी महालिंगमें करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमानथे ॥ २५ ॥ जैसे सूर्य्यकी किरणें झरोंखोंमें कंपायमान परमाणुओंको लेके प्रतीत होतीहैं इसीप्रकार मैंने अनेक ब्रह्माण्ड देखे, तबतौ मुझे बड़ा विस्मय हुआ ॥ २६ ॥ क्षणभरमें मैं उसीमेंसे एक ब्रह्माण्डके भीतर प्रविष्ट होगया, वहां मैंने अपार और अनेक ॥ २७ ॥ असंख्य नगर समन्वित द्वीप, विविधप्रकारकी नदियें, और अनेकआकारके मनुष्य देखे ॥ २८ ॥ हे महादेव ! एकस्त्रीने वहां मुझे चारमुख, चारभुजा, दण्ड और पुस्तक धारण कियेहुए कहीं देखलिया ॥ २९ ॥ मुझे देख विस्मितहो एक हाथसे उसने पकडलिया, और यों कहने लगी कि, यह कैसा कीडाहै एवम् यह (ऐसे कीडे) कहां उत्पन्न होतेहैं ॥ ३० ॥ अन्यान्य स्त्रियेंभी विस्मितहो योंही कहने लगीं, और जल्दी २ एक दूसरेके हाथसे ले २ कर

रंजसा ॥ ३१ ॥ ततः कतिपयैर्देव दिवसैर्मोचितस्त्वहम् ॥ परं खेदसमापन्नो मदहीन इभो यथा ॥ ३२ ॥ स्तुतवान्मनसा त्वां हि परं निर्वेदमागतः ॥ पुनः क्षणेन तत्रैव निद्रावश इव स्थितः ॥ ३३ ॥ तत्रैव च समायातो यत्राहं मोहितः पुरा ॥ तद्दृष्ट्वा महादश्चर्य्यं त्वन्मायाकृतमीश्वर ॥ ३४ ॥ विषादमगमं देव महिम्नस्ते क्व विस्तरः ॥ नांतं नचादिं मध्यं ते न वेद्मि परमेश्वर॥ तस्मात्ते शतशो देव नमस्कुर्य्यां सुरेश्वर ॥ ३५ ॥ पुरा त्वया महादेव रक्षितास्त्रैपुराद्भयात् ॥ पुनरंधकभीतेस्तु रक्षिताः स्म महेश्वर ॥ ३६ ॥ इदानीमपि देवेश रक्ष दुर्वाससो भयात ॥ नष्टभागा वयं सर्वे भवामो हतचेतनाः ॥ ३७ ॥ ॥ इंद्रोपि राज्यतो भ्रष्टो लक्ष्म्या त्यक्तोतिदुःखितः ॥ उद्धरस्व महादेव विपदब्धौ निमज्जितान् ३८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तत इन्द्रोपि तरसा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ भक्त्या परमया युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ३९ ॥ इंद्र उवाच ॥ नमः सहस्रशिरसे सहस्राक्षाय वै नमः॥

लालन (दुलार) करने लगीं ॥ ३१ ॥ हे देव ! फिर थोडे दिनोंमें उन्होंने मुझे छोड दिया तौ मदहीन हस्तीकी समान मुझे बडा खेद हुआ ॥ ३२ ॥ मैं अत्यन्तखेदको प्राप्तहो मनहीमन आपकी स्तुति करनेलगा, फिर क्षणभरमें वहांही निद्रितसा हो बैठगया ॥ ३३ ॥ तबतौ मैं वहांही आगया जहां मुझे मोहकी प्राप्ति हुईथी, हे ईश्वर ! आपकी मायाके कियेहुए इसपरम आश्चर्य्यको देखकर ॥ ३४ ॥ मुझे बडा विषादहुआ, हे देव ! आपकी महिमाका विस्तार कहां प्राप्त होसक्ताहै, हे परमेश्वर ! मैं आपकी महिमाके मध्य और अन्तकोभी नहीं जानसक्ता, अतएव हे देवराज ! मैं आपको सैकडों नमस्कार करताहूं ॥ ३५ ॥ हे नाथ ! प्रथम आपने त्रिपुरासुरके भयसे और हे महेश्वर ! अन्धक दैत्यके भयसे हमारी रक्षा करीथी ॥ ३६ ॥ हे देवेश्वर ! संप्रति दुर्वासाके भयसे हमारा परित्राण करिये, क्योंकि, अपने २ भागोंकी प्राप्ति न होनेके कारण हम सबका चैतन्य लुप्तहो रहाहै ॥ ३७ ॥ इन्द्रकोभी लक्ष्मीने त्यागदिया अतएव वोह राज्यसे च्युतहो अत्यन्त दुःखित होरहाहै, सुतराम् हे देव ! दुःखसागरमें हम डूबते हुओंका उद्धार करो ॥ ३८ ॥ महादेवजी बोले—तबतो इन्द्रभी झटपट परिक्रमा और प्रणामकरके परमभक्तिभावपूर्वक स्तुति करनेके तईं सन्नद्ध हुए ॥ ३९ ॥ इन्द्र बोले--हे देव ! आपके सहस्रशिर और सहस्रनेत्रहैं, सहस्रही बाहु और सहस्रही चरणहैं

नमः सहस्रपादाय सहस्रबाहवे नमः ॥ ४० ॥ शाश्वताय त्रिनेत्राय तत्पुरुषाय वै नमः ॥ सप्तास्यसप्तहस्ताय सप्तभिर्वर्जिताय च ॥ ४१ ॥ सप्तजिह्वाय सप्ताय सप्तपंचरताय च ॥ पंचवक्त्राय क्रौंचस्य नाशकाय नमो नमः ॥ ४२ ॥ पंचेषुदमनायाशु पंच वेदपराय च ॥ नमो वेदांतवेद्याय नमः सर्वहराय च ॥ ४३ ॥ नमः पर्वतवासाय भूतपरिदृढाय च ॥ नमः कोटरलीनाय महानादाय वै नमः ॥ ४४ ॥ फणीन्द्रशतशोभाय भालचंद्राय वेधसे ॥ वह्न्यार्कशशिनेत्राय गंगाशेखरधारिणे ॥ ४५ ॥ तमोगुणप्रधानाय निर्लज्जाय कपालिने ॥ स्थूललोम्ने नमस्तुभ्यं नीलकंठाय ते नमः ॥ ४६ ॥ नमः परशुहस्ताय नमो नृमुण्डमालिने व्याघ्रचर्मधारयित्रे करिचर्मधृते नमः ॥ ४७ ॥ नमो वृषभवाहाय शिवाय परमात्मने ॥ जलंधरनिहंत्रे ते त्रिपुरांतकराय च ॥

(ऐसे व्यामोहकारी) आपको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ४० ॥ आप शाश्वत अर्थात्--अविनाशीहैं आपके तीन नेत्रहैं तत्पुरुष अर्थात्--परम पुरुषभी आपहीहैं, आपके सातमुख और सातहाथहैं किन्तु आप सप्तवर्जितहैं, हम आपको प्रणाम करतेहैं ॥ ४१ ॥ आपकी साताजिह्वाहैं, सप्तस्वरूप आपहीहैं, सप्तपंच अर्थात् कालकी संकलना करनेमें आप निरत रहतेहैं, आप पंचमुखीभीहैं, आपहीने क्रौंच दैत्यका वध[1] कियथा अतएव आपको नमस्कारहै ॥ ४२ ॥ सकड़ों सर्प आपके अंगको सुशोभित करतेहैं, आपके मस्तकके ऊपर चन्द्रमा विराजमानहै, आपही विधाताहैं अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्रहैं आपने शिरके ऊपर गंगाजीको धारण कियाहै ॥ कामके नाशक पंचवेदपरायण वेदान्तसे वेद्य सम्पूर्ण हरनेवाले पर्वतवासा भूतास वेष्टित तथा कोटरनिवासी आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ आपमें तमोगुण प्रधानहै, (दिगम्बर रहनेसे प्रतीत होताहै कि) आप निर्लज्जहैं, आपने कपाल मालाको धारण कियाहै, आपका कंठ नीला और रोम स्थूलहैं अतः हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ ४६ ॥ परशा हाथमें धारण करनेवाले और नरकपालोंकी माला धारण करनेवाले आपको नमस्कारहै, व्याघ्रचर्म धारणकर्त्ता और गजचर्म धारणकर्त्ताको नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ वृषभके ऊपर आरूढ़ होनेवाले, कल्याणमूर्त्ति और परमात्मस्वरूप, जलन्धर और

---

[1] यद्यपि 'क्रौंच' का वध 'स्वामिकार्त्तिक' ने कियाथा परन्तु-वे इन्ही महादेवजीके पुत्रथे और "आत्मा वै जायते पुत्रः" इस श्रुतिके अनुसार बोधित होताहै कि पुत्र अपनाही स्वरूप होताहै अतएव यह विशेषण दियागयाहै ।

नमोंधववधकर्त्रे ते कैलासस्थाय वै नमः ॥ ४८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति स्तुतोऽहमिंद्रेण देवैः सर्वैश्च चंडिके ॥ विष्णुना शतशश्चैव स्तुतोहं प्रभविष्णुना ॥ ४९ ॥ ततस्तुष्टो वरं प्रादां मनोभिलषितं शिवे ॥ भो भो वासव वृत्रघ्न त्वदर्थं वै समागताः ॥ देवाः सर्वे महात्मानो विभूत्यर्थं तथात्मनः ॥ ५० ॥ इदं मन्नेत्रसलिलं गृहाण सुरनायक ॥ निक्षिप्य सागरे तूर्णं मंथयध्वं सुरोत्तमाः ॥ ५१ ॥ सर्वेषामुपकाराय स्थितये जगतां तथा ॥ मंदरं च तथा कृत्वा मंथानं नेत्रवासुकिम् ॥ ५२ ॥ पृष्ठे धारयिता विष्णुः प्रभाविष्णुः परात्परः ॥ नोचेत्पातालनिलये गमिष्यति स भूधरः ॥ ५३ ॥ लक्ष्मीश्च कल्पवृक्षश्च जनयिष्येत्तदा खलु ॥ तेन वै कल्पवृक्षेण नित्यं तृप्ता भविष्यथ ॥ ५४ ॥ यद्यदिच्छत तत्सर्वं शीघ्रं संपत्स्यते किल ॥ लक्ष्मीश्चापि समग्रा वै विष्णोश्च परमात्मनः ॥ आगमिष्यति त्रैलोक्यं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ५५ ॥

त्रिपुरासुरका विनाश करनेवाले ऐसे आपको नमस्कारहै, आपने अन्धकासुरका वध किया और कैलासपर्वतके ऊपर आप निवास करतेहैं आपको नमस्कारहै ॥ ४८ ॥ महादेवजी बोले-चण्डिके ! जब संपूर्ण देवताओंने हमारी इसप्रकार स्तुतिकरी, और सर्वशक्तिमान् विष्णुभगवान्ने सैकडों प्रकारसे स्तुतिकरी ॥ ४९ ॥ तब हे शिवे ! मैंने सन्तुष्ट होकर उन्हें अभिलषित वर प्रदानकर, भो वृत्रासुरविनाशिन् सुरराज इन्द्र ! यह संपूर्ण महात्मा देवगण तुम्हारे कल्याणकेलिये और अपने ऐश्वर्य्यके निमित्त यहां आयेहैं ॥ ५० ॥ हे सुरराज ! हमारे नेत्रोद्भव इस जलको ग्रहणकरो और हे उत्तम देवताओ ! इसे समुद्रमें निपतित करके उसे मन्थनकरो ॥ ५१ ॥ सबका उपकार करनेकेलिये तथा जगत्की स्थितिके तईं मन्दराचलको मन्थान (रई) और वासुकि सर्पकी नेती बनाके (समुद्रमन्थन करो) ॥ ५२ ॥ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर श्रीविष्णुभगवान् (उक्त पर्वतको) अपनी पीठके ऊपर धारण करेंगे अन्यथा वोह पहाड पाताललोकको चलाजायगा ॥ ५३ ॥ ऐसा (उद्योग) करनेसे अवश्यमेव लक्ष्मी और कल्पवृक्षका प्रादुर्भाव होगा एवं उस कल्पवृक्षके द्वारा नित्य तुम्हारी तृप्ति होती रहेगी ॥ ५४ ॥ फिर जिस २ वस्तुकी तुम इच्छा करोगे अवश्यही उस वस्तुकी प्राप्ति तुमको होगी एवंच विष्णुभगवान्की कृपा और हमारे अनुग्रहसे पूर्णलक्ष्मी त्रिलोकीमें आजायगी इसमें

अन्यानि चापि रत्नानि भविष्यंति ततः परम् ॥ गच्छध्वं सागरस्यांते मथनाय सुरोत्तमाः ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा तत्र देवेशि सान्तर्द्धानं गतो ह्यहम् ॥ तेपि देवास्तत्र गत्वा ममंथुर्वरुणालयम् ॥ ॥ ५७ ॥ प्राप्तवंतश्च रत्नानि कल्पादीनि महेश्वरि ॥ कल्पेश्वरत्वं तत्रापि गतोहं वरवर्णिनि ॥ ५८ ॥ उत्पत्तिः कल्पनाथस्य लक्ष्म्याश्चापि महेश्वरि॥ब्रह्मणा च यथाहं वै वासवेन यथा स्तुतः॥ एतत्सर्वं समासेन कथितं ते महेश्वरि॥ ५९ ॥ श्रुत्वेमां तु कथां दिव्यां पापघ्नीं सर्वकामदाम् ॥ पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥६०॥ प्रातः प्रातः समुत्थाय पठते यः समाहितः ॥ इह लोके परान् भोगान् प्राप्य चांते शिवो भवेत्॥ ६१ ॥ रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बंधनात् ॥ अतः परं महादेवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलास माहात्म्ये कल्पेश्वरोत्पत्तिर्नाम चतुःपंचाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

कोईभी सन्देह नहींहै ॥५५॥ फिर इसके अनन्तर अन्यान्य रत्नोंकाभी प्रादुर्भाव होगा, अतएव हे देवताओ ! सागरका मन्थन करनेके लिये उसके निकट जाओ ॥ ५६ ॥ हे देवेश्वरि ! यों कहकर मैं उसीस्थानमें अन्तर्धान होगया, और वे देवतागणभी वहां जाय समुद्रका मन्थन करनेलगे ॥ ५७ ॥ हे महेश्वरि ! उन्हें वहां कल्पवृक्ष आदि रत्नोंका लाभहुआ, हे शुभानने ! उसस्थानमें कल्पेश्वरत्वको मैंने ग्रहण किया ॥ ५८ ॥ हे परमेश्वरि ! कल्पनाथकी और लक्ष्मीकी उत्पत्ति एवम् ब्रह्माजीने और विष्णुभगवान्‌ने जिस प्रकार मेरी स्तुति करी, यह सब आख्यान संक्षेपसे मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥५९॥ यह दिव्य कथा पापोंका नाश करनेवाली और समस्तकामनाओंकी पूर्ण करनेवालीहै अतएव इसको श्रवण करनेसे पुत्रार्थियोंको पुत्रका लाभ और धनाभिलाषियोंको धनका लाभ होताहै ॥ ६० ॥ जो व्यक्ति प्रातःकालही उठकर चित्तको एकाग्र करके इसका पाठ करताहै, वोह इसलोकमें उत्तमोत्तम भोगोंका उपभोग कर अन्तमें साक्षात् शिवरूप होजाताहै ॥ ६१ ॥ इसका पाठ करनेवाला रोगी रोगसे और बँधुआ बन्धनसे मुक्त होजाताहै । हे महादेवि ! इसके अनन्तर और क्या श्रवण करना चाहतीहो ॥ ६२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुःपंचाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशोऽध्यायः ५५.

पार्वत्युवाच ॥ पुरारामे महेशान यानि तीर्थानि तत्र वै ॥ तानि मे वद भक्तायै लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि वरारोहे तीर्थानि प्रवराणि वै ॥ समासेन प्रवक्ष्यामि शिवलोकप्रदानि च ॥२॥ मल्लिंगदक्षिणे पार्श्वे कापिलं लिंगमुत्तमम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण मम लोके महीयते ॥ ३ ॥ तदधो गिरिकन्ये वै नदी हैरण्मती मता ॥ तस्या वै दक्षिणे तीरे भृंगीश्वर इतीरितः ॥ ४ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कल्पं शिवपुरे वसेत् ॥ इदं क्षेत्रं महेशानि क्रोशद्वयसमाहितम् ॥ ५ ॥ अग्नितीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्र तत्र स्थले देवि शिवलिंगान्यनेकशः ॥ ६ ॥ तस्माद्वै पश्चिमे भागे नाम्ना गोस्थलकं स्मृतम् ॥ तत्राहं सर्वदा देवि निवसामि त्वया सह ॥ ॥ ७ ॥ नाम्ना पश्वीश्वरः ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ त्रिशूलं मामकं तत्र चिह्नमाश्चर्य्यरूपकम् ॥ ८ ॥ ओजसा चेच्चा-

पार्वतीजी बोली—हे महादेव ! वहां औरभी जितने तीर्थहैं मुझ भक्तके ऊपर कृपाकर अथ च संसारकी हितकामनाके तईं उन सबका आप वर्णन करें ॥ १ ॥ महादेवजी बोले सुनो सुमुखि महादेवि ! महादेवके लोककी प्राप्ति करानेवाले अतएव सबमें श्रेष्ठ जितने तीर्थ हैं उन सबका संक्षेपसे मैं वर्णन करताहूं ॥ २ ॥ हमारे लिंगके दक्षिणभागमें उत्तम कापिल लिंगहै, उसके केवल दर्शन करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग उपलब्ध होताहै ॥ ३ ॥ हे नगेन्द्रनन्दिनी ! उसीके नीचे हिरण्मती उत्तम नदीहै उसके दक्षिणभागमें भृंगीश्वर महादेव विराजमानहैं ॥ ४ ॥ उनके दर्शन करनेसे कल्पपर्य्यन्त शिवलोकमें निवास होताहै। हे महादेवि ! यह क्षेत्र दोकोस विस्तृतहै ॥ ५ ॥ और अग्नितीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै, हे देवि ! वहां जहां तहां अनेक शिवलिंगहैं ॥ ६ ॥ उसीके पश्चिम भागमें एक स्थानहै उसको गोस्थल कहतेहैं हे देवि ! तुम्हें साथलेकर मैं सदैवही वहां निवासकरता ॥ ७ ॥ वहां मेरा नाम पश्वीश्वरहै, और उक्त स्थानमें भक्तोंकी प्रीति विशेष बढतीजाती एवंच वहां हमारा चिह्नस्वरूप जो त्रिशूलहै सो बडाही आश्चर्यप्रदहै ॥ ८ ॥ यदि बलपूर्वक उसे कोई

ल्यते तन्नहि कंपति कर्हिचित् ॥ कनिष्ठया तु यत्स्पृष्टं भक्त्या तत्कंपते मुहुः ॥ ९ ॥ अन्यच्च संप्रवक्ष्यामि चिह्नं तत्र सुरेश्वरि॥ एकस्तत्र पुष्पवृक्षोऽकालेपि पुष्पितः सदा ॥ १० ॥ अत्र वै पंचरात्रं यो जपं कुर्यात्समाहितः ॥ स सिद्धिं महतीं याति देवैरपि दुरासदाम् ॥ ११ ॥ प्राणानत्र त्यजेद्यस्तु स लोके मामके वसेत् ॥ ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा गुरुतल्परतोपि वा ॥ सोपि गच्छति देवेशि मामन्यस्य तु का कथा ॥ १२ ॥ तस्मात्पूर्वप्रदेशे वै वसामि झषकेतुहा ॥ मया तत्र पुरा दग्धो झषकेतुर्महेश्वरि ॥ १३ ॥ झषकेतुहरो नाम्ना सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ पुना रत्या तोषितोहं पुनर्जन्मनिरूपकम् ॥ प्रादां तत्परमेशानि तद्भक्त्या तत्र संस्थितः ॥ १४ ॥ रतीश्वर इति ख्यातो मम संगमदायकः ॥ रतिकुंडं च तत्रास्ति नाम्ना मल्लोकदायकम् ॥ १५ ॥

कियाजाय तौ वोह चलायमान नहीं होता, और भक्तिपूर्वक कनिष्ठ अंगुलीसे स्पर्शकियाजाय तौभी वारंवार कंपायमान होतारहताहै ॥९॥ हे सुरेश्वरि ! वहांके एक और भी चिह्नका मैं वर्णन करताहूं, वहां एक पुष्पका वृक्षहै, वोह कुसमयमें भी सदैव पुष्पोंसे आच्छादित रहताहै ॥ १० ॥ जो व्यक्ति यहां चित्तको एकाग्र करके पांचरात्रि पर्यन्त जप करताहै, उसे ऐसी महती सिद्धिका लाभ होताहै जिसकी प्राप्ति देवताओंकोभी दुर्लभहै ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति इस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करताहै मेरे लोकमें उसका निवास होताहै। ब्रह्मघाती, मद्यपानकर्त्ता अथवा गुरुतल्पगामी हो तथापि हे देवि! उसको मेरा लाभ होताहै तौ फिर औरोंकी तौ कथाही क्याहै ॥ १२ ॥ सुनो महादेवि ! वहां प्रथम मैंने कामदेवको भस्म कियाथा अतएव उसके पूर्वभागमें मीनकेतनविनाशीभावसे वहां स्थित रहताहूं ॥ १३ ॥ वहां 'झषकेतुहर' हमारा नामहै, हमारे दर्शन करनेसे सब तीर्थोंके फलका लाभ होताहै, फिर रति (कामदेवकी स्त्री) ने मुझे सन्तुष्टकिया तब प्रसन्नहो मैंने उसे जननस्वरूपवर प्रदानकिया और उसकी भक्तिवशात वहांही स्थितरहा ॥ १४ ॥ इसीसे रतीश्वर नाम हुआ उसके दर्शन करनेसे मेरी प्राप्ति होती है, और वहांही रतिकुण्डहै उसका नामोच्चारण करनेहीसे मेरे लोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १५॥

इति ते कथितं देवि कल्पक्षेत्रस्य वैभवम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कल्पेश्वरमाहात्म्यं नाम पंचपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

हे देवि ! इसप्रकार कल्पक्षेत्रका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णनकिया, इसका श्रवण करनेसे निःसन्देह मेरे लोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचपंचाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशोऽध्यायः ५६.

ईश्वर उवाच ॥ पंच स्थानानि देवेशि कथितानि तवानघे ॥ केदारं मध्यमं तुंगं कल्पेश्वरमहालयम् ॥ १ ॥ पंच तीर्थानि यो देवि गच्छति भक्तिसंयुतः ॥ प्रसंगाद्वा बलात्काराज्ज्ञानादज्ञानतोपि वा ॥ २ ॥ न वै तत्सदृशो देवि पुण्यात्मा नात्र संशयः ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पूताः स्युः पापयोनयः ॥ ३ ॥ ब्रह्माद्या लोकपालाश्च ते नमंति महेश्वरि ॥ इह चापि वरान् भोगान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ पंचकेदारमाहात्म्यं शृणुयाद्यः समाहितः ॥ सर्वतीर्थेषु स स्नातः पूजिताः सकलाः सुराः ॥ यद्यदि-

महादेवजी बोले–हे निष्पापदेवेश्वरि ! पांच क्षेत्रोंका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया केदार, मध्यम, तुङ्ग, कल्पेश्वर और महालय ॥ १ ॥ भक्तिपूर्वक जो पुरुष इन पांच क्षेत्रोंकी यात्रा करताहै, अथवा किसी प्रसंगसे, वरजोरी, ज्ञान वा अज्ञानसेभी यात्रा करताहै ॥ २ ॥ निःसन्देह उसकी बराबर और कोई पुण्यात्मा नहींहै, उसके दर्शन करनेसे बडे २ पापी पवित्र होजातेहैं ॥ ३ ॥ हे महेश्वरि ! ब्रह्माआदि सब देवताभी वहां आय २ कर नमस्कार करतेहैं, उस स्थानके दर्शन करनेवाला व्यक्ति इस संसारमें अनेक प्रकारके शुभ भोगोंको भोगता और मरकर मोक्षलाभ करताहै ॥ ४ ॥ चित्तको एकाग्र करके जो व्यक्ति पंचकेदार माहात्म्यका श्रवण करताहै, मानो उसने सब तीर्थोंमें स्नान करलिया और संपूर्ण देवताओंकी पूजा करली। विशेष क्या हे गिरिनन्दिनी ! वोह व्यक्ति जिस २ वस्तुकी कामना करताहै वो

च्छति तत्सर्वं प्राप्नोति गिरिनंदिनि ॥ ५ ॥ प्रातः स्मरति यो नित्यं तीर्थानां पंचकं शुभम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छति परां गतिम् ॥ ६ ॥ इति ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासमाहात्म्ये पंचकेदार-माहात्म्यं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सभी उसे प्राप्त होतीहैं ॥ ५ ॥ जो पुरुष नित्य प्रातःसमय इन शुभ पांचों तीर्थोंका स्मरण करताहै. वोह व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्तहो परम गतिका लाभ होताहै ॥ ६॥ हे देवि यह तौ सब कुछ हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया अब और क्या श्रवण करनेकी तुम्हारी इच्छाहै ॥७॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ५७.

अरुंधत्युवाच ॥ धन्यास्मि कृतपुण्यास्मि यस्या मे पतिरीदृशः ॥ मत्समा नास्ति त्रैलोक्ये देवी वा मानुषी हि वा ॥ १ ॥ पिबंत्यास्त्वन्मुखांभोजात्तृप्तिर्नास्ति कथामृतम् ॥ न मां क्षुधा न वा तृष्णा बाधते भगवन्मुने ॥ २ ॥ बदरीवनमाहात्म्यं वद भर्तः कृपान्वित ॥ यथा प्राह महादेवो महेशानीं तपोनिधे ॥ ३ ॥ कियन्मानं तु तत्क्षेत्रं किं फलं तत्र जायते ॥ केन केन तपस्तप्तं बदर्य्याश्रममंडले ॥ ४ ॥ एतत्सर्वं समासेन कथयस्व प्रसा-

अरुन्धती बोली–आप (महाभाग) मुझे पति मिलेहैं अतएव मेरे अहोभाग्यहै, और मैंने अवश्यही पुण्योंका आचरण कियाहै, मेरी समान बडभागिनी मानुषी या देवी कोईभी नहीं है ॥ १ ॥ भो मुनिराज ! आपके मुखकमलसे विनिर्गत हुए कथारूप अमृतका पानकरते २ मेरी तृप्ति नहीं होती और हे भगवन् ! भूख प्यास कुछभी मुझे बाधा नहीं देतीहै ॥ २ ॥ भो स्वामिन् ! कृपापूर्वक महादेवजीने जिस प्रकार पार्वतीके प्रति बदरीवनका माहात्म्य वर्णन कियाथा, हे तपोनिधे ! वोह सब आप मुझे सुनाईये ॥ ३ ॥ उस क्षेत्रका कितना विस्तारहै, वहां जानेसे क्या फल प्राप्त होताहै ? और बदरिका आश्रमके मण्डलमें किस २ ने तप किया है ॥ ४ ॥ कृपाकरके यह सब संक्षेपरीतिसे मेरे प्रति वर्णन करो, अथ च वहां पापविना-

दतः ॥ यत्र गंगा ब्रह्मरूपा संस्थिताऽघौघनाशिनी ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टो ह्यरुंधत्या भगवान् द्रुहिणात्मजः ॥ क्षणं ध्यात्वा नमस्कृत्य महेशं प्राह सुंदरीम् ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वरुंधति वक्ष्यामि यथाह भगवाञ्छिवः ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सावधानावधारय ॥७॥ श्रुत्वा तत्पंचमाहात्म्यं पुनः पप्रच्छ पार्वती ॥ महादेवं महात्मानं भक्तितत्परमानसा ॥८॥ बदरीवनमाहात्म्यं कथयामास पार्वतीम् ॥ तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ॥ ९ ॥ कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नंदगिरिर्भवेत् ॥ तावत्क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १० ॥ कण्वो नाम महातेजा महर्षिर्लोकविश्रुतः ॥ तस्याश्रमपदे नत्वा भगवंतं रमापतिम् ॥ दुरात्मानोपि गच्छंति पदं दुःखविवर्जितम् ॥ ११ ॥ नंदप्रयागके स्नात्वा संपूज्य च रमापतिम् ॥ किं किं न जायते तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ १२ ॥ धन्याः कलियुगे घोरे ये नरा बदरीं गताः ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिभक्तिर-

शिनी ब्रह्मरूपा गंगाजीभी विराजमानहैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी महाराजसे जब अरुन्धतीने इस प्रकार प्रश्न किया, तब उन्होंने महादेवजीको प्रणाम करके क्षण भर ध्यान किया, फिर सुन्दरी अरुन्धतीसे यों कहा ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी बोले—सुनो अरुन्धती! जिस प्रकार महादेवजीने वर्णन कियाथा वोही मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं सावधानहोके श्रवणकरो ॥ ७ ॥ उक्त पांचोंका माहात्म्य श्रवण करनेके अनन्तर भक्तिमें तत्पर हो महात्मा महादेवजीसे पार्वतीने फिर यह प्रश्न किया ॥ ८ ॥ तब शिवने बदरीवनका माहात्म्य पार्वतीसे कहा उसीपरम पवित्र अतएव पापोंका विनाश करनेवाले माहात्म्यको हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं ॥ ९ ॥ कण्वऋषिके आश्रमसे आरम्भ करके जहांतक नन्दगिरि आताहै उतना क्षेत्र परमपवित्र भोग और मोक्षका देनेवालाहै ॥ १० ॥ कण्वनामके महातेजस्वी महर्षि लोकमें बडे विख्यात होगयेहैं उनके आश्रममें लक्ष्मीपति विष्णुभगवान्को प्रणाम करनेसे बडे २ पापी भी दुःखरहित परम पदको प्राप्त होतेहैं ॥ ११ ॥ नन्दप्रयागमें स्नानकर लक्ष्मीपति नारायणकी पूजा करनेसे पूजनकर्त्ताको क्या कुछ प्राप्त नहीं होजाता ? अर्थात् सब कुछ उसे प्राप्त होताहै, सुतराम् मुक्ति तौ उसके हाथहीमें उपस्थित रहतीहै ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! नारायणकी भक्तिमें निरतहो जहां ब्रह्माआदि देवताभी सदैव विराजमान रहतेहैं ऐसे बदरीवनमें जो

ताः प्रिये ॥ १३ ॥ निवसंति स्थले रम्ये नानातीर्थविराजिते ॥ धन्यः स एव लोकेषु यो गच्छेद्बदरीं नरः ॥ १४ ॥ न तस्य पुण्यमहिमा वर्णनाय च शक्यते ॥ मनसापि च ये लोका बदरीवनमाश्रिताः ॥ ते वै वासफलं देवि प्राप्नुवंति न संशयः ॥ १५ ॥ ये तत्र वासिनो लोका बदर्य्याश्रममंडले ॥ विष्णुरूपधराः सर्वे भवंति वरवर्णिनि ॥ १६ ॥ इदं चतुर्थमाख्यातं क्षेत्रं परमपावनम् ॥ स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं चेति प्रकीर्त्तितम् ॥ १७ ॥ योजनत्रयविस्तीर्णं दीर्घं द्वादशयोजनम् ॥ अगम्यं पापिनां तद्वै महदैश्वर्यदायकम् ॥ १८ ॥ मनसापि स्मरेद्यो वै विशाले बदरीति च ॥ तद्वासी सोऽपि विज्ञेयो मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ गंधमादनबदरीनरनारायणाश्रमः ॥ कुबेरादिशिलारम्यो नानातीर्थविराजितः ॥ २० ॥ सर्वैर्देवगणैर्युक्तो नानामुनिगणान्वितः ॥ चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ २१ ॥ तप्तोदकमयी धारा वह्नितीर्थसमुद्भवा ॥ वर्त्तते

व्यक्ति कलियुगमें यात्रा करतेहैं उनके भाग्यको धन्यहै ॥ १३ ॥ अनेक तीर्थोंके द्वारा विराजित ऐसे बदरिकाश्रममें जो मनुष्य जाताहै संसारमें उसीको धन्यहै ॥ १४ ॥ इन यात्रियोंके पुण्यकी महिमा वर्णन करनेकी किसीकी शक्ति नहींहै । केवल मनहीसे जो व्यक्ति बदरी वनका आश्रय लेतेहैं, हे देवि! उन्हेंभी उक्त वनमें निवास करनेका फल प्राप्त होताहै इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ और जो व्यक्तिगण बदरिकाश्रम मण्डलमें निवास करतेहैं, हे सुमुखि! वे सभी विष्णुरूपधारी होतेहैं ॥ १६ ॥ यह चतुर्थ क्षेत्र परमपावनहै स्थूल सूक्ष्म सूक्ष्मतर और शुद्ध कीर्त्तन कियागयाहै ॥ १७ ॥ यह तीन योजन विस्तृत और बारह योजन दीर्घहै, यह क्षेत्र पापियोंके लिये अगम्य किन्तु अन्यान्य व्यक्तियोंके लिये महान् ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवालाहै ॥ १८ ॥ जो पुरुष बदरीवनके विशालत्वको मनसेभी स्मरण करताहै उसेभी बदरीआश्रममें निवासकरनेवालाही जानना चाहिये, मरणानन्तर उसेभी मुक्तिका लाभ होगा ॥ १९ ॥ गन्धमादन बदरीवन और नरनारायणका आश्रम और अनेक तीर्थोंसे विराजित कुबेर आदिकी रम्यशिला ॥ २० ॥ यह समस्त देवताओं और मुनिगणोंसे युक्तहै वहांके अन्यान्य चिह्नोंकाभी वर्णन करताहूं उससे तुम्हें विश्वास हो जायगा ॥ २१ ॥ अग्नितीर्थसे उत्पन्नहुई वहां एक धाराहै उसमें गरमजल परिपूर्ण रहताहै, हे शुभगे! इसका प्राप्तहोना देवता-

तत्र सुभगे देवानामपि दुर्ल्लभा ॥ २२ ॥ बदरीनाथनैवेद्यं यो मोहात्तु परित्यजेत् ॥ चांडालादधमो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ २३ ॥ लक्ष्मीः पचति नैवेद्यं भुंक्ते नारायणः स्वयम् ॥ चांडालेनापि संस्पृष्टं न दोषाय भवेत्कचित् ॥ २४ ॥ येन भुक्तं तु नैवेद्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ सैव लोके परब्रह्मस्वरूपो नात्र संशयः ॥ २५ ॥ बदरीनाथमूर्त्तिं वै मनसापि स्मरेत्तु यः ॥ तेन तप्तं तपस्तीव्रं दत्ता तेन धराखिला ॥ २६ ॥ माषमात्रं तु यो दद्यात्सुवर्णं रजतं हि वा ॥ जन्मांतरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥ २७ ॥ कणमात्रमपि जलं पितॄनुद्दिश्य येन वै ॥ दत्तं तेन कृतं सर्वं पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥ २८ ॥ लोभमोहसमाविष्टे कलौ धर्मविवर्जिते ॥ नरास्त एव धन्याः स्युर्बदरीं ये गताः प्रिये ॥ २९ ॥ गमिष्यामि विशालां वै यो वै कथयतेनिशम् ॥ सोपि तत्फलमाप्नोति बदरीनाथदर्शनात् ॥ ३० ॥ बदरीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः ॥ येषां दर्शनमात्रेण पापराशिः

ओंके लियेभी दुर्लभहै ॥ २२ ॥ जो व्यक्ति अज्ञानवशात् बदरीनाथजीके नैवेद्यका परित्याग करदेताहै, उसे चाण्डालसेभी अधिक नीच समझकर समस्त (शुभ) कर्मोंसे बाहिष्कृत कर देनाचाहिये ॥ २३ ॥ वहां स्वयम् लक्ष्मीजी नैवेद्यको पकातीहै और नारायण भोग लगातेहैं अतएव यदि चाण्डालभी उसका स्पर्श करलेतौ भी वोह दूषित नहीं होता ॥ २४ ॥ जिसने परमात्मा विष्णु भगवान्के नैवेद्यका भोजन कियाहै वोह अवश्यही परब्रह्मरूप समझा जाताहै ॥ २५ ॥ जो व्यक्ति मनमेंभी बदरीनाथजीकी मूर्त्तिका स्पर्श करताहै, उसने मानो उग्र तप का आचरण किया और अखिल भूमिका दान किया ॥ २६ ॥ जो व्यक्ति एक मासेभरभी सुवर्ण अथवा चांदीका दान करताहै, सहस्त्रों जन्मपर्य्यन्त वोह दरिद्र नहीं होता ॥ २७ ॥ और जो पितरोंके निमित्त कणिकामात्रभी जल देताहै मानो उसने पितरोंकी मुक्तिके निमित्त सभी उपायोंका आचरण कियाहै ॥ २८ ॥ लोभ मोह (अज्ञान) से आवृत्तहुए, एवंच धर्म-रहित ऐसे इस कलियुगमें उन्ही पुरुषोंको धन्यहै, हे प्रिये ! जिन्होंने बदरीवनकी यात्रा करी है ॥ २९ ॥ और जो व्यक्ति बदरिकाश्रमकी यात्रा करनेके लिये विचार करताहै उसेभी बदरीनाथजीकी यात्राके फलका लाभ होताहै ॥ ३० ॥ बदरीवनके रहनेवाले व्यक्तिगण निःसन्देह विष्णु भगवान्की तुल्यहैं, उनके केवल दर्शन करनेसे पापराशिका विनाश

प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घोरे कलियुगे नरैः ॥ कर्त्तव्यो बदरीवासः पापिनामपि मुक्तिदः ॥ ३२ ॥ न काशी न तथा कांची मथुरा न गया तथा ॥ प्रयागश्च तथायोध्या नावंती कुरुजांगलम् ॥ ३३ ॥ अन्यान्यपि च तीर्थानि यथासौ कलिनाशिनी ॥ बदरीतरुणा या वै मंडिता पुण्यगा स्थली ॥ ३४ ॥ यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्ठा गंगा पापौघनाशिनी॥ विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३५ ॥ यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरोत्तमाः ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैव किन्नरा गुह्यकास्तथा ॥३६॥ प्रमथा यक्षरक्षांसि वसंति हरिमानसाः ॥ एतत्परात्मकं क्षेत्रं न त्याज्यं मुक्तिमिच्छता ॥ ३७ ॥ यावत्प्राणाः शरीरेस्मिन् यावदिंद्रियशुद्धता ॥ गात्राणि यावच्छैथिल्यं नाप्नुवंति महेश्वरि ॥ बदरीगमने तावद्विलंबो न विधेयकः ॥ ३८ ॥ चरणानां च साफल्यं कुर्याद्बदरिकागमात् ॥ नेत्रयोश्चैव साफल्यं कुर्याद्विष्णोश्च दर्शनात् ॥ ३९ ॥ तस्य वै जन्म सफलं तस्यैव

होताहै ॥ ३१ ॥ अतएव इस घोर कलियुगमें मनुष्योंको चाहिये कि, बदरिकाश्रममें अवश्य निवास करै ऐसा करनेसे पापियोंकोभी मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ३२ ॥ क्या काशी क्या कांची क्या मथुरा क्या गया क्या प्रयाग क्या अयोध्या क्या अवन्ती और क्या कुरुजांगल यह कोईभी उसकी सदृश नहींहै ॥ ३३ ॥ एवंच अन्यान्य तीर्थभी उसकी समान नहीं होसक्ते जहांका स्थल अतिशय पवित्रहै ॥ ३४ ॥ और जहां समस्त पापोंका नाश करनेवाली अतएव सब नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी विद्यमानहैं एवंच समस्त पापोंका विनाश करनेवाले विष्णु भगवान्भी यहां सन्निहितही विद्यमान रहतेहैं ॥ ३५ ॥ वहां ब्रह्मा, विष्णु और अन्यान्य उत्तमोत्तम देवता गण, गन्धर्व, अप्सरायें, किन्नर तथा गुह्यक ॥ ३६ ॥ प्रमथ अर्थात्–महादेवजीके गण यक्ष और राक्षस ये सब नारायणमें मन लगाके निवास करतेहैं, अतएव मुक्तिकी कामना करनेवाले व्यक्तिको उचितहै कि इस परम क्षेत्रका परित्याग कदापि न करै ॥ ३७ ॥ जबतक इस शरीरमें प्राण विद्यमानहैं, जबतक समस्त इन्द्रियग्राम शुद्धहै, और हे महेश्वरि ! जबतक अंगोंमें शिथिलताका संचार नहीं होताहै तभीतक विना विलंब किये बदरीवनकी यात्रा करडालनी चाहिये ॥ ३८ ॥ बदरिकाश्रमकी यात्रा करके चरणोंको और श्रीविष्णु भगवान्के दर्शन करके नेत्रोंको सफल करना कर्त्तव्यहै ॥ ३९ ॥ जो व्यक्ति भक्तिभावपूर्वक बदरीवनके

सफलं तपः ॥ बदरीवनमध्यस्थो देव एव न संशयः ॥ यस्त
नमति भक्त्या वै तस्य पापक्षयो भवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कांदे
केदारखंडे बदरीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

मणाम करताहै उसके पापोंका क्षय होजाताहै अतएव उसीका जन्म और उसीका तप सफल
एवंच बदरीवनमें रहकर वोह निःसन्देह देवरूपही होजाताहै ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्तपंचाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशोऽध्यायः ५८.

वसिष्ठ उवाच ॥ नंदप्रयागे तु यथा बभूव मम वल्लभे ॥ यज्ञो
नंदस्य राज्ञो वै तच्छृणुष्व समाहिता ॥ १ ॥ नंदो नाम महा-
राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ यज्ञं चकार विधिवद्बह्वन्नं भूरिदक्षि-
णम् ॥ २ ॥ तत्र ब्रह्मादयो देवा भागं स्वं स्वं पुराददुः ॥ मूर्ति-
मंतो महात्मानो भक्त्या तस्य महीपतेः ॥ ३ ॥ नाम चक्रुश्च सं-
तुष्टास्तन्नाम्ना समलंकृतम् ॥ संगमे स्नानमात्रेण शुद्धा नंदालक-
नंदयोः ॥ ४ ॥ तत्र सन्निहितो विष्णुर्मया सह शिवेन च ॥
ततो योजनके देवि शिवलिंगं सुदुर्लभम ॥ ५ ॥ वसिष्ठेशो महा
देवो मया संराधितः पुरा ॥ तत्र प्राणव्यपायेन शिवो भवति

वसिष्ठजी बोले–सुनो हमारी प्यारी ! नन्दप्रयागमें जिसप्रकार महाराज नन्दका यज्ञ
हुआथा वोह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं तुम एकाग्रमन करके श्रवणकरो ॥ १ ॥ नन्द
नामका एक महाराज विशेष धर्म्मचारी और सत्यवादी था, उसने प्रभूत अन्न और अत्यन्त
दक्षिणावाले यज्ञका विधिवत् अनुष्ठान किया ॥ २ ॥ उक्त महाराजकी भक्तिके वशीभूत होके
ब्रह्माआदि महात्मा देवगण मूर्त्ति धारणपूर्वक अपने अपने भागको ग्रहणकिया ॥ ३ ॥ नन्दा और
अलकनन्दाके संगममें स्नानकर शुद्धिग्रहणपूर्वक देवताओंने सन्तुष्टहो उसी राजाके नामसे इसका
नामकरणभी नन्दप्रयाग किया ॥ ४ ॥ मेरे और शिवके साथही वहां विष्णु भगवान् उप-
स्थितहैं, वहांसे एक योजनकी दूरीपर परम दुर्लभ एक शिवलिंगहै ॥ ५ ॥ प्रथम मैंने
महादेवजीकी आराधना कीथी अतएव उक्त शिवलिंगका वसिष्ठेश नामहै, उस स्थानमें प्राण

निश्चितम् ॥ ६ ॥ तत उत्तरदिग्भागे नदी परमपाविनी ॥ विरही नाम विख्याता सर्वपापहरा मता ॥ ७ ॥ ततो वै विहीनाम्ना नदी पापप्रमोचिनी ॥ विरहेण पुरा यत्र सत्यास्तप्तं शिवेन हि ॥ ॥ ८ ॥ ततः प्रभृति कल्याणि नाम्ना च विरही नदी ॥ तपतस्तस्य देवस्य प्रत्यक्षं चंडिकाभवत ॥ ९ ॥ सा वै जगाद देवेशं भविष्यामि गिरेर्गृहे ॥ ततो मां सर्वलोका वै वदिष्यंति गिरेः सुताम् ॥ १० ॥ भविष्यामि पुनर्भार्या तव देव महेश्वर ॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या हृष्टरोमा सदाशिवः ॥ ११ ॥ जगाम कैलास गृहे ह्यंशेनैकेन तत्र हि ॥ विरहेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥१२॥ स्नानं दानं च मरणं त्रयं तत्र विशिष्यते ॥ ततः पूर्वे समाख्यातं मणिभद्रसरः परम् ॥ १३ ॥ तत्र त्रिरात्रमाविश्य मणिभद्रं

प्राण निकलजायँ तौ निश्चय वोह व्यक्ति शिव होताहै ॥ ६ ॥ उससे उत्तर दिशाकी ओर परम पवित्र अतएव अखिल पापोंका विनाश करनेवाली विरही नामकी एक नदी विद्यमानहै ॥ ७ ॥ वोह विरही नदी समस्त पापोंको मुक्त करनेवालीहै, वहां सतीके विरहमें प्रथम महादेवजीने तप कियाथा ॥ ८ ॥ हे कल्याणि ! तभीसे उस नदीका विरही नाम प्रसिद्ध हुआहै, जब महादेवजीने तप किया तब साक्षात् चण्डी प्रगट हुई ॥ ९ ॥ और उन्होंने महादेवजीसे कहा कि मैं गिरिराज हिमालयके घर प्रादुर्भूत होऊंगी, तब सभीलोक अवश्य मुझे गिरिराजकुमारी कहेंगे ॥ १० ॥ हे महेश्वर देव ! फिर मैं तुम्हारीही भार्या बनूंगी देवीके यह वाक्य सुनकर सदाशिव महादेवजीकी रोम २ प्रसन्न होगये ॥ ११ ॥ और कैलासपर्वतके ऊपर चलेगये, और एक अंशसे वहांही स्थितरहे उन महादेवका नाम समस्त कामनाओंके पूर्णकर्त्ता विरहेश्वर हुआ ॥१२॥ वहां स्नान करना, दान करना और प्राणों का परित्याग करना यह तीनोंही विशेष समझे गयेहैं, उससे पूर्वकी और परमोत्तम मणिभद्र नामका एक सरोवरहै ॥ १३ ॥ उसमें तीन रात्रिपर्यन्त प्रवेश करनेसे मणिभद्र (एक मणि

१ सतीके विरहमें महादेवने रोदन किया उन्हींके अश्रुप्रवाहसे इस नदीका प्रादुर्भाव होनेके कारण इसका 'विरही' नामहै । हमारेपास 'विरही नदोदय' नामका एक आधुनिक संस्कृत काव्य मिलताहै इसके पढनेसे उक्त नदीके अनेक चमत्कार ज्ञात होतेहैं, अनुमान १५–२० वर्ष हुए पर्वतोंके खस जानेसे इसकावेग रुध होगयाथा तब बृटिश सरकारको जो चिन्ता हुई और फिर इसके प्रवाहने जो कुछ गंगाजीके निकटवर्ती देशोंको हानि पहुँचाई सबका उल्लेख कियागयाहै मू० ।–) पता–व्रजरत्न भट्टाचार्य मुरादाबाद ॥

लभेन्नरः ॥ प्राप्ते तस्मिन्मणौ वीरे न प्राप्यं किमु सुंदरि ॥१४॥ ततो दक्षिणतो भद्रे महाभद्रा नदी परा ॥ तत्रैकचिह्नमाख्येयं शृणु स्वस्थेन चेतसा ॥ १५ ॥ तत्रैको वटवृक्षोस्ति सप्तसप्तिपरिच्छदः ॥ पत्राणि तानि दृष्ट्वा वै दृष्टिस्तंभः प्रजायते ॥ १६ ॥ तत्रैव सूर्यतीर्थं च चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ अन्यच्छृणु महातीर्थं गव्यूतौ पूर्वदिक्स्थितम् ॥१७॥ तत्र गाणेश्वरी मूर्त्तिः सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ दण्डाश्रमोपि तत्रैव यत्र राजा पुरा प्रिये ॥ १८ ॥ दंडो नाम्ना रवेः कुंडे तेपे परमकं तपः ॥ यन्नाम्ना दंडकारण्यं ख्यातमस्ति त्रिलोकके ॥ १९ ॥ सोयं दंडो महाबाहुर्जजाप परमं शिवम् ॥ दशवर्षशतादूर्द्ध्वं जगाम शिवमुत्तमम् ॥ २० ॥ दंडाश्रमेपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपं क्रियाम् ॥ तत्कोटिगुणमाख्यातं भवतीति शिवेरितम् ॥ २१ ॥ अलकनंदोत्तरे तीरे वृक्षगुल्मलतावृते ॥ बिल्वेश्वरो महादेवस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥ २२ ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि निष्कंटो बिल्ववृक्षकः ॥ बदरीफलमानानि

विशेष) का लाभ होताहै, हे सुन्दरि ! उसके उपलब्ध होजानेपर कोई वस्तुभी अप्राप्य नहीं रहती ॥ १४ ॥ हे सुभद्रे ! उससे दक्षिणकी ओर महाभद्रा नामकी एक रम्य नदीहै, वर्णन करनेके योग्य वहां एक चिह्नहै, चित्तको स्वस्थकर उसका श्रवण करो ॥ १५ ॥ वहां एक बडका वृक्षहै, उसके ऊपर सात गुच्छें (पत्तोंके) हैं, उसके पत्तोंका अवलोकन करनेसे दृष्टिस्तम्भ होजाताहै ॥ १६ ॥ धर्मार्थ काम मोक्षका देनेवाला वहांही सूर्य्यतीर्थहै, वहांसे दो कोसकी दूरीपर पूर्वदिशाकी ओर एक और महातीर्थ है उसका श्रवणकरो ॥१७॥ समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाली वहां गणेश्वरकी मूर्त्तिहै, सुनो प्रिये ! दण्डाश्रमभी वहांही विद्यमानहै ॥ १८ ॥ वहां पूर्वकालमें दण्डनामके राजाने सूर्य्यकुण्डके ऊपर परम उग्र तप कियाथा, और उसीके नामसे दण्डकारण्यभी त्रिलोकीमें प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ सो इसी महाबाहु दण्डनाम राजाने दससौ वर्षसे अधिक परमशिवका जप किया तब उसे शिवधामकी प्राप्ति हुई ॥ २० ॥ दण्डकाश्रममें जो व्यक्ति स्नान दान अथवा अन्य सत्क्रियाका आचरण करताहै महादेवजी निर्देश करगयेहैं कि, उससे करोड़गुणे फलका लाभ होताहै ॥ २१ ॥ अथच अलकनन्दासे उत्तरकी ओर वृक्षों और लता वितानोंसे आवृतहुए स्थानमें बिल्वेश्वर महादेव नित्य उपस्थित रहतेहैं ॥ २२ ॥ वहांका चिह्न वर्णन करतेहैं वहां बिल-

फलानि श्रीफले प्रिये ॥ २३ ॥ ततो गरुडगंगायां गरुडं दक्षिणे तटे ॥ स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य पक्षीशं विष्णुरूपिणम् ॥ २४ ॥ पंचकोटिसहस्राणां वर्षाणां वसते चिरम् ॥ विष्णुलोके योगगम्ये ततो योगिषु जायते ॥ २५ ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ गरुडगंगाशिलाभागो यत्र तिष्ठति मत्प्रिये ॥ २६ ॥ न तत्र सर्प्पजभयं विद्यते न तथा विषात् ॥ विषग्रस्तोपि यो मर्त्यो जले घृष्टं पिबेत्तु वै ॥ २७ ॥ न तस्य सर्पविषजं भयं भवति कर्हिचित् ॥ ततो गणेशनद्यां वै स्नात्वा पापक्षयो भवेत् ॥ २८ ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिंदूराभा सुमृत्तिका ॥ तद्धारणात् स मनुजो गणेशो नात्र संशयः ॥ २९ ॥ दिव्या महर्षयो यत्र गायंति साम नित्यशः ॥ शृण्वंति च महात्मानो दुरितैर्ये विवर्जिताः ॥ ३० ॥ ततो गंगोत्तरे तीरे नाम्ना चर्मण्वती नदी ॥ तस्यां स्नात्वा भवेन्मर्त्यो गणेशो गणपूजितः ॥ ३१ ॥ ततोनंगश्रियो राज्ञ आश्रमो मुनिपूजितः ॥

वृक्षमें कांटे नहींहैं, और हे प्रिये ! बदरीफलकी समान उसमें फल लगतेहैं ॥ २३ ॥ जो व्यक्ति गंगाजीके दक्षिण तटपर गरुडगंगामें स्नान करके विष्णुरूपी गरुडेश्वर महादेवकी पूजा करताहै ॥ २४ ॥ वोह योगियोंकेद्वारा प्राप्त होनेके योग्य ऐसे विष्णुलोकमें पांचकरोड सहस्र वर्ष पर्य्यन्त निवास करनेके अनन्तर योगियोंमें जन्म ग्रहण करताहै ॥ २५ ॥ प्राणप्रिये ! शीघ्रही विश्वास करानेवाला गरुडगंगाका शिलाभाग जहां उपस्थितहै उसकाभी हम तुम्हारेप्रति वर्णन करतेहैं ॥ २६ ॥ वहां सर्पजनित, अथवा विषका भय उपस्थित नहींहोता, विषद्वारा ग्रस्त होनेपर जो व्यक्ति जलमें घिसकर उसका पान करतेहैं ॥ २७ ॥ उन्हे सर्पविषजनित भय कदापि प्राप्त नहीं होता फिर गणेशगंगामें स्नान करनेसे पापोंका क्षय होताहै ॥ २८ ॥ वहांका चिह्न अर्थात् उस स्थानकी पहिचानभी हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं, वहांकी मृत्तिका सिन्दूरकी समान रक्तवर्णहै, उसको धारण करनेसे मनुष्य निःसन्देह गणेशरूप होजाताहै ॥ २९ ॥ दिव्य महर्षिगण वहां बैठकर नित्य सामका गान करतेहैं, एवंच पापरहित महात्मालोग श्रवण करतेहैं ॥ ३० ॥ फिर गंगाजीके उत्तर तीरपर चर्मण्वती नामकी नदीहै, उसमें स्नान करनेसे स्नानकर्त्ता व्यक्ति गणोंके द्वारा पूजित गणेश होजाताहै ॥ ३१ ॥ वहांही महाराज अनंगका मुनियोंके द्वारा पूजित आश्रमहै, सुनो चण्डी ! वहां

तत्र वै चंडिके मर्त्यो मृतश्चंडीपुरे वसेत् ॥ ३२ ॥ तस्मादूर्ध्वे तु मेषाद्रौ शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ तत्रैकं परमाश्चर्य्यं मध्याह्ने स्त्रीसहायवान् ॥ ३३ ॥ समायाति नरस्त्वेको महाप्रांशुर्महाभुजः ॥ दृष्ट्वा तां चंडिकां देवीं देवं च परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥ संपूज्य च पुनर्याति चिह्नं तव प्रकीर्त्तितम् ॥ ततः पूर्वोत्तरे कोणे गौर्य्याश्रम इतीरितः ॥ ३५ ॥ यत्र पूर्वं महादेवी तपः परममास्थिता ॥ पर्णखण्डाशना भूत्वा बहुवर्षसहस्रकम् ॥ ३६ ॥ तदारभ्य महत्पुण्यं बभूव वरवर्णिनि ॥ पर्णखंडाशना देवी जाता दैवतपूजिता ॥ ३७ ॥ गंगातीरे च तत्रैव महालिंगं स्वयंभुवम् ॥ तत्रैव शिवकुंडं वै शिवलोकप्रदायकम् ॥ ३८ ॥ ततः क्रोशार्द्धके देवि विष्णुकुंडमिति श्रुतम् ॥ तस्मिन् स्नात्वा हरिं पूज्य वैकुंठे निवसेत्सुधीः ॥ ३९ ॥ ततः क्रोशद्वये पुण्यं ज्योतिर्धामशुभप्रदम् ॥ नृसिंहरूपी भगवान यत्रास्ते मुक्तिदायकः ॥ ४० ॥ यत्र प्रह्लादयोगींद्रो हरिभक्तिपरायणः ॥ एतत्तीर्थसमं नास्ति विष्णोः प्रीतिकरं

मरनेसे मनुष्य चण्डीके लोकमें निवासलाभ करताहै ॥ ३२ ॥ वहांसे मेष पर्वतके ऊ[illegible] सर्वोत्तम एक शिवलिंगहै, वहां यह परम आश्चर्य्यहै मध्याह्नके समय स्त्रियोंको साथ[illegible] ॥ ३३ ॥ अत्यन्त उन्नत महाबाहु एक मनुष्य आताहै वोह चण्डिका महादेवी और परमे[illegible] महादेवके दर्शन ॥ ३४ ॥ और उनकी पूजाकरके फिर लौटजाताहै, यह चिह्न हमने की[illegible] किया, उस स्थानसे पूर्व और उत्तरके कोणमें एक गौर्याश्रम नामका स्थानहै ॥ ३५ ॥ उ[illegible] स्थानमें कई सहस्र वर्षपर्य्यन्त गौरीने शुष्क पर्णोंका आहारकरके परम उग्र तपका आच[illegible] कियाथा ॥ ३६ ॥ उसी दिनसे हे वरवर्णिनी ! यह क्षेत्र महापुण्यप्रद हुआहै अथच त[illegible] देवीभी देवताओंके द्वारा पूजितहुई और पर्णखंडाशना कहलाई ॥ ३७ ॥ वहांही गंगा[illegible] तटपर स्वयं प्रादुर्भूत हुआ एक महालिंगहै, और महादेवजीके लोककी प्राप्ति करनेवाला व[illegible] एक शिवलिंगहै ॥ ३८ ॥ हे देवि ! वहांसे आधेकोसकी दूरीपर एक कुण्ड विष्णुकुण्डके नाम[illegible] विख्यातहै, उसमें स्नानकर हरिका पूजन करनेसे सुन्दर बुद्धिमान् व्यक्ति वैकुण्ठलोकमें नि[illegible] लाभ करताहै ॥ ३९ ॥ वहांसे दो कोसकी दूरीपर परम पुण्यदायक अतएव शुभफलका देने[illegible] ज्योतिर्धामहै, वहां मुक्तिदान करनेवाले नृसिंहरूपधारी भगवान् विद्यमान रहतेहैं ॥ ४० [illegible] एवंच योगियोंमें सर्वोत्तम प्रल्हादभी भक्तिमें परायण होकर वहांही निवास करतेहैं, इस[illegible]

परम् ॥४१॥ एतत्पीठसमं नास्ति सिद्धिदं सर्वकामदम् ॥ यद-स्मिन् क्रियते कर्म्म तत्सर्व्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ४२ ॥ तस्मा-त्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन् पापं समाचरेत् ॥ नृसिंहं पूजयेद्भक्त्या यदीच्छेद्विष्णुतां नरः ॥ ४३ ॥ विष्णुप्रयागके स्नात्वा विष्णु-लोके महीयते ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः॥४४॥ नानातीर्थानि संत्यत्र सर्वकामप्रदानि च ॥ प्रधानानि दशोक्तानि शृणुतान्यप्यरुंधति॥४५॥यथोक्तानि शिवेनादौ शिवायै शुभदा-नि च ॥ ब्रह्मकुंडं तु प्रथमं विष्णुकुंडमतः परम् ॥४६॥ शिवकुंडं वरारोहे तृतीयं कथितं तव ॥ गणेशं भृंगिकुंडं च ऋषिकुंडं च षष्ठकम् ॥ ४७ ॥ सप्तमं सूर्य्यकुंडं च दुर्गाकुंडं ततः स्मृतम् ॥ नवमं धनदाकुंडं प्रह्लादं दशमं स्मृतम् ॥ कुंडानां दशके स्नात्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४८॥ स्मृत्वा सर्वाणि पापानि नश्यंति मम वल्लभे ॥ ४९ ॥ विष्णुकुंडे प्रयागे तु यत्र विष्णुः सनातनः ॥

अपेक्षा और कोई तीर्थ विष्णुभगवान्‌की अधिक प्रीति साधन करनेवाला नहींहै ॥ ४१ ॥ इस पीठकी समान समस्त कामनाओं और संपूर्ण सिद्धियोंका देनेवाला अन्य कोई क्षेत्र (तीर्थ) नहींहै, इसमें जो कुछ कर्मका विधान कियाजाताहै वोह सब करोडगुणा अधिक होताहै ॥ ४२ ॥ अतएव मनुष्यको सर्वथा इसमें पापोंका आचरण करनेसे बचे रहनाचाहिये, और यदि स्वयं विष्णुत्व लाभकरनेकी कामना हो तो भक्तिभावपूर्वकनृसिंह भगवान्‌की पूजाकरै ॥ ४३ ॥ विष्णुप्रयागमें स्नान करनेसे विष्णुलोकमें ऐश्वर्य्य लाभ होताहै, अथच उसी क्षेत्रमें ब्रह्माआदि देवताओंकोभी परमसिद्धिका लाभ हुआथा ॥ ४४ ॥ हे अरुन्धती ! यद्यपि समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले अनेक तीर्थ इस स्थानमें विद्यमानहैं तथापि उनमें मुख्य जो दशहैं उनका वर्णन सुनो ॥ ४५ ॥ उन शुभदायकोंको प्रथम महादेवजीने पार्वतीजीकेप्रति वर्णन कियाथा उनमें पहिला ब्रह्मकुण्ड इसके अनन्तर दूसरा विष्णुकुण्ड ॥ ४६ ॥ और हे वरारोहे ! तीसरा शिवकुण्ड, चतुर्थ गणेशकुण्ड, पंचम भृंगिकुण्ड, और छठा ऋषिकुण्ड ॥ ४७ ॥ सप्तम सूर्य्यकुण्ड, अष्टम दुर्गाकुण्ड, नवम धनदाकुण्ड एवम् दशम प्रल्हादकुण्ड, यह दशकुण्ड हे पार्वती ! हमने तुम्हारेप्रति वर्णन कियेहैं ॥ ४८ ॥ इन दशकुण्डोंमें स्नानक-रनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै, और उनका केवल स्मरणमात्र करनेसे मनुष्यके समस्त पापोंका क्षय होजाताहै॥४९॥विष्णुकुण्ड प्रयागमें जहां विष्णुसनातन विद्यमानहैं नारदजीने विष्णु

आराधितो नारदेन प्रत्यक्षमगमत्पुरा ॥ ५० ॥ सर्वज्ञत्वं ददौ तस्मै संतुष्टो भगवान् हरिः ॥ तदादीदं महाभागे विष्णुकुंडमिति स्मृतम् ॥ ५१ ॥ तत्र स्नात्वा जपं कृत्वा नारायणपरायणः ॥ नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ ततो गच्छेन्महाभागे बदर्य्याश्रममंडले ॥ जयं च विजयं चैव संपूज्य द्वारपालकौ ॥ ५३ ॥ गंधमादनबदरीं पापिनो यदि कुर्वति ॥ गमनादेव पापानि नश्यंतीति शिवेरितम् ॥ ५४ ॥ अतः परं परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ सूक्ष्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५५ ॥ कुंडानि शृणु कथ्यंते प्रयागे विष्णुसंज्ञके ॥ धवलायां तु गंगायां यतः सा नवमी मता ॥ ५६ ॥ धारा पापहरा प्रोक्ता गंगाया धूर्जटीरिता ॥ संगमाच्छरविक्षेपे उत्तरे पुलिने प्रिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मकुंडमिति प्रोक्तं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥ शिवकुण्डं च विख्यातं तस्माद्दण्डषडष्टके ॥ ५८ ॥ स्नानमात्रेण मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ तस्माच्छरार्द्धविक्षेपे

भगवान्की आराधना कीथी तब भगवान् प्रादुर्भूत हुएथे ॥ ५० ॥ और सर्वेश्वर भगवा[न्] सन्तुष्ट होकर उन्हें सर्वज्ञत्व (अर्थात् सर्वज्ञहोनेका ज्ञान) प्रदान कियाथा, हे महाभा[गे] तभीसे यह स्थान विष्णुकुण्डके नामसे प्रसिद्धहै ॥ ५१ ॥ वहां स्नानकर नारायणमें दत्त[चि]त्तहो ओंकार प्रयोगपूर्वक नमोनारायण अर्थात्--"ॐ नमो नारायणाय" का जपकरै ॥ ५[२] ॥ इसके अनन्तर हे महाभागे ! बदरीआश्रममें जाय जयविजय नाम द्वारपालोंकी पूजा करै ॥ ५३ ॥ गन्धमादन और बदरिकाश्रमकी यात्रा यदि पापीजनभी करैं तथापि केवल ग[मन]मात्रहीसे उनके पाप नष्ट होजातेहैं, महादेवजीने कहाहै ॥ ५४ ॥ इसके अगाडी एक म[हा]क्षेत्रहै उसकी प्राप्ति देवताओंके लियेभी दुर्लभहै, सचमुच उसे निःसन्देह सूक्ष्मक्षेत्र वर्णन कि[या]है ॥ ५५ ॥ विष्णुप्रयागमें जितने तीर्थहैं उनका वर्णन करतेहैं, धवलागंगामें स्नान क[रना] कर्त्तव्यहै ॥ ५६ ॥ क्योंकि, धूर्जटि महादेवजीने उसे पापहारिणी गंगाजीकी नवमीधारा क[ह]के कीर्त्तन कियाहै, हे प्रिये ! जितनी दूरपर्यन्त एव बाणकी गति होतीहै उतनीही दूरपर उ[त्तर] तीरपर ॥ ५७ ॥ ब्रह्मलोकको देनवाला एक ब्रह्मकुण्डहै और उससे चौदह दण्डकी दूरी[पर] शिवकुण्ड विख्यातहै ॥ ५८ ॥ उसमें केवल स्नानमात्रही करनेसे मनुष्यको समस्त यज्ञ[ों के] करनेका फल उपलब्ध होताहै, और उससे बाणके अर्ध विक्षेपकी दूरीपर गणेशसंज्ञक

तीर्थं गाणेशसंज्ञितम् ॥ ५९ ॥ गणत्वं प्राप्यते यत्र स्नानाद्दा-नात्तथाशनात् ॥ धवलायां महाभागे तीर्थान्युक्तानि मत्प्रिये ॥ ६० ॥ शृणुष्वालकनंदायां कुंडानि प्रवराणि वै ॥ विष्णुकुं-डाच्छरक्षेपे भृंगिकुंडमिति स्मृतम् ॥ ६१ ॥ स्नानमात्रेण तत्रापि सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ततः परं परं कुंडं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ ६२ ॥ सूर्यकुंडमितिख्यातं सूर्यलोकप्रदायकम् ॥ दुर्गाकुंडं महापुण्यं ततो दंडचतुष्टये ॥ ६३ ॥ दुर्गालोकप्रदं चैव सर्वकाम-फलप्रदम् ॥ धनदा यक्षिणी नाम तस्यास्तीर्थं ततः परम् ॥६४॥ धनदा प्रीयते तस्य तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥ प्रह्लादकुण्डं त्वपरं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥६५॥ मध्याह्ने तत्र पयसि मीनो वै प्लवते प्रिये ॥ दृश्यते पुण्यकृद्भिः स तत्र ज्ञेयं सुतीर्थकम् ॥ ६६ ॥ यत्र स्नात्वा च जप्त्वा च कर्मणोन्तं लभेन्नरः ॥ इदं विष्णुप्र-यागाख्यं द्वारं विष्णोः प्रकीर्त्तितम् ॥ ६७ ॥ प्रायः कलौ मनु-ष्याणामगम्या बदरी भवेत् ॥ यावद्विष्णुर्महीपृष्ठे यावद्गंगा महे-

तीर्थहै ॥ ५९ ॥ वहां स्नान दान और भोजन करनेसे अथवा निवास करनेसे गणत्व लाभ होताहै, और सुनो महाभागवती प्रिये ! धवलामेंभी बहुतसे तीर्थ वर्णन कियेगयेहैं ॥ ६० ॥ अलकनन्दामेंभी उत्तमोत्तम कुण्ड विद्यमानहैं उनका श्रवणकरो, विष्णुक्षेत्रसे एक बाणकी दूरी पर भृंगिकुण्ड नामका एक प्रसिद्ध कुंडहै ॥ ६१ ॥ उसमेंभी केवल स्नान करनेसे पापोंका क्षय होजाताहै, इसके अनन्तर एककुण्डहै जो तीर्थोंमें सर्वोत्तमहै ॥ ६२ ॥ उसका सूर्य्यकुंड नामहै, अतएव वोह सूर्य्यलोकको प्राप्त करानेवालाहै, अथ च उससे चारदण्डकी दूरीपर दुर्गा-कुण्ड परम पुण्यको प्रदान करताहै ॥ ६३ ॥ वोह समस्त कामनाओं और दुर्गाके लोककी प्राप्ति करानेवालाहै फिर इसके आगे धनदा यक्षिणीका क्षेत्रहै ॥ ६४ ॥ उसमें जो व्यक्ति स्नान करताहै उससे धनदा यक्षिणी प्रसन्न होतीहै । इसके अगाडी शीघ्रही विश्वास करानेवाला प्रह्लाद कुण्डहै ॥ ६५ ॥ उसके जलमें मध्याह्न (दोपहर) के समय एक मीन तैरताहै, हे प्रिये ! पुण्यात्माओंहीको उसका दर्शन होताहै ॥ ६६ ॥ वहां स्नान करने अथवा जप करनेसे मनुष्यके कर्मोंका अन्त होजाताहै अर्थात् उस व्यक्तिकी मोक्ष होजातीहै, यह विष्णुप्रयाग नाम विष्णु भगवान्की प्राप्तिका द्वार कीर्त्तन कियागयाहै ॥ ६७ ॥ प्रायः कलियुगमें मनुष्योंके लिये बदरी वनकी प्राप्ति बडी दुर्लभहै, हे महेश्वरि ! जबतक कि भूमिके

श्वरि ॥ ६८ ॥ तावद्वै बदरी गम्या दुर्गम्या च ततः परम् ॥ बदरीनाथयात्रां वै करिष्यंति बहिः स्थलात् ॥ ६९ ॥ गंधमादनदक्षे च पार्श्वे मुनिजनप्रिये ॥ पुलिने धवलाया वै बदरी तत्र विश्रुता ॥ ७० ॥ घटोद्भवेन मुनिना पुरा संराधितो हरिः ॥ चकार तत्र सान्निध्यं बदरीनाथको हरिः ॥ ७१ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः स्वल्पायुषः प्रिये ॥ अल्पसत्वा भविष्यंति ह्यशक्ता दुर्गमे गमे ॥ ७२ ॥ धाराद्वयं समाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ उष्णोदकं महापुण्यं वह्निर्यत्रातपत्तपः ॥ ७३ ॥ स्नात्वा तयोर्महाभागे विष्णोर्लोकं व्रजेन्नरः ॥ महादेवोपि तत्रैव मुनीश्वर इतीरितः ॥ ७४ ॥ तस्य संदर्शनादेव शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥ भविष्या बदरी प्रोक्ता महापापौघनाशिनी ॥ ७५ ॥ ततः परं महापुण्यं घटोद्भवमुनिस्थलम् ॥ चतुर्योजनविस्तारं पंचयोजनमायतम् ॥ ७६ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा निवसंति सुरार्चिताः ॥ शिवस्य बहुलिंगानि स्थापितानि महात्मना ॥७७॥

ऊपर विष्णुभगवान् और गंगाजी विद्यमानहैं ॥ ६८ ॥ तभीतक बदरिकाश्रमकी प्राप्ति सुग[म] है फिर इसके अनन्तर वोह दुर्गम होजायगी। जो व्यक्ति बाहरके (अन्यान्य) स्थानोंसे बद[री] वनमें यात्रा करेंगे ॥ ६९ ॥ गन्धमादनके मुनिजनोंसे समाश्रित दक्षिणी प्रदेशमें और ध[व]लाके तीरपर बदरी विख्यातहै ॥ ७० ॥ प्रथम उक्तस्थानमें घटसंभूत अगस्त्यजी महाराज[ने] नारायणकी आराधना करीथी तब हरि भगवान्ने बदरीनाथ नामसे उक्त स्थानमें सन्निधि ग्रह[ण] करीथी ॥ ७१ ॥ सुनो प्रिये ! घोर कलियुग प्राप्तहोनेपर मनुष्योंकी आयु और बल यह दो[नों]ही अल्प होंगे अतएव वे दुर्गम बदरिकाश्रममें जानेके तईं अशक्त होंगे ॥ ७२ ॥ तत्का[ल] विश्वास करानेवाली दो धाराएँ प्रसिद्धहैं, वहां अग्निने तप कियाथा अतएव उक्तस्थानका ज[ल] उष्ण और अत्यन्त पवित्रहै ॥ ७३ ॥ सुनो महाभागे ! उसमें स्नान करके मनुष्यको वि[ष्णु] लोककी प्राप्ति होतीहै, वहां महादेवजीभी मुनीश्वर नामसे कीर्तन कियेगयेहैं ॥ ७४ ॥ उ[न] महादेवजीके दर्शन करनेसे मनुष्य शिवलोकमें गमन करताहै, इस बदरीको प्रभूत पापराशि विनाश करनेवाली कीर्त्तन कियाहै ॥ ७५ ॥ इसके अगाडी अतिशय पवित्र अगस्त्यजी[का] स्थलहै, यह चार योजन चौडा और पांच योजन लंबाहै ॥ ७६ ॥ देवताओंके द्वारा पू[जित] होकर ब्रह्माआदि देवतागण इसी स्थानमें निवास करतेहैं, और महात्माओंने अनेक शिव[लिं]

देव्यालयास्तु बहवो देवानामालयास्तथा ॥ घंटाकर्णो मुनिस्तत्र सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ७८ ॥ नानामुनिजनाकीर्णे आश्रमे देवपूजिते ॥ कुर्वंति प्राणत्यागं ये न ते वै स्तनपाः पुनः ॥ ७९ ॥ मानसोद्भेदनगिरेर्निःसृता जाह्नवी परा ॥ धवलेन पुरा राज्ञा सेविता सर्वकामदा ॥ ८० ॥ नाम चक्रे च तस्याः स धवलेति पुनः श्रुता ॥ एषा वै नवमी धारा गंगायाः शिवभाषिता ॥ ८१ ॥ यस्या दर्शनमात्रेण सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥ बदरीमंडले देवि सर्वपर्वतनिर्झराः ॥ ८२ ॥ महापुण्याः समाख्याता विस्तराद्वदिता हि वै ॥ ये ये वै पर्वतास्तत्र तत्स्वरूपेण देवताः ॥ ८३ ॥ तपस्यंति महात्मानस्तथा मुनिजनाः प्रिये ॥ विष्णुप्रयागतो देवि ईशाने बदरी परा ॥ ८४ ॥ यत्र विष्णुः समग्रेण भावेन महता स्थितः ॥ पांडुना च तपस्ततं शतेन मृगरूपिणा ॥ ८५ ॥ मुनिना परकोपेन पांडुस्थानं ततः स्मृतम् ॥

वहां स्थापित कियेहैं ॥ ७७ ॥ एवंच देवी देवताओंके भी अनेक मन्दिर उक्त स्थानमें विद्यमानहैं । अथच शीघ्रही विश्वास करानेवाले घंटाकर्ण मुनिभी वहां उपस्थितहैं ॥ ७८ ॥ अनेक मुनिजनोंके द्वारा आकीर्ण हुए एवं देवताओंके द्वारा पूजित इस आश्रममें जो व्यक्ति प्राणोंका परित्याग करतेहैं, उन्हें फिर माताका स्तनपान करना नहीं होता अर्थात् उनकी मोक्ष होजातीहै ॥ ७९ ॥ मानसोद्भेदन नाम पर्वतसे गंगाजीकी एक अपरधारा विनिर्गत हुईहै, समस्त कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली उक्त धाराकी प्रथम धवलराजाने आराधना करीथी ॥ ॥ ८० ॥ अतएव उसका धवला यह नाम विख्यात हुआ, महादेवजीने इसे गंगाजीकी नवमी धारा कहकर कीर्त्तन कियाहै ॥ ८१ ॥ उसके दर्शनमात्र करनेसे सुनो देवि ! शीघ्रही पापोंसे मुक्ति होजातीहै, हे देवि ! बदरीवनमें सभी पर्वत झरनेवालेहैं ॥ ८२ ॥ और उन्हें अतिशय पवित्र वर्णन कराहै, उन्हीका विस्तारसहित वर्णन कियाहै । और जो २ पर्वत वहां विद्यमानहैं उन्हींके स्वरूपवाले उनके देवताभीहैं ॥ ८३ ॥ हे प्रिये ! मुनिजन तथा महात्मा व्यक्तिगण वहां तप करतेहैं, सुनो देवि ! विष्णुप्रयागसे ईशानकोणकी ओर परम पुण्यशालिनी बदरी विद्यमानहै ॥ ८४ ॥ हे प्रिये ! वहां विष्णु भगवान् अपने समग्ररूपसे स्थित रहतेहैं । और मृगरूप धारण किया मुनिके द्वारा शापितहुए राजा पाण्डुने इसी स्थानमें तप कियाथा ॥ ८५ ॥ इसीसे उसे पाण्डुस्थानभी कहतेहैं, और प्रसन्न होकर विष्णुभगवान्ने

प्रसन्नो भगवानाह पांडुं परमसुंदरम् ॥ ८६ ॥ भो भो पांडो तव क्षेत्रे धर्मादीनां सुताः किल ॥ भविष्यंति सुतात्मानः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ॥ ८७ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोश्च परमात्मनः ॥ कृतकृत्यं स्वयं मेने दर्शनादेव सुंदरि ॥ ८८ ॥ पांड्वीश्वरो महादेवो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ गंगाया दक्षिणे पार्श्वे पर्वते नरनामके ॥ ८९ ॥ तीर्थानां च सहस्राणि लिंगानां च शतानि च ॥ अगम्यानि कानिचिद्वै तथा गम्यानि च प्रिये ॥९० ॥ तस्मिन्वै पर्वते नित्यं देवाः सर्वे महर्षिभिः ॥ गायंति विष्णुमेकाग्रमनोभिर्वचसां गणैः ॥ ९१ ॥ मृदंगध्वनिघोषो वै भेरीशब्दाः सहस्रशः ॥ श्रूयंते पुण्यनिलये सामगानां तथा स्वनाः ॥ ॥ ९२ ॥ तस्मिन् गिरौ हि वर्त्तन्ते पुण्यान्यायतनानि च ॥ तप्तोदकानि बहुशः शीततोया जलाशयाः ॥ ९३ ॥ सर्वे पुण्यसमारंभा विष्णुभक्तिकरास्तथा ॥ उत्तरे पर्वते देवि तथा दिव्या महर्षयः ॥९४॥ सिद्धा गुह्यास्तथा नागास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥

परम सुन्दर पाण्डुसे यों कहाथा ॥ ८६ ॥ भो पाण्डु ! तुम्हारे क्षेत्रमें धर्म आदिके पु[illegible] तुम्हारे आत्मज होकर अवश्य प्रादुर्भूत होंगे, और वे सबही शास्त्र ज्ञानमें बडे चतुरहों[illegible] ॥ ८७ ॥ परमात्मा विष्णु भगवान्के यह वचन सुन, राजा पाण्डुने भगवान्के केव[illegible] दर्शनमात्रहीसे अपने आपको कृतकृत्य माना ॥ ८८ ॥ वहां भक्तोंकी प्रीतिकी वृद्धिकर[illegible] नेवाले जो महादेवजीहैं पाण्ड्वीश्वर उनका नामहै और गंगाजीके दक्षिणपार्श्वमें नरनाम[illegible] पर्वतके ऊपर ॥ ८९ ॥ सहस्रों तीर्थ और सैंकडों शिवलिंग विद्यमान हैं। उनमें को[illegible] तौ हे प्रिये ! गम्यहैं और कोई अगम्यहैं ॥ ९० ॥ उस पर्वतके ऊपर नित्यही देवता[illegible] महर्षियोंसहित चित्तको एकाग्रकर अटूट वाक्योंसे विष्णुभगवान्का कीर्त्तन करतेहैं ॥ ९१ ॥ सहस्रों प्रकारसे मृदंगध्वनिका नाद और भेरीनाद होते रहतेहैं, एवं च उस पवित्रधाममें सा[illegible] वेदकी ध्वनि श्रवणगत होतीहै ॥ ९२ ॥ उस पर्वतके ऊपर अनेक अनेक पवित्र स्थान[illegible] और अनेक स्थानोंमें उष्ण जलहै, तथा अनेक जलाशय शीतलजलसे परिपूर्णहैं ॥ ९३ [illegible] समस्त पवित्रकर्मोंका आचरण करनेवाले एवंच विष्णुभगवान्की भक्ति करनेवाले अनेक म[illegible] हे देवि ! उत्तरपर्वतके ऊपर विद्यमानहैं ॥ ९४ ॥ सिद्ध गुह्यक तथा नाग तथा अप्सराओं[illegible]

नृत्यंति गायमानाश्च विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ ९५ ॥ नदीनामुत्त मा तत्र धारा परमपावनी ॥ गंगाया अष्टमी ज्ञेया नाम्ना बिंदुमती मता ॥ ९६ ॥ निःसृता बिन्दुसरसो महापापौघनाशिनी ॥ दर्शनादेव यस्या वै महापापौघनाशनम् ॥ ९७ ॥ जायते किमु स्नानाद्यैः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ततः क्रोशद्वये देवि वैखानसमुनिस्थलम् ॥ ९८ ॥ यज्ञभूमिस्तथा तत्र तेषां मुनिवरात्मनाम् ॥ नदीनां प्रवरा सा वै महापातकनाशिनी ॥ ॥ ९९ ॥ होतृस्थाने मुनीनां तु शृणु प्रत्ययलक्षणम् ॥ अद्यापि तत्प्रदेशे हि यवा दग्धास्तथा तिलाः ॥ १०० ॥ अंगाराश्चापि दृश्यंते होतृस्थाने महात्मनाम् ॥ तदूर्ध्वं पर्वते रम्ये देवगंधर्व सेविते ॥१॥ योगीश्वर इतिख्याते भैरवोतिभयंकरः ॥ तमर्च्चयित्वा नत्वा च गच्छेत्सूक्ष्मतरे स्थले ॥२॥ कुबेरस्य शिलां नत्वा दारिद्र्यं नोपजायते ॥ नरनारायणौ श्रेष्ठौ पर्वते मुनिवंदितौ ॥ ॥ ३ ॥ यो नमेत्परया भक्त्या न स भूयोऽभिजायते ॥ ये त्य-

गण यह सब सर्वेश्वर श्रीविष्णुभगवान्के कीर्त्तनका गानकर २ के नृत्य करतेहैं ॥ ९५ ॥ समस्त नदियोंमें उत्तम परमपवित्र वहां एक धाराहै, उसका बिन्दुमती नामहै और उसे गंगाजीकी आठवी धारा जानना चाहिये ॥ ९६ ॥ महा पापपुंजका नाश करनेवाली वोह नदी बिन्दुसरोवरसे विनिर्गत हुईहै उसके केवल दर्शनमात्र करनेहीसे महापापोंका नाश होजाताहै ॥ ९७ ॥ और स्नान आदि करनेसे निःसन्देह क्यों नहो जायगा अर्थात्–स्नानआदि करनेसे अवश्यही पापराशिका विनाश होताहै । हे देवि ! उससे दोकोसकी दूरिपर वैखानसमुनिका आश्रमहै ॥ ९८ ॥ उसी स्थानमें उक्त महात्माओंकी यज्ञभूमिहै, एवंच उक्त स्थानकी श्रेष्ठनदी महा पातकोंका विनाश करनेवालीहै ॥९९॥ जहां बैठकर मुनिगण हवन (यजन) करतेथे, वहांके विश्वास दिलानेवाले लक्षणको सुनो, अभीतक उक्त महात्माओंके होतृस्थानमें दग्धहुए यव, तिल और अंगारे उपलब्ध होतेहैं ! इसके अनन्तर गन्धर्वोंके द्वारा सेवनकियेहुए अतएव सुरम्य पर्वतके ऊपर ॥ १०० ॥ १०१ ॥ अति भयंकर भैरवजी योगीश्वर नामसे प्रसिद्धहैं, नमस्कारपूर्वक उनकी अर्चना करके मनुष्य अतिसूक्ष्म स्थानमें जाताहै ॥ २ ॥ कुबेरशिलाको प्रणामकरनेसे दारिद्रजनितक्लेश कभी नहीं होते, वहां मुनियोंके द्वारा वन्दना किये हुए नरनारायण नाम दो पर्वतहैं ॥३॥ परमभक्तिसे जो व्यक्ति उन्हें अभिवादन करताहै

जंति शरीराणि नरनारायणाश्रमे ॥ ४ ॥ न जायंते पुनर्देवि संसारेस्मिन् भयावहे ॥ स्नात्वा ऋषीणां गंगायां धारायां ये समाहिताः ॥ ५ ॥ पानं कुर्वंति ते मर्त्या ब्रह्म तत्परमाप्नुयुः ॥ दत्वा चाश्रमवासिभ्यो जीर्णानि वसनानि च ॥ ६ ॥ गच्छेच्छुद्धे महाक्षेत्रे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ आचमेत्कूर्मधारायां जलं परमपावनम् ॥ ॥ ७ ॥ यदीच्छेत्सुतरां शुद्धिं दर्शनेन परात्मनः ॥ तथा पंचशिलां नत्वा परिक्रम्यार्चयेत्सुधीः ॥ ८ ॥ धन्यः स एव लोकेषु बदरीशे तथा प्रिये ॥ त्रुटिमात्रं किल स्वर्णं दद्याद्यो ब्राह्मणाय वै ॥ ९ ॥ तस्य पुण्यफलं को वै वक्तुं शक्तः कथं भवेत् ॥ सम्पूज्य तत्र केदारं शिवलोके महीयते ॥ ११० ॥ परिक्रमेत्तु यो देवं बदरीनायकं परम् ॥ ससमुद्रवनद्वीपा दत्ता भूमिर्महात्मना ॥ ११ ॥ पितरस्तस्य गच्छंति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ धन्यास्त एव लोकानां यैर्दृष्टो बदरीतरुः ॥ १२ ॥ तत्राश्रमे च यैर्वापि स्थितं विष्णुपरायणैः ॥ नारदीया यत्र शिला विष्णु-

फिर उसका जन्म नहीं होता एवं नरनारायणके आश्रमके ऊपर जो प्राणी शरीरका परित्याग करतेहैं ॥ ४ ॥ हे देवि ! विविधप्रकारके भयसे व्याप्तहुए इस संसारमें उनका जन्म नहीं होता । अथच चित्तको एकाग्रकरके महर्षियोंकी गंगाजीकी धारामें स्नान करतेहैं ॥ ५ ॥ अथवा जलपान करतेहैं उन्हें परब्रह्म पदका लाभ होताहै । उस आश्रममें निवास करनेवालोंको जीर्णवस्त्र प्रदानकरके अतिशय पवित्र बदरिकाश्रम महाक्षेत्रमें यात्राकरे, एवंच कूर्मधारामें परमपावन जलका आचमनकरै ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदि परमात्माके दर्शन करके परम शुद्धिलाभ करनेकी कामना हो तौ पंचशिलाकी परिक्रमा और नमस्कार करके अर्चनाकरै ॥ ८ ॥ सुनो प्रिये ! संसारमें उसी प्राणीके अहो भाग्यहै जो बदरीनाथजीमें कणिकामात्रभी सुवर्ण दान करके ब्राह्मणको देताहै ॥ ९ ॥ उसके पुण्यका फल वर्णन करनेको कोई व्यक्तिभी क्योंकर सशक्त होसक्ताहै । वहां केदारजीकी पूजाकरके शिवलोकमें ऐश्वर्य लाभ करताहै ॥ ११० ॥ जो व्यक्ति बदरीनाथभगवान्की परिक्रमा करताहै, उसने मानो समुद्र वन और द्वीपोंसहित भूमण्डलका दान करदिया ॥ ११ ॥ उसके पितृगणभी विष्णुभगवान्के परमपदका लाभ करतेहैं, एवंच जिन्होंने बदरी वृक्षके दर्शन कियेहैं उन्हींको धन्यहै ॥ १२ ॥ अथच जो पुरुष विष्णुभगवान्की भक्तिमें निरतहोकर उक्तस्थानमें निवास करतेहैं, जहांकि विष्णुलोकमें

लोकप्रदायिनी॥१३॥श्रूयंते यत्र निर्घोषा वेदानां सुमुनीरिताः॥ तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंज्ञितम् ॥ १४ ॥ नारदीये ह्रदे स्नात्वा न भूयः स्तनपो भवेत्॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥१५॥ मृत्स्ना कुंकुमवर्णाभा दृश्यतेतीव सुंदरा॥ तत्र बह्वयो मूर्त्तयश्च संत्युमे श्रीपतेर्विभोः॥१६॥ युगे युगे भविष्यंति विष्णोरंशा मुनीश्वराः ॥ स्थापयिष्यंति देवेशं बदरीनाथनामकम् ॥ १७ ॥ शिला यत्र च वाराही पापहा सर्वकामदा ॥ वाराहकुंडं चाख्यातं विष्णुपद्यां हि मत्प्रिये ॥ १८ ॥ तत्र स्नात्वा तथा जप्त्वा फलानंत्यं लभेन्नरः ॥ नारसिंही शिला तत्र सर्वपापप्रणाशिनी ॥१९॥ कुंडं च तत्राख्यातं वै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ मार्कण्डेयशिला तत्र सर्वलोकेषु दुर्लभा ॥ १२० ॥ यां स्पृष्ट्वा पितृभिर्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ गारुडी च तथा प्रोक्ता गरुडेन महात्मना ॥२१॥ प्राप्तं हरेर्वाहनत्वं सख्यं च परमं

देनेवाली नारदीय शिला विद्यमानहै ॥ १३ ॥ जहां महात्मा मुनियोंके गानकियेहुए वेदोंकी ध्वनि श्रवणगत होतीहै वहां जो कुछभी कर्म कियाजाय वोह सब करोड़गुणा अधिक होताहै ॥ १४ ॥ नारदीय सरोवर (कुंड) में स्नानकरनेसे फिर प्राणीको माताका स्तनपान करना नहीं पडता । अब वहांके चिन्हका वर्णन करतेहैं उसको श्रवण करनेसे प्रत्यय (विश्वास) होजायगा ॥ १५ ॥ उसस्थानकी मृत्तिकाका वर्ण कुंकुमकी समानहै अतएव वोह अत्यन्त सुन्दर दीखतीहै, हेउमे ! वहां श्रीपति विष्णु भगवान्‌की बहुतसी मूर्त्तियें विद्यमानहैं ॥ १६ ॥ प्रत्येक युगमें भगवान्‌के अंशसे मुनीश्वर उत्पन्न हो २ कर बदरीनाथ नामक विष्णुभगवान्‌की स्थापना करते रहेंगे ॥ १७ ॥ वहांही संपूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली अथच समस्त कामनाओंकी पूर्णकर्त्ती वाराही शिला विद्यमानहै, और प्रिये ! विष्णुपदीमें वाराह कुण्डभीहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य वहां जप अथवा स्नान करताहै उसे अनन्त फलकी प्राप्ति होतीहै, और वहांही समस्त पापोंका नाश करनेवाली नारसिंही शिला विद्यमानहै ॥ १९ ॥ एवंच एक कुंडभी विद्यमानहै जो भोग एवं मोक्ष दोनोंहीका देनेवालाहै, समस्त लोकोंमें दुर्लभ ऐसी मार्कण्डेय शिलाभी वहांही विद्यमानहै ॥ १२० ॥ जो पुरुष भक्तिभावसे उसका स्पर्श करताहै उसके पितर मुक्त होजातेहैं । गरुड़जीने उसका कीर्त्तन कियाहै अतएव उसे गारुडीभी कहतेहैं ॥ २१ ॥ इसीके प्रत्ययसे गरुडजीको नारायणका वाहनत्व और उनकी मैत्रीका

हरेः ॥ दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तथाभ्यर्च्य नरो नारायणो भवेत् ॥
॥ २२ ॥ एतत्पंचशिलामध्ये ह्यासनं बदरीप्रभोः ॥ वह्नितीर्थसमायुक्तं विष्णुलोकप्रदं शिवे ॥ २३ ॥ वह्नितीर्थं यत्र देवि वह्निनाराधितो हरिः ॥ तस्मै स सर्वमेध्यत्वं विश्वात्मा विश्वभावनः ॥ २४ ॥ अतः परतरं नास्ति तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे तु बहुशस्तीर्थानि प्रवराणि च ॥
॥ २५ ॥ समासेन हि कथ्यंते सर्वकामप्रदानि वै ॥ ब्रह्मकपाले पितरः प्रेक्षमाणाः स्ववंशजम् ॥ २६ ॥ तिष्ठन्ति तस्मात्पिडानां प्रदानं मुनयोब्रुवन् ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि भक्त्याऽभक्त्याथवा पुनः ॥ २७ ॥ यैरत्रपिंडवपनं कृतं जलसुतर्पणम् ॥ तारिताः पितरस्तेन दुर्गता अपि पापिनः ॥ २८ ॥ किं गयागमनाद्देवि किमन्यत्तीर्थतर्प्पणैः ॥ यैर्नरैर्ब्रह्मकापाले पितॄनुद्दिश्य भामिनि ॥ २९ ॥ कृतं तत्सर्वमेवाशु कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्यादत्र सुतर्प्पणम् ॥ १३० ॥ पिंडानां

लाभ हुआथा । उसका दर्शन स्पर्श अथवा पूजन करनेसे नर साक्षात् नारायण होजाताहै ॥ २२ ॥ पंचशिलाओंमें येही बदरीनाथजीका आश्रमहै; यह अग्नितीर्थसे युक्तहै और हे शिवे विष्णुलोकको प्रदान करनेवालाहै ॥ २३ ॥ हे देवि ! वन्हितीर्थ वोहहै जहां अग्निने नारायणकी आराधना कीथी, सर्वव्यापक विश्वभावनभगवान्ने उनको सर्वमेध्यत्व प्रदान कियाथा ॥ २४ ॥ इससे अधिक दुर्लभ त्रिलोकीमें और कोई तीर्थ नहींहैं और इसक्षेत्रमें बहुतसे उत्तमोत्तम तीर्थहैं ॥ २५ ॥ समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाले उनतीर्थोंका संक्षेपसे वर्णन किया जाताहै, जब पितर ब्रह्मकपालमें अपने किसी वंशजको देखतेहैं ॥ २६ ॥ उससे पिण्डग्रहणकी अभिलाषा करके वहां स्थित रहतेहैं ऐसा मुनियोंने कथन कियाहै । जानकर अथवा अज्ञानसे भक्तिभाव पूर्वक किम्वा भक्तिहीनही ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति पिण्डदान और जलका तर्पण करतेहैं वे महापापी अतएव दुर्गतिको प्राप्त हुएभी अपने पितरोंका उद्धार कर देतेहैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! उन्हें गयाजीकी यात्रा करने किम्वा अन्यान्यतीर्थमें जलदान करनेसे क्या लाभहै ? हे भामिनी ! जिन व्यक्तियोंने ब्रह्मकपालमें पितरोंके उद्देशसे ॥ २९ ॥ पिण्डदान या तर्पण कियाहै, और यह सबकरोड गुणाअधिक फलदायी होताहै इस कारण विशेष यत्नपूर्वक यहां तर्पण करना कर्त्तव्यहै ॥ १३० ॥ एवंच पिण्डदानभी करना चाहिये

पातनं चैव पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥ मातृवंश्याश्च ये केचित् पितृवंश्यास्तथापरे ॥ ३१ ॥ श्यालाः संबंधिनो वापि सखायश्चापि भामिनि ॥ प्रिया वृक्षाः पक्षिणश्च तिर्यग्योनिगता अपि ॥ ३२ ॥ गच्छंति परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ यानुद्दिश्य च सलिलं पिंडदानं तथैव च ॥ ३३ ॥ कृतं ते विष्णुलोकाय गच्छंति स्मरणादपि ॥ नित्यं जल्पंति पितरो मद्वंशे कश्चिदुत्तमः ॥ ३४ ॥ गमिष्यति विशालायां तारितास्तेन वै वयम् ॥ माहात्म्यं केन शक्येत वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ३५ ॥ यत्र गंगा महाभागा बदरीनाथशोभिता ॥ नृसिंहश्चापि गंगायां शिलारूपी महामते ॥ ३६ ॥ तत्र नारायणं कुंडं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ इदं परमकं स्थानं श्रीविष्णुः परमेश्वरः ॥ ३७ ॥ चतुर्युगे न त्यजति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ पश्चिमे क्रोशखंडार्द्धे बदरीनाथधामतः ॥ ३८ ॥ उर्व्वशीकुंडमाख्यातं सर्व्वसौंदर्य्यदायकम् ॥ पुरा पुरूरवा यत्र रेमे वत्सरपंचकम् ॥ ३९ ॥ उर्व्वश्या सह वामाक्षि जनयामास वै सुतान् ॥ अत्र यः पंच-

ऐसा करनेसे पितरोंको मुक्तिका लाभ होताहै । जो माताके वंशके अथवा पितृवंशकेहैं ॥ ३१ ॥ हे भामिनी ! साले तथा अन्यान्यभी जो संबंधीहैं किम्वा और जो मित्रहैं प्रियवृक्ष पक्षी या तिर्य्यग्योनीमेंभी जो प्राप्तहुएहैं ॥ ३२ ॥ उन्हेंभी विष्णु भगवान्के परमपदका लाभ होताहै, और जिनके उद्देश्यसे जलका तर्पण तथा पिण्डदान किया जाताहै ॥ ३३ ॥ वे अवश्य विष्णुलोकमें गमन करतेहैं, पितृगण नित्य यह कहते रहतेहैं कि, हमारे वंशमें कोई ऐसा उत्तम पुरुषहो ॥ ३४ ॥ जो विशालामें जाय हमारा उद्धारकरै । उस स्थानके माहात्म्यका वर्णन करके सैकडों वर्षमेंभी कौन पार पासक्ताहै ॥ ३५ ॥ जहां कि महाभागवती गंगाजी बदरीनाथसे सुशोभितहैं । और हे महामतिमान् ! वहां नृसिंहजीभी शिलारूप धारण कर गंगाजीमें विराजित रहतेहैं ॥ ३६ ॥ वहांही भोग और मोक्षका देनेवाला नारायणकुण्डहै इसपरम स्थानको श्रीपरमेश्वर विष्णुभगवान् ॥ ३७ ॥ चारों युगमें नहीं त्यागतेहैं निःसन्देह यह बात सत्यहै । बदरीनाथजीके धामसे पश्चिमकी ओर आधकोसकी दूरीपर ॥ ३८ ॥ संपूर्ण तथा सुन्दरताका प्रदान करनेवाला उर्वशीकुण्ड विद्यमानहै, इसी कुण्डके निकट प्रथम पुरूरवाने पांचवर्षपर्यन्त रमण कियाथा ॥ ३९ ॥ सुनो तिर्च्छी चितवनवाली ! उर्वशीके साथ रमणकर

रात्रं वै स्नाति भक्तिसमन्वितः ॥ १४० ॥ कंदर्प इव रूपाढ्यो जायते नात्र संशयः ॥ तिस्रः कोट्योर्द्धसंयुक्तास्तीर्थान्यत्राश्रमे प्रिये ॥ ४१ ॥ परं परप्रधानानि रंभोरु शृणु सांप्रतम् ॥ नानारोगार्त्तदेहोपि स्नानाद्यत्र सुखी भवेत् ॥ ४२ ॥ स्वर्णधाराभिधं तीर्थं देवाद्गव्यूतिमात्रतः ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवद्दिनत्रयमुपोष्य च ॥ ४३ ॥ कुबेरं पश्यति क्षिप्रमुपासीत हरिं प्रभुम् ॥ सावधानतया तत्र स्थेयं विष्णुपरात्मना ॥ ४४ ॥ प्रसन्नो धनदो दद्यात्स्पर्शादि वृषदं प्रिये ॥ वैखानसं परं तीर्थं महापापनिवारणम् ॥ ४५ ॥ स्नात्वा फलादिभक्षोत्र जयेन्मृत्युं हि वत्सरात् ॥ शेषतीर्थे महापुण्ये गंगायां स्नाति यो नरः ॥ ४६ ॥ इहलोके वरान् भोगान् परत्र च परां गतिम् ॥ बदरीनाथदेवस्य वामे तीर्थवरं स्मृतम् ॥ ४७ ॥ इंद्रधारेति विख्यातं स्नात्वा चेंद्रसमो भवेत् ॥ वेदधारामयं तीर्थं सर्ववेदमयं परम् ॥ ४८ ॥

पुत्रोंको उत्पन्न कियाथा, जो व्यक्ति भक्तिमें तत्पर हो पांचरात्री पर्य्यन्त स्नान करताहै ॥ १४० ॥ वोह निःसन्देह कामदेवकी समान सुन्दर रूपवान् होजाताहै । हे प्रिये ! इ आश्रममें साढेतीन करोड तीर्थ विद्यमानहैं ॥ ४१॥ परन्तु हे रम्भोरु ! उनमें जो २ प्रधा संप्रति उन्हीको श्रवण करो । अनेक रोगोंसे आर्त्त हुआभी मनुष्य यदि इसमें स्नान करै सुखी होजाताहै ॥ ४२ ॥ और यहांसे दोकोसकी दूरीपर स्वर्णधारा नामक तीर्थहै तीन दि पर्यन्त उपवास धारणपूर्वक उसमें स्नान करनेसे ॥ ४३ ॥ कुबेरके दर्शन शीघ्रही प्राप्त हो हैं । फिर सावधानी पूर्वक विष्णुभगवान्‌की उपासना करै, एवं च विष्णुभगवान्‌के विषै चित्तहो वहां निवास करै ॥ ४४ ॥ तौ कुबेर प्रसन्न होकर हे प्रिये ! उसे पारस पाषाण देतेहैं, उसके आगे समस्त पापोंका निवारण करनेवाला वैखानस तीर्थहै ॥ ४५ ॥ एक व पर्यन्त यहां स्नानकरके फल आदिका भक्षण करै तौ वोह व्यक्ति मृत्युकाभी विजय करले और जो मनुष्य महापवित्र शेषतीर्थमें गंगाजीमें स्नान करताहै ॥ ४६ ॥ उसे इस लोक उत्तमोत्तम भोग और परलोकमें परमगतिका लाभ होताहै । भगवान् बदरीनाथजीके वामभा में एक सर्वोत्तम तीर्थ कहागयाहै ॥ ४७ ॥ उसका इन्द्रधारा नामहै और उसमें स्नान करने से स्नानकर्त्ता व्यक्ति इन्द्रकी समान होजाताहै । इस वेदधारामय तीर्थको सर्व वेदमय वर्णि

ब्रह्महत्यादिशमनं पितॄणां मुक्तिदायकम् ॥ वसुधाराभिधं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥४९॥ पापिनां मूर्ध्नि तत्तोयबिन्दवो निपतंति वै ॥ चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्जायतेत्र वरानने ॥ १५० ॥ नाम्ना धर्मशिला तत्र स्नात्वाविश्य महामतिः ॥ वसुवर्णजपं कुर्य्याद्वसुलक्षं समाहितः ॥ ५१ ॥ विष्णुसारूप्यतां याति सत्यमेव न संशयः ॥ सोमतीर्थमितिख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ५२ ॥ वर्द्धते सह सोमेन ह्रसते तत्तथैव च ॥ पुरा तत्र महाभागे तप्तं सोमेन वै तपः ॥५३॥ प्राप्तवांश्च महद्रूपं सर्वलोकेषु दुर्ल्लभम् ॥ स्नानाज्जपात्तथा दानादनंतं फलमश्नुते ॥ ५४ ॥ परं सत्यं पदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥ तत्र स्नात्वा महाभागे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५५॥ सर्वसिद्धिमवाप्नोति मंडलार्द्धेन भामिनि ॥ चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा विष्णुलोकं व्रजेत्प्रिये ॥५६॥ चक्रतीर्थस्य माहात्म्यादर्जुनः परमास्त्रवित् ॥ भूत्वा स नाशयामास शत्रून्दुर्योधनादिकान् ॥५७॥

कियाहै ॥ ४८ ॥ यह ब्रह्महत्या आदिका शमन करनेवाला और पितरोंको मुक्तिप्रदान करनेवालाहै । एवं च वसुधारानाम तीर्थ समस्त पापोंका विनाश करनेवालाहै ॥ ४९ ॥ उसके जलकी बिन्दुएँ यदि पापियोंके मस्तकके ऊपर निपतित हों तौ उन्हेंभी चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ १५० ॥ वहां धर्मशिला नामकी एक शिलाहै स्नानपूर्वक उसके ऊपर आसीनहो जो महामति चित्तको एकाग्रकर अष्टाक्षर "ॐ नमो नारायणाय" का आठ सहस्र जप करताहै ॥ ५१ ॥ निःसन्देह उसको विष्णुसारूप्यका लाभ होताहै । वहांही एक सोमतीर्थहै उसमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण तीर्थोंका फल प्राप्त होताहै, उसकी वृद्धि और उसके ह्रास यह दोनों चन्द्रमाके साथही साथ होतेहैं । हे महाभागे ! प्रथम सोमने उस स्थानमें तप कियाथा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तब उसे ऐसे रूपका लाभ हुआ कि जो सबरूपोंमें दुर्लभथा, उस तीर्थमें स्नान दान या जप करनेसे अनन्त फलका लाभ होताहै ॥ ५४ ॥ परं सत्यपद तीर्थ त्रिलोकीमें दुर्लभहै, हे महाभागे ! उसमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान्का सायुज्यलाभ होताहै ॥५५॥ वहांसे अर्धमंडलकी दूरीपर चक्र तीर्थमें स्नान करके हे प्रिये भामिनी ! स्नानकर्त्ता मनुष्य विष्णुलोकको चला जाताहै ॥ ५६ ॥ चक्रतीर्थहीके माहात्म्यसे अर्जुनने अस्त्रविद्यामें परम निपुणहो दुर्योधन आदि अपने समस्त शत्रुओंका विनाश कियाथा ॥ ५७ ॥

द्वादशादित्यतीर्थं वै सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गायते यो बृहत्साम्ना श्रीविष्णुं रविवासरे ॥ ५८ ॥ नीरोगोऽखिलभोगाढ्यो जायते जनवल्लभः ॥ तथा सप्तर्षितीर्थे वै स्नात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥५९॥ रुद्रतीर्थे तथा स्नात्वा रुद्रलोके महीयते ॥ ब्रह्मतीर्थं तथा ख्यातं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥ १६० ॥ स्नानं दानं जपो होमस्तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ नरनारायणं तीर्थं नरनारायणावृषी ॥६१॥ तेपाते परमं देवि तपस्त्रैलोक्यतापनम् ॥ तन्नाम्ना तु समाख्यातं तीर्थं परमपुण्यदम् ॥ ६२ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ६३ ॥ मुचुकुंदाश्रमो रम्यो देवदानवपूजितः ॥ कुंडं तत्र समाख्यातं मौचुकुंदेति संज्ञितम् ॥ ६४ ॥ यत्र स्नात्वा सकृदपि न स भूयोभिजायते ॥ व्यासतीर्थं समाख्यातं व्यासदेवेन सेवितम् ॥६५॥ अवगाह्य तथा दत्वा जप्त्वा ब्रह्म लभेन्नरः ॥ केशवप्रयागतीर्थं

द्वादशादित्य तीर्थ समस्त पापोंका विनाश करनेवालाहै, वहां आदित्य वारको जो व्यक्ति बृहत्सामके द्वारा विष्णुभगवान्का कीर्तन करताहै॥५८॥ वोह समस्त रोगोंसे हीन अखिल भोगोंसे संपन्न और मनुष्यसमाजका प्रिय होताहै, तथा सप्तर्षितीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मस्वरूप होजाताहै ॥ ५९ ॥ और रुद्रतीर्थमें स्नान करके रुद्रलोकमें ऐश्वर्यका लाभ होताहै, फिर ब्रह्मतीर्थ वर्णन कियागयाहै, जो कि ब्रह्मलोकका प्रदान करनेवालाहै ॥ १६० ॥ वहां स्नान, दान, जप अथवा होम जो कुछभी कियाजाय सबका कोटिगुण अधिक फल उपलब्ध होताहै। नरनारायण तीर्थमें नरनारायण ऋषि विद्यमानहैं ॥६१॥ उन दोनोंने ऐसे उग्रतपका आचरण किया कि जिसके कारण त्रिलोकी सन्तप्त होगई अतएव उन्हींके नामसे परमपुण्यप्रद वोह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥ ६२ ॥ अथच उसी स्थानमें ब्रह्माआदि देवताओंकोभी परम सिद्धिका लाभ हुआथा, उस तीर्थमें जो कुछ कर्म कियाजाताहै उसका करोडगुणा फल प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ एक परमरम्य मुचुकुन्दका आश्रमहै देवता और दानव सभी उसकी पूजाकरतेहैं एवंच मौचुकुन्द नामक एक तीर्थ वहां प्रसिद्धहै ॥६४॥ उसमें एकबारभी स्नान करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता । और व्यासजी महाराजके द्वारा सेवा कियाहुआ व्यासतीर्थभी वहां उपस्थितहै ॥ ६५ ॥ वहां स्नान करने दान करने अथवा जप करनेसे मनुष्यको ब्रह्मकी प्राप्ति

क्षेत्राणां परमं मतम् ॥ ६६ ॥ मणिभद्राश्रमस्तत्र महाविष्णुश्च तत्र वै ॥ पुरा यत्र वरारोहे भीमसेनोजयद्रिपून् ॥ ६७ ॥ गंधर्वाख्यान्महाभागे भद्रे भद्रपुरःसरान् ॥ तत्र पांडवतीर्थं हि पांडवा यत्र संस्थिताः ॥ ६८ ॥ तपश्चक्रुर्महात्मानो धौम्यलोमशसंयुताः ॥ इति सर्वाणि मुख्यानि तीर्थानि कथितानि वै ॥ ॥ ६९ ॥ श्रुत्वापि सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७० ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

होतीहै । फिर केशवप्रयागनामक तीर्थ समस्त क्षेत्रोंमें उत्तम माना गयाहै ॥ ६६ ॥ मणिभद्रका आश्रम और महाविष्णु यह दोनों वहांहीहैं, हे वरारोहे ! प्रथम वहांही भीमसेनने शत्रुओंका विजय कियाथा ॥ ६७ ॥ हे महाभागे ! भद्रप्रभृति गन्धर्वोंका विजयकर जहां पाण्डवोंने स्थिति करीथी वोह पाण्डवतीर्थ कहलाताहै ॥ ६८ ॥ धौम्य और लोमश आदिसे संयुक्त होकर वहांही उन महात्माओंने तप कियाथा, यह समस्त मुख्यतीर्थ हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियेहं ॥ ६९ ॥ इन सब (के माहात्म्य) का वर्णन सुननेसे श्रोता व्यक्तिकी समस्त पापोंसे निःसन्देह मुक्ति होजातीहै ॥ १७० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां अष्टपंचाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः ५९.

अरुन्धत्युवाच ॥ भगवन् सर्वधर्मज्ञ ह्युक्तानि बदरीवने ॥ तीर्थानि कथितान्येव स्वर्गादिफलदानि वै ॥ १ ॥ अतःपरं महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥ केनकेनात्र चरितं तीर्थयात्राव्रतं मुने ॥ ॥ २ ॥ किं किं फलं परं प्राप्तं माहात्म्यं कस्य कर्म्मणः ॥

अरुन्धती बोली-हे समस्तधर्मोंके ज्ञाता भगवन् ! बदरिकावनमें जितने तीर्थहैं उन सबको वर्णन करके आपने मुझे सुनाया, जिनका श्रवण करनेसे स्वर्ग आदिफलका लाभ होताहै ॥ १ ॥ किन्तु हे भगवन् ! इसके अनन्तर मैं यहभी श्रवणकरना चाहती हूं कि, भो मुनिराज ! तीर्थयात्रारूप व्रतका आचरण किस २ ने किया ॥ २ ॥ और किस २ कर्मके

एतत्सर्वं समाख्यानं मम विस्तरतो वद ॥ ३ ॥ क्षेत्रस्य परमा-
ख्यानं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ शृण्वंत्यास्तस्य माहात्म्यं तृप्तिर्मे
जायते नहि ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया देवि तत्ते
सर्वं वदाम्यहम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
परमं गीतमाहात्म्यं बदरीनाथवेश्मनि ॥ दृष्टं पुरा मया देवि
नारदेन यथा पुरा ॥ ६ ॥ आराधितो महात्माभूद्भूतभावन
भावनः ॥ गीतेनाष्टकवर्य्येण संतुष्टो भगवान् ददौ ॥ ७ ॥ सर्व-
ज्ञत्वं च देवत्वं नारदाय महात्मने ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सर्व
पापहरं शुभम् ॥ ८ ॥ शृणु सर्वं पुरावृत्तं नारदस्य महात्मनः ॥
दृषद्वत्यां बभूवाथ नाम्ना विष्णुमना द्विजः ॥ ९ ॥ सर्वशास्त्रार्थ-
तत्वज्ञो धर्मात्मा धर्मतत्परः ॥ तस्य पुत्रो विष्णुरतिर्बभूव वर-
वर्णिनि ॥ १० ॥ पाठ्यमानोपि बहुधा पुत्रं विष्णुमना बहु ॥
न पपाठ महाभागे विद्यां शास्त्रात्मिकां सदा ॥ ११ ॥ गाने
तस्य मनो लग्नं गायनज्ञैश्च संगतः ॥ ययौ देशांतरं देवि भिक्षि-

करनेके कारण उन्हें किस २ फलकी प्राप्ति हुई, यह संपूर्ण व्याख्यान विस्तारपूर्वक मेरे प्र
वर्णन करो ॥ ३ ॥ क्षेत्रसंबन्धी जो यह परम आख्यानहै धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फल
देनेवालाहै, और इसका श्रवण करते २ मेरी तृप्ति ही नहीं होतीहै ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी बोले-
देवि ! तुमने परमोत्तम प्रश्न किया, उसका उत्तर हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं, जिस
केवल श्रवण करनेसे मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ५ ॥ श्रीबदरीनाथजीके म
रमें प्रथम हे देवि ! गान करनेका माहात्म्य नारदजीके द्वारा कियाहुआ मैंने देखाथा ॥ ६
भगवान् भूतभावन महादेवजीकी आराधना करनेसे वे महात्मा हुएथे, एवंच उनके द्वारा ग
किये हुए सर्वोत्तम अष्टकसे सन्तुष्टहो भगवान् भूतनाथने ॥ ७ ॥ उन्हें सर्वज्ञत्व और दे
प्रदान कियाथा, समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला वोही शुभ आख्यान हम तुम्हारे प्र
वर्णन करतेहैं ॥ ८ ॥ पापोंका अपहरण करनेवाला जो वृत्तान्त प्रथम हुआथा उसका श्र
करो, एक समय दृषद्वतीके ऊपर विष्णुमना नाम ब्राह्मण हुआ ॥ ९ ॥ वोह धर्मा
धर्मका आचरण करनेमें तत्परथा, एवंच समस्त शास्त्रार्थोंके तत्वको जानताथा, हे सुमुखि
विष्णुरति नाम उसका एक पुत्र हुआ ॥ १० ॥ विष्णुमनाने अपने पुत्रको बहुतेरा पढ़
परन्तु हे महाभागे ! वोह शास्त्रविद्याको न पढसका ॥ ११ ॥ गानविद्यामें उसका चित्त ल

तुं नृपतींस्तदा ॥ १२ ॥ बहुधा वार्य्यमाणोपि मन्यते न कदाचन ॥ पुत्रं निष्कासयामास क्रोधाविष्टो महीसुरः ॥ १३ ॥ सोपि विष्णुरतिर्मूर्खो गायनज्ञैश्च संगतः ॥ नारायणं दयासिंधुं गायन् साकं वरानने ॥ १४ ॥ प्रसंगात्तस्य वामांगि विष्णुभक्तिरजायत ॥ शब्दो ब्रह्म यतो ह्युक्तं गीताख्यं परमं पदम् ॥ १५ ॥ तस्य घोषात्कुतो देवि न भवेत् ब्रह्मतत्परः ॥ गायते यो विना विष्णुं शिवं च परमेश्वरम् ॥ १६ ॥ पापात्मा स हि विज्ञेयो गीतशास्त्रविशारदः ॥ तस्माद्गीयेत्परं ब्रह्म यदवाप्य न शोचति ॥ १७ ॥ गीत्वा यद्वै परं ब्रह्म शिवोभूद्ब्रह्मतत्परः ॥ गानमेव परं मन्ये यतो विष्णुः प्रसीदति ॥ १८ ॥ ब्रह्मप्रीतिकरं ह्यस्माच्छीघ्रं नान्यविधिः प्रिये ॥ असौ विष्णुरतिर्मूर्खो विष्णुभक्तोऽभवद्यतः ॥ १९ ॥ सोपि विष्णुरतिः संगं गायकानां तदा त्यजन् ॥ एकाकी प्रययौ धीमान् कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ २० ॥ बदरीवनमध्ये तु नारायणसमीपतः ॥ गीयते स्म तदा विष्णु-

अतएव उसने गानकर्त्ता व्यक्तियोंके साथ संगति करली, और राजाओंसे याचना करनेके लिये वोह परदेशको चलदिया ॥ १२ ॥ जब बहुतेरा मारनेपरभी वोह बिलकुल न माना तब उस भूदेव ब्राह्मणने क्रोधितहो पुत्रको निकाल दिया ॥ १३ ॥ हे सुमुखि ! वोह मूर्ख विष्णुरति गायकोंके साथ संगत होकर दयासिन्धु विष्णुभगवान्‌के गुणोंका गानकरने लगा ॥ १४ ॥ हे शोभनांगि ! इसी प्रसंगसे विष्णुभगवान्‌की प्रीति उदय होगयी क्योंकि, गान शब्दको साक्षात् ब्रह्मरूप कहकर कीर्त्तन कियाहै ॥ १५ ॥ तौ फिर हे देवि ! उसके कीर्त्तनसे ब्रह्मविषयक तत्परता क्यों नहो । जो विष्णु शिव अथवा परब्रह्मको छोड़कर अन्य किसीका कीर्त्तन करतेहैं ॥ १६ ॥ वे गानविद्यामें चाहें जितने चतुरहों पर उन्हें पापात्मा जानना चाहिये, अतएव परंब्रह्म संबन्धी गान करना कर्त्तव्यहै ॥ १७ ॥ जिसका गान करनेसे ब्रह्ममें तत्परहो शिवरूप होजाताहै हमतौ गानहीको परमोत्तम समझतेहैं क्योंकि उससे विष्णुभगवान् प्रसन्न होतेहैं ॥ १८ ॥ हे प्रिये ! परमेश्वरको प्रसन्न करनेवाली इससे अधिक उत्तम अन्य कोई विधि नहींहै, इसी कारण अतिमूर्ख विष्णुरतिभी विष्णुभक्त होगया ॥ १९ ॥ फिर एक समय वोह विष्णुरति गायकोंके संगका परित्यागकर अकेलाही विचरते २ कैलास पर्वतको चलागया ॥ २० ॥ बदरीवनमें नारायणके समीप जाय वोह महात्मा विष्णुभगवान्‌का कीर्त्तन

भगवान्वै महात्मना ॥ २१॥ तदा तुष्टो वरं प्रादाच्छ्रीविष्णुरत-
ये प्रिये ॥ दुर्ल्लभं योगिनां यद्वै नारदत्वं च संगतः ॥ २२ ॥
अरुंधत्युवाच ॥ कथं गीतो महाविष्णुः केन गीतेन वै प्रभो ॥
तन्मे शंस महापुण्यं नारदत्वं कथं गतः ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच
शृणु चित्तं समाधाय विष्णुभक्तिकरं परम् ॥ यद्गीत्वा च पठि-
त्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥ नामामृतं परं दिव्यं श्रीवि-
ष्णोः परमात्मनः ॥ सिद्धिदं यत्र कुत्रापि किमु तद्वरीवने॥२५॥
गंगायां स महाभागः स्नात्वा गृह्य जलं परम् ॥ संगायति महा
विष्णुं नित्यमेव तपोनिधिः ॥ २६ ॥ "विष्णुरतिरुवाच ॥
रमारमण बदरीपते हरे नृहरे श्रीपरमेश ॥ भवाब्धितरणचरणेश
प्रभो परमविचरेश ॥१॥ मामव मामव दुरितांबुधौ निमज्जंतम् ॥
धरणिधरण शुभकरण नारायण सुखनिकेतन ॥ जलधरतनो
सुमनोभ्यर्चितचरणतरणेऽव नः ॥ मामव० ॥ २ ॥ मधुमथन

करनेलगा ॥ २१ ॥ तबतौ हे प्रिये ! भगवान्ने सन्तुष्टहो विष्णुरतिको नारदत्वरूप ऐसा उत्तम वरदिया जो योगियोंकोभी दुर्लभथा ॥ २२ ॥ अरुन्धती बोली–हे प्रभो ! उसने कौनसे गीतसे किसप्रकार भगवान्का कीर्त्तन कियाथा और किसप्रकार उन्हें नारदत्वका लाभ हुआ इस पवित्र आख्यानको आप मेरेप्रति वर्णन करें ॥ २३ ॥ वसिष्ठजी बोले–जिसका गानकरने अथवा पाठकरनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्तहोजाताहै और विष्णुभगवान्की भक्तिका लाभ होताहै उसी आख्यानका श्रवण तुम चित्तको एकाग्रकरके करो ॥ २४ ॥ परमात्मा श्रीविष्णु भगवान्के अमृतरूप दिव्य नामोंका कीर्त्तन करनेसे बदरीवनहीमें क्या सर्वत्र सिद्धियोंका लाभ होताहै ॥ २५ ॥ वोह तपोनिधि महाभाग गंगाजीमें स्नानकर जलग्रहण करके नित्यही विष्णुभगवान्का कीर्त्तन करताथा ॥ २६ ॥ विष्णुरति बोला–हे रमाके रमणकर्त्ता बदरिका आश्रमके स्वामी ! आप पापोंको हरनेवाले और नरहरिहैं, हे श्रीपरमेश्वर ! आपके चरण संसारसागरसे उद्धारकरनेवालेहैं, सो पापसागरमें मुझ डूबते हुएकी रक्षाकरो ॥ १ ॥ भूभारधारणकर्त्ता शेषरूप आपहीहैं, हे सुखधाम ! आप सबशुभका विधान करने वालेहैं, आपका शरीर घनश्यामहै और देवसमाज आपके चरणोंकी अर्चा करतेहैं आप हमारी रक्षाकरें ॥ २ ॥ आपने मुर और मधु दैत्यका विनाश कियाहै, आप

मुरकथन शुभसदनपरनिधान ॥ गरुडपरासन भासन सुर
नरकरुणानिधान ॥ मामव० ॥ ३ ॥ जीवजीवन बदरीवनसदन
गोपीजनसानंद नरकविदारण दनुजविदारणकर परमानंद॥माम-
व० ॥ ४ ॥ राम रावणमथनपर सीतानंदकर सुरनाथ॥ दुरित-
निकृंतन जलधिमंथन शुभगाथ ॥ मामव० ॥ ५ ॥ धरणिधरण
शुभकरण नारायण सुखनिकेतन ॥ जयजय हरिततनो भगवन्
यदुवंशहरिनाम॥ मुरसूदन बलवते बलिच्छलन धृतबलिधाम ॥
मामव० ॥ ६ ॥ " भक्त्या परमया गीतं हर्षेण महता प्रिये ॥
प्रत्यक्षं दृष्टवान् विप्रो महाविष्णुं परात्परम् ॥ २७ ॥ शंखचक्र
गदापद्मवनमालाविराजितः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशो द्योतयन् सर्व
तो दिशम् ॥ २८ ॥ उवाच परमं तुष्टो द्विजं भक्तिकरं परम्॥ वरं

सुखधाम और परम कल्याण मूर्त्तिहैं, आप गरुडके ऊपर आरूढ रहतेहैं एवंच देवता और मनुष्योंको करुणा करनेसे आपही प्रकाशित करतेहैं सो आप मेरीभी रक्षा करैं ॥ ३ ॥ प्राणियोंके जीवनाधार, बदरीवनमें निवास करनेवाले, गोपिकाओंको आनन्द देनेवाले, नरक अथवा नरकासुरके नाशकर्त्ता, एवंच अन्यान्य दैत्यसमाजका संहार करनेवाले और परम आनन्द विधानकर्त्ता आपहीहैं, आप मेरीभी रक्षाकरैं ॥ ४ ॥ हे देवराज ! रावण विनाशी और सीताको आनन्द देनेवाले श्रीराम आपहीहैं; आपही पापविनाशी और सागरका मन्थन करनेवालेहैं, अतएव आपके चरित्रोंकी गाथा परम शुभहै सो आप मेरीभी रक्षाकरैं ॥ ॥ ५ ॥ भूभारधारी, शुभ विधान कर्त्ता, सुखनिकेतन नारायण आपहीहैं, आपके शरीरकी प्रभा हरितहै, आपकी जयहो, हे भगवन् यदुवंशमें आपहीने हरिरूप धारण कियाहै, मुरका विनाश करनेवाले, बलिष्ठ बलीको छलनेवाले और उसको परमपद देनेवाले आपहीहैं मेरीभी आप रक्षाकरैं ॥ ६ ॥" हे प्रिये! जब हर्षसे उन्मत्तहो परम भक्तिभावपूर्वक उस ब्राह्मणने इस प्रकार गान करा तब परमेश्वर श्रीविष्णुभगवान्ने प्रत्यक्षहो उसे दर्शन दिये ॥ २७ ॥ शंख चक्र, गदा, पद्म और वनमाला इनको धारण करनेसे भगवान्की शोभा औरभी बढरहीथी, करोड सूर्य्यकी समान प्रकाशसे दिशाओंको प्रदीप्तकर रहेथे ॥ २८ ॥ परम सन्तुष्टहो, उत्कृष्ट भक्ति करनेवाले उस ब्राह्मणसे भगवान् बोले, तुम्हारा कल्याणहो अब तुम हमसे वरमांगो, अब

---

१ आजानुलम्बिनी माला सर्वतः कुसुमोज्ज्वला । मध्ये स्थूलदलाढ्या च वनमाले-ति कीर्त्तिता ॥

वरय भद्रं ते न हि ते दुर्लभं क्वचित् ॥ २९ ॥ विष्णुरतिरुवाच ॥
धन्योस्म्यहं जगन्नाथ परमात्मन् सनातन ॥ न दृष्टं यत्पुरा
कैश्चित्तवरूपं गतं मया ॥ ३० ॥ भक्तिर्यथा भवेन्नित्यं त्वयि
विष्णौ परेश्वरे ॥ तथा स्यां भगवन् देव गाने तु कुशलो भवे ॥
॥ ३१ ॥ यत्र कुत्रापि त्वद्भक्तिर्भवतु मम माधव ॥ न पश्यामि
भवं विष्णो वराणां मे चतुष्टयम् ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
याचितं यत्त्वया विप्र सर्वं तत्ते भविष्यति ॥ शिवमाराध्य राग-
ज्ञो भविष्यसि महामुने ॥ ३३ ॥ पुरा त्वं नारदो नाम्ना मम
भक्तो मम प्रियः ॥ दक्षशापेन संसारे प्राप्तोसि मुनिवंदितः ॥
॥३४॥ नारं[1] दत्तं त्वया गांगं मह्यं तन्मम रूपकम् ॥ अतस्त्वं नार-
दो नाम्ना भविष्यसि तपोनिधे ॥ ३५ ॥ इदं नारदकुंडं हि सर्वमु-
क्तिप्रदायकम् ॥ भविष्यति महाभाग ममापि स्थितिरुत्तमा ॥
॥३६॥ मूर्त्तयश्चापि पंचाशद्वर्त्तन्ते तावके ह्रदे ॥ युगे युगे ममांश-
श्च हरांशश्चैव शंकरः ॥ ३७ ॥ उद्धरिष्यति मे मूर्त्तिं तावकीन
ह्रदाच्छुभात् ॥ अस्मिन् कुंडे तु यः कश्चित्स्नानं दानं जपादि-

तुम्हारे लिये कहीं कुछभी दुर्लभ नहींहै ॥ २९ ॥ विष्णुराति बोला हे सनातन ! जगन्नाथ ! परमे-
श्वर ! मुझे धन्यहै क्योंकि आपके जिसरूपके दर्शन प्रथम किसीको नहीं हुए उसीको मैंने देखा
॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आपमें मेरी नित्य भक्तिहो, मैं गानविद्यामें अतिशय निपुण होजाऊं
और हे माधव ! जहां कहीभी रहूं आपकी भक्ति अवश्यहो, एवंच अब मेरा जन्म न हो ये
चार वर मुझे दीजिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्राह्मण! तुमने जो कुछभी या-
चना करी वोह सब अवश्य होगा, और हे महामुने ! महादेवजीकी आराधना करनेसे तुम
रागके ज्ञाता बनोगे ॥ ३३ ॥ प्रथम तुम नारद नामके हमारे प्यारे भक्तथे, हे मुनिवन्दित !
दक्षके शापसे इस नरलोकमें तुम्हारा जन्म हुआहै ॥ ३४ ॥ तुमने गंगाजल जो हमारे ऊपर
चढायाहै अतः अबभी हे तपोनिधि ! तुम नारद नामसेही प्रसिद्ध होओगे ॥ ३५ ॥ यह
नारदकुण्ड समस्त प्रकारसे मुक्तिओंका देनेवालाहै, और हे महाभाग ! हमारीभी यहां उत्तम
स्थिति होगी ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे कुण्डमें पचास मूर्त्तियें विद्यमानहैं, और प्रत्येक युगमें
हमारा एवंच कल्याणकारी महादेवका अंश ॥ ३७ ॥ तुम्हारे कुण्डमेंसे हमारी मूर्त्तिको

[1] नारं जलं ददाति इति 'नारदः' ॥

कम् ॥ करिष्यति महाभाग फलानंत्यं समश्नुते ॥ ३८ ॥ निराहारेण यः कश्चित्प्राणांस्त्यजति बुद्धिमान् ॥ किं तस्य काशीमरणं किंवा योगशतैस्तथा ॥ ३९ ॥ धन्यः स एव लोकेषु पुण्यात्मा नात्र संशयः ॥ ४० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्याभाष्य मुनिं विष्णुस्तत्रैवांतरधीयत ॥ सोपि विप्रो महाभागे नारदत्वमुपागतः ॥ ॥ ४१ ॥ शिवमाराध्य विश्वेशं सर्वं संगीतमाप्तवान् ॥ मूर्त्तिमंतस्तथा रागा भेजिरे नारदं मुनिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये नारदोपाख्यानं नाम ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

उद्धार किया करेगा, इस कुंडमें जो व्यक्ति स्नान दान और जप आदि करेगा हे महाभाग ! उसे अनन्त फलकी प्राप्ति होगी ॥ ३८ ॥ और जो बुद्धिमान् निराहार रहकर इस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करताहै, उसे काशीमें मरने अथवा सैकडों योग करनेसे क्या लाभहै ? ॥ ॥ ३९ ॥ संसारमें उसीको धन्यहै, और वोही निःसन्देह पुण्यात्माहै ॥ ४० ॥ वसिष्ठजी बोले-विष्णुभगवान् मुनिको इस प्रकार समझा बुझाके उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होगये, और हे महाभागे ! उस ब्राह्मणने भी नारदत्वका लाभ किया ॥ ४१ ॥ एवं च विश्वेश्वर महादेवजीकी आराधना करके उसे संपूर्ण गीतोंका लाभहुआ, सुतराम् सम्पूर्ण राग मूर्त्तिमान्‌हो नारद मुनिको भजने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः ६०.

वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वरुंधति वक्ष्यामि यात्राया बदरीपतेः ॥ फलमाश्चर्य्यरूपं वै सावधानावधारय ॥ १ ॥ इतिहासं महापुण्यं धनायुष्यप्रवर्द्धनम् ॥ कथयामि महावैश्यो ब्रह्महत्यायुतोपि सः ॥ निःपापः प्राप भवनं वैकुंठाख्यं महास्पदम् ॥ २ ॥

वसिष्ठजी बोले-सुनो अरुन्धति ! अब मैं बदरीनाथजीकी यात्राका वर्णन करताहूं, उसका फल आश्चर्यरूपहै अतः सावधान होकर श्रवण करो ॥ १ ॥ यह इतिहास अतिशय पवित्र धन और आयुकी वृद्धि करनेवालाहै, उसीका मैं वर्णन करताहूं । एक महावैश्य ब्रह्महत्यारा

प्रतिष्ठाने पुरे वैश्यो बभूव धनतोयाधिः ॥ नाम्ना शंकरगुप्तो वै धर्मात्मा विष्णुतत्परः ॥ ३ ॥ अपुत्रो दुःखितो नूनं नालभच्छर्म कर्हिं चित् ॥ चिन्तयानोऽपि हि भृशं किं धनेन ममेति वै ॥४॥ तस्यैकदा मतिर्जाता धनसंक्षयगामिनी ॥ सर्वं धनं समानीय प्रभासे तीर्थनायके ॥ ५ ॥ ब्राह्मणांश्च समाहूय नानादिग्भ्यो-वरानने ॥ सर्वान्प्रणम्य विप्रान्वै परिक्रम्य पुनः पुनः ॥ ६ ॥ उवाच विनयाविष्टः पुत्रहीनस्य मे धनम् ॥ गृह्णीध्वं मुनयः सर्वे गतिर्मे भविता खलु ॥ ७ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कृपाविष्टा मुनीश्वराः ॥ ऊचुः शंकरगुप्तं वै विनयाविष्टमानसम् ॥ ८ ॥ भो भो वैश्य महाभाग कुर्मः पुत्रेष्टिकां तव ॥ येनोपायेन ते पुत्रो भविता विष्णुतत्परः ॥ ९ ॥ परं दारुणवेलायां पृष्टाः स्मो भवता वयम् ॥ तेन ते परमं पापं करिष्यति सुतः किल ॥ १० ॥ पुनर्वै बदरीशस्य यात्रया भविताऽमलः ॥ इत्यु-

होनेपरभी (बदरी नाथ की यात्राके प्रतापसे) निष्पापहो परमधाम वैकुण्ठ लोकको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ प्रतिष्ठानपुरमें एक अत्यन्त धनाढ्य महावैश्य था, उस धर्मात्माका शंकरगुप्त नाम था और वोह विष्णुभक्तिमें तत्पर रहताथा ॥ ३ ॥ परन्तु पुत्रहीन होनेके कारण उसे कल्याणकी प्राप्ति कहींभी नहीं होतीथी, अतएव उसे यही चिन्ताथी कि इसप्रभूत धनसे मुझे क्या करना है॥ ४॥ सुतरां एक दिन उसे यह सूझी कि, सबधनको व्यय कर डालना चाहिये,यह सोच तीर्थराज प्रभासमें समस्तधन लेआया ॥ ५ ॥ हे वरानने ! अनेक दिशाओंसे ब्राह्मणोंको बुलाय कर वारंवार परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया ॥ ६ ॥ और विनयावनतहो कहने लगा कि मेरे कोई पुत्रनहीं है अतएव मेरे सब धनको तुम ग्रहण करलो, तो मेरी गति होजायगी ॥ ७ ॥ उसके यह वचन सुन मुनियोंके चित्तमें कृपाका आविर्भाव हो आया और नम्रतायुक्त शंकरगुप्तसे वे यों कहने लगे ॥ ८ ॥ हे भाग ! वैश्य ! हम तुम्हारे निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ करेंगे, सो इस उपायके करनेसे तुम्हारे विष्णुभक्त पुत्र होगा ॥ ९ ॥ परन्तु तुमने दारुण वेलामें हमसे प्रश्न कियाहै अतएव तुम्हारा पुत्र अतिशय पापका आचरण करेगा ॥ १० ॥ फिर बदरीनाथजीकी यात्रा करके

का ते महाभागे चक्रुरिष्टिं महाविधिम् ॥ ११ ॥ चरुमुत्पाद्य तत्रापि ददुस्तस्मै महात्मने ॥ सोपि वैश्यो महाभागो ददौ बहुतरं धनम् ॥ १२ ॥ तृप्तास्तेपि ययुर्विप्राः स्वं स्वं देशं मुदान्विताः ॥ शंकरोपि चरुं लब्ध्वा प्रतिष्ठाने पुरे शुभे ॥ प्रियायै प्रददौ तूर्णं गर्भं प्राप वरांगना ॥ १३ ॥ ततस्तु दशमे मासि प्रासूत वरपुत्रकम् ॥ उवाच सा सुतं तं वै ब्रह्मदत्तेति नामतः ॥ १४ ॥ ब्राह्मणैस्तु यतो दत्तोऽसौ ततो ब्रह्मदत्तकः ॥ ववृधेसोपि वैश्यस्य पुत्रः शुक्ले यथा शशी ॥ १५ ॥ वयोयौवनमापन्नो वैश्यपुत्रो महाद्युतिः ॥ एकदा प्रययौ सोपि विक्रीतुं द्रव्यकं बहु ॥ १६ ॥ गच्छमानो ददर्शाग्रे म्लेच्छद्वन्द्वं वरानने ॥ तत्र म्लेच्छीं ददर्शासौ रूपयौवनशालिनीम् ॥ १७ ॥ वराननां सुकेशीं च नेत्राभ्यां जितखंजनाम् ॥ दृष्ट्वा मुमोह तां वेश्यां ब्रह्मदत्तो विशः सुतः ॥ १८ ॥ धनं तस्यै ददौ सर्वं तत्संगे निरतोऽभवत् ॥ तद्धर्म्मनिरतश्चापि बभूव वरवर्णिनि ॥ १९ ॥

निष्पापहो जायगा, हे महाभागे ! यों कहकर बडी विधिसे उन्होंने पुत्रेष्टिका आचरण किया ॥ ११ ॥ और चरु निकालकर उस महात्माको दिया, और उस वैश्यने उन्हेंभी प्रभूत धन दिया ॥ १२ ॥ वे सब ब्राह्मण तृप्तहो अपने २ देशको चलेगये, शंकरगुप्तनेभी उस चरुकोले प्रतिष्ठान पुरमें आय अपनी प्रियाको देदिया जिससे उस वरांगनाको गर्भ होगया ॥ १३ ॥ और इसके अनन्तर दसवें महिनेमें उस स्त्रीने एक उत्तम पुत्र जना, और ब्रह्मदत्त कहकर उसको आह्वान किया ॥ १४ ॥ क्योंकि, ब्राह्मणोंकी कृपासे इसकी प्राप्ति हुई है अतएव इसका ब्रह्मदत्त नामकरण करना चाहिये, अथच उस वैश्यपुत्रकीभी इस प्रकार वृद्धि होने लगी जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है ॥ १५ ॥ एकसमय अत्यन्त कान्तिमान् वोह वैश्यकुमार युवाअवस्थाको प्राप्तहो बहुतसी वस्तुओंका विक्रय करनेके लिये गया ॥ १६ ॥ हे सुमुखि ! उसने चलते २ म्लेच्छदम्पतिको देखा, और उन दोनोमेंभी रूपयौवनशालिनी म्लेच्छिनीको देख, मोहको प्राप्त होगया, क्योंकि—उसका मुख सुन्दर, केश उत्तम, और नेत्र खंजनकी गतिका विजय करनेवाले थे, वोह वैश्यकुमार ब्रह्मदत्त उस वेश्याको देखतेही मोहित होगया ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्मदत्तने सब धन उसीको देदिया अथच स्वयं उसीके संगमें निरत

धनं सर्वं क्षयं नीतं दस्युधर्मरतोऽभवत् ॥ तां गृहीत्वा वने वेश्यामुवास जनवर्जिते ॥ २० ॥ एकदा ब्रह्मदत्तोसौ गतश्चौर्याय कानने ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्राञ्जातरूपपरिच्छदान् ॥ २१ ॥ आयातान् दृष्टवाँस्तूर्णं धनुः सज्जं चकार ह ॥ बाणं संधाय धनुषि ब्राह्मणान्निजघान ह ॥ २२ ॥ यत्किञ्चिद्वसु विप्रेभ्यो मृतेभ्यो मम वल्लभे ॥ जग्राह च पुनर्दृष्ट्वा विप्रकीर्णजटान्बहून् ॥ यज्ञोपवीतिनश्चापि मृतान्दृष्ट्वातिदुःखितः ॥ २३ ॥ विप्राणां दर्शनादेव किंचित्पापं क्षयं गतम् ॥ चिंतयामास बहुशो ब्रह्महत्याभिपीडितः ॥ २४ ॥ किं मया दुष्कृतं कार्य्यं कृतं पापेन कर्म्मणा ॥ धनलुब्धेन सुतरां क्व गच्छामि क्व मे गतिः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणानां प्रसादेन जातोस्मि पितृप्रार्थितः ॥ अत्यंतं चिंतयानोऽसौ ययौ यत्र पिता स्थितः ॥ २६ ॥ पादयोः पतितस्तस्य शंकरस्यातिदुःखितः ॥ मयातिदुष्कृतं तात नीतं सर्वं धनं क्षयम् ॥ २७ ॥ चांडाल्या सह संभोगी ब्रह्महत्यासमन्वितः ॥

होगया और हे सुमुखि ! उसीके धर्मकोभी इसनें अंगीकार करलिया ॥ १९ ॥ एवंच जब इसका समस्त धन नष्ट होगया तब यह स्वयम् दस्युकर्म करनेलगा और उस वेश्याको लेकर निर्जन स्थानमें रहने लगा ॥ २० ॥ एकसमय यह ब्रह्मदत्त चोरी करनेके लिये वनमें गया इसीसमय उत्तमरूपशाली ब्राह्मण समाजको ॥ २१ ॥ आता देख इसने तत्काल धनुषको सुसज्जित किया और धनुषके ऊपर बाणोंको चढाय ब्राह्मणोंका वध करडाला ॥ २२ ॥ सुनो हमारी प्यारी ! मृतक ब्राह्मणोंका सब धन उसने लेलिया, परन्तु फिर उनकी लम्बी २ जटाओंको फैला देख और यज्ञोपवीत धारण किये देखके अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंका दर्शनही करनेसे उसका कुछ २ पाप नष्ट होगयाथा, अतएव ब्रह्महत्यासे पीडित हो यह बहुत कुछ चिन्ता करने लगा ॥ २४ ॥ हाय ! मुझ पापीने धनके लोभसे यह क्या दुष्कर कर्म करडाला, अब मैं कहां जाऊं ? और कहां मेरी गति होगी ॥ २५ ॥ जब मेरे पिताने प्रार्थना कीथी तब ब्राह्मणोंहीकी कृपासे मेरा जन्म हुआथा, इसप्रकार बहुत कुछ विचार करते २ यह वहांही गया जहां इसका पिता विद्यमान था, ॥ २६ ॥ अत्यन्त दुःखित हो अपने पिता शंकरके चरणोंमें गिरपडा, और कहने लगा, हे पिताजी ! मैंने बडा पाप किया और सब धन बरबाद करडालाहै ॥ २७ ॥ मैंने चाण्डालीके साथ संगम और

कथं मे भविता तात गतिस्तां वद सांप्रतम् ॥ पापोहं पापकर्माहं मज्जमानो भवार्णवे ॥२८॥ शंकरगुप्त उवाच ॥ एवमेव पुरा तात ब्राह्मणैः समुदीरितम् ॥ अन्यथा तद्वचः पुत्र भवेदत्र कथं खलु ॥ २९ ॥ भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ जन्मेजयो यथा राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ ३० ॥ अष्टादशब्राह्मणानां हत्यां प्राप वने सुत ॥ तथा त्वमपि हत्यां वै प्राप्तवान्दैवनिर्मिताम् ॥ ३१ ॥ पुत्र उवाच ॥ किं कर्त्तव्यं मयेदानीं कथं वै निष्कृतिर्भवेत् ॥ मज्जमानं हि पापाब्धौ रक्ष तात कृपान्वितः ॥३२॥ शंकरगुप्तउवाच ॥ तैरेव गदितं पुत्र ब्राह्मणैर्यन्महात्मभिः ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सावधानोवधारय ॥ ३३ ॥ कैलासपर्वतश्रेष्ठे गंधमादनपर्वते ॥ बदरीवनमध्ये वै बदरीनायको हरिः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वा यं ब्रह्महत्याभिर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ पुत्र त्वमपि गच्छस्व बदरीनाथदर्शने ॥ ३५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य महात्मनः ॥ ययौ गणेशं संपूज्य नम-

ब्राह्मणकी हत्याका आचरण कियाहै सो हे पिताजी ! अब मुझे यह बताओ कि, मेरी गति किसप्रकार होगी मैं ऐसा पापिष्ठहूं कि–मेरे सबही कर्म पापरूपहैं अतएव मैं संसार सागरमें डूबा चला जा रहाहूं ॥ २८ ॥ शंकरगुप्त बोला–हे पुत्र ! प्रथम ब्राह्मणोंने ऐसाही कह दियाथा सो उनके वाक्य अन्यथा किसप्रकारसे हो सक्तेहैं ॥ २९ ॥ जो होनहारहै वोह अवश्य होताहै इसमें कुछ विचार न करना चाहिये, क्योंकि जिसप्रकार सत्यवादी धर्मात्मा राजा जनमेजयको ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! वनमें अठारह ब्राह्मणोंकी हत्या लगी थी इसीप्रकार दैवनिर्मित ब्रह्महत्या तुम्हैंभी प्राप्त हुईहै ॥ ३१ ॥ पुत्रबोला–अब मुझे क्या करना कर्त्तव्यहै और किसप्रकार मेरा उद्धार होगा, हे पिताजी ! मैं पापसागरमें डूब रहाहूं, कृपा करके मुझे बचाइये ॥ ३२ ॥ पिताने कहा–हे पुत्र ! उन ब्राह्मणोंहीने जो कुछ उपाय बतायाथा, वोही मैं तुमसे वर्णन करताहूं सावधान होकर श्रवणकरो ॥ ३३ ॥ कैलास प्रान्तमें सर्वोत्तम गन्धमादन पर्वतके ऊपर बदरीवनमें बदरीनाथ विद्यमान हैं ॥ ३४ ॥ उनका दर्शन करनेसे निःसन्देह ब्रह्महत्यासे छुटकारा होजाताहै, अतएव हे पुत्र ! तुमभी बदरीनाथके दर्शन करनेको जाओ ॥ ३५ ॥ वसिष्ठजी बोले–उस महात्मा शंकरके ऐसे वचन सुन, गणेशजीकी पूजा

स्कृत्य च ब्राह्मणान् ॥ ३६ ॥ गंगाद्वारे समागत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ भैरवं चापि संपूज्य फलरक्षणहेतवे ॥ ३७ ॥ केदारेशं च संपूज्य स्नात्वा तत्र यथाविधि ॥ बदरीनाथभवनं नरनारायणस्थले ॥ ३८ ॥ तत्रत्येषु च तीर्थेषु स्नातः सर्वकृतक्रियः ॥ बदरीनाथभवनं गतवान्विष्णुतत्परः ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणं च कृतवान् ननाम बहुशो हरिम् ॥ प्रसादं बदरीशस्य भुक्तवाँश्च मुदान्वितः ॥ ४० ॥ नमस्कृत्य पुनर्गेहमाययौ भक्तितत्परः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो बभूव द्विजनंदनः ॥ ४१ ॥ उत्पाद्य बहुशः पुत्रांस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ययौ पितृगणैर्युक्तः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ॥ ४२ ॥ इति ते बदरीनाथदर्शनस्य च वैभवम् ॥ पुण्यं पवित्रमाख्यातं किमन्यत् कथयामि ते ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये वैश्योपाख्यानं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

और ब्राह्मणोंको नमस्कार करकै ॥ ३६ ॥ गंगाद्वारमें आय महेश्वरको प्रणामकर फलकी रक्षाके तईं भैरवकी पूजा करी ॥ ३७ ॥ फिर उसने वहां यथाविधि स्नान करके केदारेश्वरकी पूजा करी फिर नरनारायणके स्थलमें बदरिकाश्रमको गया ॥ ३८ ॥ एवं च समस्त क्रियाओंका आचरण कर वहांके समस्त तीर्थोंमें स्नान किया, और विष्णु भगवान्की भक्तिमें तत्पर बदरीनाथजीके मन्दिरमें गया ॥ ३९ ॥ और प्रदक्षिणा करके वारंवार विष्णु भगवान्को प्रणाम किया, एवंच आनन्दमें मग्नहो बदरीनाथ भगवान्के प्रसादका भक्षण उसने किया ॥ ४० ॥ फिर उन्हें नमस्कार करके भक्तिभावमें तत्पर हो अपने स्थानको चला आया और वोह वैश्यकुमार समस्त पापोंसे निर्मुक्त होगया ॥ ४१ ॥ और बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके अपने पितृवर्गको साथ ले विष्णुभगवान्के लोकको चलागया और देवतागण उसकी स्तुति करनेलगे ॥ ४२ ॥ इसप्रकार बदरीनाथजीके दर्शनका पुण्य प्रदान करनेवाला परमपवित्र माहात्म्य वर्णन किया अब और क्या वर्णनकरैं सो हमें बताओ ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः ६१.

अरुंधत्युवाच ॥ अष्टादशब्राह्मणानां हत्यां वै जनमेजयः ॥ प्राप्तवान् धर्मतत्वज्ञो भवितव्यमभूत्कथम् ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि भगवन् संशयोस्ति मे ॥ निर्मुक्तश्च कथं नाम महतः पाप संचयात् ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वरुंधति वृत्तांतं पारीक्षित नृपस्य हि ॥ एकदा नृपतेस्तस्य यज्ञे सर्पभयानके ॥ पूर्णे चा वभृथस्नाने भगवान् मुनिनायकः ॥ ३ ॥ प्रपौत्रो मम रंभोरु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ जगाम भवने राज्ञोऽनेकशिष्यैः समावृतः ॥ ४ ॥ आगतं तमृषिं ज्ञात्वा राजासौ जनमेजयः ॥ आययौ भक्तिसंपन्नो ह्यानेतुं बादरायणिम् ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ करं दक्षं तु संगृह्य मुनिं सर्वविशारदम् ॥ ६ ॥ प्रवेशयामास गृहं नानारत्नोपशोभितम् ॥ पाद्यमाचमनीयं च स्वासनं रत्नभूषितम् ॥ ददौ तस्मै महाराजोभिमन्योरात्मजात्मजः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ धन्योस्म्यनुगृही-

अरुन्धती बोली–धर्मतत्वके ज्ञाता राजा जनमेजयको अठारह ब्राह्मणोंकी हत्या क्योंकर प्राप्त हुई और यह होनहार किसप्रकार हुआ ॥ १ ॥ हे भगवन् ! मुझे बडा सन्देह है यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करो, और यहभी कहो कि--फिर बडे भारी पापसे उसकी मुक्ति किसप्रकार हुई ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले--हे अरुन्धती ! परीक्षितकुमार राजा जनमेजयके वृत्तान्तको सुनो, एकसमय जब उस भूपतिने अतिभयानक सर्पसत्र कियाथा, तब उसके पूर्ण होजानेपर यज्ञान्त स्नानके समय मुनियोंके अधीश्वर भगवान् ॥ ३ ॥ हमारे प्रपौत्र और हेरम्भोरु ! सत्यवतीके पुत्र व्यासजी महाराज अनेक शिष्योंको साथ लिये राजा जनमेजयके स्थानमें गये ॥ ४ ॥ राजा जनमेजयने जब ऋषिको आयाजाना तो वोह बादरायणि व्यासजीमहाराजको लेनेके तई आया ॥ ५ ॥ और उन्हें देखके राजाने वार २ प्रणाम किया, और सर्वशास्त्रविशारद मुनिराज व्यासजीका दाहिना हाथ पकडके ॥ ६ ॥ अनेक रत्नोंद्वारा समलंकृत ऐसे अपने राजमहलमें उन्हें प्रवेश कराया, और पाद्य आचमनीय प्रदान करनेके अनन्तर रत्नजटित सुन्दर सिंहासनके ऊपर महाराज अभिमन्युके पौत्र जनमेजयने उन्हें बैठाया ॥ ७ ॥ जनमेजय बोले--आपने बडी कृपा करी जो आप मेरे घर पधारे अतएव मुझे धन्यहै, यह तो कहिये तपश्चर्य्यामें

तोस्मि यस्य त्वं गृहमागतः ॥ कुशलं तव शिष्येषु कच्चित्ते तपसि स्थिताः ॥ ८ ॥ अग्निहोत्रेषु वेदेषु आश्रमीयमृगेषु च ॥ किमागमनकृत्यं ते तव किं करवाणि भो ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ त्वयि राजनि सर्वत्र कुशलं मे नृपेश्वर ॥ धन्योसि त्वं महाबाहो यस्य ते मतिरीदृशी ॥ १० ॥ कुरूणां पश्चिमो राजा धर्मिष्ठो जनमेजयः ॥ मम पौत्रा महात्मानो युधिष्ठरमुखा नृपाः ॥ ११ ॥ तेषां प्रपौत्रोस्ति भवान्मोहो मे विगतस्त्वयि ॥ दिष्ट्या त्वं कृतयज्ञोसि पितुरुद्धारकारकः ॥ १२ ॥ द्रष्टुं त्वां नृप प्राप्तोस्मि धन्यः कुरुकुलोद्वह ॥ इदं सर्वं तु यज्जातं कुरूणां कुलनाशनम् ॥ १३ ॥ भाव्यमेवेति संजातमहं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ दिष्ट्या त्वमपि धर्मात्मा कुरूणां वंशवर्द्धनः ॥ १४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ भवता जानता भाव्यं यतः प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ उक्तं तेभ्यः कथं ब्रह्मन् भवितव्यं नहि त्वया ॥ १५ ॥ उक्तं चापि त्वया सर्वं किमर्थं संगरः कृतः ॥ वैरं नाभूत्कारणीयं पूर्वमेव पितामहैः ॥ १६ ॥ एतन्मे संशयं छिंधि सर्वज्ञो नास्ति त्वत्समः ॥ धर्मा-

उपस्थित हुए आपके शिष्य तौ सकुशल हैं ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र वेदपाठ और आश्रमके मृग इन सब कुशल तौ है ? आप किसलिये यहां पधारे हैं और आपका क्या कार्य मैं करूं ॥ ९ ॥ व्या जी बोले—हे राजराजेश्वर ! जब आप हमारे राजाहैं तब सभी स्थानमें हमारी कुशलहै, महाबाहो ! तुम्हारी ऐसी उत्तम मति है अतएव तुम्हे धन्य है ॥ १० ॥ हे जनमेजय कुरुओंमें पश्चिम राजा दुर्योधन और युधिष्ठिर आदि हमारे महात्मा प्रपौत्र जो होगयेहैं ॥ ११ ॥ उनके तुम प्रपौत्र हो अतएव तुम्हारे ऊपर हमारा मोह विशेष है, बडे हर्ष विषयहै कि—तुमने पिताका उद्धार करनेके लिये यज्ञ कियाहै ॥ १२ ॥ हे कुरुकुलोद्वहन तुम्हें धन्यहै और मैं केवल तुम्हें देखनेहीको आयाहूं । और यह जो समस्त कुरुवंशका विना होगयाहै ॥ १३ ॥ सो होनहार अवश्य होताही है मैंने यह प्रत्यक्ष देखाहै, पर यहभी हर्ष हीका विषयहै कि--तुम धर्मात्मा कुरुओंके वंशकी वृद्धि करनेवालेहैं ॥ १४ ॥ जनमेजय बोले भगवन् ! जब आप होनहारको अवश्य जानतेहीथे और उनसे आपका समागमभी हुआ तौ आपने उनसे क्यों नहीं कहा ॥ १५ ॥ और यदि आपने कहा तौ उन्होंने फिर युद्ध क्यों किया हमारे पितामहोंको वैरही नहीं करना चाहिये था ॥ १६ ॥ सो यह सम्पूर्ण हमारा सन्देह

त्मनां महाभाग नैवं भवितुमर्हति ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ भवितव्यं भवत्येव विज्ञानामपि पार्थिव ॥ निमित्तमात्रं भवति कर्त्ता हर्त्ता न संशयः ॥ १८ ॥ इंद्रोपि राज्याद्भ्रष्टो नहुषः स्वर्चितस्तथा ॥ रामो दाशरथिर्वीरः सर्वात्मा दृढविक्रमः ॥ १९ ॥ प्राप्तवान् सोपि दुःखं हि नलश्चापि महीपतिः जानद्भिरेतैर्नृपते न कृतं दूरतस्तथा ॥ २० ॥ भवितव्यं महाराज न व्यर्थं भवति क्वचित् ॥ एतत्सर्वं मयाख्यातं पृष्टं यद्भवता नृप ॥ २१ ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्यास सत्यवतीसुत ॥ वदान्यदपि यद्भाव्यं न कुर्य्यामहमप्यथ ॥ २२ ॥ किं मेऽग्रे भविता ब्रह्मन् राज्ये मत्पालिते प्रभो ॥ भवेद्यावन्महाभाग भवितव्यं न वै मुने ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ जानञ्जहास वचनं प्रोचे च भावितव्यताम् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ भविष्यत्येव यद्भाव्यं परं शृणु महीपते ॥ अतस्तु षोडशे घस्रे विक्रेता जनमेजय ॥ २५ ॥

करिये, क्योंकि आपकी समान सर्वज्ञ और कोई नहींहै, क्योंकि हे महाभाग! धर्मात्माओंमें ऐसा होना कदापि योग्य नहींहै ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले—सुनो महाराज ! जो होनहारहै वोह विशेष ज्ञानवानोंके लियेभी अवश्य होताही है, और कर्त्ता हर्त्ता तौ केवल निमित्तमात्रही होजाते हैं ॥ १८ ॥ पूजनीय इन्द्र और राजा नहुष राज्यसे भ्रष्टहुए, सर्वव्यापक दृढ पराक्रमी दशरथकुमार वीर रामचन्द्रजीकोभी ॥ १९ ॥ दुःखकी प्राप्ति हुई, और राजानलकोभी क्लेश हुआ, हे राजन् ! यह सब जानतेभीथे तौ इस अनिष्टको दूर न करसके ॥ २० ॥ सुनों महाराज ! होनहार निष्फल (अन्यथा) कभी नहीं होता, हेराजन् ! जो कुछ तुमने पूछा सो हमने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया ॥ २१ ॥ जनमेजय बोले—हे भगवन् ! सत्यवतकि पुत्र व्यासजी महाराज !!! आप समस्त धर्म्मोंके ज्ञाताहैं, जो कुछ और होनहार हो सो बताइये जिससे मैं उसे न करूं ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पालित राज्यमें आगेको क्या होनहारहै सो हे मुनिराज ! प्रभुवर !!! यह सब बताईये ॥ २३ ॥ वासिष्ठजी बोले—राजा जनमेजयके ऐसे वचन सुन सत्यवतीके पुत्र व्यासजी महाराज हँसे, और उन्होंने भवितव्यको जानकर यह वचन कहे ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जो कुछ होनहार होताहै वोह अवश्य होताहीहै तथापि सुनो,

हयानां सिंधुजानां हि नाम्नो वै क्षेमकर्णकः ॥ एको वै भविता तत्र तुरगो ह्यतिवेगवान् ॥ २६ ॥ आरोक्ष्यासि त्वं तुरगं वेगवंतं महीपते ॥ स नेष्याति तदा त्वां हि विपिने निर्जने त्वरन् ॥२७॥ तत्र द्रष्टासि नृपते नारीं परमसुंदरीम् ॥ तां दृष्ट्वा त्वं महाराज कामस्य वशमागतः ॥ २८ ॥ मोहितश्चापि भविता दृष्ट्वा तां रतिरूपिणीम् ॥ तां गृहीतुं मनो राजन् भविष्यति तदा तव॥२९॥ सा वदिष्यति हे राजन् एते ब्राह्मणपुंगवाः ॥ भर्त्तारो मम संतीति तान्मारय महीपते ॥ ३० ॥ निर्भयं ते भविष्यामि भार्या परम सुंदर ॥ पाणिं गृहाण मे शीघ्रं गृहीतुं यदि चेच्छसि ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नेव हि काले त्वं भविष्यासि विमोहितः ॥ मारयिष्यासि तान्विप्रान्वेदवेदांगपारगान् ॥ ३२ ॥ सापि नारी तु तत्सर्वं कृत्वांतर्द्धानमेष्याति ॥ इति ते कथितं राजन् यद्भविष्यति तेग्रतः ॥ ३३ ॥ स्वस्ति तेस्तु गमिष्यामि कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ गंध-

हेजनमेजय ! आजसे सोलहवें दिन ॥ २५ ॥ सिन्धुदेशोत्पन्न अश्वोंका बेंचनेवाला आवेगा और उसका क्षेमकर्ण नाम होगा, उन सबमें एक अश्व अतीव वेगशाली होगा ॥ २६ ॥ हे महीपाल ! उसी वेगवान् अश्वके ऊपर तुम आरूढ होओगे तब वोह बडे वेगसे तुम्हैं निर्जन वनमें ले जायगा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वहां अतिसुन्दरी एक स्त्री दृष्टिगत होगी और हे महाराज ! उसे देखतेही तुम कामके वशीभूत होजाओगे ॥ २८ ॥ उस रतिकी समान रूपवतीको देखकर तुम मोहित होजाओगे अतएव उसे ग्रहण करनेके लिये तुम्हारे मनमें अभिलाषा होगी ॥ २९ ॥ तब वोह कहेगी हे महाराज ! यह ब्राह्मण मेरे पति हैं सो इनका तुम वध करो ॥ ३० ॥ हे परमसुन्दर ! तब मैं निडरतासे तुम्हारी स्त्री हो जाऊंगी, यदि तुम मुझे अंगीकार करना चाहते हो तो मेरा पाणिग्रहण करो ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! उसके इस प्रकार कहनेपर तुम मोहित होजाओगे और वेदवेदांगके पारगामी उन ब्राह्मणोंका वध करडालोगे ॥ ३२ ॥ यह सब चरित्र होचुकनेके अनन्तर वोह स्त्री अन्तर्धान होजायगी, जो कुछ आगेको होनहारहै हे राजन् ! वोह सब हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ३३ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब हम सब पर्वतोंमें उत्तम कैलास पर्वतपर जातेहैं, जहां गन्धमादनके शृंगपर

मादनशृंगे तु श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ ३४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं देवि पाराशर्यो महामुनिः ॥ शिष्यैः परिवृतो विप्रैर्बदर्य्याश्रममंडले ॥ ३५ ॥ षष्टिलक्षं भारतं च निर्ममे ज्ञानिनां वरः ॥ अद्याऽपि तत्प्रदेशे हि वर्त्तते व्यासपुस्तकम् ॥ ३६ ॥ यो वै पंचाह्निकं तत्र सोपवासो जितेंद्रियः ॥ व्यासं सत्यवती पुत्रं वरदं स हि पश्यति ॥ ३७ ॥ सोपि राजा महाबाहुः संत्रस्तो जनमेजयः ॥ स्मरन्व्यासस्य वचनं सावधानोऽभवत्तदा ॥३८॥ नाचचक्षे स कस्मैचिद्गुह्यं परमकं प्रिये ॥ ततस्तु षोडशे घस्रे प्रातरेव कृतक्रियः ॥ ३९ ॥ मंत्रिणश्च सुभृत्यांश्च प्रोवाच जनमेजयः ॥ अद्य मां यः प्रभाषेत स मे वध्यो भविष्यति ॥ ४० ॥ इत्याभाष्य नृपस्तूर्णं शुद्धांतं प्रविवेश ह ॥ मुद्रयित्वा कपाटादीनेकाकी जनमेजयः ॥ सुष्वाप च महाभागे पर्य्यंके शयने शुभे ॥ ४१ ॥ ततोपराह्णसमये ह्यागतः क्षेमकर्णकः ॥ विक्रेतुं तुरगान्देवि बहून्वै वातरंहसः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा नागरिकास्तान्वै

बदरीनाथका आश्रमहै ॥ ३४ ॥ वसिष्ठजी बोले--पराशरके पुत्र महामुनि व्यासजी महाराज यों कहकर शिष्यों और ब्राह्मणोंको साथ ले बदरिकाश्रममण्डलमें गये ॥ ३५ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ व्यासजी महाराजने वहां साठलक्ष महाभारत ग्रन्थका निर्माण किया, और वोह व्यासजी निर्मित पुस्तक उस स्थानमें अभीतक विद्यमानहै ॥ ३६ ॥ जो व्यक्ति उपवास धारणपूर्वक जितेन्द्रिय हो उस स्थानमें पांचरात्री पर्य्यन्त निवास करताहै, सत्यवतीके पुत्र वरदायी व्यासजी महाराजके दर्शनोंका उसे लाभ होताहै ॥ ३७ ॥ यह सुन वोह राजा जनमेजयभी भयभीत होगया, और व्यासजी महाराजके वचनोंका स्मरण कर सावधान होगया, ॥ ३८ ॥ हे प्रिये ! उस राजाने अपना यह गुप्त रहस्य किसीको नहीं बताया फिर सोलहवां दिन प्राप्त होनेपर प्रातः समयही नित्यकृत्यसे निवृत्तहो ॥ ३९ ॥ राजा जनमेजयने मन्त्रियों और अपने सेवकोंसे यों कहा कि--आज जो कोईभी मुझसे बोलेगा मैं उसीका वध करडालूंगा ॥ ४० ॥ यों कहकर राजा जनमेजय अपने अन्तःपुरमें प्रविष्ट होगये और कपाट बन्द कर हे महाभागे ! शुभ पर्य्यंकके ऊपर अकेले जा सोये ॥ ४१ ॥ इसी अवसरमें तीसरे पहरके समय हे देवि ! पवनकी समान वेगवान् अश्वोंको बेंचनेके लिये क्षेमकर्ण आया ॥ ४२ ॥ नगरनिवासियोंने

सिंधुसौवीरदेशजान् ॥ आरोढुं चैव शक्ता नो बभूवुः केऽपि सुन्दरि ॥ ४३ ॥ आययुर्नृपतेर्द्वारि कौतूहलयुता जनाः ॥ तत्रैकोऽसित-रूपोऽश्वो वातरंहाः सुलक्षणः ॥ ४४ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे हयं परमरंहसम् ॥ कोलाहलं परं चक्रुर्दृष्ट्वा तत्पतिता-ञ्जनान् ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नंतरे राजा भाविकर्मविमोहितः ॥ गवाक्षजालसंछन्नो ददर्श कौतुकं महत् ॥ ४६ ॥ ददर्श च तदा राजा चपलं तुरगं प्रिये ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं दुष्टचिह्नविवर्जितम् ॥ ४७ ॥ चिंतयामास राजापि ह्यागतस्तुरगोप्ययम् ॥ उद्घाट्य तद्गवाक्षं वै स्थितवान् कौतुकान्वितः ॥ ४८ ॥ यद्यारोक्ष्यामि तुरगं गमिष्यामि न वै वनम् ॥ यतोऽस्वतंत्रास्तुरगा इत्येवं चिंत-यन्नृपः ॥ ४९ ॥ अवाततार स्वर्गेहात्क्षीणपुण्यो यथा नरः ॥ आरुरोह हयं तूर्णं दर्शयन्हयलाघवम् ॥ ५० ॥ मोहितो भवित-व्येन चकार नृपतिर्जवम् ॥ रेखेव वाजिनां यद्वद्वाजिनश्च जव-

सिन्धु और सौवीर देशोत्पन्न अश्वोंको देखा, परन्तु हे सुन्दरि ! उनके ऊपर चढनेको कोईभी समर्थ न हुआ ॥ ४३ ॥ और कौतूहलसे मोहित हो राजाके द्वारपर सबलोग आये, उन सब अश्वोंमें एक काले वर्णका अश्व पवनकी समान वेगवान् और समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त था ॥ ॥ ४४ ॥ अतीव वेगशाली उस अश्वको देखकर सब लोग बडे विस्मित हुए, और जो लोग उसके ऊपरसे गिरते थे उन्हें देख २ कर नागरिकलोग बडा कोलाहल मचाते थे ॥ ४५ ॥ इसी समय होनहार कर्मसे मोहित हो राजा जनमेजयभी झरोखोंमेंसे इस परम कौतूहलको अवलोकन करने लगे ॥ ४६ ॥ हे प्रिये ! राजानेभी चंचलगतिवाले इस अश्वको देखा। यह अश्व समस्त दुष्ट चिह्नोंसे रहित एवं संपूर्ण उत्तम चिह्नोंसे अलंकृत था ॥ ४७ ॥ राजाने विचार किया कि, यह अश्वभी आगया अतः कौतुकाविष्ट हो झरोखोंको उघाडकर राजा उसे देखने लगे ॥ ४८ ॥ राजाने सोचा कि, अश्वके ऊपर आरूढ होजायँ, वनको न जायँगे, क्यों कि अश्व तो अपनेही आधीन होतेहैं ॥ ४९ ॥ जिसप्रकार पुण्य क्षीण होजानेपर मनुष्य स्वर्ग-लोकसे उतर आताहै इसी प्रकार राजाभी राजमहलसे नीचे उतरे, और अश्वके ऊपर आरूढ हो अश्वारोहियोंकी सदृश चातुरी दिखानेका विचार करने लगे ॥ ५० ॥ किन्तु होनहारसे मोहित हो राजाने अश्वकी गतिको तेज कर दिया, जिसप्रकार घुडदौडके समय अश्वोंकी

क्रमे ॥ ५१ ॥ रेजे सव्यापसव्येन द्विमुखो हयसत्तमः ॥ वलये वलयाकारस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५२ ॥ इति वै लालयन्नश्वं चकार हयलाघवम् ॥ अथो राजा महाबाहुर्भाविकर्मविमोहितः ॥ जवक्रमं चकाराशु कर्मणा वै विकर्षितः ॥ ५३ ॥ निन्ये तत्र महाराजं तुरगो ह्यतिवेगवान् ॥ वने मृगगणाक्रांते झिल्लीझंकार-नादिते ॥५४॥ एतस्मिन्नंतरे काले ददर्श स्त्रियमेकलाम् ॥ श्यामां सुनेत्रां चार्वंगीं कामस्येव रतिं यथा ॥५५॥ दृष्ट्वा तां मोहमापन्नो जगाद वचनं नृपः ॥ का त्वं कस्य किमर्थं वै वनेस्मिन्निर्जने शुभे ॥ ५६ ॥ त्वदधीनोस्म्यहं भद्रे शाधि मां कामपीडितम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा बभाषे वचनं ततः ॥ ५७ ॥ स्त्र्युवाच ॥ भो भो राजन्महाबाहो शृणु मे वचनं शुभम् ॥ एते ह्यष्टादश प्रोक्ता ब्राह्मणाश्च जितेंद्रियाः ॥ ५८ ॥ वृद्धाः परं महाभाग भृशमुद्विग्न-मानसा ॥ नित्यं वसामि दुःखेन यौवनोन्मादशालिनी ॥ ५९ ॥ भवादृशं महाराज शरणागतपालकम् ॥ अन्वेषयामि सर्वत्र

एकश्रेणी वेगसे दौडती है इसीप्रकार वोह हय दौड़ने लगा ॥ ५१ ॥ वोह श्रेष्ठ वाजी सव्य अपसव्यकी गतिसे द्विमुखकी समान प्रतीत होता हुआ भागने लगा, और ऐसा आश्चर्य्य हुआ कि, वोह बिलकुल वलयाकार गोल प्रतीत होन लगा ॥ ५२ ॥ राजाभी इसप्रकार अश्वको लालन करते २ अश्वचातुरी दिखानेलगे, इसके अनन्तर महाबाहु राजाने भवितव्य कार्य्यकी प्रबलतासे मोहितहो अश्वके वेगको औरभी तीव्र करदिया ॥ ५३ ॥ जहां अनेक झिल्ली झंकार कररहीहैं, अनेक मृगगण व्याप्तहैं ऐसे वनमें वोह अतिशय वेगवान् अश्व राजाको लेगया ॥ ५४ ॥ और इसी अवसरमें राजाने षोडशवर्षिकी सुन्दरनेत्रोंवाली चार्वङ्गी एक ऐसी सुन्दर स्त्रीको देखा जो कामपत्नी रतिकी समान रूपवती थी ॥ ५५ ॥ उसे देख राजा मोहित हो यह वचन बोले–तू कौनहै, किसकी (स्त्री वा कन्या) है ? हे शुभे ! इस निर्जन वनमें किसलिये विचर रहीहै ? ॥ ५६ ॥ हे सुभद्रे ! मैं तेरे वशीभूतहूं अतएव मुझ कामपीडितका मनोरथ पूर्णकर, राजाके यह वचन सुन वोह अबला बोली ॥ ५७ ॥ स्त्रीने कहा–अय महाबाहु राजा ! हमारे शुभ वचन सुनो, यह जितेन्द्रिय अठारह ब्राह्मण ॥ ५८ ॥ हे महाभाग ! अत्यन्तही वृद्धहैं अतएव नित्य मन अत्यन्त उद्विग्न रहताहै, क्योंकि, मैं यौवनके उन्मादसे व्याप्तहूं अतश्च नित्यही दुःखित रहतीहूं ॥ ५९ ॥ हे प्रभो महाराज ! तुम

को मे दुःखं हरेत्प्रभो ॥ ६० ॥ महाराज महाभाग भाग्येन मिलितो ह्यसि ॥ एते वृद्धतराः क्रूरा नित्यं वै विजितेंद्रियाः ॥ ६१ ॥ सवेपमानहृदया दृष्ट्वा तांश्छ्मश्रुलांस्तथा ॥ तपस्विनः कर्कशांगान् कृशान्वै कर्कशद्युतीन् ॥ ६२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा देवितं बहुधा तु तत् ॥ करुणापूर्णहृदयो बभाषे वचनं पुनः ॥ ६३ ॥ राजोवाच ॥ किं करोमि महाभागे येन त्वं सुखिता भवेः ॥ कथमेते त्यजिष्यंति ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ ६४ ॥ स्त्र्युवाच ॥ भो भो राजन्महाभाग दया ते हृदि यद्भवेत् ॥ एतान्मारय शीघ्रं त्वं मत्पाणिग्रहणं कुरु ॥ ६५ ॥ राजोवाच ॥ कथं हन्यां महाभागे ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ एतन्मे शंस सुभगे कथं ते सुप्रियं भवेत् ॥ ६६ ॥ स्त्र्युवाच ॥ देह एव परात्मा वै स्वस्य वै जनमेजय ॥ अयं सुखी यथा भूयात्कर्त्तव्यं तत्तथैव हि ॥ ६७ ॥ राजोवाच ॥ तव चेत्सुप्रियं सुभ्रु जायतेऽनेन कर्म्मणा ॥ त्वदर्थं वै करिष्यामि वध-

जैसे शरणागत पालन कर्त्ताका अन्वेषण करती फिरतीहूं कि मेरे दुःखको कौन हरैगा ॥ ६० ॥ हे भाग्यशाली महाराज ! सौभाग्यवशातही अब तुम्हारी प्राप्ति होगईहै, महाराज ! यह लोग बिलकुल बुड्ढे अतएव नित्यही जितेन्द्रियहैं ॥ ६१ ॥ इनकी दाढी और रूपोंको देख २ कर मेरा हृदय कंपायमान रहताहै, क्योंकि इन तपस्वियोंका अंग कठोर क्रूर आकृति और शरीर दुर्बलहै ॥ ६२ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे देवि ! जब उसके यह वचन सुने तब राजाका हृदय करुणासे व्याप्त होगया और उसने इस अबलासे यह वचन कहे ॥ ६३ ॥ राजा बोला—हे महाभागे ! मैं क्या करूं जिससे तुझे सुखकी प्राप्तिहो, और प्रशंसित व्रताचरण करनेवाले यह ब्राह्मण तुझे कैसे छोडेंगे ॥ ६४ ॥ स्त्री बोली—अय महाभाग महाराज ! यदि आपके हृदयमें दयाहै तौ शीघ्रही इन सबका वधकर मेरा पाणिग्रहण करिये ॥ ६५ ॥ राजा बोला—हे सुन्दरि ! तुम यहतौ बताओ वेदपारगामी इन ब्राह्मणोंको मैं किसप्रकार मारूं, और तुम्हारा प्रिय (अभीष्ट) किसप्रकारहो ॥ ६६ ॥ स्त्री बोली—सुनो जनमेजय ! यह अपना देहही परमात्माहै, जिसप्रकार इसे सुखकी प्राप्तिहो वोही उपाय मनुष्यको करना कर्त्तव्यहै ॥ ६७ ॥ राजा बोला—हे सुभ्रु ! यदि इसी कर्म्मके करनेसे तुम्हारा प्रियसाधन होताहै तो मैं

मषां दुरात्मनाम् ॥ ६८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां तथा राजा भाविकर्मप्रचोदितः ॥ विस्मृतं तच्च व्यासोक्तं कामस्य वशमागतः ॥६९॥ निजघान तदा विप्रान् खड्गेनैकेन सत्वरम् ॥ कामः प्रिये महाञ्छत्रुः सर्वेषां हृदि संस्थितः ॥ ७० ॥ यस्यावेशान्नरः सर्वं करोति हि वरानने ॥ प्रियान्पुत्रांस्तथा भर्तॄन्भ्रातॄन् ब्राह्मणसत्तमान् ॥ ७१ ॥ तृणवन्मनुते कामी तस्मात्क्षेमेप्सुरुत्सृजेत् ॥ मारयित्वा तदा राजा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ७२ ॥ आययौ तत्र सुभगे यत्र सा मिलिताह्यभूत् ॥ न ददर्श ततस्तां वै विस्मितश्चाभवन्नृपः ॥७३॥ चिंतयामास बहुशो राजासौ जनमेजयः ॥ त्यक्त्वा गृहादिकं सर्वं ययौ बदरिकाश्रमे ॥७४॥ तत्र गत्वा महाभागे चक्रे प्रायोपवेशनम् ॥ व्यासपुस्तकपार्श्वे तु पंचरात्रं महीप्रभुः ॥ ७५ ॥ निराहारो निरानंदो मरणे कृतनिश्चयः ॥ व्यासं ददर्श नृपतिर्जटामंडलधारिणम् ॥ ७६ ॥ दंडवत्प्रणिप-

तुम्हारे निमित्त इन दुराचारियोंका वध अवश्यही करूंगा ॥ ६८ ॥ वसिष्ठजी बोले—उक्त अबलासे इस प्रकार संभाषण कर भवितव्यसे मोहित होजानेके कारण राजा जनमेजय कामदेवके वशीभूतहो व्यासजी महाराजके वचनोंको भूलगये ॥ ६९ ॥ और उसने एकही खड्गसे तत्काल उक्त ब्राह्मणोंका वध करडाला । हे प्रिये ! कामदेवरूप यह महान् शत्रु सभीके हृदयमें अवस्थित रहताहै ॥ ७० ॥ हे सुमुखि ! उसीके आवेशमें मनुष्य सब कुछ कर बैठताहै प्रियपुत्रों, पति और भ्राताओं एवम् उत्तम ब्राह्मणोंकोभी ॥ ७१ ॥ कामी पुरुष तृणकी समान मानने लगताहै अतएव कुशल चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि, इसका परित्याग करदे । तब वेदपारगामी ब्राह्मणोंका वध करके राजा जनमेजय ॥ ७२ ॥ हे सुभगे ! उसी स्थानमें आये जहां वोह सुन्दरी उन्हें मिलीथी, परन्तु जब उसे वहां न देखा तब राजा विस्मित होगया ॥ ७३ ॥ तबतौ यह राजा जनमेजय बहुत कुछ विचार करनेलगे, फिर घर आदि सबका परित्याग करके बदरिकाश्रममें चलेगये ॥ ७४ ॥ हे महाभागे ! वहां जाय पांच रात्री पर्यन्त व्यासजीकी पुस्तकके निकट उक्तराजाने निराहार व्रत किया ॥ ७५ ॥ और राजाने भोजन और आनन्दके उपकरणोंका परित्याग कर मरणके लिये निश्चय करलिया, तबतौ उन्हें जटामण्डलधारी व्यासजी महाराजके दर्शन प्राप्त हुए ॥ ७६ ॥ उन्हें देख राजा-

त्यासौ परिक्रम्य पुनः पुनः ॥ उवाच वचनं त्रस्तो रक्ष रक्षेति चासकृत् ॥ ७७ ॥ उवाच वचनं व्यासो माभैर्माभैर्महीपते ॥ भवितव्यं भवत्येव मयोक्तं पूर्वमेव हि ॥ ७८ ॥ साम्प्रतं शृणु राजेन्द्र भारतं कल्मषापहम् ॥ ७९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शुश्राव भारतं सर्वं व्यासस्य वदनात्ततः ॥ निष्कल्मषो बभूवाथ श्रवणाद्भारतस्य हि ॥ ८० ॥ इति ते कथितं सुभ्रु भवितव्यस्य वैभवम् ॥ जन्मेजयस्य च यथा ब्रह्महत्या बभूव ह ॥ ८१ ॥ बदर्य्याश्रममाहात्म्यात्तथा भारतसंश्रवात् ॥ राजासौ कल्मषैर्हीनो बभूव वरवर्णिनि ॥ ८२ ॥ इदं यशस्यमायुष्यं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ कथितं ते महाभागे किमन्यत्कथयामि ते ॥ ८३ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये जनमेजयोपाख्यानं नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

ने भयभीतहो वारंवार दडवत् प्रणाम और प्रदक्षिणा करके यह वाक्य कहे कि–हे प्रभो ! हमारी रक्षाकरो ॥ ७७ ॥ तबतौ व्यासजी बोले–हे महीपाल ! तुम भय मतकरो मैंने प्रथमही कहदियाथा कि, होनहार अवश्य होताहै ॥ ७८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! अब तुम समस्त पापोंका विनाश करनेवाले महाभारतका श्रवण करो ॥ ७९ ॥ वसिष्ठजी बोले–तब व्यासजीके मुखसे राजाने महाभारतका श्रवण किया, और महाभारतका श्रवण करनेके कारण राजा निष्पाप होगया ॥ ८० ॥ हे सुभ्रु ! इस प्रकार होनहारका वैभव, और जिस प्रकार जनमेजयको ब्रह्महत्या लगी, एवम् बदरिकाश्रमकी यात्रा और महाभारतका श्रवणकरनेसे जिस प्रकार राजा निष्पाप हुए, हे सुमुखि ! यह सब हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ यह आख्यान यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा ब्रह्महत्याका निवारण करनेवालाहै, हे महाभागे ! यह सबतौ हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया अब और क्या कहैं ॥८३॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

अरुंधत्युवाच ॥ कथय त्वं महाभाग मरणस्य च वैभवम् ॥ कुत्र तेषां गतिर्देव पतितं तत्र कीकसम् ॥ १ ॥ बदरीनाथभवने क्षेत्र क्षेत्रोत्तमे प्रभो ॥ एतन्मे शंस भगवन् श्रोतुकामास्मि हे मुने ॥ २ ॥ केन वै विधिना कुर्य्याद्यात्रां तु बदरीपतेः ॥ पुण्यं पवित्रमाख्यानं शृण्वंत्या भक्तिरुत्तमा ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं बदरीपतेः ॥ तीर्थश्रवणमाहात्म्ये धन्या ते बुद्धिरीदृशी ॥ ४ ॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ अवंतिनगरे पूर्वं बभूवामितधार्मिकः ॥ ५ ॥ चंद्रगुप्त इति ख्यातो धनधान्यनिधिः प्रिये ॥ वाणिज्येन कृताजीवो दशपुत्रोमितप्रभः ॥ ६ ॥ संपत्तिर्बृहती तस्य गजाश्वादिमयी तथा ॥ दन्तिनाश्च हयानाश्च विक्रेता स वरानने ॥ ७ ॥ एकदा तस्य भवने धर्मदत्तो महीसुरः ॥ बदर्य्याश्रमवासी वै आययौ भिक्षुतुं विशम् ॥ ८ ॥ तस्य वै दर्शनाद्वैश्यो बभूव मल-

अरुन्धती बोली—हे महाभाग ! अब वहां मरणके माहात्म्यकी वर्णन करो, वहां जिनकी अस्थि निपतित होतीहै उनकी क्या गति होतीहै ॥ १ ॥ समस्त क्षेत्रोंमें उत्तम बदरीनाथक्षेत्रमें (आस्थिपातका माहात्म्य वर्णनकरो) हे मुनिराज ! मुझे यह बडा संशयहै अतएव इसीका श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ २ ॥ बदरीनाथकी यात्रा किस विधिसे करनी कर्त्तव्यहै, पवित्र अतएव पुण्यप्रद आख्यानका श्रवण करनेसे मुझे उत्तम भक्तिकी प्राप्ति हुईहै ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले—सुनो प्यारी ! हम बदरीनाथका माहात्म्य वर्णन करतेहैं, तुम्हैं धन्य है जो तीर्थोंका माहात्म्य श्रवण करनेमें इस प्रकार तुम्हारी बुद्धि निरतहै ॥ ४ ॥ इस विषयमें हम एक आख्यानका वर्णन करतेहैं तुम सावधान होकर श्रवण करो, प्रथम अवन्ति नगरमें अत्यन्त धर्मात्मा चन्द्रगुप्त नाम एक बडाधनी रहताथा, वोह अमित तेजस्वी वाणिज्यके द्वारा अपनी आजीविका करताथा और उसके दश पुत्रथे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसके यहां हाथी घोडेरूप संपत्तिभी अटूटथी, और हे सुमुखि ! वोह हाथी और अश्वोंहीका विक्रय कियाकरताथा ॥ ७ ॥ एक समय उसके घर बदरिकाश्रमका रहनेवाला धर्मदत्त ब्राह्मण उस वैश्यसे कुछ याचना करनेको आया ॥ ८ ॥ उसके दर्शन करनेसे वोह वैश्य निष्पाप होगया, और वोह

वर्जितः ॥ पप्रच्छ तं धर्मदत्तं चंद्रगुप्तो महामतिः ॥ ९ ॥ कुतः समागतं विप्र कुत्रत्योसि महामते ॥ मां किमाज्ञापयसि भो किं करोमि तव प्रियम् ॥ १० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अहं कैलासपार्श्वे वै बदरीवनमंडिते ॥ देशे वसामि नित्यं वै कण्वगोत्रसमुद्भवः ॥ ॥ ११ ॥ भिक्षितुं त्वां समायातो बहुपुत्रकलत्रकः ॥ धनं मे नास्ति भवने ततस्त्वां समुपागतः ॥ १२ ॥ चंद्रगुप्तउवाच ॥ कुत्र वै तन्महाक्षेत्रं बदरीवनसंज्ञितम् ॥ को देवः पूज्यते तत्र लभ्यते किं फलं नरैः ॥१३॥ प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥ यद्वदिष्यसि तत्सर्वमहं कर्त्तास्मि सुव्रत ॥ १४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ गंगाद्वारात्पूर्वभागे त्रिंशद्योजनसंमिते ॥ वर्त्तते तन्महाक्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १५ ॥ यत्र देवाः सगंधर्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ तपस्यान्ति महात्मानः संसारपरिमुक्तये ॥ ॥ १६ ॥ अनंतानि च तीर्थानि पापनाशकराणि वै ॥ गंगा तत्र महाभाग परा त्रैलोक्यपाविनी ॥ १७ ॥ बदरीनाथभवनं प्रण-

महामतिमान् चन्द्रगुप्त धर्मदत्तसे पूंछने लगा ॥ ९ ॥ हे महामतिमान् ब्राह्मण ! तुम कहां के रहनेवाले और कहांसे आयेहो, एवं मेरे लिये आपकी क्या आज्ञाहै अथच मैं क्या आपका प्रिय आचरण करूं ॥ १० ॥ ब्राह्मण बोला—कण्वगोत्रमें हमारा जन्म हुआहै, और बदरीवन से समलंकृत कैलास पर्वतकी तराईके देशमें मैं रहताहूं ॥ ११ ॥ मेरे स्त्री पुत्रादि कुटुम्बतो प्रभूत है और धन मेरे घर बिलकुल नहीहै इसी कारण याचना करनेके लिये मैं तुम्हारे निकट आयाहूं ॥ १२ ॥ चन्द्रगुप्त बोला—बदरीवन संज्ञक वोह महाक्षेत्र कहांह ? और वहां किनदेवताकी पूजा करनेसे मनुष्योंको क्या फल प्राप्त होताहै ! ॥ १३ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यह समस्त तत्व श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै, और हे सुव्रत ! फिर जो २ तुम: कहोगे हम सब करेंगे ॥ १४ ॥ ब्राह्मण बोला—गंगाद्वारसे तीस योजनकी दूरीपर भोग और मोक्षका देनेवाला वोह महाक्षेत्र विद्यमानहै ॥ १५ ॥ वहांही गन्धर्वगणसहित देवसमाज, और प्रशंसित व्रताचरणकर्त्ता महात्मा तपस्वीगण संसारसे मुक्त होनेके लिये तप करतेहैं ॥१६ ॥ हे महाभाग ! पापोंका सत्यानाश करनेवाले अनेकं तीर्थ वहां विद्यमानहैं, एवंच त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाभी वहां विद्यमानहै ॥१७॥ जो व्यक्ति बदरीनाथजीके मन्दिरको प्रणाम करताहै

मेद्यो महामतिः ॥ स वै विष्णुपुरं याति पूज्यमानो मुनीश्वरैः ॥
॥ १८ ॥ सकृद्येनापि भवनं दृष्टं वै बदरीपतेः ॥ न स संसारमा-
र्गस्य पांथो जायेत कर्हिचित् ॥ १९ ॥ बदरीनाथनैवेद्यं भुक्तं
यैर्भक्तितत्परैः ॥ अभोज्याशनदोषश्च मुच्यते नात्र संशयः ॥
॥ २० ॥ तस्यैव जन्म सफलं यो गतो बदरीपतिम् ॥ तस्य सं-
सारजलधिर्महान्वै गोष्पदायते ॥ २१ ॥ इति ते कथितं वैश्य
त्वया पृष्टोस्मि यद्यथा ॥ धन्योसि तीर्थयात्रायां यस्य बुद्धिर्महा
मते ॥ २२ ॥ चंद्रगुप्तउवाच ॥ केन वै विधिना ब्रह्मन् कुर्य्याद्या
त्रां रमापतेः ॥ किं भोज्यं वै किमाचारो गमने बदरीपतेः ॥२३॥
एतत्सर्वं महाभाग कृपया परया युतः ॥ वद मे भक्तितस्त्वां वै
पृच्छेयं ब्रह्मपारगम् ॥२४॥ ब्राह्मण उवाच ॥ शृणु धर्मज्ञ वक्ष्यामि
प्रसंगाद्यन्मया श्रुतम् ॥ पृच्छते सत्यधर्माय नारदोक्तं महा-
मते ॥ २५ ॥ सत्यधर्मो महाराजः पप्रच्छ नारदं क्वचित् ॥
यदुक्तं तेन महता तत्सर्वं शृणु सुव्रत ॥ २६ ॥ कर्त्तव्या बदरी-

वोह मुनियोंद्वारा पूजितहो विष्णुलोकको गमन करताहै ॥ १८ ॥ जिसने एकवारभी बदरीना-थजीके मन्दिरके दर्शन कियेहैं वोह इस संसारके मार्गका पथिक कभी नहीं होता अर्थात्—उसकी मोक्ष होजातीहै ॥ १९ ॥ और भक्तिभावमें तत्परहो जिन्होंने बदरीनाथजीके नैवेद्यका प्रसाद भक्षण कियाहै, उनके अभक्ष्यभक्षणजनित दोषभी निःसन्देह मुक्त होजातेहैं ॥ ॥२०॥ जिसने बदरीनाथजीकी यात्रा कीहै उसीका जन्म सफलहै, और उसके लिये यह अपार संसारसागर भी गौके खुरकी समान होजाताहै ॥ २१ ॥ हे वैश्य जो २ तुमने प्रश्न किये उन सबका मैंने इस प्रकार वर्णन किया, हे महामतिमान् ! तुम्हें धन्यहै जो तीर्थयात्रामें तुम्हारी ऐसी श्रद्धलु इच्छाहै ॥२२॥ चन्द्रगुप्त बोला--लक्ष्मीपति बदरीनाथजीकी यात्रा किसप्रकार करनी कर्तव्यहै बदरीनाथकी यात्रामें क्या भोजन करना चाहिये और कौन २ से आचरण किये जातेहैं ॥२३॥ हे महाभाग ! हमारे ऊपर परम कृपा करके यह सब मेरे अगाडी वर्णन करो, मैं बडे भक्तिभावसे तुम ब्रह्मपारगामीसे प्रश्न करताहूं ॥ २४ ॥ ब्राह्मण बोला--सुनो धर्मज्ञ ! प्रसंग-वशात् जो कुछ मैंने सुनाहै उसीका मैं वर्णन करताहूं, एक समय सत्यधर्मने पूंछा और नारदजीने वर्णन कियाथा ॥ २५ ॥ कहीं सत्यधर्म राजाने नारदजीसे प्रश्न किया और उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया हे सुव्रत ! उसीको सुनो ॥२६॥ जो व्यक्ति सांसारिक बन्धनके भयसे भीतहो

यात्रा भीतेन भवबंधनात् ॥ सपूंज्य गणपं पूर्वं स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ॥ २७ ॥ पुण्याहं वाचयेत्तत्र बदरीनाथमानसः ॥ ततः संप्रार्थयेद्विप्रान्पूजितान्वसनादिभिः ॥ २८ ॥ आज्ञापयध्वं भूदेवा मां वः शरणमागतम् ॥ भवतां कृपया देवाः कृतयात्रो यथा पुनः ॥ २९ ॥ आगच्छेयं सुखं गेहे लभेयं धर्ममुत्तमम् ॥ भवंतो ब्राह्मणाः पूर्वं निर्मिता धर्मदर्शकाः ॥ ३० ॥ सर्वे यज्ञास्तथा देवास्तर्थानि विविधानि च ॥ भवच्चरणगेहानि ततो वो भक्तितो नमः ॥ ३१ ॥ इति संप्रार्थ्यविप्रांस्तु कृतकर्पटिवेषकः ॥ जितेन्द्रियः शुद्धमना भूमिशायी महामतिः ॥ ३२ ॥ संध्यात्रयमुपासीत एकस्थाने फलाशनः ॥ पद्भ्यां गच्छेन्न यानेन यदीच्छेद्धर्ममुत्तमम् ॥ ३३ ॥ गोयाने गोवधःप्रोक्तो वैफल्यं हययानतः ॥ अर्द्धं फलं नरारोहे तस्माद्यानं विवर्ज्जयेत् ॥ ३४ ॥ अन्नं परस्य नो भुंजेद्यतो निष्फलता स्मृता ॥ यद्यत्कर्म महाभाग क्रियते वै यदन्नकैः ॥ ३५ ॥ स तस्य किल्बिषं भुंक्ते अन्नदातुश्च तत्फ-

उसे बदरीनाथजीकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये, प्रथम स्वस्तिवाचनपूर्वक गणेशजीका पूजन करै ॥ २७ ॥ फिर बदरीनारायणमें मनलगाय पुण्याहवाचन करावै, इसके अनन्तर वस्त्रादि द्वारा पूजन किये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करै ॥ २८ ॥ हे भूमिके देवताओ ! मैं तुम्हारी शरणमें आयाहूं सो मुझे आज्ञादो, और आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करैं कि जिससे मैं यात्रा करके फिर ॥ २९ ॥ सुखपूर्वक घर लौटकर आऊं और मुझे उत्तम धर्मकी प्राप्तिहो, हे ब्राह्मणों आपहीको प्रथम धर्मका दर्शक निर्माण कियागयाहै ॥ ३० ॥ संपूर्ण यज्ञदेवता और विविधतीर्थ यह सब आपहीके चरणोंमें निवास करतेहैं अतएव भक्तिभावपूर्वक आपको नमस्कारहै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाकर कर्पटवेष बनाय भूमिके ऊपर शयन करता शुद्धमन और जितेन्द्रियहो ॥ ३२ ॥ फलाहारपूर्वक एकही स्थानमें तीन सन्ध्यापर्यन्त उपवास धारण करै, और यदि उत्तम धर्मप्राप्तिकी कामनाहो तो सवारिमें नहीं किन्तु पैदल यात्रा करै ॥ ३३ ॥ गोयानमें यात्रा करनेसे गोवधका पाप लगताहै, और अश्वद्वारा यात्रा करनेसे यात्रा निष्फल होती है, एवंच यदि मनुष्ययानद्वारा यात्रा करै तौ अर्धफलका लाभ होताहै सुतराम् यानका परित्याग करदेनाही उचितहै ॥ ३४ ॥ और परान्नभोजनभी न करै क्योंकि, उससेभी यात्रा निष्फल होजातीहै, हे महाभाग ! अन्नवालोंका पापतौ इसे उपलब्ध होजाताहै और यह जो पुण्या

लम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत्सुधीः ॥ ३६ ॥ अध्यात्मचिंतनं कुर्वन् शृण्वन्वै तीर्थवैभम् ॥ गच्छेन्नारायणस्थानं सर्वैर्देवैरनुष्ठितम् ॥ ३७ ॥ गंगाद्वारे समागत्य ह्यर्चयेन्नीलभैरवम् ॥ ततः संप्रार्थयेन्नम्रो गंगायां कृतसत्क्रियः ॥ ३८ ॥ नमो नमस्ते भगवन्नीलभैरव क्षेत्रप ॥ अनुज्ञां देहि यात्रायै धन्यः स्यां त्रिजगत्सु वै ॥ ३९ ॥ ततः कण्वाश्रमे गत्वा बदरीनाथक्षेत्रके ॥ तत्रत्येषु च सर्वेषु स्नात्वा चैव यथाविधि ॥ ततः केदारभवनं गच्छेत्पापापनुत्तये ॥ ४० ॥ केदारनाथं संपूज्य गृहीत्वाऽज्ञां ततः सुधीः ॥ कार्य्यं बदरिकेशस्य दर्शनं शुभदायकम् ॥ ४१ ॥ अकृत्वा दर्शनं वैश्य केदारस्याघनाशिनः ॥ यो गच्छेद्बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत् ॥ ४२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वं केदारदर्शनम् ॥ कार्य्यं पुण्येप्सुना श्रेष्ठिन्न भेदः शिवकृष्णयोः ॥ ४३ ॥ क्षेत्रे सूक्ष्मे ततो गत्वा ऋषिगंगोत्तरे नरः ॥ क्षेत्रोपवासं कुर्य्याद्वै दिनमेकं जितेंद्रियः ॥ ४४ ॥

चरण करताहै सब अन्नके स्वामीको प्राप्त होताहै अतएव सुधि व्यक्तिको परान्नका सर्वथा परित्याग करदेनां कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ब्रह्मका विचार करै और तीर्थके माहात्म्यका श्रवण करता २ तब देवताओंके द्वारा सेवन कियेहुए नारायणके स्थानमें यात्रा करै ॥ ३७ ॥ और गंगाद्वारमें आनकर नीलभैरवकी पूजा करै, फिर गंगाजीमें सत्क्रियाओंका आचरणकर प्रार्थना करै ॥ ३८ ॥ हे नीलभैरव ! आप क्षेत्रकी रक्षा करनेवालेहैं आपको नमस्कारहै, आप यात्राके लिये मुझे आज्ञा प्रदान करै जिससे त्रिलोकीमें मैं बडा भाग्यशाली बनूं ॥ ३९ ॥ फिर बदरीनाथजीके क्षेत्रमें कण्वके आश्रममें गमन करै, और वहांके तीर्थोंमें यथाविधि स्नान करै इसके अनन्तर पाप विनाश करनेके लिये केदारनाथजीके मन्दिरमें गमन करै ॥ ४० ॥ फिर सुधीको चाहिये कि, केदारनाथकी पूजा करनेके अनन्तर आज्ञा ग्रहणकर बदरीनाथजीके शुभदायी दर्शन करै ॥४१॥ हे वैश्य ! पापनाशक केदारनाथजीके दर्शन विना किये जो व्यक्ति बदरिकाश्रमकी यात्रा करताहै उसकी यात्रा निष्फल होजाती है ॥४२॥ इसकारण सर्वथा ऐसा यत्न करै जिससे प्रथम पुण्याभिलाषीको केदारनाथजीके दर्शनका लाभ हो, और सुनो सेठजी ! शिव एवं विष्णुमें भेद नहीं समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ फिर यात्रीको चाहिये कि, ऋषिगंगोत्तर सूक्ष्म क्षेत्रमें गमन करै, और जित इन्द्रिय होकर एक दिन उपवास धारण करै ॥ ४४ ॥

प्रातः स्नात्वा तु गंगायां नारदीयह्रदादिषु ॥ वह्नितीर्थे ततः स्नायान्नियतो यतमानसः ॥ ४५ ॥ उपायनं यथा शक्त्या भक्त्या हि मनुजोर्प्पयेत् ॥ आकिरीटांघ्रिपर्य्यंतं पश्येन्नारायणं विभुम् ॥ ॥ ४६ ॥ यथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यादत्र महामनाः ॥ प्रदक्षिणां ततः कुर्य्याद्भक्त्या वै परया युतः ॥ ४७ ॥ ततस्तीर्थेषु चागत्य दद्यादानानिशक्तितः ॥ गोचर्ममात्रा पृथिवी येन दत्ता कुटुंबिने ॥ तेन सर्वा मही दत्ता ब्रह्मणे वेदवादिने ॥ ४८ ॥ त्रुटिमात्रं हिरण्यं वै दत्तं वेदविदे पुनः ॥ सुवर्णस्य तुलादानाद्यत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ देवालये महाविष्णोर्गंगाया रोधसि प्रभो ॥ दीपा देयाश्चंद्रगुप्त संसारपरिमुक्तये ॥ ५० ॥ दीपदश्चक्षुराप्नोति स्वर्णदो वपुरुत्तमम् ॥ अन्नदस्तृप्तिमाप्नोति धातुदो भाग्यमुत्तमम् ॥५१॥ गोप्रदाता महाभाग संसारे न स जायते॥ हयदो गजदश्चैव यानं प्राप्नोति सत्तमम् ॥५२॥ यदत्र क्रियते कर्म

प्रातः समयही गंगाजीमें और नारदीय ह्रदआदि कुण्डोंमें स्नानकर मनोनिग्रहपूर्वक वह्नितीर्थमें स्नान करै ॥ ४५ ॥ फिर मनुष्यको चाहिये कि, यथाशक्ति भक्तिभावपूर्वक भेंट करै, और मुकुटसे लेके चरणपर्यन्त सर्वव्यापक नारायणके दर्शन करै ॥ ४६ ॥ महामनस्वीको चाहिये कि, यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भी दान दे, फिर परम भक्तिभावपूर्वक प्रदक्षिणा करै ॥ ४७ ॥ तीर्थमें आय शक्तिके अनुसार दान करै, जो व्यक्ति कुटुम्बवाले ब्राह्मणको गोचर्म मात्रभी पृथिवीदान करके देताहै वेदपारगामी ब्राह्मणको समस्त भूमिदान करके देने का फल उसे मिलताहै ॥ ४८ ॥ जो पुरुष लेशमात्रभी सुवर्णदान वेदवित् ब्राह्मणको देताहै उसे सुवर्णकी तुलादान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥४९॥ सुनो महाशय चन्द्रगुप्त ! महाविष्णुके देवमन्दिरमें और गंगाजीके तटपर संसारबंधनसे मुक्तिलाभ करनेके तईं दीपक बालने चाहिये ॥ ५० ॥ दीपदान करनेवालेको उत्तमनेत्र, सुवर्णदान करनेवालेको उत्तम देह, अन्न दान करनेवालेको तृप्ति एवं धातुदान करनेवालेको उत्तम भाग्यका लाभ होताहै ॥ ५१ ॥ हे महाभाग ! गोदान करनेवालेका संसारमें फिर कभी जन्म नहीं होता, हाथी और अश्वोंका दान करनेसे उत्तम यानका लाभ होताहै ॥ ५२ ॥ यहां जो कुछ कर्म किया जाताहै सब करोड

१–"सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डैर्निवर्त्तनम् । दश तान्येव गोचर्म्म भूमानं परिकीर्त्तितम्" ॥

कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवात्र कारयेत् ॥ ५३ ॥ अन्यान्यपि च तीर्थानि गच्छेद्वै भक्तितत्परः ॥ स्नायाद्यथोक्तविधिना दानं दद्याच्च भक्तितः ॥५४॥ प्रसादं हरिनैवेद्यं भुंजीयाद्भक्तितत्परः ॥ ततः स्वगृहमागच्छेद्ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ ५५ ॥ एवं यः कुरुते यात्रां न स भूयोऽभिजायते ॥ अश्वमेधादियज्ञानां पादे पादे फलं लभेत् ॥ ५६ ॥ धन्यः स्यात्त्रिषु लोकेषु सुरैरपि स पूज्यते ॥ तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ गच्छ श्रीबदरी वनम् ॥ ५७ ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो जन्मजन्मार्जितैरपि ॥ मुक्तो भविष्यसि तदा सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५८ ॥ एतत्सर्वं महाभाग यत्पृष्टं कथितं तव ॥ ५९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ यात्रामेव परां मेने बदरीनायकस्य सः ॥ ६० ॥ पुत्रैः परिवृतः सर्वैर्बंधुभिश्च सदारकैः ॥ यथोक्तविधिना चक्रे गमनादिविधिं प्रिये ॥ ६१ ॥ यथोक्तं तेन विप्रेण माहात्म्यं बदरीपतेः ॥ चकार तत्तथैवासौ चंद्रगुप्तो महामतिः ॥ ६२ ॥ एका तस्य वधू रम्या गजदंतविभूषणा ॥

गुणा होजाताहै अतएव यहां सर्वथा पापका आचरण न करै ॥ ५३ ॥ फिर भक्तिमें तत्पर हो अन्यान्य तीर्थोंमें भी यात्रा करै, यथाविधि उनमें स्नानकर भक्तिसे दानकरै ॥ ५४ ॥ भक्तिमें तत्परहो नारायणके प्रसादके नैवेद्यको भक्षण करै, फिर अपने घर आय ब्राह्मणभोजन करावै ॥ ५५ ॥ जो व्यक्ति इसप्रकार यात्रा करताहै उसका फिर जन्म नहीं होता, और उसे पद२ के ऊपर अश्वमेध आदियज्ञोंका फल मिलताहै ॥ ५६ ॥ त्रिलोकीमें उसीको धन्यहै और देवतागणभी उसकी पूजा करतेहैं, अतएव तुमभी श्रीबदरीवनमें गमन करो ॥ ५७ ॥ तौ जन्म जन्मान्तरमें अर्जन किये हुए पापोंसे तुम्हारी मुक्ति होजायगी, इसमें कोईभी सन्देह नहीहै ॥ ५८ ॥ हे महाभाग तुमने जो कुछ मुझसे प्रश्न किया सो सब मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ५९ ॥ वसिष्ठजी बोले--उस महात्मा ब्राह्मणके ऐसे वचन सुन उस वैश्यने बदरीनाथकी यात्राको सबसे प्रधानमाना ॥ ६० ॥ सुतराम् सपत्नीक पुत्रों और बन्धु बान्धवोंको साथले हे प्रिये ! यथोक्तविधिसे उसने यात्रा करी ॥ ६१ ॥ जिसप्रकार उस ब्राह्मणने बदरीनाथजीकी यात्राका माहात्म्य वर्णन कियाथा महामतिमान् उक्त चन्द्रगुप्तने उसी विधिसे यात्रा करी ॥ ६२ ॥ उसकी एक सुरम्य वधू हाथीदांतके आभूषण धारण कररहीथी

तस्याः करात्पपातापि गजदंतविभूषणम् ॥ ६३ ॥ शिलानां पंचके देवि स्नातायां प्रियवादिनि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु चंद्रगुप्तादयस्तथा ॥ स्तूयमानं मुनिगणैर्ददृशुस्ते महौजसम् ॥ ६४ ॥ विमानस्थं शंखचक्रगदापद्मविराजितम् ॥ पुरुषं पुरुषैर्देवि नीयमानं तु वैष्णवैः ॥ ६५ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं किमेतदिति चिंतयन् ॥ शुश्राव वाणीं मधुरां वैश्य वैश्येति चासकृत ॥ ॥ ६६ ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं जातोहं त्वत्प्रसादतः ॥ गजो वै गुरुदंतोहं वैकुंठे गमनं मम ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा गोष्ठी परमविस्मिता ॥ ६७ ॥ जगाद वचनं तं च चंद्रगुप्तो वरानने ॥ केन वै कर्मणा हस्तिन् गतोऽसि परमां गतिम् ॥ ६८ ॥ उक्तं त्वया पराश्चर्य्यं मया ते किं कृतं गज ॥ ६९ ॥ गजउवाच ॥ मम दंतकृताभूषा वधू रम्या महामते ॥ तवेयं ह्यागता तीर्थे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ ७० ॥ त्रुटितं पतितं ह्यत्र भूषणं तत्कराद्विभो ॥ तेन पुण्यप्रभावेन निष्पापो ह्यभवं तदा ॥ ७१ ॥

सो उसके हाथमेंसे एक हाथीदांतका आभूषण निपतित होगया, जब कि, वोह पंचशिलामें स्नान कर रहीथी। इतनेहीमें चन्द्रगुप्त आदिकोंने मुनिसमाजके द्वारा स्तुति कियेहुए, विमानमें अधिरूढ शंखचक्रगदापद्मसे विराजमान एक पुरुषको देखा और वैष्णव जन उसे लिये जाते थे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इस महान् आश्चर्य्यको देख वोह वैश्य चिन्तवन करही रहा था कि, यह क्या हुआ ? इतनेहीमें हे वैश्य ! हे वैश्य !! हे वैश्य !!! ऐसी मधुर वाणी उसके श्रवणगोचर हुई ॥ ६६ ॥ मुझे धन्यहै, आपके अनुग्रहसे मैं कृतकृत्य होगया, मैं गुरुदन्त.(बडे २ दातोंवाला) हाथीहूं, अब वैकुण्ठको मेरी यात्राहै, उसके यह वाक्य सुन कर वह गोष्ठी (समाज) बडेविस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥ और हे सुमुखि ! चन्द्रगुप्तने उससे यह वचन कहे, हे गजराज ! किसकर्मके करनेसे तुम्हें परमगतिका लाभ हुआहै ॥ ॥ ६८ ॥ हे गज ! मैंने तुम्हारा क्या उपकार कियाहै जो तुमने ऐसे आश्चर्य्यकी वार्त्ता कही ॥ ६९ ॥ हाथी बोला--हे महामति ! तुम्हारी रम्यवधू मेरे दन्तसे निर्मित हुए आभूषणको धारणकर यह बदरिकाश्रमतीर्थमें आई ॥ ७० ॥ और हे विभो ! उसके हाथसे टूटकर आभूषण यहां निपतित होगया, इसी पुण्यके प्रभावसे मैं निष्पाप हुआहूं ॥ ७१ ॥

तिर्य्यग्योनिगतोहं च कुतो वैकुंठमंदिरम् ॥ तव प्रसादात्प्राप्ता हि मया विष्णुसलोकता ॥ ७२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति तं कथयित्वासौ स्तूयमानो मुनीश्वरैः ॥ गतो वैकुंठभवने संभाष्य च पुनः पुनः ॥ ७३ ॥ इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा श्रेष्ठी महामनाः ॥ सर्वेभ्योभ्याधिकं मेने ह्यात्मानं कृतदर्शनम् ॥७४॥ सोपि तत्रैव निवसन् प्राणांस्तत्याज सुप्रियान् ॥ परमं लयमापन्नो जन्मनाशादिवर्जितम् ॥ ७५ ॥ बभूवुस्तेपि तन्वंगि दाराः पुत्रास्तथापरे ॥ गृहे भुक्त्वा वरान् भोगानंते ते वैष्णवं ययुः ॥ ७६ ॥ इति ते कथितं सर्वं यच्च पृष्टं त्वया प्रिये ॥ पुण्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ॥ ७७ ॥ माहात्म्यं बदरीशस्य सर्व पापविमोचनम् ॥ श्रुत्वा प्येतन्महाभागे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ सर्वे मनोरथास्तस्य पूर्णाःस्युर्नात्र संशयः ॥ माहात्म्यमेत द्यद्गेहे लिखितं वर्त्तते प्रिये ॥ आधिव्याधिभयं नैव

अन्यथा मुझ तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुएको वैकुण्ठकी प्राप्ति कहां होसक्तीथी सुतराम् आपहीकी कृपासे विष्णुभगवान्‌की सलोकताका लाभ हुआहै ॥ ७२ ॥ वसिष्ठजी बोले-इसप्रकार उससे कहकर मुनियोंके द्वारा स्तुति किया हुआ वोह हस्ती वारंवार इनसे संभाषण करके वैकुण्ठलोकको चलागया ॥ ७३ ॥ महामनस्वी उस सेठने जब इस प्रभूत आश्चर्यमय वृत्तान्तको देखा तब उसने अपने लिये यह समझाकि, सबसे अधिक दर्शनका लाभ मुझहीको हुआहै ॥ ७४ ॥ सुतराम् उसने उसी स्थानमें निवास कर प्रियप्राणोंका परित्याग करदिया, और जन्म तथा मरणरहित परमलय (मोक्ष) का उसे लाभ हुआ ॥ ७५ ॥ और हे तन्वंगी ! वे स्त्री पुत्रभी परमभक्त होगये, और घरमें परमभोगोंका उपभोग करके अन्तमें विष्णुलोकको चले गये ॥ ७६ ॥ हे प्रिये ! तुमने जो कुछ हमसे पूछाथा सो हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह आख्यान अतिशय पवित्र यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला एवं धन धान्य प्रदान करनेवालाहै ॥ ७७ ॥ बदरीनाथजीका माहात्म्य समस्त पापोंका नाश करनेवालाहै, हे महाभागे ! इस माहात्म्यका श्रवण करनेसे विष्णु भगवान्‌का सायुज्यलाभ होताहै ॥ ७८ ॥ इसका जो व्यक्ति श्रवण करताहै निःसन्देह उसके समस्त मनोरथ पूर्ण होजातेहैं, हे प्रिये ! इस माहात्म्यकी लिखित पुस्तक जिसके घरमें स्थित रहतीहै. उसको मानसिक व्यथा और शारीरिक क्लेश नहीं होता, चोर राजा और अग्निक

घोरराजाग्निजं भयम् ॥ ७९ ॥ श्रीविष्णोर्नित्यसान्निध्यं यद्गेहे पुस्तकं त्विदम् ॥ दुःस्वप्नो नश्यते शीघ्रं रोगी मुच्यते वै गदात् ॥ ८० ॥ श्रुत्वा बदरिमाहात्म्यं वाचकाय दद्देद्धनम् ॥ एतत्सर्वं महाभागे नियमेन मम प्रिये ॥ महात्म्यमेतच्छृणुयात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलास प्रशंसायां श्रीवदरीमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

भयभी नहीं होता ॥ ७९ ॥ जिस घरमें यह पुस्तक विद्यमान रहतीहै वहां सदैव श्रीविष्णु भगवान्की सन्निधि रहतीहै, और उसके दुःस्वप्नोंका नाश होता एवंच रोगी निश्चय रोगसे मुक्तिलाभ करताहै ॥ ८० ॥ बदरीनाथजीके माहात्म्यका श्रवण करनेके अनन्तर बांचने वालेको धन प्रदान करना कर्त्तव्यहै, सुनो प्रिये ! यह सब नियमसे करना चाहिये, और जो पुरुष इसमाहात्म्यको श्रवण करतेहैं उनकी समस्त कामना पूर्ण होतीहैं ॥ ८१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

अरुंधत्युवाच ॥ मुनीश्वर महाभाग ह्यन्यत्पृच्छामि विस्तरात् ॥ महादेवात्कथं रागान्प्राप्तवान्नारदो मुनिः ॥ १ ॥ के के रागाः समाख्याता उत्पन्नाश्च कथं प्रभो ॥ कास्मिन्क्षेत्रे स्तुतस्तेन शिवश्च शिवदायकः ॥ २ ॥ एतत्सर्वं महाभाग प्रियायै वद विस्तरात् ॥ कथं रागसमुद्भूतिः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यथा वै नारदः पुरा ॥ श्रीगंगापुलिने देवि नारदस्तप आचरत् ॥ ४ ॥

अरुन्धती बोली—हे महाभाग मुनीश्वर ! मैं औरभी आपसे कुछ प्रश्न करतीहूं, सो आप विस्तारसे वर्णन करें, महर्षि नारदजीको महादेवजीसे रागोंकी प्राप्ति किस प्रकारसे हुई ॥ १ ॥ हे प्रभो ! वे कौन २ से रागहैं और वे किस प्रकारसे उत्पन्न हुएहैं, एवं कल्याणदायी महादेवजीकी किस स्थानमें उन्होंने स्तुति करीथी ॥ २ ॥ हे महाभाग ! यह सब मुझ प्रियासे विस्तारपूर्वक वर्णन करो, मुझे इसका बडा कौतूहलहै कि, रागोंकी उत्पत्ति किस प्रकारसे हुई ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले—सुनो प्रिये ! प्रथम जिस प्रकार नारदजीने गंगाजीके

रुद्रप्रयागे तन्वांगि सर्वतीर्थोत्तमे शुभे ॥ महान्तो यत्र नागाश्च शेषाद्यास्तपआचरन् ॥ ५ ॥ तपश्चचार परमं रुद्रतीर्थे महातपाः ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निसन्तप्तो वर्षाधारासहस्तथा ॥ ६ ॥ हेमंत हिमवातादिसहो जातो महातपाः ॥ निराहारो वर्षशतमेकपादेन तस्थिवान् ॥ ७ ॥ शिवध्यानपरो देवि तथा षड्वर्णतत्परः ॥ तारः पूर्वं शिवायेति तारांते नम उच्यते ॥८ ॥ जपन्नेवं महाभागे मात्रास्पर्शैरसंयुतः ॥ नारदस्य तपो दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ ९ ॥ न स्थातुं शक्नुवंतो वै तस्याग्रे देवदानवाः ॥ इति संतपतस्तस्य प्रसन्नो भगवान् शिवः ॥ १० ॥ प्रमथैः सेव्यमानश्च पार्वत्या सहितः प्रभुः ॥ कैलासगौरे नंद्याख्ये वृषभे महति स्थितः ॥ ११ ॥ व्यालैः सहस्रशो भूषी नीलकंठो महाहनुः ॥ त्रिनेत्रो भूतपः सिद्धैः सेव्यमानः सुरासुरैः ॥ १२ ॥ करिचर्मा सिंहचर्मा कोटिसूर्यसमप्रभुः ॥ जय-

तीरपर तप कियाथा सो मैं कहताहूं ॥ ४ ॥ हे तन्वंगी ! समस्ततीर्थोंमें उत्तम शुभ रुद्रप्रयागतीर्थमें जहां कि शेष आदि महात्मा नागोंनेभी तप कियाथा ॥ ५ ॥ महातपस्वीने उसरुद्रतीर्थमें तपकिया, ग्रीष्ममें पंचाग्नि और वर्षामें मेघधारा सहकर तपकिया ॥ ६ ॥ उक्त महातपस्वीने हेमन्त ऋतुमें हिम और पवन आदिका सहन किया, एवं एकशत वर्षपर्यन्त निराहार रहकर एक चरणसे स्थिति करी ॥ ७ ॥ हे देवि ! "ओन्नमः शिवाय" इस षडक्षर मन्त्रका जप करते हुए नारदजी महादेवजीके ध्यानमें तत्पर रहे, प्रथम 'तार' अर्थात् 'ओम्' फिर 'ओम्' के अन्तमें 'नमः' को युक्तकर 'शिवाय' यह चतुर्थ्यन्त शब्द मिलानेसे "ओन्नमः शिवाय" ऐसा षडक्षर मन्त्र होताहै ॥ ८ ॥ हे महाभागे ! इसीका यथोचित रीतिसे वे जपकरते रहे; सुतराम् नारदजीके तपको देखकर समस्त प्राणी कंपायमान होनेलगे ॥ ९ ॥ उनके सन्मुख खडे रहनेको देवता या दानव किसीकीभी शक्ति नहीं होतीथी । इस प्रकार उनके तपकरनेसे भगवान् महादेवजी प्रसन्न होगये ॥ १० ॥ प्रमथ अर्थात्—स्वकीय गणोंद्वारा सेव्यमान, पार्वतीको साथलिये, सर्वशक्तिमान् महादेवजी कैलासपर्वतकी समान-श्वेत नंदीनाम महावृषभके ऊपर अधिरूढ हुए ॥ ११ ॥ सहस्रों सर्पोंसे विभूषित नीलकंठ और लंबी ठोडीवाले, त्रिनेत्रधारी, सिद्ध एवम् देव दानवों द्वारा सुसेवित ॥ १२ ॥ हस्ती और सिंहकी चर्मका परिधान करनेवाले करोडसूर्य्यकी समान द्युतिमान्, प्रभु एवं जयशब्दसे

शब्दैर्घोष्यमाणो ययौ नारदसन्निधौ ॥ १३ ॥ वत्स वत्स नारदेति जगाद च पुनः पुनः ॥ किं ते कार्य्यं महाभाग तपस्ते पूर्णतां गतम् ॥ १४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति तन्नारदः श्रुत्वा शिवोक्तं वरवर्णिनि ॥ उन्मील्य चक्षुषी प्राज्ञो ददर्श शिवमंतिके ॥ १५ ॥ तुष्टाव परया भक्त्या सहस्रैर्नामभिस्तथा ॥ प्रातं तत्सर्वमखिलं रागाख्यं परमं शिवम् ॥ १६ ॥ उत्पन्नाः शिवतो रागाः पुरुषाः षड्कसम्मिताः ॥ ततस्तेषां च पत्न्यो वै पंच पंच मम प्रिये ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे रुद्रप्रयागे रागोत्पत्तिर्नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

घोषित होते हुए शिवजी नारदजीके निकट गये ॥ १३ ॥ हे पुत्रनारद ! हे पुत्र नारद ! वारंवार यों कहकर उन्हें पुकारने लगे, हे महाभाग ! तुम्हरा क्या कार्य्यहै सो बताओ, तुम्हारा तप परिपूर्ण होगया ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे सुमुखि ! महादेवजीके ऐसे वचन सुन बुद्धिमान् नारदजीने अपने नेत्र उघाडे और समीपही शिवजीको खडे देखा ॥ १५ ॥ तब परमभाक्तिभावपूर्वक सहस्रनामका उच्चारण कर उन्हे नारदजीने सन्तुष्टकिया, तब उन्हें अखिल रागोंकी प्राप्ति हुई ॥ १६ ॥ महादेवजीसे पुरुषाकृति छै राग प्रादुर्भूत हुए, और हे प्रिये ! पांच २ उनकी पत्नियें उत्पन्न हुईं ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४.

अरुंधत्युवाच ॥ मुने वद महाभाग नारदेन यथा स्तुतः ॥ सहस्रनामभिः पुण्यैः पापघ्नैः सर्वकामदैः ॥ १ ॥ यानि यानि च नामानि नारदोक्तानि वै मुने ॥ रागोत्पत्तिं विस्तरेण नामानि

अरुन्धती बोली—हे महाभाग मुनिराज ! पवित्र अतएव पापोंका विनाश करनेवा[ले] सहस्र नामोंसे जिस प्रकार नारदजीने महादेवजीकी स्तुति करी, यह सब हमारे अगा[डी] वर्णन करो ॥ १ ॥ हे मुने ! नारदजीके कहेहुए सहस्रनाम और रागोंकी उत्पत्तिको विस्त[ार]

च वद प्रिय ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु साधु महाभागे शिवभक्तिर्यतस्त्वयि ॥ तपःशुद्धो नारदोसौ ददर्श परमेश्वरम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तद्वै परं ब्रह्म सर्वज्ञो मुनिपुंगवः ॥ सस्मार प्रियनामानि शिवोक्तानि प्रियां प्रति ॥ ४ ॥ नारदोस्य ऋषिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छंदः प्रकीर्त्तितः ॥ श्रीशिवः परमात्मा वै देवता समुदाहृता ॥ ५ ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ सर्वारंभप्रसिद्ध्यर्थमाधिव्याधिनिवृत्तये ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ श्रीशिवः शिवदो भव्यो भावगम्यो वृषाकपिः ॥ वृषध्वजो वृषारूढो वृषकर्त्ता वृषेश्वरः ॥ ७ ॥ शिवाधिपः शितः शंभुः स्वयंभूरात्मविद्विभुः ॥ सर्वज्ञो बहुहंता च भवानीपतिरच्युतः ॥ ८ ॥ तंत्रशास्त्रप्रमोदी च तंत्रशास्त्रप्रदर्शकः ॥ तंत्रप्रियस्तंत्रगम्यो तंत्रोवानंततंत्रकः ॥ ९ ॥ तंत्रीनादप्रियो देवो भक्ततंत्रविमोहितः ॥ तंत्रात्मा तंत्रनिलयस्तंत्रदर्शी सुतंत्रकः ॥ १० ॥ महादेव उमाकांतश्चंद्रशेखर ईश्वरः ॥ धूर्जटिस्त्र्यम्बको धूर्त्तो धूर्त्तशत्रुरमावसुः ॥ ११ ॥ वामदेवो मृडः शंभुः सुरेशो दैत्यमर्दनः ॥ अंध-

पूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे सौभाग्यवति ! तुम्हैं धन्यहै जो तुम्हारे विषै महादेवजीकी ऐसी भक्तिहै, तपसे शुद्धहो नारदजीने परमेश्वरके दर्शन किये ॥ ३ ॥ उन पर ब्रह्मके दर्शन कर मुनिपुंगव सर्वज्ञ होगये । और सहस्रनामोंका उनका स्मरणहुवा जिनको शिवजीने प्रियाके प्रति वर्णन कियाथा ॥ ४ ॥ इसके नारदऋषि, अनुष्टुप् छन्द, परमात्मा श्रीशिवदेवता कीर्त्तन किये गयेहैं ॥ ५ ॥ समस्त आरम्भोंकी सिद्धि एवं निखिल आधिव्याधियोंकी निवृत्तिकेलिये धर्म अर्थ काम मोक्षमें इसका विनियोग कीर्त्तन किया गयाहै ॥ ६ ॥ नारदजी बोले--श्रीशिव, शिवद (कल्याणदाता), भव्य, भावगम्य, वृषाकपि (धर्मपाल), वृषध्वज, वृषारूढ, वृषकर्त्ता, वृषेश्वर ॥ ७ ॥ शिवाधिप, शित, शम्भु, स्वयंभू, आत्मविद, विभु, सर्वज्ञ, बहुहंता, भवानीपति, अच्युत ॥ ८ ॥ तन्त्रशास्त्रप्रमोदी, तन्त्रशास्त्रप्रदर्शक, तन्त्रप्रिय, तन्त्रगम्य, तन्त्र; अनन्ततन्त्रक ॥ ९ ॥ तन्त्रीनादप्रिय, देव, भक्ततन्त्रविमोहित, तन्त्रात्मा, तन्त्रनिलय, तन्त्रदर्शी, सुतन्त्रक ॥ १० ॥ महादेव, उमाकान्त, चन्द्रशेखर, ईश्वर, धूर्जटि, त्र्यम्बक, धूर्त्त (प्रलयकर्त्ता), धूर्त्तशत्रु, अमावसु ॥ ११ ॥ वामदेव, मड, शम्भु, सुरेश, दैत्यमर्दन,

कारहरो दण्डो ज्योतिष्मान् हरवल्लभः ॥ १२ ॥ गंगाधरो रमाकांतः सर्वनाथः सुरारिहा ॥ प्रचंडदैत्यविध्वंसी जंभाराति-ररिंदमः ॥ १३ ॥ दानप्रियो दानतृप्तो दानदो दानवांतकः ॥ दरिद्रदानप्रियो दानी दानात्मा दानपूजितः ॥ १४ ॥ दान-गम्यो ययातिश्च दयासिंधुर्दयावहः ॥ भक्तिगम्यो भक्तसेव्यो भक्तिसंतुष्टमानसः ॥ १५ ॥ भक्ताभयप्रदो भक्तो भक्ताभीष्टप्रदा-यकः ॥ भानुमान् भानुनेत्रश्च भानुवृंदसमप्रभः ॥ १६ ॥ सहस्र-भानुः स्वर्भानुरात्मभानुर्जयावहः ॥ जयंतो जयदो यज्ञो यज्ञा-त्मा यज्ञविज्जयः ॥ १७ ॥ जयसेनो जयत्सेनो विजयो विजय-प्रियः ॥ जाज्वल्यमानो ज्यायांश्च जलात्मा जलजो जवः ॥ १८ ॥ पुरातनः पुरारातिस्त्रिपुरघ्नो रिपुघ्नकः ॥ पुराणः पुरुषः पुण्यः पुण्यगम्योतिपुण्यदः ॥ १९ ॥ प्रभंजनः प्रभुः पूर्णः पूर्व-देवः प्रतापवान् ॥ प्रबलोतिबलो देवो वेदवेद्यो जनाधिपः॥२०॥ नरेशो नारदो मानी दैत्यमानविमर्दनः ॥ अमानो निर्ममो मान्यो मानवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥ मनुपुत्रो मयारातिर्मंगलो मंगला-स्पदः ॥ मालवो मलयावासो महोभिः संयुतोनलः ॥ २२ ॥

अन्धकारहर, दण्ड, ज्योतिष्मान्, हरवल्लभ ॥ १२ ॥ गंगाधर, रमानाथ, सर्वनाथ, सुरारिहा (असुर-विनाशी), प्रचंडदैत्यविध्वंसी, जम्भाराति, अरिंदम ॥ १३ ॥ दानप्रिय, दानतृप्त, दानद, दानवान्तक, दरिद्रदानप्रिय, दानी, दानात्मा, दानपूजित ॥ १४ ॥ दानगम्य, ययाति, दयासिन्धु, दयावह, भक्तिगम्य, भक्तसेव्य, भक्तिसन्तुष्टमानस ॥ १५ ॥ भक्ताभयप्रद, भक्त, भक्ताभीष्ट प्रदायक, भानुमान्, भानुनेत्र, भानुवृन्दसमप्रभ (अर्थात्-सूर्यसमाजकी समान कान्तिवाले) ॥ ॥ १६ ॥ सहस्रभानु, स्वर्भानु, आत्मभानु, जयावह, जयन्त, जयद, यज्ञ, यज्ञात्मा, यज्ञ-विद्, जय ॥ १७ ॥ जयसेन, जयत्सेन, विजय, विजयप्रिय, जाज्वल्यमान, ज्यायान्, जला-त्मा, जलज, जव ॥ १८ ॥ पुरातन, पुराराति, त्रिपुरघ्न, रिपुघ्नक, पुराण, पुरुष, पुण्य, पुण्यगम्य, अतिपुण्यद ॥ १९ ॥ प्रभंजन, प्रभु, पूर्ण, पूर्वदेव, प्रतापवान्, प्रबल, अतिबल, देव, वेदवेद्य, जनाधिप ॥ २० ॥ नरेश, नारद, मानी, दैत्यमानविमर्दन, अमान, निर्मम (ममतारहित), मान्य, मानव, मधुसूदन ॥ २१ ॥ मनुपुत्र, भयाराति, मंगल, मंगलास्पद,

नराराध्यो नीलवासा नलात्मा नलपूजितः ॥ नलाधीशो नैगमिको निगमेन सुपूजितः ॥ २३ ॥ निगमावेद्यरूपो हि धन्यो धेनुरमित्रहा ॥ कल्पवृक्षः कामधेनुर्धनुर्धारी महेश्वरः ॥ २४ ॥ दमनो दामिनीकांतो दामोदर इरेश्वरः ॥ दमो दांतो दयावांश्च दानवेशो दनुप्रियः ॥ २५ ॥ दन्वीश्वरो दमी दंती दन्वाराध्यो जनुप्रदः ॥ आनंदकंदो मंदारिर्मंदारसुमपूजितः ॥ २६ ॥ नित्यानन्दो महानंदो रमानंदो निराश्रयः ॥ निर्ज्जरो निर्जरप्रीतो निर्ज्जरेश्वरपूजितः ॥ २७ ॥ कैलासवासी विश्वात्मा विश्वेशो विश्वतत्परः ॥ विश्वंभरो विश्वसहो विश्वरूपो महीधरः ॥ २८ ॥ केदारनिलयो भर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता हरीश्वरः ॥ विष्णुसेव्यो जिष्णुनाथो जिष्णुः कृष्णो धरापतिः ॥ २९ ॥ बदरीनायको नेता रामभक्तो रमाप्रियः ॥ रमानाथो रामसेव्यः शैब्योपि हि विकल्मषः ॥३०॥ धराधीशो महानेत्रस्त्रिनेत्रश्चारुविक्रमः ॥ त्रिविक्रमो विक्रमेशस्त्रिलोकेशस्त्रयीमयः ॥ ३१ ॥ वेदगम्यो वेदवादी वेदात्मा वेदवर्द्धनः ॥ देवेश्वरो देवपूज्यो वेदांतार्थप्रचारकः ॥ वेदांतवेद्यो वैण्वश्च कविः काव्यकलाधरः ॥ ३२॥ कालात्मा कालहृत्कालः

मलयज, मलयावास, महसंपन्न, अनल ॥ २२ ॥ नराराध्य, नीलवासा, नलात्मा, नलपूजित, नलाधीश, नैगमिक, निगमपूजित ॥ २३ ॥ निगमावेद्यरूप, धन्य, धेनु, अमित्रहा, कल्पवृक्ष, कामधेनु, धनुर्धारी, महेश्वर ॥ २४ ॥ दमन, दामिनीकान्त, दामोदर, इरेश्वर, दम, दान्त, दयावान्, दानवेश, दनुप्रिय ॥ २५ ॥ दन्वीश्वर, दमी, दन्ती, दन्वाराध्य, जनुप्रद, आनन्दकन्द, मन्दारि, मन्दारसुमपूजित ॥ २६ ॥ नित्यानन्द, महानन्द, रमानन्द, निराश्रय, निर्जर, निर्जरप्रीत, निर्जरेश्वरपूजित ॥ २७ ॥ कैलासवासी, विश्वात्मा, विश्वेश, विश्वतत्पर, विश्वंभर, विश्वसह, विश्वरूप, महीधर ॥२८॥ केदारनिलय, भर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता हरीश्वर, विष्णुसेव्य, जिष्णुनाथ, जिष्णु, कृष्ण, धरापति ॥ २९ ॥ बदरीनायक, नेता, रामभक्त, रमाप्रिय, रमानाथ, रामसेव्य, शैव्य, विकल्मष ॥३०॥ धराधीश, महानेत्र, त्रिनेत्र, चारुविक्रम, त्रिविक्रम, विक्रमेश, त्रिलोकेश, त्रयीमय ॥ ३१ ॥ वेदगम्य वेदवादी, वेदात्मा, वेदवर्द्धन, देवेश्वर, देवपूज्य, वेदान्तार्थप्रचारक, वेदान्तवेद्य, वैण्व, कवि, काव्यकलाधर ॥ ३२॥ कालात्मा, कालहृत, काल

कलात्मा कालसूदनः ॥ कलिप्रियः सुकेलिश्च कलंकरहितः क्रमः ॥ ३३ ॥ कर्मकर्त्ता सुकर्मा च कर्मेशः कर्मवर्जितः ॥ मीमांसाशास्त्रवेत्ता यः शर्वो मीमांसकप्रियः ॥ ३४ प्रकृतिः पुरुषः पंचतत्वज्ञो ज्ञानिनां वरः ॥ सांख्यशास्त्रप्रमोदी च संख्यावान्पंडितः प्रभुः ॥ ३५ ॥ असंख्यातगुणग्रामो गुणात्मा गुणवर्जितः ॥ निर्गुणो निरंहकारो रसाधीशो रसप्रियः ॥ ३६ ॥ रसास्वादी रसावेद्यो नीरसो नीरजप्रियः ॥ निर्मलो निरनुक्रोशी निर्दन्तो निर्भयप्रदः ॥३७॥ गंगाख्यो गांगतोयं च मीनध्वजविमर्दनः ॥ अंधकारिर्बृहद्दंष्ट्रो बृदश्वो बृहत्तनुः ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिः सुराचार्य्यो गीर्वाणगणपूजितः ॥ वासुदेवो महाबाहुर्विरूपाक्षो विरूपकः ॥३९॥ पूष्णो दंतविनाशी च मुरारिर्भगनेत्रहा ॥ वेदव्यासो नागहारो विषहा विषनायकः ॥ ४० ॥ विरजाः सजलोनंतो वासुकिश्चापराजितः ॥ बालो वृद्धो युवा मृत्युर्मृत्युहा भालचन्द्रकः ॥ ४१ ॥ अग्निगर्भोऽग्निनाभश्च पद्मनाभः प्रभाकरः ॥ हिरण्यगर्भो लोकेशो वेणुनादः प्रतर्दनः ॥ ४२ ॥ वायुर्भर्गो वसुर्भर्गो दक्षः प्राचेतसो मुनिः ॥ नादब्रह्मरतो नादी नंदनावास

कलात्मा, कालसूदन, कलिप्रिय, सुकेलि, कलंकरहित, क्रम ॥ ३३ ॥ कर्मकर्त्ता, सुकर्मा, कर्मेश, कर्मवर्जित, मीमांसाशास्त्रवेत्ता, शर्व, मीमांसकप्रिय ॥ ३४ ॥ प्रकृति, पुरुष, पंचतत्वज्ञ, ज्ञानिप्रवर, सांख्यशास्त्रप्रमोदी, संख्यावान्, पण्डित, प्रभु ॥ ३५ ॥ असंख्यातगुणग्राम, गुणात्मा, गुणवर्जित, निर्गुण, निरहंकार, रसाधीश, रसप्रिय ॥ ३६ ॥ रसास्वादी, रसावेद्य, नीरस, नीरजप्रिय, निर्मल, निरनुक्रोशी, निर्दन्त, निर्भयप्रद ॥ ३७ ॥ गंगाख्य, गंगातोय (गंगाजल), मीनध्वजविमर्दन (कामविनाशी), अन्धकारि, बृहद्दंष्ट्र, बृहदश्व, बृहत्तनु ॥ ३८ ॥ बृहस्पति, सुराचार्य्य, गीर्वाणगणपूजित (देवपूजित), वासुदेव, महाबाहु, विरूपाक्ष, विरूपक ॥ ३९ ॥ पूष्णोदन्तविनाशी, मुरारि, भगनेत्रहा, वेदव्यास, नागहार, विषहा, विषनायक ॥ ४० ॥ विरजा, सजल, अनन्त, वासुकि, अपराजित, बाल, वृद्ध, युवा, मृत्यु, मृत्युहा, भालचन्द्र (अथवा भाललोचन) ॥ ४१ ॥ अग्निगर्भ, अग्निनाभ, पद्मनाभ, प्रभाकर, हिरण्यगर्भ, लोकेश, वेणुनाद, प्रतर्दन, ॥ ४२ ॥ वायु, भर्ग, वसु, भग, दक्ष, प्राचेतस, मुनि, नादब्रह्मरत,

अम्बरः ॥ ४३ ॥ अम्बरीषोम्बुनिलयो जामदग्न्यः परात्परः ॥ कृतवीर्य्यसुतो राजा कार्त्तवीर्य्यप्रमर्द्दनः ४४ ॥ जमदग्निर्जातरूपो जातरूपपरिच्छदः ॥ कर्प्पूरगौरो गौरीशो गोपतिर्गोपनायकः ॥ ४५ ॥ प्राणीश्वरः प्रमाणज्ञोप्रमेयोज्ञाननाशनः ॥ हंसो हंसगतिर्मीनो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४६ ॥ यमुनाधीश्वरो याम्यो यमभीतिविमर्दनः ॥ नारायणो नारपूज्यो वसुवर्णो वसुप्रियः ॥ ४७ ॥ वासवो बलहा वृत्रहन्ता यंता पराक्रमी ॥ बृहद्दीशो बृहद्भानुर्वर्द्धनो बालवः परः ॥ ४८ ॥ शरभो नरसंहारी कोलशत्रुर्विभाकरः ॥ रथचक्रो दशरथो रामः शस्त्रभृतांवरः ॥ ४९ ॥ नारदीयो नरानंदो नायकः प्रमथारिहा ॥ रुद्रो रौद्रो रुद्रमुख्यो रौद्रात्मा रोमवर्जितः ॥ ५० ॥ जलंधरहरो हव्यो हविर्द्धामा बृहद्धविः ॥ रविः सप्तार्चिरनघो द्वादशात्मा दिवाकरः ॥ ५१ ॥ प्रद्योतनो दिनपतिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ॥ सोमोब्जो ग्लौश्च रात्रीशः कुजो जैवात्रिको बुधः ॥ ५२ ॥ शुक्रो दैत्यगुरुर्भौमो भीमो भीमपराक्रमः ॥ शनिः पंगुर्मदांधो वै सेतुबंधनिकेतनः ॥ ५३ ॥ कूर्मपर्वतवासी च वागीशो वाग्विदाम्वरः ॥

नादी, नन्दनावास, अम्बर ॥ ४३ ॥ अम्बरीष, अम्बुनिलय, जामदग्न्य, परात्पर, कृतवीर्यसुत राजा, कार्त्तवीर्यप्रमर्दन ॥ ४४॥ जमदग्नि, जातरूप, जातरूपपरिच्छद, कर्पूरगौर, गौरीश, गोपति, गोपनायक ॥ ४५ ॥ प्राणीश्वर, प्रमाणज्ञ, अप्रमेय, ज्ञाननाशन, हंस, हंसगति, मीन, ब्रह्मा लोकपितामह ॥ ४६ ॥ यमुनाधीश्वर, याम्य, यमभीतिविमर्दन, नारायण, नारपूज्य, वसुवर्ण, वसुप्रिय ॥ ४७ ॥ वासव, बलहा, वृत्रहन्ता, यन्ता, पराक्रमी, बृहदीश, बृहद्भानु, वर्द्धन, बालव, पर ॥ ४८ ॥ शरभ, नरसंहारि, कोलशत्रु, विभाकर, रथचक्र, दशरथ, राम, शस्त्रभृतांवर, ॥ ४९ ॥ नारदीय, नरानन्द, नायक, प्रमथारिहा, रुद्र, रौद्र, रुद्रमुख्य रौद्रात्मा, रोमवर्जित ॥ ५० ॥ जलन्धरहर, हव्य, हविर्धाम, बृहद्धवि, रवि, सप्तार्चि, अनघ, द्वादशात्मा, दिवाकर ॥ ५१ ॥ प्रद्योतन, दिनपति, सप्तसप्ति मरीचिमान्, सोम, अब्ज, ग्लौ, रात्रीश, कुज, जैवात्रिक, बुध ॥ ५२ ॥ शुक्र, दैत्यगुरु, भौम भीम, भीमपराक्रम, शनि, पंगु, मदान्ध, सेतुबंधनिकेतन ॥ ५३ ॥ कूर्मपर्वतवासी, वागीश, वाग्विदाम्वर, योगेश्वर,

योगेश्वरो महीनाथः पातालभुवनेश्वरः ॥ ५४ ॥ काशिनाथो नीलकेशो हरिकेशो मनोहरः ॥ उमाकांतो यमारातिर्बौद्धपर्वतनायकः ॥ ५५ ॥ तटासुरनिहंता च सर्वयज्ञसुपूजितः ॥ गंगाद्वारनिवासो वै वीरभद्रो भयानकः ॥ ५६ ॥ भानुदत्तो भानुनाथो जरासंधविमर्द्दनः ॥ यवमालीश्वरः पारो गंडकीनिलयो हरः ॥ ५७ ॥ शालग्रामशिलावासी नर्मदातटपूजितः ॥ बाणलिंगो बाणपिता बाणधिर्बाणपूजितः ॥ ५८ ॥ बाणासुरनिहंता च रामबाणो भयापहः ॥ रामदूतो रामनाथो रामनारायणोऽव्ययः ॥ ५९ ॥ पार्वतीशः परामृष्टो नारदो नारपूजितः ॥ पर्वतेशः पार्वतीयः पार्वतीप्राणवल्लभः ॥ ६० ॥ सर्वेश्वरः सर्वकर्त्ता लोकाध्यक्षो महामतिः ॥ निरालंबो हठाध्यक्षो वननाथो वनाश्रयः ॥ ६१ ॥ श्मशानवासी दमनो मदनारिर्मदालयः ॥ भूतवेतालसर्वस्वः स्कंदः स्कंदजनिर्जनः ॥ ६२ ॥ वेतालशतनाथो वै वेतालशतपूजितः ॥ वेतालो भैरवाकारो वेतालनिलयो बलः ॥ ६३ ॥ भूर्भुवःस्वर्वषट्कारो भूतभव्यविभुर्महः ॥ जनो महस्तपः सत्यं पातालनिलयो लयः ॥ ६४ ॥ पत्री पुष्पी फली

महीनाथ, पातालभुवनेश्वर ॥ ५४ ॥ काशिनाथ, नीलकेश, हरिकेश, मनोहर, उमाकान्त, यमाराति, बौद्धपर्वत नायक ॥ ५५ ॥ तटासुरनिहन्ता, सर्वयज्ञसुपूजित, गंगाद्वारनिवास, वीरभद्र, भयानक ॥ ५६ ॥ भानुदत्त, भानुनाथ, जरासन्धविमर्दन, यवमालीश्वर, पार, गण्डकीनिलय, हर ॥ ५७ ॥ शालग्रामशिलावासी, नर्मदातटपूजित, बाणलिंग, बाणपिता, बाणाधि, बाणपूजित ॥ ५८ ॥ बाणासुरनिहन्ता, रामबाण, भयापह, रामदूत, रामनाथ, रामनारायण, अव्यय ॥ ५९ ॥ पार्वतीश, परामृष्ट, नारद, नारपूजित, पर्वतेश, पार्वतीय, पार्वतीप्राणवल्लभ ॥ ६० ॥ सर्वेश्वर, सर्वकर्त्ता, लोकाध्यक्ष, महामति, निरालंब, हठाध्यक्ष, वननाथ, वनाश्रय ॥ ६१ ॥ श्मशानवासी, दमन, मदनारि, मदालय, भूतवेतालसर्वस्व, स्कन्द, स्कन्दजनि ॥ ६२ ॥ वेतालशतनाथ, वेतालशतपूजित, वेताल, भैरवाकार, वेतालनिलय, बल ॥ ६३ ॥ भूर्भुवः स्वः वषटकार, भूतभव्य विभु, मह, जन, मह, तप, सत्य, पातालनिलय, लय ॥ ६४ ॥ पत्री, पुष्पी, फली, तोयी, महीरूपसमाश्रित, स्वधा,

तोयी महीरूपसमाश्रितः ॥ स्वधा स्वाहा नमस्कारो भद्रो भद्रपतिर्भुवः ॥ ६५ ॥ उमापतिर्व्योमकेशो भीमधन्वा भयानकः ॥ पुष्टस्तुष्टोधराधारो बलिदो बलिभृद्बली ॥ ६६ ॥ ॐकारो नृमयो मायी विघ्नहर्त्ता गणाधिपः ॥ ह्रीं ह्रीं गम्यो हौं जूँ सः हौं शिवायनमो ज्वरः ॥ ६७ ॥ द्राँ द्राँ रूपो दुराधर्षो नादबिंद्वात्मकोनिलः ॥रस्तारो नेत्रनादश्च चण्डीशो मलयाचलः ॥६८॥ षडक्षरमहामंत्रः शस्त्रभृच्छस्त्रनायकः ॥ शास्त्रवेत्ता तु शास्त्रीशः शस्त्रमंत्रप्रपूजितः ॥ ६९ ॥ निर्वपुः सुवपुः कांतः कांताजनमनोहरः ॥ भगमाली भगो भाग्यो भगहा भगपूजितः ॥ ७०॥ भगपूजनसंतुष्टो महाभाग्यसुपूजितः ॥ पूजारतो विपाप्मा च क्षितिबीजो धरोत्पिक्कृत् ॥ ७१ ॥ मंडलो मंडलाभासो मंडलार्द्धो विमंडलः ॥ चंद्रमंडलपूज्यो वै रविमंडलमंदिरः ॥ ७२ ॥ सर्वमंडलसर्वस्वः पूजामंडलमंडितः ॥ पृथ्वीमंडलवासश्च भक्तमंडलपूजितः ॥ ७३ ॥ मंडालत्परसिद्धिश्च महामंडलमंडलः ॥ मुखमंडलशोभाढ्यो राजमंडलवर्जितः ॥ ७४ ॥ निष्प्रभः प्रभुरीशानो मृगव्याधो मृगारिहा ॥ मृगांकशोभो हेमा

स्वाहा, नमस्कार, भद्र, भद्रपति, भव ॥ ६५ ॥ उमापति, व्योमकेश, भीमधन्वा, भयानक, पुष्ट, तुष्ट धराधार, बलिद, बलिभद्र, बली ॥६६॥ ओंकार, नृमय, विघ्नहर्त्ता, गणाधिप, ह्रीं ह्रीं गम्य, हौं जूंसः हौं शिवायनमः ज्वरः ॥ ६७ ॥ द्रां द्रां रूप, दुराधर्ष, नादबिन्द्वात्मक अनिल, रस्तार, नेत्रनाद, चण्डीश, मलयाचल ॥ ६८ ॥ षडक्षर महामन्त्र, शस्त्रभृत, शस्त्रनायक, शास्त्रवेत्ता, शास्त्रीश, शस्त्र मन्त्र प्रपूजित ॥ ६९ ॥ निर्वपु, सुवपु, कान्त, कान्ताजनमनोहर, भगमाली, भग, भाग्य, भगहा, भगपूजित ॥ ७० ॥ भगपूजनसन्तुष्ट, महाभाग्यसुपूजित, पूजारत, विपाप्मा, क्षितिबीज, धरोत्पिक्कृत् ॥ ७१ ॥ मण्डल, मण्डलाभास, मण्डलार्ध, विमण्डल, चन्द्रमण्डलपूज्य, रविमण्डलमन्दिर ॥ ७२ ॥ सर्वमण्डलसर्वस्व, पूजामण्डलमण्डित, पृथ्वीमण्डलवास, भक्तमण्डलपूजित ॥ ७३ ॥ मण्डलात्परसिद्धि, महामण्डलमण्डल, मुखमण्डलशोभाढ्य, राजमण्डलवर्जित ॥ ७४ ॥ निष्प्रभ, प्रभु, ईशान

व्यो हिमात्मा हिमसुंदरः ॥ ७५ ॥ हेमहेमनिधिर्हैमो हिमानीशो हिमप्रियः ॥ शीतवातसहःशीतो ह्यशीतिगणसेवितः ॥ ७६ ॥ आशाश्रयो दिगात्मा च जीवो जीवाश्रयः पतिः ॥ पतिताशीपतिः पांथो निःपांथोनर्थनाशकः ॥ ७७ ॥ बुद्धिदो बुद्धिनिलयो बुद्धो बुद्धपतिर्धवः ॥ मेधाकरो मेधमानो मध्यो मेध्यो मधुप्रियः ॥ ७८ ॥ मधुव्यो मधुमान्बंधुर्धुंधुमारो धवाश्रयः ॥ धर्मी धर्मप्रियो धन्यो धान्यराशिर्धनावहः ॥ ७९ ॥ धरात्मजो धनो धान्यो मान्यनाथो मदालसः ॥ लम्बोदरोलंकरिष्णुर्लंकानाथसुपूजितः ॥ ८० ॥ लंकाभस्मप्रियो लंको लंकेशरिपुपूजितः ॥ समुद्रो मकरावासो मकरंदो मदान्वितः ॥ ८१ ॥ मथुरानाथकोतंद्रो मथुरावासतत्परः ॥ वृंदावनमनःप्रीतिर्वृंदापूजितविग्रहः ॥ ८२ ॥ यमुनापुलिनावासः कंसचाणूरमर्दनः ॥ अरिष्टहा शुभतनुर्माधवो माधवाग्रजः ॥ ८३ ॥ वसुदेवसुतः कृष्णः कृष्णाप्रियतमः शुचिः ॥ कृष्णद्वैपायनो वेधाः सृष्टिसंहारकारकः ॥ ॥ ८४ ॥ चतुर्विधो विश्वहर्त्ता धाता धर्मपरायणः ॥ परमेशः

मृगव्याध, मृगारिहा, मृगांकशोभ, हेमाढ्य, हिमात्मा, हिमसुन्दर ॥ ७५ ॥ हेम, हेमनिधि, हिमानीश, हिमप्रिय, शीतवातसह, शीत, अशीतिगणसेवित ॥ ७६ ॥ आशाश्रय, दिगात्मा, जीव, जीवाश्रय, पति, पतिताशीपति, पान्थ, निष्पान्थ, अनर्थनाशक ॥ ७७ ॥ बुद्धिदाता, बुद्धिनिलय, बुद्ध, बुद्धपति, धव, मेधाकर, मेधमान, मध्य, मेध्य, मधुप्रिय ॥ ७८ ॥ मधुव्य, मधुमान्, बन्धु, धुन्धुमार, धवाश्रय, धर्मी, धर्मप्रिय, धन्य, धान्यराशि, धनावह ॥ ७९ ॥ धरात्मज, धन, धान्य, मान्यनाथ, मदालस, लम्बोदर, अलंकरिष्णु, लंकानाथसुपूजित ॥ ८० ॥ लंकाभस्मप्रिय, लंक, लंकेशरिपुपूजित (रामेश्वर) समुद्र, मकरावास, मकरन्द, मदान्वित ॥ ८१ ॥ मथुरानाथ, अतन्द्र, मथुरावासतत्पर, वृन्दावनमनःप्रीति, वृन्दापूजितविग्रह ॥ ८२ ॥ यमुनापुलिनावास, कंसचाणूरमर्दन, अरिष्टहा, शुभतनु, माधव, माधवाग्रज ॥ ८३ ॥ वसुदेवसुत, कृष्ण, कृष्णाप्रियतम, शुचि (पवित्र), कृष्णद्वैपायन, वेधा, सृष्टिसंहारकारक ॥ ८४ ॥ चतुर्विध, विश्वहर्त्ता, धाता, धर्मपरायण, परमेश, पराविश

परविज्ञो ज्ञानगम्यो गणेश्वरः ॥ ८५॥ पार्श्वमौलिश्चंद्रमौलिर्धर्ममौलिः सुरारिहा ॥ जंघाप्रतर्दनो जंभो जंभारातिररिंदमः ॥ ॥ ८६ ॥ ॐकारगम्यो नादेशः सोमेशः सिद्धिकारणम् ॥ अकारोमृतकल्पश्च आनन्दो वृषभध्वजः ॥ ८७ ॥ आत्मारातिश्चात्मगम्यो यथार्थात्मा नरारिहा ॥ इकारश्चेतिकालश्च इतिहेतिप्रभंजनः ॥ ८८ ॥ ईशिता रिभवो ऋक्ष ऋकारवरपूजितः ॥ लृवर्णरूपो लृकारो लृवर्णस्थो लरात्मवान् ॥८९॥एऐरूपो महानेत्रो जन्ममृत्युविवर्जितः ॥ ओतुरौतुरंडजस्थो हंतहंता कलाकरः ॥ ९० ॥ कालीनाथः खंजनाक्षो खंडोखंडितविक्रमः ॥ गंधर्वेशो गणारातिर्घंटाभरणपूजितः ॥ ९१ ॥ ङकारो ङीप्रत्ययश्च चामरश्चामराश्रयः ॥ चीराम्बरधरश्चारुश्चारुचंचुश्चरेश्वरः ॥९२॥ छत्री छत्रपतिश्छात्रश्छत्रेशश्छात्रपूजितः ॥ झर्झरो झंकृतिर्झंजा झंझेशो झंपरो झरः ॥ ९३ ॥ झंकेशांडधरो झारिष्टंकष्टंकारपूजितः ॥ रोमहारिर्वृषारिश्च ढुंडिराजो झलात्मजः ॥९४॥ ढोलशब्दरतो ढक्का ढकारेण प्रपूजितः ॥ तारापतिस्ततस्तंतुस्तारेशः स्तंभसंश्रितः ॥ ९५ ॥ थवर्णस्थूत्करःस्थूलो दनुजो

ज्ञानगम्य, गणेश्वर, ॥ ८५ ॥ पार्श्वमौलि, चन्द्रमौलि, धर्ममौलि, सुरारिहा, जंघाप्रतर्दन, म, जम्भाराति, अरिन्दम॥८६॥ ओंकारगम्य, नादेश, सोमेश, सिद्धिकारण, अकार, अमृतकल्प, आनन्द, वृषभध्वज ॥ ८७ ॥ आत्माराति, आत्मगम्य, यथार्थात्मा, नरारिहा, इकार, इतिकाल, इतिह, अतिप्रभंजन ॥ ८८ ॥ ईशिता, रिभव, ऋक्ष, ऋकारवरपूजित, लृवर्ण, रूप, लृकार, लृवर्णस्थ, लरात्मवान् ॥ ८९ ॥ एऐरूप, महानेत्र, जन्ममृत्युविवर्जित, ओतु, औतु, अंडजस्थ, हन्तहन्ता, कलाकर ॥ ९० ॥ कालीनाथ, खंजनाक्ष, खंड, अखंडितविक्रम, गन्धर्वेश, गणाराति, घण्टाभरणपूजित ॥ ९१ ॥ ङकार, ङीप्रत्यय, चामर, चामराश्रय, चीराम्बरधर, चारु, चारुचञ्चु, चरेश्वर, ॥ ९२ ॥ छत्री, छत्रपति, छात्र, छत्रेश, छात्रपूजित, झर्झर, झंकृति, झंजा, झंझेश, झंपर, झर ॥ ९३ ॥ झंकेशांडधर, झारि, टंक, टंकारपूजित, रोमहारि वृषारि, ढुंडिराज, झलात्मज ॥ ९४ ॥ ढोलशब्दरत, ढक्का, ढकारप्रपूजित, तारापति, ततस्तन्तु, तारेश, स्तम्भसंश्रित ॥ ९५ ॥ थवर्ण, थूतकर, स्थूल, दनुज, दनुजान्तकृत,

दनुजांतकृत् ॥ दाडिमीकुसुमप्रख्यो दांतारिर्दर्दरातिगः ॥ ९६ ॥ दंतवक्त्रो दंतजिह्वो दंतवक्त्रविनाशनः ॥ धवो धवाग्रजो धुंधुर्धौंधुमारिर्धराधरः ॥ ९७ ॥ धम्मिल्लीनीजनानंदो धर्माधर्मविवर्जितः ॥ नागेशो नागनिलयो नारदादिभिरार्चितः ॥ ९८ ॥ नंदो नंदीपतिर्नंदी नंदीश्वरसहायवान् ॥ पणः प्राणीश्वरः पांथः पाथेयः पथिकार्चितः॥९९॥पानीयाधिपतिः पाथः फलवान् फलसंस्कृतः ॥ फणीशतविभूषा च फणीफूत्कारमंडितः ॥ ॥ १०० ॥ फालः फल्गुरथः फांतो वेणुनाथो वनेचरः ॥ वन्यप्रियो वनानंदो वनस्पतिगणेश्वरः ॥ १०१ ॥ वालीनिहंता वाल्मीको वृंदावनकुतूहली ॥ वेणुनादप्रियो वैद्यो भगणो भगणार्चितः॥ १०२ ॥ भेरुंडो भासको भासी भास्करो भानुपूजितः भद्रो भाद्रपदो भाद्रो भद्रदो भाद्रतत्परः ॥ १०३ ॥ मेनकापतिमन्द्राश्वो महामैनाकपर्वतः ॥ मानवो मनुनाथश्च महादमदलोचनः॥ १०४ ॥ यज्ञाशी याज्ञिको यामी यमभीतिविमर्दनः ॥ यमको यमुनावासो यमसंयमदायकः ॥ १०५ ॥ रक्ताक्षो रक्तदंतश्च राजसो राजसप्रियः ॥ रंतिदेवो रत्नमतीरामनाथो रमा-

दाडिमीकुसुमप्रख्य, दान्तारि, दर्दरातिग ॥ ९६ ॥ दन्तवक्त्र, दन्तजिह्व, दन्तवक्त्रविनाशन, धव, धवाग्रज, धुन्धु, धौन्धुमारि, धराधर ॥ ९७ ॥ धम्मिल्लिनीजनानन्द, धर्म्माधर्मविवर्जित, नागेश नागनिलय, नारदादिसमर्चित ॥ ९८ ॥ नन्द, नन्दीपति, नन्दी, नंदीश्वरसहायवान्, पण, प्राणीश्वर, पान्थ, पाथेय, पथिकार्चित ॥ ९९ ॥ पानीयाधिपति, पाथ, फलवान्, फलसंस्कृत फणीशतविभूषित, फणीफूत्कारमण्डित ॥ १०० ॥ फाल, फल्गुरथ, फान्त, वेणुनाथ, वनेचर वन्यप्रिय, वनानन्द, वनस्पतिगणेश्वर ॥ १०१ ॥ वालीनिहन्ता, वाल्मीक, वृन्दावनकुतूहली वेणुनादप्रिय, वैद्य, भगण, भगणार्चित ॥ १०२ ॥ भेरुण्ड, भासक, भासी, भास्कर, भानुपूजित, भद्र, भाद्रपद, भाद्र, भद्रद, भाद्रतत्पर ॥ १०३ ॥ मेनकापति, मन्दाश्व, महामैनाकपर्वत, मानव, मनुनाथ, मदहा, मदलोचन ॥ १०४ ॥ यज्ञाशी, याज्ञिक, यामी, यमभीतिविमर्दन, यमक, यमुनावास, यमसंयमदायक ॥ १०५ ॥ रक्ताक्ष, रक्तदन्त, राजस, राजस-

प्रियः ॥ १०६ ॥ लक्ष्मीकरो लाक्षणिको लक्षेशो लक्षपूजितः ॥ लंबोदरो लांगलिको लक्षलाभपितामहः ॥ १०७ ॥ बालको बालकप्रीतो वरेण्यो बालपूजितः ॥ शर्वः शर्वी शरी शास्त्री शर्वरीगणसुंदरः ॥ १०८ ॥ शाकंभरीपीठसंस्थः शाकद्वीपनिवासकः ॥ षोढासमासनिलयः षंढः षाढवमंदिरः ॥ ॥ १०९ ॥ षांडवाडंबरः षांड्यः षष्ठीपूजनतत्परः ॥ सर्वेश्वरः सर्वतत्वः सामगम्योऽसमानकः ॥ ११० ॥ सेतुः संसारसंहर्त्ता सारः सारस्वतः प्रियः ॥ हर्म्यनाथो हर्म्यकर्त्ता हेतुहानिहनोहरः ॥ १११ ॥ हालाप्रियो हलापांगो हनुमान्पतिरव्ययः ॥ सर्वायुधधरोभीष्टो भयो भास्वान् भयांतकृत ॥ ११२ ॥ कुब्जाम्रकनिवासश्च झिंटीशो वाग्विदांवरः ॥ रेणुकादुःखहंता च विराटनगरस्थितः ॥ ११३ ॥ जमदग्निर्भार्गवो वै पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ क्रांतिराजो द्रोणपुत्रोऽश्वत्थामा सुरथी कृपः॥११४॥कामाख्यनिलयो विश्वनिलयो भुवनेश्वरः॥रघूद्वहो राज्यदाता राजनीतिकरोव्रणः ॥ ११५ ॥ राजराजेश्वरीकांतो राजराजसुपूजितः ॥ सर्वबंधविनिर्मुक्तः सर्वदारिद्रनाशनः ॥ ११६ ॥ जटामण्डलसर्वस्वो गंगाधारासुमंडितः ॥ जीवदाता

प्रिय, रन्तिदेव, रत्नमति, रामनाथ, रमाप्रिय ॥१०६॥ लक्ष्मीकर, लाक्षणिक, लक्षेश, लक्षपूजित, लम्बोदर, लांगलिक, लक्षलाभपितामह ॥ १०७ ॥ बालक, बालकप्रीत, वरेण्य, बालपूजित, शर्व, शर्वी, शरी, शास्त्री, शर्वरीगणसुन्दर ॥ १०८ ॥ शाकंभरीपीठसंस्थ, शाकद्वीप निवासक, षोढासमासनिलय, षंढ, षाढवमन्दिर ॥ १०९ ॥ षांडवाडम्बर, षांड्य, षष्ठी पूजनतत्पर, सर्वेश्वर, सर्वतत्त्व, सामगम्य, असमानक ॥ ११० ॥ सेतु, संसारसंहर्त्ता, सार, सारस्वत, प्रिय, हर्म्यनाथ, हर्म्यकर्त्ता, हेतुहानिहन, हरं ॥ १११ ॥ हालाप्रिय, हालापांग, हनुमान, पति, अव्यय, सर्वायुधधर, अभीष्ट, भय, भास्वान, भयान्तकृत॥ ११२ ॥कुब्रामनिवासी, झिंटीश, वाग्विदाम्वर, रेणुकादुःखहन्ता, विराटनगरस्थित ॥ ११३ ॥ जमदग्नि, भार्गव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, क्रान्तिराज, द्रोणपुत्र, अश्वत्थामा, सुरथ, कृप ॥ ११४ ॥ कामाख्यनिलय, विश्वनिलय, भुवनेश्वर, रघूद्वह, राज्यदाता, राजनीतिकर, अव्रण ॥११५॥ राजराजेश्वरीकान्त, राजराजसुपूजित, सर्वबन्धविनिर्मुक्त, सर्वदारिद्र्यनाशन ॥११६॥ जटामण्डलसर्वस्व,

शयो धेनुर्यादवो यदुपुंगवः ॥ ११७ ॥ मूर्खवागीश्वरो भर्गो मूर्खविद्यादयानिधिः ॥ दीनदुःखनिहंता च दीनदाता दयार्णवः ॥ ११८ ॥ गंगातरंगभूषा च गंगाभक्तिपरायणः ॥ भगीरथप्राणदाता ककुत्स्थनृपपूजितः ॥ ११९ ॥ मांधातृजयदो वैणः पृथुः पृथुयशाः स्थिरः ॥ जाल्मपादो जाल्मनाथो जाल्मप्रीतिविवर्द्धनः ॥ १२० ॥ संध्याभर्त्ता रौद्रवपुर्महानीलशिलास्थितः ॥ शंभलग्रामवासश्च प्रियानूपमपत्तनः ॥ १२१ ॥ शांडिल्यो ब्रह्मशौंडाख्यः शारदो वैद्यजीवनः ॥ राजवृक्षो ज्वरघ्नश्च निर्गुंडीमूलसंस्थितः ॥ १२२ ॥ अतिसारहरो जातीवल्कबीजो जलं नभः ॥ जाह्नवीदेशनिलयो भक्तग्रामनिकेतनः ॥१२३॥ पुराणगम्यो गम्येशः स्कांदादिप्रतिपादकः ॥ अष्टादशपुराणानां कर्त्ता काव्येश्वरः प्रभुः ॥१२४॥ जलयंत्रो जलावासो जलधेनुर्जलोदरः ॥ चिकित्सको भिषग्वैद्यो निर्लोभो लोभतस्करः ॥१२५॥ चिदानंदश्चिदाभासश्चिदात्मा चित्तवर्जितः ॥ चित्सरूपश्चिरायुश्च चिरायुरभिदायकः ॥१२६॥ चीत्कारगुणसंतुष्टोचलोनंतप्रदायकः ॥ मासः पक्षो ह्यहोरात्रमृतुस्त्वयनरूपकः ॥१२७॥

गंगाधारासुमण्डित, जीवदाता, शय, धेनु, यादव, यदुपुंगव ॥११७॥ मूर्खवागीश्वर, भर्ग, मूर्खविद्यादयानिधि, दीनदुःखनिहन्ता, दीनदाता, दयार्णव ॥ ११८ ॥ गंगातरंगभूषा, गंगाभक्तिपरायण, भगीरथप्राणदाता, ककुत्स्थनृपपूजित ॥ ११९ ॥ मान्धातृजयद, वेणु, पृथु, पृथुयशा, स्थिर, जाल्मपाद, जाल्मनाथ, जाल्मप्रीतिविवर्धन ॥ १२० ॥ सन्ध्याभर्त्ता, रौद्रवपु, महानीलशिलास्थित, शम्भलग्रामवासी, प्रियानूपमपत्तन ॥ १२१ ॥ शाण्डिल्य, ब्रह्मशौण्डाख्य, शारद, वैद्यजीवन, राजवृक्ष, ज्वरघ्न, निर्गुण्डीमूलसंस्थित ॥ १२२ ॥ अतिसारहर, जातीवल्कबीज, जल, नभ, जाह्नवीदेशनिलय, भक्तग्रामनिकेतन ॥ १२३ ॥ पुराणगम्य, गम्येश, स्कान्दादिप्रतिपादक, अष्टादशपुराणकर्त्ता, काव्येश्वर प्रभु॥ १२४॥जलयन्त्र, जलावास, जलधेनु, जलोदर, चिकित्सक,भिषक्,वैद्य, निर्लोभ, लोभतस्कर॥ १२५॥चिदानन्द, चिदाभास, चिदात्मा,चित्तवर्जित, चित्सरूप, चिरायु, चिरायुदाता ॥ १२६ ॥ चीत्कारगुणसन्तुष्ट, अचल, अनन्तप्रदायक, मास,

संवत्सरः परः कालः कलाकाष्ठात्मकः कलिः ॥ सत्यं त्रेता द्वापरश्च तथा स्वायंभुवः स्मृतः ॥ १२८ ॥ स्वारोचिषस्तामसश्च औत्तमी रैवतस्तथा ॥ चाक्षुषो वैवस्वतश्च सावर्णिः सूर्यसंभवः ॥१२९॥ दक्षसावर्णिको मेरुसावार्णिक इतिप्रभः ॥ रौच्यो भौत्यस्तथा गव्यो भूतिदश्च तथादरः ॥ १३० ॥ रागज्ञानप्रदो रागी रागी रागपरायणः ॥ नारदः प्राणनिलयो नीलांबरधरोव्ययः ॥ १३१ ॥ अनेकनामा गंगेशो गंगातीरनिकेतनः ॥ गंगाजल निवासश्च गंगाजलपरायणः ॥ १३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ नाम्नामेतत्सहस्रं वै नारदेनोदितं तु यत् ॥ तत्तेद्य कथितं देवि सर्वापत्तिनिवारणम् ॥ १३३ ॥ पठतः स्तोत्रमेतद्वै नाम्नां साहस्रमीशितुः ॥ दारिद्र्यं नश्यते क्षिप्रं षड्भिर्मासैर्वरानने ॥ १३४॥ यस्येदं लिखितं गेहे स्तोत्रं वै परमात्मनः ॥ नित्यं सन्निहतस्तत्र महादेवः शिवान्वितः ॥१३५॥ स एव त्रिषु लोकेषु धन्यः स्याच्छिवभक्तितः ॥ शिव एव परं ब्रह्म शिवान्नास्त्यपरः क्वचित् ॥ ॥१३६॥ ब्रह्मरूपेण सृजति पाल्यते विष्णुरूपिणा ॥ रुद्ररूपेण

पक्ष, अहोरात्र, ऋतु, अयनरूपक ॥ १२७ ॥ संवत्सर, पर, काल, कलाकाष्ठात्मक, कलि, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, स्वायंभुव ॥ १२८ ॥ स्वारोचिष, तामस, औत्तमि, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सूर्यसंभूतसावर्णि ॥ १२९ ॥ दक्षसावर्णिक, मेरुसावर्णिक, इतिप्रभ, रौच्य, भौत्य, गव्य, भूतिद, आदर ॥ १३० ॥ रागज्ञानप्रद, अरागी (विरागी), रागी (अनुरागी) रागपरायण, नारदप्राणनिलय, नीलांबरधर, अव्यय ॥ १३१ ॥ अनेकनाम, गंगेश, गंगातीरनिकेतन, गंगाजलनिवासी, और गंगाजलपरायण॥ १३२ ॥वसिष्ठजी बोले–हे देवि ! नारदजीने जो यह सहस्रनाम कीर्त्तन कियाहै वोह मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह सहस्रनाम समस्त आपत्तियोंका निवारण करनेवालाहै ॥१३३॥ महादेवजीके इन सहस्रनामोंका जो व्यक्ति पाठ करताहै हे सुमुखि ! छैमास पर्यन्त इसी प्रकार करनेसे उसके दारिद्र्यका विनाश होजाताहै ॥१३४॥ जिसके घर यह परमात्माका स्तोत्र लिखित विद्यमान रहताहै, वहां पार्वती सहित महादेवजी नित्य विद्यमान रहतेहैं ॥१३५॥शिवकी भक्तिके प्रतापसे त्रिलोकीमेंउसीको धन्यहै, शिवही परब्रह्महै, शिवसे अपर कोई देवता नहींहै ॥१३६॥ शिवही ब्रह्मरूपसे सृष्टिको रचते,

नयति भस्मसात् स चराचरम् ॥१३७॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुमुक्षुः शिवमभ्यसेत् ॥स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं पठित्वा श्रीशिवो भवेत् ॥१३८॥ यं यं चिंतयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् ॥ राज्यार्थी लभते राज्यं यस्त्विदं नियतः पठेत् ॥१३९॥ दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ नास्मात्किंचिन्महाभागे ह्यन्यदस्ति महीतले ॥१४०॥ तावद्गर्जंति पापानि शरीरस्थान्यरुंधति ॥ यावन्नपठते स्तोत्रं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ १४१ ॥ सिंहचौरग्रहग्रस्तो मुच्यते पठनात्प्रिये ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो लभते परमं सुखम् ॥१४२॥ प्रातरुत्थाय यः स्तोत्रं पठते भक्तितत्परः ॥ सर्वापत्तिविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः॥ जायते नात्र संदेहः शिवस्य वचनं यथा ॥ ॥ १४३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

विष्णुरूपसे पालन करते और रुद्ररूपसे चराचरको भस्मीभूत करतेहैं ॥ १३७ ॥ अतएव मुमुक्षु पुरुषको सर्वथा शिवकी आराधना करनी चाहिये । इस सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करनेसे साक्षात् श्रीशिवरूप होजाताहै ॥ १३८ ॥ जिस २. मनोरथकी चिन्ता करताहै निःसन्देह उसीकी प्राप्ति होतीहै । पुत्रार्थीको पुत्र और धनार्थीको धनका लाभ होताहै, एवं च राज्याभिलाषीको राज्यका लाभ होताहै यदि वोह नित्यनियमसे इस स्तोत्रका पाठकरै ॥ १३९ ॥ इसका पाठ करनेसे दुःस्वप्नोंका नाश होताहै क्योंकि--यह अत्यन्त पवित्र और सब पापोंका नाश करनेवालाहै, हे महाभागे ! इससे अधिक भूमिके ऊपर और कुछ नहीहै ॥ १४० ॥ हे अरुन्धती ! मनुष्यके देहास्थित पाप तभीतक गर्जतेहैं जबतक कि—परमात्मा श्रीशिवके इस सहस्रनाम स्तोत्रका पाठ नहीं कियाजाता ॥ १४१ ॥ हे प्रिये ! इसका पाठ करनेसे सिंह चौर और ग्रहोंके द्वारा ग्रस्त हुआ व्यक्ति भी मुक्त होजाताहै, एवंच सब व्याधियोंसे छूटकर उसे परम सुखका लाभ होताहै ॥ १४२ ॥ जो मनुष्य प्रातः समय उठतेही भक्तिमें तत्परहो इस स्तोत्रका पाठ करताहै, वोह समस्त आपत्तियोंसे मुक्ति लाभकर निःसन्देह धनधान्य और पुत्रोंसे युक्त हो जाताहै, ऐसा महादेवजीने कहाहै ॥ १४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमोऽध्यायः ६५.

वसिष्ठ उवाच ॥ स्तुत एवं नारदेन तदैव भगवाञ्छिवः ॥ प्रत्य-
क्षमगमत्तस्य नारदस्य महात्मनः ॥ १ ॥ नानाविभूतिसंप-
न्नो नानागणविराजितः ॥ वृषारूढो महाकायस्त्रिनेत्रो हिमसुंदरः
॥२॥ व्यालयज्ञोपवीती च व्याघ्रचर्मांम्बरोव्ययः ॥ उमया स-
हितः शंभुरुवाच वचनं प्रिये ॥३॥ धन्योसि त्वं महाभाग यस्ये-
यं भक्तिरीश्वरे ॥ संतुष्टोस्मि तरां विप्र वरं वरय सुव्रत ॥
॥ ४ ॥ दुर्लभं नास्ति ते किंचित्त्रिषु लोकेषु सर्वदा ॥ मद्भक्तो
नास्ति त्रैलोक्ये त्वत्तोन्यः प्रियको मम ॥ ५ ॥ वरं ददामि ते
सर्वं यत्ते मनसि संस्थितम् ॥ यन्न कस्मै पुरा तच्च तुभ्यं दास्या-
मि नारद ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि द-
र्शनात्ते वृषध्वज ॥ संपन्नो मे महान्कामो यस्य तुष्टो भवाञ्छिवः ॥
॥ ७ ॥ त्वत्प्रसादेन सर्वं हि प्राप्तं वै दर्शनात्तव ॥ संगीतार्ण

वसिष्ठजी बोले--जब नारदजीने भगवान् महादेवजीकी स्तुति इस प्रकार करी तब वे प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रगट होगये ॥ १ ॥ महादेवजी अनेक विभूतियोंसे सम्पन्नथे, अनेक गण उनके साथ विराजमान हो रहेथे, उनके तीन नेत्र, और हिमकी समान अति सुन्दर (श्वेत) महान् शरीरथा एवंच वे स्वयम् वृषके ऊपर आरूढथे ॥ २ ॥ अविनाशी महादेवजी-ने सर्पोंका यज्ञोपवीत और व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारण कियाथा, इसढंगसे पार्वतीको साथलिये हे प्रिये! महादेवजी नारदजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे महाभाग! तुम्हैं धन्यहै जो भगवान्में तुम्हारी ऐसी भक्तिहै, हे विप्र! हम तुमसे अतिशय सन्तुष्टहैं, अतएव हे सुव्रत! तुम वरकी याचना करो ॥ ४ ॥ तुम्हारे लिये त्रिलोकीमेंभी कुछ दुर्लभ नहींहै, और हमारे भक्तोंमें तुमसे अधिक और कोई मेरा प्रियभी नहींहै ॥ ५ ॥ जो कुछभी तुम्हारे मनमें है मैं सभी वरदान तुम्हैं दूंगा, बल्कि हे नारद! इसके प्रथम जो वर किसीको नहीं दिया उसेभी तुम्हैं देसक्ताहूं ॥ ६ ॥ नारदजी बोले–हे वृषभध्वज (अर्थात्–धर्मध्वज)!!! मेरे अहोभाग्यहै जो आपके दर्शनका लाभ मुझे हुआ, अतएव मैं कृतकृत्य होगया जब साक्षात कल्याणमूर्त्ति आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुएहैं तब मेरे सभी मनोरथ पूर्णहैं ॥ ७ ॥ आपके दर्शन होगये आपकी कृपासे यही बडाभारी (सबकुछ) लाभ हुआ, अब ऐसा (अनुग्रह) करिये कि–संगीत विद्यारूप

वतः किंचिद्यथा जानामि तत्कुरु ॥ ८ ॥ नादरूपो भवान्देवः नादेनैव प्रियः सदा ॥ ततोहं नादवेदं हि जानीयां त्वत्प्रसादतः ॥ ९ ॥ न त्वं योगशतैस्तुष्टो न तीर्थशतमज्जनात ॥ न हि दानसहस्रेभ्यो न व्रतैः कोटिसंमितैः ॥ १० ॥ गीताद्यथा महादेव संतुष्टः स्या महेश्वर ॥ अहं च गानसंसर्गात्तव भक्तिपथे स्थितः ॥ ११ ॥ संगीतशास्त्रसर्वस्वं वद मे सुकृपानिधे ॥ येनाहं सर्वरागांश्च नादब्रह्ममयान्परान् ॥ जानीयां त्वत्प्रसादेन संतुष्टश्चेद्यतो मयि ॥ १२ ॥ कचिन्नास्त्यपरो ज्ञाता ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ श्रीशिवोपि तदा श्रुत्वा विज्ञप्तिं नारदस्य तु ॥ प्रसन्नश्चाब्रवीत् सर्वं नादशास्त्रमुमापतिः ॥ १४॥ ईश्वर उवाच ॥ संगीतं नाम शास्त्रं ते कथयामि महामुने ॥ त्रैलोक्यदीपकं नाम ये पठंति समाहिताः ॥ १५ ॥ पश्यंति ते तु त्रैलोक्यं सर्वज्ञाश्च भवंति हि ॥ पार्वत्यै कथितं यद्वै तत्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥१६॥ गीतं नृत्यं च पाषंडं स्वररत्नानिवेदितम् ॥

सागरमेंसे कुछ मुझे लाभ होजाय ॥ ८ ॥ आप साक्षात् नाद (शब्द) रूप देवहैं, और उत्तम नाद आपको सदैव प्रियहै अतएव आप उसके द्वारा प्रसन्न होतेहैं, सुतराम् मैं आपकी कृपासे संगीतविद्याको जानना चाहताहूं ॥ ९ ॥ हे महादेव ! महेश्वर !!! आप जैसे गानद्वारा प्रसन्न होतेहैं ऐसे सैकडों योगकरने, अथवा सैकडों तीर्थोंमें स्नानकरने, सहस्रों दानकरने और करोडों दानकरनेसे भी वैसे प्रसन्न नहीं होते । सुतराम् मैंभी गानहीके संसर्गसे आपके भक्तिमार्गमें स्थित हुआहूं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे कृपानिधान ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्नहैं तो संगीतशास्त्रका सर्वस्व मेरे प्रति वर्णन करिये, और ऐसी कृपा करो जिससे मुझे नादब्रह्म स्वरूप समस्त रागोंकी प्राप्ति होजाय ॥ १२ ॥ परब्रह्म परमात्माका ज्ञाता अन्य कोईभी कहीं नहींहै ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले—नारदजीकी ऐसी प्रार्थना श्रवण करके प्रसन्नहो उमापति श्रीमहादेवजीने समस्त संगीतशास्त्र उन्हें कहसुनाया ॥ १४ ॥ महादेवजी बोले--हे महामुनि ! संगीतशास्त्रका वर्णन हम तुम्हारेप्रति करतेहैं, जो व्यक्ति चित्तको एकाग्रकर इसत्रैलोक्य दीपक नाम संगीतशास्त्रका पाठ करतेहैं ॥ १५ ॥ उन्हें त्रिलोकीका दर्शन होताहै और वे सर्वज्ञ होजातेहैं, जो प्रथम हमने पार्वतीसे कहाथा उसीको संप्रति तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं ॥ १६ ॥ इसीमें नृत्य गीत पाषण्ड और स्वर रत्नका प्रतिपादनहै, इसीमें ध्रुवरूप और परिबन्ध

ध्रुवं रूपकसंकाशं परिबंधं तथैव च ॥१७॥ गाहाकवित्वजे चैव रूपकं यतितालकम् ॥ पाषंडदर्शनं यस्य देहा हस्तं निवेदितम् ॥ १८ ॥ व्याहर्त्तुं कामतो मैनां सर्वं लयसमन्वितम् ॥ मृदंगपरिवादं च तत्सर्वं कथयाम्यहम् ॥ १९ ॥ नानात्मकं तथा गीतं नादवक्ता च वाद्यकम् ॥ तथा द्वयानुगं नृत्यं गीताधीनमतत्रयम् ॥ २० ॥ नादेन त्यजते वर्णः पदं वार्णात्पदाद्वचः ॥ वचसा सर्वमेतद्धि तस्मात्तादात्मकं जगत् ॥ २१ ॥ नादस्तु द्विविधः प्रोक्तोनाहताहतभेदतः ॥ पिंडे तत्सर्वमखिलं तस्मात्पिंडो विविच्यते ॥२२॥ परमात्मा चिदानंदः स्वयंज्योतिर्निरंजनः ॥ अद्वितीयं चिदाभासं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २३ ॥ न वेत्ति मायया च्छन्नो नरो नारायणं परम् ॥ चामीकरं कंठगतं यथाज्ञो नारद प्रभुम् ॥ २४ ॥ अविद्योपहता जीवा यथाग्नेर्विस्फुलिंगकाः ॥ दार्वाद्युपाधिसंभिन्नास्तदंशा एव नारद ॥ २५ ॥ अनादिभिः कर्मभिस्ते सुखदुःखात्मकैर्मुने ॥ नानारूपाणि दधति देहानायुश्च कर्मजान् ॥ २६॥ सूक्ष्ममेतच्छरीरं तु लिंगा-

भीहै ॥१७॥ गाहा कवित्वज रूपक यति ताल, इनसबका वर्णनहै, लयादिसहित मृदंगवादन विधि यह सभी हम तुमसे वर्णन करेंगे॥ १८॥ १९॥ अनेक भांतिके गीत नादवक्ता और वाद्य और नृत्य यह सभी एक दूसरेके आधीनहैं ॥ २० ॥ नादसे वर्ण (अक्षर) और वर्णसे पद, पदसे वाक्य वाक्यसे यह समस्त जगत् व्याप्तहै अतएव यह संपूर्ण संसार नादतद्रूप वर्णन किया गयाहै ॥ २१ ॥ आहत और अनाहत भेदसे शब्द दो प्रकारका है, यह दोनोंही प्रकारका पिण्डमें उपस्थितहै अतएव पिण्डका विवेचन कियाजाताहै ॥ २२ ॥ सच्चिदानन्द ज्योति स्वरूप निरंजन परमात्मा अद्वितीयहै, चिदानन्द और प्रकाश स्वरूपहै एवं च वोह अविनाशी सनातनहै ॥ २३ ॥ यह मनुष्य मायासे व्याप्त होकर परमेश्वर नारायणको इसप्रकार नहीं जान सक्ताहै, जैसे अज्ञानी (मूर्ख) अपने कंठमें स्थितहुए चामीकर (सुवर्ण) को नहीं पहिचानताहै ॥ २४ ॥ हे नारद ! अग्निके स्फुलिंग हों किन्तु—वे काष्ठ आदिके भेदसे बहुधा प्रतीत होतेहैं पर वे हैं सब उसीके अंश इसी प्रकार अज्ञानी जन ईश्वरकोभी पृथक्ही समझतेहैं ॥ २५ ॥ यह प्राणी सुखदुःखात्मक अनादि कर्मोंके द्वारा अनेक देहोंकी धारण करता आयु और कर्म जनित फलोंकोभी भोगताहै ॥ २६ ॥ यह सूक्ष्म शरीर लिंगनामसे कीर्त्तन कियागयाहै, सूक्ष्मेन्द्रिय,

रूयं परमं मतम् ॥ सूक्ष्मेंद्रियं पंचभूतप्राणावस्थात्मकं विदुः ॥ २७ ॥ उपभोगाय जीवानां जगत्सृजति लोकपः ॥ परमात्मा परानंदो विश्रांत्यै संहरत्यजः ॥ २८ ॥ पुनः सृष्टिं च संहारं प्रवाहानादिसंभवम् ॥ भिन्नास्ते ह्यात्मना जीवा भिन्नं चैवात्मनो जगत् ॥ २९ ॥ सृजन्प्रकृत्या भिन्नोसौ सुवर्णात् कुंडलादिवत् ॥ रज्जौ भुजंगसंभ्रांत्या ज्ञायते वै यथा परः ॥३०॥ आत्मनः पूर्वमाकाशस्ततो वायुस्ततोनलः ॥ अनलात्तोयमेतस्मात्पृथिवी समजायत ॥३१॥ महाभूतानि चोक्तानि तनुरेषा हि ब्रह्मणः ॥ परमात्मासृजद्विश्वं तस्मै वेदान्ददौ हरिः ॥ ३२ ॥ भौतिकं वेदशब्दैश्च ससर्ज स च वै जगत् ॥ नव प्रजापतीन्ब्रह्मा मनसैव तदासृजत् ॥ ३३ ॥ तेभ्यस्तु रैतसी सृष्टिः शरीराणां निगद्यते ॥ चतुर्विधानि चैतानि शरीराणि महामुने ॥ ३४ ॥ स्वेदोद्भिदजराय्वंडभेदाद्वै जगतीतले ॥ यूकादयः स्वेदजाता ह्युद्भिज्जाश्च

पंचभूत प्राण और अवस्थात्मक इसको कहतेहैं ॥ २७ ॥ लोककर्त्ता (अथवा पालक) मनुष्योंके कर्मजनित फलका उपभोगकरनेके लिये जगत्की रचना करताहै, और अजन्मा परमानंदस्वरूप परमात्मा विश्रामके निमित्त संहार करतेहैं ॥ २८ ॥ फिर इसीप्रकार संसारकी रचना और संहार होता रहताहै आत्मासे जीव और जीवसे जगत् भिन्नहै ॥ २९ ॥ यह प्रकृतिहीसे इसप्रकार भिन्न २ रचना करताहै जैसे कि, सुवर्णके कटक कुंडलादि सब बनाये जातेहैं, अथवा जैसे रस्सी भ्रान्तिसे सर्प प्रतीत होतीहै ॥ ३० ॥ आत्मासे प्रथम आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे भूमि उत्पन्न हुई थी ॥ ३१ ॥ यह महाभूत पर ब्रह्मके शरीरही कहकर कीर्त्तन किये गयेहैं ब्रह्माने विश्वकी रचना करी और ईश्वरने उन्हें वेदप्रदान करे ॥ ३२ ॥ वैदिक शब्दोंहीसे ब्रह्माजीने इस पंच भूतात्मक विश्वकी रचना करी थी; एवंच नव मानसिक प्रजापतियोंको रचाथा ॥ ३३ ॥ उन्हींसे रैतसी शरीरोंकी सृष्टि उत्पन्न हुई, सो हे महामुने ! यह शरीर चार प्रकारके कीर्त्तन किये गयेहैं ॥ ३४ ॥ स्वेदज उद्भिज्ज, जरायु और अंडज; भूमंडलके ऊपर यह चार प्रकारकी सृष्टिहै यूका,(अर्थात्--जूं लीख)

---

१ "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः, वायोरग्निरग्नेराप अद्भ्यः पृथिवीचोत्पद्यते" इतिश्रुतेः ॥

लतादयः ॥ ३५ ॥ जरायोर्मानुषादीनां पक्ष्यादीनां तदंडजः ॥
नादः सर्वत्र देहेषु विशेषान्मानुषे स्मृतः ॥ ३६ ॥ देहोत्पत्तिं
मानुषस्य शृणु तस्मान्महामुने ॥ आकाशे क्षेत्रपः पूर्वं तस्मा-
द्वायुः समागतः ॥ ३७ ॥ वायुर्धूम्रस्ततश्चाभ्रमभ्रं मेघेवतिष्ठते ॥
यत्नेनाप्यायितो ग्रस्तो ग्रीष्मे वै रश्मिभी रसः ॥ ३८ ॥ सूर्य्यो
मेघे घनरसं धत्ते तं वै बलाहकः ॥ यदा वर्षति जीवेन वर्षेण
पृथिवीतले ॥ ओषधींश्च तथा वृक्षान्संक्रामत्यविलक्षितः ॥
॥ ३९ ॥ तदन्नजातं ताभ्यश्च पुरुषैः शुक्रतां गतम् ॥ ऋतुस्नाता
यदा योषिदार्त्तवं जायते रजः ॥४०॥ निषिक्तं समरात्रिषु पुरुषः
स्मरमंदिरे ॥ विषमासु तदा नारी गर्भाशयगतं भवेत् ॥ ४१ ॥
कर्मणा प्रेरितो जीवो गर्भाशयगतस्तदा ॥ गर्भत्वं चैव प्राप्नोति
जलभूतोपि भौतिकः ॥ ४२ ॥ बुद्बुदः पंचरात्रेण कललं पंचविं-
शतिः ॥ द्रवत्वं मासि चाप्नोति रजःशोणितसंयमः ॥ ४३ ॥

दि स्वेदज लतावृक्षादि उद्भिज्ज ॥ ३५ ॥ जरायुज मनुष्यादि और पक्षीआदि अंडज
हैं, किन्तु नाद सबसे अधिक मनुष्यदेहमें होताहै ॥ ३६ ॥ अतएव हे महामु-
ने ! मनुष्योंके देहकी उत्पत्तिका वृत्तान्त श्रवण करो, सबसे प्रथम आकाशमें क्षेत्राधिप
स्थित रहताहै; फिर उससे वायुका आविर्भाव होताहै ॥ ३७ ॥ वायुसे धूम, धूम्रसे अभ्र,
(अभ्र--बादल) होतेहैं, और सूर्य्यकी उष्ण रश्मियोंद्वारा उसमें रसका सेवन कियाजाताहै
॥ ३८ ॥ जब सूर्य्यनारायण मेघसमूहमें रस स्थापन करदेतेहैं तब मेघमण्डल उसे भूम-
ण्डलके ऊपर बरसा देताहै, और वोह रस (जलरूपसे) अदृष्ट रीतिसेही औषधि तथा
वृक्षोंमें प्रविष्ट होजाताहै ॥ ३९ ॥ फिर उसीसे अन्न बनताहै, अन्नके द्वारा पुरुषोंके वीर्यकी
उत्पत्ति होतीहै, जब स्त्री ऋतुस्नाता होकर रजोवती होतीहै तब पुरुषको सम वा विषम रात्रि-
में सेवन करना कर्त्तव्यहै, तब वोह उसके गर्भाशयमें प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तब
जीव कर्मोंके द्वारा प्रेरित हुआ मनुष्य गर्भाशयमें स्थिति ग्रहण करताहै और उस समय वोह
जीव जलरूपही होताहै ॥ ४२ ॥ पांच रात्रिमें बुद्बुदाकार, पचीस दिनमें कलल स्वरूप
और एक मासमें वोह रक्त और वीर्य्यका संगम द्रवत्वको प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥

द्वितीये मासि संप्राप्ते पेशी स्याद्घनमर्बुदम् ॥ स्त्रीपुंन्नपुंसका भावा जायंते मुनिवंदित ॥ ४४ ॥ तृतीये च तथा मासे करांघ्रिशिरसोंकुराः ॥ अंगप्रत्यंगभागाश्च सूक्ष्माः स्युर्युगपन्मुने ॥ ४५ ॥ भीरुत्वाद्यास्तथा स्त्रीणां संकीर्णः संकरात्मनाम् ॥ यावत्प्रकृतिको गर्भे तादृशी जननी तथा ॥ ४६ ॥ मातृजं चापि हृदयं विषयानपि कांक्षति ॥ अत एव महाभाग नारीं दौहृदिनीं विदुः ॥४७॥ मनोभीष्टाप्रदानाद्धि गर्भस्य व्यंगतादयः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्मनोभीष्टमाचरेत् ॥४८॥ मातुर्यद्विषयालाभः स तु स्यात्तेन दुःखितः ॥ दोहदादर्थवान् भोगी राजकीयो भवेत्सुतः ॥ ४९ ॥ अलंकारप्रियश्चैव तपस्वी धर्मतत्परः ॥ देवतादर्शने प्रीतो भीतो भुजगदर्शने ॥ ५० ॥ गोधासनात्तु निद्रालुर्बलवान् मांसभक्षणात् ॥ माहिषेण सुरक्ताक्षं लोमशं च प्रसूयते ॥ ५१ ॥ एवं सर्वविकाराश्च संपद्यंते नरेखिलाः ॥ पंचमे च तथा मासे मांसशोणितपुष्टता ॥ ५२ ॥ अंगानां संधयश्चैव

हे मुनिवन्दित ! दूसरे महीनेमें उसमें घनत्व होकर स्त्रीपुरुषके चिह्न उदय होतेहैं ॥ ४४ ॥ तीसरे महीनेमें हाथ पैर और सिरके अंकुर एवं अंग प्रत्यंगके सूक्ष्मभागभी उत्पन्न होजातेहैं ॥ ४५ ॥ इसी मासमें स्त्रियोंको भीरुत्व आदि और संकरात्माओंको संकीर्णता आदिकी प्राप्ति होतीहै, जसी प्रकृति होतीहै वैसीही जननीके गर्भमें स्थिति होतीहै ॥ ४६ ॥ माताका हृदय जिन २ विषयोंकी आकांक्षा करताहै (वैसेही सन्तान होतीहै) अतएव हे महाभाग ! यों कहाहै कि, गर्भवती स्त्रीको ॥ ४७ ॥ मनोभिलषित वस्तुओंके देनेसे गर्भकी अव्यंगता (अर्थात् ऋजुता) आदि संपादित होतीहै अतएव पुरुषोंको चाहिये कि सर्वथा गर्भिणी स्त्रीके अभीष्टका संपादन करतारहै ॥ ४८ ॥ माताको जिस विषयका लाभ नहीं होता उसीसे (गर्भस्थ) जीव दुःखित होताहै, और गर्भहीसे पुत्र धनाढ्य भोगी और राजकीय होताहै ॥ ४९ ॥ अलंकारोंसे प्रेम करनेवाला, तपस्वी, धर्मशील और देवदर्शनका अनुरागी होताहै । सर्पका दर्शन करनेसे सन्तति भयभीत होतीहै ॥ ५० ॥ गोधा (शशा) आदि भक्षण करनेसे जातक निद्रालु, मांसभक्षणसे बलाढ्य, एवं महिषका मांस भक्षण करनेसे रक्तनेत्रोंवाला पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ५१ ॥ इसी प्रकार मनुष्यमें अखिल विकारोंका प्रादुर्भाव होताहै । तदनन्तर पंचम मासमें मांस और रक्त पुष्ट होने लगताहै ॥ ५२ ॥ और अंगोंकी सन्धियेंभी पृथक् २ दृष्टिगत

विविच्यंते पृथक्पृथक् ॥ षष्ठे मासि महाभाग नखस्नायुविविक्तता ॥५३॥ रोमाणां च तथा विप्र बलं चैव सुवर्णकम् ॥ सप्तमे ह्यंगसंपूर्तिर्ज्ञायते च तपोनिधे ॥ ५४ ॥ अधोमुखः स्वहस्ताभ्यां कर्णरंध्रे पिधाय सः ॥ उद्विग्नो भ्रांतचेतात्र गर्भस्थमलसंवृतः ॥ ५५ ॥ स्मरते पूर्वकर्माणि ह्यनुभूतान्यनेकशः ॥ नाना जातीस्तथा स्वस्य गर्भवासप्रपीडितः ॥ ५६ ॥ धिक्करोति तदात्मानं निंदते च पुनः पुनः ॥ केन वै कर्म्मणा मुक्तो भवेयं गर्भवासतः ॥ ५७ ॥ पापात्माहं येन दुःखमेतद्भोक्ष्यामि दुःखितः पुनःकदाचित्संसारे भवेयं विष्णुतत्परः ॥ ५८ ॥ गंगास्नानरतो यस्मान्नभवेयं पुनर्यथा ॥ इत्यादि मानसेनेच्छन् ह्यष्टमे बलपूर्णता ॥ ५९ ॥ नवमादिषु मासेषु समयः प्रसवस्य हि ॥ अनुभुंक्ते स्वकर्माणि गर्भस्थः पुण्यवर्जितः ॥ ६० ॥ दुःखेन महताविष्टो ध्यायते च परात्परम् ॥ नाडी रसवहा मातुरनुबद्धा पराभिधा ॥ ६१ ॥ नाभिस्था स्रवते चास्य गर्भस्थस्य मुखे मुने ॥

होने लगतीहैं । हे महाभाग ! छठे महीनेमें नख और स्नायु पृथक् २ प्रतीत होने लगतेहैं ॥ ॥ ५३ ॥ रोम बल और वर्णकी विविक्ति भी पृथक् २ होतीहै । फिर इसके पश्चात् हे तपोनिधे ! सप्तम मासमें समस्त अंग परिपूर्ण होजातेहैं ॥ ५४ ॥ नीचेको मुखकर हाथोंसे दोनों कर्णविवरोंको ढकके भ्रान्तचित्त और उद्विग्नहो यह प्राणी गर्भस्थ मलसे व्याप्त रहताहै ॥ ॥ ५५ ॥ अनेक प्रकारसे आचरण किये हुए अपने अनेक कर्मों तथा अनेक जातियोंका स्मरण करता अथच गर्भवास दुःखसे विशेष पीडित रहताहै ॥ ५६ ॥ वारंवार अपने आपकी निन्दाकर उसे धिक्कार देताहै और यह विचार करताहै कि, किस कर्मके करनेसे मैं इस गर्भवासकी पीडासे मुक्त होऊं ॥ ५७ ॥ मैं बडापापीहूं जो इसदुःखका उपभोग कररहाहूं, यदि अब संसारमें मेरा जन्म होजाय तौ अवश्यही मैं विष्णुभक्तिमें तत्पर होऊंगा ॥ ५८ ॥ जिससेकि, फिर गंगास्नान आदि करनेकीभी कोई आवश्यकता नहो, इत्यादि विचार करते २ अष्टम मास बलकी परिपूर्णताका लाभ होताहै ॥ ५९ ॥ और नवम आदि मासोंमें प्रसवकाल कीर्त्तन किया गयाहै, गर्भमें स्थितहो पुण्यरहित अपने कर्मोंका उपभोग करताहै ॥ ६० ॥ अतिशय दुःख से पीडितहो परात्पर ईश्वरका ध्यान करताहै, माताकी रसबद्धा नाम एक रसवाहिनी नाडी होतीहै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! वोह नाभिप्रदेशमें स्थित होतीहै और इस गर्भस्थितके मुखमें रस

कृतांजलिपुटो भाले पृष्ठे मातुः समास्थितः ॥ ६२ ॥ आस्ते संकोचयन्गात्रं गर्भदक्षिणपार्श्वगः ॥ नारी तु वामपार्श्वस्था क्लीबो मध्ये समास्थितः ॥ ६३ ॥ प्रसूतिमारुतैर्विप्र क्रियतेधःशिराः शिशुः ॥ महदार्त्तिसमायुक्तः प्रेरितः सूतिमारुतैः ॥ ६४ ॥ संकोचयंस्तु गात्राणि यंत्रच्छिद्रेण वै तदा ॥ निःसार्य्यते प्रकुर्वन्स मातुरार्त्तिं मुनीश्वर ॥ ६५ ॥ पूयक्लिन्नो यथा कीटो व्रणादिव महौषधैः ॥ संसारवायुना स्पृष्टो जातमात्रस्तदैव हि ॥ पूर्वसंस्कारसंपन्नो नष्टान्यस्मृतिरंजसा ॥ ६६ ॥ स्तन्यपाने प्रवृत्तोसौ बालको भवमोहितः ॥ मातृजाः पितृजा भावा षड्विधाः सर्वदेहिनाम् ॥ ६७ ॥ प्रसंगात्तानहं वक्ष्ये नादहेतून्महामुने ॥ आत्मजा रजसा प्रोक्ताः सात्वताः सत्वसंभवाः ॥ तमोभवास्तथा भावास्तामसाः परिकीर्त्तिताः ॥ ६८ ॥ मृदवो सृक्तथा मेदो प्लीहा मज्जा यकृद्गुदः ॥ हृदयं नाभिरित्याद्या मातृजाः समुदीरिताः ॥ ६९ ॥ श्मश्रूणि रोमकेशाश्च स्नायुर्धमनयो न-

टपकातीहै, और यह मस्तकोपरि हाथ जोड माताके पृष्ठभागमें उपस्थित रहताहै ॥ ६२ ॥ गर्भके दक्षिण पार्श्वमें गात्रोंको संकुचित करके स्थित रहताहै, स्त्री वामपार्श्वमें और क्लीब (नपुंसक) मध्यभागमें उपस्थित रहताहै ॥ ६३ ॥ प्रसववायु उसे अधशिरा बनादेतीहै, और जब प्रसवकालीन वायु उसके शिरको नीचाकर देतीहै तब वोह शिशु बडा पीडित होजाताहै ॥ ॥ ६४ ॥ फिर वोह पवन उसके गात्रोंको संकुचितकर यन्त्रके छिद्रसे बाहर निकाल देतीहै, हे मुनिराज ! इससे उसकी माताको अधिक कष्ट होताहै ॥ ६५ ॥ जैसे दुर्गन्धिसे व्याप्त हुए कीट औषधिद्वारा व्रणसे निकाल डाले जातेहैं इसी प्रकारसे उस गर्भसे बाहर निकाल दिया जाताहै ! फिर उत्पन्न होतेही सांसारिक वायुसे स्पृष्टहो तत्काल इसकी स्मृतिका विनाश होजाताहै ॥ ६६ ॥ और यह बालक सांसारिक मायासे मोहितहो माताका स्तन पान करनेमें प्रवृत्त होजाताहै, सब प्राणियोंमें मातृज और पितृज छै २ भाव होतेहैं ॥ ६७ ॥ हे महामुनिराज ! प्रसंगवशात् अब हम उन नादहेतु स्वरूप षड् भावोंका वर्णन करतेहैं, आत्मजभाव राजस, सत्वसमुत्पन्न सात्विक और तमोगुणीभाव तामस कहलातेहैं ॥ ६८ ॥ मार्दव, अस्थियें, मेद (चर्बी) प्लीहा, मज्जा, हृदय और नाभि यह सब मातृज भावहैं ॥ ६९ ॥ श्मश्रु (डाढी मूछ आदि) रोम, क्लेश, स्नायु और नाडियें, नख, दांत और वीर्य्य यह सब

खाः ॥ दंतास्तथैव शुक्रं च भावाः पित्र्युद्भवाः स्थिराः ॥ ७० ॥ वपुर्वर्द्धिष्णुता रूपं बलं वृद्धिस्तथा स्थितिः ॥ अलुब्धत्वं तथा तृप्तिरित्याद्या राजसा मताः ॥७१॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नो-त्तानमेव च ॥ धर्माधर्मौ तथा चायुर्भावना इंद्रियाणि च ॥ आत्मजास्तु महाभाग प्रोक्ता भावा मदादिभिः ॥ ७२ ॥ ज्ञाने-न्द्रियाणि वक्ष्यामि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ॥ चक्षुः श्रोत्रं तथा जिह्वा स्पर्शनं घ्राणमेव च ॥ ७३ ॥ कर्मेंद्रियाणि वाक्चैव करां घ्री गुदमेहने ॥ विषयाः शब्दरूपे च स्पर्शो गंधस्तथा रसः ॥ ॥ ७४ ॥ वचनादानगमना विसर्गानंदनाः परे ॥ क्रियास्तेषां महाभाग मनोबुद्ध्यंतरद्वयम् ॥७५॥ सुखदुःखे मनोहेतुः स्मृति-र्भीतिर्विकल्पकम् ॥ धियः क्रियाः समाख्याताः क्रमादेव महामुने ॥ ७६ ॥ तदंककरणं भेदास्त्रिधा प्रोक्तास्त्रिभिर्गुणैः ॥ आस्तिक्यं देवभक्तिश्च विप्रभक्तिस्तथैव च ॥७७॥ इत्याद्याः सात्विका भावा राजसांश्च तथा शृणु ॥ कामः क्रोधस्तथा मानो मदोहंमान एव च ॥ इत्याद्या राजसाः प्रोक्ता निद्रालस्यं प्रमादकः ॥ ७८ ॥

भाव पितृज कहे जातेहैं ॥ ७० ॥ शरीरवृद्धि, शक्ति, रूप और बल वृद्धि तथा स्थिति अलोभ तथा तृप्ति यह राजसभावहैं ॥ ७१ ॥ इच्छा द्वेष सुख दुःख प्रयत्न और उन्नति धर्म अधर्म तथा आयु भावना (इच्छा) और इन्द्रियें हे महाभाग ! यह सब आत्मज भाव वर्णन कियेगयेहैं ॥ ७२ ॥ अब ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इनका वर्णन करतेहैं, चक्षु (नेत्र), श्रोत्र (कान), जिह्वा, स्पर्शन (त्वचा) और नासिका यह पांच ज्ञानेन्द्रियहैं, वाक् (वाणी) हाथ, पैर गुदा और उपस्थ यह कर्मेन्द्रियहैं विषय उनके यहहैं शब्द रूप स्पर्श गन्ध तथा रस ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ वचन, ग्रहणकरना चलना, त्याग और आनन्द हे महाभाग ! इनकी क्रिया मन और बुद्धिके अन्तर्गतहै ॥ ७५ ॥ हे महाभाग ! सुख दुःखमें मनही हेतुहै, स्मृति भय और संकल्प विकल्प यह सब बुद्धिकी क्रियाएँ कहकर कीर्त्तन करीहैं ॥ ७६ ॥ सत्व रज तम इनतीन गुणोंके भेदसे इनकेभी तीनही भेद होतेहैं, आस्तिक्य, देवभक्ति और विप्रभक्ति यह उनके नाम हैं ॥ ७७ ॥ इत्यादिक तौ सात्विक भावहैं, अब राजसभावोंको सुनो, काम क्रोध मान मद और अहंकार इत्यादि राजसभावहैं । निद्रा आलस्य और प्रमाद ॥ ७८ ॥

हिंसासूयाप्रभृतयस्तामसाः परिकीर्त्तिताः ॥ अनालस्यं तथा-रोग्यं प्रसन्नेंद्रियता तथा ॥ इत्याद्याः स्वात्मजा भावाः प्रोक्ता योगविशारदैः ॥ ७९ ॥ पंच भूतात्मको देहो यस्मा दुद्गुणको मतः ॥ उत्क्षेपणादिकर्माणि पंच प्रोक्तानि योगिभिः ॥ ॥ ८० ॥ प्राणापानौ तथा व्यानः समानोदानकौ तथा ॥ नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ८१ ॥ दशैते वायवः प्रोक्ता विकृतश्च तथा ततः ॥ तेषां श्रेष्ठस्तथा प्राणो नाभिकंठादिषु स्थितः ॥ ८२ ॥ मुखनासिकयोर्नाभौ हृत्कंजे संचरत्यसौ ॥ उच्चारणं च शब्दस्य निश्वासोच्छ्वासकासकाः ॥ ८३ ॥ एतेषां कारणं प्रोक्तोऽपानवायुर्गुदे मतः ॥ तथोदरे च जंघायां नाभिजानूरुषुस्थितः ॥ ८४ ॥ अस्य कर्म विसर्गः स्यान्मुने मूत्रपुरीषयोः ॥ श्रोत्राक्षिगुल्फकट्यां च घ्राणे व्यानश्च कीर्त्तितः ॥ ८५ ॥ प्राणापानधृतित्यागग्रहणाद्यस्य कर्म च ॥ समानो व्याननिलयं शरीरं वह्निना सह ॥ ८६ ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीरंध्राणि नारद ॥ तेषु वै संचरन्वायुर्देहपुष्टिं करोति वै ॥ ८७ ॥

हिंसा असूया (गुणोंमें दोषारोपण) आदि सब तामसभाव कहलातेहैं, । आलस्य न होना, आरोग्य तथा इन्द्रियोंकी प्रसन्नता इत्यादि भावोंको योग विशारदोंने स्वात्मज भाव कहके वर्णन किया है ॥ ७९ ॥ यह पंचभूतात्मक देह जिनके आधारसे ही उत्क्षेपण आदि पांच कर्म करताहै ॥ ॥ ८० ॥ प्राण अपान तथा व्यान समान तथा उदान नाग कूर्म कृकर देवदत्त और धनंजय ॥ ८१ ॥ यह दश प्रकारकी वायु कीर्त्तन करी गईहैं, इन सबमें प्राणवायु श्रेष्ठहै और वोह नाभि कंठ तथा कटि आदि स्थानोंमें स्थित रहतीहै ॥ ८२ ॥ मुख नासिका नाभि और हृदयके कमलमें इस वायुका संचार होताहै, शब्दका उच्चारण, श्वासका ग्रहण करना और परित्याग करना एवंच खाँसना आदि ये इसके कार्य्यहैं ॥ ८३ ॥ अपान वायुकी स्थिति गुदामें रहती है, तथा उदर जंघा और नाभि जानु एवं ऊरुओंमें प्रवृत्ति इस वायुकी रहतीहै ॥ ८४ ॥ हे मुने ! मलमूत्रका परित्याग कराना इसवायुका कर्महै । व्यान वायु कर्ण (कान) नेत्र, गुल्फ, कटि और घ्राण (नासिका) में स्थित रहतीहै ॥ ८५ ॥ प्राण अपान और धृतिका त्याग और ग्रहण करना ये इसके कर्महैं समानभी इन्हीं स्थानोंमें निवास करतीहै, और हे नारद ! अग्निके संसर्गसे बहत्तर सहस्र नाडियोंके रन्ध्रमें विचरकर यह वायु देहको पुष्ट करती

पादयोर्हस्तयोः संधावुदानस्तस्य कर्म च ॥ देहत्रयेणोत्क्रमणे कीर्त्तितं तव नारद ॥ ८८ ॥ पंच नागादयो धातून्प्राणानाश्रित्य सर्वदा ॥ निमेषोद्गारछिक्कादितंद्राशोभादिकर्म च ॥ ८९ ॥ घ्राणेंद्रियं तथा भूमेर्गंधाद्याः स्थैर्य्यधैर्य्यको ॥ गौरवं श्मश्रुकेशाश्च नखदंताश्च कीकसम् ॥ ९० ॥ वातादिधातुप्रकृति व्योमादिप्रकृतिस्तथा ॥ अद्भ्यस्तु रसनं शैत्यं स्वेदमूत्रादि मार्दवम् ॥ ९१ ॥ तेजसो लोचनं रूपं पित्तं पाकः प्रकाशता ॥ ओजस्तेजस्तथा शौर्यं मेधावित्वं तथोष्मता ॥ ९२ ॥ सप्तप्रकारा देवर्षे सात्विको देवविग्रहः ॥ ब्रह्मेंद्रयमकौबेरगंधर्ववारुणार्थिकः ॥ ९३ ॥ षड्विधो राजसः ख्यातः पैशाचो राक्षसासुरौ ॥ शाकुनः सार्पप्रेताख्यो विग्रहः परिकीर्त्तितः ॥९४॥ त्रिविधस्तामसो मात्स्योंघ्रिपाच्चैव शवाकृतिः ॥ षडंगानि तु पिंडस्य शिरः पादौ करौ कटिः ॥९५॥ प्रत्यंगानि च वक्ष्यंते त्वचः सप्तकुलस्तथा ॥ छन्नाः कोशाग्निभिर्विप्र स्नायुश्लेष्मजरायुभिः ॥ ९६ ॥

है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ हाथ पैरोंकी सन्धिमें उदानवायु स्थितरहतीहै, हे नारद ! देहको उन्नत अवनत करना उसका कर्महै सो हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ८८ ॥ नाग कूर्म कृकर देवदत्त धनंजय ये पांच वायु सदैव प्राणोंका आश्रय लेकर निमेष (पलकोंका लगना) उद्गार (फैलना) छिक्का और तन्द्रा आदि कर्मोंको सम्पादन करतेहैं ॥ ८९ ॥ भूमिके धैर्य स्थैर्य आदि गुण तथा नासिका इन्द्रियका (सूंघना आदि) कार्य्य यह सब उसीसे होतेहैं, गौरव (भारी पन) श्मश्रु (रोमादि) केश नख और दन्त तथा हड्डियें ॥ ९० ॥ वातआदि धातु प्रकृति तथा आकाशादि प्रकृति होतीहैं, जलके द्वारा रसशीतलता स्वेद (पसीना) मूत्रादि और कोमलता यह सब होतीहैं ॥ ९१ ॥ तैजस प्रकृतिके द्वारा नेत्रोंसे रूपका अवलोकन, पित्त पाक और प्रकाशका होना, ओज (बल पराक्रम) बुद्धिमानी तथा उष्णताका प्रादुर्भाव होताहै ॥ ९२ ॥ हे देवर्षे नारद ! परमात्मका सात्विक विग्रह (देह) सात प्रकारकाहै ब्रह्म इन्द्रिय कौबेर गान्धर्व वारुण और आर्थिक यह छै प्रकारका राजसहै, पैशाच राक्षस आसुर शाकुन सार्प और प्रेत इतने प्रकारके देह वर्णन कियेहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ तामस देह तीन प्रकारका होताहै मात्स्य तथा पशुओंकी समान हाथ पैर होना । पिण्डके छै अंगहैं शिर चरण हाथ तथा कमर, प्रत्येक अंगका वर्णन करतेहैं, सातत्वचा होतीहैं हे नारद ! कोश स्नायु

सीमाभूताश्च धातूनां वा धातूनंतरेषु च ॥ काष्ठसारोपमा विप्र प्रोक्ता ह्येते मदादिभिः ॥ ९७ ॥ प्रथमो मांससंधर्षस्तासां धमनयः शिराः ॥ स्नायुः स्रोतांसि रोहंति पंकपंकजकंदवत् ॥ ९८ ॥ असृङ्मेदश्लेष्मशकृत्पित्तशुक्रधराः पराः ॥ धातवः सप्त प्रोक्ताश्च त्वगसृङ्मांसमेदकाः ॥ अस्थीनि मज्जा शुक्रं च सर्वविग्रहसंस्थिताः ॥ ९९ ॥ उत्पत्तिमेषां वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥ जाठरेणाग्निना पक्वाद्भवेदन्नरसान्मुने ॥१००॥ त्वग्रक्तं चैव रक्ताद्यैः पक्वैः शोकाग्निना ततः ॥ जन्यंते धातवः सर्वे आश्रयानपि मे शृणु ॥१०१॥ रक्ताश्रयस्तथा श्लेष्माशयः पित्ताशयः परः ॥ आमाशयस्तथा पक्वाशयो बाह्याशयो मतः ॥ १०२ ॥ मूत्राशया इति सप्त प्रोक्तास्ते विप्र भक्तितः ॥ पित्तपक्वाशयांते वै स्त्रीणां गर्भाशयोष्टमः ॥ १०३ ॥ कफासृग्भ्यां प्रसन्नाभ्यां हृदयं कमलाकृति ॥ सुषिरं स्यादधोवक्रं यकृत्प्लीहांतरस्थितम् ॥ इदं वै बुद्धिसंस्थानं वर्त्तते मुनिवंदित ॥१०४॥

(चर्बी) श्लेष्मा और जरायुसे अंग आच्छादित रहतेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ एवंच धातुओंके सीमा भूत येहीहैं और हे विप्र ! हमसरीखोंने इनकी काष्ठ सदृश उपमा वर्णन कीहै ॥ ९७ ॥ प्रथम उनमेंसे मांसकी धारण करनेवालीहैं और उनकी शिरा नाडियेंहैं, जैसे पंकमें कमलकी उत्पत्ति होतीहै इसीप्रकार मज्जा आदिमें नाडियें उद्भिज्ज रहतीहैं ॥ ९८ ॥ रुधिर मेद श्लेष्मा विष्ठा और वीर्य अन्य नाडियें इनको धारण करतीहैं । प्राणीके देहमें त्वचा असृग् (रक्त) मांस मेद अस्थि मज्जा और वीर्य येही सात धातुएँ व्याप्त रहतीहैं ॥ ९९ ॥ हे नारद ! अब हम इनकी उत्पत्तिका वर्णन करतेहैं सो तुम उसीमें मन लगाकर उसका श्रवणकरो, जब जठराग्नि अन्नका परिपाक करतीहै तब उसीके रससे त्वचा और रक्तका निर्माण होताहै ॥१००॥ फिर शोकाग्निके द्वारा रक्तादिके परिपक्व होनेसे समस्त धातुएं बनतीहैं, अब उनके आशय काभी श्रवण करो ॥ १०१ ॥ रक्ताशय, श्लेष्माशय, पित्ताशय, आमाशय, पक्वाशय और आद्याशय माने गयेहैं ॥ १०२ ॥ और हे विप्र नारद ! सातवां एक मूत्राशयभी कीर्तन किया गयाहै, एवंच पित्त पक्वाशयके अनन्तर स्त्रियोंके एक आठवां गर्भाशयभी माना गयाहै ॥ १०३ ॥ जब कफ और रक्त प्रसन्न होतेहैं तब हृदयकी आकृति कमल तद्वत् होतीहै, और यकृत् प्लीहाके अन्तरमें अधोमुखी एक छिद्र होजाताहै हे मुनिवन्दित ! इसीको बुद्धिका

एतद्यथा तमो व्याप्तं निमीलति स्वपित्यपि ॥ यदा विकाशते तद्धि तदात्मा जागरूपकः ॥ १०५ ॥ स्वप्नश्चैव सुषुप्तिश्च ताभ्यां द्वयेंद्रियाणि चेत् ॥ स्वापस्तदा महाभाग वाह्यानीमानि नारद ॥ १०६ ॥ लीयते हृदि जागर्त्ति चित्तं स्वप्नस्तदोच्यते ॥ यदा विलीयते प्राणैर्मनश्चेत्सा सुषुप्तिका ॥ १०७ ॥ नव स्रोतांसि देहेषु श्रवणे नयने तथा ॥ नासे च वदनं चैव तदा द्वे गुदशेफकौ ॥ १०८ ॥ तानि स्युर्मलवाहानि बहिः सर्ववपुष्मताम् ॥ स्तनयोर्द्वे भगे चैव स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि तु ॥ १०९ ॥ जालानि षोडशोक्तानि देहस्थानि महामुने ॥ कूर्चाः षट् करयोरंघ्र्योः स्कंधे मेढ्रे मयेरिताः ॥ ११० ॥ मांसरज्जुचतुष्कं च पार्श्वयोः पृष्ठवंशके ॥ शिरसि पंचमोवंत्यो द्वे जिह्वे लिंगयोस्तथा ॥१११॥ विख्याता राशयोस्थ्नां वै दश चाष्टौ तपोनिधे ॥ पंचधास्थीनि वर्त्तन्ते वलयादिकभेदतः ॥११२॥ अस्थ्नां शतानि वै त्रीणि वर्त्तते सर्वदेहके ॥ दशोत्तरं महाभाग द्विशतं त्वस्थिसंधयः ॥ ११३ ॥ प्रातरस्तेनसेवंताः कोरकाश्च तथो-

स्थान कहतेहैं ॥ १०४ ॥ यह अन्धकारसे व्याप्त हुएकी समान संकुचित होता और बन्दहो जाताहै, एवंच जब इसका विकास होताहै उससमय आत्मा जाग्रत् अवस्थामें रहताहै ॥ १०५ ॥ उसीकी स्वप्न और सुषुप्ति यह दो अवस्था होतीहैं हे महाभाग नारद ! जब यह बाह्य इन्द्रियें लय होकर हृदयमें जाग्रत् रहतीहैं उस अवस्थाको स्वप्नकहतेहैं; एवंच जब प्राणोंके साथही मनभी लयहो जाताहै तब उसे सुषुप्ति कहतेहैं ॥ १०६॥१०७॥ प्राणियोंके देहमें दोकान, दोनेत्र, नासिकाके दोरन्ध्र, मुख, गुदा और शिश्नेन्द्रिय ये नौछिद्र पुरुषोंके देहमेंविद्यमान होतेहैं ॥१०८॥ और येही सब देहधारियोंके मलको वहन करतेहैं तथा दोस्तन और एक भगस्त्रियोंके यह तीन और अधिक होतेहैं ॥ १०९॥ हेमहामुने ! देहोंमें सोलह जाल माने-गयेहैं हाथ पैरोंके छै कूर्च स्कन्ध (कन्धे) मेढ्र (शिश्न) ॥ ११० ॥ चार मांसरज्जु पार्श्वभागकी और पृष्ठवंश शिरमें दो जिह्वा और लिङ्गमें ॥ १११ ॥ और हे तपोनिधे ! अस्थियोंकी राशियें अठारह कीर्त्तन करी गईहैं, एवंच वलय आदि भेदसे पांच प्रकारकी अस्थियें होतीहैं ॥ ११२ ॥ और मनुष्यके समस्त देहमें एकसौ तीन अस्थियें विद्यमान होतीहैं, और हे महाभाग ! दोसौ दस अस्थियोंकी सन्धियेंहैं ॥ ११३ ॥ प्रतर, स्तेन, सेवन्त,

खलाः ॥ शंखावर्त्ता मंडलाश्च सामुद्रास्तुंडकास्तथा ॥११४॥ अष्टप्रकाराश्चोदिष्टा अस्थिसंधिमुखा मुने ॥ पेशीस्नायुशिरासंधि त्रिसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ ११५ ॥ चतुर्द्धा स्नायवोप्यन्ये शतानि स्नायवः परे ॥ सुखिराः कुंदुराः पृथ्वप्रतानादिप्रभेदतः ॥११६॥ स्नायुबद्धं वपुः प्रोक्तं भूरिभारक्षमं भवेत् ॥ नौर्यथा बंधनैर्बद्धा भूरिभारक्षमा भवेत् ॥ ११७ ॥ पेशीशतानि वै पंच स्त्रीणां विंशाधिका मताः ॥ स्तनयोर्दश लक्ष्यंते यौवने दश वै भगे ॥ ११८ ॥ अंतर्द्धे प्रसृतो बाह्ये तिस्रो वै गर्भमार्गगाः ॥ शंखना भ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्यत्र तृतीयके ॥ ११९ ॥ तस्मिन्नावर्त्तके विप्र गर्भशय्याच संस्थिता ॥ रोहितास्या तत्र पेशी शुक्रजीवनिका मता ॥ १२० ॥ आर्त्तवे शुक्रपेशिन्यस्तिस्रः प्रस्थाविका मुने ॥ एकोनत्रिंशल्लक्षाणि सार्द्धानि शत नंदकम् ॥ १२१ ॥ षट्पंचाशच्च वै प्रोक्ताः शिरा धमनयो मुने ॥ दश नाड्यस्तु तासां वै मूलभूताः कलेवरे ॥ १२२ ॥ द्व्यंगुलं वांगुलदलं यवं यवदलं

कोरक, ऊखल, शंखावर्त्त, मण्डल, सामुद्र तथा तुण्ड ॥ ११४ ॥ हे मुने ! ये आठ प्रकार के अस्थि सन्धियोंके मुख वर्णन कियेहैं, पेशी (मांसपिंड) स्नायु और शिरा (नाडियों) की सन्धियें तीन सहस्र कीर्त्तन करीहैं ॥ ११५ ॥ मुख्य स्नायु चार प्रकारकी होतीहैं, और अन्य स्नायु शतप्रकारकी मानीगईहैं ॥ ११६ ॥ स्नायुद्वारा बँधे हुए शरीरहीमें यह शक्ति होतीहै कि वोह प्रभूत भारका वहन करसके, जैसे कि, दृढबन्धनोंसे बँधीहुई नौका अधिक भार वहन करनेमें समर्थ होतीहै ॥ ११७ ॥ मांसपिण्ड एकसौ पांच होतेहैं और स्त्रियोंके बीस अधिक अर्थात् एकसौ पचीस मांसपिण्ड होतेहैं दश तौ उनमेंसे स्तनोंहीमें लक्षित होतेहैं युवा अवस्थामें दश योनिप्रदेशमें दीखतेहैं ॥ ११८ ॥ इनमेंसे कुछतौ भीतरही और कुछ बाहर स्थित रहतेहैं, तथा तीन गर्भमार्गमें होतेहैं और योनि शंख नाभिके आकारकी होतीहै अतएव यहां तीन आवर्त्त होतेहैं ॥ ११९ ॥ हे विप्र ! उसी आवर्त्तमें गर्भशय्या स्थित रहतीहै रोहित मत्स्यके आकारका मांसपिंड वहां स्थितहै जोकि वीर्यको ग्रहण करताहै ॥ १२० ॥ ऋतुके समय हे मुने ! मांस और वीर्यके तीन पिण्ड होजातेहैं, और उन्तीसलक्ष डेढसौ उसके सूक्ष्म अंश होतेहैं ॥ १२१ ॥ हे मुने ! छप्पन तौ शिरा और धमनियेहैं; और उनकी मूलरूप दशनाडियें शरीरमें स्थितहैं ॥ १२२ ॥ दो अंगुल एक अंगुल यव तथा यवदल और द्रुम

तथा॥ गत्या द्रुमदलस्यैव वनयः प्रतता यदा ॥१२३॥ तास्तदा सप्त भिद्यंते शतानि हि तपोनिधे ॥ द्वे जिह्वे संस्थिते वाक्यरसज्ञानस्य कारणे॥१२४॥ घ्राणेंद्रिये तथा द्वे वै गंधहेतुर्दृशोर्द्वयम् ॥ निमेषोन्मेषकृच्छ्रोत्रे शब्दग्राहि द्वयं भवेत् ॥ १२५ ॥ नाड्यो रसवहाः प्रोक्ता विंशतिः परिसंख्यया ॥ तैरसैर्वर्द्धते देहो देहिनां तपसोनिधे ॥ १२६ ॥ नाभ्यां प्रतिस्थिता ह्येता नाड्यः सर्वमुनिस्तुत ॥ ऊर्ध्वं दश तथाधस्थाच्चतस्रस्तिर्यगायताः ॥ ॥१२७॥ ऊर्द्ध्वगा हृदयं प्राप्ताः प्रतीयंते पृथक् कृताः ॥ वातपित्तकफान् रक्तं रसं द्वे द्वे विमुंचतः ॥१२८॥ शब्दरूपरसादीन्वै मुने तत्रावगच्छतः॥ द्वे द्वे च भाषणं घोषं स्वापं रोधं च रोदनम् ॥ १२९ ॥ शुक्रं न्यस्तं तु स्रवतः स्त्रियां द्वे मुनिसत्तम ॥ पक्वाशयस्थितास्त्रेधा पृथक्ताश्च ह्यधोमुखाः ॥ १३० ॥ प्रवर्त्तयंति तत्राद्या दश वातादि पूर्ववत् ॥ द्वे धमन्यो महाभाग भुक्तमन्नं जलं यथा ॥ १३१ ॥ मूत्रं मलं प्रकुरुतो वहतोत्र समाश्र-

वृक्षके समान जब यह विस्तृत होतेहैं ॥ १२३ ॥ तब हे तपोनिधे ! यह एकसौ सात भेदको प्राप्त होजातेहैं उनमेंसे दो जिह्वामें स्थित होतेहैं जो वाक्य और रसज्ञानका कारणहैं ॥ १२४ ॥ घ्राणेन्द्रियमेंभी दो हैं उनसे गन्धका कार्य्य सम्पादित होताहै दोही नेत्रोंमें स्थितहैं जो निमेष और उन्मेष करतेहैं, अथच दो कानोंमें स्थित होकर शब्दको ग्रहण करतेहैं ॥ १२५ ॥ हे तपोनिधे ! बीस नाडियें रसवाहिनी मानी गईहैं, और उसीरसके द्वारा देह धारियोंके देहकी वृद्धि होतीहै ॥१२६॥ हे मुनिवन्दित ! यह समस्त नाडियें नाभिमें स्थितहैं, दश ऊपर और नीचेको गईहैं, तथा चार तिर्यक् (तिरच्छी) होकर देहमें व्याप्तहैं ॥ १२७ ॥ जो नाडियें ऊपरको गईहैं वे हृदयमें स्थितहैं और तीन प्रकारसे वे पृथक् २ दीखतीहैं, दो२ वात पित्त कफ और रक्त रसको त्यागतीहैं ॥ १२८ ॥ हे मुने ! शब्द रूप रस आदि उनके विषयोंको श्रवण करो, दो २ संभाषण, अन्यशब्द स्वप्न अवरोध और रोदन करतेहैं ॥ ॥ १२९ ॥ और हे मुनिराज ! उसमेंसे दो स्त्रीके विषे रेतःस्राव करतेहैं, एवंच वे तीन भांतिसे पक्वाशयमें स्थित हुए पृथक् २ अधोमुख होके रहतेहैं ॥ १३० ॥ पहिले तौ प्रथमही की समान दस वायुओंको प्रवृत्त करतेहैं, जैसे कि दो धमनी नाडियें भुक्त अन्न जलका यथोक्त स्थानोंमें संचालन करतीहैं ॥ १३१ ॥ दो मल मूत्रको वहन करतेहैं, और दो स्त्रियोंके रजको

यान् ॥ मुंचतश्चार्त्तवं स्त्रीणां द्वे शकृद्विंशतेंत्रके ॥ १३२ ॥ स्वेदं सपर्ययं त्वष्टौ रोमकूपमुखा मताः ॥ प्रवेशयंति चैवांतो रसानभ्यंगसंभवान् ॥ १३३ ॥ सप्तोत्तरशतं मर्म्मस्थानानि मुनि पुंगव॥त्रिकोटिश्चैव पंचाशन्नियुतानि महामुने॥ १३४॥रोमकूपाश्च श्मश्रूणि केशाश्चैव त्रिलक्षकाः ॥ मानं जलादेर्वक्ष्यामि शृणु नारद कथ्यते ॥ १३५ ॥ दशांजलिमितं तोयं रसस्यांजलयो नव ॥ शोणितस्याष्टांजलयो विष्ठायाः सप्त चोदिताः ॥ १३६ ॥ श्लेष्मणः षट् समाख्याताः पित्तस्यांजलयो नव ॥ त्रयो मूत्रस्यांजलयो वसाया मेदसो द्वयम् ॥ १३७ ॥ एकांजलिसमा मज्जा शिरोमज्जा तदर्द्धतः ॥ श्लेष्मसारो बलं त्वर्द्धं समासेनेरितं मया ॥ १३८ ॥ एषामेव विरोधेन ह्रासवृद्ध्या तथैव च ॥ जायंते च तथा रोगाः शरीरे सर्वदेहिनाम् ॥ १३९ ॥ योगाभ्यासरतो यस्तु सर्वापथ्यविवर्जितः ॥ नादब्रह्म स जानाति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १४० ॥ इति प्रत्यंगगणनं संक्षेपात्तव कीर्त्तितम् ॥

मुक्त करतेहैं ॥ १३२ ॥ अथच उनमेंसे आठ ऐसेहैं । जिनके मुख रोमकूपकी समानहैं । वेही स्वेद (पसीना) निकालते हैं और बाहरी रसोंको देहके भीतर प्रवेश करातेहैं ॥ १३३ ॥ हे मुनिराज ! मनुष्यके देहमें एक सौ सात मर्मस्थान कीर्त्तन कियेहैं, और हे. महामुनि ! तीन करोड पंचास रोमकूप, श्मश्रु और केश तीनलक्ष होतेहैं, हे नारद ! अब जलआदिका प्रमाण वर्णन करतेहैं उसका श्रवण करो ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ मनुष्यके देहमें दस अंजली जल नौ अंजली रस, आठ अंजली रक्त, और सात अंजली विष्ठा होतीहै ॥ १३६ ॥ छै अंजली श्लेष्मा, नौ अंजली पित्त, तीन अंजलीमूत्र, और दो २ अंजली वसा और मेद होता है ॥ १३७ ॥ एक अंजलि प्रमाण मज्जा, और उससे आधी अर्थात् आधी अंजली शिरो मज्जा होतीहै, और आधाही श्लेष्माका सारबल होताहै, यह सब हमने संक्षेपसे तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ १३८ ॥ इन्हीं सबके विरोधसे अथवा न्यूनता और वृद्धिसे समस्त देहधारियोंके देहमें रोगोंका प्रादुर्भाव होताहै ॥ १३९ ॥ जो व्यक्ति योगका अभ्यास करनेमें निरत होता, और संपूर्ण अपथ्योंका परित्याग कर देताहै वोही त्रिलोकीमें व्याप्त ऐसे चराचरके नाद रूप ब्रह्मको जानताहै ॥ १४० ॥ हे नारद ! इस प्रकार प्रत्यंगकी गणना संक्षेप रीतिसे

सर्वमेव शरीरस्थमन्वेष्यं योगतत्परैः ॥ १४१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे पिंडोत्पत्तिर्नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इनें तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै, योगनिरत पुरुषोंको शरीरके भीतरही इनका अन्वेषण करना कर्तव्यहै ॥ १४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

नारद उवाच ॥ धन्योऽस्मि नाथ देवेश श्रोतास्मि तव भारतीम् ॥ कथमस्मिन् शरीरे वै त्रैलोक्यं सर्वमंदिरम् ॥ १ ॥ कथं वै ज्ञायते देव पिंडस्थं सार्वभौतिकम् ॥ कृपया वद चैतन्मे शृण्वतो नास्ति मे श्रमः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ साधु साधु महाभाग पिंडस्थं ज्ञानकारणम् ॥ शृणु मे वदतो भक्त्या समाधाय मनश्चलम् ॥ ३ ॥ शृणु देहस्थचक्राणि विज्ञाय मुक्तिभाग्भवेत् गुदलिंगांतरे विप्र चक्रमाधारसंज्ञितम् ॥ ४ ॥ चतुर्दलं समाख्यातं गणेशस्तत्र देवता ॥ तस्येशानदले विप्र परमानंदसंस्थितिः ॥ ५ ॥ तदाग्नेये दले चैव सहजानंदसंस्थितिः ॥ नैर्ऋत्ये च तथा पत्रे

नारदजी बोले—हे देवाधिदेव प्रभो ! मैं आपकी वाणीका श्रवण करताहूं अतएव मुझे धन्यहै, हे स्वामिन् ! सर्वमन्दिर त्रिलोकी इस शरीरमें किस प्रकारसे अधिष्ठितहै ? ॥ १ ॥ और देहमें अधिष्ठित सार्वभौतिकज्ञान किस प्रकारसे होसक्ताहै, कृपापूर्वक यह सब मेरे प्रति आप वर्णन करें, क्योंकि इसका श्रवण करनेसे मुझे कुछभी श्रम नहीं होताहै ॥ २ ॥ ईश्वर ने कहा—धन्य महाभाग धन्य ! मैं देहमें अधिष्ठित हुए ज्ञानकारणका वर्णन करताहूं, सो तुम चपल मनको एकाग्र करके उसका श्रवण करो ॥ ३ ॥ अब देहमें स्थित रहनेवाले चक्रों को सुनो । उनके जाननेसे मनुष्य मुक्तिका भागी होताहै, हे विप्र ! गुदा और लिंगके अन्तरमें आधारसंज्ञक चक्रहै ॥ ४ ॥ उसके चार दलहैं और उसमें गणेश देवताकी अवस्थिति है, हे विप्र ! उसके ईशानकी ओरके दलमें परमानन्दकी स्थिति रहतीहै ॥ ५ ॥ उससे आग्नेय दलकी ओर सहजानन्द स्थित रहताहै, और नैर्ऋत कोणकी ओर वीरानन्दका निवास

वीरानंदो वसत्यलम् ॥ ६ ॥ योगानंदस्तु वायव्ये पत्रे ह्याधारपंकजे ॥ अस्ति कुंडलिनी ब्रह्मन् ब्रह्मशक्तिस्तदम्बुजे ॥ ७ ॥ पीयूषदा सा सरला शक्तिराब्रह्मरंध्रकम् ॥ स्वाधिष्ठानं द्वितीयं वै षड्दलं चक्रमीरितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मादिदेवतास्तत्र स्वाधिष्ठानाम्बुजे मुने ॥ पूर्वादिषु दलेष्वेव फलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ ९ ॥ प्रश्रयः क्रूरभावश्च वर्गनाशौ च मूर्च्छना ॥ अवज्ञा स्यादविश्वासः कामाशक्तेरिदं गृहम् ॥ १० ॥ मणिपूराभिधं चक्रं नाभौ तद्दशपत्रकम् ॥ सुषुप्तिका च तृष्णा च ईर्ष्या पैशून्यमेव च ॥ ह्रीर्भयं च दया मोहो व्यवायश्च विषादिता ॥ ११ ॥ क्रमेणैतास्तु पूर्वादौ पत्रे वै भुवनं तथा ॥ अनाहतं चतुर्थं तु चक्रं हृदयवर्त्तितम् ॥ १२ ॥ दलैर्द्वादशभिर्युक्तं पूजास्थानं मम प्रियम् ॥ प्रणवस्य तदिच्छंति शृणु पूर्वादिपत्रके ॥ १३ ॥ लौल्यं प्रणाशः कापट्यं तर्कश्चाप्यनुतापिता ॥ आशाप्रकारश्चिन्ता च समीहा समता मुने ॥ १४ ॥ दंभो वैकल्पकं चैव

रहताहै, ॥ ६ ॥ आधार कमलके वायव्य कोणवाले पत्रके ऊपर योगानन्द स्थित रहताहै, हे ब्रह्मन्! उस कमलमें कुण्डलनी ब्रह्मशक्ति स्थित रहतीहै ॥ ७ ॥ और वोह सरलाशक्ति ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त पीयूषका दान करतीहै, एवं च द्वितीय आधारचक्र षट्दल चक्र कहा गयाहै ॥ ॥ ८ ॥ और हे मुने! उस अधिष्ठान कमलमें ब्रह्माजी स्थित रहतेहैं, और उनके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः यह फल होतेहैं ॥ ९ ॥ प्रश्रय (नम्रभावप्रदर्शन) क्रूरभाव वर्ग और नाश मूर्च्छना, अवज्ञा, अविश्वास, काम और अशक्ति येही उसके फलहैं ॥ १० ॥ नाभिप्रदेशमें मणिपूर नाम एक दशदलका कमलहै, सुषुप्ति (गाढनिद्रा), तृष्णा, इर्षा, पिशुनता, ही (लज्जा), भय, दया, मोह, व्यवाय (मैथुनेच्छा), और विषाद ॥ ११ ॥ ये फल उक्त कमलके पूर्वादि दलमें वर्णन किये गयेहैं, हृदयके मध्यमें एक अनाहत चतुर्थ चक्रहै ॥१२॥ उसके बारह दलहैं अथ च वोह हमारी पूजाका प्रिय स्थानहै, और उसीको प्रणव (ओंकार) काभी स्थान मानाहै, उसके पूर्वादि दलोंमें जो फलहैं उनका श्रवण करो ॥ १३ ॥ लौल्य (दुष्टतारूप चपलता), प्रणाश, कार्पण्य, तर्कना, अनुताप, आशा, प्रकार, चिन्ता, समीहा (इच्छा) और समता ॥१४॥ दम्भ, पाखंड, विकलता, वा—संकल्प विकल्पका होना, विवेक,

विवेकोहंकृतिस्तथा ॥ फलान्येतानि पूर्वादिपत्रेषु कमलस्य हि ॥१५॥ पंचमं भारतस्थानं विशुद्धं षोडशच्छदम् ॥ कंठे स्थितं महाभाग तत्रैव प्रणवादयः ॥ १६ ॥ प्रणवोद्गीतहुंफट् च वौषट् श्रौषट्वषट्स्वधा ॥ स्वाहा नमोमृतं तत्र स्वराः षड्जादयोपि च ॥ १७ ॥ इति पूर्वादिपत्रेषु फलान्यात्मानि षोडश ॥ षष्ठं वै ललनाख्यं च घंटिकायां महाप्रभम् ॥ १८ ॥ चक्रं द्वादशपत्रं वै मदो मानस्ततो मुने ॥ स्नेहः शोकस्तथा खेदो लुब्धता रति संभ्रमः ॥ १९ ॥ ऊर्म्मिः श्रद्धा ततस्तोषो विरोधश्चैव द्वादश ॥ फलानि ललनाचक्रे एतानि पूर्वकादिषु ॥ २० ॥ भ्रूमध्ये द्विदलं चक्रं सप्तमाख्यं महामुने ॥ आज्ञाभिधं समाख्यातं मुक्तिदं योगिसत्तमैः ॥ २१ ॥ त्रिगुणानां तथा भावास्तत्र पूर्वादिषु क्रमात् ॥ ततोप्यस्ति मनश्चक्रं षड्दलं तत्फलानि तु ॥ २२ ॥ स्वप्नो रसोपभोगश्च घ्राणरूपोपलंभनम् ॥ स्पर्शनं शब्दवादश्च दले पूर्वादिषु क्रमात् ॥२३॥ यच्चक्रं षोडशारं वै सोमचक्रं महाप्र-

सदसत्का ज्ञान और अहंकार उक्त कमलके पूर्वादि दलोंमें ये फल वर्णन किये गये हैं ॥ १५ ॥ अतिशय पवित्र पांचवां षड्दलकमल भारतका स्थानरूप हे महाभाग ! कंठमें स्थितहै और वहांही ओंकार आदिहैं ॥ १६ ॥ प्रणव उद्गीत हुम् फट् वौषट् श्रौषट् वषट् स्वधा स्वाहा नमः अमृत और षड्ज आदि स्वर ये सभी वहां स्थितहैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार पूर्वादि पत्रोंमें सोलह फल वर्णन कियेहैं. घंटिका अर्थात् तालुस्थ जिह्वामें महाप्रभावान् ललना नाम एक छठा कमल और है ॥ १८ ॥ हे मुने ! उसके द्वादश पत्रहैं, मद मान, स्नेह, शोक, तथा खेद लुब्धता रति और संभ्रम ॥ १९ ॥ ऊर्मि (उत्साह) श्रद्धा सन्तोष और विरोध ये बारह फल ललना चक्रके पूर्वादि दलोंमें होतेहैं ॥ २० ॥ हे मुनिराज ! दो दलवाला सातवां चक्र भ्रूमध्यमेंहै, श्रेष्ठ योगिराज महाशयोंने उस आज्ञाभिध (संज्ञक) को मुक्तिका देनेवाला कथन कियाहै ॥ २१ ॥ उसके पूर्व आदि दलोंमें क्रमसे तीनोंगुण (सत् रज तम) के भाव उपस्थित रहतेहैं एवम् उसके अनन्तर षड्दल कमलहै उसके फल येहैं कि ॥ २२ ॥ स्वप्न रसका उपभोग घ्राणरूपका उपलंभन स्पर्श और शब्द वाद येही सब फल उसके पूर्वादि दलोंमें क्रमशः होतेहैं ॥ २३ ॥ एक प्रभूत कान्तिमान् षोडशदल चक्रहै उसका

भम् ॥ दलेषु षोडशस्वेव कलाः षोडश सांस्थिताः ॥२४॥ कृपार्जवं तथा शांतिर्धैर्यं वैराग्यसंधृतिः ॥ संमदाहाररोषाश्च निचयो ध्यानमेव च ॥ २५ ॥ स्थिरता चैव गांभीर्य्यमुद्यमः सत्वदानि तु ॥ एकाग्रता फलानि स्युः क्रमात्पूर्वादिपत्रके ॥ २६ ॥ सहस्रारं तथा चक्रं ब्रह्मरंध्रेतिनिर्मलम् ॥ सुधा संस्रवते तस्मादभिवर्द्धयते तनुः ॥ २७ ॥ अनाहते दले पूर्वे ह्यष्टमैकादशे तथा ॥ द्वादशे च तथा पत्रे जीवो गीतादिसिद्धिदः ॥ २८ ॥ चतुर्थे दशमे षष्ठे जीवो गीतविनाशकः ॥ विशुद्धान्यष्टमादीनि दलान्यष्टौ तु यानि तु ॥२९॥ दद्युर्गानादिसंसिद्धिं यदि जीवोत्र संस्थितः ॥ षोडशे तु दले जीवो गीतनाशनकारकः ॥ ३० ॥ ललनायां च दशमे चैकयुक्ते च पत्रके ॥ जीवो गतिस्य संसिद्धौ तुर्य्ये प्रथमपंचमे ॥ नाशकस्तु तदा ख्यातो जीवो जीवविदात्माभिः॥३१॥यदा तु ब्रह्मरंध्रस्थो जीवात्मा सुधयाप्लुतः ॥ तुष्टो गीतादिकार्य्याणि सप्रकर्षाणि साधयेत् ॥ ३२ ॥ एषामन्यतमे

सोमचक्र नामहै, उसके सोलहो दलोंके ऊपर सोलह कला समुपस्थितहैं ॥ २४ ॥ एवम् कृपा ऋजुता शान्ति धैर्य्य वैराग्य धृति मद आहार (भोजन) रोष (क्रोध) निचय (निश्चय) ध्यान स्थिरता और गम्भीरता उद्यम सत्वदायक शक्ति और एकाग्रता ये सोलहफल क्रमशः पूर्वादि पत्रोमें होतेहैं ॥ २५ ॥२६॥ ब्रह्मरन्ध्र नाम अतिनिर्मल एक सहस्रदल कमलहै, उसमेंसे नित्यही सुधा (अमृतमयरस)•का स्राव होताहै और वोह सुधाही शरीरकी वृद्धि संपादन करतीहै ॥ २७ ॥ निस्तब्ध पहिले आठवें तथा ग्यारहवें दलमें एवं च बारहवें दलमेंभी गीतआदिकी सिद्धि देनेवाला जीव समुपस्थित रहताहै ॥ २८ ॥ चौथे दसवें और छठे दलमें गीत विनाशकर्त्ता जीवकी उपस्थिति रहतीहै, शुद्धिसंपन्न अष्टम आदि दलही ॥ २९ ॥ यदि उनके ऊपर जीव समुपस्थित हो तो गानसिद्धिको देतेहैं । और सोलहवें दलके ऊपर गीतोंका नाश करनेवाले जीवकी स्थिति रहतीहै ॥ ३० ॥ मनोहर ग्यारहवें दलके ऊपर गीतोंकी सिद्धि दान करनेके लिये जीव उपस्थित रहताहै, तथा चौथे पांचवेंमें नादकी नष्टता करनेवाले जीवकी स्थितिहै ऐसा जीववेत्ताओंनें वर्णन कियाहै ॥ ३१ ॥ जब जीवात्मा सुधासे आप्लुतहो ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित होताहै तब वोह सतुष्ट होकर गीत आदि कार्य्योंको अच्छी रीतिसे सिद्ध करताहै ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! इनके अतिरिक्त अन्यस्थानमें अथवा अन्य चक्रोंमें जीवको

स्थाने चक्रेष्वन्येषु जीवकः॥न कदाचिन्महाभाग गीतसंसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ आधारद्व्यंगुलादूर्ध्वं हेमनाड्यंगुलादधः ॥ एकांगुलप्रमाणं च देहस्थं ज्योतिरीश्वरम् ॥३४॥ तप्तस्वर्णसमाभासं परमं सिद्धिकारणम्॥तस्मिन्नेव महाभाग तन्वी वह्नेः शिखास्ति वै ॥३५॥ तस्मान्नवांगुले पीठे पीठात्मा वै समास्थितः॥ उत्सेधायां देहकंदो नाभ्यां तु चतुरंगुले ॥ ३६॥ नाभिचक्रं तु तन्मध्ये द्वादशारं महाप्रभम् ॥ तंतुजाले यथा लूता तथात्र भ्रमते प्रभुः ॥ ३७ ॥ प्राणारूढस्तथा जीवो ब्रह्मरंध्रे सुषुम्णया॥ आरोहावरोहौ कुरुते रज्वां वै नटको यथा ॥३८॥ क्रोडीकृत्य स्थिता नाड्यः सुषुम्णां परितो भृशम्॥कंदादिब्रह्मरंध्रांतं कंदे शाखाभिरीरिता ॥३९॥ तनुर्वै तन्यते विप्र बह्वयस्ताः संति नारद ॥ चतुर्दश महाभाग मुख्याः प्रोक्ता मदादिभिः ॥ ४० ॥ इडा वै पिंगला चैव सुषुम्णा च तथा कुहूः ॥ सरस्वती च गांधारी हस्तिजिह्वा च वारणा ॥ ४१ ॥ यशस्विनी शंखिनी च

गीतोंकी सिद्धिका लाभ कदापि नहीं होसक्ता ॥ ३३ ॥ आधारसे दो अंगुल ऊपरकी ओर अथच हेमनाडीसे एक अंगुल नीचे एक अंगुल प्रमाणका ज्योतिः (प्रकाश) स्वरूप ईश्वर देहमें उपस्थित रहताहै ॥ ३४ ॥ उसकी आभा सन्तप्त सुवर्णकी समानहै, और वोह परम सिद्धि देनेका कारणहै, हे महाभाग ! उसीमें अतिशय सूक्ष्म अग्निकी शिखा उपस्थित रहतीहै ॥ ३५ ॥ उसके अनन्तर नौ अंगुल प्रमाणवाले पीठ (सिंहासन) के ऊपर पीठात्मा स्थित रहताहै, फिर नाभिमें चार अंगुल प्रमाणका एक स्थानहै उसमें बारहदलका नाभिचक्र उपस्थित रहताहै, उसकी अतिशय कान्तिहै, जैसे जालेके चारों ओर मकडी भ्रमतीहै ऐसेही इस कमलपर परमात्मा भ्रमण करताहै॥ ३६॥ ३७॥जैसे नट रस्सीके आधारसे ऊपरको चढ़ता और नीचेको उतरताहै ऐसेही प्राणमें आरूढ हुआ जीव सुषुम्णाके आधारसे ब्रह्मरन्ध्रमें आरोहण और नीचेको उतरना करताहै ॥ ३८ ॥ एवं च अन्यान्य नाडियें सुषुम्णा नाडीको चारों ओरसे घेर उसे अंकमें लेके स्थित रहतीहैं, ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उन नाडियोंका येही क्रम वर्णन कियाहै ॥ ३९ ॥ हे विप्र ! (नारद) वे बहुतसी नाडियेंहैं जो शरीरका विस्तार करतीहैं, किन्तु अस्मदादि ज्ञानियोंनें उनमें चौदहको मुख्य कहके कीर्त्तन कियाहै ॥ ४० ॥ इडा पिङ्गला सुषुम्णा कुहू सरस्वती गान्धारी हस्तिजिह्वा वारणा ॥ ४१ ॥ यशस्विनी, शंखिनी,

पूषा विश्वोदरा तथा ॥ पयस्विनी तथालंबुषेति नाड्यश्चतु-र्दश ॥ ४२ ॥ तिस्रो मुख्यतमाः ख्यातास्तासामाद्या सुषुम्णिका ॥ वैष्णवी सा मया प्रोक्ता मुक्तिमार्गस्थिता सदा ॥ ४३ ॥ कंदमध्ये महाभाग संस्थिता सा तपोनिधे ॥ इडा सव्ये स्थिरा तस्य दक्षिणे पिंगला मता ॥ ४४ ॥ इडापिंगलयोर्मध्ये चरन्तौ चन्द्रभास्करौ ॥ कालहेतू क्रमात्प्रोक्तौ सुषुम्णा कालशोषिणी ॥ ४५ ॥ सुषुम्णापार्श्वयोश्चैव वर्त्तेते द्वे शृणु प्रिये ॥ सरस्वती कुहूश्चैव योगमार्गप्रदे शुभे ॥ ४६ ॥ इडायाः पृष्ठपूर्वस्थे गांधारीहस्तिजिह्वके ॥ पिंगला पूर्वपृष्ठे वै वारणा च पयस्विनी ॥४७॥ कुह्वाश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरा मता ॥ वारणा संस्थिता मध्ये नाड्यो वै ब्रह्मवंदित ॥ ४८ ॥ ते वै कुहूयशस्विन्यौ तथा पूषा सरस्वती ॥ तयोर्मध्यस्थिता शेते नाम्ना नाडी पयस्विनी ॥ ४९ ॥ गांधारिकासरस्वत्योर्मध्यदेशे च शंखिनी ॥ इडा च पिंगला चैवालंबुषा कंदमास्थिताः ॥५० ॥

पूषा, विश्वोदरा, पयस्विनी और अलम्बुषा ये (उक्त) चौदह नाडियें (मुख्य) हैं ॥४२॥ उनमेंभी तीन अतिशय मुख्यहैं उन तीनोंमें पहिली सुषुम्णिकाहै, हमने उसे वैष्णवी कहकर निर्देश कियाहै, एवंच वोह सदैव मुक्तिमार्गमें स्थित रहतीहै ॥ ४३ ॥ और हे महाभाग ! तपोधन ! कन्दके मध्यमें उसकी स्थितिहै, इसके वामभागमें इडा और दक्षिणभागमें पिंगलाकी स्थिति मानी गईहै ॥ ४४॥ हे ब्रह्मन् ! इडा और पिंगलाके मध्यमें चन्द्रमा और सूर्य विचरतेहैं क्रमसे उन्हीको काल (समय) का हेतु वर्णन किया गयाहै, सुषुम्णानाडी समयका शोषण (ह्रास) करतीहै ॥ ४५ ॥ हे प्रिये ! (पार्वती) सुषुम्णाके पार्श्वभागमें जो दो नाडियें स्थित रहतीहैं उनका वर्णन सुनो, उनका सरस्वती और कुहू नामहै और शुभरूपा ये दोनों योगमार्गकी देनेवालीहैं ॥ ४६ ॥ इडाकी पूर्वपृष्ठके ऊपर गान्धारी और हस्तिजिह्वा ये जो नाडियें स्थिति करतीहैं, एवम् पिंगलाके पूर्व पृष्ठपर वारणा और पयस्विनी स्थित रहतीहैं ॥ ४७ ॥ कुहू और हस्तिजिह्वाके मध्यमें विश्वोदरा नाडीकी स्थिति मानी गईहै, अथच हे ब्रह्मवन्दित ! नाडियोंके मध्यमें वारणानाडी स्थित रहतीहै ॥ ४८ ॥ कुहू और यशस्विनी तथा पूषा और सरस्वती इनके मध्यमें स्थित रहकर पयस्विनी नाडी शयन करतीहै ॥ ४९॥ गान्धारी और सरस्वतीके मध्य देशमें शंखिनी स्थित रहतीहै, अथ च इडा पिंगला और अलं-

सव्यापसव्या नासांतं कुहूरामेढ्रकं पुरः ॥ ऊर्ध्वमाजिह्वकं चास्ते नाम्ना नाडी सरस्वती ॥ ५१ ॥ गांधारी पृष्ठतः प्रोक्ता वाम-नेत्रं तथा मुने ॥ आसव्यपादं सांगुष्ठं संस्थिता च तपोधन ॥५२॥ सर्वत्रगा हस्तिजिह्वा वारणाथ पयस्विनी ॥ देहेखिले तथांगुष्ठाद्दक्षिणांघ्रिसमाश्रितात् ॥ ५३ ॥ विश्वोदरा महाभाग शंखिन्या सव्यकर्णकम् ॥ पूषा पाय्वान्वनेत्रान्ता तथा दक्षिण-कर्णकम् ॥ ५४ ॥ पयस्विनी तु विनतालंबुषा पायुमूलकम् ॥ समालंब्य स्थिता ब्रह्मन्संक्षेपात्ते मयोदितम् ॥ ५५ ॥ अस्मि-न्नेव महाभाग देहे मलपलान्विते ॥ बुद्धिमंतो भवापायं मोक्षं संसाधयंति वै ॥ ५६ ॥ उपायाद्गुरुवक्त्राच्च श्रुत्वा सेवादिभिर्मुने॥ अस्मादेवाखिलं तत्त्वं प्राप्यते भुक्तिमुक्तिके ॥ ५७ ॥ तस्मात्स-र्वप्रयत्नेन देहं संसाधयेत्पुमान् ॥५८॥ निर्गुणस्तु परानन्दो रूपा-दिगुणवर्जितः ॥ पाणिपादाद्यवयवैर्हीनो नारायणो व्ययः ॥५९॥

बुध ये नाडियें कन्दमें स्थित रहतीहैं ॥ ५० ॥ कुहू नाडी सव्य अपसव्य नासापर्यन्त और सरस्वती नाडी मेढ्रसे जिह्वापर्यन्त उपस्थित रहतीहै ॥ ५१ ॥ हे मुने ! पृष्ठ और वाम नेत्रमें गान्धारीकी स्थितिहै, और अंगुष्ठसहित दक्षिण चरणमें हेतपोधन ! उसीकी स्थिति रह-तीहै ॥ ५२ ॥ हस्तिजिह्वा, वारणा, पयस्विनी ये नाडियें दाहिने चरणके अंगूठेसे लेकर समस्त शरीरमें व्याप्त रहतीहैं ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! विश्वोदरा और शंखिनी वामकर्णमें पूषा वायुनेत्र और दक्षिणकर्णमें स्थितहै ॥ ५४ ॥ पयस्विनी और अलंबुषा इन दोनों ना-डियोंकी स्थिति वायु (गुदा) के मूलमें रहतीहै, हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार हमने नाडियोंकी स्थिति संक्षेपसे तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै ॥ ५५ ॥ हे महाभाग ! यद्यपि यह देह मलसे परिपूर्णहै तथापि बुद्धिमान् व्यक्तिगण इसीके द्वारा संसारकी निवृत्तिरूप मोक्षका साधन करते हैं ॥ ५६ ॥ हे मुनि ! गुरुमहाशयके मुखसे श्रवणकर सेवा आदि अथवा अन्यान्य उपाय करनेसे इसी देहके द्वारा सम्पूर्ण तत्व सुतराम् भोग और मोक्षकी भी प्राप्ति होजातीहै ॥५७॥ अतएव पुरुषको चाहिये कि, सम्पूर्ण यत्नोंके द्वारा देहका साधन करै अर्थात्--शरीरकी रक्षा करना मुख्य कर्त्तव्यहै ॥ ५८ ॥ निर्गुण (मायारचित गुणोंसे रहित), परम आनन्दस्वरूप, रूप आदि गुणोंसे रहित, हाथ पैर आदि अवयवोंसे वर्जित अथ च अविनाशी नारायणका ॥५९॥

---

१ "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् धर्मका मुख्य साधन शरीरही है ॥

ध्यातुं तु न शक्यते कैश्चिद्वसिष्ठादिभिरप्ययम् ॥ तस्मात्तच्चरितं ज्ञेयं भुक्तिमुक्त्यैकलालसैः ॥ ६० ॥ धन्यस्त्वं यस्य गेये वै बुद्धिरस्ति सुनिर्मला ॥ योगमार्गेण संसाध्य देहं मलसमाहतम् ॥ ६१ ॥ नादब्रह्मरतो भूयात्परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ नाहं योगशतैस्तुष्टो नाहं तीर्थविमज्जनात् ॥ यथाहं गीतसंतुष्टो ददामि परमां गतिम् ॥ ६२ ॥ अनाहतस्य नादस्य जनिर्देहविशोधनात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देहं संशोधयेत्पुरा ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे रागोत्पत्तौ देहशोधनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

ध्यान करनेके तईं वसिष्ठ आदिमहर्षि गणभी समर्थ नहीं हो सक्तेहैं अतएव जो व्यक्ति भोग और मोक्षकी अभिलाषा करतेहैं उन्हें चाहिये कि, नारायणके चरित्रोंका ज्ञान संपादन करें ॥ ६० ॥ तुम्हें धन्यहै जो तुम्हारे शरीरमें ऐसी निर्मल बुद्धिहै, इस मलवाही देहकी योगके द्वारा साधना करनी कर्त्तव्यहै ॥ ६१ ॥ जब यह मनुष्य नाद (शब्द) स्वरूप ब्रह्ममें निरत होजाताहै तब उसे परम सिद्धिका लाभ होताहै, सैकडों प्रकारसे योगका साधन करने तथा तीर्थोंमें स्नान करनेसेभी मुझे इतना सन्तोष नहीं होता, जैसा कि मैं गानसे सन्तुष्ट होकर (गायकको) परम गतिका दान करताहूं ॥ ६२ ॥ शरीरको शुद्ध करलेने पर अनाहत शब्दका प्रादुर्भाव होताहै, अतएव सबसे प्रथम मनुष्यको चाहिये कि, सर्वथा यत्न पूर्वक देहको शुद्ध करे ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७.

नारद उवाच ॥ नादः कथं समुद्भूतो देहादस्मान्मलाश्रयात् ॥ नादः कोयं समाख्यातः कतिधा वर्त्तते परः ॥ १ ॥ एतत्सर्वं समासेन कथय त्वं महेश्वर ॥ भक्तोपकारे प्रभवो नालस्यं

नारदजी बोले–जो कि मलका भण्डारहै ऐसे इस देहसे नाद (शब्द) की उत्पत्ति कैसे होतीहै, एवं च यह नाद कौनहै और कितने प्रकारकाहै ॥ १ ॥ हे महेश्वर ! इन सबका आप सभासमें हमारे प्रति वर्णन करें, कारण कि हे प्रभो ! शक्तिशाली प्रभु अपने भक्तोंका

कुर्वते प्रभो ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु नारद तत्त्वेन यथा नादो विधीयते॥नाद एव परं ब्रह्म नास्मात्किंचित्परात्परम्॥३॥ ब्रह्मा नादोपसेवाभिर्जगत्सर्वं चकार ह॥ विष्णुर्वै पालने शक्तो ह्यस्मि नाशने तथा ॥ ४ ॥ वयं सर्वे महाभाग नादोपासन तत्पराः ॥ न जानंति परं पारं ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥ अहमेव हि जानामि नादब्रह्म समासतः ॥ नादोपासनया सर्वे सेविता देवतागणाः ॥ ६ ॥ आत्मारामः परं ज्योतिर्मनः प्रेरयति प्रभुः ॥ देहस्थोग्निर्महाभाग स प्रेरयति मारुतम् ॥७॥ नाभिमूलस्थितो वायुः क्रमेणोर्ध्वपथे चरन् ॥ नाभितो हृदयं कंठं ततोर्ध्वास्ये प्रवर्त्तते॥८॥ आविर्भावो ध्वनेः पूर्वं ततः पंचविधो मतः ॥ अतिसूक्ष्मस्ततः सूक्ष्मः पुष्टोपुष्टश्च कृत्रिमः ॥ ९ ॥ नाभ्यादिस्थानसंस्थो वै पंचधा समुदीरितः ॥ प्राणो नकार आख्यात आकारो नलसंज्ञितः ॥ संयुक्तः प्राणवह्न्योश्च तेन नादस्तथा स्मृतः ॥ १० ॥ त्रिधासौ व्यवहारो वै मंद्रस्तार-

प्रकार करनेमें आलस्य नहीं करतेहैं ॥२॥ महादेवजी बोले, सुनो नारद ! जिस प्रकार तत्त्वसे नादका विधान किया जाताहै [उसका वर्णन करतेहैं] यह नाद (शब्द) ही परब्रह्महै, इससे परे और कुछ नहींहै ॥३॥ यह बात सर्वविदितहै कि, नादकी सेवाओंकेही द्वारा ब्रह्माजीने समस्त जगत्की रचना करी, विष्णुभगवान् पालन करनेमें सशक्त हुए, और मैं नाशकरनेमें सामर्थ्यवान् हूं ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! हम सब और ब्रह्मा आदि सब देवता नादब्रह्महीकी उपासनामें तत्पर रहतेहैं, परन्तु उसके परम पारको नहीं जान सक्के ॥ ५ ॥ किन्तु संक्षेप रीतिसे मैं नादब्रह्मको जानताहूं, और नादकी उपासनाके प्रतापहीसे समस्त देवतागण॥ ६ ॥हमारी उपासना करतेहैं परम ज्योतिःस्वरूप प्रभु आत्माराम मनको प्रेरित करताहै, और हे महाभाग ! देहमें स्थित हुई अग्नि पवनको प्रेरणा करतीहै ॥ ७ ॥ तब नाभिके मूलमें स्थित हुआ वायु क्रमशः ऊपरके मार्गोंमें विचरताहै, सुतराम् नाभिसे उठकर हृदय और कंठमें होता हुआ ऊर्ध्व मुखमें प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ ध्वनिसे प्रथम उसका पांच प्रकारका आविर्भाव माना गयाहै, एक अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, अपुष्ट, पुष्ट और कृत्रिम ॥ ९ ॥ नाभि आदि स्थानोंमें स्थित होनेसे उसे पांच प्रकारहीका कीर्तन कियाहै, प्राणको नकार कहतेहैं, और आकारकी नल संज्ञाहै, प्राण और वह्निसे संयुक्त होकर वोह नाद कहाताहै ॥ १० ॥ इसका व्यवहार तीन प्रकारसे होता

स्तथा परः ॥ घोरस्तृतीय आख्यातस्तेषां स्थानानि वै शृणु ॥
॥ ११ ॥ नाभिमध्ये स्थितो घोरो हृदये मंद्रको मतः ॥ शिरो
गात्रे तथा तारस्त एव ग्रामनामकाः॥१२॥ तस्य द्वाविंशतिर्भेदा
नादस्य परमात्मनः ॥ श्रुतयस्ते समाख्याताः श्रवणान्नारदेरि-
ताः ॥ १३ ॥ नाड्यो द्वाविंशतिर्विप्र स्थितास्तिर्यगधश्च ताः ॥
वायुनैव हतास्ता वै श्रुतयः संभवंति हि ॥ १४ ॥ प्रथमश्रवणा
च्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ॥ सा श्रुतिर्वै परिज्ञेया स्वरावयव-
लक्षणा ॥१५॥ श्रुतिभ्यस्तु स्वराः सप्त ताञ्छृणुष्व महामुने ॥
प्रथमः षड्जको नाम ऋषभस्तु द्वितीयकः ॥१६॥ गांधारस्तु तृ-
तीयश्च चतुर्थो मध्यमः स्मृतः॥पंचमः पंचमः प्रोक्तो षष्ठो धैवत
उच्यते ॥ १७ ॥ निषादः सप्तमः प्रोक्तस्तंत्रीकंठोत्थिता इमे ॥
तेषां नामानि वर्णाश्च सरिगमपधनी मताः ॥ १८ ॥ श्रुत्यनंतर
भावी यः स्निग्धोनुरणनात्मकः ॥ स्वनो रंजयति श्रोतुश्चित्तं स
स्वर उच्यते॥१९॥ श्रुतिजातीः प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः॥

है मन्द्र, तार और घोर ये तीन उसके भेदहैं, अब इनके स्थानोंका वर्णन सुनो ॥ ११ ॥ नाभिप्रदेशमें घोर हृदयमें मन्द्रक और शिर तथा समस्त गातमें तारकी स्थिति रहतीहै, और इन्हीका ग्रामभी नामहै ॥ १२ ॥ हे नारद ! उक्त नादरूप परब्रह्मके औरभी बाईस भेदहैं उन्हींको श्रुति और श्रवण कहा जाताहै ॥ १३ ॥ सुनो नारद ! तिर्यगूरूप बाईस नाडियें मनुष्यके देहमें अवस्थितहैं, जब वायुमें लगनेसे वे आहत होतीहैं तभी वे श्रुति हो जाती हैं ॥ १४ ॥ पहिली वार श्रवण करनेसे ह्रस्व मात्राका शब्द श्रवणगोचर होताहै, उसीको स्वरके अवयवरूप लक्षणोंसे संयुक्त श्रुति जानना चाहिये ॥ १५ ॥ हे महामुने ! श्रुतियोंहीसे सात स्वरोंका प्रादुर्भाव होताहै, उन्हें श्रवण करो ! पहिला षड्ज, दूसरा ऋषभ ॥१६॥ तीसरा गान्धार चतुर्थ मध्यम पांचवां पंचम और छटा धैवत स्वर कहाताहै ॥ १७ ॥ और सातवां स्वर निषाद नामसे व्यवहृत होताहै इन सब स्वरोंका उत्थान तन्त्री (वीणा) के कंठ से होताहै, इनके नाम और वर्ण 'सरगम' होतेहैं ॥ १८ ॥ श्रवण होचुकनेके अनन्तर जो मन्द २ शब्द श्रवण करनेवालोंके चित्त प्रसन्न करताहै उसीको स्वर कहतेहैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! हम तत्व प्रदर्शन पूर्वक श्रुतियोंकी जातिका वर्णन करतेहैं, उनको श्रवण करो ।

दीप्ता तथायता चैव करुणा च तृतीयका ॥ २० ॥ मृदुर्मध्या तथा प्रोक्ताः पंच वै श्रुतिजातयः ॥ आसां वै पंचजातीनां स्वरे ष्वेव व्यवस्थितिः ॥ २१ ॥ दीप्तायता मृदुर्मध्या षड्जे च ऋषभे पुनः ॥ संस्थिता करुणा मध्या मृदुर्गांधारके पुनः ॥२२॥ धैवते करुणा मध्यायता च परमा स्थिता ॥ दीप्ता जातीः प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन नारद ॥ २३ ॥ तीव्रा रौद्री वज्रिकोग्रा चतुर्द्धा दीप्तिका मता ॥ आयतायास्तथा भेदाः पंच सन्ति शृणुष्व तान् ॥ २४ ॥ कुमुद्वती च क्रोधा च तृतीया वै प्रसारिणी ॥ तथा संदीपिनी प्रोक्ता रोहिणी पंचमी मता ॥ २५॥ करुणायास्तथा भेदास्त्रयः प्रोक्ता मदादिभिः ॥ दयावती तु प्रथमा लापिनी च द्वितीयका ॥२६॥ मदंतिका तृतीया स्यान्मृदोर्भेदचतुष्टयम् ॥ मंदा रतिस्तथा प्रीतिः क्षितिश्चैव चतुर्थिका ॥ २७ ॥ मध्या भेदास्तु षट् प्रोक्ता रंजिनी मार्जनी तथा ॥ छंदोवती रक्तिका च रम्या च क्षोभिणी मता ॥२८॥ स्वरस्थितिं प्रवक्ष्यामि तासां नारद तच्छृणु ॥ मंदा छंदोवती तीव्रा षड्जे चैव कुमुद्वती ॥२९॥

दीप्ता आयता और तीसरी करुणा ॥२०॥ मृदु एवम् मध्या ये पांच श्रुतियोंकी जाति वर्णन की गईहैं ये जातियें स्वरोंहीमें अवस्थित रहतीहैं ॥ २१ ॥ इनमेंसे दीप्ता आयता मृदु और मध्या षड्ज और ऋषभमें निवास करतीहैं, करुणा मध्या और मृदु ये गान्धारमें निवास करतीहैं ॥ २२ ॥ धैवत स्वरमें करुणा मध्या और आयता जाति उपस्थित रहतीहैं । हे नारद ! अब तत्त्वपूर्वक दीप्ता जातियोंका वर्णन करतेहैं, तुम श्रवण करो ॥ २३ ॥ तीव्रा रौद्री वज्रिका और उग्रा इन चार प्रकारकी दीप्ता जाति मानी गईहैं, और पांच भेद आयताके हैं अब उन्हें श्रवण करो ॥ २४ ॥ कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, सन्दीपिनी और रोहिणी ये उनके पांच नामहैं ॥ २५ ॥ एवंच करुणाके तीन भेदहैं, हमारी सदृश तत्त्वज्ञ व्यक्तियोंने प्रथम दयावती, दूसरी लापिनी ॥ २६ ॥ तीसरी मदन्तिका वर्णन करीहै । अथच मृदुकेभी चार भेदहैं उनके नामोंका उल्लेख इस प्रकारहै मन्दा, रति, क्षिति और प्रीति ॥ २७ ॥ इसी प्रकार मध्याकेभी छै भेदहैं- रंजनी, मार्जनी, छन्दोवती, रक्तिका, रम्या और क्षोभिणी ये छै उसके नामहैं ॥ २८ ॥ हे नारदजी ! अब हम उनकी स्वरस्थितिका वर्णन करतेहैं सो श्रवण करो, मन्दा छन्दोवती तीव्रा और कुमुद्वती ये षड्ज स्वरमें स्थित मानी गईहैं ॥ २९ ॥

रतिर्दयावती चैव रंजिनी चर्षभे मता ॥ क्रोधा रौद्री च गांधारी मध्यमे वज्रिका तथा ॥ ३० ॥ प्रसारिणी च प्रीतिश्च मार्ज्जनीत्येवमाश्रिताः ॥ संदीपिनी च रिक्ता च क्षितिरालापिनी तथा ॥ ३१ ॥ पंचमे संस्थिता ह्येता मदंती रोहिणी तथा ॥ रम्या चैव तथा विप्र धैवते संस्थिता मताः ॥ ३२ ॥ उग्रा च क्षोभिणीति द्वे निषादे संस्थिते श्रुती ॥ घोराख्यमंद्रताराणां स्थानभेदात्त्रिधा स्वराः ॥ ३३ ॥ एवं ते विकृतावस्था द्वादश प्रतिपादिताः॥विकृतस्तु तथा षड्जे अच्युतच्युतभेदतः ॥ द्विश्रुतिः षड्जको विप्र शृणु चान्यच्च वैकृतिम् ॥ ३४ ॥ काकलीत्वे निषादस्य तथा वै श्रुतयोन्तरे ॥ साधारणा श्रुतिः षाड्जी संश्रितश्चर्षभो यदा ॥ ३५ ॥ चतुःश्रुतिमवाप्नोति विकृतस्त्वेकको मतः ॥ तस्मिन्नेव यदा विप्र तिस्रो वै श्रुतयोन्तरे ॥ ३६ ॥ पुनश्चतुःश्रुतिश्चांते गांधारो भेदकः स्मृतः ॥ आसां धारणसंस्थानान्मध्योन्तः षड्जवद्द्विधा ॥ ३७ ॥ घोरग्रामे पंचमस्तु

रति, दयावती और रंजनी ये ऋषभमें स्थित रहतीहैं, क्रोधा रौद्री गान्धारी और वज्रिका ये मध्यम स्वरमें रहतीहैं ॥ ३० ॥ प्रसारिणी प्रीति मार्जनी संदीपिनी रक्ता क्षिति तथा आलापनी ॥ ३१ ॥ ये सब पंचम स्वरमें स्थित रहतीहैं । मदन्ती रोहिणी और रम्या ये इनकी स्थिति धैवत स्वरमें रहतीहैं ॥ ३२ ॥ उग्रा और क्षोभणी ये दो श्रुतियें निषाद स्वरमें स्थित रहतीहैं । घोर मन्द्र और तार इन स्थानोंके भेदसे स्वर तीन प्रकारके माने गयेहैं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार हमने तुम्हारे प्रति बारह विकृत अवस्था वर्णन करीं । षड्ज स्वरमें अच्युत और च्युत भेदसे षड्ज स्वरमें औरभी विकार होताहै, हे विप्र । षड्ज स्वरका श्रवण दो प्रकारसे होताहै अब अन्य श्रुतियोंका वर्णन सुनो ॥ ३४ ॥ निषाद स्वरकी काकली अर्थात् मधुर और अस्फुट ध्वनिमें और अन्य श्रुतियोंके मध्यमें जब षड्ज और ऋषभस्वर होतेहैं तब उनकी साधारण श्रुति होतीहै ॥ ३५ ॥ और वोह चार प्रकारके श्रवणको प्राप्त हो जाताहै और विकृत एकही माना गयाहै, हे विप्र ! जब उसमें तीन श्रुतियोंके अन्तर होताहै ॥ ३६ ॥ तभी गान्धार स्वरका श्रवणभी चार प्रकारसे होने लगताहै, इनकी धारणाके संस्थानसे षड्ज स्वरकी समान मध्य और अन्त दोप्रकारका माना गयाहै ॥ ३७ ॥ और घोर ग्राममें पंचम

त्रिः श्रुतिः कौशिके पुनः ॥ संप्राप्य मध्यमश्रुतिं द्विधेति च चतुः-श्रुतिः ॥ ३८ ॥ घोरग्रामे धैवतस्तु विकृतः स्याच्चतुःश्रुतिः ॥ ॥ ३९ ॥ निषादस्त्रिचतुःश्रोतः काकलीत्वेन कौशिके ॥ तदा द्वौ विकृतौ भेदौ प्राप्नोति द्वादश स्मृताः ॥ ४० ॥ सार्द्धं शुद्धैः सप्तभिस्ते दश चैव नव स्मृताः ॥ मयूरा ब्रुवते षड्जं चातकश्चर्षभं तथा ॥ ४१ ॥ गांधारं वर्करो ब्रूते क्रौंचः क्वणति मध्यमम् ॥ कोकिलः पंचमं ब्रूते दर्दुरो धैवतं मुने ॥ गजा निषादं ब्रुवते इति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥४२॥ पुनश्चतुर्विधः प्रोक्तो मुने वाद्यादिभेदतः ॥ वादी विवादी संवादी ह्यनुवादी प्रभेदतः ॥४३॥ प्रयोगे बहुलो वादी श्रुतयो वायुगोचराः॥ संवादी च विवादी च मिथः संवादिनौ यदा ॥ संवादित्वं विवादित्वं स्यात्तयोर्वै पृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ शेषाणामनुवादित्वं राजा वादी च गीयते ॥ अनुसारित्वात्तु संवादी तथामात्यो विधीयते ॥ ४५ ॥ वृन्दारककुलोद्भूताः षड्जगांधारमध्यमाः ॥ पितृजः पंचमः प्रोक्तो ऋधौ मुनि-

स्वरका श्रवण तीन प्रकारसे होताहै । और मध्यम श्रुतिको प्राप्त होनेसे फिर उसके दो भेद होजातेहैं ॥ ३८ ॥ एवंच धैवत स्वर घोर ग्राममें उपस्थित होकर जब विकृत होताहै तब उसका स्वर चार प्रकारसे होने लगताहै ॥ ३९ ॥ काकलीभेदसे जब निषादका श्रवण होता है तब विकृत भेदोंके मिला देनेसे सब बारह भेद हो जातेहैं ॥ ४० ॥ शुद्ध सातस्वरोंके साथ उनका संयोग करनेसे वे सब उन्नीस होजातेहैं । मयूर षड्ज स्वर और चातक ऋषभ स्वरको संभाषण करताहै ॥ ४१ ॥ गान्धार स्वरको बकरा और मध्यम स्वरको क्रौंच पक्षी बोलताहै. कोकिला पंचम स्वरमें बोलतीहै, और हे मुनि ! दादुर धैवत स्वर बोलताहै, हाथी निषाद स्वर बोलताहै, इस प्रकार विद्वानोंको इसका निर्णय जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ फिर वाद्य आदिके भेदसे वादी, विवादी, सम्वादी और अनुवादी इन भेदोंके द्वारा चार प्रकारका होताहै ॥ ४३ ॥ वायु गोचरसे श्रवणगत होनेपर प्रयोगमें प्रायः वादी नाद होताहै, और जब दो व्यक्ति परस्पर संभाषण करतेहैं तब विवादी और संवादी पृथक् २ होतेहैं ॥ ४४ ॥ शेष स्वरोंमें अनुवादित्वधर्म रहताहै, वादीको राजा प्रतिपादन कियाहै, एवं च उसीका अनुसरण करनेके कारण संवादी उसका अमात्य कहाताहै ॥ ॥ ४५ ॥ षड्ज, गान्धार और मध्यम स्वर देवकुलमें प्रादुर्भूत हुएहैं, पंचम स्वरकी उत्पत्ति

कुलोद्भवौ ॥४६॥ निषादस्त्वासुरः प्रोक्तः षड्जमध्यमपंचमाः ॥ ब्राह्मणास्ते समाख्याता ऋधौ तु क्षत्रियौ स्मृतौ ॥४७॥ गांधारश्च निषादश्च वैश्यजातिसमुद्भवौ ॥ शूद्रावंतरकाकल्यौ तेषां रूपाण्यथो शृणु ॥ ४८॥ षड्जो भस्मसमाभासो रिश्च पिंजरमूर्त्तिमान् ॥ गांधारः स्वर्णवर्णाभो मध्यमः कुंदमूर्त्तिमान् ॥ ४९ ॥ पंचमः श्वेतवर्णश्च धैवतः पीतवर्णकः ॥ कर्बुरस्तु निषादो वै जन्मभूमिं तथा शृणु ॥ ५० ॥ जम्बुद्वीपभवः षड्जो ऋषभः शाकसंभवः ॥ कुशद्वीपभवो गश्च मध्यमः क्रौंचद्वीपजः ॥५१॥ पंचमः शाल्मलौ जातः श्वेतजो धैवतः स्मृतः ॥ निषादः पुष्करे जातो देवताः शृणु नारद ॥ ५२ ॥ वह्निः को वै भारती चाऽहं विष्णुर्गणपो रविः ॥ क्रमादेते षड्जादीशाश्छन्दांसि शृणु नारद ॥ ५३ ॥ क्रमादनुष्टुब् गायत्री त्रिष्टुप् च बृहती तथा ॥ पङ्क्तिरु-

पितरोंसे हुईहै, ऋषभ और धैवत स्वर मुनिकुलसे उत्पन्न हुएहैं ॥ ४६ ॥ निषादका जन्म असुरोंसे हुआहै । षड्ज मध्यम और पंचम स्वर ब्राह्मणहैं, ऋषभ और धैवत क्षत्रियहैं ॥ ॥ ४७ ॥ गान्धार और निषाद वैश्य जातिमें जन्मेहैं, अन्तर और काकली शूद्रहैं । अब इनके रूपोंका श्रवण करो ॥ ४८ ॥ षड्ज स्वरका स्वरूप भस्मकी समानहै, ऋषभकी मूर्त्ति पिंजरकी सदृशहै, गान्धारका वर्ण सुवर्णकी समानहै, मध्यम स्वरकी मूर्त्ति कुन्द पुष्पकी समान श्वेतहै ॥ ४९ ॥ पंचमका श्वेत वर्णहै, धैवत पीले वर्णकाहै, और निषादका वर्ण कर्बुर (चित्र विचित्र) है । अब इनकी जन्मभूमिका श्रवण करो ॥ ५० ॥ षड्ज जम्बुद्वीपमें, ऋषभ शाकद्वीपमें, गान्धार कुशद्वीपमें, और मध्यम स्वर क्रौंचद्वीपमें उत्पन्न हुआहै ॥ ५१ ॥ पंचम शाल्मलि द्वीपमें, धैवत स्वर श्वेत द्वीपमें और निषाद पुष्करमें उत्पन्न हुआहै । हे नारदजी ! अब इनके देवताओंको सुनो॥५२॥ अग्नि, ब्रह्मा, भारती (सरस्वती), शिव, विष्णु, गणेशजी और सूर्य्य ये क्रमशः षड्ज आदि स्वरोंके अधीश्वरहैं [अर्थात् षड्जके स्वामी अग्निदेव, ऋषभके ब्रह्मा, गान्धारकी स्वामिनी भारती, मध्यमके देवता शिव, पंचमके स्वामी विष्णु, धैवतके स्वामी गणेशजी और निषाद स्वरके स्वामी सूर्य्यहैं] सुनो नारदजी ! अब उनके छन्दोंका वर्णन करतेहैं ॥ ५३ ॥ [ऊपर वर्णन किये हुए] क्रमसे अनुष्टुप्, गायत्री,

ष्णिक् च जगती षड्जादीनां महामुने ॥ ५४ ॥ सरीवीरेद्भुते रौद्रे धो बीभत्से भयानके ॥ काय्यौं गनी तु करणे हास्यशृंगारयो-र्मगौ ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां रुद्र-तीर्थे नादश्रुतिभेदाख्यानं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक् और जगती ये सब हे महामुनिराज ! उक्त स्वरोंके छन्दहैं ॥ ॥ ५४ ॥ अथ च वीर, अद्भुत, रौद्र, बीभत्स, भयानक, हास्य और शृंगार येही उनके क्रमशः रसहैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८.

ईश्वर उवाच ॥ संक्षेपतो ग्रामभेदान्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व तान् ॥ स्वर-संदोहको ग्रामो यत्र मूर्च्छादिसंस्थितिः ॥१॥ गातव्यौ द्वौ धरायां हि षड्जमध्यमसंज्ञितौ ॥ गांधारग्रामकः स्वर्गे गातव्यो भवदा-दिभिः ॥ २ ॥ ग्रामाणां देवता ब्रह्मा विष्णुश्चाहं यथाक्रमात् ॥ हेमंते च तथा ग्रीष्मे वर्षायां ते यथाक्रमम् ॥ प्रातर्मध्यापरा ह्णेषु गातव्याः शिवमिच्छता ॥ ३ ॥ तथा सप्तस्वराणां च ह्या-रोहश्चावरोहणम् ॥ मूर्च्छनास्ताः समाख्याताः संख्यया चैकावें-शतिः ॥४॥ ग्रामद्वये महाभाग चतुर्दश समीरिताः ॥ षड्जग्रा-

महादेवजी बोले—अब हम संक्षेपसे ग्रामोंके भेदोंका वर्णन करतेहैं उन्हें श्रवणकरो, स्वरोंके सन्दोहका नाम ग्रामहै, उसीमें मूर्च्छना आदिकी स्थिति रहतीहै ॥ १ ॥ षड्ज और मध्यम संज्ञक दो स्वरोंका गान भूमिके ऊपर करना कर्त्तव्यहै, आप जैसे गायकोंको गान्धार स्वरका गान स्वर्गमें करना चाहिये ॥ २ ॥ ग्रामोंके देवता क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवहैं हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षामें क्रमशः एवम् प्रभात, मध्याह्न और अपराह्नमें इनका क्रमानुसार गान कल्याणकी इच्छा करने वालोंको करना कर्त्तव्यहै ॥ ३ ॥ तथा सात स्वरोंका आरोह और अवरोह मूर्च्छनाके नामसे निर्दिष्ट किया गयाहै, ये मूर्च्छनायें संख्यामें इक्कीसहैं ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! दो ग्रामोंमें चौदह मूर्च्छनाहैं, अयि नारद ! छै ग्रामोंमें अब मूर्च्छनाओंके देव-

मे तु मूर्च्छानां देवताः शृणु नारद ॥ ५ ॥ केंद्रवायुसुगंधर्व्व सिद्धधात्रीभगाः क्रमात् ॥ नामानि शृणु तेषां हि मूर्च्छनानां यथा क्रमम् ॥६॥ निरुद्गता च कांता च सौवेरी हृष्यती तथा ॥उत्तरा चायता षष्ठी रजनी सप्तमी मता ॥ ७ ॥ मध्यमे मूर्च्छनाश्चैव व्यापिनी चंद्रिका मता ॥ हेमा कपर्दिनी मैत्री तथा चांद्रवती मुने ॥ ८ ॥ पित्र्या वै सप्तमी ख्याता गांधारे शृणु नारद ॥ नंदा विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा ॥ ९ ॥ आलापा चेति सप्त स्युर्मूर्च्छना वै तृतीयके ॥ ताना एकोनपंचाशत्रिग्रामे शृणु तान्मुने ॥ १० ॥ शुद्धाः स्युर्मूर्च्छनास्तानाः षाढवौडवनामकाः ॥ षड्जे निषादहीनाश्च क्रमाद्वारिपनैस्तु ते ॥ ११ ॥ सरिगेभ्यो विहीनाश्च मध्यमेष्टौ च विंशतिः ॥ क्रमात्सप्त यदा तानास्तदा चैकोनविंशतिः ॥ १२॥ षाडवाभिर्युता विप्र चत्वारिंशन्नवैव ते ॥ द्विश्रुतिभ्यां सश्यपश्यधारिभ्यां सत्ववर्जिताः ॥ १३॥पृथक्तानाः प्रथमके औडवास्त्वेकविंशतिः॥ऋषभाभ्यां च

ताओंका श्रवण करो ॥ ५ ॥ केन्द्र, वायु, गन्धर्व, सिद्ध, धात्री और भग ये क्रमशः देवताहैं अब मूर्च्छनाओंके यथाक्रम नामोंका श्रवण करो; निरुद्गता, कान्ता, सौवेरी, हृष्यती, उत्तरा, आयता, रजनी ॥६॥७॥ ये मूर्च्छना स्वरमें निवास करतीहैं और हे नारद ! मध्यम स्वरमें व्यापिनी, चन्द्रिका, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और चान्द्रवती येहैं ॥८॥ एवम् सातवी मूर्च्छना पित्र्या नामवाली है, अब नारदजी ! गान्धार स्वरमें निवास करनेवाली मूर्च्छनाओंका श्रवण करो, नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा ॥९॥और आलापा ये सात मूर्च्छनायें तीसरे स्वरमें विद्यमान रहतीहैं; सुनो नारद मुनि !!! तीन ग्रामोंमें उनचास तानेहैं ॥१०॥ शुद्ध मूर्च्छना, षाडव औडव नामकी तान षड्ज स्वरमें रहतीहैं ॥ ११ ॥ 'सरिग' से रहित अट्ठाइस ताने मध्यम स्वरमेंहैं, क्रमसे सात पद और ताने उन्नीसहैं ॥ १२ ॥ अथ च हे विप्र ! षाडव आदिसे युक्त होकर वे सब उनचास होतेहैं, यह धैवत और ऋषभसे वर्जितहैं ॥ १३ ॥ प्रथम स्वरमें पृथक् २ औडव संज्ञक एक विंशति तानेहैं इनकी स्थिति द्विश्रुतिसे

द्विश्रुत्या मध्यमे ग्रामसंस्थिताः ॥ १४ ॥ चतुर्दशैव हीनाः स्युः पंचत्रिंशच्च संख्यया ॥ षाडवा औडवाश्चैवाशीतिश्च चतुरश्च ते ॥ १५ ॥ कूटतानास्त्वसंपूर्णा व्युत्क्रमोच्चरितास्तथा ॥ संपूर्णाश्च तथा ख्याताः कूटतानाः क्रमात्तथा ॥ १६॥ एकैकस्यां मूर्च्छनायां षट्पंचाशत्तथेरिताः ॥ नेत्रलक्षनेत्रनागसहस्राण्यक्षिणी तथा ॥ १७ ॥ खयुगाश्च तथा ख्याता ह्यपूर्णान् शृणु नारद ॥ विंशतिः षाडवानां तु तथा सप्तशतानि तु ॥ १८ ॥ विंशोत्तरं शतं चैव ह्यौडवानां विधीयते ॥ चतुःस्वराणां कूटानां युगनेत्रमितिर्मता ॥ १९ ॥ रसनेत्रस्वरौ चैव त्रिः स्वराश्चैकः स्वरः ॥ आर्चिकः प्रथमः ख्यातो गाथिकः सामिकस्तथा ॥ २०॥ स्वरीमक श्चतुर्थश्च नामान्येषां क्रमान्मुने ॥ युक्तौ निषादगांधारौ तत्र शुद्धादिभेदतः ॥ २१ ॥ चतुर्विधाः प्रजायंते तयोरेकैकहानितः ॥ षाद्यौ माद्यौ तु चत्वारो द्विविधौ द्विविधौ यतः॥अन्ये दश तथा चाष्टौ चतुर्द्धा च यथाक्रमात्॥२२॥चत्वारिंशच्च तथा विंशतिः खखसप्तकम् ॥ शतं च द्विगुणाः सर्वे षाडवानां तथा मितिः ॥ २३ ॥ सहस्राणां चतुस्त्रिंशत्षष्टिः पंच-

मध्यमग्राममें रहतीहै ॥ १४ ॥ षाडव और औडवके सब मिलकर चौरासी भेद होतेहैं ॥ ॥ १५ ॥ व्युत्क्रमसे इन्हीका उच्चारण किया जाय तौ येही कूट तान होतीहैं, और कूट तानके अनुसारही गणना करनेसे ये सब कूट तानेभी पूर्ण होजातीहैं, एवं च एक २ मूर्च्छनामें छप्पन कूट तान होतीहैं, दोलक्ष, बहत्तर सहस्र दोसो ॥ १६ ॥ १७ ॥ चालीस पूर्णकूट मूर्च्छनाहैं । अब हे नारदजी ! अपूर्णोका श्रवण करो सात प्रमाण हैं सौ वीस षाडवके ॥ १८ ॥ और एकसौ वीस आडवके भेदहैं अथच चार कूट स्वरोंके चौवीस प्रमाणहैं ॥ १९ ॥ यद्यपि स्वरोंके छै दो और तीन भेदहैं परन्तु वोह स्वर एकहीहै और उसके चार नामहैं; पहिला आर्चिक, दूसरा गाथिक, तीसरा सामिक ॥२०॥ और चौथा स्वरीमकहै, येही क्रमशः उनके नामहैं हे, मुनिराज ! शुद्धादिभेदसे निषाद और गान्धार इनमें युक्तहैं ॥ २१ ॥ उन दोनोंमेंसे एक २ को हीन करनेसे वे चार २ प्रकारके होतेहैं । तथा षड्ज और मध्यम स्वरोंके दो २ भेदहैं शेष स्वरोंके क्रमसे दस आठ और चार भेदहैं ॥ २२ ॥ षाडवके सब मिलाकर सातसौ वीस तथा चालीस और दोसौ भेदहैं और हे नारद ! आडव-

शतानि च ॥ सर्वौडवानां संख्यानं शृणु नारद कृत्स्नशः॥२४॥ मध्याद्यौ धैवताद्यौ च भेदाश्चत्वार एव च ॥ षडौडवा द्विधेत्येवमुक्तपूर्वप्रभेदतः ॥ २५ ॥ अष्टावंत्यादिमे विप्र चत्वारिंशत्सप्तविंशतिः ॥ शतं च गुणितं तैश्च तथा गजशतानि वै ॥ २६ ॥ पंचस्वरेषु संख्या स्यान्मुने कृतसहस्रकम् ॥ चतुर्द्धाद्यौ तथा नाद्यौ द्वादश प्रथमे मताः ॥ २७ ॥ गुणिता युगनेत्राख्यैर्द्वात्रिंशद्वै महामुने ॥ संख्याश्चतुःस्वरे चोक्तास्त्रिस्वरेषु तथा शृणु ॥२८॥ माद्यौ चतुर्द्धा भेदौ द्वौ परनेत्रेंदुसम्मिताः ॥ ते वै द्विधेयं षट्त्रिंशत् षड्भिस्ते गुणितास्ततः ॥२९॥ द्विस्वरेषु द्विधा विप्र रिगधेत्यादयोष्टकम् ॥ शुद्धाः स्युर्द्वाविंशतिरब्ध्याब्धिगुणिता मुने ॥३०॥एकस्वरादिभेदत्वान्मूलभूताश्चतुर्दश ॥ ते षड्जशुद्धमध्यायपंचकं भिदिकं विना ॥ ३१ ॥ सर्वेष्टचत्वारिंशद्वै ज्ञातास्त्रिस्वरकेषु वै ॥ द्वादश द्विस्वरे प्रोक्ता द्वयमेकैककस्वरे ॥३२॥ त्रिषष्टिरुत्तरैर्मंत्रैस्ताना मार्गीभवाः पुनः ॥ शराः स्वराश्च चत्वा-

के सब भेद चौंतीस सहस्र पांचसौ साठहैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ मध्य और आदि धैवत और आदि ये चार भेदहैं, छै पहिले तथा दो षाडवादि ये सब भेदहैं ॥ २५ ॥ हे विप्र ! स्वरोंकी पृथक् २ गणना चालीस सत्तावीस सो तथा आठसौहै ॥ २६ ॥ और हे मुने ! पांच स्वरोंमें गणना सहस्र परिमितहैं, नादमें उनका चार प्रकारसे विभागहै, प्रथम स्वरमें बारह भेद माने गयेहैं ॥ २७ ॥ हे मुनिराज ! चौवीससे गुणाकरनेपर उनके बत्तीस भेद होतेहैं, चार स्वरोंमें संख्याका यह क्रमहै, अब तीन स्वरोंमें विभाग स्थितिका वर्णन सुनो ॥ २८ ॥ मध्यम और धैवतमेंभी चार प्रकारके भेद होतेहैं हे विप्र ! छैके द्वारा उन्हें द्विधा गुणित करनेसे छत्तीस भेद होतेहैं ॥ २९ ॥ हे विप्र ! दो स्वरोंमें दो प्रकारसे ऋषभ गान्धार और धैवत आदिमें आठ प्रकारकी स्थिति होजातीहै । हे महर्षे ! इनकी शुद्ध गणना बाईस मानी गईहैं ॥ ३० ॥ एकही स्वरादिका भेद होनेसे मूलभूत उनमें चौदहहैं; उनकी शुद्धस्थितिका भेद षड्ज मध्यम और पंचमहै ॥ ३१ ॥ तीन स्वरोंमें सब अडतालीस प्रकारके भेदोंकी स्थिति मानी गईहै, एवंच एक २ स्वरमें दो २ भेदोंकी स्थितिहै ॥ ३२ ॥ और उत्तर मन्त्रोंके द्वारा मार्गीभूत तानें तरेसठ रीतिकीहैं उन तानोंके चार स्वर

स्तत्तानानां चतुःशतम् ॥ ३३ ॥ खोराधिकः स्वरास्तद्वत्तथा षण्णवतिस्तथा ॥ द्वादश त्रिस्वरद्वंद्वे चत्वारो द्विस्वरे द्वये ॥३४॥ एकैकस्वरतानानां भवेत्पंचशतीत्वियम् ॥ एष तूद्देशतः प्रोक्तो विस्तरो मूर्च्छनादिकः ॥ ३५ ॥ नामानि शुद्धतानानां शृणु नारद सांप्रतम् ॥ अग्निष्टोमस्तथात्यग्निष्टोमो वै वाजपेयकः ॥ ३६ ॥ षोडशः पुण्डरीकोश्वमेधो वै राजसूयकः ॥ सहीनानां महाभाग सप्त नामान्यनुक्रमात् ॥ ३७ ॥ स्विष्टकृद्बहुवर्णश्च गोसवश्च महाव्रतः ॥ विश्वजिद्ब्रह्मयज्ञश्च प्राजापत्यश्च सप्तमः ॥ ३८ ॥ नामानि रिविहीनानां तानानां स्युर्यथाक्रमम् ॥ अश्वक्रांतो रथक्रांतो विष्णुक्रांतो महामुने ॥ सूर्य्यक्रांतो गजक्रांतो बलभिन्नागयक्षकौ ॥ ३९ ॥ विहीनानां यथा संज्ञाश्चोक्ता नारद वै मया ॥ चातुर्मास्योथ संस्थश्च शास्त्रमैक्यश्चतुर्थकः ॥ ४० ॥ सौत्रामणिस्तथा चित्रो मदः सप्तम एव च ॥ इति नामानि संख्या च कथिता ते द्विजोत्तम ॥ ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे संगीतशास्त्रे ग्रामादिभेदकथनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

और चारसो शर माने गयेहैं ॥ ३३ ॥ तथा खोराधिकस्वर नव्वे माने गयेहैं, तीन स्वरोंमें दो २ के क्रमसे बारह और दो स्वरोंमें चार भेदहैं ॥ ३४ ॥ इस भेदसे एक २ स्वरकी तानें पांचसो हैं। यह मूर्च्छना आदिका विस्तार उद्देशवशात् हमने वर्णन कियाहै ॥ ३५ ॥ हे नारद ! अब शुद्ध तानोंके नाम श्रवण करो—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय ॥ ३६ ॥ षोडश, पुण्डरीक, अश्वमेध और राजसूय, हे महाभाग ! ये सात क्रमशः सहीनोंके नामहैं, ॥ ३७ ॥ स्विष्टकृत, बहुवर्ण, गोसव, महाव्रत, विश्वजित्, ब्रह्मयज्ञ छै ये और सप्तम प्राजापत्य ॥ ३८ ॥ रिविहीन तानोंके ये नाम क्रमसे होतेहैं, अश्वक्रान्त, रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त, सूर्यक्रान्त, गजक्रान्त, बलिभिद नाग और यक्ष ॥ ३९ ॥ हे महामुनि नारद ! विहीनोंकी ये संज्ञा हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करीं, चातुर्मास्य, संस्थ, शास्त्र, ऐक्य, चतुर्थक ॥४०॥ सौत्रामणि, चित्रमद ये नाम और संख्या हे द्विजोत्तम ! हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९.

ईश्वर उवाच ॥ मध्यमग्रामसंबद्धान्षाडवान् शृणु नारद ॥ सावित्री चार्द्धसावित्री सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ १ ॥ रव्यायनो गवायश्च तथा सर्वायनः स्मृतः ॥ कौडपायननामा च सहीनानां तथा विधा ॥ २ ॥ अग्निजिह्वो दशाहश्च ततः पांशुः कलाधरः ॥ अश्वप्रतिग्रहो बर्हिस्तथात्युदयसंज्ञकः ॥ ३ ॥ नामानि रिविहीनानां कथितानि महामते ॥ सर्वस्वदक्षिणश्चैव दीक्षाख्यो ग्लौः समित्तथां ॥ ४ ॥ स्वाहाकारस्तनूपाच्च गोदोहश्चैव सप्तमः ॥ गहीनानां महाभाग संख्योक्ता ह्येकविंशतिः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे मध्यमग्रामौडकथनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

महादेवजी बोले—हे नारदजी ! अब मध्यम ग्राममें सम्बद्ध हुए षाडवोंका वर्णन सुनो, सावित्री, अर्द्धसावित्री, तथा सर्वतोभद्र ॥ १ ॥ रव्यायन, गवाय, और सर्वायन कौडपायन ये सब सहीनोंके भेदहैं ॥ २ ॥ अग्निजिह्व, दशाह, पांशु, कलाधर, अश्वप्रतिग्रह, बर्हि, और उदयसंज्ञक ॥ ३ ॥ हे महामतिमान् ! रिविहीनोंके ये नाम कथन किये गयेहैं । सर्वस्वदक्षिण, दीक्षाख्य, ग्लौ और समित ॥ ४ ॥ स्वाहाकार, तनूपात् और सप्तम गोदोह, हे महाभाग ! गहीनोंके ये नामहैं एवं च इन सबकी मिलकर संख्या इक्कीस होतीहै ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां नवषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः ७०.

ईश्वर उवाच ॥ षड्जग्रामे महाभाग ह्यौडवान् शृणु तत्परः ॥ इडा पुरुषमेधश्च श्येनो वज्रस्तथा शरः ॥ १ ॥ अंगिराः कर्कनामा च सपाभ्यां रहितास्त्विमे ॥ ज्योतिष्टोमस्तथा दर्शो

महादेवजी बोले—हे सौभाग्यशाली नारदजी ! अब षड्जग्राममें औडवोंका वर्णन तत्पर होकर श्रवण करो, इडा, पुरुषमेध, वज्र, शर ॥ १ ॥ अंगिरा, कर्कनाम ये सपारहितके नाम

नादी वै पौकसस्तथा ॥ २ ॥ अश्वप्रतिग्रहो रात्रिः सौरभाख्य-स्तु सप्तमः ॥ एतानि नगहीनानां नामानि कथितानि ते ॥ ३ ॥ सौभाग्यदः सुकर्मा च शांतिदः पुष्टिदस्तथा ॥ वैन-तेयः श्वादनश्च वशीकरणसंज्ञकः ॥ नामानि परिहीनानां कथि-तानि महामते ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे षड्जग्रामौडवनामकथनन्नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

हे ज्योतिष्टोम, आदर्श नदी, पौकस ॥ २ ॥ अश्वप्रतिग्रह, रात्र, और सौरभ ये नगहीनोंके नाम हमने तुम्हारे प्रति कथन कियेहैं ॥ ३ ॥ सौभाग्यद, सुकर्मा, शान्तिदाता, पुष्टिदायक, वैनेय, श्वादन और वशीकरण हे महामते ! ये नाम हमने तुम्हारे प्रति परिहीनोंके वर्णन कियेहैं ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः ७१.

ईश्वर उवाच ॥ मध्यमग्रामिके विप्र ह्यौडवान् शृणु नारद ॥ मोहनो वीरकंदर्पदर्पहा शंखचूडकः ॥ गजच्छायस्तथा रौद्रो विष्णुविक्रम एव च ॥ १ ॥ नामान्येतानि देवर्षे चतुर्धा तत्प्र-कीर्त्तितम् ॥ काकल्यंतरसैर्मे न विशेषेण प्रकीर्त्तितम् ॥ २ ॥ निसयोः काकली साधारणं ते परिकीर्त्तितम् ॥ गांधारमध्ययो-श्चांतरस्यापि मतं तु तत् ॥ ३ ॥ समुच्चार्य्य प्रयोज्यौ हि काक-लीधैवतौ ततः ॥ समुच्चार्य्य महाभागांतरर्षभौ ततो मुने ॥ ४ ॥

महादेवजी बोले—हे विप्र ! अब मध्यमग्राममें जो औडवोंकी स्थितिहै उनका श्रवण करो, मोहन वीर कन्दर्प दर्पहा शंखचूड गजच्छाय रौद्र और विष्णु विक्रम ॥ १ ॥ हे देव-र्षि नारद ! ये उनके नामहैं और उनको चार प्रकारका कहकर कीर्त्तन किया गयाहै, उनके विषे काकल्य विशेषतासे वर्णितहै ॥ २ ॥ और काकलीका वर्णन निःसन्देह हमने तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कियाहै । एवंच गान्धार और मध्यमके अन्तकाभी उसीको मानाहै ॥ ३ ॥ अतश्च काकली और धैवतका उच्चारण करके प्रयोग करना कर्त्तव्यहै, इसी प्रकार ऋषभमेंभी उच्चारण

तथोच्चार्य्य सकाकलिनौ संगच्छेत्तदनंतरम् ॥ तदन्यं मध्यमं चांतं रस्वरं वै प्रयुज्य च ॥ ५ ॥ एवं सर्वत्र देवर्षेरताभ्यां रहितानि ते ॥ संज्ञानि गविहीनानां शृणु भैरवपूर्वकान् ॥ ६ ॥ भैरवः कामदश्चैवावभृथोष्टाकपालकः ॥ स्विष्टकृच्च वषट्कारो मोक्षरस्त्वपरो मतः ॥ ७ ॥ मध्यमग्रामके विप्र चतुर्द्धा इव तानकाः ॥ साधारणी तथा प्रोक्ता स्वरजाती विशेषतः ॥ ८ ॥ तत्र स्वरीयं देवर्षे चतुर्द्धा तत्प्रकीर्त्तितम् ॥ काकल्यंतरसैर्मे न विशेषेण च काकली ॥ ९ ॥ स्वरसाधारणे प्रोक्तं जातिसाधारणं शृणु ॥ एकग्रामे स्थिता अंशा भवेयुर्यदि जातिषु ॥ १० ॥ रागाश्चैव तथा विप्र जातिसाधारणा मताः ॥ एतद्ग्रामौढवाषाढ व्याख्यानं ते प्रकीर्त्तितम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे संगीतशास्त्रे षाडवौडवाख्यानं नामैकसप्ततितमोध्यायः ॥ ७१ ॥

करके ही प्रयोग करै ॥ ४ ॥ तथा उच्चारण करकेही काकलीके बोधको ग्रहण करै, इसी रीतिसे मध्यम स्वरमेंभी प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥ हे देवर्षि नारद ! इसी प्रकार सर्वत्र र और तसे उन्हें रहित जाने, अब भैरवपूर्वक गविहीनोंकी संज्ञाओंका श्रवण करो॥ ६ ॥ भैरव कामद अवभृथ अष्टाकपालक स्विष्टकृत् वषट्कार और मोक्षर ॥ ७ ॥ हे विप्र ! मध्यम ग्राम में चार प्रकारसे तानें होतीहैं, उन्हें साधारण रीतिसे और स्वरजातिको विशेषतासे वर्णन किया है ॥ ८ ॥ हे देवर्षि ! उनके विषै इन स्वरविभागोंको चार भांतिसे कीर्त्तन कियाहै, उसमें भी काकलका सामान्य रीतिसे और काकलीका विशेष रीतिसे वर्णनहै ॥ ९ ॥ यह तौ स्वरोंमें साधारणताका वर्णन किया अब जातिकी साधारणताका वर्णन सुनो, यदि एकही ग्राम में स्थित हुए अंश जातियोंमें होजायँ तौ ॥ १० ॥ हे विप्र ! रागोंको जाति साधारण माना गयाहै, इस प्रकार ग्रामोंमें औडव और षाडवके आख्यानका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२.

ईश्वर उवाच ॥ शृणु नारद वात्सल्यात्तव सर्वं वदामि च ॥ न कदाचिद्धि देवर्षे प्रोक्तं कस्मै मया खलु ॥ १ ॥ वर्णैर्गानक्रिया प्रोक्ता चतुर्द्धा सा प्रवर्त्तते ॥ तद्भेदाञ्छृणु विप्रर्षे कथयामि समासतः ॥२॥ स्थाय्यया रोह्यवरोही तु संचारी तच्चतुर्विधा ॥ स्थिरप्रयोगवर्णश्च स्थायिवर्णः प्रकीर्त्तितः ॥ ३ ॥ तथा नारद नामाद्यपरा वत्वर्थवामकौ ॥ एतत्संकरवर्णश्च संचारी समुदाहृतः ॥ ४ ॥ विशेषवर्णग्रथनमलंकारः प्रकीर्त्तितः ॥ बहवस्त्वस्य भेदाः स्युः संक्षेपेण वदामि ते ॥ ५ ॥ स्थायिगान् संप्रवक्ष्यामि येषामाद्यंतयोः स्थिरे ॥ स्वरस्थे वै प्रसन्नादिः प्रसन्नांतस्तथैव च ॥ ६ ॥ तथाद्यंतप्रसन्नस्तु तृतीयः परिकीर्त्तितः ॥ प्रसन्नमध्यमश्चैव पंचमः क्रमरेचितः ॥ ७ ॥ प्रस्तारनामा षष्ठश्च प्रसादः सप्तमः स्मृतः ॥ शय्यालंकारकाः सप्त कीर्त्तितास्ते द्विजोत्तम ॥ ८ ॥ आरोहिवर्णालंकारा द्वादश परिकीर्त्तिताः ॥ शृणुष्वैतान्महाभाग

महादेवजी बोले—सुनो नारदजी ! प्रेमवशात् हम सब कुछ तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं, हे देवर्षि ! निश्चय जानो यह आख्यान हमने प्रथम किसीके प्रति वर्णन नहीं किया ॥ १ ॥ वर्णोंके द्वारा गानक्रिया होतीहै वोह चार प्रकारकी मानी गईहै हे ब्रह्मर्षि ! उसीके भेदोंका हम संक्षेपसे वर्णन करतेहैं सो तुम श्रवण करो ॥ २ ॥ स्थाई आरोही अवरोही और संचारी ये उसके चार भेदहैं, स्थिर वर्ण प्रयोगको स्थायीवर्ण कीर्त्तन कियाहै ॥ ३ ॥ तथा हे नारदजी ! अन्य अन्वर्थनाम संकरवर्णको संचारी मानाहै ॥ ४ ॥ और विशेष (उत्तम) वर्णोंके ग्रथनको अलंकार कहतेहैं, यद्यपि इसके बहुतसे भेदहैं परन्तु संक्षेपसे तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ प्रथम स्थायिगामियोंका वर्णन करतेहैं, जिनके आदि अन्त स्थिरतामें प्रशान्त आदि स्वर स्थितहैं ॥ ६ ॥ तथा आद्यन्त प्रसन्न तीसरा कीर्त्ति किया गयाहै, और पंचमके मध्यमें प्रसन्न स्वरकी स्थितिहै ॥ ७ ॥ छठेका प्रस्तार नाम और सप्तमका प्रसाद नामहै, अथ च हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे प्रति सात शय्या अलंकार वर्णन कियेहैं ॥ ८ ॥ आरोही वर्णके अलंकार बारह कहे गयेहैं सो हे महाभाग ! अब उनके नामोंका

हसितं प्रेषितं तथा ॥ ९ ॥ आक्षिप्तं संधिप्रच्छादोद्गीतोद्वाहित कास्तथा ॥ विस्तीर्य्यश्चैव निष्कर्णस्तथोभ्युच्चयसंज्ञकः ॥१०॥ त्रिवर्णे वेणिरिति वै द्वादशः परिकीर्त्तितः ॥ तथावरोहक्रमत एत एव च रोहिणी ॥ ११ ॥ द्वादशावरोह्यलंकारास्तथा वै परिकीर्त्तिताः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि संचारिणी तृतीयकः ॥ ॥ १२ ॥ मंद्राद्यो मंद्रमध्यश्च मंद्रांतस्तु तृतीयकः ॥ प्रस्तारश्च प्रसादश्च यावृतः स्खलितस्तथा ॥ १३ ॥ परिवृत्तोत्क्षेपविद्धद्वाहितोर्म्मिसमास्तथा ॥ प्रेषितं च निकूजश्च श्येनो ह्युटितरंजिना ॥ १४ ॥ सन्निवृत्तः प्रवृत्तश्च वेणुर्ललित एव च ॥ हुंकारश्च तथा ख्यातो ह्रदमानावलोकितौ ॥ १५ ॥ पंचविंशतिरुद्दिष्टाः संचारिणि महामुने ॥ समालंकारकाश्चान्ये कथ्यंते भाषिता मुने ॥ ॥ १६ ॥ तारमंद्रौ प्रसन्नश्च द्वितीयो विपरीतकः ॥ आवर्त्तकः संप्रदानो विधुतश्च तथैव च ॥ १७ ॥ क्रमलोलस्तथा चान्यस्तथोल्लासित एव च ॥ अलंकाराः प्रकथिता भक्तितस्ते द्विजोत्तम ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे संगीतशास्त्रे स्थाय्याद्यलंकारवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रवण करो; हसित प्रेषित ॥ ९ ॥ आक्षिप्त सन्धिप्रच्छाद उद्गीत तथा वाहितक विस्तीर्ण निष्कर्ण और अभ्युच्चय संज्ञक ॥ १० ॥ त्रिवर्णमें वेणि बारह प्रकारकी वर्णन करीजाती है और अवरोहणके क्रमसे इसीको रोहिणी कहतेहैं ॥ ११ ॥ तथा च अलंकारोंकेभी बारह भेदहैं, सुनो नारदजी ! हम तुम्हारे समक्ष वर्णन करतेहैं, संचारीमें तीन भेदहैं ॥ १२ ॥ एक मन्द्राद्य, दूसरा मन्द्रमध्य और तीसरा मन्द्रान्तहै । प्रस्तार प्रसाद यावृत स्खलित ॥ १३ ॥ परिवृत्त उत्क्षेप विद् वाहितोर्मि सम प्रेषित निकूज स्येनोद्घटित रंजित ॥ १४ ॥ सन्निवृत्त प्रवृत्त वेणु ललित हुंकार और ह्रदमानावलोकित ॥ १५ ॥ हे महामुनिराज ! संचारीमें पचीस वर्णन कियेहैं, और हे मुने ! अन्यसम अलंकार कहातेहैं ॥ १६ ॥ तारमन्द प्रसन्न विपरीतक आवर्त्तक संप्रदान और विद्युत ॥ १७ ॥ क्रम लोल और उल्लासित, हे द्विजोत्तम ! यह अलंकार हमने तुम्हारे प्रति भक्तिवशात् वर्णन कियेहैं ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३.

ईश्वर उवाच ॥ स्वरैः षड्जादिभिः सप्त जातयः शुद्धनामकाः ॥
ता वक्ष्यामि महाभाग मयि भक्तिः परा तव ॥ १ ॥ षड्जी चैवार्ष-
भी विप्र गांधारी मध्यमा तथा ॥ पंचमी धैवती षष्ठी नैषादी
सप्तमी तथा ॥ २ ॥ एतत्सांकर्य्यजातीनामानंत्यं वर्त्तते मुने
मूलभूताः प्रकथितास्ताभ्यः सर्वं प्रलक्ष्यते ॥ ३ ॥ इति ते कथिता
नादसमुद्भूतिर्मया मुने ॥ नाद एव परं ब्रह्म सर्वं नादात्मकं जगत्
॥ ४ ॥ शुद्धं समभ्यसेद्ब्रह्मन् गुरुवक्त्रात्समीरितम् ॥ गीताक्षरप्रथमके
पवर्गं परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥ सकारं च दकारं च रकारं च तथैव च ॥
नकारं च चकारं च हकारं च फलं शृणु ॥ ६ ॥ दकारे कुल-
नाशः स्यात्सकारे शोकसंभवः ॥ रकारे मरणं प्रोक्तं लक्ष्मीना-
शो नकारके ॥ ७ ॥ चकारे स्थाननाशः स्याद्धेह्यायुः क्षीयते
परम् ॥ उद्वाहे नगरा वर्णाः शरलांश्चांतरे त्यजेत् ॥ ८ ॥

महादेवजी बोले–षड्ज आदि स्वरोंके द्वारा शुद्धनामक सात जातियें सम्पन्न होतीहैं, हे
महाभाग ! तुम्हारे प्रति अब उनका वर्णन करतेहैं क्योंकि–हमारे विषै तुम्हारी विशेष भक्ति
है ॥ १ ॥ षड्जी, ऋषभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी ये उन जातियों-
के नामहैं ॥ २ ॥ हे मुनि ! यद्यपि इन संकरजातियोंके अनन्त भेदहैं परन्तु–उनकी मूल-
भूत येहीहैं और उन्हीसे सबकी लक्षणा हो जातीहै ॥ ३ ॥ हे मुने ! यह नादकी उत्पत्ति
हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै, नादही परं ब्रह्महै, अथ च यह समस्त जगत्भी नाद ब्रह्मसे
व्याप्तहै ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह नाद जिस प्रकार गुरु महाशयके मुखसे विनिर्गत हो उसी
प्रकार शुद्धरीतिसे इसका अभ्यास करै, गीतकी आदिमें पवर्गके अक्षरका परित्याग करदेना
चाहिये ॥ ५ ॥ अथच सकार, दकार, रकार, नकार, चकार और हकार इन अक्षरोंकोभी
वर्जित कर देना कर्त्तव्यहै, अब इनके प्रयोग करनेका फल श्रवण करो ॥ ६ ॥ दकारके
प्रयोगसे कुलका नाश, सकारमें शोककी उत्पत्ति, रकारसे मृत्यु और नकारके प्रयोगसे लक्ष्मी-
का नाश होताहै ॥ ७ ॥ चकारसे स्थानका नाश और हकारके प्रयोगसे परम आयुका क्षय
होताहै, ग्रहणमें 'नगर' अक्षरोंको और अन्तरमें 'श-र ल' को त्यागदेना चाहिये ॥ ८ ॥

आभोगे हटकान्विप्र नव वर्णा इमे स्मृताः ॥ उद्राहे हरते लक्ष्मी-मंतरे हरते यशः ॥ ९ ॥ आभोगे हरते जीवं तस्मात्तत्परिव-र्जयेत् ॥१०॥ अष्टौ गणाः समाख्याता गीते छंदसि पुण्यदाः ॥ तान्वक्ष्यामि महाभाग सावधानोवधारय ॥ ११ ॥ मयरस तजभनाः कीर्त्तिता भेदसम्मिताः ॥ लक्षणानि प्रवक्ष्यामि देवता श्च फलं तथा ॥ १२ ॥ मगणस्त्रिगुरुः ख्यातो यगणो लघुरा-दिमः ॥ रगणो वै मध्यलघुः सगणोन्तगुरुः स्मृतः ॥ १३ ॥ तगणोन्तलघुः ख्यातो जगणो गुरुमध्यमः ॥ आदिगुरुर्भगणो नगणस्त्रिलघुः स्मृतः ॥ १४ ॥ भूमिनाथस्तु मगणो लक्ष्मी प्राप्तिकरो मतः ॥ जलं यगणनाथश्च पुत्रप्राप्तिकरस्तथा ॥ ॥ १५ ॥ वह्निरगणस्वामी च मृत्युदो वै प्रकीर्त्तितः ॥ सगण स्य तथा स्वामी वायुर्वै समुदाहृतः ॥ १६ ॥ नानार्थनाशकश्चैव तथैव गृहनाशकः ॥ नगणेशस्तथाकाशो धनहानिकरो मतः ॥१७॥ जगणेशो धामनिधिर्महाशोककरो मतः ॥ चंद्रो भग-

और हे विप्र ! आभोगमें 'ह ठ क' अक्षरोंके त्यागदेना चाहिये परित्याज्य ये नौ वर्ण कथन किये गयेहैं; उद्राहमें त्याज्य वर्णोंका प्रयोग करनेसे लक्ष्मीका हरण होताहै, और अन्तर (मध्य) में त्याज्य वर्ण प्रयुक्त होनेसे यशका अपहरण करतेहैं ॥ ९॥ और यदि आभोगमें त्याज्य अक्षरोंका प्रयोग करदिया जाय तौ जीवनका अपहरण करतेहैं अतएव उनको त्याग देना चाहिये ॥ १० ॥ गीतके छन्दोंमें पुण्य दायक आठ गण कथन किये गयेहैं, हे महाभाग ! उन्हींका अब वर्णन करतेहैं सावधान होकर श्रवण करो ॥ ११ ॥ मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, और नगण, भिन्न २ ये उनके नामहैं ! अब उनके लक्षण देवता और फलोंका वर्णन करतेहैं ॥ १२ ॥ मगणमें तीन गुरु होतेहैं, यगणके आदिमें लघु, रगणके मध्यमें लघु, सगणके अन्तमें गुरु॥ १३॥तगणके अन्तमें लघु, जगणके मध्यमें गुरुवर्ण होताहै, भगणके आदिमें गुरु, और नगणमें सभी (तीनों) अक्षर लघु होतेहैं ॥ १४ ॥ मगणका भूमि देवताहै और लक्ष्मीकी प्राप्ति इसका फलहै, यगणका जल देवता और पुत्रप्राप्ति फलहै ॥ १५ ॥ रगणकी अग्नि देवता और मृत्यु फलहै, सगणका वायुदेवता ॥ १६ ॥ और विविध प्रकारके अर्थोंका नाश तथा गृहनाश उसका फलहै, नगणका आकाश स्वामी और धनकी हानि करना उसका फलहै ॥ १७ ॥ जगणका सूर्य देवता

नाथस्तु यशःसुखकरो मतः ॥ १८ ॥ ईश्वरोहं नगणपो धना युष्यकरो मतः ॥ मगणो नगणः पूर्वे यभौ चैव तु पश्चिमे ॥ ॥ १९ ॥ रजौ चैवोत्तरे प्रोक्तौ सतौ चैव तु दक्षिणे ॥ ईशानादौ मयरसतजभनाश्च तथा स्मृताः ॥२०॥ विचार्य्य सु-धिया गाने गीतव्या मगणादिकाः॥नादरूपं परं ब्रह्म नादरूपी ज-नार्दनः॥२१॥ नादरूपा परा शक्तिर्नादरूपी महेश्वरः ॥ काव्या-लापाश्च ये केचिद्गीतकान्याखिलान्यपि ॥ शब्दरूपधरस्यैते वि-ष्णोरंशा महात्मनः॥२२॥स्वरस्य जायते नादो नादस्य स्वर एव हि॥स्वरस्य लीयते तालं तालो गीतं समाचरेत् ॥२३॥ नादमध्ये स्थितः सूर्य्यो बिन्दुमध्ये च चंद्रमाः॥नादबिंद्वोस्तथैवैक्यं वीर्य-मध्ये स्थितं सदा॥२४॥अस्मादेवसमुद्भूतिः सर्वस्य जगतो मुने॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नादब्रह्म समभ्यसेत् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे गीतशास्त्रे षड्जादिजातिप्रमुखकथनं नाम त्रिसप्तति-तमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

शोककारक कहा गयाहै, भगणका स्वामी चन्द्रमा यश तथा सुख उसका फलहै ॥ १८ ॥ और नगणके हम स्वामीहैं धनकी प्राप्ति तथा आयुकी वृद्धि इसका फलहै, मगण नगण पूर्वमें, यगण भगण पश्चिममें ॥ १९ ॥ रगण जगण उत्तरमें और सगण तगण दक्षि-णमें निवास करतेहैं, अथच ईशान आदि कोणोंमेंभी मगण यगण रगण सगण तगण जगण भगण और नगण कहे गयेहैं ॥ २० ॥ सुन्दर बुद्धिमानोंको उचितहैं कि-भली भांति विचार कर मगण आदिका गान करै,कारण कि-नादही परमब्रह्म और नादहीपर जनार्दन भगवान्हैं ॥ २१ ॥ नादरूपा परमा शक्तिहै, और नादही महेश्वररूपहै, जितने काव्यके आलापहैं, वे तथा सम्पूर्ण गीत, शब्दरूपधारी महात्मा श्रीविष्णु भगवान्के अंशहैं ॥ २२ ॥ स्वरसे नाद और नादसे स्वर होताहै, अथच स्वरहीमें ताल और गीतका आचरण होताहै ॥ २३ ॥ नादके मध्यमें सूर्य्यकी और बिन्दुके मध्यमें चन्द्रमाकी स्थितिहै, एवम् नाद और बिन्दुकी एकता सदा वीर्यके मध्यमें स्थित रहतीहै ॥ २४ ॥ अय मुनिराज ! इसीके सका-शसे समस्त जगतकी उत्पत्ति होतीहै, अतएव सब यत्नपूर्वक नादब्रह्मका अभ्यास करैं॥२५॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४.

ईश्वर उवाच ॥ स्वरभेदान्प्रवक्ष्यामि पदानि विविधानि च॥ उपहंतुर्गलं चैव त्रितयं तु विशारदम् ॥१॥ चतुर्थं चार्थभोगेन ह्येवं च पदलक्षणम् ॥ विधिः संप्रोच्यते विप्र जाकजोकसरोरकम् ॥ २ ॥ रेका टेका तथा ख्याता तथैवाथ प्रहास्तिका ॥ विधिः पंचविधः प्रोक्तो मया वै प्रकटीकृतः ॥ ३ ॥ गुणा अथ च प्रोच्यंते ताञ्छृणुष्व महामुने॥उपकारी महाधीरो ह्यंतर्वार्त्तां न चोदति ॥ ४ ॥ दीक्षारसविलस्वेन मोक्षार्थी पूत एव च ॥ उपकारी महाधीरो निष्ठुरो वचनी बली ॥ ५ ॥ दुःखमंत्ररसंवित्तुतमवेक्ष्य च वर्त्तनम् ॥ अथ वर्गाश्च प्रोच्यंते नादरूपा महामुने ॥ ६ ॥ अकचटतपयशा अष्टौ वर्गाः प्रकीर्त्तिताः ॥ अकवर्गौ तथा विप्रौ चटवर्गौ च क्षत्रियौ ॥ तपवर्गौ तथा वैश्यौ यशौ शूद्रौ महामुने ॥ ७ ॥ लयान् शृणु महाभाग गदतो मे यथाक्रमम् ॥ लयश्च विजयश्चैव हास्यं वै तुलतानि च ॥ प्रौढलक्षणका-

महादेवजी बोले—सुनो नारदजी ! अब मैं स्वरोंके भेद तथा विविध भांतिके पदोंका वर्णन करताहूं, उपहन्तृ गल विशारद ॥ १ ॥ और अर्थभोग ये चार प्रकारके पदलक्षण होते हैं, हे विप्र ! सम्प्रति विधिका प्रतिपादन करतेहैं जाक, जोक, सरोक॥ २ ॥ रेका टेका तथा प्रहस्तिका ये उनके नाम कथित हुएहैं । हमारे द्वारा प्रकटकी हुई विधि पांच प्रकारकी कीर्त्तित हुईहै ॥ ३ ॥ सुनिये महामुने ! सांप्रत गुणोंका वर्णन करतेहैं, उपकारी और महाधीर अन्तर वर्त्ती वार्त्ताको प्रेरित नहीं करताहै ॥ ४ ॥ दीक्षा रसविलासी मोक्षार्थी पूत (पवित्र) उपकारी महाधीर निष्ठुर वचनी बली ॥ ५ ॥ दुःख मन्त्र रसांविद् एवंच तदवलोकन पूर्वक प्रवृत्ति हे महामुने ! इसके अनन्तर नादरूप वर्गोंका कथन करतेहैं ॥ ६ ॥ अवर्ग (स्वर), कवर्ग (कखगघङ), चवर्ग (चछजझञ), टवर्ग (टठडढण), तवर्ग (तथदधन) पवर्ग (पफबभम), यवर्ग (यरलव), शवर्ग (शषसह), ये आठवर्ग कथन किये गयेहैं, इनमेंसे अवर्ग और कवर्ग ब्राह्मणवर्ण, चवर्ग टवर्ग क्षत्रिय, तवर्ग पवर्ग वैश्य, यवर्ग और शवर्ग ये दोनों शूद्र वर्ण हैं ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! अब हम क्रमशः लयोंका वर्णन करतेहैं उनका तुम श्रवण

श्चैव द्रिद्रिर्नामलयादिव ॥ ८ ॥ अथालतीं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः ॥ जाते कृतेग्नौ गतिरिति ततो गतिसमागमे ॥ ९ ॥ द्विकरस्पर्शसंयोगादालत्या हृदये तथा ॥ हस्त्यश्वमैणवी हंसी मृगी खंजनजातकी ॥ १० ॥ एवं गतिविधानेन तद्वदेतत्सुपर्यति ॥ तालस्य कथ्यते संज्ञा तथाच च पुरो मुने ॥ ११ ॥ आच चपुटश्चैवोद्धाटस्तथा संप्रवेष्टितः ॥ सम्यङ्ज्ञानश्च विज्ञेयो पंच तालविधिः स्मृतः ॥ १२ ॥ महाकलासु वचने भोजने चोपवेशने ॥ संयोगे च वियोगे च निष्ठुरे गायने भवेत् ॥ १३ ॥ तेषु तेषु कलाः ख्याता भोजनादौ महामुने ॥ शुभाशुभौ शिवः शक्तिर्धरित्री गगनं तथा ॥ १४ ॥ धर्म्मं पापं च जानीयादेवंच रचना स्मृता ॥ अथ ज्योतिर्दिनेशश्च चंद्रमाश्च ततः परम् ॥ दीप्तस्तृतीयो व्याख्यातो ज्योतिस्त्रितयमिष्यते ॥ १५ ॥ द्विसप्ततिः कला ब्रह्मन् कथयामि समासतः ॥ अथादौ गमनकला रसायनकला ततः ॥ १६ ॥ तथांगलेपनकला रंगाख्या स्तनमर्दनम् ॥ भोजनं

..., लय विजय हास्य तुलता और मौढलक्षणका येही उनके नामहैं ॥ ८ ॥ सुनो नारदजी अब आलतीका वर्णन करतेहैं उसके तत्वका श्रवण करो, गानके समागममें प्रदीप्त अग्निकी समान गति होतीहै ॥ ९ ॥ दोनों हाथोंके स्पर्श होनेपर तथा आलतीसे हृदयमें हस्ती अश्व एणवी हंसी मृगी खंजनजातकी ॥ १० ॥ इस प्रकार गतिके विधानसे उनका उच्चारण करना कर्त्तव्यहै, अब हे मुनिराज ! तालकी संज्ञाओंका तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं ॥ ११ ॥ आच चपुट उद्घाट संप्रवेष्टित सम्यङ्मन ये पांच तालकी विधि कथितहैं ॥ १२ ॥ महाकलाओंमें वचन भोजन और उपवेशनमें, संयोग वियोग और निष्ठुर गानेमें इनका प्रयोग होताहै ॥ १३ ॥ हे महामुनिराज ! उन्हीं भोजनादिमें कलाओंकाभी प्रतिपादन कियाहै । शुभ अशुभ शिवाशक्ति धरित्री तथा गगन ॥ १४ ॥ धर्म और पाप इस प्रकार कही हुई रचनाका वर्णन जानना चाहिये; अथ च दिनेश तत्पश्चात् चन्द्रमा और दीप्त ये तीन ज्योतिहैं ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बहत्तर कलाहैं अब संक्षेपसे तुम्हारे प्रति उनका वर्णन करताहूं प्रथम गमनकला फिर रसायनकला ॥ १६ ॥ अंगलेपनकला रंगकला स्तनमर्दन कला भोजन योजन हास्य और

योजनं चैव हास्यं लिखनमेव च ॥ १७ ॥ पठितं वचनं चैव स्त्रीपरिचर्य्या तथैव च ॥ चंदनं चित्तवचनं मूकाख्या स्तनजोहने ॥ १८ ॥ मोहनं चित्रवैचित्र्यौ तथांजनकला मता ॥ देवविद्याकला चैव परकायप्रवेशनम् ॥ १९ ॥ कवित्वं वै नादकला पुराणं धर्ममेव च ॥ कर्मविद्या ज्ञानकला विज्ञानं भोग्यमेव च ॥ २० ॥ विवादश्चोपवादश्च मनोरंजनमेव च ॥ वैद्यविद्याकला चैव पैशाची मागधी तथा ॥ २१ ॥ सवर्णा खेठककला संग्रामस्तन्त्रतर्किका ॥ सुगन्धाख्या कला चैव विचारणकला मता ॥ २२ ॥ तथा विविधवैचित्र्यं ध्यानं वाजिकला तथा ॥ चक्रं हर्षोऽश्वकला तथा मंडकला मता॥२३॥ अभिन्नाख्या सैन्यकला चूडामणिकला तथा ॥ भुक्तिमुक्तिकले चैव व्यवहारकला तथा ॥ २४ ॥ ध्यानार्कौ च व्रतकला जनराजकला तथा ॥ गीतकला क्रोधकला कला सर्वजनप्रिया ॥ प्रसादोत्साहावुद्वेगः क्रीडा लज्जा द्विसप्ततिः ॥ २५ ॥ रसाः षड् वै समाख्यातास्तिक्ताम्लकटुकाः क्रमात् ॥ कषायमधुरौ लवणं रसा श्चेमे समीरिताः ॥ २६ ॥ नव नाथाः समाख्यातास्तत्र

लिखना ॥ १७ ॥ पठन वचन स्त्रीपरिचर्य्या चन्दन चित्र वचन स्तन अवलोकनमें मूक ॥ ॥ १८ ॥ मोहन चित्र वैचित्र्य अंजन कला देवविद्या कला परकायप्रवेश ॥ १९ ॥ कवित्व नादकला पुराण और धर्म कर्म विद्या ज्ञान कला विज्ञान और भोग्य ॥ २० ॥ विवाद उपवाद मनोरंजन वैद्यविद्याकी कला पैशाची मागधी ॥ २१ ॥ सवर्णा खेटककला संग्राम तन्त्र तर्किका सुगन्धा और विचारणकला ॥ २२ ॥ तथा विविध वैचित्र्य ध्यान वाजिकला चक्र हर्ष अश्वकला तथा मण्डकला ॥ २३ ॥ अभिन्ना सैन्यकला चूडामणिकला भुक्ति मुक्ति कला और व्यवहारकला ॥ २४ ॥ ध्यान अर्कव्रतकला तथा जनराजकला गीतकला क्रोधकला और सर्व जनप्रिया कला प्रसाद उत्साह उद्वेग क्रीडा और लज्जा ये बहत्तर (७२) कलाहैं ॥ २५ ॥ और तिक्त (तीखा) अम्ल (खट्टा) कटु (कडवा) कषाय (कसैला) मधुर और खारी ये छै रसं क्रमसे प्रतिपादन कियेहैं ॥ २६ ॥ एवं च नौ नाथ (स्वामी) कथित

श्रीआदिनाथकः ॥ अनादिनाथकूर्म्माख्यौ भवनाथस्तथैव च ॥२७॥सत्यसंतोषनाथौ तु मत्स्येंद्रो गोपिनायकः ॥ नव नाथास्तु मे ख्याता नादब्रह्मरताः सदा ॥२८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे संगीतशास्त्रीये गानक्रिया नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

हुएहैं उनमें प्रथम श्रीनाथ अनादिनाथ कूर्म भवनाथ ॥ २७ ॥ सत्यनाथ सन्तोषनाथ मत्स्येन्द्र गोपीनायक, ये नौ नाथ हमने नाद ब्रह्ममें निरत प्रतिपादन कियेहैं ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमोऽध्यायः ७५.

नारद उवाच ॥ मूलभूतास्तु षड्ग्रामास्त्वत्त एव समुद्भवाः ॥ रागिण्यश्च कति प्रोक्ता एतद्विस्तरतो वद ॥१॥ ईश्वर उवाच ॥ मूलभूतास्तु षड् ग्रामा मत्त एव समुद्भवाः ॥ तेषां स्त्रियस्तथा पुत्राः पुत्रवध्वस्तथैवच॥२॥ पौत्राश्चैव ह्यसंख्याताः श्यालाः संबंधिनः स्तथा॥तेषां हि विस्तरं प्रोक्तुं नालं वर्षशतैरपि ॥ ३ ॥ श्रेष्ठानेव समाख्यास्ये शृणु नारद तन्मनाः॥भैरवः प्रथमः ख्यातो द्वितीयो मालकौशिकः॥४॥तृतीयश्चाथ हिंदोलश्चतुर्थो दीपकस्तथा॥श्रीरागः पंचमो ज्ञेयो मेघमह्लारःषष्ठकः॥५॥भैरवस्य स्त्रियः पंच ताः शृणुष्व महामते ॥ भूपाली भैरवी चैव रक्तहंसी सुश्रेष्ठिकी॥६॥

नारदजी बोले—मूलभूत छै ग्रामोंका तो जो आपसे प्रादुर्भूत हुएहैं श्रवण करा, अब आप ये विस्तारसे बताइये कि, रागनियें कितने प्रकारकीहैं ॥ १ ॥ महादेवजी बोले—हां मूलस्वरूप छै ग्राम हमसेही उत्पन्न हुएहैं, उनकी स्त्रियें, तथा पुत्र, और पुत्रवधू ॥ २ ॥ पौत्र श्याल (साले) तथा अन्यान्य सम्बन्धी ये सब असंख्यहैं, इनका वर्णन करनेको सैकडों वर्षका समयभी अलम् नहीं होसक्ता ॥ ३ ॥ उनमेंसे श्रेष्ठोंहीका वर्णन करताहूं सो हे नारदजी उसीमें मन लगाके श्रवण करो, पहिला राग भैरव, दूसरा मालकौशिक ॥ ४ ॥ तीसरा हिन्दोल, चौथा दीपक, पांचवां श्रीराग, छटा मेघमह्लार (ये छै राग हैं) ॥ ५ ॥ हे महामतिमान ! भैरवरागकी पांच स्त्रियेहैं, उनका श्रवण करो, भूपाली, भैरवी, रक्तहंसी, सुश्रेष्ठिकी

वेलावली च विख्याताः कौशिकस्य शृणु प्रियाः ॥ कर्णाटी चाथ देशाखी कामोदी च धनश्रकी ॥ ७ ॥ गौरी मोहीति विख्याता मालकौशिकयोषितः ॥ गायनी चाथ गांधारी निर्याना निर्मला तथा ॥८॥ आसावरी चांशकला गौडी हिंडोलयोषितः ॥ रामकली कोहरी च गुर्जरी पट्टमंजरी ॥ मारुका मारुषेणा च दीपकस्य वरांगनाः ॥९॥ केदारी सुहवा चैव सिंधुका भद्रवी तथा ॥ नटी च मोहिनी चैव श्रीरागस्य वरांगनाः ॥ १० ॥ मल्लारिका गुंडगिरी आक्षरिरी तोटिका तथा ॥ कामोदी च प्रिया प्रोक्ता मेघमल्लारयोषितः ॥ ११ ॥ शारदे भैरवो रागो गातव्यः शिशिरे तथा॥मालकौशिकरागो हेमंते हिंदोलकः स्मृतः ॥ १२ ॥ वसंते दीपको रागो ग्रीष्मे श्रीरागसंज्ञकः ॥ वर्षायां मेघरागश्च षड्रागा ऋतुषु स्मृताः ॥ १३ ॥ शृणु पुत्रान्भैरवस्य बंगालः पंचमस्तथा ॥ हर्षो मधुश्च देशाखो ललितो माधवस्तथा ॥ १४ ॥ वेलावसस्तथाख्यातो ह्यष्टौ भैरवपुत्रकाः ॥ मारुमेघाटकौ चैव मिष्टांगो बर्बरस्तथा ॥ १५ ॥ चंद्राश्रया लिनंदाख्याः खोखरश्चाष्टमो मतः ॥ मालकौशिकपुत्राश्च प्रो-

॥ ६ ॥ और वेलावली इन नामोंसे वे विख्यातहैं। अब कौशिक (मालकौशिक) की स्त्रियोंका वर्णन सुनो। कर्णाटी, देशाखी, कामोदी, धनश्रकी ॥ ७ ॥ गौरी, मोही ये मालकौशिककी स्त्रियें विख्यातहैं गायनी, गान्धारी, निर्याणा, निर्मला ॥८॥ आसावरी, अंशकला और गौरी ये हिन्दोल रागकी स्त्रियेंहैं। रामकली, कोहरी, गुर्जरी, पटुमंजरी, मारुका, मारुषेणा, ये दीपक रागकी श्रेष्ठ स्त्रियेंहैं ॥ ९ ॥ केदारी, सुवहा, सिन्धुका, तथा भद्रवी, नटी, मोहिनी श्रीरागकी ये स्त्रियेंहैं ॥ १० ॥ मल्लारिका, गुण्डगिरी, आक्षरिरी, टोटिका और कामोदी ये मेघमल्लारकी स्त्रियें कथन करी गईहैं ॥ ११ ॥ शरद ऋतुमें भैरव, शिशिर ऋतुमें मालकौशिक, हेमन्त ऋतुमें हिण्डोल राग ॥ १२ ॥ वसन्तमें दीपकराग, ग्रीष्ममें श्रीराग एवम् वर्षाऋतुमें मेघराग गाना चाहिये, इसप्रकार ये छैराग छहों ऋतुओंमें वर्णन किये गयेहैं ॥ १३ ॥ अब भैरव रागके पुत्रोंका श्रवण करो ! बंगाल पंचम हर्ष मधु देशाख ललित तथा माधव ॥ १४ ॥ वेलाबल (विलाबल) ये आठ भैरवके पुत्रहैं। मारुमेघाटक मिष्टांग वर्वर ॥ १५ ॥ चन्द्राश्रय अलिनन्दाख्य और खोखर, हे महामुनि-

का अष्टौ महामुने ॥ १६ ॥ मंगलश्चंद्रबिम्बश्च शुभ्रांगानंदसंज्ञकौ ॥ विभासो वर्द्धनश्चैव विनोदाख्यवसंतकौ ॥ १७ ॥ हिंदोलकस्य पुत्रास्ते कथिता वसुसंख्यकाः ॥ कमलो गौडगंभीरौ तथा च गुणसागरः ॥ कल्याणकुंडगंडश्च श्रीरागस्य सुतास्त्विमे ॥ १८ ॥ कर्णाटो नटसारंगौ गौडकेदारसंज्ञकः ॥ गुंडमल्हारकश्चैव तथा जालंधरः स्मृतः ॥ संकरश्चाष्टमः प्रोक्तः पुत्राश्चाष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ ॥ १९ ॥ एषां सांकर्य्यभेदेन रागाश्च बहुधा तथा ॥ षड्जादिस्वर मिलिता यतस्तत्समयाः स्मृताः ॥ २० ॥ इति रागाः समाख्याता मूलभूता महामुने ॥ पुत्रवध्वस्तथा पौत्रा ज्ञेयास्तत्संकरा बुधैः ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे संगीतशास्त्रे रागगणनाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

...न ! ये मालकौशिकके आठ पुत्रहैं ॥ १६ ॥ मंगल चन्द्रबिम्ब शुभ्रांग और आनन्दसंज्ञक विभास वर्द्धन विनोद और वसन्तक ॥ १७ ॥ ये आठ हिण्डोल रागके पुत्र कथन किये गयेहैं कमल गौड गम्भीर गुणसागर कल्याणकुंड गण्ड ये श्रीरागके पुत्रहैं ॥ १८ ॥ कर्णाट नट और सारंग गौड़ और केदारसंज्ञक गुण्डमल्हारक और जालन्धर अथ च संकर ये आठ मेघमल्हारके पुत्रहैं ॥ १९ ॥ इनके संकर भेदसे राग बहुत प्रकारके होतेहैं, षड्ज आदि स्वरोंमें वे मिले रहतेहैं अतएव वैसाही उनके समयका उल्लेख कियाहै ॥ २० ॥ हे महामुने ! मूलस्वरूप ये राग कीर्त्तन किये गयेहैं, विद्वानोंको चाहिये कि, पुत्र वधूएँ पौत्र इनका संपर्कभी जानलें ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६.

ईश्वर उवाच ॥ शृंगाराः षोडश ख्यातास्ताञ्छृणुष्व महामुने मज्जनं चारु चीरं च तिलकं नेत्ररंजनम् ॥१॥ कुंडलं नासिका-मुक्ताफलं कुसुमहारकः ॥ केशप्रसाधनं चैव तथा झंकारनूपुरौ ॥ २ ॥ अङ्गचन्दनलेपश्च कंचुकीधारणं तथा ॥ कांचीकंकण ताम्बूलचातुर्य्यं चेति षोडश ॥ ३ ॥ गीतनामान्यहं वक्ष्ये कमला ललिता तथा ॥ रेका टेकाथ हास्या च तथा चैव प्रबोधिका ॥ ४ ॥ ओतस्याता महावल्ली कलहो मुद्गरस्तथा ॥ खड्गश्चंडस्तथा पूज्यो रसाधिक्यं तथैव च ॥ ५ ॥ धनाढ्या च दरिद्रा च हीना प्रौढांगनास्तथा ॥ कुमुदींद्रसमुद्रा च वेताल

महादेवजी बोले–सुनो महामुनिराज ! सोलह शृंगार कथितहैं, मज्जन (विधिपूर्वक स्नान करना) १, उत्तमोत्तम वस्त्रोंका परिधान करना २, तिलक लगाना ३, और नेत्रोंको रंजित करना (अर्थात्–सुरमा लगाना) ४, कानोंमें कुण्डल पहिरना ५, और नासिकामें मुक्ताफल (वेसर बुलाक या मोती) को धारण करना ६, हार पहिरना७, केशोंको सम्हालना सुधारना ८, तथा नूपुर ९, शरीरमें चन्दनका लेप करना१०, कंचुकी धारण करना ११, कांची (मेखला) १२, कंगन १३, ताम्बूल १४, चातुरी १५ और झंकार १६, ये सोलह शृंगारहैं ॥ १–३ ॥ अब हम गीतोंके नाम वर्णन करतेहैं, कमला, ललिता, रेका, टेका तथा हास्या प्रबोधिका ॥ ४ ॥ औतस्याता महावल्ली कलह मुद्गर खड्ग चण्ड पूज्य तथा रसाधिक्य ॥ ५ ॥ धनाढ्या दरिद्रा हीना प्रौढांगना कौमुदी इन्द्रसमुद्रा वैताल मुशल

---

१ अंगशुची मज्जन वसन, मांग महावर केश ॥
तिलक भाल तिलचिबुकमें, भूषण मेंहदी वेश ॥ १ ॥
मिस्सी काजल अर्गजा, वीरी और सुगन्ध ॥
पुष्पकली युतहोय कर, तब नव सप्त प्रबन्ध ॥ २ ॥

अर्थात्–शरीर साफ करना १, स्नान करना २, वस्त्र धारण करना ३, मांग निकालना और भरना ४, महावर लगाना ५, केशरंजन ६, मस्तकपर तिलक लगाना ७, ठोढीपर तिल बनाना ८, आभूषण पहिरना ९, मेहंदी लगाना १०, मिस्सी ११, और काजल लगाना १२, अरगजा (इत्र आदि) लगाना १३, ताम्बूलचर्वण १४, सुगन्ध लगाना १५, और पुष्पमाला धारण करना १६, ये सोलह शृंगारहैं ॥

कुशलौ गणौ ॥६॥ यथा नाम तथा दोषो यथा दोषस्तथा गुणः
गुर्णैर्विरहिते राज्यं धातुहीने धनक्षयः ॥ ७॥ रंगहीने भवेन्मृत्यु-
र्नास्ति गीतसमो रिपुः ॥ पदहीने शिरो वक्त्रं कंठहीने च धातवः
॥ ८॥ पदहीनेंगहीनत्वं गीतस्यापि भवेन्मुने ॥ तस्मात्सर्व-
प्रयत्नेन तत्तद्दोषांश्च वर्जयेत् ॥ ९ ॥ वक्ष्यामि ध्रुवकान्विप्र
जयंतः शिखरस्तथा ॥ उत्साहो मधुरश्चैव निर्म्मलः कुंतलोम्बुजः
॥ १० ॥ धनं वैराटरेखाच शेखरो वर्व्वरो मतः ॥ हेमाली च
तथा व्याघ्रः पिंडली दरिता तथा ॥ ११ ॥ ध्रुवाः षोडश वि-
ख्याता मण्डाञ्च्छृणु महामुने ॥ हयश्च कुंजरश्चैव वृषभो माहिषः
स्तथा॥१२॥भूषितः पृष्ठनामा च प्रभटाञ्च्छृणु विप्रक॥कठिनः
कमलश्चैव वज्रं वै मुद्गरस्तथा ॥ खड्गं चक्रं तथा प्रोक्ता
नयाः प्रभटसंज्ञकाः ॥ १३ ॥ अद्भुतादिविभेदेन अष्ट ताल-
विधिः स्मृतः ॥ जातयः पंचधा प्रोक्ता रेकाटेकाप्रहस्ति-
काः ॥ १४ ॥ विह्वला समया चैव ह्येताः सौभाग्यदा-
यिकाः ॥ दर्शनानि तथा वक्ष्ये सांख्यं शैवं जिनात्मकम् ॥
भाट्टं बौद्धं च पाखंडं कीर्त्तितानि मया हि षट् ॥ १५ ॥

॥ ६ ॥ इनके जैसे नामहैं वैसेही उनके गुण और दोषहैं, गुणरहितमें राज्य धातुहीनमें
धनका क्षय ॥ ७ ॥ रंगहीनमें मृत्यु होतीहै अतएव गानकी समान अन्यकोई शत्रु नहींहै ।
पदहीन गानेमें शिर और मुख, कंठहीनमें धातुएँ ॥ ८ ॥ पदहीनमें अंगकी हीनता होजातीहै
अतएव सब यत्नोंसे उन २ दोषोंका परित्याग करदेना चाहिये ॥ ९ ॥ हे विप्र ! अब
ध्रुवोंका वर्णन करतेहैं, जयन्त शिखर उत्साह मधुर निर्जल कुन्तल अम्बुज ॥ १० ॥ धन
वैराट रेखा शेखर वर्वर हेमाली व्याघ्र पिण्डली दरिता ॥ ११ ॥ ये सोलह ध्रुव वर्णन किये
गयेहैं, हे महामुनि ! अब मण्डोंका श्रवण करो—हय कुंजर वृषभ महिष ॥ १२ ॥ भूषित
पृष्ठनामा । अब हे विप्र ! प्रभटोंका श्रवणकरो ! कठिन कमल वज्र मुद्गर खड्ग चक्र ये सब
प्रभट संज्ञक कथन किये गयेहैं ॥ १३ ॥ अद्भुत आदि भेदोंके द्वारा तालकी विधिभी आठ
प्रकारकी वर्णन कीगईहै; अथ च जातियें पांच प्रकारकी वर्णित हुईहैं रेका टेका प्रहस्तिका
॥ १४ ॥ विह्वला समया ये पांच जातियें सौभाग्यकी देनेवालीहैं । अब दर्शनोंका वर्णन
करतेहैं, सो हमने सांख्य शैव जिनात्मक भाट्ट बौद्ध और पाखण्ड ये छै दर्शन कहेहैं ॥ १५ ॥

सप्त लोकाः समुद्दिष्टा भूर्भुवःस्वस्तथा मुने ॥ जनस्तपो महर्लोकः सत्यलोकश्च सप्तमः ॥ १६ ॥ मानं पृथिव्या वक्ष्यामि समासाद्गदतः शृणु ॥ यवश्चतुस्तिलः प्रोक्तश्चतुर्णामंगुलिः स्मृतः ॥ १७ ॥ तच्चतुर्णां भवेन्मुष्टिश्चतुर्णां हस्तसंज्ञकः ॥ चतुर्हस्तं धनुः प्रोक्तं द्विशतं धनुषां तथा ॥ क्रोशस्तद्द्वयगव्यूतिर्द्विगव्यूतिश्च योजनम् ॥ १८ ॥ शतयोजनको देशः शतदेशस्तु मंडलम् ॥ मंडलानां शतं खंडं नवखंडात्मका धरा ॥ १९ ॥ प्रथमं मेघखंडं तु तथा मदनखंडकम् ॥ खरिखंडं शर्वखंडं तथा भरतखंडकम् ॥ २० ॥ दधिखंडोद्यानखंडौ वाजिखंडं तथाष्टमम् ॥ तेजःखंडं महाभाग पदार्थान् शृणु तत्परः ॥ २१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पदार्था गानगोचराः ॥ लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलानि वै ॥ २२ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षाराब्धिः परिकीर्त्तितः ॥

भू, भुव, स्व, जन, तप, मह और सत्य हेमुनिराज ! ये सातलोक विख्यातहैं ॥ १६ ॥ अब हम संक्षेपसे भूमिका प्रमाण कहतेहैं उसे श्रवण करो । चार तिलका एक यव कहाताहै चार यवका एक अंगुल ॥ १७ ॥ चार अंगुलकी एक मुष्टि (मुट्ठी), चार मुष्टिका एक हाथ, चार हाथका एक धनुष[1], तथा दोसौ धनुषका एककोस, दोकोसकी एक गव्यूति, दो गव्यूतिका एकयोजन ॥ १८ ॥ सौ योजनका एकदेश, सौ देशका एकमण्डल, और सौमण्डलका एकखंड होताहै, एवं च इस भूमिके ऊपर नौ खण्डहैं ॥ १९ ॥ उनमें पहिला मेघखंड, दूसरा मदनखंड, खरिखंड, शर्वखंड, तथा भरतखण्ड ॥ २० ॥ दधिखण्ड, उद्यानखण्ड, अष्टम वाजिखण्ड, और नवम तेजखंड इसप्रकार नौ[2] खंडहैं, अब हे महाभाग ! पदार्थोंका श्रवण करो ॥ २१ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पदार्थ गानके गोचरहैं । लवण, रस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, और जल (ये सात समुद्रहैं) ॥ २२ ॥ क्षार समुद्रका विस्तार लक्षयोजन (या चार लाखकोस) काहै, इससे दूना

---

१ दो हाथका एक गज होताहै । २ इस क्रमसे भूमिका प्रणाम ३६०००००० तीन करोड साठ लाख कोसका होताहै, किन्तु अंग्रेज लोग पृथ्वीका कुत्रचित् (भूमध्यभागस्थ रेखाकी लंबाईका प्रमाण) ७९१६ सात सहस्रनौसौ सोलह मील मानतेहैं ॥

द्विगुणेक्षुसमुद्रः स्यात्तद्वैगुण्यं सुरांबुधिः ॥२३॥ सर्प्पिस्तद्द्विगुणः प्रोक्तस्तद्वैगुण्यं दध्यंबुधिः ॥ क्षीराब्धिः स द्विगुणको जलाब्धिर्द्विगुणस्तथा ॥ २४ ॥ तत्तद्वीपान्प्रवक्ष्येहं जम्बूद्वीपस्तथा कुशः ॥ शाल्मलिः पुष्करश्चैव भ्रमरो गोमेदस्तथा ॥ २५ ॥ सप्तमोभ्युदयो ह्येषां प्रमाणं पूर्ववत्स्मृतम् ॥ पृथिव्यां विप्र कोटीनां नगराणि द्विसप्ततिः ॥ २६ ॥ नवकोटिमिता ग्रामाः पंचाशत्कोटिकं तथा ॥ ऊषराणि तथा विप्र चोज्झटाभिस्तथैव च ॥२७॥ पृथ्वीप्रमाणमाख्यातं संगीते चोपकारकम् ॥ कंदर्पस्य गुणान्वक्ष्ये स्वेदः स्तंभो महामते ॥२८॥ रोमांचः स्वरभंगश्च वेपथुश्च विवर्णता ॥ अश्रुपातस्तथाष्टौ वै सात्विका गीतसंभवाः ॥ २९ ॥ छंदांसि शृणु संक्षेपादनुष्टुबष्टवर्णकः ॥ एकादशाक्षरी प्रोक्ता सेंद्रवज्रा प्रकीर्त्तिता ॥ ३० ॥ द्वादशार्णोपेंद्रवज्रा वसंततिलकं शृणु॥ चतुर्दशाक्षरी ख्याता मालती सैव वर्णका ॥ ३१ ॥ सप्तादशाक्षरी प्रोक्ता छन्दः शिखरिणी मया ॥ शार्दूलक्रीडितं छंदो

के समुद्रका विस्तारहै, इससे दूना अर्थात आठ लाख योजनका विस्तृत सुरां सागरहै ॥ २३ ॥ सोलह लाख योजन विस्तृत घृतका समुद्र, इसके प्रमाणसे द्विगुण विस्तृत दधिका सागर, इससे दूना क्षीरसागर अथ च जलका समुद्र इससे भी दूने प्रमाणकाहै ॥ २४ ॥ मैं उन २ द्वीपोंका वर्णन करताहूं, जम्बूद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, पुष्करद्वीप, भ्रमरद्वीप, गोमेदद्वीप और अभ्युदय ये सात द्वीपहैं ॥ २५ ॥ इनका प्रमाणभी क्रमशः प्रथमकी भांति (समुद्रोंके अनुसार) कथन किया गयाहै। हे विप्र ! पृथ्वीके ऊपर बहत्तर करोड नगरहैं ॥ २६ ॥ तथा उनसठ करोड ग्रामहैं, एवं च प्रभूतसंघात ऊषर भूमिकाहै ॥ २७ ॥ संगीतके लिये उपयोगी यह भूमिका प्रमाण हमने वर्णन कियाहै । अब इसके अगाडी कन्दर्प (कामदेव) के गुणोंका वर्णन करूंगा, वे येहैं कि, स्वेद स्तम्भ ॥ २८ ॥ रोमाञ्च स्वरभंग कम्प और विवर्णता अथ च अश्रुपात गानश्रवण करनेसे ये आठ सात्विक भाव उदय होते हैं ॥ २९ ॥ अब संक्षेपसे छन्दोंका श्रवण करो, आठ वर्णके छन्दको अनुष्टुप् कहतेहैं, और ग्यारह वर्णका इन्द्रवज्रा छन्द कहताहै ॥ ३० ॥ बारह अक्षरके छन्दको उपेन्द्रवज्रा कहतेहैं, अब वसन्ततिलकाको सुनो उसमें चौदह अक्षर होतहैं उसीको मालतीभी कहतेहैं ॥ ३१ ॥ शिखरिणी छन्दमें सत्रह अक्षर होतेहैं, और उन्नीस अक्षरका शार्दूलविक्रीडित

वर्णैकोनकविंशति ॥ ३२ ॥ एकाधिका विंशतिभिर्वर्णैश्च स्रग्धरा मता ॥ इति छन्दांसि गीतानां प्रोक्तानि द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥ गाहाश्च कथिता विप्र प्रथमा कमला तथा ॥ ललिता च तथा नीला द्रुतारंभा च मागधी ॥ ३४ ॥ लक्षबीजामला हंसी शशिनी ह्यवमुग्धगीः ॥ काली कुमारी वोहारीर्विशुद्धिः कामकारिणी ॥ ३५ ॥ यक्षिणी धविनार्वाची गांधारी मंजरी गुरुः ॥ अथ दोहां समाख्यासे घर्घरो वर्व्वरस्तथ ॥ ३६ ॥ बाह्यो हेमनिवारश्च तथा च श्वानगर्द्दभौ ॥ पाखण्डो हेमरागश्च उच्चाटो मोहनो रसः ॥ ३७ ॥ इति दोहा समाख्याता अद्रिलान् शृणु विप्रक ॥ रसंजनी कुमद्वेषी बाला प्रौढा च मुग्धधीः॥३८॥ सती च रागभाना च अडुलास्त्वमृधा मुने ॥ सोरठा च तथा विप्र स्तंभनो मोहनस्तथा ॥३९॥ विलंबश्चौदयश्चैव हासश्चैव मनस्वरः ॥ सोरठा च समाख्याता कवित्वं शृणु तत्परः ॥ ४० ॥ रंजनी लोगनी लोहा पांचाली च विभाषिका ॥ मंत्रश्च शंकरो नागः कृष्णो रीत्या सुधारिकः ॥ ४१ ॥ तथा कुंडलिया विप्र कथ्यते तन्मनाः शृणु ॥ मृगरूपी सपंचाली विदुरो मेघयानकम् ॥४२॥

छन्द हमने वर्णन कियाहै ॥ ३२ ॥ स्रग्धरा छन्दमें इक्कीस अक्षर होतेहैं, हे द्विजराज ! इस प्रकार गीतोंके छन्द हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियेहैं ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! अब गाहोंका कथन करतेहैं, प्रथम कमला ललिता नीला द्रुतारम्भा मागधी ॥ ३४ ॥ रक्तबीजा अमला हंसी शशिनी अवमुग्धगी काली कुमारी वोहारी विशुद्धि कामकारिणी ॥ ३५ ॥ यक्षिणी धविना अर्वाची गान्धारी मंजरी गुरु ये उनके नाम अब दोहोंका वर्णन करतेहैं, घर्घर वर्वर ॥ ॥ ३६ ॥ बाह्य हेमनिवार श्वान और गर्दभ पाखण्ड हेमराग उच्चाट मोहन रस ॥ ३७ ॥ ये सब दोहा कहातेहैं । अब हे विप्र ! अद्रिलोंका वर्णन सुनो, रसंजनी कुमुद्वेषी बाला प्रौढा मुग्धधी ॥ ३८ ॥ सती रागभाना अडुला अमृधा तथा सोरठा स्तम्भन और मोहन ॥ ३९ ॥ विलंब उदयं हास मनस्वर और सोरठ । अब तत्पर होकर कवित्तिका वर्णन सुनो ॥ ४० ॥ रंजनी लोगनी लोहा पांचाली विभाषिका मन्त्र शंकर नाग कृष्ण सुधारिक ॥ ४१ ॥ हे विप्र ! अब हम कुण्डलियोंका वर्णन करतेहैं तुम मन लगाके श्रवण करो मृगरूपी सपंचाली

शयः पंचविधः ख्यातो हास्यं च कलहस्तथा ॥ सन्निकर्षो निराशश्च उपालंभस्तु पंचमः ॥ ४३ ॥ रूपकं त्रिविधं प्रोक्तं व्यापिचालितकालकाः ॥ इति ते कथिता विप्र सर्वगीतस्य संस्थितिः ॥ यज्ज्ञात्वा सर्वविद्विप्र जायते भुवि मानवः ॥४४॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे शृंगारादिकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

...र मेवनायक ॥ ४२ ॥ शय पांच प्रकारका कहा गयाहै, हास्य, कलह, सन्निकर्ष, निराश, ...लम्भ ॥ ४३ ॥ और व्यापी चालित और कालक ये तीन प्रकारके रूपकहैं हे विप्र ! ...स प्रकार हमने समस्त गीतोंकी स्थिति तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै, हे विप्र ! इसको जानकर ...ष्य भूमिके ऊपर सर्वज्ञ होताहै ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७.

ईश्वर उवाच ॥ गीतदोषान्प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥ कंठहीनो लम्बग्रीवो दन्तहीनस्तथैव च ॥ १ ॥ तथा कंटकपालित्वं कंपितं लुंठितं तथा ॥ तारहीनं तथा जिह्वा खंडितं च निपादकम्॥२॥गीतदोषाः समाख्याता अथ गायनलक्षणम्॥तारे मंद्रे तथा घोरे निःशंके ग्राम एव च ॥ मनश्चापि तथा तुष्टमेते गीताः प्रियाः स्मृताः ॥३॥ मृदंगाश्च त्रयः ख्याताः श्रीमुखः स्वस्तिकस्तथा ॥ यवाकृतिस्तृतीयो वै मृदंगाः परिकीर्त्तिताः ॥४॥

महादेवजी बोले–नारदजी ! मन लगाके सुनो, अब हम गीतोंके दोष वर्णन करतेहैं, कंठहीन, लंबकंठ(ऊंचीआवाज), दन्तहीन ॥ १ ॥ कण्टकपालित्व, तारहीन, जिह्वाखण्डित, निषादक ॥ २ ॥ ये सब गीतोंके दोष कथन किये गयेहैं, अब गायन लक्षणका वर्णन करतेहैं; तार, मन्द्र तथा घोरमें निस्सन्देह मन तुष्टिको प्राप्त होताहै, और येही गीतप्रिय कहातेहैं ॥ ३ ॥ मृदङ्गभी तीन प्रकारके कथन किये गयेहैं, प्रथम श्रीमुख, दुसरा स्वस्तिक और तीसरा यवाकृति

मध्यपर्वत्रयांगं च उदकं कष्टवर्जितम् ॥ क्रवं क्रवं च शब्दौ च तत्कालं घननं स्मृतम् ॥५॥ धेगुरो धेगुरुश्चैव टंकारश्च विरा मिता ॥ तालेन सह गातव्यं कुंभिदीर्घं तथा मुखम् ॥ ६ ॥ यस्तालेन विहीनः स्यादुमया सहितो ह्यहम् ॥ तस्यार्चा निष्फला ज्ञेया तस्मात्तालपरो भवेत् ॥ ७ ॥ वंशबद्धा तथा वीणा वंशवर्द्धन कारिणी ॥ रक्तचंदनबद्धा च विद्या नैपुण्यदायिनी ॥ ८ ॥ खादिरा च तथा वीणा धनधान्यकरी मता ॥ सार्द्धहस्तप्रमाणा वै वीणा कार्य्या सदा बुधैः ॥ ९ ॥ इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोहं त्वयाखिलम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥ वीणां च महतीं नाम्ना गृहाण स्वरभूषिताम् ॥ ज्ञास्यसे तन्महाभाग महत्यामेव नारद ॥११॥ सन्यस्ताश्च महाभाग स्वराः सप्त सभेदकाः ॥१२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति श्रुत्वा नारदोपि प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ संजग्राह महादेवाद्वीणां परमपाविनीम् ॥ १३ ॥ ज्ञातवान्सकलान्गीतभेदान्सावरणांस्तथा ॥

ये तीन प्रकारके मृदंग कथितहैं ॥ ४ ॥ उसके मध्य भागमें तीन पर्व होतेहैं, विघ्नरहित जलकी समान उनकी वाणी होतीहै, अथ च तत्काल क्रवं २ शब्द उसमेंसे प्रादुर्भूत होताहै ॥ ॥ ५ ॥ टंकारमें विराम और तालके साथ गान करना कर्त्तव्यहै, येही उसका नियम है ॥ ॥ ६ ॥ जो व्यक्ति तालरहित गान करताहै, उससे मैं पार्वतीसहित (अप्रसन्न हो जाताहूं अतएव) उसकी पूजा निष्फल होजातीहै, इस कारण तालमें तत्पर रहना चाहिये ॥ ७ ॥ एवं च बांसकी बनीहुई वीणा वंशकी वृद्धि करनेवाली होतीहै, रक्तचन्दनसे निबद्ध हुई वीणा विद्या और निपुणताकी प्रदान करनेवाली होतीहै ॥ ८ ॥ खदिरनिर्मित वीणा धन धान्यको प्रदान करतीहै, बुद्धिमान् व्यक्तियोंको चाहिये कि, सदा डेढ हाथके प्रमाणकी वीणा निर्माण करैं ॥ ९ ॥ हे विप्र ! तुमने जो कुछ हमसे प्रश्न कियाथा वोह सब हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया इसका श्रवण करनेसे मनुष्य निस्सन्देह पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १० ॥ स्वरोंसे समलंकृत हुई महती वीणाको तुम ग्रहण करो, हे महाभाग नारद ! इससे तुम्हें समस्त ज्ञानका लाभ होगा ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! इसमें भेदों सहित संपूर्ण (सातों) स्वर स्थितहैं ॥ ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले--नारदजीने ये वाक्य श्रवण कर वारंवार प्रणाम करके महादेवजीसे परम पाविनी वीणाको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ इसीसे उन्हें समस्त गीतों और सावरणोंका

शिवोपि भगवान् देवस्तत्रैवांतरधीयत ॥ १४ ॥ नारदोपि महाभागो रणयन्महतीं मुहुः ॥ परं संतोषमापन्नो ब्रह्मलोकं ययौ मुनिः ॥ १५ ॥ इति सर्वं महाभागे कथितं ते मया शुभम् ॥ सर्वपापप्रशमनं वेदवेदांगसम्मतम् ॥ १६ ॥ नादब्रह्मपराख्यानं स्वर्गीयं मुक्तिकारणम् ॥ नादब्रह्मपरा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ॥ १७ ॥ पुरारुंधति विप्राद्या गताः कैलासमंदिरे ॥ सरस्वती च सावित्री सर्वतीर्थानि चैव हि ॥ १८ ॥ श्रोतुं गानं महेशस्य भक्तितत्परमानसाः ॥ शिवोपि तेषां भक्तिं वै संलक्ष्य परमात्मनि ॥ १९ ॥ रागभेदांश्च सर्वान्वै श्रावयामास कृत्स्नशः ॥ श्रुत्वा नादामृतं सर्वे द्रवीभूताः सुरेश्वराः ॥ २० ॥ तद्द्रवो गंगया सर्व आगतो भुवनत्रये ॥ तस्मादिदं परं ब्रह्ममयं गंगाजलं प्रिये ॥ ॥ २१ ॥ तत्र स्नात्वा नारदोपि रुद्रतीर्थे महामतिः ॥ गंगा मंदाकिनीसंगे परां सिद्धिमितो गतः ॥ २२ ॥ अतः पृथिव्यां तच्छ्रेष्ठं रुद्रतीर्थं वरानने ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा नागानंतादयः

ज्ञान होगया, और देवाधिदेव भगवान् महादेवजी उसी स्थानमें अन्तर्हित होगये ॥ १४ ॥ और च महाभाग नारदजी वार २ उस महती वीणाको बजाते हुए परम सन्तोष ग्रहण पूर्वक ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाभागे ! इस प्रकार यह सब शुभ आख्यान हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह आख्यान वेद और वेदांगका सम्मतहै एवं च इसी हेतुसे समस्त पापों का विनाश करनेवालाहै ॥ १६ ॥ यह नादब्रह्ममय आख्यान स्वर्ग और मुक्तिका कारणहै, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ये सब देवताभी नादब्रह्ममें निरतहैं॥ १७ ॥ हे अरुन्धति ! प्रथम नारदादिक कैलास पर्वतके ऊपर गये, सरस्वती सावित्री और सब तीर्थ भी वहां उपस्थित हुए॥ १८ ॥ ये सब महादेवजीका गान श्रवण करनेकी कामनासे भक्तिभावमें तत्पर होके (कैलास धाममें उपस्थित हुएथे) और महादेवजीनेभी उनकी भक्तिको परमात्मामें जानकर॥ १९ ॥ सब रागोंके भेद उन्हें श्रवण कराये, नाद (शब्द) रूप अमृतका श्रवणकर वे सभी देवता द्रवीभूत होगये ॥ २० ॥ और वोह सब द्रव गंगाजीके द्वारा संसारमें आगया अतएव हे प्रिये ! यह गंगाजल परं ब्रह्मस्वरूपहै ॥ २१ ॥ वहां गंगाजी और मन्दाकिनीके संगममें रुद्रतीर्थमें स्नानकरके नारदजी महाराजको परमसिद्धिका लाभ हुआ ॥ २२ ॥ अतएव हे सुमुखी ! भूमिके ऊपर रुद्रतीर्थ सबसे श्रेष्ठहै, उसीमें ब्रह्मा आदि देवताओं तथा अनन्त आदि नागोंको सिद्धिका लाभ

परे ॥ परां सिद्धिं समापन्नास्ततस्तत्संश्रयेत्पुमान् ॥ २३ ॥ लक्षत्रयं च तीर्थानां सहस्राणि तथा दश ॥ तस्मिन्प्रदेशे वर्त्तते भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै ॥ २४ ॥ नागपर्वतमारूढा ह्यारूढास्त्रिदिवं नराः ॥ मुक्ता लक्षत्रयं तत्र पातका ब्रह्मराक्षसाः ॥२५॥ तदेवेदं शुभं स्थानं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्॥तत्फलं मासमात्रेण तत्र सत्यं न संशयः॥२६॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थमाहात्म्ये संगीतशास्त्रसमाप्तिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

हुआथा, अतएव पुरुषोंको उसका आश्रय करना कर्त्तव्यहै ॥ २३ ॥ उस स्थानमें तीनलक्ष एकसहस्र दस तीर्थ भोग और मोक्षके देनेवाले स्थितहैं ॥ २४ ॥ नागपर्वतके ऊपर आरूढ होनेसे मनुष्योंको स्वर्गका लाभ होताहै अथच उसी स्थानमें तीनलक्ष ब्रह्मराक्षसोंका पातक नष्ट हुआथा ॥ २५ ॥ वोही यह स्थान पापियोंकोभी मुक्तिका देनेवालाहै, समस्त तीर्थोंमें जो फल और पुण्य उपलब्ध होताहै, निःसन्देह वोह सब फल एक मासहीमें वहां प्राप्त होजाताहै ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८.

अरुंधत्युवाच ॥ भगवन् सर्वधर्मज्ञ कथं लक्षत्रयं मुने ॥ कथं मुक्तिं समापन्नाः के वै ते ब्रह्मराक्षसाः ॥ १ ॥ एतत्सर्वं समासेन वद वृत्तं प्रियास्मि ते ॥ राक्षसत्वं समापन्ना दिव्यदेहं कथं गताः ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु प्रिये यथावृत्तं तेषां चैव दुरात्मनाम् ॥ ब्राह्मणस्य तथा देवि नाम्ना गोपालशर्मणः ॥ ३ ॥

अरुन्धती बोली—समस्त धर्म अथवा निखिल शास्त्रोंके जाननेवाले हे भगवन् ! वे तीन लक्ष ब्रह्मराक्षस कौनथे और उन्हें किस प्रकार मुक्तिलाभ हुआ ॥ १ ॥ क्योंकि मैं आपकी प्रियाहूं अतएव यह सब वृत्तान्त संक्षेपसे मेरे प्रति वर्णन करो, राक्षसयोनिमें प्राप्त हुओंकोभी दिव्य देहका लाभ किस प्रकारसे हुआ ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे देवि ! उन दुरात्माओंका

पुरा देवाश्रयो नाम गंगाद्वारेऽवसत् परम् ॥ तस्य पुत्रास्तु पंचासन् वेदवेदांगपारगाः ॥ ४ ॥ षष्ठोऽयं च महाभागे नाम्ना गोपालसंज्ञकः ॥ न पपाठ गुरोर्विद्यां न च धर्मपरोऽभवत् ॥ ॥५॥ कृतवान् बालकं तं वै गवां गोपालकं पिता ॥ नित्यं व्रजति चारण्ये गवामनुगतः सदा ॥ ६ ॥ सक्तुपिंडं भक्षयति ब्रह्मसूत्रविवर्जितः ॥ इति तस्य व्यतीयुश्च वत्सराश्च चतुर्दश ॥ ॥ ७ ॥ एकदा तस्य मनसि वैराग्यं समुपागतम् ॥ कस्य माता पिता कस्य भ्रातरश्च तथा वृथा ॥ ८ ॥ यतो मां विद्यया हीनं धनोत्पादेप्यशक्तकम् ॥ तत्यजुर्गोषु संसक्तं कुर्य्युश्च स्वार्थकांक्षिणः ॥ ९ ॥ तस्मादहं हि कैलासे गत्वा तीर्थशते तनुम् ॥ त्यक्ष्यामि परमां सिद्धिमाप्नुयां यत् करोमि तत् ॥ १० ॥ इति संचिन्त्य मनसि नत्वा गोभ्यः पृथक् पृथक् ॥ गतो महामतिः प्रीत्या कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ११ ॥ नानातीर्थेषु सुस्नातो रुद्रतीर्थे गतो द्विजः ॥ प्रायोपवेशनं चक्रे त्यक्ताहारविहारकः ॥ १२ ॥

तथा गोपालशर्मा ब्राह्मणका सब वृत्तान्त श्रवण करो ॥ ३ ॥ प्रथम कोई देवाश्रय नाम एक व्यक्ति गंगाद्वार (हरिद्वार) में निवास करताथा इसके पांच पुत्र वेद और वेदांगके पारगामी हुए ॥ ४ ॥ गोपाल नाम यह छठा पुत्र नतौ धर्माचारीही हुआ और न इसने गुरु महाशयसे कुछ विद्याही पढी ॥ ५ ॥ अतएव पिताने इस बालकको गौओंका रक्षक बनादिया, अतएव वोह गौओंके पीछे नित्यही वनको जाया करताथा ॥ ६ ॥ इसका यज्ञोपवीत नहीं हुआथा एवं च यह नित्यही सत्तुओंका भोजन करताथा, इसी प्रकार इसके चौदह वर्ष अतिक्रान्त होगये ॥ ७ ॥ एक समय इसके चित्तमें वैराग्यका उदय हुआ कि न किसीका माता और न किसीका पिताहै, अथ च भ्राताभी सब वृथाहीहैं ॥ ८ ॥ क्योंकि जो मैं पढा नहीं और धनोपार्जन करनेमें अशक्तहूं अतएव उन स्वार्थियोंने मेरा परित्याग करके मुझे गोपालवनमें लगादिया ॥ ॥ ९ ॥ अतएव सैकडों तीर्थोंसे समलंकृत कैलासके ऊपर जाय ऐसी विधिका आचरण कर देहका परित्याग करूंगा जिससे परमसिद्धिका लाभहो ॥ १० ॥ मनमें ऐसी चिन्ताकर पृथक् २ एक २ गौको प्रणाम करके वोह महामतिमान् प्रीतिपूर्वक पर्वतोत्तम कैलासके ऊपर चला गया ॥ ११ ॥ और अनेक तीर्थोंमें स्नानकर वोह ब्राह्मण रुद्रतीर्थमें गया, एवं च उसने

मां यावत्कोप्युपदिशेन्मंत्रं मंत्रविशारदः ॥ तावन्नाहं हि भोक्ष्यामि न गमिष्यामि कुत्रचित् ॥ १३ ॥ ततः पंचमदिवसे मध्याह्ने मुनयस्तदा ॥ अहमादिर्हि येषां वै सत वै परिसंख्यया ॥ ॥ १४ ॥ अकुर्वतोपदेशं हि श्रीशिवस्य द्विजातये ॥ संगृह्य च ततो मंत्रं जजाप वसुलक्षकम् ॥ १५ ॥ शिवोपि तस्य संतुष्टो ददौ तस्य वरत्रयम् ॥ सर्वज्ञत्वं पवित्रत्वं सर्वगत्वं च मे प्रिये ॥१६॥ नाम्ना गोपालसिद्धो वै ख्यातः सर्वत्रगः प्रिये ॥ एकदा ह्यटतस्तस्य कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १७ ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे ते वै ददृशिरेसुराः ॥ लक्षत्रयं संख्यया वै विरूपा ब्रह्मराक्षसाः ॥ क्षणात्सिद्धिमवापन्नाः सुरूपाः स्रग्विभूषणाः ॥ १८ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गोपालो द्विजसत्तमः ॥ विचार्य्य ज्ञातवान्सर्वं तथापि मम वल्लभे ॥ १९ ॥ पप्रच्छाश्चर्य्यचेतास्तु किमिदं किमिदं तथा ॥ के यूयं विकृताकाराः कथमेतां गतिं

आहार विहारका परित्याग करके प्रायोपवेशन (व्रत) धारण किया ॥ १२ ॥ जबतक कोई मन्त्रशास्त्री मुझे मन्त्रका उपदेश न करेगा अवश्यही तबतक नमैं भोजन करूंगा और न कहींकी यात्रा करूंगा ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर पांचवे दिन मध्याह्नसमय अस्मदादि सप्तर्षिगण ॥ १४ ॥ उस द्विजातिके प्रति श्रीमहादेवजीके मन्त्रका उपदेश करने लगे । उसनेभी उस मन्त्रको ग्रहणकर आधलक्ष उसका जप किया ॥ १५ ॥ महादेवजीने प्रसन्न होकर सर्वज्ञत्व, पवित्रत्व और सर्वगत्व ये तीनवर उसे प्रदान किये ॥१६॥ हे प्रिये ! वोह सर्वत्रही गोपालसिद्ध नामसे प्रसिद्ध होगया, उसकी गति सर्वत्र जानेकीथी अतएव एक समय वोह गिरि सत्तम कैलास पर्वतके ऊपर विचर रहाथा ॥ १७ ॥ उसी महाक्षेत्रमें विरूपधारी तीनलक्ष ब्रह्मराक्षसोंने उसका अवलोकन किया, तब तौ क्षणभरमें उन सबका सुन्दररूप होगया उन्होंने उत्तमोत्तम मालाओं तथा अन्य आभूषणोंको धारण किया सुतराम् उन्हें सिद्धिका लाभ होगया ॥ १८ ॥ उस कौतुकके देखनेसे गोपालसिद्धको बडे आश्चर्यकी प्राप्ति हुई, यद्यपि विचार करनेसे उसे इसका कारण ज्ञात होगया तथापि हे प्रिये ! ॥ १९ ॥ चित्तमें आश्चर्य्य समन्वित हो वारंवार यों पूंछने लगा कि, यह क्या हुआ, कुरूपधारी तुम कौनथे ? और

गताः॥२०॥ दिव्यदेहधरास्तद्वत्कथं जाता विरूपकाः ॥ इति मे महदाश्चर्यं वदत प्रभवो मम ॥ २१ ॥ आश्चर्य्यं परमं दृष्ट्वा व्यथितोहं न संशयः ॥ २२ ॥ ब्रह्मराक्षसा ऊचुः ॥ लक्षत्रयं महाभाग वयं सर्वे च संख्यया ॥ ब्राह्मणा वेदवेदांगपारगा ब्रह्मवित्तमाः ॥ २३ ॥ गयस्य यज्ञे होतारः सर्वे जाता महामते ॥ राजप्रतिग्रहात् सर्वे राक्षसीं योनिमाश्रिताः ॥ २४ ॥ शापात्परशुरामस्य एवंभूता विरूपकाः ॥ पुनः प्रसादात्तस्यैव परां सिद्धिं समागताः ॥ २५ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ कथं परशुरामेण शप्ता यूयं महात्मना ॥ प्रसादश्च कथं जातो वदध्वं विस्तरान्मम ॥२६॥ ब्रह्मराक्षसा ऊचुः ॥ गता यज्ञे गयस्यापि वयं कोटिस्तु संख्यया लब्ध्वा धनं ततो भूरि ह्यसंतुष्टा गता गृहात् ॥ २७ ॥ भिक्षितुं भार्गवं रामं गता वै धनलुब्धकाः ॥ क्रोधावेशसमारूढः स्वजातीयान्महामतिः ॥ २८ ॥ राज्ञः परिग्रहाद्दुष्टान् लुब्धान् दृष्ट्वा स नो द्विजः ॥ शशाप जलमुत्सृज्य भवथ ब्रह्मराक्षसाः ॥ २९ ॥

गतिका लाभ तुम्हें कैसे होगया ॥ २० ॥ तुमलोग तौ सब कुरूपधारीथे, फिर तुमने दिव्य देह धारण कैसे करलिया ? यह मुझे बडा आश्चर्यहै, सो हे प्रभुओं ! (इसका सब कारण) मेरेप्रति वर्णन करो ॥ २१ ॥ इस अतिशय आश्चर्य्यका अवलोकन करनेसे निस्सन्देह मुझे व्यथा (चित्तमें आकुलता) उत्पन्न होरहीहै ॥२२॥ ब्रह्मराक्षस बोले—हे महाभाग ! हम सब वेदवेदांगके पारगामी और ब्रह्मविद्याके ज्ञाता तीनलक्ष ब्राह्मणथे ॥२३॥ सुनो महामते ! गयके यज्ञमें हम सब लोग होता नियत किये गयेथे, राजकीय प्रतिग्रहसे हमें राक्षस योनिका आश्रयकरना पडाहै ॥२४॥ परशुरामजीके शापसे हम ऐसे कुरूप होगयेहैं, एवं च फिर उन्हींकी कृपासे हमैं परम सिद्धि का लाभ हुआहै ॥२५॥ ब्राह्मण बोला--महात्मा परशुरामने तुम्हें शाप क्यों दिया ? और फिर उन्होंने तुम्हारे ऊपर प्रसाद कैसे किया ? यह सब विस्तारपूर्वक हमसे वर्णन करो ॥ २६ ॥ ब्रह्मराक्षस बोले--हमलोग जब गयके यज्ञमें गयेथे तब हमैं अनन्त करोडोंहीका धन मिलाथा तथापि हमैं सन्तोष न हुआ अतएव अपने २ घरसे ॥ २७ ॥ भृगुनन्दन परशुरामजीसे धनकी भिक्षा मांगनेको हम लोग गये । उन महामतिने जब हम अपने स्वजातीयोंको राजप्रतिग्रहसे दूषित होजानेपरभी लोभ करते देखा तब उन ब्राह्मणदेवताको क्रोधका आवेश हो आया अतएव उन्होंने जलपरित्यागपूर्वक हमैं यह शाप दिया

प्रायश्चित्तमकुर्वतः संप्राप्य भूरि द्रव्यकम् ॥ तृष्णापूर्त्तिर्न वो जाता यथा वै ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ३० ॥ यूयं च हि दुरात्मानो भूयास्त ब्रह्मराक्षसाः ॥ इति शप्त्वा द्विजान्सर्वान् जामदग्न्यो महामुनिः ॥ ३१ ॥ कैलासमंदिरे चैव तपस्तप्तुं मनो दधे ॥ तेपि विप्रा वयं सर्वे शापोद्विग्ना महामते ॥ तं वै प्रसादयामासुर्मुनिं वै जमदग्निजम् ॥३२॥ क्षमस्वेति क्षमस्वेति क्षमस्वेति मुहुर्मुहुः ॥ लोभाक्रांतात्मनां नो हि तारणं वै भवादृशाः ॥३३॥ पापयोनिं समापन्नाः कथं मुक्ता भवाम हे ॥ त्वद्विधा एव भगवन् शिक्षकाश्च दुरात्मनाम् ॥ ३४ ॥ राजप्रतिग्रहे मग्नास्तृष्णयोपहता वयम् ॥ न कर्त्तास्मः कदाचिद्वै हीदृशं कर्म गर्हितम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा तं महाभागं प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ पादयोः पतितास्तस्य रेणुकातनयस्य हि ॥ ३६ ॥ ततः प्रसन्नचेताश्च जगाद वचनं हितम् ॥ ब्रह्मरक्षस्त्वमापन्ना भूयः शुद्धा भविष्यथ ॥ ३७ ॥ कैलासं वै महाक्षेत्रं गंगास्थानं मलापहम् ॥ गत्वा तद्दर्शनादेव शुद्धात्मा-

कि—तुमलोग ब्रह्मराक्षस होजाओ ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रभूत द्रव्यका लाभ होनेपरभी तुमने प्रायश्चित्त नहीं किया, और ब्रह्मराक्षसोंकी भांति तुम्हारी तृष्णाकी शान्ति न हुई ॥ ३० ॥ अतएव हे दुरात्माओं ! तुम सब ब्रह्मराक्षस होजाओ, जमदग्निसमुद्भूत महामुनि परशुरामजीने हम सब ब्राह्मणोंको इस प्रकार शाप देकर ॥ ३१ ॥ कैलास पर्वतके ऊपर जाके तपश्चर्य्या करनेका मनमें विचार किया । हे महामतिमान् ! शापित होनेके कारण हम सब ब्राह्मणोंका चित्त उद्विग्न होगया, अतएव हम सब लोग जमदग्नितनुज परशुरामजीको प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे ॥ ३२ ॥ क्षमाकरो ! क्षमाकरो ! वारंवार यों कहकर हमने प्रार्थना करी कि—आप जैसे महात्माही हमसे लोभियोंको उद्धार करसक्तेहैं ॥ ३३ ॥ पापयोनिमें प्राप्तहोनेके अनन्तर किसप्रकार हमारी उससे मुक्ति होगी ? हेभगवन् ! आप जैसे महात्माही दुष्टोंके शिक्षक होतेहैं ॥ ३४ ॥ राजप्रतिग्रहमें निमग्न और तृष्णासे हमलोग उपहत होरहे हैं, अन्यथा ऐसे निन्दित कर्मका आचरण हम कदापि न करते ॥ ३५ ॥ यों कहकर और उन महात्माको बार २ प्रणाम करके हम सब लोग उन रेणुकाकुमारके चरणोंमें निपातित होगये ॥ ३६ ॥ तब तो उनने चित्तमें प्रसन्नहो हमसे हितकारी वचन कहे कि—तुम प्रथम ब्रह्मराक्षसत्वको प्राप्त होकर फिर शुद्ध होओगे ॥ ३७ ॥ कैलस महाक्षेत्र गंगाजीका स्थान अत-

ो भविष्यथ ॥ ३८ ॥ नास्मात्परं महापुण्यं सर्वपापप्रणाश-
नम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नश्यंते पापराशयः ॥ ३९ ॥ ब्रह्म-
घोपि सुरापोपि गुरुतल्परतोपि च ॥ हंतारो गोत्रपितॄणां
न्येयानां च हिमस्थलात् ॥ ४० ॥ निष्कृतिर्हि मया दृष्टा
नास्मादन्यत्र हे द्विजाः ॥ तस्माद्यूयं महाक्षेत्रं गत्वा कैलास
मंदिरे ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मुक्तिं प्राप्स्यथ निर्मलाः
॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि ययौ कैलासमन्दिरम् ॥४२॥
ब्रह्मरक्षस्त्वमापन्ना ह्यासुरं भावमाश्रिताः ॥ कोटिसंख्यामिताः
सर्वे मानुषाहारतत्पराः ॥ ४३ ॥ वयं च भ्रममाणाश्च बहुवर्षस-
हस्रकम् ॥ ततः कदाचित्क्षुधिता दृष्टवंतो महामुनिम् ॥ ४४ ॥
पराशरं चंद्रवने दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ तमत्तुकामास्तत्रापि
तमोपहतचेतनाः ॥४५॥ तद्दर्शनात्तमः सर्वं ननाश द्विजसत्तम ॥
रामोक्तस्मृतिमापन्नाश्चक्रम प्रणतिं मुहुः ॥ ४६ ॥ ततः कैलासमा-

व पापोंका अपहरण करनेवालाहै, वहां जाय उसके दर्शन करनेहीसे तुम्हारा आत्मा शुद्ध
जायगा ॥ ३८ ॥ इससे अधिक महापुण्यमद अतएव समस्त पापोंका विनाश करनेवाला
र कोई स्थान नहींहै, क्योंकि—इसका केवल दर्शनमात्र करनेसे पापोंकी राशिका विनाश
ताहै ॥ ३९ ॥ ब्रह्मघाती, मद्यपानकर्त्ता, गुरुतल्पगामी, अपने गोत्र और पितरोंका वध
नेवाले इन: सबकीभी मैंने वहां निष्कृति होते देखीहै, सो हेद्विजो ! इससे अधिक और
ई स्थान नहींहै, अतएव तुम सब कैलास मन्दिरके महाक्षेत्रमें जाय समस्त पापोंसे मुक्ति-
म पूर्वक निर्मलहो मोक्षपदका लाभ करोगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ये वाक्य कहकर
महात्मा स्वयम्भी कैलास धामको चले गये ॥ ४२ ॥ हम सब करोडों
ब्रह्मराक्षसत्वको प्राप्त हो आसुरीभावको प्राप्त होगये एवं च मनुष्योंका आहार (भोजन)
रने लगे ॥ ४३ ॥ हमने सहस्रोंवर्ष पर्यन्त भ्रमण किया, और हम अत्यन्त क्षुधित होगये
उसी समय हमें मुनिराज ॥ ४४ ॥ पराशरजीके दर्शन हुए, वे महर्षि चन्द्रवनमें अपने तप-
से दीप्तिमान् होरहेथे, क्योंकि हमारी चेतना अज्ञानान्धकारसे नष्ट होगईथी अतएव उन्हीका
भक्षण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई ॥ ४५ ॥ किन्तु हे द्विजराज ! उनका दर्शन करनेसे
हमारा समस्त अज्ञानान्धकार विनष्ट होगया, परशुरामजीकी उक्तिका स्मरण हो आया तब तौ
हमने बार २ उन्हें प्रणाम किया ॥ ४६ ॥ फिर कैलासमें आयकर हम सबको कुत्सित

साद्य मुक्ताः सर्वे कुयोनितः ॥ लक्षद्वयं वयं ह्यत्र मुक्ता-
स्तत्कृपया द्विज ॥ ४७ ॥ वैकुंठं गंतुमारब्धाः स्वस्ति तेस्तु म-
हामते ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रययुः खं वै विमा-
नैश्चार्कसन्निभैः ॥ सोपि गोपालसिद्धो वै तत्रैव तपसि स्थितः
॥ ४९ ॥ संप्राप परमं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ इति तत्पर-
मं स्थानं विख्यातं तव सुप्रिये ॥ ५० ॥ रुद्रतीर्थस्य माहात्म्यं
समासेन मया तव ॥ कथितं विस्तरेणैव नालं वर्षशतैरपि
॥ ५१ ॥ श्रुत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ पठित्वा
प्राप्यते स्थानं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ ५२ ॥ इति ते कथितं
सर्वं यत्पृष्टोहं त्वया प्रिये ॥ अतःपरं महाभागे किमन्यच्छ्रोतु-
मिच्छसि ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां
रुद्रतीर्थमाहात्म्यं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

योनिसे मुक्तिका लाभ होगया, और हे द्विज ! हम दोलक्ष उनकी कृपासे यहां मुक्त होगये ॥ ४७ ॥ अब हम स्वर्ग जानेके तईं तयारहैं, हे महामतिमान् । आपका कल्याणहो ॥ ४८ ॥ वसिष्ठजी बोले—यों कहकर वे सब सूर्य्यकी सदृश दीप्तिमान् विमानोंके द्वारा अर्थात्—उनमें आरूढ हो २ कर आकाश मार्गको चले गये । और वोह गोपालसिद्धभी उसी स्थानमें तप करनेमें स्थित होगया ॥ ४९ ॥ सुतराम् उसे ऐसे परमदुर्लभ स्थानका लाभ हुआ जो देवताओंकोभी दुर्लभहै, हेप्रिये ! इसप्रकार उस परमोत्तम विख्यात रुद्रतीर्थ स्थानका ॥ ५० ॥ माहात्म्य संक्षिप्त रीतिसे हमने तुम्हारेप्रति वर्णन कियाहै, विस्तारपूर्वक तौ सैकडों वर्षोंमेंभी वर्णन करके पार नहीं पाया जासक्ता ॥ ५१ ॥ इस आख्यानका श्रवण करनेसे निस्सन्देह मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै, और इसका पाठ करनेसे परमात्मा महादेवके स्थानका लाभ होताहै ॥ ५२ ॥ हे प्रिये ! जो कुछ तुमने हमसे प्रश्न कियाथा वोह सब हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे महाभाग्यशालिनी ! इसके अनन्तर और क्या श्रवण करनेकी तुम्हारी इच्छाहै ? ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः ७९.

अरुंधत्युवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ भर्त्तर्ब्रह्मसुत प्रभो ॥ लक्षद्वयं रुद्रतीर्थे मुक्ता वै ब्रह्मराक्षसाः ॥ १ ॥ अन्ये कस्मिन् महाक्षेत्रे मुक्तास्ते वद वल्लभ ॥ किं तत्क्षेत्रं महापुण्यमन्यदस्ति महामते ॥ २ ॥ तच्छ्रोतुं श्रोतुकामास्मि त्वत्तो वक्ता न कुत्र चित् ॥३॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृण्वरुंधति क्षेत्राणि यत्र यत्र महासुराः ॥ दिव्याभरणसंपन्ना देवा इव महाप्रभाः ॥ ४ ॥ ययुः परमिकां तन्वि गतिं शृणु मम प्रिये ॥ नीलकंठाख्यतीर्थेषु सप्त लक्षाणि रक्षसाम् ॥ ५ ॥ मुक्तिं प्राप्तानि तत्क्षेत्रं शृणु देवि यथातथम् ॥ तत्र शुंभनिशुंभाख्यौ पर्वतौ द्वौ महोन्नतौ ॥ ६ ॥ तत्र देवी महेशानी ब्रह्मादिभिरभिष्टुता ॥ यत्र तु श्रीमहादेवः पार्वत्या सहितः प्रभुः ॥ समक्षं क्रीडते तत्र दृश्यते पुण्यकृज्जनैः ॥ ७ ॥ एकदा तत्र रंभोरु रंतिदेवो महीपतिः ॥ चकार तु तपस्तीव्रं तोपयन्मनसा शिवम् ॥८॥ समक्षं गतवांस्तस्य ह्यचिरेण सदा-

अरुन्धती बोली—हेस्वामिन् ! आप ऐश्वर्य्यशाली, सर्वशक्तिसम्पन्न, ब्रह्माजिके पुत्र और समस्त धर्म्मोंके ज्ञाताहैं, सो हेभगवन् ! वे दो लक्ष ब्रह्मराक्षस तौ रुद्रतीर्थमें मुक्त होगये ॥ १॥ हे वल्लभ ! शेष ब्रह्मराक्षसोंकी मुक्ति कहां हुई ? यह बताइये । हे महामतिमान्! क्या अतिशय पुण्यदायी वोह कोई अन्य क्षेत्रहै ॥ २ ॥ उसका श्रवण करनेकी मेरी कामनाहै, और आपसे अधिक अन्य कोई वक्ताभी नहींहै ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले--हेअरुन्धति ! अब उन क्षेत्रोंका श्रवण करो । जहां २ वे महाराक्षस दिव्यआभूषणोंसे सम्पन्नहो देवताओंकी समान अतिशय प्रभाशाली हुए ॥ ४ ॥ और हेतन्वंगि ! परम गतिको प्राप्त हुएथे हेप्रिये ! उनका श्रवण करो । नीलकंठ तीर्थमें सातलक्ष ब्रह्मराक्षस ॥ ५ ॥ मुक्तिको प्राप्त हुएथे, हे देवि ! उनका यथोचित वर्णन सुनो । वहां शुंभ और निशुम्भ नाम बडे ऊंचे दो पर्वतहैं ॥ ६ ॥ वहां महेशानी देवीहैं, ब्रह्माआदि देवताओंने उनकी स्तुति करीथी, उस स्थानमें पार्वतीसहित सर्व शक्तिमान् श्रीमहादेवजी पुण्यात्मा जनोंको प्रत्यक्ष क्रीडा करते दृष्टिगत होजातेहैं ॥ ७ ॥ हे रम्भोरु ! एक समय उस स्थानमें महाराज रन्तिदेवने अतिशय मनोयोग पूर्वक महादेवजीके निमित्त उग्र तप कियाथा ॥ ८ ॥ बहुतही शीघ्र सदाशिव (सदा कल्याण स्वरूप) महादेवजी उसके समक्ष उपस्थित

शिवः ॥ तत्र रामाज्ञया सप्त लक्षाणि ब्रह्मरक्षसाम् ॥ गत्वा तद्दर्शनादेव ययुः परमिकां गतिम् ॥ ९ ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं चक्राख्यमद्भुतम् ॥ मानसाद्दक्षिणे पार्श्वे नानाधातुविचित्रिते ॥ १० ॥ सर्वदेवगणाकीर्णे यक्षगंधर्वसेविते ॥ तत्रैको बिल्ववृक्षोऽस्ति सहस्रकरसम्मितः ॥ ११ ॥ तत्र बिल्वेश्वरो नाम महादेवो भयापहः ॥ महत्कष्टसमापन्नो द्विदिनात्सुखमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ तत्र हेरंबकुंडं तु स्नात्वाऽनंतफलप्रदम् ॥ हेरंबेन पुरा यत्र स्तुतो देवि सदाशिवः ॥ १३ ॥ सर्वकर्मप्रथमतः पूज्यत्वं प्रददौ प्रिये॥तत्र गाणेश्वरी मूर्त्तिस्त्रिदिनात्सिद्धिदायिनी ॥ १४ ॥ तत्र वै पंचलक्षाणि मुक्तिमापुर्मम प्रिये ॥ पुण्यक्षेत्रमिदं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ अथान्यद्वैणवं नाम क्षेत्रं सर्वोत्तमं प्रिये ॥ वेणुना यत्र सुतपस्तप्तमंगात्मजेन हि ॥ १६ ॥ सरस्तत्र महत्पारं वेणुना निर्मितं पुरा ॥ स्नात्वा तत्र

हुए । परशुरामजीकी आज्ञासे वहां सातलक्ष ब्रह्मराक्षस उनके दर्शन करतेही परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ एक चक्रनाम औरभी अद्भुत तीर्थहै उसका वर्णन करताहूं, मानससे दक्षिणकी ओर अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र हुए ॥ १० ॥ समस्त देवसमाजद्वारा आकीर्ण और यक्ष एवम् गन्धर्वोंके द्वारा सेवाकियेहुए स्थानमें एक बिल्वका वृक्षहै, उसका आकार सहस्रकर परिमितहै ॥ ११ ॥ वहांपर बिल्वेश्वर नाम महादेवजी विद्यमानहैं जो समस्त भयोंका विनाश करनेवालेहैं, अतिशय क्लेशसे पीडित हुआ व्यक्तिभी वहां दोही दिनमें सुखका लाभ करताहै ॥ १२ ॥ वहां हेरंबकुंडमें स्नान करनेसे अनन्त फलका लाभ होताहै, हे देवि ! उसीके ऊपर हेरंब (गणेश) के द्वारा सदाशिव महादेवजीकी स्तुति की गईथी ॥ १३ ॥ हे प्रिये ! तभी उन्हें महादेवजीने समस्त देवताओंमें प्रथमपूज्यत्व प्रदान कियाथा, वहां गणेशजीकी एक मूर्त्तिहै जो केवल तीनही दिनमें (उपासना करनेसे): सिद्धि प्रदान करती है ॥ ॥ १४ ॥ सुनो हमारी प्यारी ! वहां पांचलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको मुक्तिका लाभ हुआथा, अतएव इस पवित्र क्षेत्रको प्रभूत पापोंका विनाश करनेवाला कीर्त्तन किया गयाहै ॥ १५ ॥ हे प्रिये ! इसके अनन्तर समस्त क्षेत्रोंमें उत्तम एक और वैणव क्षेत्रहै, उसी स्थानमें अंगात्मज वेणुने उत्तम तपका आचरण कियाथा ॥ १६ ॥ प्रथम वेणुने बडा विस्तृत एक सरोवर उस स्थानमें निर्माण कियाथा, उसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञजनित महापुण्यकी प्राप्ति होतीहै,

महत्पुण्यं हयमेधसमुद्भवम् ॥ प्राप्नोति च तथा स्पृश्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७॥ सरसो दक्षिणे पार्श्वे चण्डी चण्डगणैः स्तुता ॥ जलांतर्धानमापन्ना स्मरणात्पापनाशिनी ॥ १८ ॥ पूर्वभागे ततो देवि पुण्यं पापविशोधनम् ॥ जलं तत्पीतवर्णं च लक्षणं कथितं तव ॥ १९ ॥ तत्र मासाद्व्रती स्थित्वा निधिं पश्यति निश्चयात् ॥ तत ऊर्ध्वं देवलस्य स्थलं परमपुण्यदम् ॥ २० ॥ तत्र वै दशलक्षाणि ययुः परमिकां गतिम् ॥ अन्यच्छृणु महत्क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २१ ॥ विकटक्षेत्रमाख्यातं धन्यं मुनिवरान्वितम्॥जंभासुरस्य द्वौ पुत्रौ तटो विकट एव च॥२२॥ हते जंभे वासवेन तेपतुः परमं तपः ॥ विकटः शिवभक्तोभूद्विष्णुभक्तस्तटो ह्यभूत् ॥ २३ ॥ स्थितवंतौ हि द्विस्थाने महाबलपराक्रमौ ॥ तत्र क्षेत्रे महाविष्णुश्चतुर्बाहुः सदा स्थितः ॥ २४ ॥ विकटेशो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥ तस्थौ विक-

और उसका स्पर्श करनेसे समस्त पापोंसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ १७ ॥ उसी सरोवरके दक्षिणपार्श्वमें चण्डीजीका स्थान विद्यमान है, उनकी प्रचण्ड गणोंने स्तुति करीथी, तब वे जलमें अन्तर्धान होगई, उनका केवल स्मरण करनेहीसे पापोंका नाश होजाताहै ॥ १८ ॥ हे देवि ! उसके पूर्व भागकी ओर पवित्रताशाली अतएव पापोंका विनाश करनेवाला जलहै, उसका पीतवर्णहै येही उसका लक्षण हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया ॥ १९ ॥ उस स्थानमें व्रत ग्रहणपूर्वक एक मास पर्यन्त निवास करनेसे निश्चय निधि (प्रभूत द्रव्य) का दर्शन होताहै, उससे ऊपरकी ओर देवलजीका एक स्थानहै जो परम पुण्यका प्रदान करनेवालाहै ॥ ॥ २० ॥ दशलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको उस स्थानमें परमगतिका लाभ हुआथा । अब और ऐसे क्षेत्रका श्रवण करो जो संपूर्ण पापोंका सत्य नाश करनेवाला है ॥ २१ ॥ उसे विकट क्षेत्र कहतेहैं वोह श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा सम्पन्न होनेके कारण धन्य अर्थात् प्रशंसा करनेके योग्यहै जम्भासुरके दो पुत्रथे एकका नाम तट और दूसरेका विकट था ॥ २२ ॥ जब इन्द्रने जम्भासुरका वध कर दिया तब उसके दोनों पुत्रोंने परम (उग्र) तप किया, उनमेंसे विकट तौ महादेवजीका और तट विष्णुभगवान्‌का भक्त हुआ ॥ २३ ॥ अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी वे दोनों व्यक्ति दो स्थानोंमें स्थित हुए थे, वहां महाक्षेत्रमें विष्णु भगवान् सदा चतुर्भुजी मूर्ति धारण करके उपस्थित रहतेहैं ॥ २४ ॥ एवं च विकटेश महादेव-

टभक्तो वै भूतवेतालसंवृतः ॥ २५ ॥ चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि क्षेत्रस्य वरवर्णिनि॥महादेवस्थलाद्याम्य जलं परमदुर्लभम् ॥२६॥ शैलोदकमिति ख्यातं स्पर्शनात्प्रस्तरो भवेत् ॥ यत्किंचिद्वस्तु संजातं सत्यमेव न संशयः ॥ २७॥ इदं स्थानं परं गोप्यं नवदेयस्य कस्य चित् ॥ स्वर्णं च मुक्ता रजतं गुटिका खेचरी तथा ॥ २८ ॥ अंजनं च तथा दृश्यं परकायप्रवेशनम् ॥ तत्सर्वं साध्यते तेन शैलोदेन वरानने ॥ २९ ॥ नंदीश्वरो महाभागः सर्वकर्मफलप्रदः ॥ तत्र नंदी महादेवं शिवमाराधयत्प्रिये ॥ तदादीदं परं स्थानं जातं त्रैलोक्यपावनम् ॥ ३० ॥ अस्मिन्वै विकटक्षेत्रे द्विलक्षं ब्रह्मराक्षसाः ॥ मुक्तिं प्राप्ता महाभागे दर्शनादेव तस्य वै ॥ ३१ ॥ तटक्षेत्रं तथा देवि शृण्वरुंधाति कथ्यते॥ तटो नाम महादैत्यो विष्णुभक्तिसमाश्रितः॥३२॥ जजाप परमां विद्यां पिंडारकनदीतटे ॥ वसुवर्णां महाभागस्त्यक्ताहारविहा

जीभी समस्त कामनाओंके फलको देतेहैं, और विकटकी भक्तिवशात् भूतवेतालोंसे युक्त होकर वहां विराजमान रहतेहैं ॥ २५ ॥ हे सुन्दरि ! उस उत्तम क्षेत्रके चिह्नका वर्णन हम तुम्हारे प्रति करतेहैं, महादेवजीके स्थलसे दक्षिणकी ओर परम दुर्लभ जलहै ॥ २६ ॥ उसको शैलोदक कहतेहैं, चाहे जो वस्तु क्यों न हो उस जलका स्पर्श करनेसे अवश्य पाषाणरूप होजातीहै ॥ २७ ॥ इस स्थानको परम गुप्त रक्खै, जिस तिसके आगे वर्णन न करै । सुवर्ण, मुक्ता, रजत (चांदी) तथा खेचरी गुटिका ॥ २८ ॥ अदृश्यांजन, परकायप्रवेशन, ये सभी कार्य्य हेवरानने ! उस शैलोदकके द्वारा सिद्ध होजाते हैं ॥ २९ ॥ हेप्रिये ! उसी स्थानमें नन्दीने महादेव शिवकी आराधना करीथी, अतएव उस स्थानमें संपूर्ण कामनाओंकी परिपूर्ण करनेवाले नन्दीश्वर महादेवजी विद्यमानहैं, और उसी दिनसे यह परमस्थान त्रिलोकीके पवित्र करनेवाला हुआहै ॥ ३० ॥ हेमहाभागे ! इसी महाक्षेत्रमें दोलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको उसका दर्शन करतेही मुक्तिका लाभ हुआथा ॥ ३१॥ हे देवि अरुन्धति ! अब हम तटक्षेत्रका वर्णन करतेहैं उसका तुम श्रवण करो । तटनाम महादैत्यने विष्णुभगवान्‌की भक्तिको ग्रहणकरके ॥ ३२ ॥ पिण्डारक नदीके तीरपर परम विद्याका जप कियाथा उस महाभागने सब

रकः ॥ ३३ ॥ विंशतिश्च तथा दैत्यः सहस्रद्वितयं तथा ॥ ततो ददर्श गोविंदं शंखचक्रगदाधरम् ॥३४॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं नानामणिविराजितम् ॥ चतुर्बाहुं महाविष्णुं घनश्यामं घनस्वनम् ॥ ३५ ॥ प्रसन्नो भगवांस्तस्मै निजं स्थानं ददौ तदा ॥ तस्यानुग्रहतस्तत्र वासं चक्रे रमापतिः ॥ ३६ ॥ तटाश्रमे तु यत्किंचित्क्रियते योजनास्तृते ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं सत्यमेव न संशयः ॥ ३७ ॥ तत्प्रदेशोत्तरे भागे ब्रह्मपुत्रतपःस्थलम् ॥ मरीचिर्भगवान् यत्र प्राप सिद्धिं दुरासदाम् ॥ ३८॥ तत्र यत्क्रियते कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं वर्द्धते च दिने दिने ॥ ३९ ॥ तस्मात्पुण्यं प्रकुर्य्यान्न पापं नैव समाचरेत् ॥ ब्रह्मपुत्रेश्वरं तत्र शिवलिंगं महाद्भुतम् ॥ ४० ॥ नानामलताद्रुकीर्णं सद्यो मुक्तिप्रदायकम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे नानातीर्थमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

आहारविहारका परित्याग करके उक्त अष्टाक्षरी परम विद्याका जप कियाथा ॥ ३३ ॥ उस दैत्यने दो सहस्र वीसदिन इस कार्य्यका अनुष्ठान कियाथा, तब उन्हें शंखचक्रगदाधारी गोविन्द भगवान्के दर्शनोंका लाभ हुआथा ॥ ३४ ॥ भगवान्का प्रकाश करोडों सूर्य्यकी सदृशथा, वे स्वयं विविध भांतिके मणियोंसे विराजमान हो रहेथे, उन महाविष्णु भगवान्की चारभुजा, मेघ सदृश नीलवर्ण और मेघगर्जनकी समान गम्भीर उनका नाद था ॥ ३५ ॥ तब भगवान्ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना स्थान प्रदान किया, और उन्हींके ऊपर अनुग्रह करके लक्ष्मीकान्तने उस स्थानमें निवास स्वीकार किया ॥ ३६ ॥ योजन (चारकोस) विस्तृत तटाश्रममें जो कुछभी कर्म किया जाताहै, निस्सन्देह यह सत्य बातहै कि--वोह सब करोडगुणा होजाताहै ॥ ३७ ॥ उस स्थानसे उत्तरकी ओर ब्रह्माजीके पुत्रकी सिद्धिका स्थानहै, उसी स्थानमें मरीचिको दुर्लभ सिद्धिका लाभ हुआथा ॥ ३८ ॥ उस स्थानमेंभी शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म किया जाताहै वोह प्रतिदिन करोडोंगुणा वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ अतएव वहां पुण्यका आचरण करै, पाप न करना चाहिये; उसी स्थानमें ब्रह्मपुत्रेश्वर नाम परम अद्भुत शिवलिंग विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहां विविध प्रकारकी लता और वृक्ष आकीर्ण होरहेहैं, अप च उक्त महादेवजी तत्कालही मुक्ति प्रदान करतेहैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां एकोनाशितितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः ८०.

वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रह्मपुत्रोत्तरे भागे नाम्ना पुष्करपर्वतः ॥ तस्मिन्देवाः सगंधर्वा नागाः किन्नरगुह्यकाः ॥ १ ॥ उपासते स्म भूतेशं सर्वेऽन्ये च मुमुक्षवः ॥ तत्राऽनेकानि तीर्थानि भवलोक प्रदानि च ॥ २ ॥ शिवस्थानानि लिंगानि मुनीनामाश्रमास्तथा देवीपीठानि दिव्यानि सद्यः प्रत्ययदानि च ॥ ३ ॥ यत्र नागैः पुरा तन्वि सोमः शिव उपासितः ॥ शिवभूषणतां प्राप्ता हिंसका अपि ते प्रिये ॥ ४ ॥ इदं गुह्यतमं स्थानं ज्ञातं प्रीत्या शिवान्मया ॥ ५ ॥ अरुंधत्युवाच ॥ आश्चर्यभूतं कथितं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ नागा यत्र दुरात्मानः प्राप्ताः शिवकलेवरम् ॥ ६ ॥ विस्तरेण समाचक्ष्व सर्वज्ञोसि यतः प्रभो॥त्वया यदपि ख्यातानि तीर्थानि प्रवराणि मे ॥ तथापि तीर्थमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छा प्रवर्द्धते ॥७॥ वसिष्ठ उवाच ॥ पुरा रतिरहस्ये वै शिवेन कथितं प्रिये ॥ प्रियायै प्रीतिकामायै तत्ते वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ८ ॥

वसिष्ठजी बोले—ब्रह्मपुत्रके उत्तर भागमें पुष्कर नाम पर्वतहै, उसी स्थानमें देवतागण गन्धर्व और नाग किन्नर तथा गुह्यक इन सबहीने ॥ १ ॥ अथ च अन्यान्य मोक्षाभिलाषियोंनेभी भूतनाथ महादेवजीकी उपासना करीथी, उस स्थानमें अनेक ऐसे तीर्थहैं जो शिवलोक प्रदान करतेहैं ॥ २ ॥ शिवमन्दिर, शिवलिंग और मुनियोंके आश्रम, तथा देवियोंके दिव्य पीठ ये सब अचिरादेव (अपनी सिद्धिके द्वारा) विश्वास करानेवालेहैं ॥ ३ ॥ हे तन्वंगि ! इसी स्थानमें नागगणने प्रथम उमासहित महादेवजीकी आराधना करके, यद्यपि हे प्रिये ! वे हिंसकथे तथापि शिवजीके आभूषणत्वका लाभ कियाथा ॥ ४ ॥ यद्यपि यह स्थान अत्यन्तही गोपनीयहै प्रीतिवशात् महादेवजीके द्वारा मुझे इसका ज्ञान हुआहै ॥ ५ ॥ अरुन्धती बोली-आपने आश्चर्यजनक और परम दुर्लभ ऐसे क्षेत्रका वर्णन किया जहां कि--दुरात्मा सर्पोंको महादेवजीके शरीरका (आभूषणत्व) लाभ हुआथा ॥ ६ ॥ क्योंकि--हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव इस आख्यानको विस्तारपूर्वक वर्णन करिये; यद्यपि आपने उत्तमोत्तम तीर्थोंका (माहात्म्य) वर्णन कियाहै, तथापि अन्यतीर्थोंका माहात्म्य श्रवण करनेके तईं मेरी इच्छा वृद्धिको प्राप्त होतीहै ॥७॥ वसिष्ठजी बोले--हेप्रिये ! प्रथम महादेवजीने रतिरहस्यमें प्रीतिकी कामनासे प्रियाके प्रति जो कुछ वर्णन कियाथा वोही संपूर्ण हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं ॥ ८ ॥

सर्गादौ सृष्टवान् ब्रह्मा पुरा सर्वं चराचरम् ॥ सृष्टा अपि न वर्द्धं-
न्ते प्रजा देवि प्रजापतेः ॥ ९ ॥ तदा मनसि संदध्यौ प्रजाः स्रष्टुं
दृढव्रते ॥ तस्य संध्यायतो जज्ञे मानसी संततिस्तदा ॥ १० ॥
तथापि न प्रजाः सर्वा वर्द्धिताः कर्मणि क्षमाः ॥ तदा मैथुनकीं
सृष्टिं चक्रे लोकपितामहः ॥ ११ ॥ अदित्यां कश्यपाद्देवा दि-
त्यां दैत्या दुरासदाः ॥ कद्र्वां नागाः समभवन्विषदिग्धकले-
वराः ॥ १२ ॥ बहवस्ते दुरात्मानो ब्रह्माणं दष्टुमुद्यताः ॥ करा-
लवदना घोराः फणामंडलमंडिताः ॥ १३ ॥ अनेकवर्णा विकृ-
ताः शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा ॥ हिंसकाः प्राणिनां यूयं भविष्यथ
न संशयः ॥ १४ ॥ क्षुधया तृषयाविष्टाः परद्रोहपरायणाः ॥
इति शप्ता ब्रह्मणा ते भयसंविग्नमानसाः ॥ ब्रह्माणं प्रणिपत्योचु-
र्नागाः कद्रुतनूद्भवाः ॥ १५ ॥ नागा ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश
ब्रह्मन् लोकपितामह ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं सचरं साचरं विभो
॥१६॥ त्वयैव हि वयमपि सृष्टा विषमयाः किल ॥ परीक्षैव कृता-

...सृष्टिके आरंभमें ब्रह्माजीने चराचर सृष्टिकी रचना की, हेदेवि ! रचना करनेपर-
...जापति ब्रह्माकी सृष्टिकी वृद्धि न हुई ॥ ९ ॥ हेदृढव्रते ! फिर उन्होंने अपने चित्तमें
... सृष्टि निर्माण करनेका विचार किया, उनके ध्यान करतेही मानसी सृष्टि उत्पन्न होने लगी
...० ॥ तथापि कर्ममें समर्थहो उस प्रजाकी वृद्धि न हुई तब तौ लोकपितामह ब्रह्माजीने
...सृष्टिको निर्माण किया ॥ ११ ॥ अदितीमें कश्यपसे देवता, दितीमें दुष्ट राक्षस, और
... नागोंकी उत्पत्ति हुई जिनका शरीर विषसे व्याप्तहै ॥ १२ ॥ बहुतसे दुष्ट नाग ब्रह्माजी-
... डसनेके लिये उद्यतहुए, उनके मुख कराल (भयंकर) और घोराकृतिकेंथे, एवं फणोंके
...लसे मण्डित होरहेथे ॥ १३ ॥ अनेकवर्णधारी उन कुरूपोंको तब तौ ब्रह्माजीने यह शाप
... कि-तुम निस्सन्देह प्राणियोंके घातक होओगे ॥ १४ ॥ सदैव क्षुधा और तृषासे
... रहोगे, तथा औरोंसे द्वेष करनेमें तुम लोग तत्पर रहोंगे । ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार
...दिये जानेपर मारे भयके उनका मन उद्विग्न होगया, और कद्रूतनूत्पन्न नागगण
...मपूर्वक ब्रह्माजीसे यों बोले ॥ १५ ॥ नागोंने कहा--हेलोकपितामह ब्रह्माजी ! आप
...देवहैं, हम आपको प्रणाम करतेहैं, हेसर्वव्यापक ! इस चराचर निखिल संसारकी रचना
...होने तौ की है ॥ १६ ॥ अथ च आपहीने हमैं विषधर बनायाहै, अतएव शरीरान्तर्वर्त्ती

स्माभिः शरीरांतर्विषस्य हि ॥ १७ ॥ स्वभाव एव चास्माकं प्राणिनां यच्च दंशनम् ॥ क्षंतव्यश्चापराधो नः क्षमाशीला हि साधवः ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अमोघो मामकः शापो भविष्यत्येव बालिशाः ॥ तथापि च तदुद्धारो भविष्यति युगांतरे ॥ सदाशिवानुग्रहेण गच्छध्वं हिमपर्व्वते ॥ १९ ॥ तत्र देवाधिदेवस्य चंद्रचूडस्य सेवनम् ॥ कुरुध्वं स च युष्मभ्यं वरं दास्यति सर्वथा ॥ २० ॥ इति श्रुत्वा तु ते नागाः पुष्कराद्या हिमालये गतास्तेपुः परं ताप्यं तपो दुश्चरणीयकम् ॥ २१ ॥ एकपादेन त्यक्तान्ना वायुभक्षा दिवानिशम् ॥ कल्पत्रयं गतं तेषां तपतां वरवर्णिनि ॥ २२ ॥ शिवस्य परदेवस्य चलितं हि तदासनम् ॥ पुनस्तेपुश्च ते नागास्तदाविर्भावितां गतः ॥ २३ ॥ शिवः समागतस्तत्र यत्र ते कद्रुजाः प्रिये ॥ दर्शनं दत्तवान्दिव्यं त्रिशूलांकितहस्तकम् ॥ २४ ॥ तत्र दृष्ट्वा शिवं नागाः पुष्कराद्याः प्रतुष्टुवुः ॥ २५ ॥ नमस्ते शिवेश प्रभो भीम भर्ग त्रिनेत्र त्रिशूलं

विषकी हमने परीक्षा करीथी ॥ १७ ॥ प्राणियोंको डसलेना यह तौ हमारा स्वभावहीहै, आप हमारे अपराधको क्षमा करैं कारणकि--साधुमहात्माओंका स्वभावही क्षमा करनेका होताहै ॥१८॥ ब्रह्माजी बोले--अरे मुर्खों ! हमारा शाप अवश्यही सफल (सत्य) होगा, यद्यपि यह बातहै; तथापि--अन्य युगमें इस शापका उद्धार महादेवजीकी कृपासे होगा, अतएव तुम हिमालय पर्वतके ऊपर जाओ ॥ १९ ॥ वहां देवाधिदेव चन्द्रमौली महादेवजीकी सेवा करो, तौ सर्वथा वे तुम्हें वरप्रदान करेंगे ॥ २० ॥ पुष्कर आदि उन नागोंने ये वाक्य श्रवणकर हिमालयकी यात्रा की, और वहां उन्होंने परम कठिन तपका आचरण किया ॥ २१ ॥ अन्नपरित्यागपूर्वक वायुभक्षण कर उन्होंने रातदिन एक चरणसे खडे रहके तप किया, हे सुन्दरि ! इस प्रकार तप करते २ उन्हें तीन कल्प व्यतीत होगये ॥ २२ ॥ तब तौ सदाशिव महादेवजीका आसन चलायमान होगया, किन्तु--फिरभी वे नाग तप करतेही रहे जिससे महादेवजीका आविर्भाव हुवा ॥ २३ ॥ हे प्रिये ! जहां वे कद्रुतनय तपका आचरण कररहेथे वहां महादेवजी गये, और हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए अपने दिव्यदर्शन उन्हें दिये ॥ २४ ॥ कल्याणमूर्त्ति महादेवजीका अवलोकन करके पुष्करादि नागगण उनका स्तुतिपाठ करने लगे ॥ २५ ॥ हे कल्याणमूर्त्ति परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिसंपन्नहैं, आपका तेज अतिशय भीम

बिभर्षि क्षमेश ॥ सदा सृष्टिकर्त्रे प्रहर्त्रे बिभर्त्रे नमोस्तु क्षपानाथखंडालकाय ॥ २६ ॥ महारौद्रदंडप्रहारेंद्रमुख्यत्रसद्देववृंदैः स्तुतायार्त्तिहंत्रे॥नतस्येष्टदात्रे पुरारे नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥२७॥ असारसंसारमहासमुद्रसंतारणोपायतरिस्त्वमेव ॥ त्वमेव सूक्ष्मोसि नृणां हृदंतर्विराजसे लीनतरः सदैव॥२८॥त्वन्मायया मोहसमाकुलैः स्वैर्न ज्ञायसे व्याप्य बिभर्षि विश्वम् ॥ वेदांतविद्यापरिवेदिभिश्च कुतर्किभिर्वाङ्मयजालवादैः ॥ २९ ॥ चिन्वंति न त्वां सुतरां सुशीलैर्मूढा भवंतीह त्वदर्थवादे ॥ नंदीमुखैस्त्वं सततं स्तुतो हि स त्वदिच्छयैतत् सचराचरं जगत् ॥ ३० ॥ हिमालयोर्वीसुविहारदक्ष भक्तिप्रबोधैक सुगम्यपाद ॥ भक्तार्त्तिनाशे सततं प्रदत्तचेतः सुचेतःसमवाप्य

रूप होनेके कारण (भयंकर) है, यद्यपि आप तीननेत्र और त्रिशूलको धारण करतेहैं, तथापि आप क्षमाशालीहैं अतएव हम आपको नमस्कार करतेहैं । [ब्रह्मारूपसे] सृष्टिकी रचना करनेवाले, [विष्णुरूपसे] पालन पोषण करनेवाले और [रुद्ररूपसे] संहार करनेवाले आपही हैं अतएव चन्द्रार्द्धचूडामणि आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ २६ ॥ आप अत्यन्त भयंकर दंडसे प्रहार करतेहैं, भयभीत इन्द्रादि देवगणने आपकी स्तुति करीथी, आपही सबके दुःखका विनाश करतेहैं, जो व्यक्ति आपके प्रति नम्र होतेहैं, आप उन्हे इष्टसिद्धि प्रदान करतेहैं, आपहीने त्रिपुर दैत्यका वध कियाथा । अतएव आप उसके अरि कहलातेहैं आपको वारंवार नमस्कार करतेहैं ॥ २७ ॥ संसाररूप महासागरसे उद्धार करनेके लिये नौकारूप उपाय आपही हैं अर्थात् आपहीकी भक्तिके आधारसे मोक्ष लाभ होताहै, अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण लीन होकर आपही सबके हृदयमें विराजमान रहतेहैं ॥ २८ ॥ सांसारिक जीव आपकी माया द्वारा मोहित होनेके कारण वे लोग आपको नहीं जान सक्ते, सब संसारमें व्याप्त होकर आपही जगत्का भरण पोषण करतेहैं, और वेदान्ती गण अनेक प्रकारके वाद विवाद करके आपके तत्त्वको जानतेहैं ॥ २९ ॥ जो विशेष अनुशीलनके द्वारा आपका विचार नहीं करते, वे आपके अर्थवादके समय मूर्ख होजातेहैं, नन्दी आदिके द्वारा आप स्तुति किये गयेहैं एवं च आपहीकी इच्छासे चराचर जगत्की सृष्टिका निर्माण होताहै ॥ ३० ॥ हिमालय पर्वतकी भूमिमें आप दक्षताके साथ विहार करतेहैं, भक्तिभावके द्वाराही आपके चरणोंका बोध होताहै, अपने भक्तोंका दुःख नाश करनेमें आपका चित्त सदैव संलग्न रहताहै, और उत्कृष्ट देवरूपभी

देव ॥ ३१ ॥ इति स्तुतो महादेवः काद्रवेयैस्तदा प्रिये ॥ तुष्टः प्रोवाच वचनं तपसा स्तवनेन च ॥ ३२ ॥ वरं वृणुध्वं भद्रं वो यद्युष्मन्मनसि स्थितम् ॥ श्रुत्वा शिववचो नागा वरमूचुः सनातनम् ॥ ३३ ॥ यदि देवेश तुष्टोसि स्याम त्वद्भूषणं वयम् पूज्याश्च सर्वमर्त्त्यानां क्षेत्रमेतन्महेश्वर ॥ ३४ ॥ अस्मनाम्ना ख्यातिमेतु ह्याचंद्रार्कनभस्तलम् ॥ इदं पुण्यतमं क्षेत्रं तीर्थवृन्द विराजितम् ॥ ३५ ॥ त्वया चैव हि न त्याज्यं सोमेन सगणेन च ॥ श्रुत्वा नागवचो देवस्तथेत्युक्त्वा तिरोभवत् ॥ ३६ ॥ तदादीदं महाभागे बभूव क्षेत्रमुत्तमम् ॥ शिवभूषणतां प्राप्ता-स्तत आरभ्य सुंदरि ॥ ३७ ॥ अस्मिंस्तीर्थवरे संति सर्वे देवाः सकिन्नराः ॥ गंधर्वाश्चाप्सरोवृन्दा दृश्यंते पुण्यसंचयात् ॥ ॥ ३८ ॥ पुष्करः पद्मकश्चैव वासुकिस्तक्षकस्तथा ॥ कम्ब-लाश्वतरौ नागौ शेखः शंखपुलिस्तथा ॥ ३९ ॥ महापद्मश्चै-कशिरा द्विशीर्षास्त्रिशिरास्तथा ॥ एकपुच्छा द्विपुच्छाश्च बहुपु-

आपहीहैं ॥ ३१ ॥ हे प्रिये ! कद्रूके पुत्रोंने जब इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करी, तब उनके तप और स्तोत्रसे सन्तुष्ट हो सदाशिवने ये वाक्य कहे ॥ ३२ ॥ तुम्हारा कल्याणहो, जो कुछ तुम्हारे मनमें है सो वर मांगो ! शिवजीके ये वाक्य सुन नागोंने सनातन वरकी याचना करी ॥ ३३ ॥ हे देवराज ! यदि आप हमसे सन्तुष्ट (प्रसन्न) हैं तौ हम आपके आभूषण बनैं, और समस्त मनुष्य हमारी पूजा करैं, एवं च हे महेश्वर ! यह क्षेत्र ॥ ३४ ॥ तबतक हमारेही नामसे प्रसिद्धि लाभ करै जबतक आकाशमें सूर्य्य चन्द्रमा विद्यमान रहैं, अथ च इस पवित्र क्षेत्रमें सबतीर्थ विराजमान रहैं ॥ ३५ ॥ एवं च पार्वती और अपने गणोंसहित आपभी इस क्षेत्रका परित्याग न करै,नागगणके ये वाक्य श्रवणकर"तथास्तु" कहके महादेवजी अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ३६ ॥ हे महाभागे ! उसी दिनसे यह क्षेत्र परमोत्तम हुआ, और हे सुन्दरि ! उसी दिनसे नागोंको शिवजीका आभूषणत्व लाभ हुआ ॥ ३७ ॥ हे देवि ! इस उत्तम तीर्थमें सब देवता, किन्नर और गन्धर्वगण, एवं च अप्सरागण विद्यमानहैं परन्तु पुण्यका संचय होनेहीसे उनका दर्शन हो सक्ताहै ॥ ३८ ॥ पुष्कर, पद्म, वासुकि, तक्षक, कंबल, अश्वतर, शेख, और शंखपुलि ॥ ३९ ॥ महापद्म, एकशिरा, द्विशिरा, त्रिशिरा, एकपुच्छ, द्विपुच्छ तथा

च्छास्तथापरे ॥ ४० ॥ एते चान्येपि बहवो लीनास्तिष्ठन्ति
जिह्मगाः ॥ स्वर्णादिधातुनिलयास्तथा ताम्रमया नगाः ॥
॥४१॥ रत्नानां चाकरा ह्यत्र निधीनां निलयास्तथा ॥ तथा
च सिद्धौषधयः सर्वे ते पुण्यगोचराः ॥ ४२ ॥ बह्वचो नद्यस्तथा
धारा गंगातुल्यफलप्रदाः ॥ गौरीपीठान्यनेकानि शिवलिंगा-
न्यनेकशः ॥ ४३ ॥ सद्यः प्रत्ययकारीणि सर्वपापहराणि च ॥
धन्याः कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिते ॥ अस्मिन्क्षेत्रे स्थि-
ता नित्यं तेप्यशोच्या मृता यदि ॥ ४४ ॥ अरुंधत्युवाच ॥
कियत्प्रमाणं तत्क्षेत्रं कानि तीर्थानि तत्र वै ॥ कैश्च तप्तं तप-
श्चात्र किं चाप्तं फलमत्र हि ॥ ४५ ॥ को वा पुष्करको नामा य-
न्नाम्ना पर्वतो ह्यभूत् ॥ इति मे शंस दयित विस्तरेण ममाधुना ॥
॥४६॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रह्मपुत्रतपस्थानाद्गव्यूतिद्वयका-
धिके ॥ उत्तराश्रितदिग्भागे ख्यातः पुष्करपर्वतः ॥४७॥ आद्यो
हि सर्वनागानां पुष्करोनंतकल्पकः ॥ सदाशिवप्रेमपात्रं शिव-

…पुच्छ ॥ ४० ॥ ये सब तथा अन्यान्यभी नागकुल वहां लीन रहतेहैं, वहां सुवर्ण आदि
…तुओंके स्थान (खान), तथा ताम्रमयभी पर्वतहैं ॥ ४१ ॥ यहां रत्नोंके आकर और नि-
…योंकिभी स्थानहैं, और विविध प्रकारकी सिद्ध औषधियेंभी उस स्थानमें विद्यमानहैं, किन्तु
…न सबका दर्शन पुण्यके द्वाराही होताहै ॥ ४२ ॥ बहुतसी ऐसी नदियोंकी धारा विद्यमानहैं
…जो गंगाजीकी समान फल प्रदान करतीहैं, अनेक गौरीपीठ और अनेक शिवलिंगहैं ॥ ४३ ॥
…ये सब शीघ्रही प्रत्यय (विश्वास) करानेवाले और सब पापोंका विनाश करनेवालेहैं, उन मनु-
…ष्योंको धन्यहै जो पुण्यहीन इस कलियुगमें इस क्षेत्रमें स्थित रहतेहैं, और यदि वहां उनकी
मृत्यु होजाय तौभी वे अशोच्यहैं ॥ ४४ ॥ अरुन्धती बोली—उसका प्रमाण कितनाहै ? और
वहां कौन २ से तीर्थ विद्यमानहैं एवं च किस २ व्यक्तिने वहां तपका आचरण किया ?
और उनको क्या फल प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ और पुष्कर नाम किसकाहै जिसके नामसे यह
पर्वत प्रसिद्ध हुआहै, हे प्रियप्राणनाथ ! ये सब विस्तारपूर्वक संप्रति मेरे प्रति वर्णन करिये ॥
॥ ४६ ॥ वसिष्ठजी बोले—ब्रह्मपुत्रके तपके स्थानसे चारकोशसे कुछ अधिक उत्तर दिशाकी
ओर पुष्कर पर्वत प्रसिद्धहै ॥ ४७ ॥ सब नागोंके आद्य पुष्कर अनन्तकल्पक नाग महा-

मूर्ध्नि स्थितोनिशम् ॥ ४८ ॥ तस्माद्गव्यूतिमात्रं च पश्चिमे योजनायतम् ॥ पूर्वे क्रोशत्रयं याम्ये चोत्तरे क्रोशमात्रकम् ॥ ॥ ४९ ॥ एतत्प्रमाणकं क्षेत्रं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ नानामुनि गणाकीर्णं नानागुल्मलतावृतम् ॥ ५० ॥ नानाद्रुमगणोपेतं नागकन्याप्सरोवृतम् ॥ गमनाद्दर्शनादेव महापातकनाशनम् ॥ ॥ ५१ ॥ क्षेत्रगामिनरं दृष्ट्वा कंपंते पापराशयः ॥ अत्र यस्त्यजते प्राणान्स याति शिवमच्युतम् ॥ ५२ ॥ प्रमाणं कथितं भद्रे तीर्थानि शृणु तत्त्वतः ॥ पुष्करो नाम नागस्तु तताप परमं तपः ॥ ५३ ॥ पर्वतेस्मिंस्ततो नाम्ना ख्यातः पुष्करपर्व्वतः ॥ शिवाराधनतो जातो गिरिः पुण्यतमः प्रिये ॥ ५४ ॥ तत्रास्ते शिवलिंगं तु पुष्करेश्वरसंज्ञितम् ॥ दृष्ट्वैव सर्वपापानि प्रशमं यांति सर्वशः ॥ ५५ ॥ पूजनाद्व्योमयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ आलिंगितोप्सरोभिश्च शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

देवजीका प्रेमपात्रथा अतएव अहोरात्र वोह उनके मस्तकपर स्थित रहताहै ॥ ४८ ॥ उससे पश्चिमकी ओर दोकोसकी दूरीपर एक योजन (चारकोस) विस्तृत, पूर्वमें तीन कोसका, दक्षिण और उत्तरमें एक २ कोस प्रमाणका ॥ ४९ ॥ यह क्षेत्र मुनियों और सिद्धोंके द्वारा सेवितहै, अनेक मुनियोंसे यह स्थान व्याप्त और विविध भांतिकी गुल्म और लताओंसे आकीर्ण है ॥ ५० ॥ अनेक वृक्षोंसे वोह स्थान आवृत और नागकन्याओंसे व्याप्तहै, जो व्यक्ति उक्त स्थानकी यात्रा करतेहैं दर्शन करतेहो उनके सब पापोंका विनाश होजाताहै ॥ ५१ ॥ उस पवित्र धामकी यात्रा करनेवाले पुरुषका अवलोकन करके पापराशियोंको कंप होने लगताहै, और जो व्यक्ति इस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करताहै उसे अविनाशी शिवकी प्राप्ति होतीहै ॥ ॥ ५२ ॥ हे सुभद्रे ! उसका प्रमाण तौ हमने वर्णन किया, अब तत्वपूर्वक तीर्थोंका श्रवण करो, पुष्करनाम नागने इसी पर्वतपर परम तपका आचरण कियाथा ॥ ५३ ॥ अतएव यह पुष्कर पर्वत उसके नामसे प्रसिद्ध हुआहै, और हे प्रिये ! महादेवजीकी आराधना होनेके कारण यह पर्वत अत्यन्तही पवित्र होगयाहै ॥ ५४ ॥ उस स्थानमें पुष्करेश्वरसंज्ञक एक शिवलिंगहै, उसके दर्शन करनेसे सभी पापोंकी शान्ति होजातीहै ॥ ५५ ॥ उक्त लिंगकी जो व्यक्ति पूजा करताहै वोह किंकिणीजालसे समलंकृत विमानमें उपस्थित होकर शिवलोकको

तस्मात्पूर्वाश्रिते याम्ये देवीस्थानमनुत्तमम् ॥ तत्रास्ते चंडिका देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥ ५७ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव पूजनाद्ब-लिदानतः ॥ संतुष्टा वरदा नित्यं स्वलोकं संप्रयच्छति ॥५८॥ तत्र स्थित्वा तु कल्पांतं भूपतिर्जायते धनी ॥ तत्रैव शिवलिंगं तु नाम्ना तारेश्वरः स्मृतः ॥ ५९ ॥ तदर्चनात्पुत्रपौत्रैः सहितो भगवान्भवेत् ॥ अंते याति परं स्थानं योगिनामपि दुर्ल्लभम् ॥ ॥ ६० ॥ तस्माद्याम्याश्रिते भागे कावेरीति नदी स्मृता ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण निःपापो जायते नरः ॥ ६१ ॥ पानेन तज्ज-लस्यापि नरो याति शिवालयम् ॥ कोटिसूर्याभयानेन प्रस्फुर-द्ध्वजराजिना ॥ ६२ ॥ अप्सरोगणगंधर्वैः सेव्यमानोनिशं भृ-शम् ॥ तस्यां तु मज्जनाद्याति शिवसायुज्यमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धं तर्प्पणं वापि शक्तितः ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६४ ॥ तत्रैव शिवलिंगं तु कावेरी-श्वरसंज्ञितम् ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥६५॥

जाताहै, एवम् अप्सरागण उसका आलिंगन करतीहैं ॥ ५६ ॥ उससे पूर्व और दक्षिणकी ओर देवीका एक सर्वोत्तम स्थानहै शीघ्रही विश्वास करानेवाली वहां चण्डिका देवी विद्यमान है ॥ ५७ ॥ दर्शन स्पर्श, और पूजन तथा बलिदानसे सन्तुष्ट होकर वोह वरप्रदान करती और अपना लोक देतीहै ॥ ५८ ॥ वोह (उपासक) व्यक्ति कल्पान्त पर्यन्त वहां उपस्थित रहकर फिर राजा किम्वा धनाढ्य होकर जन्म ग्रहण करताहै, उसी स्थानमें तारेश्वर नाम शिवलिंग विराजमान है ॥५९॥ उसकी अर्चा करनेसे पूजनकर्ता व्यक्ति पुत्रपौत्रोंसे युक्त और ऐश्वर्यवान् होजाताहै, फिर शरीरान्तके समय उसे ऐसे स्थानका लाभ होताहै जिसकी प्राप्ति योगियोंकोभी दुर्लभ है ॥ ६० ॥ उससे दक्षिणकी ओर कावेरी नामकी नदी है, उसके जल-का केवल स्पर्श करनेसेही मनुष्य पापहीन होजाताहै ॥ ६१ ॥ चाहे पुरुष पापीभी हो तथा-पि उसका जल स्पर्श करनेसे शिवलोकको जाताहै करोडों सूर्यकी प्रभाकी सदृश प्रकाशित ध्वजाकी पंक्तियें वहां विराजमान हैं ॥ ६२ ॥ अप्सरागण और गन्धर्व नित्य उसकी सेवा करते हैं, उसमें स्नान करनेसे उत्तम शिवसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६३ ॥ और जो पुरुष पितरोंके निमित्त श्राद्ध किम्वा शक्तिके अनुसार तर्पण करताहै उसके पितृगण प्रलयपर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ६४ ॥ उसी स्थानमें जो एक शिवलिंग है उसका कावेरीश्वर नाम है, उक्त देवके

पूजनाद्ब्रह्महत्यादिपापानि नाशमाप्नुयुः ॥ पक्षमात्रं पूजनेन स्नपनेनांबुधारया ॥ ६६ ॥ शिवसायुज्यतां याति भुक्त्वा भोगानशेषतः ॥ महारुद्रविधानेन लघुरुद्रेण वानघे ॥ ६७ ॥ स्नपयेच्छैवलिंगं तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ भुक्त्वाऽशेषांस्तु भोगान्वै कृत्वा चैव महत्सुखम् ॥ ६८ ॥ पुत्रादिभिर्युतो मर्त्यो वसेच्छिवपुरं ततः ॥ भूमंडले समागत्य चक्रवर्त्ती नृपो भवेत् ॥ अंते च शिवसायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥६९ ॥ ततो याम्याश्रिते देशे नागधारा स्मृता प्रिये ॥ यत्र नागैस्तपस्तप्तं शिवाराधनतत्परैः ॥ ७० ॥ तैर्नीतेयं पयोधारा पानप्रकरलोलुपैः ॥ शिवेन दत्ता नागेभ्यो नागधारा ततः स्मृता ॥ ७१ ॥ तत्पानतो नरो नित्यममृतत्वं प्रगच्छति ॥ अतः शृणु महाभागे निगमालयसंज्ञिका ॥७२॥ नदी पुण्या पापहरा स्मृता परमपाविनी ॥ निगमैर्यत्र लब्धं हि पावनत्वं महाद्भुतम् ॥ ७३ ॥ द्वीपेश्वरो नृपो यत्र पंचत्वं हि गतामपि ॥ प्राप भार्यां स्वकीयां वै

दर्शन करनेसे ब्रह्महत्यासे भी मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ६५ ॥ एवंच पूजन करनेसे भी ब्रह्म हत्याआदि पापोंका विनाश होजाताहै, एक पक्षपर्यन्त पूजन करने, अथवा जलधारा द्वारा स्नान करानेसे ॥ ६६ ॥ समस्त भोगोंका उपभोग करके शिवसायुज्यताका लाभ होताहै । और जो व्यक्ति महारुद्रविधानसे किम्वा लघुरुद्रकी विधिसे ॥ ६७ ॥ शिवलिंगको स्नान कराताहै उसके पुण्योंका फल श्रवण करो, समस्तभोगोंको भोगकर और महासुख भोगके ॥ ॥ ६८ ॥ पुत्रादि परिवारसे युक्त हो अन्तमें शिवलोकमें निवास करताहै, और भूमंडलमें जन्म ग्रहण करके चक्रवर्त्ती होताहै, एवं च मरण होनेपर निस्संदेह शिवसायुज्यका लाभ होता है ॥ ६९ ॥ हे प्रिये ! उससे दक्षिणकी ओर नागधारा स्थित है, शिवका आराधन करनेमें तत्पर हो नागोंने उसी स्थानमें तप कियाथा ॥ ७० ॥ पानकरनेमें लोलुप नागगणही इस पयोधाराको यहां लायेथे, महादेवजीने उसे नागोंको दियाथा, इसीसे उसका नागधारा नाम हुआहै ॥ ७१ ॥ उस जलका पान करनेसे मनुष्यको अमरत्वका लाभ होताहै । हे महाभागे ! औरभी श्रवण करो । इसके आगे निगमालयानामकी ॥ ७२ ॥ एक परमपवित्र नदी है, जो कि पापोंका विनाश करनेवाली, अमृतस्वरूपा और परमपाविनीहै, उसीमें निगमोंकोभी परम अद्भुत पवित्रताका लाभ हुआथा ॥ ७३ ॥ अथ च उसी स्थानमें द्वीपेश्वर राजाको मृतक

पतिधर्मानुचारिणीम् ॥ ७४ ॥ अरुंधत्युवाच ॥ अत्यद्भुतमिदं प्रोक्तं भवता सर्ववेदिना ॥ कथं प्राप मृतां भार्यां नाथ द्वीपेश्वरो नृपः ॥ ७५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ जंबूद्वीपेऽभवद्भूपो द्वीपेश्वरनृपो महान् ॥ सदा धर्मरतः साधुर्विजयी धनवान् क्षमी ॥ ७६ ॥ ददौ दानानि सर्वाणि महादानानि षोडश ॥ उपयेमे प्रिया बह्वयो गुणरूपसमन्विताः ॥ ७७ ॥ तास्वप्येका बभूवास्य भूपस्य प्राणवल्लभा ॥ माणिक्याभा स्मृता नाम्ना समस्तसुगुणालया ॥ ७८ ॥ सततं निरतस्तस्यां प्रेमाधिक्यं चकार सः ॥ तत्परोक्षं किमपि नो करोति सुकरं तु वा ॥ अवरोधेपि महति सत्यपि क्षितिपालकः ॥ पत्नीवंतं स्वमात्मानं मेने पत्न्या तया नृपः ॥ ७९ ॥ चकार सैव सर्वं हि राजकार्य्यादिकं प्रिया ॥

इसेभी अपनी पतिव्रता स्त्रीका लाभ हुआथा ॥ ७४ ॥ अरुन्धती बोली—आप सर्वज्ञने यह बडे आश्चर्यकी बात कही, हे नाथ ! द्वीपेश्वर राजाको मृतकहुई पत्नीकी प्राप्ति किस प्रकार होगई ? ॥ ७५ ॥ वसिष्ठजीने कहा—जम्बूद्वीपमें द्वीपेश्वर नाम एक बडा राजा होगयाहै, वोह सदा धर्ममें रति करनेवाला, साधु (परकार्य्यसाधक), [शत्रुओंका] विजय करनेवाला, धनाढ्य और क्षमा करनेवाला था ॥ ७६ ॥ उस राजाने संपूर्ण दान और षोडश महादान दियेथे, एवंच रूप गुण संपन्न अनेक पत्नियोंके साथ उसने विवाह किया ॥ ७७ ॥ उन सबमेंसे एक पत्नी राजाको प्राणोंकी समान प्यारीथी, उसका माणिक्याभा नाम था एवम् वोह संपूर्ण गुणोंसे समलंकृत थी ॥ ७८ ॥ उसके प्रति अतिशय आसक्त होनेके कारण राजा उससे विशेष प्रेम करताथा, चाहे जैसा सुकर कार्य्य हो तौ भी रानीके परोक्षमें राजा नहीं करताथा यद्यपि उसका अन्तःपुर (रनवास) बहुत कुछ था, तथापि वोह भूमिपाल आपको सपत्नीक उसी रानीसे समझताथा ॥ ७९ ॥ समस्त राजकार्य्यादिकभी वोह उसकी प्रिय

---

१ आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् । हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् । कल्पपादपदानं च गोसहस्रन्तु पंचमम् । हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च । पंच लांगलकं तद्वद्धरादानं तथैव च । हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा । द्वादशं विष्णुचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम् । सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च । महाभूतघटस्तद्वत्षोडश परिकीर्तितः ॥ १ ॥

तया विना जलमपि पातुं नेच्छति भूपतिः ॥ ८० ॥ पुत्रान्वितोपि तत्रैव प्रेमासीन्नृपतेस्तदा ॥ अथ दैववशाद्राज्ञी ग्रस्तातंकेन वल्लभा ॥ ८१ ॥ मृद्वंगी नासहत्तं तु ततः पंचत्वमागता ॥ श्रुत्वा राजा तु पंचत्वं भार्यायाः शोकपीडितः ॥ ८२ ॥ हा हतोहं क्व गच्छामि कथं जीवामि निःश्वसन् ॥ विना सुप्रियया पत्न्या संलप्येति मुहुर्मुहुः ॥ ८३ ॥ सर्वं राज्यादिकं त्यक्त्वा मरणे कृतनिश्चयः ॥ भूयादसुव्यपायो मे केन चिंतामिति व्यधात् ॥८४॥ वने वने च बभ्राम हा प्रिये चेति संलपन् ॥ययौ देशात्परं देशं भ्रांतचेता बभूव ह ॥ ८५ ॥ तीर्थात्तीर्थान्तरं गत्वा तपः परमदारुणम् ॥ चकार तन्मना भूत्वा तत्संगो मे कथं भवेत् ॥ ८६ ॥ ततो बहुतिथे काले दैवयोगाद्ययौ नृपः ॥ हिमालये पुण्यदेशे मुनिवृंदविराजिते ॥ ८७ ॥ ददर्श तत्र सिद्धांश्च तान्नत्वा पर्य्यपृच्छत ॥ अये सिद्धा महात्मानः प्रियाविरहितो ह्यहम् ॥८८॥ प्रियया च समं संगो मे कथं स्याद्दया-

पत्नीही करतीथी, विशेष क्या उसके विना जलतकभी राजा नहीं पीताथा॥८०॥ पुत्रवान् होनेपरभी राजाका प्रेम उसीके ऊपर अधिक था, इसके अनन्तर दैववशात् उस कोमलांगीका रोगसे मरण होगया। पत्नीका मरण सुनकर शोकसे पीडित हो ॥८१॥८२॥ हाय! मैं मरा, कहा जाऊं? कैसे जीऊं? विना पत्नीके इस प्रकार बार २ बहुत कुछ रोदन उस राजाने किया ॥ ८३ ॥ फिर समस्त राज्यका परित्याग कर मरणके लिये निश्चय करके ऐसी चिन्ता करने लगा कि, किस प्रकार मेरे प्राणोंका वियोग हो ॥ ८४ ॥ हाय प्यारी !!!! यों बार २ कह कर रोदन करता हुआ वन २ में फिरने लगा और चित्तमें व्याकुल हो देश देशान्तरमें भ्रमण करने लगा ॥८५॥ एक तीर्थसे दूसरे तीर्थमें जाय उसीमें चित्त लगाके दारुण तप करने लगा और यह विचारनेलगा मेरा तथा उस (प्रियाका) संयोग किस प्रकार होगा ॥ ८६ ॥ तदनन्तर बहुतसा समय व्यतीत होनेपर वोह राजा दैव योगसे हिमालय पर्वतके ऊपर गया वोह स्थान अतिशय पवित्र और मुनिसमाजसे सुशोभितथा ॥ ८७ ॥ उसने वहां अनेक सिद्ध देखे, उन्हें प्रणाम करके पूछा, अयि सिद्ध महाशयों! मेरा प्रियासे वियोग होगयाहै ॥ ॥ ८८ ॥ हे दयालु महात्माओ! किस प्रकार प्रियाके साथ मेरा समागम हो सक्ताहै? यह

त्र: ॥ तया विना न जीवामि सत्यमेतन्मयोदितम्॥८९॥तन्म-
ध्ये कश्चिदृषिराट् प्रोवाच वचनं त्विदम् ॥ तत्र गच्छ तपः
कर्तु नदी च निगमालया ॥ ९० ॥ तत्तीरे वसते नित्यं शिवः
सोमः सुमुक्तिदः ॥ तदाराधनतो भार्यां प्राप्स्यसे त्वं न संशयः
॥ ९१ ॥ राजा तद्वचनं श्रुत्वा यत्र वै निगमालया ॥ आययौ
तत्र नृपतिश्चकार परमं तपः ॥ ९२ ॥ आराधयामास शिवं
भक्ताधिव्याधिनाशनम् ॥ ततस्तुष्टः शिवः प्रादाद्दर्शनं योगिदु-
र्लभम् ॥ ९३ ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि संस्थितम् ॥
इति श्रुत्वा शिववचो नृपतिर्ह्यमृतोपमम् ॥ ९४ ॥ उवाच मन-
सोभीष्टं वचो जीवनहेतुकम् ॥ किं मे भोगैः सुखैः किं मे
वाजिवारणकैश्च किम् ॥ ९५ ॥ किं जनैर्मधुरैर्वाक्यैर्यदि न
स्यादसुप्रिया ॥ प्रियायोगेन मां देव पुनरुज्जीवय प्रभो ॥ ९६ ॥
मृता मे प्रेयसी भार्या तां ददस्वास्ति चेद्दया ॥ अन्यथाहं त्यजे

मुझे बताइये, और मैं यह सत्यकहताहूं कि, विना प्रियाके मैं कदापि जीवित नहीं रहसक्ताहूं॥ ८९ ॥ उनके मध्यमेंसे किसी ऋषिराजने यह वाक्य कहा कि, जहां निगमालया नदीहै तुम वहांही तप करनेको जाओ ॥ ९० ॥ उस नदीके तीरपर मुक्तिदान करनेवाले श्री महादेवजी पार्वती सहित सदा ही निवास करते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है कि उनका आराधन करनेसे तुम्हें प्रियपत्नीका लाभ होगा ॥ ९१ ॥ उनके यह वाक्य श्रवण करके नरपालक राजाने निगमालयाके तीरपर आय परम तपका आचरण किया ॥ ९२ ॥ जो अपने भक्तोंकी आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिकी पीडा) का विनाश करनेवाले हैं ऐसे सदाशिवकी आराधना करी अतएव प्रसन्न होकर महादेवजीने योगियोंकोभी दुर्लभ ऐसे दर्शन दिये ॥ ९३ ॥ [और कहा कि—] जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर हमसे मांगो, महादेवजीके अमृतके समान वचन सुनकर राजा ने ॥ ९४ ॥ मनोऽभिलषित एवम् अपने जीवनके हेतुरूप वचन उच्चारण किये, भोग, सुख, हाथी और घोडोंसे मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥ ९५ ॥ और यदि मधुर भाषणकरनेवाली मेरी प्राणप्रिया न हो तौ अन्य जनोंसेभी मुझे क्या लाभहै ! हे सर्वशक्तिशाली देवराज ! प्रियाके साथ समागम कराके मुझे फिर जीवित करिये ॥ ९६ ॥ यदि आपको दया है तौ मेरी मृत प्रियाको मुझे दीजिये, अन्यथा हे कृपानिधान ! मैं आपके अगाडीही प्राणोंका परित्याग कर-

प्राणान् तवाग्रे च दयानिधे ॥ ९७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा शिवः परमविस्मितः ॥ मनसा चिंतयामास किं कुर्य्यां कथमन्यथा ॥ ९८ ॥ वरं यदि न दास्येहं मदीयाराधनं वृथा ॥ अयं च त्यजति प्राणान्मृतः कश्चिन्न चागतः ॥ ९९ ॥ इति चिंताकुलो भीमः स्वमायामकरोत्तदा ॥ तत्पत्नीं तादृशीं शीलरूपलक्षणवर्णकैः ॥ कल्पयित्वा ददौ तस्मै वचनं च ह्युवाच ह ॥ १०० ॥ इयं तेस्ति न वा पत्नी वद सत्यं महीपते ॥ श्रुत्वा नृपोवदद्वाक्यं धन्योसि त्वं महेश्वर ॥ १०१ ॥ इयमेव मदीया हि पत्नी पूर्वं मृता हि या ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं त्वत्प्रसादात्सदाशिव ॥ १०२ ॥ प्राप्ता मया सुतुल्य। हि पत्नी प्राणप्रदायिनी ॥ तवैव सर्वदा भक्तिर्मेस्तु जन्मनि जन्मनि॥१०३॥अत्रैव तव वासो वै भवतान्मुनिमुक्तिद ॥ इत्थं वचः शिवः श्रुत्वा तथेत्यंतर्हितो भवत् ॥ १०४ ॥ पुनस्तथैव राज्यादिभोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान्॥ विमानवरमारुह्य शिवलोकमवाप सः ॥ १०५ ॥ अस्मात्क्षेत्रा-

दूंगा ॥ ९७ ॥ उसके यह वचन सुनकर महादेवजी बडे विस्मयको प्राप्त हुए, और मनमें यह विचार करने लगे कि क्या करना कर्त्तव्य है। ॥ ९८ ॥ यदि इसे वरप्रदान न करूं तब तौ मेरी आराधना करनेका क्या फल हुआ। उधर तौ कोई मराहुआ लौटके नहीं आया इधर यह प्राण छोडनेको तयार है ॥९९॥ इसप्रकी चिन्तासे व्याकुल होकर उन्होंनें अपनी मायासे वैसेही रूप शील लक्षण और वर्णवाली राजाकी पत्नीको निर्माण कर उसे देदी और ये वाक्य कहे ॥ १०० ॥ सच बताओ राजन्! यह तुम्हारी पत्नी है अथवा नहीं? यह वचन सुन राजाने कहा हे महेश्वर! आपको धन्यहै ॥ १०१ ॥ येही मेरी वोह पत्नीहै जो प्रथम मृतक होगईथी, हे सदाशिव! आपकी कृपासे मैं कृतकार्य्य होगया अतएव मुझे धन्य है ॥ १०२ ॥ बिलकुल ठीक प्राणोंकी देनेवाली पत्नीकी मुझे प्राप्ति होगई अत एव ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरे चित्तमें जन्मजन्मान्तरमेंभी आपकी भक्ति विद्यमान रहै ॥ १०३ ॥ मुनियोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले हे महादेव! इस स्थानमें आपकाभी निवास बनारहै, राजाके ये वचन सुन तथास्तु कहके महादेवजी अन्तर्ध्यान होगये ॥ १०४ ॥ फिर उसीप्रकार यथेप्सित राज्यादिभोगोंको भोगकर अन्तसमय विमानमें आरूढ हो शिवलोकको चलागया ॥ १०५ ॥ इस क्षेत्रसे अधिक (पवित्र) और कोई क्षेत्र भूमिके ऊपर नहीं है क्योंकि

न्यरं क्षेत्रं नास्त्येव हि महीतले ॥ यत्र देवः शिवः साक्षाद्वर्त्तते
उमया सह ॥ १०६ ॥ यद्दर्शनादपि नरो गतिमाप्नोति दुर्लभाम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे महाभागे शिवलिंगं महाद्भुतम् ॥ १०७॥
जलेश्वरमिति ख्यातं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ तत्रैवास्ते महादेवी जलेश्वरीति संज्ञिता ॥ दर्शनात्पूजनान्मर्त्त्यो महैश्वर्य्यमवाप्नुयात् ॥ १०८ ॥ सर्वकामप्रदा देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥
बलिदानेन संतुष्टा भवतीह न चान्यथा ॥ १०९ ॥ तस्मात्तस्यै बलिर्देयो महदैश्वर्यमिच्छता ॥ देवीस्थानादधोभागे सर्वेप्सितफलप्रदम् ॥ ११० ॥ अन्यच्च देवतापीठं जपेश्वर्याः शुचिस्मिते ॥
सकृन्नत्वापि तां देवीं देवलोके महीयते॥ १११॥आश्विनस्य सिते पक्षे योर्च्चयेदंबिकामिह॥ कुबेर इव द्रव्याढ्यो भवत्येव न संशयः
॥ ११२ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगानशेषतः ॥ देवीसायुज्यमाप्नोति सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥११३॥ अस्मिन्क्षेत्रे महाभागे सर्वे पुण्यतमाश्रयाः ॥ यत्र धारा अनेकाश्च सर्वास्ता

हां साक्षात् महादेवजी पार्वतीसहित विराजमान रहतेहैं ॥ १०६ ॥ उनके दर्शन करनेहीसे मनुष्यको दुर्लभ गतिका लाभ होताहै । हेमहाभागे ! इसी क्षेत्रमें महादेवजीका एक अद्भुत लिंगहै ॥ १०७ ॥ उक्त लिंगका जलेश्वर नाम है, उस लिंगके दर्शन करतेही मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै, और वहांही जलेश्वरी नामकी एक महादेवी है उसका दर्शन अथवा पूजन करनेसे मनुष्योंको मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ १०८ ॥ वोह देवी समस्तकामनाओंकी पूर्ण करनेवालीहै अतएव उसके दर्शनकरनेसे तत्कालही विश्वास होजाताहै, बलिप्रदान करनेसे उस देवीका संतोष होताहै, अन्यथा नहीं ॥ १०९ ॥ अतएव जो व्यक्ति प्रभूत ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करताहो उसे चाहिये कि, भगवतीके हेतु बलिप्रदान करै, देवीके स्थानसे नीचेकी ओर संपूर्ण कामनाओंका पूर्ण करनेवाला ॥ ११० ॥ हे शुचिस्मिते ! जपेश्वरी देवीका पीठहै, उसको एकवारभी प्रणाम करनेसे मनुष्य देवीलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करताहै ॥ १११ ॥ आश्विनमासके शुक्लपक्षमें जो व्यक्ति इस स्थानमें अम्बिकाकी पूजा करताहै; वोह अवश्यही कुबेरकी समान धनसे परिपूर्ण होजाताहै ॥ ११२ ॥ पुत्र पौत्रोंसे युक्त हो संपूर्ण भोगोंका उपभोग करके देवीके सायुज्यकी प्राप्ति होतीहै इसमें कोई सन्देह नहीं यह सब सत्यही महादेवजीने कहाहै ॥ ११३ ॥ हे महाभाग्यवति ! इस क्षेत्रमें जितने आश्रम हैं सभी अतिशय

गंगया समाः ॥ ११४ ॥ जलानि च समस्तानि भवमुक्तिप्रदानि हि ॥ देवीपीठात्पूर्वभागे गव्यूतिद्वयमात्रके ॥ तत्रैवान्यत्परं स्थानं वेणुकायाः सुमुक्तिदम् ॥ ११५ ॥ यत्र वै नहुषस्यासौ दुहिता समतप्यत ॥ प्रापेप्सितं पतिं दिव्यं सुंदरांगं सुशोभनम् ॥ ११६ ॥ ततः ख्यातं तु तन्नाम्ना क्षेत्रमेतत्सुपुण्यदम् ॥ यत्र पादप्रचारेण लभते चेप्सितं फलम् ॥ ११७ ॥ तत्रास्ते च नदी रम्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिव एव भवेद्ध्रुवम् ॥ ११८ ॥ देव्याः पूर्वोत्तरे भागे ढुंढीश्वर इति स्मृतः ॥ महागणपतिश्चैष सर्वविघ्ननिवारणः ॥ ११९ ॥ रक्षिता तस्य क्षेत्रस्य सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥ यन्नामस्मरणादेव भवेद्विघ्नविनाशनम् ॥ १२० ॥ तस्येशानदिगंशे हि भैरवो भीषणाननः ॥ यस्य स्मरणमात्रेण पलायंते महापदः ॥ १२१ ॥ क्षेत्रद्वाराधिपतिश्च विघ्नास्तदवहेलनात् ॥ जायंते विधिनानर्थास्तस्मात्पूजा परो भवेत् ॥ १२२ ॥ आदौ क्षेत्रप्रवेशे तु दूरतः प्रणमेत्तु तम् ॥

पवित्र हैं, और वहां अनेक जो धारा हैं उन सबको गंगाजीकी सदृश जानना चाहिये ॥ ११४ ॥ जितने जल हैं वे सभी संसारकी बाधासे मुक्ति करानेवाले हैं, देवीके पीठसे पूर्वकी ओर चार कोसकी दूरीपर मुक्ति प्रदानकरनेवाला वेणुकाका उत्तम स्थानहै ॥ ११५ ॥ इसी स्थानमें नहुषकी पुत्रीने तपका आचरण कियाथा तौ उसे सुन्दर अंगोंवाले अत एव मनोहर और मनोभिलषित पतिकी प्राप्ति हुईथी ॥ ११६ ॥ पुण्यका देनेवाला यह क्षेत्र उसीके नामसे प्रसिद्ध हुआहै, इसस्थानमें पैदल विचरनेसे मनोभिलषित फलका लाभ होताहै, ॥ ११७ ॥ वहां समस्त पापोंका विनाश करनेवाली एक सुरम्य नदीहै, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य अवश्य ही शिवरूप होजाताहै ॥ ११८ ॥ देवीसे पूर्व और उत्तरकी ओर हे महाभागे ! ढुंढीश्वर नामके गणेशजी विराजमानहैं, वे सभी विघ्नोंका विनाश करते हैं ॥ ११९ ॥ और वेही इस क्षेत्रके रक्षक अथ च समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं बल्कि उनके नामका स्मरण करनेहीसे विघ्नोंका विनाश होजाताहै ॥ १२० ॥ उसके ईशान कोणकी ओर भयानक आकृतिको धारण किये हुए भैरवजी विराजमानहैं, उनकाभी स्मरणमात्र करनेसे महा आपत्तियें दूर भाग जातीहैं ॥ १२१ ॥ क्योंकि वे क्षेत्रद्वारके अधिपति हैं, उनका निरादर करनेसे विघ्न होतेहैं अत एव उनकीभी पूजा अवश्य करै ॥ १२२ ॥ सबसे प्रथम उस क्षेत्रमें दूरहीसे उन्हें प्रणाम-

पश्चात्क्षेत्रं विशेन्मर्त्यः स्वेष्टसिद्धिपरो यदि ॥ १२३ ॥ धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः पूजयेत्क्षेत्रनायकम् ॥ सकलां सिद्धिमाप्नोति तत्पूजानिरतो नरः ॥ १२४ ॥ इति पुष्करशैलस्य माहात्म्यं कथितं तव इदं गोप्यतमं गोप्यं शौचाचारविवर्जितः ॥ १२५ ॥ शृणुयादपि यो मर्त्यो माहात्म्यं हिमवद्गिरेः ॥ ख्यातं पुष्करशैलस्य सोपि याति परं पदम् ॥ १२६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे नानातीर्थमाहात्म्ये पुष्करपर्वतमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

करै, फिर इसके अनन्तर अपने इष्टकी सिद्धिको मनमें धारण करके तीर्थमें प्रवेश करै ॥ १२३ ॥ धूप दीप और नैवेद्यके द्वारा क्षेत्राधिपातिकी पूजा करै क्योंकि उनकी पूजामें निरतहुआ मनुष्य समस्त सिद्धियोंको प्राप्त होताहै ॥ १२४ ॥ इसप्रकार यह पुष्कर पर्वतका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, यह गोप्यसेभी अधिक गोपनीय है, शौच (पवित्रता) एवं अन्य आचारसे रहित होकरभी ॥ १२५ ॥ जो मनुष्य पुष्करसंज्ञक इस हिमालयके माहात्म्यका श्रवण करताहै, उसेभी परमपद (मोक्षपद) की प्राप्ति होतीहै ॥ १२६॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः ८१.

वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रह्मपुत्रतपःस्थानादाग्नेयाश्रितभागके ॥ स्थानं परमरम्यं हि शिवलोकप्रदायकम् ॥ १ ॥ सेवितं सिद्धमुनिभिर्वेदघोषनिनादितम् ॥ तत्र गोविंदतीर्थं तु यत्र भानुर्महानदी ॥ २ ॥ पिंडारकां तु संप्राप्ता तत्तीर्थं शिवदायकम् ॥ वीरे-

वसिष्ठजी बोले–ब्रह्मपुत्रके तपस्थानसे आग्नेय दिशाकी ओर शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला एक परम रम्य स्थानहै ॥ १ ॥ सिद्ध एवम् मुनिगण उसकी सेवा करते और वोह स्थान वेदके निर्घोषसे शब्दायमान रहताहै, वहांही गोविन्दतीर्थ और महानदी है ॥ २ ॥ उस स्थानमें गोपिकाओंको दर्शनोंका लाभ हुआ था, वहांही वीरेशानी नामकी देवी शीघ्रही विश्वास

शानी तथा देवी सद्यः प्रत्ययकारिका ॥ ३ ॥ यस्तत्र व्याधितो मूढो दरिद्रो देवतागृहे ॥ इमं मंत्रं समुच्चार्य्य देवीशरणमागतः॥तस्य स्यात्सकलाभीष्टसिद्धिर्निश्चयतः प्रिये ॥ ४ ॥ नमो नमस्ते देवेशि सर्वदुःखविनाशिनि॥विनाशय महादुःखं कृपया भक्तवत्सले ॥५॥ तत ईशानकोणे वै विनतेश्वरनामकः ॥ शिवो नित्यं महाभागे वर्त्तते भक्तवत्सलः ॥ ६ ॥ अस्मिन्नपि महाक्षेत्रे त्रीणि लक्षाणि रक्षसाम् ॥ स्वर्गं गतानि वामांगि दिव्यदेहानि निश्चयात् ॥ ७ ॥ इति ते कथितं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ तत एवेशदिक्कोणे क्षेत्रं त्रैलोक्यमंगलम् ॥ ८ ॥ नाम्ना विश्वमिति ख्यातं शिवलिंगं विराजितम् ॥ नानातीर्थसमायुक्तं नानामुनिजनान्वितम् ॥ ९ ॥ तत्र विश्वेश्वरो देवो लिंगरूपी सदाशिवः ॥ तद्दर्शनान्महाभागे कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ १० ॥ तत्रैव शिवकुंडं तु शिवभक्तिप्रदायकम् ॥ दिनानां पंचकं तत्र स्नात्वा शिवपरायणः ॥ ११ ॥ कौतुकं पश्यते तत्र दिव्यं वापि

करानेवाली है ॥ ३ ॥ वहां देवताके घरमें जो व्याधित मूर्ख या दारिद्र इस मन्त्रका उच्चारण करके देवीकी शरणमें आताहै हे प्रिये ! उसकी अवश्यमेव सब मनोरथसिद्धि होजातीहै ॥ ४॥ हे देवेश्वरि ! तुम समस्त दुःखोंका विनाश करनेवाली हो, हम तुम्हैं वारंवार नमस्कार करते हैं, सो हे भक्तानुग्रहकारिणि ! कृपाकरके हमारे दुःखोंका विनाश करो ॥ ५ ॥ हे महाभागे ! वहांसे ईशान कोणकी ओर भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले विनतेश्वरनाम महादेवजी विराजमान हैं ॥ ६ ॥ हे शोभनांगि ! इस महाक्षेत्रमेंभी तीन लक्ष ब्रह्मराक्षस दिव्य देह धारण करके स्वर्गको प्राप्त हुएथे ॥ ७ ॥ इस प्रकार शीघ्र विश्वास करानेवाले क्षेत्रका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया । उस स्थानसे ईशानकोणकी ओर त्रिलोकीका मंगल करनेवाला क्षेत्रहै, वोह विश्वनामसे विख्यातहै और उसमें भी एक शिवलिंग विराजमान है, उसस्थानमें अनेक तीर्थ और असंख्य मुनिजन विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ वहां सदाशिव महादेवजी लिंगरूप धारणकर विश्वेश्वर नामसे विराजमान रहतेहैं, हे महाभागे ! उनके दर्शन करनेसे करोडों यज्ञ करनेके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ १० ॥ वहां एक शिवकुंड है जो महादेवजीके भक्तिको प्रदान करताहै, जो व्यक्ति शिवभक्तिपरायण हो पांच दिनपर्यन्त उसमें स्नान करताहै ॥ ११ ॥ वोह दिव्य और अद्भुत कौतुकका अवलोकन करताहै, और अन्तमें उसे निःस-

सुदुर्लभम् ॥ शिवलोकं समाप्नोति सत्यमेव न संशयः ॥ १२॥ गणकुंडं ततः ख्यातं सौम्ये सौम्येश्वरः शिवः ॥ पुत्रकामफलनिधिः सर्वकामफलप्रदः ॥ १३ ॥ रम्भाकुंडं ततः ख्यातं सर्वैश्वर्य्यप्रदायकम् ॥ यत्र रंभा महादेवमाराधितवती पुरा ॥ १४ ॥ अस्मिन् द्वादश लक्षाणि मुक्तिं प्राप्तानि रक्षसाम् ॥ अन्यतीर्थं शृणु प्राज्ञे दशमौलितपःस्थलम् ॥ १५ ॥ दशमौलिः पुरा तत्र तपस्तेपे महात्मवान् ॥ दशवर्षसहस्राणि त्यक्ताहारविहारकः ॥ ॥ १६ ॥ परिपूर्त्तिर्यदा याति शिरो वर्षसहस्रकम् ॥ छित्वार्प्पयति भक्त्या वै शिवायामिततेजसे ॥ १७ ॥ एवं नव सहस्राणि वर्षाणां प्रवरानने ॥ व्यतीयुर्धर्मशीलस्य शिवसंन्यस्तकर्मणः ॥ १८ ॥ ततो दशमसाहस्रे शिरोर्प्पयति रावणे ॥ शिवः प्रत्यक्षतस्तस्य जगाद मधुरं वचः ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते धन्यस्त्वमसि रावण ॥ यतस्त्वया महाभाग मौलिनां दशकं प्रियम् ॥ २० ॥ अर्प्पितं च तपस्तप्तं तीव्रं त्रैलोक्यतापनम्

देह शिवलोककी प्राप्ति होतीहै ॥१२॥ हे सौम्ये ! वहां एक गणकुण्ड है, और उसी स्थानमें सौम्येश्वर महादेवजी हैं, उनकी आराधना करनेसे न केवल पुत्रप्राप्तिका मनोरथ, किन्तु अन्य सब कामनाओंकीभी सिद्धि होतीहै ॥ १३ ॥ वहां एक रम्भाकुण्ड है जो सब ऐश्वर्योंका देनेवाला है, इसी स्थानमें प्रथम रंभाने शिवका आराधन कियाथा ॥ १४ ॥ बारहलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको इसस्थानमें मुक्तिका लाभ हुआथा, हे बुद्धिमति ! रावणके तप करनेके स्थान अब दूसरे क्षेत्रको सुनो ॥ १५ ॥ दशवदन रावणने प्रथम वहां दश सहस्र वर्षपर्यन्त भोजन और क्रीडाका परित्याग करके तपका आचरण कियाथा ॥ १६ ॥ जब सहस्रवर्षकी पूर्ति हुई तब उसने अपने शिरका छेदन करके अमित तेजस्वी महादेवजीको चढाये ॥१७॥ इसप्रकार हे सुमुखि ! उस धर्मचारीको महादेवमें मन लगाकर तप करते २ नौ सहस्र वर्ष व्यतीत होगये ॥१८॥ जब रावण दसवें सहस्रमें शिरका अर्पण करने लगा, तब महादेवजी प्रत्यक्ष प्रादुर्भूत होकर ये मधुरवचन बोले ॥ १९ ॥ अयि रावण ! तुम धन्यहो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम वरकी याचना करो, क्योंकि हे महाभाग ! तुमने अपने प्रिय दशों मस्तक ॥ २० ॥ हमैं चढाये और त्रिलोकीको सन्तप्त करनेवाला तप किया, अतएव तुम्हारी समान त्रिलोकीमें

त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये देवो वा मानुषोपि वा ॥ २१ ॥ रावण उवाच ॥ धन्योऽस्मि देवदेवेश कृपया ते महेश्वर ॥ अद्य मे सफलं जन्म सफलं मे तपः परम् ॥ २२ ॥ भक्तानुकंपी भगवान्यन्मे प्रत्यक्षमागतः ॥ वरत्रयमहं याचे वरार्हो यद्यहं शिव ॥ ॥ २३ ॥ इदं स्थानं परं पुण्यं न त्याज्यं भवता शिव ॥ धन्यो भवतु लोकेषु य इदं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २४ ॥ सेविष्यति च विश्वात्मा स्वोहितं प्राप्नुयात्परम् ॥ अजेयत्वं तथा सर्वैः सदेवासुरयक्षकैः ॥ २५ ॥ अन्यैश्च प्राणिभिर्देव विना मनुजवानरैः ॥ सर्वज्ञत्वं च विद्यानामेतत्त्रयमुमापते ॥ २६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवांतर्दधे ततः ॥ सोपि रावणको नाम दशमौलिः प्रतापवान् ॥ २७ ॥ ययौ पुरवरे स्वीये प्रसन्नोऽसुर संवृतः ॥ इदं क्षेत्रं ततो जातं महादेवाश्रितं प्रिये ॥ २८ ॥

क्या देवता और क्या मनुष्य कोईभी नहीं है ॥२१॥ रावणने कहा—हे देवाधिदेव महादेव ! आपकी कृपासे मैं धन्यहूं, आज मेरा परम तप और जीवन ये दोनोंही सफल होगयेहैं॥२२॥ क्यौंकि—अपने भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् आप भगवान् मेरे सौंही उपस्थित हैं, भो कल्याणमूर्त्ते ! यदि मैं वरप्राप्तिके योग्य हूं तौ तीन वर याचना करनेकी मेरी इच्छा है ॥ २३ ॥ हे कल्याणमूर्त्ति शिव ! एक तौ इस परम पवित्र स्थानका आप कभी परित्याग न करैं, और यह उत्तम क्षेत्र त्रिलोकीमें धन्य समझा जाय ॥ २४ ॥ और जो पुरुष इस स्थानकी सेवा करै उसे परमात्माकी प्राप्ति हो, एवम् देवता असुर और यक्ष इनमेंसे कोईभी मेरा विजय न करसकै ॥ २५ ॥ किन्तु—मनुष्य[1] तथा बानरोंको छोड अन्य कोईभी प्राणी मेरा विजय करनेमें समर्थ न हो, अथ च मुझे विद्याओंके सर्वज्ञत्वका लाभहो, हे उमापति । मैं इन्ही तीन वरोंको चाहताहूं ॥ २६ ॥ वसिष्ठजी बोले—महादेवजी तथास्तु कहकर वहांही अन्तर्ध्यान होगये, और दशशिरधारी प्रतापवान् वोह रावणभी ॥ २७ ॥ प्रसन्न होताहुआ, राक्षसगणसे आवृत हो अपने उत्तम नगरमें चलागया, हे प्रिये ! तभीसे महादेवजीने

---

१ मनुष्य और वानर ये दोनों रावणके भोजन थे अत एव इन्हें तुच्छ जान इनके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंहीके अजेयत्वकी याचना करी ।

नंदा देवी परं गोप्या तत्रैवास्ति सुरार्चिता॥ सर्वकामप्रदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥ २९ ॥ सौदामिनीदक्षतीरे सुकामेश्वरसंज्ञकः॥ शिवस्तद्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३० ॥ नंदाया उत्तरे शैले गणेशो देवपूजितः ॥ त्रिरात्रं यः परं मंत्रं गणेशस्य जपेन्नरः ॥ ३१ ॥ परं धाम समाप्नोति न विघ्नं जायते क्वचित्॥ नंदगंगासुमाहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो नरः ॥३२॥ परं यथामति परमुच्यते ह्यवधारय ॥ दर्शनात्सर्वपापानि नश्यंते नात्र संशयः ॥ ३३॥ स्नानात्सर्वमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः ॥ दुरुक्तं च तथा देवि दुर्भुक्तं जलपानतः ॥ नश्यते क्षिप्रमेवेह परत्र च परा गतिः ॥ ३४ ॥ पितॄन्संतर्प्पयेद्यस्तु पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥ अपात्रायापि यद्दत्तं जलेनास्याः समन्वितम्॥ अक्षयं तद्भवेद्देवि सत्यमेव न संशयः ॥ ३५ ॥ इत्युद्देशेन संप्रोक्तं माहात्म्यं तव सुंदरि ॥ दशमौलितपःक्षेत्रवैभवं तव की-

इस क्षेत्रका आश्रय लियाहै ॥ २८ ॥ वहांही देवताओंके द्वारा पूजित, किन्तु परम गोपनीय नन्दानामकी देवी विराजमान रहतीहै, वोह देवी समस्तकामनाओंको पूर्ण करने वाली और सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है ॥ २९ ॥ सौदामिनीके दक्षिण तीर पर सुकामेश्वरनाम एक महादेवजी विराजमान हैं, उनके दर्शन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ३० ॥ नन्दाके उत्तरीय पर्वतके ऊपर देवताओंके द्वारा पूजित गणेशजीहैं, जो मनुष्य उन गणेशजीके निकट मन्त्रको तीन रात्रिपर्यन्त जपताहै ॥ ३१ ॥ उसे इसलोकमें तौ कभी कहीं विघ्न नहीं होते और परलोकमें ज्योतिःस्वरूपकी प्राप्ति होतीहै, सुतराम्, नन्दगंगाके माहात्म्यका वर्णन करनेके लिये कौन मनुष्य समर्थ होसक्ताहै ॥ ३२ ॥ तथापि अपनी बुद्धिके अनुसार हम वर्णन करतेहैं तुम उसका श्रवण करो । उसका दर्शन करनेसे निःसन्देह पापोंका विनाश होजाताहै ॥ ३३ ॥ स्नान करनेसे मनुष्यकी जो कुछभी अभिलाषा होतीहै वोह सभी परिपूर्ण होजातीहैं, हे देवि ! नन्दगंगाका जल पानकरनेसे दुर्वचन कहने और दूषित भोजनसे उत्पन्न हुआ पाप नष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥ जो व्यक्ति वहां पितरोंके निमित्त तर्पण करताहै उसके पितरोंको मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै, नन्दगंगाके जलसे मिश्रित हुई जो वस्तु अपात्र (अयोग्य पुरुष) कोभी दी जाय, वोहभी हे देवि ! निःसन्देह अक्षय [पुण्यदेनेवाली] हो जातीहै ॥३५॥ उद्देशके वशसे हे देवि ! यह माहात्म्य हमने तुम्हारे

र्त्तितम् ॥ ३६ ॥ अस्मिन्नेव परे स्थाने संख्यया नवलक्षकाः ॥ प्रभावाद्देवदेवस्य निर्मुक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३७ ॥ तथा च नवलक्षं तु रथप्रायामरुंधति ॥ बहूनि तत्र तीर्थानि स्वर्गमोक्षप्रदानि च ॥ ३८ ॥ तथा कपिलकं तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ कपिलेश्वरो महेशोत्र सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३९ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता स्मृतिमात्रतः ॥ तथा योगेश्वरं लिंगं महापातकनाशनम् ॥ ४० ॥ तत्तीर्थं परमं ख्यातं सर्वत्र भुवि दुर्लभम् ॥ नियुतानां त्रयं तत्र निर्मुक्तं ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ४१ ॥ तथा वागीश्वरं लिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ सरस्वत्या पुरा यत्राराधितो भगवाञ्छिवः ॥ ४२ ॥ अनंतान्यत्र तीर्थानि सर्वकामप्रदानि च ॥ चतुर्लक्षं तत्र मुक्तं यत्र योगिगणो बहुः ॥ ४३ ॥ अन्यद्ब्रह्मसरो नाम तीर्थं सर्वत्र दुर्लभम् ॥ तत्र ब्रह्मेश्वरो नाम शिवोऽस्ति परपुण्यदः ॥ ४४ ॥ तद्दर्शनान्नरो याति शिवतां योगिदुर्लभाम् ॥ तत्र वै पंच लक्षाणि निर्मुक्तानि तु रक्षसाम् ॥४५॥

प्रति वर्णन कियाहै, हमने दशकन्धरके तपःस्थानका माहात्म्य तुम्हें सुनाया ॥ ३६ ॥ इसी स्थानमें देवाधिदेव महादेवके प्रभावसे नौलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको सद्गतिका लाभ हुआथा ॥ ३७ ॥ हे अरुन्धती ! नौलक्ष रथप्रामें मुक्त हुएथे, क्योंकि—स्वर्ग और मुक्ति देनेवाले वहां अनेक तीर्थहैं ॥ ३८ ॥ तथा कपिलतीर्थ सभी तीर्थोंमें उत्तम है, इस स्थानमें सब देवताओंके द्वारा पूजित कपिलेश्वर महादेव विद्यमान हैं ॥ ३९ ॥ उनका केवल स्मरण करनेहीसे धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होजातीहै इसी प्रकार योगेश्वरलिंगभी महापातकोंका नाश करनेवाला है ॥ ४० ॥ और वोह स्थान पृथ्वीके ऊपर बडा दुर्लभ किन्तु अतिशय प्रसिद्ध है और इसी स्थानमें दशलक्ष ब्रह्मराक्षसोंनें मुक्ति ग्रहण करीथी तथा शीघ्रही विश्वास करानेवाला वागीश्वर लिंगहै, उसी स्थानमें सरस्वतीने भगवान महादेवजीकी आराधना करीथी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ यहां समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अनगिन्त तीर्थ हैं, और बहुतसे योगि गण वहां उपस्थित हैं वहांभी चार लक्ष ब्रह्मराक्षस मुक्त हुएथे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मसरनाम एक और तीर्थ है जो सर्वत्रही दुर्लभहै, वहां परम पुण्यको देनेवाले महादेवजीका ब्रह्मेश्वर लिंगहै ॥ ४४ ॥ उक्त लिंगके दर्शन करनेवाले मनुष्यको ऐसे शिवत्वका लाभ होताहै जिसकी प्राप्ति योगियोंकोभी दुर्लभ है, वहां पांच लक्ष ब्रह्मराक्षस

अन्यच्च तव वक्ष्येहं तीर्थं परमदुर्लभम् ॥ यत्र कर्णः पुरा तन्वि तपस्तेपे यतात्मवान् ॥ ४६ ॥ तत्रासंत्रीणि लक्षाणि मुक्तानि ब्रह्मरक्षसाम् ॥ क्षेत्रं तच्छृणु कैलासे निकटे नंदपर्वतात् ॥ ४७ ॥ गंगापिंडारकासंगे शिवक्षेत्रे सुरालये ॥ कर्णो नाम महाराजो महादीक्षां समाश्रितः ॥ ४८ ॥ तप्त्वा जप्त्वा परं देवं देवीभवनमाश्रितः ॥ अहं च वामदेवश्च व्यासदेवस्तथा शुकः ॥ ४९ ॥ पैलो वैशंपायनश्च नारदस्तुंबुरुर्भृगुः ॥ अश्वत्थामा सुदेवश्च रंतिदेवो महाहनुः ॥ ५० ॥ कश्यपश्च तथानंदो गालवो दलभक्षकः ॥ पर्णाशनो महानादः कुंभधान्यस्तपोनिधिः ॥ ५१ ॥ शुनःशेफो भरद्वाजो गौतमो गणरात्रिपः ॥ एते चान्ये च बहवो मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ ५२ ॥ कर्णयज्ञे समायाताः शतशो वरवर्णिनि ॥ सूर्यमाराधयामास यज्वा यज्ञे स भूमिपः ॥ ५३ ॥ ततः कतिपयाहैस्तु वरं प्रादान्महात्मने ॥ कवचं च तथाभेद्यं तूणीरं च तथाक्षयम् ॥ ५४ ॥ अजेयत्वं महावीरैः क्षेत्रनाम तथा ददौ ॥ कर्णप्रयागनाम्ना वै क्षेत्रं तदवधि स्मृतम् ॥ ५५ ॥

मुक्त हुएथे ॥ ४५ ॥ औरभी हम तुम्हारे प्रति परम दुर्लभ तीर्थका वर्णन करतेहैं जहां कि, संयम धारण पूर्वक कर्णने तपका आचरण किया था ॥ ४६ ॥ उस स्थानमें तीनलक्ष ब्रह्मराक्षसोंकी मुक्ति हुईथी, कैलास पर्वतके ऊपर नन्दपर्वतके निकट एक क्षेत्र है ॥ ४७ ॥ गंगापिण्डारकके संगममें देवमन्दिर शिवक्षेत्रमें राजा कर्णने महादीक्षाका आश्रय लेकर ॥ ॥ ४८ ॥ परमदेवके निमित्त जप और तप करके देवीके मन्दिरका आश्रय लिया, उस समय में, वामदेव, व्यासजी, शुकदेवजी ॥ ४९ ॥ पैल, वैशम्पायन, नारद, तुम्बुरु, भृगु, अश्वत्थामा, सुदेव, रन्तिदेव ॥ ५० ॥ कश्यप, नन्द, गालव, उद्दालक, पर्णाशन, महानाद, तपोनिधि कुंभधान्य ॥ ५१ ॥ शुनःशेफ, भरद्वाज, गौतम, गणरात्रिप ये सब तथा अन्यान्यभी बहुतसे ब्रह्मवादी ऋषिगण ॥ ५२ ॥ कर्णके यज्ञमें उपस्थित हुए, हे सुमुखि ! उस यज्ञानुष्ठान कर्त्ताने यज्ञके द्वारा सूर्यकी आराधना करी ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर कुछ दिनोंके पीछे सूर्यने उस महात्माको वरप्रदान किया, अभेद्य कवच तथा अक्षय तूणीर (तर्कश) ॥ ५४ ॥ और उसे अजेयत्व प्रदान किया, उसी दिनसे उस क्षेत्रका कर्णक्षेत्र नाम हुआ ॥ ५५ ॥

प्रशशंसुस्तथा सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ स्थितिमत्र तथा चक्रुः स्वस्य स्वस्य वरानने ॥ ५६ ॥ तत्तन्नामभिरत्रापि कुंडान्यासन्महांति च ॥ तत्र तत्र नरः स्नात्वा सूर्य्यलोके महीयते ॥ ५७ ॥ सूर्यकुंडं च तत्रास्ति चतुर्वर्गफलप्रदम् उमानाम्नी तथा देवी तत्रैवास्ति महेश्वरी ॥ ५८ ॥ बलिदानादिभिर्यो वै पूजयेत्तां सुरार्चिताम्॥प्रयच्छति वरान्कामानन्ते स्वपुरवासिताम् ॥ ५९ ॥ उमेश्वरो महादेवः सर्वयज्ञफलप्रदः ॥ वैनायकी शिला तत्र रक्तवर्णा विचित्रिता ॥ ६० ॥ तां स्पृष्ट्वा च परिक्रम्य विघ्नानां नाशनं भवेत् ॥ इति पुण्यतमं स्थानं सर्वकामदमुत्तमम् ॥ ६१ ॥ अत्र यो मृतिमाप्नोति कल्पैश्शिवपुरे वसेत् ॥६२॥ कर्णप्रयागे यो मर्त्यो माषमात्रं सुवर्णकम्॥विप्राय वेदविदुषे ददाति स्वर्गभाग्भवेत् ॥ ६३ ॥ ततः शृणु परं क्षेत्रं पांडवीयं महार्त्तिहृत् ॥ पांडवा यत्र दुःखस्य नाशाय वरवर्णिनि ॥ शिवमाराधयामासुर्भक्तिमंतो महाव्रताः ॥ ६४ ॥

समस्त ब्रह्मवादी मुनियोंने उस क्षेत्रकी प्रशंसा की, और हे महासुन्दरि ! सबने अपनी २ स्थिति वहां की ॥५६॥ उन २ के नामोंसे भी वहां अनेक बडे २ कुंड हैं, उन २ कुंडोंमें स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें विराजताहै ॥ ५७ ॥ वहां सूर्य्यकुंड जो है वोह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थोंका देनेवालाहै, और वहां उमानामकी बडी देवी है ॥ ५८ ॥ देवताओंके द्वारा पूजन कीहुई उस देवीको जो व्यक्ति बलिदान आदिके द्वारा पूजताहै, उसके मनोरथोंको देवी पूर्ण करतीहै और अन्तसमय अपने लोकमें निवास देतीहै ॥ ५९ ॥ उमेश्वर महादेवजी सब यज्ञोंके फल प्रदान करनेवाले हैं, वहां लालवर्णसे चित्रित वैनायकी एक शिला है ॥ ६० ॥ उसकी परिक्रमा और स्पर्श करनेसे विघ्नोंका नाश होजाताहै, अतएव यह अतिशय पवित्र स्थान अत्यन्त उत्तम और समस्त कामनाओंका परिपूर्ण करनेवालाहै ॥ ६१ ॥ यहां जिस प्राणीको मृत्युका लाभ होताहै वोह अनेक कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करताहै ॥ ६२ ॥ एवं च जो मनुष्य कर्णप्रयागमें एक मासाभर भी सुवर्ण दान वेदज्ञ ब्राह्मणको देताहै उसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर पाण्डवीय महाक्षेत्रका श्रवण करो । यह क्षेत्र अत्यन्त दुःखोंका हरनेवालाहै, हे सुमुखि ! उसी स्थानमें महाव्रतका आचरण करनेवाले एवं भक्तिभावसंपन्न पाण्डवोंने अपने दुःखकी निवृत्तिके लिये कल्याणमूर्त्ति महादेवजीका

धूपदीपैश्च नैवेद्यैस्तपोभिः स्तोत्रपाठकैः ॥ संतुष्टश्च शिवः प्रादा-
दुःखहंत्रीं महाबलाम् ॥ ६५ ॥ इदं च क्षेत्रकं पुण्यं महापुण्यतमं
मतम् ॥ लक्षगोदानफलदो महेशः पांडवेश्वरः ॥ ६६ ॥ तत्र
धनंजयो नाम नागः परमसुन्दरः ॥ स्वर्णवर्णो रत्नयुक्तो नित्यं
वसति सर्प्पपः ॥ ६७ ॥ तत्र रत्नभवं लिंगं स्वर्णयोनिसुवे-
ष्टितम् ॥ तस्य वै दक्षिणे पार्श्वे गुह्यस्थानं वदामि ते ॥ ६८ ॥
न वदेद्यस्य कस्यापि वेदनिंदारताय च ॥ पंचविंशतिमानेन
दयिते करसम्मिते ॥ ६९ ॥ रत्नानां निकरस्तत्र महाभाग्य-
वतागमः ॥ लक्षमेकं तत्र गतं स्वर्गं वै ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ७० ॥
अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि तीर्थं सर्वसुदुर्ल्लभम् ॥ मेनकाक्षेत्रमाख्या-
तं शिवो नित्यं समाश्रितः ॥ ७१ ॥ पुरा मेनकया यत्र पूजितो
भक्तितः प्रिये ॥ ददौ तस्यै महादेवो रूपैश्वर्य्यं महत्तरम् ॥
॥ ७२ ॥ मेनकेश्वरनामा च स्थितस्तत्र स्वयं प्रभुः ॥ हरिणी

आराधन कियाथा ॥ ६४ ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, तप और स्तोत्रोंके पाठसे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने दुःखोंका विनाश करनेवाली महाबला विद्याका दान कियाथा ॥ ६५ ॥ यह स्वच्छ क्षेत्र अत्यन्तही पवित्रहै, यहां पाण्डवेश्वर नामके महादेवजी लक्ष गोदान करनेका फल प्रदान करतेहैं ॥ ६६ ॥ उसी स्थानमें धनंजयनाम परम सुन्दर एक नागहै, सुवर्णकी समान उसका वर्णहै वोह रत्नोंसे युक्त होकर सर्पराज नित्यही वहां निवास करताहै ॥ ६७ ॥ वहां सुवर्णकी योनीसे परिवेष्टित रत्नोद्भव लिंगहै, उसीके दक्षिणपार्श्वमें एक गुह्यस्थान है अब हम तुम्हारे प्रति उसीका वर्णन करतेहैं ॥ ६८ ॥ सर्वसाधारण एवम् वेदनिन्दकके प्रति उसका वर्णन करना कर्त्तव्य नहीं है । हे प्रिये । पचीस हाथ प्रमाणके स्थानमें ॥ ६९ ॥ रत्नोंके समुदाय विद्यमान हैं, उस स्थानमें सौभाग्यशालियोंहीका आगमन होताहै, एक लक्ष ब्रह्मराक्षस उस स्थानमें स्वर्गगामी हुएथे ॥ ७० ॥ अब अन्य ऐसे तीर्थका वर्णन करतेहैं जो सबके लिये दुर्लभ है, उसका मेनकाक्षेत्र नाम है, उक्त क्षेत्रमें महादेवजी नित्यही विराजमान रहतेहैं ॥ ७१ ॥ हे प्रिये ! उस स्थानमें मेनकाने भक्तिभावपूर्वक महादेवजीकी आराधना कीथी, तब शिवजीने उसे अधिक रूपका ऐश्वर्य प्रदान कियाथा ॥ ७२ ॥ स्वयं सर्वशक्तिमान् महादेवजी मेनकेश्वर नामसे वहां उपस्थित रहतेहैं, उसी स्थानमें समस्त पापोंका विनाश करने-

च नदी ख्याता सर्वपापविमोचनी ॥ ७३ ॥ अन्यच्च शिवलिंगं तु पुलहेश्वरनामकम् ॥ दृष्ट्वा च तं महाघोराद्दुःखान्मुच्येत तत्क्षणात् ॥ ७४ ॥ तत्र ब्रह्मशिला पुण्या दर्शनात्पापनाशिनी ॥ तत्र लक्षं तथा देवि निर्मुक्तं ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ७५ ॥ अथान्यदपि कैलासे प्रवक्ष्यामि समासतः ॥ मणिभद्रपुरं दिव्यं सेवितं यक्षकिन्नरैः ॥ ७६ ॥ तत्र यक्षेश्वरो देवो वर्त्तते भक्तवत्सलः ॥ यक्षकुंडं च तत्रापि शिवलोकप्रदायकम् ॥ ७७ ॥ तत्र दिव्या मणिमती नदी परमपुण्यदा ॥ भौमेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥७८॥ तत्र यो वै त्रिरात्रं तु निराहारो जितेन्द्रियः ॥ संस्थितः स हि रंभोरु यक्षं पश्यति तत्र हि ॥७९॥ यद्यद्याचयते सोऽत्र तत्तत्प्राप्नोति निश्चितम् ॥ तत्र दिव्यसरो नाम नानाकुमुदमंडितम् ॥ तत्र देवेश्वरो नाम महादेवोस्त्यरुंधति ॥ ८० ॥ तत्र कुञ्जलिका वृक्षो वर्त्तते पुष्पमंडितः ॥ एतच्चिह्नं समालक्ष्य ज्ञेयं तत्क्षेत्रमु-

वाली हरिणी नामकी एक नदी है ॥ ७३ ॥ औरभी एक शिवलिंग है उसका पुलहेश्वर नामहै, उस लिंगका दर्शन करके मनुष्य तत्क्षणही घोर दुःखसे मुक्त होजाताहै ॥ ७४ ॥ वहां पवित्र एक ब्रह्मशिला है, उसका अवलोकन करनेसे पापोंका सत्यानाश होजाताहै वहांभी एक लक्ष ब्रह्मराक्षसोंने मुक्तिका लाभ कियाथा ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अब हम उन क्षेत्रोंका संक्षेपसे वर्णन करतेहैं जो कैलासके ऊपर उक्त क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्य विद्यमान हैं । वहां एक मणिभद्रपुर है, यक्ष और किन्नर उसकी सेवा करतेहैं ॥ ७६ ॥ वहां भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले यक्षेश्वर नाम महादेवजी विराजमान हैं, वहांही एक यक्षकुण्डहै वोहभी शिवलोककी प्राप्ति करताहै ॥ ७७ ॥ वहां मणिमतीनाम परम दिव्य और पुण्यप्रदान करनेवाली नदी है, और भौमेश्वर नाम महादेवजी उस स्थानमें सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं ॥ ७८ ॥ हे रंभोरु ! जो मनुष्य निराहार और जितेन्द्रिय हो तीन रात्रिपर्यन्त वहां स्थिति करताहै, उसे यक्षोंका दर्शन प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ वोह मनुष्य उस यक्षसे जिस २ वस्तुकी याचना करताहै, निश्चय उसे उसीकी प्राप्ति होती है, अनेक कुमुदोंसे समलंकृत वहां एक दिव्य सरोवर है, हे अरुन्धति ! वहां देवेश्वर नाम महादेवजी विद्यमान हैं ॥ ८० ॥ उसी स्थानमें पुष्पोंसे समलंकृत एक कंजलिका वृक्ष विद्यमान है, इसीक्षेत्रको

त्तमम् ॥ ८१ ॥ स्वर्णाकारं तत्र वामे तत्र स्वर्णेश्वरः शिवः ॥ तमाराध्य महादेवं लभते तन्न संशयः ॥ ८२ ॥ लक्षाणि त्रीणि चाप्यत्र निर्मुक्तानि कुयोनितः ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षेत्रराजं वरानने ॥८३॥ इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ यत्रेन्द्रः कालरूपेण भैरवेण वरानने ॥ ८४ ॥ स्तंभितः सहसा क्रोधान्महादेवात्मना विभुः ॥ गतमानो महेंद्रस्तु तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ ८५ ॥ प्रसन्नश्च ददौ मुक्तिं महेंद्राय शुभानने ॥ तस्मात्तत्र च विख्यात इंद्रेशश्च सदाशिवः ॥ ८६ ॥ निर्मितं च सदा तत्र सरः परमसुंदरम् ॥ महत्पुण्यतमं जातं महादेवेन भाषितम् ॥ ८७ ॥ तत्र ये स्नानकर्त्तार इंद्रलोकं सदाप्नुयुः ॥ त एव धन्याः पुरुषा येत्र तीर्थे समागताः ॥ ८८ ॥ तेषां च दर्शनात्सद्यः पूतात्मा जायते नरः ॥ तत्र कालेश्वरो भर्गश्चंद्रार्द्धकृतशेखरः ॥८९॥ त्रिशूली च कराली च धन्यदर्शनदायकः ॥ तत्रापि त्रीणि लक्षाणि निर्मुक्तानि

देवके उस उत्तमक्षेत्रको समझलेना चाहिये ॥ ८१ ॥ उसके वामभागमें सुवर्ण केसे वर्णका स्थान और स्वर्णेश्वर महादेवजी विद्यमान हैं, उनकी आराधना करनेसे निःसन्देह उक्त महादेवजीकी प्राप्ति होतीहै ॥ ८२ ॥ तीन लक्ष ब्रह्मराक्षसोंको यहां कुत्सित योनिसे मुक्तिका लाभ हुआथा। हे सुमुखि ! इसके अनन्तर औरभी एक उत्तम क्षेत्रका वर्णन करतेहैं ॥ ८३ ॥ इसका इन्द्रतीर्थ नामहै और वोह सभी स्थानोंमें अतिशय उत्तमहै, हे वरानने ! उसी स्थानमें कालरूप भैरवने इन्द्रको ॥ ८४ ॥ क्रोधकरके अवरोध करलियाथा, तब तौ सुरराज इन्द्रने मानका परित्याग करके वृषभध्वज महादेवजीको सन्तुष्ट कियाथा॥ ८५ ॥ और हे शुभानने ! प्रसन्न होकर महादेवजीने इन्द्रको मुक्तिदान कियाथा अतएव वहां इन्द्रेशनामसे सदाशिव विराजमान रहतेहैं ॥ ८६ ॥ और उसी स्थानमें एक परम सुन्दर सरोवर निर्माण कियागयाहै महादेवजीने उसे अत्यन्त पवित्र कहकर कीर्तन कियाहै ॥ ८७ ॥ जो व्यक्ति उससरोवरमें स्नान करतेहैं उन्हें इन्द्रलोकका लाभ होताहै, और उन्ही पुरुषोंको धन्य है जो इसस्थानकी यात्रा करते हैं ॥ ८८ ॥ उन यात्रियोंके भी दर्शन करनेसे मनुष्योंकी आत्मा पवित्र होजातीहै, वहां चन्द्रार्धचूडामणि महादेवजी कालेश्वर नामसे समुपस्थित हैं ॥ ८९ ॥ त्रिशूल और कपाल धारणकर शिवजी यहां विद्यमान रहतेहैं, जिनके अहो भाग्यहै उन्हींको उनका दर्शन होताहै, इस स्थानमेंभी

कुयोनितः ॥ ९० ॥ अथाऽन्यदपि भीमस्य तथा हनुमतः स्थलम् ॥ यत्र भीमः पुरा पांडुसुतो वायुसमुद्भवः ॥९१॥ संगतो वै हनुमता तत्क्षेत्रं परमं मतम् ॥ तत्र भीमाशिला नाम स्पर्शनात्पापनाशिनी ॥ ९२ ॥ समीपं च ततो देवि शिला हनुमतः स्थिता ॥ योजनत्रयविस्तीर्णा महाभाग्येन दृश्यते ॥ ९३ ॥ माहात्म्यं तच्छिलायास्तु को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ तस्या वै स्पर्शमात्रेण धातवः स्वर्णतां प्रिये ॥ गच्छंति किं पुनर्देवि दुर्लभं भुवि मानवैः ॥ ९४ ॥ तदधः पंचदंडेन रंध्रं परमदुर्लभम् ॥ तत्राधः क्रोशखण्डार्द्धे बिल्ववृक्षोऽतिसुन्दरः ॥ ९५ ॥ फलानि तस्य दिव्यानि दुर्लभानि दुरात्मनाम् ॥ गन्धाघ्राणेन दिव्यं स्याज्ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥ ९६ ॥ भक्ष्यते च फलं किंचिदजरामरतां लभेत्॥तस्य मूलेन सर्वेपि धातवः स्वर्णतां प्रिये॥९७॥ गच्छेयुर्नैव संदेहो द्विलक्षं ब्रह्मराक्षसाः ॥ तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ययुः परमिकां गतिम् ॥ ९८ ॥ अन्यच्चापि प्रवक्ष्यामि

तीन लक्षकी कुत्सित योनी मुक्त हुईथी ॥ ९० ॥ तदनन्तर भीम और हनुमान्जीका स्थानहै उसी स्थानमें पाण्डुनन्दन भीमने एवम् पवनकुमार महावीरजीने ॥ ९१॥ परस्पर संगति करी थी, उस स्थानको परमोत्तम मानागयाहै, वहां एक भीमशिला है जो केवल स्पर्श करनेसे पापोंका विनाश करती है ॥ ९२ ॥ हे देवि ! उसके समीपही हनुमान्जीकी शिला स्थितहै, उसका विस्तार तीन योजनका है, बडे भाग्य होनेहीसे उसके दर्शनका लाभ होताहै ॥ ९३ ॥ उस शिलाके माहात्म्यका वर्णन करनेको कौन व्यक्ति समर्थ हो सक्ता है ? हे प्रिये ! उसका स्पर्श मात्र करनेसे सब धातुएं सुवर्ण होजाती हैं, हे देवि ! भूमिके ऊपर उसकी प्राप्ति मनुष्योंके लिये दुर्लभहै ॥ ९४ ॥ उससे नीचे पांचदण्डकी दूरीपर परम दुर्लभ आध कोसके भागमें अत्यन्त सुन्दर बिल्ववृक्ष है ॥ ९५ ॥ उसके दिव्य फलोंकी प्राप्ति दुष्ट पुरुषोंके लिये दुर्लभहै, उन फलोंके दिव्य गन्धका आघ्राण करनेहीसे परम दुर्लभ दिव्य ज्ञानका लाभ होताहै ॥ ९६ ॥ उक्त फलका किंचिन्मात्र भक्षण करलेनेसेभी अजरत्व और अमरत्वका लाभ होताहै, एवं च हे प्रिये ! उसके मूलका स्पर्श करनेसे समस्त धातुएँ सुवर्णत्वको ॥ ९७ ॥ प्राप्त होतीहैं, उक्त क्षेत्रके माहात्म्यवशात निःसन्देह दोलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको मुक्तिकी प्राप्ति हुईथी ॥ ९८ ॥ हे प्रिये ! अब अन्य परम पवित्र क्षेत्रका

क्षेत्रं पुण्यतमं प्रिये ॥ भीमतीर्थं समाख्यातं यत्र भीमो महाबलः
॥ ९९ ॥ तपश्चक्रे महादेवं संस्मरन् मनसा सुधीः ॥ तत्र
भीमेश्वरो नाम महादेवः शुभानने ॥ १०० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो
देवि देवदेवः सनातनः ॥ तद्दर्शनात्पुरा लक्षसंख्यका ब्रह्मराक्ष-
साः ॥ १०१ ॥ कुयोनितो विनिर्मुक्ता दिव्यदेहान्समाश्रिताः ॥
बदरीनाथविभवमुक्तमेवं मया तव ॥ १०२ ॥ पंचलक्षाणि तत्रा-
पि दर्शनान्मुक्तिमागताः ॥ तथा केदारभवने चतुर्लक्षं हि राक्ष-
साः ॥ १०३ ॥ लक्षं तुंगे तथा लक्षं मध्यमेश्वरपीठके ॥ रुद्रा-
लये च पादोनं सपादं कल्पतीर्थके ॥ १०४ ॥ कालीगृहे तथा
लक्षं निर्मुक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ यत्र काली पुरा देवी रक्तबीजव-
धाय च ॥ आराधिता प्रिये देवैरिंद्राद्यैर्दैत्यतापितैः ॥ १०५ ॥
अरुंधत्युवाच ॥ आराधिता कथं देवै रक्तबीजवधाय च ॥ को वा
यं रक्तबीजोभूत्किंबलः किंपराक्रमः ॥ १०६ ॥ देवा नां किं

हम तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं, उस क्षेत्रका भीमक्षेत्र नाम है, इसी क्षेत्रमें महाबलवान्
भीमने ॥ ९९ ॥ शुद्ध बुद्धि और सरल मनसे महादेवजीका स्मरण करते २ तपका आचर-
ण कियाथा, हे शुभानने ! (सुमुखि) उसक्षेत्रमें भीमेश्वरनाम महादेवजी विराजमानहैं
॥ १०० ॥ वे देवाधिदेव महादेवजी भोग और मोक्षको प्रदान करतेहैं, उनके दर्शन करके
प्रथम एक लक्ष ब्रह्मराक्षसोंने ॥ १०१ ॥ कुत्सित योनिका परित्याग करके दिव्यदेहोंका
आश्रय लियाथा इस प्रकार बदरीनाथजीके माहात्म्यका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया
॥ १०२ ॥ एवं च पांचलक्ष ब्रह्मराक्षसोंको वहांभी दर्शन करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति हुईथी,
केदारनाथजीके स्थानमें चारलक्ष ॥ १०३ ॥ तुंगेश्वरमें एकलक्ष, और मध्यमेश्वरके पीठमें
भी एकही लक्ष, रुद्रालयमें पचहत्तरसहस्र, और एकलक्ष पच्चीससहस्र कल्पतीर्थमें ॥ १०४ ॥
और एकलक्ष ब्रह्मराक्षस कालीगृहमें मुक्त हुएथे, उसी कालीगृहमें कालीदेवी रक्तबीजका वध
करनेके लिये, हेप्रिये ! दैत्योंके द्वारा पीडित हुए इन्द्रादिदेवताओंके द्वारा आराधन
की गईथी ॥१०५॥ अरुन्धती कहने लगी कि, हे भगवन्! यह काली देवी रक्तबीजके वधके
लिये देवताओंने कैसे आराधित की, और यह रक्तबीज कौन था, और कैसा इसका बल परा-
क्रम था ॥ १०६ ॥ हे सुव्रत ! देवताओंने क्या किया और उस दैत्यने क्या किया यह

कृतं तेन सर्वं कथय सुव्रत ॥ कथं च निहतो दैत्यः सर्वदेवविमर्दनः ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासमाहात्म्ये नानातीर्थकथनंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

संपूर्ण कथा कहो और संपूर्ण देवताओंको विमर्दनकरनेवाला वह दैत्य देवताओंने कैसे हत किया यह संपूर्ण कथा कहो ॥ १०७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः ८२.

वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु प्रिये समासेन रक्तबीजवधाश्रिताम् ॥ पुण्यां पवित्रीमायुष्यां कथां दिव्यां मनोहराम् ॥ १ ॥ पुरा शंकुशिरा नाम दानवेंद्रो महाबलः ॥ तस्य पुत्रो महाभागे अस्थिबीजो महासुरः ॥ २ ॥ अस्थीनि चर्वयामास तस्य देवी हि भैरवी निहते दानवे तस्मिन् देवैः परमकोपितैः ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तत्कर्म देवानां रक्तबीजो महामते ॥ तपश्चक्रे महातेजा ब्रह्मक्षेत्रे वरानने ॥ ४ ॥ पंचलक्षाणि वर्षाणां व्यतीयुस्तपतः प्रिये ॥ त्यक्ताहारविहारस्य परब्रह्मरतात्मनः ॥ ५ ॥ तस्य वै तप्यमानस्य वल्मीकमुपरि ध्रुवम् ॥ बभूव सर्वतश्चैव शैलराज इव स्थितः ॥ ६ ॥

वसिष्ठजीने कहा—सुनो प्यारी ! रक्तबीजके वधसे सम्बन्ध रखनेवाली, अत्यन्त पवित्र अतएव पुण्यरूप आयुकी वृद्धि करनेवाली मनोहारिणी दिव्य कथाका संक्षेपसे वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ प्राचीनकालमें शंकुशिरानाम महाबलशाली एक दैत्य हुआथा, हे सौभाग्यवती ! उसका पुत्र अस्थिबीजनाम महादैत्य हुआथा ॥ २ ॥ वोह भैरवीदेवीको मानता और अस्थियोंका चर्वण करताथा, अत्यन्त क्रोधापन्न देवोंने उक्त दैत्यका वध करडाला ॥ ३ ॥ जब रक्तबीजने देवताओंके इसदुष्कर कर्मका वृन्तात सुना तब हे वरानने ! ब्रह्मक्षेत्रमें उस महातेजस्वीने तपका आचरण किया ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! तप करते २ पांचलक्ष वर्ष व्यतीत होगये, और उसने आहार विहारका परित्याग कर अपनी आत्माको परब्रह्ममें लगादिया ॥ ५ ॥ उसके तप करते २ चारोंओरसे उसके ऊपर वल्मीकका संचय होगया और वोह महापर्वतकी

ब्रह्मापि प्रययौ तत्र विमानेनार्कतेजसा ॥ उवाच परमं तुष्टो रक्तबीजं महासुरम् ॥ ७ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दनुज महद्वै तप उत्तमम् ॥ कृतं त्वया महाभाग संतुष्टोस्मि तरां त्वयि ॥ ८ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ दुर्लभं नास्ति त्रैलोक्ये दानवेन्द्र महामते ॥ ९ ॥ रक्तबीजोपि तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मणेरितम् ॥ उन्मील्य नयने देवि जलैरानन्दसंभवैः ॥ १० ॥ संमृज्योवाच ब्रह्माणं विमानस्थितमंजसा ॥ भगवंस्त्वं सर्वकर्त्ता सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ ११ ॥ त्वत्त एव वयं जाता देवाश्च तव संभवाः ॥ समास्त्वया रक्षणीया यतस्त्वं प्रपितामहः ॥ १२ ॥ वराहोंहं यदि विभो वरदोस्ति भवान्यदि ॥ न वध्योहं सुरैर्दैत्यैर्न गंधर्वैर्न मानुषैः ॥१३॥ न यक्षैर्न पिशाचैश्च पशुभिर्न च पक्षिभिः ॥ नान्यैश्च जीवजातीभिर्न दिवा न निशि प्रभो ॥ १४ ॥ यत्र मे रक्तबिंदुर्वै पतेत्तत्र महासुरः ॥

सदृश स्थित होगया ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीभी परम सन्तोषको प्राप्त हो सूर्यकी सदृश दीप्तिमान विमानमें विराजित होकर उसके निकट गये और रक्तबीज महादैत्यसे यह वाक्य बोले ॥ ७ ॥ उठो ! महाभाग दैत्यराज !! उठो !!! तुम उत्कृष्ट तपका आचरण किया है अत एव मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं ॥ ८ ॥ तुम्हारा कल्याण हो ! जो कुछ तुम्हारे मनमें है सो वर मांगो हे महामतिमान् दैत्यराज ! तुम्हारे लिये त्रिलोकीमेंभी कुछ दुर्लभ नहींहै ॥ ९ ॥ रक्तबीजने जब ब्रह्माजीके कहे हुए ये वाक्य श्रवण करे तो आनन्दजनित जलसे नेत्रोंको मार्जन कर उघाडके ॥ १० ॥ विमानमें उपस्थितहुए ब्रह्माजीसे उसने यह वचन कहे हे भगवन् ! तुम सबके निर्माणकर्त्ता प्रभु और ईश्वरहैं ॥ ११ ॥ आपहीसे हमारी तथा अन्य सब देवताओंकी उत्पत्ति हुई है, क्योंकि आपही सबके पितामहहैं, अतएव सबकी आपको रक्षा करनी कर्त्तव्य है ॥ १२ ॥ हे सर्वव्यापक ! यदि मैं वरकी याचना करनेके योग्य हूं और आप वरप्रदानकर्त्ता हैं तो [यह वर दीजिये कि] मैं देवता, दैत्य, गन्धर्व, मनुष्य ॥ १३ ॥ यक्ष, पिशाच, पशु, पक्षी तथा अन्यान्य जीवजाति इन किन्हींसेभी दिन और रातमें कभी भी मारा न जाऊं ॥ १४ ॥ जहां मेरे रक्तकी बिन्दु

मद्रूपो मद्बलो देव तथास्तु च मदाकृतिः ॥ १५ ॥ यावंतश्च शरीरे मे भवेयू रक्तबिंदवः ॥ पतेयुश्च तथा भूमौ भवंतु मत्पराक्रमाः ॥ १६ ॥ एवमेव परं याचे वरं यद्दातुमिच्छसि ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा सर्वपितामहः ॥ उवाच वचनं प्रीतो रक्तबीजं महासुरम् ॥ १७ ॥ भविष्यसि तथैव त्वमीप्सितं यत्त्वयासुर ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुंभिर्मृत्युं न चाप्स्यसि ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा द्रुहिणो देवि तत्रैवांतरधीयत ॥ वरान्प्राप्य महातेजाः प्रमत्तोभून्महासुरः ॥१९॥ निशुंभशुंभसहितो राज्यं सर्वांगसुंदरि ॥ चकार विपुलान्दुर्गान् बलानि च महांति च ॥ २० ॥ स्मृत्वा वैरं निर्ज्जराणां पितुश्च वधमासुरः ॥ दूतान्संप्रेषयामास वासवाय महासुरः ॥ २१ ॥ त्यज राज्यं च स्वर्लोकमस्माकं जगती च वै ॥ अन्यायेन पुरा देवैर्निर्जिताः सर्वदानवाः ॥ २२ ॥ इदानीं बलसंपन्ना वयं युद्धविनिश्चयाः ॥

निपातित हो वहां मेरेही बल, पराक्रम, रूप और आकृतिका एक महादैत्य प्रादुर्भूत होजाय ॥ ॥ १५ ॥ मेरे शरीरमेंसे जितनी रक्तकी बिन्दु भूमिके ऊपर निपातित हों मेरीसदृश पराक्रमी उतनेही दैत्य प्रादुर्भूत होजायँ ॥ १६ ॥ यदि आप वरप्रदान करना चाहते हैं तो मैं आपसे इसी वरकी याचना करताहूं, उसके ये वाक्य श्रवण कर सबके पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो रक्तबीजनाम महादैत्यसे ये वचन बोले ॥ १७ ॥ हे असुर ! तुम्हारी जो कुछ अभिलाषा है वोह सब उसी प्रकारसे होगा, तुम्हारा कल्याण हो अब मैं जाताहूं, और पुरुषद्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ॥ १८ ॥ हे देवि ! ब्रह्माजी महाराज यों सम्भाषण करके उसी स्थानमें अन्तर्धान होगये एवं च वोह महातेजस्वी दैत्य उक्त वरोंको प्राप्त करके प्रमत्त होगया ॥ १९ ॥ हे सर्वांगसुन्दरि ! शुंभ और निशुम्भ सहित राज्यका स्थापन किया एवं विपुल दुर्ग और बडी२ सेनाओंका संगठन किया ॥ २० ॥ पिताके वधसम्बन्धी देवकृत वैरका स्मरण कर उस दैत्यने इन्द्रकेप्रति दूतोंको भेजा ॥ २१ ॥ तुम अपने राज्य और स्वर्ग लोक (के अधिकार) को छोडदो समस्त जगत् हमाराहै, प्राचीन कालमें देवताओंने अन्यायसे सब दैत्योंको जीत लियाथा ॥ २२ ॥ अब हम लोगभी बलशाली हैं, अतएव युद्ध करनेके लिये हमारा निश्चयहै.

अवलेपो न कर्त्तव्यो युष्माभिः सर्वदैवतैः ॥ २३ ॥ युद्धेप्सवो यदि सुरा युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ आगच्छंतु भवंतश्च साहाय्येन युतास्तथा ॥ २४ ॥ यो वै जेष्यति नो देवाः स वै राज्यं करिष्यति ॥ इति दूतमुखेभ्यश्च श्रुत्वा वाचोऽसुरेरिताः ॥२५॥ इन्द्र आज्ञापयामास सर्वान् देवान् वरानने ॥ सन्नद्धकवचास्त्राश्च वरनिस्त्रिंशपाणयः ॥ समेत्य सर्वे त्रिदशा आगछंत्वाज्ञया मम ॥ २६ ॥ नागमिष्यति यो देवस्स मे वध्यो भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा दैवतान्सर्वान्दूतांश्चोवाच देवराट् ॥ २७ ॥ गच्छध्वं रक्तबीजाय सशुंभाय वदंतु वै ॥ भवंतो दूतकाः सर्वे कार्य्यो नो ह्यवलेपकः ॥ २८ ॥ युद्धे जिताः सुरैः पूर्वमस्थिबीजो यथा हतः ॥ निशुंभशुंभसहितः शयिष्यासि रणाङ्गणे ॥२९॥ तथा त्वं सर्वदैत्यैश्च नावलेपे मतिं कुरु ॥ दूताश्चैव तथा श्रुत्वा वासवास्त्वरया युताः ॥ रक्तबीजं तथा प्राप्य समाचक्षुर्वचोखिलम् ॥३०॥

अब तुम्हें अथवा अन्य सब देवताओंको अभिमान (किंवा टाल बाल) नहीं करनी चाहिये ॥ २३ ॥ यदि देवगणकी युद्ध करनेकी अभिलाषा है और युद्ध करनेके तईं उन्होंने निश्चयभी किया हो तौ अपने सहायकोंको साथ लेकर तुम सब लोग आओ ॥ २४ ॥ हे देवगण ! हमारा विजय करलेगा वोही राज्य करसकेगा, असुरोंके कहे हुए ऐसे वाक्योंको दूतोंके मुखसे श्रवण करके ॥ २५ ॥ हे सुमुखि ! इन्द्रने सब देवताओंको आज्ञा दी, कवच धारण पूर्वक हाथमें खड्ग ले २ कर संपूर्ण देवता आय २ कर हमारी आज्ञानुसार यहां उपस्थित हों ॥ २६॥ हे देवताओ ! जो नहीं आवैगा मैं उसीका वध करदूंगा । देवताओंसे इसप्रकार कहकर देवराज इन्द्रने दूतोंसे कहा ॥ २७ ॥ तुम जाओ और शुंभ सहित रक्तबीजसे कहदो कि,अब विलंब करना कर्त्तव्य नहींहै॥२८॥देवताओंने प्रथमही दैत्योंको युद्धमें जिसप्रकार जीतलियाथा, और जैसे अस्थिबीजका वध कियाथा उसीप्रकार शुंभनिशुंभसहित तूभी रणभूमिमें शयन करेगा॥२९॥अब तुम वा अन्य सब दैत्य विलंब मत करो, इन्द्रके ऐसे वाक्य श्रवण करके दूतगण शीघ्रता करतेहुए, रक्तबीजसे समस्त वाक्योंको कहने लगे ॥ ३० ॥

रक्तबीजोपि तच्छ्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ सर्वदेवविनाशार्थं मतिं चक्रे रणाय वै ॥३१॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कालीतीर्थ-माहात्म्ये रक्तबीजवधे दूतप्रेषणंनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

ये वाक्य श्रवण करनेसे रक्तबीजके नेत्र मारे क्रोधके लाल २ हो आये, और सब देवताओंको वध करनेके लिये उसने युद्ध करनेका विचार किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३.

वसिष्ठ उवाच ॥ आज्ञतास्तु ततो देवा वासवेन महात्मना ॥ सन्नद्धकवचास्सर्वे आययुः सर्वतोदिशः ॥ १ ॥ तोमरान्परशूंश्चैव शक्तींश्च मुसलांस्तथा ॥ खड्गान्शरान् सतूणीरान्यष्टीन्दृष्टीन्स मुद्गरान् ॥ २ ॥ संगृह्य देवताः सर्वे जयमूचुः पुरंदरम् ॥ इंद्रोपि मातलिं सूतमुवाच भगवान् प्रिये ॥ ३ ॥ रथं साधय मे शीघ्रं साधितश्च तथा रथः ॥ आरुह्य सहसा देवः सर्वदेवसमन्वितः ॥ ४ ॥ सोपि प्रिये रक्तबीजोऽसुरैर्दैत्यैः समन्वितः ॥ तथा सर्वास्त्रसंपन्नो दैत्यदानवपूजितः ॥ ५ ॥ शंखश्च कालनाभश्च वज्रशीर्षो महाहनुः ॥ दुर्नेत्रो रक्तवर्णश्च तीक्ष्णदंष्ट्रो वृषाकृतिः ॥६॥

वसिष्ठजी बोले—महात्मा इन्द्रके द्वारा आज्ञा दिये हुए सब देवता कवच परिधान पूर्वक चारों ओरसे आने लगे ॥ १ ॥ आय २ कर देवगण परशु (फरसे) शक्ति, मुसल, खड्ग, बाण, तूणीर (तरकश), यष्टी (लाठी), और मुद्गर ॥ २ ॥ इन सब आयुधोंको ले २ कर सुरराज इन्द्रकी विजयका घोष करनेलगे । हे प्रिये ! भगवान् इन्द्रनेभी मातलिनाम अपने सूतसे कहा ॥ ३ ॥ हमारे रथको शीघ्र तैयार करो ! और उत्तम रीतिसे रथको सुसम्पन्न करो । और सब देवताओं सहित इन्द्र उस रथमें आरूढ हुए ॥ ४ ॥ वोह रक्तबीजभी सब दैत्यों और राक्षसोंके सहित होकर, सब अस्त्रशस्त्र परिग्रहणपूर्वक दैत्य और दानवोंके द्वारा पूजित हुआ ॥ ५ ॥ शंख, कालनाभ, वज्रशीर्ष, महाहनु, दुर्नेत्र, रक्तवर्ण, तीक्ष्णदंष्ट्र, वृषा-

दर्दुरो धनुषश्चैव कोलनामा तथासुरः ॥ महानास्यो बृहद्दंष्ट्रो वृषतेजा वृकोदरः ॥ ७ ॥ खड्गरोमा कालदंष्ट्रो देवारिर्बल एव च ॥ एतेचान्ये च बहवो दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ ८ ॥ शरान् खड्गांस्तथा कुंतांस्त्रिशूलानि वरानने ॥ एवमादीनि शस्त्राणि गृहीत्वा वरपाणिभिः ॥ ९ ॥ संदष्टौष्ठपुटा दैत्याः क्वेति क्वेति च देवताः ॥ इत्युक्तवंतः प्रययुर्वीरं रसमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ शंखान्भेरींस्तथा दध्मुर्जय दैत्यारिमर्दन ॥ वदंतश्चैव जेष्यामो वासवं वसुभिर्युतम् ॥ ११ ॥ सुमेरुशृंगमास्थाय देवाश्चापि पृथक्पृथक् ॥ मृदंगान्पटहान् ढक्कान्भेरीः शंखान् सतालकान् ॥ १२ ॥ प्रदध्मुः शतशो देवा रक्तबीजवधैषिणः ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र समरः समपद्यत ॥ १३ ॥ शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्घोरैर्निजघ्नुः शतशोऽसुरान् ॥ दैत्याश्चापि तथा देवान् शस्त्रास्त्रैर्नियुतायुतैः ॥ निजघ्नुर्वीरमापन्नाः संदष्टदशनच्छदाः ॥ १४ ॥ देवासुरं तथा घोरं समरं समपद्यत ॥ केचिद्भल्लांस्तथा शक्तींस्तोमरान् परशूंस्तथा ॥ १५ ॥ गदाश्च मुसलान्वज्रान्कुठारान् बहुसायकान् ॥ चिक्षिपुः शत-

हुये ॥ ६ ॥ दर्दुर, धनुष, और कोलनाम दैत्य, महानाम, बृहद्दंष्ट्र, वृषतेजा, वृकोदर ॥ ७ ॥ खड्गरोमा, कालदंष्ट्र, देवारि, बल ये सब तथा अन्यान्यभी घोर युद्ध करनेवाले देव दानव ॥ ८ ॥ बाण, खड्ग, भाले और त्रिशूल इत्यादि सब अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके ॥ ९ ॥ अपने २ ओठोंको काटने लगे और कहने लगे कि, देवतालोग कहां हैं ! यों कहकर वीररसका आश्रय लेकर सब दैत्यलोग ॥ १० ॥ शंख, भेरीका नाद करके कहने लगे कि, शत्रुविनाशी दैत्यराजकी जय हो, और योंभी कहने लगे कि, हम धन सहित इन्द्रका विजय करेंगे ॥ ११ ॥ देवगणभी पृथक् २ सुमेरु पर्वतके शिखरोंके ऊपर आरूढ होकर मृदंग, पटह ढक्का, भेरी, शंख और ताल ॥ १२ ॥ इनको बजा २ कर रक्तबीजके वधकी अभिलाषा करने लगे, इसी अवसरमें वहां युद्धका प्रारंभ होगया ॥ १३ ॥ देवताओंने विविधभांतिके घोरअस्त्रशस्त्रोंसे सैकडों प्रकार दैत्योंके ऊपर प्रहार किया । एवं च दैत्योंनेभी अनगिन्त अस्त्रशस्त्रोंसे देवताओंके ऊपर प्रहार किया और वीररससे पूरित हो वे अपने ओठोंको काटने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय देवदानवोंका घोरयुद्ध होनेलगा, कोई भाला, शक्ति, तोमर तथा परशु ॥ १५ ॥ गदा, मुसल, वज्र, कुठार और बहुतसे बाण इन आयुधोंके परस्पर शत्रुओंके ऊपर विजयकी

शोरीणां परस्परजयैषिणः ॥१६॥ युयुधुः परिघैः केचिन्मुष्टिभि-
र्वज्रनिःस्वनैः ॥ परस्परमयुध्यंत दानवाश्च तथा सुराः ॥ १७॥
शुशुभुः सर्व्वतस्तत्र किंशुका इव पुष्पिताः ॥ अश्वानां चैव
नागानां निहतानां रणाजिरे ॥१८॥ गात्रेभ्यो निःसरुधारा रुधि-
रस्य वरानने॥ गिरीणामिव पार्श्वेभ्यो गैरिरक्ता इवापगाः॥१९॥
छिंधि छिंधि भिंदि भिंदि तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ॥ श्रूयंते
स्म तथा वाचो विविधाः सुभटेरिताः ॥ २० ॥ मेघा इव भटा
रेजुः सन्नद्धकवचास्तथा ॥ बाणवर्षं विमुंचन्तो विस्फुरद्बहुचं-
चलाः ॥ २१ ॥ तिष्ठातिष्ठेति गर्जंतः कीर्त्तिवल्लीजयैषिणः ॥
निर्ययुः शतशो नद्यः केशशष्पविभूषिताः ॥ २२ ॥ अस्थिग्रावा
रक्तजलास्तथा मास्तिष्ककर्दमाः ॥ इति वै तुमुले युद्धे संबभूव
भटक्षयः ॥२३॥ जयंतश्चैव शुंभश्च निशुंभश्च जयस्तथा ॥ कुबेरो
वज्रमुष्टिश्च वह्निर्देवारिरेव च ॥ २४ ॥ वायुश्च खड्गरोमा च रुद्र-
श्चैव वृषाकृतिः ॥ धरश्चैवाथ दुर्नेत्रोऽनिलश्चैव महाहनुः ॥ २५ ॥

अभिलाषासे निक्षेप करनेलगे ॥ १६ ॥ कोई वज्रसे, कोई मुष्टिसे और कोई अन्य आयुधोंसे देवता और दानव युद्ध करनेलगे ॥ १७ ॥ निहतहुए अश्व और हस्तियोंके शरीर उसरणांगणमें ऐसे सुशोभित होतेथे जैसे फूलेहुए टेसूके वृक्ष होतेहैं ॥ १८ ॥ हे सुमुखि ! उनके शरीरमेंसे रुधिरकी धारा इसप्रकार विनिर्गत होनेलगी जैसे पर्वतोंके पार्श्वभागसे गेरूके रक्त-वर्णकी नदियें निकलतीहैं ॥ १९ ॥ और काटो मारो ठैरो २ इत्यादि विविधप्रकारकी वाणियें योधाओंकी बार २ श्रवणगत होतीथीं ॥ २० ॥ कवचोंको धारण किये वीरगण मेघसदृश विराजमान होरहेथे; और अत्यन्त चपलता तथा चंचलतासे बाणोंकी वर्षा होरही थी ॥२१॥ जयाभिलाषी वीरगणके "ठैरो २" यह शब्द श्रवणगत होनेलगे और केश (बाल) रूप घाससे अलंकृत सैकडों नदियें (रक्तकी) उदय हो आईं ॥२२॥ उक्त नदियोंमें अस्थियोंका संचय पाषाण और रुधिर जल प्रतीत होताथा, एवम् मज्जाकी उसमें पंक थी, इसप्रकार उस घोरयुद्धमें वीरोंका क्षय होनेलगा॥२३॥जयन्त, शुम्भनिशुम्भ और जय, कुबेर, वज्रमुष्टि, वह्नि, देवारि ॥२४॥ वायु, खड्गरोमा, रुद्र और वृषाकृतिधर, दुर्नेत्र, अनिल, महाहनु ॥ २५ ॥

प्रत्यूषश्चैव शंखश्च प्रभासश्च वृकोदरः ॥ द्रविणस्तीक्ष्णदंष्ट्रश्च परस्परजयैषिणौ ॥ २६ ॥ चक्रतुर्द्वंद्वयुद्धं तु तथान्ये देवदानवाः ॥ इति युद्धं सममभूत्तथा वर्षसहस्रकम् ॥ २७ ॥ देवानां दानवानां च भीरूणां भयवर्द्धनम् ॥ द्वंद्वयुद्धे प्रिये देवा निर्जिता दनुपुत्रकैः ॥ २८ ॥ तत इंद्रो रक्तबीजं द्वंद्वयुद्धे समागतः ॥ विव्याध शतशो बाणैश्चिच्छेद च तथासुरम् ॥ २९ ॥ रक्तबीजोपि तं बाणैर्ववर्ष घनराडिव ॥ अनागतांस्ततो बाणांश्चिच्छेद शतशो वृषा ॥ ३० ॥ इति वै तुमुलं युद्धं रक्तबीजेन्द्रयोरभूत् ॥ अंधीभूतं जगत्सर्वं बाणजालैरितस्ततः ॥ ३१ ॥ नालक्ष्यते तथा सूर्य्यश्चंद्रमाश्च तथा ग्रहाः ॥ उल्काश्च शतशः पेतुः समुद्राश्च चकंपिरे ॥ ३२ ॥ इन्द्रेण निहतस्यापि रक्तबीजस्य सुंदरि ॥ भूमौ पतन्ति कणिकाः शोणितस्य शरीरतः ॥ ३३ ॥ तावंत एव पुरुषास्तद्वीर्य्यास्तत्पराक्रमाः ॥ युयुधुर्देवनाथेन शस्त्रास्त्रैर्नियुतायुतैः ॥ ३४ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवि वागुवाचाशरीरिणी ॥ भो भो इंद्र

प्रत्यूष, शंख, प्रभास, वृकोदर तथा परस्पर विजयकी अभिलाषा करनेवाले द्रविण और तीक्ष्णदंष्ट्र ॥ २६ ॥ तथा अन्यान्य देव दानव इन सभीका द्वन्द्व युद्ध होनेलगा अथ च यह युद्ध सहस्रवर्षपर्यन्त हुआ ॥ २७ ॥ भीरुपुरुषोंको भयकी वृद्धिकरनेवाले देवदानवोंके इस भयंकर युद्धमें हे प्रिये ! दैत्योंने देवताओंका विजय करलिया ॥ २८ ॥ तब तौ इन्द्रने द्वन्द्वयुद्धमें आकर सैकडों बाणोंसे रक्तबीज दैत्यको वेधित करके छिन्नभिन्न करदिया ॥ २९ ॥ रक्तबीजनेभी इन्द्रके ऊपर मेघराजकी सदृश असंख्य बाणोंकी वर्षाकरी, किन्तु—इन्द्रने अपने निकट पहुंचते २ ही उन बाणोंका छेदन करडाला ॥ ३० ॥ इसप्रकार रक्तबीज और इन्द्रका घोर युद्ध हुआ बाणोंका जाल व्याप्त होजानेके कारण समस्त संसार अन्धा होगया ॥ ३१ ॥ सूर्य चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह सब दृष्टिके अगोचर होगये, सैकडों उल्कापात होने लगे और समुद्र कम्पायमान होगये ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! जब इन्द्रने रक्तबीजका हनन किया तब उसके शरीरसे भूमिके ऊपर रक्तबिन्दु निपतित हुए ॥ ३३ ॥ तौ उतनेही (दैत्य) वैसेही बल और पराक्रमको धारण कियेहुए अस्त्र शस्त्रोंके द्वारा इन्द्रके साथ युद्ध करनेलगे ॥ ३४ ॥ इसी अवसरमें किसी शरीरहीनने इस वाणीका उच्चारण किया, हे सुरराज इन्द्र ! शत्रुविनाशी

त्वया वध्यो नायं दैत्यारिमर्दनः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन नायं वध्यः सुरासुरैः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तद्वै संत्रस्तश्च तथासुरैः ॥ ३६ ॥ स्वं स्वं स्थानं त्यज्य देवा जग्मुर्वै त्रिदिवौकसः ॥ सोपि प्रिये रक्तबीजो जयशब्देन पूजितः ॥ ३७ ॥ उपास्यमानस्त्वसुरैः प्रययौ त्वमरावतीम् ॥ पालयामास धर्मेण राज्यं निहतकंटकम् ॥ ३८ ॥ देवाधिकारान् सर्वांश्च स्वयं चक्रे महासुरः ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे इंद्रपराजयो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

इस दैत्यका वध तुम नहीं करसकोगे ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजीने इसे वरप्रदान कियाहै अतएव देवता वा दानव कोईभी इसका वध नहीं करसक्ते, ये वाक्य श्रवणकर इन्द्र तौ अत्यन्त त्रसित होगये ॥३६॥ और देवगणभी अपने २ स्थानका परित्याग करके पलायन करगये और उस रक्तबीजका जय २ शब्दसे पूजन होनेलगा ॥३७॥ दैत्य समाजसे उपासित होकर रक्तबीजने अमरावती नगरीको प्रस्थान किया, और वहां शत्रुरूप कंटकका उन्मूलन कर धर्मसे प्रजाका पालन करनेलगा ॥ ३८ ॥ एवं च उस महादैत्यने देवताओंके सब अधिकारोंको अपने आधीन करलिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः ८४.

वसिष्ठ उवाच ॥ निर्ज्जितास्ते ततो देवा दानवैस्तैर्महाबलैः ॥ इंद्रादयो महाभागे संचेरुर्गिरिकन्दरे ॥ १ ॥ लीनानामथ देवानां वर्षाणां नियुतं ययौ ॥ मानवा इव दुःखार्त्ताः संचेरुः पृथिवीमिमाम् ॥ २ ॥ रक्तबीजवधाक्रांतास्तथा शुंभनिशुंभयोः ॥

वसिष्ठजी बोले—हे महाभागे ! जब उन महाराक्षसोंने इन्द्रादि देवताओंका विजय करलिया, तब वे पर्वतोंकी कन्दराओंमें मारे २ फिरनेलगे ॥ १ ॥ जब इसप्रकार छिपे २ देवताओंको दशसहस्र वर्ष व्यतीत होगये, तौ मनुष्योंकी समान दुःखसे पीडित हो वे इस भूमिके ऊपर विचरनेलगे ॥ २ ॥ रक्तबीजके वधसे आक्रान्त हो तथा शुंभनिशुंभसे राज्याधिकार

हताधिकारास्त्रिदशाश्चेष्टितं न विचक्रमुः ॥ ३ ॥ एकदा वासवाद्यास्ते विबुधा वसवस्तथा ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः स्रष्टारं प्रपितामहम् ॥ ४ ॥ बद्धांजलिपुटाः सर्वे निर्जरा भयविह्वलाः ॥ ऊचुस्ते भक्तिसंपन्ना ब्रह्माणं जलजोद्भवम् ॥ ५ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रजापते नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ज्ञानचक्षुषे ॥ नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं निर्गुणाय महात्मने ॥ ६ ॥ रक्तबीजभयोद्विग्ना हृतराज्या वयं प्रभो ॥ पृथिव्यामपि प्रत्यक्षं न चरामो भयात्प्रभो ॥ ७ ॥ इन्द्रः स एव भगवन् स वह्निर्यम एव च ॥ निर्ऋतिर्वरुणश्चैव वायुश्च धनदस्तथा ॥ ८ ॥ ईशश्चैव स एवास्ति हृतयज्ञा वयं प्रभो ॥ त्वमेव जगतां स्रष्टा प्रमत्तो वरदानतः ॥ ९ ॥ उत्साद्यंते दानवेन सृष्टयस्त्वत्कृता इमाः ॥ वधं चिंतय तस्यापि कारणेन प्रजापते ॥१०॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे देवदेवं सनातनम् ॥ अनादिमध्यनिधनं वासुदेवं मया सह ॥ ११ ॥ स ज्ञास्यति वधोपायं रक्तबीजस्य निर्ज्जराः ॥ अहं चैवागमि-

हरे जानेके कारण देवता कुछभी चेष्टा न करसके ॥ ३ ॥ एक समय इन्द्रादि देवगण और वसु, जगत्की रचना करनेवाले प्रपितामह ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ४ ॥ मारे भयके व्याकुल हुए देवगण भक्तिभाव पूर्वक हाथ जोडकर कमलयोनी ब्रह्माजीसे यों बोले ॥ ५ ॥ देवताओंने कहा—ज्ञानके नेत्र धारण करनेवाले प्रजापति ब्रह्माजी ! आपको नमस्कार है, आप महात्मा निर्गुण और ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये तीन मूर्त्ति धारण करनेवाले हैं। हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! हमारे राज्यका अपहरण करलियागया, अतएव रक्तबीजके भयसे हमलोक उद्विग्न होरहेहैं, हे स्वामिन् ! उनके भयवशात् भूमिके ऊपरभी प्रत्यक्ष होकर हमलोग नहीं विचरंसक्ते ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! वोही इन्द्र, वोहीं अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण वायु, कुबेर ॥ ८ ॥ और ईश ये सब वेहीहैं, हे स्वामिन् ! हमारेही यज्ञका अपहरण करलिया गयाहै। हे प्रभो ! आप जगत्के सृजनहार हैं, और वोह दैत्य आपहीके वर देनेसे मस्त होगयाहै ॥ ९ ॥ वोह दैत्य आपकी निर्माण कीहुई इस सृष्टिका उन्मूलन करताहै अय प्रजापते ! उसके वधका कोई उपाय विचारिये ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ ! अब तुम सब देवता मेरे साथ आदि मध्य और अन्त रहित देवाधिदेव सनातन विष्णुभगवान्के पास चलो ॥ ११ ॥ हे देवगण ! रक्तबीजके वधके उपायको वेही जानतेहैं और सनातन

ष्यामि यत्र विष्णुः सनातनः ॥१२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्त्वा तान् समाश्वास्य ययौ देवसमन्वितः ॥ क्षीरांभोधौ यत्र सुप्तो नारदादिभिरर्चितः ॥ १३ ॥ भगवान् वासुदेवो हि रमया सहितः प्रभुः ॥ देवैरपि ततो ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय वासुदेवाय ब्रह्मणे ॥ यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥ १५ ॥ लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं दानवारे नमो नमः ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमस्त्रिजगतां पते ॥ १६ ॥ त्रिगुणव्यतिरेकाय त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ निरंजनाय निर्द्वंद्व तेच्युताय नमो नमः ॥ १७ ॥ ब्रह्मरूपेण सृजते हरिरूपेण रक्षते ॥ अंते नाशयते देवरुद्ररूपेण ते नमः ॥ १८ ॥ अच्छेद्याय महेशाय निर्भेद्याय महात्मने ॥ अदाह्याय सुरेशाय ह्यक्लेद्याय महात्मने ॥ १९ ॥ एकः सर्वस्य जगतः पालको नाशकस्तथा ॥ एकोप्यनेकधा भासि पल्वलेषु यथा रविः ॥ २० ॥ त्वत्तो नान्यं

विष्णुके पास मैंभी चलूंगा ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले—यों कहकर और उन्हें समझा बुझाके देवताओंको साथ ले ब्रह्माजी वहांको चले जहां क्षीरसागरमें नारद आदिके द्वारा पूजित सर्व शक्तिमान् साक्षात् वासुदेव विष्णुभगवान् लक्ष्मीसहित शयन कररहे थे । ब्रह्माजीने देवताओंके द्वारा (स्तुतिकराके) परमेश्वरको सन्तुष्ट किया ॥ १३ ॥ १४॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवताओंके अधीश्वर ! आप वासुदेव और साक्षात् ब्रह्ममूर्ति हैं, आपकीही इच्छासे यह चराचर जगत् प्रादुर्भूत होताहै अतएव हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ आप लक्ष्मीके पति और दैत्योंके अरि हैं; आप तीनों जगत् अथवा त्रिलोकीके पति हैं अतएव आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ आप सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणसे पृथक्, तथापि त्रिगुण स्वरूप, और गुणात्मा अर्थात् गुणोंके उत्पन्न करनेवाले हैं, आप द्वन्द्वरहित और निरंजन हैं हे अच्युत ! आपको नमस्कारहै ॥ १७ ॥ तुम ब्रह्मस्वरूपसे सृष्टिको रचते, विष्णुरूपसे पालन और रुद्ररूपसे संहार करतेहो, अतः हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ १८ ॥ हे महेश्वर ! आपका कोई छेदन नहीं करसक्ता, हे महात्मा ! आपका भेदन भी कोई नहीं करसक्ता किसी प्रकारका क्लेशभी आपको बाधा नहीं देसक्ता ॥ १९ ॥ आप अकेलेही सब जगत्का पालन और नाश करते हैं, यद्यपि आप अद्वितीय हैं तथापि इस प्रकार अनेक प्रतीत होतेहैं जैसे अनेक सरोवरोंमें सूर्यके प्रतिबिम्बभी अनेकही दीखते हैं ॥ २० ॥ स्वच्छ बुद्धिसे विचार करनेपर

प्रपश्यामि भिन्नं परमया धिया ॥ यस्यांशाश्च वयं सर्वे ब्रह्म-
विष्णुमहेश्वराः ॥२१॥ आदिं न ते न चैवांतं न मध्यं भगवन्वि-
दुः ॥ नमस्ते शतशो देव भक्तिगम्याय वेधसे ॥ २२ ॥ पुरा त्वया
महेशान मत्स्यरूपेण सर्वतः ॥ रक्षितं शृंगके बद्धा नौरूपां पृथि-
वीमिमाम् ॥ २३ ॥ मनुना संस्तुतश्चासि निहतः शंखकासुरः
ततः कमठरूपेण धृता भूमिस्त्वया प्रभो ॥२४॥ पुनर्वराहरूपेण
वारंवारं धृता धरा ॥ हिरण्याक्षस्त्वया देव निहतो दितिजेश्वरः
॥ २५ ॥ नारसिंहवपुः कृत्वा वरदृप्तो महासुरः ॥ हिरण्यकशिपु-
र्दैत्यो नखास्त्रेण हतस्त्वया ॥२६॥ अदित्या गर्भसंभूतो वामन-
त्वमुपागतः ॥ इंद्रराज्यमभीप्सन्यो बलिर्वै छलितस्त्वया ॥
॥ २७ ॥ भार्गवोपि पुरा देव भूत्वा त्वं जमदग्निजः ॥
रामनामा महेशान निहता दानवांशजाः ॥ २८ ॥ क्षत्रियाः
कार्तवीर्याद्या निहता रक्षणे त्वया ॥ पौलस्त्याद्या महात्मानो
निहता राममूर्त्तिना ॥ २९ ॥ पुनः कंसादयो रूपाः पापाचारा

आपके अतिरिक्त मैं और किसीको नहीं देखताहूं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर ये सब आपहीके अंश-
से उत्पन्न होतेहैं ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! हम लोग आपके आदि मध्य और आन्तको नहीं
देखते हैं, हे विधाता ! आप प्रकाशस्वरूपहैं, और भक्तिभावसे आपकी प्राप्ति होतीहै हम आप-
को नमस्कार करतेहैं ॥ २२ ॥ हे महेश्वर ! प्रथम आपने मत्स्यरूप धारणकर नौकारूप
इस भूमिको दन्तोपरि धारण कर उद्धार कियाथा ॥ २३ ॥ जब मनुने आपकी स्तुति कीथी
तब आपने शंखासुरका वध कियाथा ! एवं च कमठ रूप धारणकर आपने इस पृथ्वीको धारण
किया था ॥ २४ ॥ फिर वाराह रूप धारणकर बार २ भूमिका उद्धहन आपहीने कियाथा,
एवं च दैत्यराज हिरण्याक्षका वधभी आपहीने किया था ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! नरसिंहरूप
धारण कर अतिशय अभिमानी हिरण्यकशिपु महादैत्यका हनन आपने नखरूप अस्त्रके द्वारा
कियाथा ॥ २६ ॥ फिर अदितीके गर्भसे प्रादुर्भूत होकर आप वामन बने, तब सुरराज इन्द्र-
के राज्यकी अभिलाषा करते हुए बलिको आपने छलाथा ॥ २७ ॥ भृगुके वंशमें जमदग्नि-
से आप उत्पन्न हुए और परशुराम बनकर आपने अनेक दैत्योंका वध कियाथा ॥ २८ ॥
[संसारकी] रक्षा करनेकी कामनासे कार्त्तवीर्य आदि क्षत्रियोंका विनाश किया, एवम् [दाश-
रथी] राम बनके रावण आदि दैत्योंका वध कियाथा ॥ २९ ॥ फिर हे महेश्वर ! आपने

महेश्वर ॥ कृष्णनाम्ना त्वया देव हता रक्षणहेतवे ॥ ३० ॥ युगांते म्लेच्छजातीयान्वेदधर्म्मविनिंदकान् ॥ क्षयं नयसि भो देव कल्किरूपी भवान् हरे ॥ ३१ ॥ त्वदंशभूता ब्रह्माद्याः सृष्टिकर्मादि कुर्वते ॥ त्वमेव सर्वजगतः स्थितिकर्त्ता कृतांतकः ॥ ॥ ३२ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशो नानाभरणदीपितः ॥ शंखं चक्रं गदां पद्मं धारयन्वै चतुर्भुजः ॥ ३३ ॥ संस्तूयमानो मुनिभिर्महद्भिः सनकादिभिः ॥ रमया हृतवामांगो घनश्यामो विपासनः ॥ ॥ ३४ ॥ ददृशे सर्वदेवैस्तु ब्रह्मादिभिरकल्मषैः ॥ दृष्ट्वा तान् दुःखसंपन्नान्स्तुवतो मनसा गिरा ॥ उवाच भक्तिसंपन्नान् ब्रह्मादींस्त्रिदिवौकसः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मे भवतां दुःखं रक्तबीजो महासुरः ॥ ब्रह्मणो वरदानेन दृप्तोस्ति सुरसत्तमाः ॥ ॥ ३६ ॥ देवेन मनुजेनापि पशुपक्षिसरीसृपैः ॥ अन्यैश्च प्राणिभिश्चापि न वध्योयं सुरासुरैः ॥ ३७ ॥ अन्वीक्षितं मया तस्य विचार्य्य बहुधा सुराः ॥ तद्धोहं संप्रवक्ष्यामि

श्रीकृष्णनाम ग्रहणकर संसारकी रक्षाके तईं, पापका आचरण करनेवाले कंस आदि राक्षसोंका वध कियाथा ॥ ३० ॥ हे पापविनाशकारी देव ! कलियुगके अन्तमें वेदोक्त धर्मकी निन्दा करनेवाले म्लेच्छोंका वध आप कल्कीरूप धारणकरके करेंगे ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा आदि देवगणभी आपहीके अंशसे प्रादुर्भूत होकर सृष्टिकी रचना आदि कर्मका आचरण करतेहैं आपही सृष्टिका पालन और अन्त करतेहैं ॥ ३२ ॥ करोडों सूर्य्यकी सदृश प्रकाशमान, अनेक आभूषणोंकी प्रभासे प्रदीप्त, चार भुजाधारी, शंख, चक्र, गदा और पद्मको हाथोंमें लिये हुए ॥ ३३ ॥ विष्णु भगवानकी जिनके वाम अंगमें लक्ष्मी विराजमान हैं और जिनका वर्ण मेघकी समान श्यामहै सनकादि महर्षियोंने जब स्तुति करी ॥ ३४ ॥ तब पापहीन ब्रह्मादि संपूर्ण देवसमाजको उनका दर्शन हुआ । ब्रह्माआदि देवताओंको दुःखसे पीडित, भक्तिभावपूर्वक मनोयोगसे वाणीद्वारा स्तुति करते देख उनसे कहा ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले—मैंने तुम्हारे दुःखको जानलिया, रक्तबीजनाम महादैत्य ब्रह्माजीके द्वारा वरप्रदान करनेसे अत्यन्त अभिमानी होगया है ॥ ३६ ॥ क्या देव, क्या दानव, क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या अन्य विषधर जीव जन्तु, देवता वा राक्षस अथवा अन्य किसी प्राणीसे उसका वध नहीं किया जासक्ता ॥ ३७ ॥ अय देवगण ! अनेक भांति विचारकर मैंने उसका कारण जानलिया, उस बडे कारणको हम

शृणुध्वं कारणं महत् ॥ ३८ ॥ प्रकृतिर्या परा नित्या ब्रह्मवि-
ष्णुशिवात्मिका ॥ इच्छया या जगत्सर्वं सृजते सचराचरम् ॥
॥ ३९ ॥ तस्या एव वयं देवा अंशभूता महौजसः ॥ न देवः
सा न गंधर्वो न यक्षो न च राक्षसः ॥ ४० ॥ गुह्यको न
पिशाचोस्ति न नरो न मृगादिकः ॥ सेयं परा महामाया हनि-
ष्यति महासुरम् ॥ ४१ ॥ गच्छध्वं च मया सार्द्धं कैलासे शिव-
मंदिरे ॥ स्तुता सा भवतां दुःखं हनिष्यति महासुरम् ॥ ४२ ॥
पूर्वं च महिषो दैत्यो निहतश्च तथैव हि ॥ मधुकैटभनामानौ
तत्प्रसादेन मे हतौ ॥४३॥ तस्या एव कृपादृष्ट्या सर्वं संपा-
द्यते सुखम् ॥ तामाराध्य महेशानीं सुखिताः संभविष्यथ ॥
॥ ४४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति ते संमतिं कृत्वा वासुदेवादयः
सुराः ॥ जग्मुः कैलासनिलये यत्र देवो महेश्वरः ॥ ४५ ॥ इति
श्रीस्कांदे केदारखंडे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे कैलासग-
मने चतुरशीतितमोध्यायः ॥ ८४ ॥

तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, तुम श्रवणकरो ॥ ३८ ॥ ॥ नित्य विद्यमान रहनेवाली ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक जो परा शक्ति है, वोही अपनी इच्छासे चराचर समस्त जगत्की रचना करती है ॥ ३९ ॥ हम महापराक्रमी देवताभी उसीके अंशसे उत्पन्न हुएहैं, सुतराम् देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक ॥ ४० ॥ पिशाच, मनुष्य अथवा मृग आदि इनमेंसे कोईभी उसका वध नहीं करसकेगा, किन्तु वोही महामाया उस उत्कट दैत्यका हनन करेगी ॥ ४१ ॥ हमारे साथ कैलास पर्वतके ऊपर शिवमन्दिरमें तुम सब चलो, स्तुति करनेसे वोह उस महादैत्यका वध करके तुम्हारे दुःखका अवश्य विनाश करेगी ॥ ४२ ॥ पहिलेभी उसने महिषासुरका वध किया था, और उसीकी अनुकंपासे हमने मधु और कैटभका वध कियाथा ॥ ४३ ॥ विशेष क्या उसीकी कृपादृष्टिसे सब कुछ सुख सम्पादित होताहै, अत एव उस महेश्वरीका आराधन करनेसे तुमलोग सुखी होओगे ॥ ४४ ॥ वसिष्ठजी बोले—वासुदेव (विष्णु) आदि सब देवता इसप्रकार सम्मति करके, कैलासपर्वतके ऊपर जहां साक्षात् महादेवजी रहतेहैं वहां गये ॥ ४५ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ८५.

वसिष्ठ उवाच ॥ केदारमंडले दिव्ये मंदाकिन्याः परे तटे ॥ सरस्वत्यास्तटे सौम्ये कालीतीर्थमिति स्मृतम् ॥ १ ॥ तत्र गत्वा प्रिये देवा रक्तबीजवधैषिणः ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्तुं मायायाः परमात्मनः ॥ २ ॥ देवाऊचः ॥ नताः स्म इंदीवरनीलशोभां रक्तांबरां रक्तसुगंधभूषाम् ॥ रक्ताननां रक्तविवीटिकां च श्रीरक्तदंतामनिशं भजामः ॥ ३ ॥ नारायणीं नारदसेवितां च दुःखापहां दनुजदैत्यविनाशिनीञ्च ॥ धन्यां च धन्यधनदादिसुसेवितां च श्रीकालिकां कनकचक्षुधरां भजामः ॥ ४ ॥ चंडाट्टहासकरिणीं करिचर्म्मवस्त्रां भीमां महादनुजभैरविकां महेशीम् ॥ कंकालजालविलसद्गृहभूषितांगीं नृमुंडमालविलसद्धृदयां भजामः ॥५॥ नेत्रत्रयां भगवतीं भवभाविनीं तां भूमाक्षिकां ज्वलितकांचनरूपनेत्रां॥ जिह्वाशतज्वलितसृक्किणिकां महेशीं नासापुटांतरमिलज्ज्व-

वसिष्ठजी बोले—दिव्य केदारमंडलमें मंदाकिनीके परतटके ऊपर सरस्वतीके सौम्य तटपै कालीतीर्थ कीर्त्तन कियागयाहै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! रक्तबीज दैत्यके वधकी अभिलाषा करनेवाले देवता वहां जाय परमात्माकी मायाकी स्तुति करनेलगे ॥ २ ॥ देवता बोले—नीलकमलकी सदृश शोभावाली, रक्तवस्त्रोंसे समलंकृत, रक्तवर्णकी सुगन्धिसे विभूषित हुई, जिसके रक्तवर्ण मुखमें लालवर्णकीही पानकी वीड़ी है और जिसके दांतभी लाल २ हैं ऐसी भगवतीकी हम उपासना करतेहैं ॥ ३ ॥ जो साक्षात् नरायणकी शक्ति हैं, नारदजीने जिनकी स्तुति करी है, जो दैत्य और दानवोंका विनाश करती अत एव दुःखोंका नाश करनेवाली हैं, कुबेर आदि जिनकी सेवा करतेह अतएव जो अत्यन्त प्रशंसित (धन्यवादार्ह) हैं, जिनके नेत्र सुवर्णकी सदृश दीप्तिमान् हैं ऐसी कालीका हम भजनकरते हैं ॥ ४ ॥ जिसका हास अत्यन्त उत्कट है, गजेन्द्रकी छालका जिसने वस्त्र पारिधान कियाहै, जिसका रूप भयानक और दैत्योंके लिये औरभी भयोत्पादक है, जो स्वयम् भैरविका और महेश्वरी है, नृकपालोंसे जिनका घर और अंग सुशोभित है जिन्होंने अपने हृदयमें मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण कररक्खी है ऐसी भगवतीकी हम उपसना करते हैं ॥ ५ ॥ जिन भगवतीके तीन नेत्र हैं, भक्तिभावसे जिनकी प्राप्ति होती है, प्रज्वलित सुवर्णकी समान जिनके भयंकर नेत्रहैं, जो लपलपाती हुई अपनी सैकडों जिह्वाओंसे ओष्ठोंको चाटती हैं और जिनके नासापुटमेंसे लपटे निकलतीहैं,

लनां भजामः ॥६॥ यस्या महेशहरिब्रह्मसुरेशकाद्याः कर्त्तुं स्तुतिं भगवति प्रभवो वयं न ॥ तां देवतां दनुजरक्तविलिप्तवक्त्रां स्मेराननां भवविमुक्तिकरां भजामः ॥७॥ स्त्रीरूपिभिः शिवगणैर्गगनावरूपैर्नृत्यद्भिरंब गिरिराजअधित्यकायाम् ॥ गायद्भिरेव भवतीं भवभूषणां तां श्रीदक्षिणां धनदधेनुमरं भजामः ॥ ८ ॥ शिवः परोऽपारगुणो निरात्मा निरंजनो यो निरुपद्रवश्च ॥ यदिच्छया सर्वमिदं चराचरं करोति तां देवनुतां भजामः॥९॥लक्ष्मीवपुर्धृतवतीं मुरनाशनस्य गेहे वपुर्धृतवतीं द्रुहिणस्य वाचम् ॥ श्रीपार्वतीति कथितां पुरनाशनस्य तां देवतां निखिलरूपधरां भजामः ॥१०॥ श्रीकामरूपनिलयां वरविंध्यवासां जालन्धरे ज्वलनरूपधरां भवानीम्॥कालीतिनामविभवां गिरिराजपीठे तां कालिकां कलिहरां सततं भजामः ॥११॥ कोटीनभासुरमहत्कनकप्रपीठे सिंहासने मणिगणांचितसर्वधाम्नि ॥ भास्वत्कलाधरवरांचितशेखरां

ऐसी भगवतीको हम भजतेहैं ॥ ६ ॥ हे भगवती ! जिसकी स्तुति करनेके लिये महेश्वर विष्णु ब्रह्मा और इन्द्रादिदेवता तथा हमभी समर्थ नहीं होसक्ते, दैत्योंके रक्तसे जिनका मुख लिप्त होरहाहै, स्मितमुखी और संसारबन्धनसे मुक्त करनेवाली भगवतीका हम भजन करतेहैं ॥ ७ ॥ स्त्रीरूपधारी शिवगणोंसे गिरिराजकी तराईकी भूमिमें गानकरके कामधेनुस्वरूपिणी भगवतीका हम भजन करतेहैं ॥ ८ ॥ परमेश्वर, अपार गुणशाली, निरंजन और निरात्मा और उपद्रवहीन साक्षात् शिव जिसकी इच्छासे चराचर जगत्‌की रचना करतेहैं, देवताओंके द्वारा स्तूयमान देवीको हम भजते हैं ॥ ९ ॥ जिन्होंने मुर दैत्यका वध करननेके लिये लक्ष्मीका देह धारण किया, और जिन्होंने हिमालयके घरमें पार्वतीका देह धारण किया, अनेक रूप धारिणी उस मायाको हम भजतेहैं ॥ १० ॥ जिनका कामरूपदेश और विन्ध्याचलमें निवास है, और जिन भवानीने जालन्धरमें ज्वालारूप धारण किया, और गिरिराज हिमालयके पीठपर जो कालीके नामसे विख्यात हैं, कलहका अपहरण करनेवाली ऐसी कालिकाको हम भजते हैं ॥ ११ ॥ कनकपीठमें जिनकी करोडों सूर्य्यकी समान कान्ति है, और जो सर्वतेजोमय एवम् मणिगणसमलंकृत सिंहासनके ऊपर विराजमान हैं, जिन्होंने अपने मस्तकके ऊपर प्रकाशित चन्द्रमाको धारण कियाहै, ऐसी देवपूजित नारायणशक्तिरूपिणी भगवतीको हमलोग

तां नारायणीं सुरवरार्चितकां भजामः ॥ १२ ॥ संसारसागरसुतारणपादपोतां भक्तार्त्तिनाशनधृतावतरां महेशीम् ॥ वेदांतशास्त्रपरिगम्यतरां भवानीं भावेन सेवनगमां सुतरां भजामः ॥ १३ ॥ देवि त्वया भगवति प्रलयांतकाले संमोह्यते हरिरसावुदधिं प्रसुप्तः ॥ तन्नाभिजातसरसीरुहजन्मनस्त्वां दुःखस्य नाशनकरीं भवतीं भजामः ॥ १४ ॥ भूयः पुरा भगवती भवतीह लोकान् दुर्भिक्षपीडिततराञ्छतवार्षिकीयम् ॥ दृष्ट्वा शतेन नयनांबुरुहां सुमातः सर्वान्हि रक्षितवतीं भवतीं भजामः ॥ १५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति स्तुता सा गिरिशस्य पत्नी ब्रह्मदिभिर्दैवगणैर्नतांसैः ॥ आविर्बभूवाथ हिमालयस्य श्रृंगे यथा प्रातरिनोवभासे ॥ १६ ॥ तेजोराशिं तं तु दृष्ट्वा तदानीं नेमुर्भूमौ भक्तियुक्ता नतास्मः ॥ वारंवारं रक्तबीजेन तप्ता दृष्ट्वा देवीं तोषमापुः शुभांगीम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा तान्वै भक्तियुक्तांस्तदार्त्तान्देवान्सर्वान् ब्रह्मविष्वादिकांश्च ॥ तुष्टोवाच दैत्यनाशस्य

भजते हैं ॥ १२ ॥ संसारसागरसे पार करनेके तईं जो साक्षात् जहाजकी सदृश हैं, जो महेश्वरी अपने भक्तोंकी विपत्तिका विनाश करती हैं, जिन भवानीके तत्त्वका ज्ञान वेदान्तशास्त्रके द्वारा होताहै, एवम् जिनकी यथार्थ सेवा भक्तिभावसे होतीहै हम उन्ही देवीका अतिशय भजन करते हैं ॥ १३ ॥ हे देवी ! हे भगवति ! प्रलयके अन्तसमयमें क्षीरसागरमें शयन करते नारायणको तुम्ही मोहित करती हो, और उनके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीके दुःखकाभी विनाश तुम्ही करती हो, हम तुम्हारा भजन करते हैं ॥ १४ ॥ प्रथम जब शतवार्षिक दुर्भिक्ष पडाथा उस समय तुमने दुर्भिक्षपीडित लोगोंको हे माता ! कृपापूरित सैंकडों नेत्रोंसे अवलोकन कर उनकी रक्षा करीथी ॥१५॥ वसिष्ठजी बोले—ब्रह्माआदि देवताओंके द्वारा जब महादेवपत्नीकी इसप्रकार स्तुति कीगई, तब वोह हिमालयके शिखरपर इसप्रकार प्रादुर्भूत हुई जैसे अरुणका उदय होताहै ॥ १६ ॥ उस तेजोराशिके दर्शन कर नम्रतासहित भक्तिभावपूर्वक देवताओंने भूमिमें उसे प्रणाम किया, और रक्तबीजके द्वारा सन्तप्त किये देवगणने दर्शन करके वार २ उस शुभांगीको सन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ दैत्यके द्वारा पीडित किये हुए, भक्तिभावसंपन्न ब्रह्मा विष्णु आदि उन देवताओंका अवलोकन करके, सन्तुष्ट हो राक्षसके निमित्त यों बोली

हेतुर्नो भेतव्यं दैत्यराजादिदानीम् ॥ १८ ॥ संतुष्टास्मि प्रेमतो भक्तितश्च स्तुत्या देवाश्चानया ध्यानमूर्त्या ॥ अस्मिन्स्थाने ये करिष्यंति पूजां स्नानं दानं स्तोत्रमेत्तच्च काले ॥ तेषां यद्यन्मानसे दैवतं स्यात्तत्सर्वे मे ते लभेयुः प्रसादात् ॥ १९ ॥ कालीतीर्थं नामतश्चेदमत्र तुष्टा वोहं मुक्तिदं भाग्यगम्यम् ॥ यूयं देवा निर्भया रक्तबीजात्स्वं स्वं स्थानं गच्छत ब्रह्मपूर्वाः ॥ २० ॥ कालेनाहं रक्तबीजं वधिष्ये धन्याश्चैवं देवतास्ते भवंतु ॥ कृत्वा चेदं भाषितं ते भवान्याः स्वं स्वं स्थानं कालमन्वेषयंतः ॥ २१ ॥ आगस्तस्याः कारितुं रक्तबीजाद्देवर्षिं ते नारदं प्राप्य प्रोचुः ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे श्रीकालीस्तोत्रं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

कि, अब तुम उस दैत्यराजसे मत डरो ॥ १८ ॥ हे देवगण ! मैं तुम्हारी इस भक्ति, प्रेम, स्तुति और ध्यानकी मूर्त्तिसे सन्तुष्ट हूं, जो व्यक्ति इसस्थानमें पूजा स्नान दान और स्तोत्रका पाठ करेंगे, उनके मनकी जो कुछ अभिलाषा होगी हमारी कृपासे सब कुछ परिपूर्ण होजायगी ॥ १९ ॥ यह क्षेत्र जहां मैं तुमसे सन्तुष्ट और प्रसन्न हुईहूं कालीतीर्थके नामसे विख्यात होगा, मुक्ति प्रदान करनेवाले इस क्षेत्रकी प्राप्ति बडे भाग्यसे होगी । और ब्रह्मा आदि तुम सब देवता रक्तबीजसे निर्भय हो अपने २ स्थानको चलेजाओ ॥ २० ॥ समय पाय मैं रक्तबीजका वध करूंगी, इसप्रकार सब देवता धन्य होंगे, भवानीके इस कथनको करके सब देवता समयकी प्रतीक्षाकरते अपने २ स्थानको चलेगये ॥ २१ ॥ एवम् रक्तबीजसे उस भगवतीका अपराध करानेके लिये देवताओंने नारदजीसे कहा ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः ८६.

वसिष्ठ उवाच ॥ ततो देवाः समागत्य नारदं जगदुर्मुनिम् ॥ दैवकार्य्यं कुरु प्राज्ञ गच्छ दानवमंदिरे ॥ १ ॥ कुर्य्याद्यथा महा-

वसिष्ठजी बोले—तब तौ देवताओंने नारदमुनिसे यों कहा, कि, हे प्राज्ञ ! दैत्यके घर जायकर देवकार्य्यका संपादन करो ॥ १ ॥ हे मुनिराज ! रक्तबीज दैत्यका वध करनेके लिये

देव्या अपराधं मुनीश्वर ॥ रक्तबीजवधार्थाय यतस्व मतिमुत्तमाम् ॥ २ ॥ इति तेषां तु विज्ञप्तिं श्रुत्वा मुनिवरस्तदा ॥ ययौ ह्याकाशमार्गेण जटामुकुटमंडितः ॥ ३ ॥ रक्तबीजपुरं रम्यं नानाकौतुकमंडितम् ॥ देवदानवगंधर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ४ ॥ विविधैरप्सरोभिश्च पन्नगैर्गुह्यकैस्तथा॥ सेवितं मुनिवर्य्यैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥ स्वर्णप्राकारवप्राढ्यं रथ्यापणविराजितम्॥ मणिप्रकरपुष्पाढ्यं पताकाध्वजमालिनम् ॥६॥ प्रसन्ननरनारीकं गवाक्षाट्टालकान्वितम्॥ सुमेरुशृंगसदृशैर्गृहैश्च परिशोभितम्॥७॥ ददर्श भगवान्विप्रवर्य्यो नारदनामकः ॥ ऐरावतो वासवस्य तथा चोच्चैःश्रवा हयः॥८॥पारिजातादयो वृक्षा अन्यद्वस्तु न किञ्चन ॥ अग्नेरजतशूलं च तथाग्नेयं च द्रव्यकम् ॥ ९ ॥ यमस्य महिषं चैव दंडशक्ती तथा प्रिये ॥ वरुणस्य तथा पाशः कच्छपश्च तथा हृतः ॥ १०॥ वायवीयं च कौबेरं ऐशं ब्राह्ममथापि वा ॥

ऐसी उत्तम मतिको उत्पन्न करो, जिससे कि, वोह राक्षस महादेवीके अपराधका आचरण करै ॥ २ ॥ जब मुनीश्वर नारदजीने उनकी ऐसी विज्ञप्तिको श्रवण किया तब जटानिर्मित मुकुटसे मण्डित हो आकाशमार्गसे उन्होंने यात्रा की ॥ ३ ॥ रक्तबीजका नगर अनेक प्रकारके कौतुकोंसे समलंकृत होनेके कारण बडा रमणीक था, देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर ॥ ४ ॥ विविधभांतिकी अप्सराएँ, नागगण और गुह्यक, श्रेष्ठ २ मुनीश्वर और सहस्रों ब्राह्मण इन सबके द्वारा वोह नगर भलीप्रकारसे व्याप्त था ॥ ५ ॥ उस नगरका सुवर्णनिर्मित परकोटा बनरहा था, सुन्दर गलियों और दुकानोंसे उसकी औरभी शोभा वृद्धिको प्राप्त हो रही थी, मणियोंके समुदाय और विविधप्रकारके पुष्पोंसे वोह नगरी भरपूरथी, ध्वजा और पताकाओंसे शोभायमान ॥ ६ ॥ प्रसन्नवदन नरनारियोंसे आकीर्ण, गवाक्ष (झरोखे) और अट्टालिका (अटारी) ओंसे व्याप्त, एवम् सुमेरु पर्वतके शिखरकी सदृश (ऊंचे २) घरोंसे वोह नगर सुशोभित था ॥ ७ ॥ ऐश्वर्यशाली विप्रवर नारदजीने उसनगरीमें ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा अश्व ॥ ८ ॥ पारिजात आदि वृक्ष येही सब कुछ देखा; और कोई वस्तु न देखी, एवं च अग्निका रजतमय त्रिशूलभी देखा ॥ ९ ॥ यमराजका भैंसा, और हे प्रिये ! दण्ड और शक्तिकाभी अवलोकन किया, वरुणका पाश और अपहरण किये कच्छपकोभी वहां देखा ॥१०॥ विशेष क्या ? अपने बलके द्वारा अपहरण करके लाईहुई वायु कुबेर शिव और

सर्वं ददर्श तत्रैव ह्याहृतं वै बलीयसा ॥ ११ ॥ आगतं नारदं दृष्ट्वा रक्तबीजो महासुरः ॥ उत्थाय कृतवान्सर्वं पाद्यमाचमनीयकम् ॥ १२ ॥ अर्घ्यं च विधिवद्दत्त्वा वेशयामास स्वासने उवाच ॥ प्रांजली राजा रक्तबीजो महासुरः ॥ १३ ॥ स्वागतं ते महाभाग कुशलं तव सुव्रत ॥ किमागमनकृत्यं ते धन्योस्मि तव दर्शनात् ॥ १४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ ब्रह्मलोकं गतः पूर्वं ततः कैलासमभ्यगाम् ॥ यानींद्रादिषु लोकेषु रत्नभूतानि दानव ॥ सर्वाणि तानि रत्नानि तव गेहे वसंति वै ॥ १५॥ सर्वाधिकं तथैश्वर्य्यं दृष्टं तव महामते ॥ त्वादृशो न बभूवापि नास्ति नो भविताऽसुरः ॥ १६ ॥ वशीकृता त्रिलोकी वै येन दानवसत्तम ॥ वरं चैव तथा प्राप्तं सर्वेभ्योऽभयमेव च ॥ १७ ॥ तपश्चैव तथा तप्तं त्वया सर्वोत्तमं प्रभो ॥ १८ ॥ ॥ रक्तबीज उवाच ॥ ॥ भगवन्मुनिशार्दूल सर्वगोसि यतो मुने ॥ पृच्छामि त्वां महाभाग तद्वदस्व मम प्रभो ॥ १९ ॥ क्वचिद्दृष्टं त्वया विप्र जनितं यन्मया

ब्रह्मा इनसबहीकी वस्तुएँ वहां देखी ॥ ११ ॥ जब रक्तबीज दैत्यने नारदजी महाराजको आते देखा तब उसने उठकर पाद्य और आचमनीय आदि समस्त शिष्टाचारका आचरण किया ॥ १२॥ विधिपूर्वक अर्घ्यप्रदान करके सुन्दर आसनके ऊपर उन्हें बैठाया, फिर वोह महाअसुर रक्तबीज हाथ जोड नारदजीसे यों बोला ॥ १३ ॥ उत्तम व्रतधारी हे महाभाग !!! आप आये तौ भली प्रकार, आपके यहां है तौ सब कुशल ! आपके यहां पधारने का क्या कार्य्य है? आपके दर्शन करनेसे मैं धन्य होगया हूं ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा—हे दानव ! मैं प्रथम ब्रह्मलोकमें गया, फिर कैलासपर्वतके ऊपर गया, एवं च अन्यान्य इन्द्रादिलोकोंमेंभी जहां २ मैं गया वहां जो रत्नस्वरूप उत्तमोत्तम वस्तुएँ थीं, वे सभी तुम्हारे राजभवनमें विद्यमान हैं॥ १५॥ हे महामतिमान्! तुम्हारा ऐश्वर्य्य भी मैंने सबसेही अधिक देखा, हे असुर! तुम्हारी सदृश न तौ कोई है, कोई प्रथम न हुआ और न आगेको होगा ॥ १६ ॥ हे दैत्यवर ! तुमने त्रिलोकीको अपने वशीभूत करलियाहै, एवं सबसे अभयरूप उत्तम वरका तुम्हें लाभ हुआ है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! तुमने तपकाभी ऐसा आचरण कियाहै जो सभी (तपस्वियों) के तपसे उत्तम है ॥ १८ ॥ रक्तबीज बोला—हे मुने ! आप ऐश्वर्यशाली और समस्त मुनियोंमें शार्दूलवत् प्रभावशाली हैं, अथ च आपकी सर्वत्र गति है, अतएव हे महाभाग ! प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछता हूं आप उसका वर्णन करैं ॥ १९ ॥ जैसा हमारा बनाया नगर है,

पुरम् ॥ यो मदाज्ञाकरो नास्ति देवो वा दानवोपि वा ॥ २० ॥ एतादृक् च तथैश्वर्यं मदीयं वै यथा स्थितम् ॥ तन्मे वद महाभाग सर्वज्ञोसि महामुने ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ सम्यक्पृष्टं त्वया साधो गतः सर्वत्र वै ह्यहम् ॥ त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे देवा वाप्यथ दानवाः ॥२२॥ परमेकत्र कैलासे शिवोस्ति परदुर्ज्जयः ॥ किं वदामिं तदैश्वर्य्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २३ ॥ सहस्रयोजनायामं कल्पपादपकाननम् ॥ यत्र सर्वाधिका तन्वी रत्नभूता त्रिलोकके ॥ २४ ॥ तस्या धैर्य्यस्य माहात्म्यादजेयः स सुरासुरैः ॥ यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥२५॥रक्तबीज उवाच ॥ ॥ कथं शिवो महाभाग ह्यजेयोस्ति सुरासुरैः ॥ किं कारणं विप्रवर्य्य तद्वदस्व महामते ॥ २६ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ऊर्द्धरेता यतो देवो यतो नास्ति त्रिलोकके॥ अत एव स दुर्जेयः ससुरासुरपन्नगैः ॥ २७ ॥ तं चेत्ते जेतुमिच्छास्ति पूर्वं तद्धैर्य्यनाशने ॥ कुरु बुद्धिं महाभाग सर्वं ते संभविष्यति ॥ २८ ॥

(ऐसा अन्यत्रभी कोई पुर है ?) अथवा जो हमारी आज्ञाका पालन न करताहो ऐसा कोई देव दानवभी कहीं विद्यमान है? ॥ २० ॥ अथवा जैसा हमारा ऐश्वर्य है (ऐसाभी और किसीका है वा नहीं ?) हे महाभाग ! यह सब कुछ आप हमारे प्रति वर्णन करिये, क्यों कि आप सर्वज्ञ हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले–अवश्यही मैंने सब स्थानोंकी यात्रा की हैं अतएव तुमने हमसे यह भला प्रश्न किया, परन्तु देवता क्या और दानव क्या ? सभी तुम्हारी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ २२॥ किन्तु केवल एकस्थानमें कैलासपर्वतके ऊपर शत्रुओंके द्वारा दुर्जेय एक शिव निवास करतेहैं, मैं उनके ऐश्वर्यका क्या वर्णन करूं वोह लोक त्रिलोकहीमें दुर्लभ है ॥२३॥ और वहां सहस्र योजन (अर्थात् चार सहस्र कोस) परिमित कल्पवृक्षोंका वन है, वहाँ एक ऐसी तन्वंगी अबला विद्यमान है जो त्रिलोकीमें रत्नस्वरूप है ॥ २४ ॥ उसीके धैर्य्यके माहात्म्यके कारण देव दानव कोईभी महादेवजी का विजय नहीं करसक्ते । और उसीकी इच्छासे इस चराचर जगत्का निर्माण होता है ॥ २५ ॥ रक्तबीज बोला–हे नारद ! ऐसा क्या कारण है ! जो महादेव देवता और राक्षस सभीके द्वारा अजेय हैं ! हे महामुने ! जो कुछ कारण हो सो मुझसे कहिये ॥ २६ ॥ नारदजी बोले त्रिलोकीमें उससे ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) कोई नहीं है अतएव देवता राक्षस और नाग कोईभी उसका विजय नहीं करसक्ते ॥ २७ ॥ उनका विजय करनेकी यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तौ सबसे प्रथम

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति तस्य मुनेर्वाक्यं श्रुत्वा दनुसुतस्तदा ॥ चकार विजये बुद्धिं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ २९ ॥ नारदोपि ययौ स्वर्गं दानवैः प्रतिपूजितः ॥ स्त्रीवेषं च तदा कृत्वा रक्तबीजो महासुरः ॥ ३० ॥ त्रैलोक्यदुर्लभं रूपं कृत्वा रुद्रसमीपतः ॥ ययौ वेगेन कैलासे तन्मनोमोहनाय वै ॥३१॥ दृष्ट्वा शिवश्च तां नारीं रूपयौवनशालिनीम् ॥ पार्वतीरूपिणीं तन्वीं किंचिन्मोहवशं गतः ॥ ३२ ॥ तावत्पार्वत्यपि काचिदागता शिवसन्निधिम् ॥ तां च दृष्ट्वा स्ववामांगीं मनोद्वैविध्यमागतम् ॥ ॥ ३३ ॥ विचार्य्य दानवं तं तु शशाप च महासुरम् ॥ पार्वतीछद्मना दुष्ट यन्मां मोहितुमागतः ॥ हनिष्यति ततस्त्वां हि पार्वत्येव महेश्वरी ॥ ३४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहेल्य हि च तद्वचः । ययौ स्वीये तथा धाम्नि मंत्रिवर्गेण संमतः॥३५॥ मंत्रयामास दनुजो महादेवजयाय च॥ कथं सा पार्वती मह्यं भवेद्रागयुतासुराः ॥ ३६ ॥ वामदेवजयेनेहं बहुसंपाद्यते मम ॥

उनके धैर्य्यका विनाश करनेमें अपनी बुद्धि लगाओ ! तौ सब कुछ होसकैगा ॥ २८ ॥ वसिष्ठजी बोले--दनुके पुत्र रक्तबीजने जब नारद मुनिके ऐसे वाक्य सुने तौ परमेश्वर स्वरूप महादेवजीके विजयका उसने विचार किया ॥ २९ ॥ दानवोंके द्वारा पूजित होकर नारदजी महाराजभी स्वर्गको चलेगये तब उस महादैत्य रक्तबीजने स्त्रीका वेष बनाया ॥ ३० ॥ वह रूप ऐसा अद्भुत था जो त्रिलोकी भरमें अद्भुत समझा जाय, निदान महादेवजीके मनको मोहित करनेकी कामनासे उक्त दैत्य कैलासपर्वतके ऊपर महादेवजीके निकट गया ॥ ३१ ॥ जब महादेवजी पार्वतीकी समान रूप यौवनसे सम्पन्न सूक्ष्मांगी उस स्त्रीको देखा तब वे कुछ एक मोहको प्राप्त होगये ॥ ३२ ॥ तभी पार्वतीभी महादेवजीके निकट आई उन अपनी वामांगिनीको देख उनके मनमें द्विविधा उत्पन्न होगई ॥ ३३ ॥ विचारकरनेसे जब महादेवजीने उसे दैत्य जान लिया तब इसे यह शाप दिया, हे दुष्ट ! क्योंकि तू कपटसे पार्वतीका वेष बनाय मुझे छलनेके लिये आया है, अत एव महेश्वरी पार्वती ही तेरा वध करैगीं ॥ ३४ ॥ उनके उक्त वाक्योंको श्रवणकर और उनका निरादर करके चलागया और वोह राक्षस अपने मन्त्रिवर्गके साथ महादेवको विजय करनेके लिये मन्त्रणा करनेलगा और कहनेलगा कि हे असुरो ! वोह पार्वती मेरे प्रति अनुरागवती होसकैंगी ? ॥३५॥ ३६ ॥ महादेवका विजय करलेनेपर हमारा बहुत कुछ हित

आकर्षणीया प्रथमं गृहिणी प्राणवल्लभा ॥ ३७ ॥ धैर्य्यनाशश्च तस्यापि स्वयमेव भविष्यति ॥ स्त्रिया मे मरणं केन भाव्यते तत्त्वदर्शिना ॥३८॥ इंद्राद्याः सकला देवा नासन्यस्य रणांगणे ॥ संमुखं किं पुनः स्त्रीयं भ्रांत्या तेन प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥ गच्छध्वं यत्र सा देवी संस्थिता परसुंदरी ॥ साम्ना नेया प्रथमतो नो चेदाकृष्य सत्वरम् ॥ ४० ॥ ततस्तमपि कैलासे शिवमेकाकिनं वयम् ॥ जेष्यामो धर्मनिर्मुक्तं ततः श्रेयो लभामहे ॥ ४१ ॥ पार्वतीविरहेणासौ निर्विचेष्टो भविष्यति ॥ ४२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इत्याज्ञप्ता दानवेन रक्तबीजेन तेऽसुराः ॥ धूम्राक्षचंडमुंडाद्या महत्सैन्येन वारिताः ॥ ४३ ॥ ययुः कैलासभवनं यत्र देवी प्रतिष्ठिता ॥ कैलासशृंगमासीनां नानालंकारदीपिताम् ॥ ४४ ॥ शतचंद्रसमोद्योतां मोहयंतीं जगत्त्रयम् ॥ ते तु दृष्ट्वा महादेवीं निपेतुर्धरणीतले ॥ ४५ ॥ मोहस्य वशमापन्नाश्चिरात्संज्ञां प्रलभ्य च ॥ ऊचुस्त्राससमायुक्ताः प्रभोर्वचनगौर-

साधन होसक्ता है, किन्तु सबसे प्रथम उनकी प्राणप्रिया पत्नीका आकर्षण करना कर्त्तव्य है ॥३७॥ ऐसा होनेसे उनके धैर्यका नाशभी आपसे आपही होजायगा, अथ च स्त्रीके द्वारा हमारे वधकी संभावना कौन विचारशील करसक्ता है ? ॥ ३८ ॥ इन्द्र आदि देवता भी रणभूमिमें जिसके समक्ष नहीं टहरसक्ते, उसके सन्मुख स्त्रीकी स्थिति कैसे हो सक्ती है ? (महादेवने) स्त्रीके द्वारा वध तौ भ्रान्तिहीसे कह दिया ॥ ३९ ॥ अतएव जहां वोह परम सुन्दरी विद्यमान है तुम वहां जाओ, प्रथम तौ सीधेपनहीसे और यदि न माने तौ घसीटकर उसे शीघ्रही लेआओ ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर कैलास पर्वतके ऊपर अकेले बैठे उस धर्महीन महादेवको भी हम जीतलेंगे, तब हमारा कल्याण होगा ॥ ४१ ॥ कारण कि–पार्वतीके विरह (वियोग) से महादेवकी सभी चेष्टा विनष्ट होजायगी ॥ ४२ ॥ वसिष्ठजी बोले–जब रक्तबीजने उन असुरोंको यह आज्ञा दी तब धूम्राक्ष और चण्ड मुंड आदि अपनी सेनाको ले २ कर ॥ ४३ ॥ जहां कैलासपर्वतके ऊपर देवीजी प्रतिष्ठित थीं वहां गये, वहां भगवती कैलास पर्वतके शिखरके ऊपर विराजमान और अनेक प्रकारके अलंकारोंसे प्रदीप्त थीं ॥ ४४ ॥ सैकडों चन्द्रमाकी सदृश उनकी द्युति थी अतएव वे तीनों जगत्को मोहित करती थीं, ऐसी महादेवीको देखकर वे असुर भूमिमें निपतित होगये ॥ ४५ ॥ प्रथम तौ मोहित होगये, फिर बहुत देरसें उन्हें चैतन्यलाभ हुआ, अथ च अपने स्वामीके

वात् ॥ ४६ ॥ ऐंद्रे याम्ये वारुणे च पाताले ब्रह्मलोकके ॥ न दृष्टा त्वादृशी नारी देवी वा मानवी हि वा ॥ ४७ ॥ धिक्कर्म्मणे विधेर्देवि या त्वं विपिनसंगता ॥ निर्द्धनाय महेशाय व्याघ्रचर्मांम्बराय च ॥ ४८ ॥ भूतवेतालयुक्ताय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥ भस्मप्रलिप्तदेहाय नकुलाय कपालिने ॥ ४९ ॥ भिक्षाशिने करालाय त्रिनेत्राय वराय च ॥ एकाकिने हि जटिने नरमुंडीयमालिने ॥ ५० ॥ दत्ता त्वं त्रिषु लोकेषु सुंदरी भवती तथा ॥ रक्तबीजो महाराजस्त्वामिच्छति त्रिलोकपः ॥ ५१ ॥ इंद्राद्या लोकपालाश्च करदास्तस्य सर्वतः ॥ धन्यः स एव लोकेषु गीयते देवदानवैः ॥ ॥ ५२ ॥ त्वयि प्रेम परं चास्ति रक्तबीजस्य नित्यशः ॥ यदुक्तं प्रांजलिर्भूत्वा महाराजेन तच्छृणु ॥ ५३ ॥ त्रैलोक्यमखिलं चेदं सर्वे वै देवदानवाः ॥ मद्वशे संति संहृष्टाः करदा मम सांप्रतम् ॥ ॥ ५४ ॥ रत्नानि यानि देवानां तानि मे संति सुन्दरि ॥ नागकन्या यक्षकन्या देवकन्यास्तथैव च ॥ तासां त्वमुत्तमा देवि

वाक्योंके गौरववशात् डरते २ ये वाक्य बोले ॥ ४६ ॥ इन्द्र लोक, यमलोक, वरुणलोक, पाताल और ब्रह्मलोक, इनमें देवी अथवा मानुषी कोई भी स्त्री तुम्हारी सदृश नहीं देखी ॥ ४७ ॥ हे देवि! विधाताके कर्मको धिक्कार है जो तुम्हे निर्धन, व्याघ्रचर्मधारी, भूतवेतालोंसे परिवृत, सर्पोका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, जिनके देहमें भस्म लिप्त है, जिनका कोई कुल नहीं है, जिन्होंने कपाल माला धारण की है, जो भिक्षा मांगकर भोजन करते हैं, जिनके तीननेत्र अतएव कराल आकृतिहै, जो जटाधारी और नरकपालकी माला धारण करनेवाले हैं, और जो सदैव एकान्तमें निवास करते हैं ऐसे महादेव वरको ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तुम जैसी सुन्दरी पत्नी प्रदान करी है, अतएव हे महादेवी ! त्रिलोकीका पालन करनेवाले रक्तबीज तुम्हैं चाहते हैं ॥ ५१ ॥ इन्द्र आदि देवगणभी उसे कर प्रदान करते हैं, विशेष क्या कहैं त्रिलोकीमें उसीको धन्य है. कारण कि–देवता और दानव सभी उसका गान करते हैं ॥ ५२ ॥ रक्तबीजका तुम्हारे प्रति अधिक प्रेम है अतएव उसने बद्धांजलि हो जो कहा है उन वाक्योंको श्रवण करो ॥ ५३ ॥ त्रिलोकी और सब देवदानव प्रसन्नता पूर्वक मेरे वशमें हैं अथ च ये सभी मुझे करदेते हैं ॥ ५४ ॥ हे सुन्दरी ! देवताओंके जितने रत्नहैं वे सब, देवता, नाग तथा यक्षोंकी कन्या हैं ये सब मेरे यहां हैं,

भवितासि न संशयः ॥ ९५ ॥ योगिनं तं परित्यज्य समागच्छ ममांतिके ॥ एतद्रूपस्य ते देवि साफल्यं संभविष्याति ॥ ९६ ॥ जन्मनश्चैव साफल्यं तव देवि भविष्यति ॥ इति निश्चित्य भो देवि रक्तबीजस्य धीमतः ॥ वचनं कुरु कल्याणि भव कल्याणिनी शुभा ॥ ९७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां विहस्य च पुनःपुनः ॥ प्रकाशयंती बहुलं गिरिगह्वरकाननम् ॥ ९८ ॥ उवाच गतसंत्रासा चंडमुंडपुरोगमान् ॥ क्रुद्धेन मनसा चैव मदसंरक्तलोचना ॥ ९९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ रेरे दैत्या दुराचारा दुर्म्मदाश्च विहिंसकाः॥मत्त एव हि युष्माकं रक्तबीजानुयायिनाम् ॥ ६० ॥ रक्तबीजस्य वै शीघ्रं वधो हि प्रभविष्यति ॥ शिवा मे भवतामस्रं पास्यन्ति च समुत्सुकाः ॥ ६१ ॥ दानवा ऊचुः ॥ ॥ साबलेया च तरुणि मदमत्तासि भामिनि॥ निःशंकं वदसि प्रौढं यथा वै प्राकृतं जनम् ॥६२॥ एवं मा वद सर्वेषां रक्तबीजं प्रभुं क्वचित ॥ इन्द्रादयो लोकपाला येनैकेन

हे देवि ! इन सबमें तुम्ही सर्वोत्तम बनोगी इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ अत एव उस योगीका परित्याग करके हमारे निकट आओ हे देवी ! तभी तुम्हारा यह सुन्दररूप सफल होगा ॥ ९६ ॥ और हे देवी ! तभी तुम्हारा जन्मभी सफल होगा, अपने चित्तमें ऐसा दृढ निश्चय करके हे देवी ! बुद्धिमान् रक्तबीजके वाक्योंको स्वीकार करो, तब हे कल्याणमूर्ति ! तभी तुम कल्याणी और शुभ होओगी ॥ ९७ ॥ वसिष्ठजी बोले—उनके ये वाक्य श्रवणकर भगवती बार २ उपहास करके पर्वतकी कन्दराओंको प्रकाशित करने लगी ॥ ९८ ॥ फिर मदसे अपने नेत्रोंको लाल २ बनाय मनमें क्रोधित हो निडरता पूर्वक चण्ड मुण्ड आदि दैत्योंसे यौं कहने लगी ॥ ९९ ॥ देवीजी बोलीं—अरे दुराचारी दैत्यों ! तुम लोग बडे अभिमानी और हत्यारे हो, स्मरण रहै तुम रक्तबीजके अनुचरोंका मेरेही हाथसे ॥ ६० ॥ वध होगा और रक्तबीजकाभी वध होगा । एवं च हमारी पिशाचनियें अतिशय उत्कंठा पूर्वक तुम्हारे रुधिरको पान करेंगी ॥ ६१ ॥ दानवोंने कहा—हे तरुणि ! स्त्री ! ! ! तू अज्ञानवशात् मदसे उन्मत्त होरही है अत एव निःशंकतासे ऐसा कहती है जैसा साधारण व्यक्तिकेलिये कहते हैं ॥ ६२ ॥ सबके अधीश्वर रक्तबीजके प्रति तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि—उस अकेलेहीने इन्द्रादि लोकपालोंको पराजित

पराजिताः ॥ ६३ ॥ तस्य त्वं सम्मुखे स्थातुं स्त्री त्वं किमु भविष्यसि ॥ अबलासि परं देवि सौकुमार्य्ययुता परा ॥ ६४ ॥ तथा विधेयं हि यथा क्रुद्धेन्नो रक्तबीजकः ॥ नो चेत्त्वां शुभसर्वांगीं बद्धा केशेषु सत्वरम् ॥ ६५॥ बलात्कारेण चाकृष्य नयिष्यत्येव दानवः ॥ सामपूर्वं भजस्वाद्य रक्तबीजं महाबलम् ॥ ६६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति तन्निष्ठुरं श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचना ॥ विज्ञप्तिं चैव देवानां स्मृत्वा वधपरायणा ॥ ६७ ॥ हुंकारेण बलं तद्वै दाहयामास च क्षणात् ॥ दग्धे सैन्ये ततो धूम्रलोचनाद्यास्तु दानवाः ॥ परिघायुधनिस्त्रिंशैर्ववृषुर्जगदंबिकाम् ॥ ६८ ॥ महामेघा यथा काले पृथिवीं वरवर्णिनि ॥शस्त्राण्यस्त्राणि तेषां वै वारयामास हुंकृतैः ॥६९॥ भस्मीभूतानि सर्वत्र पेतुर्वै धरणीतले ॥ केचिद्वृक्षान्पर्वतांश्च प्रस्तरान्पर्वतोपमान् ॥ ववृषुः शतशस्तत्र क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥७०॥ कृशा प्रत्यक्षधमनी भीमनादा करालिका ॥ कालांजनचयाभासा भैरवी कालिकापरा ॥ ७१ ॥

करदियाहै ॥ ६३ ॥ उसके समक्ष भला तू अबला किसप्रकार ठहर सकेगी? क्योंकि हे देवि ! तुम स्त्री हो और तुम्हारा सुकुमार अंग है ॥ ६४ ॥ तुम्हैं ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे कि रक्तबीज क्रोधित न होजाय अन्यथा तुम शुभांगीको बांधके और केश पकडकर ॥ ६५ ॥ वोह दानव बरजोरी खैंचकर तुम्हैं लेजायगा, अत एव तुम्हैं चाहिये कि प्रभूतबलशाली रक्तबीजकी सेवाको सीधेपनसे ही स्वीकार करलो ॥ ६६ ॥वसिष्ठजी बोले—उनके ये कठोर वाक्य श्रवण करनेसे भगवतीके नेत्र मारे क्रोधके लाल २ होगये, और वे देवताओंकी प्रार्थनाका स्मरण करके दानवोंका वध करनेके लिये उद्यत होगईं ॥ ६७ ॥ उस समय देवीने केवल हुंकारमात्रहीसे उस सेनाको तत्काल भस्म करडाला। जब उनकी सेना दग्ध होगई तो धूम्राक्षःआदि दैत्यगण जगजननी देवीके ऊपर तीक्ष्ण आयुधोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६८ ॥ जैसे वर्षाकालमें बडे २ मेघ वर्षा करते हैं ऐसेही आयुधोंकी वर्षा हुई, किन्तु भगवतीके हुंकारको सुनकर वे सभी अस्त्र शस्त्र॥६९॥भस्म हो भूमिके ऊपर सर्वत्र निपतित होगये। राक्षस लोग क्रोधसे अपने नेत्रोंको रक्तवर्ण बनाकर कोई वृक्ष कोई पर्वत और कोई पर्वतोंकी सदृश बडे २ पाषाणोंकी वर्षा करने लगे ॥७०॥ जिनका अंग कृशहै जिनका भयानक नाद और कराल आकृति है एवं जिन भैरवी कालिकाकी आभा काले अंजनके चयकी

खट्वांगवरहस्ता च नरमुंडविभूषणा ॥ खादंती च करैकेण हस्तिनं महिषं तथा ॥ ७२ ॥ स्रवदस्रेभचर्म्मा च जिह्वाललनभीषणा ॥ महानादान् प्रमुंचंती योगिनीकोटिसंवृता ॥ ७३ ॥ मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा ॥ उल्का सिद्धा संकटा च ह्यष्टौ योगिनिवृंदपाः ॥ ७४ ॥ कपालान्यस्रपूर्णानि गृहीत्वा ननृतुश्च ताः ॥ शंखनादान्प्रमुंचंत्यो भेरीपणवनिःस्वनान्॥७५॥ इति तद्भीषणं सैन्यं दृष्ट्वा कालीमयं तथा ॥ सशंशू रक्तबीजाय सर्वं वृत्तं वरानने ॥ रक्तबीजोपि तच्छ्रुत्वा महाक्रोधवशं गतः ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे कालिकोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सदृश है ॥ ७१ ॥ जिनके हाथमें खट्वांगवर हैं, जिन्होंने नरमुण्डोंका आभूषण धारण किया है। जो एक हाथसे महिष और हस्तीका भक्षण करती है ॥ ७२ ॥ जिन्होंने हस्तीके चर्म का वस्त्र धारण किया है, जिनकी भीषण जिह्वा लपलपारही है, जो प्रभूत शब्दसे गर्जना कररही हैं, एव जिनके साथ करोड़ों योगिनीयें हैं ॥ ७३ ॥ मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, तथा भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा ये आठ योगिनियोंके वृन्दकी पालनेवाली हैं ॥ ७४ ॥ ए सब रुधिरपूर्ण नरकपालोंको ले २ कर नृत्य करने लगीं, शंख, भेरी और प्रणवके शब्द करनेलगीं ॥ ७५ ॥ कालीकी ऐसी भयानक सेनाका अवलोकन कर हे वरानने ! रक्तबीजसे उन्होंने सब कुछ वृत्तान्त कह सुनाया ॥७६॥ जब रक्तबीजने यह वृत्तान्त सुना तो वोह अत्यन्तही क्रोधके वशीभूत होगया॥७७॥

इति स्कांदे श्रीकेदारखंडे भाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७.

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ मंत्रिवर्य्यान् समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ रक्तबीजो रक्तनेत्रः संदष्टदशनच्छदः ॥ १ ॥ स्त्रीभ्य एते दुरात्मानः पलायात्र समागताः॥नयध्वं निगडैर्बद्ध्वा शीघ्रं कारागृहेषु च॥२॥

वसिष्ठजी बोले—रक्तबीजके नेत्र रक्तवर्ण होगये और वोह अपने ओष्ठोंको चाब २ कर अपने सब-श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाय यों कहने लगा ॥ १ ॥ ये दुराचारी दैत्य ! स्त्रीके सकाशसे भागकर यह

इति तच्छासनं श्रुत्वा ह्युग्रदंडस्य भूपतेः ॥ सर्वे प्रांजलयः प्रोचुर्वेपमाना वरानने ॥ ३ ॥ नास्माभिस्तद्भयादत्र ह्यागतं तव सन्निधिम् ॥ किं तु विज्ञापनार्थाय भवंतं दनुजाधिपम् ॥ ४ ॥ सामपूर्वं महाराज नायाता तव मंदिरे ॥ निर्दग्धं बलमस्माकं युद्धाय च समागता ॥ ५ ॥ मारयित्वाथ वा तां वै जीवंतीं वा तवांतिके ॥ नयामो दनुशार्दूल त्वं जेतासि सुवर्चसा ॥ ६ ॥ अस्माकमेकस्तां देव बद्ध्वानयतु किं भवान् ॥ त्वत्प्रसादाद्वयं सर्वे त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७॥ न पश्यामो महाभाग प्रतियोद्धारमात्मना ॥ किमु स्त्रीयं महाभाग संयुगे स्थास्यति क्वचित ॥८॥ केशेष्वाकृष्य बध्वा वा क्षणादत्र नयामहे ॥ संदेहो वै न कर्त्तव्यो मा खिदो दनुजाधिप ॥९॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा रक्तबीजो महाऽसुरः ॥ प्रहृष्टचेताः सहसा जगाद दनुजान्प्रिये ॥ १० ॥ भोभो धूम्राक्ष चंडाद्या यदि प्रियचिकीर्षवः ॥ गच्छध्वं यत्र सा देवी

आये हैं, अत एव इन्हें बेड़ियोंसे बांधकर शीघ्रही कारागारमें लेजाओ ॥ २ ॥ इस प्रकार उग्रदण्ड देनेवाली राजाकी आज्ञाको सुनकर हे सुमुखि ! वे सब दैत्य थर २ कांपते हुए हाथ जोड़ यों बोले ॥ ३ ॥ सुनो दैत्यराज ! हमलोग उसके भयसे भागकर आपके निकट नहीं आये हैं, किन्तु आपसे प्रार्थना करनेको आये हैं ॥ ४ ॥ कि–वह देवी सीधी तरह समझाने बुझानेसे आपके मन्दिरमें नहीं आती है, किन्तु जब वह युद्ध करनेके लिये आई तब हमारी सेना भस्म होगई ॥ ५ ॥ हे दैत्य शार्दूल ! उसे मारकर अथवा जीति हुईही को हम आपके पास ले आवें, तब अपने तेजसे आपही उसका विजय करले ॥६॥ आप क्या किन्तु हममेंसे एकही कोई आपके प्रतापसे उसे वध करला सकता है ? आपके प्रतापसे हमलोग त्रिलोकीके बीच चराचरमें ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! किसीको ऐसा नहीं पाते जो हमसे युद्ध कर सकै, तो, भला हे महाभाग ! स्त्री जाति संग्राममें कैसे उपस्थित होसकैगी ॥ ८ ॥ बाल पकड़कर अथवा बधकरके हम छिनभरमें उसे यहां ले आवें गे हे दैत्यराज ! आप किसी प्रकारका सन्देह करके खेद न मानैं ॥ ९ ॥ रक्तबीज महादैत्यने जब उनका ऐसा सम्भाषण सुना, तब हे प्रिये ! वोह प्रसन्नमन हो अपनी दैत्यसेनाओंसे यों कहनेलगा ॥ १० ॥ अरे धूम्राक्ष और चण्डाक्ष आदि दैत्यो ! यदि हमारा प्रिय साधन करनेकी तुम्हारी इच्छा

योगिनीगणसंवृता ॥ ११ ॥ तत्र गत्वा च तां बद्ध्वा शीघ्रमत्र महासुराः ॥ नयध्वं यदि साम्ना वै तथा कुरुत चाथ वा ॥१२॥ एवं श्रुत्वा तदाज्ञप्तं रक्तबीजस्य मत्प्रिये ॥ धूम्राक्षचंडमुंडाद्याः संदष्टदशनच्छदाः॥ ययुर्यथा वह्निशिखां पतंगा इव सर्वतः॥१३॥ सप्तकोटयो दानवानां कैलासेथ समाययुः॥ भीमनादान्प्रकुर्वन्तो दिशो दश महाभटाः॥१४॥आरुह्य गिरिशृंगाणि समुत्पाद्य तरूंस्तथा॥आययुः क्रमशस्तत्र यत्र देवी समास्थिता॥१५॥हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे ददृशुर्गिरिकन्यकाम् ॥ योगिनीशतकोटीभिरावृतां सुमहाप्रभाम् ॥ १६ ॥ स्तूयमानां मुनिवरैर्देवैर्यक्षैः सकिन्नरैः ॥ अप्सरोभिः समाकीर्णां दीपस्य कलिकामिव ॥ १७ ॥ तां दृष्ट्वा सहसा दूरात्प्रोचुर्विगतबुद्धयः ॥ रेरे देवि महावीर्य्यो रक्तबीजो भयंकरः॥ ॥ १८ ॥ देवानां दानवानां च तथा गंधर्व्वरक्षसाम् ॥ जेता वै शत्रुशैन्यानां क्रोधस्य वशमागतः ॥ १९ ॥ हनिष्यत्येव त्वां दुष्टां नो चेत्तं भज सत्वरम् ॥ यासां त्वं बलमाश्रित्य निश्चितासि

है तो तुम वहां जाओ, जहां योगिनियोंके समुदायसे आवृत हुई वोही देवी उपस्थित है ॥ ११ ॥ वहांजाय उसे बांधकर हे दैत्यों!उसे यहां ले आओ,और यदि सन्धिहीसे आजाय तौ ऐसा भी न करना ॥१२॥ सुनो हमारी प्यारी ! रक्तबीजकी ऐसी आज्ञा श्रवणकर धूम्राक्ष और चण्ड मुण्ड आदिदैत्य अपने २ ओष्ठोंको काटने लगे, और इस प्रकार जाने लगे जैसे चारों ओरसे पतंग अग्नि शिखाके ऊपरको जाते हैं॥१३॥सात करोड़ महावीर दैत्यगण भयंकर गर्जन करते दशोंदिशासे कैलासपर्वतके ऊपर गये॥१४॥पर्वतोंके शिखरोंके ऊपर आरूढ हो और वृक्षोंको उखाड़ २ कर वहां आय उपस्थित हुए जहां भगवती विराजमान होरहीथी॥१५॥महा प्रभावती गिरिराज कुमारीको हिमालयके दक्षिण पार्श्वमें देखा सैकडों करोड़ योगिनियें उन्हें घेरहीं थीं॥१६॥ बडे २ ऋषि,मुनि, देवता और यक्षकिन्नरोंके समाज उनकी स्तुति कर रहे थे, अप्सरा गण उन्हे घेर रहे थे, और दीप शिखाकी समान उनकी कान्ति थी ॥ १७॥ उन्हें दूरसे देखतेही दैत्योंकी बुद्धि नष्ट होगई और वे यों कहनेलगे,–अरी, देवी ! जो रक्तबीज अत्यन्तही भयंकर है ॥ १८ ॥ जिसने देवता, दानव, गन्धर्व, और राक्षस इन सबहीका विजय करलिया है, वही संप्रति क्रोधित हुआ है ॥ १९ ॥ अत एव या तौ तुम उसकी सेवा स्वीकार करो, अन्यथा तुझ दुष्टाको वोह मारडालेगा । सम्प्रति जिनके

हि साम्प्रतम् ॥२०॥ पश्यंत्यास्ते क्षणादेता वातेनाभ्रगणा यथा ॥ क्षयं खलु गमिष्यंति त्वं च केशेषु सत्वरम् ॥ बद्धा गमिष्यसे नूनं रक्तबीजस्य सन्निधिम् ॥२१॥ इति श्रुत्वा बृंहितं च दानवेभ्यो महेश्वरी ॥ नेत्रसंज्ञां चकाराशु तां कालीं विकृताननाम् ॥ ॥ २२ ॥ तदिंगितं तदालक्ष्य महाकाली हि भैरवी ॥ खट्वांगं च तथा पाशं कर्त्तरीं चांकुशं तथा ॥ गृहीत्वा पाणिभिः काली संचचार बलांतरे॥२३॥ यथा दावानलज्वाला निदाघे गहनं वनम्॥ संचरंती महाकाली कांश्चिद्दै निजगाल ह ॥ २४ ॥ कांश्चिद्धि चर्वयामास प्रेक्षयामास कानपि ॥ रथं रथेन संयोज्य हस्तिनं हस्तिना तथा ॥ चूर्णयामास बहुशो दानवान्रणकोविदान् ॥ ॥२५॥ लेलिह्यमाना रसनां बृहद्दंष्ट्रा भयंकरी ॥ कदनं दानवानां वै चकार बहुधा प्रिये ॥ २६ ॥ कांश्चिज्जग्राह केशेषु चिक्षेपांबर मंडले ॥ पोथयामास पादेन खट्वांगेनापि कानपि ॥ २७ ॥ अंकुशेन तथाऽऽकृष्य निष्पिपेष रणांगणे॥ इति सैन्यं क्षणान्नष्टं महाकक्षमिवाग्निना ॥ २८ ॥ ततः क्रुद्धो धूम्रनेत्रो गदया तां जघान

बलके भरोसे तू निश्चिन्त हुई बैठी है ॥ २० ॥ ये सब तुम्हारे देखते २ ही छिनभरमें इस प्रकार नष्ट होजायँगी जैसे पवनके द्वारा मेघ नष्ट होजाते है। और बालपकड तुम्हैं बांधके रक्तबीजके निकट लेजायँगे ॥ २१ ॥ जब महेश्वरीने इस प्रकार दैत्योंके वाक्यको सुना तब उसी समय करालमूर्त्ति कालीके प्रति नेत्रोंसे इशारा करा ॥ २२ ॥ महेश्वरीकी चेष्टा देख उस भैरवी कालिकाने खट्वांग पाश कर्त्तरी और अंकुशको हाथोंमें लेकर सेनाके बीचमें विचरना प्रारंभ करा ॥ २३ ॥ जिस प्रकार ग्रीष्मऋतुमें अग्निकी ज्वाला गहनवनमें विचरती है इसी भांति महाकाली सेनामें विचरने लगी ॥ २४ ॥ किन्हीको चाबने और किन्हीको केवल देखने लगी, रथोंको रथसे, हाथीको हाथियोंसे और युद्ध विद्यामे निपुण दैत्योंको दैत्योंसे ढकार २ के वोह काली चकनाचूर करनेलगी ॥ २५ ॥ वोह जिह्वाको चाटने लगी, उसकी दाढें बडी २ और आकृति भयंकर थी, उसने विविध प्रकारसे दैत्योंका विध्वंस किया ॥ २६ ॥ किन्ही २ के केश पकड उन्हें आकाशमें फेकदिया, किन्हीको खट्वांङ्ग और किन्हीको चरणोंसे कुचलडाला ॥ २७ ॥ और किन्ही २ को अंकुशसे खींचकर रणभूमिमें मारनेलगी, इस प्रकार वोह दानवोंकी सेना ऐसे नष्ट होगई जैसे अग्नि ईंधनके निचय (ढेरे) को भस्म कर देती है ॥ २८ ॥ तब तो क्रोधित हो धूम्राक्षने गदासे उसे मारा, किंतु गदाका आघात लगनेपर भी देवीको कुछ-

ह ॥ गदया ताडिता देवी न च क्लेशमवाप सा ॥ २९ ॥ क्रुद्धा च तं धूम्रनेत्रं खट्वांगेन जघान हि ॥ पपात विगतप्राणो भूमौ खट्वांगपेषितः॥३०॥ततश्चंडश्च मुण्डश्च जघ्नतुः कालिकां शरैः ॥ अनेकैश्च तथा चक्रैस्सूर्य्यबिंबसमप्रभैः ॥ ३१ ॥ निजगाल शरान्देवी चक्राणि च महेश्वरी॥विविशुश्चक्रबिम्बानि सूर्य्या इव घनोदरम् ॥ ३२ ॥ क्रुद्धा संपीड्य बाहुभ्यां चंडमुडौ महासुरौ ॥ खड्गेन शितधारेण जघान शिरसी तयोः ॥ ३३ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रं मुष्टिनासौ निष्पिपेष महाबलम् ॥ कालनाभं महावीरं खट्वांगेन जघान ह ॥३४॥ अन्ये च बहवो वीरा निहता दानवास्तथा ॥ क्षणेन तद्दलं सर्वं नष्टं तद्वै वरानने ॥ ३५ ॥ पलायनपराः शेषा भेजुर्देवि दिशो दश ॥ अट्टहासं ततः काली कृत्वा देव्यंतिके ययौ ॥३६॥ चामुण्डा च ततो नाम्ना जाता तदवधि प्रिये ॥ हतशेषा दानवाश्च शशंसू रक्तबीजकम् ॥ चंडमुंडबधं श्रुत्वा परं क्रोधवशं गतः ॥ ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे चंडमुंडादिवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

क्लेश न हुआ ॥ २९ ॥ और स्वयं क्रोधसे पूर्णहो खटांगके द्वारा धूम्राक्षके ऊपर प्रहार किया, और खट्वांग लगनेसे व्यथितहो मरकर वोंहैं भूमिके ऊपर गिरपडा ॥ ३० ॥ फिर चण्ड मुण्ड बाणोंद्वारा कालिकाको ताडन करने लगे, सूर्यमंडलकी किरणोंकी भाँति अनेक बाण व्यास होगये ॥ ३१ ॥ उस महेश्वरी देवीने चक्रोंका परित्याग किया. चक्रबिम्ब दैत्योंके देहमें इस प्रकारसे प्रविष्ट होतेथे जैसे सूर्य मेघमंडलमें प्रविष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥ फिर क्रोधित हो चण्डमुण्ड महादैत्योंको प्रथम हाथहीसे मसलकर पैनी धारके खड्गसे उन दोनोंके शिरको काटडाला॥ ३३ ॥ महाबलशाली तीक्ष्णदंष्ट्रको मुष्टीसे मसलदिया, और महावीर कालनामको खटांगसे वधकर डाला ॥ ३४ ॥ देवीने और भी बहुतसे वीर दैत्योंका वध किया, हे सुमुखि ! एक क्षणभरमें वोह समस्त सेना नष्ट भ्रष्ट होगई ॥ ३५ ॥ हे देवि ! जो कुछ शेष बचे थे वे दशों दिशाओंको पलायमान होगये, तब तौ वोह काली अट्टहास करती २ देवीजीके पास गई ॥ ३६ ॥ हे प्रिये ! उसी दिनसे उसका चामुण्डा नाम होगया, मरनेसे शेष बचेहुए दैत्योंने सब वृत्तान्त रक्तबीजसे कहा, और वह चण्डमुण्डके वधको सुनकर अत्यन्तही क्रोधको प्राप्त होगया॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८.

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति तन्निधनं श्रुत्वा रक्तबीजोऽतिविस्मितः ॥ जगाद सर्वान्दनुजान्हंतहंतेति चासकृत् ॥ १ ॥ किमेतन्महदाश्चर्य्यमेकाकिन्या क्षणाद्बलम् ॥ निहतं दानवेंद्राणामुचितं किं च साम्प्रतम् ॥ २ ॥ मदाज्ञापालका ये च सप्तद्वीपेषु दानवाः ॥ पातालेषु तथा सन्ति दानवाश्चांतरिक्षगाः ॥३॥ दैत्याः शुंभनिशुंभाद्या आनयध्वं महासुरान् ॥ ते च वध्या भविष्यन्ति मच्छासनपराङ्मुखाः ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इत्याज्ञाप्य दानवेन्द्रो जगाम सौधमंदिरम् ॥ तेपि शीघ्रं वायुवेगादानयामासुरंजसा ॥ ५ ॥ दानवान्युद्धदुर्द्धर्षान्महाबलपराक्रमान् ॥ ते च सिंहैर्गजैरश्वैर्गर्दभैरुष्ट्रकैस्तथा ॥ रथैर्मृगैर्वराहैश्च मेषैर्गोभिः कलिंजैः ॥ ६ ॥ केचिदश्वमुखाश्चान्ये गजवक्रास्तथापरे ॥ सिंहासना बृहद्दंष्ट्रा महाघोरा भयानकाः ॥७॥ कृकलासमुखाः केचित्केचिद्भल्लूमुखास्तथा ॥ बिडालवदनाः केचित्केचिद्यूकमुखाः परे ॥ ॥८॥ केचिन्मत्स्यमुखा दैत्याः सर्पदेहास्तथापरे ॥ तथांजन-

वसिष्ठजी बोले-इसप्रकार उसका वध सुनकर रक्तबीजको अत्यन्तही विस्मय होगया, और हाय बडा अनर्थ होगया ! ! ! यौं बार २ सब दैत्योंसे कहने लगा ॥१॥ यह क्या आश्चर्य हुआ कि, उस अकेलीहीने प्रधान २ दैत्योंकी सेनाका वध करडाला, अब क्या करना कर्त्तव्यहै ॥ २ ॥ अच्छा हमारी आज्ञा पालन करने (मानने) वाले सातोंद्वीप, पाताल और आकाशमें जितने दानव निवास करते हैं ॥ ३ ॥ एवम् शुम्भ निशुम्भ आदि जितने दैत्यहैं, उन सभीको लाओ, और जो मेरी आज्ञाको उल्लंघन करेंगे उन्हीका मैं वध करडालूंगा ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी कहने लगे-वोह दैत्यराज इसप्रकार आज्ञा देकर अपने निवास स्थानको चलागया इधर वे सेवकभी झटपट उन दैत्योंको ले आये ॥ ५ ॥ वे दैत्य युद्धमें दुर्जय, अत्यन्त बल और पराक्रमसम्पन्न थे, एवं च वे सिंह, हाथी, घोडे और गधे ऊंट मृग वराह (शूकर) मेंढे और बैलोको लेके आयेथे ॥ ६ ॥ उनमें किन्हीका मुख अश्वकासा, किन्हीका हाथी जैसा, किन्हीका सिंहकी समान मुखथा, उनकी बड़ी २ दाढैं और भयानक आकृति थी ॥ ७ ॥ किन्हीं २ का गिरगटकेसा मुख था, किन्हीका मुख रीछकी समान, किन्हीका बिलाव और किन्हीका मुख जुंके मुखकी सदृश था ॥ ८ ॥ उनमें कोई मछलीके मुखवाले, कोई सर्पकी समान देहवाले थे, किन्हीकी

चयाभासास्तथा स्तनितानिःस्वनाः ॥ ९ ॥ घोरास्या घोरनयना द्विमुखा बहुपादकाः ॥ छिन्नग्रीवाः करिमुखा वृकवक्रास्तथापरे ॥ आगताः कोटिशस्तत्र रक्तबीजस्य शासनात् ॥१०॥ शतकोटि सहस्राणि रथानां दंतिनां तथा ॥ हयानां पंचपंचाशत्कोटिलक्षाणि दानवाः ॥ ११॥ यूथपाश्च तथा पद्मपद्मानि चागमंस्ततः ॥ पृथिवीं छादयंतस्ते सपर्वतवनद्रुमाम्॥ १२ ॥ चंद्रसूर्य्यग्रहादीनां मार्गं रुरुधुरम्बरे ॥ कैलासं च तथासाद्य पूर्वपश्चिमगामिनम् ॥ ॥ १३ ॥ आगताश्च तथा वीरा नानाशस्त्रास्त्रसंयुताः ॥ संदष्टौष्ठपुटाः क्रूराश्चंडवेगा महास्वनाः ॥ १४ ॥ अनेकतूर्य्यसन्नादास्तथा पणवगोमुखाः॥ शंखाः कंका नंदनाद्या विनेदुश्च महाबले॥ ॥ १५ ॥ इति तद्वै महासैन्यं दृष्ट्वा देवाश्चकंपिरे ॥ स्वांस्वां शक्तिं ददुः सर्वे इंद्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ १६॥ ऐंद्री गजसमारूढा तच्छास्त्रास्त्रविभूषणा ॥ ब्राह्मी व्यक्तिस्तथायाता हंसयानसमास्थिता ॥१७॥ अक्षसूत्रं च दधती करैकेण कमंडलुम्॥ माहेश्वरी

आभा अंजनकी तुल्य और किन्हीका शब्द बिजलीके कडकनेकी समान था॥ ९ ॥ किन्हीका मुख और किन्हींके नेत्र भयानक थे; किन्हीके दो मुख और किन्हींके अनेक चरण थे, किन्हींकी ग्रीवा कटी हुई थी, किन्हीका मुख हाथीके समान था, अथच कोई २ भेडियेकी समान मुखवाले थे। रक्तबीजके शासनको सुनकर इसप्रकार करोडों दैत्य वहां आये ॥ १० ॥सौकरोडों और सहस्र रथ, अथ च इतनेही हाथी, पचपन सहस्र अश्व एवम् करोड लक्ष राक्षस ॥११॥ और पद्मो यूथपति आये, पर्वत वन और वृक्षोंसे आकीर्ण भूमिको व्याप्त कर सर्वत्र पडरहे॥१२॥ उन योद्धाओंने आकाशमें सूर्य चन्द्रमाके भी मार्गका अवरोध करलिया पूर्वसे पश्चिम पर्यन्त जानेवाले, कैलासभी ॥ १३ ॥ विविध भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंको ले २ कर दैत्य उपस्थित हुए, वे क्रूर स्वभाव वाले क्रोधसे अपने २ ओष्ठोंको काट रहेथे, उनका प्रचण्ड वेग और बडा नाद था ॥ १४ ॥ अनेक वाद्योंके शब्द करते, और पणव तथा गोमुखको बजाते थे, अथ च उस विकट सेनामें शंख आदिके नाद होने लगे ॥ १५ ॥ उस प्रभूत सेनाको देखकर देवताभी कम्पायमान होगये, अत एव इन्द्र आदि देवताओंने अपनी २ शक्तिको प्रदान किया ॥ १६ ॥ इन्द्रकी शक्ति हाथीके ऊपर आरूढहो उन्हीके अस्त्र शस्त्रोंसे सज धजकर, एवम् ब्रह्माजीकी शक्ति हंसके ऊपर आरूढ होकर उपस्थित हुई ॥ १७ ॥ उसके हाथमें अक्षकी माला और एकहाथमें

तथा देवी महावृषभमास्थिता॥ त्रिशूलपट्टिशधरा व्याघ्रचर्मांबरासती ॥ १८ ॥ तथाऽययौ क्रौंचहर्त्तुः शक्तिः परमकोपिता ॥ मयूरस्था शक्तिहस्ता वैष्णवी च समागता ॥ १९ ॥ गरुडस्था महामाया शंखचक्रगदाम्बुजा ॥ वाराही च बृहद्दंष्ट्राधृतविश्वंभरा परा ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशचर्म्महस्ता तथाऽऽययौ ॥ २० ॥ नारसिंही महामाया नृसिंहस्य तनूधरी ॥ तत्कंधरासटाक्षेपभिन्ननक्षत्रमण्डला ॥ २१ ॥ येये देवास्तत्र गताः सर्वे स्त्रीरूपधारिणः ॥ २२ ॥ योगिन्यश्च तथा चाष्टौ स्वस्वरूपं समाश्रिताः ॥ चामुंडा च महाशक्तिश्चंडरूपा महोन्नता ॥ २३ ॥ समाययौ महादेवी तादृशीकोटिसंवृता ॥ सिंहोपरि समासीना भुजाऽष्टपरिमंडिता ॥ २४ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणा मदमत्तविलोचना ॥ शक्तिसैन्यं तथा तन्वि कोटिकोटिकसंख्यकम् ॥ २५ ॥ गंगाद्वारमभिव्याप्य काश्मीरं च तथापरम् ॥ नीलकंठेश्वरं पीठं मानसं च तथा सरः ॥ २६ ॥ कुंभोदकं तथा तीर्थं कुरुवर्षं च गंडकीम् ॥

कमण्डलु था। महादेवजीकी शक्ति बडे वृषभके ऊपर आसीन हो व्याघ्र चर्मका वस्त्र ओढकर त्रिशूल और पट्टिशको धारण करके उपस्थित हुई ॥ १८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयकी शक्ति परम क्रोधितहो हाथमें शक्तिलिये मयूरवाहिनी वैष्णवी शक्तिकी सदृश उपस्थित हुई ॥ १९ ॥ उधर विष्णुभगवान्‌की शक्ति महामाया गरुडके ऊपर चढकर शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये और वाराहजीकी शक्ति अपनी बडी २ दाढोंके ऊपर भूमिको धारण किये, गदा परिघ (वज्र) खड्ग और चर्मको हाथमें लेके आई ॥ २० ॥ नृसिंहभगवान्‌की शक्ति उन्हीका शरीर धारण कर अपनी कन्धराओंके ऊपरके सरको धारण किये उपस्थित हुई ॥ २१ ॥ विशेष क्या कहें जौन २ से देवता वहां गयेथे सभीने स्त्री रूपधारण कियाथा ॥ २२ ॥ आठों योगिनियें अपने २ रूपको धारणकर आईं और महाशक्तिमती चामुण्डाभी करालरूप धारण करके उपस्थित हुई ॥ २३ ॥ महादेवजीभी सिंहवाहिनी हो अष्टभुजी मूर्ति वनाय करोडों दासियोंको संगलेकर उपस्थित हुए॥२४॥ वोह अनेक शस्त्र अस्त्रोंसे प्रहार करती थी, मदसे उसके नेत्र उन्मत्त होरहेथे, हे देवि ! हे सूक्ष्मांगि ! संकलनामे उस सेनाकी करोडों संख्या थी ॥ २५ ॥ गंगाद्वारसे लेकर कश्मीर, नीलकंठेश्वर पीठ और मानस सरोवर ॥ २६ ॥ कुम्भोदकतीर्थ, कुरुवर्ष और गंडकी इन सब

अभिव्याप्य महासैन्यं तस्थावद्रिरिवाचलः ॥ २७ ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं देवगंधर्वमंडितम् ॥ आकाशं प्रबभूवाथ विमानैश्च सुशोभितम् ॥ २८ ॥ अथ युद्धं समभवद्दानवानां बलेन हि ॥ शक्तिभिश्चापि तुमुलं रोमहर्षणकारकम् ॥ २९ ॥ गदाभिः परिघैश्चापि शक्तितोमरसायकैः ॥ खट्वांगैर्मुसलैश्चैव क्षेपणीयैस्त्रिशूलकैः ॥ शतघ्नीभिश्च युयुधुः शक्तिभिश्चैव दानवाः ॥ ३० ॥ प्रवहुश्च तथा नद्यो रुधिरस्य शरीरिणाम् ॥ मांसकर्दमितास्तत्र ह्यगाधा बहुशः प्रिये ॥ ३१ ॥ करिकच्छपकल्लोलछिन्नहस्ता विहंगमाः ॥ निहता दानवाः कैश्चिच्छिवाभिर्भक्षिताः परे ॥ ३२ ॥ वज्रेण निहता ऐंद्र्या तथा केचिद्द्विधाकृताः ॥ कमंडलुजलेनापि ब्राह्मी संमार्जिता मृताः ॥ ३३ ॥ माहेश्वर्यास्त्रिशूलेन कौमार्य्याः शक्तिना हताः ॥ चक्रेण विष्णुशक्त्या वै वाराह्या दंष्ट्रया हताः ॥ ३४ ॥ नखैर्विदारयामास नारसिंही तथाऽपरान् ॥ महाकाली संचचार हसंती दानवे बले ॥ ३५ ॥ इति तत्परमं युद्धं लोमहर्षणकारकम् ॥

स्थानोंपर्यन्त व्याप्त होकर अचलपर्वतकी समान स्थित हुई ॥ २७ ॥ उस समय आकाशमें अप्सरा देवता गन्धर्व और विमान उपस्थित होगये अतएव आकाशकी प्रभूत शोभा होगई ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर दैत्योंकी सेनाके साथ शक्तियोंके द्वारा अत्यन्त घोर अतएव लोमहर्षणकारी युद्ध होनेलगा ॥ २९ ॥ उस समय दैत्य समाज गदा वज्र शक्ति तोमर बाण खट्वांग मुशल, क्षेपणीय त्रिशूल और शतघ्नी शक्तियोंके द्वारा युद्ध करने लगा ॥ ३० ॥ हे प्रिये ! देहधारियोंके रुधिरकी बहुतसी नदियें वह निकलीं, और उन गहरी २ नदियोंमें मांसकी कीचडसी बनगई ॥ ३१ ॥ उनमें हाथी कच्छप जैसा प्रतीत होतेथे जीवोंके छिन्न हुए हाथ तरंग जैसे प्रतीत होतेथे, और मृतक हुए दानवोंको शृगालिनियोंने भक्षण करलिया था ॥ ३२ ॥ किन्ही २ को इन्द्रकी शक्तिने वज्रसे मारडाला और किन्हीको काट डालाथा, और कोई २ दैत्य तो ब्राह्मीशक्तिके द्वारा कमण्डलुमेंसे जल छिडकतेही मृतक होगये ॥ ३३ ॥ कोई दैत्य महेश्वरीके त्रिशूल और कोई स्वामिकार्त्तिकेयकी शक्तिके द्वारा मारडालेगये, किन्ही २ को विष्णुभगवान्‌की शक्तिने चक्रसे और वाराहजीकी शक्तिने दांतों (डाढों) से मारडाला ॥ ३४ ॥ और दैत्योंको नृसिंहजीकी शक्तिने नखद्वारा विदीर्ण करडाला. उस समय महाकाली हँसतीहुई दैत्योंकी सेनामें विचरने लगी ॥ ३५ ॥ ऊतिशय विस्तृत कैलास पर्वतके ऊपर भीरुओंको डरानेवाला और लोमहर्षणकारी

भीरूणां भयदं तत्र कैलासे महदायते ॥ ३६ ॥ गजानां गर्जनैश्चैव हयानां ह्रेषितैस्तथा ॥ रथानां चैवचीत्कारैर्भटानांचैव गर्जितैः ॥ ३७ ॥ शब्दं तं बहुशस्तत्र धरणीगगनांतरम् ॥ धनुष्टंकारशब्देन नाराचनिःस्वनैस्तथा ॥ ३८ ॥ भिंदिभिंदि छिंधिछिंधि तिष्ठतिष्ठ क्व यास्यसि ॥ इति तत्परमे युद्धे दैत्यमातृगणस्य च ॥ ३९ ॥ निपातनं पर्वतानां वृक्षाणां दृषदां तथा ॥ बभूव सततं तत्र मातृदानवमण्डले ॥ ४० ॥ एवं क्रमेण तत्रापि जातो वै रुधिरार्णवः ॥ विनेदुः शतशस्तत्र शिवाः श्येनाश्च वायसाः ॥ ४१ ॥ गगनं च तथा रेजे पताकाशतपंक्तिभिः ॥ पलाशकुसुमैर्देवि माधवे विपिनं यथा ॥ ४२ ॥ निहता दानवा रेजुः पर्वता इव संगरे ॥ ऊर्द्धरोममहावृक्षाः स्रवद्रक्तजलास्तथा॥ ॥ ४३ ॥ पताकाश्च तथा रेजुः संध्यामेघगणा इव ॥ निहता दानवा केचिद्भक्षिताश्च तथापरे ॥ ४४ ॥ अर्द्धविच्छिन्नचरणा निकृत्तककराः परे ॥ कबंधाश्चैव शतश उत्थितास्तत्र संगरे॥४५॥

घोर) युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥ हाथियोंकी चिंघाड, घोडोंके हिनहिनाने, रथोंकी झनझनाहट और वीरोंकी गर्जना से ॥ ३७ भूमि और आकाशके बीचमें प्रभूत शब्द व्याप्त होगया, धनुषोंकी टंकार, और बाणोंके शब्दोंसे ॥ ३८ ॥ मारो, काटो, खडे रहो, कहां जा सक्तेहो उस घोर युद्धमें इस प्रकार विविधभांतिके शब्द होने लगे ॥ ३९ ॥ उक्त दैत्यों और मातृ गणके युद्धमें दोनों ओरकी सेनाके ऊपर पर्वतों वृक्षों और पाषाणोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ४० ॥ इसी क्रमसे वहांभी रक्त सागर प्रादुर्भूत होगया, और सैकडों स्यारनी, श्येन (सिकरे) और वायस (काक) शब्द करने लगे ॥ ४१ ॥ अनेक ध्वजाओंसे आकीर्ण होनेके कारण आकाशकी ऐसी शोभा हो रहीथी हे देवि ! जिस प्रकार वैसाख मासमें पलासके पुष्पोंसे बन सुशोभित होताहै ॥ ४२ ॥ संग्राममें मृतक हुए दैत्य पर्वतोंकी समान प्रतीत होतेथे, उनके ऊर्ध्व रोम वृक्षों और रक्त जलकी सदृश ज्ञातहोता था ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार सन्ध्या समय मेघ समूहकी शोभा होती है ऐसेही पताका एँ सुशोभित हो रहीं थी, कोई राक्षस मृतक हुए पडेथे, और किन्हीको खालिया ॥४४॥ किन्हीके आधे २ पैर और किन्हीके केश काटडाले गयेथे, सुतराम् उस युद्ध-

योगिन्यश्च तथा घंटानादोऽभूत्किंकिणीस्वनः॥ हन्यमान मातृ-गणैर्दानवानां वनं महत्॥विननाश यथा बह्नेस्तृणकाष्ठवनं महत्४६ भेजिरे पर्वतान्केचिदंतरिक्षे तथा गताः॥ समुद्रेषु तथा सुप्ता गता दशदिशोपरे ॥ ४७ ॥ पराङ्मखं च तत्सैन्यं दृष्ट्वा च परविस्मयम् ॥ जगाम रक्तबीजोऽपि शुंभादिपरिवारितः ॥ ४८ ॥ कम्पयन्वसुधां दैत्यैः सशैलपुरकाननाम् ॥ संदष्टोष्ठपुटः क्रोधात्परं विस्मयमागतः ॥ ४९ ॥ गच्छतस्तस्य संग्रामे विनेदुः शतशः शिवाः ॥ गृध्रः पपात तस्याशु रथे ध्वजविराजिते॥५०॥ शुम्भश्चैव निशुंभश्च कालवक्रो महाहनुः॥ त्रिशीर्षो द्विशिराश्चैव चंडरोचिः-सुरांतकः ॥ ५१ ॥ विडालवदनश्चैव शंकुरोमा महोदरः ॥ एतदाद्या महावीरा युयुधुस्तद्रणाजिरे ॥ ५२ ॥ गदाभिः परिघैश्चैव शरैराशीविषोपमैः ॥ शतघ्नीभिः परशुभिर्निस्त्रिंशैर्ऋष्टिभिस्तथा॥ ॥ ५३ ॥ कुठारैश्च करालाभिः खट्वांगैर्मुशलैस्तथा ॥ हलैः पाषाणकैस्तत्र पर्व्वतैः पादपैस्तथा ॥ ५४ ॥ युयुधुः शतशो वीरा

भूमिमें सैकडों कबन्ध दृष्टिगत होतेथे ॥ ४५ ॥ योगिनियोंकी किंकिणी और घंटाओंका नाद होनेलगा, एवं च मातृकाओंके द्वारा दानवोंकी प्रभूतसेनाका वध होनेलगा, अतएव वोह सेना इस प्रकार विनष्ट होगई जिस प्रकार अग्नि तिनकोंके ढेरको भस्म कर देती है ॥ ४६ ॥ कोई भागके पर्वतोंमें जा छिपे, कोई आकाशमें उडगये, कोई २ समुद्रमें जा सोये और कोई दशोंदिशोंमेंको भागनिकले ॥ ४७ ॥ पराङ्मुखहो उस सैनाको भागती देख वोह रक्तबीज स्वयम् शुम्भ आदि दैत्योंके साथ वहांको चला ॥ ४८ ॥ मारे क्रोधके ओष्ठोंको काटने लगा और अत्यन्त विस्मयको प्राप्त होगया, उस समय दैत्योंके भारसे पर्वतों और वनोंसहित भूमि कम्पायमान होगई ॥ ४९ ॥ जब वोह संग्राममें चला तौ सैकडों सिआरनी रोनेलगीं, और रथकी ध्वजाओंके ऊपर गृद्ध टूटनेलगे ॥ ५० ॥ शुम्भ, निशुम्भ, कालवक्र, महाहनु, त्रिशिरा, द्विशिरा, चण्डरोचि, सुरान्तक ॥ ५१ ॥ विडालवदन. शंकुरोमा, महोदर इत्यादि और भी अनेक वीर उस युद्धभूमिमें युद्ध करनेलगे ॥ ५२ ॥ गदा, वज्र, सर्प जैसे जहरीले बाण, शतघ्नी, परशु खड्ग ॥ ५३ ॥ कुठार, बरछे, खटांग, तथा मुशल, हल, पाषाण, पर्वत और वृक्ष ॥ ५४ ॥ मुष्टि एवम् नख आदिसे वीरगंण सैकडों प्रकारसे युद्ध करने लगे, सुतराम् वोह

सृष्टिभिर्नखरैस्तथा ॥ इति तत्तुमुलं युद्धं बभूव वीरहर्षणम् ॥९५॥ पुनःपुनः शरैर्भग्ना मातरश्च तथा हताः॥पलायनपरा जाता दिशो दश वरानने ॥९६॥ इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा देव्यतिविस्मिता ॥ त्रिशूलखड्गमुशलधनुस्तोमरपट्टिसान् ॥ नाराचं चैव खट्वांगं दधती बाहुभिस्तथा ॥९७॥ गौरी सिंहसमासीना मदिरारक्तलोचना॥ युयुधे संयुगे तत्र योगिनीभिः परावृता ॥ ९८ ॥ निजघ्नुः शतशो वीरान् नानाप्रहरणैस्ततः ॥ देवी क्रुद्धा गदापातैः पोथयामास दानवान् ॥९९॥ खड्गेन सितधारेण दानवेशा द्विधा कृताः॥ चूर्णिता मुशलेनापि तोमरेण द्विधा कृताः ॥ ६० ॥ नाराचनिकरैर्भिन्नाः खट्वांगेन विदारिताः ॥ पट्टिशेन तथा देव्या खंडिता दानवाः परे ॥ ६१॥ हाहाकाररवं चक्रुस्त्राहित्राहीति चासकृत् ॥ बभूवुर्दानवाः केचित्तच्चूर्णीकृतमस्तकाः ॥ ६२ ॥ माहेश्वर्य्यास्त्रिशूलेन हता निपतिता भुवि ॥ ययुर्दश दिशो भग्ना मातृभिः परिपीडिताः ॥ ६३ ॥ तथा शुंभनिशुंभाद्या विक्षता रणमूर्द्धनि ॥

युद्ध वीरोंको हर्षित करनेवाला होगया ॥ ९५ ॥ हे सुमुखि ! जब मातृगणोंको बाणोंके द्वारा ताडनकिया तब वे भी सब दसों दिशाओंमें भागने लगीं ॥ ९६ ॥ ऐसे आश्चर्यकारी वृत्तान्तको देख देवीको बडा विस्मय हुआ, और भगवान्ने त्रिशूल, खड्ग, मुशल, धनुष, तोमर पट्टिस, बाण और खट्वांगको धारणकिया ॥ ९७ ॥ जिस समय गौरी सिंहके ऊपर आरूढ हुई मदिरासे नेत्रोंका वर्ण रक्त होगया, और वे योगिनियोंको साथले युद्ध करने लगीं ॥ ९८ ॥ देवीने क्रोधितहो विविध भांतिके प्रहारोंसे सैकडों वीरोंको ताडन किया, और बहुतसे वीरोंको गदासे कुचलदिया ॥ ९९ ॥ एवं च पैनी धारवाले खड्गसे बहुतसे राक्षसेश्वरोंका खंडन कर डाला, किन्हींको मुसलसे चूर्ण २ करदिया और किन्हीको तोमरसे कतरडाला ॥ ६० ॥ किन्ही २ को बाणोंसे, किन्हीको खट्वांगसे, और किन्ही २ दानवोंको पट्टिशसे देवीने विनष्ट कर दिया॥ ६१ ॥ जिनके मस्तक चूर्ण २ कर डाले हैं ऐसे दैत्य वारंवार हाहाकार शब्द करके यों कहने लगे कि हमारी रक्षा करो ॥ ६२ ॥ बहुतसे दैत्य तौ माहेश्वरीके त्रिशूलसे मृतक होकर भूमिके ऊपर गिर पडे, और बहुतसे दैत्य मातृ गणके द्वारा पीडितहो दसोंदिशाओंमें भागगये ॥ ॥ ६३ ॥ शुम्भ निशुम्भ आदि दैत्यगण घायलहो संग्राम भूमिमें गिरपडे, कोई वृक्षोंके ऊपर

केचिद्वै रुरुहुर्गोत्रान्केचिदंतर्गतास्तथा ॥ ६४ ॥ पलायमानं स्वं सैन्यं रक्तबीजो महासुरः ॥ विवृत्य नयने क्रोधात्परावृत्य बलं स्वकम् ॥ पतंग इव दीप्ताग्नौ ययौ योद्धुं तया सह ॥ ६५ ॥ गदया ताडयामास सिंहं तस्याः सुवाहनम् ॥ ताडिते च ततः सिंहे क्रोधनिष्पीडिताधरा ॥ त्रिशूलेन जघानाशु रक्तबीजं महासुरम्॥ ॥ ६६ ॥ त्रिशूलनिहतस्यापि सुस्राव रुधिरं तु यत् ॥ यावन्तो रक्तबीजोत्थाः पतिता रक्तबिंदवः ॥ तावंतः सहसा जाता यतस्ते रक्तबीजकाः ॥ ६७ ॥ निजघ्नुर्देवतानीकं त्रिशूलैः परिघैस्तथा ॥ असिभिर्मुशलैश्चैव शक्तितोमरसायकैः ॥ ६८ ॥ यथायथा रक्तबीजं निजघ्नुर्देवताः शरैः ॥ तथा तथा रक्तबीजास्तद्बलास्तत्पराक्रमाः ॥ ववृधू रक्तबीजानां सहस्राणि शतानि च ॥ ६९ ॥ देवतानीकमखिलं पीडयामासुरंजसा॥ बाणवर्षैः शूलवर्षैर्ववृषुर्गिरिजां ततः ॥ ७० ॥ त्रैलोक्यं तु तथा व्याप्तं बाणैराशीविषोपमैः ॥ दानवैश्च तथा व्याप्तं रुरुधुर्गगनं ततः ॥ ७१ ॥ ग्रहनक्षत्रताराद्या न शेकुश्चलितुं क्वचित् ॥ अंधीभूता त्रिलोकी च संत्रस्ता देव-

चढगये और कोई भागके छिपगये ॥ ६४ ॥ जब रक्तबीजने अपनी सेनाको भागते देखा तौ क्रोधसे नेत्रोंकी त्योरी वदल अपनी सेनाको लौटाया, और जिसप्रकार पतंगे प्रदीप्त अग्निमें जाते हैं ऐसेही देवीके साथ युद्ध करनेको चला ॥ ६५ ॥ और जातेही देवीके वाहन सिंहके एक गदा मारी, सिंहके मारतेही देवीने क्रोधसे ओठोंको चावकर रक्तबीज महादैत्यको त्रिशूलसे मारा ॥ ६६ ॥ त्रिशूल लगनेसे जितना उसका रुधिर निकला और उस रक्तकी जितनी विन्दु गिरीं उतनेही सहजात रक्तबिज और प्रादुर्भूत होगये ॥ ६७ ॥ और वे सभी देवताओंकी सेनाको त्रिशूल, परिघ, खड्गमुशल शक्ति, तोमर और बाण इनके द्वारा प्रहार करने लगे ॥ ६८ ॥ जैसे देवतालोग बाणोंके द्वारा रक्तबीजको मारतेथे, उसी क्रमसे वैसेही बली ओर वैसेही पराक्रमी सैकडों सहस्रों रक्तबिज उत्पन्न होनेलगे ॥ ६९ ॥ और वे समस्त देव सेनाको तत्काल पीडा देनेलगे, एवम् गिरिजाके ऊपर बाणों और त्रिशूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७० ॥ सर्पकी समान जहरीले बाणोंसे उस समय त्रिलोकी व्याप्त होगई, और दानवभी सर्वत्र ऐसे व्याप्त होगये कि आकाश तक घिरगया ॥ ७१ ॥ ग्रह और नक्षत्र आदिक

तागणाः ॥ ७२ ॥ चचाल वसुधा चेलुः पर्वताश्च वरानने ॥ संक्षोभमापुः सरितां पतयोऽऽकालकालके ॥ ७३ ॥ उल्कापातास्तथा पेतुर्विक्षिप्तं ग्रहमंडलम्॥ शैरस्त्रैश्च संव्याप्तां देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥ ७४ ॥ दृष्ट्वा वै भयमापन्ना देवास्सेंद्रास्तदद्भुतम् ॥ मनोभिर्देवता जग्मुस्त्राहित्राहीति चासकृत् ॥ ७५ ॥ यथायथा तस्य देहान्निस्सस्रू रुधिरापगाः॥तथा तथा रक्तबीजवृंदानि ववृधू रणे ॥ ७६ ॥ व्याप्तमासीच्च त्रैलोक्यं सदेवासुरमानुषम् ॥ एतस्मिन्नंतरे देवी क्रोधसंरक्तलोचना ॥ उवाच वचनं चंडीं चंडमुंडविनाशिनीम् ॥ ७७ ॥ दानवोयं महामायी ब्रह्मणो वरदानतः ॥ प्रमत्तश्चापि चामुण्डे अवध्योयं सुरादिभिः ॥७८॥ न दिवा मरणं ह्यस्य न रात्रौ ब्रह्मणेरितम् ॥ निहंतव्यो महादेव्या त्वया चंडविनाशिनि ॥ ७९ ॥ विस्तारय मुखं शीघ्रं रक्तं पिव तदीयकम् ॥ नोत्पस्यंति तदा वीरा रक्तबीजसमुद्भवाः ॥ ८० ॥ संध्यायां निधनं यस्य भविष्यति विनिश्चितम् ॥ इत्युक्त्वा वचनं देवी युयुधे

चलनेको समर्थ न हुआ त्रिलोकीमें अन्धकार व्याप्त होगया और देवता गण भयभीत होगये ॥ ॥ ७२ ॥ हे सुमुखि ! पर्वत डोलगये और भूमि कम्पायमान होगई, उस भयंकर समयमें समस्त सागरभी क्षोभको प्राप्त होगये ॥ ७३ ॥ उल्कापात होनेलगे, ग्रह मण्डल सब विक्षिप्त होगया इधर सिंहके ऊपर आरूढ हुई देवीको बाणों और अस्त्रोंसे व्याप्त हुई ॥ ७४ ॥ देख इन्द्रादि समस्त देवगण भयभीत होगये, अथच त्राहि २ इस प्रकार वारंवार मनही मनमें कहने लगे ॥ ७५ ॥ ज्यों २ उसके शरीरसे रक्तकी धारा वहती थी, वैसेही उस युद्ध भूमिमें रक्तबीजके वृन्द वृद्धिको प्राप्त होते थे ॥ ७६ ॥ विशेष क्या कहैं उस समय संपूर्ण त्रिलोकी देवता असुर और मनुष्योंसे व्याप्त होगई । इसी अवसरमें देवीके नेत्र मारे क्रोधके लाल २ होगये, और वोह चण्ड मुण्ड विनाशिनी चण्डीसे यों कहने लगी ॥ ७७ ॥ हे महामाया चामुण्डे ! इस दैत्यको ब्रह्माजीने वर दिया है अतएव यह प्रमत्तहो रहा है और देवता आदि कोईभी इसका वध नहीं करसक्ते ॥ ७८ ॥ ब्रह्माजीने यहभी कह दिया है कि इसका मरण न दिनमें और न रात्रीहीमें हो । किन्तु—तुमने चण्ड मुण्डकाभी विनाश किया है अतएव तुम्ही इसकाभी वध कर सकोगी ॥ ७९ ॥ अतएव तुम अपना मुख फैलाओ और उन रक्तबीजके रुधिरको पान करो, तब रक्तबीजसे अन्य वीरोंकी उत्पत्ति न होगी ॥ ८० ॥ और यहभी निश्चय है कि सन्ध्या समय इसका

दानवैः सह ॥ ८१ ॥ साऽपि देवी महाकाली चकार वदनं बहु ॥ विस्तीर्ण कालदंष्ट्राभमधरं पृथिवीतले ॥ ८२ ॥ उत्तरोष्ठं महर्लोके कृत्वा सर्वविनाशनम् ॥ निजगाल महाकाली शतशोऽथसहस्रशः ॥ ८३ ॥ दानवान्युद्धदुर्द्धर्षांन्रक्तबीजशरीरजान् ॥ सापि देवी त्रिशूलेन गदया रक्तबीजकम् ॥ ताडयामास रुधिरं सुस्राव तच्छरीरतः ॥ ८४ ॥ उत्पत्स्यमानान्दनुजान्निजगाल महेश्वरी ॥ यावच्छरीरे रुधिरं ययौ भीमकलेवरा ॥ इति क्रमेण नीरक्तो रक्तबीजोऽभवत्तदा ॥ ८५ ॥ निपपात महीपृष्ठे अंजनाद्रिरिवापरः ॥ निहता दानवाः केचिद्भक्षिताश्चापरे तथा ॥ ८६ ॥ केचित्पातालसंलीनाः कुहरेषु गतास्तथा ॥ सिंहेनापि तथा केचिद्भक्षिता दानवा रणे ॥ ८७ ॥ब्रह्मयादिभिर्हताः केचिदन्तरिक्षगताः परे ॥ निहते रक्तवीजे तु प्रसन्नं चा भवज्जगत् ॥ ८८ ॥ देवाः सेंद्रास्तुष्टुवुस्तां स्तोत्रैर्नानाविधैः पराम्॥सरितो मार्गवाहिन्यो निर्मलं चाभवन्नभः ॥ ८९ ॥ स्वंस्वं स्थानं तथा प्रापुर्लोकपाला

मरण होगा, यों कहकर देवी दानवोंके साथ युद्ध करने लगी ॥ ८१ ॥ तब उस महादेवीने भी अपने मुखको बहुत विस्तृत बनाया, तब वोह कालकी दाढकी समान फैलगया, सुतराम्–उसका नीचका ओठ भूमिके ऊपर ॥ ८२ ॥ और ऊपरका ओष्ट महर्लोकमें लगगया, इस प्रकार, देवी सब दैत्योंका विनाश करनेलगी एवम् सैकडों सहस्रों दैत्योंको निगलने लगी॥ ८३ ॥ रक्तबीजके शरीरसे जितने दैत्य युद्धमें अजेय उत्पन्न हुए थे उन सबको त्रिशूलसे और रक्तबीजको गदासे देवी प्रहार करने लगी, तब उनके शरीरमेंसे रुधिर वह निकला ॥ ८४ ॥एवंच वोह महेश्वरी उत्पन्न हुए दानवोंको निगलने लगी, एवंच उस भीम मूर्त्तिमतीने दैत्यके देहमें जितना रुधिर था सब पान करलिया, सुतराम् वोह रक्तबीज उससमय रुधिरहीन होगया ॥ ८५ ॥ तब अंजनके पर्वतकी समान भूमिके ऊपर गिरपडा । तब कितनेही दैत्य मरगये और कितनोंहीको देवीने भक्षण करलिया ॥ ८६ ॥ कोई पातालमें जाछिपे और कोई २ पर्वत कन्दरामें चलेगये । अथच बहुतसे राक्षसोंको संग्राममें सिंहनेही भक्षण करलिया ॥ ८७ ॥ बहुतोंको ब्राह्मी आदि शक्तिने मारडाला, और अन्य दैत्य आकाशमें उड़गये, निदान रक्तबीजके मरजाने पर सब जगत् प्रसन्न होगया ॥ ८८ ॥ देवतागण सन्तुष्टहो नानाभांतिके स्तोत्रोंकरके देवीको सन्तुष्ट करनेलगे, नदियें अपने २ ठीकमार्गमें वहने लगीं, आकाश निर्मल होगया ॥ ८९ ॥ हे सुमुखि ! सम्पूर्ण लोकपालों

वरानने ॥ दिव्यभौमान्तरिक्षाश्च महोत्पाताश्शमं ययुः ॥ ९० ॥ पातालं विविशुर्दैत्या देवा यज्ञांशभागिनः ॥ बभूवुः सुप्रसन्नाभाः सूर्यचंद्रादयो ग्रहाः ॥९१॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

को अपने २ लोकोंकी प्राप्ति होगई, भूमि और आकाश मण्डलके सब उत्पात शान्तिको प्राप्त होगये ॥ ९० ॥ दैत्य पातालमें जा छिपे, देवताओंको यज्ञीयभाग प्राप्त होनेलगे और सूर्य्य चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी प्रभा निर्मल होगई ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः ८९.

वसिष्ठ उवाच ॥ इति ते कथितो देवि रक्तबीजवधो मया ॥ यं श्रुत्वापि नरः पापान्मुच्यते कोटिजन्मजात् ॥ १ ॥ अथ ते कथयिष्यामि कालिकायाः सुदुर्लभम् ॥ माहात्म्यं परमं गोप्यं कलौ दुर्ज्जनमानुषः ॥ २ ॥ काली प्रत्यक्षफलदा पूजनात्स्मरणादपि ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्य पूजयेत्परमां शिवाम् ॥ स याति रुद्रभवनं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥ कृते यत्प्राप्यते पुण्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥ तत्पुण्यं प्राप्यतेऽत्रैव त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥ ४ ॥ माषमात्रं सुवर्णं तु कालिकायै तु यो ददेत् ॥ तत्स्यात्कोटिगुणं पुण्यं वर्द्धमानं

वसिष्ठजी बोले–हे देवि ! इस प्रकार हमने रक्तबीजके वधका आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, इसका श्रवण करनेसे मनुष्य करोडों जन्मके पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ १ ॥ अब हम तुम्हारे प्रति कालिका देवीका परम गुप्त माहात्म्य वर्णन करते है, यह माहात्म्य कलियुगमें दुर्जन मनुष्योंके सकाशसे अत्यन्त छिपाके रखना चाहिये ॥ २ ॥ पूजन अथवा केवल स्मरण करनेहीसे देवी प्रत्यक्ष फल देती है, अतएव जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक भगवतीका पूजन करताहै वोह प्रलयपर्यन्त रुद्र लोकमें निवास करता है ॥ ३ ॥ सैकडों करोडों वर्ष तप करनेसे जिस पुण्यका लाभ होताहै, वोही पुण्य यहां तीन रात्रिहींमें निःसन्देह प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति एक मासेभर सुवर्णका दान कालिकाके उद्देशसे करता है, वोह प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो करोडों गुणा फल प्रदाम

दिनेदिने ॥ ५ ॥ कालीयं दर्शनेनापि कैवल्यफलदायिनी ॥ अस्यै भूमिं तु यो दद्यादपि गोचर्ममात्रिकाम् ॥ ६ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्ध्रुवम् ॥ तस्य नैव कदाचित्तु पतनं विष्णुलोकतः ॥ ७ ॥ तिलधेनुं च योदद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥ ८ ॥ कोटिसूर्य्यप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः ॥ मोदते सुचिरं कालमक्षयं वृतशासनम् ॥ ॥ ९ ॥ पक्षिणो महिषाञ्छागान्मृगान्दिव्यैर्हि यो ददेत् ॥ स तु गंधर्वगीतः सन् विमानैर्भास्वरप्रभैः ॥ १० ॥ देवीलोके वसेन्नित्यं ततो भूमौ समागतः । राजा स्याद्धार्म्मिकः सत्यवक्ता पुत्रसमन्वितः ॥११॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा परमं मोदते शिवे ॥ स सिद्धीश्वरतामेति यः कुमारीं प्रपूजयेत् ॥ गंधाक्षतप्रसूनाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ १२ ॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये नानामुनिगणान्विते ॥ नानातीर्थानि रम्याणि मुक्तिमार्गप्रदानि च । तानि सर्वाणि वक्ष्यामि तन्वाङ्गि भवमुक्तये ॥ १३ ॥ संक्षेपेण शृणु

करता है ॥ ५ ॥ केवल दर्शन करनेसेभी यह काली देवी मोक्ष फलप्रदान करतीहै, इसके उद्देशसे जो व्यक्ति किंचिन्मात्रभी भूमि दान करता है ॥६॥चाहे ग्रह नक्षत्र और तारे इन सभीका पतन होजाय, किन्तु विष्णु लोकसे उसका पतन नहीं होता ॥ ७॥ वेद ज्ञानी ब्राह्मणको जो लोग तिलधेनु दानकरके देते हैं, उनके हाथसे मानों सागर वन और द्वीपद्वीपान्तर सहित भूमिका दान होजाता है ॥ ८ ॥ एवंच वोह पुरुष करोडों सूर्य्यकी सदृश दीप्तिमान विमानोंमें आरूढ हो अक्षय लोकमें चिरकाल पर्यन्त सुखसे निवास करता है ॥९॥ और जो मनुष्य पक्षी, भैंसे, बकरे और दिव्य मृगोंको भगवतीके निमित्त देता है, गन्धर्वोंकी समान उसकी गानशक्ति हो जातीहै, और उज्ज्वलकान्तिमान् विमानोंके द्वारा ॥ १० ॥ बहुत समयपर्यन्त देवीके लोकमें वोह व्यक्ति निवास करता है इसके अनन्तर भूमिके ऊपर आय धार्मिक सत्यवक्ता और पुत्रवान् राजा होता है ॥ ११ ॥ इसलोकमें सुख भोगकर कल्याण मूर्ति शिवमें परमानन्दका अनुभव करता है । और जो व्यक्ति गन्ध, अक्षत, पुष्प और विविध भांतिके नैवद्यसे कुमारीकी पूजा करतीहै वोह सिद्धीश्वर होजाती है ॥ १२ ॥ सरस्वतीका जो सुन्दर रमणीक तट है जिसके ऊपर अनेक मुनिगण विराजमान रहतेहैं वहां अनेक तीर्थ ऐसे हैं जो मुक्ति प्रदान करते हैं, हे तन्वंगि ! उन सभीका मैं संसारकी मुक्तिके लिये तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं ॥ १३ ॥ सुनो बुद्धिमति ! मैंने

प्राज्ञे यच्छ्रुतं शिवतो मया ॥ इदं क्षेत्रं परं गुह्यं यस्य कस्य न वाचयेत् ॥ १४ ॥ अत्र ब्रह्मादयो देवाः परमां सिद्धिमागताः ॥ अत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषीन्यस्तर्पयेन्नरः ॥ १५ ॥ तेन संतर्प्पितं सर्वं जगच्च सचराचरम् ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ यः स्नानमाचरेदस्यां भक्त्या परमया मुदा ॥ स याति परमं स्थानमृषीणां यत्सुदुर्ल्लभम् ॥ १७ ॥ भूमिदानं यः करोति महापातकवानपि ॥ सोपि पापैर्वर्जितात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति॥१८॥ योऽत्र प्राणान्विमुच्येत क्षेत्रे देवगणावृते ॥ मरणेन हि किं काश्यां किं गयायां हि श्राद्धतः॥१९॥स तु मुक्तो विशुद्धात्मा पुनरावृत्तिदुर्ल्लभः ॥ सरस्वतीन्दीवरयोः संगमो यत्र वै भवेत् ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २० ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि शिवलिंगं सुपुण्यदम् ॥ कालीक्षेत्रे महालिंगं केदारादपि पुण्यदम् ॥ २१ ॥ यत्पूजनान्महाभागे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौक-

जो कुछ महादेवजीसे श्रवण किया है, वोह संक्षेपसे कहताहूं, यह क्षेत्र ऐसा परम गोपनीयहै कि इसे जिस तिसके प्रति वर्णन करना न चाहिये ॥ १४ ॥ इसी स्थानमें ब्रह्मा आदि देवताओंको परम सिद्धिकी प्राप्ति हुई थी, जो मनुष्य इस स्थानमें स्नान करके पितृगण देवगण और ऋषियोंको तृप्त करताहै ॥ १५ ॥ मानो वोह चराचर सब जगत्‌हीको तृप्त करदेताहै, एवंच जबतक चौदह इन्द्रोंका राज्य होताहै तबतक उसके पितर सन्तुष्ट रहतेहैं ॥ १६ ॥ और जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक प्रसन्न मनहो इस नदीमें स्नान करताहै, उसे ऐसे परम दुर्लभ स्थानकी प्राप्ति होतीहै जिसका मिलना ऋषियोंके लियेभी कठिन है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य भूमिका दान करता है वोह चाहै जितना पातकी क्यों न हो तथापि पापोंसे मुक्तहो परम ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ १८ ॥ देवगणसे आकीर्ण हुए इस क्षेत्रमें जो व्यक्ति अपने प्राणोंका परित्याग करताहै, उसके काशीमें मरने अथवा उसके निमित्त गयामें श्राद्ध करनेसे क्या लाभहै ॥ १९ ॥ उसका आत्मा शुद्ध होकर उसकी मुक्ति होजातीहै अतएव उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। जहां सरस्वती और यमुनाका संगम होताहै, वहां स्नान करनेसे मनुष्यको सनातन ब्रह्म लोककी प्राप्ति होतीहै॥ २० ॥ अतीव पुण्यप्रद एक और शिव लिंगका हम तुह्मारे प्रति वर्णन करतेहैं, वोह महालिंग कालीक्षेत्रमें है और केदार जैसे भी अधिक पुण्य प्रदान करनेवालाहै ॥ २१ ॥ हे महाभागे ! उन्हींका पूजन

सः ॥ स्वं स्वं पदं समालेभुः पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ २२ ॥ यः पूजयति तल्लिंगं स गच्छेत्परमं पदम् ॥ यद्दर्शनादपि ध्यानाद्यन्नामस्मरणादपि ॥ २३ ॥ अपि पापसमाक्रांता निर्मुक्ता पापकंचुकात् ॥ प्रयांति शिवसालोक्यं यावदाचंद्रतारकम् ॥ २४ ॥ नाम्ना कालीश्वरः ख्यातस्तत्समीपे जलं शुभम् ॥ यत्पानाद्ब्रह्मसदनं यान्ति मर्त्या न संशयः ॥ २५ ॥ कालीक्षेत्रं समादिष्टं प्रत्यक्षफलदायकम् ॥ श्रूयंतेऽद्यापि निर्घोषाः शंखभेरीमृदंगजाः ॥ २६ ॥ कदाचित्तु मनीनां हि वेदघोषो महाद्भुतः ॥ गायन्ति यत्र गंधर्व्वा नृत्यंत्यप्सरसाङ्गणाः॥२७॥सिंहव्याघ्राः समायान्ति नित्यं यद्दर्शनेप्सवः ॥ विहाय वैरं सर्वेषु दृश्यंतेऽद्यापि धार्म्मिकैः॥२८॥ सिद्धा मुनिगणा देवा इन्द्राद्याः सर्वदैव हि ॥ पूजयंति महाकालीं कलौ पापप्रणाशिनीम्॥२९॥कलौ नास्त्यैव नास्त्येव विना कालीं विमुक्तिदाम्॥ भुक्तिदा मुक्तिदा नृणां सर्वथैव मम प्रिये ॥३०॥ एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं सप्तरात्रकम् ॥ यश्चैकाग्रमना भूत्वा यः क-

करनेसे ब्रह्मा आदि देवताओंको अपने २ उस पदकी प्राप्ति हुईथी जहांसे फिर लौटना दुर्लभ है ॥२२॥ जो व्यक्ति उस लिंगका पूजन करताहै उसको परमपद (मोक्ष) का लाभ होताहै, उसके दर्शनकरने स्मरणकरने या ध्यान करनेसेभी ॥२३॥ बडे २ पापी भी पापके जामेंसे बाहर होजातेहैं, और जबतक आकाशमें सूर्य चन्द्रमाकी स्थिति है तबतक उनका शिव लोकमें निवास होता है ॥ २४ ॥ उस लिंगका कालीश्वर नामहै, एवम् उसके समीपही शुभ जलहै, उसको पान करनेसे मनुष्य निःसन्देह ब्रह्म लोकको जाताहै ॥ २५ ॥ उस स्थानको कालीक्षेत्र कहतेहै और वोह प्रत्यक्ष फल प्रदान करनेवालाहै, वहां शंख भेरी और मृदंगके शब्द अबतक श्रवण गत होतेहैं ॥ २६ ॥ कभी २ मुनियोंकी अद्भुत वेद ध्वनिभी सुनाई आतीहै, वहां गन्धर्व गान करते और अप्सरा गण नृत्य करतीहैं ॥ २७ ॥ उसका दर्शन करनेकी अभिलाषासे सिंह व्याघ्र आदिभी वहां जातेहैं, वहां जाके सब वैर छोड देते हैं, यह सब चरित्र धार्मिक व्यक्तियोंहीको दृष्टि गत होताहै ॥ २८ ॥ सिद्ध मुनिगण और इन्द्रादि देवतागण वे सब सदाही कालीकी पूजा करते हैं, वोह भगवती कलियुगके पापोंका विनाश करतीहै ॥ २९ ॥ कालीको छोड कलियुगमें और कोई भी भुक्तिका देनेवाला नहीं है, हे प्रिये! सर्वथा वोही मनुष्योंको भोग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ३० ॥ एक रात्र दो रात्र तीन रात्र अथवा सात रात्र पर्यन्त

श्विदेवतामनुम् ॥ प्रजपेत्तस्य प्रत्यक्षा देवी स्याद्वरदायिनी॥ ३१॥ मासमात्रं फलाहारः सरस्वत्या मनुं जपेत्॥स भेवच्छास्त्रवित्प्राज्ञो देवानां च यथा गुरुः ॥ ३२ ॥ तत्रैव वर्त्तते वृक्षो विशुद्धाग्निषु संभवः ॥ पूजयन्ति सुरा देवीं तत्पुष्पैः स्वर्णसंभवैः ॥ ३३ ॥ यदि भाग्यवशाद्वृक्षो दृश्यते मानुषैः शुभैः ॥ त एव पुण्यलोकेषु विमुक्तास्तेन संशयः ॥ ३४ ॥ शृणु देवि प्रिये दिव्यमाश्चर्य्यं वल्लभे मम ॥ देव्याः पश्चिमभागे तु समीपे लिंगमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ तेजोरूपं महादेव्याः समीपे फलदायकम्॥नाम्ना सिद्धेश्वरं ख्यातं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ ३६ ॥ मतंगाख्या शिला तत्र परमस्थानदायिनी ॥ मतंगमुनिना यत्र तपस्ततं सुदारुणम् ॥ ३७ ॥ सदैव निलयं देव्या यत्रास्ते वरवर्णिनि ॥ पश्वादिबलिभिः प्रीता ददाति च मनोरथान् ॥ ३८ ॥ पितॄनुदिश्य ये श्राद्धं तत्र कुर्वन्ति मानवाः ॥ विमुक्ताः पितरस्तेषां पितरस्ते तु पुत्रिणः ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य चित्तको एकाग्रकर देवीका पूजन करता और उसका मन्त्र जपताहै, देवी उसके समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित होकर वर प्रदान करतीहै ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य एक मास पर्य्यन्त फलाहार कर सरस्वतीजीके मन्त्रका जपकरताहै, वोह बुद्धिमान् होकर ऐसा शास्त्रज्ञ होजाताहै जैसे देवताओंमें बृहस्पतिजी शास्त्रके ज्ञाता हैं ॥ ३२ ॥ वहांहीं विशुद्धाग्निज संभूत एक वृक्ष है, उसके सुवर्ण पुष्प होतेहैं उन्हींके द्वारा देवतागण देवीजीकी पूजा करतेहैं ॥ ३३ ॥ यदि किन्हीं सौभाग्यशाली मनुष्योंको भाग्य वशात् दर्शन होजाय तौ उन्हींको संसारमें पुण्यशील अतएव निःसंदेह मुक्तस्वरूप जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ सुनो ! हमारी प्यारी ! ! सुनो ! ! ! दिव्य और परम आश्चर्यका वर्णन करते हैं, हेवल्लभे ! देवीजीसे पश्चिमकी और समीपही एक उत्तम लिंगहै ॥ ३५ ॥ तेजोमय वोह लिंग देवीजीके समीपही है ओर प्रत्यक्ष फल प्रदान करताहै, उस लिंगका सिद्धेश्वर नामहै, उसके दर्शन करनेहीसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ३६ ॥ परमस्थान (मोक्ष) की देनेवाली मतंग शिलाभी वहांही है, उसीके ऊपर मतंग ऋषिने दारुण तपका आचरण किया था ॥ ३७ ॥ हे सुन्दरि ! वहां भी देवीजीका स्थानहै उसमें भगवती सदैव निवास करती हैं, जो व्यक्ति पशु आदिकी बालीके द्वारा देवीजीको प्रसन्न करते हैं उनके मनोरथोंको भगवती पूर्ण करती है ॥ ३८ ॥ और जो मनुष्य पितरोंके निमित्त उक्त स्थानमें श्राद्ध करते हैं उनके पितरोंकी

ततो देव्याः पूर्वभागे गिरौ गव्यूतिमात्रके ॥ आस्ते तत्र महादेवी नाम्ना तु रणमंडना ॥ ४० ॥ यत्र गत्वा नरो याति देवीलोकमनामयम् ॥ शरद्वसंतयोः काले बलिपूजोपहारकैः ॥ पूजयेद्भक्तिभावेन पूजयंत्येव तं सुराः ॥ ४१ ॥ विमानवरमारुह्य किंकिणीजालमालिनम् ॥ परितोऽप्सरसां वृन्दैर्गंधर्वैः सिद्धकिन्नरैः ॥४२॥ शोभमानं प्रयात्येव भित्त्वा सूर्यस्य मंडलम् ॥ ब्रह्मलोकं मुनिवरैरीप्सितं दुःखवर्जितम् ॥ ४३ ॥ अत्र यं कुरुते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्॥ समस्तैश्वर्य्यदं पुंसां नित्यं दानविधायिनी ॥ ४४ ॥ अस्मिन् गिरौ महाकाली समाप्लुत्य नभस्तलम् ॥ कराभ्यां सुदृढाभ्यां तु पृथिवीं समताडयत् ॥ ४५ ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र कराचिह्नं सुनिर्मलम्॥ इदमेव परं स्थानं तपःसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥ पर्वतेऽस्मिन्महाभागे सिद्धगंधर्वकिन्नराः॥ विचरंति सुखं देव्या दृश्यंतेऽद्यापि कैश्चन ॥ ४७ ॥ काल्याश्चोत्तरभागे तु योजनार्द्धेन सम्मि-

मुक्ति होजाती है और उन्हें पुत्रोंकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ देवीके स्थानसे पूर्वकी ओर पर्वतके ऊपर दो कोशकी दूरीपर रणमण्डना नामकी महादेवी विद्यमान है ॥ ४० ॥ वहांकी यात्रा करनेसे यात्रीको रोग रहित देवीके लोककी प्राप्ति होती है, शरद और वसन्त ऋतुमें बलि पूजा और उपहारके द्वारा जो व्यक्ति भक्ति भाव पूर्वक देवीजीकी पूजा करता है उस पुरुषकी देवताभी पूजा करते हैं ॥ ४१ ॥ और वोह पुरुष श्रेष्ठ विमानमें आरूढ हो, किंकिणियोंके द्वारा समलंकृत होकर अप्सराओं, गन्धर्वों सिद्ध और किन्नरोंके द्वारा चारोंओरसे ॥ ४२ ॥ सुशोभित हो सूर्य मंडलका भेदन करके उस ब्रह्म लोकको जाताहै, बडे २ मुनीश्वर जिसकी प्राप्तिके लिये अभिलाषा करते और जहां दुःख नहीं है ॥ ४३ ॥ इस स्थानमें जो कुछ भी कामना की जाय निःसन्देह वोह पूर्ण होजातीहै, समस्त पापों और सब उपद्रवोंका सत्यानाश होजाताहै, एवम् देवीजी निखिल ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥ ४४ ॥ इसी पर्वतके ऊपर आकाशमें को उछलकर देवीजीने अपने दृढ हाथोंसे पृथ्वीको ताडन किया था ॥ ४५ ॥ वहां अभीतक हाथोंके निर्मल चिह्न दिखाई पडते हैं, येही परम स्थान तप की सिद्धिका देने वाला है ॥ ४६ ॥ हे महाभागे! इस पर्वतके ऊपर सिद्ध गन्धर्व और किन्नर सुख पूर्वक विचरते हैं, किन्हीं २ को उनका दर्शनभी होता है ॥ ४७ ॥ कालीजीसे उत्तरकी ओर आधे योजनकी दूरी पर महादेवजीका एक स्थानहै

॥ तत्र स्थानं महादेव्याः सर्वपीठोत्तमोत्तमम् ॥ ४८ ॥ कोटि-माहेश्वरी देवी वसते नित्यमेव हि ॥ सर्वपापहरा सर्वसुखभोगप्रदायिनी ॥ ४९ ॥ यद्दर्शनादपि नरो जातिस्मरणमाप्नुयात् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे कालीक्षेत्रतीर्थाभिधानं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

कि देवीजीके सभी पीठोंमें परमोत्तमहै ॥ ४८ ॥ वहां नित्यही कोटि माहेश्वरी देवी निवास हैं, वोह देवी सब पापोंको हरकर अखिल सुख और भोगोंको देतीहैं ॥ ४९ ॥ इनका न करनेसे भी जातिस्मरणके फलका लाभ होता है ॥ ५० ॥

इति केदारखंडे भाषाटीकायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः ९०.

अरुन्धत्युवाच ॥ मुनिसेवित पादाब्ज प्राणवल्लभ मत्पते ॥ या त्वया सूचिता मह्यं कोटिमाहेश्वरीति वै ॥ १ ॥ कथं तस्याः समुत्पत्तिः कथं नाम बभूव हि ॥ कथं तस्याः स्थितिस्तत्र दुर्गमे हिमपर्वते ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु प्रिये वरारोहे सुंदरि प्राणवल्लभे ॥ धन्यासि कृतपुण्यासि यस्यास्ते मतिरीदृशी ॥ अनादिनिधना देवी न वाङ्मनसगोचरा ॥ सैव सत्त्वादिसंयोगात्सृष्टयादीन् कुरुते भृशम् ॥ ४ ॥ नित्या शुद्धा निर्विकारा निराकारा निरत्यया ॥ कथं तस्याः समुत्पत्तिं वदामि सुंदरानने ॥ ५ ॥ परं तु त्वद्गतप्रीत्या वक्ष्या-

अरुन्धती बोली-हे प्राणप्यारे हमारे कान्त !!! मुनिजन आपके चरणकमलकी सेवा करतेहैं। आपने जिन कोटि माहेश्वरीका हमारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ १ ॥ उनकी कैसे उत्पत्ति हुई, किस प्रकार उनका यह नाम हुआ, और दुर्गम हिमालयके ऊपर उनकी स्थिति किस प्रकार हुई ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले-सुनो सुमुखिप्रिये ! तुम सुन्दरी और हमारी प्यारी हो, तुमने अधिक पुण्योंका आचरण कियाहै अतएव तुम्हें धन्यहै क्योंकि तुम्हारी ऐसी सुन्दर मतिहै ॥ ३ ॥ उन देवीजीका आदि अन्त नहीं है, वोह वाणी और मनकेभी अगोचरहै, सत्व आदि गुणोंके संयोगसे वोह सृष्टिकी रचना आदि करतीहै ॥ ४ ॥ वोह नित्य, शुद्धस्वरूप, विकार और आकार रहित है, उसका कभी नाश नहीं होता, हे सुमुखि ! उसकी उत्पत्तिको मैं कैसे वर्णन करूं ॥ ५ ॥ परन्तु-तुम्हारी प्रीतिके कारण

मि तज्जनीं शुभाम्॥ यदा यदा हि वाधा स्यादेवानामासुरी प्रिये ॥ ६ ॥ तदा तच्छमनार्थाय ह्याविर्भूता महेश्वरी ॥ लोके सा तु तदोत्पन्नेत्येवं वादो भवत्यथ ॥ ७ ॥ देवानुग्रहणार्थाय महिषासुरघातने ॥ तथा शुंभनिशुंभस्य दैत्ययोर्विनिपातने ॥ ८ ॥ रक्तबीजादिदैत्यानां मारणे सा महात्मिका ॥ चकार विविधामाया असुराणां भयप्रदा ॥ ९ ॥ क्वचिच्च सिंहरूपेण नारसिंहेन च क्वचित् ॥ क्वचित्कांश्चिज्जघानासौ वाराहं रूपमाश्रिता॥ १०॥ कांश्चिद्ब्रह्म .णः शक्त्या इन्द्रशक्त्या तथापरान्॥ बाणरूपेण खड्गेन शस्त्रश. स्त्रस्वरूपिणी ॥ ११ ॥ क्वचिच्च विंशतिभुजा शतहस्ता तथा क्वचित् ॥ क्वचित्सहस्रहस्ता च विंशास्या शुभतुंडधृक् ॥ १२ ॥ एकपादा द्विपादा च नियुतांघ्रिः परार्द्धपात् ॥ कांश्चित्खड्गेन चिच्छेद निजगाल तथाऽपरान् ॥ ॥ १३ ॥ कांश्चिच्छूलेन भित्त्वा च चिक्षेप गगनान्तरे ॥ क्वचिद्दर्शनयोग्याभूत्क्वचिद्दृश्या न कैश्चन ॥ १४ ॥ अरूपा बहुरुपा च क्वचिदिंद्रादिरूपिणी ॥ एवं चक्रे यतो मायाः कोटीः प्राण-

उनकी जन्मकी शुभकथा वर्णन करताहूं, हे प्रिये ! जब २ देवताओंके ऊपर असुरकृतबाधा प्रवृत्त होतीहै ॥ ६ ॥ तभी उसबाधाकी शान्तिके लिये महेश्वरी प्रादुर्भूत होतीहैं, तभी लोकमें यह वाद होने लगताहै कि देवीजी अब उत्पन्न हुई हैं ॥ ७ ॥ देवताओंके ऊपर अनुग्रह करने, महिषासुर, और शुम्भ निशुम्भका घातकरनेमें एवं च रक्तबीजआदि दैत्योंका वध करनेके लिये भी उन महादेवीने विविध प्रकारकी ऐसी माया रचीं जिनसे असुरोंको भय उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ कहीं सिंहरूप धारणकर, कहीं नरसिंहरूपसे, और कहीं वाराह रूपधारण करके उनने दैत्योंका वध किया ॥१०॥ किन्हींको ब्रह्माजी की शक्तिसे, किन्हींको इन्द्रकी शक्तिसे, किन्हींको बाणसे किन्हींको खड्गसे और किन्हींको अस्त्रशस्त्रके द्वारा देवीने वधकिया ॥ ११ ॥ उक्त देवीने कहीं वीस, कहीं सौ और कहीं सहस्रभुजा धारण करीं, कहीं देवीने अपने वीस मुख बनाये ॥१२॥ कभी एकपदी कभी द्विपदी कभी लक्षपदी बनके देवीने किन्हींको खड्गसे मारा और किन्हीं २ को निगल लिया॥१३॥ और किन्हींको अपने त्रिशूलसे छेदकर आकाशमें फेंकदिया, कहीं देवीने दर्शन दिये और कहीं अदृष्ट होगई॥ १४ ॥ कहीं अरूपा और कहीं बहुरूपिणी बनीं, कहीं इन्द्रादिका रूप धारणकिया, हे प्राण

स्य वल्लभे ॥ १५ ॥ अतस्तस्या बभूवैतत्कोटिमायेश्वरीति च ॥
नाम विख्यातिमायातं स्वर्गाधिकफलप्रदम् ॥१६॥ हिमवत्पर्व-
त रम्ये देवैराराधिता सती ॥ तत्रैव वसतिं चक्रे लोकानां हित-
काम्यया ॥ १७ ॥ यः कुर्य्याद्दर्शनं तस्या मुक्तिस्तस्य करे
स्थिता ॥ देवीं प्रति मायांतं दृष्ट्वा तस्य प्रपितामहाः ॥
नृत्यंति हर्षिताः सर्वे व्रजामो लोकमव्ययम्॥१८॥इत्येवं वादिनो
भद्रे वंदति च रमंति च ॥ यैः कृतं पिंडदानं हि स्नानतर्पणपूर्व-
कम् ॥ तारितं तैः सुपुत्रैस्तु कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ १९ ॥ गयायां
पिंडदानेन यत्फलं लभते नरः॥तत्फलं लभते ह्यत्र पिंडदाने कृते
सति ॥ २० ॥ कोटिमायेश्वरीं देवीं यः पजयति भक्तितः ॥ न
तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥२१॥ यः कश्चित्कपिलामे-
कामस्मिंस्तीर्थे प्रयच्छति॥अहीनांगो ह्यरोगश्च पंचेंद्रियसमन्वितः
॥२२॥ यावन्ति रोमकूपानि तस्य गात्रेषु सन्ति वै॥ तावद्युग-
सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २३ ॥ ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो

री यों करोडों विधिसे देवीने माया रची ॥१५॥ इसीकारण उनका कोटि मायेश्वरी नाम हुआ,
नाम स्वर्गसेभी अधिक फलप्रदान करनेवालाहै ॥ १६ ॥ सुरम्य हिमालयपर्वतके ऊपर देवता-
ने देवीजीकी पूजा की थी अतएव लोकोंकी हितकामनासे फिर वहांही निवास करने लगीं॥ १७॥
मनुष्य उनके दर्शन करताहै मुक्ति तो उसके हाथहीमें रहतीहै, और जो प्राणी देवीकी यात्रा
ताहै उसे जाता देख उसके प्रपितामह (पितृगण) प्रसन्न हो नृत्य करने लगतेहैं कि हम
अव्यय लोकको जाते हैं ॥ १८ ॥ हे सुभगे ! यों कहते और रमण करतेहैं, जो व्यक्ति स्नान
तर्पण पूर्वक उस स्थानमें पिण्डदान करते हैं, वे सुपुत्र सौ कुलका उद्धार करदेते हैं ॥१९॥
मनुष्य गयामें पिण्डदान करते हैं उन्हें जिस फलकी प्राप्ति होती है, यहां पिण्डदान करनेसे
उसी फलका लाभ होता है ॥ २० ॥ जो व्यक्ति भक्तिभाव पूर्वक कोटि मायेश्वरी देवीकी पूजा
ता है, सैकडों करोडों कल्पपर्य्यन्त भी उसका संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २१ ॥ जो
इस तीर्थमें एक कपिला गौका दान करता है वोह निरोगी रहकर पञ्चेन्द्रियोंसे पूर्ण होता है
उसके सब अंगभी परिपूर्ण रहते हैं ॥ २२ ॥ और उस गौके शरीरमें जितने रोमकूपहैं उत-
सहस्र युग पर्य्यन्त वोह मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करताहै ॥ २३ ॥ फिर स्वर्गसे निपतित
र इस संसारमें वोह राजराजेश्वर होता और विपुल भोगोंका उपभोग करताहै, अन्तमें किसी

राजराजो भवेदिह ॥ स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्मत्तीर्थे मरणं भवेत् ॥ २४ ॥ अस्मिंस्तीर्थे महाभागे यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ देवीसायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २५ ॥ यस्तु भूमिं प्रयच्छेत हस्तमात्रामपि द्विजे ॥ तेन दत्ता भवेत्पृथ्वी सशैलवनकानना ॥ २६ ॥ यं मंत्रं प्रजपेदत्र चैकरात्रोषितो नरः ॥ स मंत्रसिद्धितां याति शत्रुमंत्रोऽपि वल्लभे ॥ २७ ॥ इति ते कथितं दिव्यं माहात्म्यं मुक्तिदायकम् ॥ कोटिमायेश्वरीदेव्या यैः श्रुतं ते विकल्मषाः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कोटिमाहेश्वरीमाहात्म्यकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

उत्तम तीर्थके ऊपर उसका मरण होना चाहिये ॥ २४ ॥ हे महाभागे ! इस तीर्थके ऊपर जो मनुष्य प्राणोंका परित्याग करताहै, यह बात बिलकुल सत्यहै कि उसे निःसन्देह देवीजीके सायुज्यका लाभ होताहै ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणी ! जो एक हस्त प्रमाणभी भूमिदान करताहै मानो वोह वन और पर्वतों सहित भूमिका दान करदेताहै ॥ २६ ॥ यदि मनुष्य एकरात्री भी उपवास धारण पूर्वक किसी मन्त्रका जप करताहै, हे प्रिये ! वोह मन्त्र चाहे उसका अरि हो तौभी सिद्ध होजाताहै ॥ २७ ॥ इस प्रकार हमने कोटि मायेश्वरी देवीका दिव्य और मुक्तिदायक माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, जो इसका श्रवण करतेहैं वे भी निष्पाप होजातेहैं ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोध्यायः ९१.

वसिष्ठ उवाच ॥ कालीक्षेत्रात्सौम्यभागे योजनद्वयसंमिते ॥ रामेश्वर्या महादेव्याः स्थानं दिव्यसुखप्रदम् ॥ १ ॥ यद्दर्शनादपि नरो महापातककोटिभिः ॥ मुच्यते परमं धाम प्राप्नोति मुनिवंदितम् ॥ २ ॥ यत्र प्राप गुरोः शापाद्विमुक्तिं शशलांछनः ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं

वशिष्ठजी बोले—कालीक्षेत्रसे पूर्वकी ओर दो योजनकी दूरी पर रामेश्वरी महादेवीका दिव्य और सुखदायी स्थानहै ॥ १ ॥ हे महर्षियोंके द्वारा पूजितदेवि ! इस स्थानके दर्शन करनेवाला मनुष्य करोडों पापोंसे मुक्त होकर परमधाम (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ इसी स्थानमें शशलांछन (चन्द्रमा) को गुरुके शापसे मुक्तिकी प्राप्ति हुई थी उस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेकी

को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ ३ ॥ यद्दर्शनादपि नरः सर्वपापैः प्रमु-
च्यते ॥ ४ ॥ अरुंधत्युवाच ॥ कथं वै प्राप्तवाञ्शापं चंद्रो दाक्षा-
यणीपतिः ॥ कथं च मुक्तवाञ्छापादिति मे शंश जीवन ॥ ५ ॥
वशिष्ठ उवाच ॥ एकदा नंदने रम्ये समाह्लादकरे शुभैः ॥ नाना-
द्रुमलताकीर्णे कल्पवृक्षोपशोभिते ॥ ६ ॥ अनेकमणिसंयुक्ते
नानौषधिप्रभान्विते ॥ कौतुकादर्शनार्थाय राज्ञो वै दर्शनाय च॥
॥ ७ ॥ समागतो विधुः सौम्यः कामदेव इवापरः ॥ ददर्श तारां
मृद्वंगीं वाप्यां रतिमिवापराम् ॥ ८ ॥ तां दृष्ट्वा कामसंतप्तो बभूव
रजनीपतिः ॥ सापि चन्द्रं विलोक्यैव कामबाणप्रपीडिता ॥
आसीत्संमूर्छिता सोऽपि पपात धरणीतले ॥ ९ ॥ एवं मिथस्तयोः
प्रीतिः समजायत शुश्रुवे ॥ मूर्च्छितश्चिंतयामास चंद्रो मे का
गतिर्भवेत् ॥ १० ॥ तया विना न जीवामि मोक्ष्ये प्राणान्न सं-
शयः ॥ इति प्राणान्परित्यक्तुं निश्चयं कृतवान्यदा ॥ ११ ॥
सापि तं तदवस्थं तु दृष्ट्वाऽत्यंतं प्रदुःखिता॥आययौ निकटं तस्यो-
त्तिष्ठ प्रियेतिभाषिणी ॥ १२ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुधाधारो-

किसकी शक्तिहै ॥ ३ ॥ उसके तौ दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ४ ॥
अरुन्धती बोली–हे प्राणाधार ! दाक्षायणी पति चन्द्रमाको कैसे शाप मिला, और फिर कैसे शापसे
मुक्ति हुई यह सब मेरे प्रति वर्णन करो ॥५॥ वशिष्ठजी बोले–एक समय सुन्दर आनन्द देनेवाले नन्दन
वनमें जहां अनेक वृक्ष और लता तथा कल्पवृक्ष आकीर्ण हैं॥६॥ जहां अनेक मणियों और विविध औष-
धियोंकी प्रभा व्याप्तहै, वहां कौतुक देखने और राजाके दर्शन करनेके लिये ॥७॥ सौम्य चन्द्रमा दूसरे
कामदेवकी समान आये,और वहां वापीके ऊपर दूसरी रतिकी सदृश कोमलांगी ताराको देखा॥८॥उसे
देखतेही निशापति कामसे व्याकुल होगये, उधर वोह भी चन्द्रमाको देखतेही कामबाणसे व्यथित
हो मूर्च्छा ग्रहण पूर्वक भूतलके ऊपर निपतित होगई॥ ९ ॥ इस प्रकार उन दोनोंकी परस्पर अधिक
प्रीति होगई, सुतराम् मूर्छित चन्द्रमाभी विचार करने लगे कि, मेरी क्या गति होगी ॥ १० ॥
बिना उसके मैं जीवित नहीं रहसक्ता अतएव निःसन्देह प्राणोंका परित्याग कर दूंगा, ऐसा मन-
सूबा कर जभी प्राण परित्याग करनेके लिये चन्द्रमाने निश्चय किया ॥ ११ ॥ तभी चन्द्रमाकी ऐसी
दशा देख वोह ताराभी अत्यन्तही दुःखित होगई और उसके निकट आकर यों बोली उठो !
प्यारे !! उठो !!! ॥ १२ ॥ अमृतधाराकी समान उसके इन वचनोंको सुनकर चन्द्रमाने

पमं मुदा ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मेने तद्विजराट् तदा ॥ १३ ॥ सोऽपि तामालिलिंगाऽथ साऽपि पंचशराहता ॥ आलिलिंग सुधांशुं सा चुचुम्बेन्दुश्च तन्मुखम् ॥१४॥ उभौ कामशराक्रांतौ तत्र तत्समये प्रिये ॥ नापश्यतां च कांश्चिद्वै स्थितानपि च निर्ज्जरान् ॥ १५ ॥ अथ रेमे तया सार्द्धं चंद्रमा लक्षवर्षकम् ॥ निमेषार्द्धमिवापश्यल्लक्षवर्षाणि मोहितः ॥ १६ ॥ गतानि बहुवर्षाणि तयोश्च रममाणयोः ॥ रात्रौ तारा गुरुगृहे तेनैव परिमोदते ॥१७॥ दिवा चंद्रेण सार्द्धं तु रेमे साहर्निशं प्रिये ॥ ततो बहुतिथे काले ज्ञातवान्स बृहस्पतिः॥१८॥ तज्ज्ञात्वा क्रोधसंततो बभूव धिषणस्तदा ॥ आगत्य चन्द्रं प्रोवाच क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १९ ॥ धिक्चंद्र तव पापिष्ठ यस्मात्त्वं कृतवानसि ॥ मज्जायाया धर्षणं हि तस्मात्त्वं क्षयवान्भव ॥ २० ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति चंद्राय शापं तु दत्त्वा चंद्रोऽभ्यजायत ॥ राजयक्ष्मग्रस्तदेहो नानारोगातुरो भृशम् ॥ २१ ॥ क्षुत्क्षामः क्षामदेहो वै मषीवर्णद्युतिः

आनन्दसे अपना दूसरा जन्म समझा ॥ १३ ॥ चन्द्रमाने भी उसका आलिंगन किया तब वोह भी पंचवाण(कामदेव)के बाणोंसे व्याथित होगई और चन्द्रमाका आलिंगन करनेलगी, तब तौ चन्द्रमाने उसके मुखका चुम्बन करलिया ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! उस समय उन दोनोंहीके ऊपर कामदेवने अपने बाणोंका प्रहार किया, अत एव समीपही स्थित हुए देवताओंको वे दोनों अवलोकन न करसके ॥ १५ ॥ निदान एक लक्षवर्ष पर्यन्त चन्द्रमाने उसके साथ रमणकिया, और वोह ऐसा मोहित होगया कि, लक्षवर्ष भी उसे आधे निमेषकी समान प्रतीत हुए ॥ १६ ॥ यद्यपि उन दोनोंको रमण करते २ बहुतसे वर्ष व्यतीत होगये, तथापि तारा बृहस्पतिजीके घरमें फिरभी चन्द्रमाहीके साथ रमण करती रही ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! दिनमें वोह चन्द्रमाके साथ निरन्तर मरणकरतीथी, जब इस प्रकार बहुतसे दिन व्यतीत होगये तब बृहस्पतिने भी इस वृत्तान्तको जानलिया ॥ १८ ॥ जब बृहस्पतिजीको यह बात ज्ञात हुई तब तौ वे क्रोधसे सन्तप्त होगये, और मारे क्रोधके नेत्र लाल २ करके चन्द्रमासे यों बोले ॥ १९ ॥ अरे पापी चन्द्रमा ! ! ! तुझे धिक्कारहै, क्यों कि, तूने हमारी पत्नीका सतीत्व नष्ट कियाहै अतएव तू क्षयरोगसे पीडित रहैगा ॥ २० ॥ वशिष्ठजी बोले—जब इस प्रकार चन्द्रमाको शाप दिया तब चन्द्रमाका देह राजयक्ष्मा तथा अन्यान्य रोगोंसे ग्रसित होगया ॥ २१ ॥ एक तौ क्षुधासे पीडित, दूसरे उसका

क्षुशः ॥ चंद्रोऽपि स्वं वपुर्दृष्ट्वा रोगग्रस्तं शुचिस्मिते ॥ययौ कैला-
सभवनं यत्र देवः सदाशिवः ॥२२॥ तत्र गत्वा शिवं नत्वा पूज-
यित्वा यथाविधि ॥ श्रीशिवं स्तोतुमारेभे राजयक्ष्मापनुत्तये ॥
॥२३॥ चन्द्र उवाच ॥ ॥ हे देवदेवेश शिवेश भक्तप्रदत्तपुण्या-
भिजल त्रिनेत्र॥सदैव ते पादवरे निवासो भवेन्महादेव मम प्रभो
मो ॥२४॥ एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ यस्मादन्यन्नापरं किं-
चिदस्ति॥ यस्माद्रुद्रान्नो भविष्यन्न भूतं तं वै सेवे सारभूतं नितां-
तम्॥२५॥ तारस्त्वमेव भजतां जनिनाशभीतिसंसारबंधनमपा-
कुरुषे त्वमेव ॥सूक्ष्मं त्वमेव सकलस्य जनस्य चित्ते ज्योतिर्महेश
भवतो न हि किंचिदन्यत् ॥२६॥ त्वमेव विष्णुर्निखिलस्य भर्त्ता
त्वन्नाभिपद्मप्रभवो विरंचिः ॥ सृष्टिस्वरूपेण चराचरं हि सृजस्य
हो अत्सि च सर्वविश्वम् ॥ २७ ॥ निखिलदेवगणैः स्तुतपादकं
प्रबलभैरवदण्डनिपातितैः ॥ सकलभूतगणैः परिवारितं शिवमहं

शरीरभी दुर्बल होगया और उसकी आभा कालिमाकी सदृश होगई, हे मधुर मुसकान करनेवाली प्रिये ! जब चंद्रमाने अपने शरीरकी रोगग्रसित यह दुर्दशा देखी तो जहाँ कैलासके ऊपर सदाशिव महादेवजी थे वहां गया ॥ २२ ॥ वहां जाय यथाविधि महादेवजीका पूजन और उन्हें प्रणाम करके राजयक्ष्मा रोगके विनाशार्थ चन्द्रमाने महादेवजीकी स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ चन्द्रमा बोले—हे देवाधिदेवशिव ! आप सबके ईश्वरहैं, आपके तीन नेत्रहैं, हे हमारे प्रभु महादेव ! आपके श्रेष्ठ चरणोंमें हमारा सदैव निवासहो ॥ २४ ॥ केवल एक रुद्रही है दूसरा और कोई नहीं, सुतराम् उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, जिन रुद्रसे अधिक न तो और कोई हुआ और न कोई होगा अतएव सबसे सार रूप उन्हीं महादेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ जो आपका भजन करतेहैं उनके जन्म मरण जनित भयको विनाश कर उनका उद्धार आपही करतेहैं, आपही सांसारिक बन्धनसे मुक्तिलाभ करातेहैं, और सबके चित्तमें ज्योतिःस्वरूपहो सूक्ष्मतासे आपही विराजमान रहतेहैं, हे महेश्वर ! आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीहै ॥ २६ ॥ सबका पालन पोषण करनेवाले विष्णुस्वरूप आपही है, नाभिकमलसे प्रादुर्भूत हुए ब्रह्मास्वरूप भी आपहीहैं, सृष्टिरूपसे समस्त चर अचरकी रचना एवम् सब विश्वका विनाश भी आपही करतेहैं ॥ २७ ॥ सम्पूर्ण देवतागण आपके चरणोंकी

शरणं हि परिव्रजैः ॥ २८ ॥ भव गहने पतितस्य जनस्य मे तव चरणं शरणं भवति प्रभो ॥ स्मरमदमात्रकुवृक्षघनावृते विषयवराहतरक्षुसमन्विते ॥ २९ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ ॥ इति स्तुतः शिव प्राह विनयावनतं विधुम् ॥ यदर्थं तु त्वया वत्स स्तुतोऽहं भक्तवत्सलः ॥ तत्सर्वं ते विधास्यामि नैवात्र संशयं कुरु ॥ ३० ॥ सहस्रं प्रपठेत्स्तोत्रमेतद्राजगदार्दितः ॥ मुच्यते सहसा रोगादंते शिवपुरे वसेत् ॥३१॥ गच्छ तत्र महाभाग यत्र देवी स्थलं गिरौ ॥ अहं वसामि तत्रैव देव्या सह महामते ॥ ३२ ॥ तत्क्षेत्रगमनात्ते वै राजयक्ष्मा विनश्यति ॥ विलंबं मा कुरु प्राज्ञ गच्छ शीघ्रं विनिश्चितः ॥ ३३ ॥ इत्युक्तः प्रययौ तत्र यत्र देवी प्रतिष्ठिता ॥ तत्क्षेत्रदर्शनादेव विमुक्तो राजयक्ष्मणा ॥ ३४ ॥ बभूव परिपूर्णाङ्गो पूर्णिमायां विशेषतः ॥ एवं शापाद्विनिर्मुक्तो गुरोश्चंद्रः प्रभावतः ॥३५॥ तत आरभ्य नामाभूद्देव्या राकेश्वरीति वै ॥ प्रसिद्धिं चागमल्लोके

स्तुति करतेहैं, प्रबलभैरवराट् और भूतगणसे आप परिवृत रहतेहैं, ऐसे कल्याण मूर्ति शिवकी शरणमें मैं प्राप्त होताहूं ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! यह (स्वयम्) जन गहन संसार (सागर) में निपतित हो रहाहै, सो आपके चरणही उसके लिये आधारहैं, अतएव काम जनित बाधाओंके गहनसे मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ वशिष्ठजी बोले—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर महादेवजी विनयसे नम्र हुए चन्द्रमासे यों कहने लगे,—हे पुत्र ! मुझभक्तानुग्रहकारीकी जिस लिये तुमने स्तुति करीहै, मैं तुम्हारे उस सभी कार्यका संपादन करूंगा इसमें तुम किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ ३० ॥ राजयक्ष्मा रोगसे पीडित हुआ जो व्यक्ति इस स्तोत्रका एक सहस्रवार पाठ करताहै, महारोगसे मुक्ति लाभ करके वोह व्यक्ति अन्त समय शिवलोकमें निवास पाताहै॥३१॥ हे महामतिमान् महाभाग ! जहां हिमालय पर्वतके ऊपर देवीजीका स्थानहै तुम वहांही जाओ, कारण कि, मैं देवीजीके साथ २ वहांही निवास करताहूं ॥ ३२ ॥ उस स्थानमें गमन करनेसे अवश्यमेव तुम्हारे राजयक्ष्मारोगका विनाश होजायगा, अतएव हे प्राज्ञ ! तुम विलंब न करो किन्तु निश्चय तुम वहां चले जाओ ॥ ३३ ॥ जब महादेवजीने यों कहा तौ वोह उसी स्थानमें गया जहां देवीजी उपस्थित थी और उस क्षेत्रके दर्शन करतेही राजयक्ष्मारोगसे चन्द्रमाकी मुक्ति होगई ॥ ३४ ॥ (सदैव) और विशेष कर पूर्णिमामें उसका अंग परिपूर्ण होगया, इस प्रकार (उस क्षेत्रके) प्रभावसे चन्द्रमाको बृहस्पतिके शापसे मुक्तिका लाभ होगया ॥ ३५ ॥ उसी दिनसे देवीका राकेश्वरी नाम होगया, और संसारमें उस क्षेत्रकी यह प्रसिद्धि होगई कि—यह

तत्क्षेत्रं मुक्तिदायकम् ॥ ३६ ॥ यतो राका पूर्णिमाभूत्ततो राकेश्वरी मता ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ पूजनाल्लभते मोक्षं दर्शनात्पापनाशनम् ॥ भक्त्या करोति यः स्पर्शं कैवल्यं तत्करे स्थितम् ॥ ३८ ॥ यद्यत्करोति तत्क्षेत्रे पुण्यं वा पापमेव वा ॥ तत्सर्वं जायते कोटिगुणं भद्रे दिने दिने ॥ ३९ ॥ धर्ममेवाचरेत्तत्र पापं नैव समाचरेत् ॥ पूजयेद्भक्तिभावेन नानावल्युपहारकैः ॥ ४० ॥ विमानवरमारुह्य स याति परमं पदम् ॥ भित्त्वा सूर्यमंडलं तु यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४१ ॥ अद्यापि तत्र वसते चंद्रः स्वांशेन सुव्रते ॥ तारया सह विप्रेंद्रस्तस्य पुत्रो बुधोऽभवत् ॥ ४२ ॥ तत्रैव वर्त्तते शैवं लिंगमुत्तमलोकदम् ॥ यद्दर्शनान्नरो याति शिवलोकमनामयम् ॥ ४३ ॥ इति ते कथितं दिव्यं क्षेत्रराजस्य वैभवम् ॥ यच्छ्रुत्वाऽपि नरः पापैः सद्य एव विमुच्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे राकेश्वरीमाहात्म्यकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

मुक्ति देनेवालाहै ॥ ३६ ॥ क्यों कि–राका पूर्णिमा हुई इसीसे राकेश्वरी कहागया उसका केवल स्मरण करनेहीसे बडे २ पापोंसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ३७ ॥ पूजन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है दर्शनसे पापोंका नाश होताहै, और जो व्यक्ति भक्ति भाव पूर्वक उसका स्पर्श करताहै उसके हाथमें मोक्षकी स्थिति रहतीहै ॥ ३८ ॥ पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी उस क्षेत्रमें किया जाताहै हे सुभद्रे ! वोह प्रतिदिन करोडों गुणा वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ अतएव वहां धर्मकाही आचरण करे पापका नहीं, एवम् विविधभांतिकी वलि और उपहारसे भक्तिभाव पूर्वक पूजा करे ॥ ४० ॥ ऐसा आचरण करनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ विमानमें आरूढहो सूर्य मंडलका भेदन कर ऐसे परमपद मोक्षको प्राप्त होता है, कि, जहां जाय फिर किसी प्रकारका शोच करना नहीं होता है ॥ ४१ ॥ हे सुन्दरव्रतका आचरणकरनेवाली प्रिये ! उस स्थानमें चन्द्रमा तारासहित अपने अंशसे अभीतक निवास करताहै, और उसका पुत्र बुध हुआ ॥ ४२ ॥ उत्तम लोककी प्राप्ति करानेवाला वहांही एक शिव लिंग है, उसके दर्शन करनेसे मनुष्यको अनामय (रोगादिबाधा रहित) शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ जिसका श्रवण करनेसे मनुष्य शीघ्रही पापोंसे मुक्त होजाता है ऐसा यह क्षेत्रराजका दिव्य प्रताप हमने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया है ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामेकोत्तरनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः ९२.

अरुंधत्युवाच ॥ भगवन्वद मे चांद्रमन्वयं तत्त्वतः प्रभो ॥ यत्र जाता महीपालाः शतशो हरितत्पराः ॥ १ ॥ राजपुत्रा प्रजाताश्च कथं हि श्रेष्ठतां गताः ॥ केन कर्मविपाकेन प्राप्तवंतः परां गतिम् ॥ २ ॥ केषु केषु च तीर्थेषु तपस्ततं महात्मभिः ॥ एतत्सर्वं समासेन भक्तायै वद सुव्रत ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्युक्तो मुनिराड् दध्यावरुंधत्या धृतव्रतः ॥ विज्ञांय तन्महद् वृत्तं स्कंदनारदयोस्तदा॥उवाच सर्वं यत्पृष्टं प्रियया प्रियकाम्यया ॥ ४ ॥ उक्त्वा तत्सर्ववृत्तांतं पत्न्या कैलासमाययौ ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ सूत सूत महाबाहो वदाऽग्रे कथितं तु यत् ॥ अरुंधत्यै वसिष्ठेन स्कंदोक्तं नारदे मुनौ ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ एकदा सुखमासीनं नारदो मुनिसत्तमः ॥ विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ गिरिशात्मजम् ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ भगवन् सर्वधर्म्मज्ञ गौरीशंकरयोः सुत ॥ उक्तंयद्भवता पूर्वं तीर्थे

अरुन्धती बोली—हे ऐश्वर्य्य शालि प्रभो ! अब आप तत्त्वनिर्देशन पूर्वक चन्द्रवंशका वर्णन करें, क्योंकि- उक्तवंशमें सैंकडों राजा ऐसे हुए जो नारायणकी भक्तिमें तत्पर थे ॥ १ ॥ अनेक राज पुत्रभी हुए, वे किस प्रकार श्रेष्ठ हुए ? एवं च कौनसे कर्मका आचरण करनेसे उन्हें परमगतिका लाभ हुआ ॥ २ ॥ उन महात्माओंने किन २ तीर्थोंमें तपश्चर्या करी ? हे सुव्रत ! यह सब वृत्तान्त संक्षेप रीतिसे मुझ भक्तिनीके प्रति वर्णन करिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले जब अरुन्धतीने मुनिराजसे इस प्रकारसे प्रार्थना करी तब उन व्रताचरणकर्त्ताने ध्यान किया, तब उन्हें स्वामि कार्तिक और नारदजीका वृत्तान्त विदित हुआ, अतएव प्रियाने जो कुछ प्रश्न किया था वोह सब उसकी प्रियकामनासे कहने लगे ॥ ४ ॥ एवं च वोह सब वृत्तान्त अपनी पत्नीके प्रति वर्णन करके आप कैलास पर्वतके ऊपर चले आये ॥ ५ ॥ ऋषियोंने कहा—हे महाबाहुसूत ! आगेका वोह सब वृत्तान्त आप हमारे प्रति वर्णन करें जिस प्रकार कार्त्तिकेयका नारदजीके प्रति वर्णन किया हुआ आख्यान वशिष्टजी महाराजने अरुन्धतीसे कहा था ॥ ६ ॥ सूतजी बोले—एक समय सुखपूर्वक बैठेहुए महादेवतनूद्भव स्वामिकार्त्तिकसे मुनिसत्तम नारदजी महाराज यों पूछने लगे ॥ ७ ॥ नारदजी बोले—हे भगवन् ! आप गौरीशंकरके पुत्र और समस्त धर्मोंके ज्ञाताहैं

माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यत्र वै तपसा प्राप बुधो वै वंशमक्षयम् ॥ यस्मिन्वंशे समुत्पन्ना महांतः पृथिवीभुजः ॥ ९ ॥ जाता धर्मपरा देवा जेतारोऽपि दिवौकसाम् ॥ केषु केषु च तीर्थेषु केदारे शिवमंदिरे ॥ १० ॥ तपस्ततं च प्राप्तं च फलं लोकेषु दुर्लभम् ॥ वंशं च तीर्थमाहात्म्यं वद विस्तरतो मम ॥११॥ स्कंद उवाच॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र तीर्थानां फलवैभवम् ॥ पुण्यानां च महीपानां वंशश्रोतुः सुखप्रदम्॥१२॥पुरा चंद्रो महातेजा रूपेणाप्रतिमांस्त्रिषु ॥ ददर्श गुरुपत्नीं तां तारां ताराधिपाननाम् ॥ १३ ॥ धर्मज्ञोपि च तां दृष्ट्वा भवितव्यवशं गतः ॥ कामेषुगणविद्धांगः पपात धरणीतले ॥१४॥ ततः कालेन महता दुःखितः शशलाञ्छनः॥ अधर्षयद्वनायातामेकांते वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥ एवं तयोस्तत्र कालो भूयाद्वै रममाणयोः ॥ गतः क्षणमिव क्षिप्रं मत्तयोश्चंद्रतारयोः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्समये वाचां पतिः पत्नीं ददर्श ह ॥

प्रथम आपने तीर्थोंका उत्तम माहात्म्य वर्णन किया था ॥ ८ ॥ जहां तपका अनुष्ठान करनेसे बुधको उस अक्षयवंशकी प्राप्ति हुई थी, जिस वंशमें कि, बडे २ राजाओंका जन्म हुआ था ॥९॥ वे सभी राजा धर्ममें तत्पर तथा देवताओंका भी विजय करनेमें सशक्त थे, उन्होंने केदारके ऊपर शिवमन्दिरमें किन २ तीर्थोंमें तप किया था ॥ १० ॥ और तप करनेसे लोकमें दुर्लभ फलकी उन्हें प्राप्ति हुई थी, वंश और तीर्थका माहात्म्य यह सभी विस्तार पूर्वक आप हमारे प्रति वर्णन करें ॥ ११ ॥ स्कन्द बोले—हे विप्र ! तुमने तीर्थोंके फल और उनके ऐश्वर्य्यका अच्छा प्रश्न किया, और वंश श्रवण करनेवालोंको सुख प्रदान करनेवाला पवित्र राजाओंका आख्यान भी भला पूछा ॥ १२ ॥ जब पहिले महातेजस्वी चन्द्रमाने--चद्रमाकी सदृश मुखवाली अतएव त्रिलोकीमें अनुपमरूपवती गुरुपत्नी ताराको देखा॥१३॥तब—यद्यपि वोह धर्मको जानता था किन्तु–होनहारके वशीभूत होगया, क्यों कि, उसके अंगोंको कामदेवके बाणोंनें बेधन करडाला था अतएव वोही भूमिके ऊपर निपतित होगया ॥ १४ ॥ तब तो समयानुसार चन्द्रमा अत्यन्तही दुःखित हुआ, सुतराम् वनमें एकान्त विचरती हुई उस सुमुखीको चन्द्रमाने पकडालिया ॥ १५ ॥ निदान उन दोनों चन्द्रमा और ताराको रमण करते २ यद्यपि बहुतसा समय व्यतीत होगया, किन्तु उन्हें क्षणभरहीसा प्रतीत हुआ ॥ १६ ॥ एक समय बृहस्पतिजीने अपनी पत्नीको देखा वोह गर्भवती

१ स्त्रियामिति पाठो युक्तः । आर्षत्वाद्ध्रस्व इत्यभिप्रेत्य चेदस्तु ।

अन्तर्वत्नीं महाभागः क्रुद्धः प्रोवाच तं प्रियम्॥ १७॥यस्मात्त्वया कृतं चण्डि दुष्कृतं शशिना सह ॥ कर्मणः फलमावश्यं प्राप्स्यत्येवाशु-पापकृत्॥ १८॥क्षयरोगात्क्षीणदेहो भविष्यति न संशयः ॥ तवापि सन्ततिर्जारं जाताग्रे संभविष्यति॥ १९॥इति शप्त्वा गुरुः क्रोधाज्जगाम स्वाश्रमे तदा॥चंद्रोऽपि क्षयक्षीणाङ्गो भूत्वा तुष्टाव शंकरम् ॥२०॥तत्प्रोक्तवचनात्सोऽपि क्षयरोगान्मुमोच ह॥तारायां जनयामास पुत्रं वैश्वानरप्रभम्॥२१॥नाम्ना बुधमिति ख्यातं नाम्ना सोपि महामतिः ॥ श्रीक्षेत्रांतर्गते क्षीरपुत्राद्रेर्निकटे ययौ ॥ २२ ॥ तपसे तत्र सुमहत्तताप तप उत्तमः॥ तपसश्च प्रभावेण ग्रहतां प्राप दुर्लभाम् ॥२३॥ अथ कालेन महता स बुधो वै सुबुद्धिमान् ॥ इलायां जनयामास यः पुरूरवसं सुतम् ॥ २४ ॥पुरूरवा अपि तथा चोर्वश्या सह संगतः ॥ अजीजनत्सुतानष्टौ नामतस्तन्निबोधत ॥ ॥ २५ ॥ आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसुः ॥ दिविजातः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः ॥२६॥केदारमंडले सर्वे तेपुस्ते परमं

है, तब तौ वे महाभाग क्रोधित हो अपनी प्यारीसे बोले ॥ १७ ॥ अरी चण्डी ! तूने चन्द्रमाके साथ पापका आचरण कियाहै, सो पापीको पापकर्मका फल अवश्य और शीघ्रही भोगना पडताहै ॥ १८ ॥ (अतएव चन्द्रमाका तो शरीर निःसन्देह क्षीण होजायगा, और तेरी सन्तान भी जार-जात (हरामी) कहलावेगी ॥ १९ ॥ यों शाप देकर बृहस्पतिजी महाराज अपने आश्रमको चलेगये, उधर जब चन्द्रमाका अंगभी क्षयरोगसे क्षीण होगया तौ उसने महादेवजीको सन्तुष्ट किया ॥ २० ॥ उनके कथनके अनुकूल आचरण करनेसे चन्द्रमाका क्षय रोग छूटगया और उसने तारामें एक पुत्र उत्पन्न किया, उस कुमारकी अग्नि जैसी प्रभा थी ॥ २१ ॥ एवं च उस महामतिमान्का संसारमें बुध नाम प्रसिद्ध हुआ, पश्चात् उसने श्रीक्षेत्रमें जाय उग्र तप किया ॥२२॥ उस सज्जनको तपके प्रभावहीसे उत्तम ग्रह जाति लब्ध हुई ॥२३॥ इसके अनन्तर बहुत दिनोंका बीतने पर सुन्दर बुद्धिमान् बुधने इला नाम स्त्रीमें पुरूरवा नाम पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ फिर पुरूरवाने उर्वशीके साथ संसर्ग किया, और आठ पुत्र उत्पन्न किये, उनके नामोंको श्रवण करो ॥२५॥आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु, ये सबके सबही दिव्य बलशाली और पराक्रमी थे ॥ २६ ॥ इन सबहीने केदारमण्डलमें परम तपका अनुष्ठा-

तपः ॥ तेषा नाम्ना तु ख्यातानि तीर्थानि हिमपर्व्वते ॥ २७ ॥ प्रापुश्च परमं स्थानं यस्मान्न च्यवते क्वचित् ॥ आयुषस्तु सुताः पंच ख्याता बहुपराक्रमाः ॥२८॥ नहुषो वृद्धशर्म्मा च विपाप्मा रजिदर्भकौ ॥ तताप नहुषो राजा श्रीक्षेत्रे मृतमुक्तिदे॥२९॥ रजः पुत्रशतं यज्ञे राजेयमिति विश्रुतम् ॥ रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम् ॥ ३० ॥ केदारमण्डले पुण्ये नराणां मुक्तिदायके ॥ तपसा तोषितो विष्णुर्वरान्प्रादात्सुदुर्ल्लभान् ॥ ३१ ॥ देवासुरमनुष्याणामभूत्स विजयी तदा ॥ अथ देवासुरे युद्धे स रजिर्निजघान तान्॥३२॥ राक्षसान्सुमहावीर्य्यांस्तस्य पुत्रा महौजसः॥ इंद्रेण निहताः सर्वे कुलिशेन क्षयं गताः ॥ ३३ ॥ नहुषस्य सुताः सप्त महाबलपराक्रमाः ॥ यतिर्ययातिः संयातिरुद्धवः पश्चिदेव च ॥ शर्यातिर्मेघयातिश्च सप्तैते वंशवर्द्धनाः ॥ ३४ ॥ ययातेः पंच दायादास्तांश्च वक्ष्यामि नामतः ॥ देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत् ॥ ३५ ॥ तथाद्रुह्युं मनुं पूरुं शर्मिष्ठा जनयत्सु-

किया, अतएव हिमालयके ऊपर उन्हीके नामसे तीर्थ प्रसिद्ध होगये ॥ २७ ॥ और फिर उन्हें ऐसे स्थानकी प्राप्ति हुई कि, जहांसे फिर पतन नहीं होता । आयुके पांच पुत्र बडे पराक्रमी अतएव प्रसिद्ध हुए ॥ २८ ॥ उनके ये नाम हैं—नहुष, वृद्धशर्मा, विपाप्मा, रजि और दर्भक । मृतक पुरुषोंको मुक्तिदेनेवाले श्रीक्षेत्रके ऊपर नहुषने तप किया ॥ २९ ॥ रजिके सौ पुत्र हुए, यज्ञमें उनकी राजेय नामसे ख्याति हुई । एवं च रजिने दूषणरहित नारायणकी आराधना की ॥ ३० ॥ जब उसने पवित्र अतएव मनुष्योंको मुक्तिदेनेवाले केदारमण्डलमें विष्णुभगवान्को तपश्चर्याद्वारा सन्तुष्ट किया, तब नारायणने उन्हें दुर्लभ वर प्रदान किये ॥ ३१ ॥ वोह देवता असुरों और मनुष्योंका विजय कर्त्ता हुआ, इसके अनन्तर देवता और असुरोंके युद्धमें, रजिने अतिशय पराक्रमी राक्षसोंका वध किया, और उसके महापराक्रमी पुत्रोंको इन्द्रने वज्रसे मारा तब वे सब विनष्ट होगये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ नहुषके याति, ययाति, संयाति, उद्धव, पश्चिदेव, सर्याति और मेघयाति ये सात पुत्र अतिशय बलवान् पराक्रमी अथ च अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले हुए ॥ ३४ ॥ और ययातिके जो पांच दायाद (पुत्र) हुए अब उनके नामोंको वर्णन करूंगा । देवयानीने यदु और तुर्वसु इन पुत्रोंको जना ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर शर्मिष्टाने उद्रुह्य मनु और पुरु इन पुत्रोंको जना, अथ च यदुके ज्येष्ठ

तान् ॥ यदोः पुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो नामतस्तु सहस्रजित् ॥ ३६ ॥ सहस्रजितः शतंजिच्च तत्सुतो रेणुसंज्ञकः॥तत्सुतो हैहयः ख्यातो धर्मनेत्रोऽपि तत्सुतः ॥ ३७ ॥ तद्दायादः संहनस्तु तत्सुतो भद्रसेनकः॥दुर्म्मदश्च तत्सुतोऽभद्दुर्मदात्कनकोऽभवत्॥३८॥कनकात्कृतवीर्य्योऽभूत्कार्त्तवीर्य्यस्तु तत्सुतः॥ तपसा तोषयामास शिवं कैलासपर्वते॥३९॥एकपर्णाशनो भूत्वा मनसा संस्मरञ्शिवम्॥ तुष्टः शिवोऽद्रिद्वीपानामाधिपत्यं ददौ मुदा॥४०॥ ददौ बाहुसहस्रं च ह्यजेयत्वं रणेऽरितः ॥ दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्ज्जुनः कृतवान्नृपः ॥ ४१ ॥ अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत्॥न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यंति वै नृपाः ॥४२॥ दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च विक्रमेण सुतेन च॥ यस्य स्मरणमात्रेण चौरा नश्यंति तत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ मार्गे च दुर्गमे व्याघ्रभये मातङ्गजे भये ॥ अरण्ये वापि संस्मृत्य सद्यो नश्यंति चापदः ॥४४॥ महाभये समुत्पन्ने नृपादीनां विशेषतः ॥ ग्रहबाधासु चोग्रासु स्मरणादिष्टला-

पुत्रका सहस्राजित् नाम हुआ ॥ ३६ ॥ सहस्राजित्से शतजित् और उसका वेणुनाम पुत्र हुआ, इसका पुत्र हैहय, और उसका पुत्र धर्मनेत्र हुआ ॥३७॥धर्मनेत्रका पुत्र संहत, उसका भद्रसेनक, इनका दुर्मद और दुर्मदका कनक पुत्र हुआ॥३८॥ कनकसे कृतवीर्य, उसका पुत्र कार्त्तवीर्य हुआ, कार्त्तवीर्यने कैलास पर्वतके ऊपर तप करके महादेवजीको प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ यह राजा एकही पर्णका आहार प्रतिदिन करके मनोयोग पूर्वक महादेवको प्रसन्न (सन्तुष्ट) करनेलगा, महादेवजी भी जब सन्तुष्ट होगये तब आनन्द पूर्वक उन्होंने द्वीपोंका आधिपत्य उसको प्रदान किया ॥४०॥ उक्त राजाको सहस्रभुजा देकर यह भी वर दिया कि, संग्राममें कोई तेरा विजय न कर सकेगा। उस सहस्रबाहु राजाने सहस्र यज्ञ किये ॥ ४१ ॥ उसने यजन कर्त्ताओंको भी बहुत कुछ द्रव्य दिया कोई राजा भी दान यज्ञ तप पराक्रम अथवा सन्तानके द्वारा कार्त्तवीर्यकी गतिको प्राप्त नहीं होसके, क्योंकि उसका तो केवल स्मरणमात्रही करनेसे चोर तत्काल नष्ट होजाते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ दुर्गम मार्गमें अथवा गहनवनमें व्याघ्र और हाथियोंका भय उपस्थित होने पर उस राजाका स्मरण करनेसें आपत्तिये उसी समय विनष्ट होजातीहैं ॥ ४४ ॥ जब कोई महाभय उपस्थित हो अथवा विशेषकर जब राजाओंका भय हो; किं वा ग्रहजनित उग्र बाधा उपस्थित हो रही हो तो उसका

भवः ॥ ४५ ॥ शशबिन्दुस्तु संजज्ञे तत्कुले चातिवीर्य्यवान् ॥ तत्कुले वसुदेवोऽभूत्पूर्वजन्मनि यो विभुम् ॥४६॥ तुषाराद्रौ महापुण्ये गंगाया निकटे शुभे ॥ तपसा तोषितो विष्णुर्वरं प्रादात्सुदुर्लभम् ॥ ४७ ॥ वरप्रदानाद्देवेशो बभूव तत्सुतो मुने ॥ भूभारमहरद्देवो पांडवानां सहायकृत् ॥ ४८ ॥ पुरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि श्रुतं पापप्रणाशनम् ॥ पुरोर्जन्मेजयश्चाभूत्प्राचीनुत्तस्तु तत्सुतः ॥ ॥ ४९ ॥ प्राचीनुत्तान्मलायुस्तु तस्माद्वीतभयो नृपः ॥ तद्वंशे शंतनुरभून्महाबलपराक्रमः ॥ ५० ॥ विचित्रवीर्य्यस्तद्दायस्तस्मात्पांडुरभून्नृपः॥तत्पुत्राः पंच विख्याता युधिष्ठिरोऽर्ज्जुनस्तथा ॥ भीमश्च नकुलश्चैव सहदेवस्तथापरः ॥ ५१ ॥ द्रौपदी पांडवानां च प्रिया तस्माद्युधिष्ठिरात् ॥ प्रतिविंध्यो बभूवाथ श्रुतकीर्त्तिर्धनंजयात् ॥ ५२ ॥ सहदेवाच्छ्रुतकर्मा शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ भीमसेनाद्वीजिवायस्तस्यासीच्च घटोत्कचः ॥ ५३ ॥ एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते ॥ सर्वे पुण्यतमात्मानः सम

स्मरण करनेसे इष्टका लाभ होताहै ॥ ४५ ॥ फिर इस राजाके कुलमें शशविन्दु नामका राजा बड़ा पराक्रमी हुआ, इसीके कुलमें वसुदेवका जन्म हुआ इसने पूर्वजन्ममें सर्वव्यापक श्री विष्णुभगवान्को ॥ ४६ ॥ हिमालय पर्वतके ऊपर महापवित्र और शुभ गंगाजीके निकट तपके द्वारा संतुष्ट किया, तब नारायणने इसको दुर्लभ वर प्रदान किया ॥ ४७ ॥ हे मुनि ! वर देनेहीके कारण नारायण उसके पुत्र हुए, और उन्होंने भूमिका भार हरकर पाण्डवोंकी सहायता करी ॥ ४८ ॥ अब राजा पुरुके वंशका वर्णन करते हैं, जो कि, श्रवण करनेवालोंके पापका विनाश करताहै, पुरुका जनमेजय हुआ, इसका पुत्र प्राचीनुत्त हुआ ॥ ४९ ॥ प्राचीनुत्तसे मलायु, उससे वीतभय और वीतभयके वंशमें अतिशय बलवान् और पराक्रमी राजा शन्तनु हुआ ॥५०॥ इसका पुत्र विचित्रवीर्य और उसका पुत्र पाण्डु हुआ और पाण्डुके युधिष्ठिर अर्जुन भीम नकुल और सहदेव ये पांच प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥ ५१ ॥ इन पांचों पाण्डवोंकी प्रियपत्नीका नाम द्रौपदी था, युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, अर्जुनसे श्रुतकीर्त्ति ॥ ५२ ॥ सहदेवसे श्रुतकर्मा और नकुलसे शतानीक पुत्रका जन्म हुआ । भीमसेनके वीजिवाय और घटोत्कच पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ ये सबतौ होगये और आगे-

भूवन्मुनीश्वर ॥ ९४ ॥ केदारदर्शनात्सद्यः सर्वे प्रापुः परं पदम् ॥ इति चांद्रो मया वंशः संक्षेपात्तव कीर्त्तितः ॥ यं श्रुत्वापि नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ९५ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इति वः कथितो दिव्यश्चांद्रो वंशः समासतः॥ हिमवच्छैलमाहात्म्यं केदारमंडलाश्रितम् ॥ ९६ ॥ गंगोत्पत्तिस्तथा नानातीर्थानां वै भवो मया ॥ सम्यक्तया मुनिगणा भूयः किं श्रोतुमिच्छथ ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे चांद्रवंशकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

को बहुतसे राजा हेंगे उनकी संख्या नहींहै, हे मुनीश्वर ! ये सबही राजा पुण्यात्माहैं ॥ ९४ ॥ केदारनाथजीके दर्शन करनेसे इन सबको परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति हुई, इस विधिसे चन्द्रमाके वंशका संक्षेपसे हमने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया, इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको चला जाताहै ॥ ९५ ॥ सूतजी बोले—इस रीतिसे हिमालय पर्वत और केदारमण्डलके माहात्म्यसे संयुक्त चन्द्रमाके वंशका हमने संक्षेपसे वर्णन कियाहै ॥ ९६ ॥ हे मुनिसमाज ! गंगाजीकी उत्पत्ति, तथा अनेक तीर्थोंका प्रभाव ये सभी कुछ सम्यक्रीतिसे हमने वर्णन किया अब और क्या श्रवण करनेकी तुम्हारी इच्छाहै ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः ९३.

ऋषय ऊचुः ॥ ॥ सूत सर्वपुराणानां वक्ता त्वं हि महाशय ॥ शप्ताञ्छ्रुत्वा तु निर्मुक्तान्कोटिशो ब्रह्मराक्षसान् ॥ १ ॥ गंगोत्पत्तिं विशेषेण तथा राज्ञां महान्वयम् ॥ तीर्थानां चैव माहात्म्यं किमपृच्छत्पुनर्मुनिः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ श्रुत्वा कैलास माहात्म्यं संक्षेपेण पुनर्द्विजाः॥ विशेषतः प्रष्टुकामः स्कंदं प्रोवाच

महर्षि मण्डलने कहा—हे महाशय सूतजी महाराज ! ! ! आप समस्त पुराणोंके वक्ताहैं, शापको प्राप्त हुए ब्रह्मराक्षसोंकी मुक्तिको सुनकर ॥ १ ॥ तथा विशेष कर गंगोत्पत्ति और बड़े २ राजाओंके वंशका वर्णन सुनकर अथ च तीर्थोंके माहात्म्यका श्रवण करनेके अनन्तर महामुनि नारदजी महाराजने फिर क्या प्रश्न किया ? ॥ २ ॥ सूतजी बोले—हे ब्राह्मणों ! संक्षेपसे कैलास पर्वतके माहात्म्यको संक्षेपसे सुनकर, सविस्तर श्रवण करनेकी कामनासे नारदजीने

नारदः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ कृष्णवर्त्मज देवेश जगज्जन-
कसेवक ॥ निर्गतं त्वन्मुखांभोजात्पिबतो वचनामृतम् ॥ तृप्तिर्न
जायते स्वामिन्पिपासा वर्द्धतेऽधुना ॥ ४ ॥ क्षेत्राणां सुबहूनां च
वैभवः कथितः श्रुतः॥अधुना श्रोतुमिच्छामि सुसारं हिमवद्गिरौ॥
॥५॥ तथा कथितक्षेत्रेभ्योऽधिकं क्षेत्रं वदस्व मे॥यत्र कस्मैचि-
दाख्यातं कलौ मुक्तिप्रदायकम् ॥ ६ ॥ न यज्ञैर्न तपोभिश्च नैवो-
पोषणकव्रतैः ॥ महादानैर्नचायासैः पुण्यं यद्भवति प्रभो ॥ ७ ॥
स्वल्पायासेन मुक्तिश्च सर्वैश्वर्य्यंभवेत्पुनः ॥ रहस्यातिरहस्यं च
तत्क्षेत्रं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ अस्ति गुह्यतमं
क्षेत्रं सारात्सारतरं परम् ॥ परं गोप्यं परं तत्त्वं तुषारवच्छिलोच्चये
॥ ९ ॥ सर्वतीर्थमयं सर्वदेवजुष्टं सुपुण्यदम् ॥ यत्र भागीरथी
पुण्या गंगा चोत्तरवाहिनी ॥ १० ॥ सौम्यकाशीति विख्याता
गिरौ वै वारणावते ॥ असी च वरुणा चैव द्वे नद्यौ पुण्यगोचरे ॥
॥ ११ ॥ यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च महेशश्चेति ते त्रयः ॥ नित्यं सं-

स्वामिकार्तिकसे पूछा ॥ ३ ॥ हे कुमार ! आप जगत्के जनकहैं आपके मुख कमलसे उत्पन्न हुए अमृतरूप वचनोंको पान करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती किन्तु संप्रति अधिक २ प्यासकी वृद्धि होतीहै ॥ ४ ॥ आपने बहुतसे क्षेत्रोंका माहात्म्य जो वर्णन किया उसे मैंने सुना, अब मैं हिमालयके माहात्म्यको विधिवत् सुना चाहताहूं ॥ ५ ॥ एवं च जितने क्षेत्रोंका आपने वर्णन कियाहै उनसे अधिक जो क्षेत्र हो उसे भी मेरे प्रति वर्णन करो जो कि, कलियुगमें मुक्तिका देनेवाला किसीके भी प्रति वर्णन न किया हो ॥ ६ ॥ हे प्रभो क्या यज्ञ, क्या तप, क्या उपवास और व्रत बडे २ दान, बड़े परिश्रम इन सबसे जो पुण्यहो ताहै ॥ ७ ॥ वोही सब पुण्य और मुक्तिका जिससे लाभ हो, उसी क्षेत्रका हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ ८ ॥ स्कन्दजी बोले–एक अत्यन्तही गोपनीय, सारकाभी सार और परमतत्त्वरूप क्षेत्र हिमालय पर्वतके ऊपर है ॥९॥ उसमें सबही तीर्थ और सभी देवता निवास करते हैं, अतएव वोह अधिक पुण्यका देनेवाला है, उस स्थानमें परमपवित्र भागीरथी गंगाजी उत्तर बाहिनी हैं ॥ १० ॥ वारणावत पर्वतके ऊपर वोह स्थान सौम्य काशीके नामसे विख्यातहै, वहां असी और वरुणा ये दो पवित्र नदियें और भी उपस्थित हैं ॥ ११ ॥ उसी पवित्र क्षेत्रमें ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी

निहिता यत्र मुक्तिक्षेत्रे तथोत्तरे ॥ १२ ॥ यत्रर्षीणां च स्थानानि आश्रमाश्च तथा शुभाः ॥ यत्र मारकतीं भासं बिभ्रत्येव सदा शिवः ॥ १३ ॥ निक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि संगरे देवताऽसुरैः ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा ॥ १४ ॥ यमदग्निसुतो यत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं सावधानोऽवधारय ॥ १५ ॥ यत्र पुण्यानि तीर्थानि सर्वकामप्रदानि हि ॥ येषां संदर्शनादेव न च भूयोऽभिजायते ॥ १६ ॥ इयमुत्तरकाशी हि प्राणिनां मुक्तिदायिनी ॥ धन्या लोके महाभाग कलौ येषामिह स्थितिः ॥ १७ ॥ यत्र सर्वांशभावेन वसन्ते सर्वदेवताः ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ अतिपुण्यतमं स्थानं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ हिमालयतटे पुण्ये प्रोक्तं यद्वै त्वयाऽनघे ॥ १९ ॥ तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं देव विस्तरतो वद ॥ कथं काशीति संजाता पुरा देवपुरोपमा ॥ २० ॥ केन केन तपस्तप्तं के के पुण्यतमाश्रमाः ॥ कथं परशुरामेण तपस्तप्तं हिमाचले ॥ २१ ॥ महाकाल्याः कथं देव पतिता शक्ति

ये तीनों ही देवता एकत्रित हो नित्य निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वहां अनेक ऋषियोंके स्थान और अनेक शुभ आश्रम हैं, वहां जो सदाशिव विराजमानहैं उनकी मरकतकी समान द्युति है ॥ १३ ॥ देवता और दैत्योंका जव संग्राम हुआ था तब उन्होंने शक्ति फेंकी जी, वोह धातु मयी शुभशक्ति अभीतक दृष्टिगत होतीहै ॥ १४ ॥ एवं च जिस क्षेत्रमें जामदग्निके पुत्र परशुरामजीने घोर तपका आचरण कियाथा अब तुम उसी क्षेत्रके माहात्म्यको सावधान हो श्रवण करो ॥ १५ ॥ वहां बहुतसे ऐसे पवित्र तीर्थहैं, जो सबही मनोरथोंको पूर्ण करतेहैं, उनके केवल दर्शन करनेहीसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ १६ ॥ यह उत्तर काशी प्राणियोंको मुक्तिकी देनेवालीहै । हेमहाभाग ! कलियुगमें उन्हीं व्यक्तियोंको धन्यहै जो उत्तरकाशीमें निवास करतेहैं ॥ १७ ॥ इस क्षेत्रमें सम्पूर्ण देवताभी अपने २ पूर्ण अंशोंसे निवास करते हैं ॥ १८ ॥ नारदजी बोले हे निष्पापमूर्ति ! हिमालयके तटपर अत्यन्त पवित्र अतएव पापियोंकोभी मुक्ति प्रदान करनेवाला जो स्थान आपने कीर्तन किया है ॥ १९ ॥ हे देव ! उस क्षेत्रके माहात्म्यको आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये, और देव पुरकी समान वोह काशी कैसे हुई ॥ २० ॥ उस स्थानमें किस २ महात्माने तप किया, और वहां कौन २ से पवित्र आश्रम हैं ? एवं च हिमालयके ऊपर परशुरामजीने किसप्रकार तपका अनुष्ठान किया ॥ २१ ॥ अथ च हे देव ! महाकालीकी उत्तम शक्ति किस प्रकार

त्तमा ॥ कुत्र मारकतं लिंगं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥२२॥ एत-त्सर्वं विस्तरेण पुण्याण्यायतनानि च ॥ ब्रूहि स्कंद विशेषेण माहात्म्यं वारणावतः ॥ २३ ॥ धन्योऽस्मि नाथ भगवन्यच्छृणोमि मुखाच्चुतम् ॥ वाक्पीयूषमिदं पुण्यं तृप्तिर्मे न हि जायते ॥२४॥ त्वत्तः श्रुत्वा परं ज्ञानं सिद्धा मुक्तिं समाययुः ॥ २५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ शृणु नारद वृत्तान्तं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ यथोत्तरस्थिता काशी जातेयं मुक्तिदा नृणाम् ॥२६॥ वक्ष्ये तद्विस्तरेणाहं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ शप्तां श्रुत्वा पुरा काशीं सर्वे देवाः सवासवाः ॥२७॥ कलावंतर्हिता काशी भविष्यति इति स्फुटम्॥ मुनयश्च महाभागाः संत्रस्ता मुक्तिलालसाः ॥ २८ ॥ उमेशं शरणं जग्मुर्हिमवंतं नगेश्वरम् ॥ शतयोजनविस्तीर्णा सभा यत्र विराजते॥२९॥प्रमथैः सेव्यमाना च नंद्यादिभिरनुष्टुता॥सर्वकामफलोपेता देवकिन्नरसेविता ॥ ३० ॥ अप्सरोभिर्गीयमाना पुण्यकृद्भिः सुगोचरा॥यत्रास्ते भगवाञ्छंभुः पार्वत्या सहितः प्रभुः॥३१॥

निर्मित हुई थी ? और मरकत जैसी कान्तिवाला शिवालिंग कहां पर है ? ॥ २२ ॥ यह सब, पवित्र आश्रम और वारणावतका माहात्म्य ये सब हमारे प्रति विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! मुझे धन्य है जो मैं आपके मुख कमलसे निकले हुए वाक्यामृतका पान कररहाहूं और मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ २४ ॥ आपहीके सकाशसे परमज्ञानका श्रवण करके सिद्धोंको मुक्तिका लाभ हुआथा ॥ २५ ॥ स्कन्द बोले—हे नारद ! पापोंके विनाश करने वाले और समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाले वृत्तान्तका श्रवण करो, जिस प्रकार यह उत्तरकाशी मनुष्योंको मोक्षकी देनेवाली हुई है ॥ २६ ॥ वोही मैं विस्तार पूर्वक वर्णन करताहूं जिसका श्रवण करनेसे अमृतत्व लाभ होताहै, प्रथम जब इन्द्रादि देवताओंने काशीको शाप लगा सुना ॥ २७ ॥ और उन्होंने यह निश्चय कियां कि, कलियुगमें काशी अन्तर्हित होजायगी, तब तौ मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मुनिगण भयभीत होने लगे ॥२८॥ और हिमालयपर्वतके ऊपर श्रीमहादेवजीकी शरणमें गये, उस स्थानमें सौ योजन अर्थात् चारसौ कोस विस्तृत सभा विराजमान है ॥ २९ ॥ देव सभाकी प्रमथ आदि (महादेवजी) के गण और नन्दी आदि स्तुति करते हैं, समस्त कामनाओंके फलकी वहां प्राप्ति होती है, देवता और किन्नर उसकी सेवा करते हैं ॥३०॥ वहां अप्सराओंके गण गान करते हैं, पुण्यात्मा जनों हीको उसका दर्शन होता है । पार्वती सहित महादेवजी उसी स्थानमें विराजमान रहते हैं ॥ ३१ ॥

यत्र सर्वे महानागा वासुक्याद्याः प्रतिष्ठिताः॥चरणौ सेवितुं शंभोर्भूषणत्वमुपागताः ॥ ३२ ॥ जटाजूटतटाद्यत्र जाह्नवी निर्गता शुभा ॥ भगीरथनृपाराध्या तच्चक्रपरिगोचरा ॥ ३३ ॥ तत्र नत्वा महेशानं दृष्ट्वा देवमुमापतिम् ॥ तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः सर्वभूतविमुक्तये ॥३४॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ शंभवे विभवे तुभ्यं व्यापकाय परात्मने॥ भव्याय भव्यरूपाय विरूपाय निरात्मने॥३५॥निरंजनाय शुद्धाय ज्ञानरत्नप्रदायिने॥नमो देवाधिदेवाय देवसेव्याय ते नमः ॥ ३६ ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥ सर्वशक्तिस्वरूपाय निखिलेशाय ते नमः ॥ ३७ ॥ पार्वतीपतये तुभ्यं निराभासाय ते नमः ॥ निरध्यासाय सूक्ष्माय सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराय ते ॥ ३८ ॥ स्थूलात्स्थूलतरायेश नमस्ते जगतीपते ॥ जगन्नाथाय जगतां संहारपरिकारिणे ॥ विकारिणे निरीशाय निरीहाय नमोऽस्तु ते॥३९॥भस्मभूषितदेहाय हिमाद्रिपतये नमः॥ नमः काशीनिवासाय निराधाराय ते नमः ॥ ४० ॥ विरुद्धचर्म-

वासुकि आदि संपूर्ण नाग महादेवजीके चरणोंकी सेवा करनेको उपस्थित हैं, और उनके आभूषण बने हैं ३२ ॥ इसी स्थानमें महादेवजीके जटाजूटमें से गंगाजीकी शुभधारा निर्गत हुई है, राजाभिगीरथने उसकी आराधना की थी अतएव उसकी चक्र रेखाके मध्यमें वोह धारा वहती है ॥ ३३ ॥ वहां ही उमापति महादेवजीके दर्शनकर समस्त प्राणियोंकी मुक्तिके लिये शुभ वाणियोंसे उनको सन्तुष्ट किया था ॥ ३४ ॥ ऋषियोंने कहा—हे कल्याण मूर्त्ते ! आप ऐश्वर्य स्वरूप हैं, आप परमेश्वरही सर्व व्यापक हैं, आपका रूप और मूर्त्ति दोनोंही शुभ हैं, आप रूप और आत्मा रहित हैं ॥ ३५ ॥ आप निरंजन और शुद्ध स्वरूप हैं, आपकी आराधनासे ज्ञानरूपरत्नकी प्राप्ति होती है, आप देवाधि देव हैं अतएव सब देवता आपकी सेवा करते हैं, आपके प्रति नमस्कार है ॥ ३६ ॥ आप त्रिलोकीके नाथ हैं त्रिलोकीमें आपहीका तेज, स्वरूप, विराजमान है आप समस्त शक्ति स्वरूप और सबके स्वामीहैं आपको नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ हे पार्वतीपति ! आपकी आभा सबसे निरालीहै हम आपको नमस्कार करतेहैं. सब आपहीका ध्यान करतेहैं, आप सूक्ष्म और सूक्ष्मसेभी अधिक सूक्ष्महैं ॥ ३८ ॥ हे जगत्के स्वामी ईश्वर ! आप स्थूल और अधिक स्थूलहैं, आपही जगन्नाथ एवम् जगत्का संहार करनेवालेहैं आपको हमारा नमस्कारहै, । विकार करनेवाले और चेष्टाहीनहैं, आपका स्वामी कोई नहींहै अत एव आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे हिमाद्रिपति ! आपका देह विभूतिसे विभूषितहै, हे निराधार ! आप काशी निवासी हैं अत एव आपको नमस्कारहै ॥ ४० ॥ आपने निषिद्ध चर्मका परिधान नहीं कियाहै,

हीनाय नीलकंठाय वेधसे॥सृजते पालयते च सर्वं तत्त्वस्वरूपिणे॥ योगिने योगरूढाय योगिनां पतये नमः ॥४१॥ स्कंद उवाच ॥ इति तेषां स्तुतिं श्रुत्वा दिव्यां वै वेदसंमिताम् ॥ प्रोवाच संतुष्टमनाः सर्वानृषिगणांश्छिवः ॥ ४२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ भो तापसाः किं युष्माकमभीष्टं वदत द्रुतम् ॥ किमर्थमागता ह्यत्र मां स्तोतुं भक्तितत्पराः ॥४३॥ युष्माकमीप्सितं सर्वं पूरयिष्याम्यसंशयम् ॥ सत्यं वदत मे क्षिप्रं यद्वा मनसि संस्थितम् ॥ ४४॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ भगवन् सर्वभूतेश कृताऽर्थाः स्मो वयं किल ॥ यैर्भवान् दृष्टिमार्गं हि प्रापितो भक्तवत्सलः ॥ ४५ ॥ कलावंतर्हिता काशी इति शप्ता किलाधुना ॥ तद्भेदश्रवणात्प्राप्तपीडा ह्यत्र समागताः ॥ ४६ ॥ कलौ पापसमाविष्टे सर्वधर्म्मं विवर्जिते ॥ कथं काशीं विना देव गतिर्नृणां भविष्यति ॥ ४७ ॥ कथं संसारपाशस्य समुच्छेदो भविष्याति॥कलौ येषां गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ ४८ ॥ तस्यामंतर्हितायां तु कुत्र स्थानं

आपका नील कंठहै आपही विधाताहैं, हे तत्त्वस्वरूपी ! आपही संसारकी रचना और पालन पोषण करतेहैं, योगी अतएव योगमें आरूढ आपही हैं आपही योगियोंके पति हैं ॥ ४१ ॥ स्कन्द बोले-वेदसम्मित उनकी ऐसी दिव्य स्तुति सुनकर मनमें सन्तुष्ट हो महादेवजी सब ऋषियोंसे यों बोले ॥ ४२ ॥ महादेवजीने कहा-हे तपस्वियो ! तुम्हारी क्या अभिलाषा है सो शीघ्रही मुझसे कहो, तुम लोग भक्तिमें तत्पर हो यहां मेरी स्तुति करनेको किसलिये आये हो ॥ ४३ ॥ जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सब सत्य २ कहो, क्यों कि-तुम्हारी जो कुछ अभिलाषा होगी, मैं उसे अवश्यही पूर्ण करूंगा ॥ ४४ ॥ ऋषियोंने कहा-हे सर्व प्राणियोंके अधीश्वर भगवन् ! हम सबको इस लिये धन्य है कि-आप भक्तवत्सलके दर्शनोंका हमें लाभ हो रहाहै ॥ ४५ ॥ आज कल्ह काशीको यह शाप दिया गयाहै कि, वह कलियुगमें लुप्तहो जायगी, यही सुन पीडित हो हम आपके पास आयेहैं ॥ ४६ ॥ हे देव ! कलियुगमें धर्म तो कोई है नहीं सबही पाप आकीर्ण हो रहेहैं, तो फिर काशीके विना मनुष्योंकी मुक्ति कैसे हो सकेगी ॥ ४७ ॥ और सांसारिक बन्धनका छेदनभी कैसे होगा ? क्यों कि जिनकी कहींभी गति नहींहै उनको काशीही गतिदायिनी है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! जब काशीही लुप्त हो जायगी तो फिर आपका

तव प्रभो ॥ एतन्नः संशयं छिंधि यतस्त्वं करुणानिधिः ॥ ४९ ॥
॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रांतभूतलम्॥
भविष्यति तदा विप्रा निवासं हिमवद्गिरौ ॥ ५० ॥ काश्या सह
करिष्यामि सर्वतीर्थैः समन्वितः ॥ अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्त्तते
सर्वदैव हि॥५१॥काश्यां हि यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि तत्र हि॥
वर्त्तते सर्वदा नूनं भुक्ति मुक्ति कराणि च॥५२॥अन्येषु तीर्थराजेषु
काश्यामपि द्विजोत्तमाः ॥ अंशांशभावतो विप्रा निवसामि
सदाऽनघाः ॥ ५३ ॥ केदारमंडले ह्यत्र साकल्येन स्थितिर्मम ॥
अस्यास्तु दर्शनादेव मुक्तो भवति मानुषः ॥ ५४ ॥ यदि स्यात्पु-
ण्यवशतो मृतिरत्र तु कस्यचित् ॥ कृमिकीटपतंगादेः सोऽपि
मुक्तो न संशयः ॥ ५५ ॥ यथा काशी तथा ह्येषा मत्पुरी भेदव-
र्ज्जिता ॥ यः कश्चिद्भेदकृल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥
अत्र स्नानं तु यो मर्त्यः करोति यदि भाग्यतः ॥ अयुतार्काभया-
नेन स गच्छेन्नः पदं ध्रुवम् ॥ ५७ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे विलीयंते पापा-

स्थिति कहां होगी ? क्योंकि—आप करुणाके निधिहैं अतएव हमारे इस सन्देहका विनाश करिये ॥ ४९ ॥ महादेवजी बोले—जब यवन समस्त भूमिको आक्रमण करलेंगे अतएव पापोंकी अधिकता होगी तब हे विप्रो ! हिमालय पर्वतके ऊपर हमारा निवास होगा ॥ ५० ॥ काशी और अन्य तीर्थों सहित मैं वहांही निवास करूंगा क्योंकि सदासे वोही हमारा अनादिसिद्ध स्थान है ॥५१॥ काशीमें जितने तीर्थहैं वे सभी वहां हैं, और भोग तथा मोक्ष प्रदान करतेहैं ॥ ५२ ॥ हे निष्पाप ब्राह्मणो ! काशीमें तथा अन्यान्य तीर्थोंमें मैं अंशरूपसे निवास करता हूं ॥ ५३ ॥ किन्तु केदारमण्डलमें संपूर्ण तथा मेरी स्थिति रहती हैं, अतएव उसके दर्शन करनेहीसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ५४ ॥ यदि पुण्यवशात् इस स्थानमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होजाय तो वह चाहे कृमि कीट पतंग आदिही क्यों न हो तथापि उसकी निःसन्देह मुक्ति हो जातीहै ॥ ५५ ॥ जैसे काशीहै ऐसेही यहभी हमारी पुरीहै इसमें कोई भेद नहींहै, सुतराम् जो व्यक्ति संसारके बीच इन दोनोंमें भेद समझता है वह निश्चयही नरकगामी होताहै ॥ ५६ ॥ यदि भाग्यवशात् कोई मनुष्य इस स्थानमें स्नान करे तो वह दस सहस्र सूर्यकी प्रभाके सदृश कान्तिसे दीप्तिमान् विमानमें आरूढ हो हमारे परम पदको जाताहै ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरव्रतका आचरणकरनेवाले हर्षियो ! अन्यान्य स्थानोंमें जो पाप किये गयेहैं वे सब इस स्थानमें आने और इसका स्पर्श

न्यन्यत्र मानवैः ॥ कृतानि स्पर्शमात्रेण महांत्यपि च सुव्रताः ॥
॥ ५८ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे तु यः पापं करोति मनुजाधमः ॥ भ्रम-
न्पिशाचैः सार्द्धं तु न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ५९ ॥ अत्र स्वल्पं
च यत्पापं करोति मनुजः क्वचित् ॥ तद्वर्द्धते प्रतिफलं कोटि को-
टिगुणं तथा ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाच-
रेत ॥ अत्र यो मासमेकं तु अविच्छेदं दृढव्रतः ॥ गंगायां स्नाति
यत्पुण्यं वदामि शृणुतद्विजाः ॥ ६१ ॥ इह लोके चिरं स्थित्वा
भुक्त्वा भोगानशेषतः ॥ कल्पं मदीयलोके तु स्थित्वा भूमौ नृपो
भवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धर्मज्ञो बहुदानदः ॥ पुत्रपौ-
त्रैः परिवृतो धर्मभुग्जायते तथा ॥ अंते काश्यां समागत्य मय्ये-
व परिलीयते ॥ ६३ ॥ त्रिरात्रमत्रोषित्वा तु पूजयित्वा शिवं
द्विजाः ॥ यत्र कुत्रापि म्रियते स शैवं लोकमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
अन्यजन्मनि सोप्यत्र प्राप्नोत्येव मृतिं शुभाम् ॥ तारकं ब्रह्म

त्र करनेसेही नष्ट होजातेहैं, चाहे वे महापातकीभी क्यों न हों ॥ ५८ ॥ जो नीच मनुष्य
स स्थानमें पापका आचरण करताहै, उसे सदैव पिशाचोंके साथ भ्रमण करना होताहै और
फिर वह मनुष्ययोनिमें कभी उत्पन्न नहीं होता ॥ ५९ ॥ कोई मनुष्य इस स्थानमें स्वल्प
पापकाभी आचरण करै तो उसका फल करोडों गुणा वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥ अतएव
प्राणियोंको चाहिये कि यहां पापका आचरण किसी प्रकार न करै । जो मनुष्य एक मास
पर्यन्त दृढव्रत धारण पूर्वक इस स्थानमें गंगास्नान करताहै, हे द्विजो! उसके फलका वर्णन
करताहूं सुनो ॥ ६१ ॥ इस लोकमें चिरंजीव रहकर और समस्त भोगोंका उपभोग करके
वह मनुष्य एक कल्प पर्यन्त हमारे लोकमें निवास करता और फिर भूमिके ऊपर राजा
होताहै ॥ ६२ ॥ वह व्यक्ति समस्त शास्त्रोंके अर्थ तथा उनके तत्त्वका ज्ञाता, धर्माचरणका
जाननेवाला, और प्रभूत दानी होताहै, पुत्र पौत्रोंसे युक्त एवम् धर्मका उपभोग करनेवाला
होताहै, फिर अन्त समय काशीमें आय मुझमें लीन होजाताहै ॥ ६३ ॥ यदि तीन रात्री
पर्यन्त यहां निवास करे और इस मूर्त्तिका पूजन करनेके अनन्तर फिर चाहे जिस स्थानमें
मरण क्यों न हो तथापि उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ अन्य जन्ममेंभी जब

ह्यत्रैव उपादिश्यामि मानुषम् ॥ ६५ ॥ प्राणेषूत्क्रममाणेषु येन मुक्तो भवेन्नरः ॥ जीवमात्रोपि यत्किंचिदत्र प्राणान्विमुंचति ॥ ॥ ६६ ॥ स एव जायते लीनो मद्देहे सकलाश्रये ॥ विप्रक्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥ जप्तं दत्तं हुतं तप्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ॥ ६७ ॥ अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीं न हि त्यजेत् ॥ गुह्यानां परमं गुह्यमेतत् क्षेत्रं परं मम ॥६८॥ वरणा च नदी चासी तयोर्मध्ये वराणसी॥अत्र स्नानं जपो होमो मरणं हरपूजनम्॥श्राद्धं दानं निवासश्च यज्ञः स्याद्भुक्तिमुक्तिदः॥६९॥ मणिकर्णिकायां स्नात्वा यः पितॄन्संतर्पयते जलैः ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावत्कल्पशतं शतम् ॥ ७० ॥ पिंडदानं च ये कुर्य्युर्विधिवत्पितृतत्पराः ॥ उद्धृताः पितरस्तैस्तु कुलमेकोत्तरं शतम् ॥७१॥ यः कश्चिदेतत्क्षेत्रं तु ह्यवज्ञाय कुबुद्धिमान्॥अन्यतीर्थं व्रजेत्सोऽपि रमते कौणपैः सह ॥ ७२ ॥ येन केनाप्युपायेन

यहां मरण होताहै तब मरणके समय मनुष्योंको मैं तारक मन्त्रका उपदेश करताहूं ॥ ६५ ॥ उसके उपदेश से प्राण परित्यागके अनन्तर मनुष्य मुक्त होजाताहै । चाहे जो जीव इस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करे वह अवश्यही मेरे देहमें लीन होजाताहै, क्यों कि हमारेही देहमें सबका आश्रयहै ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! स्वयम् क्षेत्र मुक्त नहीं होताहै अतएव उसे अविमुक्त कहतेहैं, सुतराम् उस अविमुक्त क्षेत्रमें जो कुछ जप, दान, हवन, अथवा तप किया जाय वह सभी अक्षय होता है ॥ ६७ ॥ चाहे पाषाणमें ठुकराकर चरणोंको तोडले किन्तु काशीमेंही निवास करतारहै उसका परित्याग न करै, क्योंकि हमारा यह क्षेत्र गुप्तसेभी अधिक गुप्तहै ॥ ६८ ॥ वरणा और अस्सी ये दो नदियेंहैं, इन्हीं दोनोंके बीचमें वाराणसी पुरीहै, इसमें स्नान जप होम प्राणपरित्याग और महादेवजीका पूजन करना एवम् श्राद्ध दान निवास और यज्ञ करना ये सभी भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं ॥ ६९ ॥ जो व्यक्ति मणिकर्णिकामें स्नान कर जलसे पितरोंका तर्पण करताहै उसके पितर सैंकड़ों कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ७० ॥ पितरोंके भक्तिभावमें तत्पर होकर जो व्यक्ति पितरोंके निमित्त पिण्डदान करतेहैं उनके एक सौ एक पितृकुलका उद्धार होजाताहै ॥ ७१ ॥ जो मूढमति इस क्षेत्रका निरादर करके अन्य क्षेत्रकी यात्रा करनेके तईं जाता है, वह राक्षसोंके साथ रमण करताहै ॥ ७२ ॥ जैसे भी बनसके वैसे उस स्थानमें मरण लाभकी अभिलाषा करनी कर्त्तव्यहै कारण कि-वहां

मृतिमिच्छेच्च तत्र वै ॥ अमंगलं जीवितं तु मरणं यत्र मंगलम् ॥७३॥ इतः प्रभृति भो विप्रास्तत्रैव संवसाम्यहम्॥यावन्ति काश्यां तीर्थानि तानि तत्रैव संति हि ॥ ७४ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन सा मुक्तेः कारणं परम् ॥ तत्त्वज्ञानं विनान्यत्र मुक्तिर्नैवास्ति दुर्लभा ॥ ७५ ॥ अत्र सा प्राप्यते देहत्यागेनैव महाव्रताः ॥ तस्माद-स्मात्पुण्यतममन्यन्नास्तीह भूतले ॥ ७६ ॥ केदारमंडले सारा-त्सारमेषैव मत्पुरी ॥ इयमेव कलौ म्लेच्छजनसंकुलके ध्रुवम् ॥ काशीति ख्यातिं यात्येव नान्यथा मम भाषितम् ॥ ७७ ॥ कलावंतर्हिता काशी यवनप्रबलाद्यदा ॥ भविष्यति तदा ह्यस्यां काशीसंज्ञा सुमुक्तिदा ॥ ७८ ॥ इदं मत्परमं गोप्यं स्थानमस्ति सुनिर्मितम्॥ पापिष्ठास्तन्न जानन्ति मम मायावि-मोहिताः॥ ७९ ॥ धर्मज्ञाश्च सदाचाराः सुशीलाः सत्यवादिनः॥ तेषामेव भवेदेषा नयनांतरगोचरा ॥ ८० ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु

जीवित रहना अमंगल और मरणही मंगलहै ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मणो ! अबसे मैं उसी पुरीमें निवास करूंगा और काशीमें जो तीर्थहैं वेभी सब वहांही विराजमानहैं ॥ ७४ ॥ विशेष कथनसे क्याहै वह पुरी मुक्तिका बड़ा कारण स्वरूपहै, मुक्तिका होना बड़ाही दुर्लभहै अतएव वह तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति विना हुए नहीं होसक्ती ॥ ७५ ॥ किन्तु हे महाव्रतधारियो ! वह मुक्ति इस स्थानमें केवल देह परित्याग करनेहीसे प्राप्त होजातीहै, अतएव भूमण्डलके ऊपर इसके अतिरिक्त और कोई स्थान पवित्र नहीं है ॥ ७६ ॥ केदारमण्डलमें सारसे भी अधिक सार मय हमारी पुरीहै, म्लेच्छोंके द्वारा संकुल हुए कलियुगमें यही पुरी काशीके नामसे प्रसिद्ध होगी हमारा कथन अन्यथा नहीं होसक्ता ॥ ७७ ॥ जब यवनोंकी प्रबलतासे कलियुगमें काशीका अन्तर्धान हो जायगा तब मुक्ति दान करनेवाली काशी संज्ञा इसी नगरीमें विराजित होगी ॥ ७८ ॥ यह हमारा परम गोपनीय स्थान निर्माण कियागयाहै, अतएव पापिष्ठ और हमारी मायासे मोहित हुए व्यक्ति गण इसे कुछ नहीं जान सक्ते ॥ ७९ ॥ धर्मके ज्ञाता, श्रेष्ठ आचरण करनेवाले, सुन्दरशीलवान् (पुण्यप्रकृति) और जो व्यक्ति सत्यवादी हैं, इस पुरीका उन्हींको दर्शन होसक्ताहै ॥ ८० ॥ हे विप्रगण ! यदि अन्य सहस्रों जन्ममें किसीने उग्र तपका आचरण किया हो तौभी इस पुरीकी उनको प्राप्ति

यदि तप्तं महत्तपः ॥ तदैव प्राप्यते नूनं मत्पुरी नान्यथा द्विजाः ॥ ८१ ॥ पंचक्रोशात्मकं क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतस्तथा ॥ दक्षिणोत्तरतश्चैव मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥ तदैव वर्त्तते लिंगं मदीयं मारकतप्रभम् ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म तदक्षय्याय कल्पते ॥८३॥ महारुद्रविधानेन अभिषेकं करोति यः ॥ ममानुचरतां प्राप्य मयैव सह मोदते ॥ ८४ ॥ यंयं प्रार्थयते कामं तंतं प्राप्नोति मानवः ॥ येन नालोकितं लिंगं स शोच्यो नात्र संशयः॥८५॥ पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनम् ॥ कामार्थी लभते कामान् सत्यमेव न संशयः॥ ८६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा विससर्ज्जाथ सर्वानृषिगणान्मुदा ॥ समाययौ स्वभवने वारणावतसंज्ञके ॥८७॥ ततः प्रभृति देवोऽसौ तत्रैव वसति ध्रुवम् ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा तप्तं पुरा तपः ॥ जामदग्न्येन रामेण सावधानोऽवधारय ॥८८॥ पुरा परशुरामो वै वारणावतसंज्ञके॥

होसक्ती है अन्यथा कदापि नहीं ॥ ८१ ॥ पूर्वसे पश्चिमको और उत्तर दक्षिणको पांच कोसका क्षेत्र है इसमें मृत्यु होनेसे भी मुक्तिका लाभ होता है ॥ ८२ ॥ वहां ही मरकतमणि जैसी प्रभाको धारण किये हमारा लिंग उपस्थितहै उस स्थानमें जो कुछ भी कर्म किया जाता है उसका कभी क्षय नहीं होता ॥ ८३ ॥ जो व्यक्ति उक्त स्थानमें महारुद्रकी विधिसे अभिषेक करताहै, वोह हमारा अनुचर बनकर हमारे साथ ही आनन्दका उपभोग करताहै ॥ ८४ ॥ वोह मनुष्य जिस २ वस्तुकी कामना करता है उसको उसीकी प्राप्ति होजाती है । जिस पुरुषको हमारे उस लिंगके दर्शनोंकी प्राप्ति नहीं हुई, अवश्यही उसका शोच करना कर्त्तव्यहै ॥ ८५ ॥ जो व्यक्ति पुत्रकी कामना करता उसे पुत्रोंकी, धनार्थीको धनकी और अन्यान्य कामनावालेको उन्हीं उन कामनाओंकी निःसन्देह प्राप्ति होती है ॥ ८६ ॥ स्कन्दजी बोले—यों कहकर आनन्दपूर्वक उन्होंने सब ऋषियोंको बिदाकरदिया, और स्वयम् वारणावत संज्ञक निजभवनमें आये ॥ ८७ ॥ अवश्यही उस दिनसे महादेवजी उक्तः स्थानमें निवास करते हैं । अब हम वोह आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं कि, जिस प्रकार जमदग्निकुमार परशुरामजीने तपका आचरण किया था, तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ ८८ ॥ प्रथम वारणावत संज्ञक क्षेत्रमें जहां अनेक महर्षिगण उपस्थित हैं, गंगाजीकी लहरें विराजमान हैं, जो स्थान अनेक लता और वृक्षोंसे आकीर्ण है, अनेक

क्षेत्र मुनिगणैर्जुष्टे गंगाम्भोभिर्विराजिते॥८९॥नानाद्रुमलताकीर्णे नानामुनिगणान्विते ॥ नानारत्नमये दिव्ये नानापक्षिगणावृते ॥९०॥गंगातटे महादेवं भूतिभूषितविग्रहम्॥त्रिनेत्रं वृषभारूढं नंदि भृंग्यादिभिर्गणैः ॥९१॥ सेवितं दंडहस्तेन द्वारपालेन सेवितम्॥ सुरासुरगणाराध्यं व्याघ्रचर्मासनास्थितम् ॥ ९२ ॥ द्वीपिकृत्ति-वसानं च चंद्रार्द्धशोभि भालकम् ॥ध्यायन् सदाशिवं देवं निश्चलो निर्मलो मुनिः ॥ ९३ ॥ जितेंद्रियो जितक्रोधः स्थितः स्थाणु-रिवापरः ॥ एवं तपः कुर्वतश्च प्ररुरुहुर्लता द्रुमाः ॥ तस्यांगे धीमतश्चित्रं बभूव मुनिवन्दितः ॥ ९४ ॥ एवं प्रतपतस्तस्य संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥ उवाच वचनं रम्यं मेघगंभीरया गिरा ॥ ९५ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ तत्तुभ्यं सर्वथा दास्ये मा कुरुष्वात्र संशयम् ॥ ९६ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्तस्तु शिवेनासौ ययाचे वरमुत्तमम् ॥

मुनिगण प्रीतिपूर्वक जिसका सेवन करते हैं, जो अनेक रत्नोंसे सम्पन्न होनेके कारण रत्नमय है, जिस दिव्य क्षेत्रमें अनेक पक्षियोंके समुदाय उपस्थित हैं, ऐसे गंगाजीके तटपर जिनका शरीर विभूतिसे समलंकृत है, जिनके तीन नेत्र हैं, जो स्वयम् [धर्मरूप] वृषके ऊपर आरूढ हैं, नन्दी और भृंगी आदि जिनकी सेवा करते हैं, एवं च दण्ड हाथमें ग्रहण किये हुए द्वारपाल जिनकी उपासना करते हैं, देवता और असुर गण जिनका आराधन करते हैं, जो व्याघ्रचर्मके आसन पर उपस्थित रहते हैं, जिन्होंने द्वीपिचर्मको धारण किया और जिनका मस्तक अर्द्ध चन्द्र-मासे सुशोभित है ऐसे सदाशिव महादेवजीका परशुरामजी ध्यान करने लगे। उन मुनिके पापरूप सब मल दूर होगये और वे स्वयम् निश्चल होगये॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ उन्होंने इन्द्रियों और क्रोधको जीत कर स्थाणुकी सदृश स्थिति ग्रहण करी, हे मुनिवन्दित ! इस प्रकार तप करते २ यह अद्भुत कौतुक हुआ कि, उन बुद्धिमान्के शरीरमें लता और वृक्ष ऊग आये ॥ ९४ ॥ उनके इस प्रकार तपस्या करनेसे सदाशिव महादेवजीने सन्तुष्ट हो मेघनिर्घोषकी समान गम्भीर स्वरसे ये मनोहर वाक्य कहे ॥ ९५ ॥ श्रीशिव बोले—जो कुछ तुम्हारे मनमें है उसी वरकी याचना करो मैं वोह सभी कुछ तुम्हें दूंगा इसमें सन्देह कुछ भी नहीं है ॥ ९६ ॥ स्कन्द बोले जब महादेवजीने इस प्रकार कहा तब इन्होंने उत्तम वरकी याचना करी, यह वर माँगे कि,

अजेयत्वं रणेऽरीणां तथा च चिरजीविताम् ॥ ९७ ॥ प्रसन्नेन शिवेनोक्तस्तत्तथैव भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा परशुं तस्मै दत्तवान् शत्रुमारकम् ॥ ९८ ॥ ततः परशुमादाय प्रणम्य च सदा शिवम् ॥ सर्वभौम त्वयाऽत्रैव वस्तव्यं सर्वदैव हि ॥ ९९ ॥ सकलांशेन देवेश सगणेनेह मुक्तिदः ॥ इति देवं प्रार्थयित्वा रामस्तत्रैव संस्थितः ॥ १०० ॥ चकार शिवभक्तिं च योगिनामप्यगोचराम् ॥ ततः स एव संचक्रे क्षत्रियाणां हि संक्षयम्॥ त्रिः सप्तकृत्वो जयति परशोर्धारको मुनिः ॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सौम्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

संग्राममें शत्रु विजय न कर सकें, और स्वयम् चिरंजीव रहैं ॥ ९७ ॥ चूंकि महादेवजी प्रसन्न थे अत एव उन्होंने कहदिया यह सब ऐसेही होगा, यों कहकर शत्रुविनाशी परशु भी उन्हें प्रदान कर दिया ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर परशुको ले वारंवार महादेवजीको प्रणाम कर यह भी प्रार्थना करी हे सार्वभौम ! आपको अपने सब अंशोंसे सदैव यहां निवास करना चाहिये ॥ ९९ ॥ हे मुक्तिदाता ! आपके गण भी यहां ही निवास करें, महादेवजीकी इसभांति प्रार्थना कर परशुरामजी वहांही स्थित होगये ॥ १०० ॥ और महादेवजीकी ऐसी भक्ति करी जो योगियोंकी भी दृष्टिमें नहीं आसक्ती, फिर उन्होंने इसी विधिसे क्षत्रियोंका विनाश किया, कि–परसेको ग्रहण करके उन मुनिने इक्कीसवार क्षत्रियोंको नष्ट किया ॥ १०१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चतुर्णवतितमोऽध्यायः ९४.

नारद उवाच ॥ कथं त्रिसप्तकृत्वो हि चक्रे क्षत्रियसंक्षयम् ॥ रामः परशुसंयुक्तस्तन्मे वद सविस्तरम् ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ एकदा कार्त्तवीर्य्यो वागच्छत्केदारमंडलम् ॥ ययौ तेन च मार्गेण

नारदजी बोले–परशुधारी राम अर्थात्–परशुरामने इक्कीस वार किस विधिसे क्षत्रियोंका बध किया विस्तार पूर्वक यह सब मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ १ ॥ स्कन्द बोले–एक समय कार्त्तवीर्यने

यत्र रामाश्रमं शुभम् ॥ २ ॥ जमदग्नेस्तत्र पत्नी जलानयन कारिणी ॥ अपश्यन्मृण्मयैः कुंभैर्ददर्श भगिनीपतिम् ॥ ३ ॥ कार्त्तवीर्य्यं समस्तैश्च बलैश्च परिवारितम् ॥ नानापत्तिभिरश्वैश्च मत्तमातंगयूथपैः ॥ ४ ॥ महारथैः खड्गहस्तैः शोभमानं सुतेजसा ॥ दृष्ट्वा तं रेणुका भूपं चिंतयामास मानसे ॥ ५ ॥ धन्या मद्भगिनी नूनं यस्या एतादृशः पतिः ॥ मत्पतेस्तु जलं हर्तुं पात्रं नैवास्ति किंचन ॥ ६ ॥ इति वै चिंतयंत्याश्च कलशः शिरसोऽपतत् ॥ भूमौ संचूर्णितश्चासीत्तज्ज्ञात्वा जमदग्निकः ॥ क्रोधादुवाच पुत्रांश्च प्रत्येकं पर्यपृच्छत ॥७॥ यः कश्चिदस्या रण्डायाः शिरश्छेत्ता स मे सुतः॥इत्याज्ञां कृतवान्सोथ सर्वे नेतीति चाब्रुवन् ॥ ८ ॥ तान्शशाप स्वपुत्रान्स सर्वे प्रेता भविष्यथ ॥ ततः परशुरामं च सस्मार मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥ आविर्भौ तदानीं स आज्ञापयेति च ब्रुवन् ॥ शिरश्छिंधीति चाज्ञतश्चिच्छेद परशुना तदा ॥ १० ॥ मातुः शीर्षं च मेदिन्यां पपात

केदार मंडलकी यात्रा करी, उसका गमन उसी मार्गसे हुआ जहां परशुरामजीका शुभ आश्रम था ॥ २ ॥ जमदग्निकी पत्नी कच्ची मृत्तिकाके कलशोंमे जल लेनेके लिये जा रही थी तब उसने अपने बहिनोईको देखा ॥ ३ ॥ कार्त्तवीर्यके साथ प्रभूत सेना थी, अनेक पत्ती (पैदल) अश्व हस्ती और यूथप ॥ ४ ॥ एवम् महारथी खड्ग हाथ में लिये उसके साथ विद्यमान थे और वोह अपने तेजसे प्रदीप्त था, ऐसे राजाका अवलोकन कर रेणुका अपने मनमें विचार करने लगी ॥५॥ जिसका पति ऐसा राजा उस हमारी बहिनको धन्य है, और हमारे पतिके पास तौ जल लानेतकके लिये पात्र नहीं है ॥ ६ ॥ यौं विचार करते २ हीं उसके शिरपरसे कलशा भूमिके ऊपर गिरकर चूर्ण २ होगया, यह बात जान जमदग्निजीको क्रोध हो आया और उन्होंने अपने पुत्रोंसे पृथक् पूछा ॥७॥ जो तुममेंसे इस रण्डाका शिर काटैगा वोही हमारा पुत्र है, जब उन्होंने ऐसी आज्ञा दी तब सबहीने निषेध कर दिया ॥ ८ ॥ तब तौ ऋषिने सभी पुत्रोंको शाप देदिया कि, तुम सब प्रेत होजाओ, फिर महर्षि परशुरामजीका स्मरण करने लगे ॥ ९ ॥ उसी समय प्रादुर्भूत होकर परशुरामजीने विनय करी कि, मुझे आज्ञा दीजिये, जब महर्षिने उन्हें यह आज्ञा दी कि, इसका शिर छेदन कर डालो तब उन्होंने परसेसे माताका शिर काटडाला॥१०॥हे मुनिवन्दित ! तब परशुरामकी माताका

मुनिवंदितः ॥ जमदग्निस्तु संतुष्टो वरयेति वरं वदन् ॥ ११ ॥
साधु साधु च प्रोवाच राम त्वं मत्सुतः किल ॥ इति संवादिनं
तं तु प्रोवाच वचनं तदा ॥ १२ ॥ मयि त्वं यदि संतुष्टस्तदा
जीवय मातरम् ॥ तथेत्युक्त्वा मुनिस्तां तु जीवयामास भामि-
नीम् ॥ १३ ॥ ततः प्रभृति सा देवी रेणुकाख्यां ययौ मुने ॥
अद्याऽपि तत्र विख्याता स्मरणात्पापनाशिनी ॥ १४ ॥ सप्तज-
न्मकृतात्पापान्मुच्यते दर्शनान्नरः ॥ संपूजयति तां देवीं रेणुका-
ख्यां मुनीश्वर ॥ १५ ॥ अयुतार्काभयानेन दिव्यलोके प्रमो-
दते ॥ अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षत्रियांतस्य कारणम् ॥ १६ ॥
एकदा सुखमासीनां कृपाविष्टो मुनिः स्वयम्॥ स पत्नीं रेणुकाख्यां
हि प्रोवाच वचनं मुदा ॥ १७ ॥ प्रिये निमंत्रयस्व त्वं भोजनार्थं
पतिव्रते ॥ स्वस्वस्रा सहितं कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनमहीपतिम् ॥१८॥
समस्तसैन्यलोकैश्च गजवाजिपदातिभिः ॥ इत्युक्ता सा पतिरता
रेणुकाख्या मुनीश्वर ॥ १९ ॥ साध्वी निमंत्रयामास भगिनीं

शिर भूमिके ऊपर गिरपड़ा, महर्षि जमदग्नि सन्तुष्ट होकर कहने लगे॥११॥कि, हे परशुराम ! तुम्ही मेरे यथार्थ पुत्रहो तुम्हें धन्य है, अब तुम वरकी याचना करो ! जब उन्होंने इस प्रकार अनुरोध किया तब परशुरामजी ये वचन बोले ॥ १२ ॥ यदि हमारे कर्मसे सन्तुष्ट होकर प्रसन्न हुए हो तो हमारी माताको जीवित कर दीजिये, तब तो महर्षिने तथास्तु कहकर अपनी पत्नीको जीवित करदिया ॥ १३ ॥ सुनो मुनि ! उसी दिनसे उसका रेणुका नाम होगया वोह अभीतक वहां प्रसिद्ध है और उसका स्मरण करनेहीसे पापोंका विनाश होता है ॥ १४ ॥ और उसका दर्शन करनेसे मनुष्य सात जन्ममें किये हुए पापोंसे भी मुक्त होजाता है। हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य उस रेणुकाकी पूजा करता है ॥ १५ ॥ वोह अनेक सूर्यकी समान प्रदीप्त यान द्वारा दिव्यलोकमें जाय सुखका उपभोग करता है। अब क्षत्रियोंके विनाशकी कारणरूप अन्य कथाका वर्णन करतेहैं ॥ १६ ॥ एक समय रेणुका सुख पूर्वक बैठी थी. महर्षिके चित्तमें दया आई अत एव हर्ष पूर्वक वे उससे यों बोले ॥ १७ ॥ अयि प्रियपतिव्रते ! तुम भोजनके लिये अपनी बहिनसहित कृतवीर्यके पुत्र भूपाल सहस्रबाहुको निमन्त्रण देदो ॥ १८ ॥ और यह निमन्त्रण सम्पूर्णसेना अन्यकर्मचारी वर्ग, हाथी घोडे और पदचर सहित (सभीको) होना चाहिये, हे मुनीश्वर ! पतिकी प्रेमिणी रेणुकासे इस प्रकार ऋषिने कहा ॥ १९ ॥ तब उस पतिव्रताने पतिसहित अपनी बहिनको निमन्त्रण दिया, सुनो मुनि ! सेनासहित राजाको

भर्तृसंयुताम् ॥ निमंत्र्य सबलं भूपं जमदग्निस्तदा मुने ॥ आनयामास स्वर्गात्तु कामधेनुं बहुप्रदाम् ॥ २० ॥ चकाराशनसंभारान्खाद्यान्पेयान्सुसंस्कृतान् ॥ लेह्यांश्चोष्यांस्तथा चर्व्यान्सर्वान्स्वादुत्तरान्नृपः ॥ २१ ॥ गृहाणि सौधतुल्यानि रम्याणि विविधानि च॥प्रत्युच्चानि च विस्तीर्णशय्यानि मुनिपुंगवः॥२२॥ अन्यानपि पदार्थांश्च रचयित्वा मुनीश्वरः ॥ आनयामास राजानं भोजनाय महार्ज्जुनम् ॥ २३ ॥ सबलं च सपत्नीकं सेभवाजिपदातिनम् ॥ यस्य यस्य यथेच्छासीत्तत्तत्समददत्तथा॥ ॥ २४ ॥ भुक्त्वा संतुष्टमनसः सर्व एवाभवंस्तदा ॥ आतिथ्यं तन्नृपो भुक्त्वा तापसस्येदृशं तपः ॥ २५ ॥ येन मे सबलस्यापि भोजनं दत्तवान्मुनिः ॥ अथ वा कामधुक् चेयं वर्त्तते तापसालये ॥ २६ ॥ तस्या एव प्रभावोऽयं याचे तामेव तन्मुनेः ॥ इति संचिन्त्य राजा तु मुनिं प्रोवाच सुव्रतम् ॥ २७ ॥ जमदग्ने इयं धेनुर्दीयतां मम सर्वथा ॥ भोजनांते दक्षिणायै सबलस्य

निमन्त्रण देकर ऋषिराज जमदग्निजी स्वर्गसे प्रभूत पदार्थोंकी देनेवाली कामधेनुको ले आये ॥२०॥ फिर उन्होंने भोजनके खाद्य पेय लेह्य चोष्य और चर्व्य उत्तमोत्तम पदार्थ तैयार किये, उन सब ही भोज्य पदार्थोंका लोकोत्तर स्वाद था ॥ २१ ॥ ऊंचे और विस्तीर्ण महलोंकी सदृश विविध प्रकारके सुरम्य निवासगृह बनाये अथ च हे मुनिपुंगव ! शय्या ॥ २२ ॥ ये सब तथा अन्यान्य बहुतसे पदार्थोंकी रचनाकरके मुनीश्वर महार्जुन राजाको भोजनके लिये लाये ॥ २३ ॥ उसके साथ सेना, उसकी पत्नी, हस्तिमण्डल, अश्व और पदचर वर्ग ये सभी उपस्थित हुए । और जिसकी जो इच्छा थी मुनिने उसे वोही पदार्थ दिया ॥ २४ ॥ यथेष्ट भोगोंका उपभोग करनेसे उन सभीका चित्त सन्तुष्ट होगया । जब राजाने महर्षिके ऐसे अतिथि सत्कारको ग्रहण किया तब उनके (तपकी प्रशंसा करनेलगे) ॥ २५ ॥ कि, इनका ऐसा तप है जिसके प्रभावसे मुनिने मुझे सेना सहित भोजन करादिया । अथवा इस तपस्वीके आश्रममें कामधेनु विद्यमान है ॥ २६ ॥ और उसीका यह सब कुछ प्रतापहै, अत एव मुनिसे उसे मांगना चाहिये, हे सुव्रत ! मनमें ऐसा विचारकर राजाने महर्षिसे यों कहा ॥ २७ ॥ हे महामुनि जमदग्नि ! सेनासहित तुमने मुझे

महामुने ॥ २८ ॥ इत्युक्तः प्राह राजानं मुनिर्मधुरया गिरा ॥ प्रभो नाथ मदीयेयं धेनुर्नास्ति महीपते ॥ २९ ॥ इयं वै ब्रह्मणो धेनुः कथं दास्यामि ते नृप ॥ ३० ॥ ॥ राजोवाच ॥ अवश्यमेव दातव्यं धेनुर्मे मुनिपुंगव ॥ नोचेत्त्वां हन्मि खड्गेन माकुरुष्वात्र संशयम् ॥ ३१ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनिः क्रोधसमाकुलः ॥ प्रोवाच वचनं चेदं गच्छ राजन्यथागतम् ॥ ३२ ॥ गृह्यतां कामधेनुर्वै यदि ते बहुमंडलम् ॥ त्वामियं कामधेनुश्च भस्मसात् प्रकरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्युक्तो मुनिना राजा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ खड्गं निःसार्य्य कोशात्तु शिरश्चिच्छेद तन्मुनेः ॥ ३४ ॥ अथ धेनुसमीपे तु गत्वा तां समुपाहरत् ॥ सापि क्रोधेन तप्तांगी स्वांगेभ्यो यवनानथ ॥ बहून्बहुविधान्क्रूरान्निस्ससार तदा मुने ॥ ॥ ३५ ॥ यवनैः क्रूरचेष्टैश्च खड्गचर्म्मलसत्करैः ॥ भूमिपस्य बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मभिः ॥ ३६ ॥ हते सैन्ये कामधेनुर्ययौ स्व-

भोजन कराया है, सो भोजनोपरान्तकी दक्षिणामें मुझे यह कामधेनु देदीजिये ॥ २८ ॥ यों कहे जानेपर मुनिने मधुर वाणीसे राजाके प्रति इस प्रकार कहा हे भूपति हेनाथ ! ! हे प्रभो ! ! ! यह काम धेनु हमारी नहीं है ॥ २९ ॥ हे राजन् ! यह धेनु ब्रह्माजी महाराजकी है, मैं तुम्हें किस प्रकारसे देसक्ता हूं ॥ ३० ॥ राजा बोला—हे ऋषिराज ! यह धेनु मुझे अवश्यही देनी चाहिये, अन्यथा इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि, मैं खड्गसे तुम्हारा वध कर डालूंगा ॥ ३१ ॥ स्कन्द बोले—राजाके ये बचन सुन मुनि क्रोधमें भरगये और यों बोले—राजन् ! जैसे आये हो वैसे ही (सीधी तरह) चले जाओ ॥ ३२ ॥ और यदि तुममें बल अधिक है तो कामधेनुको ले लो, पर यह कामधेनु ही तुम्हें जलाके राख कर डालेगी ॥ ३३ ॥ जब राजासे मुनिने इस प्रकार कहा तब उसके नेत्र मारे क्रोधके लाल २ होगये, और उसने म्यानमेंसे खड्ग निकालकर मुनिका शिर छेदन करडाला ॥ ३४ ॥ फिर राजाने गौके निकट जाय उसे हरलिया. क्यों कि, मारे क्रोधके गौका अंग सन्तप्त हो रहा था अत एव उसने अपने अंगोंसे भांति २ के बहुतसे क्रूर यवनोंको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ क्रूरचेष्टावाले उन दुष्ट यवनोंने हाथमें ढाल तलवार लेकर उस समय राजाकी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट कर डाला ॥ ३६ ॥ जब सेना नष्ट होगई तब कामधेनु स्वर्गलोकको सिधार गई । इधर राजा अपने मनमें लज्जित हो

भवनं प्रति ॥ लज्जाविष्टमना राजा ययौ केदारमंडले ॥ ३७ ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय यत्र भागीरथी स्मृता ॥ तत्र स्थित्वा तपस्तप्त्वा मुमुचे ब्रह्महत्यया ॥ ३८ ॥ अथ कालेन महता समायातो महामुने ॥ परशुरामस्तत्क्षेत्रे रेणुका तमुवाच ह ॥ ३९ ॥ पुत्र पश्येदृशं दुःखं कार्त्तवीर्य्याऽदुरात्मनः ॥ त्वत्पितुश्च शिरश्छिन्नं तद्विचारय सांप्रतम् ॥ ४० ॥ येन मे हृद्गतं दुःखं विनश्येत कथंचन ॥ श्रुत्वा तद्वचनं मातुः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ दंतैरोष्ठौ पीडयंश्च प्रोवाच वचनं रुषा ॥ ४१ ॥ प्राणोत्क्रमणकाले तु मत्पित्रा किमुदाहृतम् ॥ तत्त्वं कथय मे मातर्यदि ते मदनुग्रहः ॥ ४२ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं माता सुतं प्रोवाच रेणुका ॥ त्रिः सप्तकृत्वस्त्वत्पित्रा कराभ्यां भुवि ताडितम् ॥ ताडयित्वा दिवं यातश्चान्यत्किंचिन्न तत्कृतम् ॥ ४३ ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा मन्युना कलुषेक्षणः ॥ प्रतिज्ञां कृतवान्राम एकविंशतिवारकम् ॥ करिष्यामि क्षत्रशून्यां सर्वथैव वसुंधराम् ॥ ४४ ॥ प्रतिज्ञाय ययौ रामो यत्रास्ते कार्त्तवीर्य्यकः ॥ तेन साकं महद्युद्धं चक्रे

केदार मण्डलमें चला आया ॥ ३७ ॥ जहां भागीरथी गंगाजी हैं वहां स्थित हो ब्रह्महत्यासे छूटनेके लिये तपका आचरण किया, तब ब्रह्महत्यासे उसकी मुक्ति होगई ॥ ३८ ॥ हे महामुनि! इसके अनन्तर बहुत दिन पीछे उसी स्थानमें परशुरामजी आये तब रेणुकाने उनसे यह सब वृत्तान्त कहा ॥ ३९ ॥ देखो पुत्र! दुष्ट कार्त्तवीर्यने यह दुःख देरक्खाहै कि–तुम्हारे पिताका शिर उसने काटडाला है ॥ ४० ॥ अब तुम कोई ऐसा उपाय विचारो जिससे मेरे हृदयका दुःख दूरहो, माताके ये वाक्य श्रवण करतेही परशुरामजीके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगये, क्रोधपूर्वक दांतोंसे ओष्ठोंको चाबकर वे यौं बोले ॥ ४१ ॥ प्राण निकलते समय हमारे पिताने क्या कहा था हे माता! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा अनुग्रहहै तौ यह सब मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ पुत्रके ये वचन सुन माता रेणुकाने यौं कहा–तुम्हारे पिताने इक्कीस बार हाथोंसे भूमिको ताडन किया था और ताडन करके वे स्वर्गको चले गये, उन्होंने और कुछ भी नहीं किया ॥ ४३ ॥ माताके यह वचन सुन परशुरामजीने यह प्रतिज्ञा करी कि, इक्कीसही वार भूमिको क्षत्रियोंसे शून्य करदूंगा॥ ४४॥ यह प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर परशुरामजी कार्त्तवीर्यके निकट गये, और उन्होंने उसके साथ ऐसा

देवासुरं यथा ॥ ४५ ॥ ततो बाहुसहस्रं वै परशोश्चैव धारया ॥ चिच्छेद तच्छिरश्चैव ततश्चान्यान्महीक्षितः ॥ ४६ ॥ जघान क्षत्रियान्रामो मृधे त्रिःसप्तसंख्यया ॥ ततो रामावतारे हि रामेण कृतबुद्धिना ॥ संगतोऽसौ महाराज रूपेस्मिञ्श्रीहरौ बलम् ॥ ४७ ॥ चिक्षेप सहसा तत्र धनुमार्गेण नारद ॥ तपसे प्रययौ विप्रस्सौम्यवाराणसीस्थले ॥ ४८ ॥ इति ते कथितो विप्र सौम्यवाराणसी भवः ॥ यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते भवभीतितः ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सौम्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

घोर युद्ध किया कि, जैसा देवता और दानवोंका हुआ था ॥ ४५ ॥ अथ च परसेकी धारसे उसकी सहस्र भुजाओंका छेदनकर उसके शिरको भी काटडाला और फिर अन्यान्य राजाओंका भी वध किया ॥ ४६ ॥ सुतराम् परशुरामजीने संग्राममें इक्कीसवार क्षत्रियोंका वध किया। इसके अनन्तर जब रामावतार हुआ तब यह बुद्धिमान् रामसे मिले और इनका बल नारायणमें लीन होगया ॥ ४७ ॥ हे नारद ! तब तो इन्होंने तत्कालही धनुषको मार्गमें फैंककर तपश्चर्या करनेके लिये यह वाराणसीके सौम्य स्थलमें चलेगये ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार हमने सौम्य वाराणसीका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसका श्रवण करनेसे मनुष्य समस्त पापों और संसारके भयसे मुक्त होजाताहै ॥ ४९ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५.

नारद उवाच ॥ कानि कानि च तीर्थानि तत्र संति महामते ॥ तेषां विस्तरतो ब्रूहि माहात्म्यं वदतां वर ॥१॥ तथा विश्वेशलिंगस्य पूजाया विभवं वद॥वारणावतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ शृणु यत्नेन सारं च कुण्डं वै ब्रह्म-

नारदजीबोले—हे महामतिमान् ! वहां कौन २ से तीर्थ विद्यमान हैं ? हे वाग्मिवर ! आप उनका माहात्म्य हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ १ ॥ तथा विश्वनाथजीके लिंगकी पूजाका माहात्म्यभी वर्णन करिये, एवम् वारणावतकी उत्पत्ति और उसका माहात्म्यभी आप वर्णन करें ॥ २ ॥ स्कन्द बोले-अब तुम यत्न पूर्वक ब्रह्मनामकुण्डका सार श्रवण करो, उस स्थानमें भागीरथी गंगाजी उत्तरकी

संज्ञकम् यत्र भागीरथी रम्या गंगा चोत्तरवाहिनी ॥ ३ ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥४॥स्नातका यंयमिच्छति तंतं कामं लभन्ति ते॥स्त्रियः पुरुषतां यांति पुंसो यान्ति हि देवताम्॥५॥तज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मकुंडे चराचराः॥ निर्मुक्ताः सर्वपापेभ्यो विमुखा गर्भवेश्मसु ॥ ६ ॥ लता गुल्माश्च वृक्षाश्च तृणानि च मृगास्तथा ॥ पशवः पक्षिणो वापि जलस्थलगताः पुनः ॥७॥ तत्तद्देहैर्विमुच्यन्ते तज्जलस्पर्शनाद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानात्ततो भविष्यंति प्रमुख्याश्च तपस्विनः ॥८॥ ततो मयि च ते सर्वे शिवभक्तिपरायणाः ॥ शिवे लीना भविष्यंति योन्युद्भवविवर्ज्जिताः ॥ ९ ॥ तदधो रुद्रकुंडं तु वर्त्तते भुवि दुर्ल्लभम् ॥ स्नानं करोति यो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु॥१०॥युगकोटिसहस्राणि रुद्रलोके सुखं वसेत्॥ततो वतीर्य्य भूमौ तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ११ ॥ स भुक्त्वा सुखबा-

और बहतीहैं ॥ ३ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको गमन करताहै,एवं च सात जन्मके संचित पापोंसे उस व्यक्तिको छुटकारा मिलजाताहै, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ उसमें स्नान करनेवाले व्यक्ति जिस २ वस्तुकी इच्छा करतेहैं, उनकी वोही कामना पूर्ण होजातीहैं, स्त्रियें पुरुषत्वका और पुरुषगण देवत्वका लाभ करतेहैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मकुण्डमें उसके जलका स्पर्श करनेसे संपूर्ण चराचर समस्त पापोंसे मुक्ति लाभ करके गर्भमें निवास करनेके दुःख से बच जाते हैं ॥ ॥ ६ ॥ क्या लता, क्या गुल्म, क्या वृक्ष, क्या तृण तथा क्या मृग, क्या पशु और क्या पक्षी ये सभी चाहें जलमें हों अथवा स्थलहीमें हों ॥ ७ ॥ तथापि उक्त कुंडके जलका स्पर्श करनेसे अवश्य ही उन्हें उस २ योनीसे मुक्तिलाभ होजाता है, और फिर वे सबही ज्ञानको प्राप्त करके द्विजोंमें उत्तम तपस्वी होजाते हैं ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर वे सबही महादेवकी भक्तिमें परायणहो, अन्य योनियोंमें जन्म मरणसे छूटकर मेरे विषे लीन होजायँगे ॥ ९ ॥ उसीके नीचे एक रुद्र कुण्डहै, उसकी प्राप्ति भूमिके ऊपर दुर्लभ है, उस कुंडमें जो व्यक्ति भक्तिभाव पूर्वक स्नान करता है उसके फलको श्रवण करो ॥ १० ॥ वोह मनुष्य करोड सहस्र युग पर्यन्त रुद्रलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है, फिर भूमिके ऊपर अवतीर्ण होकर सातों द्वीपका अधिपति होता है ॥ ११ ॥ भूमंडलके ऊपर प्रभूत सुखका उपभोग कर महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर रहके मरणोपरान्त योगी होता है, और फिर उसे

हुल्यं रुद्रभक्तिपरायणः॥ देहांते स भवेद्योगी गर्भवासविवर्जितः ॥१२॥ शिवेन सह लीयेत नात्र कार्य्या विचारणा ॥ तत्रैव वर्त्तते लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ १३ ॥ सकृत्पश्यति यो लिंगं रुद्रेश्वर इति स्मृतम्॥मोहकंचुकन्मुन्मुच्य ज्ञानकंचुकसंवृतः॥परिवारान्वयैर्युक्तः सुखं याति शिवालये ॥ १४ ॥ अयुतार्काभयानेन सेवितश्चाप्सरोगणैः॥ गीतवाद्यरसोपेतैर्धूयमानो हि चामरः॥ ॥ १५ ॥ कल्पकोटिशतं दिव्यं शिवलोके वसेत्सुधीः ॥ ततो यास्यति निर्वाणं सर्वधर्मसुदुर्ल्लभम् ॥ १६ ॥ योनियंत्रं परित्यज्य ज्योतीरूपे प्रलीयते ॥ श्राद्धं यः कुरुते तत्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १७ ॥ शतमेकोत्तरं सार्धं तारितं तेन पैतृकम् ॥ तथैव मातृकं वापि सुखिबंधुजनस्य च। १८।गुरूणां च तथा राज्ञां श्वशुराणां कुलं तथा॥सुकृत्पिण्डप्रदानेन प्रणयेद्ब्रह्मशाश्वतम्। १९।एतत्तीर्थमवज्ञाय गयां यः परिधावति ॥ तेनैवं स्वकुलं विप्र पातितं नरके ध्रुवम् ॥ २० ॥ यदैतत्तीर्थप्राप्तिर्न तदा गयां परिव्रजेत् ॥ तदधो वरुणा-

गर्भमें निवास करना नहीं होता ॥ १२ ॥ किन्तु—शिवहीमें लीन होजाता है इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये, उसी स्थानमें एक ऐसा लिंग है जिसके दर्शन करनेसे मुक्तिका लाभ होता है॥ १३॥ रुद्रेश्वर संज्ञक रुद्रको जो मनुष्य एक वारभी अवलोकन करता है, वोह अज्ञानः रूप वस्त्रोंको त्याग, ज्ञानके कंचुक (परिधानवस्त्र) से आवृत हो, अपने परिवार तथा कुटुंब सहित सुखपूर्वक शिवलोकमें प्राप्त होता है ॥ १४॥ सहस्रों सूर्य्यकी समान जिसकी प्रभा है ऐसे विमानमें आसीन होता, अप्सरागण उसकी सेवा करते हैं गीत और वाद्योंका रस उसे प्राप्त होताहै और उसके ऊपर चमर ढोले जातेहैं ॥ १५ ॥ दिव्य सौ करोड़ कल्प पर्यन्त वोह सुधी शिवलोकमें निवास करता है, फिर इसके अनन्तर उसे ऐसे निर्वाण पदकी प्राप्ति होती है जो अन्य सब धर्मोंसे नहीं मिलसक्ता ॥ १६ ॥ अथ च वोह व्यक्ति योनि यन्त्रका परित्यागकर साक्षात् ज्योतिःस्वरूपमें लीन होजाता है। और जो पुरुष उक्त स्थानमें श्राद्ध करता है उसके पुण्य फलका श्रवण करो॥ १७॥उसके एक सौ एक पिताके कुलकी पीढी तर जातीहैं,इसी प्रकार उसके मातृकुल और बन्धुओंका उद्धार हो जाता है ॥ १८ ॥ विशेष क्या एक बार ही दान करनेसे उस व्यक्तिके गुरु राजा और श्वसुर कुलका उद्धार होता है ॥ १९ ॥ जो व्यक्ति इस तीर्थका अनादर कर गया की यात्रा करता है, हे विप्र ! उसके कुल अवश्य ही नरकमें निपतित होजाते हैं ॥ २० ॥ यदि इस तीर्थकी प्राप्ति नहीं होसक्ती हो तौ

याश्च गंगायास्तत्र संगमः ॥ २१ ॥ तत्र स्नातुं फलं वक्ष्ये शृणु-
त्वं मुनिसत्तम ॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च वाराणस्यां च सागरे ॥२२॥
यत्पुण्यं कोटिधा स्नानात्तथा बदरिकाश्रमे ॥ देवप्रयागे श्रीक्षेत्रे
कोटिधा स्नानतोऽपि यत्॥ तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्यते मज्ज-
नात्सकृत् ॥ २३ ॥ मोहशोकैर्विनिर्मुक्तो गर्भवासविवर्जितः ॥
श्रीशिवे परिलीयेत सत्यं सत्यं न संशयः॥२४॥तत्र पिंडप्रदाता च
त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ अज्ञानादपि मत्स्याद्या मज्जिता न
पुनर्भवाः॥२५॥यो दद्यादणुमात्रं हि हिरण्यं भक्तितत्परः॥सोऽपि
याति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ २६ ॥ स्नानं जपं च
दानं वा वाराणस्यां कृताधिकम् ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचि-
त्कुरुते नरः ॥ तत्सर्वं विलयं याति तज्जलस्पर्शमात्रतः॥ २७ ॥
तत्रैव वर्त्तते लिंगे वरुणेशमिति स्मृतम् ॥ तद्दर्शी मनुजो भक्त्या
मोक्षं प्राप्नोति तत्क्षणात् ॥ २८ ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैः स

...की यात्रा करनी चाहिये । इसीके नीचे वरुणा और गंगाजीका संगम है ॥ २१ ॥ हे मुनिराज!
...में स्नान करनेवालेको जो फल मिलते हैं उनका वर्णन कियाजाता है, कुरुक्षेत्र, प्रयाग,
...रणसी (काशीजी) सागर (गंगा सागर) ॥ २२ ॥ इनमें करोडों विधिसे स्नान करने पर
...स फलकी प्राप्ति होती है, तथा--बदरिकाश्रम देवप्रयाग श्रीक्षेत्र इन स्थानोंमें भी करोडों विधिसे
...ान करनेपर जो फल उपलब्ध होताहै उसकी अपेक्षा करोड गुणा अधिक पुण्य इसमें एक वार ही
...ान करनेसे प्राप्त होजाता है ॥ २३ ॥ उसके मोह शोक तथा गर्भवासके दुःख दूर होजाते हैं,
...दान वोह श्रीशिवमें लीन होजाता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं यह सब कुछ सत्य है ॥ २४ ॥
...स्थानमें पिण्डदान करनेवालेके तीन करोड कुलोंका उद्धार होजाता है और मत्स्यआदि
...जीव अज्ञानसे भी उसमें निवास करते हैं उनका भी फिर जन्म नहीं होता ॥२५॥ जो व्यक्ति
...क्ति भावमें तत्पर हो इस स्थानमें अणुमात्र सुवर्णका दान करताहै, वोह भी ऐसे परम पदको
...ता है जहां जाकर फिर शोच करना नहीं होता ॥ २६ ॥ स्नान जप दान इन सबका फल
...राणसीमें करनेकी अपेक्षा भी अधिक होता है, यदि कोई मनुष्य ब्रह्म हत्यादि पापका भी
...चरण करै तौ इस तीर्थके जलका केवलस्पर्श करनेहीसे सब पातक नष्ट होजाते हैं ॥ २७ ॥
...स्थानमें एक लिंग है जिसका वरुणेश नाम है, भक्तिभाव पूर्वक उक्त लिंगके दर्शन करनेसे
...ुष्य तत्क्षण मुक्ति लाभ करता है ॥ २८ ॥ अथ च सात जन्ममें इसके जितने पाप संचित

मक्तो नात्र संशयः ॥ २९ ॥ आषाढ्यामासनक्षत्रयुक्तायां स्नाति मानवः ॥ कोटिजन्मार्ज्जितैः पापैर्मुच्यते मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ ततश्च वसते शैवे पुरे रम्ये गणावृते ॥ ततः प्रलीयते तस्मिन्योनिसंकटवर्ज्जितः ॥ ३१ ॥ अथासीद्यत्र गंगायां संगमे तत्र मानवः ॥ कृमिकीटपतंगाद्याः स्नाता यांति विमुक्तिताम् ॥ ॥ ३२ ॥ तत्र दत्तं हुतं तप्तममृतत्वाय कल्पते ॥ अत्रान्यच्च प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ ३३ ॥ अत्याश्चर्य्यकरं पुंसां पठनात्पापनाशनम् ॥ अयोध्यायां द्विजः कश्चिद्बभूव विनयान्वितः ॥ ३४ ॥ नाम्नाऽसौ चंद्रवर्म्मेति ख्यातो बहुसुतान्वितः॥ बहुस्त्रीभिः परिवृतो महदैश्वर्यसंयुतः ॥ ३५ ॥ दत्तानि तेन दानानि गोभूवासांसि च द्विजः ॥ महादानानि विप्रेभ्यो ददौधान्याचलादिकम्॥३६॥ तथा ब्रह्माण्डदानं च सुवर्णपृथिवीं तथा ॥ व्रतान्यपि चकाराऽसौ बहुपुण्यानि नारद ॥ ३७ ॥ पुराणानि च शश्राव तीर्थानां वैभवं तथा ॥ अधिकं सर्वतीर्थेभ्यो मत्वा केदा-

हुए हों उन सभीसे निस्सन्देह इसे मुक्ति लाभ होता है ॥ २९ ॥ पूर्वाषाढ नक्षत्र युक्त आषाढ शुक्ल पूर्णिमाके दिन जो मनुष्य वहां स्नान करता है, हे मुनिराज ! वोह करोडों जन्मके संचित पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ और इसके अनन्तर महादेवजीके गणोंसे आवृत हुए अति रमणीय शिवलोकमें निवास करता है, फिर योनि संकट अर्थात् जन्म मरणके दुःखसे छुटकर शिवमें लय होजाता है॥३१॥ और जहां गंगाजीका संगम है वहां मनुष्य ही क्या कृमि कीट पतंगादिक सभी स्नान कर मुक्ति लाभ करते हैं ॥३२ ॥ उस स्थानमें दान हवन तप जो कुछ भी किया जाय वोह सभी अक्षय होता है. यहां और भी एक प्राचीन इतिहासका हम कीर्त्तन करते हैं ॥ ३३ ॥ वोह इतिहास अत्यन्त ही आश्चर्य कराने वाला है, उसका पाठ करनेसे पुरुषोंके पाप विनष्ट होते हैं, अयोध्या नाम नगरीमें एक विनयी ब्राह्मण था ॥ ३४ ॥ चन्द्रवर्मा नामसे संसारमें इसकी ख्याति थी, इसके स्त्री पुत्र बहुतसे थे एवम् इसके पास प्रभूत ऐश्वर्य था ॥ ३५ ॥ हे द्विज ! उसने गौ, भूमि और वस्त्र इन सबका दान किया, उसने महादान और धान्य भूमि ब्राह्मणोंको दान करके दी ॥ ३६ ॥ तथा ब्रह्माण्ड और सुवर्ण पृथ्वीका दान भी उसने किया, अथ च हे नारद ! इसने अतिशय पवित्र व्रतोंका भी आचरण किया ॥ ३७ ॥ एवम् पुराणोंके पारायण और तीर्थोंके माहात्म्य इनसबका भी उसने श्रवण किया, किन्तु—उसने केदार मण्डलको

रमण्डलम् ॥ ३८ ॥ विरक्तोऽभूत्तदा सोऽथ वैभवे च सुखप्रदे ॥ सर्वं गृहाश्रमं त्यक्त्वा गमनाय मनोऽकरोत् ॥ ३९ ॥ केदारेश्वर यात्रायां खड्गचर्मधरः सुधीः ॥ सोऽपानत्को ययौ सोऽथ गंगाद्वारे महामुने ॥ ४० ॥ आगत्य ब्रह्मकुंडे च स्नात्वा दक्षेश्वरं विभुम् ॥ प्रजापतिं च नत्वाऽथ कुब्जाम्रकं समाययौ ॥ ४१ ॥ तत्रापि बहुशः स्नात्वा प्रणम्य भरतं मुदा ॥ लक्ष्मणाश्रममागत्य पूजयित्वा च तं प्रभुम् ॥ ४२ ॥ वशिष्ठाश्रममागत्य दृष्ट्वा तत्र महामुनिम् ॥ देवप्रयागे आगत्य स्नात्वा दृष्ट्वा रघूद्वहम् ॥ ४३ ॥ ययौ तत्र महाक्षेत्रं गंगाभिल्लांगनासमम् ॥ मिलित्वा तत्र संगे ते सस्नौ पुण्यप्रदे मुने ॥ ४४ ॥ ततोऽगच्छत्सौम्य काशीमज्ञानात्स महाशयः ॥ यत्रासीद्गङ्गयोः संगस्तत्रामज्जन्मुदान्वितः ॥ ४५ ॥ आगत्य तीरे वस्त्राणि परिधाय महामतिः ॥ नापश्यच्चर्म्मकोशं च उभे चोपानहौ तथा ॥ ४६ ॥ इतस्ततो भ्रमन्सोऽथ चिन्तयंस्तदहेतुकम् ॥ गतं कुत्र ममातीव प्रियं वस्तु

सभीसे अधिक माना ॥ ३८ ॥ सुतराम् सुखदाई माहात्म्योंके श्रवण करनेसे यह विरक्त होगया, निदान समस्त गृहस्थाश्रमका परित्याग कर इसने यात्रा करनेका विचार किया ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! यह सुधी खड्ग और चर्मको ग्रहणकर उपानह धारण करे हुए केदारेश्वरकी यात्रामें गंगाद्वारमें पहुँचा ॥ ४० ॥ यहां आय ब्रह्मकुण्डमें स्नान कर दक्षेश्वर और प्रजापतिको प्रणाम किया, फिर कुब्जाम्रकमें चलागया ॥ ४१ ॥ वहां भी विविध प्रकारसे स्नानकर आनन्द पूर्वक भरतजीको प्रणाम किया, इसके अनन्तर लक्ष्मणाश्रममें आय उन प्रभुको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर वशिष्ठजीके आश्रममें आयकर महामुनिको प्रणाम किया और देवप्रयागमें स्नानकर रघुवंशके उद्धार कर्त्ताकी पूजाकी ॥ ४३ ॥ फिर गंगा और भिल्लांगनाके उत्तम क्षेत्रमें गया, हे मुनि ! उनके पवित्र संगममें उसने स्नान किया ॥ ४४ ॥ फिर वोह महाशय बिना समझे ही सौम्यकाशीको चलागया, और जहां दोनो गंगाका संगम हुआ है आनन्द पूर्वक उसमें स्नान किया ॥ ४५ ॥ फिर लौटकर उस महामतिने वस्त्रोंको धारण किया, परन्तु—उसे चर्मकोश (म्यान) और दोनों उपनाह नहीं दीखे ॥ ४६ ॥ इस अहैतुक कर्मकी चिन्ता करता हुआ वह इधर उधर विचरने लगा, और कहने लगा मेरी अतिप्रिय वस्तु कहां चली गई सो मैं कुछ नहीं

न वेद्मि तत् ॥ ४७ ॥ वदतस्तस्य क्षेत्रस्य पुरस्तात्कृतकर्म्मणः ॥ आविर्बभुस्त्रिनेत्राश्च शूलिनो वृषभध्वजाः ॥ ४८ ॥ गजकृत्तिवसानाश्च व्याघ्रचर्मपरीवृताः ॥ शशांकार्द्धप्रभालीकास्तान्दृष्ट्वा विश्मयान्वितः ॥ ४९ ॥ दृष्टवाञ्छिवरूपं वै धन्योऽहं कृतबुद्धिमान् ॥ यः पश्येच्छिवरूपांश्च इमानाश्चर्य्यकर्म्मणः ॥ ५० ॥ शिव एकोऽस्ति सर्वत्र पुराणे परिगीयते ॥ अद्यैव बहुधा दृष्टो मया एकः शिवस्तथा ॥ ५१ ॥ स्कंद उवाच ॥ अत्याश्चर्य्यं तु तज्ज्ञात्वा पर्य्यपृच्छच्चतांस्तदा ॥ विनयावनतो भूत्वा उवाच वचनं त्विदम् ॥ ५२ ॥ चंद्रवर्म्मोवाच ॥ के यूयं शिवरूपा वै शशांककृतशेखराः ॥ तन्मे विस्तरतो ब्रूत यदि चेन्मयिं वो दया ॥५३॥ शिवरूपिण ऊचुः ॥ त्वं न जानासि भो भद्र जीवन्मुक्तोऽसि सांप्रतम् ॥ वयं च त्वत्प्रसादेन शिवा जाता न संशयः ॥ ५४ ॥ खड्गो मेषो वृषो गौश्च तेषां चर्म्माणि त्वत्सह॥समागतानि तीर्थेऽस्मिन्सर्वेषां मुक्तिदायके ॥५५॥ एतत्तीर्थस्य संसर्गाज्जाता वै वृषभध्वजाः ॥ इति तेषां वचः

जानता ॥ ४७ ॥ उस कृत कर्माके इस प्रकार कहते २ ही त्रिनेत्रधारी वृषभध्वज प्रादुर्भूत होगये ॥ ४८ ॥ वे सभी हाथी और व्याघ्रकी चर्मको धारण कररहे थे, उनके मस्तकपर अर्द्धचन्द्रमा विराजमान था, इन्हें देख वह आश्चर्यान्वित होगया ॥ ४९ ॥ और वह बुद्धिमान् यौं कहनेलगा कि, मुझे शिवरूपका दर्शन हुआ अत एव धन्यहैं आहा आश्चर्यकर्मा शिवमूर्तियोंका दर्शन होरहा है ॥ ५० ॥ पुराणोंमें गान कियागया है कि शिव सर्वत्र एकही हैं, और संप्रतिमें एक शिवको विविध भांति देख रहाहूं ॥ ५१ ॥ स्कन्द बोले—जब उसे यह अत्यन्त ही आश्चर्य प्रतीत हुआ तब वह उनसे पूछने लगा, और विनीत भावसे नम्र हो यह वाक्य बोला ॥५२॥ चन्द्रवर्माने कहा—मस्तकके ऊपर चन्द्रमाको धारण किये शिवरूपधारी तुम कौन हो, यदि आप मेरे ऊपर दयालु हैं तो यह सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कह सुनाइये ॥ ५३ ॥ शिवरूपधारी बोले—हे महाशय ! संप्रति तुम जीवन्मुक्त होगये हो क्या तुम्हें यह विदित नहीं है, और आपहीके प्रसादसे निःसन्देह हम भी शिवरूप होगये हैं ॥ ५४ ॥ मेष आदिके चर्म और खड्ग यह सब हम तुम्हारे साथ इस मुक्तिप्रद क्षेत्रमें आय उपस्थित हुए ॥ ५५ ॥ और इसी तीर्थके संसर्गसे हमलोग शिवरूपधारी होगये, उनके ऐसे वाक्य सुनकर चन्द्रवर्माने अपनेतईं यह समझा कि,

श्रुत्वा धन्योऽहमिति भावयन् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा तांच्छिवरूपांश्च गतान्कैलासपर्व्वते ॥ सोऽपि तत्रैव लीनोऽभूच्छिवदेहे न संशयः ॥ ५७ ॥ इति ते कथितं दिव्यं माहात्म्यं संगमस्य हि ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण मुक्तिर्भवति दुर्लभा ॥ ५८ ॥ तत्रैव विष्णुकुंडं च यत्र स्नात्वा हरिर्भवेत् ॥ पिंडदानं कृतं तत्र कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ५९ ॥ अस्मिंस्तीर्थे महाभाग वारणावतसंज्ञके ॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानामपि सुव्रत ॥ ६० ॥ तत्रैव वर्त्तते नूनं जातुकं गृहमुत्तमम् ॥ कौरवैः पांडवाः सर्वे धृतास्तत्र महामते ॥ ६१ ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र दग्धं जतु तदंतिके ॥ तत्रैव वर्त्तते शक्तिर्यस्याः स्पर्शाद्धिमुक्तिभाक् ॥ ६२ ॥ अधः शेषस्य शिरसि धृता सा परदेवता ॥ राजराजेश्वरी दिव्या सा शक्तिः परमा स्मृता ॥ ६३ ॥ यै दृष्टा सा महाशक्तिस्ते यांति परमां गतिम् ॥ समारोहति यः शैलं वारणावतसंज्ञकम् ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं स्याद्वै पदे पदे ॥ ६४ ॥ निःसरन्ति तु या नद्यस्तस्माद्यानि जलानि च॥तत्सर्वं जाह्नवीतुल्यं

मुझे धन्य हैं ॥ ५६ ॥ जब उसने यह देखा कि, वे सब शिवरूपधारी कैलासपर्वतपर चले गये, तब वह भी निःसन्देह शिव देहमें वहांही लीन होगया ॥५७॥ इस प्रकार हमने संगमका यह दिव्य माहात्म्य तुम्हारे प्रतिवर्णन किया, इसके जलका स्पर्श करनेसे भी दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥ उसी स्थानमें एक विष्णुकुण्ड भी है उसमें स्नान करनेसे साक्षात् हरिरूप होजाताहै, एवं च वहां पिण्डदान करनेसे करोडकुलका उद्धार होजाताहै ॥ ५९ ॥ हे महाभाग ! इस वारणावत महातीर्थमें हे सुव्रत ! साढेतीन करोड तीर्थोंकी स्थिति है ॥ ६० ॥ उसी स्थानमें एक लाक्षा गृह भी विद्यमान है, हे महामतिमान् ! कौरवोंने पाण्डवोंको उसीमें रक्खा था ॥ ६१ ॥ अभीतक उसके निकट भस्मी भूत लाक्षा पडी दीखती है, वहां ही शक्ति वर्त्तमानहै उसका स्पर्श करनेसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ६२ ॥ उस परम पूज्य देवताको शेषजीने अपने शिरके ऊपर धारण कररक्खाहै, और उसी राजराजेश्वरीको परम दिव्य शक्ति कहते हैं ॥ ६३ ॥ जिन व्यक्तियोंको उस महाशक्तिके दर्शनोंका लाभ होजाता है वे परमगति (मोक्ष)को प्राप्त होते हैं । और जो यात्री वारणावत संज्ञक पर्वतके ऊपर आरोहण करता है, उसे पग २ के ऊपर अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ उस पर्वतमेंसे प्रादुर्भूत हुई नदियोंमेंसे जो जल निक–

कथितं तु महर्षिभिः ॥ ६५ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे बिलमेकं महत्तरम् ॥ तस्मिन्महातपा नाम ऋषिरास्ते स्मरन्हरिम् ॥६६॥ अन्येऽपि चैव मुनयो वर्त्तंते बहवो मुने ॥ संन्यस्तसर्वकर्म्माणो मुक्तिमार्गे व्यवस्थिताः॥ ६७ ॥ निर्द्वंद्वा निरहंकाराः काशीविश्वेश्वरावनु ॥ स्मरन्तः परया भक्त्या अन्ये चापि तृणद्रुमाः॥६८॥ सरीसृपाः पक्षिणश्च तथान्ये जीवजंतवः ॥ निवसान्ति स्थले रम्ये छन्नरूपा महर्षयः ॥६९॥ कलौ नास्त्येव नास्त्येव पापिनां गतिरन्यथा ॥ अस्मात्क्षेत्रवराधीशान्मुक्तिमार्गप्रदर्शकात्॥७०॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेन इदं स्थानं न संत्यजेत् ॥ इयमुत्तरकाशी हि विना भैरवयातनाम्॥ददाति परमां सिद्धिमन्यक्षेत्रेषु दुर्ल्लभाम् ॥ ७१ ॥ इदमेव परं स्थानं चतुर्वर्गप्रसाधकम्॥ यः पुमान्पंचरात्रं वै निराहारो जितेंद्रियः॥७२॥विश्वेश्वरं महालिंगं रुद्राध्यायमनुस्मरन् ॥अभिषेकं प्रकुर्वाणो दुर्ल्लभं चापि साधयेत् ॥७३॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्॥तत्पुण्यं कोटिगुणितमभिषेकाल्लभेन्नरः॥७४॥

लता है, उसे महर्षियोंने गंगाजलकी समान कहकर वर्णन किया है ॥ ६५ ॥ उसके दक्षिणभागमें एक बडा बिल है, उसीमें महातपा नाम ऋषिनारायणका स्मरण करतेहुए विराजमान रहते हैं ॥ ६६ ॥ सुनो मुनि ! और भी बहुतसे मुनि वहां विद्यमानहैं, और उन्होंने समस्त कर्मोंका परित्याग करके मुक्ति प्राप्तिके लिये अपनी निष्ठाको दृढ कररक्खाहै ॥ ६७ ॥ वे निर्द्वन्द्व हैं, अर्थात्–सांसारिक कोई क्लेश उनको बाधा नहीं देता, उन्हें अहंकारभी नहीं है, एवम् वे प्रतिक्षण भक्तिभावसे काशी और विश्वेश्वरका स्मरण करते रहते हैं । अन्य तृण और वृक्षभी ॥ ६८ ॥ तथा सर्प पक्षी अथ च और भी बहुतसे जीव जन्तुवोंके रूपधारणकर महर्षिगण वहां निवास करते हैं ॥ ६९ ॥ मुक्तिमार्गको दिखानेवाले इस श्रेष्ठके अतिरिक्त कलियुगमें पापियोंको सद्गति का देनेवाला और कोई स्थान नहीं है ॥ ७० ॥ अत एव सब यत्नोंसे इस क्षेत्रको छोडना न चाहिये, यह स्थान भैरवकी यातना रहित उत्तर काशीहै, अत एव यहां ऐसी सिद्धिकी प्राप्ति होती है जिसका प्राप्त होना अन्य क्षेत्रोंमें दुर्लभ है ॥ ७१ ॥ यह परमस्थान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चतुर्वर्गका साधन करनेवाला है, जो मनुष्य पांच रात्री पर्यन्त निराहार और जितेन्द्रिय रहकर ॥ ॥ ७२ ॥ रुद्राध्यायके द्वारा विश्वेश्वरके लिंगका अभिषेक करता है, वोह दुर्लभ कार्य्योंकोभी साध लेता है ॥ ७३ ॥ सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो पुण्य होता है, और सब यज्ञ करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, रुद्राभिषेक करनेवाले मनुष्यको उसका करोड गुण फल प्राप्त होताहै ॥७४॥

बृहद्रथांतराभ्यां यः शतकृत्वः शिवं भजेत्॥स्नापयेच्च तथा ताभ्यां स स्वयं वृषभध्वजः ॥ ७५ ॥ यं यं चिंतयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ राज्यभ्रष्टोऽपि यो राजा सोऽत्र शक्तिं समर्चयेत् ॥ उपचारैः षोडशभिः पंचभिर्वा यथाविधि ॥ ७६ ॥ एवं मासं तु यो राजा कुरुते कारयेदपि ॥ प्राप्नोति राज्यं विपुलं हतशत्रुरकंटकम् ॥७७॥ अपुत्रो दशाधा तत्र स्नापनं दुग्धवारिणा॥ करोति शक्त्या विप्रेश सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ विद्यार्थी यस्तत्र गच्छेत् तस्मिन्वै शक्तिमंडले॥जपेत्सारस्वतं मंत्रं निराहारो जितेंद्रियः॥७९॥लभते दशरात्रेण प्रसादं पुरुषस्तदा॥निर्द्रव्यो यो द्विज श्रेष्ठः कुटुंबाभिद्रुतः परम्॥तस्मिन्नेव स्थले रम्ये गच्छेदीशमनुस्मरन् ॥८०॥ सप्तरात्रं निराहारो जपेत्पंचाक्षरं मनुम् ॥ प्राप्नोति परमां लक्ष्मीं मोदते राजवत्सदा॥८१॥मृतोऽसौ यत्र कुत्रापि मुक्तो भवति

बृहद्रथा और अन्तरासे स्नान कराके जो व्यक्ति शत वार महादेवजीका भजन करताहै वोह स्वयंही शिव रूप होजाताहै ॥ ७५ ॥ वोह व्यक्ति जिन २ कामनाओंको अपने मनमें धारण करताहै उसे अवश्यही उनकी प्राप्ति होती है । जिस राजाके राज्यका विनाश (अथवा-अपहरण) हो गयाहो वोह इस स्थानमें शक्तिका पूजन पंचोपचार अथवा षोडशोपचार[1] द्वारा विधिपूर्वक करै ॥ ७६ ॥ इस विधिसे एक मास पर्यन्त स्वयम् करै, अथवा आचार्य्यद्वारा करावै तौ उसे शत्रु रहित निष्कण्टक राज्यकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ हे द्विजसत्तम ! जो व्यक्ति पुत्र हीन होकर दुग्ध और जलके द्वारा दशधा स्नान अपनी शक्तिके अनुसार कराताहै, उसे अवश्यही सुपुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७८ ॥ उक्त शक्तिके मण्डलमें जो विद्यार्थी यात्रा करता तथा निराहार और जितेन्द्रिय हो सरस्वतीके मन्त्रको जपताहै ॥ ७९ ॥ तब उसे दश रात्रीमें सरस्वतीकी प्रसन्नताका लाभ होताहै । हे श्रेष्ठब्राह्मण ! निर्धन होनेके कारण जिस मनुष्यका परिवारकेद्वारा अनादर किया गयाहो, उसे चाहिये महादेवजीका स्मरणकरता हुआ उसी स्थानमें चला जाय ॥ ८० ॥ और पांच रात्री पर्यन्त निराहार रहकर पंचाक्षर (ॐ नमः शिवाय) मन्त्रका जप करै तौ उसे विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै, सुतराम् वोह राजाओंकी समान आनन्दका उपभोग करताहै ॥ ८१ ॥ और फिर इसकी मृत्यु चाहै जिस स्थानमें हो, सर्वथा मुक्ति होजाती है । और जो

---

१ आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और चन्दन ।

सर्वथा ॥ पंचक्रोशात्मकस्यास्य यः करोति प्रदक्षिणाम् ॥ सप्तद्वीपवती तेन परिक्रांता वसुंधरा ॥ ८२ ॥ गोचर्ममात्रमपि यो दद्यादत्र वसुंधराम् ॥ सप्तद्वीपवतीनाथः स भवेत्पुरुषोत्तमः ॥ ॥ ८३ ॥ त्रुटिमात्रं तु यः स्वर्णं प्रदद्याद्वेदविद्द्विजे ॥ तेन दत्तं भवेत्सर्वं जगच्च सचराचरम् ॥ ८४ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दद्यादत्र नारद ॥ स स्वयं नीलकंठः स्यादुमया सह मोदते ॥ ॥ ८५ ॥ पंचक्रोशात्मके क्षेत्रे नैव पापं समाचरेत् ॥ यदन्यत्र कृतं कर्म तदत्र परि नश्यति ॥ अत्र यत्क्रियते कर्म वज्रलेपाय कल्पते ॥ ८६ ॥ अन्यत्र कृतपापानि क्षेत्राद्बाह्ये भवन्ति हि ॥ अस्मिन्यत्क्रियते कर्म तदस्थिषु परिस्कृतम् ॥ ८७ ॥ अस्मात्स्थानात्परं स्थानं न दृष्टं क्वापि नारद॥यत्र भागीरथी साक्षाद्यत्र विष्णुः सनातनः॥८८॥यत्र देवो भवानीशः प्रमथैस्सह तिष्ठति ॥ तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे वायुतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ८९ ॥ यत्र वायुः पुरा तप्त्वा तपः परमदारुणम् ॥ दिक्पालत्वं यतः प्राप्तं तदेतद्वा-

मनुष्य इसकी पंच कोशीकी परिक्रमा करताहै, उसे सप्तद्वीपा भूमिकी परिक्रमाका फल मिलताहै ॥ ८२ ॥ जो मनुष्य इस स्थानमें तनकसी भूमिकाभी दान करताहै, वोह पुरुषोत्तम सातों द्वीपकी भूमिका स्वामी होताहैं ॥ ८३ ॥ जो व्यक्ति वेदज्ञ ब्राह्मणको कणिकामात्र सुवर्णभी दान करदेताहै, उसे चराचर सब जगत्के दानका फल मिलताहै ॥ ८४ ॥ नारदजी ! जो मनुष्य सब लोगोंको यहां अभय दान देताहै, वोह स्वयम् नीलकण्ठ महादेव हो नित्य पार्वतीके साथ आनन्दका उपभोग करताहै ॥ ८७ ॥ पंच क्रोशात्मक जो क्षेत्रहै उसमें पापका आचरण कदापि न करै, क्यों कि, अन्य स्थानोंमें किये हुए पापोंका यहां विनाश होताहै, और इस स्थानमें जो पाप किया जाय वोह वज्रलेप होजाताहै (अर्थात् इस स्थानमें किया हुआ पाप कभी नष्ट नहीं होता) ॥ ८६ ॥ अन्यत्र कियेहुए पाप क्षेत्रके बाहर रहतेहैं, और इस स्थानमें जो कर्म किया जाय वोह अस्थियोंमें प्रविष्ट होजाताहै ॥ ८७ ॥ हेनारद ! इसस्थानकी अपेक्षा और कोई परमस्थान कहीं नहीं देखा गयाहै, क्योंकि, यहां सनातन विष्णुभगवान् और भागीरथी विद्यमानहैं ॥ ८८ ॥ तथा अपने पारिषदों सहित उमापति महादेवजीभी यहां सदैव उपस्थित रहतेहैं । इसके पूर्व और उत्तरके भागमें वायुतीर्थ विद्यमानहै ॥ ८९ ॥ उक्त तीर्थमें प्रथम दारुण तपका आचरण करनेसे

युतीर्थकम् ॥ ९० ॥ वायव्येति समाख्याता नदी परमपाविनी ॥ यस्यां स्नात्वा नरो याति वायुलोकं न संशयः ॥ ९१ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे योजनार्द्धे मुनीश्वर ॥ यमतीर्थमिति ख्यातं यमादर्शनकारकम् ॥ ९२ ॥ यावद्वै तिलबीजेन भूमिराच्छाद्यते मुने ॥ तत्र तीर्थमयं बोध्यं ततस्तीर्थमयी पुरी ॥ ९३ ॥ संसार भयभीतानां शरणं सौम्यकाशिका ॥ यावन्त्यत्र महाभाग ह्यश्म कूटानि सन्ति वै ॥ तानि वै शिवलिंगानि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ९४ ॥ अतः परतरं नास्ति तीर्थं मुक्तिप्रदायकम् ॥ इदं ते कथितं सर्वं मुक्तिक्षेत्रं तथोत्तरे ॥ ९५ ॥ पृथिव्यां त्रीणि क्षेत्राणि मोक्षदानि च पापिनाम् ॥ वाराणसी तथा पूर्वं शालग्रामाख्यतीर्थकम् ॥ ९६ ॥ यत्र पुण्या नदी श्रेष्ठा गंडकी नाम विश्रुता ॥ मुक्तिक्षेत्रं द्वितीयं तु तद्विजानीहि नारद ॥९७॥ यः श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ पुण्यं यशस्यमायुष्यं पापघ्न सर्वकामदम् ॥९८॥ तदाख्यानं तु ते प्रोक्तं वाराणस्यास्तु वैभवः ॥

वायुको दिक्पालत्व लाभ हुआ था, तभीसे यह वायुतीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ९० ॥ वहां वायव्या नामकी एक परम नदी है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह वायुलोकमें जाताहै ॥ ९१ ॥ हे मुनीश्वर ! वहांसे आधे योजनकी दूरीपर दक्षिणकी ओर यमतीर्थ प्रसिद्धहै, वह यमके दर्शन नहीं होने देता ॥ ९२ ॥ तिलके बीजसे जितनी भूमि आच्छादित होतीहै उतने ही भागमें यह तीर्थ है, किंतु उतनेहीसे यह पुरी तीर्थमयी है ॥ ९३ ॥ जिन मनुष्योंको सांसारिक भय उपस्थित है, उनके लिये सौम्य काशी ही शरणप्रद है, हे महाभाग ! यहां जितनेभी अश्मकूट (पाषाणनिचय) हैं, वे सभी शिवलिंग हैं इसमें कोई विचार न करना चाहिये ॥ ९४ ॥ इससे अधिक और कोई तीर्थ मुक्तिदेनेवाला नहींहै । इसप्रकार उत्तरकी ओर जो मुक्तिप्रद क्षेत्रहै उसका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति कियाहै ॥ ९५ ॥ पृथिवीके ऊपर पापियोंको मुक्ति देनेवाले तीनक्षेत्र हैं, एक तो वाराणसी (काशी), दूसरा शालिग्रामतीर्थ ॥ ९६ ॥ यह पवित्र गण्डकी नाम नदी विद्यमानहै, हे नारद ! उसे दूसरा मुक्तिक्षेत्र जानना चाहिये ॥ ९७ ॥ इसके माहात्म्यका श्रवण करनेसे मनुष्य निःसन्देह पापोंसे मुक्त होजाताहै, यह क्षेत्र पवित्र, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, पापोंका नाश और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवालाहै ॥ ९८ ॥ वाराणसीके माहात्म्यका यह आख्यान हमने

एतच्छ्रुत्वा नरो भक्त्या लभते सद्गतिं पराम् ॥ ९९ ॥ इदमाख्यानकं पुण्यं न वाच्यं यस्य कस्य वै ॥ कथनीयं प्रयत्नेन हरभक्तिरताय च ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंण्डे सौम्यवाराणसीमाहात्म्य समाप्तिर्नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

तुम्हारेप्रति वर्णन कियाहै, भक्तिभाव पूर्वक इसका श्रवण करनेसे मनुष्यको परम सद्गतिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९९ ॥ यह आख्यान परमपवित्रहै अत एव जिस तिसके प्रति न कहना चाहिये, जो व्यक्ति हरिभक्त हैं उन्हींके प्रति यत्नपूर्वक इसका वर्णन करना कर्त्तव्य है ॥ १०० ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोध्यायः ९६.

स्कंद उवाच ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि भवमुक्तिकराणि हि ॥ विविधानि च तीर्थानि गंगापश्चिमदेशतः ॥ १ ॥ ब्रह्मधारा नदी ख्याता स्नानान्मोक्षप्रदायिनी ॥ तस्यां स्नात्वा सुभक्त्या च ब्रह्मत्वं प्राप्नुयान्मुने ॥ २ ॥ एकशृंगे महाद्रौ सा प्रववाह महानदी ॥ वेदघोषेण स्राविती ब्रह्मविन्दुः प्रजायते ॥ ३ ॥ तस्माज्जाता ब्रह्मधारा नदी परमपाविनी ॥ तत्पश्चिमोत्तरे भागे यमुनाख्या महानदी ॥ ४ ॥ तस्यां स्नात्वा समाप्नोति कैवल्यं योगिदुर्लभम् । हिरण्यवाहुनामा च नदी परम पाविनी ॥ ५ ॥ अनयोः संगमे स्नात्वा यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं ते प्रव-

स्कन्दजीबोले—गंगाजीके पश्चिमीभागमें और अनेक तीर्थ संसारसे मुक्तिलाभ करानेवाले हैं, उनकाभी हम वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥ ब्रह्मधारा नामकी जो नदी है उसमें स्नान करनेसे मुक्तिका लाभ होताहै, हे मुने ! उसमें भक्तिभाव पूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मत्वका लाभ होताहै ॥ २॥ एक शृङ्ग महापर्वतके ऊपर वह महानदी वहती है, प्रजापतिके वेदनिर्घोषसे उसके ब्रह्मबिन्दु प्रादुर्भूत हुएहैं ॥ ३॥ उसीसे ब्रह्मधारा नामकी परमपवित्र नदीका उद्गमन हुआहै, और उसके पश्चिमोत्तर भागमें यमुना नामकी महानदी है ॥ ४ ॥ उसमें स्नान करनेसे ऐसे कैवल्य पदकी प्राप्ति होतीहै, जिसकी प्राप्ति योगियोंको भी दुर्लभ है । वहां ही हिरण्यबाहुनामकी परम पवित्र नदी विद्यमान है ॥ ५ ॥ इन दोनोंके संगममें स्नान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होतीहै,

क्ष्यामि शृणु नारद सत्तम ॥ ६ ॥ सप्तजन्मसमुद्भूतैर्मुच्यते पातकैर्ध्रुवम् ॥ सुवर्णाभविमानेन प्रगच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ७ ॥ तस्मै दद्याद्यमस्तुष्टो विमानं सर्वलोकगम् ॥ तत्रारूढो नरो यात्येकविंशतिकुलैः सह ॥ ८ ॥ परमं स्थानमाप्नोति तपोभिश्चैव दुर्लभम् ॥ ततः पश्चिमभागे तु विख्याता तामसी नदी ॥ ९ ॥ सितस्रवयासंगच्छेत्तत्स्थानं सुखदं परम् ॥ तत्र स्नात्वा सुखं मर्त्यो न कदाचिद्विमुंचति ॥ १० ॥ जन्मजन्मनि विप्रेंद्र सुखी भूत्वा शिवो भवेत् ॥ तत्रैव दक्षतीर्थं तु तत्र स्नात्वा तु दक्षताम् ॥ प्राप्नोति मनुजो यत्र यज्ञं दक्षोऽकरोन्मुने ॥ ११ ॥ तदुत्तरे विष्णुतीर्थं तत्र स्नात्वा नरो लभेत् ॥ दुर्लभं विष्णुसायुज्यं त्यक्त्वा स्वं च कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्पश्चिमे महासानुर्गिरिस्तिष्ठति नारद ॥ तस्माच्छैत्या समुद्भूता नदी स्नानाद्विमुक्तिदा ॥ १३ ॥ समुद्रेण च सा शैत्या संगमे

सुनो देवर्षि नारद ! हम उसका वर्णन करतेहैं ॥ ६ ॥ सातजन्म उपार्जन कियेहुए पापोंसे अवश्य ही मुक्ति प्राप्त होतीहै, और वह मनुष्य सुवर्णकी समान दीप्तिमान विमानमें बैठ विष्णुलोकको जाताहै ॥ ७ ॥ और यमराजभी उससे सन्तुष्ट हो समस्त लोकोंमें जानेकी शक्ति रखनेवाला विमान उस व्यक्तिको देतेहैं, और उसमें आरूढ होकर वह मनुष्य इक्कीसकुल सहित जाता है ॥ ८ ॥ सुतराम् उसको ऐसे पदकी प्राप्ति होती है, तपोंके द्वाराभी जिसका प्राप्त होना दुर्लभहै, उससे पश्चिमकी और तामसी नामकी एक नदीहै ॥ ९ ॥ वह स्थान अत्यन्तही सुखका देनेवाला है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सुखका परित्याग कदापि नहीं करता है ॥ १० ॥ हे विप्रेन्द ! वह मनुष्य जन्मजन्मान्तरमें सुखी रहकर साक्षात् शिवरूप होजाताहै, वहांही एक दक्षतीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको दक्षताका लाभ होताहै? हे मुनीश्वर ! इसी स्थानमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ किया था ॥ ११ ॥ उससे उत्तरकी ओर एक विष्णुतीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको अपने शरीरका परित्याग करनेपर दुर्लभ विष्णुभगवान्की सायुज्यका लाभ होताहै ॥१२॥ हे नारद! उसके पश्चिम भागमें सानुगिरि उपस्थित है, उससे शैत्यानामकी नदीका उद्गमन होताहै, यह नदी स्नान करनेवालोंको मुक्तिदान करतीहै ॥ १३ ॥ उस शैत्या नदीका समुद्रके साथ जिस स्थलमें संगम

१ डिलुगार्षः ।

यत्र वै स्थले ॥ तत्र स्नानात्फलं स्नातुर्गंगासागरसंगमे ॥ यत्पुण्यं कोटिगुणितं तत्फलं स्यात्सकृत्प्लवात् ॥ १४ ॥ त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य विमानेनार्कवर्चसा॥गच्छन्ति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १५ ॥ तत्संगमे महादेवलिंगं ज्योतीश्वरं मुने॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते तत्समर्चनात् ॥ १६ ॥ यः कुर्यात्पिण्डदानं पितॄनुद्दिश्य मानवः॥ मातृगोत्रे पितृगोत्रे प्रियागोत्रे च ये स्थिताः ॥ उद्धृतास्तेऽपि ते सर्वे तेन मर्त्येन नारदः ॥ १७ ॥ वामदेवं च यः साम गायते रुद्रभक्तितः ॥ यं यं कामयते कामं तदाप्नोति विनिश्चितम् ॥ १८ ॥ तदुत्तरे क्षितेर्भागे हेमशृंगादधः स्थले॥ तत्रास्ते मुनिशार्दूल सिद्धारा ता नदी शुभा ॥ १९ ॥ स्पर्शनाद्दर्शनात्स्नानाद्यस्याः पश्येत सिद्धकान्॥ ततोऽसौ मुक्तिमाप्नोति दुःखसंसारसागरात् ॥ २० ॥ तत्संगमो यत्र देशे स्यात्समुद्रेण दुर्लभः॥ तत्रापि लभते पुण्यं गंगासागरसंगजम् ॥ २१ ॥ तत्रास्ते तु महालिंगं ब्रह्मणाराधितं पुरा ॥

हुआहै, उसमें स्नान करनेसे स्नानकर्त्ताको वह फल उपलब्ध होताहै, जो गंगासागरके संगममें स्नान करनेसे पुण्यफल मिलताहै, उसकी अपेक्षा कोटिगुणितं फलकी प्राप्ति एकही बार स्नान करनेसे होतीहै ॥ १४ ॥ यह व्यक्ति अपने तीन करोड़ कुलका उद्धार करके सूर्य सदृश प्रकाशमान् विमानमें बैठकर जहांसे फिर लौटना न हो ऐसे परम स्थानको जाताहै ॥ १५ ॥ हे मुने! उस स्थानमें महादेवजीका ज्योतीश्वर लिंग है, उसकी पूजा करनेसे सातजन्मके आर्जित पापोंसे छुटकारा मिलताहै ॥ १६ ॥ जो मनुष्य पितरोंके उद्देश्यसे इस स्थानमें पिण्डदान करताहै हे नारद! वह माता पिता और प्रियाके गोत्रके सभी पितरोंका उद्धार कर देताहै ॥ १७ ॥ महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर जो वामदेव सामका गान करताहै वह जिस २ वस्तुकी कामना करताहै निश्चय उसको उसीकी प्राप्ति होतीहै ॥ १८ ॥ उससे उत्तरकी ओर भूमिके ऊपर और हेमशृंगसे नीचेकी ओर हे मुनिशार्दूल! शुभ सिद्धाराता नदीहै ॥ १९ ॥ इसके दर्शन, स्पर्श और स्नान करनेसे सिद्धोंके दर्शनोंका लाभ होताहै, फिर उसको दुःखोंसे और संसारसागरसे छुटकारा मिलजाताहै ॥ २० ॥ इसका जिसस्थानमें संगम समुद्रके साथ हुआहै, वहां स्नान करनेसेभी गंगासागर संगममें एक महालिंगहै, ब्रह्माजीने प्रथम उसका स्नान करनेहीका फल मिलताहै॥२१॥ आराधन कियाथा,

तद्दर्शनान्निष्कल्मषो रुद्र एव भवेन्नरः ॥ २२ ॥ आनाद्याख्यं महालिंगं सकृद्यः पूजयेन्नरः ॥ प्रमथैः सेव्यमानोऽसौ विमानेनार्कवर्चसा ॥ शैवं लोकं समाप्नोति तेनैव सह मोदते ॥ २३ ॥ तस्य पूर्वोत्तरे भागे हिरण्यसैकता नदी ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते स्नानमात्रतः ॥ २४ ॥ तत्पूर्वभागे विख्याता नदी हैमवती शुभा ॥ स्नानमात्रेण तस्यास्तु कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ ॥ २५ ॥ भवेयुः स्थावरास्तत्र जंगमा जल संगताः ॥ जंगमोऽपि भवेद्देवो देवोऽपि मुक्तिमाप्नुयात् ॥२६॥ तत्पूर्वे काश्यपं तीर्थं यत्र स्नात्वादिवं व्रजेत् ॥ तत्पूर्वे ब्रह्मपुत्राख्यो नदः परमपावनः ॥ २७ ॥ तत्र स्नात्वा नरो गच्छेद्ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ तत्र प्रार्थ्य महादेवं ब्रह्मेश्वर इति श्रुतम् ॥ २८ ॥ अयुतार्काभयानेन रुद्रलोके वसेन्नरः ॥ सर्वाभिलाषदा नृणां नाम्ना देवी गवीश्वरी॥ ॥ २९ ॥ तस्याः क्षेत्रं महापुण्यं क्रोशार्द्धायामविस्तरम् ॥ संदर्शनात्पूजनाच्च देवी सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ गवीश्वरी महा-

उक्तलिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य निष्पाप हो साक्षात् शिवरूपही होजाताहै ॥ २२ ॥ अनादिनाम उक्त महालिंगको जो मनुष्य एक वारभी पूजताहै, प्रमथगण उसकी सेवा करतेहैं, और वह सूर्यकी समान चमकीले विमानमें बैठकर शिवलोकमें जाय उन्हींके साथ आनन्दका उपभोग करताहै॥ २३ ॥ उसीके उत्तर और पूर्वके भागमें हिरण्यसैकता नामकी एक नदीहै, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य को ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छुटकारा मिलजाताहै ॥ २४ ॥ उसके पूर्वभागमें हैमवती नामकी शुभ नदी है, उसमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य करोड कल्पपर्य्यन्त स्वर्गमें निवास पाता है॥२५॥ उस नदीके जलके संसर्गसे स्थावर (वृक्षादि अचल) भी जंगम होजाते हैं, जंगम (मनुष्यादि) देवता होजातेहैं, और देवताओंको मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै॥२६॥उसके पूर्वभागमें काश्यपतीर्थ है, उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गको सिधारजाताहै, और उससे पूर्वमें ब्रह्मपुत्र नाम अतिपवित्र नदीहै ॥ २७ ॥ उसमें स्नान करके मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको जाताहै, वहां ब्रह्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध महादेवजीकी प्रार्थना करनी चाहिये ॥२८॥ फिर वह मनुष्य करोडों सूर्योंसा प्रकाशित विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें निवास करताहै, वहां गवीश्वरी नामकी देवीहै, उनकी आराधनासे मनुष्योंकी सब अभिलाषायें पूरी होतीहैं ॥ २९ ॥ वहां आधेकोसका विस्तृत अत्यन्त पवित्र क्षेत्रहै, उसके दर्शन और पूजन करनेसे देवीजीके सायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३० ॥ गवीश्वरी

देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥ पूर्वमाराधिता देवी स्वशापपरिमुक्तये ॥ सुरभिणा कामदुहा विमुक्ता शिवशापतः ॥ ३१ ॥ तत आरभ्य गावस्तु बभूवुस्सर्वकर्म्मणि ॥ अतिपुण्यतमा विप्र पापघ्न्यः स्पर्शनादपि ॥३२॥ यं कामं चिंतयेन्मर्त्यस्तं समाप्नोति निश्चितम् ॥ चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते निश्चयो भवेत्॥ ॥ ३३ ॥ सर्वांशभावतो देवी वसते नित्यमेव हि ॥ मासि मासि रजस्तस्या दृश्यते योनिमध्यतः ॥ ३४ ॥ यावत्तद्दृश्यते ब्रह्मंस्तावत्पूजां विवर्ज्जयेत् ॥ दर्शनं नापि कुर्वीत कृत्वा निरयमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ बहुना किमिहोक्तेन देवी यं सिद्धिदायिनी ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ३६ ॥ सौम्य काशस्थलाद्विप्र पश्चिमोत्तरभागके ॥ शतद्रूश्च नदी पुण्या वर्त्तते मुक्तिदायिनी ॥ ३७ ॥ तस्यां स्नातुः फलं वक्ष्ये यत्र कुत्रापि नारद ॥ शंखचक्रगदापद्मपाणिर्भूत्वा चतुर्भुजः ॥ ३८ ॥ अनेकाप्सरगंध

नामकी महादेवी शीघ्रही प्रत्यय (विश्वास) करानेवाली है, प्रथम कामधेनु गौने अपने शापसे छुटकारा पानेके लिये, उक्त देवीकी आराधना की थी ॥३१॥ उसी दिनसे गौएँ सबकामोंमें अत्यन्त पवित्र, अथ च स्पर्श करनेसेभी पापोंका नाश करनेवाली होगईं हैं ॥ ३२ ॥ वहां मनुष्य जिस वस्तुकी कामना करताहै निश्चय उसको उसीकी प्राप्ति होतीहै, अब हम वहांके चिह्नका बखान करतेहैं जिससे तुम्हें विश्वास होजायगा ॥ ३३ ॥ अवश्यही देवी वहां अपने सर्वांशोंसे निवास करतीहै, और प्रत्येक मासमें उसकी योनिसे रज निकलताहै ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जबतक रजका दर्शन होतारहै तबतक पूजा करना छोडदेना चाहिये, और उतने दिनोंतक दर्शनभी न करै क्योंकि—दर्शन करनेसे नरककी प्राप्ति होतीहै ॥ ३५ ॥ विशेष क्या कहैं यह देवी सिद्धिकी देनेवालीहै । उसके पश्चिमभागमें सबमें अत्यन्तहीं उत्तम अत एव तीनोंलोकमें प्रसिद्ध एक तीर्थहै, उसीका वर्णन अब हम करते हैं ॥३६॥ हे विप्र ! सौम्यकाशीके स्थलसे पश्चिमोत्तर भागमें शतद्रूनामकी अतिशय पवित्र अत एव मुक्तिदान करनेवाली नदीहै ॥ ३७ ॥ हे नारद ! उसमें स्नान करनेवालेको जो फल प्राप्त होताहै उसीका वर्णन करते हैं, वोह मनुष्य चाहे जिस स्थानमें हो तथापि चतुर्भुजी (नारायण स्वरूप) हो हाथोंमें शंख चक्र गदा पद्म धारणकर ॥ ३८ ॥ गरुडजीके ऊपर आरूढ होके वोह विष्णु लोकको जाताहै, एवम् अनेक अप्सरा और गन्धर्वगण उसके पुरःसर

र्वगणैरग्रे सुगायकैः ॥ पन्नगाशनयानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३९ ॥ पितॄन्यस्तर्प्पयेदस्यां तृप्ताः स्युः पितरो मुने ॥ कुल कोटीः समुद्धृत्य स नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥४०॥ यस्य कस्यापि नाम्ना वै पिंडं दद्याद्विचक्षणः ॥ सोऽपि याति परं ब्रह्म यत्रास्ते मुनिपुंगव ॥ ४१ ॥ तत्रैव शैवलिंगं तु दिव्यकान्ति विभासितम्॥ नाम्ना ख्यातं क्षितितले पंचनादेश्वरेश्वरम् ॥ ४२ ॥ तद्दर्शनात्पूजनाच्च नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ कृत्याकृत्यं च जानीयात्स्वजातिं च तथा द्विज ॥ ४३ ॥ त एव धन्या लोकेषु यैर्दृष्टा सा महानदी॥ते सर्वे कृतकृत्याः स्युः पीतं यैर्जलमुत्तमम् ॥४४॥ ततः पश्चिमभागे तु जम्बूशैलेऽचलोत्तमे ॥ तत्र जम्बूनदाभासा पार्वती पर्वते मुने ॥ ४५ ॥ तस्या दर्शनमात्रेण मुक्तो भवति मानवः ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ यत्र देवी विषहरा दर्शनान्मुक्तिदायिनी ॥ ४६ ॥ विषग्रस्तोऽपि यो मर्त्यो निर्विषो यत्र जायते ॥ नदी तत्र महापुण्या सर्वपापौघनाशिनी ॥ तस्यां हि स्नानमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥

नृत्य और गान करते हैं ॥ ३९ ॥ हे मुनि ! इस स्थानमें जो मनुष्य पितरोंके निमित्त तर्पण करता हैं उसके पितर सन्तुष्ट होजाते हैं, तथा वोह व्यक्ति करोड कुलका उद्धारकर उन्हें सनातन ब्रह्मलोकको ले जाताहै ॥ ४० ॥ यदि कोई विचारशील अन्य किसीके भी नामसे वहां पिण्डदान करे, हे मुनि सत्तम ! वोहभी ब्रह्मलोकको जाताहै ॥ ४१ ॥ दिव्य कान्तिसे दीप्तिमान् एक शिवलिंग वहां विराजमानहै, और भूमण्डलके ऊपर उसका पंचनादेश्वरेश्वर नाम प्रसिद्ध है॥ ४२ ॥ उसके दर्शन और अर्चन करनेसे मनुष्य मुक्त होजाताहै, हे द्विज ! मनुष्यको चाहिये कि-वहां अपने जातीय कृत्याकृत्यका विचार अवश्य रक्खे ॥ ४३ ॥ जिन्होंने उस महानदीके दर्शन किये हैं उन्ही पुरुषोंको लोकमें धन्यहै, और जिन्होंने उसका उत्तम जलपान किया है वे सभी कृतकृत्य हैं ॥ ४४ ॥ उससे पश्चिमकी ओर पर्वतोत्तम जम्बू शैलके ऊपर जाम्बूनदकी समान आभावाली पार्वती विराजमान हैं ॥ ४५ ॥ उनके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है, इसके अनन्तर एक और भी सर्वोत्तम तीर्थका मैं वर्णन करता हूं जहां कि, विषहरा नामकी देवी विराजमान हैं, उनके भी दर्शन करनेहीसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ विषके द्वारा पीडित हुआ मनुष्य वहां जानेसे विषहीन होजाता है, वहां समस्त पाप पुंजका विनाश करनेवाली महापवित्र नदी है, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाता

कामधारा नदी पुण्या ब्रह्मपुत्रेण संगता ॥ तत्र कामाख्यतीर्थं हि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४८ ॥ तत्र स्नात्वा मुच्यते तु सप्तजन्मार्जितैरघैः ॥ सौंदर्य्याख्ये पर्वते तु नदी ख्याता हि सुंदरी ॥ ॥ ४९ ॥ संगता यत्र सा मोक्षवत्या नद्या महामुने ॥ तत्सुंदरप्रयागं स्यात्सुंदरः स्यान्नरो मुने ॥५० ॥ अन्यजन्मनि तत्स्नानान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥ यत्र स्नात्वाऽन्यत्र भवे षण्डोऽपि पुरुषायते ॥ ५१ ॥ सुंदरीति प्रविख्याता यत्र देवी प्रतिष्ठिता ॥ कोटिकोटिसहस्राणिं युगानि वसते दिवि ॥ ५२ ॥ विमानेनार्कवर्णेन यस्या दर्शनमात्रतः ॥ तस्याः पूर्वोत्तरे भागे हयग्रीवो जनार्दनः ॥ दर्शनात्पूजनान्नृणां कैवल्यं प्रददाति यः ॥ ५३ ॥ विष्णुधारापुण्यनद्योः संगो विष्णुप्रयागकः ॥ तत्र स्नात्वा मुच्यते तु कोटिजन्मोत्थितैरघैः ॥ ५४ ॥ इति ते कथितो दिव्यो नानाक्षेत्रसुवैभवः ॥ यच्छ्रुत्वाऽपि नरः पापैर्मुच्यते कोटिजन्मजैः ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे नानातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

है ॥ ४७ ॥ कामधारा नामकी पवित्र नदी जिस स्थलमें ब्रह्मपुत्रके साथ मिली है, वहां कामाख्य तीर्थ सर्व कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है ॥ ४८ ॥ उसमें स्नानकरनेसे मनुष्य सात जन्ममें किये हुए भी पापोंसे मुक्त होजाताहै और सौन्दर्यनाम पर्वतके ऊपर सुन्दरी नामकी नदी प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥ हे महामुने ! जहां वोह मोक्षवती नदीके साथ मिली है उसे सुन्दर प्रयाग कहते है, और उसमें मनुष्य सुन्दर होजाता है, ॥ ५० ॥ अन्य जन्ममें भी स्नान करनेसे येही फल होताहै इसमें कोई विचार न करना चाहिये, उसमें स्नान करनेसे नपुंसक भी अन्य जन्ममें पुरुष होजाताहै ॥ ५१ ॥ वहां सुन्दरी नामकी प्रसिद्धदेवी प्रतिष्ठित हैं, उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य सूर्य्य जैसे प्रकाशमान विमानमें बैठ स्वर्गमें जाय करोडों वर्ष पर्यन्त वहां निवास करताहै ॥ ५२ ॥ उसके पूर्वोत्तर भागमें हयग्रीव भगवान् उपस्थित हैं, उनके दर्शन और पूजन करनेसे मनुष्योंको मोक्ष पदवीका लाभ होताहै ॥ ५३ ॥ विष्णु धारा और पुण्य नदीका जहां संगमहै उसीको विष्णु प्रयाग कहते हैं उसमें स्नान करनेसे करोडों जन्ममें किये पापोंसे मुक्ति होजाती हैं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार हमने अनेक तीर्थोंका माहात्म्य तुम्हारे प्रतिवर्णन किया जिसका श्रवण करनेसे मनुष्योंको करोडों जन्मके पापोंसे मुक्ति लाभ होती है ॥ ५५ ॥

इति श्रीकेदारखंडे भाषाटीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७.

नारद उवाच ॥ ॥ कथमत्र समुद्रोऽभूद्दुर्गमे हिमपर्वते ॥ तत्कारणं वद स्वामिन्येन मे प्रत्ययो भवेत् ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र यथा ह्यत्र समुद्रस्तस्थिवान्महान्॥ तद्वक्ष्यामि महाभाग सावधानमना भव ॥ २ ॥ पुरागस्त्येन संपीतो मूर्त्तिमान्सरितांपतिः ॥ तद्भयेन च संत्रस्त आययौ हिमवद्गिरौ॥३॥चकार तत्र सुमुहत्तपस्तीव्रं महामते॥ आराधयामास शिवं सलोकं करुणानिधिम् ॥ ४ ॥ लक्षवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवन्मुने ॥ तपसा तस्य महता संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥५॥ दत्तवान्दर्शनं तस्मै योगिनामपि दुर्ल्लभम् ॥ दृष्ट्वा सदाशिवं सिंधुस्तुष्टाव जगतां पतिम् ॥ ६ ॥ समुद्र उवाच ॥ ॥ नमस्ते शिपिविष्टाय मीढुष्टमाय ते नमः॥ शंभवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शंकराय च ॥ ७ ॥ हिरण्यबाहवे तुभ्यं दिशां च पतये नमः ॥ नमस्ते हरिकेशाय नमो व्यालोपवीतिने ॥ ८ ॥ नमः पर्य्याय वर्य्याय प्रतरणाय ते नमः॥दुंदुभ्याय नमस्तेऽस्तु हनन्याय च ते नमः९॥

नारदजी बोले–दुर्गम हिमालयमें यहां समुद्रका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? हे स्वामिन्! इसका कारण वर्णन करिये जिससे मुझे विश्वास हो ॥ १ ॥ स्कन्द बोले–सुनो द्विजराज जिस प्रकार यहां महान् समुद्रकी स्थिति हुई थी, हे महाभाग ! हम उसीका वर्णन करते हैं आप सावधान चित्तसे श्रवण करें ॥ २ ॥ प्रथम अगस्त्यजीने मूर्त्तिमान् नदीपति सागरका पान किया था, उन्हींके भयसे भीत हो वोह यहां हिमालय पर्वतके ऊपर चला आया था ॥ ३ ॥ हे महामतिमान् ! उसने यहां अत्यन्त तीव्र तपका आचरण किया था, और करुणा निधान महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ ४ ॥ हे मुने ! वोह समुद्र एक लक्ष वर्ष पर्यन्त निराहार होकर रहे, तब उनकी उग्र तपश्चर्यासे सदाशिव महादेवजी प्रसन्न होगये ॥ ५ ॥ अत एव योगियोंको भी दुष्प्राप्य अपने दर्शन दिये जगत्के अधिपति सदाशिव महादेवजीके दर्शन कर समुद्रको बडा सन्तोष हुआ ॥ ६ ॥ समुद्रने कहा–हे वृषारूढ ! धर्ममूर्ति तुम्हें नमस्कार है, हे कल्याण मूर्ति ! कल्याण कर्त्ता आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे हिरण्यबाहु ! आप दिशाओंके अधिपति हैं हम आपको नमस्कार करतेहैं, हे हरिकेश ! आपने सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कियाहै आपको नमस्कारहै ॥ ८ ॥ आपही पर्याय वर्य और प्रतरण हैं, आप दुन्दुभ्य और हनन्य हैं आपको नमस्कार हैं ॥ ९ ॥

नमः पशुपते तुभ्यं नमस्तेऽनेकचक्षुषे ॥ व्याघ्रचर्मपरी धान नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ १० ॥ नमस्ते वेदनिधये नमः पिनाकपाणये ॥ नमश्चंद्रार्द्धभूषाय नमो डमरुधारिणे ॥ ११ ॥ नमस्ते नीलकण्ठाय करालविषगालिने ॥ नमो वृषभवाहाय महा पीठनिवासिने ॥ १२ ॥ नमस्ते मन्यवे रुद्र नमस्ते इषवे नमः ॥ बाहुभ्यां तु नमस्तेस्तु तव पद्भ्यां नमो नमः ॥ १३ ॥ नमस्ते वीतरागाय भस्मरागाय ते नमः ॥ नमः कांतशरीराय नमः कामहराय ते ॥ १४ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो महादेवः समुद्रं प्रत्युवाच हं ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ १५ ॥ इति श्रुत्वा समुद्रस्तु चकमे वरमुत्तमम् ॥ यदि देवप्रसन्नोऽसि सामीप्यं देहि मे प्रभो ॥ १६ ॥ यत्र स्थित्वा यदा भद्र त्वत्पादस्मरणं चरे ॥ श्रुत्वा शिवस्तु तद्वाक्यं प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ १७ ॥ साकल्ये नात्र संतिष्ठ मत्पादशरणं कुरु ॥ मा भैषीस्त्वमगस्त्याद्वै स्थितिं कुरु हिमालये ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन यो मां हि स्तोष्यते धरणी-

हे पशुपति! आपके अनेक चक्षु हैं आपको वारंवार नमस्कार है, आप कृत्तिवास और व्याघ्र चर्म धारी हैं आपको नमस्कार हैं ॥ १० ॥ हे वेदनिधि! हे पिनाकपाणि! आप चन्द्रार्द्ध चूडामणि और हाथमें डमरु धारी हैं आपको नमस्कार हैं ॥ ११ ॥ हे नीलकण्ठ! आपने विकराल विषधर सर्पोंकी माला धारणकी है, आप वृषभके ऊपर आरूढ और महापीठ निवासी हैं आपको नमस्कार हैं ॥ १२ ॥ हे मन्युमूर्ति! रुद्र!! आप बाण रूप हैं आपको नमस्कारहै, आपकी बाहुओं और चरणोंको नमस्कारहै॥ १३ ॥ आप वैरागी हैं, आपके शरीरमें त्रिभूतिहीका अंगराग है, आपका देह मनोहरहै, और आपने कामदेवका विनाश कियाहै अत एव आपको नमस्कारहै ॥ १४ ॥ स्कन्द बोले—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर महादेवजी समुद्रसे यों बोले—तुम्हारा कल्याणहो जो कुछ तुम्हारे मनमें है सो वर माँगो ॥ १५ ॥ इस प्रकार उनके वाक्य श्रवणकर समुद्रने उत्तम वरकी प्रार्थनाकरी, हे देवाधि देव प्रभो!!! यदि आप प्रसन्न हैं तौ मुझे अपना सामीप्य प्रदान करिये ॥ १६ ॥ हे भद्र! वहां मैं सुखसे बैठकर आपके चरणोंका स्मरण करूं, यह वाक्य श्रवण करनेके अनन्तर महादेवजी शुभवाक्य बोले ॥ १७ ॥ तुम सम्पूर्णतया निवासकर मेरे चरणोंकी शरणमें रहो, और तुम अगस्त्यका कुछ भी भय न करके यहां हिमालयमें उपस्थित रहो ॥ १८ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा भूमंडलके ऊपर मेरी स्तुति करेगा. वोह समुद्रमें स्नान करनेके फलको पाव

तले ॥ सोऽपि त्वयि स्नानफलं प्राप्य स्वर्गे महीयते ॥ १९ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति दत्वा वरं तस्मै गतोंतर्द्धानमीश्वरः ॥ तत आरभ्य सिंधुस्तु मूर्त्तिमानिह वर्त्तते॥ २० ॥ यः स्नाति तत्र मनुजः समुद्रस्नानजं फलम् ॥ प्राप्नोत्येव महाभाग कोटिकोटिगुणं मुने ॥ २१ ॥ इति ते कथितं सिंधोः समुत्पत्तिश्च वैभवः ॥ यच्छ्रुत्वापि नरो याति शैवं पदमनुत्तमम् ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे समुद्रतीर्थाऽभिधानं नामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

स्वर्लोकमें आनन्दका उपभोग करेगा ॥ १९ ॥ स्कन्द बोले—इस प्रकार समुद्रको वरदान देकर ईश्वर उसी स्थानमें अन्तर्द्धान हो गये, उसी दिनसे मूर्त्तिमान् सागर इस स्थानमें विराजमान है ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! वहां भी जो स्नानकरताहै, उसे समुद्र स्नानके फलका करोड गुणा अधिक फल मिलताहै ॥ २१ ॥ इस प्रकार समुद्रकी उत्पत्ति और उसका वैभव यह हमने तुम्हारे आगे बखान किया, इसका श्रवण करनेसे मनुष्यको उत्तम शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

इति श्रीकेदारखंडे भाषाटीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः ९८.

नारद उवाच ॥ ॥ या तामसा त्वया प्रोक्ता नदी परमपाविनी ॥ कथं तस्याः समुत्पत्तिः कथं नाम बभूव ह ॥ १ ॥ तस्यां स्नातुश्च किं पुण्यं कानि तीर्थानि तत्र हि ॥ वद सर्वं समासेन लोकानुग्रहकाम्यया ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ पुरा संसृजतः सर्वं ब्रह्मणस्तासमाधिकम् ॥ कमंडलोस्तु संजाता तामसाख्या महानदी ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तां प्राह भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ यस्मात्त्वं तामसांशाऽसि समुत्पन्नाऽसि सुव्रते ॥ तस्मात्त्वं लोक विख्या-

नारदजी बोले—आपने जो परमपवित्र तामसा नामकी नदीका वर्णन किया उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और किस प्रकार उसका यह नाम हुआ ॥ १ ॥ उसमें स्नान करने वालेको क्या पुण्य होताहै, उस स्थानमें कौन २ से तीर्थ हैं, यह सब संसारके हितकी कामनासे संक्षेपतया कारिके वर्णन करिये ॥ २ ॥ स्कन्द बोले—प्रथम जब ब्रह्माजीने सर्व संसारकी रचना करी तब उनके कमंडलुमेंसे उस महा नदीका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ३ ॥ उसे देख लोकपितामह ब्रह्माजी यौं बोले—

ता तामसेति भविष्यसि॥४॥घोरे कलियुगे प्राप्ते भविष्यसि विमु-
क्तिदा ॥ त्वयि स्नास्यन्ति ये मर्त्त्यास्ते यास्यन्ति परां गतिम्॥५॥
स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा तु ययौ ब्रह्मा ह्यंतर्द्धानं मुनीश्वर ॥
ततःप्रभृति ख्यातेयं तामसा लोकपाविनी ॥ ६ ॥ पिंडदानं तु
यः कुर्य्यादस्याः कूले सुनिर्मले ॥ कुलकोटिशतं मर्त्त्यो नयते
ब्रह्म शाश्वतम् ॥७॥ तृप्ताः स्युः पितरस्तस्य यस्तु संतर्प्पयेत्पितॄन् ॥
तमसायां हि संगच्छेद्यत्र ख्याता मितस्रवा ॥ ८ ॥ रुद्रतीर्थं तु
तत्रैव स्नातुस्तत्र फलं शृणु ॥ कोटि सूर्य्याभवर्णेन विमानेन
मुनीश्वर ॥ प्रगच्छेद्रुद्रलोके च अनेकैर्गोत्रिभिः सह ॥ ९ ॥ तत्र
स्थित्वा कोटिकल्पं ततो भूमंडले विशेत् ॥ सप्तद्वीपवतीपृथ्व्याः
पाता स्वामी भवेदिह ॥ १० ॥ भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु रुद्रलोके
भविष्यति ॥ तदधो विष्णुतीर्थं तु विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ ११ ॥
तत्रास्ते वैष्णवी मूर्त्तिः शंखचक्राब्जलक्षणा॥दृश्यते पुण्यकृद्भिस्तु

क्योंकि तू तामसोंके अंशसे उत्पन्न हुई है इसीलिये हे सुव्रते ! तेरा तामसा नाम प्रसिद्ध होगा ॥४॥
और जब घोरकलियुग प्राप्त होगा तब तू ही मोक्ष देनेवाली होगी, तुझमें जो मनुष्य स्नान करेंगे
उन्हेंभी परमगतिका लाभ होवेगा ॥ ५ ॥ स्कन्द बोले—हे मुनीश्वर ! यौं कहकर ब्रह्माजी वहां ही
अन्तर्द्धान होगये, उसी दिनसे यह तामसा नामकी नदी परमपवित्र प्रसिद्धहै ॥ ६ ॥ इस नदीके
निर्मल कूलपर जो व्यक्ति पिंडदान करताहै, वोह अपने सैंकडों वल्कि करोडों कुलोंको सनातन
ब्रह्मलोकमें पहुंचादेता है ॥ ७ ॥ और जो व्यक्ति पितरोंके निमित्त वहां तर्पण करताहै उसके
पितर सन्तुष्ट होजाते हैं, और जहां मितस्रवा उपस्थितहै वहां ही यात्रा करनी होतीहै ॥ ८ ॥
वहां ही पर रुद्रतीर्थ है उसमें स्नानकरने वालेके फलको सुनो । हे मुनीश्वर ! वोह पुरुष करोडों
सूर्य्यकी समान प्रकाश वाले विमानमें बैठकर अपने अनेक गोत्रजोंके साथ रुद्रलोकको जाताहै ॥
॥ ९ ॥ करोड़ कल्पपर्यन्त वहां स्थित रहकर फिर वोह भूमण्डलके ऊपर अवतीर्ण होताहै, और
यहां सातोंद्वीपकी पृथ्वीका पालन कर्त्ता स्वामी होताहै ॥ १० ॥ फिर समस्त भोगोंका उपभोग
कर रुद्रलोकमें जाताहै । उसीके नीचे विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाला एक विष्णु तीर्थ है ॥
॥ ११ ॥ शंख चक्र गदा पद्म इन चिह्नोंको धारण किये हुए वहां विष्णु भगवान्की एक मूर्त्ति है,

१ पुंवद्भाव आर्षः ।

यदि भाग्येन दृश्यते ॥ १२ ॥ तदैव मुक्तो भवति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ तदधो ब्रह्मतीर्थं तु ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥ १३ ॥ यत्र स्नात्वा नरोभक्त्या नित्यं ब्रह्मपुरे वसेत् ॥ ततः क्रोशार्द्धके तीर्थं शाक्रं नाम्ना हि तिष्ठति ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति शक्रलोकं सनातनम् ॥ १४ ॥ इति ते कथितो विप्र तामसायाः सुवैभवः ॥ यं श्रुत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे तामसोत्पत्तिमाहात्म्यकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

...त्मा जनोंहीको उसका दर्शन होताहै । यदि भाग्यवशात् उसके दर्शन होजायँ ॥ १२ ॥ तो ...मनुष्य तत्काल ही मुक्त होजाताहै इसमें कोई भी विचार करना न चाहिये । उसीके नीचे ...लोककी प्राप्ति करानेवाला ब्रह्मतीर्थ विद्यमानहै ॥ १३ ॥ उसमें भक्तिभाव पूर्वक स्नान करनेसे ...ष्य नित्यही ब्रह्मपुरमें निवास पाताहै । उससे आधे कोसकी दूरीपर शक्रनामका तीर्थ विराज-...है, उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सनातन इन्द्रलोकको जाताहै ॥ १४ ॥ हे विप्र ! इस ...र हमने इस तामसा नदीका सुन्दर माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसका श्रवण अथवा ...ठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पाजाताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः ९९.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थराजमनुत्तमम् ॥ अस्ति क्षेत्रतमं लोके वारणावतसंज्ञकात् ॥ १ ॥ पूर्वयाम्याश्रिते भागे योजनत्रयसम्मिते ॥ पर्वतो बालखिल्याख्यो वर्त्तते मुनिपुंगव ॥ २ ॥ यत्र वै बालखिल्यास्ते तपस्तेपुः सुदुष्करम् ॥ शिवमाराधयामासुः संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥ ३ ॥ विविधांश्च वरांस्तेभ्यो दत्वा प्रोवाच वै वचः ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ अद्य

स्कन्द बोले–अब हम और भी एक सर्वोत्तम तीर्थराजका तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, वोह उत्कृष्ट क्षेत्र वारणावत संज्ञक पर्वतसे पूर्व और दक्षिण भागमें तीन योजनकी दूरीपर है मुनिपुंगव! बालखिल्य नामसे प्रसिद्धहै ॥ १ ॥ २ ॥ उसी स्थानमें बालखिल्योंने अति उग्रतपका आचरण किया था, जब उन्होंने शिवकी आराधनाकी तब सदाशिव उनसे प्रसन्न (सन्तुष्ट) होगये ॥ ३ ॥ और उन्हें विविध प्रकारके वर देकर उनसे महादेवजीने यह वचन कहे ॥ ४ ॥ ईश्वर बोले–

प्रभृति युष्माकं नाम्नाख्यातो महागिरिः ॥ भविष्यति न संदेहो महापापौघनाशनः ॥ ५ ॥ समारोहति यः शैलं बालखिल्याभिधं त्विमम् ॥ शतजन्मार्ज्जितैः पापैर्मुच्यते तत्क्षणान्नरः ॥ ६ ॥ अस्मिञ्छैले महाभागा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ मल्लोके गमनं तस्य विमानेनार्कवर्चसा ॥ ७ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि स्थित्वा वर्षाणि मानवः ॥ पश्चाद्भूमंडलं प्राप्तो द्विजो भवति धर्म्मवित् ॥ ८ ॥ वेदवेदांगविज्ञानी वरिष्ठो विदुषां क्षमी ॥ अन्ते लीनो भवेद्देहे मदीये सुरपूजिते ॥ ९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो मुनीनां पश्यतामपि ॥ तत आरभ्य तस्यासीद्वालखिल्याभिधा-गिरिः ॥ १० ॥ तस्योपकंठे चैवास्ति बालखिल्याभिधो नदः ॥ तत्र स्नात्वा भक्तिपरो ज्ञानकंचुकसंवृतः ॥ पापकंचुकनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं वै दद्यात्पिंडमपि द्विज ॥ तारयेत्स स्ववंश्यान्वै दशपूर्वान्दशापरान् ॥ १२ ॥ यो रौद्रसामभिस्स्तौति तत्कूले श्रीशिवं मुने ॥ स याति परमं

आजसे यह पहाड़ तुम्ही लोगोंके नामसे प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह कुछभी नहीं है, और यह बडे २ पापराशियोंका सत्यानाश करेगा ॥ ५ ॥ जो मनुष्य बालखिल्य नामवाले इसपर्वतके ऊपर चढ़ते हैं, वे तत्काल ही शतजन्मके पापोंसे मुक्त होजातेहैं ॥ ६ ॥ हे महाभागो ! इस पर्वतके ऊपर जो प्राणी प्राणोंका परित्याग करेगा, सूर्यसे दीप्तिमान् विमानमें बैठकर वोह हमारे लोकमें जायगा ॥ ७ ॥ और वोह मनुष्य करोड़ और सहस्र कल्पपर्यन्त वहां स्थित रहकर फिर भूमिके ऊपर आय धर्मका ज्ञाता ब्राह्मण होताहै ॥ ८ ॥ भूमिके ऊपर वेदवेदांगका ज्ञाता होकर वोह ज्ञानी क्षमावान् और विद्वानोंमें श्रेष्ठ होताहै, फिर अन्तसमय देवताओंके द्वारा पूजित हुए हमारे देहमें वोह लीन हो जाताहै ॥ ९ ॥ स्कन्द बोले—मुनियोंके देखते २ ही महादेवजी यौं कहकर वहां अन्तर्द्धान होगये, उसी दिनसे उस पर्वतका बालखिल्य नाम होगया ॥ १० ॥ उसीके निकट बालखिल्य नामका एक नदहै, भक्तिमें तत्पर हो उसमें स्नानकरनेसे मनुष्योंके अज्ञानका आवरण दूर होकर ज्ञानका कंचुक उनका आवरण करलेताहै, सुतराम् वे शिवलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करते हैं ॥ ११ ॥ हे द्विज ! जो मनुष्य वहां मुर्गेके अंडेकी सदृश भी पिण्ड बनाके देताहै, वोह दश पहिली और दश आगेकी पीढियोंका उद्धार करताहै ॥ १२ ॥ हे मुने ! जो व्यक्ति उक्तस्थानमें शुभ कल्याण मूर्त्ति शिवकी आराधना करताहै, वोह ऐसे परम-

धाम यस्मान्नैव निवर्तते ॥ १३ ॥ महारुद्राऽभिधानेनाऽभिषेकं कुरुते नरः ॥ क्षयरोगादिकेभ्यश्च स मुक्तो भवति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ तत्कूले शिवलिंगं च बालखिल्येश्वराभिधम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते भवभीतितः ॥ १५ ॥ यः पूजयति तल्लिंगं दुग्धेन मधुना तथा ॥ दध्ना च सर्पिषा चैव उपचारैरनेकधा ॥ १६ ॥ स भवेत्सार्वभौमो वै पुत्रपौत्रादिसंवृतः ॥ गजवाजिगणैर्युक्तो धर्म्मशास्त्रार्थवित्क्षमी ॥ १७ ॥ भुक्त्वा भोगांस्तु सकलाञ्छिवलोके महीयते ॥ कामानुद्दिश्य कुरुते पूजनं श्रीशिवस्य हि ॥ ईप्सितं तत्समाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १८ ॥ महापापोपपापैश्च गोभ्रूणादिविघातजैः ॥ तल्लिंगस्पर्शनादेव मुच्यते तत्क्षणादिह ॥ १९ ॥ इति ते कथितं बालखिल्यतीर्थस्य वैभवः ॥ यं श्रुत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे बालखिल्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

धामको जाता है, जहांसे फिर लौटना नहीं होता ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य महारुद्राभिषेकके विधिसे रुद्राभिषेक करता है, उसे अवश्यही क्षय रोगआदिसे छुटकारा मिलजाताहै ॥ १४ ॥ उसीके तटके ऊपर बालखिल्येश्वर नामका शिवलिंगहै, उक्त लिंगके केवल दर्शन करनेसे मनुष्योंको सांसारिक भयोंसे छुटकारा मिल जाताहै ॥ १५ ॥ जो पुरुष दुग्ध, मधु, दही और घृतके द्वारा तथा अनेक प्रकारके उपचारोंसे उक्त लिंगकी पूजा करताहै ॥ १६ ॥ वोह पुत्र पौत्रादिकोंसे आवृत होकर सार्वभौम राजा होताहै, उसे हाथी और अश्वआदि सभी सामग्री प्राप्त होती है, वोह धर्म शास्त्रके अर्थोंका ज्ञाता और क्षमावान् होताहै ॥ १७ ॥ समस्त भोगोंका उपभोग करके वोह व्यक्ति शिवलोकमें सुपूजित होताहै, और जो मनुष्य किसी कामनासे श्री महादेवजीका पूजन करताहै, उसे मनोऽभिलाषित कार्योंकी सिद्धिका लाभ होताहै इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ उस लिंगका स्पर्श करनेपर महापाप उपपाप एवम् गौ तथा गर्भकी हत्या इत्यादि सभी पापोंसे तत्क्षणही मुक्तिका लाभ होताहै ॥ १९ ॥ इस प्रकार हमने बालखिल्य नामक तीर्थका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसका श्रवण और पाठकरनेसे मनुष्यके सभी पाप छूट जाते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीकेदारखंडे भाषाटीकायां नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः १००.

स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र परं क्षेत्रं तत ईशानकोणके ॥ सोमेश्वरो महादेवो भक्तसंतारणः शुभः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण शिवः प्रीतो भवेन्नरः ॥ इदं पीठं परं गुह्यं सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥ यत्र देवः स्वयं साक्षाद्वर्त्ततेऽखिलरूपधृक् ॥ २ ॥ भिल्लैश्च संगतो नित्यं येन जानन्ति तं शिवम् ॥ स्वल्पकार्य्यं पराः शक्त्या न सिद्धिं प्राप्नुयुः क्वचित् ॥ ३ ॥ मुनयः सिद्धकास्तत्र प्रच्छन्ना विचरन्ति हि ॥ पंचाद्रिमध्यगामिन्यो नद्यः परमपावनाः ॥ ४ ॥ गंगाधरांबुजनिताः पुण्यगोचरकूलकाः ॥ नानाविधानि लिंगानि श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ असंख्यातानि विप्रेश वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥ ५ ॥ तत्र सोमेश्वरं लिंगं महादेवस्य भूतिदम् ॥ दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा चार्चयित्वा न पुनः स्तनयो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्रैवास्ति सरिद्दिव्या वनपङ्क्तिसुशोभिता ॥ नाम्ना धर्मनदी ख्याता धर्मराजेन निर्मिता ॥ ७ ॥ यस्यां वै स्नानमात्रेण यमलोकं न

स्कन्द बोले—सुनो द्विजराज ! उससे ईशान कोणकी ओर भक्तोंका उद्धार करनेवाले सोमेश्वर नामके शुभ महादेवजी विराजमान हैं ॥ १ ॥ उनके केवल दर्शन मात्र करनेसे मनुष्य महादेवजीका प्रिय होजाता है, यह पीठ परम गोपनीय और शीघ्रही विश्वास उत्पन्न करानेवालाहै. वहां साक्षात् महादेवजी अखिलरूप धारण करके विराजमान रहतेहैं ॥ २ ॥ और उनकी भीलगणके साथ संगति हुई थी, उन महादेवजीको सब जानतेहैं, जो व्यक्ति स्वल्पकार्य करनेमें अशक्त हैं उन्हें कदापि सिद्धिका लाभ नहीं होता ॥ ३ ॥ वहां मुनि और सिद्धलोग गुप्त होकर विचरते हैं पंचाद्रिके मध्यमें जाने वाली परमपवित्र नदियें हैं ॥ ४ ॥ गंगाजीके जलसे उनकी उत्पत्ति हुई है, और उनके तटोंका दर्शन पुण्यात्माओं को ही होताहै वहां परमात्मा महादेवजीके विविधभांतिके असंख्य लिंग हैं, हे द्विजराज ! उनका वर्णन करनेके लिये किसकी शक्ति होसक्ती हैं ॥ ५ ॥ वहां समस्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला महादेवजीका सोमेश्वर लिंगहै, उसके दर्शन, स्पर्श अथवा पूजन करनेसे फिर कदापि माताके स्तनको पानकरना नहीं होता अर्थात् जन्ममरणसे छूटकर उस मनुष्यकी मोक्ष होजाती है ॥ ६ ॥ वनकी पंक्तियोंसे समलंकृत वहां एक दिव्य नदी है, उसका धर्मनदी नाम है, और उसे धर्मराजने निर्माण कियाहै ॥ ७ ॥ उसमें केवल स्नान मात्र करनेसे फिर यमलोकमें जाना नही होता, इस पुण्यमयी नदीका दर्शन

गच्छति ॥ इयं नदी तीर्थमयी पुण्यकर्मसुगोचरा ॥ ८ ॥ तत्र नानाप्रकाराणि देवतायतनानि च ॥ ततो वै पूर्वभागे तु धर्मकूटो गिरिर्महान् ॥ ९ ॥ धर्मराजः पुरा तत्र तपस्तेपे महत्तरम् ॥ ततोऽयं धर्मकूटेति गिरिः ख्यातो महात्मभिः ॥ १० ॥ धर्मकूटे गिरौ तत्र नाम्ना धर्मेश्वरी शुभा ॥ भवपत्नी भवच्छेदामुत्र दुःख विनाशिनी ॥ ११ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे सिद्धकूटो महागिरिः॥ तत्र सिद्धास्तु विप्रर्षे निवसंति सुपुण्यदे ॥ १२ ॥ तत्र उत्तरदिग्भागे ह्यप्सरोगिरिरुत्तमः॥ तत्रास्त्यप्सरसां वासःपुण्यकर्मसुगोचर ॥ १३ ॥ तत ईशानदिग्भागे यक्षकूटोमहागिरिः ॥ तत्र यक्षाः सगन्धर्वा निवसन्ति महामुने ॥१४॥ तद्धि पुण्योदयेनैव लभ्यते हि न चान्यथा ॥ तत्र गत्वा महाकूटे न क्षुधा न च वै तृषा ॥ न बाधते नरं विप्र यतोऽसौ स्वर्गभूमिका ॥ १५ ॥ तस्य दक्षिणदिग्भागे नाम्ना शैलेश्वरः शिवः ॥ तस्य दर्शनमात्रेण नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे सोमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

उन्हीको होताहै जिन्होंने पुण्यकर्मोंका आचरण कियाहै ॥ ८ ॥ वहां भांति २ के देवताओंके मन्दिर हैं, उससे पूर्व भागकी ओर हेमकूट नामका बडा पर्वत है ॥ ९ ॥ वहां प्रथम धर्मराजने उग्रतपका आचरण किया था, तभीसे महात्माओंने इसे धर्मकूट कहकर प्रसिद्ध कियाहै ॥ १० ॥ धर्मकूट शुभ पर्वतके ऊपर धर्मेश्वरी नामकी पार्वतीकी मूर्त्ति विराजमानहै, वोह सांसारिक बन्धनोंको छेदनकर परलोकके क्लेशोंका भी विनाश करती हैं ॥ ११ ॥ उसके दक्षिण भागमें सिद्धकूट नाम महागिरिहै, हे विप्रर्षि ! उस पुण्यदायक पर्वतके ऊपर अनेक सिद्ध निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वहां उत्तरदिशाकी ओर अप्सरोगिरि नामका एक पर्वतहै, यह सब पर्वतोंमें उत्तमहैं, वहां अप्सराओंका समाज निवास करताहै, और उसका दर्शन पुण्यात्माओंकोही होताहै ॥ १३ ॥ उसके ईशान कोणकी ओर यक्षकूट नामका बडापर्वतहै, हे महामुने ! वहां यक्ष और गन्धर्व निवास करते हैं ॥१४ ॥ यदि पुण्योंका उदय हो तभी उसकी उपलब्धि होतीहै अन्यथा नहीं, उस महाकूटमें जानेपर क्षुधा तृषाकी कुछ भी बाधा नहीं होती, क्योंकि हे विप्र ! वोह स्वर्गीय भूमिहै ॥ १५ ॥ उससे दक्षिण दिशाकी ओर शैलेश्वर नामके शिवजी उपस्थितहैं, उनके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य शिवलोकको जाताहैं ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः १०१.

सूत उवाच ॥ ततः पूर्वं महाभागाः स्कंदो वै पार्वतीसुतः ॥ सर्वं कैलासमाहात्म्यं कथयामास सुव्रताः ॥ १ ॥ श्रुत्वा तु वर तीर्थानां माहात्म्यं ब्रह्मपुत्रकः ॥ पप्रच्छ च ततः स्कंदं गंगाद्वारस्य वैभवम् ॥ २ ॥ तत्रान्यानां च तीर्थानां पीठानां च तपोन्विताः ॥ सोऽपि स्कंदो महादेवपुत्रं प्रोवाच सर्वशः ॥ ३ ॥ गंगाद्वारादितीर्थानां तथा च सरितां शुभम् ॥ माहात्म्यं कथयामास ब्रह्मपुत्राय धीमते ॥ ४ ॥ नारदाय च सर्वासां विद्यानां पारगोऽग्निजः ॥ येषां च श्रवणात्सद्यो मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ सूतसूत महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारदः ॥ त्वन्नो दाता महाभाग ज्ञानरत्नस्य सर्वदा ॥ ६ ॥ बहूनि हि पुराणानि श्रुतानि च मुखात्तव ॥ गंगाया विभवश्चापि राज्ञां चैव प्रकीर्त्तितः ॥ ॥ ७ ॥ सर्वेषां क्षेत्रवर्य्याणां माहात्म्यानि महान्ति च ॥ अवशिष्टानि तीर्थानि मायाक्षेत्रादितः पुनः ॥ ८ ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत

सूतजी बोले–हे उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले महाभाग महर्षियो ! पार्वती नन्दन स्कन्दने इस प्रकार कैलासका सब माहात्म्य वर्णन किया था ॥ १ ॥ ब्रह्मकुमार नारदजीने इसप्रकार श्रेष्ठ तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन सुनकर स्कन्दसे गंगा द्वार (हरद्वार) का माहात्म्य पूछा ॥ २ ॥ हे तपस्वियों ! वहांके अन्यान्यतीर्थों और पीठोंकेभी माहात्म्य पूछे, और शिवकुमार स्कन्दने सभीका वर्णन कर सुनाया ॥ ३ ॥ गंगाद्वार आदि तीर्थों तथा अन्य नदियोंका शुभमाहात्म्य ब्रह्माजीके पुत्र बुद्धिमान नारदजीके प्रति वर्णन किया ॥ ४ ॥ समस्तविद्याओंके पारगामी अग्निकुमार स्वामिकार्त्तिकने नारदजीके प्रति यह ऐसा आख्यान वर्णन किया, जिसका श्रवण करनेपर शीघ्रही पातकोंसे मुक्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ ऋषियोंने कहा–हे अतिशय बुद्धिमान् सूतजी महाराज !!! आप समस्त शास्त्रोंमें चतुरहैं और हे महाभाग ! आप ही सदासे हमें ज्ञानरत्न प्रदान करते रहे हैं ॥ ६ ॥ हमने आपके मुखसे बहुतसे पुराणोंका श्रवण कियाहै, आपने गंगाजीके माहात्म्य और अनेक राजाओंके इतिहासोंका भी बखान किया ॥ ७ ॥ तथा श्रेष्ठ २ सभी क्षेत्रोंके बडे २ माहात्म्य वर्णन किये, अब मायाक्षेत्र (हरद्वार) आदि जो अवशिष्ट तीर्थ ॥ ८ ॥ केदार मण्डल पर्यन्तहैं उन्हींका माहात्म्य श्रवण करनेकी हमारी अभिलाषाहै, हे लोमहर्षण! आपकी समान सर्वतत्वका

आकेदारमतः परम् ॥ न हि वेत्ता त्रिलोके हि त्वत्समो लोमहर्षण ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ साधु साधु महाभागाः पृष्टं यन्मुनिभिः परम् ॥ तद्वै संप्रति वक्ष्यामि नमस्कृत्य गजाननम् ॥ १० ॥ श्रुत्वा वै मानसे खंडे तीर्थानि सुबहून्यपि ॥ देवागाराणि बहुशः कथाश्च मुनिसत्तमाः ॥ ११ ॥ पुनः पप्रच्छ वैधात्रो गुरु सर्वेश्वरात्मजम् ॥ विनयावनतो भूत्वा चरणावभिवाद्य च ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ देव षण्मुख देवेश पार्वतीसुत नायक॥मानसादिषु क्षेत्रेषु तीर्थानि प्रवराणि मे ॥ कथितानि महासेन भवमुक्तिप्रदानि हि ॥ १३ ॥ यद्यप्युक्तानि भवता तीर्थानि विविधान्यपि ॥ तथापि संशयो मेऽद्य वर्त्तते देववन्दितः ॥ १४ ॥ त्वन्मुखादेव देवेश श्रुतं काश्यां हि विस्तरात् ॥ गंगाया विभवश्चापि स्थितिश्च परमात्मनः ॥ १५ ॥ तेपुर्द्रोणा दयो विप्राः क्षत्रियाः पांडवादयः ॥ संसारे दुःखसंतप्ता विचिन्वंतो महेश्वरम् ॥ १६ ॥ जग्मुः कैलास शिखरे केदारे शुभदायके ॥ कथं पुण्यमभत्तप्तुं स्थलं वै परमात्मनः॥ १७ ॥ काशीं त्यक्त्वा महादेवो दृष्ट्वा पांडवस-

ज्ञाता त्रिलोकीमें और कोई नहीं है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले–हे महाभागो ! आपसबको धन्यहै, आप मुनीश्वरोंने अच्छा प्रश्न किया, अब मैं गणेशजीको प्रणाम करके उसीका वर्णन करताहूं ॥ १० ॥ मानसखंडमें तुमने बहुत बहुतसे तीर्थ, देवमन्दिर और विविध भांतिकी कथाओंको हे ऋषियो ! तुमने सुनाहै ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्मकुमार नारदजीने शिवकुमारसे पूछा और विनयसे अवनत हो चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १२ ॥ नारदजी बोले–हे षडाननदेव ! हे पार्वती नन्दन ! सर्वके स्वामी ! आपने मानसखण्डमें समाससे बहुतसे तीर्थोंका वर्णन कियाहै जो कि, संसारसे मुक्त करने वाले हैं ॥ १३ ॥ यद्यपि आपने विविधतीर्थोंका माहात्म्य वर्णन कियाहै, तथापि हे देव पूजित ! मुझे बहुत कुछ सन्देह है ॥ १४ ॥ आपहीके मुखसे काशीमें मैंने सविस्तर सुनाहै गंगाजीका माहात्म्य और महादेवजीकी स्थितिका वर्णन ॥ १५ ॥ द्रोण आदि ब्राह्मण और पाण्डव आदि क्षत्रियोंने तपश्चर्या करीथी, और सांसारिक दुःखसे सन्तप्त हो ईश्वरका अन्वेषण करते २ ॥ १६ ॥ शुभकर्त्ता कैलास पर्वतके ऊपर केदार मण्डलमें गये और वहां उन्हें किस प्रकार परमात्माकी प्राप्ति हुई ॥ १७ ॥ महादेवजी पाण्डवोंको देखकर काशीको छोड

त्तमान् ॥ कथं न ज्ञातवांस्तेषां निष्कृतिं शिवनंदन ॥ १८ ॥ देवेश गोत्रहत्यायां तन्मे वद महामते ॥ कथमस्मिन्स्थले रम्ये गत्वा प्रापुः परं पदम् ॥ इति मे संशयं छिंधि यदि भक्तेषु ते दया ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः॥ध्यात्वा क्षणं महादेवं स्मृत्वा तद्वचनंपरम् ॥ २० ॥ उवाच प्रहसन्वाक्यं वाक्यज्ञं वाग्विदांवरः ॥ नमस्कृत्य महेशानं सर्वदेव नमस्कृतम् ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ धन्योऽसि त्वं महाभाग धन्यानां प्रवरो मुनिः ॥ त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये भक्तो भक्तिमतां वर ॥ २२ ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि चराचरगुरुं विभुम् ॥ सर्वस्य जगतो बीजं जन्मादिपरिवर्ज्जितम् ॥ २३ ॥ ब्रह्मांडकोटयो यस्य रोमांचविवरेषु वै ॥ महावातप्रेरिताहि विशन्ति प्रविशन्ति च ॥ २४ ॥ दिक्पालं परिणामानां जगदीशं जगन्मयम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नमस्कृत्य ब्रवीमि ते ॥ २५ ॥ यस्त्वया परिपृष्टोऽहं धर्मार्थसहितं वचः ॥ तच्छृणुष्व महाभाग मनः कृत्वा सुनिश्चल-

उनकी निष्कृतिको क्यों नहीं जानते थे ॥ १८ ॥ हे महामतिमान् देवेश्वर ! गोहत्याका उपाय क्यों ज्ञातनहीं हुआ, और फिर इस सुरम्य स्थलमें आकर उन्हें क्योंकर परमपदकी प्राप्ति हुई ? यदि भक्तोंके ऊपर आपकी दयाहै तो यह सब हमारा सन्देह दूर करिये ॥ १९ ॥ सूतजी बोले—महात्मा नारदजीके ऐसे वचन सुनकर स्कन्दने छिनभर महादेवजीका ध्यान करके उनके वचनोंका स्मरण किया ॥ २० ॥ फिर वाक्यके तत्त्वको जाननेवाले नारदजीसे वाग्मीवर स्कन्दजी—सब देवताओंके पूज्य महादेवजीको प्रणामकर यों बोले ॥ २१ ॥ स्कन्दने कहा—हे महाभाग ! तुम्हैं धन्य है, अहोभाग्य व्यक्तियोंमें सर्वसे श्रेष्ठ आपही हैं हे भक्त प्रवर ! आपकी समान त्रिलोकीमें आर कोई भक्त नहीं है ॥ २२ ॥ चर अचरके स्वामी ऐसे सर्व व्यापक, सर्व जगतके बीज स्वरूप, जन्मआदि (जन्म जरा मरण) से रहित भगवान्को मैं प्रणाम करके वर्णन करताहूं ॥ २३ ॥ और जिनके रोमकूपोंमें करोडों ब्रह्माण्ड महापवनसे प्रेरित हुईकी समान प्रवेश करते और निकलते हैं ॥ २४ ॥ जो जगत्के ईश्वर और दिक् पालोंके अधिपति हैं और जो आदि मध्यान्तसे रहितहैं उन्हीं महादेवजीको प्रणामकरके हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ २५ ॥ धर्म और अर्थ सहित वचन कहकर तुमने जो कुछ हमसे प्रश्न किया, सो

म् ॥ २६ ॥ इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं केदाराख्यं सुपुण्यदम् ॥ यच्छ्रुत्वाऽपि नरो याति शिवसायुज्यतां मुने ॥ २७ ॥ इमं देशं सकृद्दृष्ट्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः शिवसंन्यस्तमानसाः ॥ २८ ॥ माहात्म्यं कथयिष्यामि देशस्य प्रवरं मुने ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा गदतो ब्रह्मनंदन ॥ २९ ॥ नंदापर्वतमारभ्य यावत्काष्ठगिरिर्भवेत् ॥ तावत्केदारकं क्षेत्रं शिवमंदिरमुत्तमम् ॥ ॥ ३० ॥ रत्नस्तंभं समारभ्य मायाक्षेत्रावधि स्मृतम् ॥ अतिपुण्यतमं स्थानं हिमालयपदान्तिकम् ॥ ३१ ॥ अस्मिन्देशे तु ये मर्त्या वसन्ति दृढनिश्चयाः ॥ तषां मुक्तिर्महीदेव मंतव्या हि करे स्थिता ॥ ३२ ॥ एते सर्वे महाभागा देवा वै मक्तिलालसाः ॥ मर्तुं जन्म हि सुप्राप्ताः सर्वे ते मुक्तिहेतवे ॥ ३३ ॥ हिमालयभवा नद्यो गंगांभोभिर्विनिर्गताः ॥ गंगाम्बुसंभवा यस्माद्गंगातुल्या न संशयः ॥ ३४ ॥ अतस्तत्सलिलं पीत्वा तत्रत्या मनुजाः खलु ॥ कथं न

हे महाभाग ! मनको निश्चल करके उसे सुनो ॥ २६ ॥ केदार नामका पुण्यदायक जो क्षेत्र वर्णन कियागया है, उसके माहात्म्यका श्रवण करके मनुष्य महादेवजीकी सायुज्यताको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ इस स्थानके एक बार भी दर्शनकरलेनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै, यहां ब्रह्माआदि देवगण महादेवजीमें दत्त चित्त हो निवास करते हैं ॥ २८ ॥ हे मुनिराज ! मैं तुम्हारे प्रति उस देशके माहात्म्यका वर्णन करताहूं हे ब्रह्मकुमार ! उसका वर्णन सुनो ॥ २९ ॥ नन्दापर्वतसे आरंभकर काष्ठगिरि पर्यन्त केदारखण्डहै इसमें उत्तमोत्तम शिवमन्दिर हैं ॥ ३० ॥ और रत्नस्तम्भसे लेके हरद्वारपर्यन्त हिमालयके नीचेका भाग अत्यन्तही पवित्र मानागया है ॥ ३१ ॥ अपने चित्तमें दृढ निश्चय रखकर जो मनुष्य इस स्थानमें निवास करते हैं, हे भूदेव । मुक्तिको उनके हाथहीमें स्थित समझना चाहिये ॥ ३२ ॥ हेमहाभाग । वहांके रहने वाले सब लोग मोक्षकी अभिलाषा करने वाले देवता हैं, मोक्षप्राप्तिकी कामनासे वहां मरनेके लिये उन्होंने वहां जन्म ग्रहण किया है ॥ ३३ ॥ और हिमालयसे जिननदियोंका निर्गमन हुआ है उन सभीको गंगाजलसे निर्मित जानना चाहिये, क्योंकि वे गंगाजलही से निकली हैं अत एव उन्हेंभी निःसन्देह गंगाजीही जानो ॥ ॥ ३४ ॥ अत एव उनके जलको पान करके वहांके मनुष्य महात्मा अवश्यही क्यों न हो जायँ, हे महामतिमान् ! उन्हें शिवही

स्युर्महात्मानः शिवा एव महामते ॥ ३५ ॥ अतस्तत्सलिलं पातुमागतास्त्रिदिवौकसः ॥ गंगा च यमुना चैव वर्त्तते शुभदायके ॥३६॥ अतस्तन्माहात्म्यकथने शक्तिः स्यात्कस्य भूसुर ॥ सर्वेषां देशवर्य्याणामयं देशः प्रशस्यते ॥ ३७ ॥ यत्र साक्षान्महादेवो वसते च महामते ॥ ममोत्पत्तिश्च भगवन्दस्रयोश्च तथैव च ॥ ३८ ॥ बभूव सर्वदेवानां मुनीनां ब्रह्मनंदन ॥ इदमेव महास्थानं पुरा प्राह सदाशिवः ॥ ३९ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं गच्छतां च सतां तथा ॥ ४० ॥ मनसा वचसा ये वै गच्छन्ति निवसन्ति च ॥ त एव विष्णुलोकेषु भाग्यवन्तो भवन्ति हि॥४१॥ ये वै हिमालयं स्वच्छं विनिर्गतमहाजलम् ॥ पिवन्त्यमृतवद्विप्र सदाशिवपरायणाः॥ ४२ ॥ तेषां वैवस्वतो राजा दृष्टिगोचरगो न हि ॥ यथा सर्वेषु देवेषु श्रीशिवः परिकीर्त्तितः ॥ तथा सर्वेषु देशेषु हिमवद्देशसंज्ञितः॥ ४३ ॥ यथा सर्वशिलानां हि शालग्रामशिला

समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसी कारणसे उसके जलको पानकरनेके लिये देवतागण वहां आये हैं, कल्याण करने वाली गंगा और यमुना ये दोनों नदियें वहां उपस्थित हैं ॥ ३६ ॥ हे भूदेव । अत एव उस स्थानके माहात्म्यवर्णन करनेके लिये किसकी शक्ति पर्याप्त हो सक्ती है विशेष क्या कहें ? यह देश, अन्य समस्त देशोंकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है ॥ ३७ ॥ हे महामते ! वहां साक्षात् महादेवजी विराजमान रहते हैं उसी स्थानमें हमारी अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मनन्दन ! समस्तदेवताओं और मुनियोंकाभी प्रादुर्भाव उसी स्थानमें हुआ था । प्रथम सदाशिव महादेवजीने इसीको महा (उत्कृष्ट) स्थान कहकर कीर्त्तन किया था ॥ ३९ ॥ उसीके दर्शन करनेसे मनुष्योंको मुक्तिकी प्राप्ति होती है, और जो सज्जन वहांकी यात्रा करते हैं उनके अहो भाग्य है ॥ ४० ॥ जो व्यक्ति मन अथवा वाणीसेभी वहां की यात्रा करते हैं, वे ही सौभाग्यशाली विष्णुलोकमें निवास करते हैं ॥ ४१ ॥ जो व्यक्ति हिमालयसे निकले हुए स्वच्छ जलका पानकरते हैं, वे हे विप्र ! महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर होकर मानो अमृतका पान करते हैं ॥ ४२ ॥ और उन्हें यमराजका दर्शन कदापि नहीं होता जैसे महादेवजी सब देवताओंमें उत्तम हैं, इसी प्रकार सब देशोंमें हिमालय देश है ॥ ४३ ॥ जैसे शालिग्रामशिला सब

वरा ॥ तथा सर्वेषु तीर्थेषु तीर्थराजोऽयमीरितः ॥ ४४ ॥ यथा सर्वेषु वेदेषु सामवेदः प्रकीर्त्तितः ॥ तथायं सर्वदेशेषु देशवर्योविधीयते॥ ४५ ॥ यथारण्येषु सर्वेषु नैमिषारण्यसंज्ञितम् ॥ तथा सर्वेषु देशेषु हिमवद्देशकः स्मृतः ॥ ४६ ॥ यथा नदीषु सर्वासु जाह्नवी समुदाहृता ॥ तथायं सर्वदेशेषु देशराजोयमीरितः ॥ ४७ ॥ यथा भक्तेषु सर्वेषु भक्तराजो हि नारदः ॥ तथायं सर्वक्षेत्रेषु देशः केदारसंज्ञितः ॥ ४८ ॥ ते धन्याः सर्वलोकेषु ते पूज्याः सर्वदैवतैः ॥ श्रीशिवन्यस्तमनसो वसन्त्यत्र निरामयाः ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा महाभागा नारदो देशवर्य्यकम् ॥ पुनः पप्रच्छ तं स्कंदं तीर्थानां विस्तरं बुधाः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देशप्रशंसावर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः १०१

शिलाओंमें उत्तम हैं, इसी प्रकार सबतीर्थोंमें इसतीर्थको उत्तम कहागया ॥ ४४ ॥ जैसे सबवेदोंमें सामवेद श्रेष्ठहै ऐसे ही सबदेशोंमें उत्तमदेश मानागया है ॥ ४५ ॥ जैसे कि समस्त अरण्योंमें नैमिषारण्य श्रेष्ठहै, ऐसेही सब देशोंमें हिमालयको उत्कृष्ट कहागयाहै ॥ ४६ ॥ समस्त नदियोंमें जैसे गंगाजी उत्तमहैं, इसीप्रकार इस देशराजकोभी सब देशोंमें उत्तम कीर्त्तन कियागयाहै ॥ ४७ ॥ नारदजीमहाराज जिसप्रकार सब भक्तोंमें भक्तराजहैं, ऐसे ही यह केदारक्षेत्र सब देशोंमे उत्कृष्ट है ॥ ४८ ॥ जो व्यक्ति विकारशून्य हो श्रीमहादेवजीमें अपनी निष्ठाको दृढकरके इस स्थानमें निवास करते हैं, उन्हींको धन्यहै और वे ही सब देवताओंके पूज्य हैं॥४९॥ सूतजी बोले—हे महाभागो ! जब नारदजीने इसप्रकार उत्तम देशका माहात्म्य श्रवण किया, तब फिरभी हे बुद्धिमानो ! वे स्कन्दसे तीर्थोंके विस्तारको पूंछने लगे ॥ ५० ॥

इति श्रीकेदारखंडे भाषाटीकायां एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः १०२.

नारद उवाच ॥ भो भो षण्मुख सेनानिन्धन्योहं भुवि नारदः ॥ यो वै त्वन्मुखकंजाद्धि निर्गतं सुमधु प्रभो ॥ १ ॥ पिबामिश्रोत्रपुटकः क्षुधा मे बाधते न हि॥इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थानि प्रवराणि

नारदजी बोले—हे सेनापति षडानन ! मुक्त नारदको धन्यहै, क्योंकि हे प्रभो ! मैं आपके मुखकमलसे प्रादुर्भूत हुए मधुको ॥ १ ॥ श्रवणपुटद्वारा पानकर रहाहूं अतएव मुझे क्षुधा बाधा

भोः ॥ २ ॥ अन्यान्यकानि तीर्थानि का का नद्यः शुभावहाः ॥ अस्मिन्देशे महादेव पुत्रराज नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि तीर्थानि शुभदानि हि ॥ यानि ज्ञात्वैव सपदि मक्तिभाग्भवति स्फुटम् ॥ ४ ॥ गंगाद्वाराच्छृणु प्राज्ञ रत्न शृंगावधिब्रुवे ॥ तथा नंदगिरेः पश्चात्काष्ठान्तं ब्रह्मनंदने ॥ ५ ॥ मायाक्षेत्रं समाख्यातं गंगाद्वारे सुपुण्यदम् ॥ ब्रह्मणः स्थानतो यावद्योजनानां त्रिकद्वयम् ॥ ६ ॥ प्रमाणं क्षेत्रराजस्य गदितं मुनिनायक ॥ तत्क्षेत्रदक्षिणे भागे द्रोणाश्रम इतीरितः ॥ ७ ॥ गंगायमुनयोर्मध्ये अष्टयोजनविस्तृतम् ॥ तिर्यग्विस्तार एवास्य योजनत्रयमीरितः ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ मायाक्षेत्रं हि यत्प्रोक्तं त्वया द्वादशयोजनम् ॥ तद्ब्रूहि प्रथमं देव विस्तरेण मम प्रभो ॥ ९ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि मायाक्षेत्रं सुपुण्यदम् ॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शृणुष्वैकमना हि मे॥ १० ॥माया भगवती साक्षात्सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ तत्क्षेत्रं हि मया प्रोक्तं

नहीं देती अब हे प्रभो ! मैं उत्तमोत्तम तीर्थोंको सुनना चाहताहूं ॥ २ ॥ हे शिवकुमार ! मैं आपको नमस्कार करताहूं कृपापूर्वक यह बताइये इस देशमें अन्य कौन २ से तीर्थ हैं, और कौन २ सी नदियें कल्याणकरनेवालीहैं ॥ ३ ॥ स्कन्द बोले—सुनो नारदजी ! मैं शुभदायक तीर्थोंका बखान करताहूं, उनको जानकर मनुष्य अवश्यही मुक्ति भागी होजाताहै ॥ ४ ॥ सुनो प्राज्ञ ! गंगाद्वारसे लेके रत्नशृंग पर्य्यन्त स्थानोंका मैं वर्णन करताहूं, और इसीप्रकार हे ब्रह्मपुत्र ! नन्दगिरिके अनन्तर काष्ठापर्यन्त मायाक्षेत्र कहलाताहै, वोह गंगाद्वारमें अच्छे पुण्यका देनेवाला है, ब्रह्माजीके स्थानसे छः योजन पर्यन्त ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! उस क्षेत्रका प्रमाण कीर्त्तन कियागयाहै । उसी क्षेत्रके दक्षिणभागमें द्रोणाश्रम नामका एक तीर्थहै ॥ ७ ॥ गंगा और यमुनाके मध्यमें आठयोजन विस्तृत और तीन योजन तिर्च्छी इसका विस्तारहै ॥ ८ ॥ नारदजी बोले—हे प्रभो ! आपने जो बारह योजन विस्तृत मायाक्षेत्रका वर्णन किया, प्रथम उसीका विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥ ९ ॥ स्कन्द बोले—सुनो नारदजी हम पुण्यदायक माया क्षेत्रका वर्णन करते हैं, उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको एकाग्र मनसे सुनो ॥ १० ॥ संसारकी रचना स्थिति और विनाश करने वाली

भवमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥ पुरा दक्षो महातेजा ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वर ॥ तस्येयं दुहिता यत्र सती नाम्ना मनोहरा ॥ १२ ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ यया सर्वमिदं व्याप्तं जगद्वै सचराचरम् ॥ १३ ॥ तत्क्षेत्रदर्शनात्सद्यो न च भूयोऽभिजायते ॥ येन दृष्टमिदं क्षेत्रं सफलं तस्य जीवितम् ॥ १४ ॥ गंगाद्वारे कुशावर्त्ते विल्वके नीलपर्वते ॥ स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १५ ॥ सर्वैः देवा सगंधर्वा यक्षकिन्नरतापसः ॥ तिष्ठन्ति यत्र तीर्थे हि सर्वे ते मुक्तिलालसाः ॥ १६ ॥ चंडिकातीर्थराजे हि सकृत्स्नातो महामुने ॥ स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥ १७ ॥ दक्षेश्वरं महादेवं दृष्ट्वा वै भक्तितत्परः ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो धन्यतां याति सत्वरम् ॥ १८ ॥ द्रोणतीर्थेऽपि यः कश्चिच्छिवसंन्यस्तमानसः ॥ स्नानं दानं जपं होमं करोति भक्तितत्परः ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः ॥ ॥ १९ ॥ रामतीर्थेषु यः कश्चित्स्नानं वै प्रकरोति हि ॥ स

साक्षात् माया भगवती जहां उपस्थित है, उसी क्षेत्रको हमने मुक्तिदायक कहाहै ॥ ११ ॥ हे मुनीश्वर ! प्रथम ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापति थे, उनकी सतीनाम मनोहर कन्या ही यह माया थी ॥ १२ ॥ उसका स्मरणमात्र करनेसे मनुष्य समस्तदुःखोंसे छुटकारा पाजाताहै, और उस मायाने इस चराचर संपूर्ण जगत्हीको व्याप्तकर रक्खाहै ॥ १३ ॥ उस क्षेत्रके दर्शन करनेके अनन्तर फिर संसारमें जन्मलेना नहीं होता, जिसने उसक्षेत्रका दर्शन किया है उसीका जीवन सफल है ॥ १४ ॥ गंगाद्वार (हरद्वार) कुशावर्त्त, नीलपर्वतमें बिल्वकेश्वरमें और कनखलमें स्नान करनेके अनन्तर फिर जन्म नहीं होता ॥ १५ ॥ उक्ततीर्थोंमें मुक्तिकी अभिलाषा करके सब देवता गन्धर्व यक्ष किन्नर तपस्वी निवास करते हैं ॥ १६ ॥ हे महामुनि ! जो पुरुष चंडिकातीर्थराजमें एक बार भी कभी स्नान करचुका है, लोकमें उसको धन्य है और उसीका जीवनभी सफल है ॥ १७ ॥ भक्तिमें तत्पर होकर जो मनुष्य दक्षेश्वर महादेवके दर्शन करताहै उसीको धन्य है और वह कृतकृत्य होजाताहै ॥ १८ ॥ जो व्यक्ति महादेवजीमें मनलगाकर द्रोणतीर्थमें भक्तिभावपूर्वक स्नान दान जप अथवा होमकरते हैं, वह सबही निःसन्देह करोड़गुणा होजाताहै ॥ ॥ १९ ॥ और जो मनुष्य रामतीर्थमें स्नान करताहै, वह इतनेकाल पर्यन्त शिवलोकमें जाके

याति शिवलोके हि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २० ॥ हृषीकेशेषु यः कश्चिद्ब्रह्मतीर्थे सुपुण्यदे॥दृष्ट्वा श्रीशरणं देवं स्नाति वै भक्तितत्परः॥ मुक्तिभागी भवेत्सद्यो नरनाथो भवत्यपि ॥ २१ ॥ एकरात्रमपि-स्थित्वा नारायणमयो भवेत् ॥ यमुनापि महाभागा तत्रायाति सरिद्वरा ॥ २२ ॥ तत्संगमे महातीर्थं प्रयागात्कोटिसंख्यकम्॥ धन्यानां मानुषं जन्म तत्र भारतखंडके ॥ तत्रापि हि भवेद्देशे मायाक्षेत्रे विशेषतः ॥ २३ ॥ तत्रापि ब्राह्मणे वंशे तत्रापि मज्जतां कुले ॥ यत्तीर्थस्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ २४ ॥ मानुषं जन्म संप्राप्य तैरेव सकलं कृतम् ॥ हृषीकेशाश्रमे क्षेत्रे गच्छन्ति सुधियश्च ये ॥ २५ ॥ हसन्ति पितरस्तेषां सर्वे वै मुक्ति-लालसाः ॥ अन्यान्यपि च तीर्थानि वर्त्तन्ते सुबहून्यपि ॥ २६ ॥ यानि स्मृत्वापि पापेभ्यो मुच्यते पापबंधनैः ॥ तपोवनं समासाद्य कुर्वन्ति श्राद्धमुत्तमम् ॥ तेषां वै पितरः स्वर्गे नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥ २७ ॥ एतदेव महाक्षेत्रं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥

निवास करताहै कि, जितने दिन चौदह इन्द्रोंका राज्य होताहै ॥ २० ॥ सुन्दर पुण्य देनेवाले हृषीकेशमें जो मनुष्य श्रीशरणदेवका दर्शनकर भक्तिभावमें तत्पर स्नानकरताहै, वह राजा होजाताहै, और फिर शीघ्रही उसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ जो एकरात्रीभी वहां निवासकर-ता है वह साक्षात् नारायणकी सदृश होजाताहै, हे माहाभागो ! वहां नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजी भी विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ जहां उनका संगम हुआहै वह स्थान प्रयागसे भीं कोटिगुण अधिक फल देनेवाला हैं, प्रथम तौ उन्हीको धन्य है जिनका मनुष्ययोनिमें जन्म हुआहै, इनमेंभी भरत खंडमें प्रादुर्भूत हुए व्यक्तियोंके औरभी अधिक अहोभाग्य है, इनमेंभी हिमालयके देश और उनमेंभी विशेषकर मायाक्षेत्रमें प्रादुर्भूत हुए व्यक्तियोंको अधिक धन्य है ॥ २३ ॥ वहां रहने वाले ब्राह्मण कुलमें जन्म होना उत्तम है, इनमेंभी वे अधिक श्रेष्ठ हैं जिनका जन्म गंगा स्नान करनेवाले पुरुषोंके कुलमें हुआ है, क्योंकि-- उनमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै ॥ २४ ॥ मनुष्य जन्म मिलनेपर मानो उन्होंहीने सबकुच्छ धर्मकृत्य करलिया है जो बुद्धिमान हृषीकेशमें गमनकरते हैं ॥ २५ ॥ उनके पितर मुक्तिकी अभिलाषा करके प्रसन्नतापूर्वक हँसते हैं । वहां अन्यान्य बहुतसे तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ उन सबका स्मरणमात्र करनेहीसे मनुष्य पापबन्धनोंसे मुक्त होजाताहै और जो मनुष्य उत्तम तपोवनमें जाय श्राद्धकरते हैं, उनके पितर नित्यही स्वर्गमें तृप्त रहते हैं ॥ २७ ॥ येही एकमहाक्षेत्र मोक्षद्वारको उद्घाटन करता है । लक्ष्मण

लक्ष्मणस्थानमासाद्य लक्ष्मणं प्रणमंति ये ॥ ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवन्तो भवन्ति हि॥२८॥सौमित्रितीर्थके स्नात्वा वाजपेयंफलं लभेत ॥ ततो वै शिवतीर्थेषु स्नांति ये भक्तितत्पराः ॥ शिवं स्थानं प्राप्नुवंति ब्रह्मस्थानं तथैव च ॥ २९ ॥ एतदेव महाक्षेत्रं श्रेष्ठं प्राह सदा शिवः॥मनसापि च यो मर्त्यो वचसापि तथैव च ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो मायाक्षेत्रस्य दर्शनात् ॥३०॥ अस्मिन् क्षेत्रे मृतः कश्चिद्ब्रह्म याति न संशयः ॥ ३१ ॥ देवा अपि महात्मानो नित्यं वै मुक्तिलालसाः ॥ इच्छन्त्यस्मिन्स्थले रम्ये जन्मापि हि न संशयः ॥ ३२ ॥ मुनयः सिद्धगंधर्वा यक्षकिन्नरतापसाः ॥ नित्यं वसंति विप्रेंद्र नारायणपरायणाः ॥ ॥ ३३ ॥ चतुर्वेदमयो घोषस्त्रिसंध्यं जायते द्विज ॥ इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोहं त्वया द्विज ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः परमपावनम् ॥ पुनः पप्रच्छ देवेशं पुनर्विस्तारपूर्वकम्॥ ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

स्थानमें जाय जो लोग लक्ष्मणजीको प्रणाम करते हैं, वे सबही सौभाग्यशाली होतेहैं ॥ २८ ॥ लक्ष्मणजीके सौमित्रि तीर्थमें स्नानकरके अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है । इसके अनन्तर शिवतीर्थमें जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक स्नानकरते हैं, उन्हें शिवलोक और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ इसी महाक्षेत्रको सदाशिवने उत्तमकहा है, जो मनुष्य मन अथवा वाणीसेभी मायाक्षेत्रका दर्शनकरता है वह कृतकृत्य होजाता है ॥ ३० ॥ चाहे जैसा प्राणी क्यों न हो यदि उसका इस क्षेत्रमें मरण होजाय तो निःसन्देह वह ब्रह्ममें लीन होता है ॥ ३१ ॥ महात्मा देवताभी मुक्तिकी कामना करके इस उत्तम स्थलमें जन्म ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं इसमें सन्देह कुछभी नहीं है ॥ ३२ ॥ मुनि सिद्ध गन्धर्व यक्ष किन्नर और तपस्वी ये सभी नारायणकी भक्तिमें तत्पर होकर हे द्विजराज ! वहां निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ और वहां तीनौं सन्ध्याओंमें चारों वेदोंकी ध्वनि होती रहती है, हे द्विज ! जो कुछ तुमने पूछा सो हमने यह सब तुम्हारे प्रति वर्णन किया । ये सब उत्तम तीर्थ तो होचुके अब और क्या श्रवण करना चाहते हो ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले—जब नारदमुनिने उनके ऐसे परमपवित्र वाक्य श्रवण किये तब फिर उनको सविस्तर वर्णन करनेका प्रश्न किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः १०३.

नारद उवाच ॥ श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्य मायायाः पुण्यवर्द्धनम् ॥ उत्पत्तिं विस्तरेणैव प्रसन्नो भक्तितत्परः ॥१॥ स्कंद उवाच॥ शृणु नारद तत्सर्वं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ यथा पुराभवद्यज्ञो दक्षस्यात्र प्रजापतेः ॥ २ ॥ पुरा दक्षो महातेजाः प्रजानां पतिषूत्तमः ॥ बभूवात्यंतकुशलः सर्वशास्त्रेषु वै द्विजः ॥ ३ ॥ यो वै पुरा हि विप्रेंद दक्षांगुष्ठाद्व्यजायत ॥ श्रीब्रह्मणो भगवतः सृष्टिकर्मोद्यतस्य हि ॥ ४ ॥ कन्या बभूवुस्तस्यापि बह्व्यः संततिकारणम् ॥ एकदा स मुनिः पूर्वं यज्ञाय कृतवान्मनः ॥ ५ ॥ आगताश्च ततः सर्वे सदेवासुरमानुषाः॥दर्शनार्थं हि यज्ञस्य दक्षस्याद्भुतकर्मणः॥६॥मुनयः कुशहस्ताश्च सोत्तरीयाजिनाम्बराः॥वशिष्ठादयो महात्मानो दंडपुस्तकधारकाः॥७॥शिष्योपशिष्यैर्युक्ताश्च नानाशास्त्रविशारदाः॥ पुलस्त्यश्च महाभागः पुलहः क्रतुरंगिराः ॥ एते चान्ये च मुनयो बहवः समुपागताः ॥ ८ ॥ विश्वे देवास्तथादित्या मरुतो

नारदजी बोले—अब मैं भक्तिमें तत्पर होकर पुण्यवर्धनकारी मायाक्षेत्रकी उत्पत्तिका श्रवण करना चाहता हूं ॥ १ ॥ स्कन्द बोले—सुनो नारदजी ! जिस प्रकार यहां दक्ष प्रजापतिका प्रथम यज्ञ हुआ था, समस्त पापोंके नाश करनेवाले और सबकामनाओंके पूर्णकरने वाले उस आख्यानका बखानकरते हैं ॥ २ ॥ समस्त प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें अतिशय चतुर ऐसे दक्षनामके प्रजापति प्रथम हुए थे ॥ ३ ॥ हे द्विजराज ! उन प्रजापतिका जन्म ब्रह्माजीके अंगुष्ठसे उस समय हुआ था जब कि, भगवान् ब्रह्माजी सृष्टिकी रचना करनेके तईं उद्यत हुए थे ॥ ४ ॥ और उनकी बहुतसी कन्याएँ सन्तानोत्पन्न करने वाली हुईं । एक समय उक्त प्रजापतिने यज्ञ-करनेके तईं अपने मनमें विचार किया ॥ ५ ॥ तब उस यज्ञमें सभी देवता असुर और मनुष्य उपस्थित हुए, और उन्होंने अद्भुतकर्मा दक्षप्रजापतिके यज्ञका अवलोकन किया ॥ ६ ॥ महर्षिगण कुशाहाथमें लिये, उत्तरीय धारणकर और मृगचर्मके वस्त्र धारण किये हुए, दण्ड और पुस्तकोंको लिये वशिष्ठ आदि महात्मा जो कि, अनेकशास्त्रोंमें चतुर थे वे सब शिष्य और सेवकों सहित आये । हे महाभाग ! पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा थे तथा औरभी बहुतसे मुनि वहां आय उपस्थित हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ विश्वेदेवा, आदित्य, मरुद्गण यक्ष और किन्नर महात्मा सिद्ध

यक्षकिन्नराः ॥ साध्याः सिद्धा महात्मानः सेंद्राः सुरगणास्तथा॥ ॥ ९ ॥ विष्णुश्च भगवान्ब्रह्मा चंद्रमाश्च बृहस्पतिः ॥ गानं चक्रुश्च गंधर्वाः किन्नराश्च तथैव च ॥ १० ॥ ननृतुश्चाप्सरगणा नानागानविशारदाः॥आनकाः पटहा ढक्कास्तथा दुंदुभिपंक्तयः ॥ नेदुश्च सर्वतो विप्र पुष्पाणि ववृषुश्च खात् ॥ ११ ॥ महानेव समाजोऽभूत्सर्वेषां भगवत्प्रिय ॥ तेषां मध्यगतो दक्षो राज सुतरां मुने ॥ १२ ॥ समारंभे ततो यज्ञं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ बभूव च ततो हर्षो महानेव महात्मनाम् ॥ ॥ १३ ॥ सर्वा दुहितरो विप्र निष्कघण्ठयो महामते ॥ आगताः सर्वतो दिग्भ्यो दिव्याभरणसंयुताः ॥ १४ ॥ वदतां खेचराणां तु मुखेभ्यश्च तथा श्रुतम् ॥ सत्या यज्ञं पितुर्विप्र दक्षस्य नियतात्मनः ॥ १५ ॥ तदुपश्रुत्य सहसा सती वै पितृवत्सला ॥ आगंतुं हि मनश्चक्रे नानामुनिविराजते ॥ १६ ॥ व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्यो गंधर्ववरनायिकाः॥विमानेषु स्थिताश्चैव सर्वाभरणभूषिताः॥ ॥ १७ ॥ अम्बरं शोभितं दृष्ट्वा विमानैः सर्वतोदिशम् ॥ उवाच

और साध्य एवम् इन्द्रादि देवगण ॥ ९ ॥ विष्णुभगवान् ब्रह्मा चन्द्रमा, और बृहस्पति ये सब आये। अथ च किन्नर और गन्धर्व सब गान करने लगे ॥ १० ॥ विविधभांतिके गान करनेमें चतुर अप्सरायें नृत्यकरने लगीं ? हे विप्र ! आनक पटह ढका तथा दुन्दुभी इन वाद्योंका नाद होने लगा, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ११ ॥ हे भगवान्के प्यारे ! इस प्रकार वहां इन सबका एक बड़ा समाज संगठित होगया, हे मुने ! इन सबके बीचमें दक्षप्रजापति अत्यन्तही सुशोभित होने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर ब्रह्मवादी महर्षियोंके द्वारा यज्ञका प्रारंभ हुआ, और महात्माओंको सर्वतः आनन्दकी प्राप्ति होने लगी ॥ १३ ॥ हे महामतिमान् ! दक्षप्रजापतिकी सभी श्रेष्ठकन्यायें अनेक अनेक आभूषणोंसे समलंकृत हो सबदिशाओंसे आय २ कर उपस्थित हुईं ॥ १४ ॥ और आकाशमें कहते हुए जो जा रहेथे उनके मुखसे सतीने नियतात्मा अपने पिताके यहां यज्ञका वृत्तान्त सुना ॥ १५ ॥ पिताकी भक्तिकरने वाली सतीने जब पिताके यहां यज्ञानुष्ठानका श्रवण किया, तब अनेकमुनियोंके द्वारा सुशोभित उस स्थानमें उपस्थित होनेके लिये उस (सती)ने इरादा किया ॥ १६ ॥ सब दिशाओंसे गन्धर्वोंकी श्रेष्ठस्त्रियें श्रेष्ठविमानोंमें बैठ श्रेष्ठ आभूषण पहर २ कर जा रहीं थीं ॥ १७ ॥ विमानोंके द्वारा सब

श्रीमहादेवं नानागणसुसेवितम् ॥ १८ ॥ सत्युवाच ॥ भगवन्परमेशान ह्यंबरं पर्य्यलंकृतम् ॥ नूनं मम पितुर्गेहे वर्त्तते सुमहोत्सवः ॥ १९ ॥ द्रष्टुं तमुत्सवं देव मनो मे त्वरयत्यलम् ॥ सर्वा भगिन्यो मे देव भवेयुरागताः खलु ॥ २० ॥ श्रुत्वोत्सवं पितुर्गेहे गृहे तिष्ठति या सुता ॥ कथं वै कीदृशं तस्याः हृदयं सुरवन्दित ॥ ॥ २१ ॥ कदा द्रक्ष्यामि पितरं मुनिभिः समुपासितम् ॥ भगिनीश्च महादेव मातरं वा कदा पुनः ॥ २२ ॥ इति मे हृदयादेव वर्त्ततेहर्निशं विभो ॥ देह्याज्ञां मम हे देव यथा यास्यामि तत्र हि ॥ २३ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ अनाहूता कथं देवि पितुर्गेहंमनाः शुभे ॥ कथमुत्सहते तेऽद्य निष्ठुरस्य प्रजापतेः ॥ २४ ॥ यथा मन्येत यो देवि आत्मानं सततं प्रिये ॥ तथा तमपि मन्येत इति प्राहुः पुरातनाः ॥ ॥ २५ ॥ उत्सवे हि विशेषेण आहूतो नितरां व्रजेत् ॥ यदि गच्छेदानहूतो लघुतां याति मानदे ॥ २६ ॥ मित्रं स्वच्छतया विन्दे-

ओरसे आकाशको सुशोभित देखकर अनेक गणोंसे सेवाकिये हुए महादेवजीसे सतीने प्रार्थना करी ॥ १८ ॥ सती बोलीं—हे ऐश्वर्यशाली भगवान् ! आकाश शोभायमान होरहा है, अतः निश्चय होता है अवश्य ही मेरे पिताके यहां महान् उत्सव है ॥ १९ ॥ हे देव ! उस उत्सवका अवलोकन करनेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त ही उतावल कर रहा है, वहां अवश्य ही मेरी सबभगनियें उपस्थित हुई होंगी ॥ २० ॥ अपने पिताके यहां उत्सव सुनकर जो कन्या अपनेघर रहजाय, हे देववन्दित ! न जाने उसका कैसा (कठोर) हृदय होगा ॥ २१ ॥ मुनियोंके द्वारा उपासनाकिये अपने पिताके मैं कब दर्शन करूंगी, अथवा बहिनों और माताको कब देखूंगी ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! प्रतिक्षण मेरे हृदयमें येही उत्कंठा होरही है, अत एव हे देव ! आज्ञा दीजिये, जिससे कि, मैं वहां चली जाऊं ॥ २३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले—हे शुभे ! विना बुलाये पिताके घर जानेकी तुम्हारी इच्छा क्यों होरही है ? निष्ठुर प्रजापतिकी कठोरता तुमसे कैसे सहारते बनती है ॥ २४ ॥ पुरातन महात्माओंकी यह आज्ञाहै कि, जो अपने आपको प्रियमाने हे प्रिये ! उसीको स्वयंभी प्रिय मानना चाहिये ॥ २५ ॥ विशेषकर उत्सवमें तो अवश्यही बुलानेपर जाना चाहिये, हे मानदायिनी ! जो विनाबुलाये जाता है उसका अनादर होता है ॥ २६ ॥ बुद्धिमानोंने यह कहा है कि, मित्रके साथ निष्कपट भावसे, समान (उदासीन) के साथ समानतासे और शत्रुकेसाथ शत्रुता

त्समं समतया तथा ॥ विद्वेषणेन शत्रुं वै इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ॥ २७ ॥ ऐश्वर्य्यमदसंयुक्तं त्यजेन्मित्रं पलालवत् ॥ पितरं वापि पुत्रं वा भ्रातरं वापि दक्षजे ॥ २८ ॥ ऐश्वर्य्यमदयुक्तानामहंकारपरात्मनाम्॥ यदि गच्छेदनाहूतो हास्यतां याति सत्वरम् ॥२९॥ मुखं विवृण्वते चैव दृष्ट्वा तं गृहमागतम् ॥यस्तु गच्छेदनाहूतो जायते माननाशनम् ॥ ३० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ सत्यमुक्तं हि भगवंस्त्वया देव महेश्वर॥न पिता न तथा माता न सन्ति मित्रबांधवाः ॥ ३१ ॥ केन साकं तवेशस्य मोहो वै संभविष्यति ॥ भूषणं तव सर्पा वै ह्यशनं न हि विद्यते ॥ निर्गुणोऽसि महेशान मायया रहितश्च सः ॥ ३२ ॥ कथं मित्रं भवेद्देव तव संसारनायक ॥ किमपेक्षा तवेशान भवेत्कस्यापि कालक ॥ धारणं भस्मनो देव पात्रं यस्य कपालकम् ॥ ३३ ॥ कार्तिकेय उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं व्यंग्योक्तं भगवाञ्छिवः॥ विमनस्कां महेशानीं भवानीं प्रत्यभाषत॥३४॥श्रीशिव उवाच ॥ ॥ देवि गच्छ पितु-

र्नचाव करना चाहिये ॥ २७ ॥ और जो मित्र ऐश्वर्यके अभिमानसे उन्मत्त होगया हो उसको तृणकी समान त्यागकर देना चाहिये, हे दक्षकुमारी ! चाहे वोह पिता पुत्र अथवा भ्राताही क्यों न हो ॥ २८ ॥ जिनको ऐश्वर्यके कारण मद उदय होगया है अत एव जो अहंकारी हैं, उनके घर विना बुलाये जानेपर आवश्य ही उपहास होता है ॥ २९ ॥ विना बुलाये व्यक्तिको घर आया देख वोह मदोन्मत्त पुरुष अपने मुखको बिगाड़ने लगताहै, सुतराम् जो विना बुलाये जाताहै उसके मानका नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ श्रीदेवीजी बोलीं—हे देवाधिदेव महेश्वर ! आपने जो कुछ कहा सब सत्य कहा, आपके न पिताहै न माताहै, और न मित्र तथा न बन्धु न बान्धव ही हैं ॥३१॥ तौ फिर किसके साथ आपका मोह (प्रेम) बन्धन होसक्ताहै । सांप आपके आभूषणं हैं, भोजन कुछ है ही नहीं, हे देव ! आप मायारहित निर्गुणहैं, ॥ ३२ ॥ हे संसारनायक ! (जगन्नाथ !) आपके मित्र हो ही कैसे सक्ते हैं ? हे नाथ ! फिर आपकी यह अपेक्षा किसके लिये नहीं है, आपने तौ देहमें भस्मी धारण कर रक्खी है, और नरकपाल आपका पात्रहै ॥ ३३ ॥ कार्तिकेय बोले—भगवान् महादेवजीने जब इस प्रकार उनकी व्यंग उक्तिके वचन सुने, तब मलीन मन महेश्वरी सतीके प्रति वे यों बोले ॥ ३४ ॥ श्रीमहादेवजीने कहा—हे देवि । यदि अवश्य ही तुम्हारा हठ है तो तुम पिताके घर यज्ञका अवलोकन करने

गेहे यदि ते आग्रहः खलु ॥ यज्ञसंदर्शनार्थाय भोग्यस्योत्पत्तिहे- तवे ॥ ३५ ॥ कार्त्तिकेय उवाच ॥ ॥ इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा चरणावभिवाद्य च ॥ ययौ सा दक्षगेहे तु द्रष्टुं यज्ञमहोत्सवम् ॥ ॥ ३६ ॥ तत्र गत्वा महामाया ददर्श मुनिसत्तमान् ॥ कुशपाणी- न्महासत्त्वान्मृगचर्माम्बरांस्तथा ॥३७॥ सेन्द्रान्सुरगणान्यक्षान्गं- धर्वान् किन्नरांस्तथा ॥ विश्वेदेवाँश्च मरुतः साध्यान्सिद्धांस्तथा- परान् ॥ ३८ ॥ भागान्संदृश्य सर्वेषां देवानां दक्षपुत्रिका ॥ भर्त्तु- र्भागमनालक्ष्य पप्रच्छ पितरं सती ॥ ३९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ भोभो पितर्महाभाग सर्वे देवाः समागताः ॥ सभागा एव ते सर्वे भर्त्तुर्भागः कथं न हि ॥ ४० ॥ जामातरश्च भवतः सर्व एवागताः खलु ॥ भर्त्ता ममापि हे तात जामाताऽस्ति महामते ॥ ४१ ॥ कथं नाऽऽकारितो देवो भवो भावविवर्जितः ॥ एतन्मे संशयं छिंधि यथान्याश्च तथाप्यहम् ॥ ४२ ॥ स्कन्द उवाच ॥ निशम्य वचनं तस्याः भवान्याः स प्रजापतिः॥प्रहस्य

और भोग्य पदार्थोंका उपभोग करनेके लिये जाओ ॥ ३५ ॥ कार्त्तिकेय बोले इस आज्ञाको शिर- पर धारणकर सतीने महादेवजीके चरणोंको प्रणाम किया, और यज्ञका महोत्सव देखनेके लिये वह अपने पिताके घरको चल दी ॥ ३६ ॥ वहां जाय उस महामायाने श्रेष्ठ और सत्ववान् मुनियों- को कुशा हाथमें लिये और मृगचर्मके वस्त्रधारण किये देखा ॥ ३७ ॥ इन्द्रसहित सब देवताओं, यक्ष गन्धर्व और किन्नरोंको, एवम् विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य तथा अन्यान्य सिद्धोंको भी देखा ॥ ३८ ॥ जब दक्षकुमारी सतीने सब देवताओंके भाग देखे, परन्तु, अपने पति महादेवजीका भाग नहीं देखा तो वह अपने पिता दक्ष प्रजापति से पूछने लगीं ॥ ३९ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं— हे महाभाग पिताजी ! ! ! आपके यहां सब ही देवता आये और उनके भागभी विद्यमान हैं, परन्तु हमारे स्वामी का भाग क्यों नहीं है ॥ ४० ॥ आपके जितने जामाता हैं सभी आये हैं, हे महाम- तिमान् पिताजी ! मेरे पति भी तो आपके जामाता हैं ॥ ४१ ॥ दुर्भावरहित हमारे स्वामीको तुमने क्यों नहीं बुलाया, यह मेरा सन्देह निवृत्तकरो क्योंकि जैसी और (तुम्हारी पुत्रीयें) हैं, वैसी ही मै भी हूं ॥ ४२ ॥ स्कन्द बोले— जब दक्षप्रजापतिने भवानीके ऐसे वाक्य श्रवणकरे तब वे

ब्रह्मपुत्रस्तु बभाषे वचनं शिवाम् ॥ ४३ ॥ दक्ष उवाच ॥ तस्य वै भूतवेतालाः पिशाचाः शवका गणाः ॥ सहायास्तस्य रूपं हि विकरालं महेश्वरि ॥ ४४ ॥ भस्मनो धारणं यस्य विषस्य ह्यशनं किल ॥ करिचर्म्मपरीधानं सर्पाश्चैव विभूषणम् ॥ ४५॥ अधिकांगश्च दुहितर्हीनागश्च तथा भवः ॥ देवतरो महाकालः सर्वेषां नाशकश्च सः ॥ ४६ ॥ भक्ष्यपात्रं कपालं च नृमुंडैर्मंडितो हरः ॥ वृषध्वजो शूलपाणिः पाशहस्तो निरीश्वरः ॥ ४७ ॥ अकस्मान्नृत्यतेऽकस्माद्धसते जृंभते पुनः ॥ अङ्गिनं शिरसा धत्ते पुरदाहकरः परः ॥ ४८ ॥ कंकालविलसद्भूभिश्मशान-भस्मलेपनः ॥ अनार्य्योऽनार्य्यसंगश्च वंचकोविद्यया युतः ॥ ॥ ४९ ॥ एतादृशो महेशानि भर्त्ता वै तव शंकरः ॥ अमंगल्यो मंगलेस्मिन्भागभागी कथं भवेत् ॥ ५० ॥ योग्यानामेव हे पुत्रि समाजोऽस्ति मखे मम ॥ अमंगलस्य ते भर्तुः कर्त्तुं दर्शनकं

ब्रह्मकुमार हँसकर सतीसे यौं बोले ॥ ४३ ॥ दक्षने कहा—हे महेश्वरि ! भूत वेताल पिशाच और शव ये ही सब उनके सहायक हैं, और उनका रूपभी करालहै ॥ ४४ ॥ वे विभूति धारण कर विषका भोजनकरते हैं, गजचर्म उनका परिधान और सर्प उनके आभूषण हैं ॥ ४५ ॥ तीन नेत्र होनेके कारण उनके अधिकांग और कामदाहक होनेसे वे स्वयम् हीनांग हैं, वे सब देवताओंसे पृथक् महाकाल होनेके कारण सबके नाशकर्त्ताभी हैं ॥ ४६ ॥ कपाल उनके भोजनके पात्र, और नरमुंडमाला उनके आभूषण हैं, उन हरकी ध्वजामें वृष, हाथमें त्रिशूल और पाश हैं, उनका कोई स्वामी ही नहीं है ॥ ४७ ॥ महादेव अकस्मात् ही हँसते, अकस्मात् नाचते और अकस्मात् ही जँभाई लेने लगते हैं, उन्होंने स्त्री अर्थात्— गंगाजीको शिरपर धारणकर रक्खा है, और त्रिपुरासुर-के पुरका दाह किया था ॥ ४८ ॥ जहांकी भूमि कंकालोंसे अलंकृत हैं ऐसे श्मशानकी भस्मीको वे अपने अंगमें लेपन करते हैं, वे स्वयं अनार्य और अनार्योंहीके संगी हैं, वंचक और अविद्वान् हैं ॥ ४९ ॥ हे महेश्वरि ! तुम्हारे पति महादेव ऐसे (अभव्यमूर्त्ति) हैं उनकी मूर्त्ति अमंगल कारी है तब वे इस मंगलकृत्यमें भागके भागी क्योंकर होसक्ते हैं ॥ ५० ॥ हे पुत्रि ! मेरे यज्ञमें योग्य व्यक्तियोंहीका समाज संगठित हुआ है, हे सती पुत्री ? अभव्यमूर्त्ति धारी तेरे योगी पतिका दर्शन मैं

शिवे ॥ नार्हामियज्ञसदसि योगिनः सति पुत्रिके ॥ ९१ ॥ दत्तासि दैवयोगेन मया पापेन तस्य वै ॥ ९२ ॥ कार्तिकेय उवाच॥इति श्रुत्वा वचस्तस्य भर्तृर्निंदात्मकं मुने॥कोपेनारक्तवर्णा सा साश्रुनेत्रा बभूव ह॥९३॥सर्वेषां पश्यतामेव सदेवासुररक्षसाम्॥ मनस्याधाय चरणौ भर्त्तुः श्रीपरमात्मनः ॥ पपात सहसा वह्नौ ज्वलिते धातृपुत्रक ॥ ९४ ॥ हाहाकाररवश्चासीत्सर्वेषां देवरक्षसाम् ॥ ततः स विस्मयाविष्टो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ न किंचिदुक्तवान्विप्र दृष्ट्वा पुत्र्या विचेष्टितम् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये सतीदेहोत्सर्गो नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

नहीं करसक्ता ॥ ९१ ॥ मुझ पापीने दैवयोग ही से उसके साथ तेरा विवाह कर दिया ॥ ९२ ॥ कार्त्तिकेय बोले— हे मुनि ! अपने पतिकी निन्दा सूचन करनेवाले दक्षप्रजापतिके ऐसे वचन सुन सतीका वर्ण मारेक्रोधके लाल होगया और उसके नेत्रोंमें आंसूभर आये ॥ ९३ ॥ देवता असुर और राक्षसों तथा और सबके देखते २ हीं हे ब्रह्मपुत्र ! अपने स्वामी महादेवजीके चरणोंको मनमें धारणकर तत्काल ही प्रचंड अग्निमें सती निपातित होगई ॥ ९४ ॥ उस समय संपूर्ण देवता और राक्षसोंका हाहाकार शब्द होनेलगा, यह देख दक्षप्रजापति अत्यन्त ही आश्चर्यान्वित होगये, और हे विप्र स्कान्द अपनी पुत्रीकी ऐसी चेष्टा देख कुछभी न कहसके ॥ ९५ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोध्यायः १०४.

स्कंद उवाच ॥ श्रुत्वा तत्पतनं विप्र भार्य्यायाया जातवेदसि ॥ क्रोधामर्षविवृत्ताक्ष आययौ भगवाञ्छिवः ॥ १ ॥ अनेकास्त्रप्रहरणा अद्भुतास्या भयानकाः ॥ केचित्पाषाणहस्ताश्च केचि-

स्कन्द बोले—भगवान् महादेवजीने जब अपनी पत्नीका अग्निमें पतन होना सुना, तब मारे क्रोधके उनकी त्यौरी चढगई और वे आये ॥ १ ॥ विविध भांतिके अस्त्रशस्त्रोंसे प्रहार करनेवाले

वृक्षसुहस्तकाः॥२॥एकपादा ऊर्द्ध्वकेशाःश्यामांगा लोहिताननाः॥ घोटकास्याश्च केचिद्वै केचिन्मार्ज्जाररूपकाः ॥ ३ ॥ केचिदंजन-कूटाभाः केचिद्भस्मविलेपनाः ॥ कबंधाश्च तथा केचिदेकहस्ता-स्तथापरे ॥४॥सिंहव्याघ्राननाः केचित्कूर्म्मास्या लम्बकर्णकाः॥ लंबस्तनाश्च केचित्तु तथा लंबशिरोरुहाः ॥५॥दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घास्या दीर्घनाशिकाः ॥ दीर्घदंष्ट्रा दीर्घदेहा दीर्घाम्बरसमा-वृताः ॥ ६ ॥ नंदी भृंगी भृंगरीटिः प्रेतास्यो वज्रनामकः ॥ कुवलाश्वोऽश्वकर्णश्च नृमुंडो मस्तकारुणः ॥ ७ ॥ पुष्पदंतो बृह-द्भानुरमिताश्वोऽश्ववाहनः ॥ डुंडिको डुंडुकश्चैव कालनामा तथैव च ॥ ८ ॥ असुरातो जनाह्लादो ह्लादकायो मिकस्तथा ॥ चंडको-ऽन्तककारश्च चंद्रराजो निशाकरः ॥ ९ ॥ एते चान्ये च वहवो गणाः शर्वस्य भो मुने ॥ कोटीनां शतकोटचश्च तथायुतशतानि च ॥ आजग्मुः सहसा तेन श्रीशिवेन महात्मना ॥ १० ॥ संदष्टौष्ठपुटाः सर्वे धावन्तः सर्वतोदिशम् ॥ कैलासादवते-

किनके अद्भुत और भयानक मुख हैं, किन्हींके हाथमें पाषाण और किन्हींके हाथमें वृक्ष हैं ॥ २ ॥ किन्हीके एक ही चरण है, किन्हींके ऊर्द्ध्वकेश हैं, किन्हीका शरीर श्याम और किन्हींके मुखलाल२ है, किन्हींके मुख अश्व जैसे थे, और कोई २ बिलावरूपधारी थे ॥ ३ ॥ कोई अंजनके ढेरकी समान काले२ और कोई भस्मलपेटे हुए थे,किन्हीं २ के केवल कवन्धही थे और किन्हींके एक ही एक हाथ थे ॥ ४ ॥ किन्हींके मुख सिंह और व्याघ्रोंके मुखकी समान थे, किन्हींका मुख कछुएकी समान था, किन्हीके कान ही लंबे २ थे, किन्हीके स्तन और किन्हीके केश लंबे थे ॥ ५ ॥ किन्हीकी ग्रीवा (गर्दन) लंबी और किन्हीके नख ही लंबे २ थे, किन्हीके मुख और किन्हीकी नासिका लंबी थी, किन्हीके देह दीर्घ और किन्ही२की दंष्ट्रा दीर्घ थीं, और किन्हीने अपने देहको विस्तृत बस्त्रोंसे आच्छादनकर रक्खा था ॥६॥ नंदी, भृंगी, भृंगरीटि,प्रेतास्य,वज्रनाभ, कुव-लाश्व, अश्वकर्ण, नृमुण्ड, मस्तकारुण ॥ ७ ॥ पुष्पदन्त, वृहद्भानु, अमिताश्व, अश्ववाहन, डुंडिक, डुंडुक तथा कालनाभ ॥ ८ ॥ असुरात, जनाल्हाद तथा आह्लादका-य और आमिक, चण्ड, अन्तकारक, चन्द्रराज, निशाकर ॥ ९ ॥ ये सब तथा अन्यान्य बहुतसे, महादेवजीके गण, कोटियोंके सौकरोड़, और दशसहस्र सैकड़े इतने महादेवजीके साथ उस समय आये ॥ १० ॥ वे सब मारेक्रोधके ओष्ठोंको काटते हुए सबओरको भागते थे, इसप्रकार वे सब

रुश्च नृत्यंतश्च तथा परे ॥ ११ ॥ कुर्वंतश्च महाशब्दं साट्ट-हासं तथा द्विजाः ॥ तत्रसुः सर्वभूतानि समुद्राश्च चकंपिरे ॥ ॥ १२ ॥ चकंपे वसुधा विप्र प्रचंडतिमिराहता ॥ १३ ॥ शिवोऽपि तत्रास्थिनृमुंडमालः क्रुद्धः स्फुरन्नेत्रकपालवह्निः ॥ त्रिशूलहस्तो हरिचर्म्मशोभो दन्तप्रदष्टौष्ठपुटः करालः ॥१४॥ स धूर्जटिः कालकरालरूपो भयंकरो भीमभुजंगयुक्तः ॥ वमद्विषज्वालभुजंगमोसौ तडित्प्रभाभासुरनेत्रकान्तिः ॥१५॥ उत्थाय रुद्रः सहसा हसंस्ततो गंभीरघोषो जगदीश्वरः शिवः ॥ ससर्ज भूमौ पुरुषं महांतं सहस्रबाहुं वपुषा दिवं गतम् ॥ १६ ॥ त्रिसूर्य्यदृष्टिं घनरुक्प्रकाशं करालदंष्ट्रं ज्वलदग्निमूर्द्धजम् ॥ नृमुंडमालं विविधोद्यतायुधं ददर्श देवो भुवि ह्यग्रतः स्थितम् ॥ १७ ॥ स प्रत्युवाचाथ महेश्वरं तं किं कर्म कर्तुं स्मरणं ममाद्य ॥ गृणंतमित्येव महो महेशः समादिशत्कार्यमिति स्फुटेति ॥ १८ ॥ श्रीशिव उवाच ॥

नृत्य करते २ कैलास पर्वतके ऊपरसे उतरे ॥ ११ ॥ हे द्विजराज ! वे अट्टहास और महाशब्द करते थे, उनकी इस करतूतसे समस्तप्राणी त्रसित होगये, और समुद्र कंपायमान होगये ॥१२॥ हे विप्र ! प्रचंड अन्धकारसे व्याप्तहोकर भूमिभी कंपायमान होगई ॥ १३ ॥ महादेवजीभी वहाँ अस्थि और नरमुंडमाला धारणकिये क्रोधित हुए, उनके भालके नेत्रमें अग्नि धकधकाने लगी उनके हाथमें त्रिशूल था, बघाम्बरकी शोभा उनके देहके ऊपर अपूर्व थी, वे अपने ओष्ठोंको काटने लगे ॥ १४ ॥ उस समय उन धूर्जटिमहादेवजीका रूप अतिकराल होगया, भयंकर सर्पोंसे संपन्न होनेके कारण वे अतिशय वीभत्स प्रतीत होते थे, उनके नेत्रोंकी कान्ति विद्युत्की प्रभाकी सदृश थी वे क्रोधसे प्रचंडविषका मानो उद्गमन करते थे ॥१५॥ जगत्के ईश्वर रुद्रमूर्त्ति महादेवजी उस समय गंभीर स्वरसे हास्य करते २ उठे और उन्होंने भूमिके ऊपर एक ऐसे सहस्र बाहुपुरुषको उत्पन्न किया जिसका शरीर आकाशपर्यन्त लम्बायमान था ॥ १६ ॥ सूर्य्यकी समान दृष्टि और बिजलीकी सदृश प्रकाश था, उसकी दंष्ट्रा कराल और केश अग्निकी समान चमकीले थे, उसने नरकपालोंकी माला धारण कर रक्खी थी, और उसने अनेक आयुधोंको उद्यतकर रक्खा था, महादेवजीने ऐसे पुरुषको अपने अगाड़ी उपस्थित देखा ॥ १७ ॥ तब वोह पुरुष महादेवजीसे बोला आज किस कार्य्यको सम्पादित करनेके लिये मेरा स्मरण किया है। इस प्रकार संभाषण करतेहुएको महादेवजीने स्फुट यह आज्ञा दी ॥१८॥ श्रीमहादेवजी बोले—क्योंकि हमारे गणोमें तुम्हीं अग्रणी हो

दक्षं जहि स यज्ञं हि त्वमेव प्रमथाग्रणीः॥ उद्भटोऽसि महांस्त्वं हि न हि त्वत्सदृशः क्वचित् ॥ १९ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्याज्ञतः शिवेनासौ श्रीशिवं परिचक्रमे ॥ नमस्कृत्वा च पुरुषो ययौ प्रमथसंवृतः॥२०॥नदंतश्च प्लवंतश्च हसंतःप्रमथा गणाः ॥ अग्रे कृत्वा च तं देवं देवजं कृष्णपिंगलम्॥२१॥उद्यम्यशूलं सहसा जगत्संहारकारकम् ॥ प्राद्रवद्देवसैन्यानि महाकाल इवांतकः ॥ ॥२२॥ दृष्ट्वा तदद्भुतं सर्वे उदीच्यां रज उत्थितम् ॥ ऊचुः परस्परं यज्ञे सदस्या ऋत्विजश्च ते ॥ २३ ॥ किमिदं किमिदं जातं केचिद्ध्यानपरास्तथा ॥ जाताश्च विस्मयाविष्टा द्विजपत्न्यश्च ते द्विजाः ॥ २४ ॥ वाता न वांति प्रथमं कथं कल्प उपस्थितः ॥ दस्यवः किं भविष्यंति कुकितःप्राचीनबर्हिषः॥२५॥अहोऽहह ह किमयं प्रलयः समुपस्थितः॥किं कर्त्तव्यमतो ह्यस्मात्कुत्र वा गम्यतां त्वरम् ॥ २६ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ ततो ददर्श पुरुषं शूलाग्रग्रथितेभकम् ॥ गर्ज्जंतं सर्वसैन्यानि द्रवंतं मुनिवंदितम् ॥२७॥ उवाच तान्देवगणान्साध्यान्वै मरुतो गणान् ॥ सज्जीभवथ यु-

अतएव यज्ञसहित दक्षप्रजापतिको जीतो, क्योंकि तुमबड़े वीरहो और तुम्हारे सदृश अन्यकोई बली नहींहै ॥ १९ ॥ स्कन्दबोले–महादेवजीके द्वारा इस प्रकार आज्ञादिये जानेपर इसपुरुषने उनकी परिक्रमा करी, फिर उन्हें प्रणामकर प्रमथों सहित वह वहाँसे चलदिया ॥ २० ॥ महादेवजीसे प्रादुर्भूत हुए कृष्ण और पिंगलवर्णके उसपुरुषको अगाड़ीकर प्रमथगण दौडते कूदते और हँसते हुए चलदिये ॥ २१ ॥ संसारका संहारकरने वाले त्रिशूलोंको उन्होंने उठारक्खाथा, महादेवजीकी सेना उससमय ऐसी दौडी जैसे साक्षात् कालदौंडता है ॥ २२ ॥ जब सभासदों और ऋत्विजोंने उत्तर दिशाकी ओर इसप्रकार रजको उडते देखा, तब वेसब यज्ञमें परस्पर कहने लगे ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! यह क्याहुआ ? और कुछव्यक्ति जोध्यानमें बैठेथे वेभी आश्चर्य समन्वित होगये, एवं द्विजपत्नियेंभी मोहित होगईं ॥ २४ ॥ यह कैसाकल्प उपस्थित होगया कि, पवन नहीं चलती, अथवा दस्युओंका प्रादुर्भाव होगा, इन्द्रदेव कहां हैं ? ॥ २५ ॥ हाय क्या यह प्रलय उपस्थित होगया ? अब क्या करैं अथवा शीघ्रतासे कहां भाग जाय ॥ २६ ॥ स्कन्द बोले–इसके अनन्तर उन्होंने ऐसेपुरुषको अवलोकन किया जिसने त्रिशूलके अग्रभागमें हस्तीको छेदरक्खाथा, और हे मुनिवन्दित ! गर्जनापूर्वक दौडी आनेवाली सेनाकोभी उन्होंने देखा ॥ २७ ॥ तब उसने देवसमाज

द्धाय नानाशस्त्रविशारदाः ॥ २८ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य कुपितस्य हि ॥ उत्तस्थुः सर्वतो देवा युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ २९ ॥ आदित्या वसवो देवाः साध्याः किन्नरगुह्यकाः॥विश्वेदेवाश्च पितरो गन्धर्वाः उरगाः खगाः॥३०॥ मुनयो मानुषाश्चैव तथान्ये तच्छरीरजाः॥ ऐरावतं समारुह्य वासवोऽपि समाययौ॥३१॥ नानादेवगणैस्सार्द्धं दक्षसाहाय्यकारकः॥ नानाशस्त्रप्रहरणा युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ ३२ ॥ यज्ञस्याविघ्नकर्त्तारः संदष्टौष्ठपुटाश्च ते॥कुर्वन्तस्तूर्य्यघोषांश्च तथा शंखवान्द्विजाः॥३३॥तेऽपि प्रमथनाथाश्च चक्रुः कोलाहलं परम्॥घंटाशतानि नादंते शिवो जयति सर्वदा ॥ ३४ ॥ इतीरयंतः सुगिरो नानापर्वतशोभिताः ॥ चक्रुः परस्परं युद्धं लोमहर्षणकारकम् ॥३५॥ देवगणाः शिवगणाः संदष्टौष्ठपुटास्तथा ॥ छिंधिछिंधीति शब्दांश्च भिंदिभिंदि तथैव च ॥ ३६ ॥ हनहन महादुष्टं तिष्ठतिष्ठेति

साध्य और मरुद्गण इनसभीको यह आज्ञादीकि, हेशस्त्रविशारदो ! युद्धकरनेके लिये उद्यत होजाओ ॥ २८ ॥ स्कन्द बोले–जब क्रोधित हुए दक्षप्रजापतिके उन्होंने येवाक्य श्रवणकिये- तब देवतागण युद्धकरनेके लिये निश्चयकर चारों ओरसे उठे ॥ २९ ॥ आदित्य, वसु, देव, साध्य, किन्नर, गुह्यक, विश्वेदेवा, पितर, गन्धर्व, सर्प और पक्षीगण ॥३०॥ मुनि, मनुष्य येसब, तथा अन्यान्य जोउसके शरीरसे उत्पन्न हुएथे वेसब युद्धके लिये उद्यत हुए ऐरावत हाथीके ऊपर आरूढ़हो इन्द्रभी पधारे ॥ ३१ ॥ और अनेकदेवताओंको साथलाय उन्होंने दक्षकी सहायताकरनेका विचार किया । अनेक प्रकारसे शस्त्रोंसे प्रहारकरनेवाले देवताओंने युद्धकरनेके लिये निश्चयकर लिया कि, ॥३२॥ यज्ञमेंविघ्न न हो इससे वे क्रोधपूर्वक ओष्ठोंको काटने लगे, हेद्विज ! उससमय अनेक वाद्य और शंखोंका नाद होनेलगा ॥ ३३ ॥ और उनप्रमथोंके स्वामी आदिनेभी सैकडों घंटोंको बजाय महादेवजीकी सर्वदा जयका उच्चारणकर कोलाहल करना प्रारंभ करदिया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार विविध वाणियें बोलते और अनेक पर्वतोंका धारणकरे, लोमहर्षणकारीघोर युद्ध करने लगे ॥ ३५ ॥ देवगण और महादेवजीके गण, अपने २ ओष्ठोंको काट, काटो २, फाडो २ ॥ ३६ ॥ महादुष्टको मारो २,खडेरहो २ यों कह२ कर देवता और प्रथमगण परस्पर युद्ध कर-

चासकृत् ॥ वदन्तो युयुधुर्देवास्तथा प्रमथसत्तमाः ॥ ३७ ॥ पाषाणैः पर्वतैः केचिल्लगुडैश्च तथापरे ॥ त्रिशूलैः पट्टिशैः खड्गैस्तोमरैः शक्तिभिस्तथा ॥३८॥ एवं परस्परं युद्धं चक्रुर्देवगणास्तथा॥ न रात्रिर्नैव दिवसो न संध्याश्च तथैव च ॥ नो व्यज्यंत तदा विप्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ३९ ॥ सोऽपि वै कालपुरुषो ननर्त्त च रणांगणे ॥ अट्टहासं तथा चक्र नेत्रज्वालासमावृतः ॥ ४० ॥ तस्य शब्देन सर्वेषां व्याकुलं चाभवन्मनः ॥ तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्देवाः सिद्धा गंधर्व्वपन्नगाः ॥ ४१॥ दृष्ट्वा तदा द्रवंतस्ताञ्छक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ प्रोवाच सर्वसैन्यानि गजराजो परिस्थितः ॥ आश्चर्य्यमतुलं मत्वा दृष्ट्वा तद्गणचेष्टितम् ॥ ४२ ॥ इंद्र उवाच ॥ रेरे देवगणाः सर्वे निवर्त्तध्वमशंकिताः ॥ युद्धं कुरुत मा भैष्ट प्रमथैः सह संयुगे ॥ ४३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इंद्रस्य वचनं श्रुत्वा सर्वे देवा महामते ॥ नानाशस्त्रप्रहरणा युद्धाय विनिवर्त्तिताः ॥ ४४ ॥ ततो बभूव तुमुलं युद्धं वै लोमहर्षणम् ॥ देवानां प्रमथानां च महासंवर्त्तकोपमम्॥ ॥ ४५ ॥ अर्दयंति स्म सकलान्महादेवगणांस्ततः ॥ इतस्तत-

ने लगे॥३७॥कोई पाषाण,कोई पर्वतों,कोई लाठियों कोई त्रिशूल पट्टिश खड्ग तोमर और शक्तियोंसे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार देवगण और प्रमथगण परस्पर युद्धकरने लगे, उस घोर अन्धकारमें रातदिन वा सन्ध्यामें कभी नहीं ठहरे ॥ ३९ ॥ और वह कालपुरुषभी रणभूमिमें नृत्य करने लगा । और नेत्रोंको प्रज्वलित बनाय अट्टहास करने लगा ॥ ४० ॥ उसके नादको सुनकर सभीका मन व्याकुल होगया, और उसका अवलोकनकरके देवता सिद्ध गन्धर्व और सर्प सभी पलायन करगये ॥४१॥ जब त्रिलोकीनाथ इन्द्रने इन सबको इस प्रकार विचालित हुए देखा, तब गजराज ऐरावतके ऊपर बैठे २ ही अपनीं सेनासे यों कहा और गणोंकी इस चेष्टाको देख उन्हें बडा आश्चर्य हुआ ॥४२॥ इन्द्रबोले—अरे देवताओ ! यद्यपि तुम शंकित होरहे हो तथापि लौट आओ तुम भय कुछ न करके शिवजीके गणोंके साथ समरभूमिमें युद्ध करो ॥ ४३ ॥ स्कन्द बोले—हे महामति ! इन्द्रके ऐसे वचन सुनकर सब देवता अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे प्रहारकर युद्ध करनेकी कामनासे लौट आये ॥ ४४ ॥ उस समय देवताओं और महादेवजीके गणोंका प्रलयकी समान घोर अत एव लोमहर्षणकारी युद्ध हुआ ॥ ४५ ॥ तब तो महादेवजीके गण सबहीको पीडित करनेलगे, और

श्च धावंतो विनेशू रुधिरोक्षिताः ॥४६॥ एकबाह्वक्षिचरणा निपेतुर्धरणीतले ॥ हाहाकाररवांश्चैव कुर्व्वंतो नितरां गणाः ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवो महादेवसमुद्भवः ॥ चकार घंटानिनदं संदष्टौष्टपुटः पुनः ॥ ४८ ॥ युयुधुर्देवसंघैश्च पाषाणैः पर्वतैर्भृशम् ॥ ततस्ते पार्षदाः सर्वे समुत्तस्थुर्महीतलात् ॥ ४९ ॥ निरामया निरातंका द्विगुणं बलमाश्रिताः ॥ चक्रुः कोलाहलं शब्दं संदष्टौष्टपुटाः पुनः ॥ ५० ॥ अर्द्दयामासुरसुरान्देवादीन्वासवेरितान् ॥ तयोश्च सेनयोर्मध्ये जातो वै रुधिरार्णवः ॥ ५१ ॥ उत्पेतुर्गगने तूर्णं महादेवगणास्ततः ॥ आकाशं छादयामासुः कृतांता इव कोपिताः ॥ ५२ ॥ निपेतुर्यज्ञभूमौ तु यत्र देवाः सवासवाः ॥ प्राग्वंशं प्रमथाः केचित्केचिदाग्नीध्रकांस्तथा ॥ ५३ ॥ पत्नीशालां तथा केचिद्बभञ्जुः कुपितास्तथा ॥ महानसं च केचित्तु चूर्णयामासुरुत्तमाः ॥ ५४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तद्विहारं तथापरे ॥ अग्नीन्वै नाशयामासुर्बिभिदुर्वेदिकास्तथा ॥५५॥ कुंडेष्वमूत्रयन्केचिद्विष्ठां चक्रुस्तथा परे ॥ मुनीनां च तथा पत्नीरेके

रुधिरमें लथड़ पथड़ हो इधर उधर भागकर सब स्वयं भी विनाश होनेलगे ॥ ४६ ॥ किसीका एक हाथ और एकपैर टूटगया, किसीका एक नेत्र ही फूटगया, सुतराम् वे अत्यन्तही हाहाकार करने लगे ॥ ४७ ॥ उसी समय महादेवजीने क्रोधसे ओष्ठोंको काटकर घंटाका शब्द किया ॥ ४८ ॥ तब तो उनके सभी पार्षद भूमिके ऊपरसे उठ बैठे और देवसमुदायके साथ पाषाण और पर्वतोंसे अत्यन्तही युद्धकरने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय उन्हें पीड़ा और भयकुछभी न रहा, प्रत्युत उनमें बल दूना होआया, क्रोधसे ओठोंको काट २ के वे सबही कोलाहल करनेलगे ॥ ५० ॥ अथ च इन्द्रके प्रेरणा किये हुए देवताओं तथा असुरोंको हननकरने लगे, उक्त दोनोंसेनाओंके मध्यमें रुधिरका समुद्र प्रादुर्भूत होगया ॥ ५१ ॥ तब तो महादेवजीके गण आकाशमें उछलने कूदने लगे, सुतराम् क्रोधाविष्ट हुए कालकी समान उन्होंने आकाशको आच्छादन कर लिया ॥ ५२ ॥ अथच जहां यज्ञशालामें इन्द्रआदि देवता उपस्थितथे वहां निपतित होनेलगे, कोई अग्निकुंड और कोई चमस ॥ ५३ ॥ कोई पत्नीशाला और कोई अग्न्यागारको, एवं कोई भोजनभवनको नष्टकरने लगे ॥ ५४ ॥ किसीने यज्ञपात्रोंको भग्नकर डाला, किसीने अग्निका सत्यानाशकर डाला, और किसीने वेदीहीको लौट पौट डाला ॥ ५५ ॥ कोई २ कुण्डोंमें

ग्भिरतर्जयन् ॥ ५६ ॥ केचिद्वै जगृहुर्देवानासन्नांश्च पलायितान् ॥ मणिमान्नाम विप्रर्षे बबन्ध भृगुमंजसा ॥ ५७ ॥ वीरभद्रोऽपि दक्षं च चंडीशः पूषणं तथा॥नंदीश्वरोऽग्रहीद्विप्र भगं नाम महाबलम् ॥ ५८ ॥ सर्वांस्तानृत्विजो देवः सदस्यान्सदिवौकसः ॥ अर्द्दयामासुरुग्रास्ते ग्रावभिर्मुष्टिभिस्तथा ॥ ५९ ॥ तांस्ते तथाविधान्दृष्ट्वा शेषास्ते प्राद्रवन्दिशः ॥ सदस्यादाय सवर्षां मणिमान्नाम नामतः ॥ ६० ॥ भृगोः श्मश्रूणि सहसा कुलंच प्रहसन्निव ॥ पातितस्य भृगोश्चाथ नेत्रे वै उज्जहार सः ॥ ६१ ॥ नंदीश्वरो महादेवगणो वै विप्रसत्तम ॥ चंडीशः पातयद्दन्तान्पूष्णश्चैव महामते ॥ ६२ ॥ शप्यमानं महादेवं दन्तान्योऽदर्शयत्खलः ॥ वीरभद्रो महाबाहुर्दक्षस्योरसि हेतिना ॥ आक्रम्य सहसा पद्भ्यां छिन्दन्नपि महेश्वरः ॥ ६३ ॥ तदुद्धर्तुं हि शस्त्रैश्च स मंत्रैरपि तत्त्वचम् ॥ अभिन्दन्स तदा देवो वीरभद्रो महागणः ॥ ६४ ॥ विस्मयं परमं लेभे दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं मखे तस्य प्रजापतेः ॥ ६५ ॥ तेनासौ वीरभ-

त्सर्ग करने लगे, किसीने मलका परित्याग करदिया, एवं च कोई २ गालियें देकर मुनिपत्नियों को त्रस्तकरने लगे ॥ ५६ ॥ धोरेको निकलकर भागते हुए देवताओंहीको कोई पकड़ लेतेथे, हे ब्रह्मर्षी ! मणिमान् नामगणने भृगुजीहीको पकड़के बांधलिया ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! वीरभद्रने दक्षको, चण्डीश्वरने पूषाको, और नन्दीश्वरने महाबलीभग (सूर्यको) पकड़ लिया ॥ ५८ ॥ उस यज्ञीय सभामें उक्तगणोंने सबऋत्विजों और देवताओंको पाषाण और मुष्टिकाओंसे ताड़न किया ॥ ५९ ॥ उनसबकी ऐसी गतिदेख अन्य जो शेषरहेथे चारों ओरको भागने लगे । तब मणिमान्ने उस सभामें सबके समक्षही ॥ ६० ॥ भृगुकी दाढीमूछोंकों हँसते २ नोंच डाला, और तत्कालही उनके नेत्रोंकोभी निकाल लिया ॥ ६१ ॥ हे द्विजसत्तम ! महादेवजीके नन्दीश्वर गणने हे महामते ! पूषाके दांतोंको उखाड़ लिया ॥ ६२ ॥ और शयनकरते महादेवजीको उसके दांतोंका अवलोकन कराया । महाबाहु वीरभद्रने दक्षको पकड़कर उसके हृदयको तीव्रतासे विदीर्ण कर डाला ॥ ६३ ॥ इसी प्रकार अनेक अस्त्रशस्त्रोंसे दक्षप्रजापतिके पक्षवालोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६४ ॥ प्रजापतिके यज्ञमें ऐसा अद्भुत कौतुक देखकर महादेवजीको अतिशय आश्चर्य्य हुआ ॥ ६५ ॥ तब तो वीरभद्रने पशुरूप यजमानके तत्कालही अपने हस्तलाघवको दिखाके उसको

द्रस्तु यजमानपशोः शिरः॥कायात्समाहरच्छीघ्रं दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ ६६ ॥ साधुवादो बभूवाथ प्रमथानां महात्मनाम् ॥ हाहाकाररवश्चासीदन्येषां च मुनीश्वर ॥ ६७ ॥ अग्नौ जुहाव तच्छीघ्रं दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तत्कृत्वा स महादेवः प्रतस्थे गिरिनायकम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे केदारखंडे मायाक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

देहसे पृथक् करदिया ॥६६॥ हे मुनीश्वर ! महात्मा प्रमथगणतो उस समय धन्यवादका उच्चारण करनेलगे, और अन्यव्यक्ति हाहाकार करने लगे ॥ ६७ ॥ वीरभद्रने क्रोधपूर्वक उसके शिरको शीघ्रही प्रचण्ड अग्निमें झोकदिया, इस प्रकार होजाने पर महादेवजी कैलास पर्वतके ऊपर चलेगये ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुरधिशकततमोध्यायः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः १०५.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अथ सर्वे देवगणाः प्रमथैश्च पराजिताः ॥ शरैर्निकृत्तसर्वांगा ऋत्विग्भिः सहितास्तथा ॥ १ ॥ सदस्याश्च निरुत्साहाः श्रीमत्प्रमथनिर्जिताः ॥भयाकुलास्ततः सर्वे प्रणम्योचुर्महेश्वरम् ॥ २ ॥ देवगणा ऊचुः ॥ ॥ क्षम्यतां क्षम्यतां देव क्षमासारा भवादृशाः॥ यदि मन्येयुरधियां भवंतो वापराधकम् ॥ उत्कृष्टता कथं देव भवतां प्रवरात्मनाम् ॥ ३ ॥ वयं मानप्रमत्ताः स्मः स्वतो भागो भवादृशाम्॥नो चत्त्वामनमन्देव तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ४ ॥ ज्ञातोऽसि त्वं महादेव देवानामपि

स्कन्दबोले—अबतौ प्रथमगणोंने बाणोंसे सबअंगोंका छेदनकरके ऋत्विजों और देवताओंको पराजित कर दिया ॥ १ ॥ महादेवजीके प्रमथगणोंके द्वारा पराजित होजानेके कारण सबसभासदोंका उत्साह भंगहोगया, सुतराम् भयभीतहो प्रणामकर महेश्वरसेयौं बोले ॥ २ ॥ देवसमाजने कहा--हे देव ! क्षमाकरो ! ! क्षमाकरो ! ! ! आपजैसे महात्माक्षमाकरनेहीमें अपनापराक्रम समझते हैं, यदि अन्यान्य व्यक्तियोंकी भाँति आपकोभी क्रोधका आवेश होजायतो आप जैसे महात्माओंकी उत्तकृष्टता कैसे निष्पादितहोसक्ती है ॥ ३ ॥ हमलोग अभिमानसे उन्मत्त होरहे हैं, आप स्वयंही सौभाग्यशाली हैं, और यह सबतो हमारेही कर्मोका फल है ॥ ४ ॥ हेमहादेव ! हमने

देवता ॥ ५ ॥ पुरुष उवाच ॥ यथा यूयं तथाहं वै किंकरो जगदीशितुः ॥ गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कृतागसि महेश्वरे ॥ ६ ॥ प्रसादयध्वं ॥ भक्त्या वै विरोधं त्यज्य सत्वरम् ॥ निजक्षेमनिमित्तं हि भक्तिगम्यं महेश्वरम् ॥ ७ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे देवगणास्ततः ॥ वेपमाना भयग्रस्तास्त्राहि त्राहीति चासकृत् ॥ ८ ॥ वदन्तो मुनयः सिद्धाः सदस्याः सर्त्विजस्तदा ॥ ब्रह्मणं पुरस्कृत्य सबद्धांजलयश्च ते ॥ ९ ॥ महादेव महादेव महादेवेति वै पुनः ॥ गृणंतो विबुधाः सर्वे हाहाकाररवांस्तथा ॥ कैलासं रुरुधुश्चैव सेंद्राः सर्वदिवौकसः ॥ १० ॥ वनस्थलीश्च पश्यंतो हिमपुंजविमंडिताः ॥ स्वर्णान्वृक्षांस्तथा विप्र पुंस्कोकिलसुकूजितान् ॥ ११ ॥ पापिसंदुर्गमांस्तत्र वापीः स्वच्छजलाश्च ते ॥ कुमुदोत्पलशोभाढ्या अलिपुंजमनोहराः ॥ १२ ॥ नानापक्षिमृगाकीर्णा न्नानाभिल्लशताकुलान् ॥ पर्वतान्सर्वतो विप्र पश्यंतो वासवादयः ॥ १३ ॥ जग्मुः कैलासशिखरे नानामुनिगणान्विते ॥ तत्र गत्वा

लिया कि, आप देवताओंके भी देवता हैं ॥ ५ ॥ पुरुष बोला--जैसे तुम वैसेही मैंभी जगदीश्वका एक सेवकहूं, अत एव तुम सब उन्हीं महादेवजीके पास जाओ जिनका कि, तुमने अपराध किया ॥ ६ ॥ अपनी कुशलके निमित्त विरोधका परित्यागकर भक्तिगम्य महादेवजीको भक्तिभावसे प्रसन्नकरलो ॥ ७ ॥ स्कन्द बोले--उसके ऐसे बचन सुन भयभीतहोनेके कारण कंपायमान होते हुए देवतालोग हमारी रक्षाकरो रक्षाकरो इसप्रकार बार २ कहते हुए ॥ ८ ॥ मुनि सिद्ध सभासद और ऋत्विज ब्रह्माजीको अगाड़ी करके हाथ जोड ॥ ९ ॥ बारंबार महादेव २ नामोच्चारण करते हाहाकार शब्दका उच्चारण करने लगे और इन्द्रआदि सबदेवताओंने कैलास पर्वतको घेरलिया ॥ १० ॥ वहांकी वनस्थली हिम पुंजसे समलंकृत होरही थीं, हे विप्र ! सुवर्ण सदृशवृक्षोंके ऊपर पुंस्कोकिल शब्दकर रहेथे ॥ ११ ॥ वहां सभी बावियोंका जल स्वच्छ था, कुमुद (बबूले) और कमलोंकी शोभा होरहीथी, उनके ऊपर भ्रमरगण गुंजार कर रहेथे ॥ १२ ॥ वोह स्थान अनेक पक्षिगण और मृगोंसे आकीर्णथा, विविधभांतिके सैंकडों भील वहां व्यासहो रहेथे, ऐसेही पर्वतोंको इन्द्रादि देवताओंने सब ओरसे अवलोकन किया ॥ १३ ॥ इसी क्रमसे देखते कैलास पर्वतके ऊपर पहुँचे, जहां उसके शिखर पर अनेक मुनिगण विराजमान होरहेथे, वहां पहुँचकर विभूतिसे विभू-

महेशानं ददृशुर्भूतिभूषितम् ॥ ॥ १४ ॥ सर्प्पालंकारसंयुक्तं गज-चर्म्मोपशोभितम् ॥ प्रियया रहितं देवं सर्वज्ञं परमेश्वरम् ॥ १५ ॥ त्रिनेत्रं परितो विप्र सिद्धचारणसेवितम् ॥ सनकाद्यैर्महाभक्त-स्तूयमानं विभुं सुराः ॥ १६ ॥ चिंतयंतं सतीं देवीं लोकानां मोहहेतवे ॥ दृष्ट्वा शिवं राजमानं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥ भक्त्या गद्गदया वाचा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमो नमस्ते शतशो नमस्ते विभो त्रिनेत्रारिनिषूदन प्रभो ॥ त्वमेव पाता सुरमानवानां त्वमेव हर्त्ता नयनाग्निना च ॥ १८ ॥ न चादिरंतर्न च रूपमस्ति ते त्वमेव हे नाथ सुराधिकारणम् ॥ वयं हि देवेशवर प्रभो भोः संमोहितास्ते जगदात्मशक्त्या॥१९॥ न विद्महेंतर्भवतो भवेश रूपं न भेदं किल सर्वमध्ये ॥ अहं न जाने नितरामिदानीं सर्वस्य विश्वस्य परं निदानम् ॥ २० ॥ शिवस्य शक्तेश्च परं तु यद्वै तद्वै भवानादिजनिर्महेश ॥ भिन्नश्च

षित हुए महादेवजीका उन्होंने दर्शन किया ॥ १४ ॥ उन्होंने सर्पोंके अलंकार धारण कर रक्खे गजचर्मसे उनकी शोभा और भी वृद्धिगत होरहीथी ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर प्रिया विहीन वहां वि-जमान होरहेथे ॥ १५ ॥ त्रिनेत्रधारी महादेवजीके चारों ओर हे विप्र? सिद्ध और चार सेवाकरतेथे, एवम् उन सर्व व्यापककी सनक आदि भक्तगण स्तुति कर रहेथे ॥ १६ लोकोंके मोहकी कामनासे भगवान् महादेवजी सतीका शोचकर रहे थे, देखा कि, महादे दूसरे कैलासपर्वतकी समान सुशोभित होरहेहैं, तब तो भक्तिभावपूर्वक ब्रह्माजी स्तु करनेको उद्यत हुए ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले— हे त्रिपुरासुर विनाशी प्रभो ! हे त्रिने धारी स्वामी ! आपको बारंबार नमस्कार है, हे नाथ ! देवता और मनुष्यों के रक्षक तथा ने अग्निके द्वारा उन को भस्मकरने वालेभी आपही हैं ॥ १८ ॥ आपका आदि अन्त तथा रू कुछभी नहीं है, हे नाथ ! देवताओंके अधिकारी भी आपही हैं, ॥ १९ ॥ हे देवप्रवर ! अतएव देवराज ! आपकी जगदात्म शक्तिके द्वारा हम सब लोग मोहित होरहे हैं हे जगन्नाथ ! हम आप अन्त, रूप अथवा भेदको कुछभी नहीं जानते हैं, यद्यपि आप अवश्यही सबके मध्य व्यापक हैं तथापि संपूर्ण संसारके परमकारणरूप आपको मैं विलकुलभी नहीं जानता ॥ २० आपकी शक्तिका परमतत्त्व जो कुछ है वह सब आपही हैं, आपही साक्षात् भगवान् हैं जो आप

त्वया भगवान्भवान्वै त्वत्संगता सा जगदात्मशक्तिः ॥ २१ ॥
र्वं सृजंतीति वदंति सर्वे येषां मनस्त्वच्चरणारविंदे ॥ पुन
त्वमेवाखिललोकपालको मायागुणप्रेरणया महेश्वरः ॥ २२ ॥
त्वमेव चांते निधनप्रकारको भवस्य भिन्नो भगवान्भवा भवान्॥
त्वमेव धर्मार्थसुखप्रवर्त्तको यज्ञो भवान्सर्वगतस्त्वमेकः ॥ २३ ॥
त्वयैव देवेश भवेश सेतवो धर्मस्य तत्त्वस्य कृताः पुरातनाः ॥
यद्वै परं ब्रह्म महेश योगिनो ध्यायंति तत्त्वार्थ विदोऽक्षरं परम्
॥ २४ ॥ निर्लेपकं ज्योतिरमेयमीश्वरं तद्वै भवान्भावितसर्व-
जीवकः ॥ सत्कर्मणां कर्म भवान्भवाकरः सुमंगलं यद्भव
मङ्गलानाम् ॥ २५ ॥ तेजः परं यद्रविपूर्वकानां त्वमेव यद्वै यद्-
किंचिदस्ति ॥ यद्बुद्धिदाता भगवान्महेश्वरः कुबुद्धिदस्त्वं भव-
बन्धकारणम् ॥ २६ ॥ यद्वै जगत्यां क्रियते हि जंतुभिः सर्वस्य
बीजं जगदाकर प्रभो ॥ दक्षेण यद्वै कृतमाननाशनं समास्यते
सर्वसुहृद्विपत्सु च ॥ २७ ॥ न जायते वै महतां भवादृशां मान-

आसक्त रहते हैं, उनको आपकी आत्मशक्तिका लाभ होता है ॥ २१ ॥ जिनका मन आपके चरणारविन्दमें संलग्न होरहा है, उन्हें सबकुछ निर्माणकरनेकी शक्ति प्राप्त होजाती है, हे महेश्वर ! मायाके गुणोंको प्रेरितकरके आपही सब जगत्का निर्माणकरते हैं ॥ २२ ॥ आपही अन्तसमय सबका संहार करते हैं, हे स्वामी ! आप संसारसे पृथक् हैं, धर्म अर्थ और सुखके प्रवर्तक आपही हैं, यज्ञस्वरूप एवम् सर्वव्यापकभी केवलएक आपही हैं ॥ २३ ॥ हे देवाधिदेव महादेव !! आपहीने धर्मतत्त्वके सेतुओंका निर्माण किया है, हे महेश्वर ! तत्त्वार्थके ज्ञाता योगीजन जिस अविनाशी परब्रह्मका ध्यानकरते हैं ॥ २४ ॥ वोह निर्लेप ज्योतिःस्वरूप, विकारशून्य ईश्वरआप ही हो, सबजीव आपहीके द्वारा प्रति बोधित होते हैं, सत्कर्मोंके शुभफलदायक और मंगलभवन आपही हैं ॥ २५ ॥ सूर्य्य आदि तेजस्वियोंका तेज, अथवा और भी जो कुछ है वह सब आप ही हैं । सुबुद्धि तथा सांसारिक बन्धनकी कारणभूत कुबुद्धियोंके दाताभी आपही हैं ॥ २६ ॥ हे जगज्जनक प्रभो ! संसारमें जीवधारी जो कुछभी करते हैं उससभोंके बीज आप हैं, दक्षने शत्रुओंकी समान जो आपके मानका विनाश करनेकी चेष्टा की है ॥ २७ ॥ सो हे महेश्वर ! उसके दुराचरणसे आप जैसे गरिष्ठोंके मानका भंगकदापि नहीं होसक्ता, अत एव दक्षकृत अपराधको क्षमा करके,

स्य भंगः कुकृतो महेश्वरः ॥ क्षमस्व दक्षस्य कृतापराधं रक्षस्व लोकान्स्वकृतानकाले ॥ २८ ॥ लयं विभो देववर प्रभेशनेत्रं प्रगच्छंति तरां हि सर्वे ॥ २९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो वै भगवान्पुरारिर्धात्रा स बद्धांजलिना मुनीश ॥ मुनीश्वरा वै प्रणतार्त्तिनाशं महेश्वरं तुष्टुवुरामहेंद्राः ॥ ३० ॥ मुनिगणा ऊचुः ॥ क्षमस्व हे नाथ दुरात्मभिः कृतं महेश नानाविधमप्यशेषकम् ॥ यद्वापराधं तव भागनाशनं रक्षस्व सर्वाणि जगंति नायकः ॥ ३१ ॥ नमस्तस्मै महेशाय नमस्तस्मै हि भूभृते ॥ नमस्तस्मै निरीशाय नमस्तस्मै सुबाहवे॥ ३२॥ नमस्तस्मै सुनेत्राय नमस्तस्मै विबाहवे॥ नमस्तस्मै विशुरवे नमस्तस्मै प्रधावते॥ ३३॥ नमस्तस्मै महेंद्राय नमस्तस्मै हि धावते ॥ नमस्तस्मै विषवते नमस्तस्मै स्थिरात्मने ॥ ३४ ॥ नमस्तस्मै सुविभवे नमस्तस्मै शिवात्मने ॥ ३५ ॥ इंद्र उवाच ॥ भक्त्या भजेऽहं भवतो महेश पादारविंदं द्रुहिणादिगम्यम् ॥ यत्सेवनाद्याति नरो महेशं निवृत्तमायागुण-

स्वयं निर्माण किये हुए संसारको कुसमय नष्टहोनेसे बचाओ ॥२८॥ हे देवाधिदेव प्रभो ! ! ये सब जीव नष्टहो २ कर आपहीके नेत्रोंमें विलीन होरहे हैं ॥ २९ ॥ स्कन्दबोले—हे मुनीश्वर ! जब ब्रह्माजीने इसप्रकार पुरारि महादेवजीकी स्तुतिकरी तब भक्तदुःखनाशक महादेवजीको अन्यमहर्षियोंनेभी सन्तुष्ट करनेकी चेष्टाकरी ॥ ३० ॥ मुनिसमाजने कहा—हे महेश्वर ! इस प्रकार अनेक दुष्टोंके द्वारा आचरण किये हुए दुराचारको क्षमाकरो, आपके भागका नाश करके जो कुछ अपराध कियागया है उसे क्षमाकर समस्त जगत्की रक्षाकारिये ॥ ३१ ॥ हे महेश्वर ! आपही भूमिका पालन पोषण करनेवाले हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं, आपका ईश्वर कोईभी नहीं है, आपकी सुन्दरबाहु हैं अतएव आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ आपके नेत्र सुन्दर हैं, आपकी भुजायें विस्तृत हैं, आप विशेषकर सबके शासक हैं, आपकी गति अत्यन्त तीव्रहै आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ३३ ॥ उग्रतासे प्रधावन करने वाले महेंद्रको नमस्कार है, आपही विषधारी और स्थिरात्मा है अतएव आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे कल्याणमूर्ति ! आपही ऐश्वर्यशाली हैं हमलोग आपको बार २ प्रणामकरते हैं ॥ ३५ ॥ इन्द्रबोले—हे महेश्वर ! जिनकी प्राप्तिदेवताओंको होती है हम आपके उन्हीं चरणोंका भक्तिभाव पूर्वक भजनकरते हैं, हे नाथ ! आपके चरणोंका स्मरण करनेसे

संप्रवाहः ॥ ३६ ॥ वंदे प्रभुं भयहरं शरणागतानां सद्विद्यया निजगुरुं भवमेकमाद्यम् ॥ संसेवितांघ्रिकमलं प्रमथैः सुरैस्तु नानानृमुंडकृतहस्तगलैर्महद्भिः ॥ ३७ ॥ देवगणा ऊचुः ॥ शिव प्रसन्नतां यातु पातु नो निजबालकान् ॥ य एव त्रिषु लोकेषु नाना भांति जगन्मयः ॥ ३८ ॥ नमस्कुर्म्मो वयं देवाः प्रपन्ना-श्चरणाय ते ॥ अनेकसिद्धिसंसेव्यरजसे प्रभवेत्तथा ॥ ३९ ॥ रक्ष नो रक्ष नो देव दह्यमानान्समंततः ॥ क्षम्यतां क्षम्यतामीश क्षमावंतो भवादृशाः ॥ ४० ॥ अस्माभिर्भगवान्देव न ज्ञातोऽसि विमोहितैः ॥ मायया ते महादेव शिक्षेयं परमा कृता ॥ ४१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो महादेवो भक्तिमाद्भिः सुरासुरैः ॥ प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं सर्वानेव दिवौकसः ॥ ४२ ॥ श्रीशिव उवाच प्रसन्नोऽस्मि परं ब्रूत सर्वे देवाः सवासवाः ॥ मयि प्रसन्ने जगति दुर्लभं न हि विद्यते ॥ ४३ ॥ अतः परं महाभागा ईदृशं कर्म्म

मायाके विकारसे रहित: और जहांसे फिर लौटना नहीं होता ऐसे महादेवजीकी प्राप्तिहोती है ॥ ॥ ३६ ॥ जिन प्रभुकी शरणमें आनेसे शरणागतोंका भय नष्ट होजाता है, जो सद्विद्याके गुरु हैं, जो अद्वितीय सबके आदि कारण हैं, प्रमथ आदि गण और देवता जिनके चरणकमलकी सेवा करते हैं, एवम् जिन्होंने बडे २ नृमुण्डोंकी माला धारण करी है, उन्ही प्रभुका हम भजनकरते हैं, ॥ ३७ ॥ देवसमाजने कहा—महादेवजी हमसे प्रसन्नहो, और अपने बालक जैसे हमारी रक्षाकरें, क्योंकि—वेही त्रिलोकीमें विविध भांतिसे सुशोभित होते हैं ॥ ३८ ॥ अनेकसिद्धोंके द्वारा सेवा किये हुए सर्वशक्तिमान् महादेवजीके चरणोमें हम देवता लोग प्रणामकरते हैं ॥ ३९ ॥ हे देव ! हम चारों ओरसे भस्म होरहे हैं, हमारी रक्षाकरो, क्षमाकरो ! हे ईश ! ! क्षमाकरो !!! क्योंकि आप जैसे महात्मा क्षमाकरने वाले ही होते हैं ॥ ४० ॥ हे देव ! क्योंकि हम मोहित होरहेथे,अत एव हमने आपको नहीं जाना, हे महादेव ! आपकी मायाने यह अच्छी शिक्षादेदी ॥ ४१ ॥ स्कन्द बोले—जब भक्तिभाव सम्पन्न सुरासुरोंके द्वारा इसप्रकार महादेवजीकी स्तुति की गई तब तौ वे प्रसन्नहोकर सबदेवताओंसे यों बोले ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजीने कहा—हे इन्द्रादिदेवताओ ! मैं तुमसे प्रसन्नहूं, तुम सब वरकी याचना करो, जब मैं प्रसन्न होजाताहूं तब संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ॥ ४३ ॥ हे महाभागदेवताओ ! अब इसके आगे ऐसा निन्दित कर्म कदापि मतकरना, ईश्वर करै तु

गर्हितम्॥यूयं मा करुत क्षिप्रं शांतिर्भवतु वः सुराः ॥४४॥ स्कंद उवाच॥इति श्रुत्वा महादेववाचो हृष्टतनूरुहाः॥ऊचुःप्रांजलयः सव गृणंतो देवता गणाः ॥४५॥ देवगणा ऊचुः॥ पुनर्जीवतु दक्षोऽसा परमात्मन्महाशयः ॥ भगस्य नेत्रे भवतां पूष्णो दंतास्त-थैव च॥ अश्विनो बाहवश्चैव सवागा देवतागणाः ॥ ४६ ॥ यज्ञः संपूर्णतां यातु शांतिरस्तु सदा हि नः ॥ यदा दास्यंति वै दुष्टा दुःखं स्वजनवल्लभः ॥ रक्षणीयास्त्वया देव वयं मोहविमोहिताः ॥४७॥ श्रीशिव उवाच ॥ श्रयतां हे देवगणा अपराधं न चिंतये-अस्मिन्मायाभिभूतानां दंडोयं संधृतो मया ॥ ४८ ॥ दक्षः प्रजापतिर्देवो दग्धशीर्षो भवत्यसौ ॥ शिरसाऽजमुखेनाशु मत्प्र-सादे पुनः सुराः ॥ ४९ ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं वर्हिषो भगः ॥ पूषा जक्षतु दद्भिश्च यजमानस्य पिष्टकम् ॥ ५० ॥ देवाः सवऽपि सवागा भवंतु विगतज्वराः ॥ पूष्णो दंता बाहवश्च दस्रयोः कृतहस्तकाः ॥ ५१ ॥ भवंत्वध्वर्यवः

म्हैशीघ्र ही शान्तिकी प्राप्तिहो ॥ ४४ ॥ स्कन्द बोले—महादेवजीके ऐसे वाक्य सुनकर उन देवताओंके देह प्रसन्नतासे फूलगये, और सब देवता नम्रता पूर्वक हाथ जोडके यों कहने लगे ॥ ४५ ॥ देव समाजने कहा—हे परमात्मन् ! यह महाशय दक्षभी फिर जीवित होजाय, और भगकेनेत्र, तथा पूषाके दांत, अश्विनूकी बाहुएँ और अन्य सब देवताओंके अंग यथावत् पूर्ण हो जाने चाहियें॥ ४६ ॥ यज्ञ पूर्ण होजाय, और हमैं सदैव शान्ति रहै, हे स्वजन वल्लभ ! जब कभी दुष्ट लोग हमैं दुःख दें, तब हम अज्ञानसे मोहित हुओं की आप रक्षा करैं ॥ ४७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले—सुनो देव समाज ! मैं तुम्हारे अपराधका कुछभी विचार नहीं करता, जो ये मायाके वशीभूत हो रहेथे, इनके लिये मैंने दण्डका विधान कियाहै ॥ ४८ ॥ क्यों कि दक्ष-प्रजापतिका शिर भस्म होगया है, अतएव हमारी कृपासे हे देवताओ ! बकरेका मुख लगानेपर यह फिर जीवित होजायगा ॥ ४९ ॥ मित्रके नेत्रोंमें अवलोकन करनेकी फिर शक्तिहो और इन्द्र अपने भागको ग्रहणकरैं. एवम् पूषा यजमानको पुष्टिप्रदान करै ॥ ५० ॥ समस्त देवताओंके अंग पूर्ण होकर उनकी पीडा दूर होजाय, पूषाके दाँत, और अश्विनीकुमारोंकी बाहु परिपूर्ण होजायँ ॥ ५१ ॥ सब अध्वर्युओंके हाथ पूर्ववत् हों और भृगुके श्मश्रु निकल

सर्वे भृगुर्वै श्मश्रुमान्भवेत ॥ अन्येऽपि ये ये विकृताः स्वस्थाः सर्वे भवंतु ते ॥ ९२ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्तवति देवेशे सर्वे देवाः सवासवाः॥साधु साध्वब्रुवंस्ते वै गृणंतो गिरिजापतिम् ॥ ९३ ॥ ततो देवं समामंत्र्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ आजग्मुः सशिवा यज्ञमस्मिन् क्षेत्रे महाशयाः ॥ ९४ ॥ संविधाय च तत्सर्व्व यदाह भगवान्हरः ॥ सवनीयपशोस्तस्य शिरो दक्षस्य संदधुः ॥ ९५ ॥ संधीयमाने तच्छीर्षिण दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ शिवाभिर्वीक्षितः शीघ्रमुत्तस्थौ सहसा भवम् ॥ ९६ ॥ संददर्श महारुद्रं तद्द्वेषकलुषीकृतम् ॥ तद्दर्शनादभवच्च यथाच्छः शारदो ह्रदः ॥ ९७ ॥ शिवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोद् बाष्पगद्गदः ॥ सुतां परेतां हि सतीं सस्मरन्दुःखपीडितः ॥ ९८ ॥ प्रेमविह्वलतां प्राप्तो मुहूर्त्त प्राप्तसंज्ञकः ॥ निर्व्यलीकेन मनसा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ९९ ॥ दक्ष उवाच ॥ अनुग्रहस्तु भवता कृतो वै मम सांप्रतम्॥यत्तो दंडस्त्वयाऽसत्सु कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता॥६०॥

सर्वे और भी जो ऐसेहैं जिनके अंग भंग होनेसे विकार होगयाहै वे सब ही स्वस्थ अर्थात निर्विकार होजायँ ॥ ९२ ॥ स्कन्द बोले—जब इस प्रकार महादेवजीने कहा तौ इन्द्रादि सब देवता साधु २ कहकर उन्हें धन्यवाद देनेलगे, और गिरिजापतिका स्पर्श करने लगे ॥ ९३ ॥ महादेवजीकी इस प्रकार प्रार्थनाकर उन्हें साथ ले, महाशय इन्द्र आदि सब देवता उसी स्थानमें आयके प्राप्त हुए जहां यज्ञ हो रहाथा ॥ ९४ ॥ उस समय हर नारायण जो कुछ कहतेगये देव समाजने वो ही सब किया, और सवनीय पशु अर्थात् बकरेके शिरको लेकर दक्ष प्रजापतिके धडके ऊपर जोडदिया ॥ ९५ ॥ जभी उसका सिर जोडा गया तभी दक्ष प्रजापति योगिनियोंके देखते २ ही तत्काल उठ बैठे ॥ ९६ ॥ और उन्होंने उठकर महारुद्रमूर्त्ति महादेवजीको अपने समक्ष उपस्थित देखा, यद्यपि प्रजापति महादेवजीके द्वेषके कारण मलीन हो रहेथे, तथापि उनके दर्शन कर ऐसे स्वच्छ होगये, जैसे शरद ऋतुमें सरोवर निर्मल होजाता है ॥ ९७ ॥ यद्यपि प्रजापतिने महादेवजीकी स्तुति करनेका विचार किया, परन्तु—उसकी वाणी वाष्पके कारण गद्गद होरहीथी अतएव वोह सशक्त न हो सका।और अपनी मृत पुत्री सतीका स्मरण कर दुःखसे और भी पीडित होगया ॥ ५८ ॥ कोई मुहूर्त्तमात्र तौ मारे प्रेमके विह्वलही रहा किन्तु फिर उसे ज्ञान हुआ तब निष्कपट मनसे महादेवजीकी प्रार्थना करने लगा ॥ ९९ ॥ दक्ष बोले—आपने संप्रति मेरे ऊपर अनुग्रहका आचरण किया है, आप ऐश्वर्य शाली होके असज्जन

अवज्ञा या कृता देव मया ते पापबुद्धिना ॥ मोहितो नितरां देव मायया भवतः प्रभोः ॥ ६१ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते निर्गुणाय महात्मने ॥ निरंजनाय शांताय योगिनां पतये नमः ॥ ६२ ॥ मीढुष्टमाय भवते सर्वाय सुकृते नमः ॥ हिरण्यरेतसे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥ ६३ ॥ हिरण्यकृतबंधाय हिरण्यपशुमर्दिने ॥ हिरण्यमृगहंत्रे च हिरण्याक्षविमोहितः ॥ ६४ ॥ अग्निवर्णाय ते देव वह्निनेत्राय ते नमः ॥ वह्नौ कृतनिवासाय नमोऽग्निमुखतेजसे ॥ ६५ ॥ अग्निष्टोमनिवासाय राजसूयनिवासिने ॥ राजराजसुसव्याय राजराजालयस्थितः ॥ ६६ ॥ प्रभूणां पतये तुभ्यं नमस्ते परमेष्ठिने ॥ कपर्दिने नमस्तुभ्यं व्युप्तकेशाय ते नमः ॥ ६७ ॥ सहस्रधन्वने तुभ्यं नमस्तेंगारवर्चसे॥ भूतिभूषितदेहाय सर्वैश्वर्यप्रदायिने ॥ ६८ ॥ नमस्त्रिशूलहस्ताय

दुष्टोंके ऊपर दण्डका प्रयोग अवश्यही करना चाहिये ॥ ६० ॥ हे देवाधिदेव महाप्रभो ! अतिशय अज्ञानी मुझ पाप बुद्धिसे जो कुछ आपका अनादर हुवा, वोह सब आपहीकी मायासे मोहित होके किया है ॥ ६१ ॥ हे महात्मन् ! आपनिर्गुण और ऐश्वर्यशाली हैं मैं आपको नमस्कार करताहूं, आप निरंजन (अर्थात् मायिक विकारोंसे निर्लेप) शान्त स्वभाव, और योगियोंके अधिपति हैं अतएव आपको नमस्कारहै ॥ ६२ ॥ आप ही सबका पालन पोषण करते है, आप ही कल्याण मूर्त्ति और सत्कर्म स्वरूपहैं आपको नमस्कार है, हिरण्यरेता और हिरण्याधिपति भी आपही हैं आपको नमस्कार है ॥ ६३ ॥ आपने हिरण्य (सुवर्ण) का संचयकर रक्खाहै, हिरण पशुका वध आपने कियाहै, हिरण्याक्षको मोहित और हिरण्यमृगका वध आपहीने किया है हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥ हे देव ! आपका वर्ण अग्निकी समानहै, आपके नेत्रमें अग्निका निवासहै, अग्निमें आपही अधिष्ठित हैं अर्थात् अग्निमें आपहीकी सत्ताहै, और आप प्रचण्ड अग्निकी सदृश तेजस्वी हैं ॥ ६५ ॥ अग्निष्टोम और राजसूय यज्ञोंमें आपहीका अधिष्ठानहै आप राजराजेश्वरोंके स्थानमें निवास करते हैं और राजाधिराज आपकी सेवा करते हैं ॥ ६६ ॥ आप स्वामियोंके भी स्वामी और परमेष्ठी हैं हमारा आपको नमस्कार है आप जटाजूट धारी है आपके केश विस्तृत हैं अतएव आपको नमस्कारहै ॥ ६७ ॥ आपके सहस्रों धनुष हैं आपका तेज अंगार जैसा प्रदीप्तहै, आपका देहविभूतिसे समलंकृत है, और आप समस्त ऐश्वर्य प्रदान कर्त्ता हैं आपको बारंबार नमस्कारहै ॥ ६८ ॥ आपके हाथमें त्रिशूलहै, आपने नागोंका

नागयज्ञोपवीतिने ॥ नरमुंडसुमाल्याय चंद्रार्द्धकृतशेखर ॥ ६९॥ नमस्तुभ्यं सुरेशाय नमस्तुभ्यं परात्मने ॥ जगत्संहारकर्त्रे ते जगत्पालयते नमः ॥७०॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इदं स्तोत्रं पठेत्प्रातः समुत्थाय कृतांजलिः ॥ संपदस्तस्य जायन्ते दुःस्वप्नादि विनश्यति ॥ ७१ ॥ इति स्तुतो वै दक्षेण महादेवः प्रभुः शिवः॥ उवाच मधुरं वाक्यं सन्तुष्टश्च तदाभवत् ॥ ७२ ॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि संतुष्टस्तव साम्प्रतम् ॥ स्तुत्या च कृतया दक्ष त्वया नम्रधिया विभो ॥ ७३ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ महादेव प्रभो देव प्रसन्नोऽसि यदीश्वरः ॥ त्वत्पादकमले भक्तिर्मम जन्मनि जन्मनि ॥ ७४ ॥ भूयात्तथेदं तीर्थं तु महापातकनाशनम्॥ यस्य संदर्शनादेव ब्रह्महत्यादिकानि च॥७५॥पापानि प्रशमं यांतु यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ स्थितिश्च भवतो नित्यं क्षेमं भवतु सर्वदा॥ श्रीदेव्याश्च पुनर्देहः क्षिप्रं भवतु मा चिरम्॥७६॥ त्वया सह विवाहश्च तथा भवतु मानद ॥ ७७ ॥ ॥ श्रीमहा-

यज्ञोपवीत धारण कियाहै आपके हृदयमें नरमुण्ड माला और मस्तकके ऊपर अर्ध चन्द्रमाहै आपको नमस्कारहै ॥ ६९ ॥ आपदेवताओंके अधिपति और परमात्माहैं, संसारका संहार और पालनभी आपही करते हैं आपको नमस्कारहै ॥ ७० ॥ स्कन्द बोले-जो मनुष्य प्रभात होते ही उठकर हाथ जोड इस स्तोत्रका पाठकरताहै, उसको सम्पत्तियोंका लाभ होजाताहै और उसके दुःस्वप्न विनष्ट होजाते हैं ॥ ७१ ॥ जब दक्ष प्रजापतिने इस प्रकार कल्याण मूर्त्ति, देवाधिदेव, सर्व शक्तिमान् महादेवजीकी स्तुति करी तब वे सन्तुष्ट होगये और मधुर वाक्य कहने लगे॥७२॥श्रीमहादेवजी बोले-वर मांगो ! प्रजापति वर मांगो ! ! ! संप्रति मैं तुमसे प्रसन्नहूं, हे विभु दक्ष ! तुमने नम्रता पूर्वक जो जो हमारी स्तुति करी है, उससे हम प्रसन्नहैं ॥ ७३ ॥ दक्ष बोले-हे महादेव प्रभो ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तौ यह वर दो कि, जन्म जन्मान्तर आपके चरणोंमें मेरी भक्तिहो ॥ ७४ ॥ और यह तीर्थ महापातकोंका भी नाश करनेवाला होजाय, एवम् इसके दर्शन करनेहीसे ब्रह्महत्या आदि सब पातक नष्ट होजायँ, यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह हो तौ येही वर दीजिये ॥ ७५ ॥ और कुशल विधान करनेके लिये आपकी भी स्थिति इस तीर्थमें नित्यही रहनी चाहिये; और विलंब न हो किन्तु शीघ्रही देवीजीके शरीरका भी प्रादुर्भाव होना चाहिये ॥७६॥ और हे मान प्रदान करने वाले देव ! आपहीके साथ उनका विवाह होना चाहिये ॥ ७७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले-दक्ष ! विश्वका विनाश होते समय तुमने भला

देव उवाच ॥ ॥ सम्यक्संपादिता दक्ष मद्भक्तिर्विश्वनाशिनी ॥ भविष्यत्येव हि तथा यथा याच्ञ्य कृता त्वया ॥ ७८ ॥ इदं क्षेत्रं महापुण्यं यावद्वै यज्ञभूमिका ॥ यत्र मायानिमित्तं हि जातं सर्वं प्रजायते ॥ तस्मादिदं महाक्षेत्रं मायासंज्ञं भविष्यति ॥७९॥ सकृद्दर्शनमात्रेण यस्य तीर्थस्य मानद ॥ कोटिजन्मकृतेभ्यस्तु पापेभ्यः परिमुच्यते ॥ ८० ॥ धन्यास्ते पुरुषा लोके मायाक्षेत्रनिवासिनः ॥ नाम्ना दक्षेश्वरेणैव निवसिष्यामि क्षेत्रके ॥८१॥ यस्य दर्शनमात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवंति हि ॥ अदृष्ट्वा मां मानवा ये करिष्यंत्यल्पबुद्धयः ॥ तीर्थाटनां प्रजाधीश तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ८२ ॥ श्रीदेव्याः प्रभवश्चापि भविष्यति हिमालये । तदा मया विवाहश्च भविष्यति न संशयः ॥ ८३ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्देवो गृहीत्वा तत्सतीवपुः ॥ स्कंधे कृत्वा ययौ विप्र कैलासे गह्यकालये ॥ ८४ ॥ ततोवधि महाभाग मायाक्षेत्रं बभूव ह ॥ त्रिषु लोकेषु पुण्यं च यत्र माया सतीवपुः ॥ ८५ ॥ द्वादशयोजनायातं यज्ञस्यायतनं द्विज ॥ तत्प्र-

हमारी भक्तिका सम्पादन किया। तुमने जो २ याचना हमसे करी हैं वोह सब उसी प्रकार होजायँगी ॥ ७८ ॥ जहांतक यज्ञ भूमिहै वहांतक यह क्षेत्रभी परम पवित्र होगा, हे प्रजापते ! क्योंकि—यह सबकुछ मायाके निमित्तही हुआहै, अतएव माया क्षेत्र इसका नाम होगा ॥ ७९ ॥ हे मानप्रद ! इस क्षेत्रके दर्शन करनेपर, करोड़ों जन्ममें किये हुएभी पापोंसे मुक्तिका लाभ हो जायगा ॥ ८० ॥ जो माया क्षेत्रमें निवास करते हैं उन पुरुषोंको धन्यहै। और मैंभी इस क्षेत्रमें दक्षेश्वरहीके नामसे निवास करूंगा ॥ ८१ ॥ जिसके दर्शन करनेसे आठों सिद्धियोंकी प्राप्ति होगी, हे प्रजापते ! जो अल्पज्ञ मनुष्य हमारे दर्शन विना कियेही तीर्थाटन करेंगे, उनकी यात्रा निष्फल होगी ॥ ८२ ॥ श्री देवीजीभी हिमालयमें प्रगट होंगी, और तब निःसन्देह हमारे साथ उनका विवाह होगा ॥ ८३ ॥ स्कन्द बोले—यों कहकर सतीके शरीरको लेके उसे कन्धेके ऊपर रखके महादेवजी गुह्यकोंके निवासस्थान ऐसे कैलास पर्वतके ऊपर चले गये ॥ ८४ ॥ हे महाभाग ! उसी दिनसे यह मायाक्षेत्र हुआहै, जहां सती मायाका देह है वोह स्थान त्रिलोकीमें अतीव पवित्र है ॥ ८५ ॥ हे द्विज ! वोह यज्ञका स्थान बारह योजन विस्तृत है, हे महा-

माणं महाभाग बभूव क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ८६ ॥ अस्मि न्क्षेत्रेऽर्द्धमासेन शिवसंन्यस्तमानसः ॥ प्राप्नोति शिवसायुज्यं किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥ ८७ ॥ दक्षेश्वरं महादेवं सकृद्वै प्रणमंति ये ॥ नंदीभृंग्यादिभिस्तुल्याः प्रभवन्ति नरोत्तमाः ॥ ८८ ॥ पंचाक्षरं महामंत्रं षडक्षरमथापि वा ॥ प्रजपंति अहोरात्रैस्त्रिभिः सिद्धिमावाप्नुयात् ॥ ८९ ॥ इति ते कथितो विप्र मायाक्षेत्रभवो मया ॥ यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या शिवसालोक्यभाग्भवेत् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये यज्ञसंधानतीर्थोत्पत्तिर्नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

भाग ! उतनेही प्रमाणका यह क्षेत्रभी उत्तम है ॥ ८६ ॥ और विशेष कहनेसे क्याहै ? यदि कोई मनुष्य अर्धमास पर्यन्त महादेवजीमें मन लगाकर निवास करै तौ उसे महादेवजीके सायुज्यका लाभ होताहै ॥ ८७ ॥ और जो मनुष्य दक्षेश्वर महादेवको एक वारभी प्रणाम करतेहैं, वे नरोत्तम स्वयम् नन्दी तथा भृंगी आदि गणोंकी समान होजाते हैं ॥ ८८ ॥ और जो मनुष्य पंचाक्षर महामन्त्र अथवा षडक्षर मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें तीनही अहोरात्रमें सिद्धि की प्राप्ति हो जातीहै ॥ ८९ ॥ हे द्विजराज ! इस प्रकार हमने मायाक्षेत्रकी उत्पत्तिका वर्णन आपके प्रति कियाहै, यदि कोई मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक इसका श्रवण करै तो उसे शिवसायुज्यकी प्राप्ति होती है ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चाधिकशततमोध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः १०६.

स्कंद उवाच ॥ इदं तीर्थं महापुण्यमभूद्गंगागमे पुनः ॥ गंगाद्वारमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम् ॥ १ ॥ यदा भगीरथो राजा सूर्यवंशधरः प्रभुः ॥ आनयामास स्वर्गाद्वै गंगां परमपावनाम् ॥ २ ॥ स्वर्गान्निपातिता गंगा पृथिव्यामागता यदा ॥ तदैवास्य द्विज-

स्कन्द बोले--यह तीर्थ इस प्रकारसे पवित्र हुआहै, और जबसे इसमें गंगाजीका आगमन हुआहै तबसे इसकी ख्याति गंगाद्वारके नामसे हुई है, इसका स्मरण करनेहीसे पापोंका नाश होता है ॥ १ ॥ सूर्य वंशधर महाराज भगीरथ जी जब स्वर्गसे परम पवित्र गंगाजीको लायेथे ॥ २ ॥ और स्वर्गसे निपतित होकर गंगाजी जब भूमिके ऊपर निपतित हुई थी, तभी हे द्विजराज ! इस

श्रेष्ठ गंगाद्वारमिति श्रुतम् ॥ ३ ॥ गंगाद्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः ॥ अन्यत्र पृथिवी प्रोक्ता गंगाद्वारोत्तरं विना ॥ ४ ॥ इदमेव महाभाग स्वर्गद्वारं स्मृतं बुधैः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण विमुक्तो भवबंधनैः॥ ५ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा नित्यं प्रतिष्ठिताः ॥ मुनयः सिद्धगंधर्वा गुह्यकाप्सरसां गणाः ॥ तिष्ठन्त्यत्रैव भगवञ्छेत्तुं संसारबंधनम् ॥६॥ संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम् ॥ पापानि शतसंख्यानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ कृत्वा न्यत्र प्रयांत्यन्मिस्मृता मोक्षमवाप्नुयुः॥७॥ शृणु नारद वक्ष्यामिकथां तां पापनाशिनीम् ॥ यथा चांडालतुल्योऽपि कश्चिद्ब्राह्मणवंशजः ॥ ८ ॥ प्राप वै परमं स्थानं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ अस्य क्षेत्रस्य विभवात्तच्छृणुष्व महामते ॥ ९ ॥ बभूव ब्राह्मणः कश्चिदवंत्यां मुनिसत्तम ॥ अश्मचित्त इति ख्यातः सार्थनामा द्विजाधमः ॥ १० ॥ पूर्वं तु जातमात्रस्य पिता यमवशं गतः ॥ यदा जातो भाग्यहीनः पंचवर्षात्मको द्विजः ॥ माता पंचत्वमापन्ना

क्षेत्रका नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हुआ था ॥ ३ ॥ गंगाद्वारके उत्तरकी ओरकी भूमिको विद्वानोंने स्वर्ग भूमि कहनेका निर्देश कियाहै, गंगाद्वारके उत्तर भागको छोड अन्य भाग भूमि कहाताहै ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इसी स्थानको बुद्धिमान् महात्माओंने स्वर्गद्वारभी कहाहै, इसके दर्शन करतेही संसार बंधनसे मुक्ति होजाती है ॥ ५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सबै देवता, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यक और अप्सराओंका समाज ये सबही संसार बन्धनसे मुक्ति लाभ करनेकी कामना करके इस स्थानमें नित्य निवास करतेहैं ॥ ६ ॥ जो व्यक्ति सांसारिक तापोंसे सन्तप्तहो रहे हैं, यह तीर्थ उनके लिये औषधिकी समान है, ब्रह्महत्याकी समान सैंकडों पाप जो कि, अन्य स्थानोंमें किये गये हैं सबही नष्ट होजाते हैं, और इस स्थानमें मरनेवालोंको मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७ ॥ सुनो नारदजी ! अब मैं उस पाप विनाशिनी कथाका वर्णन करताहूं कि—ब्राह्मण वंशमें प्रादुर्भूत हुए एक चाण्डाल तुल्य व्यक्तिको ॥ ८ ॥ इसी क्षेत्रके माहात्म्यसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके उत्तम स्थानकी प्राप्ति हुईथी, हे महामतिमान् ! तुम उसे श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे मुनिराज ! अवन्ती पुरीमें एक ब्राह्मणथा, और उस नीच ब्राह्मणका यथार्थ नाम अश्मचित्त प्रसिद्ध था ॥ १० ॥ प्रथम जब उसका जन्म हुआथा तभी तो उसके पिताकी मृत्यु होगई, और जब वोह मन्दभागी ब्राह्मण पांच वर्षका हुआ तभी

सजातीनां वशं गतः ॥ ११ ॥ उपनीतोऽपि तैर्विप्रैः क्रिया नैव चकार ह ॥ लोलुपः स बभूवाथ चौरकर्मणि स द्विजः ॥ १२ ॥ गतो देशांतर सोऽपि चौरैश्च सह संगतः॥ तैरेव वर्द्धितो विप्रस्तदा चौरो द्विजाधमः ॥ १३ ॥ तेषां वै तस्कराणां च सदा मध्यगतो हि सः ॥ चकार दुष्टकर्माणि स्त्रीब्राह्मणवधादिकम् ॥ १४ ॥ पथिकानां कालरूपो दुर्बलानां तथैव च ॥ येन केन प्रकारेण धनार्जनपरोऽभवत् ॥ १५ ॥ सर्वब्राह्मणलिंगं तु प्रनष्टं तस्य दुमतः ॥ विरूपोऽपि बभूवासौ नष्टे ब्राह्मणकर्मणि ॥ १६ ॥ कुब्जोऽतिरूक्षसर्वांगो विनष्टस्नानसंध्यकः ॥ श्यामो बृहच्छिरा दुष्टो स्वल्पदेहो नृसंशकः ॥ १७ ॥ सदा परशुहस्तश्च चर्महस्तस्तथैव च ॥ वने वासो न तस्यापि मित्रसंबंधिबांधवाः ॥ आसन्नारद कुत्रापि भ्रष्टस्य हि दुरात्मनः ॥ १८ ॥ एकदा स महादुष्टः मृगास्योऽतिभयानकः ॥ चौरैश्च बहुभिः सार्द्धं मायाक्षेत्रे नराधमः ॥ १९ ॥ निशीथसमये तत्र कर्त्तुं चौर्य्यं द्विजा-

उसकी माताका मरण होगया, अतएव यह अपने सजातीयोंके अधीन हुआ ॥ ११ ॥ यद्यपि सजातीय ब्राह्मणोंने उसका उपनयन तौ कर दियाथा, परन्तु वोह ब्राह्मणोचित कोई क्रिया नहीं करताथा बल्कि वोह ब्राह्मण चौर कर्ममें प्रवृत्तहो अत्यन्तही लोलुप होगया ॥ १२ ॥ सुतराम् चोरोंके साथ मिलकर वोह परदेश चलागया, अतएव उस नीच चोर ब्राह्मणको उन चोरोंहीने पाला पोसा ॥ १३ ॥ निदान वोह द्विज उन तस्करोंहीके मध्यमें नित्य रहकर स्त्री तथा ब्राह्मणोंके वध आदि दुष्ट कर्मोका आचरण करने लगा ॥ १४ ॥ पथिकों और दुर्बलोंके लिये तौ वोह काल रूपही था, जैसे बने तैसे धन उपार्जन करनेमें वोह दत्तचित्त हुआ ॥ १५ ॥ उस मूढ मतिके ब्राह्मणोंके सभी चिह्न नष्ट होगये, और ब्राह्मणोचित कर्म नष्ट होजाने पर इसका रूपभी कुरूप होगया ॥ १६ ॥ यह स्वयं कुब्ज होगया, और इसके सभी अंग रूक्ष होगये स्नान और सन्ध्या ये कर्मभी इसके विनष्ट होगये, इस दुष्ट निर्दयीका श्याम वर्ण, शिर बड़ा, और देह छोटा था ॥ १७ ॥ इसके हाथमें सदैवही परशु और ढाल रहती थी, वनमें इसका निवास था, और हे नारदजी ! इस भ्रष्ट दुरात्माके मित्र संबन्धी और बन्धु बान्धव कोई भी नहीं थे ॥ १८ ॥ एक समय मृग जैसे मुँहवाला वोह अति दुष्ट भयानक नीच व्यक्ति चौर वर्गके साथही मायाक्षेत्रमें आया ॥ १९ ॥ और उस दुराचारीने अर्ध रात्रिके

धमः ॥ समाययौ स दुष्टात्मा चौरैः सह समावृतः ॥ २० ॥ स्थितास्तत्र महात्मानः समाजे महति स्थिते ॥ माहात्म्यश्रवणे सर्वे मायाक्षेत्रस्य नारद ॥ २१ ॥ सन्यस्तमनसस्तत्र श्रीशिवे भक्तिसंयुताः ॥ श्रुत्वा तीर्थप्रशंसां वै मुदा परमया युताः ॥२२॥ प्रशंसंतो मुहुश्चैव अहो पुण्यतमा वयम् ॥ परस्परं मोदमाना ऋषयो ब्राह्मणादयः ॥ २३ ॥ अहो धन्यतमा लोके आगच्छंतो महास्थले ॥ तैरेव सुकृतं पूर्वं कृतमेव न संशयः ॥ इत्येवं संवदंतस्ते ऊचुर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां सर्वेषां मुनिसत्तमः ॥ चौरान्सचाब्रवीद्वाक्यमश्मचित्तो द्विजाधमः ॥ २५ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ भो भो चौराः शृणुध्वं हि शृणुध्वं मद्वचः खलु ॥ प्रशंसंति कथं स्थानमिदमेते द्विजातयः ॥ २६ ॥ धनं नूनं महाभागा स्थापितं वै भविष्यति ॥ तेनैवं ब्राह्मणाः सर्वे प्रशंसंति मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥ श्रूयतामेकचित्तैश्च भवद्भिर्वच उत्तमम् ॥

समय चोरोंके साथही चोरी करनेकी कामनासे आगमन किया ॥ २० ॥ किन्तु—वहां बहुतसे महात्मा लोग एक समाजमें उपस्थित होरहे और हे नारदजी ! वे सब मायाक्षेत्रके माहात्म्यको श्रवण कररहे थे ॥ २१ ॥ अथ च उन महात्माओंने भक्तिभावमें तत्पर हो महादेवजीके विषै अपने चित्त लगा रक्खथा, और तीर्थकी प्रशंसा सुनकर वे सब अत्यन्तही प्रसन्न हुए ॥२२॥ और बारंबार प्रशंसा करके कहने लगे कि, हम लोग अत्यन्तही पुण्य शीलहैं, इस प्रकार वे सब ऋषि और ब्राह्मण परस्पर आनन्दमें मग्न होगये ॥ २३ ॥ और जो व्यक्ति इस महास्थलमें आते हैं, उन्हेंभी धन्य है, और उन्होंने अवश्यही पूर्व जन्ममें पुण्यका आचरण किया है ॥ २४ ॥ इस प्रकार कह२ कर वे उत्तम माहात्म्यका बखान करने लगे, हे मुनिसत्तम ! जब द्विजाधम अस्मचित्तने इस प्रकार उन महात्माओंके वाक्योंका श्रवण किया, तब वोह सब चोरोंसे यह वचन कहने लगा ॥ २५ ॥ अस्मचित्त बोला—अरे चोरो ! तुम सब हमारे वाक्यको अवश्यही सुनो, ये द्विजाति इस स्थानकी कैसी प्रशंसा करते हैं ॥ २६ ॥ हे महाभागो ! इसमें अवश्यही धन स्थापित होगा, इसीसे तौ ये ब्राह्मण बार २ इसकी प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥ हे चौरो !

कुत्र वै स्थापितं चौरा धनमेभिर्द्विजातिभिः ॥ २८ ॥ स्वयं वै संवदिष्यंति निश्चयं चौरसत्तमाः ॥ तद्गृहीत्वा वयं सर्वे मारयित्वाऽखिलांश्च तान् ॥ गमिष्यामोऽन्यदेशं हि मुहूर्त्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् ॥ २९ ॥ वर्त्तते बहुलं वित्तं यस्मात्ते मुखकांतयः ॥ ३० ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा विररामासावश्मचित्तः सुदुर्मतिः ॥ प्रशशंसुर्मुदा तं वै सर्वे चौराः सखड्गकाः ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा रागयुताश्चौराः सरागं वचसां कुलम् ॥ मोहिताः सम्बभूवुश्च श्रवणे कृतमानसाः ॥ ३२ ॥ उत्तमश्लोकश्रवणाद्धतपापो द्विजस्तदा ॥ उवाच वचनं चौरानिदं वै द्विजसत्तमः ॥ ३३ ॥ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ ॥ प्रष्टुं गच्छाम्यहं तत्र मुनिवर्गान्हि तस्कराः ॥ तत्सर्वं निश्चयं गत्वा गच्छामि सत्वरं पुनः ॥ ३४ ॥ ॥ चौरा ऊचुः ॥ ॥ कथं यास्यासि भो विप्र समाजे तस्करः खलु ॥ ज्ञात्वा वै मारयिष्यंति त्वां तथा मुनयस्त्वरा ॥ ३५ ॥ परोक्षस्थायिनश्चौरा भवंति तस्करोत्तम ॥ प्रत्यक्षतामधिगता

तुम सब अपने चित्तको एकाग्र करके हमारे उत्तम वचनको सुनो कि, इन द्विजातियोंने कहाँ अपने धनको स्थापित कियाहै ॥ २८ ॥ हे श्रेष्ठ चोरो ! ये स्वयम् ही यह बात कहेंगे, तब इन्हे मार सम्पूर्ण धन ले अन्य देशको चलेंगे अत एव छिनभर प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ २९ ॥ इनका प्रभूत धन विद्यमान है, इसी कारण इनके मुखकी कान्ति प्रदीप्त होरही है ॥ ३० ॥ स्कन्द बोले—यों कहकर वोह मन्दमति अश्मचित्त तौ मौन होगया, और हाथमें खड्गधारण किये हुए सब चोर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ उन अज्ञानी चोरोंने जब ऐसे उत्तम वचन श्रवण करे तब वे सब मोहितहो (तीर्थका माहात्म्य) श्रवण करनेमें दत्त चित्त होगये और ॥ ३२ ॥ उत्तम श्लोक (अथवा चरित्र) के श्रवणकरनेसे उस ब्राह्मणके सब पाप नष्ट होगये हे द्विजराज ! वोह चोरोंसे ये वचन बोला ॥ ३३ ॥ अस्मचित्त बोला—हे तस्करो ! मैं मुनि समाजसे पूछनेके लिये जाताहूं इसे निश्चय पूर्वक जानकर तब फिर चलूंगा ॥ ३४ ॥ चोरोंने कहा—हे ब्राह्मण ! क्यों कि, तू अवश्यही चोरहै, तब उनके समाजमें कैसे जा सकैगा ? जब मुनिलोग तुझे पहिचान लेंगे तब अवश्य तेरा वधकर डालेंगे ॥ ३५ ॥ हे निपुण चोर !

यदि ते नाशिनस्तदा ॥ ३६ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ ॥ छद्मना तत्र गच्छेहं यत्र ब्राह्मणसत्तमाः ॥ जानीयुर्मां यथाचौरं करोमि व्याजमीदृशम् ॥ ३७ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्का सहसा सोऽपि त्यक्तशस्त्रास्त्रकस्तदा ॥ चीरांबरोऽश्मचित्तश्च बभूव द्विजवेषधृक् ॥ ॥ ३८ ॥ स गत्वा तत्र देशे तु यत्र ते ब्राह्मणाः स्थिताः ॥ नमश्चकार तेभ्यश्च विनयावनतोऽभवत् ॥ ३९ ॥ अंतर्दुष्टो वहिः शांतो रुद्रमालाविभूषितः ॥ तिर्यक्पुंड्रधरो विप्रो यथा ब्राह्मणसत्तमः ॥ ४० ॥ श्रुत्वाश्रुत्वाऽस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं द्विजसत्तमाः ॥ विस्मृतश्चौरकर्माणि सत्संगनिरतो द्विजः ॥ ४१ ॥ तत्संगमादश्मचित्तो भक्तिमान्स बभूव ह ॥ भक्तौ संजातमात्रायां प्रणनाम द्विजोत्तमान् ॥ ४२ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ महापापोऽस्मि मुनयो गच्छामि निरयार्णवे ॥ गच्छन्तं मां महाभागा रक्षध्वं द्विजसत्तमाः ॥ ४३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनयो विस्मयान्विताः ॥ ऊचुः परस्परं कोऽयं महापापोऽस्मि

चोर लोग परोक्षमें स्थित रहसक्ते हैं, सुतराम् प्रत्यक्षमें जानेसे तेरा विनाश होजायगा ॥ ३६ ॥ अश्मचित्त बोला—जहां वे सज्जन ब्राह्मण उपस्थित हैं वहां मैं छल करके जाऊंगा, और ऐसा छल करूंगा जिससे वे मुझे चोर न समझेंगे ॥ ३७ ॥ स्कन्द बोले—यौं कहकर उसने सब अस्त्र शस्त्रोंका परित्याग करदिया, और चीराम्बर धारणकर वोह अश्मचित्त द्विजवेषधारी होगया ॥ ३८ ॥ जहां ब्राह्मण लोग बैठेथे उसने वहां जाय विनयसे नम्र हो उन सबको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ यद्यपि उसके अभ्यन्तरमें दुष्टता थी पर बाहरसे वोह शान्त था, रुद्राक्षकी माला और उर्द्ध पुंड्र (रामानन्दी) तिलक धारणकर वोह ऐसा बनगया जैसे कोई श्रेष्ठ ब्रह्माण होताहै ॥ ४० ॥ हे द्विजराज ! इस क्षेत्रके माहात्म्यको सुन २ कर वोह ब्राह्मण चोरीके कर्मोंको भूल गया और सत् संगमें निरत होगया ॥ ४१ ॥ अथ च सत् संगका संसर्ग करनेके कारण अश्मचित्तके चित्तमें भक्तिका उदय हो आया और भक्तिका उदय होतेही उसने द्विजोत्तमोंको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ अश्मचित्त बोला—हे मुनियो ! मैं महापापीहूं सुतराम् नरकके समुद्रमें डूबा जाताहूं हे महाभाग ब्राह्मणो ! मुझ डूबते हुएकी रक्षाकरो ॥ ४३ ॥ स्कन्द बोले—इसके वचनसुनकर सब मुनीश्वर विस्मित होगये, और अपने आपको महापापिष्ठ बताने वालेके

योऽवदत् ॥ ४४ ॥ तमभ्यूचुर्महाभाग पतितं पादसन्निधौ ॥ अश्मचित्तं महाभागाः कृपया परया युताः ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ भोभो पुरुष कस्त्वं वै कुतो वा त्वमुपागतः ॥ कस्माद्गच्छसि नरकं पापकर्मफलं तथा ॥ ४६ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ न जानामि कुलं शीलं स्वस्य वै पापकर्म्मणः ॥ अश्रौषं ब्राह्मणाज्जन्म ततश्चौरोऽभवं तथा ॥ ४७ ॥ कथं स्यान्निष्कृतिर्मेऽद्य तद्ब्रूतमम सांप्रतम्॥अन्यथा सर्वथा विप्रा गच्छामि नरकं ध्रुवम् ॥ ४८ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पपात चरणेषु सः॥तं दृष्ट्वा तेऽपि मुनयः प्रोचुस्तं विप्रवंशजम्॥ ॥ ४९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अहो धन्यतमोऽसि त्वं यो वै क्षेत्रमुपागतः ॥ शमं यातानि पापानि तवेदानीं द्विजर्षभ ॥ ५० ॥ अस्माद्वै पूर्वभागे यो गंगातीरे महागिरिः ॥ तत्र गत्वा महाभाग महादेवपरो भव ॥ ५१ ॥ संतुष्टे तु महादेवे सर्वं संपादयिष्यसि॥ अतोस्मद्वचनात्तूर्णं गच्छ तत्र महाशय॥५२॥अश्मचित्त उवाच॥ न जानामि मुनिश्रेष्ठाः सत्कर्म द्विजवंदिताः ॥ येनाहं स्यां महा-

...यमें परस्पर संभाषण करने लगे ॥ ४४ ॥ और हे महाभाग ! वे सज्जन महर्षिगण परम ...विष्टहो उस अश्मचित्तसें जो अश्मचित्त चरणोंमें प्रणाम कर रहाथा यों बोले ॥ ४५ ॥ ...णोंने कहा—हे पुरुष ! तुम कौन हो और कहांसे आये हो ? और क्यों अथवा कौनसे पापके ...से नरकमें जातेहो ॥ ४६ ॥ अश्मचित्त बोला—मैं पापी अपने कुल और शीलको कुछ नहीं ...नता, किन्तु मैंने यह सुनाहै मेरा जन्म ब्राह्मणसे हुआहै, और फिर मैं चोर होगया ॥ ४७ ॥ ...ब मेरा उद्धार कैसे होगा यह मुझे बताओ, अन्यथा सर्वथाही मैं नरक गामी होऊंगा॥ ४८ ॥ ...न्द बोले—यों कहकर वोह चोर ब्राह्मण नेत्रोंमें आँसू भरकर मुनियोंके चरणोंमें गिर पडा, ...सकी ऐसी दशा देख महर्षियोंनेभी उस ब्राह्मणसे यों कहा ॥ ४९ ॥ मुनि बोले—तेरा आगमन ...स उत्तम क्षेत्रमें हुआ अत एव तुझे धन्य है, हे द्विजराज ! संप्रति तेरे समस्त पापोंकी शान्ति ...गई ॥ ५० ॥ यहांसे पूर्वकी ओर गंगाजीके तीरपर जो बडा पर्वत विद्यमान् है, हे महाभाग ! ...हां जाकर मनो योग पूर्वक महादेवजीकी आराधना करो ॥ ५१ ॥ जब महादेवजी सन्तुष्ट होजा...गे, तब सभी कुछ संपादन कर सकोगे, अत एव हे महाशय ! हमारे कहनेसे तुम शीघ्रही ...हां चले जाओ ॥ ५२ ॥ अश्मचित्त बोला—आपकी ब्राह्मण लोग वन्दना करतेहैं ऐसे हे

भागास्तद्ब्रूत कृपया विभो॥५३॥ मुनय ऊचुः ॥ महादेवमहादेव महादेवेति चासकृत्॥ स्मरन्वै मनसा देवं वद सर्वमनिन्दितः ॥ ॥५४॥कृतकृत्यो महाभाग भविष्यस्येव भो द्विज ॥ तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन भज शर्वं हि शर्म्मदम्॥५५॥स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै भावितात्मनाम् ॥ जगामाहोमुखे तत्र पर्वते मुनिदर्शिते ॥५६॥ तत्र गत्वा महेशानं सस्मार मनसा विभुम् ॥ महादेवमहादेवमहादेवेति चासकृत् ॥ वदन्वै सप्तरात्रेण ददर्श शिवमुत्तमम् ॥५७॥ व्याघ्रचर्म परीधानं वृषस्थं नीललोहितम् ॥ अनेकसर्पसर्वांगं नानाप्रमथसेवितम् ॥ ५८ ॥ उवाच मधुरं वाक्यमश्मचित्तं सदाशिवः ॥ ५९ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ उत्तिष्ठ वत्स भद्रं ते धन्योऽसि मम नामतः ॥ वरं वृणीष्व सततं वरदोऽस्मि तव द्विज ॥ ६० ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ स्तोतुमुत्सहते मेद्य मनो देव विभो शिव ॥ परं मूर्खोऽस्मि हे नाथ कथं स्तौमि भवापहम् ॥ ६१ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ पुराण-

मुनीश्वरो ! मैं सत्कर्मोंसे निपटही अनजानहूं, सो ऐसी कृपाकरो जिससे मैं ज्ञानवान् हो जाऊं ॥ ५३ ॥ मुनीश्वर बोले—वारंवार मनोयोग पूर्वक महादेव २ यों कहकर हे अनिन्दित ! परमेश्वरका स्मरण करो ॥ ५४ ॥ हे महाभाग ! द्विजराज ! तत्र तू अवश्यही कृतार्थ होजायगा, अतएव कल्याण कर्त्ता महादेवजीका सर्वथा भजन करो ॥ ५५ ॥ स्कन्द बोले—उन महात्माओंके ऐसे वाक्य सुनकर प्रभात होतेही वोह ब्राह्मण मुनि वन्दित उक्त पर्वतके ऊपर गया ॥ ५६ ॥ वहां जाके उसने वारंवार महादेव २ कहकर सर्वव्यापक महादेवजीका स्मरण किया, और इसी प्रकार सात रात्रि पर्यन्त जप करते २ उसे महादेवजीके दर्शन हुए ॥ ५७ ॥ महादेवजी नील और लोहित वर्णसे व्याघ्रचर्मको धारण किये, वृषके ऊपर आरूढ रहेथे. उनके सब अंगोंमें अनेक सर्प लिपट रहेथे, और बहुतसे प्रमथ गण उनकी सेवा करतेथे ॥ ५८ ॥ ऐसे सदाशिव अर्थात्—कल्याणमूर्त्ति महादेवजीने अश्मचित्तसे ये वचन कहे ॥ ५९ ॥ श्री महादेवजी बोले—हे वत्स ! उठो ! ! तुम्हारा कल्याणहो, हमारे नामका स्मरण करनेसे तुम्हारा धन्य भाग्यहै, हे द्विज ! तुम वरकी याचना करो, हम तुम्हैं वर देनेहीके लिये आये हैं ॥ ६० ॥ अश्मचित्त बोला—हे देवाधिदेव सर्वव्यापक शिव ! ! ! आपकी स्तुति करनेको मेरा चित्त उत्कंठित होताहै, परन्तु—मैं मूर्ख हूं, फिर संसार बंधनको दूर करनेवाले आपकी स्तुति कैसे कर सक्ताहूं ? ॥ ६१ ॥ महादेवजी बोले—पुराण, न्याय, मीमांसा, और

न्यायमीमांसा साङ्गा धर्मव्यवस्थितिः॥ चत्वारश्च तथा वेदास्तथायुर्वेद उत्तमः ॥ ६२ ॥ गांधर्वं चार्थशास्त्रं च धनुर्वेदस्तथा स्मृतः॥ एतास्सर्वा महाविद्या भवंतु तव सांप्रतम् ॥ ६३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्तमात्रे भगवति सर्वज्ञे सर्वदे भवे॥ आविर्बभूवुस्तस्याऽपि विद्या अष्टादशैव तु ॥ ६४ ॥ ज्ञात्वा स्वरूपमत्यर्थं भवस्य परमात्मनः॥ अस्तौषीज्जगदानंदं जगत्संहारकारकम् ॥ ६५ ॥ अश्मचित्त उवाच ॥ वन्देऽहं भवभयहरं महेशमीशं भावाभावैरहितमजं विभुं वरेण्यम् ॥ यद्वै धाम वृषवरगं प्रपन्नचित्ते तद्वै वंदे निजगुरुं शंकरेशशिवेशम् ॥ ६६ ॥ अगणितगुणमहिमानं पारगं सर्वनाथं विविधभुजगशोभं पर्वतेशे विभांतम् ॥ सुरदनुजमनुजयोनिभारनाशं हि पृथ्व्याः निगमकथितरूपं पार्वतीशं नमामि ॥ ६७॥ यदुदरवरकुहरमध्ये प्रेरिता वाननाथैस्तनुजपुलककुलकमार्गे ब्रह्मणेन्द्रा विशंति ॥ रविकरनिकरशुभजालैर्जालभव्यं यथा वै लघुतरमणुकुलानि प्रे-

समस्त अंगोसहित धर्मकी व्यवस्था, एवं चारों वेद, और उत्तम आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र ॥ ६२ ॥ गान्धर्व और अर्थ शास्त्र, तथा धनुर्वेद ये सबही महा विद्याएँ अभी तुम्हें प्राप्त होतीहैं ॥ ६३ ॥ स्कन्द बोले—जिनको सब कुछ प्रदान करनेकी शक्तिहै ऐसे भगवान् महादेवजीके इस प्रकार कहने पर अठारह विद्याएँ उक्त ब्राह्मणके निमित्त प्रादुर्भूत होगई ॥ ६४ ॥ परमात्मा महादेवजीके रूपकी उत्कृष्टता जानकर जगत्को आनन्द प्रदान करने वाले और संहार कर्त्ता महादेवजीकी वोह ब्राह्मण स्तुति करने लगा ॥ ६५ ॥ अश्मचित्त बोला—सांसारिक भयसे मुक्त करनेवाले, सबके स्वामी अत एव महेश्वर, भावाभाव रहित, अजन्मा, सर्व व्यापक और श्रेष्ठ, एवम् जो तेज स्वरूपहैं, जो वृषके ऊपर आरूढ होकर यात्रा करतेहैं, ऐसे अपने गुरु महादेवजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ६६ ॥ जिनके गुणोंकी महिमा अगणितहै, जो सबके पारगामी और सबहीके स्वामीहैं सर्पोके द्वारा जिनके अंगकी शोभा है और जो गिरिराज कलास पर्वतके ऊपर विराजमान रहतेहैं, देवता दैत्य और मनुष्य सभीको योनिमें जिनकी सत्ताहै, जो भूमिके भारका विनाश करतेहैं, जिनके रूपका वर्णन शास्त्रोंमें कियागयाहै ऐसे पार्वती प्राणनाथ महादेवजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥ जिनके उदर रूप कुहरके मध्यमें ब्रह्माण्ड इस प्रकार प्रवेश करतेहैं (अर्थात्—जिनके द्वारा प्रलयकी जाती है,) जैसे कि—सूर्य किरणोंके द्वारा रन्ध्रोंमें परमाणु आते जातेहैं, उन्ही महादेवजीकी हम

रितानीशमीडे ॥ ६८ ॥ विभो ते रूपं भसितसितमहो मे हृदि सदा वसेद्वै ब्रह्म त्रिभुवनगशुभं बालशशिनः ॥ हस्तौ मे ते भक्तशुभगवत्पूजां वितनुतां शिरो मे देव भवभयहरं च प्रणमतु ॥ ॥ ६९ ॥ पूर्वं तवेश भगवन्भव देवदेव ब्रह्मारमेशौ तव द्रष्टु मंतम् ॥ गतौ प्रभो ऊर्द्धमधश्च लोके गतं न वै हं हि कियान्मनुष्यः॥ ॥ ७० ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ संस्तुवन्ति माहात्मानं देवदेवं महेश्वरम् ॥ ते वै परमभक्तास्तु गच्छन्ति परमं पदम् ॥ ७१ ॥ इमं स्तवं महेशस्य प्रातःप्रातस्तु यः पठेत् ॥ मूर्खो वै लभते विद्यां यथासावश्मचित्तकः ॥ ७२ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो ब्रवीद्द्विजम् ॥ प्रहसँस्तोत्रराजेन संतुष्टो जगदीश्वरः ॥ ७३ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ गच्छ गच्छ हि कैलासं प्रमथेश्वरतां व्रज ॥ तुष्टोऽस्मि स्तवराजेन कृत भक्त्या च विप्रकः ॥ ७४ ॥ जलमात्रं च यो मर्त्यो मम लिंगे प्रदास्यति । यावन्त्यः कणिकास्तत्र लिंगोपरि जलस्य च ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ॥ ७५ ॥ यो बिल्वपत्रमादाय पूजयेत्तेन मां शिवम् ॥ कल्पमे-

स्तुति करतेहैं ॥ ६८ ॥ हे सर्वव्यापक ! विभूतिका लेप करनेसे आपका श्वेत रूप हमारे हृदयमें सदैव निवास करै, हे भक्तवत्सल ! हमारे हाथ आपकी पूजाका आचरण करैं, आप सांसारिक भय का विनाश करते हैं, अत एव मेरा शिर आपको प्रणाम करै॥६९॥हे भगवन् ! प्रथम ब्रह्माजी और विष्णुभगवान् आपका अन्त देखनेके लिये उद्यत हुए, यद्यपि वे ऊपर और नीचे को यथा शक्ति (बहु तेरा) गये परन्तु आपका अन्त उपलब्ध न हुआ तब मनुष्यको उसकी प्राप्ति कैसे हो सक्तीहै ॥ ॥ ७० ॥ स्कन्द बोले–जो मनुष्य देवाधिदेव महादेवजीकी स्तुति करतेहैं, उन परमभक्त महाशयोंको परमपद अर्थात्- मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य महादेवजीके इस स्तोत्रका प्रातःकालही पाठ करैगा,वोह चाहे मूर्खहो तथापि उसे अश्मचित्तकी भांति विद्याकी प्राप्ति हो जायगी॥७२॥सर्वोत्तम इस स्तोत्रके पाठसे सन्तुष्ट हो अत.एव प्रसन्नतासे हँसते हुए भगवान् महादेवजी उस ब्राह्मणसे ये वाक्य बोले ॥ ७३ ॥ श्रीमहादेवजीने कहा–हे द्विजसत्तम ! इस स्तोत्रसे और तुम्हारी की हुई भक्तिसे हम सन्तुष्ट होगये हैं, सुतराम् तुम कैलास पर्वतके ऊपर जाओ और हमारे सब पार्षदोंके अधीश्वर बनो ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य शिवलिंगोपरि केवल जलमात्रही चढातौहै और उस जलकी जितनी कणिका शिवलिंगके ऊपर निपतित होतीहैं उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त वोह मनुष्य शिवलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करताहै ॥ ७५ ॥ और जो व्यक्ति बिल्वपत्र

कं वसेच्छैवे मम लोके सुपुण्यदे ॥ ७६ ॥ अक्षता मम लिंगे वै धृता यावन्त एव हि ॥ तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठते ॥ ॥ ७७ ॥ पुष्पाणि चैव यावन्ति न्यस्तानि च ममोपरि ॥ ताव-द्वर्षसहस्राणि स्वर्गभाग्जायते नरः ॥ ७८ ॥ धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान् ॥ ७९ ॥ नैवेद्यं विविधं यो वै ह्यर्पये-न्मम भक्तितः॥कुत्सितान्नं न वै भुंक्ते तथा जन्मसहस्रकम्॥८०॥ दक्षिणां मम यो दद्यात्संपूज्य भक्तितत्परः ॥ न दारिद्र्यमवाप्नो-ति नरो जन्मसहस्रकम् ॥ ८१ ॥ ममार्द्धनामको भूयाद्गणश्च द्विजसत्तम ॥ नाम्ना नील इति ख्यातिं भुवि यास्यसि चोत्त-माम् ॥ ८२ ॥ अस्य वै गिरिराजस्य नाम वै संभविष्यति ॥ नीलपर्वत इति वै स्मरणाच्छिवदायकः ॥८३॥ अत्र वै निवशि-ष्यामि त्वया सह गणेश्वरः ॥ नीलेश्वर इति ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः॥८४॥गंगातीरे महत्कुण्डं वर्त्तते मम सर्वदा॥ तत्रापि स्नानकर्त्तारो मम रूपा न संशयः ॥ ८५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥

लेके उनके द्वारा मुझ महादेवकी पूजा करताहै वोह एक कल्प पर्यन्त हमारे पुण्यदायक शिवलोकमें निवास करताहै ॥ ७६ ॥ और जितने अक्षत हमारे लिंगके ऊपर चढाये जायँ उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त चढाने वाला व्यक्ति हमारे लोकमें अवस्थित रहताहै ॥ ७७ ॥ अथ च हमारे ऊपर पुष्प चढानेसे उतनेही वर्षपर्य्यन्त स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै कि—संख्यामें जितने पुष्प होतेहैं ॥ ७८ ॥ एवम् धूप दीप प्रदान करने वाले व्यक्तिको नरकोंके दर्शन नहीं होते ॥ ॥ ७९ ॥ जो पुरुष भक्ति भाव पूर्वक नैवेद्य (मिष्टान्न) हमको अर्पण करताहै उसे सहस्रों जन्म पर्य्यन्त निषिद्ध अन्न प्राप्त नहीं होता ॥ ८० ॥ भक्तिभावपूर्वक पूजन करके जो मनुष्य हमारे निमित्त दक्षिणा प्रदान करताहै उस मनुष्यको सहस्र जन्म पर्यन्त दारिद्र्यकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ८१ ॥ हे द्विजराज ! तुम्हारा शिव गण नाम होगा, और इस पर्वतकी उत्तम प्रसिद्धि नीलगिरिके नामसे होगी ॥ ८२ ॥ अर्थात्—इस पर्वतका नील पर्वत नाम होगा, इसका स्मरण करनेसे कल्याणकी प्राप्ति होगी ॥ ८३ ॥ और हे गणराज ! मैं तुम्हारे साथही इस क्षेत्रमें निवास करूंगा, हमारा नीलेश्वर नाम होगा, और भक्तोंकी प्रीतिभी इस नामसे अधिक वृद्धिको प्राप्त होगी॥ ८४ ॥ गंगाजीके तटपर हमारा एक विस्तृत कुण्ड सदा से विद्यमानहै, उसमें स्नान करने वालोंकाभी साक्षात् हमाराही सा स्वरूप होजाता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥ ८५ ॥ स्कन्द बोले—

इत्युक्त्वा भगवान्देवो महादेवो ययौ गिरिम्॥तेन सार्द्धं गणैश्चैव स्तूयमानः सुरासुरैः॥८६॥तस्मादयं द्विजश्रेष्ठ पर्वतः श्रेष्ठतां गतः॥अद्यापि तत्प्रदेशे हि शंखध्वनिरहर्निशम्॥श्रूयते पुण्यकैर्विप्र तथा वै शिवलिंगकम् ॥ ८७ ॥ दृश्यते मुनिशार्दूल प्रत्ययो दर्श्यते मया ॥ तं पर्वतं सकृद्दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८८ ॥ एतदुद्देशतः प्रोक्तं माहात्म्यं तव सुव्रत ॥ को वा साकल्यभावेन वक्तुं शतमुखैरपि ॥ ८९ ॥ अश्मचित्तस्य चरितं कथयिष्यंति ये नराः ॥ इह चैव परामृद्धिं मृताः स्वर्गमवाप्नुयुः ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे नीलपर्वतमाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोध्यायः ॥ १०६ ॥

देवता और असुरोंके द्वारा स्तुति किये हुए देवाधिदेव महादेवजी उस ब्राह्मण तथा अपने अन्यान्य गणोंकाभी साथ लेकर कैलास पर्वतके ऊपर चलेगये ॥ ८६ ॥ इसी कारण हे द्विजराज ! यह पर्वत सबसे उत्कृष्ट समझागया है, हे ब्राह्मणसत्तम ! पुण्यशील महात्माओंको शंखकी ध्वनि अबतक श्रवण गोचर होतीहै अथ च महादेवजीका लिंगभी ॥ ८७ ॥ हे ऋषिराज ! दृष्टिगत होताहै, ये ही वहांका प्रत्यय हमने तुम्हारे प्रति निर्दिष्ट कियाहै; इस पर्वतका एकवारभी दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाताहै ॥ ८८ ॥ हे शुभाचरणशील इसी उद्देशसे हमने तुम्हारे प्रति इसका माहात्म्य वर्णन कियाहै, संपूर्णतया वर्णन करनेको तौ सैकड़ों मुखसेभी किसीकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य अश्मचित्तके चरित्रका वर्णन करेंगे, वे इसे लोकमें प्रभूत ऐश्वर्यका उपभोग कर शरीरान्त होनेपर स्वर्गमें जायँगे ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां षडधिकशततमोध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः १०७.

स्कंद उवाच ॥ ॥ बिल्वपर्वतमाहात्म्यं शृणु नारद भक्तितः ॥ तच्छ्रुत्वापि द्विजश्रेष्ठ पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥ १ ॥ शिवधारा समाख्याता शिवदा तत्र पर्वते ॥ तस्यां नरः सकृत्स्नात्वा शिवे-

स्कन्दजी बोले—हे नारदजी ! अब बिल्वपर्वतके माहात्म्यको भक्तिभाव पूर्वक श्रवण करो, हे द्विजराज ! उसका श्रवण करनेसेभी दुर्लभ पुण्यकी प्राप्तिहोती है ॥ १ ॥ उसी पर्वतके ऊपर कल्याणकी करनेवाली शिवधारा नामकी एक धाराहै, उसमें एक वारभी स्नान करनेसे मनुष्य शिव

न सदृशो भवेत् ॥ २ ॥ तत्रैको बिल्ववृक्षस्तु तस्याधः शिवलिंगकम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ॥ ३ ॥ लिंगस्य दक्षिणे भागे नित्यं तिष्ठति नारद ॥ अश्वतरो महानागो मणिभूषितमस्तकः ॥ ४ ॥ रंध्रात्पातालगाद्विप्र स करोति गतागतम् ॥ कदाचिन्मुनिरूपेण कदाचिन्मृगरूपकः ॥ स्नानं करोति सर्वत्र तीर्थेषु मुनिसत्तम ॥ ५ ॥ वामभागेन तस्यापि गुहा पाषाणमुद्रिता ॥ तस्यां वसति धर्मात्मा योगिनां प्रवरो मुनिः ॥ ॥ ६ ॥ नाम्ना ऋचीक इति वै ख्यातो ब्रह्मविदां वरः ॥ योगयुक्तो महात्माऽसौ शिवसंन्यस्तमानसः ॥ आस्ते स्थावरवद्योगी ब्रह्मभूतो विकल्मषः ॥ ७ ॥ तल्लक्षणं शृणु प्राज्ञ यस्मात्ते प्रत्ययो भवेत् ॥ निशीथसमये तत्र चतुर्दश्यां हि कृष्णके ॥ ८ ॥ पक्षे वै श्रावणे मासि ज्योतिर्वै दृश्यते महत् ॥ श्रूयते कल्कलाशब्दः पुण्यैस्तत्प्राप्य दर्शनम् ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ विभो षण्मुख देवेश जातो मे विस्मयः परः ॥ किं तज्ज्योतिश्च शब्दश्च सर्वं

मनुष्य होजाताहै ॥ २ ॥ उसी स्थानमें एक बिल्ववृक्षहै, उसके नीचे एक शिवलिंग विराजमानहै, उसके दर्शनमात्र करनेसेभी मनुष्य साक्षात् शिवरूप होजाताहै ॥ ३ ॥ सुनो नारदजी ! उक्त शिवलिंगके दक्षिणभागमें अश्वतर नामका एक महानाग जिसका मस्तक मणिकेद्वारा समलंकृतहै सदैव उपस्थित रहताहै ॥ ४ ॥ और वोह पातालगामी रन्ध्रके द्वारा बराबर आताजाता रहताहै हे ऋषीश्वर ! वोह कभी मृगरूप धारण करके और कभी मुनिवेष बनाय सब तीर्थोंमें जाके स्नान करताहै ॥ ५ ॥ उसीके वामभागमें पाषाणसे ढकीहुई एक गुफा विद्यमानहै, उसीमें एक धर्मात्मा योगियोंमें श्रेष्ठ मुनि निवासकरताहै ॥ ६ ॥ उन श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानीका ऋचीक नामहै, यह योगाभ्यासी महात्मा अपने मनको महादेवजीमें लगाकर निष्पाप होनेके कारण ब्रह्मस्वरूप हो स्थावरकी समान स्थितहै ॥ ७ ॥ हे प्राज्ञ ! अब उसके लक्षणोंको सुनो, उसीसे तुम्हैं विश्वास होगा,–श्रावणके महीनेमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको अर्द्धरात्रके समय एक बड़ी ज्योतिके वहाँ दर्शन होतेहैं ॥ ८ ॥ और यदि पुण्यवशात् उसके दर्शन प्राप्त होजायँ तौ कल्कलका शब्द श्रवण गोचर होताहै ॥ ९ ॥ नारदजी बोले–हेदेवाधिदेव सर्व व्यापक षडानन ! ! ! मुझे परम आश्चर्यकी प्राप्ति हुई, वोह ज्योति और शब्द क्या है ? ये सभी हमारे

तत्कथ्यतां मम ॥ १० ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ पुरा राजा बभूवाथ कलिंगे विश्वदत्तकः ॥ एकदा स मुनिश्रेष्ठ मृगयायै गतो वनम् ॥ ११ ॥ हतास्तेन मृगाश्चैव बहवः सिंहशूकराः ॥ दैवाज्जातो महाभाग एकाकी स नराधिपः ॥ १२ ॥ परिश्रांतो नृपस्तत्र वने नरविवर्जिते ॥ ददर्श स सरोयुग्मं शतपत्रैश्च शोभितम् ॥ १३ ॥ नानामृगगणाकीर्णं हंसकारंडवैर्युतम् ॥ सतां मनः स्वच्छजलं जलकुक्कुटशोभितम् ॥ १४ ॥ कोयष्टिकैश्चक्रवाकैः क्रौंचैरन्यैश्च पक्षिभिः ॥ नादितं कलशब्दैश्च तथा कोकिलकूजितैः ॥ १५ ॥ स्थित्वा राजा सरस्तीरे परिश्रांतो महामुने ॥ जलं पीत्वा हि तत्रत्यं यावद्गच्छति भूमिपः॥१६॥तावत्प्राप्तो द्विजश्रेष्ठ सोत्तरीयाजिनांबरः ॥ दृष्ट्वा तं सहसा राजा समुत्तस्थौ तदासनात्॥१७॥संपूज्य वाक्यसंलापैर्विप्रवर्य्यं नराधिपः॥ उवाच वचनं राजा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१८॥ राजोवाच ॥ विप्रवर्य्य महाभाग कत्र गंतासि तद्वद ॥ सतां सप्तपदी मैत्री

प्रति वर्णन करो ॥ १० ॥ स्कन्दजी बोले—पूर्वकालमें कलिंगदेशमें विश्वदत्त नामका राजा हुआथा, हे ऋषिराज ! एक समय वोह आखेटके तईं वनको गया ॥ ११ ॥ और उसने बहुतसे मृग सिंह और शूकरोंका वध किया, हे महाभाग ! दैववशात् वोह राजा बिछड़कर वहां अकेला रहगया ॥ १२ ॥ और वह भूपाल उक्त निर्जन वनमें थकगया, उसी समय उसको दो ऐसे सरोवरोंका दर्शन हुआ, जो कि, कमलोंसे सुशोभितथे ॥ १३ ॥ अनेक मृग हंस और कारण्डव उस स्थानमें उपस्थितथे, जैसे सज्जनोंका मन स्वच्छ होताहै ऐसेही निर्मल जलसे वे सरोवर परिपूर्ण थे, और जलकुक्कुट (जल मुर्गाबी) उनकी शोभाको और भी बढ़ारहीथीं ॥ १४ ॥ कोयष्टिक (जलचर पक्षीविशेष), चक्रवाक, क्रौंच तथा अन्यान्य पक्षियोंके द्वारा कल २ शब्दसे प्रतिध्वनित और कोकिलाओंके शब्दसे वे सरोवर व्याप्त होरहे ॥ १५ ॥ हे महामुनि ! थकेहुए उस राजाने सरोवरके तीरपर खडे होकर जलपान करा, और फिर वोह भूपाल जभी वहांसे चला ॥ १६ ॥ तभी कृष्णमृगचर्मके उत्तरीयको धारण करे हुए एक ब्राह्मण प्राप्त हुआ, और उसके दर्शन करतेही राजा आसनके ऊपरसे उठखड़ा हुआ ॥१७॥ राजाने वार्त्तालापसे द्विजराजकी पूजा कर विस्मयसे नेत्रोंको प्रफुल्ल बनाके ये वचन कहे ॥ १८ ॥ राजा बोला—हे महाभाग ! द्विजराज ! आप कहां जारहे हैं यह मुझे बताइये; हे मुनिनन्दन !

वर्त्तते मुनिनंदन ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं वचनं त्वया ॥ एको व्यापी जगत्सर्वं मित्राऽमित्रविवर्जितः ॥२०॥ कुत्र तद्गमनं विद्यां क्व स्थितिं परमात्मनः ॥ को वा मित्रममित्रं वा ह्येकस्य निखिलात्मनः ॥ २१ ॥ किं ब्रुवेऽहं महाराज त्वदुक्तस्योत्तरं विभो ॥ विशेषं नाधिगच्छामि शिवस्य परमात्मनः ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ किं वा त्वया द्विज श्रेष्ठ कृता सेवा महात्मना ॥ योगिनां यस्य ते बुद्धिरद्वैतामृतवर्षिणी ॥ २३ ॥ कथं प्राप्तं त्वया ज्ञानं शिवस्य परमात्मनः ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्यैतज्ज्ञानमीदृशम् ॥ २४ ॥ समता सर्वभूतेषु शत्रुमित्राप्तबन्धुषु ॥ कथं संजायते तन्मे प्रपन्नाय वदस्व मे ॥ २५ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ साधुसंगतिरेवात्र कारणं वसुधाधिप ॥ तन्मूर्त्तिषु सदा ध्यानं तत्तन्नामानुकीर्त्तनम् ॥२६॥ राजोवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि त्वया सह द्विजोत्तम ॥ त्वत्स-

सज्जनोंकी सातपदीही मैत्री होतीहै (अर्थात्–सज्जन सात पगभी जिसके साथ चललेतेहैं उससे मित्रताका आचारण करने लगते हैं) ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोला–सुनो राजन् ! तुमने जो वाक्य कहे उनका उत्तर मैं तुम्हें सुनाताहूं, जिसे मित्रशत्रुका विचार नहीं है ऐसा एक ही इस जगत्में सर्वत्र व्याप्तहै ॥ २० ॥ तो फिर उसका गमन अथवा स्थिति कहां होसक्तीहै, जब अखिलात्मा परमात्मा एकहीहै तब उसका मित्र शत्रु कौन होसक्ताहै ॥ २१ ॥ सुतराम्--हे महाराज ! आपके प्रश्नका मैं क्या उत्तरदूं ? शिव परमात्माकी मैं कुछ विशेषता नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ राजा बोला·-हे महाभाग द्विजराज ! तुमने किन योगियोंकी सेवाका आचरण कियाहै जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी अद्वैत रूप अमृतकी वर्षा करतीहै ॥ २३ ॥ आपका ऐसा अद्भुत ज्ञानहै, अतएव आपही कृतकृत्यहैं, और आपको धन्यहै, परमात्मा महादेव विषयक ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानकी प्राप्ति आपको किसप्रकार हुई है ॥ २४ ॥ शत्रु मित्र आप्त और बन्धु बान्धव आदि सभी प्राणियोंमें समान दृष्टि कैसे होसक्ती हैं ? मुझ शरणागतसे यह सब वर्णन करिये ॥ २५ ॥ ब्राह्मण बोला हे भूमिपति ! साधुओंकी संगतिही इस विषयमें प्रधान कारण है, और ईश्वरकी मूर्त्तिका सदा ध्यान करना कर्त्तव्य है, और उन्हीके नामका कीर्तन करना चाहिये ॥ २६ ॥ राजा बोला–हे द्विजराज ! मैं भी आपके साथ चलूंगा क्योंकि–साधुओंमें परमोत्तम साधु आपकी समान त्रिलो-

मो नास्ति त्रैलोक्ये साधूनां साधुरुत्तमः ॥ २७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वं तु राजा महाभाग भिक्षूणां कल्पवृक्षकः ॥ कथं स्थास्यसि विपिने कंदपर्णफलाशनः ॥ २८ ॥ राज्यं पालय धर्म्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ मनो यस्य महादेवे सर्वज्ञे जगदीश्वरे ॥ २९ ॥ सर्वकर्मफलत्यागी ब्राह्मणानां च पूजकः॥ भव राजन्स्वयं देवं सुतरां यास्यसि प्रभुम् ॥ ३० ॥ राजोवाच॥ भगवन्द्विजशार्दूल बुद्धिरस्मादृशां मुने ॥ मूकाल्पज्ञानबोधेन शुद्धानैवोपजायते ॥ ३१ ॥ तद्वदस्व महाभाग सम्यग्जानासि तद्यथा॥ दीनस्य संतः सुधियो भवंत्येवोपकारिणः॥३२॥ब्राह्मण उवाच ॥ क्रियाकालो मम प्राप्तो राजन्भो विश्वदत्तक ॥ इदानीं तीर्थके पुण्ये मायाक्षेत्रे व्रजाम्यहम् ॥ ३३ ॥ गच्छ त्वमपि तत्रैव बोधार्थं परमात्मनः॥ऋचीको मुनिवर्य्यस्तु वर्त्तते विल्व-पर्वते ॥ ३४ ॥ शिवस्य वामभागे तु गुहा गुप्ततमा नृप ॥ तस्यां योगिवरो नित्यं वसति द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥ स वै ब्रह्मविबोधार्थं

कीमें और कोई नहीं हैं ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला—हे महाभाग ! तुम राजा अत एव भिक्षुकोंके लिये कल्पवृक्षकी समानहो, सुतराम् जहां कन्द पर्ण और फलोंका भोजन मिलताहै ऐसे बनमें तुम कैसे रहसकोगे ॥ २८ ॥ धर्मपूर्वक राज्यका पालन करो, और औरस पुत्रकी भांति प्रजाको पालो पोसो अथ च सर्वज्ञ जगदीश्वर महादेवजीमें अपनी चित्त वृत्तिको लगाओ ॥ २९ ॥ सब कर्मोंकी फलप्राप्तिकी वासनाको त्यागदो, ब्राह्मणों की पूजाकरो, तब हे राजन् ! स्वयं ही तुम्हैं ब्रह्मज्ञानका लाभ होगा ॥ ३० ॥ राजा बोला—हे ऐश्वर्यशाली द्विजराज मुनीश्वर ! ! ! हम जैसे अज्ञानियोंकी बुद्धि मूकता अथ वा स्वल्पज्ञानके बोधसे शुद्ध नहीं होसक्ती ॥ ३१ ॥सो हे महाभाग ! आप सब कुछ भली भांति जानतेहैं कोई उत्तम उपाय बताइये सुधी सन्त महात्मा लोग दीनोंका उपकारी करते हैं ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण बोला—हे विश्वदत्त महाराज ! हमारी क्रियाके समय तुम्हारी भेंट हुई, सम्प्रति मैं पवित्र मायाक्षेत्र तीर्थको जा रहाहूं ॥ ३३ ॥ परमात्माके ज्ञानकी प्राप्तिकेलिये तुमभी हेराजन् ! वहां ही चलो, वहां बिल्वपर्वतके ऊपर ऋचीक नाम मुनीश्वर निवास करतेहैं ॥ ३४ ॥ और महादेवजीके वामभागमें एक अतिशय गुप्त गुफा विद्यमानहै, उसीमें वोह द्विजराज श्रेष्ठ योगी निवास करतेहैं ॥ ३५ ॥ वे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिकेलिये अवश्यही तुम्हैं उपदेश करेंगे, अत एव तुम

वदिष्यति न संशयः॥तत्र गत्वा प्रयत्नेन तस्य सेवापरो भव ॥३६॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा महावाक्यं ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ ययौ तेनैव विप्रेण पादचारेण नारद ॥ ३७॥ तत्र गत्वा बहुतरं स्नात्वा पापविवर्जितः ॥ जातो नराधिपः शुद्धो ब्राह्मणेन च संगतः ॥३८॥ ययौ तेनैव मार्गेण मुनिना दर्शितेन च॥ तत्र दृष्ट्वा समाधिस्थमृचीकं मुनिसत्तमम् ॥३९॥ ननाम चरणौ तस्य पुनः पुनरुदारधीः ॥ प्राप्तवान्योगशास्त्रं च ऋचीकान्मुनिसत्तमात् ॥ ४० ॥ योगी बभूव नृपतिस्तीर्थाटनपरोऽभवत् ॥ सर्वतीर्थेषु च स्नात्वा नित्यं स मनुजाधिपः ॥ ४१ ॥ वर्षेवर्षे स राजर्षिर्मुनिदर्शनलालसः ॥ स्तूयमानो मुनिगणैरायाति नियतेंद्रियः ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्मयस्तदा देहो दृश्यते पुण्यकारकैः ॥ शब्दो मुनीनां स्तुवतां साधुसाध्विति वादिनाम् ॥ ४३ ॥ श्रूयते च महाभाग महापुण्यसुकर्तृभिः ॥ ४४ ॥ तत्रैव गंगानिकटे पादुके ब्रह्मणः शुभे ॥ ते दृष्ट्वापि सकृन्मर्त्यो मृतो ब्रह्मपुरे

वहां जायकर उनकी सेवामें तत्पर होजाओ ॥ ३६ ॥ स्कन्दजी बोले—महात्मा ब्राह्मणके ऐसे वाक्य श्रवण करके हे नारदजी ! वोह राजा उक्त ब्राह्मणके साथ पैरों २ हीं वहांको चलदिया ॥ ३७ ॥ वहां जाय बहुत भांतिसे स्नान करनेके कारण राजा निष्पाप होगया, सुतराम् शुद्ध होकर उसने ब्राह्मणसे भी समागम किया ॥ ३८ ॥ अर्थात्—मुनिके दिखाये हुए मार्गसे जायकर समाधिमें अधिष्ठित हुए ऋचीक मुनिके राजाने दर्शन किये ॥ ३९ ॥ उस सुबुद्धिने बार २ महर्षिके चरणोमें प्रणाम किया, सुतराम् उसको ऋषिराज ऋचीकजीके सकाशसे योगशास्त्रकी प्राप्ति हुई ॥ ४० ॥ निदान वोह राजा भी योगी होकर तीर्थोंमें पर्य्यटन करने लगा, और वोह मनुष्येश्वर नित्यही तीर्थोंमें जाय २ कर उनमें स्नान करताथा ॥ ४१ ॥ और तभीसे वोह राजा प्रतिवर्ष महर्षिके दर्शनोंकी अभिलाषा करके वहां उपस्थित होताहै, और उस जितेन्द्रियकी महर्षिगण स्तुति करतेहैं॥४२॥तब पुण्यात्मा महात्मा जनोंको उसका ज्योतिःस्वरूप देह दीखताहै, और धन्य २ कहकर स्तुति करतेहुए मुनीश्वरोंका शब्द श्रवणगोचर होताहै ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! जिन्होंने उत्तमोत्तम पुण्योंका आचरण कियाहै उन्हीको शब्द श्रवणगत होताहै ॥ ४४ ॥ वहां ही गंगाजीके निकट ब्रह्माजीकी शुभ पादुका विद्यमानहैं, उनके एक बार भी दर्शन करनेसे मनुष्य मरक

वसेत् ॥ ४५ ॥ गंगायां स्नानमात्रेण बिल्वतीर्थे नरोत्तमः ॥ कोटिजन्मकृतैः पापैस्तत्क्षणात्परिमुच्यते ॥ ४६ ॥ बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैस्तु योऽर्चयेत् ॥ यथासंख्यैर्बिल्वपत्रैः स वसेत्कल्पकोटिभिः ॥ ४७ ॥ त एव धन्याः मनुजाः शिवरात्रे प्रयांति ये ॥ बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैरनेककैः ॥४८॥ तस्माच्छरद्वये विप्र पूर्वभागे हि पर्वते ॥ जलं पुण्यतमं ख्यातं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४९ ॥ विंशतौ च धनुर्माने ह्यधस्तान्मुनिवंदित ॥ आकरो हि सुवर्णस्य प्राप्यं वै पुण्यकर्मणाम् ॥ ५० ॥ जलेऽस्मिन्मंडलं यावत्स्नानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः ॥ फलमूलजलाहारस्तदा पश्यति शंखनीम् ॥ ५१ ॥ ततः कोशार्द्धके प्राच्यां भ्रमरी नाम विश्रुता ॥ समायाति सरिच्छ्रेष्ठा प्राणिनां स्वर्गदायिनी ॥५२॥ भ्रमरीसंगमो यत्र तत्तीर्थं भ्रामणं मतम्॥तत्रैव भ्रमरी देवी जले तिष्ठति सर्वदा॥५३॥इति वै बिल्वतीर्थस्य माहात्म्यं गदितं शुभम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापैश्च मुच्यते पठनात्तथा ॥५४॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये बिल्वतीर्थमाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

ब्रह्मलोकमें निवास करताहै ॥ ४५ ॥ बिल्वतीर्थमें जो नरोत्तम गंगाजीमें स्नान करताहै, करोड़ों जन्मके पातकोंसे तत्कालही उसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य यथास्थित बिल्वपत्रोंके द्वारा विश्वेश्वर महादेवजीकी अर्चना करताहै करोड़ों कल्पपर्यन्त वोह शिवलोकमें निवास करताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य अनेक प्रकारके बिल्वपत्र लेकर शिवरात्रिमें बिल्वेश्वर महादेवकी यात्रा करतेहैं, उन्हें धन्यहै ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! उससे दो वाणकी दूरीपर उसी पर्वतपै पूर्वकी ओर भोग और मोक्षका देनेवाला अतिशय जल विद्यमानहै ॥ ४९ ॥ हे मुनिपूजित ! उससे नीचे बीस धनुषकी दूरीपर सुवर्णका आकरहै उसकी प्राप्ति केवल पुण्यकर्त्ताओंहीको होतीहैं ॥ ५० ॥ जहांतक यह मण्डलहै इसमें जितेन्द्रिय हो स्नान करै और फल मूल एवम् जलका आहार करतारहै तब उस निधिके दर्शन होतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांसे पूर्वकी ओर आधे कोसकी दूरीपर भ्रमरी नामकी एक श्रेष्ठ नदी आतीहै यह नदी प्राणियोंको स्वर्गप्रदान करतीहै ॥५२॥ और जहां भ्रमरीका संगम हुआहै उसको भ्रामर कहते हैं, वहां जलमें सदा भ्रमरी नमकी देवीजी विराजमान रहतीहैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार बिल्वतीर्थका शुभ माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, इसका श्रवण तथा पाठ करनेसे मनुष्यको सब पापोंसे छुटकारा मिलजाताहै ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८.

स्कंद उवाच ॥ ॥ शृणु नारद भक्त्या वै त्रिमूर्त्ति तीर्थनायकम् ॥ बिल्वतीर्थात्रिगव्यूतौ वर्त्तते मोक्षदं परम् ॥१॥ जलं रक्ततमं ह्यत्र समायाति मुनीश्वर ॥ त्रिमूर्त्तीश्वरो महादेवः सर्वेषां मक्तिदायकः ॥ २ ॥ यस्मिंस्तीर्थे सकृत्स्नातो व्रजेच्छिवमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ तत उत्तरदेशे हि नदी परमपावनी ॥ सुनंदेति समाख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ ४ ॥ तन्मूले भगवान्देवः सुनन्देश्वरसंज्ञकः ॥गंगायां तत्र देशे हि यत्र नंदीशिला भवेत् ॥ ५ ॥ पीतवर्णा तत्र देशे शिवतीर्थं सुपुण्यदम् ॥ शिवतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥ नंदीश्वरो महादेवस्तत्र सर्वगणावृतः ॥ तं दृष्ट्वा साधकश्रेष्ठो जप्त्वा मंत्रं शिवात्मकम् ॥ शिवलोकमवाप्नोति सहस्रं युगसंख्यया ॥ ७ ॥ ततोऽपि क्रोशमात्रे हि वीरभद्रतपःस्थलम् ॥ लक्षवर्षसहस्राणि तताप परमं तपः ॥ ८ ॥ गणेश्वरं महादेवो वीरभद्राय संददौ ॥ शिवकुंडे

स्कन्दजी बोले—अब—हे नारदजी ! भक्तिभाव पूर्वक तीर्थराज त्रिमूर्त्तिके माहात्म्यको सुनो, बिल्वतीर्थसे छः कोसके अन्तरपर परमपद मोक्षका देनेवाला वोह स्थान विद्यमानहै ॥ १ ॥ हे मुनिराज ! यहां अत्यन्तही रक्तवर्णका जल आता है, और सबको मुक्ति देनेवाले त्रिमूर्त्तीश्वर नामके महादेवजी यहां विराजमानहैं ॥ २ ॥ इस तीर्थमें एक वारभी स्नान करनेसे मनुष्य सर्वोत्तम शिवलोकमें जाके निवास करताहै ॥ ३ ॥ उसके उत्तरी भागमें सुनन्दा नामकी परम पवित्र नदी विद्यमानहै, वोह नदी समस्त दरिद्रोंका विनाश करती है ॥ ४ ॥ उसके मूलमें सुनन्देश्वर नामके भगवान् महादेवजी विद्यमान रहते हैं, उसी स्थानमें गंगाजीमें नन्दीशिलाभीहै ॥ ५ ॥ उसका वर्ण पीलाहै उसी प्रदेशमें पुण्यदायक शिवतीर्थ है, जो मनुष्य शिवतीर्थमें स्नान करता है वोह सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ६ ॥ अपने सब गणोंसे आवृत होकर नन्दीश्वर नामके महादेवजी वहां विराजमान रहते हैं, जो श्रेष्ठ साधक उनके दर्शनकर शिवात्मक मन्त्रका जप करता है उसे सहस्रोंयुग पर्यन्त शिवलोकमें निवास करनेका समय उपलब्ध होताहै ॥ ७ ॥ उससे एक कोसकी दूरीपर वीरभद्रके तपका स्थानहै, उस स्थानमें लक्ष सहस्र वर्षपर्यन्त वीरभद्रने उग्र तपश्चर्या करी थी ॥ ८ ॥ तब महादेवजीने वीर भद्रको अपने

नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्था-
नि तानि सर्वाणि नारद ॥ स्नातानि तेन भगवान् पूजितश्च
तथा भवेत् ॥ १० ॥ वीरभद्रेश्वरो देवो लिंगरूपी सदाशिवः ॥
तत्र बिल्ववने विप्र दृष्टो मुक्तिप्रदो भवेत् ॥ ११ ॥ यस्त्रिरात्रं
महालिंगं पूजयेन्निर्भयो मुने ॥ स सर्वसिद्धिमाप्नोति सत्यं त-
च्छिवभाषितम् ॥ १२॥ एकतः सर्वदानानि सर्वतीर्थाटनं पुनः॥
एकतो दर्शनं तत्र वीरभद्रेश्वरस्य हि ॥ १३ ॥ वीरभद्रेश्वरं
दृष्ट्वा स्नात्वा च शिवतीर्थके ॥ हयमेधफलं विप्र प्राप्नोति परमं
पदम् ॥ १४ ॥ निराहारः सप्तरात्रं यो नरोत्र शिवाश्रितः ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यमेतन्न संशयः ॥ १५ ॥ शिवस्य द-
क्षिणे भागे धारा क्रोशार्द्धखंडके ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या
सूर्य्यलोकमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥ ततो वै पश्चिमे भागे जलं पीत-

सब गणोंका अधीश्वर बनाया था । शिवकुंडमें स्नान करके मनुष्य संपूर्ण पापोंसे मुक्तहो जाताहै ॥ ९ ॥ सुनो नारदजी ! भूमिके ऊपर जितने तीर्थ हैं मानो उसने सभीमें स्नान करलि या और भगवान्की पूजाभी करलिया॥१०॥उस स्थानमें सदा शिव महादेवजी लिंगरूपी वीरभद्रेश्वर नामसे विराजमान रहतेहैं, हे विप्र ! बिल्ववनमें उनके दर्शन करनेसे मुक्तिका लाभ होताहै ॥११॥ हे मुने ! जो मनुष्य निर्भयहो तीन रात्रिपर्य्यन्त महालिंगका पूजन करताहै, महादेवजीने यह सत्यही कहाहै कि, उसे सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण दान और अखिल तीर्थोंकी यात्रा ये तौ सब एक ओर हैं, और वीरभद्रेश्वर महादेवके दर्शन एक ओर हैं, अर्थात् सम्पूर्ण दान करने और सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होतीहै, वीरभद्रेश्वर महादेवजीके दर्शन करनेसे भी वोही फल प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ वीरभद्रेश्वर, महादेवके दर्शन करने और शिवतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फल और परमपद मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १४॥ जो मनुष्य सात रात्रि पर्य्यन्त निराहार रहकर महादेवजीकी आराधना करनेमें तत्पर रहताहै, यह बिलकुलही सत्यहै कि, उसे समस्त कामनाओंकी प्राप्ति होतीहै ॥ १५ ॥ उक्त शिवजीके दक्षिणभागमें आधे कोसकी दूरीपर एक धाराहै उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको सूर्य्यलोककी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ उसके पश्चिमभागमें पीतवर्णका जल विद्यमानहै सूर्य्यके मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर जो मनुष्य एक बारभी उसका आचमन करताहै तौ उसका मन जल-

मं शुभम् ॥ सकृदाचम्य विधिवत्सौरमंत्राभिमन्त्रितम् ॥ पिबे-
च्छुद्धमना विप्र सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ ततो वामप्रदेशे
ै शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ दृष्ट्वा संस्नाप्य गांगेन तोयेन शिवमाप्नु-
यात् ॥ १८ ॥ तत्रैका सलिलानाम्नी सुरकन्या सुरार्चका ॥
मध्याह्ने नित्यमायाति पूर्णचंद्रनिभानना ॥ १९ ॥ भवित्री सा
परे कल्पे शची देवपतिप्रिया ॥ २० ॥ पितृभ्यो यवपिष्टस्य
पिंडान्दद्याद्विचक्षणः ॥ तारितास्तेन पितरो दश पूर्वा दशापराः
॥ २१ ॥ ततोऽतिनिकटे वामे निवर्तनमितेस्थले ॥ मुंडमा-
लेश्वरी देवी प्रमथोत्करशोभिनी ॥ २२ ॥ यस्या दर्शनमात्रेण
सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ नानावाद्यमयाः शब्दाः श्रूयंते देवता-
हताः ॥ २३ ॥ तत्र पीठेश्वरी देवी सर्वभूता मनोहराः ॥ तस्मि-
न्स्थाने तु यो मर्त्यो धीरात्मा दृढनिश्चयः ॥ न कार्य्या भीस्ततो
विप्र य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २४ ॥ ददाति दर्शनं तस्य
मुंडमालेश्वरी शिवा ॥ नानारूपधरास्तत्र दृश्यंते प्रमथ
स्त्रियः ॥ २५ ॥ पुरश्चर्यां च विधिवत्सप्तरात्रं जितेंद्रियः ॥

ान करनेके कारण शुद्ध होजाता है अत एव उसे सूर्य लोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ ॥
उसके वाम भागमें सर्वोत्तम शिव लिंगहै, उसके दर्शन करके जो मनुष्य गंगाजलसे उक्तलिं-
गको स्नान करताहै उसकी कल्याणकी प्राप्ति होतीहै ॥ १८ ॥ उसी स्थानमें सलिला नामकी
एक देव कन्याहै वोह चन्द्रमुखी देव पूजन करनेके लिये नित्यही मध्याह्न समय वहां आती
है ॥ १९ ॥ अपरकल्पमें वोही सुरराज इन्द्रकी प्रियपत्नी इन्द्राणी होगी ॥ २० ॥ जो चतुर
व्यक्ति यवके चूर्णके पिण्ड पितरोंके निमित्तदान करताहै उसके दश पहिले और दश अपर
पितरोंका उद्धार होताहै ॥ २१ ॥ उसीके निकट बीस वांस प्रमाणकी दूरीपर-प्रमथगणोंसे
सुशोभित मुण्डमालेश्वरी नामकी देवी बिराजमानहै ॥ २२ ॥ उसके केवल दर्शनही करनेसे मनुष्य
सब सिद्धियोंका अधीश्वर होताहै, उक्तस्थानमें देवताडित विविधवाद्योंके शब्द सुनाई पड़तेहैं
॥ २३ ॥ वहांही पीठेश्वरी नामकी देवी हैं वे सभी प्राणियोंके मनका अपहरण करती हैं, जो
धीर पुरुष दृढ निश्चयपूर्वक उक्तस्थानमें अपने कल्याणकी अभिलाषा करै उसे भय न करना
चाहिये ॥ २४ ॥ तौ मुण्डमालेश्वरी देवी उसे दर्शन देतीहैं, विविधभांति रूप धारण करे हुए
वहां प्रमथगणोंकी स्त्रियोंकेभी दर्शन होतेहैं ॥ २५ ॥ जे व्यक्ति इन्द्रियजित् होकर सात रात्रि-

असाध्यमपि सप्ताहात्साधयेत्साधकोत्तमः ॥ २६ ॥ तस्य दक्षिणतो विप्र शिला पीततमालिका ॥ आश्चर्य्यं दृश्यते तत्र शयनात् पूर्वजन्म यत् ॥ २७ ॥ यस्मिन्कुंडे च योनौ च जातं पूर्वं तपोनिधे ॥ जानाति शयनात्तत्र यदि जीवति मानवः ॥ २८ ॥ इति गुह्यतमान्येव कथितानि तवाधुना ॥ पित्रोः श्रुतानि मे यानि वदतोर्वै परस्परम् ॥ २९ ॥ गोपनीयानि यत्नेन कलौ बुद्धिविवर्जितान् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायातीर्थमाहात्म्यनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

पर्य्यन्त पुरश्चरण करताहै, वोह उत्तम साधक असाध्य कार्य्योंकोभी साधलेताहै ॥ २६ ॥ हे विप्र ! उसके दक्षिणभागमें पीत तमालिका शिलाहै, वहां शयन करनेसे पूर्वजन्मका आश्चर्य्य अवलोकित होताहै ॥ २७ ॥ हे तपोनिधे ! जिस कुल और योनिमें पूर्वजन्ममें प्रादुर्भाव हुआ था उस सब वृत्तान्तको जान सक्ताहै यदि वहां शयन करते जीवित रहै ॥ २८ ॥ हमने अपने माता पिताके परस्पर संभाषणके समय जो कुछ श्रवण कियाथा वह सभी गुप्तरहस्य तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ २९ ॥ कलियुगमें बुद्धिविहीन व्यक्तियोंके प्रति इसको प्रगट करनेसे अवश्यही गुप्त रखना चाहिये ॥ ३० ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोध्यायः १०९.

नारद उवाच ॥ हरिद्वारे महाभाग कानि तीर्थानि तानि मे ॥ कथयस्व प्रसादेन मुक्तिदानि विना व्रतैः ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम् ॥ सकृत्स्नातं तु

नारदजी बोले—हेमहाभाग ! हरिद्वा[1]रमें जो ऐसे तीर्थ हों कि, व्रतोंका आचरण न करनेसे मोक्ष प्रदान करते हैं, कृपाकरके उनका वर्णन हमारे प्रति करिये ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले—सुनो नारदजी संसारकी मुक्ति करनेवाले तीर्थोंका वर्णन करतेहैं, कल्याणकारी हरिद्वारमें एक वारभी जिन मनुष्योंने

---

१ आधुनिक बहुतसे महाशय "हरिद्वार" को "हरद्वार" लिखते और बोलतेहैं, और उनका यह सिद्धान्त है कि—यहांहीसे कैलास जो कि 'हर' अर्थात् महादेवजीका निवास गिरिहै उसको मार्ग जाताहै अत एव इसे 'हरद्वार'ही कहना सयुक्तिक है । परन्तु यह उनका भ्रम है क्योंकि इसी तीर्थके निकट तपोवन आदि पुण्यतम आश्रम हैं वहां तपका अनुष्ठान करनेसे हरि और मोक्षकी प्राप्ति होती है, सुतराम् हरिद्वार नामही शास्त्रसम्मत है ।

यमर्त्यैर्गंगाद्वारे शुभावहे ॥ न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतै-रपि ॥२॥ गंगाद्वारसमं तीर्थं न कैलाससमो गिरिः ॥ वासुदेव-समो देवो न गंगासदृशं परम् ॥ न गोदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ३ ॥ शृणु दिव्यां कथां पुण्यां गंगाद्वाराश्रितां शुभाम् ॥ पुरा त्रेतायुगे शूद्रो बभूव विजये पुरे ॥ ४ ॥ नाम्ना शंबुक इति वै ख्यातो विप्राश्रमे मुने ॥ सेवार्थं सार्थलग्नौ वै एकाकी शुभतत्परः ॥ ५ ॥ गंगाद्वारे महाक्षेत्रे देवर्षिगणभूषिते ॥ शकटानड्वृषभनियोगे कुशलो मुने ॥ आययौ वेतनी तत्र शंबुकोनाम शूद्रकः ॥ ६ ॥ दृष्टास्तेनात्र मुनयो धनिनश्च नृपा-स्तथा ॥ कौतुकार्थं पर्य्यटितं सर्वत्र मुनिवंदित ॥ ७ ॥ पुण्य-क्षेत्रे क्षणात्तस्य पापं सर्वं क्षयं गतम् ॥ निष्कल्मषोऽभवच्छूद्रो ज्ञानवान् समजायत ॥ ८ ॥अधिकारविहीनस्य शूद्रस्यापि महामते ॥ रामभद्रस्य भगवदवतारस्य सन्निधौ ॥ बभूव मरणं तस्य मुक्तिं चाप्यनिवर्त्तिनीम् ॥ ९ ॥ दर्शनाद्यस्य पुण्यस्य

[...]न कियाहै, सैकड़ों करोड कल्पके पीछेभी फिर उनका (संसारमें) पुनरावर्तन नहीं होता [...]र्थात् हरिद्वारमें एक बार भी स्नान करनेसे मोक्ष होजातीहै ॥२॥ हरिद्वारकी समान तीर्थ, कैला[...] [...]की सदृश पर्वत, वासुदेवकी समान देवता, गंगाजीकी तुल्य नदी और गोदानकी समान दान [...]लोकोंमें अन्य कोईभी नहींहै ॥ ३ ॥ अब हरिद्वार सम्बन्धिनी परम शुभ पवित्र और दिव्यकथा-[...]ो श्रवण करो, पूर्वकालमें त्रेतायुगमें विजयपुरका एक शूद्रजातीय व्यक्ति था ॥ ४ ॥ हे मुनि-[...]ज ! उसका शम्बुक नाम था, वह एकाकी सेवा करनेके लिय ब्राह्मणके आश्रममें प्राप्त हुआ, [...]र उन्हींके साथ २, देवर्षिगणसे समलंकृत हरिद्वार महाक्षेत्रमें आया, क्योंकि हे मुनीश्वर ! वह [...]ाड़ीमें बैल जोतने (अर्थात्—गाडीवानीके काम) में अत्यन्त निपुण था अत एव वेतनकी अभि-[...]ाषासे वह शूद्रशम्बुक वहां प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसने यहां अनेक मुनियोंको और धनाढय [...]राजाओंको देखा, तब तौ कौतुकाविष्ट हो हे मुनिराज! वह सर्वत्रही विचरने लगा ॥ ७ ॥ उस [...]वित्र धाममें विचरनेसे उसके सब पाप क्षणभरमें विनष्ट होगये, सुतराम् निष्पाप होजानेके कारण [...]ह शूद्र ज्ञान सम्पन्न होगया ॥८॥ हे महामते ! यद्यपि वह शूद्र अधिकार हीन था, तथापि भग-[...]न् रामचन्द्रजीके अवतारके समक्ष उसकी मृत्यु हुई और निश्चल मुक्तिका लाभ उसे हुआ [...] ९ ॥ जिस पवित्र क्षेत्रके दर्शन करनेसे शूद्रकोभी परम गतिका लाभ हुआथा, तौ

क्षेत्रस्य परमां गतिम् ॥ शूद्रोपि प्रययौ तत्र किमन्ये ब्राह्मणादयः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा मायापुरीं पुण्यां स्नात्वा च ब्रह्ममंदिरे ॥ वाराणसीं लभेदंते सत्यं सत्यं हि नारद ॥ ११ ॥ त्रिषु स्थानेषु ये मर्त्या निवसंति महामुने ॥ गंगाद्वारे तथा काश्यां गंगासागरसंगमे ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १२ ॥ धन्यानां पुरुषाणां हि गंगाद्वारस्य दर्शनम् ॥ विशेषतस्तु मेषार्कसंक्रमेतीव पुण्यदे ॥ १३ ॥ तत्रापि कुंभराशिस्थे वाक्पतौ सुरवंदिते ॥ अयने विषुवे चैव संक्रांतौ चंद्रसूर्य्ययोः ॥ १४ ॥ ग्रहणे वा व्यतीपाते पूर्णिमायां महामुने ॥ सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा ॥ १५ ॥ अमायां च तथा माघ वैशाखे कार्त्तिकेपि वा ॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां मुनिसत्तम ॥ भजंते सन्निधिं तत्र स्नातः सर्वत्र जायते ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां पंचकं पृथ्व्यां स्थास्यति प्रवरे कलौ ॥ गंगाद्वारं च केदारं काशी गंगागमस्तथा ॥ १७ ॥ गंगा च संगता यत्र सागरेण महामते ॥ गंगापि स्थास्यतेऽत्रैव सत्यमेतच्छिवेरितम् ॥ १८ ॥ अत्र स्नातोधिकारीस्याद्गंतुं केदारसन्निधिम् ॥ तस्मात्स-

फिर अन्य ब्राह्मणादिकोंके लिये तो कहनाही क्याहै ? ॥१०॥ पवित्र मायांपुरीके दर्शन और ब्रह्ममन्दिरमें स्नान करके हे नारदजी ! अन्तसमयमें अवश्यही काशीधामकी प्राप्ति होतीहै इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ हे महामुने ! हरिद्वार, काशी और उत्तम गंगासागरसंगम इन तीन स्थानों में जो व्यक्ति निवास करतेहैं, सैकडों करोड़ कल्पमेंभी फिर उनका पुनरावर्त्तन (संसारमें) नहीं होता ॥ १२ ॥ जिनपुरुषोंके अहोभाग्य हैं उन्हींको हरिद्वार तीर्थके दर्शन होतेहैं, और अतिशय पुण्यदायक मेषकी संक्रान्तिमें तो बडभागियोंहीको उसके दर्शन मिलतेहैं ॥ १३ ॥ वाक्पति बृहस्पतिजी यदि मेषकी संक्रान्तिमें कुम्भराशिपर हों तो, मकर और कर्ककी संक्रान्तिमें, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, व्यतीपात और पूर्णिमामें, सोमवती अमावास्याको अथवा अन्य अमावास्यामें, माघ, वैशाख और कार्त्तिकमें हे मुनीश्वर ! साढेतीन करोड तीर्थ हरिद्वारमें निवास करतेहैं, अत एव उक्त कालमें हरिद्वारमें स्नान करनेसे सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल उपलब्ध होताहै ॥१४॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ घोर कलियुगमें पांचही क्षेत्र भूमिके ऊपर उपस्थित रहैंगे, एक गंगाद्वार (हरद्वार), केदारजी, काशी, गंगोत्पत्ति चार ये और पंचम वह जहां समुद्रके साथ गंगाजीका संगम हुआहै, महादेवजीका यह कथन सत्यहै कि, गंगाजीभी यहांही उपस्थित रहैंगी ॥ १७ ॥ १८ ॥ यहां स्नान

वंप्रयत्नेन स्नायादत्र ममेप्सया ॥ १९ ॥ खलः को नाम मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ॥ अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ कथमेतत्समुत्पन्नं कः खलो मुक्तिमाप सः ॥ एतत्सर्वं समासेन महासेन वदस्व मे ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र पुरा वृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ पुरार्गलपुरे विप्रो धर्मकेतुर्बभूव ह ॥ २२ ॥ धर्मात्मा सत्यसंकल्पो विद्वान्दीनजनाश्रयः ॥ नित्यं दीनांस्तथा मूकान्वृद्धानाश्रयवर्जितान् ॥ भोजयित्वा स्वयं भुंक्ते दारैः पुत्रैस्तथा वृतः ॥ २३ ॥ एकदा जडमूर्तिर्वै ब्राह्मणो वाग्विवर्जितः ॥ पशुबुद्धिर्ज्ञानशून्यो दृषदात्मा यथापरः ॥ २४ ॥ क्षुत्पिपासापरिज्ञानमात्रं वेत्ति निजापरम् ॥ आययौ क्षुधयाविष्टो धर्मकेतोर्गृहे मुने ॥ २५ ॥ जगाद संज्ञयाहस्ते याचनां भोजनाय वै ॥ दत्तं च तेन विप्रेण भोजनं भोजनोत्तमम् ॥ २६ ॥ अनन्यग-

करनेहीसे केदारजीमें जानेका अधिकारी होसक्ताहै, अत एव! हमारी यह इच्छा है कि, सर्वथा यहां स्नान करना कर्त्तव्यहै ॥ १९ ॥ इसमें स्नान करनेसे एक खलको मुक्तिकी प्राप्ति हुईथी, अत एव मुनीश्वरोंने इसका कनखल नामकरण करदिया ॥२०॥ नारदजी बोले—हे महाभाग! इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? और यह खल कौन था? किसविधिसे इसे मोक्ष मिली यह सब संक्षेपसे वर्णन करो ॥ २१ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र! पापविनाशिनी प्राचीन कथाको श्रवण करो, पहिले अर्गलपुरमें धर्मकेतुनाम एक ब्राह्मण था ॥ २२ ॥ वह धर्मात्मा, सत्यसंकल्प करनेवाला, विद्वान् और दीन जनोंका पालन करनेवाला था, वह नित्यही अनेक दीन मूक (गूंगे) और निराश्रय वृद्धजन इनको भोजन कराय तत्पश्चात् स्त्रीपुत्रोंसहित स्वयं भोजन करताथा ॥ २३ ॥ एक समय जड मूर्ति गूंगा ब्राह्मण जिसकी बुद्धि ज्ञानशून्य होनेके कारण पशुओंकी समान होरहीहै ऐसा जडात्मा आया ॥ २४ ॥ वोह केवल अपने क्षुधा और पिपासाके विकारहीको जानताथा और कुछ नहीं, हे मुने! वह क्षुधासे पीडित होकर धर्मकेतुके घर आया ॥ २५ ॥ उसने केवल हाथका इशारा करके भोजनकी याचना करी, तब उस ब्राह्मणनेभी परमोत्तम भोजन दिया ॥ २६ ॥ हे महामते! उस मूर्खब्राह्मणकी और कोईभी गति नहीं थी अत एव महायशस्वी धर्मकेतुने उसे भोजन और वस्त्र

तये तस्मै ददावेवं महामते ॥ भोजनाच्छादने चैव धर्मकेतुर्महा-यशाः ॥ २७ ॥ कदाचिद्दैवयोगेन मायापुर्य्यां समाययौ ॥ सोपि मूकोशनापेक्षो ज्ञानशून्यो महामुने॥२८॥नैतस्य स्वपरं ज्ञानं भक्ष्याऽभक्ष्ये न निर्णयः॥अगम्यागमनेनैव नैव पाने तथैव च ॥ ॥ २९ ॥ मार्गे सार्थात्परिभ्रष्टो यवनैः संगतो ह्यभूत् ॥ तत्रापि तैस्तदा भुक्तं भक्षं च भ्रष्टबुद्धिना ॥ ३० ॥ एवं क्रमेण मूकेन यौवनोन्मादशालिना ॥ संगमश्च कृतस्तेन नीचया द्रुहिणात्मज ॥ ३१ ॥ नीचसंगतिको विप्रो मत्या श्रावाग्रजन्मपः ॥ ययौ कनखले तीर्थे मुनिवृंदसमाश्रिते ॥ ३२ ॥ विषुवे संक्रमे पुण्ये घर्म्मर्त्तौ मज्जनाय वै ॥ गतः कनखले तीर्थे स्नातश्च धर्मपीडितः ॥३३॥ सार्थलग्नः पुनर्विप्रोऽर्गलपुर्य्यां समाययौ ॥ काले स कालमापन्नो ययौ स परमं पदम् ॥ ३४ ॥ यां गतिं योगमापन्ना यां गतिं धर्मशीलिनः ॥ यां काशीमरणाद्यांति प्राप्य तां गतिमुत्तमाम् ॥ ३५ ॥ तीर्थस्नानप्रभावेण भक्त्या वि-

दोनोंही प्रदान किये ॥ २७ ॥ हे महामुने ! कभी वह मूक ब्राह्मण दैवयोगसे हरिद्वारमें भोजन प्राप्तिकी इच्छासे चला आया ॥ २८ ॥ इसे न तो अपने परायेहीका कुछ ज्ञान था, और न कुछ भक्ष्य अभक्ष्यहीका इसे कुछ निर्णय था, अगम्या गमन तथा पान करनेके योग्य अयोग्य वस्तुकाभी कुछ विचार नहीं था ॥२९॥मार्गमें यह मूर्ख ब्राह्मण अपने साथियोंसे बिछडकर यवनोंसे मिलगया, और उस भ्रष्ट बुद्धिने उन्हींके साथ भोजन किया॥ ३०॥इस प्रकार यौवनसे उन्मत्त उक्त गूंगे ब्राह्मणने हे ब्रह्मकुमार नीचोंके साथ संगति करली ॥ ३१ ॥हे नारदजी ! इस प्रकार वह मन्दमति ब्राह्मण ऐसे कनखल तीर्थमें आया, जहां कि, मुनियोंका समाज उपस्थित होरहा था ॥ ३२ ॥ गर्मियोंके दिनोंमें कर्ककी संक्रान्तिमें वह ब्राह्मण स्नान करनेकी कामनासे कनखलमें गया और धर्मसे बाधित हो उसमें स्नानभी किया ॥ ३३ ॥ और साथलगाही वह ब्राह्मण अर्गल पुरीमें फिर चला-आया, और समय पाय उसकी मृत्यु होगई और उसको मोक्षकी प्राप्ति हुई ॥ ३४ ॥ योगियोंको जो गति प्राप्त होतीहै, धर्माचरण करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त होते हैं और काशीमें मरनेसे जिस गतिका लाभ होताहै वोही उत्तमगति उसेभी प्राप्त हुई ॥ ३५ ॥ यद्यपि वह भक्ति भावसे शून्य था तथापि ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको उक्ततीर्थमें केवल स्नानमात्र करनेसे उसे

रहितोपि सः ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः ॥ प्राप्यते परमं स्थानं दुर्ल्लभं योगिनामपि ॥ ३६ ॥ विप्राय दत्ता गौर्य्येन दत्ता तेन वसुंधरा॥श्राद्धं कृतं च यैस्तत्र गयायाः फलभाग्भवेत्॥३७॥अन्नदानं कृतं येन न दरिद्रो भवेत्क्वचित् ॥ धन्याः काश्यां मृता मर्त्या धन्याः कनखले तथा ॥ स्नाताश्च मुनिशार्दूल पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ ३८ ॥ धन्यानां मरणं चात्र मायापुर्य्यां महामुने॥ ३९ ॥इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्यंनाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

ऐसी उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई जिसकी प्राप्ति योगियोंकोभी दुर्लभहै ॥ ३६ ॥ जिसने गौ दान करके ब्राह्मणको दी उसे भूमिदानका फल मिलताहै, और वहां श्राद्ध करनेसे गयाकी यात्राका फल मिलताहै ॥ ३७ ॥ अन्नदान करनेवाला कभी दरिद्री नहीं होता, काशीमें मरनेवाले और कनखल में स्नान करनेवाले पुरुषोंको हे मुनीश्वर धन्यहै, क्योंकि–फिर उनका पुनरावर्त्तन नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे महामुनि ! सौभाग्यशाली पुरुषोंहीका मायापुरी हरिद्वारमें मरण होताहै ॥ ३९ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः ११०.

नारद उवाच ॥ कर्त्तव्यं च कथं श्राद्धं गोदानं चान्नदानकम्॥ को विधिः कश्च कालो वै किं पात्रं किंच दैवतम् ॥ १ ॥ एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज ॥येन केन प्रकारेण कर्त्तव्यानि मुमुक्षुभिः ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद तत्सर्वं यत्पृष्टोहं त्वयाद्य वै ॥ पित्रोः कथयतोर्विप्र श्रुतं सान्निध्य-

नारदजी बोले–श्राद्ध और गोदान किस प्रकारसे करना चाहिये ? उसके करनेकी विधि, समय, पात्र और देवता कौनहैं ॥ १ ॥ मोक्षार्थी मनुष्योंको किस विधिसे इन सबका आचरण करना चाहिये ? हे शिव कुमार ! यह सब संक्षेपरीतिसे हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले–सुनो नारदजी ! जो कुछ तुमने हमसे प्रश्न किया उसका उत्तर और परस्पर

गेन हि ॥३॥ आदौ तीर्थागमे देवं गणेशं भैरवं तथा ॥ वेदव्यासं पुराणर्षिं मां चैवं प्रतिपूज्य हि ॥ गच्छेज्जितेंद्रियः शांतो ब्रह्मनिष्ठो दयापरः ॥ ४ ॥ तीर्थप्राप्तिदिने कुर्यान्निराहारं च मज्जनम् ॥ ततः प्रातः समुत्थाय कृतनित्यक्रियो मुने ॥ भैरवाज्ञां गृहीत्वा तु तीर्थस्नानमथाचरेत् ॥ ५ ॥ स्नानं विप्राज्ञया कुर्यात् दक्षादीन्स्नानकर्म्मणि ॥ नमस्कृत्य ततो विप्रानावाह्य चात्र देवताः ॥ श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन श्राद्धदृष्टविधानतः ॥ ६ ॥ आसनं परिकल्प्यादौ पिंडदानं ततः परम् ॥ ततोऽवनेजनं कुर्यात्पुनः पूर्वविकल्पिते ॥ ७ ॥ दक्षिणां च ततो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो यथाधनम् ॥ यस्य संतोषमायान्ति तीर्थस्था भूमिदेवताः ॥ तस्य सर्वं कृतं साग्रं सफलं स्यान्महामुने ॥८॥ असंतुष्टा यस्य विप्रास्तीर्थस्थाः श्राद्धकर्म्मणि ॥ असंतुष्टास्तत्पितरो ज्ञेया धर्मपरायणैः ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संतोषं जनयेत्सुधीः ॥ अन्नदानं च तत्कुर्यात्सांगतासिद्धिहेतवे ॥ एतत्तीर्थे प्रकर्त्तव्यं श्राद्धं

कथोपकथन करते अपने मातापिताके सकाशसे जो कुछ मैंने श्रवण किया वह सब कहता हूं ॥ ३ ॥ तीर्थागमनकी आदिहीमें गणेशदेव, भैरव, पुराण कर्त्ता सूतजी और वेदव्यासजीको तथा हमें पूजकर, दयालु शान्तस्वभाव और जितेन्द्रिय हो ब्रह्ममें अपनी निष्ठाको लगाकर यात्रा करै ॥ ४ ॥ जिस दिन तीर्थमें पहुँचे उस दिन निराहार रहकर स्नान करै, फिर हे मुने ! प्रातः समय उठके नित्यक्रियासे निवृत्तहो भैरवकी आज्ञा ग्रहण करके स्नान करै ॥ ५ ॥ ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर स्नान करना कर्त्तव्यहै, फिर स्नान कर्ममें दक्ष आदिकोंको नमस्कार करके स्नान करै, इसके अनन्तर ब्राह्मणों और देवताओंका आवाहन करके श्राद्धकी विधिसे यत्न पूर्वक श्राद्ध करना कर्तव्य है ॥ ६ ॥ उनके निमित्त प्रथम आसन दे, फिर पिण्डदान करै, इसके अनन्तर अवनेजन करना कर्त्तव्यहै ॥ ७ ॥ इसके पश्चात्—अपने वित्तानुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदान करै, क्योंकि हे महामुने । जिसके श्राद्धमें तीर्थके ब्राह्मण सन्तुष्ट होजाते हैं उसका किया हुआ सभी कुछ सफल होजाताहै ॥ ८ ॥ और जिसके श्राद्धकर्ममें तीर्थस्थ ब्राह्मण असन्तुष्ट रहते हैं, धार्मिक व्यक्तियोंको स्मरण रखना चाहिये कि, उनके पितरभी असन्तुष्टही रहते हैं ॥ ९ ॥ अत एव उत्तम बुद्धिमान्को चाहिये कि, ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करै, और सांगताकी सिद्धिके लिये अन्नदानभी

श्रद्धासमन्वितैः॥१०॥श्राद्धात्संततिमाप्नोति श्राद्धाद्वै परमं यशः॥ श्राद्धाद्वर्षति पर्जन्यः श्राद्धात्सुखमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ श्राद्धात्स्वर्गमवाप्नोति श्राद्धान्मोक्षं च विंदति॥यो नरः श्राद्धहीनः स्यात्तस्य नो वर्द्धते प्रजा ॥१२॥ मृते नरकमाप्नोति तस्माच्छ्राद्धं न संत्यजेत् ॥१३॥तीर्थमागत्य यो मर्त्यः श्राद्धकर्मविवर्जितः॥ सर्वतीर्थफलं व्यर्थं तीर्थश्राद्धं विना मुने ॥तस्माच्छ्राद्धपरो भूयात्तीर्थे वापि गृहे तथा॥१४॥धन्यानां मानुषे जन्म तत्रापि हिमवत्स्थले॥माया पुर्य्यां हि तत्रापि तत्र भक्तिमतां कुले ॥१५॥ वेदाध्ययनकर्माणि तथा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ पृथ्वीपर्य्यटनं वापि स्नानं सागरसंगमे ॥ १६ ॥ मायापुरीति या सम्यक् कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ॥ १७ ॥ तेन तप्तं हुतं तेन तेन दत्ता वसुंधरा ॥ तेन सर्वं कृतं कर्म्म मुक्तिद्वारप्रदं मुने ॥ १८ ॥ येनात्र विदुषे दत्ता

करना कर्तव्यहै, इस प्रकार श्रद्धा पूर्वक तीर्थमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥ कारण कि– श्राद्धहीसे सन्तान और श्राद्ध करनेहीसे यशकी प्राप्ति होती है, श्राद्धहीसे मेघ जल वरसाते हैं, अथ च श्राद्धहीसे सुखकी प्राप्ति होतीहै ॥ ११ ॥ श्राद्धहीसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै और श्राद्ध करनेहीसे मोक्षभी मिलताहै, अथ च जो मनुष्य श्राद्ध नहीं करताहै उसके सन्तानकी वृद्धि नहीं होती ॥ १२ ॥ एवं च श्राद्धहीन व्यक्तिको मरनेपर नरककी प्राप्ति होती है, अत एव श्राद्धको कदापि न त्यागै ॥ १३ ॥ तीर्थ आनकर जो मनुष्य श्राद्धकर्मका आचरण नहीं करता, हे मुने ! तीर्थ श्राद्धके विना उसकी तीर्थ यात्राका फल व्यर्थ होजाताहै अत एव तीर्थमें क्या और घरमें क्या सर्वत्रही मनुष्यको श्राद्ध करनेमें तत्पर रहना चाहिये ॥ १४ ॥ मनुष्य योनिमें जन्म होनाही धन्यहै, उनमेंभी उन पुरुषोंके अहोभाग्यहैं जिनका जन्म हिमालयकी तराईमें हुआहै, हरिद्वारमें प्रादुर्भूत होनेवाले उनसे भी अधिक सौभाग्य शाली हैं और इनमेंभी वे सबसे श्रेष्ठहैं जिनका जन्म भक्ति संपन्न व्यक्तियोंके कुलमें हुआहै ॥ १५ ॥ वेदपाठ आदि कर्म और यज्ञानुष्ठान आदि क्रियाएँ ये सब, तथा भूमिकी परिक्रमा करना, एवम् गंगासागर संगममें स्नान करना ॥ १६ ॥ ये सब अर्थात् इन सब शुभ कर्मोंका फल हरिद्वारपुरी (के फल) की सोलहवीं कलाकी बराबरी भी नहीं करसक्ते ॥ १७ ॥ उसीने सब प्रकारके तपकिये, उसीने, हवनकिये उसीने भूमिका दान किया, हे मुनीश्वर ! और उसीने मानो मुक्ति प्रदान करनेवाले सब कार्योंका आचरण कियाहै ॥ १८ ॥ जिसने कि, स्वर्गरूप फल प्रदान करनेवाली गौ दान करके ब्राह्मणको दीहै, हे मुनिराज ! उक्त गौके शरीरमें जितने रोम होतेहैं, दानकर्त्ता व्यक्ति उतनेही सहस्र कल्प

गौः स्वर्गीयफलप्रदा ॥ यावंति तच्छरीरस्य रोमाणि मुनि पुंगव॥ तावत्कल्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥ धन्याः कलियुगे घोरे ये गां दास्यंति तत्र वै ॥ २० ॥ एकत्र सर्वदानानि गोदानं चापरं मुने ॥ तुलया संधृते चैव गोदानं चाभवद्गुरु ॥२१॥ अनुमंतापि यो मर्त्यो गोदाने दीनवत्सलः ॥ सोपि स्वर्गमवाप्नोति यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ २२ ॥ समुद्राश्च चतुःपात्सु रोमकूपेषु देवताः ॥ सर्वतीर्थानि च तथा ह्यंगेषु सरितस्तथा॥तस्मात्पृथ्वी समा ज्ञेया धेनुर्धन्यतमा भुवि ॥ २३ ॥ पुरा कल्पादिके विप्र-जगत्यम्बुमये सति ॥ वेदहीनं जगत्सर्वं नष्टयज्ञं च भूसुर ॥२४॥ सृष्ट्वा सर्वांस्तथा लोकान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ चिंतोद्विग्नमना-जातो न ववर्ध यतः प्रजाः॥२५॥यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः ॥ अन्नाद्भवंति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २६ ॥ यज्ञो न जायते विप्र सर्पिषारहितो यतः ॥ सर्प्पिर्योनिः स्मृता धेनुस्तदभावेखिलं गतम् ॥ २७ ॥ तस्माद्गावः प्रसृष्टव्या मया

पर्यन्त स्वर्ग लोकमें निवास करताहै ॥ १९ ॥ हरिद्वार तीर्थमें जो मनुष्य गौ दान करते हैं कलियुगमें उन्हीं व्यक्तियोंको धन्यहै ॥ २० ॥ यदि तुला (तराजू) के एक पल्लेमें सम्पूर्ण दान और दूसरेमें केवल गोदानको रक्खाजाय तौ गो दानही सबसे गुरु (भारी) होगा ॥ २१ ॥ दीनदयाल जो मनुष्य गोदान करनेकी अनुमति देता अथवा उसका समर्थन करताहै वोह भी चौदह इन्द्रके राज्य पर्यन्त स्वर्ग लोकमें निवास करताहै ॥ २२ ॥ गौके चारों चरणोंमें चारों समुद्र, रोमकूपोंमें सब देवता, तथा उसके अन्यान्य अंगोंमें सब तीर्थ और नंदियें हैं, अत एव गौको भूमिकी तुल्य श्रेष्ट समझना चाहिये ॥ २३ ॥ हे विप्र ! प्रथमके कल्पोंमें जब कि, अखिल संसार जल मय होगया था, और हे द्विजराज ! वेदहीन होनेके कारण संपूर्ण यज्ञभी नष्ट होगये थे ॥ २४ ॥ तब (अर्थात्—इसके अनन्तर सृष्टिकी आदिमें) लोक पितामहब्रह्माजी संसारको रचकर इस चिन्तासे मनमें उद्विग्न हुए कि—हाय ! प्रजाकी वृद्धि नहीं होती ॥ २५ ॥ यज्ञसे मेघोंका प्रादुर्भाव होताहै, मेघोंके द्वारा अन्नकी उत्पत्ति होती है, फिर अन्नसे प्राणियोंकी उत्पत्तिहै चाहे वे स्थावरहों चाहे जंगमहों ॥ २६ ॥ चूँकि—घृतके विना यज्ञ नहीं हो सक्ता, और घृतकी उत्पत्ति गौसे है, सुतराम् गौ न होनेसे सभीका विनाशहै ॥ २७ ॥ अत एव संसारकी स्थितिके लिये मुझे गौकी रचना करनी कर्तव्यहै, जिस समय कमलोद्भव ब्रह्माजी ऐसी चिन्ता करही रहेथे, हे नारद ! उसी समय उनके चित्तमें भक्तिभाव पूर्वक

संसारहेतवे ॥ इति चिंतयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ॥ मतिरासीन्महामायां स्तोतुं नारद भक्तितः ॥ २८ ॥ "ब्रह्मोवाच ॥ ॥ महामायां नमस्यामि धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥ नंदनाद्रिकृतावासां धारिणीं जगतां प्रभुम् ॥ १ ॥ नारायणीं भद्रकालीं भद्रदां वीरवंदिताम् ॥ यज्ञाशिनीं यज्ञदेहां यज्ञपालनतत्पराम् ॥ ॥ २ ॥ त्रिशक्तिं त्रिगुणारामां गुणातीतां गुणाकराम् ॥ नैमिषारण्यनिलयां मलयाचलसंश्रयाम् ॥ ३ ॥ वीरभद्रवरां वीरां वीरासनसमास्थिताम् ॥ स्वाधिष्ठानांबुजरजःपुंजपिंजरितां खगाम् ॥ ॥ ४ ॥ शिवां सरस्वतीं लक्ष्मीं सिद्धिं बुद्धिं महोत्सवाम् ॥ केदारावासशुभगां बदरीवाससुप्रियाम् ॥ ५ ॥ राजराजेश्वरीं देवीं सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ मायां मायास्थितां वामां वामशक्तिमनोहराम् ॥ ६ ॥ मेनकां मनुपूज्यां च ज्वालां ज्वालामुखीं पराम् ॥

महामायाकी स्तुति करनेका विचार उदय हुआ ॥ २८ ॥ " ब्रह्माजी बोले–जो धर्म अर्थ काम और मोक्षकी देनेवालीहै ऐसी महामायाको हम नमस्कार करतेहैं, जिसने नन्दनगिरिके ऊपर अपना निवास स्वीकार कियाहै,जो सर्वशक्तिमती अत एव जगत्की धारण अर्थात् पालन पोषण करनेवाली है ॥ १ ॥ जो नारायणी और भद्रकाली हैं, जो कल्याण प्रदान करनेवाली, और वीरोंके द्वारा अभिवन्दन की हुई हैं, जो यज्ञीयभागका उपभोग करती हैं, जिनका शरीर साक्षात् यज्ञ स्वरूपही है, अतएव जो सदैव यज्ञ पालन करनेमें तत्परहैं ॥ २ ॥ जो तीन शक्तिको धारण करतीहैं, जो रमणी तीन गुणोंसे युक्त हैं, जिन्होंने सत्व रज तम इन तीन गुणोंकाभी अतिक्रम किया है, जो सबगुणोंकी आकरहैं, नैमिषारण्यमें जिनका निवासहै, जिन्होंने मलयाचलका आश्रय लियाहै ॥ ३ ॥ जो वीरभद्रकी समान श्रेष्ठहैं, जिनकी स्वयंभी वीरमूर्तिहै, जो स्वयं वीरासनके ऊपर उपस्थित रहतीहैं, एवं च जिन्होंने अपने अधिष्ठानके कमलकी रजके पुंजसे आकाशको धूसरित करदिया है ॥ ४ ॥ जो स्वयं शिवा सरस्वती और लक्ष्मी स्वरूप हैं, जो सिद्धि बुद्धि और महाउत्सवस्वरूपवती हैं, जिनका शुभग निवास केदारजीमें है, बदरीवनमें निवासकरना जिन्हें अतीव प्रियहै ॥ ५ ॥ जो राजराजेश्वरी देवी सृष्टिका संहार करनेवालीहैं, जो स्वयम् मायाहैं और मायाके विषयमें जिनकी उपस्थितिभी है अथ च जो स्वयं मनोहर और मनोहरही शक्ति की धारण करनेवाली हैं ॥ ६ ॥ जो मेनका हैं और मनुके द्वारा जो पूजित हैं, जो ज्वाला और ज्वालामुखी हैं, जिन्होंने एक लिंग अर्थात् महादेवजीको अपने उत्संगमें धारण कियाहै, और जो

एकलिंगकृतोत्संगां नारायणपरायणाम् ॥ ७ ॥ भागीरथीं भाग्य गम्यां भोगिनीं भोगिवल्लभाम् ॥ भूरादिकतपोंतस्थां वीणापुस्तक धारिणीम् ॥ ८ ॥ दारुमूर्त्तिसमासीनां श्रियं पीनपयोधराम् ॥ केयूरांगदभूषाढ्यां चतुर्बाहुमनोहराम् ॥ ९ ॥ सिंहासनकृतावासां रक्तवस्त्रां रणप्रियाम् ॥ आर्यांकार्य्यकरीं वंदे संसारोद्भवहेतवे ॥ ॥ १० ॥ इति संस्तुवतस्तस्य ब्रह्मणो विष्णुजन्मनः॥ कोटिसूर्य्य प्रतीकासा देवी प्रादुरभून्मुने ॥ ११ ॥ उवाच वचनं दिव्यं ब्रह्मा- णं कमलोद्भवम् ॥ किमर्थं संस्तुता ब्रह्मन्किं कार्य्यं करवाणि ते ॥ १२ ॥ न बंध्यं दर्शनं मेस्ति कृतं यस्तवनं त्वया॥ प्रसन्नास्मि न संदेहो भक्तिमानसि सुव्रत ॥ १३ ॥" ब्रह्मोवाच ॥ सृष्टिमार्ग- प्रदा त्वं हि प्रकृतिः परमा मता ॥ त्वदिच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥२९॥ प्रजाः सृष्टा मया सर्वास्त्रिगुणा गुणवर्ज्जिते॥

नारायणके विचारमें तत्पर हैं ॥ ७ ॥ जो साक्षात् भागीरथी स्वरूप हैं, जिनकी प्राप्ति भाग्यहीसे होतीहै जो भोगिनी और नागप्रिया हैं, जो भूसे लेके तपलोक पर्य्यन्त स्थित हैं जिन्होंने वीणा और पुस्तकको धारण कियाहै ॥ ८ ॥ जो दारु अर्थात् काष्ठनिर्मित मूर्तिके ऊपर आसीन हैं, जो शोभारूपिणी हैं, जिनके पयोधर पुष्टहैं, जिन्होंने जोशन और बाजूबन्द आदि आभूषणोंको, धारण कियाहै, जिनकी मनोहर चारभुजाहैं ॥ ९ ॥ जो सिंहासनके ऊपर निवास करतीहैं, जिनके वस्त्रोंका वर्ण रक्तहै, जिन्हें रण प्रियलगताहै, जो आर्या अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं, जो सबकार्य्य करनेमें समर्थ हैं ऐसी भगवतीको मैं संसारकी उत्पत्तिके तईं अभिवादन करताहूं ॥ १० ॥ विष्णुतनूद्भव ब्रह्माजी जिस समय ऐसी स्तुति कररहेथे तभी हे मुने ! करोड़ों सूर्य्यकी समान दीप्तिमती भगवती प्रादुर्भूत हुई ॥ ११ ॥ देवीजीने कमलयोनि ब्रह्माजीसे ये दिव्यवचन कहे कि, हे ब्रह्मन् ! तुमने किसलिये हमारी स्तुति करीथी और मैं तुम्हारा क्या कार्य्य करूं ? ॥ १२ ॥ तुमने जो हमारी स्तुति करीहै सो हमारे दर्शन निष्फल नहीं होंगे, चूंकि हे सुव्रत ! तुम भक्तिमान् हो अत एव मैं तुमसे प्रसन्न हूं ॥ १३ ॥ " ब्रह्माजी बोले—सृष्टिके मार्गका प्रदर्शनभी तुम्हीने किया, और तुम्ही परमप्रकृति मानी गईहो, सुतराम्—तुम्हारी इच्छासे ये चराचर जगत् प्रादुर्भूत होताहै ॥ २९ ॥ हे मायिकगुणहीन देवी ! मैंने त्रिगुणात्मक सब प्रजाकी तो रचना करी, किन्तु यज्ञोंके विना उसकी वृद्धि नहीं होती, कारण कि—देवतालोग

न वर्द्धन्ते विना यज्ञैर्यज्ञभागाशनाः सुराः॥३०॥नवै वर्षति पर्ज्न्यस्ततोन्नं नावतिष्ठति ॥ उपायं कुरु देवेशि यथास्यादन्नसंभवः ॥३१॥ श्रीदेव्युवाच॥शृणु वत्स यथा यद्वै प्रोच्यते तव यन्मया॥ स्वस्वभागान्सुराः सर्वे ददंतु कार्य्यसिद्धये॥३२॥अहं च तेन रूपेण भविष्यामि महीतले ॥ मत्तः सर्वं सुरश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥३३॥ स्कंद उवाच॥इति श्रुत्वा वचस्तस्याःसर्वेदेवाःसवासवाः॥ स्वं स्वं भागं भागसिद्ध्यै ददुस्तेजोमयं शुभम् ॥ ३४ ॥ सापि माया भगवती गृहीत्वा भागमुत्तमम् ॥ निममज्ज क्षीरनिधौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ३५ ॥ आश्चर्यं परमं लेभुर्दृष्ट्वा तत्कौतुकं महत् ॥ किं किमेतत् किं किमेतदिति प्रोचुः सुरालयाः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नंतरे खे वाक् बभूव मुनिसत्तम ॥३७॥ वागुवाच ॥ भोभो सुराः किमर्थं हि क्लेशं प्राप्ता मदाश्रितम् ॥ मथध्वमेनं सुभगाः पयोधिं कार्य्यसिद्धये ॥ ३८ ॥ अन्यान्यपि महाभागाः प्राप्स्यथ प्रवराणि मे ॥ ३९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति

यज्ञके भागका उपभोग करतेहैं ॥३०॥ क्योंकि—मेघ जल नहीं वरसाते अत एव अन्न नहीं होता, अत एव हे देवश्वरि ! ऐसा उपाय करो जिससे अन्नका प्रादुर्भाव हो ॥ ३१ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं— हे पुत्र ! सुनो ! मैं सत्य २ उपाय बतातीहूं, अब कार्य्य सिद्धिके लिये सब देवता अपना २ भाग (अंश) प्रदान करैं ॥ ३२ ॥ तब मैं भी भूतलके ऊपर ऐसे रूपसे प्रादुर्भूत होऊंगी कि—हे सुरसत्तम ! मेरे सकाशसे निःसन्देहही सब कार्यकी सिद्धि होजायगी ॥. ३३ ॥ स्कन्दजी बोले—जब इन्द्रादिक देवताओंने भगवतीके ऐसे वचन सुने तब उन्होंने कार्यकी सिद्धिके लिये तेजःस्वरूप अपने २ भाग प्रदान करे ॥ ३४ ॥ तब तो वह महामाया—भगवती देवताओंके उत्तम भागोंको लेकर देवताओंके देखते २ ही क्षीरसागरमें निमग्न होगई ॥ ३५ ॥ इस परम कौतुकको देख देवताओं को बडा आश्चर्य हुआ और सभी देवता यों कहनेलगे कि, यह क्या हुआ ? ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम इतनेहीमें आकाशमेंसे एक वाणी निकली ॥ ३७ ॥ वाणी बोली—हे देवताओं ! मेरे आश्रयमें रहकर भी तुम क्लेश क्यों भोगरहे हो ? हे सुभगो ! कार्य सिद्धिके लिये इस सागरका मन्थन करो ॥ ३८ ॥ हमारी कृपासे अन्यान्य श्रेष्ठ वस्तुएँभी तुम्हें प्राप्त होंगी ॥ ३९ ॥ स्कन्दजी बोले—आकाशवाणीको श्रवण करके सभी देवता अपने चित्तमें विशेष प्रसन्न हुए और विशेष कार्य होनेके कारण सबहीने

श्रुत्वा वचस्तत्तु हृष्टास्ते त्रिदिवौकसः ॥ ममंथुर्मिलितास्तत्र पयोधिं कार्य्यगौरवात् ॥ ४० ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ कूर्मरूपो हरिस्तत्र सर्वशक्तिधरः प्रभुः ॥ ४१ ॥ मथिते दुग्धनिलये जातान्यन्यान्यपि क्रतोः ॥ कामधेनुस्तदोत्पन्ना सर्वदेवांशसंभवा ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा तां निर्ज्जराः सर्वे जयेत्यूचुर्मुदान्विताः॥ गृहीत्वा तां ततो धेनुं ब्रह्मलोकं ययुर्मुने॥४३॥ पूजयामासुरत्यंतं प्रदक्षिणक्रमादिभिः ॥ सा पूजिता भगवती कामधेनुर्ददौ वरान् ॥ ४४ ॥ पयश्चामृतकल्पं हि यत्पीत्वाऽमृतमश्नुते ॥ घृतं च सा ददौ धेनुर्यज्ञाय च्छंदिता यतः ॥ ४५ ॥ यज्ञैस्तृप्ताः सुराः सर्वे सुभिक्षं चाभवत्ततः ॥ प्रजाश्च वृद्धिमापन्नाः कामधेनोः प्रसादतः ॥ ४६ ॥ पवित्रा परमा सा वै सर्वदेवमयी शुभा ॥ अवतीर्णा स्वयं देवी गौर्भूत्वा भवभाविनी ॥४७॥ पूजिता येन गौर्विप्र पूजिताः सर्वदेवताः ॥ प्रदक्षिणीकृताः येन परिक्रांता वसुंधरा ॥ ४८ ॥ मंगलं दर्शनं प्रातः पूजनं परमं

पयोनिधिका मन्थन किया॥४०॥मन्दराचलकी रई और वासुकीनागकी नेती बनाई, अथ च कर्मरूप हरिभगवान्‌ने कच्छपरूप धारण किया॥४१॥जब क्षीरसागरका मन्थन इन्होंने किया तब समुद्रमेंसे और बहुतसी वस्तु निकलीं, तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंके अंशसे प्रादुर्भूत हुई कामधेनुभी उसमेंसे निकली ॥४२॥ उसे देखतेही सबदेवता मारे आनन्दके जय २ शब्दका उच्चारण करने लगे, एवं च उस धेनुको लेकर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ४३ ॥ विविधभांतिसे परिक्रमा आदि करके उसकी पूजा करी, जब भगवती कामधेनु इसप्रकार, पूजित हुई तब उसने देवताओंको वरप्रदान किये ॥ ४४ ॥ उस गौने दुग्धभी ऐसा दिया जो अमृतकी सदृश था और जिसे पीनेसे अमरत्व लाभ होताहै, एवं च यज्ञानुष्ठानके लिये घृतभी प्रदान किया ॥ ४५ ॥ यज्ञोंके द्वारा देवगण तृप्त होगये, तब तो सर्वत्रही सुभिक्ष हुआ, विशेष क्या कहैं कामधेनुके प्रतापसे प्रजाकीभी वृद्धि होनेलगी ॥ ४६ ॥ समस्त देवताओंके अंशसे प्रादुर्भूत हुई अत एव सर्वदेवमयी और शुभ रूपिणी वोह देवी (भगवती) कामधेनुरूपसे स्वयंही अवतीर्ण हुई ॥ ४७ ॥ अत एव हे विप्र ! जिसने गौकी पूजा करी उससे मानों सभी देवता पूजे जा चुके, और उसकी परिक्रमा करनेसे भूमण्डलभरकी परिक्रमाका फल उपलब्ध होताहै ॥ ४८ ॥ गौका दर्शन प्रातःकालही प्राप्त होजाय तो मंगलकारी होताहै, पूजन करना परमपद(मोक्षप्राप्तिकी समान) है, उसको

पदम् ॥ स्पर्शनं परमं तीर्थं नास्ति धेनुसमं क्वचित् ॥ ४९ ॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि येन दृष्टा मुनीश गौः ॥ तस्य पापं क्षयं
याति यथाग्नेस्तूलराशयः ॥५०॥ हस्ते कृत्वा तु गोपुच्छं पितृ-
तर्पणमाचरेत् ॥ निरयस्थाश्च पितरो ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥५१॥
गोछायायां महाभाग श्राद्धं कुर्वंति ये नराः ॥ गयाश्राद्धफलं
तेषां कथितं स्यान्महामते ॥५२॥ गोमयेनासुलिप्तायां भूमौ वा
कुरुते क्रियाः ॥ अनंतफलदा विप्र भवेयुर्नैव संशयः ॥ ५३ ॥
सकृत्प्राश्नाति गोमूत्रं यो नरश्च महामुने ॥ दुर्भोज्यभोजनाच्चैव
दुरुक्त्या दुर्नयोच्चरात् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेद्ब्रह्मपरं मृतः
॥ ५४ ॥ अपवित्रकरं स्थानं शुद्धं गोमूत्रबिंदुना ॥ ५५ ॥
कंडूयनं गवां यो वै करोति यदि मानवः ॥ गोहत्या ब्रह्महत्या-
भ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥ गोग्रासं भोजने यस्तु दद्या-
द्भ्यो महामुने ॥ ब्राह्मणा भोजितास्तेन सहस्रं वेदपाठिनः

दर्शन करना परमतीर्थकी तुल्यहै, अतएव गौकी समान और कहींभी कुछ नहीं हैं ॥ ४९ ॥ हे मुनीश्वर ! जिसने जानकर अथवा अज्ञानहीसे गौके दर्शन किये हैं, उसके पाप इस प्रकार विनष्ट होजाते हैं जैसे अग्नि तूलराशि (रुईके ढेर) को भस्म कर देती है ॥ ५० ॥ गौकी पूंछको हाथमें लेकर तर्पण करनेसे नरकमें प्राप्त हुए भी पितरोंको ब्रह्म लोककी प्राप्ति होती हैं ॥ ५१ ॥ हे महाभाग ! जो व्यक्ति गौकी छाया में उपस्थित होकर श्राद्धका आचरण करते हैं हे महामतिमान् ! उन्हें गयामें श्राद्ध करनेके फलकी प्राप्ति होती हैं ऐसा कहागया है ॥ ५२ ॥ और तत्काल गोवरसे लीपी हुई भूमिके ऊपर जो कुछ क्रिया करी जाती हैं, अवश्यही उनके अनन्त फल प्राप्त होतेहैं इसमें सन्देह कुछ भी नहीं ॥ ५३ ॥ हे महामुने ! जो मनुष्य एक वारभी गोमूत्र प्राशन करताहै उसको अभक्ष्य भक्षण करने दुर्वाक्य और अन्यान्य सम्मत वाक्य कहनेके पापसे मोक्षकी प्राप्ति होती है, और, वह पुरुष मरकर परब्रह्मके धामको जाताहै ॥ ५४ ॥ और जो स्थान अपवित्र हैं उनकी शुद्धि गोमूत्रके एक बिन्दु मात्रहीसे होजातीहै ॥ ५५ ॥ और यदि कोई मनुष्य गौके शरीरमें खर्जन करताहै वोह निःसन्देह गोहत्या और ब्रह्महत्यासे छुटकारा पाजाता है ॥ ५६ ॥ हे महामुने ! जो पुरुष भोजनके समय गोग्रास

॥ ९७ ॥ तीर्थे देवालये वापि ग्रहणे चंद्रसूर्य्ययोः ॥ व्यतीपाते च मन्वादौ युगादौ संक्रमे तथा ॥ दाता तस्या गृहीतापि तावुभौ स्वर्गगामिनौ ॥ ९८ ॥ स सुवर्णा सवस्त्रा च सर्वाभरण भूषिता ॥ पयस्विनी सवत्सा च येन दत्ता मुनीश गौः ॥९९॥ तेन तप्तं हुतं तेन जप्तंतेन कृतं तथा॥नानाद्रव्यान्विता तेन दत्ता विप्र वसुंधरा ॥ ६० ॥ शृणु नारद यद्वृत्तमितिहासं सुपुण्यदम् ॥ उज्जयिन्यां पुरा ह्यासीद्वर्द्धमानो महावणिक् ॥ ६१ ॥ बभूव धनधान्यैश्च पुत्रपौत्रैश्च संवृतः ॥ येन केन प्रकारेण कृतं द्रव्यार्जनं तथा ॥ ६२ ॥ धनांभोधिस्ततो जातो रत्नानां निचयैस्तथा॥पुत्राश्चापि महाभागाश्चत्वारो ह्यभवंस्तदा॥६३॥कृत्वा द्रव्यविभागं स कालधर्ममुपागतः॥त्रयः पुत्रास्तु तस्यापि वणिग्धर्मरता मुने॥६४॥अभवत्पश्चिमो यस्तु नाम्ना वरधरो वरः॥द्यूतवेश्या-

निकालकर गौको देताहै, मानो वह वेदपाठी सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै ॥ ९७ ॥ तीर्थ, देवमन्दिर, अथवा सूर्य्यचन्द्रमाके ग्रहण, मन्वादि व्यतीपात और युगादि तिथि एवं संक्रान्ति इनमें गौका दान देने और लेनेवाला ये दोनोंही स्वर्गगामी होतेहैं ॥ ९८ ॥ हे मुनीश्वर ! सुवर्ण वस्त्र और आभूषणोंसे समलंकृत करके दूध देती हुई गौको जो व्यक्ति दान करते हैं ॥९९॥ उन्होंनेही मानो सब तप किये, जप और अन्य सब शुभकर्म मानो उन्होंनेही किये हैं, विशेष क्या कहैं मानो उस पुरुषने अनेक द्रव्य संपन्न भूमिहीका दान कियाहै ॥ ६० ॥ सुनो नारदजी ! पुण्यप्रदान करनेवाला प्राचीन इतिहास वर्णन करतेहैं, प्रथम अर्थात् (प्राचीनकालमें) उज्जयिनी नगरीमें एक बर्धमान नाम महावणिक् निवास करताथा ॥६१॥ वह प्रभूत धनधान्य और अनेक पुत्रपौत्रोंसे व्याप्त था, अथ च जैसेभी हुआ उसने विपुल धन उपार्जन किया ॥ ६२ ॥ रत्नोंका विपुल संचय होजानेके कारण उसके पास मानो धनका सागर होगया, और उसके महाभाग चार पुत्र हुए ॥ ६३ ॥ तब सबको पृथक् २ द्रव्य बाँटकर वह वैश्य पंचत्वको प्राप्त होगया, हे मुने ! उसके तीन पुत्र तो वैश्यधर्म (व्यापार आदिही) में प्रवृत्त हुए ॥६४॥ और वरधर नामके चतुर्थ पुत्रने द्यूत और वेश्याओंके प्रसंगमें पड़कर व्यसनोंके द्वारा सभी धन

दिर्व्यसनैः क्षयं नीतं महद्धनम्॥६५॥जीवनं कृतवान्वेश्यापरिचारेण वै ततः ॥ अन्वेषते विटाँश्चैव किंचिदाप्यधनस्ततः ॥ ६६ ॥ जीविते जातिरहितोगम्यागमनसंयुतः ॥ चौरधर्मरतश्चैव तथासीन्मुनिपुंगव ॥ ६७ ॥ गोधनं चौर्य्यतो हत्वा विक्रीते च स वै वणिक ॥ म्लेच्छवेश्यासमासक्तो वनांते वसतिस्तथा ॥ ६८ ॥ वेश्याद्यूतेषु चौर्य्येषु समाशक्तोजितेंद्रियः ॥ एकदा मदिरां पीत्वा जगाम नगरे वरे ॥ ६९ ॥ ददर्श कंचिद्दातारं गां शुभां दातुमुद्यतम् ॥ तं दृष्ट्वा वणिजश्चित्तमाश्चर्यकलितं मुने ॥ ७० ॥ विप्रान्वेदान्पठतश्च धौतोत्तरपरिच्छदान् ॥ ऊर्द्ध्वपुंड्रधराञ्शांतान् प्रतिग्रहसमुद्यतान् ॥ ७१ ॥ आश्चर्य्यपरमो भूत्वा हसद्गोपुच्छधारिणः ॥ गृहमागत्य तरसा गां गृहीत्वा मदालसः ॥ ॥ ७२ ॥ एकं दिनं समानीय ब्राह्मणं ब्रह्मसत्तमम् ॥ तत्कर्म हसितुं चक्रे गोदानं मदिराश्रितः ॥ ७३ ॥ अन्येपि म्लेच्छजातीया अहसंस्तं मदालसाः ॥ ब्राह्मणस्तां गृहीत्वा तु ययौ स्वभ-

... करदिया ॥६५॥तदनन्तर वेश्याओंकी परिचर्या करके वह अपने जीवनका निर्वाह करने लगा, ...राम् वह निर्धन होजानेके कारण वेश्यागामी धूर्त्तोंका अन्वेषण करने लगा ॥ ६६ ॥ प्राणियों... उसे जातिका ज्ञान नष्ट होगया, अगम्याओंसे गमन करने लगा, तथा हे मुनिराज ! वह ...र कर्ममें प्रवृत्त होगया ॥ ६७ ॥ सुतराम् वह वैश्य गौओंको चुरा २ के बेचने लगा, एवं च ...च्छों और वेश्याओंमें आसक्त होकर वनमें निवास करने लगा ॥ ६८ ॥ उसकी कोईभी इन्द्रिय ...में नहीं थी, और वह दुष्ट वेश्यागमन द्यूत और चौर कर्ममें प्रवृत्त होगया, एक दिन वह ...पान करके श्रेष्ठ नगरमें गया ॥ ६९ ॥ वहां उसने देखा कि, कोई दाता शुभ गौका दान कर... के लिये उद्यत होरहा है, हे मुने ! उसे देखकर वैश्यके चित्तमें बडा आश्चर्य्य हुआ ॥ ७० ॥ ...द पाठ करते हुए, धुले स्वच्छ वस्त्र परिधान किये, ऊर्द्ध्व पुण्ड्र (रामानन्दी) तिलक धारण ...किये और शान्तमूर्ति ऐसे ब्राह्मणोंकोभी जो कि–दान लेनेके लिये उद्यत होरहेथे उस वैश्यने देखा ॥ ७१ ॥ गौकी पूंछ पकडे देख इसे बडा आश्चर्य्य हुआ सुतराम् यह हास्य करने लगा, अथ च ...ह मदोन्मत्त अपने घर चला आया ॥ ७२ ॥ निदान एक दिन मदिरा पान करके उक्त ...दानरूप कर्मकी हँसी करनेके लिये इसने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाय गौ दिया ॥७३॥ मदिरा पान ...नेके कारण और २ भी म्लेच्छ लोग उसका उपहास करने लगे, उधर वह (श्रेष्ठ) ब्राह्मण

वनं त्वरम् ॥ ७४ ॥ प्रबुद्धो मदिरात्यक्तो वैश्योपि स्वस्थमानसः ॥ किं कृतं किं कृतं चैतद्यद्गौर्दत्ता द्विजातये ॥ ७५ ॥ अन्वेषयाति स्म स तं न प्राप गृहमागतः ॥ गृहे च वेश्यया वैश्यो धिक्कृतो विपिनं ययौ ॥ ७६ ॥ तत्र सर्प्पहतो विप्र वने पंचत्वमागतः ॥ आगता यमदूताश्च नेतुं तं वणिजं खलाः ॥ ॥ ७७ ॥ देवदूताश्च तत्रापि तस्मिन्नेवागता वने ॥ विवादश्च तथा तेषां दूतानां यमदेवयोः ॥ ७८ ॥ मत्वा विकल्मषं वैश्यं निन्युर्लोकं प्रजापतेः ॥ अभक्त्यापि कृतं विप्र गोदानं यत्पुरा शुभम् ॥ तस्मात्सर्वैश्च पापैश्च निर्मुक्तो भवदत्तकः ॥ ७९ ॥ न गोदानसमं विप्र पुण्य कर्म महामते ॥ तस्मात्सर्वेण यत्नेन गोदानं शुभमाचरेत् ॥ ८० ॥ भूतवेतालकूष्मांडग्रहग्रस्तः समाचरेत् ॥ यद्यदिच्छति तत्सर्वं प्राप्नोति नैव संशयः॥ ८१ ॥ यथा गोदानतः पुण्यं तथा चान्नप्रदानतः ॥ दीनानाथशरीरेभ्यो

उक्त गौको लेकर अपने घरको चलागया ॥७४॥ जब उसकी मदिरा उतरी, चित्त सावधान हुआ और वह होशमें आया तब कहने लगा हाय ! मैंने यह क्या किया जो ब्राह्मणको गौ दे डाली ॥ ॥७५॥ उसने बहुतेरा उस ब्राह्मणका अन्वेषण किया परन्तु–वह न मिला निदान यह अपने घर चला आया,पर घरमें भी जब उस वैश्यको वेश्याने धिक्कार दिया तब वह विचारा वनमें चला गया॥ ॥ ७६ ॥ वहां उसे सर्पने डस लिया अत एव उसकी मृत्यु होगई, तब तौ उस वैश्यको लेजानेके लिये यमराजके दुष्ट दूत आये ॥ ७७ ॥ तत्काल उसी वनमें देवदूतभी आनके उपस्थित होगये, और देवदूत तथा यमदूतोंका परस्पर विवाद होनेलगा ॥ १८ ॥ निदान वैश्यको निष्पाप मान करके देवदूत प्रजापतिके लोकको लेगये । हे द्विजराज ! उसने भक्तिभाव रहितभी जो प्रथम शुभ गोदान किया था, उसीके प्रतापसे वह भवदत्त निष्पाप होगया ॥ ७९ ॥ हे महामतिमान् विप्र ! गोदानकी समान और कोईभी पुण्य कर्म नहीं है, अत एव जैसेभी बनसकै शुभ गोदान अवश्यही करना कर्त्तव्य है ॥ ८० ॥ जो व्यक्ति भूत, वेताल आदिकी पीड़ासे पीड़ित हो उसे भी गोदान करना कर्त्तव्य है, गोदान कर्त्ता मनुष्य जिस २ वस्तुकी इच्छा करता है अवश्यही उसकी प्राप्ति होती है ॥ ८१ ॥ गौ दान करनेसे जो कुछ पुण्य प्राप्त होता है अन्नदान करनेसेभी

तद्दानं सात्त्विकं मतम् ॥ ८२ ॥ अन्नदानान्महाभाग सर्वं दानं कनिष्ठकम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्यन्नं दद्यात्क्षुधावृते ॥ ८३ ॥ सर्वकाले सर्वदेशे सर्वपात्रे महामते ॥ दद्याद्दानं परं भक्त्या सर्वप्राणिपरायणः ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायापुरीमाहात्म्यं गोमहिमावर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सी पुण्यकी प्राप्ति होती है यदि यह दान दीन और अनाथको दिया जाय तौ उसीको सात्त्विकदान हते हैं ॥८२॥अन्नदानकी अपेक्षा अन्य दान कनिष्ठ मानेगये हैं, अत एव मोक्ष प्राप्तिकी कामनासे न्नका दान भूखेको अवश्यही देना चाहिये॥८३॥सब प्राणियोंके ऊपर दयालु होकर मनुष्यको चाहिये कि–सब समय सब देशों और सब पात्रोंमें भक्तिभाव पूर्वक दान करना कर्त्तव्य हैं ॥ ८४ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः १११.

स्कंद उवाच ॥ अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते ॥ १ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महायशाः॥ ॥ २ ॥ गंगाद्वारे महातेजास्तपः कर्तुं समाययौ ॥ वर्षाणां नियुतं तेपे तपः परमदारुणम् ॥ ३ ॥ तस्य वै तप्यमानस्य त्रस्ता देवाः सवासवाः ॥ वरेणच्छंदयामास ब्रह्मा तं च तपोनिधिम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि

स्कन्दजी बोले–चूं कि एक अन्नदानही सब दानोंसे श्रेष्ठ माना गया है, अत एव जिसने अन्नका दान किया है, मानों उसने भूमिके ऊपर सभी कुछ दान किया है ॥ १ ॥ इस विषयमें भी एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं इलावृतवर्षमें श्वेत नाम एक बडा यशस्वी राजा हुआ था ॥२॥ वोह परम तेजस्वी गंगाद्वारमें तप करनेके लिये आया, और उसने सहस्र वर्ष पर्यन्त बडे उग्र तपका आचरण किया ॥ ३ ॥ उसके उग्र तपसे इन्द्रादि देवतागणभी सभी त्रस्त होगये, सुतराम् उस तपोनिधिके वर प्रदान करनेके लिये ब्रह्माजी उसके निकट आये॥४॥ब्रह्माजी बोले हे महाभाग ! तुम्हारे मनमें जो कुछ है सो वर हमसे मांगो, क्योंकि–हे महाभाग ! त्रिलोकीमें कोई

वर्त्तते ॥ नाप्राप्यं ते महाभाग त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ५ ॥
श्वेत उवाच ॥ इयं सर्वा धरा ब्रह्मन् मदधीना सुराग्रज ॥
यत्किंचिद्वस्तुजातं मे सर्वं स्याद्ब्राह्मणार्थकम् ॥ ६ ॥ इदं क्षेत्रं
च ते नाम्ना विख्यातं स्यान्महीतले ॥ तवावासश्च विष्णोश्च
शिवस्यापि भवत्वरम् ॥ ७ ॥ सर्वेषां चैव देवानां स्थितिश्चापि
प्रजायताम्॥पृथिव्यां यानि तीर्थानि तान्यत्र स्युः स्थिराणि भोः॥
॥ ८ ॥ब्रह्मोवाच॥ इदं तीर्थं महापुण्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्॥
अतः परं च मन्नाम्ना विख्यातं हि भविष्यति ॥ ९ ॥ ये वै
स्नास्यंत्यत्र कुंडे गच्छेयुस्ते परं पदम् ॥ यत्कर्म क्रियते चात्र
तत्सर्वं स्यादनंतकम् ॥ १० ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि
सन्निहितानि वै॥भविष्यंति महाराज सर्वभावैरतः परम् ॥ ११ ॥
इयं च पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥ सर्वद्वीपसमुद्रांता त्वद-
धीना भविष्यति॥१२॥धर्मबुद्धिर्महाराज दानबुद्धिश्च शाश्वती॥
ब्राह्मणार्थं समुत्पन्नो नारायणपरो भव ॥ १३ ॥ स्कंद उवाच ॥

भी वस्तु तुम्हारे लिये अप्राप्य नहीं है॥५॥श्वेत बोला—हे सब देवताओंमें प्रथमोत्पन्न ब्रह्माजी महाराज ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी मेरे आधीनहै, और जितनी वस्तुएहैं सभी मेरे लिये उपस्थित हैं ॥ ६ ॥ किन्तु—यह क्षेत्र भूमण्डलके ऊपर आपके नामसे विख्यात हो, अथ च आपका एवं शिव और विष्णु भगवान्का भी निवास यहां रहै ॥ ७ ॥ येही नहीं किन्तु—सभी देवताओंकी स्थिति इस स्थानमें होनी चाहिये, और भूमण्डलके ऊपर जितने तीर्थ हैं वे सबही यहां स्थित होके निवास करैं ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले—जिसकी प्राप्ति त्रिलोकीमें अत्यन्त दुर्लभ है ऐसा यह परम पवित्र तीर्थ, अबसे लेके आगेको हमारे नामसे विख्यात होगा ॥ ९ ॥ एवं च जो लोग इस कुंडमें स्नान करेंगे, उन्हें परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति होगी और इस स्थानमें जो कुछभी कर्म कियाजाय वह सभी अनन्त होगा ॥ १० ॥ और हे महाराज ! पृथ्वीके ऊपर जितने तीर्थ हैं अबसे लेके वे सबही यहां निवास करेंगे ॥ ११ ॥ और समस्त वन और पर्वतों एवम् द्विपों सहित यह अखिल भूमि समुद्रपर्यन्त तुम्हारे आधीन रहैगी ॥ १२ ॥ हे महाराज ! ब्रह्म प्राप्तिके लिये तुम्हारी बुद्धि धर्माचरण और दान करनेमें निरन्तर संलग्न रहै, अथ च तुम नारायणकी भक्तिमें निरत रहो ॥ १३ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! यों कहकर ब्रह्माजी तत्कालही अपने लोकको

इत्युक्त्वा सहसा विप्र ब्रह्मा लोकं स्वकं ययौ॥सोऽपि राजा महाराज ययौ स्वे प्रवरे स्थले ॥ १४ ॥ जित्वा च पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां ससागराम् ॥ स्थापयामास स्ववशे सर्वान्वै पृथिवीभुजः ॥ ॥ १५ ॥ चकार विविधान् यज्ञान्हयमेधादिकान्मुने ॥ स्वर्णरत्नमहार्हाणि वासांसि विविधानि च ॥ ददौ स विप्रवर्य्येभ्यो वेदविद्भ्यो विशेषतः ॥ १६ ॥ वसिष्ठं सर्वशास्त्रज्ञं प्रोवाच तपसां निधिम् ॥ १७ ॥ श्वेत उवाच ॥ ॥ भगवन्दातुमिच्छामि ब्राह्मणेभ्यो वसुंधराम् ॥ देह्यनुज्ञां तपोराशे शिष्याय शुभकारणम् ॥ ॥ १८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ अन्नदानं महाराज सर्वकामसुखावहम् ॥ अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले ॥ १९ ॥ अन्नाद्भवंति भूतानि अन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानं ददस्व भो ॥ २० ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ किं वस्त्वन्नं विदित्वा स नो ददावन्नमंबु च ॥ रत्नवस्त्राद्यलंकाराञ्श्रीमंति नगराणि च ॥ २१ ॥ दत्तवान् ब्राह्मणेभ्योथ कुंजरान् वाजिनस्तथा ॥

चलेगये, अथ च वह राजाभी अपने उत्तम स्थलमें चला गया ॥ १४ ॥ एवं च सागर पर्यन्त सप्तद्वीपा वसुमती (भूमि) को उसने विजय किया और सब राजाओंको अपने आधीन बना २ कर यथा स्थान उन्हें फिर स्थापित कर दिया॥ १५ ॥हे मुने ! उसने अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये, एवं च उन यज्ञोंमें सुवर्ण, बहुमूल्य वस्त्र, और विविध प्रकारकी अन्यान्य वस्तुएँ ब्राह्मणोंको और विशेष कर वेदपाठियोंको उसने दी ॥ १६ ॥ फिर उसने तपके निधि स्वरूप और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता वसिष्टजी महाराजसे कहा ॥ १७ ॥ श्वेत बोला—हे भगवन् ! मैं इस भूमिको ब्राह्मणोंको दान करके देना चाहताहूं, अत एव हे तपोधन ! मुझ अपने शिष्यको शुभाचरण करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ वसिष्टजी बोले—हे महाराज ! अन्नका दान सभी सुखोंका देनेवाला है, अत एव अन्नदान करनेसे भूतलके ऊपर मानो सभी कुछ दान करदिया ॥ १९ ॥ अन्नहीसे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती हैं और अन्नहीमें प्राण स्थितहैं, अत एव हे राजन् ! सर्वथा अन्नदान करो ॥ २० ॥ स्कन्दजी बोले—राजाने अन्नको तुच्छ वस्तु जानकर उसका दान नहीं किया, किन्तु—रत्न, वस्त्र, आभूषण और नगर ॥ २१ ॥ हाथी और घोडे, सुवर्ण, चांदी और विविध भांतिके

सुवर्णरौप्यरत्नानि यानानि विविधानि च ॥ २२ ॥ अश्वमेध-
सहस्रैश्च इयाज बहुदक्षिणैः ॥ स्वल्पं वस्तुपरं ज्ञात्वा सोन्नं तु ना-
ददात्प्रभुः ॥ २३ ॥ एवं तस्य महाभाग दिव्यं वर्षशतं ययौ ॥
ततः कदाचिन्नृपतिः कालधर्मवशं गतः ॥ २४ ॥ परलोके वर्त्त-
मानः स्ववेश्याभिरभिष्टुतः ॥ क्षुधया पीडितो ह्यासीत्तृषया च
नराधिपः ॥ २५ ॥ क्षुत्तृष्णाभ्यां पीड्यमानः स्वर्गभोगान्वितो-
ऽपि सन् ॥ आनिनायाप्सरोभोगं गत्वा श्वेतं महागिरम् ॥ २६ ॥
ददर्श तत्र नृपतिर्दग्धदेहं पुरात्मनः ॥ अस्थीनि चर्वयामास शी-
र्णानि मुनि पुंगव ॥ २७ ॥ चर्वयित्वा पुरा राजा विमानवरमा-
स्थितः ॥ अप्सरोगणगंधर्वसेवितो दिवमाव्रजन् ॥ २८ ॥ एवं स
प्रत्यहं राजा संगृह्यास्थीनि संलिहन् ॥ तत्रास्ते श्वेतसंकाशं पुनः
स्वर्गं जगाम ह ॥ २९ ॥ अथ कालेन महता वसिष्ठेन महा-
त्मना ॥ अस्थीनि चर्वयन्दृष्टो राजा श्वेतो महातपाः ॥ ३० ॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं किमहो स्वास्थिचर्वणम् ॥ एवमुक्तस्तदा

यान दान करके उसने ब्राह्मणोंको दिये॥२२॥और उस राजाने बडी २ दक्षिणाके सहस्रों अश्वमेध यज्ञ किये, परन्तु—अन्नको स्वल्प (तुच्छ) वस्तु जानकर उसने दान न किया॥२३॥ इसी प्रकार करते करते हे महाभाग! दिव्य सौ वर्ष व्यतीत होगये, तब तक एक समय वह राजा मृत्युको प्राप्त होगया॥२४॥ जब वह परलोकमें गया तब स्वर्गकी अप्सराएँ उसकी स्तुति करने लगीं, किन्तु वहां वोह राजा क्षुधा और तृषासे पीडित रहताथा॥ २५ ॥ यद्यपि स्वर्गीय सब भोग उसके लिये उपस्थित थे, तथापि उसे क्षुधा और तृषा पीडित करतीथीं, किन्तु उसे अप्सराओंहीके भोग प्राप्त होतेथे॥ ॥ २६ ॥ सुतराम् राजा एक पर्वतके ऊपर भेजागया और वहां उसने प्रथम अपने शरीरको भस्मीभूत हुआ देखा, और हे मुनीश्वर! वह अस्थियोंको चावा ॥ २७ ॥ उन्हें चबाकर वह राजा विमानके ऊपर उपस्थित हुआ, अप्सरोगण और गन्धर्वोंसे सेवित होकर स्वर्गको चलागया॥ ॥ २८ ॥ इसी प्रकार वह राजा नित्य प्रति अस्थियोंका संचर्वण कर श्वेतमूर्ति स्वर्गको चला जाता था ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् कुछ समय अतिक्रान्त होनेपर महात्मा वसिष्ठजीने महातपस्वी श्वेतराजाको अस्थियोंका चर्वण करते देखा ॥ ३० ॥ (वशिष्ठजी) हँसकर बोले—कि अरे! तुम अस्थियोंको क्यों चावते हो ? जब ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र वसिष्ठजी महाराजने यों कहा तब

राजा ब्रह्मपुत्रेण धीमता ॥ जगाद लज्जितो राजा मुनिं चेदं तपोनिधिम् ॥ ३१ ॥ क्षुधा मां बाधते ब्रह्मन्यदन्नं न पुराददम् ॥ ॥ पानं चापि महाभाग ततो मां बाधते तृषा ॥ ३२ ॥ एवमुक्तस्तदा राज्ञा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ॥ पुनर्जगाद तं श्वेतं महाराजं महार्थवित् ॥ ३३ ॥ फलमेतन्महीशानावधीरितवचो यतः ॥ अदत्तं नोपतिष्ठेत कस्यचित्किंचिदप्यहो ॥ ३४ ॥ त्वया दत्तानि राजेंद्र स्वर्णरत्नांबराणि च ॥ तानि सर्वाणि भोगार्थं तव संति यतः क्वचित ॥ ३५ ॥ अन्नं पानं च नो दत्तं क्षुत्तृष्णे तव संस्थिते ॥ स्तोकं मत्वा त्वया राजन्नदत्ते चान्नपानके ॥ ३६ ॥ अदत्तं नोपतिष्ठेतसाक्षादपि प्रजापतेः ॥ ३७ ॥ श्वेत उवाच ॥ किं कर्त्तव्यं महाभाग कथं नो बाधते क्षुधा ॥ कृतांजलिरहं याचे ह्यदत्तं मा कथं भजेत् ॥ ३८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ अस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः ॥ तच्छृणुष्व नर-

वह राजा लज्जित होकर तपोनिधि मुनीश्वरसे यों बोला— ॥ ३१ ॥ कि—हे ब्रह्मन्! प्रथम मैंने अन्न और पान प्रदान नहीं किये अत एव क्षुधा और तृषा मुझे सताती हैं ॥ ३२ ॥ जब राजाने ब्रह्माजीके पुत्र महामुनिसे इस प्रकार कहा तब वे महार्थके ज्ञाता महर्षि फिर श्वेतराजासे बोले ॥ ३३ ॥ हे राजन्! तुमने जो हमारे वाक्योंका निरादर कियाथा उसीका यह फल है, और यह भी निश्चय हैं कि, विना दिये हुए किसीको कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे राजेन्द्र! तुमने सुवर्ण, रत्न और वस्त्रोंका दान किया है, सो तुम चाहे जहां निवास करो वे अवश्यही तुम्हारे भोगके लिये उपस्थित हैं ॥ ३५ ॥ चूं कि, तुमने अन्न और पानका दान नहीं किया अत एव क्षुधा और तृषा (प्यास) तुम्हें बाधा देती हैं, हे राजन्! तुमने अन्न और पानको स्वल्प (तुच्छ) समझकर उनका दान नहीं किया ॥३६॥ और विना दिये तौ साक्षात् प्रजापतिके लिये भी कोई वस्तु उपस्थित नहीं हो सक्ती ॥ ३७ ॥ श्वेत बोला-हे महाभाग! अब मुझे क्या करना कर्त्तव्य हैं? जिससे कि, मुझे क्षुधा बाधा न दे, मैं हाथ जोडकर यह प्रार्थना करता हूं कि—अनदिये (अन्न पानका फल) मुझे किस प्रकार उपलब्ध हो सक्ता है ॥ ३८ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे नरशार्दूल! एक ऐसा कारण (अथवा उपाय) हैं, निःसन्देह उससे (फलकी) प्राप्ति

व्याघ्र कथ्यमानं मयानघ ॥ ३९ ॥ यथा पुरा विनीताश्वो महीपालो महायशाः॥कृतवान् सर्वमेधांश्च सहस्राणि महामुनिः॥ ॥ ४० ॥ दत्तास्तेन तथा गावो रत्नस्वर्णांबराणि च ॥ स्तोकं मत्वा न तेनापि पानं चान्नं महीपते ॥ ४१ ॥ सोपि गंगोत्तरे देहं तत्याज मुनिपालक ॥ गतवान् ब्रह्मलोकादीन्नानाभोगसमन्वितः ॥ ४२ ॥ त्वामिव क्षुधयाविष्टो बभूव तृषया तथा ॥ पुनर्मर्त्यं समायातो विमानेनार्कवर्चसा ॥ ४३ ॥ गंगाद्वारे महाक्षेत्रे नीलाभिधमहीधरे ॥ दग्धं कलेवरं सोपि दृष्ट्वा भोक्तुं मनो दधौ ॥ ॥ ४४ ॥ तावद्ददर्श होतारं विनीताश्वा पुरोहितम् ॥ उक्तश्च कारणं विप्र क्षुधायाश्च तपोनिधे ॥ ४५ ॥ कथयामास तं होता प्रतीकारं क्षुधस्तृषः ॥ प्रथमा तिलधेनुश्च जलधेनुस्ततः परम् ॥ ४६ ॥ रसधेनुस्तृतीयापि गुडधेनुस्तथा स्मृता ॥ शर्करामधुधेनुश्च क्षीरधेनुश्च सप्तमी ॥ ४७ ॥ अष्टमी दधिधेनुश्च नवनीतमयी ततः ॥ तथा लवणधेनुश्च सत्कार्पासमयी

होसक्तीहै, सो हे निष्पाप ! मैं उसीका वर्णन करताहूं तुम श्रवण करो ॥ ३९ ॥ एक समय पूर्वकालमें प्रभूत यशस्वी महामुनि विनीताश्वने सहस्रों सर्वमेध यज्ञ कियेथे ॥ ४० ॥ और उसने भी गौएँ, रत्नों, सुवर्ण और वस्त्रोंका दान किया था, परन्तु—हे राजन् ! अल्प समझकर अन्नपानका दान नहीं किया ॥ ४१ ॥ जब उस मुनि पालक राजाने गंगोत्तरीके ऊपर अपने देहका परित्याग किया तब अनेक भोगों सहित वह उत्तम ब्रह्मलोक आदिको गया ॥ ४२ ॥ किन्तु तुम्हारी ही समान क्षुधा और तृषासे व्याकुल था, तब सूर्य जैसे प्रकाशवान् विमानमें आरूढ हो फिर वह मृत्युलोंकमें आया ॥ ४३ ॥ हरिद्वार महाक्षेत्रमें नीलपर्वतके ऊपर भस्म हुए देहको देखकर उसके मनमें भक्षण करनेकी अभिलाषा हुई ॥ ४४ ॥ इतनेहीमें इसे यज्ञ करनेवाले पुरोहितजीके दर्शन हुए, और हे तपोनिधे ! तब उसने इसकी क्षुधाका कारण कहा सुतराम् उस होताने क्षुधा और तृषाका प्रतीकार अर्थात् दूर होनेका उपाय बताया ॥ ४५ ॥ कि-प्रथम तिलधेनु, दूसरी जलधेनु ॥ ४६ ॥ तीसरी रसधेनु, चौथी गुड़धेनु, शर्करा और मधुकी धेनु, सातवीं क्षीरधेनु, ॥ ४७ ॥ आठवीं दधिधेनु, नवमी नवनीत (मक्खन) की धेनु, लवण और कार्पासकी धेनु एवं धान्यधेनु ये बारह

तथा ॥ धान्यधेनुस्तथा प्रोक्ता द्वादशैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ४८ ॥
घटं संस्थाप्य राजानं कारयामास तास्तथा ॥ ययौ परमिकां
सिद्धिं सर्वतृप्तिमयीं प्रभो ॥ ४९ ॥ तथा त्वमपि राजेंद्र कुरुष्वै-
ता महार्थदाः ॥ तृप्तिं प्राप्स्यसि भूयिष्ठां क्षुधा नो पीडयिष्यति
॥ ५० ॥ अन्नदानात्परं नास्ति त्रैलोक्ये प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ५१ ॥
स्कंद उवाच ॥ वसिष्ठोपि महाराज कारयामास राजतः ॥
क्षुन्निवृत्तिकरं चैव धेनूनां वितरं तथा ॥ ५२ ॥ अन्नदानात्परां
तृप्तिं प्राप श्वेतो नराधिपः॥विमानवरमारुह्याप्सरोगणसमन्वितः॥
सिद्धैः संस्तूयमानो वै जगाम परमं पदम् ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्व-
प्रयत्नेन अन्नदानपरो भवेत् ॥ मुष्टिमात्रमपि क्षेत्रे गंगाद्वारे विशे-
षतः ॥ अन्नं ददाति विप्राय तृप्तः स्यात्कल्पपंचकम् ॥ ५४ ॥
अन्नदो राज्यमाप्नोति ह्यन्नदो गतिमुत्तमाम् ॥ तस्मात्सर्वप्रय-
त्नेन शक्त्या चान्नप्रदो भवेत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदा-
रखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्येऽन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधि-
कशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

धेनुएँ वर्णन करी गई हैं ॥ ४८ ॥ सो घटस्थापन कर राजासे इन्हीका दान पुरोहितने कराया, तब उसको संपूर्ण तृप्तिरूप परम सिद्धिका लाभ हुआ ॥ ४९ ॥ क्योंकि--ये सब महा अर्थकी प्रदान करनेवाली है अत एव तुमभी इन धेनुओंका दान करो, तब तुम्हें भूयसी तृप्तिकी प्राप्ति होगी और फिर क्षुधाभी बाधा नहीं देगी ॥ ५० ॥ क्योंकि अन्नदानके अतिरिक्त और कोईभी दान ऐसा उत्कृष्ट नहींहै जो सबकी प्रीतिकी बृद्धि करताहो ॥ ५१ ॥ स्कन्दजी बोले--सुतराम् वशिष्ठजी महाराजने राजासे उन गौओंका दान कराया, क्योंकि क्षुधाकी निवृत्ति करनेवाला एक ये ही उपाय हैं ॥ ५२ ॥ तब अन्नदान करनेके कारण श्वेतराजाको परम तृप्तिका लाभ होगया, तद-नन्तर अप्सराओंसहित श्रेष्ठ विमानमें आरूढ हो वोह परमपद मोक्षको प्राप्त हुआ, और सिद्ध-गण उसकी स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥ अत एव सर्वथाही अन्नदान करनेमें तत्पर होना चाहिये, किसी क्षेत्रमें अथवा विशेषकर हरिद्वारमें एक मुट्ठी अन्नभी दान कर ब्राह्मणको देताहै, वोह पांचकल्प पर्य्यन्त तृप्त रहताहै ॥ ५४ ॥ अन्नके दाताको राज्यकी प्राप्ति होतीहै, और अन्नका दान करनेवालेहीको उत्तम गतिकीभी प्राप्ति होतीहैं सुतराम् संपूर्ण यत्नोंसे अन्नदान करनेमें तत्पर होना चाहिये ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकाधिकशततमोध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२.

कार्त्तिकेय उवाच ॥ कुशावर्त्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग न च भूयोभिजायते ॥ १ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्॥यदत्र क्रियते कर्म तत्तस्या-त्कोटिसंख्यकम् ॥ २ ॥ पुरा गंगागमे मौनी दत्तात्रेयो महा-तपाः ॥ तस्थावेकेन पादेन वर्षाणामयुतं मुनिः ॥ ३ ॥ कुश-चीराणि दण्डं च कुण्डीं चोवाह जाह्नवी ॥ आवर्तेपि पुनरसौ कुशान् धृतवती मुनेः ॥४॥ आप्लुतांस्तान्कदाचित्तु ददर्श कुशची रकान् ॥ वहमानान्महाभाग गंगामावर्त्ततां गताम् ॥ ५ ॥ क्रुद्धो महामुनिस्तां तु यावद्भस्मीकरोति च ॥ तावत्सर्वे समा-याता ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ६ ॥ तुष्टुवुः परमं भक्त्या कार्त्त-वीर्यगुरुं मुनिम् ॥ संस्तुतश्च प्रसन्नोभूद्ब्रह्मादींस्तानुवाच ह ॥ ७ ॥ अत्रैव भवतां स्थानं नित्यं स्यात्तीर्थके वरे ॥ आवर्त्त-नाद्यतो गंगा कुशान् धृतवती मम ॥ ८ ॥ कुशावर्त्तमितिख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ धन्याः लोकाः करिष्यंति स्नानं पितृसमर्च

कार्त्तिकेयजी बोले—ब्रह्मतीर्थसे दक्षिणकी ओर कुशावर्त्त तीर्थहै, हे महाभाग ! उस तीर्थमें स्नान करनेसे फिर मनुष्यका जन्म नहीं होता ॥ १ ॥ क्या स्नान, क्या दान, क्या जप, क्या होम, क्या स्वाध्याय (वेदपाठ) और क्या पितृतर्पण, ये अथवा और भी जो कुछ कर्म यहां किया वोह सब करोड़ गुणा अधिक फलप्रदान करताहै ॥ २ ॥ पूर्वकालमें जब गंगाजीका आगमन हुआथा, तब महातपस्वी मौनी दत्तात्रेयजी मुनिराजने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त एक चरणसे स्थित रहकर तपका आचरण किया था ॥ ३ ॥ उसी समय गंगाजीने उनके कुशा, वस्त्र, दण्ड और कूंडीको, बहादिया, हे मुने ! उनके कुशाओंको अपने आवर्त्तोंमें विलीन करलिया ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! कभी एक समय दत्तात्रेयजीने अपने कुश और चीरोंको गंगाजीके आवर्त्तोंके मध्यमें वहते अत एव भीगे हुए देखा ॥ ५ ॥ क्रोधित हो महामुनि जभी उसे भस्म करनेके लिये उद्यत हुए, तब ही ब्रह्माआदि समस्त देवगण वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ सहस्रार्जुनके गुरु महामुनि दत्तात्रेयजीकी वे सब स्तुति करने लगे, तब तो उनके इस प्रकार स्तुति करनेसे प्रसन्न हो मुनीश्वर ब्रह्मादि देवताओंसे यों बोले ॥ ७ ॥ इसी श्रेष्ठ तीर्थमें आप सब देवताओंकी स्थिति रहै, और आवर्त्तन करके गंगाजीने हमारे कुशाओंको यहां रक्खाहै अत एव कुशावर्त्त नामसे यह तीर्थ विख्यात होगा ॥ ८ ॥ जो लोग यहां स्नान अथवा पितरोंकी अर्चा (श्राद्धआदि)

नम् ॥ ९ ॥ तत्पितॄणां च तस्यापि न स्याज्जन्म पुनः क्वचित् ॥ कुशावर्ते महातीर्थे दत्तं स्यात्कोटिसंख्यकम् ॥ १० ॥ इति ते कथिता व्युष्टिः कुशावर्त्तस्यपुण्यदा ॥ श्रुत्वाप्येतां महोत्पत्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायापुरीमाहात्म्ये द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

होंगे उनका और उनके पितरोंका जन्म फिर कहीं नहीं होगा अर्थात्-उनकी मुक्ति होजायगी ॥ ९ ॥ महातीर्थ कुशावर्त्तमें दान करनेसे उस (दान) का प्रमाण करोडगुणा अधिक होजाताहै, इस प्रकार कुशावर्त्तकी उत्पत्ति और माहात्म्यका हमने वर्णन किया, क्योंकि यह स्थान अत्यन्तही पुण्य दायक है अत एव इस तीर्थकी उत्पत्ति श्रवण करै तौ सब पापोंसे मुक्ति होजातीहै ॥ १० ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां द्वादशाधिशकशततमोध्यायः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ११३.

स्कंद उवाच ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे विष्णुतीर्थं धनुःशते ॥ अत्र स्नात्वा परं ब्रह्म लीनो भवति निश्चितम् ॥ १ ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥ कृष्णसर्प्पो महानेको दृश्यते फणमंडितः ॥ २ ॥ भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां जलमध्ये प्रयाति च ॥ तत्र स्नाति पुनः श्वभ्रे निविष्टो भवति क्षणात् ॥ ३ ॥ केनचित्कारणेनासौ राजा परमधार्म्मिकः ॥ शप्तो दुर्वाससा विप्र पुरा कृतयुगे वरे ॥४॥ नारद उवाच ॥केन वै कारणेनायं शप्तो राजा महायशाः ॥ किन्नामायं कार्त्तिकेय कुत्रत्यो च नराधिपः ॥५॥

स्कन्दजी बोले-कुशावर्त्तसे दक्षिणकी ओर सौ धनुषकी दूरीपर विष्णु तीर्थहै, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य अवश्यही परब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ १ ॥ अब उसके चिह्नका वर्णन करतेहैं जिससे कि, उस शुभतीर्थका ठीक २ ज्ञान होसकै, विशाल फणमण्डित एक महान् कृष्ण सर्प अवलोकित होताहै ॥ २ ॥ अथ च वह सर्प भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीके दिन जलमें प्रवेश करताहै, उसमें स्नान करतेही वोह आकाशमें लय होजाताहै ॥ ३ ॥ यह परम धार्मिक राजा था परन्तु हे विप्र ! प्रथम सत्ययुगमें किसी कारणसे दुर्बासा मुनिने इसे शाप देदिया था ॥ ४ ॥ नारदजी बोले-महायशस्वी इस राजाको किस कारणसे दुर्वासा ऋषिने शाप दिया ? और हे कार्त्तिकेय ! इसका नाम क्या था ? अथ च यह कहांका राजा था ? ॥ ५ ॥

शापस्यांतं कदैतस्यं भविष्यति महामते ॥ अनेन किं कृतं राज्ञा तस्य दुर्वाससो मुनेः ॥ ६ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वृत्तांतं राज्ञश्चापि तपोनिधेः ॥ पुरा कृतयुगे राजा सूर्य्यवंशविवर्द्धनः ॥७॥ नाम्ना धर्मध्वज इति ख्यातो रिपुविनाशनः॥कृत्वा बहुविधान्यज्ञान्समाप्तवरदक्षिणान् ॥ ८ ॥ वनितासहितस्तप्तुं गंगाद्वारे समाययौ॥अत्रागत्य महातेजा न्यवसद्विष्णुतत्परः ॥९॥ एकदा धर्मकेतुस्तु स्नात्वागत्य गृहे स्वके॥ददर्श मुनिमासीनं पीठे दुर्वाससं वरम् ॥१०॥दृष्ट्वा तं सहसा राजा पादयोः प्रपपात ह॥पाद्यमाचमनीयं च स्वासनं चार्घसंयुतम् ॥ ददौ तस्मै महाभाग विधिदृष्टेन कर्म्मणा ॥ ११ ॥ ॥ उवाच वचनं चेदं स्वागतं ते महामुने ॥ धन्योस्म्यथानुगृहीतोस्मि यस्य ते गृहमागमः ॥ १२ ॥ किमागमनकृत्यं ते कार्य्यं किं करवाणि तत् ॥ १३ ॥ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ संप्राप्तो भोक्तुकामोहं पारणस्य दिनं त्विदम्॥

हे महामतिमान्! इसके शापका अन्त कब होगा? एवं च इसने दुर्वासा मुनिका क्या अपकार किया था ॥६॥स्कन्दजी बोले–हे नारदजी! राजा और तपस्वीका आख्यान श्रवण करो, प्रथम सत्ययुगमें सूर्य्य वंशकी वृद्धि करनेवाला एक राजा था ॥ ७ ॥ उस शत्रुविनाशी राजाका धर्मध्वजनाम विख्यात था, उसने बड़े २ यज्ञोंका आरंभ कर प्रभूत दक्षिणा दे २ के उन्हें समाप्त किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अपनी पत्नीको साथ ले तप करनेके लिये वह हरिद्वारमें आया,और वह महातेजस्वी यहां आप विष्णु भगवान्की भक्तिमें तत्पर होकर निवास करने लगा ॥ ९ ॥ एक समय वह धर्मध्वज स्नान करके अपने स्थानमें गया, तब ही उसने सिंहासनके ऊपर बैठे हुए दुर्वासाजीको देखा ॥ १० ॥ उन्हें देखतेही राजा तत्काल उनके चरणोंमें निपतित हुआ अथ च हे महाभाग ! शास्त्रोक्त विधिके अनुसार राजाने पाद्य आचमन सुन्दर आसन और अर्घ्यभी महर्षिको दिया ॥ ११ ॥ और राजाने ये वाक्य कहे कि, हे मुने ! आप सुखपूर्वक पधारें ! आपने बड़ी कृपा करी और मुझे धन्यहै जो आप मेरे घर पधारेहैं ॥ १२ ॥ आपके पधारनेका क्या कारण है ? और मैं आपका क्या कार्य्य संपादन करूं॥१३॥दुर्वासाजी बोले–क्योंकि व्रतान्ते भोजन करनेका यह दिन है अत एव भोजन करनेकी कामनासे मैं यहां उपस्थित हुआहूं, मैं अत्यन्तही क्षु-

शीघ्रं भोजय मां राजन् क्षुधितोस्मि परं विभो ॥१४॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं मुनेर्दुर्वाससो नृपः ॥ तथेत्युक्त्वा ययावंतर्गृहं कर्त्तुं महामुने ॥ १५ ॥ संपादयति भोज्यं च यावद्राजा महामतिः ॥ सूकरास्यः समायातो भ्रातुर्वैरमनुस्मरन् ॥ ॥ १६ ॥ विघ्नं वै कर्त्तुमारब्धो दृष्ट्वा दुर्वाससं मुनिम् ॥ सर्प्पो भूत्वा स्वयं रक्ष एकान्ते भोज्यपात्रके ॥ उत्ससर्ज महाक्ष्वेडं तदन्ने भक्तितोर्ज्जिते ॥ १७ ॥ न ज्ञातं तन्महीभर्त्त्रा कृतं यद्रक्षसा मुने ॥ प्रवेशयामास मुनिं भोक्तुं भोज्यं ततः परम् ॥१८॥ यावदग्रे समायाति ज्ञातं तावद्विषोल्वणम् ॥ विषसंवलितं दृष्ट्वा भोजनं स्वर्णपात्रके ॥ क्रुद्धो मुनिः शशापैनं धर्मकेतुं नराधिपम् ॥ १९ ॥ यस्मात्त्वया विषोत्सृष्टं भोज्यं मे दीयतेऽधम ॥ तस्मात्त्वं भविता दुष्टः कालसर्प्पः शतं समाः ॥ २० ॥ उत्सृष्टं तु तदा दृष्ट्वा शापाग्निं मुनिनेरितम् ॥ वेपमानो महीभर्त्ता भयार्त्तो निजगाद तम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मन्नहं कथं शप्तो विचार्य्याघं मम

त होरहाहूँ अत एव मुझे शीघ्रही भोजन कराओ ॥ १४ ॥ स्कन्दजी बोले-जब राजाने दुर्वासा मुनिके ऐसे वाक्याको श्रवण किया, तब हे महामुने ! वोह बहुत अच्छा यों कहकर घरके भीतर चला गया ॥ १५ ॥ जब राजा भोजनको संपादन करने लगा, तभी एक राक्षस जिसका मुख सूकरकी समान था, वह अपने भ्राताके बैरका स्मरण करता हुआ ॥ १६ ॥ विघ्न करनेके लिये सन्नद्ध हुआ, अर्थात्-महर्षि दुर्वासाके लिये जो भोजन भक्तिभावपूर्वक तयार कर धराथा उसी पात्रमें उसने सर्प होकर विषका परित्याग करदिया ॥ १७ ॥ सुनो मुनीश्वर ! राक्षसने जो कुछ यह दुष्टाचरण किया था, राजाको विदित नहीं हुआ, निदान राजाने भोजन करनेके लिये मुनिको भोजन भवनमें प्रवेश कराया ॥ १८ ॥ जभी मुनि आगे चले तभी उन्होंने जान लिया कि, यह अन्न विषसंयुक्त है, सुतराम् सुवर्णके पात्रमें विषपूर्ण भोजनको देखकर मुनिजीको क्रोध हो आया अत एव उन्होंने धर्मकेतु राजाको शाप देदिया ॥ १९ ॥ अरे दुष्ट ! क्यों तूने मुझे विषसंयुक्त भोजन दिया है अत एव तूँ सौ बर्ष पर्यन्त कृष्ण सर्प होके रह ॥ २० ॥ जब मुनिके द्वारा प्रयोग की हुई शापाग्निको उठते देखा तब तौ वह भूपती कंपायमान होगया और भयातुर हो मुनिसे बोला ॥ २१ ॥ हे ब्रह्म मूर्त्ति प्रभो ! आपने मुझे शाप क्यों दिया ? यह तौ विचारिये कि, मेरा

प्रभो ॥ इति प्रोक्तो मुनिस्तेन दध्यौ रक्षोविचेष्टितम् ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा लज्जासमायुक्तो दुर्वासा मुनिपुंगवः ॥ उवाच तं महाराजं वेपमानं कृतांजलिम् ॥ २३ ॥ कृतमेतन्महाराज शत्रुणा तव रक्षसा ॥ वसात्रैव च नृपते विष्णुतीर्थे सुपुण्यदे ॥ २४ ॥ अहमत्रागमिष्यामि युगांते नरपुंगव ॥ मां दृष्ट्वा सहसा गंता तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २५ ॥ दुःखं नात्र प्रकर्त्तव्यं शापांतो भविता तव॥ प्रियया सहितो विष्णोः सायुज्यं प्राप्स्यसे चिरात् ॥ २६ ॥ इयं चापि महाभाग सर्प्पिणी भविता खलु ॥ गोपनार्थं स्वजातेश्च मा शोचस्व महीपते॥२७॥गंगाद्वारं परं क्षेत्रं यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥ निवसंति विमुक्त्यर्थं येन केनापि योनिना ॥ २८ ॥ खेदस्त्वया न कर्त्तव्यो भुजंगमशरीरतः ॥ ज्ञानं च भविता तत्र मोक्षमार्गप्रदर्शकम् ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो वदरीविपिने ततः ॥

अपराध (अर्थात्—पाप) ही क्या है, इस भांति कहे जानेपर ध्यान धरके मुनिने राक्षसका सब कुछ कर्त्तव्य समझ लिया ॥ २२ ॥ और यह सब कुछ जानकर मुनिराज दुर्वासाजी लज्जित होगये, सुतराम् बद्धांजलिपुट हो कंपायमान होते हुए राजासे बोले ॥ २३ ॥ हे महाराज ! यह सब कुछ दुष्टाचरण तुम्हारे शत्रु राक्षसने कियाहै, अत एव (निरपराध होनेके कारण) तुम पुण्य प्रदान करनेवाले इसी विष्णुतीर्थमें निवास करते रहो ॥ २४ ॥ हे नरशार्दूल । युगके अन्तमें मैं यहां फिर आऊंगा, तब तुम हमारे दर्शन कर तत्कालही श्रीविष्णुभगवान्के परमपदको चले जाओगे ॥ २५ ॥ इस विषयमें तुम्हें दुःख न मानना चाहिये, तुम्हारे शापका अन्त होगा, अथ च तुम्हें और तुम्हारी पत्नीको श्रीविष्णुभगवान्के सायुज्य लोककी शीघ्रही प्राप्ति होगी॥२६॥ हे महाभाग ! महाराज ! तुम कुछ शोच मत करो' यह तुम्हारी पत्नी भी अपनी जातिको गुप्त रखनेके लिये सर्पिणी बनेगी ॥ २७ ॥ और तुम दोनोंका इसी परम क्षेत्र गंगा द्वार (हरिद्वार) में निवास होगा जहां ब्रह्मा आदि देवगण अनेक योनियें धारण कर मुक्तिकी कामनासे निवास करते हैं ॥ २८ ॥ सर्पदेह प्राप्त होनेका खेद तुम्हें मानना न चाहिये, क्योंकि मोक्षमार्गका दिखानेवाला ज्ञान तुम्हें उस योनिमेंभी प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ यों कहकर दुर्वासा मुनि तो वदरी वनमें चलेगये, और हे महाभाग ! वह महाबाहु राजा भी

सोपि राजा महाबाहुः सर्प्पदेहोऽभवन्मुने ॥ सपत्नीको महाभाग हरिद्वारे सुरालये ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे गंगाद्वारमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

नी पत्नीसहित सर्प बनकर देवस्थान हरिद्वारमें निवास करने लगा ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कांदेकेदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

चतुर्द्दशाधिकशततमोऽध्यायः ११४.

॥ नारद उवाच ॥ शूकरास्यो महाभाग को वा स राक्षसाधमः ॥ अस्य भ्रातापि को वाऽऽसीत्किमर्थं नृपरक्षसोः ॥ अभूद्वैरं कदा वैरं सर्व मे विस्तराद्वद ॥ १ ॥ कुत्रैतयोस्तु संस्थानं किं कृतं रक्षसा : पुरा ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ आसीद्दनुकुले विप्र तटोनामाऽसुराधिपः ॥ सैकदा हिमवत्पार्श्वे दक्षिणे मुनिसेविते ॥ २ ॥ पिंडारकनदीतीरे रम्ये परमदारुणम् ॥ तपस्तेपे निराहारो वर्षाणामयुतं किल ॥ ३ ॥ तस्य वै तपसा त्रस्तास्त्रयो लोकाः सवासवाः ॥ अथाऽशरीरिणीं वाणीमाकाशे ह्यशृणोत्ततः ॥ ४ ॥ साधु साधु तट साधु दुर्द्धर्ष तप उत्तमम् ॥ किं कृत्यं ते हि तपसा त्रैलोक्ये नास्ति दुर्ल्लभम् ॥ ५ ॥ इति श्रुत्वा तटो वाणीं

नारदजी बोले-हे महाभाग ! शूकरके मुखवाला यह नीच राक्षस कौन था ? अथ च इसका भ्राता कौन था ? अथ च राजा और राक्षस इन दोनोंका वैर कब किस कारणसे हुआ था यह सब विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥ १ ॥ इन दोनोंका स्थान कहाँ था ? और प्राचीन कालमें राक्षसने क्या किया था ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले-हे विप्र ! दनुके कुलमें नर नाम राक्षसाधिप हुआ था, उसने एक समय हिमालयके उस पार्श्वमें जो कि, मुनियोंके द्वारा सेवित था ॥२॥ पिण्डारक नाम नदीके तटपर परम दारुण (उग्र) तप दश सहस्र वर्ष पर्यन्त निराहार रहकर किया ॥ ३ ॥ उसके उग्र तपसे इन्द्र आदि सब देवता और तीनों लोक भय भीत होगये, तत् पश्चात् उक्त राक्षसेश्वरने विना शरीरही आकाशमें एक वाणी सुनी ॥ ४ ॥ धन्य ! तट ! ! धन्य ! ! ! तुमने उग्र और उत्तम तप किया, तुम्हारे तपसे त्रिलोकीमें कुछ कार्यभी दुर्लभ नहीं है ॥ ५ ॥ ऐसी वाणी सुनकर तट यौं बोला-यदि मेरा तप सफल हुआहै तौ मुझे विष्णु भगवान्की

जगाद वचनं त्विदम् ॥ यदि मे वै तपस्तप्तं ततः स्यां विष्णु-
भक्तियुक्॥६॥विष्णुभक्तिविहीनानां मुक्तिः स्वप्नेपि दुर्लभा ॥ नो
कांक्षेपि त्रिलोकानां राज्यं निहतकंटकम् ॥७॥ श्रुत्वा तद्वचनं तत्र
पुनः प्रोचेऽशरीरिणी ॥ धन्योसि दानवश्रेष्ठ यस्य ते मतिरीदृशी
॥८॥ (तपसा हि संतुष्टस्य विष्णोस्त्वं स्थानमेष्यति ॥ पुत्रौ द्वौ
भवितारौ ते तयोरेकस्तु वंशधृक्)तपसा हतपापस्त्वं विष्णोश्चैव
प्रसादतः ॥ अंते च परमं स्थानं यास्यसि योगिदुर्लभम् ॥९॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा तटो नाम तपोनिधिः ॥ तत्रैव निवसन्
सोपि विष्णुपूजनतत्परः ॥ १० ॥ कालखंजसुतां प्राप विवाह-
विधिना ततः ॥ द्वौ पुत्रौ समये प्राप शूकरास्यगजाननौ
॥ ११ ॥ राक्षसीं बुद्धिमापन्नौ पीडयामासतुर्मुनितीन् ॥ खादया-
मासतुः कांश्चित्कांश्चिज्जग्राह लोमसु ॥ १२ ॥ पाठयामासतुः
कांश्चिच्चक्रतू रुधिराशनम् ॥ एवं पीडयतोर्विप्र मुनीन्राक्षस-
योस्तयोः ॥ १३ ॥ मुनयस्त्रासमापन्ना राजानं शरणं ययौ ॥

भक्तिका लाभ होना चाहिये ॥ ६ ॥ कारण कि, जो विष्णुकी भक्तिसे विमुख हैं उनके लिये तो स्वप्नमें भी मोक्षका प्राप्त होना दुर्लभहै सुतराम् मैं तो शत्रुरूप कांटोंसे रहित त्रिलोकीके राज्यकी भी कामना नहीं करताहूं ॥ ७ ॥ यह वाक्य श्रवण करके अशरीरिणी वाणी फिर बोली, हे दानवश्रेष्ठ! तुम्हारे ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि है अत एव तुम्हें धन्य है ॥ ८ ॥ "तपसे सन्तुष्ट होजाने पर तुम्हें विष्णुलोकको प्राप्ति होगी, और तुम्हारे दो पुत्र होंगे उनमेंसे एक पुत्र वंशधर होगा॥ ९ ॥ क्योंकि तप करनेसे तुम्हारे पाप विनष्ट होगये हैं इस कारण और विष्णु भगवान्की कृपासे अन्त समय तुम्हें उस समय परमपदका लाभ होगा, जिसकी प्राप्ति योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥" तपोनिधि तट इस प्रकार उस वाणीको सुनकर विष्णु भगवान्की आराधनामें तत्पर होके उसी स्थानमें निवास करने लगा ॥ १० ॥ तदनन्तर उसने विवाहकी विधिसे कालखंजकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया, और कुछ समयके पश्चात् शूकरास्य और गजानन इन दो पुत्रोंकी उसको प्राप्ति हुई ॥ ११ ॥ उन दोनोंहीकी राक्षसी बुद्धि थी अत एव वे मुनियोंको पीडा देते थे, किसीको खाते और किसीके रोम पकडते थे ॥ १२ ॥ किसीको पीटते और किसी २ का रुधिर पान करतेथे, हे विप्र! जब इस प्रकार वे दोनों मुनियोंको पीडा देने लगे ॥ १३ ॥ तब ऋषिगण भयभीतहो राजाकी शरणमें गये, और धर्मध्वज राजाके पास जाय वो

धर्मध्वजं महाराजं त्राहि त्राहीति वादिनः ॥ १४ ॥ ऊचुः प्रांजलयः सव शूकरस्य भयार्दिताः ॥ त्राहि नो रक्षसोर्वीर ते वयं शरणं गताः ॥ १५ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा धर्मात्मा सत्य संगरः ॥ मा भैष्ट इति प्रोवाच संपूज्य च यथार्हतः ॥ १६ ॥ गहीत्वा सशरं चापं नगराद्बहिराययौ ॥ लोकैः परिवृतो युक्तो हेलया जेतुमाव्रजत् ॥१७॥ यत्रासाते महाभाग राक्षसौ कामरूपिणौ॥आह्वयामास तौ वीरो धर्मकेतुरमूरिपू ॥ १८ ॥ श्रुत्वा कोलाहलं तस्य राक्षसौ ययतुः क्षणात्॥रक्तेक्षणौ रक्तकेशौ रक्तमाल्यानुलेपनौ ॥ १९ ॥ बहद्दंतौ बृहत्कायौ घोरौ भीरुभयानकौ ॥ दृष्ट्वा तौ युयुधे राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ २० ॥ नाराचैरसिभिश्चैव गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ वृक्षैर्महीधरशृंगैः क्षेपणीयाश्मसंग्रहैः ॥ २१ ॥ युध्यतां तुमुलः शब्दः शुश्रुवे गिरिकंदरे ॥ अस्मनां चर्मणां चैव शलानामसिनां तथा ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नंतरे राजा गजास्यं बाणजालकैः ॥ छादयामास सहसा व्याकु-

कहने लगे कि, हे राजन् ! हमारी रक्षा करो ॥ १४ ॥ अथ च शूकरास्यके भयसे व्याकुल हुए सब मुनि हाथ जोड़ यौं बोले कि—हे वीर ! हम आपकी शरणमें आये हैं हमैं राक्षसोंके भयसे बचाइये ॥ १५ ॥ धर्मात्मा सत्यसंगर राजाने जब उन महर्षियोंके ऐसे वचन सुने, तब यथोचित पूजा सत्कार करके राजाने उनसे कहा कि, आपलोग भय कुछ न करैं ॥१६॥ तत् पश्चात् राजा धनुष बाण ले नगरके बाहर आया, और लोकसमाजसे परिवृत हो दैत्योंके विजय करनेके लिये खेलहीमेंसे चलदिया ॥१७॥ हे महाभाग ! जहां वे दोनो कामरूपी राक्षस निवास करते थे वहां वीर धर्मकेतुने इन दोनों अपने रिपु राक्षसोंको बुलाया ॥ १८ ॥ उसके कोलाहलको सुनकर वे राक्षस तत्कालही निकल आये, उनकी दृष्टि (नेत्र) लाल २ होरहीथी, अथ च उनके केशमाला और अनुलेपन सभी रक्तवर्णके थे ॥ १९ ॥ उन दोनोंके दांत और डील डौल बड़े विस्तृत थे, उनकी आकृति घोर अत एव भयानकथी, उन्हें देखकर सत्यसंगर धर्मात्मा राजा युद्ध करने लगा ॥२०॥ इस युद्धका समारम्भ वाणों, खड्गो, गदा और मूसलों, पर्वतोंके शिखर और वृक्षों शक्तियों और पाषाण निचयसे हुआ ॥२१॥ युद्ध करो युद्ध करो ये ही घोर शब्द गिरिकन्दराओंमें श्रवण गोचर होताथा, पाषाण, चर्म (ढालें) शूल (त्रिशूल) तथा खड्गोंका शब्द होरहाथा ॥ २२ ॥ इसी बीचमें राजाने गजाननको बाणोंके जालमें घेर लिया, तब तौ वह राक्षस बड़ा

लोभूच्च राक्षसः ॥ २३ ॥ ततोर्द्धचन्द्रबाणेन शिरश्चिच्छेद रक्षसः ॥ पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ २४ ॥ अलकनंदोत्तरे तीरे क्षेत्रे श्रीसंज्ञके शुभे ॥ तन्मांसास्थिमयो विप्र पर्वतो दृश्यते महान् ॥ २५ ॥ गजाचल इति ख्यातस्तत्रास्ते ब्रह्मपुत्रकः ॥ शूकरास्योपि तद्दृष्ट्वा कर्म राज्ञो महोल्बणम् ॥ ययौ कैलासनिलये महादर्प्पो भयान्वितः ॥ २६ ॥ गजास्यो दिवमापन्नो देववैमानिकैर्युतम् ॥ ययौ परमिकां सिद्धिं मरणाद्धि हिमालये ॥ २७ ॥ अज्ञानादपि यद्रक्षो नेकब्रह्मवधादिकम् ॥ संप्राऽप परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्ल्लभम् ॥ २८ ॥ इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोहं त्वया द्विज ॥ श्रुत्वा धर्मध्वजस्येदमुपाख्यानं सुपुण्यदम् ॥ मुच्यते सर्वपापैश्च सत्यमेतन्न संशयः ॥ २९ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये धर्मध्वजोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

व्याकुल होगया ॥ २३ ॥ फिर अर्द्धचन्द्राकार बाणसे राजाने उसके शिरको काट लिया, तब वह राक्षस वज्रसे ताडन कियेहुए पर्वतकी समान तत्कालही भूमिके ऊपर गिरपड़ा ॥ २४ ॥ अलकनन्दाके उत्तरीय भागमें श्रीसंज्ञक शुभक्षेत्रमें हे विप्र ! उसके मांस और अस्थियोंका महान पर्वत दृष्टि गोचर होताहै ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मपुत्र ! वहां गजाचल नाम पर्वत है । जब शूकरास्यने राजाका यह अतिभयंकर कर्म देखा तब वह महाअभिमानी अतीव भयातुर हो कैलास क्षेत्रमें चलागया ॥ २६ ॥ विमानोंमें आरूढ हुए देवताओंके द्वारा भरपूर स्वर्गमें गजानन चलागया, अथ च हिमालयमें मरनेके कारण उसे परम सिद्धिकी प्राप्ति हुई ॥ २७ ॥ अनेक ब्राह्मण आदिके बध करनेवाले राक्षसका यद्यपि अज्ञानवशात् वहां शरीर छूटा था, तथापि उसे देवदुर्लभ परम पदकी प्राप्ति हुई ॥ २८ ॥ हे द्विज ! तुमने जो कुछ पूछा, सो हमने सब तुम्हारेप्रति वर्णन किया । धर्मध्वज (धर्मकेतु) के पुण्यप्रद इस आख्यानको श्रवण करके मनुष्य सचमुच सब पापोंसे मुक्त होजाताहै इसमें कोईभी सन्देह नहींहै ॥ २९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ११५.

स्कंद उवाच ॥ अन्यानि तीर्थवर्य्याणि सर्वपापहराणि वै ॥ कथयामि शृणु प्राज्ञ गङ्गायां नारदाधुना ॥१॥ गंगायाः पश्चिमे कूले कुशावर्त्तादधः शरे ॥ सप्तसामुद्रिकं नाम तीर्थं परमपावनम् ॥२॥ यत्र स्नात्वा महाभाग शिवलोके महीयते॥ पुरा तत्र समुद्रैश्चाराधितो भगवाञ् शिवः ॥ ३ ॥ समुद्रेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥४॥ ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्णवद्धीश्वरः शिवः ॥ दृष्ट्वा तु तं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ ततोर्द्धं क्रोशखंडे वै शिवतीर्थमिति ध्रुवम् ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग कैलासनिलये वसेत् ॥ ६ ॥ तत्र बिल्वेश्वरो नाम महादेवो विमुक्तिदः ॥ ७ ॥ यस्तत्र नियताहारः सप्तरात्रं जितेंद्रियः ॥ जपते शिवमंत्रं च रुद्रं चागमतत्परः ॥ परां सिद्धिमवाप्नोति या सुरैरपि दुर्ल्लभा ॥ ८ ॥ बिल्वपत्रैः समभ्यर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ९ ॥ ततः शरद्वये तीरे गंगायाः शुभदायकम् ॥ तीर्थं

स्कन्दजी बोले—हे प्राज्ञ नारद ! ! समस्त पापोंके हरनेवाले और भी बहुतसे तीर्थ हैं, अब हम उन्हींका वर्णन करते हैं, आप सुनिये ॥१॥ गंगाजीके पश्चिमीय तटपर कुशावर्त्तसे नीचे एक बाण के प्रमाणकी दूरी पर सप्तसामुद्रिक नाम परम पवित्र एक तीर्थहै ॥ २ ॥ हे महाभाग ! उसमें स्नान करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग प्राप्त होताहैं, प्राचीनकालमें उस स्थानपर समुद्रोंने भगवान् महादेवजीकी आराधना की थी ॥ ३ ॥ सुतराम् वहां समुद्रेश्वर नामके महादेवजी विद्यमान हैं और वे समस्त कामनाओंके फलको प्रदान करते हैं ॥४॥ वहांसे दक्षिणकी ओर स्वर्णवद्धीश्वर महादेवजी हैं, उन शिवजीके एक वार भी दर्शन करले तो मनुष्य सब पापोंसे छूट सक्ताहै ॥ ५ ॥ वहांसे आधेकोसके खंडमें निश्चय ध्रुवतीर्थ है, वहां स्नान करके मनुष्य हे महाभाग ! कैलास धाममें निवास करताहै ॥ ६ ॥ वहां एक महादेवजी हैं जिनका बिल्वेश्वर नामहै, और वे मुक्ति प्रदान करतेहैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य नियताहार हो सातरात्रि पर्यन्त इन्द्रियोंका निग्रह करके रुद्रशास्त्रमें तत्पर हो शिवमन्त्रका जप करताहै, उसे ऐसी परम सिद्धिका लाभ होताहै, जो कि योगियोंके लियेभी दुर्लभहै ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति बिल्वपत्रोंके द्वारा उक्त महादेवजीकी पूजा करताहै उसे फिर कभी माताका स्तन पान करना नहीं होता अर्थात् वह व्यक्ति जन्ममरणसे रहित हो मुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥ वहांसे दो बाणकी दूरीपर गंगाजीके तीर कल्याणकारी अत एव समस्त पापोंका नाश

गणेश्वरं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १० ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यस्तत्र कुरुते पिंडदानं पितृनिमित्तकम् ॥ दशवारं कृतं तेन गयाश्राद्धं न संशयः ॥ ११ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे शिला परमपाविनी ॥ नाम्ना नारायणी ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ १२ ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ पितृवंश्याः शतं मातृवंश्याश्चापि तथा स्वयम् ॥ तारिताः पितरस्तेन सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १३ ॥ गंगायाः पूर्वदिग्भागे पार्वतीश्वरसंज्ञितः॥पार्वत्या यत्र नितरां पूजितो भगवाञ्छिवः ॥ १४ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वं पापं प्रणश्यति ॥१५॥ गंगातो दंडदशके शिवः परमपावनः ॥ यद्दर्शनात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १६ ॥ नीलपर्वतप्राग्भागे धारा सारवती स्थिता ॥ तस्यां स्नात्वा तथाऽचम्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ यत्रैषा संगता विप्र गंगायां पापनाशिनी ॥ पार्वतीतीर्थमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञा-

करनेवाला गणेश्वरनामका एक तीर्थ है ॥१० ॥ हे महाभाग ! उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै । और जो यहां पितरोंके निमित्त पिण्डदान करताहै, उसे निः-सन्देह दशबार गयाजीकी यात्रा करनेका फल उपलब्ध होताहै ॥ ११ ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर एक परम पवित्र शिलाहै, समस्त पापोंका विनाश करनेवाली उस शिलाका नारायणी शिला नामहै ॥ १२ ॥ जो मनुष्य भक्ति, श्रद्धा, पूर्वक उस शिलाके ऊपर श्राद्ध करताहै वह मातृवंशज सौ पितरोंको, एवं पितृवंशजभी सौ पुरुषाओंहीको तथा अपने आपको अवश्यही उद्धार करताहै ॥ १३ ॥ गंगाजीसे पूर्व दिशाकी ओर पार्वतीश्वर नाम शिवहैं, उसस्थानमें पार्वतीजीने भगवान् महादेवजीकी अतिशय पूजा करी थी ॥ १४॥ पार्वतीश्वर महादेवजीके दर्शन करनेसे संपूर्णही पापोंका विनाश होजाताहै ॥ १५ ॥ गंगाजीसे दशदण्डेकी दूरीपर परम पवित्र महादेवजीहैं, उनके दर्शन और पूजन करनेसे सब कामनाओंकी सिद्धि होती है ॥ १६ ॥ नीलपर्वतके पूर्वीय भागमें सारवती नामकी धारा उपस्थितहै, उसमें स्नान तथा आचमन करके ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ ॥ जहां यह पापविनाशिनी धारा गंगाजीमें सम्मिलित हुई है, सम्पूर्ण पापोंके विनाश करनेवाले तीर्थको पार्वती तीर्थ कहतेहैं ॥ १८ ॥ जिससे कि, उस शुभ तीर्थका सम्यक्तया बोध होजाय वोही चिन्ह

(१) चारहाथके परिमाणका एक दण्ड होताहै सुतराम् दशदण्डमें चालीस हाथका अन्तर हुआ ।

यते शुभम् ॥ मृत्तत्र कुंकुमारक्ता तथा रक्तशिलार्थदा ॥ १९ ॥ यस्तां भाले नरः कुर्याद्गौरीलोके महीयते ॥ तया मृत्तिकया यस्तु पूजयेद्विश्वनायकम् ॥ सर्वसिद्धिमवाप्नोति याति ब्रह्म सनातनम् ॥ २० ॥ यस्तया पजयेल्लिंगं सहस्रं वेदमंत्रकैः ॥ प्राप्नोति सकलां सिद्धिं महादेवप्रसादतः ॥ २१ ॥ तस्मात्क्रोशार्द्धके तीर्थं गंगाया भैरवाश्रितम्॥पुरा यत्र महादेवो भैरवेन समर्चितः ॥ २२ ॥ आपदुद्धारणो नाम सर्वापत्तिविनाशनः ॥ तं पूज्य विधिवद्भक्त्या पूजितो नीललोहितः ॥ २३ ॥ तत्रायाति नदीश्रेष्ठा नाम्ना भानुभवाशिनी ॥ तत्संगमे नरः स्नात्वा सूर्य्यलोके महीयते ॥ २४ ॥ गंगाया दक्षिणे तीरे माने क्रोशात्मके मुने ॥ पुरुकुत्सेश्वरो नाम महादेवो वरप्रदः ॥ २५ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण महापातककोटयः ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि नाशमीयुर्महामुने ॥ २६ ॥ तत्रैका जलमध्ये तु पीतवर्णा शिलास्ति हि॥

अब वर्णन करताहूं, वहांकी मृत्तिका कुंकुमसी लालहै, तथा धनदायिनी एक रक्त शिलाभी वहां है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य उक्त मृत्तिकाको मस्तकके ऊपर लगाताहै, उसे गौरीलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेके लिये प्राप्त होतेहैं, और उसी मृत्तिकासे जो मनुष्य महादेवजीकी पूजा करताहै, वह समस्त सिद्धियोंका लाभ करके सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ अथ च जो व्यक्ति वेदमन्त्रोंके द्वारा उक्त मृत्तिकासे सौ वार शिवलिंगका पूजन करताहै, महादेवजीकी कृपासे उसे अखिल सिद्धियोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ वहां ही गंगाजीसे आधे कोसकी दूरी पर भैरवजीका आश्रित एक तीर्थ है, पूर्व समयमें वहां ही भैरवने महादेवजीकी अर्चना करी थी ॥ २२ ॥ उसका आपदुद्धारण नामहै, वह तीर्थ अखिल आपत्तियोंका विनाश करताहै, उसकी पूजा करनेसे साक्षात् नीललोहित भगवान्की पूजा होजातीहै ॥ २३ ॥ भानुभवाशिनी नामकी परमश्रेष्ठ एक नदी वहां आतीहै, उसके संगममें स्नान करनेवाले मनुष्यको सूर्य्यलोकमें ऐश्वर्य्य उपभोग करनेको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ हे मुने ! गंगाजीके दक्षिणीय तीरपर एक कोसकी दूरीपै वरप्रदान करनेवाले पुरुकुत्सेश्वर महादेवजी विद्यमान् हैं ॥ २५ ॥ उनके दर्शन मात्र करनेसे करोडों महापातक और सहस्रों ब्रह्महत्याएँ विनष्ट होजातीहैं ॥ २६ ॥ हे महामुने ! वहां पीलेवर्णकी एक

(१) ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः । महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गश्च पंचमः ॥

नाम्ना नादेश्वरी प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ २७ ॥ गंगाद्वारोत्तरेभागे गंगायाः प्राग्विभागके ॥ नदी कौमुद्वती ख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ २८ ॥ धनार्थं ये महाभागाः स्नानं कुर्वंति भक्तितः ॥ लभंते सप्तरात्रेण धनं दारिद्र्यनाशनम् ॥ २९ ॥ ततो वै पश्चिमे तीरे धारा परमपाविनी ॥ गंगायां संगमे यत्र रेणुका नाम नामतः ॥ ३० ॥ तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानंत्यं लभेन्नरः ॥ ३१ ॥ ततः क्रोशार्द्धखंडे वै नदी वज्रशिला किल ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति रविमंडलम् ॥ ३२ ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं भक्त्या युक्तो महामुने ॥ पितरस्तस्य गच्छंति स्थानं सप्तोत्तरं शुभम् ॥ ३३ ॥ ततः सौम्यार्द्धगव्यूतौ नदी शंकरवल्लभा ॥ यदम्बुस्पर्शमात्रेण ब्रह्महत्यादिकोटयः ॥ नश्यंति किं पुनर्विप्र स्नानात्पानाच्छिवार्चनात् ॥ ३४ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः पुरा शिवमतोषयन् ॥ नाम्ना चक्रुर्नदीं रम्यां पुण्यां शंकरवल्लभाम् ॥ ३५ ॥ गंगायां संगमे यत्र तीर्थं

शिला जलके मध्यमें विद्यमान है, उसका नादेश्वरी नाम है और वोह समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है ॥ २७ ॥ हरिद्वारसे उत्तरकी ओर और गंगाजीसे पूर्वीय विभागमें, समस्त दारिद्र्योंका विनाश करनेवाली कुमुद्वती नामकी नदी विद्यमान है ॥ २८ ॥ धनकी कामनासे जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक उसमें स्नान करते हैं, सातरात्रिमें दरिद्रका विनाश होकर उन्हें धनका लाभ होताहै ॥ २९ ॥ उससे पश्चिमकी ओर एक परम पवित्र धारा है, जहां यह धारा गंगाजीमें संगत हुई है वहां इसका रेणुका नाम है ॥ ३० ॥ वहां स्नान करने अथवा किसी मन्त्रका जप करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥ वहांसे आधे कोसके अन्तरपर वज्रशिला नामकी एक नदी है, जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक इसमें स्नान करता है उसे रविमण्डल (सूर्य्यलोक)की प्राप्ति होती है॥३२॥ हे महामुनिराज! जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक उस स्थानपर श्राद्धका आचरण करताहै उसके पितर ऊपरके सातों लोकमें जाते हैं ॥३३॥ वहांसे अर्ध कोसकी दूरीपर शंकरवल्लभा नदी है, उसके जलका केवल स्पर्श मात्र करनेसे करोड़ों ब्रह्महत्यादि (पातक) विनष्ट होजाते हैं, तो फिर स्नान जलपान और शिवार्चन करनेसे क्यों न होंगे ॥ ३४ ॥ इसी नदीके ऊपर ब्रह्माआदि देवताओंने पूर्वकालमें महादेवजीको सन्तुष्ट किया था, अथ च पवित्र और मनोहरी इस नदीका शंकरवल्लभा नाम धरा था॥ ॥ ३५ ॥ जहां यह गंगाजीमें मिलती है वहां परमपवित्र तीर्थ है, उसका शांकर तीर्थ नाम है

परमपावनम् ॥ शांकरं मुक्तिदं नृणां ब्रह्महत्यानिवारकम् ॥३६॥ शंकरेशो महादेवोऽखिलसिद्धिमनोहरः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण शतजन्मार्जितैः परैः ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु कल्पं शिवपुरे वसेत् ॥ ३७ ॥ महापुण्यतमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ यदत्र कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ३८ ॥ वीरभद्रेश्वराद्देवात्पश्चिमे योजनार्द्धके ॥ शालिहोत्रेश्वरो देवो महादेवो-वरप्रदः ॥ ३९ ॥ शालिहोत्रो मुनिर्यत्र शिवसन्न्यस्त मानसः ॥ बभूव नियताहारस्तथा वर्षसहस्रकम् ॥ ४० ॥ लेभे विद्या महादेवादष्टादश महामुने ॥ ४१ ॥ शालिहोत्रेश्वरं देवं पूजयित्वा विधानतः ॥ मूढोऽपि मंडलाद्याति सर्वविद्यां महामुने ॥ ४२ ॥ तस्मात्पूर्वे क्रोशपादे नदी रंभाभिधा मता ॥

और यह तीर्थ ब्रह्महत्याआदि पापोंको दूरकर मनुष्योंको मुक्तिप्रदान करताहै ॥ ३६ ॥ शंकरेश महादेवजी निखिल (समस्त) सिद्धियोंके देनेवाले हैं, उनके दर्शन करनेसे मनुष्य सैकड़ों जन्ममें उपार्जन किये हुए पापोंसे मुक्त होकर कल्प पर्य्यन्त शिवलोकमें निवास करताहै ॥ ३७ ॥ वह शीघ्रही प्रत्यय (विश्वास) करानेवाला और अत्यन्तही पवित्र पीठ है, यहां जो कुछ भी कर्म कियाजाय वह करोड़ गुणा अधिक होजाता है ॥३८॥ वीरभद्रेश्वर महादेवसे पश्चिमकी ओर आधेकोसकी दूरीपर वरप्रदान करनेवाले शालिहोत्रेश्वर नामके महादेवजी विद्यमान् हैं॥ ३९ ॥ वहांही-शालिहोत्र मुनि महादेवजीके विषयमें दत्तचित्त हो सहस्रवर्ष पर्यन्त नियमित भोजन करके उपस्थित रहेथे ॥ ४० ॥ तब हे महामुने ! उन्हें महादेवजीके सकाशसे अष्टादश (अठारह) विद्याओंका लाभ हुआ था ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक शालिहोत्रेश्वर महादेवका पूजन करनेसे हे महामुने मूर्ख भी सर्व विद्या विशारद होता है ॥ ४२ ॥ वहांसे पूर्वकी ओर पावकोसकी दूरीपर रम्भानाम

---

१ ऋक्; यजुः; साम; अथर्व (ये चारवेद), शिक्षा; कल्प; व्याकरण; निरुक्त; छन्द ज्योतिष (ये छः वेदांग), मीमांसा×; और न्याय* शास्त्र, धर्म शास्त्र और पुराण, आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र), धनुर्वेद; गान्धर्ववेद (गानविद्या) और अर्थशास्त्र, ये ही अष्टादश विद्या हैं।

(×) विचारो वेदवाक्यानां मीमांसा प्रोच्यते बुधैः । कर्म प्रतिपादनपरा जैमिनिप्रणीता द्वादशाध्यायी पूर्वमीमांसा. ब्रह्मप्रतिपादनपरा व्यासप्रणीता चतुरध्यायी उत्तरमीमांसा ।

(*) पदार्थ निर्णयपर तर्कशास्त्रन्याय कहाता है ।

यत्र रंभा निवसितुं मायापुर्य्यां सरिद्वपुः ॥ ४३ ॥ एकदा स्वर्ग-भवने नृत्यंती वासवालये ॥ ददर्श विष्णुदूतैस्तु नीयमानान्मृ-तान्शुभे ॥ ४४ ॥ मायाक्षेत्रे कृतावासान्वैकुंठं प्रति गच्छतः ॥ उपासमानान्देवाद्यैरिंद्राद्यैर्गणकिन्नरैः ॥ ४५ ॥ चतुर्भुजान्शंख चक्रगदापाणीन्हरीनिव ॥ पीताम्बरान्सलक्ष्मीकांस्तथा श्रीव-त्सलाञ्छनान् ॥ ४६ ॥ विभूतिभिः शोभमानान्गरुडस्थान्सुव-र्चसः ॥ इति तान्मुक्तिमापन्नान्दृष्ट्वाश्चर्य्यमवाप सा ॥४७॥प्रोवाच शक्रं देवेशं तदातिथ्यार्थमुत्थितम् ॥ त्रैलोक्यनाथ भगवन्क एते सूर्य्यवर्चसः ॥ ४८ ॥ हरयो वानंतरूपधरा बुधगणेश्वर ॥ कुतः समागता ह्येते द्यां प्रयांति च सेविताः॥४९॥इन्द्र उवाच ॥प्रिये ह्येते महात्मानो मायाक्षेत्रांतवासिनः ॥मृता गच्छंति परमास्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५० ॥ मायाक्षेत्रसमं पुण्यं पृथिव्यां नैव विद्यते ॥

की नदी है, वहां रम्भाअप्सरानें हरिद्वारमें निवास करनेके लिये नदीका शरीर धारण किया था ॥ ४३ ॥ एक समय रम्भा अप्सरा स्वर्गलोकमें इन्द्रके भवनमें नृत्य कररहीथी, तब उसने कुछ ऐसे मृतकोंका अवलोकन करा कि, जिन्हें विष्णुभगवान्के दूत लिये जा रहेथे ॥ ४४ ॥ वे सब प्रथम मायाक्षेत्र (हरिद्वार) में निवास करतेथे, सुतराम् अब मृतक होकर वैकुंठको जा-रहेथे, अथ च इन्द्रआदि देवता और किन्नरगण उनकी उपासना कर रहेथे ॥ ४५ ॥ उन सब-हीकी चार भुजा थीं, उनमें वे शंख, चक्र, गदा और पद्मको धारण कर रहेथे, वे लक्ष्मी और श्रीवत्स सहित पीतांबर धारण कर रहेथे अत एव हरि (विष्णुभगवान्) की समान प्रतीत होतेथे ॥ ४६ ॥ विभूतियोंके द्वारा उनकी शोभा होरही थीं, उनका दिव्य तेज था और वे गरुड़जीके ऊपर आरूढ होरहे थे, इस प्रकार मुक्तिको प्राप्त हुए उन सबको देखकर रम्भाको बड़े आश्चर्य्यकी प्राप्ति हुई ॥४७॥ उन सबका अतिथि सत्कार करनेके लिये उठे हुए देवाधिदेव सुरराज इन्द्रसे रम्भा बोली-हे भगवन् त्रिलोकी नाथ ! ! सूर्य्यकी समान तेजधारी ये सब कौन लोग हैं ॥ ४८ ॥ हे देवराज ! क्या हरिभगवान्ने अनन्तरूप धारण कियेहैं ? ये कहांसे आयेहैं जो (देवताओंसे) सेवित होकर आकाशमें प्रयाण कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ इन्द्र बोले-हे प्रिये ! ये हरिद्वारमें निवास करनेवाले महात्मालोग हैं अब ये सब मृतक होकर साक्षात् विष्णुभ-गवान्के परम पदको यात्रा कर रहे हैं ॥ ५० ॥ मायाक्षेत्र (हरिद्वार) की समान पवित्रक्षेत्र भूमिके ऊपर और कोई नहींहै, हे तन्वंगि ! साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ सबहैं और वे सबहैं

तिस्रः कोट्योर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥ तानि सर्वाणि तन्वंगि मायाक्षेत्रे न संशयः ॥९१॥ वयं सर्वेऽपि तत्रैव वसामो-मुक्तिलालसाः ॥ ९२ ॥ रम्भोवाच॥अहमत्र वसेय व यथाज्ञा-पय वासव ॥ भविष्यामि यथा ह्यंते कृपां कुरु मयि प्रभो ॥९३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ सरिद्भूता वरारोहे नित्यं तिष्ठ वरानने॥ पुण्ये तव जले येऽपि स्नातारः परगामिनः ॥९४॥ स्कंद उवाच॥ इति श्रुत्वा वचो भर्त्तुः प्रणिपत्य त्वरान्विता ॥ आयया परमे पुण्ये मायाक्षेत्रे सरिद्वरा ॥ ९५ ॥ जाता पुण्यतमा विप्र सर्व-पापप्रणाशिनी ॥ रंभाकुंडं च गंगायां संगमे पुण्यदायके ॥ ५६ ॥ उपस्पृश्यापि पानीयं रंभया सह मोदते ॥ ९७ ॥ रंभेश्वरो महादेवस्तत्रैव शिवदायकः ॥ ततः परं महाभाग कुब्जाम्रकमिति श्रुतम् ॥ ९८ ॥ यत्राम्रे कुब्जरूपेण दृष्टो मुनि-भिरच्युतः ॥ ततः कुब्जाम्रकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥९९ ॥ सकृद्दृष्ट्वा तु यत्क्षेत्रं परब्रह्मणि लीयते ॥ इति ते कथितं विप्र

मायाक्षेत्रमें निवास करतेहैं इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ ९१ ॥ एवं च हम सब लोगभी मोक्षकी अभिलाषा करके उसी क्षेत्रमें निवास करतेहैं ॥ ९२ ॥ रम्भा बोली—हे इन्द्र ! जिस प्रकारसे कि, मैं यहां निवास अन्तसमयतक करसकूं ऐसी आज्ञा मुझे दीजिये ॥९३॥ इन्द्रने कहा—हे सुमुखि सुन्दरि ! ! तू सरिता (नदी) बनकर नित्यही वहां निवास कर, तेरे पवित्र जलमेंभी जो लोग स्नान करेंगे, उन्हें भी मोक्षकी प्राप्ति होगी ॥ ९४ ॥ स्कन्दजी बोले— स्वामीके ऐसे वचन सुनतेही उस उतावलीने प्रणाम किया, और श्रेष्ठ नदी बनकर वह अतिशय पवित्र माया क्षेत्रमें आगई ॥ ९५ ॥ और हे विप्र ! वह समस्त पापोंका विनाश करनेवाली अत्यन्त पवित्र होगई, अथ च जहां गंगाजीके साथ इसका संगम हुआहै उसी पवित्र स्थानमें रम्भाकुण्ड है ॥ ९६ ॥ जो व्यक्ति जलका स्पर्शमात्रभी करताहै वह रम्भा अप्सराके साथ आनन्दका उपभोग करताहै ॥ ९७ ॥ उसी स्थानमें कल्याणप्रदान करनेवाले रम्भेश्वर नामके महादेवजी विराजमान हैं । हे महाभाग ! उसीके आगे कुब्जाम्रक नामका स्थानहै ॥ ९८ ॥ उसी स्थानमें महर्षियोंने विष्णुभगवान्को कुब्जरूप धारण करे देखा था, तभीसे कुब्जाम्रक तीर्थ समस्त पापोंका विनाश करनेवाला विख्यात है ॥ ९९ ॥ उस क्षेत्रके एक वार भी दर्शन करनेसे परब्रह्ममें लीन होजाताहै। हे विप्र ! इसप्रकार हरिद्वारका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, जिसका श्रवण करनेसे

गंगाद्वारस्य वै भवम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६० ॥ श्राद्धे शृणोति यो मर्त्यो गंगाद्वारस्य वैभवम् ॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ६१ ॥ यः पठेन्मानवो भक्त्या शृणुयाद्वापि भक्तितः ॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे म याक्षेत्रमाहात्म्ये गंगाद्वारमाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

अवश्यही सब पापोंसे मुक्तिका लाभ होजाताहै, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६० ॥ ॥ हरिद्वारके माहात्म्यको जो मनुष्य श्राद्धमें श्रवण करताहै, उसके पितर विष्णुभगवान्के परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक इसका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनको उसी परमस्थानकी प्राप्ति होती है जहां साक्षात् महादेवजी विराजमान रहतेहैं ॥ ६२ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां गंगाद्वारमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

शोडषाधिकशततमोऽध्यायः ११६.

नारद उवाच ॥ कुब्जाम्रकं महातीर्थं वद विस्तरतो मम ॥ यथेदं च समुत्पन्नं यथा पुण्यं हि चाभवत् ॥ १ ॥ केन केन तपस्तप्तं केऽवापुः परमां गतिम्॥कानि तीर्थानि चैवात्र कियन्मानं सुपुण्यदम् ॥ २ ॥ एतत्सर्व समासेन विस्तराद्वद मे प्रभो ॥ त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये भक्तवत्सलतां गतः ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद यत्नेन गुह्यं क्षेत्रं परं हरेः ॥ यस्य स्मरणमात्रेण शतजन्मसमुद्भवैः ॥ मुच्यते सर्व पापैश्च विष्णुलोकं च

नारदजी बोले—कुब्जाम्रक महातीर्थका विस्तारपूर्वक हमारे प्रति वर्णन करिये, जैसे इसकी उत्पत्ति हुई और जिस प्रकारसे यह परमपवित्र हुआ हो ॥ १ ॥ किस २ ने वहां तप किया, किनको परमगतिकी प्राप्ति हुई ? इस स्थानमें कितने तीर्थ निवास करतेहैं ? एवम् इस पुण्यदायक क्षेत्रका प्रमाण कितना है ॥ २ ॥ ये सब सम्यक्तया विस्तार पूर्वक मेरे प्रति वर्णन करिये, क्योंकि हे प्रभो ! आपकी सदृश भक्तवत्सल त्रिलोकीमें और कोई नहीं है ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले—हे नारदजी ! यत्नपूर्वक श्रवण करो । भगवान्का यह क्षेत्र अतिशय गोपनीय है, इसका केवल

गच्छति ॥ ४ ॥ सान्निध्यं यत्र विष्णोर्हि नित्यं तिष्ठति नारद ॥ पुरा सप्तदशे प्राप्ते युगे योगीन्द्र माधवः ॥५॥ मायां स्वीयां प्रविष्टोऽपि दृष्ट्वा चैकार्णवीं महीम्॥मधुकैटभौ दुरात्मानौ निजकर्णसमुद्भवौ ॥६॥ साधयंतौ च ब्रह्माणं त्रैलोक्यं क्षेप्तुमुद्यतौ ॥ हत्वा तौ हि दुराधर्षौ रचयित्वा च मेदिनीम्॥७॥मेदसा दुष्टयोश्चैव ब्रह्मा वचननादेतः ॥ जगाम शतशो विप्र क्षेत्राणि धरणीतले ॥ ८ द्रष्टुं भक्तान्स्वकीयांश्च गंगाद्वारमुपागमत् ॥ यत्र रैभ्यो महातेजा उग्रे तपसि संस्थितः ॥ ९ ॥ दशवर्षसहस्राणि तस्थावूर्द्ध्वकरो मुनिः ॥ ततो वर्षसहस्रं वै वायुभक्षो महातपाः ॥ १० ॥ शैवालचर्वणं पंचशतं वर्षाणि नारद ॥ इति वै तपमानस्य रैभ्यस्य मुनिपुंगव ॥ ११ ॥ आम्ररूपं समासाद्य कुब्जरूपस्य माधवः ॥ दर्शयामास भगवान्दर्शनं मुक्तिकारणम् ॥ १२ ॥ सोऽपि रैभ्यो महाभागस्तं दृष्ट्वा जगतां पतिम् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा पुनः पुनरुदारधीः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं प्रसादार्थी महायशाः॥१३॥

स्मरणही मात्र करनेसे. मनुष्य सैकडों जन्मके पातकोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चलाजाता है ॥ ४ ॥ हे नारदजी ! वहां विष्णुभगवान्‌की नित्यही सन्निधि होतीहै,प्रथम सत्रहवें युगमें योगीन्द्रमाधव साक्षात् भगवान्‌ने ॥ ५ ॥ अपनी मायामें प्रविष्ट होकर भूमिको एकार्णवमय देखा, अपने कर्णसे प्रादुर्भूतहुए दुष्ट मधुकैटभ ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीकी आराधना करके त्रिलोकीको नष्ट करनेके लिये उद्यत होरहे थे, उन दोनोंको वध कर भूमिकी रचना करके ॥ ७ ॥ ब्रह्मवाक्यसे प्रेरित हो उन दोनो दुष्टोंकी चर्बीसे व्याप्तहीं, भूमण्डलके ऊपर सैकडों तीर्थोंकी यात्रा करी ॥ ८ ॥ फिर अपने भक्तोंका अवलोकन करनेके तईं साक्षात् हरिद्वारमें आयके प्राप्त हुए, वहां रैभ्यनाम महातेजस्वी तपस्वी उग्र (घोर) तप करनेमें प्रवृत्त होरहेथे ॥ ९ ॥ वे मुनि दशसहस्र वर्ष पर्य्यन्त ऊर्द्ध्वबाहु हो स्थित रहे, इसके अनन्तर वे महातपस्वी सहस्र वर्ष पर्य्यन्त वायुभक्षण करके स्थित रहे ॥ १० ॥ फिर हे नारदजी ! पांच सौ वर्ष पर्य्यन्त शैवाल चर्षणहीको ग्रहण कर तप करते रहे हे मुनिपुंगव ! इस प्रकार रैभ्य मुनिकों तप करते करते ॥ ११ ॥ माधव भगवानने कुब्जके आम्ररूपको धारण कर मुक्तिके कारणरूप अपने दर्शन मुनिको दिये थे ॥ १२ ॥ जब उक्तमहाभाग रैभ्यने जगन्नाथ भगवानके दर्शन किये तब उन उदारमति महर्षिने भूमिके ऊपर घोंटे टेक उनके

रैभ्य उवाच॥नमः कमलनाभाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥सुनंदाय सुभद्राय दुराधर्षाय ते नमः॥१४॥हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्याक्ष-विमर्द्दिने॥नमो हिरण्यनाभाय हिरण्यचरुरूपिणे॥१५॥हरिदश्वाय हरये हरितांगाय हारिणे॥हयग्रीवाय हेयाय पराय हयवाहवे॥१६॥ अहंकारविमुक्ताय हेमसंस्थाय हारिणे॥नमो हरिणनेत्राय नमस्ते हरिबाहवे॥१७॥नमो हिरण्यगर्भाय हृषीकेशाय ते नमः॥ हविषे हविराशाय वर्हिपत्राय वाहषे॥ १८ ॥ हेमांगदाय बुद्धाय हिमाद्रिप्रकृतौकसे ॥ हिमाद्रितनयाधीश हृदयस्थाय हुंकृते ॥ १९ ॥ हेयाहेयविहीनाय सर्वाहिपतये नमः ॥ हृषीके-शाश्रमस्थाय हीरकाक्षाय ते नमः॥२०॥हस्तिमस्तकसंस्थाय बहु-हस्ताय ते नमः ॥ सहस्रहस्तरूपाय सहस्रकरमर्द्दिने ॥ २१ ॥ सहस्ररश्मिरूपाय फणासाहस्ररूपिणे ॥ सहसा कृतकार्य्याय

प्रसादके लिये मधुर वचन कहे ॥१३॥ रैभ्य बोले—सर्वशक्तिमान कमलनाभ विष्णुभगवान आपको नमस्कार है, आप सुनन्द और कल्याणमूर्त्ति हैं, आपका धर्षण कोई नहीं करसक्ता है अतः हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ १४ ॥ आप हिरण्यबाहु हैं, आपने हिरण्याक्षका विमर्दन किया था, आपकी नाभिमें हिरण्य (सुवर्ण) की स्थिति है, और हिरण्यचरुरूपीभी आपही हैं हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ आपके अश्वोंका हरित वर्ण है, आप पापोंका अपहरण करनेवाले हैं, आपका अंगभी हरिद्वर्णका है अत एव आप मनोहर हैं, आप हयग्रीव हैं, सबसे हेय अर्थात्—परे और हयबाहुभी आपही हैं आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे मनोहर ! आप अहंकारसे रहित हैं, सुवर्णहीके ऊपर आपकी स्थिति है, हे हारिणबाहु ! आपके नेत्र हारिणकी सदृश हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं ॥१७॥ आप हिरण्यगर्भ और हृषीकेश हैं, हवि स्वरूप और हविका भोजनकरने वालेभी आपही हैं, आपने मयूरपत्रको धारण कियाहै, आपको नमस्कार है ॥१८॥ आपने सुवर्णका अंगद धारण कियाहै, आप बुद्धस्वरूप हैं,हिमालयके ऊपर आपने निवास स्वीकार कियाहै, हे हुंकार स्वरूप ! गिरिराजकुमारीके प्राणपति महादेवजीके हृदयस्थलमें आपका निवास है, हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ १९ ॥ आपको त्याज्य अत्याज्यका कुछ विचार नहीं है । अखिलनागोंके आप स्वामीहैं, हे हिरण्याक्ष ! आप हृषीकेश क्षेत्रमें निवास करतेहैं, आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ हाथीके मस्तकपर आप अधिष्ठित रहतेहैं, आपकी बहुतसी भुजाहैं, आप स्वयं सहस्रहस्तधारी हैं, आपने सहस्रबाहुका वध किया था आपको नमस्कार किया जाताहै ॥ २१ ॥ सहस्रों किरणोंकी समान आपका रूपहै, शेषजीके ऊपर आपकी स्थितिहै, आप सब कार्य्योंको शीघ्रही सम्पादन

सहसा भक्तिभाविने ॥ २२ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो महाविष्णुस्तेन रैभ्येण धीमता ॥ उवाच मधुरं वाक्यं विनयावनतं स्थितम् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वरय भद्रं ते तव यद्धृदि वर्त्तते ॥ किं च वै कांक्षसे गावः किं वा राज्यमकंटकम् ॥२४॥ अथ चेच्छसि कन्यानां सहस्रं दिव्यमुत्तमम् ॥ वररत्नसमृद्धानां हेमभांडविभूषितम् ॥ २५ ॥ सर्वासां दिव्यरूपाणां भवंत्यप्सरसां-गणाः ॥ ददामि ते वरं चैव रैभ्य यत्ते विचिंतितम् ॥ २६ ॥ रैभ्य उवाच ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यस्य त्वं दृष्टिगोचरः ॥ न चाहं कांचनं गावो न स्त्रियो राज्यमेव च ॥ नो कांक्षे जगतां नाथ त्वत्कृपां प्रार्थये विभो॥२७॥यदि प्रसन्नो भगवँल्लोकनाथ जनार्दन ॥ तव चात्र निवासं वै नित्यमिच्छामि माधव ॥ २८ ॥ यावल्लोका धरिष्यंति तावदत्र मम प्रभो ॥ स्नानं तव मम स्थानं तवा नामामृतं भुवि॥भक्तिश्च स्याद्रमानाथ तव पादांबुजद्वये ॥२९॥ स्कंद उवाच॥रैभ्यस्यैवं वचः श्रुत्वा भगवा-

करतेहैं, आप भक्तोंकी भावनाको पूर्ण करने वाले हैं आपको नमस्कारहै ॥ २२ ॥ स्कन्दजी बोले–जब बुद्धिमान् रैभ्यने इस प्रकार विष्णुभगवान्‌की स्तुति करी तब भगवान् विनयसे नम्रीभूत हो ऋषिसे मधुर वाक्य बोले ॥ २३ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा–तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो कुछ हो तुम उस वरकी याचना करो, क्या गौ अथवा निष्कंटक राज्यको चाहते हो ॥ २४ ॥ अथवा उत्तम रूपवती सहस्रों दिव्य कन्याओंके प्राप्तकरनेकी कामना करते हो, वे कन्याएँ श्रेष्ठरत्नोंसे अलंकृत होंगी, अथ च सुवर्णके पात्रादिकोंसे विभूषित होंगी ॥ २५ ॥ अथवा दिव्यरूपवती अप्सराओंके समुदायको यदि तुम चाहते हो तो हे रैभ्य ! मैं तुम्हें दे दूं॥२६॥ रैभ्य बोले–क्योंकि–आपका मुझे दर्शन प्राप्त हुआहै, अत एव मैं धन्य और कृतकृत्यहूं, मैं कांचन (सुवर्ण), गौ, स्त्रियें, और राज्य कुछभी नहीं चाहता, किन्तु–हे जगन्नाथ सर्वव्यापकभगवान्!!! मैं केवल आपकी कृपा चाहता हूं ॥२७॥ दुष्टजनोंको उनके कर्मानुसार दुःख देनेवाले हे जगन्नाथ ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हे माधव (लक्ष्मीकान्त) मैं यह चाहताहूं कि, आपका यहां निवास हो ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जब तक ये लोक अधिष्ठित रहैं, तभी तक हमारे इस स्थानमें आपकी स्थिति रहे, आपका अमृतरूपी नाम भूमंडलके ऊपर विद्यमान रहै, अथ च हे रमानाथ ! आपके दोनो चरणोंमें हमारी भक्ति हो ॥ २९ ॥ स्कन्दजी बोले–जब भूतभावन भगवान रैभ्यमु-

न्भूतभावनः ॥ वाढमित्येव विप्रेंद सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ३० ॥ यस्मादाम्रं समाश्रित्य कुब्जरूपेण वै त्वया ॥ दृष्टोऽस्मि रैभ्य तस्माद्वै कुब्जाम्रकमिति स्फुटम् ॥ ३१ ॥ तीर्थमेतन्महापुण्यं करिष्यन्त्यविधानतः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेऽपि ये मर्त्याः स्नानं दानं जपादिकम् ॥ भविष्यति महाभाग तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ३२ ॥ करिष्यंति निवासं च तीर्थेस्मिन्प्रवरे नराः ॥ प्राप्स्यंति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ३३ ॥ पापिनश्चापि विप्रेंद्र मृता विष्णुमवाप्नुयुः ॥ पितरस्तस्य हृष्यंति यस्याऽस्मिन्क्षेत्रके स्थितिः ॥ ३४ ॥ येपि बिंदुप्रमाणं वै दद्युर्जलमनुत्तमम् ॥ पितृभ्यस्तारितास्तेन संसारात्पितरो मुने ॥ ३५ ॥ परमाणु प्रमाणं च ये च दद्युर्हिरण्यकम् ॥ दत्तं तेन भवेद्विप्र सहस्रं परिसंख्यया ॥ ३६ ॥ ये च दद्युर्महाभाग वासोगोभूषणादि च ॥ तेन दत्तं भवे-

निके ऐसे वाक्य श्रवणकिये तव उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया कि, हे विप्रेन्द्र ! बहुत अच्छा यह सब ऐसेही होगी ॥ ३० ॥ क्योंकि आम्रका आश्रयले तुमने कुब्जरूपसे हे रैभ्य ! हमारे दर्शन किये हैं अत एव कुब्जाम्रक नामसे यह तीर्थ विख्यात होगा ॥ ३१ ॥ अतिशय पवित्र इस महा क्षेत्रका येही (कुब्जाम्रक) नाम प्रसिद्ध होगा । इस क्षेत्रमें जो मनुष्य स्नान दान अथवा जपआदि करतेहैं, हे महाभाग ! वोह सवही करोड़ गुणा अधिक हो जाता है ॥ ३२ ॥ और जो मनुष्य इस श्रेष्ठ तीर्थमें निवास करते हैं, उन्हें ऐसे परमस्थानकी प्राप्ति होतीहै जहांसे फिर लौटना नहीं होताहै ॥ ३३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! जो पापी लोग इस स्थानमें मृतक होंगे उनको भी विष्णु अर्थात् विष्णुलोककी प्राप्ति होगी । और जो व्यक्ति इसस्थानमें निवास करते हैं, उनके पितरभी प्रमुदित होते हैं ॥ ३४ ॥ हे मुने ! जो मनुष्य बिन्दुमात्रभी जल अपने पितरोंके निमित्त प्रदान करते हैं, वे संसारसे अपने पितरोंका उद्धार करते हैं, अर्थात् उनके पितरोंकी मुक्ति होजाती है ॥ ३५ ॥ और जो लोग एक परमाणुमात्रभी सुवर्णका दान करके देतेहैं, हे विप्र ! सहस्रसंख्या (धन) दान करनेका उनको फल मिलताहै ॥ ३६ ॥ हे महाभाग ! जो मनुष्य वस्त्र, गौ आभूषण

१ "जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । तस्य यः षष्ठको भागः परमाणुः स उच्यते" अर्थात्--जब सूर्यका प्रकाश झरोखोंमें होके प्रविष्ट होताहै, उस समय रजकी कतार जो अवलोकित होतीहै उसी रजके छठे हिस्सेको परमाणु कहतेहैं । अथवा सूक्ष्माति सूक्ष्मकोभी परमाणु कहतेहैं ।

देव सर्व वस्तु महामुने ॥ ३७ ॥ कुब्जाम्रके महातीर्थे वसामि रमया सदा ॥ हृषीकाणि पुरा जित्वा दर्शः संप्रार्थितस्त्वया ॥ ३८ ॥ यद्वाहं तु हृषीकेशो भवाम्यत्र समाश्रितः ॥ ततोऽस्यापरकं नाम हृषीकेशाश्रितं स्थलम् ॥ ३९ ॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्नाम्ना भरतसंज्ञितः ॥ तुर्य्यो भागो मदीयो वै भविष्यति सहाग्रजः ॥ ४० ॥ शंकरः शंकरः साक्षात्पुनर्मां स्थापयिष्यति ॥ कलौ भरतनामानं वदिष्यंति महीतले ॥ ४१ ॥ कृते वाराहरूपेण त्रेतायां कृतवीर्य्यजम् ॥ द्वापरे वामनं देवं कलौ भरतमेव च ॥ नमस्यंति महाभाग भवेयुर्मुक्तिभागिनः ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णू रैभ्यं नाम तपोनिधिम् ॥ तत्रांतर्द्धानमापन्नः पश्यतस्तस्य नारद ॥ ४३ ॥ इति ते कथितोत्पत्तिः क्षेत्रकुब्जाम्रकस्य हि ॥ श्रुत्वेमां सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायापुरीकुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

आदि दान करते हैं, हे महामुने ! उसे संपूर्ण वस्तुओंके दान करनेका फल उपलब्ध होता है ॥ ३७ ॥ कुब्जाम्रक महातीर्थमें मैं सदाही लक्ष्मी सहित निवास करताहूं । प्रथम इन्द्रियोंका दमन करके तुमने हमारे दर्शनों की आकांक्षाकी थी ॥ ३८ ॥ अत एव मैं यहां हृषीकेशनामसे विख्यात होऊंगा, इसी कारण इस स्थलका दूसरा नाम हृषीकेशाश्रित होगा ॥ ३९ ॥ त्रेतायुगमें दशरथ राजकुमार भरतजी अपने ज्येष्ठ भ्राता सहित हमारे चतुर्थ अंशसे प्रादुर्भूत होंगे ॥ ४० ॥ कल्याणकर्त्ता शंकर फिर मेरी स्थापना करेंगे, तौ कलियुगमें लोग शिवको भरत नामसे विख्यात करेंगे ॥ ४१ ॥ सतयुगमें वाराहरूपसे, और त्रेतामें कार्त्तवीर्यको, द्वापरमें वामन और कलियुगमें भरतको हे महाभाग ! जो लोग प्रणाम करेंगे वे मुक्तिभागी होंगे ॥ ४२ ॥ रैभ्य नाम तपोनिधि महर्षिसे इस प्रकार कह कर हे नारदजी ! उनके देखते २ ही भगवान् अन्तर्द्धान होगये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार कुब्जाम्रक क्षेत्रकी उत्पत्ति हमने तुम्हारे प्रति वर्णन की, इसका श्रवण करनेसे अवश्यही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ४४ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ११७.

नारद उवाच ॥ कियन्मानं परं क्षेत्रं कानि तीर्थानि तत्र वै ॥ किं तत्र पुण्यं लभते स्नानाद्दानात्तथार्चनात् ॥ १ ॥ उत्पत्तिं चैव माहात्म्यं सर्वं विस्तरतो वद ॥ केन केन फलं प्राप्तमत्र क्षेत्रे शिवात्मज ॥ २ ॥ के के परां गतिं प्राप्ता हृषीकेशाश्रयात्तथा॥ सर्वं विस्तरतो ब्रूहि श्रोष्यमाणाय मे प्रभो॥३॥ ॥ स्कंद उवाच॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र कुब्जाम्रकसुतीर्थकम् ॥ सुन्देश्वरीं समारभ्य यावद्धेमवती नदी ॥ तावत्कुब्जाम्रकं क्षेत्रं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ ४ ॥ करमाने स्थले तत्र तीर्थानां पंचके ध्रुवम् ॥ तत्रापि विप्र श्रेष्ठानि स्वर्गदान्यपि दर्शनात् ॥ ५ ॥ शृणु तीर्थानि पुण्यानि मुक्तिदानि परात्मनाम् ॥ मायातीर्थं परं ख्यातं यत्र दृष्टो जनार्दनः ॥ ६ ॥ गंगा च यमुना चापि द्वयं यत्र समास्थितम् ॥ तस्मिन्कृतोदको विप्र तारयेत्कुलसप्तकम् ॥ ७ ॥ सकृत्स्नातोऽपि भवनं कुबेरस्य लभेन्मुने ॥ शृणूत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मायाक्षेत्रस्य नारद ॥ ८ ॥ सर्वपापहरां दिव्यां

नारदजी महाराज बोले—उस परम (श्रेष्ठ) तीर्थका कितना प्रमाण हैं, और वहां कौन २ से अन्य तीर्थ हैं, एवं च वहां स्नान दान और पूजन करनेसे कौनसे फलकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ हे शिवकुमार ! उक्त क्षेत्रकी उत्पत्ति और माहात्म्य एवं किस २ ने वहां तपका आचरण कियाहै ? ये सबही विस्तार पूर्वक हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ २ ॥ तथा हृषीकेशका आश्रय लेनेसे किन २ के परम (पद) गतिका लाभ हुआहै ? हे प्रभो ! मुझे श्रवण करनेके लिये उद्यत हुएके प्रति ये सब कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! तुमने अच्छा प्रश्न किया, सुन्देश्वरीसे आरम्भ करके हेमवती पर्यन्त कुब्जाम्रक क्षेत्रहै, यह क्षेत्र पापियोंको भी मुक्ति प्रदान करताहै ॥ ४ ॥ हस्तप्रमाण पंचतीर्थमें जो तीर्थ हैं वे भी केवल दर्शनही करनेसे मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ पुण्यप्राण व्यक्तियोंको मुक्ति देनेवाले उन तीर्थोंका श्रवण करो, जहां जनार्दन भगवान्के दर्शन हुए थे उसे मायातीर्थ कथन करते हैं ॥ ६ ॥ और जहां गंगा यमुना दोनों नदियोंका संगम है उसमें जलदान करनेसे सात कुलका उद्धार होजाताहै ॥ ७ ॥ उसमें एक बार भी स्नान करनेसे हे मुने ! कुबेरके धामकी प्राप्ति होतीहै, सुनो नारदजी ! अब मैं माया क्षेत्रकी उत्पत्तिका वर्णन करताहूं ॥ ८ ॥ उक्त क्षेत्रकी दिव्य उत्पत्ति समस्त पापोंका सत्यानाश करनेवाली अत एव स्वर्गके दर्शन करानेवाली है

मोक्षस्वर्गानुदर्शिनीम्॥पुरा कृतयुगे विप्रः सोमशर्म्मेति विश्रुतः॥
॥ ९ ॥ तपस्वी निरपेक्षश्च सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ तपस्तताप
परमं जितात्मा पापवर्जितः ॥ १० ॥ ग्रीष्मे पंचतपाश्चैव वर्षायां
वृष्टिसाहकः ॥ हेमंते जलधाराभिः सिच्यमानः समंततः ॥११॥
इति वर्षसहस्रं वै ततोऽभूदूर्द्ध्वबाहुकः ॥ एकपादेन तस्थौ च
शिलायां नियतासनः ॥१२॥ सहस्रद्वितयं तस्य ययावेवं महा-
मते ॥ वायुभक्षः सहस्रं च सहस्रं तूर्द्ध्वपादकः ॥ १३ ॥ एवं
वै तपमानस्य प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
साधुसाधु महाभाग सोमशर्मन्द्विजोत्तम ॥ वरं वरय भद्रं ते
यदस्त्यभिमतं तव ॥ १५ ॥ प्रसन्नोऽस्मि न संदेहस्तपसानेन
सुव्रत ॥ दुर्ल्लभं तव विप्रेंद्र नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥ १६ ॥
सोमशर्मोवाच ॥ यदीच्छसि वरं दातुं प्रसन्नो यदि वै मयि ॥

हे विप्र ! प्रथम सत् युगमें सोमशर्मानामका एक तपस्वी था ॥ ९ ॥ उसे किसी भी बातकी आवश्यकता (अथवा इच्छा) नहीं थी, उसने अपनी इन्द्रियोंका दमन कर सत्य संभाषण करनेका व्रत धारण किया था और वोह पापविहीन अपने आत्माका निग्रह करके उग्र तपका आचरण करता था ॥ १० ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तप किया, और वर्षाऋतुमें वर्षाको सहा, एवं हेमन्तऋतुमें चौतर्फा जलसे वेष्टितहो तपका आचरण करता था ॥ ११ ॥ इस विधिसे सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करके वे ऊर्द्ध बाहु होगये, और शिलाके ऊपर अपने आसनको नियत कर एकही चरणसे स्थित रहे ॥ १२ ॥ हे महामतिमान् ! दूसरा सहस्र इस प्रकार व्यतीत होगया, फिर सहस्रवर्ष पर्यन्त केवल वायु भक्षण और सहस्र वर्ष पर्यन्त ऊपरको चरण करके तप किया ॥ १३ ॥ उनके इस प्रकार तप करनेसे जनार्दन विष्णुभगवान् प्रसन्न होगये ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले— हे द्विजराज ! सोम शर्मन् ! ! महाभाग ! ! ! तुम्है धैन्य है, तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हारा अभीष्ट है सो वर मांगो ॥ १५ ॥ हे सुन्दरव्रतका आचरण करनेवाले महात्मा ! हम तुम्हारे इस तपोऽनुष्ठानसे निस्सन्देह प्रसन्न हुए हैं, सुतराम् हे विप्रवर्य ! तुम्हारे लिये त्रिलोकीमें कुछभी दुर्लभ नहीं है ॥ १६ ॥ सोमशर्मा बोला--यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और अतएव मुझे वदप्रदान करनेको उद्यत हैं तो मैं आपकी उस मायाको जानना चाहताहूं जिसने त्रिलोकीको मुग्ध कर

---

१ अपने चारों ओर चार अग्नि प्रदीप्त कर शिरके ऊपर सूर्यकी तपनको स्वीकार करके जो तप किया जाताहै उसे पंचाग्नि तप कहते हैं । अथवा--गार्हपत्य, दाक्षिण, आहवनीय सभ्य और आवसथ्य ये पंचाग्नि हैं, इनमें यथोक्तविधिसे अग्निहोत्र आदि करनेकोभी पंचाग्नि तप कहतेहैं ।

जानीयां तव मायां हि मुग्धं त्रैलोक्यकं यया ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मम मायां महाभाग न जानंति दिवौकसः ॥ ब्रह्माद्या ये पुरा सृष्टाः सा माया ममकीर्त्तिता॥१८॥वर्षति च महामेघाः सा माया मम कीर्त्तिता ॥ यया निर्ज्जलतां यांति सा माया मम कीर्त्तिता ॥ १९ ॥ चंद्रो यत्क्षीयते पक्षे पक्षे पूर्णत्वमेति च ॥ मायैषा मम विप्रेंद्र ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥२०॥ हेमंततौं च सलिलं कूपे कोष्णं विभाति च ॥ शीतलं च तथा ग्रीष्मे सा माया मम कीर्त्तिता ॥ २१ ॥ उदेति सविता प्राच्यां प्रतीच्यामस्तमेति च ॥ ॥ २२ ॥ शोणितं च तथा रेतः संयुक्तं स्यान्महामते ॥ गर्भे चोत्पद्यते जंतुस्तन्माया प्रबला मम ॥२३॥ जठराग्नौ प्रदीप्ते हि गर्भाशयगतो मुने॥मातृभुक्तानुसारेण प्रयाति प्राणकूटकः॥२४॥ पूर्वजन्मसहस्राणि पापपुण्ये कृताकृते॥ विजानात्यवशो जंतुर्गर्भे मायाबलं मम ॥ २५ ॥ जानाति सुखदुःखे च तथात्मानं च विंदति ॥ अंगुल्यश्चरणौ चैव भुजौ शीर्षं कटिस्तथा ॥ २६ ॥

रक्खाहै ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे महाभाग ! हमारी माया ऐसी प्रबलहै कि, जिनकी सबसे प्रथम रचना की गई है वे ब्रह्माआदि देवताभी उसे नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ जिसके प्रभावसे मेघ जल वरसाते और फिर निर्जल होजाते हैं उसीको हमारी माया कहा जाता है ॥ १९ ॥ हे विप्रसत्तम ! एक पक्षमें चन्द्रमा क्षीण होता और दूसरे पक्षमें फिर परिपूर्ण होजाताहै यह सब अथ च ग्रह, नक्षत्र और तारागणभी सब हमारी ही माया कहाते हैं ॥ २० ॥ हेमन्त ऋतुमें कूपका जल किंचित् उष्ण होताहै, और ग्रीष्म ऋतुमें शीतल होजाताहै, येही हमारी माया कहलाती है ॥ २१ ॥ सूर्यका उदय पूर्व दिशामें होकर उसका अस्त पश्चिम दिशामें होताहै (येही हमारी माया कही जातीहै) ॥ २२ ॥ हे महामतिमान् द्विजराज ! रक्त और वीर्यके संयोगसे गर्भमें जीवकी उत्पत्ति होती है येही हमारी प्रबल माया है ॥२३॥ हे मुनीश्वर ! जब यह प्राणी गर्भाशयमें स्थित होता और जठराग्नि प्रदीप्त होती है, तब माताकेही भोजनसे इसके प्राणकी पुष्टि होती है ॥ २४ ॥ जब यह जीव गर्भमें उपस्थित होताहै तब यद्यपि यह अवश्य (पराधीन) होताहै तथापि सहस्रों जन्मके कृताकृत पापपुण्योंका ज्ञान इसको मेरी मायाके बलसे होताहै ॥ २५ ॥ उस समय यह प्राणी सुख दुःख और अपने आपको जानताहै ।

पृष्ठं तथोदरं चैव दंतौष्ठपुटनासिकाः ॥ कर्णादिचक्षुरादीनि सर्वं मायाकृतं मम ॥ २७ ॥ बधिरस्यापि व्यापारोंधस्यापि हृत्सु नेत्रता ॥ मूकस्य चेष्टनं ज्ञानं सर्वं मायाकृतं मम ॥ २८ ॥ मूढ़त्वं संसृतौ चैव जातमात्रे महामते ॥ धर्माधर्मपरिज्ञानं विस्मृतिश्च तथा मम ॥ २९ ॥ मायया मे महाभाग योनियंत्राद्बहिर्गतिः ॥ कृमिर्व्रणादिव प्राण्यपवृत्तोऽपानवायुभिः ॥ ३० ॥ निष्क्रम्य मम मायाया वशमाप्नोति सत्वरम् ॥ जरायुजाश्चांडजाश्च स्वेदजा द्विजपुंगव ॥ उद्भिज्जाः प्राणिनश्चैव जायंते निजरूपतः ॥३१॥ श्वेतकृष्णादयो भावा मायया मम देहिनाम् ॥ शब्दः स्पर्शस्तथा गंधो रूपं चापि तथा रसः ॥ मायया मम भाव्यंते लीयंते च द्विजेश्वर ॥ ३२ ॥ समुद्राश्च तथा दिव्यभौमैर्जलैरलंकृताः ॥ पूर्य्यमाणा न वर्द्धंते मायया मम सर्व्वतः ॥३३॥ वर्षासु बहुतोयाश्च सरितः पल्वलानि च ॥ सरांसि वृद्धिमायांति शुष्यंते तपनेऽखिलाः ॥ ३४ ॥ एष मायाप्रभावो मे मेघा गृह्णन्ति यज्ज-

अंगुलियें, चरण, भुजा, शिर तथा कमर ॥ २६ ॥ पीठ, उदर, दन्त, ओष्ठ, नासिका रन्ध्र, कान और नेत्र आदि इन्द्रियें ये सब हमारी मायाके द्वाराही निर्माण किये जाते हैं ॥ २७ ॥ बधिरका व्यापार (बहिरापन) और अन्धेके सुन्दर नेत्रोंका अभाव अथ च मूक (गूंगे) की चेष्टा और ज्ञान यह सब कुछ हमारी मायासेही होताहैं ॥ २८ ॥ हे महामते ! संसारमें जन्म होतेही मूर्खता, धर्म और अधर्मका ज्ञान एवम् हमारा विस्मरण होजाना ॥ २९ ॥ ये सब कुछ हमारी मायाही है, हमारी मायाके द्वाराही योनियन्त्रसे बाहर निर्गमन होताहै,जैसे कि, व्रणमेंसे कृमि (कीडे) बाहर निकलतेहैं ऐसेही अपान वायुसे प्रेरित प्राणी गर्भसे बाहर निकलताहै ॥ ३० ॥ और वहांसे बाहर निकलेतेही तत्काल यह प्राणीं हमारी मायाके वशीभूत होजाताहै । जरायुज (जेरसे उत्पन्न होनेवाले), अंडज (अंडेसे उत्पन्न होनेवाले), स्वेदज (पसीनेसे जन्मनेवाले जूं लीख आदि) उद्भिज (वृक्षादिक) और प्राणी ये सबही हे द्विजपुंगव ! अपनी २ आकृतिको ग्रहणकर हमारी मायासे प्रादुर्भूत होतेहैं ॥ ३१ ॥ हमारी मायासेही प्राणियोंके श्वेत और कृष्ण आदि भाव होतेहैं, शब्द, स्पर्श, गन्ध,रूप और रस ये सब हमारी मायासेही उपलक्षित होतेहैं तथा फिर लय होजातेहैं ॥३२॥ समुद्रभी दिव्य जल और रत्नादिकोंसे परिपूर्ण हो रहेहैं, और अपनी मर्यादासे अधिक नहीं बढ़ते यहभी हमारि मायाही हैं ॥ ३३ ॥ वर्षाऋतुमें नदियें और अल्पसरोवर एवम् अन्यान्य

लम् ॥ लवणं लवणाब्धेश्च वर्षन्ति मधुरं पुनः ॥ ३५ ॥ एष मायाप्रभावो मे हिमवच्छिखरादधः ॥ मंदाकिनी समाख्याता गंगा जाता ततः परम् ॥ ३६॥ वन्यौषध्द्यो वीर्यरूपा जीवन्ति प्राणिनो द्विजाः॥पुनस्त एव चौषध्द्यो नाशमायान्ति सत्वरम् ॥ ॥ ३७ ॥ आयुःक्षयपरिज्ञानं सर्वं वीर्य्यं हराम्यहम् ॥ जायमानोऽल्पतनुको यौवने च तथा महान् ॥ ३८ ॥ अवस्थायां तृतीयायां जराव्याप्तः श्लथस्तथा ॥ पश्चादिंद्रियनाशश्च सर्वं मायाबलं मम ॥ ३९ ॥ अणुमात्रेऽश्वत्थबीजे वापितेंकुरसंभवः॥पुनः पत्रादिकोत्पत्तिस्तथा शाखाः प्रशाखिकाः ॥ ४० ॥ जायंते मायया विप्र पुनर्बीजं तथांकुरम् ॥ योयो विभूतिमाञ्जन्तुर्दरिद्रश्च तपोधन ॥ मायामेतामहं कृत्वा तोषयामि दिवौकसः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा सृजति लोकं हि चेति सर्वे वदन्ति हि ॥ मायामयं वपुः कृत्वा ह्ययमेव सृजामि वै ॥ ४२ ॥ लोका वदंति शक्रोऽयं देवा-

सरोवर प्रभूत जल होनेके कारण वृद्धिको प्राप्त होते और ग्रीष्म ऋतुमें फिर सब सूख जाते हैं ॥ ३४ ॥ यहभी हमारीही माया है कि, मेघ खारी समुद्रमेंसे खारी जल ग्रहण करते और मधुर वरसाते हैं ॥ ३५ ॥ यहभी मेरीही मायाका प्रभाव है कि—(गंगाजीको) हिमालयके शिखरसे नीचे तौ मन्दाकिनी कहते हैं और इसके अनन्तर वह गंगा नामसे विख्यात हुई है ॥ ३६ ॥ हे द्विज ! वनकी वीर्यरूप औषधियें प्राणियोंको जीवित रखती हैं और फिर वे औषधियें तत्कालही विनष्ट होजाती हैं ॥ ३७ ॥ जब आयु:का क्षय होनेको होताहै तब देहधारियोंके सब वीर्यको मैं अपहरण कर लेताहूं उत्पन्न होतेसमय प्राणीका शरीर छोटासा होताहै किन्तु यौवनकी अवस्थामें वह महान होजाताहै ॥ ३८ ॥ जब तीसरी वृद्धावस्था प्राप्त होतीहै तब वृद्धभावसे व्याप्त होजानेके कारण सब अंग शिथिल होजाते हैं, और अन्तमें इन्द्रियोंका विनाश होजाता है यह सबकार्य हमारी मायासेही होताहैं ॥ ३९ ॥ जब अणुमात्र अश्वत्थका बीज बोतेहैं तब इसीमेंसे अंकुर पत्र और शाखा प्रशाखाओंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ४० ॥ तदनन्तर बीज और फिर अंकुर यह सबकार्य हमारी मायाहीसे होताहै ! हे तपोधन ! संसारमें जो ऐश्वर्य शाली अथवा दरिद्रजीव दीखतेहैं, यहभी हमारी माया हैं, और हम अपनी मायाहीसे देवताओंको सन्तुष्ट करतेहैं ॥ ४१ ॥ सबलोग येही कहते हैं कि, ब्रह्माजी लोककी रचना करते हैं, किन्तु—मायामय देह धारण कर मैं ही संसारको रचताहूं ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! लोग कहतेहैं कि, इन्द्र देवताओंका पालन करतेहैं, परन्तु इन्द्रका देह धारण-

न्पालयति द्विज॥ अहमेवेन्द्रवपुषा पालयामि दिवौकसः ॥४३॥ मायया यमरूपेण नाश्यते च मया जगत् ॥ कौबेरं रूपमास्थाय धनानां रक्षिता ह्यहम् ॥ ४४ ॥ इन्द्रमायां समाश्रित्य वृत्रो मे नाशितः पुरा॥ रुद्रमायां समाश्रित्य त्रिपुरोपि विनाशितः॥४५॥ वायुमायां समाश्रित्य प्राणिनां देहसंस्थितिः ॥ जाठराग्निरहं भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥ चतुर्विधं पचाम्यन्नं मयैषा मम कीर्त्तिता ॥ ४६ ॥ वाडवं रूपमास्थाय सामुद्रं जलमन्वहम् ॥ पिबामि मायया विप्र समुद्रे कृतसंश्रयः ॥ ४७ ॥ सामुद्रं रूपमास्थाय संधरामि जगद्बहिः ॥ लोकानाश्रित्य भूरादीञ्जगद्रूपोऽस्मि मायया ॥ ४८ ॥ सौरीं मायां समाश्रित्य संतपामि जगत्त्रयम् ॥ मायां मेघमयीं कृत्वा संधरामि जलं तथा ॥ ४९ ॥ राजरूपं समाश्रित्य पालयामि स्वमायया ॥ ५० ॥ अहमेव पुरा मत्स्यो वेदोद्धारं तथाकरम् ॥ कौर्मीं मायां समाश्रित्य धृतो वै मंदराचलः ॥ ५१ ॥ वाराहरूपमाश्रित्य धरोद्धारः कृतो मया ॥ नारसिंहं वपुर्धृत्वा हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ५२ ॥ वामनं रूपमास्थाय

कर मैंही देवगणका पोषण करताहूं ॥ ४३ ॥ मायाके द्वारा यमरूप धारण कर हमही अखिल जगत्का विनाश करते हैं, और कुबेररूपसे धनकी रक्षाभी मैं ही करताहूं ॥ ४४ ॥ इन्द्रकी मायाका आश्रय लेकर प्रथम मैंने ही वृत्रासुरका विनाश किया था, अथ च रुद्रमायाके आश्रयसे त्रिपुरासुरका वध कियाथा॥४५॥ वायुकी मायाका आश्रय लेकर मैं सबप्राणियोंके देहमें स्थित रहताहूं और हमही जठराग्नि रूपसे प्राणियोंके देहमें आश्रित रहके चारप्रकारके अन्नका परिपाक करतेहैं येही सब हमारी माया कहाती हैं ॥ ४६ ॥ हे द्विजराज ! मैं बडवानल रूपधारणकर समुद्रमें निवास करके प्रतिदिन समुद्रका जल पान करताहूं ॥ ४७ ॥ मैं विष्णुरूपसे संसारका पालन पोषण करताहूं, भू आदि लोकोंका आश्रय लेकर मायाके द्वारा जगत्रूप मैं ही हूं ॥ ४८ ॥ सूर्य सम्बन्धिनी मायाका आश्रय लेकर मैं ही तीनों लोकको सन्तप्त करता हूं तथा मेघमायाके आश्रयसे मैंही जलको धारण करताहूं ॥ ४९ ॥ अथ च मैंही अपनी मायाके द्वारा राजमायाका आश्रय लेकर संसारका पालन करताहूं ॥ ५० ॥ प्राचीन कालमें मैंने ही मत्स्यरूप धारण कर वेदोंका उद्धार किया था और कूर्म संबन्धिनी मायाके आश्रयसे मन्दराचलको धारण किया था ॥ ५१ ॥ वाराहरूप धारणकर भूमिका उद्धार और नरसिंह देह धारणकर हिरण्यकशिपुका वध हमने ही किया था॥५२॥ वामनरूप धारणकर राजावलिको पाताल पठाया, एवं परशुराम होकर क्षत्रियोंका अन्तभी हमहीने

बलिर्नीतो रसातले॥भूत्वा परशुरामोहं क्षत्रस्यांतकरोऽभवम्॥५३॥ भूमेर्भारापनोदश्च रामरूपेण वै कृतः ॥ कृष्णमायां समाश्रित्य भूमिभारो हृतो मया ॥ ५४ ॥ योगमायां समाश्रित्य बदरीविपिने स्थितः ॥ कल्किर्भूत्वा म्लेच्छजातीन्नाशयिष्ये स्वमायया॥ ॥ ५५ ॥ यत्किंचिद्दृश्यते विप्र जगत्स्थावरजंगमम् ॥ मायैषा मम विप्रेन्द्र सर्वमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥ ५६ ॥ अयं मायाप्रभावो मे कथितस्तव विस्तरात् ॥ यत्पृष्टोहं त्वया सर्वं मम मायाबलं महत् ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

किया था ॥ ५३ ॥ एवम् रामकृष्णरूप ग्रहण करके हमनेही भूमिके भारका उद्धार किया था ॥ ५४ ॥ हमनेही योगमायाका आश्रय लेकर बदरीवनमें स्थिती करीथी, और कल्की होकर हमही अपनी मायासे म्लेच्छ जातिका विनाश करेंगे ॥ ५५ ॥ हे विप्र ! यह जो कुछ भी स्थावर जंगम जगत् दृष्टिगत होताहै, हे द्विजराज ! इस सबहीको हमारी माया कहते हैं ॥ ५६ ॥ येही हमारी मायाका प्रभाव है सो हमने विस्तार पूर्वक तुम्हारे प्रति वर्णन किया येही हमारी मायाका उत्कृष्ट बलहै और इसीको तुमने हमसे प्रश्न किया था ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ११८.

सोमशर्म्मोवाच ॥ प्रोक्ता माया त्वया देव जगदेतच्चराचरम् ॥ कथं परमहं जाने तव मायां दुरत्ययाम् ॥ १ ॥ स्वकर्मणा ह्ययं लोकः कर्मसु वै प्रवर्त्तये ॥ त्वन्मायाप्रेरितो जन्तुः करोतीति कथ नरः ॥ २ ॥ तस्माद्यथा महाविष्णो तव मायां दुरत्ययाम्॥ जानीयाम मितां देव वृणे वरमिमं ध्रुवम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानु-

सोमशर्मा बोला—हे देव ! आपने इस समस्त चराचर जगत्को अपनी मायाही कहकर कीर्त्तन कियाहै, किन्तु आपकी मनहरनी मायाको मैं कैसे जान सक्ताहूं ? ॥ १ ॥ अपने २ कर्मोंके द्वाराही यह संसार कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त होजाताहै, सो यह मनुष्य आपहीकी मायासे प्रेरित होकर कर्म करने लगताहै ॥२॥ सुतराम् हे महाविष्णो ! जिस प्रकारसे मैं आपकी इस दुरत्यया मायाको ठीक२ जान सकूं हे देव ! बस इसी वरकी मैं याचना करताहूं ॥३॥ श्रीभगवान् बोले—हे महाभाग ! हमारी माया

वाच ॥ मम माया महाभाग दुर्गम्या च सुरैरपि ॥ अन्यं वरं वृणुष्व त्वं धनं रत्नं वसुंधराम् ॥४॥ अथ वा स्वर्गगमनं रंभासेवनमेव च ॥ स्वच्छंदगमनं चैव भूरादिषु महामते ॥५॥ अथ चेच्छसि त्रैलोक्ये राज्यं निहतकंटकम् ॥ अथ चेच्छासि पुत्रादींस्तथा वाचां प्रचारणम्॥६॥अवध्यत्वं सुरेंद्राद्यैरजेयत्वं सुरासुरैः॥अमरत्वं तथान्यद्वै मनईहितमेव च॥७॥ददामि सर्वं प्रवरं विना मायां तपोनिधे ॥ मायां द्रष्टुं न योग्योऽसि तपसां निधिरेव हि ॥८॥ सोमशर्मोवाच ॥ ॥ न कांक्षे भगवन्विष्णो वरमन्यत्तथा महत् ॥ मायां दर्शय मे स्वीयां यदि तप्तं मया तपः ॥ ९ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ वारंवारं महाभाग मुनिना सोमशर्म्मणा ॥ याचितोऽपि रमाकांतो न ददौ तद्वरं द्विज ॥ १० ॥ एवं तेन तपस्तप्तं त्रिवारं विष्णुदर्शनम् ॥ वार्यमाणोऽपि हरिणा पुनर्मायामयाचत ॥ ११ ॥ भक्तानुकंपी भगवानुवाच च शुभां गिरम् ॥ मायां मे सोमशर्मंस्त्वं मदीयां

तो देवताओंके द्वाराभी दुर्बोधनीय है, सुतराम् तुम धन, रत्न, वा भूमिसंबन्धी अन्य वरकी याचना करो ॥ ४ ॥ अथवा स्वर्गकी यात्रा, रंभाअप्सराका संभोग, अथवा हे महामते ! भू आदि लोकोंमें स्वच्छन्दतासे चलेजाना ॥ ५ ॥ अथवा त्रिलोकीमें निष्कंटक अपना राज्य,वा पुत्रादि किं वा वाणीका विलास इनमेंसे जो कुछ चाहते हो सो माँगलो ॥ ६ ॥ इन्द्रादि देवताओंके हाथसेभी अवध्यत्व और देवता तथा असुरोंके द्वारा अजयेत्वं, किम्वा अमरत्व इनमेंसे जो कुछभी तुम्हारे मनमें हो ॥ ७ ॥ हे तपोनिधे ! केवल एक मायाको छोड़ अन्य सब वर हम तुम्हें दे सक्ते हैं, क्योंकि—तुम तपोनिधि हो अतएव माया देखनेके योग्य नहीं हो ॥ ८ ॥ सोमशर्म्मा बोला—भो विष्णुभगवन् ! मैं बड़ेसे बड़े अन्य किसी वरको नहीं चाहताहूं, यदि मुझसे तप बन पडा हो तो मुझे अपनी मायाके दर्शन कराइये ॥ ९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महाभाग ! जब सोमशर्मा मुनिने इसविधिसे वार २ प्रार्थना करी, तथापि रमाकान्तने उन्हें वह वर नहीं प्रदान किया ॥ १० ॥ इसप्रकार उसने तीनवार तप किया और विष्णुभगवान्के उसे दर्शन हुए, यद्यपि नारायणने उसे बहुतेरा निषेध किया तथापि उसने मायाके अवलोकन करनेकी प्रार्थना करी ॥ ११ ॥ सुतराम् भक्तोंके ऊपर अनुकंपा करनेवाले भगवान् शुभवाणी बोले,

परिवेत्स्यसे॥ १२ ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे विष्णुस्तस्मिन्क्षेत्रे शुभावहे॥ सोमशर्मापि गंगायां ययौ स्नातुं द्विजोत्तम ॥ १३ ॥ धृत्वा कुंडिं त्रिदंडं च धौतमासनमेव च ॥ कमंडलु पुस्तकं च सोमशर्मा सरित्तटे ॥ संन्यस्य प्रययौ स्नातुं गंगायां नियतव्रतः॥ १४ ॥ यावत्प्रविशते विप्र गंगायां नाभिमात्रतः ॥ तावद्धृतो महास्येन कच्छपेन महामुने ॥ १५ ॥ निगीर्णश्चर्वितश्चैव प्राणैस्त्यक्तो बभूव ह ॥ आकृष्टो यमदूतैश्च वायवीयवपुर्मुनिः ॥ १६ ॥ माया नरकसामग्रीं ददर्श स महातपाः ॥ क्रकचैः पाटयमानांश्च क्वथमानांश्च सर्वतः ॥ १७ ॥ ताडयमानांश्च मुशलैर्हाहाकाररवांस्तथा ॥ ददर्श किंकरांस्तत्र ददर्श परितो बहून् ॥ १८ ॥ सिंहाननान् वृकमुखान्विकृतान्विकृताननान् ॥ केचिद्गर्ज्जंति केचित्तु साट्टहासास्तथापरे ॥१९॥ भिंधिभिंधि च्छिंधि च्छिंधि भक्ष भक्षामि चापरः॥ इति नानाविधा वाचः शुश्राव यममंदिरे ॥ ॥ २० ॥ दृष्ट्वा पापगतिस्तेन तथापुण्यगतिर्मुने ॥ त्रासयुक्तो

हे सोमशर्मन् ! तुम हमारी मायाको जानोगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार संभाषण करके विष्णुभगवान् उसी कल्याणकारी क्षेत्रमें अन्तर्हित होगये, और हे द्विजराज ! तदनन्तर वह सोमशर्माभी गंगाजीमें स्नान करनेके तईं ॥ १३ ॥ कूंडी, त्रिदण्ड, धोती, आसन, कमण्डलु और पुस्तकको नदीके तटपर धरकर नियमपूर्वक स्नान करनेकी कामनासे गंगाजीमें प्रविष्ट हुआ ॥ १४ ॥ और जभी वह गंगाजीमें नाभि पर्य्यन्त जलमें प्रविष्ट हुआ, तभी हे महामुने ! उसे एक विस्तृत मुखवाले कच्छपने पकड़ लिया ॥ १५ ॥ उसे पकड़कर चाबड़ाला अतएव उसके प्राण छूटगये, सुतराम् उसके वायवीय शरीरको यमदूत आकर्षण करने लगे ॥ १६ ॥ तब तौ उस महामुनिने मायारूप नरककी सामग्रीका अवलोकन किया, कहीं पापीओरसे चीडेजातेथे, और कहीं चारोंओर अन्यप्रकारसे उन्हें पीड़ा दीजातीथी ॥ १७ ॥ मूसलोंके द्वारा ताड़न कियेजानेके कारण वेलोग हा २ कार नाद कर रहेथे, ऐसे अनेक किंकर उसने चारोंओर बहुतसे देखे ॥१८॥किन्हीं २ यमदूतोंका मुख सिंह और किन्हीका भेड़ियेकी समान था, अथ च किन्हीं २ के मुख बड़े कुरूप थे, उसमेंसे कोई गर्जते और कोई साट्टहास करते थे॥१९॥कोई कहता काटो, कोई कहता छांठो और कोई कहता कि, मैं भक्षण करेलेताहूं, इसप्रकार यमराजके मन्दिरमें उसने विविधभांतिकी वाणीयें श्रवण करीं ॥ २० ॥ हे मुने ! उसने अनेक पापी और पुण्यात्माओंका अवलोकन किया, औ

महाभाग ददर्श विविधा गतीः ॥ २१ ॥ असिभिश्छिद्यमानाश्च
चक्रक्षेपार्त्तिपीडिताः ॥ निगडैर्बध्यमानाश्च तप्तैरायसनिर्म्मितैः
॥ २२ ॥ त्रिशूलैर्भेद्यमानाश्च भिन्नाश्चेष्टतरं तथा ॥ अपरे भिद्य-
मानाश्च भिन्नांगाश्च तथापरे ॥ २३ ॥ लोहस्तंभेषु तप्तेषु बद्धा-
न्दृष्ट्वा मुनिस्तथा ॥ नदीं वैतरणीं तत्र पूयशोणितवाहिनीम् ॥
॥ २४ ॥ तथा कृमिकुलैश्छन्नां तप्तां पूरिषकर्दमाम् ॥ संकीर्णां
पापिभिश्चापि क्रन्दमानैरितस्ततः ॥ २५ ॥ असिपत्रवनं चैव
तथा संतप्तवालुकम् ॥ रौरवं च महाघोरं योजनत्रयविस्तृतम् ॥
॥ २६ ॥ संतप्यमानं तीक्ष्णेन वह्निना च समंततः ॥ हाहारवश-
ताकीर्णं महारौरवमेव च ॥ २७ ॥ योनिपुंसाख्यमपरं तामिस्रं
च महार्त्तिदम् ॥ महातामिस्रकं चैव संभ्रमं च तथैव च ॥ २८॥
अभेद्यकृमिसंपूर्णं पुरीषभक्षणं तथा ॥ स्वमांसभक्षणं चैव कुंभी-
पाकं च दृष्टवान् ॥ २९ ॥ एते चान्ये च बहवो यातनानरका-

हे महाभाग ! वह भय भीत हो उनकी भांति २ की गतिको देखने लगा ॥ २१ ॥ कोई खड्गसे काटे जारहेथे, किन्हीको चक्रसे मर्दन किया जाताथा, और कोई पापी गरम लोहेकी बनी बेडियोंसे बांधे जारहेथे ॥ २२ ॥ कोई त्रिशूलोंसे और कोई अन्यप्रकारसे मारे जारहेथे, कोई २ पापी छिन्न भिन्न होगये, और किन्ही २ के अंग छिन्न भिन्न होगये थे ॥ २३ ॥ उक्त सोम-शर्मा मुनिने लोहेके तप्त खंभोंमें बँधेहुए पापियोंको, मल और रक्तपूर्ण वैतरणी नदीको वहां देखा ॥ २४ ॥ उस वैतारिणी नदीमें अनेक कीड़े व्याप्त हो रहेथे, तप्तपुरीषकी पंक (कीच) उसमें व्याप्त होरहीथी, अथ च इधर उधर अर्थात् चारोंओर आर्त्तध्वनि करते हुए पापियोंसे वह नदी भरपूर होरही थी ॥ २५ ॥ असिपत्र वन, सन्तप्त बालुक, और तीन योजन अर्थात् बारहकोस विस्तृत महाघोर रौरवनरक [इन नरकोंका उसने अवलोकन किया] ॥ २६ ॥ जो प्रचण्ड अग्निके द्वारा चारों ओरसे सन्तप्त होरहाथा, और जिसमें सैंकडों हाहाकार शब्द होरहेथे ऐसे महारौरवकोभी उसने देखा ॥ २७ ॥ योनिपुंसाख्य, प्रभूत दुःखदायी तामिश्र, महा-तामिश्र और सम्भ्रम ॥ २८ ॥ जिनमें बहुतसे कीड़े व्याप्तहैं, जिसमें विष्ठा अथवा अपने मांस-हीका भोजन मिलताहै, ऐसे कुम्भीपाक नरकके भी उसे दर्शन हुए ॥ २९ ॥ ये तथा अन्य बहु-

स्तथा ॥ दृष्टास्तेन महाभाग लंबमानास्तरुव्रजे ॥ ३० ॥ पश्यन्महातपा विप्रस्त्रस्तः पापान्समीक्ष्य वै ॥ ततो ब्रह्मपुरे विद्वन्नानाभोगपरिप्लुतः॥ ३१॥क्षुत्तृष्णारहितस्तत्र दुःखेन रहितस्तथा॥ भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महर्जनम् ॥३२॥ तपःसत्ये च पातालमव्याहतगतिर्द्विजः ॥ यत्रेच्छति स वै गंतुं तत्रतत्र विमानगः ॥ जगामाप्सरगंधर्वकिन्नरैरुपशोभितः ॥ ३३ ॥ एवं वर्षसहस्त्रं च भुक्त्वा दिव्यं च भोगकम् ॥ पृथिव्यां च पुनर्जातो राजा परमधार्मिकः ॥ ३४ ॥ बुभुजे च ततो भोगान्राज्यप्राप्तान्महायशाः ॥ इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ पुनः स्वर्गं जगामापि भुक्त्वा भोगांश्च शाश्वतान् ॥ ३५ ॥ ततश्चन्द्रस्य बिंबे च भूत्वा नीहाररूपधृक् ॥ स्रवते स्म तथौषध्यां जीवश्चन्द्रस्य मण्डलात् ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नंतरे काचिन्निषादवनिता ततः ॥ जाता ऋतुमती तत्र गर्भाधानपराभवत् ॥ ३७ ॥ निषादेन तु यद्भुक्तं तत्र प्रातोऽमृतात्मकः ॥ निषाद्या योनियंत्रे वै क्षिप्तो मैथु-

तसी नरक यातनाएँ हे महाभाग ! उसने अवलोकन करीं । और वृक्षोंके ऊपर लटकतेहुए ॥ ३० ॥ बहुतसे पापियोंको देखकर हे द्विजराज ! वह तपस्वी ब्रह्मलोकमें गया और अनेक भोगोंसे व्याप्त हुआ ॥ ३१ ॥ वहां उसे भूख और प्यास कुछभी नहीं लगती थी, सुतराम् वह सबही दुःखोंसे रहित था । भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक ॥ ३२ ॥ तपलोक, सत्यलोक, और पाताल लोक इन सभी लोकोंमें उसकी स्वच्छन्द गति थी, सुतराम् वह जहां २ जानेकी इच्छा करताथा विमानमें आरूढ हो उन सबही स्थानोंमें अप्सरागण, गन्धर्व और किन्नरोंद्वारा सुशोभित होजाता था ॥ ३३ ॥ इस विधिसे दिव्य सहस्त्रवर्ष पर्य्यन्त भोगोंका उपभोगकरके वह महातपस्वी फिर भूमण्डलके ऊपर अवतीर्ण हुआ और परमधार्मिक राजा वना ॥ ३४ ॥ उस महायशस्वीको राज्यके आधारसे जो कुछभी भोग (ऐश्वर्य) प्राप्त होतेथे उन सबहीको वह भोगताथा, इसके पश्चात् जिनमें श्रेष्ठ २ दक्षिणा प्रदानकी जाती हैं ऐसे भांति २ के यज्ञोंको समाप्त कर और सनातन भोगोंको भोगके फिर वह स्वर्गलोकको चलागया ॥ ३५॥ तदनन्तर चन्द्रमण्डलमें जाय नीहार (पाले) का रूप धारण कर चन्द्रमण्डलमेंसे औषधीयोंके मध्यमें जीव अर्थात जीवनी शक्तिको प्रदान करने लगा ॥ ३६ ॥ इसी अवसरपर किसी निषादकी स्त्री, ऋतुमती हो गर्भाधानके लिये उद्यत हुई ॥ ३७ ॥ निषादने भोजनमें किसी मृत जन्तु को भक्षण

नकर्म्मणा ॥ रेतःसंचलितो जंतुर्लिंगात्स्त्रीयोनिसंचितः ॥ ३८ ॥ योनिरक्तेन संयुक्तो जरायुपरिवेष्टितः ॥ दिनेनैकेन कललं कठिनत्वमगात्ततः ॥३९॥ बुद्बुदाकारतां प्राप्तः पंचरात्रेण स द्विजः ॥ ततः पेशित्वमापन्नो मांसस्य सप्तरात्रतः ॥ ४० ॥ मासार्धेन मांसपेशी रुधिरेण परिप्लुतः ॥ कठिनत्वं तदाप्नोति पंचविंशतिरात्रिषु ॥ ४१ ॥ मासाच्छिरःसमुत्पत्तिर्ग्रीवास्कंधौ तथोदरम् ॥ पृष्ठवंशस्तथोत्पन्नः पंचधांगानि तत्क्रमात् ॥ ४२ ॥ पाणिपादौ तथा पार्श्वौ कटिर्जानुद्वितीयकम् ॥ त्रिभिर्मासैः करांगुल्यः संधयश्च महामुने ॥ ४३ ॥ मासेन च चतुर्थेन सर्वांगुल्यस्तपोनिधे ॥ नासिकाकर्णनेत्राणि पंचमे मासि संस्फुटम् ॥ ४४ ॥ दंतभूमिर्नखा गुह्यं जीवश्च जठरस्थितः ॥ अंगच्छिद्राणि षष्ठे च पायुर्मेढ्रं तथा मुने ॥ ४५ ॥ नाभिश्च सप्तमे मासि जातास्तस्य महामते ॥ लोमानि च महाभाग शीर्षकेशास्तथोद्गताः ॥ ४६ ॥ विभिन्नावयवत्वं च सर्वं जातं तथाष्टमे ॥ ववृधे जठरे जंतुः सं-

किया था, मैथुनके समय योनिके मार्गसे वह जन्तु निषादपत्नीके गर्भाशयमें प्राप्त होगया ॥ ३८ ॥ और वह जीव योनिरक्त और जरायुसे वेष्टित हो मांसपिण्ड बन एकही दिनमें कठिन होगया ॥ ३९ ॥ और हे द्विज ! फिर वह पांचरात्रिमें बुद्बुदाकार होगया, तदनन्तर सातरात्रिमें वह बुद्बुद मांसका पिण्ड होगया ॥ ४० ॥ फिर आधे महीनेमें वह मांसपिण्ड रक्तसे लिथडकर पचीसरात्रियोंमें कठिनताको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ फिर उसी मांसपिण्डमेंसे शिर, ग्रीवा (गर्दन), स्कन्ध और उदर (पेट) तथा पृष्ठका वंश ये सब उत्पन्न होतेहैं, और इसीक्रमसे पांचप्रकारके अंगोंका प्रादुर्भाव होता है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हाथ, पैर, पार्श्वभाग, कटि (कमर) और दोनों जानुएँ; ये सब बनजातीहैं, फिर हे महामुने ! तीनमहीनेमें हाथकी अंगुलियें और समस्त सन्धियें बनजाती हैं ॥ ४३ ॥ हे तपोनिधे ! चतुर्थ मासमें समस्त अंगुलियें बनजाती हैं, नासिका कान और नेत्र ये सब पंचममासमें स्फुट होआते हैं ॥४४॥ दन्त, भमि, नख गुह्यकी उत्पत्ति होकर जठरमें स्थित रहते २ ही जीवके छठेमासमें अंगके छिद्र गुदा और शिश्न ये सब बनजाते हैं ॥ ४५ ॥ हे महामते ! फिर उसके सातवें मासमें नाभि बनती है, और लोम (रुएँ) एवं शिरके बाल ये सबभी हे महाभाग ! तभी उत्पन्न होजाते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् आठवें महीनेमें सबही अंग भिन्न २ परिलक्षित होने लगते हैं, सुतराम् उदर (गर्भ) हीमें

स्मरन्पूर्वकर्म तत् ॥ ४७॥ नाना जन्मानि जातानि तथा चोच्चा-वचानि च ॥ जठराग्निसमुद्विग्नः कतिवारं स्वजन्मसु ॥ ४८ ॥ स्वकर्मणा कर्महीनो जातोहं देहदुःखभाक् ॥ न मे मृत्युः कर्म-सूत्रान्निबद्धस्यापि पीडतः ॥ ४९ ॥ नानायोनिसहस्राणि ह्यनु-भूतानि वै मया ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारास्तथैव च ॥ ॥ ५० ॥ कुटुंबभरणासक्तिर्जाता च मम सर्वदा ॥ सत्कर्म न कृतं येन जातो मुक्तिविवर्जितः ॥ ५१ ॥ न जाने पातकं तद्वै येन जातोऽस्मि गर्भगः ॥ स्त्रीशरीरो भाग्यहीनो निषादीगर्भ-मागतः ॥ ५२ ॥ जातं मे दर्शनं विष्णोस्तपस्तप्तं च मे महत् ॥ केन कर्मविपाकेन निषादीगर्भसंस्थितः ॥ ५३ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि पीडयमानोऽग्निना मुहुः ॥ भक्ष्याभक्ष्यविधिश्चैव न स्थिरो मम सांप्रतम् ॥ ५४ ॥ अत ऊर्द्ध्वं कदाचिद्धि भविष्यति गतिर्बहिः ॥ कर्त्तव्या मे विष्णुचिंता गर्भवासो यतो न हि॥५५॥

स्थित हुआ जीव अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका स्मरण करताहै ॥ ४७ ॥ मेरे ऊंच नीच जातिमें अनेक जन्म हुए, और इसीकारण अपने जन्मके समयमें कईवार (न जानै कितनीवार) जठ-राग्निके द्वारा पीडित हुआ ॥ ४८ ॥ अपनेही दुष्कर्मोंसे सत्कर्महीन होनेके कारण फिरभी मुझे देह धारण करनेका दुःख भोगना पडाहै, मैं कर्मसूत्रके बन्धमें निबद्ध होनेके कारण अत्यन्त पीडित हूं, और मेरी मृत्यु अर्थात् इन दुःखोंसे मुक्तिही नहीं होती ॥ ४९ ॥ मैंने सहस्रों अनेकों योनियोंको भोगा, अतएव मेरे सहस्रों मातापिता और सहस्रोंही पुत्र एवम् स्त्रियें (मुझे मिलीं) ॥ ५० ॥ मैं सदा अपने कुटुम्बका पालन पोषण करनेमें असमर्थही रहा, चूंकि मैंने कभी सत्कर्मोंका आचरण नहीं किया अतएव मेरी मुक्ति नहीं हुई ॥ ५१ ॥ मैं उस पापको नहीं जानता जिसके करनेसे मुझे गर्भमें आना पडता है, मैं मन्दभागी स्त्रीका देह धारण कर दुःखित हो गर्भमें उपस्थित होरहाहूं ॥ ५२ ॥ मुझे विष्णु भगवान्काभी दर्शन हुआ और मैंने उग्र तप-काभी आचरण किया, तौ फिर मैं किस नीच कर्मके फलसे निषाद पत्नीके गर्भमें प्राप्तहुआहूं ॥ ५३ ॥ हाय ! मैं वारंवार जठराग्निके द्वारा पीडित होकर कहां जाऊं क्या करूं ? मेरे भक्ष्याभ-क्ष्यकी विधिभी तौ सम्प्रति कुछ निश्चित नहींहै ॥ ५४ ॥ यदि अब मेरा गर्भके बाहर निकास

इति वै चिंतयोद्विग्नः स वै ब्राह्मणसत्तमः ॥ दशमे मासि योनेस्तु कुर्वन्मातुः प्रपीडनम् ॥ ५६ ॥ पीडयमानः स्वयं चैव नरकात्पातकी यथा ॥ निर्गतस्तु स्वरूपेण स्पृष्टः संसारवायुना ॥ ५७ ॥ जायमाना तु सा कन्या रुरोद क्षुधया वृता ॥ अजानती महामायां वैष्णवीं विष्णुतत्परा ॥ ५८ ॥ विण्मूत्रपरिक्लिन्नांगी स्तनपानपरायणा ॥ वक्तुं किमपि नो शक्ता न गंतुं च क्वचिन्मुने ॥ ॥ ५९ ॥ एवं बाल्येऽपि दुःखानि ह्यनुभूतानि चैतया ॥ क्रमेण यौवनाक्रांता जाता नैषदिकन्यका ॥ ६० ॥ पित्रा दत्तापि कस्मैचिन्निषादाय महामते ॥ तत्रापि पुत्रभृत्यादिसंयुतासीत्क्रमेण सा ॥ ६१ ॥ एवं जातानि पंचाशद्वर्षाणि द्विजपुंगव ॥ एकदा सा नदीतीरे गता स्नातुं महामते ॥ ६२ ॥ यावत्स्नाति महाशूद्रा तावत्कच्छपमूर्त्तिना ॥ कालेन संगृहीता सा पुनर्जातो यथा पुरा ॥ ६३ ॥ स्नातः समागतो यद्वत्रिदंडी दंडकुंडिकाम् ॥ गृहीत्वा

हो तौ मैं अवश्यही श्रीविष्णु भगवान्का निदिध्यासन करूंगा जिससे कि, फिर मेरा गर्भमें निवास न हो ॥ ५५ ॥ इस प्रकारकी चिन्तासे वोह ब्राह्मण उद्विग्न होगया, और तदनन्तर दशवां मास प्राप्त होनेपर माताकी योनिको पीडा देता हुआ ॥ ५६ ॥ और स्वयंभी पीडित होकर इस प्रकार बाहर निकला जैसे नरकमेंसे पापी निकलतेहैं, अथ च प्रादुर्भूत होतेही सांसारिक वायुने उसका स्पर्श किया ॥ ५७ ॥ उत्पन्न होतेही वोह कन्या क्षुधासे व्याकुल हो रोदन करनेलगी, और उसने विष्णुभगवान्में तत्परहो वैष्णवी मायाको कुछभी न जाना ॥५८॥ उसका शरीर विष्ठा और मूत्रसे लिथड रहाथा, और वोह माताका स्तनपान करनेमें तत्परथी,हे मुने ! न तौ वोह कुछ कहही सक्ती थी और न उसमें चलनेहीकी शक्ति थी ॥ ५९ ॥ इसी विधिसे यह बाल्यावस्थामेंभी दुःखोंहीका अनुभव करतीरही, फिर क्रमशः वोह निषादकन्या युवाअवस्थाको प्राप्त हुई ॥ ६० ॥ तब तौ हे महामते ! उसके पिताने उसे किसी निषादको देदिया, और वहां जाकर क्रमशः वोह युवती पुत्रों तथा सेवकोंसे व्याप्त होगई ॥ ६१ ॥ हे द्विजराज ! इसी क्रमसे पचास वर्ष व्यतीत होगये, हे महामते ! एक समय वोह स्नानकरनेके लिये नदीके तीरपर गई ॥ ६२ ॥ और जभी वोह महाशूद्रा स्नान करनेलगी तभी कालने कच्छप बनकर उसे पकडलिया, (तब कन्यारूपको छोड) फिर वोह वैसाही होगया जैसा प्रथम था ॥ ६३ ॥ और स्नान कर त्रिदण्ड और कुंडी एवं वस्त्रोंको

वाससी तद्वत्पश्यतां वै तपस्यताम् ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु निषादः क्रोधमूर्छितः ॥ महायष्टिं गृहीत्वा तु तामन्वेष्टुं समाययौ ॥ ६५ ॥ अन्वेषमाणः सततं तीरे तीरे विशेषतः ॥ वनानां चैव कुंजेषु वप्रेषु त्वटवीषु च ॥ ६६ ॥ एवमन्विष्यतस्तस्य निषादस्य महामते ॥ दिनं सर्वं क्षयं जातं प्राप्ता चैव तु शर्वरी ॥ ॥ ६७ ॥ विललाप ततोऽरण्ये गंगातीरे समाश्रितः ॥ हा प्रिये क्व गतासि त्वं त्यक्त्वा मां पुत्रदारिकाः ॥६८॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं जीवेयुरर्भकाः ॥ का मां प्रिये चिंतयानं शयानं शयने स्थिता ॥ मधुरालापप्रश्नैश्च तूर्णमाश्वासयिष्यति ॥ ६९ ॥ स्तनंधयश्च स कथं भविष्यति दिनात्यये ॥ मातर्मातः पुनर्मातरित्युक्त्वाऽश्रुपरिप्लुतः ॥ ७० ॥ रोदयिष्यति मां चैव तथान्याञ्जातिबांधवान् ॥ कच्चित्त्वं परिहासाय लीलापुलिनसंस्तरे ॥ ॥ ७१ ॥ कच्चिन्मम प्रेम द्रष्टुं स्थिता कुंजेतिवश्मनि ॥ कच्चित्त्वां व्याघ्रसर्पाद्या चक्रुरसुविवर्जिताम् ॥ ७२ ॥

लेके तपस्वियोंके देखते २ ही यह फिर लौटआया ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें (इसके पति) निषादको बडा क्रोध हो आया, सुतराम् वोह एक बडीसी लाठी लेकर उसे अन्वेषण करनेको चला ॥ ६५ ॥ और सर्वत्रही तथा विशेषकरके घाट २ पर उसका अन्वेषण करनेलगा, वनोंकी कुंजे, व (ऊंची २ ढाहें) और वीचियोमें उसने अन्वेषण करा ॥६६॥ उस प्रकार उसनिषादके अन्वेषण करतेही दिन तौ सब क्षयहोगया और रात्रि प्राप्तहुई ॥६७॥ तब तौ वोह वनके बीच गंगाजीके तीरपर बैठके रोदन करनेलगा, हाय प्यारी ! तू मुझे और इन पुत्र तथा कन्याओंको छोडकर, कहां चली गई ॥ ६८ ॥ हाय मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? यह बालक कैसे जीयेंगे ? हे प्रिये ! जब मैं चिन्तातुर हो पलंगपर पडूंगा, तब शय्याके ऊपर बैठकर मीठी २ बातोंसे पूछकर मुझे कौन आश्वासन देगी ॥ ६९ ॥ और वोह दुधमुहां बालक सन्ध्या समय कैसे रहाहोगा ? नेत्रोंमें आंसूभर वारंवार माता २ कहकर ॥ ७० ॥ मुझे तथा अन्य सजातीय बान्धवोंको रुलावेगा । क्या तू हँसीमें कही किनारेपर चलीगई ॥७१॥अथवा मेरे प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये कुंजभवनमें जा छिपी है ? अथवा व्याघ्र सर्पादि किसी हिंसक जन्तुने तेरे प्राण लेलिये७२॥

कच्चित्त्वं गह्वरे तन्वि गता नीता च राक्षसैः ॥ इति ललाप्यमाने तु तत्र तस्मिन्निषादजे ॥ ७३ ॥ मुमोह माययाविष्टो दृष्ट्वा तं तादृशं मुने ॥ उवाच वचनं दीनो वाष्पकंठः सगद्गदम् ॥७४॥ मा रोदस्त्वं निषादेश कालो वै दुरतिक्रमः ॥ अप्रमादेन स्थातव्यं शत्रुमित्रेषु सर्वदा ॥ ७५ ॥ इति सर्वं वचः श्रुत्वा वाष्पगद्गदया गिरा ॥ उवाच सहसागत्य तत्र ब्राह्मणसन्निधौ ॥ ७६ ॥ भोभो द्विजवरश्रेष्ठ क्व गता सा मम प्रिया ॥ तया विना क्षणमपि न जीवेयं सुदुःखितः ॥ ७७ ॥ कयात्र वनकुंजेषु नदीनां संगमेषु च ॥ वहन्कुटजवातेषु पर्वतानां च मूर्द्धसु ॥ ७८ ॥ तमालमालाजालेषु कूजितेषु च कोकिलैः ॥ रमयिष्यामि विप्रेश तथा विपिनपंक्तिषु ॥ ७९ ॥ कथयस्व महाभाग क्व गता सा प्रियंवदा ॥ प्राणदो भव मे सौम्य रक्षस्व मम बालकान् ॥८०॥ इतीरितं तस्य वचो निशम्य वै निषादपुत्रस्य विमोहितो द्विजः ॥ सबाष्पकंठोद्गतमंदवाक्यो जगाद भूयो जगदीशमोहितः ॥८१॥

हे तन्वंगि ! क्या तू कहीं वनमें चली गई, अथवा तुझे राक्षस लेगये, जब वोह निषाद इस प्रकार वहां रोदन करने लगा ॥ ७३ ॥ तब हे मुने ! यह ब्राह्मणभी इस निषादको (ऐसा व्याकुल) देख मोहित होगया, अथ च बाष्पसे इसका कंठ अवरुद्ध होगया और अतएव वोह गद्गद स्वरसे यह दीन वाक्य बोला ॥ ७४ ॥ हे निषादराज ! यह समय बडाही कठिन है अतः तुम रोदन मत करो और शत्रु तथा मित्रोंमें प्रमाद रहितहोकर (अर्थात्–विचारकी दृष्टिसे अवलोकनकर के) स्थित रहना (अर्थात् वर्त्ताव करना) चाहिये ॥ ७५ ॥ जब निषादने ऐसे वाक्यसुनें तब उसके नेत्रोंमें आंसू भरआये और वाणी गद्गद होगई, सुतराम् वोह तत् कालही ब्राह्मणके निकट आनकर यौं बोला ॥ ७६ ॥ हे श्रेष्ठ द्विजराज ! वोह हमारी प्यारी कहां चलीगई ? मैं अतिशय दुःखित होनेके कारण उसके विना एक क्षणभरभी नहीं रहसक्ताहूं ॥ ७७॥ यहां वनकी कुंजोंमें, नदियोंके संगममें, वृक्षोंके नीचे मन्द २ वहती हुई पवनमें और पर्वतोंके शिखरपर ॥ ७८ ॥ अथ च तमाल वृक्षोंकी श्रेणीके ऊपर जब कोकिला शब्द करैंगी तब, एवं अन्यान्य वनकी वीथियोंमें हे द्विजराज ! मैं किसके साथ रमण करूंगा ॥ ७९ ॥ हे महाभाग! बताइये तो सही वोह प्रियभाषिणी कहां चलीगई ? हे सौम्य ! (उसका पता बताकर) मुझे प्राणदान दीजिये, और मेरे बालकोंकी रक्षा करियेगा ॥ ८० ॥ निषाद कुमारके ऐसे वाक्य श्रवण

अहं तव स्त्री भवनाधिवासिनी स्थिता निषादेश्वर गच्छ मंदिरम्॥
एतावदेवाभवदस्ति नो तव संबंधकः कर्मगतानुसारिकः ॥८२॥
रक्षस्व चेमानतिबालकान्मे त्वमेव तेषां जननी पिता च॥ कनि-
ष्ठको यः सततं हि रक्ष्यो गच्छस्व गेहं वचनं कुरुष्व ॥ ८३ ॥
एवं लुब्धं वाक्यमुक्त्वा द्विजस्तु रुरोदोच्चैस्तेन साकं मुनीश॥
विष्णोर्मायासंवशो ह्यस्वतंत्रो हाहेत्युक्त्वा पातयामास वाष्पान्
॥८४॥ व्याधोऽपि तत्राशु तदीयबालानानाययामास विमोहना-
र्थकम्॥रुरोद पादे पतितो जगाद भूयश्च देवेशविमोहितः परम् ॥
॥ ८५ ॥ एते वै बालका मह्यं मोहयंतितरां मुने ॥ गच्छ मे
मंदिरं शीघ्रं त्वां मत्वा मातरं तथा ॥ जीविष्यंति तथाहं च रक्ष नो
म्रियमाणकान् ॥ ८६ ॥ रक्षा त्वया प्रकर्तव्या गृहे गत्वा यथा-
वनात् ॥ आनेया मृगपक्ष्याद्या भक्षणार्थं यथा पुरा ॥ ८७ ॥
तवैव सर्वं भवनं बालकाश्च धनं तथा॥इति श्रुत्वा वचो विप्र नि-
षादस्य नदीतटे॥चकार मनसो भावं गेहे गंतुं त्वरान्वितः॥८८॥

करके वोह ब्राह्मणभी मोहित होगया अतएव उसका कंठ अश्रु उद्गमसे रुद्ध होगया और उसकी वाणी लडखडागई, सुतराम् वोह फिर जगदीश्वरकी मायासे मोहित होकर बोला ॥ ८१ ॥ हे निषाद-राज ! मैंही तुम्हारी पत्नी बनकर तुम्हारे घर रहाथा, अब जाओ तुम अपने घरको जाओ ! कर्म-गतिके अनुसार हमारा तुम्हारा इतना सम्बन्ध था ॥ ८२ ॥ अब तुमही हमारे इन बालकोंकी रक्षा करो, क्योंकि–तुम्ही इनके मातापिताहो, जाओ हमारा कहना मानकर घरको जाओ और इस छोटे बालककी रक्षा करते रहियो ॥ ८३ ॥ हे मुनीश ! मोहित हुए उस निषादसे यों कहकर वोह ब्राह्मणभी उच्चस्वरसे रोदन करनेलगा, विष्णु भगवान्की मायाके वशमें हो वोह ब्राह्मण अपने आधीन न रहा, सुतराम् हाहाकारशब्दोच्चारणपूर्वक अश्रुपात करनेलगा ॥ ८४ ॥ इतनेहीमें व्याधभी मोहके कारण उसके बालकोंको वहां लेआया, और हे देवेश ! फिर मोहित हो चरणोंमें गिरकर रोदन करने लगा और बोला ॥ ८५ ॥ हे मुनीश्वर ! ये बालक मुझे मोहित करते हैं, ये सब तुम्हें अपनी माता समझ रहेहैं, अतएव हमारे घरको चलो, ऐसे करनेसे ये सब जीवित होजा-यँगे, अब हम मरते हुओंको बचाओ ॥ ८६ ॥ तुम्हें हमारी रक्षा करनी कर्तव्यहै, और प्रथमकी भांति भोजनके लिये वनसे मृग और पक्षी आदिको लाओ ॥ ८७ ॥ वोह निकेतन, बालक और

एतस्मिन्नंतरे तत्र न व्याधो न च बालकाः ॥ ददर्श दंडं कुंडिं च धौतं पात्रं स्थितं तदा ॥ ८९ ॥ दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्य्यं हरिमायावशो द्विजः ॥ किमेतद्धि किमेतद्धि. चकितोभून्महामते ॥ ९० ॥ स्मृत्वा तन्मरणं चैव नरकाणां च दर्शनम् ॥ गर्भवासं च नैषाद्यास्तथा वै स्त्रीस्वरूपताम् ॥९१॥ तत्र मायां च पुत्रेषु धनेषु च तथा पतौ ॥ परमं खेदमापन्नो दुरात्माहं भृशं खलः ॥ ॥ ९२ ॥ यस्य मे तादृशी जाता गतिर्विष्णोस्तु चिंतनात् ॥ ॥ अभक्ष्यं भक्षितं चैवाऽपेयं पीत च वै मया ॥९३॥ अगम्या-गमनं चैव कृतं यद्धै दुरात्मना॥भवित्री का गतिर्मे हि कृतपापस्य सर्वदा ॥ ९४ ॥ पापादस्मात्कथं मेद्य निष्कृतिर्भविता तथा ॥ तपश्चर्या कृता पूर्वं प्राप्तं दुःखमनंतकम् ॥ ९५ ॥ का भविष्यति पापैर्हि परत्र च गतिर्मम ॥ इति तच्चिं-तयानस्य द्विजस्य नरपुंगव ॥ भक्तानुकंपी भगवान्प्र-

धन ये सब प्रथमकी भांति तुम्हाराहीहै, जब ब्राह्मणने नदीके तटके ऊपर निषादके ऐसे वाक्य श्रवणकरे तब उसके चित्तमें शीघ्रही घरको जानेका भाव उदय होआया ॥ ८८ ॥ इसी बीच वहां न तौ वोह व्याधाही रहा और न बालकही रहे, केवल उसने दण्ड, कूंडी, धोती और पात्रोंहीको धरादेखा ॥ ८९ ॥ वोह ब्राह्मण नारायणकी मायाके वशीभूत हो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुआ, और हे महामतिमान्! यह क्या हुआ वारंवार यौं कहकर वोह चकित होने लगा ॥ ९० ॥ उस मरण, नरकोंके दर्शन, निषाद पत्नीके गर्भमें निवास स्त्री रूपकी प्राप्ति । वहां पुत्र धन और पतिके ऊपर प्रेमानुबन्ध इन सबका स्मरण करनेसे उसे अतीव खेदकी प्राप्ति हुई, सुतराम् वोह कहने लगा मैं अत्यन्तही दुष्ट अतएव दुराचारी हूं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ विष्णु भगवान्का चिन्तवन करनेसे तब मेरी वोह दशा हुई, मैंने अभक्ष्यका भक्षण तथा अपेयका पान किया था ॥ ९३ ॥ मुझ दुराचारीने अगम्या स्त्रियोंके साथ संसर्ग किया, हाय सदैव दुराचरण करने वाले मुझ पापीकी क्या गति होगी ॥ ९४ ॥ मैं नहीं जानता इस पापसे मेरा उद्धार किस विधि होगा ? मैंने प्रथम तपश्चर्याभी की और मुझे अनन्त दुःखभी भोगना पड़ा ॥ ९५ ॥ इन पाप कर्मोंका आचरण करनेसे परलोकमें मेरी क्या गति होगी ? हे नर पुंगव ! जब वोह द्विज इस प्रकार चिन्तामें मग्नहो रहा था तबही भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने

त्यक्षं निजगाद ह ॥ ९६ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरैर्बाहुभिर-
न्वितः ॥ पीताम्बरलसत्कांतिर्वनमालाविभूषितः ॥ ९७ ॥
श्रीवत्सवक्षास्तेजस्वी नवनीरदरूपधृक् ॥ अनंतमणिमुक्ताभि-
र्ललितं मुकुटं तथा ॥ ९८ ॥ धारयन्वै त्रिलोकीशो रमया
सहितः प्रभुः ॥ रुदंतं तं समासीनमधोवक्त्रं विमोहितम् ॥ ९९ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपोराशे महामते ॥ त्वत्समो नास्ति त्रैलो-
क्ये मद्भक्तो विजितेंद्रियः ॥१००॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि न
ते दुर्गतिरस्ति हि ॥ न त्वया भक्षितं किंचिन्न पीतं न कृतं तथा
॥१०१॥ न तेऽभून्मरणं विप्र यातना रकी न हि ॥ नानते भू-
स्वर्गवासश्च न ते जाठरवेदना ॥ १०२ ॥ न ते स्त्रीत्वस्य संप्रा-
प्तिर्न निषादगृहे जनिः ॥ न विवाहो न पुत्राद्या नैत-
त्सर्वं प्रपंचितम्॥१०३॥यत्त्वया याचितं भद्र तपश्चर्याफलं पुरा॥
सेयं माया मया विप्र दर्शिता प्रियलिप्सुना॥१०४॥एतामे परांमू-

वाले भगवान् प्रत्यक्ष ये वाक्य बोले ॥ ९६ ॥ भगवान् उस समय अपनी भुजाओंमें शंख चक्र गदा पद्म धारण कर रहे थे, पीताम्बरसे उनकी कान्ति सुशोभित हो रहीथी, अथ च भगवान् वनमालासे समलंकृत थे ॥ ९७ ॥ उन तेजोधारीके वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिन्ह विराजमान था, भगवान् अभिनव नीरद (बादल) की सदृश (नील) रूपधारण कर रहेथे, एवं च अनेक प्रकारकी मणियों तथा मुक्ताओंसे उनका मुकुट चमक रहाथा ॥ ९८ ॥ त्रिलोकीके नाथ लक्ष्मी सहित भगवान् रोदन करते और अधोमुख हो बैठे हुए अज्ञानाक्रान्त उस ब्राह्मणसे बोले ॥ ९९ ॥ उठो ! महामतिमान् तपोराशे ! ! उठो ! ! ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी समान हमारा जितेन्द्रियभक्त त्रिलोकीमें और कोई नहीं है ॥ १०० ॥ तुमने कर्त्तव्यका आचरण करलिया अतएव तुम्हें धन्य है, तुम्हारी दुर्गति कदापि न होगी, तुमने न तो कुछ (अभक्ष्य) भक्षण किया न (अपेयका) पान किया, और न (अकर्त्तव्यका) आचरणही किया है ॥१०१॥ हे विप्र ! न तुम्हारा मरण हुआ और न तुम्हें नरक संबंधिनी यातनाही हुई, स्वर्गका निवास और गर्भवासका दुःखभी तुम्हें नहीं हुआ ॥ १०२ ॥ न तुम्हें स्त्रीका स्वरूप धारण करना पडा, और न तुम्हारा जन्मही निषादके घर हुआ, न तुम्हारा विवाह हुआ और न तुम्हारे पुत्रादिकही हुए, किन्तु यह सब माया जनित प्रपंच था ॥ १०३ ॥ हे कल्याणमूर्ते ! जो तुमने प्रथम अपनी तपश्चर्याका फलयाचन किया था, उसी अपनी मायाको हमने तुम्हें दिखाया ॥ १०४ ॥ मूर्खलोग हमारी इसी मायाको नहीं जानसक्ते हैं, उसीके द्वारा मोहित होकर हे विप्र ! तुमने इस अद्भुत

ढो न जानाति परायणाम्॥त्वं तया मोहितो विप्र दृष्टवानिदमद्भुतम्
॥ १०५ ॥ स्वावज्ञा न च ते कार्य्या मायारूपमिदं जगत् ॥
स्वभाव एष मायायाः प्रपंचः सार्वकालिकः॥१०६॥ अनात्मनि
शरीरादावात्मबुद्धिर्हि या मता॥तया संमोह्यते सर्व जगदेतच्चराचरम्
॥१०७॥ परात्मनो न जन्मापि मरणं न च वेदना ॥ न वृद्धिर्न
च वै ह्रासो न बाल्यं न च यौवनम् ॥ १०८ ॥ न वा वार्द्धक्य-
भावोऽस्ति नित्यस्य परमात्मनः ॥ मम चेष्टा स्वरूपस्य स्वभा-
वोऽयं प्रवर्त्तते ॥ १०९ ॥ संसारमूलभूता सा माया मे द्विजपुं-
गव ॥ शक्यते सा यदि त्यक्तुं प्रसादेन मम प्रभो ॥ तदा
तरति संसारं नाना दुःखमयं चलम् ॥ ११० ॥ अतः परं
महाभाग मे माया सा दुरत्यया ॥ व्यापयिष्यति त्वां नैव यथा
संसृज्यते जगत् ॥ १११ ॥ इदं च परमं स्थानं संसारातपनाश-
नम् ॥ माया ते दर्शिता यद्र ततो मायाभिधन्त्विदम् ॥ ११२ ॥
तीर्थं पापवनाग्निर्वै सद्यः शुद्धिकरं स्मृतम् ॥ ये नराः पिंडदानं

चरित्रका अवलोकन कियाहै ॥ १०५ ॥ तुम्हैं अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि—यह जगत् सब माया रूपीहै, और सब कालमें प्रपंचकी रचना करना मायाका स्वभावही है ॥१०६॥ जो अपने नहीं हैं ऐसे शरीर आदिमें भी जो आत्मबुद्धिमान रक्खीहै (यह माया जनित अज्ञान है) और उसी मायाने चराचर जगत्को मोहित कररक्खाहै ॥ १०७ ॥ परमात्माका जन्म मरण कदापि नहीं होता और न उसे कभी किसी प्रकारकी पीडाही होतीहै, उसकी वृद्धि और ह्रासभी नही होते, अथ च बाल्य और युवा अवस्थाभी नहीं होती ॥ १०८ ॥ क्यों कि परमात्मा-नित्यहै इस हेतु उसको कभी वृद्ध भावकी भी प्राप्ति नहीं होती, किन्तु यह सब कुछ हमारी चेष्टाके प्रभावहीसे प्रवृत्त होताहै ॥ १०९ ॥ हे द्विजराज ! वोही हमारी माया संसारकी मूल कारणहै, यदि हमारी कृपासे कोई व्यक्ति उस मायाको छोड सकै तो अनेक दुःखोंसे व्याप्त एवं चल (अर्थात्—नाशवान्) इस संसारसे पार पा सक्ता है ॥ ११० ॥ हे महाभाग ! अब इसके अनन्तर हमारी मोहिनी माया जो कि संपूर्ण संसारको रचतीहै, तुम्हैं नहीं व्यापैगी ॥ १११ ॥ एवम् यह परमस्थानभी सांसारिक सन्तापोंका विनाश करनेवाला होगा, चूं कि, हमने तुम्है अपनी माया यहां दिखाई हैं अतएव इसका भी नाम मायाक्षेत्र होगा॥ ११२ ॥ यह तीर्थ पापरूप

हि करिष्यंति महाशयाः ॥ तेषां गयाश्राद्धशतैः किं कर्त्तव्यं कृतैस्तथा ॥११३॥ दानमत्र कुरुक्षेत्रवृद्धितोऽष्टगुणं तथा॥ मायाकुंडे तथा स्नानं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ११४ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्॥ सर्वं कोटिस्तथा कोटी भविष्यंति न संशयः ॥ ११५ ॥ मायाकुंडमिदं मायाक्षेत्रे श्रेष्ठ-तमं स्मृतम् ॥११६॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युदीर्य्य स भगवान् महाविष्णुर्महामते ॥ अंतर्द्दधौ ब्राह्मणस्य पश्यतः सोमशर्म्मणः॥ ॥ ११७ ॥ आश्चर्य्यं परमं लेभे सोमशर्मा द्विजोत्तमः ॥ तत्रैव संस्थितो विप्र दृष्टवान्मुनिपुंगवान् ॥११८॥ स्नातुं समागतास्ते चापृच्छंस्तं महदाशयाः ॥ किं कृता शीघ्रता विप्र मज्जने चाघ-मर्षणे ॥ ११९ ॥ इति तेषां च वचनं श्रुत्वा मायाबलं च तत् ॥ न मुमोह महाभाग कृपया जगदीशितुः ॥ १२० ॥ सोऽपि कालेन केनापि सायुज्यं प्राप्तवान्परम् ॥ इति ते कथितं विप्र मायातीर्थस्य वैभवम् ॥ श्रुत्वा यत्सर्वमायाभ्यो लिप्यते न

अग्निको शीघ्रही शान्त करनेवालाहै, और जो महाशय व्यक्ति गण इस स्थानमें पिण्ड दान करेंगे, उन्हें फिर सैकडों गयाश्राद्ध करनेसेभी कुछ प्रयोजन नहीं हैं ॥ ११३ ॥ कुरुक्षेत्रमें दान करनेसे जो कुछ फल उपलब्ध होताहै उससे आठगुणा अधिक इस स्थानमें होताहै, एवम् माया कुण्डमें स्नान करनेसे कोटिगुण फल अधिक होताहै ॥ ११४ ॥ स्नान, दान, जप, होम स्वाध्याय (वेदपाठ), और पितृनिमित्त तर्पण इनमेंसे जो कुछ भी यहां किया जाय सभी करोड गुणा अधिक फल देनेवाला होताहैं ॥ ११५ ॥ मायाक्षेत्रमें मायाकुण्ड और भी श्रेष्ठकीर्त्तन किया गयाहै ॥ ११६ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महामतिमान् ! इस प्रकार कहनेके अनन्तर श्रीविष्णु भगवान् सोमशर्मा ब्राह्मणके देखते २ ही अन्तर्द्धान होगये ॥ ११७ ॥ तब तो द्विजराज सोमशर्माको अधिक आश्चर्य हुआ, और वहां बैठे २ ही उत्तमोत्तम मुनियोंका उसने अवलोकन किया ॥ ११८ ॥ वे महाशय स्नान करनेके लिये आयेथे; सो इससे पूछने लगे, कि—हे विप्र ! तुमने स्नान और अघमर्षण कर्ममें इतनी शीघ्रता क्यों करी ॥ ११९ ॥ उनके ये वाक्य सुन मायाके बलसे वह ब्राह्मण जगदीश्वरकी मायावशात् मोहित न हुआ ॥ १२० ॥ अथ च कुछ कालके पश्चात् उसने भगवान्की सायुज्य प्राप्तकरी, हे विप्र ! इस प्रकार मायाक्षेत्रका

हि मायया ॥१२१॥ इदं स्थानं परं गोप्यं भवमुक्तिकरं ध्रुवम् ॥ ॥१२२॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके सोमशर्म्मोपाख्यानं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ११८॥

माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया है ॥ १२१ ॥ यह स्थान संसारसे मुक्तिलाभ करानेवालाहै, अतएव इसे अतिशय (यत्नपूर्वक) गुप्त रखना चाहिये ॥ १२२ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ११९.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं परमपावनम् ॥ तस्मादूर्द्ध्वप्रदेशे हि धनुषां पंचविंशतौ ॥१॥ कौमुदं नाम तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ यत्र स्नात्वा नरो विप्र सोमलोके महीयते ॥ २ ॥ कार्त्तिके च तथा राधे माघे मार्गशिरे तथा ॥ स्नानं कुर्वंति येप्यत्र ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ॥ प्राप्नुवंति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ३ ॥ यदि कश्चिद्भाग्यवशात्प्राणांस्त्यजति तत्र वै ॥ पुमान्वा यदि वा षंढो नारी वा पापसंयुता ॥४॥ स याति परमाँल्लोकान्पुनरावृत्तिदुर्ल्लभाम् ॥ ५ ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि यथा तज्ज्ञायते परम् ॥ कुमुदस्य तथा गंधो लक्ष्यते मध्यरात्रके ॥ ६ ॥ अकस्माच्चंद्रिका तत्र दृश्यते

स्कन्दजी बोले—इसके अनन्तर अब हम एक अन्य परम पवित्र तीर्थका वर्णन करतेहैं, उसप्रदेशसे ऊपरकी ओर पचीस धनुषकी दूरीपर त्रिलोकीमें परमदुर्लभ कौमुदनाम तीर्थहै ॥ १ ॥ हे विप्र ! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करताहै ॥ २ ॥ कार्त्तिक, राध (चान्द्र वैशाखमास) माघ, मार्गशिर, इन महीनोंमें जो व्यक्ति ज्ञान अथवा अज्ञानसे वहां स्नान करते हैं, उन्हें ऐसे परमस्थानकी प्राप्ति होतीहै जहां जाकर फिर शोच करना नहीं होता ॥ ॥ ३ ॥ यदि कोई पुरुष, नपुंसक अथवा पापिनी नारी इनमेंसे कोईभी भाग्यवशात् वहां प्राणपरित्याग करे तो ॥ ४ ॥ उसे ऐसे परम (उत्तम) लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, जहां जायकर फिर लौटना दुर्लभहै ॥ ५ ॥ अब उसके चिह्नको वर्णन करते हैं, जिससे कि, उसका ठीक२ ज्ञान (पहिचान)

तीर्थराजके ॥ पुरा तत्र महाभाग चंद्रो वै तप्तवांस्तपः ॥ ७ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च महादेवमनुस्मरन् ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्संतुष्टो वृषभध्वजः ॥८॥ प्रादात्स्थानं ललाटे स्वे चंद्राय ध्रुवमुत्तमम् ॥ कौमुदस्य तु मासस्य राकायां यन्निशाकरः ॥ वरं च प्राप्तवान्रुद्रात्तीर्थं कौमुदकं ततः ॥ ९ ॥ तस्यैव दक्षिणे भागे शिवचंद्रेश्वराभिधः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नश्यंते पापकोटयः॥ ॥ १० ॥ चंद्रेश्वरं सकृद्दृष्ट्वा स्नात्वा वै कौमुदे ह्रदे ॥ पुष्कलां लभते सिद्धिं विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ११ ॥ अन्यश्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं शार्षपकं परम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण शुद्धो भवति मानवः ॥ १२ ॥ तस्माच्छरद्वये पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरासुराः ॥ वापयामासुरत्यर्थं शर्षपान्यज्ञहेतवे ॥ १३ ॥ यदा दक्षो महातेजा गंगाद्वारसमीपतः ॥ चकार विपुलं यज्ञं यत्र दग्धा सती पुरा ॥ १४ ॥ ततश्चेदं महातीर्थं नाम्ना शार्षपकं स्मृतम् ॥ यत्र स्नानान्नरो याति

होजाय, उसमेंसे रात्रिके मध्यमें कुमुद (बबूले) की सुगन्धि आतीहै ॥ ६ ॥ और उस तीर्थराजमें अकस्मात्ही चन्द्रिका (चांदनी) भी अवलोकित होतीहै, हे महाभाग ! इसी स्थानमें प्रथम चन्द्रमाने तपकियाथा ॥ ७ ॥ महादेवजीका स्मरण करते २ इस तपका आचरण दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त हुआथा, तब वृषभध्वजभगवान् महादेवजी उनसे प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ सुतराम् अपने मस्तकके ऊपर महादेवजीने चन्द्रमाको निश्चल निवास स्थान दिया । क्योंकि कौमुद (कार्तिक) मासकी अमावास्याके दिन चन्द्रमाको वरकी प्राप्ति हुईथी अतएव उक्ततीर्थका कौमुदनाम हुआ ॥ ९ ॥ उसीके दक्षिण भागमें शिवचन्द्रेश्वर नामका स्थानहै, उसके दर्शन करनेसे करोडों पाप विनष्ट होजातेहैं ॥१०॥ जो व्यक्ति एक वार भी चन्द्रेश्वर महादेवके दर्शन करता और कौमुद ह्रदमें स्नान करताहै, उसे विपुल सिद्धिका लाभ होताहै, और अन्तमें वह विष्णुलोकको चला जाताहै ॥ ११ ॥ अब हम शार्षपनाम वाले अन्यतीर्थका आपके प्रतिवर्णन करते हैं, उस तीर्थके दर्शन करनेसे मनुष्य शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥ उससे दो वाणकी दूरीपर अत्यन्त पवित्र और अतएव समस्त पापोंका विनाश करनेवाले स्थानमें ब्रह्मा विष्णु महेश और सब देवासुरोंने यज्ञके निमित्त बहुतसी सर्सोंको बोया था ॥ १३ ॥ (यह उस समयका वृत्तान्त हैं कि) जब महातेजस्वी दक्षप्रजापतिने हरिद्वारके समीप प्रभूत (उत्कृष्ट) यज्ञका अनुष्ठान किया और सती उसमें दग्ध होगईथी ॥ १४ ॥ इसी हेतुसे इस महातीर्थका शार्षपनामहै, इसमें स्नान करके मनुष्य पुण्य

लोकान्पुण्यान्सनातनान् ॥ १५ ॥ अथाऽत्र मुंचते प्राणान्महा-
पापैर्युतोऽपि वा ॥ संगच्छति परं स्थानं यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥
॥ १६ ॥ यदि भाग्यवशाद्विप्र वैशाखे स्नाति मानवः ॥ तस्य
पुण्यफलं वक्तुं कल्पेनापि न शक्यते ॥ १७ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पु-
ण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते तत्र स्नानमात्रेण
मानवः ॥ १८ ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि मध्याह्ने मृगरूपधृक्॥
समायाति रविः स्नातुं रविवारे विशेषतः ॥ १९ ॥ अन्यच्च ते
प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके महत् ॥ नाम्ना पूर्णमुखं ख्यातं देवा-
नामपि दुर्लभम् ॥ २० ॥ यत्र वै स्नानमात्रेण सोमलोकं स
गच्छति ॥ ज्ञेयं तत्रोष्णसलिलं शीते गंगाजले पुनः ॥ यस्य
दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१ ॥ सोमेश्वरं महालिंगं
जलमध्ये प्रवर्त्तते ॥ जलमध्येऽथ संपूज्य शिवलोके महीयते
॥ २२ ॥ शतवर्षसहस्राणि दिव्यभोगसमन्वितः ॥ ततस्तस्मा-
त्परिभ्रष्टो ब्राह्मणः शुद्धवंशजः ॥ जायते शिवभक्तश्च सर्व-

और सनातन (अक्षय) लोकोंको जाताहै ॥ १५ ॥ अथ च जो व्यक्ति यहां प्राणोंका परित्याग करताहै वह चाहे महापापोंसे युक्तहो तथापि उस परम स्थानको चला जाता है जहां ब्रह्मा आदि देवता निवास करतेहैं ॥ १६ ॥ हे विप्र ! यदि कोई मनुष्य भाग्यवशात् वैशाखमासमें इस तीर्थमें स्नान करै तो उसके पुण्यके फलका वर्णन करके एक कल्पमेंभी पार नहीं पाया जा सक्ता ॥ १७ ॥ समस्त तीर्थोंमें यात्रा करने और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो कुछ फल प्राप्तहोताहै, वही सब फल उक्त तीर्थमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्यको उपलब्ध होताहै ॥ १८ ॥ उसके चिह्नका वर्णन करतेहैं,—मध्याह्नसमय, विशेष कर रविवारके दिन सूर्य्यनारा-यण मृगका रूप धारण कर स्नानकरनेके लिये आतेहैं ॥ १९ ॥ कुब्जाम्रकहीमें पूर्णमुख नामका एक और बड़ातीर्थहै उसका वर्णन करतेहैं, उस तीर्थकी प्राप्ति देवताओंके लिये भी दुर्लभहै ॥२०॥ उसमें केवल स्नान मात्रही करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकको चला जाताहै, शीतल गंगाजलमेंभी उसका जल उष्णही प्रतीत होताहै, उसके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य सब पापोंसे विमुक्त होजाताहै ॥ २१ ॥ सोमेश्वर नाम महालिंग जलके मध्यमें विराजमानहै, जलके मध्यहीमें उसकी पूजा-करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग करना होताहै ॥ २२ ॥ एवं सौ सहस्रवर्ष

शास्त्रविशारदः ॥ २३ ॥ पुनर्मुक्तिमवाप्नोति मृत्वा यत्तीर्थके परे ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तत्र कुरुते क्रियाम् ॥ सर्वा ह्यनंत-फलदास्तस्मात्पापं विवर्जयेत् ॥ २४ ॥ प्राणांस्त्यजति वा ह्यत्र व्रतेन व्रततत्परः ॥ विष्णुर्ददाति साक्षाद्वै दर्शनं चामृतं तथा ॥ ॥ २५ ॥ तस्माद्बाणप्रमाणे हि तीर्थकं करवीरकम् ॥ माघमासे सिते पक्षे द्वादश्यां करवीरकः ॥ पुष्पितो दृश्यते तत्र तस्मा-त्तज्जायते शुभम् ॥ २६ ॥ पितृभ्यश्चाम्बुदानं हि यैः कृतं शुभ-लिप्सुभिः ॥ कल्पकोटिसहस्रैस्तु विमानवरमाश्रितः ॥ मोदते भवने विष्णोः पितृभिः सह नारद ॥ २७ ॥ ततो गच्छेत्पुं-डरीके तीर्थे पापवनानले ॥ यत्र चक्रप्रमाणो वै चरते कमठो मुने ॥ २८ ॥ मध्याह्ने तत्र देवेशो ह्यायाति निजशुद्धये ॥ तत्र स्नात्वा महाभाग पुंडरीकफलं लभेत ॥ २९ ॥ यस्तत्र त्यजते प्राणान्स याति हरिमव्ययम् ॥ यस्तत्र कुरुते दानं त्रुटिमात्रं

पर्य्यन्त दिव्यभोगोंको उपभोग करनेको मिलताहै, तदनन्तर वहांसे च्युत होकर शुद्ध-वंश और ब्राह्मण योनिमें उत्पत्ति ग्रहणकर सब शास्त्र विशारद शिवभक्त होताहै ॥ २३ ॥ फिर पर-मतीर्थमें मरण प्राप्तकरनेसे मुक्तिका लाभ होताहै, शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन जो व्यक्ति वहां क्रिया करताहै, तो उसके समस्त पापविनष्ट हो जाते हैं, और वे सब क्रियाएँ उसके लिये अनन्त फल दायिनी होतीहैं ॥ २४ ॥ जो व्यक्ति व्रताचरणमें तत्परहो इसतीर्थमें प्राण परित्याग करताहै, उसे श्रीविष्णुभगवान् अमृत स्वरूप दर्शन देतेहैं (अथवा—अपने दर्शन देकर उसे अमरत्व प्रदान करते हैं) ॥ २५ ॥ उससे एक बाणकी दूरीपर एक करवीर नामकतीर्थ है, माघशुक्ल द्वादशीके दिन फूला हुआ करवीरका वृक्ष वहां अवलोकित होता है, तब शुभकी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ जो शुभाभिलाषी मनुष्य अपने पितरोंके लिये जल दान करते हैं, हे नारद ! वे पुरुष श्रेष्ठ विमानोंमें आरूढ हो सहस्रों करोड कल्पपर्य्यन्त अपने पितरों सहित विष्णु मन्दिरमें आनन्दका उपभोग करते हैं ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् फिर पुण्डरीक तीर्थमें यात्रा करनी कर्त्तव्य हैं, हे मुनिराज ! वहां चक्रप्रमाणका कमठ विचरता है ॥ २८ ॥ मध्याह्न समय देवराज अपनी शुद्धिके तईं स्नान करनेके लिये आते हैं, हे महाभाग । उसमें स्नान करनेसे पुण्डरीक (यज्ञ) फलकी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ जो प्राणी वहां प्राणोंका परित्याग करता है. उसे अविनाशी हरि भगवान् की प्राप्ति

हिरण्यकम् ॥ दशानां पुंडरीकानां यज्ञानां फलभाग्भवेत् ॥ ३० ॥ अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके स्थितम् ॥ पुंडरीकस्य तीर्थस्य वामभागे धनुःशतम् ॥ गुह्यमेतच्छुभं कुण्डं ज्ञायते नैव पापिना ॥ ३१ ॥ येन स्नातं च तीर्थेषु येन वै पूजनं हरेः ॥ कृतं तद्वै विजानाति तीर्थं परमपावनम् ॥ ३२ ॥ यत्राग्निः संस्तुतो देवैः पुरा प्रादुर्बभूव ह ॥ तस्मादिदं परं तीर्थमग्निसंज्ञां गतं शुभम् ॥ ३३ ॥ धन्यः स एव लोकेषु पुण्यात्मा मुनिपुंगव ॥ अग्नितीर्थं येन दृष्टं विष्णुसायुज्यदं परम् ॥ ३४ ॥ यदत्र क्रियते कर्म सर्वं तत्स्यादनंतकम् ॥ यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्याद्यकोटिभिः ॥ संयुक्तोऽपि नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्ये धन्यतां याति दर्शनाद्दर्शनार्थवित् ॥ अग्नितीर्थस्य संयोगो यावन्नो भवति द्विज ॥ तावत्कलिभयं विद्यात्स्पृष्टे पापक्षयो भवेत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

होतीहै । जो मनुष्य उक्त तीर्थमें किंचिन्मात्रभी सुवर्ण दान करताहै, उसे दश पुण्डरीक यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ कुब्जाम्रकही में स्थित हुए अन्यतीर्थका अब हम वर्णन करते हैं. पुण्डरीक तीर्थके वामभागमें सौ धनुषकी दूरीपर वह तीर्थ उपस्थित है, यह कुण्ड अत्यन्त गुप्त और शुभहै अतएव पापियोंको इसके दर्शन प्राप्त नहीं होते ॥ ३१ ॥ जिसने उस तीर्थमें स्नान और हरिपूजन कियाहै वह महात्मा इस परम पावन तीर्थको जानसक्ता है ॥ ३२ ॥ प्रथम इसी स्थानमें देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर अग्निदेव प्रगट हुएथे, अतएव इस शुभतीर्थने अग्निसंज्ञा ग्रहण करी है ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वर ! लोकमें उसी पुण्यात्मा व्यक्तिको धन्यहै कि, जिसने विष्णुभगवान्की सायुज्य पदवी प्रदान करनेवाले इस परम पवित्र अग्नितीर्थके दर्शन कियेहैं ॥ ३४ ॥ इस तीर्थमें जो २ कर्म किये जातेहैं, सब अनन्त होते हैं । इसमें केवल स्नानमात्र करनेसेही, ब्रह्महत्यादि करोडों पापोंसे युक्त हुआभी प्राणी निस्सन्देह उनसे मुक्त होजाता है ॥ ३५ ॥ इसके दर्शनके माहात्म्यको जाननेवाला व्यक्ति दर्शनमात्र करनेसे त्रिलोकीमें धन्यवादके योग्य होजाताहै । हे द्विजराज ! जबतक अग्नितीर्थका संयोग नहीं होता तभीतक कलियुग (के पापों) का भय समझना चाहिये उक्ततीर्थका स्पर्श होतेही पापोंका विनाश होजाताहै ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकोनविंशत्यधिकशततमोध्यायः ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२०.

॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ शृणु वत्स पुरावृत्तं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥
यथा वैश्वानरो देवः प्राप्तवाञ्छापमीशतः ॥ १ ॥ एकदा हिमशो-
भाढये कैलासे प्रमथावृते ॥ शिवश्च शिवया सार्द्धं क्रीडन्नास्ते
रसाप्लुतः ॥ २ ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्वटैः ॥ भ-
र्ज्जैर्भञ्जकरैश्चैव कुंकुमैश्चंपकद्रुमैः ॥ ३ ॥ घने नीहारसंयुक्ते
रजतेनेव संवृते ॥ तत्र स्वर्णमया वृक्षाः पक्षिणश्च हिरण्मयाः
॥ ४ ॥ नानाप्रसवशोभाढये धातुरागविभूषिते ॥ रमयामास
देवेशो गिरौ गिरिजया सह ॥ ५ ॥ वसंतश्च सदा तत्र
समग्रेणेन्दुना सह ॥ पुंस्कोकिलरुतैश्चैव तथा मधुरनिः
स्वनैः ॥ ६ ॥ पुष्पितानि वनान्यासन्विचेरुर्भ्रमरास्ततः ॥
एवं तस्मिन्वनोद्देशे क्रीडायां संस्थितौ शिवौ ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र दर्शनार्थमुमापतेः ॥ आजगाम सुनासीरस्त्रि-
दशौघसमन्वितः ॥ ८ ॥ यावद्गच्छति कैलाशे प्रणंतुं च सदा-

स्कंदजी बोले–हे पुत्र ! समस्तपापोंका विनाश करने और निखिल कामनाओंको पूर्ण करनेवाले प्राचीन इतिहासको श्रवण करो, यह वही आख्यान है कि, जैसे अग्निदेवको ईश्वरके सकाशसे शापकी प्राप्ति हुईथी ॥ १ ॥ बरफकी शोभासे व्याप्तहुए, जिसके ऊपर प्रमथगण आवृत हो रहे हैं, ऐसे कैलास पर्वतके ऊपर एक समय पार्वती सहित महादेवजी प्रेमरससे सिंचित हो क्रीडा कररहेथे ॥ २ ॥ शाल, तमाल, ताल, खजूर, पनस (बढल), वट (बड) भूर्ज, भञ्जकर, कुंकुम और चम्पकवृक्ष ॥ ३ ॥ इन सबके एकत्रित होजानेसे घना अन्धकार व्याप्त होरहा था, वहांके वृक्ष सुवर्णमय और पक्षीगणभी सुवर्णमयही होरहेथे ॥ ४ ॥ वहां अनेक प्रकारकी खानोंकी शोभा होरहीथी विविध धातुओंके राग (रंग) से वह पर्वत रंजित रँगीला होराहथा, उसी दिव्यगिरिके ऊपर महादेवजी गिरिजाके साथ रमण कररहे थे ॥५॥ पूर्णचन्द्रका प्रकाश और वसन्त ऋतु वहां निवास करतीथी, कोकिलाओंके मधुर शब्दोंका उच्चारण होरहा था ॥ ६ ॥ वन फूल-रहेथे, चारों ओर भ्रमर भ्रमण कर रहेथे, इस प्रकार उस वनविभागमें शिवपार्वती क्रीडामें उपस्थित होरहेथे ॥ ७ ॥ इसी बीच उमाकान्त महादेवजीके दर्शन करनेकी इच्छासे सुरराज इन्द्र देवसमाज सहित वहां आनकर उपस्थित हुआ ॥ ८ ॥ अथ च वह जभी सदाशिव महादेव-

शिवम् ॥ तावान्निवारितो नंदिगणेन प्रमथेशिना ॥ ९ ॥ एकांते संस्थितो देवः शिवया सहितः प्रभो॥न कालो दर्शनस्याथ गच्छध्वं त्रिदशेश्वराः ॥ १० ॥ इत्युक्तो नंदिना शक्रो जगादाग्निमितः स्थितम् ॥ त्वमग्ने सर्वभूतानामंतश्चरसि सर्वदा ॥ ११ ॥ त्वया तत्र प्रगंतव्यं विलीनेन मदाज्ञया ॥ सत्यं वा यदि वाऽसत्यं वदति प्रमथो ह्ययम् ॥ १२ ॥ शिवोंतः किं प्रकुरुते सर्वं विज्ञाय चेष्टितम् ॥ शीघ्रं त्वयात्र गंतव्यं मा विलंबं कुरु प्रभो ॥ १३ ॥ इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा वह्निः कालप्रचोदितः ॥ जगाम तत्र देशे हि यत्रास्ते भगवाञ्छिवः ॥१४॥ अग्नेर्विचेष्टितं ज्ञात्वा महादेवो दिवस्पतेः ॥ कारितं च तथा ज्ञात्वा शशापाग्निं त्वरान्वितः ॥ १५ ॥ यज्ञभागाश्च देवानां नाशमेष्यंति सत्वरम्॥अयमग्निश्च लोकाद्धि विनश्यति न संशयः ॥ १६ ॥ इतीरितं शिवस्याग्निर्ननाश क्षणतस्तदा ॥ इंद्रो वै दैवतैः सार्द्धं वेपमानो गृहं ययौ ॥ १७ ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात् ॥ निश्चे-

जीको प्रणाम करनेके लिये कैलास पर्वतपै जानेलगा, तभी प्रमथनाथ नन्दीगणने उसे निवारण करदिया ॥ ९ ॥ कहा कि–हे प्रभो ! पार्वती सहित महादेवजी एकान्तस्थानमें उपस्थित होरहेहैं, हे देवराज ! यह समय दर्शन करनेके लिये उपयुक्त नहीं है सुतराम् आप लौट जाइये ॥ १० ॥ जब नन्दीने इसप्रकार कहा, तब इन्द्र निकटवर्त्ती अग्निसे यौं बोले–हे अग्ने ! तुम सदैवही सब प्राणियोंके अन्तरमें विचरते हो॥११॥अतएव तुम हमारी आज्ञासे गुप्तभावपूर्वक वहां जाओ (और देखौ कि–) यह प्रमथ गण सत्य कहताहै अथवा असत्य ॥१२॥ महादेवजी भीतर क्या कर रहेहैं, इन सब चेष्टाओंको जानकर शीघ्रही तुम यहां चलेआना, हे प्रभो ! इसमें विलंब न करो ॥१३॥ कालप्रेरित अग्नि सुरराजकी आज्ञाको शिरपर धारणकर, जहां भगवान् शिव विराजमान थे, वहां गये ॥ १४ ॥ इन्द्रकी प्रेरणासे किये हुए अग्निके चेष्टाको जानकर महादेवजीने तत्कालही अग्निको शाप देदिया ॥ १५ ॥ देवताओंके यज्ञका भाग अभी विनष्ट होजायगा, अथच इस संसारसे अग्निकाभी अवश्यही नाश होजायगा ॥१६॥ महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर उसी क्षण अग्निका नाश होगया, और देवताओंसहित इन्द्र कंपायमान होते हुए अपने स्थानको चलेगये ॥ १७ ॥ उसी क्षणसे त्रिलोकी वेदपाठ और वषटकारके नादसे रहित होगई, और अग्निके विना सभप्राणी

ष्टाश्च तथा ह्यासन्प्राणिनो वह्निवर्जिताः ॥ १८ ॥ प्रलये यानि कर्माणि तान्यासन्वह्निसंक्षये ॥ उल्कापाताश्च शतशो पेतुर्वै धरणीतले ॥ १९ ॥ इंद्रोऽपि दैवतैः सार्द्धं ययौ क्षीरोदसागरे ॥ तत्र स्थितं रमानाथं ब्रह्मणा सहितस्तदा ॥ २० ॥ ब्रह्मापि तत्र गत्वा च विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ विनयावनतो भूत्वा वासवेन समन्वितः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते भगवन्विष्णो चराचरगत प्रभो ॥ रमापते रसाधीश कृतदैत्यविनाशन ॥२२॥ मुरारये नमस्तेऽस्तु नमो भक्तजनाश्रय ॥ नमस्ते सुरराजाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥ २३ ॥ ऋग्वेदाय नमस्तुभ्यं यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥ सामवेदाय देवाय नमोऽथर्वस्वरूपिणे ॥ २४ ॥ अग्निनाशेन सर्वेषां नाशो भवति निश्चितम् ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २५ ॥ विनंक्ष्यामो रमानाथ वयं सर्वे सवासवाः ॥ त्वयैवेदं कृतं पूर्वमकाले क्षयमेति च ॥ २६ ॥ रुद्रशापाग्निनिर्दग्धो नष्टोऽग्निर्भुवनत्रये ॥ यदा यदा महाविष्णो

उस समय निश्चेष्ट होगये ॥ १८ ॥ प्रलयके समय जो उत्पात होतेहैं वेही सब अग्निका क्षय होनेसेभी होने लगे, भूमण्डलके ऊपर सैकडों उल्कापात होनेलगे ॥ १९ ॥ तब तो इन्द्र देवताओंसहित ब्रह्माजीको साथ ले क्षीरसागरमें शयन करते रमापतिके निकट गये ॥ २० ॥ वहां जाय इन्द्रसहित ब्रह्माजी विनयावनत हो विष्णुभगवान्की स्तुति करनेके तईं उद्यत हुए ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे भगवन ! आप सबके स्वामी और चराचरके गति (शरणदाता) हैं आपही लक्ष्मीके पति और रसोंके अधीश्वर हैं, एवं च आपनेही दैत्योंका विनाश कियाहै हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ मुर नामक दैत्यका सत्यानाश करनेवाले आपही हैं आप अपने भक्त जनोंको आश्रय प्रदान करते हैं सुतराम्—आपको नमस्कार हैं. आप देवताओंके अधिपति हैं, आपके सहस्र नेत्रहै आपको हमारा नमस्कारहै ॥ २३ ॥ ऋग्, यजु, साम और अथर्व वेद स्वरूपभी आपही हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ २४ ॥ अग्निका विनाश होजानेके कारण सभीजीवोंका नाश हुआजाताहै और चराचर त्रिलोकीमेंसे वेद पाठ और वषट्कारका बिलकुल लोप होगया ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मी कान्त ! इन्द्रको आदिले हम सभी देवतागण विनाशको प्राप्त होजायँगे, आपकी निर्माण करीहुई यह सृष्टि कुसमयही नाशको प्राप्त हुई जाती है ॥ २६ ॥ महादेवजीके शापसे नष्ट हुये अग्नि त्रिलोकीहीमेंसे लुप्त होगये । हे महाविष्णो ! सृष्टि जब कभी

ग्लानिर्भवति संसृतौ ॥ तदा त्वयैव सर्वं हि कृतं शत्रुविनाशनम् ॥ २७ ॥ पुनर्यथा वीतिहोत्रो जायते च तथा कुरु ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कुब्जाम्रक्षेत्र उत्तमे ॥ तत्राहं च शिवश्चापि संस्थितौ चतुरानन ॥ २९ ॥ तत्र ह्याराधयिष्यामो भगवंतं महेश्वरम् ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र पिनाकी त्रिदशेश्वराः ॥ ३० ॥ स्कंद उवाच ॥ इति कृत्वा मतिं तां वै ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ गताः कुब्जाम्रके क्षेत्रे शिवं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रतिष्ठितानीशरमार्य्यवृत्तिः कृतिप्रवृत्ते नवमालतीभे ॥ वृंदारवंद्याखिलमूर्त्तकंदे नंदीशवन्दीभवचन्द्रचूडे ॥३२॥ अधीश्वरेसागरकालकूटकंठेप्रचंडापरवारहृद्ये ॥ विद्यानवद्येमितवैद्यविद्ये सिद्धे प्रसिद्धे विधुबुद्धिशुद्धे ॥ ॥ ३३ ॥ भावः स्यान्नो भीतिभाजोंशभाजो भूयः स्यामः श्वेतभूभृद्वरेशात् ॥ केशावासेनेननीतांशरूपाद्भूतेशोभूभीमभूपांतराजा ॥ ३४ ॥ स्फुरद्विधुदलादिकं कलितकालिसंमालिकं सुनेत्र-

दुःखको प्राप्ति होती हैं, तब २ आपही शत्रुओंका विनाश करतेहैं ॥ २७ ॥ हे नाथ ! अब ऐसा उपाय करिये, जिससे अग्निका फिर प्रादुर्भाव होजाय ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे देवगण ! तुम सबही उत्तम कुब्जाम्रक क्षेत्रमें जाओ, हे चतुर्मुख ब्रह्माजी ! वहां मैं और महादेवजी दोनोंही स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ सुतराम् हमसबही वहां चलकर महेश्वरकी आराधना करेंगे हे देवताओ ! वहां महादेवजी नित्यही उपस्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ स्कन्दजी बोले—ब्रह्माआदि देवता ऐसी अनुमति करके कुब्जाम्रकक्षेत्रमें गये और वहां महादेवजीकी स्तुति करनेके तईं उद्यत होगये॥ ३१ ॥ देवता बोले—नवीन मालतीके पुष्पकी सदृश जिनकी आभाहै, जिनकी मूर्त्तिको सभी देवता प्रणाम करते हैं. नन्दीश्वरके द्वारा जिनकी वन्दना की जाती हैं ऐसे चन्द्रचूड महादेवजी में हमारी वृत्ति प्रतिष्ठितहै ॥ ३२ ॥ सागर मथन जनित कालकूट विष जिनके कंठमें विराजमान है, जिनका प्रभाव अतिशय प्रचंडहै, जिनकी विद्या अर्थात् अतिशुद्ध है, जो स्वयं सिद्ध अतएव प्रसिद्धहैं और जिनका विचार निर्मलहै (ऐसे महादेवजीमें हमारी वृत्ति प्रतिष्ठित है) ॥ ३३ ॥ हे स्वामिन् ! अब गिरिनाथ (आप) से देवताओंको अन्य भय न हो, आप सब पापोंका विनाश करनेवाले और भयानक राजाओंका विनाश करनेवाले राजा (अर्थात् उनके शासन कर्त्ता) हो ॥ ३४ ॥ जिनके मस्तकपर चन्द्रमा प्रदीप्तहै, जिनके कंठमें कालिमा बिराजमानहै, जिनके नेत्र

वनमंजरीप्रभवभूरिगंगास्पदम् ॥ वमद्विषपरंपराभयकरा हि भूषाधरं धराधरसुतापरं परमहंभजामो वयम् ॥ ३५ ॥ प्रपन्नपरमापहं वृजिनदोहमोहापहं जलौघवरधीप्रदंसुरवरंधियार्थप्रदम् ॥ जरामरणकालिनं भवबलाज्ञसंशालिनंगलेवकलितकालिकंभुवनपालकंघालकम् ॥ ३६ ॥ भजेम गजचर्म्मणा प्रकटशुद्धतत्कर्म्मणा सुशोभितकटोत्कटं नटितभूरिचंचज्जटम् ॥ चराचरपरंपराहरणधीरमंदासुरासुरेशमृतिकारकंजितमनोजकंतारकम् ॥ ३७ ॥ श्रयेमनवभावनप्रखरचंडवद्याहतप्रकीर्णमणिमंजरीमुकुटकूटभूतावृतम् ॥ महेशभवनं वनं परमुदा पुनर्भावितंविरोधिविविधार्थदं विबुधवंद्य पादे नताः ॥ ३८ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति देवैस्तुतो देवो भगवान्पार्वतीपतिः ॥ आविर्बभूव तरसा वृषस्थश्चन्द्रशेखरः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं देवान्ब्रह्मादीञ्जातवेदसम् ॥ इच्छतो भक्तिनम्रांस्तान्मेघगंभीरनिःस्वनः ॥ ४० ॥ ईश्वर उवाच ॥

सुन्दरहैं, जिनके मस्तकपर वनमंजरीकी माला और गंगाजी विराजमानहैं, विषम विषैली ज्वालाको उगलतेहुए विषधर सर्पोंका जिन्होंने आभूषण धारण कियाहै, ऐसे पार्वतीपति परमहंस महादेवजीको हम भजतेहैं ॥ ३५ ॥ जो महादेवजी अपने शरणागतोंके पापोंका विनाश करतेहैं, जो भक्तजनोंके अज्ञानको दूरकर उन्हें आनन्द प्रदान करतेहैं, जो शुभबुद्धि और धन देतेहैं, जो जरा और मरणके लियेभी कालस्वरूप हैं, जो सांसारिक अखिल भयोंका विनाश करतेहैं,जिनके भयोंका गलेमें कालकूटकी कालिमा विराजमानहै,जो भुवनोंके संचालक और पालन करतेहैं ॥३६॥ जिन्होंने गजचर्मको परिधान कियाहै, और उसीके द्वारा जिनके शुभकर्म प्रकटहैं, जटाओंके चलायमान होनेसे जो शोभायमान हैं जो चराचरके अधिनायक हैं, जो दैत्योंका विनाश करनेवाले हैं, और जिन्होंने कामदेव एवम् तारकासुरका वध कियाहै उन्हीं महादेवजीको हम भजतेहैं ॥ ॥ ३७ ॥ जिनके मुकुटकी मणियोंकी आभा प्रचंड सूर्य्य किरणोंकी समानहैं, जो स्वयं महेश होनेके कारण विविध प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करतेहैं अथ च देवगण जिनकी वन्दना करतेहैं, हम लोग उन्हीकी शरणमें आयकर चरणोंमें आनत हुएहैं ॥ ३८ ॥ स्कन्दजी बोले—जब देवताओंने पार्वतीपति महादेवजीकी इस प्रकार स्तुति करी, तब चन्द्रशेखर भगवान् वृषारूढ हो प्रादुर्भूत हुए ॥३९॥ अग्निप्राप्तिके लई प्रार्थना करतेहुए अतएव भक्तिभावपूर्वक जिनकी आत्मा नम्र होगईहै ऐसे ब्रह्मा आदि देवताओंसे मेघनिर्घोषकी तुल्य गंभीरवाणी करके यों बोले ॥ ४० ॥ महादेवजीने कहा

भो भो देवगणाः सर्वे यदर्थपरिचिंतया ॥ समागताः स्तुतोऽहं च संतुष्टः प्रवदामि वः ॥ ४१ ॥ मन्नेत्रप्रभवेनाशु वह्निना कुरुत क्रतुम् ॥ आप्यायध्वं तथा भूता नयध्वं ददतो मम ॥ ४२ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा सहसा भीमो नेत्रज्वालां भयानकाम् ॥ मंदोदीनान्महाभाग लेलिहानां त्रिलोककम् ॥ ४३॥ तां ज्वालां शिवनेत्रोत्थां दृष्ट्वा त्रस्ताः सुरासुराः ॥ प्रसादयामासुरपि स्तोत्रेणानतमस्तकाः ॥ ४४ ॥ देवा ऊचुः ॥ अग्निर्वैश्वानरो वह्निः कृष्णवर्त्मा भयानकः ॥ प्रभवो विभवश्चैव वीतिहोत्रस्तनूनपात् ॥४५॥भव्यो भीमो भीमनेत्रसमुत्थो देहसंस्थितः॥त्रैलोक्यदीपको भानुः स्वर्भानुः सर्वगस्तथा ॥ ४६ ॥ चित्रभानुः शीतहंता शीतसंस्थः कृपाकरः ॥ धेनुको वडबाजन्मा जाठरो जठरस्थितः ॥ ४७ ॥ यज्ञनेता यज्ञभोक्ता भक्तगम्यो लयंकरः ॥ कूपीटयोनिः शोचिष्माञ्ज्वलनोजातरूपदः ॥ ४८ ॥ जातवेदा वेदसंस्थो ह्याश्रयासो महाप्रभुः ॥ दानवारिर्ज्वलत्केशो मदनो दीनवत्सलः ॥ ४९ ॥ स्कंद उवाच ॥ अग्नेरेतानि नामानि यः

हे-देवगण ! जिस अर्थकी चिन्ता करके तुम यहाँ आये और हमारी स्तुति करनेके तई प्रवृत्त हुए हो, सन्तुष्ट होकर मैं उसी अर्थको तुम्हारेप्रति वर्णन करताहूं ॥ ४१ ॥ हमारे नेत्रमेंसे प्रादुर्भूत हुई अग्निसे तुम लोग यज्ञोंका आचरण करो, और हमारे सकाशसे उस अग्निको लेकर सब प्राणियोंको देकर उन्हेभी सन्तुष्ट करो ॥ ४२ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महाभाग ! यों कहकर बिकट अतएव भयउत्पादन करनेवाली एवं जो त्रिलोकीको अवलेहन करनेको सशक्तहै नेत्र समुद्भूत ऐसे अग्निको (महादेवजीने प्रदान किया) ॥ ४३ ॥ शिवनेत्र जनित उस अग्निज्वालाका अवलोकन करके देवता और असुर सभी भयभीत होगये, और मस्तक नवाय स्तोत्रोंके द्वारा (अग्नि) स्तुति करनेको प्रवृत्त हुए ॥४४॥ देवता बोले—अग्नि, वैश्वानर, वह्नि, कृष्णवर्त्मा. भयानक, प्रभव, विभव, वीतिहोत्र, तनूनपात् ॥ ४५ ॥ भव्य, भीत, भीमनेत्रसमुत्थ, देहसंस्थित, त्रैलोक्यदीपक, भानु, स्वर्भानु, सर्वग ॥ ४६ ॥ चित्रभानु, शीतहन्ता, शीतसंस्थ, कृपाकर, धेनुक, वडवाजन्मा, जाठर, जठरास्थित ॥ ४७ ॥ यज्ञनेता, यज्ञभोक्ता, भक्तगम्य, लयंकर, कूपीटयोनी, शोचिष्मान् , जातरूपद ॥४८॥ जातवेद, वेदसंस्थ, ,आश्रयास, महाप्रभु, दानवारि, ज्वलत्केश, सदन, ज्वलन, दीनवत्सल ॥ ४९ ॥ स्कन्दजी बोले—जो मनुष्य नियमपूर्वक अग्निके इन नामोंका पाठ करताहै,

पठेत्प्रयतो नरः ॥ सर्वसिद्धिमवाप्नोति शतयज्ञफलं लभेत् ॥ ९० ॥ मंदाग्नियों नरो विप्र सुभक्त्या प्रतिपत्तिथौ ॥ नामामृतं पिबेन्नित्यं त्रिवारं नियतः शुचिः ॥ ९१ ॥ मंदाग्निस्तस्य नश्येद्वैसर्वरोगक्षस्तथा ॥ धन्यो भवति लोकेषु पूतात्मा नात्र संशयः ॥ ९२ ॥ स्तूयमानस्ततो वह्निः शांतात्मा ह्यभवत्क्षणात् ॥ ततो देवा महेशाद्यास्तीर्थमेतत्समाश्रिताः ॥ ९३ ॥ततो मुने शुभं तीर्थमग्निसंज्ञं स्मृतं त्विदम् ॥यत्र स्नात्वा शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति च परं पदम् ॥ ९४॥ तस्यैवमभिधानं तु कृत्वा देवाः सवासवाः॥प्राप्याग्निं शिवतो विप्र यथा स्थानं ययुस्ततः॥९५॥ इति ते कथिता वह्नितीर्थोत्पत्तिः शुभंकरी॥यां श्रुत्वापि नरो याति पूतात्मा स्वर्गलोककम्॥९६॥ आषाढ्यां चैव द्वादश्यां कार्त्तिक्यां च विशेषतः॥ तथा मार्गशिरे मासि द्वादश्यां दर्शकेऽपि वा॥९७॥ यः करोत्यग्निपूजां वै स्नानं दानं जपं तथा ॥ स याति परमाँल्लोकान्पुनरावृत्तिदुर्ल्लभान् ॥ ९८ ॥ चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि

उसे समस्त सिद्धियोंका लाभ और सौ यज्ञके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९० ॥ जिस मनुष्यको मन्दाग्निका रोग हो उसे चाहिये कि, प्रतिपदाके दिन भोजन करनेके अनन्तर नियमपूर्वक पवित्र हो तीनवार नामामृतका पान करै तौ ॥ ९१ ॥ उसकी मन्दाग्नि नष्ट होकर अन्य सब रोगोंकाभी विनाश हो जाताहै, और त्रिलोकीमें निस्सन्देह उसी पुण्यात्माको धन्यहै ॥ ९२ ॥ जब अग्निकी इस प्रकार स्तुति करी तौ उसकी आत्मा क्षणभरहीमें शान्तहोगई, तभीसे महादेवजी आदि सब-देवता इस तीर्थका आश्रय लेकर निवास करने लगे ॥ ९३ ॥ हे मुनिराज! तभीसे इस शुभतीर्थकी अग्नितीर्थ संज्ञा हुईहै इसमें स्नान करनेसे शुभलोकों और परमपदकी प्राप्ति होतीहै॥९४॥ तब इन्द्रादि सबदेवता उस तीर्थका नामकरण करके, और महादेवजीके सकाशसे अग्नि प्राप्तकर अपने २ स्थानको चलेगये ॥ ९५ ॥ इस प्रकार हमने अग्नितीर्थकी शुभंकरी उत्पत्ति तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै, इसका श्रवण करनेसे पुण्यात्माओंको स्वर्गलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ९६ ॥ आषाढकी पूर्णिमा द्वादशी अथवा विशेषकर कार्तिकी पूर्णिमाको, यद्वा मार्गशीर्ष (अगहन) मासमें द्वादशीके दिन ॥ ९७ ॥ जो मनुष्य अग्निकी पूजा करताहै, स्नान, दान, तथा जप करता है उसे उन परमलोकोंकी प्राप्ति होतीहै, जहांसे फिर लौटना दुर्लभहै ॥ ९८ ॥ अब उसके चिह्नका वर्णन

येन तज्जायते शुभम् ॥ उष्णं भवति हेमंते ह्यष्टधारं महामते ॥ ५९ ॥ गंगा भवति तत्रोष्णा ग्रीष्मे शीताऽतिमात्रतः॥ यस्तत्र मुंचते प्राणान्दिव्याँल्लोकान्सगच्छति ॥६०॥ कोटिवर्षसहस्राणि विमानवरमास्थितः ॥ अप्सरोगणसंयुक्तो भोगभाग्भवति ध्रुवम् ॥६१॥ भुक्त्वा भोगं पुनर्मर्त्ये राजा भवति धार्मिकः॥ पुत्रपौत्रैः परिवृतः शत्रुपक्षविवर्जितः॥ ६२ ॥ संशास्ति पृथिवीमेतां ससागरवनावृताम् ॥ अंते तद्वैष्णवं धाम संप्राप्नोति न संशयः ॥ ६३ ॥ एतदेव परं क्षेत्रं तीर्थं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ तरंति मानुषा यस्माद्घोरं संसारसागरम् ॥ ६४ ॥ इति श्री स्कांदे केदारखंडे कुब्जाम्रकेऽग्नितीर्थकथनं नाम विंशत्यधिक शततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

...रताहूं जिससे कि, उसका ठीक२ ज्ञान होगा हे महामतिमान् ! हेमन्तऋतुमें वह तीर्थ आठधारा ...मिंसे उष्ण जल बहाने लगता है ॥ ५९ ॥ और गंगाजीका जलभी उष्णही होजाताहै, एवं ग्रीष्म ...तुमें उष्ण होताहै, जो व्यक्ति वहां प्राण परित्याग करताहै वह दिव्यलोकोंको चलाजाताहै॥६०॥ ... विमानमें आरूढ हो सहस्रकरोड वर्षपर्यन्त अप्सरागण सहित अवश्यही भोगोंका उपभोग ...ता है॥ ६१ ॥ भोगोंको भोग चुकनेके अनन्तर वह पुरुष मर्त्यलोकमें धार्मिक राजा होता है, ...के बहुतसे पुत्र पौत्र होते हैं एवम् शत्रु कोई नहीं होता ॥६२॥ अथ च वह व्यक्ति सागरपर्य्य- ...काननसहित भूमिका शासन करताहै, अन्तमें निःसन्देहही उसे विष्णुभगवान्के परमपदकी ...ति होतीहै ॥ ६३ ॥ इसी परमक्षेत्रको पुण्यतम तीर्थ कहा गयाहै, कारण कि, इसीके आधारसे ...ष्य घोर संसारसागरसे तरते हैं ॥ ६४ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२१.

॥ स्कंद उवाच ॥ अन्यतीर्थं शृणु प्राज्ञ वायव्यं तीर्थमुत्तमम्॥ कुब्जाम्रके महाभाग सर्वपापभयापहम् ॥ १ ॥ यत्र वायुस्त-

स्कन्दजी बोले—हे प्राज्ञ ! अब वायव्य नाम अन्य उत्तम तीर्थको सुनो, हे महाभाग ! भय- ...शक वह तीर्थ कुब्जाम्रकहींमें विद्यमान है ॥ १ ॥ उसी स्थानमें पांचसहस्रवर्ष पर्यन्त तपका

पस्तेपे पंचवर्षसहस्रकम् ॥ प्राप्तवाँश्च तथा तत्र दिक्पालत्वं महायशाः ॥ २ ॥ अस्मिन्कृतोदको यस्तु पुण्यात्मा पितृतारकः ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३ ॥ यः करोति तथा स्नानं वाजपेयशतस्य च ॥ फलं प्राप्नोति मनुजः स्वल्पमेतद्वदामि ते ॥ ४ ॥ यस्तत्र त्यजते प्राणान्वायव्ये विजितेंद्रियः॥ न स भूयो महाराज जायते नरलोकके ॥ ५ ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि वायव्यस्य महामते ॥ तत्राश्वत्थस्य पत्राणि चलंते वायुनेरिताः ॥ ६ ॥ स्वनंते च तथा तत्र द्वादश्यां दृश्यते मुने ॥ अन्यत्तत्रैव विख्यातं वासवं तीर्थमुत्तमम् ॥ ७ ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥ पदानि तत्र दृश्यंते हस्तिनो वासवस्य तु ॥ ८ ॥ नित्यमायाति तत्रैव वासवो वसुसंवृतः ॥ तत्र स्नानेन संयाति पुरुहूतपुरं शुभम् ॥ ९ ॥ चंद्रिकेति समाख्याता नदी परमपाविनी ॥ तत्संगमे नरः स्नात्वा चंद्रलोके महीयते ॥ १० ॥ तत्रैव गणपो नाम भैरवो भीषणा-

आचरण कर महायशस्वी वायुको दिक्पालत्वका लाभ हुआथा ॥२॥ इस क्षेत्रमें जो पुण्यात्मा जलदान करता है, उसके पितरोंका उद्धार हो जाता है, एवं वह व्यक्ति स्वयम् दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोकमें ऐश्वर्य्य उपभोग करता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष वहां स्नानकरतां है उसें वाजपेय यज्ञकरनेके फलकी प्राप्ति होती है ॥४॥ जो पुरुष इन्द्रियनिग्रह पूर्वक उक्त तीर्थमें प्राण परित्याग करता है, हे महाभाग ! नरलोकमें फिर उसका जन्म नहीं होता ॥ ५ ॥ हे महामते ! अब मैं वायव्य क्षेत्रके चिह्नको वर्णन करताहूं, वहां वायुसे प्रेरणा किये जानेपर अश्वत्थके पत्र चलते हैं ॥ ६ ॥ तथा शब्दकरते हैं यह सब द्वादशीके दिन अवलोकित होता है । अथ च वहां ही एक वासवतीर्थ और विख्यात है ॥ ७ ॥ अब उसकेभी चिह्नका वर्णन करता हूं जिससे उसशुभ (उत्तम) तीर्थका बोध होजाय, वहां इन्द्रके हाथीके पैरोंके चिह्न अवलोकित होते हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि धनसमन्वित इन्द्र वहां नित्यही आते हैं, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य इन्द्रके शुभलोकको चलाजाता है ॥ ९ ॥ वहां चन्द्रिका नामकी परमपवित्र एक नदी है, उस नदीके संगममें मनुष्य स्नान कर चन्द्रलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग करताहै ॥ १० ॥ वहांही भयानक आकृतिवाले भैरवजी विरा-

कृतिः ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिन्दूराभा तु मृत्तिका ॥ ११ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम् ॥ १२ ॥ अन्यच्च तीर्थप्रवरं वारुणं वरुणास्पदम् ॥ वरुणेन तपस्तप्तं शतं वै दिव्यवर्षकम् ॥ १३ ॥ पाशं प्राप महादेवात्तीर्थेऽस्मिन्वारुणे वरे ॥ उपोष्य दश रात्राणि यस्त्यजेदत्र देहकम् ॥ १४ ॥ स याति रुद्रसदनं यावदाचन्द्रतारकम्॥ स यातो रुद्रसदनं पुनर्जायेत भूमिपः ॥ १५ ॥ यत्कर्म क्रियते तत्र तत्सर्वं शतसंख्यकम् ॥ १६ ॥ अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि वाराहं तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्र विष्णुः क्रोडरूपी शिलारूपेण संस्थितः ॥ १७ ॥ तत्र वै स्नानदानाद्यैर्लभते परमं पदम् ॥ ततो वै उत्तरे भागे धनुषां च चतुःशते ॥ सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं विष्णुसलोकदम् ॥ १८ ॥ अश्वमेधत्रयस्यात्र फलं वै स्नानमात्रतः ॥ कुब्जाम्रके परं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १९ ॥ भाग्येन यस्त्यजेत्प्राणाञ्जन्म-

समान हैं, वहांके चिह्नका वर्णन करते हैं, वहांकी मृत्तिकाका वर्ण सिन्दूरकी आभाकी समान है ॥ ११ ॥ उस मृत्तिकाके केवल दर्शन मात्रही करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है ॥१२॥ वारुण नामका वरुणसे अधिष्ठित एक और भी तीर्थ वहां है, उसीमें वरुणने दिव्यसहस्रबर्ष पर्यन्त तपका आचारण कियाथा ॥ १३ ॥ उसी श्रेष्ठ वारूणतीर्थमें महादेवजीके सकाशसे उन्हें पाशकी प्राप्ति हुईथी । जो मनुष्य दशरात्रि पर्यन्त उपवास धारण पूर्वक उसतीर्थमें प्राणोंका परित्याग करता है ॥ १४ ॥ जब तक सूर्य्य चन्द्रमा हैं वह तबतक रुद्रलोकमें जाकर निवास करता है, फिर जब वह रुद्रलोकसे लौटता हैं तब राजाहोता है ॥ १५ ॥ उसतीर्थमें जो कुछभी कर्म किया जाता है वह सब सौ गुना अधिक होजाताहै ॥ १६ ॥ अब हम बाराह उत्तमतीर्थका वर्णन करते हैं, उस स्थानमें वाराहरूपी विष्णुभगवान् शिलारूपसे विराजमान् हैं ॥ १७ ॥ उसमें स्नान दान आदिकर्म करनेसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती हैं । उससे उत्तरकी ओर चारसौ धनुषकी दूरीपर एक सप्तसामुद्रनाम तीर्थ है, वह तीर्थ विष्णुलोककी प्राप्ति कराने वाला है ॥१८॥ उसमें केवल स्नानमात्र करनेहीसे तीन अश्वमेघ यज्ञोंके फलका लाभ होता है, यह पवित्रतीर्थ भी कुब्जाम्रकहीमें है और उसका प्राप्त होना त्रिलोकीमें दुर्लभ है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य भाग्यवशात् यहां प्राणोंका परित्याग करताहै, उसे फिर जन्ममरणका क्लेश भोगना नहीं होता (अर्थात्—उसकी

नाशादिवर्जितः ॥ २० ॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सप्तसामुद्रके महत् ॥ विमलं हि तथा गांगं दृश्यते चित्रवन्मुने ॥ २१ ॥ क्षीरवर्णं कदाचित्तु कदाचित्पीतवर्णकम् ॥ कदाचिद्दृश्यते रक्तं तथा मारकतप्रभम् ॥ २२ ॥ एतैर्नानाविधैश्चिह्नैर्ज्ञेयं तीर्थमिदं ध्रुवम् ॥ तत्र स्नानादिना विप्र लभ्यंते सर्वसिद्धयः ॥ २३ ॥ कुब्जाम्रकादुत्तरत ऋषिपर्वत उत्तमे ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वास्तत्र संति महामुने॥२४॥ नानाविधानि लिंगानि तत्र संतिं पराणि वै तस्योपत्यंधरायां हि गंगायाः पश्चिमे तटे ॥ २५ ॥ तपोवनं मुनीनां तु यत्र सौमित्रिरुत्तमः ॥ भ्रातराज्ये तथा रामे निहते दशकंधरे ॥ समाययौ तपस्तप्तुं लक्ष्मणो लक्ष्मणान्वितः ॥२६॥ तस्मात्स्थलादधोभागे बिलमस्ति महत्तरम् ॥ तत्र शेषः स्वयं नित्यं वसते नात्र संशयः ॥ २७ ॥ श्वेतवर्णः श्वेतबिन्दुः कृष्णनेत्रः प्रदृश्यते ॥ पुण्यात्मभिर्महाभाग यैर्गंतव्यं हरिक्षये॥ २८ ॥

मुक्ति होजातीहै) ॥ २० ॥ सप्तसामुद्र तीर्थमें जो उत्तम चिह्न हैं अब उनका वर्णन करते हैं,—हे मुने ! वहां निर्मल गंगाजल चित्रवत् अवलोकित होता है ॥ २१ ॥ उसका वर्ण कभी क्षीर (दूध) की समान, कभी पीला, कभी लाल और कभी मरकत मणिके समान दीखता हैं ॥ २२ ॥ उन्हीं विविध चिह्नोंके द्वारा उसतीर्थको पहिचानना चाहिये, हे विप्र ! उसमें स्नान आदि करनेसे सब सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ कुब्जाम्रकसे उत्तर की ओर उत्तम ऋषिपर्वतके ऊपर हे महामुने! सिद्धगन्धर्व और मुनिजन निवास करते हैं॥ २४ ॥ और वहां अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम लिंग विद्यमान हैं, उसकी तराईकी भूमिमें गंगाजीके पश्चिम तटपर ॥ २५ ॥ महर्षियोंकी तपोवन भूमिहै, जब दशवदन रावणको मारकर रामचन्द्रजीने अपने राज्यको अंगीकार किया था, तब शुभलक्षण सम्पन्न एवं अतिशय पराक्रमी लक्ष्मणजी उसी स्थानमें तपकरनेके लिये आये थे ॥ २६ ॥ उसी स्थलके नीचेकी ओर एक बडा बिल है, निःसन्देह शेषजी उसमें स्वयम् निवास करते हैं ॥ २७ ॥ उनका श्वेतवर्ण, श्वेतबिन्दु और कृष्णनेत्र अवलोकित होता है, किन्तु यह सब पुण्यात्मा महाभागोंहीको दीखता है ॥ २८ ॥

१--उपधिभ्यांत्यकान्निनित्यकनः कलोपआर्षः ।

नारद उवाच ॥ लक्ष्मणेन तपस्तप्तं किमर्थं तत्र तीर्थके ॥ किं प्राप्तं च फलं तेन शुद्धेन परमात्मना ॥ २९ ॥ किमर्थं तत्र वसते वासुकिः सर्पनायकः ॥ एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज ॥ ३० ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वृत्तांतं पापघ्नं सर्वकामदम्॥ श्रुत्वापि यन्महाभाग मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ३१ ॥ पुरा रामो महातेजाः पितुराज्ञां समाश्रितः ॥ सीतया सहितो भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ ३२ ॥ ययौ वै दंडकारण्ये नानामुनिगणान्विते ॥ पंचवट्यां महाभाग कृत्वा पर्णमयीं कुटीम्॥ कारयामास भगवन्निवासार्थं महामतिः ॥ ३३ ॥ तत्र वै वसतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः ॥ रावणस्य स्वसा तत्र नाम्ना शूर्पणखा ययौ॥३४॥ दृष्ट्वा तौ भ्रातरौ तत्र कंदर्पाविव रूपिणौ ॥ कामस्य वशमापन्ना चकमे तत्परिग्रहम् ॥ ३५ ॥ रामस्य सविधे गत्वा विकटांगी घटोदरी ॥ विहस्य वचनं प्रोचे रामं दशरथात्मजम् ॥ ३६ ॥ भो भोः पुरुषशार्दूल भुवने त्वत्समो न हि॥ आगच्छ त्वं मया सार्द्धं

नारदजी बोले—लक्ष्मणजीने उस तीर्थमें किस कारण तपका अनुष्ठान कियाथा और आत्मा अर्थात् अन्तःकरणके शुद्ध हो जानेपर उन्हें किसफलकी प्राप्ति हुई थी ॥ २९ ॥ अथ च सर्पराज वासुकिजी वहां किस निमित्त निवास करते हैं ? हे शिवकुमार ! यह सबकुछ संक्षेपतया हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ ३० ॥ स्कन्दजी बोले—हे नारदजी ! पापोंका विनाश करनेवाले और समस्त कामनाओंके पूर्ण कर्त्ता वृत्तान्तको सुनो, हे महाभाग ! उसका श्रवण करनेसे मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ३१ ॥ प्रथम महातेजस्वी रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञाको मानकर सीतापत्नी और लक्ष्मण भ्राताके साथ ॥ ३२ ॥ अनेक मुनियोंसे भरे पुरे दण्डक वनमें गये और हे महाभाग ! पंचवटीमें पर्णशाला बनाके महामति राम निवास करनेलगे ॥ ३३ ॥ विदितात्मा श्रीरामचन्द्रजी जिस समय वहां निवास कर रहेथे, तभी रावणकी बहिन शूर्पणखा नाम राक्षसी वहां आयी ॥ ३४ ॥ कामदेवकी समान सुन्दर रूपवाले दोनोभ्राता रामलक्ष्मणको देख शूर्पणखा कामदेवके वशीभूत हो उनके साथ विवाहकरनेकी अभिलाषा करनेलगी ॥ ३५ ॥ जिसका अंग विकट (कुडौल) और उदर घटकी समानहै ऐसी वह राक्षसी दशरथ राजकुमार रामचन्द्रके निकट जाय हँसकर उनसे यह वाक्य बोली ॥ ३६ ॥ हे नरशार्दूल ! संसारमें तुम्हारी सदृश (सुन्दर)

गिरीणां कंदरेषु च ॥ ३७ ॥ संगमेषु नदीनां च वनांतेषु महत्सु च ॥ क्रीडस्व त्वं मया सार्द्धं यौवनं ते निवर्त्तते ॥ ३८ ॥ चतुर्दशसहस्राणामधिपौ खरदूषणौ ॥ भ्रातरौ राम वीर्य्याढ्यौ जनस्थाननिवासिनौ ॥ ३९ ॥ लंकेश्वरेण प्रहितौ भ्रात्रा मे हिंसितुं मुनीन् ॥ अन्यथा वां भक्षयिष्ये अनया सह मानुष ॥ ४० ॥ इत्युक्तः सहसा रामस्तदा भागवतोत्तम ॥ उवाचविहसन्वाक्यं सौमित्रिं वरयस्व भोः ॥४१॥ अहं कलत्रवानस्मि सपत्नीको वरानने ॥ एवमुक्ता तु रामेण लक्ष्मणं च तथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥ लक्ष्मणोऽपि विहस्येनामुत्तरं प्रोक्तवान्कटुः॥ततः क्रुद्धा शूर्पणखा तान्हंतुमुपचक्रमे ॥ ४३ ॥ इति तच्चेष्टितं दृष्ट्वा रामो राजीवलोचनः ॥ चकर्त्त नासां कर्णौ च तस्यास्तत्र महामते ॥ ४४ ॥ रुदंती रुधिरासिक्ता ययौ शीघ्रं खराश्रमम् ॥ खरं च दूषणं चैव ह्यानयामास सैनिकैः ॥ ४५ ॥ निहतौ राक्षसौ तेन रामेण विजनस्थले ॥ सापि कर्म महादृष्ट्वा ययौ लंकां विनासिका ॥ ४६ ॥

अन्य कोई नहीं है, सुतराम् आप आइये ! मेरे साथ पर्वतोंकी कन्दराओंमें आइये ॥३७॥ नदियोंके संगम और वनान्तोंमें मेरे साथ क्रीड़ा करिये, आपका यौवन बीताजाताहै ॥ ३८ ॥ हे राम ! चौदह सहस्र दैत्योंके अधिपति, वीर्यवान्, खरदूषण नामके दो दैत्य मेरे भ्राता इसी जनस्थानमें निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ और उनदोनोंको मेरेभ्राता लंकापति रावणने मुनियोंकी हिंसा करनेके लिये भेजाहै, हे मनुष्य ! अन्यथा (यदि तुम मेराकहना न मानोगेतो) मैं तुम दोनोंहीको इस (स्त्री) के साथ भक्षण कर जाऊंगी ॥ ४० ॥ हे भागवतोत्तम ! जब रामचन्द्जीसे उसने इसप्रकार कहा तब वे हँसकर यौं बोले अरी ! तू सुमित्रानन्दन लक्ष्मणको वर ले॥४१॥हे सुमुखि ! मेरे स्त्रीहै, अतएव मैं सपत्नीक हूं;जब रामचन्द्रजीने इसप्रकार कहा, तब वह इसीप्रकार लक्ष्मणजीसे कहने लगी ॥४२॥ लक्ष्मणजीने भी हँसकर उसे कटु (असह्य) उत्तर दिया, तब तौ शूर्पणखा क्रोधित हो इन सबको वधकरनेके तईं उद्यत होगई ॥ ४३ ॥ कमल नयन रामचन्द्रजीने जब उसकी ऐसी चेष्टा देखी, तब हे महामतिमान् ! उसके नासिका और कर्णोंको छेदन कर डाला ॥ ४४ ॥ तब रुधिरसे भींगी हुई वह रोती कलपती ततकालही खरके आश्रममें गई और वहांसे खरदूषण सैनानायकोंको लाई ॥ ४५ ॥ श्रीरामने जन स्थानमें उन राक्षसोंकोभी मारडाला, फिर वह नकटी घोर कर्म देख

रुधिराप्लुतसर्वांगी जगाद परुषं वचः ॥ मृतोऽसि राक्षसश्रेष्ठ भ्रातरौ निहतौ तव ॥ ४७ ॥ जनस्थाने मनुष्येण स्त्रीसहायेन रावण ॥ खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ४८ ॥ अहं च विकृता तेन कृता त्वत्कार्यसंमुखी॥स्त्रीरत्नं च त्वदर्थं हि ह्यानेतुमहमुद्यता ॥४९॥ किं करोमि मम भ्रातर्हंतुं त्वां समुपस्थित ः॥ स्वसुस्तद्रुदितं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ जगाम सहसा तत्र जनस्थाने महामते ॥ ५० ॥ अहरत्तत्र हैमेन छद्मयित्वा मृगेण तम् ॥ रामं राजीवपत्राक्षं सीतां नीत्वा गृहं ययौ ॥ ५१ ॥ रामोऽपि तन्महाश्चर्य्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥ विलपन्प्रययौ भ्रात्रा ऋष्यमूके महागिरौ ॥ ५२ ॥ सुग्रीवेण तथा सख्यं कृत्वा वै चाग्निसाक्षिकम् ॥ हत्वा च वालिनं तत्र स्थापयित्वा नृपासने ॥ ५३ ॥ सुग्रीवं च तथा तेन ससैन्येन हनूमता ॥ अन्यैश्च कपिभिः सार्द्धं ययौ लंकां महायशाः ॥ ५४ ॥ बभूव तुमुलं युद्धं नरवानररक्षसाम् ॥ लंकायां विविधैः शस्त्रैस्त-

लंकानगरीमें गई ॥ ४६ ॥ उसका सारा शरीर रक्तसे लिथडरहाथा, उसने (रावणसे) ये कठोर वचन कहे,—हे राक्षसराज ! [क्या] तुम मरगये ? तुम्हारे भ्राताओंका वध होगया है ॥ ४७ ॥ हे रावण ! स्त्री सहित एक पुरुषके द्वारा जनस्थानमें खर दूषण और त्रिशिरा युद्धमें मार डालेगये ॥ ४८ ॥ मुझे भी उसनेही कुरूपिणी बनादिया हैं, मैं तेराही कार्य करनेके लिये उद्यतथी अर्थात्—तेरे तईं उसरत्न रूप स्त्रीको लानेके तईं प्रवृत्तहो रहीथी ॥ ४९ ॥ हाय मैं क्या करूं ? जब मेरा भ्राता उन्हें मारनेके लिये उद्यत हुआ (तो उसेभी मारडाला) मैं येही निवेदन करनेको तेरे निकट आई हूं बहिनके ऐसे वाक्य सुन रावण मारे क्रोधके मूर्च्छित होगया और हे महामते ! शीघ्रही जनस्थानमें गया ॥ ५० ॥ वहां सुवर्ण निर्मित मृगके आधारसे कमलनेत्र रामचन्द्रजीको छलकर रावण सीताको हरके घर ले गया ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजी भी इस महान् कर्मको देख बडे आश्चर्यान्वित हुए फिर भाई सहित रोते२ ऋष्यमूक महा पर्वतके ऊपर पहुंचे ॥ ५२ ॥ वहां अग्निको साक्षी बनाय सुग्रीवके साथ श्रीरामने मैत्रीकरी, अथ च वालीको मार सुग्रीवको राज्यसिंहासनपर बैटाया ॥ ५३ ॥ तत्पश्चात् महायशस्वी रामचन्द्रजी सेनासहित सुग्रीव और हनुमान्जीको तथा अन्य बहुतसे वानरोंको साथले लंकाको गये ॥ ५४ ॥ फिर लंकापुरीमें भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे और पाषाणकी बर्षासे नर वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध

थाश्मतरुवृष्टिभिः ॥ ५५ ॥ निकुंभिलाशिलायां तु तप्यमानं महत्तपः ॥ मेघनादं स सौमित्रिर्विषमस्थं महायशाः ॥ ५६ ॥ संछाद्य शरधाराभिर्विभीषणसहायवान् ॥ निजघान महोरस्कं शार्दूल इव कुंजरम् ॥ ५७ ॥ रामोपि कपिभिर्युक्तो हत्वा राक्षसमंत्रिणः ॥ पुत्रान् संबंधिनश्चैव निजघान दशाननम् ॥ ५८ ॥ तत्र संस्थापयामास तद्भ्रातरमनिंदितम् ॥ लंकाधिपत्ये विप्रर्षे मंदोदर्य्यास्तथैव च ॥ ५९ ॥ इति तद्वै महत्कर्म्म कृत्वा रामो महायशाः ॥ लक्ष्मणश्च महाबाहुर्दृष्ट्वा सर्वान्दिवौकसः ॥ ६० ॥ तथा दशरथं चैव पितरं सुविमानगम् ॥ शुद्धिं दृष्ट्वा तु सीतायां वह्नौ मानुषविग्रहः ॥ ६१ ॥ विष्णुः पुष्पकमारुह्य सविभीषणवानरः ॥ सीतया सहितश्चैवायोध्यायां च समाययौ ॥ ६२ ॥ तत्रासने शुभे पित्र्ये रामे राज्यं प्रशासति ॥ राजयक्ष्मा लक्ष्मणं च जगृहे गेहसंस्थितम् ॥ ६३ ॥ तथाविधं लक्ष्मणं हि रोगग्रस्तं समीक्ष्य सः ॥ रामो नाम महातेजाश्चिंतयामास राघवः ६४

हुआ ॥ ५५ ॥ एवम् निकुम्भिला शिलाके ऊपर उग्रतप करतेहुए और विषमभावसे बैठे मेघनादको महायशस्वी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीने ॥ ५६ ॥ बिभीषणकी सहायतासे बाणवर्षाके द्वारा आच्छादनकर उस विशाल वक्षःस्थलवालेको इस प्रकारसे वध कर डाला जैसे सिंह हाथीको मार डालता है ॥ ५७ ॥ फिर रामचन्द्रजीने राक्षसों, मन्त्रियों, पुत्रों और सम्बन्धियोंको मारकर दशवदन रावणको भी मार डाला ॥ ५८ ॥ और वहां लंकाके राज्यसिंहासन तथा मन्दोदरीके निरीक्षणमें रावणके कीर्त्तिमान् भ्राताको नियत किया ॥ ५९ ॥ यह उग्रकर्म कर महायशी रामचन्द्रजी और विशाल बाहु लक्ष्मणजी सब देवताओंके दर्शनकर ॥ ६० ॥ एवम् शुभ विमानमें आरूढ हुए अपने पिता दशरथजीकोभी अवलोकनकर तथा अग्निमें शुद्ध हुई सीताको ले ॥ ६१ ॥ विभीषण तथा वानरोंसहित पुष्पकविमानमें आरूढहो सीताजीको साथले अयोध्यापुरीमें आये ॥ ६२ ॥ वहां जब पिताके शुभ राज्यसिंहासनके ऊपर आरूढहो रामचन्द्रजी शासन करने लगे तब घरमें बैठे २ ही लक्ष्मणजीको राजयक्ष्मा रोगने आसताया ॥ ६३ ॥ रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको जब रोग ग्रसित देखा तब वे महातेजस्वी चिन्ता करने लगे ॥ ६४ ॥

पप्रच्छ च वशिष्ठं व स्वगुरुं ब्रह्मपुत्रकम् ॥ केन वै कर्म्मणा चेमं राजयक्ष्मा गृहीतवान् ॥ ६५ ॥ इति मे संशयं देव छिंधि धीरवर प्रभो ॥ इत्युक्तो मुनिराड्विप्रः कथयामास पातकम् ॥ ६६ ॥ इंद्रजिद्वधनिर्णीतं घोररूपं महत्तरम् ॥ यस्मादेतस्य तपतः शिरश्चिच्छेद लक्ष्मणः ॥६७॥ युद्धाद्वै विनिवृत्तस्य ब्रह्मवंशस्य रक्षसः ॥ तस्मादयं महातेजा राजरोगप्रपीडितः ॥ ६८ ॥ तपस्तपतु कुब्जाम्रे लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्द्धनः ॥ ततोयं भविता शीघ्रं राजयक्ष्मविवर्जितः ॥ ६९ ॥ त्वं च राम महाबाहो प्रायश्चित्तं तपात्मकम् ॥ करुष्व रावणवधजन्यपापापनुत्तये ॥ ७० ॥ इति श्रुत्वा महातेजा विस्मयाविष्टमानसः ॥ पप्रच्छ गुरुमासीनं वशिष्ठं वाग्विदां वरम् ॥७१॥ राम उवाच ॥ ब्रह्मवंशसमुत्पन्न रावणस्य वधान्मुने ॥ कथं मे पातकं जातं पापस्य दुरितात्मनः ॥ ७२ ॥ गोविप्रहतकस्यापि देवानां चैव द्रोहिणः ॥ हर्त्तुश्च परदाराणां परक्षेत्रधनादिनाम् ॥ ७३ ॥

और उन्होंने ब्रह्माजीके पुत्र तथा अपने कुल गुरु वशिष्ठजीसे पूछा कि—किस कर्मके करनेसे इसको राजयक्ष्मा रोगने सताया है ॥ ६५ ॥ हे धीरवर प्रभो ! ! हमारे इस सन्देहको आप दूर करिये, जब द्विजराजसे रामचन्द्रजीने इस प्रकार कहा तब वे पातकका वर्णन करने लगे ॥६६॥ वोह घोर पातक इन्द्रजीत मेघनादके वधसे उत्पन्न हुआ था, क्योंकि—लक्ष्मणजीने तप करते हुए, और युद्धमेंसे पृथक् हटे हुए ब्रह्मवंशसमुद्भूत राक्षसके शिरका छेदन कियाथा, इसी कारण यह महातेजस्वी राजरोगसे पीडित हुएहैं॥६७॥६८॥ सुतराम् लक्ष्मीवर्द्धन लक्ष्मणजीको कुब्जाम्रकमें तप करना कर्त्तव्यहै, तब ये तत्कालही राजयक्ष्मा रोगसे मुक्त होजायँगे ॥ ६९ ॥ और हे महाबाहुराम ! रावणके वध करनेसे जो पाप तुम्हें लगाहै उसका मार्जन करनेके लिये तुमभी तपरूप प्रायश्चित्त करो ॥ ७० ॥ महातेजस्वी रामचन्द्रजीने जब ऐसे वचन सुने तब उनके मनमें बडा आश्चर्य हुआ, और सुख पूर्वक बैठे हुए तथा वाग्मीवर गुरु वशिष्ठजीसे वे पूछने लगे ॥७१॥ रामचन्दजी बोले—हे मुनीश्वर ! रावण यद्यपि ब्राह्मण वंशमें जन्माथा तथापि वोह दुराचारी पापीथा तौ फिर मुझे उसका वधकरनेसे पाप कैसे लगा ॥ ७२ ॥ वह दुष्ट गौ और ब्राह्मणोंका हनन करनेवाला

कथं तन्मारके पापं युद्धस्योच्छ्वासवर्त्तिनः॥एतन्मे संशयं छिंधि सर्वज्ञोऽसि यतो मुने ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायापुरीमाहात्म्ये कुब्जाम्रके लक्ष्मणोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

अथ च देवताओंका द्रोही था, एवम् उसने पराई स्त्रियों, पराये धन और औरोंके क्षेत्र आदिका अपहरण कियाथा ॥ ७३ ॥ तौ फिर उस निर्दयी हत्यारेके मारनेसे मुझे पातक क्यों लगा, हे मुनिराज ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव मेरे इस सन्देहको निवृत्त करिये ॥ ७४ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२२.

वशिष्ठ उवाच ॥ शृणु राम महाबाहो ब्राह्मणानां महामते ॥ माहात्म्यं सर्वपापघ्नं तापत्रयविनाशनम् ॥ १ ॥ ब्राह्मणा जंगमा मूर्त्तिः श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ अत एव हि विख्याता क्षितिदेवा महामते ॥ २ ॥ येषां वै दर्शनात्सद्यो नश्यंते पापराशयः॥३॥ब्राह्मणानां च संचारो यत्र तिष्ठति सर्वदा॥तत्र सर्वाणि तीर्थानि वसंति नितरां सदा ॥४॥ भोजनीयाः प्रयत्नेन यद्यदिच्छंति तेन ते॥यत्किंचिद्दुर्ल्लभं वस्तु ब्राह्मणेभ्यो ददेत्त तत्॥५॥ब्राह्मणानां स सङ्गत्या ब्राह्मणानां च पूजनात्॥ तर्प्पणाद्ब्राह्मणानां

वशिष्ठजी बोले—हे महाबाहो ! रामचन्द्रजी ! तुम अति बुद्धिमान्हो सो ब्राह्मणोंके माहात्म्यको सुनो, यह माहात्म्य सब पापोंका नाश करनेवाला एवम् दैहिक दैविक भौतिक तीनों प्रकारके तपोंका शान्त करनेवालाहै ॥ १ ॥ ब्राह्मणलोग श्रीविष्णुभगवान्की जंगम (चलती फिरती) मूर्त्ति हैं, इसी कारण हे महामतिमान् ! ये भूसुर (अर्थात्—भूमिके देवता) नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंके दर्शन करनेसे पाप समुदाय अवश्यही नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ ३ ॥ जिस स्थानमें ब्राह्मणोंका नित्यही संचार (आवागमन) होताहै, वहां सम्पूर्णही तीर्थ अवश्य निवास करते हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंकी जो २ इच्छाहो यत्नपूर्वक उसीका उन्हें (इच्छानुसा) भोजन करावे, और जो २ वस्तुएँ दुर्लभ हैं, वे दान कर २ के ब्राह्मणोंको देनी चाहिये ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंका संसर्ग (संगति) करने पूजन करने और उन्हें तृप्त

च पितॄणां तारणं भवेत् ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरो ब्राह्मणमाश्रयेत्॥ब्रह्मवीर्य्यसमुत्पन्नो वरजातिषु वा विभो ॥७॥ सोपि देवो महाराज विज्ञेयो भवलिप्सुभिः ॥ ब्राह्मणस्य पदाङ्गुष्ठे दक्षिणे नरपुंगव ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि वसंति नितरां सदा ॥ ८ ॥ यावंति विप्रपादोत्थरजांसि शिरसा नरैः॥धार्य्यंते नरशार्दूल तावद्वर्षसहस्रकम् ॥ स्वर्गलोके वसेन्मर्त्त्यो विमानवरमास्थितः ॥९॥ यावंत्यः कणिका देहे पतन्ति चरणांबुनः ॥ तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ १० ॥ श्राद्धे च ब्राह्मणा यत्र न संति नृपसत्तम ॥ पितरश्चैव तेषां च नरके निवसंत्यलम् ॥ ११ ॥ मूर्खा अपि महाबाहो ब्राह्मणा पुण्यसंचयाः ॥ किं पुनश्चैव विद्वांसो वेदवेदांगपारगाः ॥१२॥ धन्यास्ते पुरुषा लोके ब्राह्मणानां च ये प्रियाः॥ये विप्रपूजाकामार्था न तेषां पुनरागमः ॥१३॥ ते सर्वे निर्जरा ज्ञेया ब्राह्मणान्प्रणमंति ये ॥ विप्र

(सन्तुष्ट) करनेसे पितरोंका उद्धार होजाताहैं ॥ ६ ॥ सुतराम् मनुष्योंको सर्वथा यत्न पूर्वक ब्राह्मणोंका आश्रय करना कर्त्तव्य हैं। यदि ब्राह्मणके रेतो द्वारा नीच जातिमें उत्पन्न हुआहो, सांसारिक सुखाभिलाषियोंको चाहिये कि, उसे भी देवरूपही समझे ॥ ७ ॥ हे नरपुंगव ! ब्राह्मणोंके दाहिने चरणके अंगुष्ठमें सम्पूर्णही पवित्र तीर्थ निवास करते हैं॥ ८ ॥ मनुष्य अपने शिरके ऊपर ब्राह्मणोंके चरणोंकी जितनी धूलि अर्थात्—रजके कणके धारण कियेकरतेहैं, हे नरशार्दूल ! उतनेही सहस्र वर्षपर्यन्त वोह पुरुष श्रेष्ठ विमानमें आरूढ हो स्वर्गलोकमें निवास करते हैं॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंके चरणोदककी जितनी बिन्दुएँ देहके ऊपर निपतित होती हैं, उतनेही सहस्रवर्ष पर्यन्त स्वर्गलोकमें ऐश्वर्य्यभोग करनेको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ हे राजसत्तम ! जहां श्राद्धमें ब्राह्मणलोंग उपस्थित नहीं रहते उनके पितर निरन्तर नरकमें निवास करते हैं ॥११॥ हे महाबाहो ! ब्राह्मण चाहें मूर्खहों तथापि उन्हें पुण्यराशि जानना चाहिये, और वेद¹वेदांग²पारगामी विद्वानोंके लिये तो कहनाही क्याहै ॥ १२ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणोंके प्यारे हैं, लोकमें उन्हें धन्यहै, और जो प्राणी ब्राह्मणोंका पूजन करनेकी कामना करते हैं उनका संसारमें फिर जन्म नहीं होता ॥ १३ ॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं उन सबको देवता समझना चाहिये। ब्राह्मणोंका पवित्र

---

१ ऋक, यजु, साम; अथर्व । २ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ।

पादोदकं पुण्यं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १४ ॥ सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥१५॥ धन्यं वै कीर्त्तितं विष्णोर्धन्यं ब्राह्मण-पूजनम् ॥ विप्रपादोदकं धन्यं धन्यं गंगाजलंस्मृतम् ॥ १६ ॥ ब्राह्मणानां प्रसादाद्धै लभ्यंते सर्वसिद्धयः ॥ ब्राह्मणानां प्रकोपेण दह्यंते भवकोटयः ॥१७॥ अविद्योपि महाराज नावमान्यो द्विजः सदा ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो भगवत्तनुः ॥ १८ ॥ संसारतापतप्तानां भेषजं ब्राह्मणा विभो ॥ १९ ॥ यावद्ब्राह्मण-पूजास्ति यावद्गंगा धरातले ॥ यावद्वेदमयो घोषस्तावन्नो विशते कलिः ॥ २० ॥ ब्राह्मणोऽस्ति परं तत्त्वं ब्राह्मणोऽस्ति परं तपः ॥ ब्राह्मणोऽस्ति परा विद्या नास्ति ब्राह्मणतः क्वचित् ॥ २१ ॥ अविद्यं ब्राह्मणं वापि सविद्यं वा नराधिपः॥ योऽवमन्याति दुष्टा-त्मा तस्यर्द्धिर्नश्याति क्षणात् ॥२२॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नावमन्ये-द्विजातिकम् ॥ ब्राह्मणानां प्रकोपेण नहुषोऽजगरतां गतः॥तस्मा-

चरणोदक सम्पूर्ण व्याधियोंका विनाशकरनेबालाहै ॥ १४ ॥ विष्णु भगवान्‌का कीर्त्तन ब्राह्मणोंकी पूजा, ब्राह्मणोंके चरणोंका जल और गंगाजल ये सब धन्य कहेगये हैं अर्थात् इन सबको श्रेष्ठ मानागयाहै ॥ १६ ॥ ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे सब सिद्धियोंका लाभ होताहैं, एवं ब्राह्मणोंके क्रोधसे करोडों संसार भस्म होसक्ते हैं ॥ १७ ॥ हे महाराज ! ब्राह्मण चाहे विद्याविहीन ही क्यों नहो पर उसका निरादर करना न चाहिये कारण कि, ब्राह्मण विद्वान् हो चाहे विद्याविहीन हो तथापि वह नारायण स्वरूप है ॥ १८ ॥ हे सर्व व्यापक ! जो व्यक्ति सांसारिक तापोंसे सन्तप्त होरहेहै उनके लिये ब्राह्मण औषधि स्वरूप हैं, अर्थात्—जो प्राणी सांसारिक क्लेशोंसे व्यथितहैं अपने उपदेशों द्वारा ब्राह्मणही उन्हें शान्त करतेहैं ॥ १९ ॥ भूमिके ऊपर जबतक ब्राह्मणोंकी पूजा और गंगाजल विद्यमान है अथ च जबतक वेद निर्घोष विद्यमानहैं तबतक कलि अर्थात् पापोंका प्रवेश नहीं होता ॥ २० ॥ ब्राह्मण परमतत्व, ब्राह्मण परमतप, और ब्राह्मणही परम (उत्कृष्ट विद्या) हैं ब्राह्मणसे अन्य कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मण विद्वान् अथवा अविद्वान् चाहे जैसाहो उसका जो व्यक्ति निरादर करताहै, उसका ऐश्वर्य क्षणभरमें नष्ट होजाताहै, अत एव ब्राह्मणोंका अनादर कदापि करना कर्त्तव्य नहीं है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणोंहीके क्रोधसे

त्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणं नैव कोपयेत् ॥ २३ ॥ वेदलेशोऽस्ति यत्रेश शास्त्रलेशोऽपि यत्र च ॥ तस्य दर्शनमात्रेण नश्यंते पापराशयः ॥ २४ ॥ वेदविन्मानुषो विप्रः स वै यत्र प्रगच्छति ॥ गच्छंति तत्र निधयः क्षेत्राण्यतितरां तथा ॥ २५ ॥ यत्रास्ति शास्त्रवेत्ता हि तत्र विष्णुः सनातनः ॥ पुराणसंहितावक्ता यत्र संचरते द्विजः ॥ तत्रैव सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥२६॥ ब्रह्महत्यादिपापानां ब्राह्मणादेव निष्कृतिः ॥ गता श्रियश्च मर्त्या ये तथा चैव गतायुषः ॥ द्विषंति ब्राह्मणांस्ते वै ये वा नरकगामिनः ॥ २७ ॥ आसन्नमरणा ज्ञेया हतश्रीकाश्च राघव ॥ ये द्विषंति महाभाग भिषक्कालज्ञसत्तमान् ॥ २८ ॥ यस्य भाव्या परा सिद्धिः यस्य भाव्या महार्थता ॥ तस्य भाव्यं परं ज्ञानं तस्य ब्राह्मणसंगतिः ॥ २९ ॥ तेन तप्तं हुतं तेन तेन जप्तं महत्तरम् ॥ पूजिता येन विप्रेशाः सत्यमेव नराधिप ॥ ३० ॥ आधिव्याधिभयं नैव भक्त्या यत्र द्विजार्चनम् ॥ ३१ ॥ यथा सर्वेषु

राजा नहुष अजगर होगये थे, अतएव ब्राह्मणोंको क्रोधित न करै ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जिसमें वेदका लेश अथवा शास्त्रका लेश हो उस मनुष्यके दर्शनमात्र करनेसे पापोंका विनाश होजाताहै ॥ २४ ॥ मनुष्यसमाजमेंसे वेदज्ञ ब्राह्मण जहां कहीं जाताहै, वहांही समस्त निधियें और क्षेत्र जाते हैं ॥ २५ ॥ जहां शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होते हैं उसी स्थानमें सनातन विष्णुभगवान्का निवास होताहै, अथ च पुराणों और संहिताओंका पाठ करनेवाला ब्राह्मण जहां जाताहै, उसी स्थानमें सब देवता और सब तीर्थ प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ २६ ॥ और ब्रह्महत्या आदिपापोंका उद्धारभी ब्राह्मणोंहीके सकाशसे होताहै । जिनकी लक्ष्मी और आयु नष्ट होचुकी है, अथवा जो नरकमें जाने वाले हैं वेहीलोग ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं ॥ २७ ॥ हे हमाभाग ! राघव ! कालज्ञानी श्रेष्ठ वैद्योंकी समान ब्राह्मणोंसे जो लोग द्वेष करते हैं उनकी मृत्युको निकट और लक्ष्मीको नष्ट समझना चाहिये ॥ २८ ॥ जिसको अपार सिद्धि प्राप्त होनेवालीहै, जिसे प्रभूत धन प्राप्त होने वालाहै, उसीको परम ज्ञान और ब्राह्मणोंकी संगतिका लाभ होताहै ॥ २९ ॥ हे नरेन्द्रनाथ ! जिसने ब्राह्मणोंका पूजन कियाहै सचमुच उसीने तप होम और महान् जप कियाहै ॥ ३० ॥ जहां भक्तिभाव पूर्वक ब्राह्मणोंका अर्चन होताहै वहाँ आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक रोग) का भय नहीं होता ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार समस्तदेवताओंमें गरुडध्वज

देवेषु श्रेष्ठो वै गरुडध्वजः ॥ वेदेषु च तथा साम शास्त्रे वेदात उच्यते॥३२॥पुरीणां च तथा काशी क्षेत्राणां परमं त्विदम्॥३३॥ हिमवान्पर्वतश्रेष्ठो यथा पशुषु धेनवः ॥ तथा सर्वपदार्थेषु ब्राह्मणा परिकीर्त्तिताः ॥३४॥ इह चैव परत्रापि ब्राह्मणास्तारकाः स्मृताः॥ केचिदैहिककर्म्माणः केचित्परसुखप्रदाः ॥ ३५ ॥ विप्रेतरो महा भाग यदि शास्त्र विशारदः ॥ ब्राह्मणश्च तथा मूर्खस्तस्माच्छ्रेष्ठ-तमो मतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणांश्चैव संपूज्य यत्कर्म प्रकरोति हि ॥ अविधानात्कृतमपि संपूर्णं स्यादिति स्मृतिः ॥ ३७॥ अपृष्ट्वा ब्राह्मणान्ये वै स्वयं कर्म प्रकुर्वते ॥ तत्कर्म निष्फलं ज्ञेयमाया सेनापि यत्कृतम् ॥ ३८ ॥ दंभः करोति विप्रेषु विद्यायां यो नराधमः ॥ स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ यो निंदति महाराज ब्राह्मणं ब्रह्मतत्परम् ॥ कुलं तस्य क्षयं याति मृतो नरकमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ विद्यया जयते विप्रान्स वै नरक-

विष्णुभगवान्श्रेष्ठहैं, वेदोंमें सामवेद और शास्त्रोंमें वेदान्तशास्त्र उत्कृष्ट कहा जाताहै ॥३२ ॥ जैसे पुरियोंमें काशी, तथा अखिल क्षेत्रोंमें यह क्षेत्र परमोत्तमहै ॥ ३३ ॥ जैसे पर्वतोंमें हिमालय, पशु-ओंमें गौ श्रेष्ठ मानीगई हैं ऐसेही सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठहैं ॥ ३४ ॥ ॥ इस लोक तथा पर लोकमें ब्राह्मणही उद्धार करनेवाले हैं कोई सांसारिककर्मोंका साधन करनेवाले और कोई परलोकमें सुख देनेवालेहैं ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! ब्राह्मणोंके अतिरिक्त यदि कोई अन्य पुरुष सब शास्त्रोंका ज्ञाताहो, और ब्राह्मण निरा मूर्खहो तथापि उस (विद्वान्) की अपेक्षा वोह (मूर्ख ब्राह्मण) ही श्रेष्ठमाना जाताहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणोंकी पूजा करके जो कुछ कर्म किया जाताहै, वोह विधिहीन होनेपरभी पूर्णही माना जाताहै ॥ ३७ ॥ और जो व्यक्ति ब्राह्मणोंसे अन पूछे स्वयंही कर्म करताहै, वोह चाहे जितने परिश्रमसे किया गयाहो तथापि उसे निष्फलही समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ जो नीच व्यक्ति ब्राह्मणोंमें विद्या विषयक पाखण्डका आचरण करताहै, प्रलयपर्यन्त उसका नरकमें निवास होताहै ॥ ३९ ॥ ब्रह्मविचारमें तत्परहुए ब्राह्मणकी जो पुरुष निन्दा करताहै, उसके कुलका सत्यानाश होता और वोह स्वयम् मरकर नरकमें जाताहै ॥ ४० ॥ जो मनुष्य विद्याके द्वारा ब्राह्मणोंका जाय करता है, उसे नरक भोगना

मयश्नुते ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणार्थं यस्य वित्तं ब्राह्मणाथ पराक्रमः । स एव पुरुषो लोके पुण्यात्मा नात्र संशयः ॥ ४२ ॥ चांडालीष्वपि संजाता ब्राह्मणानां हि वीर्यतः ॥ तेप्यवध्या महाराज किमु विद्वान्सुकर्मकृत् ॥ ४३ ॥ पौलस्त्यपुत्रो भगवन्हतो यद्वै त्वया विभो ॥ रक्षणार्थं ब्राह्मणानां गवां चैव महामते ॥ ४४॥ अलेपस्यापि ते रामलक्ष्मणस्यापि पातकम् ॥ लोकानुवृत्तये वश्यं कर्त्तव्यं पापसंक्षयम् ॥ ४५ ॥ कुब्जाम्रकात्परं क्षेत्रं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ नास्ति राघव शार्दूल पृथिव्यां पुण्यदं महत् ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणेन प्रगंतव्यं त्वया तत्र महीपते ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कुब्जाम्रकमाहात्म्ये ब्राह्मणप्रशंसानाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

पडता है ॥ ४१ ॥ जिस प्राणीका धन और पराक्रम ब्राह्मणोंहीके निमित्त (अर्थात् उनकी सहायता और उपकारके तंई) है, निस्सन्देह उसीको लोकमें पुण्यात्मा समझना चाहिये ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणोंके वीर्य्यसे चाण्डालियोंमें जिनका जन्म हुआ है हे महाराज ! जब उनके भी तिरस्कार करनेका निषेधहै, फिर भगवन् विद्वान् और श्रेष्ठ कर्म करनेवालोंका तो कहनाही क्या है ॥४३॥ हे सर्वव्यापक भगवन् ! आपने पुलस्त्य नन्द वृद्धश्रवाके पुत्र रावणको ब्राह्मणों तथा गौओंकी रक्षाके हेतु माराहै ॥ ४४ ॥ यद्यपि आपको और लक्ष्मणजीको पापोंका स्पर्श नहीं होसक्ता तथापि लोक शिक्षाके लिये प्रायश्चित्त द्वारा पातकका मार्जन आपकोभी अवश्य करना कर्त्तव्य है ॥ ४५ ॥ हे रघुवंशशार्दूल ! पृथिवीके ऊपर कुब्जाम्रक तीर्थसे अधिक ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला और महत् पुण्यदायक और कोई क्षेत्र नहीं हैं ॥ ४६ ॥ सुतराम् हे महीपाल ! आप और लक्ष्मणजी दोनोंहीको वहां जाना चाहिये ॥ ४७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोध्यायः १२३.

स्कंद उवाच ॥ इत्युक्तो वै वशिष्ठेन रामो धर्मभृतां वरः॥ कुब्जाम्रके महाक्षेत्रे जगाम च सहानुजैः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥

स्कन्दजी बोले—जब वशिष्ठजीने धर्मधारी रामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहा तब वे अपने भ्राताको साथ ले कुब्जाम्रक तीर्थमें चले गये ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे भगवन् ! कुब्जाम्रकमें

लक्ष्मणेन तपस्ततं कथं कुब्जाम्रके महत् ॥ कस्मिन्प्रदेशे भगवान्कानि तीर्थानि तद्वद ॥ २ ॥ रामेणापि कृतं क्व कस्मिन्क्षेत्रे कृतं तपः ॥ एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ सर्वं ते वच्मि विप्रेश महदज्ञाननाशनम् ॥ लक्ष्मणेन यथा तप्तं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ रामेणापि परक्षेत्रे कृतं पापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥ भारापनुत्तये भूम्याः प्रार्थितस्य परात्मनः॥कृतदुष्टविनाशस्य रक्षणार्थं भवादृशाम्॥५॥ श्रीरामस्य महाबाहोर्लीलामानुषरूपिणः ॥ पुण्यपापादिकं चैव नैव दोषविकल्पना ॥ ६ ॥ विशेषतोस्य पापस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ गोविप्रहंतुर्विप्रेश मारणे नास्ति यद्यपि ॥ ७ ॥ पातकं तदपि प्राज्ञ लोकचेष्टानुसारिणा ॥ प्रायश्चित्तं कृतं तेन लक्ष्मेणन च नारद ॥ ८ ॥ कुब्जाम्रकोत्तरे भागे गव्यूत्यर्द्धे तथार्द्धके ॥ क्रोशे गंगातटे पश्चान्नानामुनिगणान्विते ॥ ९ ॥ अद्यापि तत्प्रदेशे हि लक्ष्मणस्यास्य रूपतः ॥ सर्वं रूपेण

किस स्थानके ऊपर लक्ष्मणजीने उग्र तपकिया ? और वहां कौन २ से तीर्थ हैं यह बताइये ॥२॥ अथवा रामचन्द्रजीनेभी उस स्थानमें तप किया था हे प्रभो ! यह सब कथा संक्षेपसे मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! बडे अज्ञानका विनाश करनेवाला यह सब आख्यान हम आपके प्रति वर्णन करते हैं, जैसे कि—लक्ष्मणजीने ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके लिये तप कियाथा, एवं च जिस प्रकार उस परमक्षेत्रमें रामचन्द्रजीनेभी पापका नाश कियाथा ॥ ४ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये जिनकी प्रार्थना की गई, सुतराम् जिनपरमात्माने दुष्टोंका विनाश कियाहै, और आप जैसे सौम्यप्रकृति महात्माओंकी रक्षा करनाही उन दुष्टोंके वधका कारणहै ॥ ५ ॥ जिन महाप्रभुने अपनी लीलाहीसे नरदेह धारण कियाहै, उन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीको पुण्य पापका स्पर्श नहीहै, तथा उनके लिये दोषोंकी आशंकाभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ६ ॥ और विशेषकर पापाचरणशील, दुराचारी अथ च गौ और ब्राह्मणोंका हननकरनेवाले रावणके वध करनेमें तौ हे विप्रराज ! पाप होही नहीं सक्ताहै ॥ ७ ॥ तथापि हे प्राज्ञ ! लोक चेष्टाके अनुसार उन्होंने और लक्ष्मणजीने प्रायश्चित्तका आचरण किया ॥ ८ ॥ कुब्जाम्रकके उत्तरभागमें अनुमान तीनकोसकी दूरीपर अनेक मुनियोंसे सेवित गंगाजीके तटके ऊपर ॥९॥ आजतक उस प्रदेशमें लक्ष्मणजीकी मूर्त्ति भगवान्

शेषांशो वर्त्तते भगवत्प्रियः ॥ १० ॥ शिवमाराधयामास वर्षै-र्द्वादशसंख्यकैः ॥ निराहारो महातेजाः शिवसंन्यस्तमानसः ॥११॥जजाप परमां विद्यां षड्वर्णां भक्तितत्परः॥वाय्वाहारो वर्ष-शतं शतपत्रफलाशनः ॥ १२॥ तस्थावेकेन पादेन शिव-भक्तो जितेंद्रियः ॥ ततः शिवो महाभाग प्रत्यक्षं तस्य नारद ॥ १३ ॥ बभूव सहसा पुत्र कांतिव्याप्तदिगंतरः ॥ वृषसंस्थोऽर्द्धचंद्रेण संशोभितललाटकः ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो व्यालयज्ञोपवीतवान् ॥ उमानीतार्द्धतनुकस्त्रिनेत्रो गजकृत्तिधृक् ॥ १५ ॥ उवाच वचनं तत्र सौमित्रिं मित्रवत्सलम् ॥ १६ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ साधु साधु महाभाग सुमित्रानंदवर्द्धन ॥ गतं ते पातकं तेन मत्प्रसादेन लक्ष्मण ॥ १७ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे सकृत्स्नानाद्ब्रह्महत्या त्रिकोटिभिः ॥ मुच्यंते किमु त्वं शुद्धो निर्हिंसकर्हिंसकः ॥ १८ ॥ शुद्धस्त्वं सर्वपापेभ्यो देहजेभ्यो

की प्यारी शेषांशसे उपस्थित है ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीने बारहवर्ष पर्य्यन्त निराहार रहकर महादेवजीमें अपने मनको लगाके उनकी आराधना करीथी ॥ ११ ॥ उन महातेजस्वीने भक्तिमें तत्पर हो षडक्षर[१] परममन्त्रका जप किया और सौवर्ष पर्य्यन्त केवल वायु भक्षण करके एवम् शतवर्ष पर्यन्त पत्र और फल भक्षण करके रहे ॥ १२ ॥ महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर हो इन्द्रियोंका निग्रह कर एकही चरणसे लक्ष्मणजी खड़े रहे, तब तौ सुनो महाभाग नारदजी ! शिवजी उनके समक्ष प्रत्यक्ष हुए ॥ १३ ॥ उस समय उनकी कान्तिसे दिगन्तभाग व्याप्त होगये, वे स्वयं वृषके ऊपर आरूढ थे, अथ च अर्धचन्द्रमाके द्वारा उनके मस्तककी शोभा होरही थी॥१४॥उन्होंने व्याघ्रचर्मका परिधान और सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कियाथा,उनके आधे अंगमें पार्वती जी विराजमान थीं, एवम् उन त्रिनेत्रधारीने गजराजकी चर्मकोभी धारण कररक्खाथा॥१५॥मित्रोंके साथ वत्सलताका आचरण करनेवाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीसे वहां आय उन्होंने यह वाक्य कहे ॥ १६ ॥ श्रीशिव बोले– धन्य सुमित्रानन्दवर्द्धन ! ! महाभाग—धन्य ! ! ! हे लक्ष्मण ! हमारी कृपासे तुम्हारे सब पातक नष्ट होगये ॥ १७ ॥ इस क्षेत्रमें स्नान करनेसे जब मनुष्य ब्रह्महत्या आदि तीन करोड़ पातकोंसे मुक्त होजाताहै, तौ तुमने तौ मुनिजान विनाशकर्त्ता राक्षसका वध कियाहै सुतराम् तुम्हारी शुद्धिके लिये कहनाही क्याहै कारण कि तुमतो स्वयमूही शुद्धहो ॥ १८ ॥ हे महाशय !

१ "ओन्नमः शिवाय"

महाशयः ॥ गच्छ गच्छ स्वके स्थाने कुरुराज्यसुखानि च ॥ १९ ॥ गतो वै राजयक्ष्मा ते देहतः शुभगेहतः ॥ त्वन्नाम्नेदं पुण्यतमं लक्षितं वै भविष्यति ॥ २० ॥ अहं च भगवान्नित्यं लक्ष्मणेश्वरतां गतः ॥ तिष्ठामि मुक्तिदो नृणामति दुष्कृतिनां तथा ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा च ततो दत्त्वा लक्ष्मणाय वरं तदा ॥ तत्रैवांतर्दधे रुद्रो भक्तिगम्यो दुरासदः ॥ २२ ॥ सोऽपि लक्ष्मणनामा वै विष्णोरंशो महात्मनः ॥ स्थितवांस्तत्र स्वांशेन पूर्णेऽपि प्रभुरच्युतः ॥ २३ ॥ तत्रैव वामभागे तु शिवो ज्ञानगतिः प्रभुः ॥ नाम्ना लक्ष्मेश्वरः ख्यातो दर्शनात्सर्वपापहा ॥ २४ ॥ गंगायाः पश्चिमे तीरे यत्र सिंदूरवर्णका ॥ मृत्तिका वर्त्तते विप्र तत्र लक्ष्मणकुंडकम् ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः ॥ २६ ॥ तस्य वामविभागे तु मुनिकुंडमिति स्मृतम् ॥ तत्र स्नात्वा शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २७ ॥ तत्र विष्णोर्गदा विप्र निहता क्रुद्धचेतसा ॥

तुम देहज सम्पूर्णही पातकोंसे शुद्ध हो अब तुम अपने स्थानको जाओ और राज्यकरके सुख भोगो ॥ १९ ॥ अब तुम्हारे देहसे राजयक्ष्मा रोगभी दूर होगया, और अब यह क्षेत्र तुम्हारेही नामसे विख्यात होगा ॥ २० ॥ और मैं भगवान् लक्ष्मणेश्वर नामसे यहां रहकर पापीमनुष्योंको मुक्तिप्रदान करता रहूंगा ॥ २१ ॥ स्कन्दजी बोले—यौं कह लक्ष्मणजीको वर देकर भगवान् महादेवजी उसी स्थानमें अन्तर्हित होगये, वे महादेवजी भक्तोंके द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और अन्य व्यक्तियोंको उनकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २२ ॥ और महात्मा श्रीविष्णुभगवान्का अंश लक्ष्मण नामसे वहांही उपस्थित रहा, यद्यपि अच्युतभगवान् अपने अंशोंसे परिपूर्णभी थे ॥ २३ ॥ उसीके वामभागमें ऐसे महादेवजी उपस्थित हैं जिनकी प्राप्ति ज्ञानकेद्वारा होतीहै, उनका लक्ष्मेश्वर [अथवा लक्ष्मणेश्वर] नाम है, और उनके दर्शन करनेसे शीघ्रही पापोंका सत्यानाश होजाताहै ॥ २४ ॥ गंगाजीके पश्चिमी तटके ऊपर जहां सिन्दूरके वर्णकी मृत्तिका है, हे विप्र वहांही लक्ष्मणकुण्ड है ॥ २५ ॥ उसमें स्नान करने अथवा मन्त्रोंका जाप करनेसे (सिद्धिरूप) अनन्तफलकी प्राप्ति होतीहै ॥ २६ ॥ उसीके वामभागमें एक और कुंड है उसका मुनिकुंड नाम प्रसिद्धहै, उसमें स्नान करनेसे शुभ लोकों और परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होतीहै ॥ २७ ॥ वृत्रासुरका वध करनेके तईं विष्णुभगवान्ने क्रोधितहो वहांही अपनी गदा स्थापन कीथी जबसे

विष्णुना वृत्रदमने तत्रास्ति चिह्नितं जले ॥ २८ ॥ इन्द्रकुंडमिति ख्यातं तत्रैव भवमोचनम् ॥ यत्रेन्द्रस्तपसा वृत्रं निजघान महामुने ॥ २९ ॥ तस्य वामे महत्तीर्थं वायुकुंडमिति स्मृतम् ॥ स्नात्वा तत्र महाभाग शतगोदानजं फलम् ॥ ३० ॥ तस्मिन्नेव स्थले रम्ये नंदी नाम्नी शिला शुभा ॥ स्पर्शमात्रेण यस्यास्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३१ ॥ नंदीकुंडमिति ख्यातं सर्वतीर्थेषु चोत्तमम् ॥ ३२ ॥ तत उत्तरदिग्भागे नाम्ना धर्मधराधरः ॥ धर्मधारेति विख्याता सर्वपापक्षयंकरी ॥ ३३ ॥ आयाति पर्वतश्रेष्ठाद्धर्माख्या धर्म्मवर्द्धिनी ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३४ ॥ धर्म्मेश्वरो महादेवो वर्त्तते लिंगरूपधृक ॥ यः स्नापयति लिंगं तन्मंडलं भक्तितत्परः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति जलदानेन नारद ॥ ३५ ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम् ॥ यत्रैकरात्राल्लभते सिद्धिं परमदुर्ल्लभाम् ॥ ३६ ॥ माहेश्वरीति विख्याता

उसका चिह्न अभीतक विद्यमान है ॥ २८ ॥ वहांहीं संसारके आवागमनको छुड़ानेवाला इन्द्रकुण्ड प्रसिद्ध है, वहां हीं तप करके हे महामुने ! इन्द्रने वृत्रासुरको माराथा ॥ २९ ॥ उसींके वामभागमें वायुकुण्ड नामका एक महातीर्थ है, हे महाभाग ! उसमें स्नान करनेसे सौ गोदान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ उसी रमणीकस्थलमें नन्दीनामकी एक शिलाहै, वह इतनी शुभ (पवित्र) है कि, उसके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ३१ ॥ नंदीकुण्ड नामका तीर्थ प्रसिद्धहै, यह भी सभी तीर्थोंमें उत्तमहै ॥ ३२ ॥ उससे उत्तर दिशाकी ओर धर्मधराधर नामकी धर्मधारा विख्यातहै, वह समस्तपापोंका विनाश करनेवालीहै ॥ ३३ ॥ धर्मकी वृद्धि करनेवाली वह धारा धर्मनाम श्रेष्ठपर्वतसे आतीहै, उसमें भक्तिभावपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ लिंगरूपधारी धर्मेश्वर महादेव वहां विराजमान हैं, जो व्यक्ति भक्तिमें तत्पर हो उस लिंगको स्नान कराता है, हे नारद ! वोह जलदान करनेसे अपने सब मनोरथोंकी सिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ अब हम परम दुर्लभ पीठका वर्णन करते हैं, जहां एकही रात्रिमें परम दुर्लभ सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ समस्त सिद्धि प्रदान करनेवाले उस पीठका माहेश्वरी नाम है, वहां साक्षात् स्वयं

सर्वसिद्धि प्रदायिनी ॥ यत्र रुद्रः स्वयं साक्षाद्देवैः सन्निहतः सदा ॥३७॥ माहेश्वरीति नाम्ना वै कृष्णवर्णा महामुने ॥ तस्य वै दर्शनाद्याति रुद्रलोकं दुरासदम् ॥ ३८ ॥ आनागतीर्थतो विप्र तथा हैमवतीतटम् ॥ मायाक्षेत्रमिदं ख्यातं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्॥ ३९ ॥ यस्यकैवारमपि यो दर्शनं प्रकरोति हि ॥ कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥४०॥धन्यानां वसतिर्ह्यत्र क्षेत्रराजे महामुने ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४१ ॥ अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ श्रीविष्णोर्यत्र सान्निध्यमीश्वरस्य तथैव च ॥ ४२ ॥ दक्षादिभिर्मुनिवरैः कृताः क्रतुवरा यतः ॥ एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥ ४३ ॥ मृता यत्र महाभाग प्रयांति परमं पदम् ॥ तिर्यग्योनिगताश्चापि तथा स्थावरतां गताः॥ प्रयांति भवनं विष्णोस्त्यक्तदेहा महामते॥४४॥ शृणु विप्र पुरावृत्तं चित्रं परमकं तथा ॥४५॥ यथात्र प्रवरस्थाने

महादेवजी देवताओंसहित विराजमान् रहते हैं ॥ ३७ ॥ हे महामुने ! उन देवीका नाम तौ माहेश्वरी और वर्णकृष्णाहै, उसके दर्शन करनेसे दुष्प्राप्य रुद्रलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ३८ ॥ हे विप्र ! नागतीर्थसे लेके हैमवतीके तट पर्यन्त जितना स्थानहै उसे मायाक्षेत्र कहते हैं और यह सभी क्षेत्रोंमें उत्तमहै ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य इसके एक वार भी दर्शन करता है, निस्सन्देह वह करोड जन्ममें किये पापोंसेभी मुक्त होजाताहै ॥ ४० ॥ हे महामुने ! इस क्षेत्रराजमें जिसे निवास प्राप्त हुआहै उनके अहोभाग्य हैं, और सैकडों करोड कल्पमें भी फिर उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ४१ ॥ इस क्षेत्रमें श्रीविष्णु भगवान और महादेवजीकी स्थितिहै सुतराम् इसके माहात्म्यका वर्णन करनेको कौन समर्थ होसक्ता है ॥ ४२ ॥ क्यों कि दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियोंने इसी स्थानमें यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, सुतराम् इस क्षेत्रकी समान अन्य क्षेत्रका होना तीनो लोकमें दुर्लभहै ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! उस क्षेत्रमें प्राणपरित्याग करनेवाले व्यक्ति परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं, चाहे वे कीटपतंगादिकी योनिमें हों अथवा वृक्षादि स्थावर योनिमें क्यों न उत्पन्न हुए हों तथापि हे महामते ! देह परित्याग करके वे सब विष्णुलोकहीको चले जाते हैं ॥ ४४ ॥ हे विप्र ! प्राचीनकालके एक विचित्र आख्यानको सुनो, हे महामुने ! जिसप्रकार इस परमोत्कृष्ट क्षेत्रमें वृष, और व्याघ्र अन्य जन्म प्राप्त होनेपर परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे

वृषव्याघ्रौ महामुने ॥ ययतुः परमां सिद्धिं प्राप्ते चापरजन्मनि ॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४६ ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे बभूव वणिजां वरः ॥ ब्रह्मदत्त इति ख्यातः कुबेर इति चापरः ॥ ४७ ॥ एकदा स महाभाग शकटे न्यस्य द्रव्यकम् ॥ सुवर्णमुक्तारत्नानि प्रवालानि च नारद ॥ ४८ ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन दैवात्कुब्जाम्रके ययौ ॥ व्यापरश्च कृतस्तेन तीर्थयात्रा च वै तथा ॥ ४९ ॥ ब्रह्मदत्तस्य गेहे तु गत एको वृषस्तदा ॥ सार्थाच्चैव परिभ्रष्टो भूयः कुब्जाम्रकं ययौ ॥५० ॥ देवालयसमीपे तु स्थितवान्कतिचित्समाः ॥ निर्माल्यफलपत्राणि भक्षयन्वृषभो मुने ॥ ५१ ॥ दिने स्वयं वनं याति रात्रावायाति तत्र वै ॥ एवं हि वसतस्तस्य तत्र देवगृहाद्बहिः ॥ व्याघ्रश्चैको रिपुर्जातो दृष्ट्वा पुष्टशरीरकम् ॥५२॥ तत्प्रसंगाच्च तत्रैव समायाति जिघांसया ॥ एवं तयोर्महद्वैरं बभूव मुनिपुंगव ॥ ५३ ॥ वृषभः सोपि पुष्टांगो न तं गणयति ध्रुवम् ॥ तीक्ष्णशृंगो महोच्चो वै ककुद्मान्दृढविक्रमः ॥ ५४ ॥ सहसा सोऽपि व्याघ्रश्च वृषभं न जिघांसति ॥

इस इतिहासको श्रवण करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाता है॥४५॥४६॥धर्मके उत्पत्तिरूप कुरुक्षेत्रमें ब्रह्मदत्त नामका एक श्रेष्ठ वैश्य था, और वह अन्य कुबेरकी सदृश धनाढ्य था ॥४७॥ एक समय वोह वैश्य हे महाभाग ! गाडेमें प्रभूत धनको आरोपण कर और हे नारद ! सुवर्ण, मोती, रत्न और मूंगोंको लेके ॥ ४८ ॥ दैवयोगात् तीर्थयात्राके प्रसंगसे कुब्जाम्रकमें आया, और उसने तीर्थयात्रा तथा व्यापार दोनों किये ॥ ४९ ॥ उस समय ब्रह्मदत्तके घर एक कोई बैल चला आया क्यों कि वोह साथ भ्रष्ट होकर फिर कुब्जाम्रकहीमें चला आया था ॥ ५० ॥ और कुछ वर्ष पर्यन्त वोह देव मन्दिरके निकट स्थित रहा, और हे महामुने ! शिवनिर्माल्य फल पत्रोंका भक्षण करता था ॥ ५१ ॥ दिनमें तौ वोह वृष स्वयमही वनको चला जाता और रात्रिमें फिर चला आता था, इस प्रकार देव मन्दिरके बाहर निवास करते २ उसके शरीरको पुष्ट देख कोई व्याघ्र उसका शत्रु बनगया ॥ ५२ ॥ इसी प्रसंगसे उसके मारनेकी कामना करके वोह व्याघ्र नित्यही वहां आता था, हे मुनिपुंगव ! इस प्रकार दोनोंका परस्पर प्रभूत वैर होगया ॥५३॥ बैलका शरीरभी अत्यन्त पुष्ट था अतएव वोह उस व्याघ्रको कुछभी नहीं गिनता था एवम् इसके शृंग तीक्ष्ण और ऊंचे २ कन्धे थे, यह अत्यन्त उन्नत और महापराक्रमी था ॥५४॥ सुतराम् वे

एकदा मुनिशार्दूल गतोऽरण्ये महावृषः ॥ तृणानि खादितुं विप्र निर्जनेऽतिभयंकरे ॥ ५५ ॥ महावराहसंछन्ने सरीसृपनिषेविते ॥ व्याघ्रऋक्षशताकीर्णे दुर्गमे खड्गसेविते ॥ ५६ ॥ तयोर्युद्धं समभवन्महद्वृषभव्याघ्रयोः ॥ वृषश्च तं महाभाग शृंगाभ्यां व्याघ्रकं तदा ॥ दधार च तथा भूमौ चिक्षेप प्रबलं खलु ॥५७॥ उत्थाय सहसा सोऽपि वृषं कष्टाज्जघान ह ॥ सोऽपि सिंहो महातेजा आविद्धो वृषभेण ह ॥ ५८ ॥ ममार च महाभाग तस्मिन्कुब्जाम्रके वने ॥ अवंतीविषये तौ च कुब्जाम्रमृतिवैभवात् ॥ पितापुत्रौ राजपुत्रौ बभूवतुरनिंदितौ ॥ ५९ ॥ पूर्वजन्मविरोधेन जातौ तत्र विरोधिनौ ॥ वृषो राजा बभूवाथ सिंहो वै राजपुत्रकः॥६०॥एकपुत्रस्तदा राजा किंचित्पुत्रं न भाषते॥सोपि राजकुमारश्च राजानं न च पश्यति ॥ ६१ ॥ प्रजायाश्चानुरोधेन कुमारं च जिघांसति॥राजा स्मरति वृत्तांतं पूर्वजन्मभवं खलु॥६२॥ इति तयोर्महाभाग दैवयोगादभन्मतिः ॥ कुब्जाम्रकं महातीर्थं

व्याघ्रभी उस वृषभको सहसा मार नहीं सक्ता था, हे मुनिशार्दूल ! एक समय उक्त महावृष घास चरनेके लिये अति भयंकर घोर वनमें चला गया ॥५५॥ उस वनमें अनेक शूकर और सर्प भर रहे थे, सैकडों व्याघ्रों और रीछोंसे आकीर्ण होनेके कारण वोह वन अतीव भयंकर था, सुतराम् खड्गपाणि होकरही उसमें जाया जासक्ता था ॥ ५६ ॥ निदान उन दोनों महावृषभ और व्याघ्रका घोर युद्ध हुआ, और हे महाभाग ! वृषभने उस व्याघ्रको अपने दोनों शृंगोंसे उठाकर बलपूर्वक भूमिके ऊपर पटक दिया ॥ ५७ ॥ फिर अति कठिनतासे उसनेभी उठकर वृषके ऊपर प्रहार किया, इधर उस सिंह ओजस्वीकोभी वृषने सींगोंसे छेद लिया ॥ ५८ ॥ और उसी कुब्जाम्रक वनमें उसे मार डाला, वे दोनों अवन्तीके बिषयमें कुब्जाम्रतीर्थमें मृतक होनेके कारण निन्दारहित राजपुत्र पितापुत्र हुए ॥ ५९ ॥ चूं कि पहिले जन्ममें उन दोनोंका विरोध था सुतराम् इस जन्ममेंभी उन दोनोंका विरोधही रहा और वृषभ राजा तथा सिंह राजपुत्र हुआ ॥ ६० ॥ यद्यपि राजाके एकही पुत्र था तथापि वह अपने पुत्रसे कुछ नहीं बोलता था, एवं वह राजकुमार राजाको देखतातकभी नहीं था ॥ ६१ ॥ प्रजाके अत्यन्त अनुरोधसे राजाने पूर्वजन्ममें प्रादुर्भूत हुए वैरका स्मरण किया ॥ ६२ ॥ इस प्रकार हे महाभाग ! कुब्जाम्रक तीर्थमें जानेके लिये उन दोनों

गंतुं राज्ञो महात्मनः ॥ ६३ ॥ स कुमारो महाराजो निजधान पदैर्युतः ॥ ययौ हिमाद्रिनिकटे मायापुर्य्यां महामते ॥ ६४ ॥ यावत्प्रविशते राजा कुब्जाम्रक्षेत्र उत्तमे ॥ नानामुनिगणाकीर्ण्णे देवगंधर्वसेविते ॥ ६५ ॥ तावत्ससमार पुत्रोऽपि वृत्तांतं पूर्वसंभवम् ॥ वैरस्य कारणं स्वस्य राज्ञश्चैव महामते ॥ ६६ ॥ तस्मिन्नेव क्षणे तौ च निर्वैरौ हि बभूवतुः ॥ क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण शुद्धौ चैव तथा मुने ॥ ६७ ॥ तत्रैव स्थितवंतौ च किंचित्कालं महामती ॥ कालेन व्ययमापन्नौ यत्र गत्वा न शोचति ॥ ६८ ॥ इति वै परमाश्चर्य्यं मृगेन्द्रवृषयोर्वने ॥ तिर्य्यग्योनिप्रगतयोर्मूढयोर्बद्धवैरयोः ॥ ६९ ॥ राज्यं चैव तथा प्राप्तं मोक्षश्चापरजन्मनि ॥ ७० ॥ कुब्जाम्रके मृतो विप्र विप्रहत्यायुतोऽपि वा ॥ मोक्षं प्राप्नोति सततं कुष्ठी वा मृतसंततिः ॥ ७१ ॥ अथान्यच्चात्र परमं तीर्थं वाराहसंज्ञितम् ॥ धरण्या यत्र नियतं संस्तुतो भगवानजः ॥ ७२ ॥ तस्मादिदं परं क्षेत्रं वाराहं नाम विश्रुतम् ॥ यत्र ब्रह्मा दयो देवा-

का विचार हुआ ॥ ६३ ॥ हे महामतिमान् ! वह कुमार और राजा दोनों पैदलही हिमालयके निकट मायापुरीमें गये ॥ ६४ ॥ जहां अनेक मुनिजन विराजमान हैं, देवता और गन्धर्व जिसकी सेवा करते हैं सुतराम् जो समस्त क्षेत्रोंमें उत्तम है ऐसे कुब्जाम्रक क्षेत्रमें राजाने जभी प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ तभी हे महामते ! राजकुमारकोभी पूर्वजन्मार्जित अपने और राजाके परस्पर वैरके कारणका स्मरण होआया ॥ ६६ ॥ ठीक उसी समय दोनोंका वैर दूर होगया, अथ च हे मुने ! इस क्षेत्रके प्रभावसे वे दोनोंही शुद्ध होगये ॥ ६७ ॥ वे दोनों महामती उसी स्थानमें कुछ काल पर्य्यन्त स्थित रहे, समयानुसार निधनगत हो वहां गये, जहां जाकर फिर शोच करना नहीं होता ॥ ६८ ॥ इस प्रकार पशुयोनिमें जन्मेहुए और मूढमति होनेके कारण परस्पर वैर करनेवाले सिंह और वृष दोनोंका वैर बनमें हुआ था ॥ ६९ ॥ और उन्हें इसी प्रकार राज्यकी प्राप्ति हुई और अन्य जन्ममें मुक्तिका लाभ हुआ ॥ ७० ॥ हे विप्र ! चाहे ब्रह्महत्यारा, चाहे कुष्ठी अथवा जिसकी सन्तति नष्ट होगई हो चाहे ऐसा व्यक्तिभी कुब्जाम्रक तीर्थमें देहका परित्याग करै तथापि उसे मुक्ति की प्राप्ति होतीहै ॥ ७१ ॥ अथ च यहां वाराह संज्ञक औरभी एक तीर्थ है, इसी तीर्थमें भूमिने श्रीविष्णुभगवान्की स्तुति करीथी ॥ ७२ ॥ इसीसे इस उत्तम क्षेत्रका वाराहनाम विख्यात

स्तपस्तेपुः सुदारुणम् ॥ ७३ ॥ वाराहतीर्थमहिमा केन वर्णयितुं क्षमः ॥ तत्रैका परमा मूर्त्तिः शिलारूपा महात्मनः ॥ ७४ ॥ तच्छिलास्पर्शनादेव विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ सूर्य्यपुत्री नदी तत्र ममायाति महामते ॥ ७५ ॥ गालवेन पुरा सूर्य्यः समाराधित ईश्वरः ॥ प्रसन्नश्चाब्रवीत्सूर्य्यो वरं वरय गालव ॥ ७६ ॥ सोऽब्रवीद्देहि भगवंस्तव पुत्री तु या स्मृता ॥ यमुनेति समाख्याता नदी परमपावनी ॥ ७७ ॥ सा समायातु सततं गंगायां संगता भवेत् ॥ तीर्थराजप्रयागाच्च समं तीर्थं भवत्विति ॥ ७८ ॥ अत्र स्नास्यंति ये मर्त्त्यास्ते प्रयांतु परं पदम् ॥ तव चात्र स्थितिश्चास्तु सर्वतीर्थेषु चोत्तमे ॥ ७९ ॥ सूर्यश्चापि तथेत्युक्त्वा ददौ वरमनुत्तमम् ॥ यमुना च महाभाग कलया चात्र संस्थिता ॥ ८० ॥ तस्यास्तु संगमे पुण्ये प्रयागात्कोटिसंख्यके ॥ स्नात्वा तत्र नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ तत्रैव सूर्यकुंडाख्यं

हुआहै, अथ च इसी स्थानमें ब्रह्माआदि देवताओंने दारुण तपका अनुष्ठान किया था ॥ ७३ ॥ वाराहतीर्थकी महिमाका वर्णन करनेके लिये किसकी सामर्थ्य पर्याप्त होसक्ती है, वहां भगवान्की शिलारूप एक महामूर्त्ति विद्यमान् है ॥ ७४ ॥ उक्त शिलाका केवल स्पर्शमात्र करनेसेही मनुष्य चिरकालपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास पाताहै। हे महामतिमान्! सूर्यकी पुत्री नदी वहां आती है ॥ ७५ ॥ पूर्वकालमें गालव ऋषिने सूर्य नारायणकी आराधनाकी थी, तब प्रसन्न होकर सूर्यने कहा हे गालव! तुम वरकी प्रार्थना करो ॥ ७६ ॥ तब उन्होंने उत्तर दिया हे भगवन्! आपकी यमुना नामकी परम पावनी जो पुत्री हैं उसे मुझे दीजिये ॥ ७७ ॥ वह नित्यही आयकर गंगाजीमें संगत होती है, सुतराम् यह संगमतीर्थराज प्रयागकी सम (पुण्य प्रद) होना चाहिये ॥ ७८ ॥ अथ च जो मनुष्य इसमें स्नान करेंगे उन्हें परमपद मोक्षकी प्राप्ति होनी चाहिये, और सर्वोत्तम इस तीर्थमें आपकी भी निरन्तर स्थिति रहनी चाहिये ॥ ७९ ॥ "तथास्तु" कहकर सूर्यनेभी उन्हें उत्तम वर प्रदान किया, हे महाभाग! यमुनाजीभी कलामात्रसे यहां स्थित हैं ॥ ८० ॥ प्रयागकी अपेक्षा करोड गुणा अधिक फल प्रदान करनेवाले उसके पवित्र संगममें भक्तिभाव पूर्वक स्नान करके मनुष्यको महादेवजीके सायुज्यकी प्राप्ति होती है ॥ ८१ ॥ वहांही सूर्यकुण्डनामका परम पवित्र अन्यतीर्थ है, जहां

तीर्थं परमपावनम् ॥ यस्य संस्पर्शनादेव सूर्यलोके महीयते ॥ ८२ ॥ तत्रैव पश्चिमे भागे तीर्थं गालवसंज्ञितम् ॥ यत्र स्नानात्परं याति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ८३ ॥ तत उत्तरवायव्ये शिवो यज्ञेश्वरः प्रभुः ॥ विष्णुना स्थापितो यत्र यज्ञादौ विघ्ननाशिने ॥ ८४ ॥ यत्र विष्णुश्चक्ररूपी तत्रेदं लिंगमुत्तमम् ॥ इदं परमकं पीठं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ ८५ ॥ यत्रार्चयासकृदपि लभते यद्यदिच्छति ॥ तस्य वामप्रदेशे हि शिला विष्णुकलेवरा ॥८६॥ यस्यां कृते हृषीकेशस्त्रेतायां भरतो हरिः ॥ द्वापरे वामनो देवो भूयश्च भरतः कलौ ॥ ८७ ॥ तस्य संदर्शनादेव महापातककोटयः ॥ नश्यन्ति ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध्यन्ति सर्वसिद्धयः ॥८८॥ एतन्नाम्नैव सकलं प्राप्नोति निजवांछितम् ॥ इति ते कथितं देव माहात्म्यं जगदीशितुः ॥ ८९ ॥ हृषीकेशाश्रमे पुण्ये यथा रैभ्यो ह्यनुग्रहम् ॥ कुब्जाम्रकस्य माहात्म्यं यः शृणोति महामते॥९०॥ सोऽपि वैकुण्ठनिलये याति ब्रह्मसनातनम् ॥ मोदते त्रिदिवे

केवल स्पर्श मात्रही करनेसे सूर्यलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको मिलते हैं ॥ ८२ ॥ उसीके पश्चिम भागमें गालवनाम एक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे ऐसे लोकोंकी प्राप्ति होतीहै जहांसे फिर लौटना दुर्लभहै ॥ ८३ ॥ वहांसे उत्तर और वायु कोणमें सर्व शक्तिमान् यज्ञेश्वर महादेवजी विद्यमान् हैं, यज्ञकी आदिमें श्रीविष्णु भगवान्ने विघ्नोंका विनाश करनेके लिये उनकी स्थापना की थी ॥ ८४ ॥ जहां चक्ररूपी विष्णु भगवान् हैं वहांही यह उत्तम लिंगभी हैं, यह परमोत्तम पीठ मनुष्योंके लिये सबसिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ८५ ॥ वहां एक वारभी पूजनकरनेसे जो २ अभिलाषा करताहैं उसीकी प्राप्ति होतीहै उसीके वाम भागमें विष्णुकलेवराशिला विद्यमान् हैं ॥ ८६ ॥ उसके ऊपर सतयुगमें हृषीकेश, त्रेतामें भरत हरि भगवान्, द्वापरमें वामन और कलियुगमें फिर भरतजी उपस्थित रहे ॥ ८७ ॥ उसके केवल दर्शन करनेसेही करोडों महापातक नष्ट होजाते हैं और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! सब सिद्धियें सिद्ध होजातीहैं ॥८८॥ इसका केवल नामही लेनेसे सब मनोरथ सिद्ध होजाते हैं हे भूदेव ! यह जगदीश्वरका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ८९ ॥ हृषीकेश आश्रममें जिस प्रकार रैभ्यको ईश्वरानुग्रहकी प्राप्ति हुई थी उसे और हे महामते ! कुब्जाम्रकतीर्थके माहात्म्यको जो सुनताहै ॥ ९० ॥ वहभी वैकुण्ठ लोकमें सनातन श्रीविष्णु भगवान्को प्राप्त होताहै, और हे नारदजी ! देवताओं तथा पितरोंके

स्सार्द्धं पितृभिः सह नारद ॥ ९१ ॥ अस्य क्षेत्रस्य महिमा वक्तुं केनापि शक्यते ॥ संक्षेपेण मया ख्यातं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ ९२ ॥ य इदं पठति श्राद्धे शृणोति च महामते ॥ तारिताः पितरस्तेन सत्यमेव न संशयः ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

साथ वह आनन्दमनाताहै ॥ ९१ ॥ इस क्षेत्रकी महिमाका वर्णन कौन कर सक्ताहैं, पापोंका नाश करनेवाले और सबकामना ओंके पूर्ण करनेवाले इस आख्यानको मैंने सक्षेपहीसे वर्णन किया है ॥ ९२ ॥ हे महामते ! जो इसे श्राद्धमें पढता अथवा श्रवण करताहै निःसन्देह वह अपने पितरोंका उद्धार करदेताहै ॥ ९३ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२४.

नारद उवाच॥अथान्यद्वद माहात्म्यं क्षेत्राणां हिमपर्वते॥ १ ॥ श्रोतुकाऽमोस्मि भगवन् कृपां कुरु दयानिधे॥ कुत्र तप्तं हि रामेण तपः परमदारुणम् ॥ यस्मात्पौलस्त्यवधजातपातकान्मुक्त ईश्वरः॥२॥ कुत्र तद्वै महाक्षेत्रं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ यत्र ब्रह्मादिदेवानां वसतिर्नित्यमेव हि ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र कथयामि तवानघ ॥ यस्य संदर्शनादेव मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४ ॥ गंगाद्वारादुत्तरेस्मिन्भागे वायव्यमाश्रिते ॥ रामाश्रम

नारदजी बोले—हे भगवन् ! हिमालयके ऊपर और जितने क्षेत्रहों उनके माहात्म्यका वर्णन करिये, हे दयानिधान ! मेरी सुननेकी कामनाहै अतएव मेरे ऊपर कृपाकरिये ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने परमदारुण तप कहा किया थे कि जिसके आचरणसे पुलस्त्यके पौत्ररावणके वध जनित पापसे स्वयं भगवान् मुक्त हुए थे ॥ २ ॥ सब पर्वतोंमें उत्तम कैलास पर्वतके ऊपर वह स्थान कहां हैं ? कि, जहां ब्रह्माआदि देवताओंका नित्यही निवास रहता है ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले हे निष्पाप ! विप्र ! ! तुमने उत्तम प्रश्नकिया, उस स्थानके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ४ ॥ गंगाद्वारसे उत्तर और वायव्यकी ओर रामाश्रम नामका एक तीर्थ

इति ख्यातो माने षोडशयोजने ॥ ५ ॥ धेनुपर्वतमारभ्य यावद्वेत्रवती नदी ॥ तावत्क्षेत्रं विजानीयात्पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ ६ ॥ तत्र रम्या नदी श्रेष्ठा केलिकेति परिश्रुता ॥ यस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोके न संशयः ॥ ७ ॥ यत्र विष्णुः स्वयं साक्षान्नित्यं सन्निहितः प्रभुः ॥ यत्र चंडी च दुर्गा च पूर्वपश्चिमयोः स्थिते ॥ ८ ॥ घंटाकर्णो यत्र पुरा शिवमाराधयच्छुचिः ॥ गणत्वं प्राप विभुतः शिवसान्निध्यसंस्थितः ॥९॥ ततः पश्चिमतो लिंगं भूतेश इति कीर्त्तितम् ॥ तत्र गत्वा नरो विप्र जपन्पंचाक्षरं मनुम् ॥१०॥ पश्यति प्रभुमीशानं त्रिरात्रेण न संशयः ॥ कुहूनाम्नी नदी तत्र सर्वपापप्रमोचिनी ॥११॥ तस्या जलस्य संस्पर्शान्मुच्यते पापकंचुकात् ॥ तत्रैका शिवदा नाम्नी शिला परमपावनी ॥ १२ ॥ तत्र पिण्डप्रदानेन गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥ १३ ॥ तदधः पीतवर्णं तु जलं निस्सरति ध्रुवम् ॥ तस्य स्पर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते ॥ १४ ॥ तत्रैलापत्रको नागः शिवमस्तकभूषणः ॥ वर्त्तते

है, और सोलह योजन (चौसठकोस) का उसका प्रमाण है ॥ ५ ॥ धेनुपर्वतसे प्रारम्भ करके वेत्रवती नदीपर्यन्त रामक्षेत्रका प्रमाण जानना चाहिये, यह क्षेत्र पापोंका विनाश करने वाला और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवालाहै ॥ ६ ॥ केलिका नामकी परममनोहर और श्रेष्ठ नदी वहां विद्यमानहै, उक्त नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य अवश्यही ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ ७ ॥ वहां सर्व शक्तिमान् श्रीविष्णु भगवान् नित्यही उपस्थित रहते हैं और उसके पूर्वभागमें चण्डी अथ च पश्चिमभागमें दुर्गाजी उपस्थितहैं ॥ ८ ॥ वहां परमपवित्रता पूर्वक घण्टाकर्णने महादेवजीकी आराधना करीथी तब सर्वव्यापक महादेवजीके सकाशसे गणत्वकी प्राप्ति हुई थी, सुतराम् वह महादेवजीके निकट उपस्थित रहनेलगा ॥ ९ ॥ उससे पश्चिमकी ओर भूतेश नामका प्रसिद्ध लिंग है, वहां जाकर मनुष्य पंचाक्षर मन्त्रका जप करै तो ॥ १० ॥ अवश्यही उसे तीनरात्रमें महादेवजीके दर्शन प्राप्त होते हैं, समस्त पापोंका नाश करनेवाली कुहू नामकी एक नदी है ॥ ११ ॥ उसके जलका स्पर्श करनेसे मनुष्य समस्तपापोंके कंचुक (आवरण) से मुक्त हो जाताहै, वहांही शिवदा नामकी एक परमपवित्र शिलाहै ॥ १२ ॥ वहां पिण्डदान करनेसे गयाजीमें श्राद्ध करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ और उस शिलाके नीचेसे पीले रंगका जल निकलताहै, उस जलके केवल स्पर्श मात्रहीसे शिवलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ वहां एलापत्र नाग महादेवजीके मस्तकपर लिपटा रहताहै और वह भी भक्तिभाव

शिवसंन्यस्तमानसो भक्तिसंयुतः ॥ १५ ॥ तस्माद्वामप्रदेशे हि गुहा परमगह्वरा ॥ विंशद्योजनविस्तीर्णा नानामुनिगणान्विता ॥ १६ ॥ जावालिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयो महामनाः ॥ च्यवनश्च महातेजा भृगुपुत्रोंगिरा मनुः ॥ एते चान्ये च बहवो मुनयस्तत्समाश्रिताः ॥ १७ ॥ तस्या वै दक्षिणे भागे सीताकुंड-मिति श्रुतम् ॥ यत्र सीता च रामेण सहासीत्तप आस्थिता ॥ १८ ॥ तत्र स्नानेन दानेन याति स्वर्गं न संशयः ॥ १९ ॥ रामकुंडात्पूर्वभागे सीताकुंडाच्च दक्षतः ॥ हनुमत्कुंडमाख्यातं रुद्र लोकप्रदायकम् ॥२०॥ तत्र वै कपिरूपेण हनुमान्नित्यमाश्रितः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पश्यतीमं महामतिः ॥ २१ ॥ ततः पारे महादुर्गा कोटरे पर्वतस्य वै ॥ तत्र स्थित्वा कदाचिद्धि जपेच्च शिवमंत्रकम् ॥ सर्वसिद्धिमवाप्नोति दुष्प्राप्यां योगिनामपि २२॥ भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां तत्रायांति सहस्रशः ॥ योगिन्यश्चार्द्धरात्रे हि नानाकृतिविभूषणाः ॥ २३ ॥ श्रूयते च ततः शब्दो गीतस्ता-

पूर्वक महादेवजीमें अपने चित्तको लगाये रहताहै ॥ १५ ॥ उसके वाम भागमें अतीव गहन एक गुहाहै, वह गुहा वीस योजन विस्तृतहै और अनेक मुनिगण उसमें उपस्थित रहते हैं ॥ १६ ॥ जावालि, गालव, महामनस्वी मार्कण्डेयजी, महातेजस्वी च्यवन, भार्गव, अंगिरा, मनु, ये सब तथा अन्य बहुतसे महर्षिगण वहां तपकरनेकेलिये उपस्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ उसके दक्षिण भागमें सीताकुण्ड प्रसिद्धहै, वहां सीताजी तपकरनेके लिये रामचन्द्रजीके साथ उपस्थित हुई थीं ॥ १८ ॥ उक्त कुण्डमें स्नान करने अथवा वहां दान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह स्वर्गको जाताहै ॥ १९ ॥ रामकुण्डसे पूर्वभागमें और सीताकुण्डसे दक्षिणकी ओर हनुमत् नामका प्रसिद्ध कुण्ड है, वह रुद्रलोक प्रदान करने वालाहै ॥ २० ॥ वहां महावीरजी वानररूपसे नित्य उपस्थित रहते हैं, जिसके सब पातक दूर होगये हैं उसी महामतिमान्को इनके दर्शनोंका लाभ होताहै ॥ २१ ॥ उसके आगे पर्वतकी कोटरमें महादुर्गा उपस्थित रहतीहैं, वहां स्थित रहकर जो मनुष्य शिवमन्त्रका जप करताहै, उसे उन तमाम सिद्धियोंकी प्राप्ति होतीहै जो योगियोंकोभी दुष्प्राप्य हैं ॥ २२ ॥ भाद्रपदमासकी कृष्णचतुर्दशीके दिन अर्ध रात्रिके समय अनेक प्रकारके आभूषणोंको धारणकरे सहस्रों योगिनियें वहां आती हैं ॥ २३ ॥ और उनके द्वारा गान किया हुआ गीत वहां

मिश्चतत्र वै ॥ श्रुत्वादरसमायुक्तो ह्रियते च ततः क्षणात् ॥२४॥ वाद्यानि चैव श्रूयंते कार्त्तिके बलिराजके ॥ पातालाद्वलिराजोऽपि तत्रायाति महामते ॥ २५ ॥ बलिराजे तत्र योऽपि सम्पूजयति चाम्बिकाम् ॥ तस्मै सर्वं महेशानी ददाति शुभवांछितम् ॥ ॥ २६ ॥ तत्र दुर्गेश्वरो देवो लिंगरूपी महार्थदः ॥ तत्र पार्श्वे महच्छुभ्रं तत्र द्वीपेश्वरी शिवा ॥ २७ ॥ तां कदाचिद्दैवयोगात्पश्यते यदि मानवः॥प्राप्नोति परमां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम् ॥२८॥ तत्र दक्षिणदिग्भागे शिवो रामेश्वरो मतः॥तस्य दर्शनमात्रेण सेतुबंधादनंतकम्॥फलं प्राप्नोति मनुजः सत्यं हि शिवभाषितम्॥२९॥ तत्र प्रवालिका नाम्नी देवी दैत्यवधोद्यता ॥ यस्या वै पूजनान्मर्त्यो देवीलोके वसेच्चिरम् ॥३०॥ तत्रापि जलदेवीति नाम्ना ब्रह्मर्षि सेविता ॥ जलमध्ये स्थिता नित्यं नवरात्रे प्रदृश्यते॥३१॥ वीणाकर्णो मुनिस्तत्र तपस्तेपे पुरा यतः॥जले ददौ दर्शनं यज्जलदेवीति सा स्मृता ॥ ३२ ॥ सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं साधकानंददा-

श्रवणगोचर होताहै, आदरपूर्वक उसका श्रवण करनेसे मनुष्य तत्कालही मोहित होता है ॥२४॥ कार्तिकमें देवोत्थानके दिन अनेक वाद्योंका शब्द श्रवणगोचर होताहै, हे महामतिमान् ! पातालसे राजा बलिभी वहां आते हैं ॥ २५ ॥ राजा बलिके समक्ष जो व्यक्ति अम्बिकाकी पूजा करताहै, महेश्वरी उसके सब मनोरथोंको पूर्ण करती हैं॥ २६ ॥ प्रभूतधन प्रदान करनेवाले दुर्गेश्वर महादेवजी लिंगरूपसे वहां विराजमान् रहते हैं उसके निकट विशेष श्वेतता रहतीहै और वहां दीपेश्वरी नामकी भगवती विराजमान रहती हैं ॥ २७ ॥ दैवयोगसे यदि मनुष्य उसके दर्शन कर ले तो योगिदुर्लभ सिद्धियोंकी उसे प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ उसके दक्षिण भागमें रामेश्वर महादेवजी हैं महादेवजीने सत्य २ कहाहै कि, उनके दर्शन करनेसे सेतुबन्धरामेश्वरकी समानही अनन्त फलकी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ दैत्योंका वध करनेके लिये उद्यत प्रवालिका नामकी देवी वहां उपस्थित रहती हैं, उनका पूजन करनेसे चिरकाल पर्यन्त देवीलोकमें निवास करना होताहै ॥ ३० ॥ वहां भी जलदेवी नामकी देवी है और ब्रह्मर्षिगण नित्य जलमें उपस्थित रहकर उनकी सेवा करते हैं और नौरात्रीमें उनके दर्शनोंकी प्राप्ति होती हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें वीणाकर्ण मुनिने वहां तपका आचरण किया था तब देवीने जलमें उन्हें दर्शन दिये सुतराम् उनका जलदेवीनाम हुआ ॥ ३२ ॥ वह नित्यही सब सिद्धियोंकी देनेवाली हैं, एवम् जो उसके साधक हैं उन्हें आनन्द प्रदान

यिनी॥३३॥ततो वै पश्चिमे भागे भाग्यतीर्थमिति स्मृतम्॥भाग्यहीनोपि यत्र स्याद्भाग्यवान्नात्र संशयः॥३४॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे रामो नाम महायशाः ॥ तपश्चकार परमं दिव्यं वर्षशतं पुरा ॥३५॥ तत्र रामेश्वरं लिंगं संस्थाप्य विधिवत्सुधीः॥ कृतकृत्यो बभूवाथ रामो नारायणः स्वयम् ॥ ३६ ॥ कृतकृत्योपि भगवान्निर्गुणो गुणवर्जितः ॥ भक्ताधीनतया विप्र स करोति गतागतम् ॥ ३७ ॥ इति ते कथितो दिव्यो विभवो रामतीर्थतः ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसने उत्तरभागे रामतीर्थ माहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

करती हैं॥ ३३ ॥ वहांसे पश्चिम भागमें भाग्यतीर्थ नामका एक तीर्थ कीर्त्तन किया गया हैं, भाग्यहीन भी मनुष्य उस तीर्थमें निस्सन्देह भाग्यशाली होजाताहै ॥ ३४ ॥ पूर्वकालमें इसी महाक्षेत्रमें महायशस्वी रामचन्द्रजीने दिव्य शतवर्ष पर्यन्त परम (उग्र) तपका आचरण किया था ॥ ३५ ॥ सुबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी रामेश्वर लिंगकी वहां स्थापना करके स्वयं नारायण कृतकृत्य हुए थे ॥ ३६ ॥ मायाजनित गुणोंसे रहित अतएव निर्गुण श्रीभगवान् रामचन्द्रजी भक्तोंके आधीन होनेके कारण अवतार आदि धारण करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामतीर्थका दिव्य माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, इसको सुनकर मनुष्य अवश्यही सब पापोंसे मुक्त होजाता हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२५.

नारद उवाच॥द्रोणाश्रमः पुरा प्रोक्तः त्वया यः पापनाशनः॥ कानि तत्र च क्षेत्राणि किं पुण्यं तत्र जायते॥१॥एतत्सर्वं समासेन वद मे शंकरात्मज ॥ कथं चास्मिन्प्रकर्त्तव्यं कर्मपापविनाशनम् ॥ २॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु वच्मि महाभाग द्रोणक्षेत्रस्य वैभ-

नारदजी बोले—आपने प्रथम पापोंका विनाश करनेवाले द्रोणाश्रमका वर्णन किया था, सो वहां कौन २ से अन्य क्षेत्र हैं, एवम् वहां जानेसे किस पुण्यकी प्राप्ति होती हैं ॥१ ॥ हे शिवनन्दन यह सब संक्षेपसे हमारेप्रति वर्णन करिये, और यह भी बताइये कि, इस क्षेत्रमें पापविनाशी कर्मोंका किस प्रकारसे आचरण करना कर्त्तव्य है ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले--सुनो महाभाग ! हम

वम् ॥ मायाक्षेत्राद्धि पाश्चात्ये भागे सूर्य्यसुतावधि ॥ ३ ॥ तत्रियोजनविस्तारमष्टयोजनदीर्घकम् ॥ क्षेत्रं परमकं ख्यातं दर्शनादेव कामदम्॥४॥द्रोणो नाम महाभाग ब्रह्मर्षिः प्रियदर्शनः ॥ तेपे पुरा तपो यत्र प्राप्तवांश्चात्र शिक्षणम् ॥५॥ नारद उवाच ॥ कथं द्रोणो महाभाग तप्तवांश्च पुरा तपः ॥ प्राप्ता कथं धनुर्विद्या विस्तरेण वदस्व मे ॥ ६ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु देव पुरावृत्तं द्रोणस्य परमं तपः ॥ महादेवो यथा तुष्टो दत्तवान्सर्वशास्त्रकम् ॥७॥ देवधाराचले विप्र द्रोणो नाम महामतिः॥तपश्चकार परमं शिवमाराधयन्मुने ॥ ८ ॥ शिवमंत्रजपो विप्रोऽभूद्द्वै द्वादशवत्सरे ॥ निराहारो महातेजा जितसर्वपरिग्रहः ॥ ॥९॥ जितेन्द्रियो जितारातिः शिवसंन्यस्तमानसः ॥ दृष्ट्वा तपो महादेवो द्रोणस्यैव महात्मनः ॥ विप्ररूपं समाधाय यत्र द्रोणः समाययौ ॥ १० ॥ देवधारे गिरौ रम्ये देवजन्या नदी यतः॥

द्रोणक्षेत्रके माहात्म्यको वर्णन करते हैं, मायाक्षेत्रसे पश्चिमकी ओर यमुनापर्य्यन्त ॥३॥ तीन योजन चौंडा और आठ योजनलम्बा वोह क्षेत्र है, उसके दर्शन करनेहीसे कामनाओंकी सिद्धि होती हैं ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! द्रोणनामके सुन्दर रूपवान् ब्रह्मषन पूर्वकालमें यहां तपके आचरणकी शिक्षा प्राप्त करी थी ॥ ५ ॥ नारदजी बोले—हे महाभाग ! प्राचीन कालमें द्रोणने किसप्रकार तपका आचरण करा और किस प्रकारसे उन्हें धनुर्विद्याकी प्राप्ति हुई ? यह सब विस्तार पूर्वक मेरे अगाडी वर्णन करिये ॥ ६ ॥ स्कन्दजी बोले हे देव ! परमतपस्वी द्रोणाचार्यके पूर्वकालिक वृत्तान्तको सुनो । जिस प्रकारसे कि—उनके तपसे सन्तुष्ट हो महादेवजीने उन्हें सर्वशास्त्र प्रदान करे थे ॥ ७ ॥ हे महामुनि द्विजराज ! ! ! देवधारापर्वतके ऊपर महामतिमान् द्रोणाचार्यने तपका आचरण करके महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ ८ ॥ और बारह वर्ष पर्यन्त उस ब्राह्मणने महादेवजीके मन्त्रका जप किया, एवम् उस समयमें उक्त महातेजस्वीने निराहार रहकर समस्त परिग्रहका परित्याग कर दिया ॥ ९ ॥ एवम् उसने इन्द्रियोंका विजयकर काम क्रोध आदि सब शत्रुओंका विजय कर लिया था, और महादेवजीमें मन लगाके तपका आचरण उक्त महात्मा करनेलगे । महात्मा द्रोणाचार्यके तपको देख महादेवजी विप्ररूपधारणकर उनके निकट आये ॥ १० ॥ जहांसे देवजन्या नदीका

द्रोणं प्रोवाच विप्रात्मा देवदेवः सनातनः॥ ११॥ किं कार्य्यं ते महाभाग कायक्लेशेन पर्वते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणो नाम महामुनिः ॥ १२ ॥ बुद्ध्वा ब्राह्मणवेषस्थं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ उवाच भक्तिनम्रोयं स्तोत्रेण सहसा यदि ॥ पतित्वानंदपूर्णांगो द्रोणो नाम महातपाः ॥ १३ ॥ द्रोण उवाच ॥ निराकाराय शुद्धाय निर्द्वन्द्वाय दयावते॥ निरीहाय समीहाय निर्गुणाय गुणाकृते ॥ १४ ॥ अरूपाय विरूपाय स्वरूपाय परात्मने ॥ जलाय मल हीनाय संमोहायावमीजिते ॥ निर्वासनाय मेध्याय निरध्यासायते नमः ॥ १५ ॥ व्यापिने व्यपदेश्याय वंदिने बंधनंदिने ॥ नंदानंदस्वरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मपूजिते॥ १६॥ ज्योतीरूपाय भूपाय-मनोऽमयाय ते नमः ॥ भव्याय भव्यरूपाय भव्यदाय भवासिने ॥ १७ ॥ भवद्भूतभविष्याय कालाय विकरालिने ॥ नीलकं-

प्रादुर्भाव हुआ है उसी देवधारपर्वतके ऊपर सनातन देवाधिदेव विप्ररूप महादेवजी द्रोणाचार्यसे बोले ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! इस पर्वतके ऊपर आपके कायाकष्ट करनेसे क्या प्रयोजनहै ? महामुनि द्रोणाचार्यने जब उनके ऐसे वाक्य श्रवण करे ॥ १२ ॥ तब उन्हें भगवान् महादेवजी जानकर भक्तिभावपूर्वक नम्रहो स्तुति करते हुए यों बोले—और उस समय उस तपस्वीका आनन्दसे चित्त परिपूर्ण होगया ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्यजी बोले—निराकार अर्थात् जिनका कोईभी आकार न हो, जो शुद्ध स्वरूप हैं, जिनके विषे (मायाजनित) द्वन्द्व (विकार) नहीं है, जो दयालु हैं, जिनकी कोईभी चेष्टा नहीं है, एवम् जो मायाजनित गुणोंसे रहित एवम् सब गुणोंकी आत्मा हैं ॥ १४ ॥ जिनका कोई नियतरूप नहीं है जो विरूप हैं, जो परमात्मस्वरूप और सुन्दर रूपवान हैं,जो स्वयम् निर्मल और जलस्वरूप हैं,जो निर्मल और संमोहन कर्ता हैं, जिनको किसी प्रकारकी वासना नहीं है जो शुद्ध और बोधस्वरूप हैं ऐसे आप परमात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ आप सबमें व्यापक हैं, आपही सबका आधार हैं, सब लोग आपहीकी वन्दना करते हैं, दुष्टोंका बन्धन करनेहीमें आपको आनन्द होता है आपही आनन्दस्वरूप हैं, ब्रह्मपूजित ब्रह्मस्वरूपभी आपही हैं ॥ १६ ॥ आप प्रकाशस्वरूप हैं, आपही भूमिका पालन करते हैं, सबके ऊपर आपहीका अधिकारहै आप कल्याणकर्त्ता और स्वयं कल्याणस्वरूप हैं, और आपही संसारका संहार करतेहैं सुतराम् आपको नमस्कारहै ॥ १७ ॥ भावानुसार आपका आविर्भाव होता है, आप कालस्वरूप और करालमूर्त्ति धारणकर्त्ता हैं, आपका कण्ठ नीला है, आप

ठाय रुद्राय पशूनां पतये नमः ॥ १८ ॥ निर्मर्य्यादाय वर्य्याय गरिष्ठाय भवादये ॥ नमः स्वातंत्र्यरूपाय परतंत्राय मंत्रिणे ॥ १९ ॥ नेदिष्ठाय दविष्ठाय श्रेष्ठाय यदवे नमः ॥ निरंजनाय कूप्याय वाट्याय च नमोनमः॥ २०॥ सौरये शूरसंस्थाय वेण्वाय वेणुनादिने॥ धनिने धनरूपाय स्वरूपायासुरारये ॥ २१॥ बलाय बलदेवाय वामदेवाय ते नमः ॥ भीमाय भीमकांताय त्र्यंबकाय कपालिने ॥ त्रिलोचनाय देवाय देवानां पतये नमः ॥ २२ ॥ उमेशाय महेशाय गिरीशाय विनाशिने ॥ गिरिव्रजैकरूपाय केदारेशाय ते नमः ॥ २३ ॥ एकलिंगाय लिंगाय नमो मीनांकहारिणे ॥ सतीश्वराय डिंभाय शंकरायाघनाशिने ॥ मृडाय शितिकंठाय तथोग्राय च ते नमः ॥ २४ ॥ स्कंद उवाच ॥ य एतैर्नामभिः स्तौति भक्त्या विप्र महेश्वरम् । इह-

सुन्दर स्वरूपधारीभी हैं और पशुओं अर्थात् समस्त जीवोंके अधीश्वरभी आपही हैं आपकोनमस्कार है ॥ १८ ॥ आपकी कोई मर्यादा नहीं है, सुतराम् सबसे श्रेष्ठ हैं, सबसे अधिक मान्यभी आपही हैं, आपही संसारके आदि कारण हैं, आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं, अन्य सब आपहीके आधीन हैं सबके हृदयमें शुभमन्त्रणाका विकाश आपही करते हैं ॥ १९ ॥ आप (भक्तजनोंके) अतिशय निकटवर्त्ती हैं, (दुष्टजनोंसे) आप दूर रहते हैं अतएव आप सबसे श्रेष्ठ हैं हम आपको नमस्कार करते हैं, आप निरंजन अर्थात् सब प्रकारके मलोंसे शून्य हैं, आपही सबमें मुख्य हैं, आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ सूर्यकी सत्तारूप आप हैं सूर्य्यमें आपहीकी अवस्थितिहै, वेणुस्वरूप और वेणु नादकर्त्ता भी आपहीहैं आपही धनरूप और धनी हैं, आपस्वरूपशाली हैं, आपही दैत्योंके संहारकर्त्ता शत्रु हैं (आपको नमस्कार है) ॥ २१ ॥ हे बलदेव ! आप बलरूप और वामदेवस्वरूप हैं हम आपको नमस्कार करते हैं, आप भयावहभी हैं अर्थात् आपके दर्शन करनेसे दुष्टोंको भय होता है सुतराम् आपके विषे भयंकर और मनोहर ये दोनोंही विशेषण चरितार्थ होते हैं, आप त्रिनेत्र और कपालमालाधारी हैं, हे देव ! आपके तीन नेत्र हैं, हे देवराज ! आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ आप उमापति और सबके ईश्वर हैं, आपही गिरीश्वर हैं सबका संहार करनेवालेभी आपही हैं, गिरिराजभी आपहीका स्वरूपहै, हे केदारनाथ ! आपको प्रणाम है ॥ २३ ॥ लिंगरूपधारी सुतराम् एक लिंगरूप आपही हैं, आपहीने मीनकेतन कामदेवका सत्यानाश किया था हम आपको नमस्कार करते हैं हे कल्याणमूर्त्ति शंकर ! ! ! आप सतीके प्राणनाथ हैं और आप पापोंका विनाश करते हैं हे उग्र ! आप आशुतोष और नीलकंठ हैं हमलोग आपको नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ स्कन्दजी बोले-हे द्विजराज ! जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक इन नामोंके द्वारा महादेवजीकी स्तुति करते हैं

लोके परान्भोगान्भुक्त्वा व्रजति धूर्जटिम् ॥ २५ ॥ इदं स्तोत्रमधीयानो वने चौरादिसंकुले ॥ न भयं शश्वदाप्नोति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥ २६ ॥ इति स्तुतो महेशानो दर्शयित्वा स्वयं वपुः ॥ वरं वरय चोवाच भक्तिनम्रं मुनीश्वरम् ॥२७॥ श्रीस्कंद उवाच ॥ संतुष्टोऽस्मि भरद्वाज स्तोत्रेण तपसा तव ॥ यद्यदिच्छसि तद्ब्रूहि प्रसन्नोस्मि तवानघ ॥ २८ ॥ इदं क्षेत्रं मदीयं च मानं षोडशयोजनम् ॥ अत्र यत्क्रियते कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥ २९॥ त्वया यत्तपसा विप्र स्तोत्रेणानेन तोषितः ॥ वरं ददामि सर्वस्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ३० ॥ द्रोण उवाच ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योस्मि यस्य त्वं दर्शनं गतः ॥ तत्तस्मात्पूर्तकामोहं न तृष्णा मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥ ददासि चेद्वरं मह्यं धनुर्वेदं प्रशंस मे ॥ गमनं च तथाह्यंतेऽनंते रूपविवर्जिते ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धनुर्वेदं गृहाण त्वं यथावत्सार्ववर्णिकम् ॥ इदं च परमं

वे इस लोकमें विविधभाँतिके भोगोंका उपभोग करके अन्तसमय महादेवजीमें लीन होजाते है ॥ २५ ॥ वनके बीच और आदिसे आकीर्ण होनेपर जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करतेहैं उन्हें भय कदापि नहीं होता और ग्रह जनित दारुण पीडा भी नहीं होती है ॥ २६ ॥ महादेवजीकी जब इस प्रकारसे स्तुति करी गई तब उन्होंने अपने दिव्य देहके दर्शन कराये, और भक्तिभाव पूर्वक नम्रहुए मुनीश्वरसे कहा कि—तुम वर मांगो ॥ २७ ॥ श्रीस्कन्दजी बोले—हे भरद्वाज ! हम तुम्हारे इस स्तोत्र और तपसे सन्तुष्ट हैं, हे निष्पाप ! क्योंकि हम तुमसे प्रसन्न हैं इस लिये जो २ तुम्हारी इच्छा हो सो बताओ ॥ २८ ॥ हमारे इस क्षेत्रका प्रमाण सोलह योजनका है, सुतराम् इसमें जो कुछ भी कर्म किया जाताहै उसका करोड गुणा अधिक फल मिलता हैं ॥ २९ ॥ हे विप्र ! तुमने तपश्चर्या और स्तुति करके हमैं सन्तुष्ट किया है अतएव तुम्हारे मनमें जो कुछ है सो सभी तुम्हैं वर देसक्ताहूं॥ ३० ॥ द्रोणाचार्यजी बोले—हे देव ! आपके दर्शन करके मैं धन्य और कृतकृत्यहोगयाहूं अतएव मेरी सबही कामनायें पूर्ण होगई हैं सुतराम् मुझे अब किसी बातकी तृष्णा नहीं है ॥ ३१ ॥ तथापि यदि आप मुझे वर प्रदान करनाही चाहते हैं तो मुझे धनुर्विद्या बताइये, अथ च अन्तमेंरूपरहित अनन्तदेवमें लीन होनेकी क्रियाभी सिखाइयेगा॥ ३२॥ महादेवजी बोले—सब वर्णोंसहित यथावत् धनुर्वेदको तुम ग्रहण करो, और यह परमस्थानभी

स्थानं त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥ ३३ ॥ देवधाराचलेमां यो ध्यायिष्यति महेश्वरम् ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ ३४ ॥ सांगं चैव धनुर्वेदं गृहाण वरमुत्तमम् ॥ यज्ज्ञात्वा योत्स्यसे विप्र सर्वैरपि सुरासुरैः ॥३५॥ स्कंद उवाच॥ इत्युक्त्वा प्रददौ सर्वं धेनुर्वेदं द्विजातये ॥ यथावत्सर्वमंत्रैश्च सहितं सार्ववर्णिकम्॥३६॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे द्रोणतीर्थमाहात्म्ये द्रोणवरप्रदानं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

आपहीके नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति देवधाराचलके ऊपर मुझ महेश्वरका ध्यान करैगा. निस्सन्देह मैं उसकी समस्त बाधाओंका विनाश करदूंगा ॥ ३४ ॥ हे द्विजराज ! अंगोंसहित तुम श्रेष्ठ धनुर्वेदको ग्रहण करो, इसे जानकर क्या देवता और क्या असुर सभीके साथ युद्धकर सकोगे ॥ ३५ ॥ स्कन्दजी बोले—यों कहकर महादेवजीने अखिल धनुर्वेद द्रोणाचार्यको देदिया, और यथावत् सब मन्त्र और वर्णभी उन्हें सिखादिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२६.

नारद उवाच ॥ कथं धनुर्वेदमिमं परमात्मा सदाशिवः ॥ प्रोक्तवान्देवदेवेशो द्रोणाय दुरितापहम् ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ धनुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम् । यस्य श्रवणमात्रेण धनुर्वेद चतुर्मुखः ॥२॥ चतुष्पादो धनुर्वेदोविस्तारस्तस्य नैकधा ॥ संक्षेपतः शृणु द्रोण विस्तारात्केन दृश्यते॥३॥ रथं चैव तथा नागं तुरंगं योधमुख्यकान् ॥ समाश्रित्य चतुष्पादः स एव च धनु-

नारदजी बोले—देवाधिदेव—परमात्मा महादेवजीने पापोंके विनाश करनेवाले धनुर्वेदकी विद्याको किस प्रकार द्रोणके प्रति वर्णन किया था ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले—समस्त पापों और भयके विनाश करनेवाले धनुर्वेदका अब हम वर्णन करते हैं, जिसको श्रवण करनेहीसे ब्रह्माजीको धनुर्वेदकी प्राप्ति होगई थी ॥ २ ॥ धनुर्वेदके यद्यपि चार पाद हैं तथापि वोह अनेक प्रकारसे विस्तृत हैं, हे द्रोण ! संक्षेपसे उसका वर्णन सुनो, विस्तार तौ देखाही किसने है ॥ ३ ॥ मुख्य योधा,

ष्क्रमः ॥ ४ ॥ प्रत्येकं पंचधा तद्धि कथ्यते स्थानभेदतः ॥ प्रथमं मंत्रमुक्तं तु करमुक्तं द्वितीयकम् ॥५॥ मुक्तसंधारितं तद्वदमुक्तं च चतुर्थकम् ॥ बाहुयुद्धं तथाख्यातं पंचमं सर्वसंमतम् ॥ ६ ॥ तच्छस्त्रास्त्रोक्तसंपत्या द्विविधं तु ततस्मृतम् ॥ पुनर्द्वैविध्यकं तस्य ऋजुमायाविभेदतः ॥ ७ ॥ क्षेपणीयादिमंत्रोत्थं मुक्तं चैतत्प्रकीर्त्तितम् ॥ शक्तितोमरपाषाणाः पाणियुक्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥ मुक्तसंधारितं तद्वत्प्रासाराद्यपि यद्भवेत् ॥ खड्गादिकं तथा मुक्तं बाहुयुद्धं गतायुषम् ॥ ९ ॥ अंगुष्ठगुल्फपार्ष्ण्यंघ्रिश्लिष्टाः स्युः संहता यदि ॥ स्थानं समपदं दृष्टं पृथग्लक्षणतो मुने ॥ १० ॥ बाह्यांगुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुतलावुभौ ॥ विशिखस्य तथा स्थानं सार्द्धहस्तांतरं स्मृतम् ॥ ११ ॥ मरालालिसमे यत्र लक्ष्यंते विप्रजानुनी ॥ द्विहस्तपरिमाणं च मंडलं परिकीर्त्तितम् ॥ १२ ॥ हलाकृतसमं यद्वत्तद्वज्जानूकदक्षतः ॥ तदालीढं परिख्यातं सार्द्धद्वयकरोन्मितम् ॥ १३ ॥ विपरीतमिदं

रथ, हाथी, अश्व, के आश्रयसे जो अस्त्र प्रक्षेप करते हैं यह धनुषका क्रम है ॥ ४ ॥ उनमेंसे प्रत्येक स्थानके भेदसे पांच २ प्रकार हैं, प्रथम मन्त्र, दूसरा हाथ, ॥ ५ ॥ तीसरा मुक्त संधारित, और चौथा अमुक्त और पंचम सर्व सम्मत बाहु युद्ध मानागयाहै ॥ ६ ॥ और यह भी शस्त्र अस्त्रके संपातसे दो प्रकारके मानेगये हैं ऋतु एवम् मायाके भेदसे इनके और भी दो भेद हैं॥७॥ प्रक्षेपके मन्त्रोंद्वाराही इनका उत्थान कीर्त्तन कियागया है, शक्ति तोमर और पाषाण हस्तग्रहण पूर्वक कीर्त्तन किये गये हैं ॥ ८ ॥ तथा मुक्त सन्धारित खड्गादिक बाहु युद्ध (गतायुष) ॥ ९ ॥ अंगुष्ठ, गुल्फ, पार्श्व, चरण, ये यदि श्लिष्ट होकर संहत होगये हों तौ हे मुनिराज ! पृथक् लक्षणसे समपदस्थान दृष्ट होता है ॥ १० ॥ जब बाह्य अंगुलियोंके ऊपर चरणोंकी उपस्थिति हो एवं उसी प्रकार जानुतलोंकी स्थिति होनेसे बाणोंका डेढ हाथ परिमित स्थान रहताहै ॥ ११ ॥ हे विप्र ! जहां हंसपंक्तिकी समान जानु दृष्टिगत होती है, वोह द्विहस्तपरिमाणका मण्डल कहाताहै ॥ १२ ॥ जहां हलके आकार जानु स्थित रहते हैं तब अढाई हाथ परिमित आलीढ कहाता है ॥ १३ ॥ और जहां वाम चरण तिर्च्छाहोकर दक्षिणसे संगत होताहै

ख्यातं प्रत्यालीढमिति स्मृतम् ॥ वामस्तिर्यग्भवेद्यत्र दक्षिणश्चैव संगतः ॥ १४ ॥ पार्ष्णिस्थितौ तथा गुल्फौ तथा पचांगुलांतरौ ॥ जायते च महाभाग स्थानं तद्द्वादशांगुलम् ॥ १५ ॥ प्रासारितं यत्र जानु दक्षिणश्चर्जु वामकम् ॥ दक्षिणं जानु कुब्जं वा पादौ दंडायतौ भवेत् ॥ विकटं च तथा प्रोक्तं द्विकरांतरमायतम् ॥ १६ ॥ उत्तानौ चरणौ पूर्वं जानुनी द्विगुणं तथा ॥ इदं संपुटकं नाम विधिस्ते परिकीर्त्तितः ॥ १७ ॥ समदंडायतौ पादौ किंचिच्चैव निवर्त्तितौ ॥ विस्तारात्षोडशांगुल्यमुक्तं न्यासं मुनीश्वर ॥ १८ ॥ स्वस्तिकाकृतिनमनं कुर्याद्देवं च संस्मरन् ॥ धनुरुत्थाप्य सव्येनापसव्येन च सायकम् ॥ १९ ॥ उत्थितो वा स्थितो वापि वैशाखे गुणयोगतः ॥ धनुषोघः कोटिरपि फलं स्थाने च पत्रिणः ॥ २० ॥ पृथिव्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्या प्रियं धनुः ॥ कुब्जाभ्यामथ बाहुभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां तथैव च ॥ २१ ॥ यस्य बाणधनुः श्रेष्ठे मुखदेशे च पत्रिणः ॥

तब उसके विपरीत इसको प्रत्यालीढ कहते हैं ॥ १४ ॥ पार्ष्णिमें जब गुल्फोंकी उपस्थिति हो तौ पांच अंगुलके अन्तरहीमें हे महाभाग ! द्वादशांगुल प्रमाणका स्थान होजाताहै ॥ १५ ॥ और जहां जानुको बिलकुल सीधा फैला दिया जाय और दक्षिण जानु कुछ एक टेढीहो अथवा दोनो पैर दण्डकी समान कियेजांय तौ उसे दोहस्त परिमित निकट कहते हैं ॥ १६ ॥ प्रथम चरणोंको लम्बायमानकर जानुओंको द्विगुणित करै यह सम्पुटनाम आसनकी विधि हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करीहै ॥ १७ ॥ किंचिन्मात्र निवार्त्तितकर जिसमें समदण्डकी समान चरण करलिये जाते हैं, और हे मुनिराज ! उसका विस्तार सोलहअंगुलका होता है ॥ १८ ॥ परमेश्वरका स्मरणकर वाम हाथमें धनुष और दक्षिणमें बाणको उठाके तिर्च्छी रीतिसे खड़े होनेको स्वस्तिका आसनबन्ध कहते हैं ॥ १९ ॥ गुणके योगसे वैशाखीके ऊपर उत्थित हो अथवा अवस्थित हो, और धनुषकी दोनों कोटी नीचेको हो एवम् धनुषका फलभी नीचेही अवस्थित हो ॥ २० ॥ और धनुषको भूमिके ऊपर स्थापित कर किंचिन्मात्र मुडीहुई दोनों भुजाओंसे धनुषका उत्तोलन कर ॥ २१ ॥ और बारह अंगुलके अन्तरमें बाण और धनुष श्रेष्ठ मुखप्रदेशमें संलग्न होगये हैं

विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशांगुलमंतरम् ॥ २२ ॥ गुणावशिष्टः कर्त्तव्यो नास्ति हीनो न चाधिकः ॥ धनुर्निवेश्य नाभ्यां च कंठे वै सशरं करम् ॥ २३ ॥ श्रुतिनेत्रांतरेणाशु हस्तं वर्त्तिनमुत्क्षिपेत् ॥ पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यं स्तनाग्रे दक्षिणे शरः ॥ २४ ॥ नमनं चैव कृत्वा च पूर्वं चैव प्रसारिते ॥ नाभ्यंतरा नैव बाह्या नोर्द्ध्वकारो- धना तथा ॥ २५ ॥ न वक्रा च तथोत्ताना नातिवेष्टनशी- लिता ॥ समा स्थैर्य्यगुणोपेता प्रोक्ता दंड इवायता ॥ २६ ॥ लक्षश्च छादयित्वा वै मुष्टिना दृढकृष्टिना ॥ ऊरू जान्वन्विते यत्नात्त्रिकोणाविनतः स्थितः ॥ २७ ॥ स्रस्तांगो निश्चलग्रीवो मयूरांचितमस्तकः ॥ ललाटनामा वक्रांगाः कूर्परश्च समं भवेत् ॥ २८ ॥ अंतरं त्र्यंगुलं प्रोक्तं विकृष्यांशं करस्य च ॥ प्रथमं त्र्यंगुलं ज्ञेयं द्वितीयं द्व्यंगुलं तथा ॥ २९ ॥ एकांगुलं तृतीयं तु व्यायतं ज्यायतं तथा ॥ संगृह्य सायकं पुंखात्तर्ज्जन्यागुंष्ठकेन च ॥ ३० ॥ अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयाति च ॥ ताव-

॥ २२ ॥ उसमें केवल एक सूत्रमात्रहीका अन्तर करना कर्त्तव्य है हीन वा अधिक न हो, धनुष को नाभिमे स्थापन करै, और हाथमें बाणको धारण करै ॥ २३ ॥ कानपर्य्यंत आकर्षणकर नेत्रोंकी दृष्टिके मध्यमें (अर्थात्—ताककर) उसका उत्क्षेपण करना कर्त्तव्य है । अथ च दक्षि- णहाथसे बाणका आकर्षणकर स्तनपर्य्यन्त लावै ॥ २४ ॥ प्रथम प्रसारित करेहुए ही में किंचि- न्मात्र नमनकरै, और नाभिके अन्तरको बाह्य न कर धनाकार रक्खै ॥ २५ ॥ अर्थात्—न उसे तिर्च्छा करै, उन्नमित भी न करै सुतराम् मध्यभागको दण्डकी समान स्थिर और सीधा रक्खै ॥ २६ ॥ और दृढ मुष्टिके द्वारा धनुषके मध्यभागको आच्छादन पूर्वक पकड़कर ऊरू और जानु- ओंको यत्नपूर्वक संगठितकर त्रिकोण हो स्थित रहै ॥ २७ ॥ सब अंग स्रस्त (शिथिल पतित) हों, ग्रीवा निश्चल हो मस्तकोपरि अपामार्ग लगानाचाहिये ॥ और जिसमें अंग सब वक्रहों उसे ललाटनाम आसन कहते हैं, और कूर्परभी इसीकी समान होता है ॥ २८ ॥ आक- र्षणकरनेपर तीनअंगुलका अन्तर होना चाहिये, प्रथम दो अंगुल और द्वितीय तीन अंगुल प्रमा- णका जानना चाहिये ॥ २९ ॥ तथा तीसरेका एक अंगुल परिमित विस्तार होता है, बाणके पुंखप्रदेशमें तर्जनी और अंगुष्ठसे बाणको ग्रहण करके ॥ ३० ॥ फिर अनामिका और मध्यमा

दाकर्षयेत्पूर्णं यावद्बाणः स पूरितः ॥ ३१ ॥ एवं विधमुपक्रम्य क्षेप्तव्यो विधिवत्खगः ॥ दृष्टिमुष्टिकृतं लक्ष्यं भिंद्याद्बाणेन सत्वरम् ॥ ३२ ॥ मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं प्रक्षिपेद्वेगतः स्थितः ॥ एतत्प्रभेदकं प्रोक्तं जानीहि द्विजपुंगव ॥ ३३ ॥ कूर्परात्तदधः कार्य्यं धनुषाकृष्य तं शरम् ॥ ऊर्द्ध्वं विमुक्तके कार्य्यं पक्षश्लिष्टं तु मध्यमम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं प्रकृष्टं कर्त्तव्यं विज्ञेयं द्विजपुंगव ॥ श्रेष्ठो बाणो द्विषण्मुष्टिरेकहीनस्तु मध्यमः ॥ ३५ ॥ दशमुष्टिर्विकृष्टस्तु त्रयो भेदाः शरस्य वै ॥ त्रिविधं कार्मुकं प्रोक्तं चतुर्हस्तं वरं स्मृतम् ॥ ३६ ॥ सार्द्धत्रयान्मध्यमं तु त्रिहस्तं तु कनिष्ठकम् ॥ एवमेव रथेऽश्वे च गजे चैव क्रमेलके ॥ ३७ ॥ पत्तौ च द्विज तत्प्रोक्तं संस्कृतं च ततो भवेत् ॥ द्विजः सूर्य्याय तं कृत्वा ततो मासैः शतायुषः ॥ ३८ ॥ मुनिधौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमिविधानवित् ॥ समागृह्य ततो बाणं दंशितुं सुसमाहितः ॥ ३९ ॥ तृणमासाद्य बध्नीत दृढां कक्षां च दक्षिणाम् ॥ चापं

अंगुलीसे उसे ग्रहण करै, और जबतक बाण परिपूर्णहो तबतक उसे आकर्षण करना कर्त्तव्यहै ॥ ३१ ॥ इस विधिसे उपक्रम करके जो बाण परित्याग किया जाताहै, वोह यदि ताककर निशाना लगाया जाय तौ अवश्यही उसका भेदन करताहै ॥ ३२ ॥ हे द्विज पुंगव ! पिछले दक्षिण-हाथको छोड़कर वेगपूर्वक जो बाण परित्याग किया जाताहै इसे प्रभेद नामसे कीर्त्तन कियागया है ॥ ३३ ॥ जिसमें धनुषको किंचित् नीचाकरके उसके बाणको ऊपर को परित्याग कियाजाय उसे मध्यम प्रक्षेप कहते हैं ॥ ३४ ॥ हे द्विजपुंगव ! सीधेहाथका आकर्षण करना चाहिये, बाणके तीन भेद होते हैं. आठ नौ और दश मुष्टिका प्रमाण, उसमें आठमुष्टिका बाण श्रेष्ठ नौका मध्यम ॥ ३५ ॥ और दश मुष्टिके आकर्षणका तीसरा (निकृष्ट) होताहै और धनुषभी तीन प्रकारहीका मानागयाहै, उनमेंसे चार हाथका श्रेष्ठ कहाताहै ॥ ३६ ॥ साढ़ेतीन हाथका मध्यम और तीनहस्त परिमित निकृष्ट होताहै । इसी प्रकार रथ, अश्व, हस्ती, और ॥ ३७ ॥ पदातियोंमें भी हे द्विज ! येही भेद वर्णन कियाहै, ऐसा होनेसे ही इसका संस्कार ठीक होताहै हे द्विज ! यदि कतिपयमासपर्यन्त धनुर्मण्डल निर्माणकर अभ्यासकिया जाय तौ वह शतायु होताहै ॥ ३८ ॥ विधिके ज्ञाताको चाहिये कि, यज्ञभूमिके विधानसे धनुषको अपामार्गसे प्रक्षालन कर एकाग्रमनसे बाणको ग्रहण करै ॥ ३९ ॥ और रज्जुलेकर दक्षिणावर्त्त दृढकक्षा

विलक्षणमपि तत्र देवंतु संस्थितम् ॥ ४० ॥ ततः समुद्धरेद्बाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना ॥ तेनैव सहितं मध्यशरं संगृह्य धारयेत् ॥ ४१ ॥ संपाद्य सिंहकल्केन पुंखेनापि समे दृढम् ॥ वामकक्षोपरिस्थं च फलं वामस्य धारयेत् ॥ ४२ ॥ वल्लां मध्यमया तत्र वामांगुल्यावधारयेत् ॥ लक्ष्यं चैव तथा कृत्वा मुष्टिना च विधानवित् ॥ ४३ ॥ दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वल्लां विमोक्षयेत् ॥ ललाटपुटसंस्थानं दंडलक्षे निवेशयेत् ॥ ४४ ॥ आकृष्य ताडयेत्तत्र चंद्रकं षोडशांगुलम् ॥ मुक्त्वा बाणं ततः पश्चाद्वल्लां चित्या तदा तया ॥ ४५ ॥ निगृह्णीयान्मध्यमया ततोंगुल्या पुनः पुनः ॥ आक्षिलक्ष्यं क्षिपेद्बाणं चतुरस्रं च दक्षिणम् ४६॥ चतुरस्रं गतं वेध्यमभिसंवादितः स्थितम् ॥ तस्मादनंतरं तीक्ष्णं परावृत्तगतं च यत् ॥ निम्नमुन्नतवेध्यं च ज्याभ्यासात्क्षिप्रकं नरः॥ ॥ ४७ ॥ मध्यस्थाने तथैतेषु संन्यस्य पुटकाद्धनुः ॥ हस्तावामशतैश्चित्रैस्तर्जयेदुत्तरैरपि ॥ ४८ ॥ अस्मिन्वेध्यगते

बांधनी चाहिये, वहां धनुष और देवकी स्थापना करनी कर्त्तव्य हैं ॥ ४० ॥ फिर दक्षिण हाथसे तर्कसमेंसे बाणको निकाले और मध्यमें उसे धारण करना कर्त्तव्यहै ॥ ४१ ॥ सिंहोडके कल्कसे मध्यमें उसे संसिक्तकर बामकक्षाके ऊपर वामके फलको धारण करे ॥ ४२ ॥ अथवा वाम अंगुलीसे उसका धारण करना कर्त्तव्य है । तथा सबविधिके ज्ञाताको चाहिये कि, मुष्टिमें ग्रहणकर ठीक निशाना लगावै ॥ ४३ ॥ दक्षिण देहभागमें स्थापन कर प्रक्षेपकरना कर्त्तव्यहै, और अपनी दृष्टिको ठीक निशानेके ऊपर लगावै ॥ ४४ ॥ बाणका सोलह अंगुल पर्य्यन्त आकर्षण करके उसे परित्याग करना कर्त्तव्यहै॥४५॥ मध्यमा अंगुलीके आधारसे उसे पकड़कर चारों ओर चौकोर स्थानमें लक्ष अक्षिपर्य्यन्त बाणका प्रक्षेप करै ॥ ४६ ॥ यथोक्तविधिसे स्थितहो चतुष्पथमें स्थितलक्ष्यका वेध करना कर्त्तव्यहै, इसके अनन्तर मनुष्यको चाहिये कि, तदनन्तर कुछ पीछेको हटकर और कुछ एक नीचा करके तीक्ष्णबाणसे निशानेको वेधना चाहिये ॥ ४७ ॥ फिर मध्यस्थानमें धनुषको स्थापनकर वामहस्तके आधारसे तर्जनकरै ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! इस विधिसे लक्ष्यकी गतिमें दो संज्ञा होजाती हैं, एक दुष्कर और दूसरी चित्रदुष्कर, यह तीक्ष्ण और दृढ-

विप्र द्वेधोभ्ये दृढसंज्ञके ॥ द्वेविध्ये दुष्करे विप्र तथा चित्रकदुष्करे ॥ अन्तरस्त्रं च तीक्ष्णं च दृढवेध्ये प्रकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥ अथास्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ॥ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदंडकम् ॥ ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्य्यं पाशुपतं मम ॥ ५० ॥ वायव्यं पंचमं ज्ञेयमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम् ॥ नारसिंहं सप्तमं च तेषां भेदा ह्यनंतकाः ॥ ५१ ॥ ससंहारं सविक्षेपं शृणु द्रोण यथातथम् ॥ वेदमात्रा सर्वशास्त्रं गृह्यते क्षिप्यतेऽथ वा ॥ ५२ ॥ तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु ॥ दादिदंतं च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधिः ॥ ५३ ॥ जप्तां पूर्वं निषर्वचाभिमंत्र्य विधिवच्छरम् ॥ प्रक्षिप्ते शत्रवः कृत्स्ना नश्यन्ते सर्वजातयः ॥ ५४ ॥ बाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योद्धुं समागताः॥ सर्वे ते नाशमायांति मम चैव प्रसादतः ॥ ५५ ॥ यथाक्रमं दादिदन्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ब्रह्मदंडं प्रवक्ष्यामि पूर्वं प्रणवमुच्चरेत् ॥ ५६ ॥ ततः प्रचोदयाज्ज्ञेयं ततो नो यो धियः क्रमात्॥

बाणसे वेधी जासक्ती है ॥ ४९ ॥ अब हम अस्त्रोंका वर्णन करते हैं सावधानहोके श्रवणकरो ! प्रथम ब्रह्मास्त्र, दूसरा ब्रह्मदण्डक तीसरा ब्रह्मशिर, चतुर्थ हमारा पाशुपत अस्त्र ॥ ५० ॥ पांचवां वायव्य, छठा आग्नेय, और सप्तम नारसिंह; ये सात अस्त्र कीर्तन करेगये हैं, और इनके भेद अनन्तहैं ॥ ५१ ॥ हे द्रोण ! अब संहार (लौटालेना) और विक्षेप (परित्याग करना) सहित इनका ठीक २ वर्णन सुनो, गायत्रीहीके द्वारा सब अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये जाते और उनका प्रक्षेप किया जाताहै ॥ ५२ ॥ सुतराम् उनके प्रयोगकी विधिको सुनो और प्रथम ब्रह्मास्त्रहीका श्रवणकरो गायत्रीके आदि अन्तमें 'द' प्रयोगकर उसका उलटा जप करै ॥ ५३ ॥ दश सहस्र कोटि उसका जप करके विधिपूर्वक उससे बाणको अभिमन्त्रित करै, इस विधिसे बाणका प्रक्षेप करै तौ शीघ्रही शत्रुओंका विनाश होजाताहै ॥ ५४ ॥ बालक और वृद्ध अथवा जो युद्ध करनेको आये हों, हमारी कृपासे उन सभीका विनाश होजाताहै ॥ ५५ ॥ और संहारकी सिद्धिके लिये क्रमशः ! 'द' आदि और 'द' अन्तमें जोडकर जपकरै । अब ब्रह्मदण्डका कीर्त्तन करताहूं प्रथम ओंकारका उच्चारण करै ॥ ५६ ॥ फिर "प्रचोदयात्" फिर "नो यो धियः" तत्पश्चात् " धी महि " और फिर "भर्गोवरेण्यम्"

ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम् ॥ ५७ ॥ सवितु-
स्तच्च योक्तव्यं मम शत्रूँस्तथैव च ॥ ततो हन हुं फट् जप्त्वा
पूर्वं चैव द्विलक्षकम् ॥ अभिमंत्र्य शरं तद्वत्प्रक्षिपेच्छत्रुषु द्रुतम्
॥ ५८ ॥ नष्यंति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम् ॥ एतदे-
व विपर्य्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ५९ ॥ ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि
प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ॥ धियो यो नः प्रचोदयाद्भर्गो देवस्य धीमहि
॥ ६० तत्सवितुर्वरेणियं शत्रून्मे हन हनेति च ॥ हुंफट् चैव
प्रयोक्तव्यं क्षिपेद्ब्रह्मशिरस्ततः ॥ ६१ ॥ पुरश्चर्य्यां पुरा कृत्वा
त्रिलक्षं नियतः शुचिः ॥ नश्यंति सर्वे रिपवः सर्वे देवासुरा
अपि ॥ ६२ ॥ इदमेव विपर्यस्तं प्रयोक्तव्यं विकर्षणे ॥ ६३ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि शस्त्रं पाशुपतं मम ॥ यस्य विज्ञानमात्रेण
नश्यंते सर्वशत्रवः ॥ ६४ ॥ दादिदंतं च सावित्रीं प्रोच्य प्रणव-
मेव च ॥ श्लीं पश हूं फट् अमुकशत्रून्हन हन हुं फट् ॥ जप्त्वा
पूर्वं द्विलक्षं च ततः पाशुपतं क्षिपेत् ॥ ६५ ॥ पुनस्तदेव

का प्रयोगकर करना कर्त्तव्य है ॥ ५७ ॥ इसके पश्चात् "सवितुः" फिर "ममशत्रून्" औ
"हन हुं फट्" संयुक्तकर उसका दो लक्ष जप करना कर्त्तव्यहै, और फिर बाणको अभिमन्त्रि
करके शत्रुओंके ऊपर प्रयुक्त करै ॥ ५८ ॥ ऐसा करनेसे सब शत्रुओंका विनाश होजाताहै
चाहै यमराजकी समानभी हों, संहारकी सिद्धिके लिये इसका विपर्यस्त जप करना चाहिये॥ ५९
अब ब्रह्म शिरका वर्णन करतेहै, प्रथम ओंकारका उद्धारकरै, फिर "धियोयोनः प्रचोदयात् भर्
देवस्य धीमहि तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रुन्मे हन हन हुं फट्" संयुक्तकर उससे अभिमन्त्रित कर
ब्रह्मशिराका परित्यागकरै ॥ ६० ॥ ६१ ॥ शुद्धता पूर्वक प्रथम पुरश्चरण करके तीन लक्ष
करै तौ चाहे देवता अथवा असुरभी शत्रु हों तो उनका विनाश होजाताहै ॥ ६२ ॥ विकर्ष
इसीको विपर्यस्त प्रयोग करना कर्त्तव्यहै॥ ६३॥अब हम अपने पाशुपत अस्त्रका वर्णन करतेहैं इ
केवल ज्ञान मात्रहीसे समस्त शत्रुओंका सत्यानाश होजाताहै॥ ६४॥आदि और अन्तमें 'द' का प्रयोग
गायत्रीका उच्चारण करै और फिर ओंकारकाभी उच्चारण करना कर्त्तव्य है–"श्लीं पशु हुं फट अ
शत्रून् हन हन हुं फट्" इसको प्रथम दो लक्ष जपकरके पाशुपत अस्त्रका प्रयोग करना क
है ॥ ६५ ॥ और इसीका व्यस्त (विपरीत) संहारमें प्रयुक्त किया जाताहै यह पाशुपत

व्यस्तं स्यात्संहारे संनियोजयेत् ॥ एतत्पाशुपतं शस्त्रं सर्वशत्रुनिवारणम् ॥ ६६ ॥ वच्मि वायव्यशस्त्रं च नश्यंते येन शत्रवः ॥ ६७ ॥ॐ॥ वायव्ययावायव्ययारोपोर्वाययावा तथा ॥ अमुकशत्रून्हन हन हुं फट् चैवप्रकीर्त्तयेत् ॥६८॥ पूर्वमेव तदा जप्त्वा नियुतद्वितयं तथा ॥ पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत् ॥ अस्त्रं वायव्यकं नाम देवानामपि वारणम् ॥ आग्नेयं संप्रक्ष्यामि यतः परभयं ददेत् ॥ ६९ ॥ ओमग्निस्त्यताऋदुर्भूचशिवं वनाश्वाविणि च ॥ ऋगादुतिदंशकपनःसदवेतिततः क्रमात् ॥ हादतितोयतिरामतथामसेहिवानसु ॥ ७० ॥ सेदवेदया च वदेत् अमुकादींस्ततो वदेत् ॥ पूर्वोक्तां च पुनश्चर्यां कृत्वा शास्त्रेभियोजयेत् ॥ ७१ ॥ इमं मंत्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत्॥ ॐ ॥ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हूँ फट्॥७२॥पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नारसिंहे च योजयेत् ॥ सिंहरूपास्तथा बाणाः पतंति शात्रवे बले ॥ ७३ ॥ पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत्॥ संक्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते ॥ ७४ ॥ त्वदाश्रममिमं

सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला है॥६६॥अब वायव्य शस्त्रका बर्णन करते हैं, जिससे अखिल शत्रुओंका विनाश होताहै ॥ ६७ ॥ प्रथम "ओं वायव्यया वायव्यया रायौर्वापा अमुक शत्रून् हन हन हुं फट" इसका उच्चारण करै ॥ ६८ ॥ पहिले लक्ष अथवा दश लक्ष जप करके संहार रूपसे संहारकी कल्पना करै. यह वायव्य नाम अस्त्र देवताओंकाभी निवारण करने वाला है ॥ ६९ ॥ अब शत्रुओंको भयोत्पादन करनेवाले आग्नेय अस्त्रका वर्णन करते हैं "ओं अग्निस्यता ऋदुभूंच शिवं वना श्वाविणि, ऋगादुति दशकंपनः सदवेति" इस क्रमसे प्रयुक्त करके "हादति तोयतिराम मसेहिवानसुसेदवेदया" कहकर 'अमुक' आदिका उच्चारण करै, और पूर्वोक्त पुरश्चर्याकरके शस्त्रको अभिमन्त्रित करै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ संहारमें इस मन्त्रका विपरीत प्रयुक्त करना कर्त्तव्यहै । "ओं वज्र नख दंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्" इसको प्रथम एक लक्ष जपकर नारसिंह अस्त्रमें प्रयुक्त करै, तो सिंहरूपबाण शत्रुके दलके ऊपर निपतित होते हैं ॥ ७३ ॥ और पूर्वोक्त प्रकारसे संहारमें भी उसकी कल्पना करनी कर्त्तव्यहै, हे महामतिमान् महाभाग ! यह सब संक्षिप्त रीतिसे हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे

पुण्यं येऽवसिष्यंति मानवाः ॥ मुक्ताः प्रयांतु मद्देहं धन्याः पापविवर्जिताः ॥ ७५ ॥ इति ते कथितो विप्र धनुर्वेदः सुपुण्य दः ॥ नश्यंति तस्य रिपवो येप्येनं लोचयंति च ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे उत्तरभागे शस्त्रविद्यानिरुक्तिर्नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

इस पवित्र आश्रमके ऊपर निवास करेंगे, वेधन्य (अहोभाग्यशाली) व्यक्ति पापरहित और मुक्त होकर हमारे देहमें लीन होजायँगे ॥ ७५ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार हमने यह धनुर्वेद तुमसे वर्णन किया सो यह अत्यन्तही पुण्यप्रदहै, जो व्यक्ति इसका अवलोकन करते हैं उनके शत्रुओंका विनाश होजाताहै ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षडिंशत्यधिकशततमोध्यायः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२७.

स्कंद उवाच ॥ ईश्वरोपि महाभाग दत्त्वा वरमनुत्तमम् ॥ देवधारे गिरौ देवस्तत्रैवांतरधीयत ॥ १ ॥ सोपि द्रोणो महाभाग प्राप्य वेदं महेशतः ॥ कृत्वा बहूनि कर्म्माणि रणे देवत्वमागतः ॥ २ ॥ इति ते कथितो देव देवधारस्य वैभवः ॥ देवेश्वर इति ख्यातो लिंगरूपी सदाशिवः॥३॥ तस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्व पातकैः ॥ देवजन्यां नदीं स्नात्वा हयमेधफलं लभेत् ॥ ४ ॥ देवधाराचलस्यापि स्नानं पश्चिमदेशतः ॥ नवदोलेति विख्याता पुरंध्री ह्यभवत्पुरा ॥ ५ ॥ तपस्ततं तया ह्यत्र शिवो देवः

स्कन्दजी बोले—देवधार पर्वतके ऊपर इस प्रकार वर प्रदान करके महादेवजी उसी स्थान अन्तर्द्धान होगये ॥ १ ॥ महात्मा द्रोणाचार्यजी महेश्वरके सकाशसे धनुर्वेदको पाकर अनेक कर्म करके संग्राममें देवत्वको प्राप्त होगये ॥ २ ॥ हे देव ! इस प्रकार हमने यह देवधाराचलका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, वहांही सदाशिव महादेवजी लिंगरूपधारण देवेश्वर नामसे प्रसिद्धहैं ॥ ३ ॥ उक्त लिंगके दर्शन मात्र करनेसे मनुष्य समस्त पातकों मुक्तिलाभ करताहै, अथ च देवजन्यानदीमें स्नानकरनेसे मनुष्योंको अश्वमेध यज्ञके फलका होताहै ॥ ४ ॥ देवधाराचलका स्नान करनेका स्थान पश्चिमओरसे नव दोलानामसे विख्यात और वहांही पूर्वकालमें पुरंध्रीका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ५ ॥ उक्त पुरंध्रीने तपका अनुष्ठान

प्रसाधितः ॥ अददच्च वरं तस्यै सौभाग्यं पतिना सह ॥ ६ ॥ ततोऽवधिपरं तीर्थं नवदोलेति संज्ञितम् ॥ तत्र धारात्रयं ख्यातं जटाजूटाद्विनिर्गतम् ॥ ७ ॥ त्रिपथेति समाख्याता धारत्रितयसंयुता ॥ पुरा तत्र बभूवाथ विप्रो जावालिसंज्ञितः ॥ ८॥ तेनापि परमेशानो भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ आराधितो महाबाहो द्रष्टुं त्रिपथगां पराम् ॥ ९ ॥ तपोवर्षशतं साग्रं निराहारेण तेन वै ॥ ततः कतिपयाहेन दर्शिता जाह्नवी परा ॥ १० ॥ जटाजूटाटवीजूटान्निर्गता बिंदुरूपिणी ॥ ततोवधिपरा गंगा धाराख्पेण तिष्ठति ॥ ११ ॥ तस्याः संदर्शनादेव परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ शिवलिंगं च तत्रैव जावालीश्वरसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पशुमेधफलं लभेत् ॥ तत उत्तरदिग्भागे माने वै सार्द्धयोजने ॥ सर्वकुष्टापहं तीर्थं भक्तिगम्यं दुरासदम्॥१३॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वरोगविनाशनम् ॥ इह चैव परो भोगः परत्र च परागतिः ॥ १४ ॥ तत्र धेनुवनं नाम क्षेत्रं दुरितदु-

इसीस्थानमें महादेवजीको प्रसन्न कियाथा, तब उसे पतिसहित सौभाग्य वर प्रदान कियाथा ॥ ६ ॥ वहांसे आगे परमतीर्थ नव दोलाके नामसे विख्यात है, महादेवजीके जटाजूटमेंसे निकलीहुई वहां तीनधारा प्रसिद्धहैं ॥ ७ ॥ तीन धाराओंसे संयुक्त होनेके कारण उस नदीको त्रिपथा कहते हैं, प्राचीन कालमें वहांही जावालिनाम विप्र प्रादुर्भूत हुयेथे ॥ ८ ॥ उन्होंने भी भक्तिभाव पूर्वक हे महाबाहो ! त्रिपथगा नदीके दर्शन करनेकी कामनासे महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ ९ ॥ उक्त महर्षिने निराहार रहकर सौ वर्ष पर्यन्त उग्रतपका आचरण किया, तब भूतनाथने कुछ दिनोंके लिये जाह्नवी (गंगा) के दर्शन कराये ॥ १० ॥ गंगाजी बिन्दूरूपसे महादेवजीकी जटाओंमेंसे निकली, और तभीसे गंगाजी धारारूप धारणकर स्थित रहती है ॥ ११ ॥ उक्त धाराके केवल दर्शन मात्र करनेसे मनुष्य परम ब्रह्ममें लीन होजाता है, वहां जावालीश्वर नामका एक शिवलिंगहैं ॥ १२ ॥ उक्तलिंगके केवल दर्शन मात्र करने से पशुमेध यज्ञकरनेका फल प्राप्त होताहैं ! वहांसे उत्तरकी ओर डेढयोजन (६ कोस) की दूरी पर सर्व कुष्टोंका निवारण करनेवाला तीर्थहै, भक्तिभावके द्वारा उसकी प्राप्ति होतीहै अन्यथा वोह दुर्लभहै ॥ १३ ॥ उस तीर्थके दर्शनमात्रकरनेसे समस्त रोगोंका विनाश होजाताहै, एवम् इसलोकमें नानाप्रकारके भोगों और परलोकमें सद्गतिकी प्राप्तिहोतीहैं ॥ १४ ॥ वहांही धेनुवन नामका

र्ल्लभम् ॥ धेनुगंगेति विख्याता स्पर्शनात्पापनाशिनी ॥ १५ ॥ धेनुप्रस्वेदसंभूता धेनुगंगा समीरिता ॥ नंदिनी नाम विख्याता प्रसन्ना यत्र चाभवत ॥ १६ ॥ तदादीदं परं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ धेनुगंगां सकृत्स्नात्वा पुनर्जन्म न चाप्नुयात् ॥ १७ ॥ ततः पूर्वदिशि ब्रह्मन्नाम्ना काकाचलोर्थदः ॥ यत्र दाशरथी रामो नेत्रं काकस्य नाशयत ॥ १८ ॥ ततः काकाचलः ख्यातो यमलोकनिवारकः ॥ नदी करेणुका नाम पश्चिमे तस्य भूभृतः ॥ १९ ॥ पूर्वे पर्यंकिनी ख्याता नदीद्वयमिदं स्मृतम् ॥ एतयोः संगमे स्नात्वा वसुलोकं प्रगच्छति ॥ २० ॥ तस्मिन्काकाचले पीठं यत्र गत्वार्थवान्भवेत् ॥ तत्र पुष्पेश्वरो देवः सर्वापत्तिनिवारकः ॥ २१ ॥ देवधारोत्तरे ख्याता तीर्थपंक्तिर्महार्थदा ॥ श्रुत्वा स्नानफलं तत्र पठित्वापि तदाप्नुयात् ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्येऽनेकतीर्थाभिधानं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

एक ऐसा वनहै कि, जिसकी प्राप्ति पापियोंको नहीं होसक्ती वहांही धेनुगंगा नामकी एक नदी विख्यातहै उसका केवल स्पर्श मात्र करनेहीसे पापोंका विनाश होजाता है ॥ १५ ॥ वोह धेनुगंगा गौके प्रस्वेद (पसीने) से प्रादुर्भूत हुईहै नन्दिनी नामकी प्रसिद्ध गौ उसी स्थानमें प्रसन्न हुई थी ॥ १६ ॥ उसी दिनसे यह परमक्षेत्र पापोंका सत्यानाश करनेवालाहै, धेनुगंगामें एकबार भी स्नानमात्र करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! वहांसे पूर्व दिशाकी ओर धन प्रदान करनेवाला काकाचल पर्वतहै, दशरथ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने उसी पर्वतके ऊपर काक (जयन्त) के नेत्रका विनाश कियाथा ॥ १८ ॥ तभीसे वोह पर्वत काकाचल नामसे प्रसिद्ध हुआ, इसके प्रभावसे यमलोककी यात्राका कुछभी भय नहीं रहता । उस वर्पतके पश्चिमभागमें करेणुका नामकी नदीहै ॥१९॥ और उस पर्वतके पूर्व भागमें पर्यंकिनी नामकी नदी प्रसिद्ध है, इस प्रकार ये दो नदियें वहां विद्यमानहैं इन दोनों नदियोंके संगममें स्नान करके मनुष्य अष्ट वसुओंके लोकको चला जाताहै ॥ २० ॥ काकाचल पर्वतके ऊपर पीठपै जाके मनुष्य (वहांके प्रतापसे) धनाढय होजाताहै, वहां पुष्पेश्वर नामके महादेवजी समस्त आपत्तियोंका निवारण करतेहैं ॥२१॥ देवधाराचलके उत्तरकी ओर प्रभूत धन प्रदान करनेवाली तीर्थपंक्तिहै, उसके स्नानफलको सुनकर अथवा पढ़कर उसके दर्शनोंका फल मिलताहै ॥ २२ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२८.

स्कंद उवाच ॥ देवधाराचलात्तीर्थादाग्नेयां च महार्थदः ॥ क्रोशे च क्रोशखण्डे च नानाचल इतीरितः ॥१॥ यत्र नागो वामनश्च-पुरा जप्त्वा महत्तपः ॥ दिग्गजत्वं तथा प्राप तीर्थवर्य्ये महामते ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ कोऽसौ वामनको नाम गजः परमपु-ण्यभाक् ॥ दिग्गजत्वं कथं प्राप्तं तेन तत्र वद प्रभो ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र कथामेतां पापघ्नीं सर्वकामदाम् ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ इंद्रप्रस्थे पुरा ह्यासीद्वैश्यो वामतनुर्द्विज ॥ सैकदा धनहीनो वै भाग्ययो-गादजायत ॥ ५ ॥ निर्विण्णोह्यभवद्विप्र धनलोभपराङ्मुखः ॥ समाययौ तपस्तप्तुं गंगाद्वारादिवारुणे ॥ ६ ॥ संस्थाप्य शिव-लिंगं वै तत्र पर्वतसत्तमे ॥ पूजयामास विधिवदभिषेकैर्महामते ॥ ७ ॥ इति वै तपतस्तस्य तृणाहारस्य धीमतः ॥ साग्रं वर्ष-शतं जातं शिवसंन्यस्तचेतसः ॥ ८ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्

स्कन्दजी बोले—देवधाराचलपर्वतसे आग्नेयकोणमें कोस अथवा कुछकम एककोसकी दूरी पर प्रभूत धनप्रदानकरनेवाला नानाचलनामका एकपर्वतहै॥ १॥प्राचीनकालमें बामनहस्तीने उसी महातीर्थ में हे महामतिमान् ! उग्र तपकरके दिग्गजत्वका लाभ कियाथा ॥ २ ॥ नारदजी बोले—हे प्रभो ! परमपुण्यात्मा वामननाम यह हाथी कौनथा, और इसे दिग्गजत्वकी प्राप्ति किसविधिसे हुईथी, यह सब मुझसे कहिये ॥३॥ स्कन्दजी कहनेलगे—हे विप्र । पापविनाशिनी अथ च समस्त मनोरथोंकी पूर्ण करनेवाली इस कथा, को श्रवणकरो, कारण कि—इसका श्रवण करनेसे मनुष्य सातजन्मके संचित पापोंसे मुक्त होजाताहै, इसमें कोई सन्देह नहींहै ॥ ४ ॥ पूर्वकालमें देहली नगरमें वामन नाम एक वैश्यथा, एक समय वोह भाग्यके वशीभूत होकर निर्धनहोगया ॥ ५ ॥ एवम् वोह वैश्य निर्धन होकर अत्यन्त दुःखित होगया और तपश्चर्या करनेके लिये गंगाद्वारमें पर्वतके ऊपर आया ॥ ६ ॥ वहां श्रेष्ठ पर्वतके ऊपर शिवलिंगकी स्थापना करके हे महामतिमान् ! अभिषेकद्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करनेलगा ॥ ७ ॥ महादेवजीमें चित्त लगाकर तृणाहारपूर्वक उग्रतप करते २ उस वैश्यको सौ वर्ष व्यतीत होगये ॥ ८ ॥ तबती भगवान् महादेवजीने प्रसन्न हो उसे दर्शन दिये, उस समय महादेवजीका सर्वांग विभूतिसे

दर्शनं प्रददौ स्वकम् ॥ भूतिभूषितसर्वांगं जटामुकुटमंडितम् ॥ ९ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ कृत्तिप्रच्छन्नतटकं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ १० ॥ दृष्ट्वा तु सहसा वैश्यो वामनो मृडतत्परः ॥ पपात सहसा भूमौ दंडवद्बहुवारकम् ॥ ११ ॥ प्रदक्षिणां च शतशः प्रचकार महामतिः ॥ उवाच वचनं तद्वद्धन्योस्मीति पुनः पुनः ॥ १२ ॥ उवाच च परो देवो धन्योसीति पुनः पुनः ॥ वरं वरय भद्रं ते यद्वै मनसि वर्त्तते ॥ १३ ॥ सोऽब्रवीद्वामनो नाम त्वत्पादमिह संश्रये ॥ यत्र गत्वा न शोचामि परब्रह्म सनातनम् ॥ १४ ॥ पुनः संसारकूपेऽस्मिन्न निक्षेप्यो दयानिधे ॥ इदं क्षेत्रं तवावासो नित्यमस्तु जगत्पते ॥ १५ ॥ प्रसन्नो भगवान् वैश्यं जगाद वचनं हितम् ॥ पृथिव्या धारको भूया दिग्गजो दक्षिणां ततः ॥ १६ ॥ कल्पांते परमं स्थानं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ इदं स्थानं ममावासो भविष्यति तवापि च ॥ १७ ॥ यस्मान्नागत्वमापन्नो गिरावस्मिन् महामते ॥ ततोऽयं नागनामा च पर्वतश्च न

विभूषित, एवं शिर जटाजूटसे समलंकृत होरहाथा ॥९॥ भगवान् व्याघ्रचर्मका परिधान कर रहेथे, उनका यज्ञोपवीत सर्पोंसे निर्मितथा, उनके मस्तकके ऊपर अर्धचन्द्र और कमरमें चर्म विद्यमानथी ॥ १० ॥ महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर हुए वैश्यने जभी महादेवजीके दर्शन किये तभी बारंबार दण्डकी समान भूमिमें निपतित होनेलगा ॥ ११ ॥ एवम् महामतिमान् उक्त वैश्यने सैकडोंही परिक्रमा करीं, और वोह बारंबार यह वाक्य कहनेलगा कि, मैं धन्यहूं ॥ १२ ॥ अथ च देवाधिदेव महादेवजीनेभी उसके प्रति बारंबार येही कहा कि, तुम्हैं धन्यहै, सुतराम् जो कुछ तेरे चित्तमें हो सो वर हमसे मांगो ॥ १३ ॥ वामन नाम उक्त वैश्य बोला—मैं इसी स्थानमें आपके चरणोंका आश्रय करता रहूं, आपके चरण कमल साक्षात परब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले हैं, जहां जानेपर फिर शोच करना नहीं होता ॥ १४ ॥ हे कृपानिधान ! मुझे इस संसाररूप कूपमें फिर मत गिराइये, एवं च हे जगन्नाथ ! इस स्थानमें नित्यही आपका निवास रहना चाहिये ॥ १५ ॥ हे भगवान् महादेवजी प्रसन्नहोकर उस वैश्यसे इस प्रकार हितकारी वाक्य बोले कि, हे वैश्य ! तुम दक्षिण दिशाकी ओर भूमिके धारणकरनेवाले दिग्गज होजाओ ॥ १६ ॥ और कल्पके अन्तमें निस्सन्देह तुम्हैं परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होगी, एवम् इस स्थानमें हमारा और तुम्हारा दोनोंहीका निवासहोगा ॥ १७ ॥ चूं कि, हे महामतिमान् ! तुम्हैं इस पर्वतके ऊपर

संशयः ॥ १८ ॥ अत्र नागेश्वरं लिंगं मम चैव भविष्यति ॥ करिष्यंति महाभागा दर्शनं पूजनं च मे ॥ न ते संसारदुःखौघपराभूता न संशयः ॥ १९॥ नागाचलस्य ये मर्त्याः करिष्यंति परिक्रमम् ॥ परिक्रांता धरा तैस्तु गच्छेयुश्च परं पदम्॥ २० ॥ ततः पश्चिमतो विप्र नदी परमपावनी ॥ शुभस्रवेति विख्याता दर्शनाच्छुभदायिनी ॥ २१ ॥ स्नानात्पानाद्दिवं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ शुभस्रवापरं तीर्थं शुभस्रवापरं तपः ॥ शुभस्रवापरं दानं किंचिन्नास्ति ततः परम् ॥ २२ ॥ देवधारगिरौ पश्चाद्योजने मुनिसेविते ॥ नाम्ना चन्द्रवनं ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २३ ॥ यत्र चंद्रश्च विप्रेश नित्यं वसति भूतिदः ॥ तत एव परं प्राप शिवशेखरवासकम् ॥ २४ ॥ इदं परं शिवस्थानं यत्र सन्निहितः सदा॥चन्द्रेश्वर इति ख्यातः पापिनामपि मुक्तिदः ॥ २५ ॥ तत्र चंद्रसरो दिव्यं दिव्यांभः पुण्यदं महत्॥

दिग्गजत्वकी प्राप्ति हुईहै अतएव यह पर्वतभी नाग नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ १८ ॥ और यहां नागेश्वर नाम हमारा लिंगभी स्थापित होगा जो महाभाग हमारा दर्शन और पूजन करेंगे, उन्हें सांसारिक क्लेशोंसे कभीभी दुःखित होना नहीं होगा ॥ १९ ॥ और जो मनुष्य नागाचलकी परिक्रमा करेंगे, उन्हें अखिल भूमण्डलकी परिक्रमाकरनेका फल मिलेगा और वे परमपद (मोक्ष) के भागी होंगे ॥ २० ॥ हे विप्र ! वहांसे पश्चिमकी ओर शुभस्रवानामकी अतिशय विख्यात परम पवित्र एक नदीहै, उसके केवल दर्शन करनेहीसे शुभगतिकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ उसमें स्नानकरने अथवा उसका जल पान करनेसे मनुष्य प्रलयपर्य्यन्त स्वर्गमें निवास करताहै । शुभस्रवा परमतीर्थहै, शुभस्रवाही परम तपहै, शुभस्रवा परमदानहै, विशेष क्या उससे अधिक और कुछभी नहींहै ॥ २२ ॥ देवधाराचलके ऊपर पश्चिमकी ओर एक योजनकी दूरीपर मुनियोंके द्वारा सेवन कियेहुए स्थानमें भोग और मोक्षप्रदान करनेवाला चन्द्रवनहै ॥ २३ ॥ हे द्विजराज! ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवाले चन्द्रमाका वहां नित्यही निवास रहताहै, एवं वहांहीसे उसे महादेवजीके शेखरके ऊपर निवासकरनेका अधिकार प्राप्त हुआहै ॥ २४ ॥ यह महादेवजीकाभी एक मुख्य स्थानहै इसी कारण चन्द्रेश्वर नामसे भगवान् यहां विद्यमान रहते हैं, एवं च महादेवजी यहां पापियोंकोभी मुक्तिप्रदान करते हैं ॥ २५ ॥ वहांही एक चन्द्रसरहै उस दिव्य सरोवरमें दिव्यही जल

तत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ २६ ॥ यः करोति नरः स्नानं सोमवारे महामते ॥ इह लोके वरान्भोगान्प्राप्य चांते शिवं लभेत् ॥ २७ ॥ यदि भाग्येन लभ्येत सोमो मासं युतं मुने ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देवदेवपुरे वसेत् ॥ २८ ॥ कृतं येनात्र दर्शं वै सोमवारेण संयुतम् ॥ श्राद्धं श्रद्धया विप्रेश पितरोऽमृतमाप्नुयुः २९ ॥ येन दत्तं सुवर्णं च यथाशक्तिमितं द्विजे ॥ तेन दत्तं भवेत्सर्वं भूमण्डलमिदं शभम् ॥ ३० ॥ यदि भाग्येन लभ्येत चन्द्रपर्व महामते ॥ कुरुक्षेत्राच्छतगुणं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३१ ॥ त्रिरात्रं यो जिताहारो जपते शिवमच्युतम् ॥ परमं शिवमाप्नोति शिवस्य वचनं त्विदम् ॥ ३२ ॥ तत्र वामप्रदेशे हि क्रोशार्द्धे मुक्तिदायिनी ॥ नदी चंद्रवती ख्याता सर्ववाञ्छित-दायिनी ॥ ३३ ॥ तस्या वै दक्षिणे पार्श्वे विष्णुपादः प्रतिष्ठितः ॥ शंभुशर्मा यत्र विप्रो विष्णुमाराधयद्व्रती ॥ ३४ ॥ दत्तं स्वदर्शनं

परिपूर्ण होरहाहै, यह सरोवर अतिशय पुण्यप्रदान करनेवालाहै अतएव इसमें केवल स्नानमात्र करनेसे परमपद मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ २६ ॥ हे महामतिमान् ! जो व्यक्ति सोमवारके दिन वहां स्नान करताहैं वोह इस लोकमें श्रेष्ठ (शुभ) भोगोंका उपभोग करके अन्तमें कल्याणरूप मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ २७ ॥ यदि भाग्यवशात् सोमवती अमावास्या इस स्थानमें उपलब्ध होजाय तौ वोह मनुष्य कृतकृत्य होजाता और स्वर्गलोकमें निवास पाताहै ॥ २८ ॥ हे द्विजराज ! सोमवती अमावास्याके दिनं जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पितरोंके निमित्त इस स्थानमें श्राद्ध करताहै उसके पितर अमर होजातेहैं ॥ २९ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार थोडासा भी सुवर्णदानकरके ब्राह्मण को देताहै, उसे समस्त भूमण्डलके दान करनेका फल उपलब्ध होताहै ॥ ३० ॥ हे महामतिमान् ! यदि भाग्यवशात् इस स्थानमें चन्द्रपर्व (चन्द्रग्रहण) की प्राप्ति होजाय तौ, मनुष्योंको कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा शतगुण अधिक पुण्य उपलब्ध होताहै ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य निराहार रहकर तीनरात्रि पर्यन्त अविनाशी महेश्वरका जप करताहै, उसको अवश्यही परम कल्याणकी प्राप्ति होती है, ऐसा महादेवजीने वर्णन कियाहै ॥ ३२ ॥ उसके वाम प्रदेश आधे कोसकी दूरीपर समस्त कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाली चन्द्रवती नामकी नदी विख्यात है, ॥ ३३ ॥ उस नदीके दक्षिण भागमें विष्णुभगवान्के चरण (चिह्न) प्रतिष्ठितहैं, वहां शम्भुशर्मा नामक ब्राह्मणने व्रतधारण पूर्वक विष्णुभगवान्की आराधना करीथी ॥ ३४ ॥ तब भगवान्ने उस अपने

तत्र तदादीदं पदद्वयम् ॥ तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे नदो नाकप्रदो नृणाम् ॥ ३५ ॥ नाम्ना सुहवनो विप्र प्रख्यातः सर्वमंगलः ॥ यस्य तीरे नरः स्नात्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ ३६ ॥ यत्र वै मुनयो विप्र यज्ञं चक्रुः पुरातनम् ॥ अंगुष्ठप्रतिमाः क्रुद्धाः इंद्रवाक्येन नारद ॥ ३७ ॥ नारद उवाच ॥ इंद्रेण किं कृतं तेषां मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ यदर्थं क्रतुरारब्धस्तेषां यज्ञेन किं फलम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे द्रोणाश्रममाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

दर्शन दिये उसी दिनसे उनके दोनो चरण वहां उपस्थित हैं उक्त स्थानके उत्तर पूर्वके भागमें नरसमाजको स्वर्ग प्रदान करनेवाला एक नद है ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! सर्व मंगलस्वरूप उस नदका सहवन नाम प्रसिद्ध हैं उसके तटपर स्नान करनेसे मनुष्योंको समस्त यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३६ ॥ इसी स्थानमें प्रथम मुनियोंने यज्ञका आचरण किया था, और हे नारदजी! इन्द्रके वाक्यसे अंगुष्ठ प्रमाण देहधारी बालखिल्य क्रोधित होगये थे ॥ ३७ ॥ नारदजीने कहा–ऊर्द्धरेता उक्त बालखिल्य मुनियोंका इन्द्रने क्या अपराध किया था ? वहां यज्ञका प्रारम्भभी किस लिये कियागया था और उनके यज्ञानुष्ठान से फल क्या हुआ ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १२९.

स्कंद उवाच॥ शृणु विप्र पुरावृत्तं गंगाद्वारे विमुक्तिदम् ॥ दक्षो नाम महातेजा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ॥ प्रजावृद्धयर्थकं यज्ञं चकार सह दैवतैः ॥ १ ॥ सभागान् सर्वशश्चक्रे देवैर्मुनिभिरेव च ॥ इंधनार्थं गताः केचित्केचित्पुष्पार्थकं सुराः ॥ २ ॥ यज्ञवृक्षार्थमपरेऽपरे विप्रनिमंत्रणे ॥ इति तेषां सुराणां हि वासवो वृत्रसूदनः॥

स्कन्दजीने कहा–हे विप्र ! अब प्राचीन इतिहासको सुनो, मुक्तिदायक गंगाद्वारमें ब्रह्माजी के पुत्र महातेजस्वी दक्ष नाम प्रजापतिने प्रजाकी वृद्धिकी कामनासे देवताओं सहित यज्ञका आरम्भ किया ॥ १ ॥ देवताओं और ऋषिमुनियोंके द्वारा उन्होंने सबके पृथक् २ विभागकरादिये, तब कोई देवता ईंधन और कोई पुष्पोंके लेनेको चलेगये ॥ २ ॥ कोई यज्ञके लिये वृक्षलेनेको और कोई ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देनेको चले गये । इस प्रकार उन सब देवताओंके विभक्त होजानेपर

जगाम विपिने घोरे सर्वदैवैराधिष्ठिते ॥ ३ ॥ भारं संगृह्य काष्ठाना मायया वृत्रसूदनः ॥ यावदायाति विपिने दृष्टवान् मुनिसत्तमान् ॥ ४ ॥ पलाशवृंतसंलग्नाननेकान्भारपीडितान् ॥ गोष्पदं तर्त्तुमिच्छंतो वर्षापानीयपूरितम् ॥५॥ दृष्ट्वा तांस्तादृशान्विप्रानंगुष्ठसमदेहकान् ॥ अहासीदल्पवीर्यांश्च किं करिष्यंत्युवाच ह॥६॥ दृष्ट्वा हास्यं महाभागा मुनयः संशितव्रताः ॥ मदोन्मत्तं परं ज्ञात्वाऽन्यमिंद्रं कर्तुमुद्यताः ॥ ७ ॥ क्रोधाविष्टा महात्मानस्तत्र चंद्रवने मुने ॥ संभारान्साधयामासुर्यज्ञार्थं वरवर्णिनः ॥ ८ ॥ चक्रुर्यज्ञं महाभाग वासवार्थं महोद्यमाः ॥ इंद्रमन्यं करिष्यामः पतिष्यति शठो ह्ययम् ॥ ९ ॥ इत्येतदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा तत्र महात्मनाम् ॥ ब्रह्माणं शरणं देवो जगामातिभयातुरः ॥ १० ॥ उवाच वचनं तत्र ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ प्रमादिना मया देव क्रोधिताः परमर्षयः ॥ ११ ॥ ते चेंद्रं कर्त्तुमुद्युक्ता यज्ञेन कमलासनः ॥ श्रुत्वा

वृत्रासुर विनाशी सुरेश्वर इन्द्रभी समस्त देवताओंसे सेवित घोरवनमें उपस्थितहुए ॥ ३ ॥ काष्ठोंके भारको लेके इन्द्र जभी वनमें उपस्थित हुए तभी उन्होंने महर्षियोंका अवलोकन किया ॥ ४ ॥ वे महर्षिगण पलाश भारसे पीडित होरहेथे, और मार्गमें गौओंके खुरोंमें जो जलपरिपूर्ण होगया था उसके पार होनेकी चेष्टा कर रहे थे ॥ ५ ॥ अंगुष्ठ प्रमाण देहधारी उन ब्राह्मणोंको अवलोकन करके उन अल्प पराक्रमियोंके प्रति (इन्द्र) हँसा और बोला कि, ये लोग क्या करसकेंगे ॥ ६ ॥ पूज्य व्रतधारी महाभाग उन महर्षियोंने इन्द्रको उपहास करते देख उसे मदोन्मत्त जाना, अत एव वे अन्य इन्द्र बनानेके लिये उद्यत होगये ॥ ७ ॥ हे मुनि ! चन्द्रवनमें मुनिलोग क्रोधित होगये, और यज्ञ करनेके लिये सम्पूर्ण सामग्रीको एकत्रित करने लगे ॥ ८ ॥ हे महाभाग उन्होंने अन्य इन्द्र बनानेकी कामनासे यज्ञका अनुष्ठान किया, और महोद्यमी महर्षि कहने लगे कि, यह दुष्ट निपतित होजायगा और हम दूसरेको इन्द्र बनावेंगे ॥ ९ ॥ देवराज इन्द्रने जब उन महात्माओंका ऐसा अद्भुतकर्म देखा तौ भयभीत हो वह ब्रह्माजीकी शरणमें गया ॥ १० ॥ और कमलासन ब्रह्माजीसे यह वाक्य बोला कि–हे देव ! मुझ प्रमादीने, महर्षियोंको कोपित करदियाहै ॥ ११ ॥ हे कमलासन ! वे यज्ञ करके अन्य इन्द्र निर्माण करनेके लिये उद्यत होरहे हैं।

ब्रह्मापि वृत्तांतमिंद्रतः करुणोदयम् ॥ जगाम दैवतैः सार्द्धं यत्र ते मुनयः स्थिताः ॥ १२ ॥ तुष्टाव तान्महाभाग मुनीन्वेदपरायणान् ॥ नान्यथा कर्तुमीहन्ते ब्रह्मणा निर्मितं तु यत् ॥ १३ ॥ अकाले देवराजं वै न दूरं कर्त्तुमर्हथ ॥ पक्षीन्द्रो भवतु क्षिप्रं भवतां वै प्रसादतः ॥ १४ ॥ स वै कार्य्यकरोस्माकं विष्णोश्चैव सुवाहनम् ॥ प्रसन्ना भवथ क्षिप्रं याचध्वं मापुनः सुरान् ॥१५॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो मुनिसत्तमः॥घर्मात्प्रस्वेदपूर्णेभ्यो गात्रेभ्यः स्वेदसंभवः ॥ १६ ॥ सोयं सुहवनं ख्यातो नदः परमपुण्यदः ॥ कृतवंतो महायज्ञं पक्षींद्रश्च बभूव ह ॥१७॥ कश्यपस्य प्रिया भार्य्या विनतेति परिश्रुता ॥ तस्यां पूर्वं रवेर्विप्रोऽरुणः सारथिसत्तमः ॥ १८ ॥ गरुडश्च ततो जज्ञे पक्षींद्रः संबभूव ह॥ सर्वेषां सुरवर्य्याणां कार्य्यकर्त्ता बभूव ह ॥ १९ ॥ पक्षिराजोऽभिषिक्तश्च मुनिभिश्च सुरासुरैः ॥ बलवान्सत्वसंपन्नो वेगवानमितद्युतिः ॥ २० ॥ जहार यो महातेजा अमृतं वृत्रसूदनात् ॥

जब ब्रह्माजीने इन्द्रके द्वारा करुणाजनक यह वृत्तान्त श्रवण किया तो वे देवताओंको साथ ले वहां उपस्थित हुए जहां वे मुनिजन विद्यमान थे ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! उन्होंने वेदाध्यायनमें परायण उन महर्षियोंको सन्तुष्ट किया, (और कहा कि–) ब्रह्माने जो कुछ भी निर्माण कियाहै उसे अन्यथा नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ आप इन्द्रको अनवसरही दूर न करिये, आपकी कृपासे शीघ्रही गरुडजी होजायँ ॥१४॥ वे हमारे भी कार्य कर्त्ताहैं और विष्णु भगवान्के वाहनभीहैं अब आप प्रसन्न होजाइये ॥१५॥ हे मुनिसत्तम ! जब उन्होंने ब्रह्माजीके ऐसे वाक्य श्रवण करे तौ उष्णतासे व्याप्त हुए उनके शरीरसे प्रस्वेदका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १६ ॥ वोही यह परम पुण्य प्रदान करने वाला सुवहन नाम नद विख्यात हुआहै, महर्षियोंने यज्ञका अनुष्ठान किया तौ गरुडजीका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १७ ॥ कश्यपजीकी विनतानामकी जो स्त्री विख्यातहै, उससे प्रथम सूर्यके सारथी अरुण और पीछे यज्ञमें गरुडजीका प्रादुर्भाव हुआ और वे समस्त देवताओंके कार्यकर्त्ता बने ॥ १८ ॥ १९ ॥ मुनियों और देवदानवोंने पक्षिराज गरुडजीका अभिषेक किया, वे अतिशय बलवान् अतएव पराक्रमभी शीघ्रगामी और अमित तेजस्वी थे ॥ २० ॥ महर्षियोंके वाक्यको स्मरणकर गरुडजीने इन्द्रसे अमृतको अपहरण किया और उन्हें पराजितकर दिया,

निर्जित्य तं महातेजा ऋषिवाक्यमनुस्मरन् ॥ जिता देवगणा-
स्तेन दानवाश्च महामते ॥ २१ ॥ विष्णुस्त्रैलोक्यनाथश्च निर्जितः
संगरे मुने ॥ प्रसन्नश्च महाविष्णुः प्रोवाच गरुडं तदा ॥ २२ ॥
वरं वरय भद्रं ते प्रसन्नोस्मि तवाधुना ॥ अहं कर्त्ता
च हर्त्ता च त्रिलोकानां त्वया जितः ॥ २३ ॥ वरं
ददामि ते प्रीतो यद्यन्मनसि वर्त्तते ॥ विहस्य गरुडो-
प्याह हरिलोकपरायणः ॥ २४ ॥ त्वमेव हि हरे ब्रूहि वरं
त्रैलोक्यदुर्ल्लभम् ॥ वाहनत्वं तदा वव्रे वरं नारायणः स्वयम्
॥ २५ ॥ वह मां वैनतेय त्वं प्रसन्नश्च यतो मयि ॥ तथेति
सोपि गरुडो जगाद हरिमच्युतम् ॥ २६ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै
गरुडो वेगसंयुतः ॥ गृहीत्वा कलशं तस्य पीयूषस्य मुदा ययौ
॥ २७ ॥ यत्र दासत्वमापन्ना क्रुद्धा वै मुनिसत्तमः ॥ अदासी-
मातरं चक्रे यत्पीयूषप्रदानतः ॥ २८ ॥ इति ते कथितो दिव्यो
नदस्य परमाद्भुतम् ॥ सुहवनस्य च ख्यातं सर्वपापहरं मुने
॥ २९ ॥ पक्षीन्द्रोपि तपस्तप्तुं ययौ कैलासमंदिरे ॥

हे महामतिमान ! उन्होंने सबही देवताओंको जीत लिया ॥ २१ ॥ विशेष क्या हे मुने ! गुरुडजीने युद्धमें त्रिलोकीनाथ विष्णु भगवान्‌काभी विजय किया, तब तौ भगवान् प्रसन्नहोकर गरुडजीसे यौं बोले ॥ २२ ॥ तुम्हारा कल्याण हो हम तुमसे अब प्रसन्न हैं तुम वरकी याचना करो, क्यों कि मुझ त्रिलोकीके कर्त्ता हर्त्ताको तुमने जीतलिया है॥ २३॥नारायण चूं कि मैं,प्रसन्न हूं सुतराम् तुम्हारे मनमें जो कुछ भी होगा वोही वर तुम्हें दूंगा; यह सुन गरुडजी लोक परायणसे बोले ॥ २४ ॥ हे हरि ! जो त्रिलोकीमें दुर्लभ हो तुम्हीं ऐसा वर बताओ, तब नारायणने स्वयंही उन्हें अपना वाहन बनाना स्वीकार किया ॥ २९ ॥ हमारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम हमैं वहनकरो तब अविनाशी भगवान्‌के प्रति जो आज्ञा कहके स्वीकार कर लिया ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार वर दिया जा चुका तब गरुडजी झट पटही अमृतके कलसे को लेकर प्रसन्नता पूर्वक चल दिये ॥ २७ ॥ हे मुनिराज ! वहां उनकी माता दासी होनेके कारण क्रोधित होरहीथी वहां अमृत प्रदान करके उसे दासी भावसे मुक्त कराया ॥ २८ ॥ हे मुने ! हमने इस प्रकार सुबहन नदका परम अद्भुत दिव्य आख्यान तुम्हारे प्रतिवर्णन किया, यह आख्यान अखिल पापोंका अपहरण करनेवाला है ॥ २९ ॥ तदनन्तर गरुडजीभी तपश्चर्या करनेके लियें कैलास

इति पुण्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३० ॥ चंद्रवती-
सुहवनयोः सुगमोतीव पुण्यदः ॥ नदीत्रयं च शाकिन्या यत्र
पुण्ये सुसंगता ॥ ३१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या
शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वा पापैः
प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सुहवननदोत्पत्ति-
वर्णनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

पर्वतके ऊपर चले गये, यह अतीव पवित्रस्थान देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य है ॥ ३० ॥ चन्द्रवती और सुहवनका संगम अतिशय पुण्यप्रदान करता है शाकिनीके साथ तीन पवित्र नदियोंका संगम हुआ है ॥ ३१ ॥ वहां स्नान करनेसे स्नानकर्त्ता व्यक्तिको महादेवजीके सायुज्यका लाभ होता है, और इस पुण्यतम आख्यानके श्रवण करनेसे भी मनुष्य पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३०.

स्कंद उवाच ॥ ततो वै पश्चिमे भागे योजने पर्वतोत्तमे ॥
गणकुंजरनामा वै भैरवो भीमविक्रमः ॥ १ ॥ तन्नाम्ना पर्वत-
श्चापि गणकुंजरसंज्ञकः ॥ गणधारा नदी ख्याता शिवलोकप्र-
दायिनी ॥ २ ॥ यस्तत्र पर्वतश्रेष्ठे पश्येद्वै गणकुंजरम् ॥ कुंज-
राकृतिदेहं च शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ यद्यदिच्छति
मर्त्यो वै तत्तत्प्राप्नोति तत्र वै ॥ महापुण्यतमं पीठं त्रिरात्रात्सि-
द्धिदायकम् ॥ ४ ॥ तन्मूर्द्धि चंडिका ख्याता गणकुंजरसे-

स्कन्दजी बोले--वहांसे पश्चिमकी ओर एक योजनकी दूरीपर श्रेष्ठ पर्वतके ऊपर भीमपराक्रमी गणकुंजरनामके भैरवजी हैं ॥ १ ॥ उन्हींके नामसे गणकुंजर पर्वतभी प्रसिद्ध है, और शिवलोकप्रदान करनेवाली वहां गणधारानामकी एक नदी भी है ॥ २ ॥ जो व्यक्ति उक्तपर्वतके ऊपर गणकुंजरको जिनका कि, देह,हस्तीके आकारकाहै उसे अवलोकन करते हैं, उन्हें शिवसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥ और मनुष्य अपने मनमें जिस २ वस्तुकी कामना करता है, उसे अवश्यही वोह वस्तु मिलती है, वोह पीठ अतीव पवित्र सुतराम् तीनरात्रिही में सिद्धिप्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥ उसीके ऊपर गणकुंजरसे सेवित चण्डिकानामकी देवी प्रसिद्ध है, भाद्रपदकी चतुर्दशीके दिन

विता ॥ चतुर्द्दश्यां भाद्रपदे पुण्यकृद्भिः प्रदृश्यते ॥ ५॥ तत आयाति परमा गणधारा नदी वरा ॥ स्नानमात्रेण तस्यां हि लभते:परमं पदम् ॥ ६ ॥ तत उत्तरदिग्भागो शिवः परमसुंदरः ॥ स्वर्णेश्वर इति ख्यातः पापिनामपि मुक्तिदः ॥ ७ ॥ ततः क्रोशार्द्धखंडे वै देवगर्भनदी वरा ॥ सा यत्र संगता विप्र तथा शंकरवल्लभा ॥ तयोः सुसंगमे स्नात्वा वाजपेयशतं लभेत् ॥ ८ ॥ अथ पश्चिमदिग्भागे देवधारागिरौ शुभे ॥ चन्द्रारण्यात्परे भागे योजनद्वयसंम्मिते ॥ ९॥ गंगा च यमुना तत्र संगतातीव पुण्यदा ॥१०॥ देवशर्म्मेति विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ उपासिता पुरा तेन गंगा भागीरथी परा ॥ ११ ॥ गंगाप्रवाहः पतितस्ततोत्र द्विजपुंगव ॥ तदादीदं महापुण्यं जातं वैकुंठधामदम् ॥ १२ ॥ गंगाप्रवाह इति वै नाम तस्य बभूव ह ॥ स्नानं कुर्वंति ये तत्र शतयज्ञफलं लभेत् ॥ १३ ॥ यत्र देशे सूर्य्यजायां संगता जाह्नवी परा ॥ तत्र पुण्यतमं स्थानं सूर्यलोकप्रदायकम् ॥ १४ ॥ स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं

पुण्यात्माओंको उसका दर्शन होता है ॥ ५ ॥ वहांहीसे गणधारा नामकी श्रेष्ठ नदी आती है उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे परमपद मोक्षकी प्राप्ति होती है.॥ ६ ॥ वहांसे उत्तरदिशाकी ओर स्वर्णेश्वरनामके परमसुन्दर महादेवजी हैं जो पापियोंको भी मुक्ति प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥ वहांसे आधेकोसकी दूरीपर देवगर्भा श्रेष्ठनदी है, यह नदी और देवधारा ये दोनों नदियें जहां संगत हुई हैं उनके संगममें स्नान करनेसे शतवाजपेययज्ञ करनेका फल मिलताहै ॥ ८ ॥ वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर शुभ देवधाराचलके ऊपर चन्द्रवनसे आगे दो योजनकी दूरीपर ॥ ९ ॥ अतिशय पुण्यप्रदान करनेवाली गंगा और यमुनाका संगम है॥ १० ॥ वेदपारगामी देवशर्मानामका एक ब्राह्मण प्रसिद्ध होगया है, उसीने भक्तिभावमें तत्परहो भागीरथी गंगाकी आराधना (उपासना) करी थी ॥ ११ ॥ हे द्विजराज ! तभी गंगाजीका प्रवाह यहां निपतित हुआ था, उसी दिनसे वैकुण्ठधामका देनेवाला यह स्थान परम पवित्र होगया है ॥ १२ ॥ और " गंगाप्रवाह " यह उसका नाम प्रसिद्ध होगया है, जो व्यक्ति उसमें स्नान करते हैं उन्हें सौ यज्ञ करनेके फलकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ जिस स्थानमें गंगा और यमुनाका संगम हुआ है, वोह पवित्रस्थान सूर्य्यलोक प्रदान करनेवाला है ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति उक्त स्थानमें स्नान,

पितृतर्प्पणम् ॥ कुर्वंति ये महाभाग फलमश्नुवतेऽक्षयम् ॥ १५ ॥ यमुनायाः पूर्वभागे सूर्यकुंडमिति स्मृतम् ॥ यः स्नाति तत्र विप्रेश सूर्य्यलोके महीयते ॥ १६ ॥ तत्र दिव्यशिला नाम स्पर्शनान्मुक्तिदायिनी ॥ कलौ धर्मविहीना ये पूजां कुर्वंति मानवाः ॥ न तेषां तद्भयं विद्याद्दर्शनात्पूजनादपि ॥ १७ ॥ तत उत्तरदिग्भागे विष्णुकुंडं शरद्वये ॥ यत्र पीतं जलं याति यत्र वज्रशिलार्थदा ॥ १८॥ विष्णुकुंडे सकृत्स्नातो विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥ ततः क्रोशे महापुण्यमाम्रातकवनं महत् ॥ तत्राप्यथ त्रिरात्रं तु जप्त्वा शिवमनुत्तमम् ॥ सिद्धिमाप्नोति परमां सत्यमेव शिवोदितम् ॥ २० ॥ तत उत्तरदिग्भागे ढक्काहस्तो गणाधिपः ॥ महादेवस्य पुरतो ढक्कावादनतत्परः ॥ २१ ॥ तस्य स्थानमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २२ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे त्रियोजनमिते स्थले ॥ शाकभरीति विख्याता सर्वकामेश्वरी वरा ॥ २३ ॥ तस्या संदर्शनादेव सर्वपापैः प्रमु-

जप, होम, स्वाध्याय (वेदपाठ) अथवा पितृतर्पण करते हैं, हे महाभाग ! उन्हें अक्षयफलकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ यमुनाके पूर्वभागमें एक सूर्य्यकुण्ड है, हे द्विजराज ! जो व्यक्ति उसमें स्नान करता है उसे सूर्य्यलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको मिलता है ॥ १६ ॥ वहां ही एक दिव्यशिला है जो स्पर्शमात्र करनेसे मुक्तिप्रदान करती है, कलियुगमें जो पापी मनुष्य उसका पूजन करते हैं उन्हें उक्तशिलाके दर्शन अथवा पूजन करनेसे यमलोकका भय नहीं रहता॥१७॥ वहांसे उत्तरकी ओर दो बाणकी दूरीपर एक विष्णुकुण्ड है, उसमें पीलेवर्णका जल है, और धन प्रदान करनेवाली वज्रशिलाभी वहांही है ॥ १८ ॥ जो व्यक्ति एक वारभी विष्णुकुण्डमें स्नान करता है वोह विष्णुलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥ १९ ॥ वहांसे एककोसकी दूरीपर एक बड़ा आम्रातक वन हैं, वहांभी तीनरात्रिपर्य्यन्त सर्वोत्तम महादेवजीका जप करनेसे अवश्यही परमसिद्धिकी प्राप्ति होती है महादेवजीने यह सत्य २ कथन कियाहै ॥ २० ॥ वहांसे उत्तरकीओर गणेशजी महाराज ढक्का हांथमें लिये विराजमान हैं, और महादेवजीके अगाड़ी ढक्का बजानेमें तत्पर रहते हैं ॥ २१ ॥ उनका यह परम दिव्यस्थान समस्त कामनाओंकी पूर्त्तिरूप फलका प्रदान करनेवाला है ॥ २२ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर तीन योजनकी पूरीपर समस्त कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली श्रेष्ठ शाकम्भरी देवी हैं॥ २३ ॥ उक्तभगवतीके केवल दर्शन करनेहीसे मनुष्य सब

च्यते ॥ शाकेश्वरो महादेवः प्रत्यक्षं सिद्धिदायकः ॥२४॥ पुरात्रैव महादेवी मुनीन् तपसिचाश्रितान् ॥ विग्रहे शतवार्षिक्ये शाकैः स्वांगसमुद्भवैः ॥ भरयामास परमा ततः शाकंभरी मता ॥२५॥ प्रत्यक्षसिद्धिदा देवी दर्शनात्पापनाशिनी॥२६॥इति ते कथितं क्षेत्रं द्रोणर्षेस्तपसः स्थलम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कांदे कदारखंडे द्रोणतीर्थमाहात्म्य वर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

पापोंसे मुक्तिलाभ करता है, शाकेश्वर महादेवजी भी वहां प्रत्यक्ष सिद्धिप्रदान करते हैं ॥ २४ ॥ प्राचीनकालमें यहां ही देवीने तपश्चर्य्यामें व्रती हुए मुनीश्वरोंको अपने अंगसे प्रादुर्भूत हुए शाकके द्वारा शतवर्षपर्यन्त होनेवाले युद्धमें तृप्त किया था तभीसे उनका शाकंभरी नाम हुआ ॥२५ ॥ वोह देवी प्रत्यक्ष सिद्धिदेनेवाली और केवल दर्शनमात्रहीसे पापोंका सत्यानाश करनेवालीहै ॥२६॥ इसप्रकार हमने द्रोणमहर्षिके तपःस्थलका माहात्म्य तुम्हारेप्रति वर्णन किया, इसका श्रवण करनेसे निःसन्देह ही पापोंसे छुटकारा मिलजाता है ॥ २७ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३१.

स्कंद उवाच ॥ अथ कालेश्वरी देवी प्रोच्यते भक्तवत्सला ॥ यमुनापश्चिम भागे सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ १ ॥ तत्र कालेश्वरो नाम महादेवो महार्थदः ॥ तस्य दर्शनमात्रेण कैलासनिलये वसत् ॥ २ ॥ देवजुष्टा नदी तत्र पुण्यगम्या शिवप्रदा ॥ यमुनासंगता यत्र क्षेत्रं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ ३ ॥ यत्रर्षयः पुरा सर्वे

स्कन्दजी बोले—भक्तोंके प्रति दयाकरनेवाली कालेश्वरी देवीका अब हम वर्णन करते हैं, वोह यमुनासे पश्चिमकी ओर सब सिद्धियोंको प्रदान करती है ॥ १ ॥ प्रभूतधन प्रदान करनेवाले महाकालेश्वर नामके वहां महादेवजी विद्यमान हैं, उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे कैलास पर्वतके ऊपर निवास करनेको मिलता है ॥ २ ॥ कल्याणप्रदायिनी देवजुष्टानामकी वहां एक नदी है, उसकी प्राप्ति पुण्यात्माओंहीको होतीहै, और जहां उसमें गंगाजीका संगम हुआ है वोह क्षेत्र अत्यन्तही पवित्र कहलाता है ॥ ३ ॥ प्राचीनकालमें वहां सब महर्षियोंने महादेवजीके पूजनमें तत

शिवपूजनतत्पराः ॥ लेभिरे सर्वविद्यां च ततः पुण्यतमं स्मृतम् ॥ ४ ॥ यमुनास्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ येनैकवारमपि वै कृतं स्नानमिह द्विज ॥ यमलोकं न गच्छेत् स पश्येच्च परमं पदम् ॥ ५ ॥ यमुनायां तथा स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः॥ सूर्य्यलोकं समासाद्य ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६ ॥ गंगा च यमुना चैव समे त्रैलोक्यपावने ॥ ययोर्दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ॥७॥ शतजन्मार्ज्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥यस्य भाग्यवशान्मृत्युर्यमुनायास्तटे भवेत् ॥ स लभेद्ब्रह्मसायुज्यं न स भूयोभिजायते ॥ ८ ॥ प्रसंगाद्वा बलात्काराद्भक्त्याऽभक्त्यापि मानवः ॥ यो गच्छेद्यमुनां धीरो नास्ति तत्सदृशो भुवि ॥ ९ ॥ तावद्गर्ज्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ यावन्न जायते स्नानं यमुनायां महामते ॥ १० ॥ तावद्यमः प्रभवति श्रेष्ठः पापाद्धि शासितुम् ॥ यावच्चसूर्यजास्नानं न करोति महामते ॥ ११ ॥ यदि भाग्येन लभते सूर्यग्रहणपूर्वकम् ॥ कुरुक्षेत्राभि-

पर होकर समस्त विद्याओंको प्राप्त किया था अतएव वोह स्थान अतिशय पवित्र कहाजाता है ॥ ४ ॥ यमुनामें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै, हे द्विजराज ! जिसने एक वारभी यमुनामें स्नान किया है, वोह यमलोकमें कभी नहीं जाता किन्तु उसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ जो व्यक्ति यमुनामें स्नान कर पितरोंकेनिमित्त तर्पणकरते हैं, वे प्रथम सूर्य्य लोकमें जाकर ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग करते हैं ॥ ६ ॥ त्रिलोकीको पवित्र करनेमें गंगा और यमुना दोनों समानही हैं, सुतराम् उनके दर्शन मात्र करनेसे मनुष्यको शिवरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ और इसमें भी कोई सन्देह नहीं हैं कि, मनुष्य शतजन्मके संचित किये हुए पापोंसे भी छुटकारा पाता है। सौभाग्य वशात् जिस किसीकी मृत्यु यमुनाके तटपर होजाय उसे ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै और फिर उसका जन्म नहीं होता ॥ ८ ॥ प्रसंगवशात् बलात्कारसे भक्ति अथवा भक्तिसे जो धीर पुरुष यमुनाकी यात्रा करता है, भूमिके ऊपर उसकी सदृश (सौभाग्यशाली) अन्य कोई नहीं है ॥ ९ ॥ हे महामते ! जबतक यमुनामें स्नान नहीं होता तभीतक ब्रह्महत्याआदि पाप गर्जते हैं (अर्थात्—यमुनामें स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादिक सब पाप विनष्ट होजाते हैं, ॥ १० ॥ पापका दण्ड देनेके लिये तभीतक यमराज सशक्त होसक्ते हैं, हे महामते) जबतक कोई पुरुष यमुनामें स्नान नहीं करता ॥ ११ ॥ यदि भाग्यवशात् सूर्य ग्रहणके समय उक्त स्थानमें यमुनाका स्नान प्राप्त होजाय तौ कुरुक्षेत्र और

धात्काश्याः फलं कोटिगुणं लभेत् ॥ १२ ॥ त्रुटिमात्रमपि स्वर्णं ददातिद्विजमूर्त्तये ॥ स याति परमाँल्लोकान्दरिद्रो न भवेत्पुनः ॥ १३ ॥ पितृवंश्याश्च ये केचिन्मातृवंश्यास्तथापरे ॥ गुरुश्वशुरबंधूनां तथा वंश्या महामुने ॥ प्रयांति परमं स्थानं प्राप्य पिंडोदकेऽत्र वै ॥ १४ ॥ यमुनास्नानमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते ॥ नाहं वर्षशतैर्वक्तुं शक्नोमि मुनिवंदित ॥ १५ ॥ यत्र कुत्रापि संदृष्टा यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षणे ॥ स्नातावगाहिता पीता दृष्टा पापप्रणाशिनी ॥ १६ ॥ इति ते कथितं दिव्यं यमुना वैभवं वरम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण यमुनास्नानजं फलम् ॥ लभते सुतरां विप्र मृतो ब्रह्मपुरे वसेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे यमुनामाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

काशीसेभी करोड गुणा अधिक फल मिलताहै ॥ १२ ॥ जो व्यक्ति किंचिन्मात्रै भी सुवर्ण ब्राह्मण को देताहै, उसे (स्वर्गादि) परमलोकोंकी प्राप्ति होती है और फिरः वोह दरिद्र कभी नहीं होता ॥ १३ ॥ माता पिता वंशके पितर और गुरु ये सबही हे महामुने ! उक्तस्थानमें पिण्ड और जलदान करनेसे परमस्थान (सद्गति) को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ यमुनामें स्नान करनेके माहात्म्यको कोई भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं होसक्ता, और हे मुनिवन्दित ! हम भी सैकडों वर्ष पर्यन्त वर्णन करके पार नहीं पासक्ते ॥ १५ ॥ चाहे जैसे स्थानमें और चाहे जैसे क्षणमें यमुनाके दर्शन, स्नान, अथवा जलपान करनेसे पापोंका विनाश होजाता हैं ॥ १६ ॥ हे विप्र ! हमने यमुनाजीका यह दिव्य वैभव तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसकाभी स्मरण मात्र करनेसे यमुनामें स्नान करनेके फलकी प्राप्ति होतीहै, और अन्तमें मृत्यु होनेपर ब्रह्मलोकमें निवासप्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामेकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोध्यायः १३२.

स्कंद उवाच ॥ यमुनायाः पूर्वभागे पीठं परमसुंदरम् ॥ चतुर्योजनविस्तारायामं चाघनिवारणम् ॥ १ ॥ नाम्ना यवनेशपीठं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ पीठं वै यवनेश्वर्य्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम्

स्कन्दजी बोले—यमुनाके पूर्व भागमें परमसुन्दर एक पीठ हैं; उसकी लंबाई चौडाईचार योजनकी है ॥ १ ॥ उसका यवनेश पीठ नाम है, वोह पीठ समस्त दुःखोंका निवारण करनेवाला है

॥२॥ एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ त्रैलोक्ये नास्ति विप्रेश सत्यमेव न संशयः ॥ ३ ॥ यदन्यत्र महाभाग वर्षात्सिद्ध्यति कारकम् ॥तदत्र दिवसेनैव सिद्धिमेष्यत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ योनिपर्वतमारूढो यदि देवीमुपासते ॥ धन्यो भवति लोकेषु तेनैवैकेन कर्मणा ॥ ५ ॥ यदत्र संस्थिता भूता देवीलोकाधिवासिनः ॥ अरिमंत्रोपि संजप्तो देशेस्मिन्योनिपर्वते ॥ ६ ॥ सिद्धिं प्रलभते पूर्णां सुरैरपि हि दुर्लभाम् ॥ राजानो वश्यतां यांति नश्यंति सर्वशत्रवः ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ योनिपर्वतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुमर्हसि ॥ यवनेशस्य पीठस्य प्रभावं च तथा वद ॥८॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र समुत्पत्तिं योनिक्षेत्रस्य तद्गिरेः ॥ माहात्म्यं विस्तराद्वच्मि सावधानोऽवधारय ॥९॥ पुरा दक्षमहायज्ञे सती देहं मुमोच ह ॥ तद्देहं शिरसा धृत्वा प्रचचार महीमिमाम् ॥ १० ॥ शिवस्य मोहनाशार्थं विष्णुश्चक्रेण नारद ॥ चकर्त्त खंडशो देहं देव्याश्चैव महामते ॥ ११ ॥ योनिखंडं च पतितमत्र वै पर्वतोत्तमे ॥ तत्र संस्थापयामासुरीश्वरीं देवतागणाः

अथ च यवनेश्वरीका पीठ समस्त सिद्धियोंका देनेवालाहै ॥ २ ॥ इस क्षेत्रकी समान शीघ्रही विश्वास करानेवाला और कोई भी क्षेत्र त्रिलोकीमें नहीं है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! जो कार्य्य अन्यस्थानोंमें एकवर्षमें सिद्ध होता है, वोह कार्य यहां निःसन्देह एकही दिनमें सिद्ध होजाता है ॥ ४ ॥ जो प्राणी इस योनिपर्वतके ऊपर देवीकी उपासना करै तौ वोह उस एकही कर्मसे धन्य होजाताहै ॥ ५ ॥ जितने प्राणी यहां निवास करते हैं सबहीको देवीके लोकमें निवासकी प्राप्ति होगी । इस पर्वतके ऊपर अरिमन्त्रका जप करनेसेभी देवदुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ राजालोग वशीभूत होजाते और सब शत्रुओंका विनाश होजाता है ॥७॥ नारदजी बोले–योनिपर्वतके माहात्म्यको उत्पत्तिसहित वर्णन करो, तथा यवनेशपीठकी उत्पत्तिको भी वर्णन करिये ॥ ८ ॥ स्कन्दजी बोले–हे विप्र ! योनिक्षेत्र और उस पर्वतकी उत्पत्तिका वर्णन हम करते हैं, आप सावधानता पूर्वक श्रवण करो ॥ ९ ॥ प्रथम दक्षप्रजापतिके महायज्ञमें सतीने अपने देहका परित्याग किया था तब महादेवजी उनके देहको शिरके ऊपर धारण कर भूमिके ऊपर घूमने लगे ॥ १० ॥ सुनो नारदजी ! महादेवके मोह (अज्ञान) का विनाश करनेके लिये विष्णु भगवान्ने देवीके देहको चक्रद्वारा खण्ड २ करडाला॥११॥ तब उनका योनिखण्ड इसी श्रेष्ठ पर्वतके ऊपर नियत होगया, तब देवताओंने वहांही परमेश्वरीकी स्थापना

॥ १२ ॥ तदादीदं परं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ महादेवोपि तत्रैव संस्थितो लिंगरूपधृक् ॥ १३ ॥ योनीश्वर इति ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ देव्यास्तुदक्षिणे भागे कालियो नाम नागराट् ॥ १४ ॥ समायाति सदा तत्र येन केनापि हेतुना ॥ देवीं संपूज्य विधिवत्प्रयाति स्वभ्रके वरे ॥ १५ ॥ पुरात्र कालयवनस्तपस्तप्तुं समागतः ॥ देवीमाराधयामास विविधैश्चोपचारकैः ॥ १६ ॥ यवनेशी ततः प्रोक्ता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव तथात्रयः ॥ संस्थितानंदरूपेण तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥ १७ ॥ तस्य वै दक्षिणे भागे नाम्ना ब्रह्मनदो मुने ॥ तत्र संस्नाति यो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ॥ १८ ॥ तस्योत्तरप्रवेशे हि नदो वै ब्रह्मसंज्ञकः ॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन संज्ञायते नरः ॥ १९ ॥ तस्य दक्षिणभागे हि जलं भस्ममयं महत् ॥ तत्रैकं शिवलिंगं च स्फाटिकाभं सुनिर्मलम् ॥ २० ॥ तस्य दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते ॥ यत्र देव्यः संचरंति डाकिनीरूपमाश्रिताः ॥ २१ ॥ नाना वेषधरा कामरूपा वै

करी ॥ १२ ॥ उसी दिनसे यह परमपीठ शीघ्रही विश्वास दिलानेवाला प्रसिद्धहै, अथ च तभीसे महादेवजीभी वहां लिंगरूप धारण करके रहने लगे ॥ १३ ॥ सब सिद्धियोंके प्रदान करनेवाले उक्त लिंगका नाम योनीश्वरहै । देवीके दक्षिण भागमें कालीय नाम नागराज ॥ १४ ॥ किसी न किसी हेतुसे वहां आता है, और विधिपूर्वक देवीकी पूजाकर फिर अपने कंचुकमें प्रविष्ट होजाता हैं ॥ १५ ॥ प्राचीन कालमें यहांही कालयवनभी तप करनेको आया था, और विविध उपचारके द्वारा उसने देवीकी आराधना करी थी ॥ १६ ॥ तब सब दारिद्र्यविनाशिनी देवीका यवनेशी नाम प्रसिद्ध हुआ और वहांही श्रेष्ठ पर्वतके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ये सब निवास करने लगे ॥ १७ ॥ हे मुने ! उसके दक्षिणभागमें एक ब्रह्मनद है, उसमें जो मनुष्य स्नान करताहै उसे ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ उसके उत्तर प्रदेशमें जो ब्रह्मनद हैं अब हम उसके चिह्नका वर्णन करते हैं जिससे मनुष्य उसे जानसक्ता है ॥ १९ ॥ उसके दक्षिण भागमें भस्मरूप जल है, और स्फटिकको समान चमकीला और निर्मल एक लिंगभी वहां है ॥ २० ॥ उसके दर्शनमात्र करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको मिलते हैं, वहां देवियें डाकिनी रूप बनाके विचरती हैं ॥ २१ ॥ डाकिनियें अपनी इच्छानुसार

डाकिनीगणाः ॥ सार्द्धद्वयाक्षरं मंत्रं प्रजपंति च तत्र ताः ॥२२॥ तत्प्रभावेण विप्रर्षे परमां सिद्धिमागताः ॥ प्रच्छन्नरूपास्ताः सर्वा विचरंति महीतले ॥ २३ ॥ अंजनाकर्षणाद्याश्च खेचरीप्रमुखा मुने ॥ सिद्धयः करगास्तासां यत्नतो प्रविशंतिहि॥२४॥ गिरेश्च पर्वभागे हि नाम्ना विष्णुनदो मने ॥ पादुके विष्णना त्यक्ते पुरा वै तत्र पर्वते ॥ २५ ॥ तत्पूर्वोत्तरप्रदेशाद्धि समायाति रमा नदी ॥ तयोस्तु संगमं पुण्यं विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकं न संशयः॥२७॥ ततः मश्चिमदिग्भागे यमुनायास्तटे शुभे ॥ शिवतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ २८ ॥ ऋषिकुंडं च तत्रैव सर्वपापक्षयंकरम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति शिवलोकं न संशयः ॥ २९ ॥ तस्य वामप्रदेशे हि शरभंगस्य तीर्थकम् ॥ तत्र स्नात्वा दिवं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३० ॥ ततः शरद्वयेऽत्यर्थे वाशिष्ठं तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रायाति नदश्रेष्ठो ब्रह्मेति परिकीर्त्तितः ॥ ३१ ॥ वशिष्ठेश्वरस्तु तत्रैव शिवः परमसुंदरः ॥ तत ऊर्द्ध

अनेक रूप बनालेती हैं और अढाई अक्षरके मन्त्रको जपती हैं ॥ २२ ॥ हे विप्रर्षि ! उसके प्रभावसे उन्हें परमसिद्धिका लाभ हुआ है, एवं वे सब गुप्तरूप धारणकर महीतलके ऊपर विचरती हैं ॥ २३ ॥ अंजन, आकर्षण, और खेचरी आदि सिद्धियें हे मुने ! उनके हस्तगत होजाती हैं ॥ २४ ॥ हे मुने ! उक्त पर्वतके पूर्वभागमें एक विष्णुनद है, उसी स्थानमें उक्त पर्वतके ऊपर विष्णु भगवान्ने अपनी पादुकाओंका परित्याग किया था ॥ २५ ॥ उसके पूर्व और उत्तरके भागसे रमानामकी नदीका आगमन होता है, उन दोनोंका संगम सर्वोत्तम विष्णुतीर्थ कहलाताहै ॥ २६ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह विष्णुभगवान्के लोकमें जाताहै ॥ २७ ॥ वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर यमुनाजीके शुभतटके ऊपर शिवलोक प्रदान करनेवाला शिवतीर्थ नामका एक तीर्थहै ॥ २८ ॥ वहांही एक ऋषिकुण्डभी है जो समस्त पापोंका क्षय करनेवालाहै उसमें स्नान करके भी मनुष्य निस्सन्देह शिवलोकमें जाता है ॥ २९ ॥ इसके वामभागमें शरभंगका तीर्थ है उसमें स्नान करनेसे प्रलयपर्य्यन्त स्वर्गमें निवास करना होता है ॥ ३० ॥ वहांसे दो बाणकी दूरीपर एक वशिष्ठतीर्थ है, वहांही श्रेष्ठ ब्रह्मनद आताहै ॥ ३१ ॥ वशिष्ठेश्वर नामके परम सुन्दर महादेवजीभी वहां विद्य-

पर्वते वै सप्तधाराः पतंति हि ॥ ३२ ॥ तासां संस्पर्शनादेव यमलोकं न गच्छति ॥ इति ते कथितं गुह्यं पीठं परमकं पितुः ॥ ३३ ॥ नित्यं सन्निहितो यत्र देव्या सह सदाशिवः ॥ ३४ ॥ इदं क्षेत्रस्य माहात्म्यं यः शृणोति पठेदपि ॥ स याति परमाँल्लोकान् यत्र गत्वा न शोचति ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे केदारखंडे योनितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

मान हैं, उसके ऊर्द्धभागमें पर्वतके ऊपर सप्तधारा निपतित होती हैं ॥ ३२ ॥ उन धाराओंके स्पर्श मात्र करनेसे यमलोकमें जाना नहीं होताहै, इस प्रकार हमने ब्रह्माजीके गोप्यपीठका तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ३३ ॥ वहां पार्वती सहित महादेवजी नित्यही निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ जो व्यक्ति इस क्षेत्रके माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ताहै, वोह उन परमलोकोंमें जाता है जहां जाकर फिर शोचकरना नहीं होता ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

त्रयोस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३३.

नारद उवाच ॥ हिमवद्दक्षिणे भागे यानि पीठानि संति हि ॥ तानि सर्वाणि भगवन् देव विस्तरतो वद ॥ १ ॥ केषु सर्वेण भावेन शर्वेण सह पार्वती ॥ निरंतरं प्रवसते तद्वदस्व महामुने ॥ २ ॥ घोरे कलियुगे तत्र नराः पुण्यविवर्जिताः ॥ स्वप्नेपि तेषां सिद्धिर्हि दुर्ल्लभा नात्र संशयः ॥ ३ ॥ कथं तेषां गतिर्देव काम्यसिद्धिश्च षण्मुख ॥ केदारमंडलेऽन्यानि देवीक्षेत्राणि मे वद ॥ ४ ॥ येषां स्वल्पप्रयासेन सुखिनः स्युर्नरा विभो ॥ येषां

नारदजी बोले—हिमालयके दक्षिणभागमें जितने पीठ हैं, हे देवाधिदेव भगवन् ! उन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १ ॥ किन २ स्थानोंमें पार्वती सहित महादेवजी सर्वतो भावसे निवास करते हैं ? हे महामुने ! यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ क्योंकि घोरकलियुगमें पुण्यरहित पापी होंगे उनके लिये सिद्धिकी प्राप्ति होना स्वप्नमें भी दुर्लभ है ॥ ३ ॥ भो षडानन ! उनको सद्गति और काम्यसिद्धिकी प्राप्ति किस प्रकारसे होगी ? यह सब और केदारमण्डलमें अन्य जो देवीके क्षेत्रहों उनका वर्णन हमारेप्रति करिये ॥ ४ ॥ जिससे कि, अल्प परिश्रम करनेहीसे मनुष्य

संदर्शनादेव पापराशिर्विनश्यति॥५॥ तानि मे शंस भगवन्न गोप्यं ब्रह्मबंधुषु ॥ शृण्वतस्ते मुखांभोजात्तृप्तिर्मे जायते न हि ॥ ६ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधुसाधु द्विजश्रेष्ठ यत्पृष्टोहं त्वयानघ ॥ सर्वं ते कथयिष्यामि सावधानोऽवधारय ॥ ७ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नात्वात्र संभवेत् ॥ कर्मात्र सुकृतं कृत्वा परब्रह्माधिगच्छति ॥ ८ ॥ स्वर्गभूमिरियं ख्याता यतस्तत्सरणिस्तथा ॥ अत्र वै वासमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ ९ ॥ शृण्वन्न परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ गंगायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरिः स्थितः ॥ १० ॥ तत्र सुरेश्वरी नाम्ना सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ यस्याः संदर्शनादेव शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥ शार्दूलोपरि संरूढा भ्रमते तद्वने परा ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चार्द्धरात्रके ॥ सर्वे देवाः समायांति दर्शनार्थं महामते ॥ १२ ॥ तथा बहुविधाः शब्दाः श्रूयंते पुण्यकृज्जनैः ॥ नृत्यंत्यप्सरसस्तत्र गीतं कुर्वंति गीतिनः ॥ १३ ॥ सुरेश्वरी समुद्दिष्टा कुष्ठादिगदना-

सुखी होजायँ, और जिनके दर्शनमात्रसे पापराशि क्षय होजाती है ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! उन सबको हमारे प्रति वर्णन करिये,ब्रह्मबन्धुओंसे कोई विषय गुप्त न रखनाचाहिये,कारण कि, आपके मुखकमलसे सुनते २ हमारी तृप्ति नहीं होती है ॥ ६ ॥ स्कन्दजी बोले-हे निष्पाप द्विजराज !!! तुम्हें धन्य है, जो तुमने हमसे ऐसा उत्तम प्रश्न किया, तुम सावधानतापूर्वक श्रवणकरो हम सब कुछ तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥७॥ भूमिके ऊपर जितने तीर्थ हैं उनमें स्नान करनेकी बराबर ही इसका माहात्म्य हैं, एवं यहां शुभकर्म करनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होजाती है ॥ ८ ॥ इसको स्वर्गभूमिही कीर्त्तन कियागया है क्योंकि यह मानो स्वर्गका मार्ग है, सुतराम् उसमें केवल निवास मात्र करनेसे परमपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९ ॥ सुनो ! झटिति विश्वास करानेवाला यहां एक पीठ है, गंगाजीके पश्चिम भागमें सुरकूटनामका पर्वत स्थित है ॥ १० ॥ वहां सुरेश्वरीनामकी देवी समस्त सिद्धियें प्रदान करतीहैं, उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको मिलता है ॥ ११ ॥ शार्दूलके ऊपर आरूढहोकर भगवती वनमें चारोंओर विचरती हैं, अष्टमी चतुर्दशी और नवमीके दिन अर्धरात्रके समय, हे महामते ! भगवतीका दर्शन करनेके लिये संपूर्ण देवता आते हैं ॥ १२ ॥ और पुण्यात्मा जनोंको वहां अनेक प्रकारके शब्दभी श्रवणगोचर होते हैं, अप्सरागण नृत्य करती और गायकोंके वृन्द गान करते हैं ॥ १३ ॥ सुरेश्वरी देवी कुष्ठआदि

शिनी ॥ सुरकूटे गिरौ विप्र याया धाराः पतंति हि ॥ ताः सर्वाः सदृशा ज्ञेया गंगाया नात्र संशयः ॥ १४ ॥ एकाकी यस्तत्र गच्छेत्संसारपरमास्थितः ॥ स्वयं वा म्रियते तत्र निसंतानोथ वा भवेत् ॥ १५ ॥ तस्मादस्मिन्वरे पीठे सद्यः प्रत्ययकारके ॥ जितेंद्रियः सत्यवचाः प्रगच्छेन्मानवर्जितः ॥ १६ ॥ एतत्पीठसमं पीठं त्रैलोक्ये न हि विद्यते ॥ यस्त्वत्र जापी विप्रेश त्रिरात्रं नियतेंद्रियः ॥ प्राप्नोति परमां सिद्धिं सत्यमेव न संशयः ॥ १७ ॥ तस्मिन्नेव महाभाग तथा शौचविवर्जितः ॥ गच्छति ब्राह्मणश्रेष्ठ पुनरावर्त्तते गृहे ॥ १८ ॥ तस्या वै पश्चिमे भागे कालिका नाम विश्रुता ॥ यस्या दर्शनतो विप्र जायते मृतिसंस्मरः ॥ १९ ॥ सिंहव्याघ्राश्च महिषा भल्लूका वनकुक्कुटाः॥वसंति तत्र पीठे हि ज्ञेया दुर्ज्जनभीषिकाः ॥२०॥ तत्तद्रूपं समास्थाय गणास्ते नात्र संशयः ॥ निवारयंति दुष्टान्वै स्त्रीसुराद्वेषिणस्तथा ॥ २१ ॥ देवीभक्तिं व्यतिक्रम्येतरदेवमुपासते ॥

रोगोंका सत्यानाश करदेती है । हे विप्र । सुरकूट पर्वतके ऊपर जितनी धाराएँ निपतित होती हैं, निस्सन्देह उन्हें गंगाजीकी सदृश जाननाचाहिये ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति संसारमें विरक्त होकर वहां एकाकी गमन करता, अथवा वहां निस्सन्तान स्वयं मृतक होता है ॥ १५ ॥ शीघ्र विश्वास दिलानेवाले इस पीठमें जितेन्द्रिय हो सत्यसंभाषण पूर्वक मानका परित्याग करके एकाकी गमन करै ॥ १६ ॥ इस पीठकी समान त्रिलोकीमें भी अन्य कोई पीठ नहीं है, हे द्विजराज ! जो व्यक्ति तीन रात्रि पर्यन्त इन्द्रियदमनपूर्वक जप करताहै, निस्सन्देह उसे परमसिद्धिका लाभ होताहै ॥ १७॥ हे महाभाग ! जो व्यक्ति वहां अशुद्ध रहता है, उसका संसारमें वारंवार जन्म होता रहता है॥१८॥ उस पीठके पश्चिमभागमें कालिका नामकी भगवती विख्यात है, उनके दर्शन करनेसे मृत्युका स्मरण हो आता है ॥ १९ ॥ सिंह, व्याघ्र, महिष (जंगली भैंसे) भालू और बनैले मुर्गे ये सब दुर्जनोंको भयभीत करनेके लिये वहां निवास करते हैं ॥ २० ॥ उन्हीं उन (सिंहआदि) के रूपमें आश्रय लेकर निस्सन्देह गणही विचरते हैं, वे सबलोग दुष्टा स्त्रियोंको और देवनिन्दकोंको निवारण करते रहते हैं ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति देवीकी भक्तिका अतिक्रम अन्यदेवकी उपासना करै

ब्राह्मणेतरवर्णाश्च सुराया रहिता मुने ॥ २२ ॥ ब्राह्मणेन न कर्त्तव्यं सुरापानं कदापि वै ॥ यो मोहादपि चाज्ञानात्सुरापानं करोति वै ॥ देवीशापमवाप्नोति परत्र नरके व्रजेत् ॥ २३ ॥ यत्र चावश्यकं कर्म सुरया विप्रसत्तम ॥ तत्र मिथ्यां वदेद्धीमान् दुग्धे वा लवणं क्षिपेत् ॥ २४ ॥ सुरेश्वरीं महादेवीं वासवो वृत्र-सूदनः ॥ आराधयामास हरी राज्यभ्रष्टो महामते ॥ २५ ॥ ततः सुरेश्वरी ख्याता सर्वापत्तिविनाशिनी ॥ तत्रैव शिवलिंगं वै सुरेश्वरमिति स्फुटम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदार-खंडे सुरेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

तथापि वे चाहे ब्राह्मणोंसे इतरवर्ण भी मदिरासे रहितही रहते हैं ॥ २२ ॥ और ब्राह्मणको तो सुरापान करना कदापि कर्त्तव्य नहीं है, जो मोह अथवा अज्ञानसे मदिरापान करलेता है, उसे देवीजी शाप देतीहैं, और वोह परलोकमें नरकमें निपतित होता है ॥ २३ ॥ हे द्विजराज ! जहां मदिराहीसे आवश्यक कर्म सम्पादन होसक्ता हो वहां या तो मिथ्याही भाषण करदेना चाहिये, अथवा दुग्धमें लवण निक्षेप करदेना चाहिये ॥ २४ ॥ हे महामतिमान् ! प्राचीनकालमें इन्द्रने राज्यसे भ्रष्ट होकर सुरेश्वरी महादेवीकी आराधना करी थी॥२५॥तभीसे समस्त आपत्तियोंका विनाश करनेवाली भगवतीका सुरेश्वरीनाम विख्यात हुआ है । और वहां सुरेश्वर नामका एक शिवलिंगभी है ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३४.

नारद उवाच ॥ राज्यभ्रष्टः कथं जातः शक्रो देवपतिर्विभो ॥कथं-राज्यं च संप्राप्तं तत्र संपूज्य चेश्वरीम् ॥१॥ स्कंद उवाच ॥पुरा राजिर्महाराजश्चंद्रान्वयसमुद्भवः ॥ पृथिव्याः सागरांतायाः पति-रासीन्महामते ॥ २ ॥ कंदर्प्प इव रूपाढ्यो दाने वै बलिनोपमः

नारदजी बोले—हे विभो ! सुरराज इन्द्रराज्यसे भ्रष्ट किसप्रकार होगये और फिर परमेश्व का पूजन करनेसे फिर उन्हें राज्यकी प्राप्ति कैसे हुई ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले—प्राचीनकालमें चन्द्र वंशमें एक राजा रजि नामका हुआ था, हे महामतिमान् ! वोह सागरपर्यन्त समस्त भूमिका शासन करता था ॥ २ ॥ वोह राजा रूपमें कामदेव, दानकरनेमें बलि, और संग्राममें पराक्रम दिखानेमें

कालदंड इवासीत्स संगरे नियतः शुचिः ॥ ३ ॥ पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ नाकालमरणं राज्ये तस्य राज्ञो बभूव ह ॥ ४ ॥ कालवर्षी च पर्जन्यः औषध्यः फलपूजिताः ॥ एवं शासति पृथ्वींद्रे रजौ राजनि नारद ॥ दैवतैः सह संग्रामो दैत्यानामभवन्मुने ॥ ५ ॥ दैत्यैरिंद्रो निजस्थानाच्चालितो द्विज-पुंगव ॥ जगाम शरणं तस्य रजिराज्ञो महात्मनः ॥ उवाच वचनं चेदं प्रार्थयन्बहुशस्तदा ॥ ६ ॥ रजे राज्यं हि देवानां हृतं दैत्यै-र्महामते ॥ साहाय्यं मे महाबाहो कर्त्तुमर्हसि मानद ॥ ७ ॥ त्वं श्रेष्ठेंद्रपदे राजन्दैत्यानां नाशनं कुरु ॥ इति तद्वेदितं श्रुत्वा रजि-र्नाम महायशाः॥ दैत्यान्योद्धुं मनश्चक्रे स्पृहन्निन्द्रपदं महत्॥८॥ जगाम सहसा तत्र चतुरंगबलान्वितः॥ययुधे दानवैः सार्द्धं पंचवर्ष-शतं समाः ॥ ९ ॥ हताश्च तेन दैत्येशा हतशेषा ययुस्तलम् ॥ पदं जिगमिषू राजा रजिर्नाम दिवस्पतेः ॥ १० ॥ विज्ञापितो महाराजो बद्धांजलिपुटेन हि ॥ वासवेन महाभाग बहुशो धरणी हरिः ॥ ११॥ पुत्रोऽहं तव भूमींद्र मां राज्ये ह्यभिषेच य ॥ जनको

साक्षात् यमराजकी समान था, अथ च वोह राजा शुद्धाचारी भी था ॥ ३ ॥ वोह राजा अपनी प्रजाको धर्मपूर्वक और सपुत्रोंकी समान पालन करता था, उस राजाके राज्यमें अकालमृत्यु कि-सीकी नहीं होती थी ॥ ४ ॥ मेघ समयपर जल वरसाते, और औषधियें फलपूर्ण रहतीं थीं; हे नारद ! जिस समय राजा रजि इसप्रकार शासन करते थे, तब हे मुनिराज ! देवताओंके साथ दानवोंका युद्ध छिड़गया ॥ ५ ॥ हे द्विजराज ! दैत्योंने इन्द्रको अपने स्थानसे च्युत करदिया, तब इन्द्र महात्मा रजि राजाकी शरणमें गये और बहुत भांतिसे प्रार्थनाकर उनसे यह वाक्य बोले ॥ ६ ॥ हे महामते ! महाराज रजि ! ! ! दैत्योंने देवताओंका राज्य अपहरण करलिया, सो हे मान प्रदानकर्त्ता महाशय ! महाबाहो ! आप हमारी सहायता करिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! आप श्रेष्ठ इन्द्रपदके ऊपर अधिरूढ हुए दैत्योंका विनाश करिये, जब महायशस्वी रजि राजाने इन्द्रके ऐसे वाक्य श्रवण किये, तब इन्द्रके महत्पदकी प्राप्तिकी अभिलाषा पूर्वक दैत्योंसे युद्ध करनेका विचार किया ॥८॥ सुतराम् अपनी चतुरंगसेनाको साथ ले राजा ततकाल ही वहां गये, और पांच सौ वर्ष पर्यन्त दैत्योंके साथ उनका युद्ध हुआ ॥ ९ ॥ उसने मुखिया २ दैत्योंको वध किया और शेष उसकी शरणमें आगये, तब तौ रजिराजाके चित्तमें इन्द्रासन ग्रहणकरनेकी अभिलाषा उदय हुई ॥ १० ॥ हे महाभाग ! भूसुर ! ! ! इस प्रकार इन्द्रने दोनों हाथ जोडकर महाराज रजिसे प्रार्थना करी ॥ ११ ॥ हे भूपाल ! मैं आपका पुत्र हूं, सुतराम् राज्यके ऊपर मेरा अभि-

व्रतदश्चैव विद्यादाता तु यो भवेत् ॥ १२ ॥ यस्यान्नं भुज्यते नित्यं भयेभ्यो यश्च रक्षति ॥ पंचैते पितरः प्रोक्ता स्तेषां त्वं पंचमो ह्यसि ॥ १३ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा करुणं करुणानिधिः॥ तमेव स्थापयामास देवेन्द्रमतिनम्रकम् ॥१४॥ एवं बहुतिथे काले व्यतीते दैवतेश्वरे ॥ दिवं शशास विप्रेश रजिर्वृद्धो बभूव ह ॥ १५ ॥ रजेः पंचशतं पुत्रा ह्यासन्नप्रभवो मुने ॥ रजिर्ययौ हिमवति तपसे धृतमानसः ॥ १६ ॥ ते वै पंचशतं पुत्रा इंद्र-राज्ये मनो दधुः ॥ ऊचुश्च वासवं ते वै पित्रास्माकं जितं पुरा ॥ १७ ॥ स्वर्गाधिपत्यं देवेश प्रयच्छेति हि नः परम् ॥ इति तेषां दूतमुखाच्छ्रुत्वा पौरुषमाशु वै ॥ आदिदेश तदा युद्धं राज्यो-न्मात्तौ हि वासवः ॥ १८ ॥ युद्धोद्योगं तेपि श्रुत्वा सन्नद्धा वै समाययुः ॥ यत्रेंद्रो भगवानिन्द्रः सर्वदेवैरनुष्ठितः ॥ १९ ॥ इन्द्रोपि दैवतैः सार्द्धं युद्धायाशु समाययौ ॥ युयुधुः संगरे तत्र

वेक करिये, कारण कि—जन्मदेनेवाला, मन्त्रदाता, विद्यागुरु ॥१२॥ और जो नित्यभोजन करावे, अथ च जो भयसे रक्षा करै, ये पांचों पिता कहाते हैं, इनमेंसे पांचवे प्रकारहीके आप मेरे पिता हैं ॥ १३ ॥ जब करुणानिधान महाराज रजिने इन्द्रके इसप्रकार करुणाजनक वाक्य श्रवण करे तब नम्रीभूत इन्द्रहीको राज्य सिंहासनके ऊपर अभिषिक्त कर दिया ॥ १४ ॥ हे द्विजराज ! इस प्रकार इन्द्रलोकका शासन करते २ सुरेश इन्द्रका बहुतसा समय अति-क्रान्त होगया तब राजा रजिभी वृद्ध होगये ॥ १५ ॥ हे मुने ! राजा रजिकेभी पांचसौ पुत्र बडे पराक्रमी थे, सुतराम् राजा रजि तप करनेके लिये मनमें दृढ निश्चयकर हिमालय पर्वतके ऊपर चलागया ॥ १६ ॥ इधर उन पांचसौ पुत्रोंने इन्द्रका राज्य लेनेका विचार किया, और वे इन्द्रसे यों बोले कि, प्राचीन कालमें हमारे पिताने तुम्हें जीत लिया था ॥ १७ ॥ अतएव हे सुरेन्द्र ! स्वर्गका राज्य हमैं देना चाहिये, उनके दूतोंके मुखसे ऐसे वचन सुनकर राज्य-लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हुए इन्द्रने तत्काल युद्ध करनेकी आज्ञा दे डाली ॥ १८ ॥ युद्धके उद्यो-गकी तयारी सुनकर वे राजपुत्रभी तयार हो २ कर वहां आगये जहां सम्पूर्ण देवताओं सहित इन्द्र विराजमान् थे ॥ १९ ॥ तब तौ इन्द्रभी देवताओंको साथ ले युद्ध करनेके लिये तत्काल

रजिपुत्रा स्तथामराः ॥ २० ॥ प्रबलै रजिपुत्रैश्च जितो वृत्रनिषूदनः ॥ राज्यभ्रष्टो ययौ क्षीरसमुद्रांतर्ज्जलाशये ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सुरेश्वरीमाहात्म्ये इंद्रपराजयो नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

चलदिये, सुतराम् रणांगणमें राजकुमारों और देवताओंका खूब युद्ध हुआ ॥ २० ॥ निदान प्रकृष्ट बलशाली राजपुत्रोंने वृत्रासुरविनाशी इन्द्रको पराजित करदिया, तब तौ इन्द्र राज्यभ्रष्ट हो क्षीरसागरमें चले गये ॥ २१ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३५.

स्कंद उवाच ॥ इन्द्रोपि तत्र गत्वा हि क्षीराब्धेर्द्वीप उत्तमे ॥ सरोवरांतरे पद्मकर्णिकायां विवेश ह ॥ १ ॥ संत्रस्तो रजिपुत्रैः स उद्भटैरुरुविक्रमैः ॥ एवं बहुतिथे काले याते देवगुरुः स्वयम् ॥ २ ॥ जगाम यत्र देवेशो भयलीनोऽब्जकोटरे ॥ तत्र गत्वा गुरुर्विप्र वासवं प्रजगाद ह ॥ ३ ॥ वासव क्व गतोसि त्वमित्युच्चैर्वचसां पतिः ॥ पुनः पुनरुवाचेदं तत्र द्वीपेऽब्धिमध्यगे ॥ ४ ॥ ज्ञात्वा बृहस्पतिं तत्र ह्यागतं मुनिसत्तमः ॥ मंदं मंदमुवाचेदं कर्णिकायामिहास्मि वै ॥ ५ ॥ रजिपुत्रभयाक्रांतो न बहिर्गंतुमुत्सहे ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा वासवस्य गुरुः पुनः ॥

स्कन्दजी बोले—सुरराज इन्द्र क्षीर सागरके उत्तम द्वीपमें जायकर सरोवरके भीतर कमलकी कर्णिकामें प्रविष्ट होगये ॥ १ ॥ जब प्रवलपराक्रमी रजिपुत्रोंसे भयभीतहो इन्द्र इस प्रकार वहां जा छिपे और इस बातको बहुतसा समयभी व्यतीत होगया तब देवगुरु बृहस्पतिजी स्वयम् ॥ २ ॥ वहां पहुँचे जहां इन्द्र कमलकोटरमें छिपरहेथे, और वहां जाकर इन्द्रके प्रति यों बोले ॥ ३ ॥ अर्थात्—उस उत्तम द्वीपके मध्यमें पहुंचकर वाचस्पति वारंवार उच्चस्वरसे यों कहनेलगे कि, हे इन्द्र ! तुम कहां हो ॥ ४ ॥ हे मुनि सत्तम ! इन्द्रने जब वहां बृहस्पतिजीको आया जाना तब शनैः २ यों बोला कि—मैं यहां कमलकी कोटरमें उपस्थित हूं ॥ ५ ॥ रजिके पुत्रोंके भयके कारण बाहर निकलनेका उत्साह नहीं होता है, जब सुरगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रके ऐसे वाक्य

उवाचेदं महादेव बहिरागंतुमर्हसि ॥ ६ ॥ अहं तव प्रियं वच्मि यथा तेऽधिपता भवेत् ॥ ततो मनोहरा वाचो गुरोः श्रुत्वा दिवस्पतिः ॥ आजगाम बहिस्तूर्णं प्रपपात पदोस्तथा ॥ ७ ॥ तमुत्थाप्य देवराजं वाचस्पतिरुदारधीः ॥ उवाच वचनं चेदं विष्णुं भज महामते ॥ ८ ॥ स ते राज्याप्तये नूनं हितं तव वदिष्यति ॥ इत्युक्तः सहसा जिष्णुर्विष्णुः स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ९ ॥ इंद्र उवाच ॥ सहस्रशीर्षाय नमः सहस्रपादे नमोनमः ॥ सहस्राक्षाय देवाय भूमिं स्पृष्ट्वावतिष्ठत ॥ १० ॥ नमो देवाधिदेवाय यदूनां पतये नमः ॥ देवकीगर्भवासाय वासुदेवाय ते नमः ॥ ११ ॥ नमो मत्स्यस्वरूपाय बलिं छलयते नमः ॥ जामदग्न्यस्वरूपाय क्षत्रियांतकृते नमः ॥ १२ ॥ नमः पौलस्त्यनाशाय नमस्ते रामरूपिणे ॥ बलभद्रस्वरूपाय प्रलंबनिधनाय ते ॥ १३ ॥ नमो बदरिवासाय नमस्ते शुद्धरूपिणे ॥ नमो म्लेच्छप्रहर्त्रे ते कल्किरूपाय ते नमः ॥ १४ ॥ हयग्रीवाय देवाय देवानां पतये नमः

सुने, तब उन्होंने फिर कहा कि--हे महादेव ! तुम बाहर चले आओ ॥ ६ ॥ मैं तुम्हें हितकी बात बताऊंगा, जिससे फिर तुम्हें राज्य मिलजायगा जब इन्द्रने गुरुजीके ऐसे मनोहर वचन सुने तब वे बाहर निकलकर गुरुजीके चरणोंमें गिर पडे ॥ ७ ॥ उदारमति सुरगुरुने इन्द्रको उठाकर उनसे यों कहा हे महामते ! तुम विष्णु भगवान्का भजन करो ॥ ८ ॥ वे अवश्यही तुम्हारी राज्य प्राप्तिके लिये हितकारी उपाय बतावेंगे, इस प्रकार कहेजानेपर इन्द्र तत्कालही विष्णु भगवान्की स्तुति करनेको सन्नद्ध होगये ॥ ९ ॥ इन्द्र बोले--जिनके सहस्रों शिर, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं और जो भूमिके आधार स्वरूप हैं, ऐसे नारायणको हमारा वारंवार नमस्कार हैं ॥ १० ॥ हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है, आप यदुवंशियोंके स्वामी हैं हम आपको नमस्कार करते हैं, आपने देवकीके गर्भमें निवास किया अतएव वासुदेवभी आपही हैं हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ आपने मत्स्यरूप धारण किया, आपनेही वामन बन राजा बलिको छला, और परशुराम बनकर क्षत्रियोंका अन्तभी आपहीने किया अतएव आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥ पुलस्त्यके नाती रावणका विनाश आपहीने किया सुतराम् रामरूपभी आपही हैं, बलभद्रस्वरूप और प्रलंबासुर विनाशी भी आपही हैं हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ बदरीबननिवासी अर्थात्--बदरीनारायण शुद्ध रूपधारीभी आपही हैं, कल्कीरूप धारणकर म्लेच्छोंका नाश करनेवालेभी आपही हैं हम आपको नमस्कार करते हैं॥ १४ ॥ हे देव आपही हयग्रीव

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं सृष्टिं पालयते नमः ॥ १५ ॥ नमस्तुभ्यं सृष्टिहर्त्रे वेदगम्याय ते नमः ॥ वेदांतप्रतिपाद्याय बुधानां बुद्धि-दायिने ॥ १६ ॥ नमः किंजल्कवासाय जगद्वासाय ते नमः ॥ नमो नीरदघोषाय नमो नीरदरूपिणे ॥ १७ ॥ निरंजनाय शुद्धाय निर्विकाराय ते नमः ॥ नमो वेदस्वरूपाय वेदवंद्याय ते नमः ॥ १८ ॥ नमस्ते कमलाकांत विश्वाधार नमोस्तु ते ॥ नमः पीतसमुद्राय पीतवासाय ते नमः ॥ ॥ १९ ॥ वनमालाविशोभाय नमः कोटीनतेजसे ॥ नमः प्रचलनेत्राय नारायण नमोस्तु ते ॥ २० ॥ लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं शर्वशत्रुनिषूदिने ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतः सभगवानाविरासीन्महामते ॥ कोटिसूर्य्यप्रतीकाशो युगांताग्नि-सलोचनः ॥ २२ ॥ सनकादिमुनींद्रैश्च सेव्यमानो रमापतिः ॥ गरुडाचलमारूढो नवनीरदरूपधृक् ॥२३॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः

बने थे, आपही देवताओंके स्वामी हैं आप सृष्टिके निर्माण कर्त्ता और पालन कर्त्ताको नमस्कार है ॥ १५ ॥ आपही सृष्टिका संहार करते हैं वेदोंके द्वारा आपकी प्राप्ति होती है वेदान्तभी आपहीका प्रतिपादन करताहै और आप विद्वानोंकेभी अधीश्वर हैं आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ आप कमलासन और जगन्निवास हैं, आपका शब्द मेघध्वनिकी समान और आपका स्वरूप मेघकी सदृश नील है ॥ १७ ॥ आपमें कोई विकार नहीं, अतएव आप निरंजन और शुद्धस्वरूप हैं आपका यथार्थ ज्ञान वेदकेही द्वारा होताहै, अथ च वेद स्वरूपभी आपही है अतएव हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मीकान्त ! आप विश्वके आधार हैं, आपहीने समुद्रको पान किया और आपही पीताम्बर हैं हमारा बार २ आपको नमस्कार हैं ॥ १९ ॥ आपने वनमालाको धारण कियाहै, आपका सूर्यकी समान तेज है आपके चपलनेत्र हैं, हे नारायण आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ हे लक्ष्मीनाथ ! आप समस्तशत्रुओंका विनाशक-रनेवाले हैं आपको नमस्कार हैं ॥ २१ ॥ स्कन्दजी बोले--हे महामते ! जब भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करी तब वे प्रकट हुए, उस समय भगवान्‌का प्रकाश करोडों सूर्यकी समान था, और प्रलयाग्निकी समान उनके नेत्र प्रदीप्त होरहेथे ॥ २२ ॥ सनकआदि मुनीश्वरोंके द्वारा लक्ष्मीपति श्रीविष्णुभगवान् इस प्रकार स्तुति किये जानेपर गरुडके ऊपर आरूढहो नवीन मेघकी समान स्वरूप धारणकर ॥ २३ ॥ पीताम्बर धारणकरे, चतुर्भुज रूप बनाये,

शंखचक्रांबुजैर्युतः ॥ मेघगंभीरया वाचा जगाद बलसूदनम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बलारातेश्च हृदये यदस्ति तद्भविष्यति ॥ माया या परमाया च श्रीमद्भगवती परा ॥२५॥ तयैव सृज्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ सैव पालयते देवी सैव नाशयतेंतरम् ॥ २६ ॥ तयैव मोहितो जंतुर्ब्रह्माणं सृजकं तथा ॥ पालकं मां च जानाति नाशकं रुद्रसंज्ञितम् ॥ २७ ॥ एताभिः सर्वमूर्तीभिर्जगत्पालयते परा ॥ चौरराजाग्निरूपेण दुनोति च तथा त्रयम् ॥ २८ ॥ वर्षते मेघरूपेण तपते सूर्य्यरूपतः ॥ शोषते वायुरूपेण क्लेदते जलरूपतः ॥ २९ ॥ सैव सर्वकरी देवी तां भजस्व भयापहाम् ॥ नारायणीं हिमवतो शुभे केशरमंडले ॥ ३० ॥ गंगायाः पश्चिमे भागे सर्वदेवैरनुष्ठिते ॥ तत्र सा देवता देव सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तं देवनाथं स हरिरुक्त्वा तिरोहितः॥सोपींद्रो भगवान्विप्र जगाम भगवद्गिरौ ॥३२॥यत्र संनिहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः॥यत्र सर्वांशभावेन जगदीशः प्रतिष्ठितः॥३३॥इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सुरेश्वरीमाहात्म्ये कैलासगमनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३५॥

शंख चक्र (गदा) और कमल लिये, मेघकी समान गम्भीर स्वरसे इन्द्रके प्रति बोले ॥ २४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा--हे इन्द्र ! तुम्हारे हृदयमें जो कुछभी (अभिलाषा) हैं सब पूर्ण होगी, सुनो परमेश्वरी भगवती जो माया है॥२५॥वोही इस चराचर समस्त संसारकी रचना करती है, विशेष क्या वोही पालन और विनाश भी करती है॥२६॥उसी मायाके द्वारा प्राणी मोहित होकर ब्रह्माजीको विधाता, मुझे पालनकर्त्ता और रुद्रको विनाशकर्त्ता मानता है ॥ २७ ॥ किन्तु उक्त मूर्त्तियोंके द्वारा वोही परमेश्वरी जगत्का पालन आदि करती है, एवम् चौर राजा और अग्निरूपसे पीड़ाभी देती है ॥ २८ ॥ मेघरूपसे वर्षा करती और सूर्य्यरूपसे तपती है, वायुरूपसे शोषण और जलरूपसे गीलाभी वोही करती है ॥ २९ ॥ सुतराम् वोह देवीही सबकुछ करनेवाली है अतएव तुम शुभ केदार मण्डलमें जाकर उस भय विनाशिनीका भजन करो ॥ ३० ॥ गंगाजीके पश्चिमभागमें जहां कि, समस्तही देवता निवास करते हैं, हे देव ! समस्तकामनाओंको पूर्ण करनेवाली वोह देवीभी वहां ही रहती है ॥ ३१ ॥ स्कन्दजी बोले—भगवान् इसप्रकार सुरेश्वर इन्द्रसे कहकर अन्तर्द्धान होगये, हे द्विजराज ! इन्द्रभी हिमालयपर्वतके ऊपर गये ॥ ३२ ॥ वहां ब्रह्माआदि समस्त देवताभी सन्निहित रहते हैं, एवं जगदीश्वरभी अपने पूर्णभावसे वहां प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३६.

स्कंद उवाच ॥ गंगायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरौ हरिः ॥ जगाम प्रवरे धाम्नि देवगंधर्वसेविते ॥ १ ॥ अस्तौषीद्वाग्भिरग्र्याभिरिन्द्रो देवगृहच्युतः ॥ रजिपुत्रभयाक्रांतः प्राकृतः पुरुषो यथा ॥ २ ॥ इंद्र उवाच ॥ नारायणीं नमस्यामि सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ जगदानंदरूपां तां जगदंबां नतोस्म्यहम् ॥ ३ ॥ जगदीशीं जगद्वीजां जनयित्रीं जरातिगाम् ॥ जाज्वल्यमानां वपुषा नम्रपीनपयोधराम् ॥ ४ ॥ धनदां धनदावासां भवानीं भवनाशिनीम् ॥ भव्यां भावप्रतीकारां गीर्वाणगणपूजिताम् ॥ ५ ॥ गरिष्ठां गुरुपत्नीं च गुरुविद्यां गुरूत्सवाम् ॥ जालपां कामधेनुं च नमस्यामि सुरेश्वरीम् ॥ ६ ॥ प्रकृतिं पुरुषाकारां हिमालयकृतालयाम् ॥ निरंजनां निर्विकारां निर्गुणां निरुपद्रवाम् ॥ ७ ॥ कोटिसूर्य्यप्रती-

स्कन्दजी बोले--गंगाजीके पश्चिम भागमें देवकूटपर्वतके ऊपर सुरराज इन्द्र ऐसे स्थानमें गये जिसकी समस्त देवता और गन्धर्व सेवा करतेथे ॥ १ ॥ स्वर्गलोकसे निपतित हुए इन्द्रने रजिके पुत्रोंके भयसे आकुलहो प्राकृत (सामान्य) पुरुषोंकीभांति दिव्यवाक्योंसे भगवतीकी स्तुति करनेका आरंभ करा ॥ २ ॥ इन्दबोले--हे नारायणि ! तुम सृष्टिका संहारकरनेवाली हो हम तुम्हैं नमस्कार करते हैं, जगत्में अनन्तरूपसे व्याप्त अथ च जगज्जननीको हमारा प्रणाम है ॥ ३ ॥ हे परमेश्वरि ! तुम जगत्की बीज और परमेश्वरी हो, तुम्ही जगत्को उत्पादन करनेवाली हो, जरा कभी तुम्हारा अतिक्रमण नहीं करसक्ती, तुम्हारा शरीर जाज्वल्यमानहै, तुम्हारे पयोधर नम्र और पुष्ट है ॥ ४ ॥ तुम धन प्रदान करती हो, कुबेरके (कोषागारमें) तुम्हाराही निवास है, हे भवानि ! तुम सांसारिक बन्धनोंका छेदन करदेती हो, आपकी मूर्त्ति कल्याणस्वरूप है, और देवगण आपकी पूजा करतेहैं ॥ ५ ॥ तुम्ही गरिष्ठ और गुरुपत्नी हो, तुम्हारी विद्या और उत्सवभी गरिष्ठ है, हे सुरश्वरि ! तुम साक्षात् कामधेनुस्वरूप हो, हम तुम्हारेप्रति प्रणत हैं ॥ ६ ॥ हे भगवती ! तुम प्रकृति होकेभी पुरुषाकारहो तुमने हिमालयके ऊपर निवास स्वीकार किया है, तुम निरंजन, निर्विकार, और निर्गुण हो, अथ च तुम्हारे विषे किसीप्रकारका उपद्रवभी नहीं है ॥ ७ ॥ तुम्हारा प्रकाश करोड़सूर्य्यकी समान है तुम्हारा आनन (मुख) करोड़ चन्द्रमाकी समान (सुन्दर

काशां कोटिचंद्राननां भजे॥ धारणीं धीरसेव्यां च चराचरगुरुं भजे ॥ ८ ॥ नारदाद्यैः सेव्यमानां सहस्राक्षां महेश्वरीम् ॥ नमस्यामि महामायां जगन्मोहनकारिणीम् ॥ ९ ॥ सरस्वतीं च सावित्रीं रुद्राणीं रुद्रवंदिताम् ॥ नमस्यामि नराकारां निराकारां परेश्वरीम् ॥ स्कंद उवाच ॥१०॥ इति संस्तुवतस्तस्य मायां भगवतीं पराम् ॥ निराकारापि सहसा दर्शयामास स्वं वपुः ॥ ११ ॥ कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं चंद्रसूर्य्याग्निलोचनम् ॥ जाज्वल्यमानं तरसा चंद्राग्निकृतशेखरम् ॥ १२ ॥ दिव्यसिंहसमारूढं पीनोन्नतपयोधरम् ॥ मणिग्रैवेयहारैश्च भूषितं परमेश्वरम् ॥ १३ ॥ सहस्रबाहुसंयुक्तं सहस्राक्षं महाप्रभम् ॥ दिव्यायुधैः समायुक्तं दिव्यचंदनभूषितम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तत्सहसा तस्याः पादयोः प्रपपात ह ॥ उवाच वचनं तं च देवी देवगणार्चिता ॥ १५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रसन्नास्मि महाबाहो दुर्लभं न

है, तुम्ही सबका धारण और पोषण करनेवाली हो, धीर व्यक्ति तुम्हारा सेवन करते हैं, तुमही चराचरकी गुरु अर्थात् अधिष्ठात्री हो, हम तुम्हारा भजन करते हैं ॥ ८ ॥ हे महेश्वरि ! नारद आदि देवर्षि महर्षिगण तुम्हारी सेवा करते हैं, तुम्हारे सहस्रनेत्र हैं, हे महामाया ! तुम जगतको महाक्रान्त करदेती हो हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हे देवि ! सरस्वती, सावित्री, और रुद्राणीस्वरूपभी तुम्ही हो, अतएव रुद्रदेवभी तुम्हारी वन्दना करते हैं, हे परमेश्वरि ! तुम नराकार और निराकारभी हो हम तुम्हैं प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ स्कन्दजी बोले–जब इन्द्र इसप्रकार महामाया भगवतीकी स्तुति कररहे थे, तब यद्यपि वोह निराकार हैं तथापि उसने अपने शरीरके दर्शन कराये ॥११॥ उसके दिव्यदेहका प्रकाश करोड़ों सूर्यकी समान प्रदीप्त था, चन्द्रमा सूर्य और अग्निकी समान उनके नेत्र थे, चन्द्रमा और अग्नि उनके शिरपर सुशोभित थे, अतएव उनका देह अतीव प्रकाशमान था ॥ १२ ॥ दिव्यसिंहके ऊपर आरूढ, जिनके पयोधर पुष्ट और उन्नत हैं, मणिनिर्मित पचलडे और हारसे औरभी प्रकाश वृद्धिंगत होरहा था॥ १३ ॥ उनके सहस्रबाहु और सहस्रही नेत्र थे, उनकी प्रभाभी विशेष प्रदीप्त थी, उनका विग्रह दिव्यआयुध धारणपूर्वक दिव्यचन्दनसे विभूषित होरहा था ॥ १४ ॥ ऐसे दिव्यदेहके दर्शन कर, इन्द्र तत्कालही चरणोंमें निपतित होगये, तब देवगण पूजित देवीजीने उनसे ये वाक्य कहे ॥ १५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं–हे महाबाहो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तुम्हैं कुछभी दुर्लभ नहीं है,

हि ते क्वचित् ॥ ध्रुवं प्राप्स्यसि स्वं राज्यं विक्रमान्नैव संशयः ॥
॥ १६ ॥ अहं तान्मोहयिष्यामि नयिष्यामि कुमार्गकम् ॥
वीर्य्यक्षयश्च भावता तेषां शीघ्रं दुरात्मनाम् ॥ १७ ॥ इदं मे
परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ अत्र ये मां देवदेव भजिष्यंति
महेश्वरीम् ॥ १८ ॥ अनेन स्तव राजेन त्वत्प्रोक्तेन सुरेश्वर ॥
कृतकृत्यो विधानाद्धि तस्य सर्वं ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ धूपदीपैश्च
नैवेद्यैर्बलिभिर्मेषवर्करैः ॥ महिषैश्च महाभाग सुरया च द्विजेतरः
॥ २० ॥ पूजयिष्यति यो मर्त्यो राज्यं दास्यामि तस्य वै ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥ २१ ॥ कन्यार्थी
लभते कन्यां स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात् ॥ मोक्षार्थी लभते मोक्षं
सर्वो धन्यतरो भवेत् ॥ २२ ॥ त्वं च शीघ्रं तथा देव लभि-
ष्यसि स्वकं पदम् ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ निष्कंटं राज्यमाप्नुहि
॥ २३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं देवराजं तत्रैवांतरधीयत ॥
सोपि वृत्रहरो देवो देवसैन्येन संवृतः ॥ २४ ॥ मायया मोहितां

इसमें कोईभी सन्देह नहीं है कि, अवश्यही तुम्हें पराक्रमकरनेसे अपने राज्यकी प्राप्ति होगी ॥ १६ ॥ कुमार्गका विनाशकरके मैं उन्हें मोहित करूंगी, और उन दुष्टोंके पराक्रमका अवश्यही क्षय होजायगा ॥ १७ ॥ हमारा यह परमपीठ शीघ्रही प्रत्यय दिलानेवाला प्रसिद्धहोगा; हे देवाधिदेव ! यहां जो व्यक्ति मेरा भजन करैगा ॥ १८ ॥ अर्थात्—हे सुरराज ! आपके कीर्त्तन किये हुए इस स्तोत्रके द्वारा जो व्यक्ति हमारी स्तुति करैगा, वोह कृतकृत्य होजायगा, और उसे मैं सब कुछ प्रदान करूंगी ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! ब्राह्मणके अतिरिक्त जो अन्य जन धूप दीप नैवेद्य, वलि मेष (मेढे) बकरे और महिष एवं मदिराके द्वारा पूजा करैगा ॥ २० ॥ मैं उसे राज्यप्रदान करूंगी, और इस प्रकार पूजन करनेसे पुत्राभिलाषीको पुत्र, धनार्थीको धन ॥ २१ ॥ कन्या चाहने वालेको कन्या, स्वर्गकी अभिलाषा करने वालेको स्वर्ग और मोक्षके अभिलाषीको मोक्षकी प्राप्ति होती है, एवं पूजनकर्ता व्यक्ति धन्य होजाता है ॥ २२ ॥ हे देव ! तुम्हें तौ शीघ्रही अपने पदकी प्राप्ति होगी, जाओ ! सुरसत्तम ! ! जाओ ! ! ! तुम्हें निष्कण्टक राज्यकी प्राप्ति होगी ॥ २३ ॥ स्कन्दजी बोले-वोह भगवती देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहकर वहांही अन्तर्द्धान होगई । उधर वोह वृत्रासुर विनाशी इन्द्रभी देवसेनासे परिवृत होकर ॥ २४ ॥ मायाके द्वारा मोहित हुए, एवं कुमार्गमें निरत

स्तूर्णां कुमार्गेनिरतांस्तथा ॥ जघान रजिपुत्रांश्च वज्रेण द्विज-
पुंगव ॥ २५ ॥ प्राप स्वं परमं स्थानं सुरेश्वर्य्याः प्रसादतः ॥
इति ते कथितं सर्वं सुरेश्वर्य्याः प्रभावकम् ॥ २६ ॥ यच्छ्रुत्वापि
महाभाग सकलां सिद्धिमाप्नुयात् ॥ इदं परमकं पीठं सुगोप्यं
दुष्टजंतुषु ॥ २७ ॥ भ्रष्टराज्यो नरस्तत्र लभते स्वं पदं
महत् ॥ यद्यदिच्छतिवै कामं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २८ ॥
इति श्रीस्कांदे केदारखंडे श्रीसुरेश्वरीमाहात्म्ये इंद्रस्वस्थानप्राप्ति-
वर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

रजिपुत्रोंको हनन करने लगा ॥ २५ ॥ और अन्तमें सुरेश्वरीके प्रसादसे इन्द्रको अपने परमस्थान (राज्य) की प्राप्ति होगई, इस प्रकार हमने सुरेश्वरीका प्रभाव तुम्हारेप्रति वर्णन किया है॥२६॥ हे महाभाग ! इसका केवल श्रवण करनेसे भी सकल सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, एवम् इस परम पीठको दुष्टजन्तुओंसे गुप्त रखनाचाहिये ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति राज्यसे भ्रष्ट होगया हो उसेभी अपने परमपदकी प्राप्ति होसक्ती है, एवं वोह पुरुष जो २ जो चाहताहै उसकी सब ही कामनाएँ परिपूर्ण होजाती हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३७.

स्कंद उवाच ॥ अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम् ॥
ब्रह्मकूटगिरौ विप्र पश्चिमोत्तरयोर्दिशि ॥ १ ॥ सुंदरीति च
विख्याता देवदानवसेविता ॥ तत्र ब्रह्मपुरी दिव्या यत्रास्ते भग-
वानजः ॥ २ ॥ आराधयामास यत्र देवीं त्रैलोक्यसुंदरीम् ॥
रहस्यं परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ ३ ॥ सृष्टिकर्तृत्वसा-

स्कन्दजी बोले—अब हम एक और परम दुर्लभ पीठका तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, हे विप्र ! ब्रह्मकूट पर्वतके ऊपर पश्चिम और उत्तरकी दिशामें ॥ १ ॥ देवता और दानवोंके द्वारा सेवा की हुई एक देवी सुन्दरी नामसे प्रसिद्ध है, वहांही एक दिव्य ब्रह्मपुरी है, उसीमें भगवान् ब्रह्माजीने ॥ २ ॥ त्रैलोक्यसुन्दरी देवीकी आराधना की थी, यह पीठ अतिशय गोपनीय और शीघ्रही विश्वास दिलानेवाला है ॥ ३ ॥ उसी स्थानमें प्रजापतिको सृष्टिरचनेकी

मर्थ्यं यत्र प्राप प्रजापतिः ॥ तत्र सन्निहता नित्यमिंद्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ४ ॥ नमस्कारान्प्रकुर्वंतः सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ महादेवमुखात्प्रीत्या श्रुतमेतन्महामुने ॥ ५ ॥ तत्प्रोक्तं ते मया गुह्यं यत्र नित्यं स्थिता शिवा ॥ यस्याः दर्शनमात्रेण नश्यंते पापकोटयः ॥६ ॥ पूजनाद्बलिभिर्धूपैः सुरया च विशेषतः ॥ संतुष्टा सा भवेद्देवी सर्वकामप्रदायिनी ॥ ७ ॥ यस्या दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ एतत्पीठसमं पीठं त्रैलोक्ये दुर्लभं परम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मपुत्री नदी तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ तस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं महामते ॥ ९ ॥ सुंदरी पूजनाद्ध्यानाल्लभते परमं पदम् ॥ तत्रैव शिवलिंगं वै सुंदरीशमिति स्मृतम् ॥ १० ॥ तस्य दर्शनमात्रेण सदाशिवगणो भवेत् ॥ यस्त्रिरात्रं व्रती भूत्वा जपते परमाक्षरम् ॥ असाध्यमपि भूतेशीप्रसादात्साधयेन्नरः ॥ ११ ॥ यश्चार्पयति विप्रेश महिषं बलिरूपिणम् ॥

सामर्थ्य प्राप्त हुई थी, अथ च इन्द्रआदि समस्त देवता वहां सन्निहित रहते हैं ॥ ४ ॥ और सृष्टिका संहार करनेवाली भगवतीको नमस्कार करते रहते हैं, हे महामुने ! मैंने यह सबकुछ महादेवजीके मुखसे श्रवण किया है ॥ ५ ॥ वोही गुप्तरहस्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है कल्याणमूर्तिमती शिवा वहां नित्यही उपस्थित रहती हैं, अथ च उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे करोडों पाप नाश होजाते हैं ॥ ६ ॥ बलि और धूप तथा विशेषकर मद्यसे पूजा किये जानेपर देवी सन्तुष्ट होकर समस्त कामनाओंको पूर्ण करतीहैं ॥ ७ ॥ और उन भगवतीके दर्शनमात्र करनेसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, इस पीठकी समान पीठ त्रिलोकीमें भी परम दुर्लभहै ॥८॥ वहां ब्रह्मपुत्री नामकी एक नदी है जो समस्त सौभाग्य प्रदान करतीहै, हे महामते ! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ ९ ॥ सुन्दरीके पूजन अथवा ध्यान करनेसे परमपदका लाभ होताहै, वहांही एक शिवलिंगभी है, उसका सुन्दरीश नाम विख्यात है ॥ १० ॥ उक्त लिंगके दर्शनमात्र करनेसे व्यक्ति सदाशिवगण हो सक्ताहै, वहां यदि व्रत ग्रहण पूर्वक तीनरात्रि पर्यन्त परमाक्षर मन्त्रको जपै तौ वोह मनुष्य भूतेश्वरीके अनुग्रहसे असाध्यकार्य्यको भी सिद्ध करसक्ता है ॥११॥हे द्विजराज ! जो मनुष्य महिषकी बलि भगवतीके

स याति परमं स्थानं यत्र देवी महेश्वरि ॥ १२ ॥ छागं वापि नरो दद्यात्स्वकार्य्यपरिपूर्त्तये ॥ यो नरं बलिरूपेण सुंदर्य्यै वै प्रयच्छति ॥ प्राप्नोति पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ १३ ॥ अधीते यो नरो धीमान्देवीसूक्तं त्र्यहं शतम् ॥ साधयेत्सर्वकार्य्याणि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥१४॥ सुंदरीनिलये यो वै देवीसाम पठेत्सुधीः॥तस्य सर्वाणि कार्य्याणि सिद्धयंते नात्र संशयः॥१५॥ इत्युक्तं सुंदरीपीठं ब्रह्मकूटे गिरौ स्मृता ॥ नदी हैमवती चैव ब्रह्मपुत्री तथैव च ॥ १६॥ एतयोः संगमे स्नात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ सुंदरीपीठमाहात्म्यं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१७॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सुंदरीपीठमहिमावर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

अर्पण करता है, उसे उस परमस्थानकी प्राप्ति होती है जहां साक्षात् महेश्वरी निवास करती है,॥१२॥ अथवा जो मनुष्य अपने कार्य्यकी सिद्धिकेलिये छागकी बलि भगवतीके अर्पण करता है, उसे वन पर्वत और काननसहित भूमिकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष तीनदिनपर्यन्त देवीसूक्तके सौ २ पाठ करता है, विशेष कहनेसे क्या है वोह सबही कार्य्योंको साधसक्ता है ॥ १४ ॥ जो सुबुद्धिपुरुष देवीके मन्दिरमें देवीसामका पाठ करता है, निस्सन्देह उसके सबकार्य्य सिद्ध होजाते हैं ॥ १५ ॥ इसप्रकार हमने ब्रह्मकूटपर्वतके ऊपर अवस्थित सुन्दरीपीठका माहात्म्य और ब्रह्मपुत्री नदीका तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ १६ ॥ इन दोनोंके संगममें स्नान करके ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग प्राप्त होता है । अथ च सुन्दरीपीठके माहात्म्यको सुनकर मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १७ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३८.

स्कंद उवाच ॥ अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि पीठं परमकं मुने ॥ तस्य दक्षिणतो विप्र नाम्ना भगवदीश्वरः ॥ १ ॥ शिवकूटगिरे-

स्कन्दजी बोले—हे मुने ! अब हम अन्य एक पीठका वर्णन करते हैं, उसके दक्षिणभागमें भगवत् ईश्वरनामके महादेवजी हैं ॥ १ ॥ हैमवतीके शुभतटके ऊपर जहां शिवकूटनामका

यत्र हैमवत्यास्तटे शुभे ॥ तत्र पूर्वं महादेवः संस्तुतो हरिणा यतः ॥ ततोयं शंसितो विप्र नाम्ना भगवदीश्वरः॥२॥ तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥ तत्रास्ति बिल्ववृक्षो वै मुक्तामलफलोपमः ॥ ३ ॥ ततोऽधो दक्षिणे भागे पीतवर्णं जलं शुभम् ॥ तस्मिन्नेव प्रदेशे तु शिवो भगवदीश्वरः ॥ तस्य दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ ४ ॥ ततः पश्चिमतो विप्र धारा पंचशिखा मता ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ संपूज्य भगवदीशं स्नात्वा हैमवती तटे ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव महामुने ॥ ६ ॥ शिवतीर्थाज्जलं गृह्यं गच्छेद्भगवदीश्वरम् ॥ स्नापयेद्रुद्रजाप्येन सर्वाभीष्टं लभेन्नरः॥७॥ इति ते भगवदीशमाहात्म्यं शुभदायकम् ॥ श्रुत्वापि परमं स्थानं लभते नात्र संशयः ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भगवदीशमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

पर्वत है, चूं कि, वहांही प्रथम हरिने महादेवजीकी स्तुति करीथी इसी कारण ये भगवदीश नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ॥ २ ॥ अब हम उसके चिह्नका वर्णन करते हैं जिससे उस शुभका ज्ञान सम्यक् तया होजाय, वहां एक बेलका वृक्ष है उसके फल मुक्ता फलके आकारके होते हैं ॥ ३ ॥ उसके नीचे दक्षिणभागमें पीले वर्णका शुभ जल हैं, और उसी प्रदेशमें भगवदीश्वर महादेवजी हैं, उनके केवल दर्शनमात्र करनेहीसे परमपद मोक्षकी प्राप्ति होती हैं ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उससे पश्चिमकी ओर पंचशिखाधारा है, भक्तिभावपूर्वक उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको शिव सायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५ ॥ हैमवतीके तटमें स्नान और भगवदीशका पूजन करनेसे हे महामुने ! अवश्यही शिवसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६ ॥ शिवतीर्थमें से जललेकर भगवदीश्वरके निकट जाय रुद्राभिषेककी विधिसे उन्हें स्नान करावे तौ मनुष्यको समस्त अभीष्ट फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७ ॥ इस प्रकार भगवदीशका शुभदायक माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है इसका श्रवण करनेसेभी अवश्यही परमस्थानकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे भाषाटीकायामष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३९.

नारद उवाच ॥ शिवतीर्थं वद प्राज्ञ श्रवणेच्छा प्रवर्त्तते ॥ कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं शिवलोकप्रदायकम् ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु क्षेत्रं महाभाग सर्वपापक्षयावहम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कोटिजन्मसमुद्भवैः ॥ पापैः प्रमुच्यते देही नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २ ॥ गंगा हेमवतीसंगे सर्वपापक्षयावहे ॥ शिव तीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्वर्णचौरोऽथवा भवेत् ॥ सोपि शुद्धो मुनिश्रेष्ठ शिवतीर्थनिमज्जनात् ॥ ४ ॥ अस्मिन्कृतं महाभाग वज्रलेपाय कर्मकृत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्पापं न संचरेत् ॥५॥ केदाराद्वै शतगुणं शिवतीर्थनिमज्जनम् ॥ यस्तत्र मुंचते प्राणान् पंचरात्रोषितो नरः ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव शिवोदितम् ॥ ६ ॥ गंगाहैमवतीसंगे स्नातः शिवपुरे वसेत् ॥ यद्यत्कामयते कामं तत्तत्साधयऽतेत्र वै ॥७॥ धन्यानामत्र मरणं जायते मुनिवंदित ॥ प्रसंगा-

नारदजी बोले–हे प्राज्ञ ! शिवतीर्थके श्रवण करनेके लिये हमारी इच्छा प्रवृत्त होती है, अत एव उसका वर्णन आपकरिये (और यह बताइये कि-) वोह शुभदायक क्षेत्र कहां है ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले–हे महाभाग ! समस्तपापोंके भयको दूर करनेवाले शिवक्षेत्रको सुनो, उसके दर्शनमात्र करनेहीसे प्राणी करोडों जन्मके पातकोंसे मुक्त होजाता है, इसमें सन्देह कुछभी न करना चाहिये ॥ २ ॥ गंगाजी और हैमवतीका जो संगम समस्त पापोंका क्षय करनेवाला है उसीको शिवतीर्थ कहते हैं और उसमें स्नान करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ ब्रह्मघाती, मद्यपान कर्त्ता, अथवा सुवर्णको चुरानेवाला भी मनुष्य यदि शिवतीर्थमें स्नान करै तौ शुद्ध हो जात है ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! इस क्षेत्रके ऊपर जो कुछ कर्म कियाजाय सो सब वज्रलेप होजाता हैं, अत एव यहां सर्व था पापका आचरण न करै ॥ ५ ॥ शिवतीर्थमें स्नान करनेसे केदारजीकी यात्राकी अपेक्षा भी शतगुण पुण्य अधिक होता है । जो मनुष्य पाँचरात्रिपर्यन्त उपवास धारणकर वहां अपने प्राण परित्याग करता है, महादेवजीने यह सत्यही कहा है कि, उसे शिव सायुज्यकी प्राप्ति होतीहै।।६।।गंगा और हैमवतीके संगममें स्नान करनेसे मनुष्य शिवलोकमें निवास पाताहै, और वोह जिस २ की कामना करताहै, वोही उसे प्राप्त होजाती है।।७।। हे मुनिपूजित ! जिनके अहोभाग्य हैं उन्हीका यहां मरण होता है, जो व्यक्ति किसीप्रसंग अथवा बलात्कारसे यहां शिवस्थलमें आता

द्वा बलात्कारादायात्यत्र शिवस्थले ॥ कोटिजन्मार्जितैः पापै-र्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८ ॥ तत्र भूतीश्वरो देवो दर्शनाद्भूतिदो महान्॥बृहद्रथंतराभ्यां यः पूजयेत्तं महेश्वरम् ॥स वै शिवपुरे कल्पं नानाभोगो वसेदरम्॥९॥शतकृत्वस्तु यो मर्त्यो रुद्रसामजपेदिह॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं प्राप्नुयाद्देव रुद्रनाम्ना तथार्चनात् ॥ १० ॥ बृहतश्च तथा साम्नः शतकृत्वो महामुने ॥ पठेद्वा पाठयेच्चापि तत्कर्मकृतमक्षयम् ॥ ११ ॥ यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः॥ य इच्छेद्विपुलान्भोगानिह चैव परत्र च ॥ पाठयेच्च पठेच्चापि बृहच्चैव रथंतरम् ॥ १२ ॥ महारुद्रं जपन् यस्तु स्नापयेद्गांगवारिणा ॥ भूतीश्वरं महादेवं सर्वभूतीर्लभेन्नरः ॥ १३ ॥ शिवरात्रिदिने यस्तु स्नात्यत्र भगव-त्प्रियः ॥ संसारबंधनं तस्य छिनत्ति जगदीश्वरः ॥ १४ ॥ चतु-र्दश्यां तु कस्यांचिद्दर्शनं प्रकरोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं विप्र हयमेधादिकं भवेत् ॥ १५ ॥ सोमवारे शुक्रवारे नक्षत्रे रौद्र-

है, अवश्यही वोह करोड़ों जन्मके संचित पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ८ ॥ वहां भूतेश्वर महादेव हैं, उनके केवल दर्शन करनेही से प्रभूतऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, जो व्यक्ति गंगाजलके द्वारा महेश्वरका पूजन करता है वोह नानाप्रकारके भोगोंको भोगता हुआ कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य इस स्थानमें सौवार रुद्रसामका जप करता है, उसे महादेवजीकी पूजा और जप करनेसे उस फलकी प्राप्ति होती है जो फल सबतीर्थोंकी यात्रा और सब यज्ञोंके करनेसे उपलब्ध होता है ॥ १० ॥ हे महामुने ! बृहत् और सामको जो मनुष्य स्वयम् पढ़ता अथवा दूसरोंसे पाठ कराता है उसका कियाहुआ कर्म अक्षय होता है ॥११॥ वोह मनुष्य जो २ कामना करता हैं उसीकी प्राप्ति होती है । जो पुरुष इसलोक और परलोकमें विपुल भोगोंकी कामना करता हो उसे वृहतीका पठन पाठन करना चाहिये ॥ १२ ॥ महारुद्रका जप करता हुआ जो पुरुष गंगाजलके द्वारा भूतीश्वर महादेवको स्नान कराता है उसे समस्त ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ हे भगवत् प्रिय ! जो मनुष्य शिवरात्रिके दिन यहां स्वयं स्नान करता है, जग-दीश्वर भगवान् उसके सांसारिक बन्धनका उच्छेदन करदेते हैं ॥ १४ ॥ और जो मनुष्य किसी चतुर्दशीके दिन दर्शन करता है उसे अश्वमेघ आदि करनेके फलकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ सोमवार अथवा शुक्रवारके दिन किंवा रौद्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें यहां जो कुछ कर्म कियाजाता

संज्ञिते ॥ यत्कर्म कुरुते ह्यत्र तत्सर्वं स्यादनंतकम् ॥ १६ ॥ शिवतीर्थं परं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ यस्य वै दर्शनासक्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ १७ ॥ संगमात्पूर्वभागे तु दंडषट्के परं मुने ॥ इंद्रकुंडमितिख्यातं इंद्रलोकप्रदायकम् ॥ १८ ॥ तस्य वै दक्षिणे भागे चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥ तत्र वै स्नानमात्रेण विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥ तत ईशानदिग्भागे रुद्रधारेति विश्रुता॥ सकृदाचम्य सलिलं रुद्रलोके वसेच्चिरम् ॥२०॥ ततः पूर्वं महाभाग गंगातीरे महामते ॥ त्रिशूलतीर्थमाख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ २१ ॥ तत ऊर्द्ध्वंगिरौ विप्र त्रिशूलांकितभूमिका ॥ पूर्वं संरोप्य शूलं वै गंगातीरे शिवो ययौ ॥ २२ ॥ इत्येतद्वै समाख्यातं शिवतीर्थमाहात्म्यकम् ॥ एतच्छ्रुत्वापि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

वोह सब अनन्त होजाता है ॥ १६ ॥ यह शिवतीर्थ परमतीर्थ है, भोग और मोक्षका देनेवाला है, अत एव इन्द्रादि देवतागणभी उसके दर्शन करनेकेलिये आसक्त रहते हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! संगमसे पूर्वभागमें छः दण्डकी दूरीपर इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला इन्द्रकुण्ड है ॥१८॥ और उसके दक्षिणभागमें चक्रतीर्थ है, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे विष्णुलोकमें ऐश्वर्य्य उपभोग करनेको मिलते हैं ॥ १९ ॥ वहांसे ईशानकी ओर रुद्रधारा विख्यात हैं, उसके जलको एक बारभी आचमन करनेसे चिरकालपर्य्यन्त शिवलोकमें निवास करना होता हैं ॥ २० ॥ हे महामतिमान् महाभाग ! ! ! वहांसे पूर्वकी ओर गंगाजीके तीरपर समस्त पापोंका क्षयकरनेवाला एक चक्रतीर्थ हैं ॥ २१ ॥ हे विप्र ! वहांसे ऊपरकी ओर भूमि त्रिशूलके चिह्नसे अंकित हैं, प्रथम महादेवजी गंगाजीके तीरपर त्रिशूलनिक्षेप करके गये थे ॥ २२ ॥ यह शिवतीर्थका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसका श्रवणकरनेसे भी मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै॥२३॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४०.

स्कंद उवाच ॥ ॥ तस्मात्पश्चिमदिग्भागे शृणु दिव्यं शुभप्रदम् ॥ महत्कुमारिका पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ १ ॥ तत्र सर्वे देवगणा निवसंति तदर्च्चकाः ॥ इदं कुमारिकास्थानं न त्यजंति महामुने ॥ २ ॥ शृणु चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ तत्रास्ति दिव्यं सलिलं शैलोदमिति विश्रुतम् ॥ ३ ॥ लोहाद्या धातवो येन स्वर्णतां यांति साधनात् ॥ यदत्र पतते विप्र सर्वं ग्रावसमं भवेत ॥ ४ ॥ इयं कुमारिका देवी भवमुक्तिप्रदायिनी॥यस्या दर्शनमात्रेण शिवं च लभते परम्॥ ५ ॥ धन्याः सुकृतिनो लोके कुमारीपूजका मुने ॥ तेषां वै दर्शनादेव पापं वर्षकृतं दहेत् ॥ ६ ॥ तत्र शैलेश्वरो देवो महादेवः सदा स्थितः ॥ पश्यंति ये सुकृतिनस्तं न तेषां पराभवः ॥ ७ ॥ भूमिं गां च तथा रत्नं यश्चार्पयति भक्तितः ॥ तेन दत्तं हि सकलं भूतलं रत्नपूरितम् ॥८॥ यस्तत्र स्नापयेद्देवं शैलेशं तीर्थ-

स्कन्दजी बोले—सुनिये ! वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर महत्कुमारिकापीठ है, वोह दिव्य और शुभदायक है, अथ च वोह शीघ्रही विश्वासभी दिलादेता है ॥ १ ॥ उसकी पूजाकरनेके लिये सब देवगण वहां उपस्थित रहते हैं, और हे महामुने ! इस कुमारिकास्थानको कभी नहीं छोड़ते हैं ॥ २ ॥ सुनो ! अब हम चिह्न बताते हैं, तब तुम्हें निश्चय होजायगा, वहां शैलोदनामसे प्रसिद्ध जल है ॥ ३ ॥ उस जलकेद्वारा साधनकरनेसे लोहआदि धातुएँभी सुवर्ण होजाती हैं, और हे विप्र ! जो कुछभी यहां गिरपड़ता है सभी पाषाणकी समान होजाता है ॥ ४ ॥ यह कुमारिका देवी संसारके जन्ममरणसे मुक्त करदेती है, और उसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ हे मुने ! कुमारीके पूजन करनेवाले व्यक्तियोंको धन्यहै और वेही पुण्यात्मा हैं, उन पुरुषोंके दर्शनमात्र करनेसे वर्षभरके कियेहुए पापोंका विनाशहोजाता है ॥ ६ ॥ शैलेश्वर नामके महादेवजी वहां सदैवही स्थित रहते हैं, और जिन पुण्यशीलोंको उनके दर्शन होते हैं उनका फिर कभी पराभव नहीं होता ॥ ७ ॥ और जो व्यक्ति भक्तिभावपूर्वक भूमि गौ और रत्नप्रदान करता है, उसे रत्नोंसे परिपूर्ण हुई सम्पूर्ण भूमिके दान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ और जो पुरुष शैलेश्वर महादेवको तीर्थोंके जलसे स्नान कराताहै, उसे उन परम

वारिभिः ॥ स याति परमांल्लोकान्पुनर्ना वर्त्ततेयतः ॥ ९ ॥
शिवस्तोत्रं पठेदत्र पाठयेद्वापि नारद ॥ पुरुषत्वं लभेत्सत्यं
सौंदर्य्यं च विशेषतः ॥ १० ॥ पाठकेभ्यो ददेत्तत्र गोभूरत्ना-
दिकं वसु ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव पायसेन घृतेन च ॥ ११ ॥
एवं यः कुरुते विप्र सोऽमरत्वं लभेन्मुने ॥ इह लोके चैव वरान्
भोगानाप्नोति दुर्लभान् ॥ १२ ॥ बालवती नदी तत्र स्पर्शना-
त्पापनाशिनी ॥ तस्यां या कुरुते माघे स्नानं नियमपूर्वकम्
॥ १३ ॥ वंध्यापि लभते पुत्रं विख्यातं कुलदीपकम् ॥ भर्तृ-
हीना तु या कन्या पत्यर्थं स्नानमाचरेत् ॥ पतिं वै लभते
तूर्णं सुंदरं सुकुलं प्रियम् ॥ १४ ॥ विवाहार्थमपि मुने विवाह्यः
स्नानमाचरेत् ॥ स्त्रियं वै लभते हृद्यां कुलीनां प्रियवादिनीम्
॥ १५ ॥ मूढोपि लभते विद्यां बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ गत्वा
कुमारिकापीठं जपेन्मंत्रं षडर्णकम् ॥ १६ ॥ निराहारो जिता-

लोकोंकी प्राप्ति होतीहै जहांसे फिर लौटना दुस्तरहै ॥ ९ ॥ हे नारदजी! जो मनुष्य यहां शिवस्तोत्रका पाठ स्वयम् करता अथवा दूसरोंसे कराताहै, उसे विशेष सुन्दर पुरुषाकारकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ वहां पाठकजनोंको गौ भूमि और रत्नादिक द्रव्य देनाचाहिये एवम् पायस (खीर अथवा मावेके निर्मित भक्ष्यपदार्थों) का और घृत से बने (भोज्यद्रव्यों) का भोजन कराना चाहिये ॥ ११ ॥ हे विप्रर्षे! इस विधिसे जो पुरुष करताहै, उसे अमरत्वका लाभ होताहै, एवं इसलोकमें उसे शुभभोगोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ १२ ॥ वहां बालवतीनामकी नदीहै, उसका केवल स्पर्श मात्र करनेसे पापोंका सत्यानाश होजाताहैं, और जो व्यक्ति माघमासमें नियम पूर्व उसमें स्नान करतीहै ॥ १३ ॥ वोह चाहें वन्ध्या हो तथापि उसे विख्यात और कुलदीपक पुत्रकी प्राप्ति होती है, जिस कन्याका पति न हो और पतिके निमित्त वोह इसमें स्नान करै, तौ उसे सुन्दररूपवान् कुलीन अथ च प्रियपतिकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वर! विवाहके लिये इसमें विवाहार्थी को स्नान करना कर्त्तव्यहै ऐसा करनेसे मनोहर कुलीन और प्रियवादिनी प्रियाकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ और मूर्खको विद्याका लाभ होता हैं तब वोह बृहस्पतिकी समान होजाताहै, कुमारिकापीठमें जायकर षडक्षरमन्त्रका जप करना कर्त्तव्य है ॥ १६ ॥ निराहार रहकर आत्माका

त्मा च लभते परमं पदम् ॥ तथा रोगग्रहग्रस्तो रिपुभिश्च पराजितः ॥ १७ ॥ सप्तरात्रं वसेदत्र जपेत्पंचाक्षरं मनुम् ॥ मुच्यते सहसा दुःखाच्छत्रूञ्जयाति सत्वरम् ॥ १८ ॥ तस्मादुत्तरभागे हि कुंजकूट इति स्मृतः ॥ तत्र वै संस्थिता बाला सर्वसिद्धिप्रयिनी ॥ १९ ॥ धन्यानां गोचरे सा स्यान्माणिक्याभा महेश्वरी ॥ तत्र यस्त्रिदिनं बाला मंत्रराजं जपेन्नरः ॥ प्राप्नोति परमां सिद्धिं महादेव्याः प्रसादतः ॥२०॥ ततो वायव्यके कोणे नाम्ना तित्तिरपर्णिका ॥ मणिपर्ण्णी च तत्रैव संगमः पुण्यदस्तयोः ॥२१॥ स्नानं करोति यस्तत्र स्वर्गलोके वसेच्चिरम् ॥ कर्म्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ॥ २२ ॥ संभुज्य पृथिवीमेनां तदंते मोक्षमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्णधारा परा स्मृता ॥ तदम्भःस्पर्शमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ २४ ॥ तत उत्तरदिग्भागे वेगवर्णाभिधा नदी ॥ तत्संगमे नरः स्नात्वा नाकपृष्ठे वसेच्चिरम् ॥ २५ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे

दमन करके ऐसा करनेसे परमपदकी प्राप्ति होतीहै। तथा जो व्यक्ति रोग अथवा ग्रहोंसे पीडित हो किम्बा शत्रुओंके द्वारा पराजित हो ॥ १७ ॥ वोह यदि पांचरात्रिपर्य्यन्त यहां निवास कर पंचाक्षरमन्त्रका जप करै तो दुःखसे मुक्त होकर तत्कालही शत्रुओंका विजय करसक्ता है ॥ १८ ॥ वहांसे उत्तरकी ओर कुंजकूटनामका स्थान है, वहां समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली बाला स्थित रहतीहै ॥ १९ ॥ उस महेश्वरीकी प्रभा माणिक्यकी सदृशहै और जिनके अहोभाग्यहैं उन्हींको उक्त भगवतीके दर्शनोंका लाभ होताहै, वहां जो मनुष्य तीन दिन पर्यन्त बालाके मन्त्रको जपताहै, उसे महादेवीके प्रसादसे परमसिद्धिका लाभ होताहै ॥ २० ॥ वहांसे वायव्य कोणकी ओर तित्तिर पर्णिका और मणिपर्णी इन दोनोंका संगम अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवालाहै ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति उक्त संगममें स्नान करता है, उसे चिरकाल पर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करनेको मिलताहै, तत् पश्चात्—पुण्य कर्मोंका क्षय होनेपर इस संसारमें आनकर वोह पुरुष धार्मिक राजा होता है ॥ २२ ॥ एवं च इस भूमण्डल (के राज्य सुख) का उपभोगकर अन्त समय मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ उसके दक्षिण भागमें स्वर्णधारा है, उसके जलका स्पर्शमात्र करनेसे ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ वहांसे उत्तर दिशाकी ओर वेगवर्णा नामकी नदी है, उसके संगममें स्नान करनेसे चिरकालपर्यन्त स्वर्ग लोकमें निवास प्राप्त होता हैं ॥ २५ ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर देवलपर्वतके ऊपर देवलकी

नाम्ना देवलपर्वते ॥ नदी देवलकी नाम गंगास्नानफलप्रदा ॥ २६ ॥ तत उत्तरदिग्भागे शिवो वै देवलेश्वरः ॥ तस्य संदर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ ततश्च पूर्वदिग्भागे दुग्धधाराभिधा मता ॥ तज्जलस्पर्शनादेव श्वेतद्वीपेश्वरो भवेत् ॥ २८ ॥ इति तत्परमं क्षेत्रं कथितं ते मयानघ ॥ श्रुत्वा पीठं महाभाग तत्तत्स्नानफलं लभेत् ॥ २९ ॥ इह लोके वरान् भोगान्प्राप्य चांते शिवं लभेत् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे केदारखंडे कुमारीपीठमाहात्म्य वर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

नामकी नदी हैं, उसमें स्नान करनेसे गंगास्नानके फलकी प्राप्ति होती है॥२६॥ उक्त नदीसे उत्तर दिशाकी ओर देवलेश्वर नामके महादेवजी विराजमानँ हैं, उक्त महादेवजीके दर्शन करनेसे समस्त पापोंसे छुटकारा मिलजाता है ॥ २७ ॥ वहांसे पूर्व दिशाकी ओर दुग्धधारा विद्यमान है, उक्त धाराके जलका स्पर्श मात्र करनेसे मनुष्यको श्वेतद्वीपके अधिपतित्वका लाभ होता है ॥ २८ ॥ हे निष्पाप ! हमने उक्त परम क्षेत्रका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, इस पीठके माहात्म्यका श्रवण करनेसे उन २ धाराओंमें स्नान करनेके फलका लाभ होताहै ॥ २९ ॥ वोह पुरुष इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्त समय शिवलोकमें निवास करता है ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

दिक्पाल | नागेश्वर | पाताल | बागीश्वर | पाताल | कोटीश्वर | ईशान | अर्केश्वर

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४१.

स्कंद उवाच ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि पीठं सिद्धिप्रदायकम् ॥ नाम्ना वै भौवनं ख्यातं सद्यः प्रत्यय कारकम् ॥ १ ॥ गंगायाः पूर्वभागे हि चंद्रकूटो गिरिः स्मृतः॥तस्यापि दर्शनादेव मुच्यते जन्मपातकात् ॥ २ ॥ नृत्यंत्यप्सरसो यत्र गायन्ते चैव किन्नराः

स्कन्दजी बोले—अब हम सिद्धि प्रदान करनेवाले अन्यतीर्थका तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, शीघ्रही प्रत्यय करानेवाले उक्ततीर्थका भौवन नाम प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ गंगाजीके पूर्व भागमें चन्द्रकूट नामका एक पर्वत हैं, उसके भी दर्शन मात्रही करनेसे जन्म भरके पापोंसे छुटकारा मिल जाता हैं॥२॥वहां अप्सरागण नृत्य करती, और किन्नर गान करते हैं, यह सब कौतुक वहाँ

भुवनेशी यत्र देवी ख्याता शंकरवल्लभा ॥ ३ ॥ यत्र वै भैरवो देवो द्वारस्थले चाभिरक्षितः ॥ अतितुंगतमे स्थाने संस्थितां परमेश्वरीम् ॥ नमस्कारं प्रकुर्वंति न च तेषां पराभवः ॥ ४ ॥ अत्र पूर्वं महारुद्रो रुरोद विरहातुरः ॥ देव्याः कलेवरोत्सर्गे स्मृत्वा तन्मुखचंद्रकम् ॥ ५ ॥ विरहाक्रांतहृदयो लोकं तदनुवर्त्तयन् ॥ नित्यामपि महामायां शुशोच भृशदुः-खितः ॥ ६ ॥ ततो मुने जगत्सर्वं संतप्ते जगदीश्वरे ॥ संतप्तं चाभवत्सर्वं तथा स्थावरजंगमम् ॥ ७ ॥ संतप्ताश्चाभवन्देवा ब्रह्माद्या मुनिसत्तम ॥ आजग्मुर्यत्र कैलासे रुद्रो रोदनसंस्थितः ॥ ८ ॥ तुष्टुवुः स्मारयंतो वै परं भावं महेशितुः ॥ संबद्धांजलयः सर्वे नमस्कारानतकंधराः॥मुनयश्चापि सिद्धाश्च गंधर्वाः किन्नरा-स्तथा ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रकृत्यै ते नमस्तेस्तु भिन्नायै पुरु-षान्नमः ॥ सृष्टिकर्त्रै सृष्टिहर्त्रै देव्यै तस्यै नमोनमः ॥ १० ॥ अनादिनिधनो देवो यया मोहं प्रवेशितः ॥ किमुत प्राकृता

होताहै जहां शंकरकी प्रियपत्नी भुवनेश्वरी विराजमान है ॥ ३ ॥ उसके द्वारपर भैरवजी उपस्थित रहते हैं, वोह परमेश्वरी अत्यन्त उन्नत स्थानके ऊपर उपस्थित हैं, जो मनुष्य भगवतीको नमस्कार करते हैं उनका कभी पराभव नहीं होता ॥ ४ ॥ देवीजीके शरीरका परित्याग होजानेपर उनके चन्द्रवदनका स्मरणकर महादेवजीने उनके विरहसे व्याकुल हो प्राचीनकालमें यहां रोदन किया था ॥ ५ ॥ सांसारिक जनभी उनके विरहसे व्याकुल हो उनके रोदनका अनुकरण करने लगे, और महादेवजी तो अत्यन्त दुःखित होकर नित्यस्वरूप अर्थात् अविनाशिनीभी महामायाके लिये शोच करने लगे ॥ ६ ॥ हे मुने ! उस समय जगदीश्वरके इस प्रकार दुःखसे सन्तप्त होनेपर जगत्के सम्पूर्ण स्थावर जंगम मात्र दुखित होगये ॥ ७ ॥ हे मुनि सत्तम ! ब्रह्माजीको आदि ले सब देवताभी दुःखित होगये, और सब वहां आये जहां महादेवजी रुदन करनेमें तत्-पर थे ॥ ८ ॥ सबने नमस्कार पूर्वक अपनी कंधराओंको नम्रकर हाथ जोड महादेवजीको उनके प्रभावका स्मरण कराके उन्हें सन्तुष्ट किया और उस समय वहां ऋषि मुनि, गन्धर्व; और किन्नर सबही उपस्थित थे ॥ ९ ॥ देवता बोले–हे प्रकृति ! क्योंकि तू पुरुषोंसे भिन्न है इस लिये हम नमस्कार करते हैं सृष्टिकी रचने और संहार करनेवाली देवीको नमस्कार हैं ॥ १० ॥ जिस प्रबल प्रकृति रूप मायाने अनादि निधन महादेवजीको भी मोहाक्रान्त करदिया, उसके प्रति अन्य

देव्यै नारायण्यै नमोनमः ॥ ११ ॥ येन सृष्टं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं संनिधिर्यया ॥ विमोहितः प्राकृतवत्तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १२ ॥ यथा संसारिवद्देवो मुग्धे प्राकृतवद्धरः ॥ निर्ममोपि परानंदो देव्यै तस्यै नमोनमः ॥ १३ ॥ विष्णुर्यया महादेव्या संक्षिप्तो योनिसंकटे ॥ अनेकविषयासक्तस्तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १४ ॥ यया ब्रह्मा त्रिजगतां कर्त्ता वेदनिधिः पुरा ॥ आत्मजासक्तहृदयः कृतः तस्यै नमोनमः ॥ १५ ॥ द्विजराजो ययौ देव्या मोहितो गुरुकामिनीम् ॥ अन्वगच्छति कामांधस्तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १६ ॥ इंद्रो यया मोहितस्तु गौतमस्य प्रियां शुभाम् ॥ अधर्षयन्नगणयन्पापं तस्यै नमोनमः ॥१७॥ यन्मोहितं जगत्सर्वं कुरुते कर्म दुष्कृतम् ॥ सुकृतं वापि सकलं तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १८ ॥ यया संमोहितो जंतुः पुत्रान् दारान्

प्राकृत मनुष्योंकी तो गणनाही क्या है ! उसी नारायणीको हमारा नमस्कार है ॥ ११ ॥ जिसने समस्त जगत्‌की रचना करके उसमें सर्व व्यापकत्वको स्वीकार कियाहै, और सबहीको प्राकृत पुरुषोंकी भांति मोहित कररक्खा है, उस देवीको हमारा नमस्कारहै ॥ १२ ॥ जिसने उन साक्षात् देवाधिदेव महादेवजीको जिनको किसीका मोह नहीं, और जिनको मायिक आनन्द प्रसन्न नहीं कर सक्ता, प्राकृत नरसमाजकी भांति मोहित करदिया, उस देवीको हमारी नमस्कृति है ॥१३॥ जिस प्रकृति महादेवीने बिष्णु भगवान्‌को भी जन्मधारण करनेके कष्टमें डाल दिया, और फिर उन्हें अनेक विषयोंमें आसक्त बनादिया, उस भगवतीको नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिसने जगत् कर्त्ता और वेदोंके पूर्ण ज्ञानी ब्रह्माजीको भी पूर्वकालमें अपनी पुत्रीके ऊपर आसक्त कर दिया था, उसको नमस्कार है ॥ १५ ॥ जिसने चन्द्रदेवको अपनी गुरुपत्नीके प्रति कामासक्त बनादिया था उस देवीको बार २ नमस्कार है ॥ १६ ॥ और जिस मायासे मोहित होकर इन्द्रने गौतमजीकी पत्नीके ऊपर कामान्धहो प्रवृत्त होनेमें कुछ पाप नहीं समझा उस देवीको नमस्कार किया जाताहै ॥ १७ ॥ जिसके द्वारा मोहित होकर यह समस्त जगत् शुभाशुभकर्मोंका आचरण करता है, उस देवीको नमस्कार है ॥१८॥ यद्यपि मनुष्य यह जानता है कि, स्त्री पुत्रादिकोंसे मुझे कुछ प्रति उपकार प्राप्त न होगा किन्तु तथापि जिसमायाके वशीभूत हो

विभर्त्ति हि ॥ जानन्नप्यप्रतीकारं तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १९ ॥ यया संमोहितो जंतुर्ममेदं च वदत्यहो ॥ गच्छन्नपि प्रेतभावं तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ २० ॥ यया संमोहितः प्राणी पुत्रदार-धनादिकम् ॥ अनित्यमपि नित्यं हि मन्यते ते नमोनमः ॥ २१ ॥ मृतांश्च म्रियमाणांश्च मर्त्तुं चैव समुद्यतान् ॥ दृष्ट्वापि जीवितुं कांक्षं स्तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ २२ ॥ अनित्यां धनसं-पत्तिं दृष्ट्वापि च तथाविधाम् ॥ न खादति न वै दत्ते यया तस्यै नमोनमः॥२३॥स्कंद उवाच॥हराग्रे संस्तुता देवी महादे-वविमोहिनी ॥ दर्शयामास स्वं रूपं सर्वैर्देवैरगोचरम् ॥ २४ ॥ सिंदूरपूररक्तांगीं त्रिनेत्रां चंद्रशेखराम् ॥ स्थितशोभापरिक्रांतपी-यूषां भक्तवत्सलाम् ॥ २५ ॥ चषकं चैकहस्तेन बिभ्रतीं कमले परे ॥ पीनस्तनस्फुरद्रत्नहारावलिविराजिताम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वा तां चंद्रवदनीं विश्वानंदनतत्पराम् ॥ रत्नपूर्णघटस्थां च कोटि-

उनका पालन पोषण करताहै हम उसी प्रकृतिको प्रणाम करते हैं ॥ १९ ॥ जिसके द्वारा मोहितहोकर प्राणी मरता २ भी येही कहता है कि, यह हमारा हैं, हमारा है, उसी मायारूपिणी प्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं ॥२०॥ जिस प्रवल मायासे मोहित हो पुरुष सदैव स्थिर न रहने वाले (नाशवान्) भी स्त्री पुत्र और धनादिको नित्य मानता है हम उस मायाको नमस्कार करते हैं ॥ २१ ॥ जिससे मोहितहो पूर्व कालमें मृतक हुए, मृत होनेवाले और मरणके लिये उन्मुख हुए भी जीवोंको देखकर प्राणी सदैव स्वयंजीवित रहनेकी आकांक्षा करता है उस मायाको नमोवाद है ॥ २२ ॥ जिससे मोहितहो मनुष्य धन सम्पत्ति को अनित्य जानकरभी न तो उसका उपभोगही करता और न उसका दानकरताहै, उस मायाको नमस्कारहै ॥ २३ ॥ स्कन्दजीबोले–महादेवजीके समक्ष जब इसप्रकार देवीकी स्तुतिकरी, तब महादेवजीकोभी विमोहितकरनेवाली प्रकृतिदेवीने अपने उस स्वरूपके दर्शनकराये जिनका दृष्टि-गोचरहोना देवताओंकोभी कठिनहै ॥ २४ ॥ प्रभूत सिन्दूरसे देवीजीका अंग रक्तवर्ण होरहाथा, उनके तीननेत्र और मस्तकके ऊपर चन्द्रमा था. अतएव उनकी शोभा विशेष होरहीथी, भगवती भक्तवत्सलथी ॥ २५ ॥ उनके एकहाथमें चषक (पानपात्र) और दूसरेमें कमलथा, और उनके पुष्ट २ उरोजोंके ऊपर हारावली विराजमान होरहीथी ॥ २६ ॥ चन्द्रमुखी, अतः विश्वको आनन्दितकरनेमें तत्पर, रत्ननिर्मित घटोपरिस्थित और करोडों सूर्य्यकी समान प्रभा-

नालार्कसन्निभाम्॥२७॥मोहं तत्याज भगवान् स्वस्थश्चैवाभवत्क्षणात्॥श्रुत्वा मायावैभवं च किमहो किमहो वदन् ॥२८॥देवाश्च तां परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ययुर्यथागतं विप्र तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥ २९ ॥ तदादीदं परं पीठं महादेवश्च संस्थितः ॥ यदन्यत्र त्रिभिर्वर्षैस्तदत्र दिनरात्रितः ॥ सिद्धयते नात्र संदेहो मया शिवमुखाच्छ्रुतम् ॥३०॥ त्रिरात्रं यो महाभागफलमूलकृताशनः ॥ निवसेच्च जपेद्देवीं साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ३१ ॥ यदत्र दीयते दानं तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ नास्मात्परतरं पीठं त्रैलोक्ये मुनिवंदित ॥३२॥ दुर्भावं यः समाश्रित्य गच्छतोस्मिमस्थले शुभे ॥ स हन्यतेतरां विप्र वज्रपातैर्न संशयः ॥ ३३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न दुष्टं भावमाश्रयेत् ॥ ३४ ॥ देवीसूक्तेन यस्तत्र संस्तौति जगदीश्वरीम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ॥ ३५ ॥ इदं क्षेत्रं परं स्थानं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ यद्दर्शनादपि नरो देवलोके महीयते ॥३६॥

वर्ती ॥ २७ ॥ भगवतीको देख भगवान् महादेवजीने मोहका परित्यागकर तत्कालही स्वस्थता धारणकी, भगवतीके इस वैभवको सुन चकितसे हो यों बोले कि, यह क्या हुआ ॥ २८ ॥ तब देवतों और मुनिगण उनको प्रणाम और बारंबार परिक्रमाकरके जहांसे आयेथे वहांही चलेगये ॥ २९ ॥ उसी दिनसे इस महापीठमें महादेवजी विराजमान् रहतेहैं, और हमने महादेवजीके मुखसे सुनाहै कि, जो पुरश्चरण आदि अन्यत्र तीनवर्षमें सिद्ध होसक्ताहै वोह यहां एक दिनरातहीमें सम्पन्न होजाताहै ॥ ३० ॥ हे महाभागे ! जो व्यक्ति तीन रात्रिपर्य्यन्त कन्दमूलफलोंका भोजनकर यहां निवास करके देवीजीका जप करै उसे उत्तम सिद्धियोंका लाभ होसक्ताहै ॥ ३१ ॥ हे महर्षि पूज्य! इसकी अपेक्षा त्रिलोकीमें और कोई पीठ नहीं है, तस्मात् यहां जो कुछभी दान दियाजाताहै उसका गुण करोड गुणा अधिक होताहै ॥ ३२ ॥ जो व्यक्ति दुष्ट भाव पूर्वक इस शुभ स्थलमें यात्रा करता है अवश्यही वोह वज्रपातसे विनष्ट होजाताहै इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव यहां सर्वथा दुष्ट भावका आश्रय नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो व्यक्ति देवीसूक्तके द्वारा इस स्थानमें परमेश्वरीकी स्तुति करताहै, उसे समस्त कामनाओंकी प्राप्ति होतीहै, और वोह प्राणी मरकर ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ३५ ॥ यह क्षेत्र परमदिव्यस्थान सुतराम् इसके अवलोकनसे तत्कालही प्रतीति होती है, विशेष क्या इसके दर्शनमात्र करनेसे भी मनुष्य देवी

आभद्रसेनं वसति तथा लगुडसानु वै ॥ यत्रोत्तरगतिर्गंगा पंचयोजनसम्मितम् ॥ पीठं परमकं ख्यातं तथा भास्करक्षेत्रकम् ॥ ॥ ३७ ॥ यस्तत्र वसते मर्त्यो देवलोकपरिच्युतः ॥ गंताग्रे मुक्तिभवनं ज्ञेयोऽसौ ब्रह्मनंदनः ॥ ३८ ॥ स्थावराः पक्षिकीटाद्यास्तत्तद्रूपसमाश्रिताः ॥ इमे देवाः परिच्छन्ना वसंते मुनिवंदित ॥ ३९ ॥ अत्र दिव्यानि पीठानि देवतायतनानि च ॥ सद्यः प्रत्ययकारीणि तथा चैव सरित्तमाः ॥ ४० ॥ श्रुत्वाप्येतानि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

लोकमें जाकर ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥ ३६ ॥ भद्रसेनके स्थानसे लगुडसानुपर्यन्त जहां गंगाजीकी उत्तर गति है वहां पांच योजन विस्तृत भास्करक्षेत्र है ॥ ३७ ॥ जो व्यक्ति देवलोकसे निपतित होता है, उसीको वहां निवास प्राप्त होता है, तदनन्तर उसे अन्तमें मुक्तिका लाभ होगा, अथ च इसको ब्रह्मनन्दन जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ हे महर्षिगणपूजित ! सम्पूर्ण देवताही स्थावर (वृक्षादिक) कीडे मकोडे और पक्षियोंके रूप धारण कर वहां निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ तत्काल विश्वास करादेनेवाले अनेक पीठ, दिव्य देवमन्दिर और नदियें यहां उपस्थित हैं ॥ ४० ॥ इन सबका केवल श्रवण मात्र करनेहीसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होजाता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४२.

नारद उवाच ॥ अत्र चान्यानि तीर्थानि तथा च सरिदुत्तमाः॥ शिवालयांश्च विविधान्वद स्कंद सविस्तरात् ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यानायतनानि च ॥ येषां

नारदजी बोले-हे स्कन्दजी! यहां जितने अन्यतीर्थ, उत्तम नदियें और विविध शिवमन्दिर हैं, विस्तार पूर्वक उन सभीका वर्णन करिये ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले-सुनो नारदजी ! अब हम पवित्र २ स्थानोंका वर्णन करते हैं, जिनके केवल श्रवणमात्र करनेसे मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त

श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २ ॥ तस्मादेव महापीठाद्दक्षिणस्यां समीपतः ॥ नागेश्वरो महादेवः सर्वसंपत्तिवर्द्धनः ॥ ३ ॥ तत्र नागाः पुरा विप्र तपस्तेपुः सुदुष्करम् ॥ महादेवपरा दांताः परमं तप आस्थिताः ॥४॥ प्रापुः परमिकां सिद्धिमत्र पीठे शुभप्रदे ॥ यस्तत्र रुद्रमंत्रैस्तु समाधिस्थो जितेंद्रियः ॥ संपूजयति नागेशं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५ ॥ सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं हयमेधाद्रिषु द्विज ॥ यत्तीर्थगमनैः शश्वत्तथांबुधिनिमज्जनैः ॥ तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः ॥ ६ ॥ यथाशक्त्या रुद्रसंख्यां करोतीशाभिषेचनम् ॥ तथा कारयतेऽन्यस्मात्सोपि सोपि महामते ॥ ७ ॥ सर्वरोगैः परित्यक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥ पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो भवेत्सुचिरजीवनः ॥ ८ ॥ संभुज्य भोगान्विविधानंते शिवलयं व्रजेत् ॥ ९ ॥ तत्र भोगवती नाम धारा

होजाता है ॥ २ ॥ उस महापीठसे दक्षिण दिशामें सामनेकी ओर समस्त सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाले नागेश्वर महादेवजी विराजमान हैं ॥ ३ ॥ हे विप्र ! उक्तस्थानमें नागोंने दुष्कर तपका आचरण किया था, अर्थात्–महादेवजीकी आराधनामें दत्तचित्त हो नागगण उग्र तप करनेमें प्रवृत्त होगये थे ॥ ४ ॥ सुतराम् उन्हें इस शुभदायक परमपीठमें उत्तम सिद्धियोंका भी लाभ हुआ था, जो व्यक्ति इन्द्रियनिग्रह पूर्वक समाधिमें उपस्थित न हो रुद्रसूक्तके मन्त्रोंसे नागेश्वर महादेवकी पूजा करता है उसके पुण्यजनित फलका श्रवण करो ॥ ५ ॥ हे विप्र ! अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होतीहै, तीर्थयात्रा और समुद्र स्नानसे जो फल मिलताहै, निस्सन्देह उससे भी करोड़गुणा अधिकफल उपलब्ध होताहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य यहां यथाशक्ति संख्यासे रुद्राभिषेक करता है, अथवा अन्यके हाथसे कराताहै, उसेभी साक्षात् महादेवस्वरूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥ वोह पुरुष समस्त रोगोंसे मुक्त और सब ऐश्वर्योंसे युक्त हो, एवं पुत्रपौत्रादिकोंसे सम्पन्नहो चिरजीवी होता हैं ॥ ८ ॥ अथ च अन्तसमय वोह व्यक्ति विविधभोगोंको भोगकर शिवलोकमें निवास करता है ॥ ९ ॥ वहां भोगवती नामकी परमपवित्र

परमपाविनी॥ तत्पयः पानमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ १० ॥ संस्तौति यो रुद्रमंत्रै रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवः सदाशिवः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भुवनेशीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

धारा है उसके जलका केवल पान मात्र करनेसे परमपद मोक्षका लाभ होताहै ॥ १० ॥ जो व्यक्ति त्रिलोकीनाथ महादेवजीका स्तवन रुद्र सूक्तके मन्त्रोंसे करता हैं, उसे सदाशिव महादेवजीके लोककी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

त्रयश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४३.

स्कन्द उवाच ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तस्य वै पश्चिमोत्तरे ॥ नाम्ना वागीश्वरः ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यादिकोटयः ॥ नश्यंते नात्र संदेहो सत्यं च शिवभाषितम् ॥ २ ॥ पुरा यत्र महादेवोंगिरापुत्रेण नारद ॥ संस्तुतो भगवान्देवो विद्यापारगकामतः॥३॥शतं साग्रं तपस्तेपे जिताहारो जितेन्द्रियः ॥ ततः कतिपयैर्वर्षैस्तपतोंगिरसो मुने ॥ ४ ॥ प्रसन्नो भगवान्रुद्रो वागीशत्वं ददौ मुने ॥

स्कन्दजी बोले—अब हम औरभी वर्णन करते हैं, वहांसे पश्चिमोत्तरकी ओर समस्त सिद्धियोंके प्रदान करनेवाले वागीश्वर महादेवजी विख्यात हैं, वे सम्पूर्ण सिद्धिप्रदान करते हैं ॥१॥ और महादेवजीने यह सत्यही कहाहै कि, उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे करोडों ब्रह्महत्यादि पापोंका निस्सन्देह नाश होजाताहै ॥ २ ॥ हे नारद ! पूर्वकालमें वहां विद्याकी प्राप्तिकी कामनासे अंगिराने देवाधिदेव महादेवजीकी स्तुति की थी॥३॥ उस समय नियमित भोजनकर जितेन्द्रिय हो उन्होंने शतवर्ष पर्यन्त उग्र तप किया, हे मुने ! जब अंगिराको तप करते २ कुछ वर्ष व्यतीत होगये ॥ ४ ॥ तब हे मुने ! रुद्रभगवान्ने प्रसन्नहो उन्हें वागीशत्व प्रदान किया, और वागी-

स्वयं चैवात्र संतस्थौ वागीशेंत्याभिधानकः ॥ ५ ॥ तस्य वै दर्शनाद्याति शिवलोकं न संशयः ॥ पुनः पृथिव्यां विप्रेशो जायते सर्वशास्त्रगः ॥ ६ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यनिधिस्तथा ॥ भवांते शिवसादृश्यं लभते नात्र संशयः ॥ ७ ॥ इदं परमकं स्थानं न वदेद्यस्य कस्यचित् ॥ अत्र गंगा च यमुना द्वे धारे सिद्धिदायके॥८॥सान्निध्यं सेवितुं शंभोरागते सर्वभावतः॥ तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥९॥ तदा गंगा च यमुना कलुषे स्तः शिवप्रदे ॥ तदेमेऽपि शुभे धारे स्यातां कलुषके मुने ॥ १० ॥ तयोः स्नानान्नरो याति गंगायमुनयोः फलम् ॥ तयोर्वै दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ ततः पश्चिमदिशि च नदी परमपाविनी ॥ नाक्षत्री वै समाख्याता सर्वपापविशोधिनी ॥ १२ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे धारा पंचवराभिधा ॥ तत्पयः पानमात्रेण पापं वर्षकृतं दहेत् ॥ १३ ॥

श्वर नामसे महादेजी स्वयंभी यहाँ उपस्थित रहे॥५॥उनके दर्शनमात्र करनेहीसे शिवलोककी प्राप्ति होतीहै इसमें कोई भी सन्देह नहीं है, और फिर उसे संसारमें वागीशत्वका लाभ होताहै ॥ ६ ॥ और पुत्र पौत्रसे संयुक्तहो अधिक धन धान्यवाला होताहैं तथा इस लोकके बाद शिव सादृश्यको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ इस परम स्थानका वर्णन जिस तिसके आगे करना उचित नहीं हैं, यहाँ गंगा और यमुना दो धारा सिद्धिदायिनी है ॥ ८ ॥ वे सर्वतो भावसे महादेवजीकी आराधना करनेको यहां उपस्थित हुई हैं, अब वहांके चिह्नका वर्णन करते हैं, उसे जानकर तुम्हैं विश्वास होजायगा ॥ ९ ॥ जब कल्याण प्रदायिनी गंगा और यमुना दोनों कलुषित होजाती हैं, हे मुने ! तब ये दोनोंभी कलुषित होजाती हैं ॥ १० ॥ उक्त धाराओंमें स्नान करनेसेभी मनुष्यको गंगायमुनामें स्नानकरनेके फलकी प्राप्ति होतीहै, एवं उन दोनोंके दर्शनमात्र करनेसे संपूर्ण पापोंसे छुटकारा मिलजाताहै ॥ ११ ॥ वहाँसे पश्चिमकी ओर परमपवित्र अत एव समस्त पापोंका संशोधन करदेनेवाली नाक्षत्री नामकी नदी विख्यात हैं ॥ १२ ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर पंचवरा नामकी उत्तमधारा है, उसका जलपान करनेसे वर्षोंके पाप नष्ट

ततश्चोत्तरदिग्भागे चामरेश्वरसंज्ञितः ॥ चामरादोलिनी धारा तत्र पापप्रणाशिनी ॥ १४ ॥ नद्यां चामरदोलिन्यां स्नात्वा वै चामरेश्वरम् ॥ संपूज्य विधिवद्भक्त्या शिवलोके महीयते॥१९॥ उत्तरे च ततः शैले गर्दभासुरसंज्ञिते ॥ तत्र गर्दभनामा वै निहतो दानवो मुने ॥ १६ ॥ तस्य देहोयमाख्यातो गर्दभासुरसंज्ञितः ॥ तन्मूर्द्ध्नि कालिका देवी गर्दभोत्स्वरनादिनी ॥ १७॥ सा वै दूरात्प्रपूज्या वै गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ धनधान्यादिवृद्धिः स्यात्तस्य वै सफला कृषिः ॥१८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भुवनेशीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

होंजाते हैं ॥ १३ ॥ वहांसे उत्तरदिशाकी ओर चामरेश्वर नाम महादेवजी हैं, और पापोंका नाश करनेवाली चामरादोलिनी नामकी धारा वहां उपस्थित है ॥ १४ ॥ चामरादोलिनी धारामें स्नान कर और चामरेश्वर महादेवको भक्तिभाव पूर्वक विधिसे पूजकर शिवलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ वहांसे उत्तरकी ओर गर्दभासुरनामक पर्वतके ऊपर हे मुनीश्वर ! महादेवजीने गर्दभासुर का वध किया था ॥ १६ ॥ यह गर्दभासुर पर्वत उसीका देह कहकर कीर्त्तन कियागया है, गर्दभकी समान उत्कट निनाद करनेवाली देवी उस पर्वतके शिखरपर विराजती हैं ॥ १७ ॥ गन्ध, पुष्प, और अक्षतादिके द्वारा उसकी दूरहीसे पूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे धनधान्यकी वृद्धि और कृषि सफल होती है ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४४.

स्कंद उवाच ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे गंगाचोत्तरवाहिनी ॥ ब्रह्माश्रमस्तत्र पुण्यो गंगायास्तट उत्तमे ॥ १ ॥ तत्र ब्रह्मा तपश्चक्रे ततः पुण्यमभूत्परम्॥गंगाया उत्तरे तीरे गंगा यत्रोत्तराश्रिता ॥ तत्र कोटीश्वरं लिंगं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ तत्र

स्कन्दजी बोले—वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर उत्तरवाहिनी गंगाहैं, वहांही गंगाजीके उत्तम तटपर ब्रह्माजीका पवित्र आश्रमहै ॥ १ ॥ क्योंकि ब्रह्माजीने वहां तप किया था, इसीसे वोह स्थान अतिशय पवित्र होगयाहै गंगाजीके उत्तरी तीरपर जहां उत्तर वाहिनी गंगाजी है, वहां

मुक्ताः पुरा विप्र कोटिशो ब्रह्मराक्षसाः ॥ ततः कोटीश्वरं लिंगमभूत्तद्दिन उत्तमम् ॥ ३ ॥ विद्यार्थी सप्तरात्रं च तत्र शैवमनुं जपेत् ॥ तस्य स्वयं महादेवो जिह्वायां निवसेदलम् ॥ ४ ॥ वाचस्पतिरिवात्यर्थं स भवेत्पुरुषोत्तमः ॥ यंयं चिंतयते कामं तंतं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥५॥ शिवकुंडे नरः स्नात्वा तदधः स्नानमाचरेत् ॥ प्राप्नोति विपुलां सिद्धिं प्रेत्य शैवं लभेत्पदम् ॥ ६ ॥ ततो वामप्रदेशे हि माने शरचतुष्टये ॥ ब्रह्मकुंडमिति ख्यातं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥७॥ तस्य दक्षे महापुण्यं शूलकुंडमिति स्मृतम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वशत्रुक्षयं लभेत् ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भुवनेशीमाहात्म्यवर्णनं नामचतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

भोग और मोक्षप्रदान करनेवाले महादेवजीका कोटीश्वर लिंग है ॥ २ ॥ हे विप्र ! वहां करोडों ब्रह्मराक्षसोंको मुक्तिकी प्राप्ति हुई थी, उसी दिनसे महादेवजीका लिंग कोटीश्वरनामसे प्रसिद्ध हुआ हैं ॥ ३ ॥ यदि कोई विद्यार्थी वहां सातरात्रिपर्यन्त शिवमन्त्रका जप करे तो उसकी जिह्वाके ऊपर साक्षात् महादेवजी निवास करनेलगते हैं ॥ ४ ॥ सुतराम् वोह पुरुषोत्तम वाचस्पति (बृहस्पति) की समान विद्वान् होजाता है, और वोह जिस २ वस्तुकी कामना करता है निस्सन्देह उसकी प्राप्ति होजाती है ॥ ५ ॥ शिवकुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्यको विपुलसिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, और मरनेपर उसे शिवपदकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ वहांसे वामप्रदेशमें चारबाणकी दूरीपर, ब्रह्मलोकप्रदान करनेवाला ब्रह्मकुंड विख्यात है ॥ ७ ॥ और उसके दक्षिणभागमें शूलकुण्ड है, उसमें स्नानकरनेसे मनुष्यके समस्त शत्रुओंका क्षय होता है ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४५.

स्कंद उवाच ॥ अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि भद्रसेनेश्वरं शुभम् ॥ यस्य संदर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अत ईशानदि-

स्कन्दजी बोले—अब हम भद्रसेनेश्वर नामके शुभमहादेवजीका वर्णन करते हैं, उनके केवल दर्शनमात्रही करके मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाता है ॥ १ ॥ यहांसे ईशानकोणकी ओर

ग्भागे भद्रसेनाश्रमः शुभः ॥ यत्र तेपे तपः पूर्वं भद्रसेनो महीपतिः ॥ २ ॥ आरराध शिवं यत्र भक्त्या परमया युतः ॥ वीरभद्रो गणो जातः स एव पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥ तत्र कामालनामा वै व्याधोपि निवसँश्चिरम् ॥ सैकदा मृगयाशक्तो गतोरण्ये भयानके ॥ ४ ॥ दृष्टस्तत्र वृषस्तेन क्व गच्छसीति लुब्धक ॥ तेनोक्तं मृगयार्थोहं गच्छामि मृगहेतवे ॥५॥ वृषश्चोवाच रे पाप किं करोषि हि किल्बिषम् ॥ भद्रसेनाश्रमेप्यस्मिन्पापं मा कुरु लुब्धक ॥६॥ शिवं भजस्व रे धूर्त्त पापकर्म परित्यज ॥ इत्युक्तः सहसा व्याधः पूर्वजन्मार्जितैश्शुभैः ॥ संत्यज्य खड्गचर्माणि प्रययौ शिवमंदिरम् ॥ ७ ॥ सप्तरात्रं तथा तत्र निराहारो जितेंद्रियः ॥ संत्यज्याष्टमदिवसे प्राणांस्त्यक्त्वा शिवं ययौ ॥ ८ ॥ इति ते कथितं दिव्यं भौवनं मुनिसेवितम् ॥ माहात्म्यं शृणुयादस्य पठेदपि समाहितः ॥ स लभेत्परमं स्थानं यत्र ब्रह्मादयः सुराः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

भद्रसेनका शुभ आश्रम है, वहां पूर्वकालमें महाराज भद्रसेनने तप किया था ॥ २ ॥ परमभक्तिभावपूर्वक महादेवजीकी आराधना करके वोही राजा वीरभद्रगण हुआ था ॥ ३ ॥ वहां चिरकालसे कामालनाम व्याधा निवास करता था, एक समय वोह व्याधा आखेटके लिये भयानक वनमें गया ॥ ४ ॥ वहां उसने एक वृषको देखा, और वृषने उससे पूछा अरे हत्यारे ! तू कहां जा रहा है, तब उसने उत्तर दिया मैं मृगोंका अहेर करनेको जारहा हूं ॥ ५ ॥ वृष बोला- अरे पापी ! क्यों पाप करता है ? अरे हत्यारे ! भद्रसेनके आश्रममें पापका आचरण मतकर ॥ ६ ॥ अरे धूर्त्त ! पापकर्मोंको छोड़ महादेवजीका भजन कर, जब व्याधासे इसप्रकार कहा तब उसने पूर्वजन्मके शुभकर्मोंके योगसे खड्ग और चर्मआदिका परित्याग कर दिया, और वोह शिवमन्दिरमें चला गया ॥ ७ ॥ अथ च वहां इन्द्रिय दमनपूर्वक अनशनव्रत धारणकर सात रात्रिपर्य्यन्त निवास करके आठवें दिन उसने अपने प्राणोंका परित्याग करदिया और वोह शिवमें लय होगया ॥ ८ ॥ इस प्रकार हमने मुनियोंके द्वारा सेवन किये हुए भुवनका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, जो व्यक्ति एकाग्रचित्तसे इस माहात्म्यको सुनता है, उसे उस परमस्थानकी प्राप्ति होती है जहां ब्रह्माजी आदि देवता निवास करते हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४६.

स्कंद उवाच ॥ ततः पूर्वोत्तरे भागे भिल्लांगनसरित्तटात् ॥ पंचाशद्दंडप्रमिते शिवलिंगं सुपुण्यदम् ॥ १ ॥ नाम्ना सत्येश्वरं ख्यातं दर्शनादिष्टदायकम् ॥ घोरे कलियुगे विप्र सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ २ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सोमवारेऽथ वा मुने ॥ रुद्राध्यायेनाभिषेकं यः करोति तदात्मनि ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा तदंते शिवमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ यस्य दर्शनतो विप्र पातकं विलयं व्रजेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे शिवलिंगमहिमवर्णनं नाम षट्चत्त्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

स्कन्दजी बोले—वहांसे उत्तर और पूर्वके बीचमें भिल्लांगन नदीके तटसे पचास दण्डकी दूरीपर पुण्यदायक एक शिवलिंगहै ॥ १ ॥ उस लिंगका सत्येश्वर नाम है, उसके दर्शन करनेही से अभीष्ट सिद्धि होती है, हे विप्र! वोह लिंग घोर कलियुगमेंभी विश्वास दिलानेवाला है ॥ २ ॥ अष्टमी अथवा चतुर्दशी किं वा सोमवारके दिन हे मुने! रुद्राध्यायसे जो व्यक्ति रुद्राभिषेक करता है, वोह इसलोकमें सुख भोगकर अन्तमें शिवमें लय होता है ॥ ३ ॥ हे विप्र! उक्तमहादेवजीके दर्शनमात्रही करनेसे पापोंका विनाश होजाता है ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४७.

स्कंद उवाच ॥ अथान्यदपि सुक्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गणेशेन पुरा यत्र पूजितो वृषभध्वजः ॥ १ ॥ भिल्लांगणोद्भवा यत्र धारा गंगांगसंभवा ॥ गंगायास्संगमे देव तत्र तीर्थं तु तत्स्मृतम् ॥ २ ॥ गाणेश्वरी शिला तत्र रक्तवर्णा सुपुण्यदा ॥ तत्र वै रक्तवर्णं च जलमस्रसमं परम् ॥ ३ ॥ तत्र गाणेश्वरं लिंगं शिवभक्तिप्रदाय-

स्कन्दजी बोले—अब हम समस्त पापोंका विनाश करनेवाले अत एव शुभ अन्यतीर्थका वर्णन करते हैं, जहांका वर्णन हम करते हैं वहांही प्राचीन समयमें गणेशजीने वृषभध्वजका पूजन किया था ॥ १ ॥ वहांही गंगाजीमेंसे प्रादुर्भूत हुई भिल्लांगना धाराभी उपस्थित है, गंगाजीके संगमके ऊपरही हे देव! वोह उत्तम तीर्थहै ॥ २ ॥ पुण्यदायिनी रक्तवर्ण शिला वहां विद्यमान है, और जलभी वहां रक्तवर्णही है ॥ ३ ॥ शिवभक्ति देनेवाला वहां गणेश्वर लिंगहै, उक्त लिंगके दर्शन

कम् ॥ दर्शनादेव वै यस्य गणः सद्यो भवेन्नरः ॥ ४ ॥ तत्र तीर्थे तु यः स्नाति भक्त्याऽभक्त्यापि वा द्विज ॥ इह लोके वरान्भोगान् प्राप्य चांते शिवं लभेत् ॥ ५ ॥ धनुस्तीर्थं च तत्रैव वामभागे महाफलम् ॥ धनुराकृति ब्रह्माऽत्र शतयज्ञफलं लभेत् ॥ ॥ ६ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे शेषतीर्थं शुभप्रदम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकमनामयम् ॥ ७ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे माल्यवत्यास्तथाश्रमः ॥ यत्र संगमनादेव शिवलोके महीयते ॥ ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ का सा माल्यवती ख्याता यस्याश्चायं शुभाश्रमम् ॥ कस्य कन्या तु सा ख्याता केनेदं समनुष्ठितम् ॥ ॥ ९ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र कथामेतां पापघ्नीं सर्वकामदाम् ॥ यस्माच्छुभाश्रमो जातः शिवस्थानं सुदुर्ल्लभम् ॥ १० ॥ पुरा राजा वीरसेनः सूर्यवंशविवर्द्धनः ॥ तस्य कन्या च संजाता रूपयौवनशालिनी ॥ ११ ॥ नाम्ना वसुमती ख्याता तथा सौंदर्य्यशालिनि ॥ सैकदा मुनिशार्दूल गतारण्यं मदालसा ॥

करनेसे ही मनुष्य शिवगण होजाताहै ॥ ४ ॥ हे द्विज ! उस तीर्थमें जो व्यक्ति भक्ति अथवा विना भक्तिके स्नान करताहै, वोह इस लोकमें उत्तमोत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तसमय महादेवजीमें लय होजाता है ॥ ५ ॥ उसीके वामभागमें धनुषके आकारसे धनुष् तीर्थ है उसकाभी विशेष फलहै, वहां ब्रह्माजी विराजते हैं उनके दर्शन करनेसे सौ यज्ञोंके करनेका फल मिलता है ॥ ६ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर शुभदायक शेषतीर्थ है, उसमें स्नान कर मनुष्य रोगरहित विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ गंगाजीके उत्तरी तीरपर माल्यवतीका आश्रम है, वहां की केवल यात्रा करनेहीसे शिवलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको मिलताहै ॥ ८ ॥ नारदजी बोले—वोह माल्यवती कौन थी ? जिसका यह शुभ आश्रम हैं, वोह किसकी कन्या थी ? और इस आश्रमको किसने बनाया है ॥ ९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! पापोंका नाश करनेवाली, और सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली इस कथाको सुनो, जिस प्रकार यह शुभ आश्रम महादेवजीका निवासस्थान हुआ (वोही हम वर्णन करते हैं) ॥ १० ॥ सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाला राजा वीरसेन पूर्व समयमें हुआ था, रूप यौवनवती उसकी एक कन्या हुई ॥ ११ ॥ उस रूपनिधिकन्याका माल्यवती नाम था, हे मुनिशार्दूल ? वोह मदालसा एकसमय सखियोंको साथ ले इस प्रकार वनको

सखीभिः संगता चैव नक्षत्रेष्विव रोहिणी ॥ १२ ॥ माल्यं च बिभ्रती पात्रं पीनोन्नतपयोधरा॥ तस्मिन्नेव महाकाले द्वौ सखायौ समागतौ ॥ १३ ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन ब्रह्मक्षत्रवरात्मजौ ॥ सुशीलशुभगौ विप्र कंदर्पाविव रूपिणौ ॥ १४ ॥ सापि तत्र वनोद्देशे नानामुनिजनाश्रिते ॥ चचार चेरतुस्तौ च तीर्थयात्राविधानतः ॥ १५ ॥ ददर्शतुर्मुनिवरौ राजकन्यां शुचिस्मिताम् ॥ राजपुत्रो वशं यातः कामदेवस्य सत्वरम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा माल्यवतीं तां च कामबाणप्रपीडितः ॥ यदा न दृष्टा विपिने राजपुत्री यशस्विनी ॥ अपृच्छद्ब्राह्मणं मुग्धः का सामाल्यवती शुभा॥१७॥ एवं संकेतनामास्याश्चक्रतुस्तौ परस्परम् ॥ सापि नित्यं समायाति स्नातुं वै तत्र तीर्थके ॥ १८ ॥ काममोहवशं प्राप्तः सुभगो राजपुत्रकः ॥ राजपुत्री माल्यवती कथं मे स्याद्वशातिगा॥१९॥ महादेवस्य पूजां वै करिष्यामि तदाप्तये ॥ इति निश्चित्य सहसा

गई जैसे नक्षत्रोंके बीचमें रोहिणी जाती है ॥ १२ ॥ वोह माला पहिररही थी, और उसके उरोज पीन (पुष्ट) और उन्नत थे उसी समय वहां कोई दो मित्रभी आगये ॥ १३ ॥ वे दोनों क्रमशः ब्राह्मण और क्षत्रियके पुत्रथे. अथ च वहां तीर्थयात्राके प्रसंगसे उनका आगमन हुआ था, हे विप्र ; वे दोनों ही सुन्दर शीलवान्, मनोहर और कामदेवकी समान रूपवान् थे ॥ १४ ॥ अनेक मुनिजनोंसे आकीर्णहुए वनमें इधर तो वोह कन्या विचर रही थी, और उधर वे दोनों मित्रभी तीर्थयात्राकी विधिसे विचर रहे थे ॥ १५ ॥ सुतराम् उन मुनीश्वरोंने मृदुमुसकानवाली उक्तराजकन्याको देखा, तब तो उनमेंसे राजपुत्र तत्काळ ही कामदेवके वशीभूत होगया ॥ १६ ॥ अर्थात् उस माल्यवतीको देखते ही राजपुत्र कामदेवकी पीड़ासे व्यथित होगया, फिर जब उसे वनमें यशस्विनी राजपुत्री दृष्टिगत न हुई, तब वोह मुग्ध होकर ब्राह्मणकुमारसे पूछने लगा वोह माल्यवती कौन थी ॥ १७ ॥ इस प्रकार उन्होंने परस्पर संकेत करके उसका यह नाम रखलिया । तथा च वोह कन्याभी तीर्थमें स्नान करनेकेलिये नित्यही आयाकरती थी ॥ १८ ॥ इधर वोह राजपुत्र कामसक्तहो येही विचार करता रहता था कि, माल्यवती नाम राजपुत्री मेरे वशमें किसप्रकार होगी ॥ १९ ॥ मैं उसकी प्राप्तिकेलिये महादेवजीकी पूजा करूंगा, हे महामतिमान् !

राजपुत्रो महामते ॥ उवास गंगानिकटे कृत्वा वालुकलिंगकम् ॥ ॥ २० ॥ पूजयामास विधिवन्महादेवमुमापतिम् ॥ एवं स सप्तरात्रं तु निराहारो जितश्रमः॥ पूजयामास नैवेद्यैरुपचारैरनेकधा ॥ ॥ २१ ॥ ततः स्वप्ने ददर्शाथ विप्ररूपमुमापतिम् ॥ अशृणोच्च ततो वाक्यं गच्छ रे राजपुत्रक ॥ २२ ॥ भविष्यति शुभा भार्या यदर्थं पूजितः शिवः ॥ इदमेव शिवस्थानं हिमवद्दक्षिणस्थले ॥ देवदेवस्य संस्थानं वर्त्ततेदः पुरातनम् ॥ २३ ॥ अत्र त्वयाराधितोसौ तुष्टः स्यान्न कथं विभुः ॥ प्रादुर्बभूव लिंगं तज्ज्योतीरूपं दुरासदम् ॥ स्वर्णाभं द्युमणीरूपं प्रबुद्धो वै ददर्श ह ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्य्यं राजपुत्रो महामतिः ॥ पूजयामास तल्लिंगमुपचारैरनेकधा ॥ २५ ॥ प्रचक्रे नाम तस्यापि पुण्यं माल्यवतीकृते ॥ प्रादुर्बभूव यस्माद्वै तस्मान्माल्यवतीश्वरः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरे सापि राजपुत्री यशस्विनी ॥ आजगाम तथा स्नातुं ददर्श ज्योतिरुत्तमम् ॥ २७ ॥ तं च तत्र ददर्शाथ राजपुत्रं महा-

उस राजपुत्रने ऐसा निश्चयकर गंगाजीके तटके ऊपर निवासकरके बालुकाका शिवलिंग बनाया ॥ २० ॥ इस विधिसे वोह उमापति महादेवजीकी पूजा करनेलगा, इसप्रकार उसने सातरात्रिपर्य्यन्त निराहार और जितश्रम होकर नैवेद्यके द्वारा विविधभांतिसे महादेवजीकी पूजा करी ॥ २१ ॥ तब उसको विप्ररूप धारणकर उमापति महादेवजीने स्वप्नमें दर्शन दिया । और उसने ये वाक्य सुनें कि—हे राजपुत्र ! तू जा ॥ २२ ॥ जिस निमित्त तूने महादेवका पूजन किया है, सो तुझे उत्तमपत्नीकी प्राप्ति होगी, महादेवजीका यह स्थान हिमालयके दक्षिणभागमें है, प्राचीन कालहीसे यहां देवाधिदेव महादेवजी विराजमान रहते हैं ॥ २३ ॥ तुमने जब यहां आराधना करी तो भगवान् सन्तुष्ट कैसे न हों ? तब वहां ज्योतिस्स्वरूपलिंग प्रादुर्भूत हुआ, उसकी प्रभा सुवर्णकीसमान, और रूप सूर्य्यकी समान था, प्रबुद्धहोकर उक्तराजपुत्रने ऐसेही स्वरूपके दर्शन करे ॥ २४ ॥ जब उस महामतिमानने यह अद्भुत आश्चर्य देखा तब वोह अनेक उपचारोंसे उस लिंगकी पूजा करनेलगा ॥ २५ ॥ चूंकि, वहां माल्यवती के कारण महादेवजी प्रादुर्भूत हुए थे, अत एव माल्यवतीश्वर उनका नाम हुआ ॥ २६ ॥ इसी समय वोह यशोवती राजपुत्रीभी स्नान करनेके लिये वहां आगई, तब उसनेभी उत्तम ज्योतिके दर्शनकिये ॥ २७ ॥ एवं प्रभूत बलशाली राजपुत्रकाभी उसने अवलोकन किया, तब जिस

बलम् ॥ सापि तं चकमे बालारुक्मिणीव जनार्दनम् ॥ २८ ॥ गांधर्वविधिना तत्रोपयेमे राजपुत्रिकाम् ॥ समादाय ततस्तां च स्वगृहं हि समाययौ ॥ २९ ॥ इति लिंगस्य चोत्पत्तिः कथिता तव नारद ॥ आयुर्बलकरी पुण्या यशस्या सर्वकामदा॥३०॥ इदं माल्यवतीस्थानं ततोऽभून्भुक्तिमुक्तिदम् ॥ यत्र देवः पुरा दृष्टो ब्रह्मणा ह्यष्टमूर्त्तिमान् ॥ ३१ ॥ पृथिव्याद्यष्टमूर्त्तीनां मुदा यत्रेश्वरे परे ॥ दृष्टे ततः सुरज्येष्ठो नाम चक्रेष्टमूर्त्तिकम् ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्तीश्वरस्तत्र शिवः संस्थापितो भुवि ॥३३॥ ततः पश्चिमदिग्भागे कूटाद्रिनिकटे परा ॥ शिला रौद्री समाख्याता सर्वमंगलदायिनी ॥ ३४ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे यक्षराजतपःस्थलम् ॥ मणिभद्रः पुरा यक्षः शिवमाराधयन्मुदा ॥ ३५ ॥ यक्ष्या जपतपस्स्थानं वर्त्तते शुभदायकम् ॥ तत्रैकं सलिलं दिव्यमतिशीतं तपर्त्तुके ॥ ३६ ॥ उष्णं चैव तु हेमंते सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे तथा पर्वतशेखरे ॥ नाम्ना पर्णवनं ख्यातं

प्रकार रुक्मिणीने श्रीविष्णुभगवान्की प्राप्तिकी कामना की थी इसी प्रकार वोह राजपुत्री भी उक्त राजकुमारको चाहनेलगी ॥ २८ ॥ निदान् उसने गान्धर्व विवाहकी विधिसे राजपुत्रीके साथ विवाह करलिया, और उसे साथले अपने घरको चलाआया ॥ २९ ॥ हे नारद ! इस प्रकार माल्यवतीश्वर लिंगकी उत्पत्ति हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करी, यह उत्पत्ति आयुः बल और यशकी वृद्धि करनेवाली, पवित्र एवम् समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३० ॥ तभीसे माल्यवतीका यह स्थानभोग ऐश्वर्य और मोक्षका प्रदान करनेवाला विख्यात हैं । यहां ही ब्रह्माजीने महादेवजीकी अष्टमूर्त्तियोंका अवलोकन किया था ॥ ३१ ॥ अर्थात् यहांही प्रसन्नतापूर्वक ईश्वरके विषे पृथ्वीआदिकी अष्टमूर्त्तियोंका अवलोकन किया, अतएव उनका अष्टमूर्त्तीश्वर नाम विधान करदिया ॥ ३२ ॥ वहांही भूमण्डलके ऊपर अष्टमूर्त्तीश्वर महादेवजीकी स्थापना करी ॥ ३३ ॥ वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर कूटाद्रिके निकट समस्त मंगलप्रदान करनेवाली रौद्री शिला विद्यमान है ॥ ३४ ॥ उसके दक्षिणभागमें यक्षेश्वरके तप करनेका स्थान है, वहां प्राचीनसमयमें मणिभद्र यक्षने प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीकी आराधना करी थी ॥३५॥ वोही स्थान यक्षिणीके भी जप और तपकरनेका है । वहां दिव्य जल है, वोह ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त शीतल ॥ ३६ ॥ और हेमन्तऋतुमें वोह अतीव उष्ण रहता है, एवं वोह जल सम्पूर्ण पापोंका सत्यानाश करने-

तत्र पादावुमापतेः ॥ ३७ ॥ तत्र वै क्रीडितं देव्यापर्णया मुनिवंदित ॥ ततः पर्णवनं ख्यातं दिव्यभोगप्रदायकम् ॥ ३८ ॥ तत उत्तर दिग्भागे विरागिण्याः तपः स्थलम् ॥ काचिदपि कुलोत्पन्ना ब्राह्मणी धर्मतत्परा॥विरागिणीति विख्याता तया तप्तं तपः पुरा ॥ ॥ ३९ ॥ तत ऊर्द्ध्वं पर्वतके देवी शूलेश्वरी मता ॥ तस्या दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४० ॥ ततश्चाप्युत्तरे देशे नाम्ना गोवर्द्धनो गिरिः॥ तत्र गोवर्द्धनेशो वै शिवः सर्वनमःस्कृतः ॥ ४१ ॥ तस्य वै पूजनान्मर्त्यो रुद्रलोके महीयते ॥ इति सर्वं समाख्यातं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे माल्यवतीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

वाला है, वहांसे पश्चिमकीओर पर्वतके शिखरपर एक पर्णवन है, वहां उमापति महादेवजीके चरण हैं ॥ ३७ ॥ हे ऋषिवन्दित ! वहांही अपर्णा (पार्वती) ने क्रीडा करीथी, तभीसे दिव्यभोग प्रदान करनेवाले उस वनका पर्णवन नाम विख्यात हुआ है ॥ ३८ ॥ वहांसे उत्तरदिशाकीओर विरागिणीके तपकरनेका स्थान है, किसी ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्नहुई विरागिणी नामकी धर्मशीला किसीस्त्रीने यहां पूर्वकालमें तप किया था ॥ ३९ ॥ वहांसे ऊर्द्ध्वभागमें पर्वतके ऊपर शूलेश्वरी देवी विराजमान हैं, उनके दर्शन करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका अधीश्वर होजाता है ॥ ४० ॥ वहांसे उत्तरकीओर गोवर्द्धन नाम पर्वत है, वहां सबके द्वारा नमस्कृत गोवर्द्धनेश्वर नामके महादेवजी हैं ॥ ४१ ॥ उनका पूजन करनेसे मनुष्य शिवलोकमें ऐश्वर्य्योंका उपभोग करता है, इस प्रकार पवित्र और सब पापोंका विनाश करनेवाला यह आख्यान संपूर्ण तयाँ हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया है ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४८.

॥ स्कंद उवाच ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि भास्करं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ततो वै दक्षिणे भागे गव्यूतिपरिनिष्ठितम् ॥ १ ॥ पुरा तत्र महा-

स्कन्दजी बोले—अब हम भास्कर उत्तमक्षेत्रका वर्णन करते हैं, वोह क्षेत्र वहांसे दक्षिणकीओर दोकोशकी दूरीपर है ॥ १ ॥ उसी स्थानमें प्रथम भास्कर (सूर्य्य) ने दिव्यसहस्रवर्ष

देवः संस्तुतः परमेश्वरः ॥ भास्करेण महाभाग दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ २ ॥ संतुष्टश्च तदा तस्मै ददौ नेत्रस्थितिं मुने॥ गंगायाः पश्चिमे तीरे तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥३॥ तत्रैव भास्करं कुंडं यत्र वै स्नानमात्रतः ॥ रविलोकं मुने गत्वा ततः शिवपुरे वसेत् ॥ ॥४॥ इदं वै भास्करं क्षेत्रं शिवस्थानं स्मृतं परम् ॥ नाम्ना तत्र महादेवो विप्रर्षे भास्करेश्वरः ॥ ५ ॥ पूजयित्वा विधानेन शतरुद्रियकेन वै ॥ प्राप्नोति परमं स्थानं महाराजस्ततो भवेत् ॥ ॥ ६ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे विष्णुकुंडमिति स्मृतम् ॥ तत्र स्नानान्नरो याति वैकुण्ठं स्थानमच्युतम् ॥ ७ ॥ तत्रैव दण्डषट्के वै ब्रह्मकुण्डमिति स्मृतम् ॥ स्नानमात्रेण तत्रापि ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८ ॥ ततो दक्षिणके भागे नवला च नदी स्मृता ॥ सूर्यलोकमवाप्नोति तस्यां यः स्नानमाचरेत् ॥ ९ ॥ इदं परमसंस्थानं महादेवस्य नारद ॥ एतन्न त्यजते विप्र चरमेपि युगे शिवः ॥ १० ॥ अत्र स्नानात्तथा दानात्तथा मंत्रजपान्मुने ॥ अ-

पर्य्यन्त महादेवजीकी आराधना करीथी ॥ २ ॥ तब महेश्वरने सन्तुष्ट होकर उन्हें अपने नेत्रमें निवासप्रदान किया था, गंगाजीके पश्चिमी तटपर पापोंका विनाश करनेवाला यह तीर्थ है ॥ ३ ॥ वहांही भास्करकुण्ड है, उसमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य प्रथम सूर्यलोकमें जायकर पश्चात् शिवलोकमें निवास करता है ॥ ४ ॥ यह भास्करक्षेत्र महादेवजीका परमस्थान कीर्त्तन कियागया है, हे ब्रह्मर्षे । वहां भास्करेश्वर नामके महादेवजी विराजमान हैं ॥ ५ ॥ जो मनुष्य शतरुद्रीकी विधिसे महादेवजीकी पूजा करताहै, उसे प्रथम तौ परमस्थानकी प्राप्ति होती है, फिर वोह जन्मग्रहण करनेपर महाराज होता है ॥ ६ ॥ वहांसे दक्षिणकीओर विष्णुकुण्डनामका एक कुण्ड है, उसमें स्नानकरनेसे मनुष्य अविनाशी वैकुण्ठलोकको जाता है ॥ ७ ॥ वहांही छः दण्डकी दूरीपर ब्रह्मकुण्ड है, उसमें भी केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग करता है ॥ ८ ॥ वहांसे दक्षिणभागमें नवलानामकी एक नदी है, उसमें जो व्यक्ति स्नान करता है, उसे सूर्य्यलोककी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ नारदजी महाराज ! यह महादेवजीका परमस्थान है, हे विप्र ! महादेवजी इसका परित्याग कलियुगमें भी नहीं करते हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! यहां स्नान, दान

धिकं पुण्यमाप्नोति क्षेत्रादेव प्रयागतः ॥ ११ ॥ ततो वै पूर्वदिग्भागे महादेव्याश्च दक्षिणे ॥ महातपा मुनिस्तत्र गंगामाराधयत्पुरा ॥ १२ ॥ तपस्तेपे दुराधर्षं दुर्गम्यं प्राकृतैर्जनैः ॥ ततः कतिपयैर्वर्षैस्संतुष्टा जाह्नवी परा ॥ १३ ॥ गोमुखान्निस्सृता गंगा सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ऋषीणां पश्यतां तत्र जातमद्भुतकं महत् ॥ १४ ॥ इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययुः ॥ क्षेत्रनाम च संचक्रुर्यस्माद्गोमुखतो गता ॥ तस्माद्गोमुखकं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १५ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ अस्ति किंचित्परं स्थानं नाम्ना देवप्रयागकम् ॥ यत्त्वया कथितं पुण्यमत्र स्नानात्ततोधिकम् ॥ १६ ॥ कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं महादेवस्य सुप्रियम् ॥ कस्य स्थानं तदाख्यातं तन्मे वद सुविस्तरात् ॥ १७ ॥ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इदं परमकं क्षेत्रं गुह्यं नैव प्रकाशितम् ॥ यत्र तप्त्वा बलिः पूर्वं प्राप चैंद्रं पदं महत् ॥ १८ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः संगता मुक्तिलालसाः॥शिवतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्त-

तथा मन्त्रका जप करनेसे देवप्रयागक्षेत्रकी अपेक्षाभी अधिक पुण्यप्राप्त होता है ॥ ११ ॥ वहांसे पूर्वदिशाकीओर और महादेवीके दक्षिणभागमें महातपा मुनिने प्रथम गंगाजीकी आराधना करी थी ॥ १२ ॥ उन्होंने ऐसा तप किया जो प्राकृत व्यक्तियोंकेलिये दुर्गम अत एव अति उग्र था । तब कुछदिनोंके पश्चात् गंगाजी उनसे सन्तुष्ट होगई ॥ १३ ॥ सुतराम् समस्त पापराशिविनाशिनी गंगाजी गोमुखमेंसे निकलीं, ऋषि महर्षियोंके देखते २ ही यह उत्कट आश्चर्य हुआ ॥ १४ ॥ तब तो इस महान् आश्चर्य्यका अवलोकन करके महर्षिगण विस्मित होगये । क्योंकिगोमुखमेंसे गंगाजीकी उत्पत्ति हुई थी इसी कारण संपूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले उक्तक्षेत्रका गोमुखक्षेत्र नाम रक्खागया ॥ १५ ॥ नारदजी बोले—देवप्रयाग नामका भी कोई परमस्थान है, जिसकेलिये आपने यह कहा है कि, (नवला नदीमें) स्नान करनेसे देवप्रयागसेभी अधिक पुण्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ महादेवजीका परमप्रिय वोह क्षेत्र कहां है, और वोह किसका स्थान है सो यह सब विस्तार पूर्वक मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ १७ ॥ स्कन्दजी बोले—यह परम गुप्तस्थान है, अतएव अबतक इसे प्रगट नहीं किया था, उसी स्थानमें तप करनेसे राजा बलिको इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई थी ॥ १८ ॥ वहां मुक्तिकी अभिलाषाकरके ब्रह्माआदि सम्पूर्णही देवता एकत्रित रहते

मोत्तमम् ॥ १९ ॥ यत्र दर्शनमात्रेण नश्यंते पापराशयः ॥ किं पुनः सेवनात्तस्य क्षेत्रराजस्य नारद ॥ २० ॥ सीता भगवती साक्षात्तथा नारायणः स्वयम् ॥ यत्रास्ते सर्वदेवानां पूजितांघ्रिसरोरुहः ॥ २१ ॥ अन्यैश्च भ्रातृभिः सार्द्धं तथा हनुमता द्विज ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा इह स्थिताः ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भास्करक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

है, सुतराम् शिवतीर्थको सभी तीर्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानागया है ॥ १९ ॥ उसके दर्शनमात्र करनेहीसे पापोंकी राशिका सत्यानाश होजाता है, हे नारदजी ! उक्त क्षेत्रराजके सेवन करनेसे तो पापोंके विनाशके लिये कहनाही क्या है ॥ २० ॥ साक्षात् भगवती सीता, स्वयं नारायण श्रीरामचन्द्रजी कि सबदेवता जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं ॥ २१ ॥ हे द्विजराज ! अन्यभ्राताओं और हनुमान्जीसमेत, ब्रह्मा विष्णु और रुद्र ये सबही वहां निवास करते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १४९.

॥ स्कंद उवाच ॥ ततो वै पश्चिमे भागे घंटाकर्ण्ण इति स्मृतः॥ भैरवो भीषणाकारः सर्वसत्त्वभयंकरः ॥ १ ॥ तस्य पूजनमात्रेण सर्वसंपन्मयो भवेत् ॥ २ ॥ पूर्वभागेपि तस्यापि पर्वताधो व्यवस्थिता ॥ नाम्ना कंदुमती ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी॥३॥ तत्रैका च महाभागा शिला ब्राह्मी परा मता ॥ तस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४ ॥ ततो वै पश्चिमे याम्ये नदी

स्कन्दजी बोले—वहांसे पश्चिमकी ओर भयानक आकृतिवाले अतएव सबके लिये भयोत्पादक घंटाकर्ण नामके भैरवजी विराजमान हैं ॥१॥ उनकी केवल पूजामात्र करनेहीसे मनुष्यको संपूर्ण सम्पत्तियोंकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ उस पर्वतके नीचेकीओर पूर्वभागमें संपूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली कन्दुमती देवी हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग ! वहां एक ब्राह्मी शिला है, उसके दर्शनमात्र करनेसे ब्रह्मलोकमें ऐश्वर्यका उपभोगप्राप्त होता है ॥ ४ ॥ वहांसे दक्षिण पश्चिमके मध्यमें मोक्ष-

मोक्षवती परा ॥ गंगायां संगमे यत्र मोक्षतीर्थं तु तत्स्मृतम् ॥
॥५॥ तत्र स्नानान्नरो याति परब्रह्माणि लीनताम् ॥ तत्र मोक्षे-
श्वरं लिंगं भक्तमोक्षप्रदायकम् ॥ ६ ॥ तस्य दर्शनमात्रेण नरो
ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा धर्म्मांश्च मा-
हात्म्यं तीर्थानां मुनिसत्तमाः ॥ स्कंदं वै पार्वतीपुत्रं पुनः पप्र-
च्छ नारदः ॥ ८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुतास्त्वयोदिता
धर्म्मा माहात्म्यानि श्रुतानि वै ॥ शंस मे देवशार्दूल यत्पृच्छामि
भवापहम् ॥ ९ ॥ प्रश्नवाक्यं महाभाग पुनाति च जनत्रयम् ॥
वक्तारं प्रच्छकं वापि श्रोतारं भगवत्प्रिय ॥ १० ॥ स्वल्पाद्रै
दर्शनाद्यस्य नरो याति परां गतिम् ॥ अपि पातकयुक्तो हि
जायते भगवद्गतिः ॥ ११ ॥ यत्र नित्यं दाशरथिर्वसते सीतया
सह ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन हनूमता ॥ १२ ॥ शत्रु-
घ्नेन च सर्वैश्च भक्तैर्मुनिगणैस्तथा ॥ स्थले वै देवशार्दूल रामो
नारायणः स्वयम् ॥ १३ ॥ तद्वदस्व महाभाग तीर्थानां तीर्थं

वती नामकी नदीहै, वोह जहां गंगाजीमें संगत हुई है उसीको मोक्षतीर्थ कहते हैं ॥ ५ ॥ उसमें स्नान करके मनुष्य परब्रह्ममें लीन होजाता है, वहां ही भक्तोंको मुक्तिप्रदान करनेवाला मोक्षेश्वर लिंग है ॥ ६ ॥ उक्त लिंगके केवल दर्शनही करनेसें मनुष्यको परब्रह्मत्वकी प्राप्ति होती है ॥७॥ सूतजी बोले—हे मुनिसत्तमों ! धर्मों और तीर्थोंके माहात्म्यको सुनकर पार्वतीनन्दन स्कन्दजीसे नारदजी फिर पूछने लगे ॥ ८ ॥ नारदजी बोले—आपके द्वारा वर्णन कियेहुए धर्म और तीर्थोंके माहात्म्य हमने श्रवण करे, अब संसारसे मुक्ति करानेवाला जो आख्यान मैं पूँछता हूं उसका वर्णन आप करिये ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! प्रश्नका वाक्य कहने, सुनने और पूछनेवाले इन तीनोंहीको पवित्र करता है ॥ १० ॥ हे भगवत्प्रिय ! जिसके किंचिन्मात्रही दर्शन करनेसे मनुष्यको परम-गतिका लाभ होता है, और वोह चाहे जितना पापी हो तथापि उसे सद्गतिकी प्राप्ति होजाती है ॥ ११ ॥ जहां सीता, लक्ष्मण, भरत और हनूमान् सहित दशरथराजकुमार रामचन्द्रजी नित्यही निवास करते हैं ॥ १२ ॥ शत्रुघ्न, भक्त और सब मुनिगणभी उनके साथ वहांही निवास करते हैं हे देवशार्दूल ! उस स्थानमें श्रीरामनारायण स्वयं निवास करते हैं ॥ १३ ॥ सब तीर्थोंमें उत्तम उस तीर्थका हमारे प्रति वर्णन करिये, क्योंकि—उसके दर्शनमात्रहीसे पापोंका

सुत्तमम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नश्यंति दुरितानि वै ॥ १४ ॥
तीर्थानां पुण्यमाहात्म्यं वक्ता नान्योस्ति कुत्रचित् ॥ शिष्योहं
तव हे स्कंद दयां कुरु गणेश्वर ॥ १५ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥
धन्योसि मुनिशार्दूल भक्तो नान्यो भवादृशः ॥ यस्येयं नैष्ठि-
की बुद्धिर्जाता वै तीर्थसेवने ॥ १६ ॥ यत्र सन्निहितो रामस्त-
द्वदामि महामुने ॥ नानारूपेण भगवान् मायया बहुरूपया ॥
॥ १७ ॥ अयोध्या मथुरा काशी द्वारका सेतुबंधकः ॥ काञ्ची
गया कुरुक्षेत्रं बदर्य्याश्रम एव च ॥ १८ ॥ गंगाद्वारं प्रयागश्च
मायाक्षेत्रं तथैव च ॥ देवप्रयागतीर्थं च तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥
॥१९॥ एवमादीनि तीर्थानि वर्त्तंते मुनिसत्तम ॥ हरेर्वासस्थला-
न्येव कथितानि मयानघ ॥२०॥ नारद उवाच ॥ त्वत्तः श्रुतानि
देवेश माहात्म्यानि बहूनि च ॥ तीर्थानां पार्वतीपुत्र कष्टदानां
महामते ॥ २१ ॥ विनायासेन देवेश नरो याति परां गतिम् ॥
यत्र देवो जगन्नाथो नित्यं संनिहितो भवेत् ॥ २२ ॥ कथयस्व
प्रसादेन यदि भक्तेषु ते दया ॥ शृण्वन्वै तीर्थमाहात्म्यं तृप्तिर्मे

त्यानाश होजाताहै ॥ १४ ॥ हे गणेश्वर स्कन्दजी ! ! ! आपकी समान तो तीर्थोंके पुण्य
और माहात्म्यका वक्ता अन्य कोई नहीं है, और मैं आपका शिष्यहूं, अत एव मेरे ऊपर दया
कीये ॥ १५ ॥ स्कन्दजी बोले—हे मुनिशार्दूल ! तुम्हें धन्य है, तुम्हारी सदृश अन्यकोई भक्त
नहीं है, क्योंकि तीर्थसेवनमें तुम्हारी ऐसी नैष्ठिकी बुद्धि है ॥ १६ ॥ हे महामुने ! जहां भगवान्
रामचन्द्रजी बहुरूपिणी मायाके साथ विविधरूप धारण करके निवास करते हैं, मैं अब उसी
स्थानका वर्णन करता हूं ॥ १७ ॥ अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारका, सेतुबन्ध, कांची, गया,
कुरुक्षेत्र और बदरिकाश्रम ॥ १८ ॥ गंगाद्वार, प्रयाग, मायाक्षेत्र, और सबतीर्थोंमें उत्तम देव-
प्रयाग ॥ १९ ॥ हे मुनिसत्तम ! इत्यादि अनेकतीर्थ हमने ऐसे वर्णन किये जिनमें हरिका निवास
रहता है ॥ २० ॥ नारदजी बोले—हे महामतिमान् पार्वतीनन्दन ! आपने कष्टकारी अनेकतीर्थोंके
माहात्म्य वर्णन किये, और हमने उनका श्रवणभी किया ॥ २१ ॥ किन्तु जहां अनायासही मनु-
ष्योंको परमगतिकी प्राप्ति होजाय और जहां जगन्नाथ श्रीरामचन्द्रजी स्वयं विराजमान है ॥२२॥ यदि
भक्तोंके ऊपर आपकी दया है तो उसी क्षेत्रका वर्णन करिये, क्योंकि—तीर्थोंका माहात्म्य सुनते २ मेरी

जायते न हि ॥ २३ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण हरौ भक्तिः प्रजायते ॥ २४ ॥ गंगाद्वारात्पूर्वभागे श्रीगंगाऽलकनंदयोः ॥ संगमो यत्र देशे तु देवप्रयागसंज्ञकः ॥ वदंति मुनयः सर्वे हरिभक्तिपरायणाः ॥ २५ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण स्मरणादपि नारद ॥ पातकानि प्रणश्यंति ब्रह्महत्यासमानि वै ॥ सूर्योदयादंधकारं यथाग्निस्तूलराशयः ॥ २६ ॥ यथा नदीनां गंगा हि पर्वतानां हिमालयः ॥ अरण्यानां तथारण्यं नैमिषारण्यमुच्यते ॥ २७ ॥ शिलानां च यथा विप्र शालग्रामशिला किल ॥ देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा भवान् ॥ २८ ॥ तपतां तु यथा सूर्य्यो नक्षत्राणां यथा शशी ॥ चतुष्पदां यथा गावो नराणां ब्राह्मणः स्मृतः ॥ २९ ॥ तथा वै सर्वतीर्थानां देवतीर्थं प्रशस्यते ॥ अहो भाग्यमहोभाग्यं वसतां देवतीर्थके ॥ ३० ॥ अस्मिंस्तीर्थे महाभाग कृतं तत्सर्वमक्षयम् ॥ तस्मात्सर्वप्र-

तृप्ति नहीं होती ॥ २३ ॥ स्कन्दजी बोले--सुनो ब्रह्मर्षि ! अब मैं सब तीर्थोंमें उत्तम जो तीर्थ है उसीका वर्णन करता हूं, उसके दर्शन करनेहीसे नारायणमें भक्ति होजाती है ॥ २४ ॥ गंगाद्वारसे पूर्वभागमें जहां श्रीगंगाजी और अलकनन्दाका संगम हुआ है, हरिभक्तिपरायण सबमुनिजन उसीको देवप्रयाग कहते हैं ॥ २५ ॥ हे नारद ! उसके दर्शन अथवा स्मरणमात्रही करनेसे ब्रह्महत्याकी समान बड़े २ पापभी इस प्रकार विनष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेसे अन्धकारका, और अग्निसे तूल (रुई) का नाश होजाताहै ॥ २६ ॥ जैसे नदियोंमें गंगाजी, पर्वतोंमें हिमालय, अरण्योंमें नैमिषारण्य (उत्तम) कहे जाते हैं ॥ २७ ॥ हे विप्र ! शिलाओंमें जिसप्रकार शालिग्रामशिला, देवताओंमें विष्णु, और वैष्णवभक्तोंमें जैसे आप (सर्वश्रेष्ठ) हैं ॥ २८ ॥ तपने वालोंमें जैसे सूर्य्य, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, चतुष्पदों (चौपायों) में गौ और मनुष्योंमें जैसे ब्राह्मण (श्रेष्ठ) कहा गया है ॥ २९ ॥ इसी प्रकार सबतीर्थोंमें देवतीर्थको उत्तम कीर्त्तन किया गया है, जो देवतीर्थमें निवास करते हैं उनके धन्यभाग्य हैं ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! इस क्षेत्रमें जो कुछभी कियाजाता है सब अक्षय होता है, इस हेतु सर्वथा ऐसा

यत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ॥ ३१ ॥ यैः कृतं पिंडदानं हि तीर्थे देवप्रयागके॥ पितृकार्य्यं मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं न हि विद्यते॥ ॥ ३२ ॥ चातुर्मास्यं तु यैः स्नातं तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवंतो भवंति हि ॥ ३३ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शतमुखैरपि ॥ क्षमो न हि त्रिलोकेऽस्मिन्विद्यते मुनिसत्तम ॥ ३४ ॥ यत्र वै जाह्नवी साक्षादलकनंदा समन्विता ॥ यत्र रामः स्वयं साक्षात्ससीतश्च सलक्ष्मणः ॥ ३५ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत्॥ सममनेन तीर्थेन न भूतो न भविष्यति ॥ ३६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलावेतदुपाश्रयेत् ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्नानमात्रेण नारद ॥ शुद्ध्यंति पापिनः सर्वे हंतारोपि तपस्विनाम् ॥ ३७ ॥ मासमात्रेण यः कश्चिद्रामं ज्ञात्वा हृदीश्वरम् ॥ स्नानं करोति गंगायां नरो नाके महीयते ॥ ३८ ॥ तत्र धन्यं महाभाग भारतं वर्षमीरितम् ॥ तत्र धन्यो महाभाग हिमवद्देशसंज्ञकः ॥ ३९ ॥ तत्रापि धन्या ते देशा यत्र गंगा सरिद्वरा ॥ हरेः सान्निध्यकं स्थानं तत्रापि हि

यत्न करना कर्त्तव्य है जिससे पापका आचरण न बन पड़े ॥ ३१ ॥ जिन व्यक्तियोंने देवप्रयागमें पिण्डदान किया हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको पितरोंका कोईभी कार्य्य कर्त्तव्य शेष नहीं रहा हैं ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वर ! जो व्यक्ति चातुर्मासमें इस श्रेष्ठतीर्थमें स्नान करते हैं, वे अवश्यही सौभाग्यशाली होते हैं ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! संसारमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो सौ मुखसेभीं इस तीर्थका माहात्म्य वर्णन करके पार पा सके ॥ ३४ ॥ जहां श्रीगंगाजी अलकनन्दामें संगत हुई हैं, और सीता लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी स्वयं निवास करते हैं ॥ ३५ ॥ उस तीर्थका माहात्म्य वर्णन करनेको कौन समर्थ होसक्ताहै, इस तीर्थकी समान न तो कोई तीर्थ हुआ और न आगे को होगा ॥ ३६ ॥ अतएव कलियुगमें सर्वथा इसका आश्रय करना कर्त्तव्य है. हे नारदजी ! इसमें ज्ञान अथवा अज्ञानसे चाहे जिसप्रकारसे हो स्नानमात्र करनेसे, तपस्वियोंको हनन करनेवाले तकभी पापी शुद्ध होजाते हैं ॥ ३७ ॥ ईश्वर रामचन्द्रजीको जानकर जो मनुष्य एक मासपर्य्यन्त यहां गंगाजीमें स्नानकर्ता है उसे स्वर्गलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ हे महाभाग ! भारतवर्षको धन्य है, उसमेंभी हिमालय प्रान्तके देशोंको धन्य हैं ॥ ३९ ॥ उस हिमालयप्रान्तमें भी उनदेशोंको धन्यहै जहां श्रेष्ठ नदी गंगाजी विद्यमान हैं, और हे मुनीश्वर ! उनमेंभी वे स्थान

मुनीश्वर ॥ ४० ॥ एतत्सर्वं महाभाग देवतीर्थेहि विद्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तीर्थमेतदुपाश्रयेत् ॥४१॥ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा जायते न च जन्मने॥यत्र ब्रह्मा महाभाग तपः कृत्वा सुदारुणम् ॥ नाम चक्रेस्य तीर्थस्य ब्रह्मकुंडेति विश्रुतम् ॥ ४२ ॥ शिवतीर्थं मुने ख्यातं गंगाया उत्तरे तटे ॥ संगमाच्छरविक्षेपमात्रं तद्विद्यते बुध ॥ ४३ ॥ तन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ कीटोपि शिवतां व्रजेत् ॥ यत्र साक्षान्महादेवो नित्यं वसति पापहा॥४४॥ गंगाया मध्यदेशे तु शतहस्तप्रमाणतः ॥ स्वयंभूः शिवलिंगं वै दृश्यते पुण्यकर्तृभिः ॥ ४५ ॥ उदग्देशे तु गंगायाः शिला वैतालिकी स्मृता॥शिवतीर्थात् क्रोशखंडे प्रमाणे हि निगद्यते ॥ ॥ ४६ ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्या महापातकवानपि ॥ सद्यः शुद्धिं प्रयात्येव सलिलाद्रसनानि ॥ ४७ ॥ तत्रैवास्ते महाभाग कुंडं वेतालसंज्ञकम् ॥ तत्र स्नात्वा दिनानां तु पंचकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥ तस्मात्पृषत्कमात्रे तु सूर्यकुंडमिति

विशेष धन्यवादके योग्य हैं जिनमें नारायणकी सन्निद्धि रहती है ॥ ४० ॥ सो हे महाभाग देवतीर्थमें ये सभी कुछ विद्यमान हैं, अत एव सर्वथा इसतीर्थका आश्रय करना कर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥ ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्यका फिर जन्म नहीं होता, हे महाभाग ! ब्रह्माजीने दारुण तप करके इस तीर्थका ब्रह्मकुण्ड नामकरण किया था ॥ ४२ ॥ यह शिवतीर्थ गंगाजीके उत्तरी तटपर विद्यमान है, और हे बुध ! अलकनन्दाके संगमसे यह कुण्ड एक बाणकी दूरीपर है ॥ ४३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसमें स्नान करनेसे कीड़ाभी शिवरूप होजाता है, क्योंकि- वहां पापोंका विनाश करनेके लिये साक्षात् महादेवजी ही नित्य विराजमान रहते हैं ॥ ४४ ॥ गंगाजीके मध्यमें शतहस्तके अन्तरपर स्वयं प्रादुर्भूत हुआ शिवलिंग अवलोकित होता है, किन्तु उक्तलिंगका अवलोकन पुण्य कर्त्ता व्यक्तिही करसक्ते हैं ॥ ४५ ॥ गंगाजलमें एक वैतालिकी शिला है, वोह शिला शिवतीर्थसे एककोसकी दूरीपर है ॥ ४६ ॥ उसका दर्शन और स्पर्श करनेसे महापातकी भी शीघ्रही शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! वहांही वेतालकुण्ड नामका एक कुण्ड है,उसमें पांच दिनपर्य्यन्त स्नान करनेसे शुद्धिका लाभ होता है ॥ ४८ ॥ वहांसे १ बाणपर सूर्य्यकुण्डहै, वहां मुनिसत्तम ब्रह्मर्षि मेवातिथिने मनोयोगपूर्वक सूर्य्यनारायणका

स्मृतम् ॥ यत्र मेधातिथिर्नाम ब्राह्मणो मुनिसत्तमः ॥ चकार सुतपस्तीव्रं ध्यायन्वै मनसा रविम् ॥ ४९ ॥ संतुष्टो भास्करः प्रादाद्वरं त्रैलोक्यदुर्ल्लभम् ॥ सूर्य्यकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं गंगाया उत्तरे तटे ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव कथितानि मया मुने ॥ ५१ ॥ अथ दक्षिण-दिग्भागे गंगाया मुनिसत्तम ॥ ब्रह्मकुंडादूर्द्ध्वभागे चतुर्हस्तप्रमा-णतः ॥ वशिष्ठं तीर्थमाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥ ५२ ॥ वशिष्ठतीर्थादुपरि वाराहमिति विश्रुतम् ॥ विंशतिर्गुणिना वेदे तावद्धस्तप्रमाणके ॥ ५३ ॥ गंगामध्ये तु वाराही शिला स्पर्शा-द्विमुक्तिदा ॥ तां दृष्ट्वापि नरो भक्त्या लोकानाप्नोति शाश्वतान् ॥ ५४ ॥ सूर्यकुंडमितिख्यातं तस्माद्दंडचतुष्टये ॥ यत्र सूर्य्यः स्वयं ब्रह्मन् वसतीति श्रुतं मया ॥ ५५ ॥ यत्र स्नात्वा महाभाग मुक्तिं प्राप द्विजाधमः ॥ चांडाल्या सह भो ब्रह्मन् कृतपरिग्रहो-पि सन् ॥ ५६ ॥ ततोपि मुनिशार्दूल शरविक्षेपमात्रके ॥ पौष्प-मालमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ पुष्पमालेतिनाम्ना

ध्यान करके तपका आचरण कियाथा ॥ ४९ ॥ तब सूर्य्यनारायणने सन्तुष्ट होकर उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ वरप्रदान किया था । सूर्य्यकुण्डमें स्नान करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ५० ॥ हे मुने! गंगाजीके उत्तरी तटपर जितने उत्तमोत्तम तीर्थ हैं उन सबका यह माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ॥ ५१ ॥ अब हे मुनिसत्तम ! गंगाजीके दक्षिणकीओर ब्रह्मकुण्डसे ऊर्द्ध्वप्रदेशमें चार हाथकी दूरीपर, भोग और मोक्षका देनेवाला वाशिष्ठ तीर्थ है ॥ ५२ ॥ वाशिष्ठतीर्थसे ऊपरकी ओर वाराहतीर्थ है, और यह तीर्थ चालीसहाथकी दूरीपर है ॥ ५३ ॥ गंगाजीके मध्यमें एक वाराही शिला है, उसका स्पर्शमात्र करनेसे मुक्तिका लाभ होता है, और उसका दर्शन करनेहीसे मनु-ष्योंको सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ जो स्थान सूर्य्यकुंडके नामसे विख्यात है उससे चारदण्डके अन्तरपर हे ब्रह्मन् ! साक्षात् सूर्य्यनारायण निवास करते हैं, ऐसा हमने सुना है ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मन् ! एक ब्राह्मणने चाण्डालीके साथ विवाह करलिया था, सो सूर्य्यकुण्डमें स्नान करनेसे उस नीचकोभी मुक्तिकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५६ ॥ हे मुनिशार्दूल ! वहांसेभी एक बाण विक्षेपकी दूरीपर, सब तीर्थोंमें उत्तम एक पौष्पमाल तीर्थ है ॥ ५७ ॥ समस्त (किन्नरी)

वै किन्नरी प्रमदोत्तमा ॥ प्राप मोक्षं तु वै धात्रा यत्र ब्राह्मणशापिता ॥५८॥ प्राप वै मज्जनासक्ता तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५९॥ तदूर्द्ध्वं दंडषट्के हि इन्द्रद्युम्नतपःस्थलम्॥यत्र तप्त्वा मुनिश्रेष्ठ स्तपः परमदारुणम् ॥ नाम चक्रेऽस्य तीर्थस्य इन्द्रद्युम्नमिति श्रुतम् ॥ ॥ ६० ॥ यन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ पापानां च विनाशनम् ॥ ॥ ६१ ॥ बिल्वतीर्थं मुने ख्यातं क्रोशार्द्धे शिवदायकम् ॥ यत्र साक्षान्महादेवः स्वयं वसति सर्वदा ॥ ६२ ॥ शिवमंत्रं जपन्विप्रः स्नात्वा वै जाह्नवीजले ॥ दशरात्रेण लभते सिद्धिं नारद दुर्ल्लभाम् ॥ ६३ ॥ इति ते कथितान्यत्र गंगोर्द्ध्वे तीर्थकानि हि ॥ अधोभागे तु संगम्य तीर्थानि प्रवराणि च ॥ संगमाद्गव्यूतिमात्रं त्वधोभागे निगद्यते ॥ ६४ ॥ देवप्रयागके क्षेत्रमूर्द्ध्वभागे तथा स्मृतम्॥ एतत्पुण्यतमं स्थानमेवमाह शदाशिवः ॥६५॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ कार्त्तिकेयो महाद्युतिः ॥ पुनः पप्रच्छ वैधात्रो विस्तरेण तपोधनाः ॥६६॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४९॥

स्त्रियोंमें उत्तम पुष्पमालानामकी किन्नरीने ब्राह्मणके शापसे वहांही मुक्तिका लाभ किया था ॥५८॥ उसी तीर्थमें स्नान करनेसे उसको विष्णुभगवान्के परमपदकी प्राप्ति हुई थी ॥ ५९ ॥ वहांसे ऊपरकीओर छःदण्डकी दूरीपर इन्द्रद्युम्नका तपःस्थान है, उक्त मुनिने वहां उग्रतप करके इस तीर्थका इन्द्रद्युम्न यह नाम प्रसिद्ध किया था ॥ ६० ॥ हे मुनिराज ! उसमें स्नानकरनेसे पापोंका विनाश होजाता है ॥ ६१ ॥ वहांसे आधे क्रोशकी दूरीपर कल्याणप्रदान करनेवाला एक बिल्वतीर्थ है, वहां साक्षात् महादेवजी स्वयं सदैव निवास करते हैं ॥ ६२ ॥ हे विप्र! महादेवजीके मन्त्रोंका जप करने और गंगाजलमें स्नान करनेसे हे नारदजी ! दशदिनमें उत्तमसिद्धिका लाभ होता है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार हमने गंगाजीके निकटके तीर्थोंका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, अधोभागमें इन सबश्रेष्ठ तीर्थोंका संगम है, गंगा और अलकनन्दाके संगमसे दो कोशकी दूरीपर अधोभागमें ये सब वर्णन कियेगये हैं ॥ ६४ ॥ इस उत्तमस्थानको स्वयं महादेवजीने देवप्रयागमें ऊपरकीओर वर्णन किया है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले—महातेजस्वी स्वामिकार्त्तिकेय इसप्रकार सम्भाषण करके जब मौन होगये, तभी हे तपोधन महर्षियो ! ब्रह्मपुत्र नारदजी फिर पूछने लगे॥६६॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

पञ्चाशदधिकशततमोध्यायः १५०.

॥ नारद उवाच ॥ भगवञ्श्रोतुमिच्छामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ देवप्रयाग इति यद्भवता परिकीर्त्तितम् ॥ १ ॥ माहात्म्यं क्षेत्रराजस्य तस्योत्पत्तिं च मे वद ॥ तृप्तिर्न जायते स्वामिन्पायं पायं वचोमृतम् ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधुसाधु महाबाहो भक्तोसि मम सुव्रत ॥ लोकानां हितकामाय श्रीरामचरणाप्तये ॥ यत्त्वया परिपृष्टोहं विस्तरेण वदामि ते ॥ ३ ॥ एकांतस्थितयोः पित्रोर्मुखाद्यद्वै परिश्रुतम् ॥ तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ स्थिरं कृत्वा मनो मुने ॥ ४ ॥ कैलासशिखरासीनं देवं पृच्छति पार्वती ॥५॥ ॥ देव्युवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनिषेवित ॥ अनेकविधतीर्थानां क्षेत्राणां च मया प्रभो ॥ श्रुतानि त्वन्मुखादेव माहात्म्यानि सदाशिव ॥६॥ श्रुतं वाशिष्ठकं तीर्थं धर्मक्षेत्रं तथैव च ॥ नद्यश्च पर्वताश्चैव शिवो वर्णी मया प्रभो ॥ ७ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रराजं महेश्वर ॥ देवप्रयाग इति वै श्रूयते क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शिव विस्तरतो वद

नारदजी बोले—हे भगवन्! आपने देवप्रयागनामसे जिसको कीर्त्तन किया है, मैं उसी सर्वोत्तम तीर्थका (माहात्म्य) श्रवण करना चाहता हूं ॥ १ ॥ सुतराम् उस क्षेत्रराजका माहात्म्य एवं उसकी उत्पत्ति मेरेप्रति वर्णन करिये, क्योंकि आपके वचनरूप अमृतको पान करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले—धन्य माहाबाहो!! धन्य!!! हे सदाचारी ! तुम हमारे भक्त हो। संसारके हितकी कामनासे और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी प्राप्तिकेलिये जो कुछ तुमने प्रश्न किया है उसीका उत्तर मैं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं ॥ ३ ॥ एकान्तमें उपस्थित हुए अपने माता पिताके मुखसे मैंने जो कुछ श्रवण किया हैं, हे प्राज्ञमुनीश्वर!!! चित्तको एकाग्र करके उसीको तुमभी सुनो ॥ ४ ॥ कैलास पर्वतके शिखरपर बैठेहुए महादेवजीसे पार्वतीजीने प्रश्न किया ॥ ५ ॥ देवीजी बोली--हे देवाधिदेव जगन्नाथ ! समस्तदेवता और असुर आपकी सेवा करते हैं, हे सदाशिव ! मैंने अनेक प्रकारके तीर्थ और क्षेत्रोंके माहात्म्य आपके मुखसे सुने ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! वाशिष्ठतीर्थ, धर्मक्षेत्र, नदियें और पर्वत इन सभीका माहात्म्य मैं सुनचुकी ॥ ७ ॥ हे महेश्वर ! देवप्रयागनामसे जो उत्तमतीर्थ विख्यात हैं, अब मैं उसी क्षेत्रराजका वर्णन सुननेकी अभिलाषा कररही हूं ॥ ८ ॥ हे शिव ! उक्तक्षेत्रकी उत्पत्ति और माहात्म्यका

॥ ९ ॥ कथं तस्याभिधेयं वै देवप्रयाग उच्यते ॥ प्रशंसंति कथं सर्वे रामभक्तिपरायणाः ॥ १० ॥ यथा सन्निहितो रामस्तत्र वै केन हेतुना ॥ इति मे संशयं छिंधि यदि चेन्मयि ते दया॥ ११॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ देवप्रयागसंज्ञस्य माहात्म्यं शृणु सुव्रते ॥ देवदेवि महाभागे धन्यासि त्वं हि शैलजे ॥ १२ ॥ परोपकरणे जातं यदीयं मानसं शिवे ॥ देवप्रयागसंज्ञस्य देवस्य वरवर्णिनि ॥ १३ ॥ दर्शनात्स्मरणाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्तनात् ॥ पापानि प्रशमं यांति नराणां पापकर्म्मणाम् ॥ १४ ॥ अपि पापैः समायुक्तो ब्रह्महत्यामुखैः किल ॥ तत्क्षेत्रं तु नरः स्पृष्ट्वा सद्यः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ विरंचिप्रमुखा देवा नित्यमायांति तत्र वै ॥ सेवनाय ससीतं वै रामं लक्ष्मणपूर्वजम् ॥ सुग्रीवादिमहाभक्तैर्युतं मुनिगणैस्तथा ॥ ॥ १६ ॥ अथ रामनिवासस्य कारणं तत्र वच्म्यहम् ॥ शृणु पार्वति भक्त्या वै मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ॥ १७ ॥ पुरा कृतयुगे देवि बभूव मुनिसत्तमः ॥ देवशर्म्मेति विख्यातः सहस्रसज्जनव-

वर्णन आप विस्तारपूर्वक करिये ॥ ९ ॥ उसके नामको देव प्रयाग क्यों कहते हैं ? और रामचन्द्रजीके सभी भक्तगण उसकी प्रशंसा क्यों करते हैं ॥ १० ॥ रामचन्द्रजीने वहां किसहेतुसे निवास किया, यदि आपकी मेरे ऊपर दया है तो यह सबसन्देह दूर करिये ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले—हे सदाचारिणी ! देवप्रयागका माहात्म्य सुनो, हे देवदेवेश्वरी ! महाभागशैलकुमारी !!! तुम्हें धन्य है ॥ १२ ॥ क्योंकि—परोपकार करनेमें तुम्हारा चित्त ऐसा लगरहाहै, हे सुमुखि ! देवप्रयागतीर्थका ॥ १३ ॥ दर्शन, स्मरण और ध्यान करनेसे अथवा उसका नामोच्चारण करनेसे पापिष्ठपुरुषोंके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १४ ॥ उक्तक्षेत्रका स्पर्श करनेसे ब्रह्महत्यादिक महापातकोंसेभी शुद्धिका लाभ होजाता है ॥ १५ ॥ सीता और लक्ष्मणसहित, एवं सुग्रीवआदि भक्तो और महर्षियोंसहित विराजमान हुए श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेकेलिये ब्रह्माआदि देवता वहां नित्यही आते हैं ॥ १६ ॥ हे पार्वति ! अब हम रामचन्द्रजीके वहां निवासकरनेका कारण वर्णन करते हैं, तुम भक्तिभावपूर्वक मनको एकाग्र करके श्रवण करो ॥ १७ ॥ हे देवि ! प्रथम सत्युगमें

त्सलः ॥ १८ ॥ दयासत्यतपश्शीलो ज्ञानवान् धर्मसंयुतः ॥ देवप्रयागके तीर्थे तीर्थानामुत्तमोत्तमे ॥ स चकार तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम् ॥ १९ ॥ गच्छञ्जपंस्तथा भुंजञ्श्चिंतयन्मनसा हरिम् ॥ केवलं वैष्णवी भक्तिर्जाता तस्य महात्मनः ॥ २० ॥ नारायण दयासिंधो गोविंदेति वदेत्तदा ॥ पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः ॥ स्तुतिभिर्नतिभिश्चैव तोषयामास वै हरिम् ॥ २१ ॥ एवं द्वादशवर्षेषु कृतवान्स महामतिः ॥ ततो दशसहस्राणि वर्षाणां सुरवंदिते ॥ पर्णाशनोऽभवद्योगी यमैस्सनियमैर्युतः ॥ २२ ॥ सहस्रमेकं वर्षाणां पादेन कृतवांस्ततः ॥ ततो ददर्श गोविंदं शंखचक्रगदाधरम् ॥ २३ ॥ पद्मेन पद्मालयया दीप्यमानं महाद्युतिम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम् ॥ २४ ॥ श्रीवत्सांकं महाबाहुं कोटिसूर्य्यसमप्रभम् ॥ पीताम्बरं त्रिलोकेशं गरुडोपरि संस्थितम् ॥ २५ ॥ सनकादिमुनीन्द्रैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः ॥ लोकानां सृष्टिकर्त्तारं त्रयीरूपं

अपने मित्रवर्ग और सज्जनोंके ऊपर दया करनेवाला देवशर्मा नाम एक ऋषि हुआ था ॥ १८ ॥ वोह देवशर्मा दया, सत्य, तप, शील, ज्ञान और धर्म इनसे संपन्न था, उसने सर्वोत्तम देवप्रयागतीर्थमें ऐसा उग्र तपकिया जो देवताओंके लियेभी कठिन है ॥ १९ ॥ चलते सोते अथवा भोजनकरते समयभी वोह नारायणहीका मनमें स्मरण करता था, और उस महात्माको केवल विष्णुभगवानूहीकी भक्ति थी ॥ २० ॥ हे नारायण ! हे दयासिन्धो ! हे गोविन्द ! वोह सदा येही उच्चारण करता था, विशेष क्या, उसने पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और विविधभांतिकी शुभस्तुतियों एवं प्रणामोंसे नारायणको खूब ही प्रसन्न किया ॥ २१ ॥ उस महामतिने बारहवर्ष वर्यन्त इसविधिसे भक्तिकरी, इसके अनन्तर हे देवपूजिते ! दश सहस्रवर्षपर्यंत उसयोगीने केवल पत्तोंहीका भोजन किया, एवं वोह विशेष नियम और यमसंपन्न रहा ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर उसने एकसहस्र वर्षपर्य्यन्त एकचरणहीसे खड़े रहकर तप किया, तब शंखचक्रगदाधारी गोविन्दभगवानूके दर्शन उन्हें हुए ॥ २३ ॥ लक्ष्मी और कमल साथ होनेके कारण महाद्युतिमान् भगवान् की विशेषकांति होरही थी, वे मुकुट कुण्डल और वनमालाको धारण कररहेथे ॥ २४ ॥ महाबाहुके हृदयमें लक्ष्मीका चिह्न था, करोडें सूर्य्यकी समान उनकी प्रभाथी, त्रिलोकीनाथ पीताम्बर धारणकरे, गरुड़जीके ऊपर विराजमान थे ॥ २५ ॥ सनकादि महर्षिगण, देवता और दानव

गुणात्मकम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वा तं स्तुतिमारेभे देवशर्म्मा द्विजोत्तमः ॥ २७ ॥ देवशर्म्मोवाच ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपाय सृष्टिकर्त्रे गुणात्मने ॥ नानारूपाय जगतो हन्त्रे पालयते नमः ॥ २८ ॥ नमो वेदान्तवेद्याय निर्गुणाय महात्मने ॥ विभवे ज्ञानरूपाय मत्स्यरूपाय ते नमः ॥ २९ ॥ शंखासुरनिहंत्रे च वेदोद्धरणहेतवे ॥ कूर्मरूपेण पृथिवीं धारयित्रे नमोनमः ॥ ३० ॥ नेदिष्ठाय नमस्तेऽस्तु क्षोदिष्ठाय नमोनमः ॥ कोलरूपाय वै तुभ्यं हिरण्याक्षविमर्दिने ॥ ३१ ॥ नृसिंहाय नमस्तेस्तु भीमनादाय ते नमः ॥ खराग्रैर्नखराग्रैर्हि भित्त्वा वक्षस्थलं दृढम् ॥ हिरण्यकशिपोरंत्रमालिने परमात्मने ॥ ३२ ॥ नमः प्रह्लादगुरवे सुराऽसुरगणैः स्तुत ॥ नारायण नमस्तेस्तु वामनाय नमोनमः ॥३३॥ त्रिविक्रमाय बलिने बलिं छलयते नमः॥जामदग्न्य नमस्तेऽस्तु नमः क्षत्रियमर्दिने ॥३४॥ रावणादिनिहंत्रे च सीतायाः पतये नमः ॥

उनकी सेवा कररहे थे, उस समय जगन्निर्माणकर्त्ताका त्रिगुणात्मकरूप था ॥ २६ ॥ द्विजराज देवशर्माने इस प्रकार नारायणके दर्शनकर स्तुति करनेका प्रारंभ करा ॥ २७ ॥ " देवशर्मा बोला—हे ब्रह्मस्वरूप ! आप सृष्टिनिर्माण करते हैं, और गुणात्मा भी आपही है, आप अनेक रूप धारण करते हैं, हे संसारके पालन और विनाश करनेवाले ! ! ! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ वेदान्तके द्वारा आपका ज्ञान होताहै, आप गुणोंकी आत्मा किन्तु स्वयम् निर्गुण हैं, आप सर्वव्यापक और ज्ञान स्वरूप हैं, आपहीने मत्स्यरूप धारण किया था, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२९॥ शंखासुरका वध और वेदोंका उद्धार आपहीने किया था, कूर्मरूप धारणकर आपहीने भूमिको धारण किया था, आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ आपही नेदिष्ठ और क्षोदिष्ठ हैं, आपही वाराहरूप धारी हैं और हिरण्याक्षका वधभी आपहीने किया था आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ नृसिंह अत एव भयंकर निनादकरनेवाले भी आपही हैं, आपहीने तीक्ष्ण नखाग्रभागसे हिरण्यकशिपुका उदर विदीर्णकर उसकी आंतोंकी माला धारणकरी थी ॥ ॥ ३२ ॥ हे नाथ ! देवता और दानव सभी आपकी स्तुति करते हैं, आप प्रह्लादके गुरु हैं; हे वामनरूप नारायण ! आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ त्रिविक्रम और बलिरूपभी आपही हैं, राजा बलीको आपहीने छला था, परशुराम बनकर क्षत्रियोंका विनाशभी आपहीने किया था हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ सीतापति रामबनकर आपहीने रावण आदि दैत्योंका बध

नमो लक्ष्मणरूपाय नमो दशरथात्मज ॥ ३५ ॥ नमस्ते रेवतीकांत नमो लांगलधारिणे ॥ नमस्ते वासुदेवाय यमुनाकर्षकाय ते ॥ ३६ ॥ नीलांबराय कृष्णाय वनमालाधराय च ॥ कंसहंत्रे नमस्तेस्तु देवकीनंदनाय ते ॥ ३७ ॥ गोपनाथाय देवाय गोपीनांपतये नमः ॥ सद्वंशिने केशिहंत्रे मयूरपिच्छधारिणे ॥ ३८ ॥ बौद्धरूप नमस्तेऽस्तु सुकृपाय दयानिधे ॥ शांताय ज्ञानरूपाय नित्यं योगरताय ते ॥ ३९ ॥ म्लेछहंत्रे नमस्तेस्तु नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ त्वमेव जगतां पाता स्थितिकर्त्ता त्वमेव हि ॥ लयरूपस्त्वमेवासि दाता भोक्ता त्वमेव हि ॥ ४० ॥ सूक्ष्मरूपं तु ते ब्रह्मन् विचिन्वंतो मुनीश्वराः ॥ न विदुस्तेऽपि भगवन्मनुष्याणां तु का कथा॥४१॥ वैराजं तव रूपं तु भावयामि सदा हृदि ॥ पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्ते सुतलं स्मृतम् ॥ ४२ ॥ जंघे ते वितलं प्रोक्तं जानुनी ते तलातलम् ॥ कटिस्ते पृथिवी प्रोक्ता नाभिस्ते गगनं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

किया था, हे दशरथराजकुमार ! लक्ष्मणका रूप धारणकरनेवाले आपही हैं आपको मेरा प्रणाम हैं ॥३५॥ रेवतीके पति हलधर बलदेवस्वरूपभी आपने ही धारण किया था, हे वासुदेव ! आपहीने यमुनाका आकर्षण किया था अत एव हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥ नीलांबरधारी बलदेव स्वरूप और वनमालाधारी श्रीकृष्ण रूप आपही हैं, हे कंसविनाशी देवकीनन्दन ! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥ गोपस्वामी देवरूप आपही हैं, गोपियोंके पतिभी आपही हैं, आपने श्रेष्ठवंशमें अवतार धारण किया है, आप मयूरपिच्छधारी हैं आपहीने केशी दैत्यका बध किया था, हमारा आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे कृपानिधि ! बौद्धरूप धारी दयालु आपही हैं, शान्त, ज्ञानस्वरूप और नित्ययोगयुक्त आपही हैं ॥ ३९ ॥ कल्किरूपधारणकर म्लेच्छोंका नाश करनेवाले आपही हैं, संसारका पालन और उसकी स्थिति करनेवालेभी आपही हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं, लयरूप एवं दाता भोक्ताभी आपही हैं ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! आपके सूक्ष्मरूपका विचार करते २ मुनीश्वरभी जब उसको नहीं जानसक्ते हैं. तो फिर मनुष्योंकी क्या कथा है ॥ ४१ ॥ सुतराम् मैं सदा आपके विराट् रूपको अपने हृदयमें ध्यान करता हूं, आपके विराट् रूपके चरणमूल पाताल, और सुतललोक पार्ष्णि हैं ॥ ४२ ॥ वितललोक जंघा, तलातलं जानु, भूमि कटितट और आकाश नाभिकही जाती हैं ॥ ४३

वदंति तव मूर्द्धानं द्यां वै तत्त्वविदो जनाः॥ सूर्य्याचंद्रमसौ प्रोक्ते तव नेत्रे परात्पर ॥ ४४ ॥ श्रुती ते ककुभः प्रोक्ते मुखं वैश्वानरः स्मृतम्॥ निमिषोन्मेषणे रात्रिवासरौ ते दयानिधे॥४५॥ नाथ त्वद्व्यतिरिक्तं वै नास्त्यन्यद्वस्तु केशव ॥ दृश्यते श्रूयते यच्च भुज्यते तत्त्वमेव हि ॥ ४६ ॥ तवैवावयवाः सर्वे देवा मर्त्त्याः सुरद्विषः ॥ भूता यक्षाश्च पशवस्तथान्ये जीवजंतवः ॥ ४७ ॥ वेदांतादिषु शास्त्रेषु त्वमेव प्रतिपद्यसे ॥ किं बहूक्तेन हे देव त्वमेव सकलं हरे ॥ ४८ ॥ श्रीईश्वर उवाच ॥ इति स्तुतो महाभागे प्रसन्नोभूज्जनार्द्दनः ॥ उवाच देवशर्म्माणं प्रीतया मधुरया गिरा ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वदुक्तस्तवराजेन प्रसन्नोऽहं महाशय ॥ वरं वरय हे विप्र यत्ते मनसि वर्त्तते॥५०॥ अदेयमपि दास्यामि वरं त्रैलोक्यदुर्ल्लभम् ॥ अनेन तपसा जातं तव रूपं सुनिर्म्मलम्॥५१॥ देवशर्म्मोवाच॥देवदेव विभो विष्णो गोविन्द करुणानिधे॥आत्मीयचरणांभोजनिवासं देहि देहि मे५२॥

स्वर्गलोक आपका मस्तक, और हे परमेश्वर ! तत्त्वज्ञानी पुरुष सूर्य्यचन्द्रमाको आपके नेत्रबताते हैं ॥ ४४ ॥ दिशाआपके कान, अग्नि मुख, पलकोंका निमेषण और उन्मेषण (खोलना बन्दकरना) दिन और रातको मानागया है ॥ ४५ ॥ हे केशवनाथ ! आपके व्यतिरिक्त कोई वस्तुभी अवलोकित नहीं होती हैं; जो दीखता, जो सुनाजाता और जो कुछ भोजन कियाजाताहै वोह सब तुमही हो ॥ ४६ ॥ देवता, मनुष्य राक्षस, भूत, यक्ष, पशु तथा अन्य जीव जन्तु ये सब आपहीके अवयव हैं ॥ ४७ ॥ वेदान्त आदि शास्त्रोंमें भी आपहीका प्रतिपादन कियागया है, हे हरिदेव ! विशेष कहनेसे क्या, जो कुछ हैं सब आपही हैं ॥ ४८ ॥ श्री महादेवजी बोले—हे महाभागे । जब इस प्रकार स्तुति करी तब जनार्दन भगवान् प्रसन्न होगये, और प्रीति पूर्वक मधुरवाणी करके देवशर्मासे यौं बोले ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे महाशय तुम्हारे गानकरे हुए इस स्तोत्रपाठसे हम प्रसन्न होगये हैं, सुतराम् जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर मांगो ॥ ५० ॥ त्रिलोकीमें दुष्प्राप्य अत एव अदेयवरभी मैं तुम्हैं देदूंगा, क्योंकि इस तपके करनेसे तुम्हारा रूप निर्मल होगया है ॥ ५१ ॥ देवशर्मा बोला—हे देवाधिदेव सर्वव्यापक हे विष्णो ! हे करुणानिधानगोविन्द ! मुझे अपने चरणकमलोंमें निवास दीजिये ॥ ५२ ॥

इदं पुण्यतमं क्षेत्रं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ भविष्ये तु कलौ देव सर्वाघवनदाहकम् ॥ ५३ ॥ भक्तिर्मे सततं विष्णो त्वय्येवास्तु जनार्दन ॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे निवासं कुरु सर्वदा ॥५४॥ अस्मिन्क्षेत्रे तु ये मर्त्या विष्णुपूजनकारकाः॥ संगमे स्नान-कर्त्तारस्तेऽपि यांतु परां गतिम् ॥ ५५ ॥ श्रीईश्वर उवाच ॥ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवः सनातनः ॥ भूयोपि देवशर्म्माणं प्रोवाच सुरपूजितः ॥ ५६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ देवशर्म्मन् द्विजश्रेष्ठ त्वया निगदितं हि यत् ॥ तत्तथैव करिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥ ५७ ॥ त्रेतायुगे दाशरथी रामो भूत्वा महामते ॥ रावणादीन्महादैत्यान् कुंभकर्णमुखांस्तथा ॥ वधिष्यामि द्विजश्रेष्ठ धर्मसंरक्षणाय वै ॥ ५८ ॥ अयोध्यायां कियत्कालं स्थास्यामि नरपुंगव ॥ तत्रैव च करिष्यामि राज्यभोगं सुदुर्ल्लभम् ॥ ५९ ॥ लोकानां व्यवहारार्थं भुक्त्वा भोगानशाश्वतान् ॥ आयास्यामि च क्षेत्रेऽस्मिंस्तावत्त्वं तिष्ठ सुव्रत ॥ ६० ॥ पुनर्मे दर्शनं प्राप्य गमिष्यसि परां गतिम् ॥ ततो देवप्रयागेति

और यह पवित्रक्षेत्र सबतीर्थोंमें उत्तम मानाजाय, एवं हे देव! कलियुगमें सम्पूर्ण पापोंके वनको भस्म करनेवाला हो ॥ ५३ ॥ हे जनार्दन विष्णुभगवान्! मेरी भक्ति सदैव आपके प्रति रहै, और आपभी इस महाक्षेत्रमें सदैव निवास करिये ॥ ५४ ॥ एवं च हे नाथ! इस क्षेत्रमें जो मनुष्य विष्णुभगवान्की पूजा करें, तथा संगममें स्नान करें, उन्हेंभी परमगति (सद्गति) का लाभ होनाचाहिये ॥ ५५ ॥ श्री महादेवजी बोले—देवपूजित सनातन देवाधिदेव श्रीनारायण देवशर्माके ऐसे वचन सुनकर फिर उससे बोले ॥ ५६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे द्विजराज देवशर्मा! तुमने जो कुछभी कहा, संसारकी हितकामनासे वोह सब उसीप्रकार करूंगा ॥ ५७ ॥ हे महामतिमान्! त्रेतायुगमें दशरथनन्दन राम होकर रावण और कुम्भकर्णआदि महादैत्योंका वध, धर्मकी स्थितिकेलिये करूंगा ॥ ५८ ॥ हे नरपुंगव! कुछकालपर्य्यन्त तौ अयोध्यापुरीमें निवास करूंगा, और वहां ही दुर्लभ राज्यभोगोंका उपभोग करूंगा ॥ ५९ ॥ लौकिक व्यवहारके निमित्त सनातन न रहनेवाले भोगोंका उपभोग करके इस क्षेत्रमें आऊंगा, हे सुव्रत! तबतक तुम इसी क्षेत्रमें निवास करो ॥ ६० ॥ फिर हमारे दर्शन पाकर परमगतिको प्राप्त होओगे, हे द्विजराज! तब

त्वन्नामलक्षणान्वितम् ॥ ख्यातिमेतन्महत्तीर्थं गमिष्यति द्विजोत्तम ॥ ६१ ॥ यस्मात्त्वया तपस्तप्तमस्मिन्क्षेत्रे महामते ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं भविष्यति निरंतरम् ॥ ६२ ॥ अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ अमुं तीर्थं सकृद्दृष्ट्वा नरो याति परां गतिम् ॥ ६३ ॥ अत्र दत्तं तपस्तप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ६४ ॥ नमो नारायणायेति मंत्रं प्रणवपूर्वकम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे तु यो मर्त्यो जपेन्मासचतुष्टयम् ॥ हविष्यभुग् ब्रह्मचारी नरो याति परां गतिम् ॥ ६५ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपाय जायते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवात्र संचरेत् ॥ ॥ ६६ ॥ उपानद्गूढपादस्तु व्रजेद्यस्तु ममालयम् ॥ ममापराधी मर्त्यः स नरके परिपच्यते ॥ ६७ ॥ दंतकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्प्पति ॥ सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति ॥ ६८ ॥ पिण्याकं भक्षयित्वा तु यस्तु मामुपसर्प्पति ॥ सपतत्यंधतामिश्रं दशवर्षाणि पंच च ॥ ६९ ॥ यो नरो मैथुनं कृत्वाऽस्नातो मामु-

सर्वलक्षणसंपन्न यह महातीर्थ तुम्हारे नामहीके आधारपर देवप्रयागनामसे प्रसिद्धिलाभ करैगा ॥ ६१ ॥ क्योंकि हे महामतिमान् ! इसक्षेत्रमें तुमने तपका आचारण किया है, इसकारण यह तीर्थ निरन्तर अतिशय पवित्र मानाजायगा ॥ ६२ ॥ इस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेके लिये किसीकी शक्तिभी पर्य्याप्त नहीं है, इस तीर्थके एकवारभी दर्शन करनेसे मनुष्योंको परमगतिकी प्राप्ति होती है ॥ ६३ ॥ यहां जो कुछ दान अथवा तप कियाजाता है, वोह सब अक्षय होजाता है ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य चारमासपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य धारणपूर्वक हविष्यवस्तुका भोजन करके "ॐनमो नारायणाय" इस मन्त्रका जप करता है, उसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है ॥ ६५ ॥ इस क्षेत्रमें पापकरनेसे वोह वज्रलेप होजाता है, इसकारण यहां पाप कदापि करना कर्त्तव्य नहीं है ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य हमारे स्थानमें जूता धारण करके जाता है, वोह हमारा अपराधी बनकर नरकमें क्लेश भोगता है ॥ ६७ ॥ अथ च दतौन विनाकरे जो मनुष्य हमारे दर्शन करता है, उसके सदाके किये कर्म इस एकही दुराचरणसे नष्ट होजाते हैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य पिण्याक (तिलकुट अथवा पिंडालूआदि) का भक्षणकरके हमारे निकट जाता है, वोह पन्द्रह वर्षपर्यन्त अन्धतामिस्रनरकमें रहता है ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य मैथुनकरनेके अनन्तर स्नानविनाकरे ही हमारे

पसर्प्पति ॥ स खादेत्तु स्वमांसानि नरके प्रतिपद्यते ॥ ७० ॥ अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग परदारान्न भाषयेत् ॥ तासु वै मैथुनं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ७१ ॥ कोटिवर्षसहस्राणि कोटिवर्षशतानि च ॥ तप्तायःस्तंभमध्ये तु वध्यते यमकिंकरैः ॥ ७२ ॥ ततः प्रजायते कीटः पुरीषस्थो न संशयः॥ ततो जायेत वै विप्र श्वान-शूकरयोनिषु ॥ ७३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गच्छेन्नैव परस्त्रियम् स्वीयामेव सदा गच्छेत्पत्नीं नान्यां कदाचन॥७४॥ अन्यान्यपि च पापानि सर्वथा संत्यजेद्बुधः ॥ अन्यक्षेत्रकृतं पापं अस्मि-न्क्षेत्रे विलीयते ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यादिपापाच्च तथा गोत्रजमार-णात् ॥ नरो वै तीर्थराजस्य मुच्यते दर्शनादपि॥ ७६ ॥ चातु-र्मास्यव्रतं ये तु करिष्यंति नरोत्तमाः ॥ अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयुः ॥ ७७ ॥ एकतः सर्वतीर्थानि चैकतस्तीर्थ-राजकम् ॥ एकतः सर्वदानानि चैकत्राभयदानकम् ॥ ७८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः

निकट आता है, वोह नरकमें निपतित होकर अपना मांसभक्षण करता है ॥ ७० ॥ हे महाभाग ! इसक्षेत्रमें (दुष्टाशयसे) परस्त्रियोंसे सम्भाषण न करै, और जो मनुष्य परस्त्रियोंसे मैथुन करता है वोह रौरवनरकमें निपतित होता है ॥ ७१ ॥ सहस्र करोड़वर्ष और सौ करोड़वर्ष पर्यन्त यमकिं-कर तप्तलोहस्तम्भमें उसको बांधते हैं ॥७२॥ फिर वोह मनुष्य निस्सन्देह विष्टाका कीड़ा होता है, इसके अनन्तर हे विप्र ! वोह श्वान अथवा शूकरयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ७३ ॥ सुतराम् परस्त्री गमन कदापि न करै, सदैव अपनीही पत्नीसे गमन करना चाहिये, ॥ ७४ ॥ बुद्धिमान्को चाहिये कि–अन्यान्य पापोंकाभी परित्याग करदे, अन्यक्षेत्रोंमें जो पाप कियाजाता है वोह इस क्षेत्रमें (आनेसे) नष्ट होजाता है ॥ ७५ ॥ मनुष्य ब्रह्महत्या तथा गोत्रजोंके बध करनेके पापसेभी इस क्षेत्रराजके दर्शन करतेही मुक्त होजाता है ॥ ७६ ॥ हे महाभाग ! जो नरोत्तमव्यक्ति इसक्षेत्रमें चातुर्मास्यके व्रतका आचरण करते हैं, उन्हें ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ जैसे एकओर अन्य सबदान और दूसरी ओर केवल अभयदान है, ऐसे ही एकओर अन्य सबतीर्थ और दूसरी ओर तीर्थराज देवप्रयाग हैं ॥ ७८ ॥ महादेवजी बोले–सर्वव्यापक जनार्दन विष्णुभगवान् इस प्रकार कहकर वहां ही अन्तर्द्धान होगये ॥ और

देवशर्म्मा तु तत्रैव स्थितवांश्चिंतयन्विभुम् ॥ ७९ ॥ ततो नारा-
यणः स्वीयां प्रतिज्ञां कृतवान् शिवे ॥ रामावतारं चक्रे वै भूत्वा
दशरथात्मजः ॥ ८० ॥ कृतवांस्तत्तथा पूर्वं यदुक्तं देव
शर्म्मणे ॥ पुनर्देवप्रयागे वै यत्रास्ते देवभूसुरः ॥ ८१ ॥ आययौ
भगवान् विष्णू रामरूपात्मकः स्वयम् ॥ देवशर्मा च तं देवं दृष्ट्वा
वै भक्तितत्परः ॥ ८२ ॥ ननाम शिरसा भूयो भूयोपि कृतवान्
स्तुतिम् ॥ प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्देवशर्म्माणमब्रवीत् ॥ ८३ ॥
श्रीराम उवाच ॥ ॥ भो भो द्विजमुनिश्रेष्ठ भक्तोऽसि मम
सुव्रत ॥ त्वदीयतपसा बद्ध आगतोऽहं महामते ॥ ८४ ॥ लोकानां हित-
कामाय ह्यत्रैव निवसाम्यहम् ॥ त्वमप्यत्रैव निवसन्सर्वदा मामनु-
स्मर ॥ ८५ ॥ इतः प्रभृति लोकेऽपि ख्यातं तीर्थं भविष्यति ॥
त्वन्नामस्मरणादेव नरो याति परां गतिम् ॥ किं पुनर्मम नाम्ना
वै किन्न याति परां गतिम् ॥ ८६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा
भगवान्रामस्तस्थौ देवप्रयागके ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया

भगवान्‌का ध्यान करता हुआ देवशर्मा वहां ही उपस्थित होगया ॥ ७९ ॥ हे शिवे ! तदनन्तर नारायणने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करी, अर्थात्—उन्होंने दशरथराजकुमार बनकर रामावतार धारण किया ॥ ८० ॥ और प्रथम देवशर्मासे जो कुछ कहा था वोह सब उसीप्रकार पूर्ण किया । फिर देव प्रयागमें जहां वोह देवशर्मा निवास करता था ॥ ८१ ॥ वहां रामरूपधारी साक्षात् श्री विष्णुभगवान् आयके प्राप्त हुए । इधर देवशर्मा ब्राह्मणभी देवाधिदेवके दर्शनकर भक्तिभावमें तत्पर हो ॥ ८२ ॥ वारंवार प्रणामकरके स्तुति करनेलगा । तब तौ भगवान् प्रसन्न होकर देवशर्मा ब्राह्मणसे बोले ॥ ८३ ॥ श्रीराम बोले—हे मुनीश्वर द्विजराज ! तुम सदाचारी और हमारे भक्त हो, हे महामते ! तुम्हारे ही तपके वशीभूत हो मैं यहां आया हूं ॥ ८४ ॥ सांसारिक पुरुषोंकी हितकामना करके मैं यहांहि निवास करूंगा, और हमै स्मरणकरते हुए तुम भी यहां ही निवास करो ॥ ८५ ॥ बस आजहीसे यह तीर्थ लोकमें विख्यात हो जायगा । जब तुम्हारेही नामका स्मरण करनेसे मनुष्यको परमगतिका लाभ होगा तौ फिर हमारे नामका स्मरण करनेसे सद्गतिकी प्राप्ति क्यों न होगी ॥ ८६ ॥ हे पार्वती ! यौं कहकर भगवान्

सह पार्वति ॥ ८७ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे अवतीर्णास्तु तत्र वै ॥ केचिद्वै मृगरूपेण कपिरूपेण केचन ॥ सेवितुं वै दाशरथिं ससीतं हिमवत्सुते ॥ ८८ ॥ गंगाया उत्तरे भागे दृश्यते यो महागिरिः ॥ तत्र राजा दशरथो नित्यं रामपरायणः ॥ आयाति मृगयाव्याजाद्दर्शनाय रमापतेः ॥ ८९ ॥ तेनैवं तद्गिरेर्नाम दशरथाग इति स्मृतम् ॥ यो वै निष्कल्मषः शुद्धो निरीहो रामतत्परः ॥ स वै पश्यति राजानं दशरथं मनोहरम् ॥ ९० ॥ तीर्थानां तु त्रयस्त्रिंशत्कोटिरत्र स्थिता बुधैः ॥ ९१ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ यत्र साक्षात्सदा रामो वसते करुणानिधिः ॥ ९२ ॥ अथेतिहासं वक्ष्यामि शृणु देवि पुरातनम् ॥ बभूव मध्यदेशे तु चंडवर्मा नराधिपः ॥ ९३ ॥ तस्य वै पट्टमहिषी मायादेवीति विश्रुता ॥ प्रजानां चंडरूपो हि ब्राह्मणानां तथा स वै ॥९४॥ तस्यापि सचिवाः सर्वे दयाहीनाश्च पापिनः ॥ अन्यायोपार्ज्जितस्वेन कोशं संवर्द्धयंति ते ॥ ९५ ॥ पापकर्मा चंडवर्मा सुतहीनो बभूव ह ॥ सदा दुरितकर्माणि

श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित सचमुचही वहां निवास करनेलगे ॥ ८७ ॥ सुनो शैलकुमारि ! कोई वानर और कोई मृगरूप बनाकर इस प्रकार सबही देवता सीतासहित दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेके लिये वहां अवतीर्ण हुए ॥ ८८ ॥ गंगाजीके उत्तर भागमें जो पर्वत अवलोकित होता है वहां राजा दशरथ रामचन्द्रके प्रेमके वशीभूत हो आखेटके व्याज से नित्यही आते हैं ॥ ८९ ॥ इसी हेतु उसका नाम दशरथाग रक्खा गया है जो मनुष्य निष्पाप, शुद्ध, चेष्टारहित और रामका भक्त होता है उसीको मनोहर राजा दशरथके दर्शन प्राप्त होते हैं ॥ ९० ॥ हे सौम्य ! तैंतीसकरोड़ (३३०००००००) तीर्थ इस क्षेत्रमें स्थित हैं ॥ ॥ ९१ ॥ जहां करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी महाराज स्वयंही निवास करते हैं, ऐसे तीर्थका माहात्म्य वर्णन करनेको कौन समर्थ होसक्ता है ॥ ९२ ॥ सुनो देवि ! हम प्राचीन इतिहास का वर्णन करतेहैं, मध्य प्रदेशमें पहिले एक चण्डवर्मा राजा हुआथा ॥ ९३ ॥ एवं उसकी पटरानी मायादेवीके नामसे विख्यात थी, वोह राजा अपनी प्रजा और ब्राह्मणोंकेलिये बडा उग्र था ॥ ९४ ॥ उसके मन्त्रीगण भी दयाहीन और पापिष्ठ थे, अतएव वे अन्याय द्वारा धनोपार्जनकर अपने कोष (धनागार) को पूर्ण करते थे ॥ ९५ ॥ चूंकि वोह चण्डवर्मा पापी अतएव

करोति स महीपतिः ॥९६॥ बहवः शत्रवो जातास्तस्य पापस्य शैलजे ॥ तास्मिन् राष्ट्रे महादेवि पर्ज्जन्यो न च वर्षति ॥ ९७ ॥ सर्वे क्रूराः शठाः पापाश्चौरास्तत्र वसंति हि ॥ चण्डवर्म्मा हि लोकेभ्यः सदा दुःखं ददाति हि ॥ ९८ ॥ श्री ईश्वर उवाच ॥ एवं पापस्य बाहुल्यात्संजातः कोशसंक्षयः ॥ ततः कोशे क्षयं याते संत्यक्तश्चैव मंत्रिभिः ॥ ९९ ॥ अस्मिन्नवसरे प्राप्ते वृतो वै परिपंथिभिः ॥ राज्यभ्रष्टश्च वै जातस्ततः कष्टतरं गतः ॥१००॥ वने जगाम दुःखार्त्तः पत्न्या च सह मायया ॥ खड्गचर्मधरः क्रूरो धनुर्बाणसमन्वितः ॥ १ ॥ महाघोरतरेऽरण्ये ऋक्षव्याघ्रादिसंकुले ॥ राक्षसानां भीमनादपूरितेऽति भयंकरे ॥२॥ तथा कंटकवृक्षैश्च संयुते भीमदर्शने ॥ वने तयोर्गच्छतोरग्रे रक्षः प्रत्यदृश्यत ॥ ३ ॥ अत्युच्चो रक्तनयनः प्रकाशितरदस्तथा ॥ करालवदनो दीर्घकर्णश्चैव बृहच्छिराः ॥ ४ ॥ अनेकमानुषप्रोतशूलहस्तो नरांतकः ॥ आयांतं तं समालोक्य धनुः सज्जं चकार

उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तथापि वोह राजा नित्य पापहीका आचरण करता रहता था ॥ ॥ ९६ ॥ हे पार्वती ! उसके बहुतसे शत्रु होगये, एवं च हे महादेवि ! उसके राज्यमें मेघ जल नहीं बरसाते थे ॥ ९७ ॥ उसके राज्यमें सब दुष्ट, शठ, पापी और चोरही वसते थे, इधर चण्डवर्माभी सदा प्रजाको दुःखही देता रहता था ॥ ९८ ॥ महादेवजी बोले—इस प्रकार पाप विशेष करनेके कारण उसके धनागार (खजाने) का क्षय होगया, तब कोषके नष्ट होजानेपर मन्त्रियोंने उसका परित्याग करदिया इसी॥९९॥ कुअवसरपर शत्रुओंने उसे घेर लिया, तब तौ राज्यसे च्युत होकर अत्यन्त कष्टको प्राप्त हुआ ॥ १०० ॥ अतिशय दुःखित हो वोह क्रूर राजा पत्नीको साथ ले खड्ग और चर्म धारणकर धनुषबाण लेके वनको चलागया ॥ १०१ ॥ रीछ और व्याघ्रादिसे आकीर्ण तथा राक्षसोंके भयानक निनादसे पूर्ण होनेके कारण अतिशय भयंकर ॥ १०२ ॥ कँटीले वृक्षोंसे भरे हुए एवं जो देखनेहीमें अतीव भयंकर है ऐसे घोर वनमें जाते २ उन्हें एक राक्षसके दर्शन हुए ॥ १०३ ॥ वोह देखनेमें बडा ऊंचा, उसके नेत्र लाल २ और दांत चमकीले थे, उसका मुख कराल, कान लंबे २ और शिर बडा था ॥ १०४ ॥ उसने जो अपने हाथमें शूल धारण कररक्खाथा उसमें बहुतसे मनुष्य छिद रहे थे अत एव मनुष्योंके कालकी समान उसे आता

ह ॥ १०५ ॥ आकर्णांतं समाकृष्य बाणं तस्मिन्नियोज्य च ॥ स्वांतं विदारयामास बाणेनास्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ गोविंदेति वदन् रक्षः प्राणान्वै मुमुचे शिवे ॥ पूर्वरूपं परित्यज्य जातो गंधर्वराट् तदा ॥ ७ ॥ नाम्ना वै सुस्वरः ख्यातो विषमेषुरिवापरः ॥ सुंदरः पद्मपत्राक्षो गीते च निपुणः सुधीः ॥८॥ ईश्वर उवाच ॥ इति तस्यातिसौंदर्य्यं दृष्ट्वा वै स महीपतिः ॥ प्राह तं विस्मयाविष्टो गंधर्वं त्रिदिवौकसाम् ॥ ९ ॥ चण्डवर्म्मोवाच ॥ अत्यद्भुतमिदं दृष्टं यत्त्वं गंधर्वतां गतः ॥ केन वै कर्म्मणा पूर्वं राक्षसोभूद्विरूपधृक् ॥ ११० ॥ इदानीं केन पुण्येन संजातोसि च गायकः देवानां हे महाभाग तन्मे विस्तरतो वद ॥ ११॥ गंधर्व उवाच॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि स्वस्य वै पूर्वकर्म्मणः ॥ चेष्टितं राजशार्दूल समासाद्वदतो मम ॥ १२ ॥ पूर्वजन्मन्यभूवं हि ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ शर्म्मदत्त इति ख्यातो नाम्ना वै राजसत्तम ॥ १३ ॥ अधीततर्कशास्त्रेण मयाहंकारतो द्विजाः ॥ पराजिताः कुतर्केण विद्यावंतोतितापसाः ॥ १४ ॥

देख चण्डवर्माने धनुषको ठीक किया ॥ १०५ ॥ धनुषको कानपर्य्यंत खींचके उसके ऊपर बाण चढाय उसी बाणके द्वारा इसके अन्तःकरणको विदीर्ण कर डाला ॥ १०६ ॥ हे शिवे ! गोविन्द २ कहते हुए राक्षसने प्राणोंका परित्याग करदिया, अथ च यह अपने पूर्व रूपका परित्याग करके गन्धर्वोंका राजा होगया॥१०७॥ इसका सुस्वर नाम था, और यह ऐसा सुन्दर था कि, जैसे दूसरा कामदेव हो, इस बुद्धिमान्के नेत्र कमल पत्रकी समान सुन्दर थे एवं यह गान विद्यामें अत्यन्त निपुण था ॥ १०८ ॥ महादेवजी बोले—जब राजाने उसकी ऐसी अद्भुत सुन्दरता देखी तब वह विस्मित हो देवताओंके गायकसे यों कहने लगा ॥ १०९ ॥ चण्डवर्मा बोला—मैंने यह अति अद्भुतता देखी कि, तुम गन्धर्व होगये, तुम किस कर्मके करनेसे कुरूपधारी राक्षस होगये थे ॥ ११० ॥ हे महाभाग ! अब किस पुण्यसे तुम देवता ओंके गायक (गन्धर्व) होगये यह सब कुछ विस्तार पूर्वक हमारे प्रति वर्णन करो ॥ १११ ॥ गन्धर्व बोला—सुनो राजशार्दूल राजन् ! ! ! मैं अपने पूर्वकर्मोंकी चेष्टाका संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ ११२ ॥ हे नृपसत्तम ! पूर्व जन्ममें मैं शर्म्मदत्त नामका वेद पारगामी विख्यात ब्राह्मण था ॥ ११३ ॥ मैंने तर्क शास्त्र पढकर ब्राह्मणोंको पराजित करदिया, और विद्वान् तपस्वियोंको भी कुतर्कोंसे हरा दिया ॥ ११४ ॥

ते सर्वे दुःखिता विप्र मामित्यूचुर्नराधिप ॥ यतस्त्वया वयं सर्वे कुतर्केण पराजिताः ॥ ततस्त्वं हि महारण्ये राक्षसो वै भविष्यसि ॥ ११५ ॥ ततोऽहं दुःखसंततो ब्राह्मणाचारणं ययौ ॥ ब्राह्मणानां च पादेषु पतितोऽहं नराधिप ॥ १६ ॥ यूयं रक्षत मां विप्रा अपराधिनमेव च ॥ अतःपरं हि भवतां दासोहं मुनि सत्तमाः ॥१७॥ घोरा वै रक्षसां योनिस्तस्या मां विनिवर्त्तय ॥ इत्युक्त्वाहं पुनस्तेषां चरणे पतितो नृप॥ १८ ॥ ईश्वर उवाच इति वै शरणायातं दुःखार्त्तं विनये स्थितम् ॥ ऊचुर्वै ब्राह्मणाः सर्वे शापोऽस्माकं द्विजोत्तम ॥१९॥ अमोघोयं महाभाग भविष्यत्येव वै द्विज ॥१२०॥ तथापि ते शापमोक्षो भविता द्रक्ष्यसे यदा ॥ इक्ष्वाकुवंशजं चंडवर्माणं तीर्थसेवकम् ॥ तदा वै नरशार्दूल शापस्तेन गतः प्रभो ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति शिववचः श्रुत्वा विस्मिता शैलजाभवत् ॥ अनाथनाथं देवेशं पुनः पप्रच्छ नारद ॥ २२ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ ॥ अनाथनाथ सर्वज्ञ सर्वलोकहितेरत ॥ पापं नृपं कथं दृष्ट्वा भवे-

हे राजन् ! वे सब दुःखित होकर मुझसे यों बोले—क्योंकि तूने कुतर्क करके हम सबको हराया है, इस लिये तू घोर वनमें राक्षस बनकर रहेगा ॥ ११५ ॥ यह सुनकर मैं दुःखसे सन्तप्त हो ब्राह्मणोंकी शरणमें आया, और हे राजन् ! ब्राह्मणोंके चरणोंमें निपतित होगया ॥ ११६ ॥ मैंने कहा हे विप्रो ! मुझ अपराधीकी आपलोग रक्षा करें, हे मुनीश्वरो ! इसके आगे मैं आपका दास बनकर रहूंगा ॥ ११७ ॥ राक्षसयोनि बडी घोर होती है, उससे मुझे बचाइये, हे राजन् ! यों कहकर मैं फिर उनके चरणोंमें निपतित हो गया ॥ ११८ ॥ महादेवजी बोले—दुःखसे व्याकुल अत एव नम्रता पूर्वक शरणमें आये हुएको देख वे सब ब्राह्मण कहनेलगे ॥ ११९ ॥ कि, हमारा शाप अवश्यही सफल होगा (अर्थात् किसी प्रकार खाली जानेवाला नहीं है)॥ १२० ॥ तथापि तुम्हारे शापका मोक्ष होनेवाला दीखता है, इक्ष्वाकुवंश समुद्भूत तीर्थसेवी चण्डवर्माको देखनेसे तुम्हारे शापका अन्त होजायगा ॥ १२१ ॥ स्कन्दजी बोले—महादेवजीके ऐसे वाक्य सुनकर शैल सुता पार्वतीको बडा विस्मय हुआ अतएव हे नारदजी ! वे अनाथोंके नाथ देवाधिदेव महादेवजीसे फिर पूछने लगीं ॥ १२२ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं—हे अनाथोंके नाथ ! हे सर्वज्ञ ! आप सबलोकोंका हित करनेमें निरत हैं, सो यह तो बताइये ! पापी राजाको देखनेसे शापका विनाश

द्वै शापनाशनम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ शृणु देवि पुरा वृत्तमस्य वै चंडवर्म्मणः ॥ देवदासइति ख्यातो वैश्यो धनवतां वरः ॥ २४ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ पूर्वजन्मनि पार्वति ॥ धनदेति समाख्यातः चंडवर्म्मानराधिपः ॥ १२५ ॥ राज्यार्थेऽसौ तपश्चक्रे वशिष्ठे तीर्थनायके ॥ केवलं राज्य लोभेन चिंताविष्टमनाः सदा ॥ २६ ॥ पक्षमेकं तत्र गत्वा स्नानं च हरिपूजनम् ॥ ततस्तीर्थवरात्पुण्यादाजगाम गृहे स्वके ॥ २७ ॥ तदागत्य गृहे वैश्यः स्थितवान् कतिचित्समाः ॥ कदाचिद्दैवयोगेन वने निर्गतवाँच्छिवे॥२८॥तत्र गत्वा महादेवि ददर्श मुनिसत्तमम्॥ मेधाविनं महात्मानं तप्यमानं महत्तपः ॥ २९ ॥ तं दृष्ट्वा कृशसर्वांगमस्थिशेषं जहास सः ॥ शांतं वै शांततपसं क्रोधं कारितवान्मदी ॥ ॥ १३० ॥ वैश्यं दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठः शशाप कोपवान्मुनिः ॥ अपुत्रो भवितासि त्वं राक्षस इव चापरः ॥ ३१ ॥ स्थानाद्भ्रष्टोपि पंचत्वं शीघ्रं वै प्राप्स्यते भवान् ॥ यत्त्वयोत्पादितं विघ्नं कृत मे तपसस्ततः ॥ ३२ ॥ वैश्य उवाच ॥ ॥ तव स्वरूपं न ज्ञातं

कैसे होसक्ता है ॥ १२३ ॥ महादेवजी बोले—हे देवि ! इस चण्डवर्माके प्राचीन इतिहासको सुनो, प्राचीनकालमें धनाढयोंमें श्रेष्ठ देवदासनाम एक प्रसिद्ध वैश्य हुआ था ॥ २४ ॥ हे पार्वती ! पूर्वजन्ममें यह चण्डवर्मा राजा धनदनामसे प्रसिद्ध उसका पुत्र था ॥ १२५ ॥ सब तीर्थोंके नायक ऐसे वशिष्ठतीर्थमें राज्यप्राप्तिके लिये इसने तप किया, और केवल राज्यहीके लोभसे इसका मन चिन्तातुर रहता था ॥ २६ ॥ इसने एकपक्षपर्य्यन्त वहां जायके स्नान और हरि पूजन किया, इसके अनन्तर यह उस श्रेष्ठतीर्थसे अपने घरको लौट आया ॥ २७ ॥ यह वैश्य अपने घर आयकर थोड़े वर्षपर्यन्त निवास करता रहा, हे शिवे ! फिर कभी दैवयोगसे वह वैश्य निकलकर बनको चलागया ॥ २८ ॥ हे महादेवि ! इसने वहां जाय एक ऐसे महामुनिको देखा जो बुद्धिमान् और महात्मा थे, एवं वहां तप कररहे थे ॥ २९ ॥ उनका सबशरीर कृश हो रहा था, उनके शरीरमें अस्थीही अस्थी देखकर यह हँसनेलगा, यद्यपि वे शान्त थे और उनका तपभी शान्त था, तथापि इस उन्मत्तने उन्हें क्रोधित करदिया ॥ १३० ॥ वैश्यको देख क्रोधित हो मुनीश्वरने शाप दिया कि—तेरे आचरण राक्षसोंकी सदृश हैं इसलिये तू पुत्रहीन रहैगा ॥ ३१ ॥ अथ च क्योंकि तूने हमारे तपमें विघ्न किया है अतएव तू स्थानसे भ्रष्ट होकर शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ वैश्य बोला—मुझ पापीने आपके स्वरूपको नहीं पहिचाना, इसी कारण

मया पापिष्ठबुद्धिना ॥ तेन वै कर्मणा विप्र शप्तोस्मि दुष्टबुद्धिवान् ॥३३॥ क्षमां कुरु मुनिश्रेष्ठ दयावंतो भवादृशाः ॥ नमनंत्यपकारं चोपकारं च तथैव च ॥ ३४ ॥ ते वै तपस्विनः शांताः समलोष्ठाश्मकांचनाः ॥ दुष्टानामुपकर्त्तारः कुर्वंति नापकारकम् ॥३५॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं ननाम शिरसा ततः ॥ पुनः पुनः पपातासौ पादयोस्तस्य धीमतः ॥ ३६ ॥ प्रसन्नोभून्मुनिश्रेष्ठस्तस्मै वैश्याय सुव्रते ॥ जगाद मधुरं वाक्यं हर्षयन्नूरुजं तथा ॥ ३७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शापस्यांतोपि भविता सुस्वरं द्रक्ष्यसे यदा ॥ तस्यापि शापमोक्षश्च भविता दर्शनात्तव ॥ ३८ ॥ गुरोराज्ञां ततः प्राप्य स्वगृहे वै मामर ह ॥ ऋषेश्चामोघशापाद्धि राजासौ समजायत ॥ ३९ ॥ पापः पापसमाचारो जातो वै चंडको नृपः ॥ राज्यभ्रष्टः श्रिया त्यक्तो बांधवैश्च तथा शिवे ॥ १४० ॥ पुत्रहीनो भवद्राजा दुःखशोकार्दितस्तदा ॥ ततोसौ चंडवर्म्मातु गुरुं वेदविदां वरम् ॥ ज्ञानवंतं च गुणिनं

मैं दुष्ट आपके द्वारा शापित हुआ हूं ॥ ३३ ॥ हे मुनिराज ! अब मेरे ऊपर क्षमा करिये, क्योंकि आप जैसे महात्मा लोग दयालु होते हैं, वे किसीके उपकार अपकारको कुछ नहीं समझते है ॥ ३४ ॥ शान्त तपस्वीलोग मृत्तिका और सुवर्ण इन दोनोंही को समान दृष्टिसे अवलोकन करते हैं, वे दुष्टोंका भी उपकारही करते हैं अपकार कभी किसीका नहीं करते हैं ॥ १३५ ॥ महादेवजी बोले—यों कहकर उसने मुनिराजको वन्दना करी, और वारंवार ही यह उन बुद्धिमान् महात्माके चरणोंमें निपतित हुआ ॥ ३६ ॥ तब तौ उस सदाचारी उस वैश्यसे महर्षि प्रसन्न होगये, और उक्त वैश्यको प्रसन्न करतेहुएमें मधुरवाक्य बोले ॥ ३७ ॥ ऋषिने कहा—जब तुम सुस्वर गन्धर्वका अवलोकन करोगे, तब तुम्हारे शापका अन्त होगा, और तुम्हारे दर्शन करनेसे उसकोभी शापसे मुक्ति होजायगी ॥ ३८ ॥ गुरुकी आज्ञासे अपने घर जायकर ये मृतक होगया और महर्षिका शाप अमोघ होनेके कारण यह राजा हुआ ॥ ३९ ॥ यह पापी अतएव पापाचरण करनेवाला चण्डवर्मा राजा हुआ, हे शिवे ! सुतराम् यह राजा राज्यसे भ्रष्ट और लक्ष्मीसे परित्यक्त होगया, एवं च बन्धुबान्धवोंने भी इसका परित्याग करदिया ॥१४०॥ तब यह राजा पुत्रहीन होनेके कारण दुःख और शोकसे व्याकुल होगया, अतएव वेदवेत्ताओंमें

निःस्पृहं द्रष्टुमागतः ॥ ४१ ॥ गुरुं दृष्ट्वा ननामाथ स्तुतवान् मुनिपुंगवम् ॥ नमोनमस्ते गुरवे ज्ञानिने शिवरूपिणे ॥ ४२ ॥ त्वं ब्रह्मा त्वं हि गोविंदस्त्वमेवहि सदाशिव ॥ गुरोरन्यं न पश्यामि जगत्पालनकर्तृकम् ॥ ४३ ॥ प्रसीद नाथ भगवन् दयां कुरु कृपानिधे ॥ ४४ ॥ श्रीईश्वर उवाच ॥ इति वै संस्तुतो विप्रो नाम्ना वै ब्रह्मदत्तकः ॥ प्रसन्नोभून्महाभागे तमु वाच नराधिपम् ॥१४५॥ ब्रह्मदत्त उवाच ॥ केन वै कारणेनात्र मदीयाश्रमके वरे ॥ आगतोसि महाराज दुःखार्त्तइव लक्ष्यसे ॥ ४६ ॥ चंडवर्म्मोवाच ॥ दुःखार्त्तोहं महाभाग राज्यभ्रष्टेन वै द्विज ॥ बांधवैर्मंत्रिभिस्त्यक्तः पुत्रहीनस्तथाभवम् ॥ ४७ ॥ तत्कर्म चक्ष्मे देव येन प्राप्स्यामि वै सुतम् ॥ राज्यं च विपुलं विप्र तथा सज्जनबांधवान् ॥ ४८ ॥ गुरुरुवाच ॥ गच्छगच्छ हि राज्यस्त्वं तीर्थे देवप्रयागके ॥ तत्र गत्वा मासमेकं पूजयस्व जनार्दनम् ॥ ४९ ॥ यथोक्तविधिना राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमे ॥

श्रेष्ठ, ज्ञानवान्, गुणी, और स्पृहारहित गुरुजीके दर्शन करनेको आया ॥ ४१ ॥ गुरुमहाशयको देखकर उन्हें प्रणाम किया और मुनीश्वरकी स्तुति करनेलगा, भो गुरो ! आप ज्ञानी और साक्षात् शिवरूप हैं हम आपको नमस्कार करते हैं॥४२॥ब्रह्मा विष्णु और सदाशिवभी आपही हैं,संसारका पालन करनेवाला गुरुके अतिरिक्त मैं अन्य किसीको नहीं देखताहूं ॥ ४३ ॥ हे नाथ आप कृपानिधान हैं, अतएव हे भगवन् ! प्रसन्न होकर मेरे ऊपर दया करिये ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले–जब राजाने ब्रह्मदत्तकी इस प्रकारसे स्तुति करी, हे महाभागे ! तब वे प्रसन्न होकर राजासे बोले ॥१४५॥ ब्रह्मदत्तने कहा–हे महाराज ! तुम कुछ दुःखितसे दीखते हो, सो बताओ तौ सही किस कारणसे हमारे श्रेष्ठ आश्रममें आये हो ॥४६॥ चण्डवर्मा बोला–हे महाराज ! द्विजराज ! राज्यभ्रष्ट होनेके कारण मैं अत्यन्त क्लेशित हो रहाहूं, बन्धुबान्धवों और मन्त्रियोंनेभी मेरा परित्याग करदिया, अथ च मैं पुत्रहीनहूं ॥ ४७ ॥ सो हे देव ! ऐसा कर्म बताइये जिससे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो, एवं विपुलराज्य और सज्जन बन्धुबान्धवभी मुझे मिलें ॥ ४८ ॥ गुरुजी बोले–हे राजन् ! तुम देवप्रयागमें जाओ, वहां जाय एक मासपर्य्यन्त जनार्दन भगवानकी पूजा करो ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जब तुम उत्तम तीर्थमें यथोक्तविधिसे नारायणकी पूजा करोगे तो पुत्र और राज्यकी तुम्हें

प्राप्स्यसि त्वं महाराजं पुत्रं राज्यं तथैव च ॥ १५० ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छ त्वं मा विलंबं कुरु प्रभो ॥ ५१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तत्तथैवाकरोद्राजा स्नानं देवप्रयागके ॥ प्राप्तं च तेन राज्यं वै पुत्रश्च गुणवानथ ॥ ५२ ॥ एतत्पुण्यतमाख्यानं श्रोष्यंति श्रावयंति ये ॥ तेषां जन्मजरामृत्युभयं नास्ति कदाचन ॥ ५३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति ते कथितं दिव्यं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ देवप्रयागकं क्षेत्रं तस्योत्पत्तिश्च नारद ॥ ५४ ॥ ये नरा भुवि शृण्वंति चरित्रं देवशर्म्मणः॥ते वै देवप्रयागस्य निवासफलमाप्नुयुः ॥ १५५ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ ॥ ५६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ महादेवो महामतिः ॥ पुनः पप्रच्छ वै स्कंदं नारदो मुनिसत्तमः ॥ १५७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्य वर्णनंनाम पंचाशदधिक शततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

प्राप्तिहोगी ॥ १५० ॥ उठो राजन् ! उठो ! ! ! जाओ, और विलम्ब मतकरो ॥ ५१ ॥ महादेवजी बोले—तब राजाने उसी विधिसे देवप्रयागमें स्नान किया, तब उसे राज्य और गुणवान् पुत्र की प्राप्ति हुई ॥ ५२ ॥ इस अतिशय पवित्र आख्यानको जो व्यक्ति सुनते अथवा दूसरोंको श्रवण कराते हैं, उन्हें जन्म, जरा और मरणका भय कभी नहीं होता ॥ ५३ ॥ स्कन्दजी बोले—हे नारद! इस प्रकार हमने दिव्य देवप्रयागतीर्थका माहात्म्य और उसकी उत्पत्तिका वर्णन तुम्हारे प्रति किया ॥ ५४ ॥ भूमिके ऊपर जो मनुष्य देवशर्माके चरित्रको श्रवण करते है, उन्हें अवश्यही देवप्रयागमें निवास करनेका फलप्राप्त होता है ॥ १५५ ॥ विद्यार्थीको विद्या, और धनके अभिलाषीको धनकी प्राप्ति होती है ॥ ५६ ॥ सूतजी बोले-महामतिमान् महादेवजी जब यों कहकर मौन होगये, तब मुनिसत्तम नारदजी फिर स्कन्दजीसे पूछनेलगे ॥ १५७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५१.

नारद उवाच ॥ ब्रह्मकुंडमिति ख्यातं जाह्नव्यलकनंदयोः ॥ संगमे देवशार्दूल महापुण्यतमं स्मृतम् ॥ १ ॥ केन वै कारणे-नाभूद्ब्रह्मकुंडं हि नामकम् ॥ एतन्मे शंस भगवन् कथं ब्रह्मा तपोकरोत् ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि ब्रह्म-कुंडस्य विस्तरम् ॥ यथा वै तीर्थराजस्य नामाभूत्सर्वपापहृत् ॥ ३ ॥ पुरा नारद कल्पादौ जगत्यंबुमये सति ॥ न रात्रिर्नैव दिवसो न च संध्या न वै सुराः ॥ ४ ॥ न वै सूर्य्यो न चंद्रश्च मनुष्या न च राक्षसाः ॥ न पिशाचा न गंधर्वा किन्नरा न महामते ॥ ५ ॥ आसन्नारद नो किंचिद्भगवानात्ममायया ॥ गुणातीतो गुणग्राही चिदानंदो निरीश्वरः ॥ ६ ॥ विभुः सर्वस्य कर्त्ता हि पालको नाशकस्तथा ॥ सृष्टिलीलां प्रकर्त्तुं हि चकारे-च्छां गुणाकरः ॥ ७ ॥ नाभिपंकजतो जातस्ततो वै जलशा-यिनः ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखो दांतश्चतुर्हस्तो महाद्युतिः ॥ ८ ॥ दंडपुस्तकधारी च तं जगाद गदाधरः ॥ सृष्टिं कुरु हि तेनोक्तोऽ

नारदजी बोले–हे देवशार्दूल ! गंगा और अलकनन्दाके संगममें जो ब्रह्मकुण्ड है, उसे आपने अत्यन्त पवित्र वर्णन किया है ॥ १ ॥ उसका ब्रह्मकुण्डनाम किसकारणसे हुआ, और वहां ब्रह्माजीने तप किसप्रकार किया, हे ब्रह्मन् ! वे सब मुझसे कहिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले–नारदजी ! ब्रह्मकुण्डके माहात्म्यको सुनो, जिस प्रकारसे उस तीर्थराजका यह नाम हुआ (सो वर्णन करता हूं) ॥ ३ ॥ हे नारद ! जब पूर्वकालमें समस्त संसार जलमय होगया, तब रात्रि, दिन, सन्ध्या अथवा देवगण ये कुछभी नहीं थे ॥ ४ ॥ सूर्य्य, चन्द्रमा, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व और किन्नरभी नहीं थे ॥ ५ ॥ हे महामति नारद ! जब कुछभी नहीं था, तब गुणातीत, गुणग्राहक सच्चिदानंदस्वरूप भगवान्‌ने अपनी माया करके ॥ ६ ॥ लोकोंकी सृष्टि करनेकी इच्छा करी, भगवान् स्वयम् सर्वव्यापक, सबके कर्ता, पालन और नाश करनेवाले एवं गुणोंके आकर हैं ॥ ७ ॥ उसी समय जलशायी विष्णुभगवानके नाभिकमलसे चतुर्मुख, चतुर्भुजधारी महाकान्तिमान ब्रह्माजी प्रादुर्भूत हुए ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी दण्ड और पुस्तकको भी धारण कर रहेथे, तब उनसे गदाधर भगवानने कहा कि, तुम सृष्टिकी रचना

शक्तो वै सृष्टिकर्मणि ॥ ९ ॥ तपः कर्त्तुं ययौ तत्र सृष्टिकर्मैक-शक्तये ॥ चकार सुतपस्तीव्रं युक्ताहारविहारकः ॥ १० ॥ दशवर्ष-सहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ समाधिस्थो मुनिश्रेष्ठ ध्यायन्नारायणं विभुम् ॥ ११ ॥ आविर्बभूव भगवान्विश्वात्मा सर्वनायकः ॥ प्राच्यां दिशि यथा सूर्य्यो विमानस्थो महीधरः॥ १२॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितः ॥ पीताम्बरः किरीटी च कुसुमेषुरिवापरः ॥ १३ ॥ शतसूर्य्यप्रतीकाशः कौस्तुभान्वितवक्षस्कः ॥ चतुर्भिः पार्षदैर्युक्तः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ १४ ॥ ततो ददर्श भगवान् ब्रह्मा वै जनकं हरिम् ॥ स्रष्टा वै स्तोतुमारेभे भगवंतं सनातनम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ नमः कमलवासाय नमः कमलधारिणे ॥ १६ ॥ कमलानां विकाशित्रे नमस्ते कमलांघ्रये ॥ नमः कमलकिंजल्कवाससे कमलाकर ॥ १७ ॥ नमः कमलसेव्याय नमः कमल मालिने ॥ जगतामादिभूतस्त्वं नारायण

करो, यह सुन उन्होंने कहा कि, सृष्टि निर्माण करनेके लिये मैं असक्त हूं॥ ९ ॥ निदान ब्रह्माजी सृष्टि निर्माण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेकी कामनासे तपश्चर्या करनेको गये, और नियमित आहार विहार पूर्वक उन्होंने तीव्र तप किया ॥ १० ॥ हे मुनिराज ! दशसहस्र दशसौ वर्ष पर्य्यन्त समाधिमें बैठकर ब्रह्माजीने सर्व व्यापक भगवानका ध्यान किया ॥ ११ ॥ तब सबके स्वामी विश्वात्मा भगवान् इस प्रकार प्रादुर्भूत हुए जैसे पूर्व दिशामें सूर्य्यनारायण रथमें बैठकर उदय होते हैं ॥ ॥ १२ ॥ भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म, और वनमालासे विभूषित थे, पीतवस्त्र और मुकुट धारण करे हुए ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे, जैसे दूसरा कामदेव हो ॥ १३ ॥ सैकडें सूर्य्यकी समान उनका प्रकाश, उनका वक्षःस्थल कौस्तुभमणिसे विभूषित था वे स्वयं चार पार्षदों सहित करोडों सूर्योंकी समान प्रभावान् थे ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने अपने उत्पन्न करनेवाले हरि भगवान्का अवलोकन करा, तब ब्रह्माजी अपने सृजनेवाले भगवान्की स्तुति करने लगे॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे कमलनाभ ! आप लक्ष्मीके पति हैं, आपका कमलमें निवास है कमलको आपने धारणभी किया है हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १६ ॥ आपकेही तेजसे कमलोंका प्रकाश होताहै, आपके चरणभी कमलकी समान हैं, कमलके सरमें आपहीका निवास है, हे कमलाकर हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ आपकी सेवा कीजाती है, आप कमलोंकी माला धारण करते हैं, संसा

भगवान विष्णु का नाभिस्थल देवप्रयाग माना गया जहाँ ब्रह्माजी ने तप किया

कलानिधे: ॥ १८ ॥ त्वं ब्रह्मा त्वं महादेव सृष्टिप्रलयकारकः ॥ नानारूपेण भगवान् मायया बहुरूपया ॥ सर्वं व्याप्य त्वमेवासि त्वत्तो नान्योस्ति कश्चन ॥ १९ ॥ यथोदकघटे श्रीश सूर्य्यस्य प्रतिमा भवेत् ॥ नानारूपो हि भगवंस्त्वं तथा तु प्रतीयसे ॥ ॥ २० ॥ आपो भूत्वा भवान्विष्णो सर्वमाप्यायते जगत् ॥ ओषधीनां रसोसि त्वं जगज्जीवनकारकः ॥ २१ ॥ सोमस्त्वमोषधीः सर्वाः पुष्णासि च करैः सदा ॥ सूर्य्यो भूत्वा सर्वरसान्भवान्गृह्णाति रश्मिभिः ॥ २२ ॥ भवान्मेघो हि भगवान् ददाति च रसाञ्छुभान् ॥ त्वमग्निः सर्वलोकानामुदरस्थो हि पाचकः ॥ ॥२३॥ वायुः सर्वगतोसि त्वं प्राणादिजीवनात्मकः॥ त्वं पृथिव्यात्मको देवो धर्त्ता सर्वस्य माधव॥२४॥त्वमिंद्रस्त्वं यमः शेषस्त्वत्तो नान्योस्ति किंचन ॥ निराकारोऽपि साकारो दृश्यते भक्तवत्सल ॥ २५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति स्तुतो हि भगवान् ब्रह्मणा स्टष्टिहेतवे ॥ मेघगंभीरया वाचा जगाद हरिणात्मजम्

रके आदिकारण नारयणभी आपही हैं हे कलानिधि! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ आप ब्रह्मा हैं, सृष्टिका प्रलय करनेवाले महादेवभी आपही हैं, हे भगवन्! अपनी मायाकरके अनेकरूप धारणकर सबमें आपही व्यापक हैं, आपके अतिरिक्त और कोईभी नहीं हैं ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मीकान्त ! जैसे जलके घटोंमें एक सूर्यकी अनेक प्रतिमा दीखती हैं, इसीप्रकार हे भगवन् ! आपभी अनेक रूपधारी प्रतीत होते हैं ॥ २० ॥ हे विष्णो ! आपही जलबनकर समस्त जगत्को भिगोने और जगत्को जीवप्रदान करनेवाले औषधियोंके रसरूपभी आपही हैं ॥ २१ ॥ आपही चन्द्रमा बनकर अपनी किरणोंके द्वारा समस्त औषधियोंको पुष्ट करते हैं, और सूर्य्यहोकर अपनी किरणोंके द्वारा सब रसोंका शोषण करनेवाले भी आपही हैं ॥ २२ ॥ आप बादल बनकर शुभ (मिष्ट) जलकी वर्षा करते हैं, सब लोकोंके उदरमें स्थित (अन्नादि) पचानेवाले जाठराग्निरूप भी आपही हैं ॥ २३ ॥ प्राणादि जीवनात्मक सर्वव्यापक वायुस्वरूप भी आपही हैं, हे माधव ! सबके धारण करनेवाले भूमिस्वरूप देवता भी आपही हैं ॥ २४ ॥ क्या इन्द्र, क्या यम, और क्या शेष सब आपही हैं, आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, निराकार होनेपरभी आप भक्तोंके ऊपर दयाकरके साकार होजाते हैं ॥ २५ ॥ स्कन्दजी बोले—जब ब्रह्माजीने सृष्टिका निर्माण करनेके लिये श्रीभगवानकी ऐसी स्तुति करी, तब वे मेघानिर्घोषकी समान गम्भीर वाणी

॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ भो ब्रह्मन् वत्स वरदस्तवा-
स्मि वद सांप्रतम् ॥ तपसा तेऽस्मि संतुष्टस्तुत्या च कृतया
त्वया ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ आज्ञया यत्त्वया देवाहं तथा
सृष्टिकर्म्मणि ॥ असमर्थः समर्थस्तु भवामि सुरवंदित ॥२८ ॥
इदं पुण्यतमं तीर्थं परोपकृतिहेतवे ॥ अल्पायासेन भवतु
त्वत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥ श्रीभगवानुवाच ॥२९॥ कुरु सृष्टिं महा-
भाग तुष्टोस्मि तपसा तव ॥ मद्भक्तो वै यथा त्वं हि बभूव न
कदाचन ॥ ३० ॥ इदं पुण्यतमं तीर्थं वर्त्तते भक्तनायक ॥
तथापि भविता पश्चादष्टाविंशतिपर्यये ॥ ३१ ॥ भगीरथो
महाराजः सूर्य्यवंशविवर्द्धनः ॥ आनयिष्यति गंगां वै तपसा
तोषिताच्छिवात् ॥ ३२ ॥ पितॄणां मुक्तये ब्रह्मन् तदा यास्यसि
कारणात् ॥ तदास्य तीर्थराजस्य भविता नाम चोत्तमम् ॥ ब्रह्म-
तीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रवरां तथा ॥ ३३ ॥ इदं स्तोत्रं
त्वयाख्यातं पठिष्यंति च ये नराः ॥ न तेषां दुर्ल्लभं लोके भवि-
ष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सृष्टिं कुरु

करके अपने आत्मज ब्रह्माजीसे बोले ॥ २६ ॥ श्रीभगवान बोले--हे वत्स ब्रह्मन् ! ! ! बताओ हम तुम्हें क्या वरदें, क्योंकि तुम्हारे तप और स्तुतिसे हम प्रसन्न होगये हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले-हे देव ! आपने सृष्टिकी रचना करनेके लिये मुझे आज्ञा दी, किन्तु मैं असमर्थ हूं, सो हे सुर पूज्य ! यह बताइये समर्थ किसप्रकार होऊं ॥ २८ ॥ और परोपकार करनेकेलिये यह तीर्थ भी हे सुरोत्तम ! आपकी कृपासे अल्पायासहीसे अत्यन्त पवित्र माना जाना चाहिये ॥ २९ ॥ श्रीभगवान बोले—हे महाभाग ! हम तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट हैं, अतएव तुम सृष्टिकी रचना करो, तुम जैसे हमारे भक्तहो ऐसा अन्य कोई नहीं है ॥ ३० ॥ हे भक्त शिरोभूषण ! यह तीर्थ अत्यन्त पवित्र है, तथापि अट्ठाईसवें युगमें विशेष विख्यात होगा ॥ ३१ ॥ सूर्य्यवंशकी वृद्धि करनेवाले महाराज भगीरथ, महादेवजीको तपसे सन्तुष्ट करके उनसे गंगाजी लावेंगे ॥ ३२ ॥ और गंगाजी राजा भगीरथके पितरोंकी मुक्तिका कारण होंगी, और उसी समय इस तीर्थका नामभी उत्तम होगा अर्थात् इसकी ब्रह्मतीर्थ नामसे उत्तम प्रसिद्धि होगी ॥ ३३ ॥ और तुम्हारे द्वारा कीर्तन किये हुए इस स्तोत्रको जो मनुष्य पढेंगे, संसारमें उन्हें कोई वस्तु भी दुर्लभ नहीं रहैगी॥ ३४॥अब हे महामते ! उठो

महामते ॥ ३५ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवः पश्यतो ब्रह्मणोग्रतः ॥ ब्रह्मापि तज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३६ ॥ ससृजे यक्षरक्षांसि पिशाचान्गुह्यकान्परान् ॥ तिर्यंचः स्थावरांश्चैव यत्र तप्त्वा तपः परम् ॥ ३७ ॥ नारद उवाच ॥ किमर्थं भगवान् ब्रह्मा ययौ देवप्रयागके ॥ कारणं तत्र किं प्रोक्तं विष्णुना वरदात्मना ॥ ३८ ॥ स्कंद उवाच ॥ पुरा कृतयुगे विप्र जातिमात्रेण वै द्विजः ॥ दंडहस्त इति ख्यातो नित्यदंडधरो हि सः ॥ ३९ ॥ परप्राणहरो दुष्टो लंबकर्णोल्पदंतकः ॥ ह्रस्वोल्पबाहुस्तेजस्वी श्यामवर्णोल्पनेत्रकः ॥ ४० ॥ भीमो बृहच्छिरा दुष्टः करालास्योऽतिहिंसकः ॥ निर्धनोति महामूर्खो मृगयासक्तमानसः ॥ ४१ ॥ स दुष्टः कस्यचिद्भार्यां गृहीत्वा नारदोभ्यगात् ॥ कतिचित्त्वथवर्षाणि वसतिस्म च कुत्रचित ॥ ४२ ॥ पंच भार्य्या बभूवुश्च जाताश्चांडालवंशजाः ॥ दशपुत्रा पंच कन्या बभूवुश्च दुरात्मनः ॥ ४३ ॥ न तस्य च धनं गेहे क्षुधार्त्तो नित्यमेव हि ॥ आसन्वै

उठो !!! और सृष्टिकी रचना करो ॥ ३५ ॥ स्कन्दजी बोले—यौं सम्भाषण करके ब्रह्माजीके देखते २ ही उनके अगाडीसे भगवान् अन्तर्द्धान होगये, तब ब्रह्माजीने भी देवता राक्षस और मनुष्यों सहित समस्त जंगत्की ॥ ३६ ॥ यक्ष, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, पक्षी आदि और स्थावर इन सबहीकी रचना करी ॥ ३७ ॥ नारदजी बोले-भगवान् ब्रह्माजी देवप्रयागमें क्यों गये थे, और वरदायक विष्णु भगवान्ने इसमें क्या कारण कहा था ॥ ३८ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! प्रथम सतयुगमें एक व्यक्ति केवल जातिमात्रसे ब्राह्मण था, चूंकि वोह नित्यही दण्ड धारण करता था इस कारण उसकी प्रसिद्धिभी दण्डहस्त होगई थी ॥ ३९ ॥ अन्य जीवोंके प्राण हरनेवाले उस दुष्टके लंबे २ कान और छोटे २ दांत थे, उसका कद नाटा, भुजा छोटी, वर्ण श्याम और नेत्रभी छोटे २ थे ॥ ४० ॥ उस दुष्टका रूप भयंकर शिर बडा मुख डरावना, और प्रकृति हिंसा करनेकी थी, उस महामूर्ख निर्धनका मन आखेटमें आसक्त रहता था ॥ ४१ ॥ एक समय वोह किसीकी पत्नीको लेके भागगया, और कुछ वर्ष पर्य्यन्त न जाने कहां रहा ॥ ॥ ४२ ॥ और उसकी चाण्डालवंश समुद्भव पांच पत्नियें, दश पुत्र और पांच कन्याएँ इतना परिवार होगया ॥ ४३ ॥ सुनो नारद ! उसके पास धन नहीं था अतएव वोह नित्यही क्षुधासे

दुःखिताः सर्वे कुटुंबे तस्य नारद ॥ ४४ ॥ तेभ्यः सदापि च मृगान् मारयित्वा यतस्ततः ॥ मांसानां भक्षकश्चासौ वसतिस्म वने सदा ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणान्मारयित्वा वै गृहीत्वा हि च तद्वसु ॥ कुटुंबभरणासक्तो न्यवसद्विजने वने ॥४६॥ न तस्य मित्रं कुत्रासीन्न भ्राता न च बांधवाः॥ अन्यायेन महाभाग अर्जयतिस्म वै वसु ॥४७॥ चौरो भूत्वा दुराचारो गृहान्भंजयतिस्म च॥ कष्टेन पालयामास कुंटुंबं दुःख संयुतः॥४८॥एकदा मुनिशार्दूल मृगयायै गतस्तु सः ॥ तस्मिन् क्षेत्रे भाग्यवशाच्चचार विकटाकृतिः ॥ ॥४९॥ धनुष्पाणिर्निषंगी च कटिविन्यस्तखड्गकः॥ श्यामास्यः श्यामवस्त्रोसौ कृतांत इव चापरः ॥ ५० ॥ तस्मिन्दिने महाभाग सर्वतो भ्रमता मृगाः ॥ हतास्तेन वराहाश्च पांथानां द्रव्यमेव च॥५१॥तृप्तिस्तस्यन जाता वै मारयामास वै मृगान्॥एवं तस्य महाभाग वने रात्रिः प्रवर्तते ॥ ५२ ॥ अथ पर्वतशृंगाद्वै आजगाम च शूकरः ॥ अत्युच्चऊर्द्धकेशो हि बृहद्दन्तो महाबलः ॥ ५३ ॥ विदारयन्मही पादैर्मुखेन च महामुने ॥ विद्रावयन्मृ-

पीडित रहता था, अथ च उसके सब कुटुम्बी भी दुःखितही थे ॥ ४४ ॥ इसी कारण वोह मृगोंको मार २ कर उनके मांसका भक्षण करता और वनमें निवास करताथा ॥ ४५ ॥ अथ च ब्राह्मणोंको मार उनका धन ले अपने कुटुम्बका भरण पोषण करता और निर्जन वनमें निवास करता था ॥४६॥ उसका मित्र और भाई बन्धु कहींभी कोई नहीं था, और हे महाभाग ! वोह अन्याय करके धनको अर्जन करता था ॥४७॥ यह दुराचारी चोर बनकर घरोंको भग्न करनेलगा, विशेष क्या अधिक कष्टसे अपने कुटुम्बका पालन करता था ॥ ४८ ॥ हे मुनिशार्दूल ! एक समय वोह अहेरकरनेके लिये गया, और अपनी विकट आकृति बनाके उसी क्षेत्रमें विचरनेलगा ॥ ४९ ॥ उसके हाथमें धनुष, कमरमें खड्ग और तरकश था, उसका मुख और वस्त्र दोनोंही काले थे, सुतराम् वोह अन्य काल (यम) की समान प्रतीत होताथा ॥ ५० ॥ हे महाभाग ! उस दिन उस दुष्टने वनमें विचर कर बहुतसे मृग और शूकरोंका वध किया, अथ च पथिकोंका द्रव्यभी अपहरण किया ॥ ५१ ॥ तथापि उसकी तृप्ति न हुई इसलिये वोह मृगोंको औरभी मारनेलगा, हे महाभाग ! इसीप्रकार उसे वनमें रात्रि होगई ॥ ५२ ॥ इसीबीच पर्वतके शिखरपरसे बड़ा ऊंचा, अत्यन्त पराक्रमी और बडे २ दांतोंवाला एवं जिसके केश ऊपरको उठरहे हैं, आया ॥ ५३ ॥ हे मुने ! वोह बाराह मुँह और पैरोंसे भूमिको खोदता, मृगोंको भगाता और पर्वतकी

गगणान्पातयन्वै शिला गिरेः ॥ ५४ ॥ ददर्श तं महाव्याधः समायांतं महागिरेः ॥ सज्जं चकार बाणासंबाणान्वै संदधे ततः ॥ ५५ ॥ तस्मिन्ससर्ज बाणौघं महाव्याधो हि मर्मसु ॥ पीडितः शूकरोऽध्यागात्संमुखं लुब्धकस्य च ॥ ५६ ॥ तं व्याधं पातयामास शिखराज्जाह्नवीतटे ॥ तेनोक्तं पतमानेन रामरामेति नारद ॥ ५७ ॥ अंगानि तस्य लुब्धस्य जातान्येव पृथक्पृथक् ॥ मृतोसौ पतितो व्याधः शिरीषकुसुमं यथा ॥ ५८ ॥ ततो वै मुनिशार्दूल गता यमभटास्तथा ॥ शूलाग्रग्रथितानेकमानुषा दंडहस्तकाः ॥ ५९ ॥ पापिनः शासतश्चैव मुशलैरायसैस्तथा ॥ अथागता मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोनुचरा गणाः ॥ ६० ॥ अप्सरोभिर्गायकैश्च गंधर्वैः किन्नरैस्तथा ॥ विमानानि विचित्राणि गृहीत्वा दिव्यकानि च ॥ ६१ ॥ परस्परं महाभाग ऊचुर्वै सविवादकम् ॥ आस्माकीनमिदंकस्त्वं युयुधुश्च परस्परम् ॥ ६२ ॥ दंडैः खड्गैश्च वृक्षैश्च पाषाणैः पर्वतैस्तथा ॥ बभूव तुमुलं युद्धं रोमहर्षणकारकम् ॥ ६३ ॥ ततस्ते देवदूतास्तु

शिलाओंको गिराता हुआ आया ॥ ५४ ॥ उच्च पर्वतके ऊपरसे उस बाराहको आता देख इस महाव्याधने धनुषके ऊपर बाण चढाय उसे तयार किया ॥ ५५ ॥ और इस शूकरके मर्मस्थानोंमें बाणोंकी वर्षा करनी प्रारंभ करी, तब तौ व्यथित हो शूकरभी इस व्याधाके समक्ष आया ॥ ५६ ॥ और पर्वतके शिखरपरसे उसने व्याधाको गंगाजीके तटपर गिरादियां, हे नारद ! उसने गिरते समय हे राम ! २ ऐसा उच्चारण किया ॥ ५७ ॥ किन्तु उस अहेरीके सभी अंग पृथक् २ होगये, सुतराम् वोह मरकर सिरसके पुष्पकी समान गिर पड़ा ॥ ५८ ॥ हे महाभाग ! अनेक (पापी) मनुष्योंको भालोंमें छेदेहुए और दण्ड हाथमें लिये यमदूत उसी समय वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ यमकिंकर मुशलों और लोहदण्डोंके द्वारा पापियोंको दण्ड देतेथे, हे मुनिराज ! इतनेहीमें ब्रह्मा जीके अनुचरभी वहां आनकर प्राप्त होगये ॥ ६० ॥ उनके साथ अप्सरा नृत्य करती, गन्धर्व और किन्नर गान करते थे, एवं वे विचित्र विमानोंको लेकर वहां उपस्थित हुए थे ॥ ६१ ॥ हे महाभाग ! उस समय वे परस्पर विवाद करनेलगे, और यह हमारा है हमारा है यों कहकर परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ ६२ ॥ दण्ड खड्ग, वृक्षों, पाषाणों और पर्वतोंके द्वारा रोमहर्षण घोर युद्ध होने लगा ॥ ६३ ॥ विशेष क्या कहें उससमय यमराजके किंकरोंने देवदूतोंका विजय करलिया,

जिता यम भटैस्तथा ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुरूचुर्यमभटैः कृतम्॥ ॥ ६४ ॥ देवदूता ऊचुः ॥ भो भो ब्रह्मन्महाभाग नीयते यमकिंकरैः॥देवप्रयागके क्षेत्रे मृतो ब्राह्मणसत्तमः ॥६५॥ निराकृता वयं सर्वे दुष्टैस्तैर्यमकिंकरैः॥ युद्धं कृतं तु तैः सार्द्धमश्मभिमर्दिता वयम् ॥ ६६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै देवतात्मनाम्॥ स्वयं जगाम भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥६७॥ यत्रासौ ब्राह्मणो लुब्धो वृतो वै यमकिंकरैः॥मर्दयित्वा यमभटानारोप्य हतकिल्बिषम् ॥ प्रस्थितो ब्रह्मलोकं हि विमाने सूर्यवर्चसि ॥ ६८ ॥ ते वै यमभटाः सर्वे रुरुदुश्च यमांतिके ॥६९॥ यमदूता ऊचुः ॥ वैवस्वत महाराज मृतोऽसि त्वं न संशयः ॥ यतो दुरितकर्त्तारो नीयंते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ७० ॥ एको द्विजाधमः कश्चिन्नित्यं पापरतोऽभवत् ॥ परदारपरद्रव्यहारको मुनिहिंसकः ॥ ७१ ॥ मृतः कुत्रापि पापःस नीयते ब्राह्मणाधमः ॥ किमर्थं त्वं नियुक्तोऽसि पापानां शासने विभो ॥ ७२ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तद्गदितं श्रुत्वा ययौ रक्तांतलो-

तब तौ वे ब्रह्माजीकी शरणमें जायकर यमदूतोंके कर्त्तव्यको कहनेलगे ॥ ६४ ॥ देवता बोले-हे महाभाग ब्रह्मन् ! देवप्रयाग क्षेत्रमें मृतक हुए एक उत्तम ब्राह्मणको यमराजके दूत लिये जाते हैं ॥ ६५ ॥ और उन दुष्ट यमकिंकरोंने हमारा निरादर किया है, यद्यपि हमने उनके साथ युद्धभी किया तथापि उन्होंने हमें मर्दन करडाला ॥ ६६ ॥ स्कन्दजी बोले—देवदूतोंके ऐसे सम्भाषणको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी स्वयं वहां पधारे ॥ ६७ ॥ जहां इस लुब्धक ब्राह्मणको यमकिंकर घेर रहे थे, (वहां जाय--) यम दूतोंका मर्दनकर और उस निष्पापको सूर्य्यकी समान प्रकाशमान विमानमें आरूढकर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ६८ ॥ इधर वे सब यम किंकर यमराजके पास जायकर रोदन करनेलगे ॥ ६९ ॥ यम दूत बोले—हे महाराज यम ! ! ! आप अवश्यही मृतप्राय होगये हैं, क्योंकि—पापाचरण करनेवालोंको स्वयं ब्रह्माजी लियेजाते हैं ॥ ७० ॥ एक कोई ब्राह्मण नित्यही पापाचरण करता, पराये द्रव्य और स्त्रियोंका अपहरण करता एवम् मुनियोंकी हिंसा करता था ॥ ७१ ॥ वोह पापी एकस्थानमें मृतक होगया और उस नीचको ब्रह्माजी स्वयं लिये जाते हैं हे विभो ! फिर पापियोंका शासन करनेके लिये आपको क्या नियुक्त किया है ॥ ७२ ॥ स्कन्दजी बोले—दूतोंके ऐसे वाक्य सुन यमराजजीके नेत्र लाल २ हो गये, और वे तत्कालही वहां आये

चनः ॥ आययौ भगवान्यत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ७३ ॥ पाशैः समुद्गरैः खड्गैर्युक्तो ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यम उवाच ॥ किमर्थं मां विभो ब्रह्मन् युक्तवान्क्रूरकर्मणि ॥ ७५ ॥ भगवञ्शृणु मे वाक्यं पापानां पापचेतसाम्॥ अहं निहंता भवता कृतोऽस्मि हि प्रजापते ॥ ७६ ॥ त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ निबंधो यस्त्वया बद्धो मया सह सुरोत्तम ॥ तदेव हि कृतं ब्रह्मन्मामकैः किंकरैस्तथा ॥ ७७ ॥ अयं महापापरतः परदाररतः सदा ॥ प्राणिनां निधनासक्तो ब्रह्मलोके कथं व्रजेत् ॥ ७८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भो भो यम महाभाग यद्वै निगदितं त्वया ॥ तत्तथैव परं काल शासिता त्वं हि पापिनाम् ॥ ७९ ॥ सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुरितस्य तथैव च ॥ यथा दुष्टाम्बुसंपूर्णे घटे गंगाकणान्विते ॥ तत्सर्वं जायते धर्मं मोक्षदं केशवप्रियम् ॥ ८० ॥ एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं यत्रायं ब्राह्मणो मृतः ॥ केन

जहां लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी उपस्थित थे ॥ ७३ ॥ पाश, मुद्गर और खड्ग इन आयुधोंको धारण करे हुए आयकर यमराजने ब्रह्माजीसे कहा ॥ ७४ ॥ यम बोले—सुनिये ! भगवान् ब्रह्माजी ! आपने मुझे क्रूरकर्म करनेमें क्यों नियुक्त कियाहै ॥ ७५ ॥ सुनिये भगवान् प्रजापति ! ! ! जिन दुष्टोंका चित्त पाप करनेमें निरत है उन पापियोंको दण्ड देनेके लिये आपने मुझे नियुक्त किया है ॥ ७६ ॥ क्या स्थावर और क्या जंगम सबहीके आप निर्माणकर्त्ता हैं, हे सुरोत्तम ! मेरे साथ आपने जो कुछ नियम करदिया है, हे ब्रह्मन् ! मेरे किंकरोंने उसीका तौ पालन किया था ॥ ७७ ॥ यह महापातकी जो सदा परस्त्रीगमन करता और प्राणियोंका वध करनेमें आसक्त रहता है सो ब्रह्मलोकमें कैसे जासक्ता है ॥ ७८ ॥ ब्रह्माजी बोले—सुनो महाभाग यमराज ! आपने जो कुछभी कहा, वोह सब ठीक हैं, पर हे काल ! आप पापियोंहीके शासनकर्त्ता हैं ॥ ७९ ॥ किन्तु धर्म और पापकी गति बड़ी सूक्ष्म है, जैसे अपवित्र जल पूर्णघटमें गंगाजलके कणके मिश्रितहों तौ वोह सब जल केशव भगवान्को प्रिय अत एव मुक्तिप्रदान करनेवाला होजाताहै ॥ ॥ ८० ॥ (इसी प्रकार) इस क्षेत्रके जहां यहां यह ब्राह्मण मृतक हुआ है माहात्म्यको वर्णन कर-

वा शक्यते वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८१ ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्वर्त्तते रमया सह ॥ अश्रुत्वा देवतीर्थस्य माहात्म्यं खिद्यसे वृथा ॥ ८२ ॥ अनेन दंडहस्तेन पातकं यत्पुराकृतम् ॥ तत्सर्वं रामनाम्ना वै नाशितं रविनंदन ॥ ८३ ॥ पुण्यतीर्थे हि मरणं जातमस्य महात्मनः ॥ कथं नरकगामी स्याद्वृथा त्वं खिद्यसे यम ॥८४॥ एतत् क्षेत्रसमं किंचिन्न भूतं न भविष्यति॥यदुद्दिश्य महाभाग मृतोऽन्यत्रापि कुत्रचित् ॥ सोपि गच्छति वै ब्रह्मलोकं हि सुरपूजितम् ॥ ८५ ॥ किं पुनः क्षेत्रके पुण्येंतर्गंगालकनंदयोः ॥ तत्रापि मे तपस्थाने मृतोसौ रामनामवान् ॥ ८६ ॥ अतः परं महाभाग त्वया न यमकिंकराः॥ प्रेषणीया हि गव्यूतिद्वयमात्रे सुपुण्यके ॥ ८७ ॥ क्षेत्रेऽस्मन्नायके तीर्थराजा नो सूर्यनंदनः ॥ चरतां नरमुख्यानां शाशिता न यमो भवान् ॥८८॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मराजं हि पुनः प्रोवाच पश्यताम् ॥

नेके लिये सैकड़ों करोड़ कल्पमें भी कोई समर्थ नहीं होसक्ता है ॥ ८१ ॥ इस क्षेत्रमें श्रीमन्नारायण लक्ष्मी सहित स्वयं निवास करते हैं । इस तीर्थके माहात्म्यको श्रवण विनाकिये तुम वृथा खेद क्यों करते हो ॥ ८२ ॥ इसने हाथमें दण्ड धारणकर प्रथम जो कुछ भी पातक किया था, हे सूर्य नन्दन ! वोह सब रामनामकीर्त्तन करनेसे नष्ट होगया ॥ ८३ ॥ जब कि, इस महात्माका पवित्र तीर्थमें मरण हुआ है तौ यह नरकमें कैसे जा सक्ता है, फिर तुम वृथा क्यों खेद करते हो ॥८४॥ इस क्षेत्रकी समान पवित्रतीर्थ और कोई न तौ हुआ और न होगा । कारण कि, इसके उद्देशसे यदि कहीं अन्यत्र भी मनुष्य प्राणोंका परित्याग करै तौभी वोह देवपूजित ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ ८५ ॥ तौ फिर उसके लिये तो कहनाही क्या है कि, जिसकी मृत्यु अलकनन्दा और गंगाजीके मध्य इस पवित्रतीर्थमें हुई हो, और यह तौ उसमेंभी हमारे तपस्स्थलमें रामनामोच्चारणकर मृतक हुआ हैं ॥ ८६ ॥ हे महाभाग ! इस पवित्र क्षेत्रमें दो कोश पर्य्यन्त तुम्हें अपने दूत कदापि यहां भेजने न चाहिये ॥ ८७ ॥ हे सूर्य्य नन्दन ! इस सर्वोत्तम तीर्थराजमें विचरनेवाले मनुष्योंका शासन करनेवाले हे यम ! आप नहा हैं ॥ ८८ ॥ स्कन्दजी बोले—धर्मराजसे इस प्रकार कहकर देवता मनुष्य राक्षस और मुनियोंके

देवानां राक्षसा नाञ्च किन्नराणां नृणामथ ॥ ८९ ॥ ब्रह्म ब्रह्मविदां श्रेष्ठं चक्रे तीर्थस्य नामकम्॥शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ ९० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वंतु मुनयः सर्वे सदेवासुरमानुषाः ॥अस्य वै तीर्थराजस्य नामधेयं सुपुण्यदम् ॥९१॥ ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रकटं सुराः॥यूयं सर्वे महाभागा मया सह स्थिता हि वै ॥ ९२ ॥ स्कंद उवाच॥इत्युक्त्वा तं महाव्याधं दंडहस्तं मुनीश्वरम् ॥ गृहीत्वा सह गंधर्वदेवाकिन्नरतापसैः ॥ ययौ स्वभवनं ब्रह्मा सुरासुरनिषेवितम् ॥९३ ॥ दंडहस्तोऽपि धर्मात्मा स्थितवान्ब्रह्मणः पुरे॥९४॥यमोऽपि निजदूतैश्च जगाम भवनं स्वकम् ॥ आश्चर्य्यं परमं प्राप्य श्रुत्वा क्षेत्रस्य वैभवम् ॥ ९५ ॥ इति ते कथितं ब्रह्मन् यत्पृष्टोहं त्वया मुने ॥ ब्रह्मतीर्थस्य चोत्पत्तिस्तपो वै ब्रह्मणः परम् ॥ ९६ ॥ मध्याह्ने मुनिशार्दूल नूनमायांति नित्यशः । सर्वे ऋषिगणा देवा स्नानं कर्तुं द्विजोत्तम ॥ ९७ ॥ श्रूयते सामघोषो हि चातुर्मास्ये मुनी-

देखते २ ही ॥ ८९ ॥ इस शुभ तीर्थका नाम करण किया, सुनो नारदजी ! ब्रह्माजीने प्रथम जो कुछ कहा वोही हम तुमसे कहते हैं ॥ ९० ॥ ब्रह्माजी बोले—देवता मनुष्य असुर और सब मुनीश्वरो ! ! ! सुनो, इस पुण्यतम तीर्थके नामको सुनो ॥ ९१ ॥ हे देवताओ ! यह ब्रह्मतीर्थ नामसे संसारमें प्रकट होगा, हे महाभाग ! तुम सबही हमारे सहित यहां निवास करोगे ॥ ९२ ॥ स्कन्दजी बोले—यौं कहकर उस दण्डहस्तधारी महाव्याधको लेके देवता गन्धर्व किन्नरों और तपस्वियों सहित ब्रह्माजी महाराज इन्द्रसेवित अपने भवनमें गये ॥ ९३ ॥ वोह धर्मात्मा दण्डहस्तधारी होनेपर भी ब्रह्माजीके लोकमें निवास करनेलगा ॥ ९४ ॥ इधर यमराजभी अपने दूतोंको साथले अपने भवनको चले गये, और इस क्षेत्रका माहात्म्य सुननेसे उन्हें परम आश्चऽर्यकी प्राप्ति हुई ॥ ॥ ९५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने जो कुछ हमसे पूछा हे मुने ! सो हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ब्रह्मतीर्थकी उत्पत्ति और ब्रह्माजीके तपका येही आख्यान है ॥ ९६ ॥ हे द्विजोत्तम ! मध्याह्न समयमें यहां हे मुनि शार्दूल ! सब ऋषि और देवतागण स्नान करनेको आते हैं ॥ ९७ ॥ हे मुनीश्वर ! चातुर्मासमें यहां सामवेदकी ध्वनि श्रवण गोचर होती है, कारण कि—प्रातः मध्याह्न और

श्वर ॥ प्रातर्मध्ये तथा सायं रामभक्तैस्तु तैः कृतम् ॥ ९८ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण निर्धूताखिलकल्मषः ॥ मानवो स्वर्गलोकं वै गच्छेद्धि सुरपूजितम् ॥९९॥ सूत उवाच॥इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल नारदं भगवद्गतिम् ॥ विरराम महाभाग ज्ञानिना प्रवरो मुनिः ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्य वर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

सन्ध्या समय रामभक्त उसका निर्घोष किया करते हैं ॥ ९८ ॥ उसके श्रवण करनेसे मनुष्यके समस्त पातक विनष्ट होजाते हैं और वोह अवश्यही सुरपूजित हो स्वर्ग लोकमें जाता है ॥ ९९ ॥ सूतजी बोले—हे मुनियो ! भगवद्गतिनारदजीसे यों कहकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ स्कन्दजी मौन होगये ॥ १०० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५२.

नारद उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ कार्तिकेय महाबल ॥ यदुक्तं ब्रह्मतीर्थस्य वामभागे त्वया वर ॥ वशिष्ठतीर्थं तीर्थानां प्रवरं भक्तमोक्षदम् ॥ १ ॥ कथयस्व प्रसादेन तस्योत्पत्तिं च विस्तरात् ॥ केनकेन तपस्तप्तं किं किं प्राप्तं फलं विभो ॥२॥ सर्वं वद महासेन समासेन हि तीर्थकम् ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच॥शृणु नारद वक्ष्यामि तीर्थराजस्य वैभवम् ॥ उत्पत्तिं विस्तरेणैव यत्पृष्टोहं त्वया मुने॥४॥श्रुत्वा ब्रह्ममुखोद्गीतं देवप्रयागवैभवम् ॥ ब्रह्मतीर्थस्य निकटे वासं चक्रे महामतिः ॥ ५ ॥ वशिष्ठस्तपतां श्रेष्ठो

नारदजी बोले—हे समस्त धर्मोंके जानने वाले महाबलवान् ! भगवान् कार्तिकेयजी महाराज अपने जो ब्रह्मतीर्थके वाम भागमें भक्तोंको मोक्ष देनेवाला समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ तीर्थ वर्णन करा है ॥ १ ॥ कृपाकरके उसकी उत्पत्तिको विस्तार पूर्वक वर्णन करिये कि, किस २ ने वहां तप किया और उन्हें क्या २ फल प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ यह सब तीर्थका आख्यान समासविधिसे मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले ॥ सुनो नारदजी तीर्थराजकी उत्पत्ति और माहात्म्यके विषयमें जो कुछ तुमने हमसे पूछा सुनिये मुनिराज! वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीके मुखसे वर्णन करे हुये देव प्रयागके माहात्म्यको सुनकर महामतिमान् वसिष्ठजीने ब्रह्मतीर्थके निकट निवास करा ॥ ५ ॥ तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी महाराज नारायणके समी-

नारायणसमीपतः ॥ मुनिभिस्सिद्धगंधर्वैन्र्यवसद्ब्रह्मणोंतिके ॥ ॥ ६ ॥ इदं तीर्थं महाभाग स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ पुत्रीयं धनदं चैव रामभक्तिप्रदायकम् ॥७॥ वारमेकं तु यः स्नायाद्भक्त्याऽभक्त्यापि वा द्विज ॥ म्रियते यत्र कुत्रापि सोपि ब्रह्मणि लीयते ॥ ॥ ८ ॥ किं पुनर्मानवो भक्त्या रामं हृदि निधाय च ॥ करोति च हरेः पूजामस्मिंस्तीर्थे हि मज्जनम् ॥ ९ ॥ एतत्तीर्थाम्बुनिर्माल्यं यस्यांगैः स्पृश्यते मुने ॥ सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति नारद ॥ १० ॥ जितेंद्रियः शांतमनाः सदाचारेण संयुतः ॥ स्नानं कुर्वंति वाशिष्ठे ते नरा विष्णवः स्मृताः ॥ ११ ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्या श्रीरामकृतमानसः ॥ वशिष्ठतीर्थजां मृत्स्नां ललाटे प्रकरोति हि ॥ १२ ॥ तस्य संदर्शनादेव वत्सरे दुरितं कृतम् ॥ नाशमायाति विप्रेंद्र सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १३ ॥ पुत्रार्थी मासमेकं हि स्नानमस्मिन्करोति यः ॥ उक्तेन विधिना विप्र पुत्रमाप्नोति निश्चितम् ॥ १४ ॥ राज्यार्थी पक्षमेकं हि प्रातःकाले द्विजोत्तम ॥ करोति विधिवद्भक्त्या स्नानं गंगाजले

मुनि, सिद्ध, और गंधर्वों सहित ब्रह्माजीके निकट निवास करने लगे ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! यह तीर्थ स्वर्ग मोक्ष, पुत्र, धन, और रामभक्तिका देनेवाला है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य एकवारभी भक्ति या विना भक्तिसे इसमें स्नान करता है हे द्विज फिर वह चाहे जिस स्थानमें मरे तथापि परब्रह्ममें लय होता है ॥ ८ ॥ तो फिर उसके लिये तो क्या कहना है कि, जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक रामको हृदयमें धारण कर इस तीर्थमें स्नान करके हरिकी पूजा करता है ॥ ९ ॥ हे मुनि ! इस तीर्थके जलका निर्माल्य जिसके अंगको स्पर्श करताहै वह मनुष्य समस्त रोगों और पापोंसे निर्मुक्त होजाता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य इन्द्रिय दमनकर सदाचरण पूर्वक शांतमनसे वशिष्ठतीर्थमें स्नान करते हैं उन्हें साक्षात् विष्णुकीर्तन कियागया है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य भक्तिभावसे अपने मनमें रामचन्द्रजीको धारणकर वशिष्ठतीर्थकी मृत्तिका को अपने मस्तकके ऊपर धारण करता है ॥ १२ ॥ उसके दर्शन करनेहीसे हे द्विजराज ! सचमुच एक वर्षका किया पाप नष्ट होजाताहै इसमें कोई भी संदेह नहीं ॥ ॥ १३ ॥ पुत्रकी कामना करनेवाला मनुष्य इसतीर्थमें एकमास पर्यन्त यथोक्त विधिसे स्नान करे तो हे विप्र ! निश्चय उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ राज्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पन्द्रह दिनपर्यन्त प्रातःकालही यथोक्त विधिसे भक्तिभाव पूर्वक शुभगंगाजलमें स्नान करे तो इसलोकमें

शुभे ॥ प्राप्नोति राज्यं विपुलं परत्र च परां गतिम् ॥ १५ ॥
एतत्तीर्थस्य माहात्म्याद्दरिद्रो भूमिदेवकः ॥ संप्राप
त्संतानं चापि नारद ॥ १६ ॥ मुनींद्र शृणु वक्ष्या
प्राप्तवान्द्विजः ॥ वाराणस्या बभूवाथ घनानंदो हि भू
तस्य पत्नी महाभाग कावेरी समजायत ॥ चत्वारस्तस्य
धनं धान्यं हि संकुलम् ॥ १८ ॥ रेमाते स्वगृहे विप्रदं
धनसेवकौ ॥ पुत्रांश्च धनधान्यांश्च विद्या चैव महामुने ॥ त
वासन् यथा देवः शुशुभे स्वगृहे तु सः ॥ १९ ॥ वेदाध्यय
संपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ षट्कर्मसंयुतः सोथ विष्णुपूजनतत्प
॥ २० ॥ कदाचित्तस्य विप्रेन्द्र धनं कर्मार्जितं मुने ॥ ननाश
राजतो वापि चौरेभ्यश्च तथैव च ॥ २१ ॥ दारिद्र्यं परमं प्रा
दीनोभूद्द्विजसत्तमः ॥ अत एव महाभाग दैवस्य कुटिला गति
॥२२॥ क्षणं ददाति विप्रेंद्र क्षणं संहरते पुनः ॥ दारान्धना
पुत्रांश्च मित्रवर्गांस्तथैव च ॥२३॥ एते सर्वे महाभाग स्वस्वसंबं
नस्तथा ॥ संबंधे तु क्षयं याते क्षयं यांति मुनीश्वर ॥२४॥ स

विपुलराज्य और परलोकमें सद्गतिकी प्राप्ति होती है ॥१५॥ सुनो नारदजी इसी तीर्थके म
से एक दरिद्री ब्राह्मणको अकस्मातही संपत्ति और संतानकी प्राप्ति होगई थी ॥ १६ ॥ सुन
श्वर ! इस ब्राह्मणको जिस प्रकारसे प्राप्ति हुई सो हम कहते हैं, काशीमें घनानन्द नाम
ब्राह्मण था ॥१७॥ हे महाभाग ! उसकी पत्नीका नाम कावेरी था, उसके चार पुत्र थे,
वोह धनधान्यसे सर्वथा पूर्ण था ॥१८॥ वे दोनों धन सेवक दम्पती अपने घरमें
और हे महामुने ! पुत्र धन धान्य और विद्या ये सबही उसके पासथी सुतराम् वोह
समान शोभाको प्राप्त होता था ॥ १९ ॥ वोह ब्राह्मण सब शास्त्रोंमें चतुर और वेद
निरत था, वह षट्कर्म सावधान और विष्णु पूजनमें तत्पर था ॥ २० ॥ हे मुने ! ए
उसका कर्मार्जित धन राजा और चौरोंके द्वारा अपहरण करलियागया ॥ २१ ॥
सत्तम निर्धन होकर दीन होगया, हे महाभाग ! दैवकी बडी कुटिलगति हैं ॥ २२ ॥
राज ! क्षणमें देता और क्षणमें स्त्री पुत्र और मित्रवर्गका नाश करदेतां है ॥ २३ ॥
और अपने २ संबन्धी संबन्धके नष्ट हो जानेपर नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ २४ ॥ हे नार

दुःखाभिसंतप्तो घनानंदो हि नारद ॥ सहपुत्रैश्च दारैश्च ययौ देशांतरं द्विजः ॥२५॥ कावेरी च घनानंदश्चत्वारस्तस्य सूनवः ॥ त्यक्त्वा भृत्यैश्च मित्रैश्च दुःखार्ता हि वनं ययुः ॥२६॥ घोरं सिंहादिभिर्युक्तं झिल्लीझंकारनादितम् ॥ वृक्षैराताम्रकैर्बिल्वैर्दारुकैर्देवदारुकैः ॥ २७ ॥ अक्षोटकैः कदंबैश्च पालाशैः खदिरैस्तथा ॥ शालैस्तालैर्महाव्यालैर्युक्तं सर्वभयाकुलम् ॥२८॥ राक्षसैर्घोरनादैश्च वानरैर्वनगोचरैः ॥ एतादृशं वनं दृष्ट्वा भयार्ता विपिनं ययुः ॥ २९ ॥ गच्छत्सु तेषु विप्रेषु वने तस्मिन्भयाकुले ॥ आजग्मू राक्षसा विप्र चत्वारो विकटाननाः ॥३०॥ तान्दृष्ट्वा भयसंविग्ना बभूवुर्मुनिसत्तम ॥ किं कुर्मो वै क्व गच्छाम इत्यूचुश्च परस्परम् ॥ ३१ अथ ते राक्षसा घोराः समादाय च पुत्रकान् ॥ तयोस्तु पश्यतोरेव जह्नुर्वै मुनिपुंगव ॥ ३२ ॥ दंपती तौ रुरुदतुर्हतान् दृष्ट्वा हि पुत्रकान् ॥ हा वां हतौ स्व इत्युक्त्वा तौ पृथिव्यां निपेततुः ॥ ३३ ॥ मुहूर्तं तौ तु निश्चेष्टौ संबभूवतुराप्य हि ॥ कदाचित्वथ वै संज्ञां विलेपतुरुदश्रुकौ ॥ ३४ ॥ हा पुत्रा इति पुत्रा वै क्व

घनानन्द दुःखसे संतप्त हो परदेशको चलागया॥२५॥कावेरी घनानन्द और उसके चार पुत्र सेवकों और मित्रोंसे परित्यक्त होकर दुःखी हो वनमें चलेगये ॥२६॥ वह वन सिंह आदिसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त घोर और विविधजन्तुओंके शब्दसे परिपूर्ण होरहाथा और उसमें आमबेल तथा देवदारु आदिके अनेक वृक्ष थे ॥ २७ ॥ अखरोट, कदम्ब, ढाक, खैर, ताल, शाल, और महा व्यालोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त भयानक होरहाथा ॥ २८ ॥ राक्षस घोर शब्द करनेवाले ... एवं वनचरोंके द्वारा भयंकर हुए वे सब वनमें विचरनेलगे ॥ २९॥ उन सबके इस प्रकार ...कुल वनमें विचरनेपर हे विप्र! विकट मुखवाले चार राक्षस आये॥३०॥उन्हें देख भयसे व्याकुल हे मुनि सत्तम ! यह सब परस्पर यौं कहने लगे कि, हम कहांजायँ ॥ ३१ ॥ इतनेहीमें घोर राक्षसोंने उन दम्पतिके देखते २ ही पुत्रोंको पकडकर मारडाला ॥ ३२ ॥ ...पने पुत्रोंको मृतक हुआ देखके दम्पती रोदन करनेलगे, हाय! मरगये यौं कहकर भूमिके ऊपर गिरपड़े ॥ ३३ ॥ वे दानों मुहूर्त्त मात्र तौ निश्चेष्ट होगये, और फिर थोडीदेरतक संज्ञाधारण ...र कुछकालपर्यन्त रोदन करतेरहे ॥ ३४॥ हा पुत्र ! हा पुत्र !!! कहकर यौं कहनेलगे कि—हम

गच्छावोथ निर्द्धनौ॥ अपुत्रौ मरणं नौ हि कथं स्याद्धतभाग्ययोः ॥ ३५ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्येवं विलपंतौ तौ महारण्ये प्रजग्मतुः ॥ अज्ञौ मार्गस्य विप्रेंद्राहो संनिःसरदश्रुकौ ॥ तयोर्नारद दंपत्योर्वने रात्रिः प्रवर्तते ॥ ३६ ॥ भयशोकार्दितौ रात्रौ निद्रां नैव च जग्मतुः ॥ ततस्तौ मुनिशार्दूल जगदुश्च परस्परम् ॥ किं कुर्वः क्व च गच्छावो मार्गो नैव प्रदृश्यते ॥ ३७॥ पतिं जगाद कावेरी कुरु काष्ठस्य संग्रहम् ॥ प्रज्वाल्य च महावह्निं दग्ध्वा देहं यमालयम् ॥३८॥ यत्र वै मम पुत्राश्च गता राक्षसभक्षिताः ॥ भक्षयंत्वथवा वां हि राक्षसा विकटाननाः ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदि तान्मृगशावाक्षि प्राप्स्यावो निजपुत्रकान्॥ भविष्यति हि साफल्यं मरणस्यावयोः प्रिये ॥४०॥ आवाभ्यामपि न प्राप्ताश्चेत्सुता निधनेन च॥ तदा वै चंद्रवदने आत्महत्यैव केवलम् ॥४१॥ विपत्तौ महतां धार्य्यं धैर्य्यं शोकस्य नाशनम्॥ अधैर्य्येण च कावेरि शरीरं नश्यति क्षणात् ॥ ४२ ॥ शरीरं चेत्पुनः पुण्यं धनं दाराः सुताः पुनः ॥ नष्टे शरीरे कावेरि कुतः

निर्धन कहां जायँ, हाय ! हम दोनों मन्दभाग्य सन्तानरहित हो किसप्रकार मरेंगे ॥ ३५ ॥ स्कन्दजी बोले—इसप्रकार रोदन करते हुए वे दम्पती घोर वनमें विचरनेलगे, चूंकि उन्हें मार्गका कुछ भी ज्ञान नहीं था इसीसे वे रोदन करनेलगे इस प्रकार हे नारद ! उन दम्पतीको विचरते वनमें रात्रि होगई ॥ ३६ ॥ चूंकि वे भय और शोकके मारे अत्यन्त व्याकुल होरहे अतएव उन्हें निद्रा उपलब्ध न होसकी ॥ तदनन्तर हे मुनिशार्दूल ! वे परस्पर कहने लगे कि—हाय हम क्या करें और कहां जायँ, मार्ग नहीं सूझता ॥ ३७ ॥ तब कावेरी अपने पतिसे बोली, तुम काष्ठ संग्रह कर चिता बनाओ, अग्नि प्रज्ज्वलित कर अपने देहको भस्म करो मैं भी यमपुरको चलीजाऊंगी ॥ ३८ ॥ जहां राक्षसोंके द्वारा भक्षण कियेहुए हमारे पुत्र गये हैं अथवा विकट मुखवाले राक्षसही हमदोनोंको भक्षण करलें ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण बोले। हे मृगनयनी ! यदि मरकर हम अपने पुत्रोंको पासकें तौ हे प्रिये ! हम दोनोंका मरण सफल होसक्ता है ॥ ४० ॥ यदि मरकरभी हम दोनोंको हमारे पुत्र न मिलसके तौ हे चन्द्रमुखि ! केवल आत्महत्याही होगी ॥ ४१ ॥ महान् पुरुषोंको चाहिये कि, विपत्तिके समय शोक विनाशी धैर्य्यहीको धारण करें, कारण कि, हे कावेरी ! धैर्य्य धारण न करनेसे शरीर क्षणभरहीमें नष्ट होजाताहै ॥ ४२ ॥ यदि शरीर नियत रहै तौ पुण्य, धन और स्त्रियें ये सब दुबारा प्राप्त होसक्ते

पुण्यं कुतः सुखम् ॥ ४३ ॥ दुष्टेन मरणेनाथ दुर्गतिश्च भवेन्नृणाम् ॥ दुर्गतेस्तु महादुःखं जायते प्रेतदेहके ॥४४॥ कावेर्युवाच॥ केन वै मरणेनाथ नराः संयांति दुर्गतिम् ॥ किं किं दुःखं तत्र देहे जायते च कथं विभो॥४५॥ब्राह्मण उवाच॥येन वै मरणेनेह दुर्गतिर्जायते नृणाम् ॥ शृणु कावेरि वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ४६ ॥ विषेण मरणं यस्य सर्पेण निहतोपि यः ॥ वृक्षादिभिश्च पतितो जलादौ पतनात्तथा ॥ ४७ ॥ आत्मघाताद्वह्नितो वा सिंहादिभ्यस्तथैव च ॥ मरणं जायते यस्य स पिशाचो भवेन्नरः ॥ ४८ ॥ जाते पिशाचदेहे तु नानादुःखं प्रजायते ॥ क्षुधया तृषया चैव पीडयन्ते नित्यमेव हि ॥ ४९॥ उदरं कूपसदृशं क्षुधा दावाग्निना समा ॥ गलद्वारं तु तेषां वै शूचीछिद्रसमं स्मृतम् ॥ ॥ ५० ॥ यत्र श्रीरघुनाथस्य कथा वै तु प्रगीयते ॥ तत्र तेहि न गच्छंति भयाविष्टास्सदैव हि ॥ ५१ ॥ यत्र गंगा सरिच्छ्रेष्ठा विप्राणां यत्र पूजकाः ॥ विप्र वेदविदो विप्र वेदाध्ययनमेव च ॥ ॥ ५२ ॥ पुराणश्रवणं यत्र सदाशिवप्रपूजनम् ॥ गावो यत्र प्रपू-

हैं, सुनो कावेरी ! शरीर नष्ट होजानेपर पुण्य और सुख कहांसे प्राप्त हो सक्ताहै ॥ ४३ ॥ यदि दुष्ट रीतिसे मरण हो तौ हे प्रिये ! मनुष्योंकी दुर्गति होतीहैं, और दुर्गति होनेसे प्रेतदेहमें प्रभूत दुःखकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणी बोली–हे स्वामिन् ! किसप्रकार मरनेसे मनुष्योंको दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, और हे विभो ! उन २ देहोंमें किस २ दुःखकी प्राप्ति होतीहै ॥४५॥ ब्राह्मण बोला–जिसप्रकारके मरणसे मनुष्योंकी दुर्गति होनेके विषयमें जो तूने प्रश्न किया उसे सुन हे कावेरी ! मैं तुमसे वर्णन करताहूं ॥ ४६ ॥ जिसका मरण विष भक्षण करनेसे हुआहो, जिसे सर्पने डसाहो, जो वृक्ष आदिसे गिरकर अथवा जलमें डूबकर मराहो ॥ ४७ ॥ आत्मघात करने अथवा अग्निसे किंवा सिंह आदिके द्वारा जिसकी मृत्यु होतीहैं, वोह मनुष्य पिशाच होजाताहै ॥ ४८ ॥ पिशाच योनिमें उत्पन्न होकर उसे अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, भूख प्याससे वोह मनुष्य नित्यही पीड़ित रहताहै ॥४९॥ उसका उदर कूपकी समान, क्षुधा दावानलकी समान और कंठ उनका सूईके रन्ध्रकी समान होजाताहै ॥५०॥ जहां श्रीरामकथाका गान होताहै, वे लोग सदैव भयाकुल रहनेके कारण वहां नहीं जाते हैं॥५१॥जहां सरिद्वरा गंगाजी हैं, जहां ब्रह्मणोंका पूजन होताहै, हे विप्र!जहां वेदज्ञ ब्राह्मण रहते और वेदपाठ होता हैं॥५२॥जहां पुराणोंका श्रवण और सदा-

ज्यन्ते स्नातकाश्च मम प्रिये ॥ ५३ ॥ तत्र तत्र न गच्छंति यत्र रामपरायणाः ॥ भुंजंति नो यत्र विप्रा परदाररतास्तथा ॥ ॥ ५४ ॥ शिवस्य केशवस्यापि भेदकांधकतत्पराः ॥ तेषां गृहं श्मशानं हि बोद्धव्यं प्रियवादिनि ॥ ५५ ॥ तत्र भुंजंति वै प्रेता उच्छिष्टं यत्र वर्तते ॥ विप्राणां निंदका यत्र यत्र पैशून्यकारकाः ॥ ५६ ॥ यत्र रामकथा नास्ति विप्राणां न च पूजनम् ॥ अब्रह्मचारिणो यत्र रामभक्तिपराङ्मुखाः ॥५७॥ येषां गृहे नातिथयः पूज्यंते गृहवासिनाम्॥ गवां ग्रासो यत्र नास्ति तत्र भुंजंति नित्यशः ॥ ५८ ॥ इति दुःखतरं तेषामात्मघातेन तत्पराः ॥ ये वै दुर्गतिसंप्राप्ता नरके च वसंति ते ॥ ५९ ॥ तस्मात्सुंदरि नो कार्य्यं आत्मघातस्तथैव च ॥ न मृता आवयोः पुत्राः स्वसंबंधिन एव ते ॥ ६० ॥ स्कंद उवाच ॥ तयोरिति कथयतोः प्रातर्वै समजायत ॥ पुनस्तौ मुनिशार्दूल जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ६१ ॥ गच्छतस्त्वरया तस्य हेतुर्बालस्य नारद ॥ पतितं भूषणं मार्गे ताभ्यां प्राप्तं मुनीश्वर

शिवका पूजन होताहै, जहां गौ और वेदपाठियोंका पूजन होता है॥५३॥ वहां और जहां रामभक्त रहतेहैं वहांभी वे लोग नहीं जातेहैं। जिनघरोंमें ब्राह्मण भोजन नहीं होता, जहां परस्त्रीगामी रहते हैं॥५४॥ और जहां महादेव तथा विष्णुभगवान्में भेद प्रतिपादन करनेवाले व्यक्ति रहतेहैं, हे प्रियंवादिनि! उनलोगोंके घर श्मशानतुल्य समझने चाहिये ॥ ५५ ॥ जहां उच्छिष्ट रहताहै वहां प्रेत भोजन करतेहैं, जहां ब्राह्मणोंके निन्दक अथवा पिशुन लोग रहते हैं ॥ ५६ ॥ जहां रामकथा और ब्राह्मणपूजन नहीं होता, अथवा जहां रामभक्तिसे पराङ्मुख और ब्रह्मचर्य्यशून्य पुरुष निवास करतेहैं ॥ ५७ ॥ तथा जिन गृहस्थियोंके घर अतिथियोंका पूजन नहीं होता, और जिनघरोंमें गोग्रास नहीं निकालेजाते प्रेत वहांही नित्य भोजन करतेहैं ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य आत्मघात करनेमें तत्परहैं उन्हें येही अतिशय दुःख प्राप्त होते हैं, जो दुर्गतिसे मरतेहैं उन्हें इसीप्रकार नरकमें पचना पड़ताहै ॥ ५९ ॥ इसकारण हे सुन्दरि ! आत्मघात करना कर्त्तव्य नहीं है, और वे हमारे पुत्र नहीं मरे किन्तु कोई हमारे संबन्धी थे ॥ ६० ॥ स्कन्दजी बोले—उन दोनोंके इसप्रकार कहते २ ही प्रभात काल होगया, हे मुनिशार्दूल ! तब वे फिर उत्तर दिशाकी ओर चलदिये ॥ ६१ ॥ हे नारद ! मार्गमें किसीका आभूषण गिरगया, हे मुनीश्वर ! वोह आभूषण उन्हें

॥६२॥ दारिद्याविष्टमनसौ क्षुधितौ तृषितौ च तौ॥तथैव ममता-
विष्टौ जह्रतुरिदमत्तमम्॥६३॥ ततः कथंचिन्नगरं प्राप्तौ वै द्विजदं-
पती॥तत्रापि तौ मुनिश्रेष्ठौ दशां कष्टामवापतुः ॥ ६४ ॥ ॥ नारद
उवाच॥स वै विप्रो महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥विष्णोश्च पूजने
सक्तो व्यसनं कथमाप्तवान्॥६५॥कथं वै पुत्रमरणं नष्टं चैव सुखं
धनम् ॥एतं मे संशयं स्कंद यथावच्छेतुमर्हसि ॥ ६६ ॥ स्कंद
उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कृतं तेन तु यत्पुरा॥ सोभवद्द्वि-
जशार्दूल पुरा जन्मनि क्षत्रियः ॥ ६७॥ उग्रदंड इति ख्यातो
राजा शत्रुविमर्दनः ॥ कावेरी द्विजशुश्रूषा नाम्नासीद्ब्रह्मनंदनः
॥ ६८ ॥ तपस्वी ज्ञानिनां श्रेष्ठः शिवभक्तिपरायणः ॥ द्विजशु-
श्रूषा च तथा पतिभक्तिपरायणा ॥ ६९ ॥ चक्रतुः कतिचिद्वर्षं
ततो ब्राह्मणजन्मनि ॥ ताभ्यां च पूजिता विप्रा दानसंमानभो-
जनैः ॥ ७० ॥ पालयामास संप्राप्य राज्यं पुत्रानिवौरसान् ॥

प्राप्त हुआ ॥ ६२ ॥ क्योंकि दरिद्रताके कारण वे अतिशय भूखे और प्यासे थे अथ च उन्हें ममत्वभी विशेष था, अतएव उन्होंने उत्तम आभूषणको अपहरण करलिया ॥ ६३ ॥ हे द्विज ! तदनन्तर वे दम्पति जैसे तैसे एक नगरमें आयकें प्राप्र हुए, परन्तु हे मुनिराज ! वहांभी उन्हें कष्टही प्राप्त होता रहा ॥ ६४ ॥ नारदजी बोले—वोह ब्राह्मण सर्वशास्त्र विशारद अतएव अतिशय बुद्धिमान था, एवं च वोह विष्णुभगवानका पूजन करनेमेंभी तत्पर था, तौ फिर उसे क्लेशकी प्राप्ति क्यों हुई ॥ ६५ ॥ उसके पुत्र कैसे मरे, उसके सुख और धनका विनाश कैसे होगया, हे स्कन्द ! मेरे इस सन्देहको आप यथा विधि दूर करिये ॥ ६६ ॥ स्कन्दजी बोले—सुनो नारदजी ! उसने प्रथम जो कुछ किया था उसका वर्णन करते हैं, हे द्विजशार्दूल ! वोह पहिले जन्ममें क्षत्रिय था ॥ ६७ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेवाला उग्रदण्ड नामका राजाथा, और हे द्विजनन्दन ! कावेरीका द्विजशुश्रूषा नाम था ॥ ६८ ॥ वोह राजा तपस्वी, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, एवं शिवभक्तिमें परायण था, इधर वोह द्विजशुश्रूषाभी पतिभक्तिमें तत्पर रहतीथी ॥ ६९ ॥ इसप्रकार कुछ काल-पर्य्यन्त उन्होंने सदाचरण किया, इसके अनन्तर ब्राह्मण जातिमें उनका जन्म हुआ, एवं दान सन्मान और भोजनके द्वारा उन दोनोंने ब्राह्मणोंको खूब सन्तुष्ट किया ॥ ७० ॥ राज्य पाकरभी

प्रजाः वै कस्य चिद्विप्र नो वै दुःखमजानतः ॥ ७१ ॥ एकदा मुनिशार्दूल दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥ आगतो भोजनं कर्तुं तस्य गेहे हि नारद ॥७२॥ भोजनं कर्तुमुद्युक्तो दुर्वासा मुनिराट् ततः॥ तेनापि भोजनं दत्तं याचितं तेन यत्तथा ॥ ७३ ॥ भोजनं कुर्वतस्तस्य भोज्ये केशो व्यदृश्यत ॥ तं केशं पतितं दृष्ट्वा शशाप मुनिसत्तमः ॥७४॥ उन्मत्तेन त्वया राजन् यद्दत्तं केशदूषितम् ॥ भोजनं तेन भविता पुत्रशोकश्च निर्धनः ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ भो भो मुनिगणश्रेष्ठ शापं वै दत्तवानसि ॥ मां चापराधरहितं सहसा त्वं कथं मुने ॥ ७६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं मुनिं राजा ववंदे चरणौ मुनेः॥तुतोष स्तुतिपाठैश्च नतिभिर्मुनिनायकः॥ ॥७७॥ दुर्वासा उवाच॥अज्ञात्वा ते मया दत्तः शापः परमकोपिना ॥ अमोघो मम शापोयं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ ७८ ॥ शापस्यांतोपि भविता तत्रैव नरपुंगव ॥ ७९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठो जगाम भवनं स्वकम् ॥ सोपि राजोग्रदं-

वोह औरसपुत्रकी भांति प्रजाका पालन करताथा, उस समय प्रजामें किसीकोभी कोई दुःख नहीं था ॥ ७१ ॥ हे मुनिशार्दूल ! एक समय दुर्वासामुनीश्वर भोजन करनेके लिये उसके घर आये ॥ ७२ ॥ और वे मुनिराज दुर्वासा भोजन करनेको उद्यत हुए, और उन्होंने जो कुछ भी मांगा उसने वोही भोजन दिया ॥ ७३ ॥ उन्हें भोजनकरते २ भोज्यपदार्थमें केश दृष्टिगोचर होगया, भोजनमें बाल पड़ा देख मुनीश्वरने उसे शाप देदिया ॥ ७४ ॥ चूंकि हे राजन् ! तुमने उन्मत्त होकर केशदूषित भोजन हमें दिया इसकारण तुम्हें पुत्रशोक होगा और तुम निर्धन भी होओगे ॥ ७५ ॥ राजा बोला—हे मुनीश्वरोंमें श्रेष्ठ ! आपने जो मुझे शापदिया है, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है तौ फिर आपने इतनी शीघ्रता क्यों करी ॥ ७६ ॥ स्कन्दजी बोले—मुनिके प्रति इसप्रकार सम्भाषण कर राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम किया एवं स्तुतिपाठ और प्रणाम आदिके द्वारा महर्षिको सन्तुष्ट किया ॥ ७७ ॥ दुर्वासाजी बोले—मुझ अतिक्रोधीने विना समझेही तुम्हें शाप दिया, पर तथापि हमारा शाप दूसरे जन्ममें सफल होगा ॥ ७८ ॥ और हे नरपुंगव ! उसी समय शापका अन्तभी होजायगा ॥ ७९ ॥ स्कन्दजी बोले—मुनीश्वर यौं कहकर अपने स्थानको चलेगये, इधर शापितहुए उग्रदण्ड राजा और उसकी श्रेष्ठ स्त्री समय पाय

डश्च शापितश्च वरांगना ॥ कालेन निधनं प्राप्तौ ब्राह्मण्यमुपजग्मतुः ॥ ८० ॥ निर्द्धनं त्वं हि ताभ्यां हि पुत्रशोकस्तथैव च ॥ अन्यच्च बहुशो दुःखं प्रापतुर्द्विजदंपती ॥ ८१ ॥ गत्वा वै तत्र नगरे संध्याकाले व्यजायत ॥ ततो वै तत्र नगरे केन चिद्विप्रबालकः ॥ हतो भूषणलोभेन समायाताश्च किंकराः ॥ ८२ ॥ दुष्टं भाग्यं समायाति यदा वै मुनिपुंगव ॥ पुंसस्तदा सर्वगुणा विह्वलास्तु भवंति हि ॥ ८३ ॥ राजापि तस्य देशस्य मारयामास तौ नहि ॥ विप्रस्त्रीपातकभयात्क्षिप्तौ कारागृहे मुने ॥ ८४ ॥ तत्रापि दुःखसंभ्रांतमानसौ द्विजदंपती ॥ स्थितवंतौ यथाकालं शापाद्दुर्वाससस्तु तौ ॥ ८५ ॥ कथंचित्त्वथ काले तु निर्गते मुनिसत्तम ॥ पुत्रोभूत्तस्य देशस्य राज्ञस्तौ मुमुचे तदा ॥ ८६ ॥ मुक्तौ तौ तेन राज्ञा वै जग्मतुर्देशमन्यकम् ॥ ततोपि च वनं प्राप्तौ मध्याह्ने मासि ज्येष्ठके ॥ ८७ ॥ तृषाविष्टा बभूवाथ कावेरी तस्य चांगना ॥ तस्यै जलं समादातुं जगाम गहनं वनम् ॥ ८८ ॥ ययौ पश्चात्त कावेरी भयार्ता मनिसत्तम ॥ अन्ये देशे

इन दोनोंहीका मरण होगया, और फिर वे ब्राह्मण हुए ॥ ८० ॥ इसी कारण उन दोनोंको पुत्रशोक और निर्धनताकी प्राप्ति हुई, और भी बहुतसे दुःख उन दम्पतीको प्राप्त हुए ॥ ८१ ॥ एकसमय चलते २ एक नगरमें उन्हें सन्ध्या समय होगया, तब वहां उस नगरमें किसीने आभूषणके लोभसे एक बालकको मारडाला था, इतनेहीमें वहां राजाके सेवक आये ॥ ८२ ॥ हे मुनिपुंगव ! जब भाग्य बिगड जाताहै तब मनुष्योंके सबही गुण लुप्त होजाते हैं ॥ ८३ ॥ उस देशके राजाने ब्राह्मण और स्त्रीका वध करनेके पापसे डरकर उन दोनोंको मारा नहीं, किन्तु-कारागारमें भेजदिया ॥ ८४ ॥ वहांभी उन द्विजदम्पतीका चित्त दुःखके मारे बडा व्यग्र रहा, दुर्वासाके शापवशात् वे दोनों कुछ कालपर्य्यन्त वहां रहे ॥ ८५ ॥ हे मुनि सत्तम ! कुछ समय व्यतीत होनेपर उस देशके राजाके पुत्रका जन्म हुआ, तब राजाने उन्हें छोड दिया ॥ ८६ ॥ उस राजासे छूटकर वे अन्य देशमे चलेगये, और ज्येष्ठ मासमें मध्याह्न समय किसी वनमें पहुँचे ॥ ॥ ८७ ॥ उस समय उसकी कावेरीनाम पत्नी तृषा (प्यास) से व्याकुल होगई, तब वोह द्विज उसके तईं जल लेनेको गहन वनमें गया ॥ ८८ ॥ हे मुनि सत्तम । भयभीत हो वोह का-

जगामाथ तस्य मार्गमजानती ॥ ८९ ॥ पतिमन्वेषयंत्यास्तु वने रात्रिः प्रवर्त्तते ॥ संचचार वने रात्रौ कावेरी भयसंकुला ॥ ९० ॥ रुदंती प्रतपन्ती सा तु पतिमार्गमजानती ॥ वने वने संचरंती झिल्लीझंकारनादिते ॥ ९१ ॥ हा नाथ नाथ नाथेति क्व गच्छामि त्वया विना ॥ शुशोच बहुशो विप्र कुररी कुररं यथा ॥ ९२ ॥ अंधकारे चरंती सा मार्गं चैवाविजानती ॥ पपात सहसा कूपे न ममार च कर्मतः ॥ ९३ ॥ सो पि ब्राह्मणदीनश्च घनानंदो हि भूसुरः ॥ जलं चानयि तत्रैवागतो ददर्श नो प्रियाम् ॥ ९४ ॥ हे प्रिये क्व गतासि त्वमित्युवाच पुनः पुनः ॥ बहुसंविग्नहृदयो घनानंदो बभूव ह ॥९५॥ विलप्य बहुशस्तत्र वने रात्रिः प्रवर्त्तत॥ भयाविष्टमना भूत्वा लेभे नैव कदाचन ॥ ९६ ॥ शनैः शनैराजगाम विवस्त्रक्षुधितेपि सन् ॥ देव प्रयागके क्षेत्रे पुण्ये मुनिगणान्विते ॥९७॥ तत्र गत्वा स विप्रेन्द्रो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ पूजनं तस्य कृत्वा वै भक्त्या च परया युतः ॥ ९८॥

वेरीभी उसके पीछे २ ही चलदी और वहांके मार्गको न जानकर अन्यत्रही चलीगई ॥ ८९॥ पतिका अन्वेषण करते २ ही रात्रि होगई, तबतो भयभीत हो कावेरी वनमें रात्रिके समय विचरने लगी ॥ ९० ॥ पतिके मार्गको न जानती हुई कावेरी झिल्लियोंके शब्दसे पूर्ण हुए उस वनमें गिरती फिरती थी ॥९१॥ हाय नाथ मैं तुम्हारे विना कहां जाऊं ? यौं कहकर वोह बहुतभांतिसे विलाप करनेलगी जैसे कुररी कुररके लिये रोती है॥९२॥चूंकि वोह मार्ग नहीं जानती थी, इसलिये विचरती २ सहसा अन्धकूपमें गिरपडी, पर कर्मवशात् मृतक न हुई ॥ ९३ ॥ फिर वोह घनानन्द दीन ब्राह्मण जब जल लेकर वहां आया तौ उसे प्रिया न दीखी ॥ ९४ ॥ तब तो वोह वारंवार या कहने लगा कि–हाय प्यारी ! तू कहां गई ! विशेष क्या घनानंद अपने चित्तमें बहुतही घबराया ॥ ९५ ॥ वनमें भांति २ से रोते २ हीं रात्रि होगई, और मनमें भयभीत होनेके कारण उसे सुख न मिला ॥ ९६ ॥ वस्त्रहीन वोह भूखा प्यासा ब्राह्मण शनैः शनैः मुनिगणसेवित अतएव पुण्यतम देवप्रयागमें आया ॥ ९७ ॥ यहां आय इस द्विजराजने परम भक्तिभाव पूर्वक रामलक्ष्मणकी पूजा करी ॥ ९८ ॥ फिर ब्रह्मकुण्डमें यथाविधि स्नानकर वशिष्ठकुण्डमें भी

जगाम ब्रह्मकुंडे तु स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ वशिष्ठप्रवरे कुंडे स्नातवान् द्विजसत्तमः ॥ ९९ ॥ मासमेकं तत्र कुंडे गंगायां नित्यमेवहि ॥ स्नानं च विधिवच्चक्रे पजनं माधवस्य हि ॥ ॥ १०० ॥ समुद्धर गदाहस्त चक्रपाणे महेश्वर ॥ संसारार्णवतो मां हि तथा वै दुःखसागरात् ॥ १०१ इत्येवं कथयन्नेव चक्रे माधवपूजनम् ॥ मासैकस्मिन् प्रजाते तु स वै ब्राह्मणसत्तमः ॥ यथा शक्त्या हि विप्रांश्च भोजयामास वै द्विजः ॥१०२॥ रामस्य पूजनं कृत्वा जगाम स्वगृहं ततः ॥तस्मिन्वने समायातो यत्रायं च वियोगमम् ॥ १०३ ॥ शुश्राव वचनं तस्मात् स्त्रीकृतं करुणाध्वनिम् ॥ ध्वनौ तु श्रूयमाणायां संचचार वने तदा ॥ ॥ १०४ ॥ शब्दानुसारं हे ब्रह्मन् ययौ यत्र च वै ध्वनिः ॥ स तां ददर्शांधकूपे पतितां स्त्रियमेकलाम् ॥१०५॥ पप्रच्छ का त्वं शुभगे कथं त्वं पतितात्र वै ॥ किमर्थं रोदसे भद्रे कुत्र ते नायको गतः ॥ १०६ ॥ यक्षी वा किन्नरी वा त्वं राक्षसी देवकन्यका ॥ किमर्थमागतासि त्वं वने राक्षससेविते॥१०७॥सत्यं वद महाभागे यत्ते मनसि वर्तते ॥ १०८ ॥ कावेर्युवाच ॥ कस्त्वं पुरुषशा-

उस द्विजेन्द्रने स्नान किया ॥ ९९ ॥ एकमासपर्य्यन्त उक्त कुण्डमें और गंगाजीमें नित्यही स्नान करके उस ब्राह्मणने माधव भगवान्का पूजन किया ॥ १०० ॥ हे गदाधर ! हे चक्रपाणि महेश्वर !!! संसारसागररूप दुःखसागरसे मेरा उद्धार करिये ॥ १ ॥ इस प्रकार कथन करते २ उसने भगवान् माधवका पूजन किया इस विधिसे एक मास अतिक्रान्त होजानेपर इस ब्राह्मणने यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ २ ॥ फिर श्रीरामका पूजन कर वोह अपने घरको चलागया, तौ फिर उसी वनमें पहुँचा जहां इसका वियोग होगयाथा ॥ ३ ॥ वहां इसने स्त्रीकी करुणापूरित ध्वनि श्रवण करी, और जब ध्वनि श्रवण गोचर हुई तो यह वनमें चारों ओर विचरनेलगा ॥ ४ ॥ फिर हे ब्रह्मन् । शब्दके अनुसारही यह वहां पहुँचा जहांसे ध्वनि आरहीथी, तब इसने अन्धकूपमें पडी हुई एक स्त्री को देखा ॥ १०५ ॥ तब यह पूछने लगा, हे सुभगे ! तू कौन है ? कूपमें कैसे गिरपडी ? हे सुभद्रे ! तू रोती क्यों है ? और तेरा स्वामी कहां चलागया ॥ ६ ॥ तू यक्षी, किन्नरी, राक्षसी अथवा देवकन्या इनमेंसे कौन है ? और राक्षसोंसे आकीर्ण हुए इस वन में तू क्यों आई है ॥ ७ ॥ हे महाभागे ! तेरे मनमें जो कुछ हो सो सब वर्णन कर ॥ ८ ॥ कांवेरी बोली—हे पुरुष शार्दूल ! आप कौन हैं, जो मुझ दुखियाके दुःखको पूछ रहे हैं ? सुतराम्

दूल यो मां दुःखसमन्विताम् ॥ परिपृच्छसि मे दुःखं धन्योसि भुवने तथा ॥ ९ ॥ अहं तु ब्राह्मणी जात्या कावेरी मम नामकम् ॥ भर्ता मम घनानंदः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ११० ॥ धनैः पुत्रैस्तथायुक्तो वाराणस्यामभूत्किल॥ततः कालेन महता धनं सर्वं क्षयं गतम्॥ ११॥पुत्राश्च निधनं प्राप्ता वने राक्षसभक्षिताः॥ आवां चैव तथा मिथ्याभिशापात्कष्टमागतौ ॥ १२ ॥ ततो द्वावागता यत्र कथंचिन्निर्जने वने ॥ अभाग्याहं तदा धन्याभूस्तृषार्त्ता तथा तदा ॥ १३॥ मम भर्ता महाभाग जलमानेतुमुद्यतः ॥ ततोग्रे तु घनानंदो भयार्ताहं तदा किल ॥ १४ ॥ पृष्ठतोहं तथा लग्ना भर्त्तारं नैव पश्यती ॥ मार्गं त्यक्त्वा गतान्यत्र सोप्यन्यत्र गतः प्रभुः॥ ११५॥ तदात्र संचरंत्या वै वने रात्रिः प्रपद्यत ॥ तदांधकूपे पतिता अस्मिन्मार्गं न जानती ॥ १६॥ तदावधि महाभाग वसाम्यत्रैव दुःखकैः ॥ यो वृक्षो वर्तते चास्मिन् सर्वतो भ्रमराः स्थिताः ॥ १७॥ तेषां तु भ्रमराणां तु नित्यं पतितकूपके

आपको त्रिभुवनमें धन्य है ॥ ९ ॥ मैं जातिकी ब्राह्मणी हूं और कावेरी मेरा नाम है, अथ च सर्व शास्त्र विशारद घनानंद हमारे पति हैं ॥ ११० ॥ हमारे पति काशीमें हुए थे, उनका धन- पुत्रों से परित्याग होगया, अथ च कुछ काल अतिक्रान्त होनेपर सबही धनका क्षय होगया ॥ ११ ॥ पुत्रोंकीभी मृत्यु होगई कारण कि, राक्षसोंने उन्हें भक्षणकर लिया, एवं च हम दोनोंभी: मिथ्याभिशाप लग जानेके कारण अत्यन्त क्लेशित हुए हैं ॥१२॥ तब हम दोनों ज्यों त्यों कर निर्जन वनमें चले आये, अभाग्यवशात् वहांभी मुझे तृषाने सताया ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! तब हमारे पति जल लानेके लिये गये उस समय घनानन्दके चले जानेपर मैं भयसे व्याकुल होगई ॥१४॥ सुतराम् मैंभी पतिके पीछे २ लगी चली गई, किन्तु हमारे प्राण पति हमारी दृष्टिके अगोचर होगये, उस समय हमारे पति अन्यमार्गमें चलेगये और मैं अन्यत्रही चलीगई ॥ ११५ ॥ तब मुझे बनमें विचरते २ ही रात्रि होगई, चूंकि मैं मार्ग तौ जानतीही न थी सुतराम् कूपमें निपतित होगई ॥ ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! उसी दिनसे मैं इस कूपमें दुःखसे निवास करती हूं, और यह जो वृक्ष विद्यमान है उसके ऊपर भ्रमर चारों ओर भ्रमण करते हैं ॥ १७ ॥ और उन भ्रमरोंका जो मधु

मधु भुक्त्वा तु जीवामि बद्धाहं पूर्वकर्मणा ॥ १८ ॥ कुत्रचिद्वै त्वया दृष्टो घनानंदोहि भूसुरः ॥ शीघ्रं वद महाभाग यदि जानासि जीवय ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अहं हि तव भर्त्तास्मि घनानंदो धरासुरः ॥ त्वद्वियोगात्प्रिये कांते कष्टं जीवामि सुंदरि ॥ १२० ॥ त्वंद्वियोगाद्धि संभ्रांतो गतो देवप्रयागके ॥ तीर्थे तीर्थगणाधीशे रामं राजीवलोचनम् ॥ २१ ॥ दृष्टवानस्मि तत्रैव पूजयित्वा यथाविधिः ॥ तपो वै कृतवान्कुंडे देवि वाशिष्ठ-संज्ञके ॥ २२ ॥ मासमेकं व्रतं कृत्वा निराहारो जितेंद्रियः ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाहं यथाशक्त्यागतस्ततः ॥ २३ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कावेरी विस्मिताऽभवत् ॥ पुनः पुनर्दृष्टवती मुखं तस्य महात्मनः ॥ २४ ॥ रहस्यमात्मनश्चैव पृष्ट्वा बुद्ध्वा च तं पतिम्॥आत्मानं सततं विप्रममन्ये विप्रसुंदरी ॥ १२५ ॥ लताभिर्दृढबद्धाभिः कूपान्निष्कास्य यत्नतः॥ जगाम नगरे तत्र बभूव यत्र बंधनम् ॥ २६॥ तेनापि राजा प्राप्तो वै चौरो

निपतित होता है उसीको भक्षणकर पूर्वकर्मानुसार मैं जीवित रहतीहूं ॥ १८ ॥ हे भूसुर ! आपने कहीं घनानन्दको देखाहै, हे महाभाग ! यदि आप जानते हो तो मुझे बताके शीघ्रही जीवदान दीजिये ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोला—हे प्रिये ! तुम्हारा पति घनानन्द ब्राह्मण मैं ही हूं हे मनोज्ञे सुन्दरि ! तुमसे वियुक्त होनेके कारण बडे कष्टसे जीताहूं ॥ १२० ॥ अपनी प्रियाके वियोगसे उद्भ्रान्त होकर मैं देवप्रयागसें चलागया, उस तीर्थराज देवप्रयागतीर्थमें कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीमहाराजके ॥ २१ ॥ दर्शन कर यथाविधि उनकी पूजा करी, और वशिष्ठकुण्डके ऊपर तपका आचरण किया ॥२२॥ इन्द्रिय दमन पूर्वक निराहार रहकर मैंने वहां एक मासपर्यन्त व्रतका आचरण कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराया, तब मैं यहां आयाहूं ॥ २३ ॥ स्कन्दजी बोले—उस ब्राह्मणके ऐसे वचन सुन कावेरी अत्यन्त विस्मित हुई, अतएव वारंवार उसमहात्माके मुखका अवलोकन करने लगी ॥ २४ ॥ अथ च अपनी गुप्त वातोंको पूछकर उसने उसे पहिचान लिया कि, यह मेरा पतिहै, हे विप्र ! तब कावेरीको यह निश्चय होगया कि—मैं इसी ब्राह्मणकी पत्नीहूं ॥ १२५ ॥ तब उक्त ब्राह्मणने उसे दृढबन्धनवाली लताओंसे उसे निकाला, फिर वोह उसे लेकर उस नगरमें गया जहां इन दोनोंका बन्धन हुआथा ॥ २६॥ उधर उस राजाकोभी बालकका मारनेवाला चोर प्राप्त होगयाथा, और उस चोरको राजाने मारडाला,

बालकघातकः ॥ तं चौरं मारयित्वा तु राजा खेदमकुर्वत॥२७॥ पापोहं पापकर्ताहं मित्युवाच पुनः पुनः॥वृथा येन मया दत्तं दुःखं निरपराधिने ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाय सुशांताय मे गतिःका भविष्यति ॥ इति चिंतयतस्तस्य अग्रे ब्राह्मण आगतः ॥२९॥ अग्रे तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा जातवान्सपदि प्रभुः ॥ तयोश्च द्विजदंपत्योर्जग्राह चरणौ नृपः ॥ १३० ॥ ननाम शिरसा भूमौ वारंवारं तदग्रतः ॥ पप्रच्छ पूर्ववृत्तांतं यद्यज्जातं तयोः पृथक् ॥ ३१ ॥ कथयामासतुर्विप्र स्ववृत्तांतं यथाभवत् ॥ श्रुत्वा वृत्तांतकं राजा यदुक्तं मुनिवंदितः ॥ ३२ ॥ खेदं प्राप्य ददौ ताभ्यां विविधानि धनानि च ॥ वासांसि तु विचित्राणि स्वर्णसूत्रमयानि च ॥ ॥ ३३ ॥इदं गेहसमं गेहं गाश्चैव पर्यलंकृताः ॥ तस्मिन्नेव तु नगरे वासं चक्रे महामतिः ॥ ३४ ॥ दंपत्योर्वसतोस्तत्र बभूवुः पंच पुत्रकाः ॥ भृत्याश्च मित्रवर्गाश्च तथैवासन् यथा पुरा ॥ ॥ ३५ ॥ जगाम नगरे विप्रः स्वके राज्ञाभिनंदितः ॥ गत्वा वा-

फिर उसे बड़ा खेद हुआ ॥ २७ ॥ मैं पापकर्त्ता अतएव स्वयम् पापस्वरूप हूं वारंवार यौं कह-कर पश्चात्ताप करनेलगा कि, मैंने निरपराधीको वृथाही दुःख दिया ॥ २८ ॥ अर्थात् मैंने शान्त ब्राह्मणको दुःख दिया, हाय मेरी क्या गति होगी, राजाके ऐसे शोचते २ ही अगाड़ी ब्राह्मणभी आन पहुंचा ॥ २९ ॥ ब्राह्मणको देखतेही राजाने उसे तत्काल पहिचान लिया, और उन द्विज-दंपतीके चरणोंको राजाने पकड़लिया ॥ १३० ॥ और राजाने वारंवार उनके अगाड़ी शिरसे प्रणाम किया, और उनका पृथक् २ जो वृत्तान्त था राजा उसे पूछने लगे ॥ ३१ ॥ हे विप्र ! तब वे दोनों उस वृत्तान्तका वर्णन करनेलगे जैसा कि, प्रथम हुआथा, हे महर्षिपूजित ! उनके यथोक्त वृत्तान्तको सुनकर ॥ ३२ ॥ राजाने खेदित हो उनदोनोंको विविध भांतिका धन और कलावत्तूनी-कामके विचित्र वस्त्र प्रदान करे ॥ ३३ ॥ इन्द्रभवनकी समान घर और विविधभां-तिसे समलंकृत गौभी उन दोनोंको राजाने दी ! तब वोह महामतिमान् उसी नगरमें निवास करनेलगा ॥ ३४ ॥ वहां निवास करते २ उन स्त्री पुरुषोंके पांच पुत्र उत्पन्न हुए, सेवक और मित्रवर्गभी सब पहिले की भांति होगये ॥ १३५ ॥ इसके अनन्तर राजासे अभिनन्दित हो यह ब्राह्मण अपने नगरमें गया, हे मुनीश्वर ! वाराणसीपुरीमें जाकर वोह देवताओंकी समान आन-

राणसीपुर्य्यां ननंदे देववन्मुने ॥ ३६ ॥ सोपि राजा विष्णुपुरे जगाम मुनिसत्तम ॥ घनानंदस्य संगत्या तस्थौ वै धनदानता ॥ ३७ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति वाशिष्ठकुंडस्य माहात्म्याद्विजसत्तमः ॥ भ्रष्टजाता तथा लक्ष्मीपुत्राश्च मुनिसत्तम ॥ ॥ ३८ ॥ घनानंदस्य चरितं यः शृणोति सदा नरः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि सोपि विष्णुपुरे वसेत् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा वाशिष्ठतीर्थस्य माहात्म्यं शुभदायकम् ॥ आश्चर्यं परमं लेभे पुनः पप्रच्छ नारदः ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देवप्रयाग माहात्म्यवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

भोगने लगा ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम ! घनानन्दकी संगति और उसे धन प्रदान करनेके कारण उस राजाकोभी विष्णुलोकमें निवास प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ स्कन्दजी बोले–हे द्विजसत्तम ! वशिष्ठ कुण्डका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, उसीके प्रतापसे उक्त ब्राह्मणको नष्ट हुई लक्ष्मी फिर प्राप्त होगई ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य घनानन्दके चरितको श्रवण करताहै, जो पढता अथवा पढ़ाता है वोह भी विष्णुपुरमें निवास करता है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले– वशिष्ठतीर्थके शुभदायक माहात्म्यको सुनकर नारदजीको परमआश्चर्य्य हुआ अतएव वे फिरभी पूछने लगे ॥ १४० ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५३.

नारद उवाच ॥ भगवन्पार्वतीपुत्र सर्वशास्त्रविशारद ॥ तृप्तिर्न जायते पायंपायं तव वचोमृतम् ॥ १ ॥ श्रुतं वाशिष्ठमाहात्म्यं ब्रह्मकुंडं तथैव च ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि गंगायास्तट उत्तरे ॥ २ ॥ याम्ये चैव महाभाग तीर्थानि कथितानि हि ॥ तषां विस्तरतो ब्रूह्युत्पत्तिं च भगवन् प्रभो ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधु साधु

नारदजी बोल–हे सर्वशास्त्रविशारद भगवान् पार्वती कुमार ! ! ! आपके वचन रूप अमृतका पान करते २ मेरी तृप्ति नहीं होतीहै ॥ १ ॥ वसिष्ठकुण्ड और ब्रह्मकुण्डका माहात्म्य मैंने सुना, अब मैं यह सुनना चाहताहूं कि–गंगाजीके उत्तरी तटपर ॥ २ ॥ और दक्षिणी तटपरभी हे महाभाग ! आपने जितने तीर्थ वर्णन किये हैं, हे भगवन् ! उनकी उत्पत्तिको विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले–हे निष्पाप ! मुनिराज ! आपको बारबार धन्य है जो आपने ऐसा प्रश्न हमसे

मनिश्रेष्ठ यत्पृष्टोस्मि त्वयानघ ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना मुने ॥ ४ ॥ शिवतीर्थं तु यत् ख्यातं गंगायास्तटउत्तरे ॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं प्रथमं शृणु वक्ष्यते ॥ ५ ॥ दशरथाचलतो या वै आयाति सरिदुत्तमा ॥ शांता नाम्नी तु सा ज्ञेया सर्वकामफलप्रदा ॥ ६ ॥ गंगायाः संगमो यत्र तत्तीर्थं शिवनामकम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेंद्र कृतं तत्सर्वमक्षयम् ॥ ॥ ७ ॥ तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेन्द्र वसंति सर्वदेवताः ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ ८ ॥ संगमे मुनिशार्दूल शांता जह्नुजयोस्तथा ॥ शिवस्य पूजनं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ यत्र रामः शिवस्तत्र न भेदः शिवरामयोः ॥ भेदज्ञाता महाभाग रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १० ॥ तस्मान्नारद नो भेदः कर्तव्यः शिवरामयोः ॥ शिवस्य पूजनं कृत्वा रामस्तुष्यति सानुजः ॥ ११ ॥ रामस्य पूजनं कृत्वा शिवस्तुष्यति सांबिकः ॥ तावुभौ परमौ भक्तौ ज्ञेयौ तौ च पर-

किया है, अब हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं तुम चित्तको एकाग्रकरके श्रवण करो ॥ ४ ॥ गंगाजीके उत्तरी तटपर शिवतीर्थके नामसे जो तीर्थ प्रसिद्ध है, प्रथम उसीकी उत्पत्ति और माहात्म्यका वर्णन कियाजाताहै; उसे सुनिये ॥ ५ ॥ दशरथाचल (पर्वत)के ऊपरसे शान्ता नामकी जो महानदी आती है. उसे समस्त कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली जानना चाहिये ॥ ६ ॥ जिस स्थानमें शान्ता और गंगाजीका संगम हुआ हैं, वोह स्थान शिवतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है, हे द्विजराज ! उस तीर्थमें जो कुछभी कर्मकिया जाताहै वोह सब अक्षय होताहै ॥ ७ ॥ और हे द्विजराज ! उस तीर्थमें देवताभी सबही निवास करतेहैं, सुतराम् इसतीर्थका माहात्म्य वर्णन करनेके लिये किसकी शक्ति अलम् हो सक्ती है ॥ ८ ॥ हे मुनिशार्दूल ! जहां शान्ता और गंगाजीका संगम हुआहै, उसस्थानमें महादेवजीकी पूजा करनेसे समस्त कामनाओंका फल प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ और जहां रामहै वहांही शिवहै, शिव और राममें कोई भेद नहीं हैं, सुतराम् हे महाभाग ! इन दोनोंमें भेद समझनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाताहै ॥ १० ॥ हे नारद ! इसी कारण शिव और राममें भेद नहीं समझना चाहिये, महादेवजीका पूजन करनेसे अनुज सहित श्रीराम प्रसन्न होतेहैं ॥ ११ और रामचन्द्रजीका पूजन करनेसे अम्बिका (पार्वती) सहित महादेवजीप्रसन्न होते हैं, विशे

स्परम् ॥१२॥ तेषु कुंडेषु सर्वेषु रामेणामिततेजसा ॥ शिवलिं-
गान्यनेकानि स्थापितानि हि नारद ॥१३॥ अस्मिंस्तीर्थे महा-
भाग रामो ध्यायति वै शिवम् ॥ निरंतरं मुनिश्रेष्ठ शिवतत्परमा-
नसः ॥ १४ ॥ अस्मिंस्तीर्थे विशेषेण रामस्तिष्ठति नित्यशः ॥
अस्मिन् क्षेत्रे तु यो नित्यं शिवपूजनतत्परः ॥१५ ॥ सोऽश्वमे-
धसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ भूमिदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं
प्राप्नुयान्मुने ॥ १६ ॥ अत्र मज्जनमात्रेण नरो नारायणो
भवेत् ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ १७ ॥
शांताजह्नुजयोर्यत्र संगमोतीव पुण्यदः ॥ तस्य तीर्थस्य माहा-
त्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ वीतिहो-
त्रज देवेश पृच्छामि त्वां वद प्रभो ॥ का वा शांता कथं लेभे
नदीत्वं शिवपुत्रक ॥ १९ ॥ कथं पुण्यतमा जाता कथं लोकेति-
विश्रुता ॥ इति मे संशयं छिंधि भगवन् भूतभावन ॥ २० ॥
स्कंद उवाच ॥ साधु पृष्टं महाबाहो भक्तोसि मम नारद ॥ यत्पृ-

क्या कहें उन दोनोंको परस्पर परमभक्त जानना चाहिये ॥ १२ ॥ अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी महाराजने उनकुण्डोंके ऊपर अनेक शिवलिंगोंकी स्थापना करी है ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! यहां श्रीरामचन्द्रजी महाराज महादेवजीमें चित्त लगाकर नित्यही उनका ध्यान करतेहैं ॥ १४ ॥ इस तीर्थमें विशेषतासे श्रीरामचन्द्रजी नित्य निवास करते हैं, जो मनुष्य इस क्षेत्रमें मनो योगपूर्वक महादेवजीका पूजन करताहै ॥ १५ ॥ उसे सहस्र अश्वमेध, और सौ वाजपेय एवं भूमिदान कर-नेके फलकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ हे मुनिराज ! इसतीर्थमें केवल स्नान मात्रकरनेसे मनुष्य नारायणस्वरूप होजाताहै, और वोह जो २ मनोरथ करता है, निश्चय उसीकी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ ॥ जहां अतिशय पुण्यदायक शान्ता और गंगाजीका संगम है, उसतीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ होसक्ता है ॥ १८ ॥ नारदजी बोले—हे अग्निकुमार ! देवराज ! ! ! मैं जो आपसे प्रश्न करताहूं, हे प्रभो ! सो मुझे बताइये कि—हे शिवकुमार ! यह शान्ता कौन थी और इसको नदीत्व किस प्रकार प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ यह पवित्र और लोकमें प्रसिद्ध कैसे हुई ? हे भूतभावन भगवान् ! ! मेरा यह सन्देह दूर करिये ॥ २० ॥ स्कन्दजी बोले—हे हमारे भक्त महाबाहो ! तुम हमारे भक्त हो तुमने बहुतही अच्छा प्रश्न करा, हे निष्पाप विप्र ! तुमने

ष्टोहं त्वया विप्र तद्वक्ष्यामि तवानघ ॥ २१ ॥ त्रेतायुगे दशरथो राजाभूज्ज्ञानवान् मुने ॥ तस्यात्मजा तु शान्तासीत्पितृभक्तिरता सदा ॥ २२ ॥ एकदा मुनिशार्दूल लोमपादो मुनीश्वरः ॥ तत्रागतो ददर्शाथ शांतां तस्यात्मजां शुभाम् ॥ २३ ॥ तां दृष्ट्वा स मुनिः प्राह राजानं मधुवाचया ॥ २४ ॥ लोमपाद उवाच ॥ विज्ञापयामि देवेश यदि चेन्मयि ते दया ॥ इमां त्वदात्मजां देव कन्यात्वेनैव देहि मे ॥ २५ ॥ पालनं च करिष्यामि सुतायास्ते नराधिप ॥ २६ ॥ इति वै लोमपादस्य वचः श्रुत्वा नराधिपः ॥ उवाच लोमपादं वै द्विजपूजनतत्परः ॥ २७ ॥ दशरथ उवाच ॥ यदुक्तं भगवन्ब्रह्मंस्तद्ददामि तवानघ ॥ शांतानाम्नीमिमां कन्यां पालयस्व यथासुखम् ॥ २८ ॥ राज्यं धनं गृहं दाराः सर्वं वै तव सुव्रत ॥ यतो द्विजप्रसादेन सर्वं प्राप्तं मया मुने ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ कन्यां सुंदरांगीं शुभाननाम् ॥ तां सुशांतां गृहीत्वा वै तोषयन्नाशिषा नृपम् ॥ ३० ॥ आगतः स्वाश्रमे

हमसे जो प्रश्न किया वोही मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं ॥ २१ ॥ हे मुने ! त्रेतायुगमें ज्ञानवान् राजा दशरथ हुए थे, और शान्तानाम उनकी एक कन्या थी जो अपने पिताकी भक्तिमें तत्पर थी ॥ २२ ॥ हे मुनि शार्दूल ! एक समय लोमपाद मुनीश्वर वहांआये, और उन्होंने दशरथराजकुमारी शुभ शान्ताको वहां देखा ॥ २३ ॥ उसे देख महर्षिने मधुरवाणी करके राजासे यौं कहा ॥ २४ ॥ लोमपाद बोले–यदि आप मेरे ऊपर सदय हैं तो हे देव ! मैं आपको सूचित करताहूं, कि, हे राजन् ! इस अपनी पुत्रीको कन्या रूपहीसे मुझे देदीजिये ॥ २५ ॥ हे नरपाल ! मैं आपकी कन्याका पालन करूंगा ॥ २६ स्कंदजी बोले–राजाने जब लोमपादके ऐसे वाक्य श्रवण करे, तब वे ब्राह्मण पूजनमें तत्पर हो उनसे यौं बोले ॥ २७ ॥ दशरथने कहा हे भगवन् ! ! ! निष्पाप ब्रह्मन सुनिये आपने जो पूछा सो कहताहूं शांतानामक कन्याको सुखसे पालन करिये ॥ २८ ॥ राज्य धन, घर और पत्नीतक भी हे सुव्रत ! सब आपहीकी हैं, क्योंकि हे मुनीश्वर ! ब्राह्मणोंहीकी कृपासे मुझे यह सब कुछ प्राप्त हुआ है ॥ २९ ॥ यौं कहकर राजाने वोह शोभनांगी सुंदरी कन्या महर्षिको देडाली, तब उस शान्ताको लेकर ऋषि--आशीर्वाद देकर राजाको सन्तुष्ट किया ॥ ३० ॥ तब महर्षि अपने अपने आश्रममें आये और उस पुत्रीका

विप्रः पालयामास वै सुताम् ॥ ततः सा चंद्रलेखेव वर्द्धते वै दिने-
दिने ॥३१॥ वर्द्धमानां तु तां दृष्ट्वा चिंताविष्टो बभूव ह ॥ कस्मै
सुता प्रदेयेयं को वास्याः सदृशो भवेत् ॥ ३२ ॥ इति चिंतयत-
स्तस्य ब्रह्माग्रे समदृश्यत ॥ दृष्ट्वा प्रजापतिं तस्य जग्राह चरणौ
मुनिः ॥ ३३ ॥ दंडवत्प्रणिपत्याह विधिं लोकपितामहम् ॥३४॥
मुनिरुवाच ॥ हंसवाहन देवेश ब्रूहि मे पृच्छतो विधे ॥ इयं वै
मम कन्यास्ति शांतानाम्नी सुमध्यमा ॥ ३५ ॥ अस्याः
पतिस्तु भवता को वा सृष्टोस्ति भूतले ॥ अभिधानं तु किं तस्य
कीदृशैस्तु गुणैर्युतः ॥ किं शीलं कीदृशो वंश इति शंस महा-
मते ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोमपाद शृणु प्राज्ञ वक्ष्यामि शृणु
सांप्रतम् ॥ इयं या तव कन्यास्ति शांतानाम्नी द्विजोत्तम ॥
तस्याः पतिर्यथा सृष्टो ऋष्यशृंगो महामतिः ॥ ३७ ॥ विभांड-
कसुतः श्रीमान् ख्यातो ब्रह्मविदां वरः ॥ तस्मै देया त्वियं कन्या
नान्योस्याः सदृशः पुमान् ॥ ३८ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा

पालनपोषण करनेलगे, सुतराम् वोहभी चन्द्रकलाकी समान प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त
होनेलगी ॥ ३१ ॥ इसे वृद्धिको प्राप्त होती देख राजाकोबड़ी चिन्ता हुई कि, इसके सदृश कौनहै
जिसे इस कन्याका दान करकेदें ॥ ३२ ॥ ऋषि जिस समय ऐसी चिन्ता करही रहेथे, तभी उन्हें
अपने अगाड़ी ब्रह्माजीके दर्शन हुए, तब तौ प्रजापति ब्रह्माजीको देख महर्षिने उनके चरण
पकड़ लिये ॥ ३३ ॥ और लोकपितामह ब्रह्माजीको प्रणामकर ऋषिबोले ॥ ३४ ॥ मुनीश्वरने
कहा—हे हंसवाहन देवराज ब्रह्माजी महाराज ! ! ! मैं जो पूछता हूं, इसका उत्तर मुझे दीजिये,
यह शान्ता नामकी सुमध्यमा हमारी कन्याहै ॥ ३५ ॥ भूमण्डलके ऊपर आपने इसका पतिबना-
नेके लिये किसे निर्माण किया हैं ? हे विधे ! वोह कौननाम गुणोंसे युक्त होगा, हे महामतिमान् !
यह बताइये उसका शील और वंश कैसा होगा ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले—सुनिये प्राज्ञ लोमपाद !
मैं सम्प्रति वर्णन करता हूं, हे द्विजोत्तम ! यह जो शान्ता नाम आपकी कन्याहै उसका पति मैंने
महामति ऋष्यशृंगको निर्माण किया है ॥ ३७ ॥ वे श्रीमान् विभांडकके पुत्र हैं, एवं वेदान्तवि-
द्याके श्रेष्ठ ज्ञाता होनेके कारण प्रसिद्धहैं, क्योंकि इस कन्याकी सदृश और कोई नहीं
हैं, सुतराम् यह कन्या उन्हींको देनीचाहिये ॥ ३८ ॥ स्कन्दजी बोले—ब्रह्माजीके ऐसे वाक्य सुन

वचस्तस्य लोमपादो उवाच ह॥ब्रह्माणं नतिभिर्युक्तः शांतया वा-
चया मुनिः॥३९॥लोमपाद उवाच॥भगवन् यत्त्वया प्रोक्तं तन्मृषा
न भवेत् क्वचित्॥परम्मे शंसयो जातस्तं छेत्तुं त्वमिहार्हसि॥४०॥
क्षत्रियान्वयसंभूता शांता मे दत्तपुत्रिका॥ ऋष्यशृंगस्तु मुनिराट्
वेदवेदांगपारगः॥४१॥अनयोः कथमुद्वाहो भिन्नजात्योर्भविष्यति॥
॥४२॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु प्राज्ञ द्विजश्रेष्ठ यदुक्तं भवता वचः॥
तत्तथैव कथं विप्र इति केचिज्जगुर्वचः ॥ ४३ ॥ तिस्रो भार्य्या
ब्राह्मणाय द्वे भार्य्ये क्षत्रियस्य तु ॥ एका वैशस्य भार्य्या स्यात्तथा
शूद्रस्य सुंदरी ॥ ४४ ॥ यद्यप्येवं तथा विप्र शृणु कर्म सुशोभ-
नम् ॥ येनेयं भविता शांता ब्राह्मणी चातिसुंदरी ॥ ४५ ॥ देव-
प्रयागकं क्षेत्रं यत्ख्यातं भुवनत्रये ॥ तत्र वै शिवतीर्थं तु
गंगाया उत्तरे तटे ॥ ४६ ॥ प्रातःस्नायी जिताहारो जितक्रोधो
जितेन्द्रियः ॥ तस्मिंस्तीर्थेपि शूद्रोपि ब्राह्मणत्वमवाप्नुयात्॥४७॥
विश्वामित्रोपि तत्रैव ब्राह्मणत्वमुपेयिवान् ॥ इंद्राद्या लोकपालास्तु
तत्तत्सिद्धिं ययुः पुरा ॥ ४८ ॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेंद्र स्वां कन्यां

मुनिराज लोमपादजी नययुक्त हो मधुर वाणीसे ब्रह्माजीसे बोले ॥ ३९ ॥ लोमपादने कहा-हे भगवन्! आपने जो कुछ कहा वोह मृषा कदापि न होगा, किन्तु मुझे सन्देह होगया सो उसे दूर करिये॥४०॥शान्तानाम हमारी दत्तक पुत्री क्षत्रियकुलमें प्रादुर्भूत हुई है और मुनिराज ऋष्यशृंग वेदवेदांगके ज्ञाता (ब्राह्मण) हैं ॥ ४१ ॥ चूंकि यह भिन्न जातिके हैं इन दोनोंका विवाह परस्पर कैसे होसक्ता है?॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले-हे प्राज्ञ द्विजराजवर ! आपने जो कुछ कहा सो कोई २ तो इसे ऐसाही प्रतिपादन करते हैं ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणकी तीन और क्षत्रियकी दो स्त्रियें होसक्ती हैं, वैश्य और शूद्रकी एक २ ही पत्नी होसक्तीहै ॥ ४४ ॥ यद्यपि यह तो ठीक नियम हैही तथापि यह शान्ता जिस प्रकार सुन्दरी ब्राह्मणी होगी वोह उपाय भी बताते हैं ॥ ४५ ॥ देवप्रयाग नामका जो क्षेत्र त्रिलोकीमें विख्यात है वहां ही गंगाजीके उत्तरी तटपर शिवतीर्थ है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर प्रभातकालही स्नान करता और नियमित भोजन करताहै वोह चाहैं शूद्रहो तथापि ब्राह्मण होजाताहै ॥ ४७ ॥ विश्वामित्रकोभी उसी तीर्थमें ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआथा, एवं इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंको भी वहांही सिद्धि प्राप्त हुई थी ॥ ४८ ॥ इस कारण आपभी अपनी कन्याको वहांही भेजिये और हे दृढव्रतधारी ! यथोक्त विधिके मार्गानुसार शिवकुण्ड और

तत्र प्रेषय ॥ यथा विध्युक्तमार्गेण शिवकुंडे शिवालये॥ स्नानव्रतादिकं चैव कारय त्वं दृढव्रत ॥ ४९ ॥ ततो वै भविता शांता ब्राह्मणी सुमनोहरा ॥ ऋष्यशृंगोपि शांतायै गंगादक्षिणकूलके ॥ करिष्यति तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम् ॥ ५० ॥ सूर्य्यतीर्थादूर्द्ध्वभागे शरविक्षेपमात्रके ॥ ऋष्यशृंगाभिदं तीर्थं भविष्यति सुपुण्यदम् ॥ ५१ ॥ ऋष्यशृंगाभिधे तीर्थे ये स्नास्यंति नरोत्तमाः॥ कुलानां तु सहस्रं तैस्तारितं स्यान्नसंशयः ॥ ५२ ॥ तत्र स्नातं तपस्तप्तं हुतं जप्तं तथैव च॥सर्वं शिवप्रीतिकरमक्षयं तु भवेद्द्विज॥ ॥५३॥ स्कन्द उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा तत्रैव च पितामहः॥ लोमपादोपि तच्चक्रे यदुक्तं विष्णुसूनुना ॥ ५४ ॥ प्रेषयायास तां कन्यां शिवकुंडे सुदुर्लभे ॥ सापि तत्र तपश्चक्रे ध्यायंती शिवमव्ययम् ॥ ५५ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ जटाजूटधरं देवं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मविष्णुस्तुतं भीमं सेव्यमानं सुरासुरैः ॥ शिवकुंडे महाभाग सस्नौ

शिवालयमें स्नान व्रत आदिका आचरण करिये ॥ ४९ ॥ तब यह मनोहरा शान्ता अवश्यही ब्राह्मणी होजायगी, और ऋष्य श्रृंगभी शान्ताकी प्राप्तिके लिये गंगाजीके दक्षिणी कूलपर ऐसा उग्र तप करेंगे जो देवताओंको भी कठिन है ॥ ५० ॥ सूर्य्यक्षेत्रसे ऊपरकी ओर एक बाणकी दूरीपर शुभ पुण्यप्रदानकर्त्ता ऋष्यश्रृंगनाम तीर्थहोगा ॥ ५१ ॥ ऋष्यश्रृंग नाम तीर्थमें जो उत्तम पुरुष स्नान करतेहैं, निस्सन्देह उसके सहस्र कुलका उद्धार होजाताहै ॥ ५२ ॥ वहां स्नान, तप, होम अथवा जप जो कुछभी किया जाय वोह सबही अक्षय होकर महादेवजीकी प्रीति सम्पादन करनेका साधन होताहै ॥ ५३ ॥ यौं कहकर उनके देखते २ ही ब्रह्माजी तत्काल अन्तर्द्धान होगये, तब ऋष्यश्रृंगनेभी उसी प्रकार किया जैसे कि, ब्रह्माजी महाराजने बतायाथा ॥ ५४ ॥ और लोमपादनेभी शान्ता कन्याको सुदुर्लभ शिवकुण्ड पै भेजा, और वोह अविनाशी महादेवजीका ध्यानकर तपकरने लगी ॥ ५५ ॥ महादेवजी व्याघ्रचर्मका परिधान करते हैं, उनकी कान्ति शुद्ध स्फटिककी समानहैं, देवाधिदेव वृषभध्वज तीन नेत्र और जटाजूटको धारण करते हैं ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा विष्णु सबही उनकी स्तुति करते हैं, और सुर असुर सब उनकी सेवा करते हैं (ऐसे

प्रातः सदा हि सा ॥ ५७ ॥ एवं षण्मासपर्य्यंतं तपः कृतवती मुने ॥ आविर्बभूव भगवान् महादेवः सहोमया ॥ दृष्ट्वा सदाशिवं शांता देव स्तोतम्प्रचक्रमे ॥५८॥ शांतोवाच॥नमः शिवाय शंभवे कपालमालधारिणे ॥ नमोस्तु पार्वतीपते जटाकलापधारिणे ॥ ॥ ५९ ॥ समस्तनिर्जरस्तुत क्षितिस्वरूप ते नमः ॥ नमस्त्रिनेत्र-शालिने समस्तदैत्यहारिणे ॥ ६० ॥ शिवस्त्वं हि परं ब्रह्म चित्स्वरूपस्त्वमेव हि ॥ युगांते लयकर्त्ता त्वं सृष्टिं त्वं कुरुषे शिव॥ ॥ ६१ ॥ स्थितिकर्त्ता त्वमेवासि योगिभिस्त्वं हि चिंत्यसे ॥ गुणात्मा निर्गुणस्त्वं हि त्रयीरूपस्त्रयीमयः॥६२॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानं शांता शंकरतत्परा॥ प्रसन्नो भगवानूचे शांतां वै भक्तितत्पराम् ॥ ६३ ॥ शिव उवाच ॥ देवी शांते महाभागे भक्तासि मम सुव्रते ॥ वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्त्वन्मनासि वर्तते ॥ ॥ ६४ ॥ शांतोवाच ॥ देवदेव प्रसन्नोसि यदि चेन्मयि शंकर ॥

महादेवजीका ध्यान करके शान्त) शिवकुण्डमें प्रातः समयही नित्य स्नान करतीथी ॥ ५७ ॥ हे मुनिराज ! छः मास पर्य्यन्त उसने इसी प्रकारसे तपका आचरणकिया, तब भगवान् महादेवजी पार्वती सहित वहां प्रादुर्भूतहुए, तब शान्तादेवी सदाशिवकी स्तुति करनेके लिये उद्यत हुई ॥ ५८ ॥ शान्ता बोली—हे शम्भु ! आप कल्याणमूर्त्ति हैं, आपने कपालमाला धारणकरी हैं, हे जटाजूट धारी ! आप पार्वतीपति हैं, सुतराम् मैं आपको प्रणाम करती हूं ॥ ५९ ॥ आपकी स्तुति संपूर्ण देवता करते हैं, भूमि स्वरूपभी आपही हैं, आपके तीन नेत्रहैं, और आपही समस्त दैत्योंका संहार करनेवाले हैं, सुतराम् मैं आपको नमस्कार करती हूं ॥ ॥ ६० ॥ हे शिव ! आपही ब्रह्म स्वरूप हैं, चैतन्यरूपभी आपही हैं हे शिव ! आपही सृष्टिको रचते हैं, और प्रलयके समय सृष्टिका संहारभी आपही करते हैं ॥ ६१ ॥ सृष्टिकी स्थिति (पालना) करनेवालेभी आपही हैं, योगिजनभी आपहीका चिन्तवन करते हैं, निर्गुण होकर भी आप गुणात्मकहैं ॥ ६२ ॥ स्कन्दजी बोले—इस प्रकार स्तुति कर शान्ताने अपने चित्तको महेश्वरमें संलग्न करदिया, तब भगवान् महादेवजी भक्ति तत्पर शान्तासे प्रसन्न होकर यों बोले ॥ ६३ ॥ महादेवजीने कहा—हे शान्तादेवी ! तुम सुन्दर व्रतका आचरण करनेवाली और हमारी भक्तहो सुतराम् जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर मांगो ॥ ६४ ॥ शान्तावोली—हे देवाधिदेव शंकर

क्षत्रियाहं महादेव ब्राह्मणी स्यां तथा कुरु ॥ ६५ ॥ ऋष्यशृंगो मुनिश्रेष्ठो भर्त्तास्यान्मम शंकर ॥ भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु त्वत्संसर्गमवाप्नुयाम् ॥ ६६ ॥ शिव उवाच ॥ यदुक्तं वचनं देवि तत्तथैव भविष्यति ॥ ऋष्यशृंगं पतिं श्रेष्ठं प्राप्स्यसि त्वं दृढव्रते ॥ ६७ ॥ तेन सार्द्धं महाभोगान्भुक्त्वा मानमवाप्य च ॥ नदीरूपेण पश्चात्ते मत्कुंडे संगमो भवेत् ॥ ६८ ॥ ततो लोकेषु विख्याता शांतानाम्नी नदी शुभा॥भविष्यसि महापुण्या स्वर्गमोक्षप्रदायिनी ॥ ६९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्तवान्महादेवः शांतायै मुनिपुंगव ॥ तत्रैवांतर्दधे देवो नीलकंठः स्वयं मुने ॥ ७० ॥ ततः शिवप्रसादेन ब्राह्मणी समजायत ॥ सैव शांता नदी जाता दशरथाचलसंगिनी ॥ ७१ ॥ शिवतीर्थे तु तस्यां वै संगमोभून्महामुने ॥ ततःप्रभृति सा ख्याता नदी हि भुवनत्रये ॥७२॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ शिवतीर्थे मासमात्रं नरः शिवपरायणः ॥ ७३ ॥ अस्मिंस्तीर्थे भूमिदेवो

यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, ऐसी कृपा करिये कि, मैं क्षत्रियासे ब्राह्मणी होजाऊं ॥ ६५ ॥ हे शंकर ! ऋष्यशृंग मुनिराज मेरे पतिहों, और मुझे समस्त भोगोंका उपभोग तथा उनका संसर्ग प्राप्तहो ॥ ६६ ॥ महादेवजी बोले—हे देवि ! तुमने जो कुछ कहा वोह सब वैसाही होगा, हे दृढ-व्रते ! तुम्हैं अवश्यही ऋष्यशृंगपतिकी प्राप्तिहोगी ॥ ६७ ॥ उनके साथ भोगोंका उपभोग कर और मान पानेके अनन्तर हमारे कुण्डमें नदीरूपसे तुम्हारा संगमहोगा ॥ ६८ ॥ और तभीसे स्वर्ग मोक्षकी प्रदान करनेवाली अतिशयपवित्र शान्तानामकी शुभनदी विख्यातहोगी ॥ ६९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महामुने ! शान्ताके प्रति इस प्रकार संभाषणकर हे मुनि पुंगव ! नीलकंठ भगवान् महादेवजी वहांही अन्तर्हित होगये ॥ ७० ॥ तब शान्ता महादेवजीके प्रसादसे शान्ता ब्राह्मणी हो गई और वोही शान्ता दशरथाचल संगिनी नदी हुई ॥ ७१ ॥ हे महामुने ! शिवतीर्थमें उसका संगम हुआ, उसीदिनसे वोह नदी त्रिलोकीमें विख्यात होगई है ॥ ७२ ॥ जो मनुष्य महादेवजी में अपने चित्तको लगाकर एक मासपर्य्यन्त भक्ति पूर्वक उसमें स्नान करताहै उसे महादेवके सायुज्यकी प्राप्ति होती है ॥ ७३ ॥ जो ब्राह्मण इस तीर्थमें अथर्व वेदान्तर्गत नीलरुद्रोपनिषद्

योऽथर्वशिरसं परम् ॥ नीलरुद्रोपनिषदं रुद्राध्यायं तथैव च ॥ ७४ ॥ रुद्रसाम्नापि च तथा यः पठेत्प्रायतो नरः ॥ स रुद्रलोकमातिष्ठेद्यावदाभूतसंप्लवम्॥७५॥इति ते कथितं दिव्यं शैव तीर्थमनुत्तमम् ॥ यस्याख्यानस्य पठनाच्छ्रवणादपि नारद ॥ शिवलोकं समासाद्य शिवेन सह मोदते ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

अथवा रुद्राध्यायका ॥ ७४ ॥ किंवा रुद्रसामका नियमपूर्वक पाठ करताहै उसे प्रलयपर्य्यन्त शिवलोकमें निवासकी प्राप्ति होती है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार हमने सर्वोत्तम शिवतीर्थका आपके प्रति वर्णनकिया,हे नारद! जो इस आख्यानका श्रवण अथवा पाठकरता है वोह शिवलोकमें पहुंचकर महादेवजीके साथ आनन्दका उपभोग करता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४.

स्कंद उवाच॥अथ वेतालकुंडस्य माहात्म्यं शृणु नारद॥यथावत् कथयिष्यामि विस्तरेण तवानघ ॥१॥ शिवकुंडादूर्द्ध्वभागे तत्कुंडं विद्यते किल॥यत्रैवास्ते महाभाग शिलावेतालसंज्ञिका ॥ २ ॥ वेतालकुंडे यः स्नात्वा शिलास्पर्शं करोति हि॥ध्यायन्नारायणं देवं तस्य पुण्यफलं शृणु॥३॥सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः ॥ ४ ॥ वेतालकुंडजां मृत्स्नां सर्वांगे लेपयेत्तु यः ॥ तस्य तत्कालिकं पापं तत्क्षणादेव

स्कन्दजी बोले—नारदजी ! अब वेतालकुण्डके माहात्म्यको श्रवण करिये, हे निष्पाप ! हम विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ शिवकुण्डसे ऊपरकी ओर वोह कुण्डहै, और हे महाभाग ! वहांही वेतालसंज्ञक शिलाभी है ॥ २ ॥ जो मनुष्य वेताल कुण्डमें स्नानकर शिलाका स्पर्श करता और नारायणका ध्यान करताहै, उसके पुण्य फलका श्रवणकरो ॥ ३ ॥ समस्त तीर्थोंकी यात्रा और सब यज्ञोंके आचरणसे जो फल उपलब्ध होता है, और सब प्रकारके दान करनेसे भी जो पुण्य प्राप्त होता है, वोह सब पुण्य (यहां नारायणका ध्यान करनेसे) मिलताहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति वेतालकुण्डकी मृत्तिकाको अपने देहमें लेपन करताहै, उसका तत्का

नश्यति ॥ ५ ॥ मासमात्रं तु यः स्नाति कुंडेऽस्मिन्मुनिपुंगव ॥
कोटिकल्पसहस्राणि स वै विष्णुपुरे वसेत् ॥६॥ कर्मक्षयादिहागत्य
राजा भवति धार्मिकः॥भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु पुनर्विष्णुपुरे व्रजेत्
॥ ७ ॥ अस्य कुंडस्य माहात्म्याद्यथाप्रापुः परां गतिम् ॥
बेताला बहवो विप्र तच्छृणुष्व महामुने ॥ ८ ॥ बभूवोद्दालकः
कश्चिद्ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः ॥ चौरकर्मरतो नित्यं गृहं भंक्त्वा
नृशंसकः ॥ ९ ॥ एका वारांगना काचिन्नाम्ना रूपवती स्मृता ॥
तस्यामुद्दालको रक्तस्तामेव संस्मरन् सदा ॥ १० ॥ अर्जयित्वा
धनं चौरकर्मणा विपुलं मने ॥ तस्यै ददाति विप्रोसौ
काममोहविमोहितः ॥११॥ कदाचित्पथिकानां हि धनं हृत्वा द-
दाति सः ॥ ब्राह्मणान्मारयित्वा च तेभ्यो हृत्वा धनं बहु ॥१२॥
स्वगृहस्थं धनं चैव रूपवत्यै प्रयच्छति॥सापि वेश्या प्रसन्नाभूद्धनं
दृष्ट्वा सुपुष्कलम्॥उवाचोद्दालकं प्रीत्या स्वधर्मनिरता सदा॥१३॥
वेश्योवाच ॥ भो भो द्विज कुतोलब्धमीदृशं पुष्कलं धनम् ॥

किया पाप उसी समय विनष्ट होजाता है ॥ ५ ॥ हे मुनि पुंगव ! जो मनुष्य एक मासपर्य्यन्त इस कुण्डमें स्नान करताहैं; वोह सहस्र करोड़ कल्पपर्य्यन्त विष्णुलोकमें निवास करताहै ॥ ६ ॥ और जब उसके (पुण्य) कर्मोंका क्षय होजाता है तब वोह यहां (मर्त्यलोकमें) आय धार्मिक राजा होताहै, और समस्त भोगोंका उपभोगकर चुकनेके अनन्तर फिर उसे विष्णुलोकहीमें निवास करना होता है ॥ ७ ॥ हे द्विजराजमहर्षि ! इसी कुण्डके प्रतापसे ! जिस प्रकार बहुतसे वेतालोंको परमगति (सद्गति) का लाभ हुआ उसी आख्यानको श्रवण करो ॥ ८ ॥ कोई उद्दालक नाम नीच ब्राह्मण प्राचीनकालमें प्रादुर्भूत हुआथा, वोह निर्दय घर तोड फोडकर नित्य ही चोरी किया करता था ॥ ९ ॥ एक रूपवती नामकी कोई वेश्या थी, उद्दालक ब्राह्मण उसके ऊपर आसक्त हो नित्यही उसका स्मरण किया करता था ॥ १० ॥ हे मुने ! कामसे मोहित हो वोह उद्दालक ब्राह्मण चोरी कर २ के उसे बहुतसा धन लाके देता था ॥ ११ ॥ कभी पथिकोंको मार उनका प्रभूत धन आप हरणकर और कभी ब्राह्मणोंको मार उनका धन लेके इस वेश्याको देदेताथा ॥ १२ ॥ और कभी अपनेही घरका प्रभूत धन उसे देता था, सुतराम् पुष्कल (प्रभूत) द्रव्यको देख वोह वेश्या अतिशय प्रसन्न होगई और स्वधर्मनिरत वेश्या प्रीतिपूर्वक उद्दालकसे बोली ॥ १३ ॥ वेश्याने कहा—हे द्विज ! तुम्हें इतना प्रभूत धन कहां प्राप्त हुआ, सो आप

तद्ब्रूहि मम हे कांत त्वदन्यो नास्ति मे पतिः यो ॥ ददाति धनं नित्यं स्वर्णमुक्ताफलादिकम् ॥ १४ ॥ उद्दालक उवाच ॥ किं पृच्छसि हि मे कांते गृहद्रव्यं यथासुखम् ॥ चौरोहं मुनिहंताहं परद्रव्यापहारकः ॥ १५ ॥ त्वत्संगार्थमिदं कर्म्म कृतं कांते मयाऽशुभम् ॥ ब्राह्मणा मानुषाश्चैव पथिका निहता मया ॥ ॥ १६ ॥ वेश्योवाच ॥ हन्त हंत हरे ब्रह्मन् पापीयानसि पापकृत ॥ एवं मा कुरु पापं हि ब्रह्महत्यादिकं द्विज ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्दुर्गतिस्ते भविष्यति ॥ शृणु विप्र नराणां हि चेष्टितं पूर्वजन्मजम् ॥ १८ ॥ ये वै परस्वहरणे तत्परा ब्रह्मघातकाः ॥ परदारेषु संसक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ १९ ॥ परनिंदारता ये वै परद्रोहकराः सदा ॥ वेश्यायां निरता ये वै तेपि दुर्गतिगामिनः ॥ २० ॥ तस्मात्त्वं त्यज दुर्बुद्धिं पापकर्म शभं कुरु ॥ भगवंतं दयासिंधुं भज विप्र निरंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्ते सर्वपापानि नाशं यास्यंति दुर्मते ॥ मा विलंबं कुरु प्राज्ञ गच्छ विष्णवालयं

मुझे बताइये, क्योंकि हे कान्त ! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य कोई पति नहीं है, और आप धन सुवर्ण एवं मुक्ता फल आदि मुझे प्रदान किया करते हैं ॥ १४ ॥ उद्दालक बोला—हे कान्ते ! क्या पूछती है ? मेरे घरमें यथेष्ट धन हैं, मैंने चोर बनकर मुनियोंको मार पराये द्रव्यका अपहरणकिया ॥ १५ ॥ हे कान्ते ! तेरेही संगमकी कामनासे मैंने यह अशुभ कर्म किया और ब्राह्मणों मनुष्यों अथ च पथिकोंको मारा है ॥ १६ ॥ वेश्या बोली—खेद शतखेद ! ! ! हे ब्रह्मन् तू बडाही पापी है, अरे पापी द्विज ! तू ब्रह्महत्यादि पापका आचरण मतकर ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यादि पाप करनेसे तो तेरी दुर्गति होजायगी, हे विप्र ! मनुष्योंके पूर्व जन्मार्जित कर्मोंको श्रवण कर ॥ १८ ॥ जो पुरुष पराये द्रव्यको अपहरण करने, ब्राह्मणोंका वधकरने, और परस्त्रीगमन में आसक्त हैं वे सबही नरकमें जाते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष पराई निन्दामें निरत, और सदैव दूसरोंसे द्रोह करते हैं, एवं जो व्यक्ति वेश्यागामी हैं उन्हेंभी दुर्गति भोगनी पडती है ॥ २० ॥ सुतरांम् हे दुर्बुद्धे ! तू पापकर्मको छोड शुभकर्मोंका आचरणकर, और हे विप्र दयासागर भगवान्का निश्यभजन कर ॥ २१ ॥ तब तेरे सब पाप अवश्यही नष्ट होजाँयगे

शुभम् ॥ २२॥ स्कंद उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोभवत्॥वेश्यां रूपवतीं प्राहोद्दालको ब्राह्मणाधमः॥२३॥ उद्दालक उवाच ॥ वरांगने रूपवति त्वं मातासि ममानघे ॥ त्वं गुरुर्मे त्वमेवासि शास्त्री सुंदरि सुव्रते ॥ २४ ॥ उपदेशं कुरु प्राज्ञे यथा स्यां विष्णुलोकभाक् ॥ मम सर्वाणि पापानि यथा नश्यंति तद्वद ॥ २५ ॥ वेश्योवाच ॥ शृणु विप्र महाभाग धन्योसि त्वं हि सुव्रतः ॥ यस्येयमीदृशी बुद्धिर्जाता वै विष्णुसेवने ॥ ॥ २६ ॥ देवप्रयागकं क्षेत्रं श्रूयते यद्भुवि द्विज ॥ तत्र भागीरथीतीरे कुंडे परमदुर्लभे ॥ २७ ॥ शिवतीर्थादूर्द्ध्वभागे क्रोशखण्डप्रमाणके ॥ तत्र गच्छ हरिं ध्यायन् स्नानं कुरु यथाविधि ॥ २८ ॥ दिनानां पंचके विप्र गमिष्यसि परां गतिम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुक्तिस्ते भविता द्विज ॥ २९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तस्या वचो धृत्वा हृदि विप्रो ययौ ततः ॥ देवप्रयागके क्षेत्रे यत्र वैतालिकी शिला ॥ ३० ॥ स्नात्वा तीर्थवरे पुण्ये दृष्टवान्प्रेतदेहकान् ॥ संख्यया वै पंचशतं वेतालान् विक-

सुतराम् हे विप्र ! तू विलंब मतकर और विष्णुलोकमें शीघ्र जा ॥ २२ ॥ स्कन्दजी बोले—वेश्याके ऐसे वाक्य सुन ब्राह्मणको बडा आश्चर्य्य होगया, तब वोह नीच ब्राह्मण रूपवती वेश्यासे यों कहनेलगा ॥ २३ ॥ उद्दालक बोला—हे सुन्दरी वरांगना! तुझमें कोई पाप नहीं, सुतराम् तू मेरी माताहै, तूही गुरु और हे सुव्रते ! तूही शास्त्रकी जाननेवाली है ॥ २४॥ हे बुद्धिमति ! ऐसा उपदेशकर जिससे विष्णुलोककी प्राप्ति हो, और यहभी बता कि, मेरे समस्त पाप कैसे नाशको प्राप्त होसक्तेहैं ॥ २५ ॥ वेश्या बोली—सुनो महाभाग द्विजराज ! तुम उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले हो सुतराम् तुम्हैं धन्यहै, क्योंकि विष्णुभगवानकी सेवा करनेमें तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है ॥ २६ ॥ हे द्विज ! भूमण्डलके ऊपर देवप्रयाग नामका जो तीर्थ विख्यात हैं, वहां गंगाजीके तटपर परम दुर्लभ कुण्डमें ॥ २७ ॥ शिवतीर्थसे ऊपरकी ओर एक कोसकी दूरीपर जाय नारायण स्मरण पूर्वक यथाविधि स्नानकरो ॥ २८ ॥ तब हे विप्र ! पांचही दिनमें तुम्हैं सद्गतिकी प्राप्ति होगी. और हे द्विज ! ब्रह्महत्यादि पापोंसेभी तुम्हारा छुटकारा होजायगा ॥ २९ ॥ स्कन्दजी बोले—उस वेश्याके ऐसे वाक्योंको अपने हृदयमें धारणकर यह ब्राह्मण देवप्रयागक्षेत्रमें जहां वेताल शिलाथी वहां गया ॥ ३० ॥ पवित्र अतएव सबतीर्थोंमें श्रेष्ठ उस तीर्थमें

टाननान् ॥ ३१ ॥ स्रवन्मूत्रपुरीषांश्च पूयशोणितसंप्लुतान् ॥ वर्तुलाक्षान् बृहद्दंतान् क्षुत्तृष्णापरिपीडितान् ॥ ३२ ॥ निर्मांसानस्थिशेषांश्च हाहाकाररवांस्तथा॥तान्दृष्ट्वोद्दालकः प्राह विस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥ उद्दालक उवाच॥ भोभो भयानका यूयं के वै भवथ निर्भयाः॥ किमर्थं वै स्थिता ह्यत्र तीर्थानां प्रवरे शुभे॥३४॥ बेताला ऊचुः॥शृणु प्राज्ञ महाभाग यद्वै वृत्तं दुरात्मनाम्॥ अस्माकं तत्तथा ब्रूमो दयावानसि दुःखितान्॥३५॥पुरा वयं तु गंधर्वा अभूम द्विजसत्तम ॥ इंद्रस्याग्रे वर्तमाना गायंतो गानमुत्तमम्॥३६॥कदाचिद्दैवयोगेन गता वै हिमपर्वते ॥ विहर्तुं यौवनोन्मत्ता रूपलावण्यगर्विताः ॥ ३७ ॥ अष्टावक्रं दृष्टवंतस्तप्यमानं महत्तपः ॥ कृशं वै सर्वतो वक्रमस्थिशेषं जटान्वितम्॥३८॥ तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं हासं चक्रुम पापिनः॥ अस्मान्दृष्ट्वा मुनिस्तत्र शशापेदमुदीरयत् ॥ ३९ ॥ रे रे रूपमदोन्मत्ता मां दृष्ट्वा हसिता यतः ॥ अतो

स्नानकर उस ब्राह्मणने विकट देहधारी पांचसौ वेतालोंका अवलोकन किया, उन सबके मुखभी बड़े विकट थे ॥ ३१ ॥ उनका मूत्र और पुरीष निकलरहाथा, वे विष्टा और रक्तसे लिथड़ रहेथे, उनके नेत्र गोल मटोल, और दांत बड़े २ थे; अथ च वे सबही क्षुधा और तृषासे पीडित होरहेथे ॥ ३२ उनके देहमें मान्स तौ बिलकुल नहीं केवल अस्थियें शेष रहगईथीं. सुतराम् वे सबही हाहाकार कररहेथे, उन्हें देख उद्दालकके मनमें बड़ा विस्मय हुआ तब वोह उनसे कहने लगा ॥ ३३ ॥ उद्दालक बोला—अरे भयानक मूर्त्तिधारियो ! तुम कौनहो, और इस श्रेष्ठतीर्थमें किसलिये पड़ेहो ? ॥ ३४ ॥ वेतालबोले—हे बुद्धिमान् महाभाग ! हम दुष्टोंका जो वृत्तान्तहै उसे आप श्रवणकरिये, चूंकि हम दुखियाओंके ऊपर तुम्हैं दया आईहै सुतराम् हम सबही वर्णन करतेहैं ॥ ३५ ॥ हे द्विजराज ! प्रथम हम सब गन्धर्वथे, और इन्द्रके अगाड़ी उत्तमोत्तम गान किया करतेथे ॥३६॥ कभी दैवयोगसे हम सब हिमालयके उपर विहार करनेको गये, उस समय हम यौवनसे उन्मत्त और अपने रूपसे गर्वित होरहेथे ॥ ३७ ॥ वहां हमने उग्र तप करते हुए कृश शरीर अष्टावक्रजीको देखा, उनके शरीरमें केवल अस्थिही अस्थि शेष रहगईथीं, उनका देह अत्यन्त कृश और सब ओरसे टेढा बुक्चा था, और वे जटाजूटको धारण कररहेथे ॥ ३८ ॥ हम पापियोंने उन मुनिशार्दूको देख उनका उपहास किया, तब तौ मुनिने हमैं अवलोकनकर यह शाप दिया ॥ ३९ ॥ अरे सुन्दर रूपका अभिमान करनेवालो ! चूंकि तुम मुझे देखकर हँसे, अतः

यूयं दुराचारा वेतालत्वं गमिष्यथ ॥ ४० ॥ इति शप्त्वा मुनिवरो विरराम महामतिः ॥ शापात्रस्तामुनेर्विप्र वयमूचिम तं मुनिम् ॥ ४१ ॥ अष्टावक्रमुनिश्रेष्ठ शिवभक्तिपरायण ॥ अस्मादृशां त्वमेवासि त्राता पापात्मनां मुने ॥ ४२ ॥ त्वत्तो नास्ति गतिः काचिदस्माकं मुनिसत्तम ॥ रक्षरक्ष दह्यमानान् शापाग्नेस्तव सुव्रत ॥४३॥ क्षमां कुरु महाभाग क्षमासारा हि साधवः ॥ भवादृशा नापराधं मन्यंते हि दुरात्मनाम् ॥ ४४ ॥ इति विज्ञापितोस्माभिरष्टावक्रो मुनीश्वरः ॥ उवाच वचनं प्रीत्या स्तुत्या संहृष्टमानसः॥४५॥अष्टावक्र उवाच॥अमोघो मामको शापो भविष्यत्येव गायकाः ॥ गच्छत प्रेतदेहेन कियत्कालं सुतीर्थके ॥४६ ॥ क्षेत्रे क्षेत्रगणाधीशे प्रयागे देवपूर्वके ॥ वासं कुरुत दुर्वृत्ता यावदुद्दालको मुनिः ॥ रूपवत्या वेश्यया वै प्रेषितश्चागमिष्यति ॥४७॥ भवतां तेन संवादो भविष्यति यदा तदा ॥ पुनः स्वकं परं रूपं प्राप्य वै विहरिष्यथ ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वास्मान् वक्रगात्रो गत-

एव हे दुराचारियो ! तुम सब वेताल होजाओ ॥ ४० ॥ इस प्रकार शाप दे मतिमान् मुनीश्वर मौनहोगये, और हे विप्र ! शापसे भयभीत हो हम उन मुनिसे यों बोले ॥ ४१ ॥ हे अष्टावक्र-मुनीश्वर ! आप महादेवजीकी भक्तिमें तत्परहैं, सुतराम् हे मुने ! हम जैसे पापियोंकी रक्षाकरने वाले आपही हैं ॥ ४२ ॥ हे मुनिसत्तम ! आपको छोड़ और कोईभी हमारी गति नहींहै, हे सुव्रत ! हम आपकी शापाग्निसे दग्ध हुए जातेहैं हमारी रक्षाकरो ॥ ४३ ॥ चूंकि साधु महात्मालोग क्षमाही कियाकरतेहैं, सुतराम् आपभी हमारे ऊपर क्षमा करिये, कारण कि आप जैसे महात्माजन हम जैसे दुष्टोंके अपराधको नहीं मानतेहैं ॥ ४४ ॥ जब मुनिराज अष्टावक्रजीकी हमने इस प्रकार स्तुतिकरी, तो वे प्रीतिपूर्वक हमसे यों बोले क्योंकि हमारे स्तुतिकरनेसे उनका मन प्रसन्न होगयाथा ॥ ४५ ॥ अष्टावक्रजी बोले—हे गन्धर्वो ! हमारा शाप तौ अवश्यही फलीभूत होगा, सुतराम् अब तुम कुछ कालपर्य्यन्त प्रेतदेह धारणकर उक्त तीर्थमें जाओ ॥ ४६ ॥ वोह देवप्रयागतीर्थ समस्त क्षेत्रोंका अधीश्वरहै, जबतक रूपवती वेश्याके द्वारा भेजाहुआ उद्दालक मुनि वहां आवै तबतक अरे दुराचारियो ! तुम वहांही निवासकरो ॥ ४७ ॥ जब उस ब्राह्मणके साथ तुम्हारा संवाद होगा, तब फिर तुम अपने स्वरूपको पायकर विहार करोगे ॥ ॥ ४८ ॥ हमसे यों कहकर अष्टावक्रजी हिमालयमें तपश्चर्या करनेके लिये चलेगये, और उस

स्तप्तुं हिमालये ॥ वयं चात्रैव संप्राप्ता ध्यायंतस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ॥ ४९ ॥ संप्राप्तस्त्वं भाग्यवशादिदानीं पुरुषर्षभ ॥ पश्य रूपं तु यत्पूर्वं बभूव प्रवरं हि नः ॥ ५० ॥ सांप्रतं त्वत्प्रसादेन जातो वै शापमोक्षकः ॥ ५१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तु वेताला बभूवुर्विमलाननाः ॥ जग्मुस्ते देवमार्गेण विहर्त्तुं वै यथेच्छया ॥ ॥ ५२ ॥ तान् दृष्ट्वा विस्मितो विप्रो गंधर्वांस्त्रिदिवौकसः ॥ आश्चर्यं परमं लेभे हृष्टरोमा बभूव ह ॥ ५३ ॥ शिलायाश्चैव कुंडस्य वेताला लक्ष्मणान्वितम् ॥ एतदौद्दालकं तीर्थं पुण्यं तदवधि स्मृतम् ॥ ५४ ॥ पूर्वभागे तथा पश्चादुत्तरे दक्षिणे तथा ॥ शरविक्षेपमात्रं तु अतिपुण्यतमं स्मृतम् ॥ ५५ ॥ अत्र जप्तं हुतं तप्तं दत्तं कोटिगुणं भवेत् ॥ ५६ ॥ अस्मिन्कुंडे तथा विप्र शिलायां पितृतर्पणम् ॥ पिण्डदानं कृतं येन तारितं सकलं कुलम् ॥ ५७ ॥ गयायां पिण्डदानस्य यत्पुण्यं भवति द्विज ॥ तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः ॥ ५८ ॥ अस्यावज्ञा कृता वै तु गच्छेदन्यत्र यो नरः ॥ स याति नरके घोरे पितृभिः

द्विजराजका स्मरण करतेहुए हमलोग यहांको चलेआये ॥ ४९ ॥ सौभाग्यवशात् हे पुरुषोत्तम अब आपभी प्राप्तहोगये सो देखिये ! हमारा पहिला हीसा उत्तम स्वरूप फिर होगया ॥ ५० और सम्प्रति आपकी कृपासे हमारा शापसेभी छुटकारा होगया ॥ ५१ ॥ स्कन्दजी बोले—उ लकसे यों कहते २ ही उन बेतालोंके मुख निर्मल होगये, और वे सब अपनी २ इच्छानुस विहार करनेके लिये देवमार्ग द्वारा चलेगये ॥ ५२ ॥ तब तौ उन स्वर्गनिवासी गन्धर्वोंका अ लोकनकर वोह ब्राह्मण अतिशय विस्मित हुआ, एवं अतिशय आश्चर्य प्राप्त होनेके कारण उ रोमांच होआये ॥ ५३ ॥ वोह शिला और कुण्डवेताल चिह्नसे चिह्नितहै, उसी दिनसे उद्दालकतीर्थ लोकमें विख्यात हुआहै ॥ ५४ ॥ पूर्व पश्चिम दक्षिण तथा उत्तर चारोंओ वोह स्थान एक २ बाण प्रमाण अत्यन्तही पवित्र कहागयाहै ॥ ५५ ॥ इसतीर्थमें जप, ह तप अथवा दान जो कुछभी कर्म किया जाय वोह सबही करोड़गुणा अधिक होताहै ॥ ५६ हे विप्र ! इस कुण्डमें बेतालशिलाके ऊपर पितरोंके लिये तर्पणकरनेसे अपने सबकुलका उ होजाताहै ॥ ५७ ॥ हे द्विजराज ! गयाजीमें पिण्डदान करनेसे जो पुण्य प्राप्तहोताहै, निस्सं उसका करोड़गुणा फल यहां उपलब्ध होताहै ॥ ५८ ॥ इस तीर्थका निरादर करके जो म

सह नारद ॥ ५९ ॥ पितरोपि सदा विप्र कांक्षंति निजके कुले ॥ गमिष्यति यदा कश्चिदस्मान्वै तारयिष्यति ॥ ६० ॥ धन्याः कलियुगे घोरे नराः पुण्याधिका वराः ॥ गच्छंति पितृकार्य्यार्थं वैताले तीर्थनायके ॥ ६१ ॥ अस्मिन्कुंडे तु यः स्नाति शिलास्पर्शं करोति हि ॥ दर्शनं पूजनं चैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ॥ ६२ ॥ स्नातं वै सर्वतीर्थेषु दत्ता वै सकला मही ॥ निखिलाः प्रतिमा दृष्टा विष्णोरमिततेजसः॥६३॥ नारद उवाच॥ सेनापते विभो स्कंद हृदि मे संशयो महान् ॥ कथं वै तीर्थराजस्य माहात्म्यमभवत्प्रभो ॥ ६४ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टोहं त्वया मुने॥ उद्दालकस्य वृत्तं तु तद्वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥ ६५ ॥ उद्दालकस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा गंधर्वतां गतान्॥ वेतालान्सपदि प्राज्ञः शिलायां स्थितवाँस्तव ॥ ६६ ॥ तत्र स्थित्वा तपश्चक्रे देवैरपि सुदुष्करम् ॥ पंचवर्षसहस्राणि एकपादेन तस्थिवान्॥६७॥ निराहारो निरीहश्च निर्ममो निरहंकृतिः॥

अन्यत्र जाताहै, हे नारद ! वोह अपने पितरोंसहित घोर नरकमें जाताहै ॥ ५९ ॥ हे विप्र ! पितृ गणभी यहभी आकांक्षा किया करते हैं कि, हमारे कुलमें कोई भाग्यवान् हो जो वहां जायकर हम लोगोंका उद्धार करै ॥ ६० ॥ घोर कलियुगमें उनही पुण्यात्मा पुरुषोंको धन्यहै जो अपने पितरोंका उद्धार करनेके निमित्त तीर्थराज वेताल तीर्थमें यात्रा करते हैं ॥ ६१ ॥ इस कुण्डमें जो मनुष्य स्नान, शिलाका स्पर्श; दर्शन और पूजन करते हैं, उनके पुण्यफलको श्रवण करो ॥ ॥ ६२॥ मानो उन्होंने सब तीर्थोंमें स्नान और समस्त भूमिका दान करलिया, और अतुलतेजस्वी विष्णुभगवान् की सम्पूर्णही प्रतिमाओंका दर्शन करलियाहै ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले—हे सर्वव्यापक सेनांपति स्कन्दजी महाराज ! मेरे हृदयमें एक बडा सन्देहहै कि, हे प्रभो ! उक्त तीर्थराजका ऐसा माहात्म्य कैसे हुआ ॥ ६४ ॥ स्कन्दजी बोले—धन्य महाप्राज्ञ धन्य !!! हे मुने ! तुमने जो कुछ हमसे पूछाहै, वोह सब उद्दालकका आख्यान हम तुम्हारे अगाडी वर्णन करते हैं ॥ ६५ ॥ जब उद्दालक धर्मात्माने वेतालोंको गन्धर्वत्वको प्राप्त हुए देखा वोह प्राज्ञ उसी शिलाके ऊपर स्थित होगये ॥ ६६ ॥ और वहां बैठे पांच सहस्र वर्ष पर्य्यन्त एक चरणसे ठहरके ऐसा उग्र तप किया जो देवताओंके द्वाराभी कठिनतासे आचरण किया जासक्ताहै ॥ ६७ ॥ उस समय उसने समस्त इच्छाओं ममत्व और अहकारकी पारत्यागकर

ततः प्रसन्नो भगवान् बभूव दृष्टिगोचरः ॥६८॥ तं दृष्ट्वोद्दालको विप्रः शंखचक्रगदाधरम् ॥ द्योतयंतं दिशः कांत्या कौस्तुभान्वितवक्षसम् ॥ ६९ ॥ नारायणं दयासिंधुं भक्तानां वशवर्तिनम् ॥ स्तोतुं प्रचक्रमे विप्रो भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ ७० ॥ उद्दालक उवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणानिधे॥गुणत्रयविभागाय त्रयीरूपाय ते नमः ॥ ७१ ॥ त्वमिंद्रस्त्वं यमः श्रेष्ठः कालः कलयतां वरः ॥ कुबेरस्त्वं धनाध्यक्षो गणाधीशस्त्वमेव हि ॥७२॥ शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥ सूर्य्यस्त्वं हि तमोहंता नक्षत्राणां पतिस्तथा ॥ ७३ ॥ यत्किंचिद्दृश्यते लोके यद्वै स्थावरजंगमम्॥तत्सर्वं तु त्वमेवासि त्वत्तोनान्योस्ति किञ्चन ॥७४॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो हि भगवान् प्रसन्नोभूद्द्विजातये ॥ मेघगंभीरया वाचा उवाच पुरुषोत्तमः ॥ ७५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स वत्स वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ तत्ते संप्रति दास्यामि अपि त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ ७६ ॥ उद्दालक उवाच ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं त्वत्प्रसादाज्ज-

आहारकाभी परित्याग करदिया, तब तौ श्रीभगवान् प्रसन्न हो उसकी दृष्टिके समक्ष आये ॥६८॥ शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, जिनके वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि प्रकाशित होरहाहै, अतएव दिशाओंको प्रदीप्त करनेवाले ॥ ६९ ॥ दयासागर, अतएव भक्तोंके वशमें रहनेवाले श्रीनारायणको देख द्विजराज उद्दालकजी भक्तिभावपूर्वक गद्गदवाणीसे स्तुतिकरनेको उद्यत होगये ॥ ७० ॥ उद्दालकजी बोले-हे देवाधिदेव ! आप करुणानिधान हैं हम आपको नमस्कार करतेहैं, तीन प्रकारके गुणोंका विभाग आपहीने कियाहै, और त्रिरूपधारी भी आपही हैं हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥ ७१ ॥ इन्द्र, यम, और सबका संकलन करनेवाले कालस्वरूपभी आपहीहैं, धन अधीश्वर कुबेर और गणोंके अधिपतिभी आपहीहैं सुतराम् हम आपको नमस्कार करतेहैं ॥७२॥ साक्षात् शिवरूप, ब्रह्मा और विष्णुस्वरूपभी आपहीहैं, अन्धकार विनाशी सूर्य एवं चन्द्रमा आपहीहैं, सुतराम् हम आपको प्रणाम करतेहैं॥७३॥संसारमें जो कुछभी स्थावरजंगमहै सब आपही आपके अतिरिक्त और कोईभी नहीं है ॥ ७४ ॥ स्कन्दजी बोले-इस प्रकार स्तुति कियेजाने भगवान् उस ब्राह्मणसे प्रसन्न होगये, और मेघकी समान गंभीर वाणीसे पुरुषोत्तम बोले ॥ ७५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा-हे वत्स ! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो सो वर मांगो, वोह चाहे त्रिलोकी दुर्लभहो तथापि हम तुम्हैं देगें ॥ ७६ ॥ उद्दालकजी बोले-हे जगन्नाथ ! मुझे जो कुभ कर्त

गतप्रभो ॥ त्वद्दर्शनं हि लोकेषु दुर्लभं मांसचक्षुषाम् ॥ ७७ ॥ त्वद्दर्शनं मया प्राप्तमन्यत्किं वृणुयाम्यहम् ॥ वरमेकं तु मे देहि यदि चेन्मयि ते दया ॥ ७८ ॥ अस्मिन्कुंडे शिलायां च करिष्यंति नरोत्तमाः ॥ स्नानं दानं पिंडदानं भूयात्तत्कोटिसंख्यकम् ॥ ७९ ॥ इदं स्तोत्रं मयाख्यातं पठिष्यंति हि मानवाः ॥ तेपि तत्र स्नानफलं प्राप्नुयुः पुरुषोत्तमाः ॥ ८० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्त्वया याचितं विप्र तत्तथैव भविष्यति ॥ आगच्छ त्वं महाभाग मद्देहे निर्गुणे शिवे ॥ ८१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरुद्दालसहितो ययौ ॥ वैकुंठं योगिनां गम्यं विष्णुभक्तिपरात्मनाम् ॥ ८२ ॥ इति ते कथितं विप्र वैतालं तीर्थमुत्तमम् ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा पठित्वा भक्तितत्परः ॥ ८३ ॥ सोपि विष्णुपुरं याति श्लोकमात्रेण नारद ॥ श्लोकार्द्धेनापि पादेन पठितेन द्विजोत्तम ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

सब करचुका अतीव मुझे धन्यहै, कारण कि इन मांसचक्षुओंके द्वारा आपके दर्शन दुर्लभ हैं ॥ ७७ ॥ जब आपके दर्शनही मुझे प्राप्त होगये तौ फिर मैं और क्या वर मांगूं ? और यदि आपकी मेरे ऊपर दयाही हैं तौ मुझे एक वर यह दीजिये ॥ ७८ ॥ इस शिला और कुण्डमें जो नरोत्तम स्नान दान अथवा पिण्डदान करैं, वोह सबही करोड गुणा अधिक होजावै ॥ ७९ ॥ और जो मनुष्य हमारे द्वारा कीर्तन किये हुए स्तोत्रका पाठ करैं, उन पुरुषोत्तमोंकोभी स्नान करनेके फलकी प्राप्ति होवै ॥ ८० ॥ श्रीभगवान् बोले—हे विप्र ! तुमने जो वर मांगा, वोह ठीक, इसी प्रकार होगा, और तुम कल्याणस्वरूप हमारे देहमें लीन होओ ॥ ८१ ॥ स्कन्दजी बोले—श्रीविष्णु भगवान् इस प्रकार कहकर उद्दालकको साथ ले उस वैकुण्ठलोकको चलेगये, जहां विष्णुभगवान्के भक्त योगीजन जातेहैं ॥ ८२ ॥ हे विप्र ! हमने इस प्रकार वैतालतीर्थका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, जो मनुष्य भक्तिभावसे तत्परहो इस उत्तम आख्यानको पढते अथवा सुनते हैं, हे द्विजराज ! एक अथवा आधे श्लोकका पाठ करनेसेभी उन्हें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

स्कंद उवाच ॥ अथाहं संप्रवक्ष्यामि सूर्य्यकुंडस्य विस्तरम् ॥ माहात्म्यं मुनिशार्दूल शृणुष्वैकमनाः प्रिय ॥ १ ॥ वेतालतीर्थादुपरि शरविक्षेपमात्रके ॥ तदस्ति पुण्यदं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ तत्रावगाहनान्मर्त्यः कुष्ठरोगात्प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति स्नानाद्वै मनसेप्सितान् ॥ ३ ॥ तस्योत्पत्तिं शृणु प्राज्ञ क्षेत्रराजस्य पुण्यदाम् ॥ पुरा मेधातिथिर्नाम बभूव द्विजसत्तमः ॥ ४ ॥ सूर्य्यभक्तिरतो नित्यं सूर्य्यमेवाभजत्सदा ॥ सदैव सौरमंत्रं वै जपंस्तस्थौ तु स्वे गृहे ॥ ५ ॥ एकदा मुनिशार्दूल गतो मेधातिथिर्मुनिः ॥ देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे ॥ ६ ॥ सौरकुंडे महातीर्थे तीर्थानां प्रवरे शुभे ॥ तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ तपश्चक्रे महामतिः ॥ ॥७॥ निराहारो यतात्मा वै निर्ममो निःस्पृहः सुधीः ॥ सूर्य्यमेव सदा ध्यायन् सौरमंत्रमनुस्मरन् ॥ ८ ॥ एवं वर्षसहस्रे तु व्यतीते द्विजवल्लभ ॥ प्रसन्नोऽभूज्जगच्चक्षुः प्रत्यक्षमनुदृष्टवान् ॥ ९ ॥

स्कन्दजी बोले—हे मुनिशार्दूल ! अब मैं विस्तारपूर्वक सूर्य्यकुण्डके माहात्म्यका वर्णन करताहूं, प्रियवर ! तुम मनको एकाग्रकरके श्रवण करो ॥ १ ॥ वेतालतीर्थसे ऊपरकी और एक वाणकी दूरीपर पुण्यप्रदानकर्त्ता अतएव समस्त पापप्रणाशी वोह तीर्थ है ॥ २ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्योंका कुष्ठरोग दूर होजाताहै, और उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे समस्त मनोरथ सिद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥ हे द्विजराज ! अब उस क्षेत्रकी पुण्यदायक उत्पत्तिको सुनिये प्रथम प्राचीन कालमें मेधातिथि नाम एक ब्राह्मण था ॥ ४ ॥ वोह सूर्य्यनारायणकी भक्तिमें तत्परथा, अतएव नित्यही सूर्य्यनारायणका भजन कियाकरताथा, और अपने घरहीमें उपस्थित रहकर वोह सौर (सूर्य्यके) मन्त्रोंका जप कियाकरताथा ॥ ५ ॥ हे मुनिशार्दूल ! एकसमय वोह मेधातिथि मुनीश्वर सब तीर्थोंमें उत्तम देवप्रयागतीर्थमें गया ॥ ६ ॥ तीर्थोत्तम देवप्रयागमें सूर्य्यकुण्डके ऊपर जाय हे मुनिराज ! उस महामतिने तपकरना आरम्भकिया ॥ ७ ॥ उससमय उन्होंने आहारको त्याग, आत्मनिग्रहपूर्वक ममत्व और स्पृहाको त्यागदिया, सुतराम् वोह बुद्धिमान् केवल सूर्य्यनारायणके मन्त्रोंहीका जप करता रहताथा ॥ ८ ॥ हे द्विजवल्लभ ! इसप्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत होजानेपर संसारके नेत्रस्वरूप श्रीसूर्य्यनारायण प्रसन्न होगये, अतएव उन्होंने प्र

मेधातिथिः सुधर्मात्मा भासमानो यथा रविः॥तपसा शुद्धदेहो वै चकार स्तुतिमुत्तमाम् ॥१०॥ ॥ मेधातिथिरुवाच ॥ निखिलनिगमबोधप्रमोदप्रयुक्तप्रभक्तप्रहर्षप्रसेव्यप्रपाद॥प्रकरनिकरविनष्टांधकारप्रकाशप्रहर्षप्रयुक्तत्रिलोकप्रभो भोः ॥ ११ ॥ भवजलधितरणप्रपोतांघ्रिपद्म प्रनष्टं भवापारवारांनिधौ त्राहि माम् ॥ सकलसुरगणस्तूयमानः प्रमुक्त्यै नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ ॥१२॥ स्कंद उवाच॥इति स्तुतो हि भगवान् दंडकेन वरेण वै॥ उवाच वचनं पुण्यं सर्वलोकहितावहम् ॥ १३ ॥ श्रीसूर्य उवाच ॥ वत्स मेधातिथे विप्र वृणीष्व त्वं वरं मुने॥दास्यामि ते महाभाग अप्यदेयं वरं वरम्॥१४॥मेधातिथिरुवाच॥ विभो विभास्कर प्राज्ञ सप्ताश्वरथवाहन ॥ त्वदीयचरणांभोजे भक्तिर्भवतु सर्वदा ॥१५॥ सदैव तव पूजां तु कुर्य्यां संभक्तितत्परः॥वरमन्यं च मे देहि यदि मां मन्यसे रवे ॥ १६ ॥ त्वया सदात्र स्थातव्यं

हो उसका अवलोकन किया ॥ ९ ॥ उससमय मेधातिथि धर्मात्मा सूर्य्यकी समान प्रदीप्त होरहाथा क्योंकि तपश्चर्य्या करनेसे इसका देह शुद्ध होगयाथा, तब यह सूर्य्यनारायणकी उत्तम स्तुति करनेलगा ॥ १० ॥ मेधातिथि बोला—अखिल वेदान्तविद्यासे आपका ज्ञान होताहै, आप भक्तोंको आनन्द प्रदान करतेहैं, आप अपने किरणजालद्वारा अन्धकारको विनष्ट कर सबको प्रसन्न करते हैं, सुतराम् हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ११ ॥ आपके चरण कमल संसारसागरसे उद्धार करनेके लिये नौकाकी समानहै, मैं अपार संसार सागरमें निमग्न होरहाहूं, आप मेरी रक्षा करिये, अपनी मुक्तिके लिये सबही देवगण आपकी स्तुति किया करतेहैं, अतएव हमभी वारंवार आपको प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥ स्कन्दजी बोले—जब उक्त ब्राह्मणने श्रेष्ठ दण्डकद्वारा इस प्रकार सूर्य्य देवकी प्रार्थना करी, तब उन्होंने सबलोकोंका हित संपादन करनेवाले पवित्र वचन कहे ॥ १३ ॥ श्रीसूर्य्य बोले—हे पुत्र मुनिराज मेधातिथि !!! तुम वर माँगो, जो किसीको न दिया जा सके ऐसा श्रेष्ठ वरभी मैं तुम्हैं दूंगा ॥ १४ ॥ मेधातिथि बोला—हे सर्वव्यापक बुद्धिमान् सूर्य्य देव !!! आप अग्निवाही रथके ऊपर आरूढ रहते हैं, वस आपके चरणकमलमें मेरी सदा भक्ति हो ॥ १५ ॥ और भक्तिभावमें तत्पर होकर मैं सदैव आपकी पूजा करताहूं और यदि आप मुझै (अपना भक्त) मानते हैं तो दूसरा वर यह दीजिये कि ॥ १६ ॥ हे महासातिमान् ! मेरे सहित आप सदैव यहां निवास करते रहैं, और इस कुण्डका पवित्र माहात्म्य संसा-

मया सह महामते ॥ अस्य कुंडस्य माहात्म्यं भूयात्पुण्यतमं वरम् ॥ १७ ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातमेतत्तीर्थं भवेद्विभो ॥१८॥ ॥ स्कंद उवाच॥तत्तथास्तामिति विभुरुक्त्वा स्वर्गं जगाम वै॥ततः ख्यातं बभूवेदं कुंडं क्रतुफलप्रदम् ॥ १९ ॥ अस्मिन्सौरे महाकुंडे यदि प्राप्येत सप्तमी ॥ माघमासस्य शुक्ला वै तत्र स्नातुः फलं शृणु ॥२० ॥अर्बुदार्बुदवर्षाणि तथार्बुदशतानि च ॥ सूर्य्यलोके वसेन्मर्त्यस्ततो वै जायते द्विजः ॥२१ ॥ वेदवेदांगवक्ता वै सुंदरांगः सुबुद्धिमान्॥सर्वलोकेषु विख्यातः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ॥ २२ ॥ सूर्य्यस्य प्रीतये दद्याद्यो मर्त्यो भक्तितत्परः ॥ गृहवस्त्रान्नगेहानि सूर्य्यलोके वसेत्तु सः ॥ २३ ॥ अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा ते प्रत्ययो भवेत्॥शृणु नारद तत्त्वेन मत्तो मुनिगणर्षभ ॥ २४ ॥ कश्चिच्छूद्रो मुनिश्रेष्ठ बभूव द्विजसेवकः ॥ देवदास इति ख्यातो नाम्ना वै मुनिसत्तम ॥ २५॥ सर्वेषां द्विजवर्य्याणां परिचर्य्यां करोति सः ॥ द्विजाज्ञयैव सर्वं हि व्यवहारं करोति च ॥ २६ ॥ गायने तस्य वै प्रीतिः सदाभूद्द्विजपुंगव ॥

रमें विख्यात हो ॥ १७ ॥ हे सर्व व्यापक ! विशेष क्या कहूं यह तीर्थ तीनोंही लोकमें विख्यात होजाय ॥ १८ ॥ स्कन्दजी बोले—जो कुछ तुमने कहा वोह सब इसी प्रकारसे होगा, यों कहकर सूर्य्य नारायण स्वर्ग लोकको चलेगये, उसी दिनसे यह कुण्ड यज्ञफलदायक विख्यात होगया है ॥ १९ ॥ यदि माघशुक्ल सप्तमीके दिन कोई व्यक्ति इस सूर्य्य महाकुण्डमें स्नान करै तो उसके फलको सुनिये ॥ २० ॥ वोह मनुष्य अर्बुद गुणित अर्बुद, और अर्बुदशत वर्षपर्य्यन्त सूर्य्य लोकमें निवास करनेके अनन्तर ब्राह्मण कुलमें जन्म लेताहै ॥ २१ ॥ वहां वोह वेदवेदांगका वक्ता, सुन्दर अंगोवाला, और सुन्दर बुद्धिमान् होताहै, एवं च समस्त शास्त्रार्थ पारगामी होनेके कारण वोह सब लोकमें विख्यात होजाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य सूर्य्य नारायणकी प्रसन्नताके लिये घर, वस्त्र और अन्न प्रदान करता है, वोहभी सूर्यलोकमें निवास करता है ॥ २३ ॥ सुनो मुनिगणोत्तम नारद ! ! ! और भी हम वर्णन करते हैं, उसे तुम्हैं सुनकर तुम्हैं विश्वास होजायगा, उसको तत्वपूर्वक सुनो ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वर ! कोई शूद्र ब्राह्मणोंका सेवक था, हे मुनिसत्तम ! उसका देवदास नाम था ॥ २५ ॥ वोह सबही ब्राह्मणोंकी परिचर्य्या (सेवा) किया करता, बल्कि सब व्यवहारही ब्राह्मणोंकी आज्ञासे करता था ॥ २६ ॥ हे द्विजपुंगव ! गानकरनेमें उसकी सदा

कथं मे गायनज्ञानं भविष्यति च चिंतयन् ॥ २७ ॥ कस्मिंश्चि-
त्त्वथ काले तु देवदासो गृहं ययौ ॥ मार्गे व्रजन् ददर्शाथ मुनि-
पुंजं सुनिर्मलम् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा मुनिगणं नत्वा चरणौ जगृहे
तदा ॥ तेषां वै मुनिवर्य्याणां देवदासो महामतिः ॥ २९ ॥
उवाच मुनिपुंजं वै विनयाविष्टमनसः ॥३०॥ देवदास उवाच ॥
भोभो मुनिगणाः सर्वे दयां कुरुत सुव्रताः ॥ भवतां दासभू-
तोहं शूद्रो विज्ञापयाम्यथम् ॥ ३१ ॥ यथा सुगायकोहं स्यां
वासवस्य शचीपतेः ॥ सदा स्वर्गे च मे वासो भवतान्मुनिस-
त्तमाः ॥ ३२ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवदास शृणु त्वं हि वक्ष्या-
मस्ते वयं वचः ॥ येन वै कर्मणा शूद्र यास्यसि त्वं त्रिविष्टपम् ॥
॥३३॥ गंधर्वराजतां चैव गमिष्यसि हि पादज ॥ देवप्रयागके क्षेत्रे
देवकुंडं हि विद्यते॥३४॥गंगाया उत्तरे कूले तत्र गच्छ महाशय ॥
तत्रावगाहनाद्वत्स सूर्य्यस्तुष्यति सारुणः ॥ ३५ ॥ यान् यान्
प्रार्थयते कामांस्तान्ददाति हि भास्करः ॥ गच्छ गच्छाशु हे शूद्र

प्रीति रहती थी और वोह यही विचार करता रहता था कि–मुझे गान विद्याका ज्ञान किस प्रकार होसक्ता है ॥ २७ ॥ एक समय वोह देवदास अपने घरको जाताथा, तब मार्ग में जाते २ उसे शुद्ध महर्षियोंके समाजके दर्शन हुए ॥ २८ ॥ महर्षि मण्डलको देख प्रणामकर उनके दोनों चरणोंको पकड लिया, और वोह महामतिमान् देवदास मुनीश्वरोंके समक्ष ॥ २९ ॥ नम्रतापूर्वक से वाक्य महर्षि समाजसे कहने लगा ॥ ३० ॥ देवदासने कहा–हे सदाचारी मुनीश्वरो ! आप सब मेरे ऊपर दया करिये ! मैं शूद्र आपका दास हूं, अतएव आपसे प्रार्थना करताहूं ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वरो ! ऐसा उपाय बताइये, जिसके करनेसे मैं शचीपति इन्द्रका गायक बनकर सदैव स्वर्गमें निवास करूं ॥ ३२ ॥ ऋषियोंने कहा–हे देवदास ! हम जो वचन तुझसे कहते हैं उन्हें सुन, उस कर्मके करनेसे हे शूद्र ! तू स्वर्गमें चला जायगा ॥ ३३ ॥ अथ च हे पादज (शूद्र)! तू सब गन्धर्वोंका अधीश्वर भी बन जायगा, देवप्रयाग क्षेत्रमें एक देवकुण्ड है ॥ ३४ ॥ हे महाशय ! वोह गंगाजीके उत्तरी तटपर है, तू वहां जा, हे वत्स ! उसमें स्नान करनेसे अरुण सहित सूर्य्यदेव प्रसन्न होजाते हैं ॥ ३५ ॥ फिर मनुष्य जो २ कामना करता है सूर्य्य नारायण सबही

तीर्थानामुत्तमोत्तमे ॥ ३६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदासो महामतिः॥तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे ययौ देवप्रयागके॥ ॥३७॥ सौरकुंडे स धर्मात्मा स्नानं वै कृतवांस्तदा ॥ रविं सदा हृदि ध्यायन् सूर्य्यसूर्य्येत्युदीरयन् ॥ ३८ ॥ एवं वै कुर्वतस्तस्य संतुष्टोऽभूद्दिवाकरः ॥ उवाच देवदासं स सारुणो भगवान्रविः॥ ॥ ३९ ॥ सूर्य्य उवाच ॥ भोभो शूद्र महाभाग प्रसन्नोहं त्वयि प्रिय ॥ वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४० ॥ देवदास उवाच ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं पापं मे विगतं रवे ॥ तव दर्शन-मात्रेण करुणाकर भास्कर ॥ ४१ ॥ अहं गंधर्वराजः स्यामिति मे हृदि वर्त्तते ॥ तत्कुरुष्व महाभाग भक्तानामभयप्रद ॥ ॥४२॥ स्वर्गलोके सदा वासो मम स्याच्छिवरूपक ॥ इच्छारूपं तु मे देहि भक्तोहं तव पापहन् ॥ ४३ ॥ श्रीसूर्य्य उवाच ॥ वत्स शूद्र त्वमद्यैव भव गंधर्वराट् सुत ॥ इच्छारूपेण विहर स्वर्ग-लोके निरंतरम् ॥ ४४ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्

पूर्ण करदेते हैं, अतएव हे शूद्र ! तू सर्वोत्तम उक्ततीर्थमें अवश्य ही शीघ्र जा ॥ ३६ ॥ स्कन्द-जी बोले-उन महर्षियोंके ऐसे वाक्य सुनकर वोह महामतिमान् देवदास देवप्रयाग महाक्षेत्रमें गया ॥ ३७ ॥ एवं उस धर्मात्माने सूर्य्यकुण्डमें स्नानकर, सदैव हृदयमें सूर्य्यनारायणका स्मरण कर सूर्य्य २ जप करना प्रारम्भ किया ॥ ३८ ॥ उसके इसप्रकार आचरण करते २ सूर्य्यदेव प्रसन्न होगये, और अरुणसहित सूर्य्य भगवान्ने उससे ये वाक्य कहे ॥ ३९ ॥ सूर्य्य बोले—हे प्रिय शूद्र महाशय ! मैं तेरे प्रति प्रसन्नहूं, सुतराम् जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर मांगो ॥ ॥ ४० ॥ देवदास बोला—सूर्य्यदेव ! जो कर्त्तव्य था, वोह मैंने सब करलिया अतएव मुझे धन्य है, करुणानिधान सूर्य्य ! आपके दर्शन मात्रहीसे मैं कृतार्थ होगया ॥ ४१ ॥ मेरे हृदयमें यह अभिलाषा है कि मैं गन्धर्वराज होजाऊं, सो हे भक्तोंको अभयप्रदान कर्त्ता महाभाग ! ऐसी कृपा करिये जिससे मेरा मनोरथसिद्ध होजाय ॥ ४२ ॥ हे कल्याणमूर्त्ते ! स्वर्गलोकमें मेरा सदैव निवास हो, और मेरा रूपभी इच्छानुसार होजाया करै, हे पापहारिन् देवाधिदेव ! मैं आपका भक्तहूं ॥ ४३ ॥ सूर्य्यदेव बोले—हे पुत्र शूद्र ! तू अभी गन्धर्वराज होजा, और इच्छानु-सार रूपधारणकर स्वर्गलोकमें निरन्तर विहार कर ॥ ४४ ॥ स्कन्दजी बोले—सूर्य्य भगवान् यौं कहकर

सूर्य्यस्तत्रैवांतरधीयत ॥ देवदासोपि धर्मात्मा प्राप्य गंधर्वराजताम् ॥ अश्वरूपोऽभवत्तत्र कुंडे कुंडोत्तमे शुभे ॥ ४५ ॥ अश्वपादांकितं क्षेत्रमद्यापि दृश्यते जनैः ॥ ततो मनुष्यरूपेण विचचार महामतिः॥४६॥कदाचिद्देवरूपेण रक्षोरूपेण वाथ वा॥नानाविधानि रूपाणि धृत्वा वै विचचार सः ॥ ४७ ॥ गंधर्वत्वे तस्य नाम बभूव मुनिसत्तम ॥ सुघोष इति विख्यातो गंधर्वेषु मृगाधिपः ॥ ४८ ॥ प्रातःकाले सदा याति सुघोषो नाम गायकः ॥ स्नानाय सौरकुंडे तु सर्वपापहरेऽनघे ॥ ४९ ॥ नानारूपधरः शुद्धो दृश्यते पुण्यकर्तृभिः॥सर्वे देवाः सगंधर्वा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः॥ तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये नित्यं तिष्ठंति नारद ॥५०॥ धन्यास्त एव ये मर्त्याः स्नानं कुर्वंति नित्यशः ॥ सूर्यस्य पूजनं चैव सौरकुंडे मुनीश्वर ॥ ५१ ॥ ह्रां ह्रीं स इति मंत्रेण सूर्य्यपूजां करोति यः ॥ तस्य देवः स्वयं साक्षाद्ददाति वरमुत्तमम् ॥५२॥ ब्रह्महत्यादिपापानि गोत्रोत्थहननं तथा ॥ स्नानमात्राद्विनश्यंति

वहांही अन्तर्द्धान होगये, और इधर धर्मात्मा देवदासभी गन्धर्वराजत्वको पाय उसी शुभ कुण्डके ऊपर अश्वरूप होगया ॥ ४५ ॥ सुतराम् वोह क्षेत्र अश्वके चरणोंसे चिंह्नित हुआ अभीतक मनुष्योंको दीखता है, फिर वोह महामतिमान् मनुष्यरूप धर विचरने लगा ॥ ४६ ॥ कभी देवरूप और कभी राक्षस रूपसे वोह विचरता था, सारांश यह है कि वो विविध भांतिके रूप धारण कर विचरता फिरता था ॥ ४७ ॥ हे मुनिसत्तम ! गन्धर्व रूपमें उसका सुघोष नाम था, और सब गंधर्वोंमें अधीश्वर होनेके कारण वोह अत्यन्त ही विख्यात होगया था ॥४८॥ समस्त पापोंको दूर करनेवाले उस सूर्य्यकुण्डमें स्नान करनेके लिये वोह गन्धर्वराज सुघोष प्रातःसमय वहां नित्यही आता है ॥४९॥ यद्यपि वोह शुद्धात्मा अनेक प्रकारके रूप धारण करके विचरण करता है तथापि पुण्यशीलही उसके दर्शन करसक्ते हैं, ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता, हे नारद उस उत्तम तीर्थमें नित्यही उपस्थित रहते हैं ॥५०॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य सूर्य्यकुण्डमें स्नान और सूर्य्यनारायणका पूजन करते हैं, उन्हें धन्य हैं ॥ ५१ ॥ "ॐ ह्रां ह्रीं सः" इस मन्त्रकेद्वारा जो मनुष्य सूर्य्यनारायणकी पूजा करता है, उसे साक्षात् सूर्य्यनारायणभगवान् स्वयं वरप्रदान करते हैं ॥ ५२ ॥ ब्रह्महत्यादि तथा गोत्रजोंका वध करनेसे जो पाप लगते हैं, वे सबही, उक्त सूर्य्यकुण्डमें स्नानमात्रकरनेसे इस

यथाग्नौ तूलराशयः ॥ ९३ ॥ इति ते कथितं दिव्यमदेयं दुष्ट-जंतुषु ॥ मेधातिथेश्चरित्रं तु देवदासस्य धीमतः ॥ ९४ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या पठेद्वा पाठयेदपि॥पुत्रपौत्रैः परिवृतो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥ ९५ ॥ सूर्य्यलोकं स तिष्ठेद्वै यावदाभूत-संप्लवम् ॥ कर्मक्षयादिहागत्य जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥९६ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे रुईका ढेर अग्निसे भस्म होजाता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार यह आख्यान हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह दुष्ट प्राणियोंको न सुनाना चाहिये, मेधातिथि और देवदासके चरित्रको ॥ ९४ ॥ जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक पढता, पढाता अथवा श्रवण करता है, वोह पुत्र पौत्रोंसे युक्तहो यथाभिलषित भोगोंको भोगके ॥ ९५ ॥ प्रलय पर्य्यन्त सूर्य्यलोकमें निवास करता है, और कर्म क्षीण होने पर जब फिर उसका संसारमें जन्म होता हैं तो उसे पूर्व जन्मका स्मरण बना रहता है ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५६.

स्कंद उवाच ॥ वशिष्ठतीर्थादुपरि विंशतीनां चतुष्टये ॥ कर-प्रमाणे विधिज गदितं तीर्थमुत्तमम्॥ वाराहं त्रिषु लोकेषु अति-पुण्यतमं स्मृतम् ॥१॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शृणुष्वैकमनाः शुभम् ॥ पुरा सत्ययुगे विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥ सर्वबंधुरिति ख्यातो वराहमनुसेवकः ॥२॥ भक्तो भक्तिमतां श्रेष्ठो गोविंदकृत-मानसः ॥ भुंजन्स्वपंस्तथा गच्छन् विष्णुं वै क्रोडरूपिणम् ॥

स्कन्दजी बोले—हे ब्रह्मनन्दन ! वशिष्ठ तीर्थसे ऊपरकी ओर अस्सीहाथकी दूरी पर एक तीर्थ है, उसका वाराहतीर्थ नाम हैं, और वोह तीनोंलोकमें अतीव पवित्र विख्यात है ॥ १ ॥ हे शुभमूर्ते ! उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको एकाग्र चित्त कर श्रवण करो, प्रथम सत्ययुगमें वेदवेदान्तपारगामी, वाराहजीका सेवक सर्वबन्धु नाम एक ब्राह्मण था ॥ २ ॥ वोह भक्त सभी भक्तोंमें श्रेष्ठ था, सदैव उसका चित्त गोविन्दभगवान्में निरत रहता था, सुतराम् वोह चलते

स्मरति स्म जगन्नाथं त्रैलोक्यस्यैकनायकम्॥ ३॥स कदाचित्तपः कर्तुं ययौ देवप्रयागके॥तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठो जजाप मनुमुत्तमम्॥ ॥ ४ ॥ वाराहरूपिणो विष्णोर्नित्यं तन्न्यस्तमानसः॥ निराहारो निरीहश्च निस्संगो निर्ममस्तथा॥समाधिस्थः स मुनिराट् तस्थिवान्मुनिवंदितः ॥५॥ एवं तस्य महाभाग जातं वर्षसहस्रकम् ॥ आविर्बभूव भगवान् क्रोडरूपी जनार्दनः ॥ ६ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणः ॥ दंताग्रविलसद्भूमिर्हिरण्याक्षविमर्दनः ॥ ॥ ७ ॥ वराहरूपिणं देवं दृष्ट्वा गद्गदया गिरा ॥ सर्वबंधुर्जगद्बंधोरारेभे स्तुतिमुत्तमाम् ॥८॥ सर्वबंधुरुवाच ॥ हिरण्याक्षहंतर्भवापारवारांनिधेस्तारणोपायभूतांघ्रिपद्म ॥ रमेश प्रभेश क्षपेशाक्षिभूत प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९ ॥ अचिंत्यस्वरूप प्रजानाथयोने सुदेवादिभिर्नीतपादांबुबिंदो ॥ लसद्दन्त कुन्तप्रभिन्नारिवक्षः प्रभो हे नमस्तेनमस्तेनमस्ते ॥ १० ॥ मुरारे बलारे अघारे सुरारिप्रकंपप्रकर्तः प्रजेश सुनेतः ॥

खाते, तथा अन्य सब दशामें त्रिलोकस्वामी जगन्नाथ भगवान्हीका स्मरण किया करता था ॥ ३ ॥ एक समय वोह तप करनेकी कामनासे देवप्रयागमें गया, और वोह श्रेष्ठमुनीश्वर उत्तम (बाराह) मन्त्रका जप करने लगा ॥ ४ ॥ उस समय उसने आहार, संगति, इच्छा और ममत्व सबको त्याग विष्णुभगवान्में मन लगाय, हे महर्षिवन्दित ! समाधिमें स्थिति करी ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! इस प्रकार करते २ उसे सहस्र वर्ष व्यतीत होगये, तब तौ श्रीबाराहजी महाराज उसके समक्ष प्रादुर्भूत हुए ॥ ६ ॥ उस समय भगवान् शंख चक्र गदा पद्म और वनमालाको धारण कर रहे थे, अथ च हिरण्याक्षका वध करनेवाले भगवान्के दन्ताग्रभागपर भूमि सुशोभित होरही थी ॥ ७ ॥ बाराहरूपधारी जगन्नाथ भगवान्को देख सर्वबन्धु ब्राह्मण गद्गदवाणीसे उसकी स्तुति करनेको उद्यत होगया ॥ ८ ॥ सर्वबन्धु बोला–हे हिरण्याक्षविनाशिन् ! संसारसागरसे उद्धार करनेवाले आपहीके चरण हैं, आप प्रकाश स्वरूप और लक्ष्मीकान्त हैं, हे प्रभो ! आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे प्रजानाथ ! आपके स्वरूपका यथार्थ विचार किसीसे हो नहीं सकताहै, बड़े २ देवता आपके चरणोंकी पूजा करते हैं, आपका विशाल वक्षःस्थल और दन्तपांक्ति प्रकाशमान है, है प्रभो ! हम वारंवार आपको प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ आप मुर आदि सब दैत्योंके अरि हैं, आपही पापोंका विनाश करते हैं, आपके भयसे संसार कंपायमान रहताहै, आप सबके

प्रपन्नाखिलानंदरूपप्रकर्ष प्रभो हे नमस्तेनमस्तेनमस्ते ॥ ११ ॥
निराकार सानंदनंदस्य गेहेहि कंसप्रणाशप्रकर्त्तः सुरेश॥सुरानेक-
वृंदप्रसेव्यांघ्रिपीठ प्रभो हे नमस्तेनमस्तेनमस्ते ॥ १२ ॥
प्रचंडारिमुंडप्रभंजप्रकर्तर्निमग्नामधः क्ष्मां बिभर्त्तः स्वदंते ॥ जग-
त्पालनानेकरूपं बिभर्त्तः प्रभो हे नमस्तेनमस्तेनमस्ते ॥ १३ ॥
अथो मां हरे पाहि वारांनिधेस्त्वं रुषा क्रोधकामादिनक्रैः प्रभुक्तम् ॥
क्षुत्तृष्णादिवीची त्र्यवीचीप्रकल्पात्प्रभो हे नमस्ते नमस्ते
नमस्ते ॥ १४ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो हि भगवान्
क्रोडरूपी रमापतिः॥प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं सर्वबंधुं तपःस्थितम् ॥
॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वबंधो द्विजश्रेष्ठ वरं वरय
सुव्रत ॥ नहि ते दुर्लभं किंचित्प्रसन्ने मयि भूसुरः ॥१६॥ ॥ सर्व-
बंधुरुवाच ॥ भगवन् यर्हि वरदोसि त्वं त्रैलोक्यनायक ॥ वरद्वयं
प्रब्रुवेऽहं यदि वै मयि ते दया ॥ वरेणैकेन भगवन्नत्र तिष्ठ मया
सह ॥ १७ ॥ नित्यं परोपकाराय प्रीतये मम नायकः ॥ द्विती-

नेता हैं, अपने प्रपन्न भक्तोंको आप प्रसन्न करदेते हैं, हे प्रभो ! आपको वारंवार नमस्कार है॥ ११॥ आप निराकार और साक्षात् आनन्द स्वरूप हैं, हे असुरारि ! कंसका वध भी आपहीने किया था, हे देवाधिदेव ! सब देवगण आपके चरणोंकी पूजा करते हैं, सुतराम्—हमारा आपको वारंवार प्रणाम है ॥ १२ ॥ आप दुष्टोंका विनाश करते और अखिल भूमिका पालन करते हैं, आपने दन्तोंके ऊपर ही भूमिको धारणकर सबका भरण पोषण करते हैं, आपको वारंवार नमस्कारहै॥ १३॥ हे प्रभो ! संसार सागरमें पड़े २ मुझे काम क्रोध आदि नक्र भक्षण करते हैं, क्षुधा और तृषा रूप लहरें बडी प्रवलतासे मुझे व्यथित करती हैं, हे प्रभो ! मैं वार २ आपको प्रणाम करता हूं आप मुझे उवारिये॥ १४ ॥ स्कन्दजी बोले—वाराह रूप धारी लक्ष्मीकान्त श्रीभगवान्की जब इस प्रकारसे प्रार्थना करी, तब उन्होंने तपमें उपस्थित सर्वबन्धुसे प्रसन्नहो ये वाक्य कहे॥ १५॥ श्रीभगवान् बोले—सदाचरण करनेवाले अत एव हे द्विजराज सुबन्धो ! ! ! हमारे प्रसन्न होजानेपर त्रिलोकीमें भी कुछ दुर्लभ नहीं है, सुतराम् तुम हमसे वर मागो ॥ १६ ॥ सर्वबन्धु बोला—हे त्रिलोकी नाथ भगवन् ! ! ! यदि आप मुझसे प्रसन्नहो वर देनेको उद्यत हुए हैं, तौ मैं दो वरकी याचना करताहूं, हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर दयाहै तौ एक वर यह दीजिये कि-आप मेरे सहित सदैव यहां उपस्थित रहैं ॥ १७ ॥ हे नाथ ! ऐसा करनेसे दूसरोंका उपकार और मेरी

येन वरेणाशु मम जन्मनिजन्मानि ॥ १८ ॥ भक्तिस्ते सततं विष्णो भूयात्पातकशांतये ॥ न कामे न च लोभे न विषयेषु तथैव च ॥ निंदायां यस्य कस्यापि मतिर्मे नास्तु माधव ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इदं तीर्थं महापुण्यं वर्त्तते भक्तनायक ॥ अस्मिंस्तीर्थे वसाम्येव सदैव हि महामुने ॥२०॥ तथापि भविता नाम एतत्तीर्थस्य पुण्यकम् ॥ वाराहं सर्वपापघ्नं मज्जनान्मुक्तिदायकम् ॥ २१ ॥ शिलारूपेण गंगायां करिष्यामि निवासकम् ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्तनात् ॥ पूजनाद्गंधपुष्पाद्यैर्नश्यंति दुरितानि वै ॥२२॥ अस्मिन्कुंडे नरः स्नात्वा मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ तीर्थेऽस्मिन् प्रवरे पुण्ये पितॄन्संतर्प्य भक्तितः ॥ सहस्रवर्षपर्य्यन्तं श्राद्धस्य फलमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ वाराहे तीर्थनाथे वै कृतं तत्सर्वमक्षयम् ॥ महापातकिनोप्यत्र स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयुः ॥ २५ ॥ त्वमप्येवं महाभाग कियत्कालं वसात्र वै ॥ सर्वसंगविहीनश्च नित्यं मां परिचित-

नीतिका सम्पादन होजायगा। और दूसरा बर यह दीजिये कि—जन्म जन्मान्तरमें ॥ १८ ॥ सब पापनाश होनेके निमित्त आपकी भक्ति मेरे चित्तमें रहै, काम लोभ तथा अन्य विषयोंमें अथवा किसीकी निन्दा करनेमें हे माधव ! मेरी मति निरत न हो ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे भक्तशिरोमणि ! यह तीर्थ अत्यन्तही पवित्र है, सुतराम्—हे मुने ! इस तीर्थमें सदैवही मैं निवास करता हूं ॥ २० ॥ तथापि इस परम पवित्र तीर्थका वाराहतीर्थ नाम प्रसिद्ध होगा, और इसमें स्नान करनेसे मोक्षका लाभ हुआ करैगा ॥ २१ ॥ और मैं शिलारूप धारण कर गंगाजीमें निवास करूंगा, वहां हमारे दर्शन स्पर्श, ध्यान, नामकीर्तन और गन्ध पुष्पादिकोंसे पूजन करनेसे समस्त पापोंका विनाश होगा ॥ २२ ॥ इस कुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्यको हमारे सायुज्यका लाभ होगा ॥ २३ ॥ जो मनुष्य इस सर्वोत्तमतीर्थमें भक्तिभाव पूर्वक पितरोंका तर्पण करते हैं, उन्हैं सहस्र वर्ष पर्यन्त श्राद्ध करनेका फल उपलब्ध होताहै ॥२४॥ तीर्थराज वाराह तीर्थमें जो कुछ कर्म किया जाय वोह सब अक्षय होताहै, और इसमें स्नान करनेसे बड़े २ पापियोंको भी शुद्धिका लाभ हुआ है ॥२५॥ हे महाभाग ! कुछ काल पर्यन्त तुमभी यहां निवास करो, और अखिल संसर्ग परि

यन् ॥ निष्कर्मकः समाधिस्थ अंते सायुज्यभाग्भव ॥ २६ ॥
॥ स्कंद उवाच ॥ इत्याभाष्य क्रोडरूपी रमानाथो धरासुरम् ॥
तस्थौ शिलास्वरूपेण गंगामध्ये जनार्द्दनः ॥ २७ ॥ उभयोः
पार्श्वयोः स्वस्य स्थापयित्वा सदाशिवम् ॥ सर्वबंधुश्च धर्मात्मा
तत्रैव स्थितवाञ्छिवः ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वाथ नारदः
स्कंदाद्वाराहस्य च विस्तरम् ॥ पुनः पप्रच्छ धर्मात्मा स्कंदो वै
ऋषिसत्तम ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ कार्त्ति-
केय महाबल ॥ कियत्प्रमाणा हि शिला कथं तस्याश्च पूजनम् ॥
॥ ३० ॥ को विधिः कानि द्रव्याणि विष्णुप्रीतिकराणि च ॥
केन मंत्रेण हे देव वराहपूजनं भवेत् ॥ ३१ ॥ कुंडे च केन
मंत्रेण स्नातव्यं शिवपुत्रक ॥ यत्र नारायणः साक्षात्स्वयं वसति
पापहा ॥ ३२ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि यत्पृष्टोहं
त्वयानघ ॥ श्रीवराहशिलायाश्च प्रमाणं कथ्यतेऽधुना ॥
॥ ३३ ॥ केन वा शक्यते वक्तुं श्रीविष्णोरंतरात्मनः ॥

त्याग पूर्वक हमारा ही चिन्तवन करो, अथ च समस्त कर्मोंका परित्याग कर समाधिमें स्थित रहो, अन्तमें तुम्हे हमारे सायुज्यकी प्राप्ति होगी॥२६॥स्कन्दजी बोले—हे भूदेव ! बाराहरूपधारी श्रीभगवान् इस प्रकार कहकर जनार्दन भगवान् शिलारूपसे गंगाजीके मध्यमें स्थित होगये॥२७॥और अपने दोनों पार्श्वभागमें सदाशिवका स्थापन कर कल्याणमूर्त्ति धर्मात्मा सुबन्धु भी वहां ही स्थित होगया॥२८॥सूतजी बोले—जब नारदजी महाराजने स्कन्दजीसे इस प्रकार बाराह क्षेत्रका विस्तार श्रवण करा, तब हे महर्षियो वे धर्मात्मा फिर भी स्कन्द जीसे पूछने लगे॥२९॥नारदजी बोले- हे महाबलशाली भगवान् कार्त्तिकेयजी महाराज ! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, सुतराम् यह बताइये कि उस शिलाका कितना प्रमाण है, और जनार्दन भगवान्का पूजन किस प्रकार किया जाताहै ॥ ३० ॥ पूजनकी विधि क्या है ! और विष्णुभगवान्को प्रसन्न करनेवाले पूजनके द्रव्य कौन २ से हैं ! अथ च हे देव ! किस मन्त्रके द्वारा बाराहजीका पूजन किया जाता है ॥ ३१ ॥ हे शिवकुमार ! बाराहकुण्डमें किसमन्त्रसे स्नान करना चाहिये ? कारण कि, पापविनाशी भगवान् वहां स्वयं निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ स्कन्दजी बोले-सुनो निष्पाप नारदजी ! तुमने जो कुछ पूछा वोही हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, अब प्रथम बाराह शिलाके प्रमाण (विस्तार) का कर्त्तिन करते हैं ॥ ३३ ॥ और अन्तरात्मा श्रीविष्णुभगवान् के माहात्म्यका वर्णन तो करहीं कौन सक्ता

विस्तरं च प्रमाणं चानन्तस्य परमात्मनः ॥ ३४ ॥ गव्यूतिमात्र-
तीर्थात्तु ह्यधो वै विस्तरा मता ॥ मध्ये तथा महाभाग गुहा वै
वर्तते बुध ॥ ३५ ॥ सर्वबंधुश्च धर्मात्मा तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥
स्मरन्वै मनसा विष्णुं नित्यं विष्णुपरायणः ॥ ३६ ॥ गुहाद्वारं
महाभाग दशरथागमध्यतः ॥ तेन मार्गेण गच्छंति शिष्यास्त-
स्य महात्मनः ॥ ३७ ॥ वत्सरे वत्सरे चैव दर्शनं कर्तुमुद्यताः ॥
देवा अपि महाविष्णोर्द्वादश्यां मुनिवंदित ॥ ३८ ॥ अहो भाग्य-
महो भाग्यं पश्यतां पुण्यकर्मणाम् ॥ शिलां श्रीक्रोडरूपस्य
श्रीविष्णोः परमात्मनः॥३९॥ शिलायाः पूजनं वक्ष्ये तच्छृणुष्व
महामते ॥ यत्कृत्वा मानुषस्येह पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४० ॥
शिलारूपिन्महाक्रोड जगत्स्थित्यंतकारक ॥ पाद्यं गृहाण
भगवन्नतः पापं दहस्व मे ॥ ४१ ॥ नारायण दयासिंधो शंख-
चक्रगदाधर ॥ आचमनीयं मया दत्तं गृहाण सुरवंदित ॥ ४२ ॥
मधुसूदन देवेश हिरण्याक्षवधे रत ॥ दंताग्रविलसद्भूमे गृह्णार्घ्यं

है, क्योंकि, परमात्माका प्रमाण और अन्तर अनन्त है ॥ ३४ ॥ उक्त तीर्थसे नीचे की ओर दो कोस पर्यन्त वोह शिला विस्तृत मानी गई है, हे महाभाग ! उसके मध्यमें गुफाभी वर्त्तमान है ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान्की भक्तिमें तत्परहो अत एव अपने मनमें भगवान्का ध्यान करता हुआ धर्मात्मा सर्वबन्धु भी वहां नित्यही निवास करता है ॥ ३६ ॥ दशरथाचलके मध्यमें उस गुहाका द्वार है, उसी मार्गसे उन महात्माके शिष्य जाया करते हैं ॥ ३७ ॥ हे मुनिबन्दित ! द्वादशीके दिन महाविष्णुके दर्शन करनेके लिये सब देवता भी प्रतिवर्ष वहां जाया करते हैं ॥३८॥ पुण्यकर्मशील जो मनुष्य परमात्मा श्रीविष्णु भगवान्के शिला रूपके दर्शन करते हैं, उनके अहो भाग्य हैं, ॥ ३९ ॥ सुनो महामते ! अत्र हम शिलारूपका वर्णन करते हैं, उस पूजनका आचरण करनेसे मनुष्यका पुनर्जन्म संसारमें नहीं होता ॥ ४० ॥ हे शिलारूपी भगवान् ! आप जगत् की स्थिति और उसका अन्त करनेवाले हैं, हे भगवन् ! पाद्य ग्रहण कर हमारे पापोंको भस्म करिये ॥ ४१ ॥ हे दयासागर नारायण !!! आप शंख चक्र और गदा धारण करते हैं, हे देवताओं-के द्वारा पूजित ! आप हमारे दिये हुए इस आचमनीयको ग्रहण करिये॥४२॥हे मधुसूदन देवराज ! आपहीने हिरण्याक्षका वध किया था, आपके दांतोके अग्रभागके ऊपर भूमि सुशोभित

वरदो भव ॥ ४३ ॥ सर्वस्वरूप भगवन्भक्तद्वेषिभुजंगम ॥ स्नानीयं ते मया दत्तं गृहाण वरदो भव ॥ ४४ ॥ मुरारे वासुदेवेश नारायण कलानिधे ॥ गंधं गृहाण देवेश संतुष्टो भव सर्वदा ॥ ४५ ॥ परमात्मन् परब्रह्म रमानायक कंसहन् ॥ गरुडध्वज सीतेश अर्पिता अक्षता मया ॥ ४६ ॥ मयाहृतानि पुष्पाणि युतानि तुलसीदलैः ॥ अर्पितानि सुगंधीनि गृहाण वरदो भव ॥ ४७ ॥ जनार्दन हृषीकेश बृहत्तुंड गदाधर ॥ धूपं गृहाण देवेश जटागुग्गुलसंयुतम् ॥४८॥ शुभवर्तिसमायुक्तं कर्पूर-शुभवासितम् ॥ दीपं गृहाण देवेश त्रिविक्रम नमोस्तु ते ॥४९ ॥ नैवेद्यं गृह्यतां देव नारायण कलानिधे ॥ संसारदुःखसंतप्तं मां रक्ष शरणागतम् ॥५०॥ दामोदर दयासिंधो शरणागतपालक ॥ मयार्पितं चक्रपाणे गृहाण त्वमुपायनम् ॥ ५१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति वै पूजनं कृत्वा अनेन विधिना मुने ॥ मंत्रस्य प्रजपं कुर्य्या-द्वाराहस्य द्विजर्षभ ॥ ५२ ॥ जपार्पणं ततः कृत्वा वाराहस्य

होती हैं, आप अर्घ्य ग्रहण कर मुझें वरप्रदान करिये ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! ये स्थावर जंगम सब आपहीका स्वरूप हैं, भक्तोंसे द्वेषकरनेवाले पुरुषोंके लिये आप कालरूप नागकी समान हैं, हम आपको स्नान प्रदान करते हैं इसे ग्रहण कर आप हमैं वरदान दीजिये ॥ ४४ ॥ हे मुरारे ! आप वासुदेव हैं, सबके स्वामी नारायण कलारूपधारी भी आपही हैं, सुतराम् हमारे गन्धको ग्रहण कर सर्वदा सन्तुष्ट रहिये ॥ ४५ ॥ हे परब्रह्म परमात्मन् ! आप कंसका वध करनेवाले और लक्ष्मी के पति हैं, सीताके पति और गरुडध्वज भी आपही हैं, मैं अक्षत आपको अर्पण करताहूं॥ ४६ ॥ मैं तुलसीदलसहित सुगन्धित पुष्प लाकर आपके अर्पण कर रहाहूं, आप इन्हें ग्रहणकर मुझै वर दीजिये ॥ ४७ ॥ हे हृषीकेश जनार्दन ! आपही बृहत्तुण्ड और गदाधर हैं, जटा और गुग्गुल सहित धूपको ग्रहण करिये ॥ ४८ ॥ हे त्रिविक्रम देवराज ! शुभवत्तीसे युक्त, कपूरकी गन्धसे महकते, दीपकको ग्रहण करिये, हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ हे कलानिधि नारायण ! आप नैवेद्यको ग्रहण करिये, और सांसारिक दुःखसे सन्तप्त हुए मुझ शरणागतकी रक्षा करिये ॥ ५० ॥ हे दयासागर दामोदर ! आप अपने शरणागतोंका पालन करते हैं, हे चक्रपाणि ! हमारी भेंटको ग्रहण करिये॥५१॥स्कन्दजी बोले–हे मुने ! इस विधिसे पूजनकर चुकनेके अनन्तर हे द्विजराज ! वाराहजीके मन्त्रका जप करै॥५२॥फिर जपको नारायणके अर्पण कर, पाप हनन करनेवाले

शुभानि च ॥ नामानि पापहंतॄणि पठितव्यानि मानवैः ॥ ५३ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ कानिकानि च नामानि पठितव्यानि वै गुह ॥ शंस मे पार्वतीपुत्र भक्तोस्मि तव सुव्रत ॥ ५४ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणुष्वैकमना विप्र नामानि क्रोडरूपिणः ॥ प्रधानानि मुनिश्रेष्ठ यैस्तु तुष्यति माधवः ॥ ५५ ॥ वराहश्च बृहत्तुंडो बृहद्दंतो महाबलः ॥ सर्वलोकप्रियः कृष्णो हिरण्याक्षनिषूदनः ॥ ५६ ॥ रसातलगतायास्तु पृथ्व्या उद्धारकः प्रभुः ॥ वेदप्रियो वेदवादी वेदांगो वेदभावनः ॥ ५७ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञभुग्यज्ञनायकः ॥ भक्तप्रियो भक्तिवश्यः श्यामांगो लोहिताननः ॥ ५८ ॥ महातेजा निधिपतिः सर्वकृत्सर्वहृत्तथा ॥ नारायणो वासुदेवः सर्वदुष्टनिषूदनः ॥ ५९ ॥ अष्टाविंशतिनामानि कथितानि तवाग्रतः ॥ वाराहाणि सुपुण्यानि विष्णुभक्तिकराणि च ॥ ६० ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय विनिद्रो भक्तितत्परः ॥ अश्वमेधसहस्रस्य कृतस्य फलमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ शिलाग्रे पठनादेव श्रवणाच्छा-

वाराहजीके शुभ नाम मनुष्योंको पढने चाहिये॥५३॥नारदजी बोले–हे गुह (कार्त्तिकेयजी महाराज) क्यों कि, मैं आपका भक्त हूं अत एव हे सदाचारी ! पार्वतीनन्दन ! ! ! मुझे यह बताइये कि, कौन २ से नामोंका पाठ करना चाहिये॥५४॥ स्कन्दजी बोले--हे विप्र! अब तुम भगवान्के उन नामोंका श्रवण करिये, मुनिराज ! जो सबमें श्रेष्ठ हैं और अतएव जिनका कीर्त्तन करनेसे माधव नारायण सन्तुष्ट होतें हैं ॥ ५५ ॥ वाराह, बृहत्तुण्ड, बृहद्दन्त, महाबल, सर्वलोकप्रिय, कृष्ण, और हिरण्याक्षनिषूदन ॥ ५६ ॥ रसातलमें गई हुई भूमिका उद्धार करनेवाले, वेदप्रिय, वेदवादी, वेदांग, वेदभावन, ॥ ५७ ॥ यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, यज्ञभुक्, यज्ञनायक, भक्तप्रिय, भक्तिवश्य, श्यामांग, लोहितानन ॥ ५८ ॥ महातेजा, निधिपति, सर्वकृत्, सर्वहृत्, नारायण, वासुदेव, सर्वदुष्टनिषूदन ॥ ५९ ॥ इन अट्ठाईस नामोंको हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, वाराहजीके ये पवित्र नाम विष्णुभगवान्की प्रीतिका सम्पादन करनेवाले हैं ॥ ६० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठते ही भक्तिभावमें तत्पर हो इन नामोंका पाठ करता है, उसे सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ बाराहशिलाके अगाडी इन नामोंको पढने, सुनने अथवा सुनानेसे, वोह जो २ कामना

वणात्तथा ॥ यंयं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥६२॥ मासमात्रेण यः कश्चिदनेन विधिना मुने ॥ पूजनं प्रकरोत्येव परं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ इह चैव परां लक्ष्मीं प्रजाश्च प्राप्य नारद ॥ सुखभोगं तु कृत्वा वै मृतो वैकुण्ठमाविशेत् ॥ ॥ ६४ ॥ वाराहे तीर्थराजे तु स्नात्वाऽनंतफलं लभेत् ॥ पितृन्संतर्प्य विधिवत्पितृभ्यो वरमाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोहं त्वयाऽनघ ॥ पुण्यं पवित्रमायुष्यं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

करता है वोह दुर्लभ होनेपरभी पूर्ण होजाती हैं ॥ ६२ ॥ हे मुने ! जो मनुष्य इस विधिसे एक मास पर्यन्त पूजन करताहै, उसे परम सिद्धिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६३ हे नारद ! वोह मनुष्य इस लोकमें विपुल लक्ष्मी और प्रजा (सन्तान) को पाय अनेक प्रकारके सुख भोगताहै, और मरनेपर उसको वैकुण्ठकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६४ ॥ सबतीर्थोंके अधीश्वर ऐसे वाराह तीर्थमें स्नान करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होतीहै, और जो मनुष्य पितरोंके निमित्त तर्पण करताहै, उसे पितरोंसे वरका उपलाभ होताहै ॥ ६५ ॥ हे अनघ विप्र ! तुमने जो कुछ हमसे प्रश्न किया था, वोही सब आख्यान हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह अतिशय पवित्र, अत एव पुण्य प्रदान करनेवाला है, जो मनुष्य इसको सुनतेहैं उनकी आयु और पुण्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५७.

॥ स्कंद उवाच ॥ अतः परं महाभाग सौरकुंडस्य विस्तरम् ॥ यदुक्तं दक्षिणे तीरे गंगाया अतिपुण्यदम् ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शृणुष्वैकमनाः प्रिय॥त्वत्समो नाऽस्ति त्रैलोक्ये पुण्या-

स्कन्दजी बोले—हे महाभाग ! गंगाजीके उत्तरी तीरपर अतिशय पुण्यदायक जो सूर्य कुण्ड वर्णन कियाहै, उसके विस्तारको ॥ १ ॥ उक्त कुण्डकी उत्पत्ति और माहात्म्यको एकाग्र चित्त करके श्रवण करो, क्यों कि तुम्हारी समान पुण्यात्मा और भगवत्प्रिय अन्य

त्मा भगवात्प्रियः ॥ २ ॥ पुरा सूर्यस्तपश्चक्रे तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ तेनास्य तीर्थराजस्य नामाभूत्सूर्यतीर्थकम्॥३॥अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥प्राप्य चैव परामृद्धिमंते सूर्य्यपुरे वसेत्॥४॥अस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्यथा प्राप परां गतिम्॥ चांडालीसहितो विप्रो दुरात्मा दुष्टमानसः ॥ ५ ॥ तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ प्रोच्यमानं मया मुने॥पुराऽत्रिवंशजो विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥ कृष्णानंद इति ख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ६ ॥ सर्वं त्यक्तं स्वसकर्म भ्रष्टश्चासौ बभूव ह ॥ द्रव्यं पित्रार्जितं तेन क्षयं नीतं दुरात्मना ॥ ७ ॥ दुष्टकर्मणि मग्नोसौ सुकर्मपरिवर्जितः ॥ चकार दुष्टकर्माणि संध्योपासनवर्जितः ॥ ८ ॥ दुष्टैः सह चरन् विप्रश्चौरकर्मरतः सदा॥इत्येवं वर्तमानोऽसौ परित्यक्तश्च जातिभिः ॥ ९ ॥ गतो देशांतरे विप्रश्चोरयित्वा बृहद्वसु ॥ तत्र दृष्टा महाम्लेच्छी नर्तकी प्रमदोत्तमा ॥ १० ॥ तां दृष्ट्वा विह्वलांगश्च गीतेन परिमोहितः ॥ यदा सा स्वगृहं प्राप्ता सोपि

कोई नहीं है ॥२॥ पूर्व कालमें सूर्यनारायणने इस श्रेष्ठतीर्थमें तपका आचरण किया था, उसी दिनसे इस तीर्थराजका सूर्यतीर्थ नाम प्रसिद्ध होगयाहै॥ ३॥इस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहैं और वोह व्यक्ति इस लोकमें श्रेष्ठ ऋद्धिको पाय अन्तसमय सूर्य लोकमें निवास करतीहै ॥ ४ ॥ इसी तीर्थके माहात्म्यसे जिस प्रकार एक दुष्ट दुराचारी ब्राह्मणको चाण्डाली सहित परमगतिकी प्राप्ति हुईथी ॥ ५ ॥ हे महामुने ! मैं उसीका वर्णन करताहूं सो तुम सुनो, प्रथम अत्रिके वंशमें एक वेदवेदांगपारगामी और सर्व शास्त्र विशारद कृष्णानन्द नाम ब्राह्मण था ॥ ६ ॥ इसने अपने समस्त कर्मोंका परित्यागकर भ्रष्टता स्वीकार कर ली, सुतराम् इस दुष्टने पिताका कमाया सबही धन नष्ट करदिया ॥ ७ ॥ यह दुष्ट सुकर्मोंका परित्याग कर कुकर्ममें निरत होगया, अथ च यह नीच सन्ध्योपासनको छोड दुष्ट कर्मोंका आचरण करने लगा ॥ ८ ॥ दुष्टोंके साथ विचरते २ यह ब्राह्मण चोरी करने लगा, जब इसका ऐसा निन्दनीय आचरण होगया तब इसके सब जातिवालेंने परित्याग करदिया ॥ ९ ॥ सुतराम् यह प्रभूत धन अपहरणकर परदेशको चलागया, वहां इसने म्लेच्छ जातिकी एक उत्तम नर्त्तकीको देखा ॥ १० ॥ उसे देखतेही गानेसे मोहित होजानेके कारण यह ब्राह्मण विह्वल होगया, सुतराम् हे मुने ! जब

तत्र गतो मुने ॥ ११ ॥ तामुवाच महानंदः कामबाणाभिपीडितः ॥ ॥ १२ ॥ महानंद उवाच ॥ अहो सुंदरि ते रूपं जातं वै केन कर्मणा॥का वा त्वं वद कल्याणि मनो हृत्वाऽऽगता मम ॥१३॥ धनं गृहाण वामाक्षि सदा संशाधि मां प्रिये ॥ त्वया विना न जीवामि क्षणमात्रं दयां कुरु ॥ १४ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्ता यवनी तेन महानंददुरात्मना ॥ प्रत्युवाच ततः शांतं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १५ ॥ म्लेच्छ्युवाच ॥ ॥ भोभो द्विजवरश्रेष्ठ मैवं वक्तुमिहार्हसि ॥ अहं तु यवनी नीचा त्वं वै ब्राह्मणसत्तमः ॥ १६ ॥ ब्राह्मणानामगम्यास्मि द्रष्टुं च द्विजसुंदर ॥ अस्माकं यवनानां तु यूयं वै देवताः स्मृताः ॥ १७ ॥ अस्माकमपि यूयं वै अगम्या विधिना कृताः ॥ अगम्यागमनाद्विप्र नरकस्थानमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ आयुर्वै क्षीयते यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ गच्छ त्वं स्वगृहं विप्र निजकर्मरतो भव ॥ १९ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं धर्मार्थसहितं मुने॥

वोह अपने घरको गई तव यह भी वहां गया ॥ ११ ॥ तब कामबाणोंसे पीडित हो यह महानन्द (कृष्णानन्द) उससे यों कहने लगा ॥ १२ ॥ महानन्द बोला—हे सुन्दरी ! किस कर्मके करनेसे तेरा ऐसा सुन्दर रूप हुआ है, वताओ कल्याणि ! तुम कौन हो ? जो हमारे चित्तका अपहरण करके चली आई हो ॥ १३ ॥ प्रिये ! हे तिर्च्छीचितवनवाली ! ! ! तूं धन सब लेले, और मेरे ऊपर दयाकर, चूंकि मैं बिना तेरे छिनभर भी जी नहीं सक्ता, अत एव कुछ तौ मेरे ऊपर अनुग्रह कर ॥ १४ ॥ स्कन्दजी बोले—जब दुरात्मा महानन्दने उस यवनी (म्लेच्छनी) से इस प्रकार कहा तब वोह शान्तिपूर्वक धर्म अर्थ सहित ये वाक्य कहने लगी ॥ १५ ॥ म्लेच्छनी बोली—हे द्विजराजवर ! तुम्हें ऐसा कदापि न कहना चाहिये, क्योंकि—आप श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण है और मैं नीच यवनी हूं ॥ १६ ॥ हे द्विजसुन्दर ! ब्राह्मणोंके लिये तौ मैं बिलकुलही अभोग्या (अगम्या) हूं, एवं हमारे और अन्य सब यवनोंके आप देवता हैं ॥ १७ ॥ एवं च ईश्वरने आपको भी हमारे अगम्य बनायाहै, अध च हे विप्र ! अगम्या स्त्रियों (अथवा अगम्य पुरुषों) से गमन किया जाय तौ नरककी प्राप्ति होती हैं ॥ १८ ॥ क्यों कि, अगम्यागमन करनेसे आयु क्षीण होजाती हैं, अतएव उसे छोड देना चाहिये, सुतराम् हे विप्र ! तुम घर जाय अपने कर्मोंका आचरण करो ॥ १९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे मुने ! जब ब्राह्मणने धर्म अर्थ सहित उसके ऐसे

विमनाः प्रत्युवाचेदं म्लेच्छीं तां द्विजनिंदितः ॥ २० ॥ महानंद उवाच ॥ ॥ मैवं ब्रूहि प्रिये कांते नाहं वेद्मि स्वकर्मकम् ॥ यदि नो मन्यसे वार्ता मरिष्यामि तवाग्रतः ॥ २१ ॥ त्यक्तोहं बांधवैः कांते कुत्र यास्यामि सुंदरि॥भ्रष्टो जातो दुराचारः पूर्वमेव दुरासदः ॥ २२ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा तेन विप्रेण पतितं पादयोर्मुने॥सापि म्लेच्छी पुनः प्राह हर्षयंती द्विजं द्विज ॥ ॥ २३ ॥ म्लेच्छ्युवाच ॥ ॥ भोभो मुनिवरश्रेष्ठ वने गच्छावहे ह्यथ॥ अत्रत्या मम यवना आवयोर्दुःखदाः किल ॥ भविष्यंति ततो विप्र गच्छावो देशमन्यकम् ॥ २४ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्याभाष्य द्विजं निंद्यं विरराम महामते ॥ पादयोः पतितस्तस्या उत्तस्थौ हर्षतो द्विजः ॥ २५ ॥ जग्मतुर्यवनीविप्रौ वन्यमार्गेण नारद ॥ ततः कथंचिन्नगरे प्राप्तौ तौ दंपती किल ॥ ॥ २६ ॥ कस्मिंश्चित्वथ काले तु धनं सर्वं क्षयं गतम्॥तत्र तेन च चौर्य्येण हृतं कस्यापि वै धनम् ॥ २७ ॥ धनं गृहीत्वा सर्वं

वचन सुने, तब वोह निन्दित ब्राह्मण मनमें मलीन हो उस म्लेच्छनीसे यों कहने लगा ॥ २० ॥ महानन्द बोला—प्रिय मनोहरे ! ऐसा मत कहो, क्योंकि मैं अपने कर्मोंको बिलकुल भी नहीं जानता हूं, एवं यदि तू मेरा कहना न मानेगी तौ मैं तेरे समक्षही अपने प्राण छोड दूंगा॥ २१ ॥ हे सुन्दरी ! बन्धु बांधवोंने मेरा परित्याग करदिया, हे कान्ते ! अब मैं कहां जाऊं ? हाय ! ! ! मैं दुराचारी तौ पहिलेहीसे भ्रष्ट होगयाहूं ॥ २२ ॥ स्कन्दजी बोले—वोह ब्राह्मण यों कहकर स्वयं उस यवनीके चरणोंमें गिर पडा, तब हे द्विज ! वोह म्लेच्छनी उस ब्राह्मणको प्रसन्नकरती हुई फिर यों बोली ॥ २३ ॥ म्लेच्छनीने कहा—अच्छा, हे मुनीश्वर ! चलो हम दोनों वनमें चलें, क्योंकि—नहीं तौ यहांके रहनेवाले यवन हम दोनोंको क्लेश देंगे, अत एव अन्य देशमें चलना चाहिये ॥ २४ ॥ स्कन्दजी बोले--हे महामतिमान् ! उस गार्हित ब्राह्मणसे यों कहकर वोह म्लेच्छनी मौन होगई, तब तौ उसके चरणोंमें पडा हुआ वोह ब्राह्मण प्रसन्न होकर उठ बैठा॥२५॥ निदान हे नारदजी ! यवनी और ब्राह्मण दोनों जंगलके मार्गकी ओर चलदिये, और चलते २ वे दम्पती किसी नगरमें पहुंचे ॥ २६ ॥ वहां थोडेही कालमें सब धन क्षय होगया, तब उस चौरने वहां फिर किसीका धन चुराया ॥ २७ ॥ वहांसे सब धन लेकर वोह ब्राह्मण फिर अन्य

हि ययौ देशांतरं द्विजः ॥ तयोस्तु वसतोरेवं कस्मिंश्चिन्नगरे मुने ॥ द्वौ पुत्रौ द्वे च कन्ये च संबभूवतुराशु वै ॥ २८ ॥ एकस्मिन्समये तस्य पुत्रौ वै यममंदिरे ॥ गतौ वै ते च कन्ये च गते तु मुनिवंदित ॥ २९ ॥ ततो द्विजाधमः सो वै रुरोद बहुशो मुने ॥ गतवंतावन्यदेशे वैराग्याविष्टमानसौ ॥ ३० ॥ तयोस्तु गच्छतोरेव आजगाम महामुनिः ॥ भरद्वाज इति ख्यातो वेदवेदांगपारगः ॥३१॥ तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं तस्य वै पेततुः पदे ॥ ऊचतुश्च इदं वाक्यं भारद्वाजं महामुनिम् ॥ ३२ ॥ तावूचतुः ॥ भोभो द्विजवरश्रेष्ठ गच्छंतौ निरयार्णवे ॥ त्राहित्राहि महानीचौ दयांवंतो हि साधवः ॥ ३३ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ ॥ कौ वा भवंतौ भो नीचौ वैश्यौ वा ब्राह्मणात्मजौ ॥ क्षत्रियौ वाथ वा शूद्रौ गच्छतः केन कर्मणा ॥ ३४ ॥ निरये कृमिसंपूर्णे लभ्ये पापेन कर्मणा ॥ किं कृतं वै युवाभ्यां हि पापं कर्म च दंपती ॥ ॥ ३५ ॥ महानंद उवाच ॥ ॥ अहं तु ब्राह्मणः पूर्वमभवं

किसी देशमें चलागया, हे मुनीश्वर ! वहां उन दोनोंके इस प्रकार निवास करते २ दो पुत्र और दो कन्याओंका जन्म हुआ ॥ २८ ॥ हे मुनिवन्दित ! एक समय उनके दोनों पुत्र और दोनों कन्या यमलोकको चली गईं ॥ २९ ॥ तब तौ हे मुनीश्वर ! वोह नीच ब्राह्मण बहुत रोदन करने लगा, सुतराम् ये दोनोंही मनमें वैराग्य धारणकर परदेशको चलदिये ॥ ३० ॥ उनके चलते २ ही वेदवेदांगपारगामी भरद्वाज नाम महामुनि उनके समक्ष प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ उक्त महर्षिवरको देखतेही ये दोनों उनके चरणोंमें गिर पडे और महामुनि भरद्वाजसे वाक्य कहने लगे ॥ ३२ ॥ वे दोनो बोले—हे द्विजराजवर ! हम दोनों नरकरूप सागरमें जारहेहैं, चूंकि, साधुलोग दयालु होते हैं, सुतराम् हम दोनों महानीचोंकी आप रक्षा करिये ॥ ३३ ॥ भरद्वाज बोले—अरे नीचो ! तुम कौन हो ? वैश्यहो ब्राह्मण क्षत्रिय अथवा शूद्र इनमेंसे कौन हो ? और किस कर्मके करनेसे तुम नरकमें जारहे हो ? ॥ ३४ ॥ क्योंकि—कृमिपूर्ण नरक पापकर्मोंका आचरण करनेसे मिलता है, सो हे दम्पती ! तुम दोनोंने कौनसे पाप कर्मका आचरण किया हैं ॥ ३५ ॥ महानन्द बोला—हे द्विजवन्दित ! मैं तो प्रथम ब्राह्मण था, यद्यपि अत्रिवंशमें मेरा जन्म हुआ था,

द्विजवंदित ॥ अत्रिवंशसमुत्पन्नो ब्राह्मणाचारवर्जितः ॥ ३६ ॥ ततोहं बांधवैस्त्यक्तो गतो देशांतरं मुने ॥ तत्रेयं यवनी दृष्टा मया सौंदर्यगर्विता ॥ ३७ ॥ तां दृष्ट्वा कामबाणौघैः पीडितो मदमोहितः॥अभूवं द्विजशार्दूल ततो म्लेच्छ्यां वशंगतः ॥ ॥३८॥ अस्यां म्लेच्छ्यां महाभाग जातौ द्वौ पुत्रकौ मम॥कन्ये द्वे रूपलावण्यवत्यौ वै मुनिनायक ॥ ३९ ॥ ते सर्वे कर्मणा स्वस्य गता वै यममंदिरे॥ततोहं दुःखसंतप्तो म्लेच्छ्या वै अनया सह ॥ आगतो मुनिशार्दूल स्वभाग्यात्पूर्वसंचितात् ॥ ४० ॥ भवतो दर्शनं जातं गताः पातकराशयः ॥ ४१ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ ॥ युवां महापातकिनौ भवथः पुरुषाधमौ ॥ गच्छतं देवतीर्थे हि सौरतीर्थमिति स्मृतम् ॥४२॥ तत्र वै भास्करो देवो नित्यं वसति पाथसि॥स्नात्वा वै तत्र सलिले नश्यन्ति दुरितानि वै ॥ ४३ ॥ तस्मात्त्वमपि म्लेच्छी च सौरकुण्डेतिपुण्यदे ॥ स्नात्वा वै विधिना विप्र मासमात्रेण निर्मलः ॥ भविष्यसि महाभाग गच्छ तात यथासुखम् ॥ ४४ ॥ तदन्यन्नास्ति त्रैलोक्ये

तथापि ब्राह्मणोंके सब आचरण मैंने त्याग दिये थे ॥ ३६ ॥ हे मुने ! बान्धवोंके द्वारा परित्यक्त होजानेके कारण मैं परदेशको निकल गया, और वहां अपनी सुन्दरताका अभिमान करनेवाली यह म्लेच्छनी मेरे दृष्टिगोचर हुई ॥ ३७ ॥ हे द्विजशार्दूल ! तब मैं कामबाणोंसे पीडितहो कामान्ध होजानेके कारण इस म्लेच्छनीके वशीभूत होगया ॥ ३८ ॥ हे महाभाग मुनिराज ! इस म्लेच्छनीसे मेरे सुन्दर रूपवान् दो कन्या और दो पुत्र हुए ॥ ३९ ॥ कुछ दिन पीछे वे अपने २ कर्मानुसार सबही मृतक होगये तब मैं इस यवनी सहित दुःखसे सन्तप्त हो, अपने पूर्वसंचित शुभ भाग्यवशात् यहां आपहुंचा ॥ ४० ॥ आपके दर्शनोंका लाभ हुआ और हमारी पातकराशि सब नष्ट होगई ॥ भरद्वाज बोले—अरे नीच पुरुषो ! तुम महापापी हो, सुतराम् देवप्रयागमें सूर्य्य तीर्थमें जाओ ॥ ४२ ॥ वहां सूर्य भगवान् नित्यही जलमें निवास करते हैं, सुतराम् उक्त तीर्थके जलमें स्नान करनेसे पापोंका विनाश होजाता है ॥ ४३ ॥ अत एव अतिशय पुण्यदायक सौर तीर्थमें तुम और ये म्लेच्छनी दोनों ही विधिपूर्वक स्नान करनेसे एक महीनेमें निर्मल होजाओगे, सुतराम् हे तात सुखपूर्वक वहां जाओ ॥ ४४ ॥ उससे अधिक पापोंका नाश करनेवाला त्रिलो-

महापातकनाशनम् ॥ ४५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ निशम्येति वचस्तस्य भरद्वाजस्य धीमतः ॥ उवाच वचनं विप्र महानंदो द्विजाधमः ॥ ४६ ॥ महानंद उवाच ॥ ॥ केन वै विधिना विप्र स्नाप्यं पातकशांतये ॥ तद्वदस्व महाभाग दासोहं तव सुव्रत ॥ ४७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र सर्वभूतोपकारकम् ॥ येन वै विधिना स्नायात्तत्र वै तं वदामि ते ॥ ४८ ॥ देवप्रयागके तीर्थे गत्वा तु नियतेंद्रियः ॥ उपवासं ततः कृत्वा जागरं च तथैव च ॥ ४९ ॥ ततः प्रभाते विमले गत्वा तीर्थाद्बहिर्द्विज ॥ शौचादिकं तु कृत्वा वै सूर्य्यकुण्डेऽतिनिर्मले ॥ ॥ ५० ॥ गत्वा गंगां नमस्कृत्य संस्तुत्वेदमुदीरयन् ॥ गंगे त्वं सर्वपापघ्नी शिवलोकादिहागता ॥ पापं मे हर कल्याणि दासोऽस्मि तव जह्नुजे ॥ ५१ ॥ त्वज्जले सर्वतीर्थानि त्वत्तरंगेषु देवताः ॥ त्वयि तिष्ठंति यज्ञाश्च सर्वकामफलप्रदे ॥ ५२ ॥ तवांगे मुनयः संति यावत्यः सिकतास्त्वयि ॥

कीमें और कोई नहीं है ॥ ४५ ॥ स्कन्दजी बोले—बुद्धिमान् भरद्वाजजीके ऐसे वाक्य सुनकर नीच ब्राह्मण महानन्द यों बोला ॥ ४६ ॥ महानन्दने कहा—हे विप्र ! पापोंकी शान्तिके लिये किस विधिसे स्नान करना कर्त्तव्य है ? चूंकि हे सदाचारिन् ! मैं आपका दासहूं अतएव हे महाभाग ! यह सब मुझे बताइये ॥ ४७ ॥ भरद्वाजजी बोले—हे विप्र ! सब प्राणियोंके उपकारके लिये तुमने बहुतही अच्छा प्रश्न किया, जिस विधिसे वहां स्नान करना चाहिये, वोही सब विधि तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ ४८ ॥ देवप्रयागतीर्थमें जाय, इन्द्रियनिग्रहपूर्वक, उपवास और रात्रि जागरण करै ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज ! प्रातः समय तीर्थके बाहर जाय शौच आदि कर निर्मल सूर्यकुण्डमें ॥ ५० ॥ जाय गंगाजीको प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति पाठ करै, हे गंगे! तुम समस्त पापोंका नाश करनेवाली हो, शिवलोकसे तुम्हारा यहां आगमन हुआ है, हे कल्याणमूर्त्ति जह्नुसुते ! मैं तुम्हारा दासहूं, अत एव तुम मेरे पापोंको दूर करो ॥ ५१ ॥ तुम्हारे जलमें सब तीर्थ, तरंगोंमें सब देवता, और तुम्हारे विषे सब यज्ञ अवस्थित रहते हैं, तुम सब कामनाओंका फलप्रदान करती हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारी वालुकाके जितने कण हैं, उतनेही तुम्हारे अंगमें ऋषि हैं, हे समस्त

नमोनमस्ते देवेशि सर्वकल्याणदायिनि ॥ ९३ ॥ इति स्तुत्वा त्रिपथगां सर्वलोकैकपावनीम् ॥ तीर्थान्यावाह्य तत्रैव ह्यनुज्ञाप्य च भैरवम् ॥ ९४ ॥ भूतापसर्पणं कृत्वा नमस्कुर्य्यात्तु क्षेत्रपम्॥ देशकालौ ततः स्मृत्वा नमस्कृत्य च देवताः ॥९५॥ यत्किंचि द्दुरितं जातमस्मिन्वै पूर्वजन्मनि ॥ ज्ञाताज्ञातं च यत्पापं तत्पापं नश्यतु क्षणात् ॥९६॥ इत्युच्चार्य्य नरो भक्त्या स्नानं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ततस्तीरं समागत्य कृत्वा संध्यादिकाः क्रियाः ॥ सूर्य्यसूक्तं ततो जप्त्वा सौरं साम ततः परम् ॥ ९७ ॥ अनेनैव विधानेन स्नानं वै प्रकरोति च ॥ इह भुक्त्वा नरो भोगान् सूर्य्यलोके वसेन्मृतः ॥ ९८ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं महानंदो धरासुरः॥कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मुनिवरोत्तम ॥ ॥ ९९ ॥ प्रदक्षिणं ततः कृत्वा भारद्वाजं महामुनिम् ॥ नमस्कृत्य ययौ तत्र प्रयोगे देवशर्मणः ॥ ६० ॥ तत्र गत्वा मासमात्रमुक्तेन विधिना मुने॥निःकल्मषोऽभवच्छुद्धः सपत्नीको धरासुरः॥ ॥ ६१ ॥ इह भोगान् वरान्प्राप्य ययौ सूर्य्यस्य मंडले ॥ इति

कल्याण दायिनी देवदेवेश्वरी ! हम तुम्हे वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ९३ ॥ समस्त लोगोंको पवित्र करनेवाली त्रिपथगा गंगाजीकी इस प्रकार स्तुति करके तीर्थोका अवगाहन कर भैरवजीकी आज्ञा ग्रहण करे ॥ ९४ ॥ फिर सब जीवोंको हटाकर क्षेत्रपालको प्रणामकर, इसके अनन्तर देशकाल कीर्त्तन करके देवताओंको प्रणाम करै ॥ ९९ ॥ पहिले अथवा इस जन्ममें हमसे जो पाप बन पडा है, अथवा ज्ञान वा अज्ञानसे जो पाप होगयां हो, वोह सब क्षणभरमें नष्ट होजाय ॥ ॥ ९६ ॥ भक्तिभाव पूर्वक इस प्रकार उच्चारण करके चतुर मनुष्यको चाहिये कि, स्नान करै, फिर गंगातटपै आय सन्ध्याआदि क्रिया कर सूर्य्यसूक्त और सौर सामका जप करै ॥ ९७॥ जो मनुष्य इस विधिसे स्नान करता है, वोह इस लोकमें शुभ भोगोंको भोगकर अन्तसमय मरकर सूर्य्यलोकमें वसता है ॥ ९८ ॥ स्कन्दजी बोले--भूदेव महानन्दने उनके ऐसे वाक्य सुनकर हे मुनिराज ! अपने आपको कृतकृत्य माना ॥ ९९ ॥ महांमुनि भरद्वाजजीकी प्रदक्षिणाकरके वोह महानन्द देवप्रयागमें गया ॥ ६० ॥ हे मुने ! वहां यथोक्त विधिसे एक मास पर्य्यन्त स्नान करनेसे वोह ब्राह्मण अपनी पत्नीसहित शुद्ध होगया ॥ ६१ ॥ सारांश यह कि इस लोकमें श्रेष्ठ भोगों-

ते कथितो विप्र सूर्यकुंडस्य विस्तरः ॥ ६२ ॥ नारद उवाच ॥ केन वै कर्मणा स्कंद दृष्टवान्मुनिसत्तमम् ॥ नष्टबुद्धिस्तु पापीयान् कथं मुनिवरोत्तमम् ॥ ६३ ॥ स्कंद उवाच ॥ एकदा गृहमासीनौ म्लेच्छीविप्रौ बभूवतुः ॥ तत्रागतोस्य क्षेत्रस्य वासी तु क्षुधयार्दितः ॥ ६४ ॥ तं दृष्ट्वा तु महीदेवं विमनस्कं महामुने ॥ प्रत्युवाच ततः प्रीतः को वा त्वं पुरुषर्षभ ॥ ६५ ॥ प्रत्युवाच ततो विप्रः क्षुधया पीडितो ह्यहम् ॥ वक्तुं नोत्सहते मेद्य मनो वै पुरुषर्षभ ॥ ६६ ॥ ततस्तेन तु विप्रेण यथेष्टं भोजनं प्रियम् ॥ दत्तं यद्याचितं तेन तृप्तोऽभूद्द्विजनंदनः ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ धन्योसि त्वं महाबाहो तुष्टोस्मि तव सुव्रत ॥ अहं वै देवतीर्थेषु वसामि मनुजोत्तम ॥ ६८ ॥ जात्या वै ब्राह्मणो नाम्ना कुलचंद्र इति स्मृतः ॥ तवाप्युद्धारकः कश्चिन्मिलिष्यति सदाशिवः ॥ ६९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ इति वै ह्याशिषं दत्त्वा गतो देवप्रयागके ॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो निराशी मोहवर्जितः ॥ ७० ॥

का उपभोग कर अन्तसमय सूर्य मण्डलमें चलागया, हे विप्र ! इस प्रकार सूर्य कुण्डका विस्तार हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ६२ ॥ नारदजी बोले नष्टबुद्धि उस पापीको कौनसा शुभकर्म करनेके कारण सर्वोत्तम मुनिराजके दर्शन हुए ॥ ६३ ॥ स्कन्दजी बोले--एक समय म्लेच्छनी और ब्राह्मण दोनोंही उपस्थित थे, उसी समय किसी क्षेत्रका निवासी भूंखसे व्याकुल एक ब्राह्मण आया ॥ ६४ ॥ हे महामुने ! उस ब्राह्मणको मनमलीन तनछीन देख यह पूंछने लगा, हे द्विजराज ! तुम कौनहो ॥ ६५ ॥ तब वोह ब्राह्मण कहने लगा, हे विप्रसत्तम ! मैं भूखा ब्राह्मणहूं, सुतराम् बोलने तककी मुझमें शक्ति नहीं है॥ ६६ ॥ तब इस ब्राह्मणने उस तीर्थनिवासी ब्राह्मणको यथेष्ट प्रियभोजन तथा जो २ उसने मांगा सो उसे दिया तब वोह ब्राह्मण तृप्त होगया ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण बोला—हे सदाचारी महाबाहो ! तुम्हें धन्य है, मैं तुमसे भली प्रकार सन्तुष्ट होगया हूं, हे नरसत्तम ! मैं देवतीर्थमें निवास करताहूं ॥ ६८ ॥ मेरी जाति ब्राह्मण और कुलचन्द्र मेरा नाम है, तुम्हारा उद्धार करनेके लिये भी कोई कल्याणमूर्त्ति प्राप्त होगा ॥ ६९ ॥ स्कन्दजी बोले--वोह भरद्वाज मुनिराज भी इस प्रकार आशीर्वाद दे, देवप्रयागको चलेगये, उक्त महर्षिको न तो किसीका

तस्मान्नारद क्षुत्तृष्णापीडितानां महामते ॥ दयां कुर्यात्तु दद्याच्च भोजनं तु यथारुचि ॥ ७१ ॥ सर्वेषां चैव दानानामन्नदानं विशिष्यते॥इति ते कथितं सर्वं यद्यत पृष्टं त्वया मुने ॥ ७२ ॥ सूर्यकुण्डस्य चोत्पत्ति माहात्म्यं पुण्यवर्द्धनम्॥ पठनाच्छ्रवणाद्यस्य नरो भवति भास्करः॥श्लोकस्य श्लोकखण्डस्य तत्खंडस्य तथैव च ॥७३॥सूत उवाच॥इत्युक्त्वा नारदं स्कंदो विरराम महामतिः॥पुनः प्रोवाच गौरीजः पुष्पमालस्य विस्तरम्॥७४॥इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्ये सूर्य्यकुंडोत्पत्तिमहानंदचरितं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

मोह ही था, और न वे भोजनही करते थे ॥ ७० ॥ इस कारण हे नारदजी ! भूखे प्यासोंके ऊपर दया कर उन्हें यथारुचि भोजन (और जल) देना चाहिये ॥ ७१ ॥ अन्नदानको सबही दानोंमें श्रेष्ठ मानागयाहै, नारदजी ! जो २ तुमने पूछा वोह सबही हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ७२ ॥ सूर्यकुण्डकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनने अथवा पढनेसे पुण्यकी वृद्धि होती, और मनुष्य साक्षात् सूर्यस्वरूप होजाता है चाहें वोह एक श्लोक आधे अथवा एक चरणहीका पाठ क्यों न करै ॥ ७३ ॥ सूतजी बोले -महामतिमान् स्कन्दजी महाराज नारदजी से यों कहकर प्रथम तो मौन होगये, किन्तु फिर गौरीनन्दन पुष्पमालके विस्तारका वर्णन करने लगे ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५८.

स्कन्द उवाच ॥ ॥ शृणुष्वाहितो भूत्वा मुने भक्तिमतां वर ॥ पौष्पमालं यदुक्तं ते मया पूर्वं मुनीश्वर ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं विस्तरेण वदामि ते ॥ पुष्पमालेति विख्याता मया ते किन्नरी वरा ॥ २ ॥ प्राप वै परमं लोकं यथा तत्तीर्थसेव-

स्कन्दजी बोले—सुनो भक्तसिरमौर मुनिराज सुनो ! ! ! हे मुनीश्वर ! हमने पुष्पमाला नामका जो तीर्थ तुम्हारे प्रति प्रथम वर्णन किया था, उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको विस्तार पूर्वक तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, तुम चित्तको एकाग्र करके श्रवण करो, हमने पुष्पमाला नामकी श्रेष्ठ किन्नरीका भी तुम्हारे प्रति पहिले वर्णन किया था ॥ १ ॥ २ ॥ उसे भी इस तीर्थके यथावत्

नात् ॥ वसिष्ठासूयया पूर्व विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥ जगाम तपसे विप्र ध्वस्तक्रोधो महामते ॥ ३ ॥ हिमवत्पर्वते रम्ये यत्र वै मानसो ह्रदः॥हंसचक्रवाकीर्णः पादपैरुपशोभितः॥४॥लताभिः स्वर्णवर्णाभी रम्याभिश्च विभूषितः॥ततश्चक्रे तपस्तीव्रं क्रोधाविष्टो महाद्युतिः ॥ ५ ॥ तस्य वै तपसा जातं सर्वेषां व्याकुलं मनः ॥ इंद्राद्याःसकला देवाश्चिताविष्टा बभूविरे ॥ ६ ॥ सूर्य्याचंद्रमसौ चैव स्थगितौ मुनिपुंगव ॥ जगद्वै क्षोभमापन्नं स्फुटिता धरणी तदा ॥ ७ ॥ वायोरपि न संचारः कुत्रचिद्वै हि नारद॥ एवं जाते ततो देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ स्तुतिमारेभिरे तस्य देवाः शक्रपुरोगमाः॥८॥ देवा ऊचुः॥ भोभो ब्रह्मन्नमस्तेस्तु शरणागतपालक ॥ सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं सृष्टिहर्त्रे नमोनमः९मायोद्भव नमस्तेस्तु सृष्टिहर्त्रे नमोनमः॥१०॥मायाभव नमस्तेस्तु नमः कमलसंभव॥हिरण्यबाहवे तुभ्यं दिशां च पतये नमः॥ ११ ॥ रोहिताय नमस्तुभ्यं नेदिष्ठाय नमोनमः॥ गोविंदज नमस्तुभ्यं रक्षरक्ष महामते॥१२॥

सेवन करनेसे परम लोककी प्राप्ति हुई थी ! और वशिष्ठजीसे असूया करके हे विप्र ! विश्वामित्र मुनीश्वर क्रोधित हो तप करनेको वहां गयेथे ॥ ३ ॥ हिमालयके ऊपर जहां मानसरोवर है वहां महाद्युतिमान् विश्वामित्रजीने क्रोध पूर्ण हो तपका आचरण करा था, यह स्थान हंस और चक्रवाकोंके कलरवसे पूर्ण हो रहा था, अनेक वृक्षोंसे उसकी शोभा और वृद्धिको प्राप्त हो रही थी, स्वर्णवर्णकी सुन्दर २ लताएँ उसकी शोभाको और भी बढ़ा रही थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीके तपसे सबहीका मन व्याकुल होगया, इधर इन्द्र आदि सब देवता गण भी चिन्ता करने लगे ॥ ६ ॥ हे मुनिपुंगव ! सूर्य और चन्द्रमाकी भी गति रुक गई, भूमि फट गई और समस्त संसार में खलभली मचगई ॥ ७ ॥ हे नारद ! उस समय वायुतक भी कहीं नहीं चलती थी; जब ऐसी दशा होगई तब सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये थे ॥ ८ ॥ और इन्द्र आदि सब देवताओंने उनकी स्तुति करनेका प्रारम्भ करा ॥ ९ ॥ देवता बोले—हे ब्रह्म ! आप अपने शरणागतोंका पालन करते हैं, सृष्टिका निर्माण और संहार करनेवाले भी आपही हैं हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ मायाका प्रादुर्भाव आपहीसे होताहै, सृष्टिका संहार भी आपही के द्वारा होताहै, हे कमलयोने ! आप मायाको जन्म देनेवाले हैं, आपको हमारा प्रणाम है हिरण्यबाहु और दिशाओंके स्वामी भी आपही हैं, हम बार २ आपको प्रणाम करते हैं ॥ ११ ॥ आप रोहित और नेदिष्ठ हैं, आपका जन्म गोविन्द भगवान्के सकाशसे हुआ है, सुतरां

स्कंद उवाच ॥ इति प्रजापतिः स्तुत्या प्रसन्नोऽभूत्पितामहः ॥ उवाच वचनं प्रीत्या देवान् शक्रपुरोगमान् ॥ १३ ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ भो देवा अत्र वै यूयं किमुद्दिश्यागताः शुभाः ॥ दुर्मनस इव दृश्यध्वे तद्वदंतु हि निर्ज्जराः ॥ १४ ॥ देवा ऊचुः ॥ शृणु ब्रह्मन्महाभाग यद्वृत्तं तपसा मुने॥विश्वामित्रस्य क्रूरस्य तद्वक्ष्याम तवाग्रतः ॥ १५ ॥ वयं तु त्रासमापन्नाः स्थगितौ चंद्रभास्करौ ॥ उल्कापातास्तथा जाता दिशां दाहस्तथा विधे ॥१६॥ वसुंधरा दह्यते च तस्य वै तपसा मुनेः ॥ नापि वायोश्च संचारो लोकजीवनकारणम् ॥ १७ ॥ पुनः सर्वाणि भूतानि येन स्वस्था न वै विधे ॥ भवंतु तत्प्रजानाथ विंचतय महामते ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच॥शृणुध्वं त्रिदशाः सर्वे धैर्य्यं कुरुत सुव्रताः॥ कियत्कालं महाभागा उपायं वो वदामि वै ॥ १९ ॥ पुष्पमालेति विख्याता किन्नरी भुवि वर्तते ॥ सुंदरांगी सुदंती च पद्मपत्रायतेक्षणा ॥ २० ॥ सुश्रोणी कुंभकठिनौ स्तनौ वै बिभ्रती

हे महामते ! आप हमारी रक्षा करिये ॥ १२ ॥ स्कन्दजी बोले—इस प्रकार स्तुति करनेसे पितामह और साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी महाराज. प्रसन्न होगये, और प्रीतिपूर्वक इन्द्र आदि देवताओंसे ये वाक्य बोले ॥ १३ ॥ श्रीब्रह्माजीने कहा—हे शुभ देवताओ ! तुम यहां किस निमित्त आये हो ? और हे देवताओ ! तुम्हारा मन मलीन क्यों दीखताहै ! सो हमैं बताओ ॥ ॥ १४ ॥ देवता बोले—सुनिये महाभाग ब्रह्माजी सुनिये ! ! ! क्रूर विश्वामित्रजीके तपसे जो कुछ अशिष्ट वृत्तान्त हुआहै उसे हम आपके अगाडी वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥ हम सब भयभीत होरहे हैं, सूर्य चन्द्रमाकी गति विपरीत होगई, हे विधाता ! दिशाओंका दाह और उल्कापात होनेलगा ॥ १६ ॥ हे विधि ! उनके तपसे समस्त भूमि भस्म हुई जाती है, अथ च संसारक प्राण धारणका उपायस्वरूप वायुतकका तौ संचार होताही नहीं है ॥ १७ ॥ हे प्रजानाथ ! आप महामतिमान हैं, सो कोई ऐसा उपाय विचारिये जिससे सब प्राणी अपने २ स्थानमें फिर स्थित होजायँ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले—अखिल देवताओ ! सुनो, हे सदाचारियो ! धीरज धरो, थोडेही समयके पश्चात् मैं तुम्हैं उपाय बताऊंगा ॥ १९ ॥ पुष्पमाला नामकी एक किन्नरी भूमिके ऊपर विख्यात है, उसका अंग सुन्दर, दांत सुन्दर और नेत्रकमलदलकी समान विस्तृत है ॥ २० ॥ उसकी कटिका अधोभाग अति सुहावना हैं, वोह सुन्दरी कुम्भ जैसे कठिन स्तनोंको

शुभा ॥ कदलीस्तंभसदृशे ऊरू तस्या महाद्युती ॥ २१ ॥ चंद्रकोटिप्रतीकाशरूपा रतिरिवापरा ॥ गायनेऽतीव कुशला दक्षा कामकलासु च ॥२२॥ तत्र गच्छत भो देवा यत्र सा वर्तते शुभा ॥ विश्वामित्रस्य तपसो भंगं चैव करिष्यति ॥२३॥ स्कंद उवाच॥ इति वाणीं प्रजायोनेः श्रुत्वेंद्राद्याः सुरास्तदा ॥ आगतास्तत्र वै धात्रा यत्र सा किन्नरी शुभा ॥ २४ ॥ तां दृष्टवंतो विबुधाः पुष्पमालां महामते ॥ बभूवुर्हर्षिताः सर्वे दृष्ट्वा तामूचिरे सुराः ॥ २५ ॥ देवा ऊचुः ॥ भोः किन्नरि पुष्पमाले त्वां वयं शरणं गताः ॥ रक्ष नो रक्ष नो भद्रे दह्यमानास्तपोग्निना॥२६॥ विश्वामित्रस्य महतो वसिष्ठपरिपंथिनः ॥ विश्वामित्रस्य तपसि विघ्नमाचर सुव्रते ॥२७॥ एष कामः सहायस्ते भविष्यति सुमध्यमे॥ रक्षरक्ष त्रिलोकं हि दह्यमानं तपोग्निना ॥२८॥ पुष्पमालोवाच॥ बिभेमि तस्य तपसा विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ कथं वै तु मया तत्र कर्तव्यं विघ्नमुत्तमम् ॥२९॥ स्कन्द उवाच ॥ इत्युक्का पुष्प

धारण करतीहै, उसकी चिकनी २ जंघा केलेके खंभकी समान सुहावनी हैं ॥ २१ ॥ करोडों चन्द्रमाके प्रकाशकी समान उसका रूप है, देखनेमें वोह दूसरी रति (कामपत्नी) सी प्रतीत होती है, गानविद्यामें चतुर और कामकलामें भी वोह अतिशय कुशलहै ॥ २२ ॥ जहां वोह सुन्दरी है, हे देवताओ ! तुम वहांही जाओ, वोह विश्वामित्रजीके तपको अवश्य भंग कर देगी ॥ २३ ॥ स्कन्दजी बोले—प्रजापति ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुन इन्द्र आदि देवतागण ब्रह्माजीको साथ ले उस स्थानमें आये, जहाँ वोह सुन्दरी किन्नरी विद्यमान थी॥२४॥ हे महामते ! वहां उन्होंने पुष्पमालाका अवलोकन करा, उसे देख प्रसन्नहो सब देवता यों कहने लगे ॥ २५ ॥ देवता बोले—हे पुष्पमाले किन्नरी !!! हम तुम्हारी शरणमें आये हैं, सुतराम् हे सुन्दरी ! वाशिष्ठजीके शत्रु विश्वामित्रके तपकी अग्निसे हम भस्मीभूत होते हुओंको बचाओ ! रक्षा करो, हे सुव्रते ! विश्वामित्रजीके तपमें विघ्नका आचरण कर ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे मनोहर पतली कमरवाली ! यह कामदेव तेरी सहायता करेगा, सुतराम् तपकी अग्निसे भस्मीभूत होते हुए त्रिलोककी रक्षा करो ॥ २८ ॥ पुष्पमाला बोली—बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रजीके तपसे मैं भी डरती हूं, फिर मैं उनके तपको यथेष्ट विघ्न कैसे करसक्ती हूं ? ॥ २९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महामतिमान् ;

माला तु चिंतयंती महामते ॥ प्रत्युवाच ततः शीघ्रं देवानिंद्रपुरोगमान् ॥ ३० ॥ पुष्पमालोवाच ॥ वरं मरणमेकस्याः सुखिनः संतु निर्जराः॥गच्छामि तस्य तपसि विघ्नं कर्त्तुं सुरोत्तमाः॥३१॥ देवा ऊचुः ॥ गच्छ सुंदरि रक्षाया अस्माकं मृगनेत्रके ॥ अविघ्नमस्तु ते पंथाः कार्य्यं साधय सुव्रते ॥ ३२ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां जगाम सुरसुंदरी ॥ मुनिर्यत्र तपस्तेपे विश्वामित्रो महामतिः ॥ ३३ ॥ अप्सरोभिर्युता सा तु गायंती गानमुत्तमम् ॥ धारयंती शुभां वीणां सप्तस्वरविभूषिताम् ॥ ३४ ॥ मूर्च्छनाभिस्तथा ग्रामैस्त्रिभिस्तालैर्लयस्तथा ॥ कोकिलेव हि कूंजती विचचार वनांतरे ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नंतरे कामः कृतवानृतुमुत्तमम्॥ वसंतमृतुराजं वै सर्वेषां कामवर्द्धनम्॥ ॥ ३६ ॥ पुष्पितानि वनान्यासन् कूजयंति स्म कोकिलाः ॥ भृंगाः परिरंटति स्म पुष्पेषु मधुलालसाः ॥ ३७ ॥ सर्वाभिश्च कलाभिश्च विरराज कलानिधिः॥ववुर्वाताः सुगंधाश्च शीता मंद-

यौं कह चुकनेके अनन्तर कुछ विचार करके वोह पुष्पमाला इन्द्र आदि सब देवताओंसे कहने लगी ॥ ३० ॥ पुष्पमाला बोली—मुझ एकका मरण भलेंही होजाय, पर सब देवता तौ सुखी होजायँगे, अत एव हे देवोत्तमो ! मैं उक्त महर्षिके तपमें विघ्न करनेको जाती हूं ॥ ३१ ॥ देवता बोले--हे मृगनयनी सुन्दरि ! हमारी रक्षा करनेके हेतु जाओ, हे सुव्रते ! तुम्हारे मार्गमें कोई विघ्न नहो, जाओ ! हमारे कार्यका साधन करो ॥ ३२ ॥ स्कन्दजी बोले--इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर वोह सुन्दरी पुष्पमाला वहां पहुंची जहां महामतिमान् विश्वामित्रजी महाराज तप कर रहे थे ॥ ३३ ॥ अप्सराओंको साथ लिये गान करती, सप्त स्वर विभूषित वीणाको धारण करे हुए ॥ ३४ ॥ मूर्च्छना, ग्राम तीन ताल और लयसे कोकिलाकी समान कूजती हुई वनमें विचरने लगी ॥ ३५ ॥ इतनेहीमें कामदेवने सबको कामोद्दीपन करनेवाले सर्वोत्तम ऋतुराज वसन्त ऋतुका निर्माण कर दिया ॥ ३६ ॥ वन सब फूलगये, कोकिला कुहू २ शब्द करने लगी, मधु (शहद) की लालसासे पुष्पोंके ऊपर भ्रमर गुंजार करने लगे ॥ ३७ ॥ कलानिधि चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओंसे विराजमान होंने लगा, शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलने लगी- ॥ ३७ ॥ जब सब वनकी यह दशा होगई तब पुष्पमालानेभी विश्वामित्रजीके निकट जाय उनके

तराः स्थिताः ॥ ३८ ॥ एवंभूते वने तस्मिन् विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ पुष्पमाला जगामाशु ददर्श मुनिसत्तमम् ॥ ३९ ॥ राजमानं जटाभिश्च तप्यमानं महत्तपः ॥ भासमानं यथा सूर्य्यं तपस्त्रैलोक्यतापकम् ॥ ४० ॥ तद्दृष्ट्वा भयवित्रस्ता पुष्पमाला बभूव ह ॥ करे प्राणं तु विन्यस्य गता तन्निकटे मुने ॥ ४१ ॥ कामोपि पुष्पधनुषि बाणं संयोज्य कौसुमम् ॥ ससर्ज तस्मिन्विप्रेंद्र विश्वामित्रे तपःस्थिते ॥ ४२ ॥ पुष्पमालापि गायंती रूपलावण्यगर्विता ॥ पीनस्तनी नीलकेशा मोहयंती जगत्त्रयम् ॥ ॥ ४३ ॥ गताति निकटे तस्य भयेन परिविह्वला ॥ विश्वामित्रोपि धर्मात्मा जहौ ध्यानं परात्मनः ॥ ४४ ॥ कामबाणाभिसंतप्तो ददर्शाग्रे स्त्रियं सुधीः ॥ तां दृष्ट्वा मोहमापन्न उवाच मदविह्वलः ॥ ४५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ का वा त्वं वद कल्याणि केन वै प्रेषिताऽत्र वै ॥ शीघ्रं वद सुदुःशीले नोचेद्भस्म करोमि ते ॥ ४६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वेपमाना भयेन वै ॥ उवाच वचनं

दर्शन किये ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रजी जिस समय उग्र तप कर रहे थे उस समय जटाओंसे उनकी औरही शोभा होरही थी, वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे त्रिलोकीको तपानेवाले सूर्य प्रदीप्त होरहे हों ॥ ३९ ॥ यद्यपि उन्हें देख पुष्पमाला मारे भयके व्याकुल होगई, तथापि-प्राणोंको हथेलीपै रखकर मुनीश्वरके निकट गई ॥ ४० ॥ उसी समय हे द्विजराज ! कामदेवनेभी पुष्पोंके धनुषके ऊपर पुष्पबाण चढाय महर्षि विश्वामित्रजीके ऊपर छोडे ॥ ४१ ॥ रूपकी सुन्दरतासे गर्वित हुई पुष्पमाला भी जिसके उरोज पुष्ट और केश नीले हैं, गान कर २ के तीनों लोकको मोहित करती ॥ ४२ ॥ यद्यपि भयसे व्याकुल थी, तथापि विश्वामित्रजीके निकट गई. उस समय विश्वामित्रजीने भी परमात्माका ध्यान छोड दिया ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने कामबाणोंसे व्यथितहो अपने अगाडी एक स्त्रीको देखा, उसे देख मदसे विह्वल और मोहितहो यह कहने लगे ॥ ४४ ॥ विश्वामित्र बोले—बताओ कल्याणी ? तुम कौन हो ! और तुम्हैं यहां किसने भेजा है ! अरी दुराचारिणी ! शीघ्र बता, अन्यथा मैं तुझे भस्म कर दूंगा ॥ ४५ ॥ उनके ऐसे वाक्य सुन पुष्पमाला मारे भयके कंपायमान होगई और महामुनि विश्वामित्रसे तत्कालसे ये वाक्य कहने लगी ॥ ॥ ४६ ॥ पुष्पमाला बोली—हे द्विजराज ! पुष्पमाला मेरा नाम है, और देवताओंने आपके

शीघ्रं विश्वामित्रं महामुनिम् ॥ ४७ ॥ पुष्पमालोवाच ॥ ॥ अहं वै प्रेषिता देवैस्तपसो विघ्नहेतवे ॥ पुष्पमालेति नाम्ना वै ख्याताहं द्विजसत्तम ॥ ४८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मकरी भव दुर्वृत्ते मच्छापात्पुष्पमालिके॥त्वया मे तपसो विघ्नं कृतं देवानुरोधतः ॥ ४९ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेः परमदारुणम् ॥ संयोज्य च कराविग्रे स्थित्वा चोऽक्तवती वचः ॥ ॥ ५० ॥ पुष्पमालोवाच ॥ विघ्नं कृतं महाभाग तपसस्ते मया विभो ॥ स्त्रीस्वभावादल्पबुद्ध्या परप्रेरणया मुने ॥ ५१ ॥ इदानीं शरणं प्राप्ता भवंतं शांतचेतसम् ॥ नमोनमस्ते शतशः क्षमां कुरु महामते ॥ ५२ ॥ मम वै दह्यमानायाः शापाग्नेस्तव सुव्रत ॥ कदा मे शापकस्यांतो भविष्यति वद प्रभो ॥ ५३ ॥ स्कंद उवाच॥ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शांतचेता बभूव ह॥ मोहितो वचसा तस्या उवाच वचनं त्विदम् ॥ ५४ ॥ गच्छ देवप्रयागे तु स्थिता स्याः कतिचित्समाः ॥ त्रेतायुगे दाशरथी रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥ ५५ ॥ आयास्यति तदा तत्र दर्शनं

तपमें विघ्न करनेके लिये यहां भेजा है ॥ ४७ ॥ विश्वामित्र बोले–अरी दुराचारिणी पुष्पमालिका ! तू हमारे शापसे मकरी होजा, कारण कि–तूने देवताओंके अनुरोधसे हमारे शापमें विघ्न कियाहै ॥ ४८ ॥ स्कन्दजी बोले--विश्वामित्र मुनिके ऐसे परम दारुण वचन सुन, पुष्पमाला दोनों हाथ जोड आगे खडी हो ये वाक्य कहने लगी ॥ ४९ ॥ पुष्पमाला बोली–हे महाभाग विभो ! अवश्यही मैंने आपके तपमें विघ्न कियाहै, किन्तु यह अपराध स्त्रीस्वभाव अल्पबुद्धि और दूसरोंकी प्रेरणासे हुआहै ॥ ५० ॥ अब मैं आप शान्तचेताकी शरणमें आई हूं, वारंवार सैंकडों प्रणाम आपको करती हूं, हे महामते ! अब आप क्षमा करिये ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! मैं आपके शापकी अग्निसे भस्म हुई जाती हूं, कृपा पूर्वक यह बताइये ! इस शापका अन्त कब:होगा॥५२॥ स्कन्दजी बोले--उसके ऐसे वाक्य सुन विश्वामित्रजीका चित्त शान्त होगया, और वे उसके वचनोंसे मोहित हो ये वाक्य बोले ॥ ५३ ॥ जाओ ! देवप्रयागमें जायकर कुछ वर्षपर्यन्त वहां स्थित रहो, त्रेतायुगमें दशरथात्मज श्रीरामचन्द्रजी महाराज लक्ष्मण सहित ॥ ५४ ॥ जब वहां पधारेंगे, हे प्रिये ! तब तुम्हें उनके दर्शनोंका लाभ होगा, तभी हे सुभगे ! तुम्हारे शापका अन्त होगा ॥ ५५ ॥ पुष्पमाला बोली हे मुनीश्वर ! मैं यह कैसे जान सकूंगी कि, श्रीरामचन्द्रजी अब आये

प्राप्स्यासि प्रिये ॥ तदा ते शापमोक्षो वै भविता शुभगे ध्रुवम्॥
॥ ५६ ॥ पुष्पमालोवाच ॥ ॥ कथं मया मुनिश्रेष्ठ ज्ञातव्यो
राम आगतः ॥ नष्टबुद्धया तु दुर्य्योनौ मकर्य्यां जलसंस्थया
॥ ५७ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ तत्र देशे पुष्पमाले यत्र सं-
स्थास्यसि ध्रुवम् ॥ तत्र रामो महाभागः स्नातुमायास्यति प्रभुः
॥ ५८ ॥ यदा तं च रघुश्रेष्ठं मुखेन निगलिष्यसि ॥ तदा त्वां
पुष्पमालां वै हनिष्यति नृपोत्तमः ॥ ५९ ॥ रामं ज्ञात्वा महा-
भागे शापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ पुनस्तथैव रूपं ते भविता पुष्प-
मालिके ॥ ६० ॥ एवं पुनर्महाभागे माकृथा दुष्कृतं क्वचित् ॥
इति ते कथितं सर्वं शापस्यांतो मया प्रिये ॥ ६१ ॥ स्कंद-
उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां पुष्पमालां गतोन्यस्मिस्थले मुनिः ॥
पुष्पमालाप्याजगाम क्षेत्रे देवप्रयागके ॥ ६२ ॥ मकरीरूपमा-
स्थाय गंगायां प्रविवेश सा ॥ मत्स्यमांसादनपरा उवास कतिचि
त्समाः ॥ ६३ ॥ अथ त्रेतायुगांते वै आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥
देवप्रयागके क्षेत्रे यत्र सा पुष्पमालिका ॥ ६४ ॥ तत्र स्नाना-
र्थमुद्युक्तौ तौ दृष्ट्वा रामलक्ष्मणौ ॥ प्रसन्नाभून्मुने सा तु मकर्य्यु-

हैं, क्योंकि मकरीकी नीच योनीमें पडे २ मेरी बुद्धिभी नष्ट होजायगी ॥ ५६ ॥ विश्वामित्रजी बोले--हे पुष्पमाले ! जहां तुम स्थित रहोगी, उसी प्रदेशमें महाभाग श्रीरामचन्द्रजी महाराज स्नान करनेके लिये आवेंगे ॥५७ ॥ और तभी तू उन रघुराजको मुखमें निगलेगी उसी समय राज-राजेश्वर तुझ पुष्पमालाका वध करेंगे ॥ ५८ ॥ हे महाभागे ! तब रामचन्द्रजीको पहिचान लीजियै उसी समय तेरे शापका अन्त होगा, हे पुष्पमाले ! उस समय तेरा फिर वैसाही (सुन्दर) रूप होजायगा ॥ ५९ ॥ किन्तु हे महाभागे ! अब ऐसा दुराचरण फिर कभी मतकारिये, हे प्रिये ! इस प्रकार शापान्त होनेका आख्यान हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ॥ ६० ॥ स्कन्दजी बोले-पुष्पमालासे यों कहकर मुनि अन्यत्र चले गये, इधर पुष्पमाला भी देवप्रयाग क्षेत्रमें चली आई ॥ ॥६१॥और मकरीका रूप धारण कर गंगाजीमें प्रविष्ट होगई,तथा मनुष्योंके मांसका भोजन करती२ कुछ वर्षपर्यंत निवास करने लगी ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर त्रेतायुगके अन्तमें राम लक्ष्मण वहां आये, जहां देवप्रयाग क्षेत्रमें वोह पुष्पमाला उपस्थित थी ॥ ६३ ॥ वहां राम लक्ष्मणको स्नानके लिये उद्यत हुए देखा, हे मुने ! वोह मकरी प्रसन्न हो यों कहने लगी ॥६४॥ समस्त प्राणियोंका पालन पोषण करनेवाले विधाता को धन्य है, जो उसने पुष्ट और अत्यन्त उन्नत दो पुरु

क्तवती तदा ॥६५॥ पीनावुच्चतरौ मत्यौं भोजनाय प्रकल्पितौ ॥ अहो धन्यो विधातास्ति सर्वभूतप्रपालकः ॥ अनयोर्मांसपिंडेन तृप्तिर्मेऽद्य भविष्यति ॥ ६६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा रामो नारायणः स्वयम् ॥ आश्चर्य्यं परमं लेभे लक्ष्मणं चाब्रवीद्वचः ॥ ६७ ॥ श्रीराम उवाच ॥ भ्रातर्लक्ष्मण तिष्ठ त्वं तावत्तीरे हि सुव्रत ॥ यावत्स्नास्ये हि गंगायामित्युक्त्वा प्राविशज्जले ॥ ६८ ॥ रामो राजीवनयनस्ततो नक्री करालिका ॥ यावद्रामं निगिलति तावच्चिच्छेद तच्छिरः ॥ ६९॥ निस्त्रिंशेन तु खड्गेन रामो दाशरथिर्नृपः ॥ ततः सा माकरं देहं तत्याज मकरी मुने ॥ ७० ॥ बभूव सुंदरी रम्या सुंदरांगी सुशोभना ॥ रूपलावण्यसंयुक्ता उच्चपीनपयोधरा ॥७१॥ अग्रे दृष्टवती रामं सानुजं भक्तवत्सलम् ॥ धनुर्बाणासिधर्तारं किरीटेन विराजितम् ॥ ७२ ॥ वनमालाधरं देवं कौस्तुभेन विभूषितम् ॥ पुष्पमाला तु भक्त्या वै रामं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥७३॥ पुष्पमालोवाच ॥ नमोनमस्ते त्रिगुणात्मकाय गुणैर्विहीनाय गुणाकराय॥

मेरे भोजनार्थ भेजे हैं ॥ ६५ ॥ आज इन्हींके मांसपिण्डसे मेरी तृप्ति होगी ॥ ६६ ॥ स्कन्दजी बोले--उसके ऐसे वाक्य सुन स्वयं नारायण श्रीरामचन्द्रजीको बडा अचरज हुआ और वे लक्ष्मणजीसे यों कहने लगे ॥ ६७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा -सदाचारी भाई लक्ष्मण ! तुम तो तीरहीके ऊपर ठहरे रहो, प्रथम मैं स्नान कर आऊं यों कहकर वे जलमें प्रविष्ट होगये ॥ ६८ ॥ जब कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी गंगाजलमें प्रविष्ट हुए तभी करालमकरीने उन्हें निगलना प्रारंभ करा, उसी समय दशरथ दुलारे श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्ण खड्गसे उसका शिर छेदनकर डाला तब हे मुने ! मकरीने अपने मकर देहका परित्याग कर दिया ॥ ६९ ॥ ७० ॥ उसके सबही अंग सुन्दर होगये, और वोह स्वयं सर्वथा सुन्दरी होगई, वोह रूप और लावण्यसे युक्त थी और उसके पयोधर पुष्ट थे ॥ ७१ ॥ उसने अपने अगाडी भक्त वत्सल रामलक्ष्मणको खडे देखा वे धनुष बाण और खड्ग धारण कर रहे थे, अथ च उनके शिरपर मुकुट विराजमान हो रहा था ॥ ७२ ॥ देवाधिदेव वनमाला धारण करे कौस्तुभ मणिसे विराजमान थे, तब तो वोह पुष्पमाला भक्तिभावपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति करनेको उद्यत हुई ॥ ७३ ॥ पुष्पमाला बोली--हे तीनों गुणोंके

अनेकदेवस्तुतपादपद्म ममास्तु ते भक्तिततिर्नितांतम् ॥ ७४ ॥ यथा घटेषु प्रतिबिंबितोर्कः संदृश्यते सर्वजनैरनेकः॥तथा त्वमेकोपि स्वमायया हि प्रदृश्यसेऽनेकविधो मनुष्यैः ॥७५॥ त्वमेव सृष्टिं कुरुषे विधातृरूपेण विष्णो करुणालयोसि ॥ त्वमेव चांते लयरूपकोसि बिभर्षि विश्वं सकलं त्वमेव ॥७६॥ नमोऽस्तु ते नाथ सहस्रपादफुल्लारविंदायतपत्रनेत्र ॥ सहस्रधाम्ने च सहस्रबाहवे सहस्रशीर्षापुरुषाय वै नमः ॥ ७७ ॥ त्वमेव कालः कलनात्मकस्तु त्वमेव वायुर्भवजीवहेतुः ॥ त्वमेव चंद्रोसि महौषधीनां प्रपोषकः सर्वमयस्त्वमेकः ॥ ७८ ॥ अन्यं न पश्यामि भवादृशं वै लोकत्रयेपि प्रभुरेक एव ॥ सर्वस्य विश्वस्य त्वमेकनाथो नतोऽस्मि ते राम परावरेश ॥७९ ॥ नाहं विलज्जे भवतस्तुतौ हि न जानती त्वन्महिमानमेव ॥ ब्रह्मादयस्त्वां समन्विष्यमाणा न प्रापुरंतं भवतो मुरारेः ॥८० ॥ न वेद्मि ते रूपमनंतमाद्यं स्तुतिं न वै त्वत्पदयोर्हि जाने ॥ भवंतु ते वै शतशः

आत्मस्वरूप ! यद्यपि आप गुणाकर हैं तथापि मायिक गुणोंका विकार आपके विषे नहीं है, आपके चरणोंकी अनेक देवता स्तुति करते हैं सुतराम् मैं भी वारंवार आपको प्रणाम करती हूं, आपके चरणोंमें मेरी नितान्त भक्ति हो ॥ ७४ ॥ जैसे जल पूर्ण अनेक घटोंमें एक सूर्यके अनेक प्रतिबिम्ब मनुष्योंको दृष्टिगत होते हैं इसी प्रकार यद्यपि आप एक हैं तथापि अपनी मायासे मनुष्योंको अनेक दीखतेहैं ॥ ७५ ॥ विधाता बनकर सृष्टिका विरचन, करुणावरुणालय विष्णुस्वरूप से उसका पालन, एवं अन्तमें संहार भी आपही करतेहैं ॥ ७६ ॥ हे नाथ ! आपके सहस्र चरण हैं, आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलकी समान विस्तृत हैं, आपका तेज अपार है, आपके बाहु और शिरभी सहस्रों हैं हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ७७ ॥ सबकी संख्या करनेवाले कालरूप आपही है, संसारको जीवनप्रदान करनेवाले वायु स्वरूपभी आपही हैं, महा महा औषधियोंको पुष्ट करने वाले चन्द्रमास्वरूपभी आपही हैं ॥ ७८ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीमें आपकी समान अन्य किसीको मैं नहीं देखती हूं, हे परमेश्वर राम ! आप समस्त जगत्के नाथ हैं, मैं वारंवार आपको प्रणाम करती हूं ॥ ७९ ॥ हे नाथ ! यद्यपि मैं आपकी महिमाको नहीं जानती, तथापि आपकी स्तुति करनेसे लजाती नहीं हूं,कारण कि, ब्रह्मा आदि देवताभी निरन्तर अन्वेषण करते रहते हैं तथापि आपका पार नहीं पासक्ते ॥ ८० ॥ मैं आपके अनन्त रूप तथा आपके

प्रणामा भूयोपि ते नाथ मम प्रणामाः ॥ ८१ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो वै स तया मुरारिरुवाच वाचं सुमनोहरां च ॥ सुपुष्पमालां मकरीप्रदेहे संजातकायां नमितोन्नतांसाम् ॥ ८२ ॥ श्रीराम उवाच ॥ गच्छगच्छ च वै कांते मम मंदिरमुत्तमम् ॥ इदं वै तीर्थराजं तु पौष्पमालेतिनामकम् ॥ भविष्यति महापुण्यं सर्वभूतोपकारकम् ॥ ८३ ॥ अत्र वै नरशार्दूला ये करिष्यंति किन्नरि ॥ स्नानं दानं जपं होमं तन्मम प्रीतिकारकम् ॥ ॥ ८४ ॥ संवादमावयोर्ये तु पठिष्यंति हि मानवाः ॥ श्रोष्यंति श्रावयिष्यंति तेऽपि वैकुंठवासिनः ॥ ८५ ॥ शक्त्या भक्त्यापि वा येऽत्र तर्पयिष्यंति वै पितॄन् ॥ तेषां वै पितरः स्वर्गे जलानां कणसंख्यया ॥ तावद्वर्षसहस्राणि वसंति मदनुग्रहात् ॥ ८६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ रामः सानुजः स्वगृहे मुने ॥ किन्नरी सापि वै प्राप्ता तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ८७ ॥ इति ते कथितं

चरणोंकी स्तुति भी नहीं जानती, सुतराम् वारंवार आपको सैकडों प्रणाम हैं ॥ ८१ ॥ स्कन्दजी बोले—जब मुरारि श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार उसकी स्तुतिका श्रवण करा तब मकरी देहसे उत्तम कायामें प्राप्त हुई पुष्पमालासे श्रीरामने मनोहर और प्रिय ये वाक्य कहे ॥ ८२ ॥ श्रीराम बोले—हे कान्ते ! जाओ ! हमारे लोकको जाओ, यह तीर्थ पुष्पमाला नामसे विख्यात होगा, एवं अत्यन्त पुण्यप्रद और सब प्राणियोंका उपकारक होगा ॥ ८३ ॥ जो मनुष्य इस स्थानमें स्नान, दान, जप अथवा होम करेंगे, हे नरशार्दूल ! उनके वे सब कार्य हमारी प्रीतिका संपादन करेंगे ॥ ८४ ॥ हमारे तुम्हारे संवादको जो मनुष्य पढेंगे अथवा सुनें सुनावेंगे, उन्हें भी वैकुण्ठमें निवास मिलेगा ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक अथवा भक्ति रहित होकर पितरोंके निमित्त तर्पण करते हैं, उनके जलके जितने बिंदु हैं उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त पितर हमारी कृपासे स्वर्गमें निवास करेंगे ॥ ८६ ॥ स्कन्दजी बोले—हे मुने ! इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी महाराज लक्ष्मण सहित अपने घरको चलेगये, इधर यह किन्नरी भी विष्णु भगवान् के परमपदको चली गई ॥ ८७ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार हमने पुष्पमालाका दिव्य विस्तार

दिव्यं पौष्पमालस्य विस्तरम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं विप्र विष्णुभक्तिप्रदायकम् ॥ ८८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवतीर्थेऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह माहात्म्य भोग, मोक्ष, और विष्णु भगवान्की भक्ति प्रदान करने वाला है ॥ ८८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः १५९.

स्कंद उवाच॥ यथास्मिंस्तीर्थराजे तु इंद्रद्युम्नो महाद्युतिः॥तपश्चकार तीव्रं तु प्राप्तवान्परमं पदम् ॥ १ ॥ तच्छृणुष्व महाभाग यथावत्कथयामि ते ॥ भक्तानां भक्तराजोसि श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ २ ॥ पुरा कृतयुगे राजा बभूव नृपवंदितः ॥ इंद्रद्युम्न इति ख्यातः उत्कले मुनिसत्तम ॥ ३ ॥ जेता वै सर्वशत्रूणां शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ समुद्र इव गांभीर्य्ये कांत्या काम इवापरः ॥४॥ कालक्रमेण भो विप्र भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥ राज्ये भ्रष्टे ततो राजा जगाम विजने वने ॥ ५ ॥ शालैस्तालै रसालैश्च तमालैर्बकुलैस्तथा॥निंबैः कदंबैराक्षोटैः कदलैः पिप्पलैर्वटैः ॥ ६ ॥ आम्रातकैर्युतं भीमं भीमनिह्रादशब्दितम् ॥एतादृशं वनं दृष्ट्वा दृष्टवान्स-

स्कन्दजी बोले—जिस प्रकार इस तीर्थराजमें महाद्युतिमान् इन्द्रद्युम्नने तीव्रतपका आचरण कर परम पदको प्राप्त किया था ॥ १ ॥ हे महाभाग ! उसे सुनिये, मैं यथावत् वर्णन करता हूं, क्योंकि—तुम श्रीविष्णुभगवान्के भक्तोंमें सबसे श्रेष्ठ हो ॥ २ ॥ पूर्व कालमें उत्कल देशमें राजपूजित इन्द्रद्युम्ननामका एक राजा बडा विख्यात होगयाहै ॥ ३ ॥ वोह अपने सब शत्रुओंका विजय करनेवाला, पराक्रममें इन्द्रकी समान, गम्भीरतामें समुद्र जैसा और कान्तिमें दूसरे काम देवहीकी समान था ॥४॥ हे विप्र ! कालके क्रमानुसार उक्तराजाका राज्य भ्रष्ट होगया राज्य भ्रष्ट होजानेपर राजा निर्जन वनमें चलागया ॥५॥ वोह वन शाल, ताल, रसाल (आम), तमाल, बकुल, नीम, कदम्ब अखरोट केले और पीपलके वृक्षोंसे आकीर्ण होरहा था ॥ ६ ॥ आमडेके वृक्षोंसे आकीर्ण होनेके कारण वोह वन अतिशय भयंकर और भयानक नादसे पूर्ण था, ऐसे वनमें उक्त राजाने

(उत्कल - उड़ीसा)

र उत्तमम् ॥ ७ ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ इंदीवैररुत्पलैश्च शोभितं मुनिवंदित ॥८॥ ततो जगाम नृपतिराश्रमे मुनिसेविते॥कस्यायमाश्रमो रम्य इति वै पृष्टवान्मुनिम्॥९॥ किंचिन्नृपतिशार्दूलं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १०॥ ऋषिरुवाच ॥ भोभोः पुरुषशार्दूल वर्त्तते मुनिनायकः ॥ वैजपायनेतिख्यातो नाम्ना ब्राह्मणसत्तमः ॥ ११ ॥ तस्यायमाश्रमो रम्यो मुनिभिः परिषेवितः ॥ १२॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेरतुलतेजसः ॥ दर्शनाय जगामाशु इंद्रद्युम्नो महीपतिः ॥ १३॥ तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ यत्र वै वैजपायनः ॥ दृष्टवान्मुनिशार्दूलं नमश्चक्रे महीपतिः ॥ १४ ॥ इंद्रद्युम्न उवाच ॥ उत्कलेशो मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥दासोऽहं त्वादृशानां तु विप्र त्वामभिवादये॥ १५ ॥ वैजपायन उवाच॥ इंद्रद्युम्न महाराज किं कार्यं ते मया प्रभो ॥ किमर्थमागतोसि त्वं वने मुनिगणान्विते॥१६॥ इंद्रद्युम्न उवाच ॥ राज्याद्भ्रष्टो महाभाग मंत्रिभिश्च दुरात्मभिः ॥

एक उत्तम सरोवर दृष्टि आया ॥ ७ ॥ हंस, कारंडव और चक्रवाकोंसे उसकी शोभा और भी बढ रही थी, हे मुनिवन्दित ! कमलोंसे वोह सरोवर विशेष शोभायमान हो रहाथा ॥ ८ ॥ तब वोह राजा महर्षिसेवित एक आश्रममें गया, और वहां जाय उसने मुनिसे पूछा यह किसका आश्रम है ॥ ९ ॥ तब सब राजाओंमें शार्दूलकी समान इस राजासे किसी ऋषिने यों कहा ॥ ॥ १० ॥ ऋषि बोले—हे मुनि शार्दूल ! वैजपायन नामके ब्राह्मण सत्तम एक मुनीश्वर विख्यात हैं ॥ ११ ॥ मुनीश्वरोंके द्वारा सेवन किया हुआ यह उन्हींका आश्रम है ॥ १२ ॥ स्कन्दजी बोले—अतुल तेजस्वी मुनीश्वरके ऐसे वाक्य सुनकर महाराज इन्द्रद्युम्न (वैजपायनके) दर्शन करनेको तत्काल चलदिये ॥ १३ ॥ जहां वैजपायन महर्षि उपस्थित थे वहां जाय राजाने मुनिशार्दूलके दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १४ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले—हे मुनिराज ब्राह्मण ! मैं उत्कल देशका राजा इन्द्रद्युम्न हूं, चूंकि मैं आप जैसे महात्माओंका दास हूं अतएव आपको प्रणाम करता हूं ॥ १५ ॥ वैजपायन बोले—हे महाराज इन्द्रद्युम्न ! तुम्हारा हमसे क्या कार्य है । और मुनिगणसे आकीर्ण हुए इस वनमें तुम क्यों आये हो ॥ १६ ॥ इन्द्रद्युम्न बोले—हे महाभाग ! दुरात्मा मन्त्रियोंने मुझे राज्यसे भ्रष्ट कर दिया, सुतराम् मैं तप करने एवं आपजैसे महात्माओंके दर्शन

आगतोऽस्मि तपः कर्तुं दर्शनं च भवादृशाम् ॥ १७ ॥ तद्वदस्व मुनिश्रेष्ठ येनाहं स्यां हि राज्यभाक् ॥ मया कुत्र तपः कार्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ १८ ॥ तत्स्थानं ब्रूहि भगवन्दासोऽस्मि तव सुव्रत ॥ १९ ॥ वैजपायन उवाच ॥ गच्छ तात मया सार्द्धं तीर्थे देवप्रयागके ॥ नारायणं दयासिंधुं भजस्व भक्तितत्परः ॥२०॥ स्कंद उवाच॥इत्युक्त्वा मुनिराजानौ ययतुर्दैवतीर्थके॥उक्तेन विधिना विप्र क्षेत्रेस्मिञ्चक्रतुः क्रियाम् ॥ २१ ॥ इद्रद्युम्नो महाराजस्तपश्चक्रे सुदारुणम्॥ जितेंद्रियः शांतमनाः कामक्रोधादिवर्ज्जितः॥ ॥ २२ ॥ पर्णाशनोऽभवद्योगी चतुर्वर्षसहस्रकम् ॥ धरां वर्षसहस्राणि पदैकेन तु तस्थिवान् ॥ २३ ॥ तपसा तस्य राज्ञः संक्षुब्धं त्रैलोक्यमुत्तमम् ॥ चचाल वसुधा विप्र समुद्राश्च चकंपिरे॥२४॥ आजग्मुर्देवताः सर्वाः सेंद्राः सुरगणा मुने॥ ततः स्वयं जगामाशु भगवांल्लोकभावनः ॥ २५ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥ वामे संन्यस्तलक्ष्मीकः कौस्तुभामुक्तकंधरः ॥ २६ ॥

करनेको मैं यहां आया हूं ॥ १७ ॥ सो हे महाराज ! मुझे ऐसा उपाय बताइये, जिससे राज्यकी प्राप्ति होजाय, अर्थात्—मैं किस स्थानमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, देनेवाले तपका आचरण करूं ॥ १८ ॥ हे श्रेष्ठ व्रतका आचरण करनेवाले भगवन् ! मैं आपका दास हूं सुतराम् मुझे तप करनेके लिये स्थान बताइये ॥ १९ ॥ वैजपायन बोले—देवप्रयाग महातीर्थमें तुम हमारे साथ चलो, और भक्तिभावमें तत्पर हो वहां दयासागर भगवान्का भजन करियो ॥ २० ॥ स्कन्दजी बोले—यों कहकर मुनि और राजा दोनों देव प्रयागमें गये वहां जाय, उन दोनोंने यथोक्त विधिसे आचरण किया ॥ २१ ॥ महाराज इन्द्रद्युम्नने इन्द्रिय दमनपूर्वक चित्तको शान्तकर काम क्रोध परित्यागपूर्वक दारुण तपका आचरण किया ॥ २२ ॥ तप करते समय उस योगीने पत्तोंका भोजन कर एक चरणसे खडा रहके छः सहस्रवर्ष पर्यन्त तप किया ॥ २३ ॥ उस महात्माके तपसे त्रिलोकी कंपायमान होगई और वसुन्धरा डोलगई, अथ च समुद्रभी क्षोभको प्राप्त होगये ॥ २४ ॥ तब तो हे मुनिराज ! इन्द्र आदि सबही देवता वहां आये, और साक्षात् लोकभावन भगवान् भी स्वयं वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ २५ ॥ भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म, और वनमालासे विभूषित थे, उनके वाम

पीतांबरश्चतुर्बाहुर्नवनीरदवद्रुचिः ॥ नानामणिगणाबद्धके-
यूरादिविभूषितः ॥ २७ ॥ स्फुरत्कुंडलगंडश्रीर्गरुडोपरि-
संस्थितः ॥ नारदाद्यैर्महाभक्तैर्महामुनिगणैस्तथा ॥ स्तूय-
मानो हृषीकेशो राज्ञा वै प्रत्यदृश्यत ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा नारायणं
देवं भक्तिगद्गदया गिरा ॥ आनंदाश्रुपरिषिक्तवक्षा राजाकरो-
त्स्तुतिम् ॥ २९ ॥ इंद्रद्युम्न उवाच ॥ ॥ प्रमृज्यमाणःपयसा न
वै त्वं प्रमृज्यसे रूपविवर्जितोसि ॥ अपाणिपादः प्रकरोसि सर्व-
मनेत्रकः पश्यसि सर्वविश्वम्॥३०॥अनिच्छकस्त्वं प्रकरोऽसि सर्वं
विमोहकः पालयसीव विश्वम् ॥ नारायणोस्यक्षुधितोत्सि सर्वं
चराचरं विश्वमयोनियोनिः ॥ ३१ ॥ न दिव्यचक्षुर्भवदीयदर्शने
न लोकचक्षुर्न च शास्त्रचक्षुः ॥ भवत्कृपालेशसुदिव्यचक्षुर्हेतुर्भव-
द्वै परमेश्वरेश ॥ ३२ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषो भवान्वै सहस्रनेत्रश्च
सहस्रपादः ॥ सृष्ट्वा तु भूमिं गगनं च विष्णो दशांगुलं भावन-

भागमें लक्ष्मी एवम् वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि विराजमान थी ॥ २६ ॥ पीताम्बर भगवान्की चार भुजा और नवीन मेघोंकी समान कान्ति थी अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित बाजूआदि आभूषण भगवान्ने धारण कर रक्खेथे ॥ २७ ॥ कुण्डलोंकी प्रभा प्रकाशित होरही थी, भगवान् गरुडजीके ऊपर आरूढ थे, नारदआदि परमभक्त और मुनीश्वरगण हृशीकेश भगवान्की स्तुति कर रहे थे-ऐसे नारायणको राजाने देखा ॥ २८ ॥ देवाधिदेव नारायणको देख इन्द्रद्युम्नराजा नेत्रोंमें आनन्द के आंसू भरकर भक्तिसे बाणीको गद्गदकरके स्तुति करनेलगा ॥ २९ ॥ इन्द्रद्युम्न बोला—चाहे कोई व्यक्ति जलकी कणिकाओंकी संख्या करके पार पाले पर आपका पार नहीं पासक्ता, आपके हाथ, पैर कुछ नहीं हैं तथापि आप सब कुछ करते हैं, नेत्र न होते हुएभी आप विश्वका अवलोकन करते हैं ॥ ३० यद्यपि आप इच्छारहितहैं, तथापि सब कुछ करते हैं, सबको मोहित करने वाले और जगत्का पालन करनेवाले भी आपही हैं, हे नारायण ! आप क्षुधित हो सब जगत्का भक्षण करलेते अथ च सृष्टिकी रचना भी आपही करते हैं ॥ ३१ ॥ आपके दर्शन करनेके लिये क्या दिव्य चक्षु, क्या लौकिक नेत्र, और क्या शास्त्र चक्षु कुछ सहायक नहीं होते, हे परमेश्वर ! आपकी कृपाके लेशमात्रहींसे प्राप्त हुई दृष्टिसे आपका अवलोकन होता है ॥ ३२ ॥ आप सहस्र शिरवाले पुरुष हैं, आपके नेत्र और चरणभी सहस्रोंही हैं, आप भूमिसे आकाशपर्यन्त विस्तृत एवं

संस्थितो वै ॥३३॥ स एव नारायणपूरुषस्त्वं सर्वं च भूतं भव-
भावनं च ॥ उतामृतत्वस्य भवानिशान अन्नेन यद्वै अतिरोह-
तीव ॥ ३४ ॥ ततो विराट् पूरुषको बभूव ततो विराजस्त्वधि-
पूरुषश्च ॥ जातः स एवाथ पुरस्तु पश्चाद्विश्वंभरो वै सदधार
देवः ॥ ३५ ॥ तस्माद्विराजस्तु बभूव यज्ञो यज्ञादृचः सामय-
जूंषि छंदः॥ यज्ञान्महापूरुषतो बभूवुर्भूतानि सर्वाणि चराचरं च॥
॥ ३६ ॥ मुखं तु विप्रोस्य परात्मनश्च बाह्वोस्तु राजन्यगणो
बभूव॥ऊर्वोंस्तु वैश्यः पदयोश्च शूद्र एवं विधो वै प्रकरोतु सृष्टिम्॥
॥ ३७॥ चक्षोस्तु सूर्यो मनसश्च चंद्रः श्रोत्रेण वायुश्च मुखा-
त्तु वह्निः॥ सदंतरिक्षं भवतः सुनाभितः पद्भ्यां तु भूमिस्तु तथा
बभूव ॥ ३८ ॥ एवंविधस्य महतः पुरुषस्य तस्य विक्रीडतो
भगवतः परमेश्वरस्य ॥ब्रह्मादयोपि सततं भवतो मुरारेरन्वेषयंत
उपयांति न वै विरामम् ॥ ३९ ॥ अहं हि मायागणलोभपाश-
बद्धो वराको भवसिंधुमग्नः ॥ जाने कथं हे पुरुषोत्तमेश स्तुतिं
महेशादिभिरप्यलभ्याम् ॥ ४० ॥ दासोस्मि ते नाथ वरप्रभो भो

दशांगुल परिमित लघुकायधारी हैं ॥ ३३ ॥ आपही नारायण पुरुष, जगत्की भावना करनेवाले, एवं अमृत स्वरूपभी हैं ॥ ३४ ॥ प्रथम विराट् पुरुष, उनसे अधिपुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, सदाधार देवाधिदेव विश्वंभरभी आपही हैं ॥ ३५ ॥ उन विराट् पुरुषसे यज्ञ हुआ, यज्ञसे ऋचा साम यजु, और छन्द हुए, इधर महापुरुष यज्ञभगवानसे सब प्राणी और चराचर प्रादुर्भूत हुए ॥ ॥ ३६ ॥ परमात्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रियगण, जंघाओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए इस प्रकार आप सृष्टिको रचते हैं ॥ ३७ ॥ नेत्रोंसे सूर्य, मनसे चन्द्रमा, कानसे वायु, मुखसे अग्नि, नाभिसे आकाश एवं चरणोंसे भूमिका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार महापुरुषसे समस्त जगत् उत्पन्न होताहै, हे भगवन् ! ब्रह्मा आदि देवताभी निरन्तर अन्वेषण करते रहने परभी आपके तत्त्वको जानकर विरामको प्राप्त नहीं होते ॥ ३९ ॥ मैं बिचारा तो मायाजालमें फँसकर लोभ पाशसे बँधरहा हूं, और संसारसागरमें मैं निमग्न हूं तो फिर हे लक्ष्मी कान्त! आपकी जिस स्तुतिको महेश आदि देवताभी नहीं जान सक्ते उसे मैं कैसे प्राप्त करसक्ताहूं ॥ ४० ॥ हे रमानाथ ! मैं आपका दास हूं, आप मेरा उद्धार करिये, क्योंकि—मैं संसाररूप दुस्तर सागरमें मग्न

समुद्धरोद्धारक भो रमेश ॥ संसारदुस्तारसमुद्रमग्नं नमोनमस्ते शतशो नमस्ते ॥ ४१ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति स्तुतो वै भगवान्मुरारिर्नरेश्वरेणाप्रतिमप्रतेजसा ॥ उवाच वाचः परमेश्वरस्तं प्रजेश्वरं नारद भक्तवश्यः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ तुष्टोस्मि ते मानवनाथ भूप प्रशाधि मां कामदुधं प्रसन्नम्॥जातं स्वरूपं तपसा सुदिव्यं वरं महेशादिभिरप्यलभ्यम् ॥ ४३ ॥ गृहाण मत्तोखिलराज्यसंपदो न हि त्रिलोके भवतोप्यलभ्यम् ॥ मयि प्रसन्ने वद मानसे यद्ददामि सर्वं यदभूपुरांतरे ॥ ४४ ॥ इंद्रद्युम्न उवाच ॥ ॥ राज्यं न याचे न च राज्यसंपन्न पुत्रपौत्रान्न च भृत्यवर्गान् ॥ न मित्रवर्गान्क्षणसंगभंगुरान्भक्तिं प्रयाचे भवतो रमेश ॥ ४५ ॥ यथा न मे त्वच्चरणारविंदयोः स्मृतिश्च्युताः स्याद्भवबंधमोचनी ॥ इदं स्वरूपं भवतो मुरारे सशंखचक्रं सगदं सपद्मकम् ॥४६॥ मन्मानसे स्याद्यदि वै दया मयि न राज्यलोभेन च मां प्रलोभय ॥ धन्योस्मि ते नाथवरं त्वदीयं

होरहा हूं, सुतराम् मैं आपको सैकडोंवार नमस्कार करता हूं ॥ ४१ ॥ स्कन्दजी बोले—जब अतुल तेजस्वी राजाने मुरारि भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करी, तब हे नारदजी ! भक्तोंके वशमें रहने वाले परमेश्वर राजासे यों कहने लगे ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे मनुष्येश्वर भूपाल ! हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम हमसे वर मांगो, कारण कि जब मैं प्रसन्न होजाता हूं तब सब कामनाओंको पूर्ण करदेताहूं. और तप करनेसे तुम्हारा स्वरूप दिव्य होगया, अत एव महेश आदिको भी जो दुर्लभ हो ऐसा वर तुम्हें देसक्ते हैं॥४३॥ तुम हमारे सकाशसे अखिल राज्य सम्पत्तिका लाभ करो, क्योंकि—तुम्हारे लिये त्रिलोकीमें भी कुछ दुष्प्राप्य नहीं है,कारण यह है कि जब मैं प्रसन्न हो जाताहूं तब सबही कुछ देडालताहूं॥४४॥इन्द्रद्युम्न बोला—मैं राज्य राज्यकी संपत्ति,पुत्र पौत्र सेवक और मित्र वर्ग किसीकी याचना नहीं करता क्योंकि इनका संग क्षणभरमें नष्ट होजाता है, सुतराम् मैं आपकी याचना करता हूं॥४५॥यह वर दीजिये कि—संसार बन्धनसे मुक्त करानेवाली आपके चरणोंकी स्मृतिसे पृथक्ता कभी न हो, और शंख, चक्र,गदा,पद्म सहित आपका यह स्वरूप सदैव ॥४६॥मेरे मनमें बसता रहै हे नाथ ! यदि मेरे ऊपर दयाहै तो मुझे राज्यलोभसे मत लुभाइये, कारण कि हे रमेश

जातं रमेशाप्रतिमं हि दर्शनम् ॥ ४७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ इंद्रद्युम्न महाराज भक्तोसि मम सुव्रत ॥ भक्तिस्ते ह्युत्तमा जाता सर्वकामप्रदा प्रभो ॥४८॥ इदानीं राज्यभोगं त्वं कुरु भप यथासुखम् ॥ मयि भावं समास्थाय मयि सर्वं नियोज्य च ॥ ४९॥ कुरु कर्माणि राज्यस्य मयि संन्यस्य भूमिप ॥ सर्वं मामेव संपश्यन्कर्मबंधो न ते भवेत् ॥ ५० ॥ पश्चाद्राज्यावसाने तु मामेव त्वं गमिष्यसि ॥ इदं क्षेत्रं महापुण्यं सर्वभूतोपकारकम् ॥ ५१ ॥ भविष्यति महाराज सर्वकामफलप्रदम्॥अस्मिंस्तीर्थे तु यो मर्त्यः स्नानं वै प्रकरिष्यति ॥ इह लोके वरान्भोगान्प्राप्य पश्चात्परां गतिम् ॥ ५२ ॥ गमिष्यति महाबाहो सत्यं सत्यं न संशयः ॥ राज्यभ्रष्टोपि यो मर्त्यो विधिना स्नानमाचरेत् ॥ राज्यं प्राप्नोति विपुलमंते स्वर्गे महीयते ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम् ॥ मोक्षार्थी लभते मोक्षमस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ ॥ ५४ ॥ अस्मिंस्तीर्थे महाराज यत्कृतं वै तदक्षयम् ॥ इति

आपके अमोघ दर्शन होगये अतएव मुझे धन्य हैं ॥४७॥ श्रीभगवान बोले—हे सदाचारी ! इन्द्रद्युम्न महाराज ! तुम हमारे भक्त हो, हे राजन् ! तुम्हारी उत्तम भक्तिही सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होगई है ॥ ४८ ॥ अब तौ हे राजन् ! मेरे भावमें आरूढ हो और सब कुछ मेरे अर्पण कर अब तुम सुखपूर्वक राज्यभोग करो ॥ ४९ ॥ हे भूपाल ! मेरे ऊपर संन्यस्तकर सब राज्यकार्य्योंका सम्पादन करो, और सबको हमारी सदृशही देखो तौ कर्मका बन्धन तुम्हें बाधा न देगा ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर राज्यकी समाप्ति होनेपर हमरेही देहमें लीन होजाओगे। और यह क्षेत्र सब प्राणिका उपकारकरनेवाला विख्यात होगा ॥ ५१ ॥ हे महाराज यह सब कामनाओंको भी पूर्ण करेगा, इस तीर्थमें जो मनुष्य स्नान करेगा, वोह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोगकर अन्तमें परमगतिको प्राप्त होगा ॥ ५२ ॥हे महाबाहो ! यह सब कुछ सत्य है, इसमें सन्देह कुछभी नहीं है। जो मनुष्य राज्यसे भ्रष्ट होकर विधिपूर्वक स्नान करेगा, उसे इस लोकमें विपुलराज्य और अन्तमें स्वर्गके ऐश्वर्यका उपभोग प्राप्त होगा ॥ ५३ ॥ इस तीर्थकी सेवा करनेसे पुत्राभिलाषीको पुत्र, धनार्थीको धन, और मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! इस तीर्थमें जो कुछ कर्म किया जाताहै वोह सब अक्षय होजाताहै, भक्ति और वैराग्यसे पूर्ण हुए, सब शास्त्रोंके सार स्वरूप अत एव दिव्य, तुम्हारे कीर्त्तन किये हुए इस स्तोत्रका जो पाठ करेंगे

स्तोत्रं त्वयाख्यातं भक्तिवैराग्यसंयुतम् ॥ सर्वशास्त्रमयं दिव्यं पठतां शृणु वै फलम् ॥ ५५ ॥ अधीतानि च शास्त्राणि वेदाः सर्वे परिश्रुताः॥ स्नातं च सर्वतीर्थेषु पूजिताः प्रतिमाः शुभाः ॥ दत्ता मही मेरुयुता तेन वै प्रवरात्मना ॥ ५६ ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदपि ॥ यद्वा अगोचरं स्थानं तद्वै प्राप्नोति मानवः ॥ ५७ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति वाक्यं समाभाष्य माधवोंतर्दधे ततः ॥ महाराजस्य तस्यैव पश्यतो मुनिसत्तम ॥ ॥ ५८ ॥ इंद्रद्युम्नोपि धर्मात्मा स्वदेशे आगतस्ततः ॥ शत्रून्विजित्य सर्वांस्तु महाराजो बभूव ह॥५९॥तत्रापि भगवंतं हि समास्थाप्य सदा हृदि ॥ कृतवान् राज्यभोगं तु समुद्रांतं हि नारद ॥ ॥६०॥ विष्णुर्वै भगवांस्तत्र नित्यं संनिहितोऽभवत् ॥ नामास्याभूत्तु देशस्य पुरुषोत्तमक्षेत्रकम् ॥ ६१ ॥ तीर्थराजप्रसादेन श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥ राज्यभोगांस्तु कृत्वा वै जगामांते सुरोत्तमम् ॥ ६२ ॥ अत्रैव तीर्थराजे तु वैजपायन एव च ॥ स्थितवान्विष्णुमेकाग्रचेतसा संस्मरंस्तु सः ॥ ६३ ॥ इंद्रद्युम्नतपः-

उनके फलको सुनिये ।। ५५ ।। मानो उस पुण्यवान् महात्माने सब शास्त्रोंका अध्ययन, सब वेदोंका श्रवण, सब तीर्थोंमें स्नान, सब शुभ प्रतिमाओं (मूर्त्तियों) का पूजन एवं सब भूमिका दान कियाहै ।। ५६ ।। जो मनुष्य पढता, पढाता, सुनता अथवा सुनाताहै, उस मनुष्यको अगोचरभी स्थानकी प्राप्ति होतीहै ।। ५७ ।। स्कन्दजी बोले--हे मुनिशार्दूल ! उक्त महाराजके देखते २ ही भगवान् यों कहकर अन्तर्ध्यान होगये ॥ ५८ ॥ तब धर्मात्मा इन्द्रद्युम्नभी अपने स्थानको चला आया, और सब शत्रुओंका विजयकर महाराज होगया ॥ ५९ ॥ किन्तु वहांभी सदैव अपने हृदयमें भगवान्‌को धारणकर हे नारद ! समुद्र पर्यन्त भूमिके राज्यका उपभोग करता था ।। ६० ॥ अथ च उस क्षेत्रमें श्रीविष्णु भगवान् भी नित्यही सन्निहित रहने लगे, सुतराम् इस स्थानका पुरुषोत्तम क्षेत्रनाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ६१ ॥ वोह राजा तीर्थराज तथा परात्मा श्रीविष्णु भगवानकी कृपासे इस जन्ममें विविध राज्य भोगोंका उपभोग कर अन्त समय उत्तम सुर लोकको चलागया ॥ ६२ ॥ इधर वैजपायनजी भी इस तीर्थराजमें श्रीविष्णु भगवान्‌का एकाग्र चित्तसे स्मरण करते हुए निवास करने लगे ॥ ६३ ॥ इन्द्रद्युम्नके तप स्थानसे ऊर्ध्व

स्थानादूर्द्धभागे हि पर्वते॥गुहां वै कारयित्वा तु स्थितो वै मुनि-
सत्तमः ॥६४॥ इति ते कथितं सर्वमिंद्रद्युम्नतपःस्थलम् ॥ यथा वै
तीर्थराजस्य नामधेयं बभूव ह ॥६५॥ य इदं तीर्थराजस्य उत्प-
त्तिं चापि वैभवम्॥शृणोति व्याकरोत्येव सोऽपि याति परां गति-
म् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कांदे देवतीर्थे एकोनषष्ट्युत्तरशततमोऽ-
ध्यायः ॥ १५९ ॥

भागमें पर्वतके ऊपर गुफा बनाके उसीमें मुनिराज निवास करने लगे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार हमने इन्द्रद्युम्नके तपः स्थलका एवं तीर्थ राजका जिस प्रकार उक्त नामधेय हुआ सो तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ६५ ॥ जो मनुष्य इस तीर्थराजकी उत्पत्ति अथवा माहात्म्यको सुनता किम्वा वर्णन करताहै, उसेभी उत्तमगतिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकोनषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः १६०.

स्कंद उवाच ॥ ॥ विप्रवर्य महाभाग शृणु तीर्थस्य वैभवम् ॥
बिल्वाख्यस्य तथोत्पत्तिं लक्षणं च महामते ॥ १ ॥ अतिपुण्य-
तमं स्थानं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ पुत्रीयं धनदं चैव स्थिरं कुरु
मनो मुने ॥ २ ॥ इंद्रद्युम्नतपःस्थानात्क्रोशखंडप्रमाणके ॥
अधो गृध्राचलातीरे गंगाया दक्षिणे वरे ॥ ३ ॥ बिल्वतीर्थं समा-
ख्यातं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ यत्तीर्थे मज्जनादेव शिवो भवति मा-
नवः ॥४॥ एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शतमुखैरपि ॥ क्षमो न हि

स्कन्दजी बोले--हे महाभाग ! महामतिमान् ! द्विजराज ! बिल्वतीर्थकी उत्पत्ति औ महात्म्यको अब आप श्रवण करिये ॥ १ ॥ वोह स्थान अतिशय पवित्र, पापोंका नाश औ सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला, पुत्र एवं धन देनेवालाहै, आप अपने मनको स्थिर करिये ॥२॥ जहां इन्द्रद्युम्नने तप किया था, उस स्थानसे एक कोसके खंडकी दूरीपर नीचेकी ओर गृध्राचलके ऊपर गंगाजीके दक्षिण तटपर ॥ ३ ॥ धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, इन चारों वर्गकी सिद्धि प्रदान करनेवाला, बिल्वतीर्थ है, उस तीर्थमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य शिवरूप होजाताहै ॥ ४ ॥ चूंकि इस स्थानमें महादेवजी सदैव उपस्थित रहते हैं, अत एव त्रिलोकीभरमें किसीकी ऐसी

त्रिलोकेस्मिन् स्थितो यत्र सदाशिवः ॥ ५ ॥ तस्मात्तीर्था-त्पूर्वभागे जलं निःसरति ध्रुवम् ॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा गंगास्नान-फलं लभेत् ॥ ६ ॥ तत्र वै बिल्ववृक्षस्तु स्वर्णपत्रस्त्वकंटकः ॥ धत्ते स्वर्णानि विप्रेंद्र फलानि प्रचुराणि च ॥ ७ ॥ शांतैर्जिता-त्मभिः शुद्धैः सदाशिवपरायणैः ॥ दृश्यते मुनिशार्दूल बिल्ववृक्षो महाद्युतिः ॥ ८॥ बिल्वस्याधो महाभाग कापिलं लिंगमुत्तमम् ॥ तत्र नागो महानस्ति बिल्वमूले वसत्यसौ ॥ ९ ॥ रात्रौ वै वेष्ट-यित्वा तं शेते लिंगं हि नारद॥ कदाचिद्योजनायामः कदाचिद्ध्र-स्वरूपधृक्॥इति वै लक्षणं तस्य तीर्थराजस्य वर्णितम् ॥ १० ॥ यस्मिन्तीर्थे बिल्ववृक्षो बिल्वतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ हे स्कंद पार्वतीपुत्र गृध्रपर्वतविस्तरम् ॥ वदस्व त्वन्मु-खांभोजवाङ्मधुपायतो मम॥ तृप्तिर्मे जायते नैव सुराणाममृता-द्यथा ॥ १२॥ कथमेतस्य शैलस्य नामाभूद्गृध्रपूर्वकम् ॥

सामर्थ्य नहीं है जो सैकडो मुखसेभी इस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन कर सके ॥ ५ ॥ इस तीर्थसे पूर्वभागमें जलका उद्गमन होताहै उस जलको शिरके ऊपर धारण करनेसे गंगास्नान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ वहां कांटे रहित एक बिल्ववृक्ष है, उसके सुवर्णकी समान पत्ते हैं हे द्विजराज ! वोह सुवर्णहीके विपुलफल धारण करताहै ॥ ७ ॥ जिनकी शान्त प्रकृति है, जिन्होंनें अपनी आत्माका निग्रह करलियाहै जिनका आचरण शुद्ध है, एवं जो महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर हैं, हे मुनिशार्दुल ! महाद्युतिमान् इस बिल्ववृक्षके दर्शन उन्हीं महाशयोंको होते हैं ॥ ८ ॥ हे महाभाग ! उस बिल्वके नीचे उत्तम कपिल लिंग है, और वहांही एक महानाग बिल्ववृक्षके मूलमें निवास करताहै ॥ ९ ॥ हे नारद ! वोह रात्रीके समय उक्त लिंगको वेष्टितकर शयन करताहै कभी उसका विस्तार एकयोजन (चारकोस) का होजाता है और कभी २ वोह बहुतही छोटा देह धारण करलेता है, इसप्रकार हमने उक्ततीर्थराजका लक्षण वर्णन किया हैं, ॥ १० ॥ वहां बिल्व (बेल) का वृक्ष होनेहीके कारण उसका बिल्वक्षेत्रनाम प्रसिद्ध हुआ हैं ॥ ११ ॥ नारदजी बोले–हे गौरीपुत्र ! स्कन्दजी ! अब गृध्रपर्वतका विस्तार हमारे प्रति करिये, कारण कि आपके मुखकमलसे अमृतरूप्र बाणीका श्रवण करते २ मेरी तृप्ति इस प्रकार नहीं होती, जैसे अमृतपान करनेसे देवता तृप्त नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! इस पर्वतका गृध्राचलनाम किस हेतुसे

॥ १३ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्रेंद्र वैयात्र यथाभून्नाम चोत्तमम् ॥ गृध्राचल इति ख्यातं विस्तराद्वदतो मम ॥ १४ ॥ पुरा वै विनतावंशे जटायुरिति विश्रुतः ॥ बभूव गृध्रराजो वै महासत्त्वपराक्रमः ॥ १५ ॥ तस्य वै जातमात्रस्य रामे भक्तिरभून्मुने ॥ राममेव सदा ध्यायन्नासीद्गृध्रेश्वरो मुनिः ॥ १६ ॥ एकदा स तपः कर्त्तुमागतोऽस्मिन्महागिरौ ॥ अत्रागत्य महाभागश्चकार तप उत्तमम् ॥१७॥ गृध्रस्य तप्यमानस्य तपः परमदुष्करम्॥व्यतीयुःषट्सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुंगव ॥ १८ ॥ आविर्बभूव विश्वात्मा भासमानो यथा रविः ॥ द्योतयन्वै दिशः कांत्या तस्याग्रे प्रत्यदृश्यत ॥ १९ ॥ उवाच वचनं प्रेम्णा गृध्रराजं तपःस्थितम् ॥ अलक्ष्यः सर्वभूतानां विष्णुर्वै भक्तवत्सलः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तुष्टोस्मि तपसा तव॥ वरं वृणीष्व मत्तो वै यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ निशम्येश्वरवाणीं तु भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ भगवत्स्तुतिमारेभ जटायुर्नाम पक्षिपः॥ २२॥

हुआ (सो वर्णन करिये) ॥ १३ ॥ स्कन्दजी बोले--सुनो ब्रह्मपुत्रद्विजराज ! जिसप्रकार इस पर्वतका गृध्राचल यह उत्तम नाम प्रसिद्ध हुआ, उसीका हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते है ॥ १४ ॥ पहिले विनिताके वंशमें एक जटायुनाम गृध्रपक्षी उत्पन्न हुआ था, वोह पक्षी अतिशय बली और पराक्रमी था ॥ १५ ॥ हे मुनीश्वर ! उस पक्षीकी जन्महीसे रामचद्रजीमें भक्ति हुई, सुतराम् वोह गृध्रराज नित्यही श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता था ॥ १६ ॥ एक समय उस पक्षिराज इसी महापर्वतके ऊपर तप करनेको आया, और यहां आकर उस महाभागने उत्तम तप का आचरण किया ॥ १७ ॥ हे मुनिपुंगव ! इस प्रकार गृध्रराजको उग्रतप करते ६ सहस्रवर्ष व्यतीत होगये ॥ १८ ॥ तबतो सूर्य्यकी समान प्रकाशमान विश्वात्मा श्रीमन्नारायण अपनी प्रभा से दिशाओंको प्रदीप्त करते, उसके अगाडी प्रदीप्त हुए ॥ १९ ॥ और दृष्टिके अगोचर रहकर ही, प्राणियोंके ऊपर दयाकरनेवाले श्रीविष्णुभगवान् तपमें स्थित हुए गृध्रराजसे प्रेमपूर्वक ये वाक्य बोले ॥ २० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—उठो ! तुम्हारा कल्याणहो !! उठो !!! मैं तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट हूं, सुतराम् जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर मांगो ॥ २१ ॥ स्कन्दजी बोले—गृध्रराज जब परमेश्वरके ऐसे वाक्य श्रवण करे ! तब जटायुनाम पक्षिराजने भक्तिभावसे गद्गदवाणीपूर्वक भगवान्की स्तुति करनेका आरम्भ करा ॥ २२ ॥

जटायुरुवाच ॥ यो वै ममांतःकरणे प्रविश्य श्रीरामचंद्रे प्रचकार भक्तिम्॥ तस्मै सुधाम्ने पुरुषोत्तमाय नतोऽस्मि ते ज्ञानवरप्रदाय ॥ २३ ॥ सृष्ट्वा त्वशेषं महदादि मायया परात्मशक्त्या भगवंस्त्वमेकः ॥ मायागुणेषु प्रतिविश्य नानास्वरूप हे नाथ नमो नमस्ते ॥ २४ ॥ एकः परामात्माखिललोकवृंदमाकाशवद्व्याप्य परिस्थितो यः ॥ अचिंत्यरूपो विगुणो महेशो नमस्करोमि प्रभुमव्ययं वै ॥ २५ ॥ नाहं प्रयाचे सुरराजसंपदं तथेष्टदंकल्पतरुं न याचे ॥ भक्तिं हि मे देहि पुराणविष्णो भवांबुधेस्तारणपोतभूताम् ॥२६॥ नमो भगवते तुभ्यं वेधसे परमात्मने॥ इच्छाकृतजगत्सृष्टिकर्मणे ब्रह्मणे नमः ॥ २७ ॥ भगवन्यदि वरदोऽसि त्वं त्रैलोक्यनायक ॥ जीविना मे त्वया देव देयं दर्शनमुत्तमम् ॥ २८ ॥ त्वन्नामस्मरणं विष्णो भूयाद्वै भवमुक्तये॥ स्थितस्य यत्र कुत्रापि भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ २९ ॥ श्रीभगवानुवाच॥त्रेतायुगे दाशरथी भूत्वा यास्यामि दंडकान्॥ रावणादीन्निहंतुं वै सीतान्वेषणहेतवे ॥३०॥ तत्र त्वं रक्षसा गृध्र योत्स्यसे

जटायु बोला—जिन्होंने मेरे हृदयमें उपस्थित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिका प्रकाश किया, उन्हीं तेजःस्वरूप, पुरुषोत्तम, ज्ञानदाता आपको नमस्कार है ॥ २३॥ हे नाथ ! आपहीने अपनी शक्तिसे समस्त महत् आदिका निर्माण किया है,यद्यपि आप एक हैं तथापि मायाके गुणोंमें प्रविष्ट होकर आप अनेक प्रतीत होते हैं, हे प्रभो हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ परमात्मा एकही हैं तथापि आकाशकी समान सबका व्याप्त करके उपस्थित हैं, उनका रूप अचिन्त्यहै, वे महेश्वर निर्गुण हैं, ऐसे अविनाशी स्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ २५ ॥ हे नाथ ! मैं इन्द्रकी उत्कृष्टसम्पत्ति अथवा कल्पवृक्षकी याचना नहीं करता, हे पुराणपुरुष ! संसार सागरसे उद्धार करनेवाली अपनी भक्तिही केवल मुझे दीजिये ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! आपही विधातारूप परमात्मा हैं और आप केवल इच्छामात्रहीसे सृष्टिकी रचना कर डालते हैं, आपको बार २ नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे त्रिलोकी नाथ भगवन् ! यदि आप मुझे वरदेनाही चाहते हैं तो, कृपाकर मुझे अपने दर्शन दीजिये ॥ २८ ॥ हे विष्णो ! आपके नामका स्मरण करनेसे संसारसे मुक्ति होजाय, और मैं चाहें जहां रहूं किन्तु आपकी अव्यभिचारिणी भक्ति मेरे हृदयमें रहे ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् बोले—मैं त्रेतायुगमें राजा दशरथका पुत्र बनकर रावण वध और सीताका अन्वेषण करनेके लिये दण्डकारण्यमें जाऊंगा ॥ ३० ॥ तब हे गृध्र ! राक्षस रावणके साथ तुम्हारा युद्ध होगा, उस समय पंख

रावणेन वै ॥ ततो विकृत्तपक्षो वै निपातिष्यसि भूतले ॥ ३१ ॥ संगो नौ तत्र भविता स्तुत्वा दृष्ट्वा तु मां प्रिय॥ ततः प्राप्स्यसि मामेवं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ३२ ॥ तावत्तिष्ठ महाभाग मामेव हृदि संस्मरन् ॥ एतस्य गिरिराजस्य त्वन्नामांकितनाम हि ॥ ३३ ॥ भविष्यति पक्षिराज पवित्रं पुण्यदायकम् ॥ योजनद्वयगव्यूतिविस्तरायाम एव च ॥३४॥ सकृत्प्रदक्षिणीकृत्य गिरिराजं विनायक॥सप्तद्वीपवतीपृथ्व्याः प्रदक्षिणफलं लभेत्॥३५॥ खनित्राणि विचित्राणि स्वर्णादीनां तथैव च॥स पश्यति मासमात्रं तपः कृत्वा जितेंद्रियः॥ ३६ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे विष्णुः पश्यतो वीश्वरस्य हि॥सोपि च प्रययौ गृध्रो दंडके मुनिसेविते॥३७॥ इति ते कथितं विप्र बिल्वतीर्थस्य वैभवम् ॥ गिरिराजस्य देवर्षे यथाभून्नाम चोत्तमम् ॥३८॥ वैभवं बिल्वतीर्थस्य गिरिराजस्य चैव हि॥ भक्त्या मुक्तिं प्रयात्येव शृणोति व्याकरोति यः ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्ये बिल्वतीर्थवैभवकथनं नाम षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

कट जानेसे तुम भूमिके ऊपर निपतित होजाओगे ॥ ३१ ॥ हे प्रियवर ! वहां फिर हमारा तुम्हारा संगम होगा, तब हमारी स्तुति और दर्शन करके हमारे विषे तुम लीन होजाओगे, फिर वहांसे पुनरावर्त्तन होना दुर्लभ है ॥ ३२ ॥ तबतक हे महाभाग ! मुझे अपने हृदयमें धारण कर तुम ठहरे रहो, हे पक्षिराज ! इस पर्वतका नामभी तुम्हारे नामसे चिह्नित होकर पवित्र और पुण्यदायक विख्यात होगा, इसका प्रमाण दोयोजनलंबा और गव्यूति (दोकोस) चौडा होगा॥३३॥हे पक्षीश्वर इस गिरिराजकी एकबारभी परिक्रमा करनेसे सप्तद्वीपा भूमिकी प्रदक्षिणा करनेका फलप्राप्त होता है ॥ ३४ ॥३५ ॥ और जो मनुष्य इन्द्रियदमन पूर्वक एकमासपर्यन्त इस स्थानमें तपका आचरण करता है उसे सुवर्णआदिकी विविधखानोंका दर्शन होता है॥ ३६ ॥ स्कन्दजी बोले--यौं कहकर श्रीविष्णुभगवान् उक्तपक्षिराजके देखते २ हीं वहां अन्तर्हित होगये, इधर वोह गृध्रभी पक्षियोंसे सेवित दण्डकवनमें चलागया ॥ ३७ ॥ हे देवर्षिद्विजराज !!! इसप्रकार हमने बिल्वतीर्थका माहात्म्य, और गृध्राचलके नाम होनेका कारण तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ३८ ॥ बिल्वतीर्थ और गृध्रपर्वतके माहात्म्यका श्रवण अथवा कीर्त्तन करनेसे मनुष्य मुक्तिलाभ करता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

एकषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

स्कंद उवाच ॥ इति वै संगमादूर्द्ध्वभागे गंगोत्तरे तटे ॥ याम्ये चैव महाभाग श्रुत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥१॥ यानि तीर्थान्यधोभागतटे याम्योत्तरे तथा ॥ यथा त्वलकनंदायाः क्रमात्पप्रच्छ नारदः ॥२॥ नारद उवाच ॥ देवदेव बलाध्यक्ष त्र्यक्षपुत्र महामते॥ श्रुतानि त्वन्मुखांभोजात्तीर्थानि प्रवराणि च ॥ ३ ॥ संगोर्द्ध्वे कानि पुण्यानि तीर्थादीनि त्वया प्रभो ॥ कथितानि च वृत्तानि सुंदराणि वराणि च॥४॥अतः परं महाभाग अधोभागे सुनिर्मले ॥ यानि तीर्थानि पुण्यानि तान्याचक्ष्व मम प्रभो ॥ ५ ॥ शृण्वतस्त्वन्मुखांभोजात्तृप्तिर्मे जायते न हि ॥ न हि त्रिलोके वक्तास्ति त्वदन्यः पुण्यकर्म्मणाम् ॥ ६ ॥ स्कंद उवाच ॥ धन्योसि मुनिशार्दूल सुभक्तोसि विधातृज ॥ परोपकृतये यस्य जाता वै सत्तमा मतिः॥७॥ संगात्तु शरविक्षेपे गंगाया उत्तरे तटे॥ विद्यते हि महापुण्यं दिव्यं शीलवतीह्रदः ॥ ८ ॥ यत्र शीलवती वेश्या तपः कृतवती पुरा ॥ सप्तवर्षसहस्राणि निराहारा जितेंद्रिया ॥ ९ ॥ हृदि वै परमात्मानं यस्य ध्यानपरा स्थिता ॥ ततो

स्कन्दजी बोले--संगमसे ऊपरकी ओर, गंगाजीके उत्तरीय तटपर, एवं हे महाभाग ! दक्षिण तटके ऊपरभी अनेकतीर्थोंका श्रवण करके, नीचेके भागमें अलकनंदाके दक्षिण और उत्तरीय तटपर जो तीर्थ हैं, उन्हें नारदजी पूछने लगे ॥ १॥२॥ श्रीनारदजी बोले--हे महामतिमान् ! देवाधिदेव!!! मैंने आपके मुखसे श्रेष्ठ २ तीर्थोंका वर्णन श्रवण किया ॥ ३ ॥ संगमके ऊर्ध्वभागमें कौन २ से पवित्र और सुन्दर तीर्थ आपने वर्णन किये हैं ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे महाभाग ! निर्मल अधोभागमें जो २ उत्तम तीर्थ हों उनका वर्णन मेरे प्रति करिये ॥ ५ ॥ आपके कमलवत् मुखसे श्रवण करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती, और पुण्यात्माओंमें आपकी समान और कोई वक्ताभी त्रिलोकीमें नहीं है ॥ ६ ॥ स्कन्दजी बोले—धन्य मुनिशार्दूल ! धन्य, हे ब्रह्मपुत्र ! तुम बड़े भक्त हो, जो परोपकार करनेके लिये तुम्हारी ऐसी श्रेष्ठमति उदय हुई है ॥ ७ ॥ संगमसे शरविक्षेपकी दूर पर गंगाजीके उत्तरीय तटपै अत्यन्त पवित्र और दिव्य शीलवती सरोवर है ॥ ८ ॥ वहां शीलवती वेश्याने सात सहस्रवर्ष पर्य्यन्त निराहार और जितेन्द्रिय रहकर तपका आचरण किया था ॥ ९ ॥ जब उसने अपने हृदयमें इसप्रकार परमात्माका धारणकर तप किया, तब हे मुनीश्वर !

ददर्श विष्णुं वै तपसा तोषितं मुने ॥ १० ॥ ववंदे सा महाभागा प्रसन्नो भगवानभूत् ॥ उवाच वचनं प्रीत्या वरं वरय सुव्रते ॥ ॥ ११ ॥ शीलवत्युवाच ॥ प्रसन्नो यदि मे देव देहि स्थानं मरोत्तमम् ॥ यत्र वै स्वर्गवेश्यास्तु वसन्ति नित्यमेव हि॥१२॥तत्राहं वै वसे नित्यं गायंती गानमुत्तमम् ॥ रूपेणाप्रतिमा देव देवलोके तथा भुवि॥१३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छ वेश्ये महाभागे स्ववेश्या भव सुव्रते॥इदं स्थानं महापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१४॥ स्कंद उवाच ॥ इति निगद्य भगवानंतर्द्धानं ततोऽगमत् ॥ सापि शीलवती रंभा बभूव प्रमदोत्तमा ॥ १५ ॥ तस्मादेतस्य तीर्थस्याख्याभूच्छीलवतीह्रदः ॥ यंयं चिंतयते कामं तंतं प्राप्नोति मज्जनात् ॥ १६ ॥ तस्मात्तु क्रोशखंडे वै गंगा उत्तरगामिनी ॥ तत्स्थानं भूमिदेवस्य मुनेः परमतेजसः ॥१७॥ गुहा तत्र महाभाग कोटरांतरमध्यगा ॥ तत्र वै वसते साधुर्भूमिदेवं स पश्यति ॥१८॥ सूर्य्यग्रहशतं स्नात्वा गंगायां लभते फलम् ॥ तत्फलं हि

तपसे सन्तुष्टहुए भगवानके उसे दर्शन हुए ॥ १० ॥ तब उस महाभागवतीने प्रणाम किया, नारायण उससे प्रसन्न होगये, सुतराम् प्रीतिपूर्वक ये वाक्य बोले हे सुव्रते ! वर मांग ॥ ११ ॥ शीलवती बोली--हे देव ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तौ मुझे देवताओंका वोह उत्तमस्थान दीजिये जहां स्वर्गकी वेश्या (अप्सरा) नित्य निवास करती हैं ॥ १२ ॥ वहांही उत्तमोत्तम गान करके मैं भी निवास करूं, एवं च हे देव ! स्वर्गलोकमें मैं सुन्दरीभी अनुपमही होऊं ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे सदाचारिणी महाभागवेश्या ! जा, तू अप्सरा होजा, और यह स्थानभी अतिशय पवित्र एवं कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होगा ॥ १४ ॥ स्कन्दजी बोले—भगवान् मधुसूदन यों कहकर अन्तर्हित होगये, और वोह सुन्दरी शीलवती भी रम्भा अप्सरा होगई ॥ १५ ॥ इसी कारण इस तीर्थका शीलवती सरोवर नाम हुआ है, मनुष्यकी जो २ कामना होती हैं इसमें स्नान करनेसे उन सबकी पूर्त्ति होजाती है ॥ १६ ॥ वहांसे क्रोशखंडकी दूरीपर उत्तरवाहिनी गंगाजी हैं, वोह परमतेजस्वी भूमिदेवका स्थान है ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! कोटरके मध्यमें वहां एक गुफा है, वहां भूमिदेव निवास करते हैं ॥१८॥ उक्तभूमिदेवके दर्शन करनेसे उस फलकी प्राप्ति होती जो कि, सैकडों सूर्य्यग्रहणमें गंगास्नान करनेसे फल मिलता है, भूमिदेवके प्रसादसे वोही वोही फल

समाप्नोति भूमिदेवप्रसादतः ॥ १९ ॥ ततो वर्ण्याश्रमाद्रम्यात्समायाति नदी वरा॥वर्णिजेति समाख्याता नाम तस्याः सुपुण्यदम् ॥ २० ॥ तस्यास्तु जह्नुजायां च संगमो यत्र वर्त्तते ॥ तद्ध्रदः समनुख्यातो गाणपत्यो महामुने ॥ २१ ॥ यत्र वै मज्जनाशक्ता गाणपत्यमवाप्नुयुः॥ नंदीभृंग्यादयो यत्र महादेवपरायणाः॥२२॥ तत्सेवनान्नरो याति शिवतां देवदुर्ल्लभाम् ॥ तस्माद्वै क्रोशखंडार्द्धे पीठं पुण्यतमं मतम् ॥ २३ ॥ यत्र वागीश्वरं लिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ वर्त्तते हि सुभक्तानां जपतां मंत्रमुत्तमम् ॥ २४ ॥ यत्र साक्षान्महादेवी रागज्ञानाय वै किल॥वाग्देवी देवतापूज्या रराध शिममुत्तमम् ॥२५॥ततःप्रभृति विप्रेंद्र न्यवसच्छिव उत्तमे ॥२६॥ नारद उवाच ॥ कथमत्र च वाग्देवी रराध च महेश्वरम् ॥ कथं तु संस्तुता देवी वरं प्रादात्कथं शिवः ॥ २७ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद तत्सर्वं वृत्तांतं यदभूत्पुरा ॥ गीतामृतस्य संचारो नाभूत्कुत्रापि धातृज ॥ २८ ॥ गीतस्य ज्ञानबोधाय सरस्वत्या मनोभवत् ॥ कथं मे गीतबोधो हि भवेदित्याऽ-

मिलता है ॥ १९ ॥ उसी वर्ण्याश्रमसे एक श्रेष्ठ वर्णिजा नामकी शुभ नदी आती है उसका नाम विशेष पुण्यदायक है ॥ २० ॥ उस नदीका जहां गंगाजीमें संगम हुआ है हे महामुने ! उसे गाणपत्य सरोवरकी समान वर्णन करा है ॥ २१ ॥ महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर हो नन्दीभृंगी आदिको उसीमें स्नान करनेसे गणोंका अधिपतित्व प्राप्त हुआ था ॥ २२ ॥ उसका सेवन करनेसे मनुष्यदेव दुर्लभ शिवत्वका लाभ करता है, वहांसे एककोशके अर्धखंडकी दूरीपर अतिशय पवित्र एक पीठ है ॥ २३ ॥ जो श्रेष्ठभक्त उत्तम मन्त्रका जप करते हैं उन्हें शीघ्रही विश्वास दिलानेवाला वागीश्वरलिंग वहां विद्यमान है ॥ २४ ॥ वहां रागोंके ज्ञानकी प्राप्तिके लिये देवपूज्य साक्षात् वाग्देवी (सरस्वती) ने महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ २५ ॥ उसी दिनसे साक्षात् महादेवजी यहां निवास करतेहैं ॥ २६ ॥ नारदजी बोले—किस प्रकार वाग्देवीने भगवान् महादेवजीकी आराधना करी, और देवीसे स्तुति कियेजानेपर किसप्रकार भगवानने वरप्रदान किया ॥ २७ ॥ स्कन्दजी बोले—सुनिये नारदजी ! पूर्वकालमें जो कुछ वृत्तान्त हुआ उसको श्रवण करिये, हे विधातृनन्दन ! प्रथम गानरूप अमृतका संचार कहींभी नहीं था ॥ २८ ॥ निदान गानविद्याका ज्ञानप्राप्त करनेकेलिये सरस्वती देवीके मनमें विचार उदय हुआ, मुझे गानविद्याका ज्ञान किसप्रकार

कुलाभवत् ॥ २९ ॥ विचार्य मनसा देवी ययौ देवप्रयागके ॥ आराधनाय देवस्य सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥ ३० ॥ गत्वा वै गाणपत्यस्य निकटे पीठके शुभे ॥ समारराध रुद्रं वै उपचारैस्त्वनंतकैः ॥ ३१ ॥ गंधैः पुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः ॥ स्तोत्रपाठैर्नमस्कारैरनेकैर्भक्तितत्परा ॥ ३२ ॥ इति तस्या व्यतीयुश्च वाग्देव्याः कतिचित्समाः ॥ त्यक्ताहारविहारायास्ततोग्रे प्रत्यदृश्यत ॥ ॥ ३३ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतिकः ॥ नीलकंठश्चतुर्बाहुः शशांककृतशेखरः ॥ ३४ ॥ अंसन्यस्तकरीचर्मा हिमशैलकलेवरः ॥ वामांगन्यस्तगौरीकः सगणो वृषभध्वजः ॥ ३५ ॥ एतादृशं शिवं दृष्ट्वा भक्तिगद्गदया गिरा ॥ वाग्देवी स्तोतुमारेभे आनंदाश्रुपरिप्लुता ॥ ३६ ॥ श्रीवाग्देव्युवाच ॥ नतास्मि ते ज्ञानवरप्रदाय नृमुंडमालासुविराजिताय ॥ स्फुरत्प्रभाजालसुनेत्रकाय करींद्रचर्मान्वितमध्यकाय ॥ ३७ ॥ लसज्जटाजालघनस्फुरन्नदीवरातडित्पुंजमनोरमाय ते ॥ लसत्स्फुरज्जिह्वकजिह्मगाय

हो ऐसी चिन्तामें देवीजी व्यग्र होगईं ॥ २९ ॥ तब मनमें विविध भांतिसे शोचविचारकर परमात्मा महादेवजीकी आराधना करनेके लिये देवीजी देवप्रयागमें गईं ॥ ३० ॥ वहां जाय गाणपत्य पीठके निकटही शुभ स्थानमें अनन्त उपचारोंसे महादेवजीकी आराधना करनेलगीं ॥ ३१ ॥ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, और विविध प्रकारके शुभ स्तोत्र एवं अनेक नमस्कारोंसे भक्तितत्परहो देवीजीने शिवजीकी आराधना करी ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार करते २ सरस्वतीजीको कई वर्ष व्यतीत होगये, जब उसने आहार विहार सबहीका परित्याग करदिया, तब उसे व्याघ्रचर्मधारी नागोंका यज्ञोपवीत धारण करे नीलकंठ, चतुर्भुजधारी चन्द्रशेखर श्रीमहादेवजी अपने अगाडी दीखे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उनके कन्धेके ऊपर गजचर्म था, उनका देह हिमालयकी समान श्वेतवर्णका था, वृषभध्वजके वामभागमें पार्वतीजी और साथमें गण विद्यमान थे ॥ ३५ ॥ महादेवजीके ऐसे स्वरूपके दर्शन कर वाग्देवीके नेत्रोंमें आनन्दके आसू भरआये, सुतराम् वे भक्तिभावसे गद्गद वाणीसे महादेवजीकी स्तुति करनेको प्रवृत्त होगईं ॥ ३६ ॥ सरस्वतीजी बोलीं—आप शुभज्ञानप्रदान करते हैं, आपने नरमुण्डोंकी माला धारण करी है, आपके नेत्रोंकी प्रभा प्रदीप्त होरही है, आपकी कटिमें गजेन्द्रचर्मकी फेंट बंधरही है, मैं ऐसे स्वरूपधारी आपको नमस्कार करती हूं ॥ ३७ ॥ आपकी घनी जटाओंमें गंगाजी विराजमान हैं, आपका मनोहर स्वरूप है हे देवाधिदेव महेश्वर

च प्रभो महेशाय नमः सुराधिप ॥ ३८ ॥ चिताकलापप्रवहे श्मशाने नृमुंडसम्मण्डितधाम्न्युमेश ॥ कंकालसंजालविराजितेहं त्यक्त्वा वसे स्वर्गसुखं त्वशेषम्॥३९॥धगद्धगद्धींगितिधत्तधत्तकैर्धराधरेशे गणदुंदुभिस्वनैः ॥द्रुमद्रुमद्रुमरुकैः सुमंद्रकैर्मनोहरं नृत्यसि नाथ भीम भो ॥ ४० ॥ झणिज्झणितिकिंकिणीगणागणोत्थशब्दैः शुभैः॥ च लज्जलधिमेरुकं भगवति प्रभौ नृत्यति॥४१॥ वमद्विषधनंजयप्रचुरलास्यसंदोलितप्रभोगफणिरत्नकैर्विशमनः परेशे शिवे ॥ ४२ ॥ त्वद्धामद्वारभूमौ विकटभटगणैः कालभीमप्रधानैर्हस्तेषु न्यस्तदंडैर्दमितसुरगणैः स्थीयते यत्र देव ॥ तत्राहं कालकंठप्रवरसुभगवद्भक्तपादप्रघातध्वस्ताका भवेयं यदिह तनुमृदो मामकीना भवेयुः ॥ ४३ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ वद वाग्देवि यत्ते वै चित्ते भवति कार्यकम् ॥ प्रसन्नोस्मि तव स्तुत्या तपसा च ददामि भो॥ ४४ ॥ वाग्देव्युवाच ॥ भगवन् वरदोसि त्वं यदि त्रैलोक्यनायक ॥ गीतामृतरसास्वादजन्यानंदा तथा भवे ॥ ४५ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ गृहाण रागबोधाय वीणां

आपके अंगमें लपलपाते हुए सर्प लिपटरहे हैं अत एव आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ आप चिताकी भस्म और नरकपालमालोंको धारण करते हैं, आपके उसी क्रीड़ास्थलमें सब स्वर्गसुख त्याग मैं भी निवास करना चाहती हूं ॥ ३९ ॥ जब धिग् धिन् २ दुन्दुभीका और द्रुम २ मनोहर डमरूका निनाद होता है तब हे नाथ ! आप मनोहर नृत्य करते हैं ॥ ४० ॥ नृत्य करते समय आपकी कौंधनीका झन २ शब्द होता हैं, जो कि, सुननेमें अतिशय प्रिय लगता है ॥ ४१ ॥ विषमअग्नि आपके नेत्रमें धक् २ करते हैं, नाट्यकला करते समय आपके अंगमें लिपटेहुए सर्पोंकी मणियें चमकती हैं ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! जहां आपके गण हाथमें दण्डग्रहण कर देवताओंकाभी दमन कर स्थित रहते हैं, वहां ही भक्तपादोंसे मर्दितहोकर मैं भी निवास करूं ॥४३॥ महादेवजी बोले—हे वाग्देवी ! तुम्हारे चित्तमें जो कार्य्यहो सो बताओ, मैं तुम्हारी स्तुति और तपसे सन्तुष्ट होकर वोही तुम्हैं दूंगा ॥ ४४ ॥ सरस्वतीजी बोलीं—हे त्रिलोकीनाथ भगवन् !!! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तौ मुझे गानविद्याके अमृतरसका आस्वादन कराके आनन्दित करिये ॥ ४५ ॥ महादेवजी बोले—रागोंका बोध होनेके लिये तुम सप्तस्वर समन्वित वीणाको ग्रहणकरो, उसके

सप्तस्वरान्विताम् ॥ यस्यां संवाद्यमानायां मोहितं भुवनं भवेत् ॥ ॥ ४६ ॥ स्तोत्रेणानेन यः कश्चिन्मां स्तोष्यति हि मानवः ॥ सोपि वाग्देवि हे त्वच्छदृशो भवति निश्चितम् ॥ ४७॥ श्रोष्यंति प्रातरुत्थाय पठिष्यंति च ये नराः ॥ न तेषां दुर्लभं किंचिद्भविष्यति सरस्वति ॥४८॥ स्कंद उवाच ॥ एवं प्राप्य वरं सा तु वाग्देवी देवतावरा ॥ नमस्कृत्य विभुं शंभुं गता ब्रह्मपुरे मुने ॥ ॥ ४९ ॥ सोपि वै भगवान्रुद्रः स्थितवान्पीठके वरे ॥ अत एव महाभाग नाम्ना वागीश्वरोभवत् ॥ ५० ॥ अद्यापि तत्र देशे तु नित्यमायांति वै सुराः॥ऋषयः सिद्धगंधर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः॥ ॥५१॥ केचिद्वै मृगरूपेण केचिद्व्याघ्रस्वरूपकाः ॥ नानारूपधरामर्त्यालक्षिता भगवत्प्रिय ॥ ५२ ॥ चतुर्वेदमयं घोषं शंखदुंदुभिनिःस्वनम् ॥ कुर्वंति तस्य तोषार्थं परेशस्य महात्मनः ॥ ॥ ५३ ॥ तत्र वागीश्वरं कुंडं गंगायां वर्त्तते बुध ॥ तन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ सरस्वत्याः प्रियो भवेत् ॥५४॥ अत्रापि यत्कृतं कर्म तदसंख्यगुणं भवेत् ॥ इदं स्थानं सगोप्यं हि कर्त्तव्यं पापबु-

केवल बजानेही मात्रसे त्रिलोकी मोहित होजायगी ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा मेरी स्तुति करेगा, हे वाग्देवी ! वोहभी अवश्य तुम्हारी समान होजायगा ॥ ४७ ॥ हे सरस्वति ! जो मनुष्य प्रभातकाल उठतेही इसका श्रवण अथवा पाठकरैंगे, त्रिलोकीमें उनके लिये दुर्लभ कुछ भी नहीं रहैगा ॥ ४८ ॥ स्कन्दजी बोले—हे मुने ! जब श्रेष्ठ देवस्वरूप वाग्देवी सरस्वतीको इस प्रकार वरकी प्राप्ति होगई, तब वे सर्वव्यापक महादेवजीको प्रणामकर ब्रह्मलोकको चलीगई ॥ ४९ ॥ भगवान् महादेवजीभी उक्त श्रेष्ठ पीठहीमें उपस्थित रहे, अतएव हे महाभाग ! उनका वागीश्वर नाम हुआहै ॥ ५०॥ उस स्थानमें अभीतक देवता, ऋषि मुनि, सिद्धगन्धर्व, यक्ष किन्नर और सर्प आतेहैं ॥ ५१ ॥ कोई मृगका और कोई व्याघ्रका रूप बनाके, तथा हे भगवत्प्रिय ! विविधभांतिके रूपधारणकर मनुष्य वहां दृष्टिगोचर होते हैं ॥ ५२ ॥ वहां परमेश्वर महादेवजीकी प्रसन्नताके लिये चारों वेदोंका गान और शंख दुन्दुभी आदिके निनाद किया करते हैं ॥५३॥ हे बुध ! वहां गंगाजीमें वागीश्वर कुंड विद्यमानहै, हे मुनिराज ! उसमें स्नान करनेसे सरस्वतीजीका प्यारा होजाता ॥५४॥ यहां भी जो कुछ कर्म कियाजाय वोह अनन्त गुणा होता है, पापबुद्धियोंसे इस स्थानको

द्धिषु ॥ ५५ ॥ इति ते कथितान्येव गंगाया उत्तरे तटे ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव शृणु याम्ये महामते ॥ ५६ ॥ वागीश्वरान्महापीठा-क्रोशखंडे हि वर्त्तते ॥ लिंगभद्राश्रमं रम्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ ५७ ॥ यत्र वै राजकन्या हि लिंगभद्रातिसुंदरी ॥ सखीभिः शतशं-ख्याभिः संवृता संबभूव ह ॥ ५८ ॥ क्रीडयंती वने तस्मिन्ददर्श ऋषिपुत्रकम् ॥ कंचित्काममिव प्राप्तं सुंदरांगं सुशोभनम् ॥ ५९ ॥ सुस्निग्धाभिर्जटाभिश्च राजमानं सुमालिनम् ॥ युवानं वयसा विप्र दृष्ट्वा तं चकमे मुनिम् ॥ ६० ॥ कामबाणाभिसंतप्ता बभूव राजपुत्रिका ॥ ऋषिपुत्रमुवाचेदं स्मितेन परिशोभिता ॥ ६१ ॥ हावभावकटाक्षैश्च मोहयंती जगत्त्रयम् ॥ अंसयोर्न्यस्य बाहू वै कस्याश्चिन्मुनिपुंगव ॥ ६२ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ कस्त्वं सुंदरस-र्वांग किमर्थमागतोत्र वै ॥ अनजानीहि मां सौम्य प्रपन्नां राज-कन्यकाम् ॥ ६३ ॥ हृतं मनस्त्वया मे हि सुंदरांगेन धीमता ॥ भक्तां भजस्व मां नाथ सखीभिः सहितां शुभाम् ॥ ६४ ॥

अवश्यही गुप्त रखना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे महामातिमान् ! इसप्रकार गंगाजीके उत्तरीय तटपर जितने तीर्थहैं उनका वर्णन हमने तुम्हारे प्रतिकिया, अब दक्षिणतटके तीर्थोंको सुनिये ॥ ५६ ॥ वागीश्वर महापीठसे एक कोसकी दूरीपर पापोंका नाशकरनेवाला, और सबकामनाओंका पूर्णकरनेवाला परम-रम्य लिंगभद्राश्रमहै ॥ ५७ ॥ वहां परमसुन्दरी लिंगभद्रानामकी एक राजकन्या अपनी सैकडों सखियोंके साथ ॥ ५८ ॥ एक समय क्रीडाकर रहीथी, तब उसे उक्तवनमें एक ऋषिकुमारके दर्शन हुए, उक्त महर्षिकुमारका कामकीसमान सुन्दर अंगथा ॥ ५९ ॥ उसकी सुन्दर २ जटा सुशोभित होरहींथी, वोह अपने कंठमें माला धारणकर रहा था, हे विप्र ! उसकी युवा अवस्थाथी ऐसे मुनिको देख यह राजकन्या उनकी प्राप्तिकेलिये कामना करनेलगी ॥ ६० ॥ अर्थात् उसे देख यह राजकुमारी कामबाणसे पीडित होगई, सुतराम् मुसकराके महर्षिकुमारसे यों कहनेलगी ॥ ६१ ॥ हे मुनिपुंगव ! उस समय वोह राजकुमारी अपनी किसी सखीके कन्धेपै हाथ रखकर हावभाव कटाक्षोंसे त्रिलोकीको मोहित करनेलगी ॥ ६२ ॥ लिंगभद्रा बोली–हे सुन्दर सुकुमार!!! तुम कौन हो, और यहां किसलिये आयेहो ? हे सौम्य ! मुझ राजकन्याको अपनी शरणागतजानो ॥ ६३ ॥ हे मनोहर ! बुद्धिमान् !!! तुमने मेरे चित्तको हरलिया सुतराम् हे नाथ ! मुझ भक्तको

ऋषिपुत्र उवाच ॥ परस्त्रियं नैव कांक्षे मनसापि कदाचन ॥ त्यक्त्वा नरकसामग्रीमागतोस्मि यतो वने ॥ ६५ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ नाहं केनापि हे भद्र परिणीता महामते ॥ पाणी गृह्णीष्व मे शीघ्रं ततो दोषो न ते भवेत् ॥ ६६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ त्वं वै क्षत्रियजातासि ब्राह्मणोहं मनेत्रके ॥ आवयोः शुभ उद्वाहो भवितुं कथमर्हति ॥ ६७ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ चतस्रो ब्राह्मणस्योक्तास्तिस्रो वै क्षत्रियस्य तु ॥ द्वे वैश्यस्य तु भार्ये हि शूद्रस्यैका समीरिता ॥६८॥ ऋषिपुत्र उवाच ॥ ब्रह्मचार्यस्मि हे भद्रे ब्राह्मणी न विवाहिता ॥ पूर्वं कथं क्षत्रियजामुद्वहे नृपनंदिनि ॥ ६९ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ प्रपन्ना या न भजते स्त्रियं कामातुरां भृशम् ॥ स वै नरकमभ्येति यावदाभूतसंप्लवम् ॥७०॥ ऋषिपुत्र उवाच ॥ निर्धनोस्मि मुनिः कांते कथं स्थास्यसि मद्गृहे ॥ त्वं तु राजन्यकन्यासि मुन्यन्नं खादयिष्यसि ॥ ७१ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ ममास्ति द्रव्यं बहुलं सख्यश्च परितो मम॥ त्वं भविष्यसि द्रव्या-

सखियों सहित भजिये ॥ ६४ ॥ ऋषिपुत्रबोले—कारण यह है कि, मैं नरककी सामग्री (रूप गृहस्थ चर्य्या) को त्यागकर वनमें आयाहूं, अतएव परस्त्रीको मैं मनसेभी नहीं चाहता ॥ ६५ ॥ लिंगभद्रा बोली—हे महामतिमान् महाशय ! ! ! अभी मेरा विवाह किसीके साथ नहीं हुआहै, अतएव आप शीघ्रही मेरा पाणिग्रहण करिये, तब कुछभी दोष न होगा ॥ ६६ ॥ ऋषिपुत्र बोले-हे सुनयनि ! तुम क्षत्रियकुमारी, और मैं ब्राह्मणहूं तब हम दोनोंका शुभ विवाह कैसे होसक्ता है ॥ ६७ ॥ लिंगभद्रा बोली—ब्राह्मणोंको चार, क्षत्रियको तीन वैश्यको दो और शूद्रको एक पत्नी करनेकी आज्ञा है ॥ ६८ ॥ ऋषिपुत्र बोले—हे सुभद्रे ! मैं ब्रह्मचारी हूं, अभीतक जब कि मैंने ब्राह्मणीके साथही विवाह नहीं किया है तो हे राजकुमारी ! पहिलही क्षत्रियकी कन्याके साथ कैसे विवाह करसक्ता हूं ॥ ६९ ॥ लिंगभद्रा बोली—जो मनुष्य कामातुर हो प्राप्तहुई स्त्रीकी कामनाको पूर्ण नहीं करते हैं, वे प्रलयपर्य्यन्त नरकमें निवास करते हैं ॥ ७० ॥ ऋषिपुत्र बोला—हे कान्ते ! मैं निर्धन मुनि हूं, तुम हमारे घरमें कैसे रहसकोगी, चूंकि तुम राजकन्याहो, मुनि-अन्नका भोजन कैसे करोगी ॥ ७१ ॥ लिंगभद्रा बोली— मेरेपास धन बहुतकुछ है, और सखियेंभी यथेष्ट हैं, हे प्रभो ! मैं तुम्हैं चाहती हूं, यदि तुमभी मुझे चाहनेलगोः तौ धनाढ्य होजा-

श्रो भजमानां भज प्रभो ॥ ७२ ॥ ऋषिपुत्र उवाच ॥ नाहं कांक्षे धनं सौम्ये किं कर्त्तव्यं धनेन वै ॥ अस्माकं त मुनीनां हि तपोस्ति धनमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ किं जायते हि तपसा शीतोष्णसहनेन वै ॥ शरीरशोषकारेण त्यक्त्वा राज्यादिभोगकान् ॥७४॥ ऋषिपुत्र उवाच ॥ शृणु कांते प्रवक्ष्यामि प्रश्नं वै यत्त्वया कृतम्॥फलं राज्यादिभोगानां तपसश्च तथैव च ॥७५॥ संसारे दुर्ल्लभं जन्म मनुष्येषु तथैव च ॥ तत्रापि द्विजवर्य्येषु ब्राह्मणेषु तथैव च ॥७६॥तत्रापि भारते वर्षे सुपुण्ये कामदायके॥ तत्रापि ह्युत्तरे खंडे यत्र गंगा सरिद्वरा ॥७७॥हरेः सान्निध्यकस्थाने तत्रापि च नृपात्मजे॥ हरेर्नाम कथं त्यक्ता त्वन्यकार्यरतोभवेत् ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीर्विद्युच्चला प्रोक्ता यौवनं क्षणभंगुरम् ॥ जीवितं चलपत्रांबु सदृशं भवति प्रिये ॥ ७९ ॥ अध्रुवं पुत्रदारादि सुहृज्जनगृहादिकम् ॥ ध्रुवमेकं परं ब्रह्मनाम सिद्धैकसेवितम् ॥८०॥ प्रसक्ताः कामभोगेषु पुत्रदारगृहादिषु ॥ त्यक्ता तु श्रीशभजनं

भोगे ॥ ७२ ॥ ऋषिपुत्र बोला— हे सौम्ये ! मुझे धनकी आकांक्षा नहीं है कारण कि, मुझे धन क्या करना है ? क्योंकि— हम ऋषिमुनियोंका तपही उत्तम धन है ॥ ७३ ॥ लिंगभद्रा बोली— राज्यादिके उपभोगोंको छोड़, शीत और उष्णको सहकर शरीरको सुखानेवाले तपका आचरण करनेसे क्या लाभ है ॥ ७४ ॥ ऋषिपुत्र बोले—सुनो कान्ते ! तुमने जो कुछ प्रश्न किया उसीका उत्तर मैं तुमसे कहताहूं, अर्थात्—राज्यादिभोगोंके और तपके फलका वर्णन करते हैं ॥ ७५ ॥ संसारमें मनुष्ययोनिमें जन्महोना दुर्लभ है, अथ च श्रेष्ठ ब्राह्मणोंमें जन्म होना औरभी दुर्लभ है ॥ ॥ ७६ ॥ वहांभी पुण्यदायक और कामदायक भारतवर्षमें उसमेंभी उत्तराखण्डमें जहां कि, श्रेष्ठ गंगाजी हैं जन्म होना परम दुर्लभ है ॥ ७७ ॥ हे भूपालनन्दिनी ! वोह स्थान हरिभगवान्की सन्निधिकरनेवाला है, फिर भला मनुष्य वहां नारायणनामको छोड़ अन्यकार्य्यमें निरत कैसे हो सक्ता है ॥ ७८ ॥ हे प्रिये ! लक्ष्मी चपला (बिजली) की समान चपल, यौवन क्षणभंगुर, और यह जीवन पत्रके ऊपर लगीहुई जलबिन्दुकी समान विनष्ट होजानेवाला है ॥ ७९ ॥ स्त्री, पुत्र, मित्रवर्ग और गृहादिक सबही अध्रुव (नाशवान्) हैं केवल एक परब्रह्मनाम, जिसकी सिद्धजनभी सेवा करते हैं अविनाशी है ॥ ८० ॥ जो मनुष्य श्रीभगवान्के चरणोंको त्याग, काम, भोग

पतंति नरकेऽशुचौ ॥ ८१ ॥ इहैव क्षणसंसारे राज्यादीनां फलं शुभम् ॥ परत्र नरके चैव पच्यंते कामकारिणः ॥८२॥ श्रीरामे हि रमानाथे मनो न्यस्य महामतिः॥ स्थितोपि यत्र कुत्रापि भवेदुःखैर्न बाध्यते ॥८३॥ तस्मात्तपस्विनां द्रव्यं तप एव हि वर्त्तते ॥ यस्माद्धनाद्राजकन्ये परमैश्वर्य्यभाग्भवेत् ॥ ८४ ॥ लिंगभद्रोवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि तपः कर्तुं त्वया सह ॥ त्यक्त्वा राज्यादिभोगांश्च नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ८५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॐमित्युक्त्वा ततो विप्रस्तया सह महामुने ॥ तपश्चकार विप्रेंद्रो देवैरपि सुदुष्करम् ॥८६॥ तत्रैव वर्त्तते सो वै तप्यमानो महत्तपः ॥ लिंगभद्रापि विप्रेंद्रसमीपे सरिदुत्तमा ॥ बभूव सहसा विप्र सर्वकामफलप्रदा ॥ ८७ ॥ तत्संगमो भवेद्यत्र गंगायामृषिकुंडकम् ॥ तत्र कुंडे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ॥ ८८ ॥ तस्माद्धि शरविक्षेपे गंगोर्द्ध्वे नारसिंहकम् ॥ कुंडं नृमु-

और स्त्री पुत्रादिकोंमें आसक्त रहते हैं, उनका अपवित्र नरकमें पतन होता है ॥ ८१ ॥ राज्य-आदिका फल केवल इस लोकहीमें शुभ मानागया है, सुतराम् गृहस्थमें आसक्त कामकारी मनुष्य परलोकमें नरकमें क्लेश भोगते हैं ॥ ८२ ॥ और जो मतिमान् मनुष्य लक्ष्मीकान्त भगवान्के विषे अपने मनको लगाये रहता है, वोह फिर चाहै जहां स्थित रहै उसे सांसारिक क्लेश बाधा नहीं देते ॥ ८३ ॥ सुतराम् तपस्त्रियोंका धन तौ तपही है, कारण कि, हे राजकुमारी ! धनपायकर मनुष्य बड़ा ऐश्वर्य्यशाली होजाता है ॥ ८४ ॥ लिंगभद्रा बोली– अच्छा तो मैं भी राज्यआदि भोगोंका परित्याग करके तुम्हारे साथ तप करनेहीको चली आऊंगी, अन्यथा (यदि अबभी न मानोगे तौ) मैं अपने प्राणोंका परित्याग करदूंगी ॥ ८५ ॥ स्कन्दजी बोले– हे मुनीश्वर ! " बहुत अच्छा– स्वीकार है " यौं कहकर वोह ब्राह्मण उस राजकुमारीके साथ ऐसा उग्रतप करनेलगा, जिसका करना देवताओंकोभी कठिन है ॥ ८६ ॥ और वोह ऋषि अब भी वहां तप करता है, और हे द्विजराज ! वोह लिंगभद्राभी सब कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली उत्तम नदी बनकर उनके निकटही बहनेलगी ॥ ८७ ॥ जहां उस नदीका गंगाजीमें संगम हुआ है, वोह ऋषिकुण्ड कहलाता है, उस कुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ८८ ॥ वहां एक बाण विक्षेपकी दूरीपर, गंगाजीके ऊर्द्ध्वप्रदेशमें नारसिंह नामका एक कुण्ड है

क्तिदं तत्र नारसिंही शिला स्मृता ॥ ८९ ॥ गंगायामुत्तरस्यां हि रक्तवर्णा च नारद ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्याः पूजनान्नारसिंहकैः ॥ मंत्रैः पुष्पोपचारैश्च पुनर्भुवि न जायते ॥ ९० ॥ तत्र वै स्थीयते भक्तैः प्रह्लादाद्यैर्महामुने ॥ नारसिंश्चतुर्दश्यां श्रूयते शंखजो रवः ॥९१॥ ततः क्रोशऊर्द्ध्वभागे प्रयागनिकटे तथा॥ रामतीर्थं समाख्यातं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥९२॥ यत्र वै जामदग्न्यस्तु कार्त्तवीर्यवधेच्छया ॥ कृतवान्सुतपस्तीव्रं जितवान्हैहयेश्वरम् ॥ ॥९३॥ ततः शीलवती कुंडाद्वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्॥स्नात्वा सकृद्यत्र तीर्थे अश्वमेधफलं लभेत् ॥ ९४ ॥ त्रिवेण्यास्तु अधोभागे तटे याम्योत्तरे तथा ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव कथितानि तवाग्रतः ॥ ॥ ९५ ॥ अशेषेण हि वक्तुं वै केन वा शक्यते बुध ॥ असंख्यानि सुतीर्थानि वर्त्तते मुनिसत्तम ॥ ९६ ॥ तीर्थानां प्रवरोत्पत्तिं शृणोति व्याकरोति च ॥ स्मरणं चैव तीर्थानां तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम एकषष्टयुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ९३

और वहां एक नारसिंही शिला है ॥ ८९ ॥ हे नारदजी ! वोह रक्तवर्णशिला गंगाजीसे उत्तरकी दिशामें है, जो मनुष्य उसका दर्शन, स्पर्श अथवा नरसिंहके मन्त्रोंसे पुष्प आदि उपचारद्वारा उसका पूजन करता है, उसका भूमिके ऊपर फिर जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥ हे महामुने ! वहां प्रह्लादआदि भक्तभी उपस्थित रहते हैं, और नृसिंह चतुर्दशीके दिन वहां शंखध्वनिभी श्रवण गोचर होती है ॥ ९१ ॥ वहांसे एक कोस ऊपरकी ओर प्रयागके निकटही सब यज्ञोंके फलको देनेवाला रामतीर्थ वर्णन कियागया है ॥ ९२ ॥ वहांही परशुरामजीने सहस्रार्जुनके वधकी कामनासे उग्र तपका आचरणकर उसका वध किया था ॥ ९३ ॥ शीलवती कुण्डसे निकटही वोह उत्तम रामतीर्थ है, उस तीर्थमें एक बारभी स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९४ ॥ त्रिवेणीसे नीचेकी ओर दक्षिण और उत्तरके तटोंपर जितने श्रेष्ठ २ तीर्थ हैं, उनके वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया ॥ ९५ ॥ हे बुध ! उनका सम्पूर्णतया वर्णन करनेकेलिये तौ किसीकी भी शक्ति पर्याप्त नहीं होसक्ती, क्योंकि, हे मुनिसत्तम ! वहां असंख्यतीर्थ वर्त्तमान हैं ॥९६॥ जो मनुष्य श्रेष्ठतीर्थोंकी उत्पत्तिको सुनता अथवा वर्णन करताहै, किम्वा उक्त तीर्थोंका केवल स्मरणही करता है, उसे उन तीर्थोंमें स्नान करनेके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकषष्टयुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

नारद उवाच ॥ स्कंदस्कंद महाबाहो श्रुतं गंगोत्तरे तटे॥ क्षेत्रं देवप्रयागाख्यं माहात्म्यं च मया प्रभो॥१॥इदानीं श्रोतुमिच्छाम्यलकनंदातटोर्द्धके ॥ कियत्प्रमाणं क्षेत्रस्य देवतीर्थस्य सुव्रत॥२॥ कानि कानि च तीर्थानि तत्र संति महामते ॥ तद्वदस्व महाभाग दासोहं तव धीमतः ॥ ३ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद विप्रेंद्र यत्पृष्टोहं त्वया मुने ॥ अलकायां समायाताऽलकनन्दा ततः स्मृता ॥ ४॥ नारद उवाच ॥ केन वै हि प्रकारेण समायाता सरिद्वरा ॥ अलकायां महाभाग कौवेर्य्यां शिवपुत्रक ॥ ५ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र सर्वभूतोपकारकम् ॥ तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ शृणु चैकमना भव ॥ ६ ॥ श्रीविष्णुर्वामनो भूत्वा गतो बलिगृहे मुने॥ तत्र गत्वा ययाचे तं भूमिं त्रैपादिकां शुभाम् ॥ ७ ॥ दत्तवान्दानवेन्द्रस्तु भूमिं श्रीवामनाय च ॥ पादैकेन महाविष्णुः सर्वं भूमंडलं मुने ॥ ८ ॥ आक्रम्य च द्वितीयेन

नारदजी बोले–हे महाबाहो स्कन्दजी महाराज ! ! ! गंगाजीके उत्तरीय तटपर जो देवप्रयाग क्षेत्र है, उसका माहात्म्य मैंने श्रवण करा ॥ १ ॥ हे सुव्रत ! अब मैं यह श्रवण करना चाहताहूं कि, अलकनन्दाके ऊपरी तटके ऊपर कितनी दूरतक उक्त क्षेत्रका प्रमाण है ॥ २ ॥ और हे महामतिमान् ! वहां अन्य कौन २ से तीर्थ हैं, क्योंकि मैं आप बुद्धिमानका दास हूं अतएव ये सब मेरेप्रति वर्णन करिये ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले– हे द्विजराज मुनीश्वर नारदजी ! तुमने जो कुछ हमसे प्रश्न किया, वोह हम वर्णन करतेहैं, अलकनन्दामें आनेहीसे उसका अलकनन्दा नाम हुआ है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले– वोह श्रेष्ठनदी हे महाभाग ! कुबेरकी अलकापुरीमें किस प्रकारसे आई ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले– हे विप्र ! तुमने सब प्राणियोंके उपकारके लिये अच्छा प्रश्न किया, हे मुनिराज ! मैं वोही तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूं तुम एकाग्रमन हो श्रवण करो ॥ ६ ॥ सुनो मुनीश्वर ! एक समय श्रीविष्णु भगवान् वामनरूप धारणकर राजा बलिके घर गये, और वहां जाय उन्होंने राजासे तीनपैर भूमिको याचना करी ॥ ७ ॥ उस समय राक्षसराज राजा बलीने वामनजीको भूमिका दान दिया, तब तौ हे मुने ! उन्होंने एक चरणसे अखिल भूमिको ॥ ॥ ८ ॥ और दूसरेसे पातालको नापकर राजा बलीको पाताल भेजदिया, एवं तीसरे चरणसे

पातालं नीतवान्बलिम् ॥ तृतीयेन तु पादेनाक्रमिता ब्रह्मांडभित्तिका ॥ ९ ॥ ततस्तस्य महाभाग वामनस्य महात्मनः ॥ पदांगुलिनखेनासौ स्फुटिता रंहसा ततः ॥ १० ॥ यदाधाराणि सर्वाणि ब्रह्मांडानि महामुने ॥ तद्वै तु जलरूपेण वर्त्तते द्रवमुत्तमम् ॥ ११ ॥ तद्वै ब्रह्मन्महाभाग गदितं मुनिसत्तमैः ॥ तस्माद्रंध्रान्मुनिश्रेष्ठ नखजाताच्चु विनिःसृतम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मद्रवाख्यमम्भस्तु पतितं ध्रुवमंडले ॥ गृहीतं शिरसा तेन ध्रुवेणौत्तानपादिना ॥ ॥ १३ ॥ विष्णुपादाब्जसंभूत जलं मोक्षप्रदायकम् ॥ निपपात ततस्तच्चु सप्तर्षीणां तु मंडले ॥ १४ ॥ तच्च सप्तर्षिभिर्विप्र धृतं तच्छीर्षकैस्ततः ॥ ब्रह्मलोके मेरुशृंगे पतितं जलमुत्तमम् ॥ १५ ॥ ततो वै ब्रह्मसदनाच्चतुर्द्धा गां गता मुने ॥ जलधारा चतुर्भिश्च नामभिर्मुनिसत्तम ॥ १६ ॥ सीता चालकनंदा च चक्षुर्भद्रा तथैव च ॥ चतुर्दिक्षु समुद्रं वै क्षारं प्राप्तवती ततः ॥ १७ ॥ सीता तु ब्रह्मसदनादाजगाम च केसरान् ॥ अधोधः सा प्रस्रवंती गंधमादनमूर्द्धसु ॥ १८ ॥ पतिता सा तु भद्राश्वं वर्षं प्राच्यां मुनीश्वरः ॥

ब्रह्माण्डको नाप डाला ॥ ९ ॥ तब हे महाभाग ! वामनाचार्य्यके चरणांगुलीके नखसे ब्रह्माण्डभिति स्फुटित होगई ॥ १० ॥ हे महामुने ! जब सब ब्रह्माण्डमेंसे धारा निर्गत हुई, वे जलरूपसे वर्त्तमान हैं ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! मुनीश्वरलोग उसकोभी ब्रह्महीं कहकर कीर्त्तन करते हैं, हे मुनीश्वर ! नखद्वारा फूटेहुए रन्ध्रमेंसे जो जल ॥ १२ ॥ निकला उसीको ब्रह्मद्रव कहते हैं, और वोह ध्रुवमण्डलमें निपतित हुआ, उत्तानपादनन्दन ध्रुवजीने उसे शिरके ऊपर धारण करलिया ॥ ॥ १३ ॥ श्रीविष्णु भगवान्के चरणकमलसे प्रादुर्भूत हुआ वोह जल मुक्तिदान करनेवाला है, वहांसे फिर वोह जल सप्तर्षिमण्डलमें निपतित हुआ ॥ १४ ॥ हे विप्र ! सप्तर्षियोंनेभी उसे अपने शिरके ऊपर धारण करलिया, फिर वोह उत्तम जल ब्रह्मलोक सुमेरु शृंगके ऊपर निपतित हुआ ॥ ॥ १५ ॥ फिर हे मुनीश्वर ! ब्रह्मलोकसे वोह जलधारा चारभागोंमें विभक्त हो, भूमण्डलके ऊपर आई, अतएव हे मुनिसत्तम ! उसके चारहीं नाम हुए ॥ १६ ॥ सीता, अलकनन्दा और चक्षुर्भद्रा तीन तौ ये नाम हैं, फिर वे सब ओरसे क्षीरसागरमें आनकर निपतित हुई ॥ १७ ॥ सीता ब्रह्मलोकसे चलकर केसरमें आई, फिर वोह नीचे २ हीको वहतीहुई गन्धमादन पर्वतके ऊपर आई ॥ १८ ॥ इस प्रकार हे मुनीश्वर ! वोह पूर्वकी ओर भद्राश्व वर्षमें

माल्यवच्छिखरात्सा तु चक्षुर्वै केतुमालकम् ॥ १९ ॥ प्रतीच्यां दिशि पतिता भद्रचोत्तरतो मुने ॥ पर्वताद्वै शृंगवतः कौबेरं वर्षमाप सा ॥ २० ॥ इयं त्वलकनंदादिर्दक्षिणस्यां दिशि प्रभो ॥ बहूनि गिरिकूटानि आक्रम्य हिमपर्वते ॥ धारिता तु जटाभिश्च हरेणामिततेजसा ॥२१॥ तत इक्ष्वाकुवंशे वै जातो राजा भगीरथः ॥ तुतोष तपसा देवं शिवं कैलाससंस्थितम् ॥२२॥ ययाचे स महाराजो गंगां स्वपितृमुक्तये ॥ ततश्च पतिता सा तु अधः शृंगे हिमालयात् ॥ २३ ॥ तच्छृंगं हि द्विधा भूतं गंगाया रंहसा मने ॥ जातौ तस्याः प्रवाहौ द्वावागतौ भारते शुभे ॥ २४ ॥ एकः प्रवाहो गंगाया अलकायां समागतः ॥ अतो वै मुनिशार्दूल नामाभूत्सर्वपापनुत् ॥ २५ ॥ अलकनंदेति चाख्याता प्राणिनां मुक्तिदायिनी ॥ देवप्रयागके क्षेत्रे एकीभूता तु सा मुने ॥ २६ ॥ गां गतेति ततो गंगा जातासौ मुक्तिदायिनी ॥ प्रवाहयोर्महाभाग श्रीगंगाऽलकनन्दयोः ॥

निपतित हुई, और माल्यवान् पर्वतके शिखरके ऊपरसे चक्षुर्भद्रा केतुमालमें निपतित हुई, ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! वोह भद्रा उत्तरदिशामें निपतित हुई, तब शृंगवान् पर्वतसे गिरकर कुवेरकी नगरीमें प्राप्त हुई ॥ २० ॥ हे प्रभो ! इधर यह अलकनन्दा दक्षिण दिशामें बहुतसे पर्वतकूटोंको आक्रमण कर जब हिमालयके ऊपर पहुँची, तब अमित तेजस्वी महादेवजीने इसे अपनी जटाओंमें धारण करलिया ॥ २१ ॥ फिर सूर्य्यवंशमें राजा भगीरथका जन्म हुआ, उन्होंने कैलास पर्वतके ऊपर सुखासीन हुए महादेवजीको अपने तपसे सन्तुष्ट किया ॥ २२ ॥ फिर राजाने अपने पितरोंकी मुक्तिके लिये (महादेवजीसे) गंगाजीकी याचना करी, तब वोह धारा हिमालयके शिखरपरसे नीचेको निपतित हुई ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर ! तब गंगाजीके बेगसे वोह शिखर फटकर दोटूक होगया, सुतराम् उक्त नदीके भी दो प्रबाह होकर भूमिके ऊपर शुभ भारत वर्षमें आये ॥ २४ ॥ उनमेंसे गंगाजीका एक प्रवाह अलकनन्दामें होकर जो आया इसीकारण उसका अलकनन्दा नाम हुआ, और यह नाम सब पापोंका दूर करने वाला हैं ॥ २५ ॥ सुतराम् यह अलकनन्दाभी प्राणियोंको मुक्ति देने वाली कीर्त्तन करीगई है, हे मुनीश्वर ! देवप्रयागमें ये दोनों एकही होगई हैं ॥ २६ ॥ (गा) अर्थात् भूमिके ऊपर आनेके कारण इसका गंगा नाम हुआ, और यह गंगाजीभी मुक्तिप्रदान करने वाली हैं, हे महाभाग ! अलकनन्दा और गंगाजीके प्रवाहमें तुम्हे

भेदस्त्वया न ज्ञातव्यः पर्यायः कथितो मया ॥ २७॥ उत्पत्तिश्चैव गंगायाः कथिता हि तवाग्रतः ॥ द्विधाभूतो यथा गंगाप्रवाहो मुनिसत्तम ॥ २८ ॥ यावन्नदी भवेदेव बाणजा मुनिसेविता ॥ तावद्देवप्रयागाख्यं क्षेत्रं वै गदितं शुभम् ॥२९॥ संगमात्पूर्वभागे तु गंगाया दक्षिणे तटे ॥ तुंडीश्वरो महादेवो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ ३० ॥ तीरे चालकनंदायाः कुडं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ यत्र कुंडे महाभागो भिल्लस्तुंडी महायशाः ॥ ३१ ॥ तपश्चकार भगवति मनो न्यस्य परे शिवे॥ वर्ष हिषट्सहस्राणि प्रशंन्नोभूत्सदाशिवः ॥ ३२ ॥ स्वगणं कृतवान्भिल्लं तुंडिनं भक्तिसंयुतम्॥ तेन तुंडाश्वरो नाम्ना बभूवास्मिन्स्थले शुभे३३॥ यस्य संदर्शनादेव नरो याति परां गतिम् ॥ अस्मिन्कुंडे नरः स्नात्वा तुंडिना सदृशो भवेत् ॥ ३४ ॥ दन्वीश्वरो महादेवस्तस्माच्छरचतुष्टये ॥ तपस्तेपे महाभाग यत्र दाक्षायणी दनुः ॥ ॥ ३५ ॥ पंचवर्षसहस्राणि पंचवर्षशतानि च ॥ एकपादेन ध्यायंती वर्त्तंती परमं शिवम् ॥३६॥ ततः प्रसन्नो भगवान्महा-

भेद नहीं समझना चाहिये, कारण कि-ये एक दूसरीकी परस्पर पर्याय वाचक हैं ॥ २७ ॥ हमने हे मुनिसत्तम ! गंगाजीकी उत्पत्ति, एवं जिस प्रकार ये दो हुई सो सब तुम्हारे प्रति वर्णन कर सुनाया ॥ २८ ॥ मुनि सेवित बाणगंगा जहां हैं, वहांही पर्यन्त देवप्रयाग शुभ क्षेत्र वर्णन किया-गया हैं ॥ २९ ॥ संगमसे पूर्वकी ओर गंगाजीके दक्षिण तटपर भक्तोंकी प्रीति बढानेवाले तुण्डीश्वर महादेव हैं ॥ ३० ॥ अलकनन्दाके तटपर एक अतिशय पवित्र कुण्ड है, उसी कुण्डके ऊपर महा यशस्वी तुण्डी भीलने ॥ ३१ ॥ परमेश्वर महादेवजीमें अपने मनको लगाकर छःसहस्र वर्ष पर्यन्त तप किया, तब सदाशिव उससे प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ भक्तिसम्पन्न तुण्डी भीलको महा देवजीने अपना गण बनालिया, इसीकारण इस शुभस्थलमें तुण्डीश्वर नामसे आप निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ उनके दर्शन मात्र करनेहीसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। और इस कुण्डमें स्नान करनेवाला मनुष्यभी तुंडीकी सदृशही होजाता है ॥ ३४ ॥ वहांसे चार बाणकी दूरी पर दन्वीश्वर महादेवजी विराजमान हैं, वहां दनुदाक्षायणीने तपका आचरण किया था ॥ ३५ ॥ पांच सहस्र और पांचसौ वर्ष पर्यन्त एक चरणसे स्थित हो वह दाक्षायणी परम शिवका स्मरण करती रही ॥३६॥ हे महामुनीश्वर ! तब ती महारुद्रस्वरूप भगवान् महादेवजी प्रसन्न होकर, दनुसे यौं बोले

रुद्रो महामुने ॥ दनुं ह्युवाचेति वचो वरं वरय सुव्रते ॥ ३७ ॥ शतं पुत्रा मे जायंतां महाबलपराक्रमाः ॥ त्रैलोक्यक्षोभकाराश्च ययाचे वरमुत्तमम् ॥३८॥ ततो जाताः शतं पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥ ऊर्ज्जरः शकुनिश्चैव महानादस्तथैव च ॥ कालनाभः शंकुशिरा विक्रांताद्या महासुराः ॥ ३९ ॥ यस्य तीर्थस्य कृपया प्राप पुत्रान्महौजसः॥तदादि भगवाञ्शंभुस्तत्रैव स्थितवान्स्वयम् ॥ ४० ॥ इदं क्षेत्रं महापुण्यं कृतं तेन महात्मना ॥ तत्रैव दक्षभागे तु नदी धनवता तथा ॥ ४१ ॥ पूर्वं बभूव सा वेश्या रराध शिवमुत्तमम् ॥ हरसान्निध्यगा भूत्वा ह्युपचारैरनेकधा ॥ ४२ ॥ गंधैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नानाविधैस्तथा ॥दन्वीश्वरं महादेवं नंद्यादिगणसेवितम् ॥ ४३ ॥ जितेंद्रिया जितक्रोधा जिताहाराभवत्सदा॥ कदाचिद्भगवान् रुद्रः प्रसन्नोदात्स्वकं स्थलम् ॥ नदी भूत्वा तत्र गता नाम्ना धनवती तदा ॥ ४४ ॥ तस्याश्च संगमे स्नातो जायते न च जन्मने ॥ यंयं चिंतयते कामं तं ददाति महेश्वरः ॥ ४५ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग लिंगानां पंचके

कि, हे सुव्रते ! तुम वर मांगो ॥३७॥तब उसने यह उत्तम वर मांगा कि, मेरे महाबलिष्ठ पराक्रमी अतएव त्रिलोकीको क्षोभितकरनेवाले सौ पुत्रहों॥३८॥तब उसके ऊर्जर, शकुनि, महानाद कालनाभ शंकुशिरा और विक्रान्त आदि सौ पुत्र महाबलशाली हुए॥३९॥ क्योंकि इसीतीर्थके माहात्म्यसे उस दाक्षायणी दनुको अतिपराक्रमी सौ पुत्रोंका लाभ हुआथा, इसी कारण उसदिबसे भगवान् महादेव जीभी वहां स्वयं विराजमान रहतेहैं॥४०॥और उन महात्माने इस क्षेत्रकोभी अतिशय पवित्र बनादियाहै, और उसीके दक्षिणभागमें धनवती नामनदीहै ॥ ४१ ॥ प्रथम तो वह वेश्याथी, फिर उसने महादेवजीके निकट जाय अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनका आराधन किया ॥ ४२ ॥ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नानाप्रकारके अन्यान्य उपचारोंके द्वारा. नन्दी आदिगणोंके द्वारा सेवनाकिये हुए महादेवजीकी उस वेश्याने सेवाकरी ॥ ४३॥ एवं वोह नित्यही इन्द्रियोंका निग्रहकर क्रोधविजय पूर्वक परिमित भोजन करतीथी, सुतराम् एकसमय भगवान् महादेवजीने प्रसन्नहोकर उसे अपना स्थान दिया, निदान वह धनवती नामकी नदी बनकर वहांगई ॥ ४४ ॥ उसके संगममें स्नान करनेसे फिर जन्म नहीं होता अर्थात्—मुक्ति होजातीहै, और स्नानकर्त्ता मनुष्य जिस २ वस्तुकी कामना करता है महादेवजी अवश्यही उसे वोह देदेतेहैं ॥ ४५ ॥ हे महाभाग ! इस क्षेत्रमें पांच

किल ॥ विश्वेश्वरं महालिंगं ताटकेश्वरमेव च ॥४६॥ तथा तुंडीश्वरं लिंगं दंवीश्वरमथापि वा ॥ लिंगानां पंचकं दृष्ट्वा न च भूयोऽभिजायते ॥ ४७ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं हि त्वत्तो भगवँल्लिंगानां क्षेत्रमुत्तमम् ॥ कुत्र विश्वेश्वरं लिंगमुक्तं यद्भवता मम॥ ॥ ४८ ॥ उत्पत्तिश्च कथं तस्य श्रीविष्णोर्देवशर्म्मणः ॥ ४९ ॥ स्कंद उवाच ॥ रामो भूत्वा महाभाग गतो देवप्रयागके ॥ विश्वेश्वरं शिवं स्थाप्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ ५० ॥ तस्योपरि क्षेत्रराजं भैरवं भीमदर्शनम्॥ उवाच वचनं रामः सर्वान्वै मुनिपुंगवान् ॥ शिवस्य विश्वनाथस्य माहात्म्यं च महामुने ॥ ५१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे विश्वनाथस्य वैभवम् ॥ प्रणामं विश्वनाथस्य यः करोति समाहितः ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥५२॥ एकवारमपि येनासौ पूजितः परमेश्वरः ॥ तेन वै कोटिलिंगानि पूजितानि शिवस्य वै ॥५३॥ पूजनादस्य शर्वस्य पूजितोऽहं न संशयः॥ रुद्राध्यायं यो जपति अत्र वै शिवसन्निधौ॥स वै महेश्वरो देवो ज्ञातव्यो भक्तिसंयुतैः॥

लिंगहैं; विश्वेश्वर महालिंग, ताटकेश्वर ॥ ४६ ॥ तुण्डीश्वर, दन्वीश्वर, इन पांच लिंगोंका दर्शन करनेसे फिर जन्म नहीं होता ॥ ४७ ॥ नारदजी बोले—आपसे हमने लिंगोंका वर्णन तो श्रवण किया, किन्तु—आपने विश्वेश्वर लिंग जो वर्णन किया वह कहांहै ॥ ४८ ॥ और देवशर्मा विष्णुभगवान्की उत्पत्तिभी किसप्रकारसे हुई है ॥ ४९ ॥ स्कन्दजी बोले—हे महाभाग ! जब नारायण राम वनकर देवप्रयागमें गयेथे, तब उन्होंने वहां विश्वेश्वर लिंगकी स्थापनाकर उसकी यथाविधि पूजाकरी ॥ ५० ॥ फिर उनके ऊपर क्षेत्रराज भीमदर्शन भैरवजीकी स्थापना करके हे महामुने ! श्रीरामचन्द्रजीने सब मुनियोंके प्रति विश्वनाथमहादेवजीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ५१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—समस्त मुनीश्वरो ! विश्वनाथजीके माहात्म्यको श्रवणकरो, जो मनुष्य एकाग्रमनसे विश्वनाथजीको प्रणामकरताहै, वोह निस्सन्देह ब्रह्महत्यादि पातकोंसे मुक्तहोजाता हैं ॥ ५२ ॥ जिसने एकबारभी परमेश्वर विश्वनाथजीका पूजन किया हैं, मानो उसने महादेवजीके करोडों लिंगोकी पूजा करालिया ॥ ५३ ॥ इन विश्वनाथजीका पूजनकरनेसे निस्सन्देह मेरी पूजा होजातीहै, जो मनुष्य यहां महादेवजीके निकट रुद्राध्यायका जपकरताहै, सब भक्तोंको

॥५४॥ विश्वेश्वरमपूजित्वा तीर्थाटनरतो भवेत् ॥ तत्सर्वं निष्फलं याति मृतो नरकमाप्नुयात् ॥५५ ॥ गंगायाश्च जलेनैव रुद्राध्यायेन वाथ वा॥ अभिषिच्यते महादेवो यैश्च पुण्यवरात्मभिः ॥ त एव त्रिषु लोकेषु धन्याः पुण्यतमाः स्मृताः ॥५६॥ अहो भाग्यमहोभाग्यं कुर्वतां शिवपूजनम् ॥ क्षेत्रपालं भैरवाख्यं पूजयित्वा यथाविधि ॥ तदा मे दर्शनं कार्यं पुण्यरक्षणहेतवे ॥ ५७ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति वै कथयित्वा तु सर्वानेव मुनीश्वरान् ॥ स्थितवांस्तत्र देशे तु देवतीर्थे महामते ॥ ५८ ॥ ते सर्वे मुनयो विप्र कृतवन्तःशिवार्चनम्॥रुद्राध्यायेन केचित्तु रुद्रसाम्ना तथैव च ॥ शिवस्य पूजनं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्विश्वनायकम् ॥ विश्वेश्वरमपूजित्वा यात्रां वै प्रकरोति यः ॥ अन्धो भवति दुर्बुद्धिर्महादेवप्रकोपतः ॥ ॥ ६० ॥ विषयेऽत्र कथा विप्र वर्त्तते तां शृणुष्व भो ॥ पूर्वं बभूव विप्रेंदो वेदवेदांगपारगः ॥ ६१ ॥ षट्कर्मनिरतो विप्रश्शांतात्मा

चाहिये कि, उसे साक्षात् महादेवस्वरूप समझें ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य विश्वेश्वर महादेवजीकी विना पूजाकिये, तीर्थयात्रा करताहै, उसकी यात्रा निष्फलहोतीहै, और मरनेपर उसे नरक प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ जो पुण्यप्राण महात्मागण गंगाजल अथवा रुद्राध्यायके द्वारा महादेवजीका अभिषेक करते हैं, उन्हींको त्रिलोकीमें धन्य और पुण्यशील मानागया है ॥५६॥ जो मनुष्य महादेवजीका पूजन करतेहै उनके अहोभाग्यहैं । पुण्यकी रक्षाके निमित्त प्रथम विधिपूर्वक भैरवजीकी पूजाकरके तब हमारे दर्शन करने चाहिये ॥ ५७ ॥ स्कन्दजी बोले— हे महामतिमान् रामचन्द्रजी महाराज इस प्रकार सब मुनीश्वरोंके प्रति वर्णनकरके उसी देवतीर्थमें आपभी स्थितहोगये॥ ॥ ५८ ॥ हे विप्र ! इधर वे सब ब्राह्मण (महर्षिगण) भी कोई रुद्राध्याय और कोई रुद्रसामके द्वारा महादेवजीकी अर्चना करनेलगे । महादेवजीकी पूजा करनेसे फिर जन्म नहीं होता अर्थात् मुक्ति हो जाती है ॥ ५९ ॥ इस हेतु सर्वथा यत्नपूर्वक विश्वनाथभगवान्की पूजाकरनी कर्त्तव्य है, जो व्यक्ति महादेवजीकी पूजा विनाकरे, यात्राकरताहै, महादेवजीके क्रोधसे वोह दुर्बुद्धि अन्धा होजाता है ॥ ६० ॥ हे विप्र ! इसविषयमें एक कथाहै, उसे आप श्रवणकरें, प्रथम वेदवेदांगपारगामी एक ब्राह्मण था ॥ ६१ ॥ वोह शान्तप्रकृति ब्राह्मण ब्राह्मणोचित षट्कर्मनिरत था, उस

१ वेदपढना और पढाना, यज्ञ करना और कराना, दानदेना और दानलेना, ब्राह्मणोंके ए छः कर्म हैं।

विजितेन्द्रियः॥नाम्ना वेदनिधिः ख्यातो वेदानां निधिरेव सः॥
॥ ६२ ॥ तस्य भार्य्या बभूवासौ नाम्ना तु कमला तथा ॥
तयोर्द्वयोर्मनसि वै अभूत्तीर्थाटनाय च ॥ ६३ ॥ अस्मिंस्तीर्थे
समायातावुक्तेन विधिना मुने ॥ अवज्ञाय शिवं देवं प्रभावज्ञो
न तस्य वै ॥ ६४ ॥ चक्रतुर्न च पूजां वै पूर्वं तौ दंपती किल ॥
गतौ तु ब्रह्मकुंडे तु स्नात्वा तत्र यथाविधि ॥ ६५ ॥ गतौ देवा-
लये तत्र रामस्य परमात्मनः ॥ दर्शनं पूजनं कृत्वा समर्प्योप-
पायनं तथा ॥ ६६ ॥ ततो वशिष्ठकुंडे तु गत्वा स्नातौ द्विजोत्त-
मौ ॥ ततो वै शिवतीर्थे तु स्नात्वा तु भगवत्प्रियौ ॥ ६७ ॥
वैताले कुंडके स्नात्वा शिलायाः पूजनं कृतम् ॥ कृतं च पिंडदानं
वै तर्पिताः पितृदेवताः ॥ ६८ ॥ एवं क्रमेण सर्वत्र गतौ तौ
द्विजदंपती ॥ षड्रात्रमत्र संस्थित्या ब्राह्मणा भोजितास्ततः ॥
॥ ६९ ॥ गतौ तु तौ स्वदेशाय देवतीर्थान्महामुने ॥ अर्द्धमार्गे
गतौ यावत्तावदंधौ बभूवतुः ॥ ७० ॥ केन वै कर्मणा जातावंधौ
वै द्विजदंपती॥विधिवद्धि कृतावाभ्यां यात्रा देवप्रयागके ॥ इति

का नाम वेदनिधि था और वास्तवमें वोह वेद (विद्या) का निधि (खजानां) ही था ॥ ६२ ॥ उस ब्राह्मणकी कमला नाम पत्नीथी, एक समय इन दोनोंके चित्तमें तीर्थयात्रा करनेका विचार उदय हुआ ॥ ६३ ॥ हे मुनीश्वर ! तब दोनों इस तीर्थमें आये, क्योंकि वे महादेवजीके प्रभावको नहीं जानतेथे अतएव उन्होंने उनकी अवज्ञा करके यात्रा करी ॥ ६४ ॥ अर्थात् उक्त दम्पतीने प्रथम महादेवजीकी पूजा नहीं करी, फिर उन्होंने ब्रह्मकुण्डमें यथाविधि स्नानकिया ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर दोनोंही श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें गये, वहां उन्होंने दर्शन और पूजनकर विविधभांतिकी भेंट अर्पणकरी ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर वे द्विज दम्पती वशिष्ठकुण्डमें जायकर नहाये, इसके पश्चात हे भगवत्प्रिय ! उन्होंने शिवतीर्थमें जायके स्नान किया ॥ ६७ ॥ फिर उन्होंने वैताल कुण्डमें स्नानकर,वेतालशिलाकाभी पूजनकिया, एवं पिण्डदानकर पितरों और देवताओंकोभी सन्तुष्ट किया ॥ ६८ ॥ इस क्रमसे वे द्विजदम्पती सर्वत्र गये, फिर छः रात्रिपर्य्यन्त यहां स्थित रहकर इन्होंने ब्राह्मणभोजन कराया॥६९॥ फिर हे महामुने ! वे दोनों देवतीर्थसे अपने देशको चलदिये जबहीं आधे मार्गमें पहुँचे कि, दोनों अन्धे होगये॥७०॥हम दोनों स्त्रीपुरुष किसकर्मसे अन्धे होगये, हमने तो देवप्र-

चिंतापरौ जातौ तावद्रात्रिरवर्त्तत ॥ ७१ ॥ सुप्तौ तत्रैव विपिने सिंहव्याघ्रादिसंकुले ॥ स्वप्ने ददर्शतुर्विप्रं मुंडं काषायवाससम् ॥ ॥ ७२ ॥ कपालिकं वृहद्दंतं कपालन्यस्तरक्तकम् ॥ भीमनादं भयकरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥७३॥ कापाली तावुवाचाथ पिबामि रुधिरं हि वाम् ॥ यतो हि मामनाहत्य युवां वै मदसंयुतौ॥७४॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य कापालिकमहात्मनः ॥ भयेन वेपमानौ तु स्वप्नतो विनिवर्त्तितौ ॥ ७५ ॥ किमिदंकिमिदं जातमूचुतुश्च परस्परम् ॥ ततो वेदनिधिर्विप्रो विचारं कृतवांस्तदा ॥ ७६ ॥ विचार्य्य मनसा विप्रो वभाषे कमलां प्रियाम्॥७७॥वेदनिधिरुवाच श्रृणु कांते प्रवक्ष्यामि स्वप्नस्य कारणं प्रिये ॥ येन वै कारणेनावामंधौ जातौ महावने ॥ ७८॥ तत्रैव शिवलिंगं च वर्त्तते मोक्षदायकम् ॥ देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे ॥ ७९ ॥ अजानद्भ्यां हि मूर्खाभ्यां विश्वनाथो न पूजितः ॥ तेन वै कारणेनाथ जातावावामनेत्रकौ ॥८०॥ पुनस्तत्रैव गत्वा तु पूजयित्वा यथा

यागमें यथोक्त विधिहीसे यात्रा करीथी, ये दोनों ऐसी चिन्ताकरही रहेथे कि, इतनेहीमें रात्रि होगई ॥७१॥ सुतराम् वे दोनों सिंह व्याघ्र आदिसे आकीर्ण हुए उस वनहीमें सो रहे, तब उन्होंने स्वप्नमें मुण्ड और कषाय वस्त्रधारी एक आकृतिको देखा॥७२॥उस आकृतिके हृदयमें मुण्डमाला, उसके बड़े २ दांत, और कपालमें भरा हुआ रक्त उसके पासथा, उसी सूरत और ध्वनि भयंकर होनेके कारण वोह सबहीके लिये भयोत्पादक प्रतीत होतीथी ॥ ७३ ॥ तब वोह कपाल मालाधारी भैरव उनसे बोले कि, तुम बड़े मदमातेहो, तुमने हमारा अनादर कियाहै अतएव मैं तुम दोनोंहीके रक्तका पानकरूंगा ॥ ७४ ॥ उस कपाली महात्माके ऐसे वचन सुन भयपूर्वक कम्पायमान होते हुए उक्त द्विजदम्पतीने निद्राका परित्याग किया ॥ ७५ ॥ और वे दोनों परस्पर यों कहनेलगे कि, हाय यह क्या हुआ ? उस समय वेदनिधि ब्राह्मण विचार करनेलगा ॥ ७६ ॥ अपने मनमें विचारकरके उस ब्राह्मणने अपनी प्रिया कमलासे यों कहा ॥ ७७ ॥ वेदनिधि बोला—सुनो प्रियपत्नी ! जिसकारणसे हम दोनों महावनमें अन्धे होगये हैं, सो उसके विषयमें मैं स्वप्नका कारण वर्णनकरताहूं ॥ ७८ ॥ सब तीर्थोंमें उत्तम ऐसे देवप्रयागमें मोक्षप्रदान करनेवाला एक शिवलिंग है ॥ ७९ ॥ चूंकि, हम उनके माहात्म्यको जानते नहींथे अतएव हमने विश्वनाथकी पूजा नहीं करी, इसी कारण हमारे दोनोंके नेत्र जातेरहे ॥८०॥ अब फिर वहां चलकर यथाविधि विश्वनाथ-

विधि ॥ विश्वेश्वरं महालिंगं भविष्यावः पुनस्तथा ॥ ८१ ॥
स्कंद उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा देवतीर्थे समागतौ ॥
आगत्य विधिवत्पूज्य शिवलिंगं हि मुक्तिदम् ॥ आजग्मतुः सु-
दृष्ट्या वै स्वदेशं द्विजसत्तम ॥ ८२ ॥ इह भोगान्हि संभुज्य
मृतौ मुक्तिमवापतुः॥इति ते कथितो दिव्य इतिहासः पुरातनः ॥
॥ ८३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवलिंगं हि पूजयेत् ॥ विश्वेश्वरो
महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥ ८४ ॥ पूजितं येन लिंगं हि पूजि-
ताः सर्वदेवताः ॥ इति ते कथितं विप्र विश्वनाथस्य वैभवम् ॥
यच्छ्रुत्वा हि नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥८५ ॥ नारद
उवाच ॥ ताटकेश्वरलिंगं हि त्वदुक्तं वर्त्तते गुह ॥ तद् ब्रूहि तस्य
माहात्म्यमुत्पत्तिं च महामते ॥ ८६ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु
नारद वक्ष्यामि ताटकेश्वरभैरवम् ॥ यच्छ्रुत्वा हि नरो याति पर-
मां गतिमुत्तमाम् ॥ ८७ ॥ शांताया दक्षिणे तीरे वर्त्तते भक्तव-
त्सलः ॥ यं दृष्ट्वापि नरो भक्त्या शिवलोके महीयते ॥ ८८ ॥
पूर्वं युगादौ विप्रेंद्र दक्षो नाम महायशाः ॥ दक्षांगुष्ठाद्वभूवासौ

जीका पूजन करें तो अवश्य जैसे थे वैसेही होजायँगे ॥ ८१ ॥ स्कन्दजी बोले—प्रेमपूर्वक इसप्रकार कहकर फिर वे दोनों देवप्रयागमें आये, और विधिपूर्वक शिवलिंगकी पूजाकरके अपनीही दृष्टिकी सहायतासे देशको लौट आये ॥ ८२ ॥ इस संसारमें भोगोंका उपभोगकरके मरकर दोनों मुक्तिको प्राप्त हुए, इस प्रकार हमने यह प्राचीन इतिहास तुह्मारे प्रति वर्णन किया ॥ ८३ ॥ इस कारण सर्वथा यत्न पूर्वक शिवलिंगकी पूजाकरनी कर्त्तव्यहै, विश्वेश्वर महादेवजी समस्त कामनाओंके फलको प्रदान करतेहैं ॥ ८४ ॥ जिसने शिवलिंगकी पूजाकरी उसने मानो सबही देवताओंका पूजन करलियाहै, हे विप्र! इस प्रकार हमने विश्वनाथजीका माहात्म्य वर्णन कियाहै भक्तिभाव पूर्वक इसका श्रवण करनेसे मनुष्योंकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ८५ ॥ नारदजी बोले—हे गुह ! आपने जो ताटकेश्वर लिंगका वर्णन किया, सो हे महामतिमान् ! उसके माहात्म्य और उत्पत्तिको वर्णन करिये ॥ ८६ ॥ स्कन्दजीबोले—सुनिये नारदजी ! अब हम ताटकेश्वर भैरवका वर्णन करते हैं उसका श्रवण करनेसे मनुष्यको परमगतिका लाभ होता हैं ॥ ८७ ॥ वे भक्तवत्सल शान्ताके दक्षिणी तीरपर विराजमान हैं, उनके दर्शनमात्र करनेसेंही शिवलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको मिलताहै ॥ ८८ ॥ हे द्विजराज ! प्रथम युगकी आदिमें परमात्मा ब्रह्माजीके दक्षिण अंगुष्ठसे महाय

ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ८९ ॥ सत्याद्यास्तस्य कन्या वै बभूवुर-
तुलाननाः ॥ सतीं ददौ महेशाय दक्षो वै हि प्रजापतिः ॥९०॥
ततः कदाचिद्दक्षस्तु यज्ञं वै प्रचकार ह ॥ नाकारितो महादेवः
सती च परमेश्वरी ॥ ९१ ॥ श्रुत्वा सती पितुर्यज्ञमाजगाम स्वयं
मुने ॥ सर्वा दृष्ट्वा भगिन्यस्तु देवाः सर्वे तथा द्विज ॥ ९२ ॥
सत्युवाच ॥ ॥ कथं नाकारितावावां सर्वे चाकारितास्त्वया ॥
इति ब्रुवंतीं तां देवीमुवाच स प्रजापतिः ॥ ९३ ॥ दक्ष उवाच ॥
हे पुत्रि तव भर्त्ता तु मंगलं नार्हते शिवे ॥ इति ज्ञात्वा महादेवि
शिवो नाकारितोमया ॥ ९४ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा वच-
स्तस्य भर्तृनिन्दात्मकं मुने ॥ चुकोप सा भृशं देवी पपाताग्नौ स-
मिंधने ॥९५॥ तच्छ्रुत्वा पतनं तस्याः शिवोऽपि स्वयमागतः ॥
दक्षयज्ञं विनाश्यैव स्कंधे तां वै विधृत्य च ॥ पृथिव्यामटया
मास भ्रांतो भूत्वा सदाशिवः ॥ ९६ ॥ ततश्चचाल वसुधा समु-
द्राश्च चकम्पिरे॥ उल्कापातास्तथा जाता दिशां दाहस्तथैव च॥
॥ ९७ ॥ चंडादयो महावाता ववुर्वै क्रोधिते शिवे ॥ ततो देवा

शस्वी दक्षनाम प्रजापति हुए थे ॥ ८९ ॥ और सती आदि उनकी सुन्दरी कन्याथीं, उनमेंसे सतीकन्या दक्षप्रजापतिने महादेवजीको व्याहदी ॥ ९० ॥ फिर एक समय दक्षप्रजापतिने यज्ञका प्रारंभकिया, किन्तु उन्होंने महादेवजी और परमेश्वरी सतीको नहीं बुलाया ॥ ९१ ॥ हे मुने ! पिताके घर यज्ञ सुन सती स्वयंही वहां चलीआई, हे द्विज ! सतीने वहां अपनी सब बहिनों और अन्य सब देवताओंको देखा ॥ ९२ ॥ सती बोली—पिताजी ! आपने सबको बुलाया, किन्तु—मुझे क्यों नहीं बुलाया इसप्रकार कहतीहुई सतीसे दक्षप्रजापतिने यों कहा ॥ ९३ ॥ दक्ष बोले—हे कल्याणमूर्त्ति पुत्रि ! तुम्हारे पति मंगलके योग्य नहीं (अर्थात् मनहूस) हैं, बस येही सोचकर हे शिवे ! मैंने महादेवजीको नहीं बुलाया ॥ ९४ ॥ स्कन्दजी बोले—पतिकी निन्दारूप प्रजापतिके ऐसे वचन सुन देवीजी अतिशय क्रोधित हो प्रज्वलित अग्निमें कूदपड़ी ॥ ९५ ॥ भगवतीका अग्निपात सुन महादेवजी स्वयं वहां आये, तब दक्षयज्ञका विनाशकर और सतीको कन्धेपर धरकर सदाशिव भ्रान्तचित्त हो भूमिके ऊपर विचरने लगे ॥९६॥ उससमय वसुन्धरा हिलगई; समुद्र कंपायमान होगये, उल्कापात और दिग्दाह होनेलगा ॥ ९७ ॥ महादेवजीके क्रोधित होनेपर चण्डआदि महापवन वहनेलगीं, तब तो सब देवता भयसे उद्विग्नहो

भयोद्विग्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ९८ ॥ स्तुतिं वै चक्रिरे तस्य ब्रह्मणस्तु महात्मनः ॥ ९९ ॥ देवा ऊचुः ॥ ॥ नमस्ते भगवन्ब्रह्मन्सृष्टिकर्त्रे गुणात्मने ॥ नमः कमलनाभाय चतुरास्याय ते नमः ॥ १०० ॥ आदिभूताय सर्वेषां विश्वपालनहेतवे ॥ स्वर्णगर्भ नमस्तेऽस्तु नमस्ते देवपालक ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ इत्यादिस्तुतिभिर्ब्रह्मा स्तुतो देवैर्भयाकुलैः ॥ उवाच भगवान्देवानिन्द्राद्यान्संहतांजलीन् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ देव गच्छामहे सर्वे विष्णुं वै परमेश्वरम्॥सोऽपि देवो महादेवं शांतात्मानं करिष्यति ॥ ३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ततो देवाः सगंधर्वा यक्षराक्षसतापसाः ॥ ब्रह्माणमनुजग्मुस्ते यत्र देवो रमापतिः ॥४॥ ददृशुः परमं देवं सनकाद्यैस्तु सेवितम् ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥ ५ ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्त्तुं देवा इंद्रपुरोगमाः ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो भगवते तुभ्यं वेधसे परमात्मने ॥ सर्वकर्त्रे नमस्तुभ्यं सर्वपालाय ते नमः ॥७॥ सर्वहर्त्रे नमस्तुभ्यं गुण-

ब्रह्माजीकी शरणमेंगये ॥ ९८ ॥ और विश्वासपूर्वक महात्मा ब्रह्माजीकी स्तुति करनेलगे ॥९९॥ देवता बोले-हे ब्रह्मन् ! आप सृष्टिका निर्माण करनेवाले और गुणात्मा हैं, नाभिकमलसे आपका प्रादुर्भाव हुआ, और आपके चार मुख हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ १०० ॥ सबके आदिभूत आपही हैं, संसारका पालन करनेवालेभी आपही हैं, हे हिरण्यगर्भ ! आप देवताओंका पालन करनेवाले हैं, हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले-भयसे व्याकुलहो जब देवताओंने इसप्रकार ब्रह्माजीकी स्तुति करी, तब भगवान् ब्रह्माजी हाथजोड़के उपस्थित हुए इन्द्रआदि देवताओंसे बोले ॥ २ ॥ ब्रह्माजीने कहा-हे देवताओ ! चलो ! हम सब विष्णुभगवान्के पास चलें, तब वे देवराज, महादेवजीको शान्तकरेंगे ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले-तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और तपस्वी ये सब ब्रह्माजीके पीछे २ वहांको गये, जहां लक्ष्मीकान्त विष्णुभगवान् थे ॥ ४ ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, जिनकी सेवा करते हैं, जो शंख, चक्र, गदा, पद्म, और वनमाला धारण करके सुशोभित होरहे हैं, ऐसे परमदेवको उन्होंने देखा ॥ ५ ॥ तब इन्द्रआदि देवता उनकी स्तुति करनेको उद्यत हुए ॥ ६ ॥ देवता बोले-हे नाथ ! आप ऐश्वर्य्यशाली, सबका निर्माण करनेवाले और परमात्मा हैं, सबके रचने और पालनेवालेभी आपही हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं॥७॥आपही सबका संहार करनेवाले, त्रिगुण

त्रयस्वरूपिणे ॥ त्रयीवेद्याय देवाय त्रयीरूपाय ते नमः ॥ ८ ॥ निराकाराय ते देव भक्तानां भक्तवत्सल ॥ विश्वाकाराय ते विष्णो नमोऽनंतस्वरूपिणे ॥९॥ एकरूपाय ते देव बहुरूपाय ते नमः॥ दुष्टदैत्यविनाशाय दशावतारधारिणे ॥ ११० ॥ स्कंद उवाच ॥ इति स्तुतो वै भगवान्प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः॥उवाच वचनं देवानिंद्र-ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मया सुरगणा यदर्थमिह चागताः ॥ स्वयं वै तद्विधास्यामि गच्छध्वं स्वगेह सुराः ॥ १२ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा निगदितं गताः सर्वे दिवौकसः॥भगवानपि विश्वात्मा दाक्षायण्यां विवेश सः ॥ ॥ १३ ॥ निर्विश्य तत्र देहे तु खंडशस्तु चकर्त तम् ॥ खंडंखंडं हि पतितं भूतले पीठतां गतम् ॥ १४ ॥ अत्र वै पतितं तस्या-स्ताटंकं मुनिसत्तम ॥ तत्ताटंकस्य पतनादत्रैव स्थितवान्प्रभुः ॥ ॥ १५ ॥ तदादिभगवाञ्शंभुस्ताटंकेश्वरता गतः ॥ शमया-

स्वरूप, वेदान्त विद्याके द्वारा जाननेके योग्य, अथ च वेदस्वरूप देव हैं,हम आपको वारंवार प्रणाम करते हैं ॥८॥हेभक्तवत्सल देवाधिदेव !!! आपका कोई आकार(नियत)नहीं है,किन्तु ये सब आपहीके आकार हैं, अतएव आपके अनन्तस्वरूप हैं, हम आपको वार २ नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हे देव ! आप एक रूपधारी होकरभी अनेक रूप धारण करते हैं, दुष्ट दैत्योंका वध करनेके लिये आपने दश अवतार धारण किये थे, अतएव हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ११० ॥ स्कन्दजी बोले– इसप्रकार स्तुति कियेजानेपर जनार्दन भगवान् प्रसन्न होगये, और ब्रह्माजी तथा इन्द्र-आदि देवताओंसे यों कहनेलगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले– हे देवसमाज ! तुम जिस लिये यहां आये हो, उसका कारण मैंने सब जानलिया, सुतराम् हे देवताओ ! तुम अपने घरको चले जाओ, मैं अपने आपही सबकुछ उपाय करूंगा ॥ १२ ॥ स्कन्दजी बोले– ऐसे वाक्य सुनकर सब देवता चलेगये, इधर विश्वात्मा भगवान्ने भी दाक्षायणीमें प्रवेश किया ॥१३॥ जब भगवान्ने दाक्षायणी (सती) के देहमें प्रवेश किया तब वोह टुकडे २ होकर गिरपडा, और भूमिके ऊपर जहां २ वे खंड गिरे, वे सब पीठ होकर प्रसिद्ध हुए ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! इस स्थानमें भग-वतीका ताटंक (कर्णभूषण) निपतित हुआ, और उस कर्णफूलके गिरनेसे भगवान् महादेवजीभी यहांही स्थित होगये ॥ १५ ॥ उसी दिनसे शम्भुभगवान् ताटंकेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगये हैं

मास तत्क्रोधं चक्रपाणी रमापतिः ॥ १६ ॥ महादेवश्च देवी च चक्रतुर्वासमुत्तमम् ॥ एवंविधा तदुत्पत्तिर्भक्तानां मोक्षदायिनी ॥ यस्य संदर्शनादेव नरस्तु शिवतामियात् ॥ १७ ॥ अत्र वै निवसन्विप्रो जितात्मा जितविग्रहः॥ समुच्चरंस्तु षड्वर्णं मंत्राणां मंत्रमुत्तमम् ॥ षण्मासाँल्लभते सिद्धिं देवैरपि दुरासदाम् ॥१८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

उस समय चक्रपाणि लक्ष्मीकान्त श्रीविष्णुभगवान्ने उनके क्रोधको शान्त करदिया ॥ १६ ॥ तवहींसे महादेव और देवीजी दोनों उत्तमतया निवास करते हैं, उक्त लिंगकी उत्पत्तिका यह आख्यान भक्तोंको मोक्षदायक है, एवं उक्त महादेवजीके दर्शन करनेसे मनुष्य साक्षात् शिवरूप होजाता है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इस स्थानमें अपनी मानसिक और शारीरिक चेष्टाओंको परित्याग कर निवास करके सब मन्त्रोंमें परमोत्तम "ॐ नमः शिवाय" इस पञ्चाक्षरमन्त्रका जप करता है, उसे छैही महीनेमें ऐसी दुर्लभसिद्धि मिलती है जिसकी प्राप्ति देवताओंके लियेभी दुर्लभ है॥१८॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६३.

सूत उवाच ॥ ॥ गंगाधोभागतीर्थानां श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्॥ तथैव शिवलिंगानां शिवदानां महाबलाः ॥ १ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानां हि वैभवं मुनिपुंगवाः ॥ स्कंदं सेनापतिं देवं पुनः पप्रच्छ नारदः॥२॥नारद उवाच॥भगवन् पार्वतीपुत्र भक्तानां भक्तवत्सल॥ देवप्रयागयात्रायां विधानं मुनिसेवितम् ॥ ३ ॥ कथं स्नानं प्रकर्त्तव्यं तत्र विष्णोर्महात्मनः ॥ पूजनं कीदृशं देव नियमाः के

सूतजी बोले— गंगाजीके अधोभागमें जितने तीर्थ हैं, उनके, एवं कल्याण दायक, भोग और मोक्षके देनेवाले शिवलिंगोंके माहात्म्यको सुनकर, हे महाबल मुनीश्वरो ! सेनापति स्कन्दजीसे नारदजी महाराज फिर पूछने लगे ॥१॥ २ ॥ नारदजी बोले— हे गिरिजाकिशोर ! भगवान् !! आप भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं, सो देव प्रयागकी यात्रामें जो मुनिसेवित विधानहो उसे ॥ ३ ॥ एवं वहां स्नान किस प्रकार करै ? श्रीविष्णु भगवान्का पूजनभी किस प्रकार करना

च सुव्रत ॥ ४ ॥ के मंत्राः शिवपूजायां सूर्य्यार्चायां च वै गुह ॥ एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि यदि चेन्मयि ते दया ॥ ५ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ यत्त्वया परिपृष्टोऽहं तत्ते वक्ष्यामि वै मुने॥ विधानं पुण्यदं श्रीदं कामदं वै सुपुत्रदम् ॥ ६ ॥ शृणु प्राज्ञ महाबाहो मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ॥ भक्तानां भक्तवर्य्यो वै त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥ ७ ॥ प्रथमं तु गुरुं तोष्य भूषणाच्छादनासनैः ॥ महागणपतिं पूज्य यथाप्राप्तोपचारकैः ॥ ८ ॥ अस्तेयं ब्रह्मकार्य्यं च शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ एकभक्तव्रतं चैव विष्णुपूजनमेव च ॥ ॥ ९ ॥ एवमादिप्रनियमैर्युक्तः संनिःसरेद्गृहात् ॥ मनःशुद्ध्या रमानाथं ध्यायन्वै मुनिसत्तम ॥ १० ॥ गच्छंतं देवतीर्थं तु दृष्ट्वा वै पितरः सुतम् ॥ प्रहृष्यन्ति प्रनृत्यन्ति ते सर्वे मुक्तिलालशाः ॥ ११ ॥ गच्छतो देवतीर्थे तु मानुषस्य महात्मनः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं भवति निश्चितम् ॥ १२ ॥ ततः क्षेत्रस्य निकटे गत्वा दृष्ट्वा च जह्नुजाम् ॥ क्षेत्रं च क्षेत्रपालं च श्रीरामं परमे-

कर्त्तव्य है ? अथ च हे सुव्रत ! वहां किन २ नियमोंका पालन करना कर्त्तव्य है ॥ ४ ॥ हे गुह ! महादेवजी और सूर्य्यनारायणकी पूजामें किन २ मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, यदि मेरेऊपर आपकी दया है तो यह सब तत्त्वपूर्वक मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले— हे मुनीश्वर ! पुण्य, लक्ष्मी, कामना और पुत्र प्रदान करनेवाली जो विधि तुमने हमसे पूछी, हम उसका वर्णन तुम्हारेप्रति करते हैं ॥ ६ ॥ हे महाबाहो प्राज्ञ ! ! ! तुम अपने मनको निश्चल करके श्रवण करो, क्योंकि तुम सब भक्तोंमें श्रेष्ठहो, तुमसे अधिक और कोई नहींहै ॥ ७ ॥ प्रथम भूषण वस्त्र और आसन आदिसे गुरुको सन्तुष्ट करै, फिर यथा प्राप्त उपचारोंसे गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ८ ॥ चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य (और वेदादि पाठ) शौच, इन्द्रियोंका दमन, एकभक्तव्रत एवं विष्णु पूजन ॥९॥ इत्यादि नियमोंका आचरण कर घरसे निकले, हे मुनिसत्तम ! शुद्धान्तःकरणसे लक्ष्मीपति भगवान्‌का ध्यान करता रहै ॥ १० ॥ जब पितर अपनी सन्तानको देवप्रयागको जाते देखते हैं तब मुक्तिकी अभिलाषा करके सब प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करने लगते हैं ॥ ११ ॥ और देवतीर्थमें जातेहुए मनुष्यको एक २ चरण रखनेमें अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ ॥ १२ ॥ फिर क्षेत्रके निकट जाय गंगाजीके दर्शन कर, और क्षेत्र तथा क्षेत्रपति परमेश्वर

श्वरम् ॥ प्रणमेद्दंडवद्भूमाविति मन्त्रानुदीरयेत् ॥१३॥ गंगे सरिद्वरे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि॥ तव संदर्शनादेव मुक्तिः प्राप्ता मया शुभा ॥१४॥क्षेत्रराज नमस्तेऽस्तु विष्णुप्रिय नमोऽस्तु ते॥ततो वै क्षेत्रपालं च प्रार्थयेद्विष्णुसेवकम् ॥१५॥ क्षेत्रपाल महाभाग देह्यनुज्ञां मम प्रभो॥नारायणस्य महतो दर्शनाय महात्मनः ॥१६॥ इत्याज्ञां भैरवीं प्राप्य विष्णुं वै प्रणमेत्सुधीः॥१७॥नारायण दयासिंधो नमस्ते भक्तवत्सल ॥ प्रणमामि भवंतं वै प्रसन्नो भव मे सदा ॥ १८ ॥ ततो वै क्षेत्रमध्ये तु प्रगच्छेद्भक्तिसंयुतः ॥ उपोष्य चैकां रजनीं मनसा संस्मरन्हरिम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते शयनं त्यक्त्वा चावश्यकीः क्रियाः॥कृत्वारुणोदये यायाद्ब्रह्मकुंडे सुनिर्मले ॥ २० ॥ प्रथमं भस्मना स्नानं कर्तव्यं मुनिपुंगव ॥ सद्यादिब्रह्ममंत्रैश्च भस्मनो ग्रहणं भवेत् ॥२१॥ अभिमन्त्र्याग्निरिति वै॥ भस्मेत्युद्धरणं भवेत्॥मानस्तोकेति मन्त्रेण लेपनं त्र्यम्बकेन वै॥ ॥ २२ ॥ एवं यः स्नाति मर्त्यो हि भस्मना मुनिवंदित ॥

श्रीरामचन्द्रजीको दण्डवत् प्रणाम कर इन मन्त्रोंका उच्चारण करै ॥ १३ ॥ हे सरिद्वरा गंगादेवी ! तुम भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, सुतराम् तुम्हारे दर्शन करनेहीसे शुभ मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ १४ ॥ हे क्षेत्रराज ! तुम विष्णु भगवान्के प्यारे हो, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं, इसके अनन्तर विष्णुसेवक क्षेत्र पालकी प्रार्थना करै ॥ १५ ॥ हे महाभाग क्षेत्रपाल ! ! ! महात्मा नारायणके दर्शन करनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ इसप्रकार भैरवजीकी आज्ञा प्राप्त कर बुद्धिमान्को चाहिये कि विष्णुभगवान्को प्रणाम करै ॥ १७ ॥ हे भक्तवत्सल ! दयासिन्धो ! ! नारायण ! ! ! मैं आपको प्रणाम करताहूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर भक्तिभाव पूर्वक क्षेत्रके मध्यमें गमन करै, एकरात्रि उपवास धारण कर मनमें विष्णुभगवान्का स्मरण करै ॥ १९ ॥ फिर ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर आवश्यकीय क्रियाओंको निबटाके अरुणोदय होनेपर निर्मल ब्रह्मकुण्डमें जाय ॥ २० ॥ हे मुनिपुंगव ! प्रथम भस्मसे स्नान करै; सन्ध्यादि मन्त्रोंके द्वारा भस्मी ग्रहण की जाती है ॥२१॥ "अग्नि" आदि मन्त्रोंसे भस्मको अभिमन्त्रितकर "मानस्तोके०" इत्यादि मन्त्रसे और "त्र्यम्बकं यजा०" इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मीका लेपन किया जाता है ॥ २२ ॥ हे मुनिवन्दित ! जो मनुष्य इस प्रकार मन्त्रोंके द्वारा भस्मसे स्नान

तत्क्षणात्तस्य नश्यंति पापानि निखिलानि च ॥ २३ ॥ मृदा स्नानं ततः कुर्य्यान्मंत्रैरेभिस्तु नारद ॥ येषामुच्चारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २४ ॥ अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे ॥ शिरसा धारयिष्यामि रक्ष त्वं मां पदेपदे ॥ २५॥ भूमिर्वै धरणी धेनुः काश्यपी लोकधारिणी ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ २६ ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमंत्रिता ॥२७॥ मृत्तिके देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां-गतिम् ॥ २८ ॥ इति वै मृत्तिकास्नानं कृत्वा गंगां तु प्रार्थयेत् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि यानि तीर्थानि सागरे ॥ पुष्करे यानि तीर्थानि तानि ते संति जह्नुज ॥ २९ ॥ तिस्रः कोट्योर्द्धकोटी च तीर्थानां भूतले स्मृताः ॥ त्रयस्त्रिंशत्तथा देवास्त्वज्जले संति जह्नुजे ॥ ३० ॥ त्वज्जले मज्जनान्मातर्ममास्तु गतिरुत्तमा ॥ भवाब्धिपारतरणे पोतस्त्वज्जलमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ विना वै भव-

करताहै, उसके समस्त पाप उसी समय नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥ फिर हे नारद ! इन्ही मन्त्रोंसे मृत्तिका लगाके स्नान करै, इन मन्त्रोंका उच्चारण करनेसेही समस्त पातकोंसे छुटकारा मिल-जाताहै ॥ २४ ॥ हे भूमि ! तुम अश्वक्रान्ता, रथक्रान्ता और विष्णुक्रान्ता हो मैं तुम्हें सिरपर धारण करूंगा, तुम चरण २ पै मेरी रक्षा करो ॥ २५॥ हे काश्यपीभूमि ! तुम साक्षात् गौ स्व-रूप हो तुमने लोकोंको धारण कियाहै, शतबाहु वाराहरूप धारी श्रीकृष्णने तुम्हारा उद्धार किया ॥ २६ ॥ हे मृत्तिके ! हमने जो कुछ पाप किये हैं, उन्हें तुम दूर करो, हे मृत्तिके ! ब्रह्माजीके दियेजानेपर कश्यपजीने तुम्हें अभिमन्त्रित कियथा ॥ २७ ॥ हे मृत्तिके ! तुम्हारेही ऊपर सब कुछ प्रतिष्ठित है, तुम हमें पुष्टिप्रदान करो कारण कि जब तुम पापोंका विनाश करदोगी तभी मुझे परमगतिका लाभ होगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार मृत्तिकासे स्नान करनेके अनन्तर गंगाजीकी प्रार्थना करै, भूमिके ऊपर तथा सागरमें जितने तीर्थ हैं, एवं पुष्करमें जितने तीर्थ हैं, हे जन्हुसुते तुम्हारे विषेभी वे सब तीर्थ विद्यमान हैं ॥ २९ ॥ भूमिके ऊपर साढेतीन करोड़ तीर्थ वर्णन किये गये हैं, (सो वे तीर्थ) अथ च तैंतीस करोड़ देवता ये सब तुम्हारे जलमें विद्यमान हैं ॥ ३०॥ हे माता ! तुम्हारे जलमें स्नान करनेसे मुझे उत्तमगतिका लाभ होगा, और संसारसागरसे पार उतारनेके लिये तुम्हारा जल नौकाकी समान है ॥३१॥ हे माता ! तुम्हारे अतिरिक्त और कोई

र्तीं मातर्नान्यो मे गतिकारकः ॥ नमस्ते देवदेवेशि पतितं मां समुद्धर ॥ ३२ ॥ इत्युच्चार्य्य नरो भक्त्या गंगायां प्रविशेत्ततः ॥ भैरवं प्रार्थयेदेभिर्मंत्रवर्य्यैस्तु नारद ॥ ३३ ॥ सागरस्वननिर्घोष-दंडहस्तासुरांतक ॥ जगत्स्रष्टर्जगन्मर्दिन्नमामि त्वां सुरेश्वरम् ॥ ॥३४॥ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पांतदहनोपम ॥ भैरवाय नम-स्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ३५ ॥ इत्याज्ञां भैरवीं प्राप्य तीर्थे स्नानं समाचरेत्॥अन्यथा तत्फलस्यार्द्धं तीर्थेशो हरति ध्रुवम् ॥ ॥ ३६ ॥ देशकालौ च संकीर्त्य ध्यायन्नारायणं हृदि ॥ स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन उक्तेन विधिना मुने ॥ ३७ ॥ स्नात्वा गच्छेत्तत-स्तीरे कृत्वा संध्यादिकाः क्रियाः॥पितृक्रियाश्च कृत्वा वै ब्राह्मणां-स्तोषयेत्तदा ॥ ३८ ॥ भूमिदो राज्यमाप्नोति हयदो वाहनानि च ॥ धेनुदश्च महाभाग परमां गतिमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ अन्नदा-ने न दारिद्र्यं रत्नदो गतिमुत्तमाम् ॥ हिरण्यदः सुवंशं हि सुंदरं

भी मुझे गतिदेनेवाला नहींहै, हे देवेश्वरि ! मैं तुम्हें प्रणाम करताहूं तुम मुझ पतितका उद्धार करो ॥ ३२ ॥ मनुष्यको चाहिये कि, इस प्रकार भक्तिभाव पूर्वक उच्चारण करके गंगाजीमें प्रवेश करै, फिर हे नारद, श्रेष्ठमन्त्रोंके द्वारा भैरवजीकी प्रार्थना करै ॥ ३३ ॥ हे असुरारि ! आप निनादमें सागरके निर्घोषकी समान हैं, आप हाथमें दण्ड धारण करतेहैं, संसारकी रचना और उसका विनाशभी आपही करतेहैं, अतएव हे सुरेश्वर ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ आपकी दंष्ट्रा बडी पैनी, शरीर बडा, और प्रलयाग्निकी समान प्रताप है, हे भैरव ! हम तुम्हें प्रणाम करतेहैं, आप हमें आज्ञा दीजिये ॥ ३५ ॥ इस प्रकार भैरवजीकी आज्ञा प्राप्तकर तीर्थमें स्नान करना चाहिये, अन्यथा उसके आधे फलको तीर्थराज हरलेते हैं ॥ ३६ ॥ हे मुने ! देश कालका कीर्तन कर, हृदयमें श्रीमन्नारायणका ध्यान करके यत्नपूर्वक यथोक्त विधिसे स्नान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ स्नान करचुकनेके अनन्तर तटके ऊपर जाय सन्ध्या आदि क्रिया करै, फिर पितृक्रियाओंको करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करै ॥ ३८ ॥ वहां जो मनुष्य भूमिदान करताहै उसे राज्यकी प्राप्ति होतीहै, अश्व दान करनेवालेको वाहन मिलतेहैं, और हे महाभाग ! गोदान करनेवाले को परमसद्गतिका लाभ होताहै ॥ ३९ ॥ अन्नदान करनेसे दरिद्रता नहीं होती, रत्नदान करनेसे उत्तम गतिका लाभ होताहै सुवर्ण दान करनेवालेको उत्तम वंश

देहमेव च ॥ ४० ॥ अन्यान्यपि च दानानि दत्त्वा वै पुष्कलानि च ॥ विश्वेवरं शिवं गच्छेत्तत्र तस्य च पूजनम् ॥ ४१ ॥ कृत्वा शैवेन मंत्रेण षड्वर्णेन मुनीश्वर ॥ धूपदीपादिकं दत्त्वा स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः ॥ततः श्रीरामचंद्रस्य दर्शनाय व्रजेत्सुधीः ॥ ४२ ॥ विश्वेश्वरमसंपूज्य यः कुर्य्यादन्यकर्मकम् ॥ तत्तस्य विफलं याति शिवक्रोधान्न संशयः ॥ ४३ ॥ श्रीरामनिकटे गत्वा दंडवत्प्रणमेत्सुधीः ॥ ततोऽनेन विधानेन पूजयेद्देवमव्ययम् ॥ ४४ ॥ देवदेव रमाकांत रामचंद्र दयानिधे ॥ क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरवंदित ॥४५॥ देवदेव जगन्नाथ नमस्ते धरणीधर ॥स्वासनं ते मया दत्तं गृहाण मुनिसेवित ॥ ॥ ४६ ॥ नारायण दयासिंधो हिरण्याक्षनिपूदन ॥ पाद्यमेतत्सुखस्पर्शं गृहाण त्वं मयार्पितम् ॥ ४७ ॥ नमो नमस्ते गोविन्द वासुदेव जगत्प्रभो ॥ जनार्दन रमाकान्त चार्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥ ४८ ॥ भागीरथ्या इदं तोयं कर्पूरादिसुवासितम् ॥

और सुन्दर शरीरकी प्राप्ति होतीहैं ॥ ४० ॥ एवं अन्यान्य प्रभूत दान करके विश्वेश्वर महादेवका पूजन करनेके लिये जाना चाहिये ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वर ! षड्वर्ण मन्त्रसे महादेवजीकी पूजा करके, धूप दीप दे भक्तिभाव पूर्वक नमस्कार कर बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि, श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेको जाय ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य विश्वेश्वरकी पूजा विना किये अन्यकर्म का आचरण करताहै, महादेवजीके कोपसे अवश्यही वोह सब निष्फल होजाताहै ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि, रामचन्द्रजीके निकट जाय उनके प्रति दण्डवत् प्रणाम करै, फिर इस विधिसे अविनाशी देवाधिदेवकी पूजा करै ॥ ४४ ॥ हे देवाधिदेव लक्ष्मीनाथ !!! आप कृपा निधान हैं, हे देवपूजित श्रीरामचन्द्रजी ! आप मेरी की हुई पूजाको ग्रहण करिये ॥ ४५ ॥ हे देवाधिदेव धरणीधर जगन्नाथ !!! मैं आपको सुन्दर आसन देताहूं, हे मुनिपूजित ! आप इसे ग्रहण करिये ॥ ४६ ॥ हे दयासागर नारायण ! आपने हिरण्याक्षका वध कियाथा, जिसका स्पर्श करनेहीमें सुख प्रतीत हो मैं ऐसा पाद्य आपको देताहूं, आप इसे ग्रहण करें ॥ ४७ ॥ हे वासुदेव गोविन्द ! आप सब जगत्के प्रभु हैं, हम आपको वार२ नमस्कार करतेहैं, हे रमाकान्त जनार्दन!! हमारे इस अर्घ्यको ग्रहण करिये ॥ ४८ ॥ हे जगन्नाथ ! कर्पूरआदिकी सुगन्धिसे आधवासित स

आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ॥ ४९॥ कंसासुरनिहंत्री त्वं सर्वतीर्थान्मयाहृतम्॥ जलमेतत्सुदिव्यं हि गृहाण स्नानहेतवे ॥ ५० ॥ सूक्ष्मं दुकूलयुगलं लोकलज्जानिवारकम् ॥ मयार्पितमिदं देव गृह्णीष्व त्वं दयानिधे ॥ ५१ ॥ दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ॥ ब्रह्मसूत्रं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर॥५२॥श्रीखंडं कुंकुमं चंद्रकस्तूरीरोचनान्वितम्॥ गंधं गृहाण देवेश भक्त्या चैव मयार्पितम् ॥ ५३ ॥ अक्षतान्निर्मलान्देव कुंकुमेन च रंजितान् ॥ गृहाण देवदेवेश गोपीकांत मदर्पितान् ॥ ५४ ॥ पुष्पाणि देवदेवेश जातकुंदमुखानि च ॥ गृहाण भक्तितो देव तुभ्यं दत्तानि हे प्रभो ॥ ५५ ॥ धूपं दिव्यं रमाकांत जटागुग्गुलसंयुतम् ॥ आघ्रेयं सर्वदेवानां गृह्णीष्व त्वं मयार्पितम् ॥ ५६ ॥ कर्पूरदीपिकायुक्तं दीपं त्रैलोक्यदीपकम् ॥ गृहाण मंगलं देव भक्त्या तुभ्यं मयार्पितम् ॥ ५७ ॥ अन्नं षड्रससंयुक्तं नानावस्तुमयं शुभम् ॥ नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिस्त्वय्य-

गंगाजलको मैं भक्तिभाव पूर्वक आपको अर्पण करताहूं, आप इसका आचमन करिये ॥ ४९ ॥ हे कंसासुर विनाशकर्त्ता ! मैं सब तीर्थोंमेंसे ये दिव्य जल लायाहूं, हे प्रभो ! आप इसे स्नान करनेके लिये ग्रहण करिये ॥ ५० ॥ जिनसे लोक लज्जाका निवारण होताहै ऐसे सूक्ष्म दो वस्त्र मैं आपके अर्पण करताहूँ, हे दयानिधान ! आप इन्हे लीजिये ॥ ५१ ॥ हे दामोदर ! मैं आपको नमस्कार करताहूं, आप संसार सागरसे मेरा उद्धार करिये, हे परमेश्वर ! इस ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) और दुकूलको ग्रहण करिये ॥ ५२ ॥ कुंकुम कस्तूरी और गोरोचन आदिकी सुगन्धिसे सुवासित, भक्तिभाव पूर्वक मेरे अर्पण किये हुए इस चन्दनको आप ग्रहण करिये ॥ ५३ ॥ हे देव कुंकुमसे रँगे हुए इन अक्षतोंको हे गोपीनाथ देवांधिदेव ! ! ! ग्रहण करिये ॥ ५४ ॥ हे प्रभो ! मैं जाति और कुन्द आदिके पुष्पोंको भक्तिभाव पूर्वक आपको अर्पण करताहूं, हे देव ! आप इन्हें ग्रहण करिये ॥ ५५ ॥ हे रमाकान्त ! जटा और गूगल सहित अतएव समस्त देवताओंके सूँघने योग्य, मेरी अर्पण की इस धूपको आप ग्रहण करिये ॥ ५६ ॥ कपूरकी डेलीसे युक्त, त्रिलोकीको प्रकाशित करनेवाले मंगल स्वरूप दीपकको भक्तिपूर्वक मैं आपके अर्पण करताहूं ॥ ५७ ॥ हे देव ! छः[1]प्रकारके रससे युक्त, अनेक[2] वस्तु स्वरूप शुभ नैवेद्यको आप ग्रहण करिये, जिससे मेरी भक्ति

१ मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त । २ भक्ष्य, भोज्य, अवलेह्य, चोष्य, ।

स्तु मे सदा ॥ ५८ ॥ हिरण्यं चैव रौप्यं च रत्नानां निचयं
तथा ॥ दक्षिणात्वेन गृह्णीष्व भक्त्या वै प्रतिपादितम् ॥ ५९ ॥
नमस्ते नाथ भगवन्नागवल्लीदलैर्युतम्॥ कर्पूरादि समायुक्तं तांबूलं
प्रतिगृह्यताम् ॥ ६० ॥ नमोऽस्त रामनाथाय साष्टागं तु मया कृ-
तम् ॥ प्रसीद भगन्विष्णो मां समुद्धर माधव ॥ ६१ ॥ एवं
विधाय पूजां वै रामं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं
जानीयान्मानवः सदा ॥६२ ॥ इत्थमेव शिवादीनां पूजां कृत्वा
महामतिः ॥ ततो ध्यानपरो मर्त्यस्तत्र नामानुकीर्त्तनात् ॥
॥ ६३ ॥ वशिष्ठादिषु तीर्थेषु क्रमात्स्नायान्महामते ॥ पूर्वोक्तेन
विधानेन विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ६४ ॥ भोजनं तीर्थवासिभ्यः॥
सुस्निग्धं प्रीतिपूर्वकम्॥दद्याद्वै विष्णुप्रीत्यर्थं रामभक्तिपरायणः॥
॥ ६५ ॥ संतुष्टा यस्य विप्रेंदा देवक्षेत्रनिवासिनः ॥ सफलं तु
कृतं तस्य विपरीते तु निष्फलम् ॥ ६६ ॥ अनेन विधिना
यस्तु प्रकरोति प्रदर्शनम् ॥ श्रीरामस्य दयासिन्धोर्यात्रां चैव

सदैव आपके प्रति बनी रहै ॥ ५८ ॥ मैं भक्तिसहित सुवर्ण, चांदी और रत्नोंके
समुदाय दक्षिणा स्वरूपसे आपको अर्पण करता हूं, इन्हें आप ग्रहण करिये
॥ ५९ ॥ हे भगवन् त्रिलोकीनाथ ! आपको नमस्कार है, नागरबेलके पान, जो कि, कपूर
आदिसे युक्तहैं इन्हें आप ग्रहण करिये ॥ ६० ॥ हे रामनाथ ! मैं आपको साष्टांग प्रणाम कर-
ताहूं, हे विष्णुभगवान् ! प्रसन्न होकर मेरा उद्धार करिये ॥ ६१ ॥ इसप्रकार पूजा करनेके अन-
न्तर श्रीरामकी पूजा कर मनुष्यको चाहिये कि, अपने आपको कृतकृत्य समझै ॥ ६२ ॥ महाम-
मतिमान् पुरुषोंको चाहिये कि, इसीप्रकार महादेव आदिका पूजन करैं, और जिन २ की पूजा
करै उन्हींके ध्यानमें तत्पर हो उन्हींके नामोंका कीर्त्तन करै ॥ ६३ ॥ विष्णुभगवान्की भक्तिमें
तत्पर हो उक्त विधिके अनुसारही वशिष्ठ आदि तीर्थोंमें भी स्नान करना कर्त्तव्य है ॥ ६४ ॥
अथ च मनुष्योंको रामभक्तिमें तत्पर हो, श्रीविष्णु भगवान्की प्रीतिके लिये तीर्थवासियोंको
अच्छा स्निग्ध (लजीज) भोजन देना चाहिये ॥ ६५ ॥ देवप्रयागनिवासी ब्राह्मण जिससे सन्तुष्ट
होजाते हैं उसका सबकर्म सफल है, और यदि वे सन्तुष्ट न हों तो सब निष्फल होजाताहै ॥ ६६ ॥
जो मनुष्य इस विधिसे कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन और यात्रा करता है, हे मुनीश्वर !

तथा मुने ॥ स वै विष्णुः प्रजायेत श्रीरामस्य प्रसादतः ॥ ६७॥
इह भोगान्परान्प्राप्य विष्णुना सह मोदते॥इति ते कथितो दिव्यो
यात्राविधिरनुत्तमः ॥ ६८ ॥ यस्य वै पठनान्मर्त्यः श्रवणाच्छ्रा-
वणात्तथा ॥ तीर्थस्नानफलं प्राप्य विष्णुना सह मोदते ॥६९॥
सूत उवाच ॥ भोभो द्विजवरश्रेष्ठा नैमिषारण्यवासिनः॥ एष वः
कथितः सर्वो देवतीर्थस्य विस्तरः ॥ ७०॥ भुक्तिमुक्तिप्रदः
श्रीदः पुत्रदश्च तथैव च ॥ अतः परं महाभागाः किमन्यच्छ्रोतु-
मिच्छथ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहा-
त्म्यसमाप्तिर्नाम त्रिषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ १५

रामचन्द्रजीकी कृपासे वह साक्षात् विष्णुस्वरूप होजाता है ॥ ६७ ॥ एवं वह पुरुष इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें विष्णुभगवान्के साथ ऐश्वर्यको भोगता है । इसप्रकार सर्वोत्तम अतएव दिव्य यात्रा विधि हमने तुह्मारे प्रति वर्णन करी ॥ ६८ ॥ इसका पाठ करने, सुनने अथवा सुनानेसे तीर्थमें स्नान करनेहीके फलको प्राप्त हो विष्णुभगवान्के साथ आनन्द भोगताहै ॥ ॥ ६९ ॥ सूतजी बोले–हे नैमिषारण्यनिवासी श्रेष्ठ महर्षियो ! हमने यह सब देवप्रयागका माहात्म्य आपके प्रति वर्णन किया ॥ ७० ॥ यह माहात्म्य भोग, मोक्ष, लक्ष्मी और पुत्रोंका देनेवालाहै; हे महाभाग ! इसके अगाड़ी और क्या सुनना चाहते हो ॥ ७१ ॥ देवप्रयाग माहात्म्यका पंचदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां देवप्रयागमाहात्म्यसमाप्तिर्नाम त्रिषष्ट्युत्तराधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ १५

चतुष्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६४

ऋषय ऊचुः ॥ धन्याः स्मः कृतकृत्याः स्मः श्रुतं देवप्रयाग-
कम् ॥ तीर्थमत्यद्भुततमं सोपाख्यानं च मोक्षदम् ॥ १ ॥ एत-
त्तीर्थसमं तीर्थमन्यक्क्वापि न वै श्रुतम् ॥ अन्यच्च तादृशं यद्वै

ऋषि बोले–मोक्षप्रदान करनेवाले उपाख्यान सहित परम अद्भुत देवप्रयागकी महिमा हमने सुनी अतएव हमें धन्यहै, हम कृतकृत्य होगये ॥ १ ॥ इस तीर्थकी समान अन्य कोई तीर्थ

वद सूत कृपान्वित ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा देवप्रयागं वै नारदो ब्रह्मपुत्रकः ॥ पप्रच्छ मुनिशार्दूलः कार्तिकेयं मुदान्वितः॥ ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ ईशपुत्र महाबाहो श्रुत्वा त्वन्मुखपंकजात् ॥ निःसृतं मधुरं सौधं वाङ्मयामृतकं बहु ॥ ४ ॥ पिबतः श्रुतिपात्राभ्यां तृप्तिर्मे जायते न हि ॥ श्रोतुमिच्छामि भगवन्वद मां सुतरां प्रभो ॥ ५ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थान्यन्यानि षण्मुख ॥ श्रवणाद्गमनाद्येषां नृणां पापक्षयो भवेत् ॥ ॥ ६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृणु नारद तीर्थानि पुण्यानीशस्थलानि च ॥ येषां श्रवणतो विप्र महापातककोटयः ॥ नश्यंति विबुधश्रेष्ठ यथाग्नेस्तूलराशयः ॥ ७ ॥ श्रुतवांश्च यथागस्त्यो गौतमो विश्वहेतवे॥तथा त्वमपि धर्मज्ञ शृणु तीर्थान्यनेकशः ॥ ॥ ८ ॥ देवप्रयागतो याम्यवारुण्यां दिशि ब्रह्मज ॥यत्र भागीरथी गंगा सरितां प्रवरा तथा ॥ नबालकेति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ९ ॥ तयोः सुसंगमः पुण्यः सर्वकामफलप्रदः ॥

हमने कहीं नहीं सुना, हेकृपानाथ सूतजी! यदि कोई और तीर्थ वैसाही हो तो वर्णन करिये ॥ सूतजी बोले—जब ब्रह्मकुमार महर्षि नारदजीने इसप्रकार देवप्रयागका वर्णन सु तब वे प्रसन्नहो स्कन्दजीसे फिर पूछने लगे ॥ ३ ॥ नारदजी बोले—हे महाबाहु ! शि मार ! आपके मुखकमलसे निकले सुधारूप वचनोंको श्रवणरूप पात्रोंसे अधिकताके साथ करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती, किन्तु श्रवण करनेके लिये अधिकाधिक इच्छा बढ़ती जा ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे षडानन ! अब मैं और उन तीर्थोंको सुनना चाहता हूं जिनके श्रवण करने यात्रा करनेसे मनुष्योंके पापका क्षय होता है ॥ ६ ॥ स्कन्दजी बोले—हे नारद ! अब म हजीके उन स्थानों और अन्य तीर्थोंका श्रवण करो, हे विप्र ! जिनके सुननेसे करोडों महापा इसप्रकार नष्ट होजातेहैं, जैसे अग्नि तूलराशिका नाश करदेती है ॥ ७ ॥ विश्वके हितकी का नासे अगस्त्य और गौतमजीने जिसप्रकार श्रवण कराथा, हे धर्मज्ञ ! इसीप्रकार तुमभी अने तीर्थोंका श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मनन्दन ! देवप्रयागसे पश्चिम दक्षिण दिशा ओर समस्त पापोंका विनाश करनेवाली गंगाजीकी श्रेष्ठ धारा और नबालिका विख्यात है ॥ ॥ ९ ॥ उन दोनोंका परमपवित्र संगम सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है, उसे सबतीर्थों

इंद्रप्रयाग इति वै सर्वतीर्थोत्तमोत्तमः ॥ १० ॥ आराधितस्तत्र देव इंद्रेण शिव उत्तमः ॥ पूर्वं बलवधे विप्र धर्मतीर्थे महामते ॥ प्रसन्नश्चाभवद्देवो वासवस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ तदादीदं महाक्षेत्रमिन्द्रनाम्ना च लक्षितम् ॥ तत्रत्यानि च तीर्थानि सुपुण्यानि शृणुष्व मे ॥ १२ ॥ इंद्रकुंडमतः पूर्वं धर्मकुंडान्महामुने ॥ संगमो यत्र देशे तु धर्मतीर्थं शुभप्रदम् ॥१३॥ तस्मिंस्तीर्थे नरो गत्वा पिबेदपि जलं ततः ॥ सोऽपि ब्रह्मत्वमाप्नोति किमुत स्नातका जनाः ॥ १४ ॥ तत्र चित्रं पुरा दृष्टं स्नानजन्यं महामते ॥ अभक्त्यापि कृतात्स्नानान्नगच्छेद्यममंदिरे ॥ १५ ॥ दीर्घदंत इति ख्यातो धीवरो मत्स्यमारकः ॥ एकदा स महाभाग समादाय च जालकम् ॥ १६ ॥ मत्स्यान्मारयितुं तत्र गतो धर्मसुकुंडके ॥ प्रविष्टस्तत्र जालं च समादाय महामुने ॥ ॥ १७ ॥ मत्स्यघातप्रसंगाद्वै स्नानं तत्र चकार ह ॥ कृत्वा स्नानं तथादाय मीनान्वै दीनजीवितान् ॥ गृहे गतः स्वकीये हि कुटुम्बपरिपोषकः ॥ १८ ॥ एवं हि सकले माघे तेन स्नानं

उत्तम इन्द्रप्रयाग कहते हैं ॥ १० ॥ हे महामतिमान् ! बलिका वध करनेकी कामनासे प्राचीन कालमें वहां इन्द्रने कल्याणमूर्त्ति महादेवजीकी आराधना करीथी, महात्मा इन्द्रसे शंकरभगवान् प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ उसी दिनसे यह क्षेत्र इन्द्रके नामसे विख्यात है, अब तुम वहांके उत्तम तीर्थोंको हमसे सुनो ॥ १२ ॥ हे महामुने ! जहां इन्द्रकुण्ड धर्मकुण्डमें संगत हुआहै, वोह शुभदायक धर्मतीर्थ है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य उक्तस्थलमें जाकर जलपान करताहै, जब उसे भी ब्रह्मत्वकी प्राप्ति होजाती है तौ फिर स्नान करनेवाले मनुष्योंके लिये तौ कहनाही क्या है ॥ १४ ॥ हे महामते ! वहां स्नान करनेसे प्रादुर्भूत हुआ एक अद्भुत चरित्र हमने देखा, कि विना भक्तिसे स्नान करनेपरभी ममलोकमें जाना नहीं होता ॥ १५ ॥ एक दीर्घदन्त नाम मच्छीमार धीवर था, एक समय हे महाभाग ! वोह जालको लेके ॥ १६ ॥ मछलियें मारनेको धर्मकुण्डमें प्रविष्ट हुआ, हे महामुने ! उसमें उसने अपना जाल फैलाया ॥ १७ ॥ उस समय मछली मारनेके प्रसंगहीसे उसने उस धर्मकुण्डमें स्नान किया, स्नान कर मरी मछलियोंको लेकर अपने कुटुम्बका पालन करनेके लिये घरको गया ॥ १८ ॥ इसविधिसे दीनजलचारी मछलियोंके प्रसंगसे उसने

सुतीर्थके ॥ प्रसंगेन हि मीनानां दीनानां जलचारिणाम् ॥
॥ १९ ॥ अथ काले व्यतीते तु महति द्विजसत्तम ॥ कालध-
र्ममनुप्राप्तः कुर्वन्पापमहर्निशम् ॥ २० ॥ यमदूताः समायाताः
प्रमथाश्चैकतस्तथा॥ यमलोकं नेतुकामा यमदूता महामते॥२१॥
शिवलोकं नेतुकामाः शिवदूतास्तथैव च ॥ विवादश्चाभवत्तेषां
किंकराणां तथा तयोः ॥ २२ ॥ निर्जित्य यमदूतान्वै शिवदूता
महाबलाः ॥ समारोप्य वृषस्कंधे निन्युर्यत्र महेश्वरः ॥ २३ ॥
हाहाकाररवास्ते च यमदूता हतप्रभाः ॥ गता यत्र यमो राजा
पापिनां भयदायकः ॥ २४ ॥ ऊचुस्ते वै धर्मराजं न ते पापिषु
शासनम् ॥ नित्यं पापरतो लुब्धो गतो रुद्रालयेऽधुना ॥ २५ ॥
किं कार्य्यं ते महाराज स्थितस्य पापिशासने ॥ रुद्रदूतैस्तु
नीयंते पापिनोऽपि महत्तराः ॥ पुण्यात्मगम्ये कैलासे महादेवस्य
सन्निधौ ॥ २६ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां किंकराणां परेतराट् ॥
पप्रच्छ तत्पुण्यपापं कृतं जन्मनि यत्पुरा ॥ २७ ॥ विचार्य्य नि-

माघके महीनेभर उक्त कुण्डमें स्नान किया ॥ १९ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब बहुतकाल व्यतीत
होगया, तब एकसमय रातदिन पाप करता २ वोह मृत्युको प्राप्त होगया ॥ २० ॥ उस समय
एकओर यमदूत और दूसरी ओरसे शिवजीके गण आये। हे महामते ! यम दूत उसे यमलोक
लेजाना चाहते थे ॥ २१ ॥ और महादेवजीके गण शिवलोकमें लेजानेकी चेष्टा करते थे । तद-
राम् उस समय दोनोंके दूतोंका परस्पर विवाद हुआ ॥ २२ ॥ तब महाबली शिवदूत यमदूतोंको
जीत, उसे वृषके ऊपर आरूढ़ कर, जहां महादेवजी थे वहां लेगये ॥ २३ ॥ इधर यमदूतोंकी
कान्ति मलीन होगई सुतराम् वे हाहाकार शब्द करने लगे, और जहां पापियोंका शासन करनेवाले
यमराजजी उपस्थित थे, वहां गये ॥२४॥ अथ च वे यमराजसे कहने लगे कि–पापियोंके ऊपर
आपका शासन बिलकुल नहीं है, क्योंकि नित्य पाप करनेवाला एक हत्यारा अभी शिवलोकको
चला गया ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! जब महादेवजीके गण बड़े २ पापियोंको
कैलासपर्वतके ऊपर जहां कि पुण्यात्मा जासक्ते हैं, महादेवजीके निकट लेजाते हैं तो पापियोंके
शासनकरनेको आप क्यों बैठे हैं ॥ २६ ॥ यमराजने जब दूतोंके ऐसे वचन सुने, तब उन्होंने
उसके इस जन्ममें प्रथम किये पुण्यपापोंको पूछा ॥ २७ ॥ तब विचारकर चित्रगुप्त यमराजसे

जगादेदं चित्रगुप्तो यमं तदा ॥ जातं तस्मान्महापुण्यं प्रसंगान्मत्स्यघातिनः ॥ २८ ॥ हिमवद्दक्षिणे भागे गंगा यत्र व्यवस्थिता ॥ नवालका च यत्रास्ति नदी परमपाविनी ॥ २९ ॥ इंद्रप्रयाग इति वै धर्मतीर्थे शुभप्रदे ॥ कृतं स्नानं माघमासे मत्स्यघातनतो यम ॥ ३० ॥ पुण्यमाजन्मजं तस्य माघस्नानभवं तथा ॥ तत्र स्नानप्रभावेण पातकं यत्कृतं पुरा ॥ यद्भाव्यं च महाभाग दग्धं तेनैव कर्मणा ॥ ३१ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण गतो रुद्रालये विभो ॥ दीर्घदंत इति ख्यातो धीवरो मत्स्यघातकः ॥ ॥ ३२ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य चित्रगुप्तस्य नारद ॥ उवाच वचनं क्रुद्धो दूतांस्तान्निजसेवकान् ॥ ३३ ॥ भोभो दूता दुराचारास्तत्र यूयं निरर्थकम्॥ गतास्तथा तमानेतुं पुण्यात्मानं गतांहसम् ॥ ३४ ॥ धर्मतीर्थजलस्पर्शान्नश्यन्ते पापराशयः ॥ तेन स्नानं कृतं माघे मीनानामपि संगतः ॥ ३५ ॥ अतः परं न गंतव्यं युष्माभिस्तादृशे स्थले ॥ हिमवान्नाम गिर्य्यार्य्यः पुण्यः शैलोऽतिदुर्गमः ॥३६॥ साक्षात्सैव च वसतिः शिवस्य परमात्म-

कहनेलगे कि—मछलियोंके मारनेके प्रसंगसे उससे एक बड़ा पुण्य वन पड़ा है ॥ २८ ॥ हिमालयके दक्षिणभागमें जहां परमपवित्र करनेवाली नवालका नदी और गंगाजी उपस्थित हैं ॥ २९ ॥ वोह इन्द्रप्रयाग कहलाताहै, शुभदायक उसी धर्मतीर्थमे मत्स्यघातके निमित्तसे हे यमराज ! माघमासमें उसने स्नानकिया था ॥ ३० ॥ सुतराम् उसके जन्मभरका पुण्यही होगया, हे महाभाग ! उसने जो कुछ पाप प्रथम कियाथा, अथवा आगेको होनेवाला जो पापहै वह सबही उसमें स्नान करनेके प्रभावसे नष्ट होगया ॥ ३१ ॥ हे विभो ! मत्स्यघाती दीर्घदन्तनाम धीवर उसी पुण्यके प्रतापसे शिवलोकको गयाहै ॥ ३२ ॥ नारदजी ! चित्रगुप्तके ऐसेवचन सुन यमराज क्रोधितहो, अपने सेवक उन दूतोंसे यों कहनेलगे ॥ ३३ ॥ अरे दुष्ट दूतो ! उस निष्पाप पुण्यात्माको लेनेकेलिये तुम व्यर्थहीगये ॥ ३४ ॥ धर्मतीर्थके जलका स्पर्शकरनेसे पापराशियोंका विनाश होजाताहै, और उसने तो मछलियोंके साथ उक्त तीर्थमें माघमासमें स्नान कियाथा ॥ ३५ ॥ अस्तु, अब तुम ऐसे स्थलमें कदापि मतजाना, कारण कि—हिमालय पर्वत अतिशय पवित्र अतएव सर्वसाधारणके लिये दुर्गमहै ॥ ३६ ॥ साक्षात् परमात्मा श्रीमहादेवजीका वोह तो निवास स्थानहीहै, फिर

नः ॥ किमु तद्दक्षिणे भागे यत्र भागीरथी परा ॥ ३७ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा त्रस्ताः सर्वे हि किंकराः ॥ नाजग्मुः स्नातकान्ने- तुं तस्मिन्देशे महामुने ॥ ३८ ॥ धर्मतीर्थात्परं नास्ति तीर्थं पाप- प्रणाशनम् ॥ श्रुत्वा तद्विभवं चापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे इन्द्रप्रयागमाहात्म्ये धर्मकुंडप्रशंसनं नाम चतुष्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

उस स्थानका तो कहनाही क्याहै जहां दक्षिणभागमें गंगाजी विराजमानहैं ॥ ३७ ॥ हे महामुने ! उनके ऐसे वचन सुन यमदूत भयभीत होगये, और उक्त स्थलमें स्नानकरनेवाले व्यक्तियोंको लेनेके लिये उन्होंने जाना छोड़दिया ॥ ३८ ॥ धर्मतीर्थसे अधिक पापोंका नाशकरनेवाला और कोई तीर्थ नहींहै, क्योंकि उसके प्रभावके श्रवणकरनेसेभी सब पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुष्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६५.

स्कंद उवाच ॥ ॥ इंद्रकुंडमिति ख्यातमिंद्रलोकप्रदायकम् ॥ य- त्पयःपानमात्रेण निष्पापो जायते क्षणात् ॥ १ ॥ अथात्र मुंच- ते प्राणानुपोष्य च दिनत्रयम् ॥ इंद्रासनार्द्धहर्ता वै स ज्ञेयो मुनि- सत्तम ॥ २ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे धनुस्तीर्थमुदाहृतम् ॥ यत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ ३ ॥ ततो गंगागमे विप्र ब्रह्मकुंडं पुरातनम् ॥ रविवारेऽत्र संस्नाय रविलोके महीयते ॥ ॥ ४ ॥ ब्रह्मधारा च तत्रैव पुण्यकर्मगतिर्द्विज ॥ तत्पयःपान-

स्कन्दजी बोले—इन्द्रकुण्डको इन्द्रलोक प्रदान करनेवाला वर्णन कियाहै, कारण कि, उसके जलको पीनेसे मनुष्य तत्कालही निष्पाप होजाता है ॥ १ ॥ और जो मनुष्य तीन दिन तक उपवास धारणपूर्वक यहां प्राणोंका परित्याग करताहै, हेमुनीश्वर! उसे आधे इन्द्रासनका भागी समझना चाहिये ॥ २ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर धनुस्तीर्थ वर्णन किया है, उसमें स्नानमात्र करनेसे परमपदकी प्राप्तिहोतीहै ॥ ३ ॥ फिर गंगासंगमें पुरातन ब्रह्मकुण्डहै, इसमें रविवारके दिन स्नानकरनेसे सूर्यलोकमें ऐश्वर्य उपभोग करनेको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे द्विज ! पुण्यात्माओंको सद्गति देनेवाली ब्रह्मधाराभी

मात्रेण हंसयानविमानगः ॥ ५ ॥ ततो दक्षिणतो दिव्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ इंद्रेश्वर इति ख्यातं पापराशिदवानलः ॥ ६ ॥ तस्य चिह्नं समाख्यास्ये येन तत्र गतिर्भवेत् ॥ रक्तशीर्षो भुजंगस्तु तत्रास्ते मणिभूषितः॥७॥चतुर्दश्यां दिने तत्र दृश्यते पुण्यसंचयैः ॥ संछाद्य लिंगं तत्सर्वं शेते तत्र भुजंगराट् ॥ ८ ॥ शिवरात्रिदिने यस्तु पूजयेत्प्रयतः शिवम् ॥ तेन सर्वं कृतं कर्म वाजपेयादिकं मुने ॥ ९ ॥ नबालकातटे पूर्वे धारायाति सुपुण्यदा ॥ त्रिशूलेति समाख्याता संगमे पुण्यके तयोः ॥ १० ॥ सुपुण्यतममाख्यातं पापिनामपि शैवदम् ॥ नवालकातटे दक्षे नद्यायाति शरान्मुने ॥ उर्मिकेति समाख्याता स्नानात्स्वर्गविलासदा ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे इंद्रप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

वहां विद्यमानहै उसके केवल जलको पीनेहीमात्रसे हंसोंके विमानमें चढना प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर इन्द्रेश्वरनामका एक सर्वोत्तम शिवलिंगहै,और वोह लिंग पापराशिका नाशकरनेके लिये दावानलकी समानहै ॥ ६ ॥ अब हम उसके चिह्नका वर्णनकरतेहैं, जिसके सहारेसे वहां पहुँच हो, वहां मणिसे समलंकृत रक्तशीर्ष सर्प निवास करताहै ॥ ७ ॥ चतुर्दशीके दिन पुण्यात्माओंको उसके दर्शन प्राप्त होते हैं, और वोह सर्पराज शिवलिंगको आच्छादनकर शयन करताहै ॥ ८ ॥ जो मनुष्य शिवरात्रिके दिन नियमधारण पूर्वक महादेवजीका पूजन करताहै, मानो हे मुनीश्वर ! उसने वाजपेय यज्ञ आदि सबहीका आचरण करलिया ॥ ९ ॥ नवालिकाके पूर्व तटमें त्रिशूला नामकी अतिशय पंवित्र धारा आती है, उन दोनोंके संगममें ॥ १० ॥ अतिशय पवित्र स्थान हैं और वह स्थान पापियोंकोभी कल्याण प्रदान करताहै, उधर नवालिकाके दक्षिण तटपर ऊर्मिका नामकी नदी आतीहै,उसमें स्नानकरनेसे स्वर्गीय विलास प्राप्त होताहै ॥११॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६६.

नारद उवाच ॥ ॥ नवालकोत्पत्तिमहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ कासौ नवालका नाम त्वासीत्पुण्यतमा नदी ॥ १ ॥ केन वै कारणेनासौ नदी जाता शिवात्मज ॥ इतिहासमिमं पुण्यं वद सर्वमशेषतः ॥ २ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नवालकोत्पत्तिं यथा-पूर्वमशेषतः ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण निष्पापो जायते नरः ॥ ३॥ धर्मारण्ये पुरा विप्र वैश्योभूद्धर्मचिंतकः ॥ स बन्ध्यत्वमनुप्राप्तो धर्मात्मा पूर्वपापतः ॥ ४ ॥ ततस्तु वैश्यो धर्मात्मा धर्मचिन्त-ननामकः ॥ बंध्यत्वदुःखसंतप्तो ययौ कैलासमंदिरे ॥ ५ ॥ पूज-नं नीलकंठस्य स्नात्वा नद्यां व्यधत्त सः ॥ ततः क्रमादसौ वैश्यो वर्षं तीर्थेष्वपूजयत॥६॥ततः केदारभवनं चाययौ दुःखितो भृशम् स्नात्वा मंदाकिनीतीरे ज्योतीरूपं महेश्वरम् ॥ ददर्श पूजनं चैव चकार विधिपूर्वकम् ॥ ७ ॥ प्रार्थयामास धर्मात्मापत्यार्थं जग-दीश्वरम् ॥ ततः समाययौ स्वीये गृहे वै धर्मचिंतकः ॥ ८ ॥ ततः कतिपयैर्वर्षैः प्राप पुत्रं तथोत्कटम् ॥ कन्यां च रूपिणीं

नारदजी बोले—नवालिका नामकी यह कौनसी पवित्र नदीहै, मैं इसकी उत्पत्तिको तत्त्वपूर्वक श्रवणकरना चाहताहूं ॥ १ ॥ हे शिवकुमार ! यह किसकारणसे नदीहुई ? इस पवित्र इतिहासको सम्पूर्णतया मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले—अब तुम नवालिकाकी उत्पत्ति प्रारम्भहीसे सब सुनो, उसके केवल स्मरणमात्रहीसे मनुष्य निष्पाप होजाताहै ॥ ३ ॥ हे विप्र ! पहिले धर्मारण्यमें एक धर्मचिन्तक वैश्य हुआ, यद्यपि वोह धर्मात्मा था तथापि पूर्वजन्मके पापवशात् उसके कोई सन्तान न हुई ॥ ४ ॥ तब तौ वोह धर्मात्मा धर्मचिन्तक बन्ध्यत्व दुःखसे क्लेशित हो कैलास पर्वतपै गया ॥५॥ उसने स्नान और प्रणाम कर नीलकंठ महादेवजीका पूजन किया, फिर इसके अनन्तर यह धर्मात्मा वैश्य वर्षभर तीर्थोंमें स्नान करता रहा ॥ ६ ॥ फिर अतिशय दुःखित हो केदारजीके मन्दिरमें आया, यहां इसने स्नान कर मन्दाकिनीके तटपर ज्योतिःस्वरूप महादेवजीके दर्शन और विधिपूर्वक पूजन किये ॥ ७ ॥ अन्तमें इस धर्मात्माने सन्तान प्राप्तिके लिये जगदीश्वरसे प्रार्थना करी, इसके अनन्तर वह धर्मचिन्तक अपने घर चलाआया ॥ ८ ॥ तत्पश्चात्—कुछ वर्ष पीछे इसके उत्कटपुत्र और साक्षात् लक्ष्मीकी

साक्षाल्लक्ष्मीं सौभाग्यसंयुताम् ॥ ९ ॥ सापि तत्र महाभाग रूप-यौवनशालिनी ॥ कालेन वय आपन्ना धर्मचिंतककन्यका ॥ ॥ १० ॥ अथैकस्मिन्दिने विप्र नाम्ना सौंदर्यमंजरी ॥ गृहारामे वयस्काभिः सखीभिः परिवारिता ॥ क्रीडंती सहसा विप्र ददृशे च्यवनेन सा ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा तां यौवनोन्मत्तां रूपाढ्यां भार्गवीमिव ॥ चकमे कामवशगो जगाद च शुचिस्मिताम् ॥ ॥ १२ ॥ रंभोरु मां कामबाणैः पीडितं जीवय द्विजम् ॥ त्वा दृशी कन्यका कापि न दृष्टा पृथवी तले ॥ १३ ॥ इत्युक्ता तेन विप्रेण ह्यवमन्य मुनीरितम् ॥ पराङ्मुखी जगामाशु स्वगृहं गज-गामिनी ॥ १४ ॥ ततः क्रुद्धो मुनिस्तां तु यौवनोन्मदशालिनीम् ॥ मत्वा शशाप सहसा जरा त्वां वै ग्रहीष्यति ॥ १५ ॥ इत्युत्सृष्टे तु शापाग्नौ च्यवनेन महीयशा ॥ बभूव श्लथसर्वांगा श्वेतकेशा जरान्विता ॥ १६ ॥ वेपमाना ययौ शीघ्रं यत्र तज्जनकः स्थितः ॥ उवाच सर्ववृत्तांतं शापबीजं महामते ॥ १७ ॥ तामादाय ततः

समान सुन्दरी एवं सौभाग्यवती कन्याकी प्राप्ति हुई ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! धर्मचिन्तककी वह कन्या समयानुसार रूप यौवनसे परिपूर्ण हो पूर्णअवस्थाको प्राप्त हुई ॥ १० ॥ हे विप्र ! एक दिन यह सौन्दर्यमंजरी समान वयस्का सखियोंको साथ लिये घरके बगीचेमें क्रीडा कररही थी, तब उसे च्यवन मुनिने देखा ॥ ११ ॥ यौवनोन्मादवती लक्ष्मी अथवा पार्वतीकी समान उस सुन्दरी कन्याको देख, यह ऋषि कामके वशीभूत हो उसके ऊपर आसक्त होके मनोहर मुसकानेवाली कन्यासे कहने लगे ॥ १२ ॥ हे कदलीके स्तम्भकी समान जंघावाली ! कामदेवके बाणोंसे पीडित हुए मुझ ब्राह्मणको प्राणदान दे, मैंने तौ तेरी समान कन्या भूमंडलके ऊपर और कोई नहीं देखी ॥ १३ ॥ उक्त ब्राह्मणके द्वारा इस प्रकार कहीजानेपर वह गजगामिनी कन्या मुनिवाक्योंका अनादर कर शीघ्रही अपने घरको चलदी ॥ १४ ॥ तब तौ मुनीश्वरने उसे यौवनकी मदमाती जान क्रोधित हो यह शाप दिया कि, तुझे शीघ्रही बुढापा घेर लेगा ॥ १५ ॥ जब परमतेजस्वी च्यवनजीने इसप्रकार कहकर शापाग्निका परित्याग किया, तब उसका सारा शरीर बूढाहोगया, और उसके केश स्वेत होगये ॥ १६ ॥ तब तौ वोह कंपायमान होती

सोऽपि यत्रासौ मुनिसत्तमः ॥ आययौ भक्तिननम्रो वै प्रणनाम च तं द्विजम् ॥ १८ ॥ प्रसादयामास बहु परिक्रम्य पुनः पुनः ॥ पुनर्दयार्द्रचेतास्तु च्यवनो मुनिसत्तमः ॥ उवाच चेति वैश्यं तं गच्छ कैलासमंदिरम् ॥ १९ ॥ तत्र मे यानि तीर्थानि वर्तंते धर्मचिंतक ॥ तत्रेयं लप्स्यते शीघ्रं यौवनं लाङ्गले गिरौ ॥ २० ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य ययतुर्हिमवद्गिरौ ॥ यत्र ब्रह्मादयो नित्यं वर्तन्ते तप आस्थिताः ॥ २१ ॥ यत्र लांगलनामा वै पर्वतो मुनिसेवितः ॥ चकार पूजनं शंभोः सा वै सौंदर्य्यमंजरी ॥ २२ ॥ सप्तरात्रं निराहारा शिवसंन्यस्तमानसा ॥ प्रसन्नश्च महादेवो ददौ वरमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ नवालका भविष्यंति तव शुभ्रं तथा वयः ॥ वलयश्च तथा तन्वि नाशमेष्यंति सत्वरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुस्तत्रैवांतरधाद्धरः ॥ सापि कन्याविशच्छीघ्रं यौवनं च नवालकान् ॥ संप्राप च

हुई अपने पिताके पास गई, और हे महामते ! इसने शापका मूलस्वरूप सब वृत्तान्त उनसे कहा ॥ १७ ॥ तब तौ यह वैश्य उस कन्याको साथ ले, वहां आया जहां वे मुनिराज बैठे थे, तब इसने भक्तिभावसे नम्र हो उक्त द्विजको बार २ प्रणाम किया ॥ १८ ॥ एवं च बार २ परिक्रमा करके उन्हें प्रसन्न किया, तब दयालु च्यवनमुनीश्वर उक्त वैश्यराजसे कहने लगे कि, तुम कैलासमंदिरमें जाओ ॥ १९ ॥ हे धर्मचिन्तक ! वहां बहुतसे तीर्थ हैं, वहां इसे लांगल पर्वतके ऊपर फिर यौवनकी प्राप्ति होजायगी ॥ २० ॥ इस प्रकार कहेजानेपर वे दोनों परिक्रमा कर, जहां ब्रह्माआदि देवता नित्यही तपमें उपस्थित रहते हैं वहां हिमालयके ऊपर गये ॥ २१ ॥ वहां महर्षियोंके द्वारा सेवन किये हुए लांगलपर्वतके ऊपर उस सौन्दर्यमंजरीने, महादेवजीमें मनलगाय निराहार पूर्वक उनकी पूजा करी, तब शिवजीने प्रसन्न हो उसे सर्वोत्तम वर दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ तेरे बाल नवे होंगे, वयभी जीर्ण न रहेगी, और हे तन्वि ! तेरे शरीरकी झुरियों (सिलवटें) सब मिटजायँगी ॥ २४ ॥ यों कहकर भगवान् महादेवजी वहांही अन्तर्द्धान होगये, इधर महादेवजीके

महाभाग महादेवप्रसादतः ॥ २५ ॥ ददृशुः सर्वमुनयो जातां कन्यां तथाविधाम् ॥ साधुसाध्विति तां प्रोचुराश्चर्यचकितास्ततः ॥ २६ ॥ नाम चक्रुस्तदा तस्या यस्मात्प्राप न बालकान् ॥ नबालकेति विख्याता भविष्यति सुकन्यका ॥ २७ ॥ ततःप्रभृति सा कन्या जाता परमसुंदरी ॥ नबालकेति विख्याता च्यवनाश्रममाययौ ॥ २८ ॥ सोऽपि वैश्यो गृहं गत्वा संनिवेश्यासने सुतम् ॥ केदारमंडले शीघ्रमाययौ तपसे मुने ॥ ॥ २९ ॥ सा च्यवनाश्रममागत्य तत्सेवानिरताभवत् ॥ एवं बहुतिथे काले व्यतीते मुनिसत्तमाः ॥ ३० ॥ पप्रच्छ च्यवनं सा वै यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ नित्यमत्र स्थले स्वच्छे वासं देहि महामते ॥ ३१ ॥ प्रसन्नश्चाब्रवीत्तां तु नदी भव शुचिस्मिते ॥ पुण्या भागीरथीव त्वं भवोद्भवविनाशिनी ॥ ३२ ॥ त्वयि स्नास्यंति ये मर्त्याः प्राप्स्यंति परमं पदम् ॥ करिष्यंत्यन्यकर्माणि वार्द्धिष्यंति बहूत्तरम् ॥ ३३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ इत्युक्तेयं

प्रतापसे इस कन्याकोभी शीघ्रही यौवनकी प्राप्ति होगई और श्वेतबालभी न रहे ॥ २५॥ तब सब मुनियोंने इसप्रकारकी इस कन्याको देखा, तब वे सब आश्चर्य्यसे चकित हो धन्य २ कहने लगे ॥ २६ ॥ कारण कि उसे बालक प्राप्त न हुए अतएव उसका नबालका नाम रक्खा, और कहनेलगे कि, यह कन्यका नबालका नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ २७ ॥ उसी दिनसे वह कन्यका परम सुन्दरी होगई, और नबालका नामसे प्रसिद्ध हो च्यवनजीके आश्रममें आई ॥ २८ ॥ इधर वह वैश्यभी अपने घर जाय आसनके ऊपर पुत्रको बैठाके, तपश्चर्य्या करनेके लिये शीघ्रही केदारमण्डलमें चलाआया ॥ २९ ॥ इधर वोह सौन्दर्यमंजरी च्यवनके आश्रममें आय उनकी सेवामें निरत होगई, हे मुनिसत्तम ! इसप्रकार बहुतसा समय व्यतीत होगया ॥ ३० ॥ तब वोह एकसमय च्यवनजीसे कहने लगी कि, यदि मेरेऊपर आपकी दया है तौ, हे महामतिमान् ! मुझे इस परमस्वच्छ स्थानमें नित्य निवास करनेकी आज्ञा दीजिये॥३१॥ यह सुन महर्षि प्रसन्न होके बोले कि, हे शुचिस्मिते ! तू नदी होजा, एवं तू नदी होकर गंगाजीकी समान पवित्र एवं सांसारिक जन्ममरणसे छुड़ानेवाली होगी ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य तेरे (जल) में स्नान करेंगे उन्हें परमपदका लाभ होगा, एवं जो मनुष्य अन्यान्य कर्म करेंगे वे भी प्रभूत वृद्धिको प्राप्त होंगे ॥३३ ॥ स्कन्दजी बोले इसप्रकार कहे जानेपर वोह कन्या तत्कालही नबालका नाम नदी होगई, और उसमें सुन्दर २

तेन कन्या नाम्ना सापि नबालका ॥ बभूव सहसा तत्र स्फुरत्कल्लोलशालिनी ॥ ३४ ॥ च्यवनोऽपि महाभागस्तत्रैव कृतवांस्तपः ॥ सोऽपि वैश्यो महातेजास्तपस्तेपे ह्यनुत्तमम् ॥ ॥ ३५ ॥ प्राप वै परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ सापि गंगां समायाता सरिच्छ्रेष्ठा नबालकां ॥ ३६ ॥ स्नात्वा तस्यां मार्गशीर्षे माघे वापि विशेषतः ॥ प्राप्नोति परमं स्थानं देवराजेन सम्मतम् ॥ ३७ ॥ लक्षं तत्रापि संप्राप्ता राक्षसाः परमां गतिम् ॥ बहूनां तीर्थवर्य्याणां श्रेष्ठा जाता नबालका ॥ ३८ ॥ इति सर्वमशेषेण कथितं ते मयानघ ॥ इन्द्रप्रयागमाहात्म्यं वैभवं सरितस्तथा ॥ नबालकाया ब्रह्मर्षे सर्वाघौघनिवारणम् ॥ ॥ ३९ ॥ एतच्छ्रुत्वापि माहात्म्यं तत्तीर्थस्नानजं फलम् ॥ लभते नात्र सन्देहस्सत्यमेव प्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे इंद्रप्रयागमाहात्म्ये नबालकोत्पत्तिर्नाम षट्षष्ट्युत्तरशततमोध्यायः ॥ १६६ ॥

तरंगें उठने लगीं ॥ ३४ ॥ तब महाभाग च्यवनजीभी वहांही तप करने लगे, इधर वोह महातेजस्वी वैश्यभी सर्वोत्तम तपका आचरण करने लगा ॥ ३५ ॥ सुतराम् उसे ऐसी परमसिद्धिका लाभ हुआ जहांसे फिर लौटना कठिन है, और वह नबालका श्रेष्ठ नदीभी गंगाजीमें आमिली ॥ ॥ ३६ ॥ मार्गशीर्ष और विशेषकर माघमासमें उसमें स्नान करनेसे देवराज सम्मत परम स्थानकी प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥ उस स्थानमेंभी लक्ष राक्षसोंको परम गतिकी प्राप्ति हुई थी, यह नबालका बहुतसे तीर्थोंसे श्रेष्ठ मानीगई है ॥ ३८ ॥ हे अनघ ! हमने इसप्रकार इन्द्रप्रयाग और नबालिका नदीका सब पापनाश करनेवाला माहात्म्य तुह्मारे प्रति वर्णन किया ॥ ३९ ॥ इस माहात्म्यके श्रवण करनेसे उन २ तीर्थोंमें स्नान करनेके फलकी प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह कुछ नहीं॥ ४०॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६७.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अन्यान्यपि शृणु प्राज्ञ तीर्थानि प्रवराणि च ॥ येषां श्रवणमात्रेण वर्द्धते पुण्यसंचयाः ॥ १ ॥ ततः प्राचीविभागे वै संगमेऽतीवपुण्यदे ॥ वैनतेयनदी पुण्या तथासौ च नबालका ॥ २ ॥ एतयोः संगमे विप्र तीर्थं तद्वैनतेयकम् ॥ यत्र वै वैनतेयेन ह्यमृताहरणे पुरा ॥ ३ ॥ निगीर्णे च तथा विप्रे हतरूपेण कर्मणा ॥ ब्रह्महत्यावृतेनाथ पतितेन व्यशुच्यत ॥ ४ ॥ ततः काले गते ब्रह्मानागते गरुडे ततः ॥ कश्यपो नाम ब्रह्मर्षिर्दध्यौ तत्कारणं परम् ॥ ५ ॥ ज्ञात्वा सर्वमशेषेण ययौ तत्राश्रमे मुनिः॥यत्रास्ते गरुडः क्लिष्टो निगीर्णो ब्रह्महत्यया ॥ ६ ॥ ददर्श वैनतेयं तु पतितं स्रस्तपक्षकम् ॥ वमंतं रुधिरं विप्र निगीर्णब्राह्मणं ध्रुवम् ॥ ७ ॥ तुष्टाव हरमीशानं दृष्ट्वा पुत्रं तथाविधम् ॥ प्रत्यक्षश्चाभवच्छम्भुः कश्यपस्य महामतेः ॥८॥ दण्डवत्प्रणनामाथ वारंवारमुमापतिम् ॥ अवस्थां निजपुत्रस्य श्रावयामास सत्वरम् ॥ ९ ॥ जगाद सोऽपि रुद्रो वै

स्कन्दजी बोले—हे प्राज्ञ ! अब अन्यान्य श्रेष्ठ तीर्थोंकाभी श्रवण करो, उनका श्रवण करनेहीसे पुण्यसंचयकी वृद्धि होतीहै ॥ १ ॥ वहांसे पूर्वदिशाकी ओर पवित्र वैनतेय नदीहै, वैनतेय और नबालका नदीके पवित्र संगममें ॥ २ ॥ वैनतेय नाम एक तीर्थ है, वहां वैनतेयजीने प्राचीनकालमें अमृत अपहरण करनेके समय ॥ ३ ॥ ब्राह्मणको निगला तब वहां पर्वतके ऊपर ब्रह्महत्यासे निपतित हुआ ॥ ४ ॥ जब कुछ समय व्यतीत होजानेपरभी गरुड़जी न आये तौ कश्यप नाम महर्षिने ध्यानसे इसका कारण पहिचाना ॥ ५ ॥ यह सब वृत्तान्त जान महर्षि वहांगये, जहां ब्रह्महत्यासे पीडित गरुड़जी पड़ेथे ॥ ६ ॥ उन्होंने वहां गरुड़जीके पर फड़फड़ाते देखा, और हे विप्र ! वे रुधिरकी वमन भी कररहे थे ॥ ७ ॥ पुत्रकी ऐसी दशा देख कश्यपजीने महादेवजीको प्रसन्न किया, तब सन्तुष्ट हो शंकर महामतिमान् कश्यपजीके समक्ष प्रादुर्भूत हुए ॥ ८ ॥ तब यह वारंवारही उमापति शिवजीको दण्डवत् प्रणाम करने, और अपने पुत्रकी दशा उन्हें सुनाने लगे ॥ ९ ॥ तब महादेवजी ब्राह्मणभुवके भक्षणके विषयमें कहने

ब्राह्मणब्रुवभक्षणम् ॥ अजानता कृतं कर्म क्षयं शीघ्रं गमिष्यति॥ ॥ १० ॥ निष्कासयामास तदा तद्गलाद्ब्राह्मण ब्रुवम् ॥ तं पुनर्जीवयामास स्वहस्तेनापमार्जितम् ॥ ११ ॥ गरुडोऽपि महादेवं समीक्ष्यानंदनिर्भरः ॥ अश्रूणि मोचयामास ततोऽसौ गारुडी नदी ॥ १२ ॥ पुनर्बलं ददौ तस्य परमात्मा शिवः स्वयम ॥ गरुडेशत्वमापन्नस्तत्रैव शुभकंदरे ॥ १३ ॥ गरुडोऽपि बलं प्राप्य प्रणम्य पितरं शिवम् ॥ जगामामृतमानेतुं पश्यतामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ १४ ॥ गरुडाश्रुसमुद्भूतां नदीं दृष्ट्वा महेश्वरः ॥ चकार नामकरणं वैनतेयनदीति च ॥ १५ ॥ कश्यपोऽपि महाभाग गत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ गंगाद्वारे ययौ विप्र शिवश्चांतरधत्त वै ॥१६॥ तदादीदं महाभाग तीर्थं गारुडकं परम् ॥ यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥ १७ ॥ गरुडेशं महादेवं दृष्ट्वा पापक्षयो भवेत् ॥ १८ ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे सरिदस्ति विभाविनी ॥ तस्याश्च संगमे स्नात्वा राजा भवति धार्मिकः ॥ १९ ॥

लगे, यहकर्म इन्होंने अज्ञानसे कियाहै, अतएव इसकी शान्ति शीघ्रही होजायगी ॥१० ॥ यों कहकर उनके कंठमेंसे ब्राह्मण ब्रुवको निकाला, और अपने हाथसे मार्जन कर उन्हें फिर जीवित किया ॥ ११ ॥ महादेवजीके दर्शन कर गरुड़जीके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आंसु टपकने लगे, उसीसे यह वैनतेय नदी हुई है ॥ १२ ॥ परमात्मा महादेवजीने गरुडजीको फिर बलप्रदान किया, तब वे उसी शुभकन्दरामें गरुडेशत्वको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तदनन्तर गरुडजी बल पाय महादेवजी एवं अपने पिताजीको प्रणाम कर ऊर्द्ध्वरेता महर्षियोंके देखते २ ही अमृत लेनेको चलदिये ॥ १४ ॥ गरुड़जीके आसुओंसे उत्पन्न हुई नदीका महादेवजीने वैनतेया नदी नाम रक्खा ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! इधर कश्यप महाराजजीभी अनेक तीर्थोंमें विचरते २ गंगाद्वारमें आये, उधर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! तभीसे यह गरुडसंज्ञक परम-तीर्थ विख्यात है, इसमें केवल स्नानमात्र करनेसे ब्रह्महत्याका निवारण होजाता है ॥ १७ ॥ अथ च गरुडेशमहादेवजीके दर्शन करनेसे पापोंका क्षय होजाताहै ॥ १८ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर विभाविनी नाम एक नदीहै, उसके संगममें स्नान करनेसे मनुष्य धार्मिक राजा होता है॥१९॥

तत्र भावेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ धन्यैः सा दृश्यते देवी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥ २० ॥ तस्या वामप्रदेशे हि मंदधारा सुपुण्यदा ॥ ततो याम्यप्रदेशे हि राजेंद्री नाम वै नदी ॥ २१ ॥ तस्यां स्नानं कृतं येन स्नानं तेन कृतं भवेत् ॥ राजेंद्रीसंगमे विप्र पृथुतीर्थमिति स्मृतम्॥ यत्र राजा पृथुः पूर्वमाराराधः महेश्वरम्॥२२॥ तत्र माहेश्वरं लिंगं नाम्ना पृथ्वीश्वरं परम् ॥ ततो दक्षिणादिग्भागे कपर्दकगिरेर्गता ॥ नदी कपिंजला नाम्ना शिवसायुज्यदायिनी ॥ २३ ॥ तत्र देवेन पिप्रर्षे कपर्दे नर्तिते पुरा ॥ उक्षिप्तस्तेन स गिरिः कपर्देति परिश्रुतः ॥ २४ ॥ कपिंजलेश्वरो देवस्तत्रास्ति गिरिकंदरे ॥ तमभ्यर्च्य शिवं भक्त्या रुद्रलोके महीयते ॥ २५ ॥ उत्क्षिप्ते तु जटाजूटे निर्गता गांग्बिंदवः ॥ धारारूपास्तु शतशो गंगा एव न संशयः ॥२६॥ ततो वै पर्वदिग्भागे चंद्रकूटे गिरौ परम्॥ देवेश्वरो महादेवः सर्वपापनिवारकः ॥ २७ ॥ चंद्रतोया ततो रम्या समायाति नदीवरा॥

वहां समस्त सिद्धियोंकी देनेवाली भावेश्वरी नामकी एक देवी हैं, समस्त उपद्रवोंका विनाश करनेवाली उक्त देवीके दर्शन अहोभाग्य व्यक्तियोंहीको होते हैं ॥ २० ॥ उसके वाम प्रदेशमें उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली मन्दधाराहै, उससे दक्षिणकी ओर राजेन्द्री नामकी नदी है ॥ २१ ॥ जो उसमें स्नान करलेताहै मांनो उसने सर्व तीर्थोंहीमें स्नान करलिया, हे विप्र ! राजेन्द्रीके संगमहीमें एक पृथु तीर्थ है, वहां पूर्वसमयमें राजापृथुने महेश्वरकी आराधना करी थी ॥ २२ ॥ वहां पृथ्वीश्वर नाम महादेवजीका लिंगहै, वहांसे दक्षिणकी ओर कपर्दगिरिके निकट महादेवजीका सायुज्य प्राप्त करानेवाली कापिंजला नामकी नदी है ॥ २३ ॥ भगवान् महादेवजीने नृत्य करते समय जटाजूटको जो उछाला था इसीसे उसका कपर्द गिरि नाम है हुआ ॥ ॥ २४ ॥ वहांही गिरिकन्दरामें कपिंजलेश्वर नाम महादेवजी विद्यमान हैं; उक्त महादेवजीकी भक्तिभाव पूर्वक पूजा करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ जटाजूटके फटकारने पर उसमेंसे गंगाजलकी बूँदे गिरीं, वे सैकड़ौं धारा रूप होगई, उन्हेंभी निस्सन्देह धारा रूपही जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् चन्द्रकूटपर्वतके ऊपर समस्त पापोंका निवारण करनेवाले देवेश्वर महादेवजी हैं ॥ २७ ॥ वहांही चन्द्रतोया नामकी श्रेष्ठ नदी आती है,

तस्यां स्नात्वा नरो याति चंद्रलोकं न संशयः ॥ २८ ॥ लांगूलपर्वते दिव्ये लांगलीशः सदाशिवः ॥ तस्य दर्शनमात्रेण राजराजेश्वरो भवेत् ॥ २९ ॥ तस्य नैर्ऋत्यभागे वै नदी मंजुकुला मता ॥ तस्याः संमेलनं यत्र भीमतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ३० ॥ ततः पूर्वे क्रोशमात्रे शिला पिंगलिका भवेत् ॥ तस्याः स्पर्शेन नश्यन्ति पातकान्यखिलान्यपि ॥ ३१ ॥ वनदेवी ततः प्रोक्ता देवीलोकप्रदायिनी॥धेनुगंगा ततः पश्चात्क्रोशार्द्धे शिवदायिनी ॥ ॥ ३२ ॥ तस्याः सुसंगमे स्नात्वा धेनुलोके वसेच्चिरम् ॥ धेनुस्वेदात्समुत्पन्ना नदी परमपाविनी ॥ ३३ ॥ अत्रिपुत्रीति तद्वामे वरास्ति सरिदुत्तमा ॥ तस्यां स्नात्वा वसेत्स्वर्गे भोगांते नृपतिर्भवेत् ॥ ३४ ॥ शूलेश्वरी महादेवी तद्वामे क्रोशखण्डके॥ इति ते कथितान्येव संक्षेपाद्द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे नानातीर्थवैभववर्णनं नाम सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

उसमें स्नान करनेसे मनुष्य अवश्यही चन्द्रलोकको जाता है ॥ २८ ॥ लांगूलपर्वतके ऊपर लांगलीश नामके सदाशिव महादेवजी हैं, उनके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्य राजराजेश्वर होजाता है ॥ २९ ॥ उसके नैर्ऋत्यकोणमें मंजुकुला नामकी नदी है, उसके संगमको भीमतीर्थ कहते है ॥ ३० ॥ वहांसे पूर्वकी ओर एक कोशकी दूरीपर पिंगलिका शिला है, उसका स्पर्श करनेसे भी अखिल पातकोंका नाश होजाता है ॥ ३१ ॥ देवीलोक प्रदान करनेवाली वनदेवी उसके अगाड़ी है, उसके पीछे आधे कोशकी दूरी पर कल्याण दायिनी धेनु गंगा है ॥ ३२ ॥ उसमें स्नान करनेसे चिरकाल पर्यन्त गोलोकमें निवास प्राप्त होता है, वह परम पवित्र नदी धेनुके प्रस्वेदसे उत्पन्न हुई है ॥ ३३ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर अत्रिपुत्री नामकी श्रेष्ठ नदीहै, उसमें स्नान करनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें निवास करता, और पुण्य क्षीण होनेपर राजा होता है ॥ ३४ ॥ वहांसे एक कोशखंडकी दूरी पर शूलेश्वरी नाम महादेवी हैं हे द्विजराज ! इस प्रकार हमने संक्षेपसे यह सब वृत्तान्त तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः १६८.

स्कंद उवाच ॥ अथान्यच्छृणु पीठं वै देव्याः परमकं शिवम् ॥ पुण्ये नबालकातीरे तन्मानं योजनार्द्धकम् ॥ १ ॥ अतिपुण्यतमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ दीप्तज्वालेश्वरी ख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ २ ॥ पूर्वं तत्र पुलोम्नश्च कन्ययाराधिता परा ॥ दृष्टा तया प्रदीप्ताग्निज्वालेव नगकन्यका ॥ ३ ॥ ततः सर्वे मुनिगणा दीप्तज्वालेति तां विदुः ॥ इन्द्रासनार्द्धसंप्राप्तिर्जाता तस्या महामते ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ पुलोमकन्यया स्कंद कथमाराधिता सती ॥ कथमिन्द्रस्य पत्नी सा जाता तद्वद मे प्रभो ॥ ५ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु देव पुरावृत्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ पुलोमजा यथा कन्या देवीमाराधयत्सतीम् ॥ ६ ॥ दैत्यवर्य्यः पुलोमाभूत्सर्वसत्त्वभयंकरः ॥ तस्य कन्येयमाख्याता शची नाम्नेति विश्रुता ॥ ७ ॥ एकदा सा सखीभिस्तु वेष्टिता हिमवद्गिरिम् ॥ ययौ द्रष्टुं विमानेन कामगेन महामते ॥ ८ ॥ पश्यंती सा महाशोभां शची वै हिमवद्गिरेः ॥ नानानदीनदा-

स्कन्दजी बोले— नबालकाके पवित्र तीर पर देवीजीका अन्य एक पीठ है उसे सुनो, उसका अर्द्ध योजन प्रमाण है॥ १ ॥वह पीठ अतिशय पवित्र अत एव अवश्यही शीघ्र विश्वास करानेवाला है, वहां सब सिद्धियोंकी देनेवाली दीप्ति ज्वालेश्वरी प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ प्रथम वहां पुलोमकी कन्याने आराधना करी, तब उसे प्रदीप्ताग्नि ज्वालाके दर्शन हुए ॥ ३ ॥ तभीसे सब मुनीश्वर उसे दीप्तज्वाला कहते हैं, हे महामते ! उसे आधे इन्द्रासनकी प्राप्ति हुई ॥ ४ ॥ नारदजी बोले— हे स्कन्द ! पुलोमकी कन्याने सतीकी किस प्रकार आराधना करी, और फिर वह इन्द्रकी पत्नी किस प्रकार हुई ? हे प्रभो ! यह सब मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले—हे देव ! पाप विनाशी प्राचीन इतिहासको सुनिये, पुलोमकी कन्याने प्रथम सती देवीकी आराधना करी ॥ ॥ ६ ॥ समस्त जीवोंको भयदायक पुलोम नामका एक दैत्यराज था, उसकी कन्याका शची नाम विख्यात है ॥ ७ ॥ एक समय वह अपनी सखियोंके साथ इच्छागामी विमानमें आरूढ हो हिमालयपर्वतका अवलोकन करने गई ॥ ८ ॥ हिमालयपर्वतके ऊपर वह शची शोभाका अवलोकन करने लगी, वहां अनेक नदी और नद एवं तीर्थोंके आकीर्ण होनेसे उसकी विशेष

कीर्णतीर्थराजोपशोभितम् ॥ ९ ॥ नानालिंगशताकीर्णं नानाप्रस्र-वणैर्युतम् ॥ नानामृगगणैर्जुष्टं सिंहव्याघ्रनिषेवितम् ॥ १० ॥ नानापक्षिशताघुष्टं दृष्टिरम्यं शिवालयम् ॥ प्रमथैस्तु तदाकीर्णं देवीदेवनिषेवितम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा हिमालयं दिव्यं गंगाधारोर्मि-मालिनम् ॥ विजहार शची तत्र सवयस्कसखीवृता ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र शिवदर्शनलालसः ॥ आययौ वासवो देवः सर्व-देवगणैर्युतः ॥१३॥ ऐरावतसमारूढो गंधर्वगणशोभितः ॥ किन्नरै-र्गीयमानो वै त्वप्सरोगणशोभितः ॥१४॥ नानाविभूतिभिर्युक्तो लोकपालगणैर्वृतः ॥ दृष्ट्वा विभूतिमंतं तमिंद्रं वृत्तनिषूदनम् ॥१५॥ चकमे सा पतिं तं तु पुलोमतनया शची ॥ अपृच्छत्सा सखीं कांचित्कथमिंद्रः पतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ सावदत्सहसा बालां यौव-नोन्मुखशालिनीम् ॥ पुण्येन लभ्यते भर्ता सानुरूपोऽनुकूलकः ॥ ॥ १७ ॥ पुण्यं तु त्रिविधं ख्यातं तीर्थसेवनजं तथा ॥ दानजन्यं

शोभा होरही थी ॥ ९ ॥ अनेक लिंग वहां विराजमानथे, सैकडों झरने निकल रहे थे, वह स्थान अनेक मृगों एवं सिंह व्याघ्रोंसे आकीर्ण होरहा था ॥ १० ॥ अनेक प्रकारके सैकड़ों पक्षी वहां विद्यमान थे, देखनेमें मनोहर शिवालय विद्यमान थे, उन शिवमन्दिरोंमें शिवगण तथा देवी देव सेवा कर रहे थे ॥ ११ ॥ ऐसे दिव्य हिमालयके ऊपर जहां कि गंगाजीकी धारा लहरा रही थीं, अपनी समान वयस्का सखियोंके साथ शची विहार करने लगी ॥ १२ ॥ इसी समय मनमें महादेवजीके दर्शनोंकी लालसा कर सब देवताओंको साथ ले इन्द्र भी वहां आ प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ देवराज ऐरावतके ऊपर आरूढ थे, चारों ओरसे गन्धर्व गण उनको घेर रहे थे, उनके साथ किन्नरगण गान और अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं ॥ १४ ॥ उनके साथ लोकपालभी थे, विशेष क्या कहें वे सर्वथा विभूति युक्त थे, वृत्रासुर बिनाशी ऐसे ऐश्वर्य शाली इन्द्रको देख ॥ १५ ॥ पुलोमसुता शचीने उसे अपना पति बनाना चाहा, सुतराम् वह अपनी किसी सखीसे यों पूछने लगी कि इन्द्र किस प्रकार पति हो सक्ता है ॥ १६ ॥ यौवनोन्मुखी उस बालासे सखी कहने लगी, अनुकूल और सुन्दर पति पुण्य करनेसे प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ शास्त्रोंमें पुण्य तीन प्रकारका वर्णन किया है तीर्थसेवनजनित, दानजनित २ और व्रतसे उत्पन्न हुआ ३ चौथा और कोई पुण्य

व्रतभवं चतुर्थं नैव विद्यते ॥ १८ ॥ इदं हिमवतः स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥ अत्राराधय देवेशीं महादेवीं पुलोमजे ॥ १९ ॥ ततः संपत्स्यते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते॥इति सख्या वचः श्रुत्वा पुलोमतनया शची ॥ २० ॥ नबालकातटे पुण्ये देवर्षिगणसेविते ॥ चकार पूजनं देव्या अष्टम्यां विधिवन्मुने ॥ २१॥ धूपदीपैस्तु नैवेद्यैर्बलिभिश्च तथापरैः ॥ निराहारा तन्मनस्का देवीध्यानपरायणा ॥ २२ ॥ एवं तस्या ययौ कालो महान्वै वर्षसंमितः ॥ ततोर्द्धरात्रसमये ददर्श जगदंबिकाम् ॥ २३ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशां दीप्तज्वालां महेश्वरीम्॥दृष्ट्वा तां प्राणमद्भूमौ दण्डवत्पतिता शची ॥२४॥ पतिर्मे दीयतां शक्रस्त्वया विश्वविभाविनि ॥ एवमस्त्विति साप्युक्त्वा तत्रैवान्तर्दधे शिवा ॥२५॥ तद्वरस्य प्रभावेण वृता सेन्द्रेण वै शची॥ इतीदं कथितं विप्र यथा शच्या कृतं तपः ॥ २६ ॥ नबालकाप्रभावश्च यत्स्नानात्पुण्यमाप्नुयात् ॥ नित्यं स्नाति पुमान्यस्तु विधिना सरिति स्वयम् ॥ यत्फलं प्राप्यते तेन शृणु सर्वमशेषतः॥२७॥सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्व-

नहीं है ॥१८ ॥ यह हिमालय प्रदेश देवताओंके लिये भीं दुर्लभ है, सुतराम् हे पुलोमजे ! इसी स्थानमें तुम देवेश्वरी महादेवीकी पूजा करो ॥ १९ ॥ फिर जो कुछ तुम्हारे मनमें होगा, सब कुछ प्राप्त कर सकोगी । जब पुलोमसुता शचीने सखीके ऐसे वचन सुने ॥ २० ॥ तब हे मुनीवर ! अष्टमीके दिन देवर्षिगणसेवित नबालिकाके पवित्र तटके ऊपर उसने विधिवत् देवीका पूजन करा ॥ २१ ॥ धूप दीप नैवेद्य और बलि अर्पणकर आहार परित्याग पूर्वक वोह पुलोमसुता देवीहीके ध्यानमें तत्पर रही ॥ २२ ॥ उसे इस प्रकार करते २ जब बहुत वर्ष व्यतीत होगये, तब अर्द्धरात्रके समय उसे जगदम्बिकाके दर्शन हुए ॥ २३ ॥ दीप्तज्वालामहेश्वरीकी करोडों सूर्य्योंकी समान प्रभा थी उस देवीको देखकर शचीने भूमिमें दण्डकी समान गिर प्रणाम किया॥२४॥और यह कहा कि इन्द्र मेरा पति हो ऐसा वरमुझे दो॥ऐसाही हो इस प्रकार वरदे शिवा देवी उसी जगह गुप्त होगई॥२५॥ उस वरके प्रभावसे इन्द्रने शचीको व्याही॥हे विप्र ! जिस प्रकार इन्द्राणीने तप किया सो वर्णन करचुके ॥२६॥ और नबालकाका प्रभावभी कहचुके जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य पुण्यको प्राप्तहोता है, प्रतिदिन विधिसहित नबालकामें जो स्नानकरता है वह वैसाही फल पाता है जिसप्रकार शचीने मनोवाञ्छित पाया ॥ २७ ॥ सब यज्ञ करने,

तीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति तेन चैकेन कर्मणा ॥२८॥ इति ते कथितं दिव्यं दीप्तज्वालेश्वरीस्थलम् ॥ २९ ॥ इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे दीप्तज्वालेश्वरीमहात्म्यवर्णनं नामाष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

और सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उस एक कर्मसे भी वोही सब फल प्राप्त होताहै ॥२८॥ इस प्रकार हमने दीप्तज्वालेश्वरी स्थलका तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥२९॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायामष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

कोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १६९.

स्कंद उवाच ॥ अतः परं शृणु प्राज्ञ तत्पूर्वदिशि संस्थितः ॥ कंडुर्नाम महाभाग ब्रह्मर्षिर्नरपूजितः ॥ १ ॥ ततः स्थानं तस्य विप्र कथितं देवपूजनम् ॥ तत्र सरिद्वरा पुण्या कांडवी पुण्यगोचरा ॥ २ ॥ तस्यां स्नानान्नरो याति विमानवरमास्थितः ॥ नंदने विपिने दिव्ये ह्यप्सरोगणसेविते ॥ ३ ॥ गंधर्वैर्गीयमानस्तु नानाभोगपरिप्लुतः ॥ भुक्त्वा भोगं तत्र दिव्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥ पुनः पृथिव्यां संजातः सप्तद्वीपपतिर्भवेत् ॥ ४ ॥ उमा देवीति तत्रास्ति सर्वपापप्रणाशिनी ॥ तस्या दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥ सप्तरात्रं तु यस्तत्र देवीपूजनतत्परः ॥

स्कन्दजी बोले— हे प्राज्ञ ! अब इसके अगाड़ी सुनिये ! वहांसे पूर्व दिशाकी ओर हे महाभाग ! नरपूजित कंडु नाम महर्षि विराजमान हैं ॥ १ ॥ उनका वोह स्थान देव पूजित कहलाताहै, वहां काण्डवी नामकी एक श्रेष्ठ नदी है उसके दर्शन केवल पुण्यात्माओंको होते हैं ॥ २ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्य श्रेष्ठविमानमें आरूढ़ हो, अप्सराओंके द्वारा सेवन किये हुए नन्दनवनमें चला जाता है ॥ ३ ॥ गन्धर्वगण उसके समक्ष गान करते और अनेक भोग उसके लिये उपस्थित रहते हैं, दिव्य सहस्रवर्ष पर्य्यन्त उन भोगोंका उपभोग कर जब उस मनुष्यका भूमिके ऊपर जन्म होता है तब वोह सातों द्वीपका अधिपति होताहै ॥ ४ ॥ वहां सब पापोंका नाश करनेवाली उमा देवी है, उसके दर्शनमात्र करनेहीसे शिवलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको मिलते हैं ॥ ५ ॥ जो मनुष्य सात रात्री पर्य्यन्त वहां देवीजीकी पूजा करता है, उसे योगिदुर्लभ

स प्राप्नोति परां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम् ॥ ६ ॥ भाग्येन यस्त्यजेत्प्राणान् देवीसालोक्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ काण्डवी-स्नानतो विप्र तथोमायाः प्रपूजनात् ॥ प्रयाति भवनं देव्याः पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ तत्रास्ति शिवलिंगं वै केवलेश्वर-संज्ञितम् ॥ तस्य पूजनतो मर्त्यो रुद्रलोके वसेच्चिरम् ॥ ९ ॥ केवलेश्वरलिंगन्तु चतुर्वर्गप्रसाधनम् ॥ संश्रयेत ततस्तद्वै लिंगं परममद्भुतम् ॥ १० ॥ तस्य वै दक्षिणे भागे नदी कपिलका मता ॥ कपिलेन पुरा तत्र याता कपिलरूपिणी ॥ ११ ॥ स्नातः कपिलनीरिण्यां शिवलोके महीयते ॥ कपिलस्याश्रम-स्तत्र पूर्वभागे शुभार्थदः ॥ १२ ॥ ततो नारद पूर्वस्या दक्षि-णस्यास्तु मध्यमे ॥ राष्ट्रकूट इति ख्यातः पर्वतोऽतीव सुन्दरः ॥ ॥ १३ ॥ धर्मचिन्तकवैश्योत्र पूर्वं यो वै व्यवस्थितः ॥ लेभे च परमां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम् ॥ १४ ॥ तत्र दिव्यं सरस्तद्वद्वर्द्धनं सुखसंपदाम् ॥ संजज्ञे नरशार्दूल तत एव नदीद्वयम् ॥१५॥ अंतर्हितं सरस्तद्वै पापिनां चैव दुर्लभम् ॥

परम सिद्धिका लाभ होताहै ॥ ६ ॥ भाग्यवान् जिसके यहां प्राण छूट जाते हैं उसे देवीजीके सायु-ज्यका लाभ होता है ॥ ७ ॥ हे विप्र ! काण्डवीमें स्नान करने और उमादेवीकी पूजा करनेसे मनु-ष्योंको देवीलोककी प्राप्ति होती है, जहांसे फिर लौटना दुर्लभहै ॥ ८ ॥ वहां केवलेश्वर नाम एक शिवलिंग है, उक्त लिंगकी पूजा करनेसे भी मनुष्योंको चिरकाल पर्यन्त देवीलोकमें निवास प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ केवलेश्वर लिंग धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों वर्गको सिद्ध करनेवाला है, सुत-राम उस परम अद्भुतलिंगका आश्रय लेना चाहिये ॥ १० ॥ उसके दक्षिणभागमें कापिलनीरिणी नामवाली नदी है, प्राचीनकालमें कपिलजी वहां गये थे. तभीसे उसका कपिल वर्ण होगया है ॥ ११ ॥ कापिलनीरिणीमें स्नान करनेवाला मनुष्य शिवलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग करताहै, उसके पूर्वभागमें शुभ अर्थ दायक कपिलजीका आश्रम है ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर हे नारद ! पूर्व और दक्षिणके मध्यमें राष्ट्रकूट नाम एक परम सुन्दर पर्वत है ॥ १३ ॥ प्राचीन कालमें धर्मचिन्तक नाम जो वैश्य हुआ था उसे इसी स्थानमें, योगियोंको भी दुर्लभ ऐसी परम सिद्धिका लाभ हुआ था ॥ १४ ॥ वहां ही एक सुन्दर सरोवर सुख सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला है हे नरशार्दूल ! उसीमेंसे दो नदियोंका निर्गम हुआ है ॥ १५ ॥ वोह सरोवर पापियोंके

नबालकेति या प्रोक्ता तथैव रथवाहिनी ॥ १६ ॥ तद्दक्षिणे महाभाग योजनद्वयसंमिते ॥ भूमिभागे महालिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ १७ ॥ चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ तत्रैव गुञ्जिकागुल्मो नित्यं पुष्पैस्तु मंडितः॥तत्रैवास्ति जलं पुण्यं पीताभं पुण्यवर्द्धनम् ॥१८ ॥ वन्यश्रीकास्तु मुनयो रराधुः परमं शिवम् ॥ वन्यश्रीकेश्वरः ख्यातस्ततः सर्वेश्वरः शिवः॥१९॥ अतः परतरं नास्ति तीर्थं पुण्यतमं क्वचित् ॥ सिध्यत्यन्यत्र यद्वर्षैस्तदिहाह्नैव सिध्यति ॥२०॥ अधोभूमौ विले पुण्ये तस्य स्थानं परं मतम् ॥ गमनादेव लभ्यंते कार्य्याणि किमु पूजनैः ॥ २१ ॥ शिववासमिदं ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ गुह्यमेतन्मयाख्यातं न वक्तव्यं हि पापिषु ॥ २२ ॥ शिवा शिवश्चात्रासाते भुक्तिमुक्तिप्रदायकौ ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे उमादिवर्णनं नामैकोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

लिये दुर्लभ है, कारण कि अन्तर्हित (छिपा) रहता है, और उन दोनों नदियोंके नाम नवालका और रथवाहिनी हैं ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! वहांसे दक्षिणकी ओर दो योजनकी दूरी पर शीघ्र विश्वास करानेवाला एक महालिंग है ॥ १७ ॥ उसके चिह्नका वर्णन करते हैं, उससे तुम्हें विश्वास होजायगा, वहां गुंजाओंका गुच्छा नित्यही फूला रहताहै, और पुण्यवर्द्धनकारी वहांही पीतवर्णका जलहै ॥ १८ ॥ वन्यश्रीकोंने वहां महादेवजीकी आराधना करी थी, एक श्रीकेश्वर और दूसरे सर्वेश्वर महादेवजी हैं ॥ १९ ॥ इससे अधिक पवित्र और कहीं भी कोई तीर्थ नहीं है, जो कार्य्य अन्यत्र एक वर्षमें सिद्ध होता है, वोह यहां एक दिनहीमें सिद्ध होजाता है ॥ २० ॥ भूमिके नीचे एक पवित्र बिलमें उनका परम स्थान है, वहां जब जानेहीसे कार्य्य सिद्ध होजाते हैं तो फिर पूजनसे तो कहनाही क्या है ॥ २१ ॥ यह शिवका वास स्थानहै अतएव शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला है, यह गुप्तबात हमने तुम्हारे प्रति वर्णन करी है, पापियोंके अगाड़ी इसे प्रकाश न करना चाहिये ॥ २२ ॥ भोग और मोक्ष दोनोंहीके प्रदान करनेवाले पार्वती और महादेवजी यहां निवास करते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामेकोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७०.

स्कन्द उवाच ॥ ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे योजनत्रयसंमिते ॥ देवराष्ट्रेश्वरी ख्याता देवराज्यप्रदायिनी ॥ १ ॥ पूर्वं सा देवराजेन प्रार्थिता राज्यवृद्धये ॥ इयं ततो महाभाग देवराष्ट्रेश्वरी मता ॥ ॥ २ ॥ देवेश्वरो महादेवस्तत्रास्ते शिवदायकः ॥ ऐंद्री नाम नदी विप्र तत्र सौभाग्यदायिनी ॥३ ॥ इंद्रनेत्रोद्भवासौ हि नदी परमपाविनी ॥ यः स्नाति गुरुवारेऽस्यामिंद्रलोके वसेच्चिरम् ॥ ४ ॥ यस्तत्र निवसेन्मासं देवीभक्तिपरायणः ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति मानवः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवराष्ट्रेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१७०॥

स्कन्दजी बोले— वहांसे दक्षिणकी ओर तीन योजनकी दूरीपर देवराज्य प्रदान करनेवाली देवराष्ट्रेश्वरी देवी प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ प्राचीनकालमें राज्यकी वृद्धिके लिये देवराज इन्द्रने उक्त देवीका आराधन किया था, हे महाभाग ! तभीसे यह देवराष्ट्रेश्वरी देवी प्रसिद्धहैं ॥ २ ॥ कल्याण प्रदान करनेवाले देवेश्वर महादेवजी भी वहां विद्यमान हैं, एवं हे विप्र ! सौभाग्यदायिनी ऐन्द्री नाम नदी भी वहां बहती है ॥ ३ ॥ यह परम पवित्र नदी इन्द्रके नेत्रोंसे प्रादुर्भूत हुईहै, गुरुवारके दिन जो मनुष्य इसमें स्नान करता है वोह चिरकाल पर्य्यन्त इन्द्रलोकमें निवास पाताहै ॥ ॥ ४ ॥ जो मनुष्य देवीकी भक्तिमें तत्पर हो वहां एक मास पर्य्यन्त निवास करताहै, उसकी जो २ कामना हों सबही पूर्ण होजातीहैं ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तत्त्युरशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७१.

स्कन्द उवाच ॥ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे पुण्यकूटो महागिरिः ॥ पुण्यभाग्योदयाल्लभ्यो यत्र साक्षान्महेश्वरी ॥ १ ॥ तत्र नंदो महाराजस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ नंदप्रस्वेदसंभूता नंदनेति

स्कन्दजी बोले— वहांसे पश्चिम दिशाकी ओर पुण्यकूट नाम महापर्वत हैं, यदि भाग्यवशात् पुण्योंका उदय हो तबही इसकी प्राप्ति होती है, कारण कि— यहां साक्षात् महेश्वरी निवास करती हैं ॥ १ ॥ वहां ही नन्दमहाराजने दारुण तपका आचरण किया था, नन्दके

सरिद्वरा ॥ २॥ तत्र स्नात्वा व्रजेन्नाकं यावद्वर्षसहस्रकम् ॥ तत्रास्ते परमा देवी नाम्ना नंदेश्वरी परा ॥यस्या दर्शनमात्रेण देवीप्रीतिः प्रजायते ॥ ३ ॥ नंदेश्वरीं समभ्यर्च्य बलिपूजोपहारकैः ॥ सुवर्णाभविमानेन स गच्छेच्छिवमंदिरम् ॥ ४ ॥ तत्र नंदेश्वरो देवः सर्वदेवप्रपूजितः॥ अभिषेकं तु गांगेन यः कुर्यादंबुना मुने॥ स गच्छेत्प्रमथैः सेव्ये रुद्रलोके महामुने ॥ ५ ॥ इत्येतत्परमं गुह्यं पीठमुक्तं शिवप्रदम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नंदेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नामैकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

प्रस्वेदसे उत्पन्न हुई नन्दना नामकी श्रेष्ठ नदी भी वहां विद्यमान है, उसमें स्नान करनेसे सहस्रों वर्ष पर्य्यन्त स्वर्गलोकमें निवासप्राप्त होताहै ॥ २ ॥ उसी स्थानमें नन्देश्वरी नामकी बड़ी देवी जी हैं, वे केवल दर्शन करनेहीसे देवीजी प्रसन्न होती हैं ॥ ३ ॥ बलि पूजा और उपहारके द्वारा यदि नन्देश्वरीदेवीकी पूजा करी जाय तो, पूजन कर्त्ता जन सुवर्ण सदृश विमानमें आरूढ हो शिवलोकमें जाता है ॥४॥ वहांही सब देवताओंसे पूजित नन्देश्वर नामके महादेवजी भी विद्यमान हैं, हे मुने ! जो व्यक्ति गंगाजल द्वारा उनका अभिषेक करता है वह शिवगणोंके द्वारा सेवित रुद्रलोकमें जाके निवास करता है ॥ ५ ॥ यह परम गुप्त पीठ भोग और मोक्षका देनेवाला है ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामेकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७२.

स्कन्द उवाच ॥ ॥ ततो नैर्ऋत्यभागे वै नाम्ना सुंदरपर्वतः ॥ तत्र नारद देवेशः सुंदरेश्वरसंज्ञितः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा रुद्रलोके तु शुद्धो व्रजति पुण्यभाक् ॥ सुंदरेति सरित्ख्याता स्नातुः सौंदर्य्यदायिनी ॥ २ ॥ ततो गव्यूतिषट्के वै पश्चिमे निर्ऋतौ पुनः ॥

स्कन्दजी बोले—वहांसे नैर्ऋत्यकोणकी ओर सुन्दर नाम पर्वत है, वहां ही सुन्दरेश्वर नामके महादेवजी हैं ॥ १ ॥ उनके दर्शन करनेसे शुद्ध होकर पुण्यात्मा जन रुद्रलोककी यात्रा करते हैं, वहां ही सुन्दर नामकी एक नदी है, जो मनुष्य उसमें स्नान करते हैं उन्हें सुन्दरताकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ वहांसे छः गव्यूति अर्थात्—बारह कोसकी दूरी पर नैर्ऋत पश्चिमके मध्यमें भूरिदेव नाम

अद्रिरस्ति महापुण्यों भूरिदेव इति श्रुतः ॥३॥ अत्रिवंश्यो द्विज-
श्रेष्ठो भूरिदेव इति श्रुतः ॥ तेनात्र तपसा शंभुः स्तुतोऽसौ भूरि-
देवकः ॥ ४ ॥ भूरिदेवा तत्र नदी पातकाद्रिपविर्द्विज ॥ स्नात्वा
वै भरिदेवायां दृष्ट्वा लिंगद्वयं मुने ॥ गच्छेद्वै परमां सिद्धिं यामा-
प्त्वा नैव शोचति ॥ ५ ॥ नबालकायां सा यत्र संगता ह्यति-
पुण्यदा ॥ भवनाशनकं नाम तत्र तीर्थमुदाहृतम् ॥ ६ ॥ तत्र
त्यक्त्वा शुभान्प्राणान्न पुनर्भवमाव्रजेत् ॥ ततो वै शंभुकोणे च
परे पारेनबालकम् ॥ भवानीति च विख्याता भवबंधविमोचि-
नी ॥ ७ ॥ सप्तरात्रं निराहारो यस्तत्र व्रतमाचरेत् ॥ साधये-
त्सर्वकर्माणि तथा सर्वमनोरथान्॥८॥नद्योर्द्वयोः संगमे तु भवमो-
चननामके ॥ यो ददाति नरो गां वै रुद्र एव न संशयः ॥९ ॥
आश्विनस्य नवम्यां वै बलिमस्यै प्रयच्छति ॥ स भवेन्नरशार्दू-
लो वाजिवारणवाहकः ॥१०॥ ततो वै दक्षिणे पार्श्वे शिह्लो नाम
महागिरिः ॥ तत्र सिह्लो महाभिल्लो महादेवमथास्मरत् ॥ ११ ॥

अतिशय पवित्र एक पर्वत है ॥ ३ ॥ अत्रिके वंशमें एक भूरिदेव नाम श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उन्हों-
हीने तप करके महादेवजीको यहां सन्तुष्ट किया था इस लिये इस पर्वतका नाम भूरिदेव विख्यात
हुआ है ॥ ४ ॥ हे द्विजराज ! पापोंके पर्वतका विनाश करनेके लिये वज्रकी समान भूरि-
देवा नामकी वहां नदी विद्यमान है, भूरिदेवामें स्नान करनेसे ऐसी परम सिद्धिका लाभ होता
है, जहां जाकर शोच करना नहीं होता ॥ ५ ॥ अतिशय पुण्यदायिनी वोह नदी जहां नबालकाके
साथ मिलीहै, वहां भवनाशन नामका तीर्थ वर्णन किया गया है ॥ ६ ॥ वहां शुभ प्राण
परित्याग करनेसे फिर संसारमें आना नहीं होता, वहांसे ईशानकोणकी और नबालकाके पार सांसा
रिक (जन्ममरण आदि) बन्धनोंका विनाश करनेवाली भवानी नामकी देवी विख्यात हैं ॥ ७ ॥
जो मनुष्य सातरात्री पर्य्यन्त निराहार रहकर व्रतका आचरण करता है, वोह सब कर्म और सब
मनोरथोंको सिद्ध करलेता हैं ॥ ८ ॥ जहां दोनों नदियोंका संगम है वहां भवमोचन नाम तीर्थमें
जो मनुष्य गोदान करता है, निस्सन्देह उसे रुद्र स्वरूप जानना चाहिये ॥ ९ ॥ जो मनुष्य
आश्विनमासकी नवमीके दिन, देवीके निमित्त बलिप्रदान करता है, वोह श्रेष्ठ मनुष्य हाथी घोड़ों
का चलानेवाला होता हैं ॥ १० ॥ उसीके दक्षिणभागमें शिह्ल नाम महा पर्वत है, उसीके ऊपर

ततोऽयं पर्वतो ख्यातस्तन्नाम्ना लक्षितो भृशम् ॥ रेणु-
का च नदी तत्र वामभागे दशार्द्धके ॥ गव्यूतौ सा महाभाग
सरिदस्ति मनोहरा ॥ १२ ॥ तस्या जलस्पर्शनाद्वै रुद्रलोके
महीयते ॥ १३ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे नदी श्वेततरंगिणी ॥
तयोस्तु संगमे विप्र स्नानाद्रुद्रसमो भवेत् ॥ १४ ॥ ततो नैर्ऋ-
त्यकोणे वै करींद्राद्रिः प्रकीर्त्तितः ॥ करिणी नाम तत्रास्ति
नदी पुण्यतमा किल ॥ १५ ॥ तत्संगमे महाभाग तीर्थं भैरव-
संज्ञकम् ॥ स्नात्वा जपेत्तु तत्तीर्थे तुष्टः स्यात्तस्य भैरवः ॥
॥ १६ ॥ ततः पर्वतके मूर्ध्नि मंदिरेश्वरनामकः ॥ शिवोऽस्ति
पूजनाद्यस्तु ददाति निजमंदिरम् ॥ १७ ॥ ततोऽधो दक्षिणे पार्श्वे
नदी भद्रतरा परा॥भृगुपत्नीति विख्याता द्वितीयोत्तरवाहिनी ॥
॥ १८ ॥ तयोस्तु संगमे तीर्थं दारिद्र्यविनिवारणम् ॥ यत्र
लक्ष्मीः स्वयं विप्र नित्यं वसति भूतिदा॥१९॥तत्र वै स्नानमात्रेण
लक्ष्मीवाञ्जायते नरः ॥ तस्याः पारे परा पुण्या धारा रोगविना-
शिनी ॥ २० ॥ ततः पूर्वदिशि ब्रह्मन्योजनत्रयसंमिते ॥ वीरिणी-

सिहल नाम भिल्लने महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ ११ ॥ इसी कारण यह पर्वत उसके नाम से विख्यात हुआ है, वहांसे दश कोसकी दूरी पर रेणुका नामकी एक नदी है ॥ १२ ॥ उसके जलका स्पर्श करनेसे मनुष्य अवश्यही रुद्रलोकमें ऐश्वर्योंका उपभोग करता है ॥ १३ ॥ वहांसे पश्चिम दिशाकी ओर श्वेत तरंगिणी नामकी नदी है, हे विप्र ! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य अवश्यही महादेवजीकी समान होजाता है ॥ १४ ॥ वहांसे नैर्ऋत्यकोणमें करीन्द्राद्रि नाम एक पर्वत है, और करिणी नामकी एक पवित्र नदी भी वहां विद्यमानहै ॥१५॥ हे महाभाग ! उक्त नादियोंके संगममें भैरवसंज्ञक तीर्थ है, जो मनुष्य उसके तटपर स्नानादिकरताहै उसके स्नान और जप करनेसे भैरवजी प्रसन्न होते हैं॥१६॥ वहांही पर्वतके शिखरके ऊपर मन्दिरेश्वर नाम महादेवजी हैं, वे पूजन करनेवा-लेको अपना लोक प्रदान करते हैं ॥ १७ ॥ उनके दक्षिणभागमें भद्रतरा नामकी नदी है, वह उत्तर वाहिनी दूसरी नदी है और उसे भृगुपत्नी कीर्त्तन कियागया है ॥ १८ ॥ उसके संगममें दारिद्र्य विनिवारण तीर्थहै, हे विप्र ! वहां ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली लक्ष्मीजी स्वयं निवास करती है ॥ १९ ॥ वहां केवल स्नानमात्र करनेहीसे मनुष्य लक्ष्मीवान् होजाता है, उसके पार रोग विना-शिनी धाराहै ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! वहांसे पूर्व दिशाकी ओर तीन योजनकी दूरी पर पुण्यप्रदान

ति समाख्याता सरिदस्ति सुपुण्यदा ॥ २१ ॥ अन्या च भरणी नाम तयोः संगस्तु पुण्यदः ॥ तत्रास्ति भृगुकुंडं तु यत्र स्नात्वा हरिर्भवेत् ॥ २२ ॥ इति ते कथितान्येव महातीर्थानि नारद ॥ येषां संदर्शनादेव मुच्यंते पापराशयः ॥ २३ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि गंगायाः सुतटे मुने ॥ इंद्रप्रयागतो याम्ये गव्यूतिद्वयसंमिते ॥ तीर्थं वैनायकं नाम सर्वविघ्ननिवारणम् ॥ २४ ॥ वैशाखे मासि यस्तत्र नित्यं च स्नानमाचरेत् ॥ तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपेण महामते ॥ २५ ॥ गंगाद्वारे त्रयो मासाः प्रयागे माघसप्तकम् ॥ नैमिषे कार्तिकाष्टौ च बदर्यां च चतुष्टयम् ॥ आषाढादिचतुर्मासं तेन स्नातं महात्मना ॥ २६ ॥ येन तत्र महाभाग दत्ता किंचिद्वसुंधरा॥ सप्तजन्मसु पृथ्वीशो वाजिवारणभूमिपः ॥ जायते नात्र संदेहस्ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ इति ते कथितानीह तीर्थश्रेष्ठानि नारद ॥ अशेषेण पुनर्वक्तुं न शक्नोति शिवोपि हि ॥२८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डेऽनेकतीर्थाभिधानवर्णनं नाम द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

करनेवाली वीरिणी नामकी नदी है ॥ २१ ॥ दूसरी भरणी नदीहै, इन दोनोंका संगम अतिशय पुण्यप्रदान करनेवाला है, वहां ही भृगु कुण्डहै उसमें स्नान करनेसे मनुष्य साक्षात् नारायण स्वरूप होजाता है ॥ २२ ॥ हे नारद ! इस प्रकार हमने बड़े २ तीर्थोंका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, उनके केवल दर्शनमात्र करनेहीसे पाप राशियोंका विनाश होजाता है ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर ! इन्द्रप्रयागसे दक्षिणकी ओर चार कोसकी दूरी पर गंगाजीके तटके ऊपर समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाला वैनायक तीर्थहै, सो अब हम उसीका वर्णन करते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य वैशाखमासमें वहां स्नान करता है, हे महामते ! उसके पुण्य फलका संक्षेपहीसे मैं वर्णन करता हूं ॥ २५ ॥ गंगाद्वारमें तीनमास पर्यन्त, प्रयागमें सात माघ, नैमिषारण्यमें आठ कार्त्तिक और बदरीमें आषाढ आदि चार मासमें मानो उस महात्माने स्नान करलिया ॥ २६ ॥ हे महाभाग । यदि किसीने वहां तनिकसी भी भूमिका दान किया हो तो वह जन्म पर्य्यन्त हाथी घोडे और भूमिका अधिपति होकर राजा होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं इसके अनन्तर उसकी मुक्ति होजाती है ॥ २७ ॥ हे नारद ! इस प्रकार हमने श्रेष्ठ तीर्थोंका तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, और इनका सम्पूर्णतया वर्णन करनेको तो महादेवजी भी समर्थ नहीं होसक्ते है ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७३.

नारद उवाच ॥ ॥ अन्यान्यपि महाभाग शिवतीर्थानि वह्निज ॥ नोक्तानि तानि ते मह्यं गुह्यान्यपि वद प्रभो ॥ १ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ गुह्यं परमकं पीठं शृणु विप्र महार्थदम् ॥ वात्सल्यात्तव सर्वं हि कथ्यते वै रहस्यकम् ॥ २ ॥ कुब्जाम्रकमहाक्षेत्रादीशानदिशि संस्थितः ॥ योगेश्वरो महादेवो गंगायाः पश्चिमे तटे ॥ ३ ॥ तत्रैव मुनयो विप्र परमं योगमास्थिताः ॥ ते प्रापुः परमां सिद्धिं ततो योगीश्वराः स्मृताः ॥ ४॥ तत्र वै भगवान्पूर्वं त्रिपुरस्य वधोद्यमे ॥ चकार युद्धसामग्रीं सर्वदेवहितेच्छया ॥ ५ ॥ ब्रह्मणा विष्णुनात्रैव संस्तुतः परमेश्वरः ॥ चकारात्रैव वसतिं योगिरूपो महेश्वरः ॥ ६ ॥ गंगावासवयोर्मुने ॥ संगमे पुण्यगम्ये हि तत्र स्नातः शिवं व्रजेत् ॥ ७ ॥ सूर्यकुंडं च तत्रैव श्रीशिवस्य समीपतः ॥ गंगाकूले महाभाग हयमेधफलप्रदम् ॥ ८ ॥ अतिपुण्यतमं पीठं मूढानामपि सिद्धिदम् ॥ तत्र यः परमेशस्य पीठे परमभास्वरे ॥ ९ ॥

नारदजी बोले—हे महाभाग वह्निकुमार ! महादेवजीके अन्यान्य जो तीर्थ आपने हमारे प्रति वर्णन न किये हों, यदि वे गोपनीय हों तथापि आप हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ १ ॥ स्कन्दजी बोले—सुनो विप्र ! प्रभूत अर्थ प्रदान करनेवाला गोपनीय एक शिवपीठ है, तुम्हारी वत्सलताके कारण अत्यन्त गुप्त होनेपर भी हम उसका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ कुब्जाम्रकक्षेत्रसे ईशानदिशाकी ओर गंगाजीके पश्चिमी तट पर योगेश्वर नाम महादेवजी उपस्थित हैं ॥ ३॥ हे विप्र! वहां योग साधन करनेवाले मुनीश्वरोंको परम सिद्धिका लाभ हुआ था, इसीसे वे महादेवजी योगीश्वर कहलाते हैं ॥ ४ ॥ और उसी स्थानमें भगवान् महादेवजीने त्रिपुरासुरका वध करनेकी कामना करके सब देवताओंके हितकी अभिलाषासे युद्ध सामग्री एकत्रित की थी ॥ ५ ॥ जब ब्रह्माजी और विष्णुने भी परमेश्वरकी स्तुति करी, तब वे योगीरूपसे यहांही निवास करनेलगे ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! वहांही शिवतीर्थ विद्यमान है, पुण्यात्मा व्यक्तियोंहीको उसकी प्राप्ति होती है अत एव उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य शिवलोकमें जाताहै ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! अश्वमेध यज्ञके फलको देनेवाला सूर्यकुण्डभी वहांही गंगाजीके तट पर महादेवजीके निकट विद्यमानहै ॥ ८ ॥ वोह पीठ अत्यन्त ही पवित्र होनेके कारण मन्दभागियोंको भी मोक्ष प्रदान

अहोरात्रत्रयं कश्चिज्जपेद्धैर्ययुतो नरः ॥ निराकृत्य तु विघ्नानि स स्वयं वृषभध्वजः ॥ १० ॥ तस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ अत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ११ ॥ अत्र स्वयं महादेवो वसते सर्वभावतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवमाराधयेदिह ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे योगाश्विर-माहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

करताहै, जो मनुष्य वहां महादेवजीके स्वच्छ पीठमें ॥ ९ ॥ धैर्य्य धारण पूर्वक तीन रात्रिदिन पर्य्यन्त मन्त्रका जप करता है वोह सब विघ्नोंका निराकरण कर स्वयं महादेव स्वरूप होजाताहै ॥ १० ॥ उसके केवल दर्शनमात्र करनेहीसे पापोंका विनाश होताहै, और यहां जो कुछ भी कर्म किया जाय वोह सब करोड गुणा अधिक होजाता है ॥ ११ ॥ यहां महादेवजी सब भावोंसे निवास करते हैं, अत एव सर्वथा यत्नपूर्वक यहां महादेवजी की आराधना कर्त्तव्यहै ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

चतुःसप्तत्युत्तरशततमोध्यायः १७४.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अथान्यदपि देव्यास्तु पीठं परमकं परम् ॥ अलकनंदापूर्वतटात्पूर्वभागे महार्थदम् ॥ १ ॥ यत्र पूर्वं महाराजो वेणुर्नाम तपोऽकरोत् ॥ २ ॥ ततो वै पश्चिमे पार्श्वे योजनद्वयसम्मिते ॥ विश्वाधारे महापुण्ये पर्वते द्विजसत्तम ॥ अतिपुण्यतमं पीठं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३ ॥ तत्र ताम्राचले दिव्ये महादेवी व्यवस्थिता ॥ गुह्येश्वरीति विख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ४ ॥ अतिगुह्यतमाख्याता नाम्ना

स्कन्दजी बोले— इसके पश्चात् अब एक परम गोपनीय देवी पीठका वर्णन करते हैं, विपुल अर्थप्रद वोह पीठ अलकनन्दाके पूर्वतटमें पूर्वही की ओर है ॥ १ ॥ उसी स्थानमें पहिले वेणुनाम महादेवजीने तपका आचरण किया था ॥ २ ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर दो योजनकी दूरी पर हे द्विजराज ! विश्वाधार महान् पर्वतके ऊपर आतिशय पवित्र अत एव सब सिद्धियोंका देनेवाला एक पीठ है ॥ ३ ॥ वहांही दिव्य ताम्राचलके ऊपर गुह्येश्वरी नामकी महादेवी विराजमान हैं, यह देवीजी सर्व सिद्धियोंकी प्रदान करने वाली हैं ॥ ४ ॥ कारण कि वे अत्यन्त

गुह्येश्वरी यतः ॥ वर्षमध्ये द्विवारं स्यात्तत्र दर्शनगोचरा ॥ ५ ॥ दृष्टा यदा तदा देवी समूलं नाशयेन्नरम् ॥ अनेकजन्मजपिता देवी परमासिद्धिदा ॥ ६ ॥ येनात्र स्थीयते विप्र तस्य सिद्धिः स्थिरान्विता ॥ तत्रैव भैरवो दिव्यो दृषद्रूपो भयानकः ॥ ७ ॥ रात्रौ तिष्ठति यस्तत्र तं विभीषयति ध्रुवम् ॥ धैर्यहीनस्तु यस्तत्र तिष्ठते मुग्धमानसः ॥ अथवा म्रियते विप्र वातुलो वा नरो भवेत् ॥ ८ ॥ तस्माद्धैर्येण संयुक्तो निवसेत्तत्र पीठके ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गुह्येश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

गुप्त हैं अत एव उनका गुह्येश्वरी नामहै, और वर्षभरमें केवल दो बार उनके दर्शन होते हैं ॥ ॥ ५ ॥ उनके अन्य समय दर्शन होनेसे मनुष्यका समूल विनाश होजाताहै, अथ च अनेकजन्म पर्य्यन्त जपकरनेसे देवी परमसिद्धि प्रदान करती हैं ॥ ६ ॥ हे विप्र ! जो मनुष्य यहां स्थिति करताहै, उसकी सिद्धि भी स्थिर होती है । वहांही पाषाणरूपी भयानक दिव्य भैरवजी भी विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य वहां रात्रिमें स्थितिकरताहै उसे भैरवजी अवश्य डराते हैं, जो मनुष्य धैर्यसे च्युत अत एव मनमें मुग्ध होकर वहां रहताहै, वह हे विप्र ! मानो मरहीजाता है अथवा वाचाल (उन्मत्त जैसा बकवादी) होजाताहै ॥ ८ ॥ अत एव धैर्य्य धारणपूर्वक उक्त पीठमें निवास कर्त्तव्यहै ॥ ९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७५.

स्कंद उवाच ॥ ॥ ततः पूर्वदिशायां तु पीठमन्यन्महामते ॥ नंदभद्रेश्वरी यत्र सर्वदेवनमस्कृता ॥ १ ॥ नंदभद्रो महाराजो हृतराज्यो ह्यरातिभिः॥समारराध देवेशीं पुत्रराज्याप्तये पुनः ॥२॥

स्कन्दजी बोले—हेमहामतिमान् ! वहांसे पूर्वदिशाकी ओर एक और पीठ है, वहां सबदेवताओंसे नमस्कृत नन्दभद्रेश्वरी नामकी देवी निवास करती हैं ॥ १ ॥ जब महाराज नन्दभद्रका राज्य उनके शत्रुओंने अपहरण करलिया, तब उन्होंने पुत्र और राज्य प्राप्तिकी कामनासे देवेश्वरीकी आ-

लब्धवांश्च पुरा राज्यं देव्याश्चैव प्रसादतः॥ इयं ततः समाख्याता नंदभद्रेश्वरी मुने॥३॥यस्तस्या मानवो भक्त्या शरत्कालेऽर्चनं मुने ॥ प्रकरोति गतिस्तत्र यत्र सा परमेश्वरी॥४॥ तत्र मेनेति विख्याता सुपुण्या सरिदुत्तमा ॥ जलस्पर्शेन तस्यास्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ५ ॥ तस्मिन्नेव महाभाग वामभागे सुसिद्धिदा ॥ गुणश्रीरिति विख्याता देव्यसौ त्रिगुणात्मिका ॥ ६ ॥ त्रेतायां सात्त्विकी मूर्त्तिर्द्वापरे राजसी मता ॥ कलौ सा तामसी देवी ततोऽसौ त्रिगुणात्मिका ॥ ७ ॥ त्रेतायां सा महाभाग विष्णुनाराधिता परा ॥ द्वापरे ब्रह्मणा विप्र कलौ रुद्रेण सेविता ॥ ८ ॥ इयं ततः समाख्याता गुणश्रीरिति विश्रुता ॥ तस्या दर्शनमात्रेण नरो धन्यत्वमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ गृहस्थैश्च सदा पूज्या धनधान्यविवर्द्धिनी ॥ पुत्रपौत्रादिसंपत्तिं ददाति परिपूजिता ॥ ॥ १० ॥ नारायणीति विख्याता तत्रास्ति सरिदुत्तमा ॥ तस्यां

राधना करी थी ॥ २ ॥ तब उन्हें देवीजीकी कृपासे फिर राज्यकी प्राप्ति होगई थी, हे मुनीश्वर! उसी दिनसे इनका नन्दभद्रेश्वरी नाम हुआ है ॥३॥ हेमुनिराज ! जो मनुष्य शरत् कालमें भक्तिभाव पूर्वक उनकी अर्चना करता है, उसकी देवीजीके निकट गति होती है ॥ ४ ॥ वहां मेना नामकी परम पवित्र एक उत्तम नदी भी विख्यात है उसके जलका केवल स्पर्श मात्र करनेसे मनुष्यके सर्व पातक मुक्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ हेमहाभाग ! उसीके वाम प्रदेशमें सुन्दरसिद्धियोंकी देनेवाली गुणश्री नामकी त्रिगुणात्मिका देवी विख्यात हैं ॥ ६ ॥ उक्तदेवीजीकी त्रेतामें सात्त्विकी, द्वापरमें राजसी और कलियुगमें तामसी मूर्ति मानी गई है अतएव वे त्रिगुणात्मिका कहाती हैं॥ ७ ॥ हेमहाभाग ! त्रेतामें विष्णुभगवान्‌ने द्वापरमें ब्रह्माजीने और कलियुगमें रुद्रने उनकी आराधना करी थी ॥ ८ ॥ इसी हेतुसे इन्हें गुणश्री कहकर विख्यात किया गया है, उनके केवल दर्शन मात्रकरनेही से मनुष्य धन्य हो जाता है ॥ ९ ॥ चूंकि उक्तदेवीजी धन धान्यकी वृद्धि करने वाली हैं, अतएव गृहस्थियोंको उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिये, पूजा किये जानेपर भगवतीजी पुत्र पौत्र आदि सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥ १० ॥ नारायणी नामकी एक उत्तम नदी विख्यात है, हे मुने ! उसमें

स्नानान्नरो याति गतिं परमिकां मुने ॥ ११ ॥ चंडमुंडगिरिस्तत्र ततः पूर्वदिशि स्मृतः ॥ तमपूज्य महाभाग कार्यं किंचित्करोति यः ॥ नाशमायाति तत्कार्यं स च वै दुःखितो भवेत् ॥ ॥ १२ ॥ तत्र संस्थायिभिस्तस्मात्संतपूज्यः प्रथमं नरैः ॥ इति ते परमं स्थानं कथितं मुनिपुंगव ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे नंदभद्रेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

स्नान करनेसे मनुष्यको परमगतिका लाभ होता है ॥ ११ ॥ वहांसे पूर्व दिशाकी ओर चण्डमुण्ड नामका एक पर्वत है, हे महाभाग ! जो मनुष्य उसकी पूजा विना किये कुछ कार्य्य करता है, वह कार्य्य तो सर्वनष्ट होजाताहै, और वह कर्त्ता अति दुःखित होता है ॥ १२ ॥ अत एव वहां निवास करने वाले पुरुषोंको चाहिये कि प्रथम उसकी पूजा करें । हे मुनिपुंगव! इस प्रकार हमने आपके प्रति इस परमस्थानका वर्णन किया है ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७६.

सूत उवाच ॥ ॥ इति तन्नारदः श्रुत्वा स्कंदेन समुदीरितम् ॥ आश्चर्यं परमं प्राप श्रुत्वा तत्तीर्थवैभवम् ॥ १ ॥ आनंदं च समापन्नो न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥ पुनः स्वस्थो महाभाग पर्य्यपृच्छद्भवापहम् ॥ माहात्म्यं तीर्थवर्याणां भक्तिनम्रो महामुनिः ॥ २ ॥ सोऽपि स्कंदो महाभागः कथयामास पूर्ववत् ॥ तीर्थानां चैव माहात्म्यं पीठानां च महर्षयः ॥ ॥ ३ ॥ हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे क्षेत्रराजो भवापहः ॥ यत्रास्त्यल-

सूतजी बोले— जब नारदजीने स्कन्दजीके ऐसे वचन सुने, तब तीर्थराजका वैभव (माहात्म्य) श्रवण कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १ ॥ उन्हें इतना हर्ष हुआ कि प्रथम तो वे कुछ बोलही न सके, फिर महाभाग मुनीश्वर सावधान हो भक्तिभाव पूर्वक नम्रता ग्रहणकर संसारसे निवृत्ति कराने वाले श्रेष्ठ २ तीर्थोंके माहात्म्य पूछने लगे ॥ २ ॥ हे महर्षियो तब महाभाग स्कन्दजीने भी पहिलेहीकी समान तीर्थों और पीठोंका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ३ ॥ हिमालयके दक्षिण भागमें

---

१ चण्डकूट गिरिस्तत्रेत्यपि पाठः ।

कनंदाख्या गंगा परमपाविनी ॥ ४ ॥ तथा नानाविधानीह ती-
र्थानि मुनिपुंगवाः॥ यत्र श्रीश्च महादेवी समग्रा वर्त्तते पुरा॥५॥
कथितं विस्तरात्तेन शिवरूपेण धीमता ॥ नाम्ना श्रीक्षेत्रकं
पुण्यं महादेव्या निवासभूः ॥ ६ ॥ नानारूपेश्वरस्तत्र तथा संति
सरिद्वराः ॥ लिंगानि बहुरूपाणि तत्र संति महामते ॥ ७ ॥
पुण्यं पवित्रमाख्यानं सर्वपापक्षयावहम् ॥ तत्र ब्रह्मादयो देवास्त-
पस्तेपुस्तथर्षयः ॥८॥ इदं परमकं गुह्यं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
यत्रोत्फालकनामा वै मुनीशो मुनिसत्तमाः ॥ तपश्चात्र परं तप्त्वा
सर्वयोगीश्वरोऽभवत् ॥ ९ ॥ कुबेरोऽपि महाभाग त्विहैव तपसि
स्थितः ॥ संप्राप परमामृद्धिं लोकपालश्च सोऽभवत् ॥ १० ॥
अत्र सर्वे देवगणा निलीना भयकंपिताः ॥ अत एव पुरा प्रापुः
स्वंस्वं स्थानं मुनीश्वर ॥ ११ ॥ आयुःपुत्रो महाराजो नहुषो
नाम विश्रुतः ॥ जगामात्रैव परमामृद्धिं परमदुर्लभाम् ॥ १२ ॥
यत्रार्जुनः पांडुपुत्रस्तपस्तेपे मुनीश्वराः ॥ शस्त्रं पाशुपतं नाम

जहां परमपाविनी अलकनन्दा नामकी गंगाजी हैं, वहाँही सांसारिक भयमिटानेवाला एक श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥ ४ ॥ हे मुनिपुंगवो ! यहां अनेक प्रकारके तीर्थ भी विद्यमान हैं, एवं श्रीमहादेवीजी भी यहां संपूर्णतया विराजमान रहते हैं ॥ ५ ॥ इसीकारण बुद्धिमान् शिवपुत्रने उसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया, यह महापवित्र श्रीक्षेत्र महादेवीजीके निवासका स्थल है ॥ ६ ॥ वहां अनेक शिवलिंग और बहुतसी श्रेष्ठ २ नदियें हैं, एवं हे महामतिमान् ! महादेवजीभी वहां अनेक विद्यमान् हैं ॥ ७ ॥ यह आख्यान अतीव पवित्र अत एव पापोंका क्षय करनेवाला है, अथ च उसी स्थानमें ब्रह्माजीने तथा अन्य ऋषियोंने तप किया था ॥ ८ ॥ यह परम गोपनीय स्थान शीघ्रही विश्वास करानेवाला है, हे मुनीश्वरो ! इसी स्थानमें उत्फालक नाम महर्षिने तप करके परम योगीश्वरत्वका लाभ किया था ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! यहां ही कुबेरभी तपश्चर्यामें व्रती हुए थे तभी उन्हें परम ऋद्धिका लाभ हुआ सुतराम् वे लोकपालभी होगये ॥ १० ॥ सब देवतागणभी भयभीत हो यहांही छिपे थे, फिर हे मुनीश्वर ! यहांसे उन्हें अपने २ स्थानकी प्राप्ति हुई थी ॥ ११ ॥ महाराज नहुषकोभी इसी स्थानमें परमदुर्लभ सिद्धिका लाभ हुआ था ॥ १२ ॥ हे मुनीश्वरो ! पाण्डुनन्दन अर्जुननेभी यहां ही तप किया था, तब उन्हें महादे-

प्राप देवान्महेश्वरात् ॥ १३ ॥ अजेयः सर्वसैन्यानामभूत्कुन्ती-
सुतोऽर्जुनः ॥ देव्याच निहतौ यत्र चंडमुंडौ महासुरौ ॥ १४ ॥
सत्यसंधेन वै राज्ञा निहतः कोलरूपधृक् ॥ इदं क्षेत्रं महाभागाः
श्रुत्वा ब्रह्मसुतो मुनिः ॥ हर्षं च परमं प्राप क्षेत्राण्यन्यानि पृष्ट-
वान् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं
नाम षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

वजीके सकाशसे पाशुपत अस्त्रकी प्राप्ति हुई थी ॥ १३ ॥ सुतराम् कुन्तीनन्दन अर्जुन सब योधा-
ओंकेलिये अजेय होगये । देवीजीने भी चण्डमुण्ड महादैत्योंका इसी स्थानमें वध किया था ॥१४॥
अथ च सत्यसन्ध महाराजने यहां ही किरातका वध किया था, हे महाभाग ! इस क्षेत्रकी महिमा
सुनकर ब्रह्मकुमार महर्षि नारदजीको बडा हर्ष हुआ, एवं वे अन्यान्य क्षेत्रोंके विषयमें प्रश्न
करने लगे ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७७.

ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाबाहो व्यासप्रतिनिधे शुभ ॥ श्री-
क्षेत्रं पुण्यदं लोके श्रूयते हि महामते ॥ १ ॥ कियत्प्रमाणं
तत्क्षेत्रं कुत्र तद्विद्यते बुध ॥ उत्पत्तिं चैव माहात्म्यं तस्य विस्त-
रतो वद ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनिशार्दूला मत्तो निग-
दतो द्विजाः॥यथा पुरा महासेनं पृष्टवान्नारदो मुनिः॥३॥ एकदा
सुखमासीनं स्कंदं वै पार्वतीसुतम् ॥ उवाच वचनं रम्यं नारदो
मुनिसत्तमः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव महासेन भक्तानां

ऋषि बोले—हे कल्याणमूर्त्ति महाबाहो सूतजी महाराज ! आप व्यासजीके प्रीतिपात्र और
मतिमान् हैं, संसारमें जो श्रीक्षेत्र पुण्यदायक सुनाजाता है ॥ १ ॥ उसका कितना प्रमाण है
और हे बुध ! वह क्षेत्र कहां हैं ? सुतराम् उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको विस्तार पूर्वक वर्णन
करिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! जैसे प्राचीन कालमें मुनिवर नारदजीने स्कन्दजीसे
प्रश्न किया था, उसीका हम वर्णन करते हैं, आपलोग सुनिये ॥ ३ ॥ एक समय पार्वतीपुत्र
स्कन्दजी महाराज सुख पूर्वक बैठेहुए थे, तब श्रेष्ठमुनीश्वर नारदजी महाराज उनसे रम्यवचन
कहने लगे ॥ ४ ॥ नारदजी बोले—हे भक्तवत्सल देवाधिदेव स्कन्दजी महाराज ! पुण्यदायी

भक्तवत्सल ॥ अनेकविधतीर्थानां पुण्यदानं महामते ॥ ५ ॥ माहात्म्यानि सुरम्याणि कथाभिश्च जगत्प्रभो ॥ श्रुतानि त्वन्मुखादेव सर्वदेवनमस्कृत ॥ ६ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं श्रीस्थलस्य हि ॥ कियत्प्रमाणं तत्क्षेत्रं किं पुण्यं तत्र जायते ॥ ॥ ७ ॥ कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं कथं पुण्यतमं ह्यभूत् ॥ एतन्मे शंस भगवन्पार्वतीसुत नायक ॥ ८ ॥ स्कंद उवाच ॥ साधु पृष्टं महाबाहो परोपकृतये त्वया ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि शृणु नारद भक्तिमन् ॥ ९ ॥ कोलोत्तमांगमारभ्य यावत्कोलकलेवरम् ॥ तावच्छ्रीसंज्ञकं क्षेत्रं योजनानां चतुष्टयम् ॥१०॥ योजनानां त्रयं ख्यातं तिर्यगायतमेव च॥अतिपुण्यतमं क्षेत्रं सर्वशास्त्रेषु गोपितम्॥ ॥११॥इदं स्थूलतमं ज्ञेयं सूक्ष्मं तु कथ्यतेऽधुना॥जीवनेन्द्रपुराद्विप्र यावद्वर्षवती नदी ॥ इति सूक्ष्मं हि कथितं ह्यतिसूक्ष्मं निगद्यते॥ ॥ १२ ॥ खांडवाख्यनदीतीराद्यावच्छिविपुरं भवेत् ॥ यस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ धर्मनेत्र इति श्रुतः ॥ १३ ॥ राजा परमधर्मज्ञः स

अनेक तीर्थोंके माहात्म्य ॥ ५ ॥ कथाओंके द्वारा आपके मुखकमलसे, हे सर्वदेवपूजित ! हमने श्रवण करे ॥ ६ ॥ अब मैं श्रीस्थलके माहात्म्यको सुनना चाहताहूं उसका कितना प्रमाण हैं और वहां जानेसे पुण्य क्या होताहै ॥ ७ ॥ वह क्षेत्र कहां हैं, और अतिशय पवित्र किसप्रकार हुआ ! हे सेनापति पार्वतीकुमार ! ! ! यह सब हमारेप्रतिवर्णन करिये ॥ ८ ॥ स्कन्दजी बोले— धन्य महाबाहो ! तुमने परोपकारके लिये बहुत ही उत्तम प्रश्न किया, सुनो भक्तिमान् नारदजी ! वही हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ ९ ॥ कोलके उत्तमांग (शिर) से प्रारंभकर, जंघापर्य्यन्त कोलका देहहै वहांतक चार योजन विस्तृत सब श्रीसंज्ञक क्षेत्र ही है ॥ ॥ १० ॥ और वह क्षेत्र तीन योजन तिर्च्छा विस्तृत है, और वह अतिशय पवित्र होनेके कारण सबही शास्त्रोंमें गोपित हैं ॥ ११ ॥ यह तो स्थूल श्रीक्षेत्र जानना चाहिये, अब सूक्ष्मका वर्णन करते हैं, हे विप्र ! जीवनेन्द्रपुरसे वर्षवती नदीपर्य्यन्त सूक्ष्म श्रीक्षेत्रहै, अब अतिसूक्ष्म श्रीक्षेत्रका वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥ खाण्डवनदीसे प्रारम्भ करके शिविपुर पर्य्यन्त अतिसूक्ष्म श्रीक्षेत्र है हे मुनिराज ! उसी स्थानमें धर्मनेत्र नामका एक विख्यात ॥ १३ ॥ राजा बडा धर्मज्ञ हुआ था, और उसने बडे उग्र तपका अनुष्ठान किया, कारण

चकार महत्तपः॥ बिष्णुना सदृशः पुत्रो जायतामिति चिंतयन्॥ ॥ १४ ॥ वरं प्राप्य कदाचित्तु कृतकृत्यो बभूव ह ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ भोभोः षण्मुख देवेश सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ कथं वै धर्मनेत्रस्तु चकार सुमहत्तपः ॥ १६ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ शृणु विप्र पुरावृत्तं श्रुतं शिवमुखान्मया ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि विस्तरेण तपोधन ॥ १७ ॥ हैहयस्य च पुत्रोऽभूद्धर्मनेत्र इति श्रुतः ॥ राजा परमधर्मज्ञो राज्यपालनतत्परः ॥ १८ ॥ अपुत्रः पालयामास राज्यं लोकानुरोधतः॥कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु निर्गतो धर्मनेत्रकः ॥ १९ ॥ निर्ययौ स्वगृहाद्राजा राज्यलोभपराङ्मुखः ॥ तपस्तप्तुं महद्देशे ह्याजगाम हिमालये ॥२०॥ स ददर्श महाक्षेत्रं श्रीसंज्ञं देवपूजिते ॥ देवान्मुनिगणान्यक्षांस्तथा गंधर्वसत्तमान् ॥ तान्दृष्ट्वा सहसा राजा परमं विस्मयं ययौ ॥ २१ ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि जीवन्स्वर्गे वसाम्यहम् ॥ इति वै संवसन्राजा विचचार वनांतरे ॥ २२ ॥ ददर्शाथ महाभाग गंगा

कि, उसके मनमें यह विचार था कि—विष्णुकी समान हमारे पुत्र हो ॥ १४ ॥ फिर एक समय वर पायकर वह अपनेतईं कृतकृत्य मानने लगा ॥ १५ ॥ नारदजी बोले—हे देवाधिदेव षडानन ! ! ! आप सवशास्त्रार्थोंके पारगामी हैं, (कृपापूर्वक यह बताइये) धर्मनेत्रने उग्रतप किस विधिसे किया ॥ १६ ॥ स्कन्दजी बोले—सुनो द्विजराज ! प्राचीन इतिहास हमने जो कुछ महादेवजीके मुखसे श्रवण किया है, हे तपोधन ! उसीको हम विस्तार पूर्वक आपकेप्रति वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥ हैहयदेशके राजाका धर्मनेत्र नाम एक पुत्र हुआ एवं यह राजपुत्र परमधर्मज्ञ अथ च राज्यका पालन करनेमें तत्पर था ॥ १८ ॥ यद्यपि वोह पुत्रहीन था, तथापि लोकोंके अनुरोधसे राज्यका पालन करता था, इसी प्रकार धर्मनेत्रका बहुतसा समय जब व्यतीत होगया ॥ १९ ॥ तब वह राजा धर्मके लोभसे पराङ्मुख हो घरसे निकलकर तपश्चर्य्या करनेके लिये हिमालय पर्वतके ऊपर आया॥२०॥इस राजाने देवपूजित श्रीसंज्ञक महाक्षेत्रमें देवताओं,मुनीश्वरों,यक्षों और गन्धर्वों को देखा, और इन्हें देखकर राजाको परम विस्मयकी प्राप्ति हुई ॥२१॥ मैं तो जीवित ही स्वर्गमें निवास करताहूं, अत एव मैं धन्य और कृतकृत्य हूं,इस प्रकार कह निवासकर राजा वनमें विचरने लगा॥२२॥तब हे महाभाग ! उसने गंगाजीके तटपर उत्कालक नाम महामुनिको, कि,जिनके नेत्र

तीरे महामुनिम् ॥ उत्फालकं तप्यमानं मीलिताक्षं समाधिना ॥ ॥ २३ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणनाम भुवि प्रभुः ॥ पुनःपुनः पपातासौ पादयोस्तस्य धीमतः ॥ २४ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने स जगतीपतिः ॥ तस्याग्रे मुनिवर्यस्य तस्थौ बद्ध्वा करद्वयम् ॥ २५ ॥ एवं वै वर्त्तमानस्य वर्षाणां शतमभ्यगात् ॥ ततो वै मुनिशार्दूलो ददर्श नृपमंतिके ॥ २६ ॥ उवाच वचनं प्रेम्णोत्फालको मुनिवंदितः ॥ २७ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ कस्त्वं पुरुषशार्दूल भक्तिमानिव लक्ष्यसे ॥ किमर्थमागतो ह्यत्र वने मुनिगणान्विते ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अहं सोमकुलोत्पन्नो धर्मनेत्र इति श्रुतः ॥ पुत्रो वै हैहयेन्द्रस्य दासोऽहं तव धीमतः ॥ २९ ॥ दर्शनं त्वादृशानां तु कर्तुं वै हि समागमः ॥ अहं वै पुत्ररहितो वैराग्याविष्टमानसः ॥ आगतोऽस्मि तपस्तप्तुं क्षेत्राणामधिपे शुभे ॥ ३० ॥ अत्रागत्य मया विप्र दृष्टं कौतूहलं परम् ॥ देवा यक्षास्तथा नागा मुनयः किन्नरास्तथा ॥

ध्यानावस्थित होनेके कारण मिच रहे थे, देखा॥२३॥उन्हें देखते ही भूमिके ऊपर निपतित हो महाराज धर्मनेत्रने उक्त धीमान् महर्षिके चरणोंमें बार २ प्रणाम किया ॥ २४ ॥ एवं अपने आपको कृतार्थ मान वह जगत् पालनकर्त्ता राजा मुनिपूजित उक्त महर्षिके अगाड़ी हाथजोड कुछ कालपर्य्यन्त बैठा रहा॥२५॥इसी प्रकार बैठे २ शतवर्ष व्यतीत होगये, तब मुनीश्वरने राजाको अपने निकट देखा॥२६॥उस समय उत्फालक महर्षि जिनकी सब मुनीश्वर वन्दना करते हैं, प्रेमपूर्वक राजासे कहने लगे॥२७॥उत्फालकजी बोले—हे नरशार्दूल! आप कौन हैं ? जो भक्तिमान्से दीखरहे हैं, एवं मुनीश्वरोंसे आकीर्ण हुए इस वनमें किसलिये आयेहैं॥२८॥राजा बोला—मैं चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुआ हूं हैहयदेशके राजाका पुत्र और आपका दास धर्मनेत्र नाम राजा हूं॥ २९ ॥ मैं आप ऐसे महात्माओंके दर्शन करनेके लिये यहां आया हूं, मेरे कोई पुत्र नहीं हैं इसी कारण मेरे मनमें वैराग्यका उदय हुआ हैं सुतराम् मैं इस शुभ क्षेत्रमें तपश्चर्य्या करनेकेलिये आया हूं ॥ ३० ॥ हे विप्र! यहां आकर मैंनें बड़ा कौतूहल देखा, कि, देवता, यक्ष, नाग, मुनीश्वर तथा किन्नर, गन्धर्व

गंधर्वाप्सरसो दैत्या दृष्टाः सर्वे दिवौकसः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा तान्विस्मयाविष्टोऽभूवं मुनिवरार्चित ॥ अथ वायं स्वर्गलोको वर्तते मुनिनायक ॥ ३२ ॥ अथ वा दृष्टिदोषो मे ह्यथ वा चित्तसंभ्रमः ॥ किमिदं भो महाभाग वर्तते मुनिवंदित ॥ ३३ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य धर्मक्षेत्रस्य धीमतः॥प्रहस्योवाच भगवानुत्कालो भूपतिं पुनः ॥ ॥ ३४ ॥ उत्कालक उवाच ॥ ॥ शृणु देव नृपश्रेष्ठ यद्वै दृष्टं त्वयात्र वै ॥ भाग्यवानसि हे राजन्नागरः क्षेत्रके परे ॥३५॥ विस्मयो न त्वया भूप मंतव्यो देवदर्शनात् ॥ अत्र वै देवताः सर्वा वसंत्येव हि नित्यशः ॥ ३६ ॥ पूर्वजन्मकृतात्पुण्यात्प्राप्यते हिममंदिरम्॥ अत्र वै हि मृतः कश्चिन्न च भूयोऽभिजायते॥३७॥ यत्र देवः शिवः साक्षाद्वर्तते शिवया सह ॥ स्वयं समग्रभावेन नंदिभृंग्यादिभिर्नृप॥३८॥काश्यादिषु च तीर्थेषु वसति ह्यंशमात्रतः॥ अत्र वै हिमवत्प्रांते सर्वो निवसति प्रभुः॥३९॥ अहो धन्या मनुष्येषु पश्यंति सकृदेव हि ॥ इदं क्षेत्रं महापुण्यं देवा एव न

अप्सराएँ राक्षस और सब देवता यहां हैं ॥ ३१ ॥ हे मुनिवन्दित ! उन्हें देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ हैं, अथवा हे मुनिराज ! यह स्वर्गलोकही है ॥ ३२ ॥ अथवा मेरी दृष्टि ही में कुछ दोष है ? किम्वा चित्त ही में कुछ भ्रम होगया है, हे मुनिवन्दित महाभाग ! ! ! यह है क्या ? ॥ ३३ ॥ स्कन्दजी बोले— बुद्धिमान् धर्मनेत्रके ऐसे वाक्य सुनकर उत्कालकमुनीश्वर हँसकर राजासे फिर कहने लगे ॥ ३४ ॥ उत्कालकजी बोले— सुनो महाराज ! तुमने जो देखा सो बताते हैं, तुम जो इस उत्तम क्षेत्रमें आये अत एव बड़े भाग्यवान् हो ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! देवताओंके दर्शन करनेसे तुम्हें विस्मय नहीं मानना चाहिये, क्योंकि यहां सबही देवता नित्य निवास करते हैं ॥ ३६ ॥ पूर्व जन्ममें पुण्योंहीके करनेसे हिमालयकी प्राप्ति होती है, जो व्यक्ति यहां मरताहै उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ३७ ॥ कारण कि— यहां महादेवजी पार्वतीसहित नित्यही निवास करते हैं, हे राजन् ! वे स्वयं समग्रभावसे रहते हैं, और नन्दी, भृंगी, आदि उनके साथ निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ काशीआदि तीर्थोंमें तो अंशमात्रही से भगवान् वसते हैं, किन्तु यहां हिमालयप्रान्तमें समग्रतया ही निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ मनुष्य समाजमें उन्हींको धन्य है कि, एकवार भी इस उत्तम क्षेत्रके दर्शन करते हैं, इस क्षेत्रके दर्शन करनेवालोंको निःसन्देह

संशयः ॥ ४० ॥ महापातकिनोऽप्यत्र ययुर्वै परमां गतिम्॥ किं पुनर्ब्राह्मणा राजन्स्वधर्ममनुवर्त्तिनः ॥ ४१ ॥ पूर्वं हि तारकेणापि वासवाद्या दिवौकसः ॥ स्वर्गान्निष्काशिताः सर्वे आजग्मुः पृथिवीं नृप ॥ ४२ ॥ पृथिव्यामटमानास्ते निवासाय महामते ॥ स्थानं कुत्रापि न प्रापुस्तारकस्य भयाकुलाः ॥ ४३ ॥ विचिन्वंत इदं स्थानं देवा इंद्रपुरोगमाः ॥ केदारेश्वरके क्षेत्रे आजग्मुः शिवदायके ॥ ४४ ॥ इदमेव महास्थानं स्थित्यै चक्रमिरे सुराः॥ इंद्रकीले महाद्रौ हि इंद्रश्चक्रे निवासकम् ॥४५॥ ततो वै दक्षिणे भागे शुभे कीनाशपर्वते॥यमश्चकार स्वगृहं रम्यं सर्वसुखप्रदम्॥ ॥४६॥एवं क्रमेण सर्वत्र निवासं चक्रिरे सुराः॥युगानि कतिचित्तेषां व्यतीयुर्वसतां नृप॥४७॥समाराध्य महादेवं सर्वज्ञं पार्वतीपतिम् ॥तत: सेनापतिं प्राप्य ययुः स्वर्गं दिवौकसः॥४८॥ जित्वा सुरगणान्सर्वान्प्रापुर्वै निजकं पदम्॥अस्य वै क्षेत्रराजस्य प्रसादेन नरोत्तम ॥४९॥ धर्मनेत्र महाराज सुरास्तदवाधि ध्रुवम् ॥ अत्रैव

देवता ही समझना चाहिये ॥ ४० ॥ जब यहां बडे २ पापियोंको भी परमगतिकी लब्धि हुई है, तब हे राजन् ! अपने धर्मका आचरण करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ४१ ॥ प्राचीन कालमें हे राजन् ! जब तारकासुरने इन्द्रआदि सब देवताओंको स्वर्गसे निकालदिया था, तब वे सब भूमिके ऊपर चलेआये ॥ ४२ ॥ और हे महामते ! निवास करनेकी कामनासे वे सर्वत्र ही विचरनेलगे, किन्तु तारकासुरके भयके मारे उन्हें स्थान कहीं भी न मिला ॥ ४३ ॥ इसप्रकार स्थानको खोजते २ इन्द्रादि देवता कल्याणदायक केदारक्षेत्रमें आये ॥ ४४ ॥ निदान देवताओंने इसी उत्तमस्थानको निवासके तईं स्वीकार किया, और इन्द्रकील महापर्वतके ऊपर इन्द्रने स्वयं निवास किया ॥ ४५ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर शुभ कीनाश पर्वतके ऊपर यमराजने निवास किया, इनका यह निवासस्थान परम रमणीक और सब सुखदायक था ॥ ४६ ॥ इसी क्रमसे देवताओंने सर्वत्र निवास किया, और हे नृप ! उन्हें वसते २ कुछ युग व्यतीत होगये ॥ ॥ ४७ ॥ फिर सर्वज्ञ पार्वतीवल्लभ महादेवजीकी आराधना करनेसे सेनापतिको ले देवतागण स्वर्गमें गये ॥ ४८ ॥ हे नरोत्तम ! इस क्षेत्रराजके प्रतापसे देवताओंने समस्त असुरोंका विजय करके फिर अपने २ पदको प्राप्त करलिया ॥ ४९ ॥ सुनो महाराज ! धर्मनेत्र !! सुन !!!

निवसंत्येव क्षेत्रे वै मुक्तिलालसाः॥९०॥ केदारमंडलं यावच्छिव-
लोको न संशयः॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे सुरा भूमिं त्यजंति हि॥
विना केदारकं देशं शिवस्थानं नरोत्तम ॥ ९१ ॥ गंगा विश्व-
कलाभिश्च वर्तते सर्वदात्र वै ॥ ९२ ॥ इति श्रुतं महाराज वर्तते
क्षेत्रमुत्तमम् ॥ तस्य संदर्शनादेव यः कश्चिच्छिवतां व्रजेत् ॥
॥ ९३ ॥ स्कंद उवाच ॥ निशम्येति वचस्तस्य विस्मयं परमं
ययौ ॥ पुनः पप्रच्छ राजा तु मुनिमुत्फालकं मुने ॥ ९४ ॥
इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे उत्तरभागे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

मुक्तिकी अभिलाषा करके उसी दिनसे देवता यहां निवास करते हैं शिवलोकमें जहांतक केदार मण्डल वहांतक उनकी स्थिति रहती है, ॥ ९० ॥ यद्यपि कलियुग आनेपर देवतालोग भूमिका परित्याग करदेते हैं, तथापि शिवस्थान केदारक्षेत्रको नहीं त्यागते हैं ॥ ९१ ॥ और गंगाजी भी अपनी पूर्ण कलाओंसे यहां निवास करती हैं ॥ ९२ ॥ हे महाराज ! यह क्षेत्र इसीसे सर्वोत्तम है उसके दर्शन करके चाहे जिस जातिका मनुष्य क्यों न हो, किन्तु उसे महेश्वरत्वका लाभ होता है ॥ ९३ ॥ हे मुनीश्वर ! यह वाक्य सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ अतएव वह उत्फालक ऋषिसे फिर पूछने लगा ॥ ९४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तसप्तत्युरशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

अष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७८.

राजोवाच ॥ मुने मुनिगणश्रेष्ठ श्रुतं त्वन्मुखतो मया ॥ अस्य वै तीर्थराजस्य वैभवं मुक्तिदं शुभम् ॥ १ ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मित्वत्प्रसादाद्विजोत्तम॥विस्मयो मे बभूवाथ नामास्य किं तु वर्तते॥२॥कानिकानि च तीर्थानि भवमोक्षप्रदानि वै ॥ केनकेन

राजा बोला— सम्पूर्ण मुनियोंमें श्रेष्ठ हे मुनीश्वर ! मैंने आपके मुखसे इस तीर्थका सुखदायी शुभमाहात्म्य श्रवण कियां ॥ १ ॥ हे द्विजराज ! मुझे धन्यहै, मैं आपकी कृपासे कृतकृत्य होगया, इस समय सचमुचही मुझे एक सन्देह प्रादुर्भूत हुआ है ॥ २ ॥ संसारसे मुक्तिलाभकरानेवाले

तपस्तप्तमस्मिन्क्षेत्रेवदाहके॥३॥एतन्मे शंस भगवंस्तृप्तिर्मे जायते न हि ॥ एतत्पुण्यतमं क्षेत्रं कथं वै समजायत ॥ ४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ धन्योऽसि त्वं महाराज भक्तिमानसि सुव्रत ॥ यस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाऽभवत्प्रभो ॥ ५ ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो सर्वभूतोपकारकम् ॥ यज्ज्ञात्वापि नरो भक्त्या परमैश्वर्य्यभाग्भवेत् ॥ ६ ॥ पुरा कृतयुगे राजा सत्यकेतुरिति श्रुतः ॥ यस्य वंशे महाराज विश्वामित्रो बभूव ह ॥ ७ ॥ सत्यकेतुश्च धर्मात्मा राज्यमत्र चकार ह ॥ प्राचीसमुद्रमारभ्य पश्चिमांतं महायशाः ॥ ८ ॥ उदक्समुद्रमारभ्य दक्षिणांतं नरेश्वरः ॥ पुत्रानिव प्रजा राजन्पालयामास सर्वतः ॥ ९ ॥ राज्यं शासति तस्मिंस्तु न कश्चिद्व्यसनं गतः ॥ काले ववर्ष पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी ॥१०॥ बालवैधव्यमापन्ना काचिन्नैव बभूव ह ॥ ममार पुत्रो न पुनर्ज्जनके जीवति प्रभो ॥११॥ सर्वे वै सुखिनः शांता ब्राह्मणाश्च जितेंद्रियाः॥विद्याभ्यासरता एव परद्रोहपराङ्मुखाः ॥ १२ ॥ आसंस्तथा क्षत्रियाश्च विप्रपूजनत-

कौन २ से तीर्थ वहां विद्यमानहैं ? एवं पापनाशक इस क्षेत्रमें किस २ ने तपका आचरण किया है ॥ ३ ॥ अथ च यह पवित्र क्षेत्र किसप्रकार सर्वोत्तम हुआ, हे भगवन् ! मेरा यह सबही सन्देह दूरकरिये, क्योंकि श्रवण करनेसे मेरी तृप्ति नहीं होतीहै ॥ ४ ॥ उत्फालक बोले- हे सदाचारी महाराज ! तुम बड़े भक्तिमान्हो अतएव तुम्हे धन्यहै, क्यौंकि तीर्थोंका माहात्म्य श्रवणकरनेके लिये आपकी इच्छा प्रवृत्त होरहीहै ॥ ५ ॥ तुमने सब प्राणियोंके उपकारके लिये बहुत अच्छा प्रश्नकिया इसको जानकर मनुष्य परम ऐश्वर्य्यशाली होजाताहै ॥ ६ ॥ प्रथम सत्ययुगमें सत्यकेतु नामका एक विख्यात राजा हुआथा, हे महाराज ! इसी राजाके वंशमें विश्वामित्रजी भी हुए थे ॥ ७ ॥ महायशस्वी सत्यकेतु राजा पूर्वी समुद्रसे पश्चिमी समुद्रपर्य्यन्त, और उत्तरके समुद्रसे दक्षिण सागरपर्य्यन्त प्रजाको पुत्रकी समान पालन करताथा ॥८॥९॥ जिस समय वह राज्यकर रहाथा उस समय किसीके ऊपर कोई संकट नहीं पड़ताथा, समय२ वर्षा होती और भूमि धान्योंसे परिपूर्ण रहतीथी॥१०॥ उसके राज्यमें बालविधवा कोईभी नहींथी, हे महीपाल ! पिताके जीवितरहते किसीका पुत्र नहीं मरताथा ॥ ११ ॥ विशेषक्या सबही सुखी और शान्तथे, ब्राह्मणलोग इन्द्रियनिग्रहपूर्वक परद्रोहसे विमुखहो विद्याके अभ्यासमें निरत रहतेथे ॥ १२ ॥ क्षत्रियगण ब्राह्मणपूजनमें तत्पर, युद्धमें अभि-

त्पराः ॥ संग्रामेऽभिमुखा सर्वे भक्तिमंतः सुरार्चने ॥ १३ ॥ तथा वैश्याश्च शूद्राश्च स्वधर्ममनुवर्तिनः ॥ न तेषु संकरः कश्चिच्चौरो नो दुष्टबुद्धिमान् ॥ १४ ॥ न लोभो न च मात्सर्य्यं न गदो नाशुभा मतिः ॥ नाभवत्कस्यचिद्राजंस्तस्मिन्राज्यं प्रशासति ॥१५॥ इति पालयतस्तस्य वर्षाणामयुतं ययौ ॥ पुत्रो बभूव तस्यापि सत्यसंध इति श्रुतः ॥ १६ ॥ राजा वै सत्यसंधं तु ह्यभिषिच्य नृपासने ॥ स्वयं जगाम तपसे चेंद्रकीले महागिरौ ॥ ॥१७॥ तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठो गुहायां हि दृढासनः ॥ समाधिस्थो महाराज महाराजो बभूव ह ॥१८॥ अद्यापि वर्तते तत्र चिंतयन्परमं शिवम् ॥ दशयोजनविस्तीर्णगुहामध्ये नृपालकः ॥१९॥ सत्यसंधोऽपि राज्यं हि पालयामास धर्मतः ॥ एवं पालयतस्तस्य सत्यसंधस्य धीमतः ॥ कोलासुरो बभूवाथ रिपुस्तस्य महीभृतः ॥ २० ॥ अयुतत्रिगजानां हि बलधर्त्ता प्रचंडकः ॥ आजगाम नृपश्रेष्ठ योद्धुं तेन महासुरः ॥ २१ ॥ विदार्य च महीं पादै-

मुख (उद्यत) और देव पूजनमें भक्तिमान्थे ॥ १३ ॥ इसीप्रकार वैश्य और शूद्रभी अपने २ धर्मका अनुवर्त्तन करतेथे, उनमें संकर चोर अथवा दुष्ट बुद्धिवाला कोईभी नहींथा ॥ १४ ॥ उस समय लोभ, मात्सर्य और रोग किसीको नहीं सताताथा, अशुभमतिभी किसीकी नहींथी, अथ च जिस समय वह राजा राज्य कररहाथा उस समय किसी अन्यका राज्यभी नहींथा ॥ १५ ॥ इसी प्रकार पालन करते २ उसे सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये, तब सत्यसन्धनाम उसके एक पुत्र हुआ ॥ ॥ १६ ॥ तब वह राजा राजसिंहासनके ऊपर सत्यसन्धका अभिषेक करके आप इन्द्रकील नाम पर्वतके ऊपर तपकरनेको चलागया ॥ १७ ॥ हे महाराज ! वह श्रेष्ठराजा वहां जाय गुहाके भीतर दृढ आसन बांध ध्यानावस्थित होके बैठगया ॥ १८ ॥ और अभीतक वह श्रेष्ठ पर्वतके ऊपर महादेवजीका ध्यान करताहुआ दश योजन विस्तृत हुई गुहामें उपस्थित हैं ॥१९॥ इधर सत्यसन्ध भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करताथा, जब सत्यसन्ध राजा इसप्रकार प्रजाका पालन कररहाथा, उसी समय कोलासुर नाम दैत्य उक्त बुद्धिमान् राजाका शत्रु होगया ॥ २० ॥ उस प्रचण्डदैत्यमें हजारों हाथियोंका बलथा, सुतराम् हे राजन् ! वह उससे युद्धकरनेको आया ॥ २१ ॥ प्रभूत बल शाली वह महादैत्य चरणों और मुखसे महीको विदीर्ण करनेलगा । इसका आना सुन राजाने

मुखेन च महाबलः ॥ श्रुत्वा तदागमं राजा धृतबाणशरासनः ॥ हयस्थो नृपशार्दूल आजगाम बहिः प्रभुः ॥२२॥ गंगाया उत्तरे तीरे ह्यधो योजनखंडके ॥ दक्षभागे कुबेरस्य पर्वतस्य नृपेश्वर॥ ॥२३॥ दृष्ट्वा कोलासुरो दुष्टः सत्यसंधं महीपतिम् ॥ प्रहस्यो-वाच दुष्टात्मा वचो दंभोद्भवं नृपम् ॥ २४ ॥ कोलासुर उवाच॥ गच्छगच्छ वनं राजंस्त्यक्त्वा शस्त्रं नृपास्पदम् ॥ किमर्थं म्रियसे तुच्छ वृथा तव परिश्रमः ॥२५॥ अहं कोलासुरो नाम विख्या-तोऽस्मि त्रिलोकके ॥ येन संत्रासिता देवाः स्थानं तत्यजु-राकुलाः ॥ २६ ॥ मनो नोत्सहते मेऽद्य योद्धुं राजंस्त्वया सह॥ त्वां दृष्ट्वा सांप्रतं दीनं कृपाविष्टोऽस्मि भूमिप ॥ २७॥ उत्फाल क उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य रक्षसः कोलरूपिणः ॥ क्रोधाविष्टो नृपश्रेष्ठ उवाच दनुजाधिपम् ॥ २८ ॥ सत्यसंध उवाच ॥ ॥ किमर्थं जल्पसे दुष्ट हंताहं तव कोलक ॥ इदानी-मेव याम्ये त्वं नगरे यास्यसि ध्रुवम् ॥२९॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसंधस्य धीमतः ॥ क्रोधसंरक्तनयन

धनुषबाण धारणकर अश्वारूढ हो नगरके बाहर आगमन किया॥ २२ ॥ गंगाजीके उत्तर तीर-पर नीचेकी ओर एक योजन की दूरीपर और कुबेर पर्वतके दक्षिणभागमें ॥ २३ ॥ दुष्ट कोला-सुरने सत्यसन्धराजाको देखा, सुतराम् वह दुष्टात्मा हँसकर राजासे पाखंडके वाक्य कहनेलगा ॥ ॥ २४ ॥ कोलासुर बोला— जाओ राजन् ! शस्त्र त्याग कर वनको जाओ !!! अरे तुच्छ ! वृथा क्यों प्राणोंको गँवाताहै, तेरा सबही परिश्रम वृथा है ॥ २५ ॥ मैं कोलासुरनामसे त्रिलोकीमें विख्यातहूं, मेरेही भयसे व्याकुलहो देवताओंने अपने २ स्थानोंको त्याग दिया है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे साथ युद्धकरनेको मेरेमनमें उत्साह नहीं होताहै, क्योंकि हे भूप ! तुम्हारी दीन ता देख मेरे चित्तमें कृपा उदय होरहीहै ॥ २७ ॥ उत्फालकजी बोले— कोलरूप धारी दैत्यके जब ऐसे वाक्य सुने तब राजा उक्त दैत्यराजसे ये वाक्य कहे ॥ २८ ॥ सत्यसन्ध बोला— अरे दुष्टकोल ! क्यों वकताहै ? मैं तेरा वध करूंगा, और तू इसी समय यमलोकको जायगा ॥ २९॥ उत्फालक बोले— जब सत्यसन्ध बुद्धिमानके ऐसे वाक्य श्रवण किये तब वह दैत्य क्रोधसे नेत्रों-

आययौ सम्मुखं नृपम् ॥ ३० ॥ सोऽपि राजा सत्यसंधो धनुः सज्यं चकार ह ॥ टंकारमकरोत्तीव्रं बाणान्वै संदधे ततः ॥३१॥ तेन टंकारनादेन कंपितं रक्षसो मनः ॥ ततो देवास्सगंधर्वा यक्षकिन्नरतापसाः ॥ द्रष्टुं युद्धं तयोर्देवा विमानैरागमन्मृधे ॥३२॥ ततः कोलासुरो दंतैर्निभिद्य गिरिश्रृंगकम् ॥ चिक्षेप सहसा रक्षः सत्यसंधोपरि ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ सत्यसंधोऽपि तच्छृंगं चूर्णयामास बाणकैः ॥ पंचबाणान्प्रचिक्षेप कोलस्योपरितो नृप ॥ ३४ ॥ तान्बाणान्सहसा दुष्टो निजगार महीपते ॥ पुनर्द्वितीयं श्रृंगं स गृहीत्वा पर्वतस्य हि ॥ संचिक्षेप महाराज सत्यसंधोपरि ध्रुवम् ॥ ॥ ३५॥ तच्छृंगमपि राजासावकरोत्कणशो विभो ॥ एवं तयोर्महाराज युद्धं वै रोमहर्षणम् ॥ ३६ ॥ बभंज तस्य चास्त्राणि बहूनि कोलरूपकः ॥ सोऽपि राजा सत्यसंधश्चूर्णयामास पर्वतान् ॥ ३७ ॥ अम्लानयोस्तयो राजन्परस्परजयैषिणोः ॥ बभूव च महाकालो जयाजयविवर्जितः ॥ ३८ ॥ आस्तां वै युद्धदुर्द्धर्षौ

को लाल २ करके राजाके सम्मुख आया ॥३०॥ इधर सत्य सन्धराजाने भी अपने धनुषको तयार किया, और तीव्र टंकार शब्दकरके धनुषके ऊपर बाणोंको चढाया ॥ ३१ ॥ और उस टंकार के निनादसे राक्षसका मन कम्पायमान होगया, उस समय देवता गन्धर्व यक्ष किन्नर और तपस्वी ये सबही उनके युद्धका अवलोकन करनेके लिये विमानोंमें आरूढ हो आकाशमें उपस्थित हो गये ॥ ३२ ॥ तब कोला सुरने दांतोंसे पर्वत शिखरोंको तोड़कर राजा सत्यसन्धके ऊपर फेंका ॥ ३३ ॥ इधर सत्यसन्ध राजाने बाणोंसे शृंगोंको चूर्ण २ कर डाला, और फिर कोलके ऊपर पांच बाण प्रयुक्त किये ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! उन बाणोंको शीघ्रही इसने निगल लिया, और फिर पर्वतके दूसरे शृंगको लेकर सत्यसन्धके ऊपर फेंका ॥ ३५ ॥ हे विभो ! राजाने उस शृंगको भी कण २ करके बखेर दिया, इस प्रकार उन दोनोंका रोमहर्षण कारी युद्ध हुआ ॥ ॥ ३६ ॥ कोलरूप दैत्यने राजाके बहुतसे अस्त्रोंको भग्नकरदिया, और इधर राजाने बहुतसे पर्वतोंको चूर्ण २ कर डाला ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! वे दोनों परस्पर विजयकी इच्छा कररहेथे, अतएव दोनोंही म्लान नहीं हुए थे, यद्यपि युद्ध करते २ दोनोंको बहुतसा समय व्यतीत होगया, पर जय पराजय किसीकी न हुई ॥ ३८ ॥ उन दोनों ही बलवान् योद्धा-

रक्तनेत्रौ महाबलौ ॥ ततः शुश्राव नृपतिः खे वाचं देवतेरिताम् ॥ ॥ ३९ ॥ सत्यसंध महाराज समाराधय हीश्वरीम् ॥ गत्वोत्फालकक्षेत्रात्त्वूर्द्ध्वभागे नराधिप ॥ ४० ॥ माने शरद्वये गंगादक्षतीरे महीपते ॥ अयं दुष्टो महादेव्या निहतः प्रधने पुरा॥४१॥स एवासौ समुत्पन्नः कोलरूपी महासुरः ॥ तस्मात्तामेव श्रीविद्यां समाराधय भूपते ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्गप्रदां देवीं श्रीविद्यां सत्यकेतुज ॥ समाराधय गंधैश्च धूपैर्दीपैः सपुष्पकैः ॥ ४३ ॥ नानाबल्युपहारैश्च तथा नैवेद्यकैः शुभैः ॥ अतो जेस्यसि दुष्टं हि राक्षसं कोलरूपिणम्॥ प्रसादाद्देवदेव्यास्त्वं मा विलंबं कुरु प्रभो ॥ ॥ ४४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा निगदितं देवतानां महीपते ॥ शीघ्रं जगाम नृपतिर्गंगातीरे महायशाः ॥ ४५ ॥ एकां शिलां समानीय सत्यसंधो नरेश्वरः ॥ तस्यां तद्यंत्रमालिख्य स्थित्वा तत्र दृढासनः ॥ ४६ ॥ पूजां चकार देवेश्या विद्याया भक्तितत्परः ॥ गंधैः पुष्पैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्बलिभिस्तथा॥ ॥ ४७ ॥ प्रजजाप महाविद्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥ एवं वै वर्त-

ओंके नेत्र लाल २ हो रहे थे, इसी समय राजाने देवोक्त आकाश वाणी सुनी ॥ ३९ ॥ कि, हे महाराज सत्यसन्ध ! तुम देवीजीकी आराधना करो, तब वह राजा उत्फालक क्षेत्रसे ऊर्द्ध भागमें चला गया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! वह स्थान गंगाजीके दक्षिण तीरपर दोबाणकी दूरीपर था प्रथम महादेवीजीने इस दुष्टका वध किया था ॥४१ ॥ अब यह वोही कोलरूप दैत्य प्रादुर्भूत हुआ है, सुतराम् हे भूपाल ! तुम उन्हीं श्रीविद्या देवीजीकी आराधना करो॥४२॥हे सत्यकेतुतनूद्भव ! गन्ध-धूप, दीप, पुष्प, नानाप्रकारकी बलि और उपहार एवं शुभ नैवेद्य आदिके द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी देनेवाली श्रीविद्याकी तुम आराधना करो, तब तुम कोलरूपधारी दुष्ट दैत्यका विजय कर-सकोगे, और तुम्हारा यह सर्व कार्य्य देवीजीकी कृपासे ही होगा अत एव तुम विलंब तनिक मत करो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उत्फालकजी बोले—हे महीपाल ! जब देवोक्त ऐसी वाणी राजाने सुनी, तब वोह महायशस्वी गंगाजीके तीरपर चला गया ॥ ४५ ॥ राजा सत्यसन्ध एक शिलाको लाकर उसके ऊपर श्रीविद्याका यन्त्र लिखकर दृढ़ आसन बांधके वहां उपस्थित हो गये ॥ ४६ ॥ और भक्ति भावमें तत्पर हो देवेश्वरीकी पूजा करने लगा, और गन्ध, पुष्प, दीप, नैवेद्य, (मिष्टान्न) तथा बलि यह सब सामग्री पूजाके लिये उपस्थित करी ॥४७॥ धर्म, अर्थ काम, मोक्ष, इन चतुर्वर्गकी

मानस्य वर्षाणां शतमभ्यगात ॥ ४८ ॥ आजगाम ततः काचित्कन्या द्वादशवार्षिकी ॥ रूपलावण्यसंपन्ना विशालाक्ष्यरुणाधरा ॥ ४९ ॥ एकवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्योपशोभिता ॥ स्मिताननना श्यामकेशी सुंदरांगी सुदंतिका ॥ ५० ॥ उवाच वचनं सा तु राजानं ध्यानसंस्थितम् ॥ सिंहचर्मासनं वीरं स्मितेन परिशोभितम् ॥ ५१ ॥ कन्योवाच ॥ किं करोषि महाराज राज्यं त्यक्त्वा सुपुष्कलम् ॥ किंवा ध्यायासि भूमीश गंगातीरे दृढासनः ॥ ॥ ५२ ॥ उत्फालक उवाच ॥ तद्वचो जगदंबायाः प्रविवेश श्रुतौ नृप ॥ शनैरुन्मील्य नयने अपश्यत्कन्यकां पुरः ॥ ५३ ॥ तां दृष्ट्वा सहसा राजा स्मृत्वा तद्वचनं परम् ॥ उवाच वचनं कन्यां सुदतीं स्मितशोभिताम् ॥ ५४ ॥ सत्यसंध उवाच ॥ का वा त्वं मृगशावाक्षी कृपया मां हि पृच्छसि ॥ मन्यते तु महादेवी त्वमेव हि न संशयः ॥ ५५ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसंधस्य धीमतः ॥ दर्शयामास रूपं

देनेवाली महाविद्याका राजा जप करने लगा, और इसी प्रकार करते २ शतवर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४८ ॥ तब रूपलावण्य सम्पन्न विशालनेत्र और अरुण अधरवाली द्वादश वर्षकी एक कन्या राजाके समीप प्राप्त हुई ॥ ४९ ॥ वह एकही वस्त्रको धारण करती थी, उसका हृदय रक्तवर्ण मालाओंसे सुशोभित था, उसके मुखमें मुसकान झलक रही थी, उसके केश श्याम, अंगसुन्दर और दांतभी सुन्दरही थे ॥ ५० ॥ यह कन्या ध्यानावस्थित हुए राजासे कहने लगी, यह वीरराजा सिंह चर्मके ऊपर आसीन हो रहे थे, और स्मित होनेके कारण राजाकी शोभा औरभी अधिक हो रही थी ॥ ५१ ॥ कन्या बोली—हे महाराज ! विपुल राज्यका परित्याग कर यह तुम क्या कररहे हो ! और गंगाजीके तीरपर दृढ आसन बांधे, किसका ध्यान कर रहे हो ॥५२॥ उत्फालकजी बोले—हे राजन् ! जगदम्बाके ये वाक्य राजाके कानोंमें प्रविष्ट हुए, तब उन्होंने शनैः २ नेत्रोंको उघाड कर अपने अगाडी कन्यारूपिणी स्त्रीको देखा ॥ ५३ ॥ जभी राजाने उसके दर्शन किये तब राजाको उसके वचनोंका भी स्मरण हुआ, और सुदन्ती एवं स्मितमुखी कन्यासे राजा कहने लगे ॥ ५४ ॥ सत्यसन्ध बोला—हे मृगछौनाकेसे नेत्रों वाली सुन्दरी ! तुम कौन हो ! जो कृपा करके मुझसे पूछ रही हो, हे महादेवि ! निस्सन्देह मैं तुम्हेंही मनाताहूं ॥ ५५ ॥ उत्फालकजी बोले—जब बुद्धिमान सत्यसन्धराजाके उन्होंने ऐसे वाक्य सुने, तब देवीजीने अपने परम-

हि स्वकं परमदुर्लभम् ॥ ५६ ॥ चतुर्भुजां महादेवीं सर्वाभरण-भूषिताम् ॥ बालार्कसदृशीं दिव्यां रक्तवस्त्रोपशोभिताम् ॥ ५७ ॥ नानामणिगणानद्धस्वर्णसिंहासनस्थिताम् ॥चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्॥५८॥तां दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणनाम भुवि प्रभुः ॥ अंबिकां स्तोतुमारेभे सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ५९ ॥ सत्यसंध उवाच ॥ वंदे सर्वमयीं देवीं सर्गस्थित्यंतकारिणीम् ॥ सर्वदेवस्तुतां देवीं प्रतिपद्ये महेश्वरीम् ॥ ६० ॥ नानारत्नविभूषां च सिंहासनकृतासनाम् ॥ इंद्रादिमुकुटाच्छन्नपादपीठां सुलोचनाम् ॥ ६१ ॥ कोटिबालार्कसदृशीं सुदरांगीं महाबलाम् ॥ ईडे सकलसंपत्त्यै जगत्कारणमंबिकाम् ॥ ६२ ॥ त्वमेव मूलप्रकृतिर्माया विश्वविमोहिनी ॥ त्वया व्याप्तं जगत्सर्वं मोहितं च त्वया वरे ॥ ६३ ॥ त्वमिन्द्रस्त्वं यमो देवो महादेवस्त्वमेव हि॥ शेषः सर्वस्य धर्ता त्वं त्वत्तो नान्योऽस्ति किंचन॥ ६४ ॥ वेदमाता त्वमेवासि ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ॥ सर्वरूपाभिधा देवि

दुर्लभरूपके दर्शन दिये ॥ ५६ ॥ महादेवीजीकी चारभुजा, प्रातःकालीन सूर्य्यकी समान प्रभा-थी वे सब आभूषणोंसे अलंकृत और सब प्रकारके वस्त्रोंसे सुशोभित थीं ॥ ५७ ॥ उस समय अनेक मणि जटित सुवर्णके सिंहासनपर विराजमानथीं, उनके ऊपर चमर डोलरहे थे, और श्वेत-छत्रोंसे शोभा हो रही थी ॥ ५८ ॥ उनके दर्शन करते ही राजाने उन्हें प्रणाम किया, और फिर वह सत्यसन्ध दृढव्रतधारी राजा जगदम्बाकी स्तुति करने लगा ॥ ५९ ॥ सत्यसन्ध बोला— जो सर्व व्यापक होनेके कारण सर्वमयी हैं, जो उत्पत्ति पालन और संहार करने वाली हैं, सब देवता जिनकी स्तुति करते हैं, जो सबदेवताओंके द्वारा प्रतिपादन कीगई हैं, ऐसी महेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६० ॥ जो अनेक रत्नोंसे विभूषित हैं, जो सिंहासनके ऊपर आसीन हैं, जिन सुलोचनाका पादपीठ इन्द्र आदिके मुकुटोंसे आच्छन्न है ॥ ६१ ॥ प्रभातकालीन सहस्रों सूर्य्यकी समान जिनकी प्रभा है, जिनका अंगसुन्दरहै, जो प्रभूत बलशालिनी हैं, और जो समस्त जगत्‌की कारणरूप अम्बिका हैं ऐसी परमेश्वरीको मैं वन्दना करता हूं ॥ ६२ ॥ मूलप्रकृति स्वरूप विश्वविमोहिनी माया तुम्हीं हो, तुमही सर्व जगत्‌में व्याप्त हो और तुमने ही सर्वजगत्‌को मोहित कर रक्खा है ॥ ६३ ॥ इन्द्र, यम, महादेव और सबके धारणकर्त्ता शेषस्वरूप भी आपही हैं, विशेष क्या तुम्हारे अतिरिक्त संसारमें और कुछ भी नहीं है ॥ ६४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक वेदमाता तुम्हीं हो, सबके द्वारा उपचीयमान और विष्णु भगवान्‌के उत्संगमें निवास करने वाली

विष्णूत्संगनिवासिनी ॥ ६५ ॥ दर्पिष्ठदुष्टदैत्यघ्नी महादेवकुटुं-
बिनी ॥ इंद्रस्य राज्यलक्ष्मीस्त्वं भवपाशविमोचिनी ॥ ६६ ॥
सरस्वती त्वमेवासि सर्वशास्त्रप्रबोधिनी ॥ प्रभा त्रैलोक्यमाणि-
क्यरूपा संयमिनी शिवे ॥ ६७ ॥ कुवेरगृहसंपत्त्वं यत्स्त्रीरूपं
त्वमेव हि ॥ असुराणां निहंत्री च भक्तदारिद्र्यनाशिनी ॥ ६८ ॥
यावत्त्वत्पादकमले भक्तिर्नैवोपजायते ॥ तावत्संसारदुःखौघैर्बा-
ध्यते भुवि मानवः ॥ ६९ ॥ नाहं तव महिम्नो हि पारं जाना-
मि पार्वति॥ स्तोतुं त्वां जननीं मेऽद्य योग्यता स्यात्कथं शिवे॥
॥ ७० ॥ तथाप्यहं महाभागे स्तोतुं त्वां भगवत्प्रिये ॥ न विल-
ज्जे हि दुष्प्राप्ये विरंच्यादिभिरीश्वरैः ॥ ७१ ॥ उत्फालक
उवाच ॥ इति स्तुता महादेवी सत्यसंधेन धीमता॥प्रसन्ना सात्र-
ऽवीद्वाक्यं राजानं सत्यकेतुजम्॥७२॥देव्युवाच॥जहि त्वं तं महा-
दुष्टं राजन्कोलासुरं शुभ॥यावत्त्वद्धस्तसंक्षिप्तं शिरः कायात्पति-
ष्यति ॥ तावच्छ्रीसंज्ञकं क्षेत्रं भविष्यति सुपुण्यदम् ॥ ७३ ॥

भी तुमहीं हो ॥ ६५ ॥ तुमहीं अभिमानी दुष्टदैत्योंका हनन करने वाली, और महादेवजीकी कुटु-
म्बिनी (पत्नी) हो, इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी तुमहीं हो और तुम्हीं सांसारिक पापोंका नाशकरती हो
॥ ६६ ॥ समस्त शास्त्रोंकी ज्ञान स्वरूपा सरस्वतीभी तुमहीं हो, और तुम्ही त्रिलोकीकी माणिक्य
रूप प्रभा हो, हे कल्याणि ! तुम संयमनी भी हो ॥ ६७ ॥ कुबेरके घरकी सम्पत्ति और स्त्रीस्वरूप
तुमहीं हो, असुरोंका नाश और भक्तोंके दारिद्र्यको दूर करने वाली भी तुमहीं हो ॥ ६८ ॥ जब-
तक तुम्हारे चरण कमलोंमे भक्ति नहीं होती मनुष्य तभीतक भूमिके ऊपर दुःख समुदायसे पीडित
रहताहै ॥ ६९ ॥ हे पार्वति ! मैं तुम्हारी महिमाका पार नहीं जानता तो फिर हे कल्याणि !
तुम्हारी स्तुति करनेके लिये मेरी योग्यता कैसे होसक्ती है ॥ ७० ॥ तथापि हे महाभाग्यशालिनी
भगवत् प्रिये ! ! ! तुम्हारी स्तुतिकरने में मुझे लज्जा कुछ नहीं है, कारण कि, ब्रह्माजी आदि ईश्व-
रोंको भी तुम दुष्प्राप्यही हो ॥७१॥ उत्फालकजी बोले—जब बुद्धिमान् सत्यसन्धने इसप्रकार देवी-
जीकी स्तुति करी, तब वे प्रसन्न हो सत्यकेतुके पुत्र सत्यसन्धसे कहने लगीं ॥ ७२ ॥ देवीजी
बोलीं—मारो ! राजन् ! ! दुष्ट कोलासुरको मारो ! ! ! तुम्हारे हाथसे फेंका हुआ शिर उसके शरीरसे
जितनी दूर जाके गिरेगा, उतनी ही दूरतक अतिशय पुण्यदायक यह श्रीक्षेत्र होगा ॥ ७३ ॥

सर्वपापहरं भूप मृतानां मुक्तिदायकम् ॥ अस्मिन्यस्तीर्थराजे तु करिष्यति मदर्चनम्॥अचिरात्स महाराज मत्तुल्यो भवति प्रभुः॥ ॥ ७४ ॥ यस्य कस्यापि देवस्य भक्तोऽस्मिन्प्रवरे स्थले ॥ करोति हि शुभां पूजां सोऽपि मत्सेवकः स्मृतः॥ ७५ ॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे नित्यं शिवसमन्विता ॥ वसामि सिद्धगंधर्वदेवकिन्नरतापसैः ॥ ७६ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे ह्यतः क्रोशार्द्धखंडके ॥ राजराजेश्वरी नाम्ना प्रथिताहं नराधिप ॥ ७७ ॥ पूर्वं तत्र महाराज राजराजेन धीमता॥संपत्त्यै राधिताहं वै ततोऽत्र निवसाम्यहम् ॥ ७८ ॥ राजराजो महाराज संप्राप महतीं श्रियम् ॥ अस्मिन्वै तीर्थराजे तु मदाराधनकर्मणा ॥ ७९ ॥ ततो मां नरशार्दूल स्थापयामास राजराट् ॥ त्रिंशत्कोटिसुवर्णस्य स्थंडिलस्योपरि ध्रुवम् ॥ ८० ॥ ततो मे नाम विख्यातं राजराजेश्वरीति वै॥इदं स्तोत्रं मयाख्यातं पठिष्यंति मदालये ॥ते वै मम महाराज भक्तानां भक्तनायकाः ॥८१॥ गच्छ शीघ्रं महाराज कोलासुरवधाय च॥त्वत्तुल्यो नास्ति त्रैलोक्ये मम भक्तो नराधिप॥८२॥

हे राजन् ! यह क्षेत्र सबपापोंका हरनेवाला और मृतकोंको मुक्ति प्रदान करने वाला है, इस तीर्थराजमें जो व्यक्ति हमारा पूजनकरे गा, हे महाराज ! वह शीघ्रही हमारी तुल्य प्रभु होजायगा ॥ ॥ ७४ ॥ चाहे जिस देवी देवताका भक्त होकर भी मनुष्य इस श्रेष्ठस्थलमें शुभपूजा करताहै, उसेभी हमाराही सेवक कहा है ॥ ७५ ॥ मैं महादेवजी सहित सिद्ध गन्धर्व देवता किन्नर और तपस्वियोंको लेकर नित्यही इस महाक्षेत्रमें निवास करती हूं ॥ ७६ ॥ गंगाजीके उत्तरी तीर पर यहांसे आधे कोसकी दूरी पै हे नरनाथ ! मैं राजराजेश्वरी नामसे प्रसिद्धहूं ॥ ७७ ॥ हे महाराज ! प्रथम कुबेरने सम्पत्तिकी कामनासे मेरी इसी स्थानमें आराधना करी थी, सो उसी दिनसे मैं यहां निवास करती हूं ॥ ७८ ॥ इस महातीर्थमें हमारी आराधना करनेसे कुबेरको विपुल लक्ष्मीका लाभ हुआ था ॥ ७९ ॥ हे नरपाल ! तब राजराजेश्वर (कुबेर) ने तीसकरोड सुवर्णके स्थण्डिलके ऊपर मेरी स्थापना करी ॥ ८० ॥ इसीकारण मेरा राजराजेश्वरी नाम हुआ है, जो व्यक्ति हमारे इस स्तोत्रको हमारे मन्दिरमें पढेंगे, हे महाराज ! वे हमारे सबही भक्तोंमें नायक समझे जायँगे ॥ ८१ ॥ सुतराम् हे महाराज ! कोलासुरका वधकरनेके लिये तुम शीघ्रही जाओ, कारण कि, हे नरनाथ! तुम्हारी समान त्रिलोकीमें हमारा और कोई भक्त नहीं है॥८२॥

उत्फालक उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी पश्यतस्तस्य भूभृतः॥श्रुत्वा तदुदितं वाक्यं जगाम रणमूर्द्धनि॥८३॥आजगाम ततः सोऽपि कोलरूपी महासुरः ॥ विदारयन्महीं पादैर्गर्जयन्निव मेघराट् ॥ ८४ ॥ तर्जयन्कुत्सितैः शब्दैर्भीषयन् घुर्घुरारवैः ॥ आगच्छतस्तस्य राजन्देवा अपि चकंपिरे ॥ ८५ ॥ आगत्य तत्समीपे तु सत्यसंधस्य धीमतः ॥ उवाच वचनं रोषात्प्रहस्य च पुनःपुनः ॥ ८६ ॥ कोलासुर उवाच ॥ ॥ किमर्थमागतोऽसि त्वं युद्धाद्धि विनिवर्त्त हि ॥ गमिष्यसि तथैव त्वं यथा पूर्वं नराधिप ॥ ८७ ॥ इदानीमेव हे तुच्छ प्रेषयिष्यामि दक्षिणाम् ॥ अतो जीवन्गृहे गच्छ त्यक्त्वा शस्त्राणि भूचर ॥ ८८ ॥ उत्फालक उवाच॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसंधो नराधिपः ॥ बाणानासंदधच्चाप उवाच वचनं रुषा ॥ ८९ ॥ राजोवाच ॥ ॥ एतत्समयपर्यंतं नागतो मृत्युकालकः ॥ अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टा बाणास्ते प्राणहारिणः ॥ ९० ॥ भविष्यंति महादुष्ट मुनीनां शांतचेतसाम् ॥ प्रसन्नानि मनांस्याशु निहते कोलके

उत्फालकजी बोले—यों कहकर राजाके देखते २ ही देवीजी अन्तर्द्धान हो गईं, इधर राजा भी उनके वाक्योंको सुनकर रणभूमिमें आये ॥ ८३ ॥ तब चरणोंसे भूमिको खोदता और मेघराजकी समान गर्जता हुआ वह कोलासुर दैत्यभी आया ॥ ८४ ॥ आते समय वह कुत्सित शब्दोंसे राजाको ललकारने और गुर्रानेके शब्दोंसे भीत करने लगा, हे राजन् ! जब वह आया उस समय देवताभी कंपाय मान होगये ॥ ८५ ॥ वह असुर बुद्धिमान् सत्यसन्धके निकट आय क्रोधसे वारंवार उपहास करके यह वाक्य कहने लगा ॥ ८६ ॥ कोलासुर बोला—तुम किस लिये आये हो! जाओ लौट जाओ, अरे! राजन् ! तुझे पहिलेकीही भांति लौट जाना पड़ैगा ॥ ८७ ॥ अरे तुच्छ ! मैं इसी समय तुझे दक्षिणदिशाको भेज दूंगा, अतएव हे राजन् ! शस्त्रोंको छोडकर जीवितही घरको लौट जाओ ॥ ८८ ॥ उत्फालकजी बोले—राजा सत्यसंधने जब उसके ऐसे वाक्य सुने तब वह धनुषके ऊपर बाण चढाय क्रोध पूर्वक ये वाक्य कहने लगा ॥ ८९ ॥ राजा बोला— अभीतक तो तेरे मरनेका समय नहीं आया था किन्तु-अब मेरे धनुषसे निकले हुए बाण तेरे प्राणोंका अपहरण करेंगे ॥ ९० ॥ हे दुष्ट कोल-

त्वयि ॥ ९१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ संतत्याज ततो बाणं कोल-स्योपरि रक्षसः ॥ सोऽपि कोलो महादुष्टश्चर्वयामास बाणकम् ॥ ॥ ९२ ॥ पुनः पर्वतमुत्थाप्य दंष्ट्रया तीक्ष्णया तदा ॥ चिक्षेप नरशार्दूले ह्यनेकतरुशोभितम् ॥९३॥ तमप्यचलमायांतं दूरतो-नृपनंदनः ॥ चूर्णयामास बाणैश्च कणशःकणशस्ततः ॥९४॥ इति वै तुमलैर्युद्धै रोमहर्षणकारकैः॥बभूवुस्तिमिराच्छन्ना दिशः सर्वत एव हि ॥ ९५ ॥ यंयं बाणं सत्यसंधः संतत्याजासुरोपरि ॥ कं-चिद्वै चूर्णितं चक्रे कंचिद्वै निजगाल हि ॥ ९६ ॥ सोऽपि राजा सत्यसंधो यान्यान्वृक्षाश्मपर्वतान्॥तत्क्षिप्तांश्चूर्णयामास निपेतु-स्ते महीतले ॥ ९७ ॥ ते बभूवुर्महाराज पर्वता रेणवो भृशम्॥ अत्रासन्प्रथमं कोटिसंख्याकानि गृहाणि च ॥ ९८ ॥ देवानां मुनिवर्य्याणां सिद्धानां निर्मितानि च ॥ पर्वतैः कणभूतैश्च पा-षाणैश्चूर्णितानि च ॥ ९९ ॥ बभूविरे ततो राजन्नसंख्याताश्च पर्वताः॥केचिन्नष्टास्तु तत्रैव गताः केचिद्दिगंतरम् ॥१००॥ नाग-राः सैनिकाश्चैव भीतास्तस्माद्दुरात्मनः ॥ इति जाते महायुद्धे

सुर ! अब तेरे मृतक होजानेपर शान्त चेतामुनीश्वरोंके मनभी अब प्रसन्न हो जायँगे ॥ ९१ ॥ ऋषि बोले– बस राजाने कोलासुरके ऊपर बाण परित्याग करने प्रारंभ करे, और वह दुष्टकोला-सुरभी बाणोंको चढारहाथा ॥ ९२ ॥ फिर उक्तअसुरने अनेकवृक्षोंसे सुशोभित पर्वतको तीखे दांतोंसे उखाडकर राजाके ऊपर फेंक दिया ॥ ९३ ॥ उस पर्वतको आता देख राजकुमार सत्य-सन्धने बाणोंसे उसके कण २ करके चूर्णकर डाला ॥ ९४ ॥ इस प्रकार रोमहर्षणकारी घोर युद्धके द्वारा• चारों ओरसे दिशा व्याप्त होगई ॥ ९५ ॥ दैत्यके ऊपर राजासत्यसन्ध जिन २ बाणोंका परित्याग करते थे, उनमेंसे किन्हींको वह चूर्णकर डालता और किन्हींको निगल लेता था ॥ ९६ ॥ और कोलासुरके भेजे हुए जिनवृक्ष और पर्वतोंको राजा चूर्णकरता था वे सब भूमिकेही ऊपर निपतित होते थे ॥ ९७ ॥ हे महाराज ! वे पर्वतोंके चारों ओर निपतित होते थे अथ च वहां देवताओं, मुनीश्वरों, और सिद्धोंके अनेक स्थान बनगये, किन्तु– कण २ हुए पर्वतोंसे वे सब नष्ट होगये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ तब हे राजन् ! वहां बहुतसे पर्वत होगये, कोई तो वहांही नष्ट होगये और कोई २ इधर उधर चले गये ॥ १०० ॥ उस समय युद्धमें कोई

सर्वे लोकाश्चकंपिरे ॥ १ ॥ ततो वै बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ॥ मुष्टिभिर्दृढबद्धैश्च पादघातैरितस्ततः ॥ २ ॥ प्रतिशब्दो महानासीच्चचाल वसुधा भृशम् ॥ संरक्तनयनौ भीमौ रुधिरार्क्तकलेवरौ ॥ ३ ॥ द्विजनिष्पीडितौ जातौ जयाजयविवर्जितौ ॥ रेजतुर्नृपकोलौ तावुदयास्ताचलाविव ॥ ४ ॥ तयोस्तु कुर्वतोर्युद्धं पृथिवी विव्यथे भृशम् ॥ एतस्मिन्नंतरे भूप राजा तस्य महौजसः ॥ मुष्टिना तत्र तुंडं हि व्यथयामास भूमिप ॥ १०५ ॥ सोऽपि कोलासुरो दुष्टस्तुंडेनोत्थापयन्नृपम् ॥ ततो राजा सत्यसंधो दृढेन मुष्टिना पुनः ॥ प्रहारं कृतवान्मूर्ध्नि विव्यथे राक्षसस्ततः ॥६॥व्यथितो वसुधापृष्ठे चिक्षेप नृपतिं ततः॥उत्थाय सत्यसंधस्तु पुनः कोलदुरात्मना ॥ बाहुयुद्धेन युयुधे प्रहारैरतिदारुणैः ॥ ७ ॥ न तयोर्म्लानवदनं न वै दरसमन्वितम् ॥ एवं तयोर्युद्ध्यतोर्हि व्यतीयुर्दिवसान्यपि ॥ ८ ॥ बहुशस्तेन राज्ञा हि मुष्टिभिः शस्त्रकैस्तथा ॥ ताडितो न बभूवासौ म्लान-

सैनिक उस दुष्टसे भयभीत होकर भाग गये, जब इस प्रकार घोरयुद्ध हुआ तब सबलोक कम्पायमान हो गये ॥ १ ॥ निदान वे दोनोंही परस्पर युद्ध करने लगे, दृढबद्ध मुष्टिकाओंसे और चरणोंके आघातोंसे उस समय बडा युद्ध हुआ ॥ २ ॥ महान् शब्द होनेके कारण भूमि अतिशय कंपायमान होने लगी, और दोनोंके नेत्र रक्तवर्ण हो गये और शरीर रक्तसे लिथड गये ॥ ३ ॥ दोनोंहीं क्रोधसे अपने २ ओष्ठोंको काटते थे, किन्तु जय वा पराजय किसीकी नहीं होती थी, सुतराम् राजा और कोलासुर उदयाचल और अस्ताचलकी समान विराजमान होते थे ॥ ४ ॥ उन दोनोंके युद्ध करनेसे पृथिवी अत्यन्तही व्यथित हो गई, हे राजन् इसी बीचमें राजाने उस अतुलपराक्रमीके तुण्डको मसल दिया ॥ १०५ ॥ तब दुष्ट कोलासुरनेभी उक्त राजाको तुण्डसे उठालिया । तब राजाने फिर दृढ़मुष्टिसे उसके मस्तकमें प्रहार किया जिससे वह राक्षस ॥ ६ ॥ अतिशय व्यथित होगया और व्याकुल होकर उसने राजाको भूमण्डलके ऊपर फेंक दिया, फिर सत्यसन्धराजा दुष्ट कोलासुरके साथ बाहु युद्धसे घोर प्रहार करके युद्ध किया ॥ ७ ॥ उस समय दोनोंमेंसे मलीन कोई भी नहीं था, इस प्रकार युद्ध करते २ बहुतसे दिन व्यतीत होगये ॥ ८ ॥ यद्यपि राजाने बहुतसे शस्त्रों और अस्त्रों एवं मुष्टिकाओंसे प्रहार किया तथापि उस दुष्ट

चित्तो महासुरः ॥ ९ ॥ अथ तस्य नृपस्याशु कर्णे आगत्य पार्वती ॥ ददौ विमोहिनीं मायां ययारिर्मोहितो भवेत् ॥ ॥ ११० ॥ श्रुत्वा तदुदितं मंत्रं युद्ध्यमानो जजाप ह ॥ जपावसाने नृपतेर्निपपातासुरो भुवि ॥ ११ ॥ मोहितो मायया देव्यास्त्रिगुणाया नराधिप ॥ तयैव सृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १२ ॥ पाल्यते चाऽद्यते भूप तयैव हि न संशयः ॥ सृष्टिं कर्त्तुं प्रवृत्ता हि यदा भवति निर्गुणा ॥ जायते हि तदा सैव प्रकृतिः परमेश्वरी ॥१३॥ स्वयमेव महादेवी भूत्वा पुरुषनामिका ॥ लोकबुद्धौ महादेवी वर्त्तते स्त्रीकलेवरा ॥ १४ ॥ सैव माया परं ब्रह्म प्रसूते हि गुणत्रयम् ॥ तदा रजोगुणाद्ब्रह्मा सत्त्वाद्विष्णुरजायत ॥ ११५ ॥ तमोगुणात्तु रुद्रोऽभूत्तस्यामेव न संशयः ॥ ब्रह्मरूपेण सृजति रक्षते विष्णुरूपतः ॥ अत्ति सा रुद्ररूपेण दुष्टदैत्यविनाशिनी ॥ १६ ॥ तयैव मोहितो जंतुस्तां न वेत्ति हि तत्त्वतः ॥ स लोको मृतकल्पस्तु बभूव सहसा तदा ॥१७॥ अथ राजा सत्यसंधः खड्गमुत्थाप्य सत्वरम्॥

कोला सुरका चित्त म्लान न हुआ ॥ ९ ॥ इसी समय पार्वतीने राजाके कर्णके निकट आय इसे मोहिनी माया प्रदान करी, जिससे कि, शत्रु मोहित होजाता है ॥ ११० ॥ भगवती प्रोक्त मन्त्रको सुनकर राजाने युद्ध करते २ ही उसका जप किया, और जपकी समाप्ति होते ही दैत्यभूमिके ऊपर निपतित हो गया ॥११॥ हे राजन्! वह देवीजीकी त्रिगुणात्मिका मायासे मोहित हो गया, क्योंकि वह माया ही चराचर जगत्का निर्माण करतीहै ॥ १२ ॥ हे भूप! निस्सन्देह वह पालन और संहार भी करती है, जिस समय वह निर्गुणा सृष्टिका निर्माण करनेको प्रवृत्त होती है, तब वही परमेश्वरी प्रकृति स्वरूप हो जाती है ॥ १३ ॥ वही महादेवी पुरुष रूप होजाती और लोक बुद्धिमें स्त्री देहधारिणी भी प्रतीत होती है ॥ १४ ॥ वह माया ही तीन गुणोंसे ब्रह्मका प्रादुर्भाव करती है, तब रजोगुणसे ब्रह्मा और सतोगुणसे विष्णुका प्रादुर्भाव होता है ॥ ११५ ॥ एवं निस्सन्देह उसी मायासे तमोगुण द्वारा रुद्रका प्रादुर्भाव होता है, सुतराम् वह माया ब्रह्मारूपसे सृष्टिका निर्माण, विष्णुरूपसे रक्षा (पालन) और रुद्ररूपसे संहार करती है, यह माया दुष्ट दैत्योंका विनाश करनेवाली है ॥ १६ ॥ उसके द्वारा मोहित हुआ प्राणी उसीको नहीं जानता, निदान उसी मायासे मोहित हो वह कोलासुर मृतककी समान हो गया ॥ १७ ॥ बस उसी समय

शिरश्चिच्छेद तेनैव रक्षसः कोलरूपिणः ॥ १८ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्हर्षितास्त्रिदिवौकसः ॥ ववुः पुण्या वायवश्च सरितो मार्गगास्ततः ॥ १९ ॥ साधुवादो बभूवाथ ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि सर्वेषां निहतेऽसुरे ॥ १२० ॥ अथ राजा सत्यसंधः शिरः कायान्मृतस्य हि ॥ हस्ताभ्यां तोलयित्वा तु संचिक्षेप पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥ शिरस्तु पतितं तस्य नैर्ऋत्यां योजने ततः ॥ तद्वपुः पूर्वभागे तु योजनानां त्रयेऽपतत् ॥ २२ ॥ तदेव मानं क्षेत्रस्य बभूव परितो भृशम् ॥ चतुर्योजनविस्तीर्णं तिर्यग्वै योजनत्रयम्॥२३॥अद्यापि तन्महाराज नामास्य शिरसः प्रभो ॥ कोलासुरमिति ख्यातं वर्तते धर्मनेत्र भोः ॥२४॥ तत्रापि तत्कायदेशे पर्वतः कोलनामकः ॥ एतयोरंतरे यस्तु मृतः शिवपुरे वसेत् ॥१२५॥ इति ते कथिता देव श्रीक्षेत्रस्य जनिश्शुभा ॥ नामोत्पत्तिश्च तस्यैव कथिता हि तवाग्रतः ॥ २६ ॥ पुण्यं पवित्रमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ॥

राजा सत्यसन्धने झटपट खड्ग उठाय कोलरूपी राक्षसका शिर काटडाला ॥ १८ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभी बजने लगीं, देव समाज प्रसन्न होगया, पवित्र वायु वहने लगे, और मार्गकी नदियें सब निर्मल हो गईं ॥ १९ ॥ चारों ओरसे धन्य वाद दिये जाने लगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं, विशेष क्या दुष्टदैत्यके मृतक हो जानेपर सभीके मनप्रसन्न हो गये ॥ १२० ॥ तब सत्यसन्ध राजाने मृतक दैत्यके शरीरसे शिरको हाथोंसे उठाकर फेंक दिया ॥ २१ ॥ तब उसका शिर नैर्ऋत कोणमें एकयोजनकी दूरीपर जाके गिरा, और उसका शरीर पूर्व दिशामें तीन योजनकी दूरीपै निपतित हुआ ॥ २२ ॥ बस चारों ओर उस क्षेत्रकी येही अवधि है, अर्थात् चार योजन लम्बा और तीन योजन चौडा वह क्षेत्र है ॥ २३ ॥ हे धर्मनेत्र! अभीतक उसके शिरका कोलासुर नाम प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ और जहां उसका शरीर पडा हुआ है वहां भी कोलनाम पर्वतहै, इन दोनोंके अन्तरमें जिसकी मृत्यु होतीहै वह शिवलोकमें निवास पाताहै ॥ १२५ ॥ हे राजन्! इस प्रकार हमने श्रीक्षेत्रकी शुभ उत्पत्ति और उसके नामकी भी उत्पत्ति तुम्हारे अगाड़ी वर्णन करीहै ॥ २६ ॥ यह आख्यान पवित्र, आयुकी वृद्धि करने वाला, पुत्रों और धनधान्यकी वृद्धि करनेवालाहै, हे महाभाग ! अब इसके अनन्तर तुम और

अतः परं महाभाग किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२७॥ यो वै नरो नरवरो भुवि क्षेत्रराजस्योत्पत्तिवैभवमिदं शृणुयात्पठेद्यः॥ स्याद्देवदेव वनितासुकटाक्षजातहर्षातिहर्षनृपसंहतिसेवितांघ्रिः ॥१२८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये कोलासुरवधो नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

क्या श्रवण करना चाहतेहो ? ॥ २७ ॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य भूमिके ऊपर क्षेत्रराजकी उत्पत्तिके माहात्म्यको श्रवण अथवा पाठ करेगा, देववधूटियें अपने कटाक्षोंसे उसे प्रसन्न करेंगी और राजालोग उसके चरणोंकी सेवा करेंगे ॥ १२८॥ श्रीक्षेत्र माहात्म्यका दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्याय ॥ १७८ ॥

एकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७९.

स्कंद उवाच ॥ श्रुत्वा श्रीक्षेत्रमाहात्म्यमुत्पत्तिं चापि नारद ॥ विस्मयं परमं मत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ १ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वादृशानां हि संगतः ॥ यत्संगतो मुनिश्रेष्ठ जायते भगवद्रतिः ॥ २ ॥ त्वन्मुखांभोजगलितात्कथामृतरसायनात् ॥ तृप्तोऽस्मि सतरां विप्र बाधते न च मा क्षुधा ॥ ३ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ श्रीक्षेत्रे यानि तीर्थानि सुपुण्यानि महांति च ॥ ४ ॥ तानि मे शंस भगवन्प्राणिनां च हिते रत ॥ यायाः पुण्यतमा नद्यो ह्रदा

स्कन्दजी बोले– हे नारद ! श्रीक्षेत्रकी उत्पति और माहात्म्यको सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य्य हुआ अतएव वोह फिर मुनीश्वरसे पूछने लगा। ॥ १ ॥ धर्मनेत्र बोला– हे मुनिराज ! मैं आपके सत्संगसे धन्य और कृतकृत्य होगयां, क्योंकि आपके समागमसे भगवद्रतिकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ आपके मुखसे निकलती हुई रसायन रूप अमृत कथाका पान करनेसे मैं तृप्त होगया, अतएव अब मुझे क्षुधा बाधा नहीं देती है ॥ ३ ॥ हे तपोधन ! श्रीक्षेत्रमें जितने पवित्र और बड़े २ तीर्थ हैं अब हम उन्हीको श्रवण करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ आप प्राणियोंका हितकरनेमें निरतहैं, वहां जो २ पवित्र नदियें हैं उनकाभी मेरे प्रति वर्णन करिये कारण कि, आपकी

येऽन्यत्र कुत्रचित् ॥ ५ ॥ उत्फालक उवाच ॥ साधु साधु महाराज सम्यक्पृष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ शृणु चैकमना भूत्वा यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥६॥ श्रीक्षेत्रदक्षिणे भागे गव्यूतित्रयसम्मिते ॥ कोलासुरशिरःक्षेपात्स्थलं श्रीक्षेत्रतां गतम् ॥ ७ ॥ यमो यस्मिस्तपस्तेपे तारकार्तः शतं समाः ॥ तेन कीनाशनामासौ सुन्दरोत्तुगपर्वता ॥ ८ ॥ वंजाडोजाडनामाख्ययमभृत्याश्रमद्वयम् ॥ पूर्वपश्चिमयोर्भीममारात्संराजते ध्रुवम् ॥ ९ ॥ तपसा तोषितः शम्भुः प्रत्यक्षो वरदोभवत् ॥ वरद्वयं ययाचेऽथ धर्म्मराजो महातपाः ॥ १० ॥ सदा त्वयाऽत्र स्थातव्यं पार्वत्या सह शंकर ॥ त्वत्पादपङ्कजे भक्तिरचला स्यान्ममेति च ॥ ११ ॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥ गिरीन्द्रराजकन्यया सदैव यक्षकिन्नरैः ॥ अहं वसामि नित्यदा तपःस्थले त्वदीयके ॥ १२ ॥ मदीय पादपंकजे सदास्तु ते दृढा मतिः ॥ त्वदीयहृत्सरोरुहे ममास्तु सर्वदा स्थितिः ॥ १३ ॥ सुगुप्तरूपमास्थाय प्रकटिष्याम्यहं कलौ ॥

समान ज्ञाता और कोई भी कहीं नहीं है ॥ ९ ॥ उत्फालकजी बोले— धन्य ! महाराज ! ! धन्य ! ! ! हे अनघ ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, तुमने जो कुछ हमसे पूछा है .उसीको एकाग्र मनसे श्रवण करो ॥ ६ ॥ श्रीक्षेत्रसें दक्षिणकी ओर छः कोशकी दूरी पर्य्यन्त कोलासुरकाशिर फेंकनेके कारण वह स्थान श्रीक्षेत्र हुआ है ॥ ७ ॥ तारकदैत्यसे पीड़ितहो यमराजने जिस पर्वतके ऊपर तपका आचरण किया था, इसीकारण उस ऊंचेपर्वतका कीनाश नाम विख्यात हुआ है ॥ ८ ॥ इसी पर्वतके निकट पूर्व और पश्चिममें वंजाड़ और उजाड़ नाम दो यम किंकरोंके आश्रम अत्यन्त विराजमान होते हैं ॥ ९ ॥ यम राजके तपसे सन्तुष्ट हो महादेवजी प्रकट होकर वरदेनेके लिये उद्यत होगये, तब महातपस्वी धर्मराजने उनसे दो वर मांगे ॥ १० ॥ कि, हे नाथ ! आप पार्वतीसहित सदैव यहां निवास करिये, और आपके चरण कमलमें मेरी अचल भक्ति हो ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले— हे यम ! मैं पार्वती और यक्षकिन्नरों सहित नित्यही तुम्हारे तपस्स्थल कीनाशपर्वतके ऊपर निवास करूंगा ॥ १२ ॥ हमारे चरणारविन्दमें तुम्हारी दृढमति (विश्वास) होगी, और तुम्हारे हृदय कमलमें मेरा निवास रहेगा ॥ १३ ॥ मैं गुप्तरूपसे रहकर कलियुगमें प्रकट होऊंगा, और कंकालेश्वर मेरा नाम होगा, मैं भोग और मोक्ष प्रदान

कंकालेश्वरनामा वै भुक्तिमुक्तिप्रदोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥ तेन मुक्तेश्वरो नाम चापरं मे भविष्यति ॥ मेनका च सरिच्छ्रेष्ठाऽलकनन्दाऽभिसम्मुखी ॥ १५ ॥ तस्यां स्नात्वा च सम्पूज्य कंकालेशं शिवं शिवाम् ॥ मम सायुज्यतामेति मर्त्यो मम मनिश्चितम् ॥१६॥ इत्युक्त्वांतर्द्धधे शम्भू राजन्परमधार्मिक ॥ श्रीक्षेत्रैवभवं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ कोलासुरशिरोभागे नदी परमपावनी ॥ मेनकेति समाख्याता सर्वकामप्रदायिनी ॥ ॥ १८ ॥ यत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ पूर्वं हि सा महाराज जात्या शूद्रा बभूव ह ॥ १९ ॥ सुदती समाख्याता विकटाङ्गी घटोदरी ॥ विडालनयना सा तु परं मदविमोहिता ॥ २० ॥ न कश्चित्तत्पतिश्चासीत्कुरूपत्वान्महीपते॥ इत्यस्यां वर्तमानायां यौवनं प्रत्यपद्यत ॥ २१ ॥ ददर्श स्वसखीनां हि पतीन्परमसुन्दरान् ॥ चिंतयामास बहुशः पतिना रहिता तु सा ॥२२॥ किं कर्तव्यं मयेदानीं यौवनं मेऽतिवर्तते ॥ कथं मम विवाहः स्यात्को वा मत्सदृशः पतिः ॥ २३ ॥ इत्येवं चिंतयन्ती सा मार्गे स्थितवती ततः ॥ पथिकानेव पप्रच्छ को वा

करूंगा ॥ १४ ॥ इसी कारण हमारा दूसरा नाम मुक्तीश्वर भी होगा, इसी पर्वतके ऊपर अलकनन्दाके समक्ष मेनका नामकी श्रेष्ठ नदी है ॥ १५ ॥ उसमें स्नान और कंकालेश महादेवजी एवम् पार्वतीजीकी पूजा करनेसे मनुष्यको अवश्यही मेरे सायुज्यकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ हे परमधार्मिक राजन् ! इस प्रकार कहकर महादेवजी अन्तर्द्धान होगेये, श्रीक्षेत्रका यह पवित्र माहात्म्य समस्त पापोंका नाश करने वाला है ॥ १७ ॥ जहां कोलासुरका शिर है वहां मेनका नामकी परमपवित्र नदी है, और वह समस्त कामनाओंको पूर्णकरने वाली है ॥ १८ ॥ उसमें स्नानकरनेसे मनुष्योंको सबकामनाओंकी प्राप्ति होती है, हे महाराज ! प्रथम वह जातिमें शूद्रा थी ॥ १९ ॥ उसके दांत सुन्दर अंगविकट, उदर घटकी समान और बिल्लीके नेत्रोंकी समान नेत्र थे, अथ च वह मदसे मोहित होरही थी ॥ २० ॥ हे महीपाल ! करालरूप होनेके कारण उसका पति कोईभी नहीं बनताथा, इस प्रकार अविवाहित अवस्थामें रहते २ ही इसकी युवा अवस्था होगई ॥ ॥ २१ ॥ तब यह अपनी सखियोंके परम सुन्दर पतियोंका अवलोकन करती, और पतिहीन होनेके कारण वह चिन्ता किया करती थी ॥ २२ ॥ हाय ! सम्प्रति मुझे क्या कर्त्तव्य है मेरा यौवन

मम पतिर्भवेत् ॥ २४ ॥ अत्रांतरे महाराज पथिको ब्राह्मणो युवा ॥ आययौ रूपसंपन्नः कंदर्प इव चापरः ॥ २५ ॥ उवाच तं धर्मनेत्र ब्राह्मणं पथिकं तदा ॥ स्मितेन शोभमानास्या कटाक्षेण सुशोभना ॥ २६ ॥ सुदत्युवाच ॥ कुत्र वा गम्यते साधो कुतो वा गम्यते त्वया ॥ स्थिरो भव क्षणं साधो श्रोतव्यं वचनं मम ॥ २७ ॥ अहं भवामि जात्या हि शूद्रा षोडश वार्षिकी ॥ पत्या सुरहिता चास्मि वयो मां बाधतेतराम् ॥ २८ ॥ कस्त्वं पुरुषशार्दूल विस्तरेण वदस्व मे ॥ तवापि वयसः कालो वृथा संगच्छते विभो ॥ २९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अहमत्रिकुलोत्पन्नो ब्राह्मणो गौडदेशजः ॥ केदारेश्वरयात्रां वै कृत्वा दर्शनमुत्तमम् ॥ गमिष्यामि स्वदेशे हि विवाहो मे भविष्यति ॥ ३० ॥ सुदत्युवाच ॥ अत्रैव निवसिष्याव आवां यौवनगर्वितौ ॥ मया सह विवाहश्च कुरु शीघ्रं द्विजेश्वर ॥ ३१ ॥ धन्यास्ते पुरुषा लोके सदाराः क्लेशवर्ज्जिताः ॥ प्रमदाधरसंपानजातरोमांचकंचुकाः ॥ ३२ ॥

बीता जाता है, मेरा विवाह कैसे हो , मेरे समान मेरा पति कौन बनेगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करती २ वह मार्गमें बैठगई, और पथिकोंसे पूछने लगी कि कोई मेरा पति बनेगा ॥ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसी अवसरमें रूप यौवनशाली अतएव कामदेवकी समान सुन्दर एक ब्राह्मण वहां आया ॥ २५ ॥ तब मुसकरानेसे जिसका मुख शोभायमान होरहा है और जिसके कटाक्षभी सुन्दर हैं ऐसी वह शूद्रा हे धर्मनेत्र ! पथिक ब्राह्मणसे बोली ॥ २६ ॥ सुदती बोली—हे सज्जन आपकहां जाते और कहांसे आते हैं ? महाशय ! छिनभर विश्रामकर हमारे वचन श्रवण करिये ॥ २७ ॥ मैं षोड़श वार्षिकी शूद्राहूं, पतिरहित होनेके कारण मेरी युवा अवस्था मुझे अधिक सतातीहै ॥ २८ ॥ हे नरशार्दूल ! तुम कौन हो, यह मेरे अगाडी विस्तारपूर्वक वर्णनकरो, क्योंकि— तुम्हारी अवस्थाका समयभी वृथाही व्यतीत होरहाहै ॥ २९ ॥ ब्राह्मण बोला—मैं अत्रिकुलमें उत्पन्न हुआ गौडदेशका ब्राह्मणहूं केदारेश्वरकी उत्तम यात्रा और उनके दर्शनकरके मैं अपने देशको जाऊंगा तब फिर मेरा विवाह होगा ॥ ३० ॥ सुदती बोली—हम दोनोंही युवा यहां निवास करेंगे, अतएव हे द्विजराज ! तुम शीघ्रही मेरे साथ विवाह करलो ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य संसारमें सपत्नीक और क्लेशरहितहैं, और प्रमदाओंके अधर पानकरनेसे हर्षपूर्वक जिनके रोमांच हो आये हैं उन्हींको धन्यहै ॥ ३२ ॥

क्रियद्भिः क्रियते साधो नरैः कर्म शुभाशुभम् ॥ तेनतेन कृतेनास्ति सुखं दुःखं द्विजेश्वर ॥ ३३ ॥ पुण्येन कर्मणा विप्र सुखमेवानुभूयते ॥ वामाधरसुधापानजनितं स्वर्गसम्मितम् ॥ ॥ ३४ ॥ पापेन कर्मणा विप्र दुःखमेवानुभूयते ॥ तस्मात्त्वमेव धन्योऽसि यस्याग्रे स्वयमास्थिता ॥ ३५ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ॥ प्रहस्योवाच तां शूद्रां स्मितेन परिशोभितः॥३६॥ब्राह्मण उवाच॥सत्यमुक्तं त्वया शूद्रे परं शृणु वचो मम॥नाहं तवास्मि सदृशो भर्त्ता हि कमलेक्षणे॥ ॥३७॥त्वं तु रूपवती साक्षान्मेनकेव यथा पुरा ॥ अहं तु रूपरहितो दुर्बलो ब्राह्मणो मुनिः॥३८॥ तस्मात्त्वमन्यभर्तारमन्वेषय समानकम् ॥ येन साकं मेनकेव देवेन विहरिष्यसि ॥ ३९ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं विप्रो ययौ केदारमंडले ॥ सापि खिन्ना प्ररुदन्ती वचसा तस्य भूमिप ॥ ४० ॥ आययौ तीर्थके पुण्ये तपस्तप्तुं हिमालये॥कोलस्य शिरसोऽधस्ताद्गङ्गातीरे

हे महाशय ! मनुष्य जो कुछभी शुभाशुभ कर्म करते हैं, हे द्विजराज ! उन्ही कर्मोंसे उन्हें सुख दुखकी प्राप्ति होतीहैं ॥ ३३ ॥ किन्तु हे विप्र ! पुण्य कर्म करनेसे कामिनियोंके अधरसुधापानकरनेका स्वर्गीय सुख उपभोग करनेको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ अथ च हे विप्र ! पापकर्मोंसे केवल दुःख ही की प्राप्ति होतीहै, सुतराम् तुम्हें धन्य है कि, तुम्हारे सामने मैं स्वयं ही उपस्थित हुई हूं ॥ ३५ ॥ उत्फालकजी बोले—उसके ऐसे वाक्य सुन ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, और वह हँसकर उस शूद्रासे कहनेलगा उस समय मन्द मुसकानसे इसका मुख अतिसुन्दर प्रतीत होत था ॥३६॥ ब्राह्मण बोला—हे शूद्रे ! यद्यपि तुमने सब सत्यही कहा, परन्तु हमारे वाक्यको सुनो, हे कमलनयनी ! तेरे अनुरूप मैं पति नहीं हूं ॥ ३७ ॥ तुम तो साक्षात् दूसरी मेनकाकी समान सुन्दर रूपवतीहो, और मैं विचारा रूपरहित ब्राह्मणमुनि हूं ॥ ३८ ॥ इसकारण तुम अपनी समान अन्य पतिका अन्वेषण करलो, तौ उसके साथ तुम इस प्रकार विहार करसकोगी जैसे देवताओंके साथ मेनका विहार करतीहै ॥ ३९ ॥ उत्फालकजी बोले—यौं कहकर वह ब्राह्मण केदारमण्डलकी यात्राको चलागया, और हे राजन् ! इधर यह शूद्रा उसके कहनेसे खिन्न हो रोदन करती ॥ ४० ॥ तपश्चर्या करनेकी अभिलाषासे हिमालयके ऊपर पवित्रतीर्थमें आई, और कोला-

दृढासना ॥ ४१ ॥ अहं मेनकया तुल्या स्यामिति प्रेत्य सुंदरी ॥ तस्थौ दिनाष्टकं तत्र सस्नौ सा विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥ ततो दिनाष्टकं स्नात्वा ययौ देशं स्वके वरे ॥ कालेन मरणं तस्या बभूव नृपनंदन ॥ ४३ ॥ कस्यचित्त्वथ राज्ञश्च गृहे कन्या बभूव ह ॥ राज्ञे ददौ महाराज तां वै त्रैलोक्यसुंदरीम् ॥४४ पट्टराज्ञी बभूवासौ प्राप्य पत्रं महारथम् ॥ समा मेनकया नाम्ना मेनकेव बभूव ह ॥ ४५ ॥ कृत्वा राज्यादिभोगांश्च तपः कर्तुं समाययौ ॥ अस्मिन्नेव स्थले रम्ये पूर्ववत्तपसि स्थिता ॥ ४६ ॥ दध्यावेकाग्रमनसा शिवं भक्तिसमन्विता ॥ अथ कालन महता प्रसन्नोऽभूत्सदाशिवः ॥ ४७ ॥ नदीं तां कृतवान्पुण्यां मेनकां सर्वकामदाम् ॥ स्वयं च न्यवसत्तत्र नाम्ना वै मेनकेश्वरः ॥४८॥ यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः ॥ गुहायां हि नदीतीरे वर्त्तते भक्तवत्सलः ॥ ४९ ॥ मेनकायां नरः स्नात्वा संगमे शिवसन्निधौ ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति

सुरदैत्यके शिरसे नीचे गंगाजीके तीरपर दृढ आसन बांधकर ॥ ४१ ॥ (तपकरनेको बैठ गई कि मैं मेनका अप्सराकी समान सुन्दर रूपवती होजाऊं, इसविचारसे उसने वहां आठ दिनपर्यन्त ठहरकर विधिपूर्वक स्नानकरा ॥ ४२ ॥ आठ दिन स्नान करनेके अनन्तर फिर वह अपने देशमें चली गई, हे राजकुमार! समय पाय उसका मरण होगया॥४३॥तब फिर वह किसी राजाके घरमें उसकी कन्या होके प्रादुर्भूत (उत्पन्न) हुई, त्रिलोकीमें अनुपम सुन्दरी अपनी कन्याको उसके पिताने उसे किसीराजाको देदिया ॥ ४४ ॥ तब यह उस राजाकी पटरानी होगई और इसे महारथ पुत्रकी प्राप्ति हुई, तब इसका मेनका ही नाम हुआ और मेनकाहीकी समान इसका सुन्दररूप हुआ ॥ ४५ ॥ राज्यादि का उपभोगकर यह तपकरनेके लिये आई, और इसी सुन्दर रमणीय स्थानमें पहिलेकी भांति स्थित होगई ॥ ४६ ॥ एवं भक्ति समन्वित हो एकाग्रमनसे सदाशिवकी आराधना करनेलगी, तब अधिक समय व्यतीत होजानेपर सदाशिव महादेवजी इससे प्रसन्न होगये ॥ ४७ ॥ सुतराम् उसे परमपवित्र अतएव सबकामनाओंकी पूर्ण करनेवाली नदी बनादिया, और मेनकेश्वर नामसे स्वयं भी वहां निवास करनेलगे ॥ ४८ ॥ उनके केवल दर्शनमात्रही करनेसे पाप राशिका विनाश होजाताहै, भगवान् भक्तवत्सल गुहामें नदीके तीरपर निवास करते हैं ॥ ४९ ॥ महादेवजीके निकट संगमस्थानमें मेनकामें स्नानकरनेसे मनुष्य जिस २ वस्तुकी कामना करता

मानवः ॥ ९० ॥ तस्माद्वै क्रोशखंडे हि देवतीर्थं च वर्त्तते ॥ यत्र भुक्कुंडनाम्ना वै स्तुतो देवः सदाशिवः॥९१॥आविर्बभूव भगवान-रूपो भक्तवत्सलः ॥ तत्रैव स्थापयामास निजरूपं वृषध्वजः ॥ ॥ ९२ ॥ ततोऽवधि महाराज भुक्कुंडेश्वरतां गतः ॥ धारास्तिस्र-स्तत्र सांति सूर्य चंद्राग्निकाः शुभाः ॥ ९३ ॥ भुक्कुंडेश्वरदक्षे तु सूर्यधारा स्मृता बुधैः ॥ ततो वै वामभागे तु शरवि-क्षेपमात्रके ॥ चन्द्रधारा समाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ९४ ॥ ततोऽपि शरमाने हि वह्निधारा स्मृता बुधैः ॥ गंगायाः संगमे देव प्राप्नुवंति नरेश्वर ॥ ९५ ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भव-प्रियतरो भवेत् ॥ ॥ ९६ ॥ ततो गंगोत्तरे तीरे विख्याता यत्र सुन्दरी ॥ श्यामलेति समाख्याता कन्या कोलासुरस्य सा ॥ ॥ ९७ ॥ मृते पितरि दुःखार्त्ता तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ शोकेना-विष्टहृदया वैराग्याविष्टमानसा ॥ ९८ ॥ शिवं च शरणं प्राप्ता स्थिता गजशिलोच्चये॥ कतिचित्त्वथ वर्षाणि व्यतीयुर्नृपनायक॥

उसे वह सब प्राप्त होजाती है ॥ ९० ॥ वहांसे कोशखंडकी दूरीपर एक देवतीर्थहै, वहां भुकुण्डने सदाशिव महादेवजीकी आराधना करीथी ॥ ९१ ॥ तब निराकार होनेपरभी भक्तवत्सल भगवान् आविर्भूत हुए, और बृषभध्वजने वहांही अपने स्वरूपकी स्थापनाकरी ॥ ९२ ॥ हे महाराज ! उसी दिनसे उनका भुक्कुंडेश्वर नाम हुआहैं, सूर्य चन्द्रमा और अग्निस्वरूप तीनधारा वहां विद्यमानहैं ॥ ९३ ॥ भुक्कुंडेश्वरके दक्षिणभागमें विद्वानोंने सूर्य्यधारा वर्णनकरी हैं, और वहांसे वामभागमें एक बाण निक्षेपकी दूरीपर समस्त पापोंका नाश करनेवाली चन्द्रधारा है ॥ ९४ ॥ और वहांसे एक बाणकी दूरीपर वह्निधारा (अर्थात् अग्निधारा) कीर्त्तन करीगई है, हे नरेश्वर ! ये सबही गंगाजीमें संगत होतीहैं ॥ ९५ ॥ जिस धारामें स्नानकरै उसी देवतामें मनुष्यकी प्रीति अवश्य होतीहै ॥ ९६॥ वहां ही गंगाजीसे उत्तरकी ओर इन्हींकी समान एक और नदी है, उसका श्यामला नाम है और वह कोलासुरकी कन्याहै॥९७॥जब उसके पिताका मरण होगया तब उसके हृदयमें शोक और मनमें बैराग्य व्याप्त होगया अतएव उसने उग्रतपका आचरणकिया॥९८॥ गजशिलोचयके ऊपर बैठकर वह शिवजीकी शरणमें प्राप्तहुई,हे राजराजेश्वर!आहार परित्याग पूर्वक महादेव

निराहारास्थितायाश्च ध्यायंत्याः शिवमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ अथ तस्यां स्थितायां हि भगवान्भूतभावनः ॥ आविर्बभूव तस्याश्च ह्यग्रे वै वृषवाहनः ॥ ६० ॥ उवाच वचनं तां हि मधुरं दीनवत्सलः ॥ ६१ ॥ शिव उवाच ॥ ॥ तावद्भव नदी रम्या सर्वर्षिगणसेविता ॥ अंते प्राप्स्यासि मत्स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥६२॥ भवत्यां ये महाभागाः स्नास्यंति भक्तिसंयुताः ॥ ते वै मम पुरे वासं प्राप्स्यंति श्यामले शुभे ॥ ६३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा वचनं देवीं विरराम महाद्युतिः ॥ सापि कोलासुरभवा जगाद वचनं शिवम् ॥ ६४ ॥ श्यामलोवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ प्रसन्नो यदि मे प्रभो ॥ अहं स्त्रीयोनिसंप्राप्ता पुरुषः स्यां महेश्वर ॥ ६५ ॥ हतो मम पिता येन वध्यो भवतु मत्करात् ॥ त्वदीयचरणांभोजे निवासोऽस्तु सदा मम ॥ ६६ ॥ शिव उवाच ॥ ॥ भविष्यसि कदाचिद्धि पुरुषोऽपि न संशयः कारणैकेन केनापि जेस्यसे पितृहन्नृपम् ॥ ६७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवांतरधत्त सः ॥ सापि कोलासुरभवा नदी

जीकी आराधना करते २ उसे कुछ वर्ष व्यतीत होगये ॥ ५९ ॥ एक समय वह बैठीथी तब भूतभावन भगवान् वृषवाहन महादेवजी उसके अगाड़ी प्रादुर्भूत हुए ॥ ६० ॥ दीनवत्सल भगवान् उससे ये मधुरवचन कहने लगे ॥ ६१ ॥ शिवजी बोले—अब तो तू सुन्दर नदी होजा, सब महर्षिगण तेरी सेवा करेंगे, फिर अन्तमें तुझे हमारे उसस्थानकी प्राप्तिहोगी जो देवताओंको भी दुर्लभहै ॥६२॥ और जो महाभाग भक्तिभाव पूर्वक तेरी धारामें स्नान करेंगे, हे श्यामले ! उन्हें हमारे शुभलोकमें निवासकी प्राप्ति होगी ॥ ६३ ॥ ऋषिजी बोले—महाकान्तिशाली महादेवजी उस देवीसे यह वाक्य कहकर चुप होगये, तब वह कोलासुरकी पुत्री महादेवजीसे ये वाक्य कहने लगी ॥ ६४ ॥ श्यामला बोली—समस्त धर्मोंके ज्ञाता हे भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो हे महेश्वर ! ऐसी कृपाकारिये जो मैं स्त्री योनीसे पुरुष होजाऊं ॥ ६५ ॥ और जिसने मेरे पिताका वध कियाहै, उसका वध मैं करूं और आपके चरणकमलोंमें नित्यही मेरा निवासरहै ॥ ६६ ॥ शिवजी बोले—निस्सन्देह तू कभी न कभी पुरुष होजायगी, और किसी न किसी कारणसे अपने पिताका वध करनेवाले राजाकाभी विजय करेगी ॥ ६७ ॥ ऋषिजी बोले—महादेव

वै समजायत ॥६८॥ पुनः कदाचिद्राजा तु ममार च स्वकर्मतः॥ बभूव ब्राह्मणः शांतस्सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ६९ ॥ सापि राक्षसकन्या हि बभूव पुरुषः पुनः ॥ योनौ मृगेन्द्रजातीनां नित्यं मांसपरायणः ॥७०॥ स कदाचिद्वने विप्रो जगाम कर्मपाशगः ॥ आनेतुं समिधो दर्भान्सर्वलोकभयंकरे ॥७१॥ उत्थाय तं महासिंहो निजगाल वनांतरे॥ सिंहोपि ब्राह्मणश्चापि गतौ तौ यममंदिरे ॥ ७२ ॥ राजोवाच ॥ ॥ केन वै कारणेनाथ हतो भक्तो महामतिः ॥ तपस्विज्ञानिनां श्रेष्ठो बभूवोभयजन्मनि ॥ ७३ ॥ भक्षयित्वा च तं विप्रं मृतोऽसौ केन हेतुना ॥ एतन्मे संशयं छिंधि भक्तोऽस्मि तव सुव्रत ॥ ७४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि य उक्तः संशयस्त्वया ॥ पूर्वे वयसि राजा तु सत्यसंधो महामते ॥ बभूव मृगयासक्तो मृगमारणतत्परः॥७५॥ एकस्मिन्समये राजा मंत्रिभिः परिवारितः ॥ मृगयायै गतोऽटव्यां धनुर्बाणधरः प्रभो ॥ ७६ ॥ तेन तस्मिन्दिने राज्ञा प्राप्तो नैकोऽपि वै मृगः ॥ संक्षुब्धं तेन तत्सर्वं वनं मृगविवर्जितम् ॥

जी इसप्रकार वरप्रदानकरके वहांही अन्तर्द्धान होगये, और यह कोलासुरकी कन्याभी नदी होगई ॥ ६८ ॥ तब एक समय राजा अपने कर्मयोगसे मृत्युको प्राप्तहोगया और फिर सर्व शास्त्रविशारद शान्तचेता ब्राह्मणहोके प्रादुर्भूत हुआ ॥ ६९ ॥ इधर यह राक्षसकन्याभी सिंहजातिमें नर होकर नित्यही मांसभोजनमें तत्पर होगई ॥ ७० ॥ कर्मबन्धनके अनुसार वह ब्राह्मण एक समय सबको भयदायकवनमें कुश और समिधा लेनेको गया ॥ ७१ ॥ तब ब्राह्मणको सिंहने उठाके मारडाला निदान सिंह और ब्राह्मण दोनोंही पंचत्वको प्राप्तहोगये ॥ ७२ ॥ राजाबोला वोह तपस्वी तो दोनोंही जन्ममें भक्त और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ था फिर उसका वध कैसे हुआ ? ॥ ७३ ॥ अथ च उस ब्राह्मणको भक्षणकरके यह सिंह किसलिये मृत्युको प्राप्तहुआ ? हे सदाचारी ! मैं आपका भक्तहूं, मेरा यह सन्देह आप निवारणकरिये ॥ ७४ ॥ ऋषिजी बोले—सुनो राजन् ! तुमने जो सन्देहके विषयमें प्रश्न किया मैं उसीका वर्णन करताहूं, हे महामतिमान् ! प्रथप वयमें राजा सत्यसन्ध अहेरका शौकीन होनेके कारण मृगोंका वधकरनेमें तत्पर रहताथा ॥ ७५ ॥ एकसमय राजा धनुषबाण धारणकर मन्त्रियोंको साथले वनमें मृगयाके निमित्त गया ॥ ७६ ॥ दैवात् उस दिन राजाको

॥ ७७ ॥ तस्यान्वेषयतो राज्ञः सायं वै समजायत ॥ अथ राजा सत्यसंधो वनाद्वै संन्यवर्त्तत ॥ ७८ ॥ खिन्नोऽतिविमना भूत्वा सरस्तावद्ददर्श सः ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ७९ ॥ जुष्टं पक्षिगणैर्भूप नानावृक्षसमन्वितम् ॥ कमलैरुत्पलैश्चापि शतपत्रैर्महालिभिः ॥ ८० ॥ एतादृशं सरो दृष्ट्वा राजा तत्र जगाम ह ॥ यावत्तत्र गतो राजा जगाम कुहरान्मृगः ॥ ८१ ॥ मृग्या च सहितो भूप सुंदराङ्गोऽतिशोभनः ॥ राजा तु तं मृगं दृष्ट्वा धनुः सज्यं चकार ह ॥ ८२ ॥ बाणं संधाय बाणासे संससर्ज मृगोपरि ॥ बाणो राज्ञो गतस्तत्र मृगपृष्ठे विवेश ह ॥ ८३ ॥ मृगो मानुपया वाचा निजगाद नृपं तदा ॥ ८४ ॥ मृग उवाच ॥ धिक्त्वां नृप प्राणिहंतर्गतिः का ते भविष्यति ॥ यतो व्याघ्रभयान्मां हि मारयामास दुष्टक ॥ ८५ ॥ तेन त्वामपि व्याघ्रो हि हनिष्यति दुरासदः ॥ मया कस्याप्यपकृतन्नो क्वचित्तृणचारिणा ॥ ८६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति श्रुत्वा निग-

कोईभी मृग न मिला, सुतराम् उसने मृगहीन समस्तावनका अन्वेपणकिया ॥ ७७ ॥ अन्वेषण करते करते २ ही सन्ध्यासमय होगया, तब यह सत्यसन्धराजा वनसे लौटा ॥ ७८ ॥ यह स्वयं खिन्न और इसका मन मलीन होरहाथा, इतनेहीमें इसे एक सरोवर दृष्टिगत हुआ वह सरोवर हंस और कारण्डवोंसे आकीर्ण एवं चक्रवाकोंसे सुशोभित होरहा था ॥ ७९ ॥ उस सरोवरमें अनेक पक्षीगण उपस्थित थे, और अनेक प्रकारके वृक्ष वहां व्याप्त होरहेथे, एवं भ्रमरोंसे व्याप्तहुए कमल उत्पल और शतपत्र उसकी शोभाको और भी बढारहेथे ॥ ८० ॥ ऐसे सरोवरको देख राजा वहांगये, जभी राजा वहां पहुंचा इतनेहीमें एक कुहरमेंसे मृग निकला ॥ ८१ ॥ हे विप्र ! मृगी उसके साथमें थी, और उसका अंग अत्यन्तही शोभायमान था, सुतराम् राजाने उस मृगको देख धनुषको तयार किया ॥ ८२ ॥ बाणके स्थानमें बाण चढाय उसे मृगके ऊपर परित्याग किया, और राजासे प्रयुक्तकिया यह बाणमृगकी पृष्ठमें प्रविष्ट हुआ ॥ ८३ ॥ तब तो वह मृग मनुष्यकी समान वाणीसे राजासे यों कहनेलगा ॥ ८४ ॥ मृग बोला— प्राणियोंका हनन करने वाले राजा तुझे धिक्कार है, न जानैं तेरी क्या गति होगी ? क्योंकि, अरे दुष्ट ! तूने व्याघ्रके भयसे मेरा वध किया है ॥ ८५ ॥ अरे दुष्ट ! इस लिये तुझे अवश्य व्याघ्र ही मारैगा, क्योंकि, मुझ तृण चारीने तो कभी किसीका अपकार ही नहीं किया ॥ ८६ ॥ ऋषि बोले—उसके ऐसे

दितं विस्मितोऽभून्नराधिपः ॥ उवाच वचनं त्रस्तस्तस्य शापान्न-
राधिपः ॥ ८७ ॥ राजोवाच ॥ कस्त्वं मृगवरो भूत्वा वने तृण-
चरः कथम् ॥ अस्माकं मृगयायां हि हिंसा दोषाय नो किल॥
॥ ८८ ॥ किमर्थं शापितो राजा मृगयासक्तमानसः ॥ त्वमेव
हि मया प्राप्तो मृगोऽस्मिन्दिवसे गते॥८९॥ मृग उ०॥अहं मुनि-
र्वेदवादी ब्राह्मणोऽस्मि नराधिप ॥ विहर्तुं मृगयोनौ हि
ममाभून्मन उत्तमम् ॥ ९० ॥ राजोवाच ॥ मया त्वं मृगबुद्धया
हि मारितोऽसि न संशयः ॥ तत्क्षमस्व मुनिश्रेष्ठ दयावन्तो
भवादृशाः ॥ ९१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा सहसा राजा न-
नाम चरणौ मुनेः ॥ तुष्टः प्रोवाच मृगको राजानं भक्तिसंयुतम् ॥
॥९२॥ मृग उवाच ॥ सिंहस्त्वां मामकाच्छापाद्धनिष्यत्यन्यज-
न्मनि ॥ सोऽपि राजन्हि सहसा मरिष्यति न संशयः॥९३॥ ऋषि-
रुवाच॥देहं त्यक्त्वा मुनिवरो जगाम गतिमुत्तमाम्॥सोऽपि राजा म-
हाभाग आजगाम गृहे पुनः॥९४॥अनेन कारणेनेश हतः सिंहेन

वाक्य सुन राजाको बड़ा विस्मय हुआ, और वह उसके शापसे भयभीत होकर यह वाक्य कहने लगा ॥ ८७ ॥ राजा बोला—तुम कौन हो ! जो मृग बन कर बनमें तृण चर रहे हो, और हम लोगोंको तो हिंसा करनेमें दोष नहीं माना गया है ॥ ८८ ॥ तो फिर मुझ अहेरी राजाको तुमने शाप क्यों दिया ! कारण कि, आज सन्ध्या समय केवल तुमहीं मृग मुझे प्राप्त हुए ॥ ८९ ॥ मृग बोला—हे राजन् ! मैं वेदवादी ब्रह्मण मुनि हूँ, मृगयोनिमें विहार करनेके लिये मेरे मनमें विचार हुआ था ॥ ९० ॥ राजा बोला—निस्सन्देह मैंने तो मृग ही समझ कर तुम्हारा वध किया था, सो हे मुनिराज !. आप जैसे महात्मा दयालु होते हैं सुतराम् आप भी मुझे क्षमा करिये ॥ ॥ ९१ ॥ ऋषि बोले—राजाने यों कह कर तत्काल मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया, तब वह मृगरूपधारी ऋषि भक्ति संपन्न राजासे यौं कहने लगे ॥ ९२ ॥ मृग बोला—मेरा शाप निष्फल नहीं जा सक्ता अतएव अन्य जन्ममें व्याघ्र तेरा वध करेगा, किन्तु हे राजन् ! वह उसी समय अवश्य मर जायगा ॥ ९३ ॥ ऋषि बोले—वह महर्षि देह त्याग कर उत्तम गतिको प्राप्त होगया, और हे महाभाग ! यह राजा फिर अपने घर चला आया ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! इस कारण करके सिंहने राजाको हनन करा, और महादेवजीके वरदान करनेसे

भूमिपः॥शिवस्य वरदानाच्च सिंहोभूच्छ्यामला तदा ॥९५॥ सर्वाभिश्च कलाभिश्च सा बभूव सरिद्वरा॥इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोहं त्वया नृप॥९६॥ गंगायाः संगमो यत्र तत्तीर्थं शिवदायकम्॥शिवप्रयागविख्यातं स्नानात्सर्वफलप्रदम्॥९७॥ श्यामलेशो महादेवो गंगामध्ये हि वर्तते ॥ शिवरात्रौ महादेवो दृश्यते पुण्यकर्तृभिः॥ ॥९८॥ ततो वै क्रोशखंडे हि धारा गजवती किल ॥ गजाचलात्समायाति परमैश्वर्यदायिनी ॥ ९९ ॥ ततः क्रोशार्द्धके भूप गंगाया दक्षिणे तटे॥ समायाति सरिच्छ्रेष्ठा नाम्ना वै पुष्पदंतिका ॥ १०० ॥ यस्या जलं समभ्युक्ष्य शीर्षे भक्तिसमन्वितः ॥ प्रयागे मासमात्रं तु स्नात्वा राजा भवेन्नरः॥१॥ ततोऽपि शरविक्षेपे गंगातीरे शिला शुभा॥नाम्ना भानुमती ख्याता स्पृष्टा सौंदर्यदायिनी ॥२॥ यासौ भानुमती पूर्वं राजकन्या बभूव ह ॥ ॥ ३ ॥ अस्मिन्नेव स्थले रम्ये मत्स्याक्षो नाम वै द्विजः ॥ तपश्चकार परमं भावयन्मनसा रविम् ॥ ४ ॥ सूर्यकुंडे सदा

वह श्यामला भी सिंह होगई ॥ ९५ ॥ और वह अपनी पूर्णकलाओंसे श्रेष्ठ नदी होगई। हे राजन्! तुमने जो प्रश्न किया था वही हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ॥ ९६ ॥ और जहाँ गंगाजीमें उसका संगम हुआ है वह स्थान कल्याणदायी शिवप्रयाग नामसे विख्यात है उसमें स्नान करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है ॥ ९७ ॥ वहाँ ही गंगाजीके मध्यमें श्यामलेश महादेवजी विद्यमान हैं, पुण्यशील मनुष्योंको शिवरात्रिके दिन उक्त महादेवजीके दर्शन होते हैं ॥ ९८ ॥ वहाँसे कोश खंडकी दूरी पर गजवती नामकी एक धारा है उस परम ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवालीका गजाचलहीमेंसे आगमन होता है ॥ ९९ ॥ हे राजन्! वहाँसे आधेकोशकी दूरी पर गंगाजीके तटपै पुष्पदन्तिका नामकी श्रेष्ठ नदी आती है ॥ १०० ॥ जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक उक्त नदीके जलका अपने शिरमें अभिषेक करता और एक मास पर्य्यन्त शिवप्रयागमें स्नान करता है वह अवश्यही राजा होताहै ॥ १ ॥ वहाँसे एक बाण विक्षेपकी दूरीपर गंगाजीके तटपै परम पवित्र भानुमती नामकी एक शिला है, उसका स्पर्श करनेसे सौन्दर्यका लाभ होता है॥२॥यह भानुमती शिला पूर्वकालमें राजकन्या थी॥३॥इसी रमणीय स्थलमें मत्स्याक्ष नाम ब्राह्मणने सूर्यनारायणकी मनो योग पूर्वक भावना करके उग्रतपका आचरण किया था॥४॥और महामतिमान् वह ब्राह्मण अपने शिष्यवर्गसमेत सूर्य्य कुण्डमें स्नान किया करता

स्नानं प्रचकार महामतिः ॥ शिष्यैश्च बहुभिर्युक्त ऊर्द्ध्वं क्रोशा-र्द्धके द्विजः ॥ १०५ ॥ वसति स्म महीपालाध्यापयन्ब्रह्म ब्राह्म-णान् ॥ एकदा स तु मत्स्याक्षः स्नानाय कृतमानसः ॥ तीरे ह्यलकनंदाया आययौ शिष्यसंयुतः ॥ ६ ॥ यावत्तत्र समायाति तावद्भानुमतीं नृप ॥ सखीभिः सवयस्काभिर्वेष्टितां यौवनोन्मदाम् ॥ ७ ॥ कुचकुंकुमसंरक्तसमीपजललोहिताम् ॥ ददर्श ह्यंस-र्वांगीं कामस्यैवापरां रतिम् ॥ ८ ॥ तां दृष्ट्वा सहसा विप्रस्तस्थौ दूरे महामतिः ॥ तस्याश्चेक्रीडयमानाया दिनं सर्वं क्षयं गतम् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वापि तं द्विजवरमुत्तस्थुर्न विमोहिताः ॥ हास्यं चक्रुश्च ताः सर्वा दृष्ट्वादृष्ट्वा पुनःपुनः ॥ ११० ॥ ततः सर्वैर्हि मत्स्याक्षो तां दृष्ट्वा स्थावरोपमाम् ॥ शशाप क्रोधसंविष्टः स च रक्तातिलोचनः ॥ ११ ॥ मत्स्याक्ष उवाच ॥ यस्मात्त्वं राज-कन्ये हि स्थिता पाषाणवज्जले ॥ शिला भूत्वा त्वमत्रैव स्थिता स्याः कतिचित्समाः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विप्र प्रीताः सर्वाः समाययुः ॥ पादयोस्तस्य विप्रस्य निपेतुश्च-

था ॥ १०५ ॥ वह महाशय वहां निवास करके ब्राह्मणोंको ब्रह्म विद्याका अध्यापन करता था। एक समय वह मत्स्याक्ष स्नान करनेके लिये मनमें ठान अपने शिष्योंको साथले अलकनन्दाके तटपर आया ॥ ६ ॥ जभी यह वहां आया, हे राजन्! तभी इसने समान वयसवाली सखियोंसे आवृत हुई यौवनोन्मादशालिनी, एवं जिसके कुचाओंमें लगे कुंकुमसे समीपका जल रक्तवर्ण होग-या था ऐसीं भानुमतीको देखा, उसका सब अंग ऐसा मनोहर था जैसे कामपत्नी रतिहो॥७॥८॥ उसे देखकर वह महामतिमान् दूरही उपस्थित होगया, उसे क्रीड़ा करतेंही करते सब दिन क्षय होगया ॥ ९ ॥ उक्त ब्राह्मणको देखकरभी मोहित हुई वह उठी नहीं, किन्तु इसे देखके बारंवार हास्य करने लगी ॥ ११० ॥ मत्स्याक्षने जब उसे स्थावरकी समान देखा तब उसके नेत्रोंका रक्तवर्ण होगया अतएवं इसने क्रोध पूर्ण हो उसे शाप दिया ॥ ११ ॥ मत्स्याक्ष बोला—चूंकि, हे राजकुमारी! तुम पाषाणकी समान जलमें स्थित रहीहो, इस हेतु शिलाबनकर कुछवर्ष पर्य्यन्त तुम्हें यहां ही स्थित रहना होगा ॥१२॥ ऋषि बोले— हे विप्र! उनके ये वाक्य सुन सब

कितास्तदा ॥ १३ ॥ एवं प्रसाद्यमानस्तु मत्स्याक्षो नाम वै द्विजः ॥ उवाच वचनं प्रीत्या कन्यां भानुमतीं पुनः ॥ १४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ममामोघाच्च शापाद्वै भविष्यस्येव सुंदरी ॥ शिलापुण्यतमा भद्रे स्पृष्टा सौंदर्यदायिनी ॥ ११५ ॥ शापमोक्षोऽपि भविता कदाचिच्चरमे युगे ॥ वृन्दानाथ इति ख्यातस्तत्पाददर्शनात्किल ॥ १६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्याभाष्य मुनीशोऽसौ स्नात्वा निजगृहं गतः ॥ सापि भानुमती तत्र शिलारूपा बभूव ह ॥ १७ ॥ एवं तस्याश्च विभव उत्पत्तिश्च मया तव ॥ कथिता नृपते धर्मनेत्र शत्रुविमर्द्दन ॥ १८ ॥ सूर्यकुंडे नरः स्नात्वा कुष्टरोगैः प्रमुच्यते ॥ लभते च तथा स्नानं सूर्यस्याति सुखप्रदम् ॥ १९ ॥ अथ तस्मादपि स्थानादलकनंदातटे शुभे ॥ क्रोशमात्रे नृदेवी च संगमे यत्र तीर्थके ॥ इंद्र प्रयाग इति वै ख्यातो मुक्त्यै सुचेतसाम् ॥ १२० ॥ यत्र तीर्थे नृदेवी हि तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥ बभूव च नदी पुण्या इंद्रलोकप्रदायिनी ॥ ॥ २१ ॥ यत इन्द्रस्तपस्तेपे भ्रष्टो लक्ष्या सुदारुणम् ॥ संप्राप

प्रसन्नहो उनके निकट आई, और चकित होकर उन द्विजराजके चरणोंमें निपतित हो गई ॥ ॥ १३ ॥ जब इस प्रकार अनुनयकरी तब मत्स्याक्ष प्रसन्नहो भानुमतीसे यों कहने लगे ॥ १४ ॥ ब्राह्मणने कहा— हे भद्रे ! हमारा शाप निष्फल नहीं जाता अतएव तुम अतिशय पवित्र और सुन्दरी शिलाबनोगी, एवं तुम्हारास्पर्श करनेसे सुन्दरताका लाभ हुआ करेगा ॥ ११५॥ अथ च वृन्दनाथके दर्शन करनेपर अन्त्य युगमें तुम्हारे शापका मोक्षभी हो जायगा ॥ १६ ॥ ऋषि बोले— यों कहकर स्नान करके वे मुनीश्वर अपने घर चलेगये, और वह भानुमती वहां शिलारूप होकर स्थित होगई ॥ १७ ॥ इस प्रकार हमने उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे शत्रुविनाशीधर्मनेत्र ! उसे तुमने सुना ॥ १८ ॥ सूर्य्यकुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्यका कुष्ट रोग दूर हो जाताहै, और उस सूर्यनारायणके सुखदायी लोककी प्राप्ति होतीहै ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर उसी स्थानके आगे अलकनन्दाके शुभतटपै एककोशमात्रकी दूरीपर जहां नृदेवीका संगमहै, सज्जनोंको मुक्ति देनेवाला वह स्थान इन्द्रप्रयाग नामसे विख्यात है ॥ १२० ॥ उसी स्थानमें नृदेवीने दारुण तपका आचरण किया था, तभी वह इन्द्रलोक प्रदान करनेवाली पवित्र नदी हो गई थी ॥ २१ ॥ लक्ष्मीसे परित्यक्त होजाने पर वहां ही इन्द्रने भी उग्र तप किया था,

महतीं लक्ष्मीं यस्य तीर्थस्य सेवनात ॥ २२ ॥ तदादि तीर्थरा-
जस्य नामाभूत्सर्वपापनुत्॥ततो द्विशरविक्षेपे नदी दृषद्वती पुनः॥
॥ २३ ॥ दृषद्वतः पर्वताद्रि समायाता ततः स्मृता ॥ स्नानं
कृत्वा च तत्रापि लभते च वरांगनाः ॥ २४ ॥ यदि स्त्री स्नाति
सत्पुत्रं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥ ततोऽपि क्रोशखंडार्द्धे ख्याता
नाम्ना हि कंडिका ॥ १२९ ॥ संगमे स्नानमात्रेण ददाति शिव-
मंदिरम् ॥ २६ ॥ तदर्द्धे पर्वते रम्ये गव्यूतौ नृपनंदन॥ गुहाम-
ध्ये महादेवी कंडिकेत्यभिधा मता ॥ २७ ॥ कंडिकापूजनान्म-
र्त्यो बलिदानसमर्प्पणात् ॥ यंयं चिंतयते कामं तंतं प्राप्नोत्य-
संशयम् ॥ २८ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे समायाति नदीवरा ॥
शक्तिजेति समाख्याता देवीचरणनिर्गता ॥ २९ ॥ संगमाच्छ-
रविक्षेपे शक्तिजायाः परे तटे ॥ गणेश्वरो महादेवः सर्वेषां मुक्ति-
दायकः ॥ १३० ॥ समाराध्य गणा यत्र देवदेवमुमापतिम् ॥
प्रापुयुः परमैश्वर्यं यदन्यैर्भुवि दुर्लभम् ॥ ३१ ॥ शक्तिजायां

और इसी तीर्थकी सेवा करनेसे उन्हें महतीलक्ष्मीकी प्राप्ति हुईथी॥२२॥ उसी दिनसे यह तीर्थराज सब पापोंका विनाश करने वाला प्रसिद्ध हुआहै, वहांसे दो बाणके विक्षेपकी दूरीपर दृषद्वती नामकी एक नदी है ॥ २३ ॥ वह दृषद्वान् पर्वतके ऊपरसे आती है, इसीकारण उसका यह नाम हुआ है, उसमें स्नानकरनेसे श्रेष्ठ स्त्रियोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ २४ ॥ स्त्रीको उसमें स्नान करनेसे सत्पुत्र और कन्याको उत्तमपतिकी प्राप्ति होती है वहांसे आधेकोशकी दूरीपर काण्डिका नामकी नदी है ॥ १२९ ॥ उसके संगममें केवल स्नानमात्र करनेसे शिवधामकी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ हे नृपनन्दन ! वहांसे ऊपरकी ओर पर्वतके ऊपर दो कोशकी दूरीपर गुफाके भीतर कण्डिका नाम देवीजी हैं ॥ २७ ॥ बलिप्रदान करके जो मनुष्य काण्डिकाका पूजन करता है, वह जिस २ वस्तुकी कामना करता है अवश्यही उसे वह प्राप्त होजाती है ॥ २८ ॥ गंगाजीसे उत्तरकी ओर शक्तिजा नामकी एक उत्तम नदी वहती है, देवीजीके चरणोंमेंसे उसकी उत्पत्ति हुईहै ॥ २९ ॥ संगमसे एक बाणकी दूरीपर शक्तिजाके दूसरे तटपै सबको मुक्ति देने वाले गणेश्वर नामके महादेवजी विद्यमान् हैं ॥ १३० ॥ वहां ही उमापति महादेवजीकी आराधना कर गणोंने ऐसे परप ऐश्वर्य्यका लाभ किया था कि, जिसकी प्राप्ति औरोंके लिये दुर्लभहै ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य शक्तिजामें नित्य स्नानकर महादेवजीकी पूजा करताहै, वह महादेवजीके अगाड़ी गणवनताहै,

सदा स्नाति शिवपूजारतो भवेत् ॥ गणो भवेच्छिवाग्रे तु नंदि-भृंग्यादिकस्तथा ॥ ३२ ॥ ततोऽपि क्रोशखण्डार्द्धे भवानीस्थानमद्भुतम् ॥ यत्र देवास्सगंधर्वा वर्तंते नित्यमेव हि ॥ ३३ ॥ तत्रैका परमा देवी श्मशानावासिनी शुभा ॥ प्रेतानां स्वामिनी सा तु प्रेतमुक्तिकरा मता ॥ ३४ ॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे शीघ्रं सिद्धिप्रदायिनी॥सप्तरात्रं प्रजपति मनुं नामसमन्वितम्॥१३५॥ अजेयमपि राजानं जयेत्स सार्वभौमकम् ॥ अविद्यो लभते विद्यां निर्धनो धनमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं राज्यार्थी तत्पदं लभेत् ॥ ३७ ॥ यंयं संचिन्त्य कामं हि करोति शिव-पूजनम् ॥ निश्चयेनैव भूमीश तंतं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३८ ॥ भवान्याः क्षेत्रकं पुण्यं चतुर्दिक्षु तथा स्मृतम् ॥ गव्यूतौ पश्चिमे प्रोक्तमुत्तरे च तथा स्मृतम् ॥ ३९ ॥ पर्वभागे क्रोशमात्रं दक्षिणे संगमावधि ॥ १४० ॥ एतस्मिन्मंडले मर्त्यो वसन्यो न ददाति हि॥ नवान्नादि भवेन्मर्त्यो दरिद्रो दुःखपीडितः॥४१॥तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन दातव्यं नव्यवस्तु हि ॥ पूर्वं देव्यै तदा मर्त्यः स्वयं भुं-

अथ च नन्दी भृंगी आदिभी इसी प्रकार गण हुए हैं ॥ ३२ ॥ वहांसे भी आधे कोशकी दूरीपर भवानीका अद्भुत स्थान है, वहां देवता और गन्धर्व नित्यही निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ श्मशानवासिनी एक परमदेवी है, वे प्रेतोंकी स्वामिनी और उनको मुक्ति देने वाली हैं॥३४॥ इस क्षेत्रमें जप करनेवालोंको वह देवी शीघ्रही सिद्धि प्रदान करती हैं, जो मनुष्य सातरात्रि पर्य्यन्त उक्त देवीजीके मन्त्रको जपता है ॥ १३५ ॥ वह अजेय चक्रवर्त्ती राजाको भी जीत सक्ता है। मूर्खको विद्या और निर्धनको धनकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३६ ॥ पुत्रहीनको पुत्र, और राज्याभिलाषीको राज्यका लाभ होता है ॥ ३७ ॥ मनुष्य अपने चित्तमें जिस २ वस्तुकी कामना करके देवीजीका पूजन करता है, हे भूपाल ! उसे अवश्यही उस वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥ भवानीका यह पवित्र क्षेत्र चारों ही ओर विस्तृत है, पश्चिमकी ओर दो कोश पर्य्यन्त, और इतनाही उत्तरमें है ॥ ३९ ॥ पूर्वमें एक कोश और दाक्षिणमें संगम पर्य्यन्त यह क्षेत्र माना जाताहै ॥१४०॥ इस मण्डलमें निवास करके जो मनुष्य नवीन अन्न आदिका दान नहीं करता वह दरिद्र और दुःखित होताहै॥४१॥इस कारण मनुष्योंको चाहिये कि,प्रथम सब नवीन वस्तु देवीजीके अर्पण करे तत्पश्चात

जीत भूपते ॥४२॥ अस्या वै पूजनाशक्तो नित्यं शिवपरायणः ॥ लभते सुतरां देव देवैरपि गतिं पराम् ॥ ४३ ॥ ततोऽपि क्रोशमात्रे हि शंखवत्याश्च संगमे ॥ शक्तिजायां यत्र देशे स्नात्वा देवीपुरे वसेत् ॥ ४४ ॥ ततोऽप्युत्तरदिग्भागे शक्तिजायाश्च पश्चिमे ॥ तीरे क्रोशार्द्धके स्थानं महादेवस्य भूपते ॥ १४५ ॥ यत्र स्थाने महाराजो नहुषो नाम विश्रुतः ॥ सोमवंशोद्भवो राजा तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥ ४६ ॥ प्राप्तवानिन्द्रराज्यं हि यत्र तप्त्वा तपः परम् ॥ तदाद्ययं महादेवो नहुषेश्वरतां गतः ॥४७॥ राजोवाच॥ कथमत्र तपस्तप्तं नहुषेण महात्मना ॥ कथमिंद्रासनं प्राप्तं कथं वै संस्तुतो हरः ॥४८॥ एतत्सर्वं मुनिश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ॥ तृप्तिर्मे जायते नैव पायंपायं वचोऽमृतम् ॥४९॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि साधु पृष्टं त्वयाऽनघ॥ यथा तेन तपस्तप्तं प्रसन्नोऽभूद्यथा शिवः ॥१५०॥ पुरा कृतयुगे राजा नहुषोऽभून्महायशाः ॥ सभायां संस्थितो भूपः शुशुभे मंत्रिभिः सह ॥५१॥

हे भूपाल ! स्वयं भोजन करना कर्त्तव्य है॥४२॥जो मनुष्य महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर हो नित्यही देवीजीकी पूजा करता है, उसे देवताओंसे भी अधिक परम गतिका लाभ होता है ॥४३॥ वहांसे एक कोशकी दूरीपर शक्तिजा और शंखवतीका जहां संगम हुआ है उसमें स्नान करनेसे देवीजीके लोकमें निवास प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ वहांसे उत्तर और शक्तिजासे पश्चिमकी ओर आधेकोशकी दूरीपर हे राजन् ! महादेवजीका एक परमस्थान है ॥ १४५ ॥ उसी स्थानमें सोम (चन्द्र) वंशी विश्वविख्यात नहुष राजाने दारुण तप किया था ॥ ४६ ॥ यहां परमतप करनेहीसे उसे इन्द्रका राज्य प्राप्त हुआ और उसी दिनसे इन महादेवजीका नहुषेश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४७ ॥ राजा बोला—महात्मा नहुषराजाने तप कैसे किया उन्हें इन्द्रासनकी कैसे प्राप्ति हुई ? एवं उन्होंने किस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करीं ॥ ४८ ॥ हे मुनिराज ! यह सबकुछ कृपाकरके मेरे प्रति वर्णन करिये, क्योंकि अमृतरूप आपके वचनोंको पान करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ४९ ॥ ऋषिजी बोले—सुनो ! अनघराजन् ! ! सुनो ! ! ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जैसे राजाने तप किया और सदाशिवजी जिस प्रकार प्रसन्न हुए (उसीका हम वर्णन करते हैं) ॥ १५० ॥ प्रथम सत्ययुगमें महायशस्वी एक नहुषराजा हुआ था, जब वह मन्त्रियों सहित सभामें बैठता थ

सुधर्मायां यथा देवः शुशुभे च शचीपतिः ॥ नानामणिगणान-द्धस्वर्णसिंहासने स्थितः ॥ ५२ ॥ चामरैर्वीज्यमानश्च श्वेतच्छत्रोपशोभितः ॥ देवतुल्यैर्मंत्रिवर्य्यैर्युक्तो भूमींद्रनायकः ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्समये भूप नारदो मुनिरभ्यगात् ॥ आयांतं तं मुनिं दृष्ट्वा ह्युत्तस्थौ च महीपतिः ॥५४॥ पाद्यादिभिश्च संपूज्य स्वासने सन्निवेश्य च ॥ पप्रच्छ सुतरां राजा स्वागतं मुनिसत्तम ॥ ॥१५५॥ नहुष उवाच ॥ ॥ भोभो मुनिगणश्रेष्ठ कृतार्थोऽस्मि त्वदागमात् ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्ते मुनीश्वर ॥ ५६ ॥ कुत आगमनं तेऽद्य वर्तते मुनिनायक ॥ किं कर्त्तव्यं मयेदानीं कार्यं तव यदिच्छसि ॥ ५७ ॥ नारद उवाच॥ इंद्रलोकान्महाराज आगतोस्म्यत्र भूपते ॥ दृष्ट्वेन्द्रस्य सभां दिव्यां त्वदीयां द्रष्टुमागतः ॥ ५८ ॥ न शोभते महाबाहो यथा सेंद्रसभा शुभा ॥ त्वद्योग्यमस्ति तद्राज्यं धरायोग्यो भवान्न हि ॥ ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्याभाष्य नृपश्रेष्ठं ययौ देवगतिं पुनः ॥ तत्संश्रुत्यैव सहसा नहुषो मोहितोऽभवत् ॥ १६० ॥

तब उसकी ऐसी शोभा होती थी ॥ ५१ ॥ जैसे देव सभामें शचीपतिसुरराज इन्द्र विराजमान हों, सभामें राजा अनेक मणियोंसे जटित हुए सुवर्णके सिंहासनपर विराजते थे ॥ ५२ ॥ उस समय उनके ऊपर श्वेतछत्र विराजित होता और चँवर ढुलाये जाते थे, विशेष क्या कहैं वह राजराजेश्वर देवतुल्य मन्त्रियोंसे युक्त रहता था ॥ ५३ ॥ इसी समय देवर्षि नारदजी वहां आये, और मुनिको आतेदेख राजा उठ खडे हुए ॥ ५४ ॥ राजाने पाद्य आदिसे मुनिकी पूजा कर सुन्दर आसनके ऊपर उन्हें बैठाय, हे मुनीश्वर ! उनका स्वागत पूछा ॥ ५५ ॥ नहुष बोले– हे मुनीश्वर ! मैं आपके आगमनसे कृतार्थ होगया, हे मुनिराज ! आपके दर्शन करनेसे मैं धन्य और कृतकार्य्य होगया हूं ॥ ५६ ॥ हे मुनिनायक ! आज आपका आगमन कहांसे होरहा है ? और सम्प्रति मै आपका कौनसा कार्य्य करूं ॥ ५७ ॥ नारदजी बोले–हे भूपाल ! इस समय मैं इन्द्रलोकसे दिव्यदेवसभाको देखके तुम्हारी सभा देखनेके लिये आरहा हूं ॥ ५८ ॥ किन्तु हे महाबाहो ! इन्द्रकी सभाकी समान आपकी सभा शोभायमान नहीं होती है, वह (इन्द्रका) राज्य आपहीके योग्य है कारण कि, आप भूमिके योग्य नहीं हैं ॥५९॥ ऋषि बोले–राजासे यौं कह कर नारदजी फिर दैवगतिको चलेगये,और इधर यह बात सुनतेही राजा नहुष मोहित होगये॥१६०॥

पुत्रं राज्ये समावेश्य तपस्तप्तुं समाययौ ॥ अस्मिन्नेव महास्थान इंद्रराज्याय भूमिप ॥६१॥षडक्षरेण मंत्रेण ह्याराध्य शिवमुत्तमम् ॥ तथा धूपैश्च दीपैश्चं नैवेद्यैश्च तथा परैः ॥ ६२ ॥ ततः क्रमेण नहुषस्तताप परमं तपः ॥ शिवमेव सदा ध्यायन्मनसा नान्यगामिना ॥ ६३ ॥ एवं तस्य महाभाग तप्यमानस्य भूपतेः ॥ जातानि स्थावरस्येव स्थितस्य नियतात्मनः ॥ ६४ ॥ पंचाशद्धि सहस्राणि वर्षाण्यचलचेतसः॥व्यतीयुश्च महाभाग नहुषस्य महात्मनः ॥ १६५ ॥ तस्योपरि तु वल्मीकं बभूवामिततेजसः ॥ एतस्मिन्नंतरे मेघा ववृषुः सुतरां पुनः ॥ ६६ ॥ तन्मुखस्थं च वल्मीकं जलेन क्षालितं तदा ॥ शुशोभ तन्मुखं देव उदयाद्रौ रविर्यथा ॥ ६७ ॥ तदुन्मीलितयोरक्ष्णोस्तेजसा सकलं जगत् ॥ तापितं वै बभूवाथ जग्मुः सर्वे दिवौकसः ॥६८॥ महादेवोऽपि भगवान्वृषस्थो भस्मलेपनः ॥ व्यालयज्ञोपवीती च चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ६९ ॥ स्रवद्रक्तेभचर्मासौ नीलकंठो गणैर्युतः ॥

हे भूपाल ! अपने पुत्रको राज्यसिंहासनके ऊपर अभिषिक्तकर इन्द्रके राज्यकी कामना करके तप करनेके लिये इसी महास्थानमें आये ॥६१॥ "ॐनमः शिवाय" इस षडक्षर मन्त्रका जपकरके धूप दीप नैवेद्यके द्वारा उन्होंनें महादेवजीकी खूब पूजा करी ॥६२॥ तब क्रमसे राजा नहुषने बड़ा उग्र तप किया, और एकाग्रमनसे सदैव महादेवजीका ध्यान किया ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! आत्मनिग्रह पूर्वक स्थावरकी समान उस राजाको इस प्रकार तपकरते २ ॥ ६४ ॥ पचास सहस्र वर्ष व्यतीत होगये, अर्थात्-इस समय शुद्धमहात्मा नहुष इसी क्रमसे तप कररहे ॥ ६५ ॥ सुतराम् उस अतुलपराक्रमीके ऊपर वल्मीकका संचय होगया, फिर उसी समय उसके ऊपर मेघकी प्रभूत वर्षा हुई ॥ ६६ ॥ तब उसके मुखके ऊपरकी वल्मीक जलके द्वारा प्रक्षालित होगई सुतराम् उसका मुख ऐसा सुशोभित होनेलगा जैसे उदयाचलके ऊपर सूर्य्य होता है ॥ ६७ ॥ यद्यपि राजा नेत्रबन्द करे ही बैठेथे तथापि उनके तेजसे सब जगत् सन्तप्त होगया, तब सब देवता उनके निकट गये ॥ ६८ ॥ भगवान् महादेवजी भी वृषके ऊपर आरूढ हो, भस्म लगाये सर्पोंका यज्ञोपवीत धारणकरे, जिनके मस्तकपर अर्द्धचन्द्रमा विराजमान है ॥ ॥ ६९ ॥ रुधिरचूते गजचर्मको धारण किये, जिनका नीलकंठ और साथमें गणहैं, जिनके अर्द्धांगमें पार्वतीजी विद्यमान हैं जो अपर कैलास पर्वतकी समान प्रतीत होरहे हैं, ऐसी विधिसे

अर्द्धांगन्यस्तगौरीशो रजताद्रिरिवापरः ॥ १७० ॥ तं दृष्ट्वा सहसा राजा समुत्थाय कृतांजलिः ॥ स्तुतिं वै कर्तुमारेभे त्रैलोक्यस्यैकनायकम् ॥ ७१ ॥ नहुष उवाच ॥ ॥ धन्योऽस्मि हे नाथ तव प्रसादाद्यन्मांसचक्षुर्भवदंघ्रिपद्मकम् ॥ ब्रह्मादिदेवैः सुतरां महेश दृष्टं न पश्याम्यधुना मनुष्यः ॥ ७२ ॥ तव स्तुतौ नाथ महेश योग्यका भवंति नो विष्णुपितामहादयः ॥ अहं कथं वै मनुजेषु दुर्बलः संसारवारांनिधिमग्न ईशे ॥ ७३ ॥ तथापि मे नाथ तव स्तुतौ हि भवेद्धि योग्यत्वमहो महेश ॥ ब्रह्मादिदेवा अनुमार्गमाणा न प्रापुरंतं भवतः पुरारे ॥ ७४ ॥ सृष्टिं यदा त्वं कुरुषे स्वलीलया सशक्तिको वै भवसि प्रभो त्वम् ॥ गुणैरतीतोपि रजोगुणात्मा ब्रह्मा त्वमेवासि च सृष्टिकर्त्ता ॥ १७५ ॥ पुनश्च वै सत्त्वगुणप्रधानो महेश मायागुणसंप्रविष्टः ॥ विष्णुस्वरूपो भवसि प्रभो भोः सर्वस्य लोकस्य च पालकस्त्वम् ॥ ७६ ॥ यदा तवेच्छा भवति प्रहर्तुं तदैव देवासुरदानवादीन् ॥ तदा तमोदेहगुणप्रविष्टो रुद्रोऽसि कालः कलनात्मकस्त्वम् ॥ ७७ ॥ न वेद कश्चिद्भवतो महेश मध्यं न चांतं न च वै तवादिम् ॥

वहां आये ॥ १७० ॥ उन्हें देखतेही हाथ जोडकर राजा उठ खडे हुए और त्रिलोकी नाथकी स्तुति करनेको उद्यत होगये ॥ ७१ ॥ नहुष बोले—हे नाथ ! आपकी कृपासे मुझे धन्य है, क्यों कि, ब्रह्माआदि देवताओंकोभी जिनकें दर्शन नही होते, मैं मनुष्य होकर उन्हीके दर्शन कर रहा हूं ॥ ७२ ॥ हे महेश्वर ! जब आपकी स्तुति करनेके योग्य विष्णु और ब्रह्माजी आदिभी नहीं समझे जाते हैं, तौ फिर मनुष्योंमें दुर्बल और संसार सागरमें निमग्न हुआ मैं कैसे शक्त हो सक्ताहूं ॥ ॥ ७३ ॥ तथापि हे महेश्वर ! आपकी स्तुति करनेमें मेरी योग्यता होसकैगी यह बडे अश्चर्यका विषय है, कारण कि, हे त्रिपुरारि ! अन्वेषण करनेपरभी ब्रह्माआदि देवता आपका अन्त नहीं पा सक्ते हैं ॥ ७४ ॥ हे प्रभो ! जब आप अपनी लीला करके सृष्टिको निर्माण करते हैं, तौ आप निर्गुण होनेपरभी रजोगुणात्मा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा बन जाते हैं ॥ १७५ ॥ फिर हे महेश्वर ! सत्त्व प्रधानमें प्रविष्ट हो विष्णु स्वरूप बनके सब लोकका पालन भी आपही करते हैं ॥ ७६ ॥ और जब देवासुर दानवोंसहित सबहीका संहार करनेके लिये आपकी इच्छा होतीहै तब तमोगुणी देहमें प्रविष्ट हो कलनात्मक कालरूप रुद्रभी आपही बनते हैं ॥ ७७ ॥ हे महेश्वर ! आपके

त्वयैव सर्वाणि जगंति देव व्याप्तानि सेंद्रासुरमानुषाणि ॥ ७८ ॥ यथा जलेषु प्रतिबिंबभूताः सूर्यस्य बिंबाः प्रभवंति भूमौ ॥ तथा त्वमेकः किल सर्वभूतो नानाविधस्त्वं भवजीवभूतः ॥ ७९ ॥ कृतं न ते देव पदारविंदसमर्चनं जन्मजरापनत्तये ॥ विमोहितेनेह गृहादिषु प्रभो क्षमस्वं मे नाथ कृतापराधम् ॥ १८० ॥ हे देवदेवेश महेश जन्म यत्रापि कुत्रापि परं ययाचे ॥ त्वदीयपादांबुजध्यानशक्तिर्भवेन्मम प्राणगतेऽथ काले ॥८१॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ प्रसन्नोऽस्मि महाराज स्तुत्या च तपसा तव ॥ वरं वरय यत्ते वै मनसि प्रबभूव हि ॥ ८२ ॥ ॥ नहुष उवाच ॥ वरार्हो यद्यहं देव तदा स्यामिन्द्रलोकभाक् ॥ अनेनैव हि देहेन देवानां हि पुरो वसन् ॥ ८३ ॥ सर्वेषां चैव देवानां मर्त्यानां सुरविद्विषाम् ॥ शासिता स्यां यथा देव पौलोम्याः पतिरुत्तमः ॥ ॥ ८४ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ गच्छ गच्छसि देवस्त्वं सदेहो देवलोकके ॥ दुर्लभं न हि ते किंचित्तपसा तव भूपते ॥१८५॥ इदं स्तोत्रं त्वयाख्यातं पठिष्यंति मदालये ॥ ते वै मत्सदृशा

आदि मध्य अन्तको कोई भी नहीं जानता, हे देव ! इन्द्र असुर और मनुष्यों सहित सब जगत्को आपहीने व्याप्तकर रक्खाहै ॥ ७८ ॥ जैसे भूमिके ऊपर जलमें सूर्य्यके अनेक प्रतिबिम्ब प्रतीत होतेहैं, इसी प्रकार यद्यपि आप एक है तथापि अनेक प्रकारसे दृष्टिगत होते हैं ॥ ७९ जन्म और जराके दूरकरनेकी कामनासे मैंने आपके चरण कमलोंका पूजन कभी नहीं करा, मैं अपने घर आदिके मोहहीमें मोहित रहा, अब आप मेरे अपराधको क्षमा करिये ॥ १८० ॥ हे नाथ ! अब मैं आपसे यह याचना करताहूं कि, अब जहां कहीं भी मेरा जन्महो, वहांही मरण समय आपके चरणोंमें मेरा ध्यान बना रहै ॥ ८१ ॥ श्री शिवजी बोले–हे महाराज ! हम तुम्हारे तप और स्तुतिसे प्रसन्नहै, अब जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर माँगो ॥ ८२ ॥ नहुष बोले–हे देव ! यदि मैं वरपानेके योग्य हूं तो मुझे इन्द्रलोककी प्राप्ति हो, और मैं इसी देहसे देवलोकमें निवास करूं ॥ ८३ ॥ सब देवता मनुष्य और असुर मैं भी इसी प्रकार शासनकरूं जैसे शचीपति इन्द्र करतेहैं ॥ ८४ ॥ श्रीशिवजी बोले–जाओ ! तुम इसी देहसे देवलोकमें जाओगे, क्योंकि हे राजन्! आपने तप ऐसा कियाहै जिससे तुम्हैं दुर्लभ कुछभी नहीं है ॥ १८५ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे कीर्त्तन करे हुए इस स्तोत्रको हमारे मन्दिरमें पढेंगे, निस्सन्देह

लोके भविष्यंति न संशयः ॥ ८६ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ प्रणिगद्येति भगवांस्तत्रैव स्थितवान्प्रभुः ॥ नंदिभृंग्यादिभिर्युक्तो नहुषेश्वरतां गतः ॥ ८७ ॥ सोऽपि राजा देवलोके ययौ देवैः स्तुतः प्रभुः॥ चामरैर्वीज्यमानश्च नानाछत्रैर्विराजितः॥८८॥ इंद्रो बभूव तत्रापि यस्य क्षेत्रस्य सेवनात् ॥ इति ते कथितं भूयो यत्पृष्टोहं त्वयाऽधुना ॥ ८९ ॥ अद्यापि तत्प्रदेशे हि सिंहव्याघ्रस्वरूपकाः ॥ समायांति गणास्तत्र सेवितुं पार्वतीपतिम्॥ ॥ १९० ॥ एको हि कालसर्पो वै तक्षको नाम भूपते ॥ वर्त्तते तत्प्रदेशे हि सेवते शिवमुत्तमम् ॥ ९१ ॥ रुद्राध्यायेन यः कश्चिदभिषेकं करोति च॥तेन वै सुतपस्तप्तं देवैरपि दुरासदम् ॥ ॥ ९२ ॥ पुत्रार्थी पक्षमेकं तु धनार्थी च तथैव हि ॥ अभिषेकं तु यः कश्चिद्भक्त्या प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ९३ ॥ तदूर्द्ध्वे नरशार्दूल देवीपीठमुदाहृतम् ॥ गव्यूतिद्वयविस्तीर्णे पर्वते शुभदायके॥ ॥ ९४ ॥ तत्पीठदर्शनादेव महापापैः प्रमुच्यते ॥ यत्र देवी महेशानी वर्त्तते शिवसंयुता ॥ १९५ ॥ तत्पीठस्य तु माहात्म्यं

वे लोकमें मेरी ही समान होंगे ॥ ८६ ॥ उत्फालकजी बोले—यों कहकर भगवान महादेवजी नन्दी भृंगी आदि गणोंसहित वहां ही स्थित होगये, इसी कारण उनका नहुषेश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ॥ ॥८७॥ इधर यह राजा भी देवताओंके द्वारा स्तुति कियां जाके देवलोकको चलागया, अनेक छत्र उसके ऊपर लगरहे और चमर ढोले जारहे थे ॥ ८८ ॥ इसी तीर्थकी सेवाकरनेके कारण वहां जाकर भी इन्द्र हुए, हे भूप! तुमने जो कुछ पूछा था संप्रति वोही हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ॥ ८९ ॥ अथ च उसस्थानमें अबतकभी शिवगण सिंह व्याघ्र आदिका रूप धारणकर पार्वतीपति महादेवजीकी सेवाकरनेको आतेहैं ॥ १९० ॥ हे भूपाल! तक्षक नाम का एक कालसर्प वहां विद्यमानहै और वह महादेवजीकी सेवा करताहै ॥ ९१ ॥ जो व्यक्ति रुद्राध्यायके द्वारा वहां महादेवजी का अभिषेक करताहै, मानो वह देवताओंकोभी दुरासद ऐसे उत्तम तपका आचरण करताहै ॥ ॥ ९२ ॥ पुत्र और धनकी कामना करनेवालोंको चाहिये कि, भक्तिभावपूर्वक एक पक्षपर्य्यन्त पूजा करें तो अवश्यही उन्हें पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ हे नरशार्दूल! वहांसे ऊपरकी ओर एक देवी पीठ है, वह शुभदायक पर्वतके ऊपर दो कोश पर्य्यन्त विस्तृत है ॥ ९४ ॥ उस पीठके केवल दर्शन मात्रही करनेसे मनुष्य समस्त पातकोंसे छुटकारा पाजाता है, कारण कि, वहां महादेवीजी महादेव सहित निवास करती हैं ॥ १९५ ॥ उस परमपवित्र पीठका भौवन नाम

को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ तत्र पीठं महापुण्यं नाम्ना वै भौवनं स्मृतम् ॥९६॥ इति ते कथितान्येव शक्तिजायां नरेश्वर ॥ तीर्थानि तीर्थवर्याणि स्वर्णमोक्षप्रदानि च ॥ ९७ ॥ शक्तिजासंगमादूर्द्ध्वं गंगाया दक्षिणे तटे॥ उपेन्द्रजा समाख्याता, ह्युपेंद्रपुरदायिनी ॥ ९८ ॥ उपेंद्रो ब्राह्मणो यां तु पुत्रीत्वेनान्वकल्पयत् ॥ यत्संगमे हि सुस्नातो नित्यं स्वर्गे वसत्यहो॥ ९९ ॥ तत ऊर्द्ध्वप्रदेशे हि माने शरचतुष्टये॥पर्वते परितो राजन्कन्दुकेश्वरभैरवः॥ ॥ २०० ॥ जीवनेन्द्रेण राज्ञा वै स्थापितः सुखहेतवे ॥ भैरवाज्ञां गृहीत्वा वै गच्छेत्सूक्ष्मे हि क्षेत्रके ॥१ ॥ एतदंतं माहाराज स्थूलक्षेत्रं हि पर्वते ॥ पुनर्हर्षवतीतीराद्यावत्कोलगिरिर्भवेत् ॥२॥ एतानि तीर्थराजानि स्थूलक्षेत्रे हि नैर्ऋते ॥ कथितानि तवाग्रे हि श्रोतुर्मोक्षप्रदानि च ॥ ३ ॥ य इदं शृणुयान्मर्त्यस्तीर्थानां कथनं महत्॥ स एतत्सर्वतीर्थं तु स्नातो भवति निश्चितम् ॥ ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

है, सुतराम् उसका माहात्म्य वर्णन करनेके लिये कोईभी समर्थ नहीं होसका ॥ ९६ ॥ शक्तिजाके तटपर जितने श्रेष्ठ अतएव स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तीर्थ हैं उन सबहीका मैंने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया ॥ ९७ ॥ शक्तिजाके संगमसे ऊपरकी ओर गंगाजीके दक्षिण तटपर उपेन्द्र (विष्णु) लोक प्रदान करनेवाली उपेन्द्रजा नामकी नदी है ॥ ९८ ॥ उपेन्द्रनाम ब्राह्मणने उसे अपनी पुत्री कल्पना करके पालन किया था, जो मनुष्य इसके संगममें स्नान करता है उसे नित्यही स्वर्गमें निवास करना होताहि ॥ ९९ ॥ वहांसे ऊपरकी ओर चार बाणकी दूरीपर हे राजन् ! पर्वतके ऊपर कन्दुकेश्वर नाम भैरव विद्यमान हैं ॥ २०० ॥ जीवनेन्द्रराजाने सुखके निमित्त उन्हें स्थापित किया था, सुतराम् भैरवजीकी आज्ञा ग्रहण करके सूक्ष्म क्षेत्रमें प्रविष्ट होना चाहिये ॥ १ ॥ हे महाराज ! यह स्थूल क्षेत्र वर्णन कियागया है, हर्षवतीके तीरपर कोलगिरि पर्य्यन्त उक्त क्षेत्रका प्रमाण है ॥ २ ॥ स्थूल क्षेत्रके तीर्थोंका हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इनका श्रवण करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य इन तीर्थोंके आख्यानको सुनताहै, उसे अवश्यही इन सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिलताहै ॥ २०४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकोनशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

अशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८०.

उत्फालक उवाच॥शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मक्षेत्रे हि भूपते॥यानि क्षेत्राणि पुण्यानि प्रवराण्येव संति हि॥ १॥जीवनेंद्रो महाराज चंद्रवंशविवर्द्धनः॥तस्यायमाश्रमः पूर्वं बभूव नृपशेखर॥२॥पश्चात्सुखाश्रमत्वं हि प्राप्तो वै शान्तचेतसाम्॥मुनीनां मुनिवर्य्याणां तपसा दग्धपाप्मनाम्॥ ३ ॥ एकदा स महाराजो मृगयायै गतः प्रभुः॥ अश्ववारैश्च बहुभिर्नानाशस्त्रविराजितैः ॥ ४ ॥ हतास्तेन वराहाश्च मृगाः सिंहादयस्तथा ॥ एवं वै क्रीडतस्तस्य जीवनेंद्रस्य भूपते ॥ अग्रे वै आगतोऽकस्माद्वाराहः पर्वतोपमः ॥ ५ ॥ वराहमागतं दृष्ट्वा धनुः सज्जं चकार ह ॥ बाणं संधाय बाणासे शूकराय ससर्ज ह ॥ ६ ॥ तस्य वै पृष्ठदेशे हि लग्नो बाणो महीभृतः ॥ स बाणः शूकरं प्रागान्महारण्ये भयानके ॥ ॥ ७ ॥ सोपि राजा महाबाहुस्तस्य वै पृष्ठतोन्वगात् ॥ त्यक्त्वा सेनां स्वकीयां च जनहीनो बभूव ह॥८॥ एकाकी स महाराजो हयपृष्ठस्थितः प्रभुः ॥ तृषार्त्तः स बभूवाथ चिंताविष्टमनास्तथा ॥९ ॥ जगाम विपिने देशे झिल्लिझंकारनादिते ॥ एत-

उत्फालकजी बोले— सुनो भूपाल ! सूक्ष्म क्षेत्रमें अत्यन्त पवित्र और श्रेष्ठ २ जो क्षेत्र हैं, हम उनका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ हे महाराज ! चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाला जीवनेन्द्र नाम एक विख्यात राजा हुआ था ॥ २ ॥ प्रथम तो उसने राज्य किया, और पीछेसे वह शान्तचेता उन महर्षियोंके आश्रममें गया जिनके पाप तपश्चर्य्यासे नष्ट होगये है ॥ ३ ॥ एक समय वह महाराज अनेक शस्त्रधारी अश्वसवारोंको साथ ले अहेरके तईं वनमें गया ॥ ४ ॥ वहां उसने बहुतसे वराह मृग और सिंह आदिका वध किया, हे राजन् ! जब जीवनेन्द्र इस प्रकार क्रीडा कर ही रहा था तब उसके सम्मुख अकस्मात् ही पर्वताकार एक शूकर आगया ॥ ५ ॥ शूकरको आता देख राजाने धनुषको तैयार किया और बाणको धनुष पर चढाकर शूकरके ऊपर परित्याग किया ॥ ६ ॥ राजाका यह बाण शूकरकी कमरमें लगा, तब वह वराह बाणसहित ही भागकर घने जंगलमें चलागया ॥ ७ ॥ इधर वह राजाभी उसके पीछेही लगा चलागया, सुतराम् अपने सेनासे पृथक् होकर अकेला रहगया ॥ ८ ॥ अकेला राजा अश्वके ऊपर आरूढ हुआ, तृषासे व्याकुल होकर मनमें चिन्ता करने लगा ॥ ९ ॥ बस वह ऐसे जंगली स्थानमें चलागया जो

स्मिन्नंतरे भूप शूकरं न ददर्श ह ॥ १० ॥ ततो राजा जीवनेंद्रो जललोभेन भूपते ॥ अवतीर्य हयात्तूर्णं गुहायां प्रविवेश ह ॥ ११ ॥ ततोऽग्रे जीवनेंद्रस्तु गुहामध्ये महायशाः ॥ अधोधश्चलतस्तस्य जीवनेंद्रस्य धीमतः ॥ प्रकाशो हि मणीनां च बभूवाग्रे रसाधिप ॥ ॥ १२ ॥ ततो वै योजनेधस्तादद्दर्शाश्वत्थवृक्षकम् ॥ पत्रेपत्रेल्पमुनिकं योजनायामविस्तृतम् ॥ १३ ॥ गजप्रमाणफलकं स्रवद्दुग्धं कलेवरात् ॥ ततो मुनिगणं पश्चाद्ददर्शाश्वत्थमूलके ॥ १४ ॥ तत्रैकं मुनिवंद्यं च शालवृक्षोपमं शुभम् ॥ व्याघ्रचर्मासनं ध्यानसंलग्ननयनं तथा ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा च तं मुनिं राजा ननाम शिरसा ततः ॥ पादयोः पतितः पश्चात्पुनःपुनरुदारधीः ॥ १६ ॥ तस्याग्रे चांजलिं बद्ध्वा मुनिसंन्यस्तमानसः ॥ जातानि तस्य राज्ञश्चहायनानि ह्यनेकसः ॥ १७ ॥ कदाचित्तं महाराजं ददर्श मुनिपुंगवः ॥ स्थितमग्रे ह्येकचित्तं क्षुत्तृष्णारहितं प्रभो ॥ १८ ॥ उवाच वचनं प्रीत्या मुनिवर्यो महाद्युतिः ॥ कस्त्वं पुरुषशार्दूल

झिल्लियोंकी झंकारसे गूंजरहाथा इतनेहीमें राजाको अपने अगाडी शूकर न दीखा ॥ १० ॥ हे भूपाल ! तब जीवनेन्द्र राजा जलके लोभवशात् अश्वके ऊपरसे उतरकर गुहाके भी भीतर गया, ॥ ११ ॥ तब महायशस्वी जीवनेन्द्र राजाने गुहामें अगाड़ीको पैर बढाया, हे राजन् ! बुद्धिमान् जीवनेन्द्र राजाके अगाडी चलनेपर मणियोंका प्रकाश दृष्टिगत हुआ ॥ १२ ॥ तब नीचेकी ओर एक योजन अर्थात् चारकोशकी दूरीपर राजाने अश्वत्थ (पीपल) का एक वृक्षदेखा, वह वृक्ष एक योजन विस्तृत था, और उसके पत्ते २ के ऊपर छोटे २ मुनि लगरहेथे ॥ १३ ॥ उसके फल हस्तीकी समान स्थूलथे और उनके कलेवरमेंसे दुग्ध टपक रहा था, फिर इसने अश्वत्थकी मूलमें भी मुनीश्वरोंको देखा ॥ १४ ॥ उनमें एक मुनि शालवृक्षकी समान उन्नत, शुभ, और व्याघ्रचर्मके ऊपर ध्यानावस्थित हुए बैठेथे, एवं अन्य मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ॥ १५ ॥ उन्हें देखकर राजाने वारंवार उनके चरणोंमें प्रणाम किया, फिर उदार बुद्धिमान् राजा महर्षिके चरणोंमें निपतित हुआ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर राजा अपने मनको एकाग्रकर हाथ जोडके ऋषिके अगाडी बैठगये, और इस प्रकार बैठे २ राजाको अनेक वर्ष व्यतीत होगये ॥ १७ ॥ एक समय मुनीश्वरने क्षुधा तृषा परित्याग पूर्वक चित्तको एकाग्रकरे राजाको अगाडी बैठे देखा ॥ १८ ॥ तब महाद्युतिमान् मुनीश्वर राजासे

किमर्थमागतोत्र वै ॥१९॥ राजोवाच ॥ ॥ अहं तु जीवनेन्द्रो वायागतस्त्वत्समीपके ॥ सेवितुं चरणौ देव तव सर्गविनाशकौ ॥ ॥ २० ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इदानीं को वासवस्स्वर्गे के वा हि मुनयस्तथा ॥ देवाः के मुनयश्चैव सर्वं वद महामते ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ इंद्रः पुरंदरः ख्यातः स्वर्गलोके महामते ॥२२॥ अत्रिर्वशिष्ठो भगवान् कश्यपो गौतमतस्था॥भारद्वाजस्तथा ब्रह्मन् विश्वामित्रो महामतिः॥ जमदग्निश्च सप्तैते सांप्रतं मुनयस्तथा॥ ॥ २३ ॥ साध्या रुद्रास्तथा विश्वे मरुतो वसवोऽश्विनौ॥आदित्यश्च तथा ख्याता देवाश्चैव महामते ॥ २४ ॥ वैवस्वतो मनुः ख्यातः पुत्रा इक्ष्वाकवः स्मृताः॥ अष्टाविंशं युगं प्रोक्तं तत्र सत्ययुगं स्मृतम् ॥ २५ ॥ भवान् कस्मिन्मनौ ब्रह्मंस्तपस्तप्तुमिहागतः ॥ विस्मयो मे महानासीत्तद्वदस्व च हे मुने ॥ २६॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ स्वायंभुवमनुप्राप्त आग्नीध्र इति विश्रुतः ॥ कृत्वा

कहने लगे कि, तुम कौनहो, और यहां किसलिये आये हो ॥ १९ ॥ राजा बोला—संसार बन्धनसे मुक्तिलाभ करानेवाले आपके चरणोंकी सेवा करनेके लिये मैं जीवनेन्द्र नाम राजा यहां आयाहूं ॥ २० ॥ ऋषिबोले—संप्रति स्वर्गमें इन्द्र कौन है, सप्तर्षि कौनहै और देवता कौनसे हैं हे महामतिमान् ! यह सब वर्णन करो॥२१॥ राजा बोला—हे महामतिमान् ! इस समय स्वर्गमें पुरन्दर इन्द्र विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ हे भगवन् ब्रह्मन् ! ! ! अत्रि. वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, भारद्वाज, महामतिमान् विश्वामित्र, और यम दग्नि ये सात सप्तर्षि आजकल वर्त्तरहे हैं ॥ २३ ॥ साध्य, रुद्र, विश्वे देवा, मरुत वसु अश्विनीकुमार और आदित्य हे महामतिमान् ! ये सब देवताहै ॥ २४ ॥ इक्ष्वाकुतनूद्भव वैवस्वतमनु हैं, और अट्टाईसवां सत्ययुग वर्त्तरहाहै ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम कौनसे मनुमें तप करनेको आये थे ? क्योंकि हे मुने ! मुझे बडा विस्मय होरहाहै सो यह मेरे प्रति वर्णन करिये॥२६॥ऋषि बोले—अग्निकी रक्षाकरनेवाले स्वायंभू मनु हुएथे, राज्यको भोग,पुत्र पौत्रादिकोंको

---

१ मन, मन्ता, प्राण, भर, अपान, वीर्यवान्, निर्भय, नरक, दंश, नारायण, वृष और प्रभु, ये बारह साध्य हैं । २ एकपाद, अहिर्बुध्न, विरूपाक्ष, सुरेश्वर, जयन्त, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वैवस्वत, सावित्र और हर ये ११ रुद्रहैं । ३ ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, ध्वनि, रोचन, माद्रव और पुरूरवा ये १० विश्वेदेवाहै । ४ मरुत् उञ्चासहैं । ५ धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये ८ वसुहैं । ६ दो अश्विनी कुमारहैं ७ बारह सूर्य हैं ।

राज्यादिभोगांश्च प्राप्य वै पुत्रपौत्रकान्॥ आगतोत्र तपस्तप्तुमस्मिन्वै क्षेत्रके वरे ॥ २७ ॥ तदाद्यहं महाराज स्थितोस्मि तपसि प्रभो॥ नाहं वेद्मि युगादीनां व्यवस्थां पृथवीपते॥अतः पृष्टोसि हे राजंस्त्वयेदानीं क्व गम्यते ॥ २८॥ राजोवाच ॥ राजाहमस्य देशस्य मृगयासक्तमानसः ॥ आगतो हि वने देव नानामृगसमाकुले ॥२९॥ हत्वा मगगणान्सर्वांस्तृषार्त्तोहं तदाभवम्॥ त्यक्त्वाश्वमत्र देशे वै आगतोस्मि त्वदंतिके ॥ ३० ॥ किं कर्त्तव्यं मयेदानीं गृहमार्गो न दृश्यते॥ यत्कर्तव्यं मयेदानीं तद्वदस्व महामते ॥ ३१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जीवनेन्द्रमहाराज नयने हि निमीलय ॥ स्वयमेव हि राजंस्त्वं गमिष्यसि महामते ॥ ३२ ॥ उत्फालक उवाच॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य जीवनेंद्रो महाद्युतिः॥ निमील्य नयने राजा सहसा बहिरागतः ॥ ३३ ॥ उन्मील्य नयने राजा ददर्श वनमुत्तमम् ॥ यस्मिन् वने महाराज मृगयां प्रचकार ह ॥३४॥ गंगातीरे स्थितस्तत्र जलं वै पीतवांस्तथा ॥ जलं पीत्वा जीवनेंद्रो हयं तं न ददर्श ह॥३५॥आययौ पादचारेण

पाय इसी श्रेष्ठक्षेत्रमें तपकरनेको आये ॥ २७ ॥ हे महाराज ! बस तबहीसे हम तपश्चर्यामें उपस्थित हो रहे हैं, हे भूपाल ! मुझे युग आदिकी व्यवस्थाका कुछभी बोध नहीं है इसीकारण हमने तुमसे पूछा, हे राजन् ! अब तुम कहां जारहेहो ॥ २८ ॥ राजा बोला—मैं इस देशका राजा हूं, हे महाभग ! मृगयामें आसक्तहो, मृगोंसे व्याप्तहुए इसवनमें आया ॥ २९ ॥ बहुतसे मृगोंको मारकर मैं तृषासे पीडित हुआ, तब अश्वको त्यागकर मैं आपके निकट यहां आया ॥ ३० ॥ अब मैं क्या करूं मुझे घरका मार्गही नहीं दीखता, हे महामतिमान् ! सम्प्रति मुझे जो कुछ करना चाहिये सो बताइये ॥ ३१ ॥ ऋषिबोले—हे महाराज जीवनेन्द्र ! तुम नेत्र बन्द करलो, तौ हे महामतिमान् ! अपने आपही चले जाओगे ॥ ३२ ॥ उत्फालकजी बोले—ऋषिके ऐसे वाक्य सुन महाद्युति जीवनेन्द्रने नेत्र वन्द करलिये, तब वह तत्कालही बाहर चलाआया ॥ ३३ ॥ नेत्र उघाडकर राजाने उत्तम वनका अवलोकन किया, यह वही वन था जहां राजाने आखेट करी थी ॥ ३४ ॥ राजा वहां गंगाजीके तीरपर बैठा था सुतराम् इसने वहां जलपान किया, जलपीनेके अनन्तर जीवनेन्द्रको अपना अश्व न दीखा ॥ ३५ ॥ तब राजा पैदल चलकर ही अपने नगरमें

नगरे स्वे महीपतिः ॥ तत्र राजा समागत्य यत्राभून्नगरं पुरा ॥ ॥ ३६ ॥ शालास्तालास्तमालांश्च बकुलान् देवदारुकान् ॥ गृहं न तत्र कुत्रास्ति क्वापि वै राजसत्तमः ॥ ३७ ॥ गंगातीरे ततः स्थित्वा शिवसंन्यस्तमानसः ॥ यमैः सन्नियमैः युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ शिलायामेकपादेन स्थितवान्कविचित्समाः ॥ ३८॥ एवं वै तपतस्तस्य तपसा क्षुभितं जगत् ॥ आययुर्देवताः सद्यो विमानानि सहस्रशः ॥ ३९ ॥ नंदिभृंग्यादिभिर्युक्तश्चंद्रार्द्धो वृषभध्वजः ॥ उमया सहितस्तत्र भ्राजमानो महेश्वरः ॥४०॥ त्रिनेत्रो नीलकंठश्च नागयज्ञोपवीतकः ॥ अग्रे समाययौ तस्य तप्यमानस्य धीमतः ॥ ४१ ॥ उवाच वचनं प्रीत्या संतुष्टस्तपसा तदा ॥४२॥ श्रीशिव उवाच ॥ राजन्मदालये गच्छ मत्तुल्यो भव सत्वरम् ॥ त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये तपस्वी मम भक्तिमान् ॥ ॥ ४३ ॥ अस्मिन् क्षेत्रेपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपं तथा ॥ प्रकरिष्यति तत्सर्वं शतकोटिगुणं भवेत् ॥ ४४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ सोपि राजा महाबाहुर्बभूव वृषभध्वजः ॥ त्रिनेत्रः शूल-

आया, और आयकर वहां पहुँचा जहां पहिले नगरथा ॥ ३६ ॥ वहां राजाको शाल ताल तमाल बकुल और देवदारुके वृक्ष तौ बहुतसे दीखे, किन्तु घर कहीं भी दृष्टिगोचर न हुआ ॥ ३७ ॥ तब इसने महादेवजीमें अपने चित्तको लगाके समस्त परिग्रह परित्यागपूर्वक यम नियम धारणकर गंगाजीके तट पै स्थितिकरी, और वह राजा शिलाके ऊपर बहुत वर्षपर्यन्त एकही चरणसे खड़ा रहा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार उसके तप करनेसे सब जगत् क्षोभको प्राप्त होगया सुतराम् वहां बहुतसे देवता और अनेक विमान आगये ॥ ३९ ॥ नंदी भृंगी आदि गणोंको साथले चन्द्रार्द्ध-चूडामणि महादेवजीभी वृषारूढहो वहां आये, उस समय पार्वती सहित महादेवजी विशेष शोभाको प्राप्त होरहे थे ॥ ४० ॥ उनके तीन नेत्र, नील कंठ, और नागोंका यज्ञोपवीतथा, ऐसी छबिसे भगवान् उस बुद्धिमान् तपस्वीके समक्ष आये ॥ ४१ ॥ और इसके तपसे सन्तुष्ट होकर प्रीतिपूर्वक यह वाक्यबोले ॥ ४२ ॥ श्री शिव बोले— हे राजन् ! जाओ हमारे स्थानमें जाकर शीघ्रही हमारी समान होजाओ, क्यों कि, तुम्हारी समान भक्तिकरनेवाला त्रिलोकीभरमें और कोई तपस्वी नहीं है ॥ ४३ ॥ मनुष्य इस स्थानमें स्नान दान जपआदि जो कुछभी कर्मकरेंगे वह सब सौगुणा अधिक होजायगा ॥ ४४ ॥ उत्फालकजी बोले— वह राजाभी वृषभध्वज होगया, उसके तीननेत्र

हस्तश्च चंद्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ४५ ॥ ययौ देवगतिं पश्चाद्गणैश्च शतशो वृतः ॥ एवं तन्नगरं भूप प्राप्तवाञ्छ्रमतो मुने ॥ ४६ ॥ अस्मादेव महातीर्थादुत्तरस्यां दिशि प्रभो ॥ माने पृषत्कमात्रे हि गंगातीरे महीश्वर ॥ लास्यतीर्थं समाख्यातं सर्वमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४७ ॥ यत्र श्रीविश्वनाथो हि ननर्त भक्तवत्सलः ॥ दुर्वाससो हि तपसा तुष्टो देवो महेश्वरः ॥ ४८ ॥ वरं वरय भद्रं ते इत्युवाच मुनिं शिवः ॥ दुर्वासा अपि पूर्णत्वादुवाच च महेश्वरम् ॥ ४९ ॥ श्रुतं मया बहुमुखैः शिवो नृत्यति स्वे गृहे ॥ तं नृत्यं द्रष्टुकामोस्मि यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ ५० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ननर्त्त मुनिसन्निधौ ॥ धन्यः सदाशिवः साक्षात्परब्रह्ममहेश्वरः ॥ ५१ ॥ अनिच्छकोपि भक्तानां मनोरञ्जनहेतवे ॥ सकामः सोपि भवति नृत्यति क्रीडयत्यपि ॥ ५२ ॥ भक्तप्रेरणया देव सर्वं वै प्रकरोति हि ॥ ततोस्य तीर्थराजस्य नामधेयं तथैव च ॥ लास्यतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ ५३॥ अस्मिंस्तीर्थेपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपक्रियाम् ॥ तत्सर्वं

हाथमें त्रिशूल और शेखरके ऊपर अर्द्धचन्द्रमा होगया ॥ ४५ ॥ फिर पीछेसे सैकडों गणोंसे आवृत होकर देवगतिको प्राप्तहोगया, हे मुनीश्वर ! इस प्रकार वह नगरभी सब आश्रम होगया ॥ ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! इसी तीर्थसे उत्तरकी ओर गंगाजीके तीरपर मुक्तिप्रदान करनेवाला लास्य तीर्थ है ॥ ४७ ॥ वहां भक्तवत्सल महादेवजी महर्षि दुर्वासाके तपसे सन्तुष्टहोकर नाचे थे ॥ ॥ ४८ ॥ और महादेवजीने प्रसन्न होकर मुनिसे कहा कि, तुम वर मांगो, तब दुर्वासा ऋषि महेश्वरसे यों बोले ॥ ४९ ॥ महाराज ! मैंने बहुतोंके मुखसे यह सुनाहै कि, महादेवजी अपने घर नृत्य कियाकरते हैं, यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है तौ मैं आपके उसी नृत्यको अवलोकन करना चाहता हूं ॥ ५० ॥ मुनिके ये वाक्य सुनकर साक्षात् परब्रह्मस्वरूप सदाशिव महादेवजीने उनके समक्ष नृत्यकिया ॥ ५१ ॥ यद्यपि उन्हें कोई इच्छा नहीं है तथापि भक्तोंको प्रसन्नकरनेकी कामनासे सकामहोकर वे नृत्य और क्रीड़ाकरनेलगे ॥ ५२ ॥ भक्तोंकी प्रेरणासे भगवान् सबही कुछकरतेहैं, येही कारण है कि, इस शिवलोक प्रदानकरनेवाले तीर्थका लास्य तीर्थनाम हुआ है ॥ ५३ ॥ इस स्थानमें मनुष्य स्नान दान आदि जो कुछ

कोटिगुणितं शिवप्रीतिश्च जायते ॥ ५४ ॥ तत ऊर्द्धं पर्वते वै मायानाम्नी महेश्वरी ॥ यस्यास्तु दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ तस्मिन्स्थानेपि यो मर्त्यो देवीपूजनकारकः ॥ बलिभिर्धूपदीपैश्च जपेद्वै शत्रुदाहनीम् ॥ तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्त्येव न संशयः ॥ ५६ ॥ तत्रैव च महादेवो मायेश्वर इतीरितः ॥ यस्य वै दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥ तस्मादधो महाराज जलं निस्सरति ध्रुवम् ॥ तस्मिञ्जले सकृत्स्नातो महापापैः प्रमुच्यते ॥ ५८ ॥ लास्यतीर्थान्महाराज क्रोशार्द्धे शिवदायकम्॥ गौर्य्याश्चैव तु गंगायाः संगमोऽतिशुभप्रदः ॥ ५९ ॥ गौरिप्रयाग इति वै तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्र वै तु सकृत्स्नातुरश्वमेधफलं भवेत् ॥ ६० ॥ गौरीप्रयागके स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ६१ ॥ यत्र गौरी सरिच्छ्रेष्ठा गंगया सह संगता ॥ यथा गंगा तथा गौरी ह्येतयोरंतरं न हि ॥ ६२ ॥ सर्वत्र दुर्लभा गौरी सर्वपापप्रणाशिनी ॥ गंगाया हि विशेषेण संगमाद्राजस-

भी काम करताहै, वह सब करोड़ गुणा होकर महादेवजीकी प्रीतिका सम्पादन करनेवाला होता है ॥ ५४ ॥ वहांसे ऊपरकी ओर पर्वतके ऊपर माया नामकी महेश्वरी हैं, उनके केवल दर्शन करनेहीसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ बलि और धूप दीप आदि देकर जो मनुष्य उस स्थानमें शत्रुविनाशिनी देवीका जप और पूजन करताहै, निस्सन्देह उसके सबही कार्य्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ५६ ॥ वहां ही मायेश्वरनामके महादेवजी हैं, उनके दर्शन करनेसे पापोंसे छुटकारा प्राप्त होजाताहै ॥ ५७ ॥ हे महाराज ! उसके नीचे और जो जलनिकलता है उसमें स्नानकरनेसेभी अवश्यही महापापोंसे मुक्ति होजाती है ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! लास्यतीर्थसे आधे कोशकी दूरीपर गंगा और गौरीका शुभ संगमहै, वह स्थान कल्याणप्रदान करनेवालाहै ॥५९॥ उसे गौरीप्रयाग कहतेहैं, और वह सबही तीर्थोंमें उत्तमहै उसमें एकही वार स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥६०॥ गौरी प्रयागमें स्नान करलेनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता, इस तीर्थकी समान उत्तम न तो कोई अवतक हुआ और न आगेको होगा ॥ ६१ ॥ क्योंकि वहां गौरी नामकी श्रेष्ठ नदी गंगाजीमें संगत हुई है, और जैसी गंगाजी हैं वैसीही गौरीहै इन दोनोंमें अन्तर कुछभी नहीं हैं ॥ ६२ ॥ पापविनाशिनी गौरीकी प्राप्ति सर्वत्र दुर्लभहै,

त्तम ॥ ६३ ॥ संगमाच्छरविक्षेपे गंगागौर्य्योर्महेश्वर ॥ वरेश्वरी सरिच्छ्रेष्ठा समायाता नदीवरा ॥ ६४ ॥ अत्र श्रीरमणं नाम तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्र स्नात्वा महापापो निष्पापो भवति क्षणात् ॥ ६५ ॥ वारुणे पर्व्वते रम्ये यत्र कुत्रापि यज्जलम् ॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा वारुणे नगरे वसेत् ॥ ६६ ॥ ततः श्रीरमणात्तीर्थादूर्द्ध्वभागे नगेश्वरे ॥ गौर्यास्सुसंगमो यत्र नदी परमपुण्यदा ॥ ६७ ॥ इंद्राणीति समाख्याता सर्वकामप्रदायिनी ॥ तस्मिन्संगमके स्नात्वा मासमात्रेण भूपते॥ मोक्षपात्रं भवेत्सद्यो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ ६८ ॥ तस्मादपि महातीर्थात्क्रोशमाने नराधिप॥गौरीनकुलवत्योश्च संगमो भवति प्रभो ॥६९॥ ऋषिप्रयागः स ख्यातो विश्वपाशविमोचनः ॥ यैः कृतं पिंडदानं हि भक्त्याभक्त्यापि वा नरैः ॥ तारितास्तैर्महाराज कुलानामेकविंशतिः॥७०॥तस्मादूर्द्ध्वं महाराज क्रोशमाने हि वर्त्तते ॥ विश्वप्रयाग इति वै सर्वेषां मुक्तिदायकः ॥ ७१ ॥ यत्रैका राजपुत्री वै सर्वविश्वविमोहिनी ॥ नाम्ना विश्ववती ख्याता

और हे राजसत्तम! गंगागौरीका संगम तौ विशेषकर और भी दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ हे महेश्वर ! गंगागौरीके संगमसे बाणविक्षेपकी दूरीपर वरेश्वरी नामकी एक श्रेष्ठ नदी आतीहै ॥ ६४ ॥ यहां श्रीरमण नाम एक सर्वोत्तमतीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे महापातकी भी क्षणभरमें निष्पाप हो जाताहै ॥ ॥ ६५ ॥ वारुण पर्वतके ऊपर जहां कहीं भी जो कुछ जलहै, उसको शिरके ऊपर धारण करनेसे वरुणलोकमें निवास करना होताहै ॥ ६६ ॥ श्रीरमणतीर्थसे ऊपर पर्वतके ऊपर जहां गौरीका संगम हैं, वहां पुण्यदायिनी एक नदीहै ॥ ६७ ॥ समस्त कामनाओंको पूर्णकरनेवाली उस नदीका इन्द्राणी नाम है, हे राजन् ! उसके संगममें एक मासपर्य्यन्त स्नानकरनेसे मनुष्य मोक्षका पात्र होकर अपनी पूर्व जातिका स्मरण करताहै ॥ ६८ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थसे एककोशकी दूरीपर गौरी और नकुलवतीका संगम होताहै ॥ ६९ ॥ सांसारिक बन्धनोंसे छुडानेवाला वह स्थान ऋषिप्रयाग कहलाताहै, हे राजन् ! जिन्होंने वहां भक्ति अथवा अभक्तिसे पिण्डदान किया मानो उन्होंने अपने इक्कीस कुलका उद्धार करदिया ॥ ७० ॥ हे महाराज ! वहांसे ऊपर एक कोशकी दूरी पर पर्वतके ऊपर सबको मुक्ति देनेवाला विश्वप्रयागहै ॥ ७१ ॥ वहां समस्त विश्वको मोहि-

तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ शिलैका तत्र देशे तु तस्यां स्थित्वा दृढासना ॥ परमात्मानं शिवं भूप ध्यायंती भक्तितत्परा ॥ ॥ ७३ ॥ शिलायां तत्र देशे सा सर्वसंगविवर्जिता ॥ व्यतीयुर्दशवर्षाणि विश्ववत्या नराधिप ॥ ७४ ॥ ततः कश्चित्तु जटिल आययौ रक्तनेत्रकः॥व्याघ्रचर्मांबरधरः श्मश्रुलः शुभ्रदंतकः॥७५॥ प्रत्युवाच महाबाहो जटिलो राजकन्यकामं ॥ प्रस्फुरन्नधरं राजन्स्मितेन परिशोभितः ॥ ७६ ॥ जटिल उवाच ॥ ॥ किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे भूत्वा वै राजकन्यका ॥ किमपेक्षा विश्ववति तवास्ति कृतपुण्यके ॥ ७७ ॥ राजकन्योवाच ॥ ॥ किं पृच्छसि मुनिश्रेष्ठ मां वै तपसि संस्थिताम् ॥ चरिष्यामि तपस्तावद्यावन्मम कलेवरम् ॥ ७८ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपते शिवसंश्रयाम् ॥ दृढां भक्तिं समालोक्य प्रत्युवाच शिवस्ततः ॥ ७९ ॥ जटिल उवाच ॥ ॥ धन्यासि कृतकृत्यासि दृढभक्तिश्च ते शिवे ॥ वरं वरय हे भद्रे यत्ते मनसि वर्तते ॥ ८० ॥ राजकन्योवाच ॥ ॥ बुद्धोऽसि त्वं महादेवो

तकरनेवाली विश्ववती नामकी एक राजपुत्रीने दारुण तपका आचरण किया था ॥ ७२ ॥ वहां एक शिलाहै उसके ऊपर दृढ आसनसे बैठकर हे राजन् ! वह भक्तिमें तत्परहो महादेवजीकी आराधना करतीहै ॥ ७३ ॥ संगरहित हो इस प्रकार शिलाके ऊपर तप करते २ हे राजन् ! विश्ववतीको दशवर्ष व्यतीत होगये ॥ ७४ ॥ तब लाल २ नेत्रोंवाला कोई जटिल वहां आया, वह व्याघ्रचर्मके वस्त्र और श्मश्रु धारण कररहा था, इसके दांत सुन्दरथे ॥७५॥ हे महाबाहो ! यह जटिल उस राजकन्यासे कहनेलगे, हे राजन् ! संभाषण करते समय इनके ओष्ठ प्रस्फुरित होनेलगे और मुसकरानेसे शोभा और भी बढगई ॥ ७६ ॥ जटिल बोले—हे सुभद्रे ! तू राजकन्या होकर क्यों क्लेशित होरही है, हे पुण्यशीले ! विश्ववती ! तेरी क्या अभिलाषा है ॥ ७७ ॥ राजकन्या बोली—हे मुनिराज ! आप मुझ तपस्विनीसे क्या पूछते हैं ! जबतक मेरा शरीर रहैगा तबतक मैं तपहीका आचरण करती रहूंगी ॥ ७८ ॥ उत्फालकजी बोले—शिलाके ऊपर उपस्थित हुई राजकन्याके ऐसे वचन सुन और उसकी दृढभक्ति देखके महादेवजी कहने लगे ॥ ७९ ॥ जटिलजी बोले-महादेवजीमें तेरी दृढ भक्तिहै अतएव तुझे धन्यहै और तूं कृतकृत्य होगई हे भद्रे ! जो कुछ तेरे मनमें हो सो वर माँग ॥८०॥ राजकन्या बोली—हे प्रभो ! मैंने निश्चय करके जानलिया कि, आप महादे-

निश्चयेन मया प्रभो ॥ वसेयमिन्द्रलोके हि त्वयि भक्तिश्च मे सदा ॥ ८१ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ ॐमित्युक्त्वा महादेवो तत्रैवान्तरधात्प्रभुः ॥ इदं पुण्यतमं तीर्थं बभूव च ततः परम् ॥ ॥ ८२ ॥ संगमे कुंभिकागौर्य्योः स्नात्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥ ८३ ॥ तस्मात्क्रोशार्द्धके विश्वनाथः साक्षात्सदाशिवः ॥ यद्दर्शनान्महाबाहो नरः साक्षान्नराधिपः ॥ ८४ ॥ इति ते कथितान्येव गौर्यां तीर्थानि भूमिप ॥ यानि तीर्थानि हे राजन्निद्राण्यां शृणु तानि च ॥ ८५ ॥ संगमादूर्द्ध्वभागे हि क्रोशे मुक्तिप्रयागकः ॥ मुक्तिधारा यत्र देशे इंद्राण्या सह संगता ॥ ८६ ॥ धाराया उत्तरे देशे औडवे पर्वतेश्वरे ॥ क्रोशे मुक्तीश्वरो देवः शिवो वसति तत्र हि ॥ ॥ ८७ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८८ ॥ इंद्राणीति समायाति कौंडिन्याश्रमतो ध्रुवम् ॥ अतः परं महाराज गंगाया दक्षिणे तटे ॥ आश्रमः परमः पुण्यो ह्यलर्कस्य महात्मनः ॥ ॥ ८९ ॥ शिवमाराधयत्तीर्थे प्राप यः परमां गतिम् ॥ गौरीप्रयागतस्तद्धि पूर्वस्यां शरमात्रके ॥ ९० ॥ गंगातीरे गुहायां हि

चाहिंहैं, अब ऐसी कृपाकरिये कि, मैं इन्द्रलोकमें निवासकरूं, और आपके विषे मेरी दृढ भक्ति हो ॥ ८१ ॥ उत्फालकजी बोले– " बहुत अच्छा-स्वीकारहै " यों कहकर महादेवजी वहांही अन्तर्द्धान होगये, और तभीसे यह तीर्थ परमपवित्र प्रसिद्ध हुआहै ॥ ८२ ॥ कुंभिका और गौरीके संगममें स्नानकरनेवाला मनुष्य शिवलोकमें निवासकरताहै ॥ ८३ ॥ वहांसे आधे कोशकी दूरीपर विश्वनाथ नामके सदाशिव महादेवजी विद्यमान हैं, हे महाबाहो ! उनके दर्शनकरनेसे मनुष्य राजा होता है ॥ ८४ ॥ हे भूप ! ये गौरी तीरके तीर्थ हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किये, अब इन्द्राणीके तीरपर जो तीर्थ हैं उनका वर्णन सुनो ॥ ८५ ॥ संगमसे ऊपरकी ओर एक कोशकी दूरीपर मुक्तिप्रयागहै, वहां ही मुक्ति धाराका इन्द्राणीनदीमें संगम हुआ है ॥ ८६ ॥ धारासे उत्तरकी ओर औडव पर्वतके ऊपर एक कोशकी दूरीपर मुक्तीश्वर महादेवजी निवास करतेहैं ॥ ८७ ॥ उनके दर्शन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ८८ ॥ कौडिन्यके आश्रमसे इन्द्राणी नामकी नदी आतीहै, इसके अगाडी हे महाभाग ! गंगाजीके दक्षिण तटपर महात्मा अलर्कका परमपवित्र आश्रम है ॥ ८९ ॥ यहां उन्होंने महादेवजीकी आराधना करके परमगतिका लाभ किया था, यह थान गौरीप्रयागसे पूर्वकी ओर बाणमात्रकी दूरीपरहै ॥९०॥ वहां ही गंगाजीके तीर गुहामें स्वर्णमय

शिवः स्वर्णमयः प्रभुः ॥ स्वर्णेश्वर इति ख्यातो दर्शनान्मुक्तिदायकः ॥ ९१ ॥ ततो वै उत्तरे भागे गंगायाः क्रोशपादके ॥ विनायकेन देवेनाराधितः परमेश्वरः ॥ ९२ ॥ कृतवान्गणनाथं हि तं वै भक्तिसमन्वितम् ॥ गंगातीरे तत्र देशे कुंडं वैनायकं शुभम् ॥ यस्यावगाहनान्मर्त्यो लभते गाणपं पदम् ॥ ९३ ॥ गंगाया दक्षिणे तीरे धारा मंजुमती शुभा ॥ अलर्काश्रमतः सा वै शरविक्षेपमात्रके ॥ यस्यास्तु संगमे स्नातो मंजुरूपो भवेन्नरः ॥ ॥ ९४ ॥ पंचकन्या भैरवस्य मंजुघोषस्य भूमिप ॥ द्रवरूपेण ताः सर्वा गंगायां प्रविशंति हि ॥ ९५ ॥ मंजुमती रूपवती दिग्वलिश्च शुभानना ॥ यशोवतीति पंचैताः सर्वपापप्रणाशिकाः ॥ ॥ ९६ ॥ तत ऊर्द्ध्वं पर्वते वै भैरवो मंजुघोषकः ॥ क्षेत्रस्य रक्षकश्चासौ शिवेन हि प्रतिष्ठितः ॥ ९७ ॥ बलिराजदिने यस्तु दर्शनं प्रकरोति हि ॥ धनं धान्यं यशः पुत्रं लभते च शिवेरितम् ॥ ९८ शुद्धः शांतमना भूत्वा पूजयेद्भैरवं प्रभुम् ॥ चतुर्दश्यां च संक्रा-

महादेवजी विद्यमान हैं, उनका 'स्वर्णेश्वर' नामहै, और उनके दर्शन करनेहीसे मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै॥ वहां गंगाजीसे उत्तरकी ओर पावकोशकी दूरीपर गणेशजीने महादेवजीकी आराधना करीथी ॥ ॥ ९२ ॥ तब शिवजीने उन भक्तको गणोंका स्वामी बनाया, वहां ही गंगाजीके तीरपर शुभवैनायककुण्ड भी है, उसमें स्नान करनेसे अवश्य ही गणेश्वरत्वकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९३ ॥ गंगाजीके दक्षिण तटपर मंजुमती नामकी शुभधाराहै, यह धारा अलर्कजीके आश्रमसे एक बाण विक्षेपकी दूरीपर है, इसके संगममें स्नान करनेसे मनुष्यका मनोहररूप हो जाताहै ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! मंजुघोषभैरवकी पांचकन्या जलरूप होकर सब गंगाजीमें मिलती हैं ॥ ९५ ॥ मंजुमती, रूपवती दिग्वली, शुभानना और यशोवती ये पांचों कन्या सब पापोंका नाश करनेवाली हैं ॥ ॥ ९६ ॥ वहांसे आगे पर्वतके ऊपर मंजुघोष नाम भैरवजीको महादेवजीने क्षेत्रके रक्षक बनाके प्रतिष्ठित किया है ॥ ९७ ॥ बलिराजके दिन जो मनुष्य उनके दर्शन करताहै उसे धन धान्य यश और पुत्रोंकी प्राप्ति होती है ऐसा महादेवजीने वर्णन किया है ॥ ९८ ॥ शुद्ध और शान्त चित्त होकर भैरवजीकी पूजा करै, हे महामतिमान् ! विशेषकर ऐश्वर्य्य प्राप्तिके लिये चतुर्दशी

न्त्यामष्टम्या सोमवासरे॥कर्त्तव्यं दर्शनं भूत्यै विशेषेण महामते॥ ॥ ९९ ॥ इति ते कथितान्येव सूक्ष्मक्षेत्रे नराधिप ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव श्रोतुः पुण्यप्रदानि च ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

संक्रान्ति अष्टमी और सोमवारको दर्शन करने चाहिये ॥ ९९ ॥ हे राजन् ! सूक्ष्मक्षेत्रके तीर्थोंका इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इनका श्रवण करनेसे तीर्थयात्रा के फलकी प्राप्ति होती है ॥ १०० ॥

श्रीक्षेत्रमाहात्म्यका चतुर्थअध्याय समाप्त ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८१.

उत्फालक उवाच ॥ ॥ अतः परं महाभाग शृणुष्वैकमनाः शभम् ॥ अतिसूक्ष्मे च तीर्थानि यानि शंति शुभानि च ॥ १ ॥ शिवप्रयाग इति वै गंगाखांडवयोर्युतौ ॥ आरराध शिवं यत्र खाण्डवो नाम वै मुनिः ॥ २ ॥ आराधितो महादेवः खाण्डवेन महात्मना ॥ निवासं कृतवानत्र तत आरभ्य भूपते ॥ ३ ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥४॥ दानात्कोटिसुवर्णस्य यत्पुण्यं भवति प्रभो ॥ माषमात्रेण तच्चेह भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥ एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥

उत्कालकजी बोले— इसके अनन्तर हे महाभाग ! अतिसूक्ष्मक्षेत्रमें जो शुभतीर्थ हैं एकाग्रमन करके उनको सुनो ॥ १ ॥ खांडव और गंगाजीके योगमें शिवप्रयागहै, वहां खाण्डव नाम मुनिने महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ २ ॥ क्योंकि महात्मा खाण्डवने यहां महादेवजीका आराधना किया था, उसी दिनसे महादेवजी यहां निवास करने लगे ॥ ३ ॥ वहां स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! करोड़ सुवर्णका दानकरनेसे जो फल मिलता है, वह फल यहां एकमासा दान करनेसे मिल जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ५ ॥ इस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेको कौन समर्थ होसक्ता है ? क्योंकि यहां पापविनाशी सा-

यत्र देवः शिवः साक्षात्स्वयं वसति पापहा ॥ ६ ॥ धन्योऽसौ पुरुषो लोके गत्वा शैवप्रयागके ॥ शिवमाराध्य यत्नेन स्नात्वा चैव यथाविधि ॥ त्रैलोक्ये श्रेष्ठतां याति किमन्यैर्बहुभाषितैः॥७॥ पुनःपुनः प्रणामाच्च दर्शनात्सकृदप्यहो ॥ सर्वथैव नरो याति शिवतां योगिदुर्लभाम् ॥ ८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा वचनं विप्रः परानंदमवाप हि ॥ स्मृत्वा युगेयुगे तस्य चरित्रं परमात्मनः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ किं जातं स्मरणात्तस्य चरित्रस्य महात्मनः ॥ येनासौ मुनिर्वंद्यो हि परानंदमवाप हि ॥ १० ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि यत्पृष्टं भवता मुने ॥ पुण्यं पवित्रमायुष्यं श्रवणान्मोक्षदायकम् ॥ ॥ ११ ॥ अस्ति ब्रह्म चिदानंदः स्वयं ज्योतिरनीश्वरः ॥ अनिच्छकः पूर्णकामोऽवयवादिविवर्जितः ॥ १२ ॥ प्रकृतिः परमा ह्यन्या यया संमोह्यते जगत्॥स्वगुणैस्तत्परं ब्रह्म सा वृणोति यदा तदा ॥ १३ ॥ तदा तद्गुणकैर्युक्तोऽनीश्वरो लक्ष्यते मुने ॥ कर्त्ता

क्षात् महादेवजी स्वयं पाप विनाश करते हैं ॥६॥ उस पुरुषको धन्यहै जो शिवप्रयागमें स्नानकर यथाविधि महादेवजीकी आराधना करता है, विशेष कहनेसे क्या है वह त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ होजाताहै ॥ ७ ॥ वारं वार प्रणाम और एकवार दर्शन करनेसे मनुष्य सर्वथा ही योगियोंको भी दुर्लभ शिवत्वको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ स्कन्दजी बोले— यों कहकर ब्राह्मणको परम आनन्दकी प्राप्ति हुई, और वह युग २ में परमात्माके चरित्रोंका स्मरण करने लगा ॥ ९ ॥ नारदजी बोले— महात्माके किन चरित्रोंका स्मरण होताथा जिससे उक्तमुनीश्वरको परम आनन्दकी प्राप्ति हुई ॥ १० ॥ स्कन्दजी बोले—सुनिये नारदजी ! आपने जो प्रश्न किया, अतिशय पवित्र, आयुकी वृद्धि करनेवाले और श्रवण करनेसे मोक्ष प्रदान करने वाले उसी आख्यानका हम वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥ सच्चिदानन्द ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर हैं, उनका ईश्वर कोई नहीं है, उनकी कामना सब पूर्ण हैं अतएव उन्हें कोई इच्छा नहीं होती, वे अवयव आदिसे रहित हैं ॥ १२॥ दूसरी एक उनकी प्रकृतिहै, वह सबजगत्को मोहित करतीहै, जब वह माया अपने गुणोंके द्वारा परं ब्रह्मको आवरण करती है ॥ १३ ॥ तब उसके गुणोंसे युक्त होकर भगवान् अनीश्वर होनेपरभी स्थावर

सर्वस्य विश्वस्य सस्थावरचरस्य हि ॥ १४ ॥ विचार्यमाणो भगवान्नकिंचित्प्रकरोति हि ॥ परमा प्रकृतिः सैवं कर्त्री विश्वस्य मोहिनी ॥ तयैव प्रेरितः सोऽपि सर्वं च प्रकरोति हि ॥ १५ ॥ ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुः पालयतेतराम् ॥ रुद्रः कालस्वरूपेण सर्वमत्ति जगत्प्रभुः ॥ १६ ॥ एवं वै बहुरूपेण तद्विडंवयते जगत् ॥ एकदा स महादेवः परं ब्रह्मार्जुनं प्रभुः ॥ इंद्रपुत्रं महात्मानं व्याजं दर्शितवान्प्रभुः ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ केन व्याजेन भगवान्दर्शयामास रूपकम् ॥ किं कृतं तेन भगवन्नर्जुनेन महात्मना ॥ १८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ द्वापरांते हि दैत्याश्च देवाश्चापि महौजसः ॥ अवतीर्णा मुनिश्रेष्ठ राजानो भूरिवर्चसः ॥ ॥१९॥नानादेशोद्भवा भूपा नानाकुलसमुद्भवाः ॥ महाबला रणभुवि स्थिरचित्ता धनुर्धराः॥२०॥पांडवा धार्त्तराष्ट्राश्च महाबलपराक्रमाः॥धर्मस्यांशो महाराज कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः॥वायुर्बभूव वि-

जंगमरूप सबजगत्के कर्त्ता प्रतीत होते हैं ॥ १४ ॥ यदि विचार किया जाय तो विदित होता है कि, भगवान् कुछ भी नहीं करते, विश्वविमोहिनी वह परमा प्रकृति ही सबकुछ करनेवालीहै, और उसीकी प्रेरणासे भगवान्को भी सबकुछ करना पड़ता है ॥ १५ ॥ ब्रह्मा बनकर रचना विष्णुस्वरूपसे पालन, और कालस्वरूप रुद्र बनकर सबको संहार करना होता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार बहुत रूपोंसे वह माया जगत्का विडंबन करतीहै, एक समय परब्रह्मस्वरूप महादेवजीने इन्द्रकुमार महात्मा अर्जुनको व्याजसे अपने स्वरूपके दर्शन कराये थे ॥ १७ ॥ नारदजी बोले— हे भगवन् ! किस व्याजसे भगवान्ने अर्जुनको अपने स्वरूपके दर्शन कराये ? और महात्मा अर्जुनने उनका क्या किया था ॥ १८ ॥ स्कन्दजी बोले— हे मुनीश्वर ! द्वापर युगके अन्तमें देवता और दानव परमतेजस्वी राजा बन २ कर भूमिके ऊपर अवतीर्ण हुएथे ॥ १९ ॥ ये लोग राजा बन २ के अनेक देशों और अनेक कुलोंमें प्रादुर्भूत (उत्पन्न) हुए थे, और संग्राम भूमिमें ऐसे महाबलशाली थे जैसे दूसरे कालका ही अवतार हो ॥ २० ॥ महाबलिष्ठ पाण्डव और धार्त्तराष्ट्र (कौरव) हुए । हे महाराज ! धर्मके अंशसे कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर और

श्वात्मा भीमसेनो महाबलः॥२१॥इंद्रोऽर्ज्जुनस्वरूपेण जातो भारापनुत्तये ॥ माद्र्यां बभूवतुः प्राज्ञौ नासत्यौ सुमनोहरौ॥नकुलस्सहदेवश्च तथैवान्ये महारथाः॥२२॥ स्वयञ्ज्योतिः परात्मा हि यदुवंशे बभूव ह ॥ नाम्ना कृष्ण इति ख्यातो भक्तानां प्रतिपालकः ॥ २३ ॥ कलिर्दुर्योधनो दुष्टस्तथैवान्ये नराधिपाः ॥ दैत्यावताराः शतशः शिशुपालपुरस्सराः ॥ २४ ॥ स्ववर्गेपि च तेषां वै विरोधः समजायत ॥ दैत्यांशत्वाच्च देवत्वात्प्राग्वैरस्मरणात्तथा ॥ २५ ॥ युधिष्ठिरादयः सर्वे कौरवैश्च पराजिताः ॥ दुर्योधनेन दुष्टेन कलिरूपेण नारद ॥ २६ ॥ ययुर्वै वनवासाय वर्षषट्कद्वयं तथा ॥ चिंताविष्टाः सदैवैते बभूवुश्च पराजिताः॥२७॥ एकत्र संस्थिताः पंच पांडवा दारसंयुताः ॥ ऊचुः परस्परं ते वै किं कर्तव्यमतः परम् ॥ २८ ॥ वयं कथं हि तांश्चैव हनिष्यामो महाबलान् ॥ यद्दुष्टैर्दारसहिताः प्रेषिता निर्जने वने ॥ २९ ॥

विश्वात्मा वायुसाक्षात् महाबली भीमसेन हुए ॥ २१ ॥ भार दूर करनेके लिये इन्द्र अर्जुन बनकर प्रगट हुए, और मनोहर, बुद्धिमान अश्विनीकुमार, नकुल और सहदेव नामसे माद्रीके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए ॥ २२ ॥ भक्त प्रतिपालक स्वयंज्योतिःस्वरूप परमात्मा यदुवंशमें कृष्ण नामसे प्रकट हुए ॥ २३ ॥ साक्षात् कलियुग दूर्योधन हुआ, एवं अन्यान्य दानव शिशुपाल आदि अनेक राजा हुए ॥ २४ ॥ देवता और दैत्योंका अंश होनेके कारण पहिले वैरको स्मरण करनेसे अपने २ वर्ग में भी उनका विरोध हुआ ॥ २५ ॥ हे नारद ! कलिरूप दुष्ट दुर्योधनने छलसे युधिष्ठिर आदि सबको पराजित करदिया ॥ २६ ॥ पराजित होकर वे सब मनमें चिन्तित हो बारह वर्षके लिये वनमें चलेगये ॥ २७ ॥ स्त्री सहित पांचों पाण्डव एकत्र स्थित होकर परस्पर यों कहने लगे कि, अब हमैं क्या कर्त्तव्यहै ॥ २८ ॥ उन दुष्टोंने हमैं पत्नीसाहित निर्जन वनमें निकाल दिया है, सो अब हमैं उन महाबलिष्ठोंका किसप्रकार हनन करना

तेषां मध्येऽर्जुनः प्राह भ्रातॄन्दुःखसमन्वितान्॥समाराध्य शिवं देवं प्राप्य पाशुपतं ततः॥हनिष्यामो महादुष्टान्धार्त्तराष्ट्रान्महाबलान्॥ ॥ ३० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य साधुसाध्वब्रुवंस्तदा ॥ ततोऽर्जुनः समागत्य तस्थौ शिवमनुस्मरन्॥ ३१ ॥ एवं नानाविधैर्योगैर्नियमैश्च यमैर्युतः ॥ तपश्चकार परमं दृढभक्तिः शिवे परे ॥ ॥ ३२ ॥ एवं वै तपसा तस्य संतुष्टः शिव ईश्वरः ॥ आययौ निकटे तस्य व्याजेन भिल्लरूपधृक् ॥ ३३ ॥ अनेकभिल्लयुक्तश्च धनुर्हस्तो बृहच्छिराः ॥ ज्ञातुं तस्य दृढां भक्तिं मायया मोहितस्य हि ॥ ३४ ॥ चक्रे मायामृगं देवः समक्षं पाण्डवस्य हि ॥ आययौ च मृगो विप्र वने तस्मिन्मृगाकुले ॥ ३५ ॥ बाणं संधाय धनुषि भिल्लराजो मृगे ततः ॥ ससर्ज पृष्ठदेशे तु न ममार मृगस्तदा ॥ ३६ ॥ स बाणः स मृगः प्रागाद्वनेऽन्यस्मिन्महामुने ॥ ततोऽर्ज्जुनश्च तं दृष्ट्वा धावमानं मृगं तदा ॥

चाहिये ॥ २९ ॥ उनमेंसे अर्जुन दुःखपीडित अपने भ्राताओंसे बोले, महादेवजीकी आराधना कर उनसे पाशुपतअस्त्र पाय महाबली दुष्ट कौरवोंका वध करेंगे ॥ ३० ॥ उनके ये वाक्य सुन सब धन्यवाद देने लगे । तब अर्जुन आयकर महादेवजीकी अराधना करनेको उपस्थित हो गये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भांति २ के योग यम और नियमोंसे महादेवजीमें दृढ भक्ति करके अर्जुनने उग्रतपका आचरण किया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उग्र तप करनेसे महादेवजी प्रसन्न हो व्याजसे भिल्लरूप धारणकर अर्जुनके निकट आये॥३३॥उनके साथमें बहुतसे भिल्ल थे, हाथमें धनुष और बडाशिर था, महादेवजी उक्तमायासे मोहित अर्ज्जुनकी दृढभक्तिकी परीक्षा करना चाहते थे ॥ ॥ ३४ ॥ देवाधिदेवने अपनी मायासे एक मृग बनाकर अर्जुनके अगाडी भेजा, और हे विप्र ! मृगोंसे आकीर्ण हुए बनमें वह उनके समक्ष आया ॥ ३५ ॥ भिल्लराजने धनुषके ऊपर बाण चढाय मृगके ऊपर त्यागा, यद्यपि वह बाण उसके पृष्ठभागमें लगा पर वह मरा नहीं ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वर ! वह मृग बाण सहित भागकर दूसरे बनमें चलागया, जब अर्ज्जुनने उस मृगको

जहास भिल्लराजं तं दृष्ट्वा तद्बाणविक्रमम् ॥ ३७ ॥ बाणं संधाय गांडीवे मृगोपरि ससर्ज च ॥ तेन बाणेन निहतो ययौ वै यममन्दिरम् ॥ ३८ ॥ ययतुस्तत्र देशे हि हतो यत्र मृगो मुने ॥ अर्ज्जुनो भिल्लराजश्च स्वस्वविक्रमलालसौ ॥ ३९ ॥ किरातात्मा महादेवः स्वबाणं प्रजहार ह ॥ एक एव बभूवास्य फाल्गुनस्य शरस्तथा ॥ ४० ॥ तत्र भिल्लार्ज्जुनौ गत्वा तू-चतुः सविवादकम् ॥ मम बाणेन निहत इति चैव पृथक्पृथक् ॥ ॥ ४१ ॥ उवाच वचनं रोषादर्ज्जुनो भिल्लराजकम् ॥ संरक्तन यनो भूयो भूय एव महामते॥४२॥ अर्ज्जुन उवाच ॥ रे रे किरात दुर्बुद्धे वृथा वदसि वै पुनः ॥ अयं बाणो मामको हि येन वै निहतो मृगः॥४३॥भिल्ल उवाच ॥ ममायं बाणनिहतो मृगो भूमौ पपात ह ॥ दृष्टास्त्वया श्रुताश्चैव तापसेन हता मृगाः ॥ ४४ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा निगदितं भिल्लस्य तु महात्मनः ॥

भागता देखा तब भिल्लराजके बाणके पराक्रमको देखके ये हँसनेलगे ॥ ३७ ॥ एवं इन्होंने भी अपने गाण्डीव धनुषके ऊपर बाण चढ़ाके मृगके ऊपर त्यागा, उस बाणसे मरकर मृग यमलोकको चलागया ॥३८ ॥ हे मुने ! जहां वह मृग मारा गया था वहां ये दोनों ही गये, अर्जुन और भिल्ल दोनों जाके अपने २ पराक्रमकी अभिलाषा करने लगे ॥ ३९ ॥ किरातरूप महादेवजीने अपने बाणको हटा लिया, तब एक ही बाण उसके शरीरमें रह गया ॥ ४० ॥ अर्जुन और भिल्ल वहां पहुंचकर विवाद पूर्वक परस्पर यों कहनेलगे कि, यह मृग हमारे बाणसे मरा है ॥ ४१ ॥ हे महामते ! तब क्रोधसे लाल २ नेत्रकर अर्जुनने भिल्लराजसे ये वाक्य कहे ॥४२॥ अर्जुनने कहा—अरे दुर्बुद्धिकिरात ! तू क्यों वृथा बकता हैं ? जिससे इस मृगके प्राण निकले है यह बाण हमारा हैं ॥ ४३ ॥ भिल्लबोला— यह मृग हमारे बाणसे मरकर भूमिके ऊपर निपतित हुआ हैं, तपस्वियोंने मृगको मारा हो यह तुमने कहीं देखा वा सुना हैं ? ॥ ४४ ॥ स्कन्दजी बोले—महात्मा भिल्ल

पुनः प्रोवाच वचनं प्रदशन्नधरं रुषा ॥ ४५ ॥ अर्ज्जुन उवाच ॥ तापसोऽहं किरातेश दुर्बलो दुष्टबुद्धिमान् ॥ युद्धायागच्छ यदि ते विक्रमो मृगमारणे ॥ ४६ ॥ मां न जानासि रे भिल्ल ह्यर्ज्जुनं लोकविश्रुतम् ॥ गांडीवोत्सृष्टबाणास्ते क्षणं प्राणापहारिणः ॥ ॥ ४७ ॥ भिल्ल उवाच ॥ को वा त्वमर्ज्जुनो नाम तृणराजोऽथ वा पुनः॥किमर्थं कत्थसे मौढ्यादकृत्वा पौरुषं वृथा ॥४८॥ अर्जुन उवाच ॥ तिष्ठतिष्ठ क्षणं तावद्यावद्यास्यति दक्षिणाम् ॥ सज्जं कुरुष्व शीघ्रं वै धनुर्येन हतो मृगः ॥ ४९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ ततोऽर्ज्जुनस्तु गांडीवं समुत्थाप्य महायशाः ॥ संधाय च शरं तस्मिन्नुवाच वचनं ततः ॥५०॥ अर्ज्जुन उवाच किमर्थं म्रियसे भिल्ल मद्बाणाकुलितो हि वै॥ गृहं गच्छ स्वकं शीघ्रमागतोऽसि यतः पुनः ॥५१ ॥ भिल्ल उवाच॥ ॥ त्यज

ऐसे वचन सुन अर्जुन बोले और मारे क्रोधके उनके अधर फड़कने लगे ॥ ४५ ॥ अर्जुनने कहा—अरे दुष्ट ! मैं दुर्बल तपस्वी हूं ? यदि तुझे अपने पराक्रमसे मृगके मारनेका अभिमान हैं तो युद्धकरनेको आओ ॥ ४६ ॥ अरे भिल्ल ! तू मुझे नहीं जानता ? मैं लोक विख्यात अर्जुन हूं, मेरे गाण्डीव धनुषसे परित्यक्त हुए बाण छिनभरमें तेरे प्राणोंको हर लेंगे ॥ ४७ ॥ भिल्ल बोले—तुम क्या अर्जुन हो, मैं तुम्हें तृणसमझता हूं, अरेदुष्ट ! तू वृथा पुरुषार्थ न करके क्यों बकता हैं ॥ ४८ ॥ अर्जुनने कहा—तनिक ठहर, तू अभी यमलोकको जाता है, जिस धनुषसे तूने मृगको मारा है, उसे तयार तो कर ॥ ४९ ॥ स्कन्दजी बोले—तब महायशस्वी अर्जुनने अपने गाण्डीव-धनुषको उठाय उसके ऊपर बाण सन्धानकर भिल्लराजसे यों कहा ॥ ५० ॥ अर्जुन बोला—अरे भिल्ल ! मेरे बाणसे व्यथितहो क्यों वृथा मरता है ? जैसे आया है ऐसे ही झटपट घरको लौट जा ॥ ५१ ॥ भिल्ल बोला—यदि तुझे अभिमान हैं तो हमारे देहके ऊपर बाण परित्याग कर, और

बाणं स्वकं देहे मामके यदि ते मदः ॥ यदि त्वं मदशन्योऽसि तर्हि गच्छ स्वकं गृहम्॥५२॥स्कन्द उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य भिल्लस्य स महामतिः ॥ ससर्ज बाणं तूर्ण हि तद्देहे वज्रतुल्यके ॥ ५३ ॥ स बाणः सहसा विप्र चर्णशः पतितो भुवि ॥ तं बाणं पतितं दृष्ट्वा चुकोप भृशमर्ज्जुनः ॥ ५४ ॥ ततस्त्यक्त्वा तु तं भिल्लं किरातान्समपीडयत् ॥ किराताः समनुप्राप्ता असंख्यातास्तपोगिरेः ॥ ५५ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाः केचिल्लगुडहस्तकाः ॥ सेनां कैरातिकीं दृष्ट्वा प्रजहासार्जुनस्तदा ॥ ५६ ॥ श्यामास्या लंबकर्णाश्च बृहद्दंतोष्टकुब्जकाः ॥ रराज च महादेवो भिल्लरूपी च तद्वृतः ॥ ५७ ॥ वल्कलाम्बरधरो देवः श्मश्रुलास्यो बृहत्कटिः॥ पाषाणैर्लगुडैश्चापि शरैर्नानाविधैस्तथा ॥ ववर्षुरुद्धता भिल्ला अर्ज्जुनोपरितो ध्रुवम् ॥ ५८ ॥ ततो धनंजयः क्रुद्धो बाणौघं धनुषि द्विज ॥ प्रसंधाय च चिक्षेप भिल्लानामुपरि प्रभो ॥ ५९ ॥

यदि तुझे अभिमान नहीं हैं तो अपने घरको लौट जा ॥५२॥ स्कन्दजी बोले—भिल्लके ऐसे वाक्य सुन महामतिमान् अर्जुनने वज्रतुल्य भिल्लके शरीरके ऊपर बाणोंको परित्याग किया ॥ ५३ ॥ किन्तु वह बाण चूर्ण २ होकर भूमिके ऊपर निपतित हो गया, उस बाणको गिरता देख अर्जुनको अत्यन्त ही कोप हुआ ॥ ५४ ॥ सुतराम् भिल्लको छोड़ अन्य किरातोंको अर्जुन पीड़ित करने लगा, तब तपोगिरिके ऊपरसे अनगिन्त किरात आन २ कर उपस्थित हो गये ॥ ५५ ॥ वे अनेक शस्त्रोंसे प्रहार करते थे और किन्हींके हाथमें लाठी थी, ऐसी किरातसेनाका अवलोकन कर अर्जुन उपहास करने लगा ॥ ५६ ॥ किन्हीका मुख़ काला, किन्हींके लंबे कान और बड़े २ दांत, और कोई अष्टवक्र थे। भिल्लोंसे आवृत हुए किरातरूप महादेवजी शोभाको प्राप्त हो रहे थे॥५७॥ किरातरूपधारी महादेवजीका वस्त्र वल्कल निर्मित, मुखके ऊपरदाढी और बडीकमर थी, उस समय उन्मत्त भिल्लगण पाषाण, लाठी, और भांति २ के बाणोंसे अर्जुनके ऊपर वर्षा करने लगे ॥५८॥ हे द्विजराज ! तब अर्जुनने क्रोधकर बहुतसे बाणोंको धनुषके ऊपर चढाय भिल्लोंके ऊपर परि-

तैर्बाणैः शतशो भिल्ला निपेतुः पृथिवीतले॥ केचिज्जग्मुः कंदरायां पर्वते च महामते ॥ ६० ॥ ततोऽर्जुनः पुनर्भिल्लनाथं बाणैरताडयत् ॥ वज्रकल्पात्तु तद्देहादुत्थिताग्निकणास्ततः ॥ ६१ ॥ यान्यान्बाणानर्ज्जुनस्तु संचिक्षेप शिवोपरि ॥ ते बाणाः शतशश्चूर्णा बभूवुर्मुनिपुंगव ॥ ६२ ॥ परमात्मा शिवः साक्षाद्भक्तानामनुरंजकः ॥ न युद्धं कृतवांस्तेन जिज्ञासुस्तद्बलं खलु॥ ॥ ६३ ॥ ततोऽर्ज्जुनस्तु गांडीवात्समुत्तार्य्य गुणं तदा॥ तेनैव धनुषा भिल्लं ताडयामास मूर्द्धनि ॥ ६४ ॥ स मूर्द्ध्नि ताडितो भिल्लो जहास च पुनःपुनः ॥ मोहं दृष्ट्वार्ज्जुनस्यासौ सममानापमानकः ॥ ६५ ॥ खिन्नो धनंजयो विप्र दृष्ट्वा चैतत्पराक्रमम् ॥ आययौ राधितुं देवं भिल्लस्य जयहेतवे ॥ ६६ ॥ अस्मिन्नेव स्थले रम्ये नानामुनिगणान्विते ॥ पूजां चकार महतीमुपचारैरनेकधा ॥६७॥ बिल्वपत्रैर्धूपदीपैः कमलानां च माल्यकैः॥ अयं भिल्लो महातेजा वध्यः स्यान्मम सांप्रतम् ॥ इत्येवं संवद-

त्याग किया ॥ ५९ ॥ उन बाणोंके लगनेसे सैकडों भील भूमिके ऊपर निपतित हो गये, और हे महामतिमान् ! कोई भागकर पर्वतकी कन्दरामें छिपगये॥६०॥तब तो फिर अर्जुनने अपने बाणोंके द्वारा भिल्लराजको ताडितकरना प्रारंभ कर दिया,तब तो उनके वज्र जैसे कठोर देहमेंसे अग्निके कण निकलने लगे॥६१॥ हे मुनिपुंगव! जिन२ बाणोंको अर्जुन भिल्लराजके ऊपर परित्याग करता था वे सैकडों प्रकारसे चूर्ण होकर गिर जाते थे॥६२॥उस समय भक्तोंके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले साक्षात् परमात्मा महादेवजीने उसके बलकी परीक्षा का कामनासे अर्जुनके साथ युद्ध नहीं किया॥६३॥ तब अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी उतार प्रत्यंचा उसी धनुषसे भिल्लराजके मस्तकमें प्रहार किया ॥६४॥यह तो मानअपमानमें समान ही थे, अतएव अर्जुनके मोहका अवलोकन कर मस्तकमें ताडन किये हुए भिल्लराज वारंवार हँसने लगे॥६५॥हे विप्र! इस पराक्रमको देख अर्जुन अपने मनमें बडे खिन्न हो भिल्लकी विजय करनेकी कामनासे महादेवजीकी आराधना करनेको आये ॥ ६६ ॥ अनेक मुनियोंसे आकीर्ण हुए इसी कमनीय स्थलमें आकर अनेक उपचारोंसे शिवजीकी पूजा करी ॥ ६७ ॥ इन्द्रकुमार अर्जुनने वारंवार यह कहकर कि "इस भिल्लका मैं वध करसकूँ" बिल्वपत्र धूप दीप

जिष्णुः पूजयामास तं शिवम् ॥ ६८ ॥ पुनः पुनः प्रणामान्हि चक्रे तस्मै महामतिः ॥ ततः किलकिलाशब्दः किरातानां बभूव ह ॥ ६९ ॥ इंद्रकीलाधित्यकायामेकत्र समवस्थितः ॥ अत्रापि शिवलिंगं वै किलकिलेश्वरतां गतम् ॥ ७० ॥ यस्मात्किलकिलाशब्दं चक्रे यत्र सदाशिवः ॥ आजगाम किरातेशो नानाभिल्लसमन्वितः ॥ यत्रार्ज्जुनस्तपस्तेपे तद्भिल्लस्य जिगीषया॥७१॥ दृष्ट्वा तं भिल्लराजं वै ह्यायांतं सम्मुखं ततः ॥ अर्ज्जुनो रोषताम्राक्षः समीक्ष्य च पुनः पुनः ॥ बाहुयुद्धेन युयुधे मुष्टिभिश्च महारथः ॥ ७२ ॥ एवं बभूव तुमुलं युद्धं वै रोमहर्षणम्॥ततः स पातितस्तेन सव्यसाची महाबलः ॥ अधस्ताद्भिल्लराजस्य व्याजेन जगदात्मनः ॥ ७३ ॥ अधस्थमर्जुनं प्राह भिल्लराजो महायशाः ॥ प्रहस्य च पुनर्दीनभूतं वै पांडुनंदनम् ॥ ७४ ॥ भिल्ल उवाच ॥ क्व ते तद्वल्गितं धूर्त्त क्व तेऽस्त्राणि गतानि वै ॥ पराक्रमविहीनस्य क्लीबस्येव तवेरितम् ॥ ७५ ॥

और कमलोंकी मालासे महादेवजीकी खूब पूजा करी ॥ ६८ ॥ महामतिमान् अर्जुनने वारंवार बहुत से प्रणाम भी उन्हें किये, उस समय किरातोंका किलकिला शब्द होने लगा ॥ ६९ ॥ इसी हेतुसे इन्द्रकीलपर्वतकी अधित्यका भूमिमें जो शिवलिंग उपस्थित है, उसका किलकिलेश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ७० ॥ जहां किरातराजनें अनेक भिल्लोंसहित किलकिलाशब्द किया था, और भीलके विजयकी कामनासे जहां अर्जुनने तपका आचरण किया था, वहां ही वे आये ॥ ७१ ॥ जब अर्जुनने किरातराजको अपने सम्मुख आते देखा तब क्रोधसे इनके नेत्रोंका लालवर्ण होगया, और यह महारथ बाहु युद्धसे उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उन दोनोंका रोमहर्षण कारी घोरयुद्ध हुआ इसी बीचमें महाबलशाली अर्जुनको किरात राजने धर पटका, तब अर्जुन जगदात्मा भिल्लराजके नीचे गिर गये ॥ ७३ ॥ तब नीचे निपतित हुए अर्जुनसे महायशस्वी भिल्लराज वारंवार हँसकर यों कहने लगे ॥ ७४ ॥ भिल्लने कहा—अरे धूर्त्त ! तेरा वह डींग मारना कहां गया ? और तेरे वे सब अस्त्र

स्कंद उवाच ॥ ॥ इति व्यंगात्मिका वाचो निशम्य च पुनः-पुनः ॥ खेदं चकार देवस्य मायया मोहितोऽर्जुनः ॥ ७६ ॥ मनसा शरणं तस्य जगाम जगतीपते ॥ किमर्थमागतो ह्यत्र किं जातं मम सांप्रतम् ॥ ७७ ॥ अकीर्त्तिर्मम जाता वै शूरः पूर्वं यथाभवम् ॥ महादेवमहादेव इत्युवाच पुनःपुनः ॥ ७८ ॥ त्वमेव शरणं देव सर्वस्य जगतः प्रभो॥ न काचिद्गतिरन्यास्ति त्वत्तो मे जगतीधर ॥ ७९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ तथाऽर्जुनो महाबाहुर्यद्यदर्पितवाञ्छिवे ॥ तत्सर्वं भिल्लराजस्य मूर्ध्नि वै संददर्श ह ॥ ८० ॥ ततः स विस्मयाविष्टो बभूव च धनंजयः॥ज्ञात्वा सदाशिवं देवमस्तौषीद्वचसा ततः ॥८१॥ अर्जुन उवाच॥ ज्ञातोऽसि हे देव मया कुबुद्धिना त्वन्मायया वै परिमोहितेन ॥ अज्ञानिनां मोहवशानुवर्त्तिनां त्वमेव सन्मार्गकरः सुराधिप ॥ ॥ ८२ ॥ नतोऽस्मि तस्मै जगदीश्वराय त्रयीमयाय त्रिगुणात्मकाय॥अगोचराय प्रभवेविष्णवे भवाद्भिन्नाय मायागुणवर्जिताय ॥ ॥ ८३ ॥ तदेव वह्निस्तु तदेवसूर्य्यस्तदेव वायुश्च तदेव चंद्रः ॥

कहां गये ? पराक्रम हीन क्लीवोंकी तरह तेरा सब कथन था ॥ ७५ ॥ स्कन्दजी बोले—भिल्लराजके ऐसे व्यंग वचन सुन, परमेश्वरकी मायासे मोहित हो अर्जुन बहुत कुछ खेद करनेलगे ॥ ७६ ॥ निदान मनसे विश्वनाथ भगवानकी शरणमें उपस्थित हुए और कहनेलगे कि, मैं यहां किसलिये आया था और क्या होगया ॥ ७७ ॥ मैं प्रथम जैसा शूर वीर था उसकी अपेक्षा अब मेरी बडी अकीर्ति हुई, यह शोचकर वारंवार शिव नामका उच्चारण करनेलगे ॥ १८ ॥ हे देवाधिदेव महादेवजी ! आपही सब जगत्को गतिप्रदान करने वाले हैं, हे जगदाधार ! आपको छोड मेरी और कोई गति नहीं है ॥ ७९ ॥ स्कन्दजी बोले—महाबाहु अर्जुन जो २ वस्तु महादेवजीको अर्पण करतेथे,वह सब ही उन्हें भिल्लराजके मस्तकके ऊपर दीखती थी॥८०॥ तब तो अर्जुनको बहुतही आश्चर्य्य हुआ, निदान भिल्लराजहीको सदाशिव जान स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥ ॥८१॥अर्जुन बोले— आपकी मायासे मोहित हुए मुझ कुबुद्धिने अब आपको पहिचाना, अज्ञानियोंको ठीक मार्गके ऊपर लानेवाले और देवताओंके अधीश्वर आपही हैं ॥ ८२ ॥ आप जगत्के ईश्वर, त्रिगुणात्मक अगोचर, सर्व शक्तिमान् संसार और माया जनित गुणोंसे पृथक् हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ ८३ ॥ अग्नि, सूर्य्य, वायु, चन्द्रमा, जल ये सब आपही हैं, हे महे-

आपस्तदेव भवबंधनमुक्तिहेतू रेतस्तदेव रजसश्चकरो महेश ॥ ॥ ८४ ॥ सर्वे निमेषाश्च यतस्सविद्युतः संजज्ञिरे तत्पुरुषात्परस्मात्॥तिर्यङ् न वै मध्यमहो न कुत्रचिन्महेश्वरो यत्परिचंक्रमद्धि च ॥ ८५ ॥ यो देवदेवेश इति प्रसिद्धो दिशश्च सर्वाश्च हि पूर्वजातः ॥ स एव गर्भे हि जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ८६ ॥ अंतःस एवास्ति स एव पालकः कर्ता च विश्वस्य परं निधानम्॥ यमाहुराय्यां मुनयः पुरातनं जानाति यस्माद्भुवनानि विश्वा ॥ ८७ ॥ देवेन येनाखिलनामधारिणा दृढा कृता द्यौरिव भूतधारिणा ॥ शिवेन येनातिपरात्मना भृशं स्वः स्तंभितं तच्चरणौ नमाम्यहम् ॥ ८८ ॥ समुद्धरोद्धारक मां निमग्नं संसारवारांनिधिषु भ्रमंतम् ॥ युक्तं कृतं यन्मम देवदेव ह्यहंकृतिर्मे भवतापसारिता ॥ ८९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ इदं स्तोत्रं तु ये केचित्पठिष्यंति शिवालये ॥ गवां कोटिसहस्राणि दत्तानि सुतरां मुने ॥ ९० ॥ विवादे कलहे चैव संकटे

श्वर आपही सांसारिक बन्धनसे मुक्त करनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ यह निमेष आदि सब आपसेही प्रादुर्भूत हुए हैं ऊपर नीचे और तिर्यक् जो कुछ है सब आपहींसे व्याप्तहै ॥ ८५ ॥ जो देवाधिदेव प्रसिद्ध हैं, सब दिशाएँ जिसका स्वरूप हैं, वही परमेश्वर गर्भमें निवासकर पृथक् २ जनोंके रूपसे अवतीर्ण होते हैं ॥ ८६ ॥ वही परमनिधान विश्वका कर्त्ता पालक और संहार करनेवाले हैं मुनीश्वर उन्हींको पुराण पुरुष कहते हैं, उन्हींसे भुवन प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ ॥ ८७ ॥ जिस सर्वव्यापक भूतधारीने आकाशकी समान सबको दृढ बनाया है उन्ही आप महादेवजीके कल्याणरूप चरणोंको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ८८ ॥ मैं संसार सागरमें अतिशय निमग्न हूं, अत एव आप मेरा उद्धार करिये, कारण कि, आप सबका उद्धार करनेवाले हैं, आपने जो मेरे अभिमानको दूर कर दिया यह बहुत ही अच्छा किया ॥ ८९ ॥ स्कन्दजी बोले—जो मनुष्य शिवालयमें इस स्तोत्रका पाठ करेंगे, हे मुनीश्वर ! उन्हें करोड़ों सहस्रों गौओंके दान करनेका फल प्राप्त होगा ॥ ९० ॥ विवाद, कलह, और महान् संकटके उपस्थित होने पर इस स्तोत्रका पाठ अथवा श्रवण करनेसे

महति स्थिते ॥ नश्यते सकलं दुःखं पठनाच्छ्रवणात्तथा ॥९१॥ उत्थितस्तु महादेवः प्रत्युवाचार्ज्जुनं प्रति ॥ मेघगंभीरया वाचा तपसा परितोषितः ॥ ९२ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ वत्सवत्स वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि तवार्ज्जुन ॥ नास्ति त्वत्सदृशो लोके मम भक्तो न संशयः॥९३॥शूरोऽसि त्वं महाबाहो दृष्टमद्यैव ते बलम् ॥ दृष्टा ते भक्तिरत्युग्रा मयि वै पांडुनंदन ॥ ९४ ॥ अर्ज्जुन उवाच ॥ ॥ भक्तिर्मे ह्यचला देव त्वय्यस्तु भवभित्तये॥ यदस्त्रं भवदीयं वै तत्प्रयच्छ जगत्पते ॥९५॥ जयेयं येन सर्वांश्च दैत्येशाञ्जगतीपतीन् ॥ त्वन्नाम मे हि शरणं नित्यं स्याद्धि महेश्वर ॥ ९६ ॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ गृहाण मंत्रसहितं शस्त्रं पाशुपतं मम॥तेनैव शत्रुसैन्यानि जेस्यासि त्वं न संशयः ॥९७॥ असाध्यमपि सप्ताहात्साधयेदत्र मानवः ॥९८॥ स्कन्द उवाच ॥ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवांतरधाच्छिवः ॥ तेन भिल्लेश्वरो नाम महादेवो बभूव ह ॥९९॥दर्शनाच्छ्रवणाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्त्तनात् ॥ सद्यः शुद्धिं प्रयांत्येव महापातकिनोऽपि च ॥१००॥

समस्त दुःखका नाश होजाता है ॥९१॥ तब अर्जुनके तपसे सन्तुष्ट हुए महादेवजी उठकर मेघनिर्घोषकी समान गंभीर वाणीसे अर्ज्जुनके प्रति कहने लगे ॥ ९२ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे पुत्र अर्जुन !!! हम तुमसे प्रसन्न हैं, सुतराम् तुम वर माँगो, क्योंकि तुम्हारी समान और कोई भी हमारा भक्त नहीं है ॥ ९३ ॥ हे महाबाहो अर्जुन ! ! ! तुम शूर हो, हमने तुम्हारी परीक्षा करी थी, सो हे पाण्डुनन्दन ! हमारे विषे तुम्हारी दृढ भक्ति है ॥ ९४ ॥ अर्जुनने कहा—संसार विनाशके निमित्त आपमें मेरी दृढ भक्ति हो, और हे जगन्नाथ ! आपका जो अस्त्र है, उसका मुझे उपदेश करिये ॥ ९५ ॥ उसीके आधारसे मैं सब देवताओं और राजाओंका विजय करूंगा, और हे ईश्वर ! मैं नित्य ही आपके नामकी शरणमें रहना चाहता हूं ॥ ९६ ॥ महादेवजी बोले—मन्त्र सहित हमारे पाशुपत अस्त्रको ग्रहण करो, उसके आधारसे अवश्यही शत्रु वाहिनीका विजय करसकोगे ॥ ९७ ॥ और यहां मनुष्य असाध्य कार्य्यको भी सातही दिनमें सिद्धकर सक्ताहै ॥ ९८ ॥ स्कन्दजी बोले—महादेवजी इस प्रकार वर प्रदानकर, वहांही अन्तर्द्धान होगये, और इसी पूर्वोक्त हेतुसे उनका भिल्लेश्वर नाम हुआ ॥ ९९ ॥ उनके दर्शन, श्रवण, ध्यान तथा नाम कीर्त्तन करनेसे महापातकियोंको भी शीघ्र ही शुद्धिका लाभ होता है ॥ १०० ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥ पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति श्रीभिल्लेश्वरसेवनात् ॥ १ ॥ अर्ज्जुनोऽपि महाबाहुः शस्त्रं प्राप्य गणाधिपात्॥कृतकृत्यो बभूवाथ जगाम गहने वने ॥२॥ इति संस्मृत्यसंस्मृत्योत्फालकस्य महात्मनः ॥ चरित्रं देवदेवस्य परानंदो बभूव ह ॥ ३ ॥ इति पुण्यतमाख्यानं श्रोष्यंति श्रावयंति ये ॥ ते वसिष्यंति शैवे हि यावत्कोटिशतं भवेत् ॥ ४ ॥ धर्मनेत्रोऽपि राजासौ पुनः पप्रच्छ तं मुनिम्॥खांडवायां महानद्यां यानि तीर्थानि संति हि ॥ १०५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये भिल्लार्ज्जुनोपाख्यानवर्णनं नामैकाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

श्रीभिल्लेश्वरकी सेवा करनेसे विद्यार्थीको विद्या, धनाभिलाषीको धन, और पुत्रकी कामना करनेवालेको पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ महाबाहु अर्जुन देवाधिदेव महादेवजीसे अस्त्र लाभकर, कृतकृत्य हो वनमें चले गये ॥ २ ॥ महात्मा उत्फालकजीके चारित्रको इस प्रकार स्मरण कर परम आनन्दकी प्राप्ति हुई ॥ ३ ॥ इस पवित्र आख्यानको जो मनुष्य सुनें अथवा श्रवण करावेंगे, वे सौ करोड़ वर्ष पर्य्यन्त शिवलोकमें निवास करें गे ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर धर्मनेत्र राजाने उक्त मुनीश्वरसे उन तीर्थोंको पूछा जो खाण्डवा नदीके ऊपर विद्यमानहैं ॥ १०५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायामेकाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८२.

धर्मनेत्र उवाच ॥ उत्फालक मुनिश्रेष्ठ दासोऽहं तव धीमतः॥ कथयस्व प्रसादेन खांडवातीर्थवैभवम् ॥ १ ॥ उत्फालक उवाच ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तीर्थानि प्रवराणि च ॥खांडवायां महानद्यां यानि संति महीपते ॥ २ ॥ संगमात्क्रोशखण्डार्द्धे समायाति सरिद्वरा ॥ कालिकेति समाख्याता सर्वकाम-

धर्मनेत्र बोला— हे मुनिराज उत्फालकजी ! मैं आपका दास हूँ, अब कृपाकरके खाण्डवा नदीके माहात्म्यका वर्णन करिये, क्योंकि आप बुद्धिमान् हैं ॥ १ ॥ उत्फालकजी बोले—सुनो महामतिमान् भूप ! खाण्डवा महानदीके ऊपर जो श्रेष्ठ २ तीर्थ हैं, अब हम उन्हींका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ संगमसे आधेकोशकी दूरीपर, सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कालिका

प्रदायिनी ॥ ३ ॥ तत्संगमे नरः स्नात्वा फलं शतमखं व्रजेत्॥ ततोऽपि क्रोशखण्डे वै पर्वते करिसंज्ञके॥ भैरवोऽस्ति करी नाम चंडकोपो महाबलः ॥ ४ ॥ तस्य वै पूजनं कृत्वा दर्शनं च यथाविधि ॥ ततः स्नायाद्धि तीर्थेषु व्रजेद्वै तीर्थजं फलम् ॥ ॥ ५ ॥ ततः क्रोशार्द्धखंडे वै खांडवापुलिने वरे॥ समायाति नदीश्रेष्ठा वत्सजेति समाहृता ॥ ६ ॥ तस्यास्तु संगमे स्नात्वा वसेन्नित्यं दिवि प्रभुः ॥ ७ ॥ वत्सजासंगमादूर्द्ध्वं शिरःकूटमुदाहृतम्॥ तत्र नारायणी श्रेष्ठा नदी वै संगता तया॥ तत्र स्नात्वा नरो याति गतिं वै योगिदुर्लभाम् ॥ ८ ॥ तत्र यः पर्वतो रम्यो दक्षिणे परिदृश्यते ॥ माण्डुकायनिनामासौ सर्वयज्ञफलप्रदः ॥ ९ ॥ नारायणीसंगमाद्द्वे गव्यूतौ धर्मनेत्र भोः॥ राजिकेति समाख्याता संगता तां महानदीम् ॥ तस्मिन्देशे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥ इति ते कथितान्येव खांडवायां मया प्रभो ॥ सुपुण्यानि सुरम्याणि सुतीर्थानि नृपेश्वर ॥११ ॥ अतः परं धर्मनेत्र तीर्थान्यन्यानि भूपते ॥ शृणु-

नामकी श्रेष्ठ नदी आती है ॥ ३ ॥ उसके संगममें स्नान करनेसे मनुष्यको सौ यज्ञका फल प्राप्त होता है । वहांसे आधेकोशकी दूरीपर करिपर्वतके ऊपर महाबलवान् और चण्डक्रोधी करी नाम भैरवजी हैं ॥ ४ ॥ उनके दर्शन और यथाविधि पूजनकरनेके अनन्तर तीर्थमें स्नान करै तो ठीक फलकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ वहांसे आधे कोशकी दूरीपर खाण्डवानदीके श्रेष्ठ तट पर वत्सजा नामकी श्रेष्ठ नदी आतीहै ॥६ ॥ उसके संगममें स्नानकरनेसे स्वर्गमें निवासकरना होता है ॥ ७ ॥ वत्सजाके संगमसे आगे, एक शिरः कूटहै, वहां नारायणी नाम श्रेष्ठनदीका संगम हुआहै, उसमें स्नानकरनेसे मनुष्योंको योगिदुर्लभ गतिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ८ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर माण्डूकायनि नामका जो सुरम्य पर्वत दृष्टिगत होताहै, वह सब यज्ञोंके फलको देनेवालाहै ॥ ९ ॥ भो धर्मनेत्र ! नारायणीनदीके संगमसे दोकोशकी दूरीपर राजिका नामकी एक नदीहै, जिस स्थानमें उस नदीका संगम हुआहै, वहां स्नान करनेसे मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाता है ॥ १० ॥ हे राजराजेश्वर ! खाण्डवाके तटपर पवित्र और रमणीक जो तीर्थहैं, इसप्रकार हमने उनका वर्णन आपके प्रति किया ॥ ११ ॥ हे धर्मनेत्रराजा ! इसके पश्चात् चित्तको एकाग्रकर

व्यैकमना भूत्वा यच्छ्रुत्वामृतमश्नुते ॥ १२ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे शरविक्षेपमात्रके॥ढुण्ढिप्रयागतीर्थं तु वर्त्तते शिवदायकम् ॥ ॥ १३ ॥ यत्र ढुंढिर्महाभागस्तपस्तेपे महामते ॥ शिवलोकनिवासाय नित्यं तन्मयस्तमानसः ॥ १४ ॥ पंचवर्षसहस्राणि पंचवर्षशतानि च ॥ जीर्णपर्णाशनो योगी शिवलोकमवाप्तवान् ॥ १५ ॥ ततोऽवधि महाराज तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ ढुंढिप्रयाग इति वै ख्यातोऽनंतफलप्रदः ॥ १६ ॥ अमायां सोमवारे वै स्नात्यत्र दृढबुद्धिमान् ॥ तेन वै सुकृतं लोके कृतमेव न संशयः ॥ १७ ॥ कृता हि सर्वयज्ञाश्च दत्ता चालकृता मही ॥ विप्रेभ्यो व्यासमुख्येभ्यः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥ १८ ॥ यः कश्चिन्मानवः स्नाति ग्रहणे शशिसूर्य्ययोः ॥ धन्योऽस्ति मानवो लोके ह्यनेनैकेन कर्मणा ॥ १९ ॥ अन्यतीर्थात्कोटिगुणं लभते फलमुत्तमम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नायाद्देही यथाविधि ॥ २० ॥ तत ऊर्द्ध्वप्रदेशे हि कौवेरात्पर्वताद्वरात् ॥ समायाति नदी श्रेष्ठा माने क्रोशार्द्धखंडके ॥ २१ ॥

अन्यान्य तीर्थोंकाभी वर्णन सुनिये, उनका श्रवण करनेसे अमरत्व लाभ होता है ॥ १२ ॥ गंगाजीके उत्तरीय तटपर एक बाणविक्षेपकी दूरीपर कल्याणदायी ढुंढी प्रयाग उत्तमतीर्थ है ॥ १३ ॥ शिवलोकमें निवासकरनेकी कामना करके नित्य महादेवजीमें मनलगाय महाभाग ढुंढीजीने इसी स्थानमें तप किया था ॥ १४ ॥ पांच सहस्र पांच सौ वर्षपर्यन्त जीर्ण पत्तोंका भोजनकर तपकरनेसे उक्त योगी महात्माको शिवलोककी प्राप्ति हुईथी ॥ १५ ॥ उसी दिनसे अनन्त फलप्रदान करनेवाला यह सर्वोत्तम तीर्थ ढुण्ढीप्रयागके नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ १६ ॥ जो दृढबुद्धिमान् मनुष्य सोमवती अमावास्याके दिन यहां स्नानकरताहै उसे संसारमें अवश्यही सब पुण्य करनेके फलकी प्राप्तिहोतीहै ॥ १७ ॥ विशेष कहनेसे क्या मानो उस पुरुषने सबही यज्ञ करलिये, और सर्वथा अलंकृत भूमि दान करके मानो व्यासआदि ब्राह्मणोंको देडाली ॥ १८ ॥ चन्द्रसूर्य्यके ग्रहणमें जो मनुष्य यहां स्नान करताहै, इस एकही कर्मके करनेसे लोकमें वह धन्य होजाता है । ॥ १९ ॥अन्यतीर्थोंकी अपेक्षा यहां करोड़गुणा फल अधिक मिलताहै, इसी कारण सर्वथा यत्नपूर्वक यहां स्नान करना कर्त्तव्यहै ॥ २० ॥ उसके अगाड़ी श्रेष्ठ कुबेर पर्वतमेंसे आधेकोशकी दूरीसे एक

नाम्ना पुण्यवती ख्याता सुवर्णाभजला शुभा ॥ तन्मूले न-
रशार्दूल धनुषां पंचविंशतौ ॥ २२ ॥ शुद्धः शांतमनाः स्नाति
जितात्मा जितविग्रहः ॥ स पश्यति शुभां भूप खानिं वै पापि-
दुर्लभाम् ॥२३॥ तस्यास्तु दक्षिणे तीरे पुण्यवत्याः शरार्द्धके ॥
नित्यं निवसति श्रीमान्नेलापत्रो द्विजिह्वकः ॥ २४ ॥ स्वतिथा-
वर्द्धरात्रे तु दीप्यमानः स्वतेजसा॥स्नाति तस्याः संगमेऽहि मुमुक्षु-
र्ज्ञानसंयुतः ॥ २५ ॥ ढौंढिक्याः पश्चिमे तीरे क्रोशमाने नरा-
धिप ॥ संपद्धारा समाख्याता पर्वते धनधान्यदा ॥ २६ ॥
स्नात्वा संमार्ज्य देहं स्वं लक्ष्मीसूक्तेन वै पुनः ॥ २७ ॥ तत
ऊर्द्ध्वं पर्वते वै ढुंढिराजो महायशाः ॥ गणेशः स्वर्णवर्णाभो
भक्तानां दृष्टिगोचरः ॥ २८ ॥ ततो वै पूर्वभागेऽस्ति शिवो वै
निर्मलेश्वरः ॥ कलावगोचरो देवः पापिनां मोहवर्त्तिनाम्॥२९॥
नानारत्नमयो देवो जांबूनदविभूषितः ॥ जांबूनदमयैः सर्पैर्ना-
नामणिविभूषितैः॥ भूषितः सेवितश्चैव नानामुनिगणैस्तथा॥३०॥

त्तम नदी आती है॥२१॥ उसका पुण्यवती नाम और सुवर्णकी समान चमकीला जलहै, हे नर-
शार्दूल! उसके मूलमें पचीस धनुषके प्रमाणमें ॥ २२ ॥ जो मनुष्य मनको शुद्ध और शान्तकर
आत्मनिग्रहपूर्वक स्नान करताहै, हे भूप! उसे पापियोंको दुर्लभ उत्तम खानके दर्शन होतेहैं ॥
॥ २३ ॥ पुण्यवती नदीके दक्षिणतीरपर अर्धबाणनिक्षेपकी दूरीसे एलापत्र सर्प वहां निवासकर-
ताहै ॥ २४ ॥ और अपनी तिथिमें अर्द्धरात्रके समय अपने तेजसे प्रकाशितहो मोक्षकी इच्छाकर
ज्ञानपूर्वक स्नानकरताहै ॥ २५ ॥ हे राजन्! ढौण्ढिकीके पश्चिमी तटपर एक कोशकी दूरीपर
संपद्धाराहै, यह धारा धनधान्यकी वृद्धि करनेवालीहै ॥ २६ ॥ यहां स्नान और लक्ष्मीसूक्तसे सम्मा-
र्जनकरना कर्त्तव्यहै ॥ २७ ॥ उसके आगे पर्वतके ऊपर ढुंढिराज नाम महायशस्वी गणेशजीहैं,
सुवर्णकी समान उनकी आभाहै, और उनके दर्शन भक्तोंहीको प्राप्तहोतेहैं ॥ २८ ॥ वहांसे पूर्व-
की ओर निर्मलेश्वर नाम महादेवजीहैं, वे अज्ञानी पापियोंको कालस्वरूप दीखतेहैं॥२९॥उक्त देवाधि-
देव अनेकरत्नोंसे समलंकृत और जाम्बूनदोंसे विभूषित हैं, अनेक मणियोंसे विभूषित हुए जाम्बूनद

कुबेरो नित्यमायाति दर्शनाय शिवस्य तु ॥ माने तु योजने देवो वर्तते पार्वतीपतेः ॥ ३१ ॥ इति ते कथितान्येव ढौंढिक्या तीर्थकानि हि ॥ अतः परं शृणु प्राज्ञ गंगायां तीर्थकानि च ॥ ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा यानि शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति सुतरां नृप ॥ शिवप्रयागतः पूर्वं गंगाया दक्षिणे तटे ॥ ३३ ॥ शरविक्षेपके तीर्थे भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ शिवकुंडमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥ ३४ ॥ यत्र देवः शिवः साक्षाद्वर्त्तते पयसि प्रभुः ॥ पंचहस्तात्मकं लिंगं भक्तानां शुभदं परम् ॥ ३५ ॥ तस्मिन्कुंडे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ततोऽप्युत्तरभागे हि धनुषां पंचविंशतौ ॥ देवदेव इति ख्यातो मुने वै तपतां वर ॥ ३६ ॥ गुहायां हिमवत्यां हि स्थितो वै तपसि द्विजः ॥ युगापाये मुनिश्रेष्ठो गमिष्यति बहिः प्रभुः ॥३७॥ तस्मादधो महाभाग चतुर्हस्तप्रमाणकम् ॥ विस्तीर्णं तु तथा दीर्घं कुंडं परमदुर्ल्लभम्॥३८॥ तत्कुंडाधो नरश्रेष्ठ मृत्तिका कुंकुमप्रभा ॥ तां मृत्स्नां शिरसा

मय सर्पोंसे भगवान् विभूषितहैं, और अनेक मुनिगण उनकी सेवाकरतेहैं ॥ ३० ॥ पार्वतीपति महादेवजीके दर्शन करनेके लिये कुबेर नित्यही वहां आते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार हमने ढौंढिकीके तीर्थोंका तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहैं, हे प्राज्ञ! अब इसके अनन्तर गंगाजीके तीर्थोंको सुनिये॥ ३२॥ हे राजन् ! उन्हें जानकर मनुष्यको शुभ लोकोंकी प्राप्ति होतीहै । शिवप्रयागसे पूर्वकी और गंगाजीके दक्षिण तटपर ॥ ३३ ॥ एक बाणविक्षेपकी दूरीपर भोग ओर मोक्षका प्रदान करनेवाला शिवकुण्डहै, वह कुण्ड शिवलोककी प्राप्ति कराताहै ॥ ३४ ॥ वहां जलमें देवाधिदेव महादेवजीका पांचहस्तप्रमाणका एक लिंगहै, जो भक्तोंको शुभप्रदान करताहै ॥३५॥ उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य समस्तपापोंसे मुक्त होजाताहै । वहांसे उत्तर भागमें पच्चीस धनुषके प्रमाणपर हे तपस्विराज ! देवाधिदेव विख्यात हैं ॥ ३६ ॥ हिमालयकी गुहामें तपकरनेके लिये द्विज उपस्थित हैं, और वह मुनीश्वर युगके अन्तमें बाहरनिकलेंगे ॥ ३७ ॥ हे महाभाग ! उसके नीचे चारहस्त परिमित लंबा चौड़ा परमदुर्लभ एक कुण्डहै ॥ ३८ ॥ हे नरेश्वर ! उस कुण्डके नीचे कुंकुमकी

धृत्वा मोक्षभागी भवेन्नरः ॥३९॥ तस्मिन्कुंडे यत्कृतं हि तदनं-
तगुणं भवेत् ॥४०॥ तस्माच्छरद्वये भूप स्ववेंश्या तु जयैषिणी॥
गंगाया उत्तरे तीरे गुहागंगातटे शुभा॥४१॥तस्यां गुहायां नित्यं
सा रतिरूपजयैषिणी ॥ स्मरंती मनसा देवं सर्वज्ञं पार्वतीप-
तिम् ॥ ४२ ॥ हेतुनानेन राजेन्द्र तन्नाम्नी समजायत॥ ४३ ॥
एकदा स्वर्गलोके सा क्रीडंती वासवेन तु ॥ नंदने विपिने देव
ह्यप्सरोभिः समन्विता ॥ ४४ ॥ पृथक्पृथग्वासवोऽपि चिक्री-
डे राजसत्तम ॥ एवं क्रीडति शक्रे हि ताभिः सर्वाभिरेव च ॥
एतस्मिन्नंतरे कामो ह्याययौ भार्यया सह ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा रतिं
कामवामां दुःखिता साभवत्तदा॥ स्ववेंश्या ह्युर्वशी मुख्या दृष्ट्वा
सौंदर्य्यवैभवम् ॥ ४६ ॥ तासां मध्ये तु सा वेश्या सुघोषा-
नामिका पुरा ॥ उवाच वचनं ताश्च सर्वाश्चाप्सरसस्तदा ॥४७॥
जयेयं रूपमस्यास्तु स्वल्पकालेन वै यथा॥ तथैवाहं करिष्या-
मि यथा रूपाधिका भवे ॥४८॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सर्वा-

समान मृत्तिकाहै, उस मृत्तिकाको शिरके ऊपर धारणकरनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होताहै ॥३९॥ एवं उसकुण्डके ऊपर जो कुछभी कर्म किया जाताहै उसका अनन्तगुण फल प्राप्तहोता है ॥४०॥ हे राजन्! वहांसे दो बाणकी दूरीपर गंगाजीके उत्तरीतटमें गुफामें जयैषिणी वेश्याहै ॥ ४१ ॥ रतिके रूपका विजय करनेकी कामनावाली वह अप्सरा नित्यही वहां गुहामें निवास करती है, और सर्वज्ञ पार्वतीपति महादेवजीका अपने मनमें स्मरणकरती रहती है ॥४२॥ हे राजन्! इसी हेतुसे उसका यह नाम हुआ है ॥ ४३ ॥ एक समय वह अनेक अप्सराओंको साथलिये स्वर्गीयनन्दन काननमें इन्द्रके साथ क्रीड़ा कररहीथी ॥ ४४ ॥ हे नृपसत्तम ! इन्द्रभी सबके साथ पृथक् २ क्रीडा कररहे थे, जिस समय इन सब अप्सराओंके साथ इन्द्र क्रीडा कररहे थे, उसी समय रतिको साथलिये कामदेवभी वहां आनकर प्राप्तहुए ॥ ४५ ॥ तब कामपत्नी रतिको देख, उर्वसी आदि सब अप्सराएँ उसके रूपसे दुःखित होगईं ॥ ४६ ॥ इन सबमेंसे सुघोषा नामकी अप्सराने उस समय सब अप्सराओंसे यह वाक्यकहा ॥४७॥ अल्पकालहीमें इसके रूपको जीत जिस प्रकार मैं इससे अधिक रूपवती होजाऊं, इसीप्रकारका उपाय मुझे करनाहोगा ॥ ४८ ॥ उसके ऐसे वाक्य सुन सब अप्सराएँ तालीपीटके उसकी

श्चाप्सरसस्तदा ॥ हासं चक्रुः करध्वानैस्ततः सा दुःखिताभवत्॥ ॥ ४९ ॥ राजकन्या बभूवाथ नाम्ना वै तु जयैषिणी ॥जातिस्मरत्वमापन्ना ययौ वै तपसे तदा ॥ ५० ॥ अस्मिन्नेव महास्थाने रतिरूपजयैषिणी॥ततः सा कतिपयाहेन जाता रत्याधिका पुनः॥ ॥ ५१ ॥ ययौ तेनैव देहेन स्वर्गलोके महामते ॥ ५२ ॥ ततः सर्वाधिका सा वै बभूवेंद्रस्य संसदि ॥ इदं स्थानं ततो जातं नाम्ना जायैषिणं खलु ॥ ५३ ॥ तत्र कुंडं महाभाग गंगायां वर्त्तते शुभम् ॥ तस्मिन्स्नात्वा नरो भक्त्या जपेदपि यदिच्छति ॥ ५४ ॥ तस्माद्धि शरविक्षेपे गंगाया दक्षिणे तटे ॥ श्रीस्थंडिलं समाख्यातं श्रीदं पुण्यप्रदं मतम् ॥ ५५ ॥ तस्मिन्स्थंडिलके मर्त्यो दिनानामेकविंशतिम् ॥ जप्त्वा श्रीमंत्रकं पुण्यं कुबेरेण समो भवेत् ॥ ५६ ॥ ततो बाणद्वये भूप शिला परमदुर्लभा ॥ नाम्ना तु वासवी ख्याता यस्यामिन्द्रस्तपोकरोत् ॥ ५७ ॥ गंगामध्ये वर्त्तते सा सर्वकामफलप्रदा ॥ अस्यां तु यत्कृतं कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ५८ ॥

हँसी करनेलगीं, तब इसे अत्यन्त दुःख हुआ ॥ ४९ ॥ और यह जयैषिणी नाम राजकन्या होके प्रादुर्भूत हुई, उसे अपनी पहिली जातिका स्मरण रहा, सुतराम् यह तपकरनेके लिये ॥ ५० ॥ रतिके रूपकी विजयकरनेकी अभिलाषासे इसी महान् स्थानमें आई अथ च कुछ वर्ष बीतनेपर वह रतिसेभी अधिक होगई ॥ ५१ ॥ हे महामतिमान् ! फिर वह उसी देहसे स्वर्गको चलीगई ॥ ५२ ॥ तब वह इन्द्रकी सभामें सबहीसे अधिक रूपवती होगई, तभीसे इस स्थानका जयैषिणीस्थल नाम होगया ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! वहां गंगाजीमें शुभ कुण्ड वर्त्तमान है, उसमें स्नान करनेसे जो २ इच्छा की जाय मनुष्योंको उसीकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५४ ॥ वहांसे दो बाण विक्षेपकी दूरीपर गंगाजीके दक्षिणतटके ऊपर लक्ष्मी और पुण्यका प्रदान करनेवाला श्रीस्थण्डिल विद्यमान् है ॥ ५५ ॥ उस स्थण्डिलके ऊपर मनुष्य इक्कीस दिनपर्य्यन्त पवित्र श्रीमन्त्रका जपकरै तो कुबेरकी समान होजाताहै ॥ ५६ ॥ वहांसे दो बाणकी दूरीपर हे भूप ! वासवी नामकी शिला वर्त्तमानहै, इसी दुर्लभ शिलाके ऊपर इन्द्रने तप कियाथा ॥ ५७ ॥ सब कामनाओंके फलको देनेवाली वह शिला गंगाजीमें विद्यमान् है, इसके ऊपर किये हुए कर्म करोड़२ गुणे

ततो ममाश्रमे चास्मिंस्तीर्थानि प्रवराणि च॥अस्मिन्नेव महातीर्थे कुरुते तप उत्तमम् ॥ ५९ ॥ यत्र देवो महाभाग मुनयः समवस्थिताः ॥ परमात्मनि निष्ठाश्च मोक्षधर्ममनुश्रिताः ॥ ॥६०॥एतत्पुण्यतमं स्थानं न भूतं न भविष्यति॥यत्र देवः शिवः साक्षाद्गंगामध्ये हि वर्तते ॥ ६१ ॥ तस्य स्थानस्य माहात्म्यं को वा वर्णयतुं क्षमः॥ समर्प्यास्मिन्महादेवे गंगायामेव द्रव्यकम् ॥ दारिद्र्यं न लभेत्सोऽपि भुवि जन्मशतैरपि ॥६२॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रव्यं देयं शिवस्य वै ॥ पुष्पं दत्त्वा दरिद्रस्तु धनी भवति निश्चितम्॥ बिल्वपत्रं समर्प्यैव शिवतां याति दुर्लभाम् ॥ ६३ ॥ धन्याः कलियुगे घोरे स्नातारोऽत्र सुतीर्थके ॥ येन दत्तं सुवर्णं हि त्वापि लक्षप्रमाणकम् ॥ तेन दत्ता मही सर्वा सशैलवनकानना ॥ ६४ ॥ इति ते कथितान्येव सूक्ष्मे तीर्थानि भूपते॥अतिसूक्ष्मे यानि संति तानि संशृणु जल्पतः॥ ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

अधिक होजाते हैं ॥ ५८ ॥ इसके पश्चात् हमारे इस आश्रममें बहुतसे उत्तम तीर्थहैं, इसी स्थानमें देवस्वामी तप करते हैं, ॥ ५९ ॥ और हे महाभाग ! मुनीश्वरलोग परमात्मामें अपनी मनोवृत्तिको लगाय मोक्षमार्गका आश्रय लेकर यहांही निवास करते हैं ॥ ६० ॥ इस तीर्थकी समान पवित्र न तो कोई अवतक हुआ और न आगेको होगा, क्योंकि वहां साक्षात् महादेवजी गंगाजीमें विद्यमानहैं ॥ ६१ ॥ इस स्थानके माहात्म्यका वर्णन करनेको कौन समर्थ होसक्ताहै गंगाजीमें महादेवजीको द्रव्यप्रदानकरनेसे सैकडों जन्मपर्य्यन्त भूमिके ऊपर दारिद्र्य नहीं होता ॥ ६२ ॥ इस हेतु सर्वथा यत्नपूर्वक महादेवजीको द्रव्य प्रदान करना चाहिये, पुष्पदान करनेसे मनुष्य अवश्यही धनी होताहै, और बिल्वपत्र प्रदान करनेसे दुर्लभ शिवत्वलाभ होताहै ॥ ६३ ॥ उन पुरुषोंको धन्यहै जो घोर कलियुगमें इस तीर्थमें स्नान करते हैं, जो मनुष्य किंचिन्मात्रभी सुवर्ण प्रदान करताहै उसे वन और पर्वतोंसहित अखिल भूमिके दानकरनेका फल उपलब्ध होता है६४॥ हे भूपति ! सूक्ष्म क्षेत्रमें जो तीर्थ हैं उनका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया अतिसूक्ष्म क्षेत्रमें जो तीर्थहैं अब हे राजन् ! उनको सुनिये ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८३.

उत्फालक उवाच ॥ ॥ अस्मादेव महातीर्थात्करिपर्वततो ध्रुवम् ॥ शरविक्षेपमात्रं तु धारा सा भैरवी स्मृता ॥ १ ॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा भैरवस्य प्रियो भवेत् ॥ २ ॥ तस्माच्छरद्वये भूप सत्यसंधतपस्थले ॥ श्रीकुंडं परमं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायम् ॥३॥ यत्र राजा सत्यसंधस्तपस्तप्त्वा भृशं प्रभुः ॥ जितवान्कोलकं दैत्यं मुक्त एव ततः प्रभो ॥४॥ अस्मात्स्थानात्पूर्वभागे सरित्पुण्यतमा स्मृता॥ भूसुतेति समाख्याता भूमिदानफलप्रदा॥५॥अस्यास्तु संगमे स्नात्वा भूमिदानफलं व्रजेत् ६ गंगाया उत्तरे तीरे मुंडदैत्यशिरःस्थले ॥ ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥७॥ यत्र ब्रह्मा ययौ देव मानेतुं द्विजदंपती॥ ततो बभूव नामास्य ब्रह्मकुंडमिति श्रुतम्॥८॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ कौ वा तौ मुनिशार्दूल यौ युक्तौ द्विजदंपती ॥ किमर्थमागतौ तत्र कथं ब्रह्मा समाययौ ॥ ९ ॥ उत्फालक उवाच ॥ चरित्रं द्विजदंपत्योः शृणुष्वैकमनाः शुभम् ॥ यथा बभूवतुः प्राज्ञाव-

उत्फालकजी बोले— ठीक इसी करिपर्वतसे एकबाणविक्षेपकी दूरीपर भैरवी नामकी धारा है ॥ ॥ १ ॥ उसके जलको शिरके ऊपर धारणकरनेसे मनुष्य भैरवका प्रिय होजाताहै ॥ २ ॥ हे राजन् ! वहांसे दो बाण विक्षेपकी दूरीपर सत्यसन्धके तपःस्थलमें परमपवित्र अतएव स्वर्ग और मोक्षका प्रदान करनेवाला श्रीकुण्ड विद्यमान है ॥ ३ ॥ वहांही सत्यसंध राजाने उग्र तप करके कोल दैत्यका विजय किया था, यह हम प्रथमही कह चुके हैं ॥ ४ ॥ यहांसे पूर्वकी ओर अत्यन्तही पवित्र भूसुता नामकी एक नदीहै, उसमें स्नानकरनेसे भूमिदान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ एवं च इसके संगममें स्नानकरनेसेभी भूमिदान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ गंगाजीसे उत्तरकी ओर मुण्डदैत्यके शिरःस्थलमें ब्रह्मलोक प्रदानकरनेवाला ब्रह्मकुण्ड वर्त्तमान है ॥ ७ ॥ वहा द्विजदम्पतीको लानेकेलिये साक्षात् ब्रह्माजी स्वयं गयेथे इसी कारण इसका ब्रह्मकुण्ड यह निर्मल नाम विख्यात हुआ ॥ ८ ॥ धर्मनेत्र बोला— हे द्विजराज ! द्विजदम्पती कौनथे, वे यहां कैसे आये ? और ब्रह्माजी उनके पास क्यों आये ॥ ९ ॥ उत्फालकजी बोले—हे नरनाथ ! तुम चित्तको एकाग्र करके द्विजदम्पतीके शुभचारित्रको श्रवणकरो कि, वे दोनों बुद्धिमान् जिसप्रकार यहां

स्मिन्क्षेत्रे नराधिप ॥ १० ॥ पुरात्र द्विजदंपत्योः स्थानमासीच्छुभं नृप॥नाम्ना ख्यातो द्विजः सोऽयं विष्णुशर्म्मेति विश्रुतः ॥ ॥ ११ ॥ सापि देवी बभूवाथ नाम्ना कंजवती शुभा॥ न तयोस्तु गृहे गत्वा क्षुधितोभून्नराधिप ॥ महत्या संपदा युक्तौ सदा धर्ममनुष्ठितौ ॥ १२ ॥ तयोरेव गृहं सर्वे क्षुधिता यांति सर्वदा ॥ यद्यन्मनसि तेषां वै तत्तदापूरयद्द्विज ॥ १३ ॥ तयोस्तु द्विजदंपत्योर्मन आसीत्परोदये ॥ एवं तयोर्महाभाग धनं सर्वं क्षयं गतम् ॥ १४ ॥ क्षुधितैर्भुक्तमेवैतद्धन्यस्य हि कुटुंबिनः ॥ वनादानीय मूलानि फलान्यपि महामते ॥ ॥ १५ ॥ पूर्वं दत्त्वा क्षुधार्तायावशिष्टं खादति स्वयम्॥एवं तयोर्निवसतोरासीद्धि ह्यतिपुण्यकम् ॥ १६ ॥ आजगाम स्वयं ब्रह्मा ज्ञातुं तन्निश्चयं नृप ॥ चिह्लरूपेण क्षुधितो दंपत्योर्निकटे शुभे ॥ ॥ १७ ॥ तत्रागत्य बभाषे तं ब्राह्मणं सत्यसंयुतम् ॥ १८॥ चिह्ल उवाच ॥ ॥ भोभो ब्राह्मण हे देव क्षुधितोऽहं भृशं मुने ॥

आये थे ॥ १० ॥ हे राजन् ! प्रथम यहां द्विजदम्पतीका शुभ स्थानथा, और वह द्विज उस समय विष्णुशर्मा नामसे विख्यात था ॥ ११ ॥ और द्विजपत्नीका कंजवती नाम था, हे राजन् ! उन द्विजदम्पतीके घर जाकर कोई क्षुधित लौटके नहीं आता था, एवं ये दम्पती प्रभूत धनशाली होनेके कारण सदैव धर्मका आचरण करतेथे ॥ १२ ॥ इनके घर जो क्षुधित जाते थे, उनकी जो इच्छा होती थी उसीको वह द्विज पूर्णकर देता था ॥ १३ ॥ विशेष क्या ? इन द्विजदम्पतीके चित्तमें परोदय (दूसरोंका उदय) करनेहीका विचार रहताथा, हे महाभाग ! इस प्रकार उनका सब धन नष्ट होगया ॥ १४ ॥ जब इनका धन क्षुधितोंने सब भक्षण करलिया तब हे महामातिमान् ! यह द्विज वनसे फलमूल ला २ कर कुटुम्बियोंको भोजन करानेलगा ॥ ॥ १५ ॥ प्रथम तो भूखी ब्राह्मणीको देता और अवशिष्टको स्वयं भोजन करताथा, इसी नियमसे निवास करते २ भी उन्हें बहुतसा पुण्य हुआ ॥ १६ ॥ तब एक समय ब्रह्माजी इनकी परीक्षा करनेको स्वयंही चील्हका रूप धारणकर-द्विज दम्पतीके निकट आये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी वहां आय सत्यसम्पन्न इस ब्राह्मणसे यों बोले ॥ १८ ॥ चीह्लने कहा—हे ब्राह्मणदेवता ! मैं अत्य-

श्रुत्वा त्वद्धर्ममाहात्म्यमागतोऽहं त्वदंतिके ॥१९॥ विष्णुशर्म्मोवाच ॥ ॥ फलमूलानि मत्पार्श्वे वर्तते सुबहूनि च ॥ तानि भुंक्ष्व यथेष्टं त्वमतिथिस्स मम प्रियः ॥ २० ॥ चिह्न उवाच ॥ किं कर्तव्यं मया साधो फलैर्मूलैस्तथा शुभैः ॥ वयं हि मांसभोक्तारो देहि मानुष्यमामिषम् ॥ २१ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ॥ चिंतयामास बहुशः किं कर्तव्यमतः परम् ॥ २२ ॥ न देयं चेदामिषं वै धर्मो मे नश्यति क्षणात् ॥इति वै बहुशः सोऽथ चिंतयामास विप्रकः ॥ ॥ २३ ॥ एवं संचिंतयंतं तु जगाद ब्राह्मणं तदा॥ विचार्य मनसा भूत्वा तत्क्षुधा चैव पीडिता ॥ २४ ॥ कंजवत्युवाच॥ नाथनाथ द्विजश्रेष्ठ देयमस्मै नरामिषम् ॥ मामकं परमं दिव्यं तृप्यतां चिह्नराजकः ॥ २५ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ अहमेव प्रदास्यामि स्वमांसं वरवर्णिनि ॥ त्वं तु पुत्रवती चासि जीविष्यंति कथं सुताः ॥ २६ ॥ कंजवत्युवाच ॥ ॥ भर्तस्त्वया विना देव जीविष्यामि क्षणं न हि ॥ विना भर्त्रा हि नारीणां जीवनं हि

न्तही क्षुधित हूं, तुम्हारे धर्मका माहात्म्य सुनकर तुम्हारे निकट आयाहूं ॥ १९ ॥ विष्णुशर्मा बोला– हमारे पास फल मूल बहुतसे उपस्थित हैं, उन्हें तुम यथेष्ट भोजन करो क्योंकि हमारे प्रिय अतिथि हो ॥ २० ॥ चीह्नने कहा– साधो ! मुझे शुभ फल मूलोंको क्या करना है? क्योंकि हम तो मांसभोजी हैं अतएव मुझे मनुष्यका मांस दीजिये ॥२१॥ उत्फालकजी बोले– उसका यह वाक्य सुन ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, और वह यह शोचने लगा कि, मुझे सम्प्रति क्या करना कर्त्तव्य हैं ? ॥ २२ ॥ यदि मैं मांस न दूंगा तो मेरा धर्म इसीसमय नष्ट होजायगा, इस प्रकार वह ब्राह्मण बहुत कुछ चिन्ताकरने लगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मणको इस प्रकार चिन्ताकरते देख क्षुधासे पीडित हुई यह ब्राह्मणी उससे कहने लगी ॥ २४ ॥ कंजवती बोली– हे प्राणनाथ ! मुझ मानुषीका दिव्य मांस इसे देदो तो इसचीह्नकी तृप्ति होजायगी ॥ २५ ॥ ब्राह्मण बोला– हे सुमुखि ! मैं ही अपना मांस दूंगा, क्योंकि तूं पुत्रवती है, तेरे विना पुत्र कैसे जीवित रहेंगे ॥ २६ ॥ कंजवती बोली– हे प्राणपति ! आपके विना तो मैं छिनभर भी जीवित नहीं रह सक्ती, कारण कि, पतिके विना स्त्रियोंका जीवन वृथाही

वृथा स्मृतम् ॥ २७ ॥ तस्मात्त्वञ्जीव हे देव गमिष्यामि तवाग्रतः ॥ भविष्याति गतिश्चैव भर्त्रग्रे मरणाद्विभो ॥ २८ ॥ विष्णुशर्म्मोवाच ॥ इति चेन्मृगशावाक्षि निश्चयो वरवर्णिनि॥ सहैव हि मरिष्यामि चिह्वराजस्य तृप्तये ॥ २९ ॥ उत्फालक उवाच॥ इत्युक्त्वा तौ महाभाग पतितौ तत्समीपके ॥ ऊचतुर्वचनं भूप हर्षितौ धर्महेतवे ॥३०॥ द्विजदंपती ऊचतुः॥भोभोश्चिह्व महाभाग भुङ्क्ष्व मांसं यथारुचि॥धन्यौ स्वस्तवयोर्मांसं भवतस्तृप्तिहेतवे ॥ ३१ ॥ चिह्व उवाच ॥ ॥ किं कर्त्तव्यं हि मांसेन भावत्केन हि दंपती ॥ जरया गलितेनाहं वृद्धोऽस्मि दंतहीनकः ॥ ॥ ३२ ॥ प्रयच्छतां स्वपुत्रस्य मांसं मे तृप्तिहेतवे ॥ मारयित्वा स्वहस्तेनं पुत्रं वै पंचवार्षिकम् ॥ ३३ ॥ यदि वै युवयोश्चित्ते नायाति संमतिर्मम ॥ पुत्रमोहात्तदाहं वै गमिष्याम्यन्यदेशके ॥ ३४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा हि वचनं चिह्वस्य महदात्मनः॥ परस्परं तु संवीक्ष्य पुत्रमानीय तत्र हि॥ ॥ ३५ ॥ खड्गमुत्थाप्य तूर्णं हि यावद्धंति स्वपुत्रकम्॥ तावच्चि-

...गयाहै ॥ २७ ॥ सुतराम् हे देव ! आप जीवित रहैं और मैं आपके अगाडी चली जाऊंगी, ... प्रभो ! पतिके अगाडी मरनेसे मेरी सद्गति होजायगी ॥ २८ ॥ विष्णुशर्मा बोला-हे मृगनयनी ...मुखि ! यदि तेरा ऐसा निश्चयहै, तौ चीह्वकी तृप्तिके लिये मैं भी तेरे साथही मरजाऊंगा॥ २९॥उत्फाल... जी बोले-हे महाभाग ! वे दोनों यों कहकर चीह्वके समीप गिरपडे और हे राजन् ! धर्मके नि... ...त्त प्रसन्न हो ये वाक्य कहनेलगे ॥ ३० ॥ द्विजदम्पती बोले-हे महाभाग चिह्वराज ! ले... ...थारुचि मान्स भोजनकरो, हम दोनौको धन्यहैं जो हमारा मान्स आपकी तृप्तिके काम आताहै ॥ ३१॥चीह्वने कहा-हे दम्पती ! बुढापेसे गलित हुए तुम्हारे मांससे मुझे क्या करनाहै, क्योंकि ... वृद्ध और दन्तहीन होगयाहूं ॥ ३२ ॥ सुतराम् मेरी तृप्तिके लिये अपने पांच वर्षके छोटे ...त्रको अपने हाथसे मार उसका मान्स मुझे दीजिये ॥ ३३ ॥ और यदि हमारी सम्मति तुम ...नोंकी समझमें पुत्रके मोहके कारण न आती हो तौ मैं अन्यत्र चलाजाऊंगा ॥ ३४ ॥ उ... ...लकजी बोले-महात्मा चीह्वके ऐसे वचन सुन वे दोनों परस्पर एक दूसरेको देख अपने पुत्रको ... अपने पुत्रको वहां लेआये ॥ ३५ ॥ खड्ग उठाकर जभी वह अपने पुत्रको मारनेको

हो महाभाग चतुरास्यो बभूव हि ॥ ३६ ॥ दंडपुस्तकधारी च सुंदरांगो महाकृतिः॥उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मा तौ द्विजदंपती ॥ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ धन्यौ युवां महाभागौ ब्रह्माहं सर्वकारकः ॥ द्रष्टुं वै निश्चयं वां हि चागतोऽस्म्यत्र दंपती ॥३८॥ गच्छतां ब्रह्मलोके हि पुण्यात्मानौ यतो युवाम् ॥ अनेनैव हि देहेन दंपती पुत्रसंयुतौ ॥ ३९ ॥ युवाभ्यां सदृशो लोके धर्मात्मा नो महान्कचित्॥ययोः पुत्रस्य मोहोऽपि न जातस्तृप्तिहेतवे ॥ ४० ॥ इदमाख्यानकं कश्चिदस्माकं हि पठिष्यति ॥ सोऽपि मल्लोकवासी स्याच्छ्रोता श्रावयितापि च ॥ ४१ ॥ इदं पुण्यतमं स्थानं जातं मुक्तिफलप्रदम् ॥ अस्मिन्वै तीर्थराजे तु स्नानं दानं जपं तथा ॥ करिष्यंति च ये ते वै प्राप्स्यंति परमं पदम् ॥४२॥ जातं नामास्य तीर्थस्य ब्रह्मतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ॥ ४३ ॥ उत्फालक उवाच ॥ विमानेऽथ समारुह्य स्वदेहेनैव ते त्रयः ॥ गता वै ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोके सुनिर्मले ॥ ॥४४॥ ततोऽवधि महाराज जातं पुण्यतमं परम्॥ब्रह्मकुंडमिति-

उद्यत हुआ, हे महाभाग ! तभी वह चीह् चतुर्मुखी ब्रह्मा वनगया ॥ ३६ ॥ दण्ड और पुस्तक धारणकरे सुन्दर अंगवाले महाद्युतिमान्ब्रह्माजी प्रीतिपूर्वक उन द्विजदम्पतीसे बोले ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे महाभागो तुम दोनोंको धन्यहै, मैं सबका निर्माणकर्त्ता ब्रह्माहूं, हे दम्पती मैं तुम्हारा निश्चय देखनेके लिये यहां आयाथा ॥ ३८ ॥ क्योंकि तुम दोनो ही पुण्यात्मा हो, अतएव हे दम्पती ! तुम पुत्रसहित इसी देहसे ब्रह्मलोकको चलेजाओ ॥ ३९ ॥ तुम्हारी समान धर्मात्मा और कहीं भी कोई नहीं है,क्योंकि मेरी तृप्तिके लिये तुम्हें अपने पुत्रका भी मोह न हुआ । ॥ ४० ॥ हमारे इस आख्यानको जो कोई पढैगा, जो सुने अथवा सुनावैगा वह भी हमारे लोकमें निवास करैगा ॥ ४१ ॥ यह स्थान अतिशय पवित्र और मुक्तिफलका प्रदान करनेवालाहै, इस तीर्थमें जो मनुष्य स्नान दान अथवा जप आदि करेंगे उन्हेंभी परमपदकी प्राप्तिहोगी ॥ ४२ ॥ तभीसे इस तीर्थका ब्रह्मतीर्थ नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४३ ॥ उत्फालकजी बोले—निदान वे तीनों इसी देहसे विमानमें आरूढ हो निर्मल ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! तभीसे

ख्यातं स्मरणादपि पापह्रत् ॥४९॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये द्विजदंपत्युपाख्यानं नाम त्र्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

वह अश्वकुण्ड अतिशय पवित्र होगया, सुतराम् इसका स्मरण करनेसे भी पापोंका अपहरण होताहै ॥ ४९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्र्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

चतुरशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८४.

उत्कालक उवाच ॥ ॥ अथोपरिष्टान्नृपते गंगाया दक्षिणे तटे ॥ माने चतुःशरे प्रोक्तमश्वतीर्थं सुपुण्यदम् ॥ १ ॥ समं भृंगिशिलायास्तु तत्तीर्थं भवति प्रभो ॥ यत्तीर्थस्मरणान्मर्त्यश्चक्रवर्ती भवेद्ध्रुवम् ॥२॥ किं पुनः स्नानकरणाद्दानाच्च जपतस्तथा ॥ यत्र नारायणः साक्षाज्जलमध्ये हि वर्तते ॥ ३ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ ॥ का वोक्ता हि शिला भृंगी नाम वा कथमापसा ॥ मह्यं मुनिगणश्रेष्ठ तत्सर्वं ब्रूहि विस्तरात् ॥ ४ ॥ उत्कालक उवाच ॥ एकस्मिन्समये देवो महादेवः स्वयं प्रभुः ॥ अवतीर्णो हिमवतो द्रष्टुं तीर्थान्यनेकशः ॥ ५॥ नंदी भृंगी भालचंद्रो रिटी च ढुंढिकस्तथा ॥ प्रेतास्यो वज्रनाभश्च ढुंढिश्च बृहदंडकः ॥ ६ ॥ मत्स्याक्षो मृगनाभश्च महासेनो महामनाः ॥ इत्यादयो गणास्तेन समाजग्मुः सदैव हि ॥ ७ ॥ प्रस्फुरज्जिह्व-

उत्कालकजी बोले—हे नृप ! इसके अनन्तर गंगाजीके दक्षिणतटके ऊपर चारबाणके अन्तरपर अतिशय पुण्यप्रदान करनेवाला एक अश्वतीर्थ है ॥ १ ॥ हे राजन् ! वह भृंगी शिलाकी समान ही कीर्त्तन कियागयाहै, उस तीर्थका स्मरणकरनेहीसे मनुष्य चक्रवर्त्ती राजा होजाता है ॥ २ ॥ जब केवल स्मरण मात्र करनेहीका यह फलहै तौ स्नान दान और जप करनेसे फिर कहना क्याहै ! क्योंकि वहां जलके बीचमें साक्षात् नारायण निवास करते हैं ॥ ३ ॥ धर्मनेत्र बोला— भृंगी शिला क्या है ? उसका यह नाम कैसे हुआ ! हे मुनिराज ! यह सब विस्तारपूर्वक हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ ४ ॥ उत्कालकजी बोले— एकसमय स्वयं प्रभु साक्षात् महादेवजी हिमालयके अनेक तीर्थोंका अवलोकन करनेको अवतीर्ण हुए ॥ ५ ॥ उस समय नन्दी भृंगी, भालचन्द्र, रिंढी, ढुण्ढी, प्रेतास्य, वज्र नाम, ढुंढिक ॥ ६ ॥ मत्स्याक्ष, मृगनाम, और महासेन इत्यादि सबगण उनके साथआये ॥ ७ ॥ लपलपाती हुई सर्पोंकी जिह्वा-

गैर्जिह्वानिर्गिलद्विषजालकैः ॥ ललाटशोभिरजनीकरलेखासमन्वितः ॥ ८ ॥ अंससंन्यस्तसंमत्तकरिचर्मा त्रिनेत्रकः ॥ मध्यनेत्रोद्भवलसद्वह्निना सुविराजितः ॥९॥ करिचर्मद्वीपिचर्मराजितोऽशेषलोकपः ॥ जटाभिः स्वर्णवर्णाभिर्दधानोऽलकनंदकाम् ॥ ॥ १० ॥ आययौ देवशार्दूलो नानाभटगणैर्युतः ॥ किंकिणीजालनिर्घोषव्याप्ताशेषदिगंतरः ॥ ११ ॥ मुनिर्वै देवलो नाम संस्थितो मौनमाश्रितः ॥ शिलायां तप्यमानो वै ध्यायन्नारायणं विभुम् ॥ १२ ॥ मूर्त्तिं चतुर्भुजां कृत्वा श्रीविष्णोः परमात्मनः॥ पूजां चकार विप्रेंद्रो विभुं ध्यायन्नहर्निशम् ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नंतरे दुष्टो विडालाक्षो महासुरः ॥ अस्मिन्देशे महाराजाययौ हि मृगयापरः ॥ १४ ॥ अत्रागत्यासुरो विप्रं भृशमुत्थाप्य चासनात् ॥ गंगायां तं प्रचिक्षेप तां मूर्तिं च शुभप्रदाम् ॥ १५ ॥ हाहाकाररवश्चासीन्मुनीनां शांतचेतसाम् ॥ श्रुत्वा तु तं रवं देवगणा भृंग्यादयस्तथा ॥ आजग्मुः शतसाहस्रा नानाशस्त्रसमन्विताः ॥ १६ ॥ देवलं पतितं दृष्ट्वा गंगायां शिवकिंकराः ॥

मेंसे विषकी ज्वाला निकल रहीथी, एवं मस्तकके ऊपर चन्द्रकला विराजमान होरहीथी ॥ ८ ॥ कन्धेके ऊपर मत्तहस्तीका चर्म लटक रहाथा,उनके नेत्र तीन थे, अथ च मध्यके भालनेत्रमें अग्नि धकधका रही थी ॥ ९ ॥ हस्ती और द्वीपीके चर्मसे विराजित थे सबलोकके स्वामी और सुवर्णकी समान पीली २ जटाओंमें गंगाजी विराजमान होरहा थीं ॥ १० ॥ जब इस प्रकार अनेक भटोंसहित देवाधिदेव आये तब किंकिणियोंके समुदायके शब्दसे दिग्दिगन्तर प्रतिध्वानित होगये ॥ ११ ॥ उस समय देवल नाम मुनि ध्यानावस्थित हुए बैठेथे, और शिलाके ऊपर बैठ सर्वव्यापक नारायणका ध्यान कर रहेथे ॥ १२ ॥ एवं विष्णुभगवान्की चतुर्भुजी मूर्त्ति बनाय ध्यान पूर्वक मुनीश्वर उनकी पूजा कररहेथे ॥ १३ ॥ हे महाराज ! इसी समय विडालाक्ष नाम महादुष्ट दैत्य मृगयासक्तहो यहां आकर प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ असुरने यहां आतेही ब्राह्मणको आसनसे उठाके पटक दिया, और उस मूर्त्तिकोभी गंगाजीमें फेंकदिया ॥ १५ ॥ तब तो शान्तचेता मुनीश्वरोंका हाहाकार शब्द होनेलगा, तब इस कोलाहलको सुन नन्दी भृंगी आदि सहस्रोंगण हाथोंमें शस्त्रलिये वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ शिवगणोंने जब गंगाजीमें देवलको निपतित हुआ

भृशं वै दुःखिताश्चासंस्तत्रैको भृंगिनामकः ॥ १७ ॥ गत्वा निष्कास्य गंगायाः संस्थितोऽस्यां गणाधिपः ॥ शिलायां संस्थितो विप्रमित्युवाच पुनःपुनः ॥ १८ ॥ को वा त्वं पुरुषोऽस्यां वै केन वै पातितो भृशम् ॥ १९ ॥ देवल उवाच ॥ अहं तु ब्राह्मणो नाम्ना देवलेति ह्युदाहृतः ॥ ध्यातुं नारायणं देवं तपस्तप्तुमिहागतः ॥ २० ॥ विडालाक्षो महादैत्य आगतोऽत्र मम स्थले ॥ मां चैव तां महामूर्त्तिं गृहीत्वा दितिजाधमः ॥ गंगायामक्षिपन्मां हि तां मूर्तिं गणपुंगव ॥ २१ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्यक्त्वा नारायणीं शिलाम् ॥ २२ ॥ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवलस्य महात्मनः ॥ निजघ्नुस्तं महादैत्यं धनुष्कोट्या तु तच्छिरः ॥ चिक्षिपुश्च हि गंगायां मध्ये वै दक्षिणे तटे ॥ २३ ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र दृषद्भूतं हि तच्छिरः ॥ तदेव जातं विमलं धनुस्तीर्थं सुपुण्यकम् ॥ २४ ॥ विडालाक्षशिरोभागे कुंडं जातं सुनिर्मलम् ॥ उवाच तं महादैत्यः पतितोऽयं हि देवल ॥ देवलोऽपि महाभाग भृंगिणं प्रत्युवाच ह ॥ २५ ॥ देवल उवाच ॥

देखा, तब वे सब अत्यन्तही दुःखित हुए उन सबमेंसे भृंगी नाम गणने ॥ १७ ॥ देवलको गंगाजीमेंसे निकालकर इस शिलाके ऊपर बैठाय वारंबार उनसे यों कहा ॥ १८ ॥ इस शिलाके ऊपर बैठे तुम कौन पुरुषहो, और तुम्हें निपतित किसने कियाहै ॥ १९ ॥ देवलने कहा मैं देवल नाम ब्राह्मण हूं, नारायणका ध्यान और तपश्चर्या करनेको यहां आया था ॥ २० ॥ विडालाक्ष नाम नीच दैत्यने हे गणराज ! मुझे और उस महामूर्त्तिको भी गंगाजीमें फैंकदिया ॥ २१ ॥ अब मैं क्या करूं ? और नारायणी शिलाको छोडकर कहां जाऊँ ॥ २२ ॥ उत्फालकजी बोले—महात्मा देवलके ऐसे वचन सुन शिवगण उस दैत्यको मारनेलगे, और उन्होंने उक्त दैत्यके शिरको धनुषकी कोटीसे गंगाजीमें फेंकदिया ॥ २३ ॥ दक्षिण तटमें पाषाणमय वह शिर अभीतक दीखताहै, सुतराम् वह निर्मल धनुषतीर्थ विख्यात होगया है ॥ २४ ॥ और जहां विडालाक्ष दैत्यका शिरहै वहांभी एक निर्मल कुण्ड होगयाहै, तब शिवगणने कहा हे देवल ! यह देखिये ! ! ! महादैत्य निपतित होगया । तब देवलने भी हे महा-

के वा यूयं महात्मानो मामकारिविनाशकाः ॥ कोऽयं वृषस्थः पुरुषो रजताद्रिरिवापरः ॥ २६ ॥ किमर्थमागतो ह्यत्र तीर्थे मुनिगणान्विते ॥ एतं दृष्ट्वा मनो मेऽद्य प्रसन्नमभवत्प्रभो ॥२७॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा निगदितं देवलस्य गणस्ततः ॥ भृंगीनामा बभाषेऽथ प्रहस्य च पुनःपुनः ॥२८॥ भृंग्युवाच ॥ ॥ वयं देवल देवस्य किंकरा गणकाः स्मृताः॥नास्त्येतस्य कुलं विप्र स्थानमेकं ततः प्रभोः ॥ २९ ॥ न नाम न च गोत्रादि न चैकत्र समास्थितिः ॥ अयमेव पुरा कल्पे कालरूपी बभूव ह ॥ ३० ॥ स्रष्टायमेव भगवान्पालकश्चायमेव तु ॥ दाता भोक्तायमेवास्ति धर्त्ता धारयिता ह्ययम् ॥ ३१ ॥ नानारूपस्तु भगवान्नानामायो महायशाः ॥ अपाणिपादो निर्लेपः स्वयंज्योतिर्निरंजनः ॥ ३२ ॥ यत्र रामकथा चास्ति तत्र गच्छ-

भाग भृंगीके प्रति कहा ॥२६॥ देवल बोला–हमारे शत्रुका विनाश करनेवाले आपलोग कौनहैं ! और रजताद्रिकी समान वृषारूढ यह अपर पुरुष कौनहै ॥ २६ ॥ मुनीश्वरोंसे आकीर्ण हुए वनमें यह किसलिये आयेहैं ? हे प्रभो ! आज इनके दर्शनकर मेरा चित्त अति प्रसन्न हुआ है ॥ ॥ २७ ॥ उत्फालकजी बोले– देवलके ऐसे वाक्य सुन भृंगी नाम गण वारंवार हँसकर यौं कहनेलगा ॥ २८ ॥ भृंगीने कहा– हे देवल ! हम इन्हीं देवाधिदेवके गण हैं, और हे प्रभो ! इनका कुल एवं एकत्र निवास नियत नहींहै ॥ २९ ॥ इनका नाम और गोत्र आदिभी कुछ नहीं है। येही पहिले कल्पमें कालरूप हुएथे ॥ ३० ॥ येही सृष्टिकर्त्ता पालनकर्त्ता, दाता भोक्ता धर्त्ता और धारयिता सबकुछ येही हैं ॥ ३१ ॥ इन महायशस्वी भगवान्की अनेक प्रकारकी माया और अनेक रूपहैं, यह निरंजन हाथ पैर रहित निर्लेप और स्वयं ज्योतिःस्वरूप हैं ॥ ३२ ॥ जहाँ रामकथा और वैदिक निर्घोष होताहै, जहां नदी श्रेष्ठ गंगाजीहैं, हे महामतिमान् ! जहां गौ ब्राह्मणोंकी पूजा होतीहै, जहां शिवभक्त और पिशुनता रहित जन निवास करतेहैं, जहां श्रीकृष्ण और महादेवजी आदिमें भेद नहीं समझा जाता, हे द्विज ! जहां ब्रह्ममय निर्घोष रात दिन होताहै, जहां अपने २ धर्मका आचरण होताहै, जहां लोभ और अशुभ मति नहीं है, जहां पुराणोक्त

त्यहर्निशम् ॥ यत्र वै वेदघोषश्च यत्र गंगा सरिद्वरा ॥३३॥ ब्राह्मणा यत्र पूज्यंते गावश्चैव महामते ॥ शिवशक्तिरता यत्र यत्र पैशून्यवर्जिताः ॥ ३४ ॥ नास्ति यत्र शिवस्यादौ कृष्णस्य भेदबोधकाः ॥ यत्र ब्रह्ममयो घोषो वर्ततेऽहर्निशं द्विज॥३५॥यत्र स्वधर्मचारित्वं न लोभो नाशुभा मतिः॥पुराणश्रवणं यत्र यत्र शिवपरायणः ॥ इतिप्रमुखदेशेषु स्थीयते न तु गम्यते ॥३६॥ इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टं परमं वचः ॥ ३७ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं ययौ॥ बुद्धा ततः परात्मानं बभूव गतसंशयः ॥ ३८ ॥ अस्यामेव शिलायां च स्थितवान्कतिचित्समाः ॥ पश्चाज्जगाम परमां पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ गतिं देवलको नाम देवदेवं सनातनम् ॥ ३९ ॥ अत्रासीत्परमं तीर्थं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥ यतो भृंगी महातेजा आययौ बोधितुं द्विजम् ॥ ४० ॥ ततो भृंगीशिलाख्याता तीर्थे वै देवलाश्रमे ॥ इति ते कथितं भूप शिलाया विस्तरं मया॥ अतः परं महाराज किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ ॥ यदुक्तमश्वतीर्थे वै भवता पुण्यदं शुभम् ॥ अश्वतीर्थं कथं जातं सर्वं कथय मे मुने ॥ ४२ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ साधुसाधु

श्रवण होता, और शिवभक्त निवास करतेहैं इत्यादि स्थानोंहीमें यह नित्य जाते और निवास करते है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे विप्र ! यह तुमने जो हमसे पूछा सो परम वचन हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ३७ ॥ उत्फालकजी बोले— उनके यह वचन सुननेसे तो देवलको बड़ा विस्मय हुआ था किन्तु— उन्हें परमात्मा जान सब संशय दूर होगया ॥ ३८ ॥ तब वे कुछ वर्ष पर्य्यन्त इसी शिलाके ऊपर उपस्थित रहे, फिर इसके अनन्तर देवलको देवदुर्लभ परम सद्गतिका लाभ हुआ ॥ ३९ ॥ इसीसे यहां सब यज्ञोंके फलका देनेवाला परम तीर्थ होगया कारण कि— ब्राह्मणको बोधित करनेके लिये महातेजस्वी भृंगीजी आयेथे ॥ ४० ॥ इसी कारण देवलाश्रममें भृंगी शिला कीर्त्तन करी गई है, हे राजन् ! इस प्रकार हमने शिलाका विस्तृत वर्णन तुम्हारे प्रति किया, हे महाराज ! इसके अनन्तर और क्या श्रवणकरनेकी तुम्हारी इच्छा है ॥ ४१ ॥ धर्मनेत्रने कहा— आपने जो पुण्यदायी शुभ अश्वतीर्थका जिक्र किया था, सो वह किस प्रकार अश्वतीर्थ हुआ यह सब मेरे प्रति वर्णन करिये ॥ ४२ ॥ उत्फालकजी बोले—

महाप्राज्ञ धन्योसि त्वं न संशयः ॥ जाता वै अस्य तीर्थस्य माहात्म्यश्रवणे मतिः ॥ ४३ ॥ पुरा सूर्यकुले राजा नरिष्यन्नाम विश्रुतः ॥ बभूव परमोदारः सर्वयज्ञकरः प्रभुः ॥ ४४ ॥ एकदा तेन राज्ञा वै अश्वमेधाय घोटकः ॥ त्यक्तः पृथिव्यां नृपते नृपैः सार्द्धं महाभटैः ॥ ४५ ॥ आगतो ह्यत्र देशे तु अश्वो यज्ञाय प्रेषितः ॥ सहस्रशो नृपालैश्च सहितं तं महाहयम् ॥ जहारेंद्रो हि पश्यत्सु नृपेषु बहुशो भृशम् ॥ ४६ ॥ हतं दृष्ट्वा तमश्वं वै ह्याजग्मुः सर्व एव ते ॥ नरिष्यतः समीपे तु लज्जयाधोमुखा नृपाः ॥ ४७ ॥ स तांस्त्वधोमुखान्दृष्ट्वा ज्ञातवान्सपदि प्रभुः ॥ ध्यायन्सदाशिवं देवं मनसानन्यगामिना ॥ ४८ ॥ तपश्चकार परमं हर्तुं तस्य जिगीषया॥दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥ निराहारो जितात्मा च शिलावत्संस्थितोऽत्र वै ॥ ४९ ॥ एवं वै तप्यमानस्य त्रिलोकी क्षुधिताभवत् ॥ इंद्रोपि तत्र संप्राप्तश्चाकिताः सर्व देवताः ॥ ५० ॥ अस्य वै तपसा जातं देहं कोटिरवि-

धन्य ! महामतिमान् ! ! धन्य ! ! ! निस्सन्देह तुम बडे सज्जन हो, जो तीर्थका माहात्म्य श्रवण करनेके लिये तुम्हारी मतिका उदय हुआ है ॥ ४३ ॥ पहिले सूर्य वंशमें नारिष्यान् नाम एक विख्यात राजा होगया है, उस उदारने सबही यज्ञोंका आचरण किया था ॥ ४४ ॥ एक समय उक्त राजाने अश्वमेध यज्ञके अश्वको अनेक वीर राजाओंके साथ परित्याग किया ॥ ४५ ॥ यज्ञके निमित्त परित्याग किया हुआ वह अश्व इसी देशमें आया । यद्यपि उसके साथ सहस्रों भूपाल थे, तथापि उनके देखते २ ही इन्द्रने अश्वको हरलिया ॥ ४६ ॥ अश्वको अपहृत देख वे सब राजा लज्जासे अधोमुख हो नरिष्यान् राजाके निकट आये ॥ ४७॥ राजाने उन सबको अधोमुख देख अखिल वृत्तान्त जान लिया, तब वह एकाग्र चित्तसे देवाधिदेव महादेवजीका स्मरण करने लगा ॥ ४८ ॥ निदान अश्व अपहरण कर्त्ताकी विजयके लिये राजाने दश सहस्र दश सौ वर्ष पर्य्यन्त आहार परित्याग पूर्वक शिलाकी समान उपस्थित रहकर राजाने उग्र तपका अनुष्ठान किया ॥ ४९ ॥ राजाके इस प्रकार तप करनेसे त्रिलोकी छुभित होगई, सब देवताभी चकित होगये, सुतराम् इन्द्रभी वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ५० ॥ तप करनेसे राजाके शरी-

प्रभम् ॥ आजगाम महादेवो यत्र राजा महारथः ॥५१॥ नरिष्यतस्तस्य देशे वृषस्थो गणसंयुतः ॥ उवाच वचनं देवो महादेवः प्रभुः स्वयम् ॥ नरिष्यंतं महात्मानं संतुष्टस्तपसा तदा ॥ ॥ ५२ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ वत्सवत्स वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ दुर्ल्लभं नास्ति त्रैलोक्ये संतुष्टे मयि सुप्रभो ॥५३॥ नरिष्यन् उवाच॥धन्योस्मि कृतकृत्योस्मि दर्शनात्तव रुद्र भोः॥ इदं तीर्थं पर पुण्यं भवतु प्रथमं विभो ॥ ५४ ॥ ततो वै वासवं देवं जयेयं पार्वतीपते ॥ इति वै द्वौ वरौ मह्यं देयौ नान्यद्वृणोम्यहम् ॥ ५५ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ अयं वै तीर्थराजस्त तीर्थानां जातमेव हि ॥ अस्मिन्प्रदेशे गंगायां विष्णुमूर्तिश्च वर्त्तते ॥ ॥५६॥ जेष्यसि त्वं शचीनाथं शीघ्रमेव महामते॥ तपसा नास्ति त्रैलोक्ये त्वत्समोऽन्यो हि भूपते ॥ ५७ ॥ अस्मिंस्तीर्थेपि यत्स्नानं दानं पूजा तपस्तथा ॥ होमौ वै पिंडदानं च तत्सर्वं ह्यक्षयं भवेत् ॥ ५८ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति दत्त्वा वरं देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः ॥ ययौ कैलासके रम्ये नानामुनिगणान्विते ॥ ५९ ॥ इंद्रोऽपि वरदानं वै श्रुत्वा राज्ञो नरिष्यतः ॥

प्रभा करोडों सूर्यकी समान होगई, तब पश्चात् महादेवजी उक्त महारथके निकट आये ॥ ५१ ॥ नरिष्यन् राजाके देशमें वृषारूढ हो स्वयं प्रभु महादेवजी आयकर उसके तपसे भगवान् सन्तुष्ट हो यों कहने लगे ॥ ५२ ॥ श्रीशिवजी बोले– हे पुत्र ! जो कुछ तुम्हारे मनमें हो वर मांगो, क्यों कि हमारे सन्तुष्ट होजानेपर त्रिलोकीमें कुछ दुर्लभ नहीं रहताहै ॥ ५३ ॥ नरिष्यन् बोला– हे रुद्र ! आपके दर्शन करके मैं कृत कृत्य होगया, सुतराम् हे विभो ! प्रथम तौ यह तीर्थ सबमें परम पवित्र हो ॥ ५४ ॥ दूसरी बात यहहै कि, मैं इन्द्रका विजय करसकूं ये दो वर मुझे दीजिये, मैं और कुछ वर आपसे नहीं माँगता ॥ ५५ ॥ श्रीशिवजी बोले– यह तीर्थ तौ सब तीर्थोंका राजा होही गया, कारण कि, यहां गंगाजलमें विष्णुभगवान्की मूर्त्ति वर्त्तमान है ॥ ५६ ॥ और हे महामते ! क्यों कि तुम्हारी समान त्रिलोकीमें कोई तपस्वी नहींहै अतएव तुम शचीपति इन्द्रकाभी विजय करोगे ॥ ५७ ॥ इस तीर्थमें स्नान दान जप पूजा तप अथवा पिण्डदान जो कुछभी किया जाय सब अक्षय होताहै ॥ ५८ ॥ उत्फालकजी बोले– सर्वज्ञ पार्वतीपति इसप्रकार वर प्रदान कर अनेक मुनियोंसे आकीर्ण हुए कैलास पर्वतके ऊपर चलेगये ॥ ५९ ॥ जब इन्द्रने इस प्रकार नरिष्यन् राजाको वरदानकी बात सुनी, तब वह राजाके निकट

गत्वा च तत्समीपं हि विनतो वाक्यमब्रवीत ॥ ६० ॥ इंद्र उवाच ॥ ॥ धन्योऽसि त्वं महाबाहो नास्ति त्वत्सदृशो नृपः॥ कुत्रापि हि त्रिलोक्यां च बभूव न कदाचन ॥ ६१ ॥ अयमश्वश्च भावत्कः क्रियतां मख उज्वलः॥ मयेदं दुष्कृतं भूप तत्क्षमस्व महामते ॥ ६२ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य नम्रस्य च शचीपतेः ॥ जितमेव हितं मेने चेंद्रं त्रैलोक्यनायकम् ॥ ६३ ॥ अश्वं गृहीत्वा नृपतिः समाभाष्य शचीपतिम् ॥ आजगाम गृहे स्वीये संचकार मखं तथा ॥ ६४ ॥ ययौ यथागतं देवो देवमार्गेण भूपते ॥ विमना अतिसंभूय चकितश्च तदा प्रभुः ॥ ६५ ॥ तदादीदं महाबाहो जातमश्वाभिधं परम् ॥ अश्वं प्राप यतो राजा हृतं वै वासवेन तु ॥ ६६॥ धन्याः कलियुगे घोरे स्नातारोऽत्राशु तीर्थके॥कर्त्तारः शिवपूजायास्तत्कर्तव्यं न विद्यते ॥ ६७ ॥ स्नातं वै सर्वतीर्थेषु दत्ता वा सकला मही ॥ पूजिताः प्रतिमाः सर्वा देवदेवस्य भूपते ॥ ६८ ॥ सेतुबंधात्कोटिगुणं काशीतः शतकोटिकम् ॥ अन्यतीर्थात्कोटिगुणं तत्तत्पुण्यफलं व्रजेत् ॥ ६९ ॥ यस्मिंस्तीर्थे नरिष्यन्वै संचकार

जाय नम्रतासे यह वाक्य बोला ॥६०॥ इन्द्रने कहा– हे महाभाग राजा ! तुम्हे धन्य है, तुम्हारी समान त्रिलोकीमें और कोई नहींहै, और आगेको भी कोई नहीं होगा ॥ ६१ ॥ लीजिये ! यह आपका अश्वहै, उज्वल यज्ञका अनुष्ठान करिये, और मैंने जो यह कुत्सित कर्म कियाहै उसे क्षमा करिये ॥ ६२ ॥ उत्कालकजी बोले– नम्रीभूत इन्द्रके ऐसे वाक्य सुनकर राजाने उस त्रिलोकीश्वरको विजय किया हुआही समझा ॥ ६३ ॥ तब अश्वको ले और इन्द्रसे संभाषणकरके राजाने अपने घर आय यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ६४ ॥ हे भूपाल ! इन्द्रभी जैसे आयेथे वैसे ही देवमार्गके द्वारा चलेगये, इधर राजाभी मनमलीन हो कुछ चकितसे होगये ॥ ६५ ॥ इन्द्रके द्वारा अपहृत अश्वकी प्राप्ति इसी स्थानमें हुईथी, हे महाबाहो ! इसी हेतु उस दिनसे इसका अश्वतीर्थ नाम हुआ है॥६६॥कलियुगमें जो मनुष्य इसतीर्थमें स्नान और शिवपूजन करनेवाले हैं उनको धन्यहै, क्योंकि फिर उन्हें कुछभी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता॥६७॥हे भूपति! मानों उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सब भूमिका दानकर लिया, एवं देवाधिदेवकी सब मूर्तियोंकी भी पूजाकरली॥६८॥सेतुबन्धसे करोड़गुणा काशीसे सौकरोड़गुणा एवं अन्यान्यतीर्थोंसे भी सौ करोड़गुणा फल इस तीर्थमें प्राप्तहोताहै ॥ ६९ ॥ यह वही तीर्थ है जहां नरिष्यन् राजाने तपका आचर-

महत्तपः ॥ अस्मिंस्तीर्थे सदा विष्णुर्वर्तते रमया सह ॥ ७० ॥
इति ते कथितं भूप यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ नास्ति त्वत्स-
दृशो लोके श्रोता भक्तश्च भूमिप ॥ ७१ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥
कुत्र तत्तीर्थकं पुण्यं धनुस्तीर्थमुदाहृतम् ॥ किं पुण्यं लभते
विज्ञ तत्र स्नात्वा महामते ॥ ७२॥ उत्फालक उवाच ॥ शृणु
राजन्प्रवक्ष्यामि साधु पृष्टं त्वया विभो ॥ तत्ते संप्रति वक्ष्यामि
धनुस्तीर्थस्य वैभवम् ॥ ७३ ॥ धनुस्तीर्थान्महाराज नान्यत्पु-
ण्यतमं मतम् ॥ यत्र ब्रह्मद्रवाख्यं हि पर्वते जलमुत्तमम् ॥७४॥
अश्वतीर्थाच्छरक्षेपे गंगाया दक्षिणे तटे ॥ यत्र ब्रह्मा तप्यमानः
शुश्राव ध्वनिमुत्तमम् ॥ ७५ ॥ गायंत्याश्च सरस्वत्याः श्रीशिवं
भक्तमोक्षदम् ॥ श्रुत्वा गानं सरस्वत्या द्रवरूपी बभूव ह ॥७६॥
ततो ब्रह्मद्रवाख्यं हि जातं परमपुण्यकम् ॥ तत्संगमे शृणु श्रेष्ठ
धनुस्तीर्थस्य वैभवम्॥ यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या ब्रह्मसायुज्यमा-
प्नुयात् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये
धनुस्तीर्थाश्वतीर्थभंगितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरशीत्युत्तर-
शततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

— किया था, और लक्ष्मीसहित श्रीविष्णुभगवान्भी यहां नित्य ही निवास करते हैं ॥ ७० ॥ हे अनघ भूप ! तुमने जो कुछ पूछाथा सो सब हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया । हे भूपाल ! तुम्हारी समान श्रोता और भक्त त्रिलोकीमें अन्य कोई नहीं है ॥७१॥ धर्मनेत्र बोला—वह परमपवित्र धनुस्तीर्थ कहां वर्णन कियागया है, और हे महामते ! उसमें स्नानकरनेसे किस पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ ७२ ॥ उत्फालकजी बोले—धन्य राजन् ! तुमने अच्छा प्रश्न किया, सुनो राजा ! मैं वर्णन करताहूं, अब धनुपतीर्थका माहात्म्यही तुम्हें सुनाताहूं ॥ ७३ ॥ हे राजन् ! धनुषतीर्थसे अधिक और कोई पवित्र नहींहैं, क्योंकि वहां ब्रह्मद्रवनामका उत्तम जल वर्त्तमानहै ॥ ७४ ॥ अश्वतीर्थसे एक बाणकी दूरीपर गंगाजीके दक्षिण तटपै वह स्थानहै वहांही तपकरते २ ब्रह्माजीने उत्तम ध्वनि सुनीथी ॥ ७५ ॥ उस समय मोक्षदायक महादेवजीकी प्रसन्नताके लिये सरस्वतीजी गान कररही थीं, सरस्वतीका गान सुन ब्रह्माजी जलरूप होगये ॥ ७६ ॥ तबहींसे ब्रह्मद्रव नाम परम पवित्र जल होगया, हे नरनाथ ! उसके संगममें स्नानकरने अथवा उसका माहात्म्य श्रवण करनेसे ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुरशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

पञ्चाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८५.

उत्फालक उवाच ॥ अतो द्विशरविक्षेपे भैरवीतीर्थमुत्तमम् ॥ भैरव्यो यत्र देशे तु नानानाम्न्यो नराधिप ॥ निवसंति स्थले रम्ये नानाभरणसंयुताः ॥ १ ॥ स्नानं कर्तुमिहायांति पुण्यतीर्थे सुपुण्यदे ॥ अतो दक्षिणदिग्भागे धनुषां पंचविंशतौ ॥ २ ॥ भैरवीपीठमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ सप्तरात्रं निराहारो जितात्मा जितविग्रहः ॥ करोति पूजनं देव्याः सिद्धिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥ ३ ॥ अशुद्धः स्नानरहितो यात्यस्मिन्भैरवीगृहे ॥ प्राप्नोति विपदं शोकं दारिद्र्यं परमं पुनः ॥ ४ ॥ बंध्यत्वमरिशूलं च प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नोपेक्ष्या भैरवी परा ॥ ५ ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्या महिषं संप्रयच्छति ॥ जेता सर्वरिपूणां हि कुबेरो व धनी भवेत् ॥ ६ ॥ सत्यसंधेन राज्ञा वै राधिता रिपुशांतये ॥ तदादीयं महादेवी सिद्धपीठे समाश्रिता ॥ ७ ॥ सत्यसंधोऽपि राजा वै पूजनात्प्राप संपदम् ॥ रिपुक्षयं च नृपते तस्मात्तां पूजयेद्बुधः ॥ ८ ॥ स्नात्वा तु भैरवीतीर्थे पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ बलिभिर्धूपदीपैश्च नानो-

उत्फालकजी बोले—यहांसे दो बाणविक्षेपकी दूरीपर उत्तम भैरवी तीर्थहै; वहां अनेक आभूषणोंसे समलंकृत अनेक नामकी भैरवियें वहां निवास करती हैं ॥ १ ॥ और इस पवित्र तीर्थमें स्नानकरनेके तईं आती हैं, यहांसे दक्षिण दिशाकी ओर पच्चीस धनुषकी दूरीपर ॥ २ ॥ शीघ्र विश्वास करानेवाला भैरवी पीठहै, जो मनुष्य सात रात्री पर्य्यन्त आहार परित्यागपूर्वक आत्मनिग्रहकरके देवीकी पूजा करता है, उसे दुर्लभ सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य अशुद्ध स्नान रहित हो भैरवीके स्थानमें जाताहै, उसे दरिद्र विपत्ति और शोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ४ ॥ वन्ध्यत्व और शत्रुशूलभी अवश्यही प्राप्त होताहै, इसकारण परम भैरवीकी उपेक्षा करनी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य भक्तिभाव पूर्वक महिष प्रदानकरताहै, वह सब शत्रुओंको विजयकर कुबेरकी समान धनाढ्य होताहै ॥ ६ ॥ रिपुओंकी शान्तिके लिये सत्यसन्ध राजाने भगवतीकी आराधनाकरी थी, उसी दिनसे ये महादेवीजी सिद्ध पीठमें निवास करती हैं ॥ ७ ॥ एवं इनका पूजन करनेसे सत्यसन्ध राजाकोभी परम सम्पत्तिका लाभ हुआथा और उनके शत्रुओंका विनाशभी हुआ, अतएव विचारशील व्यक्तियोंको भगवतीकी पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥ ८ ॥ भैरवीतीर्थमें स्नानकर यथाविधि वलि धूप दीप और अन्यान्य सामग्रियोंसे पूजा

...यनकादिभिः ॥ ९ ॥ मनस्याकांक्षते यद्वै तत्तत्प्राप्नोति निश्चितम् ॥ तत्तीर्थके नरः स्नात्वा स्नातो वै सेतुबंधके ॥ १० ॥ गंगाया उत्तरे तीरे कुंडं कौबेरकं स्मृतम् ॥ यत्र वै राजराजो हि ...रयामास तं शिवम् ॥ ११ ॥ पुरा विश्ववसोः पुत्रस्तपस्तप्तुमि...ागतः ॥ अत्र वै निवसन्सोऽपि तीर्थानां प्रवरे नृप ॥ १२ ॥ ...चवर्षसहस्राणि निराहारो जितेंद्रियः ॥ समाराध श्रीदेवीं ...नसानन्यगामिना ॥ १३ ॥ ददर्श तामथो देवीं नानाभरणभूषिताम् ॥ रत्नपीठे समासीनां कोटिसूर्यसमप्रभाम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तां हि महादेवीं वरदां समवस्थिताम् ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवैः ...वितांघ्रिसुपीठिकाम् ॥ १५ ॥ ननाम शिरसा मानी ...श्रवसः शुभः ॥ अस्तौषीत्परमाभिश्च वाग्भिर्देवीमवस्थिताम् ॥ १६ ॥ वैश्रवण उवाच ॥ नमस्तेनमस्तेनमस्ते

मातर्निमग्ने सुतादौ कलत्रांधकूपे ॥ भवापारकूपारपोतं त्वदीयांघ्रिपद्मं त्वदाराधनेनैव गम्यम् ॥ १७ ॥ त्वमादौ त्वमंते भवानि प्रसेव्या न मे कश्चिदस्ति प्रभुर्वै त्वदन्यः ॥ त्वमेव

... ॥ ९ ॥ ऐसा करनेसे मनमें जिस २ का बिचार करै उसकी ही प्राप्ति अवश्य होतीहै । उस ...में स्नानकरनेवाला व्यक्ति मानो सेतुबन्धहीमें स्नान करता है ॥ १० ॥ गंगाजीके उत्तरी तट... कौबेर कुण्डहै, वहां कुबेरने साक्षात् भगवतीको स्थापन किया था ॥ ११ ॥ प्राचीनकालमें ...वाके पुत्र कुबेर तपकरनेके लिये आकर इस श्रेष्ठ तीर्थमें वसे थे ॥ १२ ॥ निराहार और ...न्द्रिय हो पांच सहस्र वर्षपर्यन्त कुबेरने एकाग्रमनसे श्रीदेवीजीका स्मरणकिया ॥ १३ ॥ तब ... आभूषणोंसे विभूषित रत्नपीठके ऊपर बैठी, करोडों सूर्यकी समान प्रभावाली भगवतीके ...न कुबेरको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ तेतीस करोड़ देवता जिनके चरणोंकी सेवा कररहे हैं ऐसी ...जीको वरदेनेके लिये आई देख ॥ १५ ॥ विश्रवाके पुत्र कुबेरने भगवतीको प्रणाम किया, ... उपस्थित हुई देवीकी उत्तमोत्तम वाणियोंसे स्तुति करनेलगे ॥ १६ ॥ कुबेरने कहा—हे ... तुम्हें वारंवार नमस्कारहै, स्त्रीपुत्रादिके प्रेमरूप अन्धकूपमें तथा संसारसागरमें निमग्न हुए ...क्तियोंको आपकेचरण पोतकी सदृश तारनेवाले हैं ॥ १७ ॥ हे भवानी ! आदि अन्तमें ...करनेके योग्य तुमहीं हो, प्रभु और चित्स्वरूपभी तुमहीं हो तुमहीं शासन करनेवाली और सेवा-

प्रशास्त्री सुशास्त्री सुसेव्या त्वमेवासि वित्वं त्वमेवासि वेद्या ॥१८॥
त्वमिंद्रः प्रकर्त्ता प्रहर्ता त्वमेव त्वमीशस्त्वमाराध्य एव प्रभेशे ॥
त्वमेवासि चंद्रस्त्वमेवासि शेषस्त्वमेवासि वै वासुकिर्नाग ईडये॥
॥१९॥त्वमेवासि माता त्वमेवासि भर्त्ता त्वमेवासि धर्त्ता त्वमेवा-
सि नेता ॥ त्वमेवासि विष्णुस्त्वमेवासि जिष्णुस्त्वमेवासि सर्व-
प्रकर्ता त्वमेव ॥ २० ॥ त्वमेवासि भ्राता त्वमेवासि याता त्वमे-
वासि हंता त्वमेवासि यंता ॥ त्वमेवासि मंत्रस्त्वमेवासि यंत्रं
त्वमेवासि यद्यत्तदेव त्रिलोकम् ॥ २१ ॥ उत्फालक उवाच ॥
कुबेरेण कृतं स्तोत्रं यः पठिष्यति मानवः ॥ अचिरात्सिद्धिमा-
प्नोति सत्यंसत्यं न संशयः ॥ २२ ॥ स्तोत्रेणानेन यः कश्चि-
द्देवीं स्तौति नरोत्तमः ॥ इह प्राप्य वरान्भोगानन्ते स्वर्गपुरे
वसेत् ॥ २३ ॥ स्तोत्रेणानेन संस्तुत्य कुबेरस्तपतां वरः ॥ पपात
दंडवद्भूमौ श्रीदेव्याश्चरणांतिके ॥ २४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥
प्रसन्नास्मि वरं ब्रूहि पुत्र वैश्रवण ध्रुवम् ॥ न हि किंचित्त्रिलोकेऽ-
स्मिन्दुर्लभं मयि सुव्रत ॥ २५ ॥ कुबेर उवाच ॥ ॥ त्वत्पाद-

करनेके योग्यहो, जाननेके योग्य चित्स्वरूपभी तुमहीं हो ॥ १८ ॥ इन्द्र, कर्त्ता, हर्त्ता, ईश्वर और आराध्यदेवता सब कुछ आपही हैं, चन्द्रमा, शेष, और वासुकी नागराजभी तुमहीं हो॥ १९॥ माता, भरण पोषण करनेवाली, तारनेवाली और सबकी मुखिया तुमहीं हो, विष्णु जिष्णु और सबकी कर्त्ताभी तुमहीं हो ॥ २० ॥ भ्राता याता हंता यन्ता मन्त्र यन्त्र अथवा और भी जो कुछ जगत्में प्रतीत होताहै सब तुमहीं हो ॥ २१ ॥ उत्फालकजी बोले—कुबेरकृत इस स्तोत्रका जो मनुष्य पाठ करेगा, सचमुचही उसे अवश्य सिद्धिका लाभ होगा ॥ २२ ॥ जो नरोत्तम इस स्तोत्रके द्वारा देवीजीकी स्तुति करेगा वह इसलोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोगकर अन्तसमय स्वर्गलोकमें निवास करैगा॥ २३॥तपस्वियोंमें श्रेष्ठ कुबेर इस स्तोत्रसे स्तुति करके श्री देवीजीके चरणोंके निकट दण्डकी समान भूमिके ऊपर निपतित हुए ॥ २४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं—हे पुत्र कुबेर ! ! ! मैं तुझसे प्रसन्नहूं तूं वर मांग, हे सदाचारी ! हमारे प्रसन्न होजानेपर त्रिलोकीमें कुछ दुर्लभ नहीं रहता है ॥ २५ ॥ कुबेरने कहा—मैं और कुछ वर नहीं मांगता केवल येही वर

कमले भक्तिर्भूयाज्जन्मनिजन्मनि॥ अयमेव वरो देवो नान्यत्किं-
चिद्वृणोमि भोः ॥ २६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ एतादृश्येव ते
भक्तिरस्ति वैश्रवण ध्रुवम् ॥ परमेकं वरं वत्स ददामि तव सु-
व्रत ॥ २७ ॥ संपदामीश्वरो भूयो यक्षाणां च तथैव च ॥ पुष्प-
कं तु समारुह्य चर सर्वत्र वै सुखम् ॥२८॥ उत्फालक उवाच॥
इति दत्त्वा वरं देवी पीठे स्थितवती ततः॥कुबेरोऽपि महात्तेजाः
संपदामीश्वरोऽभवत् ॥ २९ ॥ कोटिं यत्र सुवर्णानां त्रिंशदानी-
य सत्वरम् ॥ अत्र वै स्थांडिलं कृत्वा देवीमाराध्य यत्नतः ॥
॥ ३० ॥ तदादीयं महादेवी राजराजेश्वरी शिवा॥ बभूव नाम्ना
नृपते सर्वसिद्धिप्रदायनी ॥ ३१ ॥ गंगायां तु महत्कुंडं नाम्ना
कौबेरकं स्मृतम् ॥ दक्षभागे महादेव्या नाम्ना वैश्रवणेश्वरः ॥
जातः सदाशिवो देवः सर्वपापप्रणाशकः ॥ ३२ ॥ इदमाख्या-
नकं श्रुत्वा कुबेरो व धनी भवेत् ॥ ३३॥ इति श्रीस्कान्दे के-
दारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्मे भैरवीपीठराजराजेश्वर्युपाख्यानं नाम
पंचाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

दीजिये कि, आपके चरणकमलमें जन्मजन्मान्तरमें मेरी भक्ति रहै ॥२६॥ श्रीदेवीजी बोलीं
हे कुबेर ! अवश्यही तुम्हारी ऐसी भक्ति होगी, तथापि हे सुव्रत ! मैं एक और वर देतीहूं ॥ २७ ॥
तुम सम्पत्तियों एवं यक्षोंकेभी अधीश्वर होओ, और पुष्पक विमानमें आरूढ होकर सर्वत्र सुखपूर्वक
विचरो ॥ २८ ॥ उत्फालकजी बोले—देवीजी इसप्रकार वर प्रदानकर उसी पीठमें स्थित
होगईं, इधर महातेजस्वी कुबेरभी सम्पत्तियोंके अधीश्वर होगये ॥ २९ ॥ करोड़ोंभार सुवर्ण लाय
स्थण्डिल बनाय देवीजीकी स्थापना करके उनकी आराधनाकरी ॥३०॥ हे राजन् ! उसी दिनसे
कल्याणमूर्त्ति महादेवीजीका राजराजेश्वरी नाम हुआ है, ओर यह सब सिद्धियोंकी प्रदानकरनेवाली
प्रसिद्ध हैं॥ ३१ ॥ गंगाजीहींमें कौबेर नाम एक महान् कुण्डहै, महादेवीजीके दक्षिणभागमें सब
पापोंका नाश करनेवाले वैश्रवणेश्वर नाम महादेवजी विराजमान हैं ॥ ३२ ॥ इस आख्यानका श्रवण
करनेसे श्रोता व्यक्ति कुबेर की समान धनी होजाताहै ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

षडशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८६.

धर्मनेत्र उवाच ॥ ॥ भो मुने ब्रूहि मे विप्र देवीपीठानि तत्त्वतः ॥ कस्मिन्कस्मिन्स्थले देवीनिवासो वर्त्तते बुध ॥ १ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यच्छ्रुत्वापि नरो भवेत् ॥ पुण्यकर्मा हितकरो नारायणसमः पुमान् ॥ २ ॥ चामुंडं भैरवीपीठं कांसमर्दनकं तथा ॥ गौरीपीठं समाख्यातं तथा माहिषमर्दिनम् ॥३॥ राजराजेश्वरीपीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ एतान्यन्यानि पीठानि श्रीक्षेत्रे कथितानि हि ॥ ४ ॥ राजराजेश्वरीपीठमुक्तं त विस्तरान्मया॥तथा च भैरवीपीठं भवते चोक्तमेव हि ॥५॥ चामुण्डायाः सांप्रतं मे शृणूत्पत्तिं नृपेश्वर ॥ पूर्वं देवासुरे युद्धे सुरौ वै मददर्पितौ शुंभश्चैव निशुंभश्च बभूवतुरधीश्वरौ ॥ ६ ॥ ताभ्यां पराजिता देवा हृतमिंद्रासनं तथा ॥ सर्वेषां सुरवर्य्याणामधिकारास्तथाहृताः ॥ ७ ॥ ताभ्यां भ्रष्टास्तदा देवा विचरंति महीतले ॥ मनुष्या इव दुःखार्त्ता हताशास्तेऽभवन्सुराः ॥८॥ ततो वै चिंतितं देवैरस्माकं तु महावरः॥

धर्मनेत्रने कहा— हे ब्रह्मर्षि ! अब हमारेप्रति तत्त्वपूर्वक देवीजीके पीठोंका वर्णन करिये, कि, कहां २ देवीजीका निवास है ॥ १ ॥ उत्फालकजी बोले—सुनो राजन् ! अब मै वर्णन करताहूं, उस आख्यानके सुननेसे मनुष्य पुण्यात्मा, हितकारी और साक्षात् नारायणहीकी समान होजाताह ॥ २ ॥ चामुण्ड, भैरवीपीठ, कांसमार्दनिक, गौरीपीठ, महिषमर्दनीपीठ ॥ ३ ॥ और तत्काल विश्वास करानेवाला राजराजेश्वरी पीठ, ये सब तथा अन्यान्य बहुतसे पीठ श्रीक्षेत्रमें वर्णन किये गये हैं ॥ ४ ॥ उनमेंसे राजराजेश्वरी पीठका तो विस्तारपूर्वक हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै, एवं भैरवी पीठभी आपसे कह चुके हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अब चामुण्डा क्षेत्रकी उत्पत्तिको सुनिये,हे राजन्!प्रथम देवासुरके युद्धसमय मदोन्मत्त शुम्भनिशुम्भ नामके दो दैत्य हुए थे ॥ ६ ॥ उन दोनोंने देवताओंको पराजितकर इन्द्रासनका भी अपहरण करलिया, इसी प्रकार उन्होंने अन्यान्य सब देवताओंके भी अधिकारको छीन लिया ॥ ७ ॥ उन भयसे व्याकुल हुए देवता लोग मनुष्योंकी समान दुःखित हो महीतलके ऊपर विचरने लगे ॥ ८ ॥ तब देवताओंने यह सोचा कि, प्राचीन कालमें देवीजीने हमैं यह वर दिया

दत्तो देव्या यदा यूयं संकटं वै गमिष्यथ ॥ ९ ॥ तदा मे स्मरणं कार्य्यं युष्माकं संकटं तदा ॥ अहं दूरी करिष्यामीत्युक्त्वा वै हिमपर्वते ॥ १० ॥ यत्र सा तु महादेवी गतास्तत्र महामते ॥ अत्र वै पार्वतीं दृष्ट्वा तां नेमुः सकलाः सुराः ॥ ११ ॥ स्तुतिं वै कर्त्तुमुद्युक्तास्तस्या वै ईप्सितावाप्तये ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः ॥ तुभ्यं नताः स्मो निहतावलेपाः सर्वे च ये दुष्टजनाश्च दैत्याः ॥ तेषां च ये सज्जनवत्सला जनास्तेषां च त्वं पालनकारिकासि ॥ १३ ॥ त्वमेव सृष्टिं कुरुषे त्वमेव लोकांश्च सर्वान्विमृषे तथा हि ॥ त्वमेव कालः कलनात्मको हि त्वमेव चांते लयरूपिकासि ॥ ॥ १४ ॥ देवि त्वदन्यन्न हि किंचिदस्ति सर्वं त्वमेवाखिललोकमातः ॥ शुंभो निशुंभश्च महासुरौ यौ ताभ्यां वयं देवि विमर्दिता हि ॥ १५ ॥ यथा तयोः स्यात्समरे पराजयस्तथा कुरुष्वावहिता हि च त्वम् ॥ त्वामंतरेणाखिललोकमध्ये नान्योऽस्ति हंताखिलराक्षसानाम् ॥ १६ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवती देवानां वचनं शुभम् ॥ आचचक्षे तदा देवी देवानिंद्रपुरोगमान् ॥ १७ ॥ देव्युवाच ॥ यूयं निर्भयचित्तेन

[illegible] कि, जब कभी तुम संकटमें फँसो ॥ ९ ॥ तब मेरा स्मरण करियो, तभी मैं तुम्हारा [illegible] दूर कर दूंगी । वे सब गण यों कहकर हिमालय पर्वतके ऊपर ॥ १० ॥ [illegible] देवीजी निवास करती हैं वहां गये, हे महामतिमान्! पार्वतीजीको देख सब देव[illegible]ओंने उन्हें प्रणाम किया ॥ ११ ॥ अपने मनोरथ सिद्धिके लिये देवताओंने देवीजीकी स्तुति [illegible]नेका प्रारंभ किया ॥ १२ ॥ देवता बोले—हे माताजी! हम आपको नमस्कार करते हैं, क्यों[illegible], दुष्ट दैत्योंमें भी जो सज्जन हैं तुम उनका पालन करती हो ॥ १३ ॥ तुम्हीं संसारको रचती, [illegible] करती और संकलनात्मक कालस्वरूप होनेके कारण अन्तमें संहार भी तुम्हीं करती हो ॥ ॥ १४ ॥ लोक जन यह सब तुम्हारी ही सत्ता है तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है [illegible] देवि! शुम्भनिशुम्भ दैत्योंने हमें क्लेशितकर रक्खा है ॥ १५ ॥ क्योंकि तुम सर्वथा सावधान हो अतएव कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे युद्धमें उनका पराजय होजाय, कारण यह है कि, तुम्हें छोड़के लोकके मध्यमें और कोई भी ऐसा नहीं है जो राक्षसोंका बध करै ॥ १६ ॥ उत्फाल[illegible]जी बोले— कल्याणमूर्त्ति देवीजी देवताओंके ऐसे वाक्य सुनकर इन्द्रादिक देवताओंसे यों कहने [illegible]गीं ॥ १७ ॥ देवीजी बोलीं— तुम लोग अपने चित्तमें निडर हो स्वर्गलोकको जाओ और पहि-

गच्छत त्रिदशालयम् ॥ स्वेषु स्थानेषु विबुधा यथापूर्वं हि चा-
स्यताम् ॥ १८ ॥ शुंभासुरं निशुंभं च हनिष्यामि स्वयं द्रुतम् ॥
॥ १९ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा सेंद्रा
देवगणास्तदा ॥ सहर्षं त्रिदिवं जग्मुः स्थितवंतो यथा पुरा ॥२०॥
कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु स्नातुं भागीरथीजले ॥ गता देवी तदा
राजन्दृष्टा चंडेन रक्षसा ॥ २१ ॥ मुण्डेन च महादेवी सुंदरांगी
सुशोभना ॥ ततः शुंभनिशुंभाभ्यां प्रोक्तं ताभ्यां नृपेश्वर ॥२२॥
चंडमुंडावूचतुः ॥ दैत्यराज महाराज सर्वे देवाः सवासवाः ॥
त्वद्वशे संति हे शुंभ हित्वा स्त्रीरत्नमुत्तमम् ॥ २३ ॥ ऐरावतो
गजेन्द्रो वै हय उच्चैःश्रवास्तथा ॥ बलादिंद्रात्स्वहस्तेन हृतस्त्रै-
लोक्यनायक ॥ २४ ॥ पद्माद्या निधयः संति त्वद्गृहेऽसुरनाय-
क ॥ कुबेरात्पुष्पकं नाम विमानं हि त्वयाहृतम् ॥ २५ ॥
एवं सर्वं स्थावरं च जंगमं च तथा प्रभो ॥ जितास्त्वया हि
देवाश्च हित्वा स्त्रीरत्नमुत्तमम् ॥ २६ ॥ सा वै न कस्यचिद्वा-
ला वर्तते वरवर्णिनी ॥ तां नेतुं सुंदरांगीं तु सुशोभां त्वमिहा-
र्हसि ॥ २७ ॥ इति चंडस्य मुंडस्य वचः श्रुत्वासुराधिपः ॥

लेकी भांति अपने २ स्थानोंमें निवास करो ॥ १८ ॥ अथ च शुम्भ निशुम्भ दैत्यका वध मैं स्वयंही शीघ्र करूँगी ॥ १९ ॥ उत्फालकजी बोले—देवीजीके ऐसे बचन सुनकर इन्द्र आदि देवता स्वर्गलोकमें जाय हर्षपूर्वक पहिलेकी भांति स्थित होगये ॥ २० ॥ एक समय गंगा-जलमें स्नान करनेकेलिये देवीजी गई, तब हे राजन्! चण्ड मुण्डने उनका अवलोकन किया ॥ ॥ २१ ॥ देवीजीका सभीअंग सुन्दर था अतएव हे नरनाथ! उन्होंनें शुम्भनिशुंभके प्रति कहा ॥ ॥ २२ ॥ चण्ड मुण्ड बोले— हे शुम्भ! केवल एक रत्नरूपी उत्तमस्त्रीको छोड़ इन्द्र आदिदेवता (और मनुष्य) सब ही तुम्हारे वशमें हैं ॥ २३ ॥ हे लोकनाथ! आपने बलपूर्वक ऐरावतहस्ती और उच्चैःश्रवा अश्वको अपने ही हाथोंसे इन्द्रसे छीन लिया ॥ २४ ॥ हे असुरराज! पद्मआदि निधि (खज़ाने) सब तुम्हारे वशीभूतहैं, और पुष्पकविमान भी कुबेरसे आपने छीन लिया है ॥ २५ ॥ हे प्रभो! इस प्रकार सब स्थावर जंगम और अखिलदेवताओंका तो तुमने विजयकर लिया, किन्तु केवल एक स्त्री ही तुमसे बची हुई है ॥ २६ ॥ वह सुमुखी अबला किसीकी पत्नी भी नहीं है, उस शोभनांगी सुन्दरीको तुम्हें यहां लाना चाहिये ॥ २७ ॥ असुराधिप शुंभने चण्डमुण्डके ऐसे बचन सुन दूतको देवीजीके प्रति भेजा, और उसका

शुंभनामा महादैत्यो दूतं देवीं प्रति प्रभो ॥ प्रेषयामास दुष्टात्मा सोऽपि तत्र गतो नृप ॥ २८ ॥ यत्र सास्ते महादेवी हिमवद्देशसंज्ञके ॥ तां दृष्ट्वोवाच दूतो वै सुग्रीवाख्यो महामते ॥ २९॥ दूत उवाच ॥ देवि दैत्येश्वरः शुंभो निशुंभश्च महाबलः ॥ ताभ्यामिन्द्रो यमश्चैव वरुणो धनदस्तथा ॥ जितास्तेप्यतिदुर्धर्षास्त्वं तु स्त्री निर्बला शिवे ॥३०॥ यदि त्वमात्मनः श्रेय ईहसे देवि तर्हि च ॥ भज शुंभं निशुंभं च दैत्यराजं महाबलम् ॥३१॥ यदि त्वं मद्वचो हित्वा शुंभं नो भजसे शिवे ॥ तदा त्वां शुंभको दैत्यो हठादाकर्षयिष्यति ॥ ३२ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा शिवाभूत्कुपिता नृप ॥ प्रोवाच वचनं रोषाद्दूतं सुग्रीवकं नृप ॥ ३३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दूत त्वं गच्छ हे दुष्ट पार्श्वे शुंभनिशुंभयोः ॥ तत्र गत्वा तु तं ब्रूहि शुंभं मत्कथितं वचः ॥ ३४ ॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प्पं व्यपोहति ॥ स मे पाणिं प्रगृह्णातु समस्तासुरनायक ॥ ३५ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति देवीवचः

... हुआ वह वहां आकर प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ जहां हिमालय पर्वतके ऊपर देवीजी ...स्थित थीं, हे महामतिमान् ! भगवतीको देख दूतने यह वाक्य कहे ॥ २९ ॥ दूत बोला— ...देवि ! महाबली असुरराज शुम्भनिशुम्भने इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर इन बलशालियोंका भी ...जयकर लिया, हे शिवे ! तुम तो निर्बल (अबला) स्त्री हो ॥ ३० ॥ हे देवि ! यदि ... अपना कल्याण चाहती हो तो महाबली दैत्यराज शुंभनिशुंभकी शरणमें चलो ॥ ३१ ॥ ...कल्याणि ! तू यदि मेरे वाक्यका अनादरकर शुम्भकी शरणमें न जायगी तो शुंभदैत्य तुझे बर... ...बसीटके लेजायगा ॥ ३२ ॥ उत्फालकजी बोले—हे राजन् ! दूतके ऐसे वाक्य सुन देवी ...क्रोधित हो गई, और क्रोधपूर्वक सुग्रीवदूतसे यों कहने लगीं ॥ ३३ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं— ...दुष्ट दूत ! तू शुम्भनिशुम्भके निकट जा, और वहां जाय शुम्भसे हमारे वाक्य कहदे ॥ ३४ ॥ ...संग्राममें मुझे जीतकर मेरे अभिमानको दूरकरेगा, हे अखिलदैत्यराज ! वही मेरा पाणिग्रहण ...गा ॥ ३५ ॥ उत्फालकजी बोले—देवीजीके ऐसे वचन सुन दूत वहां आया जहां शुम्भनिशुम्भ

श्रुत्वा दूतो वै संन्यवर्तत ॥ आगतो यत्र वै शुंभनिशुंभौ च महासुरौ ॥ ३६ ॥ उवाच वचनं दूतो यदुक्तं जगदंबया ॥ महासुराभ्यां ताभ्यां हि धर्मनेत्र महाबल ॥ ३७ ॥ दूत उवाच ॥ शृणु मद्वचनं नाथ यद्वदामि तवाग्रतः ॥ तयोक्तं हि महाभाग देव्या वै दुष्टबुद्धितः ॥ ३८ ॥ शुंभस्तु कीटवद्भाति ममायातु रणाय वै ॥ यदि वा बलवानस्ति यदि वै मदसंयुतः ॥३९॥ तं शुंभं च निशुंभं च प्रेषयिष्यामि दक्षिणाम्॥तयोः सैन्यस्य मांसेन रुधिरेण शिवा मम॥तृप्तिं यास्यंति सुतरामित्युवाच महाबला ॥ ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमहात्म्ये दूतसंवादो नाम षडशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

नाम महादैत्य उपस्थित थे ॥ ३६ ॥ हे महाबली धर्मनेत्र ! दूतने जगदम्बाके कहे हुए वाक्य उक्त दोनों दैत्योंके प्रति कहे ॥ ३७ ॥ दूत बोला–हे नाथ ! जो मैं आपके अगाड़ी सुनाता हूं, उन वचनोंको आप सुनिये, हे महाभाग ! उस दुष्टबुद्धिदेवीने यों कहा है ॥ ३८ ॥ शुम्भ तो मुझे कीटकी समान प्रतीत होता है, यदि वह बली और अभिमानी है तो मेरे समक्ष रणमें आवे तो मैं शुम्भ निशुम्भ दोनों को ही दक्षिणदिशा (यमलोक)को भेज दूंगी,और उनकी सेनाके मान्स तथा रक्तसे हमारी योगिनियें यथेष्ट तृप्तिलाभ करेंगी, उस महाबलवतीने यों कहा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षडशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सप्ताशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८७.

उत्फालक उवाच ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा शुंभः प्रस्फुरिताधरः ॥ उवाच वचनं रोषाद्धूम्रनेत्रं महाबलम् ॥ १ ॥ धूम्रलोचन मद्वाक्याद्गच्छ त्वं हिमशैलके ॥ तत्र तां दुर्मदां देवीमत्रानय महाबल॥केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा मा विलंबं कुरुष्व भोः ॥ २ ॥ इति स्वामिवचः श्रुत्वा ययौ युद्धाय दैत्यराट् ॥ चतुर्विधबल-

उत्फालकजी बोले–दूतके ऐसे वाक्य सुन शुम्भके अधर (ओठ) कांपने लगे, और वह क्रोधपूर्वक महाबली धूम्रलोचनसे यों कहने लगा ॥ १ ॥ हे धूम्रनेत्र ! तुम हमारे कहनेसे हिमालयके ऊपर जाओ विलंब तनिक भी मतकरो; वहां जाय चाहे केश पकड कर अथवा बांधकर उस महादेवीको यहां ले आओ ॥ २ ॥ स्वामीके ऐसे वाक्य सुन वह दैत्यराज चतुरंगिणीसेना ले

युक्तो रथैः पादातिभिस्तथा ॥ अश्वैर्गजैर्महावीरै रराज हि स दैत्यजः ॥ ३ ॥ गत्वा वै हिमवच्छैले स दैत्यो धूम्रलोचनः ॥ उवाचोच्चैर्महादुष्टस्तां देवीं गिरिसंस्थिताम् ॥ ४ ॥ मद्धस्तपाशसंबद्धां त्वामिदानीं च चंडिके ॥ शुंभं चैव निशुंभं च भजिष्यसि न संशयः ॥५॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सा चुकोप भृशं तदा ॥ हुंकृतेनैव तं दुष्टं भस्मसात्प्रचकार ह ॥६॥ ततो वै दैत्यसैन्येषु हाहाकारो बभूव ह ॥ ७ ॥ मृतं तं धूम्रनेत्रं च श्रुत्वा दैत्योऽतिदुष्टधीः ॥ प्रेरयामास दैत्यो वै चंडमुंडपुरोगमान् ॥ ८ ॥ चंडमुंडौ महादैत्यौ चतुर्विधबलैर्युतौ ॥ कोट्यर्बुदसहस्राणि परार्धानां नृपोत्तम ॥ सेना वै महती चंडमुंडयोः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ ९ ॥ ववृषुस्ते महास्त्राणि कोटिसंख्यान्यनेकशः ॥ पपात शरवृष्टिश्च मेघवत्प्रेरितासुरैः ॥ १० ॥ दिशान्तरं तदा व्याप्तं समाच्छन्नो रविस्तदा ॥ खड्गैः पाशैस्तोमरैश्च मुशलैरायुधैस्तथा ॥ युक्ता देव्या च ते सर्वे युयुधुर्बलशालिनः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नंतरे भूप

...नेके लिये चला, चारप्रकारकी सेना अर्थात्–रथ, पदाति, अश्व, गज और महावीरोंके साथ ... दैत्यनन्दनकी बिशेष शोभा हो रही थी ॥ ३ ॥ महादुष्ट धूम्रलोचन दैत्य हिमालयके ऊपर ..., सिंहके ऊपर स्थित हुई महादेवीजीके प्रति उच्चस्वरसे कहने लगा ॥ ४ ॥ हे चण्डि! ... समय तू हमारे हाथके जालमें फँसकर अवश्यही शुम्भनिशुम्भकी शरणमें जायगी॥५॥ दैत्यके ... वचन सुन देवीजीको अत्यन्त क्रोध हो आया, सुतराम् उन्होंने उस दैत्यको हुंकारमात्रसे ही ...स्मकर दिया ॥ ६ ॥ उस समय राक्षसोंकी सेनामें हाहाकारका कोलाहल मच गया ॥ ७ ॥ ... दुष्टबुद्धि शुम्भदैत्यने धूम्रनेत्रका वध सुना तब उसने चण्ड मुण्ड आदि अन्य बहुतसे दैत्योंके ...जा ॥८॥ तब महाबली चण्डमुण्डदैत्य चार प्रकारकी सेनासे युक्त हो, हे राजन्! सहस्रों करोड़ों ...र अर्बों सेनाको साथले वहांको चले, और यह महती चमू उन दुष्टोंके पीछे २ चली ॥ ९ ॥ ...न्होंने वहां जाय करोडों ही क्या किन्तु असंख्य अस्त्रशस्त्रों की वर्षा करी, और किन्हीं २ असु...रोंने बाणोंकी वर्षा इस प्रकार करी जैसे मेघ जल बरसाते हैं ॥ १० ॥ सुतराम् दिशाएँ व्याप्त ... गई और सूर्यनारायण आच्छादित हो गये, विशेष क्या कहैं वे सब वीर खड्गपाशों, तोमर, मुशल और आयुधोंसे देवीजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ इसी समय इन्द्रादिक देवताओंकी

प्रजग्मुः कोटिसैन्यकाः ॥ देवानामिंद्रमुख्यानां युद्धाय च महासुरैः ॥ १२ ॥ खडगैश्चक्रैस्तथा दिव्यैरस्त्रैर्भूमिर्हि संयुता ॥ परस्परमभूद्युद्धं देवानां रक्षसां तथा ॥ १३ ॥ केचिद्वै वव्रृषुर्बाणांस्तोयान्यभ्रगणा यथा ॥ केचिद्वै युयुधुस्तत्र केचित्पाशैस्तथा परैः ॥ १४ ॥ एषां देवासुराणां हि संगरे च नरोत्तम ॥ युद्धं द्रष्टुं समायाता गंधर्वाप्सरसोगणाः ॥ १५ ॥ नानामणिगणानद्धविमानेषु च सर्वतः॥ केचिद्वै दनुजाश्चक्रुर्हाहाकाररवांस्तथा ॥ ॥ १६ ॥ केचिच्चक्रुर्महाराज हा हताः स्म इति स्वरान् ॥ बभूव युद्धं सुमहद्रोमहर्षणकारकम्॥१७॥ तस्मिन्युद्धे महाराज जातो वै रुधिरार्णवः ॥ कुम्भस्त्रवद्रक्तकुम्भिग्राहनक्रसमाकुलः ॥ १८ ॥ किंचिज्जीवितरक्षोभिः प्रोत्क्षिप्तासृक्तरंगकः ॥ एवं विनष्टं सैन्यं तु दृष्ट्वा वै चंडमुंडकौ ॥ क्रोधसंरक्तनयनौ मदाविष्टौ बभूवतुः ॥ ॥ १९ ॥ प्रस्फुरिताधरौ तौ तु गतौ देवीसमीपके ॥ तामूचतुश्च हे चंडि मद्भर्तारं भजस्व हि ॥२०॥ अन्यथा तव केशान्वै प्रगृ-

भी करोडों भांतिकी सेना दैत्योंके साथ युद्ध करनेको आई ॥ १२ ॥ तब तो खड्ग चक्र और विपुल दिव्य अस्त्र शस्त्रोंसे देवता और राक्षसोंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं इसी प्रकार कोई २ तो बाणोंकी वर्षा करने लगे, और कोई २ पाशोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ हे नरोत्तम । उस समय देवता और दैत्योंके परस्पर युद्धका अवलोकन करनेके लिये गन्धर्व और अप्सरागण वहां आके उपस्थित हुए ॥ १५ ॥ ये सब अनेक प्रकारके मणिजटित विमानोंमें चारों ओर बैठे थे ! उस समय कोई दैत्य हाय २ करनेलगे ॥ १६ ॥ हे महाराज ! कोई २ यों कहरहेथे कि, हाय हम मरे, विशेष क्या वह युद्ध सर्वथा रोमहर्षणकारी हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस युद्धमें रक्तका सागर बह निकला, जिनके मस्तकसे रुधिर चूरहा है ऐसे हाथी उसमें ग्राह तथा नक्रकी समान प्रतीत होतेथे ॥ १८ ॥ और अधमरे राक्षस जो तड़प रहेथे, उनके रुधिर तरंग जैसे प्रतीत होते थे, जब चण्ड मुण्डोंने इस प्रकार अपनी सेनाको नष्ट हुई देखा, तब क्रोधके मारे उन दोनों दुष्टोंके नेत्र लाल होगये ॥ १९ ॥ ओठोंको कंपायमान करते देवीजीके समीप पहुँचे, और उनसे कहनेलगे हे चण्डि ! हमारे स्वामीकी शरणमें चलो ॥ २० ॥ यदि तू न मानेगी तो बलपूर्वक तेरे केशोंको पकड़कर तुझे अपने

य स्वेन तेजसा ॥ नयिष्यामि प्रभोः पार्श्वे ततस्त्वं तु भजिष्यसि ॥ २१ ॥ युद्धाद्बिभेषि चेद्देवि तर्हि युद्धान्निवर्त हि ॥ एवमाकर्ण्य तद्वाणीं कोपं चक्रे ततोम्बिका ॥ २२ ॥ कोपेन चास्यावदनं श्यामवर्णं बभूव ह ॥ तदा तस्या महादेव्या ललाटान्निःसृता शिवा ॥ २३ ॥ सद्यःश्छिन्नशिरःकृपाणविलसत्पाणीर्दधाना परैः । हस्तैश्चर्मनृमुंडकुंतलसृणीन्पाशं तथा कर्तरीम् ॥ चापं बाणमथो तथा कलयती चास्येन मत्तं गजम् ॥ भीमा भैरवनादिनी भगवती जाता तदा संगरे (२४) ॥ २५ ॥ अट्टहासं ततश्चक्रे देवी त्रैलोक्यकंपकम् ॥ अट्टहासेन तस्या वै समुद्राश्च चकंपिरे ॥२६॥ दुद्रुवः सर्वदैत्येंद्राः हर्षिताः सर्वदेवताः ॥ विचचार तदा चंडि रिपुसैन्यवनांतरे ॥२७॥ ततो मृगेंद्रः सर्वान्वै दनुजान्निजगाल च ॥ केचिन्नष्टा महानादैः केचिद्दृष्ट्यैव मोहिताः ॥ २८ ॥ कांश्चिद्दे पातयामास भूतले भूतलाधिप ॥ ततः खड्गं समुत्थप्य चंडस्य सम्मुखं ययौ ॥२९॥ शिखां प्रगृह्य हस्ता-

स्वामीके पास लेजाऊंगा, तब तू उन्हें भजेगी ॥ २१ ॥ हे देवि ! युद्ध करनेसे डरतीहो तो रणभूमिसे हटजा, उसकी ऐसी वाणी सुन देवीजीको बड़ा क्रोध हो आया ॥ २२ ॥ और मारे क्रोध करिके देवीजीके मुखका श्यामवर्ण हो गया, तब महादेवीजीके ललाटमेंसे एक योगिनी प्रादुर्भूत हुई ॥ २३ ॥ उसके एक हाथमें ताजा कटा शिर और दूसरेमें कृपाण शोभा दे रहे थे, एवं वे अन्यान्य हाथोंमें चर्म, नरकपाल' भाला, अंकुश और कर्त्तरी धारण कर रही थीं ॥ २४ ॥ धनुषबाण भी उनके पास था, मुखमें मत्त हस्तीको दबारही थीं, विशेष क्या उस समय संग्राममें भगवतीका नाद और रूप सभी भयानक हो गये ॥ २५ ॥ तब देवीजीने त्रिलोकीको कंपायमान करने वाला अट्टहास किया, और उनके अट्टहाससे समुद्र कंपित हो गये ॥ २६ ॥ सब राक्षस भाग गये, और देवता प्रसन्न हो गये, तब देवीजी अपने शत्रुओंकी सेनारूप बनमें विचरने लगीं ॥ २७ ॥ इधर सिंह सब राक्षसोंको मारने लगा, कोई देवीजीका शब्द सुनके नष्ट हो गये, और कोई उन्हें देखते ही मोहित हो गये ॥ २८ ॥ एवं हे भूपाल ! किन्हीं २ को देवीजीने भूमिके ऊपर पटक दिया ॥ २९ ॥ तब वह योगिनी खड्ग उठाय चण्डके सम्मुख पहुंची, और हाथोंसे

भ्यां चंडस्य च दुरात्मनः ॥ खड्गेन शितधारेण चिच्छेद क्षोणि-
नायक ॥ ३० ॥ वज्रकल्पं शिरो भूप ततो मुंडमधावत ॥ मुंडे-
न सहसा तत्र कृतं युद्धं तया सह ॥ ३१ ॥ मुष्टिभिस्तोमरैः
पाशैर्युयुधे तेन चंडिका ॥ ततः पादेन तस्याशु कंठं निष्पीड्य
सा भृशम् ॥ शिरश्चिच्छेद तेनैव रुधिराक्तमहासिना ॥ ३२ ॥
हस्तयोः शिरसी धृत्वा महती चंडमुंडयोः ॥ आगता यत्र सा देवी
स्थिताभून्नृपनंदन ॥ ३३ ॥ देवि देवि मया चैतौ चंडमुंडौ
महासुरौ ॥ हतौ महाबलौ दुष्टौ दुर्द्धर्षौ च रणाजिरे ॥ ३४ ॥
उत्फालक उवाच ॥ ॥तया नीतौ तु तौ दृष्ट्वा चंडमुंडौ महासुरौ॥
ततो हृष्टा महादेवी काली वै निजगाद च ॥३५॥ यस्मात्त्वं देवि
हे चंडे चंडमुंडाविहागता ॥ गृहीत्वा तौ महादैत्यौ देवैरपि दुरा-
सदौ ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वं त्रिषु लोकेषु चामुंडेति च नामतः ॥ भ-
विष्यसीह विख्याता सर्वकामफलप्रदा ॥ ३७ ॥ इति ख्यातिं
समासाद्य चामुंडा प्राक्षिपत्तदा॥हस्ताभ्यां तोलयित्वा तु शिरसी
वै चंडमुंडयोः ॥ ३८ ॥ निपततुश्च श्रीक्षेत्रे मत्तीर्थादूर्द्ध्वभागके ॥

उस दुष्टचण्डकी शिखाको पकड़के हे राजन् ! पैने खड्गसे उक्त दैत्यके शिरको छेदन कर डाला ॥ ३० ॥ हे राजन् वज्रकी समान शिर मुण्डके पीछे दौडा, और मुण्डने देवीजीके साथ उस समय खूबही युद्ध किया ॥ ३१ ॥ इधर चण्डिकाने भी मुष्टि तोमर और पाशके द्वारा खूब युद्ध किया, और फिर चण्डीने खूब ही उसे पैरोंसे कुचला और रक्तमें लिथड़ी हुई खड्गसे शिर काट डाला ॥ ३२ ॥ तब चण्डमुण्डके शिरोंको हाथोंमें ले, हे राजन् ! वह चण्डी देवीजीके निकट आई ॥ ॥ ३३ ॥ हे देवीजी ! मैंने महाबलवान् दुर्जेय दुष्ट चण्डमुण्ड दैत्योंको संग्राममें मार डाला ॥ ॥ ३४ ॥ उत्फालकजी बोले—चण्डीके द्वारा लाये हुए चण्डमुण्ड दैत्योंको देख कालीजी प्रसन्न होकर उससे यों बोलीं ॥ ३५ ॥ हे देवि ! क्योंकि—तू चण्डमुण्ड दुष्ट दैत्योंको जो कि, देवता-ओंके लिये भी दुरासद थे उन्हे लेकर यहां आई है ॥ ३६ ॥ इस कारण तू त्रिलोकीमें चामुण्डा नामसे सब कामनाओंको पूर्णकरनेवाली प्रसिद्ध होगी ॥ ३७ ॥ चामुण्डाने ऐसी ख्याति लाभकर चण्डमुण्डके शिरोंको हाथोंसे तोलके उन्हें फेंक दिया ॥ ३८ ॥ वह शिर हमारे तीर्थसे ऊपरकी ओर श्रीक्षेत्रमें निपतित हुए, गंगाजीसे उत्तरकी ओर चार बाण-

गंगाया उत्तरे तीरे माने शरचतुष्टये ॥ ३९ ॥ मुण्डदैत्यशिरो दूरं पपात च जलांतिके ॥ तत्रैव ब्रह्मकुंडं वै दुर्लभं पापिनां नृप ॥ ४० ॥ माहात्म्यं तस्य वै राजन्नुक्तमेव तव प्रभो ॥ गंगाया दक्षिणे तीरे मत्तीर्थाद्विद्वबाणके ॥ समं मुंडोत्तमाङ्गेन चंडदैत्यशिरोऽपतत् ॥ ४१ ॥ तत्रापि तीर्थं परमं वर्त्तते नृपनायक ॥ ममित्ताख्यं महापुण्यं दर्शनादपि पापहृत् ॥ ४२ ॥ अत्र ये स्नानकर्त्तारस्ते यांति परमं पदम् ॥ सायंकाले तु यः स्नातो ममित्ताख्ये सुतीर्थके ॥ दिवामैथुनसंजातपातकान्मुच्यते क्षणात् ॥ ४३ ॥ यस्मिंस्तीर्थे तपश्चक्रे ममित्ताख्यो महामुनिः ॥ आरराध शिवं तुष्टो यस्मै प्रादात्स्वकं स्थलम् ॥ ४४ ॥ अथ चक्रे निवासं च चामुंडा मुंडमालिनी ॥ श्रीक्षेत्रेऽस्मिन्महाराज राधिता जगदंबिका ॥ ४५ ॥ कुषीतकेन विप्रेण निवासायात्र भूपते ॥ संतुष्टा सा महाचंडी वसति स्म सुपुण्यदा ॥ ४६ ॥ मत्क्षेत्रादूर्ध्वभागे हि क्रोशखंडे

दूरीपर ॥ ३९ ॥ हे राजन् मुण्ड दैत्यका शिर जलके समीप गिरा, हे राजन् ! वहां ही पापियोंके लिये दुर्लभ ब्रह्मकुण्ड है ॥ ४० ॥ हे भूप ! उसके माहात्म्यको मैंने प्रथम ही तुम्हारे प्रति वर्णन किया था । गंगाजीके दक्षिण तीरपर हमारे तीर्थसे चार बाणकी दूरीपर मुण्डके शिरकी समान ही चण्डदैत्यका भी शिर निपतित हुआ ॥ ४१ ॥ वहां भी हे राजन् ! ममित्ता-ख्य एक परमपवित्र तीर्थ है, उसके केवलदर्शनही करनेसे पापोंका अपहरण होजाता है ॥ ४२ ॥ यहां स्नान करने वालोंको परमगति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, ममित्त तीर्थमें जो मनुष्य सन्ध्याके समय स्नान करता है, दिनमें मैथुन करनेसे जो पाप होताहै उससे तत्कालही उसका छुटकारा हो जाता है ॥ ४३ ॥ ममित्त नाम मुनिने उसी स्थानमें तपका आचरण किया और महादेवजीकी आराधना करी थी, तब महादेवजीने सन्तुष्ट हो कर उन्हें अपना स्थान दिया था ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर मुण्ड मालिनी चामुण्डाने भी वहां निवास किया, हे महाराज ! इस श्रीक्षेत्रमें जगदम्बाकी ॥४५॥ कुषीतक ब्राह्मणने आराधनाकी थी, तबसे पुण्यदायिनी देवीजी भी निवास करने लगीं ॥ ४६ ॥ हमारे क्षेत्रसे आगे पवित्र पाव कोशकी दूरीपर इन देवी

सुपुण्यके ॥ अस्यास्तु पूजनान्मर्त्यः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४७ ॥ चामुण्डाया दर्शनेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति मानवः ॥ ४८ ॥ यत्र स्नाति सदा चण्डी ऊषःकाले नराधिप ॥ तत्र स्नातुर्नरस्यापि शृणु पुण्यफलं नृप ॥ ॥ ४९ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं तद्वै कोटिगुणं स्मृतम् ॥ इति ते कथितं राजश्चामुण्डायास्तु विस्तरात् ॥ उत्पत्तिश्चैव माहात्म्यं यच्छ्रुत्वा सुखभाग्भवेत् ॥ ५० ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥ इदं गोप्यं परं स्थानं कर्त्तव्यं दुष्टबुद्धिषु ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये चामुंडोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्ताशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

जिका पूजन करनेसे मनुष्य सर्वसिद्धियोंका स्वामी हो सक्ता है ॥ ४७ ॥ चामुण्डाके दर्शन करनेसे मनुष्य सर्व पापोंसे मुक्त हो जाता है, और जो कामना करता है उसीकी उसको प्राप्ति हो जाती है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! प्रभात समय चंडीजी वहां नित्य ही स्नान करती हैं, हे राजन् ! वहां स्नान करने वाले मनुष्यके फलको भी सुनिये ॥ ४९ ॥ सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, यहां स्नान करनेसे उससे भी करोड़ गुणा अधिक फल होता है, हे भूपाल! इस प्रकार हमने चण्डीकी उत्पत्ति और माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसे सुनकर मनुष्य सुखका भागी होता है ॥ ५० ॥ और सर्वपापोंसे रहित हो कर वह मनुष्य ब्रह्मलोकका अतिथि होता है, इस परम स्थानको दुष्ट बुद्धियोंसे छिपाये रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां सप्ताशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८८.

उत्फालक उवाच ॥ शृणु पीठानि सर्वाणि यानि संति महीपते ॥ यज्ज्ञात्वापि नरो याति देवत्वं हि न संशयः ॥ १ ॥ माहेश्वरं तु प्रथमं ततो वै कमलेश्वरः ॥ ततो नागेश्वरः ख्यातो कटकेश्वर एव च ॥ २ ॥ ततः कोटीश्वरः ख्यातः

उत्फालकजी बोले— हे राजन् जितने पीठ हैं, अब उन सबको सुनो, उन्हें जानकर मनुष्य निस्सन्देह देवता होजाताहै ॥ १ ॥ पहिला माहेश्वर, दूसरा कमलेश्वर, फिर नागेश्वर और कटकेश्वर ॥ २ ॥ अथ च फिर सब सिद्धियोंके प्रदान करने वाले कोटीश्वर हैं, अतिसूक्ष्म

सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः ॥ पीठान्येतानि सुक्ष्मेण भूपते गदितानि ते ॥ ३ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ ॥ कुत्र माहेश्वरं नाम लिंगं परमदुर्ल्लभम् ॥ प्रथमं ब्रूहि भगवंस्तृप्तिम जायते न हि ॥ ४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ धर्मनेत्र शृणु प्राज्ञ लिंगं माहेश्वरं परम् ॥ यस्य संदर्शनादेव महापापैर्विमुच्यते ॥ ५ ॥ अतो वै भैरवी तीर्थादूर्द्ध्वभागे नराधिप ॥ माने द्विशरविक्षेपे गंगाया दक्षिणे तटे ॥ ६ ॥ वर्त्तते तत्र भो भूप त्रयो देवाः शिलात्मकाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दर्शनान्मुक्तिदायकाः ॥ ७ ॥ गंगायां तु शिलायां तु लिंगं माहेश्वरं मतम् ॥ तद्दर्शनान्महाभाग मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ८ ॥ ततो वै पूर्वभागे या रक्तवर्णा शिला मता ॥ ब्राह्मी शिला तु सा ज्ञेया सर्वकामफलप्रदा ॥ ९ ॥ द्वयोर्या मध्यमे भूप शिला परमपावनी ॥ वैष्णवी तु शिला ज्ञेया यत्र विष्णुर्वसत्परः ॥ १० ॥ अधस्तात्तच्छिलायास्तु कुंडानि गदितानि हि ॥ ब्राह्मादीनि नरश्रेष्ठ सुपुण्यानि महामते ॥ ११ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ कथं देवा हि ब्रह्माद्या जाता वै तच्छिलात्म-

में ये पीठ कीर्त्तन किये गये हैं ॥ ३ ॥ धर्मनेत्रने कहा—माहेश्वर नाम परम दुर्लभ लिंग कहां है भगवन् ! प्रथम उसीका वर्णन करिये, क्योंकि मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ४ ॥ उत्फालक बोले— हे प्राज्ञ धर्मनेत्र ! अब माहेश्वर परमलिंगका वर्णन सुनो, उस लिंगके केवल दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस भैरवीतीर्थसे आगेकी ओर बाण विक्षेपकी दूरीपर गंगाजीके दक्षिणतटपै ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ये तीनोंही देवता शिलारूपसे वर्त्तमान हैं, और उनके केवल दर्शनही करनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ ७ ॥ गंगाजीमें शिलाके ऊपर माहेश्वर लिंग माना गया है, हे महाभाग ! उक्त लिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ८ ॥ वहाँसे पूर्वकी ओर जो रक्तवर्ण शिला है, उसे ब्राह्मी शिला जानना चाहिये, यह सब कामनाओंके फलकी देनेवाली है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इन दोनोंके मध्यमें जो परम पवित्र शिला है, उसे वैष्णवी शिला जानना चाहिये उसके ऊपर विष्णुभगवान् निवास करते हैं ॥ १० ॥ हे महामतिमान् नरशार्दूल ! ! ! उन शिलाओंके नीचे परम पवित्र ब्राह्मकुण्ड आदि कुण्ड हैं ॥ ११ ॥ धर्मनेत्र बोला— ब्रह्मा आदिदेवता शिलारूप कैसे हुए,

काः ॥ किं पुण्यं किं फलं तेषां संशयोऽयं मम प्रभो ॥ १२ ॥
उत्फालक उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापविनाशि-
नीम् ॥ यथा प्राप्ताः शिलात्वं हि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १३ ॥
पुरा विप्रा बभूवुश्च त्रयो देवपरायणाः ॥ मूर्त्तिमंतस्त्रयो
देवा यथा ते ब्राह्मणा वराः ॥ १४ ॥ नामभिश्च समाख्याता
यथा वै शृणु हे प्रभो ॥ ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदत्तश्च ब्रह्मदेवश्च भूमिप-
॥ १५ ॥ कर्त्तुं तीर्थाटनं तेषामभून्मतिरपि प्रभो ॥ गता वै
सर्वतीर्थेषु स्नाताः सर्वे शुभैर्जलैः ॥ १६ ॥ आगताः क्रमशोप्यत्र
देशे परमपुण्यके॥समासीनाश्शुभे देशे इदमूचुः परस्परम् ॥१७॥
अत्र वै तीर्थराजे तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ तानेवाराधयिष्या-
मो यावत्तद्दर्शनं भवेत् ॥ १८ ॥ इति वै संमतिं कृत्वा समासी-
नाश्शुभे स्थले ॥ देवानाराधयामासुरुपचारैरनेकधा ॥१९॥ ब्रह्म-
ज्ञस्तु महाभाग वाय्वाहारोऽभवत्तदा ॥ यावद्वर्षशतं देव अत्रैव
स्थितवांस्तदा ॥२०॥ अष्टांगयोगयुक्तश्च ब्रह्मज्ञो ब्रह्मतत्परः ॥
एवं कुर्वति तस्मिंस्तु प्रसन्नोऽभूत्पितामहः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥

उनका पुण्य और फल क्या है ! हे प्रभो ! यह मुझे बड़ा सन्देह है ॥ १२ ॥ उत्फालकजी बोले— ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिस प्रकार शिला रूप होगये, सुनो राजन् ! अब हम उसी पाप विनाशिनी कथाका वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥ देवभक्तिमें तत्पर प्राचीन कालमें तीन ब्राह्मण हुए थे, उन ब्राह्मणोंकी मूर्त्ति साक्षात् तीनों देवताओंहींकी समान थी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! अब उनके नाम सुनो, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मदत्त और ब्रह्मदेव ये तीन उन तीनोंके नामथे ॥ १५ ॥ तब उनके मनमें तीर्थाटन करनेका विचार उदय हुआ, सुतराम् वे सब तीर्थोंमें गये और वहां शुभ जलमें उन सबने स्नान किया ॥ १६ ॥ क्रमानुसार इस पवित्र स्थानमें भी आये, और शुभ स्थानमें बैठ-कर परस्पर यों कहने लगे ॥ १७ ॥ इस तीर्थराजमें तबतक ब्रह्मा विष्णु महेश्वरकी आराधना करेंगे कि, जबतक उनके दर्शन प्राप्त हों ॥१८॥ ऐसी सम्मतिकर शुभस्थलमें बैठगये और अनेक उपचारोंसे त्रिदेवकी आराधना करनेलगे ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! उस समय ब्रह्मज्ञने तो वायुका भक्षण करके सौ वर्षपर्यन्त यहांही स्तुति करी ॥ २० ॥ वह ब्रह्मज्ञ अष्टांगयोगसे युक्त हो ब्रह्ममें तत्पर रहकर आराधना करनेलगा, उसके इसप्रकार आचरणकरनेसे पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न होगये ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले— हे पुत्र ब्रह्मज्ञ विप्र ! ! ! संप्रति मैं तुम्हैं वरदेनेको आयाहूँ,

भो वत्स विप्र ब्रह्मज्ञ वरदस्तव सांप्रतम् ॥ अदेयमपि दास्यामि
वरं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ २२॥ ब्रह्मज्ञ उवाच ॥ ॥ धन्योस्म्यनु-
ग्रहीतोऽस्मि दर्शनात्ते पितामह ॥ ददासि चेद्वरं मह्यमत्रैव निवस
प्रभो ॥ २३ ॥ तव संदर्शनाल्लोके घोरे कलियुगे नराः ॥ यांतु
वै ब्रह्मलोके हि पापैरपि युताः खलाः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥
अहं वै तपसा बद्धस्तवास्मि द्विजवर्य्य भोः॥ इह वै निवसिष्या-
मि अत ऊर्द्ध्व न संशयः ॥ २५ ॥ धन्याः कलियुगे घोरे पुण्य-
मार्गविवर्जिते ॥ स्पर्शितारः शिलायाश्च कुंडे च स्नातकाः शुभे॥
॥ २६ ॥ ब्रह्मकुंडमिति ख्यातिं यास्यति प्रवरं द्विज ॥ मच्छिला-
धो महाभाग मम लोकंनिवासदम् ॥ २७ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि
वर्षकोटिशतानि च ॥ निवसेन्मम लोके वै स्नातको मम कुंड-
के ॥ २८ ॥ गच्छ ब्रह्मत्वमपि मे ब्रह्मलोके सुनिर्मले ॥ जातो-
सि तपसा शुद्धो धन्योसि त्वं न संशयः ॥ २९ ॥ उत्फालक
उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा वचनं ब्रह्मा तत्स्थावंशेन तत्र हि ॥ ब्रह्म-
ज्ञोपि ययौ ब्रह्मलोके वै ब्रह्मणा सह ॥ ३० ॥ एवं वै ब्रह्मदत्त-

सुतराम् त्रिलोकीमें दुर्लभ ऐसा अदेयवरभी मैं तुम्हें दूंगा ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञ बोला– हे पितामह ! आपके दर्शन करके मैं कृतकृत्य होगया, यदि आप मुझे वर देतेही हैं तो हे प्रभो ! आप यहां निवास करिये ॥ २३ ॥ घोर कलियुगमें मनुष्य आपके दशनकरके दुष्ट और पापी होनेपरभी ब्रह्मलोकमें चलेजायँगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले– हे द्विजराज ! हम तुम्हारे तपसे वशीभूतहैं, अबसे निस्सन्देह हम यहांही निवास करेंगे ॥ २५ ॥ पुण्यमार्गरहित कलियुगमें उन मनुष्योंको धन्यहै जो शिलाका स्पर्श और कुण्डमें स्नान करते हैं ॥ २६ ॥ हे द्विज ! हमारी शिलाके नीचे ब्रह्मकुण्ड है वह हमारे लोककी प्राप्ति कराता है ॥ २७ ॥ हमारे ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेवाला मनुष्य सौकरोड़ सहस्र सौवर्ष पर्य्यन्त हमारे लोकमें निवास करेगा ॥ २८ ॥ हे विप्र ! तुम भी हमारे निर्मल ब्रह्मलोकमें जाओ, क्योंकि तुम तपसे शुद्ध होकर निस्सन्देह धन्य हो गये हो ॥ २९ ॥ उत्फालकजी बोले–यौं कहकर ब्रह्माजी अंशमात्रसे वहां उपस्थित होगये, और ब्रह्मज्ञ भी ब्रह्मासहित ब्रह्मलोकको चला गया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार

स्तु निराहारो जितेंद्रियः ॥ तस्थावेकेन पादेन वर्षाणां शतमभ्यगात् ॥ ३१ ॥ तप्यतस्तस्य राजेंद्र शुद्धमूर्तिर्द्विजस्य च ॥ मनसा स्मरतो विष्णुं संत्यक्तसर्वसंगिनः ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरे विष्णुर्विश्वात्मा विश्वभावनः ॥ आविर्बभूव भगवान्प्राच्यां दिशि यथा रविः ॥३३॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥ गरुडोपरिसंस्थानो लक्ष्म्या च सहितः प्रभुः ॥ ३४ ॥ नानामुक्तागणैर्नद्धब्रह्मसूत्रविराजितः ॥ सनकाद्यैः स्तूयमानो नानामुनिगणैस्तथा ॥३५॥दृष्ट्वा तं सहसा देवं समुत्थाय पुनःपुनः ॥ दंडवत्प्रणिपातांश्च चक्रे ह्यसुरमर्दनः ॥३६॥ ब्रह्मदत्त उवाच ॥ मुरारे ह्यघारे भवापारवारांनिधेस्तारणोपायपाद प्रभो भोः॥सुरारिप्रकंपप्रकर्त्तः सुनेतर्दुराचारनाश प्रभो हे नमस्ते॥ ३७॥जितारातिसर्वप्रभो मेघतानप्रभाभासमानप्रभेश प्रकाश ॥ भवापारकूपारमग्नं खलं मां द्रुतं ह्युद्धर क्लिश्यमानं नमस्ते ॥ ३८ ॥ अनेक द्युवासस्फुरन्मौलिमुक्तागणव्रातभाभासमानांघ्रिपीठ ॥

ब्रह्मदत्तने आहार परित्याग पूर्वक इन्द्रियोंको दमनकर सौवर्ष पर्यन्त एक चरणसे खड़े रहकर तप किया ॥३१॥ हे राजेश्वर! शुद्धमूर्ति द्विजके इस प्रकार तपकरते २ और सब संग परित्याग पूर्वक मनसे विष्णु भगवान्‌का स्मरण करते २ सौ वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ३२ ॥ इसी बीचमें विश्वात्मा विष्णुभगवान् इस प्रकार प्रादुर्भूत हुए जैसे पूर्व दिशामें सूर्य निकलते हैं ॥ ३३ ॥ भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे विभूषित थे, वे स्वयं गरुड़जीके ऊपर बैठे और लक्ष्मी जी उनके साथ थीं ॥ ३४ ॥ उनका यज्ञोपवीत अनेक मणियोंसे गूँथा गया था, और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि अनेक मुनि उनकी स्तुति कररहे थे ॥ ३५ ॥ देवाधिदेवको अवलोकन कर तत्काल उठके ब्रह्मदत्तने असुर विनाशी भगवान्‌को बारं बार प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ ब्रह्मदत्त बोला—हे मुरारे ! आप पापोंका विनाश करने वाले हैं, हे प्रभो ! आपके चरणोंके आधारसे मनुष्य संसार सागरसे पार हो सक्ता हैं, हे सृष्टिकर्त्ता ! आपके भयसे असुर लोग कंपायमान रहते हैं, आप ही दुराचारका नाश करनेवाले हैं हे प्रभो ! बारं बार आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! आपने सब असुररूप शत्रुओंका विनाश किया है, आप प्रभाके स्वामी, प्रभासे प्रकाशित और स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं, मैं अगाध संसार सागरमें निपतित हो क्लेश भोग रहा हूं सुतराम् आप मेरा उद्धार करिये, मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ भक्तोंके अनेक सूर्य्यकी सदृश चमकीले मुकुट मुक्ता कलापसे आपके चरणकमल रंजित हैं, और विचित्र मुक्ता

लसद्रत्ननानावरव्रातनद्धस्फुरन्मौलिसंबद्धमुक्ताकिरीट ॥ ३९ ॥ नमस्ते गभस्तिस्फुरच्चारुदेह प्रभानाथ भाभासकस्त्वं प्रभेश ॥ जगत्कर्त्तरंतप्रकर्त्तः सुपातस्त्वमेवासि विश्वंभरस्ते नमोऽस्तु ॥ ४० ॥ नमो देवकीनंदन प्राणभूत व्रजेश प्रभो पूतनानाशहेतो ॥ महेश व्रजेशस्तुताशेषरूप स्वभक्ताय दत्तस्वरूपप्रमेय ॥ ४१ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इदं स्तोत्रं शरावृत्त्या पठिष्यंति च ये नराः ॥ त एव त्रिषु लोकेषु सर्वपूज्या भवंति हि ॥ ४२॥ इति संस्तुत्य विप्रोऽसौ दंडवत्पतितः पुनः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं वासुदेवो गदाधरः ॥ ४३ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ वत्सवत्स वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते॥ अदेयमपि दास्यामि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥४४॥ब्रह्मदत्त उवाच ॥ श्रीविष्णो वरदोऽसि त्वं वारार्होहं यदि प्रभो॥ त्वत्पादकमले भक्तिर्मम जन्मनिजन्मनि ॥ ४५ ॥ अस्मिन्स्थाने महाविष्णो स्थानं वै कुरु तद्विभो ॥ अत्र ये कलिकाले तु स्नास्यंति प्रवरा नराः ॥ मुक्ति-

तथा मणियोंसे आपके मुकुटकी अपूर्व शोभा है ॥ ३९ ॥ हे प्रभाके अधीश्वर प्रकाशस्वरूप ! हम वारंवार आपको प्रणाम करते हैं, आप ही जगत्के निर्माण कर्त्ता और पालक हैं, हे विश्वंभर ! आपको वारं वार प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे देवकीनन्दन ! आप व्रजवासियोंके प्राणस्वरूप और पूतनाके प्राणोंका नाशकरने वाले हैं, हे महेश ! सभी आपकी स्तुति करते हैं, हे प्रभो, आप अपने भक्तोंको अभय प्रदान करने वाले हैं, आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४१ ॥ उत्फालकजी बोले—जो मनुष्य इस स्तोत्रको पंच आवृत्ति करके पाठ करते हैं, वे त्रिलोकीमें सबके पूज्य होते हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार स्तुति करके वह ब्राह्मण दण्डकी समान भूमिके ऊपर गिर पड़ा, तब गदाधर वासुदेव भगवान् यह मधुर वाक्य बोले ॥ ४३ ॥ श्री भगवान्ने कहा—हे पुत्र ! जो तुम्हारे मनमें हो सो वर माँगो, मैं तुम्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ ऐसा अदेयवर भी दूंगा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मदत्त बोला—हे प्रभो ! यदि मैं वर पानेके योग्य हूं, और आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो जन्म जन्मान्तरमें आपके चरणोंमें मेरी भक्ति रहे ॥ ४५ ॥ हे विभो ! महाविष्णु भगवान् ! ! ! इस स्थानमें आपभी अपना निवास स्थान बनावें, और कलियुगमें जो मनुष्य यहां स्नान करेंगे, तो घोर संसार सागरसे उनकी

भवतु तेषां वै घोरसंसारसागरात् ॥ ४६ ॥ भक्तिस्त्वदंघ्रिकमले जायतां मज्जतां नृणाम् ॥ ४७ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ मुक्तिदाता जनार्दनः ॥ जगाम त्रिदिवं तेन ब्राह्मणेन समन्वितः ॥ ४८ ॥ यस्यां शिलायां विप्रोऽसौ तपश्चक्रे महामतिः ॥ वैष्णवी सा शिला ज्ञेया सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ॥ ४९ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्त्तनात॥शिलेयं वैष्णवी देव पुनाति हि जगत्त्रयम् ॥ ५० ॥ तत्रैव वैष्णवं कुंडं जातं परम पुण्यदम् ॥ यस्मिन्कुंडे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१ ॥ एवं वै ब्रह्मदत्तस्तु ह्याराध शिवं प्रभुम् ॥ निराहारो जितात्मा च जितसर्वपरिग्रहः ॥५२॥ शिलावत्तत्र देशे तु संस्थितो मनसा शिवम् ॥ संस्मरन्संस्मरन्विप्रो वेदवादी महायशाः ॥ ५३ ॥ एवं वै तस्य जातानि वर्षाण्येकोत्तरं शतम् ॥ ततो ददर्श जटिलं नृमुंडमणिमालया ॥ ५४ ॥ राजमानं महादेवं वृषस्योपरिसंस्थितम् ॥ नीलकंठं त्रिनेत्रं च ललज्जिह्वकाजिह्मगम् ॥ ५५ ॥ नंदिभृंगिरिटीप्रख्यैः सेवितं परमं शिवम् ॥

अवश्यही मुक्ति होजायगी ॥ ४६ ॥ और जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करैं आपके चरणोंमें उनकी भक्ति हो ॥ ४७ ॥ उत्फालकजी बोले—जब वह ब्राह्मण इसप्रकार कहकर मौनहुआ! तभी मुक्तिदाता जनार्दन विष्णुभगवान्भी उसे साथ ले स्वर्गलोकको चलेगये ॥ ४८ ॥ जिस शिलाके ऊपर इस महामति ब्राह्मणने तपकिया था, सब पापोंका विनाश करनेवाली वह वैष्णवी शिलाके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥ उसके दर्शन, स्पर्श, ध्यान और नामका कीर्त्तन करनेसे यह वैष्णवी शिला तीनोंलोकको पवित्र करदेती है ॥ ५० ॥ वहांही पुण्यप्रदानकरनेवाला वैष्णवकुण्ड है उस कुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ५१ ॥ एवं ब्रह्मदेवने निराहार रहकर आत्मा और सब इन्द्रियोंको जीतकरके महादेवजीकी आराधना करी ॥ ५२ ॥ यह वेदवादी महाशय ब्राह्मण अपने मनमें महादेवजीकी आराधना करता २ उस स्थानमें शिलाकी भांति स्थित होगया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार तप करते २ जब उसे एकसौ एक वर्ष व्यतीत होगये, तब नरकपाल मालासे विराजमान ऐसी एक जटिल मूर्तिके दर्शन हुए ॥ ५४ ॥ महादेवजी वृषके ऊपर आरूढ हुए विराजमान होरहेथे, उनका नीलकंठ और तीन नेत्र थे, एवं उनके अंगमें लिपटे हुए नागजिह्वा लपलपा रहे थे ॥ ५५ ॥ नन्दी भृंगी और रिटी आदि गण

तं दृष्ट्वा सहसा विप्रो ब्रह्मदेवो महामतिः ॥ अस्तौषीन्नृपशार्दूल विश्वनाथं जगद्गुरुम् ॥ ९६ ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ नौमीड्य तेऽच्छपुरुषाय दिगंबराय संपूर्णचंद्रनिकरैः समकांतिकाय ॥ मध्यप्रदेशविलासत्करिचर्मकाय स्कंधस्फुरद्धरिवराजिनराजिताय ॥ ९७ ॥ कैलास शृंगनिभचन्द्रकलोदयाय देवासुरादिभिरहोवरवंद्यपाय ॥ वामांगसंगविलसत्सुशिवाख्यतेजःपुंजेन संगमिलितारुणकांतिकाय ॥ ९८ ॥ नानाविभूतिपरिसेवितपादपीठ यत्कालभैरवकराश्रितदंडकेन ॥ प्रध्वस्तमौलिमुकुटैः पुरुहूतमुख्यैः संसेवितांघ्रिकमलोऽसि नमो नमस्ते ॥ ९९ ॥ प्रेतास्थिजालविकरालनरोत्तमांगकंकालजालविलसद्रसते सुरेश ॥ नृत्यत्कबंधशतकोटिसुकौतुकाय भस्मप्रलिप्तशुभदेह नमो नमस्ते ॥ ६० ॥ लेलिह्यमानरसनागणजिह्वगाय भालप्रदेशविलसच्छशिखण्डकाय ॥ कैलासवासनिरताय महेश्वराय सद्भक्तपालनपराय नमोनमस्ते ॥ ६१ ॥ हस्तत्रिशूल-

सेवा करते थे, ऐसे महादेवजीको देख यह महामतिमान् ब्रह्मदेव जगद्गुरु श्रीविश्वनाथ-भगवान्की स्तुति करनेलगा ॥ ९६ ॥ ब्रह्मदेव बोला— हे दिगम्बर पुराणपुरुष ! चन्द्रकान्तिकी समान आपके देहकी कान्तिहै, आपके कटिप्रदेशमें करिचर्म विराजमानहै, कन्धेके ऊपर केहरिकी त्वचा सुशोभित होरही है हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ९७ ॥ कैलासके शिखर अथवा चन्द्र-कलाके उदयकी समान आपका प्रकाशहै, देवता और असुर सबही आपके चरणोंकी वन्दना कर-ते हैं, आपके वामभागमें पार्वती नाम तेज प्रदीप्त होरहाहै और उसी तेजके साथ आपकी भी अरुण कान्ति सम्मिलित है ॥ ९८ ॥ अनेक विभूतियें आपके चरणकमलकी सेवाकरती हैं, आपके दण्डको कालभैरवने धारण कियाहै, इन्द्र आदि मुख्यदेवता अपने मुकुटोंसे आपके चरणकम-लोंकी सेवा करते हैं अत एव आपको मैं भी वारंवार नमस्कार करताहूं ॥ ९९ ॥ प्रेतोंकी अस्थियें, मनुष्योंके कराल कपाल ये ही आपके आभूषण हैं. हे सुरेश ? सैकडों कबन्धोंका नृत्य देख-ना आपका कौतुकहै, और आपके देहमें भस्मका लेपहै, हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ६० ॥ आपके शरीरमें लिपटेहुए नाग अपनी जिह्वाको लपलपाते रहते हैं, आपके मस्तकके ऊपर अर्द्धचन्द्र विराजमान है, हे महेश्वर ! कैलासके ऊपर निवास करनेहीमें आपका आग्रहहै, आप सज्जनभक्तोंका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं, सुतराम् आपको वारं-वार प्रणाम है ॥ ६१ ॥ आपके हाथमें त्रिशूल और डमरूहै, डमरूके निनादसे आप-

डमरुध्वनिजातमोदसंमोदमानहृदयाखिलभूतमुख्यैः ॥ संनृत्यते सुरगणेशमहेश्वराद्यैस्तुष्ट्यै हि यस्य तमहं शरणं प्रपद्ये ॥ ॥ ६२ ॥ संसारसागरनिमग्नमहो महेश कामप्रकोपतिमिजालनिगिल्यमानम्॥ तृष्णाकुवीचिगणभीषणभीषमाणं मामुद्धरोद्धरणशील नमोनमस्ते ॥ ६३ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ सप्तपद्यात्मकं स्तोत्रं ध्यानात्मकमहोमुखे ॥ पठेद्वै श्रावयेद्वापि कल्पं शिवपुरे वसेत् ॥ ६४ ॥ आपदस्तस्य नश्यंति पीडाग्रहभवास्तथा ॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यो जायते नात्र संशयः ॥ ६५॥ महादेवोऽपि भगवांस्तपसा परितोषितः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं ब्रह्मदेवं महामुनिम् ॥ ६६ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ ब्रह्मदेव मुनिश्रेष्ठ वरदस्तेऽस्मि सांप्रतम्॥ वरं वृणीष्व तुष्टोऽस्मि तपसा मनसेप्सितम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ भोभो देव शिव प्राज्ञ वरयुग्मं वृणोम्यहम्॥वरेणैकेन भगवन्नत्र तिष्ठ शिवान्वितः॥६८॥ द्वितीयेन वरेणाशु भवबंधाद्विमोचय॥ यथाहं मोहपाशाद्वै विनि-

के हृदयमें आनन्दका उदय होताहै, जिनके सन्तोषार्थ भूतगण निवास करते हैं ऐसे आपको हम नमस्कार करते, और आपकी शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ हे महेश्वर ! मैं संसारसागरमें निपतित हो कामनारूप जलचरोंसे ग्रसित होरहाहूं, सुतराम् हे उद्धार करनेवाले ! प्रभो ! तृष्णारूप कुत्सित तरंगोंसे मुझ भीत हुएका आप उद्धार करिये, मैं आपको वारंवार प्रणाम करताहूं ॥ ॥ ६३ ॥ उत्फालकजी बोले— ध्यानात्मक इस सप्तपद्य स्तोत्रको प्रभात समय जो मनुष्य स्वयं पढै, अथवा दूसरोंको सुनावैगा, उसको एक कल्पपर्य्यन्त शिवलोकमें निवास प्राप्त होगा ॥ ॥ ६४ ॥ इसकी आपत्तियें और ग्रहजनित सब पीडाएँ नष्ट होजायँगी, अथवा वह अवश्यही सब पापोंसेभी मुक्त होजायगा ॥ ६५ ॥ उस समय भगवान् महादेवजीभी तपसे सन्तुष्ट हो महामुनि ब्रह्मदेवसे मधुर वाक्य बोले ॥ ६६ ॥ श्रीशिवजीने कहा— हे मुनिराज ब्रह्मदेव ! मैं तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट होकर तुम्हें वर देनेके लिये, यहां आयाहूं, सुतराम् जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सो वर मांगो ॥ ६७ ॥ ब्रह्मदेव बोला— हे उत्कृष्ट ज्ञानवान् महादेवजी ! ! ! मैं आपसे दो वरकी याचना करता हूं, सो एक वर तो यह दीजिये कि, आप सदैव यहां निवास करैं ॥६८॥ और दूसरा वर देकर मुझे संसारके बन्धनसे छुडाइये, अर्थात् हे प्रभो ! ऐसी कृपा करिये कि,

मुक्तो भवे प्रभो ॥ ६९ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ॥ अहमत्रैव तिष्ठामि नित्यं भक्तिपरायणः॥ अत्र यज्जलमायाति ह्यधस्तात्किंचिदुष्णकम् ॥ तदहं द्रवरूपेण तिष्ठाम्यत्रैव नित्यशः ॥ ७० ॥ तत्पानाद्विधिवद्विप्र गणपो जायते क्षणात् ॥ षडक्षरेण मंत्रेण मंत्रितं हि पिबेन्नरः ॥ पीत्वा पुनर्महामंत्रं शतं जप्त्वा शिवो भवेत् ॥ ७१॥ अतस्साकल्यभावेन निवसिष्यामि तीर्थके ॥ शिलारूपेण तपसा बद्धोऽहं ब्रह्मदेव भोः ॥७२॥ इदं तीर्थं महाभाग नाम्ना माहेश्वरं मतम्॥ कोटिजन्मकृतैः पापैरत्र स्नानाद्विमुच्यते ॥ ७३ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति वै स महादेवः समाभाष्य द्विजेश्वरम् ॥ कृतवान्गणपं तूर्णं भवपाशविवर्जितम् ॥ ॥ ७४ ॥ अतः परं महाभाग लिंगं वै कमलेश्वरम् ॥ शृणुष्वैकमना राजन्नुत्पत्तिं चैव वैभवम् ॥ ७५ ॥ पुरा शिहो बभूवाथ ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ चतुर्मुखनिभस्साक्षात्सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ॥ ७६ ॥ वाराणस्यां हि वसति स्मैकदात्र समाययौ॥ तीर्थानां

मोहपाश दूर होजाय ॥ ६९ ॥ श्रीमहादेवजी बोले– मैं तुम्हारी भक्ति वशात् नित्यही यहां निवास करूंगा, यहांसे नीचे जो कुछ २ उष्ण जल आताहै सो उसीमें मैं द्रवरूप होकर यहां निवास करूंगा ॥ ७० ॥ हे विप्र ! उस जलका विधिवत्पान करनेसे मनुष्य क्षणभरमें गणेश होसकताहै, मनुष्यको चाहिये कि, षडक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रितकर जलपानकरै और फिर महामन्त्रका सौवार जपकरै तौ साक्षात् शिवरूप होजाता है ॥ ७१ ॥ मैं सम्पूर्णतया इस तीर्थमें निवास करूंगा, तुम्हारे तपसे बद्ध होनेके कारण शिलारूपसे मेरी यहां स्थिति रहेगी ॥ ७२ ॥ हे महाभाग ! इसका माहेश्वर तीर्थ नाम होगा, और इसमें स्नानकरनेसे करोड़ जन्मके संचित पापोंसे मुक्तिकी प्राप्तिहोगी ॥ ७३ ॥ उत्फालकजी बोले– द्विजराजसे इसप्रकार संभाषण कर महादेवजीने उसे सांसारिक बन्धनसे मुक्तकरके तत्कालही अपना गण बनालिया ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर हे महाभाग ! कमलेश्वर लिंग है, हे राजन् ! अब चित्तको एकाग्र करके उसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनिये ॥ ७५ ॥ प्राचीनकालमें वेदपारगामी शिहनाम एक ब्राह्मण हुआथा, वह साक्षात् ब्रह्माजीकी समान सब शास्त्रोंमें निपुण था ॥७६॥ यद्यपि वह ब्राह्मण वाराणसी (बना-

तीर्थराजे तु समाराधनतत्परः ॥ ७७ ॥ पंचवर्षसहस्राणि पंचवर्षशतानि च ॥ निराहारो यतात्मा च शिवसंन्यस्तमानसः ॥ ॥ ७८ ॥ स्तुतिभिर्नतिभिश्चैव तथा नाम सहस्रकैः ॥ संस्तुतस्तु महादेवः प्रसन्नोऽभूद्द्विजेश्वरे ॥ ७९ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र द्विधाभूत्पृथिवी नृप ॥ तस्माद्रंधात्प्रभौवस्तु मणीनां हि समाययौ ॥ ॥ ८० ॥ अर्द्धरात्रेऽपि राजेंद्र मध्याह्न इव संबभौ ॥ ततो मारकतं लिंगं प्रत्यदृश्यत तत्र वै ॥ ८१ ॥ एतस्मिन्नंतरे कश्चिद्ब्राह्मणोऽप्यागतस्ततः ॥ आयांतं भूसुरं दृष्ट्वा त्वर्घ्यादिभिरपूजयत् ॥ ॥ ८२ ॥ उवाच ब्राह्मणो विप्रं शिह्वं नाम महामुनिम् ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्येदं तपसः फलम् ॥ ८३ ॥ इदं लिंगं महापुण्यं जातं त्वत्तपसा बुध ॥ प्रतिष्ठां कुरु शीघ्रं वै यथाविधि द्विजेश्वर ॥ ८४ ॥ ततस्तेनापि विप्रेण तेन चैव महामुने ॥ आकारिताश्च शतश आजग्मुर्ब्राह्मणास्ततः ॥ ८५ ॥ लिंगं मारकतं दृष्ट्वा हृष्टास्ते मुनिसंचयाः ॥ प्रकुर्युरभिषेकं वै नानावेदार्थवादिनः ॥ ८६ ॥ शिह्वेश्वरो महादेवो नाम्ना तत्सम जायत ॥ सोऽ-

रस) में रहताथा, तथापि महादेवजीकी आराधनामें तत्पर हो एक समय इसी तीर्थराजमें आया ॥ ७७ ॥ उसने भोजनका परित्याग और आत्माका दमन कर अपने मनको महादेवजीमें लगाके पांच सहस्र पांचसौ वर्ष पर्य्यन्त ॥ ७८ ॥ स्तुतिपाठ, प्रणाम और सहस्र नाम कीर्त्तन करके महादेवजीकी स्तुति करी, तब वे उस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न होगये ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! इतनेहीमें वहां भूमिके फटकर दो टूक होगये, और उस बिलमेंसे मणियोंका प्रकाश निकला ॥ ८० ॥ सुतराम् हे राजन् ! अर्द्धरात्रके समयभी वहां मध्याह्नका सा प्रकाश होगया, तब वहां मरकतमणियोंका एक लिंग दृष्टिगोचर हुआ ॥ ८१ ॥ इसी अवसरमें वहां कोई ब्राह्मणभी आकर प्राप्त हुआ, तब इसने उस ब्राह्मणको आता देख अर्घ्यआदिसे उसकी पूजाकरी ॥ ८२ ॥ तब वह ब्राह्मण शिह्व नाम महामुनिसे यौं कहनेलगा कि, तुम धन्य और कृतकृत्यहो, यह तुम्हारेही तपका फलहै ॥ ॥ ८३ ॥ हे बुध ! यह लिंग तुम्हारेही तप करके परमपवित्र होगया है, सुतराम् हे द्विज ! तुम यथाविधि इस लिंगकी प्रतिष्ठा करो ॥ ८४ ॥ हे महामुने ! तब उस ब्राह्मण और शिह्वमुनिके द्वारा आह्वान कियेहुए सैकडों ब्राह्मण वहां जाकर प्राप्तहुए ॥ ८५ ॥ मरकतमय लिंगको देख मुनिसमाज अत्यन्त प्रसन्न हुआ, सुतराम् वेदवादी महर्षियोंने उक्त लिंगका अभिषेक किया ॥ ८६ ॥ और तभीसे उन महादेवजीका शिह्वेश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ, और वह महाभाग सिह्वभी शिवलोकको

पि शिद्धो महाभागः शिवलोकमगात्ततः ॥ ८७ ॥ पुनः कदाचि-
द्भगवान्रामरूपी जनार्दनः ॥ पूजयामास कमलैः प्रत्यहं शतस-
म्मितैः ॥ ८८ ॥ ततोऽवधि महाराज कमलेश्वरतां गतः ॥ ८९ ॥
तीर्थत्रयाद्वह्निकोणे ह्यधस्ताद्वह्निपर्वतात् ॥ कमलेशो महादेवो
माने शरचतुष्टये ॥ ९० ॥ ततोप्यूर्द्ध्वं विष्णुतीर्थं शरविक्षेपमात्र-
के ॥ यस्मिन्स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुना सदृशो भवेत् ॥
॥ ९१ ॥ यत्र विष्णुः शिवः साक्षाद्वसते रमया सह ॥ महा-
देवपरो देवो महादेव इवापरः ॥ ९२ ॥ अतो वै क्रोशखंडे तु
गंगाया दक्षिणे तटे ॥ नागेश्वरो महादेवो वर्तते देवसंस्तुतः ॥
॥ ९३ ॥ यत्र नागाः पुरा राजँस्तपस्तेपुः सुदुष्करम् ॥ महा-
देवस्य संगाय शिवसंन्यस्तमानसाः ॥ ९४ ॥ प्रसादात्तीर्थराज-
स्य संगं प्रापुः शिवस्य हि॥ गंगातीरे महाराज नागतीर्थं हि वर्त्त-
ते ॥ ९५ ॥ नागतीर्थे नरः स्नात्वा शिवसंगी भवेद्बुधः ॥
नागेश्वरं महादेवं पूजयित्वा यथाविधि ॥ स्नात्वा तीर्थे-

...गया ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर किसी समय जनार्दन श्रीविष्णुभगवान्‌ने रामरूप धारणकर
...दिन सौ २ कमलोंसे उनकी पूजाकरी थी॥ ८८ ॥ हे महाराज ! तभीसे उक्त लिंगका नाम कमलेश्वर
...सिद्ध होगया ॥ ८९ ॥ उक्त तीनों तीर्थोंसे अग्नि कोणकी ओर तथा अग्निपर्वतसे नीचे चार बाणकी
दूरीपर कमलेश्वर महादेवजी विद्यमान हैं ॥ ९० ॥ वहांसे एक बाण विक्षेपकी दूरीपर विष्णुतीर्थ
विद्यमान है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य साक्षात् विष्णुभगवान्‌हीकी सदृश हो जाता है ॥ ९१ ॥
...श्रीविष्णु भगवान् नित्यही निवास करतेहैं, और महादेवजीमें दत्तचित्त और तन्मय होनेके
...कारण वे दूसरे महादेवहीसे प्रतीत होते हैं ॥ ९२ ॥ यहांसे एक कोशकी दूरीपर गंगाजीके तीर
...देवताओंसे स्तुति किये हुए नागेश्वर नाम महादेवजी विद्यमान हैं ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! वहां
प्राचीनकालमें नागोंने दुष्कर तपका आचरण किया था, और उस समय उन्होंने महादेवजीके
...संगकी कामना करके तद्गत होके तपश्चर्या करी थी ॥ ९४ ॥ सुतराम् तीर्थराजकी कृपासे उन्हें
महादेवजीके संगकी प्राप्ति हुईथी, हे महाराज ! गंगाजीके तीरपर वह नागतीर्थ भी विद्यमान है ॥
॥ ९५ ॥ जो ज्ञानी मनुष्य नागतीर्थमें स्नान करताहै, उसे महादेवजीके संगका लाभ होता है ।
नागतीर्थमें स्नान कर यथाविधि नागेश्वर महादेवजीकी पूजा करनेसे मनुष्यका फिर संसारमें जन्म

ऽपि राजेंद्र जायते न च जन्मने ॥ ९६ ॥ समायाति नदी पुण्या गोलक्षात्पर्वताद्वरात् ॥ नाम्ना कटकवती ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ९७ ॥ यस्यां स्नात्वा पुरा शूद्राश्चत्वारो वेदवादिनः ॥ मुक्तिं प्रापुर्महाभाग यस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ ॥ ९८ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ ॥ कथं प्रापुर्महाभाग शूद्राः पापा महामुने ॥ शूद्रा भूत्वा कथं ते वै वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ९९ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ शृणु राजन्पुरा वृत्तं शूद्राणां यदभूच्छुभम् ॥ ब्राह्मणानां साहचर्य्यात्परोक्षश्रवणात्तथा ॥ वेदानधीत्य चत्वारो ययुर्वाराणसीं पुरीम् ॥ १०० ॥ ब्राह्मणा इव दृश्यंते ब्राह्मणैः सह संगताः ॥ एकदा ते महाभाग शुश्रुवुर्ब्राह्मणैर्नृप ॥ वेदाध्ययनजं दोषं स्त्रीशूद्राणां तथैव च ॥ १ ॥ श्रुत्वा वाक्यं निषेधाख्यमूचुर्वै ब्राह्मणांस्ततः ॥ किं कार्य्यं हि महाभागाः शूद्रैर्वेदपरायणैः ॥ २ ॥ तानूचुर्ब्राह्मणाश्चैव प्रायश्चित्तमतः परम् ॥ गत्वा वै सर्वतीर्थेषु देहं त्यक्त्वा ततः परम् ॥ भविष्यथ तदा शुद्धाश्शूद्रा वै स्वर्गगामिनः ॥ ३ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषामाजग्मुस्तीर्थके वरे ॥ दृष्ट्वा वै सर्वतीर्थानि

नहीं होता (अर्थात्—उसकी मुक्ति होजाती है) ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ गोलाक्षपर्वतमेंसे कटकवती नामकी एक उत्तम नदी आतीहै, उसमें स्नान करनेसे सब पापोंका नाश होजाताहै ॥ ९७ ॥ हे महाभाग ! प्राचीनकालमें इस तीर्थराजकी सेवा, और इस कटकवती नदीमें स्नान करनेसे वेदवादी चार शूद्रोंको मोक्षकी प्राप्ति हुईथी ॥ ९८ ॥ धर्मनेत्र बोला—हे महाभाग ! पापी शूद्रोंको सद्गति कैसे मिली, और शूद्र होकर उन्होंने वेदका अध्ययन किस प्रकार किया ॥ ९९ ॥ उत्फालकजी बोले—हे राजन् ! शूद्रोंके प्राचीन शुभ इतिहासका श्रवण करो, ब्राह्मणोंके संसर्गसे और परोक्षमें श्रवण करनेसे चार शूद्र वेदको बढ़कर काशीपुरीमें गये ॥ १०० ॥ वे चारों ब्राह्मणसे प्रतीत होतेथे अतएव ब्राह्मणोंहीमें मिलगये, हे महाभाग राजन् ! ! ! एक समय उन्होंने ब्राह्मणोंके मुखसे यह बात सुनी कि, स्त्री और शूद्रोंको वेद पढनेसे दोष लगताहै ॥ ॥ १ ॥ जब उन शूद्रोंने निषेधरूप वाक्य सुने तब वे ब्राह्मणोंसे कहनेलगे कि, हे महाभागो ! हम वेदपाठी शूद्रहैं हमैं क्या करना कर्त्तव्यहै ॥ २ ॥ तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा कि, तुम प्रायश्चित्त करो । सब तीर्थोंकी यात्रा करके अपने देहका परित्याग करो, तब हे शूद्रो ! तुम पवित्र होकर स्वर्गको जाओगे ॥ ३ ॥ ऐसे वाक्य सुन वे श्रेष्ठ तीर्थमें आये, सब तीर्थोंके दर्शन और उनमें

स्नात्वा चैव यथाविधि ॥ कटकवत्याः संगमे वै गतास्ते मनिसंकुले ॥ ४ ॥ देहं तत्यजुरंते वै तत्रैव गतकिल्बिषाः ॥ ययुर्वै शिवलोके तु पुनरावृत्तिदुर्लभे ॥ १०५ ॥ ततः क्रोशार्द्धके खण्डे नाम्ना तु कटकेश्वरः ॥ महादेव्या मनःसेव्यो वर्तते शुभदायकः ॥ ६ ॥ पुरा यत्र महादेव्याः क्रीडंत्याश्च शिवेन हि ॥ कटकं पतितं यस्मात्तस्माद्धि कटकेश्वरः ॥ ॥ ७ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ८ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे तत एव नृपेश्वर ॥ समं हि वर्तते तस्माद्रुद्रकुंडमिति श्रुतम्॥९॥यस्मिन्स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यभाग्भवेत् ॥ ॥ ११० ॥ ततः शरद्वये याम्ये तटे धारा शिवाभिधा ॥ स्नात्वा यत्र नरो याति पानादपि शिवं परम् ॥ ११ ॥ ततोऽपि शरविक्षेपे पुण्यं शिवितपःस्थलम् ॥ कृत्वा तपो यत्र पूर्वं शिविराप परं पदम् ॥ १२ ॥ शावरं कुंडमाख्यातं तत्रैव नरपुंगव ॥

स्नानकर वे शुद्ध मुनियोंसे आकीर्ण हुए कटकवतीके संगमके ऊपर पहुँचे ॥ ४ ॥ यहां आय निष्पापहो इन्होंने अपने देहका परित्याग करदिया, सुतराम् उन्हें ऐसे शिवलोककी प्राप्ति हुई, वहांसे फिर लौटना दुर्लभ है ॥ १०५ ॥ वहांसे आधे कोशकी दूरीपर कटकेश्वर महादेव हैं, उन कल्याणदायककी पार्वतीजी मनसे सेवा करतीहैं ॥ ६ ॥ प्रथम एक समय महादेवीजी महादेवजीके साथ क्रीडा कररहीथीं, तब उनका कटक वहां गिरपड़ा था इसी हेतु उनका कटकेश्वर नाम हुआ है ॥ ७ ॥ उनके केवल दर्शनही करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाताहै ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वहांसे गंगाजीके उत्तर तीरपर उन्हीकी समान (पवित्र) एक रुद्रकुण्ड विख्यात है ॥ ९ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको महादेवजीके सायुज्य पदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ११० ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर दो बाणकी दूरीपर शिवा नामकी एक धाराहै, उसमें स्नान करने अथवा उसका जल पान करनेसे मनुष्यको परम कल्याणकी प्राप्ति होतीहै ॥ ११ ॥ वहांसे एक बाण विक्षेपकी दूरीपर शिविके तपकरनेका पवित्र स्थलहै, प्राचीन कालमें शिविने वहांही तपकरके परम पदका लाभ किया था॥१२॥ हे नरपुंगव ! वहांही एक शावर कुण्डहै, हे राजन् ! वहां शावर

यत्र शावररूपेण दर्शनं दत्तवान्नृप ॥ १३ ॥ इति ते कथिता-न्येव महापीठानि सूक्ष्मके॥ श्रुत्वा यानि मुनिश्रेष्ठ शिवसायुज्य-माप्नुयात् ॥११४॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्य-वर्णनं नामाष्टाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

रूपसे भगवान्ने दर्शन दिये थे॥ १ ३॥इस प्रकार हमने अतिसूक्ष्म स्थलके महापीठोंका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे मुनिराज ! उन्हें सुननेसे मनुष्यको महादेवजीके सायुज्यपदकी प्राप्ति होती है ॥ ११४॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

एकोननवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १८९.

उत्फालक उवाच ॥ वह्निपर्वतमाहात्म्यं शृणु राजन्सुपुण्यदम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण नरो भवति पुण्यभाक् ॥ १ ॥ कमलेश्वर-पीठाद्वै चोर्ध्वदक्षिणदिग्गतः ॥ दृश्यते पर्वतो यस्तु वह्निशैलो हि स स्मृतः ॥ २ ॥ यत्र वह्निर्महाराज ततापं सुमहत्तपः ॥ आरराध शिवं प्राप तस्माद्वै सकलेहितम् ॥ ३ ॥ तदादि सर्वदेवानां मुखमासीद्धुताशनः ॥ अयं शिलोच्चयो राजँस्तस्मात्पुण्यतमः स्मृतः ॥ ४ ॥ अस्मिन्नद्रौ तु यो मर्त्यो होमं वै प्रकरोति हि ॥ तेन वै सकलं कृत्यं कृतं भवति भूमिप ॥ ५ ॥ यो वह्निं पूज-यत्यस्मिञ्छैले वै पर्वतोत्तमे॥तस्मै स्वयं हुताशो वै ददाति वरमु-त्तमम् ॥ ६ ॥ अस्य पर्वतराजस्य सानौ तिष्ठति शंकरः ॥ भक्तानां वरदो भूप दर्शनान्मुक्तिदायकः ॥ ७ ॥ यस्यार्चायै

उत्फालकजी बोले—हे राजन् ! अब वह्निपर्वतके पुण्यदायक माहात्म्यका श्रवण करिये, उसका श्रवण करनेसे मनुष्यको पुण्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ १ ॥ कमलेश्वर पीठसे दक्षिणकी ओर ऊपरको जो पर्वत दीखताहै उसीको वह्निपर्वत कहते हैं ॥ २ ॥ इसी पर्वतके ऊपर जब अग्निने तप करके महादेवजीको सन्तुष्ट किया, तब उन्हे सबलोकोंके हित करनेका अधिकार मिला ॥ ॥ ३ ॥ तबहींसे महादेवजीकी कृपासे अग्नि सब देवताओंके मुखबने, हे राजन् ! इसी हेतु यह पर्वत अतिशय पवित्र माना गया है ॥ ४ ॥ इस पर्वतके ऊपर जो मनुष्य होम करताहै, हे राजन् ! मानो वह सबही शुभ कर्मोंका आचरण करता है ॥ ५ ॥ सर्वोत्तम इस पर्वतके ऊपर जो मनुष्य अग्निकी पूजा करताहै, अग्निदेव स्वयं उसे उत्तम वरप्रदान करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इस पर्वतकी अधित्यकाभूमिमें भक्तोंको वर और दर्शनहींसे मुक्तिप्रदान करनेवाले महा-देवजी निवास करतेहैं ॥ ७ ॥ उनका पूजन करनेके लिये इन्द्रआदि देवता गण आते हैं, कारण

सदा यान्ति देवा इन्द्रपुरोगमाः॥तत्प्रसादान्महाराज ते तत्पदमवाप्नुयुः ॥ ८ ॥ तल्लिंगं दृश्यते भूप शुद्धाचारैरकल्मषैः ॥ दुराचारैर्महादुष्टैर्दृश्यते न कदाचन ॥ ९ ॥ वह्नेः शिलोच्चयाद्धस्ताद्वह्निधारा सुपुण्यदा ॥ यस्याः संदर्शनादेव नरो भवति शंकरः ॥ ॥ १० ॥ कदाचित्तज्जलं तप्तं कदाचिच्छीतलं स्मृतम् ॥ ११॥ प्रातःकाले सदा याति पुण्यो वैश्वानरः स्वयम् ॥ स्नानाय तज्जलं तप्तं तदा संजायते जलम् ॥ १२ ॥ तज्जले तु नरः कश्चित्प्रकुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ तस्य वै पितरः सर्वे तृप्ता आकल्पकोटिकम्॥१३॥येन तत्पाथसि स्नातं स स्नातः सर्वतीर्थके॥पीतं च तज्जलं येन कृतस्तेनाश्वमेधकः ॥ १४ ॥ तस्मात्पुण्यतमं पाथः पातव्यं नरपुंगवैः ॥ १५ ॥ तज्जलादूर्ध्वभागे हि माने शरचतुष्टये ॥ जलं पुण्यतमं भूपामलं निःसरति ध्रुवम् ॥ ॥ १६ ॥ अभ्युक्ष्य तज्जलेनापि पवित्रेण कलेवरम् ॥ कोटिजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥१७॥तज्जले स्नानमात्रेण

…हे महाराज ! उन्हीकी कृपासे उन्हें इन्द्रआदि पदोंकी प्राप्ति हुई थी ॥ ८ ॥ हे राजन् ! …आचरण कर्त्ता निष्पाप पुरुषोंहीको उक्तलिंगके दर्शन होते हैं, क्यों कि दुराचारी महादुष्ट उस …लिंगको कभी नहीं देखसक्ते ॥ ९ ॥ वहि पर्वतसे एक हाथकी दूरीपर पुण्यदायिनी …धाराहै, उसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे मनुष्य साक्षात् शंकर स्वरूप होजाता है ॥ १० ॥ …नदीका जल कभी शीतल और कभी तप्त होजाताहै ॥ ११ ॥ प्रभात समय पुण्यमूर्त्ति …स्वात् अग्निदेव स्नान करनेके लिये नित्यही वहां आते हैं, तब जलभी तप्त होजाता है ॥ १२ ॥ …कोई मनुष्य उस जलके द्वारा पितरोंका तर्पण करताहै, उसके पितर करोडों कल्प पर्य्यन्त तृप्त …हैं ॥ १३ ॥ जो उसके जलमें स्नान करता है मानो वह सभी तीर्थोंके जलमें स्नान करचुका- …है, और जो उसके जलको पीताहै मानो वह अश्वमेध यज्ञ करता है ॥ १४ ॥ अतएव सज्जनों- …चाहिये कि, उस पवित्र जलको अवश्य पानकरें ॥ १५ ॥ उस जलसे आगे चार बाणकी दूरी- …हे राजन् ! निर्मल और पवित्र जल निकलताहै ॥१६॥ उस पवित्र जलके द्वारा शरीरका प्रोक्षण …नेसे मनुष्य निस्सन्देह करोड़ जन्मके संचित पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १७ ॥ उसजलमें केवल

नरो भवतिपुण्यभाक्॥दर्शनात्तज्जलस्याशु नरः शिवपुरं व्रजेत्॥ ॥१८॥तस्मादूर्द्ध्वभागे हि जलं पुण्यतमं स्मृतम्॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा नरो भवति शंकरः॥१९॥ऊर्द्ध्वे वै वह्निधाराया वह्निपर्वतमध्यके ॥ अष्टावक्रमुनिस्थानं तपसो वर्त्तते नृप ॥ २० ॥ महापुण्यतमं भूप कलौ वै सर्वसिद्धिदम् ॥ २१ ॥ तत्क्षेत्रे यो नरो याति पादचारेण भूमिप ॥ कृतं प्रदक्षिणं तेन पृथिव्याः सह मेरुणा ॥ २२ ॥ तत्रैवास्ते महाभाग पाथः सर्वजलोत्तमम् ॥ तज्जले तु सकृत्स्नातो नरो निष्कल्मषो भवेत् ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकातिथिः सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २४ ॥ अद्यापि वर्त्तते तत्र अष्टावक्रो मुनीश्वरः॥ गुहायां हिमवत्यां वै दृश्यते नष्टपातकैः ॥ २५ ॥ अस्मिन्वै शैलराजे तु पर्वते मुनिनायकाः॥ ध्यानसंलग्नमनसः शिवभक्तिपरायणाः ॥ २६ ॥ इति ते कथितं भूप वह्निपर्वतवैभवम् ॥ यः कश्चिन्मानवो भक्त्या पठेद्वा पाठये-

स्नानमात्र करनेसे मनुष्योंको पुण्यकी प्राप्ति होतीहै, और इस जलके दर्शन करनेसे प्राणी शीघ्रही शिवलोकमें जाताहै ॥ १८ ॥ उसके अगाड़ी औरभी पवित्र जलहै, उस जलको शिरके ऊपर धारण करनेसे मनुष्य शंकर होजाताहै ॥ १९ ॥ वह्निधारासे ऊपर वह्निपर्वतके मध्यमें हे राजन्! अष्टावक्र मुनिके तपका स्थानहै ॥ २० ॥ हे भूप! वह स्थान महापवित्र और कलियुगमें समस्त सिद्धियोंका देनेवालाहै ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य उसतीर्थमें पैदल यात्रा करताहै, मानो वह सुमेरु पर्वत सहित भूमिकी प्रदक्षिणा करलेताहै ॥ २२ ॥ हे महाभाग ! वहांका जल अन्य सब जलोंसे श्रेष्ठ है, सुतराम् उसमें एकबारभी स्नान करनेसे मनुष्य निष्पाप होजाताहै ॥ २३ ॥ और इसी हेतु उसे अवश्यही ब्रह्मलोकमें जाना होताहै ॥ २४ ॥ अथ च अभीतक वहां हिमालयपर्वतकी गुफामें अष्टावक्र मुनीश्वर विद्यमानहैं, किन्तु पुण्यात्मा व्यक्तियोंहीको उनके दर्शनोंका लाभ होताहै ॥ २५ ॥ शैलराज इस पर्वतके ऊपर ध्यान और शिवभक्तिमें तत्पर मुनीश्वर निवास करते हैं ॥ २६ ॥ हे भूप! इसप्रकार हमने

दपि ॥ २७ ॥शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स वै शिवपुरे वसेत् ॥ यावत्कोटिसहस्राणि युगानां च महीपते ॥२८॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये वह्निपर्वतमाहात्म्यवर्णनं नामैको ननवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

...पर्वतका माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया, जो व्यक्ति इसे भक्तिभावपूर्वक पढै या पढावेगा ॥ ॥ २७ ॥ स्वयं सुने अथवा दूसरोंको सुनावेगा, हे महीपाल ! वह करोड सहस्रयुग पर्य्यन्त शिवलोकमें निवास करेगा ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकोननवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९०.

उत्फालक उवाच ॥ ॥ इंद्रकीलाचले यानि तीर्थान्यायतनानि च ॥ सुपुण्यानि सुरम्याणि तानि शृण्ड महामते ॥ १ ॥ माहात्म्यानि च तेषां वै कथयामि तवाग्रतः ॥ विषयेभ्यो मनः स्वस्य निवर्तय स्थिरं कुरु ॥ २ ॥ राजराजेश्वरीपीठात्क्रोशपादूर्द्धके नृप॥ऊर्द्धभागे समायाति नदी पुण्यतमा स्मृता॥३॥नाम्ना मनोहरा ख्याता सर्वकामफलप्रदा ॥तस्यां स्नातो नरो नैव पिबेन्मातुः पयोधरम् ॥४॥ तस्या अप्यूर्द्धभागे तु माने शरचतुष्टये ॥ नाम्ना देववती ख्याता सर्वैश्वर्य्यप्रदायिनी॥५॥तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ ततोप्यूर्द्धप्रदेशे हि

उत्फालकजी बोले—इन्द्रकील पर्वतके ऊपर जितने तीर्थ और देवमन्दिर पवित्र और रमणीक है, हे महामतिमान् ! अब उन्हें सुनिये ॥ १ ॥ हम तुम्हारे अगाडी उनके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, तुम अपने मनको विषयोंमेंसे हटाकर स्थिरकरो ॥ २ ॥ हे राजन् ! राजराजेश्वरी पीठसे पावकोशकी दूरीपर ऊपरकी ओर एक परम पवित्र नदी आतीहै॥ ३॥ सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ण करनेवाली उस नदीका मनोहरी नामहै, उसमें स्नानकरनेसे मनुष्यको फिर माताका स्तन पानकरना नहीं होता अर्थात् स्नानकर्त्ता व्यक्तिकी मुक्ति होजातीहै ॥ ४ ॥ उससे आगे चारबाणकी दूरीपर सब ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देववती नाम नदी विख्यातहै ॥५॥ उसमें स्नान करनेसे प्राणियोंको शिवसायुज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६ ॥ उसके आगे पांच बाणकी

माने वै शरपंचके॥नाम्ना मधुमती ख्याता समायाति सरिद्वरा॥
॥ ७ ॥ तस्यां यत्क्रियते कार्यं तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ स्नान-
मात्रेण वै याति नरः शिवपुरं वरम् ॥ ८ ॥ ततोप्यूर्द्ध्वप्रदेशे हि
माने शरचतुष्टये ॥ समायाति नदी पुण्या नाम्ना ख्याता मनो-
न्मनी ॥ ९ ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
॥ १० ॥ किलकिलेश्वरं लिंगं माने वै शरयुग्मके ॥ तद्द-
र्शनान्नरो याति शिवतां योगिदुर्लभाम् ॥ ११ ॥ तस्य स्मरण-
मात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवंति हि ॥ जपन्षडक्षरं मंत्रं सप्तरात्रेऽति-
निर्भयः ॥ प्राप्नोति परमां सिद्धिं देवैरपिदुरासदाम् ॥ १२ ॥ यं-
यं प्रार्थयते कामं तं ददाति शिवः स्वयम् ॥ चतुर्दश्यां तथाष्ट-
म्यां सोमवारे तथैव च ॥ १३॥ भक्त्या करोति यो मर्त्योऽभिषे-
कं जलधारया ॥ तेन सर्वं कृतं मन्ये जीवन्मुक्तः स एव हि ॥
॥ १४ ॥ तस्माद्देवाः सगंधर्वा बिभ्यतीति न संशयः ॥ १५ ॥
तस्मादप्यूर्द्ध्वभागे हि नदी पुण्यतमा स्मृता ॥ जीवेति नाम वि-
ख्याता स्नातुर्मोक्षप्रदायिनी ॥ १६ ॥ ऊर्द्ध्वे यो दृश्यते शैलस्तदु-

दूरीपर मधुमती नामकी एक श्रेष्ठनदी आतीहै ॥७॥ उसमें जो कर्म कियाजाताहै वह सब करोड़-गुणा अधिक होताहै । उसमें स्नान करके प्राणी उत्तम शिवलोकमें जाताहै ॥८॥ उसके आगे चार बाणकी दूरीपर मनोन्मनी नामकी एक श्रेष्ठनदी आतीहै॥९॥भक्तिभाव पूर्वक उसमें स्नान करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १० ॥ वहांसे दो बाणकी दूरीपर किलकिलेश्वर लिंगहै, उक्तलिंगके दर्शन करनेसे प्राणियोंको योगिदुर्लभ शिवत्व प्राप्तहोताहै ॥ ११ ॥ और उसका केवल स्मरण करनेसे अष्टसिद्धियोंकी प्राप्ति होतीहै, जो मनुष्य सात रात्री पर्यन्त निर्भयतासे षडक्षर मन्त्रका जप करताहै उसे देवदुर्लभ परमसिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥१२॥ और वह प्राणी जिस २ वस्तुकी कामना करताहै, महादेवजी स्वयं वही वस्तु उसे प्रदान करते हैं, चतुर्दशी अष्टमी तथा सोमवारके दिन ॥ १३ ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जलसे अभिषेक करता है, वह मानो सबही शुभकर्मोंका आचरण करता है, और उसे साक्षात् जीवन्मुक्त जानना चाहिये ॥ १४ ॥ और उस मनुष्यसे अवश्यही देवता और गन्धर्वआदि सब डरतेहैं ॥ १५ ॥ उसके आगे जीवन्ती नाम परम पवित्र नदीहै, जो प्राणी उसमें स्नान करताहै उसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ १६ ॥ वहांसे आगे उत्तरकी और जो पर्वत दीखताहै, उसका इन्द्रकील नामहै

त्तरदिशि स्थितः ॥ इंद्रकीलाचलोऽसौ वै सर्वकामफलप्रदः॥१७॥
इंद्रो वै कीलितो यत्र दुष्टदैत्यैर्नृपेश्वर ॥ तेनेंद्रकीलशैलो वै गतः
ख्यातिं महीतले ॥ १८ ॥ देवा नागाः सगंधर्वा यक्षाश्चाप्सरसां
गणाः ॥ अद्यापि तत्प्रदेशे हि विचरंति विहारिणः ॥ १९ ॥
कदाचिच्छ्रूयते तत्र शंखदुंदुभिनिस्वनः॥तत्सानौ वर्तते लिंगं क-
पिलं पापिदुर्लभम्॥२०॥तद्दर्शनान्नरो याति शिवलोकं न संशयः॥
अद्यापि लिंगसामीप्ये गायन्त्यप्सरसां गणाः ॥ गंधर्वाश्च महा-
भाग श्रीशिवप्रीतये नृप ॥ २१ ॥ पुण्यात्मानो नरा ये वै तेऽपि
शृण्वंति गायनम् ॥ तद्गानं तु नरः श्रुत्वा परब्रह्मणि लीयते ॥
॥ २२ ॥ तस्य शैलस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥
यत्र देशे स्वयं देवो नित्यं वसति शंकरः ॥ २३ ॥ तत्प्रदेशे
गुहा चैका दशयोजनविस्तृता ॥ वसंति तापसास्तत्र शिवसंन्य-
स्तमानसाः ॥ २४ ॥ जीवंती या नदी प्रोक्ता तदूर्द्ध्वं क्रोश-
मात्रके ॥ सुद्युम्नस्याश्रमं रम्यं दर्शनात्सर्वपापहृत् ॥ २५ ॥
तदाश्रमे नरो गत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ब्रह्मद्रवाख्यमंभस्तु

...र यह सब कामनाओंका फल प्रदान करताहै ॥१७॥ हे राजन्! दुष्टदैत्योंने इन्द्रको वहां की-
...त किया था इसीकारण भूमिके ऊपर उस पर्वतका इन्द्रकील नाम प्रसिद्ध हुआहै ॥ १८ ॥
...वा, नाग, गन्धर्व, यक्ष और अप्सरागण अभीतक वहां विचरते और विहार करतेहैं ॥ १९ ॥
...र कभी २ वहां शंख और दुन्दुभियोंका शब्द सुनाई पड़ताहै, उसकी अधित्यका भूमिमें
...लिंग वर्त्तमान है, पापियोंको उक्त लिंगको दर्शन नहीं होते, उसके दर्शन करके मनुष्य
...सन्देह शिवलोकमें जाताहै ॥ २० ॥ हे राजन्! महादेवजीको प्रसन्नकरनेके लिये अभीतक
...लिंगके निकट अप्सरा और गन्धर्व गान करते हैं ॥ २१ ॥ जो नर पुण्यात्माहैं वे ही उसगा-
...को सुनतेहैं और उस गानको सुनकर मनुष्य परब्रह्ममें लीन होजाते हैं ॥ २२ ॥ इस पर्वतके
...म्यका वर्णन कोईभी नहीं करसक्ताहै, क्यों कि यहां शंकर महादेवजी स्वयं ही नित्य निवास
...रते हैं ॥ २३ ॥ उसी स्थानमें एक दश योजन (४० कोश) विस्तृत गुहाहै, महादेव-
...के अनन्य भक्त ऐसे बहुतसे तपस्वी उसमें निवास करतेहैं ॥ २४ ॥ जीवन्ती नदीसे एक कोश
...परकी ओर सुद्युम्नका रमणीक आश्रमहै, उसके दर्शन करनेहीसे सब पाप दूरहोजातेहैं ॥ २५ ॥
...स आश्रममें जाकर पुरुष सब पापोंसे मुक्त होजाता है, और ब्रह्मद्रव नामका जल वहां विद्य-

तत्प्रदेशे हि वर्त्तते ॥ २६ ॥ तज्जलं तु नरः पीत्वा देवत्वं याति दुर्लभम् ॥ २७ ॥ इति ते कथितान्येव इंद्रकीले महागिरौ ॥ पुण्यानि तीर्थवर्याणि यच्छ्रुत्वापि नरो भवेत् ॥ शिवलोकातिथिः सर्वदेवैः संस्तुतपादकः ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं हि नरैरिदम् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये इंद्रकीलोपवर्णनं नाम नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

मान है ॥ २६ ॥ उस जलके पीनेसे दुर्लभ देवयोनिकी प्राप्ति होतीहै ॥ २७ ॥ इन्द्रकील पर्वतके ऊपर जो पवित्र २ तीर्थ हैं उनका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया, इस प्रसंगको सुनकर पुरुष शिवलोकका अतिथि होताहै, और सब देवता उसके चरणोंकी स्तुति करतेहैं ॥ २८ ॥ इस हेतु सर्वथा यत्नपूर्वक मनुष्योंको इसका श्रवण करना कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

एकनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९१.

उत्फालक उवाच ॥ श्रीदेव्याः पीठकानीह शृणु भूप यथासुखम् ॥ श्रुतं त्वया शुभं पीठं चामुंडाख्यं मयोदितम् ॥ १ ॥ अतः परं शृणु प्राज्ञ पीठं वै कांसमर्दिकम् ॥ यत्र देवी परा साक्षाद्वर्तते कंसमर्दिनी ॥ २ ॥ जाता युगेयुगे चैव पुरा नंदगृहे शुभा ॥ सात्रैव संस्थिता नित्यं शिवसंगविलासिनी ॥ ३ ॥ आराधिता हि विप्रेण पुरा वै भानुशर्मणा ॥ सैव संपत्प्रदात्री च सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ४ ॥ तस्यास्तु दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ पूजनाद्बलिभिश्चैव सर्वसिद्धीश्वरी भवेत् ॥ ६ ॥

उत्फालकजी बोले— हे राजन् ! अब यहांके देवी पीठोंको सुनो, और हमारे द्वारा वर्णन किया हुआ जो तुमने शुभचामुण्डा पीठ सुना ॥ १ ॥ अब उसके पश्चात् कांसमर्दिक पीठको सुनो, वहां कंसमर्दिनी साक्षात् देवीजी निवास करतीहैं ॥ २ ॥ पूर्वयुगमें वे नन्दके घर प्रगट हुई थीं, वे महादेवजीके संग विलासकर नित्य यहांही निवास करती हैं ॥ ३ ॥ सब पापोंका विनाश करनेवाली तथा सब सम्पत्तियोंकी देनेवाली उन देवीजीकी पूर्वकालमें भानुशर्मा ब्राह्मणने आराधना करीथी॥४॥ उसके दर्शन करके पुरुष सब पापोंसे छूटजाता है ॥५॥ और बलिद्वारा पूजन करनेसे

कथितं ते महाभाग पीठं वै कांसमर्दिकम् ॥ श्रीशिलायाश्च माहात्म्यं शृणु चैकमना अतः ॥ ७ ॥ गंगाया दक्षिणे तीरे वर्त्तते सा शिला शुभा ॥ यस्यास्तु दर्शनादेव महापातकिनोऽपि च ॥ सद्यः शुद्धिं प्रयांत्येव किमन्यैर्बहुभाषितैः॥ ८ ॥ चपलेति समाख्याता यत्र जप्त्वा मनुं पुरा॥परं पदं प्राप्तवती यस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ ९ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ का वा सा चपला प्रोक्ता किमर्थं सा तपोऽकरोत् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व दासोहं तव धीमतः ॥ १० ॥ उत्फालक उवाच ॥ पुरा वैश्यो बभूवाथ कुरुक्षेत्रे नृपेश्वर ॥ सैकस्मिन्समये राजन्वाणिज्याय गतः क्वचित् ॥ ११ ॥ गच्छतस्तस्य जाता वै सुमतिस्तीर्थसेवनात् ॥ त्यक्त्वा सर्वं हि वाणिज्यं गतो वै तपसे ततः ॥ १२ ॥ तस्य वै भगिनी चैव चपलेति समाहृता ॥ आययौ भ्रातृमोहाद्वै पृष्ठस्तस्य भूपते ॥ १३ ॥ वने ददर्श चपला गच्छतोऽप्सरसां गणान् ॥ नानाभरणसंयुक्तान्नानावासोविराजितान्॥ १४॥ पुण्यात्मभिः स-

सिद्धियोंका अधीश्वर होजाताहै ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! कान्समार्दिकं पीठका हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया, अब चित्तको एकाग्र करके श्रीशिलाके माहात्म्यको सुनिये ॥ ७ ॥ गंगाजीके दक्षिण तीरपर वह शुभशिला विद्यमान है, उसके दर्शन करनेसे बड़े २ पापी भी तत्काल ही शुद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ पहिले चपला नामकी एक स्त्रीने उसके ऊपर मन्त्रका जप करके इस तीर्थकी सेवासे परम पदको प्राप्त किया था ॥ ९ ॥ धर्मनेत्रने कहा– चपला कौन थी और उसने तप किसलिये कियां था ? यह सब वृत्तान्त आप मुझसे कहिये, हे बुद्धिमान ! मैं आपका दास हूं ॥ १० ॥ उत्फालकजी बोले– हे राजन् ! पहिले कुरुक्षेत्रमें एक वैश्य हुआ था, और एक समय वह व्यापार करनेके लिये कहींको गया ॥ ११ ॥ चलते २ तीर्थ सेवन करनेसे उसकी श्रेष्ठ मति होगई, सुतराम् वह सब व्यापारको त्याग कर तप करनेके लिये चलदिया ॥ १२ ॥ चपला नाम उसकी एक बहिनथी, हे राजन् ! भाईका मोह करके वहभी उसके पीछे २ ही चलदी ॥ १३ ॥ वनमें चपलाने अप्सराओंके समुदायको जाते देखा, वे अप्सरा अनेक आभूषणोंसे संयुक्त और भांति २ के वस्त्रोंसे सुशोभित थीं ॥ १४ ॥ पुण्यात्मा जन उनके साथ

मायुक्तान्क्रीडयमानान्ययथासुखम् ॥ रूपेणाप्रतिमान्भूप गीत-
वादित्रसंयुतान् ॥१५॥ दृष्ट्वा गणांश्चाप्सरसां विस्मिता च बभूव
ह ॥ अहो सौंदर्य्यमाहात्म्यमिदमेव हि वर्तते ॥ १६ ॥
चिंतायुक्ता बभूवाथ कथमेतादृशी भवे ॥ इत्येवं चिंतयंती सा
गता भ्रातुरनु प्रभो ॥ १७ ॥ गच्छंती सा पुनः प्राज्ञ चायांतीं
स्त्रियमेकिकाम् ॥ ददर्शाप्रतिमां रूपैश्चंडिकेव यथा पुरा ॥१८॥
तां दृष्ट्वा सहसा सापि मूर्छिता संबभूव ह ॥ प्राप्य वै चेतनां
पश्चात्पप्रच्छ स्त्रियमेकलाम् ॥१९॥ चपलोवाच ॥ ॥ का वा
त्वं शुभसर्वांगी कुतो वै ह्यागता प्रिये ॥ दृष्टा न त्वादृशी काचि-
द्रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ २० ॥ स्त्र्युवाच ॥ ॥ शूद्राहं जातितो
भद्रे विरूपा ह्यभवं पुरा ॥ बृहद्दंतोष्ठकर्णी च बिडालाक्षी कुबे-
रिका ॥२१॥ चिंताभून्मम वै पूर्वं रूपाय कृतनिश्चया॥ आग-
तास्मि ततस्तीर्थे तपसे कृतमानसा॥२२॥ तपस्तप्त्वा मासमेक-
मागताहं तथा प्रिये ॥ दृष्टं तावच्च तपसा सौंदर्य्यं परमं हि मे॥
॥ २३ ॥ उत्फालक उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चप-

विद्यमान थे, सुतराम् वे सुख पूर्वक क्रीडा कर रहीथीं, हे भूप ! उनके रूपकी कोई उपमा प्रतीत नहीं होती, वे सब गान और वाद्यसे युक्त थीं ॥१५॥ अप्सरा गणको देख यह विस्मित हो कहने लगी, इनकी सुन्दरताके माहात्म्यको धन्यहै ॥१६॥ तब वह यह चिन्ताभी करने लगी कि, मैं ऐसी सुन्दरी कैसे होऊं ? इस प्रकार चिन्ता करती २ ही वह अपने भ्राताके पीछे चलदी ॥ १७ ॥ हे प्राज्ञ ! फिर उसने चण्डिकाकी समान अनुपम रूपवती एक स्त्रीको आते देखा ॥१८॥ उसे देख पहिले तौ यह मूर्च्छित हो गिर पड़ी, फिर चैतन्य लाभ कर उस स्त्रीसे पूछने लगी ॥ १९ ॥ चपला बोली— हे प्रिये ! तुम सर्वांग सुन्दरी कौन हो ? और कहांसे आईहो ! मैं भूमिके ऊपर तुम्हारी समान कोई सुन्दरी नहीं देखी ॥ २० ॥ स्त्री बोली— मैं जातिकी शूद्रा हूं, और पहिले मेरा रूप बहुतही बुरा था, मेरे ओठ और दांत बड़े २ थे, और मेरे नेत्र बिलावकी समान थे ॥ २१ ॥ तब मेरे चित्तमें सुन्दर रूपवती होनेकी चिन्ता हुई, तब मनमें तप करनेको ठान यहां चली आई ॥ २२ ॥ हे प्रिये ! एक मास पर्यन्त तप करके अब मैं लौटी हूं, इसीसे मुझे सुन्दर रूप मिलाहै ॥ २३ ॥ उत्फालकजी बोले— उसके ऐसे वचन सुन

लापि समाययौ ॥ तपः कृतवती सापि स्वर्वेश्यात्वाय सुव्रत ॥ ॥ २४ ॥ स्मरंती मनसा शोभानाम्नीं देवीं परां शिवाम् ॥ ततः कतिपयैर्वर्षैः प्रसन्नाभून्महेश्वरी॥इंद्रलोकं प्राप्तवती स्वर्वेश्या चाभवत्प्रभो ॥२५॥ तदावधि महाभाग चापलं तीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातं च सर्वलोकेषु चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नेव स्थले रम्ये शिला परमदुर्लभा ॥ श्रीशिलेति समाख्याता सर्वैश्वर्य्यप्रदायिनी ॥ २७ ॥ तस्यां स्थित्वा तु यः कश्चित्सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥ यत्किंचिज्जपते मर्त्यश्चक्रवर्ती भवेन्नरः ॥ २८ ॥ यत्किंचिद्दीयते कामं तत्सर्वं लभते परम्॥ न विद्यते हि कुत्रापि शिलायाश्च समं क्वचित् ॥ २९ ॥ दर्शनादपि यस्याश्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते स्पर्शनादपि ॥ पूजनादपि राजेंद्र सर्वैश्वर्यपतिर्भवेत् ॥ ३० ॥ इति ते कथितं देवीपीठं परमपुण्यदम् ॥ सूक्ष्मक्षेत्रे महाराज यच्छ्रुत्वा स्वर्गभाग्भवेत् ॥ ३१॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये चपलोपाख्यानवर्णनं नामैकनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

वहलामी तप करनेको चलीआई, और अप्सरात्व प्राप्त करनेके लिये तप करनेलगी ॥ २४ ॥ मनोयोगपूर्वक शोभादेवीका स्मरण करनेलगी, तब कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर भगवती प्रसन्न हुई,और तब यह स्वर्गमें जाय अप्सरा बनगई ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! तभीसे यह चापलतीर्थ सब लोकोंमें धर्म, अर्थ, काम मोक्षका देनेवला प्रसिद्ध है॥२६॥उसी स्थानमें श्रीशिला नामकी परम दुर्लभ एक शिला है, वह सब ऐश्वर्योंकी देनेवालीहै ॥ २७ ॥ यदि कोई मनुष्य उस शिलाके ऊपर निरालस्य सात रात्रिपर्य्यन्त बैठके जप करै तो वह चक्रवर्त्ती होसक्ताहै ॥ २८ ॥ तथा जिस कामनासे दान करै उसकीभी प्राप्ति होतीहै, इस शिलाकी समान और कहींभी कुछ नहींहै ॥ २९ ॥ उसके दर्शनकरनेसे मनुष्य सबपापोंसे मुक्त होजाताहै, और उसका स्पर्श करनेसे करोड़ जन्मके पाप नष्ट होजातेहैं और पूजन करनेसे सब ऐश्वर्योंका अधिपतित्व प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ इस प्रकार हमने परम पुण्यदायक देवीपीठका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह पीठ सूक्ष्म क्षेत्रमें विद्यमान है, हे महाराज ! इसको सुनकर पुरुष सब ऐश्वर्योंका भागी होताहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां शताधिकैकनवतितमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

द्विनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९२.

उत्फालक उवाच ॥ ॥ अतः परं शृणु प्राज्ञ पुण्यतीर्थान्यनेकशः ॥ क्षेत्रे सूक्ष्मे यानियानि सर्वपापहराणि च ॥ १ ॥ शिवस्थलात्पूर्वभागे दृश्यते यद्वनं परम् ॥ तद्वनं परमं पुण्यमृषीणां यत्र संचयः ॥ २ ॥ तस्मिन्वने महाभाग पुण्यदानि जलानि च ॥ वर्त्तते सुबहून्येव प्राधान्येन शृणुष्व मे ॥ ३ ॥ ततः क्रोशार्द्धे खण्डे वै चोर्द्धभागे शुभं जलम् ॥ अमृतं परमं ख्यातं यत्पीत्वा त्वमरो भवेत् ॥ ४ ॥ तत्रैका कंदरा रम्या सौवर्णी पुण्यगोचरा ॥ तस्यां गुहायां राजेंद्र स्फाटिकं लिंगमुत्तमम् ॥ अनेकसर्प्पसंयुक्तमनेकगणसेवितम् ॥ ५ ॥ वर्षं यो ब्राह्मणः कश्चिच्छुद्धात्मा विजितेंद्रियः ॥ एकांतरव्रतेनापि त्यक्तसर्वप्रतिग्रहः ॥ स वै पश्यति तल्लिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ ६ ॥ ततोऽपि दक्षिणे भागे सौवर्णं लिंगमुत्तमम् ॥ यस्य वै दर्शनात्सद्यो लभते परमं शिवम् ॥ ७ ॥ ततोधस्तान्महाराज जलं वै पीतवर्णकम् ॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा ब्रह्मलोके वसेत्प्रभुः ॥ ८ ॥ ततः शरद्वये भूप पश्चिमा-

उत्फालकजी बोले— हे प्राज्ञ ! इसके अनन्तर सूक्ष्म क्षेत्रमें अत्यन्त पवित्र अतएव पापोंको हरनेवाले जो तीर्थ हैं उन्हें सुनिये ॥ १ ॥ शिवस्थलसे पूर्वकी ओर जो उत्तम वन दीखता हैं वह बड़ाही पवित्र है, और उसमें अनेक ऋषि निवास करते हैं ॥ २ ॥ यद्यपि उस वनमें पुण्यप्रदान करनेवाले बहुतसे जल विद्यमानहैं, पर उनमेंसे प्रधान २ का वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो ॥ ३ ॥ वहांसे आधे कोशकी दुरीपर ऊपरकी ओर जो शुभजलहैं, उसे परम अमृत कीर्त्तन कियाहै, और उसके पीनेसे अमरत्व प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ वहां ही एक सुरम्य कन्दराहै, पुण्यात्माओंहीको उसके दर्शन प्राप्त होतेहैं, हे राजेन्द्र ! उस गुफामें अनेक सर्पोंसे युक्त और अनेक गणोंसे सेव्यमान एक उत्तम स्फटिक लिंगहै ॥ ५ ॥ यदि कोई ब्राह्मण इन्द्रियोंका दमन कर एक वर्ष-पर्य्यन्त दूसरे २ दिन व्रत के शुद्धान्तः करणसे ध्यानकरे तो उसे शीघ्र विश्वास दिलानेवाले लिंगके दर्शन होते हैं॥ ६ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर उत्तम सौवर्ण लिंग है, उसके दर्शन करके शीघ्रही परम कल्याणकी प्राप्ति होतीहै॥ ७ ॥ हे महाराज ! उसके नीचे पीलेवर्णका जल विद्यमानहै, उसको शिरके ऊपर धारण करनेसे ब्रह्मलोकमें निवास मिलताहै ॥ ८ ॥ हे भूप ! वहांसे दो बाणकी दूरीपर पश्चिमकी ओर

यां दिशि प्रभो ॥ सर्वतीर्थमयी नाम्ना धारा वै वर्तते परा ॥ ॥ ९ ॥ यत्र पूर्वं भरद्वाजस्तपश्चक्रे महामतिः ॥ आवाह्य सर्वतीर्थानि ह्यस्मिन्नेव शुभे जले ॥ १० ॥ तदवधि महाराज सर्वतीर्थमयी नृप ॥ बभूव नाम्ना दिव्येन संयुक्ता मोक्षदायिनी॥ ॥ ११ ॥ ततः क्रोशार्द्धके याम्ये धारा परमपुण्यदा ॥ गोलक्षजा समाख्याता पानात्पापप्रणाशिनी ॥ १२ ॥ गोलक्षपर्वते यानि जलानि निःसरंति हि ॥ तानि सर्वाणि राजेंद्र गोमूत्रप्रभवानि च ॥ १३ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ कथं मुनिगणश्रेष्ठ गिरिर्गोलक्षसंज्ञकः ॥ कथं जातानि गोमूत्राज्जलानि शुभदानि च ॥ १४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ शृणु राजेंद्र वक्ष्यामि गोलक्षस्य च वैभवम्॥ पुरा युगे बभूवाथ गोत्रजेशो महायशाः॥ नाम्ना महायशा ख्यातो जातो वैश्यो महामुनिः ॥ १५ ॥ गावश्चासंस्तस्य राजन्संख्याशतसहस्रकम् ॥ अपुत्रश्च बभूवाथ सदा वै धर्मतत्परः ॥ १६ ॥ न कस्यचिद्द्वेषकर्ता निंदको न दुराशयः ॥ चिंताविष्टस्य वैश्यस्य बभूव मतिरेकदा ॥ १७ ॥ यस्मिन्वै पर्वते रम्ये गा वै संचारयामि हि ॥ तमेव पर्वतं रम्यं

सर्वतीर्थमयी नामकी एक धाराहै, ॥ ९ ॥ इसीके शुभजलमें सबतीर्थोंका आवाहन करके महामतिमान् भरद्वाजजीने तप किया था ॥ १० ॥ उसी दिनसे हे महाभाग ! इसका सर्वतीर्थमयी नाम प्रसिद्ध हुआहै, सुतराम् यह नदी मोक्षकी देनेवालीहै ॥ ११ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर आधे कोसकी दूरीपर गोलक्षजा नामकी परमपवित्र एक धारा है, उसका जल पानकरनेसे सब पापोंका नाश होताहै ॥ १२ ॥ गोलक्षतीर्थमेंसे जितने जल निकलते हैं, हे राजेन्द्र ! उन सबकी उत्पत्ति गोमूत्रसे हुई है ॥ १३ ॥ धर्मनेत्रने कहा - हे मुनिराज ! उस पर्वतकी गोलक्ष संज्ञा कैसे हुई ? और वहांके शुभदायक जल गोमूत्रसे कैसे प्रादुर्भूत हुए ॥ १४ ॥ उत्फालकजी बोले- सुनो राजन् ! अब मैं गोलक्ष पर्वतके माहात्म्यको वर्णन करताहूँ, पहिले युगमें महायश नामका एक महामुनि वैश्य गौओंका अधीश्वर हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उसके पास सौ सहस्र गौवें थीं, उसके कोई पुत्र तो था नहीं, अतः वह सदैव धर्म करता रहता था ॥ १६ ॥ न तो वह किसीसे द्वेष ही करता था, उसका अन्तःकरण दुष्ट नहींथा अतएव वह किसीकी निन्दाभी नहीं करता था । एक समय चिन्ता करते २ उसके मनमें यह विचार हुआ कि, ॥ १७ ॥ जिस पर्वतके

पुत्रत्वेनान्वकल्पये ॥ १८ ॥ पुत्रोऽयमेव मे जातो ह्यत ऊर्द्ध्वं न संशयः ॥ गवां दुग्धं गृहीत्वा स पर्वताय ददौ द्विजः ॥ १९॥ एवं तस्य महाभाग वर्षाणि द्वादश प्रभो ॥ व्यतीयुर्दानशीलस्य पुत्रस्य परितुष्टये ॥ २० ॥ अतस्तत्र महादेवो वसति स्म सदा तु यः ॥ प्रसन्नोऽभून्महारुद्रः प्रत्युवाच मिषेण तम् ॥ जटिल क्रूरवदनो भूत्वा वैश्यवरं नृप ॥ २१ ॥ जटिल उवाच ॥ महायशो महाभाग किं करोषि सदात्र वै ॥ किमर्थं प्रददासि त्वं गोदुग्धं पर्वताय वै ॥ २२ ॥ वैश्य उवाच ॥ पुत्रभावेन भो योगिन्ददामि पय उत्तमम् ॥ पर्वताय महाभाग पुत्रोऽयं मे न संशयः ॥ २३ ॥ उत्फालक उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वैश्यस्य नियमात्मनः ॥ तत्कालं दर्शनं तस्मै ददौ प्रीतिसमन्वितः ॥ २४ ॥ श्रीशिव उवाच महायशो महाभाग प्रसन्नोऽस्मि तव प्रभो ॥ पुत्रस्ते भविता वैश्य सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २५ ॥ पर्वतोऽपि तव प्राज्ञ पुत्रत्वेन भविष्यति ॥ गोलक्षेति समाख्यातः सर्वपापप्रणाशकः ॥ २६ ॥ तस्माद्गोल-

ऊपर मैं गौओंको चराताहूँ, उसी सुन्दर पर्वतको पुत्रकल्पना करलेना चाहिये ॥ १८ ॥ सुतराम् अबसे यह पर्वत निस्सन्देह मेरा पुत्र हुआ, हे द्विज ! वह वैश्य गौओंका दूध ले २ कर पर्वतको देनेलगा ॥ १९ ॥ पर्वतरूप पुत्रकी तृप्तिके लिये इस प्रकार दुग्ध दान करते २ उस वैश्यको बारह वर्ष व्यतीत होगये॥२०॥सुतराम् वहां निवास करनेवाले महादेवजी प्रसन्नहो लंबीलम्बी जटा बढाये, अक्रूर मुखकरे मिस करके उस ब्राह्मणसे कहनेलगे॥२१॥जटिलजी बोले—हे महाभाग महाशय ! ! ! तुम सदा यहां क्या करते हो ? और तुम पर्वतके ऊपर दूध किसलिये चढाते हो ॥ २२ ॥ वैश्य बोला—हे योगिराज महाभाग ! मैं इस पर्वतको निस्सन्देह पुत्रभावसे दुग्ध प्रदान करता हूं, सुतराम् यह मेरा पुत्रही है ॥ २३ ॥ उत्फालकजी बोले—नियतात्मा वैश्यके ऐसे वाक्य सुन महादेवजीने तत्कालही उसे प्रीतिपूर्वक दर्शन दिये ॥ २४ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे महाभाग महाशय !!! हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहैं, सुतराम हे वैश्य ! तुम्हारे सर्वलक्षण संयुक्त पुत्र होगा, ॥ २५ ॥ और यह पर्वतभी तुम्हारे पुत्रसम्बन्धहीसे विख्यात होगा, अथ च सब पापोंका विनाश करनेवाले इस पर्वतकी गोलक्ष नामसे ख्याति होगी ॥ २६ ॥ लक्ष गौओंके

अङ्घ्र्याद्रि प्रसन्नोऽभूत्सदाशिवः॥तेनायं पर्वतश्रेष्ठस्तथा गोलक्षतां गतः ॥ २७ ॥ अहमत्र निवत्स्यामि नित्यं गोलक्षपर्वते ॥ गोलक्षेश्वरनामा वै जातोऽहमपि सांप्रतम् ॥ २८ ॥ गावश्च यत्र देशे तु चक्रुर्गोमूत्रकं शिवम् ॥ धाराभूतं हि तत्सर्वं मम लोकप्रदायकम् ॥ २९ ॥ इति ते कथितं भूप गोलक्षस्य च वैभवम् ॥ यथा त्वं पृष्टवान्मह्यं तत्सर्वं कथितं तव ॥३०॥ अथ राजञ्छृणु प्राज्ञ गंगाया उत्तरे तटे ॥ वैनायकमहातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३१ ॥ शिविस्थलसमं पारे स्नानाद्यत्र गणो भवेत् ॥ ततो वै दक्षिणे तीरे माने क्रोशार्द्धखण्डके ॥ तीरादूर्द्ध्वशरे माने शिवलिंगं सुपुण्यदम् ॥ ३२ ॥ नाम्ना कोटीश्वरो देवः सर्वयज्ञफलप्रदः ॥ पुरा यत्र महाभाग कोटयो ब्रह्मरक्षसाम् ॥ मुक्ता ब्राह्मणशापाद्धि ततः कोटीश्वरोऽभवत् ॥३३॥ यत्र देवधरो नाम ब्राह्मणो वेदपाठकः ॥ अध्यापितोऽपि शास्त्रेषु तैश्चैव ब्रह्मराक्षसैः ॥ ३४ ॥ अस्मिन्नेव स्थले विप्रो निवसञ्छिवतत्परः ॥ तद्धरासुरसंगाद्धि मुक्ता वै ब्रह्मराक्षसाः ॥

...से महादेव जी प्रसन्न हुये अतएव इसका गोलक्ष नाम विख्यात होगा ॥२७॥ और मैं ... इस गोलक्ष पर्वतके ऊपर नित्यही निवास करूंगा, और आजहीसे गोलक्षेश्वर मेरा नाम विख्यात ...गा ॥२८॥ और गौओंने जहां २ पवित्र मूत्र परित्याग किया वे सब धारा होकर मेरे लोक... दानकरेंगी ॥ २९ ॥ हे भूप ! इस प्रकार गोलक्षका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रतिवर्णन किया ...जो कुछ तुमने पूछा वह सब हमने कहा ॥ ३० ॥ गंगाजीके तटपर सब पापोंका नाश करने... ...वाला एक वैनायक महातीर्थ है हे राजन् ! अब उसे सुनो ॥ ३१ ॥ शिवितीर्थकी समान जहां ...स्नान करनेसे गणत्व लाभ होताहै, वहांसे दक्षिणकी ओर आधे कोशकी दूरीपर, और तटसे एक ...बाण ऊपरकी ओर पुण्यदायक एक शिवलिंग है ॥ ३२ ॥ उसका कोटीश्वर नामहै और वह सब ...यज्ञोंके फलका दान करनेवाला है, हे महाभाग प्राचीनकालमें वहां ब्रह्मराक्षसोंको ब्राह्मणके शापसे ...मुक्ति मिलीथी, इसीसे उक्त लिंगका कोटीश्वर नाम हुआ है ॥ ३३ ॥ यहांही वेदपाठी देवधर ...ब्राह्मणको ब्रह्मराक्षसोंने शास्त्र विषयमें अध्ययन कराया था ॥ ३४ ॥ तब महादेवजीकी भक्तिमें

॥ ३५ ॥ तदावधि शिवश्चासीन्नाम्ना कोटीश्वरो नृप ॥
॥ ३६ ॥ ततोऽधस्तान्महाराज जलं निःसरति ध्रुवम् ॥
तज्जलं शिवपादाभ्यामायाति भवशांतये ॥ ३७ ॥ तज्जलं शि-
रसा धृत्वा शिवसालोक्यभाग्भवेत् ॥ ३८ ॥ ततो गंगातटे भूप
उत्तरे क्रोशपादके ॥ गोगलं नामतीर्थं वै यत्र याति सरिद्वरा ॥
गोगलेति समाख्याता सर्वैश्वर्य्यप्रदायिनी ॥ ३९ ॥ तत्संगमे
च तीर्थं वै सर्वकामफलप्रदम् ॥ ततोप्यूर्द्ध्वं महाबाहो शूर्प्पकर्णो
गणाधिपः ॥ वर्तते ह्यलकनंदायास्तीर्थे वै मोक्षदायके ॥ ४० ॥
शौर्प्पकर्णं महातीर्थं सर्वतीर्थैरनुष्ठितम् ॥ यत्सेवनान्नरो याति
गणेशत्वं न संशयः ॥ ४१ ॥ ततः शरद्वये भूप सिंदूरांगो गणे-
श्वरः ॥ गुहायां हि नदीतीरे वर्त्तते शिवदायके ॥ ४२ ॥ तत्रै-
वालकनंदायास्तीर्थे सिंदूरकं परम् ॥ तस्मिन्नेव स्थले मध्ये गंगा-
यां शिवदायकः ॥ सिंदूरपिंडसर्वांगो वर्तते मोक्षदायकः ॥४३॥
स्नात्वा तस्मिन्वरे तीर्थे शिवलोके महीयते ॥ ४४ ॥ तत ऊर्द्ध्वं

तत्पर रहकर उक्त ब्राह्मणने यहांही निवास किया, और उस भूदेवके संसर्गसे ब्रह्मराक्षसभी मुक्त होगये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! उसी दिनसे महादेवजीका कोटीश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उसके नीचेसे जो जल निकलता है वह संसारिक तापकी शान्तिके लिये महादेवजीके चरणोंमेंसे प्रगट होताहै ॥ ३७ ॥ उस जलको शिरके ऊपर धारण करनेसे महादेवजीका सालोक्य प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ हे भूप ! वहां गंगाजीके तटसे उत्तरकी ओर पाव कोशकी दूरीपर गोगल नामका एक तीर्थहै वहांसे एक श्रेष्ठ नदी भी आती है,सब ऐश्वर्योंकी देनेवाली वह नदी गोगला नामसे प्रसिद्धहै ॥ ३९ ॥ उसके संगममें सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला तीर्थ हैं, हे महाबाहो ! वहांसे ऊपरकी ओर सूर्यकर्ण नाम गणेशजी हैं, और उनकी स्थिति अलकनन्दाके मोक्षदायक तटपर रहती है ॥ ४० ॥ सब तीर्थोंसे बनायाहुआ शौर्प्पतीर्थ भी वहांही है, उसकी सेवा करनेसे मनुष्यको अवश्यही गणेशत्व प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ हे भूप ! वहाँसे दो बाणकी दूरीपर नदीके तीर गुहामें सिन्दूरांग गणेशजी हैं ॥ ४२ ॥ वहांही अलकनन्दाका एक परम सिन्दूर तीर्थहै । उसी स्थानमें गंगाजीमें कल्याणदायक ऐसे गणेशजी हैं जिनका शरीर सिन्दूरके पिण्डकी समान है॥४३॥उस श्रेष्ठतीर्थमें स्नान करके शिवलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको मिलताहै॥४४॥ उसके अगाडी

महाभाग माहेंद्रो नाम पर्वतः ॥ तस्मिंश्च पर्वते रम्य इंद्रभूमिर्हि वर्तते ॥ ४५ ॥ तीरात्क्रोशप्रमाणे हि गुहा परमदुर्लभा॥तद्गुहायां महाभाग गणपा नाम भैरवी ॥ ४६ ॥ अतिपुण्यतमे पीठे सर्वर्षिगणसंयुते ॥ नित्यं सखीभिः सा देवी क्रीडते यापि भैरवी ॥ ॥ ४७ ॥ दूरतः सा महादेवी नमस्या सर्वदेहिनाम् ॥ तस्यास्तु निकटे गन्तुमृतिर्वै जायते क्षणात् ॥ ४८ ॥ अदृश्यापि च लोकानां वर्तते मांसचक्षुषाम् ॥४९॥ तस्माद्वा उत्तरे भागे मंदिरं शैवमुत्तमम् ॥ सुवर्णमणिमुक्ताभिर्युक्तं वै वर्त्तंतेतराम् ॥ ॥ ५० ॥ तन्मंदिरादपि प्राज्ञ जलं निःसरति ध्रुवम् ॥ तज्जलं रक्तवर्णं हि वर्तते मोक्षदायकम् ॥ ५१ ॥ ततोऽपि दक्षिणे तीरे नदी परमपावनी ॥ पावनीति समाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ॥ ५२ ॥ ततो गव्यूतिमात्रे हि पर्वतोपरितो ध्रुवम् ॥ माहेंद्रीति शिलाख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ ५३ ॥ यत्रेंद्रश्च सुरैः सार्द्धं नित्यमायाति भूपते ॥ तत्रैव हि जलं रम्यं शीतलं मञ्जु चोत्तमम् ॥५४॥ तस्मिञ्जले महादेवो माहेंद्रेश्वरतां गतः ॥ अथो

हे महाभाग ! माहेन्द्र नाम पर्वतहै, उस सुरम्यपर्वतके ऊपर इन्द्रभूमि वर्त्तमान है ॥ ४५ ॥ उसके तटसे एक कोशकी दूरीपर एक परम दुर्लभ गुहा है, हे महाभाग ! उस गुहामें गणपा नामकी भैरवी निवास करती है ॥ ४६ ॥ सब ऋषियोंसे सेवित उस अत्यन्त पवित्र पीठमें सखियों सहित देवीजी क्रीडा करती हैं ॥ ४७ ॥ सब देहधारियोंको चाहिये कि, दूरहीसे उन्हें प्रणाम करें, क्योंकि उनके निकट जानेसे क्षण भरमें मृत्यु होजाती है ॥ ४८ ॥ और मांसके चक्षुओंसे मनुष्य उन्हें देखभी नहीं सक्ते ॥ ४९ ॥ वहांसे उत्तर दिशाकी ओर सुवर्ण और मणि मुक्ताओंसे युक्त परमोत्तम एक शिव मन्दिर है ॥ ५० ॥ उस मन्दिरमेंसेभी जल निकलताहै, हे प्राज्ञ ! वह रक्तवर्ण जल मोक्षप्रदान करने वाला है ॥५१॥ उसके दक्षिणे तटपर परम पवित्र अतएव सब पापोंका संशोधन करनेवाली पावनी नामकी नदी विख्यात है ॥ ५२ ॥ वहांसे दो कोशकी दूरीपर पर्वतके ऊपर सब दरिद्रका नाश करनेवाली माहेन्द्री नाम शिला है ॥ ५३ ॥ हे भूपते ! वहां इन्द्र सब देवताओंको साथले नित्यही आते हैं, वहांका जल बडा शीतल और रमणीक है ॥ ५४ ॥ उस जलमें जो महादेवजी हैं उनका माहेश्वर नाम

ह्यलकनंदायास्तीरे दक्षिणके प्रभो॥९५॥कोटीश्वरान्महादेवा-न्माने क्रोशार्द्धखंडके ॥ शुक्राश्रयं महापुण्यं क्रोशार्द्धं दीर्घविस्तृ-तम्॥९६॥यस्मिन्स्थले पुरा शुक्रस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ मनसा संस्मरन्रुद्रं शतवर्षं नृपेश्वर ॥ ९७ ॥ यतः प्राप महाविद्याममृ-ताख्यां महामुनिः ॥ भार्गवं कुंडमाख्यातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ॥ ९८ ॥ यत्र वै बृहती पुण्या शिला परमपाविनी ॥ पीतवर्णा महापुण्या तत्र वै भार्गवं नृप ॥ तीर्थं पुण्यतमं ख्यातं स्नातॄणां मुक्तिदायकम् ॥ ९९ ॥ ततोऽपि शरविक्षेपे गंगाया दक्षिणे तटे॥ पुण्यकुंडमिति ख्यातं पुण्यानंत्यप्रदायकम् ॥ ६० ॥ संगमे यत्र देशे वै शौक्री धारातिपुण्यदा ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति पुण्याँल्लोकान्सुदुर्लभान् ॥ ६१ ॥ ततोऽपि पर्वते माने लिंगं शरचतुष्टये ॥ शुक्रेश्वरो महादेवः सर्वयज्ञफलप्रदः ॥ ६२ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे श्मशानेश्वरभैरवः ॥ विस्तीर्णायां गुहायां तु सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ६३ ॥ नानाशब्दाश्च श्रूयंते ह्यद्यापि हि

प्रसिद्ध है ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर अलकनन्दाके दक्षिण तटपर कोटीश्वर महादेवजीसे आधे कोशकी दूरीपर आधे कोश पर्यन्त विस्तृत महापवित्र शुक्राश्रम है ॥ ९६ ॥ हे राजराजेश्वर ! उसी स्थानमें पहिले शुक्राचार्यने मनोयोग पूर्वक महादेवजीका स्मरण करके सौवर्ष पर्यन्त तप किया था ॥ ९७ ॥ तभी उन महामुनिको अमृताख्य महाविद्याकी प्राप्ति हुई थी, वहांही सब कामनाओंका पूर्ण करने वाला भार्गव कुण्डभी है ॥ ९८ ॥ वहां पीले वर्णकी एक अत्यन्त विस्तृत परम पवित्र शिला है, हे राजन् ! वहांही परम पवित्र भार्गव तीर्थ है, जो मनुष्य उसमें स्नान करते हैं उनकी मुक्ति हो जातीहै ॥ ९९ ॥ वहांसे एक बाण विक्षेपकी दूरीपर गंगाजीके दक्षिण तटपै अपार पुण्यदायक एक पुण्य कुण्डहै ॥ ६० ॥ अत्यन्त पवित्र शुक्रधारा जहां संगत होती है वहां स्नान करने वाले पुरुष अतीव दुर्लभ पवित्र लोकोंमें जाते हैं॥६१॥वहांसे चार बाण-की दूरीपर सब यज्ञोंका फल देनेवाले शुक्रेश्वर महादेवजी हैं ॥ ६२ ॥ वहांही गंगाजीके उत्तरी तीरपर श्मशानेश्वर नाम भैरवजी विद्यमान हैं, उनकी स्थिति एक विस्तृत गुहामें रहती है, और वे शीघ्रही प्रत्यय उत्पादन करादेते हैं ॥ ६३ ॥ हे नरेश्वर ! अभीतक वहां अनेक भांतिके शब्द

नरेश्वर ॥ तं भैरवं हि मनसा ध्यातुर्दुःखक्षयो भवेत् ॥ ६४ ॥ ततः परं दक्षिणे वै तीरे रामाश्रमः परः ॥ पर्शुरामो हि तत्रैव तपसे स्थितवान्पुरा ॥ ६५ ॥ तीर्थानां तीर्थराजो वै यत्र विष्णुर्वसत्परम् ॥ गंगायां रामकुंडं हि वर्तते मुक्तिदायकम् ॥ ६६ ॥ स्नानं दानं च होमश्च यत्रानन्तगुणो भवेत् ॥ ६७ ॥ तत उत्तर तीरे वै अमावसुतपस्थलम् ॥ रम्यं शीतजलाविष्टं नानामृगगणैर्युतम् ॥ ६८ ॥ धारा यत्र महाराज चतस्रो निःसरंति हि ॥ अतिपुण्यतमाः प्रोक्ताः स्नात्वा यासु नृपो भवेत् ॥ ६९ ॥ तपः कृत्वा महाराज ह्यमावसुरिति स्मृतः ॥ भ्रातवान्मन्दिरं विष्णोः पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ७० ॥ ततोऽधो वैष्णवंकुंडं विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ ततोऽप्यलकनंदायास्तीरे दक्षिणदिग्गते ॥ ७१ ॥ समायाति सरिच्छ्रेष्ठा नाम्ना चैत्रवती परा ॥ तस्यास्तु संगमे स्नात्वा शिवलोके महीयते ॥ ७२ ॥ सा नदी तु क्षीरयुतात्पर्वतादतिपुण्यदात् ॥ पूर्वं क्षीरसुतो नाम यत्र

गोचर होतेहैं, अथ च उन भैरवजीका स्मरण मनमें करनेसे भी दुःखोंका क्षय हो जाता ॥ ६४ ॥ उसके अगाडी दक्षिण दिशाकी ओर परशुरामजीका दिव्य आश्रम है, प्राचीन कालमें परशुरामजी तपके लिये उपस्थित हुए थे ॥ ६५ ॥ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ वहां रामतीर्थ है, श्रीविष्णु भगवान् निवास करते हैं, एवं गंगाजीमें मुक्तिदायक रामकुण्डभी विद्यमान है ॥ ६६ ॥ वहां स्नान दान जप तथा होम करनेसे उसका अनन्त गुणा फल प्राप्त होताहै ॥ ६७ ॥ उत्तरी तटके ऊपर रमणीक, शीतल जलसे युक्त और अनेक मृगोंसे आकीर्ण अमावसुके स्थानहै ॥ ६८ ॥ हे महाराज ! वहांसे चार धारा निकलतीहैं, वे इतनी अधिक पवित्रहैं, उनमें स्नान करनेसे पुरुष उत्तम राजा होताहै ॥ ६९ ॥ वहांही तप करनेसे अमावसुको ु भगवान्के ऐसे लोककी प्राप्ति हुईथी कि, जहांसे फिर लौटना कठिन है ॥ ७० ॥ उसके विष्णुलोक देनेवाला विष्णु कुण्डहै, वहांसे अलकनन्दाके दक्षिण तीरपर ॥ ७१ ॥ चैत्र- नामकी श्रेष्ठ नदी आती है, उसके संगममें स्नान करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको गाहै ॥ ७२ ॥ वह नदी क्षीर युक्त अत्यन्त पवित्र पर्वतसे निकलती है, पूर्व

तप्त्वा तपः परम् ॥ प्राप्तवान्परमं लोकं नक्षत्राणां महायशाः ॥
॥ ७३ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ को वा क्षीरसुतो नाम किमर्थं वै
तपोऽकरोत् ॥ किं जातं तपसा तस्य तन्मे विस्तरतो वद ॥
॥ ७४ ॥ उत्फालक उवाच ॥ पुरा युगे महाराज वशिष्ठकुल-
संभवः ॥ क्षीरो नाम महातेजा ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ७५ ॥
तस्य पुत्रो बभूवाथ नाम्ना क्षीरसुतः प्रभो ॥ एकदा तस्य पुत्रस्य
मतिरासीन्नराधिप ॥ श्रोतुं सर्वपुराणानि धर्मनेत्र नराधिप॥
॥ ७६ ॥ श्रुतानि स्वपितुर्देव मुखान्नानार्थवादिनः॥सर्वेभ्यो धर्म-
वर्य्येभ्यस्तपो मेने महत्प्रभो ॥ ७७॥ तपो वै कर्तुमुद्युक्त आय-
यौ पर्वते परे ॥ समाराध सर्वज्ञं पार्वतीशं महाप्रभुम् ॥ ७८ ॥
आराधितुः शिवेशं तु कांतिस्तस्य महत्यभूत् ॥ तुष्टो महेशः
संप्रादान्नाक्षत्रं लोकमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ सोऽद्यापि दृश्यते खे वै
पूर्वस्यां दिशि शोभनः ॥ ततोस्य गिरिराजस्य नामाभूत्सर्वपा-
पनुत् ॥ क्षीरसुत इति ख्यातं श्रवणात्पापहारकम् ॥८०॥ तस्मा-
द्वै पर्वतश्रेष्ठात्समायान्ति सरिद्वराः॥ चतस्रो नामतस्ता वै शृणु-

समयमें क्षीरसुतने नक्षत्र लोकको प्राप्त कियाथा ॥ ७३ ॥ धर्म्मनेत्र बोला क्षीरसुत कौन था, इसने तप किसलिये किया ? और इसके तप करनेसे फल क्या निकला, यह सब मेरे अगाडी विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥ ७४ ॥ उत्फालकजी बोले— सुनो महाराज ! प्राचीन कालमें क्षीर नाम एक महायशस्वी और वेद पारगामी ब्राह्मण वशिष्ठ कुलमें प्रादुर्भूत हुआ था ॥ ७५ ॥ और हे प्रभो ! उसके पुत्रका क्षीरसुत नामथा, हे महाराज धर्मनेत्र महाराज ! ! ! एक समय क्षीरसुतका सब पुराण श्रवण करनेके लिये विचार हुआ ॥ ७६ ॥ सुतराम् हे राजन् ! उसने वेदार्थवादी अपने पिताके मुखसे सब पुराणोंका श्रवण किया, तब उसने सभी धर्मोंमें तपको उत्तम माना ॥ ७७ ॥ इसी कारण वह तप करनेके लिये इसी उत्तम पर्वतके ऊपर आया, और पार्वतीपति महादेव प्रभुकी आराधना करने लगा ॥ ७८ ॥ सुतराम् शंकर महादेवजीका आराधन करते २ उसकी कान्ति बड़ी उज्ज्वल होगई, अतएव महेश्वरने सन्तुष्ट होकर उसे उत्तम नक्षत्र लोक प्रदान किया ॥ ७९ ॥ वह सुन्दर मूर्त्ति अभीतक आकाशमें पूर्वकी ओर दीखताहै, तभीसे इस उत्तम पर्वतका पापहारी क्षीरसुत नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ८० ॥ उक्त शुभ पर्वतमेंसे उत्तमोत्तम चार नदियें

ध्यैकमनाः शुभ ॥ ८१ ॥ क्षीराम्बुधिस्तथा क्षेमा तथा चैत्रवती
नदी ॥ तासां श्रेष्ठतमाख्याता चैत्रवत्येव भूमिप ॥ ८२ ॥
चैत्रवत्यां यत्र यत्र ता वै संगमयन्ति हि ॥ तत्तत्पुण्यतमं ख्यातं
तीर्थं पापापहारकम् ॥ ८३ ॥ तत्रैकः पर्वते रम्ये गुहायां नृप-
शेखर ॥ महादेवो महात्मा वै सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ८४ ॥
सार्द्धक्रोशे हि गंगायाश्चैत्रवत्याश्च पश्चिमे ॥ गौरीपीठं समाख्यातं
गणैः सर्वैश्च सेवितम् ॥ ८५ ॥ चतुर्दिक्षु क्रोशमेकं प्रत्येकं नर-
पुंगव ॥ एतत्पुण्यतमं क्षेत्रं वर्त्तते शुभदायकम् ॥ ८६ ॥ तस्य
पीठस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः
परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥ ८७ ॥ तत्रैव सर्वतीर्थानी तत्रैव सर्वदेव-
ताः ॥ तत्र गौरी महेशानी सिद्धकिन्नरसेविता ॥ तापसैर्मुनिव-
र्य्यैश्च नित्यं सेव्यपदांबुजा ॥ ८८ ॥ दर्शनाद्यस्य पीठस्य
नश्यंति दुरितानि च ॥ तच्छृंगं रत्नद्वीपे वै बभूव मुनिसेवितम् ॥
॥८९॥ द्वीपपालो महाराजो देवलो नाम विश्रुतः ॥ आनीतवा-

…हैं, हे कल्याणमूर्त्ते ! तुम चित्तको एकाग्रकरके उनके नाम श्रवण करो ॥ ८१ ॥ क्षीरा,
…म्बुधि, क्षेमा और चैत्रवती ये चार नदियें हैं, हे भूपाल ! चैत्रवती उन सभीमें अधिक श्रेष्ठ मानी
…है ॥ ८२ ॥ उक्त तीनों धारा जहाँ २ चैत्रवतीमें मिलतीहैं, वे सब स्थान पापहारी तीर्थ
…के लोकमें विख्यात हुएहै ॥ ८३ ॥ ॥ हे राजन् ! वहां एक सुरम्य पर्वतके ऊपर सब सिद्धि-
…के देनेवाले महात्मा महादेवजी विद्यमानहैं ॥ ८४ ॥ गंगाजीसे डेढ़ कोशकी दूरीपर चैत्रवती
…के पश्चिम तटपै सब गणोंसे सेवा कियागया गौरीपीठ विख्यातहै ॥ ८५ ॥ हे नरशार्दूल !
… चारों ओर एक २ कोश पर्य्यन्त विस्तृतहै, और यह शुभक्षेत्र कल्याण प्रदान करने वालाहै
॥ ८६ ॥ इस पीठके माहात्म्यका कौन पुरुष वर्णन करसक्ताहै ? क्योंकि वहां ब्रह्मा आदि सभी
…ताओंको परम सिद्धिकी प्राप्ति हुई थी ॥ ८७ ॥ वहांही सब देवता और वहांही सब तीर्थ एवं
…श्वरी गौरी भी वहांही विराजमानहैं, उक्त गौरीकी सिद्ध और किन्नरगण सेवा करते
… च तपस्वी और श्रेष्ठ २ मुनीश्वरभी नित्यही उनके चरणोंकी सेवा करते हैं ॥ ८८ ॥
…स पीठका अवलोकन करनेसे सब पापोंका नाश होजाताहै, प्रथम मुनिसेवित
…ह शृंग रत्नद्वीपमें विद्यमानथा ॥ ८९ ॥ देवल नाम द्वीपपाल महाराजने उक्त रत्नमय शृंगको यहां

न्महाशृंगं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ९० ॥ तदाद्यत्र महापीठं बभूव मुनिसेवितम् ॥ ९१ ॥ धर्मनेत्र उवाच ॥ कथं स देवलो नाम रत्नद्वीपेश्वरः प्रभुः॥आनीतवान्महाशृंगं यत्र गौरी महेश्वरी॥ ॥ ९२ ॥ उत्फालक उवाच ॥ शशबिंदुसुतः श्रीमान्देवलो नाम विश्रुतः ॥ रत्नद्वीपे महाराजो बभूव नृपशेखरः ॥ ९३ ॥ स वै उपासकस्तस्याः श्रीगौर्य्याः सं बभूव ह ॥ कृत्वा राज्यादिभोगांश्च पुत्रानुत्पाद्य तत्र हि ॥ समाययौ तपस्तप्तुं हिमवद्देशसंज्ञके ॥ ९४ ॥ स्वर्गतुल्ये पुण्यलभ्ये तत्राप्यस्मिन्स्थले शुभे॥ दृष्टीभूतां महादेवीं गृहीत्वा शृंगकं च तत् ॥ अत्र वै स्थापयामास तत्पीठं परमं तदा ॥ ९५ ॥ स्वयं च निवसंस्तत्र गतो लोकान्सुपुण्यदान्॥इति ते कथितं भूप यत्पृष्टोऽहं त्वया विभो ॥ ॥ ९६ ॥ इदं परमपुण्यैर्वा लभ्यते पीठमुत्तमम् ॥ यत्र गौरी महादेवी तथा महिषमर्दिनी ॥ ९७ ॥ एकरात्रेऽपि यत्पीठे स्थित्वा बद्धासनो नृप ॥ विषयैश्च परित्यक्तो जपन्सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ९८ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तृतीयायां तथा नृप ॥

आयेथे ॥९०॥उसी दिनसे इस महापीठकी महर्षि गण सेवा करतेहैं॥९१॥धर्मनेत्र बोला—जहां साक्षात महेश्वरी गौरी निवास करतीथीं, उस शृंगको रत्नद्वीपेश्वर देवल किस प्रकारसे लायाथा ॥ ९२ ॥ उत्फालकजी बोले— शशबिन्दुका पुत्र देवल नामसे विख्यातथा, और वह महाराज रत्नद्वीपमें सब राजाओंका अधीश्वरथा ॥ ९३ ॥ अथ च वह उक्त गौरीजीकीभी उपासना किया करताथा, सुतराम् वह राज्य आदि भोगोंको भोगकर और पुत्रोंको उत्पन्न करके हिमालय प्रान्तमें तप करनेको आया ॥ ९४ ॥ पुण्यके द्वारा प्राप्य स्वर्ग तुल्य इस स्थलमें महादेवीको देख उसने इस शृंगको उठाकर यहांही स्थापन किया, तभीसे यहाँपर पीठ प्रसिद्धहै ॥ ९५ ॥ एवं वह अपने आपभी वहांही निवास करने लगा, और अन्तसमय पुण्यदायी उत्तम लोकोंको चला गया । हे राजन् ! इस प्रकार तुमने जो हमसे पूछा, उसीका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया ॥ ९६ ॥ अधिक पुण्योंहीसे इस पीठकी प्राप्ति होतीहै, वहां महिषमर्दिनी देवीजी निवास करतीहैं ॥ ९७ ॥ हे राजन ! जो मनुष्य वहां आसन बाँधकर एक रात्रिमें बैठके विषय परित्याग पूर्वक जप करै तो वह सब सिद्धियोंका अधीश्वर हो सक्ताहै ॥ ९८ ॥ जो मनुष्य अष्टमी चतुर्दशी अथवा तृतीयाके

करोति पूजनं तस्या बलिधूपाग्नितर्पणैः ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ९९ ॥ शरत्कालेऽपि यः कश्चिन्महिषाद्यैर्महेश्वरीम् ॥ संतर्प्पयेद्भक्तियुक्तश्चक्रवर्त्ती भवेत्प्रभुः ॥ ॥ १०० ॥ अस्या एव प्रसादाद्धि शशबिंदुर्नृपेश्वरः ॥ सप्तद्वीपेश्वरो राजा बहुपुत्रसमन्वितः ॥ १ ॥ अस्मिन्स्थाने विशेषेण बलिभिस्तर्पयेत्प्रभुः ॥ महिषान्महिषमर्द्दिन्यै गौर्य्यै छागाँश्च नित्यशः ॥ अर्चयेद्भक्तिसंयुक्तः संप्रदाय नृपो भवेत् ॥ २ ॥ अस्मिन्क्षेत्रे तु यः कश्चिच्छ्रीगौर्य्याश्चरणोदकम् ॥ गृह्णाति भक्तिसंयुक्तः सोऽश्वमेधफलं व्रजेत् ॥ ३ ॥ एवं पुण्यतमं स्थानं न भूतं न भविष्याति॥तस्य वै सेवनान्मर्त्यो जयी भवति वैरिणः॥ ॥ ४ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या देवी मे प्रीयतामिति ॥ करोत्येवं तु यो मर्त्यो धन्यो भवति निश्चितम् ॥ १०५ ॥ तत्रैव कालिकादेव्याः पीठं परमपुण्यदम् ॥ कालीं समर्च्चयेदादौ फलरक्षणहेतवे ॥ ६ ॥ ततो वामप्रदेशे हि जलं परमपावनम् ॥ क्रोशखंडार्द्धमाने तु सिद्धद्रवमुदाहृतम् ॥ ७ ॥ तत्रैकं परमं

...बलि धूप और हवन द्वारा देवीजीकी पूजा करताहै, वह जो २ कामना करताहै उनकी ...द्ध होजातीहै ॥ ९९ ॥ जो मनुष्य शरदृतुमें भक्ति भावपूर्वक महिष आदिके द्वारा महेश्व... पूजा करताहै, वह चक्रवर्त्ती होजाताहै ॥ १०० ॥ इन्ही देवीजीके प्रतापसे शशबिन्दु ... सातों द्वीपोंका अधीश्वर हो बहुतसे पुत्रोंसे युक्त हुआथा ॥ १ ॥ इस स्थानमें महिषमर्दि... महिष गौरीके लिये छाग देताहै और भक्ति पूर्वक सेवा करताहै उसे भूपा...ल्लाभ होताहै ॥ २ ॥ इस स्थानमें जो मनुष्य भक्तिसे गौरी देवीके चरणोदकको ग्रहण कर...है, उसे अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥ इस स्थानकी समान पवित्र न तो कोई ...स्थलहै और न आगेको होगा । सुतराम् इसकी पूजा करनेसे मनुष्य अपने शत्रुओंसे ... प्राप्त करताहै ॥ ४ ॥ हमारे ऊपर देवीजी प्रसन्नहों ऐसा विचार करके जो मनुष्य वहां ... भोजन करताहै, वह अवश्यही कृतार्थ होजाताहै ॥ १०५ ॥ वहांही कालीदेवीका परम ... पीठहै, अतएव फलकी रक्षाके लिये प्रथम कालीजीकी पूजा करनी कर्त्तव्यहै ॥ ६ ॥ उसके ...भागमें आधे कोशकी दूरीपर सिद्धद्रव नामका परमोत्तम पवित्र जलहै ॥ ७ ॥ वहांही मौक्तिक

लिंगं मौक्तिकाख्यं महेश्वरम् ॥ पूजयित्वा च तल्लिङ्गं सर्वैश्वर्य्यप्रदो भवेत् ॥ ८ ॥ इति ते कथितान्येव चैत्रवत्यास्तटोर्द्धके ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव भवमुक्तिप्रदानि च ॥ ९ ॥ गंगाया उत्तरे तीरे तटाच्छरचतुष्टये ॥ पादुके श्रीमहेशस्य दृष्ट्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥ ११० ॥ गंगाया उत्तरे तीरे चैत्रवत्याश्च पश्चिमे ॥ क्रोशार्द्धमाने चायाति नाम्ना हर्षवती नदी ॥ ॥ ११ ॥ यस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या भवेन्निर्मुक्तबंधनः ॥ ॥ १२ ॥ गंगायाः संगमो यत्र तत्तीर्थं शिवदं परम् ॥ पुण्यं पवित्रं परमं स्नानाच्छिवप्रदं शुभम् ॥ तत्र वै शिवलिंगं तु नाम्ना वै डुंगरीश्वरम् ॥ १३ ॥ गंगातीरादूर्द्ध्वभागे धनुषां पंचविंशतौ ॥ तद्विद्यते महालिंगं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥ १४ ॥ रुद्रतीर्थे नरः स्नात्वा जायते न च जन्मने ॥ १५ ॥ ततो हर्षवती तीरे क्रोशार्द्धे शिवदायकम् ॥ जलं पुण्यतमं ख्यातं पीत्वा यत्सुखमश्नुते ॥ १६ ॥ तज्जलं शिरसा धृत्वा शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ ततः क्रोशार्द्धके स्थानं गोस्तवाया

नाम महादेवजीका एक परम लिङ्गहै, उसकी पूजा करनेसे मनुष्य सब ऐश्वर्यको प्राप्त होताहै ॥ ॥ ८ ॥ इस प्रकार चैत्रवतीके तटपर जो भोग और ऐश्वर्य्यके देनेवाले उत्तमोत्तम तीर्थहैं हमने तुम्हारे प्रति उनका वर्णन किया ॥ ९ ॥ गंगाजीसे उत्तरकी ओर चार बाणकी दूरीपर महादेवजीकी पादुका विद्यमानहैं, उनके दर्शन करके मनुष्य मुक्त होजाताहै ॥ ११० ॥ गंगाजीके उत्तरी तीरपर चैत्रवतीसे पश्चिमकी ओर आधे कोशपर हर्षवती नामकी नदी आतीहै ॥ ११ ॥ प्राणी उसमें स्नानकरके सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १२ ॥ उक्त नदी जहां गंगाजीमें मिलीहै वह तीर्थ परम कल्याण दायकहै, परम पवित्र और स्नान करनेसे मंगलविधान करता है, वहांही डुंगरीश्वर नाम शिवलिंग वर्त्तमानहै ॥ १३ ॥ गंगाजीके तीरसे ऊपरकी ओर पंचीस धनुषकी दूरीपर सब ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला वह लिंग उपस्थितहै ॥ १४ ॥ रुद्रतीर्थमें स्नान करलेनेपर मनुष्यका फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ११५ ॥ वहांसे आधे कोशकी दूरीपर हर्षवतीके तीरहीपै परम पवित्र अतएव कल्याणप्रद जो जलहै उसको पीनेसे सुखकी प्राप्ति होतीहै ॥ ॥ १६ ॥ और उस जलको शिरके ऊपर धारण करनसे मनुष्यको शिवलोक प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वहाँसे आधे कोशकी दूरीपर गोस्तवाका स्थानहै, वहांही उक्त मुनिकन्याने तपमें

…श्वर ॥ यत्र सा मुनिकन्या हि तपः परममास्थिता ॥ देहं त्यक्त्वा ययौ सा तु शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥ १८ ॥ गोस्तवाश्रमतो या वै समायाति सरिद्वरा ॥ संगच्छेद्यत्र देशे तु नदी हर्षवती यतः ॥ तत्रैव हि महादेवो गोस्तवेश्वरसंज्ञितः ॥ १९ ॥ संपूजयित्वा तु मुनयः प्रापुः परमं पदम् ॥ २० ॥ ततः पर्वतके रम्ये तिलश्यामो हि भैरवः ॥ तं भैरवं सकृद्दृष्ट्वा महादेवप्रियो भवेत् ॥ २१ ॥ रक्षकोऽयं भैरवस्तु सूक्ष्मक्षेत्रस्य भूमिप ॥ इति ते कथितान्येवमूर्द्ध्वे सूक्ष्मे सुपुण्यदे ॥ तीर्थानि प्रवराण्येव शाकल्येन क्षमेत कः ॥ २२ ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ प्राप्नोति तीर्थस्नानस्य फलं तत्तद्भवं नृप ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

…ने देहका परित्याग करके दुर्लभ शिवलोककी यात्राकी थी ॥ १८ ॥ गोस्तवाके …से निकलकर जो श्रेष्ठ नदी आतीहै, उसका हर्षवती नदीमें जहां संगम होता …वहीं गोस्तवेश्वर नाम महादेवजी विद्यमानहैं ॥ १९ ॥ उनका पूजन करनेसे बहुतसे मुनि… परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति हुईथी ॥ १२० ॥ तदनन्तर रमणीक पर्वतके ऊपर तिलश्याम …हैं, उक्त भैरवजीके एकवारभी दर्शन करनेसे पुरुष महादेवजीका प्रिय होताहै ॥ २१ ॥ हे …! ये भैरवजी इस क्षेत्रके रक्षकहैं, इसप्रकार, पुण्यदायी ऊर्द्ध्व सूक्ष्म क्षेत्रमें जो श्रेष्ठ२ तीर्थ हैं …का वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया, सम्पूर्णतया वर्णन करनेकी किसीकी शक्ति नहींहै ॥२२॥ …जो इस माहात्म्यको पढ़ता या पढाताहै, सुनता वा सुनाताहै, हे राजन्! उसे तीर्थमें स्नान …के पुण्योंहीकी समान फल प्राप्त होताहै ॥ १२३ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

त्रिनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९३.

॥ उत्कालक उवाच ॥ अतः परं महाराज स्थूलक्षेत्रे हि यानि …॥ शृणु तानि प्रधानानि सुपुण्यानि महामते ॥ १ ॥ हर्षव-

उत्कालकजी बोले— हे महाराज! अब इसके अनन्तर स्थूलक्षेत्रमें जो प्रधान और पवित्र तीर्थ …का वर्णन कियाजाताहै ॥ १ ॥ वेदवेदांगपारगामी, समस्तशास्त्रार्थोंके तत्त्वको जाननेवाला

न्नाम विख्यातो वेदवेदांगपारगः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बभूव हि द्विजेश्वरः ॥ २ ॥ तस्य भार्या हर्षवती पतिभक्तिपरायणा ॥ तौ दम्पती स्थले रम्ये तेपतुः परमं तपः ॥ ३ ॥ तप्यमानौ मुनिवरौ तत्र देशे शुभे वरे ॥ कदाचिद्धि शुभाँल्लोकान्प्रापतु-र्नृपनंदन ॥ ४ ॥ पुत्रीवत्पालिता चासौ नदी परमपुण्यदा ॥ हर्षवतीति चाख्याता भवमोक्षप्रदायिनी ॥ ५ ॥ हर्षवन्नाम विख्यातः पर्वतः पुण्यगोचरः ॥ सुवर्णप्रस्तरः पुण्यः पुण्यमा-र्गकरः स्मृतः ॥ ६ ॥ अस्मिन्वै पर्वते रम्ये गुहा परमसुंदरी ॥ तस्यां वै पर्वते भूप वत्सलो नाम विप्रकः ॥ ७ ॥ तप्यमान-स्तपः पुण्यं यावत्कल्पक्षयो भवेत् ॥ ८ ॥ अतः क्रोशद्वये तस्मिन्नूर्द्ध्वभागे महेश्वरी ॥ नाम्ना तारेश्वरी ख्याता दर्शनात्सि-द्धिदायिका ॥ ९ ॥ ततो वामप्रदेशे हि जलं निःसरति ध्रुवम् ॥ नाम्ना तारमयं ख्यातं पानात्सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ १० ॥ अधस्तात्क्रोशमात्रे तु जलं हरमयं किल ॥ तज्जले स्नानमा-त्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ गंगातीरे महत्कुण्डं गाणेश-

एक हर्षवान् नामका ब्राह्मण हुआथा ॥ २ ॥ हर्षवती नाम उसकी पत्नी अपने पतिकी भक्तिमें तत्परही रहतीथी, एक समय उक्त दम्पतीने रमणीक स्थलमें उग्र तप किया ॥ ३ ॥ हे नृप-नन्दन ! कदाचित् तपकरते २ उक्त दम्पतीको शुभ लोकोंकी प्राप्तिहुई ॥ ४ ॥ उन्होंने परम पुण्यदायिनी इस नदीको पुत्रीकी समान पालाहै, संसारसे मुक्ति लाभ करानेवाली इस नदीका हर्षवतीही नाम है ॥ ५ ॥ हर्षवान् नामका एक पर्वतभी है, उसके पाषाण सुवर्णमय हैं अथ च वह पुण्यमार्ग दिखाने वालाहै, और उसके दर्शनभी पुण्यात्माओंहीको होते हैं ॥ ६ ॥ इसी पर्वतमें परम रमणीक एक गुहाहै, हे राजन् ! पर्वतके ऊपर उसी गुहामें वत्सल नाम ब्राह्मण रहताहै ॥७॥ और वह कल्पके अन्तपर्य्यन्त तपका आचरण करताहै॥ ॥ ८ ॥ वहांसे दो कोशकी दूरीपर तारेश्वरी नामकी महादेवीजीहैं, उनके दर्शनही करनेसे सिद्धि-की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ वहां बाईं ओर तारमय नामका एक जल निकलता है, उसका पानकर-नेसे मनुष्य सबसिद्धियोंका अधीश्वर होताहै ॥ १० ॥ उसके नीचे आधे कोशकी दूरीपर साक्षात् हरमय जलहै, उस जलमें स्नानमात्र करके सब पापोंसे छुटकारा होजाता है ॥ ११ ॥ गंगाजीके तीरपर गणेश नामका एक महान् कुण्ड है, वहांही तप करके गणेशजी विघ्नोंका नाश कर-

मिति विश्रुतम् ॥ यत्र तप्त्वा तपः पूर्वं गणेशो विघ्नहाभवत् ॥
॥ १२ ॥ तत्कुंडे स्नानमात्रेण विघ्नैर्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १३ ॥
गंगाया उत्तरे तीरे धारिका भवमोचिनी ॥ नाम्ना श्रीरिति वि-
ख्याता सर्वकामफलप्रदा ॥ १४ ॥ श्रीधारातीर्थमाहात्म्यं
को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ श्रीधारातीर्थकं मानं शृणु राजन्यथाश्रु-
तम् ॥ १५ ॥ गंगावधि दक्षभागे पश्चिमे धारणावधि ॥ क्रोश-
खंडं क्रोशखंडमुदग्दाक्षिणतः शुभम् ॥ १६ ॥ अस्मिन्वै तीर्थ-
राजे तु यानि संति जलानि च ॥ तानि सर्वाणि राजेंद्र
विष्णुलोकप्रदानि च ॥ १७ ॥ यत्र तप्त्वा तपः पूर्वं धीरो नाम
महामनाः ॥ सायुज्यं प्राप्तवान्विष्णोः पदं पुण्यमगोचरम् ॥
॥ १८ ॥ धारणे पर्वते भूप नाम्ना धीरेश्वरः शुभः ॥ तं दृष्ट्वा-
पि नरो याति शिवलोके सुपुण्यगे ॥ १९ ॥ ततो हर्षवती-
तीराद्गव्यूतौ परमा नदी ॥ नाम्ना पट्टवती ख्याता सर्वयज्ञफल-
प्रदा ॥ २० ॥ तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या लभते परमां श्रिय-
म् ॥ २१ ॥ पट्टवत्या ऊर्द्धभागे क्रोशमात्रे नरेश्वर ॥ तटे वै

...बने थे ॥ १२ ॥ उस कुण्डमें केवल स्नान मात्र करके प्राणी विघ्नोंसे छुटकारा पाजाताहै ॥ १३ ॥ गंगाजीके उत्तरी तीरकी ओर सांसारिक बन्धनकी छुडादेनेवाली श्री नामकी एक ... धाराहै, वह सब कामनाओंके फलको देनेवाली है ॥ १४ ॥ श्रीधाराके माहात्म्यका वर्णन ... लिये किसकी शक्ति पर्य्याप्त होसक्तीहै ? हे राजन् ! श्रीधाराक्षेत्रका जो कुछ प्रमाण हमने ...है, उसे आपभी सुनिये ॥ १५ ॥ पूर्वभागमें गंगाजी और पश्चिममें धारणावधि पर्य्यन्त, ...उत्तर और दक्षिणमें पाव २ कोशपर्य्यन्त इसका प्रमाणहै ॥ १६ ॥ इस तीर्थराजमें जि- ... जल विद्यमानहैं, हे राजराजेश्वर ! ! ! उन सबहीको विष्णुलोक प्रदान ...वाले जानना चाहिये ॥ १७ ॥ इसी स्थानमें पहिले तपकरके विचारशील धीर नाम महात्माने ...की प्राप्ति पुण्यात्माओंहीको होतीहै ऐसे सायुज्य पदको लाभ कियाथा ॥ १८ ॥ हे भूप ! ... पर्वतके ऊपर धीरेश्वर नाम शंकर हैं, जहां केवल पुण्यात्माही जातेहैं ऐसे शिवलोकमें, उक्त ...भगवान्के केवल दर्शनही करनेसे मनुष्य चलाजाताहै ॥ १९ ॥ फिर हर्षवतीके तीरसे दो ...की दूरीपर सब यज्ञोंका फल देनेवाली पट्टवती नाम नदीहै ॥ २० ॥ उसमें स्नान करनेसे ...को विपुल (प्रभूत) लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ हे नरेश्वर ! पट्टवती नदीसे एक कोश

पश्चिमे तस्या देवी परमसिद्धिदा ॥ २२ ॥ नाम्ना हिमवती ख्याता भक्तदारिद्र्यनाशिनी ॥ पूजनाद्दर्शनाद्यस्याः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ तस्यास्तु दर्शनाद्भूप सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२३॥ तस्मात्क्रोशार्द्धके भूप समायाति सरिद्वरा ॥ नाम्ना लोहवती ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ २४ ॥ तैलश्यामात्पर्वताद्वै नद्यसौ पूर्ववाहिनी ॥ पट्टवत्यां महानद्यां सर्वपापापनुत्तये ॥ तत्संगमे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥ पट्टवत्यास्तु पूर्वस्यां पर्वते कोलदेहके ॥ सुनंदीति समाख्याता देवी त्रैलोक्यरक्षिणी ॥ २६ ॥ दर्शनात्सर्वपापानि नश्यंति सपदि प्रभो ॥ २७ ॥ तत ऊर्द्ध्वप्रदेशे हि क्रोशार्द्धे शिवदायिनी ॥ नदी परमपुण्यौघैर्लभ्या नाम्ना यशोवती ॥ २८ ॥ ततः परं महादेवी नाम्ना पट्टवती परा ॥ तद्दर्शनान्नरो याति सर्वसिद्धिं हरो भवेत् ॥ ॥ २९ ॥ यत्र यत्र कोल देहे वर्त्तंते हि जलानि च ॥ तानि

ऊपरकी ओर, उसके पश्चिमी तटके ऊपरही परम सिद्धियोंकी देनेवाली एक देवीजीहैं ॥ २२ ॥ उनका हिमवती नामहै एवं वे अपने भक्तोंके दारिद्रका नाश करदेतीहैं उनके दर्शन और पूजन करनेसे पुरुष सब सिद्धियोंका अधीश्वर होजाताहै, और हे भूप ! उनके केवल दर्शनमात्रही करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २३ ॥ हे भूप ! वहांसे आधे कोशकी दूरीपर लोहवती नामकी एक श्रेष्ठ नदी आतीहै, वह नदी सब पापोंका नाश करनेवालीहै ॥ २४ ॥ यह नदी तैलश्यामपर्वतसे निकलकर पूर्ववाहिनी हो, सब पापोंका नाश करनेके लिये पट्टवती महानदीमें संगत होतीहै, उसके संगममें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २५ ॥ पट्टवती नदीसे पूर्वकी ओर कोलदेहपर्वतके ऊपर त्रिलोकीकी रक्षाकरनेवाली सुनन्दी नाम देवीजी विराजमान हैं ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! उनके केवल दर्शनमात्रही करनेसे पुरुष शीघ्र पापोंसे मुक्त होजाते हैं ॥ २७ ॥ वहांसे ऊपरकी ओर आधे कोशकी दूरीपर यशोवती नाम परमकल्याणदायिनी एक नदी है, अधिक पुण्योंका संचय होनेहीसे उक्त नदीकी प्राप्ति होतीहै ॥ २८ ॥ उसके अगाडी पट्टवती नामकी देवी हैं, उनके दर्शनही करनेसे पुरुष सब सिद्धियोंका अधीश्वर होजाता है॥२९॥हे राजन् ! कोलदेह पर्वतके ऊपर जहां जहाँ २ जलहैं, स्नान

...र्वाणि पुण्यानि स्नानदानादिषु प्रभो ॥ ३० ॥ गंगायां सं-
...मे यत्र नदी पट्टवती परा ॥ तत्र नाम्ना महादेवो जगदीश्वर-
...कः ॥ ३१ ॥ जागदीशप्रयागस्तु सर्वेषां मुक्तिदायकः ॥
...ष्ट्वा सदाशिवं देवं स्नायाद्विधिवदत्र हि ॥३२॥ नरस्तु धन्य-
...र्यं याति त्रैलोक्ये नरनायक॥इति ते कथितो दिव्यः श्रीक्षेत्रस्य
... वैभवः ॥ ३३ ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया राजँस्तत्सर्वं कथितं तव
॥ ३४ ॥ न त्वया विस्मयः कार्यो दृष्ट्वा देवानृषींस्तथा ॥
...ण्यलभ्या महाराजेयं भूमिर्हि नराधिप ॥ ३५ ॥ अत्र ये
...शुपक्ष्याद्या वर्त्तते तेऽपि देवताः ॥ इदं स्थानं महाभाग स्वर्गं
... न संशयः ॥ ३६ ॥ गंगाद्वारावधि प्राज्ञ स्वर्गभूमिः सुशो-
...ना ॥ अत्रैव हि स्थले रम्ये तपः कृत्वा शुभं सुतम् ॥ प्रा-
...प्स्यसि त्वं महाभाग ह्यचिराद्वंशधारकम् ॥ ३७ ॥ स्कंद उवाच॥
...ति श्रुत्वास्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं शुभदं मुने ॥ धर्मनेत्रोऽपि
...ज्ञासावश्वतीर्थाच्छरार्द्धके ॥ ३८ ॥ महत्यां तु शिलायां हि

...दि कर्मोंमें उन सबहीको पवित्र जानना चाहिये ॥ ३० ॥ पट्टवती नदी जहां गंगाजीमें ...गताहै, वहां जगदीश्वर नामके महादेवजी विद्यमान हैं ॥ ३१ ॥ सर्वथा मुक्ति प्रदान ...वाला वोही स्थान जागदीश प्रयागके नामसे प्रसिद्ध है, जो पुरुष यहां सदाशिव महादेवजीके ...और विधिपूर्वक स्नान करताहै ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! त्रिलोकीमें उसीके अहोभागहैं ...यह श्रीक्षेत्रका माहात्म्य हमने आपके प्रति वर्णन किया है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तुमने जो ...हमसे पूछा वही हमने आपके प्रति वर्णन किया ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! देवता और ऋषि-...देखकर आपको विस्मय नहीं करना चाहिये कारण कि, यह भूमि पुण्य करनेहीसे प्राप्त होती ॥ ३५ ॥ यहां जितने पशु पक्षीआदि हैं उन सबहीको देवता समझना चाहिये, सुतराम् हे ...भाग ! यह स्थान निस्सन्देह स्वर्गही है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! गंगाद्वारसे ... पुण्य स्वर्ग-...है, हे महाभाग ! तुम इसी शुभस्थलमें तपकरके वंशधर पुत्रको शीघ्रही प्राप्त करोगे ॥३७॥ ...जी बोले-हे मुने ! इस प्रकार कल्याणदायक इस क्षेत्रके माहात्म्यको सुनकर राजा धर्म-...अश्वतीर्थसे अर्द्धबाणकी दूरीपर ॥ ३८ ॥ मनो निग्रह पूर्वक विस्तृत शिलाके ऊपर

स्थित्वा नियतमानसः ॥ संस्मार परमं देवं देवदेवमुमापतिम् ॥
॥ ३९ ॥ ततः कतिपयाहेन संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥ प्रादाद्वरं
सुतं तस्मै धर्मनेत्राय नारद ॥ ४० ॥ कृत्वा तत्र महत्कुंडं
लोकानामुपकारकम् ॥ पुत्रं राज्ये समावेश्य तपसे पुनराययौ
॥ ४१ ॥ अस्मिन्नेव स्थले राजा निजतीर्थे महामतिः ॥
कृत्वा तपः परं तत्र शिवसायुज्यमाप सः ॥ ४२ ॥ अ-
स्मिस्तीर्थेऽपि स्नातारः शिवसायुज्यमाप्नुयुः ॥ ॥ ४३ ॥
इति ते कथितं विप्र माहात्म्यं श्रीस्थलस्य हि ॥ अस्मात्क्षे-
त्रात्समं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति ॥ ४४ ॥ यत्र गंगा
स्वयं साक्षाच्छ्रीदेव्याश्च निवासकः ॥ सान्निध्यं श्रीशिवस्यापि
कथमेतत्समं भवेत् ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यादिकान्येव कृत्वा वै
पातकानि च ॥ आयात्यस्मिस्थले रम्ये मृतः शिवपुरे वसेत् ॥
॥ ४६ ॥ अत्र यत्क्रियते कर्म प्रत्यहं कोटिसंख्यकम् ॥ वर्द्धते
मुनिशार्दूल तस्मात्पापं विवर्ज्जयेत् ॥ ४७ ॥ पुण्यं पवित्रमा-
युष्यं माहात्म्यं श्रीस्थलस्य हि॥कथितं ते मुनिश्रेष्ठ परोपकृति-

बैठके देवाधिदेव उमापति महादेवजीका स्मरण किया ॥ ३९ ॥ तब कुछ दिन व्यतीत होनेपर
सन्तुष्ट कर महादेवजीने हे नारद ! पुत्रप्रदान रूप उत्तम वर उसे दिया ॥ ४० ॥ लोकोपकारके
निमित्त वहां उत्तम कुण्ड बनाके और अपने पुत्रको राज्यके ऊपर बैठालकर यह फिर तप करनेके
लिये [illegible] ॥ ४१ ॥ [illegible] इसी सुरम्य स्थलमें महामति राजाने उग्र तप करके महादेवजी
के सायुज्यका लाभ किया ॥ ४२ ॥ सुतराम् इसतीर्थमें जो [illegible] स्नान करेंगे उन्हें सा-
क्षात् महादेवजीके सायुज्य पदका लाभ होगा ॥ ४३ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार हमने श्रीक्षेत्रका
माहात्म्य आपके प्रति वर्णन किया, इस क्षेत्रकी समान उत्तम क्षेत्र न कोई हुआ और न होगा ॥
॥ ४४ ॥ वहां साक्षात् गंगाजी निवास करतीहैं, एवं यह देवीजीकाभी निवासस्थानहै, और महा-
देवजीकीभी सन्निधि (समीपता) है. तब इसकी समान अन्य तीर्थ कैसे होसक्ताहै ॥ ४५ ॥ जो
मनुष्य ब्रह्महत्याआदि महा पाप करनेके अनन्तर इस सुन्दर स्थलमें चला आताहै, मरनेपर उसेभी
शिवलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ४६ ॥ यहां जो कुछभी कर्म किया जाय वह प्रतिदिन करोड़ों गुणा
अधिक होताहै, सुतराम् हे मुनीश्वर ! यहां आके पापोंका सर्वथा परित्याग करदेना चाहिये ॥४७॥
श्रीक्षेत्रका माहात्म्य पवित्र और आयुकी वृद्धि करनेवालाहै, हे मुनिशार्दूल ! परोपकारके निमित्त

हेतवे॥४८॥घोरे कलियुगे विप्र गतये ये नराधमाः॥कुर्वंति वासम-न्यत्र मुक्तिस्तेषां हि दुर्लभा॥४९॥मृताः श्रीक्षेत्रके ये वै ते नरा मु-क्तिभाजनाः॥धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ यस्येयं नैष्ठिकी मतिः॥५०॥ इदं हि यद्गृहे नास्ति लिखितं ब्रह्मनंदन ॥ श्मशानं तद्गृहं बोध्यं तस्माद्धार्यं गृहे बुधैः॥५१॥लिखितं यस्य गेहेऽपि माहात्म्यं वर्तते शुभम्॥धन्यास्त एव पुरुषास्तद्गृहं शिवमंदिरम्॥५२॥शृणोति यो मुनिश्रेष्ठ श्रीक्षेत्रस्य च वैभवम् ॥ स्नातं वै सर्वतीर्थेषु दत्ता वा सकला मही ॥ ५३ ॥ व्याकरोति नरो यस्तु पंडिताग्रे मुनी-श्वर ॥ तस्य पुण्यतमं वक्ष्ये शृणुष्वैकमना भव॥५४॥सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्॥सर्वदानेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते परम्॥५५॥ श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वाध्यायमात्रं तथैव च॥श्रुत्वा-क्षरसमानानि वर्षाणां हि शतानि च ॥ शिवलोके वसेन्मर्त्यो योगिगम्येऽन्यदुर्लभे ॥ ५६ ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी

उसे हमने तुम्हारे प्रति वर्णन कियाहै ॥ ४८ ॥ घोर कलियुगमें जो अज्ञानी मनुष्य अन्यत्र जाके निवास करतेहैं, उनकी मुक्तिका प्राप्त होना दुर्लभहै ॥ ४९ ॥ जिन सज्जनोंका श्रीक्षेत्रमें मरण होताहै, उनकी मुक्ति होजातीहै, हे मुनिराज ! तुम्हारी ऐसी निष्ठाहै अतएव तुम्हें धन्यहै ॥५०॥ हे ब्रह्मकुमार ! इस माहात्म्यकी लिखित पुस्तक जिस घरमें नहींहै, उसे श्मशान समझना चाहिये, हे बुध ! इस हेतु इसे अपने घरमें रखना चाहिये ॥ ५१ ॥ एवं यह लिखित माहात्म्य जिनके घरमें विद्यमान रहताहै, उन पुरुषोंको धन्यहै, और उनस्थानोंको शिवधाम समझना चाहिये ॥५२॥ हे मुनीश्वर ! जो प्राणी श्रीक्षेत्रके माहात्म्यको सुनताहै, मानो उसने सब तीर्थोंमें स्नान करलिया, और मानों समस्त भूमिका दान करदियाहै ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य विद्वानोंके समक्ष इसकी व्याख्या करताहै, उसके अधिक पुण्यका हम वर्णन करतेहैं, तुम चित्तको एकाग्र करके सुनो ॥५४॥ सब यज्ञ करनेसे जो पुण्य, और सब तीर्थोंमें जानेसे जो फल होताहै, एवं सब दान कर-नेसे भी जो पुण्य मिलताहै, उक्त व्याख्याता पुरुषको उस संपूर्ण पुण्यफलकी प्राप्ति होतीहै॥५५॥ जो मनुष्य इसके आधे वा एक श्लोक अथवा एक अध्यायका श्रवण करताहै जितने उनमें अक्षर होतेहैं उतनेही सौ वर्षपर्य्यन्त ऐसे शिवधाममें निवास करताहै जहां केवल योगीजनही जातेहैं, अन्य पुरुषोंका वहां पहुँचना कठिनहै ॥ ५६ ॥ इसका श्रवण करनेसे पुत्राभिलाषीको पुत्र, और

लभते धनम् ॥ ५७ ॥ श्रावयित्रे ब्राह्मणाय देयं वै विपुलं धनम् ॥ ग्रामवस्त्रसुवर्णानि नोचेद्व्यर्थं श्रुतं भवेत् ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदं स्कंदो विरराम महामतिः ॥ नारदोऽपि हि तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमाययौ ॥ ५९ ॥ भो भो मुनिगणाः श्रेष्ठा नैमिषारण्यवासिनः ॥ एतद्वः कथितं क्षेत्रं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥६०॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवत्युत्तर शततमोऽध्यायः ॥ १९३॥

धनकी कामना करनेवालेको धन प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ इसका श्रवण करानेवाले ब्राह्मणको प्रभूत धन, ग्राम, वस्त्र और सुवर्ण देना चाहिये, अन्यथा इसका श्रवण करना व्यर्थ होजाताहै ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले– नारदजीके प्रति इस प्रकार वर्णन करके महामतिमान् स्कन्दजीने मौन धारण किया, इधर इस आख्यानको सुनकर नारदजीकोभी बडा आश्चर्य हुआ ॥ ५९ ॥ हे नैमिषारण्यनिवासी श्रेष्ठ मुनीश्वरो ! इस प्रकार हमने श्रीक्षेत्रका वर्णन तो तुम्हारे प्रति किया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ६० ॥

इतिश्री स्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्रिणवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

चतुर्नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९४.

ऋषय ऊचुः ॥ सूत साधो व्यासशिष्य ख्यातः श्रीक्षेत्रवैभवः श्रुतश्च विस्तरादत्र ह्यस्माभिः पुण्यदायकः ॥ १ ॥ अतः परं नारदस्तु किमन्यत्पृष्टवान्प्रभो ॥ तन्नो विस्तरतो ब्रूहि प्रपन्नाँल्लोमहर्षण ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पृष्टवान्नारदस्तु यत् ॥ स्कंदं वै पार्वतीपुत्रं श्रुत्वा क्षेत्रस्य वैभवम् ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि प्रसादात्तव सैन्य-

ऋषि बोले– व्यासजीके शिष्य हे सज्जनसूतजी महाराज ! ! ! श्रीक्षेत्रका पुण्यदायी और विख्यात माहात्म्य तो हमने विस्तार सहित सुना ॥ १ ॥ इसके अनन्तर नारदजीने और क्या प्रश्न किया, हे लोमहर्षणकर्त्ता ! यह सब हमारे प्रति वर्णन करिये, हम बड़े आतुर होरहेहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो ! नारदजीने श्रीक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर पार्वतीकुमार स्कन्दजीसे जो कुछ पूछाथा, अब उसे सुनो ॥ ३ ॥ नारदजी बोले– हे सेनापते ! मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो

प॥माहात्म्यानि सुरम्याणि केदारेश्वरमंडले ॥४॥ श्रुतानि पापहंतॄणि परं तृप्तिर्न जायते ॥ पिबतस्त्वन्मुखांभोजनिर्गतं वाङ्मधु प्रभो ॥५॥ इदानीं श्रोतुमिच्छाम्याकेदारं तु गणेश्वर ॥ ६ ॥ पूर्वोक्ता या नदी देव नाम्ना मंदाकिनी शुभा ॥ तस्यां च कानि तीर्थानि कानि क्षेत्राणि षण्मुख ॥ ७ ॥ मंदाकिन्युत्तरे तीरे दक्षिणे च महामते ॥ सर्वाण्येतानि तीर्थानि देवतायतनानि च ॥ क्षेत्राणि सरितश्चैव प्रपन्नाय वद प्रभो ॥ ॥८॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु नारद ब्रह्मज्ञ यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने ॥ यानि यानि प्रधानानि तानि वच्मि तपोधन ॥ ९ ॥ आकोलं पर्वतं विप्र रुद्रक्षेत्रं विशेषतः ॥ गंगया संगता यत्र नदी मंदाकिनी शुभा ॥ १० ॥ इदानीं शृणु केदारगंगयोरंतरं तु यत् ॥ क्षेत्रं सूर्यप्रयागाख्यमनेकमुनिसेवितम् ॥ ११ ॥ दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य महापातकिनोऽपि च ॥ मुच्यंते पातकैर्विप्र किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥ १२ ॥ समं सूर्य्यप्रयागेण तीर्थं नान्यत्र विद्यते ॥ ॥ १३ ॥ घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मबहिष्कृते ॥ सेवंते ये

गया, केदारमण्डलमें जितने सुन्दर रमणीक तीर्थहैं, उनके पाप हरनेवाले माहात्म्य हमने सुने, किन्तु हे प्रभो ! आपके मुखकमलसे उत्पन्नहुए अमृतका पान करते २ मेरी तृप्ति नहीं होती ॥४॥५॥ हे सेनापते ! अब केदारपर्य्यन्तके तीर्थोंका वर्णन करिये॥६॥हे देव ! आपने प्रथम मन्दाकिनी नामकी शुभ नदीका जो वर्णन कियाहै, हे षण्मुख ! उसके तटपर जितने क्षेत्र और तीर्थहैं उन्हें वर्णन करिये ॥ ७ ॥ हे महामतिमान् ! मन्दाकिनी नदीके उत्तरी ओर दक्षिण तीरपर जितने तीर्थ और देवमन्दिरहैं, क्षेत्र और नदियेहैं, उन सबहीको मुझ आतुरके प्रति वर्णन करिये ॥ ८ ॥ स्कन्दजी बोले— हे ब्रह्मज्ञानी मुनीश्वर नारदजी ! ! ! तुमने जो कुछ पूछा उसे सुनो, हे तपोधन ! हम प्रधान २ तीर्थोंका वर्णन करतेहैं हे विप्र ! कोलपर्वतसे लेके विशेषकर जहां मन्दाकिनी और गंगाजीका संगम होताहै वह रुद्रक्षेत्रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ अब केदार और मन्दाकिनीके मध्यका वर्णन सुनिये ! वहां अनेक मुनियोंसे सेवित सूर्य्यप्रयागहै ॥ ११ ॥ हे मुनीश्वर ! विशेष कहनेसे क्या ? उस तीर्थके केवल दर्शनमात्रही करनेसे महापातकीभी पापोंसे मुक्त होजातेहैं ॥ १२ ॥ सूर्य्यप्रयागकी समान अन्यत्र कोई तीर्थ नहींहै ॥ १३ ॥ घोर कलियुगमें सब धर्मोंका लोप होजानेपर, हे महामुने ! जो मनुष्य सूर्य्यक्षेत्र महातीर्थका सेवन करतेहैं, सूर्य्यप्रयागमें सूर्य्यकी पूजा करनेवाले

नरास्तीर्थे सूर्यक्षेत्रे महामुने ॥ त एव धन्याः पुरुषाः प्रयागे सूर्यपूजकाः ॥ १४ ॥ अत्रैव मुनिशार्दूल घोरे कलियुगे शिवः ॥ निवसिष्यति भक्तानां रक्षणाय महामते ॥ स्वयं संग्रामभावेन त्यक्तसर्वमहीतलः ॥ १५ ॥ एतस्य दर्शनान्मर्त्यो याति वै परमां गतिम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ कथं सूर्यप्रयागस्य ह्युत्पतिश्चापि वैभवः॥ केन केन तपस्तप्तं किं किं प्राप्तं फलं प्रभो ॥ १७ ॥ स्कंद उवाच ॥ पुरा कैलासके रम्ये नानामुनिगणान्विते॥समासीनं महादेवं व्याघ्रचर्मोपरि प्रभुम्॥पार्वती मामकी माता पप्रच्छ विनयान्विता ॥ १८ ॥ अहं तत्र स्थितो विप्राश्रौषं पुण्यतमं वचः ॥ १९ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव सर्गस्थित्यंतकारक ॥ संशयो मे महानास्ति तं पृच्छामि तव प्रभो ॥ २० ॥ तत्स्थानं ब्रूहि देवेश प्रपन्नायै हि मे प्रभो ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ साधु साधु शृणु प्राज्ञे सुगोप्यमपि ते शिवे॥वदामि पुण्यदेशांश्च भविता यत्र मे स्थितिः ॥ २२ ॥

उन पुरुषोंको धन्यहै ॥ १४ ॥ हे महामते ! मुनिशार्दूल ! घोर कलियुग प्राप्तहोनेपर भक्तोंकी रक्षाकरनेके लिये महादेवजी यहांही निवास करेंगे, कारण कि, समस्त भूमिको छोड़ महादेवजीकी सम्पूर्णतया यहां स्थिति होगी, अतएव इस स्थानके केवल दर्शनमात्र करनेसे मनुष्योंको परमगतिका लाभ होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ नारदजी बोले—सूर्यप्रयागकी उत्पत्ति कैसे हुई ! उसका माहात्म्य क्या है ? और वहां तप करनेसे किस २ को क्या २ फल प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ स्कन्दजी बोले—प्राचीनकालमें एकसमय अनेक मुनियोंसे आकीर्ण हुए सुरम्य कैलासपर्वतमें श्रीमहादेवजी व्याघ्रचर्मके ऊपर बैठेथे, तब हमारी माता पार्वतीजीने नम्रता पूर्वक उनसे यह प्रश्न किया ॥ १८ ॥ हे विप्र ! उस समय वहां मैंभी उपस्थित था, इस लिये मैंने भी उनके पवित्र वाक्य सुने ॥ १९ ॥ पार्वतीजी बोलीं—हे देवाधिदेव महादेवजी ! आप जगत्का निर्माण, पालन और अन्त करनेवाले हैं सो हे प्रभो ! मुझे जो अतिशय सन्देह है उसीको मैं आपसे पूछती हूँ ॥ २० ॥ हे प्रभो ! मुझ शरणागतसे आप उस स्थानका वर्णन करिये ॥ २१ ॥ ईश्वर बोले—धन्य बुद्धिमती धन्य ! ! ! हे शिवे ! जहां हमारी स्थिति होगी, उन गोपनीय देशोंकोभी हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥

एकं लिंगं च नेपाले काश्यां सेतौ तथैव च ॥ केदारे च महाभागे तत्रापि च स्वके स्थले॥ख्याते सूर्यप्रयागाख्ये सद्यो-मुक्तिप्रदे सताम् ॥ २३ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवितुं मां सदा स्थिताः ॥ २४ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कुत्र तद्भद्रे महाक्षेत्रं सूर्याख्यं यत्प्रकीर्त्तितम् ॥ यत्र सामग्र्यभावेन वससि त्वं महेश्वर ॥ ॥ २५ ॥ केदारेभ्यः समुत्पन्नमिदं क्षेत्रं महेश्वरः ॥ कस्य वै तपसा देव बद्धस्तत्र वसत्यलम् ॥ २६ ॥ तन्मे विस्तरतो ब्रूहि यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ नास्ति मत्तो महादेव सुगोप्यं भवतः क्वचित् ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच॥मंदाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा तथालस-तरंगिणी ॥ यस्तयोः संगमस्तत्र पुण्यकर्मसु गोचरम् ॥ तद्भद्रे सूर्य्यप्रयागाख्यं धाम शंभोर्मम प्रिये ॥ २८ ॥ एकदा सप्तमु-नयो विश्वामित्रादयः पुरा ॥ आगतास्तीर्थयात्रायै तपसा दग्ध-किल्विषाः ॥ २९ ॥ मंदाकिन्याः संगमे तु प्राप्ता वै क्रमशः प्रिये ॥ तपः स्थानं चकमिरे विश्वामित्रपुरस्सराः ॥ ३० ॥ शिवसन्न्यस्तमनसो यमैश्च नियमैर्युताः ॥सूर्यप्रयागतीर्थेषु संगमे यत्र नारद ॥ ३१ ॥ लसत्तरंगा पुण्या या तथा मंदाकिनी

एक लिंग नेपालमें, एक काशीमें, और एक सेतुबन्धमें है, एवं एक लिंग केदार मण्डलमध्यवर्ती सूर्य-प्रयाग नाम हमारे विख्यात स्थलमें है, यह सूर्यक्षेत्र सज्जनोंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥२३॥ वहां महादेवजीको सेवा करनेके लिये ब्रह्माजीकी आदिले बहुतसे देवता निवास करते हैं ॥ २४ ॥ पार्वतीजी बोलीं— हे महेश्वर ! जहां आप सम्पूर्णतया निवास करते हैं, वह प्रसिद्ध सूर्यक्षेत्र कहां है ॥ २५ ॥ हे महादेवजी ! इस क्षेत्रकी उत्पत्ति कबसे हुई है, एवं किसके तपके वशीभूत हो आप वहां निवास करते हैं ॥ २६ ॥ यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है तो यह सब विस्तारपूर्वक मेरे प्रति वर्णन करिये, कारण कि, हे महादेवजी ! आप मुझसे कुछभी नहीं छिपाते हैं ॥ २७ ॥ महादेवजी बोले—मन्दाकिनी और अलसतरंगिणी इन दोनोंका जहां संगम है हे प्रिये ! वहीं हमारे निवासका स्थान सूर्यप्रयागहै, शुभकर्म करनेहीसे उसके दर्शन होसक्ते हैं ॥ २८ ॥ एक समय विश्वामित्र आदि सप्तर्षि तीर्थ यात्रा करते २ निष्पाप हो यहां आये ॥ २९ ॥ हे प्रिये ! वे क्रमशः मन्दाकिनी नदीके तटपर पहुँचे, और वहां विश्वामित्र आदि महर्षियोंने तपके लिये स्थान पसन्द किया ॥ ३० ॥ हे नारद ! जहां सूर्य्य प्रयागतीर्थमें संगम होता है वहां यम नियमपूर्वक ॥ ३१ ॥ वहां अलसतरंगा और मन्दाकिनी ये दोनों नदियें हैं, मन्दाकिनी नदीके तटके ऊपर संगमसे एक

परा ॥ मंदाकिन्यास्तटे चोर्द्धे संगमाच्छरसम्मिते ॥ भूमि-
भागे परं तीर्थं विश्वामित्रतपःस्थलम् ॥३२॥ विश्वा मित्राख्य-
तीर्थं तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३३ ॥ ततो वै दक्षिणे
भागे वाशिष्ठं कुंडमीरितम् ॥ तत्र वै स्नानमात्रेण निर्मुक्तः सर्व-
पातकैः ॥ ३४ ॥ तत्र सूर्यशिला दिव्या सरिन्मध्ये महोन्नता ॥
तस्या दर्शनमात्रेण सूर्यलोके महीयते ॥ ३५ ॥ यस्तत्र मुंचति
प्राणान्स याति परमां गतिम् ॥ संगमाद्दण्डनवके ह्यात्रिकुंडमिति
स्मृतम् ॥ ३६ ॥ स्नानमात्रेण तत्रापि मुच्यते सर्वपातकैः ॥
॥ ३७ ॥ ततः शरद्वये विप्र तदधो ज्ञानगोचरम् ॥ गौतमस्य
तपस्तीर्थं त्यक्त्वा हस्तं समागतम्॥३८॥ इदं परमकं तीर्थं सद्यः
शुद्धिकरं परम् ॥ अत्र दानात्तथा स्नानादनंतफलमश्नुते॥३९॥
तद्दक्ष्ये परमं तीर्थं भारद्वाजतपःस्थलम् ॥ तत्र वै स्नानमात्रेण
शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ४०॥ अत्र सप्तर्षिभिः पूर्वं रविराराधितो
यतः ॥ ततः सूर्यप्रयागाख्यं धाम शंभोर्महत्तरम् ॥ ४१ ॥
मंदाकिन्या दक्षिणे वै तीरे परमसिद्धिदः ॥ त्रिपुरेश्वरनामा वै

बाणकी दूरीपर विश्वामित्रके तपकरनेका स्थलहै ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रके तपकरनेका स्थल सब पापोंका नाश करनेवालाहै ॥ ३३ ॥ वहांसे ददिणकी ओर वशिष्ठकुंड है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३४ ॥ वहां ही नदीके मध्यमें उत्तम और विस्तृत सूर्य्य शिला है, उसके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्यको सूर्य्यलोकमें ऐश्वर्य्यका उपभोग प्राप्त होता है ॥३५॥ जो व्यक्ति वहां प्राणोंका परित्याग करता है, उसकी परम गति होती है, वहां संगमसे नौ दण्डकी दूरीपर अत्रि कुण्डहै ॥ ३६ ॥ उसमें भी केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाताहै ॥ ३७ ॥ उसके नीचे दो बाणकी दूरीपर ज्ञानियोंके दर्शन प्राप्त होनेके योग्य महर्षि गौतमजीके तपका स्थानहै ॥ ३८ ॥ यह परमतीर्थ शीघ्रही शुद्धि करानेवाला है, यह स्नान और दान करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ फिर उसके दक्षिणकी ओर परम-तीर्थस्वरूप भरद्वाजजीके तपका स्थानहै, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे शिवधामकी आराधना प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ यहां प्राचीनकालमें सप्तर्षियोंने सूर्यनारायणकी आराधना करी थी, इसी कारण महादेवजीके इस उत्कृष्ट धामका सूर्य्य प्रयाग नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४१ ॥ मन्दाकिनी

संस्थितः परमेश्वरः ॥ ४२ ॥ दर्शनादेव संयाति शैवं पदमनुत्तमम् ॥ रुद्राध्यायेन योऽप्यत्र ह्यभिषेकं महेश्वरे ॥ करोति भक्त्याभक्त्या वा न पुनः स्तनपो भवेत् ॥ ४३ ॥ हतराज्योऽपि यो राजा ह्यत्रपूजनमाचरेत ॥ पक्षेण शत्रवस्तस्य नाशमायांति नारद ॥४४॥ घृतेन मधुना चैव योऽभिषेकं समाचरेत्॥ राजानो दासतां यांति किं पुनः प्राकृता नराः ॥ ४५ ॥ यस्तल्लिंगं परं दिव्यं त्रिपुरेश्वरसंज्ञितम् ॥ स्नापयेत्पयसा वापि तस्य गावः समेधिताः ॥ ४६ ॥ भवंति चिरकालेन धनधान्यानि भूरिशः ॥ गंगाजलेन यस्तत्र त्रिपुरेश्वरसंज्ञितम् ॥ स्नापयेत्तु महादेवं स वै मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ बिल्वपत्रं फलं वापि सोमवारे प्रयच्छति ॥ स याति भवनं शंभोः पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४८ ॥ इति ते कथितं दिव्यं त्रैपुरेश्वरसंज्ञितम् ॥ लिङ्गं

...के दक्षिण तीरपर परम सिद्धियोंके देनेवाले त्रिपुरेश्वर नाम महादेवजी विराजमानहैं ॥४२॥ ...के दर्शन करनेसे मनुष्योंको सर्वोत्तम शिवधामकी प्राप्ति होतीहै और जो मनुष्य भक्तिसे अथवा ...ना भक्तिसे रुद्राध्याय पढकर महादेवजीका अभिषेक करता है, उसे फिर कभी माताका स्तन... ...न करना नहीं होता ॥ ४३ ॥ जिसके राज्यका अपहरण होगया है ऐसा राजा यहां महादेव... ...का पूजन करताहै, सुनो नारद! एक पक्षमें उसके शत्रुओंका सत्या नाश होजाताहै॥४४॥जो घृत ...और मधु (शहत) से रुद्राभिषेक करताहै, प्राकृत (सामान्य) पुरुषोंका तौ कहनाही क्या ...है, बड़े २ राजाभी उसके दास होजाते हैं ॥ ४५ ॥ एवं जो मनुष्य त्रिपुरेश्वर महालिंगको दुग्ध... ...स्नान कराता है, उसकी गौओंकी वृद्धि होती है ॥ ४६ ॥ और चिरकालपर्य्यन्त उसे विपुल ...धन धान्य प्राप्त होताहै, और जो पुरुष गंगाजलसे त्रिपुरेश्वर महादेवको स्नान कराता है, उसे ...मुक्तकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति सोमवारके दिन बिल्वपत्र और बिल्वफल त्रिपुरेश्वर महादेवजीके अर्पण करताहै, वह महादेवजीके ऐसे धाममें जाता है, जहाँसे फिर लौटना कठिन... ॥ ४८ ॥ इस प्रकार हमने सांसारिक बन्धनसे मुक्ति लाभ करने वाले त्रिपुरेश्वर संज्ञक परम...

परमकं दिव्यं भवमोक्षप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ इति ते कथितं दिव्यं सूर्यतीर्थं परं महत् ॥ अस्य श्रवणमात्रेण प्राप्यते शिवमंदिरम् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासमाहात्म्ये सूर्यकुंडमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

दिव्य लिंगका तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ४९ ॥ और दिव्य सूर्य्य प्रयागकाभी माहात्म्य हमने तुम्हें सुनाया, इसका केवल श्रवण करनेहीसे शिवधामकी प्राप्ति होती है ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां चतुर्नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

पञ्चनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९५.

तत उत्तरदिग्भागे क्रोशखंडे महेश्वरि॥छिन्नमस्तेश्वरीपीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥१॥ तत्राहोरात्रमपि च यो विद्यां जपते पराम् ॥ सिद्धिं स परमां प्राप्य शिवलोकमवाप्नुयात् ॥२॥भीमाधारेति विख्याता वामभागे महार्थदा ॥ अतिभीमतमं स्थानं तत्र भीमेश्वरः शिवः ॥ ३ ॥ तत्र गुह्यं परं क्षेत्रं देव्याः पीठं महेश्वरि ॥ ४ ॥ महिषान्मेषकांश्चैव तथाजांश्च महोन्नतान् ॥ प्रयच्छति बलित्वेन श्रीदेव्यै तत्र पीठके ॥ इह लोकेऽचिराल्लक्ष्मीं प्राप्यांते परमं लभेत् ॥ ५ ॥ अथ तत्पूर्वभागे वै मंदाकिन्यास्तटे शुभे ॥ पार्वतीक्षेत्रमाहात्म्यं पापानां शुद्धिकारकम् ॥ ६ ॥ तत्र वै पार्व-

महादेवजी बोले—हे महेश्वरि ! वहांसे उत्तर दिशाकी ओर पाव कोशकी दूरीपर शीघ्रही विश्वास दिलानेवाला छिन्नमस्तेश्वरी पीठ है ॥ १ ॥ वहां जो पुरुष केवल एकही अहोरात्र परमा विद्याका जपकरताहै, वह परम सिद्धिका उपभोग करके शिवलोकमें जाताहै ॥ २ ॥ उसके वाम भागमें प्रभूत अर्थ प्रदान करनेवाली भीमा नामकी धारा विख्यातहै, वह अत्यन्तही भयानक स्थानहै और वहांही भीमेश्वर महादेवजी वर्त्तमान हैं ॥ ३ ॥ हे महेश्वरि ! देवीजीका यह पीठ परम गुप्त क्षेत्रहै ॥ ४ ॥ इस पीठमें जो पुरुष भगवतीके निमित्त महिष (भैंसे) मेष (मेढे) और अज (बकरों) की बलि प्रदान करताहै, उसे इस लोकमें विपुल लक्ष्मी और परलोकमें परम पदकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ वहांसे पूर्वकी ओर मन्दाकिनीके शुभतटके ऊपर पार्वती क्षेत्र है, उसका माहात्म्य पापियोंकी शुद्धि करानेवालाहै ॥ ६ ॥ सब पापोंका निवारण करनेवाला वहां ही पार्वती

तीकुंडं सर्वपापनिवारणम् ॥ सर्वकामप्रदं चैव तथायुर्वर्द्धनं परम् ॥ ७ ॥ तत ईशानदिग्भागे नदी परमपावनी ॥ कमंडलुभवा ख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ ८ ॥ चक्रुः सर्वे च मुनयः कमंडलुभवैर्जलैः ॥ पुण्यामति तरां देवि मेनिरे तीर्थवारिणः ॥ इयं यतः समुत्पन्ना ततस्तीर्थमयी मता ॥ ९ ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे शिवलिंगं महाप्रभम् ॥ जलेश्वर इति ख्यातं जलमध्ये यतो भवः ॥ १० ॥ तस्य दर्शनमात्रेण नरः शिवमयो भवेत् ॥ जलेश्वरं सकृद्दृष्ट्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ११ ॥ बिल्ववृक्षोऽपि तत्रैव रुद्राक्षप्रतिमानि हि ॥ फलानि तस्य देवेशि वर्त्तंते गिरिकन्यके ॥ १२ ॥ तानि बिल्वानि पक्वानि समानीय शुभानने॥ ग्रंथयित्वा शुभां मालां संस्कारपरिवर्जिताम् ॥ ततो मंत्रं जपेद्धीमान्षड्वर्णं भक्तितत्परः ॥ १३ ॥ तस्मिन्नेव स्थले रम्ये जलं केदारसन्निधौ ॥ श्रीयुतोऽपि जपेत्सिद्धिर्यदि धीरो भवेन्नरः ॥ यंयं चिंतयते कामं तंतं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ १४ ॥ जलेश्वरं महालिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ तस्य दर्शनमा-

कुण्ड है, वह सब कामनाओंका पूर्ण, और आयुकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ७ ॥ वहांसे ईशान दिशाकी ओर कमण्डलुभवा नामकी परम पवित्र नदी है, वह सब दरिद्रकी नाश करनेवालीहै ॥ ८ ॥ हे देवि ! सब मुनियोंने उसे कमण्डलुके जलसे अतिशय पवित्र बनायाथा, इसी कारण इसे सर्वतीर्थमयी मानागयाहै ॥ ९ ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर अत्यन्त प्रभावाला जलेश्वर नाम लिंग जलके बीचमें विद्यमान है ॥ १० ॥ उसके दर्शन मात्रही करनेसे पुरुष शिवरूप होजाता है, विशेष क्या कहै ? जलेश्वर महादेवजीके एकही बार दर्शन करके पुरुष कृतार्थ हो जाताहै ॥ ११ ॥ हे देवेश्वरि ! गिरिराज कुमारि ! वहां एक बिल्व वृक्षहै, उसके फल रुद्राक्षकी सदृश होतेहैं ॥ १२ ॥ हे सुमुखि ! उन पके हुए बिल्वफलोंको लाकर गूंथके एक माला बनालेनी चाहिये, और इसका संस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ फिर भक्तिमें तत्पर हो बुद्धिमान्को चाहिये कि, षडक्षरमन्त्रका जप करै॥ १३ ॥ उसी सुरम्य स्थलमें जलेश्वर महादेवजीके निकट दश सहस्र जप करनेसे सिद्धिका लाभ होताहै और वह पुरुष जिस२वस्तुकी कामना करताहै उसको उसीकी प्राप्ति होतीहै,॥ १४ ॥विशेष कहनेकी कोई आवश्यकता नहींहै, जलेश्वर लिंग तत्कालही विश्वास उत्पन्न करादेताहै ॥ और यह

त्रेण जन्मत्रयसमुद्भवम् । नश्यते पातकं सर्वं ममैतत्प-रिकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥ आम्यतां गते देवि केदारे चरमे युगे ॥ इदमेव महालिंगं केदाराख्यं भविष्यति ॥१६ ॥ तत्रेन्द्रासनका देवी महापातकनाशिनी ॥ तस्याः संदर्शनादेव कृतकृत्यो भवे-न्नरः ॥ १७ ॥ य इमां भवतीं भव्यां ध्यायेत्कार्य्यप्रसाधिनीम् ॥ तस्य कार्य्याणि सिध्यंति सत्यमेव मयोदितम् ॥ १८ ॥ भूत-ग्रस्तो विषग्रस्तो यो नरोऽत्र समाश्रयेत् ॥ विषं तस्य क्षयं याति स्वस्थो भवति तत्क्षणात् ॥ १९ ॥ सर्पेणापि तथा दष्टस्तत्र देव्या गृहे प्रिये ॥ गच्छेत्तदैव तस्यापि विषं भवति भस्मसात् । २० ॥ अस्मिन्नेव महापीठे इंद्रो जात-स्तदासनम् ॥ तत्र हींद्रासनाख्याता सर्वदानवमर्दिनी ॥ २१ ॥ भ्रष्टराज्योऽपि यो राजा संश्रयेदिंद्रवाहनाम् ॥ स्वस्य राज्यं स चाप्नोति तथा शत्रुक्षयं परम् ॥ २२ ॥ इयं हि वैष्णवी शक्तिः

बातभी बिलकुल सत्यहै कि, उक्त लिंगके दर्शनमात्र करनेहीसे तीन जन्मके संचित पापोंका नाश होजाताहै ॥ १५ ॥ हे देवि अन्तिमयुग आनेपर ये ही महालिंग केदारेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ॥ १६ ॥ हे देवि ! वहां इन्द्रासना नामकी भगवतीहैं, वे सब पापोंका नाश करनेवालीहैं, उनके दर्शनमात्रही करनेसे मनुष्य कृतार्थ होजताहै ॥ १७ ॥ सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाली इन भग-वतीकी जो व्यक्ति साधन करताहै, हमारा यह कथन निपट सत्यहै कि, उसके सब कार्य्य सिद्ध होजातेहैं ॥ १८ ॥ भूतबाधा अथवा विषसे ग्रस्तहोकर जो मनुष्य इन देवीजीका आश्रय लेताहै, उसके विषका नाश होकर वह क्षणभरमें स्वस्थ होजाताहै ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! यदि वहां देवीजीके मन्दिरमें किसीको सर्पनेभी डसलिया हो तौ भी वह देवलोकको जाताहै और उसका विष क्षणभरमें नष्ट होजाताहै ॥ २० ॥ इसी स्थानमें इन्द्र देवीजीके आसन बनेथे, इसी हेतु सब दैत्योंका नाश करनेवाली देवीजीका इन्द्रासना नाम हुआहै ॥ २१ ॥ जिस राजाका राज्य नष्ट होगया हो वह यदि इन्द्रासना देवीकी शरणमें जाय तौ, उसके शत्रु नष्ट होजाते और उसे अपने राज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ २२ ॥ यह देवी साक्षात् विष्णुभगवान्की शक्तिहै, अतएव श्वेत गन्धका लेपन माला

श्वेतगंधानुलेपनैः॥माल्यैर्वस्त्रैस्तथा श्वेतैः संतुष्टा भवति प्रिये ॥
॥ २३ ॥ यस्तु छगबलिं दद्यादेव्यै स मनुजाधमः ॥ प्रयाति
नरके घोरे रौरवे रावसंकुले ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कांदे केदार-
खंडे कैलासमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चनवत्युत्तरशततमोऽ-
ध्यायः ॥ १९५ ॥

...र श्वेत वस्त्रोंसेही वे सन्तुष्ट होतीहैं ॥ २३ ॥ जो नीच पुरुष उक्त देवीजीको बकरेकी बलि देता
...ह भयंकर (पापियोंके) नाद संपूर्ण हुए रौरवनरकमें जाताहै ॥ २४ ॥ (कै. मा. स.)

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां पञ्चनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

षण्णवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९६.

ईश्वर उवाच ॥ ततो वै पूर्वदिग्भागे गव्यूतौ ते परं स्थलम् ॥
यत्र कूर्मासना देवी कूर्मपृष्ठे व्यवस्थिता ॥ १ ॥ कूर्मरूपी पुरा
विष्णुः संस्मार जगदंबिकाम् ॥ धराया धारणे देवि मंदरस्य च
धारणे ॥ सेयं देवी समाख्याता सर्वशक्तिर्महेश्वरी ॥ २ ॥
पार्वत्युवाच ॥ कथं कूर्मेण सा देवी संस्तुता स्वात्मशक्तये ॥
तदस्याः स्तोत्रराजं मे वक्तुमर्हसि मत्प्रिय ॥३॥ ईश्वर उवाच ॥
शृणु देवि परं स्तोत्रं यत्कूर्म्मेण पुरा कृतम् ॥ यस्य श्रवणमा-
त्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ कूर्म उवाच ॥ प्रकृत्यै परमे-
शान्यै पार्वत्यै सुखहेतवे॥नमो नमस्ते देवेशि सर्वशक्त्यै नमो-
नमः ॥ ५ ॥ नमो मंगलरूपायै शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ सर्व-

महादेवजी बोले– वहांसे पूर्वकी ओर दो कोशकी दूरीपर कूर्मपृष्ठके ऊपर स्थित हुई कूर्मा-
...ना देवीजी विराजमानहैं ॥ १ ॥ पूर्वकालमें श्रीविष्णु भगवान्‌ने कूर्मरूप धारणकर भूमि और
...राचलके धारण करनेके तईं देवीजीका स्मरण कियाथा, तभीसे सर्वशक्तिमती महेश्वरी प्रसिद्ध
॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं– अपनी शक्तिके लिये कूर्म भगवान्‌ने कैसे इनकी स्तुति करीथी, हे
...प्रिय ! हमारे प्रति उस स्तोत्रका वर्णन करिये ॥ ३ ॥ ईश्वर बोले–प्रथम कूर्मजीने जो स्तोत्र
...था, हे देवीजी ! अब उसे सुनो, उसका श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥
४ ॥ कूर्मजी बोले–हे ईश्वरी ! तुम साक्षात् प्रकृती और परमेश्वरीहो, हे पार्वती ! सुखकी हेतु
तुम्हीं हो, हे सर्वशक्तिमती ! हम तुम्हैं नमस्कार करतेहैं ॥ ५ ॥ हे मंगलमूर्त्ति शर्वाणी !

शक्तिस्वरूपिण्यै भवान्यै ते नमोनमः ॥६॥ त्रिपुरायै नमस्तेऽस्तु त्रिशीर्षायै नमोनमः ॥ ब्रह्माण्यै भद्ररूपिण्यै भद्रदायै नमोनमः ॥ ७॥ सहस्राशिरसे तुभ्यं सहस्राक्ष्यै नमोनमः ॥ त्रिपुरघ्न्यै महामाये नमो विश्वंभरप्रिये ॥ ८ ॥ विश्वाधारे नमस्तुभ्यं नमो ब्रह्मपरायणे ॥ जगत्कर्त्र्यै नमस्तेऽस्तु जगद्धात्र्यै नमोनमः ॥ ॥ ९ ॥ अंबिकायै नमस्तेऽस्तु त्र्यंबिकायै नमोनमः ॥ हरभक्त्यै नसस्तेऽस्तु विष्णुभक्त्यै नमोनमः ॥ १० ॥ वराहतीक्ष्णदंष्ट्रायै नरसिंहासनस्थिते ॥ नमः कुठारधारायै खड्गशक्त्यै नमोनमः ॥ ११ ॥ नमो ब्रह्मण्यरूपायै स्वरूपायै नमोनमः ॥ पुरारिदयितायै ते नमः करुणया युते ॥ १२ ॥ नमः करुणहीनायै भीषणायै नमोनमः ॥ नमो दंष्ट्राकरालायै भक्तिगम्यै नमोनमः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इति स्तुता तु कूर्म्मेण प्रत्यक्षं च वरं ददौ ॥ धराभारसहां शक्तिं ददौ तस्मै महात्मने॥ ॥१४॥ ततो भगवती तेन शिरसाधाय तां पुरा॥अस्मिन्देशे तु

आप सर्वशक्तिस्वरूपिणी हैं और भवानी भी आपही हैं हम आपको प्रणाम करते हैं॥६॥हे त्रिपुरा! आपके तीन शिरहैं आपही कल्याण रूपिणी ब्रह्माणी स्वरूपाहैं, हे सुभद्र ! तुम्हें वारंवार नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे देवीजी ! आपके सहस्रों शिर और सहस्रों नेत्र हैं,हे महामाया ! तुमने ही त्रिपुरासुरका वध किया था, हे विश्वंभरकी प्यारी ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मपरायणी ! समस्त विश्वकी आधार तुम जगत्की रचने और पालने वाली हो हम तुम्हें नमस्कार करतेहैं ॥ ९ ॥ हे त्र्यम्बके ! तुम सबकी अम्बिकाहो,तुम शिव और विष्णुकी भक्तिस्वरूप, हो सुतराम् हम वारंवार तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ वराहकी समान तुम्हारे तीक्ष्ण दांतहैं, तुम नरसिंहके ऊपर स्थित रहती हो; कुठारधारा और खड्गकी शक्तिभी तुम्ही हो, हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ हे सुन्दरी ! तुम महादेवजीकी पत्नीहो, तुम्हारा चित्त दयालुहै, सुतराम् तुम्हें प्रणाम किया जाता है ॥ १२ ॥ हे भीषणमूर्त्ति धारिणी ! तुम्हारा चित्त करुणाहीनभी है, तुम्हारी दंष्ट्रा कराल हैं, और भक्तिसे तुम्हारी प्राप्ति होती है, सुतराम् हम वारंवार तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर देवीजीने प्रत्यक्ष होकर भूमिके धारण करनेकी शक्ति रूप वर उन्हें प्रदान किया ॥ १४ ॥ तब उक्त भगवतीको शिरोपरि धारणकर यहां स्थापित करके

संस्थाप्य ययावब्धितटं पुनः ॥ १५ ॥ इदं कूर्म्मासनास्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ तस्य वै तस्करारातिभयं नैवोपजायते ॥ १६ ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु यो गच्छेत्कूर्ममस्तकाम् ॥ प्राप्नोति परमामृद्धिं मनोऽभिलषितं तथा ॥ १७ ॥ इदं पीठं परं गुह्यं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ य इच्छेद्विपुलां सिद्धिं सोऽत्र तिष्ठेदिनत्रयम् ॥ १८ ॥ यस्या महत्त्वश्रवणान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥ दर्शनादेव यस्यास्तु परं पदमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कूर्मासनपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम षण्णवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

भगवान् फिर क्षीरसागरके तटपर चलेगये ॥ १५ ॥ जो पुरुष प्रातः काल उठते इस कूर्मासना स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे चोर और शत्रुजनित भय कभीभी प्राप्त नहीं होगा ॥ १६ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करके जो मनुष्य कूर्मासनाकी यात्रा करताहै उसे परम सिद्धि और मनोरथ पूर्तिकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ शीघ्रही विश्वास दिलानेवाला यह पीठ अत्यन्तही गुप्त रखने योग्य है, जो व्यक्ति विपुल सिद्धि लाभ करनेकी इच्छा करताहो उसे चाहिये कि, तीन दिनपर्य्यन्त यहां निवास करे ॥ १८ ॥ इन देवीजीके माहात्म्यको सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त होजाताहै, और इनके दर्शनमात्र करनेसे परम पदकी प्राप्ति होतीहै ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां षण्णवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

सप्तनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९७.

ईश्वर उवाच ॥ अन्यच्छृणु महापीठं मदीयं परमं मतम् ॥ यस्मिन्गमनादेव मुच्यते सर्वपातकैः ॥१॥ ततो वै पूर्वदिग्भागे माने गव्यूतिमात्रके ॥ मुनिगंगेति विख्याता मुनिप्रस्वेदसंभवा ॥ २ ॥ तस्याश्च पश्चिमे भागे नाम्ना शीलेश्वरः स्मृतः ॥ महेश्वरः सदा ख्यातो न गम्यो दुरितैरयम् ॥ ३ ॥ शीलो नाम

महादेवजी बोले—अब और हमारे महा पीठको सुनो, हे देवि ! हमारे उस पीठमें केवलमात्र जानेसे पुरुषके समस्त पातक दूर होजाते हैं॥ १॥वहांसे पूर्वदिशाकी ओर दो कोसकी दूरीपर मुनिके स्वेद (पसीने) से उत्पन्नहुई मुनिगंगा विख्यातहै ॥ २ ॥ वहांसे पश्चिम दिशाकी ओर शीलेश्वर महादेवजी हैं, पापियोंको उनकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३ ॥ हे सुमुखी देवी ! पूर्वसमयमें शील

पुरा देवि परमर्षिः शुभानने॥आराधितो महादेवस्तेन शीलेश्वरः
स्मृतः ॥ ४ ॥ वैशाखे मासि यस्तत्र मां चैव विधिनार्च-
येत् ॥ धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सत्यं तस्य महेश्वरि ॥ ५ ॥
येन शीलेश्वरं लिंगं भक्तिभावार्चितं प्रिये ॥ स याति परमांल्लो-
कान्पुनरावृत्तिवर्जितान्॥६॥तेन सर्वं कृतं कर्म देव्याः सन्तोष-
हेतवे ॥ तस्मात्परतरं स्थानं नास्ति कुत्रापि भूतले ॥ गोतव्यं
देवदेवेशि स्थानमेतन्मम प्रियम् ॥ ७ ॥ मंदाकिन्याः पूर्वतटे
कुंभजन्माश्रमः प्रिये ॥ तत्र नित्यं कुंभभवो मत्पूजनपरायणः॥
॥ ८ ॥ अस्मिन्नाश्रमके तन्वि यः स्याद्धन्योऽधिकःपुमान् ॥
तं चेन्न पूजयेद्भक्त्या तस्य सर्वं विनश्यति ॥ ९ ॥ अगस्त्ये-
श्वरो महादेवस्तत्रास्ति भवमोचकः ॥ तस्यार्चनान्नरो याति
सिद्धिमिष्टां महत्तराम् ॥ १० ॥ ततः पश्चिमदिग्भागे गव्यूतौ
क्रोशके तथा ॥ मुनीश्वर इति ख्यातं मदीयं लिंगमुत्तमम् ॥
॥ ११ ॥ इदं परं गुह्यपीठं दुर्जनान्नैव दर्शयेत् ॥ रुद्रमंत्रं जपेदत्र

नाम मुनीश्वरने महादेवजीकी आराधना करीथी, इसी हेतु उनका शीलेश्वर नाम विख्यात हुआहै ॥ ४ ॥ वैशाखके महीनेमें जो व्यक्ति विधिपूर्वक वहां हमारी पूजा करताहै, हे महेश्वरी ! वह सचमुचही धनधान्यसे पूर्ण होजाता है ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक शीलेश्वर महादेवकी पूजा करता है, उसे ऐसे परम लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, जहांसे फिर लौटना कठिन है ॥ ६ ॥ और मानो उस पूजन करने वाले व्यक्तिने देवीजीके सन्तोषके लिये सबकुछही करलिया है, क्यों कि–भूमिके ऊपर इससे अधिक पवित्र और कोई स्थान नहीं है, सुतराम् हे देवदेवेश्वरी हमारे प्यारे इस स्थानको गुप्तही रखना चाहिये ॥ ७ ॥ मन्दाकिनी नदीके पूर्व तटके ऊपर हे प्रिये ! अगस्त्यजीका आश्रमहै, वहां अगस्त्यजी नित्यही हमारी पूजामें तत्पर रहते हैं ॥ ८ ॥ हे तन्वंगी ! इस आश्रममें जो पुरुष अधिक धान्यशाली होकर भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा नहीं करता, उसकी सब विभूति नष्ट होजाती है ॥ ९ ॥ वहांही सांसारिक बन्धनसे छुडाने वाले अगस्त्येश्वर नाम महादेवजी हैं, उनका अर्चन करनेसे पुरुषोंको प्रभूत इष्ट सिद्धिका लाभ होता है ॥ १० ॥ वहांसे पश्चिमकी ओर दो कोसकी दूरीपर मुनीश्वर नाम हमारा उत्तम लिंग है ॥ ११ ॥ हमारा यह पीठ परम गोपनीय है, दुर्जनोंको

तस्य स्युः सर्वसंपदः ॥ १२ ॥ दुग्धेन स्नापयेद्यस्तु लिंगं परमदुर्लभम् ॥ मासमेकं महेशानि तस्य स्याद्धनधान्यकम् ॥ ॥१३॥ सोमवारे तु यस्तत्र मदीये लिंग उत्तमे ॥ पूजनं कुरुते मर्त्यः केदारगमतोऽधिकम्॥१४॥फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णायामत्र मानवः ॥ करोति दर्शनं यो मे न स भूयोऽभिजायते ॥ १५ ॥ तस्य स्यात्सकलाभीष्टा सिद्धिस्तेनैव कर्मणा ॥१६॥ बहुमायाभिधे कूटे पीठं सिद्धेश्वरं परम् ॥ मया यत्र महादेवि कृतं मायानिदर्शनम् ॥१७॥ अंधकस्य वधे पूर्वं गच्छता भीमरूपिणा ॥ बहुमायाचलस्तस्माद्यत्र मे नियता स्थितिः ॥ ॥ १८ ॥ मायाविनी नदी तत्र महादेवप्रसाधिनी ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण शुद्धो भवति मानवः ॥ १९ ॥ ततो वै दक्षिणे भागे लास्यकूटो गिरिर्वरः ॥ तत्र लास्येश्वरोऽहं वै लिंगरुपेण संस्थितः ॥ २० ॥ अत एव महानद्यो निःसृता मम तृप्तितः ॥ तिस्रस्तत्र सरिच्छ्रेष्ठा लास्यगंगाति विश्रुता ॥ २१ ॥ स्वेदबिंदू-

के दर्शन नहीं कराने चाहिये, यहां रुद्रमन्त्रके जप करनेसे सब सम्पत्तियोंकी प्राप्ति होती है १२ ॥ जो व्यक्ति परम दुर्लभ लिंगको दुग्धसे स्नान कराता है, हे महेश्वरी ! एक महीनेही में धनधान्यकी वृद्धि होती है ॥ १३ ॥ जो पुरुष सोमवारके दिन हमारे उक्त लिंगकी पूजा करे, उसे केदारजीकी भी यात्रासे अधिक फल मिलता है ॥ १४ ॥ फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन जो मनुष्य यहां हमारे दर्शन करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ १५ ॥ और एकही कर्मके करनेसे उसे सब अभीष्ट सिद्धिका लाभ होता है ॥ १६ ॥ बहुमायाभिध पर्वत ऊपर सिद्धेश्वर पीठ है, हे महादेवी ! वहां हमने भगवतीके दर्शन किये थे ॥ १७ ॥ उस हम भयानकरूप धारण कर अन्धकासुरका वध करनेकेलिये जारहे थे; बहुमायाचलके ऊपर का निवास भी अवश्य ही रहता है ॥ १८ ॥ महादेवजीका साधन करानेवाली मायाविनी भी वहां नदी है, उसके जलका केवल स्पर्श ही करनेसे मनुष्य शुद्ध होजाता है ॥ १९ ॥ दक्षिणकी ओर लास्यनाम श्रेष्ठ पर्वत है, वहां हम लास्येश्वर नामसे लिंगरूप धारणकर उप- रहते हैं ॥ २० ॥ हमारी तृप्ति होनेके कारण यहांसे महानदियें निकलती हैं यद्यपि वे नदियें हैं, परन्तु उनमें लास्यगंगा विख्यात है ॥ २१ ॥ हे शिवे ! नृत्य करते समय हमारे

द्भवा यस्मान्नृत्यतो मे पुरा शिवे ॥ तत्पयःपानमात्रेण परमां शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ शिवोऽप्यत्रैव वसति विस्रस्तो नृत्यकर्मणि ॥ तत्र शेषेश्वरः शंभुर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ २३ ॥ मद्भवे लास्यगंगाख्ये मज्जनं यस्समाचरेत् ॥ मदीये भवनेऽसौ वै मोदते मद्गणैस्सह ॥ २४ ॥ स्पर्शमात्रेण तस्यापि परमां शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ तटे लास्यतरे गत्वा ह्यतो वै योजनद्वये ॥ पश्चिमायां दिशि प्रोक्तं तव पीठं वरं प्रिये ॥ २६ ॥ भटागारमिति प्रोक्तं मद्भटैर्यत्र सर्वदा ॥ स्थीयतेऽतः समाख्यातं भटाः स्युः सर्वसिद्धयः ॥ २७ ॥ इति सर्वं लास्यगंगातीरे ह्युक्तं महास्पदम् ॥ यस्य श्रवणतो देवि पातकैर्मुच्यते नरः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

प्रस्वेदसे उसकी उत्पत्ति हुई थी, उसका जल पीनेसे परम शुद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ नृत्यकर्मसे थककर पार्वतीजी भी यहांही निवास करती हैं, वहां भोग और मोक्षके देनेवाले शेषेश्वर नाम महादेवजी विद्यमान हैं ॥ २३ ॥ लास्य गंगा नाम हमारे प्रस्वेदमें जो मनुष्य स्नान करते हैं, वे हमारे शिवलोकमें जाय शिवगणोंके साथ आनन्द करते हैं ॥ २४ ॥ और उसके स्पर्श करनेसे अतीव शुद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ लास्यगंगासे पश्चिमदिशाकी ओर दो योजनकी दूरीपर तुम्हारा परमप्रिय पीठ है ॥ २६ ॥ उस पीठका भटागार नाम है, हमारे वीरभट वहां निवास करते है इसीसे उसका यह नाम प्रसिद्ध हुआ है, एवं भटोंकोभी वहां समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति हुई थी ॥ २७ ॥ लास्यगंगाके तीरके तीर्थोंका इसप्रकार हमने वर्णन किया, हे देवी ! इस आख्यानको सुनकर पुरुष सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सप्तनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९८.

ईश्वर उवाच ॥ अन्यच्चापि परं स्थानं शृणु देवि यथातथम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण पापं जन्मकृतं दहेत् ॥ १ ॥ अत आग्नेयदिग्भागे मंदाकिन्यास्तटे परे ॥ सत्यतारो महाद्रिश्च यत्र तारागणैः पुरा ॥ आराधितो महादेवस्तुंगताप्रतिपत्तये ॥ २ ॥ यत्र सत्त्वेन भावेन समाराधित ईश्वरः ॥ ताराभिः परमोऽहं वै सत्यताराभिधस्ततः ॥ ३ ॥ तुंगतां वै यतः प्राप्तास्ततस्तुंगेश्वरः शिवः॥इदं परं मम स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४ ॥ तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम्॥५॥ततो वै दक्षिणे भागे शिवश्रीः सरिदुत्तमा ॥ तस्यां स्नानान्नरो याति परमं पदमैश्वरम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे तुंगेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

महादेवजी बोले—हे देवि ! अब ऐसे परमपीठका वर्णन करते हैं जिसके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्यके जन्मजन्मार्जित पाप नष्ट होजाते हैं, उसे श्रवण करो ॥ १ ॥ ...के अग्निकोणमें मन्दाकिनीके तटपर सत्यतार नाम एक पर्वत है, वहां पूर्वकालमें ...के गणोंने उन्नति लाभ करनेके लिये महादेवजीकी आराधना करी थी ॥ २ ॥ ...भावसे गणोंके द्वारा आराधन किये जानेके कारण पर्वतका सत्यतार नाम होगया है ॥ ३ ॥ ... उन्हें तुंगताकी प्राप्ति हुई अत एव महादेवजीका तुंगेश्वर नाम हुआ है, यह परमोत्तम स्थान ...ताओंके लियेभी दुर्लभ है ॥ ४ ॥ उसके दर्शन मात्र ही करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर शिवश्री नामकी उत्तम नदी है, उसमें स्नान करनेसे पुरुषोंको ...देवजीके परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामष्टनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

नवनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः १९९.

॥ ईश्वर उवाच ॥ अन्यच्चापि परं स्थानं दुर्लभं दुष्टचेतसाम्॥ बहुलिंगेश्वरो देवः प्राणिनां मुक्तिदः परः ॥ १ ॥ तीरे ह्यलकनंदायाः परं क्षेत्रं मतं मम ॥ कुर्वंति देवतास्तत्र नित्यं मदभिषेचनम् ॥ २ ॥ तत्र मे बहुलिंगानि केदारायां महेश्वरि ॥ जातं माहेश्वरं लिंगं गंगायां दुर्लभं परम् ॥३॥ याति मद्भवनश्रेष्ठं यस्तत्र स्नानमाचरेत् ॥४॥ ततो वै पूर्वभागे तु ह्यलकनंदापरे तटे॥पर्णाश्रमोऽपरस्तत्र यत्र पर्णाशनो मुनिः॥तपस्तेपे निराहारः पर्णमात्रकृताशनः ॥५॥ ततोहं तत्र देवेशि स्थितः प्राणिहितेरतः ॥६॥ततः पूर्वदिशि प्राज्ञे नग्नोऽहं समवस्थितः॥विरहे तव वैराग्यमापन्नो दिव्यवर्षकम् ॥ सहस्रं वै ततो देवा मामुपासितुमागताः ॥ ७ ॥ उपास्यमानो देवैस्तु ह्याविर्भूतोऽहमीश्वरः ॥ त्वं च तत्र स्थिता देवि मम प्रियचिकीर्षया ॥८॥ इदं मे परमं स्थानं त्वत्तश्च प्रियमुत्तमम् ॥ तस्मिन्नलकनंदायास्तीरे परमपावने ॥ देवीकुंडमिति ख्यातं तव लोकस्य दायकम् ॥ ९ ॥ ततः पर-

महादेवजी बोले— दुष्टपुरुषोंको जिसकी प्राप्ति दुर्लभ है, ऐसे परम दुर्लभ स्थानका अब हम वर्णन करते हैं, प्राणियोंको मुक्तिप्रदान करनेवाले बहुलिंगेश्वर नामके महादेवजी है ॥ १ ॥ अलकनन्दाके तीरपर उनका परम क्षेत्र है, वहां देवतालोग नित्यही हमारा अभिषेक करते हैं ॥ २ ॥ हे महेश्वरी ! वहां कन्दरामें हमारे बहुतसे लिंग हैं, और गंगाजीमें एक परम दुर्लभ माहेश्वर लिंग है ॥ ३ ॥ वहां स्नान करनेवाला व्यक्ति हमारे लोकको चला जाता है ॥ ४ ॥ वहांसे पूर्वकी ओर अलकनन्दाके दूसरे तटपर पर्णाश्रम है, वहां पर्णाशनमुनिने केवल पत्तोंहीका भोजन कर अन्य आहार परित्यागपूर्वक तप किया था ॥ ५ ॥ तबसे हे देवेश्वरी ! सब प्राणियोंके हितमें निरतहो मैं वहां ही निवास करता हूं ॥ ६ ॥ हे प्राज्ञे ! वहांसे पूर्वकी ओर तुम्हारे वैराग्यमें मैं दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त नग्न होकर बैठारहा; तब सब देवता हमारी उपासना करनेको वहां आये ॥७॥ जब देवताओंने हमारी स्तुतिकरी तब हम महेश्वर वहां प्रादुर्भूत हुए, हमारी प्रीतिकी कामना करके हे देवी तुमभी वहां उन्होंने अवलोकन किया ॥ ८ ॥ हे महेश्वरी ! यह परमस्थान तुमसे भी अधिक हमारा प्रिय है, वहांही अलकनन्दाके परम पवित्र तीरपर देवीकुण्डहै, और वह कुण्ड तुम्हारे लोककी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ९ ॥ वहांसे आगे नागोंका शुभभवनहै, हे महेश्वरी !

दिशि प्रोक्तं नागानां भवनं शुभम् ॥ यत्र शेषादिभिः पूर्वं संस्तुतोऽहं महेश्वरि ॥ १० ॥ प्रादां स्वभूषणत्वं हि यतस्ते भूषयंति माम् ॥ नागकुंडं च तत्रैव यत्र नागेश्वरः शिवः ॥ ११ ॥ यदनुष्ठानतो याति माहेशपदमुत्तमम् ॥ पर्वते पुष्कराख्ये तु ताम्रगंगेति विश्रुता ॥ महापुण्यतमाख्याता दुरितैर्दुर्गमा मता ॥ ॥ १२ ॥ यदि भाग्यवशात्कश्चित्प्राप्नोति सरिदुत्तमाम् ॥ तस्यां वै स्नानमात्रेण दानतोपि महेश्वरि ॥ अनंतफलमाप्नोति प्राप्नोति च परं पदम् ॥ १३ ॥ ततः पूर्वे योजने द्वे यत्र मानेन संस्थिते॥सरस्वती नदीतीरे सगरस्याश्रमः शुभः ॥ १४ ॥ तत्र शूलं मम।द्यापि वर्तते शिवलोकदम् ॥ यत्राहं वृषमारूढो गतः कैलासमुत्तमम् ॥ १५ ॥ गोस्थलं तु ततः ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सिद्धेश्वरो महादेवस्तत्राहं समवस्थितः ॥ १६ ॥ मम दर्शनतस्तत्र शिवरूपो भवेन्नरः ॥ १७ ॥ तस्य पूर्वे महादेवो दिगंबरेश्वरसंज्ञितः ॥ तत्र मे दर्शनादेव नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१८॥ इति ते परमं दिव्यं महाभवनमीरितम् ॥ यत्रानेकानि लिंगानि मम संति महेश्वरि ॥ १९ ॥ तेषां दर्शनतो याति

जहां पूर्वकालमें शेष आदि नागोंने हमारी स्तुति करी थी ॥ १० ॥ तब हमने उन्हें अपना आभूषण बनाया, और तभीसे वे हमारे शरीरको विभूषित करते हैं, वहांही नागकुण्डहै, और च वहांही नागेश्वर महादेवजी हैं ॥ ११ ॥ उनकी पूजा करनेसे पुरुषोंसे उत्तम माहेशपदकी प्राप्ति होतीहै । पुण्यपर्वतके ऊपर ताम्रगंगा नामकी एक विख्यात नदीहै, वह अत्यन्तही पवित्रहै, अतएव पापियोंको उसकी प्राप्ति दुर्लभहै ॥ १२ ॥ यदि भाग्यवशात् किसी पुरुषको उस उत्तम नदीकी प्राप्ति होजाय, तो हे महेश्वरी ! उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे अनन्त फल और परमपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ १३ ॥ वहांसे पूर्वकी ओर दो योजनकी दूरीपर सरस्वती नदीके तटपै सगरका शुभ आश्रमहै ॥ १४ ॥ शिवलोक प्रदान करनेवाला वहां अभीतक हमारा त्रिशूल विद्यमानहै, वहांहीसे हम वृषके ऊपर आरूढहो उत्तम कैलासधामको गयेथे ॥ १५ ॥ उसके अनन्तर सब पापोंका सत्यानाश करनेवाला गोस्थलहै, वहां हम सिद्धेश्वर नामसे विराजमानहैं ॥ १६ ॥ वहां हमारे दर्शन करनेसे मनुष्य साक्षात् शिवरूप होजाताहै ॥ १७ ॥ उसके पूर्वभागमें दिगम्बरेश्वर नाम महादेवजीहैं, वहां हमारे केवल दर्शनमात्रही करनेसे प्राणीकी मुक्ति होजातीहै ॥ १८ ॥ इस प्रकार हमने परम दिव्य धामका तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे महेश्वरी ! हमारे वहां अनेक लिंग विद्यमानहैं ॥ १९ ॥ उनके दर्शनमात्रही कर-

परमं पदमैश्वरम् ॥ नागाख्यपर्वते तस्मिंश्चतस्रो भुवि दुर्लभाः ॥ पाविन्यः सरितोऽन्येषां पापिनामपि मज्जनात् ॥२०॥ क्षेमा हेमा वरांगी च मोक्षाख्या च चतुर्थिका ॥ सर्वास्ताः पूर्ववाहिन्योऽलकनंदासु संगताः ॥ २१ ॥ क्षेमायाः संगमे देवि क्षेमदं क्षेमतीर्थकम् ॥ हेमसंगमके हैमं तीर्थं परममुत्तमम् ॥ २२ ॥ तत्र स्नात्वा नरो याति धनधान्यादिकं परम् ॥ २३ ॥ वरांगीतीर्थके स्नात्वा संगमेऽलकनंदया ॥ तत्संगमत्वमाप्नोति तथा च परमं पदम् ॥ २४ ॥ मोक्षायाः संगमे तत्र मोक्षतीर्थं परं स्मृतम् ॥ तत्र वै स्नानमात्रेण फलं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ नागपश्चिमदिग्भागे लिंगं परममद्भुतम् ॥ तस्य दर्शनमात्रेण नरः शिवपदं व्रजेत् ॥ २६ ॥ माहेश्वरी महादेवी तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं परमुक्तिदम् ॥ २७ ॥ तीर्थोपाख्यानकं यो वै पठेद्वा शृणुयादपि ॥ स याति भवनं शंभोर्मम देवि महाप्रभम् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्ये नानापीठकथनं नाम नवनवत्युत्तरैकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

नेसे ईश्वरीय परमपदकी प्राप्ति होतीहै । नागपर्वतके ऊपर चार ऐसी धाराहैं जिनमें स्नान करनेसे पापियोंकी शुद्धि होजातीहै, और भूमिके ऊपर उनकी प्राप्ति होना दुर्लभहै ॥ २० ॥ क्षेमा हेमा, वरांगी और मोक्षा ये चार धाराहैं, और वे सब पूर्ववाहिनी होकर अलकनन्दामें मिलीहैं ॥ ॥ २१ ॥ हे देवी ! क्षेमाके संगममें मोक्ष दायक क्षेमतीर्थहै, हेमाके संगममें उत्तम हैमतीर्थ है ॥ २२ ॥ उसमें स्नान करनेसे मनुष्योंको विपुल धनधान्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ २३ ॥ जहां अलकनन्दामें वरांगीका संगम हुआहै उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको परम पदकी प्राप्ति होतीहै ॥२४॥ और मोक्षानदीके संगममें परम मोक्षतीर्थ है, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे मोक्ष फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ २५ ॥ नागपर्वतसे पश्चिमकी ओर एक परम अद्भुत लिंगहै, उसके दर्शनमात्र करनेसे मनुष्यको कल्याणपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ २६ ॥ वहांही माहेश्वरी नामकी महादेवीजी नित्यही निवास करतीहैं, तुमने जो कुछ हमसे प्रश्न किया वह मोक्षदायी आख्यान हमने तुमसे वर्णन किया ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति इस तीर्थके उपाख्यानको पढ़ता या सुनताहै, हे देवी ! वह प्रभूत प्रभाशाली हमारे शिवधामको प्राप्त होताहै, ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भाषाटीकायां नवनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

द्विशततमोऽध्यायः २००.

स्कंद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु महादेवो विरराम परेश्वरः ॥ सापि
देवी च तच्छ्रुत्वा परं भावमुपाश्रिता ॥ १ ॥ इति तेनारदा-
ख्यातं यत्पृष्टं द्विजपुंगव ॥ इदं गोप्यं परं शास्त्रं तवैव हि प्रका-
शितम्॥२॥सूत उवाच ॥ इति स्कंदमुखाच्छ्रुत्वा नारदो ब्रह्मपु-
त्रकः ॥ ययौ कैलासनिलये तीर्थाटनपरोऽभवत् ॥ ३ ॥ एत-
स्मिन्नंतरे विप्राः कुंभयोनिर्महामुनिः ॥ श्रुत्वा तच्च महाख्यानं
नारदाय समीरितम् ॥ परं विस्मयमापन्नो भूयः पप्रच्छ वह्निजम्
॥ ४ ॥ मुक्तिभुक्तिप्रदन्नॄणां सर्वसंपत्करं तथा ॥ अवशिष्टानि
तीर्थानि भवमुक्तिप्रदानि हि ॥ केदारमंडले चैव कैलासे दक्षिणे
तटे ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ व्यासशिष्य महाभाग कृतार्थाः
कृपया तव ॥ वयं सर्वे तव मुखाच्छ्रुत्वा सर्वमशेषतः ॥ ६ ॥
अतः परं श्रोतुकामा यदपृच्छत्तपोनिधिः ॥ अगस्त्यो भगवा-
न्सूत स्कंदं तं च शिवात्मजम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ कुंभ-
योनिर्महाभाग मुनीनां प्रवरो मुनिः ॥ परिक्रम्य प्रणम्यादौ

स्कन्दजी बोले— जब परमेश्वर महादेवजीने इस प्रकार कहनेके अनन्तर मौन धारण किया,
देवीजी उन वाक्योंको सुनकर परम भावको प्राप्तहुई ॥ १ ॥ हे द्विजपुंगव ! नारदजी ! तुमने
कुछ हमसे पूछा सो तुम्हारे प्रति हमने वर्णन किया, यद्यपि यह शास्त्र परम गोपनीयहै, तथा-
हमने तुम्हारे समक्ष इसे प्रकाशकियाहै ॥ २ ॥ सूतजी बोले— ब्रह्मपुत्रनारदजी स्कन्दजीके मु-
ऐसे आख्यानको सुनकर तीर्थयात्रामें तत्परहोकर कैलासधामको चलेगये ॥ ३ ॥ हे विप्रो !
दजीके प्रति वर्णन किये हुए आख्यानको कुंभसमुद्भूत महामुनि अगस्त्यजीने श्रवणकिया तब
बड़े आश्चर्य्यकी प्राप्ति हुई, तब वे फिर अग्निकुमारसे पूछनेलगे ॥ ४ ॥ कैलास पर्वतके दक्षि-
में केदारमण्डलमें संसार बंधनसे मुक्ति करानेवाले अवशिष्ट जितने तीर्थहैं, उनके भोग और
देनेवाले तथा सब सम्पत्तियोंका विधान करनेवाले माहात्म्य वर्णन करिये ॥ ५ ॥ ऋषि
— हे महाभाग व्यासशिष्य ! ! ! हम आपकी कृपासे कृतार्थ होगये, कारण कि—आपके मु-
अशेष आख्यान सुनकर हमारी सब इच्छाएँ पूर्ण होगईं ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर तपोनिधि
स्त्यजीने शिवकुमार स्कन्दजीसे जिस प्रकार प्रश्न किया, उसीको हम सुना चाहतेहैं ॥ ७ ॥
जी बोले— हे महाभाग ! मुनिशार्दूल अगस्त्यजी महाराजने भक्तिभावपूर्वक प्रथम प्रणाम करके

भक्त्या भूयो जगाद ह॥८॥अगस्त्य उवाच॥शिवात्मज महाभाग सर्वशास्त्रविशारद॥धन्योऽसि परमं श्रेष्ठं जानासि यच्चराचरम् ॥ ॥ ९ ॥ कथितं परमाश्चर्य्यं नारदाय त्वयाधुना ॥ अहं च श्रोतुमिच्छामि वैभवं जगदीशितुः ॥ १० ॥ मुक्तिक्षेत्रं श्रुतं दिव्यं या वै वाराणसी मता॥अन्यद्ब्रूहि परं स्थानं तत्समं भुक्ति-मुक्तिदम् ॥ ११ ॥ यत्र त्वं सर्वभावेन सांस्थितो जगदीश्वरः॥ यत्र गत्वा न शोचन्ति नराः पापसमन्विताः ॥ १२ ॥ वाराण-सीसमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मानद ॥ भुक्तिर्मुक्तिश्च देवेश यत्र नित्यं प्रतिष्ठिते ॥ १३ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृण्वगस्त्य परं क्षेत्रं कैलासे भुवि मुक्तिदम् ॥ काश्या समं परं क्षेत्रं यन्मया न प्रकाशितम् ॥ १४ ॥ केदारदक्षिणे भागे माने योजनषट्कके ॥ ऊर्ध्वं वाराणसीक्षेत्रं योजनद्वयविस्तृतम् ॥ १५ ॥ यत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे तद्ध्यानपरिनिष्ठिताः ॥ प्रापुश्च परमं स्थानं यत्र देवो महे-श्वरः ॥ माहेश्वरत्वमापन्नाश्चंद्रार्द्धांकितशेखराः ॥ १६ ॥ इदं स्थानं गुह्यतमं यतो गुप्तेति काशिका ॥ यस्याः संस्मरणादेव

परिक्रमा करनेके अनन्तर फिर उनसे प्रश्न किया ॥ ८ ॥ अगस्त्यजी बोले– हे सर्वशास्त्रविशारद महाभाग शिवकुमार ! तुम्हें धन्यहै, कारण कि, तुम चराचर जगत्को जानतेहो ॥ ९ ॥ आपने नारदजीके प्रति परम आश्चर्य्य प्रदान करनेवाले आख्यानोंका वर्णन किया, अब मैंभी जगदीश्वर संबन्धी कुछ वृत्तान्त श्रवण करना चाहताहूं ॥ १० ॥ हे देव ! आपने जो वाराणसीक्षेत्रका वर्णन किया उसे तो हमने सुना, अब उसकी समान भोग मोक्षके देनेवाले अन्यतीर्थोंका वर्णन करिये ॥ ११ ॥ हे जगदीश्वर ! वहां आप सर्वतोभावसे निवास करतेहैं, और वहां पहुँचकर पापी मनु-ष्योंको भी सोचकरना नहीं होता ॥ १२ ॥ हे मानदाता ! वाराणसीकी समान जो अन्यक्षेत्रहो, उसका वर्णन करिये, कि, जहां भोग और मोक्ष नित्यही निवास करते हों ॥ १३ ॥ स्कन्दजी बोले– सुनो अगस्त्यजी ! भूमिके ऊपर कैलासप्रान्तमें मुक्ति प्रदान करनेवाले और काशीकी समान क्षेत्रका वर्णन करतेहैं, उसे अभीतक हमने प्रकाशित नहीं कियाहै ॥ १४ ॥ केदारजीसे दक्षिणकी ओर छै योजनकी दूरीपर दो योजन विस्तृत गुप्त वाराणसीक्षेत्रहै ॥ १५ ॥ वहांही ब्रह्म-र्षियोंने ध्याननिष्ठहो परम स्थानको प्राप्त कियाथा, और चन्द्रशेखर महादेवजीकोभी वहांही महेश्वरत्व प्राप्त हुआथा ॥ १६ ॥ यह स्थान अत्यन्तही गुप्तहै इसी कारण इसका गुप्तकाशी नामहै, इसका

नश्यंति परमापदः ॥ १७ ॥ सिद्धैर्नुतश्च तत्राहं ततः सिद्धेश्वरः स्मृतः ॥ तत्र गंगा च यमुना गुप्ते तिष्ठत ईश्वरे ॥ ॥ १८ ॥ तत्र यः स्नाति मनुजो मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥ ॥ १९ ॥ ददाति स्वर्णरत्नानि वासांसि द्विजपुंगव ॥ गोचर्मपरिमाणं वा यश्च दद्याद्वसुंधराम् ॥ अक्षयं पुण्यमाप्नोति मुक्तिं चापि परत्र सः ॥ २० ॥ माघे मासि महाभाग मकरस्थे दिवाकरे॥योऽत्र कुंभभव स्नाति फलं किं वै वदाम्यहम् ॥ ॥ २१ ॥ सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सगंगासागरादिषु ॥ सप्तद्वीपवती चैव वसुधा रत्नपूरिता ॥ २२ ॥ ततो वै पूर्वदिग्भागे नलो नाम महीपतिः॥तपश्चकार परमं त्यक्त्वा राज्यसुखानि च ॥ राजराजेश्वरीं देवीमर्चयन्स समाधिना ॥ २३ ॥ नलकुंडं च तत्रैव मंदाकिन्याः परे तटे ॥ तत्र यः स्नाति मनुजो देहजन्मार्जितं तमः ॥ २४ ॥ युवनाश्वसुतो धीमान् सूर्य्यवंशविवर्द्धनः ॥ मांधाता नाम विख्यातस्तत्रैव तप्तवांस्तपः ॥ प्राप वै परमां सिद्धिं स च राजा महाबलः ॥ २५ ॥ ततः पश्चिमदि-

स्मरणमात्र करनेहीसे परम आपत्तियोंका विनाश होताहै ॥ १७ ॥ वहां सिद्धोंने हमैं प्रणाम कियाथा इसी कारण हमारा सिद्धेश्वर नाम हुआहै, वहां गंगा और यमुना दोनोंही गुप्तरूपसे स्थित रहतीहैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य उसमें स्नान करताहै, उसे दुर्लभ मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ १९ ॥ हे द्विजपुंगव ! जो पुरुष सुवर्ण रत्न वस्त्र और गोचर्म परिमित (१०५० गज) भूमि दानकरताहै, उसे इसलोकमें पुण्य और परलोकमें मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ २० ॥ हे महाभाग ! अगस्त्यजी !!! जो पुरुष माघमास मकरके सूर्य्यमें वहां स्नान करताहै, उसके फलका मैं क्या वर्णन करूं ॥ २१ ॥ मानो उस व्यक्तिने गंगासागरादि सब तीर्थोंमें स्नान करलिया, और मानो रत्नपूर्ण सब भूमिका दान करदिया, ॥ २२ ॥ वहांसे पूर्वदिशाकी ओर नलराजाने राज्यसुखका परित्याग करके उग्र तपका आचरण किया, और समाधिधारणपूर्वक राजराजेश्वरी देवीकाभी पूजन कियाथा ॥ २३ ॥ वहांही मन्दाकिनीके दूसरे तटपर नलकुण्डहै, उसमें स्नान करनेसे मनुष्योंके जन्मार्जित पाप नष्ट होजातेहैं ॥ २४ ॥ सूर्यवंशकी वृद्धिवाले युवनाश्वकुमार बुद्धिमान् मान्धाताने वहांही तप कियाथा ॥ तब उस महाबलीको चराचरके उपर महासिद्धिकी प्राप्ति हुईथी ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! वहांसे पश्चिमदिशाकी ओर बाण दैत्यने अजेयत्वकी प्राप्तिके

ग्भागे नाम्ना बाणासुरो मुने॥अजेयत्ववरप्राप्त्यै ध्यायन्वै मनसा-शिवम् ॥२६॥ बाणेश्वरो महादेवस्तत्र पापभयापहः ॥ तत्प्रसा-देन बाणोऽपि ह्यजयत्सकलं जगत् ॥ २७ ॥ तत्र फेत्कारणी-शैले दुर्गा देव्यतिविश्रुता ॥ महत्कष्टपरिव्याप्तं जगद्दुर्गान्महा भयात् ॥ त्रातं तया महादेव्या तेन दुर्गेति कीर्त्यते ॥ ॥ २८ ॥ तत्र पूजा तु दुर्गाया बलिपुष्पोपहारकैः ॥ तस्य देवी परं तुष्टा सर्वसंपत्करी भवेत् ॥ २९ ॥ वसंते च शरत्काले यः कुर्य्यात्पूजनं परम् ॥ बलिपुष्पोपहारैश्च तस्यै सर्वं विनि-र्दिशेत् ॥ ३० ॥ इह लोके वरान्भोगान्सुरैरपि सुदुर्लभान् ॥ प्राप्यांते पूजनाद्यत्र मृतैरमृतमाप्यते ॥ ३१ ॥ ततः फेत्कारणी-शैले दुर्गेश्वर इतीरितः ॥ सर्वकामप्रदो देवो मोक्षदोऽपि मन-स्विनाम् ॥ ३२ ॥ ततः पूर्वोत्तरे पार्श्वे क्रोशयुग्मे घटोद्भव ॥ महादेवीति विख्याता द्वैतभेदविनाशिनी ॥ ३३ ॥ तत्राद्वैतप-तिर्देवो महादेवशिवः प्रियः ॥ ३४ ॥ ततोऽधस्तात्प्रदेशे तु

लिये मनो योगपूर्वक मदादेवजीको ध्यान कियाथा ॥ २६ ॥ सुतराम् पापोंके भयको दूर करने-वाले बाणेश्वर नामके महादेवजी वहां विद्यमानहैं, और उन्हींके प्रतापसे बाणासुरने समस्त जगत्का विजय कियाथा २७ ॥ वहांही फेत्कारिणी पर्वतके ऊपर एक दुर्गा देवी विख्यात हैं, प्रभूत कष्टसे व्याप्तहुए जगत्को महाभयसे महादेवीजीने बचायाथा इसी कारण उन्हें दुर्गाजी कहते हैं ॥ २८ ॥ बलिपुष्प और उपहारके द्वारा जो मनुष्य देवीजीकी पूजा करता है, देवीजी उससे प्रसन्न होकर समस्त सम्पत्तियोंका विधान करतीहैं ॥ २९ ॥ वसन्त अथवा शरद् ऋतुमें जो पुरुष बलिपुष्प उपहार द्वारा देवीजीकी पूजा करता है, देवीजी उसे सब कुछ प्रदान करती हैं ॥ ॥ ३० ॥ देवीजीकी पूजा करनेसे इसलोकमें देवदुर्लभ भोग और परलोकमें अमरत्व लाभ होता है ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर फेत्कारिणी पर्वतके ऊपर दुर्गेश्वर नामके महादेवजी हैं, वे सब कामनाओंके पूर्ण करनेवाले और मनस्वियोंको मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ हे घटोद्भव! वहांसे पूर्व और उत्तरके भागमें, दो कोसकी दूरीपर द्वैतभेद विनाशिनी महादेवीजी विख्यात हैं ॥३३॥ और वहांही अद्वैत पति नामके देवाधिदेव महादेवजी विद्यमान् हैं॥३४॥वहांसे नीचेकी ओर दानवती नामकी एक धाराहै, हे महामतिमान्! उक्त धाराके ऊपर जो मनुष्य द्रव्य दान करके ब्राह्मणों-

धारा दानवती मता ॥ तस्यां ददाति यो द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो महामते ॥ तस्य स्यादक्षयं पुण्यममृतं च लभेन्नरः ॥ ३५ ॥ इदं परमकं स्थानं तवोक्तं कुंभसंभव ॥ दुर्जनाय न वक्तव्यं क्षेत्रं गुह्यतरं त्विदम् ॥ ३६ ॥ इदं वाराणसीतुल्यं क्षेत्रं चैव द्वियोजनम् ॥ यस्य श्रवणामात्रेण दह्यंते पापराशयः ॥ ३७ ॥ शृणुयाच्च पठेद्यस्तु गुप्तवाराणसीभवम् ॥ माहात्म्यं सर्वपापघ्नं काशीदर्शफलं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे गुह्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

...देताहै, उस नरको अक्षय पुण्य और अमरत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ सुनो अगस्त्यजी ! ...सर्वोत्कृष्ट स्थानका हमने तुह्मारे प्रति वर्णन किया, इस क्षेत्रका वर्णन दुर्जनके प्रति कदापि न ...ना चाहिये कारण कि, यह अत्यन्तही गुप्तहै ॥ ३६ ॥ दो योजन विस्तृत यह स्थान वाराण- ...सी समान है, इसके माहात्म्यका श्रवण करनेसे पापराशिका विनाश हो जाताहै ॥ ३७ ॥ जो ... पापविनाशी गुप्तकाशीके माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है उसे काशीजीके दर्शन करनेका ...ल प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

एकोत्तरद्विशततमोऽध्यायः २०१.

अगस्त्य उवाच ॥ पार्वतीनंदन प्राज्ञ श्रुतमद्भुततीर्थकम् ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्राण्यन्यान्यपि प्रभो ॥ १ ॥ यत्र देवः शिवः साक्षात्तथा देवी महेश्वरी ॥ ब्रूहि तत्तीर्थमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छा विवर्द्धते ॥ २ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ कुंभोद्भव महाप्राज्ञ शृणु तीर्थानि सर्वशः ॥ केदारदक्षिणे भागे धरो महिष-खड्गकः ॥ ३ ॥ पुरा यदा महादेवी जघान महिषासुरम् ॥

अगस्त्यजी बोले—हे प्राज्ञ पार्वतीकुमार ! ! ! अद्भुत तीर्थका माहात्म्य तो हम सुनचुके, परन्तु ...हम अन्यान्य तीर्थोंका वर्णन सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ जहां साक्षात् महादेवजी और महेश्वरी ...स्थितहों, तीर्थोंका माहात्म्य सुनते २ और भी हमारी इच्छा बढ़रहीहै ॥ २ ॥ ...दजी बोले-हे प्राज्ञ अगस्त्यजी ! ! ! अब सब तीर्थोंका वर्णन सुनिये, केदारजीके दाक्षि-...गमें महिषखंड नाम एक पर्वतहै ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें वहांही महादेवीजीने महि-

तस्य खंडं समादाय चिक्षेप गिरिसत्तमे ॥ आविर्भूतापि तत्रैव नाम्ना महिषमर्दिनी ॥ ४ ॥ तस्या दर्शनमात्रेण नरः शिवपुरं व्रजेत ॥ ५ ॥ तत्रैव वसते विप्र शिवो भगवतीश्वरः ॥ तस्यार्चनान्नरो याति गतिं त्रैलोक्यदुर्लभाम् ॥ ६ ॥ तत्रास्ति च सरिच्छ्रेष्ठा हयमेधफलप्रदा ॥ नाम्ना पट्टमती ख्याता सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ ७ ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे कुंभिकानाम नामतः ॥ धारा परमपुण्यौघैर्लभ्यते स्वर्गदायिनी ॥ ८ ॥ तत ऊर्ध्वप्रदेशे हि विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ध्यातो महेश्वरः पूर्वं ततो विष्णवीश्वरः शिवः ॥ ९ ॥ गिरौ महिषखंडाख्ये श्रूयंतेऽद्यापि निःस्वनाः ॥ क्रीडंते देवतास्तत्र नृत्यंत्यप्सरसां गणाः ॥ १० ॥ तत्रैका च परा गुह्या गुहा विस्तीर्णदेशिका ॥ तस्यां गुहायां वसति व्यासदेवो महामुनिः ॥ ११ ॥ व्यासपादोद्भवा चैका नदी परमपाविनी ॥ तस्या भुवनसंस्पर्शाल्लभते पुण्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥ ततो दक्षप्रदेशे हि वेदमातृस्थलं महत्॥

षासुरका वध किया था, तब उसके खंडको लेके पर्वतके ऊपर फेंक दियाथा, एवं देवीजी महिषमर्दिनी नामसे वहांही प्रादुर्भूत हुईथी ॥ ४ ॥ उनके दर्शनमात्रही करनेसे मनुष्य शिवधाममें जाताहै ॥ ५ ॥ हे विप्र ! वहांही भगवतीश्वर नामके महादेवजीभी निवास करतेहैं, उनकी पूजा करनेसे मनुष्योंको ऐसी उत्तम गतिकी प्राप्ति होतीहै, जिसका प्राप्तहोना त्रिलोकीमें दुर्लभहै ॥ ६ ॥ वहां अश्वमेधयज्ञका फल प्रदान करनेवाली जो एक नदीहै, उस सर्व सौभाग्य दायिनीका पट्टमती नामहै ॥ ७ ॥ वहांसे दक्षिणदिशाकी ओर कुम्भिका नामकी एक धाराहै, अधिक पुण्योंका संचय होनेहीसे उसकी प्राप्ति होतीहै, एवं वह स्वर्ग प्रदान करतीहै ॥ ८ ॥ उसके आगे सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णुभगवान्ने महादेवजीकी आराधना करीथी इसीसे उक्त महादेवजीका विष्णवीश्वर नाम हुआहै॥९॥महिषखण्ड पर्वतके उपर अभीतक शब्द श्रवण गोचर होतेहैं, देवता क्रीडा और अप्सरागण नृत्य करतेहैं ॥ १० ॥ वहां एक परम विस्तृत गुहाहै, उसमें महामुनीश्वर व्यासजी निवास करतेहैं ॥ ११ ॥ वहांही व्यासजीके चरणोंसे प्रादुर्भूतहुई एक परम पवित्र नदीहै, उसके जलका स्पर्श करनेसे परम पुण्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ १२ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर वेदमाता गायत्रीका स्थानहै, जो पुरुष चौबीस दिनपर्य्यन्त गायत्रीका जप

चतुर्विंशाद्दिनं योऽत्र गायत्रीं जपते नरः ॥ तस्य दर्शनमार्गस्था जायते सा महाप्रभा ॥ १३ ॥ धारा सावित्रिकी नाम तत्रास्ति शिवदायिनी ॥ तस्या दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ १४ ॥ इति ते कथितं गुह्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कैलासप्रशंसावर्णनं नामैकोत्तरद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

करताहै, उसे महाप्रभास्वरूप गायत्रीके दर्शन होतेहैं ॥ १३ ॥ वहां सावित्री नामकीभी कल्याणदायिनी एक परम पवित्र धाराहै, उसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे परम पदकी प्राप्ति होतीहै॥ १४॥ इस प्रकार हमने परम पवित्र गुप्त रखनेके योग्य और पापोंका नाश करनेवाले आख्यानका तुह्मारे प्रति वर्णन किया ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायामेकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

द्व्युत्तरद्विशततमोऽध्यायः २०२.

स्कंद उवाच ॥ ॥ अथान्यदपि कैलासे केदारात्पश्चिमोत्तरे ॥ गंगायाः पश्चिमे भागे यमुनायाश्च दक्षिणे ॥ रेणुकाद्रिः समाख्यातः पुण्यो दुरितदुर्लभः ॥ १ ॥ अत्र पूर्वं महाभाग जमदग्नेः प्रिया सती ॥ तपस्तेपे निराहारा साग्रं वर्षशतं परम्॥ ॥ २ ॥ जमदग्निश्च तत्रैव परमं तप आस्थितः ॥ अस्माऽत्पुत्रत्वमाप्नोति भगवान्भूतभावनः ॥ ३ ॥ मनस्येवं तथा कृत्वा तपतुः परमं तपः ॥ ततः कतिपयैर्वर्षैः संतुष्टो जगतां पतिः ॥ ॥ ४ ॥ जनार्दनः परं तुष्टस्तस्या गर्भमुवास यत् ॥ स वै परशुरामाख्यो वैष्णवं तेज उत्तमम् ॥ ५ ॥ येन निःक्षत्रिया पृथ्वी

स्कन्दजी बोले—अब इसके अनन्तर कैलासपर्वतके ऊपर केदारजीसे पश्चिमकी ओर गंगाके पश्चिमको और यमुनाजीके दक्षिणी भागमें रेणुका नाम एक पर्वतहै, पापियोंके लिये उसकी प्राप्ति कठिनहै ॥ १ ॥ हे महाभाग ! यहां पूर्वकालमें जमदग्निकी पतिव्रता पत्नीने निराहार रहकर सौवर्ष पर्य्यन्त उग्र तप किया था ॥२॥ एवं जमदग्निजीभी वहांही तपश्चर्य्यामें व्रती होके उपस्थित थे, भूतभावन महादेवजी हमारे पुत्र हों ऐसा मनमें विचार करके उन दोनोंने परम तप किया था, तब कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर महादेवजी उनसे प्रसन्न हो गये ॥३ ॥४॥ तब परम सन्तुष्ट हो भगवान् उक्त रेणुकाके गर्भाशयमें आय परशुराम नामसे वैष्णवतेज धारण किये प्रादुर्भूतहुए ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! उन्होंने इक्कीस वार भूमिको क्षत्रिय बिहीन करदिया था, हे परमेश्वरी ! इधर

त्रिसप्तवारकं मुने ॥ रेणुका च महाभागा देवी देव्यंशसंभवा ॥ संस्थिता परमेशानी सर्वभूतदयावती ॥ ६ ॥ तत्रैव देवी विप्रर्षे नाम्ना महिषमर्दिनी ॥ तां पूजयेन्महाभाग वलिपूजोपहारकैः ॥ ॥ ७ ॥ अतः परतरं नास्ति सिद्धिकामस्य पीठकम् ॥ यस्य वै दर्शनादेव नरः शिवपुरे वसेत् ॥ ८ ॥ यस्तत्र विधिना विप्र सप्तरात्रं जितेंद्रियः ॥ करोति पूजनं देव्या निराहारो महामुने ॥ तस्य दर्शनमात्रेण प्रणश्यंति महापदः ॥ ९ ॥ नाशुचिस्तत्र गच्छेत न चांडालो वहिष्कृतः ॥ योऽवमन्य महामायां तस्या वेश्मनि गच्छति ॥ म्रियते निश्चयेनैव वातुलो वापवाग्भवेत् ॥ ॥ १० ॥ इदं सिद्धतमं पीठं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ दर्शनादेव सिद्धिः स्यात्किंपुनस्तत्र तिष्ठताम् ॥ ११ ॥ गुह्यं पीठं समाख्यातं दुष्टधीनाशनं परम् ॥ एतत्पीठसमं पीठं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥ कंडारभैरवं पूज्य तत्र गच्छेदतन्द्रितः ॥ अदृष्ट्वा पूज्य तं भीमं तत्र निष्ठां तु यश्चरेत् ॥ तस्य पुण्यफलं सर्वं हरते तत्र भैरवः ॥ १३ ॥ कंडारकेशं विप्रेश तस्मात्पूर्वं सम-

रेणुकाभी देवीके अंशसे संपन्नहुई वहांही रहनेलगी ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! वहां महिषमर्दिनी नामकी देवीजी हैं, हे महाभाग ! बलिपूजा और उपहारसे उनका पूजन करना कर्त्तव्यहै ॥ ७ ॥ इससे अधिक कामनाओंका सिद्ध करनेवाला और कोई पीठ नहीं है, कारण कि, इसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे मनुष्य शिवलोकमें निवास करताहै ॥८॥ हे विप्र ! जो मनुष्य वहां सात रात्रीपर्यन्त इन्द्रियोंका निग्रहकर निराहार रहके देवीजीका पूजन करताहै, उस व्यक्तिके दर्शनमात्र करनेसे विपुल विपत्तियोंका सत्यानाश होजाताहै ॥९॥ अशुद्ध होकर वहां नहीं जाना चाहिये, जो व्यक्ति महामायाका अनादरकर देवीजीके मन्दिरमें जाताहै, वह यातो अवश्यही मर जाताहै, अथवा वातुल (बकवादी) होजाताहै ॥ १० ॥ यह सिद्धपीठ भोग और मोक्षका देनेवालाहै जब उसके दर्शन करनेहीसे सिद्धि होतीहै तब वहां निवास करनेसे तो कहनाही क्याहै ॥ ११ ॥ यह गुह्य-पीठ कहाताहै और यह दुष्ट बुद्धिका नाशकरने वालाहै, सुतराम् इसकी समान उत्कृष्ट नतो अन्य कोई पीठ हुआ और न होगा ॥ १२ ॥ वहां कंडारभैरवकी पूजाकर निरालस्य होजाना चाहिये, जो पुरुष उक्त भैरवजीके दर्शन और पूजन बिना कियेही वहां स्थिति करताहै, उसके सब पुण्योंके फलको भैरवजी अपहरण करलेतेहैं ॥१३॥ हे विप्र ! इसलिये प्रथम कंडार भैरवकी

र्चयेत् ॥ पिंगलास्तु यतः केशास्तथा सर्वं कलेवरम् ॥ ततो
वै भैरवः ख्यातः कडारेति च नामतः ॥ १४ ॥ तस्य दक्षिण-
पार्श्वे वै नदी परमपाविनी ॥ नाम्ना विश्वेति विख्याता सर्व-
दारिद्र्यनाशिनी ॥ १५ ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे सद्यः प्रत्ययका-
रके॥तपसा तोषितः शंभुः परमात्मा निरंजनः ॥ १६ ॥ कपि-
लधारेति तत्रास्ति वर्णेन कपिला शुभा ॥ तज्जलस्पर्शनादेव
शिवलोके महीयते ॥ १७ ॥ कपिलेश्वरो महादेवो जगद्रूपो
महामुने ॥ सन्निधौ तस्य यो याति दुःखितो व्याधितो भृशम् ॥
प्रतीकारं स वदति साध्यासाध्यं च कापिलः ॥ १८॥ शिवस्तो-
त्राणि यस्तत्र पठते शृणुते तथा ॥ स याति भवनं शंभोर्न च
भूयोभिजायते ॥ १९ ॥ यश्चार्चयति देवेशं कापिलेशं महेश्व-
रम् ॥ यंयं कामयते कामं तंतं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ अंते च
शंभुभवने स्थितिः स्यात्कालिपकी मुने ॥ २० ॥ पुत्रार्थी शिव-
लिंगं वै स्नापयेत्पयसा सुधीः ॥ रुद्राध्यायं सप्तदिनं रुद्रेण सप्त-

पूजा करनी कर्त्तव्यहै, उनके शरीर और केशसमुदायका पिंगलवर्ण है, इसी हेतु भैरवजी
का कडार नाम विख्यातहै ॥१४॥ उनके दक्षिण पार्श्वमें विश्वनामकी परम पवित्र नदीहै, और वह
समस्त दारिद्रका विनाश करनेवालीहै ॥ १५ ॥ शीघ्रही विश्वास उत्पन्न करानेवाले महाक्षेत्रमें पर-
मात्मा निरंजन महादेवजीको तप करके सन्तुष्ट कियाथा ॥ १६ ॥ कपिल वर्णवाली वहां कपिला
नामकी एक धाराहै, उसके जलका स्पर्शमात्र करनेसे शिवलोकमें ऐश्वर्य भोगनेको मिलतेहै ॥१७॥
हे महामुने ! वहां जगद्रूप कपिलेश्वर नामके महादेवजी वर्त्तमानहैं, अत्यन्त दुःखित और व्याधित
होकरभी जो व्यक्ति उनके निकट जाताहै, कपिलजी उसके प्रतीकार और साध्यासाध्यका वर्णन
करतेहैं ॥ १८ ॥ जो व्यक्ति वहां शिवस्तोत्रको पढ़ता अथवा दूसरोंसे सुनताहै, वह शिवधाममें
जाकर फिर संसारमें जन्म ग्रहण नहीं करता ॥ १९ ॥ जो पुरुष कापिलेश लिंगकी पूजा करता
है, वह जिस २ वस्तुकी कामना करताहै उसे अवश्यही उसकी प्राप्ति होतीहै, और हे मुनीश्वर
अन्तमें उसकी कल्पपर्य्यन्त शिवधाममें स्थिति होती है ॥ २० ॥ जो पुरुष पुत्र प्राप्तिकी कामना
करताहो उस बुद्धिमान्को चाहिये कि दुग्धके द्वारा शिवलिंगको स्नान करावै, और रुद्राध्यायसे सात

संख्यया ॥ प्रजायते तस्य पुत्रो वर्षेणैकेन कुंभज ॥ २१ ॥ गांगेन वारिणा स्नानं शिवलिंगस्य यो नरः ॥ कारयेद्ब्राह्मणद्वारा ह्यशक्तश्च तथाचरेत् ॥ स याति भवनं शंभोर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ॥२२॥पुनर्भवनमागत्य सप्तद्वीपेश्वरो भवेत् ॥ २३ ॥ यः करोति शिवस्नानं सितामिश्रितवारिणा॥स धनाढ्यो भवेन्नूनं कुबेर इव सत्वरम् ॥ २४ ॥ पंचगव्येन यो मर्त्यस्तस्य स्नानं समाचरेत् ॥ रिपवस्तस्य नश्यन्ति सत्यमेतद्धटोद्भव ॥२५॥ राज्यभ्रष्टोपि यो मर्त्योऽभिषेकं तत्र संचरेत ॥ निश्चयेन समाप्नोति राज्यं निहत-कंटकम् ॥ २६ ॥ दुर्व्याधिसंयुतो मर्त्यो दीपं तत्र सदा ददेत् ॥ तस्य व्याधेः प्रणाशः स्यान्मासमात्रान्न संशयः ॥२७॥ अथात्र मुंचति प्राणानुपवासाष्टकेन यः॥स याति रुद्रभवनं पापा-त्मापि महामुने ॥ सर्वं हि प्राप्यते त्वस्मान्मनसा कांक्षितं मुने ॥ ॥ २८ ॥ तत्रैव मुनिशार्दूल मुनिः शातातपः पुरा ॥ आरराध महादेवं तपसा धूतकल्मषः ॥ २९ ॥ सर्वकामप्रदः शंभुर्नाम्ना

दिनपर्य्यन्त सप्तसंख्याक रुद्राभिषेक करै तौ हे कुम्भयोने ! एक वर्षमें उसे अवस्यही पुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ जो पुरुष गंगाजलसे शिवलिंगको स्वयं अथवा अशक्त होनेपर ब्राह्मण द्वारा नान करताहै वह प्रलयपर्य्यन्त शिवलोकमें निवास करताहै ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् फिर इस लोकमें आकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होताहै ॥ २३ ॥ जो पुरुष मिश्रीके शर्बतसे महादेवजीको स्नान कराताहै, वह कुबेरकी समान तत्काल धनाढ्य होताहै ॥ २४ ॥ और जो मनुष्य पंचग-व्यसे महादेवजीको स्नान कराताहै हे घटोद्भव ! अवश्यही उसके शत्रुओंका नाश होजाताहै, यह निपटही सत्य जानो ॥ २५ ॥ जो पुरुष राज्यभ्रष्ट होकर उक्त लिंगको स्नान कराताहै, उसे निश्चय निष्कण्टक राज्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ २६ ॥ दुष्ट व्याधियोंसे पीडित होकर जो पुरुष वहां दीपक बालताहै, निस्सन्देह एक महीनेमें उसकी व्याधिका नाश होजाताहै ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति आठ उपवास (व्रत) करके यहां प्राणपरित्याग करताहै, हे महामुने ! वह पापी होकरभी रुद्र लोककी प्राप्ति करताहै, और इसी कर्मसे उसे मनोभिलषितकी पूर्त्तिका लाभ होताहै ॥ २८ ॥ हे मुने ! वहांही पूर्वकालमें शातातप मुनिने तपके द्वारा अपने पापोंको दूरकरके महादेवजीका आरा-धन कियाथा ॥ २९ ॥ वहां सब कामनाओंके पूर्ण करनेवाले शातातपेश्वर नामके महादेवजीहैं

१ "जम्बूशाककुशक्रौंचशाल्मलिप्लक्षपुष्कराः" एते सप्त द्वीपाः । २ दही, दूध, घृत, गो-मूत्र और गोबर, इनके मिलानेसे पंचगव्य होताहै ।

शातातपेश्वरः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण नश्यंते पापकोटयः ॥३०॥ न तत्पापं महाभाग विद्यते यत्र दर्शनात् ॥ नश्यते मुनिशार्दूल सत्यमेव न संशयः ॥ ३१ ॥ यस्य दर्शनतः पूर्वं नरदेहे समाश्रितः ॥ पिशाचो मुक्तिमायातः प्रत्यक्षं पश्यतां तदा ॥ ३२ ॥ यमदग्नीश्वरस्तत्र महादेवो भयापहः ॥ आराधितो यत्र शंभुः पुरा वै यमदग्निना ॥ ३३ ॥ भिल्लेश्वरश्च तत्रैव महादेवो महामुने ॥ यतो भिल्लैः पुरा ह्यत्र संगतोऽर्ज्जुनमंत्रणे ॥ ततो भिल्लेश्वरः ख्यातः सर्वकामप्रदायकः ॥ ३४ ॥ तत्र बालयतिर्नाम मुनिरासीत्तपःस्थितः ॥ व्यासपुत्रो महातेजाः समलोष्टाश्मकांचनः॥ ॥ ३५ ॥ आरराध परं भक्त्या जीवन्मुक्तः शुको मुनिः ॥ ततस्तद्रूपतः शंभुरत्रासीद्भवमोचनः ॥ ३६ ॥ शुकोस्य दर्शनादेव मुक्तः संसारबंधनात् ॥ नागो नाम महाभागो यो हस्तीति घटोद्भव ॥ तेनाराधित ईशो वै तत्रास्ते भवतस्करः ॥ ३७ ॥ यस्य नाम्ना पुरं चासीद्धस्तिनापुरसंज्ञितम् ॥ नागगंगेति

उनके दर्शनमात्र करनेहीसे करोड़ों पापोंका नाश हो जाताहै ॥ ३० ॥ हे महाभाग मुनीश्वर ! ! ! ऐसा कोईभी पाप नहींहै, जो उक्त महादेवजीके दर्शन करनेसे अवश्यही नष्ट न होजाताहो॥ ३१॥ और उनके दर्शन करनेसे पहिले नर देहमें आश्रित पिशाचभी मुक्त हो गयाहै, और उसे लोग प्रत्यक्ष देख सकेहैं ॥ ३२ ॥ भयके दूर करनेवाले यमदग्नीश्वर नामकेभी महादेवजी वहां विद्यमानहैं कारण कि, पूर्वकालमें वहांही यमदग्निजीने महादेवजीका आराधन कियाथा ॥ ३३ ॥ हे महामुने ! वहां भिल्लेश्वर नामके महादेवजीहैं अर्ज्जुनकी मन्त्रणाके लिये भिल्ल यहांही संगत हुएथे, तभीसे सब कामनाओंके पूर्ण कर्त्ता महादेवजी भिल्लेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुएहैं ॥ ३४ ॥ वहां सचमुचही बालयति पाषाण मृत्तिका और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखनेवाले महातेजस्वी व्यासपुत्र शुकदेवजी तपमें उपस्थित हुएथे ॥ ३५ ॥ जीवन्मुक्तस्वरूप शुकदेवजी मुनिने भक्तिपूर्वक शंकरजीकी आराधना करीथी, इस कारण उन्हींके रूपसे संसार बंधनका नाश करनेवाले महादेवजी उपस्थितहैं ॥ ३६ ॥ शुकदेवजी इनके दर्शन करतेही सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो गयेहैं, हे घटोद्भव ! नाग नामके एक हस्तीने वहां महादेवजीकी आराधना करीथी, इसीसे संसारनिवृत्ति करानेवाले महादेवजी वहां रहतेहैं ॥ ३७ ॥ उसीके नामसे हस्तिनापुर नगर बसाहै

विख्याता सर्वपापप्रमोचनी ॥ ३८ ॥ तस्याः संगमके स्नात्वा नित्यं शिवपुरे वसेत् ॥ ३९ ॥ तस्य वामे महादेवी शिलारूपातिकृष्णिका ॥ तस्याः स्पर्शेन संयाति देवीलोकं न संशयः ॥ ॥ ४० ॥ तत ऊर्ध्वं महाघोषो भिल्लानां संबभूव ह ॥ तत्र घोषेश्वरो देवो वाक्प्रदो मूकदेहिनाम् ॥ ४१ ॥ तस्य वामे क्रोशखंडे ख्याता धर्मशिला मुने ॥ यत्र धर्मः पुरा तेपे एकपादेन मानद ॥ ४२ ॥ नाशमायांति पापानि नित्यं धर्मशिलेक्षणात् ॥४३॥ धर्मेश्वरी महादेवी तत्रास्ते कामदायिनी ॥ तत्र चिह्नं महारण्ये रक्तवर्णं जलं शुभम् ॥ ४४ ॥ ततो वै पूर्वदिग्भागे गंगाया निकटे शुभम् ॥ शालितीर्थं समाख्यातं विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ ॥ ४५ ॥ बालगंगा च यत्रास्ति गंगायां संगता परा ॥ तत्र तीर्थं समाख्यातं देवतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ४६ ॥ ततः पूर्वोत्तरे पार्श्वे क्रोशार्द्धे धेनुनामकम् ॥ तीर्थञ्च परमं ख्यातं धेनुलोकप्रदायकम् ॥ ४७ ॥ काष्ठाद्रिस्तत्र चाख्यातः शिवमंदिरदायकः ॥ तस्येक्षणान्नरो याति पापनाशं दुरासदम् ॥ ॥ ४८ ॥ काष्ठपर्वतमाहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥

और वहांही सब पापोंका नाश करनेवाली नागगंगाभी विद्यमानहै ॥ ३८ ॥ वहांसे ऊपरकी ओर भीलोंका नाद हुआथा, अतः गूँगोंको घोष (शब्द) शक्ति देनेवाले महादेवजीका वहां घोषेश्वर नामहै ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हे मुने ! उनके वामभागमें आधे कोशकी दूरपर एक धर्मशिला उपस्थितहै, हे मानदाता ! वहां धर्मने प्रथम एकचरणसे तप कियाथा ॥ ४२ ॥ धर्मशिलाके नित्य दर्शन करनेसे पापोंका सत्यानाश हो जाताहै ॥४३॥ वहां कामनाओंकी अतिशय पूर्ण करनेवाली धर्मेश्वरी नामकी देवीजी उपस्थित हैं, और वहांका चिह्न यहहै कि, वनमें रक्तवर्ण शुभजल वर्त्तमानहै॥४४॥ वहांसे पूर्वदिशाकी ओर गंगाजीके निकटही विष्णुलोक प्रदान करनेवाला शुभशालि तीर्थहै ॥ ४५ ॥ वहां एक बालगंगाहै, बालगंगा जहां गंगाजीमें मिलीहै, वहां देवतीर्थ नामका विख्यात स्थानहै ॥ ४६ ॥ वहांसे पूर्व और उत्तरके मध्यमें आधे कोसकी दूरीपर धेनुलोक प्रदान करनेवाला लोकप्रसिद्ध धेनुतीर्थहै ॥४७ ॥ वहांही शिवधामकी प्राप्ति करानेवाला काष्ठाद्रि नामका पर्वतहै, उसके दर्शन करनेसे मनुष्योंके सब पापोंका नाश हो जाताहै ॥४८॥ काष्ठपर्वतके माहात्म्यको कोईभी वर्णन नहीं करसक्ताहै कारण कि, वहां देवी और महादेवजी

यत्र देवश्च देवी च नित्यं वसत ईश्वरौ ॥ ४९ ॥ काष्ठाद्रौ मुनिशार्दूल देवी परमपाविनी ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पातकं याति संक्षयम् ॥ ५० ॥ धन्या नराः प्रपश्यंति काष्ठेशीं शिवदायिकाम् ॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे रेणुकाद्रिमाहात्म्यवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

दोनोंही नित्य निवास करते हैं ॥ ४९ ॥ हे मुनिशार्दूल काष्ठपर्वतके ऊपर परम पवित्र देवीजी हैं, उनके दर्शन करनेसे मनुष्योंके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ५० ॥ काष्ठेश्वरी कल्याण दायिनी देवीजीका जो पुरुष दर्शन करते हैं उनै धन्यहैं, और वे सैकडों करोड़ों कल्पमें भी परम धामसे नहीं लौटते ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २०३.

अगस्त्य उवाच ॥ ॥ कार्त्तिकेय महाभाग त्वमस्माकं हि ज्ञानदः ॥ त्वया यत्कथितो देव काष्ठाद्रिः पुण्यगोचरः ॥ ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ तृप्तिर्न जायतेऽस्माकं श्रवणात्ते मुखांबुजात् ॥२॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ शृणु विप्र कथामेतां पौराणीं वेदसम्मिताम् ॥ पुरा कृतयुगस्यादौ राजासीत्परधार्मिकः ॥३॥ उत्कले देशवर्य्ये वै यत्र दारुमयो हरिः ॥ समुद्रोर्मिलसत्पादपीठो यो वै पुरेरितः ॥ ४ ॥ तत्रें-

अगस्त्यजी बोले—हे महाभाग कार्त्तिकेयजी ! आप हमैं ज्ञानके देनेवाले हैं, पुण्यात्माओंके गोचर होनेके योग्य काष्ठपर्वतका जो आपने वर्णन किया ॥ १ ॥ हे महामतिमान् ! उसकी उत्पत्ति हमारे अगाड़ी विस्तार पूर्वक वर्णन करिये, आपके मुखसे सुनते २ हमारी तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले—हे विप्र ! वेदसम्मित इस पौराणिक कथाको सुनो, पहिले सत् युगकी आदिमें परम धार्मिक एक राजा हुआथा ॥ ३ ॥ इसका जन्म श्रेष्ठ उत्कलदेशमें जहां नारायण काष्ठमयमूर्त्तिहैं, इनका सिंहासन और उस नगरका निवास समुद्रके तीरही परहै ॥ ४ -

द्रद्युम्ननामा वै राजराजेश्वरो मतः ॥ तस्य पत्नी सुमंतासीत्पतिधर्मपरायणा ॥ ५ ॥ एकदा तौ महात्मानौ दंपती सौधकोपरि ॥ शरत्कालस्य राकायां चंद्रमंडलदर्शिनौ ॥ ६ ॥ पारावारोर्मिचपलं चंद्रं ददृशतुर्मुने ॥ ज्योत्स्नावितानविततं त्रिजगज्जनवंदितम् ॥ ७ ॥ किमु रौप्येण संबद्धं तस्य राज्ञो दिदृक्षया ॥ स्वयशोवस्त्रविततं विततं भवनं किमु ॥८॥ एवं नानाविधं तत्र कौतुकं परमैक्षताम् ॥ एतस्मिन्नेव काले तु स्थितयोः सौधकोपरि ॥ आययौ निकटे विप्र पिपीली लोहिता परम् ॥९॥ पिपीलकश्च विप्राग्र्य तस्मिन्देशे समाययौ॥ऊचतुश्च तथान्योऽन्यं राजवार्त्तां महोत्कटाम् ॥ १० ॥ पिपीलीमवदत्तत्र पिपीलो जंतुसत्तमः ॥ जानासि त्वं महाराजमिंद्रद्युम्नमिमं प्रिये ॥ ११ ॥ नाहं वेद्मि नृपं सा च जगादेति पिपीलिकम् ॥ सोऽवदत्स्वप्रियां भूयः पृच्छंतीं राजचेष्टितम्॥१२॥अयं पुराऽभवद्वैश्यः कृपणो धनलुब्धकः॥अर्जितं धनमेकाग्रं नान्यद्वै प्रत्यपद्यत॥१३॥

वहां इन्द्रद्युम्न नामका राजराजेश्वर था, उसकी सुमन्ता नाम पत्नी पतिभक्तिमें ततपर रहतीथी ॥ ५ ॥ एक समय यह महात्मा दम्पती अपने बालेखानेके ऊपर बैठे, शरत्कालीन चन्द्रमाकी चांदनीका अवलोकन कररहेथे ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर !!! वे दोनो उस समय यह भी देखरहे थे कि. समुद्रकी लहरोंसे चन्द्रमा विचलित हो रहाहै, चांदनीके वितान (शामियाने) के नीचे विराजमान हुए चन्द्रमाकी त्रिलोकीके जन बन्दना कररहेहैं ॥ ७ ॥ राजाको उस समय अपनी दृष्टि शैत्यसे बद्धसी प्रतीत होतीथी, अथवा समस्तलोक अपने यशोरूप वस्त्रसे बिछाहुआ दृष्टिगोचर होता था ॥ ८ ॥ इस प्रकार ये दोनो विविध भांतिके अनेक कौतुकोंका अवलोकन करतेथे, इसी समय जबकि ये दोनों महलके ऊपर बैठेहीथे तभी परम लोहित वर्णकी एक पिपीलिका (चींटी) वहां आई ॥ ९ ॥ हे द्विजराज ! पिपीलभी एक वहां आया, तब ये दोनो परस्पर राजाकी उत्कट वर्त्ता कहनेलगे ॥ १० ॥ जीवोंमें श्रेष्ठ पिपीलिक अपनी पत्नी पिपीलिकासे बोला—कि, हे प्रिये ! तुम इस इन्द्रद्युम्न: राजाको जानतीहो ॥ ११ ॥ तब उसने पिपीलिकको यह उत्तर दिया कि, मैं इस राजाको नहीं जानती, राजाके वृत्तान्तको पूछतीहुई अपनी प्रियासे तब वह पिपीलिक फिर कहनेलगा ॥ १२ ॥ पहिले यह अत्यन्त कृपण और धनका लोभी वैश्यथा,

येन केन प्रकारेण धनार्जनपरोऽभवत् ॥ काष्ठानां विक्रयं कुर्वन् क्रयं चापि पिपीलिके ॥ १४ ॥ विक्रीणंश्चाप्य-विक्रेयं विक्रेयं च महामुने॥एवं तेनार्जितं द्रव्यं बहुरूपं महामते॥ ॥ १५ ॥ धन्यो जातः कुले तस्मिन्धनाढ्यो धनलोलुपः ॥ एवं तस्य महाकालो ययौ च द्रव्यमिच्छतः ॥ १६ ॥ एकदा दैवयोगेन गतोऽरण्ये भयानके ॥ काष्ठं विक्रयितुं सम्यग्धनार्ज-नपरायणः ॥ १७ ॥ कैलासस्याधरे पार्श्वे रेणुकाद्रिसमीपतः ॥ दष्टो भुजंगरूपेण कालेन धनतत्परः ॥ १८ ॥ मृतश्च निर्जने देशे सोऽभवद्ब्रह्मराक्षसः ॥ राक्षसोऽपि जलं दृष्ट्वा गंगायाः पाव-नं महत् ॥ क्रूरभावं जहौ तूर्णं गंगाजलसुदर्शनात् ॥ १९ ॥ पप्रच्छ तं महाभागं जलाहरणतत्परम् ॥ कोऽसिकोऽसि महा-भाग किमस्ति तव संपुटे ॥ २० ॥ इदं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्र दया मेऽ-जनि सत्वरम् ॥ क्षुधापि बाधते नैव न तृषा न परिश्रमः ॥ ॥ २१ ॥ किमिदं कारणं भद्र यन्मे क्रूरस्य ते दया ॥ एतत्सर्वं

...राम इसने और कुछ नहीं किया केवल धनहीनका संचय करा ॥ १३ ॥ जैसे बने तैसे यह ...न कमानेहीमें लगारहताथा, हे पिपीलिके यह काष्ठका भी क्रयविक्रय करताथा ॥ १४ ॥ जो ...स्तु बेचनेके योग्य होती उसे बेचता, और क्रयकरनेके योग्य वस्तुको मोल लै लेताथा, हे महा-...! इस प्रकार उसने विपुल धन संचित करा ॥ १५ ॥ धनका लोभी अतिशय धनाढय होनेके ...रण यह वैश्य अपने कुलमें धन्य होगया, इस प्रकार द्रव्य संग्रहकी इच्छा करते २ उसका ...हुत्सा समय व्यतीत होगया ॥ १६ ॥ एक समय धनसंचय करनेकी ...मनासे कांष्ट बेचनेके लिये यह लोभी दैवात् बनमें जानिकला ॥ १७ ॥ कैला-...के नीचे रेणुका पर्वतके समीप इस धन संचयीको कालरूप सर्पने डसलिया ॥ १८ ॥ मृत-...र यह निर्जन बनमें मरकर ब्रह्मराक्षस होगया । फिर गंगाजीके परम पवित्र जलको देखतेही ...ने तत्कालही अपने क्रूर स्वभावका परित्याग करदिया ॥ १९ ॥ तब यह गंगाजल लानेवाले ...ह्मणसे पूछने लगा, हे महाभाग ! तुम कौन हो ? और तुम्हारे संपुटमें क्याहै ? ॥ २० ॥ हे ...ह्मण ! इसे देखतेही मेरे चित्तमें दयाका प्रादुर्भाव हुआ है, और क्षुधा तृषा तथा परिश्रमकी बाधा-मुझे नहीं होती ॥ २१ ॥ हे महाशय ! इसका क्या कारणहै कि, मुझ क्रूरके ऊपर आपकी

वद प्राज्ञ संतुष्टश्चैव वैभवम् ॥ २२ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ समायातो जलार्थी च विश्वामित्रकुलोद्भवः॥ ब्राह्मणो वेदविच्चैव गंगाजलमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ आनेतुं तरसाऽयातो गंगोत्तर इति स्थले ॥ तज्जलं हि समानीय ह्यत्राहं च समागतः ॥ ॥ २४ ॥ तज्जलं परमं भद्रं दृष्टं चेदं त्वयात्र वै ॥ अस्य वै दर्शनान्नष्टा क्रूरा बुद्धिस्तवेदृशी ॥ २५ ॥ त्वं च कोऽसि वने ह्यत्र भयदे व्याघ्रसंकुले ॥ तन्ममाचक्ष्व हे सर्वं यज्जाते दृग्गतिस्तव ॥ २६ ॥ ब्रह्मराक्षस उवाच ॥ शृणु विप्र मदीयं त्वं वृत्तांतं च तथादितः॥यथाहं समनुप्राप्तो दशामेतादृशीं द्विज ॥ २७ ॥ वैश्योऽहं पूर्वमभवं धनलुब्धो दिवानिशम् ॥ भ्रमन्नितस्ततश्चैव धनतृष्णामदालसः ॥ येन केन प्रकारेण मया द्रव्यार्जनं कृतम् ॥ २८॥ नास्मरं श्रीभगवतः काष्ठान्याहर्तुमुद्यतः ॥ निर्जने नागदष्टोऽहमतो रक्षस्त्वमागतः ॥ २९ ॥ इदानीं तु महाभाग जातं तत्स्मरणं मम ॥ गतिः केन प्रकारेण

ऐसी दयाहै, सो हे प्राज्ञ ! यह सब कुछ हमारे प्रति वर्णन करिये ॥ २२ ॥ ब्राह्मण बोला—मैं विश्वामित्रजीके कुलमें प्रादुर्भूत हुआ वेदज्ञ ब्राह्मण हूं, और गंगाजल लेनेको ॥ २३ ॥ झटपट गंगोत्तरी स्थलमें आया था, सो उस जलको लेके अब मैं यहां आया हूं ॥ २४ ॥ महाशय ! उसी जलका तुमने अवलोकन कियाहै, सो इसके दर्शन करनेहीसे तुम्हारी क्रूरमतिका नाश होगया है ॥ २५ ॥ व्याघ्रोंसे आकीर्ण अतएव भयावह इस वनमें तुम कौनहो ? यह सब वृत्तान्त हमसे वर्णन करो, क्योंकि, अब तुम्हारी सद्गति होगई है ॥ २६ ॥ ब्रह्मराक्षस बोला—हे विप्र ! मैं जैसे इस दशाको प्राप्त हुआ हूं सो मेरे सब वृत्तान्तको आदिसे सुनो ॥ २७ ॥ प्रथम मैं अतिशय लोभी वैश्यथा, अतएव रातदिन धनकी तृष्णाके मदसे जहां तहां विचरता रहताथा ! और विशेष क्या कहूं, जैसे बना वैसे मैंने धनहीका संचय किया ॥ २८ ॥ मैं सदा काष्ठ लानेहीमें लगारहा, किन्तु श्रीभगवान्का स्मरण कभी नहीं किया ! एक समय मुझे निर्जन वनमें नागने डस लिया, तब मैं ब्रह्मराक्षस होगया ॥ २९ ॥ हे महाभाग ! इस समय हमैं उस सब वृत्तान्तका स्मरण

भवेन्मम वद प्रभो ॥ ३० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ कथं ब्रह्मत्वमापन्नो मृतो वैश्यो महामते ॥ ब्राह्मणो जायते प्रेत्य भुजंगपतनादिभिः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मराक्षसको देव नान्यो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मत्वं च कथं तेन रक्षसा पार्वतीसुत ॥ ३२ ॥ स्कंद उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया विप्र परमत्र मृतेः फलम् ॥ इदं ब्रह्मत्वसंप्राप्तिर्जाता तस्य महामते ॥ ३३ ॥ भुजंगदंशितत्वाद्धि रक्षस्त्वाप्तिर्विशस्तदा ॥ शीघ्रं च ज्ञानसंप्राप्तिस्तस्य वै ब्रह्मरक्षसः ॥ ३४ ॥ इति रक्षोवचः श्रुत्वा जगाद जलहारकः ॥ गांगं जलं महाभाग ते ददामि विमुक्तिदम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा प्रसिषेचापि जलेन ब्रह्मराक्षसम् ॥ सिच्यमानो राक्षसश्च रक्षस्त्वं प्रजहौ त्वरम् ॥ ३६ ॥ अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे सिंहतूर्णगिरौ मुने॥ भिल्लो बभूव वैश्योऽसौ द्वितीये जन्मनि द्विज ॥ ३७ ॥ जातिस्मरत्वमापन्नः शुभक्षेत्रे मृतस्तथा ॥ गंगोत्तरजलस्यापि स्पर्शनात्सोऽभ्यजायत ॥ त्यक्तसर्वगृहारंभस्तीर्थसेवापरोऽभवत् ॥ ॥ ३८ ॥ रेणुकायां सदा स्नाति रेणुकां च प्रपूजयन् ॥ काष्ठा-

आ है, सो हे प्रभो ! यह बताइये कि—अब मेरी सद्गति किस प्रकारसे होसक्तीहै ॥ ३० ॥ अगस्त्यजी बोले—हे महामतिमान् ! वैश्य मरकर ब्रह्मराक्षस कैसे हुआ, क्योंकि मरनेके अनन्तर केवल ब्राह्मणही सर्प आदिके डसनेसे ब्रह्मराक्षस होताहै, और किसीको ब्रह्मराक्षसत्वकी प्राप्ति नहीं होती, फिर हे पार्वती कुमार ! उक्त वैश्यको ब्रह्मराक्षसत्व कैसे प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ स्कन्दजी बोले—विप्र ! तुमने जो कहा सो सब ठीकहै, किन्तु, उसे मरने पर ब्रह्मत्वरूपफलहीकी प्राप्ति हुई ३३ ॥ वैश्यको सर्पने डसा, ब्रह्मराक्षसत्वकी प्राप्ति हुई, और फिर उस ब्रह्मराक्षसको शीघ्रही भी प्राप्तहोगया ॥ ३४ ॥ राक्षसके ऐसे वाक्य सुन जललानेवाला वह ब्राह्मण बोला कि, हे भाग ! मुक्ति प्रदान करनेवाला गंगाजल मैं तुझे देताहूं ॥ ३५ ॥ यों कहकर उसने ब्रह्मसके ऊपर गंगाजल छिड़का, इस प्रकार सींच जानेपर उसका ब्रह्मराक्षसत्व दूर होगया ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वर ! इसी क्षेत्रमें सिंहतूर्ण पर्वतके ऊपर दूसरे जन्ममें यह वैश्य भील होगया ३७ ॥ वहांभी इसे अपनी पहिली जातिका स्मरण बनारहा, और फिर इसकी शुभक्षेत्रमें हुई, तब गंगोत्तरीके जलका स्पर्श करनेसे इसने सब गृहस्थको त्याग, तीर्थसेवामें अपने को लगाया ॥ ३८ ॥ रेणुकामें स्नान करता और रेणुकाहीको पूजताथा, और उसी महा-

न्यानीय विक्रीते तस्मादेव महागिरेः ॥३९॥ अर्द्धं ददाति विप्रेभ्यस्तदर्द्धं देवतार्चने ॥ तदर्द्धं वै स्वयं भुंक्ते एवं कालो व्यतीतवान् ॥ ४० ॥ कालधर्ममनुप्राप्तः कालेनायं भवांतरे ॥ इंद्रद्युम्नो महाराजः स्वयं जातोऽतिधार्मिकः ॥ ४१ ॥ रेणुकाक्षेत्रतो ह्यस्य पृथ्वीशत्वं महामुने ॥ ४२ ॥ स्कंद उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो राजा पिपीलस्य तदा ततः॥आययौ दयितायुक्तो राज्ये संस्थाप्य पुत्रकम् ॥ ४३ ॥ काष्ठाद्रौ दुर्गमे राजा ययौ देवप्रयागके ॥ तपस्तताप परमं पत्न्या सह घटोद्भव ॥ ४४ ॥ यदस्मात्पर्वतात्काष्ठान्याहृत्यानेन वै पुरा॥ विक्रीय दत्तं भुक्तं च न्यायेनोपार्जितं वसु ॥ तस्मात्काष्ठाद्रिसंज्ञास्य जाता पुण्यस्य मानद ॥ ॥ ४५ ॥ सोऽपि राजा महाबाहुः पत्न्या सह मुनीश्वर॥ विवेश भवनं विष्णोः पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ४६ ॥ अद्यापि तत्र देशे हि तस्य राज्ञस्तपस्स्थलम्॥इंद्रद्युम्ननदी तत्र काष्ठाद्रेः पश्चिमोत्तरे॥ ॥ ४७ ॥ सर्वपापहराख्याता विष्णोर्लोकप्रदायिनी ॥ श्रीवि-

पर्वतके ऊपरसे काष्ठ लाकर बेचलिया करताथा ॥ ३९ ॥ उसका आधा द्रव्य ब्राह्मणोंको देता शेषका आधा देवपूजनमें लगाता, और अवशिष्टको स्वयं भोगताथा, सुतराम् इसी प्रकार उसका समय व्यतीत होनेलगा ॥ ४० ॥ कदाचित् जब इसका मरण हुआ, तब यह समयानुसार दूसरे जन्ममें अत्यन्त धर्माचारी इन्द्रद्युम्न महाराज हुआहै ॥ ४१ ॥ हे महामुने ! रेणुकाक्षेत्रकी सेवा करनेसे इसे भूपालत्वकी प्राप्ति हुई है ॥ ४२ ॥ स्कन्दजी बोले— जब राजाने पिपीलिकाके ऐसे वचन सुने, तब वह राज्यसिंहासनके ऊपर पुत्रको बैठाके, पत्नी सहित ॥ ४३ ॥ काष्ठपर्वतके ऊपर आनकर देवप्रयागमें जप और तप करनेलगा ॥ ४४ ॥ यह पहिले इसी पर्वतके ऊपरसे काष्ठ लाय २ कर बेचता, दान, करता और स्वयं उपभोग करताथा, और इसी विधिसे इसने न्यायपूर्वक धन कमायाथा, हे मानदाता ! इसी कारण इस पवित्र पर्वतका काष्ठाद्रि नाम हुआहै ॥ ४५ ॥ हे मुनीश्वर ! वह राजाभी अपनी पत्नी सहित विष्णुलोकको जहांसे कि, फिर लौटना कठिनहै, चलागया ॥ ४६ ॥ वहां अभीतक उस राजाके तप करनेका स्थानहै, वहाँही काष्ठपर्वतके पश्चिमी भागमें इन्द्रद्युम्न नामकी नदीहै ॥ ४७ ॥ वह सब पापोंकी हरने, और विष्णुधामकी देनेवालीहै, अथच सांसारिक बन्धनसे मुक्तिलाभ करानेवाली श्रीविष्णुभगवान् की

ष्णोः पादुके तत्र वर्तेते भवमुक्तिदे ॥ ४८ ॥ इति ते कथितो विप्र काष्ठाद्रेर्नामसंभवः ॥ इंद्रद्युम्नस्य वृत्तांतं जातं यत्पूर्वजन्मनि॥४९॥एतच्छ्रुत्वा तु सहसा मुच्यते पापकंचुकात्॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥५०॥यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पापं क्षयं व्रजेत्॥५१॥इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे रेणुकाद्रिपर्वतमहात्म्ये काष्ठाद्रिसंभववर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

...पादुकाभी वहाँ विद्यमानहै ॥ ४८ ॥ इस प्रकार हे विप्र ! काष्ठपर्वतके नामकी उत्पत्ति, और भूतपूर्व इन्द्रद्युम्नका समस्त वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ४९ ॥ इसका श्रवण करनेसे मनुष्य पाप कंचुकसे मुक्त होजाताहै, क्योंकि, यह आख्यान धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला, अथच पवित्र अतएव पापोंका नाश करनेवालाहै ॥ ५० ॥ जो पुरुष इसे पढ़ता अथवा सुनताहै, उसके सब पाप क्षीण होजातेहैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे भाषाटीकायां त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः २०४.

स्कन्द उवाच॥अन्यच्चापि प्रवक्ष्यामि तीर्थं परमपावनम्॥गंगायाः पश्चिमे तीरे योजनार्द्धमहोन्नतम् ॥ महाद्रिश्च तथा ख्यातो दर्शनात्पापमोचनः॥१॥भिल्लाद्रेः पश्चिमे भागे वटवृक्षो महास्पदः॥योजनायाम विस्तारः प्राणिनां भयतस्करः ॥ २ ॥ भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां दृश्यते पुण्यकृज्जनैः ॥ तस्मिंस्तु वटवृक्षे वै योजनायामविस्तृते ॥ अङ्गुष्ठप्रतिमा विप्र बालखिल्यास्तु लंबिताः ॥३॥तपस्यंति महा-

स्कन्दजी बोले— अब हम तुम्हारे प्रति परम पवित्र एक और तीर्थका वर्णन करतेहैं, गंगाजीके पश्चिमी तीरपर अर्ध योजन विस्तृत एक महान् पर्वतहै, उसके दर्शन करनेसे पाप मोचित होते ॥ १ ॥ भिल्लपर्वतके पश्चिम भागमें एक बड़ा लम्बा चौड़ा वटवृक्षहै, उसकी लंबाईका विस्तार एक योजनहै, और वह प्राणियोंके भयका हरने वालाहै ॥ २ ॥ भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीके दिन पुण्यात्मा जनोंको उसके दर्शन होतेहैं, एक योजन विस्तृत उस वटवृक्षमें अंगुष्ट प्रमाणकी मूर्त्ति धारणकरे बालखिल्य लम्बायमान रहतेहैं ॥ ३ ॥ ध्यान करते २ उनके पाप नष्टहोगये, सुतराम्

त्मानो ध्यानक्षपितकल्मषाः॥बालखिल्यो नदस्तत्र तत एव समुद्भवः॥४॥संगमे जाह्नवीतीरे देवर्षिगणपूजिते ॥ तत्र पुण्यतमं तीर्थं मुनितीर्थमिति स्मृतम्॥५॥ तत्र यः स्नाति तीर्थे वै स्पर्शक्षपितकल्मषः ॥ स याति भवनं विष्णोः कोटिसूर्यभयानगः ॥ ॥ ६ ॥ तत्रास्ति परमो देवो बालखिल्येश्वराभिधः ॥ तस्य दर्शनतो यांति दूरादेनांसि सत्वरम् ॥ ७ ॥ ततः क्रोशार्द्धखंडे वै नदी परमपाविनी ॥ कपिलेति च विख्याता नरपापविशोधिनी ॥ ८ ॥ तस्यां यः स्नाति घटज ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥९॥ तस्योर्द्ध्वे पर्वतो यस्तु स वै कपिलनामकः ॥ तत एव समायाति नदी कपिलसंभवा ॥ १० ॥ ॥ तत्रैव कपिलो देवो भैरवो भयनाशनः ॥ तमर्चयंति ये विप्र न तेषां विद्यते भयम् ॥ ॥ ११ ॥ ततो योजनषट्के वै गंगाया उत्तरे तटे ॥ लोमशो नाम मुनिराट् तत्र वै लोमशाश्रमः ॥ १२ ॥ एकरोमात्यये यस्य ब्रह्मायुः परिपूर्य्यते॥सोऽयं मुनिवरोऽत्रास्ते सर्वसत्त्वसुखा-

वे महात्मा लोग वहां तप करतेहैं । और उन्हींसे उत्पन्न हुआ बालखिल्य नामका नदभी वहां विद्यमानहै ॥ ४ ॥ जहां उक्त नदका गंगाजीमें संगम हुआहै, देवर्षिगण पूजित उक्त स्थानमें मुनितीर्थ नामका परम पवित्र तीर्थहै ॥ ५ ॥ जो मनुष्य उक्त तीर्थमें स्नान करताहै, उसके पाप नष्ट हो जातेहैं, और वह करोड़ों सूर्य्यकी समान चमकीले विमानमें बैठकर विष्णुधामको चलाजाता है ॥ ६ ॥ और वहांही बालखिल्येश्वर नाम महादेवजी हैं, उनके दर्शन करतेही सब पापदूरसे नष्ट होजातेहैं ॥ ७ ॥ वहांसे पाव कोशकी दूरीपर परम पवित्र कपिल नामकी एक नदीहै, वह सब पापोंका संशोधन करतीहै ॥ ८ ॥ हे घटयोने ! जो व्यक्ति उस नदीमें स्नान करताहै, उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ९ ॥ उसके ऊपर जो पर्वतहै, उसका कपिल नामहै, वह कपिल संभवा नदी उसीमेंसे निकलतीहै ॥ १० ॥ वहांही भयविनाशी भैरवदेव हैं, जो पुरुष उनकी पूजा करताहै उसको कोई भय नहीं रहता ॥ ११ ॥ वहांसे छयोजनकी दूरीपर गंगाजीके उत्तर तटके ऊपर लोमश नामके महर्षि और उनका आश्रम विद्यमानहै ॥ १२ ॥ जब ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होतीहै, तब उनका एक रोम टूट जाताहै, सब जीवोंको सुख देनेवाले वे महर्षि वह

करः ॥ १३ ॥ ब्रह्मकूटगिरिस्तत्र ततो वै सरिदुत्तमा ॥ नाम्ना लोमशगंगा वै सर्वपापविमोचिनी ॥ १४ ॥ तस्यां वै स्नानमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥ आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य लोमशस्य यथा मुनेः ॥ १५ ॥ ततो वै उत्तरे पार्श्वे श्वेतपर्वतसन्निधौ ॥ यत्र गंगा समुत्पन्ना भगीरथतपस्थले ॥ १६ ॥ भगीरथाश्रमस्तत्र सर्वपापविमोचनः ॥ य आरोहति तं शैलं श्वेताख्यं परमं पदम् ॥ १७ ॥ विमानैः सर्वगैः सोऽन्ते ह्यारोहति नभस्तलम् ॥ ॥ १८ ॥ ततः उत्तरदिग्भागे यमुनायाः समुद्भवः ॥ तत्र सूर्यात्समुत्पन्ना सर्वपापौघनाशिनी ॥ १९ ॥ तत्र गच्छति यो मर्त्यः स्नाति तत्र महाह्रदे ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्जायते भुवि कुंभज ॥ ॥२०॥यमुनोत्तरभागे वै रत्नकोटिगिरिर्मतः ॥ रत्नानि तत्र विप्रेश ववर्ष गुह्यकेश्वरः ॥२१॥ पुलस्त्यस्याश्रमस्तत्र यत्र सर्वेश्वरः शिवः ॥ ब्रह्मज्वाला नदी तत्र ज्योतिःकूटसमुद्भवा ॥ तस्यां वै स्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ तस्य वै दक्षिणे भागे तेजोऽद्रिः समुदाहृतः ॥ यत्र वह्निः पुरा विप्र तपस्तेपे

उपस्थित है ॥ १३ ॥ वहां जो ब्रह्मकूट नाम पर्वत है उसमेंसे लोमशगंगा नामकी उत्तम नदी निकलतीहै, यह नदी सब पापोंका नाश करनेवाली है ॥ १४ ॥ उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य नारायणस्वरूप हो जाताहै, और लोमशजीकी सदृश उस पुरुषकी भी आयुकी वृद्धि होतीहै ॥ १५ ॥ वहांसे उत्तरकी ओर श्वेतपर्वतके निकट भगीरथजीके तपका स्थानहै वहां गंगाजीकी उत्पत्ति हुईथी ॥ १६ ॥ वहां सब पापोंका विनाश करनेवाला भगीरथजीका आश्रम है, जो पुरुष उक्त श्वेतपर्वतके ऊपर आरोहण करताहै, उसे परमपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ और वह सर्वगति विमानोंमें आरूढ हो अन्त समय आकाशमें जाताहै ॥१८॥ वहांसे उत्तर दिशाकी ओर यमुनाजीकी उत्पत्तिका स्थानहै, सब पापोंका नाश करनेवाली सूर्यसे वहांही उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥ जो पुरुष वहाँ जाता अथवा महाह्रदमे स्नान करताहै, सुनो अगस्त्यजी ! संसारमें उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ २० ॥ यमुनाजीके उत्तरी भागमें रत्नकोटि नामका पर्वतहै, हे द्विजराज ! वहां कुवेरने रत्नोंकी वर्षा करीथी ॥ २१ ॥ वहांही पुलस्त्यजीका आश्रमहै, वहां सर्वेश्वर महादेवजी हैं, और ज्योतिःकूटसे प्रादुर्भूत हुई ब्रह्मज्वाला नामकी नदीभी वहांही वर्त्तमानहै, उसमें केवल स्नानमात्र करनेसे मनुष्य कृतार्थ हो जाताहै ॥ २२ ॥ वहांसे दक्षिणकी ओर एक

सुदारुणम् ॥ २३ ॥ अत्रैव तपसा प्राप्तं दिगीशत्वं तदाग्निना ॥ दिव्यं सरश्च तत्रास्ति तप्तोदं पापिदुर्गमम् ॥ तत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ २४ ॥ ततः पूर्वोत्तरे शृंगे मणिज्वालेति विश्रुता ॥ तस्मिन्वै पर्वते रम्ये नानाधातुमये मुने ॥ नीलकंठेश्वरस्तत्र महादेवो भयापहः ॥२५॥ समक्षं क्रीडते योऽसौ यक्षैर्गंधर्वसत्तमैः॥२६॥ततः पूर्वदिशि स्वच्छः सिद्धकूटगिरिर्महान् ॥ तस्य दक्षोत्तरे विप्र पूर्वोक्तं तन्महामुने ॥ २७ ॥ उमाकुंडमिति ख्यातं गौरीकुंडात्तथोत्तरे ॥ अतितप्तं जलं तत्र महापातकनाशनम् ॥२८॥ तत एव समायाति नदी पश्चिमवाहिनी॥नाम्ना सिद्धतरंगा च सिद्धैरध्युषिताऽनिशम्॥२९॥सिद्धतीर्थमिति ख्यातं तत्र सिद्धिप्रदायकम् ॥ यमेन तत्र विप्रेश तपस्तप्त्वेशता गता ॥ ३० ॥ तत उत्तरतो विप्र त्रिकूटाद्रिः प्रतिष्ठितः ॥ ततः समायाति सरिन्नाम्ना शुद्धतरंगिणी ॥ ३१ ॥ गंगायां समियाद्यत्र तत्सुधातीर्थमुत्तमम् ॥ तत्र वै स्नानमा-

पीठ है, पहिले अग्निने वहांही उग्र तप किया था ॥ २३ ॥ यहांही तप करनेसे अग्निको दिक्पालत्वकी प्राप्ति हुई थी, वहां तप्तजलसे पूर्ण एक दिव्य सरोवर है, पापियोंको उसकी प्राप्ति नहीं होसक्ती ॥ २४ ॥ उसके अगाड़ी पूर्व और उत्तरके शृंगमें मणिज्वाला विख्यात है, हे मुने ! अनेक धातुओंसे चित्रित अतएव सुरम्य इसी पर्वतके ऊपर सब भयोंको दूर करने वाले नीलकण्ठेश्वर नामके शिवजी हैं ॥ २५ ॥ सब यक्ष गन्धर्व समक्ष क्रीडा किया करते हैं ॥ २६ ॥ वहांसे पूर्व दिशाकी ओर श्वेतवर्ण सिद्धकूट नामका महान् पर्वतहै, हे मुनीश्वर ! उसीके पूर्वोत्तर कोणमें उक्त स्थानहै ॥ २७ ॥ तथा गौरी कुण्डसे उत्तरकी ओर उमाकुण्डहै, उसमें सब पापोंका नाश करनेवाला अत्यन्त तप्त जल भरा रहताहै ॥ २८ ॥ वहांहीसे पश्चिम वाहिनी एक नदी निकलतीहै, उसका सिद्धतरंगा नाम है, और सिद्धगण उसकी सेवा करते हैं ॥ २९ ॥ वहांही सब सिद्धियोंका देनेवाला एक सिद्धतीर्थ है, हे द्विजराज ! यमराजने उसी स्थानमें तप करके अधीश्वरत्वका लाभ कियाथा॥३०॥हे विप्र ! वहांसे उत्तरकी ओर कूटनाम पर्वतहै, उसमेंसे शुद्ध तरंगिणी नदी निकलती है ॥ ३१ ॥ जहां वह गंगाजीमें मिलतीहै, वह स्थान

त्रेण सर्वान्कामाँल्लभेन्नरः ॥ ३२ ॥ न सुधातीर्थसदृशं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥ यत्र चंद्रः सुधाकारस्तपस्तप्त्वा ह्यजायत ॥ ३३ ॥ स्फटिकाद्रिस्तत्र विप्र शिवावासोऽस्ति नित्यदा ॥ ततः समायाति वरा नाम्ना ब्रह्मनदी परा ॥ ३४ ॥ रुद्रभद्रनदश्चापि तयोः संगमने परम् ॥ तत्रास्ति ब्रह्मतीर्थाख्यं यत्र वायुः पुरा मुने॥दिक्पालत्वं तपस्तप्त्वा सुखं चाक्षयमाप्तवान् ॥ ३५ ॥ उत्तरे तु ततो विप्र नाम्ना चित्रवती नदी ॥ भस्मधारा च तत्रास्ति नदी शिवविभूतिजा ॥ ३६ ॥ तयोस्तु संगमे पुण्यं भस्माख्यं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रेशानः पुरा प्राप दिक्पालत्वं महामुने ॥३७॥ ततो वायव्यके विप्र ब्रह्मपुत्र नदो वरः ॥ तत्रास्ति च सरिच्छ्रेष्ठा कामधाराभिधा मुने ॥३८॥ ध्रुवतीर्थं च तत्रास्ति तयोः संगमने परम् ॥ ध्रुवस्तपो यत्र पुरा चकार बहुवार्षिकम् ॥ ३९ ॥ प्राप वै परमं स्थानं यत्राद्यापि प्रवर्तते ॥ ४० ॥ तत उत्तरतो विप्र कुरुवर्षमिति स्मृतम् ॥ यत्रैकपादा मनुजाः शूर्पकर्णा महाननाः ॥ अश्वदेहा दीर्घकेशा

उत्तम सुधातीर्थ कहाताहै, उसमें केवल स्नानही करनेसे मनुष्यको सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है ॥ ३२ ॥ सुधातीर्थकी समान त्रिलोकीमें अन्य कोई स्थान दुर्लभ नहीं है, कारण कि, वहां तप करनेहीसे चन्द्रमा सुधाकर हुएहैं ॥ ३३ ॥ वहांही स्फटिक पर्वत है, उसके ऊपर भगवती निवास करती है, और उसीमेंसे ब्रह्मनदी नामकी धारा निकलतीहै ॥ ३४ ॥ रुद्रभद्र नदभी वह भी विद्यमानहै, उनदोनोके संगममें ब्रह्मतीर्थ है, हे मुनीश्वर प्राचीन कालमें वहांही वायुने उग्र तप करके दिक्पालत्व और अक्षय सुखको पायाथा ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! वहांसे उत्तरकी ओर चित्रवती नदीहै, एवं महादेवजीकी विभूतिसे प्रादुर्भूत हुई भस्मधाराभी वहांही है ॥ ३६ ॥ उन दोनोंके संगममें भस्माख्य उत्तम तीर्थहै, हे महामुने ! उसी स्थानमें शिवजीको दिक्पालत्वकी प्राप्ति हुई थी ॥ ३७ ॥ हे विप्र वहांसे वायुकोणकी ओर ब्रह्मपुत्र नामका श्रेष्ठ नदहै, उसी स्थानमें कामधारा नामकी श्रेष्ठ नदीहै ॥ ३८ ॥ उन दोनोंके संगमके ऊपरही ध्रुवजीका उत्तम तीर्थहै, ध्रुव जीने प्रथम उसी स्थानमें बहुतवर्ष पर्य्यन्त तप कियाथा ॥ ३९ ॥ तभी उन्हें ऐसे परम पदकी प्राप्ति हुई थी कि, जहां वे अभीतक उपस्थितहैं ॥ ४० ॥ हे विप्र ! वहांसे उत्तरकी ओर कुरुवर्ष है वहांके मनुष्योंके एकचरण, सूपसे कान, बडे २ मुख, अश्वकेसे देह और लंबे केश किन्हीं

मनुजाः स्युस्तथापरे ॥ ४१ ॥ द्विसहस्रायुषः केचित्केचिद्दे ह्ययुतायुषः ॥ न तत्र जरसो व्याप्तिर्न व्याधिर्नैव संशयः ॥४२॥ न बालमरणं तत्र संभोगाश्च सदासुखाः ॥ तत्र सौंदर्यनामा वै पर्वतः पुण्यगोचरः ॥ ४३ ॥ सुंदरी च नदी तत्र तथा मोक्षवती नदी ॥ तयोस्तु संगमे पुण्ये सुंदरप्रयागको मुने ॥ ४४ ॥ तत्रेश्वरी सिद्धरूपा सुंदरीति समीरिता ॥ न तस्या दर्शनाद्याति नरो रोगजरा मुने ॥ ४५ ॥ सापि प्रत्यक्षतो देवी सर्वेषां दृष्टिगोचरा ॥ शुभाशुभं वदत्येषा प्राणिनां मुनिपुंगव ॥ ४६ ॥ ततः पूर्वोत्तरे पार्श्वे हयग्रीवो जनार्दनः ॥ विष्णुधारा नदी तत्र विष्णुक्षेत्रं विमुक्तिदम् ॥ ४७ ॥ भाग्योदयेन यस्तत्र विप्र गच्छति मानवः ॥ जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो व्यासपुत्रो यथा मतः ॥४८॥ तस्यापि दर्शनाद्विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥ रत्नानां निचयस्तत्र सौवर्णी तत्र वालुका ॥ घृतदुग्धवहा नद्यः सर्वकामफला नगाः ॥५०॥ न पुण्यभूमिश्चेयं वै भोगभूमिरियं स्मृता ॥५१॥

के मुख पुरुषोंकेही सदृश ॥ ४१ ॥ वहां किन्हीकी अवस्था दो सहस्र और किन्हीको दस सहस्र वर्षकी होती है, वहां जरा (बुढापा) व्याधि और सन्देह (भ्रम) किसीको नहीं सताते थे ॥ ४२ ॥ वहां बाल मरणभी नहीं होताथा, किन्तु सब सुखहीके उपभोगथे, वहां सौन्दर्य नाम जो पर्वतहै, पुण्यात्माओंहीको उसके दर्शन हो सक्तेहैं ॥ ४३ ॥ वहांही सुन्दरी और मोक्षवती नदियें हैं, हे मुनीश्वर ! उन दोनोंके संगममें परमपवित्र सुन्दर प्रयागतीर्थ है ॥ ॥ ४४ ॥ वहां सुन्दरी नामकी सिद्धरूपा भगवती विद्यमान हैं, उनके दर्शन करनेसे ग्लानि रोग अथवा जरा ये कुछभी बाधा नहीं देते ॥ ४५ ॥ वे देवीजी सबके प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होकर प्राणियोंके शुभाशुभ फलका वर्णन करतीहैं ॥ ४६ ॥ उनके पूर्व और उत्तरी पार्श्वमें हयग्रीव भगवान् हैं, विष्णुधारा और मुक्तिदायक विष्णुतीर्थभी वहांहीहैं ॥ ४७ ॥ जो प्राणी भाग्यवशात् उस उत्तम स्थानमें पहुंच जाताहै, उसे व्यासपुत्र शुकदेवजीकी समान जीवन्मुक्त जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे विप्र ! उसके दर्शन करनेवाला भी पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ वहां रत्नोंका समुदायहै, सुवर्णकी बालुका और नदियें घी दूध बहानेवाली हैं, एवं वहांके पर्वत सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं ॥ ५० ॥ यह पुण्यभूमि नहीं, किन्तु भोगभूमि है ॥ ५१ ॥

रत्नधारा च तत्रास्ति दुग्धधारा तथापरा॥सुवर्णाभा च दुग्धाभा कृष्णाभा च तथा स्मृता॥९२॥एताश्चतस्रः सरितो विष्णुलोकप्रदायिकाः ॥९३॥ इति ते कथितान्येव संक्षेपेण महामुने ॥ कथयिष्यामि तेऽन्यानि तीर्थानि तुहिनाचले ॥ ९४ ॥ श्वेतपर्वतमाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ॥ कोटिसूर्याभयानेन स गच्छेच्छिवमंदिरम् ॥९५॥ तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे ॥ अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने॥९६॥काश्मीरे चैव प्रस्तावे जालंध्रे वै तथा पुनः॥तथा केदारप्रस्तावे कथितानि मयाद्य ते ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे श्वेतपर्वतमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

रत्नधारा, दुग्धधारा, सुवर्णाभा और दुग्धाभा ॥ ९२ ॥ विष्णुलोक प्रदान करनेवाली ये चार नदियें यहां हैं ॥ ९३ ॥ हे महामुने ! इस प्रकार हमने संक्षेपसे यह आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन करा, हिमालयके ऊपर अन्य जो तीर्थ हैं उनकाभी वर्णन करूंगा ॥ ९४ ॥ जो पुरुष श्वेतपर्वतके माहात्म्यको सुने अथवा पढैगा वह करोड़ों सूर्यकी समान प्रकाशमान विमानमें आरूढ हो शिवधाममें जायगा ॥ ९५ ॥ श्वेतपर्वत, नेपाल, काश्मीर, जालन्धर और केदारजीमें जितने प्रधान तीर्थ हैं उनका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति किया ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४

पञ्चोत्तरद्विशततमोऽध्यायः २०५.

स्कंद उवाच॥श्रोतारश्चैव तीर्थानां मता ये स्युर्महामुने॥नारद त्वं च भगवान्वेदव्यासश्च लोमशः ॥१॥ वशिष्ठश्च महातेजा पुलस्त्यः पुलहस्तथा॥एते मुनिवराः सर्वे सर्वशास्त्रविशारदाः॥तीर्थानां मार्गणे व्यग्राः शुद्धस्फटिकसन्निभाः ॥ २॥ तव चेदं महाभाग नारदस्य महात्मनः ॥ माहात्म्यं कथितं सर्वं संक्षेपेण महामते ॥ ३ ॥

स्कन्दजी बोले–हे महामुने ! हमारे सकाशसे तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन नारद ! तुम वेदव्यास लोमश, वशिष्ठ, महातेजस्वी पुलस्त्य, तथा पुलह इन सातने सुनाहै; ये सबही सर्वशास्त्रविशारद तीर्थोंका तत्व जाननेमें दत्तचित्त, और शुद्धस्फटिककी समान प्रभाशाली हैं ॥ १ ॥ २॥ हे महाभाग ! हमने महात्मा नारदजीके और तुम्हारे प्रति यह माहात्म्य संक्षेपसे बर्णन कियाहै ॥ ३॥

केदारमण्डलस्यैव स्वर्भूमेर्देवतात्मनः॥इदं परमकं स्थानं पृथिव्यां भिन्नमुच्यते ॥ ४ ॥ तत्र ये पर्वताश्चैव दृषदः सरितस्तथा ॥ सर्वे पुण्यतमाः ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः ॥ ५ ॥ कः समग्रं हि केदारमंडलं वक्तुमीश्वरः ॥ संक्षेपतो मया विप्र कृतं वै तीर्थ-वर्णनम् ॥ ६ ॥ मेरोः प्रशंसनं चैव शृणु संक्षेपतो ह्यथ ॥ पुण्यं पवित्रमायुष्यं पुत्रदं धनधान्यदम् ॥ भुक्तिदं मुक्तिदं चापि कथितं ते मयानघ ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इति वै पार्वतीपुत्रो वशिष्ठाय मुनीश्वराः ॥ नारदाय तथा कुंभजन्मने मुनयेखिलम् ॥ कथ-यित्वा ययौ स्नातुं प्रभासे देवतावृते ॥८॥ स्नात्वाभ्यर्च्य महादेवं पुनस्तत्रसमाययौ॥यत्र ते मुनयः सर्वेश्रोतुकामा व्यवस्थिताः॥ ॥९॥ सुमेरोश्चैव माहात्म्यं कथयामास शक्तिधृक् ॥ सर्वेषां क्षेत्रवर्याणां पृथिव्यां वै मुनीश्वराः ॥ १० ॥ केदारमंडलं यावत्तावदंतःपुरं मतम् ॥ श्रीशिवस्य महाभाग क्रीडास्थान

केदारमण्डलकी भूमि और स्वर्गीय देवभूमि इन दोनोंमें येही उत्तम स्थानहै जो भूमिके ऊपर सबसे अलगहै ॥ ४ ॥ यहां जितने पत्थर पर्वत और नदियें हैं सबहीको अत्यन्त पवित्र भोग और मोक्ष के देनेवाले जानना चाहिये ॥ ५ ॥ सम्पूर्णतया केदारमण्डलका वर्णन करनेकी तो किसीकी शक्ति नहीं है, सुतराम् हे विप्र मैंनेभी संक्षेपहीसे तीर्थोंका वर्णन कियाहै ॥ ६ ॥ अब इसके अनन्तर सुमेरु पर्वतकी संक्षिप्त प्रशंसा सुनो, यह आख्यान पवित्र, आयुकी वृद्धि करनेवाला, पुत्र और धन धान्यका दाताहै, हे अनघ ! हमतो उसे भोग और मोक्षका देनेवाला तक कहते हैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! पार्वतीकुमार स्कन्दजी वशिष्ट, नारद और अगस्त्य मुनिसे अखिल वृत्तान्त वर्णन करके देवताओंसे आकीर्ण हुए प्रभासक्षेत्रमें स्नान करनेको चले गये ॥ ८ ॥ स्नान और महादेवजीकी पूजा करके फिर वहांही लौट आये, जहां मेरुमाहात्म्य श्रवण करनेकी लालसा लगाये सबमुनीश्वर बैठेथे ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वर ! सबभूमिके ऊपर जितने तीर्थ हैं उनमेंसे कार्तिकजी महाराज सुमेरुपर्वतके माहात्म्यका वर्णन करनेलगे ॥ १० ॥ जितना केदारमण्डलहै, यह अन्तःपुरहै, और मह

मिदं परम् ॥११॥ येऽप्यत्र पर्वता वृक्षाः प्रस्तराः सरितस्तथा॥
तथा प्रस्रवणाः सर्वे पुण्या एव न संशयः ॥ १२ ॥ स्वधर्मस्थो
विधर्मस्थश्चौरो वा कुहकोऽपि वा ॥ विटो वानेकपापाढ्यो ह्यत्र-
संस्थो नरोत्तमः ॥ १३ ॥ अन्यत्र धर्मसंयुक्तः स्वाचारस्थोऽपि
नित्यदा ॥ न तत्कलामवाप्नोति षोडशीं क्षितिवासिनः ॥ १४॥
तस्मान्मुनिवरश्रेष्ठा नैमिषारण्यवासिनः ॥ अयध्वं रुद्रभवने
कैलासे भुक्तिमुक्तिदे ॥ १५ ॥ यत्र ब्रह्मादयः सर्वे निवसंति
शिवार्चकाः ॥ अत्रार्थे कथयिष्यामि पौराणमितिहासकम् ॥
॥ १६ ॥ पुण्यं व्यासमुखोद्गीतं पवित्रं पापनाशनम् ॥ १७ ॥
एकदा ब्रह्मपुत्रो वै वशिष्ठो भगवानृषिः॥रामचंद्रं प्रेषयित्वा राव-
णस्य वधाय च ॥ स्वयं समाययौ तप्तुं हिमधामनि पर्वते ॥
॥ १८ ॥ पूर्वं कुब्जाम्रके तस्थौ वर्षद्वयमतंद्रितः ॥ ततो देवप्र-
यागस्य पश्चिमे सार्धयोजने ॥१९॥ तत्र स्थित्वा वर्षमेकं ततो
देवप्रयागके ॥ स्थितवांश्चात्र वर्षं वै ययौ कैलाससत्तमम् ॥
॥ २० ॥ हेमधारा नदी तत्र पुण्या पश्चिमवाहिनी ॥ यत्राभूद्धि-

देवजीकी क्रीडाका स्थान मानागया है ॥ ११ ॥ यहां जितने पर्वत वृक्ष पाषाण नदियें औ
झरने हैं, उन सबहीको निस्सन्देह पवित्र जानना चाहिये ॥ १२ ॥ जो पुरुष इस तीर्थमें आत
वह चाहे अपने धर्ममें स्थितहो अथवा विधर्मी हो, चाहें चौर कुहक (ऐन्द्रजालिक) धूर्त अथ
पापी हो तोभी (यहां आनेसे) श्रेष्ठ मनुष्य हो जाताहै ॥ १३ ॥ अन्यत्र अपने धर्ममें उपस्थि
और अपने सदाचारका करनेवाली व्यक्तिभी यहां निवास करनेवाले पुरुषोंकी सोलहवीं कला
भी नहीं प्राप्तहोतीहै ॥ १४ ॥ इस हेतु हे नैमिषारण्यनिवासी मुनीश्वरो ! तुमलोगोंको भु
और मुक्ति देनेवाले रुद्रधाम कैलासमें जाना चाहिये ॥ १५ ॥ वहां ब्रह्मा आदिक देवताभी महा
वजीकी पूजा करनेके लिये निवास करतेहैं, इस विषयमें हम एक प्राचीन इतिहासका व
करते हैं ॥ १६ ॥ वह पवित्र आख्यान व्यासजीके मुखसे निकलाहै, सब पापोंका नाश कर
वालाभी है ॥ १७ ॥ एक समय ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्टजी महाराज श्रीरामचन्द्रजीको रावणका व
करनेके लिये भेजकर स्वयं तप करनेके लिये हिमालय पर्वतके ऊपर आये ॥ १८ ॥ प्रथम
वे सावधानीसे दो वर्षपर्य्यन्त कुब्जाम्रकके ऊपर रहे, फिर छैकोस विस्तृत देवप्रयागमें ॥ १९
एक वर्षपर्य्यन्त रहकर कैलासपर्वतके ऊपर चलेगये, ॥ २० ॥ वहां पश्चिमवाहिनी पवित्र हेमध

मदावाख्यो मुनिः परमकोपनः ॥ तपस्वी नियताहारस्तत्रायं च समाययौ ॥२१॥ किरातरूपी भगवान्यत्रास्ते भवमोचनः ॥ नानानदीनदाकीर्णं शिवलिंगोपशोभितम् ॥ २२ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ लोमहर्षण सर्वासां कथानां कथको ह्यसि ॥ हिमदावः कथं जातः को वासौ किंकुलो मुनिः ॥ यस्याश्रमपदे दिव्ये ब्रह्मपुत्रो ययौ मुनिः ॥ २३ ॥ एतत्सर्वं समासेन कथय व्यासशिष्य भोः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे हिमदावविचेष्टितम् ॥ पुरा सत्यव्रतो नाम ब्रह्मपुर्य्यां बभूव ह ॥ ॥ २५ ॥ शांतो दांतः सुशीलश्च धर्मात्मा ब्राह्मणो ह्ययम् ॥ गतागतान्पृच्छति स्म ब्राह्मणान्वै तपस्विनः ॥ २६ ॥ श्रेयः किं वै मनुष्याणां परत्रेह च शर्मदम् ॥ २७ ॥ त ऊचुस्तं तदा विप्रं नाम्ना सत्यव्रतं द्विजाः ॥ तप एव परं नो वै ब्राह्मणानां जितात्मनाम् ॥ तस्मात्कुरु तपश्चर्य्यां हिमधामानि पर्वते ॥२८॥

…नामकी नदीहै, वहांही हिमदाव नाम बडे क्रोधी एक ऋषि हुएथे, यह तपस्वी नियत भोजन किया करतेथे, यहांही वेभी आये ॥ २१ ॥ यहांही सांसारिक बन्धनसे मुक्ति लाभ करानेवाले किरातरूपी भगवान् विराजमान हैं, वह स्थान अनेक नदीनदोंसे आकीर्ण और शिवलिंगोंसे सुशोभित था ॥ २२ ॥ ऋषि बोले– हे लोमहर्षण ! आप सबही कथाओंके कहने वालेहैं, उक्तमुनि हिमदाव कैसे हुए ? किस कुलमें इनका जन्म हुआथा ? कि, जिनके आश्रममें स्वयं ब्रह्मनन्दन वशिष्ठजी गये ॥ २३ ॥ हे व्यासजीके शिष्य ! यह सब वृत्तान्त हमारे प्रति संक्षेपसे वर्णन करिये ॥२४॥ सूतजी बोले– हे मुनियो ! तुम सब हिमदावके आख्यानको सुनो, प्राचीन कालमें ब्रह्मपुरीमें एक सत्यव्रत नाम ब्राह्मण हुआथा ॥ २५ ॥ यह ब्राह्मण शान्त जितेन्द्रिय सुशील और धर्मात्मा था, यह महाशय आनेजानेवाले तपस्वी ब्राह्मणोंसे यह पूछताथा ॥ २६ ॥ मनुष्योंको परलोक और इसलोकमें कल्याण देनेवाली क्या वस्तुहै ॥ २७ ॥ वे ब्राह्मण तब उस सत्यव्रतसे येही कहाकरते थे कि– हम जितात्मा ब्राह्मणोंके लिये तपही परम कल्याण करने वालाहै, अतएव हिमालय पर्व-

इतीरितं वचस्तेषां श्रुत्वा सत्यव्रतो द्विजः ॥ नमस्कृत्य ययौ विप्राः कैलासे शिवधामनि ॥ २९ ॥ चंद्रकूटागिरे पश्चादुत्तरे वानराचले ॥ वालि यत्र पुरा देवं वासवं वै ददर्श ह॥ ॥ ३० तत्र गत्वा तपस्तेपे संयतात्मा दृढव्रतः ॥ ज्योतिर्मयो बभूवाथ तपोनिर्धूतकल्मषः ॥ ३१ ॥ जाज्वल्यमानो वपुषा प्रदीप्ताग्निरिवापरः ॥ संददर्श ततो देवमाविर्भूतं महेश्वरम् ॥ ॥ ३२ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं नमश्चक्रे सहस्रशः ॥ ततो ददौ वरं तस्मै नवनिध्यात्मकं प्रियम् ॥ ३३ ॥ तस्य नाम्ना च तत्रैव संस्थितः परमेश्वरः॥सत्येश्वर इति ख्यातः सर्वकामफलप्रदः ॥ ॥ ३४ ॥ इदं ज्योतिर्मयं लिंगं सर्वदृष्टिमनोहरम् ॥ संस्थाप्य विधिना योपि गिरिशृंगांतरं ययौ ॥ ३५ ॥ ततश्चापि महातेजास्तत्रैव परमं तपः ॥ ततापं परमापन्नो मनसा संस्मरन्हरम्॥ ॥ ३६ ॥ तत्तेजसा महाभाग युगांताग्नेर्महौजसः ॥ हिमं तत्र

[..]के ऊपर तपका आचरण करो ॥ २८ ॥ जब सत्यव्रत द्विजने उनके ऐसे वाक्य सुने तब [..]ब्राह्मणोंको प्रणाम कर शिवधाम कैलासपर्वतके ऊपर चलागया ॥ २९ ॥ चन्द्रकूटपर्वतसे आगे [..]त्तरकी ओर वानराचलपर्वत है, पहिले वालीने वहांही इन्द्रके दर्शन किये थे ॥ ३० ॥ वह [..]जाय यह दृढव्रतधारी आत्मनिग्रह करके तप करते २ निष्पाप हो साक्षात् ज्योतिःस्वरूप होगया ॥ ३१ ॥ सुतराम् उसका देह अग्निकी समान प्रदीप्त रहताथा, तभी इन्हें प्रादुर्भूत हुए महादे[..]वजीकेभी दर्शन हुए ॥ ३२ ॥ उस समय महादेवजीका करोडों सूर्य्यकी समान प्रकाश देख [..]न्होंने उन्हें सहस्रों प्रणाम करे, तब भगवान्‌ने नवनिधि रूप प्रियवर इन्हें प्रदान किया ॥ ३३ ॥ [..]र उन महर्षिके नाम महादेवजीभी अपना सत्येश्वर नाम रखके वहांही निवास करनेलगे, यह [..]शिवजी सब कामनाओंके फलको देनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ यह ज्योतिर्मयलिंग देखनेसे सबहीके [..]मनको हरताहै, यह ब्राह्मण उक्त लिंगकी यथाविधि स्थापना करके पर्वतके अन्य शिखरके ऊपर [..]चलागया ॥ ३५ ॥ यह महातेजस्वी वहां भी उग्रतप करनेलगा. और तपकरते समय मनमें [..]महादेवजीका स्मरण करताथा ॥ ३६ ॥ हे महाभाग! प्रलयकालीन अग्निपुंजकी समान उसके ते[..]

स्थितं दग्धं दावं दावाद्वनं यथा ॥ ३७ ॥ तत्रत्याश्चापि मुनयः शीतार्त्तास्तं महौजसम्॥यतोऽनेन हिमं दग्धं वनं दावाग्निना यथा॥ हिमदावोऽभवत्वस्मादसौ ब्राह्मणपुंगवः ॥ ३८ ॥ कृत्वा नाम नदीयन्ते तेपुश्च परमं तपः ॥ अयं सत्यव्रतस्तस्माद्धिमदावेतिसंज्ञितः ॥ ३९ ॥ अत्रापि स महाभाग ददर्श शिवमुल्बणम्॥ नमस्कारांश्च शतशश्चकार भवतुष्टये ॥ ४० ॥ शिवस्तुष्टो महाभागाः प्रादात्तस्मै स्वमंदिरम् ॥ चतुर्योजनविस्तीर्णं तथायाममभूत्परम् ॥ ४१ ॥ हिमदावाश्रमो नाम शिवावासोऽयमीरितः ॥ हिमदावेश्वरस्तत्र महादेवोऽपि मुक्तिदः ॥४२॥ यस्त्वत्र भक्त्या देवेशं रुद्राध्यायेन तर्पयेत् ॥ स याति भवनं शंभोर्यावदाचंद्रतारकम् ॥४३॥ यस्तत्र पक्षमेकं वै संयतात्मा दृढव्रतः॥ करोति पजनं शंभोस्तस्य सर्वं हि सिद्ध्यति ॥ ४४ ॥ हिमदावाश्रमे गत्वा शतयज्ञफलं व्रजेत् ॥ तत्समीपे क्षेत्रपालः सद्यः

से वहां संचितहुआ हिम इसप्रकार नष्ट होगया जैसे दवाग्नि वनको नष्ट करदेती है ॥ ३७ ॥ शीतसे व्याकुलहुए वहांके रहनेवाले ऋषिलोग इस तेजस्वीके लिये यों कहनेलगे कि, इसने दावाग्निकी समान हिमको भस्म कियाहै अतएव इस उत्कृष्ट ब्राह्मणका हिमदाव नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार उसके नामका निर्देश करके ये लोग फिर तप करनेलगे, इसी हेतु यह सत्यव्रत हिमदावनामसे प्रसिद्ध होगयाहै ॥ ३९ ॥ यहांभी उस महाभागको महादेवजीके उत्तमदर्शन हुए, तब इसने उनके सन्तोषार्थ सैकडों प्रणाम किये ॥ ४० ॥ तब महादेवजीने प्रसन्न होकर उसे अपना धाम दिया, यह स्थान सोलहकोश विस्तृत और इतनाही चौडाथा ॥ ४१ ॥ उसीको हिमदावाश्रम कहते हैं, और मुक्तिप्रदान करनेवाले हिमदावेश्वर नामके महादेवजीभी वहांही निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ जो पुरुष यहां भक्तिभावपूर्वक रुद्राध्यायसे महादेवजीकी पूजा करताहै, जबतक आकाशमें चन्द्रमा तारे हैं तबीतक वह शिवधाममें निवास करताहै ॥ ४३ ॥ जो व्यक्ति दृढ व्रतधारणपूर्वक आत्मनिग्रह करके एक पक्षपर्यन्त महादेवजीका पूजन करताहै, उसे सब सिद्धियोंका लाभ होताहै ॥ ४४ ॥ हिमदावाश्रममें जानेसे सौ यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है, उनके

प्रत्ययकारकः ॥ ४५ ॥ यमिच्छेद्दुर्लभं कामं तमाप्नोति स दर्शनात् ॥ यत्पूजया नरो याति शिवलोकं सुखप्रदम् ॥ ४६ ॥ तत्रैव वर्तते दिव्या नदी परमपाविनी ॥ हिमदावेश्वरोद्भूता पृथिव्यंतःसुचारिणी ॥ ४७ ॥ प्रादुर्भूता तु निकटे हिमदावेश्वरस्य हि ॥ ४८ ॥ श्रीशिवायार्पितं माल्यं तया गंधादिकं प्रिये ॥ तल्लिंगांतर्यथा देवी तन्नद्यां दृश्यते नरैः ॥ ४९ ॥ इदं परममाश्चर्यं तत्रास्ते सुंदरानने ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे शौनकादिमुनिसूतसंवादे सत्यव्रतोपाख्यानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

समीपही शीघ्र विश्वास करानेवाले क्षेत्रपाल रहते है ॥ ४५ ॥ उनके दर्शन कर दुर्लभ कामनाओंकी भी पूर्ति होतीहै, और उनकी पूजा करके मनुष्य सुखदायी शिवलोकमें ज है ॥ ४६ ॥ वहांही परम पवित्र एक दिव्य नदीहै, वह हिमदावेश्वरमेंसे निकलकर भूमिके अन्त गईहै ॥ ४७ ॥ उस नदीका हिमदावेश्वरके निकटहीसे प्रादुर्भाव होताहै ॥ ४८ ॥ हे प्रिये ! माला अथवा गन्धआदि जो कुछभी शिवजीके ऊपर चढाया जाताहै, वह सब उक्त नदीमें म ष्योंको दीखताहै ॥ ४९ ॥ हे सुमुखि ! यह वहां बड़ाही आश्चर्यहै, और उसके जलका स्पर्श क नेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः २०६.

सूत उवाच ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे हिमदावाश्रमे मुने ॥ वशिष्ठो मुनिशार्दूलोऽरुंधत्या च समन्वितः ॥ १ ॥ ययौ महादेवमनाः संयतात्मा दृढव्रतः ॥ चकार वसतिं तत्र भिल्लानां निचयैर्युतः ॥ २ ॥ तत्तदाचरणं कुर्वन्स तदा भगवानृषिः॥ मत्वा तां स्वर्गभूमिं वै न क्रिया वै विशेषिकाः ॥ ३ ॥ रेमे सोऽपि किरातैश्च संध्यास्नानपराङ्मुखः ॥ मृगमांसाशनो नित्यं कृष्णकंबलकंचुकः ॥ ४ ॥ धनुर्हस्तो बाणकरः कटिविन्यस्तखड्गकः ॥ जानन्नपि महाभागो न चकार क्रियां द्विजाः ॥ ॥ ५ ॥ मलसंदिग्धकायश्च मलकृष्णोपवीतकः ॥ उवास बहुवर्षाणि स्वधर्मपरिवर्जितः॥६॥ अरुंधती तथैवासौ बभूव विगतप्रभा ॥ सह पत्या महाभागा सापि तद्धर्म्मसंयुता ॥ ७ ॥ भुंक्ते कदाचिदस्नातः मुखमेव प्रमार्जति ॥ इति तस्य वशिष्ठस्य

सूतजी बोले—हे मुनीश्वर उसी क्षेत्रमें हिमदावाश्रममें अरुन्धतीको साथ ले महामुनि वशिष्ठ ॥१॥ महादेवजीमें मन लगाके गये, उस समय उन्होंने आत्माका निग्रह और दृढव्रतका धारण किया था, सुतराम् भीलोंमें मिलजुल कर आपभी वहां रहनेलगे ॥ २ ॥ तब महर्षिभी उन्हींकी ान आचरण करने लगे, अर्थात् उसे स्वर्गभूमि मानकर उन्होंने विशेष क्रियाओंका आचरण दिया ॥ ३ ॥ सुतराम् सन्ध्या और स्नानसे पराङ्मुखहो यह स्वयंभी किरातोंके साथ क्रीड़ा लगे, काले कंबलकी बूगी ओढे नित्यही मृगमांसका भक्षण करते थे ॥ ४ ॥ उनके हाथमें बाण और कमरमें खड्ग रहता था, हे द्विजो ! ये जानबूझ करभी सत्कर्मोंका आचरण नहीं थे ॥ ५ ॥ इनका देह और यज्ञोपवीत मलसे लिथड़ रहाथा, इस प्रकार अपने धर्मका परि- कर ये कुछ वर्षपर्यन्त वहां रहे ॥६॥ इधर अरुन्धतीकी प्रभाभी मलीन हो गई, हे मुनियों ! साथ वहभी उसी धर्ममें परायण रहती थी ॥७॥उक्त ऋषि कभी विनाही स्नान करे भोजन ते, और कभी केवल मुखप्रक्षालनही करडालते थे, इस प्रकार हिमदावाश्रममें निवास करते२

हिमदावाश्रमे सतः॥व्यतीयुर्बहुवर्षाणि कदाचारस्य वै तदा ॥८॥ एतस्मिन्नंतरे रामो विजित्य दशकंधरम् ॥ अयोध्यायां समागत्य वचो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥९॥ गच्छ लक्ष्मण कैलासं वशिष्ठो यत्र संस्थितः ॥ शीघ्रमानय सौमित्रे वशिष्ठमभिषेचने ॥१०॥ इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं ययौ कैलासपर्वतम्॥अन्वेषयामास तदा वशिष्ठं वाग्विदांवरम् ॥ ११ ॥ हिमदावाश्रमं गत्वा प्राप वै धाम तन्मुनेः ॥ खड्गतूणीरचापध्रोऽसितकम्बलकञ्चुकः ॥ दृष्टो वशिष्ठो मुनिराडचष्ट च तदीरितम् ॥ १२ ॥ रामभद्रो महाबाहुस्त्वां द्रष्टुमभिकांक्षति ॥ रावणो निहतः संख्ये सपुत्रबलवाहनः॥ ॥ १३ ॥ इति श्रुत्वा वशिष्ठोऽपि लक्ष्मणेन सहाययौ ॥ मुक्त्वा तत्खड्गतूणीरचापातिकृष्णकंचुकम् ॥ १४ ॥ गंगाद्वारं समागत्य स्नानं तत्र चकार ह ॥ सर्वाः क्रियाश्च विधिवत्तथा वै देवतार्चनम् ॥ १५ ॥ ततः परं यथापूर्वं चकाराचारमुत्तमम् ॥

कुत्सित आचरण वाले वशिष्ठजीको बहुतसे वर्ष व्यतीत होगये ॥ ८ ॥ इतनेहीमें श्रीरामचन्द्र महाराज दशवदन रावणको जीत अयोध्यामें आय लक्ष्मणजीसे यों कहनेलगे ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण कैलासके ऊपर जहां वशिष्ठजी विराजमान हैं, वहां तुम जाओ; और हे सुमित्रानन्दन ! राज्याभिषेक करनेके लिये शीघ्रही उन्हें लाओ ॥ १० ॥ यों कहे जानेपर लक्ष्मणजी तत्कालही कैलास पर्वतको चलदिये, और वहां वाग्मीश्वर वशिष्ठजीका अन्वेषण करनेलगे ॥ ११ ॥ हिमदावाश्रम जाय उन्हें एक उत्तम आश्रम मिला, लक्ष्मणजी क्या देखते हैं कि, वशिष्ठजी खड्ग औ धनुषबाण धारण कर रहे तथा काला कंबल ओढरहेहैं, ऐसे मुनिराज वशिष्ठजीको देख उनसे रामचन्द्रजीका सन्देसा कहा ॥ १२ ॥ हे नाथ ! महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी आपके दर्शन करनेकी अभिलाषा करतेहैं, और उन्होंने पुत्रों सेना और वाहनों सहित रावणका संग्राममें वधभी करालिया है ॥ १३ ॥ यह बात सुन वशिष्ठजी खड्ग तरकश धनुष और कृष्णकंबल कंचुकका परित्याग करके लक्ष्मणजीके साथ चलदिये ॥ १४ ॥ फिर उन्होंने गंगाद्वारमें आ स्नान करा एवं विधिवत् सब क्रिया और देवपूजनकाभी आचरण किया ॥ १५ ॥ इसके अ

भोजनं च विधानेन तथातिथ्यादिपूजनम् ॥ १६ ॥ इति तच्च-रितं दृष्ट्वा वशिष्ठस्य रघूद्वहः ॥ आश्चर्यं परमं मत्वा पप्रच्छ गु-रुमध्वनि ॥ १७ ॥ संशयो मे महाप्राज्ञ तवाचरणतो गुरो ॥ किमेतत्तत्र न कृतो ह्याचारो वै कथं विभो ॥ १८ ॥ अत्र वै विधिना सर्वं किमेतत्क्रियते त्वया ॥ वशिष्ठोऽपि तदोवाच सौ-मित्रिं सस्मितो मुनिः॥१९॥सत्यमेतत्त्वया प्रोक्तं कर्त्तव्यः संशयो न हि ॥ गंगाद्वारं समारभ्य यावच्छ्वेतगिरिर्भवेत् ॥ २० ॥ ताम-सातटतः पूर्वं तथा काष्ठगिरिर्भवेत् ॥ अर्वाक्तदाद्रितस्तद्धच्छिव-धाम स्मृतं बुधैः ॥ २१ ॥ केदारमंडलं यावत्तावत्पुण्यतमं महत् ॥ येऽप्यत्र निर्झरा नद्यः स्रोतांसि च सरांसि च ॥ सर्वं गंगाजलं विद्धि यतो गंगात्र निर्गता ॥ २२ ॥ तत्पयः-स्पर्शमात्रेण शुद्धो भवति तत्क्षणात् ॥ एकवारं शिवः प्रोक्त-स्तेन सर्वः कृतो जपः ॥ २३ ॥ बहुना किं कृतेनात्र मज्जनो-

...र वे पहिलेकी भांति सब आचरणोंको, यथाविधि भोजन और अतिथिआदिके पूजनको करने-लगे ॥ १६ ॥ वशिष्ठजी महाराजके ऐसे चरित्र देख लक्ष्मणजीको बडा आश्चर्य हुआ, सुत-राम् वे मार्गहीमें गुरु महाशयसे पूछने लगे ॥ १७ ॥ हे गुरुजी महाराज ! आपके आचरणको देखके मुझे बड़ा आश्चर्य होताहै, हे नाथ ! इसका क्या कारणहै कि, आपने वहां कुछभी सदा-चार नहीं किया ॥ १८ ॥ और यहां सबकुछ विधिपूर्वक कररहे हैं, तब मुनि वशिष्ठजी मुस-काकर लक्ष्मणसे कहनेलगे ॥ १९ ॥ हे वत्स ! तुमने यह सत्य कहा, परन्तु— इसमें संशय तनि-कभी नहीं करना चाहिये, कारण कि, गंगाद्वारसे श्वेतगिरिपर्य्यन्त॥२०॥और तामसातटसे पूर्व तथा काष्ठपर्वत पर्य्यन्तसे पहिले २ जितना स्थानहै, विचारवान् व्यक्तिगण इसको शिवधाम कहतेहैं ॥ २१ ॥अथ च केदार मण्डल पर्यन्त जितना स्थानहै वह औरभी अतिशय पवित्र है, यहां जितने झरने, नदियें, सोत और सरोवर हैं उन सबहीको गंगाजलस्वरूप जानना चाहिये, कारण कि— गंगाजीकी उत्पत्ति यहांहीसे हुईहै ॥ २२ ॥ इसके जलका केवल स्पर्शमात्र करनेसे मनुष्य तत्काल शुद्ध होजाताहै । जो व्यक्ति एकवारभी यहां शिवनामका जप करताहै उसे सब जप करनेका फल मिलताहै ॥ २३ ॥ यहां बहुतसे स्नान अथवा जलक्रीडा करनेसे क्या होताहै ? क्यों-

न्मज्जनादिना ॥ येनैकवारं तत्स्पर्शः कृतोऽत्र दिवसेऽखिले ॥ सर्वतीर्थेषु स्नातः स्याद्बहुना किं महामते ॥ २४ ॥ तस्य देशस्य सदृशो नास्त्यत्र जगतीतले ॥ तस्मादिदं मया भद्र न कृतं विधिदर्शनम् ॥ २५ ॥ इयं तु पृथिवी प्रोक्ता स्वर्गभूमिस्तु सा स्मृता ॥ ततोऽत्र निवसंतश्च देवा एव न संशयः ॥ २६ ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा बहु मेने स लक्ष्मणः ॥ केदारमंडलं सर्वं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २७ ॥ वशिष्ठे ययौ तत्र यत्र रामो महामनाः ॥ कारयामास विधिवदभिषेकं महामुनिः ॥ २८ ॥ एतद्वः कथितः सर्व इतिहासः पुरातनः ॥ श्रुत्वापि सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥२९॥ सकृत्केदारभवनं गत्वा मुच्येत बंधनात् ॥ धन्याः सुकृतिनो लोके येऽत्र वासं प्रकुर्वते ॥ न ते स्तनंधया विप्रा जायंते हि पुनर्द्विजाः ॥ ३० ॥ अतः पर्य्यंत्य

कि, हे महामतिमान् ! जिसने मेराभी एकवार स्पर्श करलिया, विशेष क्या कहें उसे सब ती स्नान करनेका फल प्राप्तहोताहै ॥ २४ ॥ इस देशकी समान भूमिके ऊपर और कोईभी दे नहीं है, हे महाशय ! इसी कारण मैंने कुछ विधि नहीं दिखाई ॥ २५ ॥ इस भूमिको साक्ष स्वर्गभूमि कहाहै, सुतराम् यहां निवास करनेवाले व्यक्ति निस्सन्देह देवताही हैं ॥ २६ हमारे ऐसे वचन सुन लक्ष्मणजीने समस्त केदारमण्डलको विशेष कर भोग और मोक्षप्रदान क नेवाला मान ॥२७॥ सुतराम् वशिष्ठजीको साथ ले लक्ष्मणजी मननशील रामचन्द्रजीके निकट ग तब महामुनिने विधिपूर्वक अभिषेक कराया ॥ २८ ॥ इस प्रकार हमने प्राचीन इतिहासका तुम् प्रति वर्णन किया, इसको श्रवण करनेवाला पुरुष अवश्यही समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २९ ॥ जो पुरुष एकबारभी केदारजीकी यात्रा करताहै, उसेभी सांसारिक ब नसे छुटकारा मिलजाताहै । उन पुण्यात्माओंको धन्यहै जो यहां निवास करते हे महर्षियो ! उन्हें फिर माताका स्तन पान करना नहीं होता ॥ ३० ॥ अ राजालोग भूमिके ऊपर सर्वत्र विचरकर अनेक क्षेत्रोंसे शोभायमान इसी सुरम्य

सकलां पृथिवीं पृथिवीश्वराः ॥ निवसंति स्थले, रम्ये नानाक्षेत्रोपशोभिते ॥ ३१ ॥ अतस्ते पांडुदायादा गुरुगोत्रवधार्दिताः ॥ अत्रागत्य जहुः पापं जग्मुश्च परमं पदम् ॥ ३२ ॥ अन्ये चापि नृपश्रेष्ठाः परमां सिद्धिमाप्नुयुः ॥ इति वः कथितं सर्वमक्षरं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ गंगाख्यं परमं धाम यत्स्मृत्वापि विमुच्यते॥ तदुत्पत्तिप्रसंगेन केदारस्यापि वैभवम् ॥ अन्येषामपि तीर्थानां माहात्म्यं कथितं च वः ॥ ३४ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं च गच्छति ॥ ॥ ३५ ॥ य इदं श्राद्धसमये शृणुयाद्भक्तिसंयुतः ॥ अध्यायमात्रं पितरो गच्छन्ति परमं पदम् ॥ ३६ ॥ तथा रोगग्रहग्रस्तो रिपुभिश्च पराजितः ॥ सावधानश्च शृणुयादिदं केदारखण्डकम् ॥ ३७ ॥ व्याधयस्तस्य नश्यंति प्रसन्नाश्च तथा ग्रहाः ॥ रिपवः संक्षयं यांति सत्यं व्याससुखोदितम् ॥ ३८ ॥ य इदं कार्तिके मासि

निवास करतेहैं ॥ ३१ ॥ अतएव अपने दायाद (हिस्सेदारों) गोत्रजो और गुरुआदिके वधजनित पापसे व्यथित हुए पुरुष यहां आनेपर बड़े २ पापोंको त्यागकर मोक्षको प्राप्त करते ॥ ३२ ॥ और भी बहुतसे राजाओंको यहां उत्कृष्ट सिद्धिका लाभ हुआहै । इसप्रकार अविनाशी ब्रह्मसंबन्धी आख्यानका वर्णन हमने तुम्हारे प्रति कियाहै ॥ ३३ ॥ गंगानाम परमधामका स्मरणही करनेसे पुरुषोंका मोक्ष हो जाताहै, प्रसंगवशात् उसकी भी उत्पत्ति और केदारका माहात्म्य, तथा अन्यान्य तीर्थोंकाभी माहात्म्य हमने तुम्हें कह सुनाया ॥ ३४ ॥ जो पुरुष चित्तको एकाग्र करके इसे नित्य सुनता अथवा सुनाताहै, वँह अखिल पापोंसे छूटकर महादेवके लोकको चलाजाताहै ॥ ३५ ॥ जो पुरुष श्राद्धके समय भक्तिभावपूर्वक इसके एक अध्यायमात्रको भी सुनताहै उसके पितरोंका मोक्ष होजाताहै ॥ ३६ ॥ रोग, ग्रह, और शत्रुओंकी बाधासे पीड़ित हुआ जो व्यक्ति सावधान होकर इस केदारखंडका श्रवण करताहै ॥ ३७ ॥ उसके सब व्याधियोंका नाश हो जाताहै, सब ग्रह उससे प्रसन्न हो जातेहैं, एवं उसके समस्त शत्रुओंका भी विनाश हो जाताहै, व्यासजीने यह सब कुछ सत्यही कहा है ॥ ३८ ॥ जो प्राणी ब्राह्मणोंका अन्तर करके कार्त्तिक अथवा मार्गशीर्ष (अग-

मार्गशीर्षेऽथ वा पुनः ॥ अंतरे ब्राह्मणान्कृत्वा पूजयन्वाचकं तथा ॥ ३९ ॥ शृणुयात्सावधानस्तु तस्य पुण्यफलं द्विजाः ॥ सर्वतीर्थेषु सुस्नातः सर्वयज्ञेषु च क्रमात् ॥ गवां कोटिसहस्राणि तेनदत्तानि भो द्विजाः ॥ ४० ॥ दुष्कृतं दुरनुध्यातं दुर्भोज्यं दुरनुष्ठितम् ॥ नश्यंति पठनात्तस्य श्रवणाच्च तथा ततः ॥४१॥ पुत्रार्थी मासमेवैकं निरवच्छिन्नचेतसा ॥ संपूज्य गंधपुष्पाद्यैः पुराणं च तथा द्विजम् ॥ ४२ ॥ शृणुयाद्भक्तितो विप्राः संपूर्णनियमान्वितः॥ कुमारसदृशं पुत्रं लभते वर्षमात्रतः॥४३॥ यथाशक्ति च तं विप्रं संतोष्य विधिवत्तथा ॥ वासोलंकारस्वर्णाद्यैः पृथिव्या च महामतिः ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाशक्ति मुनीश्वराः ॥स्वयं चापि पठेद्यस्तु संयतात्मा दृढव्रतः॥सोऽपि तत्फलमाप्नोति ततो दशगुणं सुधीः ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणानां

हन) मासमें, पुराण पाठ कर्त्ता (कथाभट्ट) की पूजा करके ॥ ३९ ॥ सावधानीसे श्रवण करता है, हे मुनीश्वरो ! उसको जो पुण्य मिलताहै उसके फलका श्रवण करो मानो उस सबतीर्थोमें स्नान किया, और क्रमसे उसने सब यज्ञ किये, और मानो उसने करोडों गो दान करके ब्राह्मणोको देडालीं ॥ ४० ॥ दुष्कर्म, असत्यज्ञान, दुष्ट (वार्जित) भोजन, और निन्दनीय कर्मोंका आचरण ये सब उसके पढने अथवा सुननेसे नष्ट हो जातेहैं ॥ ४१ ॥ पुत्र प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको चाहिये कि, एकमास पर्य्यन्त निरन्तर (विनानागा) गन्ध और पुष्प आदिसे पुराण तथा कथा कहनेवाले ब्राह्मणकी पूजा करके ॥ ४२ ॥ हे विप्रो ! भक्तिभावपूर्वक इसका श्रवण करै, तौ उसे एकवर्षमें स्कन्दजीकी समान पुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४३ ॥ यथाशक्ति उस ब्राह्मणको वस्त्र आभूषण सुवर्ण और भूमि आदिदेके विधिवत् सन्तुष्ट करना कर्त्तव्य है ॥ ४४ ॥ फिर हे मुनीश्वरो ! यथाशक्ति ब्राह्मण भोजनभी कराना कर्त्तव्यहै ॥ ४५ ॥ जो व्यक्ति आत्मनिग्रह पूर्वक दृढव्रत धारण कर स्वयंही केदारखण्डका पाठ करताहै, उस बुद्धिमान्को उनसेभी दसगुणा अधिक फल प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो पुरुष ब्राह्मणों की सभामें इसका व्याख्यान करताहै, उसे सावधानीसें समस्त वेदोंके पारायण करनेका फ

सभायां तु व्याकरोति मुनीश्वराः ॥ तेन सर्वं च सर्वेषां वेदानां सावधानतः ॥ कृतं पारायणं विप्राः संयतोऽमृतमश्नुते ॥ ४७॥ पुण्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गीयं धनधान्यदम् ॥ कथितं वो महाभागाः खंडं केदारसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥ यदेकवर्णश्रवणात्पठनाच्च परं पदम्॥४९॥ हिमवद्गिरिमाहात्म्यप्रस्तावेन मयाखिलम्॥ कथितं वो महाभागाः श्रोतॄणां भुवि मुक्तिदम्॥५०॥इदं केदारखंडं तु यः पठेच्छृणुयादपि॥संपूर्णं वा तदर्द्धं वाध्यायमात्रमथापि वा ॥ श्लोकं श्लोकार्द्धकं वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कांदे केदारखंडे एकाशीतिसाहस्रे केदारमंडलप्रशंसावर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

...त होताहै, एवं वह संयम पूर्वक अमरत्व लाभ करताहै ॥ ४७ ॥ हे महाभागो ! पवित्र ...त्र आयु और यशकी वृद्धि करनेवाले स्वर्ग और धन धान्य प्रदान करनेवाले केदारखण्डका ...मने तुम्हारे प्रति वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके एक अक्षर मात्रकाभी पाठ अथवा श्रवण करनेसे परमपद मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४९ ॥ हिमालय पर्वतके माहात्म्यका वर्णन करते समय ...मने हे महाभागो ! समस्त आख्यान वर्णन किया, इस इतिहासको सुनने वालोंकी मुक्ति ...तीहै ॥ ५० ॥ इस केदारखण्डको जो पुरुष संपूर्ण, अथवा इसके अर्धभाग, किंवा एक अध्याय, श्लोक अथवा आधे श्लोकको भी पढता या सुनताहै, उसको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति होजातीहै ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे भाषाटीकायां षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

इत्याचार्य्यवर्य्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणमहामहोपाध्यायश्रीमज्ज्वालानाथसूरितनूद्भवमुरादाबाददेशिकव्रजरत्नभट्टाचार्य्यकृत रत्नप्रभा भाषाव्याख्या सहित श्रीस्कान्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड समाप्त.

धन्यवाद ।

यों तो सर्वस्व देनेवाले इस कार्य्यालयके इष्टदेव भगवान् भव
नय विनाशक श्रीबदरीविशालही हैं, तथापि उनहींके मन्दिरके
कार्य्यकुशल कर्मचारियोंकी उदारतासे इस व्ययसाध्य कार्य्यकी
सहायताके लिये ५००, रु० विना व्याज ४ वर्ष के लिये उधार मिले
हैं। यदि यह छोटीसी मदद कार्य्यालयकी सहायताको प्रदान ही की
जाती तो आज मुझको यह लिखनेका दुःख न उठाना पडता कि
उधार दियेहैं। कारण मैं, तनधनसे मन्दिरका आद्वितीय सेवकहूं और
इस समय द्रव्यसाध्य उसीके प्रशंसासे भरपूर बृहद्ग्रन्थ तइयार
हुआ है, बृहद्लाभ उसहीकाहै क्योंकि वहधर्मका, तथा उतराखंडके
समस्ततीर्थोंका अधीश्वरहै किन्तु मैं इतनी ही मदतको धन्यवाद
सहित पुष्कल मानता हूं क्योंकि मैं मान्दिरका कृतज्ञहूं ।

महेशानन्दशर्म्मा.

सज्जन महोदयोंकी कृपा ।

कार्य्यालयके परिचालकका पूर्ण परिश्रम देखकर अनेक सज्जन महानुभावोंने प्रशंसा पत्र प्रदान किये हैं उनमेंसे दो एक पत्र धन्यवाद सहित प्रकाशित करके, कृतज्ञता प्रकट करतेहैं ।

श्रीकेदारेश्वरो विजयते ।

अजतर्फ श्रीमान् पं० गणेशलिङ्गजी रावल महोदय श्रीमन्दिर केदारनाथ उखीमठ जि०गढ़वाल ता० २६ जून ०९

मोहर मन्दिर

दस्तखत रावल साहब.

श्री पं० महेशानंद शर्म्मा अध्यक्ष श्रीबद्रीनारायण भक्तिरसामृत कार्य्यालय नन्दप्रयाग निवासी बड़े उद्योगशील हैं । सनातनधर्मकी मूलभूत तीर्थसेवाके लियेइनकापरिश्रम प्रशंसनीय है । आपके पिता पं० देवानन्दजी सावक मुहाफिज बड़े विद्वान्, सत्कर्मी तथा बड़े परोपकारी थे, उनसेभी हमारी मित्रताथी । आप उन्हींके पुत्र हैं । आपकाभी सरल स्वभावहै । आपने सनातन धर्म्मकी वृद्धिके लिये बड़े उपकार किये हैं, खासकर हमारे केदारखण्ड प्रान्तका गौरव बढ़ायाहै । अनेक यात्रावृत्तियोंमें कई प्रकारके श्रीबद्रीकेदार माहात्म्य प्रकाशित करके इस धामका उपकार किया, तथा बड़े २ पंडितोंके द्वारा प्रतिवर्ष तीर्थोपयोगी नवीन २ पुस्तकें तइयार करवातेहैं, जिनका सर्वत्र बहुत प्रचार हो रहाहै ।

इस समय आपने अलभ्य तथा प्राचीन श्रीकेदारखण्ड ग्रन्थको निजव्ययसे रत्नप्रभा भाषा व्याख्या सहित छपवायाहै इसके प्रकाशित होनेसे केदारखंडके यावत् तीर्थोंका महत्व सर्व साधारण को भली भाँति विदित होवैगा ।

इस प्रशंसनीय सत्कर्मके लिये श्री १०८ मन्दिर केदारेश्वरकी ओरसेभी १००) रु० सहायता दीगई है । मैं इस कार्य्यालयको चिरस्थायी रहनेको उत्सुक हूं ।

मन्दिर क्योंकालेश्वर पौड़ी गढ़वाल

ता० ५ जौलाई ०९.

स्वस्ति श्रीमत्सद्गुरुचरणभक्तिचन्द्रचान्द्रिकाचान्दितान्तःकरणावाप्तसदुद्योगशीलताप्रहर्षितसज्जनेषु पण्डितमहेशानन्दशर्म्मसु । इतो हरिशर्म्ममुनेः शुभाशिषस्सन्तु शमुभयत्र । अयं पुनीत श्रीबदरिकाश्रमकेदारखण्डभूभागः पुराणादिषु प्रथितोपि समयवशाच्छतशो जनाः पूर्णमहिमान-भिज्ञाश्चासन् । साम्प्रतं भवत्प्रकाशितैर्बदरीशधामपथदर्शिका—यात्रामार्गमानचित्र—श्रीबदरीकेदारमाहा-त्म्यचित्रदर्शनादिभिः, तथा च हिमप्रभादिभिः सर्व एव प्रमुदिताः।स भवत्सदुद्योगजनितभक्तिरसामृत कार्य्यालयस्यैव विचित्रमहिमा प्रभावपूरः । अपिच पुष्कलद्रव्यसाध्योपि केदारखण्डभाषाटीका प्रकाशो भवत्साहसौदार्य्यमहत्वं सूचयतितराम् ।

अतो भवत्सदुद्योगकार्य्यकौशलतया प्रहर्षितमानसेन मयाद्य प्रशंसाप[illegible] [illegible]न्यते । सर्वशक्ति जगदीश्वरबदरीविशालकरुणाकटाक्षलेशेनानिशं भवत्सदुद्योगाः प्रवर्द्धन्तां [illegible]रोपकारी कार्या-

...शास्त्रसज्जन—भक्तजन—धनिकजनाः भवद्भक्तिरसामृतकार्यालयकार्य्यजातहर्षाः सर्व प्रकारेण ...योगवर्द्धयिष्यन्तीति मन्ये शुभम् । सम्वत्सरे १९६२ आषाढ सुदि ३.

भवदीयभव्याभिलाषी,

तपस्वी–हरिशर्म्ममुनिः।

गढ़वाल युनियन कीराय (जनवरी ०६)

...० महेशानन्द शर्म्माके उद्योगसे "श्रीकेदारखंड" भाषानुवाद छपरहाहे थोडेही समयमें वह ... प्रकाशित होजायगा । श्रीकेदारखंडमें गढ़वालका पूर्ण वृत्तान्तहे । हम इसके लिये पंडित- ... धन्यवाद देतेहैं और साथ ही जिल्लेके गण्यमान्य सज्जनोंको अनुरोध करतेहैं कि इस ग्रन्थ ...ी एक २ प्रति खरीदकर पंडितजीका उत्साह बढावे । और स्वयं भी अपने गौरवके भंडार ...ढ़कर महत् लाभ उठावें

श्री पं० तारादत्त गैरोला

M.A.L.L.B.मन्त्री,

गढ़वाल युनियन देहरादून ।

श्री महेशानन्द शर्म्मा आपका उद्योग श्रीकेदार खंडके लिष्ट अती प्रशंसा योग्यहै । श्री पं० ...लीलानन्दजोशी सुपरिन्टेन्ट कमिश्नर्स—कोर्ट कमाऊं नैनीताल-ता० १ । १० । ०६

श्रीमान् पं० महेशानन्दशर्म्माजी—आपके परिश्रमसे अत्यन्त आनन्द ही क्यों बरन एक बहुत भारी लोकोपकार भ... । यह श्रीकेदारखंड—रत्न अंधकाररूपी—रत्नाकरमें निमग्न था आपहीने बडी बडी दिक्कतोंको ...हन करत... गोता मारके उस्को प्रकाशित कियाहै, अब स्वधर्म्महितैषी महाशयोंका कर्त्तव्य कि एक ग्रन्थरत्न मँगवाकर भूषित होवें तथा अपने देशका गौरव पाठ करके गौरवान्वित... ।

पौड़ी गढ़... ता० २ । १० । ०६ } श्री पं० अम्बिकादत्त बहुगुणा गवर्नमेन्ट पेनशिनीयर मुहाफिज ।

इ... कुछ सन्देह नहीं कि पं० महेशानन्दजी शर्म्माने "श्रीके-...खण्ड" को प्रकाशित करके भरतखण्ड निवासियोंका बड़ा उप-...र किया है । मुझको आशा है कि रसिक सज्जनोंमें इसका बहुत ... प्रचार होगा ।

अल्मोडा ता० २... । १० ... } पं० गंगादत्त उप्रेति प्यनसन प्राप्त डिपटीकलक्टर.

नूतन पुस्तकें ।

श्रीबद्रीकेदार माहात्म्य भा• टी० सहित २१ अध्याय (शिवकार्तिकेयसम्बाद) मूल्य १।

श्रीबद्रीकेदार माहात्म्य १८ अध्याय भा० टी० (श्रीकेदारखण्डान्तर्गत) " १

तथा यही संचिकार (पुस्तकाकार) मू० ॥

श्रीबद्री माहात्म्य केवल भाषा गुटका मू०

कैलास वासिनी हिमप्रभा (कैलासका अद्भुत आश्चर्य्यजनक वृत्तान्त अवश्य देखने योग्य) मू०

श्रीबद्रीश धाम पथदर्शिका (जिसमें हरिद्वारसे गंगोत्री यमुनोत्तरी केदार, बद्री होते हुए ष्टेशन काठगोदाम मिलने तककी प्रत्येक चट्टी (मुकामों) की मीलसंख्या मुख्य २ बातें लिखीगईहैं तथा स्टेट गढ़वाल तथा ब्रिटिश गढ़वालकी बहुतसी जानने योग्य बातें गईहैं। सोनहला पाइक्यट बुक है अतिमनोरम्य २५० पृष्ठका बनाहै मू० ॥=)

चित्रदर्शन। इसमें फोटोंके स्वदेशी चित्र तथा चरित्रोंका समावेश हुआहै। जैसे श्री बद्रीकेदार पुरी तथा उन्हींके रावल महन्त कमलेश्वर क्योंकालेश्वर आदिके प्रातः दर्शनीय मू० ।।।)

बद्रीकेदार यात्रा (गढ़वालभर) का नक्सा मू० =)

पुस्तकें मिलनेका

पं० महेशानशर्मा,

भक्तिरसामृत कार्य्यालय नन्दप्रयागढवाल।

कानून संग्रह कार्य्याल

इसमें आश्चर्य्य नहीं कि मु० नासीरुद्दीन नन्दप्रयाग गढ़वाल ... इससमय सामयिक प्रत्येक प्रकारकी कानूनकी सरल सुबोध भाषाकी पुस्तकें जूदहै जिनकी बिक्री गढ़वाल कमाऊंमें बहुतायतसे होरहीहै, कारण लखनौ आदिकी छपी हुई नूनी किताबें कठिण फारसी शब्दोंमें लिखी हुई हरएकके समझने योग्य नहीं होतीहैं. और इ उनका संग्रह से २ ला प्रैसोंसे है जहां अति सुबोध हिन्दी भाषामें प्रत्येक कानून छपते हैं जिनमें प्रत्येक वर्षोंक तथा चारों हाइकोर्टोंकी नजीरें प्रकाशित रहती हैं जिनसे बहुत लाभ सक्ता है। उन्हें पत्र भेजनेपर प्रत्येक प्रकारके कानून व्ही० पी० से भेजे जातेहैं।

अथ ग्रन्थालंकारश्लोकाः-

णोरणीयसे धाम्ने महतश्च महीयसे ॥
ादिमध्यान्तहीनाय मह्यमेव नमोनमः ॥ १ ॥
र्गादौ समजायन्त कर्मठाग्र्याश्च गुर्ज्जराः ॥
मत्सरा वावदूकाः कवयश्च द्विजातयः ॥ २ ॥
ासीत्कुलपतिस्तत्र विद्वद्रत्नं महाशयः ॥
्याचुञ्चू राजमान्यो राधाकृष्णाभिधः कविः ॥ ३ ॥
ंशे श्रीनृपजीधर्म्मदत्तौ ज्योतिःश्शास्त्रे लब्धकीर्त्ती किलास्ताम्॥
ारुण्ये वै कोविदो धर्मदत्तः स्वर्गं ह्यातीद्यायजूकप्रवयः ॥ ४ ॥
ाष्टस्यास्तां तनयौ सन्मान्यौ नृपजीपदाख्यस्य ॥
न्द्रमणिप्राणसुखौ तत्र ज्येष्ठाद्बुधैर्विनुतविद्यात् ॥ ५ ॥
ीमद्भूदेववंश प्रथितगुणगणाभूषणाभूषितांगो
ापट्कर्मार्चनादिष्वविरतनिरतः श्रोत्रियो भूमिरत्नम् ॥
ीमच्चन्द्रार्द्धचूडामणिपदकमलाराधनाच्छुद्धबुद्धि-
र्वोलानाथः कवीन्द्रो ह्यजनि जनकजाजानिपादप्रसादात् ॥ ६ ॥
त्सूनुना व्रजरत्नभट्टाचार्य्येण निर्मिता ॥
त्नप्रभाख्यटीकेयं विद्वन्मार्गानुसारिणा ॥ ७ ॥
ीजन्यसौरभ्यभरैर्लसन्तस्तुष्यन्तु पीत्वा रसमस्य सन्तः ॥
र्जन्यतो मां सुतरां हसन्तस्सन्तोषमेष्यन्तितमामसन्तः॥ ८ ॥
सन्ति श्वान इवोद्वान्तभोजिनः किल पण्डिताः ॥
स्वकीयबलवान् विद्वान् शरभः कोऽपि दुर्लभः ॥ ९ ॥

विनयावनतो मुरादाबाददेशिको
व्रजरत्नभट्टाचार्य्योऽनुवादकृत्.

इति

भाषाटीका समेत
केदारखण्ड

समाप्त ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें मुद्रित–मुंबई.